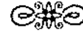
॥ श्रीः ॥

वि० आ० ग्रन्थमाला

२८



श्रीमद्भावमिश्रप्रणीतः

भावप्रकाशनिघण्टुः

सविमर्श-हिन्दीव्याख्योपेतः

(संशोधित परिवर्धित संस्करण)

विमर्शकार

डॉ० कृष्णचन्द्र चुनेकर, ए.एम.एस.

भूतपूर्व प्राध्यापक : द्रव्यगुण विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सम्पादक

डॉ० गंगासहाय पाण्डेय, ए.एम.एस.

भूतपूर्व प्राध्यापक : आयुर्वेद विभाग, चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय,
तथा चिकित्सक : सरसुन्दरलाल आतुरालय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी



चौखम्भा भारती अकादमी

आकर ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक

गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

पोस्ट बॉक्स नं० १०६५

वाराणसी २२१००१ (भारत)

प्रकाशक
चौखम्भा भारती अकादमी
आकर ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक
गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन
पो. आ. बॉक्स नं. १०६५
वाराणसी-२२१००१ (भारत)
टेलीफोन: ३३०३४९, ३३०३४५
३३२७०२, ३३२६३७

पुनर्मुद्रित : २००२
मूल्य : ३५०/-





शाखा
चौखम्भा विश्वभारती
भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक एवं वितरक
के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन
पो. आ. बॉक्स नं. १०८४
वाराणसी-२२१००१ (भारत)

सुरभि प्रिन्टर्स वाराणसी

V. AYURVEDA SERIES
28



BHĀVAPRAKĀSA NIGHANTU

(INDIAN MATERIA MEDICA)
OF
ŚRĪ BHĀVAMIŚRA
(c. 1600-1600 A.D.)

Commentary by
Dr. K. C. CHUNEKAR, A.M.S.
Ex-Lecturer, Department of Dravyaguṇa,
Institute of Medical Sciences, B.H.U., Varanasi

Edited by
Dr. G. S. PANDEY, A.M.S.
Ex-Lecturer, Ayurveda Department, College of Medical,
Sciences and Physician, S.S. Hospital, B.H.U., Varanasi



CHAUKHAMBHA BHARATI ACADEMY
Publisher and Distributor of Monumental Treatises of the East
Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane
P.O. Box No. 1065
VARANASI-221001 (INDIA)

Publishers :

CHAUKHAMBHA BHARATI ACADEMY

Publishers and Distributors of Monumental Treatises of the East

P.O. Box No. 1065

Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane

Varanasi-221001 (India)

Telephone **330349, 330345 (O)**

332702, 332637 (R)

Reprint : 2002

Branch

CHAUKHAMBHA VISVABHARATI

Oriental Publishers and Distributors

P.O. Box No. 1084

K. 37/109, Gopal Mandir Lane

Varanasi-221001 (India)

विषय-सूची

हरीतक्यादिवर्गः	३
कर्पूरादिवर्गः	१७३
गुडूच्यादिवर्ग	२६६
पुष्पवर्गः	४७६
वटादिवर्गः	५१३
आम्रादिफलवर्गः	५५०
धातूपधातुरसोपरसरत्नोपरत्नविषोपविषविवर्गः ...	६०२
धान्यवर्गः	६३५
शाकवर्गः	६६३
मांसवर्गः	७०५
कृतान्नवर्गः	७२४
वारिवर्गः	७४७
दुग्धवर्गः	७५६
दधिवर्गः	७६७
तक्रवर्गः	७७१
नवनीतवर्गः	७७४
घृतवर्गः	७७५
मूत्रवर्गः	७७८
तैलवर्गः	७७६
सन्धानवर्गः	७८३
मधुवर्गः	७८८
इक्षुवर्गः	७६२
अनेकार्थनामवर्गः	७६८
कुछ प्रमुख अवशिष्ट द्रव्यों का संक्षिप्त वर्णन ...	८०६
मूल निघण्टु में आये हुए संस्कृत पर्यायों की वर्णानुक्रमणिका	८४३
वर्णानुक्रम से द्रव्यों के विभिन्न भाषाओं के नाम ...	८८७
द्रव्यों के लेटिन तथा अंग्रेजी नामों की वर्णानुक्रम सूची ...	६६१
शुद्धिपत्र	६८५

सङ्केत

अं०	अंग्रेजी	पहा०	पहाड़ी
अ०	अरबी	पाठा०	पाठान्तर
अफ०	अफगानी	फा०	फारसी
आसा०	आसामी	बं०	बंगाली
इरा०	इरानी	बंब०	बंबई
उ(डि)०	उडिया	भोटि०	भोटिया
उ० प्र०	उत्तर प्रदेश	म०	मराठी
क०	कर्नाटक	मल०	मलयालम
क० अ०	कल्पस्थान अध्याय	मा०	मारवाड़ी
काश्मी०	काश्मीर	मि० ग्रा०	मिलीग्राम
काठी०	काठियावाड	मि० मि०	मिलीमीटर
कुमा०	कुमाऊँ	मुंगे०	मुंगेर
कों०	कोंकणी	यू०	यूनानी
खासि०	खासिया	र०	रत्ती
गढ०	गढवाल	रा० नि०	राजनिघण्टु
गु०	गुजराती	रा० पु०	राजपुताना
गो०	गोवा	लि०	लिपचा
ग्रा०	ग्राम	ले०	लेटिन
च०	चरक	सं०	संस्कृत
चि०	चिकित्सास्थान	सन्ता०	सन्ताल
ता०	तामिल	सिं०	सिन्धी
तु०	तुलु	सिलो०	सिलोनी
ते०	तेलगु	सु०	सुश्रुत
द०	दक्षिण	सू०	सूत्रस्थान
ध० नि०	धन्वन्तरीय निघण्टु	हि०	हिन्दी
ने०	नेपाली	Fam.	Family
पं०	पंजाबी	Syn.	Synonym (पर्याय)

सम्पादकीय

सृष्टि के प्रारम्भ काल से व्याधियों के निराकरण के लिये वानस्पतिक द्रव्यों का प्रयोग होता चला आया है। प्रारम्भ में वनस्पतियों का चिकित्सा में प्राकृतिक स्वरूप में ही उपयोग होता रहा। धीरे-धीरे रासायनिक तत्वों या कार्यकारी घटक द्रव्यों के अनुसंधान एवं जीव रासायनिक रचना शृङ्खलाओं के विज्ञान के अनुसंधान के कारण आज तक विकसित हुये नवीनतम वानस्पतिक औषध द्रव्यों का प्रयोग हो रहा है। प्रारम्भ में मानव जीवन अधिक स्वाभाविक रूप में रहने तथा छोटे-छोटे जनपदों में निवास करने और चिकित्सोपयोगी वानस्पतिक समुदाय के निकट रहने के नाते उनसे भली प्रकार परिचित रहता था। बाद के दिनों में बड़े जन समुदायों में निवास करने एवं वनस्पति सम्पदा के सानिध्य से दूर रहने की परिस्थिति में चिकित्सा विषय के अध्येताओं एवं अध्यापकों को इस बात की आवश्यकता का अनुभव हुआ कि भैषज्य संहिताओं—निघण्टु ग्रन्थों का सर्वाङ्गीण परिचयात्मक साहित्य संग्रहीत किया जाय और उन वनस्पतियों का प्रत्यक्ष स्वरूप जानने के लिये जंगलों में निवास एवं विहार करने वाले आभीर, कोल, किरात, शिकारी एवं तपस्वी वर्ग से परिचय प्राप्त किया जाय।

> गोपालास्तापसा व्याधा ये चान्ये वनचारिणः।
> मूलजातिश्च ये तेभ्यो भेषजव्यक्तिरिष्यते॥
> प्रायो जनाः सन्ति वनेचरास्ते गोपादयः प्राकृतनामसंज्ञाः।
> प्रयोजनार्था वचनप्रवृत्तिर्यस्मात्ततः प्राकृतमित्यदोषः॥

धीरे-धीरे चिकित्सकों का वानस्पतिक जगत् से प्रत्यक्ष सम्बन्ध टूटने लगा और चिकित्सा साहित्य में निर्दिष्ट वनस्पतियों का परिचय ही उनके परिज्ञान के लिये अपर्याप्त होते हुए भी पर्याप्त स्वीकार किया जाने लगा। इस परिस्थिति में वनस्पतियों के क्षेत्र में अनेक भ्रान्तियों का समावेश होना स्वाभाविक था। इतने विशाल देश में असंख्य भाषाओं, लिपियों, मान्यताओं, रूढ़ियों आदि के कारण तथा विभिन्न क्षेत्रों की वानस्पतिक सम्पदा के विचित्र स्वरूप होने के कारण और एक ही नाम से अनेक वनस्पतियों के अभिधान के कारण तथा रचनाकारों के पर्याय प्रेम के कारण उत्तर कालीन वनस्पतिवेत्ताओं के सामने वनस्पतियों के असन्दिग्ध निर्णय की समस्या जटिलतम होती गई। इस कठिनाई के निराकरण

के लिये अनेक निघण्टुओं का निर्माण ऋषिकल्प अधिकारी वनस्पति वेत्ताओं ने किया जिनमें धन्वन्तरि निघण्टु या गुडूच्यादि निघण्टु, मदन विनोद या मदनपाल निघण्टु, अभिधान चूड़ामणि या राज निघण्टु एवं भाव प्रकाश निघण्टु प्रमुख ग्रन्थ हैं। इन निघण्टुओं के अतिरिक्त अनेक महत्वपूर्ण निघण्टु ग्रन्थों का एवं द्रव्यगुण शास्त्र के अभिज्ञ विद्वानों का उल्लेख चिकित्सा साहित्य के वर्तमान ग्रन्थों में यत्र-तत्र मिलता है। किन्तु पूर्ण या खण्डित प्रति के रूप में वनौषधि विषयक दूसरी विशिष्ट रचनायें उपलब्ध नहीं हैं।

उपरिनिर्दिष्ट सभी निघण्टु ग्रन्थ बड़े महत्व के तथा द्रव्य-गुणों की अनमोल संग्रहात्मक रचनायें हैं। सबकी अपनी-अपनी विशेषतायें हैं। इनमें भावमिश्र कृत द्रव्यगुणसंग्रह या भावप्रकाशनिघण्टु का उसकी सरलता के कारण एवं आधुनिक चिकित्सा महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में अन्तर्भाव होने के कारण व्यापक प्रसार हुआ है। भावप्रकाशनिघण्टु की लघु एवं दीर्घ कलेवर की अनेक व्याख्यायें उपलब्ध हैं। किन्तु काल प्रभाव से जिन दोषों का अन्तर्भाव वनस्पतियों के व्याख्यान के क्षेत्र में अभिनिविष्ट होता गया, उपलब्ध अधिकांश व्याख्याओं में भी वह गुण-दोष उत्तरोत्तर अभिवृद्ध होता रहा है। हम लोग कमरे में बैठ कर चार छः महत्व के आकर ग्रन्थों के सहारे अपनी कल्पनात्मक कूची के जोर से वनस्पतियों के चित्र खींचते जाते हैं, चाहे हमने उन वनस्पतियों का दर्शन स्वप्न में भी न किया हो। इस प्रकार की जटिलताओं के कारण द्रव्यगुण-विज्ञान का अध्ययन एवं अध्यापन बड़ा अप्रिय, नीरस एवं आयासकर विषय हो गया है। निघण्टु क्षेत्र की इन कठिनाइयों का निराकरण करने की चेष्टा भावप्रकाश-निघण्टु के वर्तमान संस्करण में की गई है।

मेरे मित्र श्री कृष्णचन्द्र चुनेकर, प्राध्यापक, स्नातकोत्तर आयुर्वेदीय अनुसन्धान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने अपना जीवन ही द्रव्यगुण साहित्य के परिष्कार के लिये अर्पित कर दिया है। पिछली दो दशाब्दियों से आपने इस क्षेत्र के विशिष्ट वाङ्मय का पर्यालोचन करने के अतिरिक्त व्यावहारिक रूप में वनस्पतियों का प्रत्यक्ष परिचय पाने के लिये प्रायः सम्पूर्ण उत्तर भारत के गहन जंगलों की यात्रायें की हैं। वनस्पतियों का परिचय एवं स्वरूप निर्धारण, आधुनिक पाश्चात्य वर्गीकरण की दृष्टि से उनका अभिज्ञान आदि विषयों की उपलब्धि उनको इस क्षेत्र के सर्वमान्य वनौषधिवेत्ता आदरणीय प्रो० बलवन्तसिंह जी से प्राप्त हुई है। उनके साथ श्री चुनेकर जी ने उत्तरा खण्ड की तराइयों—चकराता, काश्मीर, देहरादून एवं विन्ध्यक्षेत्र की वनस्पतियों के लिये चित्रकूट अमरकण्टक आदि का पर्यटन किया है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वनौषधि संग्रहालय-

हरबेरियम का वर्षों तक सञ्चालन करते हुए उसका गौरवपूर्ण प्रतिमान उपस्थित किया है। आपके सहयोग से भावप्रकाश-निघण्टु के पिछले तीन संस्करण पाठकों के सामने आ चुके हैं और उनका पर्याप्त समादर हुआ है।

प्रस्तुत संस्करण में विमर्श का आद्यान्त परिष्कार, अद्यतन वनौषधि अनुसंधान साहित्य का अन्तर्भाव एवं प्रत्येक वनस्पति का यथाशक्ति असंदिग्ध परिचय देने की चेष्टा की गई है। उन वनस्पतियों के शास्त्रोक्त विशिष्ट आमयिक प्रयोगों का भी यथास्थल उल्लेख किया गया है। संस्कृत के मूल श्लोकों का हिन्दी अनुवाद, भेषज द्रव्यों के भिन्न भारतीय भाषाओं में प्रचलित सही नाम, उनके अंग्रेजी व लैटिन के स्वीकृत नाम, वनस्पतियों के उत्पत्ति-स्थान, उनका विशिष्ट परिचय, रासायनिक संगठन आदि का यथाशक्ति सही-सही वर्णन किया गया है। संदिग्ध एवं विवादास्पद स्थलों पर विभिन्न विद्वानों के विचार एवं मतभेद के आधार के उल्लेख की चेष्टा की गई है। अनेक परिशिष्टों के अलंकरण से इस संस्करण को अतीव उपयोगी बनाया गया है।

इस प्रकार के कार्य में कितना श्रम पड़ता है इसका अनुभव सम्बद्ध विषयों के ज्ञाता ही कर सकते हैं। वनस्पतियों के भिन्न-भिन्न भाषाओं के नामों का एवं एक ही वनस्पति के भिन्न प्रान्तों में दूसरे अभिधानों से उल्लेख होने के कारण और अनेक वनस्पतियों का एक ही नाम से उल्लेख होने के कारण उत्पन्न भ्रान्तियों का निराकरण करने के लिए आपको केवल एक ही वनस्पति के लिये महीनों श्रम करना पड़ा है।

श्री चुनेकर जी को यह लगन, कर्मठता एवं ज्ञान अपने पिता आयुर्वेदीय क्षेत्र के मर्मज्ञ, कुशल चिकित्सक अपने समय के दिग्दिगन्त विख्यात पीयूषहस्त स्व० त्र्यम्बक शास्त्री के पट्ट शिष्य, पूज्य श्री श्रीनिवास शास्त्री जी से प्राप्त हुआ है। प्राचीन वैद्य परम्परा में सम्भवतः श्री श्रीनिवास जी शास्त्री ही एकमात्र ऐसे विद्वान् व्यक्ति हैं जिन्हें आधुनिक रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र तथा तकनीकशास्त्र (*Technology*) का आधुनिकतम परिज्ञान प्राप्त है। और पचासी वर्ष की अवस्था में अध्ययन-अध्यवसाय में निरन्तर लगे रहकर 'यावज्जीवमधीते विप्रः' की परम्परा को गति प्रदान कर रहे हैं।

विश्वास है, भावप्रकाशनिघण्टु का प्रस्तुत संस्करण वानस्पतिक द्रव्यगुण-विज्ञान विषयक साहित्य का अध्ययन, अध्यापन, अनुसन्धान करने वाले एवं वैद्यक व्यवसाय से सम्बद्ध महानुभावों के लिये पूर्वापेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

औषधीय वनस्पतियों का शास्त्रसम्मत, अनुसन्धान सिद्ध एवं प्रत्यक्ष परिज्ञान के द्वारा उपबृंहित विवेचन के लिये मैं अपने मित्र श्री कृष्णचन्द्र जी चुनेकर को साधुवाद देते हुए उनके मंगलमय भविष्य की कामना करता हूँ। भगवान् धन्वन्तरि की कृपा से इनके द्वारा भविष्य में आयुर्वेद जगत की निरन्तर सेवा होती रहेगी।

आयुर्वेदीय वाङ्मय की श्री-समृद्धि के महत् अनुष्ठान में चौखम्भा परिवार का विशेष योगदान रहा है। प्राच्यविद्या के प्रकाशन का उनका अपना कीर्तिमान है। अनेक प्रकाशन विपत्तियों के होने पर भी चौखम्भा परिवार ने इस श्रेणी के साहित्य का प्रकाशन अनवरत रूप में किया है—एतदर्थ उनकी श्री-समृद्धि की कामना के साथ उनको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

अन्त में ग्रन्थ की उपयोगिता के सही मूल्यांकन के लिये आयुर्वेद समाज से साग्रह अनुरोध है कि भविष्य में परिष्कार के लिये समुचित परामर्श देकर चिकित्सा साहित्य की श्री-वृद्धि में सहायक हों।

गङ्गादशहरा
वि० सं० २०२६

गंगासहाय पाण्डेय

प्राक्कथन

यदुपज्ञं हि विज्ञानं द्रव्यस्य गुणकर्मणोः।
भिषग्भिर्वन्दितायास्मै भावमिश्राय मे नमः॥

आचार्य भावमिश्र ने ई० सं० १५००–१६०० में एक ऐसे अपूर्व आयुर्वेदीय चिकित्सा ग्रन्थ का निर्माण किया जो प्राचीन संहिता ग्रन्थों की शृंखला में अन्तिम कड़ी कहा जा सकता है। इसमें द्रव्यगुण संबन्धी विषय का जो प्रतिपादन किया गया है वह पूर्ववर्त्ती निघंटुओं (कोश) की अपेक्षा परिष्कृत एवं तत्कालीन प्रचलित नवीनतम अनुसन्धानों को आत्मसात् करते हुए किया गया है, जैसे द्वीपान्तरवचा, पारसीक यवानी आदि का सर्व प्रथम उल्लेख इसी में है। इन्हीं विशिष्टताओं के कारण इस ग्रन्थ का द्रव्यगुण विषयक भाग 'भावप्रकाशनिघण्टु' के नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा अनेक आयुर्वेदीय संस्थाओं में पाठ्यग्रन्थ के रूप में इसका उपयोग किया जा रहा है। इसमें सभी प्रकार के द्रव्यों—१ औद्भिद (वृक्ष, गुल्म, लता आदि—*Plants*), २ प्राणिज (*Animals*) एवं पार्थिव (*Minerals*) के गुणकर्मों का आयुर्वेदीय पद्धति से वर्णन दिया हुआ है। मूल ग्रन्थ संस्कृत में श्लोकबद्ध होने से युगानुरूप उसकी व्याख्या की आवश्यकता थी और इस दिशा में अनेक प्रयत्न भी हुए। प्रस्तुत व्याख्या उसी दिशा में एक और प्रयत्न है।

इस व्याख्या में संस्कृत के मूल श्लोकों का हिन्दी अनुवाद, द्रव्यों के विभिन्न भारतीय भाषाओं के नाम, अंग्रेजी तथा लेटिन नाम, वनस्पतियों के उत्पत्ति स्थान, संक्षेप में उनका परिचय, रासायनिक संगठन, गुण, प्रयोग एवं यथा संभव मात्रा आदि का उल्लेख किया गया है। संदिग्ध द्रव्यों के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन किया गया है जिसमें एक नाम से लिये जाने वाले अनेक द्रव्यों का पृथक्-पृथक् वर्णन दिया गया है, जो संदिग्ध द्रव्य निर्णय में सहायक होगा। प्रत्येक द्रव्य के वर्णन के साथ कुछ विशिष्ट वक्तव्य 'नोट' के रूप में लिखा गया है जो उसके भेदोपभेद, अन्य विद्वानों के उसके संबंध में विचार, वादग्रस्तता, अन्य निघंटुओं एवं संहिता ग्रन्थों के वर्णन से तुलना तथा अनुसन्धान के क्षेत्र आदि पर व्यापक प्रकाश डालता है। संक्षेप में प्रत्येक द्रव्य के संबंध में प्राचीन काल से लेकर अब तक के जो भी विचार रहे हैं उनका संकलन किया गया है जो आगे अनुसन्धान में सहायक होगा। चूँकि रसशास्त्र एक स्वतंत्र विषय के रूप में अब विकसित हो

चुका है इसलिये तत्सम्बन्धी भाग में केवल मूल श्लोकों का अनुवाद मात्र ही दिया
गया है, उसकी व्याख्या नहीं की गई है। व्याख्या में प्रधानता औद्भिद द्रव्यों को
ही दी गई है। परिशिष्ट १ में उन सभी प्रमुख द्रव्यों का संक्षेप में वर्णन किया गया
है जिनका उल्लेख मूल में या टीका के संदर्भ में नहीं है। परिशिष्ट २ में केवल
मूल में आये संस्कृत के सभी पर्यायवाची नामों को अकारादिक्रम से उपस्थित
किया गया है जिससे इस बात का ज्ञान हो सके कि अमुक द्रव्य का भावप्रकाश-
निघण्टु में उल्लेख हुआ है या नहीं। इसमें प्रत्येक पर्याय के आगे उस द्रव्य का
प्रमुख-नाम भी साथ में दिया गया है। इसके पश्चात् सभी द्रव्यों के भारतीय नामों
की अकारादिक्रम से सूची दी गई है। इसी में अन्य संस्कृत नामों का भी समावेश
है जिनका मूल श्लोकों में उल्लेख न होने से प्रथम संस्कृत सूची में अन्तर्भाव नहीं
किया जा सकता था। अन्त में लेटिन एवं अंग्रेजी नामों की भी वर्णानुसार सूची
दी गई है।

इस व्याख्या का सम्पूर्ण श्रेय मेरे गुरुवर्य, परमपूज्य आदरणीय डॉ० गंगासहाय
पाण्डेय जी को है जिन्होंने न केवल इस व्याख्या को तैयार करने में निदेशक का
कार्य किया अपितु लेखक को इस योग्य बनाने में भी उनका वरदहस्त रहा है।

आयुर्वेदीय वनस्पतियों के प्रकाण्ड विद्वान्, महान् वैज्ञानिक, आयुर्वेद शिरोमणि,
श्री ठा० बलवन्तसिंह जी, एम० एस० सी०, भूतपूर्व प्राध्यापक, आयुर्वेदिक कालेज,
का० हि० वि० वि०, जिन्होंने अपना सारा जीवन ही आयुर्वेदीय वनस्पतियों
के अन्वेषण में लगाया एवं जिनके शिष्यत्व का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ उनको
यह कृति समर्पण करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। हमारी यही
कामना है कि इसी तरह उनका मार्गदर्शन हमें आजीवन मिलता रहे।

यह व्याख्या वास्तविक रूप में संदर्भ-ग्रन्थ सूची में उल्लिखित कृतियों का
संकलन मात्र ही है इसलिये मैं उन सभी महान् विद्वानों का अत्यन्त आभारी हूँ।
चौखम्भा परिवार के सभी सदस्यों को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता जिनकी
सहायता के बिना यह कार्य पाठकों के सम्मुख उपस्थित हो ही नहीं सकता था।

आशा है, यह व्याख्या न केवल विद्यार्थियों को अपितु अध्यापकों तथा
वनस्पति अनुसन्धानकर्ताओं को भी उपादेय होगी। संभव है, इसमें कुछ त्रुटियाँ
भी रह गई हों जिनके लिये विद्वान् क्षमा करेंगे तथा अपने सुझाव देंगे जिससे
अगले संस्करण में इनका परिमार्जन किया जा सके।

विनीत

दिनांक २६ मई १९६९

कृष्णचन्द्र चुनेकर

संदर्भग्रन्थ

१ अष्टांग संग्रह संहिता, टीका श्री अत्रिदेव गुप्त, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९५१।

२ अष्टांगहृदय कोष, श्री वैद्य के० एम० वलापाड, द० मलाबार, १९३६।

३ अष्टांगहृदय संहिता, टीका अरुणदत्त, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९२५।

४ अभिनव बूटी दर्पण, भाग १-२, श्री रूपलाल वैश्य, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, १९४७।

५ अमरकोश, टीका रामाश्रमी, ६ ठी० आ०, निर्णयसागर प्रेस बंबई, १९४४।

६ ओषधीसंग्रह (मराठी), डा० वा० ग० देसाई, वैद्य या० त्रि० आचार्य, बंबई, १९२७।

७ काश्यपसंहिता, टीका श्री सत्यपाल, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, १९५३।

८ कैयदेव निघण्टुः (पथ्यापथ्य विबोधक ग्रन्थः) टीका श्री कविराज सुरेन्द्र मोहन, दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज, लाहोर, १९२८।

९ चक्रदत्त, टीका श्री जगदीश्वर प्रसाद त्रिपाठी, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी १९५९।

१० चरकसंहिता, टीका चक्रपाणि, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९४१।

११ द्रव्यगुणविज्ञानम् उ०, द्वि० ख० श्री यादवजी श्री त्रिकमजी आचार्य, निर्णयसागर प्रेस, बंबई—२, १९५०।

१२ द्रव्यगुणविज्ञान, भाग २-३, श्री प्रियव्रत शर्मा, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, १९५६।

१३ निघण्टु रत्नाकर, टीका श्री कृष्ण शास्त्री नवरे, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९३६।

१४ निघण्टु आदर्श (गुजराती), भाग १-२, श्री वैद्य बापालाल ग० शाह, हंसोट, जि० भ्रोच, १९२७-२८।

१५ प्रारम्भिक उद्भिद् शास्त्र, श्री ठा० बलवन्तसिंह, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, १९४९।

१६ बिहार की वनस्पतियाँ, श्री ठा० बलवन्तसिंह, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, कलकत्ता, १९५५।

१७ भारतीय वनौषधि (बंगला), भाग १-३, श्री कालीपद विश्वास, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता, १०५०।

१८ भावप्रकाश, टीका श्री लाला शालिग्राम वैश्य, खेमराज श्री कृष्णदास, बंबई, १९०७।

१९ भावप्रकाश निघण्टु, टीका श्री विश्वनाथ द्विवेदी, तृ० सं०, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १०५४।

२० मदनविनोद, टीका श्री नन्दकिशोर शास्त्री, वाराणसी, १९२४।

२१ यूनानी द्रव्यगुणविज्ञान, श्री ठा० दलजीत सिंह, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९४९।

२२ राजनिघण्टुसहितो धन्वन्तरीयनिघंटुः, टीका श्री नारायण विट्ठल पुरंदरे, आनन्दाश्रम प्रेस, पूना, १८९६।

२३ वनस्पति परिचय, श्री अन्तूभाई वैद्य, आयुर्वेद रिसर्च इंस्टिटयूट, फोर्ट, बंबई, १९५२।

२४ वनौषधि चन्द्रोदय, भाग १-१०, श्री चन्द्रराज भण्डारी, ज्ञानमन्दिर, भानपुरा (इन्दौर), १०३८।

२५ वनौषधि दर्शिका, श्री ठा० बलवन्तसिंह, आयुर्वेदिक कालेज यूनियन, का० हि० वि० वि०, वाराणसी, १९४८।

२६ वृन्दमाधव, आनन्दाश्रम, पूना, १९४३।

२७ वैद्यक शब्दसिन्धुः, श्री कविराज उमेशचन्द्र गुप्त, कलकत्ता, १९१४।

२८ शालिग्राम निघण्टु भूषण, श्री लाला शालिग्राम वैश्य, खेमराज श्री कृष्णदास, बंबई, १९५२।

२९ सन्दिग्धनिर्णय वनौषधशास्त्र, भाग १–९, श्री पं० भगीरथ स्वामी, १४२ हरीसन रोड, कलकत्ता, १९३६।

३० सचित्र वनस्पति गुणादर्श, भाग १–२, श्री वैद्य हिरामण मोतीराम जंगले, वाघली, पूर्वखानदेश, महाराष्ट्र।

३१ सुश्रुतसंहिता, टीका डल्हण, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९१६।

REFERENCES

1 Anonymous A Consolidated Glossary of Technical terms, Central Hindi Directorate, Delhi, 1962.

2 " Handbook of Agriculture, I. C. A. R., New Delhi, 1961.

3 " Pharmacopoeia of India, Ministry of Health, New Delhi, 1955.

4 " The Wealth of India (Raw Materials), Vols. 1–6, C. S. I. R., New Delhi, 1948–1962.

5 Aiyer, K. Narayan, Pharmacognosy of Ayurvedic Drugs of Travancore Cochin, Nos. 1–9, Central Research Institute, Trivandrum, 1951–1966.

6 Apte, V. S., Sanskrit English Dictionary.

7 Aykroyd, W. R., Gopalan, G., Balsubramanian, S. C., The Nutritive Value of Indian Foods and the Planning of Satisfactory Diets, 6th edn., I. C. M. R., New Delhi, 1963.

8 Bailey, L. H., Standard Cyclopedia of Horticulture, Vols. 1–3, The Macmillan Co., New-York, 1947.

9 Blatter, E., Beautiful Flowers of Kashmir, Vols. 1–2, John Bale, Sons & Danielsson Ltd., London, 1929.

10 Blatter, E., Millard, W. S., Stearn W., Some Beautiful Indian Trees, 2nd edn., The Bombay Natural History Society, Bombay, 1924.

11 Chopra, R. N., Chopra, I. C., Handa, K. L., Kapur, L. D., Chopra's Indigenous Drugs of India, 2nd edn., U. N. Dhar & Sons Pvt. Ltd., Calcutta-12, 1958.

12 Chopra, R. N., Nayar, S. L., Chopra, I. C., Glossary of Indian Medicinal Plants, C. S. I. R., New Delhi, 1956.

13 Chopra, R. N., Badhwar, R. L., Ghosh, S., Poisonous Plants of India, Vols. 1–2, I. C. A. R., New Delhi, 1949, 1965.

14 Chopra, R. N. Chopra, I. C., A Review of Work on Indian Medicinal Plants, I. C. M. R., New Delhi, 1955.

15 Claus, E. P., Pharmacognosy, 4th edn., Lea & Febiger, Philadelphia, 1961.

16 Cooke, T., Flora of Bombay, Vols. 1–3, Botanical Survey of India, Calcutta, Reprt. 1958.

17 Cowen, D. V., Flowering Trees and Shrubs, Thacker & Co. Ltd., Bombay, 1950.

18 Dastur, J. F., Medicinal Plants of India and Pakistan, D. B. Taraporewala Sons & Co. Ltd., Bombay-1, 1951.

19 Dey, K. L., Indigenous Drugs of India, Thacker Spink & Co., Calcutta, 1896.

20 Duthie, J. F., Flora of Upper Gangetic Plain, Vols. 1–2, Botanical Survey of India, Calcutta, reprt., 1960.

21 Dutta, A. C., A Class-Book of Botany, 6th edn., Humphrey Milford, Oxford University Press, Calcutta, 1945.

22 Dutt, U. C., The Materia Medica of Hindus, M. C. Das, 146, Lower Chitpore Road. Calcutta–1, 1922.

23 Dymock, W., Warden, C. J. H., Hooper, D., Pharmacographia Indica, Vols. 1–3, Trubner & Co., London, 1890–99.

24 Firminger, T. A., Firminger's Manual of Gardening for India, 8th edn., Thacker Spink & Co. Ltd., Calcutta, 1947.

25 Ghosh, R., Materia Medica & Therapeutics, 18th edn., Hilton & Co., Calcutta, 1949.

26 Greenish, H. G., The Microscopical Examination of Foods and Drugs, 3rd edn., J. & A. Churchill, London, 1923.

27 Haines, H. H., Botany of Bihar & Orissa, Botanical Survey of India, Calcutta, reprt., 1961.

28 Hocking, G. M., A Dictionary of Terms in Pharmacognosy, Charles C. Thomas, Springfield, Illinois, 1955.

29 Hooker, J. D., Flora of British India, Vols. 1–7, L. Reeve & Co., London, 1872–1897.

30 Jain, S. K., Medicinal Plants, National Book Trust, New Delhi, 1968.

31 Johansen, D. A., Plant Microtechnique, Mc.Graw–Hill Book Co., London, 1940.

32 Kanjilal, U. N., Kanjilal, P. C., Das, A., Flora of Assam, Vols. 1–5, Government of Assam, 1935.

33 Kirtikar, K. R., Basu, B. D., Indian Medicinal Plants., 2nd edn., L. M. Basu, Allahabad, 1933.

34 Krishnamurthi, S., Horticultural and Economic Plants of the Nilgiris, Coimbatore, 1953.

35 Macmillan, H. F., Tropical Planting and Gardening, 5th edn., Macmillan & Co., London, 1962.

36 Maheshwari, P., Singh, U., Dictionary of Economic Plants in India, I. C. A. R., New Delhi, 1965.

37. Mc. Cann, C., 100 Beautiful Trees of India, Bombay, 1950.

38 Mooss, N. S., Ayurvedic Flora Medica, No. 1, Vaidyasarathy, Kottayam, 1953.

39 Mukerji, B., The Indian Pharmaceutical Codex, Vol. I, C.S.I.R., New Delhi, 1953.

40 Nadkarni, A. K., Indian Materia Medica, Vols. 1-2, 3rd edn. Popular Book Depot, Bombay-7, 1954.

41 Pal, B. P., Beautiful Climbers of India, I. C. A. R., New Delhi, 1960.

42 Prain, D., Bengal Plants, Botanical Survey of India, Calcutta, reprt. 1963.

43 Pratt, R., Youngken, H. W., Pharmacognosy, 2nd edn., J. B. Lippincott Con, Montreal, Philadelphia, 1956.

44 Raghuvira, Elementary English-Indian Dictionary of Scientific Terms, Sarasvati Vihar, Delhi, 1950.

45 Ramstad, E., Modern Pharmacognosy, Mc.Graw-Hill Book Co. Inc., London, 1959.

46 Randhava, M. S., Flowering Trees in India, I. C. A. R., New Delhi, 1957.

47 Randhava, M. S., Beautiful Trees and Gardens, I. C. A. R., New Delhi, 1961.

48 Randhava, M. S., Flowering Trees, National Book Trust, New Delhi, 1965.

49 Torfrida, Flowering Trees of India, Thacker & Co., Bombay, 1947.

50 Trease, G. E., A Textbook of Pharmacognosy, 8th edn., Baillere Tindal & Cox, London, 1961.

51 Uphof, J. C. Th., Dictionary of Economic Plants, Hafner Publishing Co., New York, 1959.

52 Wallis, T. E., Practical Pharmacognosy, 5th edn., J. A. Churchill Ltd., London, 1948.

53 Wallis, T. E., Text Book of Pharmacognosy, 3rd edn., J. & A. Churchill Ltd., London, 1955.

54 Watt. G., A Dictionary of the Economic Products of India, Vols. 1-6, Calcutta, 1889-99.

55 Wight, R., Icones Plantarum India Orientalis.

56 Willis, J. C., A Dictionary of the Flowering Plants and Ferns, 6th edn., University Press, Cambridge, 1951.

भावप्रकाशनिघण्टुः

अथ हरीतक्यादिवर्गः

रसगुणवीर्यविपाकप्रभावाणां स्वरूपाण्यभिधाय कुत्र द्रव्ये के रसगुणवीर्यविपाकप्रभावाः सन्तीति बोधयितुं द्रव्यगतान् रसगुणवीर्यविपाकप्रभावानाह ।

तत्र प्रथमं हरीतक्या उत्पत्तिनामलक्षणगुणानाह

दक्षं प्रजापतिं स्वस्थमश्विनौ वाक्यमूचतुः । कुतो हरीतकी जाता तस्यास्तु कति जातयः ।
रसाः कति समाख्याताः कति चोपरसाः स्मृताः ।
नामानि कति चोक्तानि किं वा तासां च लक्षणम् ॥ २ ॥
के च वर्णा गुणाः के च का च कुत्र प्रयुज्यते । केन द्रव्येण संयुक्ता कांश्च रोगान्व्यपोहति ॥
प्रश्नमेतद्यथा पृष्टं भगवन्वक्तुमर्हसि । अश्विनोर्वचनं श्रुत्वा दक्षो वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥
पपात बिन्दुर्मेदिन्यां शक्रस्य पिबतोऽमृतम् । ततो दिव्यात्समुत्पन्ना सप्तजातिर्हरीतकी ॥५॥

रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव के स्वरूपों को कहकर किस द्रव्य में कौन रस, कौन गुण, तथा कैसा वीर्य, विपाक एवं प्रभाव रहता है, इन सब को बताने के लिये प्रत्येक द्रव्यगत रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव का वर्णन करते हैं। उसमें प्रथम हरीतकी (हरड़) की उत्पत्ति, नाम, लक्षण तथा गुणों को कहते हैं—

एक समय स्थिर चित्त से बैठे हुए भगवान् दक्ष प्रजापति से दोनों अश्विनीकुमारों ने यह बात कही कि—हे भगवान्! हरीतकी (हरड़) कहां से उत्पन्न हुई? और उसकी कितनी जातियां है? तथा उसमें प्रधान रूप से कौन-कौन रस और कौन-कौन उपरस कहे हुये हैं? एवं उसके कितने नाम कहे हुये हैं? और उन सबों के क्या-क्या लक्षण हैं? और उनका वर्ण कैसा है? उनमें गुण कौन-कौन हैं? और किस जाति के हरड़ का किस कार्य में प्रयोग किया जाता है? तथा किन द्रव्यों के साथ संयोग होने पर किन रोगों को दूर करती हैं? इन उपर्युक्त प्रश्नों का जैसा मैंने पूछा है वैसा ही आपको उत्तर देना उचित है। इस प्रकार से दोनों अश्विनीकुमारों के वचनों को सुन कर दक्षप्रजापति ने यह कहा कि—एक समय अमृत पान करते हुए भगवान् इन्द्र के मुख से दैवात् एक बूँद अमृत पृथ्वी पर गिर पड़ा तब उसी दिव्य अमृत बिन्दु से सात जाति वाली हरीतकी उत्पन्न हुई ॥ १–५ ॥

अथ हरीतकीनामान्याह

हरीतक्यभया पथ्या कायस्था पूतनाऽमृता । हैमवत्यव्यथा चापि चेतकी श्रेयसी शिवा ॥६॥
वयस्था विजया चापि जीवन्ती रोहिणीति च ॥ ७ ॥

हरीतकी के नाम—हरीतकी, अभया, पथ्या, कायस्था, पूतना, अमृता, हैमवती, अव्यथा, चेतकी, श्रेयसी, शिवा, वयस्था, विजया, जीवन्ती तथा रोहिणी ये सब 'हरीतकी' के नाम हैं ॥ ६–७ ॥

अथ हरीतक्याः सप्तभेदानाह

विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताऽभया । जीवन्ती चेतकी चेति पथ्यायाः[1] सप्तजातयः ॥

---

१. 'विज्ञेया' इति पा० ।

हरीतकी के भेद—१ विजया, २ रोहिणी, ३ पूतना, ४ अमृता, ५ अभया, ६ जीवन्ती, ७ चेतकी ये हरीतकी की सात जातियां (भेद) हैं ॥ ८ ॥

अथ सप्तजातेर्हरीतक्या उत्पत्तिस्थानान्याह

[[1]विन्ध्याद्रौ विजया हिमाचलभवा स्याच्चेतकी पूतना
सिन्धौ स्यादथ रोहिणी निगदिता जाता प्रतिस्थानके ।

१. कोष्ठस्थः पाठः क्वाचित्कः ।

चम्पायाममृताऽभया च जनिता देशे सुराष्ट्राह्वये
जीवन्तीति हरीतकी निगदिता सप्त प्रभेदा बुधैः ॥ १ ॥]

हरीतकी के उत्पत्तिस्थान—विन्ध्य पर्वत पर विजया, हिमालय पर चेतकी, सिन्धु देश में पूतना, प्रत्येक स्थानों में रोहिणी, चम्पा देश में अमृता तथा अभया एवं सोरठ देश में जीवन्ती जाति की हरीतकी के उत्पन्न होने से उक्त प्रकार के सात भेद विद्वानों ने कहे हैं ॥ १ ॥

अथ तेषां पृथग्लक्षणान्याह

अलाबुवृत्ता विजया वृत्ता सा रोहिणी स्मृता । पूतनाऽस्थिमती सूक्ष्मा कथिता मांसलाऽमृता॥
पञ्चरेखाऽभया प्रोक्ता जीवन्ती स्वर्णवर्णिनी । त्रिरेखा चेतकी ज्ञेया सप्तानामियमाकृतिः॥१०॥

सात प्रकार की हरीतकी के पृथक् २ लक्षण—'विजया' हरीतकी लौकी की भाँति गोल, 'रोहिणी' का आकार गोल, 'पूतना' की गुठली बड़ी तथा आकार सूक्ष्म, 'अमृता' हरीतकी मांसल (गूदेदार), 'अभया' पांच रेखाओं से युक्त, 'जीवन्ती' सोने के समान रङ्ग वाली और 'चेतकी' तीन रेखाओं से युक्त होती है । इस प्रकार सातो प्रकार की हरीतकी के ये आकार हैं ॥ ९–१० ॥

अथ हरीतकीप्रयोगानाह

विजया सर्वरोगेषु रोहिणी व्रणरोहिणी । प्रलेपे पूतना योज्या शोधनार्थेऽमृता हिता ॥११॥
अक्षिरोगेऽभया शस्ता जीवन्ती सर्वरोगहृत् । चूर्णार्थे चेतकी शस्ता यथायुक्तं प्रयोजयेत् ॥
चेतकी द्विविधा प्रोक्ता श्वेता कृष्णा च वर्णतः । षडङ्गुलायता शुक्ला कृष्णा त्वेकाङ्गुला स्मृता॥
काचिदास्वादमात्रेण काचिद्गन्धेन भेदयेत् । काचित्स्पर्शेन दृष्ट्याऽन्या चतुर्द्धा भेदयेच्छिवा ॥
चेतकीपादपच्छायामुपसर्पन्ति ये नराः । भिद्यन्ते तत्क्षणादेव पशुपक्षिमृगादयः ॥ १५ ॥
चेतकी तु धृता हस्ते यावत्तिष्ठति देहिनः । तावद्भिद्येत वेगैस्तु प्रभावान्नात्र संशयः ॥ १६ ॥
नृपाणां सुकुमाराणां कृशानां भेषजद्विषाम् । चेतकी परमः शस्ता हिता सुखविरेचनी॥१७॥
सप्तानामपि जातीनां प्रधाना विजया स्मृता । सुखप्रयोगा सुलभा सर्वरोगेषु शस्यते ॥१८॥

हरीतकी के प्रयोग—'विजया' हरीतकी का प्रयोग सभी रोगों में होता है । 'रोहिणी' व्रण पूरण करनेवाली होती है । 'पूतना' का प्रलेप के लिये प्रयोग करना चाहिये । 'अमृता' शोधन कर्म के लिये हितकर है । आंख के रोगों में 'अभया' उत्तम होती है और 'जीवन्ती' सम्पूर्ण रोगों का हरण करने वाली होती है । एवं चूर्ण के लिये 'चेतकी' उत्तम होती है । अतः जिस जातिकी हरीतिकी का जहां जिन रोगों में प्रयोग करना कहा हुआ है, उसका वहां पर प्रयोग करना चाहिये । 'चेतकी' श्वेत और कृष्ण दो प्रकार की होती है । उनमें शुक्ल वर्ण वाली ६ अङ्गुल की तथा कृष्ण वर्ण वाली एक अङ्गुल की लम्बी होती है । इनमें कोई हरीतकी खाने मात्र से, कोई सूंघने से, कोई स्पर्श करने से तथा कोई देखने मात्र से ही मल का भेदन करती हैं अर्थात् दस्त साफ होता है । इस प्रकार हरी-

तकी चार प्रकार से दस्त कराती है । जो मनुष्य चेतकी जाति की हरड के पेड़ की छाया के नीचे पहुंच जाते हैं, उनको उसी समय दस्त आने लगता है । यहां तक कि पशु, पक्षी, मृगादि की भी यही दशा हो जाती है और 'चेतकी' हरड को जब तक प्राणी अपने हाथ में धारण किये रहता है, तब तक उसके प्रभाव से उसे वेग से दस्त होता रहता है, इसमें सन्देह नहीं है । जो राजा हैं तथा सुकुमार या कृश हैं किंवा विरेचक औषध खाने से भागनेवाले हैं, उनके लिये 'चेतकी' हरड परम हितकारी एवं उत्तम होती है । क्योंकि वह सुखपूर्वक दस्त लाती है । पूर्वोक्त सात जातियों में 'विजया' जाति की जो हरीतकी होती है, वही औरों की अपेक्षा प्रधान है क्योंकि सुलभ होने से उसका प्रयोग सुखपूर्वक होता है तथा वह सभी रोगों में देने के लिये भी उत्तम होती है ॥ ११–१८ ॥

अथ हरीतकीगुणानाह

हरीतकी पञ्चरसाऽलवणा तुवरा परम् । रूक्षोष्णा दीपनी मेध्या स्वादुपाका रसायनी ॥
चक्षुष्या लघुरायुष्या बृंहणी चानुलोमिनी । श्वासकासप्रमेहार्शः कुष्ठशोथोदरक्रिमीन् ॥२०॥
वैस्वर्यग्रहणीरोगविबन्धविषमज्वरान् । गुल्माध्मानतृषाच्छर्दिहिक्काकण्डूहृदामयान् ॥ २१ ॥
कामलां शूलमानाहं प्लीहानञ्च यकृत्तथा । अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च मूत्राघातञ्च नाशयेत् ॥

हरीतकी के गुण—हरड में लवण रस से भिन्न पांच (मधुर, अम्ल, कटु, कषाय, तिक्त) रस रहते हैं किन्तु औरों की अपेक्षा कषाय रस ही अधिक रहता है । **हरीतकी** रूक्ष, उष्णवीर्य, अग्नि-दीपक, मेधा (धारणाशक्ति) के लिये हितकारी, मधुर विपाकवाली, रसायन (वृद्धावस्था तथा व्याधियों को दूर करनेवाली), नेत्रों के लिये हितकर, पचने में लघु (जल्दी पचने वाली), आयु-वर्धक, बृंहण (शरीर में मांसादि की वृद्धि करने वाली) और अनुलोमन (मलादि को नीचे की ओर प्रेरित करने वाली) होती है । इसके सेवन से श्वास, कास, प्रमेह, बवासीर, कुष्ठ, शोथ, पेट के क्रृमि (अथवा उदर सम्बन्धी रोग और क्रृमि), स्वरभेद (आवाज की खराबी), ग्रहणी सम्बन्धी रोग तथा विबन्ध (मलमूत्रादि की विबद्धता अर्थात् रुक जाना), विषमज्वर, गुल्म, उदरा-ध्मान, तृषा, वमन, हिचकी, खुजली, हृद्रोग, कामला, शूल, आनाह, प्लीहा, यकृत् , अश्मरी (पथरी), मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात ये सब रोग दूर होते हैं ॥ १९–२२ ॥

अथ हरीतक्याः प्रभावनिबन्धनं दोषहन्तृत्वं न तु रसनिबन्धनमित्याह

स्वादुतिक्तकषायत्वात्पित्तहृत्कफहृत्तु सा । कटुतिक्तकषायत्वादम्लत्वाद्वातहृच्छिवा ॥ २३ ॥
पित्तकृत्कटुकाम्लत्वाद्वातकृन्न कथं शिवा ॥ २४ ॥
प्रभावाद्दोषहन्तृत्वं सिद्धं यत्तत्प्रकाश्यते । हेतुभिः शिष्यबोधार्थं नापूर्वं क्रियतेऽधुना ॥ २५ ॥
कर्मान्यत्वं गुणैः साम्यं दृष्टमाश्रयभेदतः । यतस्ततो नेति चिन्त्यं धात्रीलकुचयोर्यथा ॥२६॥

हरीतकी का प्रभाव—हरड़ में मधुर, तिक्त और कषाय रस रहता है, अतएव यह पित्तनाशक और कटु तिक्त तथा कषाय रस होने से कफनाशक है, तथा अम्ल रस होने से वायु का भी शमन करती है । अब यहां पर यह प्रश्न होता है कि जब हरड़ में कटु तथा अम्ल रस है, तब क्यों नहीं यह पित्त तथा वातकारक होती है ? इसका उत्तर यह है कि—यहां पर जो हरड़ तीनों दोषों को दूर करती है वह इसके प्रभाव से ही सिद्ध है किन्तु फिर भी जो ऊपर हेतुओं का निर्देश करते हुये 'दोषों का नाश करना' बताया गया वह शिष्यों को समझाने के लिये, क्योंकि यह (दोषों का नाश करना) कोई अपूर्व बात नहीं कही गई, बल्कि जो कही गई वह उसके प्रभाव से पहले से ही सिद्ध थी । तात्पर्य यह है कि वस्तुतः हरड़ जो दोषों का नाश करती है वह अपने प्रभाव से ही करती है । फिर जो पूर्व में यह कहा गया है कि—'मधुरादि रस होने से पित्तनाशक,

कटु तिक्तादि रस होने से कफनाशक, एवं अम्ल रस होने से वातनाशक', वह केवल शिष्यों को समझाने के लिये अर्थात् 'इन २ रसों में इन २ दोषों को दूर करने की शक्ति रहती है', शिष्यों को यही बात समझाने के लिये हेतुओं का निर्देश करते हुये हरड़ की त्रिदोषनाशकता बताई गई और जब कि—समान गुणों से युक्त होते हुये भी आश्रय भेद से द्रव्यों के कर्म में भिन्नता देखी जाती है तब हरड़ में स्थित जो कटु तथा अम्ल रस हैं, वह क्यों नहीं पित्त तथा वात को उत्पन्न करता है। इस विषय में हेतु विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है अर्थात् विचार करना व्यर्थ है क्योंकि वह सब बातें प्रभाव से होती हैं न कि रसादि हेतुओं से, अम्ल और कटु रस पित्त वात का जनक होने पर भी आश्रय विशेष में कर्म विशेष करने वाले होते हैं जैसे कि आंवला तथा बड़हर ये दोनों यद्यपि रसादिकों में तुल्य हैं किन्तु फल खाने (गुणों) में तुल्य नहीं हैं। इसी भांति हरड़की त्रिदोषनाशकता के विषय में भी समझना चाहिये ॥ २३-२६ ॥

अथ हरीतक्यां तद्रसादीनां स्थानान्याह

पथ्याया मज्जनि स्वादुः स्नाय्वामम्लो व्यवस्थितः। वृन्ते तिक्तस्त्वचि कटुरस्थिस्थस्तुवरो रसः॥

हरड़ में रसों के रहने के स्थान—हरड़ की मींगी में मधुर रस, रेशों में अम्लरस, वृन्त (ढेपी) में तिक्तरस, छिल्के में कटु रस और गुठली में कषाय रस रहता है ॥ २७ ॥

अथोत्तमहरीतक्या लक्षणान्याह

नवा स्निग्धा घना वृत्तागुर्वी क्षिप्ता च याऽम्भसि। निमज्जेत्सा प्रशस्ता च कथिताऽतिगुणप्रदा॥
नवादिगुणयुक्तत्वं तथैवात्र द्विकर्षता। हरीतक्याः फले यत्र द्वयं तच्छ्रेष्ठमुच्यते ॥ २९ ॥

उत्तम हरड़ के लक्षण—जो हरड़ नवीन, स्निग्ध, घन (ठोस), गोल और गुरु (वजनदार) हो तथा जल में डालने पर डूब जाय वह उत्तम और अत्यन्त गुणकारी मानी जाती है। जिस हरीतकी के फल में पूर्वोक्त नूतनता आदि सम्पूर्ण गुण हों एवं तौल भी उसका दो कर्ष अर्थात् दो बहेड़े के बराबर हो वह उत्तम कही जाती है ॥ २८-२९ ॥

अथ हरीतक्याः प्रयोगभेदेन फलभेदानाह

चर्विता वर्द्धयत्यग्निं पेषिता मलशोधिनी। स्विन्ना संग्राहिणी पथ्या भृष्टा प्रोक्ता त्रिदोषनुत्॥
उन्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणां निर्मूलिनी पित्तकफानिलानाम्।
विस्रंसिनी मूत्रशकृन्मलानां हरीतकी स्यात् सह भोजनेन ॥ ३१ ॥
अन्नपानकृतान्दोषान्वातपित्तकफोद्भवान्। हरीतकी हरत्याशु भुक्तस्योपरि योजिता ॥३२॥
लवणेन कफं हन्ति पित्तं हन्ति सशर्करा। घृतेन वातजान् रोगान्सर्वरोगान्गुडान्विता ॥३३॥

हरीतकी के प्रयोग भेद से गुण भेद—हरीतकी यदि चबा कर खाई जाय तो जठराग्नि की वृद्धि करती है, शिला पर पीस कर खाई जाय तो मल शोधन करती है, उबाल कर खाई जाय तो मल रोकती है, भून कर खाई जाय तो त्रिदोष को दूर करती है और भोजन के साथ सेवन करने से बुद्धि, बल तथा इन्द्रियों को विकसित करने वाली, पित्त, कफ तथा वायु को नष्ट करने वाली, एवं मूत्र, विष्ठा तथा मल पदार्थों का विरेचन करने वाली होती है। यदि वही हरीतकी भोजन कर चुकने के बाद ऊपर से खाई जाय तो अन्न तथा पान सम्बन्धी दोषों को एवं वात पित्त तथा कफ से उत्पन्न होने वाले विकारों को शीघ्र हरने वाली होती है। सेंधा नमक के साथ खाने से कफ, शकर के साथ खाने से पित्त, घृत के साथ खाने से वात सम्बन्धी रोग और गुड़ के साथ खाने से समस्त व्याधियों को दूर करने वाली होती है ॥ ३०-३३ ॥

अथ रसायनगुणार्थिनां कृते हरीतकीप्रयोगविधिमाह

सिंधूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात्। वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायनगुणैषिणा ॥ ३४ ॥

हरीतकी का रासायनिक प्रयोग—जो रसायन के गुणों को प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं उन्हें चाहिए कि वे वर्षा आदि छ ऋतुओं में क्रम से सेंधानमक, शकर, सोंठ, पीपल, मधु और गुड़ के साथ हरीतकी का सेवन करें, अर्थात् वर्षा ऋतु में सेंधानमक के साथ, शरद ऋतु में शकर के साथ, हेमन्त ऋतु में सोंठ के साथ, शिशिर ऋतु में पीपल के साथ, वसन्त ऋतु में मधु के साथ, एवं ग्रीष्म ऋतु में गुड़ के साथ हरीतकी सेवन करने से रसायन के फल की प्राप्ति होती है ॥ ३४ ॥

अथ हरीतकी भक्षणानर्हजनानाह

अध्वातिखिन्नो बलवर्जितश्च रूक्षः कृशो लङ्घनकर्शितश्च।
पित्ताधिको गर्भवती च नारी विमुक्तरक्तस्त्वभयां न खादेत् ॥ ३५ ॥

हरीतकी सेवन करने के अयोग्य व्यक्ति—रास्ता चलने से थके हुए, बल रहित, रूक्ष, कृश, उपवास किए, अधिक पित्तवाले व्यक्ति तथा गर्भवती स्त्री एवं जिसे रक्तमोक्षण कराया गया हो उन सबों को हरीतकी का सेवन नहीं करना चाहिये ॥ ३५ ॥

१ हरीतकी

हि०–हर, हरड, हर्रे, हरे, हड़, हर्ड, हरैं, हरर। **बं०**–हरीतकी, बालहरीतकी, हरीतकी गाछ, नर्रा। **म०**–हरडा, हिरडा, हरडे, हर्तकी, हरडी, बालहरडी। **गु०**–हरडे, हिमज। **ते०**–करकचेट्टु, करकाप्प, करकाय। **ता०**–कडुकाय, करकैया, कडुकेमरम। **क०**—अणिलेय, अणिले, अनिलैकाय। **उड़ि०**–करंधा, हरिडा करेड़ा। **द्र०**–हलरा, कलरा। **मा०**–हरडे। **प०**–हड, हरड। **आसा०**–हिलिखा, सिलिका। **लिपचा०**–सिलिम। **सिक्कम०**–हन, सिलिमकंग, सिलिमकुंग। **मैसूर**–अलले। **कच्छार**–होरतकी। **फा०**–हलेलज अस्फर, हलैले जर्द, हलैलाह, हलेलह जर्द। **अ०**–अहलीलज़, एहलीलज़-कावली, अहलीलज़ अस्फर, जहलीलज़, अस्वद, हलेलज़ अस्फर। **अं०**–Myrobalans (माईरोबेलन्स), Chebulic Myrobalans (चेब्यूलिक माइरोबेलन्स)। **ले०**–(१) Terminalia chebula Retz (टर्मिनेलिया चेब्युला)। (२) Terminalia citrina Roxb (टर्मिनेलिया सिट्रिना)। Fam. Combretaceae (कॉम्ब्रिटेसी)।

हरीतकी—अत्यन्त सुगमता से सर्वत्र प्राप्त होने वाली किन्तु विविध गुण सम्पन्न औषधि का फल है। इसका वृक्ष हमारे देश के प्रायः सब प्रान्तों में कहीं न कहीं पाया जाता है। यह उत्तर भारत में बहुलता से उत्पन्न होती है। कुमाऊँ से बंगाल तक, आसाम, ब्रह्मा तथा दक्षिण में मद्रास प्रान्त, कोयम्बटूर, कनारा, पश्चिमघाट के पूर्वीय प्रान्तों में, गञ्जाम, गोदावरी की तलहटी, सतपुरा पहाड़, गुजरात, बम्बई प्रान्त के घाटों के पास ऊँचे जंगलों में, कोंकण, मलाबार, विन्ध्याचल पहाड़, हिमालय पहाड़ एवं काबुल की ओर इसकेवृक्ष अधिकता से देखने में आते हैं। इसका वाटिकाओं में भी रोपण करते हैं।

प्रायः इसका वृक्ष मध्यमाकार का होता है किन्तु कहीं कहीं बड़े बड़े वृक्ष भी देखने में आते हैं। नर्मदा के दक्षिण के वृक्ष १०० फ़ीट तक ऊँचे होते हैं किन्तु उत्तर भारत में उत्पन्न हुए वृक्ष इतने बड़े नहीं होते। हरीतकी के वृक्ष वट, पीपल, आदि वृक्षों की तरह दीर्घायु नहीं होते हैं, बल्कि कालान्तर में सूख कर गिर जाया करते हैं। इसकी छाल कालापन युक्त भूरे रंग की चौथाई इञ्च तक मोटी होती है। लकड़ी पक्की और बहुत मज़बूत होती हैं। इमारत के काम के लिये

अच्छी समझी जाती है। यह किञ्चित् हरापन या पीलापन युक्त भूरे रंग के साथ खाकी रंग की होती है। टहनियों पर पत्ते सघन नहीं रहते, बल्कि न्यूनाधिक विपरीत रहते हैं। पत्ते-अडूसे के पत्तों से कुछ चौड़े महुवे के पत्तों के समान, ४ से ८ इञ्च तक लम्बे, किञ्चित् अंडाकार, नोकदार, सफेदी युक्त हरे और चमकदार होते हैं तथा स्पर्श में खुरदरे जान पड़ते हैं। वृन्त-१ इंच से कम एवं उसके अग्र भाग के ऊपरी पृष्ठ पर दो या अधिक सूक्ष्म ग्रन्थियां पाई जाती हैं। वसन्त ऋतु में पुराने पत्ते गिर कर नवीन पत्ते निकल आते हैं। फूल-बारीक आम की मंजरी के समान दिखाई देते हैं। और वे देखने में सफेदी मायल या कुछ पीले रंग के होते हैं तथा उनमें दुर्गन्ध आती है। फल-किञ्चित् लम्बाई युक्त गोलाकार होते हैं, सूखते सूखते छिलके सिकुड़ जाते हैं और पांच कोणाकार या पांच रेखा युक्त दिखाई देने लगते हैं। शकल सूरत, आकार और डील डौल एवं छोटे बड़े, लम्बे, गोल इत्यादि भेदों से फल कई प्रकार के देखने में आते हैं।

पूर्व बंगाल, आसाम और ब्रह्मा में एक अन्य जाति पाई जाती है जिसे लेटिन में Terminalia citrina Roxb. (टर्मिनेलिया सिट्रिना) कहते हैं। इसका वृक्ष ८० फीट तक ऊँचा होता है। इसके फल २ इंच तक लम्बे होते हैं।

हरीतकी के फल पूर्ण पकने तक वृक्ष में बहुत कम ठहरते हैं। प्रायः कच्ची अवस्था में ही गिर जाया करते हैं। पका फल उत्तम समझा जाता है। उत्तम फल वह है जो नया हो, और चिकना, गोल, भारी, तौल में कम से कम १॥ तोले से भी अधिक हो तथा पानी में डालने से डूब जाय। अपक्व अवस्था के छोटे, काले, द्राक्ष के समान फल मिलते हैं। यह बड़े हर्रे की अपेक्षा बहुत छोटे होते हैं। इन्हें हिन्दी में जंगी हरड़ एवं मराठी में बालहिरडा कहा जाता है। इनका स्वाद अधिक कसैला तथा कड़ुआ होता है।

किसी किसी वाटिका में हरीतकी का वृक्ष नमूने की तरह देखने में आता है। वर्षा ऋतु में हरीतकी के छिलके को सुगमता से दूर कर गुठलियों को भूमि पर फेंक देने से ही कोई कोई बीज अङ्कुरित होकर पौधे के रूप में बढ़ते हैं। पतझड़ में पुराने पत्ते गिर जाने से चैत के महीने में प्रायः इसके पौधे सूखे से दिखाई देते हैं। उस समय से ज्येष्ठ तक पौधों को पानी से कभी कभी सींचना होता है। बरसात का पानी पड़ने पर नवीन पत्ते निकल आते हैं और पौधे हरे भरे हो जाते हैं। उसी समय उनको उठाकर स्थायी रूप से इष्ट जगह पर रोपण करना चाहिये। बरसात का पानी जमा होकर जहां पर तर मिट्टी जमा होती है उस जगह पर रोपण किया हुआ पौधा सतेज होता है। साधारण वृक्षों की तरह परिचर्या करने से ही इसके वृक्ष तैयार हो जाते हैं।

आयुर्वेद में हरीतकी की जो सात जातियां कही गई हैं उनके आकार तथा रङ्ग रूप और गुण भी भिन्न भिन्न होते हैं। आयुर्वेद में प्रत्येक जाति की हरड के गुणों का वर्णन बहुत ही विचार-पूर्वक किया गया है, परन्तु आजकल के पाश्चात्य विद्वान् लोग केवल दो ही प्रकार की हरीतकी को ग्राह्य मानते हैं। शेष जाति की हरीतकियों में यद्यपि प्रकार भेद मानते हैं, परन्तु गुणों में कुछ भेद नहीं मानते। इस संबंध में विशेष अनुसन्धान की आवश्यकता है।

रासायनिक संगठन—पक्व हरीतकी में करीब ३० प्रतिशत कसैला द्रव्य होता है जो चेब्यूलीनिक एसिड के कारण है। इसके अतिरिक्त टैनिक एसिड २०-४० प्रतिशत, गैलिक एसिड, राल आदि द्रव्य हैं। इसका विरेचक द्रव्य एन्थ्राक्विनोन के समान है। बालहरड़ में एक हरे रंग की तैलीय राल मिलती है जिसे कभी कभी माइरोबेलानिन् कहा जाता है।

गुण और प्रयोग—हरीतकी श्रेष्ठ मृदु विरेचक द्रव्य है। इससे किसी प्रकार की हानि नहीं होती। शरीर की सभी क्रियाएं इसके सेवन से सुधरती हैं। इसका उपयोग जीर्ण ज्वर, अतिसार, रक्तातिसार, अर्श, नेत्र रोग, अजीर्ण, प्रमेह, पाण्डु आदि में लाभकर होता है। जीर्ण कास, अर्श आदि में अगस्त्य हरीतकी एवं व्याघ्री हरीतकी आदि योगों के रूप में भी इसका व्यवहार किया जाता है।

हरीतकी अच्छा व्रण रोपक है। मुखव्रण, पुराने घावों तथा अर्श में इसका लेप लाभप्रद है। दंत मञ्जन के लिये इसका महीन चूर्ण उपयोगी है।

बाल हरीतकी—यह मृदु विरेचक है। जीर्ण विबन्ध एवं अर्श में इसका अच्छा उपयोग होता है।

मात्रा—चूर्ण २ से ४ माशा।

अथ विभीतकस्य नामानि गुणाँश्चाह

विभीतकस्त्रिलिङ्गः स्यादक्षः[1] कर्षफलस्तु सः। कलिद्रुमो भूतवासस्तथा कलियुगालयः।
बिभीतकं स्वादुपाकं कषायं कफपित्तनुत्। उष्णवीर्यं हिमस्पर्शं भेदनं कासनाशनम् ॥३६॥
रूक्षं नेत्रहितं केश्यं कृमिवैस्वर्यनाशनम्। बिभीतमज्जातृट्छर्दिकफवातहरी लघुः॥
कषायो मदकृच्चाथ धात्रीमज्जाऽपि तद्गुणः ॥ ३७ ॥

बहेड़े के नाम तथा गुण—विभीतक, (यह शब्द तीनों लिङ्गों में होता है), अक्ष, कर्षफल, कलिद्रुम, भूतवास और कलियुगालय ये सब संस्कृत नाम बहेड़े के हैं। **बहेड़ा**—मधुर विपाकवाला, कषाय रसयुक्त, कफ व पित्त का नाशक, उष्णवीर्यवाला, शीतस्पर्श वाला, मल का भेदन करने वाला, कास का नाशक, रूक्ष, नेत्र तथा बालों के लिये हितकर, कृमि तथा स्वरभेद को दूर करने वाला होता है। **बहेड़े की मींगी**—प्यास, वमन और कफ एवं वायु का नाश करने वाली, लघुपाकी, कषाय रस युक्त और मदकारक होती है। इसी भांति आंवले की मींगी के भी ये ही सब गुण हैं ॥ ३५-३७ ॥

२ बहेड़ा

हि०-बहेड़ा, फिनास, भैरा, बहेरा। **बं०**-बयड़ा, बोहेरा, बेहरी, बेहेड़ा। **म०**-बेहड़ा, बेहाड़ा, धाटींग, बहेला, बहड़ा। **गु०**-वेहेड़ा, वेड़ा। **क०**-तोड़े, तोरै, तारेकायि। **ते०**—तडिचेट्टु, बल्ला, ताड़ि, तनिकाय, तनि, तन्द्रा, तोन्द्री। **ता०**-अक्कम, तन्री, तनितांडी, तोअण्डी, तोखांडी, तंरिक्कय, तनी, कट्टुएलुपय। **मा०**-बहेड़ा। **प०**-बहेड़ा। **मु०**-बहेड़ा। **फा०**-बलेले, बलेला, बलैलाह। **अ०**-बलेलज़। **अं०**-Beleric Myrobalans; (बेलेरिक् मैरोबेलन्स्)। Beddanut (बेड्डानट)। **ले०**-Terminalia belerica Roxb. (टर्मिनेलिया बेलेरिका)। Fam. Combretaceae (कॉम्ब्रिटेसी)।

हमारे देश के प्रायः सब प्रान्तों में बहेड़े का वृक्ष देखने में आता है, विशेष कर नीची पहाड़ियों पर अधिक पाया जाता है। यह जंगल, पहाड़ तथा ऊँची भूमि में उत्पन्न होता है।

वृक्ष—बहुत विशाल हुआ करता है। ऊँचाई ६० से १०० फीट तक होती है। स्तम्भ-मोटा, सीधा, खड़ा, गोलाकार होता है। छाल-आधा इञ्च तक मोटी, कालापन युक्त या नीलापन युक्त खाकी रंग की होती है। लकड़ी-हलकी खाकी या किञ्चित् पीलापन युक्त होती है। शाखायें-प्रायः ६ से १० फीट लम्बी होती हैं किन्तु कभी कभी २० फीट लम्बी शाखायें भी देखने में आती हैं। **पत्ते**—महुवे के पत्तों के समान ३ से ८ इञ्च तक लम्बे तथा २-३ इञ्च चौड़े होते हैं। ये विषमवर्ती प्रायः छोटी छोटी टहनियों के अन्त में सघन रहते हैं। प्रायः पतझड़ में इसके सब पत्ते गिर जाते हैं और चैत तक नवीन पत्ते निकल आते हैं। **फूल**—३ से ६ इञ्च तक लम्बी सीकों पर नन्हें फूलों की

१. 'स्यान्नाक्षः' इति पाठा०।

मञ्जरियां आती हैं। ये मैले खाकी या फीके हरे रंग के होते हैं। **फल**—एक इञ्च लम्बा, गोल और अण्डाकार होता है।

पतझड़ में जब इसके पुराने पत्ते गिर जाते हैं और नवीन पत्ते आते रहते हैं, प्रायः उसी समय फूल भी आते हैं। शीतकाल के प्रारम्भ में उस पर फल लग जाते हैं और अगहन-पूस तक पक जाते हैं। वृक्ष से बबूल के गोंद के समान एक प्रकार का गोंद निकलता है। फलों की मींगी से तेल निकाला जाता है।

किसी किसी वाटिकामें बहेड़ेका वृक्ष देखने में आता है। वर्षा के प्रारम्भ में छिलके रहित गुठलियों को भूमि पर फेंक देने से ही वे अङ्कुरित हो पौधे के रूप में परिणत होती हैं। इसकी परिचर्या हरीतकी के पौधों के समान करनी चाहिये।

रासायनिक संगठन—इसके फल में १७% टैनिन द्रव्य रहता है तथा इसकी मींगी में २५% तक हलके पीले रंग का तैल रहता है। इसके अतिरिक्त राल, सैपोनिन आदि द्रव्य रहते हैं।

गुण और प्रयोग—बहेड़े का विशेष उपयोग त्रिफले के रूप में होता है। इसका अर्ध पक्व फल विरेचक और पूरा पका हुआ या सूखा फल संकोचक माना जाता है। इसका उपयोग खांसी, गले के रोग, स्वरभंग, ज्वर, उदर, प्लीहावृद्धि, अर्श, अतिसार, कुष्ठ आदि रोगों में होता है। यह मस्तिष्क के लिये बल्य है। नेत्र पर इसका लेप लाभकारी है।

इसकी मज्जा वेदनास्थापक, शोथघ्न और कुछ मदकारी है। मज्जा का तेल बालों के लिये अत्यन्त पौष्टिक, रंजक एवं कण्डूघ्न और दाहशामक है। मज्जा अथवा छिलके को भून कर मुख में रखने से खांसी में बहुत लाभ होता है।

मात्रा—चूर्ण ३-९ माशा।

अथामलक्या नामानि गुणाँश्चाह

वयस्यामलकी वृष्या जातीफलरसं शिवम्। धात्रीफलं श्रीफलं च तथामृतफलं स्मृतम्॥
त्रिष्वामलकमाख्यातं धात्री तिष्यफलाऽमृता॥ ३८॥
हरीतकीसमं धात्रीफलं किन्तु विशेषतः। रक्तपित्तप्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम्॥ ३९॥
हन्ति वातं तदम्लत्वात्पित्तं माधुर्यशैत्यतः। कफं रुक्षकषायत्वात्फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित्॥४०॥
यस्य यस्य फलस्येह वीर्यं भवति यादृशम्। तस्य तस्यैव वीर्य्येण मज्जानमपि निर्दिशेत्॥४१॥

आंवले के नाम तथा गुण—वयस्या, आमलकी, वृष्या, जातीफलरसा, शिव, धात्रीफल, श्रीफल और अमृत फल ये सब आंवले के नाम हैं। आमलक (यह शब्द तीनों लिङ्गों में होता है), धात्री, तिष्यफला, अमृता ये भी आंवले के संस्कृत नाम हैं। हरड़ के जो २ गुण हैं, वे ही आंवले के भी हैं। किन्तु विशेष यह है कि—यह रक्तपित्त तथा प्रमेह का नाशक है और अत्यन्त वृष्य (वीर्य के लिये हितकर) एवं रसायन है। **आमला**—अम्ल रस युक्त होने से वायु को तथा मधुर रस युक्त और शीतल होने से पित्त को दूर करता है और रूक्ष तथा कषाय रस युक्त होने से कफ को दूर करता है। अतएव यह त्रिदोशनाशक है। यहां सर्वत्र यह समझना चाहिये कि जिन २ फलों का गुण जैसा उष्ण या शीतवीर्य हो उन २ फलों की मींगी का भी गुण वैसा ही उष्ण या शीतवीर्य होता है ३८-४१॥

३ आमला

हि०-आमला, आँवला, आंवडा, आंवरा, औड़ा, औरा। **बं०**-आमला, आमरो, अमला, आमलकी। **म०**-आवले, आवली, आवलकाठी। **पं०**-आमला, अम्बुल, अम्बलो। **मा०**-आंवला। **गु०**-आंवला,

आमलां, आमली। **क०**-नेल्लि, नेल्लिकायि। **ते०**-उसरिकाय, उसरिक। **उ०**-अण्डा। **आसा०**-अमला, आमलकी। **गारो०**-अम्बरी। **ता०**-नेल्लिमरं, नेल्लिकाय। **ब्रह्मा०**-शब्जु, जिफियूसी। **फा०**-आमलज, आमलज आमलय, आमलह, आमलाह, आम्लज्ञ। **अ०**-आमलज्ज। **अं०**-Emblic Myrobalan (एम्ब्लिक् मैरोबेलन्); Indian gooseberry (इन्डियन गूसबेरी)। **ले०**-Phyllanthus emblica Linn. (फाइलेन्थस एम्ब्लिका); Emblica officinalis Gaertn. (एम्ब्लिका ऑफिसिनेलिस्)। Fam. Euphorbiaceae (यूफर्बियेसी)।

आमला भारतवर्षके प्रायः सब उष्ण प्रदेशों में बागी और जंगली दोनों प्रकार का पाया जाता है। विशेष कर उत्तर भारत, अवध, बिहार और पूर्वी देशों में इसकी उपज अधिक है। हिमालय पहाड़ के नीचे जम्बू से पूर्व की ओर तथा दक्षिण की ओर सिलोन तक उत्पन्न होता है। तथा चीन एवं मलयद्वीप में भी मिलता है।

इसका वृक्ष-मध्यमाकार का सुहावना होता है, किन्तु जंगली वृक्ष ऊँचे कद का बड़ा होता है। छाल-चौथाई इञ्च मोटी हलके खाकी रङ्गकी एवं छिलकेदार होती है। लकड़ी-लाल रङ्गकी और मजबूत होती है। इसमें सार भाग नहीं होता है। **पत्ते**-छोटे २ इमली के पत्तों के समान और **फूल**-राई के दानों के समान हरापन युक्त पीले रङ्ग के गुच्छों में शाखाओं से सटे रहते हैं। वसन्त ऋतु में जब इसके पुराने पत्ते झड़ जाते हैं तब वृक्ष पत्रशून्य दिखाई पड़ता है। उसी समय यह फूलता है और नवीन पत्ते निकलते हैं। फूलों में नीबू के फूल के समान मन्द सुगन्ध आती है। **फल**-डालियों में सटे हुये दिखाई देते हैं। वे गोल चमकदार और छ रेखाओं से युक्त होते हैं। कच्ची अवस्था में हरे, पकने पर हरापन युक्त किञ्चित पीले या सुर्ख और सूखने पर काले रङ्ग के होकर फांके पृथक् २ हो जाती हैं और साथ ही गुठली भी फट जाती है। उनसे त्रिकोणाकार छोटे २ बीज निकलते हैं। बीजों से तेल निकलता है।

बीज से ही इसके पौधे उत्पन्न होते हैं और थोड़े ही यत्न से साधारण वृक्षों की भांति प्रायः दुमट मिट्टी में इसके वृक्ष सतेज होते हैं। प्रायः वाटिकाओं में कलमी आमले के वृक्ष रोपित किये जाते हैं। जङ्गली के फल एक तोले तक और बागी कलमी आंवले के पांच तोले से अधिक भी देखने में आते हैं। बनारसी आंवले सर्वोत्तम समझे जाते हैं। किन्तु जितने आंवलों की यहां खपत होती है उतने उत्पन्न नहीं होते। खटिक लोग दूसरी जगह से मँगाकर बेचते हैं। पके फल बहुत कम मिलते हैं। प्रायः कच्ची अवस्था में ही तोड़कर बेंच लेते हैं।

रासायनिक संगठन—रासायनिक दृष्टि से इसके टैनिन में गैलिक एसिड, एलाइगिक एसिड और ग्लूकोज होता है। इसमें विटामिन 'सी' तथा पेक्टिन बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है। 'विटामिन सी' की मात्रा १०० ग्रा० में ६००-९२१ मि० ग्रा० तक पाई जाती है। आंवला के सूखे चूर्ण में भी 'विटामिन सी' पर्याप्त मात्रा में होती है क्योंकि इसके अन्दर का टैनिन 'सी' को नष्ट नहीं होने देता।

गुण और प्रयोग—आंवला एक अत्यंत महत्त्व की औषधि है। इसका बहुत अधिक प्रयोग किया जाता है। इसका ताजा फल रसायन, वृष्य, रक्तपित्त को दूर करने वाला, शीतल, मृदु विरेचक, मूत्रल एवं यकृत की किया ठीक करने वाला है। इसका सूखा फल ग्राही, शीतल, दीपन, एवं रक्तस्रावरोधक है।

रसायन के लिये एक विशिष्ट प्रकार की विधि से सेवन करने का विधान चरक में किया गया है। ताजे सूखे आंवले के चूर्ण को लेकर उसको ताजे आंवले के रस की भावना देकर सुखाना चाहिए। यह जितनी अधिक बार दी जायेगी उतना ही गुणकारक होगा। कम से कम २१ भावना

देकर सुखाकर रखना चाहिये। इस चूर्ण की ३ से ६ माशा की मात्रा गोघृत तथा मधु (असमान मात्रा) के साथ दिन में दो बार लेनी चाहिये। इसी प्रकार च्यवनप्राश का भी उपयोग किया जा सकता है। इसके सेवन से शरीर की सभी क्रियाएँ सुधरकर शरीर पुष्ट एवं बलवान् बनता है। स्मृति, मेधा, कांति बढ़ती है। श्वास, कास, क्षय, पांडु, अग्निमान्द्य, वीर्य दोष, आदि दूर होते हैं। आंवला एवं हलदी का क्वाथ बस्तिशोथ एवं पित्त प्रकोपजन्य व्याधि में उपयोगी है। आंवले का रस मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, पित्तजशूल, कामला, हिक्का, वमन, जीर्ण विबन्ध में मिश्री मिलाकर शर्बत के रूप में बहुत लाभदायक है। प्रशीताद (Scurvy) रोग में भी यह बहुत उपयोगी है। आंवले का चूर्ण अर्श, अतिसार, संग्रहणी, अत्यार्तव एवं प्रतिश्याय में उपयोगी है।

पेड़ पर ही लगे हुये आंवलों को चीरने से जो रस निकलता है उससे आंख धोने से अक्षिशोथ दूर होता है। उसी प्रकार इसके बीजों की मींगी के क्वाथ से आंख धोने से आंखों का दर्द दूर होता है। अक्षिप्रक्षालन के लिये रातभर जल में भिगोये आंवले के चूर्ण का पानी भी उपयोगी है। लोह भस्म के साथ आंवले का उपयोग पाण्डु, कामला में विशेष लाभकर होता है।

आंवले के पत्तों का क्वाथ मुख व्रण में लाभदायी है। इसके कोमल पत्तों को छाछ के साथ देने से अजीर्ण और अतिसार में लाभ होता है।

आंवले का बस्तिप्रदेश पर लेप मूत्रावरोध में, एवं गर्भाशय मुख पर रक्त प्रदर में उपयोगी है। आंवले का विशेष उपयोग च्यवनप्राश, आमलकीरसायन, त्रिफला एवं धात्री लोह में किया गया है। **मात्रा**—चूर्ण ३ माशे से १ तोला तक।

अथ त्रिफलाया लक्षणनामगुणानाह

पथ्याबिभीतधात्रीणां फलैः स्यात्त्रिफला समैः। फलत्रिकञ्च त्रिफला सा वरा च प्रकीर्तिता ॥
त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठहरा सरा। चक्षुष्या दीपनी रुच्या विषमज्वरनाशिनी ॥ ४३ ॥

त्रिफला के लक्षण, नाम तथा गुण—हरड, बहेड़ा और आंवला इन तीनों के फल यदि समान भाग से एकत्र किये जायं तो यही त्रिफला कहलाता है। इसके फलत्रिक और वरा ये भी नामान्तर हैं। **त्रिफला**—कफ तथा पित्त को नाश करनेवाली एवं प्रमेह व कुष्ठ को दूर करनेवाली, दस्तावर, नेत्रों के लिये हितकर, अग्निदीपक, रुचिकारक एवं विषम ज्वर को नाश करने वाली होती है॥

त्रिफला

आजकल विद्वान् यद्यपि हरड, बहेड़ा और आँवला-इन तीनों को एक साथ मिलाकर त्रिफला मानते हैं तोभी इनके सम भाग होने में मत भेद है। कोई एक भाग हरड, दो भाग बहेड़ा और तीन भाग आंवला एवं कोई एक भाग हरड, दो भाग बहेड़ा और चार भाग आंवला को त्रिफला कहते हैं। एक हरड़, दो बहेड़े और चार आंवले को भी बहुत लोग त्रिफला मानते हैं। उसी प्रकार एक हरड़ से एक भाग हरड, दो बहेड़ा से दो भाग बहेड़ा और चार आंवले से चार भाग आंवले समझते हैं किन्तु यदि एक हरड, दो बहेड़े और चार आंवले (बनारसी बड़े आंवले से भिन्न) लिये जायं तो ये प्रायः समभाग ही होते हैं।

अथ शुण्ठ्यानामानि गुणाँश्चाह

शुण्ठी विश्वा च विश्वञ्च नागरं विश्वभेषजम्। ऊषणं कटुभद्रञ्च शृङ्गवेरं महौषधम् ॥ ४४ ॥
शुण्ठी रुच्यामवातघ्नी पाचनी कटुका लघुः। स्निग्धोष्णा मधुरा पाके कफवातविबन्धनुत् ॥

वृष्या [1]स्वर्यावमिश्वासशूलकासहृदामयान्। हन्ति श्लीपदशोथार्शं आनाहोदरमारुतान् ॥
आग्नेयगुणभूयिष्ठात् तोयांशपरिशोषि यत्। संगृह्णाति मलं तत्तु ग्राहि शुण्ठ्यादयो यथा ॥
विबन्धभेदिनी या तु सा कथं ग्राहिणी भवेत्। शक्तिर्विबन्धभेदे स्याद्यतो न मलपातनो ॥

सोंठ के नाम तथा गुण—शुण्ठी, विश्वा, विश्व, नागर, विश्वभेषज, ऊषण, कटुभद्र, शृङ्गवेर और महौषध ये सब संस्कृत नाम सोंठ के हैं। **सोंठ**—रुचिकारक, आमवातनाशक, पाचक, कटुरस युक्त, लघुपाकी, स्निग्ध, उष्णवीर्य, विपाक में मधुर रस युक्त, कफ, वात और विबन्ध (विबद्धता) को दूर करने वाली, वृष्य, स्वर के लिये हितकारी, वमन, श्वास, शूल, कास, हृद्रोग, श्लीपद, शोथ, बवासीर, आनाह और उदर की वायु इन सबों को दूर करती है और जो द्रव्य अधिकतर अग्नि सम्बन्धी गुणों से युक्त होने से जलीय अंश को सूखाने वाला तथा मल का संग्राहक अर्थात् पतले मल के जलीय भाग को सुखाकर गाढ़ा करने वाला होता है वह 'ग्राही' कहलाता है, जैसे कि—सोंठ आदि। अब यहां पर प्रश्न उपस्थित होता है कि—जो सोंठ विबन्ध (बँधे हुये मल) का भेदन करने वाली होती है वह कैसे ग्राही होगी ? क्योंकि अभी अपने ग्राही द्रव्य का 'मल को गाढ़ा करना' लक्षण बतलाया है। इसका उत्तर यह है कि—इस द्रव्य का यह प्रभाव है कि—यह विबंध (मलबद्धता) के दूर करने में तो समर्थ होती है, किन्तु मल के गिराने में नहीं होती है क्योंकि आश्रय भेद से द्रव्यों के कर्मों में भी प्रभाववश भिन्नता हो ही जाती है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥ ४४-४८ ॥

४ सोंठ

हि०-सोंठ, सौठं, सूंठ, सिंघी। **बं०**-शुंठ्र, शुण्ठि, सुंट। **मा०**-सूंठ। **सिंहली०**-वेलिच इङ्गुरु। **गु०**-शुंठ्य, सुंठ, सूंठ। **क०**-शुंठि, शोंठि, ओणसुठि, वेनंशुठी। **ते०**-शोंठी, शोंटी, सोंटि। **ता०**-शुक्कु। **प०**-सुंड। **मला०**-चुक्क। **ब्रह्मी०**-गिन्सीखियाव। **फा०**-जञ्जबील, जञ्जबीलखुश्क। **अ०**-जञ्जबीले आबिस। **अं०**-Dry Zingiber (ड्राइजिञ्जिबेर) Ginger (जिंजर)। **ले०**-Zingiber officinale Roscoe (जिंजिबेर ऑफिसिनेल)। Fam. Zingiberaceae (जिंजिबेरेसी)।

सुखाई आदी को सोंठ कहते हैं। सुखाने की विधि के अनुसार इसके स्वरूप में अंतर पाया जाता है। आदी को खूब स्वच्छ कर पानी या दूध में उबाल कर सुखाते हैं। प्रायः सोंठ दो प्रकार की होती है एक रक्ताभ भूरी और दूसरीसफेद। चूने के साथ शोधन करने से यह सफेद तथा टिकाऊ हो जाती है। जिनमें रेशे बहुत कम होते हैं, वह अच्छी समझी जाती है।

रासायनिक संगठन—सोंठ में १-३% उडन शील तैल रहता है। जिंजेरोल तथा शोगोल नामक इसमें कटु द्रव्य हैं। इसके अतिरिक्त इसमें रेजिन तथा स्टार्च रहता है। अच्छी सोंठ में राख ६%से अधिक नहीं रहती जिसमें से जल में घुलनशील राख की मात्रा १.७% से कम न होनी चाहिये। इसमें मद्यसार में घुलनशील सत्व ४.५% से कम तथा जल में घुलनशील सत्व १०% से कम न होना चाहिये।

गुण और प्रयोग—सोंठ यह अनेक रोगों में अन्य औषधियों के साथ उपयोग में आती है। सोंठ, मिरिच और पीपल तीनों मिलकर त्रिकटु कहलाती हैं जिसका बहुत व्यवहार होता है। सोंठ यह एक उत्तम पाचक. कफघ्न, वातहर एवं उत्तेजक सुगन्धित द्रव्य है। इससे उदरगत वायु

१. 'सर्व्ये'ति पाठा०। २. 'भूयिष्ठमि'ति पाठा०।

के कारण होने वाले उदरशूल, हृच्छूल में लाभ होता है। इसके सेवन से पाचन क्रिया ठीक होकर उदर में वायु का सञ्चय नहीं होता। जीर्ण सन्धिवात में विशेषतः वृद्धों में इसके फांट का नित्य रात में प्रयोग लाभकारी होता है। यह उष्ण एवं वातहर होने से किसी भी प्रकार की पीड़ा में लाभकारी है। गरम जल में सोंठ के चूर्ण का लेप शिरःशूल, वातनाड़ीशूल, एवं दन्तशूल में उपयोगी है। पसीना अधिक होकर हाथ और पैरों में शीत आने पर इसके चूर्ण को रगड़ने से रक्ताभिसरण की क्रिया ठीक होकर शीत दूर होता है।

यह कफघ्न होने के कारण इसका प्रयोग श्वास, कास, प्रतिश्याय, गले के रोग, स्वरभङ्ग इत्यादि में किया जाता है। इसके लिये इसका फांट बना कर लेना चाहिये। आमदोष दूर करने के लिये सोंठ के चूर्ण को घी के साथ रेंड के पत्तों में लपेट कर अग्नि में पुटपाक करना चाहिये और फिर इस चूर्ण को मिश्री के साथ सुबह लेना चाहिये। इससे आमातिसारजन्य शूल दूर होता है।

गुड़ के साथ सोंठ का उपयोग अर्श, अजीर्ण, अतिसार, गुल्म, शोथ, प्रमेह, कामला आदि में किया जाता है। बल्य औषधियों के साथ सोंठ का उपयोग क्षतक्षीण एवं दुर्बल रोगियों के लिये उपयोगी है। विरेचक औषधियों के साथ सोंठ लेने से हृल्लास, पेट में मरोड़ या ऐंठन नहीं होती।

मात्रा—चूर्ण २ से ८ रत्ती।

अथार्द्रकस्य नामानि गुणाँश्चाह

आर्द्रकं शृङ्गवेरं स्यात्कटुभद्रंतथाऽऽर्द्रिका। आर्द्रिका भेदिनी गुर्वी तीक्ष्णोष्णा दीपनी मता॥
कटुका मधुरा पाके रूक्षा वातकफापहा।
ये गुणाः कथिताः शुण्ठ्यास्तेऽपि सन्त्यार्द्रकेऽखिलाः॥ ५० ॥
भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम्। अग्निसन्दीपनं रुच्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम्॥५१॥
कुष्ठपाण्ड्वामये कृच्छ्रे रक्तपित्ते व्रणे ज्वरे। दाहे निदाघशरदोर्नैव पूजितमार्द्रकम्॥ ५२ ॥

अदरख के नाम तथा गुण—आर्द्रक, शृङ्गवेर, कटुभद्र और आर्द्रिका ये संस्कृत नाम अदरख के हैं। **अदरख**—मल को भेदन करने वाली, पाक में गुरु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, कटु-रसयुक्त, विपाक में मधुर रसयुक्त, रूक्ष, वात तथा कफ को नष्ट करने वाली होती है और जितने गुण पूर्व में सोंठ के कह आये हैं, सभी गुण अदरख में भी रहते हैं और भोजन करने के प्रथम सर्वदा सेंधा नमक के साथ अदरख खाना हितकारी होता है। क्योंकि यह अग्नि को दीप्त करने वाला, रुचिकारक, जिह्वा तथा कण्ठ का शोधन करने वाला होता है। कुष्ठ, पाण्डुरोग, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, व्रण, ज्वर, दाह इन रोगों में एवं ग्रीष्म तथा शरद् ऋतुओं में अदरख खाना हितकर नहीं है॥ ४९–५२ ॥

५ अदरख

हि०–अदरख, आदी। **बं०**–आदा। **पं०**–अदरक, अद, अद्रक, आदा। **म०**–आले। **ते०**–अल्लं, अल्लमू। **ब्रह्मी०**–ख्येन, सेङ्ग, गिनसिन। **गु०**–आदु। **क०**–अल्ल, असिशोंठि, हसीशुण्ठी। **मा०**–आदो। **ता०**–शुक, इञ्जि। **मल०**–इञ्ची। **सिंहली०**–अमुइङ्गुरु। **फा०**–अजीबीले तर। **अ०**–जंजबीले रतब। **अं०**–Ginger root (जिञ्जर रूट)। **ले०**–Zingiber officinale (जिंजिबेर ऑफिसिनेल)।

भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों में अदरक की खेती की जाती है।

अदरक का **पौधा** प्रायः एक हाथ ऊँचा होता है। इसके **पत्ते** बांस के पत्तों के समान पर उनसे कुछ छोटे होते हैं। इसकी जड़ में जो कन्द होता है, उसीको अदरक कहते हैं। इसका फूल, फल-

बहुत कम देखने में आता है। किसी २ पुराने पौधे पर फूल आते हैं। फूलों का रङ्ग जामुनी रङ्ग का होता है।

अदरक रेतीली भूमि में गोबर की खाद डाली हुई दुमट मिट्टी में अधिक उत्पन्न होती है। इसके लिये पर्याप्त वर्षा की आवश्यकता रहती है।

गुण और प्रयोग—आर्द्रक के रस का उपयोग शहद के साथ विशेष कर श्वास, कास आदि कफ रोगों में अनुपान के लिये किया जाता है। भोजन के पूर्व सेंधानमक और आदी के सेवन से भूख बढ़ती है, जिह्वा एवं कण्ठ की शुद्धि होकर अन्न में रुचि भी बढ़ती है। आर्द्रक रस और प्याज का रस १, १ तोला लेने से उल्टी और जी मिचलाना दूर होता है।

मलाबार में जलोदर रोग में इसका रस, तीव्र मूत्रनिःसारक रूप में दिया जाता है। इसकी मात्रा धीरे २ बढ़ाई जाती है जिससे मूत्र की मात्रा भी बढ़ती जाती है। लेकिन पुराने हृदय रोग एवम् वृक्कविकार (ब्राइट्स डिसीज) में यह हानिकर है। गुड़ के साथ इसका रस शीतपित्त में उपयोगी है। आदी का रस गुनगुना गरम करके कान में डालने से कर्णशूल दूर होता है।

मात्रा—स्वरस ½–२ चम्मच।

अथ पिप्पल्या नामानि गुणाँश्चाह

पिप्पली मागधी कृष्णा वैदेही चपला कणा। उपकुल्योषणा शौण्डी कोला स्यात्तीक्ष्णतण्डुला।
पिप्पली दीपनी वृष्या स्वादुपाका रसायनी। अनुष्णा कटुका स्निग्धा वातश्लेष्महरी लघुः॥
पिप्पली रेचनी हन्ति श्वासकासोदरज्वरान्। कुष्ठप्रमेहगुल्मार्शः प्लीहशूलाममारुतान्॥५५॥
आर्द्रा कफप्रदा स्निग्धा शीतला मधुरा गुरुः। पित्तप्रशमनी सा तु शुष्का पित्तप्रकोपिणी॥५६॥
पिप्पली मधुसंयुक्ता मेदःकफविनाशिनी। श्वासकासज्वरहरी वृष्या मेध्याऽग्निवर्द्धिनी॥५७॥
जीर्णज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुडपिप्पली। कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डुकृमिरोगनुत्॥५८॥
द्विगुणः पिप्पलीचूर्णाद् गुडोऽत्र भिषजां मतः॥ ५८ ॥

पीपर के नाम तथा गुण—पिप्पली, मागधी, कृष्णा, वैदेही, चपला, कणा, उपकुल्या, ऊषणा, शौण्डी, कोला और तीक्ष्णतण्डुला ये सब संस्कृत नाम पीपर के हैं। **पीपर**–अग्निदीपक, वृष्य, पाक में मधुर रसयुक्त, रसायन, अनुष्ण (थोड़ी उष्ण), कटुरसयुक्त, स्निग्ध, वात तथा कफ नाशक, लघु-पाकी और रेचक (दस्तावर) है। यह—श्वास, कास, उदररोग, ज्वर, कुष्ठ, प्रमेह, गुल्म, बवासीर, प्लीहा, शूल और आमवातनाशक है। **कच्ची पीपर**–कफकारी, स्निग्ध, शीतल, मधुर, गुरु और पित्त को शान्त करने वाली है। किन्तु **सूखी पीपर**–पित्त को कुपित करने वाली है। **मधु (शहद) से युक्त पीपर**–मेद, कफ, श्वास, कास और ज्वर का नाश करने वाली होती है एवं वृष्य, मेधा (धारणाशक्ति) के लिये हितकारी और अग्निवर्द्धक भी है। **गुड़ से युक्त पीपर**–जीर्णज्वर और अग्निमान्द्य में हितकर होती है—एवं–कास, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृद्रोग, पाण्डुरोग तथा कृमिरोग को दूर करने वाली भी होती है। यहां पर अर्थात् पीपर के साथ गुड़ मिलाने में पीपर के चूर्ण के तौल से दूना गुड़ मिलाना चाहिए ऐसा वैद्यों का मत है॥ ५३–५८ ॥

६ पीपल

हि०–पीपर, पीपल। **बं०**–पीपुल, पिपुल। **म०**–पिंपली। **गु०**–पीपर, लींड़ी पीपल, लिंडी पीपल। **क०**–हिप्पली। **ते०**–पिप्पलु, पिप्पलि, पिप्पल चेट्टु। **ता०**–तिप्पिली। **तु०**–इप्पली। **मला०**–तिप्पली। **ब्राह्मी०**–पौखीन। **गोम०**–हिप्पली। **मा०**–पीपल। **फा०**–पिलपिल दराज,

फिल्फिल् दराज, पीपल दराज़ । **अ०**–दारफिल्फिल् , डाल फिल्फिल् । **अं०**–Long pepper (लाँग पीपर); Dried catkins (ड्राइड कॅटकिन्स) । **लै०**–Piper longum Linn. (पाइपर लाँगम) । Chavica roxburghii (चविका रॉक्सबर्घाइ) । Fam. Piperaceae (पाइपरेसी) ।

पीपल—इस देश से गरम प्रान्तों में पूर्व नेपाल से आसाम, खासिया के पहाड़ों पर, बंगाल में, पश्चिम की ओर बम्बई तक तथा दक्षिण की ओर ट्रावनकोर तक पायी जाती है। सीलोन, मलाक्का तथा फिलीपाइन द्वीपों में भी यह पाई जाती है।

पीपल **लता** जाति की वनौषधि का फल है। इसकी बेल–अन्य लताओं की भाँति अधिक विस्तार में नहीं बढ़ती किन्तु थोड़ी ही दूरी में फैलती है। **जड़**–कुछ मोटी और खड़ी सी होती है। उससे शाखाएँ निकल कर भूमि पर फैलती हैं। **पत्ते**–२॥–३॥ इञ्च के घेरे में, गोलाकार, पान के पत्तों के आकार वाले कोमल होते हैं। ऊपर के पत्ते विनाल होते हैं। **फलगुच्छ**—१-१॥ इञ्च लम्बे और कृष्णाभ होते हैं जिनमें अत्यन्त छोटे-छोटे फल लगे रहते हैं।

एक दूसरी जाति की पीपल को पहाड़ी पीपल कहते हैं। इसका लेटिन नाम Piper sylvaticum Roxb. (पीपर सिलवेटिकम्) है। यह आसाम और बंगाल में अधिक उत्पन्न होती है। इसकी **लता** कई फीट तक बढ़ जाती है और सूखने पर आपस में लिपटी हुई मालूम होती है। **पत्ते**–पान के आकार वाले, उक्त पीपल के पत्तों से किञ्चित् बड़े होते हैं। **फलगुच्छ**–पौन से १॥ इञ्च लम्बे गोल होते हैं। इसको बङ्गाल के कविराज अधिक व्यवहार में लाते हैं।

पीपल छोटी और बड़ी—इन भेदों से दो प्रकार की होती है। इनमें छोटी अधिक गुणकारी समझी जाती है।

रासायनिक संगठन—इसमें १% उडन शील तैल रहता है जिसमें से करीब ५–६·४% पाइपरीन, पाइपरीडीन एवं एक कटु राल (चविसीन), स्टार्च और स्नेह आदि द्रव्य रहते हैं।

गुण और प्रयोग—पीपल रसायन, सुगन्धि, दीपक, पाचक, उष्ण, वातहर और कफघ्न है। इसका उपयोग आनाह, अपचन, अग्निमान्द्य, उदरशूल, कास, श्वास, जीर्णज्वर, प्रसूतिज्वर, आमवात, गृध्रसी, कटिशूल, वातरक्त, अङ्गघात आदि रोगों में किया जाता है।

(१) मधु के साथ इसका चूर्ण नये वा पुराने कास, श्वास, स्वरभङ्ग तथा हिचकी में उपयोगी है।

(२) प्रसूतिज्वर में गर्भाशय शुद्धि के लिए इसका मधु के साथ अच्छा उपयोग होता है।

(३) वर्धमान पिप्पली का उपयोग रसायन के लिए एवं अधोशाखाघात, पुरानी खांसी, दमा, यक्ष्मा, प्लीहावृद्धि, उदर, अर्श आदि रोगों में बहुत लाभदायी है। इसके लिए प्रथम दिन ३ पीपल का फांट मधु अथवा शर्करा के साथ दिया जाता है फिर नित्य ३ पीपल बढ़ाई जाती है। इस प्रकार दसवें दिन ३० पीपल का फांट दिया जाता है। फिर इसी प्रकार ३ पीपल नित्य कम की जाती है। कुछ लोग आधा दूध और आधा जल में उबालकर दूध शेष रहने पर उसी पीपल को खिलाकर ऊपर से वही दूध पिलाते हैं। इसके अतिरिक्त इसके चूर्ण को घृत और मधु के साथ उपयोग किया जा सकता है।

(४) पीपल चौसठ प्रहर घोट कर उपयोग करने से जीर्ण ज्वर में विशेष लाभदायी होती है।

(५) सोंठ एवं पीपल से सिद्ध तैल की मालिश गृध्रसी, कटिशूल तथा अधोशाखाघात में उपयोगी है।

(६) त्रिकटु और सहिजन के बीज को अगस्तिमूल के रस से घोटकर उसका नस्य देने से बेहोशी, मूर्च्छा आदि दूर होती है।

मात्रा—चूर्ण २–४ र० । **दर्पनाशक**—जरेशक, बबूल का गोंद और इसबगोल।

अथ मरीचस्य नामानि गुणाँश्चाह

मरिचं वेल्लजं कृष्णमूषणं धर्मपत्तनम् ॥ ५९ ॥
मरिचं कटुकं तीक्ष्णं दीपनं कफवातजित् । उष्णं पित्तकरं रूक्षं श्वासशूलकृमीन्हरेत् ॥६०॥
तदार्द्रं मधुरं पाके नात्युष्णं कटुकं गुरु । किञ्चित्तीक्ष्णगुणं श्लेष्मप्रसेकि स्यादपित्तलम् ॥६१॥

मरिच के नाम तथा गुण—मरिच, वेल्लज, कृष्ण, ऊषण और धर्मपत्तन ये मरिच के संस्कृत नाम हैं। **मरिच**—कटुरस युक्त, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, कफ तथा वायु को दूर करने वाला, उष्णवीर्य, पित्तकारक और रूक्ष है एवं श्वास, शूल तथा कृमिरोग को नष्ट करने वाला होता है। यदि **यही गीला (कच्चा)** हो तो—पाक में मधुर रस युक्त, थोड़ा उष्णवीर्य, कटुरस युक्त, पाक में गुरु, थोड़ा तीक्ष्ण गुण से युक्त, कफ को गिराने वाला और थोड़ा पित्तकारक होता है ॥ ५९–६१ ॥

७ मरिच

हिं०—मरिच, मिरच, गोल मरिच, काली मरिच, दक्षिणी मरिच, गोल मिर्च, चोखा मिरच। **बं०**–मरिच, गोल मरिच, गोल मिरच, मुरिच, मोरिच। **म०**–मिरे, काली मिरीं। **क०**–ओळे-मेणसु। **गु०**–मरि, मरितीखा, मरी, कालामरी। **ते०**–मरिचमु, शव्यमु, मरियलु। **ता०**–मोलह शेव्वियम्। **पं०**–काली मरिच, गोल मिरिच। **मा०**–काली मरिच। **मोटिया०**–स्पोट। **काश्मी०**–मर्ज। **सिन्धी०**–गूलमिरीएं। **मला०**–लइ, कुरु मुलक, कुरू मिलगु। **अफ०**–दारुगर्म। **फा०**–पिल्पिले अस्वद, फिल्फिल् अस्वद, स्याह गिर्द, हलपिला गिर्द, फिल्फिल् स्याह। **अ०**–फिल्फिले अवीद, फिल्फिल् गिर्द, फिल् फिलस्सोदाय, पिल्पिले गिर्द। **अं०**–Black pepper (ब्लॅक पेपर)। **लै०**–Piper nigrum, Linn. (पाइपर नाइग्रम् लिन.)। Fam. Piperaceae (पाइपरेसी)।

दक्षिण कोंकण, आसाम, मलाबार तथा मलाया और स्याम इसका उत्पत्ति स्थान है। दक्षिण भारत के उष्ण और आर्द्र भागों में त्रिवांकुर, मलाबार आदि खादर तथा गीली जमीन में यह अधिकता से उत्पन्न होती है। कच्छार, सिलहट, दार्जिलिंग, सहारनपुर और देहरादून के पास भी इसकी खेती की जाती है। वर्षा ऋतु में इसकी लता को पान के बेल के समान छोटे छोटे टुकड़े कर बड़े बड़े वृक्षों की जड़ में गाड़ देते हैं। ये लता रूप से बढ़ कर वृक्षों का सहारा पाने से उनके ऊपर चढ़ जाते हैं। **पत्ते** ५–७ इञ्च लम्बे तथा २–५ इञ्च चौड़े, गोलाकार, नुकीले तथा पान के पत्तों के आकार के होते हैं। **फल**—गुच्छों में लगते हैं। कच्ची अवस्था में फल हरे रङ्ग के होते हैं। उस अवस्था में चरपराहट कम होती है। जब पकने पर आते हैं तब उनका रङ्ग नारंग लाल हो जाता है। उसी समय तोड़ कर सुखा लेते हैं। सूखने पर काले रङ्ग के हो जाते हैं। पूरे पक जाने पर तोड़ने से चरपराहट कम हो जाती है।

पूर्वी मरिच की अपेक्षा दक्षिणी मरिच अधिक गुणदायक है। दक्षिणी मरिच ऊपर से भूरी तथा भीतर से हरियाली युक्त सफेद होती है। यह अधिक तीक्ष्ण होती है। पूर्वी मरिच ऊपर से अधिक काली और भीतर सफेद होती है। अधिक पके फलों को जब वे पीले हो जाते हैं तब तोड़कर पानी में फुला कर छिलके दूर करके सुखा लेते हैं। उसी को सफेद मरिच कहते हैं। मरिच के ऊपरी छिलके में कटु द्रव्य अधिक रहता है इसलिये सफेद मरिच कम कटु रहती है। **इस सफेद मरिच** को–**बं०** में 'सादा मरिच', **म०**–में 'पांढरेमिरे', **गु०**–में 'धोला मरी', **क०**–में 'विलेय मेणसु' और **ता०**–में 'मिलाओ' कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें उड़नशील, जल में न घुलनेवाला, पाइपरीन नामक एक

रवेदार क्षाराभ ५–९%, पाइपरीडीन ५%, चविसीन नामक कटुराल, एक अन्य हरे रंग की कटुराल ६%, उडनशील तैल १–२·५%, स्टार्च ३०%, ईथर में घुलनशील न उडने वाला पदार्थ ६%, प्रोटीड ७% तथा लिगनिन, गोंद आदि कुछ अन्य द्रव्य पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—मरिच का प्रयोग अनेक योगों में किया जाता है। यह सुगन्धि, उत्तेजक, पाचक, अग्निदीपक, रुचिकर, स्वेदकर, कफघ्न एवं कृमिहर है। इसका उत्तेजक प्रभाव आंत्र एवं मूत्र संस्थान की श्लेष्मल कला पर पड़ता है। इसके सेवन से मूत्र की मात्रा बढ़ती है और इसका उपयोग पुराने सुजाक में किया जाता है। इसके सेवन से आमाशयिक रस की वृद्धि होती है और पाचन की क्रिया सुधरती है। घृत के पाचन में यह विशेष उपयोगी है। इसका उपयोग आध्मान, अपचन, प्रवाहिका, आमाशय शैथिल्य आदि में अच्छा होता है।

(१) प्रवाहिका में इसके सूक्ष्म चूर्ण को हींग एवं अफीम के साथ दिया जाता है।
(२) स्याहजीरा एवं काली मिरच मधु के साथ नित्य सेवन से गुदा की श्लेष्मकला का संकोच होकर गुदभ्रंश एवं अर्श में बहुत लाभ होता है।
(३) इसके **पाइपरीन** नामक क्षार के ज्वरघ्न गुण के कारण इसका उपयोग मलेरिया में कीनीन के साथ अधिक प्रभावकारी है।
(४) विसूचिका के प्रारम्भ में मरिच, अफीम तथा हींग तीनों समान मात्रा में लेकर २ रत्ती की मात्रा में प्रत्येक २ या ४ घण्टे के बाद में देने से लाभ होता है।
(५) खांसी में मधु एवं घृत के साथ देने से लाभ होता है।
(६) पुराने जुकाम में इसको गुड़ एवं दही के साथ सेवन करना चाहिये।

अधिक मात्रा में मरिच के सेवन से उदरशूल, वमन, बस्ति एवं मूत्र मार्ग प्रदाह, उदर्द आदि विकार उत्पन्न होते हैं।

बाह्य प्रयोग—अनेक चर्म विकारों में एवं वायु के विकारों में किया जाता है।
(१) इससे सिद्ध तैल की मालिश आमवात, गठिया, अङ्गघात एवं कण्डू, पामा आदि में उपयोगी है।
(२) घृत के साथ इसका लेप अर्श के मस्से पर करने से वातार्शशूल एवं शिथिलता दूर होती है।
(३) फोड़े, फुन्सियों की आमावस्था में उनको बैठाने के लिए उन पर इसको पीस कर लगाया जाता है।
(४) विषैले कीड़ों के काटने पर विनेगार (सिरका) के साथ इसको पीस कर लगाना चाहिये।
(५) दही के साथ घिसकर इसके अञ्जन से अनेक नेत्र रोग जैसे रात्र्यंध, कण्डू आदि में लाभ होता है।
(६) सर की दद्रु के कारण यदि सर के बाल झड़ गये हों तो इसे प्याज और नमक के साथ लगाने से लाभ होता है। इसी प्रकार इसका लेप शिरःशूल में भी उपयोगी है।
(७) इसके क्वाथ से कुल्ला करने से दंतशूल दूर होता है एवं बढ़ी हुई उपजिह्वा में भी लाभ होता है।
(८) इसका दंतमञ्जनों में भी व्यवहार होता है।

मात्रा—चूर्ण २–४ रत्ती।

श्वेत मरिच—काली मरिच के समान ही गुण वाली लेकिन उससे कुछ हीन गुण होती है। इसका एक विशेष प्रयोग श्लीपद में शोथ के साथ बार २ ज्वर के आक्रमण को रोकने के लिए किया जाता है। बचनाग एक भाग और सफेदमरीच १५ भाग दूध में भिगोया जाता है। रोज

दूध बदल दिया जाता है। इस प्रकार ३ दिन करने के बाद आदी के रस में घोंटकर १ र० की गोली बनाई जाती है। इसकी १ गोली दिन में ३ बार दी जाती है।

अथ त्रिकटुकनामलक्षणगुणानाह

विश्वोपकुल्या मरिचं त्रयं त्रिकटु कथ्यते। कटुत्रिकं तु त्रिकटु त्र्यूषणं व्योष उच्यते ॥६२॥
त्र्यूषणं दीपनं हन्ति श्वासकासत्वगामयान्। गुल्ममेहकफस्थौल्यमेदःश्लीपदपीनसान् ॥६३॥

त्रिकटु के लक्षण, नाम तथा गुण—सोंठ, पीपर तथा मरिच इन तीनों के योग को 'त्रिकटु' कहते हैं। कटुत्रिक, त्रिकटु, त्र्यूषण और व्योष ये संस्कृत नाम 'त्रिकटु' के हैं। **त्रिकटु**-अग्निदीपक होता है तथा श्वास, कास, चर्मसम्बन्धी रोग, गुल्म, मेह, कफ, स्थूलता, मेद, श्लीपद और पीनस इन सब रोगों को दूर करता है॥ ६२–६३॥

अथ पिप्पलीमूलस्य नामानि गुणाँश्चाह

ग्रन्थिकं पिप्पलीमूलमूषणं चटकाशिरः। दीपनं पिप्पलीमूलं कटूष्णं पाचनं लघु ॥ ६४ ॥
रूक्षं पित्तकरं भेदि कफवातोदरापहम्। आनाहप्लीहगुल्मघ्नं कृमिश्वासक्षयापहम् ॥ ६५ ॥

पिपरामूल के नाम तथा गुण—ग्रन्थिक, पिप्पलीमूल, ऊषण और चटकाशिर ये संस्कृत नाम 'पिपरामूल' के हैं। **पिपरामूल**-अग्निदीपक, कटुरस वाला, उष्णवीर्य, पाचक, लघु, रूक्ष, पित्तकारक, मल को भेदन करने वाला, कफ, वायु एवम् उदर सम्बन्धी रोगों को दूर करने वाला होता है। तथा आनाह, प्लीहा, गुल्म, कृमि, श्वास और क्षय इन सब रोगों को नष्ट करने वाला होता है ॥ ६४–६५ ॥

८ पिपरामूल

हि०–पीपलामूल, पीपरामूल। **ब०**–पिपुल मूल। **म०**–पिंपली मूल, पिंपलमूल, पिंपला मूल। **गु०**–पीपरी मूलना गंठोडा, पीपली मूल, पीपरी मूल। **क०**–पिप्पलीयबरु, हिप्पलीयबेरु, हिप्पली मूल। **ते०**–मोडी, पिप्पली वेरु, पिप्ली दुम्प। **पं०**–पिप्पला मूल। **मा०**–पीपला मूल। **ता०**–पिप्पली मूल। **फा०**–फिल्फिलद्रे, फिलफिल मूयह। **अ०**–फिल्फिलादराज, फिलफिले मोया। **अं०**–Piper root (पाइपर् रूट)। **ले०**–*Root of the Piper longum Linn.* (रूट ऑफ दी पाइपर् लॉङ्गम्)।

पीपल लता की गांठदार जड़ को पीपलामूल कहते हैं। इसकी जगह कितने पंसारी पीपल लता की मोटी शाखाओं को छोटे-छोटे टुकड़े कर बेचते हैं। इसलिये अच्छी तरह देख भाल कर खरीदना चाहिये।

गुण और प्रयोग—पीपला मूल पीपल के ही समान लेकिन कम गुण वाला है। यह पीपल से अधिक उत्तेजक है। डाक्टर देसाई के मतानुसार प्रसव होने में अधिक समय लग रहा हो तो पीपरामूल, ईश्वर मूल और हींग, पान के साथ खिलाना चाहिये जिससे पीड़ा बढ़कर प्रसव हो जाता है। प्रसव के पश्चात् तुरत इसका फांट देने से आवल (अपरा) गिरने में सहायता होती है।

अथ चतुरूषणस्य लक्षणगुणानाह

त्र्यूषणं सकणामूलं कथितं चतुरूषणम्। व्योषस्येव गुणाः प्रोक्ता अधिकाश्चतुरूषणे ॥ ६६ ॥

चतुरूषण के लक्षण, नाम तथा गुण—त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच) में यदि पिपरामूल मिला दिया जाय तो इसे चतुरूषण कहते हैं। पहले जितने गुण त्रिकटु के कह आये हैं, वही सब गुण चतुरूषण में अधिक रूप से रहते हैं॥ ६६॥

प्रयोग करने से यह सिद्ध हुआ है कि चतुरूषण ५ से ३० र० की मात्रा में दिन में दो बार न केवल खांसी, प्रतिश्याय, स्वरभंग में उपयोगी है बल्कि उदरशूल, आध्मान आदि में भी बहुत उपयोगी है।

अथ चव्यनामगुणानाह

भवेच्चव्यं तु चविका कथिता सा तथोषणा। कणामूलगुणं चव्यं विशेषाद् गुदजापहम्॥६७॥

चव्य के नाम तथा गुण—चव्य, चविका और ऊषण ये तीन संस्कृत नाम 'चव्य' के हैं। जो २ गुण 'पिपरामूल' के कह आये हैं वे ही सब 'चव्य' के भी होते हैं। केवल विशेषता यह है कि-यह अर्श (बवासीर) का नाशक होता है॥ ६७॥

९ चव्य

हि०—चव्य, चाब, चाभ, चब। **बं०**—चेअर, चई, चोई। **म०**—चवक, कंकल, चाबचीनी। **गु०**—चवक, **ते०**—सेवासु, चैकाणी, चव्यसु। **ता०**—चव्यं। **लै०**-*Piper chaba Hunter* (पाइपर् चबा हण्टर); *Piper officinarum Cas D. C.* (पाइपर् ऑफिसिनेरम्)। Fam. Piperaceae (पाइपरेसी)।

चव्य के विषय में विद्वानों में कुछ मतभेद हैं। भावप्रकाशकार आगे गजपिप्पली के वर्णन में लिखते हैं कि विद्वानों ने चव्य के फल को गजपिप्पली कहा है। अर्वाचीन विद्वानों ने गजपिप्पली एवं चव्य ये दो अलग वनस्पतियां मानी हैं। और यही कारण है कि ये दोनों द्रव्य संदिग्ध की श्रेणी में आ गये हैं। अधिकांश विद्वानों ने जिन दो द्रव्यों को माना है उन्हीं का यहाँ वर्णन किया जा रहा है। पाइपर चबा को चव्य कहा गया है।

भारत के अनेक प्रान्तों में यह लगाई हुई मिलती है। यह वनस्पति जावा, सुमात्रा, मलाया आदि देशों में विशेषरूप से उत्पन्न होती है। इसके फल तथा कांड का उपयोग किया जाता है। संभवतः यह फल सिंगापूर के रास्ते कलकत्ते में आकर बड़ी पीपर के नाम से बिकता है।

यह लताजाति की वनस्पति बहुत दृढ होती है। इस पर किसी प्रकार के रोम इत्यादि नहीं होते। इसकी **शाखायें**-वृक्षों की डालियों से खूब लिपटती हुई बढ़ती हैं और सूखने पर पीलापन युक्त सफेद रङ्ग की हो जाती हैं। **पत्ते**-५-७ इञ्च लम्बे तथा २-२॥ से ३॥ इञ्च तक चौड़े, आयताकार, अण्डाकार, और किंचित् नुकीले होते हैं, सूखने पर फीके या पीलापन युक्त सफेद रंग के हो जाते हैं। उनके ऊपर का भाग चमकदार होता है। इन पर रक्तवर्ण के **फूल** और **फलों** के गुच्छे लगते हैं। ये गुच्छे १-३ इञ्च लम्बे और ¼ इञ्च मोटे, अग्र की तरफ कुछ पतले एवं डण्ठल की तरफ मोटे गोल और भूरे रंग के होते हैं। **फल**-बहुत छोटे छोटे इञ्च के दसवें हिस्से के घेरे में अण्डाकृति आते हैं। ये फल सुगंधित एवं स्वाद में कटु होते हैं।

गुण और प्रयोग—चाभ का उपयोग पीपर के समान ही किया जाता है। यह उत्तेजक एवं पाचक है तथा शूल, आध्मान, वृक्करोग तथा विशेष कर खांसी, जुकाम आदि गले के रोगों में उपयोग में आता है। यूनानी मतानुसार इसके फल का नस्य अपस्मार में उपयोगी है।

मात्रा—चाभ चूर्ण-१ से २ माशे, चाभ फल चूर्ण—२-४ र०।

अथ गजपिप्पल्या नामानि गुणाँश्चाह

चविकायाः फलं प्राज्ञैः कथिता गजपिप्पली। कपिवल्ली कोलवल्ली श्रेयसी वशिरश्च सा॥६८॥
गजकृष्णा कटुर्वातश्लेष्महृद्वह्निवर्धिनी। उष्णा निहन्त्यतीसारं श्वासकण्ठामयक्रिमीन्॥६९॥

'गजपीपल' के नाम तथा गुण—'चव्य' के फल का ही नाम 'गजपीपल' है ऐसा वैद्य लोग कहते हैं। कपिवल्ली, कोलवल्ली, श्रेयसी और वशिर ये सब संस्कृत नाम 'गजपीपल' के हैं। **गज पीपल**-कटुरसयुक्त, वात कफ नाशक, अग्निवर्धक और उष्ण वीर्य होती हैं तथा अतिसार, श्वास, कण्ठसम्बन्धी रोग और कृमि का भी नाश करती है॥ ६८-६९॥

गजपिप्पली के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ चव्य के फल को गजपिप्पली मानते हैं तो कुछ सिंडेप्सस् आफिसिनेलिस् के फल को मानते हैं। अधिकांश विद्वान सिं. आफिसिनेलिस् को गजपिप्पली मानते हैं जो ठीक भी मालूम होता है। कुछ बाजारों में ताडवृक्ष के बाल (पुं-पुष्प व्यूह) को काटकर गजपिप्पली के नाम से बेचते हैं।

१० गजपीपल

हि०-गजपीपर, गजपीपल। **बं०**-गजपीपल। **म०**-गजपिंपली, थोरपिंपली। **क०**-अड्केबीलुबल्लि। **गु०**-मोटो पीपर। **ते०**-एनुगा पिप्पल। **ता०**-अनै तिप्पली। **पं०**-गजपीपल। **सन्ताल०**-दरे झपक। **मल०**-अतितिप्पली, अनैतिप्पली। **लै०**-*Scindapsus officinalis, Schott* (सिन्डेप्सस् ऑफिसिनेलिस् स्काट); *Syn: Pothos officinalis Schott Melet* (पोथोस् ऑफिसिनेलिस्)। Fam. Araceae (ॲरासी)।

इसकी लता आर्द्र सपाट मैदानों में हिमालय के प्रान्तों में सिकम से पूर्व की ओर बंगाल, चट्टगांव, अक्षा तथा सिवालिक के जंगलों में शाल वृक्षों पर चढ़ी हुई पाई जाती हैं।

इसका **डंठल**-गूदेदार एक इञ्च या इससे भी अधिक मोटा एवं गोल होता है। **पत्ते**-बड़े बड़े, जैसे-५ से १० इञ्च तक लम्बे और २॥ से ६ इञ्च तक चौड़े, अंडाकार, गाढ़े हरे होते हैं और शाखाओं पर विपरीत रहते हैं। **पत्र वृन्त** ३ से ६ इञ्च तक लम्बा और अन्त का हिस्सा हाथ की कोहनी के समान होता है एवं तलवार की म्यान के समान दिखाई पड़ता है। इसके भीतर का हिस्सा पीले रङ्ग का होता है। **फल**-रसयुक्त, गूदेदार, लगभग ६ इञ्च लम्बा, १।-१॥ इञ्च व्यास में और नीचे की ओर लटका हुआ रहता है। इसका आगे का हिस्सा नोकदार होता है। इसके फल के आडे कटे हुवे सूखे टुकड़े बाजार में बिकते हैं। ये १ इञ्च व्यास के, ½ इञ्च मोटे और भूरे रङ्ग के होते हैं। इनमें गन्ध नहीं रहती तथा उन्हें जल में भिगोकर रखने से ये फूल कर नरम हो जाते हैं। इनके बीच में बीज होते हैं और उनके चारों ओर चूने के सूई के समान दाने होते हैं। **बीज**-वृक्काकार, चिकने, गांजे के बीज से बड़े और भूरे रङ्ग के होते हैं। इसके पत्ते का शाक बनाकर खाते हैं।

गुण और प्रयोग-सूखा हुआ फल-तीक्ष्ण, पसीना लाने वाला, सुगन्धिकारक, वातहर, कृमिनाशक, उत्तेजक, पाचक, एवं बल्य है। आमातिसार, श्वास और खांसी में जब कफ की अधिकता रहती है तब इसका उपयोग किया जाता है। इसके फांट को देने से कफ ढीला होकर निकलता है। संताल लोग इसको आमवात, संधिवात आदि रोगों में स्थानीय लेप के रूप में लगाते हैं। इसका उपयोग सुगंधित द्रव्य के रूप में अन्य औषधियों के साथ किया जाता है। इसमें १४½% राख, गोंद तथा एक क्षाराभ रहता है।

मात्रा—फांट (१ में १०) २-६ ड्राम।

अथ चित्रकस्य नामानि गुणाँश्चाह

चित्रकोऽनलनामा च पाठी व्यालस्तथोषणः। चित्रकः कटुकः पाके वह्निकृत्पाचनो लघुः॥
रूक्षोष्णो ग्रहणीकुष्ठशोथार्शः कृमिकासनुत्। वातश्लेष्महरो ग्राही वातघ्नः[1] श्लेष्मपित्तहृत्॥

१. 'वातार्शं' इति पाठा०।

'चीता' के नाम तथा गुण—चित्रक, अनलनामा (अग्नि के जितने नाम हैं वे सब 'चीता' के भी होते हैं), पाठी, व्याल तथा ऊषण ये सब संस्कृत नाम चीता के हैं। **चीता**-पाक में कटुरस युक्त, अग्निवर्धक, पाचक, लघु (शीघ्र पचने वाला), रूक्ष और उष्ण वीर्य वाला है और यह ग्रहणी, कुष्ठ, शोथ, अर्श, कृमि तथा कास का नाशक होता है। तथा वात और श्लेष्मा को दूर करने वाला, ग्राही, वात और श्लेष्म एवं पित्त का नाशक होता है ॥ ७०-७१ ॥

११ चित्रक

हि०-चीत, चीता, चित्रा, चित्रक, चित्ता, चितरक, चितउर। **बं०**-चिता, चितु। **म०**-चित्रक। **क०**-पेल्लीचित्रमूल, चित्रकमूल। **पं०**-चित्रा। **ते०**-अग्निमत, चित्रमूलं, तेल्लाचित्रा। **ता०**-पँचोत्तर, कोदिवेल। **उ०**-धुवचिता। **गु०**-चित्रो, चित्रा, पितरो। **मला०**-वेल्लाकोटुवेरि, कोडुवेलि। **फा०**-बेख बरंदा, बेख बरंदह, शीतरह, शीतरुह, शीतरक, बेखबुरिंदा। **अ०**-शितरज, शितरझ, शीतरज हिन्दी, शैतरज। **अं०**-Ceylon Leadwort, White Leadwort (सीलोन लेडवोर्ट, व्हाइट लेडवोर्ट)। **ले०**-*Plumbago zeylanica Linn.* (प्लम्बॅगो झेलॅनिका)। Fam. Plumbaginaceae (प्लम्बॅजिनासी)।

सफेद, लाल और नीले फूलों के भेद से चित्रक तीन प्रकार का होता है। कोई कोई पीले फूल का भी चित्रक बतलाते हैं किन्तु इसका उल्लेख किसी पुस्तक में देखा नहीं जाता। सफेद फूल का चित्रक बहुत मिलता है और लाल फूल का कहीं कहीं नमूने की तरह देखने में आता है और मिलता भी बहुत कम है। नीले फूल का चित्रक भी कम मिलता है जिससे नमूने की तरह भी बहुत कम ही वैद्य लोग देख पाये होंगे।

सफेद चित्रक इस देश के प्रायः सब प्रान्तों की जङ्गली झाड़ियों में देखा जाता है विशेष कर संयुक्त प्रान्त, बिहार, बङ्गाल, दक्षिण भारत, सीलोन और कुमाऊँ के पहाड़ों बहुत मिलता है। यह आप ही आप जङ्गली उत्पन्न होता है और कहीं कहीं वाटिकाओं में भी है।

इसका **क्षुप** २ से ५ फूट तक ऊँचा होता है और बारहों मास मिलता है। गर्मी के दिनों में पत्ते प्रायः कम दिखाई पड़ते हैं किन्तु बरसात में हरे भरे हो जाते हैं। कांड पर लम्बाई में धारियां होती हैं। **पत्ते**-विपरीत, १॥ से ३॥ इञ्च तक लम्बे, १ से १॥ इञ्च चौड़े, अण्डाकार, नोकदार, चिकने, कोमल और मोगरा के समान होते हैं। **फूल**-जाड़े के दिनों में चमेली के फूल के समान अत्यन्त सफेद फूल आते हैं। **फल**-यव के आकार वाले लम्बे, कच्ची अवस्था में हरे, पकने पर धूसर रङ्ग के, सूक्ष्म तथा चिपचिपे रोवों से भरे रहते हैं जो तोड़ने से आपस में सट जाते हैं और स्पर्श से लसीले जान पड़ते हैं। इसकी **छाल**-कालापन लिये भूरे रंग की, खड़े बल में कटी हुई और उस पर थोड़ी सी छोटी गांठें होती हैं। सूखी हुई जड़ तोड़ने से तुरत टूट जाती है। इसका स्वाद तीता, कडुआ और जिह्वा को सूई चुभोने के समान मालूम होता है। इसकी जड़ औषधि के काम आती है। यह हमेशा ताजी प्रयोग करनी चाहिये क्योंकि बहुत पुरानी होने पर यह गुणहीन हो जाती है।

रासायनिक संगठन—इसके मूल में प्लम्बॅजिन (Plumbagin) नामक एक रवेदार पदार्थ होता है। यह पीले रंग का, सूइयों के सदृश, दाहक एवं कटु पदार्थ है। यह मद्यसार एवं ईथर में अच्छी तरह घुल जाता है लेकिन उबलते हुवे जल में बहुत थोड़ा घुलता है और गरम करने पर कुछ अंश में उड़नशील है। इसका द्रवणांक ७२° श० है। भारतवर्ष में प्राप्त होने वाली

इसकी सभी जातियों में इसकी अधिक से अधिक मात्रा ०·९१% रहती है। सूखी जमीन में उत्पन्न होने वाले पुराने क्षुप में यह अधिक मात्रा में रहता है।

गुण और प्रयोग—चित्रक में रहने वाला **प्लम्बॅजिन** अल्प मात्रा में केन्द्रीय वातनाडी संस्थान को उत्तेजित करता है लेकिन अधिक मात्रा में वह दाहजनक एवं सम्मोहक विष है जिससे श्वसन-क्रिया बन्द होकर मृत्यु हो जाती है।

चित्रकमूल—अग्निदीपक, गर्भाशय संकोचक, स्वेदजनक, कुष्ठहर, अर्शहर, रसायन, वात एवं कफहर है। इसका उपयोग मन्दाग्नि, अपचन, आध्मान, ज्वर, आमवात, आमातिसार, संग्रहणी, कुष्ठ, शोथ, पाण्डु एवं अर्श आदि रोगों में किया जाता है।

अल्प मात्रा में यह पाचक संस्थान की श्लैष्मिक कला को उत्तेजित करके पाचक स्रावों की वृद्धि करता है जिससे भूख अच्छी लगती है। खाया हुआ जल्दी पचता है। अर्श में इसके प्रयोग से गुदवली की शिथिलता दूर होकर लाभ होता है। गर्भाशय के ऊपर इसकी बहुत तीव्र संकोचक क्रिया होती है जिससे गर्भिणी में इसको किसी भी समय प्रयोग करने से एक दो प्रहर में गर्भपात हो जाता है लेकिन गर्भ हमेशा मृत ही होता है। गर्भपात के लिये आंतरिक प्रयोग के साथ २ इसको गर्भाशयमुख में प्रविष्ट करते हैं या इसका लेप करते हैं। इसके प्रयोग में यदि विशेष सावधानी न रक्खी जाय तो इससे रक्तस्राव, धातुनाश एवं कोथ आदि गंभीर उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं। अतः इसका प्रयोग गर्भिणी में कभी भी न करना चाहिये।

विषम ज्वर में यकृत् प्लीहा वृद्धि होकर पाण्डु हो गया हो तो इसका सेवन करना चाहिये। सूतिका ज्वर में निर्गुण्डी के साथ इसके उपयोग से ज्वर कम होता है तथा दूषित आर्तव निकलकर मक्कलशूल भी दूर होता है।

(१) अग्निमांद्य, अरोचक, अजीर्ण, अतीसार आदि में चित्रक, वायविडङ्ग एवं मुस्ता का प्रयोग करना चाहिये।
(२) अर्श में इसे दही के साथ सेवन करना चाहिये।
(३) यकृत् एवं प्लीहा वृद्धि में इसका क्षार मट्ठे के साथ उपयोगी है।
(४) इसका उपयोग कुष्ठ, फिरङ्ग की द्वितीयावस्था आदि में लाभकारी है।

चित्रक मूल बाह्य प्रयोग में तीव्र कृमिघ्न, दाहजनक, एवं स्फोटोत्पादक है। आमवात, संधिशूल अङ्गघात आदि में इससे सिद्ध तैल की मालिश करने से लाभ होता है। प्लेग की गाठों पर गाठों को फोड़ने के लिये इसको काम में लाते हैं। श्वित्र एवं खालित्य में इसका लेप उपयोगी है।

आमवातादि में स्फोटोत्पादन के लिये इसका लेप १५,२० मिनट से अधिक न रखना चाहिये। इससे उत्पन्न स्फोटों में पीडा बहुत होती है इसलिये जहां तक हो उसका प्रयोग न किया जाय।

हानिकारक—फुफ्फुस, यकृत् और गर्भ।

दर्पनाशक—फुफ्फुस के लिये मस्तगी एवं बबूल का गोंद तथा यकृत् के लिये गुलाब के फूल एव चन्दन।

मात्रा—½ से २ माशा।

१२ लाल चीता

हि०—लाल चीत, लाल चीता, लालचित्रक, लाल चितउर इत्यादि। **बं०**-लालचिता, रक्तो-चितो। **म०**-लालचित्रक। **क०**-केम्पु, चित्रमूल। **ते०**-येर्राचित्रमूलम्। **ता०**-शिवप्पु चित्रमूलम्,

चित्तुरमोल, कोडिमूली । उ०-रक्तचिता, रकतचिता । मला०-चेक्कीकोडुवेरी । अं०-Rose coloured Leadwort (रोज कलर्ड लेडवोर्ट) । ले०-*Plumbago rosea Linn.* (प्लम्बॅगो रोझिया) ।

यह सिकम और खसिया की तराइयों में पाया जाता है। इसको वाटिकाओं में भी लगाते हैं परन्तु थोड़ी असावधानी से नष्ट हो जाता है।

इसका क्षुप २-४ फूट ऊंचा, सदा हरा भरा रहता है। गर्मी के दिनों में कुछ पुराने पत्ते सूखकर गिर जाते हैं। पत्ते-उक्त चित्रक के समान होते हैं। फूल-लाल और फल सफेद चीते के समान लसीले होते हैं।

लाल चित्रक गुणों में सफेद चित्रक की अपेक्षा अधिक प्रभाव शाली और तीव्र गुण सम्पन्न है, विशेष कर रुचिकारी, रसायन, शरीर को नवीन और स्थूल करने वाला, पारे को बांधने-वाला, लोहे को वेधने वाला तथा कुष्ठ को नष्ट करने वाला है। इसकी थोड़ी मात्रा उत्तेजक तथा अधिक मात्रा तीव्र मदकारी विष के समान हानिकारक होती है ॥ १२ ॥

१३ नीला चित्रक

ले०-*Plumbago capensis Thumb* (प्लम्बॅगो कॅपेनसिस थम्ब)

काले चित्रक का क्षुप-उक्त चित्रक के समान किन्तु पत्र चाक्रिक क्रम में आते है। पुष्प सफेदी युक्त नीले रङ्ग के होते हैं। यद्यपि यह दक्षिण अफ्रिका का आदिवासी है तथापि बागों में लगाया हुवा मिलता है।

लोग यह भी कहते हैं कि नीले चित्रक के सेवन करने से बाल काले हो जाते हैं और यदि गौ इसके क्षुप को केवल सूंघ ले अथवा इसकी जड़ दूध में डाली जावे तो दूध का रङ्ग काला हो जाता है। परन्तु इसमें कहां तक सत्यता है परीक्षा करने से ही मालूम हो सकती है।

अथ पञ्चकोलस्य लक्षणगुणानाह

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः। पञ्चभिः कोलमात्रं यत्पञ्चकोलं तदुच्यते ॥७२॥
पञ्चकोलं रसे पाके कटुकंरुचिकृन्मतम्। तीक्ष्णोष्णं पाचनं श्रेष्ठं दीपनं कफवातनुत् ॥
गुल्मप्लीहोदरानाहशूलघ्नं पित्तकोपनम् ॥ ७३ ॥

'पञ्चकोल' के लक्षण तथा गुण—पीपल, पिपरामूल, चव्य, चीता तथा सोंठ ये सब पांच द्रव्य यदि कोलमात्र अर्थात् आधा २ तोला की मात्रा में एकत्र किये जांय तो उसी को 'पञ्चकोल' कहते हैं। पञ्चकोल-स्वाद तथा पाक में कटुरस युक्त, रुचिकारक, तीक्ष्ण तथा उष्णवीर्य होता है। तथा पाचक अत्यन्त अग्निदीपक, कफ-वात नाशक, गुल्म, प्लीहा, उदरसम्बन्धी रोग, आनाह और शूल का नाश करने वाला तथा पित्त को कुपित करने वाला होता है ॥ ७२-७३ ॥

मात्रा—५-१५ र० दिन में दो बार।

अथ षड्रूषणस्य लक्षणगुणानाह

पञ्चकोलं समरिचं षड्रूषणमुदाहृतम्। पञ्चकोलगुणं तत्तु रूक्षमुष्णं विषापहम् ॥ ७४ ॥

'षड्रूषण' के लक्षण तथा गुण—ऊपर कहे हुवे 'पञ्चकोल' के पीपल आदि पांचों द्रव्यों के साथ यदि छठां द्रव्य 'मरिच' भी सम भाग में मिला दिया जाय तो उसे 'षड्रूषण' कहते हैं। पञ्चकोल के

जो गुण कह आये हैं वे ही सब 'षड्रूषण' के समझने चाहिये, अन्तर केवल इतना ही है कि यह रूक्ष, उष्ण तथा विषनाशक भी होता है ॥ ७४ ॥

अथ यवान्या नामानि गुणाँश्चाह

यवानिकोग्रगन्धा च ब्रह्मदर्भाऽजमोदिका ॥ ७५ ॥
सैवोक्ता दीप्यका दीप्या तथा स्याद्यवसाह्वया।
यवानी पाचनी रुच्या तीक्ष्णोष्णा कटुका लघुः ७६ ॥
दीपनी च तथा तिक्ता पित्तला शुक्रशूलहृत्। वातश्लेष्मोदरानाहगुल्मप्लीहकृमिप्रणुत् ॥७७॥

'अजवायन' के नाम तथा गुण—यवानिका, उग्रगन्धा, ब्रह्मदर्भा, अजमोदिका, दीप्यका, दीप्या और यवसाह्वया ये सब नाम 'अजवाइन' के हैं। अजवाइन—पाचक, रुचिकारक, तीक्ष्ण तथा उष्णवीर्य, कटुरसयुक्त, परिपाक में लघु, अग्निदीपक, तिक्तरसयुक्त, पित्तवर्धक एवम् शुक्र तथा शूल की नाशक है। और यह वात, श्लेष्मा, उदरसम्बन्धी रोग, आनाह, गुल्म, प्लीहा तथा कृमि की भी नाशक है ॥ ७५-७७ ॥

१४ अजवायन (यवानी)

हि०-अजवायन, अजवाइन, अजमायन, जवाइन, जबायन, अजवां, अजोवां । **बं०**-यमानी, यउयान, योयान् , जोवान् । **मं०**-ओंवा, उंबा । **गु०**-अजमा, यवान, जवाइन, अजमो । **क०**-वोम, ओमु । **ते०**-वामु, ओममी, ओममु, ओमा । **ता०**-अमन, ओमम् , ओमन । **मा०**-अजवाण । **कच्छ०**-वोहरा । काश्मी०-जविन्द । **फा०**-नानुखा, झिनियानस नानूख्वाह, जीनान् । **अ०**-कमूमे-मुलकी, अमूसा, तोलिबउल खुब्जा । **अं०**-The Bishop's weed (दी बिशॉप्स् वीड); Ajova seeds (अजोवां सीड्स), Lovage (लोव्हाज) । **ले०**-*Carum copticum Benth & Hook* (करम् कोप्टिकम्); *Syn: Trachyspermum ammi Linn.* (ट्रॅकीस्पर्मम् अम्मी लिन); *Syn: Ptychotis ajowan DC* (प्टिकोटिस् अजोवां) । Fam. Umbelliferae (अंबेलिफेरी) ।

भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों में हरसाल खेतों में यह बोई जाती है विशेषकर इन्दौर तथा हैदराबाद राज्य में यह अधिकता से होती है। यह अफगानिस्तान, बलुचिस्तान, पर्शिया, मिश्र और यूरोप आदि देशों में भी उत्पन्न होती है।

इसका क्षुप १ से ३-फुट तक ऊँचा, पत्ते—धनिये के पत्ते के समान कटीले, अनेक भागों में विभक्त, डालियों पर दूर-दूर आते हैं। फूल—छत्ते में, सफेद रंग के बारीक आते हैं। फल—नन्हें-नन्हें रहते हैं। छत्ते पकने पर फल निकाल लिए जाते जाते हैं। इन्हीं फलों को अजवायन कहते हैं। ये फल बहुत छोटे, दबे हुए, गोल अंडाकार, २ मि० मि० लम्बे, भूरे रंग के होते हैं। इनकी ऊपरी सतह पर छोटी गांठें एवं प्रत्येक अर्ध खण्ड पर पांच धारियां होती हैं। इसमें अज-वायन की विशिष्ट गंध होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उड़नशील सुगन्धित तैल जिसे अजवाइन का तेल कहते हैं, २ से ३% पाया जाता है जिसमें से ४०-५०% थाइमॉल रहता है। इसमें पाये जाने वाला रवेदार पदार्थ स्टिअरोप्टिन, जिसे अजवाइन का फूल या अजवायन का सत् कहते हैं डाक्टरी के थाइमॉल के समान होता है। इसके अतिरिक्त इसमें साइमोन, टरपेन आदि पदार्थ रहते हैं।

गुण और प्रयोग—अजवायन अग्निदीपक, पाचक, उष्ण, उद्वेष्टन निरोधी, उत्तेजक, बल्य, कृमिघ्न, संक्रमण निरोधी, दुर्गन्धिनाशक एवं सड़न को दूर करने वाली है। इसका उपयोग अतिसार, कुचपन, अजीर्ण, उदरशूल, आध्मान, विसूचिका आदि रोगों में किया जाता है।

इसमें सरसों और मिर्चा का तीतापन, चिरायते का कडुआपन, एवं हींग का उद्वेष्टन निरोधी गुण तीनों एक साथ हैं। इसका उपयोग अनेक औषधियों विशेषतया एरंड तैल की दुर्गन्ध को दूर करने के लिए किया जाता है। पुरानी खाँसी में जब कफ बहुत कम रहता है तब इसके प्रयोग से कफ ढीला होकर निकल जाता है। श्वास में गरम पानी के साथ इसका चूर्ण दिया जाता है या इसको चिलम में रखकर पीते हैं। अजवायन का चूर्ण और सेंधानमक अजीर्ण से उत्पन्न विकारों की घरेलू दवा है।

(१) उदरशूल, आध्मान आदि विकारों में अजवायन, सेंधानमक, सोंचरनमक, यवक्षार, हींग और आंवला इनके चूर्ण को ½ से १ माशा की मात्रा में मधु के साथ दिया जाता है।

(२) शराबियों को मद्य की आदत छुड़ाने के लिये शराब पीने की इच्छा होने पर इसे चबाने को दिया जाता है।

(३) बच्चों के रोगों में तथा हैजे में इसका अर्क बहुत उपयोगी है।

(४) **अजवायन का सत्**—बहुत अच्छा कृमिघ्न, सड़न को दूर करने वाला, प्रतिदूषक पदार्थ है। इसका उपयोग घोल के रूप में व्रण प्रक्षालन के लिये किया जाता है।

अजवायन का सत्, पेपरमिंट का सत् और कपूर तीनों मिलाने से एक तरल पदार्थ बनता है जिसका विसूचिका के प्रारम्भ में ३, ४ बूँद बतासे के साथ व्यवहार किया जाता है। इससे कै, दस्त कम होकर लाभ होता है। अमृतधारा जैसे प्रचलित पेटेण्ट योगों में ये ही औषधियाँ मूलतः रहती हैं। यह आंत्रिक कृमियों पर विशेषकर अंकुश कृमि में बहुत उपयोगी है। संधिशूल आदि में इसको लगाने से लाभ होता है। अजवायन का सत दंतशूल में उपयोगी है।

(५) इसकी पुल्टिस बनाकर उदरशूल, आमवात, सन्धिशूल आदि में सेंका जाता है। विसूचिका में हाथ, पैरों को तथा श्वास और खांसी में छाती को इससे सेंकने से लाभ होता है।

(६) इसके पत्तों का रस कृमियों को मारने के लिये काम में आता है एवं पत्तों को पीसकर कीड़ों के काटे हुए स्थानों पर लगाया जाता है। पत्तों के अन्य गुण शाकवर्ग में देखें।

मात्रा—चूर्ण-३ से ६ माशा, अर्क-१ से २ औंस, सत-½ से १ र०।

अथ अजमोदाया नामानि गुणांश्चाह

अजमोदा खराश्वा च मायूरो[1] दीप्यकस्तथा। तथा ब्रह्मकुशा प्रोक्ता कारवीलो[2]चमस्तका।
अजमोदा कटुस्तीक्ष्णा दीपनी कफवातनुत्। उष्णा विदाहिनी हृद्या वृष्या बलकरी लघुः।
नेत्रामय[3]कृमिच्छर्दिहिक्कावस्तिरुजो हरेत् ॥ ७९ ॥

'अजमोदा' (बड़ीअजवाइन) के नाम तथा गुण—अजमोदा, खराश्वा, मायूरो, दीप्यक, ब्रह्मकुशा, कारवी और लोचमस्तका ये सब नाम 'अजमोदा' के हैं। **अजमोदा**—कटुरसयुक्त, तीक्ष्णवीर्य, अग्निदीपक, कफवातनाशक, उष्णवीर्य, विदाही, हृद्य (हृदय के लिये हितकर), वृष्य,

१. 'मयूर' इति पाठा०। २. 'च समस्तके'ति पाठा०। ३. 'कफे' पाठा०।

बलकारक और परिपाक में लघु होती है। और यह नेत्ररोग, कृमि, वमन, हिक्का (हिचकी) एवं बस्तिसम्बन्धी रोगों को नाश करने वाली होती है ॥ ७८–७९ ॥

१५ अजमोदा

हि०—अजमोद, अजमोदा, अजमूदा, अजमोत। **ब०**—वनयमानी, रान्धुनी, अजमूद, चनु। **गु०**—बोडी अजमोद, अजमोद, बोडी अजमो। **ते०**—आजामोदा, वोमा, अशमदागां, वोमां, अजोदा-वोमरु। **मध्य प्र०**—रान्धुनी। **पं०**—भूतजटा। **ता०**—अशम, टागम, तागम, अशमता ओमान्। **म०**—अजमोदा वोवा, कोरंजा। **क०**—अजमोदा वोमा। **फा०**—करप्स। **अ०**—वजूरुल् करप्स। **अं०**—Celery fruit (सेलेरी फ्रूट); Apii fructus (अप्पाई फ्रक्टस्)। **ले०**—*Apium graveolens, Linn.* (एपिअम् ग्रॅविओलेन्स् लिन)। Fam. Umbelliferae (अंबेलिफेरी)।

युरोप, अमेरिका तथा भारतवर्ष में इसकी खेती की जाती है। पञ्जाब तथा उत्तर प्रदेश में इसकी विशेष खेती होती है। यह उत्तर पश्चिमी हिमालय तथा पञ्जाब के पहाड़ी प्रान्तों में भी उत्पन्न होता है।

इसका **क्षुप** २ से ३ फीट तक ऊँचा होता है। **पत्ते**—अनेक भागों में विभक्त, प्रत्येक भाग गहरे कटे किनारे वाले होते हैं। **फूल**-सफेद और छोटे छत्ते से होते हैं। **फल**-पीताभ, भूरा, गोलाभ अंडाकार, १ से १.५ मि. मि. लंबा, १.५ मि. मि. चौड़ा, ०.५ मि. मि. मोटा एवं प्रत्येक अर्धखण्ड पर ५ गहरी धारियों से युक्त होता है।

रासायनिक संगठन—इसके फलों में एक हलके पीले रङ्ग का उड़नशील तैल १.५–३% पाया जाता है जिसमें एक विशेष प्रकार की इसकी गन्ध होती है। इसके अतिरिक्त इसमें गन्धक, (एपोइल Apoil) नामक एक विषैला पदार्थ, एक ग्लूकोसाइड ॲपीईन (Glucoside-Apiin), अल्ब्यूमिन्, गोंद और क्षार आदि पदार्थ रहते हैं।

गुण और प्रयोग—यह सुगन्धि, पाचक, वातानुलोमक, उत्तेजक, वातशामक, बल्य, मूत्रल, गर्भाशय संकोचक एवं हृद्य है। घरेलू औषधि के रूप में इसका उपयोग आमवात, उदरशूल, आध्मान, वमन, हिक्का, कुपचन आदि रोगों में किया जाता है। इसको वातरक्त, कृमि, मूत्राशय के रोग और नष्टार्तव में काम में लाते हैं।

इसके उद्वेष्टन निरोधी गुण के कारण श्वसनिका शोथ, श्वास एवं उदरशूल आदि विकारों में इसका व्यवहार किया जाता है। इसका पथरी के रोग में भी व्यवहार होता है। यकृत् और प्लीहा के रोगों में भी यह कुछ लाभदायी है। मसाले के रूप में भी इसका व्यवहार किया जाता है।

(१) इसका तैल उद्वेष्टन निरोधी, वातनाडियों के लिये बल्य एवं आमवाताभ संधिशोथ में लाभदायी है।

(२) इसका मूल रसायन एवं मूत्रल माना गया है और इसका उपयोग सर्वांग शोफ और शूल में किया जाता है।

(३) इसके मूल से बनी कॉफी मस्तिष्क एवं वातनाडियों के लिये बलदायक मानी गई है।

(४) यह अपस्मार एवं गर्भिणी के लिये हानिकारक माना गया है।

मात्रा—फल चूर्ण-१ से ४ माशा।

१६ अजवायन जंगली (१)

यह दो प्रकार की होती है जिनका अलग-अलग वर्णन नीचे संक्षेप में दिया गया है।

सं०—वन्ययमानी ? । **म०**—किरमिजी अजवां । **बं०**—बनजोवान । **ले०**—Seseli indicum W. & A. (सिसिली इण्डिकम्) । Fam. Umbelliferae (अम्बेलीफेरी) ।

यह हिमालय के निचले भागों में देहरादून से लेकर गोरखपुर, बुंदेलखण्ड, आसाम, मध्य बंगाल तथा कारोमण्डल तक होती है ।

इसके **क्षुप**-वर्षायु, ४ से १२ इञ्च तक ऊँचे, अनेक शाखा प्रशाखाओं से युक्त सघन देखने में आते हैं । **पत्ते**-विभक्त, कटे किनारे वाले और रोमश होते हैं । **फूल**—छत्ते से सफेदी युक्त गुलाबी रंग के, **फल**—बारीक छोटे-छोटे गोल, किञ्चित् लम्बे फीके पीले रंग के होते हैं ।

गुण और प्रयोग—इसके फल प्रायः पशुओं के लिये औषधि के काम में अधिक आते हैं । यह उत्तेजकदीपन, पाचन, शूलघ्न, आंतों के लिये हितकारी तथा विशेषरूप से गोल कृमि का नाशक है ।

इसके सेवन से पेट के आफरे में लाभ होता है और भूख बढ़ती है ।

मात्रा—१ से ३ माशा ।

१७ अजवायन जंगली (२)

हि०-बन अजवायन । **पं०**-माशो, रांगस्वुर, मरिज़ह । **फा०**-हाशा । **अं०**-Wild Thyme (वाइल्ड थाइम्) । **ले०**-*Thymus serpyllum Linn.* (थाइमस् सर्पाइलम्) । Fam. Labiatae (लेबिएटी) ।

यह हिमालय के गरम प्रांतों में काश्मीर से कुमाऊँ तक एवं ईरान में होती है ।

यह क्षुप जाति की वनौषधि अनेक शाखा प्रशाखाओं से युक्त, सघन, कुछ रोमयुक्त, ६ से १२ इञ्च तक ऊँची और सुगन्धित होती है । **पत्ते**-अवृन्त, इञ्च के अष्टमांश से चतुर्थांश के घेरे में किञ्चित् आयताकार अण्डाकार होते हैं और उन पर तैलीय धब्बे होते हैं । **फूल**—बारीक बैंगनी रंग के गुच्छों में आते हैं । **फल**—बारीक और चिकने होते हैं ।

इस औषधि का पञ्चांग व्यवहार में आता है ।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उड़नशील सुगन्धित तैल ०·६%, टैनिन तथा गोंद पाया जाता है । इसमें थायमॉल (अजवायन का सत) बहुत ही थोड़ी मात्रा में होता है ।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, सड़न को दूर करने वाली, मूत्रजनन, उत्तेजक, आंखों के लिये हितकर, श्वास एवं कफहर, ग्राही, कृमिघ्न, व्रणशोषक और व्रणरोपक है । सड़न को दूर करने का इसका गुण बहुत स्पष्ट है ।

(१) इसका स्वरस, सिरका और मधु पुरानी खांसी, श्वास, कुक्कुर खांसी और घटसर्प तथा आंत्रिक व्रणों में दिया जाता है ।

(२) अजीर्ण और अग्निमांद्य में सैन्धव के साथ इसको दिया जाता है । यह ग्राही है तथा इससे उदरशूल दूर होता है ।

(३) वस्ति पीडा, वस्ति शोथ, तथा लसिकामेह (Chyluria) एवं मूत्र स्वच्छ न होने पर इसका क्वाथ मधु और सिरके के साथ दिया जाता है ।

(४) चर्मरोग जैसे दाद, खुजली आदि में यह बहुत लाभदायी है ।

(५) अग्निदग्ध व्रण पर इसका स्वरस घी के साथ लगाते हैं ।

(६ सन्धिशोथ आदि में इसको रेंडी के तेल के साथ पीसकर लगाते हैं तथा इसका क्वाथ पीने को देते हैं ।

(७) इसकी चटनी दृष्टि के लिये उपयोगी है ।

(८) इसका धूपनार्थ प्रयोग करने से हवा शुद्ध होती है ।

मात्रा—चूर्ण-१/८ से १/४ तोला । तेल-१ से ३ बूंद ।

अथ पारसीकयवानीगुणानाह

पारसीकयवानी तु यवानीसदृशी गुणः । विशेषात्पाचनी रुच्या ग्राहिणी मादिनी गुरुः ॥८०॥

खुरासानी अजवाइन के गुण—पारसीकयवानी अर्थात् खुरासानी अजवाइन का भी गुण अजवाइन के समान ही जानना चाहिये । किन्तु विशेषता यह है कि यह पाचक, रुचिकारक, ग्राही, मादक तथा परिपाक में गुरु होती है ॥ ८० ॥

१८ पारसीक यवानी

हि०-खुरासानी अजवायन, खुरसानी अजवाइन, खुरसाना । **बं०**-खुरासानी अजोवान । **म०**-खुरासानी ओंवा, खुरासाण ओंवा । **गु०**-खुरासाणी अजमो, छुहारी अजमोद । **ते०**-कुरासानी वाम । **ता०**-कुरासानी योमाम । **पं०**-खुरासानी अजवाइन, बजरुल । **मा०**-खुरासानी अजवाण । **क०**-खुरासानी वोम । **फा०**-तुख्म बञ्जे, बञ्जदिवाना, बञ्ज, तुख्मविनग, तुख्मेवंग । **अ०**-बज़रुल बञ्ज, अवींद शिकरान, बजुलवञ्ज, बज़रुल विनग । **यू०**-अजवायनी खुरसानी । **अं०**-Henbane (हेनबेन) । **ले०**-*Hyoscyamus niger, Linn.* (हायोसायामस् नाइगर लिन) । Fam. Solanaceae (सोलेनेसी) ।

खुरासानी अजवायन केवल खुरासान देश में ही नहीं बल्कि इसके छोटे छोटे क्षुप योरप और मध्य एशिया के कई प्रान्तों के जङ्गलों तथा कूड़ों के ढेर पर उगे हुए रहते हैं । हमारे देश में पश्चिम हिमालय के गरम प्रान्तों में काश्मीर से गढ़वाल तक पाये जाते हैं और सहारनपुर, पूना, आगरा और अजमेर के आस पास के कितने ही स्थानों में इसकी खेती की जाती है ।

इसकी अन्य जातियां H. reticulatus (हा. रेटिक्यूलेटस), तथा H. muticus (हा. म्यूटिकस-कोहीभंग) होती हैं । H. muticus (हा. म्यूटिकस) अधिक विषैली होती है तथा यह पश्चिमी पञ्जाब और सिन्ध के जङ्गली प्रदेशों तथा नदियों के किनारों पर उत्पन्न होती है एवं हा. रेटिक्युलेटस् बलुचिस्तान में होती है । इसका **पौधा**-सीधा, रोमश, चिपचिपा, उग्रगंधयुक्त एवं १-३ फीट ऊँचा होता है । **पत्ते**-धतूरे के समान, कुछ कटे किनारेवाले, दन्तुर, नीचे के सवृन्त आयताकार, अंडाकार किन्तु ऊपर के अवृन्त अंडाकार होते हैं । **पुष्प**-पीले रंग के, पांच पंखडीवाले और आकार में तमाखू के फूलों के समान होते हैं तथा उन पर जामुनी रेखायें होती हैं । **फल**-अंडाकार, १/२ इंच व्यास के एवं दो खण्डों में विभक्त होते हैं । **बीज**-भूरे, धूसर, चिपटे, वृक्काकार, या घोंघा की तरह, १·५-१·७५ × १-१·२ × ०·५-०·७ मि. मि. बड़े, धारीदार, गंधहीन एवं अल्पतिक्त होते हैं ।

हा. म्यूटिकस् के बीज-पीताभ, चिपटे, गोलाई लिये हुवे चौकोर, करीब उतने ही बड़े किन्तु सूक्ष्म गढ़ेदार, अल्प उग्रगंध युक्त किन्तु स्वादहीन होते हैं । बजार में दोनों मिले हुवे मिलते हैं जिसमें अन्य पदार्थ भी मिले हुवे पाये जाते हैं ।

आयुर्वेद में बीजों का तथा आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में पत्र तथा पुष्पित अग्रभाग के विभिन्न कल्पों का उपयोग किया जाता है ।

यूनानी चिकित्सकों के मत से खुरासानी अजवायन सफेद, काली और लाल तीन जाति की होती है। इनमें से काली विष के समान हानिकर और घातक मानी जाती है।

रासायनिक संगठन—इसकी पत्तियों में हायोसाएमिन (Hyoscyamine) नामक क्षाराभ तथा अल्प मात्रा में हायोसीन (Hyoscine) या स्कोपोलामाइन (Scopolamine), ॲट्रोपिन (Atropine), हायोसिप्रिन (Hyosciprin), कोलिन (Cholin), तैल, गोंद, ॲल्ब्यूमिन तथा पोटॅशियम नाइट्रेट २% आदि पदार्थ रहते हैं। इसकी विभिन्न जातियों में क्षाराभों की मात्रा भिन्न-भिन्न रहती है। सहारनपुर तथा काश्मीर में लगाये पौधों में इनकी मात्रा प्राकृत पौधों की अपेक्षा अधिक (·०३%) होती है, तथा ब्रिटिशफार्माकोपिया के प्रतिमान (·०५५%) के करीब होती है। इसके बीजों में हायोसाएमिन (Hyoscyamine), २५% तैल, तथा राख ४–५% होती है।

गुण और प्रयोग—यह अवसादक, वेदनाहर, स्वापजनक, उद्वेष्टन निरोधी, शामक, बल्य, कनीनिका विकासि, दीपन, पाचन तथा कृमिघ्न है। यह बहुत अच्छा वेदनाहर एवं निद्राकर है। इससे अफीम के समान कब्जियत नहीं होती। इसकी क्रिया बेलाडोना की तरह होती है, लेकिन इससे मस्तिष्क कम उत्तेजित होता है और सुषुम्ना एवं आन्त्र पर इसकी अवसादक क्रिया होती है। इससे अनैच्छिक मांस पेशियों के उद्वेष्टन के कारण होने वाले शूल—जैसे नाग (Lead) शूल तथा मूत्रमार्ग प्रक्षोभ से उत्पन्न शूल—दूर होते हैं।

इसका उपयोग उन्माद, अपस्मार, अपतंत्रक, निद्राभंग, आक्षेप, नाडीशूल तथा अनेक मस्तिष्क के विकार एवं मानसिक अस्वस्थता में किया जाता है। सूखी खांसी एवं दमा में श्वसनिकाओं का संकोच दूर होकर लाभ होता है। यह विरेचक औषधियों से उत्पन्न मरोड को दूर करती है। पथरी एवं बस्तिशोथ आदि से उत्पन्न प्रक्षोभ में यवक्षार, पाठा तथा गुरुच के साथ यह बहुत गुणकारी है। अल्प मात्रा में देने से यह हृदय के लिये शामक है, और बल्य होने से हृदय की धड़कन में इससे लाभ होता है। पीडितार्तव, अनियमितार्तव में भी इसका अच्छा उपयोग होता है। मधु के साथ इसके बीजों को पीसकर स्तनशोथ, अंडशोथ, यकृत पीडा एवं संधिशोथ में लगाने से शोथ एवं वेदना कम होती है। दांत के गड्ढे में इसके बीजों को पीस कर रखने से दंतशूल दूर होता है। इसको अंगारों पर जलाकर उसके धूएं को मुख में जाने देने से भी दंतशूल में लाभ होता है।

अधिक मात्रा में यह मादक विष है जिससे प्रलाप, संन्यास आदि होकर शीघ्र मृत्यु होती है। वृद्ध एवं दुर्बल इसकी अधिक मात्रा सहन नहीं कर सकते, लेकिन बच्चे अधिक मात्रा सहन कर सकते हैं।

मात्रा—पत्र चूर्ण १½–३ र., बीज चूर्ण १½–३ र., तरल एक्स्ट्रॅक्ट ३–६ बूंद, शुष्क एक्स्ट्रॅक्ट ⅛–½ र., टिंक्चर ३०–६० बूंद।

अथ शुक्लजीरककृष्णजीरककालिकानां नामानि गुणाँश्चाह

जीरको जरणोऽजाजी कणा स्याद्दीर्घजीरकः ॥ ८१ ॥
कृष्णजीरः सुगन्धश्च तथैवोद्गारशोधनः । कालाजाजी तु सुषवी कालिका चोपकालिका ॥८२॥
पृथ्वीका कारवी पृथ्वी पृथुकृष्णोपकुञ्चिका । उपकुञ्ची च कुञ्ची च बृहज्जीरक इत्यपि ॥८३॥
जीरकत्रितयं रूक्षं कटूष्णं दीपनं लघु । संग्राही पित्तलं मेध्यं गर्भाशयविशुद्धिकृत् ॥८४॥
ज्वरघ्नं पाचनं वृष्यं बल्यं रुच्यं कफापहम् । चक्षुष्यं पवनाध्मानगुल्मच्छर्द्यतिसारहृत् ॥८५॥

सफेद जीरा, स्याह जीरा तथा कलौंजी (मंगरैला) के नाम तथा गुण—उसमें से जीरक, जरण, अजाजी, कणा और दीर्घजीरक ये सब 'सफेद जीरा' के नाम हैं। कृष्णजीर, सुगन्ध और उद्गारशोधन ये नाम 'स्याहजीरा' के हैं और कालाजाजी (कोई २ काला तथा अजाजी ऐसा पृथक् दो नाम मानते हैं), सुषवी, कालिका, उपकालिका, पृथ्वीका, कारवी, पृथ्वी, पृथु, कृष्णा, उपकुञ्चिका, उपकुञ्ची, कुञ्ची और बृहज्जीरक ये सब नाम कलौंजी (मंगरैला) के हैं। **तीनों प्रकार के जीरे**—रूक्ष, कटुरसयुक्त, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, परिपाक में लघु, संग्राही, पित्तकारक, मेधा के लिये हितकारी, गर्भाशय को शुद्ध करने वाले, ज्वरनाशक, पाचक, वृष्य (वीर्यवर्धक), बलकारक, रुचिजनक, कफनाशक, नेत्रों के लिये हितकारी और वायु, आध्मान, गुल्म, वमन और अतिसार को भी दूर करने वाले होते हैं ॥ ८१–८५ ॥

१९ शुक्लजीरक (जीरा)

हि०–जीरा, सादाजीरा, साधारण जीरा, सफेद जीरा। **बं०**–सादाजीरे, शाहाजीरे, जीरे। **म०**–जीरें, पांढ़रे जीरे। **गु०**–जीरुं, शाकनु जीरुं, सादु जीरुं, धोलु जीरुं। **क०**–जीरिगे, बिलिय जिरिगे बिलिय जीरगे। **ते०**–जिलकारा, जील करर, जील कर्र। **ता०**–शीरागम। **यू०**–स्वामुने। **फा०**–जीरये सफेद। **अ०**–कमून अबियज़। **अं०**–Cumin seed (क्युमिन सीड)। **ले०**–*Cuminum cyminum Linn.* (क्युमिनम् साइमिनम्, लिन.)। Fam. Umbelliferae (अंबेलिफेरी)।

जीरा—एक सर्वप्रसिद्ध मसाले की वस्तु है। आसाम और बंगाल के सिवा प्रायः सब प्रान्तों में विशेषकर राजपूताना और उत्तर भारत के कई प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है।

यह खेतों में प्रति वर्ष बोया जाता है। इस क्षुप जाति की वनस्पति की **शाखायें** पतली होती हैं। **पत्ते**—सौंफ के पत्तों के समान पतले-पतले, लम्बे तथा २–३ एक साथ रहते हैं। बारीक सफेद **फूलों** के छत्ते लगते हैं। **फल**—सौंफ के समान होता है ॥ १८ ॥

रासायनिक संगठन—इसमें एक सुगन्धि, उडनशील तथा हलके पीले रङ्ग का तैल २·५–४% पाया जाता है। इस तैल में क्यूमिक ॲल्डिहाइड् (Cumic aldehyde) की मात्रा ५२% तक होती है जिसके अन्दर कई रासायनिक पदार्थ होते हैं। इस तैल को कृत्रिम रूप से थाइमॉल् (Thymol = अजवाइन का सत्व) में परिवर्तित किया जा सकता है जो अच्छा प्रतिदूषक (Antiseptic) और कृमिघ्न पदार्थ है। इसके अतिरिक्त इसमें स्थिर तैल १०% एवं पेन्टोसान (Pentosan) ६·७% होता है।

गुण और प्रयोग—यह पाचक, वातानुलोमक, मूत्रविरजनीय, वेदनाहर, उत्तेजक एवं संग्राही है। इसका उपयोग वमन, अतिसार, कुपचन, आध्मान, ज्वर तथा मूत्रजननेन्द्रिय संस्थान के रोग जैसे सुजाक, पथरी एवं मूत्रावरोध में किया जाता है। बालकों के पाचन के विकारों में यह अधिक उपयोगी है।

(१) ज्वर में पाचन सुधरकर भूख बढ़ती है, पेशाब साफ होती है और दाह शांत होती है इसमें गुड के साथ इसका प्रयोग करना चाहिये।

(२) अतिसार में दही के साथ इसको दिया जाता है। जीरकाद्यमोदक का उपयोग जीर्ण अतिसार, अपचन एवं अग्निमांद्यादि रोगों में किया जाता है। गर्भिणी में पित्तजन्य वांति में नींबू के रस के साथ देने से लाभ होता है।

(३) सुजाक आदि में निम्न चूर्ण १० रत्ती की मात्रा में देने से लाभ होता है—जीरा ४, खुनखराबा २, कलमीशोरा ५, धनियां ५ तथा गुलाब २ भाग।

(४) प्रसूता को देने से दुग्ध वृद्धि होती है।

(५) हिचकी में घृत के साथ इसका धूम्रपान बहुत उपयोगी है।

(६) इसको स्वरभंग एवं सर्पविष में भी उपयोगी बतलाया गया है।

(७) इसका बाह्यलेप पीडाहर है एवं यह अर्श, स्तन, अण्डकोष तथा उदर की पीड़ा पर लगाया जाता है और घृत, मधु एवं नमक के साथ बिच्छू के काटने पर लगाने से लाभ होता है। इसके क्वाथ से स्नान करने से खुजली दूर होती है तथा इससे सिद्ध तैल का चर्मरोगों में उपयोग होता है।

मात्रा—½–२ माशा

२० कृष्ण जीरक

हि०–काला जीरा, स्या जीरा, स्याह जीरा, कृष्णजीरा। **बं०**–काल जीरें, कृष्णजीरा। **म०**–शहाजीरें, शाहाजीरें, कालेजीरे। **गु०**–स्याजीरुं। **क०**–करिजीरके, करिजिरिगे। **ते०**–शिमइसपू। **ता०**–शिमइ शोम्बु। **मा०**–स्याजीरो। **चनाब०**–गूंयूं। **फा०**–सियाहजीरा, स्याहजीरा, जीरेस्याह, जीरयेस्याह। **अ०**–कमूने किरमानी, कमून अस्वद। **अं०**–Black Caraway seed (ब्लक कॅरावे सीड)। **ले०**–*Carum carvi Linn.* (कॅरम् कॅरुइ)। Fam. Umbelliferae (अम्बेलिफेरी)।

इसका **क्षुप** उत्तरी हिमालय के पहाड़ी भागों में उत्पन्न होता है। इसकी खेती भारत के मैदानी भागों में एवं काश्मीर, कुमाऊँ, गढवाल, चम्बा आदि पहाड़ी स्थानों में की जाती है। यह अफगानिस्तान एवं ईरान में भी होता है। यह १–२ फूट ऊँचा, **शाखा**–कोमल, हरित, एकांतर; **पत्र**–बहुविभक्त; **पुष्प**–श्वेत, छत्राकार; **फल**–कुछ टेढ़ापन लिये लंबे, सुगंधि, भूरापन लिये हुये काले, करीब ७ मि० मि० तक लंबे एवं २ मि० मि० चौड़े एवं दोनों सिरों पर नोकीले होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उड़नशील तैल ३·१–७% पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह दीपन, पाचन, वातानुलोमक और स्तन्यजनन है। आध्मान, उदरशूल, अतिसार, अपचन, जीर्णज्वर आदि में इसका उपयोग किया जाता है। प्रसूतिकाल में दूध बढ़ाने के लिए इसको देते हैं। यूरोप में इसको शान्तिदायक, मस्तिष्क के लिए उत्तेजक और अपतंत्रक में उपयोगी मानते हैं।

(१) इसके तैल का उपयोग अन्य औषधियों को सुगन्धित करने के लिए एवं उनसे उत्पन्न हृल्लास और मरोड़ को दूर करने के लिए किया जाता है।

(२) इसके अर्क का उपयोग बच्चों का पेट फूलना, शूल आदि में अनुपान के रूप में किया जाता है।

(३) अर्श में सूजन हो तो इसके क्वाथ से सेकने से लाभ होता एवं गर्भाशय की पीडा में स्त्री को इसके क्वाथ में बैठाते हैं।

मात्रा—½–२ माशा।

नोट—एक अन्य प्रकार के जीरक का वर्णन जिसे संस्कृत में **अरण्यजीरक** और लैटिन में वर्नोनिया ॲन्थेलमिन्टिका; कॉम्पोसिटी (Vernonia anthelmintica Willd; Fam. Compositae) कहते हैं, परिशिष्ट में देखें।

२१ कालाजाजी (कलौंजी)

हि०–कलौंजी, कलवंजी, कलौंजी, मँगरेला, मंगरैल, मंगरैला। **बं०**–मोटा कालेजीरे, मोटकालजीर। **म०**–कलौंजी जीरें, कालेजीरे। **गु०**–कलौंजी जीरुं। **क०**–करि जीरिगे। **ते०**–नल्लजील कारा। **फा०**–स्याहदाना। **अ०**–हब्बतुस्सोदा, शोनिझ। **अं०**–Black cumin (ब्लॅक् क्युमिन्), Small fennel (स्मॉल फेनेल), Nigella seed (निगेल्ला सीड)। **ले०**–*Nigella sativa Linn.* (निगेला सॅटिवा, लिन.)। Fam. Ranunculaceae रेनन्क्युलेसी)।

कलौंजी हमारे देश का सर्व प्रसिद्ध एक गरम मसाला है। यह प्रायः पूर्व के प्रान्तों में एवं बिहार और पञ्जाब में अधिक बोई जाती है। दक्षिणी यूरोप तथा सीरिया में भी यह उत्पन्न होती है। इसका **क्षुप** छोटा, **पत्ते** लम्बे तथा कटे हुए, **फूल**–हलके नीले रंग के और **फलियाँ** ½ इञ्च लम्बी होती हैं। **बीज**–त्रिकोणाकार, तिल के समान पर तिल से किञ्चित् मोटे और अत्यन्त काले रङ्ग के होते हैं। इसका गूदा सफेद होता है और इसमें तीव्र गन्ध होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें पीले रंग का उड़नशील तैल ०·५–१·४%, स्थिर तैल ३७·५%, राल, ॲल्ब्यूमिन्, शर्करा, गोंद, टॅनिन, ग्लुकोसाइड, मेलान्थिन, मेलान्थेजेनिन (१%) आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह सुगन्धित, वातानुलोमक, दीपन, पाचन, गर्भाशय शुद्धिकर, स्तन्यवर्धक, स्वेदल एवं कृमिघ्न है। इसका उत्सर्ग त्वचा, वृक्क एवं स्तन द्वारा होता है तथा इनके स्रावों की वृद्धि होती है। अधिक मात्रा में इसके सेवन से शरीर की उष्णता बढ़ती है, नाडी की गति बढ़ती है तथा साथ ही साथ गर्भाशय संकोच होकर गर्भपात की भी संभावना रहती है।

सूतिका में इसका उपयोग चित्रकमूल के साथ करने से भूख बढ़ती है, पाचन ठीक होता है, गर्भाशय शुद्ध होता है तथा दूध भी बढ़ता है। पीडितार्तव वा नष्टार्तव में यह उपयोगी है। सूतिका ज्वर तथा विषमज्वर में इसका उपयोग किया जाता है। अग्निमांद्य, कुपचन तथा आध्मान आदि में अन्य औषधियों के साथ इसका प्रयोग लाभदायक है। हिचकी में मट्ठे के साथ देने से लाभ होता है। विरेचक औषधियों के साथ इसके उपयोग से मरोड़ नहीं होने पाती। यह मसाले के रूप में भी व्यवहार में आता है। इसका लेप हाथ और पैरों की सूजन पर करने से दर्द दूर होकर सूजन कम होती है। त्वक् रोगों में इससे सिद्ध तैल का व्यवहार करते हैं तथा इसका आंतरिक प्रयोग भी करते हैं।

मात्रा ½–१ माशा। **हानिकर**—गर्भिणी के लिये।

अथ धान्यकस्य नामानि गुणाँश्चाह

धान्यकं धानकं धान्यं धाना धानेयकं तथा। कुनटी धेनुका छत्रा कुस्तुम्बुरु वितुन्नकम् ॥८६॥
धान्यकं तुवरं स्निग्धमवृष्यं मूत्रलं लघु। तिक्तं कटूष्णवीर्यञ्च दीपनं पाचनं स्मृतम् ॥ ८७ ॥
ज्वरघ्नं रोचकं ग्राहि स्वादुपाकि त्रिदोषनुत्। तृष्णादाहवमिश्वासकासकार्श्यक्रिमिप्रणुत्॥८८॥
आर्द्रन्तु तद्गुणं स्वादु विशेषात्पित्तनाशनम्[1] ॥ ८८ ॥

धनियां के नाम तथा गुण—धान्यक, धानक, धान्य, धाना, धानेयक, कुनटी, धेनुका, छत्रा, कुस्तुम्बरु और वितुन्नक ये सब 'धनियां' के नाम हैं। **धनियां**—कषायरसयुक्त, स्निग्ध, अवृष्य, मूत्रजनक, लघु, तिक्त तथा कटुरस युक्त, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, पाचक, ज्वरनाशक, रोचक, ग्राही, परिपाक में मधुररसयुक्त, त्रिदोष को दूर करने वाली, तृष्णा (प्यास), दाह, वमन, श्वास, कास, कृशता तथा कृमिरोग का नाश करने वाली है। कच्ची धनियां के भी गुण

१. 'पित्तनाशि तदि'ति पाठा०।

'धनियाँ' ही के समान हैं किन्तु विशेषता यह है कि यह मधुर रस युक्त तथा पित्त की विशेष रूप से नाशक होती है ॥ ८६-८८ ॥

२२ धनियां

हि०—धनियां। **बं०**—धने। **म०**—धने, । कोथिंबीर, धणे। **गु०**—धाना, धाणा, कोथमीर। **क०**—कोथुंबुरी, कोथम्बरी, हविज। **ते०**—कोत्तिमिरि, धनियलु। **ता०**-कोटमल्लि, कोतमल्ली। **सिन्ध०**-धानु। **फा०**-कश्नीज। **अ०**-कज़बुरा, कजबुरह। **अं०**—Coriander fruit (कोरिॲण्डर फ्रूट)। **ले०**—*Coriandrum sativum Linn.* (कोरिएण्ड्रम् सॅटिवम् लिन)। Fam. Umbelliferae (अंबेलिफेरी)।

इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में एवं विदेशों में भी इसकी उपज की जाती है।

इसका **पौधा** १-२ फुट ऊँचा, **शाखायें**-चिकनी, **पत्ते**-विषमवर्त्ती, जड़ के निकटवाले पत्ते गोलाकार, ३-४ या ५ भागों में विभक्त, प्रत्येक भाग कटे किनारे वाले और कँगूरेदार तथा शाखाओं के **पत्ते** सोआ, चनसुल आदि के पत्तों के समान होते हैं। **फूल**-छत्ते से सोया के फूल के समान सफेद या किंचित् गुलाबी रंग के आते हैं। **फल**-नन्हें नन्हें, अण्डाकार, गुच्छों में छत्राकार लगते हैं। सूखने पर वे दो टुकड़े होकर धनिये के नाम से बिकते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके फलों में एक उड़नशील तैल ०·५-१% तक पाया जाता है जिसमें ४५-५५% कोरिएन्ड्रॉल (Coriandrol, $C_{10}H_{18}O$) तथा कुछ अन्य पदार्थ रहते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें स्थिर तैल १३%, वसीय पदार्थ १३%, गोंद, टॅनिन, मॅलिक् एसिड तथा राख ५% आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—धनियां मूत्रल, दीपन, पाचन, वातानुलोमक, संग्राही, दाहशामक एवं पिपासाघ्न है।

इसका उपयोग नेत्र रोग, ज्वरजन्यदाह, वमन, अतिसार, आमाजीर्ण, आध्मान, शूल आदि में किया जाता है। मसाले के रूप में, अनेक औषधियों को सुगन्धित करने के लिए तथा विरेचक औषधियां जैसे सनाय रेवाचीनी आदि से मरोड न हो इसलिए इसका व्यवहार किया जाता है।

(१) ज्वर में दाह एवं प्यास की शान्ति के लिए इसका शीत कषाय मिश्री तथा मधु मिलाकर पिलाते हैं।

(२) नेत्राभिष्यन्द में इसके क्वाथ को छानकर नेत्र बिन्दु के रूप में डालने से लाभ होता है। पहले एरण्ड तैल डालकर फिर इसका प्रयोग करना चाहिये। शीतला में आँख धोने के लिये इसके जल का व्यवहार किया जाता है जिससे उत्तरकालीन नेत्राभिष्यन्द एवं नेत्रव्रण आदि उपद्रवों का प्रतिषेध होता है।

(३) इसके तैल का व्यवहार वातनाडी शूल एवं जोडों के दर्द में करते हैं तथा बच्चों के आध्मान जन्य शूल में १-४ बूँद मिश्री के साथ देते हैं।

(४) कच्ची धनियां का लेप सरदर्द तथा भिलावे से उत्पन्न दाह पर किया जाता है।

(५) पुराने घाव, सूजन तथा विषैले फोड़ों पर यवके आटे के साथ इसकी पुल्टिस उपयोगी है।

(६) इसके क्वाथ में मिश्री मिलाकर रक्तार्श में देने से लाभ होता है।

(७) क्षोभशामक होने के कारण धनियां के शीत कषाय का उपयोग अनुपान या सहपान के रूप में स्वप्नमेह एवं श्वेतप्रदर में किया जाता है।

(८) जीर्ण प्रतिश्याय में धनियां का फाण्ट या बीजों का चूर्ण मिश्री के साथ प्रयुक्त होता है।

मात्रा—½ - ४ माशा।

अधिक मात्रा में सेवन से कामशक्ति का ह्रास तथा स्त्रियों में मासिक धर्म रुक जाता है।

दर्पनाशक—मधु, दालचीनी और अण्डा।

अथ शतपुष्पामिश्रेययोर्नामानि गुणांश्चाह

शतपुष्पा शताह्वा च मधुरा कारवी मिसिः। अतिलम्बी सितच्छत्रा संहितच्छत्रिकाऽपि च ॥
छत्रा शालेयशालीनौ मिश्रेया मधुरा मिसिः। शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्णा पित्तकृद्दीपनी कटुः ॥
उष्णा ज्वरानिलश्लेष्मव्रणशूलाक्षिरोगहृत्। मिश्रेया तद्गुणा प्रोक्ता विशेषाद्योनिशूलनुत् ॥
अग्निमान्द्यहरी हृद्या बद्धविट्कृमिशुक्रहृत्। रूक्षोष्णा पाचनी कासवमिश्लेष्मानिलाह्वरेत् ॥

सोया और सौंफ के नाम तथा गुण—शतपुष्पा, शताह्वा, मधुरा, कारवी, मिसि, अतिलम्बी, सितच्छत्रा तथा संहितच्छत्रिका ये नाम सोये के हैं और छत्रा, शालेय, शालीन, मिश्रेया, मधुरा और मिसि ये सब नाम सौंफ के हैं। **सोया**—परिपाक में लघु, तीक्ष्ण, पित्तकारक, अग्निदीपक, कटुरसयुक्त, उष्णवीर्य तथा ज्वर, वातश्लेष्म, व्रण, शूल और नेत्रसम्बन्धी रोगों को दूर करने वाली है और **सौंफ** के भी सोये के समान ही गुण हैं किन्तु विशेष करके यह योनिसम्बन्धी शूल को दूर करने वाली, अग्नि की मन्दता को नाश करने वाली, हृदय के लिये हितकारक, मल की विबद्धता को दूर करने वाली, कृमि तथा शुक्र का नाश करने वाली, रूक्ष, उष्णवीर्य पाचक एवं कास, वमन, कफ तथा वायु को दूर करने वाली होती है ॥ ८९-९२ ॥

२३ सोआ

हि०-सोआ, सोया, सोवा, बनसौंफ। **बं०**-शुलफा, शुल्फा। **पं०**-सोया। **म०**-बालंत शोप, शेपु। **क०**-सब्बसिगे। **गु०**-सुवा। **ते०**-पुशतकुपिविट्टुलु, सोम्पा। **मा०**-सोवा, सुवा। **ता०**-शतकुप्पी विरइ। **अं०**-Indian dill fruit (इन्डियन डिल फ्रूट)। **ले०**-Anethum sowa Kurz (अनेथम् सोवा)। *Peucedanum graveolens Linn.* (प्यूसिडॅनम् ग्रॅवियोलेन्स लिन) Fam. Umbelliferae (अंबेलिफेरी)।

युरोपीय जाति प्यूसिडॅनम् ग्रॅवियोलेन्स (Peucedanum graveolens) से भारतीय जाति में कुछ अन्तर होने के कारण भारतीय जाति को अनेथम सोवा (Anethum sowa) कहते हैं।

इस देश के सब प्रान्तों में विशेषकर गरम और शीत गरम प्रान्तों में इसकी खेती शीत ऋतु में की जाती है।

यह क्षुप जाति की वनस्पति १-३ फुट तक ऊँची होती है। **पत्ते**-कई भागों में विभक्त, बारीक और अत्यन्त कोमल होते हैं। **फूल**-छत्राकार किञ्चित् पीले रंग के होते हैं। फल-अंडाकार, चिपटे, उन्नतोदर, किनारे पर सपक्ष एवं प्रायः दोनों अर्धखण्ड मिले हुवे तथा आधार पर पतला वण्ठल लगा रहता है। ये विदेशी बीजों से कम चौड़े तथा अधिक उन्नतोदर और इनके पृष्ठ भाग की धारियां हलके रंग की होती हैं।

---

१. 'संहिते'ति पाठा०।

रासायनिक संगठन—इसके फलों में ३–३.५% एक उड़न शील तैल पाया जाता है। इस तैल में डिल एपिओल (Dill-apiole, $C_{12}H_{14}O_4$) नामक एक तैलीय पदार्थ रहता है जो पारस्ले एपिओल (Parsley apiole, $C_{12}H_{14}O_4$) के सदृश होते हुवे भी गुणों में उससे पृथक् (Isomeric = आइसोमेरिक्) रहता है। इसके अतिरिक्त इसमें एक तरल हाइड्रोकार्बन ॲनीथेन् (Hydrocarbon-anethene, $C_{10}H_{16}$) और कारवोन (Carvone) सदृश पदार्थ रहता है। विदेशी और भारतीय तैल में थोड़ा अन्तर होता है।

गुण और प्रयोग—सोआ दीपन, पाचन, वातानुलोमक, सुगन्धि, उत्तेजक, वातहर, गर्भाशय उत्तेजक एवं दुग्धवर्धक है।

बालकों के पचन विकारों में, विशेषकर आध्मान एवं शूल में चूने के जल के साथ इसके अर्क का बहुत व्यवहार किया जाता है। प्रसूता में भी वमन, अजीर्ण, हिक्का, आध्मान, शूल तथा दुग्ध वृद्धि आदि के लिये इसके क्वाथ का प्रयोग किया जाता है। अनार्तव में भी इसका प्रयोग करते हैं। केस और म्हसकर के मतानुसार अंकुश कृमि (Hookworm) में यह उपयोगी है।

(१) अतिसार में मेथी और सोआ घी में भूनकर देते हैं।

(२) इसके पत्तों को तेल लगा कर गरम करके फोड़े फुन्सियों पर बांधने से वे जल्दी पक जाते हैं।

(३) इसके पत्ते तथा मूल को पीसकर जोड़ों की सूजन पर बांधने से लाभ होता है।

(४) विरेचक औषधियों के साथ इसके तैल या अर्क के व्यवहार से मरोड नहीं होती।

(५) चरक की राजयक्ष्मा की चिकित्सा में पार्श्वशूलहर लेप में इसका उल्लेख है।

मात्रा—फल चूर्ण – १–४ माशा, तैल—१–३ बूंद, अर्क—½–१ औंस।

संकेन्द्रित जल (ॲक्वा कन्सॅन्ट्रेटा = Aqua Concentrata)—५–१५ बूंद।

२४ सौंफ

हि०–सौंफ, बड़ी सोंफ, सउँफ। **बं०**–मौरी, पान मौरी। **म०**–बड़ी शेपो **गु०**–वरीआली, वलीयारी। **क०**–वड़ी सोपु, सब्बसिगे। **मा०**–सौंफ। **प०**–सोंफ। **ते**-सोपु, पेद्दजिलकुर्रा। **ता०**–सोहिकिरे, शोम्बु। **फा०**–राजयानज, राजयाना, बादियां, बादियान, राजियानह। **अ०**–एजियानज़, असलुल एजियानज़, राज़ियाज़। **अं०**–Fennel Fruit (फेन्नेल फ्रूट)। **ले०**–*Foeniculum vulgare Mill.* (फिनिक्यूलम् वल्गेरि); Syr.-Anethum foeniculum (एनेथम् फिनिक्यूलम्)। Fam. Umbelliferae (अंबेलिफेरा)।

प्रायः सब प्रान्तों के खेतों में यह बोई जाती है।

इसका **क्षुप** लम्बा, **पत्ते**–कई भागों में विभक्त सोये के पत्तों के समान, **फूल**–छत्राकार किञ्चित पीले रंग के और **फल**–६ से ७ मि. मि. लम्बे, ४ मि. मि. चौड़े, आयताकार, प्रायः अखण्डित एवं डंठल युक्त होते हैं। नये **बीज** हरे रंग के और पुराने होने पर पीलापन युक्त हो जाते हैं। जिन फलों का तेल निकाल लिया जाता है उनमें तैल की मात्रा कम हो जाती है और उनकी गन्ध भी कम होती है तथा वे अधिक गहरे रंग के हो जाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उड़नशील तैल १–२.९% और स्थिर तैल ८.८–१५.८% रहता है। इस उड़नशील तैल में एनीथॉल् (Anethol) ६०% तथा फेनकोन् (Fenchone)

आदि कुछ अन्य पदार्थ रहते हैं। विदेशी सौंफ की अपेक्षा भारतीय सौंफ में इस तैल की मात्रा कम रहती है।

गुण और प्रयोग—यह सुगन्धि, दीपन, पाचन, वातानुलोमक, दाहप्रशमन एवं मूत्रविरजनीय है।

इसका उपयोग विशेषरूप से मसाले के रूप में एवं मादक पेयों में सुगन्धि के लिये किया जाता है। इसका अर्क बच्चों के पाचन के विकार जैसे आध्मान, शूल आदि में दिया जाता है और अन्य औषधियों के अनुपान के रूप में भी व्यवहार करते हैं। इसका व्यवहार आमातिसार, अजीर्ण, आध्मान, ज्वर, खांसी, श्वास, वृक्करोग, प्लीहा वृद्धि, अनार्तव तथा दृष्टिमांद्य आदि रोगों में किया जाता है।

(१) इसको पीसकर पीने से पेशाब की जलन दूर होकर पेशाब साफ होती है।

(२) सूखी खांसी और मुख के विकारों में इसे मुख में रखने से लाभ होता है।

(३) इसके पत्र सुगन्धि, मूत्रल और स्वेदजनक होते हैं।

(४) इसका मूल विरेचक होता है।

(५) इसके फलों को पीसकर लेप करने से गरमी के दिनों में होने वाला चक्कर तथा शिरःशूल दूर होता है।

(६) आध्मान में इसके क्वाथ से बस्ति देने से लाभ होता है।

मात्रा—४ रत्ती से २ माशा तक।

नोट—एक अन्य प्रकार की सौंफ जिसे 'बादियान' (Pimpinella anisum Linn. पिंपिनेला एनिसम्) कहते हैं उसका वर्णन परिशिष्ट में देखें।

अथ मेथीवनमेथीनामगुणानाह

[1]मेथिकामेथिनी मेथी दीपनी बहुपत्रिका। बोधिनी बहुबीजा च ज्योतिर्गन्धफला[2] तथा। वल्लरी चन्द्रिका मन्था मिश्रपुष्पा च कैरवी। कुञ्चिका बहुपर्णी च पीतबीजा[3] मुनिच्छदा॥ मेथिका वातशमनी श्लेष्मघ्नीज्वरनाशिनी। ततः स्वल्पगुणा वन्या[4] वाजिनां सा तु पूजिता॥

मेथी तथा वनमेथी के नाम तथा गुण—मेथिका, मेथिनी, मेथी, दीपनी, बहुपत्रिका, बोधिनी, बहुबीजा, ज्योतिः, गन्धफला, वल्लरी, चन्द्रिका, मन्था, मिश्रपुष्पा, कैरवी, कुञ्चिका, बहुपर्णी, पीतबीजा और मुनिच्छदा ये सब नाम मेथी के हैं। **मेथी**–वायु को शमन करने वाली, कफ को दूर करने वाली तथा ज्वर को नष्ट करने वाली है और **वनमेथी**–मेथी की अपेक्षा कम गुण वाली होती है, किन्तु वह घोड़ों के लिये अत्यन्त उत्तम (हितकर) होती है॥ ९३–९५॥

२५ मेथी

हि०–मेथी। **पं०–बं०–म०–गु०**–मेथी। **ते०**–मेंडुलु, मेंतुलु, मेंति। **ता०**–वण्डयम्, वेंडयम, वेन्दयम। **क०**–मेंत्रे। **मल**–उलुव। **फा०**–तुख्मशमलीत। **अ०**–बजरुल हुल्बा, बजरुलहुल्बह, हुलबह।

---

१. 'मिथिनी'ति पाठा०। २. 'जाती'ति पाठा०।
३. 'पित्तजिद्दाघुद्दिषे'ति पाठा०। ४. 'बल्येऽति पाठा०।

अं०–Fenugreek (फेनुग्रीक)। **ले०**–*Trigonella foenumgraecum Linn.* (ट्राइगोनेल्ला फोएनम् ग्रेइकम्) । Papilionaceae (पॅपिलिओनेसी) ।

प्रायः सब प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है परन्तु पञ्जाब और काश्मीर में यह आपही आप जङ्गल में उत्पन्न होती है ।

इसका **क्षुप** ६ इञ्च से १६–१७ इञ्च तक ऊँचा होता है । **पत्ते** संयुक्त एवं प्रत्येक सींक पर तीन तीन पत्रक रहते हैं और वे आध से एक इञ्च तक लम्बे, अण्डाकार और बारीक कंगूरेदार होते हैं । **फूल**–नन्हें नन्हें हलके पीत रङ्ग के आते हैं । **फलियाँ**–गोल २–३ इञ्च लम्बी कुछ टेढ़ी सी नोकदार रहती हैं । प्रत्येक से १०–२० पीले रङ्ग के दाने निकलते हैं । इन्हीं का चिकित्सा में अधिक उपयोग करते हैं ।

रासायनिक सङ्गठन—इसके **सूखे पञ्चाङ्ग** में प्रोटीन (Protein) की मात्रा १६%रहती है जिसमें से इसके ग्लोब्यूलिन (Globulin) में हिस्टॅडीन् (Histadine) की काफी मात्रा रहती है । इसके ॲल्ब्यूमिन् (Albumin) भाग में फॉस्फोरस् (Phosphorus) तथा गन्धक रहता है ।

इसके **बीजों** में ट्रिगोनेल्लिन (Trigonelline, $C_7 H_7 O_2 N$), कोलीन (Choline) आदि क्षाराभ, एक पीत रञ्जक पदार्थ, स्थिरतैल ६%, प्रोटीन २२% तथा गोंद २८% रहता है । बीजों को जलाने से इसमें ७%राख निकलती है जिसमें से ¼ फॉस्फोरिक् एसिड (Phosphoric acid) रहता है । इसके बीजों में फॉस्फेट्स (Phosphates), लेसिथिन् (Lecithin) और न्यूक्लिओ ॲल्ब्यूमिन् (Nucleo-albumin) रहने के कारण ये कॉडलिवर ऑइल (Cod-liver oil) के समान पोषक तथा बलकारक होते हैं ।

गुण और प्रयोग—इसके **बीज** स्निग्ध, सुगन्धि, वातानुलोमक, अग्निदीपक, आध्मानहर, बल्य, वृष्य, वातहर, गर्भाशय सङ्कोचक, दुग्ध वृद्धिकर एवं शोथघ्न होते हैं । इसके **पत्र** शीतल, दाहशामक, शोथहर एवं मृदु विरेचक होते हैं ।

(१) इसके बीजों से बनाये लड्डू का व्यवहार प्रसूता में किया जाता है जिससे भूख बढ़ती है, मल शुद्धि और आर्तवशुद्धि होती है । अजीर्ण, अग्निमांद्य, आमवात, एवं कामशक्ति की कमज़ोरी में भी ये उपयोगी हैं ।

(२) रक्तातिसार एवं मसूरिका में इसके बीज भूँनकर और फिर उसका फांट बनाकर देते हैं ।

(३) शरीर की पीड़ा में इसके बीजों को ½–१ तोला की मात्रा में खिलाने से लाभ होता है ।

(४) दुग्ध वृद्धि के लिये इसकी लप्सी बनाकर प्रसूता को दी जाती है ।

(५) घी में भुने हुये मेथी के बीज, बादियाण और नमक का व्यवहार अतिसार रोकने के लिये करते हैं ।

(६) इसके बीजों को कॉडलिवर आइल के स्थान पर दे सकते हैं और इसका व्यवहार गण्डमाला, फक्करोग, पाण्डु, वातरक्त, मधुमेह और औपसर्गिक रोगजन्य दौर्बल्य में किया जाता है ।

(७) मिस्र में ज्वर रोकने के लिये इसको अङ्कुरित करके खिलाते हैं । मधुमेह में भी इससे लाभ होता है ।

(८) चर्मको मुलायम और स्वच्छ रखने के लिये इसके बीजों का उपयोग किया जाता है । बालों के झड़ने पर तथा सूजन पर इसका लेप उपयोगी है । श्वेतप्रदर में इसकी पेसरी को धारण कराया जाता है ।

(९) इसके पत्तों का भी लेप सूजन एवं दाह में किया जाता है । लू लगने में इसके पत्तों को पीसकर शरीर पर मलते हैं तथा आन्तरिक व्यवहार भी करते हैं जिसमे दाह की शान्ति होती है । अल्पमूल्य में बल्य एवं पोषक होने के कारण पशुओं को भी खिलायी जाती है ।

मात्रा—चूर्ण ¼–½ तोला ।

२६ बनमेथी

हि०—बनमेथी, जङ्गली मेथी । **पं०**—सिंजी । **सिन्ध**—जिर । **अ०**–अक्लिल्–उल्–मलिका । **अं०**–Sweet-cloves (स्वीट् क्लोव्हस्) । **ले०**—*Melilotus parviflora Desf.* मेलिलोटस् पार्विफ्लोरा); Syn.—Trifolium indicum Linn. (ट्रिफोलिअम् इण्डिकम्) । Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी) ।

पश्चिम प्रायद्वीप, बंगाल और उत्तरप्रदेश आदि स्थानों में यह आप ही आप उत्पन्न होती है ।

इसका **क्षुप**—३० से ४५ मि० मि० ऊँचा तथा वर्षायु होता है । **पत्र**—संयुक्त तथा त्रिपत्रक होते हैं । **पत्रक**—१२ से १६ × ८ से १० मि० मि०, दन्तुर, अर्धभालाकार या अर्ध अंडाकार होते हैं । पुष्प—सूक्ष्म, पीतवर्ण की मंजरियों में आते हैं । **फली**—दीर्घवृत्ताकार, दबी हुई, दोनों छोर पर पतली एवं २·५ मि० मि० लंबे एक बीज युक्त होती है ।

गुण और प्रयोग—इसके बीज ग्राही होते हैं तथा उदरशूल, अतिसार और आंत्र के विकारों में लाभदायक है । इसका व्यवहार कष्टार्तव, आमवात, गण्डमाला आदि में तथा रक्त शुद्धि के लिये किया जाता है । बच्चों के अतिसार में इसकी लप्सी का व्यवहार करते हैं ।

अथ चन्द्रशूरस्य नामानि गुणाँश्चाह

चन्द्रिका[1] चर्महन्त्री च पशुमेहनकारिका । नन्दिनी कारवी भद्रा वासपुष्पा[2] सुवासरा ॥९६॥
चन्द्रशूरं हितं हिक्कावातश्लेष्मातिसारिणाम् । असृग्वातगदद्वेषि बलपुष्टिविवर्द्धनम् ॥९७॥

चनसूर के नाम तथा गुण—चन्द्रिका, चर्महन्त्री, पशुमेहनकारिका, नन्दिनी, कारवी, भद्रा, वासपुष्पा और सुवासरा ये नाम चनसूर के हैं । **चनसूर**—हिचकी, वात-श्लेष्मा और अतिसार ग्रस्त रोगी तथा रक्तवातग्रस्त रोगियों के लिए हितकर है और बल तथा पुष्टिवर्धक भी है ॥९६–९७॥

२७ चन्द्रिका (हालों)

हि०—हालों, हालिम, चनसुर, चन्दसुर, चन्द्रशूर । **बं०**—हालिम, हालिमा, हालो, चान्दसूर, अलेवेरी । **म०**—आलीव, हलिम, अहालीव । **गु०**—अशेलीओ, अशेरिया, आशाल बीज । **यू०**—तरम राह के बीज । **फा०**—तुख्म तरह तेजक । **अ०**—बाजरुज्जरजीर । **कुमा०**—हालिम । **ता०**—अलिविरइ । **ते०**—अदित यलु । **प०**—तेजक । **सि०**—अहेरो । **क०**—अलिबीज । **अं०**—Common Cress (कॉमनक्रेस) । **ले०**—*Lepidium sativum Linn.* (लेपिडियम् सेटिवम्) Fam. Cruciferae (क्रुसिफेरी) ।

यह सब प्रान्तों में बोया जाता है । इसका **क्षुप**—१ से ३ फीट ऊँचा, मसृण या कुछ रोंएदार होता है । **पत्ते**—विभक्त होते हैं । **पुष्प**—सफेद तथा छोटे होते हैं । **फल**—०·२ इञ्च, चिपटे,

---

१. 'चन्द्रिकाया' इति पाठा० । २. 'वासपुष्पे'ति पाठा० ।

अण्डाकार परन्तु अग्र पर भीतर की तरफ दबे हुये रहते हैं। **बीज**—छोटे, लाल तथा जल में डालने पर लुआबदार होते हैं। अधिकतर इसके बीजों का उपयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में एक सुगन्धि उड़नशील तथा स्थिर तैल पाया जाता है। इसमें आयोडीन (Iodine), लोह, फॉस्फेटस् (Phosphates), पोटेंश (Potash), कुछ लवण, एक तिक्त सत्व एवं जल आदि पदार्थ रहते हैं तथा गन्धक अधिक मात्रा में रहता है। इसके ग्लुकोसाइड (Glucoside) को ग्लुकोट्रोपोइओलिन (Glucotro-poeolin) कहते हैं।

गुण और प्रयोग—चनसुर रसायन, बल्य, वाजीकर, उत्तेजक, आनुलोमिक, दुग्धवर्धक एवं शूलहर है। इसका उपयोग प्रसूतावस्था, रक्तदोष, त्वचा के रोग, नेत्र रोग, यकृत और प्लीहा की जीर्ण वृद्धि, ग्रन्थिरोग, रक्तार्श, श्वास, कास एवं अतिसार आदि में किया जाता है।

(१) इसके फांट का व्यवहार आमाशय के प्रक्षोभ से उत्पन्न हिक्का में किया जाता है। इसको बार-बार थोड़ी-थोड़ी मात्रा में पिलाना चाहिये। इसी प्रकार प्रक्षोभजन्य अतिसार एवं ग्रहणी में भी इससे लाभ होता है।

(२) गरी के साथ इसको बर्फी या दूध में लप्सी बनाकर प्रसूता को दिया जाता है। यह रसायन, पौष्टिक तथा दुग्धवर्धक है। इससे कटिशूल एवं श्वेतप्रदर में भी लाभ होता है। दूध में उबाल कर गर्भपात कराने के लिए प्रयोग में लाते हैं। पुरुषों के लिए भी यह रसायन तथा वाजीकर है एवं इसका व्यवहार शरीर की ऊँचाई बढ़ाने के लिए करते हैं।

(३) मिश्री के साथ इसका चूर्ण कुपचन, अतिसार एवं ग्रहणी आदि में देते हैं।

(४) नींबू के रस में पीसकर इसका लेप कटिशूल, आन्तरिक शोथ, आमवात तथा सन्धिशूल आदि में करते हैं।

(५) इसके पत्र मूत्रल तथा उत्तेजक होते हैं एवं इनका सलाद प्रशीताद (Scurvy = स्कर्वी) नामक रोग में व्यवहार में लाया जाता है।

(६) इसकी जड़ का व्यवहार फिरङ्ग तथा निस्तानिका (Tenesmus = टेनेस्मस्) में किया जाता है।

मात्रा—½-१ तो०।

अथ चतुर्बीजगुणानाह

मेथिका चन्द्रशूरश्च कालाऽजाजी यवानिका। एतच्चतुष्टयं युक्तं चतुर्बीजमिति स्मृतम् ॥९८॥
तच्चूर्णं भक्षितं नित्यं निहन्ति पवनामयम्। अजीर्णं शूलमाध्मानं पार्श्वशूलं कटिव्यथाम् ॥

'चतुर्बीज' (चारदाना) के गुण—मैथी, चनसुर, मंगरैला और अजवाइन इन चारों के बीजों के योग को 'चतुर्बीज (चारदाना) कहते हैं और इस चतुर्बीज का चूर्ण बनाकर नित्य खाने से वात सम्बन्धी रोग, अजीर्ण, शूल, अध्मान, पार्श्वशूल और कमर का दर्द दूर होता है ॥ ९८-९९ ॥

अथ हिंगुनामगुणानाह

सहस्रवेधि जतुकं बाह्लीकं हिङ्गु रामठम् ॥ १०० ॥
हिङ्गूष्णं पाचनं रुच्यं तीक्ष्णं वातबलासनुत्[१]। शूलगुल्मोदरानाहकृमिघ्नं पित्तवर्धनम् ॥

१. 'हृदि'ति पा०।

हींग के नाम तथा गुण—सहस्रवेधि, जतुक, बाह्लीक, हिङ्गु और रामठ ये सब नाम हींग के हैं। **हींग** उष्णवीर्य, पाचक, रुचिकारक, तीक्ष्ण, वात-श्लेष्म को दूर करने वाला, शूल, गुल्म, उदर सम्बन्धी रोग, आनाह (अफरा) और कृमियों को नष्ट करनेवाला एवम् पित्त को बढ़ाने वाला होता है ॥ १००-१०१ ॥

२८ हींग

हि०—हींग। **बं०**—हिंगु। **पं०**—हिंगे, हींग। **म०**—हिंग। **मा०**—हींग। **गु०**—हिंगड़ो, बधारणी, हिंग बधारणी। **ते०**—इङ्गुव, इंगुर, इंगुरा। **ता०**—पेरुंगियम्, पेरुंग्यम्। **क०**—हिंगु। **फा०**—अंगूजह, अंगुजा, अंगुजेह-इलरी। **अ०**—हिल तीत, हिलतीस। **अं०**—Asafoetida (असेफीटिडा)। **ले०**—*Ferula narthex, Boiss*. (फेरुला नार्थेक्स, बॉयस.); F. alliacea Boiss. (फे. एलिएसिआ); Ferula foetida Regel (फेरुला फीटिडा)। Fam. Umbelliferae (अंबेलिफेरी)।

हींग सर्व प्रसिद्ध वस्तु एक विदेशीय वृक्ष का निर्यास है। इसकी उपर्युक्त कई जातियां विभिन्न स्थानोंपर होती हैं जिनसे कुछ कुछ भिन्न प्रकार का निर्यास प्राप्त किया जाता है। अधिकांश मिलावटी हींग बिकती है। इनमें चोखी हींग, हीरा हींग, तलाव हींग इत्यादि अच्छी समझी जाती हैं। जो हींग रूमी मस्तगी के समान वर्ण वाली, गरम घी में डालने से लावा के समान खिल जाने वाली तथा लालिमा लिये भूरे या बादामी रंग की हो वह अच्छी मानी जाती है। उत्तम हींग की डली को तोड़ने से वह भाग बादामी रंग का दिखाई पड़ता है। इसका स्वाद कड़वा और लहसुन के समान खराशदार तथा इसकी गन्ध लहसुन के समान तीव्र होती है। पानी में घोलने से सफेद रंग की दीखाई पड़ती है।

हींग के वृक्ष काबुल, हिरात, खुरासान, फारस एवं अफगानिस्तान आदि प्रदेशों में उत्पन्न होते हैं तथा इस देश के पंजाब और काश्मीर में कहीं कहीं देखने में आते हैं। विभिन्न जातियों में थोड़ा बहुत स्वरूप में अंतर होता है।

इसका **वृक्ष** झाड़ के समान छोटा, ५ से ८-९ फीट तक ऊँचा होता है। **पत्ते** अनेक भागों में विभक्त, अजमोदे के पत्तों के समान कटे किनारे वाले एवं १-२ फूट लम्बे होते हैं तथा टहनियों के अन्त में **फूलों** के गुच्छे लगते हैं। **फल**-तिहाई से तीन चौथाई इञ्च के घेरे में अण्डाकार होते हैं।

चार वर्ष का वृक्ष होने पर इसको काटते हैं और भूमि के पास वाली जड़ को तिरछे तराशने से जो रस निकल कर सूख जाता है उसको दो दिन के बाद खुरच कर संग्रह कर लेते हैं। फिर दो दिन के बाद जड़ को उसी प्रकार ऊपर से तराश कर छोड़ देते हैं और सूखने पर खुरच कर इकट्ठा कर लेते हैं। यही सूखा हुआ पदार्थ हींग है। प्रत्येक वृक्ष से २-३ छटांक से ५-६ छटांक तक हींग मिल सकती है। देशी हींग की अपेक्षा काबुली हींग अच्छी होती है।

साधारण परीक्षा—(१) जल के साथ घोटने से इसका पीताभ दुधिया घोल बनता है जो क्षार मिलाने पर हरिताभ पीत हो जाता है।

(२) थोड़ेसे हींग को गन्धक के तेजाब के साथ गरम करने पर लाल से भूरे रंग का घोल बनता है। इस घोल को अधिक जल से विरल बनाकर (Dilute), छानकर (filtering) उसको क्षारीय करने से एक गाढ़े नीले रंग की चमक उत्पन्न होती है (Purplish-blue fluorescence)।

मिलावटें—हींग में कङ्कड़, वालू, मिट्टी, मूल के टुकड़े, गोदन्ती तथा गोंद आदि मिलाये रहते हैं।

रासायनिक संगठन—यह गन्धक का सेन्द्रिय योग है। इसमें लहसुन में पाये जाने वाला एक उड़नशील तैल ६–१७% रहता है। इस तैल में टरपेन्स (Terpenes), डाइसल्फाइड्स् (Disulphides, $C_7H_{14}S_2$ and $C_{11}H_{20}S_2$) और एक नीले रंग का तरल पदार्थ ($C_{10}H_{16}O$)n रहता है। इसमें राल ४०–६५% रहती है जिसमें ॲसारेसिनोटेनॉल (Asaresinotannol), ॲसारेसिनोल फेरूलिक् एसिड इस्टर (Asaresinol ferulic acid ester) तथा फ्री फेरूलिक् एसिड (Free ferulic acid–1.3%) रहता है। इसके अतिरिक्त इसमें गोंद की मात्रा २५% रहती है। शुद्ध हींग में ६५–७५% मद्यसार मे घुलने वाले पदार्थ रहते हैं तथा राख ३–५% रहती है। इसकी राल का ऊर्ध्व पातन (Dry distillation) करने से अंबेलिफेरोन् (Umbelliferone) प्राप्त होता है लेकिन भारतीय जाति से यह प्राप्त नहीं होता।

गुण और प्रयोग—हींग दीपन, पाचन, वातानुलोमक, उद्वेष्टन निरोधि, उत्तेजक, कफदुर्गन्धिहर, कफनिःसारक, वातनाडियों के लिये बल्य, गर्भाशयसंकोचक एवं कृमिघ्न है। इसका उत्सर्ग फुप्फुस, त्वचा, मूत्र तथा पसीने के द्वारा होता है।

इसका उपयोग आध्मान, शूल, अपस्मार, अपतन्त्रक, वातविकार, श्वास, कास, कुकास एवं हृच्छूल आदि में किया जाता है। हींग को घृत में भूनकर व्यवहार में लाया जाता है जिससे वमन नहीं होने पाता।

(१) फुप्फुस के रोगों मे हींग का अच्छा उपयोग होता है। जीर्ण श्वास नलिका शोथ, दमा, कुकास, बच्चों के फुप्फुसपाक एवं शुष्क कास आदि में इसका व्यवहार किया जाता है। इसके लिये जल के साथ हींग के घोल का व्यवहार करना चाहिये।

(२) आध्मान, शूल, विबन्ध एवं आमाशय तथा आन्त्र की शिथिलता में अजवाइन अथवा एलवा और साबुन के साथ गोली बनाकर दिया जाता है। ऐसे विकारों में हिंग्वाष्टक चूर्ण अथवा हिंगुकर्पूरवटी का बहुत व्यवहार किया जाता है।

(३) विषमज्वर में प्रतिबन्धन की दृष्टि से अन्न के साथ हींग का व्यवहार किया जाता है।

(४) अपस्मार, अपतन्त्रक एवं तज्जन्य अन्य विकारों में इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है।

(५) प्रसव के बाद इसके उपयोग से आर्तव शुद्धि होती है। बार बार होने वाले गर्भपात को रोकने के लिये भी इसका उपयोग करते हैं। गर्भ रहते ही ६ माशे हींग की ६० गोलियां बनाकर प्रारम्भ में १ गोली दिन में दो बार देते हैं। बाद में धीरे धीरे इसकी मात्रा बढ़ाते हुये १० गोली प्रतिदिन देते हैं और फिर प्रसवतक धीरे धीरे इसकी मात्रा कम करते हैं।

(६) आध्मान, शूल एवं आक्षेप आदि में २–३ माशा हींग जल के साथ घोटकर उसकी बस्ति दी जाती है। इससे सूत्र कृमि में भी लाभ होता है।

(७) सीलोन में नारियल के दूध में हींग को उबालकर सर्पदंश के स्थान पर लगाते हैं तथा पानी में इसको घोलकर नाक में भी टपकाते हैं। बिच्छू के काटने पर भी इसको लगाने से लाभ होता है।

(८) बच्चों के पेट फूलने पर इसका लेप पेट पर लगाते हैं तथा कुकास में छाती पर लेप करने से लाभ होता है। नारू तथा दाद पर इसको लगाने से लाभ होता है।

(९) हींग तथा अफीम की गोली दांत के दर्द में दांत के गढे में रखने से लाभ होता है।

(१०) हींग, लहसुन तथा सैंधव आदि पदार्थों से सिद्ध तैल कर्णरोगों में बहुत उपयोगी है। इसको ½–१ चम्मच दूध के साथ दिन में ३, ४ बार या सुबह ४ चम्मच एक साथ ही दूध और मिश्री के साथ पिलाते हैं एवं इसको गर्म करके कान में ३, ४ बूँद डालते हैं। यह तैल बहुत अच्छा प्रतिदूषक (Antiseptic) है एवं इसका अन्तर्बाह्य प्रयोग उपयोगी है।

मात्रा—२–८ रत्ती।

अथ वचाया नामानि गुणाँश्चाह

वचोग्रगन्धा षड्ग्रन्था गोलोमी शतपर्विका। क्षुद्रपत्री च मङ्गल्या जटिलोग्रा च लोमशा॥
वचोग्रगन्धा कटुका तिक्तोष्णा वान्तिवह्निकृत्। विबन्धाध्मानशूलघ्नी शकृन्मूत्रविशोधिनी॥
अपस्मारकफोन्मादभूतजन्त्वनिलान्हरेत्॥ १०३॥

वच के नाम तथा गुण—वचा, उग्रगन्धा, षड्ग्रन्था, गोलोमी, शतपर्विका, क्षुद्रपत्री, मङ्गल्या, जटिला, उग्रा और लोमशा ये सब नाम वच के हैं। वच–उग्रगन्ध युक्त, तिक्त तथा कटुरस वाली, उष्णवीर्य, वमनकारक, अग्निजनक, विबन्ध, आध्मान और शूलको नष्ट करने वाली एवं मल तथा मूत्र का शोधन करने वाली होती है। एवम् मिर्गी, कफ, उन्माद, भूतबाधा, कृमि तथा वायु को भी दूर करने वाली होती है॥ १०२–१०३॥

२९ वच

हि०–वच, घोरवच, घोड़वच। **ब०**–वच। **म०**–वेखण्ड। **ते०**–वासा, वस। **गु०**–वज, घोड़ावज। **क०**–वजे। **ता०**–वशाम्बु। **मला०**–व्वयम्पु। **गोमा०**–येखण्ड। **पं०**–बरि बोज। **फा०**–सोसन जर्द, अगरि तुर्की। **अ०**—उदल बुज, अकरुन, वज, बिज। **यू०**–अकुरुन्। **अं०**–Sweet Flag (स्वीट फ्लॅग)। **ले०**–*Acorus calamus, Linn.* (एकोरस् कॅलॅमस्, लिन.)। *Fam.* Araceae (एरॅसी)।

एशिया खण्ड का मध्य भाग तथा पूर्वी यूरोप बच का उत्पत्ति स्थान माना जाता है। मणीपुर, नागा पहाड़, काश्मीर, सिरमूर और युक्त प्रान्त के कितने ही देशों के दलदल और सजल स्थान, में यह उत्पन्न होती है।

यह गुल्म जाति की बनौषधि ३–४ हाथ ऊँची होती है। इसकी जड़ अन्य पौधों की जड़ की तरह सीधी नहीं रहती बल्कि बहुत सी जटा के सदृश जड़ की शाखायें चारों ओर फैली हुई रहती हैं और इसकी मुटाई मध्यमा उँगली के समान होती है। प्रत्येक गांठ के चारो ओर सघन रोवें से होते हैं। इसके पत्ते लम्बे, पतले और तलवार के समान रहते हैं। मंजरियां सघन, विदण्डिक, २–४ इञ्च लम्बी, लम्ब गोल और ६–१८ इञ्च लम्बे पत्रकोशों से ढकी रहती हैं। वच के पौधों के सर्वाङ्ग में गन्ध आती है और इसकी जड़ में यह अत्यधिक होती है। मूलस्तम्भ तथा राइजोम (Rhizome) को टुकड़े टुकड़े कर बाजार में बेचते हैं। ये भूरे रङ्ग के और सुगन्धित होते हैं जिनके निचले हिस्से पर मूल के निशान रहते हैं तथा ऊपर के भाग में लम्बी गढेदार धारियां होती हैं।

बाजार में वच के नाम से प्रायः कुलिंजन (Alpinia galanga) की जड़ बेची जाती है। इसी लिये जहां वचा (Acorus calamus) की आवश्यकता हो वहां घोरवच नाम से ही औषधि खरीदनी चाहिये। वच के स्थान पर आंतरिक प्रयोग में बालवच का प्रयोग भी शास्त्रोक्त नहीं है न उचित ही है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक सुगन्धि उड़नशील पीले रङ्ग का तैल १.५-३.५%, एकोरिन (Acorin) नामक मधु के समान पतला तिक्त सुगन्धि ग्लुकोसाइड, एकोरेटिन (Acoretin) नामक राल सदृश पदार्थ, कॅलामेन (Calamene) नामक रवेदार क्षाराभ तथा स्टार्च, गोंद, टॅनिन् एवं कॅल्शियम् ऑक्सॅलेट (Calcium oxalate) आदि पदार्थ रहते हैं। इसके उड़नशील तैल में ॲसारिल् ॲल्डिहाइड् (Asaryl-aldehyde), ॲल्फापिनिन (a-pinene) एवं कॅम्फीन् (Camphene) आदि पदार्थ रहते हैं।

गुण और प्रयोग—वच वामक, कफनिःसारक, हृल्लासकर, उद्वेष्टन निरोधि, वातानुलोमक, दीपन, पाचन, मेध्य, वृष्य, कृमिघ्न एवं सुगन्धि है। अधिक मात्रा में देने से यह वामक है।

इसका उपयोग उन्माद, अपस्मार, अपतंत्रक, श्वास, कास, कण्ठरोग, जीर्ण अतिसार, संग्रहणी, आध्मान, शूल, मन्दज्वर, विषमज्वर, कर्णमूल ग्रन्थिशोथ एवं अश्मरी आदि रोगों में किया जाता है।

(१) अपस्मार, अपतन्त्रक एवं अंगघात आदि रोगों के लिये यह बहुत अच्छी औषधि है। इसके सेवन से धारणाशक्ति (मेधा) बढ़ती है। इसके लिये वच को मधु अथवा दूध के साथ अधिक दिन तक सेवन करना चाहिये। ब्राह्मी, शंखपुष्पी तथा वच तीनों समान मात्रा में लेकर इसके चूर्ण को ब्राह्मी के रस की ३ भावनाएं देनी चाहिये। इसको अथवा सारस्वत चूर्ण को ½ से १ माशा मधु एवं घृत के साथ कुछ दिन लेने से उन्माद, स्मरण शक्ति का ह्रास एवं वाणी की जडता आदि दूर होकर बुद्धि का विकास होता है। बेहोशी दूर करने के लिये अन्य औषधियों के साथ इसका अच्छा उपयोग होता है।

(२) यह अधिक मात्रा (१ से २ माशा) में वामक है तथा खांसी और श्वास में वमन कराने के लिये इसको नमक और गरम जल से पिलाना चाहिये। इससे बिना किसी कष्ट के कफ निकल जाता है। यह इपिकाक की अपेक्षा अधिक अच्छी औषधि है। सरदी, गले की सूजन, खांसी तथा बच्चों के सूक्ष्म श्वसनिका शोथ में इसका क्वाथ बहुत उपयोगी होता है। सूखी खांसी में इसका टुकड़ा मुख में रखने से लाभ होता है।

(३) इसमें रहने वाले टॅनिन के कारण इसका उपयोग जीर्ण अतिसार एवं संग्रहणी आदि में किया जाता है। इसके सेवन से आध्मान एवं शूल दूर होता है तथा पाचन सुधर कर भूख बढ़ती है। बच्चों के लिए इसको भूनकर देना चाहिए। यह कृमि तथा पथरी में भी लाभदायक है। दंतोद्भेद के समय इसको चबाने को बच्चों को देते हैं।

(४) मलेरिया आदि विषमज्वरों में अन्य औषधियों के साथ इसके उपयोग से अधिक लाभ होता है।

(५) जयपाल के विष को दूर करने के लिए इसको भूनकर जल के साथ पिलाना चाहिये।

(६) अर्श में भांग और अजवाइन के साथ इसकी धूनी देने से दर्द दूर होता है।

(७) इसका बाह्य प्रयोग अंगघात, आमवात, संधिपीडा, आध्मान, शूल तथा खांसी और श्वास में उपयोगी है।

(८) मक्खी एवं दीमक आदि कीटों का नाश करने के लिए इसका उपयोग होता है।

मात्रा—वामक-१ से २ माशा; अन्य गुणों के लिए-२-४ र०। **अधिक मात्रा से** शिरःशूल होता है। **दर्पनाशक**—सौंफ।

अथ पारसीक (खुरासानी) वचाया नामानि गुणाँश्चाह

पारसीकवचा शुक्ला प्रोक्ता हैमवतीति सा। हैमवत्युदिता तद्वद्वातं हन्ति विशेषतः ॥१०४॥

खुरासानी वच के नाम तथा गुण—पारसीकवचा, शुक्लवचा और हैमवती ये नाम खुरासानी वच के हैं। **खुरासानी वच**—शुक्लवर्ण की (सफेद) होती है तथा गुणों में पूर्वोक्त वच के समान ही होती है किन्तु विशेष करके यह वायु को दूर करनेवाली होती है ॥ १०४ ॥

३० पारसीक वचा (खुरासानी वच)

पारसीक वचा (हैमवती) के संबंध में विद्वानों में कुछ मतभेद हैं। कुछ लोग इसी को बालवच भी कहते हैं। कुछ परम्परा ऐसी है कि आंतरिक प्रयोग में जब 'वचा' लेनी हो तो बालवच नाम से मिलने वाला द्रव्य लिया जाय एवं बाह्य प्रयोग मे 'वचा' के नाम से घोरवच लिया जाय। यद्यपि इसके लिए कोई शास्त्रीय आधार नहीं मिलता और प्रत्यक्षतः वचा के स्थान पर बाह्याभ्यन्तर प्रयोग में घोर वच का उपयोग अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। बालवच के नाम से भी बाजार में भिन्न-भिन्न मूल की गांठें बिकती हैं जिनमें से एक का विनिश्चय श्री ठा० बलवन्तसिंह जी ने किया है। इसका वैज्ञानिक नाम Paris polyphylla (पैरिस पॉलिफाइला) है तथा इसे हिन्दी में दुधवच एवं नेपाली में इसे सतुआ कहते हैं। इसकी मोटी मोटी गांठें जैसी होती हैं। डा० देसाई के मत से मजार पोश (कश्मी०) ले०—*Iris germanica Linn.* (आइरिस् जर्मेनिका) यह बाल बच है। यह कश्मीर में कब्र पर लगाई हुई मिलती है। बाजार में एक बहुत छोटे अन्य प्रकार के मूल भी बालवच के नाम से मिलते हैं।

अथ महाभरीवचा

यस्या लोके कुलिञ्जन इति नामान्तरं तस्या गुणानाह

सुगन्धाऽप्युग्रगन्धा च विशेषात्कफकासनुत्। सुस्वरत्वकरी रुच्या हृत्कण्ठमुखशोधिनी ॥

महाभरी (कुलिञ्जन) के गुण—**महाभरी वच (कुलिंजन)** सुगन्ध तथा उग्रगन्ध युक्त होती है। विशेष करके यह कफ तथा खाँसी दूर करने वाली, स्वर को उत्तम करने वाली, रुचिजनक, हृदय, कण्ठ तथा मुख को शुद्ध करने वाली होती है ॥ १०५ ॥

३१ कुलिंजन

हि०—कुलंजन, कुलिंजन, बड़ा कुलञ्जन। **बं०**—कुरची वच, महाभरी वच, कुलञ्जन। **म०**—कुलिंजन्, कोष्ट कोलञ्जन, मोठे कोलञ्जन। **गु०**—कुलिंजन जानु, कोलिंजन। **सिन्ध०**—कुंजर, कंजर, कांठी। **ता०**—पेररत्तइ। **ते०**—पेड्डादुम्पराशष्ट्रकम्। **मला०**—पेरारट्टा। **क०**—धूम रास्मी। **ब्रह्मी०**—पदगोजी। **फा०**—खिरदारु, खरदारु, खुशरवे दारु एकलान्। **अ०**—इर्क खोलिंजान, खुलंजान, खुलांजाने कस्वी, खुलंजान्-ए-कबीर। **अं०**—Greater Galangal (ग्रेटर

गॅलंगाल); Java Galangal (जावा गॅलंगाल) । लै०—*Alpinia galanga Willd.* (ॲल्पिनिया गॅलंगा) । Fam. Zingiberaceae (झिंजिबेरॅसी) ।

पहले यह जावा और सुमात्रा से आया करता था किन्तु अब बंगाल के पूर्व भाग, दक्षिण भारत, मालावार और गोमान्तक के जंगलों में यह अधिकता से उत्पन्न होता है ।

इसका **क्षुप** आमा हल्दी के आकार का ६–७ फीट ऊँचा होता है । **पत्ते**—९ से १८ इंच लम्बे, १½ से ४½ इञ्च चौड़े, चिकने, आयताकार-भालाकार होते हैं । **फूल**—हरे से सफेद छोटे छोटे आते हैं । **फल**—तिहाई इञ्च गोल नारङ्गी रङ्ग के होते हैं । बहुवर्षायु क्षुप होने के कारण काण्ड के सूख जाने पर भी इसकी जड़ जीवित रहती है । **जड़**—कन्दवत् और सुगन्ध युक्त होती है । इसको टुकड़े-टुकड़े कर सुखा करके बेंचते हैं । ये टुकड़े १ इञ्च से २॥ इञ्च तक मोटे, बाहर से लाल या मोर्चा के समान बादामी रङ्ग के और अन्दर से हलके नारङ्गी बादामी रङ्ग के होते हैं ।

रासायनिक संगठन—इसमें एक सुगन्धित हलके पीले रंग का तेल १·५–४·८% पाया जाता है जिसमें यूजेनॉल (Eugenol 25%), सिनेओल-डी-पिनेन् (Cineole-d-pinene), कॅडेनेन्स (Cadenens), बॅसोरिन् (Bassorin) एवं गॅलॅंगिन् (Galangin) रहते हैं । इसके अतिरिक्त इसमें ३ पीले रवेदार पदार्थ कॅंफेराइड (Kaempferide, $C_{16}H_{12}O, H_2O$), गलॅंगॉल (Galangol), मॉनोमेथिल् ईथर ऑफ गॅलॅंगिन् (Mono-methyl ether of galangin) और स्टार्च २३%, राल, टैनिन, फ्लोबॅफेन (Phlobaphane), वसा और मोम आदि पदार्थ रहते हैं ।

गुण और प्रयोग—प्राणियों में सिरा द्वारा इसके टिंक्चर या क्वाथ के प्रयोग से निम्न प्रभाव दिखलाई देते हैं । रक्त का दबाव पहले कम होकर बाद में ठीक हो जाता है । यह शायद औदरिक रक्तवाहिनियों के विस्फार के कारण होता है । रक्तवहसंस्थान तथा हृदय के ऊपर इसकी अवसादक क्रिया होती है । इसकी अल्प मात्रा से श्वसन क्रिया उत्तेजित तथा अधिक मात्रा से श्वसन केन्द्र का घात होकर अवसादित होता है । इसकी अल्प मात्रा से भी श्वसनिकाओं (Bronchioles) का विस्फार होता है । यह पाइलोकारपीन द्वारा कृत्रिम रूप से उत्पन्न श्वसनिकाओं के संकोच को भी दूर करता है । रक्त के दबाव के कम होने के कारण ही प्रारंभ में मूत्र की मात्रा कम होती है जो बाद में प्रकृत हो जाती है । पृथक्कृत (Isolated) गर्भाशय इसके प्रयोग से शिथिल होता है तथा उसके संकोच नियमित होने लगते हैं । पाचन-संस्थान के ऊपर इसकी क्रिया अन्य सुगन्धि उड़नशील तैलों की तरह होती है ।

कुलंजन उत्तेजक, कफनिःसारक, दीपक, पाचक, वातानुलोमक, बल्य तथा वृष्य है ।

इसका व्यवहार सरदी, जुकाम, आमवात, खांसी, श्वास, स्वर भंग एवं मधुमेह आदि में किया जाता है ।

(१) श्वास, खांसी, कुकास एवं सरदी के लिये यह बहुत अच्छी औषध है । बच्चों एवं वृद्धों के श्वसनसंस्थान के विकारों में इसको मधु के साथ चटाने से बहुत लाभ होता है । इससे श्वासकृच्छ्र दूर होकर ज्वर भी कम होता है । दमे में इसके उद्वेष्टननिरोधि गुण के कारण लाभ होता है । गले के प्रदाह में इसको चूसने से लाभ होता है ।

(२) इसके सुगन्धि, पाचक तथा दीपक गुणों के कारण पाचन के विकारों में यह उपयोगी है तथा अन्य औषधियों को सुगन्धित करने के लिये इसका व्यवहार किया जाता है ।

(३) मधुमेह तथा अपने आप होने वाले मूत्रत्याग (Incontinence) में इसका क्वाथ लाभदायी है ।

(४) मुख की दुर्गन्धि दूर करने के लिये तथा वाजीकरण के लिये इसको चबाते हैं ।

(५) इससे सिद्ध तैल का उपयोग मुखदूषिका तथा कर्णपिटिका आदि चर्म रोगों में किया जाता है ।

(६) दन्तशूल में इसके चूर्ण को दांतों पर रगड़ते हैं ।

(७) अधिक पसीना आता हो तो इसके चूर्ण को शरीर पर रगड़ते हैं ।

(८) इसके बीज का भी उपयुक्त गुणों के लिये व्यवहार होता है ।

मात्रा—२ से ४ र., टिं. ½–१ ड्रा. ।

नोट—इसी की एक अन्य जाति जिसे ॲल्पीनिया ऑफिसिनेरम (Alpinia officinarum Hance) और अं. में लेसर् गॅलॅंगल् (Lesser galangal) कहते हैं, उसका भी व्यवहार कुलंजन के स्थान पर किया जाता है तथा हीनश्रेणी की सोंठ अथवा घोरबच की मिलावट भी इसमें रहती है ।

अथ अपरा सुगन्धा स्थूलग्रन्थिः

यस्या लोके महाभरी इति नाम तस्या गुणानाह

स्थूलग्रन्थिः सुगन्धा स्यात्ततो हीनगुणा स्मृता ॥ १०६ ॥

महाभरी वच के गुण—जो मोटी गांठवाली तथा सुगन्धयुक्त (महाभरी) वच होती है वह पूर्वोक्त बच की अपेक्षा हीन गुण वाली होती है ॥ १०६ ॥

३२ महाभरीबच

हि०—महाभरा वच, महाभरी वच, कुलञ्जन भेद । **बं०**—महाभरी बच, नरकचूर । **पं०**—कचूर, नरकचूर । **मला०**—कठुइंशीकुआ । **लै०**—*Zingiber zerumbet Rosc. ex Smith* (जिंजीबर् जिरम्बेट्) । Fam. Zingiberaceae (झिंजिबेरॅसी) । इस देश के कई प्रान्तों में यह उत्पन्न होती है ।

इसका **क्षुप** गन्ने के समान ३ से ५ फीट ऊँचा और आध इञ्च गोल होता है । **पत्ते**—८–१२ इञ्च लम्बे, २–३ इञ्च चौड़े, नरसल के पत्तों के समान किञ्चित् आयताकार-भालाकार एवं नोकदार होते हैं । १२ से १८ इञ्च तक लम्बी डण्डियों पर फूल आते हैं । **फूल**—फीके पीले रङ्ग के होते हैं । **फल**—एक इञ्च लम्बा दीर्घवृत्ताकार होता है । **बीज**—छोटे छोटे आयताकार काले रङ्ग के होते हैं । **मूलस्तम्भ**—कड़ा, द्विवर्षीय, भीतर से पीत, एवं स्वाद में कुछ आर्द्रक जैसा ही किन्तु कुछ कडवाहट लिये हुए होता है । इसका **व्यवहार** खांसी, श्वास, कृमि, कुष्ठ तथा अन्य चर्मरोगों में किया जाता है एवं इसके अन्य गुण सोंठ की ही तरह हैं ।

अथ चोपचीनीति लोके या प्रसिद्धा तस्या नाम गुणाँश्चाह

द्वीपान्तरवचा किञ्चित्तिक्तोष्णा वह्निदीप्तिकृत् । विबन्धाध्मानशूलघ्नी शकृन्मूत्रविशोधिनी ॥
वातव्याधीनपस्मारमुन्मादं तनुवेदनाम् । व्यपोहति विशेषेण फिरङ्गामयनाशिनी ॥१०८॥

चोबचीनी के नाम तथा गुण–'द्वीपान्तरवचा' यह संस्कृत नाम चोबचीनी का है। **चोबचीनी**–कुछ तिक्तरसयुक्त, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, विबन्ध, आध्मान तथा शूल को नष्ट करने वाली, मल तथा मूत्र का शोधन करने वाली होती है एवं वातव्याधि, अपस्मार (मिर्गी), उन्माद (पागलपन) और शरीर के दर्द को दूर करती है और विशेष करके यह फिरङ्गरोग के दूर करने में उत्तम होती है ॥ १०७–१०८ ॥

३२ चोपचीनी

हि०–चोपचीनी, तोपचीनी, चोबचीनी। **बं०**–तोपचीनी, कुमारिका, शूकचिन। **म०, गु०**–चोपचीनी। **ते०**–पिरङ्गीचेक्का। **ता०**–परङ्गिचेकई। **मला०**–चाइना पैवू या पैरू। **ने०**–चोपचीनी। **यू०**–खसिलियर आशसिनी। **फा०**–चोबचीनी। **अ०**–कशबचीनी, खुशबुस्सीनी। **अं०**–China root (चाइनारूट)। **ले०**–*Smilax china Linn.* (स्माइलॅक्स चाइना)। Fam. Liliaceae (लिलिएसी)।

वच की अनेक जातियों में चोपचीनी भी एक मानी गई है। यह चीन देश में अधिक उत्पन्न होती है और वहीं से इस देश में आती है। इस कारण इसका नाम द्वीपान्तरवचा रखा गया है।

यह लता जाति की वनौषधि बहुत विस्तार में फैलनेवाली होती है। इस लता की **जड़ को** ही चोपचीनी कहते हैं।

चोबचीनी ८–१० अङ्गुल लम्बी, आध से एक इञ्च तक मोटी, गांठदार, बेरेशा, खुरदरी तथा दृढ़ काष्ठवत् जड़ है। इसका स्वरूप सफेदी मायल पीत, गुलाबी एवं किंचित् कालापन युक्त होता है। अधिक पुरानी होने पर चोपचीनी में प्रायः घुन लग जाते हैं, जिससे वह छिद्र युक्त दिखाई देती है। घुनी हुई तथा गांठविहीन चोपचीनी को उपयोग में नहीं लाना चाहिये।

रासायनिक सङ्गठन—इसमें वसा, शर्करा, ग्लूकोसाइड, रञ्जक पदार्थ, सॅपोनिन्, गोंद तथा स्टार्च आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—सम्राट् चार्ल्स पंचम के वातरक्त (Gout) में इस औषधि की बहुत सफलता सिद्ध होने से इसका युरोप में बहुत प्रचार हुआ था। १७ वीं शताब्दी में सार्सापरिला के समान इसका व्यवहार किया जाता रहा।

यह स्वेदल, स्नेहन, उत्तेजक, रसायन, रक्तशोधक, बल्य, वाजीकर, फिरंगहर तथा धातुओं को गलाने वाली (Resolvent = रीसॉल्वेन्ट) है।

(१) इसको दूध में उबाल कर इसमें मस्तगी, इलायची तथा दालचीनी मिलाकर इसका व्यवहार आमवात, वातरक्त, अपस्मार, जीर्ण वातविकार, कार्श्य, धातुक्षीणता, ग्रन्थिविकार तथा फिरंग की तृतीयावस्था में किया जाता है।

(२) अनन्तमूल के साथ इसको पुराने सिरदर्द में देने से लाभ होता है तथा आमवात एवं फिरङ्ग में भी इसका व्यवहार करते हैं।

(३) डा० देसाई के मतानुसार यह श्रेष्ठ रसायन है। इसकी क्रिया त्वचा, सन्धियों के बन्धन तथा रसग्रन्थियों पर होती है। सोज़ाक से उत्पन्न सन्धिशोथ आदि विकारों में तथा फिरङ्ग की द्वितीयावस्था तथा तृतीयावस्था में इससे बहुत लाभ होता है। पोटॅशियम् आयोडाइड् की अपेक्षा यह शीघ्र लाभकर निर्दुष्ट औषध है। फिरङ्गादि से उत्पन्न ग्रन्थिवृद्धि में इसके उपयोग से प्रथम वेदना कम होकर बाद में सूजन कम होती है। चोबचीनी जितना चूर्ण रूप में काम करती है उतना फाण्ट या क्वाथरूप में नहीं करती।

मात्रा—चूर्ण-$\frac{1}{4}$-$\frac{1}{2}$ तो०, सोंठ के साथ दूध में।

इस जाति की जिन अन्य औषधियों का व्यवहार किया जाता है प्रसंगतः उनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है।

(क) जङ्गली उशबा

हि०–जङ्गली उशबा, चोबचीनी। **बं०**–कुमारिका। **मल०**–कुरिविलण्डि। **म०**–घोटवेल। **गु०**–गुटी। **ता०**–मलैतामर **ले०**–*Smilax macrophylla Roxb.* (स्माइलॅक्स मॅक्रोफाइला राक्स)।

यह एक बड़ी लता होती है जो समस्त भारत में उत्पन्न होती है। **पत्ते**—लम्बे, बड़े, अखण्ड और नुकीले रहते हैं जिन पर ५, ७ मोटी सिराएं होती हैं। कांटे दूर-दूर या प्रायः अनुपस्थित होते हैं। **पुष्प**—गुच्छों में आते हैं। **फल**—चने के समान गोल, हरित एवं पकने पर रक्तवर्ण के हो जाते हैं। **मूल**—बहुत तथा सार्सापरिला के समान लाल रंग की होती है। इसकी जड़ों का व्यवहार किया जाता है। इसकी जड़ें ताजी काम में लानी चाहिये।

गुण और प्रयोग—यह स्वेदल, मूत्रल, पौष्टिक, कामोद्दीपक और रसायन है। फिरङ्ग की द्वितीयावस्था, जीर्ण आमवात तथा सन्धिशोथ में इसका बहुत व्यवहार किया जाता है। फिरङ्ग से उत्पन्न होने वाले फोड़े-फुन्सियां, सन्धिवात, अस्थिशोथ, अस्थिवात और शूल तथा ग्रन्थियों की वृद्धि में उपयोगी है। पुराने चर्मरोग तथा गण्डमाला में इससे लाभ होता है। नेपाल में ३ माशा चूर्ण सोजाक तथा अन्य श्लैष्मिककला के स्रावों के लिए दिया जाता है।

मात्रा—१–२ तो० चूर्ण का क्वाथ दिन में एक बार।

(ख) बड़ी चोबचीनी

हि०–बड़ी चोबचीनी। **बं०**–हरिनाशुकचिन। **म०**–गोटी शूकचिन। **पहा०**–हुझिन। **ले०**–*Smilax glabra Roxb.* (स्माइलॅक्स ग्लॅब्रा राक्स)।

यह लता आसाम, सिलहट, खासिया की निम्न श्रेणियां एवं तेनासेरिम आदि स्थानों में उत्पन्न होती है। इसमें कांटे नहीं होते। **पत्र**—नुकीले, पतले, अधोभाग हलके रङ्ग का; **पुष्प**—सफेद विदण्डिक; **मूल**—चोबचीनी की तरह।

गुण और प्रयोग—इसके ताजे मूल का क्वाथ त्वक् रोग तथा फिरंग आदि रतिजन्य उपसर्गों से उत्पन्न फोड़े फुन्सी आदि में दिया जाता है।

(ग) हरिया शुकचिन

पहा०–हूरिन शुकचिन। **बं०**–गुचिआ शूकचिन। **ले०**–*Smilax lanceaefolia Roxb.* (स्माइलॅक्स लॅन्सिफोलिया)।

यह भी लता सिक्किम, हिमालय, आसाम एवं बर्मा में होती है। **पत्र**—पतले तथा उन पर ३ बड़ी शिराएँ रहती हैं। इसकी जड़ चोबचीनी के समान होती है जिसका व्यवहार किया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसकी जड़ का रस निकाल कर आमवात में पिलाते हैं तथा इसके कल्क को वेदनास्थान पर बांधते हैं।

(घ) उशबा, सार्सापरिला

हि०–उशबामग्रबी, सार्सापरिला। **अं०**–Sarsaparilla (सार्सापरिला)। **ले०**–*Smilax ornata Hook.* (स्माइलॅक्स ओर्नेटा)।

यह स्माइलॅक्स की उपर्युक्त विदेशी जाति तथा अन्य विदेशी जातियों के सुखाये हुए मूल हैं। कभी-कभी भौमिक काण्ड (राइजोम) के टुकड़े इसके साथ मिले रहते हैं।

यह बहुत लंबे, धारीदार एवं कुछ लालिमा लिये हुए होते हैं। स्थान भेद से तथा वर्ण, धारी एवं भौमिक या वायवीय भाग की अधिकता इत्यादि के कारण इसके स्वरूप में भिन्नता रहती है। यह प्रायः गंधहीन एवं कुछ मीठापन लिये हुए कटु होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें मुख्यतया सॅपोनिन् (Sapouin) पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—फिरंग, आमवात, जीर्ण चर्म विकार एवं रक्तदोष के लिए यह बहुत प्रसिद्ध औषध रही है। यह कैसे कार्य करती है यह स्पष्ट नहीं है। संभवतः शारीरिक क्षमता को बढ़ाकर या अन्य औषध के प्रचूषण में सहायता का कार्य करती है। विदेशों में इसका उपयोग अनेक बल्य पेयों में किया जाता है। भारतीय सार्सापरिला के नाम से अनन्तमूल का उपयोग किया जाता है।

मात्रा—१ से ३ माशा।

अथ हपुषाद्वयम्

तन्मध्ये प्रथमं फलं मत्स्यसदृशं विस्रगन्धं द्वितीयमश्वत्थफलसदृशं मत्स्यगन्धम् , तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

हपुषा हबुषा विस्रा पराऽश्वत्थफला मता। मत्स्यागन्धाप्लीहहन्त्री विषघ्नी ध्वांक्षनाशिनी॥
हपुषा दीपनी तिक्ता मृदूष्णा तुवरा गुरुः। पित्तोदरसमीरार्शोग्रहणीगुल्मशूलहृत्॥
पराऽप्येतद्गुणा प्रोक्ता रूपभेदो द्वयोरपि॥ ११०॥

दो प्रकार का 'हाऊबेर' होता है। उसमें पहला जो आकार में मछली के समान तथा आम गन्धवाला होता है और दूसरा जो आकार में पीपल के फल के समान तथा मछली के समान गन्धवाला होता है, उन दोनों के नाम तथा गुण—

हपुषा, हबुषा और विस्रा ये तीन नाम प्रथम हाऊबेर के हैं और दूसरे के नाम-अश्वत्थफला, मत्स्यगन्धा, प्लीहहन्त्री, विषघ्नी और ध्वाङ्क्षनाशिनी (इसके खाने से कौवे मर जाते हैं) ये हैं। प्रथम **हाऊबेर**—अग्निदीपक, तिक्त तथा कषायरसयुक्त, मृदु, उष्णवीर्य, पाक में गुरु, पित्त, उदर और वात सम्बन्धी रोग, बवासीर, ग्रहणी, गुल्म तथा शूल को दूर करता है और दूसरा **हाऊबेर** भी इन्हीं पूर्वोक्त गुणों से युक्त होता है अन्तर केवल आकार तथा गन्ध मात्र में ही है।

२४ हपुषा (हाऊबेर)

हि०—हाऊबेर, हाऊबैर, आरार। **बं०**—हबुषा। **म०**—होश। **मा०**—हाऊबोर। **पं०**—हाऊबेर, पेत्थरी, अवहुल। **कुमा०**—चिचिया। **काश्मी०**—वेंथा, पेथरा। **फा०**—तुख्मदुलह, ओरस। **अ०**—अरअर, अबहाल, हब्बउलअरअर। **अं०**—Juniper berry (ज्युनिपेर बेरी)। **लै०**—*Juniperus communis Linn.* (ज्युनिपेरस् कम्युनिस, लिन)। Fam. Cupressaceae (क्यूप्रेसॅसी)।

हाऊबेर दो प्रकार का होता है। एक का संस्कृत नाम 'हपुषा' और दूसरे का 'अश्वत्थफला' है। **हपुषा** और **अश्वत्थफला** वास्तव में दोनों फल और गन्धभेद से दो द्रव्य हैं, परन्तु दोनों के गुण समान हैं और दोनों ही के वृक्ष भी समान ही होते हैं। **हपुषा**-मछली के समान आकृति का एवं आम गन्ध युक्त और **अश्वत्थफल**-मछली के समान गन्ध और पीपर (अश्वत्थ) वृक्ष के फलों के समान फलवाला होता है।

हपुषा के **वृक्ष** हिमालय के पश्चिमोत्तर भाग में कुमाऊँ से पश्चिम की ओर १२,५०० से १४,००० फीट की ऊंचाई तक देखने में आते हैं।

इसका वृक्ष बड़ा नहीं होता बल्कि इसका झाड़ होता है जो सघन, फैला हुआ, तथा बारहो मास हरा भरा रहता है। **पत्ते**—रेखाकार, नोकीले, ५ से १३ मि. मी. लंबे, एक साथ तीन-तीन एवं काण्ड से समकोण बनाते हुए होते हैं। **फूल**—पीत वर्ण के गुच्छों में आते हैं। **फल**—$\frac{1}{4}$-$\frac{1}{3}$ इञ्च के घेरे में गोलाकार, गूदेदार और पकने पर नीलापन युक्त काले या कुछ बैंगनी रङ्ग के दिखाई पड़ते हैं। इनके ऊपर रजावरण रहता है। अग्र भाग पर शल्कपत्र के त्रिविभक्त निशान रहते हैं और आधार पर भी शल्क पत्र के दो चक्र रहते हैं। प्रत्येक फल में तीन-तीन बीज रहते हैं जिनके पृष्ठ पर तैलग्रन्थियां पाई जाती हैं। फलों से तेल निकाला जाता है।

कुछ लोग **लै०**-टॅमॅरिक्स गॅलिका (Tamarix gallica Linn.), **हि०**—झाऊ तथा फ्लूजिया ल्यूकोपाइरस (Flueggea leucopyrus Willd) का ग्रहण करते हैं जो उचित नहीं है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उड़नशील तैल ०.२५%, राल १०%, मधुशर्करा ३३%, एक तिक्त पदार्थ ज्यूनिपेरिन (Juniperin), ऑक्सेलिक एसिड तथा कुछ आर्गेनिक् अम्ल (Organic acid) आदि पदार्थ रहते हैं।

इसी की एक अन्य जाति ज्यू. मॅक्रोपोडा (J. macropoda Boiss) के फल कुछ लम्बे रहते हैं तथा उसमें तैल की मात्रा ३.२४% पाई गई है।

गुण और प्रयोग—हाऊबेर सुगन्धित, मूत्रजनक, वातानुलोमक, आध्मानहर, पाचक, उत्तेजक, वृष्य, रक्तस्कन्दक, आर्तवजनक एवं उपसर्गनाशक है।

इसका उपयोग **उदर रोग, यकृत् प्लीहा के विकार,** आमवात, संधिशोथ, श्वास, जीर्ण श्वसनिकाशोथ, मुखपाक, अर्धावभेदक, **नया तथा पुराना सोजाक, श्वेतप्रदर,** कष्टार्तव, अनार्तव, मधुमेह तथा चर्मरोग में किया जाता है।

(१) यह एक उत्तेजक मूत्रजनक है। इसकी क्रिया प्रत्यक्ष वृक्क के ऊपर होकर मूत्र की मात्रा बढ़ती है। इसका उपयोग हृदय, यकृत् अथवा जीर्ण वृक्कशोथ के कारण उत्पन्न जलोदर में अन्य औषधियों के साथ किया जाता है। तीव्र वृक्क शोथ में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। बच्चों के वृक्कजन्य जलोदर में इससे लाभ होता है।

(२) आध्मान, शूल तथा पाचन के विकारों में इसको मद्यसार के साथ देते हैं।

(३) इसका **तैल** उत्तेजक, मूत्रल तथा वातानुलोमक है एवं इसका उपयोग कटिशूल, आध्मान तथा शूल में किया जाता है। उत्सर्ग के समय प्रत्याक्षेप क्रिया द्वारा यह गर्भाशय का संकोच करता है इसलिए आर्तवस्राव वृद्धि के लिए इसका उपयोग किया जाता है। इसके बाह्य प्रयोग से चर्म में प्रक्षोभ उत्पन्न होता है। वृक्क रोग में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(४) इसका काष्ठ स्वेदल है तथा ग्वायकम और सासाफ्रास के बदले में प्रयुक्त होता है।

(५) हाऊबेर का रस एक अच्छा उपसर्ग नाशक है। स्थूलांत्र दण्डाणु (बी० कोलाइ) जैसे जीवाणुओं का भी यह नाश करता है। इसके धूम्र का व्यवहार किया जाता है तथा यह मांस तथा मद्यों के संरक्षण के लिये भी प्रयोग में आता है। जानपदिक संक्रामक रोगों के मरक (Pestilence) को रोकने की दृष्टि से यह उपयोगी समझा जाता है। मरक के समय इसके चूर्ण का दैनिक सेवन करने से व्याधि का प्रतिषेध होता है।

(६) बच्चों के राजयक्ष्मा में इसको पकाकर देने से भूख बढ़ती है, वजन बढ़ता है और लाभ होता है।

(७) इसके चूर्ण को आमवातादि में संधियों तथा सूजन पर मलते हैं।

(८) यह 'जिन' आदि आपानक मद्यों के निर्माण के लिये युरोप में व्यवहार में आता है।

मात्रा—चूर्ण-२-६ माशा। तैल—½ से १ बूंद पाचक, ४-६ बूंद मूत्रल। स्पिरिट (२० में १) २०-६० बूंद। फांट—२-३ औंस।

अथ विडङ्गस्य नामानि गुणाँश्चाह

पुंसि क्लीबे विडङ्गः स्यात्कृमिघ्नो जन्तुनाशनः। तण्डुलश्च तथा वेल्लममोघा चित्रतण्डुलः॥
विडङ्गं कटु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं वह्निकरं लघु। शूलाध्मानोदरश्लेष्मकृमिवातविबन्धनुत्॥११२॥

वायविडङ्ग के नाम तथा गुण—'विडङ्ग (यह शब्द पुल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग दोनों ही में व्यवहृत होता है), कृमिघ्न, जन्तुनाशन, तण्डुल, वेल्ल, अमोघा और चित्रतण्डुल ये सब वायविडङ्ग के पर्यायवाची शब्द हैं। **वायविडङ्ग**—कटुरसयुक्त, तीक्ष्ण और उष्ण वीर्य होता है तथा रूक्ष, अग्निवर्धक एवं पाक में लघु होता है और यह शूल, आध्मान, उदर, कफ, कृमि तथा वात रोग एवं विबद्धता को दूर करता है॥ १११-११२॥

३५ वायविडङ्ग

प्रायः सभी पंसारी **धनिये के समान** गोल-गोल किञ्चित् लाली युक्त बीज को वायविडङ्ग के नाम से बेचते हैं और अधिकांश वैद्य इसी को लेकर व्यवहार में लाते है किन्तु आज कल के कतिपय विद्वान् वैद्यों की सम्मति है कि **शास्त्रीय 'विडङ्ग'** वास्तव में आज कल व्यवहार में आने वाले फल वायविडङ्ग नही हैं बल्कि 'नाड़ीहिङ्गु' (हि०-डिकामाली) शास्त्रीय विडङ्ग है। उनके मत से शास्त्रीय 'विडङ्ग' की जगह **नाड़ीहिङ्गु** को उपयोग में लेना चाहिये। कुछ विद्वान् **काम्पिल्ल के फल** को ही वायविडङ्ग मानते हैं। इस प्रकार वायविडङ्ग एक भ्रमात्मक औषधि मानी जाने लगी है। किन्तु मेरी समझ में विडङ्ग और नाड़ीहिङ्गु एक वस्तु नहीं हैं और न वायविडङ्ग काम्पिल्ल का फल ही है। प्रचलित विडङ्ग में शास्त्रोक्त कृमिघ्न अग्निदीपक आदि गुण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, अतः सर्वमान्य निर्णय होने तक इसीका व्यवहार औषधि-कार्यों में करना चाहिए।

हिं०-बायविडङ्ग, बायभिडङ्ग, बायभिरङ्ग, भाभिरंग, बाबिरंग। **बं०**-विरंग। **म०**-बावडिङ्ग, **गु०**-वावडीङ्ग। **क०**-वायुविडङ्ग, वायबिलंग। **ते०**-वायुविडंघमु। **ता०**-वायुविलंगम। **पं०**-बबरंग, वाबरंग। **मा०**-बायबिरंग। **सिंहली०**-उम्बेलिया, अम्बेलिया। **ने०**-हिमलचेरी। **अ०**-बरंज कावली, बिरंज काबुली। **फा०**-बरंग कावली, बिरंज कावली, विरङ्ग काबुली। **अं०**-Babreng; Fruits of Embelia ribes (बाब्रिंग, फ्रूट आफ एम्बेलिया राइब्स)। **ले०**-*Embelia ribes Burm.* (एम्बेलिया राइब्स)। Fam. Myrsinaceae (मिर्सिनेसी)।

यह मध्य हिमालय से भारतवर्ष के पहाड़ी भागों में तथा सिलोन से सिंगापुर तक बहुत पाया जाता है।

इसकी **झाड़ी**-बहुत विस्तार में बढ़ने वाली होती है। **छाल**-वातरन्ध्रों के कारण खुरदरी होती है। **टहनियां**-लंबी, पतली, लचीली, गोल एवं लंबे पर्व युक्त होती हैं। **पत्ते**-चर्मवत्,

२ से ४ इञ्च लंबे दीर्घवृत्ताकार, या कुछ भालाकार, तीक्ष्णाग्र, ऊपर से चमकीले एवं अधोतल पर हलके या कुछ रजताभ एवं सूक्ष्म रक्ताभ ग्रन्थियों से युक्त होते हैं। **फूल**-सफेद या किञ्चित् हरियाली लिये फीके पीले रंग के गुच्छों में आते हैं। **फल**-चौथाई इञ्च तक गोलाकार, पकने पर लाल रंगके किन्तु सूखने पर झुर्रीदार काले रंग के दीख पड़ते हैं। फलों में डण्ठल के साथ पांच पट्टों का पुष्प पात्र लगा रहता है और अग्र की तरफ नोकीला रहता है। फल तोड़ने पर चितकबरे लाल रंग के पतले आवरण से युक्त एक-एक बीज निकलता है, जो स्वाद में चरपरा और गरम मसाले के समान सुगन्धित होता है। चित्रतण्डुलः यह पर्याय इसी चितकबरे वर्ण का द्योतक है।

रासायनिक संगठन—इसके फलों में एम्बेलिक् एसिड (Embelic acid) या एम्बेलिन (Embelin, $C_{18} H_{28} O_4$) नामक एक सुनहरे पीले रंग का रवेदार पदार्थ २·५% पाया जाता है। यह जल से अघुलनशील तथा मद्यसार, ईथर, क्लोरोफार्म और बेंझीन में घुलनशील होता है। क्षारीय घोल में यह घुलकर घोल लाल रंग का हो जाता है। इसके अतिरिक्त अल्प मात्रा में क्रिस्टेम्बिन (Christembine) नामक एक क्षाराभ तथा तैल, उडनशील तैल, रञ्जक द्रव्य, टॅनिन एवं राल सदृश पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह उत्तम कृमिघ्न, वातानुलोमक, वातहर, दीपन, पाचन, वातनाडी संस्थान के लिये बल्य, रक्त शोधक, आनुलोमिक तथा रसायन है। रसग्रन्थियों पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। इसका उत्सर्ग मूत्रद्वारा होता है जिससे मूत्र लाल रंग का हो जाता है।

(१) स्फीतकृमि (Tape-worm) के लिये यह अत्युत्तम औषधि है। मेलफर्न (Male-fern) के समान इससे मरोड नहीं होती और अधिक लाभ होता है। बच्चों को ४ माशा तथा बड़ों को ८ माशा चूर्ण मधु या दही के साथ सुबह खिलाकर ४ घंटे पश्चात् एरण्ड तैल अथवा कोई विरेचन देना चाहिये। अथवा कोष्ठ शुद्धि के पश्चात् रातमें इसका चूर्ण मठ्ठे के साथ देकर दूसरे दिन सुबह विरेचन देना चाहिये। इससे मरे हुए कृमि निकल जाते हैं। अन्य कृमियों पर इससे लाभ नहीं होता। इसका कृमिघ्न गुण एम्बेलिक् एसिड के कारण है। इसके लवण अमोनियम् एम्बेलेट (Ammonium embelate) (१½-३ र०) का भी उपयोग मधु के साथ अच्छा होता है। इसके पूर्व तथा पश्चात् एरण्ड तैल से विरेचन कराना चाहिये।

(२) यह एक अच्छा रसायन है। सुश्रुत में एक 'सर्वोपघातशमनीय' नामक प्रयोग बतलाया है। नित्य एक महीने तक विडंग के मगज का चूर्ण तथा मुलेठी खाकर ऊपर से ठण्डा जल पीना चाहिये। पथ्य में बिना नमक मूंग का आंवले के साथ सिद्ध किया यूष तथा घी और भात औषध पचने पर लें। इसके उपयोग से सब प्रकार के अर्श अच्छे होते हैं। ग्रहण शक्ति तथा धारणा शक्ति बढ़ती है। शरीर के सभी प्रकार के कृमि नष्ट होकर शरीर स्वस्थ होता है। इसके हर साल प्रयोग से मनुष्य निरोग तथा शतायु होता है। इससे सब प्रकार के पुराने रोग जैसे अर्श, संग्रहणी, प्रमेह, कुष्ठ, क्षय, श्वास, उपदंश एवं व्रण आदि अच्छे होते हैं तथा हैजा, प्लेग आदि उपसर्गों का भय नहीं रहता।

(३) बालकों के सभी रोगों की यह अच्छी औषधि है। सुखण्डी, आध्मान, शूल, कुपचन एवं अग्निमांद्य आदि में दूध में इसको डालकर उबालते हैं और वही दूध पिलाते हैं। इससे बच्चे तन्दुरुस्त रहते हैं। यदि इसके साथ अनन्तमूल भी दिया जाय तो अधिक लाभ होता है।

(४) गण्डमाला के लिये—वायबिडङ्ग, गुग्गुल, मनःशिला तथा शङ्खभस्म, मधु और घृत के साथ देने से धीरे २ लाभ होता है।

(५) चर्म रोगों में इसका आन्तरिक एवं बाह्य प्रयोग किया जाता है। दाद में इसके लेप से लाभ होता है।

(६) मज्जातन्तु के रोग जैसे अर्धांगघात, आक्षेप एवं अपस्मार आदि में लहसुन के साथ दूध में उबाल कर देना चाहिये।

(७) पीनस, शिरःशूल तथा अर्धावभेदक में इससे सिद्ध तैल के नस्य से लाभ होता है। शिरःशूल में कपाल पर इसकी मालिश करनी चाहिये।

(८) बिच्छू के काटने तथा सर्प दंश पर इसका उपयोग लिखा गया है।

(९) इसका ताजा रस शीतल, मूत्रल तथा आनुलोमिक होता है।

मात्रा—चूर्ण ४ से १६ माशा।

३६ विडङ्ग भेद

सं०–विडङ्गभेद। **हि०**–वायविडङ्ग भेद, बायविरङ्ग। **अवध०**–बेबरङ्ग। **देहरादून**–बायविरङ्ग, गैया। **गोंड**–कोपडह्ली। **कुरकु०**–भारङ्गेली। **मु०**–आमटी, गोंदली, बार्बटी। **ने०**–कलय बोगोटी। **अं०**–Basal (बासल)।

ले०–E. tsjeriam-cottam, A. DC. (ए० त्स्जेरियम्-कोट्टम, ए० डीसी०)।

Fam. Myrsinaceae (मिरसिनॅसी)।

यह हिमालय पहाड़ के पूर्व की ओर बङ्गाल तथा दक्षिण की ओर सिलोन तक कहीं न कहीं पाया जाता है।

इसके **वृक्ष** छोटे और बहुत झाड़दार होते हैं। पत्ते कुछ अधिक बड़े होते हैं तथा शिराएँ कुछ भुरचई रोमावरण से युक्त होती हैं। **फूल**—हरियाली लिये सफेद रङ्ग या हरापन युक्त फीके पीले रङ्ग के बहुत छोटे छोटे आते हैं। **फल**—छोटे छोटे गोल होते हैं और लंबाई में महीन धारीदार होते हैं।

गुण और प्रयोग—यह वातानुलोमक, कृमिघ्न, अर्शोघ्न, शोथप्रतीकारक और रसायन है। इसका उपयोग विडङ्ग के समान किया जाता है। बाजार में दोनों ही जाति के फल मिले हुये रहते हैं।

(१) यह भी विडङ्ग के समान स्फीतकृमि नाशक होता है।

(२) गण्डमाला में अनन्तमूल के साथ इसका क्वाथ पिलाते हैं तथा ठण्डे जल में पीसकर गाठों पर लेप करते हैं।

(३) दन्तशूल में इसका चूर्ण हींग के साथ दांत के गढे में रखने से लाभ होता है तथा इसका मञ्जन में व्यवहार करते हैं। इसके मूल की छाल का भी इसमें उपयोग होता है।

(४) इसके कोमल पत्तों का सोंठ के साथ क्वाथ बनाकर गले की सूजन, मुख के छाले एवं व्रण में कवल कराने से लाभ होता है।

(५) न्यूमोनिया तथा अन्य छाती के विकारों में चावल की मांड के साथ इसकी छाल को उबाल कर पिलाते हैं तथा छाल पीसकर छाती पर लेप करते हैं। इसके फलों को पीसकर मक्खन के साथ छाती पर लगाने से फुफ्फुसावरण शोथ में लाभ होता है तथा शिरःशूल में भी इसी प्रकार कपाल में इसका लेप करते हैं।

३७ नाड़ी हिङ्गु (डिकामाली)

नाडीहिङ्गु पलाशाख्या जन्तुका रामठी च सा।
वंशपत्री च पिण्डाह्वा सुवीर्य्या हिङ्गुनाडिका ॥ रा. नि.

सं०–नाडीहिङ्गु, पलाशाख्या, जन्तुका, रामठी, वंशपत्री, पिण्डाह्वा, सुवीर्य्या, हिङ्गुनाडिका। **हि०**–नाडीहिङ्गु, नारीहींग, कलपतीहींग, डिकामाली, डिकेमाली, कमरी। **ब०**–हिंगुविशेष। **म०**–डिकेमाली। **गु०**–डीकामारी। **काठी०**–मालण, मालडी। **क०**–डिक्कामल्लि। **ता०**–कुंबै। **ते०**–गेरिबिक्कि, करिंगा, तेल्लामंगा। **अ०**–कनखाम। **अं०**–Gummy Gardenia (गम्मी गार्डेनीया); Cambi resin (कॅम्बी रेसिन)। **ले०**–*Gardenia gummifera Linn.* (गार्डेनिया गम्मीफेरा)। Fam. Rubiaceae (रूबिएसी)।

इसके वृक्ष अधिकतया दक्षिण भारत में पाये जाते हैं। इसका **वृक्ष**—छोटा तथा झाड़दार होता है। **पत्ते**–विनाल, ४·५–७ × २–२·५ से० मी० बड़े, दीर्घवृत्ताभ आयताकार, स्वरूप में कुछ अमरूद के पत्तों के समान तथा चिकने, चमकीले होते हैं। **फूल**–सुगंधहीन, प्रारंभ में श्वेत किन्तु बाद में पीतवर्ण के १ से ३ साथ साथ रहते हैं। **फल**–२·५–३·८ से० मी०, आयताकार या दीर्घ वृत्ताभ, चिकना, लंबाई में धारीदार एवं नोकदार होता है।

इन **पौधों** की कोमल शाखाओं के बीच तथा कलियों में से जाड़े के दिनों में हरियाली लिए हुए किञ्चित् पीले रंग का **गोंद** निकलता है। उसी को **'डीकामाली'** कहते हैं। इसकी **छाल** से गोंद नहीं निकलता। जंगली गोंड लोग ठीकरों में इकट्ठा कर सुखा करके बाजार में बेचते हैं। इस गोंद में छोटी छोटी लकड़ियां, फूस घास आदि मिली रहती है अत एव इसे गरम जल में घोल, छान एवं सुखा करके औषधि के काम में लेना चाहिये। शुद्ध डिकामाली में बिलार के मूत्र जैसी गन्ध आती है तथा वह कुछ आर्द्र एवं चमकीला रहता है और उसके चूर्ण बनाने में कठिनाई होती है।

गुण

नाड़ीहिङ्गु कटूष्णं च कफवातार्त्तिशान्तिकृत्। विष्ठाविबन्धदोषघ्नमानाहामयहारि च (रा० नि०)

नाडीहिंगु—कटु, गरम, कफ और वात की पीड़ा को शमन करने वाली तथा विष्ठा, विबन्ध और आनाह रोग को नष्ट करने वाली है।

नाडीहिङ्गुस्तु कटुकस्तीक्ष्णश्चोष्णश्च दीपकः।
कफवातमलस्तम्भमनोमोहामनाशनः ॥ (निघण्टुरत्नाकरः)

नाडीहिंगु—कटु, तीक्ष्ण, गरम, अग्निप्रदीपक तथा कफ, वात, मलबन्ध, मन का मोह और आम का नाश करनेवाली है।

रासायनिक संगठन—इसमें दो प्रकार के राल के सदृश पदार्थ रहते हैं जिसमें से गार्डेनिन् (Gardenin) रवेदार सुनहले पीले रंग का तथा दूसरा डिकेनाली (Dikenali) कुछ मुलायम तथा हरे रंग का होता है।

गुण और प्रयोग—यह उद्वेष्टन निरोधि, वातानुलोमक, अग्निदीपक, विरेचक, कृमिघ्न, ज्वरहर, स्वेदजनन, श्लेष्मनिःसारक, त्वक् दोषहर एवं प्रतिदूषक है।

गुणों में बायबिडङ्ग और डिकामाली बहुत समानता रखती है। किन्तु शास्त्रों में बिडङ्ग को कृमिघ्न लिखा है और डिकामाली के विषय में उसकी कृमिघ्नता के गुण का स्पष्टीकरण नहीं किया

है। आधुनिक शोध द्वारा सिद्ध हुआ है कि डिकामाली भी विशेष कृमिघ्न है। नाड़ीहिङ्गु के प्रयोग से कोष्ठान्तर्गत वर्त्तुलाकार कृमि नष्ट या निर्जीव हो जाते हैं। वायविडङ्ग—पक्वाशय के लम्बे चिपटे कृमियों का विनाशक है। डिकामाली—इन कृमियों का नाश नहीं कर सकती। इससे गोल (Round) या कुछ लम्बे नन्हें नन्हें कृमियों का नाश होता है। डिकेमाली का फाँट नियत कालिक ज्वर में देने से कम्पन कम होता है। आन्त्र की विकृतियां जैसे आध्मान, कुपचन एवं शूल आदि में इससे लाभ होता है। बच्चों को दन्तोद्भव के समय जो पाखाना एवं कय आदि विकार होते हैं उसमें इससे अच्छा लाभ होता है। आध्मान में एलुवा के साथ पेट पर इसका लेप करते हैं तथा डिकेमाली खिलाते हैं। इसके फल विरेचक तथा कृमिघ्न होते हैं। मोटापा तथा प्लीहावृद्धि में इसका गोंद व्यवहार किया जाता है। बाहरी प्रयोग से दूषित व्रण साफ किये जाते हैं। इससे कीड़े नहीं पड़ने पाते तथा पड़े हुए कीड़े निकल जाते है और मक्खियां नहीं बैठने पातीं। इससे दन्तशूल में लाभ होता है। नारू में इसे ५ र० की मात्रा में देते हैं। अतएव नाड़ीहिङ्गु शास्त्रीय 'विडङ्ग' कदापि नहीं हो सकती। **मात्रा—**चूर्ण ½–२ र०।

अथ तुम्बुरुफलस्य नामानि गुणाँश्चाह

तुम्बुरुः सौरभः सौरो वनजः सानुजोऽन्धकः ॥ ११३ ॥
तुम्बुरु प्रथितं तिक्तं कटूपाकेऽपि तत्कटु । रूक्षोष्णं दीपनं तीक्ष्णं रुच्यं लघु विदाहि च ॥११४॥
वातश्लेष्माक्षिकर्णौष्ठशिरोरुग्गुरुताकृमीन् । कुष्ठशूलारुचिश्वासप्लीहकृच्छ्राणि नाशयेत् ॥११५॥

'तुम्बुरु' फल के नाम तथा गुण—तुम्बुरु, सौरभ, सौर, वनज, सानुज और अन्धक ये नाम 'तुम्बुरु फल' के हैं। **तुम्बुरु फल—**तिक्त तथा कटुरस युक्त है और विपाक में भी कटुरस युक्त है। यह रूक्ष, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, तीक्ष्ण, रुचिजनक, पाक में लघु और विदाही होता है। यह वात-श्लेष्म, नेत्र, कर्ण, ओष्ठ तथा शिर के रोगों को एवं गुरुता (शरीर का भारीपन), कृमि, कुष्ठ, शूल, अरुचि, श्वास, प्लीहा और मूत्रकृच्छ्र इन सब रोगों को भी दूर करता है॥ ११३–११५ ॥

३८ तुम्बुरु

हि०—तुम्बुरु, तुम्बुल, तेजफल। **बं०—**तम्बुल, तुम्बुरु फल, नेपाली धने, नेपाली धनिया। **म०—**नेपाली धनियां। **मा०—**तूगरू। **क०—**तुम्बुरु। **ते०—**तुम्दुरलु। **पं०—**तुम्बर। **गु०—**तुम्बुरुफल। **लिपचा०—**तंग्रु कंग। **ले०—***Zanthoxylum alatum Roxb.* (झॅन्थोक्साइलम् ॲलॅटम्); *Zanthoxylum acanthopodium DC.* (झॅन्थोक्साइलम् ॲकॅन्थोपोडियम) दूसरी जाति। Fam. Rutaceae (रूटॅसी)।

यह हिमालय की गरम तराइयों में जम्मू से भूटान तक, खासिया पहाड़, टेहरी, गढ़वाल, नाग पहाड़, विजिगापट्टम और गंजाम के पहाड़ों पर पाया जाता है।

इसका **वृक्ष—**झाड़ीदार या क्वचित् छोटे वृक्षवत् रहता है। **कांटे—**सीधे, १–२ से. मी. लंबे एवं अंडाकार आधार के ऊपर रहते हैं। **पत्ते—**संयुक्त लंबे पत्र दण्ड वाले, एवं आधार की तरफ सपंख तथा गुलाबी एवं सीधे काँटों से युक्त होते हैं। **पत्रक—**५ से ११, भालाकार, न्यूनाधिक दन्तुर, ऊपर से चमकीले एवं नीचे से हलके रंग के होते हैं। छोटे छोटे पीले रङ्ग के **फूलों** के गुच्छे लगते हैं। **फल—**काली मरिच के समान झुमकों में रहते हैं, किन्तु उनके मुख फटे होते हैं। फलों में सुगन्धि आती है। इन फलों के ऊपर तेलिया राल की गाँठे

होती हैं तथा इनके अन्दर कागज के समान पड़दा रहता है। फल प्रायः खाली रहते हैं किन्तु कभी कभी उनके अन्दर गोल, काले चमकीले बीज रहते हैं। उत्तर हिन्दुस्तान में इसका व्यवहार किया जाता है। दक्षिण में इसके स्थान पर **ले०—**झॅ. र्हेट्सा (Z. rhetsa DC.), **हि०—**चिरफल, तिरफल, के फल का व्यवहार किया जाता है जो तुंबुरु के फल से बड़े होते हैं। उन पर तेलिया राल की गांठें तथा अन्दर कागज के समान पडदा नहीं रहता। उनका स्वाद चटपटा अकरकरहा के समान एवं गन्ध संतरे के छिलके के समान होती है।

रासायनिक सङ्गठन—इसकी छाल में एक कडुवा पदार्थ, उड़नशील तैल और राल रहती है। यह कडुवा पदार्थ दारुहरिद्रा में पाये जाने वाले बर्बेरीन (Berberine) के सदृश होता है। इसके फलों में एक उड़नशील तैल, राल, एक अम्ल पदार्थ और एक रवेदार पदार्थ झॅन्थोक्थाइलिन् (Xanthoxylin) पाया जाता है। यह तैल यूकॅलिप्टस् (Eucalyptus) तैल के सदृश गन्ध एवं गुणवाला होता है।

गुण और प्रयोग—यह सुगन्धि, उष्ण, दीपन, पाचन, वातानुलोमक, ग्राही और उत्तेजक है। इसकी क्रिया गन्धाबिरोझा तथा यूकॅलिप्टस् तेल के समान होती है। इसके छाल की क्रिया दारुहरिद्रा के समान होती है।

(१) ज्वर, कुपचन, अतिसार, हैजा एवं मंदाग्नि आदि में इसके मूलत्वक् और फल का फांट **उत्तेजक** तथा बल्य औषध के रूप में दिया जाता है।

(२) दमें में इसका गुडाखू बना कर धूम्रपान उपयोगी है।

(३) गले की सूजन में इसके ताजे पत्तों को पीस कर चावल के आटे के साथ गरम करके बांधने से लाभ होता है।

(४) यह एक अच्छा प्रतिदूषक (Antiseptic) होने के कारण व्रणों के लिये इसके फलों का आन्तरिक तथा बाह्य प्रयोग किया जाता है। इसके मूलत्वक् क्वाथ से व्रण प्रक्षालन से लाभ होता है।

(५) इसके फलों का व्यवहार **दन्तशूल** में किया जाता है। इसकी दातुन दाँतों के लिये अच्छी समझी जाती है एवं छाल तथा फल का दन्तमञ्जनों में प्रयोग किया जाता है।

(६) इसका तैल प्रतिदूषक, कीटाणुनाशक तथा दुर्गन्धिहर है।

मात्रा—फल—२–५ र., छाल—१–२ तो. फ़ांट बना कर।

३९ तिरफल

सं०—तुंबरु। **म०—**चिरफल, तिसल। **ते०—** इरतचै। **ता०—**राचामम्। **क०—**जिसुमी मारा। **ले०—***Zanthoxylum rhetsa* DC (झॅन्थोक्साइलम् र्हेट्सा)। Fam. Rutaceae (रुटॅसी)।

यह मध्यम ऊंचाई का कटीला वृक्ष दक्षिण में विशेषकर कोंकण में होता है। इसके **पत्ते—**सदलपर्ण एवं मोटी टहनियों के अग्र पर समूहबद्ध होकर रहते हैं। **पत्रक—**प्रायः १९–२५, तून के सदृश, आयताकार या प्रासवत्, अखण्ड या गोल दन्तुर धार वाले होते हैं। **पुष्प—**छोटे, पीले, गुच्छों के रूप में। **फल—**गुच्छों के रूप में, कच्ची अवस्था में हरे तथा बाद में काले से हो जाते हैं। अन्य वर्णन ऊपर तुम्बुरु के साथ दिया गया है। इसके फल तथा जड़ की छाल का प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक सङ्गठन—तुम्बुरु के समान तैल, राल आदि।

गुण और प्रयोग-इसके गुण तुम्बुरु के समान हैं। इसके मूलत्वक् की क्रिया दारुहरिद्रा, मझेरियून, चोबेहयात या पीतचम्पक के छाल की तरह होती है। इसकी जड़ सुगन्धि, कड़वी, मूत्रल तथा पौष्टिक है।

(१) **इसके** फल उत्तेजक, ग्राही, दीपन एवं पाचन होते हैं और इनका व्यवहार, आध्मान, कुपचन, अजीर्ण एवं अतिसार आदि में किया जाता है। सड़ी हुई मछलियों के खाने से उत्पन्न अजीर्ण, वमन एवं अतिसार में इसका व्यवहार करते हैं। मछली खाने वालों के लिये यह पाचक है। तिरफल तथा अजवायन का अर्क हैजे में दिया जाता है। आमवात में मधु के साथ इसे खिलाते हैं।

(२) मूलत्वक्—शिथिलताजन्य कुपचन में प्रयोग में लाई जाती है। यह मूत्रल होती है। दन्तशूल में तथा लकवा से जिह्वा का कार्य ठीक न होता हो तो इसे चबाने को देते हैं। जीर्ण आमवात में भी इससे लाभ होता है। यह वृष्य, कड़वी और सुगन्धि होती है और फल की तरह भी इसका उपयोग किया जाता है।

मात्रा—बीज निकाले फल का चूर्ण—१-२ र. मधु के साथ; मूलत्वक् १-२ तो. फांट बना कर नित्य एक बार।

अथ वंशलोचनस्य नामानि गुणांश्चाह

स्याद्वंशरोचना वांशी तुगाक्षीरी तुगाशुभा। त्वक्क्षीरी वंशजा शुभ्रा वंशक्षीरी च वैणवी॥
वंशजा बृंहणी वृष्या बल्या स्वाद्वी च शीतला। तृष्णाकासज्वरश्वासक्षयपित्तास्रकामलाः॥
हरेत्कुष्ठं व्रणं पाण्डुं कषाया वातकृच्छ्रजित्॥ ११७॥

वंशलोचन के नाम तथा गुण—वंशरोचना, वांशी, तुगाक्षीरी, तुगा, शुभा, त्वक्क्षीरी, वंशजा, शुभ्रा, वंशक्षीरी और वैणवी ये नाम वंशलोचन के हैं। **वंशलोचन**—बृंहण (धातुवर्धक), वृष्य (वीर्यवर्धक), बलकारक, स्वादु, कषाय रसयुक्त और शीतल होता है और यह तृष्णा, कास, ज्वर, श्वास, क्षय, रक्तपित्त, कामला, कुष्ठ, व्रण, पाण्डु, वात तथा मूत्रकृच्छ्र को दूर करता है॥

४० वंशलोचन

हिं०-वंशलोचन, वंशलोचन। **ब०**-बांस कावर। **म०**-वंसलोचन। **गु०**-वंशकपूर। बांसकपूर। **क०**-वंशलोचना, वंशरोचना, वंशरोचना। **ते०**-तवक्षीरी, तरक्षीरी, वंशलोचनमु। **ता०**-वंशलोचनम्। **फा०**-तवासीर, तवासीर। **अ०**-तवाशीर। **अं०**-Bamboo Manna (बाम्बूमन्ना)। **लै०**-*Bambusa arundinacia Willd* (बांबुजा अरूण्डिनेसिया)। Fam-Gramineae (ग्रॅमिनी)।

बांस के वृक्ष भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों में उत्पन्न होते हैं, विशेषकर बङ्गाल की तरफ इसकी खेती होती है।

मोटे और दृढ बांस के भीतर एवं बड़े मोटे पोली जाती के पहाड़ी बांसों के भीतर जिसे नजला बांस कहते हैं जब सफेद रस सूखकर कंकर के समान बन जाता है, तब इस सफेद कंकरी को वंशलोचन कहते हैं। यह केवल मादा जाति के ही बांसों में जमता है। बांसों को काट कर जब फाड़ते हैं तब किसी-किसी बांस के भीतर से यह निकलता है। कहते हैं कि स्वाती नक्षत्र का जल बांस के भीतर पड़ने से उसमें वंशलोचन उत्पन्न होता है। असली वंशलोचन नीलापन युक्त सफेद रङ्ग का होता है, लकड़ी पर घिसने पर रेशा नहीं उभरती तथा जल में डालने पर पारदर्शक हो जाता हैं लेकिन मिट्टी के तेल में डालने पर पारदर्शकता कम हो जाती है। स्वाद में यह फीका होता है। लेकिन आजकल बाजार में प्रायः नकली वंशलोचन ही बिकता है जो देखने में बहुत सुन्दर नीली आभा युक्त बड़े-बड़े कंकड़ों के रूप में होता है। पहले असली वंशलोचन जावा, सिङ्गापुर आदि से आता था। अब तो शायद किसी रासायनिक विधि से यह तैयार करके असली के नाम पर बिका करता है जिसका स्वाद कुछ तीक्ष्ण रहता है। वंशलोचन के अतिरिक्त बांस के कोमल प्रांकुर, पत्र, गांठ, बीज तथा मूल का व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—वंशलोचन में सिलिका (Silica) ९०% या सिलिसिक् एसिड के हाइड्रेट के रूप में सिलिकम् (Silicum as hydrate of silicic acid), मंडूर (Peroxide of iron), पोटॅश (Potash), चूना, ॲल्यूमिनिया (Aluminia) तथा कुछ वानस्पतिक पदार्थ जैसे कोलिन (Colin), बिटेन (Betain), न्यूक्लिएस (Nuclease), यूरिएस (Urease), प्रभूजिन एवं कार्बोज के पाचक किण्व तथा स्नेहविलेयक किण्व (Proteolytic, diastatic and emulsifying enzymes) तथा सायनोजेनेटिक् ग्लुकोसाइड (Cyanogenetic glucoside) आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

बांस की राख में सिलिका २८, चूना ४, मॅग्नेशिया ६, पोटॅशियम् ३४, सोडियम् १२, क्लोरीन २, गंधक १० भाग और कुछ जल रहता है। कुछ लोग इसके क्षार को तथा असली वंशलोचन को गरम करके जल में डालते हैं और सूखने पर वंशलोचन के स्थान पर बेचते हैं।

गुण और प्रयोग—(१) वंशलोचन उत्तेजक, ज्वरहर, कफनिःसारक, बल्य, वृष्य, प्यास-शमन करने वाला, उद्वेष्टननिरोधि एवं ग्राही होता है। इससे श्वसनसंस्थान की श्लेष्मलकला को पुष्टि मिलती है तथा कफ की मात्रा कम होती है। इससे बने हुए सितोपलादि चूर्ण का व्यवहार जीर्णज्वर, श्वास, कास, क्षय, मन्दाग्नि, कमजोरी, कफ में खून जाना, दाह, पूयमेह, मूत्रदाह तथा वातविकार एवं सर्पदंश में किया जाता है। ग्राही औषधियों के साथ जीर्ण संग्रहणी तथा आन्तरिक रक्तस्रावों में इसका उपयोग करते हैं।

(२) इसकी कोमल गांठ तथा पत्रों का क्वाथ गर्भाशय संकोचक होता है। इसका उपयोग प्रसूता में आर्तवशुद्धि के लिए एवं अन्य आर्तव विकारों में किया जाता है।

(३) इसके कोमलपत्र का उपयोग कफ से खून जाना, कुष्ठ, ज्वर तथा बच्चों के सूत्रकृमि में किया जाता है।

(४) इसके प्रांकुर (Shoots) का रस निकाल कर कृमियुक्त घावों पर डाला जाता है तथा बाद में उसका पोल्टिस उन पर बांध दिया जाता है। जिन लोगों का पाचन ठीक नहीं होता उनको इसके कोमल प्रांकुरों से बने सिरके का उपयोग मांस मछली के साथ उपयोगी होता है। इससे भूख बढ़ती है तथा पाचन भी ठीक होता है।

(५) इसकी गाठों को पीसकर जोड़ों के दर्द पर उसका बन्धन उपयोगी है।

(६) इसके बीज को गरीब लोग चावल के रूप में खाते हैं।

(७) इसका मूल विस्फोटक व्याधियों (Eruptive affections) में बहुत उपयोगी है तथा दाद पर लाभदायक है।

(८) इसके पुष्परस का उपयोग कर्णबिन्दु के रूप में कर्णशूल एवं बाधिर्य आदि में किया जाता है।

मात्रा—चूर्ण ½-२ माशा।

अथ समुद्रफेनस्य नामानि गुणांश्चाह

समुद्रफेनः फेनश्च हिण्डीरोऽब्धिकफस्तथा ॥ ११८ ॥

समुद्रफेनश्चक्षुष्यो लेखनः शीतलश्च सः। कषायो विषपित्तघ्नः कर्णरुक्कफहृत्सरः ॥११९॥

समुद्रफेन के नाम तथा गुण—समुद्रफेन, फेन, हिण्डीर और अब्धिकफ ये सब नाम 'समुद्रफेन' के हैं। **समुद्रफेन**—नेत्रों के लिये हितकर, लेखन, शीतल, कषाय रस युक्त, विष और पित्त का नाशक, कर्णरोग तथा कफ का भी नाशक और यह सारक भी होता है ॥ ११८-११९ ॥

४१ समुद्रफेन

हि०–समुद्रफेन, समुन्दरफेन, दर्या का कफ। **बं०**–समुद्रेर फेना, समुद्रफेला। **म०**–समुद्रफेण। **मा०**–समन्दरझाग। **पं०**–समुन्द्रझाग, समुद्रझाग। **गु०**–समुद्रफिण। **क०**–समुद्रनालिगे। **मल०, ता०**–कड़ल नीरे। **ते०**–सोरुपेनक, समुद्रपुनुरुगु। **फा०**–कफदरिया। **अ०**–जुबदुल्लहेरे, जब्दुल बहेर। **अं०**–Cuttle Fish Bone (कटिल फिश बोन); Os Sepiae (ऑस् सेपी)। **ले०**–Sepia *officinalis* (सेपिया ऑफिसिनॅलिस्)। **जाति** (Family)–Cephalopoda (सिफॅलोपोडा)। **वर्ग** (Class)–Mollusca (मोल्यूस्का)।

समुद्रफेन यह समुद्र का झाग नहीं है वरन् यह एक समुद्री जीव (मछली) का अस्थिपञ्जर (या कवच) है जो कुछ समय बाद विशेष आकृति का हो जाता है और समुद्र के पानी पर तैरता रहता है। इसके टुकड़े १-३ इञ्च चौड़े और ५-१० इञ्च लम्बे होते हैं। ये लम्बे, चिपटे, आयताकार अथवा अण्डाकार, सफेदी लिये हुवे, कठोर तथा भंगुर होते हैं। इसकी बाह्य सतह कई परतों से बनी दिखलाई देती है तथा सुचूर्ण्य होती है। भीतरी सतह कठोर, सुषिर एवं आसानी से टूटने वाली होती है। इसका स्वाद फीका, तीक्ष्ण तथा क्षारीय होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें कॅल्शियम् कार्बोनेट (Calcium Carbonate) ८०-८५% तथा फास्फेट, सल्फेट और सिलिका (Silica) आदि पदार्थ रहते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका आन्तरिक प्रयोग बहुत कम होता है। यह खड़िया के समान अम्लत्व दूर करने वाला तथा ग्राही एवं स्थानिक उपशामक है।

(१) इसका सूक्ष्म चूर्ण कर्णस्राव तथा कर्णपीडा के लिए कानों में डालते हैं। मुख तथा दांतों के विकारों में यह दन्तमञ्जन की तरह उपयोग में आता है तथा झांई, मुहांसे, व्यंग तथा चर्म के अन्य विकारों में इसका सूक्ष्मचूर्ण या नींबू के रस के साथ इसका लेप लगाया जाता है। अम्हौरी में गुलाब जल के साथ शरीर पर इसे लगाते हैं।

(२) इसका नेत्र रोगों में विशिष्ट स्थान है। लेखन गुण के कारण नेत्रशुक्ल, जाला, धुंध आदि में सुरमा के समान या सुरमा में मिलाकर इसे काम में लाते हैं। वर्त्मदाह में इसे गुलाब जल और सैन्धव के साथ महीन पीसकर आंख में लगाते हैं।

(३) कर्णस्राव में इसे तैल में सिद्ध करके उसका उपयोग करते हैं।

(४) यद्यपि आयुर्वेद में इसका आंतरिक प्रयोग नहीं दिखाई देता तथापि यह चूने का अच्छा सेन्द्रिय योग है जिसका आन्तरिक उपयोग भी किया जा सकता है।

मात्रा—२ से ८ रत्ती।

अथाष्टवर्गस्य लक्षणगुणानाह

जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके ॥ १२० ॥
अष्टवर्गोऽष्टभिर्द्रव्यैः कथितश्चरकादिभिः ॥ १२१ ॥
अष्टवर्गो हिमः स्वादुर्बृंहणः शुक्रलो गुरुः। भग्नसन्धानकृत्कामबलासबलवर्द्धनः ॥
वातपित्तास्रतृड्दाहज्वरमेहक्षयप्रणुत् ॥ १२२ ॥

अष्टवर्ग के लक्षण तथा गुण—जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि इन सब आठ द्रव्यों को चरकादि मुनिगण 'अष्टवर्ग' नाम से व्यवहार करते हैं। **अष्टवर्ग**–शीतवीर्य, स्वादिष्ट, बृंहण (धातुवर्धक), शुक्रजनक, विपाक में गुरु, भग्नसन्धानकारक (टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने वाला), काम, कफ तथा बल को बढ़ाने वाला, वात, पित्त, रक्त, तृष्णा, दाह, ज्वर, प्रमेह और क्षय रोग को दूर करने वाला होता है ॥ १२०-१२२ ॥

तत्रादौ जीवकर्षभकयोरुत्पत्तिलक्षणनामगुणानाह

जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखरोद्भवौ। रसोनकन्दवत्कन्दौ निःसारौ सूक्ष्मपत्रकौ ॥१२३॥
जीवकः कूर्चकाकार ऋषभो वृषशृङ्गवत्। जीवको मधुरः शृङ्गो ह्रस्वाङ्गः कूर्चशीर्षकः ॥१२४॥
ऋषभो वृषभो धीरो विषाणी द्राक्ष इत्यपि। जीवकर्षभकौ बल्यौ शीतौ शुक्रकफप्रदौ ॥
मधुरौ पित्तदाहास्रकार्श्यवातक्षयापहौ ॥ १२५ ॥

अष्टवर्गान्तर्गत जीवक तथा ऋषभक के उत्पत्ति स्थान, लक्षण, नाम तथा गुण—जीवक और ऋषभक ये दोनों औषधियां हिमालय पर्वत के शिखर के ऊपर उत्पन्न होती हैं। इन दोनों के कन्द ठीक लहसुन के कन्द के समान होते हैं और ये निःसार होते हैं तथा पत्ते सूक्ष्म होते हैं। उसमें जीवक का आकार कूंची के समान होता है और ऋषभक बैल के सींग की भांति होता है। जीवक, मधुर, शृङ्ग, ह्रस्वाङ्ग और कूर्चशीर्षक ये नाम जीवक के हैं। तथा ऋषभ, वृषभ, धीर, विषाणी और द्राक्ष ये नाम ऋषभक के हैं। ये दोनों बलकारक, शीतवीर्य, शुक्र तथा कफ के वर्धक, मधुर रसयुक्त, पित्त, दाह, रक्तदोष, कृशता, वात तथा क्षयरोग के दूर करने वाले होते हैं ॥ १२३-१२५ ॥

अथ मेदामहामेदयोरुत्पत्तिलक्षणनामगुणानाह

महामेदाऽभिधः कन्दो मोरङ्गादौ प्रजायते ॥ १२६ ॥
महामेदा वनीमेदा स्यादित्युक्तं मुनीश्वरैः ॥ १२७ ॥
शुक्लार्द्रकनिभः कन्दो लताजातः सुपाण्डुरः। महामेदाभिधो ज्ञेयो मेदालक्षणमुच्यते ॥
शुक्लकन्दो नखच्छेद्यो मेदोधातुमिव स्रवेत्। यः स मेदेति विज्ञेयो जिज्ञासातत्परैर्जनैः ॥
शल्यपर्णी[1] मणिच्छिद्रा मेदा मेदाभवाध्वरा। महामेदा वसुच्छिद्रा त्रिदन्ती देवतामणिः ॥
मेदायुगं गुरु स्वादु वृष्यं स्तन्यकफावहम्। बृंहणं शीतलं पित्तरक्तवातज्वरप्रणुत् ॥१३१॥

---

१. 'स्वल्पपर्णी'ति पाठा०।

मेदा और महामेदा के उत्पत्तिस्थान, लक्षण, नाम तथा गुण—उसमें महामेदा नामक कन्द मोरङ्ग (नेपाल का दक्षिणपूर्वभाग) आदि प्रदेशों में उत्पन्न होता है। महामेदा, बनीमेदा है ऐसा मुनीश्वरों ने कहा है। महामेदा लता से उत्पन्न होती है तथा इसका कन्द पाण्डुवर्ण का, सफेद अदरख के समान होता है। ये महामेदा के लक्षण हुये, अब मेदा के भी लक्षण कहते हैं—जिसके कन्द सफेद हों तथा जिसमें नख से काटने पर मेदधातु के समान एक प्रकार का रस निकलता हो उसे मेदा समझना चाहिये। शल्यपर्णी, मणिच्छिद्रा, मेदा, मेदोभवा और अध्वरा ये नाम मेदा के हैं। महामेदा, वसुच्छिद्रा, त्रिदन्ती और देवतामणि ये नाम महामेदा के हैं। **उक्त दोनों प्रकार का मेदा**—ये दोनों परिपाक में गुरु, स्वादिष्ट, वीर्यवर्धक, दुग्ध तथा कफ को बढ़ाने वाले, धातुवर्धक, शीतल, पित्त, रक्तसम्बन्धी दोष, वायु तथा ज्वर को दूर करने वाले होते हैं ॥ १२६–१३१ ॥

अथ काकोलीक्षीरकाकोल्योरुत्पत्तिलक्षणनामगुणानाह

जायते क्षीरकाकोली महामेदोद्भवस्थले ॥ १३२ ॥
यत्र स्यात्क्षीरकाकोली काकोली तत्र जायते ।
पीवरीसदृशः कन्दः सक्षीरः[1] प्रियगन्धवान् ॥ १३३ ॥
साप्रोक्ताक्षीरकाकोली काकोलीलिङ्गमुच्यते । यथास्यात्क्षीरकाकोली काकोल्यपि तथा भवेत् ॥
एषा किञ्चिद्भवेत्कृष्णा भेदोऽयमुभयोरपि । काकोली वायसोली च वीरा कायस्थिका तथा ॥
सा शुक्ला क्षीरकाकोली वयस्था क्षीरवल्लिका ॥
कथिता क्षीरिणी धीरा[2] क्षीरशुक्ला पयस्विनी ॥ १३६ ॥
काकोलीयुगलं शीतं शुक्रलं मधुरं गुरु । बृंहणं वातदाहास्रपित्तशोषज्वरापहम् ॥ १३७ ॥

काकोली तथा क्षीरकाकोली के उत्पत्तिस्थान, लक्षण, नाम तथा गुण—महामेदा के उत्पन्न होने का जहां स्थान है, वहीं पर क्षीरकाकोली भी उत्पन्न होती है। और जहां पर क्षीरकाकोली उत्पन्न होती है, वहां पर काकोली भी होती है। क्षीरकाकोली का कन्द पीवरी (शतावर) के समान होता है और काटने पर उसमें से दूध निकलता है तथा यह प्रिय गन्ध से युक्त होता है। अब काकोली के लक्षण कहते हैं—जिस प्रकार की क्षीरकाकोली होती है उसी प्रकार की काकोली भी होती है। किन्तु दोनों में भेद यह है कि काकोली, क्षीरकाकोली की अपेक्षा कुछ कृष्णवर्ण की होती है। काकोली, वायसोली, वीरा और कायस्थिका ये नाम काकोली के हैं और शुक्ला, क्षीरकाकोली, वयस्था, क्षीरवल्लिका, क्षीरिणी, धीरा, क्षीरशुक्ला और पयस्विनी ये नाम क्षीरकाकोली के हैं। **उक्त दोनों प्रकार की काकोली**—शीतल, शुक्रवर्धक, मधुर, गुरु, बृंहण (धातुवर्धक), वात, दाह, रक्तपित्त (या रक्तदोष तथा पित्त), शोष और ज्वर की नाशक होती है ॥ १३२–१३७ ॥

अथ ऋद्धिवृद्ध्योरुत्पत्तिलक्षणनामगुणानाह

ऋद्धिर्वृद्धिश्च कन्दौ द्वौ भवतः कोशलेऽचले[3] । श्वेतलोमान्वितः कन्दो लताजातः सरन्ध्रकः ॥
स एव ऋद्धिर्वृद्धिश्च भेदमप्येतयोर्ब्रुवे । तूलग्रन्थिसमा ऋद्धिर्वामावर्त्तफला च सा ॥१३९॥
वृद्धिस्तु दक्षिणावर्त्तफला प्रोक्ता महर्षिभिः ।
ऋद्धिर्योग्यं[4] सिद्धिलक्ष्म्यौ वृद्धेरप्याह्वया इमे ॥ १४० ॥

१. 'क्षीरं स्रवति गन्धवानि'ति पाठा० ।
२. 'धीरे'ति पाठा० ।
३. 'कोशयामले' इति पाठान्तरम् ।
४. 'ऋद्धियुग्ममि'ति पाठा० ।

ऋद्धिर्बल्या त्रिदोषघ्नी शुक्रला मधुरा गुरुः ।
प्राणैश्वर्यंकरी मूर्च्छारक्तपित्तविनाशिनी ॥ १४१ ॥
वृद्धिर्गर्भप्रदा शीता बृंहणी मधुरा स्मृता ।
वृष्या पित्तास्रशमनी क्षतकासक्षयापहा ॥ १४२ ॥

ऋद्धि तथा वृद्धि के उत्पत्तिस्थान, लक्षण, नाम तथा गुण—ऋद्धि और वृद्धि ये दोनों कन्द कोशल पर्वत में उत्पन्न होते हैं। ऋद्धि का कन्द सफेद रोयें से युक्त, लता से उत्पन्न होने वाला तथा छिद्रों से युक्त होता है। और वृद्धि भी इसी प्रकार की होती है, किन्तु इन दोनों का जो परस्पर भेद है उसे अब कहता हूँ—ऋद्धि कपास की गांठ के समान आकार वाली तथा बायें तरफ से आवर्त्तशील फल वाली होती है। और वृद्धि—दहिने तरफ से आवर्त्तशील फलवाली होती है ऐसा महर्षि लोग कहते हैं। उक्त दोनों प्रकार की ऋद्धि (ऋद्धि-वृद्धि) के योग्य, सिद्धि और लक्ष्मी ये तीन नाम हैं। **ऋद्धि**-बलकारक, त्रिदोष को दूर करने वाली, शुक्रवर्धक, मधुर रस युक्त, पाक में गुरु और प्राणप्रद, ऐश्वर्यजनक, एवं मूर्च्छा और रक्त पित्त को नाश करने वाली होती है। **वृद्धि**-गर्भजनक, शीतल, बृंहण (धातुवर्धक), मधुर रसयुक्त, वृष्य (वीर्यवर्धक), रक्तपित्त को शमन करने वाली, क्षत (उरःक्षतादिक), कास तथा क्षय को दूर करने वाली होती है ॥ १३८–१४२ ॥

राज्ञामप्यष्टवर्गस्तु यतोऽयमतिदुर्लभः ।
तस्मादस्य प्रतिनिधिं गृह्णीयात्तद्गुणं भिषक् ॥ १४३ ॥

साधारण लोगों को कौन कहे अष्टवर्ग की उक्त औषधियां राजाओं को भी दुर्लभ हैं। अतः वैद्य को चाहिये कि वे इसके समान गुण वाली प्रतिनिधि औषधियों को काम में लावें ॥ १४३ ॥

***मुख्यसदृशः = प्रतिनिधिः ॥ १४३ ॥**

यहां पर 'प्रतिनिधि' पद का 'मुख्य के सदृश' यह अर्थ समझना चाहिये ॥ १४३ ॥

अथाष्टवर्गस्य प्रतिनिधिमाह

मेदाजीवककाकोलीऋद्धिद्वन्द्वेऽपि चासति ।
वरीविदार्यश्वगन्धावाराहीश्च क्रमात् क्षिपेत् ॥ १४४ ॥

अष्टवर्ग की प्रतिनिधि औषधियाँ—दोनों प्रकार की मेदा, दोनों प्रकार के जीवक, दोनों प्रकार की काकोली तथा दोनों प्रकार की ऋद्धि के स्थान में क्रम से शतावर, विदारीकन्द, असगन्ध और वाराहीकन्द इन औषधियों को डालना चाहिये ॥ १४४ ॥

***मेदामहामेदास्थाने शतावरीमूलम् । जीवकर्षभकस्थाने विदारीमूलम् । काकोलीक्षीरकाकोलीस्थाने अश्वगन्धामूलम् । ऋद्धिवृद्धिस्थाने वाराहीकन्दं गुणैस्तत्तुल्यं क्षिपेत् ॥ १४४ ॥**

यहां पर 'मेदा और महामेदा के स्थान में सतावर का मूल, जीवक तथा ऋषभक के स्थान में विदारीकन्द का मूल, काकोली तथा क्षीरकाकोली के स्थान में असगन्ध का मूल, एवं ऋद्धि तथा वृद्धि के स्थान में वाराही कन्द को गुणों में पूर्वोक्त औषधियों के समान समझकर डालें' ऐसा समझना चाहिये ॥ १४२ ॥

४२ अष्टवर्ग

नाम	उत्पत्तिस्थान	सामान्यरूप	परस्पर पार्थक्य	शा० प्रतिनिधि
१ जीवक	हिमालय पर्वत शिखर	कन्द-रसोन के समान पत्र-सूक्ष्म सारहीन	कूंची के समान	विदारीकन्द
२ ऋषभक	,, ,,	,,	बैल के सींग के समान	,,
३ मेदा	मोरङ्ग (नेपाल का दक्षिण-पूर्व भाग	कन्द-मेद के सदृश स्राव नख से छेद्य	शुक्लवर्ण	शतावरी मूल
४ महामेदा	,,	कन्द-शुक्ल आर्द्रक के समान, लताजात	पाण्डुरवर्ण	,,
५ काकोली	,,	कन्द-शतावरी सदृश सक्षीर सुगन्धयुक्त	अधिक कृष्णवर्ण	अश्वगंधा का मूल
६ क्षीरकाकोली	,,	,,	कम कृष्णवर्ण	,,
७ ऋद्धि	कोशलपर्वत	कन्द-श्वेतलोमयुक्त लताजात छिद्रयुक्त	कपास की गांठ के समान वामावर्तफल	वाराहीकन्द
८ वृद्धि	,,	,,	दक्षिणावर्तफल	,,

इस समय अष्टवर्ग की कोई भी औषधि सच्ची नहीं मिलती है। यों तो अष्टवर्ग के बेचनेवाले कितने फर्म हो गये हैं, इनमें 'अष्टवर्ग कार्यालय देहरादून' प्रसिद्ध है परन्तु अष्टवर्ग के देखने और शास्त्रों से मिलान करने से कोई भी असली नहीं सिद्ध होती। अष्टवर्ग के अभाव में मेदा-महामेदा की जगह शतावर, जीवक—ऋषभक की जगह विदारीकन्द, काकोली—क्षीरकाकोली की जगह असगन्ध और ऋद्धि-वृद्धि की जगह वाराहीकन्द डालने को कहा गया है। परन्तु आजकल के कतिपय विद्वान् वैद्य शतावर, विदारीकन्द, असगन्ध और वाराहीकन्द को अष्टवर्ग का प्रतिनिधि नहीं मानते। क्योंकि इनमें अष्टवर्ग का अत्यन्त न्यून गुण पाया जाता है। इसलिए अष्टवर्ग की जगह निम्नाङ्कित औषधियां देना उत्तम बतलाते हैं।

जीवक	अभाव में	बहमन सफेद या गुडूची
ऋषभक	,,	बहमन लाल या लम्बा सालब या वंशलोचन
मेदा	,,	सालमिश्री
महामेदा	,,	शाकाकुल मिश्री या प्रसारिणी
काकोली	,,	काली मूसली
क्षीरकाकोली	,,	श्वेत मूसली
ऋद्धि	,,	चिड़िया कन्द या बला या उटङ्गण के बीज
वृद्धि	,,	सालब पंजा या महाबला या बीजबंद

अथ यष्टीमधुनामगुणानाह

यष्टीमधु तथा यष्टीमधुकं क्लीतकं तथा। अन्यत्क्लीतनकं तत्तु भवेत्तोये मधूलिका ॥ १४५ ॥
यष्टी हिमा गुरुः स्वाद्वी चक्षुष्या बलवर्णकृत्। सुस्निग्धा शुक्रला केश्या स्वर्या पित्तानिलास्रजित्।
व्रणशोथविषच्छर्दितृष्णाग्लानिक्षयापहा ॥ १४६ ॥

मुलहठी के नाम तथा गुण - यष्टीमधु, यष्टीमधुक और क्लीतनक ये सब मुलहठी के नाम हैं। और अन्य प्रकार की भी एक मुलहठी होती है जो कि जल में उत्पन्न होती है जिसका नाम 'मधूलिका' है। **मुलहठी**—शीतवीर्य, गुरु, मधुररसयुक्त, नेत्रों के लिये हितकर, बलकारक तथा वर्ण को सुन्दर करने वाली, सुस्निग्ध, वीर्यजनक, केशों के लिये हितकर, स्वर को सुधारने वाली, पित्त, वात तथा रक्त के प्रकोप को शमन करने वाली, व्रण, शोथ, विष, वमन, प्यास, ग्लानि तथा क्षय रोग को दूर करने वाली होती है ॥ १४५-१४६ ॥

४३ यष्टीमधु

हि०-मुलहठी, मुलेटी, मुलेठी, मीठी लकड़ी, जेठीमध। **बं०**-यष्टिमधु। **म०**-जेष्टिमध। **गु०**-जेठीमध। **क०**-जेष्टमधु। **तै०**-यष्टिमधुकम। **पं०**-मुलेटी। **मा०**-मलहठी। **ता०**-अतिमधुरं। **फा०**-आसरेहमहक, बिखेमहक। **अ०**-असलुसूस। **अं०**-Liquorice Root (लिकोरिस् रूट)। **ले०**-*Glycyrrhiza glabra, Linn.* (ग्लिसहाइझा ग्लॅब्रा, लिन.)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

इसका क्षुप अरब, फारस की खाड़ी, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान एवं साइबेरिया आदि स्थानों में उत्पन्न होता है। इसकी उपज पञ्जाब तथा चेनाब से लेकर पेशावर आदि हिमालय के निचले हिस्से में तथा अंडमान द्वीप एवं बर्मा में होती है। बलूचिस्तान तथा चित्राल में भी यह उत्पन्न होता है। काश्मीर में बरमूला घाटी में इसको उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त हुई है।

इसका क्षुप २-४ फूट ऊँचा होता है। **पत्रक**-छोटे, ४ से ७ जोड़े, आयताकार से चौड़ाई लिये हुवे भालाकार; अपरिमित सदण्डिक **पुष्प व्यूह; पुष्प**-बैंगनीवर्ण के, लगभग ½ इञ्च लम्बे; **फली**-छोटी, बारीक, ½-१ इञ्च लम्बी, चिपटी; **बीज**-बहुत या २-३ होते हैं। इसकी जड़ तथा भौमिक तने को सुखा कर छाल सहित अथवा छाल निकालकर बाजार में मुलेठी के नाम से बेचा जाता है। ये लम्बे टुकड़े, पीताभ बादामी रंग के झुर्रीदार होते हैं तथा छाल निकाले हुवे हलके पीले रंग के रेशेदार होते हैं। इनमें एक प्रकार की हल्की गन्ध तथा स्वाद मीठा होता है।

स्थान भेद से इसकी अन्य जातियां होती हैं जिनके स्वाद में अन्तर रहता है। यूनानी मत से ३ प्रकार की मुलेठी मानी गई है जिसमें से मिश्र की उत्तम, अरब की मध्यम तथा तुरुष्क वा फारस की अधम होती है जो उत्तरोत्तर कम मीठी होती हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एक सफेद, मीठा, रवेदार पदार्थ ग्लिसहाइझिन् (Glycyrrhizin) ५-१०% पाया जाता है जिसमें ग्लिसहाइझिक् एसिड (Glycyrrhizic acid) से बने चूना तथा पोटॅशियम् (Potassium) के लवण होते हैं। यह एसिड भी शुभ्र रवेदार होता है तथा इसका द्रवणांक २५° श० होता है। यह चीनी से ५० गुना अधिक मीठा होता है। गरम जल में ग्लिसहाइझिन् का बना घोल ठंडा होने पर गाढ़ा हो जाता है। इसके अतिरिक्त मुलेठी में ५-१०% शर्करा, ३०% स्टार्च, प्रमुजिन, स्नेह, राल एवं ॲसपेराजिन् (Asparagin) करीब २% होता है।

गुण और प्रयोग—मुलेठी मधुर, शीतल. स्नेहन, बल्य, वृष्य, रसायन, कफशामक, स्वर्य, नेत्र्य, मूत्रजनन, स्तन्यवर्धक, शोथहर एवं व्रणरोपक गुणों से युक्त होती है।

(१) इसमें स्नेहन तथा सौम्य कफ निःसारक गुण होने के कारण इसका मुख्य उपयोग स्वर-भंग, कास, श्वसनिका शोथ एवं गलशोथ आदि में किया जाता है। इसके लिये इसके टुकड़े को मुख में रख कर चूसने को दिया जाता है तथा तीसी के साथ इसके क्वाथ का उपयोग किया जाता है।

(२) मीठी होने के कारण क्वाथों को मधुर बनाने के लिये तथा अनेक औषधियां जैसे सनाय, एलुवा आदि को सुस्वादु बनाने के लिये तथा खांसी के लिये चूसने की गोलियों में इसका उपयोग करते हैं। इसके चूर्ण का उपयोग गोली बनाने में सहायक द्रव्य के रूप में व्यवहार में आता है।

(३) मूत्र मार्ग के प्रक्षोभ में यह बहुत उपयोगी है। इससे पेशाब की जलन दूर होती है।

(४) अम्लपित्त में इसके उपयोग से आमाशयिक अम्ल कम होकर शूल दूर होता है।

(५) चीन में इसका व्यवहार रसायन औषधि की दृष्टि से बहुत किया जाता रहा तथा अपने यहां भी इसे रसायन, बल्य तथा शुक्रल मानते हैं।

(६) इसका सत्त्व **रुब्बेसूस**, जो काले रंग का तथा मीठा होता है, का व्यवहार खांसी एवं गले की तकलीफ आदि में चूसने के लिए किया जाता है।

(७) सुश्रुत में 'सर्वोपघातशमनीय' योग में इसका अन्तर्भाव किया गया है। इस प्रकार सभी प्रकार के अभिघातों से उत्पन्न लक्षणों में इसका प्रयोग उत्तम माना गया है।

(८) इसका उपयोग क्षतक्षीण, रक्तवमन, हृद्रोग एवं अपस्मार आदि में भी किया जाता है। दूध अथवा घृत और मधु के साथ इसको देना चाहिये।

(९) घृत के साथ इसके कल्क का प्रयोग घावों पर लगाने के लिये उपयोगी है। भिलावे से यदि त्वक्शोथ हो गया हो तो मुलेठी और तिल को दूध में पीस कर लेप करने से लाभ होता है।

मात्रा—चूर्ण-१-४ माशा।

अथ काम्पिल्लस्य नामगुणानाह

काम्पिल्लः कर्कशश्चन्द्रो रक्ताङ्गो रोचनोऽपि च॥
काम्पिल्लः कफपित्तास्रकृमिगुल्मोदरव्रणान्। हन्ति रेची कटूष्णश्च मेहानाहविषाश्मनुत्॥

कबीला के नाम तथा गुण—काम्पिल्ल, कर्कश, चन्द्र, रक्ताङ्ग और रोचन ये नाम कबीला के हैं। **कबीला**-कफ, रक्तपित्त, कृमि, गुल्म, उदररोग एवं व्रण (घाव) को दूर करता है। तथा यह रेचक (दस्तावर), कटु रस युक्त और उष्णवीर्य है। एवं प्रमेह, आनाह, विष तथा पथरी को नष्ट करने वाला होता है॥ १४७॥

४५ काम्पिल्ल (कबीला)

हि०—कबीला, कमीला, काम्बीला। **बं०**—कमिला, कमलागुरी। **म०**—शेन्द्रि कपिला। **गु०**—कपीलो। **क०**—वसारे, चन्द्रहिट्टु। **पं०**—कमल। **ते०**—कुम्कुर। **ता०**—कपिला रङ्ग, कपिला पोडि। **मला०**—पोनागम। **फा०**—कम्बिलाय, कमीलह, कम्बेला। **अ०**—कम्बील, किम्बील, वार्स। **अं०**—Kamala (कमला)। **ले०**—*Mallotus philippinensis, Muell-*

Arg. (मॅल्लोटस् फिलिपाइनेन्सिस, मुएल-आर्ग.)। Fam. Euphorbiaceae (यूफोर्बियसी)।

यह प्रायः सब गरम प्रान्तों में हिमालय पहाड़ के नीचे से पूरब की ओर सिन्ध से दक्षिण, बंगाल, ब्रह्मा, सिंगापुर, सिलोन एवं मलाया द्वीप समूह आदि प्रान्तों में पाया जाता है।

इसका सदा हरित **वृक्ष**-मध्यमाकार का २५-३० फीट तक ऊंचा होता है। **छाल**-चौथाई इंच मोटी, खाकी रङ्ग की फटी सी और भीतर से लाल दिखाई पड़ती है। **पत्ते**-गूलर के पत्तों के समान ३ से ९ इञ्च तक लम्बे, अंडाकार, नोकदार, विषमवर्ती और निम्न पृष्ठ रोमश रक्ताभ होते हैं। कार्तिक से पूस तक फूल फल आते हैं और उष्णकाल में फल पकते हैं। **फूल**-छोटे छोटे भूरापन युक्त लाल रङ्ग के आते हैं। **फल**-त्रिदल आकार में झरबेर के समान और पकने पर लाल रवेदार रज से ढका रहता है। इसी लाल रज को कबीला कहते हैं। **बीज**-चिकने, गोल और काले होते हैं।

'कबीला वायविडङ्ग की रज का नाम है' यह कहना भ्रमात्मक है। कबीला के बीजों को कहीं कहीं वायविडङ्ग की जगह व्यवहार में लाते हैं जो अनुचित है। वास्तव में वायविडङ्ग और कबीले के वृक्ष एक नहीं, दो भिन्न-भिन्न हैं।

इस वृक्ष के फलों के ऊपर के पराग (ग्रन्थि तथा रोम) को कबीला कहते हैं। फल पक जाने पर उनको कपड़े में डालकर अथवा हाथ से रगड़ कर इसे अलग करते हैं। इस लाल बदामी रंग की बुकनी में न तो स्वाद होता है न गन्ध। इसमें से जो रोम, ग्रन्थि युक्त होते हैं उनका डण्ठल एक कोशा का (प्रायः नहीं रहता) तथा ऊपर का भाग गोल ४०-१०० म्यू व्यास का एवं २०-५० अण्डाकार या व्यस्तलट्वाकार कोषाओं से युक्त होता है। ये कोशाएं एक आधारीय कोशा के ऊपर चक्राकाररूप में एक रालीय निर्यास में डूबी हुई रहती हैं। बिना ग्रन्थि के रोम बहुत कम होते हैं जिनके अन्तिम भाग नुकीले तथा मुड़े हुये होते हैं। इनके अतिरिक्त इसमें फल के छिलके एवं बालू के कण आदि पदार्थ मिले रहते हैं।

परीक्षा—इसमें यदि निशास्ता वा कुसुम्भ की मिलावट हो तो अणुवीक्षण यन्त्र से पहचान सकते हैं। लाल मिट्टी, बालू वा मण्डूर की मिलावट हो तो इसे जल में डालने पर मिट्टी आदि नीचे बैठ जाती है। ऊपर जो बुकनी तैरती है उसे सुखाकर काम में लाना चाहिये। जल से भींगी हुई उंगली से शुद्ध कबीले को उठाकर सफेद कागज पर जोर से लकीर खींचने या रगड़ने से पीले रंग का निशान होता है। शुद्ध कबीले में राख ९% से अधिक नहीं होनी चाहिये तथा अम्ल में न घुलनेवाली राख ६% से अधिक नहीं होनी चाहिये। ईथर में घुलने वाले सत्व जो उडनशील नहीं होते, उनकी शुष्क अवस्था में मात्रा ६६% से कम न होनी चाहिये। यह शीत जल में अघुलनशील, उष्णजल में अल्प घुलनशील एवं क्षार, मद्यसार और ईथर में घुलनशील होता है, जिससे लाल रंग का घोल बनता है।

रासायनिक संगठन—इसमें रोटलेरिन् (Rottlerin, $C_{31} H_{30} O_8$) नामक एक रवेदार पदार्थ से युक्त एक बदामी लाल रंग की राल होती है। यह ईथर में घुलनशील तथा जल में अघुलनशील होती है। इसके अतिरिक्त आइसो-रोटलेरिन् (Iso-rottlerin) नामक पदार्थ रहता है जो शायद रोटलेरिन् का अशुद्ध स्वरूप है। इनके अतिरिक्त इसमें पीले रवेदार पदार्थ, पीली और लाल राल एवं मोम आदि रहते है। अल्प मात्रा में उड़नशील तैल, स्टार्च, शर्करा, टॅनिन् एवं ऑक्सॅलिक तथा साइट्रिक एसिड भी पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—कबीला कृमिघ्न, विरेचक, त्वक्दोषहर एवं व्रण रोपक है। स्फीत कृमि के लिये यह अच्छी औषधि है। अधिक मात्रा से हृल्लास तथा बेहोशी आती है। चेष्टावह नाडी तथा

पेशियों पर इसकी अवसादक क्रिया होती है तथा अन्नवह प्रणाली के ऊपर इसका प्रक्षोभक प्रभाव पड़ता है।

(१) कुछ लेखकों ने इसे सभी प्रकार के आंत्रस्थ कृमियों के लिये उपयोगी बतलाया है लेकिन इसका विशेष प्रभाव स्फीत कृमि (Tape worms) पर पड़ता है। मेलफर्न की अपेक्षा यह कम प्रभावशाली है लेकिन इससे वमन आदि नहीं होता और दुर्बल एवं बच्चों के लिये यह उसकी अपेक्षा अच्छी औषधि है। इसके लिये अतिरिक्त विरेचन की आवश्यकता नहीं होती न कोई पूर्व विरेचन की। २ से ८ माशा चूर्ण दूध, दही, मधु या सुगन्धित पेय के साथ खिला देते हैं। तीसरे या चौथे दस्त में कृमि निकल जाते हैं। यदि ४ घण्टे के बाद भी शौच न हो तो एरण्ड तैल देना चाहिये। इसका कृमिघ्न गुण संभवतः इसके अवसादक प्रभाव के कारण है।

(२) इसका बाह्य प्रयोग तैल में मिलाकर दाद, खुजली, चकत्ते, व्रण एवं अग्निदग्ध व्रण आदि में बहुत लाभदायी है। सिर के खालित्य में शतधौत घृत के साथ लगाने से लाभ होता है।

(३) इस वृक्ष के पत्ते एवं मूल आदि का चर्म रोगों में अनेक प्रकार से प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—चूर्ण २-८ माशा। बच्चों को ५ र० मधु से, इससे अधिक एक साथ न दें, यदि गुण न हो तो दूसरे दिन पुनः दें।

अथारग्वधस्य (धानबहेरा, अमलतास) नामगुणानाह

आरग्वधो राजवृक्षः शम्पाकश्चतुरङ्गुलः। आरेवतो व्याधिघातः कृतमालः सुवर्णकः ॥१४८॥
कर्णिकारो दीर्घफलः स्वर्णाङ्गः स्वर्णभूषणः। आरग्वधोगुरुः स्वादुः शीतलः स्रंसनोत्तमः[1] ॥
ज्वरहृद्रोगपित्तास्रवातोदावर्त्तशूलनुत्। तत्फलं स्रंसनं रुच्यं कुष्ठपित्तकफापहम् ॥
ज्वरे तु सततं पथ्यं कोष्ठशुद्धिकरं परम् ॥ १५० ॥

अमलतास (धनबहेरा) के नाम तथा गुण—आरग्वध, राजवृक्ष, शम्पाक, चतुरङ्गुल, आरवेत, व्याधिघात, कृतमाल, सुवर्णक, कर्णिकार, दीर्घफल, स्वर्णाङ्ग और स्वर्णफल ये नाम अमलतास के हैं। **अमलतास**—गुरु, मधुर, शीतल और उत्तम रेचक है। यह ज्वर, हृद्रोग, रक्तपित्त, वायु, उदावर्त्त और शूल को दूर करता है। **अमलतास का फल**—मृदु रेचक, रुचिकारक, कुष्ठ, पित्त तथा कफ को दूर करने वाला होता है। यह ज्वर में सदा हितकर होता है एवं कोष्ठ को अत्यन्त शुद्ध करने वाला होता है ॥ १४८-१६० ॥

४५ आरग्वध (अमलतास)

हि०-अमलतास, सोनहाली। **बं०**-सोन्दाली, सोनालु, बन्दर लाठी। **म०**-बाहवा। **क०**-कक्केमर। **ते०**-रेलचेट्टु। **गु०**-गरमालो। **पं०**-अमलतास, करङ्गल, कनियार। **ता०**-कोन्नेमर, शरकोन्ने, कोरैकाय। **फा०**-ख्यारेचम्बर। **अ०**-ख्यारे शम्बर, ख्यारशम्बर। **अं०**-Pudding Pipe Tree (पुडिंग पाइप ट्री) या Indian Laburnum (इण्डियन लॅबर्नम्), या Purging Cassia (पर्जिंग केशिया)। **ले०**-*Cassia fistula, Linn.* (केशिया फिस्चुला, लिन.)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है।

१. 'मृदु'रिति पा०।

इसका वृक्ष—मध्यमाकार का होता है, किन्तु कहीं कहीं बड़े वृक्ष भी देखने में आते हैं। लकड़ी बहुत मजबूत होती है। १२ से १८ इञ्च तक की लम्बी लम्बी सींकों पर ४ से ८ जोड़े पत्ते लगते हैं जो २॥ से ३॥ इञ्च तक लम्बे, अण्डाकार होते हैं। १०-२० इञ्च तक की लम्बी टहनियों पर सुनहले चमकीले पीले पीले रङ्ग के पांच पांच दल वाले फूलों के घनहरे लगते हैं, जो चैत के अन्त से ज्येष्ठ तक वृक्षों को सुशोभित करते हैं। जेठ में पतली पतली सलाई के समान हरी हरी फलियां निकल कर वर्षा के अन्त तक १-२ फीट लम्बी १ इञ्च तक मोटी हरी हरी फलियां लटकती दिखाई पड़ती हैं। फिर हेमन्त के अन्त से काला रूप धारण करके वसन्त में पक जाती हैं। फलियों के भीतर पुरानी चवन्नी बराबर गोल गोल पतले पतले काले रस से लिपटे हुए परत रहते हैं और परतों के बीच सिरस के बीज के समान बीज होते हैं।

रासायनिक संगठन—अमलतास के गूदे में गोंद, पेक्टिन (Pectin), रंजक पदार्थ, शर्करा, अल्प मात्रा में एक मधुगंधि उड़नशील तैल तथा हाइड्रोक्सिमेथिल्-अन्थ्रॉक्विनोन् (Hydroxy-methyl-anthraquinones) आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—(१) अमलतास की गुद्दी आनुलोमिक, दाहशामक एवं वेदना स्थापक है। यह मृदु विरेचनों में सर्वश्रेष्ठ है। इसका प्रयोग ज्वरावस्था में तथा सुकुमार, बाल, गर्भिणी एवं कोमल प्रकृति की नारियों में किया जाता है। मृदु विरेचन के लिये इसके स्वतंत्र प्रयोग की अपेक्षा सनाय के साथ बनाया हुआ अवलेह (Confectio senna) अधिक अच्छा है जिससे मरोड़, हल्लास, शूल, आध्मान आदि नहीं होते जो स्वतन्त्र प्रयोग में अधिक मात्रा में लेने से होते हैं। इससे बनो गुलकन्द का भी व्यवहार किया जाता है। रक्त की उग्रता बढ़ने पर अथवा मल संचय होकर वातरक्त एवं आमवात आदि रोग उत्पन्न होने पर विरेचन के लिये इसका उपयोग करते हैं। जिन्हें कब्जियत की शिकायत हमेशा रहती है उन्हें अल्प मात्रा में इसे बराबर सेवन कराया जाता है। अधिक दिन प्रयोग से मूत्र का रंग गहरे बादामी रंग का हो जाता है। ज्वर में अथवा मधुमेह में विरेचन की आवश्यकता हो तो इसका उपयोग कर सकते हैं। कॉफी के सत्व में इसकी मिलावट की जाती है। इसका लेप आमवात, वातरक्त एवं व्रणशोथ आदि पर किया जाता है।

(२) इसके बीज वामक होते हैं तथा ५-७ बीजों का चूर्ण वमन के लिये दिया जाता है।

(३) इसकी छाल के क्वाथ से कवल करने से गले की गांठों की सूजन कम होती है।

(४) इसके पत्तों का रस अर्दित में पिलाया जाता है तथा जिस अंग का घात हुआ हो वहां इससे मला जाता है। दाद तथा भिलावें की सूजन पर इसके लगाने से लाभ होता है।

(५) इसकी मूल तीव्र विरेचक एवं ज्वरहर होती है।

मात्रा—गुद्दी ४-८ माशा।

अथ कटुकाया नामगुणानाह

कट्वी तु कटुका तिक्ता कृष्णभेदा कटम्भरा[1] ॥
अशोका मत्स्यशकला चक्राङ्गी शकुलादनी ॥
मत्स्यपित्ता काण्डरुहा रोहिणी कटुरोहिणी ॥ १५१ ॥

१. 'कटुम्बरे'ति पा०।

कट्वी तु कटुका पाके तिक्ता रूक्षा हिमा लघुः।
भेदिनी दीपनी हृद्या कफपित्तज्वरापहा। प्रमेहश्वासकासास्रदाहकुष्ठक्रिमिप्रणुत् ॥ १५२ ॥

कुटकी के नाम तथा गुण—कट्वी, कटुका, तिक्ता, कृष्णभेदा, कटम्भरा, अशोका, मत्स्यशकला, चक्राङ्गी, शकुलादनी, मत्स्यपित्ता, काण्डरुहा, रोहिणी और कटुरोहिणी ये सब कुटकी के नाम हैं। **कुटकी**—तिक्त रसयुक्त, परिपाक में कटु रसयुक्त, रूक्ष, शीतल, लघु, मलको भेदन करने वाली, अग्निदीपक, हृदय के लिये हितकर, कफ, पित्तज्वर, प्रमेह, श्वास, कास, रक्त दोष, दाह, कुष्ठ तथा कृमि का नाश करने वाली होती है ॥ १५१-१५२ ॥

४६ कुटकी

हि०-कुटकी, कटुकी, कटुका। **बं०**-कटकी। **म०**-केदारकडू, काली कुटकी। **गु०**-बालकडु कडू। **ते०**-कटुकुरोणी। **क०**-कटुक रोहणी, कटुकरोहिनी। **ता०**-कडुकु रोगणी। **फा०**-खर्बकेहिन्दी। **अ०**-सर्वके अस्वद, खानेखस्वैल। **अं०**-Picrorhiza (पिक्रोहाइझा)। **लै०**-*Picrorhiza kurroa Royle ex Benth.* (पिक्रोहाइझा कुर्रो)। Fam. Scrophulariaceae (स्क्रोफ्युलॅरियासी)।

यह हिमालय पहाड़ की ९०००-१५००० फीट ऊँची चोटियों पर काश्मीर से सिक्कम तक बहुत उत्पन्न होती है।

इसका **क्षुप** रोमश होता है। इसका **भौमिक तना** बहुवर्षायु, छोटी उँगली के समान मोटा एवं ६ से १०-१२ इञ्च तक लम्बा होता है। **पत्ते** २-४ इञ्च लम्बे, स्रुवाकार, जड़ की ओर संकुचित, आगे की ओर चौड़े, किञ्चित् चिकने और कटे हुए झालरदार किनारे वाले होते हैं। क्षुप के बीच से एक डण्डी निकलती है जिसके अन्त में फूलों के गुच्छे लगते हैं। **फूल**-नीले या सफेद रङ्ग के आते हैं। **फली**-चौथाई इञ्च की होती है।

कुटकी इस क्षुप के **मूल** (भौमिकतनें-Rhizome) को कहते हैं। यह १ से २ इञ्च लम्बे, कपिश लोहबान की तरह रंग वाले, खुरदरे एवं मुड़े हुए टुकड़े होते हैं। इन पर छोटी छोटी चक्राकार गांठें तथा गिरे हुए पत्तों एवं मूल के निशान रहते हैं। यह एक तरफ मोटी तथा दूसरी तरफ पतली होती है तथा इसमें एक प्रकार की हलकी गन्ध होती है। इसका स्वाद अत्यन्त कड़ुवा होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें पिक्रोहाइझिन् (Picrorhizin) नामक एक कडुआ रवेदार मधुमेय (Glycoside) २६.६% पाया जाता है, जिसका उदांशन (Hydrolysis) होने पर पिक्रोहीझेटिन् (Picrorhizetin) एवं एक प्रकार की मधु शर्करा (Dextrose) प्राप्त होती है। यह मधुमेय जल, मद्यसार, एसिटोन (Acetone) और एथिल् ॲसिटेट् (Ethyl acetate) में घुलनशील एवं क्लोरोफॉर्म (Chloroform), बेंझिन (Benzene) और ईथर (Ether) में अघुलनशील होता है। यह अत्यन्त जलग्राही (Hygroscopic) होता है। इसके अतिरिक्त इसमें मधुशर्करा, मोम एवं कॅथार्टिक् ॲसिड् (Cathartic acid) आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह एक उत्तम **कटुआपौष्टिक**, दीपक, पाचक, **पित्तविरेचक** और **नियतकालिक ज्वरहर है**। इसकी क्रिया आंत्र एवं यकृत् पर होती है। यह अल्प मात्रा में संस्रन तथा अधिक मात्रा में विरेचक होती है। जेन्शियन की तरह तिक्त पौष्टिक के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। इसका गुण इन्द्रायण के सदृश होता है।

इसका उपयोग नियतकालिकज्वर, शीतज्वर, कामला, पांडु, यकृत् विकार, श्वास, कुपचन, हृद्रोग, संग्रहणी, आन्त्र की शिथिलता तथा बच्चों के कृमि विकारों में किया जाता है।

(१) पुनरावर्तित ज्वरों में इससे अच्छा लाभ होता है लेकिन इसको अधिक मात्रा में (३-४ माशा) देना पड़ता है। अविशिष्ट स्वरूप के सभी पुराण मन्द ज्वरों में, विशेषकर विबन्धयुक्त ज्वर में, इससे अच्छा लाभ होता है। इससे ज्वर जनित दाह की शान्ति होती है।

(२) हृदय के ऊपर इसकी क्रिया डिजिटॅलिस् की तरह होती है। हृदय की अकार्य क्षमता जनित यकृत् वृद्धि एवं उदरशोथ में इसको अधिक मात्रा में क्वाथ के रूप में देने से पतले दस्त होकर लाभ होता है तथा हृदय को बल प्राप्त होता है।

(३) आरोग्यवर्धिनी गुटिका में इसकी आधी मात्रा रहती है।

मात्रा—चूर्ण ५-१० रत्ती। **जीर्णज्वर में**—३-४ माशा।

प्रतिनिधि एवं व्यामिश्रण—(क) कुटकी के ही नाम से जेन्शियाना कुर्रो (Gentiana kurroo, Royle; Fam. Gentianaceae) के मूल जिन्हें 'करू' कहा जाता है, बेचे जाते हैं। ये बाह्य स्वरूप में कुटकी के ही समान दिखलाई देते हैं, लेकिन दोनों की सूक्ष्म रचना में भेद होता है। इनके अनुप्रस्थ विच्छेद (Transverse section) में अन्तर स्पष्ट दिखलाई देता है। जें० कुर्रो में रसारोहण नलिका (Vessel) के कोष्ठावरणों की वृद्धि से उत्पन्न मोटाई, चक्राकार (Annular) या सीढ़ी के डण्डों की तरह मोटी रेखाकार (Scalariform) होती है, लेकिन कुटकी (P. kurroa) में यह मोटाई बिन्दुमय (Pitted) होती है। कुटकी (P. kurroa) में मूल के मध्य भाग में रहने वाले कोष्ठ जिन्हें पिथकोष्ठ (Pith cells) कहा जाता है, वे बिन्दुमय आवरण (Pitted walled) वाले होते हैं लेकिन ये कोष्ठ जे० कुर्रो में अनुपस्थित रहते हैं। गुण धर्म की दृष्टि से भारतीय जे० कुर्रो विदेशी जेन्शियाना का अच्छा प्रतिनिधि समझा जाता है।

(ख) जे० कुर्रो के अतिरिक्त इसमें एक तीक्ष्ण औषधि **लै०**-*Helleborus niger Linn.* (हेलीबोरस् नाइगर्) मिली हुई रहती है, जिसको पहचानना आवश्यक है। इसके टुकड़े १ से ३ इञ्च लंबे और ½ इञ्च से कम मोटे होते हैं। बाह्य पृष्ठ चिकना, टूटे हुवे मूल के निशानों से युक्त एवं हलके रंग का होता है। यह टुकड़े बहुत हलके तथा दो अंगुलियों के बीच नख से दबाने पर दब जाने वाले होते हैं।

४६ (क) करू

सं०-त्रायमाण ? **हि०, बं०**-करू, कुटकी। **पं०**-कमल फूल, नीलकंठ। **बंब०**-पाषाणभेद, जितीयाण। **अं०**-Indian Gentian (इण्डियन् जेन्शियन्)। **लै०**-*Gentiana kurroo Royle* (जेन्शियाना कुर्रो)। Fam. Gentianaceae (जेन्शियानॅसी)।

इसका **क्षुप** काश्मीर तथा हिमालय के उत्तरी पश्चिमी शिखरों पर ५०००-११००० फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है। **पत्र**-मूलीय; कोषमय आधार वाले, ३-५ इञ्च लम्बे, रेखाकर (Linear ; **पुष्प**-नीले सफेद दागों से युक्त; **मूल**-हलका, पीला, चौपहल; **फली**-लम्बी। चिकित्सा में इसके भौमिक तने तथा मूल का व्यवहार किया जाता है। कुटकी तथा विदेशी 'जेन्शियन्' के स्थान पर इसका प्रयोग किया जाता है। इसकी अन्य जातियों का भी इसी प्रकार व्यवहार किया जाता है। इसके टुकड़े १ इञ्च लम्बे एवं इन पर चक्राकार धारियां होती हैं तथा ये ऐंठे हुए से प्रतीत होते हैं। अन्य पार्थक्य ऊपर लिखा गया है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक कड़ुवा पदार्थ तथा एक पारदर्शक राल के समान पीले रंगका बिना स्वाद का पदार्थ २०% पाया जाता है जो क्षारीय घोल में नहीं घुलता। इसमें जे न्शियन

पिक्रिन (Gentiopicrin) नहीं होता जिसे विदेशी जैन्शियन् (G. lutea) का प्रभावकारी द्रव्य समझा जाता है। शायद यह इसके ताजे मूल से प्राप्त हो सकता है।

गुण और प्रयोग—यह कडुआ तथा बल्य है। इससे आमाशयिक रसों की अभिवृद्धि होकर भूख बढ़ती है। अधिक मात्रा में सेवन करने पर यह विरेचन कराती है। इसका स्वाद एवं गन्ध अच्छी होने के कारण अनेक बल्य एवं पाचक औषधियों के साथ इसका प्रयोग किया जाता है। इसमें टॅनिन न होने के कारण यह ग्राही भी नहीं होता है। ज्वर में इससे लाभ होता है।

मात्रा—चूर्ण ५-१५ र०।

४६ (ख) खुरासानी कुटकी

हि०-खुरासानी कुटकी। **गु०**-कडू। **म०**-कडू। **अ०**-खेरतिक। **इरान**-खेरबेकसीआ। **अं०**-Black hellebore (ब्लॅक् हेलीबोर), Christmas rose (क्रिस्टमस् रोझ)। **ले०**-*Helleborus niger Linn.* (हेलीबोरस नाइगर)। Fam. Ranunculaceae) (रेनन्क्युलेसी)।

इस वनस्पति के मूल नेपाल, हिमालय और अरब से आते हैं। कुटकी में इसकी मिलावट रहती है। विशेष वर्णन कुटकी के साथ दिया गया है।

रासायनिक संगठन—इसमें हेल्लेबोरिन् (Helleborin) तथा हेल्लेबोरेइन् (Helleborein) नामक पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह हृद्य, ज्वरहर, वेदनाहर, विरेचक, आर्तववृद्धिकर एवं कृमिघ्न है। अधिक मात्रा में यह विषैली औषधि है। इससे हृदयातिपात होकर मृत्यु हो सकती है। अधिक मात्रा से प्रथम वमन और विरेचन प्रारम्भ होता है, फिर नाडी की गति कम होते होते मृत्यु हो सकती है।

(१) हृदय की अकार्यक्षमता के कारण उत्पन्न जलोदर में पुनर्नवा, अपामार्ग, चिरायता एवं सोंठ के साथ इसका क्वाथ बहुत लाभकर होता है। हृदय पर इसकी क्रिया डिजिटॅलिस् के समान होती है। इससे हृदय को बल मिलता है एवं नाडी की गति मंद होकर नाडी बलवान् होती है और जलोदर दूर होता है।

(२) वेदनायुक्त ज्वर जैसे फुफ्फुस पाक, तीव्र सन्धि शोथ एवं प्रसूतिज्वर आदि में इसके प्रयोग से लाभ होता है। इन रोगों में इसकी क्रिया वत्सनाभ के समान होती है।

(३) इसके क्वाथ से व्रण प्रक्षालन करने से व्रणपीडा दूर होती है। यह स्थानिक वेदनाहर भी है।

मात्रा—चूर्ण ४-८ र०।

अथ किरातकस्य (चिरायता) नामगुणानाह

किराततिक्तः कैरातः कटुतिक्तः किरातकः ॥ १५३ ॥
काण्डतिक्तोऽनार्यतिक्तो भूनिम्बो रामसेनकः ॥
किरातकोऽन्यो नैपालः सोऽर्द्धतिक्तो ज्वरान्तकः ॥ १५४ ॥
किरातः सारको रूक्षः शीतलस्तिक्तको लघुः ।
सन्निपातज्वरश्वासकफपित्तास्रदाहनुत् । कासशोथतृषाकुष्ठज्वरव्रणकृमिप्रणुत् ॥ १५५ ॥

चिरायता के नाम तथा गुण—किराततिक्त, कैरात, कटुतिक्त, किरातक, काण्डतिक्त, अनार्यतिक्त भूनिम्ब और रामसेनक ये सब चिरायता के नाम हैं। नेपाल देश में एक प्रकार की चिरायता उत्पन्न होती है जो कि इसकी अपेक्षा आधा तिक्तरसयुक्त होती है। अत एव उसे 'अर्धतिक्त' कहते हैं। वह ज्वरनाशक होती है। **चिरायता**— सारक (दस्तावर), रूक्ष, शीतल, तिक्तरसयुक्त एवं लघु होती है एवं सन्निपातज्वर, श्वास, कफ, पित्त, रक्तदोष, दाह, कास, शोथ, प्यास, कुष्ठ, ज्वर, व्रण और कृमि इन सबों को दूर करती है॥ १५३-१५५ ॥

४७ किरात (चिरायता)

हि०-चिरायता, चिरेता, चिरैता, चिराइता। **ब०**-चिराता, चिरेता। **म०**-काडेचिराईत, चिराइता। **गु०**-करियातुं। **क०**-नेलबेवु। **ते०**-नीलवेमु। **ता०**-निलरवेम्बु। **फा०**-नोनिहाद, मोनिहादन्दी। **अ०**-कसबुज्जरीरा, कस्बुझ्झारिरा, कसबुल् रायरह। **अं०**-Chireta। चिरेटा)। **ले०**-*Swertia Chirata* (Buch-*Ham*)। (स्वर्शिया चिराटा) Fam. Gentianaceae (जेन्शियानॅसी)।

चिरायता हिमालय पहाड़ के गरम प्रान्तों में काश्मीर से भूटान तक और खासिया के पहाड़ पर उत्पन्न होता है।

प्रायः पृथ्वी के सब देशों में १८० प्रकार का चिरायता पाया जाता है, इनमें हमारे देश में ३७ प्रकार का होने का अनुभव किया गया है। जिस चिरायते को हम लोग व्यवहार में लाते हैं और जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, वह हिमालय पहाड़ के लगभग ४ हजार से १० हजार फीट ऊँची चोटियों पर तथा खासिया के पहाड़ पर ४ हजार से ५ हजार फीट की ऊँची चोटियों पर उत्पन्न होता है।

इसका वर्षायु **क्षुप**—दो फीट से ५ फीट तक ऊँचा होता है। **कांड**—नारंगी कालासा या जामुनी, मूल की तरफ गोल, मोटा, ऊपर बहुशाखा युक्त तथा चौपहल; **पत्र**—चौड़े भालाकार, ४ × १·५ इञ्च, चिकने, नोकदार, ३ से ७ शिराओं से युक्त, विपरीत; **दलपत्र**—हरित पीत, परंतु बैंगनी रंग की छाया भी हो सकती है। प्रत्येक विच्छेद पर दो दो हरिताभ और रोमश ग्रन्थियाँ होती हैं। फूलने पर इसमें **डोंडी** लगती है जिनमें बहुत, बारीक बीज निकलते हैं। पुष्पित होने पर सम्पूर्ण क्षुप को उखाड़ कर सुखाकर बेचते हैं जिसका औषधि में व्यवहार होता है। यह अत्यन्त कड़वा होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें चिरातिन् (Chiratin, $C_{52}H_{96}O_{30}$) और ओफेलिक् एसिड (Ophelic acid, $C_{26}H_{40}O_{20}$) नामक दो कडुवे द्रव्य १·४२-१·५२% रहते हैं। इनमें पहला हलके पीले रंग का पदार्थ है एवं दूसरा भी हलके पीले बादामी रंग का, आर्द्र, चासनी की तरह पदार्थ होता है जो जल तथा मद्यसार में घुल जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें यवक्षार, चूना, राल एवं ओलिक् (Oleic), पामिटिक् (Palmitic) और स्टियरिक् अम्ल (Stearic acids) आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—चिरायता दीपन, पाचन, तिक्तपौष्टिक, ज्वरहर, दाहप्रशमन, पित्तविरेचक एवं कृमिघ्न है। जेन्शियन की तरह ही यह लाभदायक है। इसके प्रयोग से भूख बढ़ती है, पाखाना साफ होता है तथा पुराने ज्वर में लाभ होता है। इसका उपयोग स्वतन्त्र की अपेक्षा अन्य औषधियों के साथ अधिक किया जाता है।

इसका प्रयोग ज्वर, विषमज्वर, दाह, अग्निमान्द्य, शैथिल्यप्रधान कुपचन, आध्मान, अम्लपित्त, यकृत विकार, कामला, पांडु, श्वास, शोथ, गण्डमाला तथा कृमिरोग एवं व्रण में किया जाता है।

(१) पुराने ज्वर में जब अग्निमांद्य तथा शरीर में दाह रहता है तब इसके फांट या चूर्ण से लाभ होता है। सुदर्शन चूर्ण, जिसमें इसकी आधी मात्रा रहती है, बहुत व्यवहार में आता है।

(२) रोग संनिवृत्तावस्था में पाचन सुधारने के लिए तथा अग्निवृद्धि के लिए बल्य औषधि के रूप में इसके फाण्ट का व्यवहार लौंग दालचीनी आदि सुगन्धि औषधियों के साथ किया जाता है।

(३) हिचकी, गर्भिणीवमन एवं मद्यपान करने वालों में यदि वमन हो तो इसके चूर्ण वा क्वाथ का प्रयोग मधु या शर्करा मिलाकर करते हैं।

(४) वातरक्त में बल्य औषधि की तरह इसका प्रयोग किया जाता है।

(५) उष्ण कटिबन्धज यकृत विकारों में धनियां तथा चिरायते का क्वाथ मधु के साथ देने से लाभ होता है।

(६) भूनिम्बादि चूर्ण जिसमें चिरायता, कुटकी, त्रिकटु, मुस्तक, इन्द्रयव, कुरैया की छाल एवं चित्रक आदि पदार्थ रहते हैं, उसका व्यवहार कुपचन, संग्रहणी, ज्वर तथा कृमिरोग में किया जाता है।

(७) सुदर्शन चूर्ण तथा टङ्कण क्षार का दो तीन बार बाह्य प्रयोग करने से 'अजगल्लिका' (Impetigo contagiosa) नामक फुन्सियों में पारद मलहर की अपेक्षा अधिक लाभ होता है।

(८) जीर्णज्वर में पांडु तथा कृशता होने पर किराताादि तैल से अभ्यङ्ग कराया जाता है।

मात्रा—चूर्ण ४–१५ रत्ती।

प्रतिनिधि—ये सभी जेन्शियानेसी (Gentianaceae) वर्ग के हैं।

(१) S. purpurascens Wall. (स्व॰ पर्प्यूरासेन्स्)—यह पश्चिमोत्तर हिमालय के गरम प्रान्तों में काश्मीर से कुमाऊँ तक प्राप्त होता है। **कांड** छोटे; **शाखाएँ** फैली हुई; **पत्र** आयताकार वा भालाकार, १½ × ·७ इञ्च; **दलपत्र** हलके सुर्खी लिये बैंगनी रंग के और उनके आधार पर एक कालाचक्र, विच्छेद बाहर की ओर मुड़े हुये और एक एक ग्रन्थि से युक्त होते हैं।

(२) S. decussata Nimmo ex Grah. (स्व॰ डिकसेटा)—**म॰**—सिलाजित, **महाबलेश्वर**—कडु, **द॰**—कर्वि।

इसका छोटा क्षुप दक्षिण के पश्चिमी भागों में होता है। कांड चौपहल; पुष्प श्वेत। इसके टुकड़े २ इञ्च लम्बे एवं हंस के पंख के इतने मोटे होते हैं। ये महाबलेश्वर में बिकते हैं। स्वाद अत्यन्त कडुआ। **गुण** करू (जें. कुर्रो) की तरह।

(३) S. chinensis Franchet (स्व॰ चाइनेन्सिस्)—**जापानी** चिरायता का क्षुप छोटा एवं ४–१४ इञ्च ऊँचा होता है। **कांड** बहुत बारीक। यह स्वाद में चिरायते की अपेक्षा अधिक कडुआ होता है।

(४) S. paniculata Wall. (स्व॰ पॅनिक्युलॅटा) **बं॰**—कडवी।

(५) S. perennis Linn. (स्व॰ पेरेन्निस्)।

(६) S. corymbosa Wight (स्व॰ कोरिम्बोसा)।

(७) S. affinis Clarke (स्व॰ अफिनिस्)।

(८) Exacum bicolor Roxb. (एक्झॉकम् बाइकलर)—**हि॰** बड़ा चिरायता।

इसका क्षुप दक्षिण में कोंकण में बरसात के दिनों में उत्पन्न होता है। **पुष्प** श्वेत और सुन्दर। **दलपत्रों** के अन्तिम हिस्से जरा नीले से रहते हैं। **गुण**—पौष्टिक, अग्निवर्धक एवं करू की तरह।

(९) E. tetragonum Roxb. (ए. टेट्रागोनम्)—**हि॰**-तितखन, **म॰**- ऊदकिराईत।

इसका वर्षायु **क्षुप** उत्तर हिन्दुस्तान के पहाड़ी प्रदेश एवं हिमालय पर उत्पन्न होता है। यह एक हाथ ऊँचा, **कांड** चौपहल; **पत्र**–विपरीत, विनाल, शल्याकृति लेकिन कुछ चौड़े, एक अङ्गुल लम्बे और ५ शिरायुक्त; **पुष्प** नीले। **गुण**–दीपन एवं कडुवापौष्टिक। इसका प्रयोग जीर्णज्वर तथा कुपचन में किया जाता है।

(१०) Erythraea roxburghii G. Don (एरिथ्रिआ रॉक्सबर्गाय)। **ब॰**–गिर्मि। **म॰**–लुन्तक।

इसका छोटा सा क्षुप कोंकण में बरसात के बाद उत्पन्न होता है। **पुष्प** सुन्दर, गुलाबी एवं सितारों के समान। **स्वाद** कडुवा। **गुण**—इसको कडूनाई भी कहते हैं तथा पौष्टिक कडुवी औषधि की तरह बङ्गाल में व्यवहार में आती है। कुपचन तथा ज्वर में इसका प्रयोग किया जाता है।

(११) Enicostemma littorale Blume (एनिकोस्टेमा लिटोरेल)—**हि॰, म॰**–छोटा चिरायता, **गु॰**–मामिज्वा; **ते॰**–नेलगल्लि।

इसका छोटा क्षुप सभी जगह किन्तु समुद्र के किनारे तथा तर जमीन में अधिक होता है। यह बंगाल में नहीं होता। गुजरात तथा उत्तरी कोंकण में बहुत होता है। इसका **क्षुप** एक बित्ता ऊँचा एवं बहुत शाखायुक्त होता है। **कांड** सीधा, चौपहल एवं मूल से ऊपर तक पत्र युक्त। **पत्र** विपरीत, विनाल, शल्याकृति, सनाय वा इमली की तरह एवं ३ शिरायुक्त। **पुष्प** श्वेत, छोटे, विनाल, प्रत्येक कोण में ३, ३। **फल** गोल फली। **स्वाद** अत्यन्त कडुवा। इसके पञ्चांग का व्यवहार गुजरात तथा मद्रास में अधिक किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह दीपन, पाचन, वातानुलोमक, आनुलोमिक एवं तिक्त पौष्टिक है। इसको रत्ती दो रत्ती मात्रा में कुपचन में देते हैं।

व्यामिश्रण—इनमें से प्रथम दो जेन्शियानेसी (Gentianaceae) वर्ग के हैं।

(१) S. angustifolia Buch.-Ham. (स्व॰ अँगस्टिफोलिया)—इसका **कांड** चौपहल एवं पंखयुक्त होता है। यह स्वाद में चिरायते की अपेक्षा कम कडु होता है एवं इसमें पिथ कोष (Pith cells) बहुत ही अल्प रहते हैं।

(२) S. alata Royle ex D. Don (स्व॰ ॲलाट)—यह बिलकुल कडुवा नहीं होता। इसमें पिथ (Pith) पूर्ण संवर्धित रहता है। चिरायता इससे अधिक गहरे रंग का, स्वाद में अत्यन्त कडुवा और इसका पिथ (Pith) संतत (Continuous) रहता है।

(३) Rubia cordifolia Linn. (रूबिया कॉर्डिफोलिया) (Fam.—Rubiaceae–रूबिएसी) – इसकी पहचान इसके बैंगनी (Purple) रंग से हो जाती है।

(४) Andrographis paniculata Nees (Fam. Acanthaceae–ॲकेथेन्सी) (अंड्रोग्राफिस् पॅनिक्युलॅटा) – हि॰ कालमेघ।

इसके कांड हरे, अनेक सीधी, पतली विपरीत शाखाएँ एवं पत्र भालाकार और हरे होते हैं जिससे इसका भेद किया जा सकता है। देशी चिरायता के नाम से यह बजार में बिकता है।

अथेन्द्रयवस्य नामगुणानाह

उक्तं कुटजबीजं तु यवमिन्द्रयवं तथा । कलिङ्गं चापि कालिङ्गं तथा भद्रयवा अपि ॥१५६॥

इन्द्रयव के नाम तथा गुण—कुटज (कुडा या कुरैया) के बीज को इन्द्रयव कहते हैं उसके नाम—कुटजबीज, यव, इन्द्रयव, कलिङ्ग, लिङ्गका और भद्रयव ये सब हैं ॥ १५६ ॥

इति क्लीबेऽमरोप्याह ॥ १५६ ॥

'अमरसिंहने 'अमरकोश' में इन्द्रयव को नपुंसकलिङ्ग कहा है ॥ १५६ ॥

क्वचिदिन्द्रस्य नामैव भवेत्तदभिधायकम् । फलानीन्द्रयवास्तस्य तथा भद्रयवा अपि ॥१५७॥

कहीं पर इन्द्र के जो नाम हैं वे ही इन्द्रजव के भी समझे जाते हैं और कुरैया के फल का इन्द्रयव तथा भद्रयव नाम हैं ॥ १५७ ॥

इति धन्वन्तरिः प्राह ॥ १५७ ॥

यहां पर यह और समझना चाहिये कि यह वचन 'धन्वन्तरि' भगवान् का है, इससे इन्द्रयव का पुल्लिङ्ग में भी प्रयोग होता है ॥ १५७ ॥

इन्द्रयवं त्रिदोषघ्नं संग्राहि कटु शीतलम् ॥ १५८ ॥
ज्वरातीसाररक्तार्शोवमिवीसर्पकुष्ठनुत् । दीपनं गुदकीलास्रवातास्रश्लेष्मशूलजित् ॥ १५९ ॥

इन्द्रजव त्रिदोषनाशक, संग्राही, कटु रस युक्त और शीतल है। यह ज्वर, अतीसार, खूनी बवासीर, वमन, वीसर्प एवं कुष्ठ को दूर करने वाला, अग्निदीपक एवं गुदकील, रक्तदोष, वातरक्त, कफ तथा शूल को दूर करता है ॥ १५८–१५९ ॥

४८ इन्द्रयव

हि०—इन्द्रजव, कडवा इन्द्रजव । **गु०**—इन्दर जव, इन्द्र जव । **म०**—कुड्याचे बी । **ले०**—*Holarrhena antidysenterica Wall.* (हॉलेहीना एन्टिडिसेन्टेरिका)। Fam. Apocynaceae (एपोसाइनेसी)।

कुडा वृक्ष की फलियों के बीज को 'इन्द्रजव' कहते हैं। यह देखने में जई के आकार का होता है। इन्द्रजव कड़वा और इन्द्रजव मीठा इन भेदों से यह दो प्रकार का होता है। मीठा या कम कड़वा इन्द्रजव, कुटज भेद, राइटिया टिन्क्टोरिया (Wrightia tinctoria R. Br.) के बीज को कहते हैं जो कम गुण वाला होता है। इनका शेष परिचय कुटज वृक्ष के प्रकरण में दिया जायगा।

गुण और प्रयोग—यह कडुवा, दीपन, संग्राही, ज्वरहर, कृमिघ्न, वातानुलोमक, वृष्य, बल्य एवं रक्तसंग्राहक है।

इसका प्रयोग रक्तातिसार, ज्वरातिसार, शीतज्वर, रक्तार्श, संग्रहणी, प्रवाहिका, पथरी तथा श्वास एवं पुराने फुफ्फुस विकारों में किया जाता है। इसको भूनकर फांट, क्वाथ या चूर्ण के रूप में दिया जाता है।

(१) बच्चों के रक्तातिसार में कडवा इन्द्रजव एवं नागरमोथा के क्वाथ में मधु मिलाकर दिया जाता है।

(२) रक्तार्श में सोंठ के साथ इसके क्वाथ को देने से लाभ होता है। इसको दूध के साथ क्वाथ करके देने से इसमें बहुत लाभ होता है।

(३) कुपचन, उदरशूल एवं अग्निमान्ध आदि के लिये इसके चूर्ण को अल्प मात्रा में नित्य लेने से लाभ होता है। वमन में इसको भूनकर या फांट या क्वाथ बनाकर देना चाहिये।

(४) पुराने फुफ्फुस के विकार तथा दमा में इसका व्यवहार किया जाता है।

(५) पार्यायिकज्वर तथा शीतज्वर में इसको गुडुच के साथ क्वाथ बनाकर देना चाहिये। नित्य इन्द्रजव का चूर्ण खाते रहने से शीतज्वर नहीं आता।

(६) पूयदन्त (Pyorrhoea) में मसूढ़ों पर इसके चूर्ण को मलने से रक्तस्राव कम होता है तथा पूय एवं दुर्गन्धि दूर होती है।

मात्रा—चूर्ण १–४ माशा भूनकर या ½–१ तो० क्वाथ बनाकर।

मीठा इन्द्रयव बलवर्धक है तथा धातुपौष्टिक के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है।

अथ मदनस्य (मैनफल) नामगुणानाह

मदनश्छर्दनः पिण्डो नटः[1] पिण्डीतकस्तथा । करहाटो मरुबकः शल्यको विषपुष्पकः ॥१६०॥
मदनो मधुरस्तिक्तो वीर्योष्णो लेखनो लघुः । वान्तिकृद्विद्रधिहरः प्रतिश्यायव्रणान्तकः ॥
रूक्षः कुष्ठकफानाहशोथगुल्मव्रणापहः ॥ १६१ ॥

मैनफल के नाम तथा गुण—मदन, छर्दन, पिण्ड, नट, पिण्डीतक, करहाट, मरुबक, शल्यक तथा विषपुष्पक ये सब मैनफल के नाम हैं। **मैनफल**—मधुर तथा तिक्तरसयुक्त, उष्णवीर्य, लेखन, लघु, वमनकारक, विद्रधिरोग को दूर करने वाला, प्रतिश्याय (जुकाम) और व्रणका नाशक, रूक्ष एवं कुष्ठ, कफ, आनाह, शोथ, गुल्म तथा क्षत को दूर करने वाला होता है ॥ १६०–१६१ ॥

४९ मदन (मैनफल)

हि०—मैनफल, मयनफल । **बं०**—मैनफल, मयना कांटार गाछ । **म०**—गेल, गेलफल । **गु०**—मींढोल, मींढल । **क०**—मंगरिकै । **ते०**—बसन्त कडिमि चेट्टु, मण्डचेट्टु, मंगचेट्टु । **ता०**—मरकलम्, पुंगारै । **ने०**—मैदल । **फा०**—झुझ्-उल्-कुच् । **अ०**—जौजुल् कौसल । **अं०**—Emetic Nut (एमेटिक नट्), Bushy Gardenia (बुशी गार्डेनिया) । **ले०**—*Randia dumetorum Lam.* (रेंडिया ड्युमेटोरम्) । Fam. *Rubiaceae* (रूबियेसी)।

यह हिमालय के साधारण प्रदेश में जम्मू से पूरब की ओर सिक्कम तथा दक्षिण की ओर चट्टगांव, खासिया पहाड़, सिलहट आदि प्रान्तों में पाया जाता है।

इसका **वृक्ष**—१–१॥ इञ्च लम्बे लम्बे मजबूत पत्र कोणीय कांटों से भरा हुआ छोटे कद का होता है। छाल-भूरे रङ्ग की, लकड़ी-सफेद या भूरे रङ्ग की होती है। **पत्ते**—१–२ इञ्च लम्बे ऊपर से लट्वाकार और नीचे की ओर क्रमशः पतले होकर पंखयुक्त पत्रनाल में परिवर्तित होते हैं और प्रायः दलबद्ध होकर रहते हैं। **फूल**—पांच पंखड़ी वाले किञ्चित् हरिताभ, सफेद और सुगन्धयुक्त होते हैं। **फल**—जङ्गली अन्जीर, सुपारी या अखरोट के आकार के होते हैं और पकने पर पीले पड़ जाते हैं। **बीज**—छीहीदाने के समान होते हैं। इन्हीं फलों को मैनफल कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके फल में सॅपोनिन् (Saponin) तथा व्हॅलेरियानिक् एसिड (Valerianic acid), मोम, राल एवं रञ्जक पदार्थ आदि पाये जाते हैं।

---

१. 'राठः' इति पाठा०।

गुण और प्रयोग—मैनफल बहुत अच्छा वमन द्रव्य माना गया है। प्राचीन शास्त्रकारों ने इसके बीजों को एक विशेष प्रकार से संग्रह कर व्यवहार करने को लिखा है। नये ग्रन्थकार इसके बीज वा फल की छाल को वामक नहीं मानते लेकिन इसके गूदे (Pulp) को वामक मानते हैं। डा० देसाई प्राचीन मत से सहमत हैं। कुछ भी हो सम्पूर्ण फल वामक अवश्य है। कुछ विद्वान् इसको इपीकाक् का अच्छा प्रतिनिधि बतलाते हैं। इसका उपयोग गर्भपात कराने के लिये किया जाता हैं तथा यह मछलियों के लिये विषैला है।

(१) एक फल कूट कर २½ तो० जल में १ घंटा भिगोकर रखना चाहिये। फिर प्रस्थर के खरल में घोंटकर, कपड़े से छान कर, उसमें थोड़ा मधु तथा पीपर मिलाकर खाली पेट पिलाने से १ घण्टे बाद १–२ साफ वमन हो जाता हैं और कभी कभी बाद में विरेचन भी होता है। इस वामक प्रयोग को हृष्ट–पुष्ट मनुष्य में व्यवहार में लाना चाहिये।

(२) इसके २–३ फलों के गूदे को कूट कर ½ पाव जल में १०–१५ मिनट मसल कर छानकर प्रयोग किया जाय तो प्रायः १० मिनट में हृल्लास और वमन शुरू हो जाता है। इसको देने के बाद उष्ण जल पिलाने से और भी वमन होता है। या केवल १ फल का गूदा भी पर्याप्त हो सकता है।

(३) इसके गूदे को सुखाकर रख सकते हैं तथा १ से ४ माशे तक वामक औषधि के रूप में या २½–५ र० कफनिःसारक एवं स्वेदल औषधि के रूप में व्यवहार में ला सकते हैं।

(४) मुलेठी मन्दार एवं मैनफल का चूर्ण २–७ र० देने से श्वास तथा खाँसी में लाभ होता हैं एवं अधिक मात्रा में (१०–३० र०) अजीर्ण, शूल, शिरःशूल और अण्डकोष शोथ में वमन कराने के लिये देते हैं।

(५) अन्य सुगन्धि औषधियों के साथ रक्तातिसार, पार्यायिक ज्वर एवं शिरःशूल में इसके गूदे को देते हैं। अतिसार में १ से २ माशा गूदा दिया जाता है। यह इपीकाक् का अच्छा प्रतिनिधि है।

(६) इसके गूदे का टिंक्चर १५–६० बूंद कुकास एवं पागलपन में तथा उद्वेष्टन निरोधि एवं शामक औषधि के रूप में व्यवहार में लाया जाता है।

(७) इसका फलत्वक् एवं बीज विरेचक एवं कृमिघ्न हैं एवं बच्चों में पित्तमयता तथा कृमि दूर करने के लिये व्यवहार में आता है।

(८) इसके वृक्ष की छाल का बाह्य लेप शोथहर एवं वेदनाहर है एवं आमवात, फोड़े तथा चोट एवं हड्डियों की पीडा पर लगाया जाता है। अतिसार, संग्रहणी, ज्वर तथा आमवात में इस वृक्ष की छाल का आन्तरिक प्रयोग भी किया जाता है। कांजी के साथ इसके फल को पीस कर नाभि के चारों तरफ लगाने से उदरशूल दूर होता है। मुखदूषिका (acne) एवं फोड़े आदि में इसके फल के लेप से लाभ होता है।

(९) बच्चों में दन्तोत्भेद के समय ज्वर आदि होने पर इसके गूदे के चूर्ण को तालू तथा मसूढों पर रगड़ते हैं।

(१०) वन्ध्यत्व दूर करने के लिये ६ माशा इसके बीज के चूर्ण को दूध, शक्कर वा केशर के साथ खिलाना चाहिये तथा ८, १० रत्ती चूर्ण की गुड़ के साथ बत्ती बनाकर योनि में धारण करानी चाहिये। इस प्रयोग से गर्भाशय शोथ आदि विकार दूर होकर कष्टार्तव एवं अनियमितार्तव आदि में भी लाभ होता हैं।

(११) सर्पविष में यह औषधि लाभदायक है। इसके मूल को बैल के मूत्र में पीसकर अंजन कराया जाता हैं तथा शुष्क मज्जा का आन्तरिक प्रयोग (५–१५ र०) करते हैं।

मात्रा—वामक–१ फल का हिम। गूदे का चूर्ण १–४ माशा। अन्य गुणों के लिये २–४ रत्ती।

अथ रास्नाया नामगुणानाह

रास्ना युक्तरसा रस्या सुवहा रसना रसा। एलापर्णी च सुरसा सुगन्धा श्रेयसी तथा ॥१६२॥
रास्नाऽऽमपाचिनी तिक्ता गुरूष्णा कफवातजित् ॥ १६३ ॥
शोथश्वाससमीरास्रवातशूलोदरापहा । कासज्वरविषाशीतिवातिकामयसिध्महृत् ॥ १६४ ॥

रास्ना के नाम तथा गुण—रास्ना, युक्तरसा, रस्या सुवहा, रसना, रसा, एलापर्णी, सुरसा, सुगन्धा तथा श्रेयसी ये सब रास्ना के नाम हैं। **रास्ना**—आम को पचाने वाली, तिक्तरस युक्त, गुरु, उष्णवीर्य और कफ वात नाशक है तथा शोथ, श्वास, वातरक्त, वातशूल, उदर रोग, कास, ज्वर, विष, अस्सी (८०) प्रकार के वात रोग तथा सिध्म इन सब को दूर करती है ॥१६३–१६४॥

५० रास्ना

आज कल वैद्य समाज में रास्ना एक भ्रमात्मक औषधि मानी जा रही है। वात विकारों के लिये आयुर्वेद में इसका प्रयोग रास्नादि, महारास्नादि क्वाथ के रूप में बहुत किया जाता है। भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न औषधि रास्ना नाम से ली जाती है। प्राचीन ग्रन्थों में इसके परिचय में निम्न श्लोक प्राप्त होते हैं।

रास्ना तु त्रिविधा प्रोक्ता मूलं पत्रं तृणं तथा।
ज्ञेयौ मूलदलौ श्रेष्ठौ तृणरास्ना तु मध्यमा ॥ (रा. नि.)
अथ रास्ना भृङ्गपत्रा पाषाणादौ प्रजायते।
गिरौ च लघु–रास्ना स्यात् ततो हीनगुणा स्मृता ॥

सुगन्धमूला, एलापर्णी ॥ (शिवदत्तः)

नीचे रास्ना नाम से ली जाने वाली विभिन्न वनस्पतियों का वर्णन अलग २ किया गया है।

(१) Pluchea lanceolata Oliver & Hiern (प्लूचिया लॅन्सिओलॅटा)। Fam-Compositae (काम्पोझिटी)। **हि०**–रायसन, रोशना, वायसुरई। **पं०**–रासन। **सिन्ध०**–कौरसन। **रा० पु०**–छोटा कलिया। **अलीगढ़**–वनसेरई, वनसोरई, वायसुरई। **आगरा**–छोटी कलिया। **कानपुर**–सुरही, सोरहि। **बिहार**–रोशना, रचना, रोचना।

यह अपर बंगाल, बिहार, अवध, कानपुर और पश्चिम की ओर पञ्जाब तथा सिन्ध तक पाई जाती है। पत्तों का आकार रास्ना अर्थात् जिह्वा के सदृश होने से इस का नाम रास्ना रखा गया है। इसी के आधार पर **उत्तर प्रदेश, पश्चिमोत्तर प्रदेश** आदि जगहों के अधिकांश वैद्य वायसुरई को ही 'रास्ना' मानते हैं। **बिहार** के ग्रामीण इसको 'रचना' और 'रोचना' के नाम से पुकारते हैं। मालूम होता है कि—रचना शब्द रसना का अपभ्रंश है। बिहार के अधिकांश वैद्य भी इसको उपयोग में लाते हैं। श्रीमान् ठा० बलवन्तसिंहजी इसी को उपयोग में लाने की सलाह देते हैं।

इसका **क्षुप** १-२ फीट ऊँचा, अनेक शाखा प्रशाखा करके झाड़दार तथा उन पर असंख्य बारीक भूरे रङ्ग के रोवें होते हैं। **पत्ते**-१-२ इञ्च लम्बे सनाय के पत्तों के आकार वाले किन्तु उससे बड़े होते हैं तथा **सूखने** पर पीलापन लिये भूरे रङ्ग के हो जाते हैं। पर्णवृन्त छोटा एवं ऐंठा हुआ होता है। पतली पतली शाखाओं के अन्त में नन्हे नन्हे बैंगनी रङ्ग के फूलों की घुण्डियां लगती हैं।

गुण और प्रयोग—इसके पत्र सनाय की तरह भेदन हैं तथा सनाय के स्थान पर प्रयोग में आते हैं।

(२) Inula racemosa Hook. f. (इनुला रेसिमोसा)। Fam. Compositae (कॉम्पोझिटी)। **फा०-रासन**, कुष्ठ-इ-शामी। **अ०**-जंजबीलशमी। **ईरान०**-पिल् गुष् धार्ष। **कश्मीर**-पोष्कर।

डा० देसाई अन्य शास्त्रज्ञों के साथ सहमत होते हुए रास्ना के स्थान पर इसी क्षुप के मूल को व्यवहार करने की सलाह देते हैं क्योंकि इसके गुण रास्ना से मिलते जुलते हैं। कुछ अन्य विद्वान् इनूला को **पुष्करमूल** मानते हैं।

स्थान भेद से इसके क्षुप की ३, ४ जातियां पाई जाती हैं। यह काश्मीर तथा उत्तर-पश्चिम हिमालय में होती हैं। भारत में जहां जहां सुगन्ध कूठ होता है वहां वहां यह उत्पन्न होने से तथा उसके समान दिखलाई देने से कूठ में इसकी मिलावट की जाती है।

रासन का क्षुप ५ फीट तक ऊंचा एवं दृढ होता है। **पत्र**-चर्मवत्, ऊपर से खुरदरे एवं नीचे से घनरोमश तथा दन्तुर होते हैं। आधारीय पत्र ८-१८ इञ्च × ५-८ इञ्च बड़े, दीर्घ वृत्ताकार-भालाकार एवं लम्बे वृन्त से युक्त होते हैं। काण्डपत्र अंडाकार-आयताकार, अर्धकाण्डासक्त एवं प्रायः आधार पर गहराईतक खंडित होते हैं। **पुष्प**-पीत वर्ण के १·५-२ इञ्च व्यास के गुच्छों में आते हैं। **फल**-छोटे, महीन एवं अग्र पर रक्ताभ रोमयुक्त होते हैं। इसकी ताजी जड़ में ओरिस् एवं कर्पूर जैसी तीव्र गंध होती है जो रखने पर कम हो जाती है।

रासायनिक संगठन—रासन में अल्प मात्रा में उड़नशील तैल और इनुलिन् (Inulin) होता है। तैल में एलेन्टोलॅक्टोन (Alantolactone, C_{15} H_{20} O_2) नामक एक कृमिनाशक, कफनिःसारक एवं मूत्रल द्रव्य होता है।

गुण और प्रयोग—यह पाचन, वातहर, कफहर, श्वासहर एवं गर्भाशय संकोचक है। इसका काथ आध्मान, उदरशूल, कुपचन, अनार्तव, कष्टार्तव, फुफ्फुस विकार जैसे दमा, जीर्ण श्वसनिका शोथ, क्षय, फुफ्फुसावरण शोथ एवं आमवात तथा अन्य वातिक रोगों में दिया जाता है। इससे ज्वर तथा सूजन कम होती है तथा वेदना दूर होती है।

कण्डू आदि त्वचा के रोगों में इसके काथ को शरीर पर लगाया जाता है। मूल को गोमूत्र में रगड़ कर खुजली, दाद एवं पामा आदि पर लगाया जाता है। राजयक्ष्मा के जन्तुओं से उत्पन्न त्वचा के व्रणों में इससे लाभ होता है। जन्तुओं के विष को दूर करने के लिये इसका उपयोग करते हैं तथा इससे वेदना कम होती है।

प्रतिनिधि—कूठ।

(३) Vanda roxburghii R. Br. (वॅण्डा रॉक्सबर्गाइ)। Fam. Orchidaceae (ओरचिडॅसी)। **बांदा, बंगीय रास्ना**। **बं०**-रास्ना। **संताल**-दरेबंकि। **क०**-मरबाले। **ते०**-कनपचेट्टु, बदनिके, नेरदानचेट्टु।

यह बंगाल, बिहार, गुजरात तथा कोंकण से ट्रावनकोर तक प्राप्त होते हैं। इसके **पौधे** प्रायः आम और मधूक वृक्षों की डालियों पर उगे हुए पाये जाते हैं। **काण्ड** १-२ फीट लम्बा तथा उसकी ग्रन्थियों से अनेक मोटे और मांसल वातलम्बी (Epiphytic = एपिफाइटिक्) मूल निकले रहते हैं। **पत्तियां**-६-८ इञ्च लंबी, मध्य पर्शुक पर गहरी और दो कतारों में निकली हुई रहती हैं। **सदण्डिक पुष्पमंजरियां** पत्तियों से लम्बी होती हैं। **पुष्प** व्यास में १½-२ इञ्च और पंखड़ियां प्रायः मिश्रित वर्ण की होती हैं। वे अधिकतर पीताभ और कभी कभी नीलाभ होती हैं और उनके कुछ भागों में बदामी, बैंगनी तथा सफेद रंग भी होते हैं। **फल**—३-३½ इञ्च लम्बा और सन्धियों पर रीढदार होता है। इसके **मूल** का उपयोग किया जाता है।

बंगाल के अधिकांश कविराज इसी को उपयोग में लाते हैं। वे प्रायः वाटिकाओं में आम के वृक्षों की मोटी टहनियों के ऊपर की खरदरी छाल को पृथक् कर उस पर उक्त रासन को शोरियां युक्त बिठा रस्सी से बांध कुछ मिट्टी का अंश दे पानी से कुछ रोज सींचा करते हैं।

गुण और प्रयोग—आमवातादि में इससे कुछ लाभ होता है। ज्वर में सर्वाङ्ग पर इसके पत्तों का लेप किया जाता है। कर्णस्राव में इसके पत्तों का रस कान में डालते हैं। अनेक वातविकारों तथा आमवातादि में बाह्य प्रयोग के लिये इससे बने तेल का उपयोग किया जाता है। यह फिरङ्ग की द्वितीयावस्था तथा वृश्चिक दंश पर लाभदायक है।

(४) Saccolabium papillosum Lindl. (सॅक्कोलेबिअम् पॅपिल्लोसम्)। Fam Orchidaceae (ऑरचिडॅसी)। **क०**-मरबाले। **म०**-कानमेर।

इसके बांदे भी आम्रवृक्ष के ऊपर होने वाले बांदों की तरह दिखलाई देते हैं।

गुण और प्रयोग—यह तिक्त पौष्टिक है तथा इसका आमवातादि में प्रयोग होता है। **केले के पत्तों में इसके पत्ते लपेटकर पुटपाक करके उसके रस को मधु के साथ कर्णपिटिका के लिये कान में डालते हैं** जिससे कर्णपीडा दूर होती है।

(५) Tylophora asthmatica W. & A. (टाइलोफोरा एस्थमेटिका)। Fam. Asclepiadaceae (एस्क्लेपिएडॅसी)।

हि०-अंतमूल, जंगली पिकवन। **ब०**-अन्तोमूल। **म०**-पितकारी, खडकी रास्ना। **ता०**-नायपाले। **ते०**-वेरिंपल। **मल०**-वल्लीपाल। **क०**-किरूमंजि। **उडि०**-मेंडी। **सं०**-मूलिनी, मूलरास्ना, पित्तवल्ली, आन्त्रपाचक।

इसकी **लता** उत्तरी बंगाल, आसाम, कछार, उडीसा, कोंकण, दक्षिणी भारत, कनारा, मद्रास प्रान्त एवं पूर्व पाकिस्तान, बर्मा, मलाका द्वीप तथा लंका आदि स्थानों पर पायी जाती है। यह रेतीली भूमि पर अधिक होती है। बंबई के बजार में रास्ना के नाम से इसके मूल भी बिकते हैं।

इसकी बहुवर्षायु लता होती है। **पत्र**-२ से ५ इञ्च लम्बे, १ से ३ इञ्च चौड़े, लट्वाकार या अंडाकार, तीक्ष्णाग्र वा लम्बाग्र, आधार पर तांबूलाकार, अखण्ड, सनाल, ऊपरी पृष्ठ चिकना, अधोपृष्ठ रोमश भूरे रंग का, ताजी अवस्था में स्वाद एवं गंध ह्लासकर एवं **सूखने** पर गन्धहीन एवं रुचिहीन। **पुष्प**-बहुत, छोटे, हलके पीले रंग के, अन्दर से बैंगनी एवं गुच्छों में। **फल**-(Follicle)—२ से ४ इञ्च लंबा अग्र की तरफ नुकीला होता जाता है। **मूल**-बहुत लम्बे, मांसल, अनेक, बारीक, हलके पीले या मटमैले तन्तुयुक्त, अन्दर से हलके पीले रंग के, आसानी से टूटने वाले, गन्धहीन, स्वाद प्रारंभ में मीठा लेकिन बाद में कड़ु। इसकी लता ईश्वरमूल की तरह दिखलाई देती है लेकिन उसके पत्र के दोनों पृष्ठ हरे और चिकने तथा पुष्प बड़े होते हैं। **इसके मूल तथा पत्र का** व्यवहार किया जाता है जिनमें **पत्र अधिक गुणकारी** है।

रासायनिक संगठन—इसमें टाइलोफोराइन् (Tylophorine, $C_{24} H_{27} O_4 N$), टाइलोफोरिनाइन् (Tylophorinine, $C_{23} H_{27} O_4 N, 0.5 H_2 O$), ये दो रवेदार क्षाराभ, एक उडनशील तैल ०.२६%, एक रंगहीन रवेदार अन्य पदार्थ ०·१८%, खनिज (Mineral matter) १५% तथा एक वामक द्रव्य आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके मूल तथा पत्र अच्छे वामक, कफनिःसारक, स्वेदल, रक्तशोधक, आनुलोमिक एवं आमपाचक हैं। यह एपीकॅक् के अच्छे प्रतिनिधि हैं। अल्प मात्रा में इससे **खांसी** दमा, बच्चों की कुक्कुर खांसी, **अतिसार एवं संग्रहणी** आदि में बहुत लाभ होता है। **अधिक मात्रा** में यह वामक तथा अधिक बार प्रयोग से वमन के साथ विरेचन भी होता है।

(१) यह १ मा० की मात्रा में चूर्ण के रूप में अतिसार, रक्तातिसार एवं संग्रहणी आदि में देने से बहुत लाभ होता है। इसके साथ सोंठ, गोंद या अल्प मात्रा में अफीम मिलाई जा सकती है।

(२) कफ विकारों में इसके चूर्ण को घोडबच एवं मुलेठी आदि के साथ देने से लाभ होता है।

(३) प्रसूति के बाद स्रावशुद्धि के लिए इसका उपयोग करते हैं।

(४) अजीर्ण आदि में वमन कराने के लिये ४ इञ्च लंबी ताजी जड़ की छाल जल में घिस कर देने से वमन होता है या १–२ माशा पत्र चूर्ण जल के साथ दिया जाता है।

(५) इसको रसायन तथा रक्तशोधक मानते हैं एवं आमवात, फिरंगज आमवाताभ विकृति, सन्धिवात, शरीरपीडा एवं सर्पदंश आदि में इसका उपयोग करते हैं।

(६) वातरक्त में इसके मूल का बाह्यलेप किया जाता है।

मात्रा—½–१ र०; वामक १–२ मा०।

इन उपर्युक्त वनस्पतियों के अतिरिक्त मद्रास की तरफ **कुलिञ्जन** का व्यवहार **रास्ना** के नाम से कुछ लोग करते हैं तथा **धवलबरुआ और सर्पाक्षी**–ले० ओफिओराइझा मुन्गोस् (Ophiorrhiza mungos Linn.) एवं अन्य अनेक औषधियां भी रास्ना नाम से ली जाती हैं। इनमें से प्रथम ३ औषधियां अधिक प्रचलित है।

नोटः—सर्पाक्षी का वर्णन गुडूच्यादि वर्ग तथा धवलबरुआ का वर्णन नाकुली में किया गया है।

अथ (रास्नाभेदः) नाकुली नामगुणानाह

नाकुली सुरसा नागसुगन्धा गन्धनाकुली। नकुलेष्टा भुजङ्गाक्षी सर्पाङ्गी विषनाशिनी॥
नाकुली तुवरा तिक्ता कटुकोष्णा विनाशयेत्। भोगिलूतावृश्चिकाखुविषज्वरकृमिव्रणान्॥

नाकुलीकन्द के नाम तथा गुण—नाकुली, सुरसा, नागसुगन्धा, गन्धनाकुली, नकुलेष्टा, भुजङ्गाक्षी, सर्पाङ्गी तथा विषनाशिनी ये सब नाम 'नाकुलीकन्द' के हैं। **नाकुलीकन्द**—कषाय, तिक्त एवं कटुरसयुक्त तथा उष्णवीर्य होता है। और सर्प, मकड़ी, बिच्छू तथा मूसा इन सबों के विषको दूर करने वाला एवं ज्वर, कृमि तथा व्रण को भी नष्ट करने वाला होता है॥ १६५–१६६॥

५१ नाकुली (धवलबरुआ, सर्पगन्धा)

हि०–नकुलकन्द, नाकुलीकन्द, नाई, हरकाई चन्द्रा, रास्नाभेद, छोटाचांद। **उड़ीसा, बिहार**–धन्नेरना, धनबरुआ, धवलबरुआ, सनोचाडो। **बं०**–नाकुली, गन्धरास्ना, चन्द्र। **म०**–अडकई, चन्द्र। **गु०**–नोलबेल, अमेलपोदी। **क०**–सूत्रनाभि। **ते०**–पातालअगंधि। **मा०**–हरकय। **मलया०**–चुवन्ना अविलपोरी। **फा०**–छोटाचान्दा। **ले०**–*Rauwolfia serpentina Benth. ex Kurz*- (रॉवोल्फिया सर्पेन्टाइना)। Fam. Apocynaceae (एपोसाइनेसी)।

वैद्य समाज में **नकुलकन्द** भी एक सन्दिग्ध वनौषधि है।

कुछ लोगों ने नाकुली को **ले०**–एरिस्टोलोकिआ इन्डिका (Aristolochia indica Linn.), ईशरमूल लिखा है तथा श्री ठा० बलवन्त सिंह जी भी उनसे सहमत होते हुए सर्पगन्धा नाम भी उसी के (नाकुली) लिये तथा धवलबरुआ के लिए राजनिघण्टु का **जम्बू** नाम उचित समझते हैं जिसको श्री भगीरथ स्वामी ने माना है। प्राचीन ग्रंथों में केवल सुश्रुत के अमानुषोपसर्गाध्याय में मानसरोगहर अपराजितगण में सर्पगन्धा नाम का उल्लेख मिलता है। यहां पर पहले वर्णन 'रावोल्फिया' का दिया जा रहा है जिसके बाद ईश्वरमूल का स्वतंत्र वर्णन दिया जावेगा।

धवलबरुआ के क्षुप हिमालय के निचले प्रदेशों में सरहिन्द से लेकर पूर्व में आसाम तक विशेष कर देहरादून, सिवालिक पहाड़ी भाग तथा रोहिलखण्ड, उत्तरी अवध और गोरखपूर के हिमालय के निचले भाग में ४००० फीट की ऊँचाई तक एवं कोंकण, उत्तरी कनारा, दक्षिणी महाराष्ट्र प्रान्त, मद्रास के पूर्वी तथा पश्चिमी घाट में ३००० फीट तक और बिहार के अनेक भाग में जैसे पटना, भागलपूर तथा उत्तरी एवं मध्य बंगाल, बर्मा, श्याम और जावा आदि स्थानों में पाये जाते हैं।

इसका **क्षुप** छोटा, आकर्षक, १ से २ फीट ऊँचा कचित् ३ फीट तक ऊँचा होता है। **पत्र**–हरे, चमकीले, ३–७ इंच लम्बे, १॥–२॥ इंच चौड़े, भालाकार या व्यस्तभालाकार, तीक्ष्णाग्र या लम्बाग्र, आधार की ओर पतले होकर ½ इञ्च पत्रनाल से युक्त एवं टहनी के प्रत्येक गांठ पर ३–४ के चक्रों में (Whorled)। **पुष्प**–श्वेत या साधारण गुलाबी गुच्छों में, २–४ इञ्च लम्बे पुष्प दण्डों पर। **फल**–छोटे, मांसल एक या दो दो जुड़े हुये पकने पर बैंगनी काले। **मूल**–सर्प की तरह टेढ़ा मेढ़ा, करीब १६ इञ्च तक लम्बा, ॥। इ० मोटा, खुरदरा, कुछ कुछ झुर्रियों से युक्त, शाखाओं से युक्त और उस पर लम्बाई में धारियां रहती हैं। इसे तोड़ने पर **भग्न** छोटा एवं अनियमित। मूल की छाल धूसरित पीत (Greyish yellow) तथा अन्दर का काष्ठ श्वेताभ। स्वाद में अत्यन्त कडवा तथा गन्धहीन। इसके मूल को तोड़कर कटे भाग पर २ भाग शोरे का तेजाब (Nitric acid) और १ भाग जल मिले घोल के २ बूंद डालने से मेड्युलरी रेज् (Medullary rays) विशेष कर अन्तःचर्म (Cortex) के पास वाले भाग रंगीन हो जाते हैं। इस क्षुप के ३, ४ साल पुराने पौधे के मूल को शरद्काल में संग्रह कर छाल सहित सुखाकर व्यवहार में लाया जाता है।

रासायनिक संगठन—बिहार में उत्पन्न मूल में सम्पूर्ण क्षाराभ की मात्रा ०·८–१·३% रहती है जिसमें अज्मॅलाइन् (Ajmaline, $C_{20}H_{26}O_2N_2$, 3 H_2O), अज्मॅलीनाइन् (Ajmalinine, $C_{20}H_{26}O_3N_2$, 1·5 H_2O), अज्मॅलीसाइन् (Ajmalicine) तथा **पीत वर्ण के क्षाराभ** सर्पेन्टाइन् (Serpentine, $C_{20}H_{20}O3N_2$, 1.5 H_2O), सर्पेन्टिनाइन् (Serpentinine, $C_{20}H_{20}O_2N_5$, 1.5 H_2O) तथा बिना रवेदार (Amorphous) क्षार (Bases) रहते हैं। देहरादून से प्राप्त जड़ में सम्पूर्ण क्षाराभ की मात्रा १–१·३% तक रहती है लेकिन उसमें पीत वर्ण के क्षाराभ नहीं रहते तथा इसमें अज्मॅलाइन् और अज्मॅलीनाइन् के समसंगठन (Isomeric) वाले दो क्षार द्रव्य रहते हैं। इनके अतिरिक्त उभयविध प्रतिक्रिया (Amphoteric character) वाले कुछ दूसरे भी क्षाराभ होते हैं। इन क्षाराभों के अतिरिक्त इसके मूल में एक तैलीय राल (Oleoresin) और सरपोस्टेरॉल (Serposterol, $C_{30}H_{48}O_2$) रहता है।

इसमें के अजमॅलाइन, सर्पेन्टाइन् और सर्पेन्टिनाइन् क्षाराभ केन्द्रीय वातनाड़ी संस्थान को उत्तेजित करते हैं जिसमें से सर्पेन्टाइन् अधिक प्रभावशाली तथा विषैला है। इन ३ क्षारामों से रहित सम्पूर्ण क्षाराभ तथा मद्यसारीय सत्व (Alcoholic extract) में शामक (Sedative) एवं निद्राकर (Hypnotic) गुण हैं। कुछ क्षाराभ निश्चित रूप से हृदय, रक्तवाहिनी एवं रक्तवाहिनी नियन्त्रक केन्द्र (Vaso-motor centre) के लिये अवसादक (Depressant) हैं।

इसका निद्राकर (Hypnotic) प्रभाव क्षाराभ की अपेक्षा प्रधानतया इसके रालीय भाग में है। इसके शामक गुणों के कारण पागलपन एवं अन्य मानसिक व्याधियों में इसके मूल का बहुत व्यवहार हो रहा है तथा इसके मद्यसारीय सत्व का उपयोग रक्तचाप (Blood pressure) को कम करने के लिये किया जा रहा है।

इधर कुछ दिनों से इस औषधि के संबंध मे विदेशों में विशेष अनुसन्धान किया जा रहा है और इसके कार्यकारी सत्व को रीसर्पाइन् (Reserpine) नाम दिया गया है जो मूल की अपेक्षा १ हजार गुना अधिक कार्यकारी कहा जाता है। यह नाड़ीकन्दों में अवरोध (Ganglionic blockade) उत्पन्न नहीं करता वरन् ऐसा मालूम होता है कि रक्तचाप को कम करने का इसका प्रभाव कुछ अंश में स्वतन्त्र नाड़ी संस्थान के केन्द्रीय निरोध (Central inhibition of sympathetic nervous system) के कारण है।

गुण और प्रयोग—यह तिक्त पौष्टिक, शामक, निद्राकर, ज्वरहर, गर्भाशय उत्तेजक एवं विषहर है। इसका उपयोग बालातिसार और हैजे में ईश्वर मूल के साथ, उदरशूल में जंगली एरण्डमूल के साथ, रक्तातिसार में कुटज के साथ तथा जीर्णज्वर में मिरिच, घोडवच, डिकेमाली, चिरायता एवं विडलवण के साथ किया जाता रहा है। प्रसव के समय आवि (Uterine contraction) वृद्धि के लिये एवं सर्पविष एवं अन्यान्य विषों को दूर करने के लिये भी इसको उपयोग में लाते हैं। सर्पविष में इसके १ से २ तो० मूल को जल में घिसकर पिलाते हैं तथा इसका लेप भी किया जाता है। नेत्र शुक्र में इसके पत्तों का रस आँख में डालते हैं।

उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त यह औषधि युक्तप्रान्त तथा बिहार के प्रान्तों में **पागल की दवा** के नाम से बहुत दिनोंसे प्रसिद्ध है तथा इस कार्य के लिये बहुत दिनों से सफलतापूर्वक व्यवहार में लाई जा रही है। इधर विदेशी शास्त्रज्ञों ने इसके गुणों से आकृष्ट होकर इसका प्रयोग करना शुरू किया है तथा आज यह **रक्तचाप** (Hyperpiesis), **वातिक उन्माद, अनिद्रा एवं अन्यान्य मानसिक विकारों के लिये बहुत उत्कृष्ट औषधि सिद्ध हुई है।**

इस औषधि के प्रारम्भ करने के पश्चात् ३ से ७ दिनों में इसका असर प्रारम्भ होता है तथा ३-६ सप्ताह में इसका पूर्ण प्रभाव स्पष्ट होता है तथा इसको बन्द करने के पश्चात् १ से ३ सप्ताह में इसका असर निकल जाता है। इसके उपयोग से मानसिक प्रक्षोभ दूर होकर शान्ति मिलती है एवं शिरःशूल, भ्रम आदि दूर होते हैं। रक्त चाप (Blood pressure) की अधिकता के लिये यह सबसे कम विषैली तथा उत्कृष्ट औषधि है। इसमें एक विशेष लाभ यह है कि इससे एकाएक आसन परिवर्तनजन्य रक्तभाराल्पता (Postural hypotension) तथा बहुत अधिक रक्तभाराल्पता नहीं होती। अधिक मात्रा में लेने से अतिसार या अनिष्ट स्वप्न (Nightmares) होते हैं लेकिन कोई तीव्र दुष्परिणाम नहीं होते। इसके अवांछनीय गुण जैसे रक्तचाप की कमी एवं मन्दहृदयता आदि चिकित्सा काल में बराबर बने रहते हैं। इसके उपयोग के समय नाक में रक्ताधिक्य (Nasal congestion), शरीर भार वृद्धि, बृहदांत्र की गति वृद्धि तथा कुछ लोगों में मैथुन शक्ति (Libido) का ह्रास होता है। इसके उपयोग मे निद्रा की अपेक्षा

तन्द्रा आती है तथा घबड़ाहट, चिड़चिड़ापन, तनाव, हृदय की धड़कन, एवं थकावट आदि दूर होकर रोगी को बहुत आराम मिलता है।

रक्तभार की अधिकता में प्रथम इसी औषधि को प्रारम्भ करना चाहिये। इसके चूर्ण की मात्रा १ रत्ती से लेकर १ माशे तक दी जा सकती है। यदि ६ सप्ताह में लाभ न हो तो अन्य औषधियां उसके साथ मिलाई जा सकती हैं। अंग्रेजी दवा की दुकानों में इसकी गोलियां तथा इसके सत्व की गोलियां बिकती हैं जिनका उपयोग सुगमता की दृष्टि से किया जा सकता है। रीसर्पाइन नामक इसके सत्व का उपयोग तमकश्वास, सव्रणस्थूलान्त्रशोथ (Ulcerative colitis), पैत्तिकशूल, वृक्कशूल एवं मानसिक अवसाद (Mental depression) आदि अवस्थाओं में नहीं करना चाहिये।

प्रतिनिधि—इसमें रा कॅनेसेन्स (R. canescens Linn.) तथा रा. डेन्सिफ्लोरा (R. densiflora Benth.) के मूल की मिलावट होती है।

मात्रा—चूर्ण १ से २ माशा।

५२ नाकुली ? (ईश्वरमूल)

सं०–नाकुली, ईश्वरी, अर्कमूल। **हि०**–ईशरमूल, रूद्रजटा। **म०**–सापसण। **बं०**–ईशरमूल। **गु०**–नोलवेल। **ता०**–इचचुरामूली। **ते०**–ईश्वरवेरु। **उडि०**–गोपोकरोनि। **अ०, फा०**–जरवन्दे हिन्दी। **उर्दू०**–शपेसन्द। **अं०**–Indian birthwort (इन्डियन बर्थवर्ट)। Aristolochia indica Linn. (एरिस्टोलोकिआ इन्डिका)। Fam. Aristolochiaceae (एरिस्टोलोकिएसी)।

इसकी लता भारतवर्ष के सभी भागों में विशेष कर दक्षिण कोंकण में होती है। **इस लता के** **कांड** लम्बे, ·२-·४ इञ्च मोटे, गोल, चिकने तथा लम्बाई में धारियों से युक्त एवं कपूरवत् गंधयुक्त होते हैं। **पत्र**–हरे, डण्ठल की तरफ चौड़े तथा अग्र पर नुकीले विभिन्न आकार के एवं ५ शिराओं से युक्त। **पुष्प**–सदण्डिक हरित। **बीज**–अण्डाकार, चपटे एवं पंखयुक्त। **मूल**–गांठदार, शाखाओं से युक्त, मोटा भाग ·४-·६ इञ्च, हलके बादामी रंग के तथा मूलत्वक् मोटी, कहीं २ अलग भई हुई। काष्ठ–श्वेत। भग्न–तन्तुमय। स्वाद–कुछ कडुआ। इसके पञ्चांग का व्यवहार होता है।

रासायनिक संगठन–इसमें ॲरिस्टोलोचीन (Aristolochine) नामक तीन विभिन्न क्षार (Bases) पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त इसमें ३ भूयात्य अम्ल (Nitrogenous acids) जिन्हें ॲरिस्टिनिक् (Aristinic), ॲरिस्टिडिनिक् (Aristidinic) और ॲरिस्टोलिक् (Aristolic) अम्ल कहते हैं तथा एक उड़नशील तैल जिसमें शायद बोर्निओल (Borneol) रहता है एवं राल, टॅनिन् एवं स्टार्च आदि पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह बल्य, उत्तेजक, गर्भाशयसंकोचक, ज्वरहर, शूलहर तथा विषहर है। अल्प मात्रा में यह आमाशय के लिये उत्तेजक है लेकिन अधिक मात्रा में स्थानिक प्रक्षोभ उत्पन्न होकर हृल्लास, मरोड, शूल तथा कभी २ वमन एवं कुंथन भी होता है। ॲरिस्टोलोचीन् (Aristolochine) की क्रिया ॲलोइन (Aloin) के समान होती है लेकिन उससे यह विषैला है। यह उच्च श्रेणी के जानवरों में पाचन संस्थान तथा वृक्क में प्रक्षोभ उत्पन्न करता है तथा संन्यास एवं श्वसनाघात से मृत्यु होती है।

(१) इसके चूर्णका उपयोग ज्वर, आमवात, संधिशोथ एवं जलोदर आदि में बहुत लाभदायक है।

(२) प्रसव के समय आविवृद्धि के लिये पिपरामूल के साथ देते हैं तथा अनार्तव, कष्टार्तव एवं प्रसव पश्चात् भी इसका उपयोग किया जाता है। गर्भपात करने के लिये भी इसका लोग उपयोग करते हैं।

(३) मिरिच के साथ इसका प्रयोग पाचन के विकार जैसे कुपचन, अतिसार एवं शूल आदि में बहुत लाभदायक है। बच्चों में दन्तोद्भव के समय इसका अधिक व्यवहार किया जाता है।

(४) सर्पविष तथा अन्य विषों के लिये भी इसका बहुत व्यवहार किया जाता है। सर्पविष में इसके पत्तों का रस अथवा चूर्ण को काली मिर्च के साथ खिलाते हैं तथा बाह्य लेप भी करते हैं।

(५) मधु के साथ श्वित्र पर इसका स्वरस लगाया जाता है।

(६) बच्चों के विबन्ध में इसके पत्तों का लेप उदर पर किया जाता है।

व्यामिश्रण—इसकी कई जातियां इस औषधि में मिली रहती हैं जिसमें से ॲ० ब्रॅक्टियाटा (A. bracteata Retz.), ॲ० टॅगॉला (A. tagala Cham.) आदि मुख्य हैं जिनके पत्र की आकृति में अन्तर रहता है।

मात्रा—पंचाङ्ग चूर्ण ५-१५ र०; टिंक्चर ¼-½ तो०।

अथ माचिका

(पश्चिमदेशे 'मोइआ' इति लोके प्रसिद्धो वृक्षविशेषः) तस्या नामानि गुणाँश्चाह—

माचिकाप्रस्थिकाऽम्बष्ठा तथा चाम्बालिकांऽबिका। मयूरविदला केशीसहस्रा बालमूलिका॥
माचिकाऽम्ला रसे पाके कषाया शीतला लघुः। पक्वातीसारपित्तास्रकफकण्ठामयापहा॥

मोइया (पश्चिम देश में प्रसिद्ध वृक्ष विशेष) के नाम तथा गुण—माचिका, प्रस्थिका, अम्बष्ठा, अम्बालिका, अंबिका, मयूरविदला, केशी, सहस्रा और बालमूलिका ये सब मोइया के नाम है। **मोइया**—अम्लरसयुक्त, परिपाक में कषाय रसयुक्त, शीतल तथा लघु होती है और पक्वातीसार, रक्तपित्त, कफ तथा कण्ठसम्बन्धी रोगों को दूर करती है॥ १६७-१६८॥

५३ माचिका (मोइया)

माचिका के सम्बन्ध में विद्वानों में कुछ मतभेद है। कुछ लोगों ने इसको (ले०) सोलॅनम् नाइग्रम् (Solanum nigrum) लिखा है लेकिन यह तो काकमाची (छोटी मकोय) का नाम है। अन्य लोगों ने इसको (ले०) हिबिसकस् कॅन्नाबिनस् (Hibiscus cannabinus) लिखा है जो पटुआ (पटसन) का नाम है तथा इसके गुण भी शास्त्रीय माचिका के गुणों से मिलते नहीं। छोटी माई तथा बड़ी माई जिन्हें क्रमशः (ले०) टॅमॅरिक्स् आर्टिक्युलेटा तथा टॅ. गॅलिका (Tamarix articulata & T. gallica) कहते हैं उनके गुण माचिका के शास्त्रीय गुणों से मिलते होने के कारण इन्हीं का व्यवहार माचिका नाम से करना चाहिये। माई के अर्थ में माचिका का वर्णन नीचे दिया जा रहा है तथा प्रसङ्गवश पटुआ का वर्णन भी आगे दिया जायगा। कुछ लोगों ने बड़ी माई को हाऊबेर माना है जो गलत है। हाऊबेर का वर्णन पहले ५० पृष्ठ पर आ चुका है।

(क) Tamarix articulata Vahl (टॅमॅरिक्स् आर्टिक्युलेटा)। Fam. Tamaricaceae (टॅमॅरिकॅसी)।

सं०-झावुक। **हिं०**-लाल झाऊ, झाव, (कृमिगृह-**छोटी माई**)। **बं०, गु०**-झाऊ। **पं०**-परवन, फरस, फरवा। **सिं०**-लई, असरेले। **इरा०**-मझ्बर् अझ्वा। **यू०**-सुम्रत अल् अस्ल।

इसकी झाड़ी उत्तर भारत में नदी के किनारों पर उत्पन्न होती है। सिंध तथा पञ्जाब में यह अधिकता से पाई जाती है तथा इसकी उपज भी की जाती है।

इस झाड़ी के कृमि गृहों (Galls-गॉलस्) को छोटी माई, मगिया मैन, छोटी मैन आदि कहा जाता है। यद्यपि इन्हें लोग फल कहते हैं तथापि ये फल न हो कर एक प्रकार के कृमियों द्वारा निर्मित गृह होते हैं। ये गोल, ग्रन्थि युक्त, चने के बराबर तथा पीताभ धूसरित रङ्ग के होते हैं। ये त्रिकोणाकृति के नहीं होते। औषधि में ये कृमिगृह, इसकी छाल तथा पञ्चांग के क्षार का व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक सङ्गठन—छोटी माई में माजूफल में होने वाला गॅलिक् (Gallic) तथा टॅनिक् (Tannic) अम्ल बहुत होता है। रेतीली तथा समुद्र के किनारे होने वाली झाड़ी के पंञ्चांग की राख में खारा नमक (Sodium sulphate सोडियम् सल्फेट) बहुत होता है।

गुण और प्रयोग—छोटी माई माजूफल के समान ही गुण वाली है। यह ग्राही, स्तम्भन तथा रक्त स्रावावरोधक है। इसकी छाल तिक्त, ग्राही तथा बल्य होती है। छोटी माई का प्रयोग माजूफल के स्थान पर किया जाता है।

(१) यह उत्तम संग्राही होने के कारण पित्तज अतिसार, रक्तातिसार तथा रक्तार्श में उपयोगी है।

(२) इसमें रक्तस्तम्भक गुण बहुत प्रबल होता है। अतः इसका उपयोग रक्तष्ठीवन, नासा-रक्त स्राव तथा प्रदर आदि रक्त स्रावी व्याधियों में मुख द्वारा एवं स्थानीय प्रयोग के रूप में किया जाता है।

(३) गुल्म, प्लीहा, श्वेत प्रदर, शीघ्रपतन एवं शुक्रतारल्य आदि में भी इससे लाभ होता है।

(४) इसकी छाल, कबीला एवं तैल का प्रयोग वाजीकरण के लिये किया जाता है।

(५) इसका प्रलेप सिर के अपरस (Eczema-एक्झिमा) में किया जाता है।

(६) गलशुण्डी वृद्धि तथा दन्तशूल में इसके चूर्ण का मञ्जन तथा काढ़े का कुल्ला कराया जाता है।

मात्रा—छो. माई चूर्ण २-४ मा०; छाल ½-१ तो० क्वाथ बना कर।

(ख) Tamarix gallica Linn. (टॅमॅरिक्स गॅलिका)।

Fam. Tamaricaceae (टॅमॅरिकॅसी)।

सं०-झावुक। **हि०**-झाऊ, झाव, पड्वास, (कृमिगृह-**बड़ी माई**)। **बं०**-बोनझाऊ, झाउ, (कृमिगृह-बड़ी माई)। **म०**-झाऊ, (कृमिगृह-मगिया माई, बड़ी मुई)। **पं०**-झाऊ, पिलची, (कृमिगृह-बड़ी माही)। **ता०**-सिरूसवुक्कु। **ते०**-एरूसारू। **उर्दू**-जहेव। **इरा०**-गझनाझू। **यू०**-सुम्रात उल् तुर्फाह्। **अं०**-Tamarix (टॅमॅरिक्स), Tamarisk (टॅमॅरिस्क)।

इसकी झाड़ी भारत के सभी भागों में विशेष कर पञ्जाब तथा उत्तर प्रदेश में होती है। बंगाल में यह नदियों के किनारों एवं आर्द्र भूमि में उत्पन्न होती है। यह सिन्ध, बलूचिस्तान, इरान एवं अफगानिस्तान में भी बहुत होती है।

इसकी झाड़ी छोटी माई की झाड़ी की अपेक्षा बड़ी होती है तथा कभी २ इसके छोटे वृक्ष भी देखने में आते हैं। **शाखाएं**-पतली तथा आपस में मिली हुई। **पत्र**-सूक्ष्म, बिनाकोषयुक्त, चिकने,

वल्क सदृश एवं तीक्ष्णाग्र। पुष्प–द्विलिङ्गी, बहुत छोटे, १/१० इञ्च के घेरे में, श्वेत वा गुलाबी, शाखाओं के अन्त में गुच्छों के रूपमें। फली १/१० इञ्च लम्बी। **कृमिगृह** (Galls-=गॉलस्) गोल, जायफल इतने बड़े, तीन कोणयुक्त, गांठदार, पीले, हरिताभ मटमैले तथा पुराने होने पर धूसरित तथा स्वाद में कषाय एवं कड़वे।

इसके विदेशी वृक्षों से एक प्रकार की शर्करा प्राप्त होती है जिसे **गझंजबीन** कहते हैं। यह शर्करा यहां की जलवायु में पतली हो जाती है तथा बजार में मधु के समान गाढा पीत पदार्थ इस नाम से मिलता है। बजारू शर्करा में अन्य वृक्षों से प्राप्त शर्कराएं भी मिली रहती हैं। भारतीय वृक्षों से यह शर्करा प्राप्त नहीं होती।

रासायनिक संघटन—इसमें ४०% तक टॅनिक् ॲसिड होता है। गझंजबीन में विभिन्न शर्कराएं होती हैं।

गुण और प्रयोग—इसके कृमिगृह (गॉल) माजूफल तथा छो. माई के समान ग्राही, स्तम्भन तथा रक्तस्तम्भक होते हैं। **गझंजबीन** मृदु विरेचक तथा कफघ्न है। इससे पाखाना पतला होता है लेकिन इससे आंत्र को कोई नुकसान नहीं होता। इसके **पञ्चाङ्ग की राख** मूत्रल एवं स्रंसन होती है तथा **पञ्चाङ्ग का क्वाथ** ग्राही, शिथिलता दूर करने वाला एवं बल्य होता है।

(१) गझंजबीन मीठा तथा सौम्य होने के कारण बच्चों को दस्त साफ होने के लिये व्यवहार में लाया जाता है। इसके लिये इसको दूध के साथ दे सकते हैं। अनेक विरेचक एवं कफघ्न मिश्रणों में यह प्रयुक्त होता है।

(२) कृमिगृह (गॉल) का प्रयोग माजूफल के स्थानपर किया जाता है। ग्राही होने के कारण यह अतिसार, आमातिसार, संग्रहणी, अत्यार्तव, रक्तष्ठीवन एवं प्रदर में लाभदायक है। इसके लिये चतुर्गुण जल में इसका फांट बनाकर २ से ४ तोले की मात्रा में पिलाते हैं।

(३) इसके फांट का उपयोग दुष्ट व्रण तथा बद (Bubo) के प्रक्षालन के लिये तथा मुखपाक, गले की तकलीफ एवं दन्त तथा मसूढ़ों की दुर्बलता में कुल्ला करने के लिये किया जाता है।

(४) इसके पत्तों का लेप शोथघ्न है तथा प्लीहा एवं यकृत् वृद्धि पर इसका लेप किया जाता है। मसूरिका, दूषित व्रण एवं अर्श में इसका धूआं दिया जाता है।

(५) काले रंग का इसके पञ्चाङ्ग का घन क्वाथ **झाव** नाम से काठियावाड़ में बिकता है तथा गलशुण्डी वृद्धि, गले को शिथिलता तथा शुष्क कास में इसको चटाते हैं।

(६) इसके कृमिगृह (गॉल) का चूर्ण ४ से ८ माशा, अफीम २ माशा, एवं हॅसलीन २ तो० इनका मलहम बनाकर व्रण युक्त अर्श एवं गुद विदार (Anal fissure=ॲनलफिशर) पर लगाते हैं। यह मलहम विदेशी गॉल से बने इसी प्रकार के डाक्टरी मलहम के समान ही लाभदायक होता है।

(७) झाऊ की लकड़ी के पात्र में जल पीने से प्लीहा वृद्धि शीघ्र कम हो जाती है।

मात्रा—कृमि गृह (गॉल) चूर्ण २-४ माशा; गझंजबीन १-३ माशा।

(ग) Hibiscus cannabinus Linn. (हिबिस्कस् कॅन्नाबिनस्)।

Fam. Malvaceae (माल्वेसी)।

सं०–मानिका (?) अंबष्ठा। **हि०**–मोइया, अम्बारी, पटसन, पटुवा, सन, कुदुम। **बं०**–मेस्तापाट। **क०**–पुडोन। **म०**–अम्बाडी। गु०–भिंडी, अम्बोई। ता०–पुलुङ्गु। ते०–गोंगुकूरू। **सन्ता०**–ब्रेकुदुम। **उड़ि०**–कनुरिया। **सिन्ध**–सज्जाडो। **अं०**–Indian hemp (इण्डियन हेम्प); Jute (जूट); Deccan hemp (डेक्कन हेम्प); Bimlipatam Jute (बिमलीपटम् जूट), Ambari hemp (अम्बारी हेम्प)।

प्रायः सब प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है परन्तु पश्चिमीघाट के पूर्व में यह आपही आप जङ्गली उत्पन्न होता है।

इसका **क्षुप**–३ से ५-६ हाथ तक ऊँचा होता है और इस पर सूक्ष्म काँटेदार रोवें होते हैं। जड़ की ओर के पत्ते गोलाकार किञ्चित् कटे किनारे वाले होते हैं किन्तु ज्यों ज्यों पौधे बढ़ते जाते हैं त्यों त्यों पत्ते का आकार बदलता जाता है। ऊपर के **पत्ते** ५-७ भागों में विभक्त हो जाते हैं और प्रत्येक भाग दन्तुर होता है। **फूल**–पीले रंग के आते हैं। पुष्पदल के मध्य का हिस्सा रंगनी रंग का होता है। **डोडी (फल)**–गोलाकार नुकीली होती है। **बीज**–भूरे रंग के होते हैं। इसका सर्वाङ्ग खट्टा होता है। तन्तु (Fibre के लिए इसकी काफी खेती की जाती है, विशेषकर दक्षिण में।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में एक प्रकार का खाने योग्य तैल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके पत्र तथा पुष्प विरेचक, रुचिकारक तथा हृद्य हैं। पित्तमयता में इनका शाक बनाकर खाया जाता है। इसके पुष्पों का १ तो० स्वरस मरिच एवं मिश्री के साथ पित्त प्रकोप में दिया जाता है, जिससे शौच साफ हो जाता है।

इसके बीजों के तेल को पीडा एवं मोच आदि पर मलते हैं तथा पुष्टि एवं वाजीकरण के लिए इस तैल का सेवन करते हैं। तीसी और तिल में तेल निकालते समय इसके बीज की मिलावट की जाती है।

अथ तेजवती।

(तेजवल्कल[1] 'तेजबल' इति च लोके) तस्या नामानि गुणाँश्चाह—

तेजस्विनी तेजवती तेजोह्वा तेजनी तथा ॥ १६९ ॥
तेजस्विनी कफश्वासकासास्यामयवातहृत् ।
पाचन्युष्णाकटुस्तिक्तारुचिवह्निप्रदीपिनी ॥ १७० ॥

तेजवती (तेजवल्कल या तेजबल नाम से भी लोक में प्रसिद्ध द्रव्य) के नाम तथा गुण – तेजस्विनी, तेजवती, तेजोह्वा तथा तेजनी ये सब तेजबल के नाम हैं। **तेजबल**–कफ श्वास, कास, मुखसम्बन्धीरोग तथा वायु को नष्ट करनेवाला होता है। तथा यह पाचक, उष्णवीर्य, कटु तथा तिक्तरसयुक्त, रुचिकारक एवम् अग्निदीपक होता है॥ १६९-१७० ॥

५४ तेजवती (तेजबल)

हि०–तेजबल। **म०-ब०-गु०**–तेजबल। **अं०**–Toothache Tree (टूथएक ट्री)। **ले०**–Zanthoxylum alatum Roxb. (झॅन्थोक्साइलम् एलॅटम्)। Fam. Rutaceae (रूटेसी)।

जिस वनौषधि का परिचय 'तुम्बुरु' के नाम से दिया जा चुका है उसी वृक्ष की छाल को तेजबल और कालीमिरच के आकार वाले तथा फटे मुखवाले फल को 'तुम्बुरु' कहते हैं। कुछ लोगों ने उसी वंश की अन्य जाति को तेजबल लिखा है जिसके फलों को भी दन्तशूल में चबाने के लिए देते हैं।

---

१. 'तेजबल' स्थाने 'तेजपात' इति पाठान्तरम्।

अथ ज्योतिष्मती (मालकांगनी) तस्या नामानि गुणाँश्चाह

ज्योतिष्मती स्यात्कटभी ज्योतिष्का कङ्गुनीति च।
पारावतपदोपि[1]ण्या लता प्रोक्ता ककुन्दनी ॥ ७१ ॥
ज्योतिष्मती कटुस्तिक्ता सरा कफसमीरजित्।
अत्युष्णा वामनी तीक्ष्णा वह्निबुद्धिस्मृतिप्रदा ॥

मालकांगनी के नाम तथा गुण—ज्योतिष्मती, कटभी, ज्योतिष्का, कङ्गुनी, पारावतपदी, पिण्या, लता और ककुन्दनी ये सब नाम मालकांगनी के हैं। **मालकांगनी**-कटु तथा तिक्तरस युक्त, सारक (दस्तावर), कफ वातनाशक, अत्यन्त उष्णवीर्य, वमन करानेवाली और तीक्ष्ण एवं जठराग्नि, बुद्धि तथा स्मरणशक्ति को बढ़ाने वाली होती है॥ १७१-१७२ ॥

५५ ज्योतिष्मती (मालकांगनी)

हि०—मालकांगनी, मालकौनी, मालटांगुन। **बं०**—लताफटकी, बनउच्छे। **म०**—मालकांगोणी, करडकंगोनी, पिंगवी, पेंगी। **क०**—करिगन्ने। **तै०**—बावंजी। **गु०, मा०**—मालकांगणां। **ता०**—वलुलुवै। **फा०**—काल। **अ०**—हब्बे किल्किल्। **अं०**—Staff tree (स्टाफ् ट्री)। **ले०**—*Celastrus paniculatus Willd.* (सिलॅस्ट्रस् पॅनिक्युलेटस्)। Fam. Celastraceae (सिलेस्ट्रॅसी)।

यह हिमालय पहाड़ के उष्ण तथा साधारण जगहों में पञ्जाब, झेलम के आसपास तक समस्त भारतवर्ष की पहाड़ी भूमि में, पूर्वी बंगाल, बिहार, दक्षिण भारत, ब्रह्मा और सिलोन आदि प्रदेशों में होती है।

इसकी सुविस्तृत काष्ठमय लता होती है जिसकी नवीन शाखाओं पर बहुत श्वेत बिन्दु पड़े रहते हैं। **पत्ते**-विषमवर्त्ती लगते हैं और आकार में कई प्रकार के होते हैं तथा गोलाई लिये किञ्चित् लम्बे, ऊपर से लट्वाकार, चिकने, चर्मवत् और नुकीले तथा गोल दांतो से युक्त धार वाले होते हैं। प्रायः इनकी लम्बाई २ से ४ इञ्च तक और चौड़ाई १॥ से ३ इञ्च तक होती है। **फूल**—आध इञ्च के घेरे में पीलापन लिये हरे रंग के होते हैं। इन पर आध आध इञ्च के ड़ोडे (डंड़ी) लगते हैं जो गोलाई लिये किञ्चित् चिपटे, चमकीले, कच्ची अवस्था में हरे और पक होने पर पीले रंग के होते हैं और उनके आगे का हिस्सा फटे रहने से बीज दिखलाई पड़ते हैं। आषाढ़ एवं श्रावण के महीने में जब इसमें पक्व फलों के गुच्छे लगते हैं तब यह लता बहुत सुन्दर प्रतीत होती है। प्रत्येक फल में ३ खण्ड होते हैं। उनमें ३ से ६ तक लगभग तिहाई इञ्च के काले बीज होते हैं और वे एक प्रकार के लाल आवरण से ढके रहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में एक गाढ़ा, रक्ताभ, कड़वा और गन्धयुक्त तैल ३०%, एक कडवी राल, राख ५% और टॅनिन् आदि द्रव्य रहते हैं। इसके बीजों को जलाकर पाताल यन्त्र द्वारा भी एक तैल निकाल सकते हैं।

गुण और प्रयोग—मालकांगनी के बीज उष्ण, स्वेदजनन, उत्तेजक, बुद्धि एवं स्मृतिवर्धक, वातहर, वातनाडी बल्य एवं त्वक्दोषहर हैं।

(१) इसके बीजों के साथ लोहबान, लवंग, जायफल और जावित्री मिलाकर पाताल यन्त्र द्वारा एक तैल निकाला जाता है जिसे **कृष्णतैल** (Black oil) या ओलियम् नाइग्रम् (Oleum Nigrum) कहते हैं। यह तैल विजगापट्टम्, मसुलिपट्टम् और पल्लोर आदि स्थानों में बिकता है।

1. 'पण्ये'ति पाठान्तरम्।

यह तैल अत्यन्त उत्तेजक, मूत्रनिःसारक तथा स्वेदल होता है। नवीन **बेरी बेरी** (Beri Beri) नामक रोग में १० से १५ बूंद इस तैल को देने से बहुत लाभ होता है। या इसके बीजों को क्रमशः बढ़ाते हुये एक दिन में ५० बीजों तक सोंठ के साथ देते हैं। पहले इससे मूत्र की मात्रा बढ़ती है और बाद में जलशोथ कम होकर फिर संवेदनाशक्ति वापस आती है। जलोदर में भी इस तैल से लाभ होता है। मलेरिया ज्वर जैसी पीडा जब आमवात में होती है तब तथा अङ्गघात आदि में इसको रक्तोत्क्लेशक (Rubefacient) के रूप में लगाते हैं। बुद्धि बढ़ाने के लिये आठगुने मक्खन में इसे मिलाकर सर में लगाया जाता है।

(२) इसके बीजों को दबाकर भी तेल निकाला जाता है। २ से १० बूंद की मात्रा में आमाशय के रोगों में एवं बुद्धि तथा स्मृतिवृद्धि के लिये इसको खिलाते हैं। सुश्रुत में इस तैल को जलोदर के लिये हींग तथा जवाखार के साथ दूध में पीने को लिखा है। रसरत्नसमुच्चय में इसके तेल को स्मृति एवं बुद्धि वृद्धि के लिये बहुत उपयोगी माना है।

(३) इसके बीजों का क्वाथ अन्य सुगन्धित औषधों के साथ आमवात, वातरक्त, अंगघातादि वातरोग एवं कुष्ठ में लाभदायक है।

(४) इसके बीजों को व्रण के ऊपर पीसकर लगाने से न भरने वाले व्रण जल्दी भरते हैं।

मात्रा—कृष्णतैल-मूत्र वृद्धिकर १०-३० बूंद। स्वेदजनक ५-१५ बूंद।
ज्ञानतन्तु उत्तेजक १०-१५ बूंद।
दबाकर निकाला तैल २-१० बूंद्।

अथ कुष्ठम् (कूठ) तस्य नामानि गुणाँश्चाह

कुष्ठं रोगाह्वयं वाप्यं[1] पारिभव्यं तथोत्पलम् ॥
कुष्ठमुष्णं कटु स्वादु शुक्रलं तिक्तकं लघु। हन्ति वातास्रवीसर्पकासकुष्ठमरुत्कफान् ॥१७३॥

कूठ के नाम तथा गुण—कुष्ठ, रोगाह्वय (रोगवाची शब्द), वाप्य, पारिभाव्य तथा उत्पल ये सब कूठ के नाम हैं। **कूठ**—उष्णवीर्य, कटु, स्वादु तथा तिक्त रसयुक्त, शुक्रजनक और लघु होता है। और यह वातरक्त, विसर्प, कास, कुष्ठ, वायु तथा कफ को दूर करता है ॥ १७३ ॥

५६ कुष्ठ (कूठ)

हि०—कूठ, कूट, कुष्ट। **बं०**—पाचक, कुर। **म०**—कोष्ठ, उपलेट। **गु०**—उपलेट, कठ। **क०**—कोष्ट। **तै०**—वेंगुलकोष्टम्। **प०**—कुट्ठ, कुट, कोठ। **फा०**—कुष्ठ-ई-तल्ख। **अ०**—कुस्तबेहेरी। **काश्मी०**—पोस्तखै, कूठ। **भोटिया०**—कुष्ट। **ता०**—कोष्टम्, गोष्टम्। **अं०**—Costus root (कोस्टस् रूट)। **ले०**—*Saussurea lappa, C. B Clarke* (सॉस्सुरिया लप्पा)। Fam. Compositae (कॉंपोझिटी)।

इसके क्षुप काश्मीर तथा उसके आसपास के आर्द्र ढालों पर ८०००-१३००० फीट की ऊंचाई पर तथा चेनाब और झेलम नदियों के आसपास के प्रदेशों में १००००-१३००० फीट की ऊंचाई पर पाये जाते हैं।

1. व्याप्यमाप्यं वेति पाठान्तरे।

इसका बहुवर्षायु क्षुप–बहुत दृढ़ होता है। **काण्ड** स्वावलम्बी, ४–७ फीट ऊँचा, भद्दा, जड़ की ओर छोटी उङ्गली प्रमाण मोटा होता है।

पत्ते–कौशेय सदृश, विषम दन्तुर, खण्डित, आधरीय बहुत लम्बे, २–४ फीट, त्रिकोणाकार, लम्बे खण्डयुक्त सपंख डण्ठलवाले तथा ऊपर के छोटे। **फूल**–दृढ़ १ से १। इञ्च गोल, विनाल, गुच्छेदार, गहरे नील बैगनी रंग के या काले। **फल**–०·२१ इञ्च तक लम्बे, दबे हुये, मुड़े हुये चर्मलफल (Achene)। **मूल**–हलके मुरचई लाल या काले बादामी, हलके, दृढ, सीधे, १ से ३ इञ्च लम्बे, १ से १½ इञ्च मोटे, छोटे छोटे उभारों से युक्त; मोटे टुकड़े अन्दर से पोले; इसके ठीक कटे हुये पृष्ठ में ३ भाग स्पष्ट दिखाई देते हैं जिसमें से बाहरी भाग अंगूठी की तरह गोल, बीच का काष्ठमय भाग कुछ हलके रंग का तथा महीन किरणों के समान धारियों से युक्त एवं अन्दर में मध्यभाग; **भग्न**–छोटा तथा श्रृङ्गवत् (Horny); **गंध**–मधुर; **स्वाद**–कुछ कडवा। इन्हीं मूलों का व्यवहार औषध में किया जाता है। चक्रपाणि ने अच्छे कूठ की पहचान यह दी है कि उसे तोड़ने पर नीचे उसके कण अलग होकर नहीं गिरते तथा वह मृगश्रृङ्ग के समान होता है।

कुछ लोग मीठा और कडवा कूठ करके दो भेद करते हैं और मीठा कूठ, पुष्करमूल को कहते हैं। शास्त्रीय गुणों में पुष्करमूल कटु, तिक्त कहा गया है लेकिन कूठ कटु और स्वादु लिखा गया है। इससे यह बात स्पष्ट है कि मीठा कूठ, पुष्करमूल नहीं है। कुछ लोगों ने इसका समाधान इस प्रकार किया है कि परिपक्व कूठ की मूल कडवी तथा अपक्व कूठ की मूल कुछ मीठी होती है। फारसी लेखक तिक्त कुष्ठ को कुस्त–ई–तल्ख और मीठे कूठ को कुस्त–ई–सिरीन् लिखते हैं और मीठे कूठ को पुष्कर मूल का अंग्रेजी नाम ओरिस्रूट बतलाते हैं।

कूठ काश्मीर से चीन को बहुत जाता है जिसे वहां लोग धूप की तरह व्यवहार में लाते हैं। ऊनी वस्त्रों की कृमियों से रक्षा करने के लिये कूठ के टुकड़ों को उनमें रखते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके मूल में एक उड़नशील तैल १·५–२·५%, एक सॉस्सुराइन (Saussurine) नामक क्षाराभ ·०५%, राल ६%, इन्युलिन (Inulin) १८%, तैल, पोटॅशियम् नाइट्रेट (Potassium nitrate), शर्करा तथा टॅनिन आदि द्रव्य रहते हैं। एक अन्य कुष्टिन (Kushtin, $C_{20}H_{26}O_3$) नामक तरल पदार्थ भी इससे प्राप्त होता है। इसके उड़नशील तैल में कोस्टस् लॅक्टोन (Costus lactone, $C_{15}H_{20}O_2$) ११, कोस्टुसिक् एसिड (Costusic acid, $C_{15}H_{22}O_2$) १४, डीहाइड्रोकोस्टस् लॅक्टोन (Dihydrocostus lactone) १५, ऑप्लोटॉक्सिन (Aplotoxin) २०, ॲल्फा–कोस्टेन (a–costene) ६, बीटा–कोस्टेन (B–Costene) ६, फेलॅन्ड्रेन (Phelandrene) ०·४, कॅम्फेन (Camphene) ०·४, तथा टरपेन ॲल्कोहोल (Terpene alcohol) ०·२% पाया जाता है। इसके पत्तों में भी क्षाराभ आदि पाये जाते हैं लेकिन उडनशील तैल नहीं रहता। कुछ लोगों के मत से इसमें व्हॅलेरिक् अम्ल (Valeric acid) के लवण तथा इसकी राख से मैंगनीज (Manganese) भी पाया जाता है।

सॉस्सुराइन नामक क्षाराभ की क्रिया सुषुम्नाशीर्ष (Medulla) स्थित प्राणदा (Vagus) नाडी केन्द्र पर तथा श्वसनिका (Bronchioles) एवं पचनसंस्थान (Gastro–intestinal tract) की अनैच्छिक (Involuntary) मांशपेशी तन्तुओं पर अवसादक (Depressant) होती है जिससे श्वसनिकाओं का विस्फार (Relaxation) होता है। इससे रक्तचाप की कुछ वृद्धि होती है जो लगातार बनी रहती है तथा हृदय, विशेष कर उसके निलय (Ventricles) के संकोच तथा विस्फार की शक्ति बढ़ती है। श्वसनिका विस्फार की क्रिया ॲड्रेनलीन (Adrenaline) के जितनी तीव्र नहीं होती न यह उतनी जल्दी कार्य ही करता है लेकिन इसका प्रभाव अधिक समय तक बना रहता है।

इसमें का उड़नशील तैल (Volatile oil) जीवाणुओं के लिये, विशेष कर स्तबक तथा माला गोलाणु (Staphylo and Streptococcus) के लिए प्रतिदूषक (Antiseptic) तथा उपसर्ग नाशक (Disinfectant) है। यह वातानुलोमक, हृदयोत्तेजक, कफनिःसारक एवं मूत्रल है तथा अनैच्छिक मांसपेशी तन्तुओं को यह शिथिल करता है जिससे श्वसनिकाओं का विस्फार होता है। केन्द्रीय वातनाडी संस्थान पर इसका प्रभाव अन्य उडनशील तैलों की तरह ही होता है। इसका उत्सर्ग वृक्क तथा फुफ्फुसों द्वारा होता है जिससे यह मूत्रल तथा कफनिःसारक है।

इसका प्रवाही सत्व अधिक मात्रा में (१०–२० सी० सी०) यदि सेवन किया जाय तो उदर में कुछ प्रक्षोभ तथा बेचैनी होती है तथा तन्द्रा उत्पन्न होती है।

कूठ का धूम्रपान केन्द्रीय वातनाडी संस्थान (Central Nervous System) में अवसाद उत्पन्न करता है और शायद यही कारण है कि अफीम के स्थान पर इसका धूम्रपान किया जाता है।

गुण और प्रयोग—कूठ उष्ण, दीपन, पाचन, सुगन्धि, उत्तेजक कफनिःसारक, उद्वेष्ठननिरोधी, कुछ मूत्रल, वाजीकर, रसायन, आर्तवजनन, व्रणशोधक एवं रोपक, त्वक्दोषहर, प्रतिदूषक (Antiseptic) तथा उपसर्गनाशक (Disinfectant) है।

इसका उपयोग फुफ्फुस विकार जैसे तमकश्वास, कास एवं कुपचन, विसूचिका, जीर्ण चर्मरोग, उन्माद, अपस्मारादि वातरोग, आमवात, वातकफज्वर, नष्टार्तव, कष्टार्तव, हृदयोदर, जलोदर तथा शिरःशूल आदि में किया जाता है।

(१) **तमकश्वास** (Asthma) के लिए यह औषध बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुई है। इसके लिए इसका मद्यसारीय प्रवाही सत्व ½–२ ड्राम की मात्रा में या इसका चूर्ण दिन में ३, ४ बार दिया जाता है। रात को सोते समय तथा जब भी श्वास के आवेग की सम्भावना हो तो इसकी एक मात्रा देने से आवेग नहीं आता न इससे ॲड्रिनॅलीन (Adrenaline) के इन्जेक्शन वा दमे की सिगरेट आदि की तरह निद्रानाश आदि दुष्परिणाम ही होते हैं क्योंकि यह उद्वेष्ठन निरोधि होने के साथ-साथ केन्द्रीय वातनाडी संस्थान पर इसका अवसादक प्रभाव भी होता है। इस औषध को १०, १५ दिन लगातार देकर फिर कुछ दिन रोककर देखना चाहिये कि फिर दौरा तो नहीं होता। यदि फिर दौरा हो तो फिर इसे देना चाहिये। इसका न तो कोई संचायि (Cumulative) दुष्परिणाम होता है न सहनशीलता (Tolerance) ही उत्पन्न होती है जिससे प्रत्येक बार मात्रा में वृद्धि करनी पड़े। इस औषध के प्रयोग के समय तमकश्वास के कारणों की अवश्य खोज करनी चाहिये तथा उनको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि जब तक कारण दूर नहीं होंगे तब तक स्थायी लाभ नहीं हो सकेगा। यह प्राणदा नाडी की उत्तेजना से होने वाले आवेगों (व्हॅगोटोनिक् टाइप = Vagotonic type) को रोकने में विशेष समर्थ है। इसके क्षाराभ तथा तैल दोनों संयुक्त मिलकर कार्य करते हैं। तैल श्वसनिकाओं के उद्वेष्ठन को दूर करने के साथ-साथ श्लेष्मा को भी बाहर निकालता है तथा उससे श्लेष्मलकला की सूजन दूर होती है। इसके प्रवाही सत्व को पोटॅशियम् आयोडाइड् के मिश्रण के साथ भी दे सकते हैं। इसका अल्प मात्रा में धूम्रपान भी लाभदायक है।

(२) पाचन के विकार जैसे अजीर्ण, कुपचन, शूल, आध्मान, अतिसार एवं विसूचिका आदि में इससे युक्त अग्निमुख चूर्ण (चक्र.) १०–२० र० की मात्रा में सुरा आदि के साथ लाभदायक है। विसूचिका में बड़ी इलायची के साथ इसका फांट दिया जाता है। हृद्दौर्बल्यजन्य जलोदर में भी इससे पाचन सुधरता है तथा मूत्रवृद्धि होकर लाभ होता है।

(३) आमवात में इसके चूर्ण को एरण्ड तैल के साथ खिलाते हैं तथा इसका बाह्यलेप भी करते हैं।

(४) रसायन के लिये इसके चूर्ण को घृत तथा मधु के साथ नित्य सुबह चाटना चाहिये जिससे किसी भी प्रकार के रोग नहीं होने पाते तथा आयु की वृद्धि एवं शरीर की कांति बढ़ती है। **अथर्ववेद** में भी इसके रसायन गुणों के साथ इसे शिरोरोग, तृतीयक ज्वर, कुष्ठ एवं कृमि रोगों के लिये उपयोगी माना है लेकिन आधुनिक विद्वान् मलेरिया, आंत्रिक कृमि, महत्कुष्ठ एवं आमवातादि में अनुपयोगी बतलाते हैं।

(५) बार-बार आनेवाली हिक्का में यह औषध लाभदायक है। इसमें कूठ तथा राल का धूम्रपान कराया जाता है।

(६) चर्मरोगों में यह बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। व्रणों पर इसके मलहम का उपयोग किया जाता है। अरुंषिका (सर के क्लेदयुक्त फोड़े फुन्सी) में इसका चूर्ण खपरैल में भूनकर तेल के साथ लगाया जाता है जिससे खुजली, जलन, पीडा एवं सर के व्रण आदि अच्छे होते हैं। मुख कान्ति वृद्धि के लिये इसे नींबू के रस में ७ दिन भिगोकर मधु के साथ मुख पर लगाना चाहिये।

(७) एरण्डमूल के साथ इसको कांजी में पीसकर उसके लेप से शिरःशूल दूर होता है।

(८) यह गुलाबजल में पीसकर हाथ पैरों की सूजन, उदरवृद्धि, शिरःशूल तथा मोच आदि पर लगाया जाता है।

(९) चीन में इसका उपयोग बालों को काला करने के लिए मसाले के रूप में एवं धूपन के लिये किया जाता है तथा दन्तशूल में कस्तूरी के साथ उसे लगाते हैं। बालों को धोने के काम में भी इसका उपयोग होता है।

मात्रा—चूर्ण २-१५ र०; तरलसत्व ½-२ ड्राम।

प्रतिनिधि तथा व्यामिश्रण—कभी कभी सॉस्सुरिया हाइपोल्यूका (Saussurea hypoleuca) के मूल इसके प्रतिनिधि के रूप में व्यवहार में आते हैं। इसमें कभी-कभी लॅबियेटी (Labiateae) वर्ग की सॅलविया लॅनेटा (Salvia lanata) या लिगुलॅरिया (Ligularia) के मूल, निर्विश (Kyllingia triceps), रास्ना भेद (Inula racemosa), कुछ हीन जाति के अॅकोनाइट (Aconite) के मूल एवं सेनेसिओ जॅक्वेमॉन्टियानस् (Senecio jacquemontianus) जिसे काश्मीर में पोष्कर कहते हैं आदि का व्यामिश्रण किया जाता है जिनको सूक्ष्मदर्शन यन्त्र एवं अन्य आकारादि द्वारा अलग पहचान सकते हैं। दक्षिण की तरफ कहीं-कहीं संभवतः केमुक (Costus speciosus-कोस्टस् स्पेसिओसस्) इसके स्थान पर लिया जाता रहा।

अथ कुष्ठभेदः-पुष्करमूलम्, तस्य नामानि गुणाँश्चाह

उक्तं पुष्करमूलं तु पौष्करं पुष्करञ्च तत्। पद्मपत्रञ्च काश्मीरं कुष्ठभेदमिमं जगुः ॥१७४॥
पौष्करं कटुकं तिक्तमुक्तं वातकफज्वरान्। हन्ति शोथारुचिश्वासान्विशेषात्पार्श्वशूलनुत् ॥

कूठ के भेद पोहकर मूल के नाम तथा गुण—पुष्करमूल, पौष्कर, पुष्कर, पद्मपत्र, काश्मीर और कुष्ठभेद ये सब पोहकर मूल के नाम हैं। पोहकरमूल-कटु तथा तिक्त रसयुक्त होता है और वात कफ ज्वर, शोथ, अरुचि तथा श्वास को दूर करता है। और यह विशेषतः पार्श्वशूल को नष्ट करने वाला होता है ॥ १७४-१७५ ॥

५७ पुष्करमूल

हि०-पोहकरमूल, पुष्करमूल। **बं०**-पुष्करमूल, कुष्ठविशेष। **म०**-पुष्करमूल, बालवेखण्ड। **गु०**-पोहकरमूल। **पं०**-पोहकरमूल, इरसा। **काश्मी०**-पातालपद्मिनी। **अ०**-सोसन इरसा। **फा०**-बेख-इ-बनफ्शा। **अं०**-Orris root (ओरिस रूट)। **ले०**-*Iris germanica, Linn.* (आइरिस् जर्मॅनिका, लिन)। Fam. Iridaceae (आइरिडॅसी)।

पुष्करमूल के सम्बन्ध में विद्वानों में कुछ मतभेद है। कुछ लोगों ने यह लिखा है कि पुष्करमूल के अभाव में कूठ लेना चाहिये। प्राचीन समय में इसका अभाव होगा ऐसा प्रतीत नहीं होता। आधुनिक विद्वानों में डा० देसाई ने पुष्करमूल को (ले०) आइरिस् जर्मॅनिका (Iris germanica) माना है लेकिन उसी को वह बालवच (हैमवती, श्वेतवचा) भी मानते हैं। कुछ अन्य विद्वान् पुष्करमूल को (ले०) इनूला रेसिमोसा (Inula racemosa) मानते हैं जिसको डा० देसाई ने 'रास्ना' माना है तथा बालवच (हैमवती, श्वेतवचा) को (ले०) आइरिस व्हॅरसिकोलर (Iris versicolor) मानते हैं।

सभी विद्वान् पुष्करमूल का अंग्रेजी नाम ओरिस रूट (Orris Root) लिखते हैं। ओरिस रूट, (ले०) आइरिस् फ्लोरॅटिना (Iris florentina Linn) का मूल है। बम्बई के बजार में (अं०) ओरिस् रूट नाम से अधिकतर (ले०) आइरिस् जर्मॅनिका के मूल बिकते हैं, जो उसी जाति का है। गुणों की दृष्टि से (ले०) आइरिस् जर्मॅनिका के गुण कूठ से मिलते जुलते होने से इसका ग्रहण उचित जान पड़ता है। कुछ लोग कमल की जड़ को पुष्करमूल के नाम से लेते हैं जो बिलकुल गलत मालूम होता है। कूठ के स्थान पर लिये जाने वाले द्रव्यों को भी इसके स्थान पर कुछ लोग लेते हैं जो उचित नहीं है।

(ले०) इनूला रेसिमोसा का वर्णन 'रास्ना' के अन्तर्गत किया जा चुका है। यहां पर निम्न वर्णन (ले०) आइरिस् जर्मॅनिका का किया जा रहा है।

यह इरान तथा काश्मीर में उत्पन्न होता है तथा काश्मीर में इसकी उपज भी की जाती है। इसका छोटा पौधा होता है। **पत्ते**-अनेक, चौड़े तथा तलवार के आकार के होते हैं। पुष्प-लम्बे दंड पर आते हैं। **मूल**-कठोर, पीताभश्वेत, ५ से १० से० मी० लम्बे तथा २-३ से० मी० चौड़े टुकड़ों में, चिपटे, वार्षिक वृद्धि के कारण उत्पन्न सान्तर संकोच युक्त, सुगन्ध युक्त एवं स्वाद में तिक्त रहते हैं। ३ साल पुराने पौधे की जड़ निकाल कर छील कर हलकी धूप में ५-६ दिन सुखाते हैं फिर३ वर्ष तक बंद करके रखते हैं तब इसमें गन्ध आती है। ताजी अवस्था में यह गन्धहीन एवं स्वाद में कुछ कटु रहता है। मूल का उपयोग चिकित्सा के अतिरिक्त पाउडर में तथा सुगन्ध द्रव्य के रूप में किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें उड़नशील तैल, आइरिडीन (Iridin) ग्लूकोसाइड, स्टार्च, शर्करा, राल, टैनिन तथा कॅल्शियम ऑक्झेलेट आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके गुण कूठ के समान हैं तथा यह उष्ण, आनुलोमिक, मूत्रजनन, उत्तेजक, शोथघ्न एवं व्रणरोपक है। अधिक मात्रा में यह विरेचक तथा वामक है।

इसका उपयोग श्वास, कास, पार्श्वशूल, कुपचन, अरुचि तथा पित्ताशय की बीमारियों में किया जाता है। हकीम लोग इसको विरेचक एवं मूत्रल मानते हैं तथा यकृत् के विकारों में इसका प्रयोग करते हैं। दंतशूल तथा दांत हिलते हों तब एवं मुख दुर्गन्धि में इसके चूर्ण से मंजन किया

जाता है तथा इसके टुकड़े को मुख में रखकर चूसते भी हैं। केशतैलों को सुगन्धित करने के लिये इसका व्यवहार किया जाता है। छोटे व्रणों तथा फोड़े फुन्सियों पर इसका लेप लाभदायक है।

मात्रा—२ से १५ र०।

अथ कटुपर्णी (चोक) तस्या नामानि गुणाँश्चाह

कटुपर्णी हैमवती हेमक्षीरी हिमावती। हेमाह्वा पीतदुग्धा च तन्मूलं चोकमुच्यते ॥१७६॥
हेमाह्वा रेचनी तिक्ता भेदिन्युत्क्लेशकारिणी। कृमिकण्डूविषानाहकफपित्तास्रकुष्ठनुत् ॥१७७॥

सत्यानाशी (चोक) के नाम तथा गुण—कटुपर्णी, हैमवती, हेमक्षीरी, हिमावती, हेमाह्वा और पीतदुग्धा ये सब सत्यानाशी के नाम है और इसी के जड़ भाग को चोक कहते हैं।

सत्यानाशी—रेचक, तिक्तरसयुक्त, भेदक (मल को भेदन करने वाली) और उत्क्लेश कारक होती है एवम् कृमि, खुजली, विष, आनाह, कफ, पित्त, रक्त विकार और कुष्ठ को दूर करने वाली होती है ॥ १७६–१७७ ॥

५८ कटुपर्णी (चोक)

हि०—सत्यानाशी, पीला धतूरा, फरंगी धतूरा, उजर कांटा, सियाल कांटा, मड़भांड़, चोक। **बं०**—सोनाखिरणी, शियाल कांटा, बड़ो सियाल कांटा। **म०**—काँटे धोत्रा। **गु०**—दारूडी। **क०**—अरसिन उन्मत्त। **ता०**—ब्रह्मदण्डु, कुडियोट्टि, कुरुक्कुम चेडि। **ते०**—ब्रह्मदण्डी चेट्टु। **पं०**—कण्डियारी, स्यालकांटा, भटमिल, सत्यनशा, भेरबण्ड, भटकटेया। **सन्ता०**—गोकुहल जानम। **पश्चिमो०**—भरभुरवा, कडवह कण्टेला। **मला०**—पोन्नुम्मत्तम्। **उडि०**—कांटाकुशम। **अं०**—Mexican poppy (मेक्सिकन पॉप्पी), Prickly poppy (प्रिक्ली पॉप्पी), Yellow thistle (यलो थिसल्)। **ले०**—*Argemone mexicana Linn.* (आर्जिमोन् मेक्सिकाना)।

Fam. Papaveraceae (पॅपॅहेरॅसी)।

यह सब प्रान्तों के खेत, मैदान, झाड़ी, खण्डहर, सड़क के किनारे आदि गन्दी जमीन में उत्पन्न होती है। शिमले में ५००० फीट ऊँची भूमि पर भी पाई जाती है।

सत्यानाशी **क्षुप** जाति की वनस्पति २ से ४ फीट तक ऊँची, अनेक शाखाओं से युक्त सघन होती है। इसके क्षुप, पत्ते, फल इत्यादि पर **तीक्ष्ण कांटे** होते हैं। डण्डी और पत्तों को तोड़ने से **पीला दूध** निकलता है। **पत्ते** ३ से ७ इञ्च तक लम्बे, कटे हुए, तीक्ष्ण कँटीले नोक वाले, सफेद धब्बों से युक्त तथा रेशेवाले होते हैं। **फूल**—कटोरी नुमा चमकीले पीले रंग के आते हैं और वे खुले मुख होते हैं। **फल**—लम्बे तथा गोल होते हैं और उनसे राई के समान काले रंग के बीज निकलते हैं। वैशाख, ज्येष्ठ की गरमी से इसका क्षुप सूख कर नष्ट हो जाता है। फल के सूखने पर बीज भूमि पर गिर जाते हैं और वे ही शरद ऋतु में अङ्कुरित हो पौधे के रूप में परिणत हो जाते हैं। इसकी जड़ का नाम **'चोक'** है।

कुछ विद्वान् इस पौधे को विदेशी मानते हैं तथा इसे प्राचीन 'स्वर्णक्षीरी' नहीं मानते। इस वनस्पति के ताजे मूल, क्षीर, बीज तथा तैलादि का औषध में उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—पहले ऐसा समझा जाता रहा कि इस वनस्पति के पत्तों तथा फलियों में मॉर्फीन (Morphine) या आर्जेमोनाइन् (Argemonine) क्षाराभ पाये जाते हैं लेकिन

बाद के प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि इसमें इस प्रकार के कोई क्षाराभ नहीं रहते लेकिन बर्बेरीन (Berberine) तथा प्रोटोपाइन (Protopine) नामक अन्य क्षाराभ होते हैं। इसके बीजों में एक गहरे बदामी रंग का, स्वादहीन तैल २२% पाया जाता है जो पहले पतला रहता है लेकिन बाद में रखने पर गाढ़ा होता जाता है। इसके अतिरिक्त इन बीजों में कार्बोहाइड्रेट्स (Carbohydrates) एवं ॲल्ब्यूमिन (Albumin) ४९%, आर्द्रता ९% तथा राख ६% पाई जाती है। इस राख में क्षारीय फॉस्फेट (Phosphate) तथा सल्फेट (Sulphate) पाये जाते हैं। इस वनस्पति में पीले रंग का दूध बहुत होता है जिसमें अल्प मात्रा में बर्बेरीन (Berberine) होता है। पोटॅशियम् नाइट्रेट (Potassium nitrate) लवण भी इसमें होता है।

गुण और प्रयोग—यह विरेचक, रसायन, कुष्ठघ्न एवं कृमिघ्न है तथा इसका प्रयोग फिरंग, उपदंश, सोजाक, कुष्ठ, चर्मरोग तथा नेत्र विकारों में किया जाता है।

(१) इसके बीजों का तेल मृदुरेचक, रसायन, कुष्ठघ्न एवं त्वचा के रोगों में लाभदायक है। यह ३० बूंद की मात्रा में शर्करा के साथ दिया जाता है। इसके नये बीज वामक होने के कारण इन बीजों को एक साल रख कर फिर तेल निकालते हैं तथा ताजे निकाले तेल का ही उपयोग अच्छा होता है। इसमें एरण्ड तैल के समान न तो कोई दुर्गन्ध या खराब स्वाद होता है न इससे मरोड़ आदि होती है तथा यह अल्प मात्रा में प्रभावशाली होता है। आमातिसार, संग्रहणी, विसूचिका उदरशूल, विबन्ध युक्त उदरशूल एवं सर्वांगशोथ आदि में इसका उपयोग किया जाता है। फिरङ्ग तथा उपदंश में इसके बीजों का प्रयोग विरेचन के लिये किया जाता है। कुष्ठ, दाद, विसर्प, श्वित्र एवं अन्यान्य पीडा एवं दाहयुक्त चर्मविकारों में इसका तेल लगाया जाता है जिससे शान्ति मिलती है।

(२) इसके बीज वामक तथा उत्क्लेशकारक होने के कारण इनका उपयोग गले के विकार, फुफ्फुस विकार, कास, कुकास एवं तमकश्वास आदि में लाभदायक होता है। इसमें कोई उद्वेष्टन निरोधि गुण नहीं है जो तमकश्वास में लाभदायक होता हो। ये रेचक तथा वेदनास्थापक भी होते हैं। दांतों में गड्ढे होकर पीड़ा होती हो तो इनके धूम्रपान से लाभ होता है।

(३) इस पौधे में जो पीले रंग का दूध होता है वह रसायन, कुष्ठघ्न, मूत्रजनन, व्रणशोधक तथा रोपक, शोथप्रतिकारक, ज्वरहर एवं नेत्र के लिये हितकारक होता है। फिरंग, उपदंश एवं सोजाक आदि में 'किडमार' (Aristolochia bracteata Retz) के रस के साथ इसको पिलाते हैं। मलेरिया आदि जीर्ण विषमज्वरों में नींबू के रस में इसे घोंट कर पिलाते हैं। सोजाक में इसको घी के साथ देने से भी लाभ होता है। जलोदर एवं कामला आदि में भी इसका व्यवहार किया जाता है। नेत्राभिष्यन्द में पलकों पर इसको लगाते हैं तथा नेत्रशुक्र, अधिमांस एवं दृष्टिमांद्य आदि में घी के साथ १ बूंद इसे आंखों में डालते हैं। इससे किसी प्रकार की हानि नहीं होती। सर्वदा के प्रयोग के लिये इसको सुखाकर रख सकते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर घी या दूध में घिसकर उपयोग में ला सकते हैं।

पुराने व्रण, फिरंगादि से उत्पन्न व्रण एवं खुजली (Scabies) आदि में इसको लगाने से लाभ होता है।

(४) इसका मूल रसायन, कृमिघ्न तथा कुष्ठघ्न है। फिरंग, उपदंश, सोजाक, अश्मरी तथा अन्य चर्मरोगों में इसका क्वाथ दिया जाता है एवं इसका लेप भी करते हैं। स्फीत कृमि (Tape-worm) के लिये इसके चूर्ण को ४ माशा की मात्रा में खिलाते हैं। बिच्छू काटने पर इसकी ताजी जड़ को घिस कर लगाते हैं।

(५) कुष्ठ (Leprosy) में इसके स्वरस को १ तोले की मात्रा में ४० दिन तक रोज सबेरे दूध के साथ पिलाने से लाभ होता है। यह रसायन एवं बलवर्धक है तथा फिरंगादि में भी यह लाभदायक होता है।

(६) सरसों में इसके बीजों की मिलावट करके तेल निकालते हैं। ऐसा मिलावटी तेल बहुत हानिकार होता है तथा इससे बेरीबेरी (Beri beri) एवं एपिडेमिक् ड्राप्सी (Epidemic dropsy) नामक रोग होते हैं जिसमें पैरों में सूजन, हृदय की दुर्बलता, पचनसंस्थान के विकार एवं वात नाडी शोथ आदि होते हैं।

परीक्षा—सरसों के तेल में इसकी मिलावट है या नहीं इसकी निम्न परीक्षाएँ की जाती हैं।

(क) सरसों के तेल के बराबर शोरे का तेजाब (Nitric acid-नाइट्रिक् एसिड) मिलाकर हिलाने से मिलावट न होने पर धूसर लाल (Brownish red) या नारंग (Orange) रंग उत्पन्न नहीं होता।

(ख) ३ मि. लि. सरसों का तेल, १ मि. लि. ग्लेशियल् ॲसेटिक् ॲसिड Glacial acetic acid) तथा क्यूप्रिक् ॲसिटेट (Cupric acetate) के जलीय ३% घोल का ३ मि. लि. धीरे २ हिलावें। फिर जलयुक्त पात्र में इसके पात्र को रख कर १५ मिनट गरम करके फिर अच्छी तरह हिला कर रख दें। मिलावट न होने पर अवक्षेप नहीं होता तथा उसके जलीय भाग में नीले रंग से हरे रंग में कोई परिवर्तन नहीं होता।

मात्रा—बीज तैल १० बूँद; बीज ½ तो०; पीतवर्ण का दुग्ध १-२ माशा; मूल २-४ माशा।

अथ कर्कटशृङ्गी (काकड़ासिंगी) तस्या नामानि गुणाँश्चाह

शृङ्गी कर्कटशृङ्गी च स्यात्कुलीरविषाणिका। अजशृङ्गी च चक्रा च कर्कटाख्या च कीर्तिता॥
शृङ्गी कषाया तिक्तोष्णा कफवातक्षयज्वरान्। श्वासोर्ध्ववाततृट्कासहिक्काऽरुचिवमीन्हरेत्॥

काकरासिङ्गी के नाम तथा गुण—शृङ्गी, कर्कटशृङ्गी, कुलीरविषाणिका, अजशृङ्गी, चक्रा और कर्कटाख्या ये सब काकड़ासिङ्गी के नाम हैं। **काकरासिङ्गी**—कषाय तथा तिक्तरस युक्त एवं उष्ण-वीर्य होती है। और यह कफ, वात, क्षय, ज्वर, श्वास, ऊर्ध्ववात, प्यास, कास, हिचकी, अरुचि तथा वमन को दूर करने वाली होती है॥ १७८-१७९॥

५९ कर्कटशृङ्गी (ककड़ासिंगी)

हि०—ककड़ासिंगी, काकड़ासिंगी, काकरासिंगी (घी', ककड़ाव। **बं०**—काँकराशृङ्गी। **म०**—काकड़-शिंगी। **क०**—कर्कटिशृङ्गी, दुष्टपुचत्तु। **ने०**—काकर सिंगी। **ता०**—काक्कट शिंगी। **मा०**—काकड़ा-शिंगी। **पं०**—ककर, सुमाक। **गु०**—काकड़ा सींगी। **काश्मी०**—कक्कर। **ले०**—*Pistacia integerrima, Stew. ex Brandis* (पिस्टॅसिया इंटिजिरिमा)। Fam. Anacardiaceae (ॲनॅकार्डिएसी)।

इसके वृक्ष उत्तर पश्चिमी हिमालय के बाहरी कतारों पर १५००-८००० फीट की ऊँचाई तक तथा पंजाब, सीमाप्रान्त आदि स्थानों पर पाये जाते हैं।

इसके वृक्ष मध्यमाकार के होते हैं। **छाल**-सफेद रंग की। **पत्र**-युग्म अथवा अयुग्मपक्षाकार तथा ६-९ इञ्च लम्बे। **पत्रक**-४-६ जोड़े, किञ्चित सनाल, भालाकार, लम्बे नोक तथा सरल धार

१. 'वक्ते'ति पाठान्तर प्रामादिकम्।

वाले और चिकने। कोपलें (नवीन पत्र) लाल रंग की। **पुष्प**—स्त्रीपुष्प और पुंपुष्प अलग २ वृक्षों पर तथा सवृन्त काण्डज पुष्पसमूहों में एवं बाह्य कोषों (पंखुड़ियों) से हीन। **अष्ठिफल** (Drupe) शुष्क, चिकने, झुर्रीदार, गोल, बहुत छोटे, एवं पकने पर धूसर वर्ण के हो जाते हैं।

इस वृक्ष की पत्तियों, पर्णवृन्तों तथा टहनियों पर एक प्रकार की लम्बी २ शृंगवत् रचना लगी रहती है जिन्हें कृमिगृह (Galls-गॉल्स) कहते हैं। ये एक प्रकार के कीड़ों, जिन्हें एफिस (Aphis) कहा जाता है द्वारा निर्मित होते हैं। इन कृमिगृहों को ही काकरासिंगी कहते हैं। ये विभिन्न नाप के ३-९ इञ्च लम्बे, पोले, एवं कड़े होते हैं। इनका बाह्य पृष्ठ हलका हरिताभ बादामी रंग का, पतला तथा झालरदार (Fimbriated) दिखलाई देता है। इसको तोड़ने पर अन्दर का पृष्ठ रक्ताभ दिखलाई देता है जो महीन रजः कणों से ढका रहता है। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा देखने से यह सिद्ध हुआ है कि ये कण उन कीड़ों के मृतदेह तथा उनके मल हैं। काकरासिंगी का चूर्ण स्वाद में अत्यन्त कसैला तथा कुछ कड़वा होता है तथा इसमें तारपीन के तेल की तरह गन्ध आती है।

तिंतिडीक जाति (Rhus) के वृक्षों में भी कृमिगृह बनते हैं परन्तु वे काकरासिंगी से भिन्न हैं। कुछ लोगों ने भ्रम से कर्कट वृक्ष का नाम हस् सक्सिडेनिया (Rhus succedanea Linn.) दे दिया है जो उचित नहीं है।

प्राचीन ग्रन्थों में इसके कीड़ों से उत्पन्न होने के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता लेकिन कास आदि के लिये इसका बहुत प्रयोग किया गया है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक हलके हरिताभ पीतवर्ण का एवं तारपीन के तेल की तरह गन्धवाला उड़नशील तैल १.३%, रवेदार हाइड्रोकार्बन (Hydrocarbon) ३.४%, टॅनिन ६०%, गम मॅस्टिक (Gum mastic) ५%, एक रालीय पदार्थ तथा दो अन्य रवेदार अम्ल पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह बल्य, कफनिःसारक, उष्ण एवं ग्राही है। इसमें के उड़नशील तैल के कारण इससे तमकश्वास कास, श्वासनलिका शोथ एवं राजयक्ष्मा आदि में अच्छा लाभ होता है। इससे श्लैष्मिककला को बल मिलकर कफ बाहर निकलने लगता है एवं नया कफ बनने नहीं पाता। इसमें टॅनिन बहुत होने के कारण इसका अतिसारादि में भी अन्य औषध के साथ उपयोग किया जाता है। आमाशय के प्रकोप से उत्पन्न वमन, हिक्का, जीर्ण अतिसार, आमातिसार तथा उपजिह्विका की वृद्धि से उत्पन्न खांसी आदि में इसको देने से अच्छा लाभ होता है। बच्चों के लिये यह विशेष लाभदायक है। वयस्कों के लिये इसकी साधारण मात्रा १० र० की है।

(१) इसके चूर्ण को घृत में भूनकर उसमें मिश्री मिलाकर संग्रहणी (Dysentery) में देने से बहुत लाभ होता है।

(२) बच्चों में दन्तोद्भव के समय जब खांसी, ज्वर, अतिसार एवं पाचन के विकार आदि होते हैं, तब काकरासिंगी, अतीस एवं छोटी पीपल समान मात्रा में लेकर उसके चूर्ण को ½-२ र० की मात्रा में मधु के साथ चटाने से बहुत लाभ होता है। इस चूर्ण में नागरमोथा भी कुछ लोग मिलाते हैं। बच्चों के श्वास में मूली के फल एवं इसके चूर्ण को मधु तथा घृत के साथ चटाने से लाभ होता है।

(३) शुष्क कास तथा अन्य श्वसन संस्थान के विकारों में काकरासिंगी, भारङ्गीमूल, सोंठ, छोटी पीपल, कचूर तथा मुनक्का इन का चूर्ण १५ र० की मात्रा में मधु के साथ देना चाहिये।

(४) कफज छर्दि में नागरमोथा एवं इसका चूर्ण मधु के साथ चटाने से लाभ होता है।

(५) इसका बाह्य लेप सोरियॅसिस् (Psoriasis) नामक जीर्ण चर्मरोग में किया जाता है तथा मसूड़ों आदि से खून जाता हो तो इसके क्वाथ से गण्डूष कराया जाता है।

मात्रा—चूर्ण ½-२ मा०।

अथ कट्फलस्य (कायफल) नामानि गुणांश्चाह

कट्फलः सोमवल्कश्च कैटर्य्यः कुम्भिकाऽपि च। श्रीपर्णिका कुमुदिका भद्रा भद्रवतीति च॥
कट्फलस्तुवरस्तिक्त कटुर्वातकफज्वरान्। हन्ति श्वासप्रमेहार्शः कासकण्ठामयारुचीः॥१८१॥

कायफल के नाम तथा गुण—कटफल, सोमवल्क, कैटर्य, कुम्भिका, श्रीपर्णिका, कुमुदिका, भद्रा और भद्रवती ये सब कायफल के नाम हैं। **कायफल**—कषाय, तिक्त तथा कटु रसयुक्त होता है तथा वात, कफ, ज्वर, श्वास, प्रमेह, बवासीर, कास, कण्ठसम्बन्धी रोग तथा अरुचि को दूर करता है॥ १८०-१८१॥

६० कट्फल (कायफल)

हि०-कायफर, कायफल, काफल। **बं०**-कायछाल, कायफल, कट्फल। **क०**-किरिशिवनि। **तै०**-कैदर्यमु। **म०-मा०-गु०-पं०**-कायफल। **खासिया०**-डिंगसोलिर। **ता०**-मरुदम्पतै। **फा०**-दारशीशान्। **अ०**-उदुल्बर्क, अजूरी। **अं०**-Box Myrtle; Bay-berry (बाक्स मिर्टल्; बे-बेरी)। **ले०**-*Myrica nagi, Thunb.*; (मायरिका नेगी) Fam. Myricaceae (मायरिकेसी)।

यह हिमालय के साधारण उष्ण प्रदेशों में रावी से पूरब की ओर, खासिया पहाड़, सिलहट तक, ३-६ हजार फीट के बीच पाया जाता है और सिंगापुर में भी इसके वृक्ष देखने में आते हैं। चीन तथा जापान में इसकी बहुत उपज की जाती है।

इसके मध्यम ऊंचाई के सदाहरित **वृक्ष** होते हैं। **छाल** बादामी धूसर अथवा कृष्णाभ, भारी, सुगन्धित, करीब ½ इञ्च मोटी और खुरदरी होती है। **काष्ठ**-½ इञ्च से १ इञ्च मोटा, बिना रेशे का और रक्ताभ बादामी होता है। पत्रनाल, मञ्जरी तथा नवीन शाखाओं पर बादामी रोमावरण होता है। **पत्ते**-४ से ८ इञ्च लम्बे तथा १½-२ इञ्च चौड़े, ऊपर से भालाकार अथवा कुछ २ आयताकार भी और उनके अधः पृष्ठ प्रायः मुरचई रंग के होते हैं। **फूल**-लाल। **फल** ½ इञ्च लम्बे, अण्डाकार, कुछ चिपटे, पृष्ठ पर दानेदार और पकने पर रक्ताभ या पीताभ बादामी होते हैं। फलों में मोम की तरह एक तेल होता है। ये फल स्वाद में कुछ खट्टे होते हैं। इन्हें सिलहट में 'सोफी' कहते हैं जिन्हें लोग खाते हैं।

यद्यपि इस वृक्ष का नाम कायफल है तब भी **औषधार्थ इसकी छाल का ही प्रयोग 'कायफल' नाम से किया जाता है।** इस छाल को सूंघने से छींक आती है तथा इसे जल में डालने पर जल लाल हो जाता है। आधुनिक विद्वान् इसके फल का भी औषधार्थ प्रयोग बतलाते हैं।

भ्रमवश कितने वैद्य जंगली जायफल, **ले०**—मायरिस्टिका मलबारिका (Myristica malabarica Lam.) के वृक्ष को कायफल का वृक्ष बतलाते हैं। जंगली जायफल के फल के ऊपर जावित्री के समान जो छिलका होता है उसको रामपत्री कहते हैं। कायफल के फल का छिलका न जावित्री के समान होता है और न रामपत्री कहलाता है। कुछ लोगों ने इस वृक्ष को कुम्भी वृक्ष, **ले०**—कॅरेया आर्बोरिया (Careya arborea Roxb.) माना है जो गलत है।

रासायनिक संगठन—इसमें कुछ टॅनिन, शर्करा सम द्रव्य तथा कुछ लवण रहते हैं। इसके चूर्ण मे एक मायरिसेटिन (Myricetin) नामक रञ्जक पदार्थ प्राप्त होता है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, ग्राही, स्वेदजनक, कफघ्न, वातहर, शोथघ्न, शिरोविरेचक, उत्तेजक तथा गर्भाशयसंकोचक है। अधिक मात्रा में लेने से इससे वमन होता है तथा थकावट मालूम होती है।

इसका प्रयोग घरेलू औषध के रूप में अनेक रोगों में किया जाता है।

(१) सोंठ एवं दालचीनी के साथ इसका क्वाथ प्रतिश्याय, गले की सूजन, मुखपाक, स्वरभंग, तमकश्वास, जीर्ण श्वासनलिका शोथ, कास तथा अग्निमांद्य, अरुचि, आध्मान, कुपचन, आमातिसार, रक्तातिसार, मूत्रातिसार, गण्डमाला एवं गृध्रसी आदि में दिया जाता है।

(२) अर्श में कत्था, हींग एवं कर्पूर के साथ या घृत के साथ इसका लेप लाभदायक है तथा इसका आन्तरिक प्रयोग भी किया जाता है।

(३) केशर, काले तिल तथा सनई के बीजों को इसके साथ पूर्ण मात्रा में गुड के साथ देते हैं जिससे कष्टार्तव में अच्छा लाभ होता है। इसके देने के कुछ देर बाद भोजन देना चाहिये नहीं तो जी मिचलाने लगता है। इसके चूर्ण का पिचु भी योनि में धारण कराया जाता है।

(४) प्रतिश्याय, चक्कर, शिरःशूल एवं अपस्मार आदि में इसके नस्य से लाभ होता है।

(५) इसके क्वाथ से व्रण प्रक्षालन किया जाता है तथा इसका चूर्ण व्रणों पर डाला जाता है। इसको घिसकर सूजन, चोट एवं मोच आदि पर लगाने से लाभ होता है।

(६) इसका तैल व्रणों के लिये लाभदायक है तथा संधिशूल में इसे लगाते हैं।

(७) सिरके में इसे घिसकर मसूढ़ों पर रगड़ने से दंतशूल दूर होता है तथा मसूढ़े मजबूत होते हैं।

(८) इससे सिद्ध तैल का प्रयोग कर्णशूल में कर्णबिन्दू के रूप में किया जाता है।

(९) हैजे में हाथ पैर ठंडे हो जाने पर इसके चूर्ण को सोंठ के साथ मिलाकर हाथ पैरों पर मलते हैं।

(१०) इसके फलों को उबालने से एक मोम के सदृश पदार्थ निकलता है जिसका व्रण पूरण के लिये प्रयोग करते हैं।

मात्रा—चूर्ण १०-३० र० आर्द्रक रस एवं मधु के साथ। बच्चों को १-२ र०।

अथ भार्गी (भारङ्गी) तस्या नामानि गुणाँश्चाह

भार्गी भृगुभवा पद्मा फञ्जी ब्राह्मणयष्टिका। ब्राह्मण्यङ्गारवल्ली च खरशाकश्च हञ्जिका॥१८२॥
भार्गी रूक्षा कटुस्तिक्ता रुच्योष्णा पाचनी लघुः। दीपनी तुवरा गुल्मरक्तनुन्नाशयेद् ध्रुवम्॥
शोथकासकफश्वासपीनसज्वरमारुतान्॥ १८३॥

भारङ्गी (बभनेटी) के नाम तथा गुण—भार्गी, भृगुभवा, पद्मा, फञ्जी, ब्राह्मणयष्टिका, ब्राह्मणी, अङ्गारवल्ली, खरशाक और हञ्जिका ये सब नाम भारङ्गी के हैं। **भारङ्गी**—रूक्ष, कटु, कषाय तथा तिक्तरसयुक्त रुचिजनक, उष्णवीर्य, पाचक, लघु तथा अग्निदीपक होती है। एवं-गुल्म, रक्तदोष, शोथ, कास, कफ, श्वास, पीनस, ज्वर और वायु को नष्ट करती है॥ १८२-१८३॥

६१ भार्गी (भारङ्गी)

भारङ्गी के विषय में विद्वानों में कुछ मतभेद हैं तथा इस नाम से ४ वनस्पतियों की छाल ली जाती है। बङ्गाल में क्वाशिया नामक डाक्टरी ओषधि का प्रतिनिधि 'ख' का व्यवहार भारङ्गी नाम से होता है। श्रीमान् ठा० बलवन्तसिंहजी अपनी 'वनौषधि दर्शिका' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि भारङ्गी नाम से बाजार में बिकनेवाली छाल क्लेरोडेंड्रान (Clerodendron) की नहीं मालूम होती जिसे अधिकांश लोगों ने भारङ्गी माना है तथा यह संभवतः 'ख' की ही छाल हो। डा० देसाई 'क' को ही शास्त्रीय भारङ्गी मानते हैं तथा अन्य अधिकांश विद्वानों ने भी इसे ही भारङ्गी माना है। अन्य दो 'ग' तथा 'घ' वनस्पतियों का भी कहीं २ व्यवहार होता है। इन चारों वनस्पतियों का अलग २ वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

प्राचीन समय में इसका आन्तरिक प्रयोग श्वास, कास आदि में किया गया है तथा सुश्रुत (उ० अ० ६१) में अपस्मार के लिये एक विशेष प्रकार से निर्मित सुरा का प्रयोग बतलाया गया है। इसका बाह्य प्रयोग गण्डमाला, कुरंड (वृद्धि) तथा शस्त्रक्षत में किया गया है।

(क) Clerodendron serratum, Spreng. (क्लेरोडेन्ड्रोन् सेर्रटम्, स्प्रेंग) । Fam. Verbenaceae (व्हर्बिनॅसी) । **हि०**–भारङ्गी, भारिङ्गी, ब्रह्मयष्टि, बभनेटी । **बं०**–बामन हाटी, भुइजाम । **म०**–भारङ्ग । **गु०**–भारङ्गी । **क०**–गंटुभारङ्गी । **ते०**–नालनिरेदु । **ने०**–चूया । **पं०**–भाड़ङ्गी । **मा०**–भाराङ्गमूल । **ता०**–चेरूटेकु । **जौनसार०**–वनबाकरी । **फा०**–हजिका ।

यह हिमालय में सतलज से खासिया पहाड़ और आसाम तक तथा ब्रह्मा, नीलगिरी, पश्चिम-घाट थाना, रत्नागिरी और सिलोन में पाई जाती है। इसके पौधे ३ से ५ हजार फीट की ऊँचाई तक प्रायः पर्वतों के घासवाले ढालों पर होते हैं।

भारङ्गी क्षुप जाति की वनौषधि ४-८ फीट तक ऊँची होती है। **शाखाएँ**–इसके काष्ठमय मूलस्तम्भ से प्रतिवर्ष शाखाएँ निकलती हैं। प्रत्येक गांठ पर तीन-तीन पत्ते रहते हैं जो ४ से ८ इञ्च लम्बे, १½–२½ इञ्च चौड़े, आयताकार, अंडाकार-आयताकार या भालाकार, तीक्ष्ण दन्तुर तथा शिराओं के ५ जोड़ों से युक्त होते हैं। **फूल**–सफेद या कुछ नीले रङ्ग के आते हैं। **फल**–चौथाई इञ्च लम्बे, गोल, काले, पकने पर जामुनी रङ्ग के हो जाते हैं। इस क्षुप की छाल या जड़ का व्यवहार किया जाता है।

अधिकांश विद्वान् इसको ही शास्त्रीय भारङ्गी मानते हैं लेकिन श्रीमान् ठा० बलवन्तसिंहजी लिखते हैं कि इस नाम से जो छाल बाजारों में बिकती है वह इस वनस्पति की न होकर सम्भवतः निम्न वर्णित 'ख' की छाल हो। क्योंकि बाजार की छाल मोटी होती है जो इस छोटे से क्षुप की नहीं हो सकती।

रासायनिक संगठन—इसमें एक नारङ्गी रंग का रालीय पदार्थ, स्टार्च तथा अन्य तिक्त पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, कफघ्न, श्वासहर, वातघ्न, दीपन, पाचन तथा शोथघ्न है। इसका प्रयोग श्वास, कास, प्रतिश्याय, यक्ष्मज कास, फुफ्फुस विकार, वातकफज्वर तथा आमवात में किया जाता है। इसमें ज्वरघ्न तथा कफघ्न गुण अल्प मात्रा में होने के कारण ज्वर में इसके साथ अन्य ज्वरहर औषधियां देनी पड़ती हैं तथा कफज व्याधियों में काकड़ासिंगी या कायफल इसके साथ दिया जाता है। प्रतिश्याय एवं कफयुक्त श्वास आदि में इसके साथ सोंठ या घोड़वच देते हैं।

इसके पत्तों का पोल्टिस बनाकर फोड़ों के ऊपर लगाते हैं। उपदंशजन्य सन्धिवात में इसका गोंद लाभदायक है। इसके पत्तों तथा कोमल डालियों का रस परिसर्प (हरपीज) एवं पेंफीगस् नामक विस्फोटों पर लगाया जाता है। रत्नागिरी में इसके पत्तों का शाक मलेरिया में खाते हैं। इसके बीजों का चूर्ण घी में भूनकर शोथ में रसायन के रूप में खाते हैं।

मात्रा—चूर्ण १½–३ मा०।

(ख) Picrasma quassioides, Ben. (पिक्रॅस्मा क्वॅसिओइडिस्, बेन) । Fam. Simarubaceae (सिमॅरूबॅसी) । **हि०**–भारङ्गी, करूई-तिथाई । **बं०**–मुरूंगी । **म०**–कराशिंग । **पं०**–तिथु, बेरिङ्ग, पुथोरिन । **ने०**–शामबारिंगी । **अं०**–Quassia (क्वॅसिया) ।

यह हिमालय के बाहरी भाग में चेनाब से लेकर पूर्व की ओर ३०००–८००० फीट की ऊँचाई पर तथा चम्बा, कुलू, बशहर, उत्तरी गढ़वाल में ६०००–८००० फीट की ऊँचाई पर एवं नेपाल, भूटान तथा आसाम में खासी एवं नागा पहाड़ियों पर ३०००–८००० फीट की ऊँचाई पर पायी जाती है।

इसकी बड़ी-बड़ी झाड़ी या छोटे वृक्ष होते हैं जिनमें थोड़ी परन्तु मजबूत शाखायें होती हैं जिनपर प्रायः सफेद दाग होते हैं। **पत्र**–अयुग्म पक्षाकार, ९–१५ इञ्च लम्बे, अरलु वृक्ष के पत्तों के समान तथा रक्तरोमश मालूम होते हैं। **पत्रक**–९–१५, अभिलट्वाकार, आरावत तथा उनका अग्र लम्बा होता है एवं सबसे नीचे के पत्रक बहुत छोटे तथा उपपत्रों के समान होते हैं। **पुष्प**–हलके हरे रङ्ग के, पार्श्विक तथा सवृन्त-काण्डज पुष्पव्यूहों में। **अष्ठिफल**–बहुत छोटे, पकने पर काले रंग के तथा प्रत्येक फल में एक बीज होता है।

इस क्षुप के टुकड़ों या छाल का व्यवहार बंगाल में भारंगा नाम से किया जाता है। यह पीताभ श्वेत या चमकीले पीले रंग के, हलके, लचीले लेकिन आसानी से टूटने वाले, गन्धहीन तथा स्वाद में अत्यन्त कड़वे होते हैं। यह डाक्टरी की क्वाशिया नामक वनस्पति का अच्छा प्रतिनिधि है।

रासायनिक संगठन—इसमें पिक्रॅस्मिन् (Picrasmin) से ठीक मिलता जुलता एक क्षाराभ ०·०५%, एक क्वासीन् (Quassin) नामक कडवा पदार्थ तथा एक अन्य प्रभायुक्त एवं क्लोरोफार्म में घुलनशील कडवा पदार्थ ०·१५% पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह एक अत्यन्त कटु द्रव्य है। इसका प्रयोग आमाशय के दौर्बल्य से उत्पन्न अग्निमान्द्य में लाभदायक होता है लेकिन अधिक मात्रा में लेने से इससे प्रक्षोभ होकर वमन होता है। इसमें अन्य कडवे द्रव्यों की तरह टॅनिन् न होने के कारण इसको लोह के साथ प्रयोग कर सकते हैं। इसको फांट या हिम के रूप में अधिकतर व्यवहार करते हैं।

पंजाब में ज्वर एवं कृमियों के लिये इसकी छाल तथा पत्तों का व्यवहार किया जाता है। सूत्रकृमि (Thread-worm) के लिये इसके फांट (१ में १०) की बस्ति दी जाती है। इसके पत्तों को पीसकर खुजली आदि में लगाते हैं। इसके सत्वों का उपयोग बागवानी में जन्तुओं का नाश करने के लिये किया जाता है।

मात्रा—चूर्ण १–४ रत्ती। हिम ½–१ औंस।

(ग) Premna herbacea, Roxb. (प्रेम्ना हर्बेसिया रॉक्स्ब.) । Fam. Verbenaceae (व्हर्बिनॅसी) । **हि०**–भारंगी । **बं०**–भुइजाम । **क०**–नयित याग । **ता०**–शिरूकेट । **ने०**–चूअ । **कों०**–निर्विश । **लेप०**–ई ।

इसकी छोटी झाड़ी हिमालय तथा दक्षिण में कोंकण के पहाड़ी भागों में बरसात के दिनों में होती है। इसका वायवीय भाग मुलायम एवं शात्रकीय होने से यह ऊँचा नहीं होता तथा पत्तियाँ जमीन पर फैली रहती हैं। **पत्ते**-४ इंच तक लंबे, २ से ३ इंच चौड़े, विनाल, अभिलट्वाकार, शिराओं पर मृदुरोमश एवं शिराएँ ५ युग्म होती हैं। **पुष्प**-छोटे, श्वेत, एवं १½ इञ्च व्यास के समस्थ काण्डज गुच्छ में आते हैं। **फल**-½ इञ्च एवं गोल होता है। **मूल**-जमीन के नीचे, लंबे परंतु थोड़ी थोड़ी दूर पर गांठदार होते हैं। ये गन्धहीन एवं स्वाद में कड़वे होते हैं तथा इनका चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके मूलत्वक् में एक नारङ्गी बादामी रङ्ग की अम्ल राल तथा अत्यल्प मात्रा में एक क्षाराभ तथा कुछ स्टार्च रहता है। इसमें टॅनिन् नहीं होता।

गुण और प्रयोग—भारङ्गी नाम से यद्यपि कोंकण की तरफ इसका व्यवहार होता है तब भी इसमें भारङ्गी के गुण नहीं हैं। डा० देसाई लिखते हैं कि इसका उपयोग करके देखा गया लेकिन इसमें भारङ्गी के गुण नहीं मालूम पड़े। प्रतिश्याय आदि में इसका उपयोग करते हैं। तमकश्वास में इसका कल्क सोंठ तथा उष्ण जल के साथ या भारङ्गी मूल को आर्द्रक स्वरस या उष्ण जल के साथ देते हैं। शिरःशूल में इसकी जड़ उष्ण जल में घिसकर सर में लगाई जाती है। कानों में व्रण होने पर इसको मधु में घिसकर कान में डालते हैं। गठिया में इसका उपयोग करते हैं। इसे बिहार में गठिया, गेंठिया कहते भी हैं। इसके बीजों को मट्ठे में उबाल कर उदर रोग में शौच साफ होने के लिये प्रयुक्त करते हैं।

(घ) Clerodendrum siphonanthus. (R. Br.) C. B. Clarke (क्लेरोडेन्ड्रम् सिफोनेन्थस्)। Fam. Verbenaceae (व्हर्बिनेसी)। **हि०**-चिनगारी, भारंगी। **सं०**-ब्रह्मयष्टिका। **बं०**-बामनहाटी। **पं०**-अरनि।

इसके क्षुप हिमालय में तथा दक्षिण के पर्वतीय भागों में मिलते हैं। यह ४-६ फीट ऊँचा होता है। **कांड**-१ इञ्च तक मोटा, नालीदार तथा भीतर से पोला होता है। **पत्ते**-प्रति चक्र में ३-५ की संख्या में तथा ६ से ९ इञ्च लम्बे, १ से १॥ इञ्च चौड़े, पतले भालाकार, विनाल तथा कड़े होते हैं। **पुष्प**-९-१८ इञ्च लम्बी डंडी पर सफेद रंग के कुछ रक्तिमा लिये हुये होते हैं। पुष्पकोश की नली ३-४ इञ्च लम्बी होती है। **फल**-गोलाकार, ½ इञ्च लम्बे एवं जामुनी रंग के होते हैं तथा बाह्यपुट गहरे लाल रंग का एवं बढ़ा हुआ होता है। **बीज**-१ से ४ तक जुड़े हुए होते हैं। **मूलका स्वाद**-कड़वा तथा कषाय होता है तथा औषधि कार्य में इसी का व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसका मुख्य सत्व एक क्षाराभ होता है।

गुण और प्रयोग—इसके पोले कांड के टुकड़े बंगाल में तागे में पिरोकर कई रोगों से बचने के लिये पहने जाते हैं। इसका मूल खांसी तथा तमक श्वास में दिया जाता है। राजयक्ष्मा में इसके मूल का कल्क तथा सोंठ को उष्ण जल के साथ खिलाते हैं। इसके पत्तों का रस घी के साथ मिलाकर परिसर्प में लगाया जाता है। मांसक्षय वाले बच्चों को इससे सिद्ध तैल की मालिश की जाती है।

अथ पाषाणभेदः, तस्य नामानि गुणांश्चाह

पाषाणभेदकोऽश्मघ्नो गिरिभिद्भिन्नयोजिनी। अश्मभेदो हिमस्तिक्तः कषायो बस्तिशोधनः॥
भेदनो हन्ति दोषार्शोगुल्मकृच्छ्राश्महृद्रुजः। योनिरोगान्प्रमेहांश्च प्लीहशूलव्रणानि च॥

पाषाणभेद के नाम तथा गुण—पाषाणभेदक, अश्मघ्न, गिरिभिद और भिन्नयोजिनी ये सब पाषाणभेद के नाम हैं। **पाषाणभेद**-शीतल तथा तिक्त और कषायरस युक्त, बस्ति (मूत्राशय) का शोधन करने वाला और भेदक होता है। और वातादिक दोष, बवासीर, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, हृद्रोग, योनिरोग, प्रमेह, प्लीहा, शूल तथा व्रण को दूर करता है॥ १८४-१८५॥

६२ पाषाणभेद

पाषाणभेद एक संदिग्ध वस्तु है। इसके स्थान पर अनेक वनस्पतियाँ ली जाती हैं तथा विभिन्न विद्वान् भिन्न-भिन्न वनस्पतियों को पाषाणभेद मानते हैं। राजनिघण्टु में पाषाणभेदक, वटपत्री, शिलावल्का तथा चतुष्पत्री ये पाषाणभेद के चार भेद वर्णित हैं। निम्नलिखित वनस्पतियों को भिन्न-भिन्न आधुनिक विद्वान् पाषाणभेद मानते हैं।

१. Saxifraga ligulata, Wall. (सॅक्सिफ्रेगा लिग्युलेटा, वॉल,)।
   Fam. Saxifragaceae (सॅक्सिफ्रॅगासी)।
२. Aerva lanata, Juss. (एरूवा लॅनेटा, जस.)।
   Fam. Amaranthaceae (ॲमरेन्थेसी)।
३. Kalanchoe pinnata Pers. (कॅलॅन्चो पिन्नॅटा पर्स.)।
   Fam. Crassulaceae (क्रॅस्सुलॅसी)।
४. Coleus aromaticus, Benth. (कोलिअस् ॲरोमेटिकस्, बेन्थ.)।
   Fam. Labiatae (लेबियेटी)।
५. Homonoia riparia, Lour. (होमोनोइया राइपेरिया, लोर)।
   Fam. Euphorbiaceae (यूफोर्बियेसी)।
६. Rotula aquatica Lour. (रोटूला अॅक्वॅटिका लोर.)।
   Fam Boraginaceae (बोरॅजिनॅसी)।
७. Ocimum basilicum Linn. (ओसिमम् बॅसिलिकम् लिन.)।
   Fam. Labiatae (लेबिएटी)।

इन वनस्पतियों के अतिरिक्त कुछ लोगों ने एक खनिज पाषाणभेद भी लिखा है लेकिन उसका विशेष वर्णन नहीं मिलता है। उपर्युक्त वनस्पतियों में से अधिकांश मूत्रल अवश्य हैं लेकिन प्रथम वनस्पति **सॅक्सिफ्रेगा लिग्युलेटा** का ही ग्रहण पाषाणभेद नाम से उचित है। उपर्युक्त वनस्पतियों का अलग-अलग वर्णन आगे दिया जा रहा है। ओसिमम् बॅसिलिकम् का वर्णन आगे तुलसी के साथ दिया जावेगा।

(१) Saxifraga ligulata, Wall. (सॅक्सिफ्रेगा लिग्युलेटा, वाल.)।
Fam. Saxifragaceae (सॅक्सिफ्रॅगासी)।

सं०-पाषाणभेद, वटपत्रीभेद। **हि०**-पखानभेद, सिलफडा, पोपल, वनपत्रक, दकचु। **म०**-पाषाणभेद। **पं०**-शफ्रोकी। **ने०**-सोहंपे सोआ। **का०**-बथेव। **रावी**-सप्रोत्री। **खासिया**-अतिश। **चिनाब**-बल्पिआ। **कुमाऊँ**-शिलफोडा।

इसके पौधे काश्मीर, नेपाल तथा हिमालय के मध्य भाग में प्रायः ५००० फीट के ऊपर पर्वतों की ढालों पर पत्थरों की दरारों में बहुतायत से निकलते रहते हैं।

यह क्षुप जाति की वनस्पति बारहो मास पायी जाती है। **मूलस्तम्भ**-रक्ताभ (भीतर सफेद) और लगभग एक इञ्च मोटा होता है। इससे पतले उपमूल निकलकर पत्थरों के बीच में फैले रहते

है। पत्र–मांसल, चिकने, कुछ-कुछ गोलाई लिये, प्रायः ३–५ इञ्च व्यास में, किनारे पर सूक्ष्म सघन शूकों से युक्त (Ciliate = सीलियेट) तथा निचले पृष्ठ पर प्रायः गुलाबी रंग के होते हैं। एक स्थान में प्रायः ३ या ४ पत्तियों से अधिक नहीं निकलतीं। **फूल**–छोटे, सफ़ेद, गुलाबी या जामुनी रंग के आते हैं। **फल**–नीलाभ श्वेत तथा छोटे होते हैं।

इनके **मोटे मूल के टुकड़े** बाजार में बिकते हैं। ये टुकड़े करीब १–२ इञ्च लम्बे, ½–१ इञ्च मोटे, कपिशवर्ण के, कड़े एवं इनकी छाल खुरदरी तथा झुर्रीदार होती है। इन पर टूटे हुवे उपमूलों के निशान एवं गोल गढ़े रहते हैं। इनका आन्तरिक भाग सफेद होता है। इनका स्वाद कुछ सुगन्धित एवं कसैला होता है। कुछ लोग इसे वटपत्री मानते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके मूल में चूना ११¼%, टॅनिक् तथा गॅलिक् ॲसिड १५½%, शर्करा ५½%, गोंद २¼%, अल्ब्यूमिन् ७¾%, स्टार्च १९%, खनिजक्षार ३¾% तथा कॅल्शियम् ऑक्झॅलेट् (Calcium oxalate) ११¾% होता है।

गुण और प्रयोग—इसका मूल स्नेहन, मूत्रजनन, अश्मरीघ्न, ग्राही एवं श्लेष्मघ्न है। इससे मूत्र की वृद्धि होकर उसकी अस्वच्छता दूर होती है तथा अश्मरी भी घुलकर निकल जाती है।

इसका उपयोग मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, बस्तिरोग, आमातिसार एवं कास आदि फुफ्फुस विकारों में किया जाता है।

(१) वृक्कशूल एवं अश्मरी आदि में इससे बहुत लाभ होता है।

(२) बच्चों में इसको दूध में घिसकर देने से पेशाब की अस्वच्छता दूर होती है। दन्तोद्भेद के समय जब मुख में व्रण होते हैं तब इसको मधु के साथ घिसकर लगाते हैं।

(३) फोड़ों एवं नेत्राभिष्यन्द में इसका लेप किया जाता है।

(४) ग्राही होने के कारण आमातिसार में इससे लाभ होता है। आंत्र के लिए बल्य होने के कारण ज्वर में अतिसार होने पर इसका उपयोग किया जाता है। आन्त्रशिथिलता के कारण उत्पन्न अतिसार में भी प्रयोग किया जा सकता है।

मात्रा—चूर्ण ५–१० र०।

(२) Aerva lanata, Juss. (एरुवा लॅनेटा, जस.)।
Fam. Amaranthaceae (ॲमॅरॅन्थेसी)।

सं०–आदानपाकी, शतकाभेदी ? **हि०**–गोरखगांजा, गोरखबूटी, कपुरीजड़ी। **बं०**–चय। **गु०**–गोरख गांजो, कपुरी मधुरी। **म०**–कपुरफुटी, कुम्रपिंडी। **पं०**–बु(बु) इकल्लान। **सिं०**–बुइ। **ता०**–चिरूबूलै। **ते०**–पॅंडिदोंड। **क०**–बिलेसुलि। **मला०**–चिरापूल।

इसके छोटे बहुवर्षायु क्षुप सभी स्थानों में मैदानों में पाये जाते हैं। **कांड**–अनेक, लचीले लेकिन स्वावलम्बी तथा श्वेत रोमों से युक्त। **पत्र**–एकांतरित, प्रधान काण्ड पर एक इञ्च तक लम्बे, आधा इञ्च तक चौड़े तथा अन्य शाखाओं पर छोटे, दीर्घ वृत्ताकार या अर्ध अंडाकार या कुछ गोलाई लिए हुये एवं अधोतल पर श्वेतरोमयुक्त होते हैं। **पुष्प**–छोटे, हरिताभ श्वेत, गुच्छों में आते हैं। **फल**–चर्मल फल होता है जिसमें चमकीला काला बीज होता है। **मूल**–अनन्तमूल के समान और कर्पूर सदृश गन्धयुक्त।

इसके पुष्पों को उत्तर हिन्दुस्तान में **बु(बु) इकल्लान** एवं गुजरात में **बूर** कहते हैं।

गुण और प्रयोग—यह स्नेहन, मूत्रजनन, वेदनाहर, अश्मरीघ्न, कृमिघ्न एवं कासहर है। इसकी क्रिया अपामार्ग की तरह होती है।

बस्तिस्थ अश्मरी में इसके पुष्पों का फांट देने से बहुत लाभ होता है। मूत्रकृच्छ्र में इसके मूल का क्वाथ देने से मूत्र की राशि बढ़कर लाभ होता है। तमकश्वास में इसकी सूखी पत्तियों तथा पुष्पों का धूम्रपान किया जाता है।

Kalanchoe pinnata Pers. (कॅलॅन्चो पिन्नॅटा पर्स.)। Fam. Crassulaceae (क्रासुलेसी)।

सं०–पर्णबीज। **हि०**–जखमेहयात, अहिरावण, महिरावण, पथरचूर। **बं०**–कोपपाता। **म०**–घायमारी। **क०**–काडुसले।

इसके मांसल, बहुवर्षायु क्षुप भारतवर्ष के सभी भागों में उत्पन्न होते हैं लेकिन दक्षिणी बंगाल में अधिक पाये जाते हैं।

कांड–स्वावलम्बी, मोटा, पोला, लाल तथा ४ फीट तक ऊँचा। **पत्र**–नीचे के प्रायः साधारण किन्तु ऊपर के संयुक्त, ३–५ या कभी ७ पत्रकों से युक्त। पत्रक–गोलदन्तुर, विपरीत क्रम में, मांसल एवं लट्वाकार। **पुष्प**–बड़े, नलिकाकार, २ इञ्च लम्बे, रक्ताभ हरित तथा नीचे की ओर झुके हुये। इसके पत्तों के मूल से अंकुर प्ररोह निकलकर नया पौधा उत्पन्न हो जाता है। इसके पत्तों एवं स्वरस का औषध में उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन–इसके स्वरस में कॅल्शियम सल्फेट् (Calcium Sulphate) तथा ॲसिड टारट्रेट् ऑफ पोटॅशियम् (Acid Tartrate of Potassium) एवं बचे हुए कल्क में कॅल्शियम् ऑक्झॅलेट् (Calcium oxalate) होता है।

गुण और प्रयोग—इसके पत्ते व्रणशोधक, व्रणरोपक, रक्तस्तम्भक, ग्राही तथा प्रतिदूषक हैं। इसका उपयोग रक्तस्राव, चोट, अतिसार, अश्मरी एवं विसूचिका आदि में किया जाता है। यह रक्तवाहिनी केशिकाओं का संकोच करके रक्तस्राव रोकता है इसलिये आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के रक्तस्राव में लाभदायक है।

(१) रक्तयुक्त अतिसार में इसके पत्तों का रस ¼ से ½ तोला, जीरा तथा दुगने घी के साथ देने से खून गिरना बन्द होता है।

(२) चोट, मोच, सभी प्रकार के व्रण, फोड़े एवं कीटदंश आदि पर इसके पत्तों को जरा गरम करके कूचकर बांधने से सूजन, रक्तिमा एवं वेदना कम होकर लाभ होता है। घावों के लिये यह बहुत ही अच्छी ओषधि है। नये व्रण का इतने जल्दी व्रण पूरण होता है कि बाद में निशान तक नहीं रहता।

मात्रा—¼–½ तो०।

(४) Coleus aromaticus, Benth. (कोलिअस् ॲरोमेटिकस् , बेन्थ.) Fam. Labiatae (लॅबियेटी)।

सं०–पाषाणभेदी। **हि०**–पाथरचुर, पत्थरचूर, पाषाणभेद। **बं०**–पाथर कुची, अम्ल कुची, पातेरचूर। **म०**–पानांचा ओवा। **गो०**–ओवापान। **ता०**–कर्पूरवल्ली। **अं०**–Country borage (कन्ट्री बोरेज)।

इसका बहुवर्षायु क्षुप भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में तथा लङ्का में बगीचों आदि में रोपण किया जाता है। राजपुताना में वन्य अवस्था में भी मिलता है।

इसका **क्षुप** १–३ फीट ऊँचा; **कांड**–सरस; **पत्र**–मोटे, सरस, गूदेदार, दन्तुर, रोमश, १–३ इञ्च के घेरे में, गोलाकार, सुगन्धयुक्त एवं स्वाद में कटु। **पुष्प**–पुराने क्षुपों में ½ इञ्च लम्बे, हलके बैंगनी तथा गुच्छों में आते हैं।

मद्य को सुगन्धित करने के लिये इसका उपयोग करते हैं। औषध में इसके पञ्चाङ्ग का व्यवहार किया जाता है। मवेशियों के रोगों में भी इसे व्यवहार में लाते हैं। बंगाल की तरफ पाषाण भेद नाम से इसका उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक कारवॅक्रॉल (Carvacrol) नामक उड़नशील तैल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह दीपन, पाचन, वातनुलोमक, उद्वेष्ठननिरोधि एवं अश्मरीघ्न है।

इसका उपयोग अपचन, आध्मान, उदरशूल, दमा, जीर्णकास, अपस्मार एवं मूत्रसंस्थान के रोगों में किया जाता है।

(१) अपचन, उदरशूल एवं आध्मान आदि में एक दो पत्तियों के ही उपयोग से शीघ्र लाभ होता है। बच्चों के उदरशूल में यह विशेष लाभदायक है।

(२) दमा, जीर्णकास एवं अपस्मार आदि में इसका क्वाथ दिया जाता है।

(३) नेत्राभिष्यन्द में इसका स्वरस पलकों पर लगाने से वेदना कम होती है।

(४) शिरःशूल तथा गोजर के काटने पर इसको पीसकर लगाने से वेदना दूर होती है।

मात्रा—स्वरस ५-६ बूंद शर्करा के साथ।

(५) Homonoia riparia, Lour. (होमोनोइया राइपेरिया, लोर.)। Fam. Euphorbiaceae (यूफोर्बियेसी)।

सं०—पाषाणभेदक। **हि०**—छोटा पाषाणभेद। **ता०**—चेप्पुंजेरिजल। **ने०**—खोलासइस। **बर्मा**—मोमाका।

इसकी हमेशा हरी रहने वाली झाडी आसाम, उत्तरी बंगाल, पश्चिम प्रायद्वीप, बर्मा तथा मध्य प्रदेश में उत्पन्न होती है। इसके **पत्र**—३ से ६ इञ्च लम्बे तथा १/२–३/४ इञ्च तक चौड़े होते हैं। **पुष्प**—मंजरी में छोटे-छोटे आते हैं। इसकी जड़ का उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह मूत्रल तथा मृदुविरेचक होता है। इसका क्वाथ अर्श, मूत्राशय की अश्मरी, सोजाक एवं फिरंग में प्रयुक्त होता है।

(६) Rotula aquatica Lour. (रोटूला अॅक्वॅटिका लोर.)। Fam. Boraginaceae (बोरॅजिनॅसी)। **सं०**—पाषाणभेद। **ता०**—चेप्पुनेरिञ्जल।

यह सभी स्थानों पर विशेषकर नदी के कछार में होता है। इसकी छोटी झाडी होती है। **पत्ते**—१/२–१ इंच लंबे, विनाल, स्रुवाकार तथा न्यूनाधिक रोमश होते हैं। **पुष्प**—छोटे तथा गुलाबी रंग के आते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका मूल पाषाणभेदक के समान अर्श, मूत्राशय की अश्मरी, एवं फिरंगादि रतिजन्य रोगों में व्यवहृत होता है।

अथ धातकी (धाई) तस्या नामानि गुणाँश्चाह

धातकी धातुपुष्पी च ताम्रपुष्पी च कुञ्जरा।
सुभिक्षा बहुपुष्पी च वह्निज्वाला च सा स्मृता॥ १८५॥
धातकी कटुका शीता मृदुकृत्तुवरा लघुः। तृष्णाऽतीसारपित्तास्रविषक्रिमिविसर्पजित्॥

१. 'मदकृदि'ति पाठा०।

धायके नाम तथा गुण—धातकी, धातुपुष्पी, ताम्रपुष्पी, कुञ्जरा, सुभिक्षा, बहुपुष्पी और वह्निज्वाला ये सब धाय के नाम हैं। धाय—कटु तथा कषायरसयुक्त, शीतवीर्य, मृदुकारक (पाठान्तर मदकारक) और लघु है और यह प्यास, अतीसार, रक्तपित्त, विष, कृमि और विसर्प को दूर करती है॥ १८६-१८७॥

६३ धातकी

हि०—धातकी, धवई, धाई, धाओला, धावा, धाय (धाय के फूल)। **बं०**—धाइफुल। **मं०**—धायटी, धावस। **गु०**—धावणी, धावडी ना फूल। **क०**—धातकि। **ते०**—सेरिंजी, एर्रापुर्वु। **उ०**—जातिको। **पं०**—धा। **अवध**—धेती। **ने०**—दहिरी। **ले०**—*Woodfordia floribunda, Salisb.* (वुडफोर्डिआ फ्लोरीबंडा. सॅलिस्ब.); Syn. Woodfordia fruticosa Kurz. (वुडफोर्डिआ फ्रुटिकोसा, कुर्ज.)। Fam. Lythraceae (लिथ्रेसी)।

धातकी के क्षुप प्रायः सब प्रान्तों में कहीं न कहीं देखने में आते हैं। ये पहाड़ों में ५ हजार फीट की ऊँचाई तक एवं देहरादून के जंगलों में बहुतायत से पाये जाते हैं तथा वाटिकाओं में भी रोपण किये जाते हैं।

इसका **क्षुप** बड़ा तथा १०-१२ फीट तक ऊँचा होता है। **शाखाएं**—लम्बी, फैली हुई और सघन रहती हैं। नवीन शाखाओं तथा पत्तियों पर काले-काले विन्दु होते हैं। पत्ते-समवर्ती या कुछ विषमवर्ती और कहीं-कहीं तीन-तीन पत्ते एक साथ गुच्छों में दिखाई पड़ते हैं। वे २-४ इञ्च लम्बे, ३/४–१ ३/४ इञ्च चौड़े, भालाकार या लट्वाकार-भालाकार, नोकदार तथा सरलधार होते हैं। **पुष्प**—१/२ से ३/४ इञ्च, चमकीले लालरंग के नलिकाकार फूल आते हैं। यह शाखाओं के संपूर्ण काण्ड से छोटे-छोटे गुच्छों में निकले रहते हैं। **बीजकोष**—छोटा और बीज—चिकने भूरे रंग के होते हैं। औषधि के लिये इसके फूलों का व्यवहार किया जाता है तथा इससे रेशम रंगने के लिये एक लाल रंग निकाला जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके फूलों में २० १/२ % टॅनिन् होता है तथा इसके क्षुप से एक प्रकार का गोंद भी निकलता है जो रंगने के काम आता है।

गुण और प्रयोग—इसके फूल संग्राहक, उत्तेजक, विषहर, रक्तस्राव रोकने वाले एवं व्रणशोधक तथा व्रणरोपक होते हैं। इनका प्रयोग अतिसार, रक्तातिसार, ज्वरातिसार, प्रवाहिका, संग्रहणी, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, अर्श, यकृत विकार, सर्पविष तथा व्रण में किया जाता है। गर्भिणी में उत्तेजक औषध के रूप में बिना किसी हानि के इसका प्रयोग किया जा सकता है। अतिसार आदि में इसके साथ अन्य औषधियाँ भी दी जाती हैं। आसवों में सन्धान क्रिया ठीक होने एवं उसका रंग सुन्दर बनाने के लिये इसका बहुत प्रयोग किया जाता है।

(१) अतिसार एवं प्रवाहिका आदि में मट्ठे या मधु के साथ इसका पुष्पचूर्ण दिया जाता है या धाय के फूल, बेल की गुद्दी, लोध्र की छाल, सुगन्धवाला एवं गजपीपल सब समान लेकर, २ तोले का क्वाथ बना कर प्रयोग करते हैं। बच्चों के अतिसार में भी इसका प्रयोग कर सकते हैं।

(२) मधु के साथ इसका चूर्ण या अवलेह रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर एवं अर्श आदि में लाभदायक है। श्वेतप्रदर में १ तोला पुष्प चावल के धोवन के साथ दिया जाता है।

(३) कोंकण की तरफ 'मण्यारी' नामक सर्पविष के लिये यह रामबाण औषध मानी आती है। इसके लिये धाय के पत्तों का स्वरस पिलाते हैं, नाक में डालते हैं एवं शरीर पर उसे मलते हैं।

(४) पैत्तिक शिरःशूल में इसके पत्तों का स्वरस सिर पर लगाया जाता है तथा उसके साथ-साथ मुख में तैल का कवलग्रह किया जाता है।

(५) पानीदार विस्फोटों एवं दुर्गन्धयुक्त व्रणों में स्राव को कम करने के लिये तथा व्रण पूरण के लिये इसके पुष्पचूर्ण का उपयोग किया जाता है तथा इसके क्वाथ से व्रण प्रक्षालन भी करते हैं।

(६) आसवारिष्टों में शीघ्र किण्वोत्पत्ति के लिए धाय के फूलों का व्यवहार किया जाता है। इससे सन्धान भली प्रकार हो जाता है।

मात्रा—पुष्पचूर्ण १-२ माशा।

अथ मञ्जिष्ठा (मंजीठ) तस्या नामानि गुणाँश्चाह

मञ्जिष्ठा विकसा जिङ्गी समङ्गा कालमेषिका ॥ १८८ ॥
मण्डूकपर्णी भण्डीरी भण्डी योजनवल्ल्यपि। रसायन्यरुणा काला रक्ताङ्गी रक्तयष्टिका।
भण्डीतकी च गण्डीरी मञ्जूषा वस्त्ररञ्जिनी। मञ्जिष्ठा मधुरा तिक्ता कषाया स्वरवर्णकृत्।
गुरुरुष्णा विषश्लेष्मशोथयोन्यक्षिकर्णरुक्। रक्तातीसारकुष्ठास्रवीसर्पव्रणमेहनुत् ॥ १९१ ॥

मंजीठ के नाम तथा गुण—मंजिष्ठा, विकसा, जिङ्गी, समङ्गा, कालमेषिका, मण्डूकपर्णी, भण्डीरी, भण्डी, योजनवल्ली, रसायनी, अरुणा, काला, रक्ताङ्गी, रक्तयष्टिका, भण्डीतकी, गण्डीरी, मञ्जूषा और वस्त्ररञ्जिनी ये सब मंजीठ के नाम हैं। **मंजीठ**-मधुर, तिक्त तथा कषाय रस युक्त, स्वर को उत्तम करने वाली तथा वर्ण को उज्ज्वल करने वाली, गुरु, तथा उष्णवीर्य होती है और विष, कफ, शोथ, योनि, नेत्र तथा कर्ण सम्बन्धी रोग, रक्तातिसार, कुष्ठ, रक्तदोष, विसर्प, व्रण और प्रमेह दूर करने वाली होती है ॥ १८८-१९१ ॥

६४ मञ्जिष्ठा (मजीठ)

हि०-मजीठ, मंजीठ। **बं०**-मंजिष्ठा। **म०**-मञ्जिष्ठ। **ते०**-मञ्जिष्ठतीठी, ताम्रवल्ली, मण्डास्टिक। **ता०**-मञ्जिट्टी, मन्दित्ता। **गु०**-मजीठ। **पं०**-मजीठ। **मल०**-पून्त। **फा०**-रोदक। **अ०**-फुव्वहतु, फुब्वाह, फौहुल अवागीन। **अं०**-Madder root (मॅडर रूट); Indian madder (इण्डियन् मॅडर)। **ले०**-*Rubia cordifolia, Linn.* (रूबिया कॉर्डिफोलिया, लिन.)।

Fam. Rubiaceae (रूबिएसी)।

मजीठ इस देश की पहाड़ी भूमि में पश्चिमोत्तर हिमालय से पूर्व की ओर तथा दक्षिण की ओर नीलगिरी, सीलोन और मलाका एवं नेपाल में ८ हजार फीट तक उत्पन्न होती है।

यह लता जाति की वनौषधि बहुत विस्तार में दूर दूर तक फैल जाती है। इसकी लम्बी जड़ भूमि के भीतर दूर तक घुस जाती है। **डठल**-कई गज लम्बा, गावदुम, खुरदरा, जड़ की ओर कठोर। **छाल**-सफेदी मायल किन्तु भीतर का भाग लाल होता है। शाखा प्रशाखाओं करके सघन बेल निकटवर्ती वृक्षों पर चढ़कर फैलती है। **पत्ते**-प्रत्येक ग्रन्थि पर चार चार के चक्रों में, जिसमें से दो बड़े होते हैं। ये ।॥ से ४ इञ्च लम्बे, लट्वाकार-ताम्बूलाकार, नोकीले, खरस्पर्श युक्त या चिकने होते हैं। **पत्रनाल**-२ से ४ इञ्च लम्बा होता है। **पुष्प**-नन्हें नन्हें श्वेतवर्ण के गुच्छों में रहते हैं। **फल**-काले, चने के बराबर तथा दो बीजों से युक्त होते हैं। **मूल**-लम्बे, लम्बगोल तथा ताजी अवस्था में लाल तथा सूखने पर कुछ काले हो जाते हैं। मूल का **स्वाद** प्रारम्भ में मिठास लिये हुवे, लेकिन बाद में कुछ तीता और कड़वा होता है। इन्हीं मूलों का औषध में व्यवहार किया जाता है।

बाजार में नेपाली, ईरानी, अफगानी तथा हिन्दुस्तानी नाम से चार प्रकार के मूल बिकते हैं जिसमें से अफगानी मूल जो सिन्ध के रास्ते से आता है वह अच्छा समझा जाता है तथा हिन्दुस्तानी कनिष्ठ मानते हैं। इनका व्यवहार रंगने के काम में भी किया जाता है। इसका पर्याय नाम जो 'समङ्गा' दिया गया है उसके विषय में विद्वानों में मतभेद है। इसकी कभी कभी चिरायते में मिलावट रहती है।

रासायनिक संगठन—इसके मूल में राल, गोंद, शर्करा, चूने के योग एवं रञ्जक पदार्थ पाये जाते हैं। रंजक द्रव्यों में रक्त रवेदार परप्यूरिन् (Purpurin), पीत ग्लूकोसाइड मंजिस्टिन एवं गॅरेन्सिन् (Manjistin & Garancin), नारंगरक्त ॲलिझॅरिन् (Alizarin) एवं पीत झॅन्थाइन् (Xanthine) आदि पाये जाते हैं।

गुण तथा प्रयोग—यह रक्तशोधक, ग्राही, पौष्टिक, गर्भाशय संकोचक, शोथघ्न, त्वग्दोषहर, वेदनास्थापक, मूत्रल एवं व्रणरोपक है। अल्पमात्रा में देने से इससे मस्तिष्क एवं वातनाड़ियों पर शामक प्रभाव पड़ता है लेकिन अधिक मात्रा में देने से कुछ भ्रम उत्पन्न होता है। इससे मूत्र एवं दुग्ध का रंग लाल हो जाता है। इसका क्वाथ अङ्गघात, कामला, मूत्रावरोध, अश्मरी, आर्तवविकार, अनार्तव, शोथ, रक्तातिसार, प्रमेह, छाती के शोथयुक्त विकार एवं चर्मरोग आदि में दिया जाता है।

(१) मंजिष्ठादि क्वाथ का उपयोग चर्मरोगों में बहुत लाभदायक है। इसके प्रयोग से त्वचा की रक्ताभिसरण क्रिया बढ़ कर उसकी विनिमय क्रिया में परिवर्तन होता है। इससे वातरक्त, दाद, खुजली, श्वित्र एवं व्यंग आदि में बहुत लाभ होता है।

(२) यह गर्भाशय संकोचक होने से प्रसव में बाद गर्भाशय शुद्धि के लिये इसके साथ ईश्वर मूल, पिपरामूल आदि अन्य औषधियों का प्रयोग किया जाता है। इससे गर्भाशय संकोच होकर स्राव की वृद्धि होती है तथा पीडा कम होती है।

(३) अश्मरी में शस्त्रकर्म करने के पूर्व एक बार इसका प्रयोग करके देखना चाहिये। इसके चूर्ण को १ माशे की मात्रा में दिन में ३ बार देना चाहिये। इससे सभी प्रकार की पथरी गलकर निकल जाती है। यदि इससे लाभ न हुआ तो फिर शस्त्रकर्म किया जा सकता है।

(४) यह फक्करोग (Rickets) राजयक्ष्मा, आंत्रिकशैथिल्य एवं दुर्गन्ध युक्त जीर्ण अतिसार आदि में भी लाभदायक है। राजयक्ष्मज अतिसार एवं आंत्रिक व्रणों में इसके उपयोग से वेदना की शांति होती है। फुफ्फुसावरणशोथ (प्ल्युरिसी-Pleurisy) आदि छाती के विकारों में भी इससे लाभ होता है।

(५) मंजिष्ठमेह में चन्दन के साथ इसका क्वाथ दिया जाता है।

(६) मधु के साथ इसको घिस कर लगाने से व्यङ्ग, दाद एवं श्वित्र आदि जीर्ण चर्मरोगों में बहुत लाभ होता है। लोध्र एवं चन्दन के साथ पीस कर इसे लगाने से विसर्प में लाभ होता है।

(७) मजीठ, अर्जुन, मुलेठी एवं सुगन्धवाला इनका क्वाथ अस्थिभग्न में पिलाया जाता है तथा उसी का लेप भी करते हैं। केवल मजीठ एवं मुलेठी को काञ्जी में पीस कर लगाने से भी शोथ कम होकर पीडा कम होती है।

(८) अग्निदग्ध व्रण पर मञ्जीठ, रक्तचन्दन तथा मूर्वा से सिद्ध घृत का उपयोग किया जाता है। इससे पीड़ा का शमन होकर व्रण दूर होता है।

(९) इसके फल का प्रयोग यकृत् के कारण उत्पन्न अवरोध में किया जाता है।

मात्रा—मूल चूर्ण १ से ३ माशा दिन में तीन बार।

अथ कुसुम्भम्, तस्य नामानि गुणाँश्चाह

स्यात्कुसुम्भं वह्निशिखं वस्त्ररञ्जकमित्यपि। कुसुम्भं वातलं कृच्छ्ररक्तपित्तकफापहम् ॥१९२॥

कुसुम के नाम तथा गुण—कुसुम्भ, वह्निशिख और वस्त्ररञ्जक ये नाम कुसुम के हैं। कुसुम-वातकारक तथा मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त और कफ का नाश करने वाला होता है ॥ १९२ ॥

६५ कुसुम्भ

हि०–कुसुम, कसुम्भ, बर्रे। **बं०**–कुसुम फूल। **म०**–करडई। **गु०**–कसुम्बो। **क०**–कसुम्बे। **ते०**–लत्तुक, लक, बंगारसु, वंगारम, आग्निशिखा, कुसुम्बा वित्तुलु। **पं०**–कूसम, कर्तुम, कुसुम, करर। **उ० प्र०**–बर्र, कर्र। **फा०**–खस्कदाने, गुलेमस्कर। **अ०**–अखरीज, झरतम। **अं०**–Safflower (सॅफ्फ्लावर); Parrot seed (पॅरट्सीड); Bastard saffron (बॅस्टर्ड सॅफ्रॉन्)। **ले०**–*Carthamus tinctorius, Linn.* (कार्थेमस् टिंक्टोरियस्, लिन.)। Fam. Compositae (कॉम्पोझिटी)।

इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है। इसका **क्षुप** १-३ फीट ऊँचा होता है। **पत्ते**-लम्बे, किनारों पर कटे हुए, नुकीले और काँटेदार होते हैं। **पुष्प**-केसरिया लाल रंग के पुष्प गोल गुच्छों में आते हैं। **फल**-चतुष्कोणीय चर्मल फल आते हैं। **बीज**-सफेद, चिकने तथा शंख की आकृति के समान होते हैं।

कृषिजन्य इसके अनेक प्रभेद पाये जाते हैं तथापि इनका वर्गीकरण दो वर्गों में किया जा सकता है।

एक में काँटे होते हैं और दूसरे में काँटे नहीं होते। काँटे वाले की अपेक्षा बिना काँटे वाले के फूलों से बहुत उत्तम रंग निकलता है। काँटेवाले पौधे तैल की दृष्टि से अच्छे समझे जाते हैं। इसके पुष्पों के किञ्जल्क केसर के समान दिखलाई देते हैं तथा केसर में इनकी मिलावट की जाती है। असली केसर के तन्तु सुगन्धित तथा एक रङ्ग के होते हैं किन्तु कुसुम के किंजल्क तन्तु गन्धरहित तथा श्वेत धब्बों से युक्त होते हैं। इसके बीज, पंचांग, तैल, पुष्प एवं मूल का व्यवहार चिकित्सा में किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके पुष्पों में जल में अविलेय कार्थामिन् (Carthamin) नामक एक लाल रंग एवं जल में विलेय अन्य पीत रंग पाये जाते हैं। इसके बीजों में २०-३०% तक एक स्थिर तैल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके बीज विरेचक, मूत्रल तथा बल्य होते हैं। इसका पुष्प विरेचक, स्वेदजनन, बल्य एवं आर्तव वृद्धिकर होता है। **तैल** विरेचक, एवं व्रणरोपक है। इसका मूल मूत्रल तथा **पंचांग** उष्ण होता है।

(१) इसके कोमल पत्तों का शाक प्रतिश्याय में खाया जाता है। इसके पत्तों में रेनेट् (Rennet) की तरह दूध जमाने की शक्ति होती है।

(२) इसके शुष्क पुष्पों को ४ माशे की मात्रा में कामला में देते हैं। इसका फांट स्वेदल होता है तथा प्रतिश्याय, कष्टार्तव एवं मांसपेशीय आमवात (Muscular rheumatism–मसक्यूलर र्ह्यूमॅटिज़म्) में दिया जाता है तथा इसका हिम रोमान्तिका आदि विस्फोटक ज्वरों में (Eruptive fevers–एरप्टिव्ह फीवरस्) में विस्फोट बाहर निकालने के लिये प्रयुक्त करते हैं।

(३) इसके बीजों से प्राप्त तैल खाने के काम आता है। बाजारू मीठे तेल में तथा घी में इसकी मिलावट करते हैं। इससे पाखाना साफ होता है। प्रमेह में इसके तैल को खाने से लाभ होता है। खुजली में इसको ५, ६ बार लगाने से बहुत लाभ होता है। आमवात एवं सन्धिशोथ में इसकी मालिश की जाती है तथा व्रणों पर इसको लगाते हैं। सुगन्धि के काम के लिए विदेशों में इसका निर्यात किया जाता है। कुछ लोगों ने इसके पंचांग से सिद्ध तिलतैल का व्यवहार सन्धिशोथ, आमवात, अङ्गघात, खुजली एवं पुराने घाव आदि में लगाने के लिये लिखा है। कुसुम बीजतैल का प्रयोग भी इसके स्थान पर किया जा सकता है। इसकी खली टिकाऊ होती है तथा जानवरों के खाने के काम में एवं ऊख आदि के लिये खाद के रूप में काम में ली जाती है। साबुन एवं तैलीय रंगों में भी खली का उपयोग होता है।

(४) इसके बीज द्राक्षारस के साथ अश्मरी एवं मूत्रकृच्छ्र में लाभदायक हैं। इसके बीजों की मांड मृदुविरेचक होती है एवं उदरशूल तथा आमवात में दी जाती है। प्रसूता में गर्भाशय की पीडा हो तो इसकी पुल्टिस् बनाकर पेडू पर बांधा जाता है।

मात्रा—शुष्क पुष्प चूर्ण २-४ माशा। बीज २-४ माशा।

अथ लाक्षा (लाही) तस्या नामानि गुणाँश्चाह

लाक्षा पलंकषालक्तो यावो वृक्षामयो जतुः। लाक्षा वर्ण्या हिमा बल्या स्निग्धा च तुवरा लघुः॥ (ब्राह्मण्यङ्गारवल्ली[1] च खरशाखा च हञ्जिका)। अनुष्णा कफपित्तास्रहिक्काकासज्वरप्रणुत्। व्रणोरःक्षतवीसर्पकृमिकुष्ठगदापहा। अलक्तको गुणैस्तद्वद्विशेषाद्व्यङ्गनाशनः ॥ १९५ ॥

लाख के नाम तथा गुण—लाक्षा, पलङ्कषा, अलक्त, याव, वृक्षामय, और जतु ये सब लाख के पर्यायवाची शब्द हैं। किसी किसी पुस्तकों में ब्राह्मणी, अङ्गारवल्ली, खरशाखा और हञ्जिका ये अधिक पर्याय मिलते हैं। लाख-शरीर के वर्ण को उज्वल करने वाली, शीतल, बलकारक, स्निग्ध, कषायरसयुक्त, लघु और अनुष्ण (थोड़ी गरम) होता है तथा यह कफ, रक्तपित्त (पित्त, रक्त) हिचकी, कास, ज्वर, व्रण, उरःक्षत, विसर्प, कृमि और कुष्ठरोग को दूर करने वाली होती है। लाख से उत्पन्न हुये अलक्तक (महावर) में भी उपरोक्त लाख के सभी गुण होते हैं किन्तु विशेषतः यह व्यङ्गरोग (झांई) की नाशक होता है॥ १९३-१९५ ॥

६६ लाख

हि०—लाख, लाही, लाई। **बं०**–गाला, लाहा। **प०, मा०, गु०, म०**–लाख। **क०**–अरगु। **ते०**–लक्का, लक्का, लाका। **ता०**–अरकु। **फा०**–लाक। **अ०**–लुक, लुक मकसूल। **अं०**–Lac (लॅक) या Shell lac (शेल लॅक)। **ले०**–कीटनाम—Laccifer lacca (Kerr) (लॅसिफेर लॅक्का)। Fam. Lacciferidae (लसिफेरिडी)।

---

[1] १. कोष्ठस्थः पाठः क्वाचित्कः।

लाख—पुराने वृक्षों की डालियों पर एक प्रकार के बारीक कीड़ों द्वारा स्वरक्षणार्थ निर्मित रक्ताभ या गाढ़े भूरे रङ्ग का रालदार पदार्थ है। बेर, पाकड़, पीपल आदि वृक्षों पर ये कीड़े इसे बनाते हैं। इनमें पीपल वृक्ष की लाही सर्वोत्तम समझी जाती है। वैशाख और आश्विन के महीने में व्यापारी लोग वृक्षों से छुड़ाकर सुखाते हैं। इसको साफकर कपड़े की लम्बी थैलियों में भरकर गरम करते हैं जिससे लाख गलकर टपकती है। चपड़ा बनाने के लिये गरम करने के पूर्व इसमें हरताल का घोल मिलाते हैं तथा बाद में उसे खींच खींचकर पतला बनाते हैं। लाख को औटाकर लाल रङ्ग तैयार करते हैं और उसे सेमल की रूई में तरकर महावर बनाते हैं। लाख के रङ्ग की बनी हुई रोशनाई बहुत पक्की होती है। औषध की अपेक्षा लाख का अन्य कार्यों में बहुत उपयोग होता है तथा यह निर्यात व्यापार की एक प्रमुख वस्तु है। विदेशों में उत्पन्न न होने से यहाँ से इसका काफी निर्यात किया जाता है। इससे निर्मित रङ्ग का अब बहुत कम उपयोग होता है। उत्तरप्रदेश में मिरजापुर में इसके कारखाने हैं।

गुण और प्रयोग—लाख शीतल, रक्तपित्तघ्न, ज्वरनाशक, दाहशामक, बल्य एवं वर्ण्य है।

इसका उपयोग रक्तप्रदर, ऊर्ध्वग रक्तपित्त, उरःक्षत, ज्वर, दाह, रक्तविकार एवं कास आदि में किया जाता है।

(१) रक्तप्रदर एवं उरःक्षत आदि में इसे दूध में उबालकर या घी में पकाकर फिर चूर्ण करके उसमें दूध मिलाकर पिलाते हैं। इसके चूर्ण को मधु तथा दूध के साथ भी दिया जा सकता है। साफ धोलकर बुकनी की हुई पीपल की कची लाह १ माशा एवं घृत में भूना हुआ शुद्ध गैरिक ४ रत्ती दूध के साथ ऊर्ध्वग रक्तपित्त में देने से बहुत लाभ होता है।

(२) इससे सिद्ध लक्षादि, अङ्गारकादि एवं चन्दनबलालाक्षादि आदि तैलों का उपयोग जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा एवं दाह आदि में अभ्यङ्ग के लिये किया जाता है।

(३) कृमिदन्त तथा व्रणों पर इसको लगाया जाता है।

मात्रा—१-३ माशा।

अथ हरिद्रा तस्या नामानि गुणाँश्चाह

हरिद्रा काञ्चनी पीता निशाऽऽख्या वरवर्णिनी। कृमिघ्नी हलदी योषित्प्रिया हट्टविलासिनी[1]।
हरिद्रा कटुका तिक्ता रूक्षोष्णा कफपित्तनुत्। वर्ण्या त्वग्दोषमेहास्रशोथपाण्डुव्रणापहा॥

हलदी के नाम तथा गुण—हरिद्रा, काञ्चनी, पीता, निशाऽऽख्या (रात्रिवाची सभी शब्द), वरवर्णिनी, कृमिघ्नी, हल्दी, योषित्प्रिया और हट्टविलासिनी ये नाम हल्दी के हैं। हलदी-कटु तथा तिक्तरस युक्त, रूक्ष, उष्णवीर्य, कफ पित्त नाशक, शरीर के वर्ण को उज्ज्वल करने वाली एवम् चर्मदोष, प्रमेह, रक्तविकार, शोथ, पाण्डु तथा व्रण को दूर करने वाली होती है॥ १९६-१९७॥

६७ हलदी

हि०—हल्दी, हरदी, हर्दी, हल्दी। बं०—हलुद। म०—हलद। गु०—हलदर। क०—अरसिन, अरिसिन। ते०—पसुपु। पं०—हलदी, हलदर, हलज। ता०—मंजल। मला०—मन्जल। फा०—जर्द चोब। अ०—उरुकुस्सफ। अं०—Turmeric (टर्मेरिक्)। ले०—*Curcuma longa, Linn.* (कर्क्युमा लौंगा, लिन.)। Fam. Zingiberaceae (झिंजिबेरेसी)।

---

१. 'हरविलासिनी'ति पाठा०

हलदी—एक बहुत प्रसिद्ध प्रतिदिन के व्यवहार में आने वाली वस्तु प्रायः सब प्रान्तों के खेत में रोपण की जाती है लेकिन बंबई, मद्रास तथा बंगाल में इसकी विशेष रूप से उपज की जाती है। चीन एवं जावा आदि देशों में भी इसकी उपज होती है। इसका **क्षुप**—२-३ फीट ऊंचा होता है। **पत्ते**—केले के नवीन पौधे से निकले हुए पत्ते के समान १-१॥ फुट लम्बे तथा ६-७ इञ्च चौड़े उतने ही लम्बे पर्णवृन्त से युक्त, आयताकार-भालाकार एवं पर्णतल की तरफ कुछ नुकीले होते हैं। पत्तों में आम के समान गन्ध आती है। **फूल**—अवृन्त काण्डज क्रम में निकले हुवे, पीतवर्ण के, संख्या में अल्प तथा करीब १½ इञ्च लंबे; **पुष्पदण्ड**—६ इञ्च या अधिक लम्बा तथा पत्रनाल द्वारा आवृत; पुष्पदण्ड की पत्तियां हलके हरे रंग की होती हैं। इसकी जड़ के नीचे अदरक के समान अदरक से बड़े-बड़े **कन्द** होते हैं। यह सर्वाङ्ग पीला होता है। इसी कन्द को हल्दी कहते हैं। ये कन्द विभिन्न आकार के, मूल एवं पर्णवृन्तों के चिह्नों से युक्त होते हैं। अन्दर का भाग पीला या नारंगपीत। **भग्न**—शृङ्गवत्। **गन्ध**—मधुर। **स्वाद**—कडवा। चूसने पर लालास्राव का वर्ण भी पीत हो जाता है। रंगने के काम में बिना उबाली हलदी का व्यवहार किया जाता है और खाने के काम में हल्दी को उबाल कर सुखाकर प्रयुक्त करते हैं। उबालने से उष्णवीर्य हल्दी की तीव्रता कम हो जाती है। प्रमेह आदि कफ प्रधान व्यक्तियों में कच्ची हल्दी का रस सहपान या अनुपान के रूप में प्रयुक्त करते हैं।

हलदी को एक विशेष विधि से तयार कर बाजार में बेची जाती है। पहले कन्दों को अलग करके साफ करते हैं। फिर मुलायम होने तक जल में उबालते हैं। स्थान भेद के अनुसार ३० मिनट से ६ घंटे तक उबाला जाता है। उबालते समय इसी के कुछ पत्तों को भी जल में डालते हैं। थोड़ा गोबर मिलाने से इसका रंग अच्छा हो जाता है। फिर इन्हें खुली हवा में फैलाकर बार-बार पलट कर धीरे-धीरे सुखाते हैं। सूखने पर रगड़कर साफ करके उपयोग में लाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें करक्यूमिन् (Curcumin, $C_{21}H_{20}O_6$) नामक एक पीला एवं रवेदार रंजक पदार्थ होता है जो मद्यसार में पूर्णतया घुल जाता है जिससे गहरे पीले रंग का घोल बनता है। इस घोल में क्षार मिलाने से घोल रक्ताभ बादामी वर्ण का हो जाता है। इसके अतिरिक्त हलदी में ५-६% उडनशील तैल होता है जिसमें कर्पूरवत गन्ध आती है तथा इस तैल में करक्यूमेन (Curcumen) नामक एक टरपेन (Terpene) होता है जो स्नेहद्रव्य कोलेस्टेरॉल (Cholesterol) को घुलाने के लिए बहुत अच्छा द्रव्य है। हलदी में उपर्युक्त पदार्थों के अतिरिक्त स्टार्च (Starch) २४%, तथा ॲल्ब्युमिनाएड्स् (Albuminoids) ३०% होते हैं।

गुण और प्रयोग—हलदी उष्ण, उत्तेजक, सुगन्धि, रक्तशोधक, त्वग्दोषहर, शोथहर, दीपन, ग्राही, कफघ्न, वातहर, विषघ्न एवं व्रण के लिए लाभदायक है। मसाले के रूप में इसका नित्य व्यवहार होते हुए भी यह एक बहुत अच्छी औषध है।

इसका उपयोग प्रतिश्याय, कफविकार, चर्मरोग, रक्तविकार, प्रमेह, कामला, यकृत विकार, पार्यायिक ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, व्रण एवं नेत्राभिष्यन्द में किया जाता है।

(१) प्रतिश्याय, खांसी, प्रमेह, प्रदर एवं नेत्राभिष्यन्द आदि रोगों में जिनमें श्लेष्मा का अत्यधिक स्राव होता है, इसको दूध में उबालकर गुड़ मिलाकर पिलाते हैं। प्रतिश्याय की प्रारंभिक अवस्था में रात के समय इसके धूएँ को नाक से सुंघाते हैं तथा उसके बाद कुछ देर तक जल नहीं पीने देते। इससे बहुत जल्दी लाभ होता है। खांसी में इसको भूनकर १-२ माशा मधु अथवा घृत के साथ चटाने से लाभ होता है।

(२) आंवले का रस, हल्दी तथा मधु इसके प्रयोग से सभी प्रकार के प्रमेहों में अच्छा लाभ होता है। प्रदर में इसके साथ गुग्गुलु या रसांजन का प्रयोग करते हैं।

(३) खुजली, पामा, दाद, शीतपित्त, उदर्द, फोड़े एवं विचर्चिका आदि रक्तविकार एवं चर्मरोगों में यह बहुत लाभदायक है। इसके लिए हल्दी का चूर्ण गोमूत्र के साथ खिलाया जाता है एवं मक्खन के साथ स्थानीय लेप भी करते हैं। इसके विशेष योग हरिद्राखंड का १ तो० की मात्रा में नित्य कुछ समय तक लेने से उपर्युक्त विकारों में पर्याप्त लाभ होता है।

(४) चूना या सज्जी खार हल्दी के साथ मिलाकर मोच, ऐंठन, चोट, पिचित व्रण एवं पुराने घावों पर लगाने से बहुत लाभ होता है। इसके साथ हल्दी तथा मिश्री को खिलाते भी हैं। बिच्छू एवं सर्प आदि के काटने पर वेदना शान्ति के लिए इसका धूआं देते हैं। हल्दी एवं फिटकिरी (१ में २०) के सूक्ष्म चूर्ण का कर्णस्राव में कान में प्रधमन करते हैं।

(५) सभी प्रकार के नेत्राभिष्यन्द के लिए यह बहुत लाभदायक है। एक भाग हल्दी २० भाग जल में उबाल कर छानकर उसे आंख में बार-बार डालते हैं जिससे आंख की वेदना कम होती है तथा कीचड़ आना भी कम होता है। इसके क्वाथ से रंगे हुए कपड़े का व्यवहार नेत्राच्छादन के लिए किया जाता है।

(६) श्लीपद में इसको गुड़ एवं गोमूत्र के साथ प्रयोग कराया जाता है।

(७) शिरःशूल एवं जोंक के काटने पर रक्तप्रवाह को रोकने के लिए इसका लेप लाभदायक है। चक्कर आता हो तो ताजी हल्दी का सिरपर लेप करने से लाभ होता है। घृतकुमारी के गूदे में इसको घिसकर शोथयुक्त अर्श पर लगाते हैं।

(८) भूतोन्माद एवं योषापस्मार आदि में इसका धूआं दिया जाता है।

(९) हल्दी के ताजे पत्तों का उपयोग मछली भूनने में एवं घृत की दुर्गन्ध को दूर करने के लिए उपयोग में लाते हैं। ताजी हल्दी का अचार भी बनाया जाता है।

मात्रा—चूर्ण २-४ माशा।

अथ कर्पूरहरिद्राया नामानि गुणांश्चाह

दार्वीभेदा[1]ऽऽम्रगन्धा च सुरभीदारुदारु च। कर्पूरा पद्मपत्रा स्यात्सुरीम[2]त्सुरतारका॥
आम्रगंधिर्हरिद्रा या सा शीता वातला मता। पित्तहृन्मधुरा तिक्ता सर्वकण्डूविनाशिनी॥

कपूरहल्दी या आमाहरदी के नाम तथा गुण—दार्वीभेदा (यह दारुहल्दी के भेद में है अतः दार्वीभेदा भी नाम है), आम्रगन्धा (आम के फल के समान गन्ध होने से आम्रगन्धा भी कहते हैं), सुरभीदारु, दारु, कर्पूरा, पद्मपत्रा सुरीमत और सुरतारका (पाठान्तर में सुरभी और सुरनायिका) ये सब आमाहरदी के पर्यायवाचक शब्द हैं। जो हल्दी आम के फल के समान गन्ध वाली होती है वह शीतल, वातकारक, पित्त को दूर करने वाली, मधुर तथा तिक्त रसयुक्त एवं सब प्रकार की खुजली का नाश करनेवाली होती है॥ १९८-१९९॥

६८—आमाहलदी

हिं०—अमिया हलदी, आमाहल (र) द, आमाहलदी। **बं०**—आम आदा। **म०**—अम्बे हलद, अम्बा हलद। **गु०**—आम्बा हलदर। **क०**—हुली आरसीन। **ते०**—कारुपुसुपु। **ता०**—पशु मंजल। **मा०**—आंबा हलदी। **पं०**—अंबिया हलदी। **फा०**—दारचोबह। **अ०**—दारहल्द। **अं०**—Mango ginger (मँगो जिंजर)। **ले०**—*Curcuma amada Roxb.* (कर्क्युमा अमाडा)। Fam. Zingiberaceae (झिंजिबेरेसी)।

१. 'दार्वीभेदे'ति पाठान्तरमसङ्गतम्। २. 'सुरभी सुरनायिके'ति पाठा०।

आमाहलदी के क्षुप प्रायः सब प्रान्तों में कहीं न कहीं पाये जाते हैं। बंगाल और कोंकण में इसकी खेती की जाती है। इसका डंठल मोटा होता है। **कन्द**—हलदी की गाँठों से बड़े बड़े, आर्द्रक के समान, हलके पीले रंग के एवं आम्र की तरह गन्धयुक्त होते हैं। **क्षुप**—२-३ फीट तक ऊँचा होता है। **पत्ते**—१-१॥ फुट लम्बे, ५-६ इञ्च चौड़े, आयताकार दीर्घवृत्ताकार और नुकीले होते हैं। **फूल**—फीके पीले रंग के आते हैं। गाँठों को छोटे छोटे टुकड़े कर सुखा लेते हैं। डा० देसाई लिखते हैं कि बम्बई में आमाहलदी नाम से जो गाँठें बिकती हैं वे वनहरिद्रा की होती हैं। कुछ विद्वानों ने आमाहलदी का ले० नाम वनहरिद्रा वाला लिखा है। आमाहलदी का बंगाल में अधिक प्रयोग होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उड़नशील तैल, राल, शर्करा, गोंद, स्टार्च, ॲल्ब्यूमिनॉइड्स, ऑर्गेनिक् अम्ल तथा राख आदि पदार्थ प्राप्त होते हैं।

गुण और प्रयोग—यह वातानुलोमक, शीतल, सुगन्धि, दीपन, पाचन एवं ग्राही है। इसके गुण आर्द्रक के समान दीपन एवं वातानुलोमक हैं लेकिन आर्द्रक उष्ण है और यह शीतल है।

इसका उपयोग हलदी के स्थान पर किया जाता है। सुगन्धित होने के कारण इसे चटनी आदि में उपयोग में लाते हैं। मिठाइयों में आम की गन्ध लाने के लिये इसके फांट का व्यवहार करते हैं। चोट एवं खुजली आदि में इसका लेप किया जाता है। लताकरञ्ज के पत्र रस के साथ कृमि रोग में इसका उपयोग किया जाता है।

मात्रा—चूर्ण २-४ माशा।

अथ वनहरिद्राया नामगुणानाह

अरण्यहलदीकन्दः कुष्ठवातास्रनाशनः॥ २००॥

वनहरदी के गुण—**वनहलदी का कन्द**—कुष्ठ तथा वातरक्त का नाशक होता है॥ २००॥

६९ वनहलदी

हिं०—वनहरदी, बनहलदी, जंगली हलदी। **बं०**—बनहलुद, बनहलद। **म०**—वेडीहलद, रानहलद। **क०**—काडरसन। **ते०**—अड़वि पसुपु, कस्तुरि पसुपु। **ता०**—कस्तुरि मंजल। **गु०**—वनहलदर, कपूरकाचली। **पं०, मा०**—जंगली हलदी। **मला०**—काट्टुमञ्जल। **अं०**—Wild turmeric (वाइल्ड टर्मेरिक्); Yellow zedoary (यलो झिडोरी); Cochin turmeric (कोचीन टर्मेरिक्)। **ले०**—*Curcuma aromatica Salisb.* (कर्क्युमा ॲरोमॅटिका)। Fam. Zingiberaceae (झिंजिबेरेसी)।

बनहलदी—इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में कहीं न कहीं पाई जाती है। विशेषकर बंगाल एवं दक्षिण के कोचीन, मैसूर, अल्वारा आदि स्थानों में अधिक देखने में आती है। इसका क्षुप वर्षजीवी होता है। गरमी में इसका क्षुप सूख जाता है किन्तु भूमि के भीतर इसकी गांठे जीवित रहती हैं और वर्षा ऋतु में वे अंकुरित हो पौधे के रूप में परिणत होती हैं। पत्ते जब कोमल अवस्था के होते हैं तब उनके बीच का भाग आमुनी रंग का होता है। जब यह अंकुरित होता है

तभी इसमें फूल आते हैं। जड़ के नीचे काला सा पीले रंग का कन्द होता है। अच्छी खाद आदि होने से ये कन्द काफी बड़े होते हैं। साधारणतः बीच की गाठें अण्डे के समान, २ इञ्च से बड़ी, कालीसी चक्राकार कड़ों से युक्त तथा अनेक मोटी उपमूलों से युक्त होती हैं। उपमूलों के अंतिम भाग में बदाम के बराबर नारंगपीत गांठे होती हैं। बीच की गाठों के बगलवाली गाठें अंगुली सदृश मोटी होती हैं तथा उनसे थोड़े से मांसल मूल निकले रहते हैं। जंगली हरदी का अन्दर का भाग गाढ़े नारंगी रंग का; गन्ध हरदी से तेज तथा कर्पूर मिश्रित सोंठ के समान; स्वाद कर्पूर के समान एवं हल्लासकारक होता है। हरदी के स्थान में रंगने के काम में यह आती है। त्रावणकोर में इससे तिखुर निकालते हैं।

रासायनिक संगठन—हरिद्रा के समान।

गुण और प्रयोग—इसके गुण हलदी की ही तरह होते हैं। रक्तविकार एवं चर्मरोगों में अन्य औषधियों के साथ इसका व्यवहार किया जाता है।

(१) सर्पविष में जंगली हलदी, कुष्ठ, अजवायन तथा मैनसिल का धूम दिया जाता है।

(२) विस्फोटक ज्वरों में दानों को बाहर निकालने के लिये इसे २–४ र० खिलाते हैं तथा इसका बाह्यलेप भी करते हैं।

(३) खुजली, चोट, सूजन एवं मोच आदि में इसका लेप अथवा इससे सिद्ध तैल का व्यवहार किया जाता है।

(४) शिरःशूल में लोहबान के साथ इसे घिसकर लेप करते हैं।

मात्रा—१–२ मा०।

नोट—उपर्युक्त हरिद्राओं के अतिरिक्त बंगाल में एक **कालीहलदी** (नरकचूर, नीलकण्ठ) होती है जिसे कर्क्यूमा केसिआ (Curcuma caesia Roxb.) कहते हैं। इसकी गांठें काली सी धूसरित वर्ण की एवं चक्राकार कड़ों से युक्त होती हैं। अन्दर का भाग धूसर नील वर्ण का, अत्यन्त कड़ा एवं शृङ्ग के समान होता है। इनका स्वाद एवं गन्ध कर्पूर के समान होता है।

गुण और प्रयोग—इसके गुण कचूर की तरह होते हैं। सौन्दर्य प्रसाधनों (Cosmetics–कॉसमेटिक्स) में इसका उपयोग किया जाता है। इसका उबटन पसीना लाने के लिए व्यवहार में लाया जाता है। बंगाल में इसकी ताजी गांठों का उपयोग हलदी की तरह किया जाता है।

अथ दारुहरिद्राया नामानि गुणांश्चाह

दार्वी दारुहरिद्रा च पर्जन्या पर्जनीति च। कटङ्कटेरी पीता च भवेत्सैव पचम्पचा॥
सैव कालीयकः प्रोक्तस्तथा कालेयकोऽपि च॥ २०१॥
पीतद्रुश्च हरिद्रुश्चपीतदारु[१] च पीतकम्। दार्वी निशागुणा किन्तु नेत्र कर्णास्यरोगनुत्॥

दारुहरदी के नाम तथा गुण—दार्वी, दारुहरिद्रा, पर्जन्या, पर्जनी, कटङ्कटेरी, पीता, पचम्पचा, कालीयक, कालेयक, पीतद्रु, हरिद्रु, पीतदारु और पीतक ये सब दारुहलदी के पर्यायवाची शब्द हैं। **दारुहलदी**—के गुण यद्यपि हलदी के समान ही होते हैं तथापि यह विशेषतः नेत्र, कर्ण तथा मुख-सम्बन्धी रोगों को दूर करने वाली होती है॥ २०१-२०२॥

---

१. 'कपीतकमि'ति पाठा० चिन्त्यम्।

७० दारुहलदी

हि०—दारुहलदी, दारुहरदी, दारहलद। **बं०**—दारुहरिद्रा। **म०**—दारुहलद, जरकि हलद। **गु०**—दारुहलदर। **मा०**—दारुहलदी। **क०**—दोढ़ा मरद रिसिन। **ते०**—मनिपसुपु। **ता०**—मर मञ्जिल। **कुमा०**—चित्रा, कीलमोरा। **प०**—सुमलु। **ने०**—चित्रा। **फा०**—दार चोबह, फिलझरह। **अ०**—दार हलक। **अं०**—Indian berberry (इण्डियन बरबेरी)। **ले०**—*Berberis species* (बर्बेरिस् की विभिन्न जातियां)। Fam. Berberidaceae (बर्बेरिडॅसी)।

दारुहलदी की १२-१३ जाति की कंटकित झाड़ियां अधिकतर हिमालय के पहाड़ों पर तथा आसाम में पाई जाती हैं। इनमें से चार जातियां मध्य तथा दक्षिण भारत (निलगिरी पर्वत) में पाई जाती हैं। छोटा नागपूर के पारसनाथ की पहाड़ी पर भी एक भेद पाया जाता है। इनमें से विशेषरूप से ब० ॲरिस्टेटा एवं ३, ४ अन्य पौधों का उपयोग चिकित्सा में किया जाता है जिनका वर्णन आगे दिया जा रहा है। गुणों की दृष्टि से इनमें विशेष अन्तर न होने से सभी के गुण और प्रयोग एक साथ दिये गये हैं। दारुहलदी के मूल, काष्ठ, कांड, फल (जिसे **झरिष्क** कहते हैं) एवं सत्व (रसौत) का व्यवहार किया जाता है। रसौत का स्वतन्त्र वर्णन किया गया है। **झरिष्क**—ये कालाई लिये लाल तथा सूखने पर काले अंगूर की तरह दिखलाई देते हैं। ये काले अंगूर से छोटे तथा अधिकांश में बीजहीन होते हैं। इनका स्वाद खट्टा या रुचिकर खटमिट्ठा होता है।

(क) Berberis aristata, DC. (बर्बेरिस् ॲरिस्टॅटा, डीसी०)।

जौन०—काश्मोई। **गढ०**—किंगोरा।

इसके क्षुप हिमालय पर्वत पर ६००० से १०५०० फीट की ऊँचाई पर एवं निलगिरी के पहाड़ों पर पाये जाते हैं। इसका **क्षुप**—बड़ा, पतनशील (Deciduous–डेसिड्यूअस्), कंटीला एवं साधारणतः ६ से १२ फीट तक ऊँचा लेकिन कभी कभी १५ फीट तक ऊँचा एवं ८ इञ्च व्यास के कांड से युक्त होता है। **शाखाएँ**—श्वेताभ या हलके पीताभ धूसर वर्ण की होती हैं। **पत्ते**—१·५–४ इञ्च लम्बे, ½–१ इञ्च चौड़े, अभिलट्वाकार, चर्मवत्, सूक्ष्म शिराओं से युक्त, सरल धार वाले या दूर दूर पर तीक्ष्ण कांटों से युक्त एवं उनका अधोपृष्ठ हलके हरे रङ्ग का होता है। **फूल**—स्वर्ण-पीत पुष्प २–३ इञ्च लम्बी मंजरियों में आते हैं। **फल**—बीजिमांसल फल (Berry–बेरी), अण्डाकार, नीले बैंगनी रङ्ग के चमकीले एवं रजावृत होते हैं। **मूल**—पीताभ बादामी, नलिकाकार, कुछ गांठदार, कड़े, मजबूत लेकिन लचीले, साधारणतः कटे हुवे टुकड़ों के रूप में एवं थोड़े सी शाखाओं से युक्त होते हैं। **छाल**—अंदर से गहरे बादामी रङ्ग की, मुलायम एवं तोड़ने पर चूर्ण रूप में हो जाती है। **काष्ठ**—नींबू के समान पीतवर्ण का, स्पष्ट एवं संकरी मज्जक किरणों से युक्त, जिसमें मज्जक प्रायः नहीं होता और यदि हो तो चमकीले पीतवर्ण का होता है। इसके काष्ठ में ताजी अवस्था में हलकी गन्ध एवं इसका स्वाद कड़वा होता है। इसको कितना भी उबालें तो भी यह पीला ही रहता है।

(ख) B. asiatica, Roxb. ex DC. (ब० एशियाटिका, राक्सब. एक्स डीसी.)।

हि०—किलमोरा, किंगोरा। **ने०**—भाटे किस्सी, चित्रा।

इसके क्षुप प्रायः २–८ हजार फीट के बीच या कभी कभी नीचे भी हिमालय की घाटियों में भूटान, गढवाल, बिहार, पारसनाथ की पहाड़ी तथा अफगानिस्तान आदि स्थानों पर पाये जाते हैं।

इसका **क्षुप** करीब ८ फीट ऊँचा होता है। **शाखाएँ** धूसर वर्ण की होती हैं। इसकी **पत्तियाँ** अण्डाकार या लट्वाकार आयताकार, १-२½ इञ्च लम्बी एवं चर्मवत् होती हैं। पत्तियों का शिराजाल ऊपरी पृष्ठ पर घना तथा दृढ होता है। **पुष्प**-मञ्जरियों में निकलते हैं। इसके **फल** कृष्ण नील होते हैं।

(ग) B. lycium, Royle. (ब० लाइसियम्, रायलि.)।

हि०–चत्तरोई, काश्मल, दारुहरिद्रा।

इसके क्षुप ३-७ हजार फीट की ऊँचाई पर पश्चिमी हिमालय में गढवाल से हजारा तक एवं चकरौता तथा मसूरी के नीचे विशेषरूप में प्राप्त होते हैं। ये छोटे एवं समूहबद्ध होकर आते हैं।

इसके पत्ते प्रायः पतले तथा लम्बे होते हैं एवं शिराजाल घना नहीं होता। इसके फल विशेष मांसल नहीं होते।

रासायनिक संगठन—बर्बेरिस् की विभिन्न उपजातियों में कम से कम आठ प्रकार के विभिन्न क्षाराभ पाये गये हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—बर्बेरिन् (Berberine), (ऑक्सिअॅक्न्थाइन् (Oxyacanthine), बर्बेमाइन् (Berbamine), पामॅटाइन (Palmatine), जॅट्रोहीझाइन् (Jatrorrhizine), कोलंबमाइन् (Columbamine), बर्बेरूबाइन् (Berberrubine) एवं हाइड्रॅस्टाइन् (Hydrastine)। इनमें से प्रथम तीन विशेष महत्व के हैं तथा शेष विभिन्न अन्य वनस्पतियों के विशिष्ट क्षाराभ हैं। बर्बेरिन् (Berberine, $C_{20}H_{19}NO_5$), शीत जल में घुलनशील, मद्यसार में कम घुलनशील, पीतवर्ण का एवं सूइयों के आकार का क्षाराभ है। यह काष्ठ एवं छाल की अपेक्षा मूल में अधिक होता है। यह क्षाराभ और भी कई वनस्पतियों में पाया जाता है। इसके लवण भी बनाये गये हैं।

इसके अतिरिक्त इसमें कषाय द्रव्य, गोंद एवं स्टार्च आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

इसके फल में मॅलिक् (Malic), टार्ट्रिक् (Tartric) एवं साइट्रिक् (Citric) अम्ल पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—दारुहल्दी के मूल एवं काष्ठ बल्य, तिक्त पौष्टिक, दीपन, पाचन, ग्राही, पित्तविरेचक, ज्वरहर, पार्यायिक ज्वरहर, स्वेदल, श्लेष्मघ्न, रसायन एवं त्वक् दोषहर हैं।

इसका उपयोग मलेरिया आदि विषम ज्वर, कुपचन, फिरङ्ग, गण्डमाला, अपची, त्वक्दोष, भगंदर, प्रदर, अत्यार्तव, व्रण, गर्भिणीवमन, यकृत्प्लीहावृद्धि, कामला एवं सर्पदंश आदि में किया जाता है।

(१) मलेरिया तथा अन्य विषमज्वरों में इसके क्वाथ का उपयोग किया जाता है। ज्वर के साथ हृल्लास, वमन, विरेचन, शिरःशूल एवं थकावट अधिक होती है तब इसके क्वाथ का उपयोग रसौत की अपेक्षा अच्छा होता है। ज्वर में इसके पूर्व विरेचन देना चाहिये। इससे पसीना होकर ज्वर उतर जाता है। क्विनीन की तरह हृदयावसाद एवं बाधिर्य आदि इससे नहीं होते तथा प्लीहा की वृद्धि कम हो जाती है। ज्वर अच्छा होने के पश्चात् इसके उपयोग से भूख आदि बढ़ती हैं। यद्यपि उपर्युक्त गुणों के लिये इसका उपयोग किया जाता रहा लेकिन नवीन प्रयोगों से देखा गया कि इसके क्षाराभ बर्बेरिन् सल्फेट (Berberine Sulphate) को १½-२½ र० की मात्रा में दिन में ३ बार ३ दिन तक देने पर भी किसी प्रकार का लाभ नहीं हुवा। मलेरिया में इससे एक लाभ अवश्य होता है कि इसके देने से प्लीहा आदि धातुओं में छिपे हुवे मलेरिया के कीटाणु रक्त में आ जाते हैं जिससे रक्त परीक्षा में दिखलाई देने से निदान में आसानी होती है। क्विनीन के साथ ज्वर की चिकित्सा में इसका उपयोग लाभदायक है।

(२) **बर्बेरिन्** (Berberine)—यह क्षाराभ अत्यंत विषैला नहीं है लेकिन अधिक मात्रा में देने से अवश्य विषैला है एवं मृत्यु भी हो सकती है। इसका प्रचूषण आन्त्र एवं सूचिकाभरण द्वारा हो सकता है। बिल्ली एवं कुत्तों को उनके वजन के प्रति किलोग्राम के लिये २ मिलीग्राम की मात्रा में देने से हृदय पर अवसादक प्रभाव पडता है तथा रक्तवाहिनियों का विस्फार होता है। यह क्रिया उन्हीं अंगों के ऊपर प्रत्यक्ष प्रभाव से एवं प्राणदा (Vagus = व्हागस्) नाडी की उत्तेजना से होती है। प्राणियों में मृत्युत्तर परीक्षण द्वारा देखा गया कि इससे फुफ्फुसों में अत्यन्त रक्ताधिक्य एवं हृदय के अलिन्दों (Auricle = ऑरिकल) का विस्फार होकर मृत्यु होती है। इससे वृक्कों में शोथ एवं रक्तस्राव होता है तथा इससे केन्द्रीय वातनाडीसंस्थान के कन्दों की कोशाओं को नुकसान पहुँचता है। यह श्वसन के लिये भी अवसादक है लेकिन १-१० मिलीग्राम की मात्रा में यह आन्त्र, गर्भाशय एवं श्वसनिका की अनैच्छिक मांसपेशियों को उत्तेजित करता है जिससे श्वसनिका में संकोच उत्पन्न होता है।

साधारण मात्रा में हृदय पर इसका उत्तेजक प्रभाव पड़ता है जिससे हृदय की पोषक रक्तवाहिनियों में रक्तप्रवाह की वृद्धि होती है लेकिन अधिक मात्रा में देने पर यह अवसादक है। इससे श्वेतकणों की वृद्धि होती है। मलेरिया में निदान की दृष्टि से प्रोद्दीपक रूप में (Provocative dose–प्रोव्होकेटिव्ह डोस) इसका उपयोग लाभदायक है जिससे छिपे हुये कीटाणु रक्त में आजाते हैं तथा रक्तपरीक्षण में दिखलाई देने लगते हैं। यह चर्म के नीचे की धातुओं पर श्लैष्मिक कला के लिये स्थानिक रूप से सौम्य स्वापजनक होने के कारण वेदनास्थापन के लिए प्रयुक्त होता है। क्विनीन जो कि कोशाओं के जीवरस (प्रोटोप्लाज्म्–Protoplasm) के लिये विषैला होता है उसकी अपेक्षा ८० गुना कम शक्ति का इसका घोल (८०, ००० में १) लीशमॅनिया ट्रॉपिका (Leishmania tropica) नामक प्राच्यव्रण उत्पन्न करने वाले कीटाणु के संवर्धन की वृद्धि रोकने में समर्थ होता है। यह प्राच्यव्रण (Oriental sore–ओरियन्टल् सोर) की चिकित्सा के लिये सफल औषधि है। बर्बेरिन् अॅसिड सल्फेट ·५-१% घोल की १-२ सी० सी० मात्रा व्रण के किनारों पर अत्यन्त महीन सूचिका द्वारा ४, ५ जगह दी जाती है। सूचिकाभरण हफ्ते में एक बार किया जाता है। साधारणतः ३ हफ्तों में व्रण अच्छा हो जाता है लेकिन द्वितीयक उपसर्ग की तीव्रता के अनुसार २-१२ हफ्ते भी अच्छा होने में लग सकते हैं। यदि एक से अधिक व्रण हों तो एक दिन में २ व्रणों से अधिक एवं हफ्ते में ४ व्रणों से अधिक, (विशेष कर जब व्रण बड़े हों) में सूचिकाभरण नहीं करना चाहिये। चिकित्साकाल में व्रण का बन्धन उचित रूप में करना चाहिये। इस औषधि का तयार घोल ओरिसॉल (Orisol) नाम से बिकता है।

(३) दारुहल्दी पित्त एवं मूत्रमार्ग की विकृति में लाभदायक है। पित्त एवं मूत्राश्मरी, तृष्णा, दाह एवं हृल्लास आदि के लिये इसका उपयोग किया जाता है। बस्तिशोथ एवं प्रमेह आदि में आंवले के रस एवं मधु के साथ इसको देते हैं। गर्भाशय शैथिल्य के कारण उत्पन्न रक्तप्रदर में तथा श्वेतप्रदर में मधु के साथ इसके क्वाथ का सेवन करने से लाभ होता है। कामला में मधु के साथ इसका क्वाथ दिया जाता है। मूलत्वक् का क्वाथ तृणाणुनाशक (Bactericidal–बॅक्टेरिसाइडल्) है तथा जीर्ण व्रणों में व्रण प्रक्षालन के लिये लाभदायक है।

(४) दारुहल्दी के फल सौम्य विरेचक, शीतल एवं रोचक होते हैं।

प्रतिनिधि एवं व्यामिश्रण—उत्तर भारत में इसमें विशेष मिलावट नहीं होती लेकिन बंबई की तरफ इसमें कई प्रकार की वनस्पतियों के काष्ठ को हल्दी में उबाल कर बेचते हैं। झाडकी

हल्दी (Coscinium fenestratum (Gaertn.) Colebr. (कॉसिनिअम् फेनेस्ट्रेटम्) के कांड को भी इसके स्थान पर देते हैं।

मात्रा—चूर्ण २–३ माशा, टिंक्चर ½–२ ड्रा०, बर्बेरिन के लवण १–५ ग्रेन।

अथ दार्वीक्वाथजातं रसाञ्जनम् । तस्य निर्माणविधिं नामानि गुणांश्चाह

दार्वीक्वाथसमं क्षीरं पादं पक्त्वा यदा घनम् । तदा रसाञ्जनाख्यं तन्नेत्रयोः परमं हितम् ॥
रसाञ्जनं तार्क्ष्यशैलं रसगर्भञ्च तार्क्ष्यजम् । रसाञ्जनं कटु श्लेष्मविषनेत्रविकारनुत् ॥२०४॥
उष्णं रसायनं तिक्तं छेदनं व्रणदोषहृत् ॥ २०५ ॥

दारुहलदी के क्वाथ से तैयार होने वाले रसोत के बनाने की विधि, नाम तथा गुण—दारुहलदी का काढ़ा बनाकर उसी के बराबर उसमें दूध डाल कर औटावें। बाद को जब चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतार लें और उसमें से जो गाढ़ा भाग हो उसे अलग कर लें। उसी को रसोत कहते हैं। वह नेत्रों के लिये परम हितकर होता है। रसाञ्जन, तार्क्ष्यशैल, रसगर्भ और तार्क्ष्यज ये रसोत के नाम हैं। **रसोत**–कटु तथा तिक्त रस युक्त, कफ, विष तथा नेत्र सम्बन्धी विकारों को दूर करने वाला, उष्ण वीर्य, रसायन, छेदक (पिण्डी भाव को प्राप्त हुये कफादिकों को काट काट कर अलग करने वाला), एवम् व्रणसम्बन्धी दोषों को नष्ट करने वाला होता है ॥ २०३–२०५ ॥

७१ रसौत

हि०–रसोत, रसौत, रसवत। **बं०**–रसांजन। **म०**–रसवत, रसांजन। **गु०**–रसवंती। **क०**–रसांजन। **ते०**–रसांजनमु। **मा०**–रसोत। **पं०**–रसौत। **फा०**–फिलजहरः। **अ०**–हुलुज़ोहिंदी। **अं०**–Extract of Indian Berberis (एक्स्ट्रैक्ट ऑफ इण्डियन् बर्बेरिस्)। **ले०**–*Extractum Berberis* (एक्स्ट्रैक्टम् बर्बेरिस्)

रसोत—कालापन लिये भूरे रङ्ग की, गोंद के समान मुलायम तथा पानी और मदिरा में घुलने वाली दारुहलदी के क्वाथ और बकरी के दूध से बनी हुई औषधि है। इसका स्वाद कड़वा तथा कसैला होता है। इसको बनाने के लिये वर्षा के आखिर में इसके क्षुप को काट कर उसके पंचांग का क्वाथ बना कर बाद में उसे गाढा बनाते हैं। कुछ लोग क्वाथ में बराबर मात्रा में बकरी का दूध मिलाकर फिर गाढा करते हैं। इस बात में मतभेद है कि रसौत केवल ब० लाइसियम् के मूल एवं काष्ठ से बनता है या ब० एशियाटिका से या दोनों से। बाजार में बिकने वाला रसौत प्रायः दोनों के मिश्रण से बनाया जाता है। इसमें लकड़ी, मिट्टी आदि पदार्थ मिले रहते हैं। इसलिये इसे १० गुने गरम जल में मिलाकर छान कर सुखाते हैं एवं बचे हुये भाग में मद्यसार मिलाकर छानकर उस मद्यसार को ऊर्ध्वपातन यन्त्र द्वारा अलग कर गाढे भाग को उपर्युक्त जल से सुखाये गाढे भाग में मिलाकर बन्द शीशी में रखकर काम में लाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह कडवा पौष्टिक, ज्वरहर, पार्यायिक ज्वरहर, स्वेदल, अर्शोघ्न, शोथघ्न, रक्तशोधक, श्लेष्मघ्न, व्रणरोपक एवं नेत्रविकारहर है।

इसका आन्तरिक उपयोग ज्वर, यकृत् प्लीहा वृद्धि, कामला, अर्श, एवं आमाशय तथा पक्वाशय के व्रण (Gastric & duodenal ulcer–गॅस्ट्रिक् अँड ड्युओडेनल् अल्सर) में लाभदायक है। इसका बाह्य प्रयोग अर्श, प्राच्यव्रण, कटे हुये भाग, फोड़े फुन्सियां एवं पुराने व्रण आदि में किया जाता है।

(१) विषमज्वर के सभी प्रकारों में इसको १५ र० दिन में ३ बार जल के साथ देते हैं। क्वाथ की अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा होता है। इससे ज्वर का शमन होकर प्लीहा वृद्धि भी कम होती है। इसके प्रयोग में पहले विरेचन देना चाहिये तथा इसकी पूर्ण मात्रा खाली पेट पर देनी चाहिये। औषधि लेने के पश्चात् रोगी को कपड़ा ओढा कर सुलाना चाहिये। थोड़ी देर में रोगी को प्यास मालूम पड़ती है तथा जी घबड़ाने लगता है लेकिन उसको जल पीने न दें। एक घण्टे में पसीना निकलने लगता है तथा कमजोरी मालूम होती है। उसके बाद शरीर पोंछ कर लाजमण्ड या चावल का मांड और दूध पीने को दें। इसके बाद रोगी प्रायः सो जाता है तथा उस दिन ज्वर की पारी नहीं आती। इस प्रयोग में एक दोष यह है कि रोगी को कभी पहले रक्तातिसार हुआ हो तो वह फिर उमड़ जाता है।

(२) नये एवं पुराने नेत्राभिष्यन्द में इसको पलकों पर लगाने से बहुत लाभ होता है। इसके साथ इसमें अफीम, सैन्धव एवं फिटकिरी मिलाई जा सकती है।

(३) रक्तार्श में इसको २ से ८ र० मक्खन के साथ खिलाया जाता है एवं इसके घोल (३२ में १) से अर्श को धोते हैं।

(४) कपूर एवं मक्खन के साथ बना इसका मलहम फोड़े, फुन्सियां, कटे हुये भाग एवं पुराने घावों पर लाभदायक है। मधु के साथ मिलाकर मुख के अन्दर के व्रणों पर एवं अन्य व्रणों पर लगाते हैं। शोथ पर इसके लेप से लाभ होता है। मुखरोग में इसके घोल से गण्डूष कराते हैं। प्राच्यव्रण के लिये भी यह लाभदायक है क्योंकि इसमें क्षाराभ की पर्याप्त मात्रा रहती है।

मात्रा—½–२ मा०।

अथ बाकुची । तस्या नामानि तत्फलस्य च गुणाँश्चाह

अवल्गुजो बाकुची स्यात्सोमराजी सुपर्णिका ।
शशिलेखा कृष्णफला सोमा पूतिफलीति च ॥ २०६ ॥
सोमवल्ली कालमेषी कुष्ठघ्नी च प्रकीर्त्तिता । बाकुची मधुरा तिक्ता कटुपाका रसायनी ॥
विष्टम्भहृद्धिमा रुच्या सरा श्लेष्मास्रपित्तनुत् ।
रूक्षा हृद्या श्वासकुष्ठमेहज्वरकृमिप्रणुत् ॥ २०८ ॥
तत्फलं पित्तलं कुष्ठकफानिलहरं कटु । केश्यं त्वच्यं कृमिश्वासकासशोथामपाण्डुनुत् ॥२०९॥

बाकुची के नाम और उसके तथा उसके फल के गुण—अवल्गुज, बाकुची, सोमराजी, सुपर्णिका, शशिलेखा, कृष्णफला, सोमा, पूतिफली, सोमवल्ली, कालमेषी और कुष्ठघ्नी ये सब बाकुची के नामान्तर हैं। **बाकुची**–मधुर तथा तिक्तरस युक्त, विपाक में कटुरस युक्त, रसायन, विष्टम्भ को दूर करने वाली, शीतवीर्य, रुचिजनक, सारक (दस्तावर), कफ तथा रक्तपित्त को दूर करने वाली होती है तथा यह रूक्ष, हृदय के लिए हितकर तथा श्वास, कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर और कृमि को नष्ट करने वाली होती है। **इसका फल—**पित्तकारक, कुष्ठ, कफ और वात को दूर करने वाला, कटुरसयुक्त, केश तथा त्वचा के लिए हितकारी होता है तथा कृमि, श्वास, कास, शोथ आम और पाण्डु इन सब रोगों को नष्ट करने वाला होता है ॥ २०६–२०९ ॥

---

१. पाठा० वमिश्वास।

७२ बाकुची

हि०–बाकुची, बकुची, बावची, बावची, सोमराजी । **बं०**–लताकस्तूरी, हाकुच । **म०**–बावची । **गु०**–बाबची, बावची । **क०**–बाउचिगे । **ते०**–भवचि, कालाजिउजा । **ता०**–कर्पोकरशि । **फा०**–बावकुचि । **अं०**–Psoralea seed (सोरॅलिया सीड); Malaya tea (मलाया टी) । **लै०**–*Psoralea corylifolia, Linn.* (सोरॅलिया कोरिलीफोलिया, लिन.) । Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी) ।

बाकुची—प्रायः सब प्रान्तों के जंगली झाड़ियों में तथा खादर अथवा कंकरीली भूमि में उत्पन्न होती है एवं सिलोन में भी प्राप्त होती है । अमेरिका में भी इसकी कई उपजातियां होती हैं जिनके गुण भी इसी के समान हैं ।

इसका क्षुप–१–४ फीट तक ऊँचा, वर्षायु एवं स्वावलम्बी होता है । पत्ते–१–३ इञ्च के घेरे में छोटी अरणी के पत्तों के समान गोलाकार होते हैं । ये नालयुक्त, कड़े, चिकने, लहरदार दन्तुर एवं इनके दोनों पृष्ठों पर काले धब्बे होते हैं । इन ग्रन्थियों के चिह्न शाखाओं पर भी होते हैं । १०–३० छोटे, नीले बैंगनी रंग के पुष्प–१ से २ इञ्च लम्बे पुष्पदण्ड पर आते हैं । **फली**–छोटी, गोल, काली, चिकनी, एक बीज युक्त, अस्फोटी एवं फलभित्ति बीज से चिपकी होती है । **बीज**–बाकुची वास्तव में फल ही है जिसकी फलभित्ति बीजावरण से चिपकी रहती है । यह अण्डाकार, आयताकार, कुछ चिपटे, चिकने, अग्र की तरफ नुकीलें, काले रंग के एवं महीन गढ़ों से युक्त होते हैं तथा तालद्वारा बड़ा करके देखने पर नहाने के स्पञ्ज की तरह दिखलाई देते हैं । इसको चबाने पर एक तीव्र गन्ध आती है तथा इनका स्वाद कड़वा, तीता एवं दाहजनक होता है । औषधि कार्य में इनका तथा इनसे निकले तैल का व्यवहार किया जाता है ।

नोट—कुछ विद्वानों ने सोमराजी नाम से लै० वर्नोनिया अॅन्थेलमिंटिका (Vernonia anthelmintica Willd.) का ग्रहण किया है लेकिन वह नाम तो अरण्यजीरक का है जिसका वर्णन परिशिष्ट में किया गया है ।

रासायनिक संगठन—बाकुची के फलों में राल, उड़नशील तैल, तारपीन की तरह तैल, स्थिर तैल, एवं सोरॅलेन् (Psoralen) तथा आइसो–सोरॅलेन् (Iso–psoralen) नामक दो रवेदार पदार्थ पाये जाते हैं । बाकुची के कृमिघ्न तथा त्वच्य गुण इन्हीं रवेदार पदार्थों के मिश्रण से हैं । यह तैल में घुलने वाले (फ्युरोकाउमरिन्स–Furocoumarins) हैं । प्रथम सोरॅलेन अंजीर से प्राप्त होने वाले फिक्युसिन् (Ficusin) के समान होता है । इसकी फलभित्ति (Pericarp पेरीकार्प) से सोरॅलिडिन् (Psoralidin) नामक एक अन्य रवेदार पदार्थ भी प्राप्त होता है ।

गुण और प्रयोग—यह सौम्य उत्तेजक, वातनाड़ियों के लिए बल्य, कृमिघ्न, त्वक् दोषहर, व्रण शोधक, व्रणरोपक, मृदुविरेचक, मूत्रल, स्वेदल एवं वृष्य है ।

इसका अन्तः बाह्य प्रयोग श्वित्र, कुष्ठ, पामा, कण्डू, गजचर्म (सोरियासिस्–Psoriasis) एवं चर्म के अन्य शोथयुक्त विकारों में किया जाता है ।

(१) श्वित्र में चौथाई भाग हरताल के साथ गोमूत्र में पीस कर इसका लेप लाभदायक होता है । खैर एवं आंवले के क्वाथ के साथ इसके चूर्ण का सेवन भी लाभदायक है । सालभर तक यदि बाकुची एवं काले तिल का सेवन करें तो सभी प्रकार के कुष्ठ अच्छे होकर शरीर की कान्ति बढ़ती है । इसको जल के साथ पीस कर भी लेप किया जा सकता है । नवीन तथा युवावस्था के श्वेत कुष्ठ रोग में शीघ्र लाभ होता है किन्तु अधिक दिन तक लगाना पड़ता है । इससे दाग लाल हो जाते हैं ।

(२) बाकुची में रहने वाला तैल ही प्रधान कार्यकारी भाग है । यह तैल चर्म के ऊपर रहने वाले मालागोलाणुओं (Streptococci) के लिये घातक है । अंतस्त्वचीय धमनिकाओं के ऊपर इसका निश्चित प्रभाव पड़ता है जिससे इनका विस्फार होकर वहां रक्तरस (Plasma–प्लाज्मा) का प्रवाह बढ़ जाता है । इससे चर्म लाल हो जाता है तथा रञ्जक कोषों (मेलॅनोब्लास्ट्स्–Melanoblasts) को उत्तेजना मिलकर रञ्जक का निर्माण होता है । यह रञ्जक, सफेद दागों में फैलकर उसका वर्ण परिवर्तन कर देता है । अधिकांश लोगों में इससे सफेद दाग लाल हो जाते हैं लेकिन कुछ (५%) लोगों में इससे छाले पड़ जाते हैं इसलिए इसको अन्य चीजों के साथ आवश्यक प्रमाण में मिश्रण कर लेना चाहिये जिससे दागों में केवल लाली आ जाय । श्वित्र के साथ-साथ यदि अन्य आंत्रिक विकार जैसे आमातिसार आदि हों तो उनकी भी चिकित्सा साथ-साथ करनी चाहिये ।

(३) फिरंगेतर श्वित्र में बाकुची के तैलीय राल सदृश सत्व (Oleo-resinous extract) का लेप लाभदायक होता है । इस सत्व में सोरॅलेन् तथा आइसो–सोरॅलेन् दोनों ही रहते हैं । इसको चॉलमोगरा के तेल के साथ मिलाकर लगाया जाता है तथा आन्तरिक प्रयोग भी करते हैं जिससे श्वित्र, सिध्म तथा सोरियासिस् में लाभ होता है । लगाने के लिये इसके साथ २ भाग चॉलमोगरा का तेल तथा २ भाग लॅनोलिन् मिलाकर मलहम बनाकर दिन में एक, दो बार दागों पर मलना चाहिये । करीब ३ महीने में लाभ होता है ।

मात्रा—बीज चूर्ण १–३ माशा ।

अथ चक्रमर्दः (चकवड) । तस्य नामानि तत्फलस्य च गुणांश्चाह

चक्रमर्दः प्रपुन्नाटो दद्रुघ्नो मेषलोचनः । पद्माटः स्यादेडगजश्चक्री पुन्नाट इत्यपि ॥२१०॥
चक्रमर्दो लघुः स्वादू रूक्षः पित्तानिलापहः । हृद्यो हिमः कफश्वासकुष्ठदद्रुकृमीन्हरेत् ॥२११॥
हन्त्युष्णं तत्फलं कुष्ठकण्डूदद्रुविषानिलान् । गुल्मकासक्रिमिश्वासनाशनं कटुकं स्मृतम् ॥२१२॥

चकवड़ के नाम और उसके तथा उसके फल के गुण—चक्रमर्द, प्रपुन्नाट, दद्रुघ्न, मेषलोचन, पद्माट, एडगज, चक्री और पुन्नाट ये सब चकवड़ के नामान्तर हैं । **चकवड़**–लघु, स्वादिष्ट, रूक्ष, पित्तवात (वातपित्त) नाशक, हृदय के लिए हितकर, शीतवीर्य, कफ, श्वास, कुष्ठ, दद्रु (दाद) और कृमि को नष्ट करने वाला होता है । **चकवड़ का फल**—उष्णवीर्य और कटु रस युक्त होता है एवम् कुष्ठ, खुजली, दाद, विष, वायु, गुल्म, कास, कृमि और श्वास इन सब रोगों को दूर करने वाला होता है ॥ २१०–२१२ ॥

७३ चकवड़

हि०–चकवड़, पवांड़, पवांर । **बं०**–चकुन्दा, पनेवार । **म०**–तरोटा, टाकला । **गु०**–कुंवाडीयो । **क०**–तगचे । **ते०**–तगिरिस । **ता०**–उशिट्टगरै । **पं०**–पंवार, चकुन्दा । **फा०**–संगेसतूया । **अ०**–कुलब । **अं०**–Fetid cassia (फीटिड कॅशिया) । **लै०**–*Cassia tora Linn.* (कॅशिया टोरा, लिन.) । Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी) ।

यह प्रायः सब प्रान्तों के जङ्गल, झाड़ी, खेत, मैदान, कूड़ा करकट, सड़क के किनारे एवं गन्दे स्थानों में आप ही आप उत्पन्न होता है ।

इसका २–५ फीट तक ऊँचा एकवर्षायु क्षुप वर्षा ऋतु में बहुतायत से उत्पन्न होता है । **पत्र**–वृंतयुक्त पक्षाकार और पत्रक–तीन जोड़े, अभिलट्वाकार, १–२ इञ्च लंबे, चिकने, मचकीले, दुर्गन्ध

युक्त एवं स्पष्ट शिराजाल से युक्त होते हैं। इसके निचले पत्रकों के बीच में एक ग्रन्थि होती है। **पुष्प**-छोटे पीले रंग के अक्षकोणीय एवं दो-दो के जोड़े में आते हैं। **फलियां**-४-८ इञ्च लम्बी, पतली, चौकोनी, कुछ मुड़ी हुई तथा इनका अग्र नुकीला होता है। **बीज**-बहुत, कड़े एवं मेथी के समान होते हैं। इसके कोमल पत्तों का साग बनाया जाता है तथा औषधि में पंञ्चाग का व्यवहार किया जाता है।

इसी का एक दूसरा भेद है जिसे कॅशिया ऑब्ट्यूसिफोलिया (Cassia obtusifolia) कहते हैं। इसका क्षुप भी ऊपर के क्षुप के समान ही होता है लेकिन इसमें दुर्गन्ध नहीं होती तथा इसके आधारीय पत्रकद्वय के बीच में एक ग्रन्थि होती है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में एमोडिन (Emodin) नामक एक ग्लूकोसाइड पाया जाता है जो क्राइसोफेनिक् एसिड (Chrysophanic acid) की तरह होता है। इसके पत्तों में कॅथार्टिन (Cathartin) नामक एक विरेचक द्रव्य तथा लाल रंग होता है।

गुण और प्रयोग—इसके **बीज** बल्य, दीपन, पाचन एवं त्वक् दोषहर होते हैं तथा **पत्र** विरेचक, कृमिघ्न एवं पार्यायिक ज्वरहर होते हैं।

(१) इसके **बीज** की क्रिया त्वचा पर होती है। दाद, खुजली, कुष्ठ, सिध्म, पामा एवं छाजन (एक्झिमा) आदि में यह बहुत लाभदायक है। जिन रोगों में त्वचा मोटी हो जाती है उनमें इससे विशेष लाभ होता है। दाद में मूली के पत्ते के साथ या नींबू के रस के साथ या करञ्ज के तेल के साथ पीस कर इसे लगाया जाता है। छाजन में मट्ठे के साथ पीस कर लगाते हैं। सिध्म के लिये कांजी में पीसकर लगाना चाहिये। व्रणवस्तु के स्थान पर उत्पन्न होनेवाली तन्तु युक्त गांठों (कीलॉयड-Cheloid) के लिये इसके बीजों को सेहुंड के दूध में भिगोकर फिर गोमूत्र में पीस कर लेप करने से लाभ होता है। अर्धावभेदक आदि शिरोरोग में कांजी के साथ इसका लेप उपयोगी है। इसका सेवन कॉफी के रूप में भी किया जाता है।

(२) इसके **पत्तों** का क्वाथ बच्चों के विकारों में विशेषकर दन्तोद्भेद के समय ज्वर आदि होने पर मृदु विरेचक के रूपमें दिया जाता है। इसका रस मिलाने से उत्पन्न दाह पर लगाया जाता है। इसका पोल्टिस बनाकर फोड़ों पर बांधने से फोड़े जल्दी पक जाते हैं एवं वातरक्त, गृध्रसी तथा संधिवात में भी इनके बांधने से वेदना कम होती है। इसके पत्तों को एरण्ड तैल में भूनकर दुर्गंध युक्त व्रणों में पुल्टिस के रूप में प्रयोग से लाभ होता है।

मात्रा—बीज चूर्ण १-२ माशा।

अथातिविषा (अतीस)। तस्या नामगुणानाह

विषा त्वतिविषा विश्वा शृङ्गी प्रतिविषाऽरुणा। शुक्लकन्दा चोपविषा भङ्गुरा घुणवल्लभा ॥
विषा सोष्णा कटुस्तिक्ता पाचनी दीपनी हरेत्। कफपित्तातिसारामविषकासवमिक्रिमीन् ॥

अतीस के नाम तथा गुण—विषा, अतिविषा, विश्वा, शृङ्गी, प्रतिविषा, अरुणा, शुक्लकन्दा, उपविषा, भङ्गुरा और घुणवल्लभा ये सब अतीस के नाम हैं। **अतीस**—उष्णवीर्य, कटु तथा तिक्तरस युक्त, पाचक तथा अग्निदीपक होती है एवम् कफ, पित्त, अतिसार, आम, विष, कास, वमन और कृमि इन सब रोगों को दूर करनेवाली होती है ॥ २१३-२१४ ॥

७४ अतीस

हि०-अतीस। बं०-आतइच। **म०**-अतिविष। **पं०**-अतीस। **ते०**-अतिवस। **क०**-अतिविषा। **गु०**-अतिवखनी कली। **ता०**-अतिवदयम। **भोटि०**-अइस। **अं०**-Indian Atees (इन्डियन् अतीस)। **ले०**-*Aconitun heterophyllum, Wall.* (एकोनाइटम् हेटरोफाइलम्, वाल.); Fam. Ranunculaceae (रॅनन्क्युलेसी)।

यह हिमालय पहाड़ में कुमाऊँ से हसोरा तक शिमला और इसके आस पास में तथा चम्बा प्रान्त में ६ से १५ हजार फुट ऊँची चोटियों पर पाया जाता है।

इसका **क्षुप**-२ से ४ फीट ऊँचा होता है। **काण्ड**-गोल, सीधा तथा विभिन्न आकार वाली पत्तियों से घिरा होता है। **पत्र**-नीचे के पत्तों के फलक प्रायः पांच विच्छेदों से युक्त एवं गोलाई लिये हुये ताम्बूलाकार या लट्वाकार-ताम्बूलाकार होते हैं। ऊपर के पत्ते छोटे तथा धार पर दन्तुर होते हैं। **पुष्प**-नील अथवा हरितनील, १ से १॥ इञ्च लम्बे एवं चमकीले होते हैं। आभ्यंतर पुट का एक दल सबसे बड़ा और फणाकार होता है। **मूल**-मूल में दो कन्द होते हैं जिनमें एक पिछले वर्ष का और दूसरा नये वर्ष का होता है। नवीन कन्द लम्बगोल या शंकाकार, हाथी की सूंड की तरह, १ इञ्च लम्बा तथा १/४ से ३/४ इञ्च मोटा होता है। कन्दत्वक्-पतली तथा श्वेताभ, फीके राख के रङ्ग की तरह होती है। कन्द-स्वाद में अत्यंत कड़ुवा, आसानी से टूट जाने वाला और भीतर से श्वेत तथा पिष्टमय पदार्थ से युक्त रहता है। इसे तोड़ने पर श्वेत मध्य भाग के चारों तरफ ४ काले धब्बे दिखलाई देते हैं। इनमें गन्ध नहीं रहती। इसमें कीडे बहुत जल्दी लग जाते हैं तथा कीडे लगने पर यह निःसत्व हो जाता है इसलिये औषधि में बिना कीडे लगे हुवे अच्छे मूलकन्द का ही व्यवहार करना चाहिये।

अन्य निघण्टुकारों ने वर्ण भेद से इसके ३, ४ भेद लिखे हैं लेकिन आजकल केवल एक ही भेद और मिलता है। जिसका वर्णन नीचे दिया गया है।

(क) Aconitum palmatum D. Don (एकोनाइटम् पामॅटम्) हि०-बखमा। सं०-प्रतिविषा।

इसके क्षुप पूर्वी हिमालय में सिकिम, गुर्वाल तथा मिश्री पर्वतों में पाये जाते हैं।

इसके **मूल** अतीस की अपेक्षा अधिक लम्बे, कम मोटे, तोड़ने में सख्त, अधिक काले रङ्ग के तथा वजन में बहुत भारी होते हैं। इन पर गांठें होती हैं। गुण आदि में यह अतीस के समान ही है।

रासायनिक संगठन—वत्सनाभ वर्ग की औषधि होने पर भी यह विषैली नहीं है। इसमें एक अत्यन्त कडवा बिना रवेदार क्षाराभ अतीसिन (Atisine) होता है जो विषैला नहीं है। इसके अतिरिक्त इसमें एकोनाइटिक् एसिड (Aconitic acid), टॅनिक एसिड, अधिक मात्रा में पिष्टमय पदार्थ, वसा तथा ओलिइक्, पामिटिक् एवं स्टियरिक ग्लिसराइड्स (Oleic, Palmitic and Stearic Glycerides) के मिश्रण तथा गोंद, इक्षु शर्करा एवं राख २% आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—अतीस दीपन, पाचन, तिक्तपौष्टिक, ग्राही, वृष्य, बल्य एवं विषमज्वरहर है। इसके सेवन से शरीर की विनिमय क्रिया सुधरती है। इसको ४-८ माशा देने पर भी विषैला परिणाम नहीं होता।

इसका प्रयोग आमातिसार, विषमज्वर, कास, वमन, कुपचन, शूल, नवीन शोथयुक्त विकार एवं बालरोगों में किया जाता है।

(१) तिक्तपौष्टिक तथा ग्राही होने के कारण अतिसार एवं संग्रहणी में इससे अच्छा लाभ होता है। बच्चों के वमन, अतिसार, ज्वर एवं खांसी में इससे बहुत लाभ होता है। इससे पाखाना पीला होकर मात्रा कम होती है। बच्चों तथा प्रसूता में यदि अतिसार हो तो इसके साथ शृङ्ग भस्म देना चाहिये। अतीस के साथ भांग एवं घोड़बच मिलाकर अतिसार में दिया जाता है। इसके साथ सुगन्धि, कडुवी पौष्टिक तथा ग्राही अन्य औषधियां मिलाने से ज्यादा लाभ होता है।

(२) इसको अधिक मात्रा में देने पर ही इसका ज्वरघ्न गुण स्पष्ट होता है लेकिन उस मात्रा में ज्वर कम होने के साथ-साथ विबन्ध भी हो जाता है जो विषमज्वर के लिये अहितकारक है। इसलिये विषमज्वर में इसकी अपेक्षा कुटकी ज्यादा लाभदायक होती है। ज्वर पश्चात दौर्बल्य दूर करने के लिये दीपनीय एवं तिक्त पौष्टिक के रूप में इसका उपयोग अधिक अच्छा है। ज्वरातिसार के लिये यह अत्युत्तम औषधि है। इसमें १५ र० अतीस तथा १५ र० रसाञ्जन जल के साथ देते हैं। इसके साथ सुगन्धि पदार्थ मिलाने से ज्यादा लाभ होता है। बड़ों की अपेक्षा बच्चों के ज्वरातिसार में यह ज्यादा उपयोगी है।

(३) मूषिकविष में इसको मधु के साथ सुबह चटाया जाता है।

(४) कृमियों को निकालने के लिये इसके साथ विडंग का प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—चूर्ण ½–२ मा० ज्वरातिसार, अतिसार में। चूर्ण–२–४ र० बल्य, तिक्तपौष्टिक।

अथ लोध्रः 'शावरलोध्र–पटियालोध' इति लोके प्रसिद्धयोर्नामगुणानाह

लोध्रस्तिल्वस्तिरीटश्च[1] शावरो गालवस्तथा।
द्वितीयः पट्टिकालोध्रः क्रमुकः स्थूलवल्कलः। जीर्णपत्रो बृहत्पत्रः पट्टी लाक्षाप्रसादनः॥
लोध्रो ग्राही लघुः शीतश्चक्षुष्यः कफपित्तनुत्। कषायो रक्तपित्तासृग्ज्वरातीसारशोथहृत्॥

शावरलोध्र और पटियालोध के नाम तथा गुण—लोध्र, तिल्व, तिरीट, शावर, गालव ये नाम लोध अर्थात् सावरलोध के हैं और दूसरा जो पटिआलोध (पटानी लोध) है उसके-पट्टिकालोध्र, क्रमुक, स्थूलवल्कल, जीर्णपत्र, बृहत्पत्र, पट्टी और लाक्षाप्रसादन ये सब नाम हैं। **दोनों प्रकार के लोध**—ग्राही, लघु, शीतवीर्य, नेत्रों के लिए हितकर, कफपित्तनाशक, कषायरस युक्त, रक्तपित्त, रक्तविकार, ज्वर, अतिसार और शोथनाशक होते हैं॥ २१५–२१६॥

७५ लोध

हि०–लोध। **बं०–म०–क०**–लोध,लोध्र। **गु०**–लोधर। **ते०**–लोद्धुगचेट्टु। **अ०**–मुगाम। **अं०**–Lodh (लोध); Symplocos Bark (सिम्प्लोकोस् बार्क)। **ले०**–*Symplocos racemosa, Roxb.* (सिम्प्लोकॉस् रेसिमोसा, राक्स्.)। Fam. Symplocaceae (सिम्प्लोकेसी)।

यह भारत के पूर्वोत्तर प्रान्त नेपाल, कुमाऊँ से आसाम, बंगाल, छोटा नागपूर, बर्मा आदि प्रदेशों के जङ्गल और छोटे पहाड़ों में पाया जाता है।

इसका छोटा **वृक्ष**–२० फुट तक ऊँचा होता है। **छाल**–खुरदरी और गहरे धूसर (Grey) वर्ण की होती हैं। **काट**–(Blaze–ब्लेझ)—आधा इञ्च तक मोटा, रेशेदार, हलका पीला परन्तु हलके नारंगीभूरे रंग की रेखाओं से युक्त होता है। **पत्ते**–३॥ से ७ इञ्च लम्बे, अण्डाकार–आयताका या अण्डाकार–भालाकार; पत्राग्र–तीक्ष्ण, कुण्ठितलम्ब या कुण्ठित; पत्र तट–आरावत, अस्पष्ट गोलदन्तुर या क्वचित अखण्ड; पत्र पृष्ठ–कोमल पत्तों का ऊपर का पृष्ठ चिक्कण तथा अधोपृष्ठ मृदु रोमश, तथा अन्य पत्रों के पृष्ठ चिक्कण या मध्यशिरा पर कुछ रोमों से युक्त, चमकीले तथा

ऊपर का पृष्ठ गहरे हरे रङ्ग का; शिराएं–बगल की शिराएं सूखे हुवे पत्तों में स्पष्ट, ५–९ जोड़ी एवं पत्रवृन्त–⅛ से ⅜ इञ्च लम्बा होता है। आश्विन से अगहन तक फूल फल आते हैं। **फूल**–गुच्छों में, पीले और सुगन्धित होते हैं। **फल**–अष्ठिफल, प्रायः आध इञ्च लम्बे, आयताकार, चिक्कण, बैंगनी काले रङ्ग के एवं उनका बाह्यकोष चिपका रहता है। इसकी **छाल** का व्यवहार किया जाता है। इसका बाह्यपृष्ठ चिकना धूसरित हरा (यदि कार्क (Cork) के साथ हो तो) तथा आडी धारियों से युक्त, अंदर का पृष्ठ हलका पीला लेकिन रक्ताभ बादामी दिखलाई देता है तथा इसमें लम्बाई में गढ़ेदार धारियां होती हैं। **भग्न**–छोटा, बाह्य भाग में दानेदार लेकिन अन्दर का कुछ तन्तु युक्त। बाह्य भाग (Cortical) रक्ताभ बादामी रङ्ग का। **गन्ध**–हलकी मधुर लेकिन बन्द डिब्बों में रखने पर तेज हो जाती है। **स्वाद**–मधुर, सुगन्धि तथा कुछ दाहजनक।

नोट—एक अन्य प्रकार के पठानी लोध्र का वर्णन आगे किया गया है। लोध्र तथा पठानीलोध्र दोनों ही के गुण करीब करीब समान ही हैं तथा दोनों ग्राही एवं अतिसारादि में लाभदायक होते हैं। लोध्र का एक पर्याय तिल्वक आया है। चरक के कल्पस्थान में तिल्वक् के मूल की (अन्दर की त्वचा रहित) बाह्य त्वचा का उपयोग विरेचन कराने के लिये किया गया है। इससे भ्रम होता है कि एक ही वस्तु विरेचक तथा ग्राही कैसे हो सकती है। व्यवहार में भी लोध्र की छाल विरेचक नहीं होती। शावर या पठानी लोध दोनों की मूल त्वक् का प्रयोग किया गया किन्तु उससे विरेचन नहीं हुआ। इसके संबन्ध में एक श्लोक मिलता है।

तिल्वकोऽपि तदाकारो बृहत्पत्रो विशेषतः।
रक्तत्वचो विरेकी च बृहल्लोध्रेति कथ्यते॥

डल्हण तिल्वक् के सम्बन्ध में लिखते हैं—**तिल्वकः रोध्रः, अन्ये तु रोध्राकारो रक्तत्वक्को बृहत्पत्रो वैरेचनिकः।** इससे मालूम होता है कि लाल छाल वाला, दीर्घ पत्र वाला एवं विरेचक गुणवाला कोई लोध्र के समान वृक्ष होता है जो तिल्वक है। अभी इसका निर्णय नहीं हो पाया है। कुछ विद्वानों ने तिल्वक् के स्थान पर रेवाचीनी की छाल का उपयोग विरेचन के लिये करने को कहा है।

रासायनिक संगठन—लोध की छाल में सम्पूर्ण क्षाराभ की मात्रा करीब ०·३२% होती है जिसमें से एक रवेदार क्षाराभ लोटयुराइन (Loturine) ०·२४%, अन्य चूर्णरूप में क्षाराभ लोटयुरिडाइन (Loturidine) ०·०६% एवं एक और रवेदार क्षाराभ कोल्लोटयुराइन (Colloturine) ०·०२% होते हैं। इसकी राख में सोडियम् कार्बोनेट (Sodium carbonate) रहता है तथा छाल में लाल रंजक पदार्थ बहुत अधिक मात्रा में होते हैं। इसमें टॅनिन द्रव्य नहीं होते। इसमें का लोटयुराइन क्षाराभ ॲब्राइन (Abrine) एवं हारमॅन (Harman) के सदृश होता है। इसके सभी क्षाराभ विरल अम्ल घोल में अत्यन्त तेज नील–नीललोहितातीत चमक उत्पन्न करते हैं।

गुण और प्रयोग—लोध्र की छाल ग्राही, शीतल, रक्तस्तंभक, श्लेष्मघ्न, व्रणरोपक, शोथघ्न, बल्य एवं चक्षुष्य है। इससे छोटी रक्तवाहिनियों का संकोच होकर रक्तस्राव बन्द होता है। इससे श्लेष्मल त्वचा को शक्ति प्राप्त होकर एवं उसका संकोच होकर श्लेष्मा की उत्पत्ति कम होती है।

इसका उपयोग अतिसार, प्रवाहिका, रक्तातिसार, रक्तप्रदर, अत्यार्तव, श्वेतप्रदर, सर्वाङ्गशोथ, यकृद्विकार, ज्वर एवं नेत्ररोगों में किया जाता है।

(१) लोध्र अतिसार एवं प्रवाहिका के लिये बहुत अच्छी औषधि है। इसमें इसके प्रवाही सत्त्व को ½ ड्रा० की मात्रा में देने से इपीकाक से जिनको लाभ नहीं हुआ था उन्हें भी लाभ हुआ। इसमें बेल की गुद्दी, कुचला एवं कुरैया की छाल के साथ इसका प्रयोग करते हैं या इसके साथ मुलेठी, अनार का छिलका एवं कायफल का प्रयोग किया जाता है।

(२) रक्तप्रदर में इसके चूर्ण को १० र० की मात्रा में दिन में ३, ४ बार मिश्री के साथ ३, ४ दिन तक देने से बहुत लाभ होता है। इससे गर्भाशय का संकोच होकर उसकी शिथिलता दूर होती है जिससे रक्तप्रदर एवं श्वेतप्रदर आदि में यह उपयोगी है। गर्भिणी में ७ वें या ८ वें महीने में यदि गर्भ में अधिक चलन हो तो इसे छोटी पीपल एवं मधु के साथ चटाने से गर्भाशय संकोच होकर चलन कम हो जाता है।

(३) आंखों में लाली तथा सूजन होने पर इसको पलकों के चारों तरफ लगाते हैं। इसके साथ मुलेठी, रसौत एवं भुनी फिटकिरी का उपयोग लेप में किया जाता है।

(४) श्लीपद (Filaria = फाइलेरिया) के कारण उत्पन्न पायसमेह (Chyluria = काइलूरिया) तथा फीलपांव (Elephantiasis = एलिफॅन्टियासिस्) में यह लाभदायक सिद्ध हुआ है।

(५) कुष्ठ एवं व्रण आदि में इसका अंतः बाह्य प्रयोग किया जाता है। प्रसूता में योनिक्षत के लिये इसका लेप उपयोगी है। गलशुण्डिका वृद्धि एवं मसूढ़ों से यदि खून जाता हो तो इसके क्वाथ से गण्डूष कराते हैं तथा रसौंत, नागरमोथा एवं लोध्र का मधु के साथ मसूढ़ों पर लेप करते हैं। सूजन पर लोध्र के लेप से सूजन कम हो जाती है।

मात्रा—चूर्ण ५-१० र०।

७६ पठानी लोध।

हि०-पठानी लोध। बं०-पटिया लोध। गु०-पठाणी लोधर। पं०-पठानी लोद, लान्दर, लोज, लोश। म०-पट्टी लोध। ते०-तेल्ल लुदुगु। क०-बिली लोध्र। सिन्ध०-लोदर, पठानी लोध। ले०-*Symplocos crataegoides Buch. Ham.* (सिम्प्लोकॉस् क्रेटेगॉइडिस्)। (Fam. Symplocaceae (सिम्प्लोकेसी))।

इसके वृक्ष हिमालय में सिन्ध नदी से आसाम तक, खासिया पहाड़ और मरतवान के पहाड़ों में ३-९ हजार फीट की ऊँचाई पर पाये जाते हैं। यह वृक्ष-२० फुट तक ऊँचा होता है। छाल-हलके सफेद रंग की और कार्क युक्त होती है तथा उस पर खड़ी नालियां रहती हैं। काट-आधा इञ्च मोटा, हलका पीला व रेशेदार होता है। पत्ते-२-४ इञ्च लम्बे, १-१॥ इञ्च चौड़े, पतले, अण्डाकार या लट्वाकार, लंबाग्र और अग्र की ओर तीक्ष्ण दन्तुर होते हैं तथा सूखने पर पीले रङ्ग के हो जाते हैं। फूल-सफेद, समशिखाकार गुच्छों में तथा सुगन्धित होते हैं। इसके फूलों की सुगन्धि दूर तक जान पड़ती है। फल-चौथाई इञ्च से तिहाई इञ्च तक लम्बे तथा गोल होते हैं। उनसे मुड़ा हुआ गोल बीज निकलता है। इसके गुण और प्रयोग आदि सब उपर्युक्त लोध्र के समान ही हैं।

अथ लशुनः, तस्य नामान्याह

लशुनस्तु रसोनः स्यादुग्रगन्धो महौषधम्। अरिष्टो म्लेच्छकन्दश्च यवनेष्टो रसोनकः ॥२१७॥

लहसुनके नाम—लशुन, रसोन, उग्रगन्ध, महौषध, अरिष्ट, म्लेच्छकन्द, यवनेष्ट और रसोनक ये नाम लहसुन के हैं॥ २१७॥

अथ लशुनोत्पत्तिमाह

यदाऽमृतं वैनतेयो जहार सुरसत्तमात्। तदा ततोऽपतद् बिन्दुः स रसोनोऽभवद् भुवि ॥

लहसुन की उत्पत्ति—जिस समय गरुडने इन्द्र के पास से अमृत हरण किया था उस समय (उस अमृत) से जो बिन्दु (अमृत-बिन्दु) पृथ्वी पर गिरा उसी से लहसुन की उत्पत्ति हुई ॥२१८॥

अथ रसोनशब्दस्य निरुक्तिमाह

पञ्चभिश्च रसैर्युक्तो रसेनाम्लेन वर्जितः। तस्माद्रसोन इत्युक्तो द्रव्याणां गुणवेदिभिः ॥

लहसुन के 'रसोन' नामकी व्युत्पत्ति—लहसुन में ६ प्रकार के रसों में से ५ प्रकार के रस रहते हैं किन्तु केवल एक अम्ल रस नहीं रहता है, अत एव रस अर्थात् केवल अम्ल रस से ऊन अर्थात् शून्य रहने से द्रव्यों के गुणादिक जानने वाले विद्वानों ने इसका 'रसोन' नाम रक्खा है॥

अथ लशुने रसस्थानान्याह

कटुकश्चापि मूलेषु तिक्तः पत्रेषु संस्थितः। नाले कषाय उद्दिष्टो नालाग्रे लवणः स्मृतः॥
बीजे तु मधुरः प्रोक्तो रसस्तद्गुणवेदिभिः ॥ २२० ॥

लहसुन में कटु आदि पांचो रसों के रहने के स्थान—इसके मूलभाग में कटु रस रहता है, पत्तों में तिक्त रस, नाल में कषाय रस, नाल के अग्रभाग में लवण रस तथा बीज में मधुर रस रहता है, ऐसा लहसुन के गुणों के जानने वाले विद्वानों ने कहा है॥ २२०॥

अथ लशुनगुणानाह

रसोनो बृंहणो वृष्यः स्निग्धोष्णः पाचनः सरः। रसे पाके च कटुकस्तीक्ष्णो मधुरको मतः॥
भग्नसन्धानकृत्कण्ठ्यो गुरुः पित्तास्रवृद्धिदः। बलवर्णकरो मेधाहितो नेत्र्यो रसायनः॥२२२॥
हृद्रोगजीर्णज्वरकुक्षिशूल-विबन्धगुल्मारुचिकासशोफान्।
दुर्नामकुष्ठानलसादजन्तु-समीरणश्वासकफांश्च हन्ति ॥ २२३ ॥

लहसुन के गुण—लहसुन बृंहण (धातुवर्धक), वृष्य (वीर्यवर्धक), स्निग्ध, उष्णवीर्य, पाचक तथा सारक होता है। और वह रस तथा पाक में कटु तथा मधुर रस युक्त, तीक्ष्ण, भग्न-सन्धान-कारक (टूटी हड्डियों को जोड़ने वाला), कण्ठ को हितकारी, गुरु, पित्त एवं रक्तवर्धक, शरीर में बल तथा वर्ण को उत्पन्न करने वाला, मेधाशक्ति तथा नेत्रों के लिये हितकर और रसायन होता है। एवं हृद्रोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूल, मल तथा वातादिक की विबन्धता, गुल्म, अरुचि, कास, शोथ, बवासीर, कुष्ठ, अग्निमान्द्य, कृमि, वायु, श्वास और कफ को नष्ट करता है॥ २२१-२२३॥

अथ लशुनसेविनां हिताहितपदार्थानाह

मद्यं मांसं तथाऽम्लञ्च हितं लशुनसेविनाम्। व्यायाममातपं रोषमतिनीरं पयो गुडम्॥
रसोनमश्नन् पुरुषस्त्यजेदेतान् निरन्तरम् ॥ २२५ ॥

लहसुन सेवन करनेवालों के लिये हितकर तथा अहितकर पदार्थ—मद्य, मांस तथा अम्लरस-युक्त भक्ष्य पदार्थ ये सब लहसुन खाने वालों के लिये हितकर हैं। और व्यायाम, आतप (धूप में फिरना), क्रोध करना, अत्यन्त जल पीना, दूध और गुड़ इन सबों को लहसुन खाने वाले पुरुष सदा छोड़ दें, क्योंकि ये सब अहितकर हैं॥ २२४-२२५॥

७७ लहसुन।

हि०-लहसुन, लशुन। बं०-रसुन। म०-लसूण। क०-बेल्लुल्लि। ते०-वेल्लुलि, तेल्लगड्डा। ता०-वल्लइपुंडु। गु०-लसण। सिंधी-थोम। आसा०-नहरु। ओड़ि०-गोकुस। फा०-सीर।

अ०-सूम, फूम । **यू०**-स्कूर्दून । अं०-Garlic (गार्लिक) । **ले०**-*Allium sativum, Linn.* (एलियम् सटाइवम् , लिन०) । Fam. Liliaceae (लिलिएसी) ।

यह प्रायः सब प्रान्तों में बोया जाता है । विशेषकर पश्चिमोत्तर प्रदेश, गढ़वाल, कुमाऊँ, पंजाब एवं काश्मीर आदि में अधिक उत्पन्न होता है ।

इसका बहुवर्षायु **क्षुप**-करीब १ फुट तक ऊँचा होता है । **पत्र**-चिपटे, लम्बे, १ इञ्च से कम चौड़े एवं इनका अग्र लम्बा होता है । **पत्रकोश**-३-४ इञ्च लम्बा होता है तथा पुष्प व्यूह को घेरे रहता है । **पुष्पव्यूह**-सवृन्त मूर्धज, छोटे, घने एवं पतले, शुष्क कोणपुष्पकों से युक्त होते हैं । इसके **कन्द** को लहसुन कहा जाता है जिसके अन्दर ८-२० जावा होते हैं । इसमें एक विशिष्ट प्रकार की तीव्र **गन्ध** तथा इसका **स्वाद** विशिष्ट प्रकार का कटु होता है ।

रासायनिक संगठन—इसमें एक बादामी पीले रंग का उडनशील तैल ०·१-०·३% पाया जाता है जिसका वि. गु. १·०४६-१·०५७ होता है । इस तैल में प्रधान रूप से ॲलिल् डाइसल्फाइड् (Allyl disulphide, $C_6 H_{10} S_2$) तथा ॲलिल्-प्रॉपिल् डाइसल्फाइड् (Allyl-propyl disulphide) एवं अल्प मात्रा में उच्च श्रेणी के पॉलीसल्फाइड्स (Polysulphides) पाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त लहसुन के मद्यसारीय सत्त्व से एक ॲल्लीसिन् (Allicin, $C_6 H_{10} S_2 O$) नामक प्रतितृणाण्वीय (Antibacterial) तरल द्रव्य प्राप्त किया गया है । इसके साथ ही साथ ॲल्लीसेशन् I तथा ॲल्लीसेशन् II (Allicetion I and Allicetion II) नामक दो अत्यन्त तीव्र प्रतिजैविक (Antibiotics) पदार्थ भी पाये गये हैं जो ईथर (Ether) में घुलनशील लेकिन जल में न घुलने वाले होते हैं ।

गुण और प्रयोग—लहसुन एक बहुत ही उपयोगी औषधि है । प्राचीन काल से इसका प्रयोग किया जाता रहा है और आधुनिक विद्वानों ने भी इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है । राजयक्ष्मा (Tuberculosis) एवं अन्य फुफ्फुसविकार, वातविकार, शैथिल्यप्रधान कुपचन (Atonic dyspepsia) एवं व्रण आदि के लिये यह बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है । काश्यपसंहिता में लशुनकल्प नामक एक स्वतन्त्र अध्याय में इसका वर्णन किया गया है । धार्मिक ग्रन्थों में इसका सेवन निषिद्ध माना है ।

लहसुन उष्ण, दीपन, पाचन, वातहर, स्वेदजनन, मूत्रल, उत्तेजक, कफनिःसारक, बल्य, वृष्य, रसायन, दुर्गन्धहर एवं उत्तम प्रतिदूषक (Antiseptic) है । इसमें जो उड़नशील तैल होता है उसका उत्सर्ग त्वचा, फुफ्फुस एवं वृक्क द्वारा होता है । फुफ्फुस से उत्सर्ग के समय इससे कफ ढीला हो जाता है तथा उसमें के जीवाणुओं का नाश होकर कफ की दुर्गन्ध दूर होती है । वात नाडी संस्थान पर इसका उत्तेजक प्रभाव पड़ता है । **अधिक मात्रा** में इसके प्रयोग से वमन, विरेचन, एवं शिरःशूल आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं । बच्चों में इसका सावधानी के साथ प्रयोग करना चाहिये । अधिक मात्रा में सेवन करने पर कभी कभी मृत्यु भी हो सकती है ।

इसका बाह्य प्रयोग त्वग्रागकारक (Rubefacient) एवं प्रतिदूषक औषधि के रूप में किया जाता है । अधिक समय तक त्वचा के साथ सम्पर्क होने से स्फोट उत्पन्न होते हैं ।

(१) यक्ष्मा दण्डाणु से उत्पन्न सभी विकृतियों जैसे फुफ्फुसविकार, स्वरयन्त्रशोथ, चर्मविकार, अस्थिव्रण एवं नाडीव्रण आदि में यह निश्चित लाभदायक सिद्ध हुआ है । लहसुन के रस को इनमें पिलाया जाता है तथा इसका स्थानिक उपयोग भी किया जाता है । स्वरयंत्र शोथ में इसका टिंक्चर ½-१ ड्रा. दिन में २, ३ बार देते हैं । पुराने कफविकार जैसे कास, श्वास, स्वरभङ्ग,

श्वसनिका शोथ, श्वसनिकाभिस्तीर्णता (Bronchiectasis) एवं श्वासकृच्छ्र आदि में इसका अवलेह बनाकर उपयोग किया जाता है । लहसुन एवं वायविडङ्ग का सेवन भी लाभदायक है । बच्चों के कुकास में इसको ३,४ घण्टे पर सुंघाया जाता है तथा इसके रस को पिलाते भी हैं जिससे कष्ट कम हो जाता है । फुफ्फुसकोथ (Gangrene of lungs) में इसके टिंक्चर (५ में १) का उपयोग बहुत सफल रहा है । प्रारम्भ में इसको कम मात्रा में देना चाहिये तथा बाद में २० बूंद तक दिन में ३ बार देना चाहिये । थोड़े ही समय में ज्वर, कफ की दुर्गन्ध, स्वेदाधिक्य एवं अग्निमांद्य आदि दूर होकर लाभ होता है । इसी प्रकार खण्डीय फुफ्फुसपाक (Lobar pneumonia) में भी इसके टिंक्चर को ३० बूंद हर चार घण्टे पर जल के साथ देने से ४८ घण्टे के अन्दर ही लाभ मालूम होने लगता है तथा ५, ६ दिन में ज्वर कम हो जाता है । इन सभी विकारों में आन्तरिक प्रयोग के साथ-साथ इसको छाती पर लगाते भी हैं ।

(२) वायविडङ्ग के साथ इसका क्षीरपाक सभी वातविकार में जैसे गृध्रसी, कटिग्रह, अर्दित, पक्षाघात, एकाङ्गघात, ऊरुस्तम्भ, अपतन्त्रक एवं अपस्मार आदि में लाभदायक है । आन्तरिक प्रयोग के साथ इससे सिद्ध तैल की मालिश भी की जाती है । अपस्मार में इसका फांट भोजन के पूर्व एवं पश्चात् देने का विधान है । अपतन्त्रक में इसको सुंघाया जाता है । इसी प्रकार ठण्डक लगने से उत्पन्न पीडा, जीर्ण आमवात एवं संधिशोथ तथा शिरःशूल आदि में इसको खिलाया जाता है तथा बाह्य लेप भी किया जाता है । बच्चों के वात विकारों में इसकी मालिश विशेष लाभदायक है।

(३) शैथिल्यप्रधान कुपचन (Atonic dyspepsia), आध्मान, उदरशूल, विसूचिका, वमन, गुल्म, उदावर्त, आंव एवं केंचुवों की बीमारी में इसका बहुत प्रयोग किया जाता है । केचुवा (Round worms) में १०-३० बूंद रस दूध में मिलाकर पिलाते हैं । वातगुल्म में इसको पीस कर घृत के साथ खिलाने से लाभ होता है । ग्रहणीव्रण (Duodenal ulcer) में भी इसको लाभदायक माना गया है ।

(४) विषमज्वर में इसको तैल या घृत के साथ सुबह खिलाने से लाभ होता है । आन्त्रिक एवं तन्द्राभ ज्वर (Typhoid and Typhus) के प्रतिबन्धन के लिये इसके टिंक्चर को १ ड्रा. हर ४ या ६ घण्टे पर शरबत के साथ देते हैं । यदि रोग के प्रारम्भ में ही इसका प्रयोग किया जावेगा तो ज्वर बढ़ने नहीं पावेगा । इसका उपयोग आन्त्रिक प्रतिदूषक (Intestinal antiseptic औषधि के रूप में किसी भी अवस्था में किया जा सकता है । बच्चों को ½ ड्रा. की मात्रा में शरबत के साथ पर्याप्त है ।

(५) हृद्रोग में इसके प्रयोग से आध्मान कम हो कर हृदय के ऊपर का दबाव दूर होता है जिससे हृदय को बल प्राप्त होकर मूत्र अधिक होने लगता है तथा सर्वाङ्गशोथ एवं जलोदर में लाभ होता है ।

(६) इसके स्वरस को ३, ४ भाग जल में मिला कर क्षत तथा दुर्गन्धित व्रण प्रक्षालन के काम में लाया जाता है जिससे वेदना कम हो कर व्रण जल्दी ठीक होता है । कार्बोलिक् एसिड (Carbolic acid) की अपेक्षा इससे धातुओं को कम नुकसान होता है । इसी प्रकार शोथ, विद्रधि, बालतोड एवं दाद आदि पर इसका लेप लाभदायक है । इससे सिद्ध सर्षप तैल का उपयोग खुजली (पामा) में किया जाता है ।

रोहिणी (Diphtheria) नामक अत्यन्त उग्र गले के विकार में इसकी एक, एक कली चूसने को दी जाती है । ३, ४ घण्टे में १ छटांक तक लहसुन दिया जाता है । विकृत कला (Membrane) के दूर होने पर दिन भर में १ छटांक तक लहसुन देना चाहिये । शिशुओं के लिये इसके रस को २०-३० बूंद हर चार घण्टे पर शरबत के साथ देना चाहिये । एक रोगी में नाडीव्रण

(Sinus) के लिये इसके ताजे स्वरस को २ बूंद की मात्रा में हर छठे दिन स्थानिक सूचिकाभरण किया गया जिससे ४ इञ्च गहरा नाडीव्रण २ महीने के अन्दर ठीक हो गया ।

उपजिह्वा शोथ में इसका स्थानिक प्रयोग सिल्वर नाइट्रेट् (Silver nitrate) की अपेक्षा अच्छा होता है ।

(७) कर्णशूल में इसके गुनगुने रस का या इससे सिद्ध तैल का उपयोग लाभदायक है । इससे बाधिर्य में भी लाभ होता है ।

(८) आर्तवप्रवर्तक होने के कारण इसका उपयोग अनार्तव एवं कष्टार्तव आदि में किया जाता है । गर्भिणी में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये ।

(९) मवेशियों में ॲन्थ्राक्स (Anthrax) नामक रोग के प्रतिबन्धन के लिये एवं सर्पविषादि में बाह्याभ्यन्तर प्रयोग किया जाता है ।

हानिनिवारक—कतीरा, धनियां एवं बादाम का तेल ।

मात्रा—स्वरस १०—३० बूंद; कल्क २-३ माशा ।

७८ एकपुतिया लहसुन

हि०–लहसुन, एककांदा लहसुन, एककली लहसुन, एकपुती लहसुन, एकपुतिया लहसुन । **बं०**–गंधुन । **अं०**–Shallot (शॅलोट), One Clove Garlic (वन क्लोव गार्लिक) । **ले०**–*Allium ascalonicum Linn.* (एलियम् ॲस्कॅलोनिकम् लिन) Fam. Liliaceae (लिलिएसी) ।

यह अनेक प्रान्तों में उत्पन्न होता है । इसकी जड़ दो वर्ष या इससे कुछ अधिक ही जीवित रह सकती है । इसके साथ कई एक अण्डाकार लम्बे जावे रहते हैं । यह १-१। इञ्च तक लम्बा और मध्यमा अङ्गुली के समान मोटा होता है । पत्ते-उक्त लहसुन के समान लम्बे, पतले, चिकने और पोले से होते हैं । जड़ से ही अनेक पत्ते निकलते हैं और पत्तों के बीच से दण्ड निकलता है जो एक दो फुट लम्बा, नीचे फूला हुआ किन्तु क्रमशः ऊपर संकुचित और गोल होता है । इसके अन्त में लट्टू के समान फूलों का गुच्छा लगता है । प्रत्येक गुच्छे में लगभग २०० तक नन्हें श्वेत वर्ण के फूल रहते हैं । वे प्याज के फूलों के समान दिखाई पड़ते हैं । इसके कन्द में एक ही जावा रहती है तथा यह कोमल प्याज की तरह दिखलाई देता है ।

गुण और प्रयोग—इसके गुण लहसुन की तरह ही होते हैं लेकिन विशेष कर यह वृष्य है । वाजीकरण के लिये इसको घी में भून कर मधु के साथ सेवन कराया जाता है । कर्णशूल में इसका टुकड़ा कान के अन्दर रखते हैं । इसके उपयोग से आर्त्तव शुद्धि होती है ।

नोट—प्याज की तरह लाल रंग का एक और **जंगली लहसुन** होता है जो ईरान में अधिक होता है । उसे **ले० में**-एलियम् लेप्टोफाइलम्, वॉल (Allium leptophyllum, Wall.), **ईरान में**-सीर-ए-पिआझक् एवं **अरब में**-थूम-एल-बरी कहा जाता है ।

गुण और प्रयोग—यह स्वेदल होता है । इसका अचार कुपचन में व्यवहार में लाया जाता है ।

अथ पलाण्डुः (पियाज), तस्य नामगुणानाह

पलाण्डुर्यवनेष्टश्च दुर्गन्धो मुखदूषकः । पलाण्डुस्तु बुधैर्ज्ञेयो रसोनसदृशो गुणैः ॥ २२६ ॥
स्वादुः पाके रसेऽनुष्णः कफकृन्नातिपित्तलः । हरते केवलं वातं बलवीर्यकरो गुरुः ॥ २२७ ॥

पियाज के नाम तथा गुण—पलाण्डु, यवनेष्ट, दुर्गन्ध और मुखदूषक ये सब पियाज के नाम हैं । पियाज को गुणों में लहसुन के समान समझना चाहिये । **पियाज**—रस तथा पाक में मधुर रस युक्त, अनुष्ण (ईषत् उष्णवीर्य) एवं कफकारक होता है । और यह अत्यन्त पित्तकारक नहीं होता है । यह केवल वातहर होता है तथा बल और वीर्य को करनेवाला एवं गुरु होता है ।

७९ पियाज

हि०–पियाज, प्याज । **बं०**–पेयाज । **पं०**–गण्डा । **म०**–कांदा । **ते०, क०**–नीरूल्लि । **गु०**–डुङ्गली, कांदो । **मा०**–कांदो, कांदा । **ता०**–वेंगयम । **फा०**–प्याज । **सिन्ध०**–लुनु, बसर । **मला०**–बवंग । **अ०**–बस्ल । **अं०**–Onion (ओनियन्) । **ले०**–*Allium cepa, Linn.* (एलियम् सिपा, लिन०) । Fam. Liliaceae (लिलिएसी) ।

प्याज की खेती प्रायः सब प्रान्तों में की जाती है । इसका **पौधा**–हाथ डेढ हाथ ऊँचा होता है । **पत्र**-दो कतारों में तथा पुष्पदंड से छोटे होते हैं । इनके बीच से दंड निकलता है । इसके ऊपर लट्टू के समान गोल गुम्मजदार गुच्छों में सुहावने हरापन लिये सफेद फूल लगते हैं । इनमें से तिकोने काले बीज निकलते हैं । इसके नीचे जो कन्द बैठता है उसी को प्याज कहते हैं । किंचित् गुलाबी और सफेद रंगों के भेद से प्याज दो जाति का होता है । दोनों के पौधे एक समान होते हैं । औषधि में लाल जाति का प्याज उपयोग में लाना चाहिये ।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उग्रगन्धि एवं कटु तैल तथा गन्धक के सेन्द्रीय योग पाये जाते हैं । इसके बाह्य छिलके में एक क्वेर्सेटीन (Quercetin) नामक पीत रञ्जक पदार्थ होता है तथा कंद में शर्करा भी होती है ।

गुण और प्रयोग—पियाज का उपयोग प्राचीन काल से आहार द्रव्य के रूप में किया जा रहा है । गरुडपुराण में पलांडुगुटिका का पाठ है ।

यह किंचित् उष्ण, कफनिःसारक, उत्तेजक, वृष्य, बल्य, मूत्रजनन, आर्तवजनन, अग्निवर्धक, आनुलोमिक एवं उत्तम वातहर है । इसके सेवन से कफ ढीला होकर निकलने लगता है एवं दूषित पित्त भी निकल जाता है ।

(१) बच्चों एवं वृद्धों के कफविकारों में विशेषकर जब ज्वर न हो तब यह लाभदायक है । कच्चे प्याज के रस को मिश्री मिलाकर बच्चों को चटाया जाता है तथा वृद्धों में इसको पकाकर देते हैं । क्षयजकास में इससे कष्ट कम हो जाता है । श्वसनीयों के जीर्ण शोथ के लिये लाभदायक औषधियों में यह श्रेष्ठ औषधि है ।

(२) वाजीकरण के लिये इसके रस को मधु एवं घृत के साथ दिया जाता है ।

(३) अर्श में इसके रस को १-२ तो० मिश्री के साथ पिलाते हैं या प्याज को पकाकर उसमें मिश्री, घी तथा जीरा मिलाकर खिलाते हैं एवं गरम २ मस्सों पर बांधते हैं ।

(४) मसूढों की सूजन तथा शूल में इसको नमक के साथ खिलाते हैं ।

(५) इसका क्वाथ आन्त्रावरोध, अर्श, कामला एवं गुदभ्रंश आदि में लाभदायक है ।

(६) विसूचिका में इसके रस के साथ चूने का पानी मिलाकर पिलाते हैं । अग्नि वृद्धि के लिये सिरके के साथ इसका प्रयोग किया जाता है । प्लेग आदि मरक के समय कच्चे प्याज या सिरके के साथ इसका उपयोग किया जाता है ।

(७) अपतत्रक तथा नासिका से रक्तस्राव होने पर इसका नस्य कराया जाता है । चक्कर आता हो तो इसको सुंघाते हैं ।

(८) कर्णपिटिका में इसका पुटपाक करके साधारण गरम रस कान में डालने से शूल कम हो जाता है । इसके बीच के टुकड़े को भी कान में रखने से लाभ होता है ।

(९) अंधता तथा धुन्ध आदि विकारों में इसका रस मधु में मिलाकर नेत्र में लगाते हैं तथा रात्र्यंध में नमक के साथ इसका रस डालते हैं।

(१०) इसको घी में भूनकर उसका पोल्टिस गांठ, फोड़े, बद एवं व्रण आदि पर लगाया जाता है। आमवातादि संधिविकार एवं अन्य दाह, कण्डू आदि चर्म रोगों में इसके रस को सरसों के तेल में मिलाकर मलते हैं।

(११) बिच्छू तथा अन्य कीड़ों के काटने पर इसमें रस को लगाने से दाह एवं वेदना की शांति होती हैं।

(१२) प्याज के **बीज** वाजीकर होते हैं। इसको पीसकर मधु के साथ खालित्य, व्यंग एवं झांई आदि पर लगाते हैं। दाद में सिरका में पीसकर इसे लगाते हैं एवं मस्सों पर नमक के साथ इसका उपयोग किया जाता है।

८० जंगली प्याज

उपर्युक्त प्याज के अतिरिक्त इसी वर्ग का एक जंगली प्याज होता है जिसकी दो तीन किस्में भारतवर्ष में पाई जाती हैं। यह डाक्टरी स्किल (Squill) नामक औषधि अर्जिनीया मॅरिटिमा (Urginea maritima (Linn.) Baker) की श्वेत उपजाति जो भूमध्यसागरीय तट पर होती है उसका अच्छा प्रतिनिधि है। यह अत्यन्त उपयोगी होने के कारण यहां उसका वर्णन दिया जा रहा है। लोग इसे रा० नि० एवं नि० र० का कोलकंद मानते हैं। दोनों निघण्टुकार उसे 'वान्तिशमनकृत' लिखते हैं लेकिन जंगली प्याज 'वान्तिजननः' होता है।

(क) **ले०**—*Urginea indica*, Kunth. (अर्जिनिया इण्डिका, कुंथ)। Fam. Liliaceae (लिलिएसी) **सं०**–कोलकन्द, वनपलांडु। **हि०, बं०**–कांदा, जंगली प्याज। **गु०**–जंगली कांदो, पाण कंदो। **म०**–रानकांदा, कोलकांदा, कोचिंदा। **ता०**–नेरि वंगायम्। **ते०**–अडवितेलु गड्ड। **पं०**–कफोर, कचवस्सल **अ०**–उन्सुले हिंदी। **फा०**–पियाज सहराई। **अं०**–Indian Squill (इण्डियन स्किल)।

यह पश्चिमी हिमालय में ७००० फीट तक, गढवाल, कुमाऊं, बिहार एवं कारोमंडल तट तथा कोंकण के रेतीले किनारों एवं पश्चिमी घाट पर पाया जाता है।

यह वनस्पति सुदर्शन सदृश होती है। **पत्र**–मूलीय, ६–१८ इञ्च लम्बे, प्याज से बड़े और चौड़े, चिपटे, रेखाकार एवं नोकदार होते हैं। पत्रों के निकलने से पूर्व बीच से सदण्डिक पुष्पध्वज (Scape–स्केप) निकलता है जिस पर हरिताभ श्वेत पुष्प निकलते हैं। **फल**–सामान्यस्फोटी फल (Capsule–कॅपसूल) अण्डाकार, ॥–॥। इञ्च लंबे, दोनों ओर क्रमशः पतले होते हुवे एवं ६–९ बीजों से युक्त होते हैं। **बीज**–छोटे, दीर्घवृत्ताकार, चिपटे तथा काले होते हैं।

इसका कन्द प्याज की तरह २–४ इञ्च लम्बा, लट्वाकार एवं परिच्छदपत्रक (Tunicated Bulb–ट्यूनिकेटेड बल्ब) स्वरूप का होता है। इसके कटे हुये टुकड़े मुड़े हुए, चिपटे, विभिन्न आकार के आधे से दो इञ्च लंबे, दोनों छोर की तरफ क्रमशः पतले होते हुए, कभी कभी तीन या चार एक साथ, काण्डक से चिपके हुए, लंबाई में रीढदार ए हलके पीताभ बादामी या हलके पीत विभिन्न वर्ण के होते हैं। ये छिलके शुष्क अवस्था में सहज चूर्ण बनाने लायक एवं आर्द्र हो जाने पर चिमड़े एवं लचीले हो जाते हैं। इनमें गंध नहीं होती तथा इनका स्वाद तिक्त एवं कटु होता है। ताजा कन्द खाने से जीभ पर कण्डू मालूम होती है। पहिले वर्ष के नींबू के इतने बड़े कन्द

का व्यवहार करना चाहिये। पुष्पित होने पर इसके कोमल कंदों को निकाल कर, उनके ऊपर के पतले छिलकों को हटा कर, उनके टुकड़े करके सुखाकर शुष्क स्थान में रखा जाता है। इसका चूर्ण हवा से जल सोख लेता है इसलिये इसको बिलकुल शुष्क बंद पात्र में रखना चाहिये।

(ख) Scilla indica, Baker (सिला इण्डिका, बेकर)। **हि०, बं०**–सुफेदी खस। **बंबई**–भुइकांदा। **ता०**–शिरू–नेरि–वेंगयम्।

यह दक्षिणी पेनिन्सुला में कोंकण एवं नागपूर से दक्षिण की तरफ समुद्र के किनारे रेतीली भूमि में उत्पन्न होता है। इसी से मिलती-जुलती एक जाति सि० होहेनॅकेरी (S. hohenackeri) पंजाब में मिलती है। इनके **कन्द** श्वेताभ बादामी, अंशच्छद पत्रक (Scaly bulb) स्वरूप के, जायफल के इतने बड़े, गोल या अंडाकार एवं कभी-कभी बगल से दबे हुए होते हैं। इनके मांसल छिलके (शल्क पत्र) बहुत चिकने होते हैं एवं इनके किनारे परस्पर ढके रहने के कारण इनका एक ही पर्त मालूम होता है।

(क) और (ख) दोनों ही के गुण समान हैं तथा बाजार में दोनों के कंद मिले हुवे बिकते हैं तथा इनके शुष्क टुकड़े भी बिकते हैं। ये कंद विदेशी कंदों से कुछ छोटे होते हुए भी उन्हीं की तरह कडवे एवं हृल्लासकारक होते हैं। (क) और (ख) के कंदों में यही अन्तर है कि (क) के कन्द परिच्छद पत्रक (Tunicated bulb–ट्यूनिकेटेड बल्ब) स्वरूप के एवं (ख) के कंद अंशच्छदपत्रक (Scaly bulb–स्केली बल्ब) स्वरूप के होते हैं।

रासायनिक संगठन—ताजे कंद में सिल्लारेन–ए (Scillaren–A, $C_{36}H_{52}O_{13}$) नामक एक रवेदार ग्लाइकोसाइड (Glycoside) तथा सिल्लारेन–बी (Scillaren–B) नामक चूर्ण रूप का ग्लाइकोसाइड (Glycoside) पाया जाता है जिनमें से दूसरे में कम से कम दो ग्लाइकोसाइड मिले रहते हैं। इनमें से सिल्लारेन–ए जल में बहुत कम घुलता है और सिल्लारेन–बी जल और क्लोरोफार्म में घुलने वाला एवं ॲल्कोहोल या ईथर में न घुलने वाला होता है। कंद में जिस अनुपात में ये दोनों ग्लाइकोसाइड रहते हैं उनका सिल्लारेन (Scillaren) नामक मिश्रण जल में सरलता से घुल जाता है तथा वह बहुत दिन तक खराब भी नहीं होता। भारतीय स्किल में उपर्युक्त ग्लाइकोसाइड के अतिरिक्त गोंद, कर्बोज, फाइटोस्टेरॉल् (Phytosterol) एवं कॅल्शियम् ऑक्झॅलेट् (Calcium oxalate) आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, तिक्त, कफनिःसारक, हृदयोत्तेजक, हृद्य, मूत्रविरेचक तथा उत्क्लेश एवं वमनकारक है। इसकी क्रिया डिजिटॅलिस् (Digitalis) के समान होती है जिससे हृदय की गति कम होती है एवं हृदय का कार्य ठीक होने से हृदय को बल प्राप्त होता है। पचन-संस्थान द्वारा इसका प्रचूषण कम होने के कारण इसको अधिक मात्रा में देना पड़ता है लेकिन अधिक मात्रा में इससे महास्रोत में प्रक्षोभ होकर वमन, अतिसार एवं रक्तातिसार होता है। यह स्थानिक प्रक्षोभक प्रभाव इसमें के रॅफाइड्स (Raphides) के कारण होता है। हृदय पर इसका प्रभाव प्रत्यक्ष मांसपेशी की अपेक्षा प्राणदा नाडी (Vagus nerve) के द्वारा अधिक होता है। डिजिटॅलिस् की अपेक्षा इसकी क्रिया शीघ्र एवं अस्थायी होने के कारण इससे संचायी दुष्परिणाम नहीं होते।

अल्प मात्रा में इसके प्रयोग से आमाशय में साधारण प्रक्षोभ होकर प्रत्यावर्तन क्रिया द्वारा कफ निकलने लगता है।

वृक्क द्वारा उत्सर्ग के समय वृक्क कोशाओं को उत्तेजित करने के कारण डिजिटॅलिस् की अपेक्षा इससे मूत्रविरेचन अधिक होता है। अधिक मात्रा में रक्तमेह भी हो सकता है। इसका नूतन वृक्क रोगों में प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(१) हृदयोदर, सर्वांग शोफ एवं जलोदर आदि में इसका उपयोग किया जाता है। जिन व्यक्तियों में डिजिटॅलिस् के प्रति असहनशीलता होती है उनमें तथा जिनको जीर्ण कफविकार भी साथ २ रहते हैं उन्हें यह ज्यादा उपयोगी है। इससे काफी मात्रा में मूत्रस्राव होता है। इसका मूत्रल प्रभाव प्रत्यक्ष वृक्क कोशाओं की उत्तेजना से एवं रक्ताभिसरण की क्रिया ठीक होने से है। हृदयोदर में गेजपिल (Guy's Pill) नामक पारद एवं डिजिटॅलिस् के साथ बनी इसकी गोलियों का व्यवहार किया जाता है।

(२) बच्चों के जीर्ण श्वसनी विकारों में इसके शर्बत का उपयोग १०–१५ बूंद की मात्रा में किया जाता है। जीर्ण कफ विकारों में इससे तीन तरह से लाभ होता है। जीर्ण कफविकारों में हृदय के दक्षिण विभाग में जो शिथिलता आई रहती है वह दूर होती है, कफढीला होकर निकलने लगता है एवं पाचन सुधरकर शौच भी साफ होने लगता है। जिनमें कफ बहुत एवं चिपचिपा होता है उनमें इससे विशेष लाभ होता है। नूतन कफविकारों में इसका प्रयोग नहीं किया जाता। इपीकॅक् की अपेक्षा अधिक प्रक्षोभक होने के कारण वमन के लिये भी इसका उपयोग नहीं करते हैं।

(२) पादकंटक (Corn = कॉर्न) पर इसके कंद को पकाकर पीसकर गरम गरम बांधते हैं तथा मस्सों (Warts = वार्टस) पर इसके चूर्ण को मला जाता है।

मात्रा—शुष्क चूर्ण ½–१½ र०; सिरप् (शर्बत) ३०–६० बूंद; टिंक्चर ५–३० बूंद।

अथ भल्लातकः (भिलावा), तन्नाम तत्पक्कफलमज्जवृन्तानां तस्य च गुणानाह

भल्लातकं त्रिषु प्रोक्तमरुष्कोऽरुष्करोऽग्निकः। तथैवाग्निमुखी भल्ली वीरवृक्षश्च शोफकृत्॥
भल्लातकफलं पक्वं स्वादुपाकरसं लघु। कषायं पाचनं स्निग्धं तीक्ष्णोष्णं छेदि भेदनम्॥
मेध्यं वह्निकरं हन्ति कफवातव्रणोदरम्। कुष्ठार्शोग्रहणीगुल्मशोफानाहज्वरक्रिमीन्॥
तन्मज्जा मधुरा वृष्या बृंहणी वातपित्तहा। वृन्तमारुष्करं स्वादु पित्तघ्नं केश्यमग्निकृत्॥

भिलावा के नाम तथा उसके पके फल, मींगीं और वृन्त के गुण—भल्लातक (यह शब्द तीनों लिङ्ग में होता है), अरुष्क, अरुष्कर, अग्निक, अग्निमुखी, भल्ली, वीरवृक्ष और शोफकृत् ये सब भिलावा के पर्यायवाची नाम हैं। **भिलावे का पका फल**—पाक में मधुर रस युक्त, लघु, मधुर एवं कषाय रस युक्त, पाचक, स्निग्ध तीक्ष्ण तथा उष्णवीर्य, छेदी, भेदक, मेध्य (धारणशक्तिके लिये हितकर) एवं अग्निवर्धक होता है। यह कफ, वायु, व्रण, उदररोग, कुष्ठ, बवासीर, संग्रहणी, गुल्म, शोथ, आनाह, ज्वर तथा कृमि रोग को दूर करता है। **भिलावे की मींगी**—मधुर रस युक्त, वृष्य, बृंहण एवं वात पित्त को शान्त करने वाली होती है। **भिलावे का वृन्त** (ढेंपी जिसमें फल लगा रहता है) मधुर रस युक्त, पित्तनाशक, बालों के लिये हितकर तथा अग्निवर्धक होता है॥ २२८–२३१॥

अथ सामान्यतो भल्लातकगुणानाह

भल्लातकः कषायोष्णः शुक्लो मधुरो लघुः। वातश्लेष्मोदरानाहकुष्ठार्शोग्रहणीगदान्॥
हन्ति गुल्मज्वरश्वित्रवह्निमान्द्यकृमिव्रणान्॥ २३२॥

साधारण रूप से भिलावे का गुण—**भिलावा**—कषाय तथा मधुर रसयुक्त, उष्णवीर्य, वीर्यवर्धक एवं लघु होता है और यह वातकफ, उदररोग, आनाह, कुष्ठ, बवासीर, संग्रहणी, गुल्म, ज्वर, श्वित्रकुष्ठ, अग्निमान्द्य, कृमिरोग तथा व्रण को दूर करता है॥ २३२॥

८१ भिलावा।

हि०, पं०–भिलावा, भेला। **बं०**–भेला, भेलातुकी। **म०**–बिब्बा। **गु०, मा०**–भिलामो। **क०**–गेरकायि। **ते०**–जिडिचेट्टु, जीड़ीविट्टुलु। **ता०**–शेनकोट्टै। **मला०**–चेर्मर। **फा०**–बलादुर, बिलादुर। **अ०**–हब्बुलक़ल्ब, हब्बुल्फ़ह्म। **अं०**–The Marking-nut tree (दि मार्किङ्ग नट् ट्री)। **ले०**–*Semecarpus anacardium, Linn.* (सेमेकार्पस् ॲनाकार्डियम्, लिन.) Fam-Anacardiaceae (ॲनाकार्डिएसी)।

भिलावे के वृक्ष इस देश के विशेष कर गरम प्रान्तों में एवं हिमालय के निचले भागों में ३५०० फीट की ऊंचाई तक सतलज से पूर्व की ओर आसाम तक उत्पन्न होते हैं।

इसका **वृक्ष**–देखने में सुन्दर २० से ४० फीट तक ऊँचा होता है। **छाल**–एक इञ्च मोटी धूसर रंग की होती है। छाल पर चोट मारने से उसमें से एक प्रकार का दाहजनक भूरे रंग का गाढा रस निकलता है जो वार्निश बनाने के काम में आता है। **लकड़ी**–खाकी मिश्रित लाली युक्त सफेदी या भूरे रङ्ग की होती है। छोटी २ शाखाओं के नीचे कुछ तीक्ष्ण रोवें होते हैं। डालियों के अन्त में सघन पत्ते रहते हैं और वे ९ से २४ इञ्च तक लम्बे तथा ५ से १४ इञ्च तक चौड़े, ऊपर से लट्वाकार–आयताकार एवं सरल धारवाले होते हैं। माघ में पुराने पत्ते गिर जाते हैं और फागुन में नवीन पत्ते निकल आते हैं, माघ फागुन में इसका वृक्ष फूलता है किन्तु इसके सिवाय कई बार वृक्षों पर फूल देखने में आते हैं। नन्हें २ फूलों की मञ्जरियाँ आती हैं। **पुष्पदल**-हरापन युक्त सफेद या हरापन युक्त पीले होते हैं। **फल**–एक इञ्च लम्बा तथा पौन इञ्च चौड़ा, चिपटा सा, हृदयाकृति, चमकीले काले रंग का तथा चिकना होता है। कच्चे फलों में दूध जैसा श्वेत वर्ण का रस होता है जो पकने पर कुछ गाढ़ा एवं काले रंग का हो जाता है। इस फल का आधारभाग मांसल तथा नारंगी वर्ण के स्तम्भक से बना होता है जो खाने के काम आता है। फलत्वक् में एक स्फोटकारक विषैला रस होता है जिससे धोबी कपड़ों में निशान लगाने की स्याही बनाते हैं। फल के अन्दर की मज्जा स्वादिष्ट होती है तथा वह भी खाने के काम आती है। कुछ लोगों में पुष्पित भल्लातक वृक्ष के पास सोने से या पुष्पपराग की हवा लगने से शरीर पर सूजन आ जाती है।

भल्लातक शोधन—औषधि में प्रयोग के लिये अच्छे सुपक्व तथा जल में डालने पर जो डूब जाँय ऐसे भिलावों को लेकर कतर कर ईंट के टुकड़ों के साथ बोरे के अन्दर रगड़ कर फिर धोकर काम में लाना चाहिये। इससे उसके अन्दर का तैल सदृश रस कम होकर उसकी तीव्रता कम हो जाती है। इसके शोधन के पूर्व मुख, हाथ एवं पैर आदि खुले अंगों पर नारियल का तैल लगा लेना चाहिये। कुछ लोग फलों को केवल उबाल कर ठंडे जल से धोकर काम में लाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके रासायनिक संगठन के विषय में कुछ मतभेद हैं और अभी संशोधन की आवश्यकता है। लेकिन इतना निश्चित है कि फलत्वक् के स्वरस में एक दाहजनक तैलीय पदार्थ एवं मज्जा में काजू की तरह पौष्टिक द्रव्य और एक प्रकार का तैल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—भिलावा उष्ण, रसायन, मेध्य, वाजीकर, वातकफहर, मूत्रजनन, वातनाडीबल्य, अग्निवर्धक, व्रणोत्पादक एवं कुष्ठघ्न है। इसका प्रचूषण बहुत जल्दी होता है लेकिन उत्सर्ग बहुत देर में होता है। आमाशय एवं उत्तरगुद पर इसकी विशेष क्रिया होती है। यकृत पर उत्तेजक क्रिया होने से पित्तस्राव ठीक होता है जिससे भूख बढ़ती है एवं रक्ताभिसरण और विनिमय क्रिया ठीक होने से अर्श में लाभ होता है। त्वचा से उत्सर्ग के समय स्वेद आता है तथा त्वचा लाल हो जाती है। वृक्क पर उत्तेजक प्रभाव होने के कारण प्रारम्भ में मूत्र की मात्रा बढ़ती है लेकिन बाद में कम हो जाती है तथा कभी कभी मूत्र में खून भी आ जाता है। इसका वाजीकर प्रभाव वातनाड़ियों की उत्तेजना से एवं प्रत्यक्षतया मूत्रनलिका के प्रक्षोभ से होता है। प्रत्यक्ष मांसपेशियों की अपेक्षा वातनाड़ियों को बलप्राप्त होने से यह अनेक वातरोगों में लाभदायक है। इससे नाड़ी की गति बढ़ती है तथा हृदय का कार्य भी ठीक होने लगता है। रसग्रन्थियों की उत्तेजना से श्वेतकणों की वृद्धि होती है जिससे शोथ आदि में लाभ होता है। इस प्रकार शरीर की सभी क्रियाएं ठीक होने से योग्यरूप में सेवन से इसको अमृत के समान लाभदायक एवं रसायन मानते हैं।

बाह्य त्वचा पर भिलावे का तेल लगने से त्वचा काली होकर जलन होती है एवं फोड़े होकर व्रण उत्पन्न होते हैं। उचित रूप में प्रयोग करने से आन्तरिक प्रयोग में इस प्रकार के लक्षण नहीं होते।

इसका उपयोग अर्श, वातविकार, कफविकार, फिरंग, गण्डमाला, कृमि, विसूचिका, गुल्म, आमवात एवं कुष्ठ आदि रोगों में किया जाता है।

(१) भिलावे को दीपक पर गरम करने से जो तेल टपकता है वह दूध में टपकाकर हरिद्रा एवं मिश्री मिलाकर फुफ्फुस विकारों में रात के समय दिया जाता है। प्रारम्भ में एक बूंद तथा धीरे-धीरे इसे बढ़ाते हैं। तमकश्वास पीडित रोगियों के लिये शीत ऋतु में इसका नित्य प्रयोग लाभदायक है। उपजिह्वा एवं गलतोरणिका की शिथिलता से उत्पन्न कास में भी इससे लाभ होता है। फुफ्फुसपाक में मुलेठी के साथ भिलावा दिया जाता है।

(२) अग्निमांद्य, कुपचन, आनाह, विबन्ध, ग्रहणी, अर्श, उदर, गुल्म एवं विसूचिका आदि रोगों में इसका बहुत प्रयोग किया जाता है। इससे स्निग्ध पदार्थों का पाचन अच्छी तरह से होता है। अर्श में भिलावा, हर्रा एवं तिल समान मात्रा में लेकर दुगने गुड़ के साथ गोली बनाकर ३-६ माशा खिलाते हैं तथा इसका धुआं भी दिया जाता है। हैजे में एक भिलावे को आधा तोला इमली के साथ पीसकर २ तोला लहसुन के रस के साथ पिलाते हैं।

(३) रसायन के लिये १ भिलावे को काटकर एवं कूटकर १६ गुने जल में उबाल कर आधा रहने पर फिर ८ गुना दूध मिलाकर फिर उबाले तथा आधा शेष रहने पर उस क्षीर को छानकर १-२ तो० की मात्रा में प्रयोग करे। इसके पूर्व थोड़ासा घी मुख में चारों तरफ लगा लेना चाहिये तथा थोड़ासा घी निगलना भी चाहिये। प्रत्येक वर्ष शीत ऋतु में इसका उपयोग करने से किसी प्रकार के रोग नहीं होने पाते।

(४) वातनाडी शोथ, गृध्रसी, अर्दित, अंगघात, ऊरुस्तम्भ, मस्तिष्कावरण शोथ तथा मानसिक कार्य अधिक करने के कारण उत्पन्न थकावट में इसको इमली की पत्ती, लहसुन, वायविडङ्ग, नारियल का रस एवं मिश्री के साथ खिलाते हैं।

(५) भिलावा १ भाग, काजू ६ भाग एवं शहद १ भाग अच्छी तरह घोटकर २ माशा दिन में ४ बार देने से नूतन तथा तीव्र आमवात में दो तीन दिन में ही लाभ होता है। जीर्ण आमवात में विशेष लाभ नहीं होता है।

(६) गण्डमाला के लिये भिलावा २, अजवायन २ एवं पारद १ इसको घोंटकर चने बराबर इसकी गोली दही के साथ खिलाई जाती है।

(७) इसके तैल का आंतरिक एवं बाह्य प्रयोग किया जाता है। एक से दो बूंद तैल किसी अन्य तिलादि अक्षोभक तैल में मिलाकर फिरंग, गण्डमाला, कुपचन, अर्श, नाडी दौर्बल्य, चर्मरोग, कृमि, अपस्मार, अंगघात, आमवात एवं श्वास आदि रोगों में दिया जाता है।

(८) इसका क्वाथ दुग्ध एवं घृत के साथ नाडी शोथ, वातबलासक, संखिया के विष से उत्पन्न नाडीविकार एवं आर्तवविकार में लाभदायक है।

(९) इसके तैल का बाह्यप्रयोग प्रतिक्षोभक (Counter irritant) एवं स्फोटोत्पादक (Vesicant) के रूप में किया जाता है। जीर्ण त्वचा के रोगों में इसका ज्यादा उपयोग होता है। चर्मकील, दद्रु, किलास सन्धिपीडा, मोच, श्वित्र, गजचर्म, कुब्ज ग्रन्थि एवं प्लीहावृद्धि आदि पर सूई के नोक से कई जगह इसको लगाते हैं या इसको मक्खन के साथ मिलाकर मलहम के रूप में प्रयोग करते हैं।

(१०) इसकी मज्जा वाजीकर होती है। गरी एवं चिरौंजी के साथ इसका पाक सेवन कराया जाता है।

विषैला प्रभाव—किसी किसी को भिलावा सहन नहीं होता है। इससे मूत्र का रंग गहरा, शरीर में दाह, खुजली, चकत्ते, अतिसार, ज्वर एवं कभी-कभी रक्तमेह, फोड़े फूट कर व्रण एवं उन्माद आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। प्रारम्भ में मूत्र की मात्रा कम होती है तथा उसका रंग धुंधला होने लगता है। गुदा एवं शिश्नेन्द्रिय के मुख पर कण्डू उत्पन्न होती है। प्रारंभिक लक्षण उत्पन्न होते ही औषधि को बन्द कर नारियल का दूध या इमली की पत्ती का रस या तिल एवं नारियल खाने को देना चाहिये। शरीर पर नारियल का तेल, घी, राल या नागद्रव (Lead lotion–लेड लोशन) का बाह्य उपयोग करना चाहिये।

पथ्य—भिलावे के प्रयोग के समय घी, दूध एवं चावल का सेवन अधिक करना चाहिये।

वर्ज्य—धूप में घूमना, स्त्रीसहवास, मांसभक्षण, नमक, व्यायाम एवं तैलाभ्यङ्ग आदि छोड़ देना चाहिये।

निषेध—पैत्तिक विकार, रक्तस्रावी प्रवृत्ति, गर्भिणी, बाल, वृद्ध, अतिसार, वृक्कशोथ एवं उष्ण काल में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

मात्रा—तैल—१-२ बूंद, अवलेह—१/४-१/२ तो०, क्षीरपाक—१-२ तो०।

अथ भङ्गा (भांग), तस्या नाम गुणानाह

भङ्गा गञ्जा मातुलानी मादिनी विजया जया ॥ २३३ ॥
भङ्गा कफ हरी तिक्ता ग्राहिणी पाचनी लघुः। तीक्ष्णोष्णा पित्तला मोहमदवाग्वह्निवर्द्धिनी ॥

भांग के नाम तथा गुण—भङ्गा, गञ्जा, मातुलानी, मादिनी, विजया और जया ये सब भांग के पर्यायवाची नाम हैं। **भांग**–कफ को दूर करने वाली, तिक्तरस युक्त, ग्राही, पाचक, लघु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, पित्तकारक तथा मोह, मद, वाणी और जठराग्नि को बढ़ाने वाली होती है॥

८२ भांग

हि०–भांग, भंग, बूटी। **बं०**–सिद्धि। **म०-पं०-मा०**–भांग। **गु०**–भांग। **ते०**–गंजायि। **ब्रह्मी०**–बिन। **मा०**–बूटी। **क०**–भंगी। **ता०**–कञ्जा। **फा०**–क(कि)नब, बंग। **अ०**–हशीश, बर्कुल ख्याल।

गांजा

हि०–गांजा, गंजा, गांझा। **बं०, म०**–गांजा। **ता०**–गांजा, येला। **गु०**–गांजो। **ते०**–गाञ्जाई, बंगि-अकु। **फा०**–किन्नब। **अ०**–कु(कि)न्नब। **अं०**–Indian hemp (इण्डियन हेम्प), Cannabis (कॅन्नाबिस्)। **ले०**–*Cannabis sativa, Linn.* (कॅन्नाबिस् सेटाइवा, लिन.); Cannabis indica Lam. (कॅन्नाबिस् इण्डिका लॅम.)। Fam. Cannabinaceae (कॅन्नॅबिनॅसी)।

इसका पौधा भारतवर्ष में हिमालय के निचले प्रदेशों में करीब २ अपने स्वाभाविक रूप में उत्पन्न होता है तथा पंजाब से पूर्व की ओर बंगाल एवं बिहार तक तथा दक्षिण की ओर परती भूमि में बहुतायत से प्राप्त होता है। उत्तरप्रदेश के अल्मोड़ा, गढवाल तथा नैनीताल जिलों में इसकी उपज की जाती है। ट्रावनकोर तथा काश्मीर में भी अल्प मात्रा में इसकी उपज की जाती है। भांग का पौधा पश्चिमी तथा मध्य एशिया का नैसर्गिक (Native–नेटिव) माना जाता है। मुंगेर, पञ्जाब, नागपुर, बहराइच आदि जिलों की भंग अच्छी समझी जाती है। इसका **क्षुप**–सीधा ३ से ८ फीट एवं कभी-कभी १६ फीट तक ऊंचा होता है। **पत्ते**–नीचे के समवर्ती और विषमवर्ती दोनों प्रकार के करतलाकार तथा आधार तक कटे हुवे होते हैं। ऊपर वाले पत्ते १–५ भागों में विभक्त और नीचे वाले ५ से ११ खण्ड में कटे हुए तथा ३ से ८ इञ्च के घेरे में रेखाकार-भालाकार दिखाई पड़ते हैं। इनके खण्ड तीक्ष्ण दन्तुर, लम्बाग्रयुक्त, आधार की तरफ संकुचित तथा इनका ऊर्ध्व पृष्ठ गहरे हरे रंग का खुरदरा एवं अधोपृष्ठ हलके रंग का मृदुरोमश होता है। **फूल**–हलके पीत-हरित रंग के, अद्विलिंगी एवं गुच्छेदार होते हैं। **फल**–बहुत छोटे, कुछ दबे हुवे, बीज के समान चर्मल फल (Achene=एचीनी), स्थायी परिपुष्प (Perianth=पेरियँथ) से आवृत एवं एक २ बीजों से युक्त होते हैं।

भांग के क्षुप स्त्री जाति और पुरुष जाति इन भेदों से दो प्रकार के होते हैं। स्त्री जाति का क्षुप कुछ अधिक ऊँचा तथा उसमें पत्र बहुतायत से तथा गहरे वर्ण के होते हैं। इसका क्षुप पुरुष जाति के क्षुप की अपेक्षा ५, ६ सप्ताह अधिक समय में परिपुष्ट होता है। **भांग**–यह उपज किये हुए या अपने आप उत्पन्न इस क्षुप के स्त्री एवं पुरुष जाति के सूखे हुए पत्तों को कहते हैं। इसमें पुरुष जाति के पुष्प भी होते हैं। पुरुष जाति के पुष्प, पत्तों की अपेक्षा अधिक मादक नहीं होते जैसा कि स्त्री जाति के पुष्प होते हैं। जून एवं जुलाई के महीने में अधिक ऊँचाई पर होने वाले क्षुपों का एवं मई और जून में मैदानी प्रान्तों वाले क्षुपों का संग्रह किया जाता है। उन्हें काटकर ओस तथा धूप में बार २ रख कर सुखाते हैं तथा सूखने पर दबाकर रखा जाता है। **गांजा**–उपज किये हुए स्त्री जाति के क्षुपकी सूखी हुई रालदार पुष्पमञ्जरी को गांजा कहते हैं। इसका रंग मटमैला, हरा, स्वाद कुछ कटु एवं गंध विशिष्ट प्रकार की मादक होती है। गांजे की जटा १॥ इञ्च से २॥ इञ्च तक लम्बी तथा चौड़ी होती है। एक २ इञ्च लम्बी लकड़ियों के चारों ओर फूलदार शाखाएँ

लगी रहती हैं। **चरस**–गांजा के वृक्ष से एक लसदार राल के समान रस निकल कर जम जाता है उसी को चरस कहते हैं। ओस पड़ने के पश्चात् सुबह चमड़े का कपड़ा पहन कर वृक्षों में रगड़ने से समस्त चरस कपड़े पर लग जाता है उसी को चमड़े से पृथक् कर गोले या ढेले बना लेते हैं। या हाथ और पैरों से पुष्पमञ्जरियों को रगड़ कर हाथ पैरों में चिपके हुए भाग को खुरच कर जमा कर लेते हैं। हिन्दुस्तान में उत्पन्न हुए वृक्षों से चरस पृथक् नहीं की जाती इसलिये यहां गांजा तैयार हो जाता है। भारतवर्ष में चरस यारकंद से, काश्मीर के लेह के रास्ते आता है। भारत के दक्षिण तथा पश्चिम में अधिकतर गांजा नाम से भांग और गांजा दोनों का प्रयोग होता है। भांग तो पीस कर बनाये हुये पेय को अधिकतर कहा जाता है। पुरी की तरफ गांजे को ही पीसकर बने पेय को भांग कहा जाता है। भांग, गांजा, चरस तथा बीजों का औषध में व्यवहार किया जाता है तथा मादक पेय एवं धूम्रपान आदि के व्यसन के रूप में लोग इनका बहुत व्यवहार करते हैं। चरक सुश्रुतादि प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं है लेकिन बाद में ग्रन्थकारों ने इनका भांग नाम से अधिकतर उपयोग किया है।

शोधन–भांग तथा गांजे को दूध में दोलायंत्र में पकाकर जल से धोकर सुखाकर प्रयोग में लाना चाहिये।

रासायनिक संगठन—गांजे में कॅन्नाबिनोन् (Cannabinone) नामक एक मुलायम बादामी रंग की राल होती है। इस राल का प्रधान तत्व एक लाल रंग का गाढा मादक (Narcotic) तैल होता है जो वायु के साथ संपर्क में आने पर गाढा तथा अल्प वीर्य हो जाता है। इस तैल में एक कॅन्नाबिनोल् (Cannabinol; $C_{21} H_{26} O_2$) नामक विषैला तत्व रहता है जो इसमें का कार्यकारी तत्व नहीं है। इस राल के अतिरिक्त इसमें गोंद, शर्करा, कॅल्शियम् फॉस्फेट् (Calcium phosphate), अत्यल्प मात्रा में उड़नशील तैल, सेन्द्रिय अम्ल, कलमी सोरा एवं नौसादर आदि पदार्थ पाये जाते हैं। अफ्रीकी, अमेरीकी एवं भारतीय किस्मों के गुणों में विशेष अन्तर नहीं है तथा शुष्क अवस्था में अच्छी तरह रखने से बहुत दिन तक इसके गुण भी कम नहीं होते। गांजे में करीब २६%, भांग में १०% एवं चरस में ४०% राल होती है।

गुण और प्रयोग—भांग एवं गांजे के गुण करीब २ समान ही हैं लेकिन भांग की क्रिया विशेषतः आमाशय एवं आंत्र पर, अधिक होती है तथा यह गांजे की अपेक्षा अधिक ग्राही होती है।

यह उत्तेजक, वेदनाहर, शांतिकारक, क्षुधावर्धक, आह्लादकारक, सौमनस्यजनन, स्वापजनन, आक्षेपनिरोधी (Anticonvulsant), उद्वेष्टननिरोधी (Antispasmodic), गर्भाशयसंकोचक, मूत्रजनन, संग्राही, बल्य, वाजीकर एवं स्थानिक स्वापजनन है।

इसकी प्रधान क्रिया मस्तिष्क पर होती है। सेवन के पश्चात् करीब आधे घंटे में इसका प्रभाव मालूम होने लगता है। गांजे के धूम्रपान के पश्चात् तुरत असर होता है। इसकी क्रिया अफीम तथा मद्यसार की तरह होती है लेकिन इसके वीर्य में विभिन्नता होने के कारण इसका प्रभाव अनिश्चित होता है। अल्प मात्रा में इसके सेवन से कुछ उत्तेजना आती है तथा आह्लाद मालूम होने लगता है। किसी भी कार्य में मन एकाग्र होता है। इसके प्रभाव से काल एवं व्यक्तित्व का ज्ञान नहीं रहता तथा ऐसा मालूम होता है कि घण्टों तक आनन्द से बीता जब कि केवल कुछ मिनट ही बीते रहते हैं। अधिक मात्रा में प्रलाप होता है तथा तत्पश्चात् निद्रा आती है। निद्रा के पश्चात् अफीम की तरह इससे थकावट नहीं आती तथा उतना विबन्ध भी नहीं होता। आक्षेप

निरोधी, उद्वेष्टन निरोधी एवं वेदनाहर गुण बहुत स्पष्ट हैं। भांग से बने पेय से मूत्र की मात्रा बढती है। इसका गर्भाशय संकोचक प्रभाव प्रत्यक्ष मांसपेशी के संकोच एवं अप्रत्यक्षतया नाडी-संस्थान के द्वारा होता है। सांवेदनिक नाडियों की संवेदना शक्ति का घात होने से चर्म में शून्यता तथा झुनझुनाहट होती है। नाडी की गति उत्तेजना की अवस्था में बढ़ जाती है तथा बेहोशी की अवस्था में कम हो जाती है। उत्तेजना की अवस्था में श्वसन क्रिया शीघ्र होने लगती है।

साधारण मात्रा में इसके व्यसन से शारीरिक वा मानसिक कोई विकृति नहीं होती है। यह धारणा कि इसके व्यसन से पागलपन (Insanity) की प्रवृत्ति बढती है सिद्ध नहीं हुई है। अधिक मात्रा में यदि निरन्तर उपयोग किया जाय तो शरीर एवं मन को हानि पहुँचती है तथा आत्म-सम्मान का ह्रास एवं नैतिक पतन हो जाता है।

(१) संग्रहणी, अतिसार, रक्तातिसार, कुपचन, आमाशय में पीड़ा एवं विसूचिका में अन्य औषधों के साथ इसका उपयोग किया जाता है। इससे भूख बढ़ती है एवं उद्वेष्टन तथा पीडा दूर होती है। विरेचक औषधों के साथ प्रयोग से मरोड़ नहीं होती। विसूचिका के प्रारम्भ में ही इसको देने से लाभ होता है। अतिसार के पश्चात् रोग निवृत्तावस्था में इसका पानक शान्तिदायक औषध के रूप में व्यवहार में आता है।

(२) वेदनाहर गुण के कारण पुराने सिर दर्द, सूर्यावर्त (Migraine = माइग्रेन), रजोनिवृत्ति के समय होनेवाले एवं थकावट आदि से उत्पन्न शिरःशूल में इसका उपयोग किया जाता है। वातनाड़ीशोथ में गांजा के साथ पारद देते हैं एवं वातनाड़ीपीड़ा में गांजा, सोमल एवं लोह देते हैं। टेबीज् डॉर्सलिस् (Tabes dorsalis) नामक फिरंग से उत्पन्न रोग में एक प्रकार की विद्युत् के समान चपल एवं तीव्र पीड़ा (Lightning pains) होती है जिसमें गांजे से लाभ होता है।

(३) वेदनाहर एवं उद्वेष्टननिरोधी गुण के कारण आन्त्रिक, पैत्तिक एवं वृक्क शूल तथा बस्ति उद्वेष्टन एवं सोजाक से उत्पन्न वेदनायुक्त शिश्नोत्थान (Chordee) में इसका उपयोग किया जाता है। अपतन्त्रक, कम्पवात, वातिक वमन एवं बालकों के आक्षेप में इससे लाभ होता है।

धनुर्वात (Tetanus) के लिये यह बहुत लाभदायक है। इसको अधिक मात्रा में एवं अधिक दिन तक प्रयोग करना पड़ता है। जलसंत्रास (Hybrophobia) में आक्षेप कम करने के लिये इसको देते हैं।

(४) स्वापजनन गुण के कारण निद्रानाश विशेष कर वृद्धावस्था के निद्रानाश (Senile insomnia) में इसका उपयोग किया जाता है।

(५) गांजा से गर्भाशय में सङ्कोच होता है एवं वेदना भी कम होती है जिससे पीडितार्तव, अत्यार्तव तथा प्रसव के समय आवि वृद्धि के लिये इसको देते हैं। बीजकोश पीडा (Ovarian irritation) में इसको देते हैं।

(६) अर्श में इसके आन्तरिक प्रयोग के साथ भांग को दूध में उबाल कर पीस कर उसकी टिकिया बांधते हैं। हरिद्रा, प्याज तथा तिल के साथ पीस कर लेप करने से एवं इसके धूएँ से भी लाभ होता है।

(७) गांजा अत्यन्त वाजीकर है। मस्तिष्क के ऊपर प्रभाव से आह्लाद उत्पन्न होकर कामवासना बढ़ती है एवं रक्ताभिसरण को उत्तेजना मिलने से शिश्न अधिक कठोर हो जाता है। इसके साथ २ संवेदना शक्ति के ह्रास से अधिक काल तक घर्षण करने से भी शुक्र पात नहीं होता। अफीम, धतूरा एवं अन्य औषधों के साथ बने पाक का प्रयोग नपुंसकता एवं शीघ्रपतन आदि में किया जाता है।

(८) शुष्क कास, कुकास एवं तमक श्वास में इसको खिलाते हैं अथवा इसका धूम्रपान कराते हैं। फुफ्फुसावरण शोथ में पीड़ा शमन के लिये अफीम की अपेक्षा यह अधिक अच्छी है।

(९) जीर्ण आमवात में इसको खिलाते हैं तथा इसके बीजों का तेल मालिश किया जाता है।

(१०) स्थानिक वेदनाशामक होने के कारण विसर्प, वातिक पीड़ा, खुजली एवं जलन में इसका लेप उपयोगी है। अरूंषिका (Dandruff) तथा जूं आदि में सर पर इसका लेप करते हैं।

चरस—यह मदकारी, शुक्रस्तम्भन, मूर्च्छा एवं हृदयदौर्बल्य कारक है। इससे हृल्लास, विबन्ध एवं शिरःशूल आदि नहीं होते तथा तम्बाखू के साथ इसका धूम्रपान उन्माद एवं अपतन्त्रक आदि में शामक औषध के रूप में किया जाता है।

विषैला प्रभाव—भांग एवं गांजा आदि अधिक मात्रा में लेने से आंखें लाल हो जाती हैं। चेहरा फूल सा जाता है, पैर लड़खड़ाते हैं तथा बुद्धि एवं स्मृति का नाश, अग्निमान्द्य, अनिद्रा, दौर्बल्य, प्रलाप एवं शिरःशूल आदि लक्षण होते हैं। क्वचित् हृदयातिपात से मृत्यु होती है।

हानिनिवारक—वमन कराना एवं दूध, दही, घृत तथा नारंगी, अनार, अमरूद आदि फलों के रस पिलाना चाहिये।

मात्रा—भांग १–४ र०; गांजा १/२–१ र०; चरस १/८–१/२ र०।

अथ खाखसः (पोस्ता)। तस्य नामानि तत्फलोद्भववल्कलगुणानाह

तिलभेदः खसतिलः खाखसश्चापि स स्मृतः। स्यात् खाखसफलोद्भूतं वल्कलं शीतलं लघु॥
ग्राहि तिक्तं कषायञ्च वातकृत् कफकासहृत्[1] ॥ २३६ ॥
धातूनां शोषकं रूक्षमदकृद्वाग्विवर्धनम्[2]। मुहुर्मोहकरं रुच्यं सेवनात्पुंस्त्वनाशनम् ॥२३७॥

पोस्ता के नाम तथा गुण—तिलभेद, खसतिल और खाखस ये सब नाम पोस्ता के हैं। **पोस्ता के फल का छिलका** शीतल, लघु, ग्राही, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, वातकारक, कफ तथा कास को दूर करने वाला, धातुओं को सुखाने वाला, रूक्ष, मदकारक, वाणी को बढ़ाने वाला, बार-बार मोहकारक, रुचिकारक और नित्य सेवन करने से पुरुषत्व को नाश करने वाला होता है ॥२३५-२३७॥

८३ पोस्ता

क्षुपनाम—हि०-पोस्ता। बं०-पोस्तार गाछ। अ०-नबातुल खश्खाश। फा०-कोकनार। ले०-*Papaver somniferum, Linn.* (पॅपेवर सॉम्निफेरम्, लिन.)। Fam. Papaveraceae (पॅपॅवेरेसी)।

फलनाम—हि०-पोस्त, पोस्ता, खसखस का फल, पोस्त के डोडे। बं०-पोस्तोढेरी। म०-अफूचे बोंड, खसखशीचे बोंड। गु०-अफीणना डोडा। ते०-गसगसालु। ता०-गशगशा चेडि। मला०-कशकशा चेटि। फा०-पोस्ते कोकनार। अ०-किश्रुल खश्खाश बुस्तानी। अं०-Poppy Capsule (पॉपी कैप्स्यूल्)। ले०-*Papaveris capsulae* (पॅपेवेरिस् कॅप्स्यूली)।

अफीम के क्षुप को **पोस्ता** कहा जाता है। यह क्षुप बाहर से भारतवर्ष में आया है लेकिन यहां की जलवायु अनुकूल होने के कारण इसकी यहां खेती की जाने लगी। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट एवं चक्रदत्त में अफीम का उल्लेख नहीं है। शार्ङ्गधर (१४, १५ वीं शताब्दी) एवं भावप्रकाश

१. 'तद् कफासे'ति पा०। २. 'मेहमदवाग्वह्निवर्धनमि'ति पा०।

(१६ वीं शताब्दी) में इसका प्रयोग किया गया है। अफीम की जानकारी के पूर्व लोग पोस्ते की डोडी का उपयोग उत्तेजक एवं मादक पेय के रूप में करते थे। अफीम की खोज सम्भवतः सर्व-प्रथम ग्रीस में हुई तथा पहली शताब्दी में 'एशिया माइनर' इसके व्यापार का केन्द्र रहा। अरबों ने इसका प्रचार चीन एवं भारतवर्ष में किया। मुगलों के समय भारत में इसकी व्यापकरूप में खेती की जाती थी जिससे लोग इसकी डोडी का उपयोग 'कुकनार' नामक मादक पेय के रूप में करते थे। यहां से चीन एवं पूर्वीय देशों को काफी मात्रा में अफीम जाती थी। पंजाब में 'पोस्त' नाम से कुकनार की तरह पेय का प्रयोग किया जाता था। अंग्रेजों के समय इसकी खेती पर व्यापक नियन्त्रण के कारण धीरे धीरे इसकी खेती कम होती गई तथा पोस्ते की डोडी का भी उपयोग कम हो गया। अंग्रेजों के समय इसकी उपज के ३ केन्द्र थे। बिहार एवं बंगाल की अफीम 'पटना या बंगाली' अफीम, उत्तर प्रदेश की अफीम 'बनारसी' एवं राजपुताना के ग्वालियर, भोपाल तथा बड़ोदा आदि स्थानों की अफीम 'मालवा' अफीम कहलाती थी। पञ्जाब के कुछ भागों में धार्मिक आधार पर इसके खेती को छूट है अन्यथा इसकी खेती के लिये अनुमति पत्र लेना पड़ता है तथा पूरी उपज सरकार निश्चित मूल्य पर खरीद लेती है।

आजकल इसकी खेती उत्तरप्रदेश, पूर्वी पञ्जाब, राजपुताना एवं मध्यभारत में की जाती है। एशिया, यूरोप एवं उत्तरी अफ्रीका के साधारण उष्ण प्रदेशों में भी इसकी खेती की जाती है। अक्तूबर, नवम्बर महीने में इसके बीजों को बोते हैं। दिसम्बर में सरकारी अफसर खेत की जांच करते हैं। जनवरी से मार्च तक अफीम का संग्रह करके अप्रिल से जून तक बिकने के लिये भेजी जाती है।

काले, लाल और सफेद फूलों के भेद से पोस्त तीन प्रकार के होते हैं। इनमें सफेद फूल वाला पोस्त सबसे अधिक प्रायः सम्पूर्ण भारतवर्ष में होता है। संयुक्तप्रान्त, बिहार और बङ्गाल की ओर सफेद ही होता है। इसका एक वर्षायु **क्षुप**–२–४ फुट तक ऊंचा होता है। **कांड**–चिकना चमकीला हरित कचित् अल्प रोमश एवं अल्प शाखा युक्त होता है। **पत्र**–आयताकार, विषम दन्तुर, अल्पशः तरंगी या खण्डित एवं उनका हृदयाकृति फलकमूल कांड को घेरे रहता है। **फूल**–कटोरीनुमे बहुत सुहावने दिखाई पड़ते हैं। फूल खिलने के एक महीने बाद पुष्पदल के बीच डोंडी (फल) लगती है। **डोंडी** (Capsule)—अण्डाकार या करीब-करीब वर्तुलाकार, २–३ इञ्च के घेरे में एवं कभी-कभी आधार एवं शीर्ष पर दबी हुई होती है। इसका शीर्ष टोप की तरह कंगूरे-दार, १२–१५ कंगूरों से युक्त एक बड़े कुक्षि (Stigma = स्टिग्मा) से बना होता है। इसका आधार संकुचित होकर एक ग्रीवा बनाता है जो पुष्प दण्ड की तरफ फैली हुई रहती है। इसका रंग हलका पीताभ या भूरा एवं इस पर कुछ काले रंग के धब्बे रहते हैं। इसकी महीन एवं भिदुर फल भित्ति से अन्दर की तरफ १२–१५ महीन अन्तर्भित्तियां निकली रहती हैं जो बीच में आपस में मिलती नहीं। इसमें शीर्ष पर अक्षि के ठीक नीचे चारों तरफ कई छिद्र बन जाते हैं जिनसे बीज बाहर निकल कर बीज स्फुटन (Dehiscence) होता है। इसी डोंडी से अफीम निकाली जाती है। सफेद फूल वाले पोस्ते से मॉर्फीन (Morphiue) सबसे कम निकलती है। बाजार में मिलने वाली डोंडी टूटी-फूटी तथा उन पर लम्बाई में या आडेबल में चीरे लगे होते हैं। डोंडी के खानों के भीतर छोटे-छोटे करीब-करीब सफेद रंग के वृक्काकृति अनेक **बीज** होते हैं। इनकी सतह जाली-दार एवं किनारे सीधे होते हैं। ये गन्धहीन एवं इनका स्वाद मधुर एवं कुछ कड़वा होता है।

काले या नीले फूल तथा काले डण्ठल वाला पोस्ता राजपुताना एवं मध्यभारत में बहुत पाया जाता है। इसका पौधा बहुत छोटा और डोंडे भी बहुत छोटे-छोटे होते हैं। इसमें मॉर्फीन (Morphine) श्वेत जाति की अपेक्षा तिगुनी निकलती है।

लाल फूल वाला पोस्ता हिमालय पहाड़ में पाया जाता है। काश्मीर और उत्तरीय भारत के मैदानों में २–३ प्रकार का लाल फूल का पोस्ता स्वयं उत्पन्न होता है। इसके फूलों को 'गुललाला' कहते हैं। इसके डोंडे से गहरे रंग के पोस्तदाने निकलते हैं। लाल फूल वाले पोस्ते से मॉर्फीन मध्यम मात्रा में निकलती है।

रासायनिक संगठन—पोस्ते की डोंडी में ०.१–०.३% मॉर्फीन (Morphine) एवं अत्यल्प मात्रा में कोडीन (Codeine), पॅपॅहेराइन (Papaverine) एवं नार्कोटीन (Narcotine) आदि क्षाराभ एवं मैकोनिक एसिड (Meconic acid) आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—पोस्ते की डोंडी में अल्प मात्रा में अफीम के क्षाराभ होने के कारण यह निद्राकर, मादक, वेदनाहर, ग्राही एवं रक्तस्तम्भक होती है।

(१) वेदनाहर एवं निद्राजनक होने के कारण इसके फांट या क्वाथ को शिरःशूल, अर्धावभेदक, पार्श्वशूल, कटिशूल, गृध्रसी, उन्माद एवं अनिद्रा आदि में पिलाते हैं तथा इसका स्थानीय लेप किया जाता है। गले के दर्द में इससे गण्डूष कराते हैं।

(२) ग्राही औषधियों के साथ अतिसार एवं संग्रहणी में इसका चूर्ण बहुत लाभदायक है। रक्तातिसार में देने से रक्त गिरना भी बन्द हो जाता है। बच्चों के दन्तोद्भेद के समय होने वाले अतिसार में इसका प्रयोग किया जाता है।

(३) मोच, सूजन एवं चमड़े के छिल जाने आदि में इसके फांट या क्वाथ से सेंका जाता है।

(४) शुष्क कास में अन्य औषधों के साथ इसके चूर्ण का उपयोग लाभदायक है।

(५) पीडायुक्त नेत्राभिष्यन्द में इसका लेप नेत्र के चारों तरफ लगाते हैं।

(६) कर्णपीडा में इसके क्वाथ से सेंका जाता है।

(७) कोकनार नामक मादक पेय के रूप में इसका बहुत प्रयोग किया जाता था एवं अफीम की जानकारी के पूर्व भी मादक एवं उत्तेजक पेय तथा शामक औषध के रूप में इसका व्यवहार किया जाता था।

मात्रा—१–२ माशा।

अथाहिफेनकम् (अफीम)। तस्य नामगुणानाह

उक्तं खसफलक्षीरमाफूकमहिफेनकम्। आफूकं शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वातपित्तलम्।
तथा खसफलोद्भूतवल्कलप्रायमित्यपि ॥ २३८ ॥

अफीम की उत्पत्ति, नाम तथा गुण—पोस्ता के फल के दूध से अफीम बनती है। अतः इसे खस-फलक्षीर भी कहते हैं। खसफलक्षीर, आफूक और अहिफेनक ये नाम अफीम के हैं। **अफीम**–रक्तादि धातुओं की शोषक, ग्राही, कफनाशक एवं वातरक्तकारक होती है तथा पोस्ता के फल के छिल्के के जितने गुण हैं वे भी इसमें रहते हैं ॥ २३८ ॥

८४ अफीम।

हि०–अफीम, अफयून। **बं०**–आफिम। **म०**–अफू। **मला०**–आलन। **मा०**–अफीम, अमल। **गु०**–अफीण। **ते०**–अभिनि। **क०**–अफिनि। **ता०**–अबिनी। **अ०**–अफ्यून, लबूनुल् खश्खाश। **अं०**–Opium (ओपियम्)।

उक्त पोस्त के डोडे से अफीम निकाली जाती है। माघ के महीने में इस पर फूल आने के दो सप्ताह बाद डोडे अफीम निकालने लायक जब बड़े हो जाते हैं तब कच्चे (Unripe) डोडों के चौतरफा प्रायः शाम को चीरा कर देते हैं और प्रातःकाल लोहे के चमचा से चीरा द्वारा निकला हुआ दुधिया गोंद उठा लेते हैं। इसी प्रकार ३–४ दिन अन्तर देकर चीरा करते हैं और गोंद इकट्ठा करते हैं। जमीन पर गिरे हुए फूलों को इकट्ठा कर अफीम बाँधने का काम उनसे लिया जाता है।

इस प्रकार दूधिया गोंद को इकट्ठा कर कांसे की थाली में रख देते हैं और उसमें से जो जल निकलता है उसको फेक देते हैं। प्रायः एक मास में गाढ़ा होने पर मिट्टी के पात्र में रख देते है। यही अफीम है। अफीम सरकार का व्यवसाय होने से सरकारी गुदाम में जमा की जाती है। सरकारी अफीम तीन प्रकार की होती है। पटना अफीम, बनारसी अफीम और मालवा अफीम। मालवा की अफीम सबसे अच्छी समझी जाती है। **भारतीय अफीम** घनाकार (Cubical) करीब १ सेर के टुकड़ों में पतले नेपाली कागज में लपेटी रहती है। यह कठोर एवं भिदुर (Brittle) या कुछ लचीली होती है। इसका आन्तरिक भाग गहरे बादामी (Dark brown) रंग का, चमकीला, चिकना एवं समांग (Homogeneous) होता है। इसमें एक विशिष्ट प्रकार की तीव्र अप्रिय गन्ध होती है तथा इसका स्वाद कडवा होता है। भारतीय अफीम आबकारी एवं औषधीय ऐसे दो प्रकार की होती है। पहले अफीम की खपत चीन देश में बहुत होती थी परन्तु वहां वालों के अफीम खाने के व्यसन को बहुत कमकर देने से तथा सरकारी नियंत्रण के कारण हमारे देश की अफीम की खेती बहुत कम हो गई है और कई एक सरकारी गुदाम भी तोड़ दिये गये हैं। सन् १७९७ में स्थापित गाजीपुर की अफीम फैक्टरी, जो आज भी विश्व में सबसे बड़ी फैक्टरी है, उसका उत्पादन पहले से बहुत घट गया है। आजकल वहां प्रति वर्ष १२ हजार मन से अधिक अफीम तैयार नहीं होती जहां पहले १। लाख मन तक प्रतिवर्ष तैयार होती थी। स्वदेश में १५०० मन वार्षिक की खपत है जिसमें से उड़ीसा सबसे बड़ा खरीददार है। इसके बाद पेप्सू, पंजाब तथा उत्तरप्रदेश का क्रम है। कारखाने से करीब ३००० रूपये प्रतिमन के भाव से अफीम निकलती है।

अफीम बहुधा मिलावटी होती है। इसका वजन बढ़ाने के लिये धूर्त लोग पोस्तदाने के पत्ते तथा अनेक वस्तुएँ मिला देते हैं जिससे औषधि के काम में यह अनुपयोगी हो जाती है। इसलिये वैद्यों को परीक्षा करके व्यवहार करनी चाहिये।

परीक्षा—(१) करीब ०.१ ग्रा. अफीम को ५ सी. सी. जल में गरम कर, फिल्टर कागज से छान करके (Filtration) उस द्रव में फेरिक् क्लोराइड् (Ferric chloride) के घोल के कुछ बूँद डालने से एक गहरा बैंगनी लाल (Deep purplish-red) रंग उत्पन्न होता है। यह रंग उस घोल में मंद नमक के तेजाब (Dilute hydrochloric acid) के कुछ बूँद डालने से या उसी प्रकार मर्क्यूरिक् क्लोराइड् (Mercuric chloride) के घोल के मिलाने से मिटता नहीं।

(२) ०.२ ग्रा. अफीम के चूर्ण को ५ सी. सी. क्लोरोफॉर्म एवं अमोनिया (Ammonia) के मंद घोल के कुछ बूँदों के साथ १० मिनट हिलावें। फिर एक शीशे की तश्तरी में रख दें जिससे क्लोरोफॉर्म उड़ जाय, जिसके उड़ जाने के बाद बाहर की तरफ एक धूसर श्वेत रवेदार पदार्थ का वलय रह जाता है। इसमें यदि फॉरमॅल्डिहाइड् (Formaldehyde) के घोल का १ बूँद और गन्धक के तेजाब (Sulphuric acid) के पांच बूँद का मिश्रण मिलाया जाय तो गाढ़ा किरमिजी (Crimson) रंग उत्पन्न होता है।

प्रमाप (Standard)—अफीम में ९.५% से कम मॉर्फीन (Morphine) नहीं होनी चाहिये।

अच्छी अफीम धूप में रखने से जल्दी पिघलने लगती है, अग्नि पर डालने से जलने लगती है पर कोयला नहीं बनती, जलते समय उसकी ज्वाला स्वच्छ निकलती है, मल या धूआं विशेष नहीं होता और बुझाने से अत्यन्त तीव्र और मादक गन्ध निकलती है। स्वच्छ अफीम को १०–५ मिनट सूँघने से नींद आती है।

शोधन—बाजारू अफीम को जल में घोलकर, छानकर मंद आंच पर गाढ़ा कर लें। फिर इसको आर्द्रक स्वरस की २१ भावना देकर औषध के काम में लाना चाहिये।

भारतीय अफीम के अतिरिक्त तुर्की, यूरोपीय एवं पर्शियन अफीम होती है जिनके क्षाराभों की मात्रा में कुछ अन्तर होता है तथा उनके स्वरूप में भी कुछ अन्तर होता है। अफीम की उत्तमता उसमें की मॉर्फीन की मात्रा पर निर्भर रहती है। भारतीय अफीम इस दृष्टि से काफी अच्छी होती है।

रासायनिक संगठन—भारतीय औषधि अफीम में अनेक क्षाराभ पाये जाते हैं जिनकी मात्रा में भी समय समय पर फरक रहता है। इसमें मॉर्फीन (Morphine) ७–१२%, नार्कोटीन (Narcotine) १.५–१२.५%, कोडीन (Codeine) ०.३–४.०% तथा थीबेन (Thebaine), पॅपेह्वेराइन (Papaverine) एवं लॉडॅनाइन (Laudanine) आदि प्रमुख हैं। इन क्षाराभों के अतिरिक्त इसमें ॲसेटिक् (Acetic), लॅक्टिक् (Lactic), सल्फ्यूरिक् (Sulphuric) एवं मेकोनिक् (Meconic), इतने प्रकार के अम्ल (Acids), गोंद एवं पेक्टीन (Pectin) की तरह पदार्थ, ॲल्ब्यूमिन् , मोम, स्नेह, कॅउट्चौक् (Caoutchouc), राल, उड़नशील तैल, गन्धयुक्त द्रव्य, मेकोनिन् (Meconin) तथा अमोनियम् , कॅल्शियम् एवं मॅग्नेशियम् के लवण आदि पदार्थ पाये जाते हैं। व्यापारी अफीम में (शुष्क अवस्था में) मॉर्फीन की मात्रा कम ज्यादा (५–२१%) रहती है। कुछ अन्य देशों से प्राप्त अफीम में की मॉर्फीन की मात्रा—तुर्की ५–१४%, पर्शियन ६–१४%, चाइनीज १.५–११%, बोहेमिया ११–१२%, तुर्कस्तान ५–१८%, आस्ट्रेलिया ४–११%। पहले यह समझा जाता था कि भारतीय अफीम में मार्फीन की मात्रा कम होने के कारण वह औषध के उपयोग की नहीं होती। लेकिन सन् १९१४ के बाद औषधोपयोगी अफीम के उत्पादन के लिये विशेष प्रयत्न किया गया जिससे इसमें की मॉर्फीन की मात्रा बढ़ती गई और अब यह अच्छी से अच्छी तुर्की अफीम से औषधीय गुण में समता रखती है। भारतीय अफीम में एक और विशेषता यह है कि अन्य देशों की अपेक्षा यहां की अफीम में कोडीन (Codeine) नामक क्षाराभ अधिक होता है। नार्कोटीन (Narcotine) नामक क्षाराभ पटना की अफीम में मार्फीन की अपेक्षा दुगना, मालवा की अफीम में मॉर्फीन से कुछ अधिक लेकिन स्मिर्ना (Smyrna–तुर्की का एक स्थान) की अफीम में मार्फीन की अपेक्षा बहुत कम होता है।

अफीम एवं मॉर्फीन के गुण एवं कार्य—यह उष्ण, तिक्त, रूक्ष, वेदनाहर, निद्राजनक, शामक, मादक, कफघ्न, कासघ्न, स्वेदजनन, शोथघ्न, ग्राही, रक्तस्तम्भन, प्रसेकावरोधक एवं अल्प मात्रा में उत्तेजक, आह्लादकारक तथा वाजीकर है।

इसकी प्रधान क्रिया केन्द्रीय वातनाडी संस्थान पर होती है। **अल्प मात्रा में** इससे कुछ उत्तेजना होती है। मन को आनन्द मालूम होता है। विचारशक्ति बढ़ती है। उत्साह बढ़ता है। कामवासना बढ़ती है। किसी काम में मन एकाग्र होता है। वेदना, खांसी, थकावट, क्षुधा तथा

अन्य प्रकार की अप्रिय संवेदनाओं का ज्ञान कम होता है। मन शान्त होकर निद्रा आती है। अधिक मात्रा में अवसाद होकर स्पर्शज्ञान तथा सुख एवं दुःख के समझने की शक्ति कम होती है तथा कुछ बेहोशी सी मालूम होकर नींद आती है। नींद के बाद सर में दर्द तथा हृल्लास मालूम होता है। वातनाडियों पर इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

हृदय के ऊपर इसका कोई विशेष परिणाम नहीं होता केवल प्राणदा (Vagus) नाडी केन्द्र की उत्तेजना से इसकी गति कम होकर उसे बल प्राप्त होता है। अधिक मात्रा में श्वसनकेन्द्र के अवसाद के कारण अन्य दुष्परिणाम दिखलाई देते हैं।

इसकी अल्प मात्रा से श्वसन क्रिया मंद लेकिन गम्भीर होती है। अधिक मात्रा में लेने से श्वसनकेन्द्र का अवसाद होकर श्वसन बहुत कम होते हुवे बाद में अनियमित हो जाता है। श्वसनकेन्द्र के घात एवं श्वासावरोध से मृत्यु होती है। कासकेन्द्र बहुत ही अल्प मात्रा से अवसादित होता है। औषधीय मात्रा से श्वसनियों का अल्प विस्फार होता है लेकिन अधिक मात्रा में संकोच हो जाता है।

इससे सभी प्रकार के स्राव कम होते हैं किन्तु पसीना एवं दुग्ध कम नहीं होता है। पाचक स्राव कम होता है जिससे भूख कम हो जाती है। अफीम में अन्य क्षाराभ होने के कारण आन्त्र की पुरस्सरण क्रिया अधिक कम होती है। इससे विबन्ध होता है तथा वेदनाहर होने के कारण शूल दूर होता है। स्राव कम होने से मुख, जीभ तथा गला सूखने लगता है।

चर्मगत रक्तवाहिनियों के विस्फार एवं स्वेद पिण्डों की उत्तेजना से पसीना अधिक होता है जिससे शरीर का ताप कम होता है। गला एवं चेहरे की रक्तवाहिनियों के विस्फार से कान गरम हो जाते हैं।

इससे मूत्र की मात्रा पर कोई परिणाम नहीं होता, लेकिन कभी कभी बस्तिद्वार के संकोच से कुछ रुकावट हो जाती है। कुछ विद्वानों के मत से मधुमेही के मूत्र में शर्करा की मात्रा तथा यूरिया (Urea) की मात्रा कम हो जाती है। वृक्क की विकृति में इसका उत्सर्ग शीघ्र न होने के कारण सावधानी के साथ इसका प्रयोग करना चाहिये। केन्द्रीय प्रभाव से, प्रारम्भ में वमन केन्द्र की उत्तेजना से वमन होता है, लेकिन अधिक मात्रा सेवन करने पर केन्द्रावसाद होजाने के कारण वामक द्रव्यों के प्रयोग से भी वमन नहीं होता।

केन्द्रीय प्रभाव से आंखों की पुतलियों का संकोच होता है। इसमें स्थानिक वेदनाहरण का गुण नहीं है। इसका प्रचूषण श्लैष्मिक कला तथा छिले हुवे चर्म से होता है। वेदनाहर प्रभाव केन्द्रीय प्रभाव के कारण होता है।

बच्चों एवं स्तनपान कराने वाली स्त्रियों में सावधानी के साथ इसका प्रयोग करना चाहिये। यदि रोगी को यह न बताया जाय की उसे अफीम दी जा रही है तो लगातार कई दिन तक देते रहने पर भी अफीम की आदत नहीं पड़ती।

अफीम के अन्य क्षाराभ—अफीम का मादक प्रभाव मुख्यतया मॉर्फीन के कारण है तथा अन्य परिणाम इतर क्षाराभों के कारण होते हैं। मॉर्फीन, पॅपेहेराइन, कोडीन, नार्कोटीन तथा थीबेन में मादक प्रभाव क्रमशः कम कम होता जाता है। प्रचूषण देर में होने के कारण मॉर्फीन की अपेक्षा अफीम का परिणाम देर में होता है लेकिन वह अधिक समय तक स्थायी रहता है। नार्कोटीन तथा पॅपेहेराइन आन्त्रिक मांसपेशियों को शिथिल करते हैं जब कि मॉर्फीन एवं कोडीन उनके तनाव को बढ़ाते हैं जिससे अफीम अधिक विबन्ध करने वाली होती है। नार्कोटीन एवं पॅपेहेराइन श्वसन केन्द्र को उत्तेजित करते हैं। मॉर्फीन एवं कोडीन की विषाक्तता नार्कोटीन बढ़ाता है। इसी प्रकार नार्कोटीन एवं पॅपेहेराइन,

मॉर्फीन के कार्य को बढ़ाते हैं। कोडीन एवं नार्कोटीन का सम्मिलित प्रभाव मॉर्फीन की तरह होता है जब कि दोनों अलग अलग बहुत ही अल्प प्रभावशाली हैं। ३ मि. ग्रा. नार्कोटीन तथा ३ मि. ग्रा. मॉर्फीन का सम्मिलित प्रभाव ६० मि. ग्रा. मॉर्फीन के बराबर होता है। कोडीन कास के केन्द्र को बहुत अल्प मात्रा में अवसादित करता है तथा मधुमेही में शर्करा की मात्रा कम करता है। थीबेन नामक क्षाराभ कुचीलुसत्व के सदृश सुषुम्ना को उत्तेजित करता है।

अफीम तथा मॉर्फीन के प्रयोग

(१) अल्प मात्रा में अफीम का उपयोग उत्तेजक औषध के रूप में बहुत अच्छा होता है। डर लगना, उदासीनता, चिन्तायुक्त वृत्ति, खेदवृत्ति, थोड़े से क्रोध से हाथ पैर कांपने लगना, थकावट एवं वृद्धावस्था में जीवन से निराश होना ऐसी परिस्थितियों में इससे बहुत लाभ होता है। निरोगी अवस्था में प्रयोग से कामवासना बढ़ती है।

(२) बहुत विचार करना, बहुत अभ्यास करना, चिन्ता तथा जिन जिन व्याधियों में पीडा की वजह से नींद न आती हो उनमें इसको निद्रा के ३ घण्टे पूर्व उपयोग किया जाता है।

(३) शूल, पीडा एवं प्रक्षोभ आदि के लिये यह बहुत ही उपयोगी है। इसका उपयोग गृध्रसी, वातनाडी शोथ, कटिशूल, सन्धिशूल, पार्श्वशूल, कष्टार्तव, चोट, शरीर का जलना, अस्थिभग्न, सन्धिभंग शस्त्रक्रिया के पूर्व एवं पश्चात्, आन्त्रिकशूल, पैत्तिकशूल, वृक्कशूल, अश्मरी, आमाशयिक शूल, आमाशय प्रक्षोभ, आमाशयिक व्रण, आन्त्रिक व्रण एवं कर्कटार्बुद आदि में किया जाता है। वृक्कजन्य आक्षेप में मूत्रल औषधों के साथ इसे देते हैं।

(४) अतिसार एवं संग्रहणी आदि में जब मल पक हो जाता है लेकिन ग्रहणी दौर्बल्य से दस्त बन्द नहीं होते तब अन्य ग्राही औषधियों के साथ इसकी गोली का प्रयोग किया जाता है। ऐसी अवस्थाओं में जातीफलादि रस (भै० र०) या दुग्धवटी (भै० र०) का अच्छा उपयोग होता है। विसूचिका की प्रारंभिक अवस्था में अहिफेनासव के रूप में इसका उपयोग किया जा सकता है लेकिन शीताङ्ग अवस्था में इसका प्रयोग न करें। टायफॉइड (आन्त्रिक ज्वर) में अतिसार हो तो इससे दस्त कम होने के साथ साथ वातिक लक्षणों में भी लाभ होता है। डर, घबड़ाहट तथा अन्य मानसिक कमजोरी के कारण होने वाले अतिसार में भी इससे लाभ होता है।

(५) प्रतिश्याय के प्रारम्भ में स्वेदल औषध के रूप में इसको देते हैं।

(६) रक्तष्ठीवन में इसका उपयोग किया जाता है। इससे रक्त का दबाव कम होता है, हृदय की गति मन्द होती है, खांसी कम होती है, मानसिक चिन्ता दूर होती है एवं नींद आती है। रक्तातिसार तथा आमाशयव्रण में आंत्रिक गति कम होकर लाभ होता है।

(७) शुष्क कास, दमा, कुकास, फुफ्फुसावरण शोथ एवं क्षयज ग्रन्थियों की वृद्धि से प्रक्षोभ होकर सूखी खांसी आती हो तो इसको मधु के साथ चटाने से लाभ होता है। जिसमें कफ बहुत जमा हो और जिसमें खांसी कफ निकल जाने के लिये आरही हो उसमें अफीम का प्रयोग नहीं करना चाहिये। श्वासकृच्छ्र, नीलिमा एवं श्वसनमार्ग में अवरोध हो तो इसका प्रयोग न करें। दमें में इसके प्रयोग से आदत पड़ने की सम्भावना रहती है इसलिये जहां तक हो प्रयोग न करें।

(८) हृदय एवं रक्तवाहिनियों के कारण यदि श्वासकृच्छ्र हो तो इससे बहुत लाभ होता है लेकिन यदि जलोदर आदि के दबाव से हृदय का कार्य ठीक न होता हो तो इसका प्रयोग न करें।

(९) प्रचुर लालास्राव, श्वेतप्रदर एवं मधुमेह में इससे लाभ होता है। मधुमेह में अफीम का प्रयोग बहुत किया जाता है लेकिन कर्नल चोपरा के मत से इसमें बिलकुल लाभ नहीं होता।

(१०) मलेरिया आदि विषमज्वरों में इससे लाभ होता है ऐसी धारणा थी। जिन जिन स्थानों में अफीम का सेवन किया जाता है वहां मलेरिया कम होता है ऐसी धारणा थी। कुछ विद्वानों ने इसके नार्कोटीन (Narcotine) नामक क्षाराभ को ½–१½ र० की मात्रा में मलेरिया में सफलतापूर्वक प्रयोग किया लेकिन कर्नल चोपरा के प्रयोगों के द्वारा यह ज्ञात होता है कि इससे मलेरिया के कीटाणुओं पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं होता। यह बात अवश्य है कि अफीम या नार्कोटीन मस्तिष्क के उन स्थानों का जहां सूक्ष्मतर वेदनाओं का ज्ञान होता है (Algesic areas of brain), अवसाद उत्पन्न करती है जिससे ज्वर में होने वाले शिरःशूल, बेचैनी एवं शरीर में पीड़ा आदि लक्षण कम होकर तथा पसीना आकर ज्वर कम होने से लाभ प्रतीत होता है। मस्तिष्क या उसके आवरण में शोथ होने से यदि ज्वर हो तो इसका प्रयोग न करें।

(११) गर्भपात में शामक औषध के रूप में अफीम या मॉर्फीन का पूर्ण मात्रा में उपयोग किया जाता है। अत्यार्तव एवं रक्तप्रदर आदि में नार्कोटीन से व्युत्पन्न अन्य स्टिप्टिसीन (Stypticin) या स्टिप्टॉल (Styptol) आदि का उपयोग आन्तरिक एवं स्थानिक पिचु आदि के रूप में व्यवहार किया जाता है।

(१२) फुफ्फुसावरण शोथ, आमवात एवं कटिशूल आदि में इसका पोल्टिस लगाया जाता है या १ छ० गरी या तिल के तेल में ३ मा० अफीम मिला कर मालिश की जाती है। मलाशय, श्रोणिगुहा की पीड़ा एवं परिकर्तिका आदि में अफीम की गुदवर्ति या बस्ति का उपयोग किया जाता है। शोथयुक्त अर्श पर माजूफल के साथ अफीम का मल्हम लगाया जाता है। कर्णशूल में ग्लिसरीन के साथ इसके टिंक्चर को कान में डालने से लाभ होता है।

अफीम के विष लक्षण—अफीम अधिक मात्रा में लेने से या आत्महत्या के लिये प्रयोग से घातक होती है। प्रथम तन्द्रा मालूम होती है। रोगी को उस समय जगाया जा सकता है लेकिन धीरे २ तन्द्रा बढ़ कर सन्यास का रूप धारण कर लेती है तब रोगी को जगाया नहीं जा सकता। आंखों की पुतलियां बिलकुल संकुचित हो जाती हैं लेकिन मृत्यु के कुछ मिनट पूर्व पुतलियां विकसित हो जाती हैं। शरीर ठण्डा और पसीने से तर हो जाता है। चेहरा, ओठ एवं अङ्गुलियां नीली पड़ने लगती हैं। नाड़ी अत्यन्त क्षीण तथा मन्द होती हैं। श्वास मन्द, अनियमित तथा अन्तिम अवस्था में घरघराहट युक्त हो जाता है। प्रत्याक्षिप्त क्रियाएं लुप्त हो जाती हैं। अन्त में श्वासावरोध से मृत्यु हो जाती है। अवसादावस्था प्रायः ४ से ६ घण्टे रहती है और ६ से १२ घण्टे में मृत्यु हो जाती है।

विष चिकित्सा—(१) सर्वप्रथम रोगी को रीठे का जल या सरसों या राई जल के साथ या तूतिया १० र० जल के साथ पिलाकर वमन कराना चाहिये। लेकिन प्रायः वमन केन्द्र के अवसादित होने के कारण वमन नहीं होता इसलिये सबसे अच्छा यह है कि स्टमक् पम्प या साइफन् के द्वारा आमाशय प्रक्षालन कराया जाय। सर्वप्रथम रोगी को २–४ र० पोटॅशियम् परमॅग्नेट २ से ६ छ० जल के साथ पिला दें। फिर उसी के हलके घोल से आमाशय प्रक्षालन तब तक करें जब तक घोल का रंग उसी तरह नहीं रहता।

(२) श्वसन केन्द्र को उत्तेजित करने के लिये बार २ गरम कॉफी का क्वाथ पिलाना तथा अॅट्रोपीन, स्ट्रिक्नीन् १/६० ग्रेन, कोरामीन एवं लेप्टॅझॉल् आदि का सूचिकाभरण करना, कृत्रिम श्वसन कराना या श्वसन यन्त्रों का उपयोग करना, ऑक्सीजन तथा कार्बन डाइ ऑक्साइड् को सुंघाना आदि उपचार करना चाहिये। अफीम आदि के अवसादक तथा मादक विषैले प्रभाव को दूर करने के लिये उसके ठीक विरोधी कार्य करने वाली एक नई औषध नॅलोर्फीन हाइड्रोक्लोराइड्

(Nalorphine Hydrochloride) ५–१० मि. ग्रा. की मात्रा में शिरा द्वारा दी जाती है। लेथिड्रोन (Lethidrone, Burr. & Well.) एवं नेलाइन हाइड्रोक्लोराइड् (Nalline hydrochloride, Merck) नाम से यह डाक्टरी दुकानों में मिलती है। बच्चों में ०·२५ मि. ग्रा. हर दो मिनट पर कई बार दी जाती है। अन्य औषधों में चन्द्रोदय, कस्तूरी, जुन्दबेदस्तर, हींग, जद्वार या जहरमोहरा पिष्टी आदि को शहद के साथ बार-बार चटाना चाहिये।

(३) रोगी को सोने न दें। बार-बार उस पर ठंडा एवं गरम जल छिड़कते रहें। रोगी को पकड़कर चलावें। तीक्ष्ण नस्य, सरसों का लेप, बार-बार हिलाना आदि क्रियाओं से रोगी को जगावें।

अफीम के व्यसन के दुष्परिणाम—कुछ दिन लगातार अफीम खाने से उसकी आदत पड़ जाती है तथा उससे लाभ होने के लिये प्रत्येक समय मात्रा भी बढ़ानी पड़ती है। अफीमची २½–१० र० तक बिना किसी तीव्र दुष्परिणाम के अफीम का सेवन कर सकता है। इसके व्यसन से नैतिकपतन, कृशता, पाण्डु, मांसपेशियों की दुर्बलता, मांसपेशियों के कार्य में असमन्वयता, थकावट, नाड़ी की दुर्बलता, कंप, अग्निमांद्य, पाचन की खराबी, विबंध, निद्रानाश, तन्द्रा, नपुंसकता, अनार्तव एवं आंखों की पुतलियों का संकुचित होना आदि लक्षण होते हैं। लेकिन यदि अफीमची की अफीम बंद कर दी जाय तो भी मानसिक उत्तेजना, बेचैनी, आमाशय में पीड़ा, जलन एवं कभी-कभी वमन, विरेचन, स्वेदाधिक्य, पुरुषों में वीर्यपात और स्त्रियों में प्रहर्ष आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। एकाएक बंद करने से दुर्बल या वृद्ध लोगों में कभी-कभी अत्यन्त दौर्बल्य, अवसाद एवं निपात होकर मृत्यु भी हो सकती है।

अफीम छुड़ाने के उपाय—बच्चों में या जो दिन भर में २½ रत्ती से कम अफीम सेवन करते हैं या जो दुर्बल एवं वृद्ध नहीं है तथा किसी तीव्र शारीरिक रोग से पीडित नहीं है उनमें एकाएक अफीम बंद की जा सकती है। ३ दिन तक तकलीफ रहती है लेकिन बाद में ठीक हो जाती है। यदि ह्लास, अतिसार एवं मानसिक प्रक्षोभ आदि लक्षण हों तो क्षारीय मिश्रण तथा शामक औषधों का प्रयोग करना चाहिये। निपात आदि के लिये अॅड्रिनॅलीन का सूचिकाभरण तथा चाय, कोको एवं अमोनिया आदि का प्रयोग करें।

सबसे सरल उपाय यह है कि धीरे-धीरे अफीम की मात्रा कम की जाय। कुचला, चिरायता एवं मिरिच आदि के साथ अफीम की गोलियां बनाकर उसका उपयोग करें। गोलियों में धीरे-धीरे अफीम कम करें। आहार में लेसिथिन नामक प्रभूजिन का उपयोग भी लाभदायक है। यह अंडे तथा सोयाबीन आदि में होता है। अल्प मात्रा में मद्य एवं कुछ शामक औषधों का उपयोग भी किया जा सकता है।

मात्रा—अफीम ¼–१ र०; टिंक्चर ओपिआइ ५–३० बूंद, एक साल से कम उम्र के बच्चों को ½–१ बूंद से अधिक नहीं।

अथ खाखसतिलाः। तेषां नाम गुणाँश्चाह

उच्यन्ते खसबीजानि ते खाखसतिला अपि ॥ २३१ ॥
खसबीजानि बल्यानि वृष्याणि सुगुरूणि च। जनयन्ति कफं तानि शमयन्ति समीरणम्॥

खसखस के दाने के नाम तथा गुण—पोस्ता के दाने के ही खसबीज तथा खाखसतिल ये दोनों नाम संस्कृत में होते हैं। **खसखस के दाने**—बलकारक, वृष्य (वीर्यवर्धक) और अत्यन्त गुरुपाकी होते हैं तथा ये कफ के उत्पन्न करने वाले एवं वायु को शमन करने वाले होते हैं॥

८५ पोस्तादाना

हि०–पोस्तदाना, दाना, खसखस, खसखस के दाने, खसबीज। **बं०**–पोस्तदाना, पोस्तबीज। **म०-गु०**–खसखस। **ता०**–गशगश। **मला०**–कशकश। **फा०**–तुख्मे कोकनार। **अ०**–बजरुल् खश्खाश। **अं०**–Poppy Seeds (पॉपी सीड्स)।

उक्त पोस्तवृक्ष के डोडें से निकले हुये बीज को पोस्तदाना कहते हैं। इसके स्वरूपादि का वर्णन पोस्ते की डोंडी के साथ किया गया है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकार का अप्रक्षोमक तैल पाया जाता है। इसमें कोई क्षाराभ नहीं पाया जाता।

गुण और प्रयोग—अफीम की जानकारी के पूर्व इन बीजों का व्यवहार आहार द्रव्य के रूप में किया जाता था। यह स्नेहन, निद्राजनक, पोषक तथा साधारण ग्राही होते हैं। मिठाइयों के ऊपर इसको छिड़का जाता है। इसका हलवा बनाकर खाया जाता है। निद्रानाश, दौर्बल्य, शुष्क कास एवं बस्ति विकार आदि में इसको पीसकर शर्करा या मधु के साथ खिलाया जाता है। इसका बाह्यलेप वेदनाहर माना जाता है।

इसके तैल का ऑलिव्ह आईल की तरह ½–१ तो० की मात्रा में प्रयोग करते हैं। यह निद्राजनक है एवं शिरःशूल में इसको सिर पर लगाते हैं तथा कर्णशूल में इसे कान में डालते हैं।

अथ सैन्धवः। तस्य नामगुणानाह

सैन्धवोऽस्त्री शीतशिवं मणिमन्थञ्च सिन्धुजम्। सैन्धवं लवणं स्वादु दीपनं पाचनं लघु।
स्निग्धं रुच्यं हिमं वृष्यं सूक्ष्मं नेत्र्यं त्रिदोषहृत्॥ २४१॥

सेंधानमक के नाम तथा गुण—सैन्धव (यह पुल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग में होता है), शीतशिव, मणिमन्थ और सिन्धुज ये संस्कृत नाम सेंधा नमक के हैं। **सेंधानमक**-स्वादिष्ट, अग्निदीपक, पाचक, लघु, स्निग्ध, रुचिकारक, शीतवीर्य, वृष्य, सूक्ष्म (सूक्ष्म स्रोतों में भी प्रवेश करके प्रभाव दिखाने वाला), नेत्रों के लिये हितकारी तथा तीनों दोषों को दूर करने वाला होता है॥ २४१॥

८६ सेंधानमक

हि०–सेंधानमक, सेंधानोन, लाहौरीनमक। **बं०**–सैंधवलवण। **म०**–सैंधवमीठ। **गु०**–सिंधालुण **क०**–सैंधव, सैंधवलवण। **मा०**–सींधोलूण। **ते०**–सैंधवलवणं, सिंधु उपु। **पं०**–सेंधानमक। **ता०**–इन्दु उप्पु। **फा०**–नमकेसंग। **अ०**–मिलहे तबजर्द। **अं०**–Chloride of Sodium (क्लोराइड् ऑफ सोडियम्); Rock-salt (रॉक्साल्ट); Bay salt (बे साल्ट)। **ले०**–*Sodii chloridum* (सोडिआइ क्लोराइडम्)।

सेंधानमक एक सुप्रसिद्ध नमक सिन्ध देश की खानों से निकलता है। पत्थर के ढोंके के समान इसके बड़े-बड़े टुकड़े आते हैं। यह सब प्रकार के नमकों में शुद्ध नमक समझा जाता है। सिन्धु नदी के पूर्व में होने वाला नमक कुछ लाल रंग का होता है। इसमें पोटॅशियम् तथा मॅग्नेशियम् के कुछ लवण मिले रहते हैं। इन खानों में ऊपर का स्तर कुछ मटमैला होता है लेकिन नीचे का स्तर शुद्ध होता है। इस नमक को 'लाहोरी' नमक कहते हैं। सिन्धु नदी के

पश्चिम की खानों में नमक के स्तर के ऊपर गोदन्ती का एक स्तर रहता है। इसमें पोटॅशियम् तथा मॅग्नेशियम् के लवण नहीं होते। इस नमक को 'कोहटी' या 'निमक सब्ज' कहते हैं। खानों से प्राप्त होने वाला एक और स्फटिक के समान पारदर्शक नमक होता है जिसे 'निमक शीश' (रसार्णव-मणिमंथ) और (अं) सल्जेम् (Salgem) कहते हैं।

उत्पत्ति—स्थानभेद से नमक की कई जातियां होती हैं लेकिन सबों में खाने का नमक रहता है। अन्य अशुद्धियों के कारण उनमें स्वाद, स्वरूप तथा गुणों में अंतर रहता है। सभी नमकों का मूल स्रोत समुद्र ही है। जहां आज पहाड़ हैं वहां भी किसी जमाने में समुद्र था और वहां का हिस्सा समुद्र से अलग होने से वहां का जल सूखकर नमक जम गया। कालान्तर से उस पर मिट्टी आदि जमती गई तथा यह पृथ्वी के अंदर नमक की खानों के रूप में रह गया।

भारत में खाने का नमक ३ प्रकार से प्राप्त होता है।

(१) समुद्र के जल को सूर्य की उष्णता से या उबालकर जो नमक तैयार किया जाता है उसे 'सामुद्र' कहते हैं।

(२) खारे तालाब, खारे झरने तथा खारे कूओं का जल या खारी मिट्टी पानी में घोलकर उस घोल को उबाल कर या धूप में सुखाकर तैयार करते हैं।

(३) पृथ्वी के अन्दर रहने वाली नमक की खानों से प्राप्त जिसे सैंधव कहते हैं।

बंबई तथा मद्रास का समुद्र किनारा, पंजाब का पहाड़ी नमक, राजपूताना की झीलें तथा विभिन्न स्थानों की रेह इनसे बहुत नमक प्राप्त होता है लेकिन सबसे अच्छा नमक सैंधव होता है। यद्यपि भारतवर्ष में नमक बहुत पाया जाता है तथा और अधिक बनाया भी जा सकता है तो भी ब्रिटिशकाल में सरकारी नियंत्रण के कारण विदेशों से भी नमक का आयात होता था।

गुण और प्रयोग—नमक शरीर का एक अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है तथा रक्त रस (Serum) का प्रधान खनिज द्रव्य है। यह रक्त में निश्चित अनुपात में रहता है तथा शरीर के जलीयांश एवं लवणों के नियन्त्रण में सहायक होता है। कुछ मात्रा में यह धातुओं में संचित भी रहता है लेकिन जितना भी अधिक होता है यह मूत्र एवं पसीना आदि द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है। नमक की क्रिया ऑसमोटिक् दबाव के परिवर्तन से होती है। यह पूर्णतः एक भौतिक क्रिया होती है। यदि एक पात्र के बीच एक अर्ध प्रवेश्य परदा (Semi permeable membrane) लगाकर दोनों तरफ नमक के घोल भर दें जिसमें एक में नमक ज्यादा रहे और दूसरे में कम रहे तो कुछ देर बाद यह दिखलाई देगा कि जिसमें नमक अधिक रहा उस तरफ कम नमक वाले भाग से जल आकर्षित होकर धीरे-धीरे दोनों भाग के घोल एक ही समान हो जावेंगे। इस भौतिक परिवर्तन को 'ऑसमोटिक्' (Osmotic) क्रिया कहते हैं। रक्त के बराबर ऑसमोटिक् बल के लवण घोल को समबल लवणजल (Isotonic saline) कहते हैं। यह ०·९%नमक का घोल होता है। रक्त से अधिक बलवाले घोल को अतिबल लवणजल (Hypertonic saline) एवं रक्त से कम बलवाले घोल को हीनबल लवणजल (Hypotonic saline) कहते हैं। यदि अतिबल लवणजल का सिरा द्वारा सूचिकाभरण किया जाय तो रक्त का ऑसमोटिक् दबाव अधिक होगा जिससे समीपस्थ लसिका से जलापहरण होकर रक्त की मात्रा बढ़ेगी। रक्त के लाल कणों से भी द्रवापकर्षण होने से वे भी सिकुड़ जावेंगे। इसी प्रकार हीनबल लवणजल में रक्त के लाल कण जल खींच कर फूल जावेंगे। शरीर में जब भी विभिन्न बल वाले घोल समीप आते हैं इसी प्रकार की क्रिया होती है।

सैंधव रूचिकारक, अग्निदीपक, पाचक, वातानुलोमक, नेत्र्य, व्रण रोपक एवं व्रण शोधक है। अल्प मात्रा से इससे पाचक स्रावों की वृद्धि होती है लेकिन अधिक मात्रा में आमाशयिक प्रक्षोभ होकर वमन एवं जलापकर्षण द्वारा कभी-कभी विरेचन होता है। अल्पबल लवणजल का प्रचूषण आसानी से हो जाता है लेकिन अन्यों का कम होता है। अतिबल लवणजल के सूचिकाभरण से ऑसमोटिक् क्रिया द्वारा रक्त की मात्रा बढ़ती है जिससे मूत्र एवं पसीना आदि की मात्रा बढ़ जाती है।

कुछ लोगों के मत से नमक का अधिक सेवन बहुत ही लाभदायक एवं आयु को बढ़ाने वाला होता है लेकिन आयुर्वेदानुसार नमक का अधिक उपयोग हानिकर है।

(१) कुपचन, आध्मान एवं शूल आदि में अन्य औषधों के साथ इसका उपयोग किया जाता है। विसूचिका में जब शरीर से वमन एवं विरेचन के कारण बहुत सा द्रव तथा लवण निकल जाते हैं और शरीर ठण्डा होकर रोगी मरणासन्न हो जाता है ऐसी अवस्था में अतिबल लवणजल का सिरा द्वारा सूचिकाभरण बहुत ही आश्चर्यजनक लाभदायक होता है। इससे फिर से रक्त प्रवाह शुरु होकर रोगी बच जाता है। इसके लिये जिस घोल का उपयोग किया जाता है। उसके १ पाइंट परिस्रुत जल में शुद्ध नामक १२० ग्रे., पोटेंशियम् क्लोराइड् (Potassium chloride) ६ ग्रे. एवं कैल्शियम् क्लोराइड् (Calcium chloride) ४ ग्रे. रहता है। यदि शरीर में अम्लता अधिक हो तथा पोषण की भी आवश्यकता हो तो इसीमें सोडाबाईकार्ब (Soda bi carb) ४० ग्रे. एवं ग्लूकोज (Glucose) १४ ग्रे. मिलाया जाता है।

अतिसार, रक्तातिसार एवं अत्यधिक रक्त स्राव आदि में जलापहरण के कारण निपात (Collapse) एवं स्तब्धता (Shock) आदि होने पर समबल लवणजल के सिरा द्वारा सूचिकाभरण से बहुत लाभ होता है। इसी प्रकार मूत्र विषमयता (Uraemia), गर्भिणी विषमयता (Eclampsia) एवं कार्बन मॉनऑक्साइड (Carbon monoxide) नामक कोयले के धूएँ के विषैले प्रभाव आदि अवस्थाओं में इसी प्रकार के समबल लवणजल (०.९%) का उपयोग विष की तीव्रता कम करने के लिये किया जाता है। शरीर अत्यधिक दुर्बल हो गया हो तथा पोषण की त्वरित आवश्यकता हो तो ५% ग्लूकोज के साथ समबल लवणजल का उपयोग लाभदायक होता है।

इन उपर्युक्त अवस्थाओं में सिरा के अतिरिक्त चर्म के नीचे, मुख द्वारा एवं गुदा द्वारा लवणजल का उपयोग किया जा सकता है। गुदा द्वारा, २ माशे नमक करीब ५ छटांक जल में घोलकर रोगी को उत्तान लिटा कर तथा कूल्हों को कुछ ऊँचा करके रबर की नली द्वारा हर चार घण्टे पर दिया जाता है। घोल की उष्णता शरीर की उष्णता के बराबर या कुछ अधिक होनी चाहिये।

(२) डा. ब्रुक मलेरिया के लिये एक प्रयोग लिखते हैं। एक मुट्ठीभर नमक को कढ़ाई में डालकर मन्द आंच पर कुछ बादामी रंग होने तक भूनते हैं। इसमें से १ तो. नमक जल के साथ सुबह खाली पेट रोगी को दिया जाता है। इसके पश्चात् प्यास बहुत लगे तो थोड़ा-थोड़ा जल पीने को दें। २, ३ घण्टे तक खाने को कुछ भी न दें। बाद में बहुत भूख लगने पर हलका पौष्टिक आहार दें। रोगी को ठण्डक से बच कर रहना चाहिये। डा० ब्रुक का कहना है कि इसके एक ही बार के प्रयोग से मलेरिया दूर हो जाता है या कभी २ दो बार प्रयोग करना पड़ सकता है।

(३) व्रण, नाडीव्रण एवं दूषित क्षत आदि के प्रक्षालन के लिये परमबल लवणजल का प्रयोग किया जाता है तथा विरल कपड़े (गॉज) की पट्टी इस घोल में भिगो कर व्रण पर रखी जाती है। इससे व्रणित भाग में लसिकास्राव एवं श्वेतकणों की वृद्धि होकर व्रण शुद्ध होकर जल्दी

अच्छा होता है। इस चिकित्सा में अन्य प्रतिदूषकों (Antiseptics) की तरह शरीर की कोषाओं को कुछ भी नुकसान नहीं पहुँचता।

(४) श्वसनक ज्वर (न्युमोनिया) में नमक की पोटली बना कर उससे छाती को सेंका जाता है जिससे कफ ढीला हो कर निकलता है तथा वेदना शांत होती है। इसका आंतरिक प्रयोग ४ र. की मात्रा में जल के साथ किया जा सकता है। संधिवात, आमवात, गंडमाला एवं आमाशयिक पीड़ा आदि में भी पोटली से सेंकने से लाभ होता है।

(५) इन्फ्लुएंझा, प्रतिश्याय एवं शिरःशूल तथा स्वास्थ वृद्धि के लिये १ तोला नमक १ सेर जल में डाल कर उसका नस्य बहुत लाभदायक है।

(६) गले की खराबी में कदुष्ण जल में नमक डाल कर उससे गरारा करना चाहिये। गला एवं तालु की शिथिलता होने पर ठंडे पानी में नमक डाल कर कुल्ला कराने से लाभ होता है।

(७) यदि गलती से जोंक गले के अन्दर चली जाय तो लवण जल पिलाते हैं। इसी प्रकार सिल्वर नाइट्रेट (Silver nitrate) नामक चांदी के दाहक क्षार के विष क दूर करने के लिये इसको पिलाते हैं।

(८) जीर्ण आमवात, गृध्रसी तथा अन्य पीडायुक्त संधि विकारों में एवं बिच्छू के काटने पर २०% उष्ण लवण जल में अवगाह किया जाता है तथा लवण जल पिलाते भी हैं।

(९) सूत्रकृमि (Thread worm) में इसकी बस्ति दी जाती है।

(१०) वमन कराने के लिये यह अत्युत्तम औषध है। अल्प मात्रा (२%) में देने से यदि वमन होता हो तो रुक जाता है।

(११) मांसपेशियों की दुर्बलता में नमकयुक्त ठण्डे जल की धारा से बहुत लाभ होता है विशेषकर वर्धमान लड़कियों की पीठ की दुर्बलता में इसका अच्छा उपयोग होता है। करीब १५ सेर जल में ३ सेर नमक डाल कर स्नान करने से रक्तप्रवाह बढ़ता है तथा स्फूर्ति मालूम होती है। मांसपेशियों की पीडा, चर्म रोग, मोच एवं मरोड आदि में भी स्नान से लाभ होता है।

निषेध—किसी भी प्रकार के शोफ, जलोदर तथा अन्य रोग जिनमें शरीर के अन्दर द्रव पदार्थों का संचय होता है उनमें नमक का प्रयोग नहीं करना चाहिये। रक्तभाराधिक्य, चर्मरोग एवं अत्यधिक प्यास आदि में भी इसका निषेध है। अधिक मात्रा में सिरा द्वारा लवणजल के प्रयोग से कभी-कभी इक्षुमेह (Glycosuria), साधारण ज्वर एवं क्वचित् मूत्र में अॅल्व्यूमिन का निकलना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। फुफ्फुस शोफ (Oedema of lungs) तथा हृदय अधिक भार सहन करने में असमर्थ हो तब सिरा द्वारा लवणजल का प्रयोग न करें नहीं तो मृत्यु की सम्भावना रहती है।

अथ शाकम्भरीयम्। तस्य नामगुणानाह

शाकम्भरीयं कथितं गडाख्यं रोमकं तथा ॥ २४२ ॥
गडाख्यं लघु वातघ्नमत्युष्णं भेदिपित्तलम्।
तीक्ष्णोष्णं चापि सूक्ष्मञ्चाभिष्यन्दिकटुपाकि च ॥ २४३ ॥

सांभर नमक के नाम तथा गुण—शाकम्भरीय के ही, गडाख्य (गडलवण) तथा रोमक पर्यायवाची शब्द हैं। सांभर नमक-लघु, वायुनाशक, अत्यन्त उष्णवीर्य, भेदी (मलादिक का भेदन

---

१. 'तीक्ष्णं व्यवायी'ति पाठान्तरम्।

करनेवाला), पित्तजनक, तीक्ष्णोष्णवीर्य, सूक्ष्म, अभिष्यन्दी तथा विपाक में कटुरस युक्त होता है ॥ ४२-४३ ॥

८७ साम्भरनमक।

हि०–साम्हर नमक, साम्भरनोन, सांभर निमक। **बं०**–साभरलुण, शाम्भारि लवण। **म०**—सांबर मीठ, सांभर लोण। **गु०**–बड़ागरू मीठ, साम्भरमोह, सामरलून। **क०**–गाड़लबड, गाड़ लवण। **फा०**–मिलहे अवकीर, नमक साम्भर। **अ०**–मलह उल् अवकर।

राजपुताना की झीलों के जल को सुखा कर जो नमक प्राप्त किया जाता है वह सांभर नमक कहलाता है। राजपुताना में सांबर नामक एक २० मील लम्बी तथा ५ मील चौड़ी झील है। इसमें ४ नदियां बहती हैं। बरसात में उसमें पानी जमा होता है। गर्मी में जल सूख जाता है। इसके २० भाग नमक में १५ भाग खाने का नमक, १ भाग सज्जिका (सोडियम् कार्बोनेट) तथा ३ भाग खारोनोन (सोडियम् सल्फेट) तथा अल्प मात्रा में आयोडीन एवं सोरे के लवण रहते हैं। यहां के जल को क्यारियों में जमा करते हैं जिसके सूर्य की गरमी से सूखने से उसमें का नमक अलग हो जाता है। जलमें अन्य अशुद्धियां रह जाती हैं जिसे फिर से झील में डाल देते हैं। नमकीन जलको सुखा कर बनाये हुए नमकों में यह सबसे अच्छा होता है। इसका स्वाद कुछ कटु होता है।

गुण और प्रयोग—इसके गुण भी सैंधव की तरह होते हैं लेकिन वह उससे न्यून गुण वाला है।

अथ सामुद्रं लवणं (पाङ्गा) तस्य नामगुणानाह

सामुद्रं यत्तु लवणमक्षीवं वशिरञ्च तत्। समुद्रजं सागरजं लवणोदधिसम्भवम् ॥ २४४ ॥
सामुद्रं मधुरं पाके सतिक्तं मधुरं गुरु। नात्युष्णं दीपनं भेदि सक्षारमविदाहि च ॥
श्लेष्मलं वातनुत्तीक्ष्णं[1] मरूक्षं नातिशीतलम् ॥ २४५ ॥

समुद्रनोन (पांगा) के नाम तथा गुण—समुद्रलवण के ही अक्षीव, वशिर, समुद्रज, सागरज और लवणोदधिसम्भव ये संस्कृत नाम हैं। **समुद्र नमक**—पाक में मधुररस युक्त, स्वाद में तिक्तरस मिश्रित मधुररस युक्त और गुरु होता है। यह अत्यन्त उष्णवीर्य नहीं होता है। यह दीपद, भेदी, क्षारगुण युक्त, अविदाही (दाह नहीं पैदा करने वाला), कफकारक, वातनाशक एवं तीक्ष्ण होता है। यह रूखा तथा अत्यन्त शीतल भी नहीं होता है ॥ २४४-२४५ ॥

८८ समुद्रनमक

हि०–पांगनिमक, पंगानोन, समुद्रनिमक, समुद्रीनोन। **बं०**–पांगा। **म०**–मीठ। **गु०**–मीठुं, दरियाइ लूण। **ते०, ता०**–उप्पु। **फा०**–नमक, नमक दरिया। **अ०**–मिलह शोरी, मलहे उल् मुहीत। **अं०**–Salt (साल्ट)। **ले०**–*Sodii muras* (सोडिआइ मुरास्)।

समुद्र के खारे पानी से बनाये हुए नमक को समुद्र नमक कहते हैं। भारत में आवश्यक नमक का ३७% भाग बंबई के समुद्री तट से निर्मित होता है। नमक निकालने के लिये विभिन्न देशों में हवा की उष्णता के अनुसार विभिन्न पद्धतियां काम में लाई जाती हैं। समुद्र के किनारे पर छोटे-छोटे गढ़े बनाते हैं जिसमें समुद्र का जल धीरे-धीरे भरता है। सूर्य की गरमी से उसमें

(१) तिक्तेति' पाठान्तरम्।

का जलीय अंश सूखने लगता है। १०० भाग जल में ३७ भाग नमक घुलता है। नमक को घुलने के लिये जितने जल की आवश्यकता होती है उससे कम जल जब सूख कर रह जाता है तब उसमें का नमक अलग होकर नीचे जमने लगता है। जैसे-जैसे नमक जमता है वैसे-वैसे उसे निकाल कर जमा करते जाते हैं। उस नमक की राशि में से मॅग्नेशियम् क्लोरायड (Magnesium chloride) निस्यंदित होकर निकल जाता है। समुद्री जल में खाने के नमक के साथ पोटॅशियम् क्लोराइड (Potassium chloride), मॅग्नेशियम् क्लोराइड् (Magnesium chloride), मॅग्नेशियम् सल्फेट् (Magnesium sulphate) एवं कॅल्शियम् सल्फेट् (Calcium sulphate) आदि द्रव्य रहते हैं जो खाने के नमक निकालने के बाद उस जल में रह जाते हैं। इस कड़वे जल में से इन पदार्थों को विभिन्न पद्धतियों से अलग कर लेते हैं। बाजारू समुद्री नमक कुछ आर्द्र रहता है उसका कारण यह है कि उसमें मॅग्नेशियम् एवं कॅल्शियम् क्लोराइड्स के कुछ अंश रह जाते हैं। शुद्ध नमक आर्द्र नहीं होता तथा इसका १ भाग २$\frac{3}{4}$ भाग जल में घुल जाता है।

गुण और प्रयोग—सामुद्र लवण के गुण सैंधव के समान होते हुवे भी इसमें जो अन्य पदार्थ रहते हैं उनके कारण कुछ अंतर पड़ता है।

(१) समुद्र में स्नान करने से जो चुमचुमाहट होती है उसके कारण शरीर का रक्त प्रवाह बढ़ जाता है तथा उससे शरीर में स्फूर्ति मालूम पड़ती है।

(२) समुद्री जल का मांसपेश्यन्तर्गत सूचिकाभरण अजीर्ण, शोष, जीर्ण चर्मविकार तथा बच्चों के पचनसंस्थान के विकारों में लाभदायक माना जाता है।

(३) समुद्री नमक में आयोडीन (Iodine) रहने के कारण गलगण्ड (Goitre) के प्रतिबंधन की दृष्टि से इसका उपयोग लाभदायक माना जाता है।

(४) पाण्डु, आमाशयिक व्रण, प्रतिश्याय, वातनाडीशोथ, नाड्यवसन्नता एवं पचनसंस्थान की दुर्बलता में समुद्री जल का उपयोग रोगनाशकरूप में किया जाता है। फ्रांस में बच्चों की जीवनी शक्ति (Vitality) बढ़ाने के लिये इसका प्रयोग करते हैं।

अथ बिडलवणम् (बिरियासंचर)। तस्य नामगुणानाह

बिडं पाक्यञ्च कृतकं तथा द्राविडमासुरम्।
बिडं सक्षारमूर्ध्वाधःकफवातानुलोमनम् ॥ २४६ ॥

बिरिया संचर नमक के नाम तथा गुण—बिड, पाक्य, कृतक, द्राविड तथा आसुर ये सब बिरिया संचर नमक के संस्कृत नाम हैं। **बिरिया संचर नमक**—क्षार गुण युक्त (विकृत त्वचा मांसादिकों को गला कर दूर करने वाला) होता है, तथा ऊपर (मुखादि) के मार्ग से कफ एवम् नीचे (गुदादि) के मार्ग से वायु का अनुलोमन करने वाला अर्थात् कफ को मुखादि से निकालने वाला और अपान वायु को अधोगामी करने वाला होता है ॥ २४६ ॥

*** ऊर्ध्वं कफमधो वातं सञ्चारयेदित्यर्थः ॥ २४६ ॥**

यहां पर 'ऊर्ध्वाधःकफवातानुलोमनम्' का—'ऊपर मुखादि की ओर कफ को एवं नीचे गुदादि को ओर अपान वायु को संचारित करने वाला' यह अर्थ समझना चाहिये ॥ २४६ ॥

दीपनं लघु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं रुच्यं व्यवायि च।
विबन्धानाहविष्टम्भहृद्रुग्गौरवशूलनुत् ॥ २४७ ॥

बिरिया संचर नमक—अग्निदीपक, लघु (शीघ्र पच जाने वाला) तीक्ष्ण तथा उष्ण-वीर्य, रूक्ष, रुचिकारक, व्यवायि (परिपक्व होने के पहले ही शरीर में प्रभाव दिखाने वाला), विबन्ध, आनाह, विष्टम्भ, हृद्रोग, शरीर की गुरुता तथा शूल को नष्ट करने वाला भी होता है ॥

८९ बिरिया संचर नमक।

हि०–बिरिया (आ) नमक, बिरिया संचर नमक, बिरिया सोंचर नमक, कटीला नमक, कालानमक। **बं०**–विटनुन। **म०**–पादेलोण, विडलोण। **गु०**–विड लवण।

विडलवण क्या है इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। श्रीयुत द० अ० कुलकर्णी जी ने अपनी रसरत्नसमुच्चय की टीका में इसका स्पष्टीकरण किया है। जो क्षार, अम्ल, गंधक तथा नमक आदि पदार्थ पारद में दिये हुवे ग्रास को जीर्ण करने के लिये प्रयुक्त होते थे उन्हें बिड कहा जाता था। बाद में इस शब्द का प्रयोग अन्य धातुओं को पारद में जीर्ण कराने के लिये एवं भिन्न-भिन्न धातुओं के शोधन अथवा द्रावण के लिये प्रयुक्त द्रव्यों के लिये किया जाने लगा। इसके पश्चात् रसशास्त्र की अवनति के काल में उपर्युक्त दोनों अर्थ भूल गये और विड का प्रयोग नमक के साथ करके बिडनमक के रूप में कालानमक के लिये आजकल किया जा रहा है। यह कालानमक मनुष्य के खाये हुवे ग्रास अथवा गुरु भोजन को जीर्ण अथवा हजम कराने में समर्थ होने के कारण बिडनमक या कालानमक यह अर्थ ही अब व्यवहार में विशेष रूढ हो गया है।

सुश्रुत की टीका में डल्हण लिखते हैं कि 'कृत्रिमं स्वनाम्ना ख्यातं, तच्च प्रसारिणी कल्कभक्त-लवणसंयोगादग्निदाहेन निवृत्तम्' अर्थात् प्रसारिणी का कल्क, भात तथा नमक आदि को जलाकर बनाया हुआ नमक। गुजरात की ओर उपर्युक्त चीजों को गढ़े में डालकर जलाते हैं तथा १०, १५ दिन बाद उसमें से नमक के ढेले निकाल कर व्यवहार करते हैं।

कुछ लोगों ने सौवर्चल लवण को कालानमक लिखा है।

आजकल बिडलवण नाम से जिस काले नमक का व्यवहार किया जाता है उसके बनाने की निम्न विधि है। यह हिसार जिले में भिवानी नामक ग्राम में अधिक बनाया जाता है। १ मन सेंधानमक तथा हर्रा, आंवला तथा सज्जीखार (व्यापार का सोडियम् कार्बोनेट) प्रत्येक आधा सेर लेकर सब चीजों को कूट कर एवं मिलाकर मिट्टी की हांडियों में पकाते हैं। जब सब चीजें गलकर एक हो जाती हैं तब आंच को बन्द करके ठंडा होने पर नमक के ढोकों को निकाल लिया जाता है। एक अन्य विधि यह है कि २८ सेर साँभर नमक तथा ५० तो० आंवला चूर्ण को मिला कर उसका चतुर्थांश एक संकरे मुंह की हांडी में रखकर गरम करें तथा लाल होने पर बाकी चूर्ण में से थोड़ा थोड़ा उस हांडी में डालते जांय। करीब ६ घण्टे पश्चात् २४ सेर के लगभग काला नमक तैयार हो जावेगा।

यह काला नमक गहरे लाल काले से चमकीले रंग का, नमकीन एवं विशिष्ट गंधयुक्त होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रधानतया (९५%) खाने का नमक तथा अत्यल्प मात्रा में खारी नोंन (Sodium Sulphate–सोडियम् सल्फेट), अॅल्यूमिना, मॅग्नेशिया, फेरिक् ऑक्साइड् एवं आयर्न सल्फाइड् आदि पदार्थ पाये जाते हैं। इसकी गन्ध इसके आयर्न सल्फाइड् के कारण रहती है लेकिन इसमें यह बहुत अल्प (१०० में १ से कम) मात्रा में रहता है।

गुण और प्रयोग—यह अग्निदीपक, वातानुलोमक, विरेचक एवं बल्य है। इसका प्रयोग प्लीहावृद्धि, यकृत् विकार, आध्मान, शूल, अपचन एवं अन्य आंन्त्रिक विकारों में किया जाता है।

मात्रा—२–८ रत्ती।

अथ सौवर्चलं लवणम्। तस्य नामगुणानाह

सौवर्चलं स्याद् रुचकं मन्थपाकञ्च तन्मतम्[1]। रुचकं रोचनं भेदि दीपनं पाचनं परम् ॥
सस्नेहं वातनुन्नातिपित्तलं विशदं लघु। उद्गारशुद्धिदं सूक्ष्मं विबन्धानाहशूलजित् ॥२४९॥

काला नमक के नाम तथा गुण – सौवर्चल, रुचक और मन्थपाक ये सब काला नमक के संस्कृत नाम हैं। **कालानमक**—रोचक, भेदक, अग्निदीपक, अत्यन्त पाचक, स्नेहयुक्त, वातनाशक एवम् अत्यन्त पित्तजनक नहीं होता है। तथा यह विशद गुण युक्त, हलका, उद्गार (डकार) को शुद्ध करने वाला, सूक्ष्म (सूक्ष्म स्रोतोगामी), विबन्ध, आनाह तथा शूल का नाश करने वाला है ॥ २४८–२४९ ॥

९० सोंचर नमक।

हि०–कालानमक, सोंचर नमक, चौहार कोड़ा, चोहार कोरानोन, चौहार कारा, चौहार काला। **बं०**–संचल लवण। **म०**–सोनचक मीठ। **गु०**–संचल। **क०**–चौवर्चल। **ते०**–नालु उपु। **फा०**–नमक सिया, नमक स्याह। **यू०**–नमक काला। **अ०**–माला अस्वद, मलह अस्वद। **अं०**–Black Salt (ब्लॅक साल्ट), Sochal Salt (सोचल साल्ट)। **ले०**–*Unaqua Sodium Chloride* (अनकुआ सोडियम् क्लोराइड)।

जिस प्रकार विडलवण के सम्बन्ध में मतभेद है उसी तरह सौवर्चल लवण के सम्बन्ध में भी मतभेद है। कुछ लोगों ने इसे काललवण लिखा है। कुछ लोगों ने यह लिखा है कि जो सौवर्चल निर्गन्ध होता है वह काललवण है तथा वह दक्षिण समुद्र के समीप बनता है। डा० देसाई लिखते हैं 'रसग्रन्थों में सौवर्चल नाम शोरे को दिया गया है। सु = सुष्ठु, वर्चः = दिप्ति, अल् = प्राप्ति, सर्वथा अलति अनेन इति सौवर्चलं = जिसके कारण भली प्रकार प्रकाश पड़ता है अर्थात् 'वह्न्युत्तेजक'। श्रीयुत द. अ. कुलकर्णीजी लिखते हैं 'जिस मिट्टी से शोरा प्राप्त किया जाता है उसे लुनिया मिट्टी कहते हैं तथा उस मिट्टी में कुछ खाने का नमक भी रहता है जिसे अलग कर लिया जाता है। ऐसे नमक में कुछ शोरे का अंश रहता है। शोरे के साथ-साथ पैदा होने के कारण तथा शोरे की कुछ मात्रा इसमें रहने के कारण इसको सोंचर अथवा सौवर्चल कहते हैं।

सोंचर नमक बनाने की निम्न विधि प्रचलित है। सज्जी माटी को जल में घोल दिया जाता है फिर उसमें थोड़ा थोड़ा खाने का नमक डालते जाते हैं और जितना घुलता है उतना घुलने देते हैं। फिर इस घोल को छानकर अग्नि से सुखाते हैं। यह कुछ गहरे रङ्ग का होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें खाने का नमक, खारी नोंन (सोडा सल्फ) एवं सज्जीखार (कॉस्टिक् सोडा) रहता है लेकिन सोडियम् कार्बोनेट नहीं रहता।

गुण और प्रयोग—इसका उपयोग विड लवण के स्थान पर भी किया जाता है। यह अग्नि-दीपक, पाचक एवं विरेचक होता है। इसका उपयोग शूल, गुल्म, आन्त्रकृमि एवं संग्रहणी आदि में किया जाता है।

मात्रा—२–८ रत्ती।

अथ खानिजं लवणम्। तस्य नामगुणानाह

औद्भिदं पांशुलवणं यज्जातं भूमितः स्वयम्। क्षारं गुरु कटु स्निग्धं शीतलं वातनाशनम् ॥

खानिज लवण अर्थात् रेहगवा नोन के नाम, उत्पत्ति तथा गुण—औद्भिद तथा पांशुलवण

---

[1] 'अक्षपाकं च धातुमत्' इति पाठा०।

ये दो नाम संस्कृत में उस नमक का है जो कि जमीन से स्वयम् उत्पन्न होता है। **रेहगवा नोन**—क्षार गुणयुक्त, गुरु, कटुरसयुक्त, स्निग्ध, शीतल और वातनाशक होता है ॥ २०५ ॥

९१ रेह का नमक

हि०—रेहगवा नोन, रेह का नमक, मटिया नोन, शोरा नोन। **बं०**—फूला लवण।

जांगल देश की खारी भूमि में रेह उत्पन्न होती है। उत्तरप्रदेश, पञ्जाब, बिहार एवं बंगाल आदि प्रान्तों की ऊसर जमीन में भी रेह होती है। उसी रेह से बना हुआ नमक रेहगवा नोन कहलाता है। जिस प्रकार की मिट्टी होगी उसी प्रकार का नमक प्राप्त होता है। जिस मिट्टी से शोरा अलग किया जाता है उससे प्राप्त नमक में शोरे का अंश रहता है। ऐसे नमक को कुछ लोग सौवर्चल लवण मानते हैं। तथा सज्जी मिट्टी से प्राप्त नमक में सज्जीखार की कुछ मात्रा रहती है। इसे वे औद्भिद लवण या रेहगवा नोन मानते हैं। कुछ भी हो जो ऊसर मिट्टी से नमक निकाला जाता है उसे रेहगवा नोन कहा जाता है। यह नमक कुछ तीता, कडवा एवं क्षारीय होता है।

रासायनिक संगठन—इस नमक में काफी मात्रा में खारी नोन (सोडा सल्फ) तथा अल्प मात्रा में सोडियम् कार्बोनेट एवं मॅग्नेशियम् सल्फेट रहते हैं।

गुण और प्रयोग—रोचक, दीपन एवं पाचन गुण के कारण सभी पाचन योगों में इसका व्यवहार किया जाता है। सामान्य मात्रा में मूत्रल भी होता है। योगों के अतिरिक्त स्वतन्त्ररूप में लवणों का प्रयोग बहुत कम किया जाता है। वमन कराने के लिए प्रायः सैन्धव ही प्रयुक्त होता है।

मात्रा—४ रत्ती से १ माशा।

नोट—उपर्युक्त लवणों के अतिरिक्त चरक (वि. अ. ८) के लवण स्कन्ध में एवं सुश्रुत (सू. अ. ४६) में इतर विशिष्ट लवणों का उल्लेख किया गया है।

अथ चणकाम्लकम्। तस्य गुणानाह

चणकाम्लकमत्युष्णं दीपनं दन्तहर्षणम्। लवणानुरसं रुच्यं शूलाजीर्णविबन्धनुत् ॥ २५१ ॥

चनाखार के नाम तथा गुण—चनाखार को संस्कृत में चणकाम्ल कहते हैं। चणकाम्ल—अत्यन्त उष्णवीर्य, अग्निदीपक, दन्तहर्षण (दन्तहर्ष अर्थात् दांतों में खट्टापन लग जाने से चवाने में असमर्थ कर देने वाला), कुछ लवण रस युक्त, रुचिकारक, शूल, अजीर्ण तथा विबन्ध को दूर करने वाला होता है ॥ २५१ ॥

९२ चनाखार

हि०—चने का खारा, चनाखार, चनक लोनी, चने का सिरका। **म०**—हरभऱ्याची आंब। **गु०**—चणा नो खार।

मार्गशीर्ष के महीने में जब चने के क्षुप लवण युक्त हो जाते हैं तब मलमल का सफेद कपड़ा लेकर प्रतिदिन प्रातःकाल उक्त क्षुपों पर फेर, उन पर पड़े हुए ओस की बूँदों से उसको तर कर सुखा दे। इस प्रकार एक मास करके उस कपड़े को पानी में खूब मलकर उसका अम्ल पदार्थ निकाल ले। फिर उस पानी को ५-७ घण्टे स्थिर छोड कर उसका पानी नितार ले। नीचे जमे

हुए पदार्थ को सुखा के और पानी को अग्नि पर औटा कर उसको भी सुखा ले। फिर दोनों को एक में मिला कर सुरक्षित रख दें। उपर्युक्त विधि के अतिरिक्त केवल रात में या सुबह मलमल का कपड़ा चने के क्षुपों पर डाल कर सुबह उसको निचोड़ लेते हैं। जो द्रव प्राप्त होता है उसे उसी द्रव रूप में या सुखा कर काम में लाया जाता है। कुछ लोग क्षार-निर्माण विधि की तरह चने का क्षुप जलाकर उससे क्षार निकालते हैं वह गलत है क्योंकि उसमें तो केवल क्षार (पोटॅशियम् कार्बोनेट) ही रहता है। यहां जो गुण दिये गये हैं वे अम्ल के हैं। इसलिये ऊपर दी हुई विधि से ही इसे बनाना चाहिये न कि क्षाररूप में।

रासायनिक संगठन—यद्यपि इसे चनाखार लिखा गया है लेकिन इसमें अम्ल द्रव्य होते हैं। इसमें ऑक्झॅलिक् (Oxalic), मॅलिक् (Malic) एवं ॲसेटिक् (Acetic) आदि अम्ल पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—चणकाम्ल का उपयोग उदरशूल, अजीर्ण, बच्चों के आमातिसार, अग्निमांद्य, विबन्ध तथा कष्टार्तव में किया जाता है। इसको जल में मिला कर लू लगने पर तथा ज्वर में देने से तृषा, दाह एवं सन्ताप कम होता है। अजीर्ण में इसको सिरका के साथ मिला कर पिलाते हैं। लौंग तथा मिश्री के साथ इसको जल में मिलाकर हैजे में देने से लाभ होता है। मधुमेह एवं पथरी में इसका प्रयोग हानिकारक है।

मात्रा—१-२ रत्ती या ५-१० बूंद।

अथ यवक्षारः स्वर्जिका सुवर्चिका च। तन्नामगुणानाह

पाक्यं क्षारो यवक्षारो यावशूको यवाग्रजः। स्वर्जिकाऽपि स्मृतः क्षारः कापोतः सुखवर्चकः ॥
कथितः स्वर्जिकाभेदो विशेषज्ञैः सुवर्चिका। यवक्षारो लघुः स्निग्धः सुसूक्ष्मो वह्निदीपनः ॥
निहन्ति शूलवातामश्लेष्मश्वासगलामयान्। पाण्ड्वर्शोग्रहणीगुल्मानाहप्लीहहृदामयान् ॥
स्वर्जिकाऽल्पगुणा तस्माद्विज्ञेया गुल्मशूलहृत्।
सुवर्चिका स्वर्जिकावद् बोद्धव्या गुणतो जनैः ॥ २५५ ॥

जवाखार, सज्जी तथा सोरा के नाम और गुण—पाक्य, क्षार, यवक्षार, यावशूक और यवाग्रज ये सब जवाखार के संस्कृत नाम हैं। स्वर्जिका, क्षार, कापोत और सुखवर्चक ये सब सज्जी के संस्कृत नाम हैं। जवाखार की भाँति इसका भी संस्कृत में क्षार नाम है। द्रव्यों की विशेषताओं के ज्ञाता वैद्य जन सोरा को सज्जी का ही भेद बतलाते हैं। इसे संस्कृत में सुवर्चिका कहते हैं। **जवाखार**—लघु, स्निग्ध, अत्यन्त सूक्ष्म (सूक्ष्म स्रोतोगामी) तथा अग्निदीपक होता है एवम् यह शूल, वायु, आम, कफ, श्वास, गलरोग, पाण्डुरोग, बवासीर, संग्रहणी, गुल्म, आनाह, प्लीहा और हृद्रोग का नाश करता है। **सज्जी**—इसे जवाखार की अपेक्षा न्यून गुणवाली तथा विशेष करके गुल्म तथा शूल को दूर करने वाली समझना चाहिये। **सुवर्चिका** (सोरा)?—इसे लोग गुणों में सज्जी के समान ही समझें, ऐसा वैद्यों का मत है ॥ २५२-२५५ ॥

९३ जवाखार।

हि०—जवाखार, जवखार। **बं०**—यवक्षार। **म०**—झाडाचे मीठ, जवाखार। **गु०**—जवाखार, खारो। **ता०**—मरवप्पु। **ते०**—मानुवप्पु। **मल०**—कारम्। **क०**—मरदउप्पु। **अं०**—Impure carbonate of potash (इम्प्योअर कार्बोनेट ऑफ् पोटॅश्)। **ले०**—*Potasii carbonas* (पोटॅसाइ कार्बोनस्)।

जब यव क्षुपों पर बाल निकलने वाले हों तब पञ्चांग को संग्रह कर सुखा दें। और सुखाने पर आग लगा कर राख बना उसको २४ घंटे आठगुने पानी में भिगो दें। यदि पञ्चांग जलाने के बाद उसकी राख काली रहे तो जल में डालने के पूर्व उसे कड़ाई में डाल कर राख सफेद होने तक पकाना चाहिए। फिर ऊपर का स्वच्छ जल नितार लें अथवा फिल्टर से पानी को छान लें। उस स्वच्छ जल को किसी कलईदार कड़ाही में अग्नि पर पकावें। पानी सूखने पर कड़ाही में जमे हुए क्षार को खुरच कर सुरक्षित रखें। इसी को जवाखार कहते हैं। यवक्षार नाम से औषध में उपर्युक्त विधि से तैयार किये हुए क्षार का व्यवहार करना चाहिये। इस क्षार में अधिकांश मात्रा पोटॅशियम् कार्बोनेट (Potassium carbonate) की रहती है तथा कुछ अन्य पदार्थ भी रहते हैं। इसी प्रकार अधिकांश वृक्षों की राख में भी पोटॅशियम् कार्बोनेट रहता है। तथा उनके अन्दर रहने वाले अन्य विभिन्न पदार्थों के कारण विभिन्न क्षारों के गुणों में अन्तर पाया जाता है। काष्ठमय झाड़ियों की अपेक्षा रसयुक्त वर्षायु क्षुपों में यह अधिक पाया जाता है।

व्यापार की दृष्टि से पोटॅशियम् कार्बोनेट्, आर्टिमिसिआ या वर्मवुड् (Artemisia; Wormwood) नामक वृक्षों से, बीटरूट् (Beet-root) से, भेंड़ के बालों को धो कर उस घोल से, सोराखार से एवं पोटॅशियम् सल्फेट (Potassium sulphate) आदि से प्राप्त किया जाता है। भूमि में पोटॅशियम् के लवण रहते हैं। वृक्ष भूमि से इनका शोषण कर लेते हैं। इनके बिना वृक्षों की वृद्धि नहीं होती।

उपर्युक्त क्षार मृदुक्षार कहलाता है। तीक्ष्ण क्षार बनाने के लिये क्षारोदक (वृक्ष को जला कर बनाई राख के जलीय भाग) में चूना मिलाना चाहिये तथा बाद में उस घोल को सुखाना चाहिये। यह अत्यन्त दाहक होता है तथा इसमें पोटॅशियम् हाइड्रोऑक्साइड् रहता है। यवक्षार का स्वाद राखी के समान किन्तु कुछ नमकीन होता है।

गुण और प्रयोग—यवक्षार अग्निदीपक, मृदुविरेचक, अम्लतानाशक, रक्तशोधक, सौम्य मूत्रल, कफनिःसारक एवं कुछ स्वेदजनक है।

इसका उपयोग शूल, अजीर्ण, अम्लपित्त, अम्लोत्कर्ष, मूत्रकृच्छ्र, यकृत् प्लीहा एवं अन्यग्रन्थियों की वृद्धि, ज्वर, अर्श, कामला एवं गुल्म में किया जाता है।

(१) जीर्ण आमाशयशोथ तथा आमाशय में श्लेष्मा की अधिकता होने पर भोजन के २० मिनट पूर्व यवक्षार का उपयोग अन्य सुगन्धि एवं तिक्त औषधों के साथ किया जाता है जिससे श्लेष्मा कम हो कर पाचक स्रावों की उत्पत्ति होती है तथा पाचन ठीक होता है। परिणाम शूल एवं अम्लपित्त आदि विकारों में भोजन के २ घंटे पश्चात् इसके उपयोग से अम्लता की अधिकता से होने वाला शूल नहीं होता। नींबू के रस के साथ फेनायमान मिश्रण के रूप में लेने से आमाशय पर शामक प्रभाव होकर वमन में लाभ होता है।

(२) यकृत्, प्लीहावृद्धि एवं गुल्म आदि में बड़ाहर्रा, रोहितक की छाल एवं छोटी पीपल के क्वाथ के साथ इसका उपयोग किया जाता है। इसके उपयोग से आन्त्रिक श्लेष्मा कम होकर पित्त मार्ग का अवरोध दूर होने से कामला में लाभ होता है।

(३) इसके उपयोग से कफ पतला होकर निकलने लगता है। शुष्क कास तथा श्वसनिका-शोथ आदि में ४ रत्ती यवक्षार, १० बूंद अडूसा का रस तथा २ रत्ती लौंग का चूर्ण देने से लाभ होता है।

(४) ज्वर तथा अन्य अम्लोत्कर्ष की अवस्थाओं में इसका उपयोग किया जाता है। ज्वर में स्वेदल रूप में पसीना लाने के लिये नीम के रस या क्वाथ के साथ इसका उपयोग लाभदायक है।

(५) इससे वृक्कों को उत्तेजना मिलने से मूत्रोत्सर्ग अधिक होता है। मूत्रकृच्छ्रता में इससे प्रक्षोभ का शमन होकर पेशाब की जलन दूर होती है। मूत्र की प्रतिक्रिया क्षारीय होने से यूरिक् एसिड (Uric acid) का उत्सर्ग अधिक हो कर आमवात, वातरक्त तथा यूरिक् एसिड से बनने वाली पथरी में लाभ होता है।

(६) इसके घोलका बाह्य प्रयोग शीतपित्त, उदर्द, खुजली, श्वित्र, विचर्चिका एवं कीटदंश पर किया जाता है। इससे त्वचा के ऊपर का तैलीय अंश घुल कर निकल जाता है जिससे सादे जल की अपेक्षा इसके घोल से त्वचा अधिक साफ हो जाती है।

अधिक मात्रा में इसके प्रयोग से अतिसार, शोथ, फॉस्फेट्स से बनने वाली पथरी आदि व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं तथा वृक्क भी विकार ग्रस्त हो जाते हैं।

मात्रा—१-२ रत्ती।

९४ सज्जी।

हि०—सज्जी, सज्जीखार, सज्जीमिट्टी। बं०—साजिखार, साजीमाटी, साजी खार। म०—सज्जीखार, साजी। मा०—साजीक्षार। गु०—साजीखार। क०—साजीखारुं, साजी खार, सज्जीखार। ता०—सज्जीकारं। पं०—सज्जी, लोटा सज्जी, खगनखार। फा०—संजार कलिया, अशखार। अ०—कलिमास्कर, कलिवशब्बुल असफर। अं०—Barilla (बॅरिला—खारे वृक्ष की राख); Impure Carbonate of Soda (इम्प्योअर कार्बोनेट ऑफ् सोडा)।

सज्जी—सफेदी लिए भूरे रंग का एक प्रसिद्ध खार है। औषध के अतिरिक्त कांच, साबुन एवं कागज आदि अनेक पदार्थों के निर्माण में इसका उपयोग किया जाता है। सज्जी कई प्रकार से बनाई जाती है जिनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

(१) समुद्र के किनारे तथा क्षारीय भूमि में उत्पन्न होने वाले कुछ वृक्ष होते हैं, उनकी राख में सज्जी होती है। समुद्र के सेवार में भी सज्जी होती है जिसकी राख को केल्प (Kelp) कहा जाता है। ये स्पंज के समान कड़े गट्ठे होते हैं तथा इसमें ३-८% सज्जी होती है। खारे वृक्षों की राख को खार सज्जी (Barilla-बॅरिला) कहा जाता है जिनमें २५-४०% सज्जी होती है। भारतवर्ष में निम्न तीन वर्ग के खारे वृक्ष पाये जाते हैं—चिनोपोडिएसी (Chenopodiaceae), सॅलिकोर्निसी (Salicorniceae) एवं सॅल्सोलेसी (Salsolaceae)। पंजाब में अक्तूबर से जनवरी तक सज्जी बनाने के कारखाने काम करते हैं। खारे वृक्षों को सुखाकर ६ फीट गोल एवं ३ फीट गहरे गढ़े में डालकर धीरे-धीरे जलाते हैं। गढ़े में हांडियों को नीचे छेद कर उल्टे मुंह रखते हैं। कुछ समय बाद राख में से पतला द्रव निकल कर हांडियों में जमता है। ४ दिन वैसे ही अपने आप ठंडा होने देते हैं। हांडियों में जो सज्जी जमा होती है उसे वहां लोटासज्जी कहा जाता है। हांडियों के बाहर जो सज्जी जमती है वह अशुद्ध होती है। लोटासज्जी कॅरोक्साइलॉन् ग्रिफिथिआइ (Caroxylon Griffithii) नामक वृक्ष से बनाई जाती है। यह सबसे शुद्ध होती है तथा औषध में इसका व्यवहार किया जाता है। मांटगोमरी प्रांत में इसे खगनखार कहा जाता है। दूसरे वृक्षों से प्राप्त सज्जी जो हलके दर्जे की होती है उसे भूसीसज्जी कहते हैं। लोटासज्जी को औषध में व्यवहार में लाने के पूर्व शोधन कर लेना चाहिये। इसके लिये इसे दुगुने जल में बंद पात्र में २ घंटे उबालते हैं तथा बार-बार हिलाते जाते हैं। फिर ऊपर के गरम तरल भाग को छान कर तामचिनी की कढ़ाईयों में मन्द आंच पर सुखाते हैं। बचे हुवे नीचे के भाग में फिर जल डालकर उबाल कर ऊपर का द्रव छान कर सुखाते हैं। इस

प्रकार प्राप्त हुई सज्जी को फिर उष्ण जल में घोल कर सुखाते हैं जिससे इसकेरवे बनते हैं। इन्हें बंद बोतलों में रखना चाहिये।

(२) भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों में ऊसर अथवा रेहाल भूमि होती है। ऐसी भूमि में सज्जी, खारीनोन (सोडियम् सल्फेट), नमक एवं सोरा आदि मिले रहते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों की रेह में इनकी मात्रा कम ज्यादा हुआ करती है तथा और भी कुछ पदार्थ उसमें रहते हैं। जिस रेह में सज्जी की अधिकता होती है उसे सज्जी माटी या धोबी की मट्टी कहा जाता है। उत्तरप्रदेश में गंगा और जमुना नदी के बीच के प्रदेश में रेह बहुत होती है। इसमें ८८% सज्जी होती है। जिस स्थान में रेह अधिक होती है वहां इसका जमीन पर बरफ की तरह सफेद स्तर स्पष्ट दिखलाई देता है। हिमालय से जो नदियां बहती आती हैं वे अपने साथ विभिन्न क्षार तथा लवणों को बहा ले आती हैं। ये आसपास की जमीन में जमा होते हैं। गरमी के दिनों में उष्णता से जब नीचे का जल ऊपर आता है तब उसके साथ ये क्षार ऊपर आकर जम जाते हैं। जिस रेह में सज्जी अधिक होती है उसे जल में घोल कर एवं नितार-छानकर सुखा लेते हैं।

(३) मध्यप्रांत में लोणार तालाब से भी सज्जी बनाई जाती है। यह रेह से प्राप्त सज्जी से शुद्ध होती है। इस तालाब में सज्जी के बड़े-बड़े टुकड़े भी मिलते हैं तथा उसके जल को सुखाकर भी सज्जी प्राप्त करते हैं। इस तालाब से सोडियम् बाइकार्बोनेट (Sodium bicarbonate, $NaHCO_3$), **सं०-द्रोणलवण** भी प्राप्त होता है। इसको दोने में लेकर जमाते हैं। इसलिये इसे द्रोण लवण कहा जाता है।

(४) उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्त खाने के नमक एवं खारीनोन आदि से भी सज्जी बनाई जाती है।

शुद्ध सज्जी को सुरतीखार कहा जाता है तथा बाजारी अशुद्ध सज्जी को बांगडखार कहते हैं। सर्वप्रथम लिखे हुए प्रकार की शुद्ध सज्जी का औषध में व्यवहार करना चाहिये। यह शुभ्र, गंधहीन, अस्वादु, कुछ नमकीन एवं ताजी अवस्था में रवेदार होती है। खुली हवा में रखने पर इस पर बुरादा जम जाता है। यह जल में विलेय लेकिन मद्यसार में अविलेय होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रधानतया सोडियम् कार्बोनेट (Sodium carbonate, $Na_2Co_3 10H_2O$) रहता है।

गुण और प्रयोग—सज्जी के गुण यवक्षार के गुणों के समान ही हैं किन्तु उससे यह कुछ हीनगुण युक्त है। यह दीपन, पाचन, मूत्रल, कफनिःसारक, अम्लतानाशक एवं आध्मानहर है।

इसका उपयोग कास, श्वास, अजीर्ण, अम्लपित्त, शूल, आध्मान, मूत्रकृच्छ्र, आमवात एवं गुल्म आदि रोगों में किया जाता है।

(१) अग्निमांद्य, अजीर्ण एवं परिणामशूल में सज्जीखार, यवक्षार एवं पञ्चलवण सब समान मात्रा में लेकर नींबू के रस की भावना देकर १० रत्ती की मात्रा में दिया जाता है।

(२) सज्जीखार ५ भाग, यवक्षार ५ भा०, सोंठ ४ भा०, सोंचलनमक ४ भा० एवं छोटी पीपल ३ भा० इनका चूर्ण अजीर्ण एवं शूल आदि में गरम जल के साथ दिया जाता है।

(३) अनेक चर्म रोगों में इसके हल्के घोल में अवगाहन कराया जाता है एवं जले हुए भाग पर १०% घोल की पट्टी रखने से पीड़ा शांत होती है। सज्जीखार एवं यवक्षार दोनों को जल में मिलाकर फोड़े पर लगाने से फोड़ा जल्दी फूटकर बह जाता है।

मात्रा—१-२ र०

नोट—पाश्चात्य चिकित्सा में यवक्षार (पोटेशियम् कार्बोनेट) एवं सज्जीखार (सोडियम् कार्बोनेट) की अपेक्षा आंतरिक प्रयोग के लिये पोटेशियम् बाइकार्बोनेट एवं सोडियम् बाइकार्बोनेट का अधिक प्रयोग किया जाता है क्योंकि ये अधिक सौम्य होते हैं। इनमें भी पोटेशियम् के लवण शरीर में एक निश्चित अनुपात में रहते हैं। जब तक इन्हें अत्यधिक मात्रा में या सिरा द्वारा प्रयोग नहीं करते तब तक इनके प्रभाव में विशेष अंतर दिखलाई नहीं देता। भारतवर्ष के लोणार तालाब की सज्जी में सोडियम् बाइ कार्बोनेट रहता है।

९५ सोरा (सुवर्चिका)

सं०-सौरक्षार, सूर्यक्षार, सौवर्चल, वह्न्युत्तेजक, सुवर्चिका, कर्पूर शिलाजतु। **हि०**-सोरा, कलमी सोरा, सोराखार। **बं०**-सोरा। **गु०**-सुरोखार। **पं०**-कल्मीशोर। **ता०**-पोत्तिउप्पु। **अ०**-अब्कर। **फा०**-शोरा। **अं०**-Saltpetre (साल्टपीटर = पहाड़ी नमक); Potassium Nitrate (पोटेशियम् नाइट्रेट)। **ले०**-*Potassii Nitras* (पोटेसिआइ नाइट्रास्)।

भारतवर्ष में सोरे की जानकारी बहुत दिनों से है। शुक्रनीति एवं रसार्णव में इसे सौवर्चल लिखा है। माधवविरचित आयुर्वेद-प्रकाश में सोरे को 'कर्पूराभं शिलाजतु सोरकाख्यं तु पाण्डुरम्' ऐसा लिखकर अग्निबाण में इसका उपयोग होता है, ऐसा लिखा है। रसपद्धति में 'श्वेतं शिलाजतु वन्ह्युत्तेजकं' लिखा है तथा उचित रोगोपयोग भी दिया है। रसरत्नसमुच्चय में भी 'कर्पूर शिलाजतु' नाम से इसका उल्लेख है तथा गुण भी सोरे से मिलते हैं। इसका मारण अथवा सत्त्वपातन नहीं किया जाता' यह निर्देश ध्यान देने योग्य है। और भी अनेक स्थानों पर इसका उल्लेख मिलता है। मूल में यह आया है कि 'सुवर्चिका स्वर्जिकावद् बोद्धव्या गुणतो जनैः' यह बात भ्रमात्मक मालूम होती है। या तो सज्जी का ही कोई भेद होगा जिसके लिए सुवर्चिका शब्द का प्रयोग भावप्रकाशकार ने किया हो या डा० देसाई के कथनानुसार भावप्रकाशकार का कथन गलत हो। इसी प्रकार 'सौवर्चल' शब्द के विषय में भी मतभेद है जिसके संबन्ध में सौवर्चल लवण के अन्तर्गत विवेचन किया गया है। यहां सोरे का वर्णन दिया जा रहा है।

प्राचीनकाल में भारतवर्ष से सोरे के निर्यात का व्यापार बहुत था लेकिन अंग्रेजों के नियन्त्रण के कारण इसका व्यापार बहुत कम हो गया। यहां उत्तर हिन्दुस्तान, पंजाब, सिंध एवं गङ्गा नदी के बीच के प्रदेश तथा बिहार में यह बहुत उत्पन्न होता है। बिहार में तो यह सबसे अधिक उत्पन्न होता है। वहां पर जमीन पर ओस की तरह जमा हुआ सोरे का पतला स्तर दिखेलाई देता है।

लकड़ी, गोबर आदि की राख, जानवरों की विष्ठा, मूत्र, कुछ बरसात एवं उष्णता तथा एक प्रकार के कृमि इन सबकी सहायता से सोरा बनता है इसलिए इसे पूतिलवण और कृमिज क्षार ये नाम दिये गये हैं। बरसात के पूर्व गांव के आस पास की भूमि २ इञ्च तक खोदकर उसे जल में मिलाते हैं फिर ऊपर के जल को उबाल कर या सूर्यताप से सुखाकर सोरा निकालते हैं। फिर से अशुद्ध सोरे को साफ किया जाता है। कलमीशोरा काफी शुद्ध रहता है। इसमें ९०% शुद्ध सोरा रहता है। बिहार में सोरा निकालने वाले लोगों को लुनिया कहा जाता है। सोरे के साथ ही साथ उस मिट्टी में खारीनोन एवं खाने का नमक भी होता है जिसे अलग कर लिया जाता है। ऐसे नमक को पंजाब में 'कल्रीनून' या 'निमकशोर' एवं बिहार में 'पकवानिमक' कहा जाता है जिसे कुछ लोगों ने सौवर्चल लवण माना है। सोरा, सोडियम् नाइट्रेट (Sodium Nitrate) तथा पोटेशियम् क्लोराइड् (Potassium Chloride) के परस्पर संयोग के द्वारा कृत्रिम रूप से भी बनाया जाता है।

शोधन—बाजारू सोरे में ४०-६४% शुद्ध सोरा होता है और बाकी नमक रहता है। कलमी-शोरा काफी शुद्ध होता है। शोरे को साफ करने के लिये एक तांबे के पात्र में शोरे के बराबर उबलते जल में उसे घोलते हैं तथा मोटे कपड़े से लकड़ी की थालियों में छानते हैं। जब घोल ठंडा होने लगता है तब उसे लकड़ी से हिलाते जाते हैं जिससे इसका दानेदार चूर्ण प्राप्त होता है। औषध-प्रयोग में लाने से पूर्व इलायची के क्वाथ से इसमें ३ बार भावना देनी चाहिये। अशुद्ध सोरे के प्रयोग से दाह, मूर्च्छा, रक्तपित्त, भ्रम, अग्निमांद्य एवं विड्ग्रह आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। अशुद्ध के सेवन से उत्पन्न विकारों की शान्ति के लिए ३ माशा कालीमरिच का चूर्ण घृत के साथ ७ दिन तक प्रातःकाल में सेवन करना चाहिये।

शुद्ध सोरा रंगहीन दानेदार चूर्ण रूप में या षट्फलक स्फटिक रूप में होता है। इसका स्वाद शीतल एवं कुछ नमकीन होता है। अंगारे पर डालने से एकदम जलने लगता है। इसमें का हैं आक्सीजन अलग होने में समर्थ होने के कारण किसी गंधक आदि ज्वलनशील पदार्थ के साथ इसे मिलाकर गरम करने से एकाएक बहुत तीव्र उष्णता उत्पन्न होती है जिसमें चांदी का सिक्का तक गल जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें पोटॅशियम् नाइट्रेट (Potassium nitrate, KNO_3) रहता है। अल्प मात्रा में सोरे में कुछ नाइट्राइट्स (Nitrites) भी पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह कटु, तीक्ष्ण, मूत्रविरेचनीय, स्वेदजनन, श्लेष्महर एवं शोथहर है। इसका गाढा घोल आमाशय एवं आंत्र में तीव्र प्रक्षोभ उत्पन्न करता है जिससे रक्तवमन, रक्तातिसार तथा हृदयातिपात होकर मृत्यु भी हो सकती है। हृदय के लिए यह अवसादक होने के कारण हृदय की गति कम होती है तथा उसका बल भी कम हो जाता है। यह रक्त कणों के आक्सीजन ग्रहण करने की शक्ति को घटाता है एवं इससे रक्त जमने की क्रिया भी घट जाती है। इसका मूत्रल प्रभाव वृक्क द्वारा अधिक मूत्र के छनने (Filtration) से होता है तथा अधिकांश मात्रा में यह मूत्र द्वारा उत्सर्गित हो जाता है।

इसका उपयोग मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, ज्वर, शोथ, प्लीहावृद्धि, पाण्डु, कामला, प्रमेह एवं अग्निमांद्य आदि में किया जाता है।

(१) मूत्रकृच्छ्र एवं अश्मरी में इसको गोखरू के काढे के साथ पिलाते हैं तथा बड़ के पत्तों को पीस कर तथा उसमें सोरा मिला कर पेडू पर लेप करते हैं।

(२) पुराने सोजाक में सोरा ५, दालचीनी ४, हर्रा ३, पाषाणभेद ३, इलायची ५ एवं चीनी २० भाग, इसका अवलेह ४ माशा की मात्रा में उपयोगी है। सोरा ५ रत्ती को मात्रा में भिंडी के क्वाथ के साथ देने से भी सोजाक में लाभ होता है।

(३) श्वेत प्रदर (ल्यूकोरिया) में ५ र० सोरा तथा तथा २½ र० फिटकिरी का चूर्ण दिन में ३ बार दिया जाता है।

(४) तमक श्वास के आवेग को रोकने के लिये इसके २०% घोल में सुखाए हुए सोख्ते के कागज को जलाकर उसका धूआँ नाक से सूंघने से आवेग रुक जाता है।

(५) ज्वर में मद्य, शर्करा एवं उष्ण जल के साथ १० र० सोरा देने से पसीना हो कर ज्वर कम हो जाता है।

(६) वातरक्त (गाउट) एवं मदात्ययजन्य शिरःशूल के निवारण के लिये सोरा १० र० एवं पोटॅशियम् बाइकार्बोनेट १५ र० एक बोतल सोडावाटर के साथ पिलाने से आवेग रुक जाता है। आमवात में अर्कमूल के चूर्ण के साथ या मांड के साथ इसको दिया जाता है।

(७) उरस्तोय (प्लूरिसी), सद्रव हृदयावरणशोथ (पेरीकार्डाइटिस्) एवं जलोदर आदि में पुनर्नवा, काली कुटकी, सोंठ आदि के क्वाथ के साथ इसका प्रयोग करते हैं।

(८) ५ साल से बड़े बच्चों की खांसी में सोरा ५, हीराकसीस ४, नौसादर ४ एवं गन्धक ४ भाग इनका चूर्ण ½ र० की मात्रा में देते हैं।

(९) शिरःशूल, शोथ, आमवातज सन्धिपीडा, मोच एवं चोट आदि पर नवसादर एवं सोरा जल में घोल कर उसमें कपड़ा भिगो कर उसकी पट्टी रखी जाती है।

(१०) औषध के अतिरिक्त सोरे का उपयोग बन्दूक की बारूद, तेजाब, रंगने का काम, मांस-मछली-संरक्षण, खाद, कांच के निर्माण में द्रावण के रूप में एवं आतिशबाजी आदि में किया जाता है।

अधिक मात्रा से—हृदय की दुर्बलता, आमाशय एवं आंत्र में प्रक्षोभ, वृक्कशोथ एवं वस्तिशोथ होता है। इन व्याधियों से पीडित व्यक्तियों में इसका उपयोग भी नहीं करना चाहिये।

हानिनिवारक—कतीरा एवं मधु।

मात्रा—२-१० र०

अथ टङ्कणक्षारः (सुहागाखार)। तस्य नामगुणानाह

सौभाग्यं टङ्कणं क्षारं धातुद्रावकमुच्यते। टङ्कणं वह्निकृद्रूक्षं कफहृद्वातपित्तकृत् ॥ २५६ ॥

सुहागा के नाम तथा गुण—सौभाग्य, टङ्कण, क्षार तथा धातुद्रावक ये नाम संस्कृत में सुहागा के हैं। **सुहागा**—अग्निकारक, रूक्ष, कफनाशक एवं वातपित्तकारक होता है॥ २५६ ॥

९६ सुहागा

हि०—सुहागा, सोहागा, टिंकाल। **बं०**—सोहागा। **तिब्बत**—चूतस्ले (साधारण), तस्लेमेटांग (अच्छा), चूसल। **म०**—टांकणखार। **मा०**—सोगी। **काश्मी०**—बबुत। **गु०**—खडियाखार,टंकणखार। **क०**—विलिगार। **पं०**—सुहागा। **ता०**—वेंगा(का)रं। **ते०**—एलिगारम्, वेल्लिगारं। **फा०**—त(ति)न्कार। **अ०**—बोरक। **अं०**—Borax (बोरॅक्स); Sodium Borate (सोडियम् बोरेट); Biborate of Soda (बाइबोरेट ऑफ सोडा)। **ले०**—*Sodii Biboras* (सोडिआई बाइबोरास)।

सुहागा एक प्रसिद्ध खनिज द्रव्य है। भारतवर्ष में इसकी जानकारी बहुत प्राचीन काल से रही है कि लेकिन युरोप वालों को १७ वीं शताब्दी के अन्त तक इसकी अधिक जानकारी नहीं थी। सर्वप्रथम दक्षिण भारत से युरोप में इसका प्रचार हुआ। यह स्वाभाविक एवं कृत्रिम (रासायनिक विधि द्वारा बनाया) दो प्रकार का होता है। चूना, गोदन्ती एवं नमक आदि पदार्थों के साथ तथा स्वतन्त्र रूप में यह प्राप्त होता है। हिमालय की पर्वतश्रेणियां, काश्मीर, लद्दाख एवं विशेष रूप से तिब्बत इसके उत्पत्ति-स्थान हैं। तिब्बत से आने वाले चौकोर स्फटिक होते हैं। इन्हें चौकिया सोहागा कहा जाता है जिसका औषधि के लिये व्यवहार करते हैं। इसी को संभवतः आयुर्वेद-प्रकाश में 'नीलकण्ठ' कहा गया है जिसमें नीली आभा रहती है। इन पर मिट्टी लगी रहती है। अंगुली से रगड़कर मिट्टी हटाने पर तेलिया स्पर्श मालूम होता है। खुली हवा में टङ्कण का जलीयांश निकल जाता है जिससे उसके ऊपर सफेद बुरादा जम जाता है। इसलिये इस पर घी या चर्बी लगा देते हैं।

शुद्ध टङ्कण स्फटिक सदृश, वर्णरहित, पारभासक, चमकीला, गन्धहीन, स्वाद में कुछ नमकीन एवं कसैला तथा अल्पक्षारीय होता है। इससे गरम करने पर इसका जलीयांश निकल जाता है

और यह फूलकर छिद्रयुक्त ढेला सा हो जाता है। यही इसकी शोधन की विधि भी है क्योंकि इस पर जो चर्बी आदि लगी रहती है वह गरम करने से जल जाती है। अशुद्ध सुहागे के सेवन से चर्बी आदि के कारण वांति और भ्रम आदि उत्पन्न होते हैं।

औषध के अतिरिक्त मिट्टी के बर्तनों पर चमक लाने में, मीना बनाने में, बनावटी रत्नों के निर्माण, वार्निश रंग के काम, धातुओं के शोधन एवं द्रावण आदि के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—यह सोडियम् तथा बोरिक् एसिड के संयोग से बनता है। इसका रासायनिक सूत्र $Na_2B_4O_7, 10H_2O$ है।

गुण और प्रयोग—टङ्कण, उष्ण, रूक्ष, कफहर, दीपन, हृद्य, आध्मानहर, विषदोषहर, आर्तव-प्रवर्तक एवं व्रणरोपक है। इसका उपयोग अम्लपित्त, आध्मान, कफज्वर, प्लीहावृद्धि, रक्तप्रदर, अनार्तव, कष्टार्तव, प्रसव के समय आविवृद्धि के लिये तथा इसके सौम्य प्रतिदूषक होने के कारण बाह्य प्रयोग के लिये किया जाता है।

(१) बच्चों के कफयुक्त ज्वर, कास विशेषकर गले की खराबी से उत्पन्न होने पर, दुर्गन्धयुक्त अतिसार, अपस्मार तथा आक्षेप आदि में इसका प्रयोग किया जाता है। परिश्रुत जल में बनाया हुआ इसका १० प्रतिशत का घोल सिरा द्वारा सूचीवेध से देने पर अपस्मार में बहुत लाभकर होता है।

(२) इसका मूत्र के द्वारा शीघ्र उत्सर्ग होने के कारण जल तथा यूरिया का अधिक उत्सर्ग होता है। यह मूत्र को क्षारीय करता है तथा इसी प्रतिक्रिया में मूत्र जननेन्द्रिय संस्थान के लिये अच्छा प्रतिदूषक है। इसके प्रयोग से दूषित मूत्र साफ हो जाता है।

(३) सौम्य प्रतिदूषक (Antiseptic) होने के कारण इसका बाह्य प्रयोग बहुत किया जाता है। प्रक्षोभकारक न होने के कारण कोमल श्लेष्मलकला के उपसर्ग में लाभदायक है। क्षत, व्रण, खुजली, विचर्चिका, दाद, जले हुये व्रण आदि के लिये व्रणप्रक्षालन एवं मलहम के रूप में इसका उपयोग किया जाता है। श्वेतप्रदर, सोजाक, दुर्गन्धयुक्त नासास्राव एवं कर्णस्राव आदि में इसके २½% घोल को पिचकारी के द्वारा प्रयोग करते हैं। नेत्राभिष्यन्द में फिटकिरी के साथ इसके घोल से अक्षिप्रक्षालन किया जाता है। दाह एवं शोथयुक्त मुखपाक में मधु के साथ इसका लेप किया जाता है तथा पारदविषजन्य लालास्राव तथा अन्य मुखविकारों में इसके घोल का उपयोग कुल्ला करने के लिये किया जाता है। स्वरभङ्ग में इसकी टिकिया मुख में रखकर चूसने से लाभ होता है। बोल के साथ इसका उपयोग मसूढ़ों के व्रणों पर लाभदायक है। २ छ० जल में ४ माशा सुहागा डालकर उससे प्रक्षालन से योनि एवं गुदकंडू दूर होती है।

उष्ण जल में इसके घोल में मोजे तर कर उसका उपयोग करने से पैरों के पसीने की दुर्गन्ध दूर होती है। अम्हौरी आदि में इससे युक्त पाउडर का उपयोग किया जाता है।

मात्रा—२-८ र०।

नोट—टङ्कण एवं गन्धक के तेजाब के संयोग से बोरिक् एसिड (Boric acid) बनता है जिसके गुण-धर्म एवं प्रयोग सब टङ्कण के समान ही हैं किन्तु यह कुछ अम्ल है। अन्नसंरक्षण (Food preservation) में पहले इसका बहुत प्रयोग किया जाता था लेकिन इसके विषैले परिणाम दृष्टिगोचर होने के कारण इस कार्य में अब इसका प्रयोग नहीं किया जाता।

अधिक मात्रा में इनके प्रयोग से अग्निमान्द्य, वमन, विरेचन, मांसपेशी-दुर्बलता, मूत्र में ऍल्ब्यूमिन् एवं अत्यन्त थकावट आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। अधिक दिन तक बाह्य या आभ्यन्तर

प्रयोग से बालों का झड़ना, विचर्चिका, गजचर्म, त्वक्शोफ, त्वक्शोथ, मुख में प्रक्षोभ, मसूढ़ों पर एक धूसर रेखा तथा अन्य चर्मविकार आदि होते हैं। वृक्क रोगियों में विषैले परिणाम की अधिक सम्भावना रहती है।

अथ क्षारद्वयं क्षारत्रयं क्षाराष्टकं च तेषां लक्षणानि गुणांश्चाह

स्वर्जिका यावशूकश्च क्षारद्वयमुदाहृतम्।
टङ्कणेन युतं तत्तु क्षारत्रयमुदीरितम् ॥ २५७ ॥
मिलितं तूक्तगुणकृद्विशेषाद् गुल्महृत्परम्।
पलाशवज्रिशिखरिचिञ्चाऽर्कतिलनालजाः ॥ २५८ ॥
यवजः स्वर्जिका चेति क्षाराष्टकमुदाहृतम्।
क्षारा एतेऽग्निना तुल्या गुल्मशूलहरा भृशम् ॥ २५९ ॥

क्षारद्वय, क्षारत्रय, तथा क्षाराष्टक का वर्णन और गुण—**क्षारद्वय**—सज्जी तथा जवाखार को क्षारद्वय कहते हैं। **क्षारत्रय**—क्षारद्वय (सज्जी तथा जवाखार) में यदि सुहागा मिला दिया जाय तो उसे क्षारत्रय कहते हैं। इन तीनों प्रकार के क्षारों के जो गुण ऊपर पृथक् पृथक् कह आये हैं वे ही सब एकत्र मिल जाने पर भी उपर्युक्त गुणवाले होते हैं किन्तु विशेषरूप से गुल्म दूर करने में उत्तम होते हैं।

पलाशक्षार, सेहुंडक्षार, चिचिड़ाक्षार, इमलीक्षार, मदारक्षार, तिलनालका क्षार, जवाखार तथा सज्जी इन सब क्षारों के योग को क्षाराष्टक कहते हैं। ये सब क्षार अग्नि के तुल्य हैं तथा गुल्म एवं शूल के नाश करने में उत्तम होते हैं ॥ २५७-२५९ ॥

९७ क्षारद्वय-क्षारत्रय-क्षाराष्टक

क्षार बनाने की क्रियाः—क्षार बनाने के लिये बड़े वृक्ष की छाल और गुल्म तथा क्षुप जाति की वनस्पति का पञ्चांग लेना चाहिये। इष्ट पदार्थ को जला कर उसकी सफेद भस्म (राख) संग्रहकर किसी मिट्टी के पात्र में रख उसमें चौगुना जल छोड़ भली प्रकार घोलकर एक सुरक्षित स्थान में रख दें। कुछ लोग राख को जल में डालकर कुछ देर उबालते हैं जिससे उसमें के क्षार आसानी से जल में घुल जाते हैं। दो-एक दिन के बाद ऊपर का जल नितार लें अथवा फिल्टर से छान लें। नीचे जमे हुए पदार्थ में फिर से चौगुना जल डालकर, उबालकर फिर ऊपर का जल नितार लें। फिर दोनों नितारे हुए जल को कड़ाही में छोड़ अग्नि पर चढ़ाकर जल औटावें। सूख जाने पर पात्र के पेंदे में जमा हुआ पदार्थ खुरचकर निकाल सुरक्षित रखें। उपर्युक्त विधि से जो क्षार तैयार होता है वह **मृदुक्षार** कहलाता है। इसमें प्रायः कुछ पदार्थों के साथ साथ सोडियम् एवं पोटॅशियम् तत्वों के कार्बोनेट लवण हुआ करते हैं। यदि क्षारयुक्त जल को औटाते समय पूरी तरह न औटाकर आधा औटाने के बाद उस द्रव में चूना और शखनाभि आदि पदार्थों की कुछ भस्म मूल राखी की चौथाई मात्रा में डालकर और थोड़ा उबालकर तथा छानकर प्राप्त द्रव को पूरी तरह औटावें तो **तीक्ष्णक्षार** प्राप्त होता है। इसमें थोड़ी बहुत मात्रा में प्रायः सोडियम् और पोटॅशियम् तत्वों के हाइड्रोक्साइड्स रहते हैं जो अत्यन्त दाहक होते हैं। दाहजनक होने के कारण ही उन्हें **तीक्ष्णक्षार** (Caustic alkalies) कहा जाता है।

अथ चुक्रम् (चूक) । तन्नामगुणानाह

चुक्रं सहस्रवेधि स्याद्रसाम्लं शुक्तमित्यपि । चुक्रमत्यम्लमुष्णञ्च दीपनं पाचनं परम् ॥ २६० ॥
शूलगुल्मविबन्धामवातश्लेष्महरं सरम् । वमितृष्णाऽऽस्यवैरस्यहृत्पीडावह्निमान्द्यहृत् ॥२६१॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे
द्वितीयो हरीतक्यादिवर्गः समाप्तः ॥ २ ॥

चूक के नाम तथा गुण—चुक्र, सहस्रवेधि, रसाम्ल तथा शुक्त ये सब चूक के संस्कृत नाम हैं। चूक–अत्यन्त खट्टा, उष्णवीर्य, अग्निदीपक तथा अत्यन्त पाचक होता है और यह शूल, गुल्म, विबन्ध, आमवात तथा कफ का नाशक और दस्तावर होता है तथा वमन, प्यास, मुख की विरसता, हृदय की पीडा एवम् अग्नि की मन्दता को दूर करता है ॥ २६०–२६१ ॥

९८ चूक

हि०–चूक, चूका । **मा०**–चूका । **गु०**–चुका ।

चूक—काले रङ्ग का एक तरल पदार्थ अत्यन्त खट्टा होता है। खट्टा अनार, नीबू, इमली, आमड़ा इत्यादि कितने ही खट्टे पदार्थों के रस से चूक बनाया जाता है। इन में अनार का बना हुआ चूक अच्छा समझा जाता है। चुक नाम से श्वेत, पारदर्शक स्फटिक भी मिलते हैं। जो खट्टे होते हैं।

यूनानी वाले कहते हैं कि चूक एक पहाड़ी फल का स्वरस है जिसको पहाड़ी मनुष्य लाते हैं। आगे शाकवर्ग में भी एक चुक्रिक नामक शाक का वर्णन आया है।

अथ कर्पूरादिवर्गः

अथ कर्पूरम् । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

पुंसि क्लीबे च कर्पूरः सिताभ्रो हिमवालुकः। घनसारश्चन्द्रसंज्ञो हिमनामाऽपि स स्मृतः॥
कर्पूरः शीतलो वृष्यश्चक्षुष्यो लेखनो लघुः । सुरभिर्मधुरस्तिक्तः कफपित्तविषापहः ॥ २ ॥
दाहतृष्णाऽऽस्यवैरस्यमेदोदौर्गन्ध्यनाशनः । कर्पूरो द्विविधः प्रोक्तः पक्वापक्वप्रभेदतः ।
पक्वात्कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम् ॥ ३ ॥

अब कर्पूरादिवर्ग आरम्भ होता है, उसमें प्रथम कर्पूर के नाम तथा गुण—कर्पूर (यह पुंलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग में होता है), सिताभ्र, हिमवालुक, घनसार, चन्द्रसंज्ञ (चन्द्रमा के जितने नाम हैं वे सभी इसके पर्यायवाचक शब्द हैं) और हिमनामा (जितने हिम के नाम हैं वे सभी इसके पर्यायवाची शब्द हैं) ये सब कपूर के संस्कृत नाम हैं। **कपूर**—शीतल, वृष्य (वीर्यवर्धक), नेत्रों के लिये हितकर, लेखन, लघु, सुगन्धयुक्त, मधुर तथा तिक्त रस युक्त एवम्–कफ, पित्त, विष, दाह, प्यास, मुख की विरसता, मेदरोग तथा दुर्गन्ध को नष्ट करने वाला होता है। पक्व तथा अपक्व इन भेदों से कपूर दो प्रकार का होता है। पक्व की अपेक्षा अपक्व कपूर अधिक गुणकारी होता है ऐसा वैद्य लोग कहते हैं ॥ १–३ ॥

१ कपूर

हि०–कपूर, भीमसेनी कपूर, बरास कपूर । **बं०**–कर्पूर । **मा०**–कापूर । **म०**–कापुर । **गु०**–कपुर । **ते०, ता०**–कर्पूरम् । **फा०**–कापूर । **अ०**–काफ़ूर । **यू०**–रियाही काफ़ूर । **अं०**–Camphor (कॅम्फर); Borneo Camphor (बोर्निओ कॅम्फर) । **ले०**–*Camphora* (कॅम्फोरा) ।

कपूर—यह एक उड़नशील जमा हुआ श्वेत तैलीय पदार्थ है। यह ४ प्रकार का होता है। (१) **भीमसेनी या बरास कपूर**, (२) **चीनी या जापानी कपूर**, (३) **पत्री या नागी कपूर**, ब्ल्यूमिया कॅम्फर (Blumea Camphor), (४) रासायनिक विधि द्वारा निर्मित कृत्रिम (Synthetic–सिंथेटिक्) कपूर ।

(१) **भीमसेनी कपूर**–इसके बहुत बड़े वृक्ष बोर्निओ तथा सुमात्रा में होते हैं। इसे ले०—Dryobalanops camphora Colebr.; Fam. Dipterocarpaceae (ड्रायोबॅलेनॉप्स कॅम्फोरा कोले- डिप्टेरोकार्पेसी) कहते हैं जो भारतीय साल से मिलता-जुलता है। इसके वृक्ष भारतवर्ष में नहीं पाये जाते। इधर कुछ वृक्षों को लगाने का प्रयत्न किया गया है। औषध में बहुत प्राचीन काल से कपूर नाम से इसका व्यवहार किया जाता है। प्राचीनों ने कर्पूर का अपक्व भेद जो कहा है वह संभवतः यही है क्योंकि यह, वृक्ष में जहां पोल हो अथवा चीरे पड़े हों वहां जमा हुआ ही प्राप्त होता है। इसको चीनी कपूर की तरह पकाकर बनाना नहीं पड़ता। इस वृक्ष से एक तरल द्रव्य भी प्राप्त होता है जिसे कर्पूर तैल (Camphor oil of Borneo) कहा जाता है।

यह कपूर चीनी कपूर की अपेक्षा भारी होने के कारण जल में डूब जाता है। यह हवा की उष्णता से उड़ता नहीं। इसे बोतलों में रखने पर इसके कण बोतल पर जमा नहीं होते। यह

चीनी कपूर की अपेक्षा अधिक उष्णता से जलता है। इसमें कपूर के अतिरिक्त कुछ अम्बर आदि की मिश्रित गन्ध आती है। इसके छोटे, बड़े, गोल स्फटिक होते हैं जो सफेद, चमकीले, चिकने, कुछ कड़े, चूर्ण करने में चीनी कपूर की अपेक्षा देर में चूर्ण होने वाले एवं वायु से आर्द्रता को न सोखने वाले होते हैं। यह कपूर बहुत महंगा होता है। इसका **रासायनिक संगठन** $C_{10}H_{18}O_1$ है। इसके **गुण एवं प्रयोग** आदि सब चीनी कपूर के समान ही हैं लेकिन यह त्वचा की रक्तवाहिनियों का अधिक विस्फार करता है तथा चीनी कपूर की अपेक्षा बाह्य प्रयोग में कम दाहजनक है। यह मस्तिष्क के लिये अधिक अवसादक है तथा चीनी कपूर की अपेक्षा अधिक मात्रा में दिया जा सकता है। इसके गुणधर्मों का वर्णन आगे चीनी कपूर के साथ ही दिया गया है।

भीमसेनी कपूर के अभाव में निम्न विधि से बनाये हुये कपूर का व्यवहार किया जाता है। दूब, शीतल मिरच इलायची और जौ हरड इनको समान मात्रा में पीसकर एक बटलुई में बिछा दें और उस पर कपूर के छोटे छोटे टुकड़े पानी में भिगो कर रख दें तथा कुछ घी भी डाल दें। उस बटलुई पर केले का पत्ता ढांक कर उस पर एक दूसरा पीतल का कटोरा रख दें। इस कटोरे में थोड़ा जल डाल दें। फिर बटलुई को जलयुक्त पात्र में रखकर मन्द आंच पर गरम करें। ऊपर के कटोरे का पानी गरम होने पर उसे निकाल कर ठण्डा पानी डालते रहें। जब सब कपूर उड़कर ऊपर जम जाय तब उसे निकालकर व्यवहार करें।

(२) **चीनी या जापानी कपूर**—यह तमाल जाति के वृक्षों से बनाया जाता है। इसका विशेष वर्णन आगे किया गया है।

(३) **पत्री या नागी कपूर**—वस्तुतः भारतीय कपूर यही है। यद्यपि इसके क्षुप भारतवर्ष में बहुत होते हैं जिनसे बहुत कपूर निकाला जा सकता है तथापि अपने यहां इससे कपूर नहीं निकाला जाता। भारत में जितना भी कपूर आवश्यक होता है वह विदेशों से ही आता है। पत्री कपूर कुकरौंधा जाति के क्षुपों से प्राप्त होता है। इस क्षुप के कई भेद हैं जिनमें ये प्रधान हैं— Blumea balsamifera, DC., B. lacera, DC., B. densiflora, B. DC., malcolmii Hook. f. (ब्ल्यूमिया बाल्समीफेरा, ब्ल्यू. लॅसेरा, ब्ल्यू. डेन्सिफ्लोरा, ब्ल्यू. मालकोल्माइ । यह Compositae (काम्पोझिटी) वर्ग के क्षुप हैं। यह हिमालय में नेपाल से सिक्किम तक तथा दक्षिणी पठार के पश्चिमी भाग में १७००–२५०० फीट तक पाये जाते हैं। ब्ल्यू. डेन्सिफ्लोरा का छोटा क्षुप आसाम, खासिया पहाड़, चटगांव एवं अन्य स्थानों में पाया जाता है। ब्ल्यू. बाल्समीफेरा के क्षुप बर्मा में इतने अधिक उत्पन्न होते हैं कि वह आधे संसार की कपूर की पूर्ति कर सकता है। ब्ल्यूमिया के अतिरिक्त तुलसी की जाति में ऑसिमम् किलिमॅन्डसूचॅरिकम् (Ocimum kilimandscharicum) तथा 'कर्पूर' (बं.) (Limnophila gratioloides R. Br. लिम्नोफाइला ग्रॅटियोलॉइडीस्) आदि अन्य अनेक वनस्पतियों में कपूर की गन्ध आती है जिनसे कपूर प्राप्त किया जा सकता है। पत्री कपूर का रासायनिक संगठन भीमसेनी कपूर से मिलता-जुलता है।

(४) **कृत्रिम कपूर**—भारतवर्ष में यद्यपि ब्ल्यूमिया से काफी कपूर निकाला जा सकता है तथापि अब रासायनिक विधि द्वारा कृत्रिम कपूर बनाया जाने लगा है जो वृक्षों से प्राप्त कपूर से सस्ता होता है। औषध की अपेक्षा कपूर का अन्य सेल्यूलाइड् आदि बनाने में बहुत उपयोग होता है।

नोट—राजनिघण्टु में रस, गुण, वीर्य के अनुसार कपूर के पोतास, भीमसेन, शीतकर, शंकरावास, प्रांशु, पिंज, अब्दसार हिमयुता, बालुका, जूटिका, तुषार, हिम, शीतल एवं पक्किका (पिचका) ये १४ भेद लिखे हुये हैं। फिर शिर, मध्य और तल, इन भेदों से तीन प्रकार का माना है। स्तम्भ के अग्रभाग मे होने वाला कपूर शिरसंज्ञक, मध्य में—मध्यम और पत्तों के तले होने वाला तलसंज्ञक है। प्रकाशवान्, स्वच्छ और फूला हुआ शिर; सामान्य फूला हुआ और स्वच्छ मध्यम और तल में होने वाला चूर्णवत् कुछ पीला सा होता है। अन्य प्रकार से–स्तम्भ के गर्भ में स्थित कपूर उत्तम; स्तम्भ के बाहर होने वाला मध्यम जो निर्मल, कुछ पीलापन युक्त एवं चमकीला होता है; तथा कड़ा, सफेद, रूखा और फूला हुआ बाह्य कपूर कहलाता है। आगे खाने योग्य कपूर के ये लक्षण दिये हैं—साफ, भंगरइया के पत्तों के समान छोटे २ टुकड़ों वाला, बहुत हलका, बिलकुल सफेद, स्वाद में तिक्त रस वाला, शीतल, हृदय को प्रिय, घन, आह्लादकारक सुगन्ध युक्त, स्नेहहीन, कड़े परतों से युक्त तथा चमकीला कपूर राजयोग्य होता है और अन्य प्रकार के कपूर के खाने से व्रण एवं स्फोट आदि उत्पन्न होते हैं। इन्होंने 'चीनक' नाम से एक अन्य कृत्रिम भेद भी माना है।

धन्वन्तरि निघण्टु में कपूर के भेद नहीं लिखे हुए हैं। कपूर का चरक में दशेमानि में उल्लेख नहीं है लेकिन सू. अ. ५ में 'धार्याण्यास्येन वैशद्यरुचिसौगन्ध्यमिच्छता।······तथा कर्पूरनिर्यासं·········' ऐसा उल्लेख है। सुश्रुत सू. अ. ४५ में तिक्त, सुगन्धि, शीतल, लघु, लेखन आदि इसके गुण लिखे हैं एवं तृष्णा, मुखशोष तथा अरुचि आदि में उपयोगी लिखा है। अष्टांगसंग्रह (वृद्धवाग्भट) में लिखा है—'रुचिवैशद्यसौगन्ध्यमिच्छन् वक्त्रेण धारयेत्। जातीलवंग कर्पूर—'। चक्रदत्त, वृन्द आदि ने कास, श्वास, प्रमेह एवं ग्रहणी की चिकित्सा में कपूर का उपयोग नहीं लिखा है लेकिन रसचिकित्सा वालों ने इसका प्रयोग उपर्युक्त रोगों में किया है।

अथ चीनाककर्पूरः [चिनिया]। तस्य नामानि गुणांश्चाह

चीनाकसंज्ञः कर्पूरः कफक्षयकरः स्मृतः। कुष्ठकण्डूवमिहरस्तथा तिक्तरसश्च सः॥ ४॥

चीनिया कपूर के गुण—चीनिया कपूर को संस्कृत में चीनक कर्पूर कहते हैं। यह—कफ को नष्ट करने वाला तथा कुष्ठ, खुजली और वमन को भी दूर करने वाला एवम् तिक्त रस से युक्त होता है॥ ४॥

२ चीनिया कपूर

हि०-चीनिया कपूर, चीनी कपूर, जापानी कपूर, फारमोसा कपूर। **बं०**-चीनेर कर्पूर। **म०**-चीनी कापूर। **गु०**-चिनाई कपूर। **यू०**-कैसूरी कपूर। **ले०**-*Cinnamomum camphora Nees & Eberm.* (सिनॅमोमम् कॅम्फोरा नीज, एब.)। Fam. Lauraceae (लॉरेसी)।

इसके वृक्ष कोचीन चाइना से लेकर शंघाई तक तथा हैनाम से दक्षिणी जापान तक पाये जाते हैं। भारत में देहरादून, कलकत्ता, मैसूर एवं नीलगिरी पर्वत आदि स्थानों में इसके वृक्षों को लगाया गया है। दक्षिण की जलवायु इसके लिये अधिक उपयुक्त है लेकिन भारत में लगाये वृक्षों में कपूर कम निकलता है।

इसका **वृक्ष** देखने में सुन्दर, ऊँचा तथा सदाहरित होता है। **पत्ते**–अण्डाकार, चिकने, चमकीले, नोंक की ओर संकुचित, २ से ४ इञ्च लम्बे, एकान्तर एवं पीताभ हरित होते हैं। **छाल**–यह बाहर से खुरदरी और अन्दर से चिकनी होती है। **फूल**–छोटे-छोटे पीताभ श्वेत या रक्ताभ-

श्वेत बौर के समान आते हैं। **फल**—गहरे हरे रंग के मटर के समान तथा गुच्छों में आते हैं। **बीज**—छोटे तथा कपूर की गन्धयुक्त होते हैं।

इस वृक्ष के सभी भागों में विशेष कोशाएं होती हैं जिनमें कपूर बनता है। कपूर निकालने के लिये इसकी लकड़ी को टुकड़े-टुकड़े करके भपके के द्वारा गरम करते हैं जिससे लकड़ी में का कपूर उड़कर ऊपर जम जाता है। उस कपूर को फिर से ऊर्ध्वपातन विधि द्वारा शुद्ध कर लिया जाता है। प्राचीनों ने कपूर का जो **पक्व** भेद कहा है वह यही है क्योंकि इसे लकड़ी को पकाकर निकालते हैं। इसके पत्तों से भी कुछ कपूर प्राप्त होता है।

यह कपूर रंगहीन, सफेद या पारदर्शक, स्फटिकों में, बेडौल डलियों में, चौकोर टिकियों में तथा चूर्णरूप में होता है। यह जल पर तैरता है तथा इसका विशिष्ट गुरुत्व ०.९९५ है। इसकी गन्ध तीक्ष्ण एवं विशिष्ट प्रकार की होती है तथा स्वाद कड़वा एवं तीता होता है। एवं बाद में ठंडक मालूम होती है। यह जलाने से तुरत जलता है तथा हवा की उष्णता से धीरे-धीरे उड़ जाता है। इसका १ भाग ७०० भाग जल में, १ भाग मद्यसार (९०%) में, ४ भाग तैल में, ¼ भाग क्लोरोफॉर्म में घुलता है तथा इथर में यह बहुत घुलता है। अजवाइन का सत्त्व या पेपरमिंट के साथ इसको मिलाने से पतला द्रव बनता है। भीमसेनी कपूर से इसका भेद पीछे लिखा गया है।

रासायनिक संगठन—यह एक प्रकार का घन उड़नशील तैल (स्टियरोप्टेनस्–Stearoptenes) है। इसका रासायनिक सूत्र $C_{10}H_{16}O$ है। ऊर्ध्वपातन द्वारा कपूर के अतिरिक्त एक तैल भी पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—कपूर वातहर, दीपन, कफघ्न, कासहर, ज्वरघ्न, स्वेदजनन, कामोत्तेजक (अल्पमात्रा में), कामवासना कम करने वाला (अधिक मात्रा में), स्तन्यनाशन तथा मस्तिष्क, हृदय एवं श्वसन के लिये उत्तेजक, उद्वेष्टन-निरोधी, सौम्य-प्रतिदूषक, स्थानिक त्वग्रागकारक (प्रारंभ में), स्वापजनन (बाद में), शोथहर तथा वेदनाहर है। अधिक मात्रा में यह दाहजनक एवं मादक विष है।

(१) यह आमाशय में पहुँच कर वहां रक्ताभिसरण क्रिया की वृद्धि करता है जिससे पाचक रसों की वृद्धि होती है तथा वायु का अनुलोमन होता है। इसके कारण अतिसार, उष्णकालीन अतिसार, वमन, विसूचिका की प्रारंभिक अवस्था, आध्मान, शूल एवं भूतोन्माद के कारण उत्पन्न वमन आदि में इससे बहुत लाभ होता है। विसूचिका के प्रारम्भ में कर्पूरासव (भै० र०) बताशे के साथ बार बार देने से लाभ होता है। कपूर, अजवाइन का सत्त्व तथा पेपरमिंट तीनों समान मात्रा में मिलाकर उस द्रव को १–२ बूंद बताशे में रख कर देने से भी उपर्युक्त विकारों में लाभ होता है। कर्पूररस (भै० र०) अतिसार, प्रवाहिका एवं संग्रहणी में दस्त कम करने के लिये दिया जाता है। बच्चों के आध्मान एवं शूल में कर्पूराम्बु का उपयोग एवं बड़ों में कर्पूरासव का उपयोग लाभदायक है।

(२) इसके सेवन से त्वचा की रक्तवाहिनियों का विस्फार होता है तथा पसीना अधिक होता है जिससे ज्वर में यह ताप को कम करता है। मसूरिका, रोमान्तिका, आन्त्रिकज्वर एवं ग्रन्थिज्वर आदि में कर्पूराम्बु का उपयोग १–२ औंस की मात्रा में किया जाता है जिससे हृदय को बल मिलता है एवं ताप भी कम हो जाता है। कर्पूराम्बु बनाने के लिये कपूर को महीन कपड़े में बांधकर जल में डुबोते हैं तथा बाद में उस जल का प्रयोग करते हैं।

(३) श्वसन, हृदय तथा रक्ताभिसरण के लिये कपूर उत्तेजक माना जाता है। स्वस्थ हृदय की अपेक्षा दुर्बल, अवसादित तथा अनियमित गति युक्त हृदय पर इसका प्रभाव अधिक होता है।

इसका प्रभाव प्रत्यक्षतया हृदय के ऊपर तथा श्वसन के उत्तेजित होने से अप्रत्यक्षतया होता है। ज्वर, फुफ्फुसपाक एवं सन्निपात आदि में यदि हृदय की दुर्बलता से नाड़ी दुर्बल हो जाय, हृदयातिपात के लक्षण हों तो कर्पूरहिंगुवटिका ४–४ घंटे पर या १ भाग कपूर आठ भाग दूध में घोंट कर ½ चम्मच ४–४ घंटे पर देने से लाभ होता है। कर्पूरहिंगुवटिका बनाने के लिये १ भाग कपूर, १ भाग हींग तथा थोड़ा सा मधु एक साथ घोंटकर २ र० की गोली बनावें तथा आर्द्रक रस के साथ खिलावें। रोगी गोली निगलने में असमर्थ होने पर आर्द्रक रस में घोंट कर आवश्यक होने पर ½ र० कस्तूरी मिलाकर चटावें। कर्पूर का तैलीय सूचिकाभरण हृदय एवं श्वसन को उत्तेजित करने के लिये प्रयोग किया जाता है।

(४) अवसादक तथा नशीली औषधियों के दुष्परिणाम से जब श्वसन क्रिया अवसादित होती है तब कपूर के प्रयोग से उत्तेजना आकर श्वास की गति तथा उसकी गहराई बढ़ती है। कुकास, तमकश्वास एवं जीर्ण श्वसनिकाशोथ आदि कफविकारों में इसके प्रयोग से श्लेष्मलकला का रक्तप्रवाह बढ़कर कफ पतला होकर निकलने लगता है। तमकश्वास में कर्पूरहिंगुवटिका ४–४ घंटे पर जब तक दमे का जोर रहता है, देते हैं। प्रतिश्याय में कर्पूरासव या समान मात्रा में कपूर एवं मद्यसार को मिलाकर ५ बूंद को मात्रा में दिया जाता है एवं कपूर को सुंघाया भी जाता है।

(५) यह मस्तिष्क को उत्तेजित करता है जिससे प्रारंभ में संपूर्ण शरीर में उत्तेजना, चक्कर, विचारों में असंगति, गति में असहयोग तथा विषैली मात्रा में आक्षेप एवं बेहोशी आदि लक्षण होते हैं। किसी-किसी में हँसने-नाचने की प्रवृत्ति होती है तो किसी में तन्द्रा आती है। वातिक हृदय की धड़कन, कम्पवात, अपस्मार, योषापस्मार एवं उन्माद आदि में कपूर को थोड़े से मद्यसार के साथ घोंट कर गोली बनाकर १–२ र० की मात्रा में ३–४ बार देते हैं।

(६) अत्यधिक कामोत्तेजना, सुजाक से उत्पन्न पीडायुक्त शिश्नोत्थान एवं वीर्यपात आदि में कपूर का अधिक मात्रा में उपयोग किया जाता है। वीर्यपात में सोते समय २ र० कपूर की गोली खुरासानी अजवाइन के साथ खिलाते हैं। स्त्रियों में अत्यधिक कामवासना, जननेन्द्रिय-कण्डू, गर्भाशय पीडा एवं कष्टार्तव में १ से २ र० कपूर दिन में २ बार खिलाते हैं। स्त्रियों में दुग्ध कम करने के लिये इसको खिलाते हैं तथा स्तनों पर इसका लेप करते हैं।

(७) कपूर का स्थानिक एवं **बाह्य प्रयोग** बहुत किया जाता है। इससे स्थानिक रक्तवाहिनियों की उत्तेजना से उष्णता एवं रक्तिमा उत्पन्न होती है। प्रारम्भ में इससे सांवेदनिक वातनाड़ियां उत्तेजित होती हैं लेकिन बाद में अवसादित होने के कारण शीतलता का अनुभव होता है तथा पीडा दूर होती है। इसका प्रतिदूषक गुण बहुत अल्प है। यह त्वग्रागकारक एवं प्रतिक्षोभक होने के कारण ४ गुने तेल में मिला कर जीर्ण आमवात, मोच, मरोड़, चोट, मांसपेशियों में पेठन होने से उत्पन्न पीडा, कटिशूल, पार्श्वशूल एवं जीर्ण कास, बच्चों की खांसी, फुफ्फुसपाक एवं फुफ्फुसावरणशोथ आदि में इसकी मालिश की जाती है। जननेन्द्रिय कण्डू एवं विचर्चिका में जसद भस्म एवं कपूर तैल में मिलाकर लगाते हैं। दांत में गढा होने के कारण दर्द होता हो तो कपूर का मद्यसार में घोल बनाकर उसका फाहा गढे में रखते हैं। मुखदुर्गन्धि में स्वल्प खदिरवटिका (भै० र०) अथवा कपूर, कबाबचीनी एवं टंकणक्षार की गोली मुख में रखने से लाभ होता है। दन्तमंजनों में कपूर का उपयोग किया जाता है। जीर्ण व्रणों में तथा कण्डू में इसका अवचूर्णन किया जाता है।

विषैला प्रभाव—अत्यधिक मात्रा में कपूर के सेवन से आमाशयोर्ध्व भाग में पीडा, हृल्लास, कभी-कभी वमन, चक्कर, दृष्टिमान्द्य, प्रलाप, उन्माद, अपस्मार के समान आक्षेप, श्यावता, अंगघात, शीतलप्रस्वेद, मूत्रकृच्छ्र, संन्यास एवं मृत्यु होती है।

विष चिकित्सा—वामक द्रव्यों का प्रयोग एवं शीत तथा उष्ण निरूहण बस्ति का क्रम से बारंबार प्रयोग तथा प्रतिक्षोभक, विरेचक एवं उत्तेजक औषधियों का प्रयोग करना चाहिये। कुचीलु सत्व का सूचिकाभरण आवश्यकतानुसार किया जाता है। मद्यसार एवं तैलीय पदार्थों का प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि कपूर उनमें घुल जाता है।

जीर्ण विषैला प्रभाव—कुछ युवा स्त्रियों में सौन्दर्यवृद्धि के लिये कपूर खाने की आदत पड़ जाती है जिसको छुड़ाना कठिन होता है। इसके कारण साधारण मानसिक उत्तेजना, तन्द्रा, अत्यधिक दौर्बल्य एवं पाण्डुता आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

नोट—कपूर का चूर्ण बनाने के लिये खरल में घोटते समय रेक्टिफाइड स्पिरिट से कपूर आर्द्र कर लेने से आसानी से चूर्ण बन जाता है तथा खरल में चिपकता नहीं।

मात्रा—१-२ र०; आसव—५-२० बूंद; कर्पूराम्बु—१-२ औं०।

अथ कस्तूरी। तस्या नामभेदगुणानाह

मृगनाभिर्मृगमदः कथितस्तु सहस्रभित्। कस्तूरिका च कस्तूरी वेधमुख्या च सा स्मृता ॥
कामरूपोद्भवा कृष्णा नैपाली नीलवर्णयुक्। काश्मीरी कपिलच्छाया कस्तूरी त्रिविधा स्मृता ॥
कामरूपोद्भवा श्रेष्ठा नैपाली मध्यमा भवेत्। काश्मीरदेशसम्भूता कस्तूरी ह्यधमा मता ॥
कस्तूरिका कटुस्तिक्ता क्षारोष्णा शुक्रला गुरुः। कफवातविषच्छर्दिशीतदौर्गन्ध्यशोषहृत् ॥

कस्तूरी के नाम, भेद तथा गुण—मृगनाभि, मृगमद, सहस्रभिद्, कस्तूरिका, कस्तूरी, और वेधमुख्या ये सब कस्तूरी के संस्कृत नाम हैं। वर्णभेद से कस्तूरी तीन प्रकार की होती है जैसे—१ कामरूप (कामरूदेश) में उत्पन्न होने वाली कस्तूरी कृष्णवर्ण की (काली) होती है। २ नेपाल देश में उत्पन्न होनेवाली नीले रङ्ग की होती है। ३ कश्मीर देश में उत्पन्न होने वाली कपिल वर्ण की होती है। इनमें से कामरू देश की कस्तूरी उत्तम, नेपाल देश की मध्यम एवम् कश्मीर देश की अधम गुण वाली होती है। **कस्तूरी**—कटु तथा तिक्त रस युक्त, क्षार गुण विशिष्ट, उष्णवीर्य, वीर्यजनक और गुरु होती है। यह कफ, वायु, विष, वमन, शीत, दुर्गन्ध और शोष को दूर करने वाली होती है ॥ ५-८ ॥

३ कस्तूरी।

हि०-कस्तूरी, मृगनाभि, मृगनाफा। **बं०**-मृगनाभि। **ते०**-कास्तूरी। **म०-गु०-क०-ता०**-कस्तूरी। **फा०**-मुष्क। **अ०**-मिस्क। **अं०**-Musk (मस्क)। **ले०**-*Moschus* (मोस्कस्)।

हिरन की कई जातियाँ होती हैं किन्तु सब जाति के हिरनों से कस्तूरी नहीं निकलती। जिस हिरन से कस्तूरी निकलती है उसको संस्कृत में 'कस्तूरीमृग', यूनानी में 'हिरनमुस्की' और लेटिन में मोस्कस् मोस्कीफेरस् (Moschus moschiferus; Fam. Cervidae) कहते हैं। यह मृग उत्तरी भारत, नेपाल, आसाम, कश्मीर, मध्य एशिया, तिब्बत, भूतान, चीन एवं रूस आदि स्थानों में ७०००-८००० फीट ऊंची पहाड़ी चोटियों पर सघन जंगलों में पाया जाता है। यह विशेष कर तिब्बत में अधिक होते हैं। यह हिरन की जाति का बहुत सुहावना और सुन्दर मृग होता है किन्तु न इसके सींग होते हैं न दुम। यह मृग करीब २० इंच ऊँचा, लौह के समान गहरे धूसर वर्ण का, अत्यन्त सशंक स्वभाव का प्राणी होता है। इसके ऊपरी जबड़े में दो लंबे दंष्ट्र

होते हैं जो बाहर नीचे की ओर हुक की तरह निकले रहते हैं। इसका मुंह लंबा, पैर पतले तथा सीधे एवं बाल रूखे और लम्बे होते हैं। इसके लिंगेन्द्रिय के मणि को ढांकने वाले चमड़े के प्रवर्धन से बनी हुई एक थैली होती है जिसके सूखे हुये स्राव को 'कस्तूरी' कहते हैं। नर हिरन में ही यह पायी जाती है। यह थैली नाभि के पास, नाभि एवं शिश्नावरण के बीच में स्थित रहती है। यह अंडाकार, १½-३ इञ्च लम्बी एवं १-२ इञ्च चौड़ी होती है। इसके अग्रभाग में केशयुक्त एक छोटासा छिद्र होता है तथा पिछले भाग में एक सिकुड़न सी होती है जो शिश्नाग्रचर्म के मुख से मिल जाती है। इसके अन्दर के चिकने आवरण की अनियमित तहों के कारण यह कई अपूर्ण विभागों में बटी होती है। कस्तूरी, युवावस्था के मृगों में उनके मदकाल (Rutting season) में अधिक मात्रा में होती है तथा उसी समय उसकी शक्ति एवं गन्ध अधिक रहती है। यह काल करीब १ महीने का होता है। रा० नि० में भी लिखा है कि—'बाले जरति च हरिणे क्षीणे रोगिणि च मन्दगन्धयुता। कामातुरे च तरुणे कस्तूरी बहुलपरिमला भवति ॥' बालक, वृद्ध, क्षीण और रोगी हिरन की कस्तूरी मन्द गन्ध वाली होती है तथा कामातुर और तरुण हिरन की कस्तूरी अत्यन्त सुगन्धित होती है। जब उक्त हिरन की नाभि में कस्तूरी बन जाती है तब उसमें से कस्तूरी की गन्ध आती है और वह मृग किसी दूसरे पदार्थ की गन्ध समझ कर इधर-उधर घूम-घूम कर वृक्षों को सूंघा करता है जिससे बहेलिये आसानी से पहचान कर उसको मार डालते हैं और नाभि को काट लेते हैं। स्वस्थ वयस्क प्राणी में करीब २½ तो० कस्तूरी पाई जाती है। १ साल के बच्चे में कस्तूरी नहीं होती तथा २ साल के बच्चे में करीब ६-७ माशे होती है जो दुधिया रहती है। वृद्ध प्राणि में भी ७ माशे से अधिक नहीं होती। इसमें सुगन्ध ही एक मनोहर गुण है जो बहुत तीव्र स्वतन्त्र प्रकार की और शीघ्र फैलने वाली होती है। इसका स्वाद सुगन्ध युक्त कड़वा होता है।

कस्तूरी के प्रकार[1]—मृग के शिकार के बाद इन नाभों को निकाल कर धूप एवं हवा में सुखाते हैं। फिर इन नाभों को मृग के बालों में लपेट कर चमड़े की थैलियों मे बन्द किया जाता है तथा बाद में सीलबन्द डब्बों में या अन्दर से टीन का अस्तर लगे हुवे लकड़ी के बक्सों में बन्द कर बाहर भेजा जाता है।

व्यापार की कस्तूरी ३ प्रकार की होती है। (१) रूस की कस्तूरी—इसमें गन्ध बहुत कम होती है (२) आसाम की कस्तूरी—यह बहुत अच्छी तथा तीव्र गन्ध युक्त होती है तथा इसका रंग काला होता है। सम्भवतः प्राचीनों ने कामरूप कस्तूरी इसी को कहा है। (३) चीन की कस्तूरी—यह सबसे मंहगी होती हैं क्योंकि अन्य हीन श्रेणी की कस्तूरी में जो कभी कभी अमोनिया आदि की अप्रिय गन्ध होती है वह इसमें बिलकुल नहीं होती। यह कस्तूरी तिब्बत से ही चीन को जाती है। एक अन्य तीक्ष्ण अप्रिय गन्ध वाली कस्तूरी कॅबर्डाइन् नामक होती है जो मंगोलिया एवं मंचूरिया के उत्तरी भाग तथा पूर्वी साइबेरिया से आती है।

उत्तम कस्तूरी—रक्ताभश्याम वर्ण की, गोल बड़े दानेवाली, तीक्ष्ण गन्ध वाली, स्वाद में तिक्त, हलकी एवं मुलायम कस्तूरी उत्तम होती है। इसकी गन्ध बहुत स्थायी रहती है तथा ३०००

---

१. कपिला पिङ्गला कृष्णा कस्तूरी त्रिविधा क्रमात्। नेपालेऽपि च काश्मीरे कामरूपे च जायते ॥ साऽप्येका खरिका ततश्च तिलका ज्ञेया कुलित्थाऽपरा, पिण्डाऽन्यापि च नायिकेति च परा या पञ्चभेदाभिधा। सा शुद्धा मृगनाभितः क्रमवशादेषा क्षितीशोचिता पक्षत्यादिदिनत्रयेषु जनिता कस्तूरिका सूयते ॥ चूर्णाकृतिस्तु खरिका तिलका तिलाभा, कौलत्थबीजसदृशी च कुलित्थिका च। स्थूला ततः कियदियं किल पिण्डिकाख्या तस्याश्च किंचिदधिका यदि नायिका सा ॥ रा. नि.।

गुना विरल (Dilute) करने पर भी गन्ध मालूम हो जाती है। यह कहा जाता है कि शिकार के समय इसकी तीव्र गन्ध से शिकारियों के वातनाडी संस्थान, आंख एवं कान पर बुरा असर पड़ता है। चीनी व्यापारियों का कहना है कि मदकाल में जब मृग में कस्तूरी की गन्ध तीव्र हो जाती है तब उसके प्रक्षोभ के कारण वह अपने खुरों से उसे खुरच खुरच कर निकाल देता है। ऐसी कस्तूरी मृगों के आवास स्थानों में पड़ी हुई पाई जाती है। लेकिन ऐसी कस्तूरी बहुत कठिनाई से ही मिलती है।

असली कस्तूरी की पहचान—कस्तूरी की मांग बहुत होने के कारण तथा कठिनाई से मिलने के कारण इसमें मिलावट की जाती है। असली कस्तूरी मिलना बहुत कठिन है। व्यापारी लोग सूखा हुआ रक्त, यकृत तथा दाल, गेहूँ एवं जव के दाने आदि मिला देते हैं। केवल गन्ध से कस्तूरी की पहचान करना कठिन है क्योंकि इसके सम्पर्क में आये पदार्थ को यह सुगन्धित कर देती है।

चीन तथा तिब्बती व्यापारियों के यहाँ पहचान की कुछ पद्धतियाँ प्रचलित हैं जो वैज्ञानिक न होते हुये भी कुछ हदतक उपयोगी हैं।

(१) कस्तूरी के दानों को जल में डालने पर यदि दाने वैसे ही रहें तो असली और यदि वे घुल जाँय तो मिलावटी। रा० नि० में भी लिखा है 'यदप्सु न्यस्ता नैव वैवर्ण्यमीयात्कस्तूरी सा राजभोग्या प्रशस्ता'। जिस कस्तूरी को जल में डालने पर उसके वर्ण में परिवर्तन नहीं होता वह उत्तम होती है।

(२) जलते लकड़ी के अंगारे पर कस्तूरी के दाने डालने पर यदि वह पिघल कर उसमें से बुद्बुदे निकलें तो असली और यदि वह एक दम कड़ी होकर कोयला बन जाय तो नकली। रा० नि० में भी लिखा है कि 'दाहं या नैति वह्नौ शिमिशिमिति चिरं चर्मगन्धा हुताशे, सा कस्तूरी प्रशस्ता वरमृगतनुजा राजते राजभोग्या।

(३) असली कस्तूरी को गाड़ दें तब भी उसकी गन्ध में कोई परिवर्तन नहीं होता।

(४) असली कस्तूरी मुलायम होती है तथा मिलावट होने पर वह कड़ी होती है।

(५) पंजाब की तरफ एक परीक्षा प्रचलित है कि हींग में एक तागे को डालकर निकालते हैं फिर उसे नाभे में डालकर निकालते हैं। यदि हींग की गन्ध उस तागे में रहे तो कस्तूरी नकली मानते हैं।

(६) कागज में रखने पर इससे कागज में पीला दाग पड़ जाता है तथा जलाने पर इसमें मूत्र की गन्ध आती है।

(७) कपूर, व्हॅलेरियन, लहसुन, हाइड्रोसाइनिक् एसिड एवं अर्गट का चूर्ण आदि के सम्पर्क में आने पर कस्तूरी की गन्ध नष्ट हो जाती है।

कृत्रिम कस्तूरी (Artificial or synthetic musk)—कस्तूरी की मांग बहुत होने के कारण तथा मृग का शिकार करते, करते कहीं इनकी जाति ही नष्ट न हो जाय इस डर से कृत्रिम रूप से कस्तूरी बनाने की तरफ वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट हुआ तथा रासायनिक विधि से कृत्रिम कस्तूरी

---

१ या स्निग्धा धूमगन्धा वहति विनिहिता पीततां पायसोऽत निःशेषं या निविष्टा भवति हुतवहे भस्मसादेव सद्यः। या च न्यस्ता तुलायां कलयति गुरुतां मर्दिता रूक्षतां च ज्ञेया कस्तूरिकेयं खलु कृतमतिभिः कृत्रिमा नैव सेव्या॥ रा. नि.।

अब बनाई जाने लगी है। कृत्रिम कस्तूरी पीताभश्वेत रंग की तथा रवेदार होती है। इनमें बहुत तीव्र तथा स्थायी गन्ध होती है जो कस्तूरी से मिलती-जुलती होते हुये भी प्राकृतिक कस्तूरी से अलग मालूम होती है। मस्क क्झाइलेन् [Musk xylene, $C_6 (CH_3)_2 (C_4H_9) (NO_2)_3$]—यह परिवर्तनशील दो स्थायी एवं अस्थायी रवेदार स्वरूपों में प्राप्त होती है। मस्क कीटोन् [Musk ketone, $C_6 (CH_3)_2 (C_4H_9) (COCH_3) (NO_2)_2$]—इसकी गन्ध प्राकृतिक कस्तूरी से मिलती जुलती होती है लेकिन मस्क क्झाइलेन के इतनी तीव्र नहीं होती। मस्क ॲम्ब्रेट्टी [Musk ambrette, $C_6H (C_4H_9) (CH_3) (OCH_3) (NO_2)_2$]—यह कृत्रिम कस्तूरी में सबसे अच्छी मानी जाती है। इनके अतिरिक्त ॲल्डिहाइड् मस्क (Aldehyde musk), साइनो मस्क (Cyano musk) एवं ॲझिमिडो मस्क (Azimido musk) आदि कृत्रिम कस्तूरी होती हैं जिनका क्वचित् प्रयोग होता है। कृत्रिम कस्तूरी विषैली नहीं होती तथा सुगन्धि के लिये अधिकतर व्यवहार में लाई जाती है लेकिन प्राकृतिक कस्तूरी की अपेक्षा यह हीन श्रेणी की होती है।

अन्य प्राणियों एवं वनस्पतियों में कस्तूरी—कस्तूरी की गन्ध के समान गन्धवाले पदार्थ विभिन्न देशों में पाये जानेवाले अनेक प्रकार के प्राणियों एवं वनस्पतियों में पाये जाते हैं। 'अमेरिकन कस्तूरी' नाम से एक प्रकार के चूहे से प्राप्त द्रव्य का उपयोग सुगन्धि के लिये किया जाता है। कुछ प्राणियों के नाम आगे दिये जा रहे हैं—ॲण्टीलोप डॉरकस् (Antilope dorcas) नामक एक प्रकार का हिरन, कॅप्रा आइबेक्स् (Capra ibex) नामक बकरा जिसके रक्त में गन्ध होती है, मस्टेला फॉइना (Mustela foina) नामक नेवले के समान जानवर जिसकी विष्ठा में गन्ध होती है, ओव्हिबोस मॉसकॅटस् (Ovibos moschatus) नामक बैल जिसके मांस को भारतवर्ष में खाया जाता है, बॉस इण्डिकस् (Bos indicus) नामक एक बैल, डाइकॉटिलिज टॉरकॅटस् (Dicotyles torqatus) नामक सूअर की जाति का प्राणी, ॲनस् मॉस्कॅटा (Anas moschata) नामक बत्तख, क्रोकोडाइलस् व्हल्गॅरिस् (Crocodilus vulgaris) नामक मगर, व्हाइवेर्रा सिवेट्टा (Viverra civetta) नामक गन्धमार्जार, कॅस्टर फाइबर (Castor fibre) नामक ऊद बिलाव तथा अनेक प्रकार के समुद्री कछुवे एवं सर्प।

संसार के विभिन्न स्थानों में पाई जाने वाली अनेक वनस्पतियों में कस्तूरी की गन्ध पाई जाती है जिनमें से भारत में लताकस्तूरी के बीज, कुजई (Rosa moschata Herrm.-रोझा मास्कॅटा), कद्दू, झूफह-यबिस् (Hyssopus officinalis Linn.-हाइस्सोपस् ऑफिसिनॅलिस्), सीलोन में पाया जानेवाला बड़ा गोखरू तथा हींग की जाति का वृक्ष आदि अपने यहां पाये जाते हैं। यद्यपि उपर्युक्त अनेक जान्तव एवं वानस्पतिक द्रव्यों में कस्तूरी से मिलती जुलती गन्ध आती है तथापि व्यापार में कस्तूरी का स्रोत कस्तूरी मृग ही है।

रासायनिक संगठन—कस्तूरी को बाष्प के साथ आसवन (Distill) तथा शुद्ध करने से एक गाढा रंगहीन तैल प्राप्त होता है जिसमें कस्तूरी की बहुत तेज गन्ध होती है। यह तैल एक प्रकार का कीटोन (Ketone) है जिसे मस्कोन कहा जाता है। एक अन्य कीटोन भी इसमें होता है जिसके विषय में अभी अधिक ज्ञान नहीं है। इनके अतिरिक्त कस्तूरी में वसा, मोम, कोलेस्टेरिन, ओलीन, जिलेटिन एवं ॲल्ब्यूमिन सदृश पदार्थ, राल एवं अमोनिया आदि पदार्थ पाये जाते हैं। गन्धक के तेजाब की बाष्प पर इसको सुखाने से इसकी गन्ध बिलकुल चली जाती है जो फिर से हवा एवं आर्द्रता के सम्पर्क में आने से आ जाती है। कस्तूरी में ८% राख पाई जाती है जिसमें सोडियम्, पोटॅशियम् एवं कॅल्शियम् के क्लोराइड्स् रहते हैं। कस्तूरी मधसार में

१०-२०% एवं जल में करीब ५०-७५% घुल जाती है। सौ डिग्री उष्णता पर सुखाने से २०-३०% इसका तौल कम हो जाता है।

गुण और प्रयोग—कस्तूरी कटु, तिक्त, उष्ण, वृष्य, बल्य, विषघ्न, सौमनस्यजनन, हृदय एवं मस्तिष्क के लिये बलप्रद, आक्षेपहर, उद्वेष्टननिरोधी तथा कफविकार, वातविकार, शीत, दुर्गन्ध एवं शोथ को दूर करने वाली होती है।

यह सुषुम्नाशीर्ष के लिये अत्यन्त तीव्र उत्तेजक तथा निपात (Collapse) में बहुत लाभदायक मानी जाती है। इससे रक्तप्रवाह की वृद्धि होती है तथा नाड़ियों में तनाव (Tension) बढ़ता है। यह मूत्रजननेन्द्रिय एवं श्वसन केन्द्र के लिये उत्तेजक है। इससे प्रथम रक्तवह संस्थान एवं मस्तिष्क को उत्तेजना मिलती है तथा बाद में इसका मादक एवं स्वेदजनक प्रभाव दिखलाई देता है। वातप्रकृति के लोगों में यह ज्यादा प्रभावशाली होती है। इसका उत्सर्ग मूत्र, स्वेद एवं दुग्ध के द्वारा होता है। मुदालियर, डेविड एवं रेड्डी (१९२९) के प्रयोगों से यह देखा गया कि जिन लोगों में श्वेतकणापकर्ष (Leucopenia-ल्यूकोपेनिया) हुआ रहता है उनमें कस्तूरी के टिंक्चर के १०-२० बूंद १ औंस जल के साथ पिलाने से ½-१ घण्टे में श्वेत कणों की वृद्धि होती है। स्वस्थ व्यक्ति में कम प्रभाव दिखलाई देता है। डा. कर्नल चोपरा लिखते हैं कि उपर्युक्त तथ्य गलत हैं। उनके प्रयोग में स्वस्थ एवं कालज्वर पीडित रोगियों में जिनमें श्वेतकणापकर्ष हुआ रहता है, ½ र. कस्तूरी भोजन के २½ घण्टे पश्चात् खिला कर उसके २, ३ घंटे बाद उन लोगों की तथा उनके रक्त की परीक्षा की गई। सात दिन तक यह प्रयोग किया गया। उनके मत से नाडी की गति, रक्त का दबाव, तनाव, श्वेतकणों की संख्या आदि किसी में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। कुछ लोगों ने कस्तूरी खाने के बाद आमाशय में कुछ उष्णता तथा अच्छेपन का अनुभव किया जो प्रभाव किसी वातानुलोमक मिश्रण (Carminative mixture) की तरह मालूम होता था। कर्नल चोपरा के मत से कस्तूरी का हृदय, श्वसन एवं वातनाडीसंस्थान के लिये उत्तेजक एवं वृष्य प्रभाव कस्तूरी की तीव्र गंध के कारण नासिका द्वारा प्रत्यावर्त्तन क्रिया (Reflex-action-रिफ्लेक्स ॲक्शन) के कारण एवं आमाशय में कुछ प्रक्षोभ के कारण है लेकिन अपस्मार, कंपवात एवं बच्चों के आक्षेप में इसकी उपयोगिता का कोई आधार नहीं है। अपतन्त्रक आदि अन्य आक्षेपयुक्त रोगों में हींग, वलेरियन आदि तीव्र गन्धयुक्त औषधों की तरह एवं कुकास तथा शूल आदि में अन्य सुगन्धि तैलों की तरह इसका प्रभाव पड़ता है। कर्नल चोपरा का कहना है कि कस्तूरी को वृथा अधिक महत्त्व दिया गया है और उसमें कोई विशेष औषधीय गुण नहीं है। उनका कहना है कि अधिकतर कस्तूरी मिलावटी होने के कारण अत्यन्त विश्वस्त स्थानों से प्राप्त कस्तूरी का ही प्रयोग किया गया था। कस्तूरी को थोड़े से मद्यसार में घोंटकर फिर उसमें जल मिलाकर २४ घण्टे रख कर, छान कर प्रयोग किया गया। इसमें करीब ७०-७५% भाग घुल जाता है।

कस्तूरी का उपयोग योषापस्मार, हिक्का, उद्वेष्टनयुक्त तमकश्वास, हृदय एवं मस्तिष्क की दुर्बलता, हृदय की धड़कन, वातिक उन्माद, अपस्मार, संन्यास, विस्मृति, पक्षाघात, अर्दित, शून्यता, कंपवात, कुकास, शूल, बच्चों के आक्षेप आदि वातिक तथा श्लैष्मिक विकारों में एवं उत्तेजक तथा हृद्य औषध के रूप में आन्त्रिक ज्वर, फुफ्फुसपाक, श्वसनिका शोथ, प्लेग एवं मस्तिष्कावरण शोथ आदि में किया जाता है। हृदय की दुर्बलता के लिये चन्द्रोदय, बृहत् कस्तूरीभैरव का उपयोग बलामूल के साथ लाभदायक है।

उद्वेष्टन निरोधि प्रभाव के कारण हनुस्तम्भ, जलसंत्रास, तीव्र श्वसनावरोध एवं कुकास आदि में इसका प्रयोग किया जाता है। अन्य औषधों के साथ वाजीकरण के लिये इसका बहुत उपयोग करते हैं। दक्षिण के वैद्य बच्चों के आक्षेप में अफीम के साथ कस्तूरी का प्रयोग करते हैं। मन्दज्वर, जीर्णकास, दुर्बलता, वातरक्त एवं विसूचिका आदि में यह लाभदायक है।

कस्तूरी का प्रयोग मधु के साथ अथवा मृगमदासव (भै. र.) के रूप में तथा मकरध्वज के साथ किया जाता है। उष्ण प्रकृति वालों के लिये यह हानिकारक तथा शिरःशूलजनक होती है तथा इसके दुष्परिणाम को दूर करने के लिये गुलाबजल एवं वंशलोचन का प्रयोग करना चाहिये।

मात्रा—१-४ र०, आसव या टिंक्चर—१०-३० बूंद।

अथ लताकस्तूरी (मुष्कबीज)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

लता कस्तूरिका तिक्ता स्वाद्वी वृष्या हिमा लघुः।
चक्षुष्या छेदिनी श्लेष्मतृष्णाबस्त्यास्यरोगहृत् ॥ ९ ॥

लता कस्तूरी के गुण—लताकस्तूरी-तिक्त रसे युक्त, सुस्वादु, वृष्य (वीर्यवर्धक), शीतवीर्य, लघु, नेत्रों के लिये हितकर, छेदक (गाढे कफादि का छेदन करने वाली), कफ, प्यास, बस्ति तथा मुखसम्बन्धी रोग को दूर करने वाली होती है ॥ ९ ॥

४ लता कस्तूरी

हि०, बं०-लताकस्तूरी, कस्तूरी दाना, मुष्कदाना। **म०**-कस्तूरीभेंडा। **मा०**-मुष्कदाणा। **गु०**-लता कस्तूरी। **ते०**-कर्पूरीबेंड। **ता०**-वेत्तिलै कस्तूरी, कट्टुक कस्तूरी। **पं०**-भोनार कस्तूरी। **अ०**-हब्बुलुम्मि(मु)ष्क। **फा०**-मुष्कदाना। **अं०**-Musk-mallow (मस्क-मॅलो)। **ले०**-*Hibiscus abelmoschus, Linn.* (हिबिस्कस् एबेल्मोस्कस्, लिन.)। Fam. **Malvaceae** (माल्वॅसी)।

यह बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश तथा विशेषकर इस देशके गरम प्रदेशों में उत्पन्न होती है। इसको बागों में लगाते हैं और यह आपही आप जंगली भी उत्पन्न होती है।

इसका क्षुप—२-३फुट तक ऊँचा, रोमश तथा जंगली भिंडी के क्षुप के आकार वाला होता है किन्तु कहीं कहीं इससे भी ऊँचा क्षुप देखने में आता है। **पत्ते**-भिंडी के पत्तों के आकारवाले, गोलाकार गहरे कटे किनारीदार एवं ३ से ५ भागों में विभक्त रहते हैं। **फूल**-भिंडी के फूलों के समान ही ३-४ इञ्च के घेरे में घंटाकार चमकीले पीले रंग के होते हैं। **फली**-२॥-३ इञ्च लम्बी, पहलदार रोमश किञ्चित् नुकीली भिंडी की ही तरह होती है और **बीज**-भिण्डी के बीजों के समान किन्तु वृक्काकार, कुछ चिपटे तथा काले रंग के होते हैं।

इन बीजों को मसलने से कस्तूरी की तरह गंध आती है। इसके पत्र, मूल तथा बीजों का औषध में व्यवहार किया जाता है।

लताकस्तूरी के नाम से यह बोध होता है कि इसकी लता होती है। 'निघण्टुरत्नाकर' में लिखा है कि इसकी लता दक्षिण में पाई जाती है परन्तु लता देखने में नहीं आती, इसका क्षुप ही होता है जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। श्रीविश्वनाथजी द्विवेदी अपनी भावप्रकाश की टीका में लताकस्तूरी का पर्याय वेदमुश्क लिखते हैं। वास्तव में वेदमुश्क लताकस्तूरी से अलग है

तथा उसका लेटिन नाम सॅलिक्स कॅप्रिया (Salix caprea Linn.) है। चरक-सुश्रुतादि ग्रन्थों में मुखशुद्धि के लिये एवं मुख में रुचि तथा सुगन्धि लाने के लिये मुख में धारण करने के लिये जातीफल, कटुक, पूग, कंकोल, ताम्बूल, सूक्ष्मैला, लवङ्ग एवं कर्पूर का उपयोग लिखा है। टीकाकारों ने कटुक शब्द का अर्थ लताकस्तूरी किया है। कुछ लोगों ने कटुक का अर्थ लघुकक्कोल (छोटी कबाबचीनी) किया है तथा कक्कोल का अर्थ बृहत्कक्कोल (बड़ी कबाबचीनी) किया है।

रासायनिक संगठन—इसमें गोंद, एक रवेदार पदार्थ, सुगन्धद्रव्य, राल, अल्ब्यूमिन एवं एक उड़नशील तैल रहता है। यह तैल हरापन लिये पीला होता है तथा वायु में खुला रखने पर गाढ़ा हो जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके बीज शीतल, दीपन, वाजीकर, बल्य, वातानुलोमक, नेत्र्य, रोचक, बस्तिशोधक, तृषाशामक एवं उद्वेष्टननिरोधी हैं।

इनका उपयोग कफरोग, बस्तिविकार, मुखरोग, अपतन्त्रक, दुर्बलता, स्नायुदौर्बल्य, कुपचन, अग्निमान्द्य एवं ज्वर में किया जाता है।

(१) इसके फाण्ट को २ से ४ तो० की मात्रा में कफविकार, तमकश्वास एवं ज्वर में दिया जाता है। इससे श्वासमार्ग में स्निग्धता उत्पन्न होकर श्वासनलिकाओं का उद्वेष्टन दूर होता है। उत्तेजक होने के कारण इससे हृदय को भी बल प्राप्त होता है।

(२) इसको मुख में रखकर चबाने से मुख स्वच्छ एवं सुगन्धित होता है तथा खाने पर रुचि बढ़ती है। स्वरभङ्ग एवं मुखशोष में इसका धूम्रपान उपयोगी है।

(३) २½ औंस बीज तथा २० औंस मद्यसार में इसका टिंक्चर बनाकर १–२ ड्रा० की मात्रा में उत्तेजक, उद्वेष्टननिरोधी एवं वातानुलोमक रूप में अपतंत्रक, दुर्बलता तथा अन्य वातिक विकारों में दिया जाता है।

(४) सूखी खुजली में दूध में पीसकर इसके उबटन का प्रयोग किया जाता है। सर्पदंश पर इसके चूर्ण को मद्यसार में भिगोकर लगाते हैं तथा आन्तरिक प्रयोग भी करते हैं। महीन चूर्ण को नेत्र में लगाने से लाभ होता है।

(५) इसके मूल तथा पत्तों का लुआब निकाल कर मिश्री मिलाकर सोजाक, रतिजन्य रोग एवं बस्तिविकारों में दिया जाता है। शुक्रमेह में बीजों का चूर्ण खिलाते हैं।

(६) औषधीय तैलों को सुगन्धित करने के लिये इसके बीजों का उपयोग किया जाता है।

(७) कॉफी के साथ इसका प्रयोग किया जाता है।

अधिक मात्रा—२ ड्रा० से अधिक टिंक्चर के प्रयोग से शिरःशूल एवं चक्कर आते हैं।

मात्रा—चूर्ण २–४ मा०; टिंक्चर—१–२ ड्रा०।

अथ गन्धमार्जारवीर्यम् (जबादकस्तूरी)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

गन्धमार्जारवीर्यन्तु वीर्यकृत्कफवातहृत्। कण्डूकुष्ठहरं नेत्र्यं सुगन्धं स्वेदगन्धनुत्॥ १०॥

गन्धमार्जार का वीर्य अर्थात् जबादकस्तूरी के गुण—**गन्धमार्जारवीर्य**—वीर्यजनक, कफवातनाशक, खुजली तथा कुष्ठ को दूर करने वाला, नेत्रों के लिये हितकर, सुगन्धयुक्त तथा पसीने की दुर्गन्ध को दूर करनेवाला होता है॥ १०॥

५ जबाद कस्तूरी

हि०–जबाद कस्तूरी, जबाद, बेट अजीर, मुश्क बिलाव कस्तूरी, गन्ध ओतु। **गु०**–जवादियां कस्तूरी। **ता०**–पुनुगु, जबादी। **अ०**–ज(जु)ब्बाद, ज(जु)बाद। **अं०**–Civet (सिव्हेट)। **प्राणिनाम**—**हि०**–मुश्क बिल्ली, खटास। **ने०**–भ्रान। **बं०**–माचभोंदर, बगदास, पूडोगंद। **ता०**–पुनुगु पूने। **फा०**–गुर्बए जबाद। **अं०**–Civet cat (सिव्हेट कॅट)। **ले०**-*Viverra zibetha, Linn.* (वाइवेर्रा झिबेथा, लिन.)।

यह सुगन्धिपदार्थ गन्धमार्जार नामक एक प्रकार की बिल्ली के पूंछ के नीचे की थैली से प्राप्त द्रव्य है। यह प्राणी अफ्रिका, दक्षिण एशिया एवं भारतवर्ष के मालाबार प्रान्त में पाया जाता है। इसका कद बिल्ली का सा किन्तु दुम बड़ी लम्बी होती है। शरीर पर गहरे रंग के धब्बे होते हैं। गुदा और जननेन्द्रिय के बीच में पूंछ के नीचे एक बड़ी थैली होती है जो दो भागों में विभक्त रहती है। इस थैली में जो द्रव पदार्थ बनता है उसको भी सिव्हेट ही नाम दिया जाता है। प्राकृतिक दशा में सिव्हेट की गन्ध अत्यन्त तीक्ष्ण या असह्य होती है, किन्तु जब वह अन्य वस्तुओं के साथ मिलाकर तैयार की जाती है, तो उसमें कस्तूरी की सी सुगन्ध आने लगती है। इस बिल्ली को एक तंग पिंजरे में खड़ाकर देते हैं और थैली में से द्रव पदार्थ को निचोड़ लेते हैं।

मलाबार की तरफ कृषक लोग खेतों में बांस गाड़ देते हैं। यह मार्जार उस पर अपना शिश्न घर्षण करके वीर्य निकाल देता है जो बांस पर लग जाता है। कृषक लोग उसे संग्रह करके बेच देते हैं।

कई लोग इस मार्जार को मारकर उसका अण्डकोष उलटा करके ग्रन्थियां फेंक देते हैं और उल्टे हुवे कोष में तृण भरकर शुष्क करके बेच देते हैं। कलकत्ता में यह शुष्क कोष 'खट्टाशी' नाम से मिलता है। बंगाली वैद्य नारायण तैल आदि को सुगन्धित करने के लिये खट्टाशी उसमें छोड़कर मन्द अग्नि से पकाते हैं।

गन्धमार्जारवीर्य नया होने पर पीताभ श्वेत वर्ण का, नरम और प्रायः मधु के समान गाढ़ा होता है। पुराना होने पर रंग में कुछ श्यामता आ जाती है। यह श्वेत रंग का निकृष्ट समझा जाता है। दक्षिण भारत के बंगलोर, मैसूर, मदुरा आदि शहरों में यह **पुनुगु** या **जबादी** नाम से सुगन्धि द्रव्य बेचने वालों के यहां मिलता है। इसमें छोटे बाल, तन्तु, लकड़ी तथा अमोनिया आदि मिले रहते हैं।

परीक्षा—'गंजबादावर्द' में जवाद की परीक्षण विधि इस प्रकार लिखी है—

इसे सुतली के सिरे पर लगाकर अग्नि के समीप रखने से पिघल कर तेल हो जाय तो कृत्रिम और यदि एकत्रीभूत होकर सिरे पर लगा रहे तो असली समझे। इसे अग्नि पर गरम करें या दोनों हाथों से इतना मलें कि गरमी पैदा हो जाय, उस समय सूंघने से जो चीज उसमें मिली होगी वह व्यक्त हो जायगी।

रासायनिक संगठन—इसमें स्वतन्त्र अमोनिया, राल, वसा, कार्यकारी सत्त्व एवं उड़नशील तैल आदि पदार्थ पाये जाते हैं जिनके कारण इसमें सुगन्ध होती है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, वृष्य, नेत्र्य, सुगन्धि, उत्तेजक, सौमनस्यजनन, आविजनन, हृदय एवं ज्ञानेन्द्रियों के लिये बलकारक, उद्वेष्टननिरोधी तथा कफ, वायु, कण्डु और स्वेद की दुर्गन्ध को दूर करने वाला एवं स्थानिक पीडाशामक है। इसका प्रयोग अपतन्त्रक, वातनाडी दुर्बलता-

जन्य शैथिल्य, नपुंसकता एवं सुखप्रसूति के लिये किया जाता है। सुगन्धि के काम में तथा धूपों में इसका औषध की अपेक्षा अधिक प्रयोग किया जाता है। नीचे कुछ यूनानी प्रयोगों को दिया जाता है।

(१) मद्य या अन्य औषधों के साथ २ र० की मात्रा में देने से मन उल्लसित होता है एवं मूर्च्छा, हृदय की धड़कन एवं उदासीनता आदि में लाभ होता है।

(२) १॥ माशा जवाद, थोड़ा सा केशर एवं मुर्गे का मांसरस प्रसव के समय पिलाने से सुखपूर्वक प्रसव होता है।

(३) प्रतिश्याय, शिरःशूल और अर्धावभेदक में इसको सूंघने से लाभ होता है।

(४) बादाम के तेल में घिसकर कान में डालने से श्रवणशक्ति बढ़ती है।

(५) शिश्नपर लेप करके संभोग करने से अधिक आनन्द होता है तथा गर्भधारणा नहीं होती।

(६) इसके मर्दन से दर्द दूर होता है। व्रणशोथ पर लेप करने से वह पककर जल्दी अच्छा होता है।

मात्रा—१-२ माशा।

नोट—एक अन्य सुगन्धि, जान्तव द्रव्य का प्रयोग यूनानी चिकित्सा में किया जाता है, जिसे **जुंदबेदस्तर** कहते हैं। यह कॅस्टर फाइबर (Castor fiber) नामक उद्‌बिलाव की जाति के एक प्राणी के जननांगकोश में संचित पदार्थ है। यह कोश २॥ इञ्च लंबे, भारी तथा खाकी श्यामवर्ण के होते हैं। इसके भीतर कालासा या पीलापन लिये हुये एक लाल रंग का राल जैसा पदार्थ होता है जिसमें कस्तूरी जैसी गंध होती है एवं इसका स्वाद कुछ तीता होता है। इसका सुगंधि के अतिरिक्त वातकफ-विकारों में अगद के रूप में तथा तिलाओं में उपयोग करते हैं।

मात्रा—२ से ४ रत्ती।

अथ चन्दनम् । तस्य नामान्याह

श्रीखण्डं चन्दनं न स्त्री भद्रश्रीस्तैलपर्णिकः । गन्धसारो मलयजस्तथा चन्द्रद्युतिश्च सः ॥११॥

चन्दन के नाम—श्रीखण्ड, चन्दन (यह पुंलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग में होता है), भद्रश्री, तैलपर्णिक, गन्धसार, मलयज और चन्द्रद्युति ये सब चन्दन के संस्कृत नाम हैं ॥ ११ ॥

अथोत्तमचन्दनस्य लक्षणमाह

स्वादे तिक्तं कषे पीतं छेदे रक्तं तनौ सितम् । ग्रन्थिकोटरसंयुक्तं चन्दनं श्रेष्ठमुच्यते ॥१२॥

श्रेष्ठ चन्दन के लक्षण—जो चन्दन स्वाद में तिक्त रस युक्त, घिसने में पीले वर्ण का, टुकड़े करने पर लाल वर्ण का एवम् देखने में श्वेत वर्ण का हो तथा गाँठ और कोटर (खोड़रा) से युक्त हो तो श्रेष्ठ कहलाता है ॥ १२ ॥

अथ चन्दनस्य गुणानाह

चन्दनं शीतलं रूक्षं तिक्तमाह्लादनं लघु । श्रमशोषविषश्लेष्मतृष्णापित्तास्रदाहनुत् ॥ १३ ॥

चन्दन के गुण—**चन्दन**—शीतवीर्य, रूक्ष तिक्त रस युक्त, चित्त को आह्लादित करने वाला और लघु होता है तथा श्रम, शोष, विष, कफ, प्यास, पित्तविकार, रक्तदोष और दाह को दूर करने वाला होता है ॥ १३ ॥

६ चन्दन

हि०—चंदन, सफेद चंदन। **बं०-म०**—चंदन। **क०**—श्रीगन्धमर। **गु०**—सुखड़। **ता०**—चंदन मरं। **ते०**—गंधपु चेक्का। **फा०**—संदले सफेद। **अ०**—संदले अब्यज। **अं०**—Sandalwood (सॅन्डलवुड)। **ले०**—*Santalum album, Linn.* (सॅन्टॅलम् ॲल्बम्)। Fam. Santalaceae (सॅन्टॅलेसी)।

यह मैसूर, कुर्ग, कोयम्बटूर एवं मद्रास के दक्षिणी भागों में ४००० फीट की ऊँचाई तक उत्पन्न होता है तथा इसकी उपज भी की जाती है। करीब ६००० वर्ग मील का क्षेत्र इससे व्याप्त है जिसमें से ८५% भाग मैसूर एवं कुर्ग में है। कहीं कहीं वाटिकाओं में भी रोपण करते हैं।

इसका वृक्ष सदाहरित, २०-३० फीट ऊँचा एवं अर्धपराश्रयी स्वरूप का होता है क्योंकि यह दूसरे आस-पास के घास, झाड़ी, क्षुप एवं वृक्षों से कुछ अंशों में पोषक द्रव्यों का शोषण करता है। उद्‌भेद के कुछ महीने पश्चात् ही इसके मूल आस पास के पेड़-पौधों के मूल में घुस जाते हैं तथा उनसे खाद्य द्रव्यों का शोषण करते हैं। छोटे पौधों को बहुत सावधानी के साथ इतर पोषित (Host) वृक्षों के साथ पुनः रोपण किया जाता है। यदि सावधानी के साथ रोपण न किया जाय और पास २ रोपण किया जाय तो स्पाइक (Spike) नामक रोग से ये बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। इसकी **छाल**-कालापन युक्त भूरे रंग की, **अन्तर छाल**-लाल, **लकड़ी**-तेल युक्त दृढ़ और **सार भाग**-पीलापन युक्त भूरे रंग का तथा सुगन्धित होता है। **पत्ते**-विपरीत, २-३ इञ्च लम्बे, अण्डाकार-लट्वाकार एवं उपपत्र रहित होते हैं। **फूल**-छोटे, निर्गन्ध, जामुनी रंग के तथा गुच्छों में आते हैं। **फल**-मांसल, गोल एवं कृष्णाभ बैंगनी रंग के होते हैं। इसका केवल काष्ठसार ही सुगंधित होता है।

कठिन, पहाड़ी तथा लाल भूमि में उत्पन्न वृक्षों में तैल अधिक होता है। उपजाऊ भूमि में तैल की मात्रा कम होती है। इसके वृक्षों को यद्यपि अन्य स्थानों में रोपित करने का प्रयत्न किया गया तथापि उसमें बहुत कम सफलता मिली। इसके वृक्ष १८-२० वर्षों में परिपक्व होते हैं तब तक इसमें काष्ठसार सतह से २ इञ्च अंदर तक विकसित हो जाता है। इस अवस्था में वृक्षों को काटते हैं। बाहर की छाल एवं बाहरी रसकाष्ठ (Sapwood-सॅपवुड) तथा डालियां जो गंधहीन होती हैं उन्हें फेंक दिया जाता है। अंदर के काष्ठसार (Heart wood-हार्टवुड) को करीब २½ फीट लंबे टुकड़ों में काटकर बंद गोदामों में सूखने के लिये रख दिया जाता है। ऐसा समझा जाता है कि इससे इसकी सुगन्ध और अच्छी हो जाती है। वृक्ष का तिहाई भाग करीब काष्ठसार होता है।

काष्ठसार के टुकड़ों तथा बुरादे से आसवन (Distillation-डिस्टिलेशन) के द्वारा तैल निकालते हैं। इसकी उड़नशीलता कम होने के कारण एवं इसका काष्ठ अधिक सघन होने के कारण तैल बहुत धीरे धीरे निकलता है तथा इसमें व्यय भी अधिक होता है। इसके मूल से भी तैल निकाला जाता है जो काष्ठ की अपेक्षा अधिक मात्रा में एवं अधिक अच्छा होता है। औसतन १ टन (२८ मन) काष्ठ से १०५-११० पौण्ड तैल निकलता है। अधिकांश वृक्षों पर राज्य का अधिकार है तथा बंगलौर एवं मैसूर में इसके तैल निकालने के कारखाने हैं। राज्य को अमेरिका आदि देशों में इसके निर्यात से बहुत आमदनी होती है।

अन्य देशों में कुछ ऐसे वृक्ष पाये गये हैं जिनसे भारतीय चन्दन तैल सदृश तैल प्राप्त होता है लेकिन वह उतना अच्छा नहीं होता। पूर्वी जावा से चन्दन के ही वृक्ष से निकाला हुआ **मॅकेसर सॅन्डलवुड् ऑइल** (Macassar sandalwood oil) आता है लेकिन उसमें भारतीय

तैल जैसी सुगंध नहीं होती। वेस्ट इन्डियन सॅन्डलवुड् ऑइल (West Indian sandalwood oil) यह चंदन के वृक्ष से नहीं निकालते वरन् फ्यूसॅनस् ॲक्यूमिनेटस् (Fusanus acuminatus) से निकालते हैं तथा ईस्ट अफ्रिकन सॅन्डलवुड् ऑइल (East African sandalwood oil) ऑसिरिस् टेनुइफोलिया (Osyris tennuifolia) से निकालते हैं। वेस्ट ऑस्ट्रेलियन् सॅन्डलवुड् ऑइल (West Australian sandalwood oil) यह फ्यूसॅनस् स्पाइकॅटस् (Fusanus spicatus) से निकालते हैं जो कुछ परिवर्तन करने के पश्चात् भारतीय तैल जैसा बन जाता है एवं व्यापार में भारतीय तैल की प्रतिद्वन्दिता कर सकता है।

चन्दन के भेद—प्राचीन निघण्टुकारों ने चन्दन के कई भेद लिखे हैं। ध. नि. में चन्दन (श्वेतचन्दन), रक्त चन्दन कुचन्दन, कालीयक और बर्बरीक ये पांच प्रकार के चन्दन के भेद लिखे हैं। रा नि. में बेट्ट और सुक्कडि नामक (श्वेत) चन्दन के दो भेद एवं रक्त चन्दन, पतंग (कुचन्दन), कालीयक, बर्बरक तथा हरिचन्दन ये सब मिलाकर ७ प्रकार लिखे हैं। भावप्रकाश में चन्दन, रक्तचन्दन, कालीयक (पीतचन्दन) एवं कुचन्दन (पत्रांग) ये ४ भेद लिखे हैं। ध. नि. ने हरिचन्दन का स्वतन्त्र उल्लेख न करके रक्तचन्दन के पर्याय में हरिचन्दन लिखा है तथा भावप्रकाशकार ने कालीयक (पीतचन्दन) के पर्याय में हरिचन्दन को लिखा है।

श्वेतचन्दन—रा. नि. ने श्वेतचन्दन के दो भेद किये हैं। आर्द्र अवस्था में वृक्ष को काटने पर प्राप्त चन्दन को बेट्ट संज्ञा दी है। अपने आप वृक्ष के सूख जाने पर काटे हुवे चन्दन को सुक्कडि कहा है। कुछ लोगों का मत है कि मलय पर्वत के पास के बेट्ट नामक पर्वत से प्राप्त चन्दन 'बेट्टचन्दन' है। इसी प्रकार 'बर्बर' नामक चन्दन का जो भेद लिखा है वह भी श्वेत ही होता है तथा वह बर्बर नामक पहाड़ पर उत्पन्न होता है। ध. नि. इसे निर्गन्ध एवं रा. नि. सुगन्धि युक्त मानते हैं। श्वेतचन्दन के जो अन्य पर्याय भद्रश्री, तैलपर्ण एवं गोशीर्ष आदि दिये गये हैं वे मलय पर्वत, तिलपर्ण तथा गोशीर्ष पर्वत पर पाये जाने वाले चन्दनों के नाम हैं, ऐसा मानते हैं।

चन्दन के प्रयोग के संबन्ध में लिखा है—**'उक्ते चन्दनशब्दे तु गृह्यते रक्तचन्दनम्। चूर्णस्नेहासवा लेहाः साध्याः धवलचन्दनैः॥ कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम्॥'** योग में सामान्य चन्दन शब्द से रक्तचन्दन का ग्रहण करना चाहिये। चूर्ण, तैल, घृतादि, आसव-अरिष्टादि एवं लेह में चन्दन से श्वेत चन्दन का ग्रहण करना चाहिये तथा कषाय स्वरस आदि एवं लेप के लिये रक्तचन्दन का ग्रहण करना चाहिये। चरक के कई गणों में चन्दन का उल्लेख एवं सुश्रुत के कई गणों में चन्दन तथा कुचन्दन का प्रयोग आया है। सालसारादि गण में कालीयक का भी उल्लेख है। डल्हण ने सालसारादिगण एवं पटोलादिगण में कुचन्दन का अर्थ रक्त चन्दन किया है। जब कुचन्दन से रक्त चन्दन एवं चन्दन से भी रक्त चन्दन लिया जावेगा तो दो अलग लिखने का क्या अभिप्राय है? सु० सू० अ० ३८ में प्रियंग्वादिगण में कुचन्दन का अर्थ रक्त चन्दन न करके मलयादि चन्दन किया है तथा चन्दन का अर्थ रक्त चंदन किया है। गुडूच्यादिगण में चन्दन से रक्तचन्दन लिया है। इस प्रकार **'चन्दने रक्तचन्दनम्'** यह उचित नहीं मालूम पड़ता तथा चूर्णादि में श्वेत एवं कषायादि में रक्तचन्दन का प्रयोग भी ऋषि सम्मत नहीं मालूम पड़ता। जिस प्रकार का प्रयोग हो वैसा अर्थ लेना चाहिये। सुगन्धि आदि के लिये श्वेत चन्दन एवं रक्तपित्तादि में रक्त चन्दन का प्रयोग उचित है।

रासायनिक संगठन—इसके काष्ठसार में २·५-६% तक एक उड़नशील तैल, राल एवं टॅनिक एसिड आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

चन्दन का तैल हलके पीले रंग का, गाढ़ा, चिपचिपा, स्वाद में कडवा एवं किंचित् तीता तथा तीव्र विशिष्ट गन्धवाला होता है। यह २०° से. उष्णता पर ५ भाग मद्यसार (७०%) में घुल जाता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ०.९७३—०.९८५ होता है। इस तैल में ९०% तक ॲल्फा-सॅण्टेलॉल एवं बीटा-सॅण्टेलॉल (a-santalol and B-santalol, $C_{15}H_{24}O$) नामक दो समाजिक (Isomeric-आइसोमेरिक्) सेस्क्विटर्पेन् ॲल्कोहोल्स (Sesquiterpene alcohols) पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त इस तैल में ॲल्डिहाइड्स (Aldehydes) एवं कीटोन (Ketone) द्रव्य पाये जाते हैं।

इस तैल में देवदार का तैल (Cidarwood oil) १० % तक एवं रेंडी का तेल आदि अन्य तैलों की मिलावट की जाती है जिनकी पहचान इसके भौतिक परिवर्तन से की जा सकती है।

गुण और प्रयोग—श्वेत चन्दन कड़वा, शीतल, रूक्ष, दाहशामक, पिपासाहर, ग्राही, हृदय-संरक्षक, विषघ्न, वर्ण्य, कण्डूघ्न, वृष्य, आह्लादकारक, रक्तप्रसादक, मूत्रल, दुर्गन्धहर एवं अंगमर्द-शामक है।

इसका उपयोग ज्वर, रक्तपित्त, पैत्तिक विकार, तृषा, दाह, वमन, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, रक्तमेह, श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, उष्णवात (सोजाक), रक्तातिसार तथा अनेक चर्मरोगों में किया जाता है।

(१) पित्तज्वर, तीव्रज्वर एवं जीर्णज्वर में चंदन के प्रयोग से दाह एवं तृषा की शांति होती है तथा स्वेद उत्पन्न होकर ज्वर भी कम होता है। ज्वर के कारण हृदय पर जो विषैला परिणाम होता है वह भी इसके देने से नहीं होता।

(२) नारियल के जल में चन्दन घिसकर २ तो० की मात्रा में पिलाने से प्यास कम होती है।

(३) चन्दन को चावल की धोवन में घिस कर मिश्री एवं मधु मिलाकर पिलाने से रक्तातिसार, दाह, तृष्णा एवं प्रमेह आदि में लाभ होता है। इसी प्रकार मूत्रदाह, मूत्राघात, रक्तमेह एवं सोजाक में चन्दन को चावल की धोवन में घिस कर मिश्री मिलाकर पिलाते हैं।

(४) आंवले के रस के साथ चन्दन देने से वमन बंद होता है।

(५) दुर्गंध युक्त श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर एवं प्रमेह आदि में चंदन का क्वाथ उपयोगी है।

(६) ग्रीष्मऋतु में शीतल, आह्लाददायक पेय के रूप में चन्दन पानक (शरबत) का उपयोग किया जाता है। इससे आमाशयगत उष्णता कम होती है। हृदय, यकृत तथा आमाशय को बल प्राप्त होता है एवं दाह, तृष्णा शांत होती है।

(७) त्वक् शोथ, विसर्प, फोड़े-फुन्सी, कण्डू, अत्यधिक स्वेद एवं अम्हौरी आदि में चंदन एवं कपूर, गुलाब जल में घिसकर लगाते हैं। ज्वर में शरीर में पीडा हो तब इसको लगाने से लाभ होता है। शिरःशूल में लगाने से शिरःशूल दूर होता है।

चन्दन का तैल—यह उत्तम मूत्रजनन, मूत्रमार्ग के लिये प्रतिदूषक, वृक्कोत्तेजक, त्वग्दोषहर, कृमिघ्न, कफनिःसारक एवं स्नेहन है। इससे वृक्क को कोई नुकसान नहीं होता। इसका उत्सर्ग मूत्रजननेंद्रिय संस्थान तथा फुफ्फुसों द्वारा होता है और उत्सर्ग के समय इनके स्रावों की वृद्धि होती है तथा जीवाणुनाशन भी होता है। सेवन के पश्चात् गले में खुश्की एवं प्यास तथा अधिक मात्रा में शूलवत् वेदना एवं कटिप्रदेश में भारीपन मालूम होता है।

इसका प्रयोग सोजाक, बस्तिशोथ, गवीनीमुखशोथ, जीर्णकास, विषम ज्वर एवं खुजली (पामा) में तथा सुगन्धि के लिये किया जाता है।

(१) नये अथवा पुराने सोजाक में इसको १५-२० बूंद दिन में ३ बार देने से बहुत लाभ होता है। यदि जलन अधिक हो तो ५-१० बूंद हर घंटे पर दें। कोपाइबा (Copaiba) की तरह

इससे मूत्रादि में दुर्गन्ध नहीं आती। इसे पूयस्राव बंद होने के २ हफ्ते बाद तक देना चाहिये जिससे फिर से न हो। इसमें इलायची एवं वंशलोचन के साथ या सोंठ या अजवायन के फांट के साथ भी इसका प्रयोग किया जाता है।

(२) जीर्ण बस्तिशोथ (Cystitis), गवीनीमुख शोथ (Pyelitis–पाइलाइटिस्), बस्ति के राजयक्ष्मा उपसर्ग से यदि बार बार पेशाब होती हो एवं मूत्रकृच्छ्र में इसको बताशे में डालकर दूध के साथ देते हैं। यह क्षारीय मूत्र में ही प्रतिदूषक का कार्य करता है इसलिये साथ में क्षारीय औषधों का प्रयोग आवश्यक है।

(३) दुर्गन्धित कफयुक्त कास में २–३ बूँद बताशे पर डालकर देते हैं।

(४) खुजली (पामा–Scabies) में इसको लगाने से लाभ होता है। कर्णशूल, दंतशूल एवं शोथ आदि पर तथा अनेक चर्मरोगों में इसका स्थानिक उपयोग किया जाता है। नाक पर की फुन्सियों पर दुगुने सरसों के तेल में मिलाकर इसे लगाते हैं।

चन्दन के बीज—पेसरी के रूप में गर्भपात के लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—चूर्ण २–४ मा०, तैल ५–१५ बूँद।

अथ पीतचन्दनम् । (कलम्बक इति लोके) । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

कालीयकं[1] तु कालीयं पीताभं हरिचन्दनम् ॥ १४ ॥
हरिप्रियं कालसारं तथा कालानुसार्यकम् । कालीयकं रक्तगुणं विशेषाद् व्यङ्गनाशनम्॥१५॥

पीत चन्दन अर्थात् जिसे लोक में 'कलम्बक' कहते हैं उसके नाम तथा गुण—कालीयक, कालीय, पीताभ, हरिचन्दन, हरिप्रिय, कालसार तथा कालानुसार्यक ये सात पीले चन्दन के संस्कृत नाम हैं। **पीलाचन्दन**—गुणों में रक्तचन्दन के समान ही होता है किन्तु विशेषता यह है कि यह विशेष रूप से व्यङ्ग (मुख की झाँई) को भी दूर करने वाला होता है ॥ १४–१५ ॥

७ पीतचन्दन

हि०–पीतचन्दन, पीला चन्दन, कलंबक। **बं**–कलंबा। **म०**–पिंवळे चन्दन। **फा०**–संदल अबियज।

नवीन औद्भिदी विज्ञों के अनुसार पीत चन्दन का स्वतन्त्र कोई वृक्ष नहीं पाया जाता। ध० नि० एवं भावप्रकाश में उत्तम श्वेत चन्दन के विषय में लिखा है कि 'कषे पीतम्', अर्थात् घिसने पर जो पीतवर्ण का हो वह उत्तम श्वेत चन्दन होता है। इसी प्रकार ध० नि० में 'मलयोत्थम् पीतकाष्ठम् चतुर्थं हरिचन्दनम्', लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि पीतचन्दन मलयपर्वत पर ही होता है। श्वेत चन्दन का उत्पत्ति स्थान भी मलय पर्वत दिया हुआ है। इस प्रकार उत्पत्ति स्थान एवं घिसने पर पीतवर्ण दोनों चन्दनों के एक ही हैं केवल ऊपर से देखने में पीत चन्दन कुछ अधिक पीला तथा श्वेत चन्दन पीताभ श्वेत होता है। इसलिये यदि उत्तम पीतवर्ण के काष्ठसार को पीतचन्दन एवं कुछ श्वेत वर्ण के काष्ठसार को श्वेत चन्दन मान लिया जाय तो पीत चन्दन की संगति लग सकती है।

---

[1] कलम्बकं इति पाठा०।

दूसरा द्रव्य जिसके तरफ ध्यान जाता है वह है कलंबा (Calumba)। यह अफ्रीका में होनेवाली एक लता जेटिओहाइझा पामेटा (Jateorhiza palmata Miers ; Fam. Menispermaceae) के पीतवर्ण के मूल के टुकड़े हैं जिनका आधुनिक चिकित्सा में तिक्त पौष्टिक एवं दीपन द्रव्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह भारत में भी लगाई हुई मिलती है एवं इसका भारतीय प्रतिनिधि है 'झाड की हलदी' (पृष्ठ १२२) जिसको दक्षिण में दारुहरिद्रा के स्थान पर व्यवहार करते हैं। इस भारतीय द्रव्य को सीलोन कलंबा या नकली कलंबा भी कहा जाता है। दारुहरिद्रा के पर्यायों में भी 'कालीयक' आता है। इन बातों से ऐसा आभास होता है कि संभवतः 'झाड़ की हलदी' (नकली कलंबा) या कलंबा पीतचन्दन हो।

अथ रक्तचन्दनम् । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

रक्तचन्दनमाख्यातं रक्ताङ्गं क्षुद्रचन्दनम् । तिलपर्णं रक्तसारं तत्प्रवालफलं स्मृतम् ॥ १६ ॥
रक्तं शीतं गुरु स्वादुच्छर्दितृष्णाऽस्रपित्तहृत् । तिक्तं नेत्रहितं वृष्यं ज्वरव्रणविषापहम् ॥ १७ ॥

लाल चन्दन के नाम तथा गुण—रक्तचंदन, रक्ताङ्ग, क्षुद्रचंदन, तिलपर्ण, रक्तसार और प्रवालफल ये सब लाल चंदन के संस्कृत नाम हैं। **लाल चन्दन**—शीतवीर्य, गुरु, स्वादु तथा तिक्त रस युक्त तथा वमन, प्यास और रक्तपित्त को दूर करने वाला होता है। यह नेत्रों के लिये हितकर, वृष्य और ज्वर, व्रण तथा विष को दूर करने वाला होता है ॥ १६–१७ ॥

८ लालचन्दन

हि०–लाल चंदन, रक्तचंदन। **बं, म०**–रक्तचंदन। **गु०**–रतांजली। **ते०**–रक्तचंदनम्। **ता०**–शेन् चंदनम्। **पं, मा०**–लाल चंदन। **मला०**–रक्तशंदनम्। **फा०**–संदले सुर्ख। **अ०**–संदले अहमर। **अं०**–Red Sanders Wood (रेड सॅण्डर्स वुड); Red Sandal Wood (रेड सॅण्डल वुड)। **ले०**–*Pterocarpus santalinus, Linn. f.* (प्टेरोकार्पस् सॅन्टॅलिनस्, लिन.)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

यह दक्षिण भारत में विशेष कर कुडापा, उत्तर आरकोट, कर्नूल के दक्षिण भाग एवं चिंगलपुट में १५०० फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है। यह दक्षिण भारत तथा फिलीपाइन द्वीपों में नैसर्गिक रूप में उत्पन्न होता है।

इसका **वृक्ष**–२५ फुट तक ऊँचा होता है। **छाल**–कालापन युक्त भूरे रङ्ग की, **लकड़ी**–दृढ़ तथा **काष्ठसार**–अत्यंत कठिन एवं कालापन युक्त लाल रंग का होता है। **पत्ते**–संयुक्त, प्रायः पत्रक तीन, १½–३ इञ्च लम्बे, गोलाई युक्त अंडाकार एवं कुण्ठिताग्र होते हैं। पत्तों के अधोपृष्ठ हलके वर्ण के एवं मृदु रोमश होते हैं। **फूल**–अल्प, पीताभ श्वेत एवं सवृंतकाण्डज गुच्छों में आते हैं। **फलियाँ**–करीब १½ इञ्च व्यासकी, टेढ़ी, आधार की तरफ कम चौड़ी एवं छोटे से डंठल से युक्त होती हैं।

इसके **काष्ठसार** का औषध में व्यवहार किया जाता है। यह गहरे काले से लाल रंग का, अत्यंत कठोर, वजन में भारी एवं रेशेदार होता है। यह लम्बाई में आसानी से टूट जाता है। इसके सफाई से कटे हुये अनुप्रस्थ विच्छेद में (Transverse section) में वार्षिक चक्र (Annual rings) नहीं होते किन्तु गहरे रंग की घन काष्ठतंतुओं (Wood fibres) की स्पर्शसमतलीय (Tangential) पट्टियाँ (Bands) होती हैं जो कम चौड़ी, हलके रंग की काष्ठतंतुभित्तिक (Wood parenchyma) की करीब करीब संतत पट्टियों से एकांतरित रहती हैं। इन

पट्टियों के अन्दर के किनारों पर महावाहिनियाँ (Vessels) दूर-दूर पर विन्यस्त रहती हैं । इन पट्टियों को समकोण में काटती हुई अत्यंत महीन, हलके रंग की मज्जक किरणें (Medullary rays) होती हैं जो १० गुना बड़ा करके ही देखी जा सकती हैं । इसका बुरादा बाजार में मिलता है। इससे मद्यसार का रंग गहरा लाल हो जाता है लेकिन जल में बहुत कम इसका भाग घुलता है । इसमें गन्ध नहीं होती तथा स्वाद कुछ कसैला होता है ।

नोट—यद्यपि इसे रक्तचंदन कहा गया है तथापि इसमें चंदन के समान सुगंध नहीं होती । रा. नि. में एक सुगंधि युक्त लालचंदन का उल्लेख 'हरिचंदन' नाम से किया है लेकिन यह भी लिखा है कि यह दिव्य होता है एवं दुर्लभ होता है। कुछ लोगों ने रक्तचंदन से पतंग का ग्रहण किया है क्योंकि वह भी रक्तचंदन से मिलता-जुलता होता है लेकिन वह इस वृक्ष से अलग वृक्ष है जिसका आगे वर्णन दिया गया है । 'निघण्टुआदर्श' में कुचंदन का ले० नाम अॅडेनेन्थेरा पॅहोनिना लिन. (Adenanthera pavonina Linn.) बं०-रक्तकंबल; बम्ब०-थोरलीगुञ्ज, वाल; हि०-बड़ी गुमची, रक्तचंदन लिखकर 'वनौषधि दर्पण' से उद्धृत उसकी टीका में लिखा है कि 'कुचंदन यह रा. नि. का पतंग है जिसका रक्तचंदन के स्थान पर प्रयोग किया जाता है ।' लेकिन पतंग का वृक्ष अलग होता है जिसे सिझल्पिनिआ सप्पन कहते हैं। बड़ी गुमची को रक्तचंदन अथवा पतंग मानना उचित नहीं । इस प्रकार रक्तचंदन एवं पतंग के अलग अलग वृक्ष पाये जाते हैं । केवल रा. नि. का सुगंध युक्त लालचंदन (हरिचंदन) अभी तक नहीं प्राप्त हो सका है।संभव है वनस्पतियों का व्यापक अनुसंधान होने पर इस विषय का अंतिम निर्णय किया जा सके ।

रासायनिक संगठन—इसमें सॅन्टॅलिन् (सॅन्टॅलिक् एसिड) [Santalin (santalic acid)] नामक एक रंजक द्रव्य तथा डेसऑक्सि सॅण्टलिन् नामक एक अन्य पदार्थ पाया जाता है। सॅन्टॅलिन् से मद्यसारमें रक्त के समान लाल रंग, ईथर में पीला, अमोनिया एवं दाहक क्षार में नीललोहित रंग आता है । यह जल में नहीं घुलता । इसके अतिरिक्त लालचन्दन में प्टेरोकार्पिन (Pterocarpin), होमो-प्टेरोकार्पिन (Homo-pterocarpin) एवं सॅन्टाल् ये तीन रंगहीन रवेदार पदार्थ पाये जाते हैं । इसमें मद्यसार में घुलनशील पदार्थ २% से कम एवं राख २% से अधिक न होनी चाहिये । इसके मद्यसारीय घोल से इसके रंग को खनिज अम्लों (Mineral acids) के द्वारा निस्सादित (Precipitated) किया जा सकता है ।

गुण और प्रयोग—रक्तचन्दन शीतल, बल्य, सौम्य एवं ग्राही है । इसका बाह्य लेप शीतल, शोथघ्न एवं व्रणरोपक है ।

इसका प्रयोग पैत्तिक विकार, रक्तदोष, रक्तार्श, रक्तपित्त, अतिसार, संग्रहणी एवं शिरःशूल, शोथ तथा त्वचा के रोगों में किया जाता है । रंजक द्रव्य के रूप में इसका अधिक उपयोग किया जाता है ।

(१) शोथ, फोड़े, व्रण, अम्हौरी तथा शिरःशूल में इसको शीतल प्रलेप के रूप में जल में घिसकर लगाते हैं । पलकों की सूजन पर इसे लगाने से सूजन दूर होती है ।

(२) ग्राही होने के कारण अन्य ओषधों के साथ इसका क्वाथ अतिसार एवं संग्रहणी आदि में प्रयोग किया जाता है ।

(३) रक्तार्श में इसे दूध में पीसकर पिलाते हैं एवं जल में घिसकर लेप भी करते हैं ।

(४) इसके मद्यसारीय घोल से खनिज अम्लों के द्वारा इसके रंजक द्रव्य को निस्सादित कर लिया जाता है जिसका उपयोग रंजन के लिये करते हैं । कंपाउण्ड टिंक्चर ऑफ् ल्हेंण्डर में इसी का रंग होता है ।

मात्रा—४ र०-८ र० ।

बड़ी गुमची

Adenanthera pavonina Linn ; Fam. Leguminosae (अॅडेनेन्थेरा पॅहोनिना लिन, लेग्यूमिनोसी)—यह पूर्वी हिमालय तथा पश्चिमी पेनिन्सुला में पाया जाता है । इसके बीजों का प्रयोग फोड़े तथा सूजन आदि पर किया जाता है तथा छाल का उपयोग आमवात एवं रक्तष्ठीवन में किया जाता है ।

अथ पतङ्गम् (बकम्) । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

पतङ्गं रक्तसारञ्च सुरङ्गं रञ्जनं तथा । पट्टरञ्जकमाख्यातं पत्तूरञ्च कुचन्दनम् ॥ १८ ॥
पतङ्गं मधुरं शीतं पित्तश्लेष्मव्रणास्रनुत् । हरिचन्दनवद्वेद्यं विशेषाद्दाहनाशनम् ॥ १९ ॥

पतङ्ग के नाम तथा गुण—पतङ्ग, रक्तसार, सुरङ्ग, रञ्जन, पट्टरञ्जक, पत्तूर और कुचन्दन ये सब पतङ्ग के संस्कृत नाम हैं । पतङ्ग-मधुररस युक्त, शीतवीर्य एवम् पित्त-कफ, व्रण और रक्तदोष को दूर करने वाला होता है । यद्यपि पतङ्ग का गुण पीले चन्दन के समान ही होता है तथापि इसे विशेष करके दाहनाशक समझना चाहिये ॥ १८-१९ ॥

९ पतङ्ग

हि०-पतङ्ग, बक, बकम काठ, आल । बं०-बकम काष्ठ, बोकोम । म०, गु०-पतङ्ग । ते०-बुक्कपुचेट्ठु । ता०-वरतंगि, शप्पङ्गु । मला०-चप्पनम् । फा०, अ०-बकम । अं०-Sappan Wood (सॅप्पन वुड) । ले०-*Caesalpinia sappan Linn.* (सिझल्पिनिया सॅप्पन) । Fam. Caesalpiniaceae (सिझल्पिनिएसी) ।

यह पूर्व और पश्चिम प्रायद्वीप एवं मद्रास प्रान्त में अधिक पाया जाता है । बंगाल और बिहार के किसी किसी स्थान में देखने में आता है ।

इसका **वृक्ष**-छोटा एवं कांटेदार होता है । लकड़ी-दृढ़, सारभाग-नारङ्गी या चमकीले लाल रङ्ग का होता है । **पत्ते**-संयुक्त, उपपक्ष ८ से १२ जोड़े; **पत्रक**-१० से १८ जोड़े, ¾ इञ्च तक लंबे, आयताकार, न्यूनाधिक विनाल, गोलाग्र एवं मध्य शिरा के दोनों तरफ के भाग असमान होते हैं । **फूल**—किंचित् पीताभ रंग के आते हैं । **फलियां**-चिपटी, ३-४ इञ्च×१½-२ इञ्च बड़ी होती हैं । प्रत्येक में ३-४ बीज होते हैं । इसके **काष्ठसार** का उपयोग किया जाता है । यह लालचन्दन जैसी, फीके लाल रंग की, कड़ी एवं निर्गन्ध होती है । बाजार में सिंगापुरी, धुनसरी और सिलोनी इन तीन नामों से इसकी लकड़ी मिलती है ।

रासायनिक संगठन—इसमें सॅप्पन रेड (Sappan red) नामक एक लाल रंग, गॅलिक एवं टॅनिक् एसिड तथा उड़नशील तैल आदि पाये जाते हैं । इसमें का रंग हीमॅटोक्साइलिन (Haematoxylin) से मिलता-जुलता होता है तथा ईथर, मद्यसार एवं जल में घुल जाता है । पतंग का कार्यकारी सत्त्व हीमॅटीन (Haematin) से मिलता-जुलता तथा ब्रॅसिलिन (Brasilin) के समान होता है । इसकी राल में एक रवेदार पदार्थ पाया जाता है जो यदि आसुत करके पोटॅश के साथ गलाया जाए तो रीसॉर्सिन (Resorcin) प्राप्त होता है ।

गुण और प्रयोग—यह ग्राही, रक्तसंग्राहक, गर्भाशय के लिये उत्तेजक एवं संकोचक, श्लेष्मघ्न एवं व्रणरोपक है ।

(१) फुफ्फुस, गर्भाशय एवं आन्त्र आदि स्थानों से रक्तस्राव होने पर इसका क्वाथ पिलाने से लाभ होता है ।

(२) पुराने व्रणों पर इसके महीन चूर्ण का अवचूर्णन करने से व्रण जल्दी अच्छे होते हैं तथा स्थानिक रक्तस्राव भी बन्द होता है। इसके क्वाथ की पट्टी रखने से स्थानिक रक्तस्राव रुक जाता है। श्वेत प्रदर में इसके क्वाथ की बस्ति दी जाती है। पतंग एवं बनफ्शा के क्वाथ से मांसार्बुदों का प्रक्षालन करने से पीड़ा एवं दुर्गन्धि कम हो जाती है। लिचेन (Lichen) नामक त्वग्रोग में इसे पीस कर इसका लेप करते हैं।

मात्रा—१-२ माशा।

अथ सर्वेषां चन्दनानां मध्ये मलयजस्य श्रेष्ठतामाह

चन्दनानि तु सर्वाणि सदृशानि रसादिभिः। गन्धेन तु विशेषोऽस्ति पूर्वः श्रेष्ठतमो गुणैः॥

सभी प्रकार के चन्दनों में मलयागिरी चन्दन की उत्तमता—यद्यपि रसादिकों में प्रायः सभी प्रकार के चन्दन समान ही होते हैं, उनमें विशेषता केवल गन्ध की ही रहती है। तथापि उनमें सर्वप्रथम जो मलयागिरी चंदन है, वही गुणों में सर्वश्रेष्ठ होता है॥ २०॥

अथागुरु कृष्णागुरु च (अगर, काला अगर) तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

अगुरु प्रवरं लोहं राजार्हं योगजं तथा। वंशिकं क्रिमिजं वाऽपि क्रिमिजग्धमनार्यकम्॥ २१॥
अगुरूष्णं कटु त्वच्यं तिक्तं तीक्ष्णञ्च पित्तलम्। लघु कर्णाक्षिरोगघ्नं शीतवातकफप्रणुत्॥२२॥
कृष्णं गुणाधिकं तत्तु लोहवद्वारि मज्जति। अगुरुप्रभवः स्नेहः कृष्णागुरुसमः स्मृतः॥ २३॥

अगर तथा काले अगर के नाम और गुण एवं अगर के तेल के गुण—अगुरु, प्रवर, लोह, राजार्ह, योगज, वंशिक, क्रिमिज, क्रिमिजग्ध और अनार्यक ये सब अगर के संस्कृत नाम हैं।

अगर—उष्णवीर्य, कटु तथा तिक्त रस युक्त, त्वचा के लिये हितकारी, तीक्ष्ण, पित्तजनक, लघु एवम् कान व नेत्र संबंधी रोगों को दूर करने वाला तथा शीत, वात व कफ को नष्ट करने वाला होता है।

काला अगर—यह अगर की अपेक्षा अधिक गुणकारी होता है तथा पानी में डालने से लोहे की भांति डूब जाने वाला होता है।

अगर का तेल—अगर से निकाला हुआ तेल गुणों में काले अगर के समान ही समझा जाता है॥ २१-२३॥

१० अगर

हि०-अगर, काला अगर। **बं०**-अगर काष्ठ, अगरु चन्दन। **म०, गु०**-अगर। **पं०**-ऊद, ऊदफारसी। **क०, ता०, ते०**-कृष्णाअगरु। **अ०**-ऊद खाम। **अं०**-Eagle-wood (ईगल वुड)। **ले०**-*Aquilaria agallocha Roxb.* (एक्विलेरिया एगेलोचा राक्स.) Fam. Thymelaeaceae (थाइमेलिएसी)।

यह पूर्व हिमालय, आसाम, भूटान, खासिया पहाड़ एवं सिलहट आदि प्रान्तों में पाया जाता है।

इसका **वृक्ष**—बड़ा, ६०-७० फीट ऊँचा, ५-८ फीट व्यास का धारीदार एवं सदाहरित रहता है। **काष्ठ**—लकड़ी मुलायम, हलकी, लचीली, श्वेत या हलकी पीताभ श्वेत, एवं इसमें कोई विशेष गंध नहीं होती। इसमें वार्षिक वृद्धि के वलय नहीं होते तथा मध्यम या छोटे आकार की ३ से ४ अरीय (Radial) वाहिकाओं (Vessels) की कतारें एवं इनके बीच तन्तुगुच्छों का फ्लोएम (Phloem) रहता है। काष्ठसार अलग नहीं दिखलाई देता। **पत्ते**—विपरीत, २-४·५×·८-२ इञ्च बड़े, आयताकार भालाकार, या कुछ दीर्घवृत्ताकार, चिकने, तथा बहुत छोटे नाल से युक्त होते हैं। **पुष्प**—श्वेत रंग के गुच्छों में आते हैं। **फल**—१·५-२ इञ्च लंबे, अभिअंडाकार एवं मृदु रोमावृत होते हैं।

अगर—यह सुगन्धित द्रव्य पुराने वृक्षों के काष्ठ में कहीं कहीं पाया जाता है। यह एक विशेष प्रकार के फफूंद (Fungi Imperfecti) के द्वारा निर्मित विकृतिजन्य परिणाम है। प्राचीनों ने संभवतः इसीलिये इसे 'क्रमिजं' कहा है। विकृत भाग कालासा तेलिया हो जाता है। जिस वृक्ष में इस प्रकार परिवर्तन हुआ रहता है उन्हें दूर से देखने से ही पता लग जाता है। जहां शाखाएँ विभक्त होती हैं वहां यह अधिक होता है।

सिलहट का अगर अच्छा होता है। इसमें के तैलीय अंश के अनुसार इसका रंग हलका या गहरा काला होता है। इसके कोमल काष्ठ के छिद्रों में राल जैसा पदार्थ जमा रहता है।

यद्यपि अन्य निघंटुकारों ने इसके कई भेद लिखे हैं तथापि जो अगर देखने में काले रङ्ग का, वजन में भारी, चबाने पर चिपचिपाहट युक्त और पानी में डालने से डूब जाय तथा दियासलाई जला कर लगा देने से जलने लगे वह अगर उत्तम है। इसका स्वाद कड़वा, कसैला तथा तेलिया मालूम होता है। इसमें हलकी मधुर गन्ध होती है जो इसे जलाने पर चारों तरफ फैलती है। सिलहट की तरफ अगर का इत्र बहुत निकाला जाता है। यह निम्न श्रेणी के मुलायम तथा पीताभ श्वेत अगर से निकालते हैं जो करीब ०·७५ से २·५% निकलता है।

नोट—भारतवर्ष में प्राचीन कालसे अगर का उपयोग सुगन्धि, धूप तथा शीतहर प्रलेप[1] के रूप में किया जा रहा है। अगर तिक्त होते हुए भी उष्ण होता है।[2] सुश्रुत इसके तैल को 'दुष्टव्रणशोधन, क्रमिकफकुष्ठानिलहर एवं तिक्त, कटु, कषाय मानते हैं (सू. अ. ४५)। सुश्रुत के अनुसार जिसके व्रण में अगरु की गन्ध आती हो उस मनुष्य को मुमूर्षु समझाना चाहिये (सू. अ. २८)। वाग्भट इसे रसायन मानते हैं। धूप तथा अगरबत्ती बनाने में इसका उपयोग किया जाता है। इसकी छाल से आसाम में कागज भी बनाया करते थे।

रासायनिक संगठन—इसमें ईथर में घुलने वाला एक उड़नशील तैल (इत्र) होता है तथा मद्यसार में घुलने वाली एक राल होती है जो ईथर में नहीं घुलती। मद्यसार में ४८% घुलनशील भाग होता है।

गुण और प्रयोग—अगर उष्ण, सुगन्धि, उत्तेजक, वातनाडी संस्थान के लिये उत्तेजक, वाजीकर, श्वास एवं कफ हर, वातानुलोमक, शीत प्रशमन, रसायन एवं त्वक् रोगों में लाभदायक है।

(१) वातरक्त तथा आमवात में इसको देते हैं तथा सन्धिशोथ पर लेप भी करते हैं।

(२) ज्वर में इसका फांट पिलाने से प्यास कम होती है एवं रोगी को स्फूर्ति मालूम पड़ती है।

---

१. रास्नागुरुणी शीतापनयनप्रलेपनानाम्। (च. सू. अ. २५)
२. अर्कागुरुगुडूचीनां तिक्तानामुष्णमुच्यते। (च. सू. अ. २६)

(३) चक्कर आना, अंगघात तथा अन्य वातविकारों में इसको खिलाते हैं एवं बाह्य लेप भी करते हैं।

(४) हिचकी में मधु के साथ इसके चूर्ण को खिलाया जाता है ।

(५) अग्निमान्द्य, अरुचि, वमन, अतिसार तथा आंव आदि में इसका चूर्ण खिलाया जाता है।

(६) अगर एवं ईश्वरमूल को पीस कर शिरःशूल में एवं बच्चों की खांसी में छाती पर उसका लेप किया जाता है। इससे खुजली एवं दाह कम होने के कारण रक्त त्वचा (Erythema), त्वक् शोथ, विचर्चिका, गजचर्म एवं फोड़े आदि में इसको जल में घिस कर लगाते हैं। वातिक पीडा में भी इससे लाभ होता है। इससे जूं आदि में भी लाभ होता है।

(७) **अगर का इत्र**—१–२ बूंद इत्र पान पर लगा कर खिलाने से तमकश्वास में आराम मिलता है। वाजीकरण के लिये इसके पुराने इत्र को पान के साथ खिलाते हैं।

मात्रा—चूर्ण ५–१५ र०; इत्र १–२ बूंद।

अथ देवदारु। तस्य नामानि गुणांश्चाह

देवदारु स्मृतं दारुभद्रं दार्विन्द्रदारु च। मस्तदारु द्रुकिलिमं किलिमं सुरभूरुहः ॥ २४ ॥
देवदारु लघु स्निग्धं तिक्तोष्णं कटुपाकि च। विबन्धाध्मानशोथामतन्द्राहिक्काज्वरास्रजित्।
प्रमेहपीनसश्लेष्मकासकण्डूसमीरनुत् ॥ २५ ॥

देवदारु के नाम तथा गुण—देवदारु, दारुभद्र, दारु, इन्द्रदारु, मस्तदारु, द्रुकिलिम, किलिम और सुरभूरुह ये सब देवदारु के संस्कृत नाम हैं। देवदारु-लघु, स्निग्ध, तिक्त रसयुक्त, उष्णवीर्य, विपाक में कटुरसयुक्त, एवम् विबन्ध, आध्मान, शोथ, आम, तन्द्रा, हिचकी, ज्वर, रक्तदोष, प्रमेह, पीनस, कफ, खांसी, खुजली तथा वायु को नष्ट करने वाला होता है ॥ २४–२५ ॥

११ देवदारु

हि०, म०, गु०–देवदार। **बं०**–देवदारु। **पहाड़ी**–केलोन। **ते०**–देवदारि चेट्टु। **पं०**–केलु। **ता०**–देवदारु चेडि। **फा०**–देवदार। **अं०**–Himalayan cedar (हिमालय सिडार); Pinus deodar (पाइनस् देवदार। **ले०**–*Cedrus deodara (Roxb.) Loud.* (सेड्रस् देवदार)। Fam. Pinaceae (पिनॅसी)।

पश्चिमोत्तर हिमालय में कुमाऊँ से पूर्व की ओर यह पाया जाता है। जौनसार और गढवाल में ७ से ८॥ हजार फीट के बीच का भाग देवदारु वृक्षमाला का प्रधान उत्पत्ति स्थान है। इसका **वृक्ष**-बहुत विशाल, चिरायु, सुन्दर, १६० से १८० फीट तक ऊँचा तथा कहीं कहीं इससे अधिक ऊँचा होता है। **शाखाएं**-दिगन्तसम फैली हुई परन्तु शाखाग्र कुछ नीचे की ओर झुके हुये रहते हैं। **पत्ते**-त्रिकोण युक्त, सूच्याकार, १–१॥ इञ्च लम्बे, लम्बी टहनिओं पर एकाकी और पेचदार क्रम से निकले हुये और छोटी टहनिओं पर गुच्छों में निकले हुये रहते हैं। **फल**—शाखाओं पर, एकाकी, ४–५ इञ्च लम्बे और ३–४ इञ्च मोटे होते हैं। **बीज**–½ इञ्च तक लम्बे, त्रिकोणाकार या अर्धचन्द्राकार और पक्ष युक्त होते हैं। बीजपत्र लगभग १० होते हैं

देवदार की सुगन्ध युक्त लकड़ी (काष्ठसार) पीताभ बादामी रंग की तथा तैल से भरी होती है। लकडी को जलाकर एक तैल निकालते हैं जिसे **केलोन का तेल** कहा जाता है। यह तैल बहुत पतला होता है।

औषध में काष्ठसार, तैल, पत्र एवं कोमल शाखाओं का व्यवहार किया जाता है। दक्षिण तथा गुजरात की तरफ देवदार नाम से सरल (चीड़ की) की लकड़ी बिकती है।

नोट—चरक एवं सुश्रुत में इसका अनेक रोगों में उपयोग किया गया है।

रासायनिक संगठन—इसमें केलोन का तैल नामक एक तैल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—देवदार स्वेदजनन, मूत्रजनन, वातानुलोमक, वात-कफहर एवं त्वग्दोषहर है। इसका तैल टर्पेण्टाइन के समान गुण वाला होता है लेकिन उससे यह कुछ न्यून गुण वाला है।

देवदार का प्रयोग ज्वर, जीर्ण आमवात, शिरःशूल, श्लीपद, जलोदर, कास, श्वास, अतिसार, वातिक विकार, शोथ, अश्मरी तथा व्रण में किया जाता है। इसके तैल का प्रयोग कुष्ठ, कफ, कास एवं त्वचा के रोगों में किया जाता है।

(१) ज्वर में इसको देने से काफी पसीना निकलता है तथा मूत्र की मात्रा भी बढ़ती है। ज्वर चाहे शोथ से हो या कफजन्य हो इसके प्रयोग से शोथ कम होता है तथा कफ की दुर्गंध दूर होकर कफ कम होता है।

(२) जलोदर में देवदार, सहेजन की छाल तथा अपामार्ग प्रत्येक ½ तो० गोमूत्र में पीसकर देने से मूत्र द्वारा जल निकल जाता है तथा रोगी को स्फूर्ति मालूम पड़ती है।

(३) सोजाक, फिरंग, वातरक्त एवं आमवात में देवदार्वादि क्वाथ का रसायन के रूप में प्रयोग करते हैं।

(४) श्लीपद में इसको सरसों के तैल के साथ खिलाते हैं तथा चित्रक के साथ गोमूत्र में पीस कर लगाते हैं।

(५) वातिक हृद्रोग में देवदार एवं सोंठ को पीसकर पिलाने से हृदय की धड़कन तथा शूल आदि दूर होते हैं।

(६) हिक्का तथा श्वास में इसका क्वाथ पीने से लाभ होता है।

(७) शिरःशूल में इसे जल में घिस कर कपाल पर लगाते हैं। पुराने शोथ पर हलदी एवं गुग्गुलु के साथ इसका लेप किया जाता है।

(८) इसका तैल–कुष्ठ में बहुत लाभदायक माना जाता है। इसको अधिक मात्रा में देना पड़ता है। जीर्ण त्वचा के रोगों में इसको खिलाते है तथा बाह्य लगाते भी हैं। इससे पुराने तथा दुर्गन्ध युक्त व्रण अच्छे हो जाते हैं। कर्णशूल में इसका तैल डालने से आराम मिलता है। कफज कास में त्रिकटु एवं यवक्षार के साथ इसका प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—चूर्ण ३–६ माशा; तैल १०–४० बूंद।

अथ सरलः (धूप)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

सरलः पीतवृक्षः स्यात्तथा सुरभिदारुकः। सरलो मधुरस्तिक्तो कटुपाकरसो लघुः ॥ २६ ॥
स्निग्धोष्णः कर्णकण्ठाक्षिरोगरक्षोहरः स्मृतः। कफानिलस्वेददाहकासमूर्च्छाव्रणापहः ॥ २७ ॥

सरल (धूप) अर्थात् चीडके नाम तथा गुण—सरल, पीतवृक्ष और सुरभिदारुक ये सब संस्कृत नाम चीडके हैं। **चीड**—मधुर तथा तिक्तरस युक्त, विपाक में कटुरस युक्त, लघु, स्निग्ध तथा उष्ण वीर्य होता है एवम् कर्ण, कण्ठ तथा नेत्र सम्बन्धी रोग, रक्षोग्रह, कफ, वायु, स्वेद (पसीना), दाह, खाँसी, मूर्च्छा तथा व्रण को दूर करने वाला होता है ॥ २६–२७ ॥

१२ धूप सरल।

हि०—धूप सरल, चिर, चीढ़, चीड। **बं०**—सरलगाछ, तार्पीन तैलेर गाछ। **म०**—सरल। **गु०**—सरल देवदार, तेलियो देवदार। **ता०**—शिरसाल। **नेपा०**—धूप सलसी। **अ०**—शज्रतुल् बक, सनोवर हिन्दी। **फा०**—दरख्ते वसक। **अं०**—Long-leaved Pine (लाँग लीव्ड पाइन); Chir Pine (चीर पाइन)। **ले०**—*Pinus longifolia Roxb.* (पाइनस् लाँगिफोलिया रॉक्स.)। Fam. Pinaceae (पिनॅसी)।

इसके वृक्ष हिमालय में अफगानिस्तान से लेकर काश्मीर, पञ्जाब, उत्तर प्रदेश, भूटान तथा आसाम एवं बर्मा में २०००–६००० फीट की ऊंचाई तक प्रायः समूहबद्ध होकर उगे हुए पाये जाते हैं। इसकी ४, ५ जातियाँ भारतवर्ष में पाई जाती हैं जिनमें से पा. एक्सेल्सा वाल. (P. excelsa Wall.) तथा पा. खासूया रायली (P. khasya Royle) मुख्य हैं।

चीड के प्रकाशप्रिय विशाल वृक्ष बहुत सीधे (सरल) तथा १००–१५० फीट ऊंचे होते हैं। **स्तम्भ**—सीधा, गोल एवं घेरा ५–७ फीट या १२ फीट तक होता है। **छाल**—खुरदरी, ऊंची नीची, गढेदार एवं १-२ इञ्च मोटी होती है। **काष्ठ**—स्निग्ध तथा तीक्ष्णगन्धी होता है। **पत्ते**—छोटी छोटी टहनियों के अन्त में ९ १२ इञ्च लम्बे, पतले, कुछ कुछ त्रिकोणयुक्त, हलके हरे रंग के एवं तीन तीन के समूह में पाये जाते हैं। माघ से चैत्र तक **फूलों** के गुच्छे लगते हैं। एक वर्ष के उपरान्त में इसके फल या डोडे पकते हैं। नरमञ्जरी प्रायः ½ इञ्च लम्बी और सामूहिक शंकाकार फल (Cone) एकाकी अथवा ३–५ तक एक साथ रहते हैं जिनमें प्रत्येक ४-८ इञ्च लम्बा और ३-५ इञ्च मोटा लट्वाकार होता है। बीजवाहक पत्रों का अग्र मुड़ा हुआ, मोटा, प्रायः एक तीक्ष्ण काले नोक और पृष्ठ पर ४-५ कोणों से युक्त होता है। चैत्र वैशाख में फल फट जाते हैं जिनमें से बीज निकलते हैं तथा फल वृक्ष पर ही लगे रहते हैं। बीज ½ इञ्च से कुछ कम लम्बा, चिपटा, पंखयुक्त (पंख बीज से बड़ा और पतला) और ऊपर से मालाकार होता है।

पा० एक्सेल्सा (चील या कैल) नामक इसकी उपजाति ६-१० हजार फीट के बीच उत्तरप्रदेश एवं पञ्जाब में पाई जाती है। इसके पत्ते नीलहरित और ५-६ तक प्रतिगुच्छे में होते हैं। सामूहिक फल लम्बगोल होते हैं और बीजवाहक पत्रों के अग्र बहुत मोटे नहीं होते।

रासायनिक संगठन—इसके बहिःकाष्ठ (Sapwood) से सहज अथवा क्षत करने से एक प्रकार का तेलिया निर्यास निकल कर जम जाता है जिसे **गन्धाबिरोजा** कहते हैं। पहले यह सफेद कुछ पतला और गाढ़ा होता है। इसके बाद उत्तरोत्तर अधिक गाढ़ा एवं पीला फिर गहरा पीला हो जाता है। यह चिपचिपा, मुलायम तथा उग्रगन्धयुक्त होता है। पा० एक्सेल्सा में निर्यास कम निकलता है पर अधिक अच्छा होता है।

गन्धाबिरोजा को बिना जल के ऊर्ध्वनलिका यन्त्र में गरम करके एक गाढ़ा तथा लाल रंग का तैल निकालते हैं जिसे **खन्नुतेल** या (पं०) **सतबिरोजा** कहते हैं। इसमें गन्धाबिरोजा की गन्ध रहती है।

बिरोजे का आभ्यन्तरिक प्रयोग करने के लिये निम्नलिखित विधि से शुद्ध किये हुये बिरोजे का व्यवहार करना चाहिये। समभाग दूध और जल भरे हुवे पात्र पर कपड़ा बांध, उस पर गन्धाबिरोजा डाल कर नीचे आंच देते हैं, जिससे बिरोजा कपड़े से टपक कर नीचे के पात्र में जम जाता जाता है। इसको निकाल कर सुखा कर रख लें।

गन्धाबिरोजा को बाष्प के साथ ऊर्ध्व नलिका यन्त्र द्वारा गरम करने से एक रंगहीन तैल प्राप्त होता है जिसे **तारपीन का तेल** (Turpentine oil) कहते हैं। ५६ पौंड गन्धाबिरोजा से ८ पौंड तैल निकलता है। तैल निकालने के बाद जो अवशेष रह जाता है उसे डाक्टरी में **रेजिन या कोलोफोनि** (Resin, Colophony) कहा जाता है। इसे छान कर उबलते हुये जल के साथ कढ़ाई में डाल कर घोटते हैं। जिससे एक काला सा मधु के समान गाढ़ा पदार्थ तैयार होता है जिसे **गन्धाबिरोजा का डामर** कहते हैं। यह युरोपीय **बरगंडी पिच** के समान होता है। यहां पर सरल (चीड़) वृक्ष के गुण और प्रयोग दिये जा रहे हैं। आगे 'सरलनिर्यास' के अन्तर्गत गन्धाबिरोजा तथा तारपीन के तैल आदि के गुण और प्रयोग दिये गये हैं।

गुण और प्रयोग—यह सुगन्धि, दुर्गन्धहर, उत्तेजक, दीपन, वातानुलोमक, स्वेदल, मूत्रल, प्रतिदूषक एवं कफहर है।

इसका आन्तरिक उपयोग अन्य औषधों के साथ क्वाथ के रूप में दाह, कास, मूर्च्छा, आध्मान, अङ्गघात आदि वातिक व्याधियां, अश्मरी, कफज्वर, कृमि, श्लेष्मातिसार एवं वातज हिक्का में किया जाता है।

इसका लेप व्रण, शोथ, कंठमाला, जन्तुओं के दंश, त्वचा के अनेक विकार एवं वातव्याधियों में किया जाता है। व्रण में इसकी छाल का धूआं दिया जाता है। इसकी लकड़ी को कपड़ा लपेट कर तथा घृत में डुबोकर जलाते हैं तथा जो तेल टपकता है उसे कान में डालने से कर्णशूल दूर होता है। व्रणरोपण तैलों में इसका उपयोग किया जाता है।

मात्रा—३ माशा।

अथ तगरं पिण्डतगरं च तयोर्नामानि गुणांश्चाह

कालानुसार्यं तगरं कुटिलं नहुषं नतम्। अपरं पिण्डतगरं दण्डहस्ती च बर्हिणम् ॥ २८ ॥
तगरद्वयमुष्णं स्यात्स्वादु स्निग्धं लघु स्मृतम्। विषापस्मारशूलाक्षिरोगदोषत्रयापहम् ॥२९॥

अब तगर तथा तगर भेद एवम् दोनों के नाम और गुण—तगर दो प्रकार का होता है उसमें प्रथम प्रकार के तगर के—कालानुसार्य, तगर, कुटिल, नहुष और नत ये सब संस्कृत नाम हैं। दूसरे प्रकार के तगर के—पिण्डतगर, दण्डहस्ती और बर्हिण ये सब संस्कृत नाम हैं। दोनों प्रकार के **तगर**—ऊष्णवीर्य स्वादिष्ट, स्निग्ध तथा लघु होते हैं। यह विष, अपस्मार (मिर्गीरोग), शूल, नेत्ररोग तथा त्रिदोष को दूर करने वाले होते हैं ॥ २८–२९ ॥

१३ तगर।

हि०—तगर, सुगन्ध बाला, मुश्क बाला। बं०—तगर पादुका, शुमियो, असारून। म०—तगर गण्ठोडा, दवस्मूल। गु०—तगर गण्ठोडा। फा०—असारून। उर्दू—रिशवाल। पं०—बालमुश्क, मुश्कवली। अं०—Indian Valerian Rhizome (इन्डियन वेलेरियन हाइजोम)।

ले०-*Valeriana wallichii* DC. (वॅलेरिआना वालिशिआइ) । Fam. Valerianaceae (वॅलेरिॲनेसी) ।

तगर क्या है इसके सम्बन्ध में पहले मतभेद था। कुछ लोग श्वेत पुष्पवाले एक छोटे वृक्ष टेबर्नी मोन्टॅना कोरोनेरिया (Tabernae montana coronaria R. Br.), हि०-चांदनी के मूल को तगर मानते थे। कहीं कहीं श्यामवर्ण की चंदन जैसी वजनदार लकड़ी बिकती है। बंगाल में कोई जल में उत्पन्न होने वाली घास तथा पंजाब में कोई पीले काष्ठ आदि का व्यवहार किया जाता रहा। लेकिन अब निर्विवाद रूप से यह सिद्ध हो गया है कि ऊपर लिखे हुवे वेलेरिआना वालिशिआइ का मूलस्तम्भ (मूल) ही तगर है। बाजार में यह 'सुगन्ध बाला' के नाम से बिकता है तथा इसे वैद्य 'बालकम् या हीवेर' के स्थान पर प्रयोग करते रहे हैं। वास्तव में यह सुगन्धबाला नहीं है। बालक या हीबेर (सुगन्धबाला) का स्वतन्त्र वर्णन आगे दिया हुआ है। बाजार में 'तगर' नाम से जो द्रव्य बिकता है वह कोई निर्गन्ध काष्ठ है और किसी सुगन्धित द्रव्य के साथ रख कर गन्धयुक्त बना दिया जाता है।

भारतीय तगर-पाश्चात्य चिकित्सा में व्यवहार में लाये जाने वाले विदेशी वॅलेरियन, वॅलेरिआना ऑफिसिनॅलिस् लिन. (Valeriana officinalis Linn.) के स्थान में उत्तम प्रतिनिधि माना जाता है। यद्यपि भारतीय तगर अपने यहां पर्याप्त होता है तथापि व्यापारी तगर अधिकतर अफगानिस्तान से निर्यात किया हुआ रहता है। भारत में विदेशी तगर (वे० ऑफिसिनॅलिस्) बहुत थोड़ी मात्रा में काश्मीर के उत्तर में सोनमर्ग स्थान पर ८ से ९ हजार फीट की ऊँचाई पर पाया जाता है। इसकी अन्य उपजाति वे० हार्डविकाई वाल. (V. hardwickii Wall.) भी वे० वालिचिआइ के साथ पाई जाती है। बाजार में इस तगर को सुगन्धबाला एवं असारुन नाम से लोग बेचते हैं। श्री ठा० दलजीतसिंहजी द्वारा लिखित यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान में असारुन का ले० नाम असारुम् युरोपियम् लिन., एरिस्टोलोकिएसी (Asarum europaeum Linn.; Fam. Aristolochiaceae) लिखा हुआ है। स्वरूपादि का वर्णन भी उसी का (अ० युरोपियम्) मालूम पड़ता है लेकिन गुण धर्म जो लिखे हैं वे तगर (वेलेरियन) से मिलते लिखे हैं। इन्होंने इसका एक प्रतिनिधि भारतीय भेद माना है जिसको 'तुग्गुर' नाम दिया है। डा० देसाई ने तगर (वेलेरिआना वालिचिआइ) एवं असरून (अ० युरोपिअम्) का अलग अलग वर्णन किया है तथा दोनों के गुण धर्म भी अलग लिखे हैं। डा० देसाई ने असरुन को वामक, शिरोविरेचक, स्वेदजनन, कफघ्न, स्रंसन एवं शोथघ्न लिखा है जो तगर से भिन्न हैं। इसके परिचय में लिखा है कि असरुन की जड़ में मिरिच जैसी गन्ध तथा स्वाद कटु (तीता) होता है तथा इसके पंचाग के चूर्ण को सूंघने से छींक आती है। तगर का स्वाद कडवा एवं गन्ध अलग प्रकार की होती है। डा० चोप्रा भी डा० देसाई के मत से सहमत हैं। डा० देसाई ने यह स्पष्ट लिखा है कि असरून के समान ही दिखलाई देने वाली लेकिन गुणों में भिन्न एक दूसरी वनस्पति है जिसको तुग्गुर कहते हैं तथा उसका लोग असरुन के स्थान पर व्यवहार करते हैं। इस दृष्टि से बाजार में सुगन्धबाला के नाम से बिकने वाला द्रव्य असली तगर (वेलेरिअन) है एवं इसे असारुन नाम देना या असारुन के स्थान पर प्रयोग करना उचित नहीं है। असारुन अलग द्रव्य है। इसी प्रकार सुगन्धबाला भी अलग द्रव्य है। बाजार में तगर नाम से बिकने वाले कृष्ण वर्ण के काष्ठ चूर्ण आदि को भी तगर नहीं मानना चाहिये।

इसके क्षुप हिमालय पहाड़ के साधारण भाग में काश्मीर से भूटान तक ४ से १२ हजार फीट की ऊंचाई पर तथा खासिया के पहाड़ों पर ४ से ६ हजार फीट की ऊंचाई पर बहुत पाये जाते हैं।

इसका **क्षुप** (Herb)-किंचित रोमश एवं बहुवर्षायु होता है। **मूलस्तम्भ**-मोटा, अधोगामी मोटे तन्तुओंसे युक्त एवं जमीन में दिगन्तसम फैला रहता है। **काण्ड**-१५-४५ से. मी. ऊंचे एवं प्रायः गुच्छेदार होते हैं। **पत्ते**-आधारीय पत्र प्रायः २॥-७॥ से. मी. व्यास में, लम्बे नाल से युक्त, लट्वाकार, आधार पर गहरे ताम्बूलाकार, तीक्ष्णाग्र तथा धारयुक्त दन्तुर या लहरदार होते हैं। काण्डपत्र संख्या में थोड़े, बहुत छोटे एवं अखंड या खंडित होते हैं। **फूल**-श्वेत रंग के या कुछ कुछ गुलाबी होते हैं और समशिख क्रम से शाखाओं पर पाये जाते हैं। ये प्रायः एकलिंगी होते हैं तथा पुंपुष्प एवं स्त्रीपुष्प अलग-अलग क्षुपों पर होते हैं। **वृन्तपत्रक** (Bracteoles)-फल के इतने लम्बे, आयताकार-रेखाकार होते हैं। **बाह्यकोश**-पुष्पित होते समय बाह्यदल के खंड क्वचित् व्यक्त लेकिन बाद में करीब १२, रेखाकार, रोमयुक्त खण्डों में दिखलाई देते हैं। **आभ्यन्तर कोश**-यह कुप्पी के आकार का, पांच खण्डों से युक्त तथा फैला हुआ होता है। **पुंकेशर**-संख्या में ३ होते हैं। **स्त्रीकेशरी**-कुक्षिवृन्त पतला, अविभाजित तथा कुक्षि अग्र में स्थित रहती है। **अंडाशय**-३ गहरों वाला होता है। **फल**-रोमश या करीब करीब रोमहीन होते हैं।

इसके मूल तथा मूलस्तम्भ का व्यवहार औषध में किया जाता है। मूलस्तम्भ के अत्यन्त गांठदार, टेढ़े मेढ़े, खुरदरे, हलके पीताभ बादामी (Dull yellowish-brown) रंग के, ४-८ से. मी लम्बे तथा ५-१० मि. मी. मोटे टुकड़े होते हैं। यह कुछ चिपटे से होते हैं। इनके ऊपरी पृष्ठ पर अनेक टूटे हुवे पत्तों के निशान तथा अधोपृष्ठ पर टूटे हुवे मूल के निशान रहते हैं तथा अधोपृष्ठ से कुछ मोटे मूल निकले हुवे रहते हैं। इसका **भग्न**-छोटा तथा कंटकित होता है। इसका स्पष्ट अनुप्रस्थ (Trausverse) विच्छेद करके देखने से गहरे रंग का बाह्यक (Cortex), मज्जक (Pith), एधा (Cambium) की स्पष्ट रेखा एवं चौड़े मज्जक किरणों (Medullary rays) से पृथक् किये हुवे १२ १५ छोटे हलके रंग के दारुपूलों (Xylem bundles) का वर्तुल आदि भाग दिखलाई देते हैं। इसके **मूल** बहुत से, ६-७ मि. मी. लम्बे एवं १-२ मि. मी. मोटे या कभी-कभी नहीं भी रहते। इसके अन्दर का भाग हलके वर्ण का काष्ठमय एवं छाल गहरे रंग की होती है। तगर में एक विशिष्ट उग्र गन्ध होती है तथा इसका स्वाद कड़वा होता है।

रासायनिक संगठन—भारतीय वेलेरियन (तगर) में एक उड़नशील तैल ०.५-२.१२% पाया जाता है। वसन्त ऋतु में संग्रहीत ताजे मूल में इसकी अधिकतम मात्रा होती है। इस तैल में प्रधानतया सेस्क्विटर्पेन् (Sesquiterpenes), वेलेरिक् एसिड (Valeric acid) एवं टर्पेन अल्कोहोल (Terpene alcohols) स्वतन्त्र या इॅस्टर के रूप में संयुक्त अवस्था में पाये जाते हैं। इस तैल के अतिरिक्त इसमें ॲराचिडिक् एसिड (Arachidic acid), हेन्ट्रियाकोन्टेन (Hentriacontane) तथा स्नेहीय अम्लों के मिश्रण रहते हैं। ताजे मूल में जल में घुलनशील कार्यकारी पदार्थ अल्प मात्रा में पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह वातहर, उद्वेष्टननिरोधी, रक्ताभिसरण एवं वातनाड़ी तन्तुओं के लिये उत्तेजक, चेतनाकारक, स्वापजनक, वातानुलोमक, केन्द्रीय वातनाड़ीसंस्थान के लिये अवसादक एवं स्थानिक वेदनास्थापक तथा व्रणरोपक है। अल्प मात्रा में देने से अन्य सुगन्धित तैलों की तरह इससे आमाशयोर्ध्वप्रदेश में उष्णता मालूम होती है, नाडी की गति बढ़ती है तथा कुछ मानसिक उत्तेजना होती है। इससे सांवेदनिक नाडियों के अग्र में बधिरता उत्पन्न होती है। अधिक मात्रा में इसको देने से चक्कर आने लगते हैं, हिचकी आती है, वमन होता है, एवं हृदयावसाद होता है।

(१) अपतन्त्रक, अतत्वाभिनिवेश (Hypochondriasis—हाइपोकॉण्ड्रियासिस्), अशान्ति तथा इसी प्रकार की मानसिक व्यथाओं में इसका बहुत प्रयोग किया जाता है। इसके साथ यशद-भस्म का उपयोग भी किया जाता है। इसका यह प्रभाव संभवतः इसके अरुचिकारक स्वाद एवं उग्र गन्ध के कारण होता है। कंपवात में भी कभी-कभी इसका उपयोग किया जाता है।

(२) जीर्ण ज्वर के कारण जब हृदय तथा सम्पूर्ण शरीर में शिथिलता आई रहती है तथा त्रिदोष की तीव्रता रहती है तब इसके देने से हृदय को बल मिलता है एवं प्रलाप, अस्वस्थता आदि दूर होकर रोगा को चेतना आती है। बेहोशी एवं हृदय की धड़कन में इसका तैल २-५ बूंद की मात्रा में गोंद के साथ मिलाकर दालचीनी के फांट के साथ देते हैं।

(३) यह वातानुलोमक होने के कारण आध्मान आदि में इससे लाभ होता है।

(४) कुकास, तमकश्वास, जीर्णविबन्ध, पीडायुक्त व्रण, घाव, अस्थिभग्न एवं तीव्र आमवात में शोथयुक्त संधिशूल कम करने के लिये इसके फांट का उपयोग करते हैं।

(५) वातनाड़ी संस्थान के रोगों के कारण उत्पन्न मधुमेह तथा बहुमूत्र में इसके साथ सूक्ष्म मात्रा में अफीम का प्रयोग किया जाता है।

(६) विषम ज्वर में मनःशिला, यशदभस्म, तगर, भांग या अफीम को पान के रस के साथ गोली बनाकर देते हैं जिससे ज्वर के कारण उत्पन्न मानसिक तथा शारीरिक थकावट कम होती है। शीत ज्वर में पारी न आकर केवल शिरःशूल या उदरशूल हो तो तगर एवं यशदभस्म को देते हैं।

मात्रा—चूर्ण २-८ र०।

अथ पद्मकम्। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

पद्मकं पद्मगन्धि स्यात्तथा पद्माह्वयं स्मृतम्। पद्मकं तुवरं तिक्तं शीतलं वातलं लघु॥ ३०॥
वीसर्पदाहविस्फोटकुष्ठश्लेष्मास्रपित्तनुत्। गर्भसंस्थापनं रुच्यं वमिव्रणतृषाप्रणुत्॥ ३१॥

पद्माख के नाम तथा गुण—पद्मक, पद्मगन्धि तथा पद्माह्वय (कमल के पर्याय वाचक समस्त शब्द) ये सब पद्माख के संस्कृत नाम हैं। पद्माख—कषाय तथा तिक्तरस युक्त, शीतवीर्य, वातजनक तथा लघु होता है एवं विसर्प, दाह, विस्फोट, कुष्ठ, कफ और रक्तपित्त को दूर करता है। यह गर्भ का स्थापन करने वाला, रुचिकारक एवं वमन, व्रण तथा तृषा को दूर करने वाला होता है॥ ३०-३१॥

१४ पद्माख

हि०–पद्माक, पद्माख, पदुम काठ, फाजा। **बं०**–पद्म काष्ठ। **म०**–पद्म काष्ठ, पद्मक। **गु०**–पद्मकनुं लाकडुं, पद्मकाष्ठ। **क०**–पद्मक। **पं०**–चमिअरी। **लिपचा०**–कोंगकी। **अं०**–Mild Himalaya Cherry (माइल्ड हिमालय चेरी)। **ले०**–*Prunus puddum Roxb. ex Wall.* (प्रूनस् पडुम्, राक्सब्.)। Fam. Rosaceae (रोझॅसी)।

यह गरम हिमालय में शिमला, गढ़वाल से सिकम और भूटान तक एवं दक्षिण में कुडाई-कनाल और उटकमंड में पाया जाता है।

---

१. 'वृष्यमिति पाठा०।

इसका वृक्ष मध्यमाकार का अचिरस्थायी होता है। **छाल**—फीके भूरे रङ्ग की या कालापन युक्त भूरे रङ्ग की और चमकीली होती है। इससे पतली चमकीली पपड़ियां छूटती रहती हैं। काष्ठसार रक्ताभ तथा सुगन्ध युक्त होता है। **पत्ते**—३-५ इञ्च लम्बे, १-१॥ इञ्च चौड़े, भालाकार लट्वाकार, लम्बे नोकवाले, चिकने और दोहरे दांतों वाले होते हैं। **फूल**—सफेद गुलाबी या लाल रङ्ग के आते हैं और पतझड़ के बाद नवीन पत्ते निकलने के पहले ही खिल जाते हैं। **फल**—छोटे छोटे गोलाकार या अंडाकार होते हैं और वे पीले या गुलाबी रङ्ग के दिखाई पड़ते हैं। इन फलों को लोग खाते हैं तथा इनसे एक प्रकार का मद्य बनाते हैं।

बाजार में पद्मकाष्ठ के कांड के टुकड़े बिकते हैं। ये वजन में भारी तथा इनके छाल का वर्ण कृष्ण-रक्त रहता है। छाल पर आडी खांचे रहती हैं। इसे हाथ से रगड़ने से आल्हादकारक तथा मृदु सुगन्ध आती है। इनके भीतर का भाग रक्तपीताभ श्वेतवर्ण का होता है।

पद्मकाष्ठ हमेशा नया काम में लाना चाहिये क्योंकि कालान्तर से उसका औषधधर्म नष्ट हो जाता है। पद्माख का क्वाथ बनाकर प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि इसे उबालने के इसका सत्व उड़ जाता है। इसका हमेशा गुनगुने जल में फांट बनाकर प्रयोग करना चाहिये।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में एक अत्यन्त **विषैला द्रव्य** हाइड्रोसायेनिक एसिड् (Hydrocyanic acid) तथा ॲमिग्डॅलिन् (Amygdalin) इत्यादि पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—पद्माख शीतल, रक्तस्तम्भक, तिक्तपौष्टिक, छर्दिनिग्रहण, स्तम्भन, वेदनास्थापक, वर्ण्य, गर्भस्थैर्यकर एवं ज्वरहर है। इसका वेदनाहर गुण इसके विषैले सत्व में है तथा स्तम्भन एवं तिक्तपौष्टिक गुण काष्ठ में है। इसके विषैले सत्व की क्रिया सम्पूर्ण शरीर पर एवं विशेषकर जीवनीय केन्द्र स्थान पर शामक रूप में होती है।

(१) अपचन के कारण आमाशय को श्लेष्मल त्वचा में शोथ होकर वमन एवं अतिसार होने पर तथा आमाशय के व्रण में इसको दिया जाता है। इससे व्रण की वेदना कम होती है तथा स्तम्भन गुण के कारण अतिसार तथा वमन में लाभ होता है। इसके फांट से भी वमन तथा हृल्लास में लाभ होता है।

(२) श्वसनकेन्द्र के ऊपर इसके शामक प्रभाव के कारण शुष्क कास एवं क्षयज प्रस्वेद कम हो जाता है। हिक्का एवं श्वास में इसको मधु के साथ चटाते हैं।

(३) हृदय के केन्द्रस्थान के शमन के कारण हृदय की धड़कन तथा हृदय के वामपटल रोग से रक्त का पीछे बहना (Mitral regurgitation) एवं हृदय पर मेद संचित होकर एक प्रकार की जो खांसी होती है उसमें यह गुणकारक है।

(४) रक्तपित्त में चन्दन, शर्करा एवं तंडुल जल के साथ इसको देते हैं।

(५) गर्भपात रोकने के लिये इसे जल में घिस कर पिलाते हैं। चरक एवं सुश्रुत ने इसे गर्भस्थैर्यकर नहीं माना है।

(६) जननेन्द्रिय की शुष्क कण्डू में इसे शीतल जल में घिसकर लगाते हैं। शुष्क कण्डू युक्त त्वचा के रोगों में इसके लेप से त्वचा शुद्ध होकर कान्ति बढ़ती है।

मात्रा—५-१५ र०। इसमें तीव्र विषैला द्रव्य होने के कारण भली प्रकार विचार करके इसका प्रयोग करें।

अथ गुग्गुलुः । तस्य नामान्याह

गुग्गुलुर्देवधूपश्च जटायुः कौशिकः पुरः । कुम्भोलूखलकं क्लीबे महिषाक्षः पलङ्कषः ॥ ३२ ॥

गूगल के नाम—गुग्गुलु, देवधूप, जटायु, कौशिक, पुर, कुम्भोलूखलक (नपुंसकलिङ्ग), महिषाक्ष और पलङ्कष ये सब गूगल के संस्कृत नाम हैं ॥ ३२ ॥

गुग्गुलुभेदानाह

महिषाक्षो महानीलः कुमुदः पद्म इत्यपि । हिरण्यः पञ्चमो ज्ञेयो गुग्गुलोः पञ्च जातयः ॥३३॥

गूगल के भेद—१ महिषाक्ष, २ महानील, ३ कुमुद, ४ पद्म, ५ हिरण्य इस प्रकार से गूगल के ५ पांच भेद जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

तेषां लक्षणानि गुणांश्चाह

भृङ्गाञ्जनसवर्णस्तु महिषाक्ष इति स्मृतः । महानीलस्तु विज्ञेयः स्वनामसमलक्षणः ॥ ३४ ॥
कुमुदः कुमुदाभः स्यात्पद्मो माणिक्यसन्निभः । हिरण्याख्यस्तु[1] हेमाभः पञ्चानां लिङ्गमीरितम् ॥
महिषाक्षो महानीलो गजेन्द्राणां हितावुभौ । हयानां कुमुदः पद्मः स्वस्त्यारोग्यकरौ परौ ॥
विशेषेण मनुष्याणां कनकः परिकीर्त्तितः । कदाचिन्महिषाक्षश्च मतः कैश्चिन्नृणामपि ॥ ३७ ॥

क्रम से उन्हीं ५ प्रकार के गूगलों के लक्षण एवं गुण—१ जो गूगल भौंरा या स्रोतोंजन के समान काले रङ्ग का होता है वह 'महिषाक्ष' कहलाता है। २ महानील नामक गूगल का लक्षण अपने नाम के अनुरूप ही है अर्थात् वह अत्यन्त नीलवर्ण का होता है। ३ कुमुद नामक गूगल—कुमुद (कुई) पुष्प के समान वर्ण वाला होता है। ४ पद्म नामक गूगल—मानिक के समान वर्ण वाला होता है। ५ हिरण्याख्य गूगल—सोने के समान वर्ण वाला होता है। इनमें से महिषाक्ष तथा महानील ये दोनों गूगल हाथियों के लिये हितकारी होते हैं। कुमुद तथा पद्म ये दोनों गूगल घोड़ों के लिये अत्यन्त कल्याणकारक तथा आरोग्यदायक होते हैं। कनक अर्थात् हिरण्यनामक गूगल तो विशेष करके मनुष्यों के लिये हितकर होता है। कोई-कोई ऐसा भी कहते हैं कि मनुष्य के लिये कहीं-कहीं महिषाक्ष गूगल भी हितकारी होता है ॥ ३४-३७ ॥

सामान्यतो गुग्गुलुगुणानाह

गुग्गुलुर्विशदस्तिक्तो वीर्योष्णः पित्तलः सरः ।
कषायः कटुकः पाके कटू रूक्षो लघुः परः ॥ ३८ ॥
भग्नसन्धानकृद् वृष्यः सूक्ष्मः स्वर्यो रसायनः ।
दीपनः पिच्छिलो बल्यः कफवातव्रणापचीः ॥ ३९ ॥
मेदोमेहाश्मवातांश्च क्लेदकुष्ठाममारुतान् । पिडकाग्रन्थिशोफार्शोगण्डमालाकृमीञ्जयेत् ॥४०॥
माधुर्याच्छमयेद्वातं कषायत्वाच्च पित्तहा । तिक्तत्वाद् कफजित्तेन गुग्गुलुः सर्वदोषहा ॥४१॥

सामान्यरूप से गूगल के गुण—गूगल-विशद गुण युक्त, तिक्त-कषाय तथा कटुरसयुक्त, उष्णवीर्य, पित्तजनक, सारक (दस्तावर), विपाक में कटुरस युक्त, रूक्ष एवं अत्यन्त लघु होता है। यह टूटे हुये हड्डियों को जोड़ने वाला, वृष्य, सूक्ष्म (सूक्ष्मस्रोतोगामी), स्वर को उत्तम करने वाला, रसायन, अग्निदीपक, पिच्छिलगुणयुक्त तथा बलकारक होता है एवम्—कफ वात, व्रण, अपची, मेदरोग, प्रमेह, पथरी, वातरोग, क्लेद, कुष्ठ, आमवात, पिडका, ग्रन्थिरोग, शोथ, बवासीर,

[1] 'हिरण्याक्षस्तु' इति पाठा० ।

गण्डमाला तथा कृमिरोग का नाशक होता है। गूगल—मधुर रस युक्त होने से वात को, कषाय रसयुक्त होने से पित्त को और तिक्त रस युक्त होने से कफ को नष्ट करने वाला होता है, अतः यह सम्पूर्ण दोषों का नाशक कहा हुआ है ॥ ३८-४१ ॥

नवीनस्य प्राचीनस्य च गुग्गुलोर्लक्षणं गुणांश्चाह

स नवो बृंहणो वृष्यः पुराणस्त्वतिलेखनः ॥ ४२ ॥
स्निग्धः काञ्चनसकाशः पक्वजम्बूफलोपमः ।
नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्त सुगन्धिर्यस्तु पिच्छिलः ॥ ४३ ॥
शुष्को दुर्गन्धकश्चैव त्यक्तप्रकृतिवर्णकः । पुराणः स तु विज्ञेयो गुग्गुलुर्वीर्यवर्जितः ॥ ४४ ॥

नवीन और पुराने गूगल के गुण तथा लक्षण—**नवीन गूगल**—बृंहण (धातुवर्धक) तथा वृष्य (वीर्यजनक) होता है और **पुराना गूगल**—अतिलेखन (शरीर के धातु तथा मलों को सुखा कर खुरचने वाला) होता है। **नवीन गूगल** वह कहलाता है जो स्निग्ध, सोने के समान वर्ण वाला, पके हुये जामुन के समान स्वरूप वाला, सुगन्ध युक्त तथा पिच्छिल गुण युक्त होता है। **पुराना गूगल**—वह कहलाता है कि जो शुष्क, दुर्गन्धयुक्त, स्वाभाविक वर्ण हीन तथा वीर्य रहित होता है ॥ ४२-४४ ॥

गुग्गुलुसेविनां त्याज्यान्याह

अम्लं तीक्ष्णमजीर्णञ्च व्यवायं श्रममातपम् । मद्यं रोषं त्यजेत्सम्यग् गुणार्थी पुरसेवकः ॥४५॥

गूगल सेवन करने वालों के लिये अहितकर अत एव त्याज्य विषय—गूगल का सेवन करने वाला पुरुष यदि गूगल का भली भांति गुण प्राप्त करना चाहे तो वह अम्ल रस युक्त, तीक्ष्ण तथा अजीर्णकारक द्रव्य, मैथुन, परिश्रम, धूप में फिरना, शराब पीना तथा क्रोध करना छोड़ दे ॥

१५ गूगल

हि०—गूगल, गुग्गुल। बं—गुग्गुल, मुकुल। म०—गुग्गुल। गु०—गुगल। क०—गुग्गुल। ते०—गुक्कुलु चेट्टु। ता०—मैशाक्षी, गुक्कल। सिंध—गुगरू। फा०—बूएजहूदान। अ०—मुक्ल-अर्जक, अफ्लात(तू)न। अं०—Indian Bdellium (इण्डियन डेलिअम्)। ले०—*Balsamodendron mukul Hook. ex Stocks* (बाल्सेमोडेन्ड्रोन् मुकुल, हुक एक्स स्टॉक्स)। Fam. Burseraceae (बर्सेरेसी)।

गूगल के वृक्ष—सिन्ध, राजपुताना, खानदेश, बरार, मैसूर, काठियावाड एवं बेलरी आदि स्थानों में अधिक पाये जाते हैं।

इसका **वृक्ष**—छोटा, ४ से ८ फीट ऊँचा एवं झाड़ीदार होता है जिसकी मोटी फैली हुई शाखाओं के अग्रभाग कंटकित होते हैं। छाल-हरापन युक्त पीली होती है। इससे कागज के समान लम्बे, पतले, चमकीले परत निकलते रहते हैं। लकड़ी-सफेद और कोमल होती है। **पत्ते**-पत्रक १ से ३ तक, ऊपर से लट्वाकार, अग्र की तरफ दन्तमय धार वाले, चिकने, चमकीले तथा विशेष कर छोटी मोटी प्रशाखाओं के अन्त में रहते हैं। **फूल**-४-५ दल वाले, छोटे-छोटे तथा भूरापन लिये लाल रंग के आते हैं। **फल**—छोटे छोटे, मांसल, लंबगोल तथा पकने पर लाल हो जाते हैं।

उक्त वृक्ष की त्वचा में जाड़े के दिनों में घाव करने से एक प्रकार का तैलीय रालदार गोंद (Oleo gum-resin) निकलता है जिसे गूगल कहते हैं।

गूगल के प्रकार—आकृति, रंग एवं स्थान भेद से गूगल कई प्रकार का होता है। ऊपर मूल में पांच प्रकार के भेद लिखे हुए हैं। यूनानी वाले भी इसके पांच भेद मानते हैं।

(१) मुक्ले सकलाबी–यह भूरा होता है। (२) मुक्ले अरबी–यह यमन में पैदा होता है और ललाई लिये भूरा या बैंगनी होता है। (३) मुक्ले अर्जक–यह ललाई लिये होता है। (४) मुक्ले यहूद–यह पिलाई लिये होता है। (५) मुक्ले हिंदी–यह भारतवर्ष में होता है।

बाजार में तीन तरह का गूगल बिकता है जिसमें से प्रथम दो तो गूगल हैं और तीसरा सलई का गोंद है। केवल गूगल कहने से कभी-कभी सलई का गोंद (कुंदुरू) भी व्यापारी दे देते हैं।

(१) कण गूगल—यह मारवाड़ से आता है तथा ललाई लिये पीले रंग का होता है। यह भैंसागूगल से नरम होता है। यह अच्छा माना जाता है। (२) भैंसागूगल–यह सिंध तथा कच्छ से आता है। यह हलका हरापन लिये पीले रंग का, टेढ़े मेढ़े, छोटे-बड़े गट्ठों में होता है। इस पर मैल, बाल एवं छाल के टुकड़े आदि चिपके रहते हैं। यह मोम जैसा नरम लेकिन दबाने से भुरभुरा, कड़वा एवं देवदार के समान गंध वाला होता है। इसे जलाने पर गुब्बारे जैसे निकल कर फूटते हैं। इसे जल में घिसने से हरापन लिये सफेद मिश्रण बनता है। यह हलकी जात का होता है। (३) सलई का गोंद–इसका वर्णन आगे किया गया है। यह लाल रंग का होता है तथा जलाने पर अच्छी तरह जलता है।

उत्तम गूगल—चमकीला, चिपचिपा, मधुर गंध वाला, कुछ पीला (ताजा), पुराना होने पर कालासा, स्वाद में कडवा तथा आसानी से टूटता है। तोड़ने पर अन्दर से हरी एवं लाल चमक वाला होता है। इसे उष्ण जल में घिसने पर हरी चमक युक्त सफेद रंग का मिश्रण बनता है। इसे जलाने पर यह अच्छी तरह जलता नहीं तथा फूलकर महीन पपड़ी निकलती है। व्यापारी लोग जली हुई लकड़ी आदि में अनेक प्रकार के चिपचिपे गोंद लगाकर गोले बनाकर बेचते हैं इसलिये अच्छी तरह परीक्षा कर खरीदना चाहिये। हमेशा नये गूगल का ही व्यवहार करना चाहिये क्योंकि रखने से यह खराब हो जाता है।

गूगल शोधन—गूगल के बराबर त्रिफला एवं गुडुच लेकर उसे मोटा कूटकर अष्टगुण जल में अर्धांश शेष क्वाथ करें। फिर क्वाथ को छानकर उसमें गूगल को कपड़े में बांध उसकी पोटली लटकावें तथा मंद आंच पर स्वेदन करें। बार-बार उस क्वाथ को करछुल से पोटली पर डालते जाँय। जब सब गूगल छनकर क्वाथ में आ जावे तब कपड़े में का मैला फेंक दें तथा क्वाथ को ऊपर-ऊपर से निकाल लें। नीचे जमे हुये गाढ़े भाग को अलग कर दें। गूगल मिश्रित क्वाथ को मंद आंच पर गाढा करें। जब गाढा होने लगे तो उसमें थोड़ा घी डाल दें जिससे जलने न पावे। बाद में उसे खूब अच्छी तरह कूटकर ऊपर घी लगाकर रखें। यद्यपि इस विधि से शोधन करने की परिपाटी है तथापि संभवतः इस विधि से गूगल कुछ हीनवीर्य हो जाता होगा क्योंकि आधुनिक विद्वानों का मत है कि गूगल के गुण विशेष कर उसमें के सुगंधि तत्वों पर निर्भर होते हैं। इसलिये गूगल को केवल खूब अच्छी तरह बीनकर उसमें घी डालकर बहुत कूटकर व्यवहार करें तो ज्यादा उपयुक्त हो सकता है। कुछ लोग त्रिफला क्वाथ के स्थान पर दुग्ध अथवा दशमूल क्वाथ का व्यवहार भी करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उड़नशील तैल, रालदार गोंद (Gum resin) एवं एक कडवा सत्व पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—गूगल रसायन, त्रिदोषघ्न, वृष्य, बल्य, स्नेहन, स्रंसन, वातानुलोमक, आमाशयोत्तेजक, दीपन, वातहर, वातनाडी संस्थान के लिये पुष्टिकारक, उत्तेजक कफनिःसारक तथा

श्लेष्मल त्वचा के लिये उत्तेजक, संकोचक एवं प्रतिदूषक, श्वेतकायाणुवर्धक, भक्षकायाणुकार्यवृद्धिकर, त्वग्दोषहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण, शोथघ्न, रक्तवर्धक एवं आर्तवजनन है। नया गूगल बृंहण एवं वृष्य होता है तथा पुराना कर्षण (लेखन) होता है। इसकी क्रिया बोल (Myrrha-मिह) जैसी होती है।

इसके सेवन के पश्चात् आमाशय में उष्णता मालूम होती है। इसका प्रचूषण बहुत जल्दी होता है। इसके गुण संभवतः इसमें के सुगंधि तत्त्वों के ऊपर निर्भर रहते हैं। इसका उत्सर्ग चर्म, श्लेष्मलत्वचा एवं वृक्कों से होता है तथा उत्सर्ग के समय यह उन-उन अंगों को उत्तेजित करता है तथा जीवाणुनाशन का भी कार्य करता है। विना किसी दुष्परिणाम के इसका बहुत दिन तक प्रयोग किया जा सकता है। कभी-कभी इससे कोपैबा (Copaiba) की तरह त्वचा पर लाल चकत्ते और क्वचित् वृक्क प्रक्षोभ के लक्षण दिखलाई देते हैं जो औषध बन्द करने से ठीक हो जाते हैं।

इसका उपयोग जीर्ण कफरोग, वातरोग, नाड्यवसन्नता, गृध्रसी, अर्दित, अग्निमांद्य, अपचन, अतिसार, प्रवाहिका, कंठमाला, ग्रंथि, विद्रधि, कुष्ठ, फिरंग, सोजाक, विभिन्न अवयवों के शोथयुक्त विकार, शोफ, उदर, चर्मरोग, व्रण, भगंदर, कृमि, पांडु, अर्श, प्रमेह, गर्भाशय विकार एवं मेदोवृद्धि में उन उन अवयवों पर कार्य करने वाली प्रयोजक औषधों के साथ किया जाता है।

(१) पुराने कफ विकारों में इसको छोटी पीपल, अडूसा, मधु एवं घृत के साथ दिया जाता है। राजयक्ष्मा में इसके प्रयोग से कफ की मात्रा कम होती है तथा जीवाणुनाशन भी होता है। जिन रोगों में कफ अत्यधिक एवं चिपचिपा होता है उसमें इससे विशेष लाभ होता है। दुर्बल, पांडुयुक्त एवं मध्यम आयु के लोगों में यह विशेष लाभदायक होता है। इसके साथ लोहभस्म का प्रयोग किया जा सकता है। श्वास में इसको घृत के साथ खिलाते हैं।

(२) आमाशय शिथिलता एवं अभिस्तीर्णता में इसके प्रयोग से क्षुधावृद्धि होती है तथा पाचन सुधरता है। अतिसार, प्रवाहिका, आंत्रप्रदाह एवं क्षयज अतिसार आदि में आंत्रिक प्रतिदूषक (Intestinal antiseptic) के रूप में सुगंधि द्रव्य, इन्द्रजव, एलुवा और गुड आदि के साथ यह दिया जाता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में इसका अधिक प्रभाव पड़ता है।

(३) यह रक्तशोधक, प्रतिदूषक, संपूर्ण शरीर को उत्तेजक एवं बलदायक होने के कारण अनेक शोथयुक्त अवस्थाओं जैसे स्वरयंत्रशोथ, श्वसनीशोथ, कुकास, उरःस्तोय, क्षयज उदरावरणशोथजन्य जलोदर, कंठमाला एवं मूत्रसंस्थान के गवीनीमुखशोथ, बस्तिशोथ तथा जीर्ण गर्भाशयशोथ एवं फिरंग आदि में लाभकर होता है। इनमें हर ४ या ६ घंटे के अन्तर पर इसको देते हैं। कंठमाला में पारद, सोमल एवं वायविडंग के साथ गूगल देते हैं। फिरंगादि में अनंतमूल के साथ एवं जीर्ण आमवात या सोजाक से संधिशोथ होने पर गूगल एवं शिलाजतु का प्रयोग किया जाता है। संधिशोथ पर इसका लेप भी करते हैं। सोजाक तथा बस्तिशोथ में गुडुच के साथ इसको देते हैं। उरःस्तोय एवं जलोदर आदि में इससे स्रवित जल का शोषण हो जाता है।

(४) गूगल की गर्भाशय के ऊपर बहुत अच्छी क्रिया होती है। तरुणस्त्रियों के अनार्त्तव में गूगल, एलुवा तथा कसीस की गोलियां खिलाई जाती हैं। श्वेत प्रदर में तथा उसके कारण वन्ध्यत्व हो तो रसौंत के साथ इसे अधिक मात्रा में देते हैं।

(५) अंगघात, अर्दित, उरुस्तंभ, गृध्रसी एवं वातनाडी शूल में कैशोर गुग्गुलु से बहुत लाभ होता है। ऊरुस्तंभ में गोमूत्र के साथ एवं गृध्रसी में रास्ना एवं घृत के साथ इसको देते हैं।

(६) आमवात, कटिशुल एवं संधिपीडा में इसका बाह्याभ्यंतर प्रयोग किया जाता है। रास्नादि क्वाथ के साथ योगराज या त्रयोदशांग गुग्गुलु का उपयोग अच्छा होता है।

(७) कुष्ठ में इससे साधारण स्वास्थ्य अच्छा होता है तथा इसके प्रयोग से दुर्बलता तथा नाडीशूल आदि ठीक होता है। सभी प्रकार के चर्मरोगों में गूगल लाभदायक माना जाता है। इससे कंडू कम होती है तथा त्वचा का वर्ण सुन्दर हो जाता है।

(८) व्रणशोधक, व्रणरोपक एवं प्रतिदूषक होने के कारण इसका बाह्य प्रयोग बहुत किया जाता है। १० ड्राम जल में १ ड्राम इसका टिंक्चर (९०% मद्यसार में २०%) मिलाकर मसूड़ों की सूजन, पायरिया, दांतों में गढे हो जाना, गले के व्रण, जीर्ण ग्रसनिकाशोथ एवं गलतुण्डिकाशोथ में गंडूष कराया जाता है। पुराने व्रणों के प्रक्षालन के लिये भी इसका उपयोग करते हैं। फोड़ों की प्रारंभिक अवस्था में इसके गरम लेप से फोड़े बैठ जाते हैं। घी में इसका मलहम बनाकर पुराने व्रणों में प्रयोग किया जाता है। कंठमाला में गूगल को उष्ण जल में घिसकर दिन में तीन चार बार मोटा लेप करने से गांठें बैठ जाती हैं। अर्श में इसका लेप एवं धूआं दिया जाता है। आमाशयोर्ध्वप्रदेश में इसे लगाने से हिचकी तुरत रुकती है। प्राच्यव्रण (Delhi boil) नामक दिल्ली की तरफ होने वाले व्रण में गूगल, गंधक, सोहागा तथा कत्था इसका मलहम लगाया जाता है। मुखरोगों में गूगल को मुख में रखकर चूसने से लाभ होता हैं।

मात्रा—२-८ रत्ती।

अथ सरलनिर्यासगुग्गुलुः। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

श्रीवासः सरलस्रावः श्रीवेष्टो वृक्षधूपकः। श्रीवासो मधुरस्तिक्तः स्निग्धोष्णस्तुवरः सरः॥
पित्तलो वातमूर्द्धाक्षिस्वररोगकफापहः। रक्षोघ्नः स्वेददौर्गन्ध्ययूकाकण्डूव्रणप्रणुत्॥ ४७॥

सरलनिर्यास अर्थात् चीड़ के गोंद (गन्धाबिरोजा) के नाम तथा गुण—श्रीवास, सरलस्राव, श्रीवेष्ट और वृक्षधूपक ये सब गन्धाबिरोजा के संस्कृत नाम हैं। गन्धाबिरोजा—मधुर तिक्त तथा कषाय रस युक्त, स्निग्ध, उष्णवीर्य, दस्तावर, पित्तजनक एवं वायु, मस्तक, नेत्र तथा स्वरसम्बन्धी रोग, कफ, रक्षोग्रहबाधा, स्वेद, दुर्गन्ध, जूयें, खुजली और घाव को दूर करता है॥

१६ सरल निर्यास

हि०—गन्धाबिरोजा, बिहरोजा, बिरोजा, सरल का गोंद, चीड का गोंद। **म०**—सरलडीक। **गु०**—बेरजो। **क०**—श्रीवेष्टक। **ता०**—पिनैमारू। **लिपचा०**—ग्निश्ट। **भो०**—टीडोंग। **नेपा०**—धूप। **पहाड़ी**—बिरजेलासा, लीसा। **फा०**—बारजद, बरजद। **अ०**—किन्न। **अं०**—Oleo-resin of Pine (ओलियो रेजिन् ऑफ् पाइन्)। **ले०**—*Oleo-resina of Pinus longifolia and other species* (ओलियो रेझिना ऑफ पाइनस लांगिफोलिया अण्ड अदर स्पिसीज)। Fam. Pinaceae (पिनॅसी)।

धूपसरल वृक्ष (चीड) के निर्यास को गन्धाबिरोजा कहा जाता है। इसके वृक्ष तथा स्वरूपादि का वर्णन पहले सरल वृक्ष (पृष्ठ १९८) के अन्तर्गत किया जा चुका है।

रासायनिक संगठन—इसमें करीब २०% तारपीन का तेल (Turpentine oil) होता है जो ऊर्ध्वपातन यंत्र द्वारा निकाला जाता है। लगभग ८०% भाग अवशेष रहता है। इसे डाक्टरी में रेझिन (रजन) या कोलोफोनि (Resin, colophony) कहते हैं। रेझिन (रजन) पारभासक

हलके अम्बर के वर्ण का, चमकीला एवं आसानी से टूटने वाला घन पदार्थ होता है। यह तोड़ने पर अन्दर से चमकीला दिखाई देता है। इसम तारपीन सदृश स्वाद एवं गन्ध होती है। यह जलमें अविलेय किन्तु मद्यसार तथा ईथर आदि में आसानी से घुल जाता है।

तारपीन का तेल—यह सरल वृक्ष के निर्यास (गन्धाबिरोजा) से वाष्प के साथ ऊर्ध्व नलिका यन्त्र से निकाला हुआ तैल है। औषध की अपेक्षा अन्य उद्योगों में इसकी बहुत खपत होती है। सुगन्धि द्रव्य, कृत्रिम कर्पूर, तैलीय रंग एवं वार्निश बनाने में इसका उपयोग किया जाता है। इस तेल की संसार भर की आवश्यकता का ६७% भाग अमेरिका एवं २२% भाग फ्रांस पूर्ति करता है इतने अधिक वहां इसके वृक्ष पाये जाते हैं। भारतवर्ष में भी यद्यपि इसके वृक्ष बहुत पाये जाते हैं तथापि जंगली प्रदेशों में यातायात की कठिनाइयों के कारण अभी बहुत कम वृक्षों के निर्यास से तैल निकाला जाता है। भवाली, जाल्लो तथा बरेली के पास चित्तरबकगंज आदि स्थानों में इसके निकालने के कारखाने हैं।

यह तैल रंगहीन एवं स्वच्छ होता है। इसमें एक विशिष्ट प्रकार की गन्ध होती है तथा इसका स्वाद कटु एवं कुछ तिक्त होता है। कुछ दिन के बाद तथा इसे खुला रखने पर इसके स्वाद तथा गन्ध दोनों बढ़ जाते हैं जो अधिक अप्रिय हो जाते हैं। इसका विशिष्ट गुरुत्व ०.८६०–०.८७० है। यह सातगुने मद्यसार (९०%) में तथा ईथर, क्लोरोफॉर्म, कार्बन डाइसल्फाइड, विजलीयित (Dehydrated) मद्यसार एवं ग्लेशियल् ॲसेटिक् एसिड् में चाहे जिस मात्रा में घुल जाता है। भारतीय व्यापारी तैल में ३७.६% ॲल्फा-कॅरेन् (a-carene) एवं ॲल्फा–डी–टर्पेन्स (a-d-terpenes), १.७% ॲल्फा–एल्–टर्पेन् (a-l-terpene), २४.८% एल्–पिनेन् (l-pinene), ९.७% नोपिनेन् (Nopinene), या बीटा–पिनेन् (B-pinene), २०.३% लॉंगिफोलीन् (Longifoline) एवं अल्प मात्रा में सिल्वेस्ट्रीन (Sylvestrene) एवं डाइपेण्टीन (Dipentene) आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

अमेरीका और फ्रांस के तैल में प्रधानतया पिनेन् अधिक होते हैं। भारतीय तारपीन के तैल में उपयुक्त पिनेन् की अपर्याप्त मात्रा होने के कारण कृत्रिम कर्पूर निर्माण के यह अयोग्य होता है। भारतीय तैल आसानी से जारित (Oxidized) होने के कारण तथा सूखने पर अधिक राल निकलने के कारण विदेशी तैल की अपेक्षा हीन श्रेणी का समझा जाता है लेकिन अन्य उद्योगों में इसका उपयोग किया जा सकता है। इस तैल को प्रकाशहीन, ठंडी जगह में बंद बोतलों में रखना चाहिये।

गुण और प्रयोग—गन्धाबिरोजा एवं तारपीन के तेल के गुण लगभग समान ही होने के कारण दोनों का एक साथ ही वर्णन किया गया है।

यह वातानुलोमक, श्लेष्मनिःसारक, कफघ्न, स्वेदजनन, मूत्रजनन, रक्तस्तम्भक, उत्तेजक, कृमिघ्न, शोथघ्न, वातहर, व्रणरोपक, दुर्गन्धिनाशक एवं अल्प प्रतिदूषक (Antiseptic) है।

इसको चर्म पर मर्दन करने से प्रारम्भ में त्वचा लाल हो जाती है तथा प्रक्षोभ उत्पन्न होता है, पश्चात् नाडयग्रों के अवसाद से शून्यता उत्पन्न होती है। इससे सूक्ष्म रक्तवाहिनीयों का संकोच होकर बाह्य (स्थानिक) रक्तस्राव रुक जाता है। अधिक मर्दन से त्वचा में स्फोट आदि भी उत्पन्न होते हैं।

इसका प्रचूषण महास्रोत, श्वसनसंस्थान एवं त्वचा द्वारा होता है तथा उत्सर्ग मूत्र एवं श्वसनसंस्थान से होता है। उत्सर्ग के समय श्वास में इसकी गन्ध तथा मूत्र में बनफ्शाह (Violet-वायोलेट) की गन्ध आती है।

अल्प मात्रा में बार-बार देने से प्रथम वृक्कों की उत्तेजना से मूत्र की मात्रा बढ़ती है लेकिन अधिक काल तक प्रयोग करते रहने से मूत्र में जलन, प्रक्षोभ एवं कभी-कभी तीव्र मूत्रकृच्छ्र होता है। वृक्कों में शोथ उत्पन्न होने से मूत्र की मात्रा कम होती है एवं मूत्र में अल्ब्यूमिन एवं कभी-कभी रक्त भी जाने लगता है। अधिक मात्रा में महास्रोत में प्रक्षोभ से तीव्र विरेचन एवं रक्तातिसार तथा तन्द्रा, सारे शरीर में शिथिलता, अवसाद, सांवेदनिक नाडियों का घात, प्रत्याक्षेप क्रिया का घात एवं संन्यास आदि लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। उपर्युक्त परिणाम अधिक मात्रा में तैल को सूंघने से भी हो सकते हैं।

(१) यह उत्तम वातानुलोमक होने के कारण आध्मानजन्य शूल के लिये बहुत उपयोगी है। तारपीन के तेल को गोंद के साथ घोंट कर थोडी चीनी एवं जल मिलाकर रोगी को दिया जाता है। इससे स्फीतकृमियों का भी नाश होता है। आमाशयिक व्रण से अथवा अन्य कारणों से आंत्र से रक्तस्राव होता हो तो इसको देने से सूक्ष्म रक्तवाहिनीयों का संकोच हो कर रक्तस्राव रुक जाता है। आन्त्रिक ज्वर (Typhoid) में न केवल वातानुलोमक प्रभाव के कारण आध्मान (Tympanitis) में लाभ होता है वरन् इसकी उपस्थिति में इस रोगोत्पादक दण्डाणु की वृद्धि रुक जाने से प्रत्यक्ष इस रोग में भी लाभ होता है। इसमें १५-३० बूंद हर घण्टे पर कई बार दिया जाता है।

(२) जीर्ण श्वसनीशोथ (Bronchitis) में इसको देने से कफ निकलने लगता है तथा जीवाणुओं का नाश होने से दुर्गन्ध भी दूर होता है। रोगी के कमरे में तैल को छिड़कने से अपने आप यह श्वास में आकर अपना कार्य करता है। कफक्षय एवं रक्तष्ठीवन में भी इसको खिलाया जाता है तथा सूंघने को भी दिया जाता है। फुफ्फुसों के कोथ में इससे विशेष लाभ होता है। तारपीन का तेल २½ तो०, मुलेठी २½ तो० एवं मधु २ तो० एक साथ घोंट कर ३०-६० र० की मात्रा में इन विकारों में दिया जाता है।

(३) पुराने सोजाक (Gleet) एवं बस्तिशोथ में सन्नू का तेल १-३ बूंद या शुद्ध गन्धाविरोजा १ से २ ड्रा० खिलाते हैं। इन अवस्थाओं में 'पूय मेहारि वटी' को दिन भर में २-४ गोलियां दारुहरिद्रा कषाय के अनुपान से खिलाई जाती हैं। इसको बनाने के लिये शुद्ध गन्धाविरोजा १ तो०, शुद्ध राल २½ तो०, गूगल ५ तो०, रूमीमस्तगी २½ तो० एवं चन्दन का तैल २½ तो० इन सब को घोंट कर १॥ माशे की गोलियां बनाई जाती हैं।

(४) जीर्ण कोष्ठबद्धता, आध्मान एवं सूत्रकृमि में ६०-१२० बूंद तारपीन का तेल एवं ४ पाइण्ट साबुन युक्त जल की बस्ति बहुत ही लाभदायक होती है।

(५) इसमें रेंडी का तेल मिलाकर आमवात, कटिशूल, सन्धिपीडा एवं वातनाडी शूल में लगाया जाता है। आन्तरिक शोथ विशेष कर उदरगत शोथ एवं आध्मान में इससे स्वेदन किया जाता है। फलालेन जैसे कपड़े को उष्ण जल में निचोड़ कर उस पर थोड़ा सा तैल छिड़क कर उससे सेंका जाता है। पुराने कफविकारों में इसको रूमाल पर डालकर सूंघने को दिया जाता है तथा छाती पर इसको लगाते हैं।

(६) गजचर्म, व्रण, क्षत तथा अन्य चर्मविकारों में गन्धाविरोजा का मलहम उपयोग में आता है। क्षत में तैल से स्थानिक रक्तस्राव भी रुक जाती है। मुख के शल्य कर्म में साधारण रक्तस्राव को रोकने के लिये तैल का प्रयोग किया जाता है। गन्धाविरोजा का उपयोग अनेक प्रकार के मलहमों तथा धूप आदि में किया जाता है। कण्ठमाला में इसके लेप से लाभ होता है

गन्धाविरोजा का डामर जीर्ण कास एवं राजयक्ष्मा आदि में दिया जाता है। इसके रजन (रेझिन, कोलोफोनि) का व्यवहार मलहम बनाने में विशेष रूप से होता है। यह अल्प प्रतिदूषक तथा पुराने व्रणों के लिये लाभदायक होता है।

मात्रा—तैल ३-१० बूंद; कृमिघ्न १२०-२४० बूंद; शुद्ध गन्धाविरोजा १-२ मा०।

अथ रालः। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

रालस्तु शालनिर्यासस्तथा सर्ज्जरसः स्मृतः। देवधूपो यक्षधूपस्तथा सर्वरसश्च सः ॥ ४८ ॥
रालो हिमो गुरुस्तिक्तः कषायो ग्राहको हरेत्। दोषास्रस्वेदवीसर्पज्वरव्रणविपादिकाः ॥
ग्रहभग्नाग्निदग्धांश्च शूलातीसारनाशनः ॥ ४९ ॥

राल के नाम तथा गुण—राल, सालनिर्यास, सर्जरस, देवधूप, यक्षधूप तथा सर्वरस ये राल के संस्कृत नाम हैं। राल—शीतवीर्य, गुरु, तिक्त तथा कषाय रस युक्त एवं ग्राही होती है। यह-दोष (वातादिक), रक्तविकार, स्वेद, विसर्प, ज्वर, व्रण, विपादिका, ग्रहबाधा को दूर करती है तथा भग्न अर्थात् हड्डी के टूट जाने पर फायदा करती है और अग्नि से जल जाने पर भी लाभ करती हैं एवं शूल तथा अतीसार को नष्ट करती है ॥ ४८-४९ ॥

१७ राल

हिं०-राल, रार, धूना, शाल (साखू) का निर्यास। **बं०**-धुना, राल, डम्मर। **म०**-राल पिंवली। **गु०**-राल। **क०**-सर्ज्जरस। **तै०**-सज्जरसमु, सज्जं। **पं०**-राल, अलुं। **फा०**-राल मगरबी, रातियानः। **अ०**-रातीनज, कैकहर। **अं०**-Resin of Sal Tree (रेझिन् ऑफ् साल ट्री)। **ले०**-*Resina of Shorea robusta Gaertn. f.* (रेझिना ऑफ् शोरिआ रोबस्टा गार्ट.)। Fam. Dipterocarpaceae (डिप्टेरोकार्पेसी)।

शालवृक्ष के गोंद को राल कहते हैं। यह सफेदी लिये पीली किञ्चित् कालापन मिश्रित होती है। नयी अवस्था में यह रंगहीन एवं पारदर्शक होती है। इसमें तारपीन की राल के सदृश गन्ध नहीं होती तथा इसमें स्वाद भी नहीं होता। यह तैल में मिल जाती है तथा आसानी से जलती है।

नोट—राल के लिये चरक सुश्रुत में सर्जरस शब्द प्रयुक्त हुआ है। शालनिर्यास शब्द चरक सुश्रुत में देखने में नहीं आता। वैद्य लोग राल से शाल की राल का व्यवहार करते हैं जो अधिकतर सिंगापूर से आती है। डाक्टरी में व्यवहार में लाई जाने वाली राल जिसे रजन (रेझिन) कहते हैं वह गन्धाविरोजा से तारपीन के तैल निकालने के पश्चात् बचा हुआ अवशेष है। शाल (साखू) के वृक्ष का वर्णन आगे वटादिवर्ग में आया है। सर्ज वृक्ष (शाल भेद) तथा उससे प्राप्त होने वाली राल जिसे चन्द्रस कहते हैं उसका भी वर्णन वटादि वर्ग में है।

गुण और प्रयोग—राल उत्तम व्रणशोधन, व्रणरोपण, रक्तस्तम्भन, ग्राही एवं जीवाणुनाशक होती है। यह रेझिन (रजन) का अच्छा प्रतिनिधि मानी जाती है।

(१) राल के मलहम का बहुत व्यवहार किया जाता है। इसके लगाने से स्थानिक रक्तप्रवाह बढ़ता है तथा जीवाणुनाशन का भी कार्य होता है। फोड़े आदि पर लगाने से बिना पीड़ा के वे फूट कर जल्दी अच्छे हो जाते हैं। नवीन शोथ हो तो बिना फूटे ही बैठ भी जाते हैं। इसके मलहम का उपयोग खुजली, पामा, बिवाई (विपादिका), पुराने व्रण एवं अग्निदग्ध व्रण आदि में

किया जाता है। मलहम बनाने के लिये राल ४, मोम ४, तिल का तैल ४ एवं घृत २ इन सबको जरा गरम करके एक में घोंट कर मिला दें।

(२) आमवातिक पीडा एवं कटिशूल में ब्राण्डी के साथ या अंडे की सफेदी के साथ लगाने से लाभ होता है।

(३) खांसी, श्वास, अतिसार, कुपचन एवं सोजाक में राल खिलाई जाती है। बच्चों के रक्त-युक्त आंव में तथा रक्तार्श में चीनी के साथ इसका अधिक अच्छा उपयोग होता है।

(४) वाजीकरण के लिए १० र० राल ½ सेर दूध के साथ नित्य प्रातः सेवन की जाती है।

मात्रा—४-८ रत्ती।

अथ कुन्दरुः (सुगन्धद्रव्यं शल्लकीनिर्यासः)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

कुन्दुरुस्तु मुकुन्दः स्यात्सुगन्धः कुन्द इत्यपि ॥ ५० ॥

कुन्दुरुर्मधुरस्तिक्तस्तीक्ष्णस्त्वच्यः कटुर्हरेत्। ज्वरस्वेदग्रहालक्ष्मीमुखरोगकफानिलान् ॥५१॥

कुन्दुरु (सुगन्ध द्रव्य) जो कि शल्लकी का गोंद है उसके नाम तथा गुण—कुन्दुरु, मुकुन्द, सुगन्ध तथा कुन्द ये सब कुन्दुरु के संस्कृत नाम हैं। कुन्दुरु-मधुर, तिक्त तथा कटु रसयुक्त, तीक्ष्ण एवं त्वचा के लिये हितकारी होता है। यह ज्वर, स्वेद, ग्रहबाधा, अलक्ष्मी, मुखरोग, कफ और वायु को दूर करता है ॥ ५०-५१ ॥

नोट—प्राचीनों ने शल्लकी (सलई) के निर्यास को ही कुन्दुरु माना है लेकिन बाजार में मिलने वाला कुन्दुरु सलई का निर्यास न होते हुए भी उसी जाति के विदेशी वृक्ष का निर्यास है जो अफ्रीका एवं अरब से आता है। इसका व्यापार मुख्यतया बंबई में होता है। गुणों की दृष्टि से भारतीय सलई के गोंद एवं कुन्दुरु में विशेष अन्तर नहीं है। पार्थक्य के लिये भारतीय निर्यास को 'सलई गूगल' एवं विदेशी निर्यास को 'कुन्दुरु' लिखा गया है तथा दोनों का अलग २ वर्णन किया गया है। बाजार में गूगल नाम से सलई का गूगल एवं कणगूगल (गुग्गुलु) दोनों ही बिकते हैं इसलिये खरीदते समय शल्लकी निर्यास की आवश्यकता होने पर 'सलई गूगल' मांगना चाहिये एवं गुग्गुलु की आवश्यकता होने पर कणगूगल नाम से खरीदना चाहिये। **सलई वृक्ष** का वर्णन वटादिवर्ग में किया गया है। यद्यपि कुन्दरु का अरबी नाम लबान है तथापि **लोबान** या **लोहबान** यह अन्य द्रव्य है, उसका भी प्रसंगतः संक्षेप में वर्णन किया गया है। कुन्दुरू शाक का वर्णन आगे शाकवर्ग में किया हुआ है।

१८ शल्लकी निर्यास (सलई गूगल)

हि०—सलई गूगल, गूगल, लबान। बं०—सलेधूप। गु०—धूपडो। म०—सालईचा डीक। अजमेर—गंधबिरोझ। अं०—Indian olibanum or Frankincense (इण्डियन् ओलिबेनम् या फ्रैंकिन्सेन्स)। ले०—*Gum resin of Boswellia serrata Roxb.* (गमरेझिन ऑफ् बॉस्वेलिया सेरेटा रॉक्स)। Fam. Burseraceae (बर्सेरेसी)।

यह शल्लकी (सलई) वृक्ष का गोंद है। यह कुछ आर्द्र, चिपचिपा, रक्ताभ पीतवर्ण का एवं सुगंधयुक्त होता है। यह जलाने पर कणगूगल की अपेक्षा जल्दी जलता है। जल में डालने पर यह सफेद दिखलाई देता है तथा मद्यसार या जल के साथ घोटने पर सफेद घोल बनता है। नवंबर से जुलाई तक के समय इसके वृक्षों को नीचे छीलते हैं तथा जो स्राव निकलता है उसे

संग्रह करते हैं। ताजी अवस्था में यह कनाडा बाल्सम की तरह दिखलाई देता है। प्राचीनों ने कुन्दुरु इसे ही माना है।

रासायनिक संगठन—इसमें गोंद, उड़नशील तैल एवं राल के समान एक अन्य द्रव्य रहता है।

गुण और प्रयोग—यह स्नेहन, स्रंसन, रक्तशोधक, कफनिःसारक, उत्तेजक, मूत्रल, आर्तव-जनन एवं त्वच्य है। इसके गुण मिर्र तथा गूगल के समान हैं।

इसका उपयोग ज्वर, स्वेद, जीर्ण कफविकार, रक्तविकार, प्रदर, रक्तातिसार, मुखरोग, कास, श्वास, मूत्रविकार, आर्तवविकार, वातनाडीसंस्थान के रोग, श्लेष्मल त्वचा के कफयुक्त विकार, पाण्डु एवं अनेक प्रकार के ग्रंथि, फोड़े एवं व्रण आदि में किया जाता है। इसका प्रयोग अन्य उपयुक्त औषधों के साथ गोली या चूर्णरूप में किया जाता है।

(१) पुराने एवं गढेदार व्रणों में टंकण, गन्धक, खैर एवं सलई गूगल का मलहम बहुत लाभदायक होता है। दुर्गंधित व्रणों में गरी का तेल या नीबू के रस में इसे मिलाकर लगाने से लाभ होता है।

(२) इसको गरम जल में घिसकर गण्डमाला, ग्रन्थि, बद, संधिवात एवं अस्थिशोथ आदि में लगाया जाता है एवं खिलाते भी हैं।

(३) पुराने सोजाक एवं फिरङ्ग में स्नेहन औषधों के साथ इसका उपयोग किया जाता है।

(४) दुर्गंधयुक्त श्वास में बबूल के गोंद के साथ इसका प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—५-१० र०।

१८ (अ) कुन्दुरु

हि०—कुन्दुरु, लबान, कुन्दुर, शुस। बं०—कुन्दुरुखोटी। म०—इ (बि) सेस। कं०—कुंदो। फा०—कुन्दुर। अ०—कुन्दुरे जकर, लबान, बस्तज। अं०—Olibanum (ऑलिबेनम्), Frankincense (फ्रॅंकिन्सेस)। ले०—*Gum resin of Boswellia carterii Birdw. & other sp.* (गम रेजिन ऑफ बॉस्वेलिया कार्टेराइ बर्ड, अण्ड अदर स्पीसीज) Fam. Burseraceae (बर्सेरेसी)।

यह शल्लकी (सलई) की ही जाति के विदेशी वृक्ष का गोंद है जो अरब तथा अफ्रीका के एबीसीनिया नामकस्थान से आता है। बाजार में कुन्दुरु के नाम से यही बिकता है एवं बम्बई में इसका आयात होता है।

इसके छोटे, बड़े एवं अण्डाकार ५-२५ मि. मी. बड़े टुकड़े होते हैं जो कभी-कभी आपस में चिपके रहते हैं। इसका बाह्य स्तर मटमैला एवं पीताभ, नीलाभ या हरी आभा युक्त होता है। यह आसानी से टूट जाता है। भीतरी सतह चिकनी तथा अर्धपारदर्शक होती है। यह जलाने में जल्दी जलता है। यह सुगन्धित तथा स्वाद में कुछ कड़वा होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें गोंद तथा एक राल सदृश अन्य पदार्थ पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह सुगन्धि, उत्तेजक, कफनिःसारक, ग्राही तथा शोथहर है। इसके गुण सलई के गूगल के समान हैं। इसकी क्रिया श्लेष्मल त्वचा पर होती है। श्वसनसंस्थान की श्लेष्मल त्वचा पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। पाश्चात्य चिकित्सा के बाल्सम् पेरु तथा बाल्सम् टोलू के समान यह कार्य करता है किन्तु इससे आमाशय में कम प्रक्षोभ होता है।

(१) इसका उत्सर्ग श्वसनसंस्थान के द्वारा होने के कारण जीर्ण कफ विकार तथा अत्यन्त कसदार कफ गिरना आदि अवस्थाओं में इसे बदाम, शर्करा तथा जल के साथ खिलाते हैं। इससे

कफ की दुर्गन्ध दूर होती है तथा कफ कम होकर खांसी कम होती है। इसका धूम्रपान भी कराते हैं।

(२) सोजाक में इसको ५ र० की मात्रा में बदाम आदि के साथ या गोली के रूप में खिलाते हैं।

(३) कुन्दुरु, खसखस का तेल एवं सफेद मोम इनको मन्द आंच पर पिघला कर कपड़े से छान कर इस मलहम का प्रयोग ग्रन्थि, शोथ तथा व्रणों पर किया जाता है। बच्चों के फोड़े फुन्सी जल्दी फूट कर अच्छे हो जाते हैं। पाषाणगर्दभ पर लगाने से सूजन दूर हो जाती है। कार्बंकल पर इसका मलहम विशेष उपयोगी है।

(४) इसको बाष्प पर जल के साथ गरम करने से एक चिकट गोंद बनाता है। इसमें अफीम, धतूरा, खुरासानी अजवायन या बेलाडोना आदि मिलाकर, मोटे कपड़े पर लगाकर इसकी पट्टी को पीड़ायुक्त अङ्गों पर लगाने से वहां की रक्तवाहिनीयों का संकोच होने से तथा उस अंग की गति कम होने से पीड़ा शान्त होती है।

मात्रा—१०-३० रत्ती।

१८ (ब) लोहबान

हिं०—लोहबान, लोबान। **म०**—ऊद। **गु०**—लोबान। **अं०**—Benzoin (बेन्झोइन)। **ले०**—*Benzoinum* (बेन्झोइनम्)। वृक्षनाम—Styrax benzoin Dryand (स्टाइरॅक्स बेंझोइन ड्रायेंड)।

यह एक प्रकार का राल्युक्त गोंद है जिसके वृक्ष भारत में नहीं पाये जाते। इसके दो प्रकार मिलते हैं। उपर्युक्त नाम के वृक्ष से प्राप्त द्रव्य सुमात्रा बेंझोइन कहलाता है एवं दूसरे वृक्ष Styrax tonkinensis (Pierre) Craib ex Hartwich (स्टाइरॅक्स टॉन्किनेनूसिस्) से प्राप्त द्रव्य को स्याम बेंझोइन कहते हैं। इनके अतिरिक्त इसी जाति के अन्य वृक्षों से भी यह द्रव्य प्राप्त होता है। इसमें पर्याप्त मिलावट भी की जाती है।

सुमात्रा बेंझोइन में कुछ अपारदर्शक, श्वेताभ या रक्ताभ बदाम या कौडी के आकार के टुकड़े, रालदार रक्ताभ भूरे या धूसर भूरे द्रव्य के साथ मिले हुए रहते हैं। इसका स्वाद कुछ तीता तथा गंध हलकी किन्तु अप्रिय नहीं होती।

स्याम बेंझोइन के टुकड़े विभिन्न नाप के या चौपहल तथा कुछ चिपटे होते हैं। यह बाहर से पीताभ भूरे या रक्ताभ भूरे किन्तु अन्दर से दुधिया श्वेत और अपारदर्शक होते हैं। चौपहल टुकड़ों में चमकीले रक्ताभ भूरे रंग के लंब गोल टुकड़े राल के साथ मिले हुवे रहते हैं। इसमें वॅनिला की तरह गंध तथा बाल्सम् का विशिष्ट स्वाद होता है।

लोहबान को हलके हलके गरम करने से श्वेत वर्ण का धूँआ निकलता है जो ठंडी जगह पर रवेदार पदार्थ के रूप में जम जाता है। पोटॅशियम् परमग्नेट के घोल के साथ इसके चूर्ण को गरम करने से सुमात्रा बेंझोइन हो तो बेन्झेल्डिहाइड की हलकी गंध आती है। ५ सी. सी. लोबान का ईथरीय सत्व लेकर उसमें २, ३ बूंद गंधक का तेजाब मिलावे तो सुमात्रा बेंझोइन होने पर रक्ताभ भूरा एवं स्याम बेंझोइन में गहरा गुलाबी लाल रंग हो जाता है। ९० प्र० श० मद्यसार में पहले प्रकार का ७५% एवं दूसरे प्रकार का ९०% घुल जाता है।

गुण और प्रयोग—लोबान कफ निःसारक एवं प्रतिदूषक है। पुरानी खांसी में बदाम तथा गोंद के साथ इसको देने से कफ बाहर निकलने में मदद होती है। बस्तिशोथ आदि में भी इसको देते हैं। विभिन्न प्रकार के चर्म रोग तथा व्रण आदि में इसका बाह्य प्रयोग लाभदायक है।

अथ शिलारसः। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

सिह्लकस्तु तुरुष्कः स्याद्यतो यवनदेशजः। कपितैलश्च संख्यातस्तथा च कपिनामकः॥५२॥
सिह्लकःकटुकःस्वादुःस्निग्धोष्णःशुक्रकान्तिकृत्। वृष्यःकण्ठ्यःस्वेदकुष्ठज्वरदाहग्रहापहः॥५३॥

शिलारस के नाम तथा गुण—यवनों (मुसलमानों) के देश में उत्पन्न होने से शिलारस को संस्कृत में तुरुष्क कहते हैं। सिह्लक, कपितैल, कपिनामक (अर्थात् कपि के पर्यायवाची सभी शब्द शिलारस के नामान्तर हैं) ये सब शिलारस के संस्कृत नाम हैं।

शिलारस—कटुरस युक्त, स्वादु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, शुक्रजनक, कान्तिकारक, वृष्य तथा कण्ठ के लिये हितकारी होता है। यह स्वेद, कुष्ठ, ज्वर, दाह तथा ग्रहबाधा को दूर करने वाला होता है॥

१९ शिलारस

हिं०, म०, बं०, क०—शिलारस। सिलारेस। **गु०**—शेलारस। **ता०**—नेरिअरिशिप्पाल। **मल०**—रसमाल। **ते०**—शिलारसम्। **मा०**—शिलारस। **फा०**—अम्बर माइअ, अस्ले लबनी। **अ०**—मीअः साइला, लब्नी, वृक्षनाम-जिर्व, उस्तुरक। **अं०**—Liquid Storax (लिक्विड स्टोरॅक्स)। **ले०**—(वृक्ष नाम) *Liquidamber orientalis Miller* (लिक्विडम्बर ओरीएण्टॅलिस् मिलर)। Fam. Hamamelidaceae (हेमॅमेलिडेसी)।

शिलारस अरब देश से आता है। यह गोंद के समान एक सुगन्ध द्रव्य है। इसके वृक्ष एशिया माइनर में होते हैं। इसी वर्ग का अन्य वृक्ष ले. ॲल्टिजिया एक्सेल्सा नोरोन्हा (Altingia excelsa Noronha) आसाम, भूटान, बर्मा, पूर्वी बंगाल, पेगू, चीन, मलाया और जावा आदि देशों में होता है जिससे निकले हुए शिलारस को विदेशी शिलारस का अच्छा प्रतिनिधि मानते हैं। इसका **वृक्ष** मध्यमाकार का अनेक शाखायुक्त; **पत्ते**-करतलाकार ५ खण्डयुक्त; **पुष्प**-पीत वर्ण के गोल गुच्छों में आते हैं। ३ या ४ वर्ष पुराने वृक्ष की छाल को चोट पहुँचाने से भीतरी छाल में स्राव जमा होता है। फिर बाहरी छाल को हटाकर भीतरी छाल को जल में उबालने से उसके साथ लगा हुआ शिलारस जल पर तैरने लगता है जिसे अलग कर लेते हैं।

शिलारस का आयात प्रधानतः फ्रांस से होता है। यह मधु के समान गाढा, वजन में जल से भारी, पिलाई लिए लाल या भूरे रग का, मुलायम, चिपचिपा तथा तैलीय राल सदृश पदार्थ है। नये शिलारस में मिट्टी के तेल जैसी गन्ध होती है लेकिन पुराना होने पर अच्छी गन्ध आने लगती है। इसका स्वाद तीता होता है। इसकी अन्य जाति के वृक्षों से भी यह प्राप्त किया जाता है।

शोधन—पाश्चात्य चिकित्सा में इसको शुद्ध करके व्यवहार करते हैं। मद्यसार में इसे घोल एवं छान कर उस द्रव को उड़ जाने देते हैं तथा जो बचा रहता है उसे व्यवहार करते हैं। यह पीताभ भूरा, चिपचिपा, कुछ पारदर्शक एवं विशिष्ट सुगंध एवं स्वादयुक्त होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक तैलीय द्रव के साथ मिली हुई एक राल रहती है। राल में सिनेमिक एसिड (Cinnamic acid) के साथ संयुक्त स्टोरेसिनॉल् (Storesinol) नामक द्रव्य रहता है। तैलीय द्रव पदार्थ में स्टाइरॉल् (Styrol), एथिल सिनॅमेट (Ethyl cinnamate) एवं स्टाइरॅसिन (Styracin) ये पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—शिलारस कफघ्न, मूत्रल, प्रतिदूषक, कृमिघ्न, कण्डूघ्न, व्रणरोपक एवं व्रणशोधक है। इसका कफघ्न धर्म सौम्य है। इसकी क्रिया लोहबान, बाल्सम् पेरु तथा बाल्सम् टोलू

सदृश होती है। इसका उत्सर्ग वृक्क तथा फुफ्फुस द्वारा होता है। कभी-कभी इससे वृक्क शोथ भी हो सकता है। औषधि तैलों को सुगन्धित करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। चरक में वात व्याधि के बला तैल के पाठ में 'तुरुष्क' का प्रयोग किया हुआ है।

(१) जीर्ण कास आदि कफविकारों में तथा राजयक्ष्मा में इसको अण्डे की सफेदी के साथ घोंटकर शहद मिलाकर चटाते हैं। इससे फुफ्फुसों को बल मिलता है।

(२) पुराना सोजाक एवं बस्तिशोथ आदि में मुलेठी के साथ इसको खिलाते हैं।

(३) त्वचा के रोगों में शिलारस का बहुत प्रयोग किया जाता है। इससे जूं तथा खुजली उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं का नाश होता है। इसे चौगुने तिल के तेल में मिलाकर पामा (Scabies), सिध्म तथा जीर्ण दाहयुक्त अपरस में लगाते हैं, इससे खुजली बहुत जल्दी कम हो जाती है। क्षयज व्रणों पर अकेले इसे लगाते हैं। इससे स्थानिक रक्ताभिसरण की वृद्धि होती है तथा क्षयज दण्डाणुओं का नाश होता है। वृषण शोथ में इसको लगाकर ऊपर से तम्बाखू या धतूरे का पत्ता बांधने से लाभ होता है।

मात्रा—५-१० रत्ती।

अथ जातीफलम्। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

जातीफलं जातिकोशं मालतीफलमित्यपि। जातीफलं रसे तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रोचनं लघु॥
कटुकं दीपनं ग्राहि स्वर्यं श्लेष्मानिलापहम्॥ ५४॥
निहन्ति मुखवैरस्यं मलदौर्गन्ध्यकृष्णताः। कृमिकासवमिश्वासशोषपीनसहृद्रुजः॥५५॥

जायफल के नाम तथा गुण—जातीफल, जातिकोश और मालतीफल ये सब 'जायफल' के संस्कृत नाम हैं। जायफल—रस में तिक्त होता है एवं तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, रोचक, लघु और कटुरस युक्त भी होता है तथा अग्निदीपक, ग्राही एवं बिगड़े हुए गले के स्वर को ठीक करनेवाला होता है, तथा कफ, वात, मुख की विरसता, मलकी दुर्गन्ध एवं कालापन तथा कृमि, खांसी, वमन, श्वास, शोष, पीनस और हृद्रोग इन सबों को दूर करने वाला होता है॥ ५४-५५॥

२० जायफल

हि०-जायफल, जायफर। बं०, गु०-जायफल। म०-जायफल, बांडा जायफल। पं०-जयफल। ते०-जाजिकाय। क०-जाजिके। ता०-जाडिक्के। ब्रह्मी०-झाडि फू। सिलो०-जडिका। मलाया-बुशपल। फा०-जौज बूया। अ०-जौज़ बव्वा, जौजुत्तीब। अं०-Nutmeg (नटमेग)। ले०-*Myristica fragrans, Houtt* (मायरिस्टिका फ्रॅग्रेन्स, हाउट)। Fam. Myristicaceae (मायरिस्टिकॅसी)।

जायफल—सुमात्रा, जावा, सिंगापूर, मोलुक्का, पिनांग एवं लंका तथा वेस्ट इण्डीज में अधिकता से उत्पन्न होता है। इस देश में इसके वृक्ष से फल पाना कष्ट साध्य है। नीलगिरी पर्वत के पूर्वीय भाग में कनूर की घाटी में बर्लियार के सरकारी बगीचों में तथा और दक्षिण में कोर्टलम् की पहाड़ियों पर इसके पेड़ लगाये गये हैं।

इसका वृक्ष-सेव के वृक्ष के समान होता है और देखने में बहुत सुहावना हरे रङ्ग का मालूम पड़ता है। पत्ते-२ से ५ इञ्च तक लम्बे, १॥ इञ्च तक चौड़े, चर्मवत, लंबे पर्णवृन्त से युक्त, अंडाकार या आयताकार भालाकार तथा हलके पीले-भूरे से रंग के होते हैं। फूल-छोटे-छोटे सफेद रङ्ग के

गोलाकार आते हैं। फल-गोल, अण्डाकार १॥ से २ इञ्च लम्बे, रक्ताभ या पीताभ तथा पकने पर दो फांकों में फट जाते हैं। इनके फटने पर कड़े आवरण से युक्त जायफल (सूखे हुए बीज) को घेरे हुवे जावित्री का लाल वर्ण का वेष्टन दिखाई देता है। जावित्री के अन्दर जायफल रहता है जिसका औषध में व्यवहार किया जाता है। जायफल अंडाकार, गोल तथा एक इञ्च के घेरे में होता है। बाहर से यह खाकीपन लिये हुए भूरा तथा सिकुड़ा हुआ दिखलाई पड़ता है और भीतर का रङ्ग मैला गुलाबी जिसमें लालिमा लिये हुए भूरे रंग के तंतुओं का जाल होता है। इसकी गन्ध एक स्वतन्त्र प्रकार की तेज और स्वाद सुगन्ध युक्त कड़वा होता है।

औषध के अतिरिक्त जायफल तथा इसके तैल का उपयोग मसाले, साबुन तथा सुगंधि आदि में किया जाता है।

रासायनिक संगठन—जायफल में ५-१५% एक पतला हलके पीले रंग का उड़नशील तैल पाया जाता है जो इसमें का कार्यकारी तत्व है। इसमें २४-४०% एक स्थिर तैल भी होता है जिससे साबुन की तरह गाढा एक स्नैहिक पदार्थ प्राप्त होता है। इसे बांडा साबुन या नटमेग-बटर (Nutmeg-butter) कहते हैं। इसकी पीले रंग की साबुन की तरह बट्टियां बिकती हैं। इसके स्नैहिक अम्लों में प्रधानतया (करीब ६१%) मायरिस्टिक् एसिड (Myristic acid) रहता है। इनके अतिरिक्त जायफल में सुगंधि बाल्सम्, स्टार्च तथा रेशेदार पदार्थ पाये जाते हैं। इसके उड़नशील तैल में मुख्यतया यूजेनॉल (Eugenol) तथा आइसो यूजेनॉल (Iso-eugenol) पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—जायफल तथा इसका तैल सुगंधि, ग्राही, दीपन, वातानुलोमक, उत्तेजक, मादक, पौष्टिक, वाजीकर, स्तंभन, मुख दौर्गन्ध्यहर तथा वेदना स्थापन है। इसके सेवन के पश्चात् आमाशयिक पाचक रसों की वृद्धि होने से भूख बढ़ती है तथा पाचन सुधरता है एवं वायु का अनुलोमन भी होता है।

अधिक मात्रा में इसका मस्तिष्क पर प्रभाव कपूर के विषैले परिणाम के सदृश होता है। गतिनियंत्रक केन्द्र की उत्तेजना से अपस्मार सदृश आक्षेप आते हैं। यह तीव्र संज्ञाहर (Narcotic) है तथा इससे चक्कर तथा संन्यास आदि उत्पन्न हो जाता है।

इसका प्रयोग कुपचन, अग्निमांद्य, आध्मान, अतिसार, हृल्लास, वमन, गले के रोग, कफ तथा वातविकार, हृद् दौर्बल्य, क्लीबत्व, शीघ्रपतन एवं अनिद्रा आदि में किया जाता है। विरेचक औषधों के ऐंठन, मरोड आदि दुष्परिणामों को दूर करने के लिये तथा अन्य उत्तेजक एवं वातानुलोमक औषधों के निर्माण में इसके तैल का पाश्चात्य चिकित्सा में बहुत उपयोग किया जाता है।

(१) उदरशूल, अतिसार एवं बच्चों के आमातिसार आदि में इसे भूनकर नशा आने की मात्रा में देते हैं। वातानुलोमक तथा उत्तेजक गुणों के लिये इसके तैल को मिश्री के साथ खिलाते हैं। अजीर्ण में प्यास बहुत लगे तथा वमन होता हो तो इसका हिम लाभदायक होता है।

(२) अफीम के साथ अनेक स्तंभक योगों में इसका उपयोग किया जाता है।

(३) शिरःशूल, नाडीशूल, प्रसव कालीन कटिशूल, अंगघात तथा विपादिका में इसको जल में घिसकर लगाने से लाभ होता है। व्यंग तथा नीलिमा में इसको जल में घिसकर लगाया जाता है। मुखदुर्गंधि दूर करने के लिये इसे चबाते हैं।

(४) इसके तैल में ओलिव्ह ऑइल मिलाकर जीर्ण आमवात में मालिश की जाती है। तैल से दंतशूल में लाभ होता है। इसका गाढा तैल वेदनाहर होता है तथा जीर्ण संधिशोथ, मोच

एवं मरोड में मालिश किया जाता है। विसूचिका में हाथ एवं पैरों की ऐठन में भी इसके मलने से लाभ होता है।

प्रतिनिधि एवं व्यामिश्रण—बंबई जायफल, रामफल या जंगली जायफल नाम से मायुरिस्टिका मलबारिका लॅम (Myristica malabarica Lam.) के फलों को लोग इसके स्थान पर व्यवहार करते हैं इसके वृक्ष कोंकण, कर्नाटक तथा उत्तर मलबार प्रान्तों में पाये जाते हैं। इससे जो पत्री निकलती है उसे रामपत्री या बंबई की जायपत्री कहते हैं। ये जंगली जायफल अधिक लंबे, कम चौड़े, किंचित् मुलायम एवं करीब २ गंधहीन होते हैं। ये जायफल की अपेक्षा हीन गुण वाले होते हैं।

कभी २ खराब जायफल तथा मिट्टी आदि मिलाकर सांचे के द्वारा बने हुवे नकली जायफल भी बाजार में बिकते हैं।

मात्रा—चूर्ण २-८ र०; तैल १-५ बूंद।

अथ जातीपत्री। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

जातीफलस्य त्वक् प्रोक्ता जातीपत्री भिषग्वरैः॥ ५६॥

जातीपत्री लघुः स्वादुः कटुष्णा रुचिवर्णकृत्। कफकासवमिश्वासतृष्णाक्रमिविषापहा॥५७॥

जावित्री के नाम तथा गुण—वैद्यों में जो श्रेष्ठ हैं वे लोग 'जायफल' के छिल्के को ही 'जावित्री' कहते हैं। जातीपत्री या जातिपत्री और जातिकोष आदि संस्कृत नाम 'जावित्री' के हैं। जावित्री-लघु, स्वादिष्ट, कटुरसयुक्त, उष्णवीर्य, रुचिजनक तथा वर्णकारक होती है एवम् यह कफ, खांसी, वमन, श्वास, तृष्णा, कृमि और विषविकार इन सबों को दूर करने वाली भी होती है॥

२१ जावित्री

हि०—जावित्री, जायपत्री। **बं०**—जायित्री, जैत्री। **म०**—जायपत्री। **गु०**—जावंत्री। **क०**—जायपत्री। **ते०**—जातिपत्री। **फा०**—बज्बाज। **अ०**—बस्बास (सः)। **अं०**—Mace (मेस)। **ले०**—*Myristica fragrans Houtt* (मायुरिस्टिका फ्रॅग्रेन्स् हाउट)। Fam. Myristicaceae (मायरिस्टिकॅसी)।

जिस वृक्ष से जायफल उत्पन्न होता है उसी से जावित्री भी उत्पन्न होती है। इस वृक्ष के वास्तविक फल के भीतर के बीज (जायफल) से लिपटा हुआ लालरङ्ग का जालीदार जो वेष्टन दिखाई देता है वही जावित्री है। अन्य वानस्पतिक वर्णन जायफल के साथ पहले किया जा चुका है।

रासायनिक संगठन—इसमें जायफल की तरह ही एक उड़नशील तैल ८-१७% पाया जाता है। इसके अतिरिक्त स्थिर तैल, राल, वसा, शर्करा, डेक्स्ट्रीन एवं गोंद आदि पदार्थ इसमें होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके गुण जायफल के समान होते हैं। यह दीपन, पाचन, वातानुलोमक, कफहर, रूचिकर, वर्ण्य एवं वृष्य है।

इसका उपयोग कास, कफयुक्त श्वास, क्षयरोग, मन्दज्वर, वमन, आँतों के जीर्ण विकार, विसूचिका एवं कृमि आदि में किया जाता है।

मात्रा—२-८ र०।

अथ लवङ्गम्। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

लवङ्गं देवकुसुमं श्रीसंज्ञं श्रीप्रसूनकम्। लवङ्गं कटुकं तिक्तं लघु नेत्रहितं हिमम्॥ ५८॥
दीपनं पाचनं रुच्यं कफपित्तास्रनाशकृत्। तृष्णां छर्दिं तथाऽऽध्मानं शूलमाशु विनाशयेत्।
कासं श्वासञ्च हिक्काञ्च क्षयं क्षपयति ध्रुवम्॥ ५९॥

लौंग के नाम तथा गुण—लवङ्ग, देवकुसुम, श्रीसंज्ञ (लक्ष्मीवाचक सम्पूर्ण शब्द लवङ्गवाचक हैं) और श्रीप्रसूनक ये सब 'लौंग' के संस्कृत नाम हैं। लौंग—कटु तथा तिक्त रस युक्त, लघु, नेत्र के लिये हितकर, शीतवीर्य, अग्नि को दीप्त करने वाली, पाचक एवम् रुचिकारक होती है तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, तृषा, वमन, आध्मान, शूल, कास, श्वास, हिचकी एवम् क्षय इन सब रोगों को प्रायः शीघ्र तथा निश्चय दूर करती है॥ ५८-५९॥

लौंग

हि०—लौंग, लौंग, लवंग। **बं०**, **म०**—लवंग। **गु०**—लवींग। **क०**—लवंग कलिका, रूंग। **ते०**—करवप्पु, लवंगमु। **ता०**—किरांबु। **मा०**—लौंग। **फा०**—मेखक। **अ०**—करन्फल, करन्फूल। **अं०**—Cloves (क्लोव्स)। **ले०**—*Caryophyllus aromaticus Linn.* (कॅरियोफालस् एरोमॅटिकस् लिन.); *Eugenia aromatica Kuntze* (यूजेनिया एरोमॅटिका कुंझे); *Syzygium aromaticum (Linn.) Merr. & L. M. Perry* (सिझिजियम् एरोमॅटिकम् (लिन.) मेर. पेरी)। Fam. Myrtaceae (मिर्टेसी)।

इसका वृक्ष मोलुक्का द्वीप में नैसर्गिक रूप से उत्पन्न होता है। झंजिबार तथा पेम्बा में इसकी बहुत खेती की जाती है तथा करीब ९०% लौंग की पूर्ति वहीं से होती है। पेनांग, मेडागास्कर, मॉरिशस् एवं सीलोन आदि स्थानों में भी इसकी खेती की जाती है। भारतवर्ष में दक्षिण भारत में अल्प मात्रा में इसकी खेती का प्रयत्न किया गया है। इसके वृक्ष-प्रायः १२-१३ हाथ ऊँचे और सतेज होते हैं तथा देखने में बहुत सुहावने लगते हैं। काण्ड-इसकी लकड़ी कठोर होती है तथा इस पर धूसर वर्ण की चिकनी छाल होती है। पत्ते-अभिमुख, सवृन्त, ४ इञ्च लम्बे, २ इञ्च चौड़े, लट्वाकार-आयताकार; फलकमूल एव अग्र दोनों पतले एवं लम्बे; पत्रतट अखण्ड किन्तु लहरदार एवं मध्य नाडी के दोनों तरफ अनेक समानान्तर नाडियाँ होती हैं। पत्ते चमकीले हरे रंग के होते हैं तथा मसलने से इनमें सुगन्ध आती है। पुष्प-हलके नीलारुण (Purple) रंग के, ६ मि० मि० लम्बे तथा अत्यन्त तीव्र आह्लादकारक सुगन्ध वाले होते हैं।

इस वृक्ष की सुखी हुई पुष्प कलिकाओं को लौंग कहा जाता है। ये पहले हरी होती हैं। बाद में जब इनका रंग किरमिजी हो जाता है तब इन्हें वृक्षों से तोड़ कर सुखा लिया जाता है। इसी समय इनमें तैल की मात्रा अधिकतम रहती है। लौंग १०-१७.५ मि० मि० लम्बी तथा रक्ताभ बादामी रंग की होती है। इसके नीचे का भाग जो हाइपॅन्थियम् (Hypanthium) से बना होता है वह चौकोर तथा कुछ चपटा होता है तथा नख से दबाने पर उसमें से तैल निकलता है एवं इसके अग्र भाग में दो कोष रहते हैं जिनके अन्दर अक्षलग्न जरायु से लगे हुए अनेक बीजाभव (Ovule) होते हैं। लौंग के ऊपर के भाग में मोटे, नुकीले तथा फैले हुए ४ बाह्यदल होते हैं जिनके बीच में गुम्बजाकृति हलके रंग के, न फैले हुए, पतले तथा अनियतारूढ (Imbricate) ४ अन्तर्दल होते हैं। अन्तर्दलों के अन्दर अनेक अन्दर की तरफ मुड़े हुए पुंकेशर होते हैं तथा एक स्त्री केशर होता है जिसका कुक्षिवृन्त सीधा तथा कड़ा होता है। लौंग में अत्यन्त तीव्र मसालेदार गन्ध होती है तथा इसका स्वाद कटु होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें १५-२०% एक उड़नशील तैल पाया जाता है जिसमें ८५-९२% यूजेनॉल (Eugenol, $C_{10} H_{12} O_2$) रहता है। इसके अतिरिक्त लौंग में टॅनिन् (गॅलोटॅनिक् ॲसिड् १३%) एवं फाइटोस्टेरॉल सदृश एक कॅरियोफाइलीन् (Caryophyllene) नामक गन्धहीन, स्वादरहित, रंगहीन रवेदार पदार्थ पाया जाता है।

लौंग के तेल में फेनॉल के समान यूजेनॉल नामक एक महत्त्व का पदार्थ रहता है। इसके अतिरिक्त तैल में ॲसिटिल् यूजेनॉल (Acetyl eugenol 10%), मेथिल् सॅलिसिलेट (Methyl salicylate , मेथिलॲमिलकीटोन् (Methylamylketone, $C_5 H_{11} C OCH_3$); व्हॅनिलिन् (Vanillin), कॅरियोफाइलीन् (Caryophyllene) तथा फर्फ्यूरॉल् (Furfurol, $C_5 H_4 O_2$) ये पदार्थ पाये जाते हैं। यह तैल ताजी अवस्था में रंगहीन या हलके पीले रंग का होता है लेकिन वह पुराना होने पर या खुला रखने पर गहरे रक्ताभ बादामी रंग का हो जाता है।

गुण और प्रयोग—लौंग सुगन्धि, पाचक, वातानुलोमक, उत्तेजक, अग्निदीपक, उद्वेष्टननिरोधि, कफघ्न, मूत्रजनन, रुचिकर, दुर्गन्धनाशक, श्वेतकणवर्धक, वृष्य एवं कृमिघ्न है। यह स्थानिक वेदनाहर, व्रणरोपक एवं व्रणशोधक है।

इसका उपयोग उदरशूल, आध्मान, अजीर्ण, कास, तृष्णा, वमन, विसूचिका, क्षय तथा सुगन्धि पदार्थ के रूप में मसाले आदि में किया जाता है।

(१) लौंग के फांट (४० में १) को १ से २ तोला की मात्रा में विसूचिका में प्यास की शान्ति के लिये देते हैं। इससे जी मिचलाना भी कम होता है तथा वमन कम हो जाता है। गर्भिणी-वमन में इसके चूर्ण को मधु के साथ चटाया जाता है।

(२) अजीर्ण, आध्मान एवं उदरशूल आदि में इसका फांट या चूर्ण खिलाया जाता है।

(३) गले की सूजन, कुकास, कास, मुख एवं श्वास की दुर्गन्ध तथा जीमिचलाना आदि में लौंग दिये पर भून कर या उसी तरह मुख में रख कर चूसते हैं। इससे मसूड़े मजबूत होते हैं।

(४) प्रतिश्याय एवं मस्तकशूल में लौंग को गरम जल में घिस कर ललाट पर लगाते हैं।

लौंग का तैल—इसके गुण भी लौंग के समान ही होते हैं। इसका उत्सर्ग वृक्क, चर्म, श्वसनसंस्थान, आंत्र तथा यकृत आदि से होता है। चरक-सुश्रुत में इसका उल्लेख नहीं मिलता। सिगरेट के लिये प्रयुक्त तम्बाकू को सुगन्धित करने के लिये जावा, सुमात्रा तथा जापान आदि स्थानों में इसका उपयोग किया जाता है। अनेक औषधों को सुगन्धित करने के लिये तथा विरेचक औषधों के साथ मरोड़ आदि न हो इसलिये इसका उपयोग करते हैं। मच्छर भगाने के लिये सोते समय इसे थोड़ा सा खुले अङ्गों पर लगा देने से मच्छर नहीं काटते। तैलों को सुगन्धित करने के लिये तथा पदार्थ संरक्षण के लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

इसका बाह्य प्रभाव कपूर के सदृश होता है। यह स्थानिक उत्तेजक, त्वग्रागकारक, प्रतिक्षोभक, अल्पवेदनाहर, कृमिघ्न, सड़न को रोकने वाला एवं प्रतिदूषक है।

(१) मिश्री पर डाल कर या गोंद के साथ मिश्रण के रूप में इसको आन्त्रिकशूल तथा आध्मान में खिलाते हैं

(२) क्षयजकास में कफ कम करने के लिये इसको खिलाते हैं।

(३) दन्तशूल में दांत के गढ़े में इसका फाहा रखने से बहुत लाभ होता है। सन्धिपीडा, गृध्रसी, कटिशूल एवं वातनाडीशूल आदि में इसको लगाया जाता है। तिलाओं में इसका प्रयोग किया जाता है।

प्रतिनिधि तथा व्यामिश्रण—बाजार में तैल निकाली हुई लौंग भी बिकती है। इसे नख से दबाने पर तैल नहीं निकलता तथा उसके जल में डालने पर यह तैरती है एवं इसका रंग भी कुछ हलका रहता है। लौंग के चूर्ण में डंठल के टुकड़े का चूर्ण मिला दिया जाता है। लौंग के पक्व फल भी मदरक्लोव्स (Mother cloves) नाम से बिकते हैं लेकिन उनमें तैल बहुत कम रहता है तथा उनके बीज में रहने वाले बड़े स्टार्च के कण से इनकी पहचान की जा सकती है। टूटे हुए पुंकेसर, अन्तर्दल एवं विकसित फूल जिनके पुंकेसर एवं अन्तर्दल निकाल लिये गये हों इनका मिश्रण लौंग के चूर्ण में व्यापारी कर देते हैं। लौंग में १५% से कम तैल नहीं होना चाहिये।

मात्रा—चूर्ण १–२½ रत्ती; तैल १–३ बूंद।

अथ स्थूलैला (बड़ी इलायची) तस्या नामानि गुणाँश्चाह

एला स्थूला च बहुला पृथ्वीका त्रिपुटाऽपि च ॥ ६० ॥
भद्रैला बृहदेला च चन्द्रबाला च निष्कुटिः। स्थूलैला कटुका पाके रसे चानलकृल्लघुः[1] ॥
रूक्षोष्णा श्लेष्मपित्तास्रकण्डूश्वासतृषाऽपहा। हृल्लासविषबस्त्यास्यशिरोरुग्वमिकासनुत् ॥ ६२ ॥

बड़ी इलायची के नाम तथा गुण—एला, स्थूला, बहुला, पृथ्वीका, त्रिपुटा, भद्रैला, बृहदेला, चन्द्रबाला, निष्कुटि तथा स्थूलैला ये सब संस्कृत नाम 'बड़ी इलायची' के हैं। बड़ी इलायची-पाक तथा रस (स्वाद) में कटु होती है एवं अग्निजनक, लघु, रूक्ष और उष्णवीर्य होती है। यह कफ, पित्त, रक्तविकार, कण्डू (खुजली), श्वास, तृषा, हृल्लास (वमन मालूम पड़ना अर्थात् जीमिचलाना), विष एवं बस्ति, मुख तथा शिर सम्बन्धी रोग, वमन तथा खांसी को दूर करने वाली होती है ॥ ६०–६२ ॥

२३ बड़ी इलायची

हि०—बड़ी इलायची, पूर्वी इलायची, लाल इलायची। बं०—बड़ा इलाची। म०—मोठी एलची, मोठे वेलदोडे। गु०—एलचा, मोटी एलची। ते०—पेद्दायेलाकी। ता०—पेरेलम, पेरिय एलके। क०—डोड्डा एलाकी। फा०—हीलकलाँ। अ०—काकुले कुबार, काकुले जंजी। अं०—Nepal or Greater Cardamom (नेपाल या ग्रेटर कार्डमोम्); Amomum (ॲमोमम्)। ले०—*Amomum subulatum Roxb.* (एमोमम् सबुलॅटम् राक्स)। Fam. Zingiberaceae (झिंजिबेरॅसी)।

इसकी खेती नेपाल, बंगाल, सिक्किम तथा आसाम के पहाड़ी मार्गों के पास में गीली भूमि में की जाती है।

इसका क्षुप-आमा हलदी के समान होता है और उसकी जड़ के नीचे कन्द रहता है। पत्रवृन्त–३–४ फुट ऊँचा होता है। पत्ते–१–२ फुट लम्बे, ३–४ इञ्च चौड़े, आयताकार-भालाकार, हरे एवं चिकने होते हैं। फूल–अवृन्तकाण्डज व्यूहों (Spike) में नलिकाकार सफेद रङ्ग के आते हैं। फल–किञ्चित् लम्बाई लिये गोल, १ इञ्च तक लम्बे तथा लाल भूरे रङ्ग के होते हैं। बीज–शर्करायुक्त गाढे गूदे के कारण आपस में चिपके हुए अनेक बीज प्रत्येक कोष में होते हैं।

---

१. 'चानिलकृल्लघुः' इति पाठा० अशुद्धम्।

बड़ी इलायची की बहुत-सी उपजातियाँ भारतवर्ष में पाई जाती हैं जिनमें से (ले०) अमोमम् ॲरोमॅटिकम् राक्स (Amomum aromaticum Roxb.); हिं०, बं०-मोरंग इलायची पूर्वी बंगाल तथा आसाम के आस-पास बहुत उत्पन्न होती है। यह बंगाल कार्डेमोम् (Bengal Cardamom) नाम से भी कही जाती है। हिमालय की तराई में आसाम तथा बंगाल के आर्द्र प्रदेशों में इसकी खेती की जाती है। इसके क्षुप-के २-३ फीट लम्बे काण्ड, राइझोम से एक साथ गुच्छों में निकलते हैं। पुष्प-हलके पीले रंग के अवृन्तकाण्डज व्यूहों में निकलते हैं। फल-अभि-अण्डाकार या लट्वाकार करीब बड़े जायफल के इतने बड़े कुछ खुरदरे तथा ३ हिस्सों में विभक्त होते हैं। बीज-प्रत्येक कोष में अनेक तथा करीब ३ मि० मि० लम्बे होते हैं।

रासायनिक संगठन—बड़ी इलायची में एक हलके पीले रंग का उडनशील तैल पाया जाता है। इस तैल में सिनिओल् (Cineol) नामक पदार्थ बहुत रहता है।

गुण और प्रयोग—यह किंचित् उष्ण, पाचक, सुगन्धि, उत्तेजक एवं वातानुलोमक है। इसके गुण छोटी इलायची के सदृश हैं तथा उसके प्रतिनिधि रूप में इसका व्यवहार किया जाता है। प्राचीन ग्रन्थों में बड़ी एला का बहुत कम प्रयोग किया गया है। इलायची के स्थान में हमेशा छोटी इलायची का ही प्रयोग करना चाहिये जबतक कि विशेष रूप से बड़ी इलायची के लेने का निर्देश न हो। अनेक कड़वी, उत्तेजक तथा विरेचक औषधों के साथ इसका उपयोग किया जाता है। इसके तैल का उपयोग सुगन्ध के लिये करते हैं।

मन्दाग्नि, आध्मान, शूल, अतिसार, यकृतशोथ तथा मूत्रकृच्छ्र में इसका उपयोग किया जाता है।

(१) दाँत तथा मसूढ़ों के विकारों में इसके क्वाथ से कुल्ला कराया जाता है।

(२) पचन संस्थान के कुछ विकारों में जिनमें आन्त्रिक स्राव गाढ़े तथा कम हो जाते हैं इसको ५ र० की मात्रा में खिलाते हैं। इससे पित्त का स्राव ठीक होकर यकृतशोथ कम होता है।

(३) मूत्रल औषध के रूप में अश्मरी में इसको खरबूजे के बीज के साथ खिलाते हैं।

(४) नाडीशूल में २ माशे की मात्रा में इसको किनीन के साथ देने से लाभ होता है।

मात्रा—५-१५ र०।

अथैला (गुजराती इलायची)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

सूक्ष्मोपकुञ्चिका तुत्था कोरङ्गी द्राविडी त्रुटिः। एला सूक्ष्मा कफश्वासकासार्शोमूत्रकृच्छ्रहृत्।
रसे तु कटुका शीता लघ्वी वातहरी मता॥ ६३॥

छोटी इलायची (गुजराती इलायची) के नाम तथा गुण—सूक्ष्मा, उपकुञ्चिका, तुत्था, कोरङ्गी, द्राविडी, त्रुटि तथा सूक्ष्मैला ये सब 'छोटी इलायची' के संस्कृत नाम हैं।

छोटी इलायची—कफ, श्वास, कास, अर्श (बवासीर) और मूत्रकृच्छ्र इन सब रोगों को दूर करने वाली होती है तथा कटु रसयुक्त, शीतवीर्य, लघु एवं वातनाशक होती है॥ ६३॥

२४ छोटी इलायची

हिं०-छोटी इलायची, गुजराती इलायची, चौहरा इलायची, सफेद इलायची। बं०-छोट इलायच। गु०-एलची कागदी, एलची, मलबारी एलची। म०-बारीक वेलदोड़े, एलची। ते०-

एलाकि। ता०-एलाक्के, चिन्न एलं। मा०-छोटी इलायची। क०-एलाक्कि। फा०-हीलबवा, हील, खैरबवा, इलायची खुर्द, हीलउन्सा। अ०-काकुलह सिगार, क्षुश्मीर। अं०-Cardamom Fruit (कार्डेमोम् फ्रूट); Lesser Cardamom (लेसर कार्डेमोम्)। ले०-*Elettaria cardamomum Maton* (इलेट्टेरिआ कार्डेमोमम् मेटन)। Fam. Zingiberaceae झिंजीबेरेसी)।

यह पश्चिम तथा दक्षिण भारत में, कनारा, मैसूर, कुर्ग, वैनाड, ट्रावंकोर तथा कोचीन में आर्द्र पहाड़ी जंगलों में उत्पन्न होती है। सीलोन तथा दक्षिणी प्रायःद्वीप के चाय, कॉफी एवं रबर के बगानों में इसकी खेती की जाती है। बर्मा के जंगलों में भी यह उत्पन्न होती है।

इसका क्षुप-अदरख के क्षुप के समान तथा बहुवर्षायु होता है और इसकी जड़ के नीचे मोटा, मांसल तथा अनुप्रस्थ फैला हुआ राइझोम (भौमिक काण्ड) रहता है। राइझोम से ८-२० की संख्या में सीधे, चिकने, हरे रंग के चमकीले तथा ६-९ फीट ऊँचे काण्ड निकलते रहते हैं जिन पर एकान्तरित पत्र लगे होते हैं। पत्ते-१-२ फुट लम्बे, ३ इञ्च तक चौड़े, आयताकार-भालाकार तथा कोषाकार होते हैं। पुष्पदण्ड-कांड के आधार भाग से १-२ फीट लम्बा पुष्पदण्ड निकला रहता है जो जमीन पर फैला रहता है। पुष्प-पुष्पव्यूहों में तथा किंचित् नील लोहिताभ वर्णयुक्त छोटे-छोटे होते हैं। पंखड़ियों के ओष्ठ श्वेत होते हैं। फल-हलके पीले या हरिताभ पीत रङ्ग के, १-२ से० मि० लम्बे, अण्डाकार, बड़े फल कुछ तिकोने, ३ कोषवाले, अनेक महीन खड़ी धारियों से युक्त सामान्य स्फोटी फल (Capsule) होते हैं जिनका स्फुटन पार्श्विक सन्धियों (Loculicidal) पर होता है। बीज-फलों के अन्दर अनेक छोटेबीज होते हैं जो प्रत्येक कोष में दो-दो कतारों में एवं अक्षलग्न जरायु से लगे हुए एक साथ रहते हैं। यह हलके या गहरे रक्ताभ भूरे रङ्ग के, ४ मि० मि० लम्बे, ३ मि० मि० चौड़े, अनियमित कोण युक्त, कड़े एवं ६-८ आड़ी झुर्रियों (Rugae-रूगी) से युक्त होते हैं। प्रत्येक बीज महीन वर्णहीन आवरण (Aril -ॲरिल्) से युक्त रहता है। इसका स्वाद कुछ कटु तथा शीतल एवं गन्ध मनोहर होती है। इलायची के प्रयोग के समय ही उसके बीजों को निकालना चाहिये। निकाल कर रखे हुए बीज खराब हो जाते हैं।

भेद-(१) मैसूरी इलायची ही अधिकतर बिकती है। यह अण्डाकार, १०-२० मि० मि० लम्बी,हलके क्रीम के रंग की, करीब-करीब चिकनी तथा मजबूत रहती है। यह मलाबारी इलायची की अपेक्षा अधिक टिकाऊ रहती है।

(२) मलबारी इलायची कुछ छोटी, कम चौड़ी, भरी हुई एवं लम्बाई में झुर्रीदार रहती है।

(३) मंगलोरी इलायची, मलबारी इलायची की ही तरह होती है किन्तु यह गोल, बड़ी तथा इसकी सतह खुरदरी होती है।

(४) अलेप्पी इलायची, मलबारी इलायची की ही सदृश किन्तु हरी या हरिताभ पीत रङ्ग की रहती हैं।

रासायनिक संगठन—छोटी इलायची के बीजों में ३-८% एक उड़नशील तैल पाया जाता है जिसमें प्रधान रूप में टर्पीनिन् (Terpinene) एवं टर्पिनिओल् (Terpineol) रहते हैं। इसमें टर्पिनिल् ॲसिटेट (Terpinyl acetate) एवं स्वल्प मात्रा में सीनिओल् (Cineol) भी पाये जाते जाते हैं। उड़नशील तैल के अतिरिक्त बीजों में ३-४% स्टार्च, नाइट्रोजन युक्त गोंद एवं पीत रञ्जक द्रव्य पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—छोटी इलायची दीपन, पाचन, रोचन, मूत्रल, वातानुलोमक, उत्तेजक एवं सुगन्धि है। अन्य सुगन्धि पदार्थों के साथ वातानुलोमक औषधों में तथा विरेचक औषधों के साथ मरोड़ न हो इसलिये इसका उपयोग किया जाता है। पाश्चात्य चिकित्सा में जीरा, दालचीनी

कोचीनेल (इद्रगोप) एवं ग्लीसरीन के साथ छोटी इलायची का बना हुआ मद्यसारीय टिंक्चर औषधों को सुगन्धित एवं रंजित करने के लिये बहुत व्यवहार में लाया जाता है।

छोटी इलायची का उपयोग श्वास, कास, क्षय, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, अजीर्ण, अतिसार, आध्मान एवं उदर शूल में किया जाता है।

(१) पचन नलिका के शिथिलता प्रधान रोगों में तथा दाहयुक्त रोगों में इसका बहुत प्रयोग किया जाता है। आंत्रिक रस की उत्पत्ति कम होती हो तथा पित्त का उचित रूप से स्राव न होता हो ऐसी अवस्थाओं के लिये यह अमूल्य औषध है। वमन तथा हृल्लास में इसका फांट पिलाते हैं। उदर शूल, आध्मान एवं मरोड आदि में इलायची २ ड्राम, धनियां २ ड्राम, दालचीनी ४ ड्राम, मुनक्का १ औंस, रक्त चन्दन २ ड्राम एवं मद्यसार (४५%) १ पांइट इसका टिंक्चर २-८ बूंद देने से बहुत लाभ होता है। केले के अजीर्ण में इलायची का उपयोग किया जाता है। आंव तथा प्रवाहिका मे मक्खन के साथ इसका चूर्ण खिलाया जाता है। यकृत शोथ में ५ र० की मात्रा में इससे बहुत लाभ होता है।

(२) वृक्क के पीडायुक्त विकारों में खरबूजे के बीज के साथ इसे खिलाते हैं। इससे मूत्र की मात्रा बढ़ती है। सोजाक में तथा वाजीकरण के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। मूत्रकृच्छ्र में आंवले के रस के साथ या दही के पानी के साथ इसका चूर्ण लाभदायक होता है।

(३) नेत्र रोगों में इसके सूक्ष्म चूर्ण को बकरी के मूत्र की भावना देकर अञ्जन कराया जाता है।

(४) हृदय की धड़कन में पिप्पलीमूल के साथ इसको घी में मिला कर खिलाते हैं। गुल्म में भी इससे लाभ होता है।

(५) नाडीशूल में १५ र० की मात्रा में छोटी इलायची का चूर्ण थोड़ी सी क्विनीन के साथ मिला कर देने से बहुत लाभ होता है। मस्तिष्क तथा वातनाड़ियों की थकावट में यह लाभदायक होती है।

(६) चक्कर आते हों तो छिलके सहित इसका क्वाथ गुड़ मिला कर पिलाया जाता है।

प्रतिनिधि तथा व्यामिश्रण— लंका से आने वाली एक जंगली छोटी इलायची होती है जो कुछ लम्बी, सिकुड़ी हुई एवं गहरे धूसरित भूरे रंग की होती है। इसके बीजों में करीब ४ झुर्रियां होती हैं। एक अन्य ॲमोमम् केपुलेगा स्प्रेग, बर्कि (Amomum kepulaga Sprague & Burkill) नामक क्षुप से प्राप्त इलायची के बीजों में कपूर की तरह स्वाद रहता है तथा उसमें करीब १४ खण्डित झुर्रियां रहती हैं।

इसमें बूरा लगी हुई, अपक्व, कीड़ों द्वारा खाई हुई एवं फटी हुई इलायची का व्यामिश्रण रहता है।

मात्रा—चूर्ण ५-१५ रत्ती।

अथ त्वक्पत्रम् (तज)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

त्वक्पत्रञ्च वराङ्गं स्याद् भृङ्गं चोचं तथोत्कटम्। त्वचं लघूष्णं कटुकं स्वादु तिक्तञ्च रूक्षकम्॥
पित्तलं कफवातघ्नं कण्डूवामारुचिनाशनम्। हृद्बस्तिरोगवातार्शःकृमिपीनसशुक्रहृत्॥ ६५॥

तज के नाम तथा गुण—त्वक्पत्र, वराङ्ग, भृङ्ग, चोच, उत्कट और त्वच ये सब 'तज' के संस्कृत नाम हैं। तज-लघु, उष्णवीर्य, कटु तथा तिक्त रस युक्त, स्वादिष्ट और रूक्ष होती है एवं

यह पित्त उत्पन्न करने वाली, कफ तथा वात को दूर करने वाली, खुजली, आम, अरुचि, हृद्रोग, बस्तिसम्बन्धी रोग, वात, अर्श, कृमि, पीनस तथा शुक्र का भी नाश करने वाली होती है॥६४-६५॥

तज—दालचीनी का ही एक भेद है। दालचीनी के अनेक जातियों के वृक्ष पाये जाते हैं। लंका से आने वाली दालचीनी पतली छाल वाली होती है जो सबसे अच्छी होती है। इसके वृक्ष को (ले.) सिनेमोमम् झेलॅनिकम् कहते हैं। उसका वर्णन आगे स्वतंत्र किया गया है। एक दालचीनी चीन देश से आती है जिसके वृक्ष को (ले.) सिनेमोमम् कॅशिआ कहा जाता है। इसी के जाति का एक वृक्ष भारतवर्ष में पाया जाता है जिसे (ले.) सिनेमोमम् तमाल कहते हैं। इसी की छाल को कुछ लोग तज कहते हैं तथा इसके पत्तों को तमालपत्र (तेजपत्र) कहते हैं। इसको कहीं-कहीं दालचीनी नाम से ही या असली सिंगापुरी दालचीनी में मिलावट करके बेचते हैं क्योंकि सिंगापुरी दालचीनी बहुत मंहगी होने के कारण बजार में कम आती है। इसके अनेक जाति के वृक्ष होने के कारण भिन्न-भिन्न लेखकों ने दालचीनी, तज तथा तमालपत्र इनके लेटिन नाम अलग-अलग दिये हैं। प्रायः मोटी छाल को तज एवं पतली छाल को दालचीनी कहा जाता है। तेजपत्र और तज एक ही वृक्ष के छाल और पत्र हैं। कुछ इन्हें अलग-अलग वृक्षों के मानते हैं। यहां पर वर्णन **चीनी दालचीनी** का किया जा रहा है। तेजपत्र तथा असली दालचीनी का आगे स्वतंत्र वर्णन किया गया है। कुछ लोग मोटी जाति की तज को **नालुका** नाम से भी बेचते हैं जिसका लेपादि में बहुत व्यवहार किया जाता है।

२५ तज

हि०, गु०, उर्दू—तज। **बं०**—दालचीनी। **म०, उडिया**—दालचीनी। **पं०**—लुरण्डु। **ता०, मल०**—लवंगपत्ते। **अं०**—Cassia cinnamon (कॅशिआ सिनॅमोन्), Chinese cassia (चाइनीज कॅशिआ)। **ले०**—*Cinnamomum cassia, Blume* (सिनॅमोमम् कॅशिआ, ब्लूम)। Fam. Lauraceae (लॉरेसी)।

चीन एवं बर्मा में अवा नामक स्थान में इसकी खेती की जाती है।

इसका **वृक्ष** चिकना तथा सदाहरित होता है। **पत्ते**-आयताकार-भालाकार या भालाकार, पतले ६-८ मि. मि. लम्बे पर्णवृन्त से युक्त, तीन नाडियों से युक्त, फलक मूल की तरफ कुछ संकुचित होते हुये, ३-४ इञ्च लम्बे, लम्बाग्र युक्त, चर्मवत् एवं अस्पष्ट नाडीजाल से युक्त होते हैं। **पुष्प**-छोटे तथा परिपुष्प (Perianth) के बराबर या कुछ अधिक लम्बे तथा पतले पुष्पवृन्त (Pedicle) से युक्त, बहुवर्ध्यक्ष सवृन्तकाण्डज पुष्पव्यूहों में, पत्र के अक्ष में या छोटी शाखाओं के अन्त में रहते हैं। परिपुष्प करीब ३ मि. मि. लम्बे तथा कुछ सिल्क के समान रहते हैं जिनके दल (पंखुडियां) आयताकार भालाकार होते हैं। **फल**-मटर के बराबर, चिकने, अण्डाकार एवं रसदार अष्ठिफल (Drupes) होते हैं। परिपुष्पासन बहुत बढ़ा हुआ नहीं होता तथा वह ६ खण्डों में विभक्त रहता है जिनके अग्र कटे हुये मालूम पड़ते हैं या प्रायः खण्ड पूर्ण रूप में स्थायी रहते हैं। इसके काण्ड की सूखी हुई छाल को **चीनी दालचीनी** कहते हैं। यह २-४० से. मि. लम्बी तथा मुडी होती है। बाहर से यह हलके धूसर भूरे रंग की, करीब-करीब चिकनी तथा कुछ आडी झुर्रियों से युक्त रहती है। अन्दर से यह रक्ताभ भूरे रंग की एवं रेशेदार होती है। इसे तोड़ने से भग्न छोटा तथा असम होता है। इसकी गन्ध मनोहर एवं स्वाद उष्ण, मधुर तथा सुगन्धि रहता है।

रासायनिक संगठन—इसमें ०·८% उड़नशील तैल, ४% राल, १४·६% गोंद युक्त निस्सार (टैनिन सहित), ६४·३% लिगनिन (Lignin) तथा बॅस्सोरिन (Bassorin), १६·३% जल एवं रंजक द्रव्य ये पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—चीनी दालचीनी बहुत ही आल्हादकारक एवं फलप्रद सुगन्धि द्रव्यों में से है। यह उष्ण, आमाशय के लिये उत्तेजक, वातानुलोमक एवं ग्राही है।

यह सार्वदेहिक उत्तेजक की अपेक्षा स्थानिक उत्तेजक है। यद्यपि इसका स्वतंत्र प्रयोग कम किया जाता है तथापि इसके फांट या चूर्ण से हृल्लास दूर होता है तथा आध्मान में लाभ होता है। अतिसार में अन्य ग्राही औषधों के साथ तथा अन्य अनेक मिश्रणों में सहायक द्रव्य के रूप में इसका व्यवहार किया जाता है।

मात्रा—२½—१० र०।

अथ दारुसिता (दालचीनी)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

> त्वक्स्वाद्वी तु तनुत्वक्स्यात्तथा दारुसिता मता ॥ ६६ ॥
> उक्ता दारुसिता स्वाद्वी तिक्ताचनिलपित्तहृत्।
> सुरभिः शुक्रलाबल्या[1] मुखशोषतृषापहा ॥ ६७ ॥

दालचीनी के नाम तथा गुण—त्वक्, स्वाद्वी, किंवा त्वक्स्वाद्वी, तनुत्वक् तथा दारुसिता ये सब 'दालचीनी' के संस्कृत नाम हैं। दालचीनी—स्वादिष्ट, तिक्तरसयुक्त, वातपित्तनाशक, सुगन्धयुक्त, शुक्रजनक, बलकारक, ('वर्ण्या' पाठान्तर में—शरीर के रङ्ग को सुन्दर करने वाली), मुखशोष तथा तृषा को दूर करने वाली होती है ॥ ६६-६७ ॥

२६ दालचीनी

हि०—दालचीनी, दारचीनी। **बं०**—दारुचीनी। **म०**—दालचीनी। **गु०**—तज। **ते०, मल०**—लवंग पत्ते। **ता०**—कन्नलवंग पत्ते। **अ०**—दारसीनी, किर्फा। **फा०**—दारचीनी। **अं०**—Cinnamon Bark (सिनॅमोन् बार्क)। **ले०**—*Cinnamomum Zeylanicum Blume* (सिन्नॅमोमम् झेलॅनिकम्, ब्लूम)। Fam. Lauraceae (लॉरेसी)।

इसके वृक्ष लंका तथा दक्षिणी भारत में पाये जाते हैं। लंका, दक्षिण भारत, मार्टिनिक्यू, कैन्ने, जमइका, ब्राझील तथा सेचिलीस में इसकी खेती की जाती है।

इसका **वृक्ष**—साधारण ऊंचाई का एवं सदा हरित होता है। **छाल**—कुछ मोटी, चिकनी तथा हलके रंग की होती है। छोटी शाखाएं कुछ दबी हुई एवं नये भाग चिकने रहते हैं किन्तु कलिकाएं महीन सिल्क की तरह रहती हैं। **पत्ते**—प्रायः विपरीत, कड़े तथा चर्मवत, ३-८ इञ्च लम्बे, १॥-३ इञ्च चौड़े, लट्वाकार या लट्वाकार-मालाकार, नुकीले अग्रयुक्त, चिकने, ऊपर से चमकीले किन्तु नीचे से कुछ हलके एवं फलकमूल की तरफ तीक्ष्ण या गोलाई लिये हुए होते हैं। नाडियां—३-५ प्रधान नाड़ियां रहती हैं जिनके बीच महीन जालीदार नाडियां रहती हैं। पर्णवृन्त—½-१ इञ्च लंबा तथा ऊपर से चपटा रहता है। **पुष्प**—बहुत एवं प्रायः पत्तों से लंबे सवृन्तकाण्डज पुष्पव्यूहों में जो सिल्क की तरह मृदुरोमश होते हैं। पुष्पदंड (Peduncle) लंबे, प्रायः एक साथ गुच्छों में, चिकने या मृदुरोमश एवं पुष्पवृन्त (Pedicle) लम्बे होते हैं। परिपुष्प ५-६ मि० मि० लंबे; नलिका १ इञ्च लम्बी एवं दल मृदुरोमश, आयताकार या कुछ अभि-लट्वाकार, एवं प्रायः कुण्ठिताग्र रहते हैं। **फल**—१.३-१.७ से० मि० लंबे, आयताकार या लट्वाकार-आयताकार, शुष्क या किंचित मांसल, गहरे बैंगनी रंग के एवं ८ मि० मि० व्यास के संवृद्ध घंटिकाकार परिपुष्प से घिरे हुये रहते हैं।

---

१. वर्ण्या इति पाठा.।

इस वृक्ष के झाड़ियों को काटने के बाद उत्पन्न नवीन प्ररोहों की सूखी हुई अन्दर की छाल को औषध के लिये लिया जाता है। इसे **सीलोनी दालचीनी** कहा जाता है। यह सर्वोत्तम दालचीनी होती है। इसकी एक साथ बंधी हुई लंबी जूड़ियां आती हैं। बाह्य सतह हलके पीताभ भूरे रंग की एवं लंबाई में लहरदार रेखाओं से युक्त तथा प्रायः छोटे दागों या छिद्रों से युक्त होती है। अन्दर से यह गहरे रंग की एवं लम्बाई में हलकी धारियों से युक्त होती है। यह बहुत ही पतली, ०.५ मि० मि० मोटी एवं आसानी से टूटने वाली होती है। इसमें मनोहर गन्ध रहती है तथा इसका स्वाद उष्ण, मधुर एवं सुगन्धि रहता है।

रासायनिक संगठन—सिलोनी दालचीनी में ०.५-१% उड़नशील तैल, टैनिन तथा गोंद ये पदार्थ पाये जाते हैं।

दालचीनी का तैल नया रहने पर हलके पीले रंग का रहता है जो पुराना होने पर रक्ताभ भूरे रंग का हो जाता है। इसमें दालचीनी जैसी ही गन्ध एवं स्वाद रहता है। इस तैल में ६०-७५% सिनॅमॅल्डिहाइड् (Cinnamaldehyde), करीब १०% यूजेनॉल (Eugenol) एवं अल्प मात्रा में मैथिल्-एन्-ॲमिल् कीटोन् (Methyl-n-amyl ketone), पी-साइमीन (p-cymene), एल्-फेलॅन्ड्रीन (l-phellandrene), एल्-ॲल्फा-पिनीन (l-a-pinene), एल्-लिनॅलूल् (l-linalool), क्यूमिक् ॲल्डिहाइड् (Cumic aldehyde), नोनिल् ॲल्डिहाइड् (Nonyl aldehyde), कॅर्योफाइलीन (Caryophylline) एवं ब्यूट्रिक ॲसिड के ईस्टर (Esters of butyric acid) ये पदार्थ पाये जाते हैं।

दालचीनी के पत्तों में भी किञ्चित गहरे रंग का एक उड़नशील तैल पाया जाता है। लेकिन यह तैल दालचीनी के तेल से बिलकुल भिन्न है। इसमें कुछ लौंग जैसी तीव्र गन्ध आती है तथा आमवातादि में इसकी मालिश की जाती है। इसमें ७०-९५% यूजेनॉल रहने के कारण लौंग के तैल सदृश इसका उपयोग किया जा सकता है। दालचीनी के तेल में पत्तों के तेल की मिलावट की जाती है जिसकी पहचान उसमें की बढ़ी हुई यूजेनॉल् की मात्रा एवं घटी हुई सिनॅमिक् ॲल्डिहाइड् की मात्रा से की जा सकती है। इसमें रासायनिक विधि द्वारा निर्मित सिनॅमिक् ॲल्डिहाइड् की मिलावट करते हैं जिसकी पहचान उसमें के क्लोरीन की उपस्थिति, बढ़े हुये विशिष्ट गुरुत्व, भुजायन देशना (Refractive index) एवं ॲल्डिहाइड् से की जा सकती है।

गुण और प्रयोग—दालचीनी उष्ण, सुगन्धि, वातानुलोमक, साधारण ग्राही, दीपन, पाचन, उत्तेजक, गर्भाशय उत्तेजक, स्तम्भन, शोणितास्थापक, श्वेतकणवर्धक, आक्षेपहर एवं कृमिघ्न है। दालचीनी का तेल वातानुलोमक, प्रतिदूषक, उत्तेजक, आर्तवप्रवर्त्तक, वातहर, वेदनाहर, व्रणशोधक एवं व्रणरोपक है।

(१) यह उत्तम दीपन होने के कारण इससे आमाशय रस की वृद्धि होकर अन्न का पाचन ठीक होता है तथा वायु का अनुलोमन होता है। आमाशय के रोगों में इसका बहुत प्रयोग किया जाता है। आध्मान, मरोड़, आमाशयिक शूल एवं वमन में इसके तैल को मिश्री के साथ खिलाते हैं। हृल्लास एवं वमन में इसको चूसने से या इसके क्वाथ से लाभ होता है। अतिसार, पुरानी आंव एवं ग्रहणी आदि में इसके क्वाथ से शौच कम होता है, वायु नहीं होता एवं पचननलिका को बल मिलता है। आन्त्रिक ज्वर (Typhoid) में आन्त्रिक प्रतिदूषक औषध के रूप में अन्य औषधों के साथ इसके तैल को देते हैं। इससे आध्मान नहीं होता।

(२) राजयक्ष्मा दण्डाणु के उपसर्ग में तैल का व्यवहार किया जाता है। सिनॅमिक् एसिड का परिणाम इन जन्तुओं पर होता है। क्षयजव्रण पर इसको लगाते हैं।

(३) गर्भाशय उत्तेजक होने के कारण प्रसूति के समय आवि वृद्धि के लिये पिपरामूल एवं भांग के साथ इसका प्रयोग करते हैं। अत्यार्तव में गर्भाशय की शिथिलता कम करने के लिये अशोक के साथ इसे देते हैं।

(४) रक्तस्राव में इसके क्वाथ से लाभ होता है। फुफ्फुस एवं गर्भाशय से रक्तस्राव में इसका प्रयोग करते हैं।

(५) प्रतिश्याय तथा एन्फ्लुएंजा में इसके तैल को मिश्री के साथ या कॅपसूल में भरकर खिलाते हैं तथा रुमाल पर डाल कर सूंघने को देते हैं।

(६) इसके तैल को दांत के गढे में रखने से दर्द दूर होता है। नाडीशूल एवं जिह्वा के लकवे में इसका प्रयोग किया जाता है। चूसने वाली गोलियों में सुगंध द्रव्य के रूप में इसका उपयोग किया जाता है।

(७) बड़ी मात्रा में दालचीनी का उपयोग कैन्सर में किया गया है। औषध के अतिरिक्त मसालों में इसका बहुत प्रयोग करते हैं। तैल का सुगंध द्रव्य रूप में बहुत व्यवहार करते हैं तथा औषध संरक्षण के रूप में भी कभी-कभी व्यवहार किया जाता है।

मात्रा—चूर्ण २½-१० र०; तैल १-३ बूंद।

अथ पत्रकम्। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

पत्रं तमालपत्रञ्च तथा स्यात्पत्रनामकम्। पत्रकं मधुरं किञ्चित्तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं लघु।
निहन्ति कफवातार्शोहल्लासारुचिपीनसान्॥ ६८॥

तेजपात के नाम तथा गुण—पत्र, तमालपत्र, पत्रनामक (अर्थात् पत्रवाचक सभी शब्द इसके पर्यायवाचक हैं) एवम् पत्रक ये सब 'तेजपात' के संस्कृत नाम हैं। तेजपात-मधुर रस युक्त, किञ्चित् तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, पिच्छिल और लघु होता है एवम् यह कफ, वात, अर्श, हृल्लास (उबकाई), अरुचि तथा पीनस इन सबों को दूर करने वाला होता है॥ ६८॥

२७ तेजपात

हि०-तमालपत्र, पत्रज, तेजपत्ता, तेजपत्र, गुरन्द्रा। **बं०**-तेजपत्र। **म०**-तमालपत्र। **ते०**-आकुपत्री, तालीस पत्री। **ने०**-चेटा सिंकोली। **गु०**-तमालपत्र। **आसा०**-दोपती। **ता०**-कट्टु-करुवपत्तै। **अ०**-साजजेहिन्दी। **ले०**-*Cinnamomum tamala Nees & Eberm* (सिनॅमोमम् तमाल नीज, एबर्म)। Fam. Lauraceae (लॉरेसी)।

इसका वृक्ष हिमालय में ३ से ७ हजार फीट की ऊंचाई पर पाया जाता है। मौतारगढ़ में ये समूहबद्ध होकर बहुत अधिक संख्या में पाये जाते हैं। पूर्वी बंगाल तथा खासिया एवं जैन्तिया पहाड़ियों पर तथा बर्मा में भी पाये जाते हैं।

इसका वृक्ष मध्यमाकार का, करीब २५ फीट ऊंचा, साढ़े चार फीट के घेरे में एवं सुगन्धयुक्त होता है और वह बारहो मास हरा भरा रहता है। छाल-पतली, शिकनदार, खुरदरी, गहरे भूरे रङ्ग की या कृष्णाभ होती है। काट-आधा इञ्च मोटा, गुलावी या ललाई लिये हुये भूरे रंग का और बाहर की ओर श्वेत रेखांकित होता है। पत्ते-प्रायः ५-८ इञ्च लम्बे, २-३ इञ्च चौड़े, लट्वाकार-आयताकार या-भालाकार, नोकदार, चिकने, चर्मवत्, विपरीत या एकान्तर तथा आधार से अग्रतक ३ शिराओं से युक्त एवं ७.५-१३ मि० मि० लम्बे पर्णवृन्त से

युक्त होते हैं। नवीन पत्तियां कुछ-कुछ गुलाबी रंग की रहती हैं। फूल-७.५ मि० मि० लंबे, हलके पीताभरंग के, ५-१५ से० मी० लंबे सवृन्तकाण्डज पुष्पव्यूहों (Panicles) में रहते हैं। परिपुष्प खंड ६, आयताकार, सिल्क की तरह मृदुरोमश जो पुष्पित होने पर मध्य के नीचे से टूट जाते हैं। पूर्ण पुंकेसर ९ रहते हैं। फल-आध इञ्च लंबे, अंडाकार, मांसल एवं काले रंग के रहते हैं। ये फल कुछ बढ़े हुये परिपुष्प नाल पर लगे रहते हैं जिनके परिपुष्प खंड अग्रपर कटे हुए (Truncated) मालूम पड़ते हैं।

इसके सूखे हुए ३ पक्व फल का **काला नागकेशर** नाम से दक्षिण भारत में व्यवहार होता है। अर्श के लिए यदि नागकेशर का प्रयोग करना हो तो इसका प्रयोग अधिक उचित मालूम होता है क्योंकि तमाल पत्र के शास्त्रीय गुणों में अर्श का उल्लेख मिलता है।

इसकी छाल को **हि०**-तज, **बं**-नालुका तथा **अ०**-सलीखा कहते हैं। यही **भारतीय दालचीनी है** जिसको सिलोनी दालचीनी के स्थान पर या मिलावट के रूप में उपयोग में लाते हैं। इसी के पत्ते तेजपात या तमालपत्र नामसे अधिकतर बेचे जाते हैं। कुछ लोगों के मत से तेजपात तथा तज अलग-अलग वृक्षों के पत्ते तथा छाल हैं। इसकी छाल सिलोनी दालचीनी की अपेक्षा मोटी, तेजी में कम तथा जल के साथ पीसने से पिच्छिलता युक्त हो जाती है। नवीन मत से सिलोनी तथा चीनी दालचीनी के गुण पहले लिखे जा चुके हैं तथा भारतीय के गुणों में नवीन दृष्टि से कोई विशेष अन्तर न होने के कारण इनको अलग नहीं लिखा है।

नोट: - भावप्रकाशकार त्वक्पत्र (तज) के गुणों में 'पित्तलं' तथा 'शुक्रहृत्' लिखते हैं। दारुसिता (सिलोनी दालचीनी) के गुणों में 'पित्तहृत्' एवं 'शुक्रला' लिखते हैं। दारुसिता के अन्य नाम 'स्वाद्वी', 'तनुत्वक्' लिखे हैं जिससे दारुसिता यह सिलोनी दालचीनी होगी ऐसा लगता है। इस दृष्टि से सिलोनी तथा भारतीय दालचीनी के गुण भावप्रकाशकार के मत से बिलकुल अलग हैं। भावप्रकाशोक्त तीसरे द्रव्य पत्रक (तेजपात) के गुण त्वक्पत्र से मिलते-जुलते हैं। इससे ऐसा मालूम होता है कि त्वक्पत्र (तज, भारतीय दालचीनी) के वृक्ष के पत्ते ही तेजपत्र हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एक प्रकार का लौंग के समान गन्ध वाला उड़नशील तैल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—तेजपत्र उष्ण, लघु, वातहर, दीपन, स्वेदजनन, मूत्रजनन तथा उत्तेजक है। इसका प्रयोग कफ, वात, अर्श, हृल्लास, अरुचि एवं पीनस में किया जाता है। कुपचन, उदरस्थवायु, उदरशूल एवं अतिसार आदि पचननलिका के रोगों में, सब तरह के कफविकारों में एवं गर्भाशय की शिथिलता में इसका उपयोग करते हैं। गर्भाशय की शिथिलता दूर होकर गर्भाधान होने के लिये तथा गर्भस्राव न हो इसलिये इसका प्रयोग करते हैं। यह वातहर होने के कारण बच्चों के सभी प्रकार के रोगों में एवं आमवात में इसको खिलाते हैं।

मात्रा—१-४ माशा।

अथ नागकेशरः। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

नागपुष्पः स्मृतो नागः केशरो नागकेशरः। चाम्पेयो नागकिञ्जल्कः कथितः काञ्चनाह्वयः॥

नागकेशर के नाम तथा गुण—नागपुष्प, नाग, केशर, नागकेशर, चाम्पेय, नागकिञ्जल्क तथा काञ्चनाह्वय (काञ्चन के वाचक सभी शब्द इसके पर्यायवाची हैं) ये सब पुंलिंगी शब्द 'नागकेशर' वृक्षवाची हैं॥ ६९॥

&तत्रयं पुष्पे तु क्लीबे ॥ ६९ ॥

किन्तु यहाँ पर यह भी समझना चाहिये कि यदि उक्त सभी शब्द नपुंसकलिङ्गी हों तो 'नागकेसर के पुष्प' को कहने वाले होते हैं ॥ ६९ ॥

नागपुष्पं कषायोष्णं रूक्षं लघ्वामपाचनम् ॥ ७० ॥
ज्वरकण्डूतृषास्वेदच्छर्दिहृल्लासनाशनम् । दौर्गन्ध्यकुष्ठवीसर्पकफपित्तविषापहम् ॥ ७१ ॥

नागकेशर (नागकेशर का फूल)—कषायरसयुक्त, उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु तथा आम को पचाने वाला होता है एवं यह ज्वर, खुजली, तृषा, पसीना, वमन, हृल्लास, दुर्गन्ध, कुष्ठ, विसर्प, कफ, पित्त और विष को दूर करने वाला होता है ॥ ७०-७१ ॥

२८ नागकेसर (१)

हि०–नागकेसर, नागेसर, पीला नागकेशर, नागचम्पा । **बं०**–नागेश्वर । **म०**–नागकेसर, नागचांफा (वृक्ष) । **गु०**–पीळु नागकेसर । **क०**–नागसम्पिगे । **ते०**–नागकेसरमु । **ता०**–चेरू नगपू । **अ०**–मिस्कुरुम्मान । **फा०**–नारेमुश्क । **अं०**–Cobra's Saffron (कोबराज सॅफ्रॉन) । **ले०**–*Mesua ferrea Linn.* (मेसुआ फेरिआ लिन) । Fam. Guttiferae (गटिफेरी) ।

यह पूर्वी हिमालय, आसाम, ब्रह्मा, दक्षिण हिन्दुस्तान और पूर्व बंगाल के पहाड़ों पर पाया जाता है । इसको बगीचों में भी लगाया जा सकता है ।

इसका छोटा सुन्दर **वृक्ष** होता है और वह सदा हराभरा रहता है । **स्तम्भ**–सीधा, छाल–चिकनी और राख के रङ्ग की होती है । **पत्ते**–विपरीत, ३ से ५ इञ्च तक लम्बे तथा १-१॥ इञ्च चौड़े, आयताकार-भालाकार एवं तीक्ष्णाग्र युक्त होते हैं । इनका ऊपरी पृष्ठ चमकीला और नीचे का श्वेताभ तथा रज से आवृत होता है । शिराएँ सघन और स्पष्ट होती हैं । नये पत्ते लाल रंग के होते हैं । **फूल**–१ से ३ इञ्च के घेरे में सफेद रङ्ग के सुगन्धयुक्त वसन्त ऋतु में आते हैं । इनमें अन्तर्दल चार होते हैं । इन्हीं फूलों के भीतर के पीले केसरिया रंग के नरकेसर के गुच्छ को **नागकेसर** कहते हैं । यही असली (पीला) नागकेशर है जिसका औषध में व्यवहार करना चाहिये । **फल**–एक इञ्च से बड़े, अंडाकार तथा कुछ नुकीले एवं प्रवृद्ध बाह्यदल से घिरे हुये होते हैं । एक-एक फल से १ से ४ तक चिकने, कोणयुक्त एवं भूरे रंग के बीज निकलते हैं ।

नोट—नागकेसर के सम्बन्ध में लोगों में भ्रम है । अधिकांश विद्वानों ने उपर्युक्त मेसुआ फेरिआ के पुष्पों के नरकेसर गुच्छ को नागकेसर माना है जिसके गुण एवं प्रयोग यहां दिये गये हैं । इसी वर्ग के दक्षिण की तरफ होने वाले वृक्ष ओकोकार्पस् लॉंगीफोलिअस् (Ochrocarpus longifolius) की पुष्प-कलिकाओं को लाल **नागकेशर** के नाम से बेचा जाता है । इसी प्रकार **काला नागकेशर** के नाम से भारतीय या चीनी दालचीनी के फल बेचे जाते हैं जिसके गुण दालचीनी के समान ही होते हैं । एक बात ध्यान देने की यह है कि नागकेसर के शास्त्रीय गुणों में अर्श का उल्लेख नहीं है । चरक में तथा व्यवहार में रक्तार्श के लिये इसका प्रयोग मिलता है । तज के गुणों में अर्श का उल्लेख है तथा उसके फल का उपयोग काला नागकेशर नाम से व्यवहार में कहीं-कहीं आता है । मेसुआ फेरिया के गुणादि के पश्चात् ओकोकार्पस् लॉंगीफोलिअस् का वर्णन किया गया है ।

रासायनिक संगठन—इसके फलों में एक तैलीय राल रहती है जिससे सुगंधित, हल्के पीले रंग का एक उड़नशील तैल प्राप्त होता है । कठोर फलभित्ति में टॅनिन रहता है । बीजों में एक स्थिर तैल पाया जाता है । राल मद्यसार में कम घुलती है लेकिन बेन्झॉल में संपूर्णतया घुलती है । इसके अतिरिक्त इसमें दो कड़वे पदार्थ भी पाये जाते हैं ।

गुण और प्रयोग—नागकेसर, संग्राही, गर्भ स्थापक, किंचित् उष्ण, रक्तसंग्राहक, आमपाचक एवं दीपक है । इसकी छाल तथा मूल तिक्त एवं सुगन्धि हैं । इसकी छाल कुछ संग्राही होती है । इसके कच्चे फल सुगंधि, कटु तथा विरेचक होते हैं ।

(१) रक्तार्श में मक्खन तथा मिश्री के साथ इसे खिलाने से रक्त गिरना बन्द हो जाता है । शतधौत घृत में मिलाकर इसमें लेप भी किया जाता है ।

(२) गुद द्वार की जलन, रक्तातिसार, वमन, हिक्का, तृष्णा, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर एवं अतिस्वेद आदि में नागकेसर का प्रयोग करते हैं ।

(३) बहुत कफयुक्त खांसी में इसे देते हैं ।

(४) अतिस्वेद में इसका लेप या इसके सूक्ष्म चूर्ण का भी बाह्य प्रयोग किया जाता है ।

(५) इसकी छाल एवं मूल का क्वाथ खांसी एवं आमाशय प्रक्षोभ (Gastritis) में दिया जाता है ।

(६) तीव्र प्रतिश्याय में इसके पत्तों का उपनाह सर पर लगाते हैं ।

(७) इसके बीजों का तैल शरीर की पीड़ा, जोड़ों में दर्द तथा खुजली (पामा) एवं अन्य चर्मरोगों में लगाया जाता है ।

(८) इसके पत्ते तथा फूलों का उपयोग बिच्छू एवं सर्पदंश में किया जाता है ।

(९) हाथ-पैरों की जलन में नागकेशर को शतधौत घृत में मिलाकर लगाने से जलन दूर होती है ।

मात्रा– ४ र० से १ माशा ।

लाल नागकेशर (२)

सं०–सुरपुन्नाग, नमेरु, सुरपर्णिका । **हि०**–लाल नागकेशर । **म०**–सुरंगी (वृक्ष), गोडी उंडी (फल), तांबडे नागकेशर । **गु०**–रातु नागकेशर । **अं०**–Alexandrian Laurel (ॲलेक्झॅन्ड्रियन् लॉरेल) । **ले०**–*Ochrocarpus longifolius Benth. & Hook. f.* (ओक्रोकार्पस् लॉंगिफोलिअस् बेन्थ, हुक्) । Fam. Guttiferae (गटिफेरी) ।

यह पश्चिम प्रायद्वीप के जंगलों में कनारा से कोंकण तक पाया जाता है । उत्तरी सरकार में यह लगाया हुआ मिलता है ।

इसका **वृक्ष** साधारण ऊँचा तथा सदाहरित होता है । **पत्ते**–५-८ इञ्च लम्बे, १॥-२॥ इञ्च चौड़े, आयताकार, मोटे, चर्मवत् एवं सुन्दर शिराजाल से युक्त होते हैं । **पुष्प**–अनेक, ४ अन्तर्दल वाले, लाल रेखांकित, श्वेत रंग के, गुच्छों में आते हैं । फल–१ इञ्च लंबे, अण्डाकार, नुकीले तथा एक बीज से युक्त होते हैं । फलों के गूदों को लोग खाते हैं । सूखी हुई पुष्पकलिकाओं को लाल नागकेशर कहा जाता है । यह गोल, नुकीले, नारंगरक्त रंग के तथा करीब ⅓ इञ्च लम्बे पुष्पवृन्त से युक्त होते हैं ।

गुण और प्रयोग—इसका उपयोग असली नागकेशर (मेसुआ फेरिआ) के स्थान पर किया जाता है । गुणों में उसके समान होते हुए भी यह कुछ न्यून गुण वाला है । इसके पुष्पों का अर्क निकालकर ज्वर में रोगी के स्नान के लिये प्रयोग करते हैं । इससे रोगी को आह्लाद मालूम होता

है। यह उत्तेजक, सुगंधि, ग्राही, कड़ुवा एवं दीपन है। अत्यधिक प्यास, आमाशयिक प्रक्षोभ, अर्श, कुपचन तथा अतिसार में इसका प्रयोग करते हैं।

मात्रा—१-२ माशा।

नोट—कुछ लोग इसी वर्ग के पुन्नाग वृक्ष की कलिकाओं का भी उपयोग नागकेशर के नाम से करते हैं। इसे ले०-*Calophyllum inophyllum Linn.* (कॅलोफाइलम् आइनोफाइलम् लिन); हि०-सुलतानचंपा; म०-उंडी, उंडल कहते हैं। इसका बहुत सुन्दर वृक्ष दक्षिण भारत के समुद्री किनारे पर तथा अन्य स्थानों पर लगाया हुआ मिलता है। पत्ते-वड़ के पत्र जैसे लम्बगोल ४ से ६ इञ्च लम्बे तथा २ से ४ इञ्च चौड़े होते हैं। पुष्प-सफेद रंग के चार दल वाले और सुगंधित होते हैं। फल-गोल, १ से १½ इञ्च लम्बे, चिकने तथा पीले रंग के आते हैं। इसके बीजों से तैल निकालते हैं, जिसे सर्पन का तैल कहते हैं।

पुन्नाग-यह मधुर, शीत सुगन्धि और पित्तनाशक है। इसका तैल पुराने संधिवात में मालिश करते हैं। खुजली तथा सर की फुन्सियों में तैल लगाते हैं। सोजाक में इस तैल को खिलाते हैं।

अथ त्रिजातकं चातुर्जातकं च। तयोर्लक्षणं गुणाँश्चाह

त्वगेलापत्रकैस्तुल्यैस्त्रिसुगन्धि त्रिजातकम्। नागकेशरसंयुक्तं चातुर्जातकमुच्यते ॥ ७२ ॥
तद् द्वयं रोचनं रूक्षं तीक्ष्णोष्णं मुखगन्धहृत्। लघुपित्ताग्निकृद्वर्ण्यं कफवातविषापहम् ॥७३॥

'त्रिजातक' तथा 'चातुर्जातक' बोधक द्रव्य तथा उनके एकत्र गुण—दालचीनी, इलायची और तेजपात इन्हीं तीनों द्रव्यों का समभाग में योग होने से उसे 'त्रिसुगन्धि' या 'त्रिजातक' कहते हैं और यदि उन्हीं द्रव्यों में समभाग से 'नागकेशर' भी मिला दी जाय तो उसे 'चातुर्जातक' कहते हैं। त्रिजातक तथा चातुर्जातक-रुचिकारक, रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, मुख की दुर्गन्ध को दूर करने वाले, लघु, पित्त तथा अग्निवर्धक, वर्ण्य (शरीर के रङ्ग को उत्तम करने वाले), कफ, वात तथा विष को नष्ट करने वाले होते हैं ॥ ७२-७३ ॥

अथ कुङ्कुमम् (केशर)। तस्य नामानि सलक्षणभेदान् गुणाँश्चाह

कुङ्कुमं घुसृणं रक्तं काश्मीरं पीतकं वरम्। संकोचं पिशुनं धीरं बाह्लीकं शोणिताभिधम् ॥
काश्मीरदेशजे क्षेत्रे कुङ्कुमं यद्भवेद्धि तत्। सूक्ष्मकेशरमारक्तं पद्मगन्धि तदुत्तमम् ॥७५॥
बाह्लीकदेशसञ्जातं कुङ्कुमं पाण्डुरं स्मृतम्। केतकीगन्धयुक्तं तन्मध्यमं सूक्ष्मकेशरम् ॥७६॥
कुङ्कुमं पारसीकं यन्मधुगन्धि तदीरितम्। ईषत्पाण्डुरवर्णं तदधमं स्थूलकेशरम् ॥७७॥
कुङ्कुमं कटुकं स्निग्धं शिरोरुग्व्रणजन्तुजित्। तिक्तं वमिहरं वर्ण्यं व्यङ्गदोषत्रयापहम् ॥७८॥

केशर के नाम—कुङ्कुम, घुसृण, रक्त, काश्मीर, पीतक, वर, सङ्कोच, पिशुन, धीर, बाह्लीक और शोणिताभिध (रक्तवाची सभी शब्द) ये सब केशर के संस्कृत नाम हैं।

देश भेद से केशर की उत्तमता एवं उसके लक्षण—काश्मीर देश के खेतों में जो 'केशर' उत्पन्न होता है वह सूक्ष्म केशरों से युक्त, कुछ रक्त वर्ण वाला तथा कमल की समान सुन्दर गन्ध से युक्त होता है एवं वह 'उत्तम' माना जाता है। जो 'बाह्लीक' (बुखारा) देश में उत्पन्न होने वाला 'केशर' होता है वह पाण्डुर (शुक्ल तथा पीतवर्ण युक्त) वर्ण का एवं 'केतकी' के समान गंध

से युक्त होता है। यह सूक्ष्म केशरों से युक्त होता है और 'मध्यम' माना जाता है। जो 'पारसीक' (फारस) देश में उत्पन्न होने वाला केशर होता है वह मधु (शहद) के समान गन्ध वाला, कुछ पाण्डुर वर्णयुक्त तथा मोटे केशरों से युक्त होता है और वह 'अधम' माना जाता है।

केशर—कटु तथा तिक्त रसयुक्त, स्निग्ध और वर्ण्य (शरीर के वर्ण के लिये हितकर) होता है तथा यह शिरोरोग, व्रण, कृमि, वमन, व्यङ्ग (झाई) तथा त्रिदोष इन सबों को नष्ट करने वाला होता है ॥ ७४-७८ ॥

२९ केशर

हि०-केशर। म०, गु०-केशर। बं०-जाफरान। क०-कुङ्कुम। ते०-कुङ्कुम पुव्व। ता०-कुङ्कुमपु। फा०-करकीमास। अ०-जाफरान। अं०-Saffron (सॅफ्रॉन)।

ले०-*Crocus sativus Linn.* (क्रोकस् सेटाइवस् लिन.)। Fam. Iridaceae (इरिडॅसी)।

केशर का नैसर्गिक उत्पत्ति स्थान दक्षिण योरप है। यह स्पेन से बम्बई में बहुत आता है और भारतवर्ष के बाजारों में बिकता है। ईरान, स्पेन, फ्रान्स, इटली, ग्रीस, तुर्की, चीन और फारस आदि देशों में इसकी खेती की जाती है। हमारे देश के काश्मीर में पम्पूर (४३०० फीट) नामक स्थान पर तथा जम्मू के किश्तवाड़ में इसकी खेती की जाती है। यहाँ का उत्पन्न हुआ केसर भावप्रकाशकार की दृष्टि से सर्वोत्तम समझा गया है।

इसका बहुवर्षायु क्षुप १॥ फुट तक ऊँचा होता है। जड़ के नीचे प्याज के समान गांठदार कन्द (Corm) होता है। इसमें कांड नहीं होता। पत्ते-घास के समान लम्बे, पतले, पनालीदार और जड़ ही से निकले हुए मूलपत्र (Radicle leaf) रहते हैं। इनके किनारे पीछे की तरफ मुड़े हुए होते हैं। आश्विन कार्तिक में इस पर फूल आते हैं। फूल-एकाकी या गुच्छों में, नीललोहित वर्ण के, पत्तों के साथ ही शरदऋतु में आते हैं। नीचे के पत्रकोश (Spathe), पुष्पध्वज (Scape) को घेरे रहते हैं तथा दो हिस्सों में विभक्त रहते हैं। परिपुष्प (Perianth) निवापसम (Funnel-shaped), नाल (Tube) पतला, दल ६ खण्डों में विभक्त दो श्रेणियों में एवं नाल का कण्ठ श्मश्रुल (बालों से युक्त) रहता है। कण्ठ पर ३ पुंकेशर (Stamen) रहते हैं एवं परागाशय (Anther) पीतवर्ण का रहता है। कुक्षिवृन्त (Style) परिपुष्प के बाहर निकले हुए (Exserted), नारंगरक्त रंग के, मुद्गराकार, अखण्ड या खण्डित रहते हैं। फल-सामान्य स्फोटी फल (Capsule) आयताकार एवं बीज गोल होते हैं।

इन फूलों के स्त्री केशर के सूखे हुए अग्रभाग जिन्हें कुक्षि (Stigma) कहा जाता है उन्हें ही केशर कहते हैं। कुक्षि (Stigma) ३, कुक्षिवृन्त के ऊपर लगी हुई या अलग, करीब १ इञ्च लम्बी गहरे लाल से लेकर हलके रक्ताभ भूरे रंग की एवं सामान्य दन्तुर या लहरदार होती है। कुक्षिवृन्त (Styles) करीब १ से. मि. लम्बे, करीब-करीब रम्भाकार, ठोस, पीताभ भूरे से लेकर पीताभ नारंगी रंग के रहते हैं। इसमें विशिष्ट प्रकार की तीव्र सुगन्ध रहती है तथा इसका स्वाद सुगन्धि तथा कड़वापन लिये हुए होता है।

केशर के पौधे को बीज या उसके कन्द द्वारा लगाया जा सकता है। साधारणतः १ एकड़ भूमि से करीब ५०-५५ पौंड ताजा केशर प्राप्त होता है जो सूखने पर १०-११ पौंड रह जाता है। इसकी खेती तथा माल के तैयार करने में बहुत सावधानी की आवश्यकता रहती है। सूर्योदय के पहले जब फूल लगभग खिलने को होते हैं तब उनको तोड़ लेते हैं। उसमें से केशर को तोड़कर चलनी में डालकर मन्द आंच पर सुखाते हैं। केशर को हमेशा प्रकाशहीन बन्द पात्र में रखना चाहिये।

रासायनिक संगठन—केशर में एक स्नेहीय तैल ८-१३%, करीब १% उड़नशील तैल, एक रंगहीन कडुआ पिक्रोक्रोसिन (Picrocrocin) नामक ग्लाइकोसाइड् एवं क्रोसेटिन (Crocetin) नामक रंजक द्रव्य का क्रोसिन (Crocin) ग्लाइकोसाइड् ये पदार्थ पाये जाते हैं। क्रोसेटिन नामक रवेदार रंजक द्रव्य ३ प्रकार का होता है। अॅल्फा क्रोसेटिन (a-crocetin, C_{24} H_{28} O_5) ०·७%, बीटा क्रोसेटिन (B-crocetin, C_{25} H_{30} O_5) ०·७%, एवं गामा क्रोसेटिन (V-crocetin, C_{26} H_{32} O_5) ०·३% रहता है। क्रोसिन (Crocin) यह लाल रंग का चूर्ण होता है जो जल तथा मद्यसार में आसानी से घुल जाता है। संकेन्द्रित गन्धक के तेजाब में इसका गहरे नीले रंग का घोल बनता है जो रखने पर नील लोहित, रक्त तथा अन्त में भूरे रंग का हो जाता है। शोरे के तेजाब से यह हरे रंग का हो जाता है।

गुण और प्रयोग—केशर उष्ण, सुगन्धि, दीपन, पाचन, उद्वेष्टन-निरोधि, मनःप्रसादकर, रुचिकर, वर्ण्य, बल्य, कामोत्तेजक, विषघ्न, आर्तवजनक, मूत्रल एवं अल्प वेदनाहर है। आमाशयोत्तेजक एवं उद्वेष्टननिरोधि गुणों के लिये यह बहुत प्रसिद्ध है तथा यह श्रेष्ठ उत्तेजक एवं वृष्य औषध मानी जाती है। यह वातनाड़ियों के लिये शामक है। सुगन्धित रञ्जक द्रव्य के रूप में इसका बहुत व्यवहार किया जाता है। इसके उड़नशील तैल में अन्य उड़नशील तैलों की तरह ही गुण होते हैं।

इसका उपयोग अतिसार, शूल, मूत्रकृच्छ्र, अनार्तव, पीडितार्तव, कास, श्वास, कण्ठरोग, यकृत-विकार, आमवात, नाड़ीशूल एवं शिरोरोगों में किया जाता है।

(१) पीडितार्तव में इसको पूर्ण मात्रा में देने से शूल कम होता है तथा आर्तव स्राव ठीक होने लगता है। गर्भाशय के पीड़ा युक्त विकारों में इसकी गोली योनि में धारण कराई जाती है। स्तनों पर इसके लेप से दूध बढ़ता है।

(२) मूत्राघात में १ तोला केशर मधुयुक्त जल में रात में भिगों कर सुबह उसे पिलाने से लाभ होता है। (सु. उ. अ. ५८-३०)

(३) बच्चों की सरदी में गरम दूध में केशर खिलाते हैं, तथा ललाट एवं छाती पर लगाते हैं।

(४) केसर तथा शर्करा को घृत में भून कर उसके नस्य से सूर्यावर्त एवं अर्धावभेदक आदि में लाभ होता है। शिरःशूल में इसे मस्तक पर लगाते हैं।

(५) मसूरिका तथा रोमान्तिका आदि में दाने बाहर निकालने के लिये इसे देते हैं।

(६) बच्चों के अतिसार, आध्मान तथा उदर शूल में इसे खिलाते हैं तथा पेट पर लगाते हैं।

अमाप तथा परीक्षा—केशर बहुमूल्य होने के कारण इसमें अनेक चीजों की मिलावट रहती है, इसलिये इसको अच्छी तरह परीक्षा कर खरीदना चाहिये। कुछ परीक्षाएँ यहाँ दी जा रही हैं। स्पिरिट में केशर डालने पर यद्यपि स्पिरिट रंगीन हो जाता है तथापि केशर के तन्तु अपने प्राकृतिक रंग में ही रहते हैं। इसे गन्धक के तेजाब (Sulphuric acid) में डालने से गहरा नीला रंग उत्पन्न होता है। जल में घुलनशील पदार्थ ५८% से कम न हों। मद्यसार (९०%) में घुलनशील पदार्थ ६०% से कम न हों। राख ७·५०% से अधिक न हो। १००° उष्णता पर सुखाने से १४% से अधिक वजन कम न हों। कुक्षिवृन्त (Styles) १०% से अधिक न हों। इतर ऑर्गेनिक् द्रव्य २% से अधिक न हों। रंग की तीव्रता-इसको ०·०२ ग्राम की मात्रा में १०० सी. सी. जल में मिलाने पर पीत वर्ण का घोल बनता है जिसके रंग की तीव्रता ०·१%

पोटॅशियम् डाइक्रोमेट (Potassium dichromate) के घोल के समान या इससे कम नहीं होनी चाहिये।

व्यामिश्रण—इसमें केशर पुष्प के ही कुक्षिवृन्त, पुंकेशर, आभ्यन्तर कोश एवं गेंदा (कॅलेण्डुला ऑफिसिनेलिस्) के मैथिल् आरेञ्ज के द्वारा रंगे हुये पुष्प, कुसुम पुष्प के केशर तथा एक बीज पत्रीय पुष्प आदि मिलाये रहते हैं। कभी-कभी सत्त्व निकाला हुआ केसर रंग करके बेचा जाता है। केसर का वजन बढ़ाने के लिये जल, तैल, शर्करा, ग्लूकोज, ग्लिसरीन तथा पोटॅशियम् या अमोनियम् नाइट्रेट के घोल आदि का उपयोग करते हैं।

मात्रा—२-४ र०।

अथ गोरोचना। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

गोरोचना तु मङ्गल्या वन्द्या गौरी च रोचना। गोरोचना हिमा तिक्ता वश्या मङ्गलकान्तिदा। विषालक्ष्मीग्रहोन्मादगर्भस्रावक्षतासुहृत् ॥ ७९ ॥

गोरोचन के नाम तथा गुण—गोरोचना, मङ्गल्या, वन्द्या, गौरी और रोचना ये सब गोरोचन के संस्कृत नाम हैं। **गोरोचन**—शीतवीर्य, तिक्तरस युक्त, वश्य (वशीकारक), मङ्गल तथा कान्ति को बढ़ाने वाला एवं विष, अलक्ष्मी (दरिद्रता), ग्रहबाधा, उन्माद (पागलपन), गर्भस्राव तथा क्षतज रक्तस्राव को दूर करने वाला होता है ॥ ७९ ॥

३० गोलोचन

हि०-गोलोचन, गोरोचन। बं०-गोरोचना। म०-गोरोचन। गु०-गोरुचन्दन, गोरोचन। ते०-गोरोचनमु। ता०-गोरोचनम्। फा०-संगगाव। अ०-हजरुल् बकर। अं०-Gall-stone (गॉल-स्टोन); Serpent stone (सर्पेण्ट स्टोन)। ले०-*Bezoar* (बेझोर)।

गाय अथवा बैल के पित्ताशय में से अश्मरी के समान सुपारी से लेकर नींबू तक का गोल अथवा कुछ गोलाई लिये त्रिकोणाकार जो पदार्थ निकलता है उसको गोरोचन कहते हैं। यह ऊपर से कुछ मटमैला पीला और तोड़ने पर भीतर से पर्तदार पीले रंग का होता है। यह कठोर नहीं, कुछ मुलायम होता है। किसी किसी का रङ्ग नारंगी या लाली युक्त होता है। इसी प्रकार किसी किसी बकरी और ऊँट के पेट से भी कंकड़ी निकलती है, 'कुछ ग्रन्थों में गाय के मस्तक का पित्त गोरोचन है' ऐसा उल्लेख मिलता है। हाथी के मस्तक में मिलने वाली गजमुक्ता और सर्प के फण में मिलने वाली मणि के सादृश्य के लिए गो-मस्तक से इसकी उत्पत्ति की परिकल्पना की गई होगी।

इसका स्वाद कुछ कड़वा होता है तथा इसमें कुछ सुगन्ध भी होती है। औषध के अतिरिक्त तंत्र शास्त्र में मोहन तथा वशीकरण के लिये इसका पर्याप्त उपयोग किया जाता है। गोपित्त में कुछ पदार्थों का मिश्रण कर बनाया हुआ नकली गोरोचन भी बिकता है।

गुण और प्रयोग—गोरोचन शीतल, सुगन्धि, मृदु विरेचक, तिक्त, श्वित्रहर, मूत्रल, अश्मरीघ्न, बृंहण, आर्तवजनक एवं विषहर है।

इसका उपयोग उन्माद, अपस्मार, अपतंत्रक, आक्षेप, रोमान्तिका, मसूरिका, कुकास, अतिसार, कफज्वर, कामला, पाण्डु, गर्भस्राव, पित्त की न्यूनता एवं आन्त्रिक विकार आदि में किया जाता है।

(१) अपस्मार में इसको २ माशे की मात्रा में गुलाब जल में घिस कर पिलाने से पुनराक्रमण नहीं होता, ऐसा हकीम मानते हैं। यूनानी में इसका लेप श्वित्र, चेहरे के काले दाग, चर्म रोग तथा नेत्र के जाले में लाभदायक मानते हैं।

(२) मसूरिका आदि में उष्णता कम करने के लिये इसको खिलाया जाता है।

(३) बच्चों के अतिसार, कुकास एवं हरे दस्त आना आदि में इसको खिलाने से लाभ होता है।

मात्रा—१-२ र०।

नोट—पाश्चात्य चिकित्सा में गोपित्त को शुद्ध करके व्यवहार करने की पद्धति है। गोरोचन के स्थान में उसका प्रयोग करना उचित नहीं है। प्रसंगतः उसका भी वर्णन यहाँ किया गया है।

ले०–*Extractum fellis bovini* (एक्स्ट्रैक्टम् फेलिस् बोविनि)। **अं०**–Purified Ox-Gall (प्यूरिफाइड् ऑक्स-गॉल्)। **हिं०**–गौ या बैल का शुद्ध पित्त, जहरमोहरा।

ताजे पित्त को सुखाकर जब चतुर्थांश शेष रहे तो उसमें मद्यसार (९०%) मिलाकर छानकर गोली बनाने लायक हो उतना सुखा लें। इसमें पित्त के लवण तथा रञ्जक पदार्थ पाये जाते हैं। यह गहरे पीताभ हरे रंग का लचीला पदार्थ होता है। इसका स्वाद कडुआ तथा अरुचिकर होता है। यह जल तथा मद्यसार दोनों में घुल जाता है। इसको विशिष्ट आवरण युक्त गोलियों के रूप में भोजन के २ घण्टे पश्चात् प्रयोग करते हैं।

गुण और प्रयोग—यह कड़वा पदार्थ होते हुये भी वानस्पतिक कड़वे पदार्थों के उतना अच्छा दीपन पदार्थ नहीं है। इससे पित्त का स्राव ठीक होने लगता है। जिनमें पित्त का उचित स्राव न होने के कारण अपचन तथा विबन्ध रहता है उनमें इसका उपयोग करते हैं। यह अग्न्याशय के स्नेह पाचक स्रावों को बढ़ाता है तथा स्नेह द्रव्यों के प्रचूषण में सहायक होता है। स्नेह द्रव्यों का प्रचूषण ठीक होने के कारण उसमें घुलने वाले जीवतिक्ति (व्हिटामिन्) 'ए', 'डि' तथा 'के' का भी ठीक प्रचूषण होता है। रक्तस्राव की अवस्था में रक्त को जमाने वाले पदार्थों में से रक्त में प्रोथ्रॉम्बिन् (Prothrombin) के निर्माण के लिये व्हिटामिन् 'के' की बहुत आवश्यकता रहती है। जब मल बहुत कड़ा हो जाता है तब इसको २०-३० ग्रेन की मात्रा में १ या २ औंस जल में घोल कर पिचकारी द्वारा बस्ति के रूप में देते हैं।

मात्रा—५-१५ ग्रेन।

अथ नखं नखी च (गन्धद्रव्यम्) तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

नखं व्याघ्रनखं व्याघ्रायुधं तच्चक्रकारकम् ॥ ८० ॥
नखं स्वल्पं नखी प्रोक्ता हनुर्हट्टविलासिनी । नखद्वयं ग्रहश्लेष्मवातास्रज्वरकुष्ठहृत् ॥ ८१ ॥
लघूष्णं शुक्रलं वर्ण्यं स्वादु व्रणविषापहम् । अलक्ष्मीमुखदौर्गन्ध्यहृत्पाकरसयोः कटु ॥ ८२ ॥

सुगन्धि द्रव्य नख तथा नखी के नाम तथा गुण—नख, व्याघ्रनख, व्याघ्रायुध और चक्रकारक ये सब संस्कृत नाम नख के हैं और दूसरा छोटा नख होता है उसे नखी कहते हैं, उसके संस्कृत नाम—हनु तथा हट्टविलासिनी ये दो हैं। दोनों प्रकार के नख–ग्रहबाधा, कफ, वात, रक्तविकार (किंवा वातरक्त), ज्वर तथा कुष्ठ रोग को दूर करते हैं एवं लघु, उष्णवीर्य, शुक्रजनक, वर्णकारक, स्वादिष्ट, व्रण तथा विषनाशक, एवं अलक्ष्मी (दरिद्रता) तथा मुख की दुर्गन्ध को हरण करने वाले, पाक एवं रस में कटु रसयुक्त होते हैं ॥ ८०-८२ ॥

३१ नख–नखी

हिं०–नख, नखी, छोटा नख। **बं०**–नखी गन्ध द्रव्य, छोट नखी। **म०**–नखला, वाघनख। **ते०**–नखमुचिप्प। **गु०**–नखला, सावजना नख। **क०**–नख, बाघनख। **फा०**–नाखून पर्य्यां। **अ०**–अज़फ़ारुत्तिब, इकलिलुलमुलुक। **अं०**–Land snail (लैंड स्नेल)। **ले०**–*Helix aspera* (हेलिक्स ॲस्पेरा); *Achatina fulica* (ॲचॅटिना फूलिका)।

नख एक सुगन्धि द्रव्य है। यद्यपि इसे नख, व्याघ्रनख आदि नाम दिये गये हैं तथापि यह किसी जानवर का नाखून नहीं है। यह एक प्रकार के सीप की जाति के समुद्री जीव के मुख के ऊपर का आवरण है जो नख सदृश होने के कारण नख कहा जाता है। भावप्रकाशकार ने इनके दो भेद लिखे हैं। बड़े को नख या व्याघ्रनख तथा छोटे को नखी लिखा है। अन्य ग्रन्थों में नखी के आकृति के अनुसार ५ भेद लिखे हैं। बेर के पत्ते के सदृश, कमलदल सदृश, घोड़े के खुर की आकृति के, हाथी के कान के समान आकार वाले तथा सुअर के कान के समान ये पांच प्रकार होते हैं। इनमें से सुअर के कान के समान निषिद्ध माना गया है। कुछ लोगों ने हाथी के कान सदृश और घोड़े के खुर के समान आकृति वाले नख का उपयोग गन्धयोगों में तथा बेर या कमलदल सदृश नख का उपयोग धूपन में बतलाया है।

यह गहरे भूरे रंग का तथा अनेक पटलों से बना हुआ कठोर, अपारदर्शक तथा नख के सदृश होता है। इसके उन्नतोदर पृष्ठ पर परत साफ दिखलाई देते हैं। इसको जलाने से दुर्गन्ध आती है लेकिन तैल के साथ पकाने से तैल सुगन्धित होता है। अन्य ग्रन्थों में इसके शोधन का विधान मिलता है। भैंस के गोबरयुक्त जल, तिन्तिड़ी जल या मृत्तिकायुक्त जल के साथ स्वेदन करके, प्रक्षालन करने के पश्चात् भून कर गुडहरीतकी मिले जल में बुझाते हैं। फिर पीस कर उपयोग में लाते हैं। चरक में प्रायोगिक धूम्रपान की वर्ति के योग में (सू. अ. ५ श्लो. २०), क्षयथुचिकित्सा (चि. अ. १६) में शैलेयकादि तैल और प्रदेह में, महासुगन्धहस्ती नामक अगद के योग में (चि. अ. २३), अमृतादि तैल (चि. अ. २८) तथा वातरक्त चिकित्सा (चि. अ. २९) में शतपुष्पादि तैल के योग में अन्य द्रव्यों के साथ नख का प्रयोग लिखा है। सुश्रुत में एलादिगण में व्याघ्रनख का उल्लेख है। तैलों को सुगन्धित करने के लिये इसका अधिक उपयोग होता है।

अथ बालम् [सुगन्धबाला]। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

बालं ह्रीबेरबर्हिष्ठोदीच्यं केशाम्बुनाम च। बालकं शीतलं रूक्षं लघु दीपनपाचनम् ॥
हृल्लासारुचिवीसर्पहृद्रोगामातिसारजित् ॥ ८३ ॥

सुगन्धबाला के नाम तथा गुण—बाल, ह्रीबेर, बर्हिष्ठ, उदीच्य, केशनाम (केशवाचक सभी शब्द), एवं अम्बुनाम (जलवाची सभी शब्द) तथा बालक ये सब 'सुगन्धबाला' के संस्कृत नाम हैं। सुगन्धबाला–शीतवीर्य, रूक्ष, लघु, अग्निदीपक तथा पाचक होती है और यह हृल्लास (जीमिचलाना), अरुचि, वीसर्प, हृद्रोग, आम तथा अतिसार इन सब रोगों को दूर करने वाली होती है ॥ ८३ ॥

३२ सुगन्धबाला

हिं०–सुगन्धबाला, नेत्रबाला। **बं०**–बाला। **म०**–काला वाला। **गु०**–वालो, कालो वालो। **क०**–बलरकुसी-गिडा। **ते०**–मुत्तुपलागमु, एरांकुटी। **ता०**–पेरामुटिवेर। **ले०**–*Pavonia odorata Willd.* (पॅवोनिया ओडोरेटा विल्ड)। Fam. Malvaceae (माल्वॅसी)।

सुगन्धबाला - पश्चिमोत्तर प्रदेश, सिन्ध, पश्चिम प्रायद्वीप और सिलोन में अधिक उत्पन्न होती है। इसके क्षुप में थोड़ी सी कस्तूरी की सुगन्ध रहती है।

इसका क्षुप-सोधा तथा १॥-३ फीट ऊँचा होता है और समस्त क्षुप पर बारीक रोवें होते हैं। पत्ते-१ से ३ इञ्च लम्बे गोलाकार हृदयाकृति, कंघी के पत्तों के आकार वाले, ३ से ५ भागों में थोड़ी दूर तक विभक्त और ऊपर के पत्ते दन्तुर होते हैं। पत्तों को मसलने से चिपचिपापन मालूम होता है। शाखाओं के अन्त में फूलों के गुच्छे लगते हैं। पुष्पदल-किञ्चित् हलके गुलाबी रङ्ग के होते हैं। फल-अण्डाकृति, छोटे एवं चने बराबर होते हैं। बीज-भूरे रंग के, तैल से युक्त लेकिन गन्धहीन होते हैं। मूल-७-८ इञ्च लम्बे, प्रायः ऐंठे हुए तथा अधिक से अधिक ½ इञ्च मोटे, चिकने, भूरे रंग के तथा अनेक उपमूलों से युक्त रहते हैं। इसमें कस्तूरी के समान सुगन्ध रहती है। औषध में इन्हीं मूलों का व्यवहार किया जाता है।

नोट—बाजार में सुगन्धबाला के नाम से मिलने वाला गांठदार द्रव्य सुगन्धबाला नहीं है। उसे असली तगर मानते हैं। उसका वर्णन पहले किया गया है। कुछ लोगों ने इसके लैटिन नाम में खस का लेटिन नाम दिया है, वह उचित नहीं है। कुछ लोगों ने खस जाति के ही दूसरे तृण का लैटिन नाम सुगन्धबाला के लिए दिया है जिसको कुछ लोग खस का ही पर्याय मानते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें लुआबदार पदार्थ तथा उत्तेजक सुगन्धि द्रव्य है।

गुण और प्रयोग—सुगन्धबाला शीतल, स्नेहन, दीपन, वातानुलोमक, उत्तेजक एवं बल्य है। इसका उपयोग ज्वर, रक्तपित्त, दाह, तृषा, हृल्लास, वमन, अतिसार, व्रणशोथ एवं विसर्प में किया जाता है।

(१) किसी भी प्रकार के ज्वर में षडंग पानीय के रूप में नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, श्वेत चन्दन, सुगन्धबाला एवं सोंठ का क्वाथ देने से ज्वर का दाह एवं प्यास कम हो जाती है।

(२) बेल के साथ इसका उपयोग संग्रहणी में लाभकर होता है। अतिसार में आदी के साथ इसको फाण्ट बना कर पिलाते हैं। बच्चों के अतिसार में चावल के धोवन के साथ मिश्री, मधु तथा सुगन्धबाला देते हैं। वमन, हृल्लास आदि में भी तण्डुलोदक के साथ इसको देते हैं।

(३) रक्तपित्त में चन्दन, मिश्री तथा तण्डुलोदक के साथ इसका प्रयोग किया गया है।

(४) विसर्प में इसके चूर्ण को घृत के साथ लेप करते हैं। श्वित्र में इसकी जली हुई काली राख का लेप लाभदायक माना जाता है।

मात्रा—३-६ माशा।

अथ वीरणम् । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

स्याद्वीरणं वीरतरुर्वीरश्च बहुमूलकम् । वीरणं पाचनं शीतं वान्तिहृल्लघु तिक्तकम् ॥ ८४ ॥
स्तम्भनं ज्वरनुद् भ्रान्तिमदजित्कफपित्तहृत् । तृष्णाऽस्रविषवीसर्पकृच्छ्रदाहव्रणापहम् ॥८५॥

वीरण अर्थात् गांडर घास के नाम तथा गुण—वीरण, वीरतरु, वीर और बहुमूलक ये नाम संस्कृत में वीरण के हैं। वीरण-पाचक, शीतवीर्य, वमन को दूर करने वाला, लघु, तिक्त रसयुक्त एवम् स्तम्भन होता है। यह ज्वर, भ्रमरोग, मदरोग, कफ, पित्त, तृषा, रक्तप्रकोप, विष, वीसर्प, मूत्रकृच्छ्र, दाह और व्रण को दूर करने वाला होता है॥ ८४-८५ ॥

अथोशीरम् । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

वीरणस्य तु मूलं स्यादुशीरं नलदञ्च तत् । अमृणालञ्च सेव्यञ्च समगन्धिकमित्यपि ॥८६॥
उशीरं पाचनं शीतं स्तम्भनं लघु तिक्तकम् ॥ ८७ ॥
मधुरं ज्वरहृद्वान्तिमदनुत्कफपित्तहृत् । तृष्णाऽस्रविषवीसर्पदाहकृच्छ्रव्रणापहम् ॥ ८८ ॥

खस के नाम तथा गुण —'वीरण' नामक घास के जड़ को 'खस' कहते हैं। उसके संस्कृत नाम-उशीर, नलद, अमृणाल, सेव्य और समगन्धिक ये सब हैं। खस-पाचक, शीतवीर्य, स्तम्भन, लघु, तिक्त तथा मधुर रस युक्त होता है और यह ज्वर, वमन, मदरोग, कफ, पित्त, तृषा, रक्तप्रकोप, विष, वीसर्प, दाह, मूत्रकृच्छ्र और व्रण को दूर करने वाला होता है॥ ८६-८८ ॥

३३ वीरण-खस

हि०-खस, वीरन मूल, गांडर, बेना। बं०-वेणर मूल, खसखस। म०-वाला। गु०-वालो। क०-मुडिवाल। ते०-वेट्टिवेलु। ता०-वेट्टिवेर। फा०-रेशये वाला, दीखेवाला। अं०-Cuscus grass (कस्कस ग्रास) ले०-*Andropogon muricatus Retz.* (एन्डोपोगोन् म्युरिकॅटस् रेझ.); *Vetiveria zizanioides (Linn.) Nash* (वेटिवेरिया झाइझेनिओइडिस् (लिन) नॅश)। Fam. Gramineae (ग्रॅमिनी)।

यह इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है। यह अधिकतर खुले हुये दलदल वाले स्थानों में होता है।

खस-तृणजातीय औषधि का क्षुप २ से ५ फुट तक ऊँचा एवं दृढ होता है। यह गुच्छबद्ध और समूह बद्ध होकर उगता है। पत्ते-सरकण्डे के समान १-२ फुट लम्बे और पतले होते हैं। ये दो कतारों में तथा आधार पर परस्पराच्छादित रहते हैं। मूलीयपत्र कुछ अधिक लम्बे रहते हैं। मध्यशिरा दबी हुई तथा पत्तों के किनारों पर दूर दूर पर तीक्ष्ण कांटे रहते हैं। फूलों का घनहरा पीलापन या किंचित् लाली युक्त होता है। इसकी जड़ सुगन्धित होती है। इसी को खस कहते हैं। औषध के अतिरिक्त ग्रीष्म ऋतु में इसके बने परदे एवं पखों आदि का उपयोग किया जाता है। सुगन्धि के लिये इसके इत्र का भी बहुत व्यवहार होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें उड़नशील तैल, राल, रंजक पदार्थ, अम्लद्रव्य, चूने का लवण, लौहभस्म तथा काष्ठयुक्त पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—खस शीतल, तिक्त, स्तम्भक, पाचक, पित्तनाशक, मूत्रजनक, पसीनें की दुर्गन्ध दूर करने वाला, ज्वरहर, दाहशामक, स्तन्यजनक, वमन को रोकने वाला, श्रमहर एवं जल को सुगन्धित करने वाला है।

इसका उपयोग फांट के रूप में पित्तज्वर, प्रसूति ज्वर, तृष्णा, दाह, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, विष, स्वेद दुर्गन्धि, वमन, कुष्ठ एवं आमाशयिक प्रक्षोभ आदि में किया जाता है। इसका लेप दाह, त्वचा के रोग तथा पसीने को रोकने वाला है।

(१) वमन को रोकने के लिये ½ तो० खस को १ पाव उबलते जल में डालकर उसके फांट को पिलाते हैं। इसके साथ धनियाँ का भी उपयोग लाभदायक है। विसूचिका में वमन रोकने के लिये २ बूंद इत्र बताशा में भरकर खिलाते हैं।

(२) पसीने की अधिकता तथा मसूरिका में इसका लेप किया जाता है।

(३) लोहबान के साथ चिलम में रखकर या सिगरेट बनाकर इसका धूम्रपान करने से शिरःशूल दूर होता है।

मात्रा—२-४ माशा।

अथ जटामांसी । तस्या नामानि गुणाँश्चाह

जटामांसी भूतजटा जटिला च तपस्विनी । मांसी तिक्ता कषाया च मेध्या कान्तिबलप्रदा ।
स्वाद्वी हिमा त्रिदोषास्रदाहवीसर्पकुष्ठनुत् ॥ ८९ ॥

जटामांसी (बालछड़) के नाम तथा गुण— जटामांसी, भूतजटा, जटिला, तपस्विनी और मांसी ये सब संस्कृत नाम जटामांसी के हैं । **जटामांसी** (बाल छड़)-तिक्त तथा कषाय रस युक्त, मेधाजनक, कान्तिकारक, बलप्रद, स्वादिष्ट और शीतवीर्य होती है और यह त्रिदोष, रक्तप्रकोप, दाह, वीसर्प एवम् कुष्ठ को दूर करने वाली होती है ॥ ८९ ॥

३४ जटामांसी

हि०-जटामांसी, बालछड़ । **बं०-,गु०-,-म०**-जटामांसी । **ते०**-जटामांशी । **क०**-जेटामावशी । **पं०**-बिल्लीलोटन । **ता०**-जटामाशी । **का०**-भूतिजटा । **सु०**-सम्बुल । **फा०**-नारदे हिन्दी । **अ०**-सुंबुलुत्तीबे हिन्दी, सुम्बुले हिन्दी । **अं०**-Spikenard (स्पाइकनार्ड); Indian Nard (इण्डियन नार्ड); Nardus root (नार्डस् रूट) । **ले०**-*Nardostachys jatamansi DC.* (नार्डोस्टॅकिस् जटामांसी डीसी.) । Fam. Valerianaceae (वॅलेरियानॅसी) ।

जटामांसी—यह हिमालय के जङ्गलों में कुमाऊँ से सिक्किम तक १७ हजार फीट की ऊँचाई पर तथा भूटान में उत्पन्न होती है । इसका बहुवर्षायु क्षुप सीधा खड़ा रहता है । राइझोम (भौमिक तना) काष्ठमय, लम्बा, मजबूत एवं सूखे हुये रेशेदार पर्णवृन्त से युक्त रहता है । भूमि के ऊपर जड़ से कई शाखाएं निकलती हैं और वे ६-७ अंगुल तक सघन बारीक जटाकार रोवें से भरी रहती हैं । **पत्ते**-जटा को छोड़ कर ऊपर ६-७ इञ्च लम्बे तथा १ इञ्च चौड़े, जड़ की ओर संकुचित, मृदु रोमश या चिकने मूलीय पत्ते रहते हैं । काण्डपत्र-एक या दो जोड़े, १-३ इञ्च लम्बे, अवृन्त, आयताकार या उपलट्वाकार होते हैं । डंडियों के अन्त में सफेद या किंचित् गुलाबी रङ्ग के छोटे-छोटे फूलों के गुच्छे लगते हैं । फल-छोटे-छोटे गोल, सफेद रोएँदार तथा उनके ऊपर बाह्यकोष के अंडाकार, तीक्ष्ण, दन्तुर बाह्यदल लगे रहते हैं ।

इसके सूखे हुवे राइझोम (भौमिक तना) तथा मूल का औषध में व्यवहार किया जाता है । इसका **मूल** गहरे धूसर (Grey) रंग का, छोटी अंगुली के बराबर मोटा तथा रक्ताभ भूरे रंग के रोओं से युक्त होता है । ये रोएदार तन्तु इसके सूखे हुये पर्णवृन्त तथा मूल के भाग हैं जिनके आपस में मिलने से जटासी बन जाती है । अन्दर से यह रक्ताभ भूरे रंग की होती है । इसमें एक प्रकार की विशिष्ट गन्ध (असली तगर के समान) होती है तथा इसका स्वाद सुगन्धियुक्त कडुवा होता है । इसको हमेशा ताजी खरीदना चाहिये ।

नोट—अन्य निघण्टुओं में गन्धमांसी, आकाशमांसी, कृष्णा सुगन्धमांसी आदि भेद लिखे हुवे हैं । प्राचीन ग्रन्थों में इसके स्वतन्त्र उपयोग बहुत कम मिलते हैं ।

रासायनिक संगठन—इसमें का प्रधान तत्त्व एक उड़नशील तैल है जो ०.३-०.४% पाया जाता है । यह तैल हलके पीले रंग का कुछ हरिताभ, जल से हलका, हवा में जमने वाला, कपूर के समान गन्ध वाला, कड़वा तथा तीता होता है । इस तैल में ईस्टर, अल्कोहल तथा सेस्क्वी टर्पेन हाइड्रोकार्बन पदार्थ होते हैं । इस तैल के अतिरिक्त जटामांसी में ३% एक रवेदार किन्तु जल में न घुलने वाला अम्ल द्रव्य तथा राल पाई जाती है ।

गुण और प्रयोग—जटामांसी शीतल, सुगन्धि, दीपन, पाचन, बल्य, रक्ताभिसरणोत्तेजक, उद्वेष्टननिरोधि, वातानुलोमक, मूत्रल, मृदुविरेचक, आर्तवजनन, वातनाड़ीशामक, संज्ञास्थापन,

मेध्य, त्रिदोषघ्न, केश्य, ज्वरहर, त्वग्दोषहर, कान्तिवर्धक, वेदनास्थापन, हृदयबल्य एवं सौमनस्य जनन है । इसके सेवन से क्षुधा बढ़ती है, पाचन ठीक होता है किन्तु कोष्ठबद्धता नहीं होती । इसके सेवन से उदर में उष्णता मालूम होती है, डकार आती है, संपूर्ण शरीर में उष्णता मालूम होकर पसीना आता है, मूत्र की मात्रा बढ़ती है तथा नाड़ी सबल होती है । मस्तिष्क एवं नाड़ी तन्तुओं पर इसकी पोषक तथा उत्तेजक क्रिया होती है । अल्प मात्रा में बहुत दिन देते रहने से मन की चञ्चलता शान्त होती है, काम करने में उत्साह बढ़ता है तथा नाड़ी का बल बढ़ता है । अपस्मार, अपतन्त्रक तथा अन्य आक्षेपयुक्त व्याधियों में इसका बहुत प्रयोग किया जाता है ।

(१) मस्तिष्क तथा नाड़ी तन्तुओं के विकारों में जटामांसी बहुत लाभप्रद होती है । शराबियों को व्रण होने पर या उन पर कोई शस्त्रक्रिया करने पर उनको एक तरह का भ्रमणयुक्त कम्प उत्पन्न होता है । ऐसी अवस्था में जटामांसी के प्रयोग से पर्याप्त लाभ होता है । अत्यन्त मानसिक परिश्रम या अस्थैर्य से थकावट उत्पन्न होने पर इसका सेवन नाड़ियों के लिए बलकारक तथा श्रमहर होता है । अपतन्त्रक में इससे आवेग कम होते हैं । शिरःशूल के लिये यह उत्कृष्ट औषध है । मानसिक आघात में यह बहुत जल्दी काम करती है । हींग, कस्तूरी आदि की अपेक्षा जटामांसी इन विकारों में अधिक उपयोगी तथा शीघ्र कार्यकर मानी जाती है । भूतावेश जैसी चेष्टाओं में जटामांसी, ब्राह्मी स्वरस तथा घोडबच का मधु के साथ प्रयोग करते हैं । अपस्मार, अपतन्त्रक, हृदय की धड़कन, कम्पवात तथा अन्य आक्षेपयुक्त व्याधियों में इसका फाण्ट बहुत प्रभावशाली माना जाता है । इनमें इसे १ से २ औंस की मात्रा में दिन में ३ बार पिलाते हैं । अपस्मार में इसके तैल का २-५ बूँद की मात्रा में सेवन कराया जाता है ।

(२) रक्ताभिसरण ठीक न होता हो तो यह बहुत ही उपयुक्त औषध है । इससे मस्तिष्कगत रक्तप्रवाह सन्तुलित होता है जिससे सर का भारीपन, चक्कर, मूर्च्छा, आंखों के सामने अंधियारी, सुनाई कम पड़ना आदि में लाभ होता है । हृदय की धड़कन, कमजोरी तथा हृदय के कारण उदर में वायु सञ्चित होने पर इसे सुगन्ध द्रव्य तथा नवसादर के साथ खिलाते हैं । इससे रक्तवाहिनियों का संकोच होकर रक्तपित्त, विसर्प तथा रक्तस्राव में लाभ होता है ।

(३) जटामांसी ४, दालचीनी १, शीतलचीनी १, सौंफ १, सोंठ १ तथा मिश्री ८ भाग इसके चूर्ण को ३-९ माशे की मात्रा में आध्मान, शूल, आमाशयिक शूल तथा आक्षेपयुक्त विकारों में देते हैं । बच्चों के आध्मान, उदरशूल, सुशिक्षितों तथा नाजुक प्रकृति की स्त्रियों के मन्दशूल, कुपचन आदि पचन संस्थान के विकारों में जटामांसी और नवसादर के साथ सुगन्धि द्रव्यों को मिलाकर देते हैं । इससे पित्त का स्राव ठीक होकर पाचन सुधरता है ।

(४) औपसर्गिक शोथयुक्त ज्वरों में त्रिदोष की वृद्धि होने से रोगी प्रलाप करता है तथा सन्निपात के लक्षण दिखलाई देने लगते हैं । इन अवस्थाओं में इसके प्रयोग से शीघ्र लाक्षणिक लाभ होता है । इससे रक्ताभिसरण ठीक होता है, नाड़ी तन्तुओं को बल मिलता है, कफ ढीला होता है, दाह कम होता है तथा शोथ में भी लाभ होता है । विषम ज्वर में भी इससे पर्याप्त लाभ होता है ।

(५) विस्फोट एवं व्रणों में इसके लेप से जलन तथा पीडा कम होती है । मुखपाक में भी इससे जलन तथा पीडा का शमन होता है । झांई-व्यङ्ग आदि त्वग्दोषों में उबटन के रूप में व्यवहार करने से त्वचा की कान्ति बढ़ती है । यह बालों के लिये भी लाभदायक है । शिरःशूल में इसका लेप करते हैं । दन्तशूल में इससे मञ्जन कराते हैं । मुखदुर्गन्ध में इसे चबाते हैं । स्वेदाधिक्य में इसके चूर्ण का उपयोग मर्दन के लिये करते हैं । बेहोशी में इसे पीसकर आंखों पर लेप करते हैं ।

(६) पीडितार्तव में इसके सेवन से पीड़ा कम होती है तथा आर्तव स्राव ठीक होने लगता है। स्त्रियों में रजोनिवृत्ति के काल में कुछ विशिष्ट मानसिक तथा शारीरिक अवसाद के लक्षण उत्पन्न होते हैं ऐसी अवस्थाओं में जटामांसी बहुत उपयोगी होती है।

मात्रा—५-१० रत्ती।

अथ शैलेयम् (भूरिछरीला)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

शैलेयन्तु शिलापुष्पं वृद्धं कालानुसार्य्यकम् ॥ ९० ॥
शैलेयं शीतलं हृद्यं कफपित्तहरं लघु। कण्डूकुष्ठाश्मरीदाहविष हृद् गुदरक्तहृत् ॥ ९१ ॥

शैलेय (भूरिछरीला) के नाम तथा गुण—शैलेय, शिलापुष्प, वृद्ध और कालानुसार्यक ये सब संस्कृत नाम भूरिछरीला के हैं। भूरिछरीला—शीतवीर्य, हृद्य (हृदय को हितकर), कफ तथा पित्तनाशक, लघु, एवम् खुजली, कुष्ठ, पथरी, दाह, विष तथा गुदा से रक्त गिरना इन सब को दूर करने वाला है।

३५ छरीला

हि०-छरीला, भूरिछरीला, पत्थरफूल। **बं**-शैलज। **म०**-दगडफूल। **गु०**-पत्थरफूल, छडीलो। **क०**-कल्लुहुवु। **ते०**-शैलेय मनेद्रव्यमु, रतिपंचे। **ता०**-कलपसी। **फा०**-उशनह, गुलेसंग। **अ०**-उश्नः। **अं०**-Stone flowers (स्टोन फ्लावर्स); Yellow Lichen (यलो लाइचेन)। **ले०**-*Parmelia perlata Ach.* (पार्मेलिया परलॅटा आक०)। Fam. Parmeliaceae (पार्मेलियॅसी)।

छरीला—यह क्षुद्र वनस्पति पहाड़ी जमीन के पत्थरों पर उत्पन्न होती है और जान पड़ता है मानो यह पत्थर से ही अपना आहार लेती है। यह हिमालय और नीलगिरि के पहाड़ों पर पाई जाती है। यह वृक्षों और दीवालों पर भी पाई जाती है। यह हरी पेडीसी सञ्चित होकर जब सूख कर उतरती है तब इसके ऊपर का पृष्ठ काला और नीचे का सफेद होता है। जो अधिक सफेद होती है वही अच्छी समझी जाती है। इसकी कई जातियां पाई जाती हैं। इसका स्वाद फीका तिक्त-कषाय होता है। औषध के लिये हमेशा नया तथा सुगन्धयुक्त छरीला काम में लेना चाहिये।

रासायनिक संगठन—इसमें पीत रवेदार पदार्थ, गोंद, लाइचेनिन एवं क्राइसोफेनिक् एसिड, ये पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—छरीला शीतल, सुगन्धि, हृद्य, सौम्य मूत्रल, दीपन, वेदनास्थापन, ग्राही एवं शोथहर है। यह कफ, पित्त, दाह, तृषा, वमन, श्वास, व्रण, कण्डू, अश्मरी, विष, हृल्लास, गुदरक्तस्राव एवं रक्तविकार दूर करने वाला है। पेशाब रुकने पर १ तो० छरीला के फांट में मिश्री एवं जीरा मिलाकर पिलाते हैं तथा इसे गरम जल में भिगोकर कमर पर बांधते हैं। इसे ठण्डे जल में पीस कर सर पर लेप करने से शिरःशूल दूर होता है। व्रण पर इसे लगाने से लाभ होता है। यकृत् शूल निवारण के लिये इसका उपयोग करते हैं। अञ्जन के योगों में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—२-४ माशा।

---

१. विषहृल्लासरक्तजित् इति पाठा०।

अथ मुस्तकं-नागरमुस्तकञ्च। (मोथा-नागरमोथा)। तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

मुस्तकं न स्त्रियां मुस्तं त्रिषु वारिदनामकम्। कुरुविन्दश्च संख्यातोऽपरः क्रोडकसेरुकः॥९२॥
भद्रमुस्तश्च गुन्द्रा च तथा नागरमुस्तकः। मुस्तं कटु हिमं ग्राहि तिक्तं दीपनपाचनम् ॥९३॥
कषायं कफपित्तास्रतृड्ज्वरारुचिजन्तुहृत्। अनूपदेशे यज्जातं मुस्तकं तत्प्रशस्यते।
तत्रापि मुनिभिः प्रोक्तं वरं नागरमुस्तकम् ॥ ९४ ॥

मोथा तथा नागरमोथा के नाम और गुण—मुस्तक (इसका स्त्रीलिङ्ग को छोड़ कर शेष लिङ्गों में प्रयोग होता है), मुस्त (यह तीनों लिङ्गों में होता है), वारिदनामक (मेघवाची सभी शब्द) और कुरुविन्द ये सब संस्कृत नाम मोथा के हैं। दूसरे प्रकार का जो मोथा है जिसे नागरमोथा कहते हैं, उसके संस्कृत नाम—क्रोडकसेरुक, भद्रमुस्त, गुन्द्रा तथा नागरमुस्तक ये सब हैं। मोथा—कटुतिक्त तथा कषाय रस युक्त, शीतवीर्य, ग्राही, अग्निदीपक तथा पाचक होता है और यह कफ, पित्त, रक्तकोप, तृषा, ज्वर, अरुचि और कृमि का नाशक होता है। जो 'मोथा' अनूप देश में उत्पन्न होता है वही श्रेष्ठ होता है। उसमें भी मुनियों ने 'नागरमोथा' को ही सर्वश्रेष्ठ बतलाया है।

३६ मोथा

हि०-मोथा। **बं**-मुता, मुथा। **म०**-मोथा, बिम्बल, भद्रमुष्टि। **गु०**-मोथ। **क०**-कोरनारि। **ते०**-तुंगमुस्ते। **ता०**-कोरइ किलंगु। **फा०**-मुश्के जमीं। **अ०**-सोभ(अ)द कूफी। **अं०**-Nut-grass (नट्ग्रास)। **ले०**-*Cyperus rotundus Linn.* (साइपेरस् रोटन्डस् लिन.)। Fam. Cyperaceae (साइपेरॅसी)।

मोथा इस देश के सब प्रान्तों में बहुलता से होता है। यह तृणजातीय वनस्पति बारहो मास पायी जाती है किन्तु बरसात में सर्वत्र देखने में आती है। इसमें मूलीय पत्रगुच्छ होता है जो एक कठोर कन्द सदृश भौमिककाण्ड से निकलता है। नीचे सूत्राकार अन्तर्भूमिशायी कांड भी प्रायः होते हैं जिनसे पौन से एक इञ्च के घेरे में अंडाकार कंद निकले रहते हैं जो कसेरू के समान ऊपर से काले रंग के और भीतर से लालीयुक्त सफेद होते हैं और इनमें सुगन्ध आती है। डंडी—पतली, ६ से २४ इञ्च तक ऊँची, त्रिकोणाकर तथा पत्तों के बीच से निकली रहती है। पत्ते—लम्बे और पतले होते हैं। डंडी के अग्रपर समस्थमूर्धजक्रम में पुष्पवाहक शाखायें निकलती हैं जो छोटे-छोटे अवृन्त काण्डजव्यूहों का संयुक्तव्यूह होती हैं। पुष्पव्यूह का आधार भाग तीन पत्रसदृश कोणपुष्पकों से घिरा रहता है। इसके काले-काले कंदों का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

नोट—भावप्रकाशकार ने मोथा एवं नागरमोथा ये दो भेद यहां लिखे हैं तथा मुस्ता का एक अन्य कैवर्तमुस्ता (जलजमुस्ता, केवटीमोथा) भेद आगे लिखा है। नागरमोथा का ही दूसरा नाम भद्रमुस्ता लिखा है। अन्य निघण्टुओं में भद्रमुस्ता अलग लिखा है। सब मोथे के गुण करीब-करीब समान ही हैं तथा एक दूसरे के स्थान पर इनका उपयोग किया जा सकता है। अनूप देश में होने वाला नागरमोथा अधिक प्रशस्त माना गया है। यह हमेशा ताजा तथा सुगन्धयुक्त खरीदना चाहिये।

रासायनिक संगठन—इसमें एक सुगन्धित उड़नशील तैल, वसा, शर्करा, गोंद, कार्बोहाइड्रेट, ॲल्ब्यूमिन सदृश पदार्थ, तन्तु तथा राख एवं अत्यल्प मात्रा में क्षाराभ आदि पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—मोथा ग्राही, दीपक, पाचक, स्वेदजनक, मूत्रजनक, स्तन्यवर्धक, आर्तवजनक, किञ्चित् गर्भाशयोत्तेजक, केशवर्धक, व्रणरोपक एवं कृमिघ्न है।

(१) कुपचन, वमन एवं अतिसार यदि आमाशय तथा आन्त्र के विकारों में इसका बहुत प्रयोग किया जाता है। आमातिसार में ताजे कन्द को आर्द्रक के साथ पीसकर मधु मिला कर खिलाते हैं। इसमें २० मोथे के कन्दों को ३ गुने दूध तथा जल में उबाल कर दूध शेष रहने पर छानकर पिलाते हैं। सभी प्रकार के अतिसार में इसके क्वाथ में (क्वाथ ठंडा होने पर) मधु मिलाकर पिलाने से लाभ होता है।

(२) स्वेदजनक, मूत्रजनक एवं उत्तेजक होने से यह ज्वर, ज्वरातिसार एवं पित्त ज्वर में उपयोगी है।

(३) विसूचिका तथा मदात्यय में तृषा शान्ति के लिये इसके शीतल क्वाथ को पिलाते हैं।

(४) अक्षिव्रण में इसे घृत में भूनकर पीसकर लगाने से ३, ४ दिन में लाभ होता है। आँख की फूली एवं लालिमा में बकरी के मूत्र में इसे पीसकर उसका अंजन किया जाता है।

(५) इसकी ताजी जड़ को घिसकर गोघृत मिलाकर व्रण पर लगाते हैं तथा इसको जल में पीसकर दुग्धवृद्धि के लिये स्तन पर लेप करते हैं।

(६) रोमन लोग आर्तवजनन औषध के रूप में गर्भाशय की बीमारियों में इसका व्यवहार करते थे।

मात्रा—३-६ माशा।

३७ नागर मोथा

हि०–नागर मोथा। **बं०**–नागरमथा। **म०**–नागरमोथा, लवाला। **मा०**–नागर मोथो। **गु०**–नागरमोथ। **क०**–कोन्नरि गड्डे। **ते०**–नागमुस्तेलु। **ता०**–मुट्टाकाचि। **फा०**–मुश्के जमीं। **अ०**–सोअद कूफी। **ले०**–*Cyperus scariosus R. Br.* (साइपेरस् स्कॅरिओसस् आर. ब्र.)। Fam. Cyperaceae (साइपेरॅसी)।

नागरमोथा–मोथे के समान तृणजातीय वनौषधि बंगाल, पेगु, उत्तरप्रदेश एवं पूर्व तथा दक्षिण के भागों के तालाब तथा सजल स्थान में पाया जाता है। इसकी डंडी १६ से ३६ इञ्च तक ऊँची, पतली त्रिकोणाकार होती है। जड़ के नीचे कंदवत् लम्बे-लम्बे, अंगुली प्रमाण मोटे, दबे हुये गहरे भूरे रंग के जो अन्तर्भूमिशायी काण्ड होते हैं उन्हीं को नागरमोथा कहते हैं जिनका चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—मोथा के समान।

गुण और प्रयोग—नागरमोथा शीतल, दीपन, पाचन, वातानुलोमक, ग्राही, स्वेदजनन, कफघ्न, मेध्य, तृष्णानिग्रहण, स्तन्यजनन, स्तन्यशोधन, कण्डूघ्न, मूत्रजनन, उत्तेजक तथा जन्तुनाशक है। इसका उपयोग मोथे के समान ही किया जाता है। यद्यपि इसमें इतने उपयुक्त धर्म हैं तथापि इसका प्रयोग अन्य औषधों के साथ अधिक किया जाता है।

(१) अरुचि, आमातिसार, वमन, रक्तार्श तथा कुपचन में नागरमोथा गुणकारी है। संग्रहणी में इससे बहुत लाभ होता है।

(२) ज्वर, प्रसूतिज्वर तथा पैत्तिक ज्वर में हमेशा इसका प्रयोग करना चाहिये। इससे प्यास कम होती है, पसीना आता है, उत्तेजना आती है, जीभ का स्वरूप अच्छा होता है, पेशाब साफ होता है तथा गर्भाशय का थोड़ा सा संकोच भी होता है। प्रसूता को दुग्ध शुद्धि तथा वृद्धि के लिये इसको खिलाते हैं तथा जल में घिस कर स्तन पर लेप करते हैं। इससे स्तन की दूध की गाँठें कम होती हैं।

(३) परमा में नागरमोथा बहुत लाभदायक है। यह प्रथम एवं द्वितीयावस्था में दिया जाता है।

(४) अपस्मार में उत्तर दिशा में होने वाले मोथे को पीसकर समान वर्ण वाली सवत्सा गौ के दुग्ध के साथ पिलाने से लाभ होता है।

(५) इसका जन्तुघ्न धर्म अधिक मात्रा में देने से ही मालूम होता है। कंडू में इसका लेप किया जाता है।

मात्रा—३-६ माशा।

अथ कर्चूरः। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

कर्चूरो वेधमुख्यश्च द्राविडः कल्पकः शटी। कर्चूरो दीपनो रुच्यः कटुकस्तिक्त एव च ॥९५॥
सुगन्धिः कटुपाकः स्यात्कुष्ठार्शोव्रणकासनुत्।
उष्णो लघुर्हरेच्छ्वासं गुल्मवातकफक्रिमीन् ॥ ९६ ॥

कचूर के नाम तथा गुण—कर्चूर, वेधमुख्य, द्राविड, कल्पक और शटी ये सब संस्कृत नाम कचूर के हैं। कचूर–कटु तथा तिक्त रस युक्त, अग्निदीपक, रुचिकारक, सुगंध युक्त, पाक में कटुरस युक्त, उष्णवीर्य और लघु होता है एवं यह कुष्ठ, बवासीर, व्रण, खांसी, श्वास, गुल्म, वात, कफ और कृमि इन सब रोगों का नाशक होता है ॥ ९५-९६ ॥

३८ कचूर

हि०–कचूर। **बं०**–शटी, एकांगी, शोरी, कचूरा। **म०**–कचोरा। **गु०**–कचूरो, पट् कचूरो। **ते०**–कचोरमु। **ता०**–किच्छिलिक किझंगु। **क०**–कचोरा। **अ०**–जरंबाद, एरकुल् काफुर। **फा०**–कजूर। **अं०**–Zedoary (झिडोअरी)। **ले०**–*Curcuma zedoaria Rosc.* (कर्क्युमा झेडोरिआ रास्)। Fam. Zingiberaceae (झिंजिबेरॅसी)।

पूर्व हिमालय, सिंहल द्वीप, कनारा का तटीय प्रदेश तथा बर्मा के पश्चिम में यह आपही आप उत्पन्न होता है और कई प्रान्तों में रोपित किया हुआ भी पाया जाता है।

इसका **क्षुप**–तीन चार फीट ऊँचा हलदी के समान होता है और जड़ के नीचे अनेक कंद होते हैं। उनको कचरा कर सुखा लेते हैं। इसी को कर्चूर कहते हैं। **पत्र**–१-२ फीट लंबे, आयताकार, लंबाग्र और नीचे की ओर क्रमशः संकुचित होकर पत्रवृन्त में परिणत हो जाते हैं। ये कुछ कालापन लिये हुये तथा मध्य शिरा पर नीलारुण रंगीन धब्बों से युक्त होते हैं। पुष्पदंड पत्तियों के पहले निकलता है। कोणपुष्पक रक्ताभ और ऊपर के अपुष्प पत्र अधिक लाल होते हैं। **फूल**–नलिकाकार पीले रंग के आते हैं। **फल**–त्रिकोणाकार और बीज अंडाकार और सफेद होते हैं। अन्तर्भूमिशायी कन्द लंबगोल, भीतर हलके पीले और पूर्णतः विकसित रहते हैं। मूलाग्र कन्द अनेक और भीतर मुक्तावर्ण के होते हैं। अन्तर्भूमिशायी कंद कर्पूर तुल्य प्रियगंध वाले होते हैं। इन्हीं कंदों का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। इसकी पत्तियों को मछली भूनने के काम में लाते हैं। इसी क्षुप के समान काली हलदी का क्षुप होता है जिसका वर्णन पृ० ११८ पर किया गया है।

कर्चूर का पर्याय शटी क्यों पड़ा इस सम्बन्ध में श्री ठा० बलवन्तसिंह जी का मत है कि प्राचीन ग्रन्थों में 'कर्चूर' का उल्लेख नहीं है, शठी का है। इस शठी (कपूरकचरी) की उपलब्धि कम होने के कारण उसके स्थान पर प्रतिनिधिरूप में कचूर का उपयोग होने लगा तथा उसे भी शठी

नाम दे दिया गया। शटी (कचूर) और शठी (कपूरकचरी) यह थोड़ा सा नामभेद कोई योजनापूर्वक पार्थक्य दिखलाने के लिये नहीं रखा होगा। बल्कि गलती से ऐसे दो नाम पड़ गये होंगे।

रासायनिक संगठन—इसमें उड़नशील तैल, कछ मुलायम राल, गोंद, स्टार्च, शर्करा एवं ऑर्गेनिक् अम्ल आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—कचूर सुगंधि, रुचिकर, दीपन, स्वर्य, कफहर, वातहर, मूत्रजनन एवं हृद्य है।

इसका उपयोग कास, श्वास, अजीर्ण, अर्श, हिक्का, ज्वर, संग्रहणी, प्लीहा, गुल्म, कुष्ठ, कृमि एवं व्रण में किया जाता है।

(१) मुख को साफ करने के लिये इसको चबाते हैं। गायक इसको आवाज साफ करने के लिये चूसते हैं। इससे खांसी एवं गले की खराश में लाभ होता है।

(२) इसके ताजे कंदों का पाक या खण्ड प्रसूता के लिए पौष्टिक माना जाता है।

(३) विषमज्वर, प्रतिश्याय तथा शरीर में पीडा हो तो कचूर, छोटी पीपल एवं दालचीनी का क्वाथ मधु मिलाकर पिलाते हैं तथा पीडा में इसका लेप करते हैं।

(४) श्वेत प्रदर तथा पूयमेह में यह बहुत लाभप्रद है। परमा में इसके फांट से जलन कम होकर पेशाब साफ होता है।

(५) जलोदर में इसके पत्तों का रस पिलाया जाता है। गांठों तथा फोड़े आदि पर इसके पत्तों को पीसकर बांधा जाता है। अर्श तथा अतिसार में इसका शाक के रूप में प्रयोग लाभप्रद माना जाता है।

(६) बच्चों के आक्षेप में कंबोडियन माताएं इसको चबाकर सर तथा शरीर पर लगाती हैं।

(७) मोच में इसको पीसकर फिटकिरी मिलाकर लगाते हैं।

मात्रा—१-४ माशा।

अथ मुरा (मुरहरी, एकाङ्गी)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

मुरा गन्धकुटी दैत्या सुरभिः शालपर्णिका॥ ९७॥
मुरा तिक्ता हिमा स्वाद्वी लघ्वी पित्तानिलापहा।
ज्वरासृग्भूतरक्षोघ्नी कुष्ठकासविनाशिनी॥ ९८॥

मुरा (एकाङ्गी) के नाम तथा गुण—मुरा, गन्धकुटी, दैत्या, सुरभि और शालपर्णिका ये सब संस्कृत नाम मुरा के हैं। मुरा—तिक्त रस युक्त, शीतवीर्य, स्वादिष्ट और लघु होती है एवं यह पित्त, वात, ज्वर, रक्तविकार, भूत और राक्षस सम्बन्धी बाधा, कुष्ठ तथा खांसी इन सबों को दूर करने वाली होती है॥ ९७-९८॥

३९ मुरा

मुरा नामक गन्धद्रव्य के सम्बन्ध में मतभेद है। कुछ लोग इसे मरोडफली (Helicteres isora Linn. हेलिक्टेरिस् आइसोरा लिन.) मानते हैं, जो उचित नहीं मालूम होता। डा० कर्नल चोपरा की पुस्तक में एरिथ्रिना स्ट्रिक्टा राक्सब. (Erythrina stricta Roxb.) का संस्कृत नाम मुरा लिखा मिलता है। पंजाबी में मुर्रा नाम साइनॅन्थस् का दिया है जिसके पुष्पों का दमे में उपयोग होता है। कुछ लोग इसे कचूर, कपूरकचरी या जटामांसी का भेद मानते हैं। अधिक संभव है यह कपूरकचरी का भेद हो।

अथ गन्धपलाशी (कपूरकचरी) (सुगन्धिद्रव्यं काश्मीरे प्रसिद्धम्)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

शठी पलाशी षड्ग्रन्था सुव्रता गन्धमूलिका।
गन्धारिका गन्धवधूर्वधूः पृथुपलाशिका॥ ९९॥
भवेद्गन्धपलाशी तु कषाया ग्राहिणी लघुः।
तिक्ता तीक्ष्णा च कटुकाऽनुष्णाऽऽस्यमलनाशिनी।
शोथकासव्रणश्वासशूलसिध्मग्रहापहा[1]॥ १००॥

कपूर कचरी जो कि काश्मीर देश में प्रसिद्ध एक प्रकार का सुगन्धि द्रव्य है, उसके नाम तथा गुण – शठी, पलाशी, षड्ग्रन्था, सुव्रता, गन्धमूलिका, गन्धारिका, गन्धवधू, वधू, पृथुपलाशिका और गन्धपलाशी ये सब संस्कृत नाम 'कपूर कचरी' के हैं। कपूर कचरी—कटु, तिक्त तथा कषाय रस युक्त, ग्राही, लघु, तीक्ष्ण तथा थोड़ा उष्णवीर्य होती है एवम् यह मुख के मल को दूर करने वाली, शोथ, खांसी, व्रण, श्वास, शूल, सिध्म (या-हिक्का) और ग्रहबाधा इन सबों को दूर करने वाली है॥ ९९-१००॥

४० कपूर कचरी

हि०-गंधपलाशी, कपूर कचरी, सितरूटी। **बं०**-शठी, गन्ध शटी। **म०**-कपूर कचरी। **गु०**-कपूर काचरी। **क०**-गन्ध शठी। **ता०**-शिमैकिचिलिक् किशंगु। **पं०**-कचूर कचु, शेदूरी। **ले०**-*Hedychium spicatum Ham. ex Smith* (हेडिचिअम् स्पाइकॅटम् हॅम्. एक्स स्मिथ)। Fam. Zingiberaceae (झिंजिबेरॅसी)।

यह हिमालय के साधारण प्रान्त, पंजाब, नेपाल और कुमाऊँ में अधिक उत्पन्न होती है।

यह क्षुप जाति की वनौषधि है। जड़—बहुवर्षायु, कन्दवत् भूमि के भीतर समतल बढ़ती है। इसी को सुखा कर कार्य में लेते हैं। डंठल—लम्बा पत्रयुक्त होता है। पत्ते—हल्दी के पत्तों के समान एक फुट लम्बे, अनियमित चौड़े एवं आयताकार-भालाकार होते हैं। फूल—सफेद आते हैं। फल—त्रिकोष्ठयुक्त, गोलाकार और चिकना होता है।

इसके मूलस्तंभ (मूल) को काटकर सुखाये हुये, छोटे बड़े सुगंधित टुकड़े बाजार में बिकते हैं। यह सफेद रंग के एवं पिष्टमय रहते हैं। इनका बाह्यत्वक् रक्ताभ भूरे रंग का होता है। इसका स्वाद कड़वा एवं तीता रहता है। अबीर के निर्माण एवं गुडाखु को सुगन्धित करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। कपूर कचरी नाम से इसी वर्ग के 'चन्द्रमूल' (Kaempferia galangal Linn. केम्फेरिआ गॅलन्गाल् लिन)[2] के मूल के टुकड़े भी व्यवहार में लाये जाते हैं जो इसी के समान होते हैं। बाजार में एक चीनो कपूर कचरी नामक औषध भी बिकती है जो देखने में अच्छी होते हुये भी उसमें सुगन्ध कम रहती है।

---

१. हिध्म इति पाठा०।

२. चन्द्रमूल के क्षुप दक्षिण की तरफ बगीचों में लगाये मिलते हैं। इसमें १४% खनिज द्रव्य, सुगंधि तैल, ४% गोंद तथा अधिक मात्रा में पिष्टमय पदार्थ रहते हैं। यह मूत्रल, वातानुलोमक, उत्तेजक एवं कफनिःसारक है। सर्दी-खाँसी में इससे सिद्ध तैल को नाक तथा छाती पर लगाते हैं एवं मधु के साथ १-२ रत्ती चूर्ण चटाते हैं। मुख को सुवासित करने के लिये इसके छोटे टुकड़े को मुख में रखते हैं। इसके उबटन का भी प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें स्टार्च, गोंद, सेल्युलोज, अलब्यूमिन् , तैल, राल एवं सुगन्धि द्रव्य पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—कपूरकचरी उष्ण, ग्राही, लघु, कटु, तिक्त, दीपन एवं वातानुलोमक होती है। इसका उपयोग कास, श्वास, हिचकी, वमन, अपतंत्रक, शूल एवं व्रण में किया जाता है। दंतशूल में इसके मंजन से लाभ होता है। इससे मुख की दुर्गन्धि दूर होती है।

मात्रा—१-४ माशा।

अथ प्रियङ्गुर्गन्धप्रियङ्गुश्च। तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

प्रियङ्गुः फलिनी कान्ता लता च महिलाऽऽह्वया॥ १०१॥
गुन्द्रा गन्धफला श्यामा विष्वक्सेनाङ्गनाप्रिया।
प्रियङ्गुः शीतला तिक्ता तुवराऽनिलपित्तहृत्॥ १०२॥
[1]रक्तातीसारदौर्गन्ध्यस्वेददाहज्वरापहा।
(वान्तिभ्रान्त्यतिसारघ्नी वक्त्रजाड्यविनाशिनी)॥
गुल्मतृड्विषमोहघ्नी[2] तद्वद् गन्धप्रियङ्गुका॥ १०३॥

'प्रियङ्गु' तथा 'गन्धप्रियङ्गु' के नाम और गुण—प्रियङ्गु, फलिनी, कान्ता, लता, महिलाह्वया (स्त्रीवाचक सभी शब्द), गुन्द्रा, गन्धफला, श्यामा, विष्वक्सेनाङ्गना और प्रिया ये सब संस्कृत नाम 'प्रियङ्गु' के हैं। प्रियङ्गु—तिक्त तथा कषाय रसयुक्त और शीतवीर्य होती है। यह वात, पित्त, रक्तातिसार, दुर्गन्ध, पसीना, दाह, ज्वर, (वमन, चक्कर, अतिसार, मुँह की जड़ता) गुल्म, तृषा, विष और मोह इन सब रोगों को दूर करती है। इसी भाँति 'गन्धप्रियङ्गु' के भी गुण होते हैं॥ १०१-१०३॥

अथ तत्फलगुणानप्याह

तत्फलं मधुरं रूक्षं कषायं शीतलं गुरु। विबन्धाध्मानबलकृत्संग्राहि कफपित्तजित्॥ १०४॥

प्रियङ्गु का फल—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, रूक्ष, शीतवीर्य और गुरु होता है। यह विबन्धकारक, आध्मानकारक, बलकारक एवं संग्राही तथा कफपित्त नाशक होता है॥ १०४॥

४१ प्रियङ्गु

प्रियङ्गु के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। इसी निघण्टु के धान्यवर्ग में कंगु (कंगुनी धान्य) के पर्याय में भी प्रियङ्गु नाम दिया हुआ है। इससे भ्रम होता है कि क्या यहाँ पर वर्णित प्रियङ्गु तथा धान्यवर्गोक्त प्रियङ्गु एक ही हैं? प्रियङ्गु से कौन सा प्रियङ्गु लिया जाय? वास्तव में कङ्गु के पर्याय में केवल प्रियङ्गु नाम देने से ही प्रियंगु से कंगु धान्य लेना उचित नहीं है। दोनों के गुण बिलकुल भिन्न हैं। जहां पर टीकाकारों ने स्पष्ट रूप से प्रियंगु के लिये कंगु लेने का निर्देश किया हो वहीं पर प्रियंगु के लिये कंगु का उपयोग किया जा सकता है अन्यथा प्रियंगु से कर्पूरादिवर्गोक्त प्रियंगु ही लेना उचित है। कुछ लोगों ने कंगु से पार्थक्य करने के लिये इसको गंधप्रियंगु लिखा है लेकिन भावप्रकाशकार ने यहां पर प्रियंगु तथा गंधप्रियंगु दो द्रव्यों का उल्लेख किया है। यहां

१. रक्तातियोग इति पाठा०। २. मेहघ्नी इति पाठा०।

पर इन दोनों के गुण समान बतलाये हैं। धान्यवर्गोक्त कंगु, जिसका एक पर्याय प्रियंगु है, उसके तथा यहां पर उल्लिखित प्रियंगु के गुण समान नहीं हैं, यह बात ध्यान में रखने की है। निम्नलिखित वर्णन केवल यहीं पर वर्णित प्रियंगु का है, कङ्गु (धान्य) का नहीं।

यहां पर उपर्युक्त श्लोकों में जिन दो द्रव्यों का उल्लेख किया गया है, उनके लिये गंधप्रियङ्गु नाम देना ठीक है। हो सकता है कि प्रियङ्गु के संदिग्ध द्रव्य रहने के कारण दो विभिन्न प्रकार के द्रव्यों का उपयोग भावप्रकाशकार के समय होता रहा हो, जिनमें से एक में गंध हो तथा दूसरे में गंध न हो या बहुत कम हो अथवा एक ही प्रकार के दो क्षुप हों जिनमें से एक में गंध हो और दूसरा निर्गंध हो, जिसका आगे स्पष्टीकरण होगा।

आजकल इसी उपर्युक्त 'प्रियङ्गु, गंधप्रियङ्गु' के लिये ३ प्रकार के द्रव्यों का उपयोग किया जा रहा है। बंबई की तरफ घऊँला नाम से प्रुनस् महालिब् (Prunus mahaleb) की फलमज्जा बिकती है, जिसका उपयोग प्रियङ्गु के रूप में वहां पर करते हैं। बंबई प्रान्त में श्वेतचंदन, घऊँला एवं कपूरकचरी को जल में पीस कर सुगंधित लेप के लिये प्रयोग किया जाता है। चरक ने रक्तपित्त में दाहशांति के लिये चन्दन और प्रियङ्गु के लेपन से उपलिप्त स्त्रियों के स्पर्श का विधान किया है।[1] यह मज्जा छोटी चिरौंजी जैसी, गोधूमवर्ण की, स्वाद में तिक्त एवं सुगन्धित होती है। दूसरा द्रव्य अॅग्लेइआ रॉक्सबर्घियाना (Aglaia roxburghiana) के फल हैं जो कुछ गोल, छोटे, निंब फल सदृश एवं सूखने पर सिकुड़नदार दिखलाई देते हैं। इनका व्यवहार बहुत दिनों से होता आ रहा है लेकिन इसमें गंध नाम मात्र की होती है। तीसरा द्रव्य कॅलिकार्पा मॅक्रोफाइला (Callicarpa macrophylla) नामक गुल्म (झाड़ी) की पुष्प कलिकायें हैं जो छोटी-छोटी कङ्गुनी धान्य सदृश होती हैं। इसका वर्णन अभिनव बूटी दर्पण में है लेकिन वहां पर इसका लेटिन नाम नहीं लिखा है। इसके लेटिन नाम के साथ इसका वर्णन श्रीमान् ठा० बलवन्त सिंह जी ने 'वनौषधिदर्शिका' एवं 'बिहार की वनस्पतियाँ' इन पुस्तकों में किया है। मूल श्लोक एवं अन्य निघंटुओं में दिये हुए फलिनी, कृष्णपुष्पी, गन्धफला, कृशाङ्गी, महिलाह्वया, पर्णभेदनी आदि इसके रूपपरिचयात्मक पर्याय इसमें कुछ मिलते होने के कारण इसको प्रियङ्गु मानते हैं। एक बात ध्यान देने की है कि इसकी झाड़ी या गुल्म होता है। यह लता नहीं है। पुष्प भी श्वेत वर्ण के होते हैं। श्रीमान् बाबू भीमचन्द्र चटर्जी द्वारा लिखित 'दि एकॉनॉमिक बोटॅनी ऑफ इण्डिया' से 'अभिनव बूटी दर्पण' में कुछ अंश उद्धृत किया गया है जिसमें वे लिखते हैं कि 'नेपाल, चटगाँव तथा पूर्व बंगाल के कुछ भागों में इसी का व्यवहार प्रियङ्गु के रूप में लोग करते हैं। नेपाल में दयालो तथा श्वेतदयालो नाम से उपयोग में लाई जाने वाली लताओं का वर्णन उपर्युक्त लता से ठीक मिलता है। श्वेतदयालो तथा दयालो एक ही समान हैं किन्तु अन्तर इतना ही है कि श्वेतदयालो गन्धयुक्त होती है एवं इसके पत्ते कुछ बड़े, अधिक श्वेत तथा स्पर्श में खुरदरे होते हैं। इससे मालूम होता है कि भावप्रकाशोक्त प्रियङ्गु तथा गन्धप्रियङ्गु यह दयालो तथा श्वेतदयालो हैं। जिला गढ़वाल और अल्मोड़ा में दहिया के नाम से यह प्रसिद्ध है तथा कुमाऊँ प्रान्त के वैद्य इसको प्रियङ्गु मानते हैं।'

इन तीन द्रव्यों के अतिरिक्त मेंहदी के फूल, कुमुदनी, सरसों के फूल, मालकांगुनी एवं गोंदनी आदि को भी कुछ लोग प्रियंगु मानते हैं। चरक में संधानीय, शोणितास्थापन, पुरीष संग्रहणीय एवं मूत्रविरजनीय गणों में तथा सुश्रुत में अञ्जनादि, एलादि तथा प्रियंग्वादिगणों में प्रियंगु का

१. प्रियङ्गुकाचन्दनरूषितानां स्पर्शाः प्रियाणां च वराङ्गनानाम्। (च. चि. अ. ४)

उल्लेख है। चरक ने रक्त और पित्त की अतिवृद्धि को शान्त करने वालों में गन्धप्रियंगु को श्रेष्ठ माना है (च. सू. अ. २५)। उपर्युक्त तीन द्रव्यों का वर्णन यहां दिया जा रहा है।

प्रियंगु १ (फूलप्रियंगु)

हि०–प्रियंगु। फूलप्रियंगु, गन्धप्रियंगु, बुंडुड, बूढ़ीवासी, डइया, दहिया। **बं०**–मधुरा। **नेपा०**–दयालो, श्वेतदयालो। **पं०**–सुमाली। **ले०**–*Callicarpa macrophylla Vahl* (कॅलिकार्पा मॅक्रोफाइला वाह्.)। Fam. Verbenaceae (वर्बिनॅसी)।

यह जंगलों के किनारे, घाट और ऊँची चढ़ाइयों तथा खुले हुये जंगल और परती भूमि में होता है। यह नेपाल, देहरादून के जलप्राय स्थानों, बंगाल तथा विहार के अनेक स्थानों में पाया जाता है। बलिया स्टेशन के अहाते में लगे हुए इसी प्रकार के एक क्षुप का उल्लेख चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय से प्रकाशित 'सचित्र अभिनव बूटीदर्पण' में किया हुआ है।

इसका **गुल्म**–४ से ८ फीट ऊंचा, और तूल रोमश होता है। शाखाएँ—अनियमित रूप से फैली रहती हैं। **पत्ते**—५ से १० इंच लंबे, अंडाकार, या अंडाकार-भालाकार, लम्बाग्र, ऊपर चिकने, नीचे तूलरोमश एवं किनारा गोल दन्तुर होता है। **पुष्प**—गुलाबी, सघन द्विविभक्त १ से ३ इंच व्यास के गुच्छों में आते हैं। **फल**—सफेद एवं ·१२-·१८ इंच व्यास के होते हैं। डालियाँ पुष्पगुच्छों के बोझ से झुक जाती हैं।

इसकी छोटी छोटी प्रियंगु धान्य सदृश पुष्प कलिकाएँ फूल प्रियंगु के नाम से मिलती हैं। इनमें मसलने पर गन्ध भी होती है। शास्त्रीय गन्धप्रियंगु यही मालूम होती है। ग्रामीण लोग गठिया में इसकी पत्तियों से सेंक करते हैं।

प्रियंगु २ (घऊँला)

हि०–प्रियंगु, महालिव। **म०**–गहुला, गावल। **गु०**–घऊंला। **अ०**–महलिव। **ले०**–*Prunus mahaleb Linn.* (प्रनस् महालिब् लिन.)। Fam. Rosaceae (रोझॅसी)।

यह बलोचिस्तान में पाया जाता है। इसका **गुल्म** अनेक फैली हुई तथा सीधी शाखाओं से युक्त होता है। **पत्ते**–कुछ लंबाई लिये अंडाकार एवं दन्तुर होते हैं। **पुष्प**–श्वेत रंग के; **फल**–छोटे, अंडाकार एवं नोकीले होते हैं। घऊंला नाम से प्रियंगु की मज्जा बंबई के बाजार में बिकती है। यह छोटी चिरौंजी जैसी, गोधूम वर्ण की, कड़वी और सुगंधित होती है। सुगंधि लेप में श्वेत चन्दन तथा कपूर कचरी के साथ इसका उपयोग बंबई प्रान्त में लोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में अल्प मात्रा में पद्मकाष्ठ में पाया जाने वाला हाइड्रोसायेनिक् एसिड (Hydrocyanic acid) नामक तीव्र विष रहने के कारण इसका उपयोग सावधानी के साथ करना चाहिये। इसके अतिरिक्त इसमें काउमॅरिन् (Coumarin), सॅलीसिलिक् एसिड (Salicylic acid) एवं ॲमिग्डॅलिन् (Amygdalin) ये पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह तिक्त पौष्टिक, वेदनाहर, दीपन एवं मूत्रल है। इसका उपयोग पीडायुक्त कुपचन, आमाशय के क्षत तथा आमाशय के अर्बुद में करते हैं।

मात्रा—२-५ रत्ती।

प्रियंगु ३

हि०–प्रियंगु। **कं०**–तेविलकामि। **ले०**–*Aglaia roxburghiana Miq.* (ॲग्लेइआ राक्सबर्घियाना मिक्.)। Fam. Meliaceae (मेलियॅसी)।

यह पश्चिमी प्रायद्वीप में कोंकण और मिदनापूर से दक्षिण की ओर सिलोन तक ६००० फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

इसका साधारण **वृक्ष** होता है। छाल किंचित् खाकी रंग की और चिकनी होती है। लकड़ी मजबूत तथा चमकीले लाल रंग की होती है। **पत्ते**–पक्षवत् पत्ते ३-१० इञ्च लम्बे और उनके पत्रक संख्या में ५, १½ से ५½ इञ्च लम्बे, पतले अण्डाकार या अण्डाकार-प्रासवत् और चिकने होते हैं। **पुष्प**–व्यास में १ इञ्च से कम, पीताभ और पत्तों के बराबर लम्बी मञ्जरियों में होते हैं जो पत्र कोण के ऊपर निकलती हैं। **फल**–कुछ कुछ गोल, निम्बफल सदृश, ½-¾ इञ्च व्यास के, रोमश तथा हरिण के रंग के रहते हैं जो सूखने पर भूरे रंग के सिकुड़नदार तथा आकार में छोटे हो जाते हैं। इसमें १ या २ बीज रहते हैं जो चिपटे करीब ½ इञ्च लम्बे (ताजी अवस्था में) तथा एक तरफ से उन्नतोदर रहते हैं। बीज का स्वाद खट्टा तथा कसैला रहता है। ताजी अवस्था में इसमें सुगन्ध रहती है जो सूखने पर नहीं रहती।

इसके फलों का उपयोग बहुत दिनों से प्रियंगु के नाम से किया जा रहा है। हो सकता है कि भावप्रकाशकार ने प्रियंगु का जो फल लिखा है वह यही हो।

गुण और प्रयोग—यह शीतल एवं ग्राही होता है। इसका उपयोग ज्वर, पित्त तथा शोथयुक्त रोगों में किया जाता है।

मात्रा—१-३ माशा।

अथ रेणुका। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

रेणुकाराजपुत्री च नन्दिनी कपिला द्विजा। भस्मगन्धा पाण्डुपुत्री स्मृता कौन्ती हरेणुका॥
रेणुका कटुका पाके तिक्ताऽनुष्णा कटुर्लघुः। पित्तला दीपनी मेध्या पाचनी गर्भपातिनी।
बलासवातकृच्चैव[1] तृट्कण्डूविषदाहनुत्॥ १०६॥

रेणुका के नाम तथा गुण—रेणुका, राजपुत्री, नन्दिनी, कपिला, द्विजा, भस्मगन्धा, पाण्डुपुत्री, कौन्ती तथा हरेणुका ये सब पर्यायवाची शब्द रेणुका के हैं। रेणुका-पाक में कटुरसयुक्त, किंचित् उष्णवीर्य, तिक्त तथा कटुरस युक्त और लघु होती है एवम् यह पित्तजनक, अग्निदीपक, मेधा के लिये हितकर, पाचक, गर्भ गिराने वाली, कफ तथा वातकारक होती है। यह तृषा, खुजली, विष और दाह को दूर करती है॥ १०५-१०६॥

४२ रेणुका

रेणुका एक संदिग्ध औषध है। रेणुक बीज नाम से विदेश में होने वाली निर्गुण्डी की जाति के वृक्ष के फल बिकते हैं। लेकिन संभवतः ये फल शास्त्रीय रेणुका नहीं हैं। शास्त्रीय रेणुका शायद पिप्पलीवर्ग की पाइपर ऑरेण्टिएकम् वाल. (Piper aurantiacum Wall.) के फल हैं। कुछ लोग निर्गुण्डी के बीज को ही रेणुका कहते हैं जो उसके प्रतिनिधि हो सकते हैं।

चरक में शिरोविरेचन एवं वमनोपग गणों में रेणुक बीज का पाठ है। ग्रहणी के मध्वरिष्ट में एवं व्रणपीडन रूप में रेणुका का उल्लेख है। चरक, सुश्रुत तथा रा. नि. इसको गर्भपातक नहीं मानते। सुश्रुत में हरेणुका का उल्लेख एलादिगण, पिप्पल्यादिगण में तथा रेणुका का उल्लेख कटुवर्ग में एवं भगंदर, नाडी, उपदंश व्रण तथा विष में इसका प्रयोग किया गया है।

---

१. बलासवातवैक्लव्य इति पाठा०।
तृष्णादाहविषक्लैब्यकफवातविनाशिनी॥ (नि. र.)

यहाँ पर वर्णन विदेश से आने वाले निर्गुण्डी की जाति के वृक्ष के फलों का किया गया है।

हि०-रेणुका, रेणुक, संमालू का बीज। गु०-हरेणु। म०-रेणुक बीज। इरा०-पंजनगुश्त। अ०-अथलक्। ले०-*Vitex agnus-castus Linn.* (वाइटेक्स् एग्नस्-कास्टस् लिन.)। Fam. Verbenaceae (वर्बिनेसी)।

यह बलूचिस्तान, अफगानिस्तान, पश्चिम एशिया, भूमध्यसागरीय प्रदेश आदि प्रदेशों में होता है। देहरादून के 'वैज्ञानिक बाग' में यह लगाया हुआ है।

इसका गुल्म या वृक्ष होता है जिसकी शाखाएं चौपहल होती हैं। पत्ते-लम्बे पत्रनाल से युक्त, करतलाकार संयुक्त, पत्रक पांच कभी-कभी सात भी, मालाकार और लम्बे नोक वाले होते है। फल-साधारण मटर के बराबर, अण्डाकृति तथा धूसर वर्ण के होते हैं। बाह्य दल एवं वृन्त इसमें लगा रहता है। ये फल बहुत कड़े रहते हैं तथा काटने पर इसके अन्दर ४ खण्ड दिखलाई देते हैं जिनमें एक-एक छोटा चिपटा बीज रहता है। भारतीय निर्गुण्डी के फल से ये फल करीब आधे छोटे होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें कास्टाइन (Castine) नामक एक कडुवा पदार्थ, उडनशील दाहजनक पदार्थ, अम्लद्रव्य एवं तैल, ये पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—ईरानी रेणुक बीज स्तम्भन, शोथघ्न, आनुलोमिक, मूत्रजनन एवं उत्तेजक हैं। प्लीहावृद्धि तथा यकृत रोग के कारण उत्पन्न जलोदर में इसको देते हैं। हिचकी में छोटी पीपल के साथ इसको खिलाते हैं।

मात्रा—४ र०-१ मा०।

अथ ग्रन्थिपर्णम् (गठिवन)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

ग्रन्थिपर्णं ग्रन्थिकञ्च काकपुच्छञ्च गुच्छकम्। नीलपुष्पं सुगन्धञ्च कथितं तैलपर्णकम्॥
ग्रन्थिपर्णं तिक्ततीक्ष्णं कटूष्णं दीपनं लघु। कफवातविषश्वासकण्डूदौर्गन्ध्यनाशनम्॥१०८॥

गठिवन के नाम तथा गुण—ग्रन्थिपर्ण, ग्रन्थिक, काकपुच्छ, गुच्छक, नीलपुष्प, सुगन्ध और तैलपर्णक ये सब संस्कृत नाम गठिवन के हैं। गठिवन-तिक्त तथा कटुरस युक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, अग्निदीपक तथा लघु होता है। यह कफ, वात, विष, श्वास, खुजली और दुर्गन्ध इन सबों को दूर करनेवाला होता है॥ १०७-१०८॥

४३ गठिवन

गठिवन का स्वरूप भी संदिग्ध ही है। आगे स्थौणेयक तथा चोरक नामक दो ग्रन्थिपर्ण के भेद दिये हुवे हैं वे भी संदिग्ध ही हैं। कुछ विद्वान् इन तीनों नामों को एक दूसरे का पर्याय मानते हैं। तालीसपत्र के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले द्रव्यों में से एक द्रव्य का स्थानिक नाम थुनेर होने से कुछ विद्वान् उसे ही स्थौणेयक मानते हैं। इस तरह यदि ग्रन्थिपर्ण एवं चोरक को थुनेर सजातीय माना जाय तो ये सब द्रव्य तालीसपत्र (थुनेर) के वर्ग के हो जाते हैं।

श्री शालिग्राम जी ने इसे आसाम की ओर बहुत उत्पन्न होने वाली तृण जाति की गांठदार सुगन्धित वनस्पति माना है जिसमें पत्ते अंगुली के समान लम्बे-लम्बे और फूल नीले गुच्छों में आते हैं। कुछ लोग वनतुलसी को गठिवन मानते हैं।

श्री डॉ. वा. ग. देसाई ने ग्रन्थितृण नाम से एक वनस्पति का वर्णन किया है। उसके गुण शास्त्रीय ग्रन्थिपर्ण से मिलते नहीं फिर भी सादृश्य होने से उसका संक्षेप में यहाँ वर्णन दिया जाता है।

सं०-ग्रन्थितृण। हि०-केली, मचोटी। पं०-मचूटि, केलु। काश्मी०-द्रोब। सिं०-एंद्राणी। इरा०-हझार, बंदुक। अं०-Knot-grass (नॉट्-ग्रास्)। ले०-*Polygonum aviculare Linn.* (पॉलिगोनम् एविक्युलेर लिन.)। Fam. Polygonaceae (पॉलिगोनॅसी)।

यह काश्मीर से कुमाऊँ तक ६ से १२ हजार फीट की ऊँचाई में होता है। इसका छोटा सा क्षुप होता है। जड़-लम्बी, कुछ काष्ठमय एवं चिमडी होती है तथा उससे अनेक उपमूल निकले रहते हैं। शाखाएं-बहुत सी, जमीन पर फैली हुई एवं गोल होती हैं। इसकी टहनियों की ग्रंथियाँ बहुत गांठदार होती हैं तथा वहीं से पत्र निकलते हैं। पत्र-एकान्तर, शल्याकृति, अखण्ड, धूसर रंग के एवं १ इञ्च से छोटे होते हैं। पुष्प-श्वेत या लाल रंग के होते हैं। फल-त्रिकोणयुक्त, हरे एवं अग्रपर सूक्ष्म झुर्रीदार, चमकीले एवं काले होते हैं। सिन्ध में बीजों को बीजबंद कहते हैं। बला के बीजों को भी अनेक स्थानों में बीजबंद कहा जाता है। चिकित्सा में इसके मूल, पञ्चाग एवं बीजों का व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें पोलिगोनिक् अम्ल तथा सुगन्धित तैल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसकी जड़ रक्तसंग्राहक, मूत्रजनन, अश्मरीघ्न, आनुलोमिक, ज्वरघ्न एवं कफघ्न है। बीज स्रंसन, मूत्रजनन एवं वामक होते हैं।

(१) अश्मरी या मूत्रकृच्छ्र में इसके पंचाग के क्वाथ या मूल रस का प्रयोग अधिक मात्रा में करने से बहुत लाभ होता है।
(२) जीर्ण अतिसार में मूल रस या पंचाग रस देते हैं।
(३) विषमज्वर में मूल रस का उपयोग करते हैं।
(४) फुफ्फुस विकारों में विशेष कर श्वसनिका शोथ एवं कुकास में पंचाग क्वाथ पिलाते हैं।
(५) सूखी हुई जड़ को पीसकर लगाने से वेदना कम होती है। विसर्प, बस्तिपीडा एवं आंख की पीडा में पत्तों का लेप किया जाता है।

अथ स्थौणेयकम्।

(ग्रन्थिपर्णस्यैव भेदः, ईषत्सुगन्धं 'थुनेर' इति लोके प्रसिद्धम्)

तस्य नामानि गुणाँश्चाह

स्थौणेयकं बर्हिबर्हं शुकबर्हञ्च कुक्कुरम्। शीर्णरोमशुकञ्चापि शुकपुष्पं शुकच्छदम्॥१०९॥
स्थौणेयकं कटु स्वादु तिक्तं स्निग्धं त्रिदोषनुत्॥ ११०॥
मेधाशुक्रकरं रुच्यं रक्षोघ्नं ज्वरजन्तुजित्।
हन्ति कुष्ठास्रतृड्दाहदौर्गन्ध्यतिलकालकान्॥ १११॥

'गठिवन' के ही भेद थोड़ी सुगन्ध से युक्त जो 'थुनेर' नाम से लोक में प्रसिद्ध औषध है, उसके नाम तथा गुण—स्थौणेयक, बर्हिबर्ह, शुकबर्ह, कुक्कुर, शीर्णरोम, शुक, शुकपुष्प और शुकच्छद ये सब संस्कृत नाम 'थुनेर' के हैं। थुनेर—कडु, तिक्तरस युक्त, स्वादिष्ट, स्निग्ध, तीन दोषों को दूर करने वाला, मेधा तथा शुक्र को बढ़ाने वाला, रुचिकारक, रक्षोग्रहनाशक एवं ज्वर, कृमि, कुष्ठ, रक्तविकार, तृषा, दाह, दुर्गन्ध और तिलकालक नामक रोग इन सबों को दूर करने वाला होता है॥ १०९-१११॥

४४ थुनेर

स्थौणेयक भी एक संदिग्ध औषध है। इसे ग्रन्थिपर्ण का भेद माना गया है लेकिन जब ग्रन्थिपर्ण ही संदिग्ध है तब इसका निर्णय कैसे किया जा सकता है। तालीसपत्र नाम से लिये जाने वाले द्रव्यों में से एक का स्थानिक नाम थुनेर है। इसलिये कुछ लोग इस थुनेर को स्थौणेयक मानते हैं। थुनेर का वर्णन तालीसपत्र के साथ किया गया है। चरक में स्थौणेयक का उपयोग अगुर्वादि तैल में (चि. अ. ३), मृतसञ्जीवन अगद में (चि. अ. २३), बलातैल में (चि. अ. २८) एवं मदनफल उत्कारिकामोदक योग में (क. अ. १) किया गया है। सुश्रुत में एलादिगण (सू. अ. ३८) में इसका पाठ है।

कुछ लोगों ने ले०-*Clerodendrum infortunatum, Linn.*; Fam. Verbenaceae (क्लेरोडेन्ड्रम् इन्फोर्च्युनेटम् लिन, वर्बिनेसी), हि०-भांट, सं०-कारी, भाण्डीर को स्थौणेयक लिखा है। इसके १२ फीट तक ऊँचे क्षुप प्रायः सभी स्थानों में पाये जाते हैं। प्रत्येक भाग कटु और दुर्गन्धयुक्त होता है। पत्र-विपरीत, ४-९ इञ्च लम्बे, ३-६ इञ्च चौड़े, लट्वाकार, लम्बे नोक एवं लम्बे पत्रनाल से युक्त होते हैं। बाह्यपुट स्थायी, वर्धनशील और लाल होता है। आभ्यन्तर पुट रक्ताभ श्वेत होता है। इसके पत्र एवं मूल का उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—भांट तिक्त पौष्टिक, उत्तम आनुलोमिक, पित्तसारक, कृमिघ्न एवं ज्वरघ्न है। तृतीयक तथा चतुर्थक ज्वर में यह लाभदायक है। बच्चों को इसके पत्र का चूर्ण २-५ रत्ती मधु एवं सुगन्ध द्रव्यों के साथ दिया जाता है। केंचुवे में इसके पत्र-रस को पिलाते हैं तथा बस्ति भी देते हैं। उदरशूल एवं अतिसार में इसकी जड़ को मट्ठे में पीस कर देते हैं। त्वचा के रोगों (खुजली) में इसका बाह्याभ्यन्तर प्रयोग करते हैं।

अथ ग्रन्थिपर्णस्यैव भेदः। 'भटेउर' इति नेपालदेशे भवति। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

निशाचरो धनहरः कितवो गणहासकः। चोरकः शङ्कितश्चण्डो दुष्पत्रः क्षेमको रिपुः।
चोरको[1] मधुरस्तिक्तः कटुः पाके कटुर्लघुः॥ ११२॥
तीक्ष्णो हृद्यो हिमो हन्ति कुष्ठकण्डूकफानिलान्। रक्षोऽलक्ष्मीस्वेदमेदोऽस्रज्वरगन्धविषव्रणान्॥

'गठिवन' का ही भेद 'भटेउर' है जो कि नेपाल देश में उत्पन्न होता है, उसके नाम तथा गुण—निशाचर, धनहर, कितव, गणहासक, चोरक, शङ्कित, चण्ड, दुष्पत्र, क्षेमक और रिपु ये सब संस्कृत नामक 'भटेउर' के हैं। भटेउर-मधुर, तिक्त तथा कटुरसयुक्त, पाक में कटु, लघु, तीक्ष्ण, हृदय के लिये हितकर और शीतवीर्य है। यह—कुष्ठ, खुजली, कफ, वात, रक्षोग्रह, अलक्ष्मी, पसीना, मेदरोग, रक्तविकार, ज्वर, दुर्गन्ध, विष और व्रण इन सबों को दूर करता है ॥११०-११३॥

४५ भटेउर (चोरक)

चोरक यह भी सन्दिग्ध है। इसे ग्रन्थिपर्ण का भेद माना गया है। कुछ लोगों ने स्थौणेयक एवं चोरक को एक ही वनस्पति माना है। चरक में 'संज्ञास्थापन दशेमानि' में इसका उल्लेख है। धूपन द्रव्यों के साथ इसका उल्लेख है और उन्मादोक्त महापैशाचिक घृत में इसका प्रयोग किया

१. रोचको इति पाठः।

गया है। अपस्मार, हिक्का, श्वास एवं पीनस, नासारोग आदि में भी चोरक का उल्लेख है। कुछ लोग पान की जड़ का व्यवहार 'चोरक' नाम से करते हैं।

पञ्जाब की तरफ चोरा नाम से एक द्रव्य मिलता है। इसका लेटिन नाम *Angelica glauca Edgw.*; Fam. Umbelliferae (अॅन्जेलिका ग्लॉका, एज., अम्बेलिफेरी) दिया हुआ है।

यह पश्चिम हिमालय में काश्मीर से लेकर सिमला तक ८०००-१०००० की ऊँचाई पर पाया जाता है।

इसका क्षुप ४-७ फीट ऊँचा होता है। काण्ड-चिकना, स्वावलम्बी, पोला तथा महीन प्रसीताओं से युक्त रहता है। पत्ते-प्रायः बड़े, १-३ पक्षवत् होते हैं। पत्रक-संख्या में ३, अण्डाकार या मालाकार, अनियमित एवं तीक्ष्ण दांतों से युक्त, ऊपरी पृष्ठ गहरे रंग का एवं अधोपृष्ठ क्षोदलिप्त रहता है। पुष्प-बहुत सफेद या नीलारुण रंग के तथा सवृन्तमूर्धज पुष्पव्यूहों में आते हैं। फल-चिकने, चिपटे आयताकार, १३ मि. मि. लम्बे एवं ६ मि. मि. चौड़े होते हैं।

गुण और प्रयोग—यह हृद्य एवं उत्तेजक है और आध्मान एवं कुपचन में भी उपयोगी है।

अथ तालीसपत्रम्। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

तालीसमुक्तं पत्राढ्यं धात्रीपत्रञ्च तत्स्मृतम् ॥ ११४॥
तालीसं लघु तीक्ष्णोष्णं श्वासकासकफानिलान्। निहन्त्यरुचिगुल्मामवह्निमांद्यक्षयामयान्॥

तालीसपत्र के नाम तथा गुण—तालीस, पत्राढ्य और धात्रीपत्र ये संस्कृत नाम 'तालीसपत्र' के हैं। तालीसपत्र-लघु, तीक्ष्ण और उष्णवीर्य होता है एवं यह-श्वास, खांसी, कफ, वात, अरुचि, गुल्म, आम, अग्नि की मन्दता और क्षयरोग इन सबों को दूर करता है ॥ ११४-११५॥

४६ तालीसपत्र

तालीसपत्र—यह नाम विभिन्न वर्गों के वृक्षों के पत्तों को भिन्न स्थानों में दिया हुआ दिखलाई देता है। पहले लोग प्राचीनामलक-फ्लॅकोर्टिआ कॅटाफ्रॅक्टा राक्स (Flacourtia cataphracta Roxb.) के पत्तों को तालीसपत्र कहा करते थे। दक्षिण में कहीं कहीं तमालपत्र-सिनॅमोमम् तमाल (Cinnamomum tamal) के पत्रों को तालीसपत्र कहा जाता है। उत्तर प्रदेश, राजपूताना, महाराष्ट्र एवं गुजरात आदि के वैद्य टॅक्सस् बॅकेटा (Taxus baccata) के पत्तों का व्यवहार तालीस पत्र के नाम से करते हैं। इसे कुछ लोग स्थौणेयक भी मानते हैं। बंगाल के वैद्य एबिस् वेबिआना (Abies webbiana) के पत्तों का व्यवहार तालीसपत्र के रूप में करते हैं। नेपाल एवं पंजाब के कुछ वैद्य तालीसफर, रोडोडेन्ड्रोन एन्थोपोगोन (Rhododendron anthopogon) के पत्तों का व्यवहार करते हैं जिसकी २, ३ अन्य उपजातियाँ भी होती हैं। प्राचीनामलक का वर्णन आम्रादिफलवर्ग में आया है तथा तमाल पत्र का वर्णन पहले (पृष्ठ २२८) किया जा चुका है। यहाँ पर बाकी तीनों का अलग-अलग वर्णन किया गया है।

चरक में दशेमानि में इसका उल्लेख नहीं है। सुश्रुत में शिरोविरेचकगण में इसका पाठ है। तालीसपत्र के शास्त्रीय गुण इस प्रकार लिखे हुए हैं—यह तिक्त, कटु, मधुर, उष्ण, लघु, तीक्ष्ण, शिरोविरेचन तथा कफ, वात, कास, श्वास, क्षय, वमन, अरुचि, गुल्म, आम, अग्निमांद्य और कृमि का नाश करने वाला है।

तालीसपत्र १

हि०-तालीसपत्र, थूनो, बिर्मी । गढ०-थुनेर । काश्मी०-पोस्तिल। बंब०-तालीसपत्र, वर्मि। बं०-बिर्मी । नेपा०-तेहीरे। खासि०-दिगंरुहेर् । अ०-जर्नब । अं०-Himalayan Yew (हिमालयन् यू)। *Taxus baccata Linn.* (टॅक्सस् बॅकेटा लिन.)। Fam. Taxaceae (टॅक्सॅसी)।

हिमालय के काश्मीर, पूर्वी पञ्जाब का पहाड़ी प्रदेश, गढवाल, अफगानिस्तान तथा अपर बर्मा आदि स्थानों में ६-१० हजार फीट की ऊँचाई पर इसके मध्यम ऊँचाई के सदाहरित वृक्ष पाये जाते हैं। कहीं कहीं १०० फीट तक ऊँचे झोपड़ाकृतिक वृक्ष होते हैं।

इसका **स्तंभ** छोटा किन्तु उसकी गोलाई १०, १२ फीट होती है। छाल-पतली, किंचित् लाली-युक्त खाकी रंग की होती है। लकड़ी-दृढ, बाहरी भाग सफेद तथा अंदर का भाग रक्ताभ श्वेत होता है। पत्ते-दो कतारों में निकले रहते हैं। ये १-१॥ इञ्च लंबे, दशमांश इञ्च चौड़े, रेखाकार, कड़े, चिपटे, नोकीले, ऊपरी पृष्ठ पर गहरे हरे रंग के और अधःपृष्ठ पर हलके पीले या मुरचई रंग के होते हैं। शिरा एक और पत्रनाल छोटा होता है। पत्तियों से विशेषतः सूखने पर एक प्रकार की गंध आती है। लालकोष में घिरा हुआ हरिताभ बीज होता है जो शीर्ष पर खुला रहता है। पहाड़ी लोग इसकी छाल से एक प्रकार का चाय सदृश पानक बनाकर पीते हैं और इसके फलों को खाते हैं।

यद्यपि युक्तप्रान्त, राजपूताना, महाराष्ट्र एवं गुजरात आदि के वैद्य तालीसपत्र के स्थान पर इसका प्रयोग करते हैं तथापि थुनेर नाम से इसके स्थौणेयक होने की अधिक संभावना है। बिर्मि नाम से उत्तरी भारत में आर्तव प्रवर्तक एवं शामक औषध के रूप में तथा अपस्मार, अपतंत्रक तथा नाडीदौर्बल्य आदि में इसके पत्तों का व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके बीज तथा पत्र में एक विषैला द्रव्य है जो बीज के ऊपर के लालकोष में नहीं होता। इसमें टॅक्सीन (Taxine) नामक एक क्षाराभ पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—तालीसपत्र अवसादक, उद्वेष्टननिरोधि, आर्तवजनन, वातानुलोमक, कफनिःसारक एवं बल्य है। इसकी क्रिया कुछ डिजिटॅलिस् के समान होती है। अल्प मात्रा में प्रयोग करने पर नाडी एवं श्वास की गति कम होती है। मध्यम मात्रा में श्वास बढ़ता है तथा हृत्स्पन्द होता है। इससे गर्भाशय का संकोच होता है। गर्भपात कराने के लिये प्रयुक्त करने पर गर्भपात नहीं होता लेकिन मृत्यु हो सकती है। बड़ी मात्रा से विषैला परिणाम होने से चक्कर, वमन, आक्षेप, नशा, आंखों की पुतलियों का विस्फार, मंदश्वास एवं श्वसनकृच्छ्र होकर मृत्यु होती है। विषैले परिणाम से आमाशय, आंत तथा वृक्कों में शोथ भी हो जाता है। डिजिटॅलिस् के समान इसका संचायी प्रभाव नहीं होता।

अपस्मार आदि आक्षेप युक्त व्याधियों में इसका प्रयोग किया जाता है। शुष्क कास, श्वासनलिका के जीर्णशोथ एवं तमक श्वास आदि में देने से खांसी की तकलीफ कम हो जाती है। प्रसूता को इसका फांट दिया जाता है। बस्तिशोथ में भी इससे लाभ होता है।

मात्रा—१-२ र०।

तालीसपत्र २

हि०, बं०-तालीसपत्र । गढ०-चिलिराघ । काश्मी०-बादर, बुदुल । कनवार-स्पुन । नेपा०-गोब्रिम सुल्ह । कुमा०-राघ । भूता०-दुमशिंग । अं०-Himalayan Siver Fer

(हिमालयन् सिल्वर फर)। ले०-*Abies webbiana Lindl.* (एबिस् वेबिआना लिंड)। Fam. Pinaceae (पिनॅसी)।

इसके ऊँचे सदाहरित वृक्ष हिमालय पर सिक्किम, भूटान के प्रदेश में ९ से १३ हजार फीट की ऊँचाई पर पाये जाते हैं।

इसके **वृक्ष** १५० फीट तक ऊँचे एवं स्तम्भ की गोलाई ३० फीट तक होती है। छाल-खाकी युक्त भूरे रंग की और खुरदरी होती है। नवीन शाखाएं प्रायः सूक्ष्म और भूरे रोमों से ढकी हुई रहती हैं। शाखाएँ प्रायः झुकी हुई रहती हैं। पत्ते-१-२ इञ्च लंबे, दशमांश इञ्च चौड़े, पतले, रेखाकार और काण्ड से पेचदार क्रम से निकले हुवे परन्तु देखने में केवल दो कतारों में निकले हुए से मालूम होते हैं। इनका ऊपरी पृष्ठ चमकीला तथा गहरे हरे रंग का होता है और अधःपृष्ठ पर मध्यशिरा के दोनों ओर दो दो सफेद धुंधली रेखाएँ होती हैं। पत्ते नताग्र होते हैं और अग्र पर प्रायः दो तीक्ष्ण और कठोर नोक निकले रहते हैं। फल-लंब गोल या आयताकार, २-४ इञ्च का और पकने पर गहरे बैंगनी रंग का होता है। बीज-करीब इञ्च का षष्ठमांश लम्बा होता है।

इस जाति में मोरिण्डा नामक, ले०-एबिस् पिण्ड्रो (Abies pindrow) वृक्ष भी होता है जो इससे बहुत मिलता जुलता है। इसमें नवीन शाखाएँ रोमरहित और पत्तियां २-३ इञ्च लम्बी, दो कतारों में निकली हुई और दो दिशाओं में फैली हुई रहती हैं। एबिस् वेबिआना में वे ऊपर की ओर हर दिशा में फैली हुई रहती हैं। इसके फल भी दूसरे की अपेक्षा छोटे और मोटे होते हैं। ये जौनसार में प्रायः १० हजार फीट के नीचे (देवबन, मुंडाली आदि में) पाये जाते हैं।

प्रायः पूर्वी भारत में एबिस् वेबिआना के ही पत्र तालीशपत्र के नाम से बेचे जाते हैं। बंगाल के वैद्य इसी का व्यवहार करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उड़नशील तैल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह दीपन, पाचन, वातानुलोमक, कफनिःसारक, ग्राही एवं बल्य है। इसका उपयोग जीर्ण श्वास, कास, राज्यक्ष्मा, अग्निमांद्य, अरुचि एवं बस्तिविकार में किया जाता है।

(१) तालीसादि चूर्ण १०-२० र० की मात्रा में श्वास, कास, रक्तपित्त, अग्निमांद्य एवं अतिसार आदि में दिया जाता है। बच्चों के श्वसनी फुफ्फुस पाक में १½ र० चूर्ण तथा कस्तूरी वटी १ र० की ६ मात्रा बना कर हर ४ घण्टे पर देने से लाभ होता है।

(२) इसके पत्तों का स्वरस ५-१० बूँद जल या दुग्ध के साथ बच्चों के दंतोद्भेद के समय होने वाले ज्वर एवं कफविकार आदि में दिया जाता है। बंगाल में प्रसूता को बल्य औषध की तरह इसे देते हैं।

(३) स्वरभंग, जीर्णश्वसनिका शोथ, राजयक्ष्मा तथा अन्य कफविकारों में इसके क्वाथ या फांट का उपयोग करते हैं।

(४) इसके पत्तों का चूर्ण मधु एवं वासा स्वरस के साथ कास, श्वास तथा रक्तष्ठीवन में दिया जाता है।

मात्रा—१-२ माशा।

तालीसपत्र ३

इसकी कई उपजातियाँ होती हैं जिनमें से २, ३ के पत्तों का प्रयोग तालीसपत्र के स्थान पर नेपाल तथा पंजाब के कुछ वैद्य करते हैं। इनका संक्षेप में वर्णन किया गया है।

(क) हि०-तालीसफर, तालीसपर। काश्मी०-तजकसुम। झेलम०-निचनी, रतनकाट, नेरा। पं०-तालिस्री। ले०-*Rhododendron anthopogon D. Don.* (रोडोडेन्ड्रॉन् एन्थोपोगोन् डी. डोन)। Fam. Ericaceae (एरिकेसी)।

यह हिमालय में १०-१४ हजार फीट की ऊँचाई पर काश्मीर से भूटान तक उत्पन्न होता है। इसके सदा हरित गंधयुक्त छोटे छोटे क्षुप १ से १॥ फीट ऊँचे होते हैं। शाखाओं पर वल्क पत्र और खुरदरापन होता है। पत्ते-सनाल, १-१॥ इञ्च लंबे, अंडाकार या चौड़े आयताकार, ऊपरी पृष्ठ पर चमकदार और अधःपृष्ठ पर भूरे रोमावरण से युक्त होते हैं। शाखाओं के अन्त में फूलों का गुच्छा लगता है। फूल-किंचित् पीले आते हैं। फल-बहुत छोटे और अंडाकार होते हैं। बीज-बहुत सूक्ष्म तथा दीर्घवृत्ताकार होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके पत्तों का धूम्रपान लाभदायक माना जाता है। पत्ते-उत्तेजक तथा सुगंधित होते हैं। इसके चूर्ण के नस्य से छींके आती हैं। ऐसी धारणा है कि हिमालय के पूर्वभाग में अधिक ऊँचाई पर चढ़ते समय शिरःशूल तथा हृल्लास उत्पन्न करने वाली वनस्पतियों में से एक यह हो।

मात्रा—२-८ रत्ती।

(ख) गढवाल-सिमारेस। ने०, हि०-चेरैलु। काश्मी०-नग्गर। कुमाऊं-चिमुल। ले०-*Rhododendron campanulatum D. Don* (रोडोडेन्ड्रॉन् कम्पॅनुलॅटम् डी. डोन)।

यह भी हिमालय में काश्मीर से भूटान तक पाया जाता है। इसका गुल्म-कुछ बड़ा; पत्ते-३-५ इञ्च लंबे, दीर्घवृत्ताकार, आयताकार तथा दोनों सिरों पर गोल होते हैं। नीचे के पृष्ठ पर दालचीनी रंग के सघन रोमों से शिराएं ढकी रहती हैं। पुष्प-बैंगनी या नीलापन लिये श्वेत रंग के आते हैं।

गुण और प्रयोग-इसके पत्ते बकरियों के लिये विषैले समझे जाते हैं। अर्धावभेदक तथा प्रतिश्याय में तम्बाकू के साथ इसके पत्तों का नस्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। जीर्ण आमवात, फिरंग तथा गृध्रसी में इसके पत्तों का आभ्यन्तरिक उपयोग किया जाता है। नेपाल में इसके पंचांग का प्रयोग जीर्ण ज्वर तथा राजयक्ष्मा में किया जाता है।

मात्रा—२-८ र०।

(ग) गढवाल-सिमरिस। भोटिया-तसलसुमा। यू०, हि०-तालीसफर। ले०-*Rhododendron lepidotum Wall.* (रोडोडेन्ड्रॉन् लेपिडोटम् वाल.)।

यह भी हिमालय में काश्मीर से भूटान तक पाया जाता है।

इसका क्षुप छोटा तथा गन्धयुक्त होता है। पत्ते-½ इञ्च से १॥ इञ्च लम्बे, प्रायः विनाल, ऊपर से लट्वाकार और कुण्ठिताग्र या मालाकार और कुछ नोकीले और अधःपृष्ठ श्वेत या मुरचई रंग के रोमावरण से ढका हुआ रहता है। फूल-लाल, बैंगनी या पीले, ३-४ के गुच्छों में या अकेले रहते हैं। फल-छोटे, ५ धारीयुक्त होते हैं तथा बीज छोटे-छोटे अण्डाकार होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके गुण (क) के समान ही हैं।

अथ कङ्कोलं सुगन्धिद्रव्यम् 'सीतलचीनी' इति लोके। तस्य नामानि गुणांश्चाह

कङ्कोलं[1] कोलकं प्रोक्तं तथा कोषफलं स्मृतम्।
कङ्कोलं लघु तीक्ष्णोष्णं तिक्तं हृद्यं रुचिप्रदम्। आस्यदौर्गन्ध्यहृद्रोगकफवातामयान्ध्यहृत्॥

[1] कक्कोलं इति पाठा०।

'कङ्कोल नामक' सुगन्ध द्रव्य जो कि शीतल चीनी नाम से प्रसिद्ध है उसके नाम तथा गुण—कङ्कोल, कोलक और कोषफल ये सब संस्कृत नाम 'शीतलचीनी' के हैं। शीतलचीनी-लघु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, तिक्त रस युक्त, हृदय को हितकर तथा रुचिकारक होती है। यह मुख की दुर्गन्धता, हृद्रोग, कफ तथा वातरोग और आन्ध्य (आँखों से न दीखना) इन सबों को दूर करती है॥ ११६॥

४७ शीतलचीनी

हि०-शीतलचीनी, कबाबचीनी, कङ्कोल, शीतलमिर्च। बं०-कबाबचिनि, सुगन्धमरिच। म०-कङ्कोल, कापूरचीनी। गु०-चणकबाब। क०-गन्धमेणसु। ते०-चलवमिरियालु। ता०-वालिमलगु। फा०-कबाबह्, कबाबचीनी। अ० हब्बुल् उरूस, कबाबेसीनी। अं०-Cubebs (क्यूबेब्स); Tailed Pepper (टेल्ड पेप्पर)। ले०-*Piper cubeba Linn. f.* (पाइपर क्यूबेबा लिन.)। Fam. Piperaceae (पाइपेरेसी)।

शीतलचीनी—यह एक लता जाति की वनस्पति का पूर्ण रूप से विकसित किन्तु अपक्व अवस्था में सुखाया हुआ फल है, जो काली मरिच के समान होता है। यह जावा, सुमात्रा तथा बोर्नियो में होती है। लङ्का में इसकी खेती की जाती है। भारतवर्ष में विशेष कर मैसूर में इसकी कुछ उपज की जाती है।

इसकी आरोही बहुवर्षायु लता होती है। कांड-चिकना, लचीला एवं जोड़दार होता है। पत्ते-अखंड, सवृन्त, आयताकार या लट्वाकार-आयताकार, नोकीले, गोल या हृद्वत् पर्णतलवाले, चर्मवत् तथा चिकने होते हैं। शिराएँ बहुत होती हैं। पुष्प-एकलिंगी तथा अवृन्त-काण्डज पुष्पव्यूहों में आते हैं। फल-गोल, अष्ठिफल होते हैं जिनमें आधार की तरफ डंठल लगा रहता है। हरी अवस्था में ही इन्हें तोड़कर धूप में सुखा लिया जाता है।

यह अपक्व फल काली मिर्च के समान, गोल, झुर्रीदार गहरे भूरे रंग के एवं करीब ४ मि० मि० व्यास के सूखे हुवे होते हैं। इसके शिखर पर त्रिकोणयुक्त कुक्षि लगी रहती है तथा आधार पर ४ मि० मि० लंबा डंठल रहता है। इसके अन्दर एक बीज रहता है। इसको चबाने से मनोरम तीक्ष्ण मसालेदार विशिष्ट गन्ध आती है; स्वाद कड़ुवा, चरपरा तथा जीभ ठंडी मालूम पड़ती है। औषध में इन्हीं फलों का व्यवहार किया जाता है। कुछ लोग इसके दो भेद मानते हैं। छोटे तथा पतले छिलके वाले फलों को शीतलचीनी एवं बड़े तथा मोटे छिलके वाले फलों को कबाबचीनी कहा जाता है। वास्तव में एक ही लता के यह फल होते हैं। प्राचीन काल से मुखशुद्धि के लिये पान के साथ या स्वतन्त्र रूप में तथा मसालों में इसका प्रयोग किया जाता रहा है।

रासायनिक संगठन—कबाबचीनी में उड़नशील तैल ५-२०%, क्यूबेबिन् (Cubebin, $C_{20}H_{20}O_6$), राल, तैल, स्टार्च, गोंद, क्यूबेबिक् एसिड (Cubebic acid) करीब ०·९६% तथा कॅल्शियम ऑक्जॅलेट, फॉस्फेट एवं मॅलेट तथा मॅग्नेशियम् मॅलेट ये पदार्थ पाये जाते हैं। इसमें के प्रधान गुणकारी तत्व उड़नशील तैल एवं क्यूबेबिक् एसिड हैं। पुराने कबाबचीनी द्वारा निकाले तैल में गंधहीन एवं पारदर्शक एक प्रकार का कर्पूर (Camphor of cubeb, $C_{15}H_{26}O$) पाया जाता है।

इसमें का उड़नशील तैल स्वच्छ, हलके पीताभ या नीलाभ हरित रंग का, विशिष्ट गंधयुक्त एवं उष्ण कर्पूरवत् स्वादवाला होता है। इस तैल में प्रधान रूप में टर्पेन्स (Terpenes) एवं सेस्किटर्पेन्स (Sesquiterpenes) पाये जाते हैं। भारतीय कबाबचीनी में भी उपर्युक्त तैल से मिलता

घुलता उड़नशील तैल पाया जाता है। तैल को शीत तथा प्रकाशहीन स्थान में बन्द बोतलों में रखना चाहिये।

परीक्षा—किसी श्वेत पात्र में कबाबचीनी का चूर्ण रखकर उस पर १ बूंद गंधक का तेजाब रखकर ऊपर से देखने से नीलारुण (Purple) रंग दिखलाई देता है। अच्छी कबाबचीनी में सिकुड़े हुये अविकसित फल १०% से अधिक, कांड ५% से अधिक, इनको छोड़कर अन्य पदार्थ २% से अधिक, राख ८% से अधिक एवं अम्ल में न घुलने वाली राख २% से अधिक न होनी चाहिये।

गुण और प्रयोग—कबाबचीनी उष्ण, उत्तेजक, कफघ्न, वातघ्न, प्रतिदूषक (Antiseptic), मूत्रजनक, दीपन, पाचन, रुचिकर, वृष्य, तृष्णा शामक तथा मुख की दुर्गन्ध एवं जडतानाशक है। इसमें स्थानिक प्रक्षोभक गुणों के कारण यह श्लेष्मकला के लिये उत्तेजक है। प्रचूषण के पश्चात् इसके कार्यकारीसत्व का उत्सर्ग वृक्क एवं श्वसनसंस्थान द्वारा होता है। मूत्रजननेन्द्रिय संस्थान की श्लेष्मकला पर इसका स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। अधिक मात्रा में सेवन करने पर यह पाचनक्रिया विकृत कर देती है। त्वचा की उत्तेजना से कभी-कभी खुजली भी उत्पन्न होती है।

(१) प्रतिदूषक एवं मूत्रल औषध की तरह इसे पुराने सोजाक में देते हैं। ३०-६० र० चूर्ण दुग्ध के साथ या २½ र० फिटकिरी के साथ दिन में ३ बार देते हैं। इससे बस्तिशोथ में भी लाभ होता है।

(२) श्वसन संस्थान के विकारों में प्रतिदूषक एवं उत्तेजक कफनिःसारक रूप में खदिरादि गुटिका जैसी चूसने की गोली बनाकर उसे चूसने को दिया जाता है। गले की शिथिलता तथा मुखपाक आदि में भी इससे लाभ होता है। गायक गला साफ करने के लिये इसको चूसते हैं। खांसी आदि में इसके चूर्ण को मधु के साथ चटाते हैं। इसका धूम्रपान श्वास में लाभदायक है।

(३) नाक के श्लेष्मा को कम करने के लिये इसके नस्य का उपयोग किया जाता है।

(४) इसके तैल को मूत्रजननेन्द्रिय संस्थान के रोग, बस्तिशोथ, सोजाक तथा सोजाक की पुरानी अवस्था में शर्करा के साथ या गोंद के साथ एमल्शन बनाकर या कॅपसूल में रख कर प्रयोग करते हैं। जीर्ण श्वसनिका शोथ में इसको उष्ण जल मे डालकर उसकी वाष्प सूंघी जाती है।

मात्रा—चूर्ण १-४ माशा। तैल ५-२० बूंद।

अथ गन्धकोकिला गन्धमालती च। तयोर्गुणानाह

स्निग्धोष्णा कफहृत्तिक्ता सुगन्धा गन्धकोकिला। गन्धकोकिलया तुल्या विज्ञेया गन्धमालती॥

'गन्धकोकिला' तथा 'गन्धमालती' के गुण—**गन्धकोकिला**-तिक्तरसयुक्त, स्निग्ध, सुगन्ध-युक्त, उष्णवीर्य एवं कफनाशक होती है। 'गन्धकोकिला' के समान 'गन्धमालती' के भी गुण समझना चाहिये॥ ११७॥

४८ गन्धकोकिला एवं गन्धमालती

ये दोनों ही संदिग्ध गन्ध द्रव्य हैं। बाजार में गन्धकोकिला नाम से एक प्रकार के फल बिकते हैं जो देखने में हबुषा के समान किन्तु कुछ चिपटे होते हैं। गन्धमालती नाम से एक प्रकार की जड़ के छोटे-छोटे टुकड़े मिलते हैं जो रेशेदार किंचित् बादामी रंग के होते हैं।

आगे पुष्पवर्ग में मालती (जाती, चमेली) एवं स्वर्णजाती का वर्णन आया है। मालती (रतेड) नामक एक अन्य लता होती है जिसे कुछ लोगों ने गंधमालती लिखा है। इसकी एक अन्य उपजाति

भी पाई जाती है। निघंटुकारों ने जो जातीभेद लिखा है वह संभवतः यही रतेड हो या यह यहाँ पर वर्णित गन्धमालती हो। गन्धमालती (रतेड) का लैटिन नाम (Aganosma caryophyllata G. Don.) (अॅगॅनोस्मा कॅरियोफाइलॅटा जी० डोन) एवं इसी के भेद का A. calycina A. DC. (अॅ० कॅलिसिना ए० डी० सी०) है जिनका संक्षेप में यहाँ वर्णन किया गया है।

ले०–*Aganosma caryophyllata G. Don.* (अॅगॅनोस्मा कॅरियोफाइलॅटा जी. डोन.)। Fam. Apocynaceae (एपोसाइनेसी)। **हिं०, बं०**–मालती। **संथा०**–रतेड़।

यह बंगाल, मुंगेर, उत्तरी सरकार एवं दक्षिण में होती है।

इसकी लता-विस्तार में फैलने वाली तथा आरोही होती हैं। **पत्ते**–लट्वाकार या अण्डाकार ३-५·५ × १·५-३ इञ्च बड़े, पर्णशिराएं रक्ताभ, आमने सामने के पत्ते कभी-कभी छोटे बड़े एवं फलक का आधार तिरछा होता है। **पुष्प**–बड़े, श्वेत, सुगंधि, तथा समस्त काण्डज गुच्छों में आते हैं। आभ्यंतर नाल नीचे पतला किन्तु ऊपर चौड़ा रहता है। **फली**–दो-दो, अग्र पर जुड़ी हुई एवं ४ से १४ इञ्च लंबी तथा अग्र की ओर क्रमशः संकुचित रहती हैं।

गुण और प्रयोग—यह वामक है। इसके पत्तों का पैत्तिक विकारों में प्रयोग करते हैं। पानी से अंगुलियों के बीच जब पक जाता है तब इसकी अग्रय कलिकाओं का स्वरस लगाया जाता है। इसके पुष्पों का नेत्र विकारों में प्रयोग करते हैं।

अथ लामज्जकम्। (उशीरवत् पीतच्छवितृणविशेषः)। तस्य नामगुणानाह

लामज्जकं सुनालं स्यादमृणालं लवं[1] लघु। इष्टकापथकं सेव्यं नलदञ्चावदातकम्॥११८॥
लामज्जकं हिमं तिक्तं लघु दोषत्रयास्रजित्। त्वगामयस्वेदकृच्छ्रदाहपित्तास्ररोगनुत्॥११९॥

'लामज्जक' जो कि 'वीरण' घास की भाँति पीत वर्ण का एक विशेष तृण होता है उसके नाम तथा गुण—लामज्जक, सुनाल, अमृणाल, लव, लघु, इष्टकापथक, सेव्य, नलद और अवदातक ये सब संस्कृत नाम 'लामज्जक' के हैं। **लामज्जक**-तिक्तरसयुक्त, शीतवीर्य और लघु होता है एवं यह त्रिदोष, रक्तविकार, चर्मरोग, पसीना, मूत्रकृच्छ्र, दाह और रक्तपित्त इन सबों को दूर करता है॥

४९ लामज्जक

लामज्जक भी संदिग्ध द्रव्य है। भावप्रकाशकार इसे खस की तरह का पीतवर्ण का तृणविशेष मानते हैं। कुछ ग्रंथकारों का कहना है कि जब तक इसका निर्णय नहीं हो जाता तब तक लामज्जक के स्थान पर खस का व्यवहार करना चाहिये। कुछ नवीन ग्रन्थकारों ने लामज्जक का ले० नाम Cymbopogon jwarankusa (साइम्बोपोगोन् ज्वरांकुश) लिखा है। श्रीयुत् यादव जी अपनी द्रव्यगुणविज्ञान पुस्तक में लिखते हैं कि यह (साइम्बो-ज्वरांकुश) यूनानी औषध विक्रेताओं के यहाँ इजखिर नाम से बिकता है तथा इजखिर उष्णवीर्य द्रव्य होने से इसे लामज्जक नहीं मान सकते। वे इसे भूतृण मानते हैं।

बाजार में एक पीतवर्ण का खस मिलता है। हो सकता है कि उसका लैटिन नाम ज्ञात न हो या वह खस का ही भेद हो लेकिन लामज्जक के स्थान पर उसका प्रयोग किया जा सकता है। यहाँ निम्न वर्णन साइम्बोपोगोन् ज्वरांकुश का किया गया है।

हिं०–लखवी, लामज्जक, करनकुश, घाटजारी। **मिर्जापुर**–इन्द्रबगई। **बं०**–कारांकुस। **म०**–पिवलावाला। **पं०**–खूर, इमरंकुश। **गु०**–पिलो वालो। **ते०**–पासनगड्डि। **ता०**–कामाट्चिपिल्लु।

[1] लयमिति पाठा०।

क०-करिलात्रचा। अ०-इज़खिर। इरा०-गुर्गियाह। ले०-*Andropogon jwarancusa Jones* (एन्ड्रोपोगॉन् ज्वरान्कुश जोन्स); Cymbopogon jwarankusa Schult. (साइम्बोपोगॉन् ज्वरान्कुश शुल्ट)। Fam. Gramineae (ग्रॅमिनी)।

लामज्जक -- यह सुगन्धित घास हिमालय, उत्तरप्रदेश, पञ्जाब, सिन्ध और बंबई में उत्पन्न होती है।

यह तृण जाति की वनौषधि ३-६ फुट ऊँची होती है। पत्ते-चिपटे, चिकने, कड़े, २ फीट तक लंबे, ०·२ इञ्च चौड़े और ऊपर की ओर क्रमशः कम चौड़े होकर लंबे पतले नोकवाले होते हैं। पत्रकोश स्थाई, टेढ़े और उनके गुच्छों के बीच में डंडी निकली रहती है। जड़-लंबी, गुच्छेदार, कोमल, स्वाद में कड़वी, तीती एवं अत्यन्त सुगंधित तथा पीले रङ्ग की होती है। इसके पंञ्चाग का व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके घास में करीब १% सुगंधित तैल होता है।

गुण और प्रयोग—इसके फूल रक्तस्तंभक हैं तथा जड़ एवं पत्ते वातानुलोमक, उत्तेजक, आर्तवजनन, मूत्रजनन, स्वेदजनक एवं अल्प मात्रा में कफघ्न हैं।

रक्तस्राव रोकने के लिये इसके फूलों को क्षत पर बाँधते हैं। इसके पंचांग को पीस कर शोथ पर लेप किया जाता है। ज्वर में पंचांग के क्वाथ से स्नान कराते हैं। द्राक्षासव में इसका पंचांग डाल कर गरम करके देने से पेशाब बहुत होता है। आमवात में विरेचन औषध के साथ इसे देते हैं। इसमें अल्प मात्रा में कफघ्न गुण होने के कारण कफ रोगों में दाह कम करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। गर्भाशय का थोड़ा संकोच करने के कारण इसको प्रसूति ज्वर में देते हैं। वातरक्त में इसका उपयोग किया जाता है। बच्चों के कुपचन के लिए भी यह उत्तम है।

मात्रा—½-१ तो०।

अथैलवालुकम्। (कङ्कोलसदृशं कुष्ठगन्धि)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

एलवालुकमैलेयं सुगन्धि हरिवालुकम्। ऐलवालुकमेलालु कपित्थत्वच[1]मीरितम्॥१२०॥
एलालु कटुकं पाके कषायं शीतलं लघु। हन्तिकण्डूव्रणच्छर्दितृट्कासारुचिहृद्रुजः॥
बलासविषपित्तास्रकुष्ठमूत्रगदक्रिमीन्॥१२१॥

एलवालुक जो कि देखने में 'शीतलचीनी' की भांति तथा गंध में 'कूठ' के समान होती है, उसके नाम तथा गुण—एलवालुक, ऐलेय, सुगन्धि, हरिवालुक, ऐलवालुक, एलालु और कपित्थत्वग् ये सब संस्कृत नाम 'एलवालुक' के हैं। एलवालुक-कषाय रस युक्त किन्तु पाक में कटुरसयुक्त, शीतवीर्य और लघु होती है। यह खुजली, व्रण, वमन, प्यास, खांसी, अरुचि, हृद्रोग, कफ, विष, रक्तपित्त, कुष्ठ मूत्ररोग और कृमिरोग इन सबों को दूर करती है॥१२०-१२१॥

५० एलवालुक

एलवालुक संदिग्ध द्रव्य है। भावप्रकाशकार इसे 'कंकोलसदृशं कुष्ठगंधि' मानते हैं। चरक में शुक्रशोधन और वेदनास्थापन दशेमानि में एवं कषायस्कंध में इसका उल्लेख है। आसवयोनि में इसकी छाल का उल्लेख है। अर्शोक्त अभयारिष्ट, उन्मादोक्त कल्याणकघृत तथा पांडु के बीजकारिष्ट में इसका पाठ है। सुश्रुत के लोध्रादिगण में इसका पाठ है।

१. कपित्थफल इति पाठा०।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट है कि एलवालुक, ॲलोज् (मुसब्बर) नहीं हो सकता जैसा कि कुछ लोग मानते हैं क्योंकि एलवालुक का पाठ त्वगासवयोनि में होने से यह कोई वृक्ष है ऐसा मालूम होता है। अधिकांश विद्वान् प्रुनस् सिरेसस् को एलवालुक मानते हैं क्योंकि इसका एक नाम आलुवालु है। यह शायद एलवालुक का अपभ्रंश हो। डा० देसाई, गिसेकिआ फॉर्नेसिओइडिस् को एल्वालुक मानते हैं। इन दोनों का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है। कुछ लोगों ने मुकिआ स्काब्रेला आर्न० (Mukia scabrella Arn.) को माना है जो दीपन, मृदुविरेचन एवं मूत्रजनन है तथा जिसके पत्तों का प्रयोग चक्कर में, बीजों का प्रयोग स्वेद लाने के लिये एवं मूल का आध्मान में उपयोग किया जाता है।

एलवालुक १

हि०-आलूवालू। पं०-गिलास। अं०-Dwarf cherry (ड्वार्फचेरी)। ले०-*Prunus cerasus Linn.* (प्रूनस् सिरॅसस् लिन.)। Fam. Rosaceae (रोझॅसी)।

इसके वृक्ष हिमालय के पर्वतों में लगाये हुए मिलते हैं।

इसके पत्ते-२-३ इञ्च लंबे, १-१॥ इञ्च चौड़े, लट्वाकार-अंडाकार, अग्र यकायक नोकीला तथा किनारा दन्तुर (तीक्ष्णाग्रगोल दांत) होता है। पुष्प-श्वेत या गुलाबी एवं; फल-गोल, चिकना, चमकीला और घेरे में आधा इञ्च तक होता है। इसके बीज बाजार में बिकते हैं जिनकी मज्जा का औषध में व्यवहार किया जाता है। इसका स्वाद कड़ुवा एवं सुगन्धित रहता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक उड़नशील तैल एवं पद्मकाष्ठ आदि में पाया जाने वाला हाइड्रोसायेनिक् एसिड (Hydrocyanic acid) नामक तीव्र विष रहता है।

गुण और प्रयोग—यह कड़ुवा पौष्टिक एवं वेदनास्थापक है। मज्जा तन्तु के रोगों में इसका व्यवहार किया जाता है। इसके अन्य गुण उपर्युक्त विष के समान हैं। इसकी छाल ग्राही एवं ज्वरहर होती है।

मात्रा—२-५ र०।

एलवालुक २

हि०-बालका साग। बं०-बालुक। म०-व (वा) लुची भाजी। ता०-मनल्किरै। ते०-एसकदन्तिकुर। ले०-*Gisekia pharnaceoides Linn.* (गिसेकिआ फार्नेसिओइडिस् लिन.)। Fam. Ficoidaceae (फिकोइडॅसी)।

यह वनस्पति पंजाब, सिंध, दक्षिण तथा सिलोन में होती हैं। इसके क्षुप छोटे, फैले हुवे तथा अनेक शाखाओं से युक्त होते हैं। पत्र-विपरीत, मांसल, अखंड, अंडाकृति, करीब १ इञ्च लंबे तथा आधार की तरफ नोकीले होते हैं। पुष्प-अनेक; फल-बाह्यदल से आवृत झिल्लीदार होते हैं। बीज-काले से, पृष्ठ पर गोलाई लिये हुए एवं श्वेत छोटी ग्रंथियों से युक्त होते हैं। बंगाल में वालुक नाम से यह बीज बिकते हैं। औषध में पंचांग का व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—पत्तों में बालू की तरह क्षार के कंकड रहते हैं। इसी से इसे बालू का साग कहा जाता है।

गुण और प्रयोग—इसका पंचाङ्ग सुगंधि, आनुलोमिक एवं कृमिघ्न है। कृमिरोग में इसके पंचांग का रस १ औंस तथा शीतजल १ औंस मिलाकर सुबह खाली पेट पिलाते हैं। हर दूसरे दिन ३, ४ बार के प्रयोग से स्फीतकृमि (Taenia) मर कर निकल जाते हैं।

अथ कैवर्तीमुस्तकम् (केवटी मोथा)। तस्य नामलक्षणगुणानाह

कुटन्नटं दासपुरं वानेयं परिपेलवम्। प्लवगोपुरगोनर्दकैवर्तीमुस्तकानि च ॥ १२२ ॥

मुस्तावत्पेलवपुरं[1] शुकाभं[2] स्याद्वितुन्नकं ॥ १२३ ॥

वितुन्नकं हिमं तिक्तं कषायं कटु कान्तिदम्। कफपित्तास्रवीसर्पकुष्ठकण्डूविषप्रणुत् ॥१२४॥

'केवटीमोथा' के नाम लक्षण तथा गुण—कुटन्नट, दासपुर, वानेय, परिपेलव, प्लव, गोपुर, गोनर्द, कैवर्तीमुस्तक और वितुन्नक ये सब संस्कृत नाम 'केवटीमोथा' के हैं। केवटीमोथा के लक्षण—यह मोथा की भांति, कोमल दलकोश तथा शुक की भांति वर्ण से युक्त होता है। केवटीमोथा—कटु, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, शीतवीर्य और कान्तिवर्धक होता है और यह कफ, पित्त, रक्तविकार, वीसर्प कुष्ठ, खुजली तथा विष को दूर करता है ॥ १२२-१२४ ॥

* 'केवटीमोथा'—'गुडतजी' इति च लोके। इदं तु वितुन्नकनाम्नो वृक्षस्य त्वग मुस्ताकृतिः ॥ १२२-१२४ ॥

यहां पर यह भी समझना चाहिये कि लोक में 'केवटीमोथा' गुडतजी नाम से भी प्रसिद्ध है तथा यह वितुन्नकनामक वृक्ष का छिलका है एवं आकार में मोथा की भांति होने से इसे केवटीमोथा कहते हैं ॥ १२२-१२४ ॥

५१ केवटीमोथा

कैवर्तमुस्तक का उपर्युक्त वर्णन भ्रमात्मक मालूम पड़ता है। मुस्ता के आकारवाली वितुन्नक नामक वृक्ष की छाल कैवर्तमुस्तक है यह उपर्युक्त वर्णन से मालूम होता है। केवटीमोथा नाम से ग्रन्थिसदृश छोटे काले कन्द मिलते हैं जो मोथा वर्ग (Cyperus) के ही होते हैं। इसके गुणों में तथा मोथे के गुणों में विशेष अन्तर नहीं है। इसलिये इन्हें कैवर्तमुस्तक माना जा सकता है।

डा. देसाई ने ले.-Celosia argentea Linn.; Fam. Amaranthaceae (सेलोसिआ आर्जेण्टिआ, लिन. अॅमॅरेन्थेसी) का संस्कृत नाम शितवार, वितुन्नक लिखा है। इसे हि. में सुर्वाली, सफेद मुर्गा कहा जाता है। शाकवर्ग में वर्णित, शितिवार यही मालूम होता है। शितिवार के पर्यायों में 'सुनिषण्णक' शब्द भी आता है किन्तु ये दो भिन्न द्रव्य मालूम होते हैं। सुनिषण्णक यह चौपतिया साग है जिसका वर्णन आगे शाकवर्ग में किया गया है। शितिवार यह सुर्वाली होने की अधिक संभावना है। इसका क्षुप समस्त भारत में होता है। यह ३ फीट ऊँचा, पत्ते—एकान्तर, लम्बे, पतले तथा कम चौड़े; पुष्प—सफेद तथा गुलाबी एवं क्षुप के अन्त में गुच्छों में; फली—दीर्घ वृत्ताकार छोटी; बीज बहुत, काले से भूरे रंग के होते हैं। पत्तों का शाक खाते हैं तथा बीजों का भी व्यवहार किया जाता है। बीज शीतल, स्नेहन तथा पौष्टिक होते हैं। १ तोला बीज, मिश्री तथा उष्ण दुग्ध के साथ कामोत्तेजना के लिये देते हैं। बीजों का फांट अतिसार में तथा मूत्राघात में मिश्री एवं बीज का उपयोग किया जाता है।

मात्रा—½-१ तोला।

अथ स्पृक्का (असबरग)। सुगन्धिद्रव्यम् (शाकविशेषः)। 'लङ्कोइकपुरी'ति लोके च। तस्या नामगुणानाह

स्पृक्काऽसृग् ब्राह्मणी देवी मरुन्माला लता लघुः।
समुद्रान्ता वधूः कोटिवर्षा लङ्कोपिकेत्यपि ॥ १२५ ॥

१. पुटमिति पाठा०। २. शुकाभमिति पाठा०।

स्पृक्का स्वाद्वी हिमा वृष्या तिक्ता निखिलदोषनुत्।
कुष्ठकण्डूविषस्वेददाहाश्री[1] ज्वररक्तहृत् ॥ १२६ ॥

स्पृक्का (असबरग) जो कि सुगन्धिद्रव्यों में से एक प्रकार का शाक ही है तथा जिसे लोक में 'लङ्कोईकपुरी' भी कहते हैं, उसके नाम तथा गुण—स्पृक्का, असृग्, ब्राह्मणी, देवी, मरुन्माला, लता, लघु, समुद्रान्ता, वधू, कोटिवर्षा और लङ्कोपिका ये सब संस्कृत नाम 'स्पृक्का' के हैं। स्पृक्का—स्वादिष्ट, शीतवीर्य, वृष्य, तिक्त रसयुक्त तथा सम्पूर्ण दोषों को दूर करने वाली होती हैं एवं यह कुष्ठ, खुजली, विष, पसीना, दाह, अलक्ष्मी, ज्वर तथा रक्तविकार को नष्ट करती है ॥ १२५-१२६ ॥

५२ स्पृक्का।

स्पृक्का भी एक सन्दिग्ध द्रव्य है। डल्हण ने इसे 'कुटिलपुष्पा सुगन्धिद्रव्यमौत्तरापथिकम्' (सु. सू. ३८) लिखा है। चरक में भी इसका उल्लेख है। कुछ लोगों ने इसका ले. नाम मार्सिलिआ क्वाड्रिफोलिएटा (Marsilia quadrifoliata) तथा कुछ ने ट्राइफोलिअम् ऑफिसिनेल (Trifolium officinale) लिखा है जो उचित नहीं मालूम पड़ता। डा० देसाई ने एनिसोमेलिस् मलबारिका को स्पृक्का लिखा है। वर्णन एवं गुण-धर्म की दृष्टि से यह उचित मालूम होता है अतः इसी का वर्णन किया जा रहा है।

गु०—मखमली चोधारो। म०—कपुरीमधुरी, कालोतुंबो, गावजबान, चोधारा। क०—कारितुंबे। तै०—मोगबीराकु। ता०—पेथिमसरी। अं०—Malabar catmint (मॅलॅबर् केट्मिण्ट्)। ले०—*Anisomeles malabarica R. Br.* (एनिसोमेलिस् मलबारिका र० ब्र०)। Fam. Labiatae (लेबिएटी)।

इसका क्षुप अत्यन्त रोमश तथा झाड़ीदार दक्षिण भारत में होता है। यह ४-६ फीट ऊँचा रहता है। पत्ते—मोटे, लंबगोल, कुछ शल्याकृति, दन्तुर तथा सवृन्त रहते हैं। पुष्प—हलके जामुनी रंग के रहते हैं। इसके पत्र सुगन्धि एवं कडवे रहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें उड़नशील तैल तथा एक कडुवा क्षाराभ रहता है।

गुण और प्रयोग—यह उत्तम स्वेदजनन, शीतप्रशमन तथा उत्तेजक है। यह तीव्र औषध है। उदर शूल, अपचन तथा कुपचन में इसे खिलाते हैं तथा इसका पेट पर लेप भी करते हैं। बच्चों में दंतोद्भेद के समय होने वाले विकारों में इससे अच्छा लाभ होता है। कृमिज्वर तथा अन्य ज्वरों में विशेष कर जीर्ण ज्वर में इससे लाभ होता है। आमवातादि में इसके उड़नशील तैल को लगाया जाता है तथा पत्तों के क्वाथ से सेंका जाता है। तैल का भी आंतरिक प्रयोग पाचन के विकारों में किया जाता है।

मात्रा—स्वरस ¼-½ चम्मच। तैल २-५ बूंद।

'पर्पटी' इति प्रसिद्धं 'पद्मावती' इति चोत्तरदेशे, सुगन्धि द्रव्यम्। अथ पर्पटी [पनडी]। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

पर्पटी रञ्जनी कृष्णा जतुका जननी जनी। जतुकृष्णाऽग्निसंस्पर्शा जतुकृच्चक्रवर्त्तिनी ॥ १२७ ॥
पर्पटी तुवरा तिक्ता शिशिरा वर्णकृल्लघुः। विषव्रणहरी कण्डूकफपित्तास्रकुष्ठनुत् ॥ १२८ ॥

१. दाहास्र इति पाठा०।

'पर्पटी' जो कि 'पद्मावती' नाम से उत्तरदेश में प्रसिद्ध सुगन्धित द्रव्य है उसके नाम तथा गुण – पर्पटी, रञ्जना, कृष्णा, जतुका, जननी, जनी, जतुकृष्णा, अग्निसंस्पर्शा, जतुकृत् और चक्रवर्त्तिनी ये सब संस्कृत नाम 'पर्पटी' के हैं। पर्पटी–कषाय तथा तिक्त रसयुक्त, शीतवीर्य, शरीर के वर्ण को उज्वल करने वाली और लघु होती है। यह विष, व्रण, खुजली, कफ, पित्तरक्त और कुष्ठ को दूर करने वाली है ॥ १२७–१२८ ॥

५३ पर्पटी

सुगन्धि पानडी के स्वरूप के बारे में भी पर्याप्त मत भिन्नता है।

डा. देसाई ने गु०–सुगन्धी पानडी नाम से एक क्षुप का वर्णन किया है जिसका नीचे वर्णन दिया गया है।

सं०–पाची। हि०–पाचोली। बं०–पाटचोली, पाचपट। गु०–सुगन्धीपानडी। म०–पांच। कोंक–माली। ले०–*Pogostemon patchouli Hook. f.* (पोगोस्टेमॉन् पाचौली हुक.)। Fam. Labiatae (लेबिएटी)।

इसका स्वावलम्बी, अनेक शाखायुक्त क्षुप कोंकण में प्रसिद्ध है। यह जंगलों में होता है तथा इसकी उपज भी की जाती है। उपज से इसकी आकृति में परिवर्तन हो जाता है। पत्ते–अंडाकृति, दन्तुर तथा लंबे वृन्त से युक्त होते हैं। पुष्प–बहुत छोटे तथा तुलसी की तरह गुच्छों में आते हैं। यह क्षुप बहुत सुगन्धित होता है। इसके पत्तों का उपयोग औषध में किया जाता है। रेशमी तथा ऊनी वस्त्रों में कीड़े न लगें इसलिये उनमें इसके पत्ते रखते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एक अत्यन्त सुगन्धि उड़नशील तैल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह रक्तस्तम्भक, मूत्रजनन तथा वातानुलोमक है। रक्तमूत्र में १ माशा भांग के साथ २ तोला पत्तों का रस देते हैं।

मात्रा—½–१ चम्मच।

अथ नलिका। उत्तरापथे प्रसिद्धा सुगन्धा प्रवालाकृतिः 'यवारी' इति च क्वचित्प्रसिद्धा। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

नलिका विद्रुमलता कपोतचरणा नटी। धमन्यञ्जनकेशी च निर्मध्या[1] सुषिरा नली ॥१२९॥
नलिका शीतला लघ्वी चक्षुष्या कफपित्तहृत्। कृच्छ्राश्मवाततृष्णाऽस्रकुष्ठकण्डूज्वरापहा ॥

'नलिका' जो कि उत्तरदेश में प्रसिद्ध सुगन्धि द्रव्य देखने में मूंगे के समान होती है और जो कि कहीं–कहीं 'यवारी' नाम से भी प्रसिद्ध है उसके नाम तथा गुण—नलिका, विद्रुमलता, कपोतचरणा, नटी, धमनी, अञ्जनकेशी, निर्मध्या, सुषिरा और नली ये सब संस्कृत नाम नलिका के हैं। नलिका—शीतवीर्य, लघु तथा नेत्र के लिये हितकर होती है। यह कफ, पित्त, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, वात, तृषा, रक्तदोष, कुष्ठ, खुजली तथा ज्वर को दूर करती है ॥ १२९–१३० ॥

५४ नलिका

नलिका नामक गन्धद्रव्य भी सन्दिग्ध है। कुछ लोग इसे रतनजोत मानते हैं। रतनजोत भी कुछ हदतक सन्दिग्ध ही है। नालुका नाम से एक सुगन्धित गोल मुड़ी हुई छाल के टुकड़े

१. निर्मंथ्या इति पाठा०।

या चूर्ण बाजार में बिकता है। यह तज की ही एक जाति है। इसे नलिका कहा जा सकता है कि नहीं, यह कहना कठिन है। नालुका का विशेष उपयोग शोथहर लेप के रूप में बहुत किया जाता है।

अथ प्रपौण्डरीकम्। सुगन्धि द्रव्यम् [पुण्डेरी] इति लोके प्रसिद्धम्। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

प्रपौण्डरीकं पौण्डर्यं चक्षुष्यं पौण्डरीयकम्।
पौण्डर्यं मधुरं तिक्तं कषायं शुक्रलं हिमम्।
चक्षुष्यं मधुरं पाके वर्ण्यं पित्तकफप्रणुत् ॥ १३१ ॥

'पुण्डेरी' इस नाम से लोक में प्रसिद्ध सुगन्धि द्रव्य के नाम तथा गुण – प्रपौण्डरीक, पौण्डर्य, चक्षुष्य और पौण्डरीयक ये सब संस्कृत नाम 'पुण्डेरी' के हैं। पुण्डेरी–मधुर, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, शुक्रजनक, शीतवीर्य, नेत्र के लिये हितकर, पाक में मधुर और शरीर के वर्ण को उत्तम करने वाला तथा पित्तकफ का नाशक है ॥ १३१ ॥

५५ पुण्डेरी

प्रपौण्डरीक भी एक संदिग्ध द्रव्य है। कुछ लोगों ने पुण्डरीक तथा प्रपौण्डरीक में नाम तथा गुण सादृश्य होने से दोनों को एक मान लिया है लेकिन यह उचित नहीं है। पुण्डरीक श्वेत कमल का नाम है। पुण्डरीक नाम से सुश्रुत (क. अ. २) में कन्दविष का उल्लेख है। 'पुण्डरीकेण रक्तत्वमक्ष्णोर्वृद्धिस्तथोदरे।' प्रपौण्डरीक का एक नाम 'चक्षुष्य' होने से 'चाकसू' नामक वनस्पति को प्रपौण्डरीक के स्थान पर लिया जा सकता है। डा. देसाई ने चाकसू को 'वन्यकुलत्थ' लिखा है। वन्यकुलत्थ–रक्तपित्तकृत, शीतल, कफवातहर एवं कषाय रसयुक्त होती है। कुछ लोग यूनानी द्रव्य ममीरा मानते हैं क्योंकि उसका नेत्र रोगों में बहुत व्यवहार होता है। निम्न वर्णन चाकसू का है।

सं०–चक्षुष्या, अरण्यकुलत्थिका। हि०–चाक्षुस्, चाकसू। पं०–चकसू। गु०–चीमेड। काठि०–चमेड। म०–चिनोल, कानकुटी, चिम्न। ता०–करुकानम्। ते०–चनुपाल विट्टुलु। कं०–कोड, निन्द्रताछ। अ०–जश्मीज़ज, इब्बुस्सूदान। फा०–चश्मीज़ज, चशुम। ले०–*Cassia absus Linn.* (कॅसिआ एब्सस् लिन.)। Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी)।

यह प्रायः सर्वत्र प्राप्त होता है।

इसके एक वर्षायु क्षुप ८–१८ इञ्च ऊँचे होते हैं। पत्रनाल बड़ा और पत्रदण्ड पर प्रत्येक पत्रकद्वय के बीच एक रेखाकार ग्रन्थि होती है। पत्रक संख्या में ४, आयताकार, .६–.९ इञ्च लंबे, करीब २ कुण्ठिताग्र और मध्यशिरा के दोनों ओर के उनके दोनों भाग आधार पर असमान होते हैं। पुष्प सवृन्त पीले या लाल जिसमें केवल ४ पुंकेशर होते हैं और जो अग्रग मंजरी में रहते हैं। फली–चिपटी, रोमश तथा १–१½ इञ्च लंबी होती है। बीज–संख्या में पांच, चमकीले, काले भूरे, चिकने, चिपटे, अंडाकृति किन्तु एक सिरा पतला और लंबाई तथा चौड़ाई में ½ इञ्च होते हैं। बीज का कवच निकाल देने से पीले रंग की तथा कडवी मज्जा निकलती है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में २½% राख होती है। उसमें मँगेनीझ का अंश रहता है।

गुण और प्रयोग—यह संग्राहक एवं नेत्राभिष्यंदप्रशमन है। पूययुक्त नेत्राभिष्यंद में भुने हुए बीजों की मज्जा का ½ र० चूर्ण पलकों के अन्दर रखते हैं। बीजों को पानी में साने हुए गेहूँ के आटे में रख, गरम राख में गरम कर, छिलका निकाल कर नेत्ररोगों में प्रयोग किया जाता है। चाकसू के २१ बीज तथा सफेद चंदन ५ माशे रात में जल में भिगों कर सुबह उस जल को छानकर पिलाने से रक्त मूत्र ठीक होता है।

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे वर्गप्रकरणे
तृतीयः कर्पूरादिवर्गः समाप्तः ॥ ३ ॥



रासायनिक संगठन—इसके बीजों में २३⁄४% राख होती है। उसमें मैंगेनीझ का अंश रहता है।

गुण और प्रयोग—यह संग्राहक एवं नेत्राभिष्यंदप्रशमन है। पूययुक्त नेत्राभिष्यंद में भुने हुए बीजों की मज्जा का ३⁄४ र० चूर्ण पलकों के अन्दर रखते हैं। बीजों को पानी में साने हुए गेहूँ के आटे में रख, गरम राख में गरम कर, छिलका निकाल कर नेत्ररोगों में प्रयोग किया जाता है। चाकसू के २१ बीज तथा सफेद चंदन ५ माशे रात में जल में भिगो कर सुबह उस जल को छानकर पिलाने से रक्त मूत्र ठीक होता है।

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे वर्गप्रकरणे
तृतीयः कर्पूरादिवर्गः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ गुडूच्यादिवर्गः

अथ गुडूची । तस्या उत्पत्तिं नामानि गुणाँश्चाह

अथ लङ्केश्वरो मानी रावणो राक्षसाधिपः रामपत्नीं बलात्सीतां जहार मदनातुरः ॥ १ ॥
ततस्तं बलवान् रामो रिपुं जायाऽपहारिणम् । वृतो वानरसैन्येन जघान रणमूर्धनि ॥ २ ॥
हते तस्मिन्सुरारातौ रावणे बलगर्विते । देवराजः सहस्राक्षः परितुष्टश्च राघवे ॥ ३ ॥
तत्र ये वानराः केचिद्राक्षसैर्निहता रणे । तानिन्द्रो जीवयामास संसिच्यामृतवृष्टिभिः ॥ ४ ॥
ततो येषु प्रदेशेषु कपिगात्रात्परिच्युताः । पीयूषबिन्दवः पेतुस्तेभ्यो जाता गुडूचिका ॥ ५ ॥
गुडूची मधुपर्णी स्यादमृताऽमृतवल्लरी । छिन्ना छिन्नरुहा छिन्नोद्भवा वत्सादनीति च ॥ ६ ॥
जीवन्ती तन्त्रिका सोमा सोमवल्ली च कुण्डली । चक्रलक्षणिका धीरा विशल्या च रसायनी ॥
चन्द्रहासा वयस्था च मण्डली देवनिर्मिता । गुडूची कटुका तिक्ता स्वादुपाका रसायनी ॥८॥
संग्राहिणी कषायोष्णा लघ्वी बल्याऽग्निदीपिनी । दोषत्रयामतृड्दाहमेहकासांश्च पाण्डुताम् ॥
कामलाकुष्ठवातास्रज्वरक्रिमिवमीन्हरेत् । (प्रमेहश्वासकासार्शः कृच्छ्रहृद्रोगवातनुत्) ॥१०॥

अब यहां से गुडूच्यादिवर्ग आरम्भ होता है। उसमें प्रथम 'गिलोय' की उत्पत्ति, नाम तथा गुण कहते हैं।

उत्पत्ति—जब कि अभिमानी, लङ्का के राजा, राक्षसों के स्वामी रावण ने कामातुर हो श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी श्रीसीताजी को बलपूर्वक हरण किया, तब बलवान् श्रीरामचन्द्रजी ने स्त्री के हरण करनेवाले उस शत्रु (रावण) को वानरों की सेनाओं से युक्त हो युद्ध में मारा। बल से गर्वीले, देवताओं के शत्रु उस रावण के मारे जाने पर हजार नेत्रों वाले देवताओं के राजा इन्द्र, श्रीरामचन्द्रजी पर अत्यन्त प्रसन्न हुये और उन्होंने उस युद्ध में जो कोई वानर राक्षसों के द्वारा मारे गये थे उन्हें अमृत की वर्षा से सींचकर जिला दिया। उसके बाद जिन स्थानों पर वानरों के शरीर से अमृत की बूँदे पृथ्वी पर गिरीं, उनसे 'गिलोय' की उत्पत्ति हुई।

नाम—गुडूची, मधुपर्णी, अमृता, अमृतवल्लरी, छिन्ना, छिन्नरुहा, छिन्नोद्भवा, वत्सादनी, जीवन्ती, तन्त्रिका, सोमा, सोमवल्ली, कुण्डली, चक्रलक्षणिका, धीरा, विशल्या, रसायनी, चन्द्रहासा, वयस्था, मण्डली और देवनिर्मिता ये सब संस्कृत नाम 'गिलोय' के हैं।

गुण—**गिलोय** कटु, तिक्त तथा कषाय रस युक्त एवं विपाक में मधुर रसयुक्त, रसायन, संग्राही, उष्णवीर्य, लघु, बलकारक, अग्निदीपक तथा त्रिदोष, आम, तृषा, दाह, मेह, कास, पाण्डुरोग, कामला, कुष्ठ, वातरक्त, ज्वर, क्रिमि और वमि को दूर करती है। (यह प्रमेह, श्वास, कास, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, हृद्रोग और वात इन सबों का नाश करने वाली होती है) ॥ १–१० ॥

इसके **पत्तों** के गुण आगे शाकवर्ग में लिख हुवे हैं।

१ गिलोय

हि०–गिलोय, गुरुच, गुडुच। **बं०**–गुलंच, पालो (सत्व)। **म०**–गुलवेल, गरुड़ वेल। **गु०**–गलो। **क०**–अमरदवल्ली, अमृत वल्ली। **ते०**–तिप्पतीगे। **ता०**–शिन्दिलकोडि, अमृडवल्ली। **उ०**–गुलंचा। **पं०**-गिलो। **क०**–गरुड़वेल। **मला०**–अम्रितु। **गोआ०**–अमृतवेल। **फा०**–गिलोई,

गिलोय । अ०-गिलोइ । अं०-टिनोस्पोरा (Tinospora) । ले०-*Tinospora cordifolia* (*Willd.*) *Miers* (टिनोस्पोरा कॉर्डिफोलिया मायर्स) । Fam. Menispermaceae (मेनिस्पर्मेसी) ।

गिलोय—प्रायः सब प्रान्तों के जंगल झाडियों में पाई जाती है विशेष कर गरम प्रान्तों में अधिक होती है । देहरादून और सहारनपुर के जङ्गलों मे बहुत पायी जाती है ।

इसकी बहुवर्षायु, चिकनी एवं मांसल लता-बहुत विस्तार में वृक्षों पर फैल जाती है । शाखाओं से डोरे के समान शोरियाँ निकल कर भूमि की ओर लटकती हैं । पत्ते-पान के समान, २-४ इञ्च के घेरे में गोलाकार नुकीले, चिकने, पतले, ७-९ शिराओं से युक्त एवं १-३ इञ्च लंबे पर्णवृन्त से युक्त होते हैं । प्रायः वसन्त ऋतु में इसके पुराने पत्ते पीले होकर गिर जाते हैं और ज्येष्ठ तक नवीन पत्ते निकल आते हैं । उसी समय हरापन युक्त पीले रंग के अथवा केवल पीले रंग के फूलों के गुच्छे आते हैं । फल-मटर के समान होते हैं और पकने पर ये लाल हो जाते हैं । बीज-कुछ टेढ़े तथा चिकने होते हैं ।

इसके मूल तथा कांड का व्यवहार औषध के लिये किया जाता है । ताजी अवस्था में कांड की छाल हरी तथा मांसल रहती है तथा उस पर पतली भूरे रंग की बाह्य त्वचा रहती है जिसकी पपड़ी निकलती रहती है । इस पर छोटे-छोटे गठ्ठे होते हैं । इसको काटने से अन्दर का भाग चक्राकार दिखाई देता है । ताजी एवं हरी गुडुच ज्यादा लाभप्रद होती है । गरमी में मई महीने के आखिर में इसका संग्रह करना चाहिये । प्रयोग के पूर्व इसके ऊपर की छाल खुरचकर निकाल दी जाती है । इसमें गन्ध नहीं होती किन्तु स्वाद कडवा होता है ।

इससे कुछ भिन्न इसकी एक दूसरी जाति प्रायः बड़ी (४″-९″×८″), मृदु रोमश और प्रायः त्रिखण्ड पत्तियों वाली होती है । इसके बीज के कठोर आवरण पर छोटे-छोटे दाने होते हैं । इसे सं०-पद्मगुडूची, बं०-पद्मगुलंच, माल०, पं०-बड़ी सरसटीलत एवं ले०-Tinospora malabarica (Lam.) Miers (टिनोस्पोरा मलबारिका मायर्स) कहते हैं । दोनों के गुण और स्वरूप में स्थूल-रूप से कोई अन्तर न मिलने के कारण दोनों का ही व्यवहार गुडूची के नाम से किया जाता है । इसे कुछ विद्वानों ने सुदर्शन माना है ।

रासायनिक संगठन—इसकी ताजी कांड त्वक् में तीन रवेदार पदार्थ, गिलोइन ग्लूकोसाइड (Giloin, $C_{23}H_{32}O_{10}, 5H_2O$), गिलोइनिन नामक कडवा पदार्थ (Giloinin, $C_{17}H_{18}O_5$) तथा गिलोस्टेरॉल (Gilosterol, $C_{28}H_{48}O$) पाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त इसमें बर्बेरिन (Berberine) एवं मोम की तरह का एक पदार्थ पाया जाता है ।

गुडूचीसत्व—अच्छी मोटी गुडुच बरसात के पूर्व संग्रहकर ऊपर की छाल छुडाकर साफ धोकर छोटे टुकड़े बना पत्थर के खरल में महीन कूट डाले । इसमें चौगुना जल डाल १२-२४ घंटा भींगने के बाद अच्छी तरह मसलकर कपड़े से छान ले । सत्व नीचे बैठने के बाद ऊपर का जल धीरे से नितार कर सत्व को सुखाकर बन्द बोतलों में रखें । कुछ लोग नितरे हुवे जल में फिर से उसी गुडुच को मसल एवं उबाल कर छान लेते हैं तथा उस द्रव को पहले निकाले हुये सत्व में मिलाकर धूप में सुखा लेते हैं जिससे इसमें उष्ण जल में घुलनशील पदार्थ भी आजाते हैं । कुछ लोग नितारे हुये जल को औटाकर स्वतन्त्र प्रयोग भी करते हैं ।

गुण और प्रयोग—गुडुच कडवी, उष्ण, त्रिदोषघ्न, रसायन, बल्य, ज्वरहर, दीपन, मूत्रजनन, त्वग्रोगहर, पित्तसारक तथा विषघ्न है । नवीन अनुसंधानों से गुडुची का व्याधिप्रतिकारक गुण व्यापक रूप में प्रमाणित हुआ है । जीर्ण पूतिकेन्द्र (Chronic septic focus) जनित विकार,

जीर्ण विषमज्वर तथा यकृत की हीनकार्यता आदि में कुछ काल तक गुडूची का प्रयोग करते रहने से अवश्य लाभ होता है ।

इसका प्रयोग त्वग्रोग, विषमज्वर, जीर्णज्वर, कुष्ठ, वातरक्त, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, कामला, पांडु, मन्दाग्नि, वमन, तृषा, दाह, रक्तार्श एवं कृमि आदि अनेक रोगों में किया जाता है ।

(१) ताजी गिलोय को साफ धोकर बनाया कल्क १० तो० एवं अनन्तमूल का चूर्ण १० तो० इनको १०० तो० उबलते जल में बन्द पात्र में दो घंटे बन्द रखें । फिर मसल कर छान लें । यह फांट उत्तम रसायन एवं मूत्रजनन है । कुष्ठ, फिरङ्गोपदंश की द्वितीयावस्था, वातरक्त तथा जीर्ण आमवात में यह बहुत लाभदायक होता है । ज्वर के पश्चात् उत्पन्न दौर्बल्य तथा अन्य दौर्बल्य युक्त व्याधियों में इसका उपयोग पौष्टिक रूप में किया जाता है । इसको ५-१० तो० दिन में ३ बार पिलाते हैं ।

(२) सौम्य विषमज्वर तथा जीर्णज्वर में जो शीत मालूम पड़ता है वह इसके क्वाथ से दूर होता है । जीर्णज्वर में इसके क्वाथ में या स्वरस में छोटी पीपल एवं मधु मिलाकर पिलाते हैं जिससे ज्वर, कफ, प्लीहावृद्धि एवं अरुचि आदि दूर होती है ।

(३) प्रमेह, नवीन सोजाक तथा अन्य मूत्रविकारों में इसका स्वरस अधिक मात्रा में दिया जाता है । अधिक मात्रा से पाखाना भी साफ होता है । प्रमेह में २-३ ड्रा० स्वरस पाषाणभेद-चूर्ण ५-८ र० एवं मधु के साथ या दुग्ध एवं शर्करा के साथ दिन में ३ बार पिलाते हैं । गुडुच, हरिद्रा एवं आंवला इनका क्वाथ अथवा गुडुची स्वरस एवं मधु का प्रयोग भी लाभदायक होता है ।

(४) गुडूची से पित्तमार्ग का अभिष्यन्द कम होने के कारण पित्त का स्राव ठीक होने लगता है । कुपचन, मन्द उदरशूल तथा कामला में इसका उपयोग किया जाता है । कामला में इसका स्वरस मधु मिलाकर सुबह पिलाना चाहिये । इसमें गुडुच के पत्तों का कल्क तक्र के साथ लाभदायक होता है । पैत्तिक वमन में इसका स्वरस पिलाने से लाभ होता है ।

(५) त्वग्रोगों में यह प्रधान औषध है । इनमें एक हाथ प्रमाण में गुडुच, गुग्गुलु के साथ या कडवी नीम या हरिद्रा, खदिर एवं आंवला के साथ देते हैं । इससे कंडू, दाह, दाग एवं चकत्ते आदि अच्छे होते हैं । वातरक्त में दुग्ध के साथ सिद्ध किया हुआ इसका तैल लाभदायक माना जाता है । पित्ताधिक्य युक्त वातरक्त में इसका क्वाथ पिलाते हैं ।

(६) अर्श में इसका स्वरस या चूर्ण तक्र के अनुपान से देते हैं ।

(७) स्तन्यशुद्धि के लिये इसका क्वाथ पिलाया जाता है ।

(८) रसायन रूप में इसका स्वरस या मधु एवं गुड के साथ इसके चूर्ण का प्रयोग किया जाता है ।

(९) गुडूचीसत्व—ज्वरहर रूप में इसका बहुत उपयोग किया जाने से इसे भारतीय किनीन कहा जाता है । प्लीहावृद्धि एवं बस्तिशोथ में यह बहुत उपयोगी है । आंव, जीर्ण अतिसार, रक्तातिसार, अम्लपित्त, मूत्रविकार एवं शुक्रक्षय में यह लाभदायक है । औषधीय गुणों के अतिरिक्त यह उत्तम पोषक पदार्थ भी है ।

मात्रा—चूर्ण १-३ मा०, क्वाथ ४-८ तो०; सत्व ५-२५ र० ।

अथ नागवल्ली (पान) । तस्या नामानि गुणाँश्चाह

ताम्बूलवल्ली ताम्बूली नागिनी नागवल्लरी । ताम्बूलं विशदं रुच्यं तीक्ष्णोष्णं तुवरं सरम् ॥११॥
वश्यं तिक्तं कटु क्षारं रक्तपित्तकरं लघु । बल्यं श्लेष्मास्यदौर्गन्ध्यमलवातश्रमापहम् ॥१२॥

पान के नाम तथा गुण–ताम्बूलवल्ली, ताम्बूली, नागिनी, नागवल्लरी और ताम्बूल ये सब संस्कृत नाम 'पान' के हैं। पान–विशदगुणयुक्त, रुचिकारक, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, कसैला, दस्तावर, वशकारक, तिक्त, कटु रसयुक्त, क्षार गुणयुक्त, रक्तपित्त का उत्पादक, लघु तथा बलकारक होता है। यह कफ, मुख की दुर्गन्धता, मल, वात तथा श्रम को दूर करता है ॥ ११–१२ ॥

२ पान

हि०–पान **बं०**–पान । **म०**–नागवेल, विड्याचेपान । **ते०**–तमाल पाकु । **ता०**–वेत्तिलै। **गु०, मा०**–नागरवेल । **मला०**–वेत्तिल । **फा०**-तंबोल, बर्गे तम्बोल । **अ०**–तंबूल । **अं०**–Betel Leaf (बिटल लीफ) । **ले०**–*Piper betle Linn.* (पाइपर बीटल लिन.) । Fam. Piperaceae (पाइपरेसी)।

पान –सर्वप्रसिद्ध और सर्वप्रिय एक बेल के पत्र हैं। भारतवर्ष, लंका एवं मलयद्वीप के उष्ण एवं आर्द्र प्रदेशों में इसकी खेती की जाती है। इसकी मूलारोहिणी लता–अत्यन्त सुहावनी और कोमल होती है। **कांड**–अर्धकाष्ठमय, मजबूत तथा गांठों पर मोटा रहता है। **पत्ते**-पीपल के पत्तों के समान, बड़े, चौड़े अंडाकार, कुछ हृदयाकृति, कुछ लंबाग्र, प्रायः ७ शिराओं से युक्त, चिकने, मोटे एवं करीब १ इञ्च लंबे पर्णवृन्त से युक्त रहते हैं। **पुष्प**–अवृन्त काण्डज (Spike) पुष्पव्यूहों में आते हैं। **फल**–करीब दो इञ्च लंबे, मांसल, लटकते हुये व्यूहाक्ष में छोटे-छोटे बहुत फल रहते हैं। पान में मनोहर गंध रहती है तथा इसका स्वाद कुछ उष्ण एवं सुगंधयुक्त रहता है।

इसके खेत की जमीन बीच में ऊँची और दोनों किनारे नीची होती है। इससे खेत में पानी नहीं ठहरता। धूप और पाले से बचाव के लिये खेत के चारों ओर फूस की दीवार और छाजनी बना देते हैं। खेत के भीतर क्यारी बनाकर फरहद, जियल इत्यादि की डालियाँ लगा देते हैं। इन्हीं के सहारे पान की बेल फैलती है। बंगला, सांची, महोबा, महाराज पुरी, विलोआ, कपुरी, फुलवा इत्यादि नामों से इसकी कई जातियाँ होती हैं। ध० नि० में इसके कृष्ण और शुभ्र ये दो भेद लिखे हुये हैं। रा० नि० में श्रीवाटी (सिरिवाडीपान), अम्लवाटी (अंबाडेपर्ण), सतसा (सातसीपर्ण), गुहागरे (अडगरपर्ण), अम्लसरा (मालव में होने वाला अंगरापर्ण), पटुलिका (आंध्र में होने वाला पोटकुली पर्ण) एवं हेसणीया (समुद्रदेशपर्ण) ये पान के सात भेद लिखे हैं जिनके अलग-अलग गुण भी लिखे हैं।[1] स्थानादि भेद से पान विभिन्न प्रकार का होता है। अति प्राचीनकाल से अपने

१. श्रीवाटी मधुरा तीक्ष्णा वातपित्तकफापहा ।
रसाढ्या सरसा रुच्या विपाके शिशिरा स्मृता ॥
स्यादम्लवाटी कटुकाम्लतिक्ता तीक्ष्णा तथोष्णा मुखपाककर्त्री ।
विदाहपित्तास्रविकोपनी च विष्टंभदा वातनिबर्हणी च ॥
सतसा मधुरा तीक्ष्णा कटुरुष्णा च पाचनी । गुल्मोदराध्मानहरा रुचिकृद्दीपनी परा ॥
गुहागरे सप्तशिरा प्रसिद्धा तत्पर्णजूतातिरसाऽतिरुच्या ।
सुगन्धितीक्ष्णा मधुरातिहृद्या सन्दीपनी पुंस्त्वकराऽतिबल्या ॥
नाम्नाऽन्याऽम्लसरा सुतीक्ष्णमधुरा रुच्या हिमा दाहनुत् ।
पित्तोद्रेकहरा सुदीपनकरी बल्या मुखमोदनी ॥
स्त्रीसौभाग्यविवर्धनी मदकरी राज्ञां सदा वल्लभा ।
गुल्माऽऽध्मानविबन्धजिच्च कथिता, सा मालवे तु स्थिता ॥
अन्ध्रे पटुलिका नाम कषायोष्णा कटुस्तथा । मलापकर्षी कंठस्य पित्तकृद्वातनाशनी ॥
हेसणीया कटुस्तीक्ष्णा हृद्या दीर्घदला च सा । कफवातहरा रुच्या कटुर्दीपनपाचनी ॥ (रा०नि०)

यहां पान का व्यवहार मुखशुद्धि, रुचिवृद्धि एवं सुगन्धि के लिये किया जाता है। चरक में मात्राशितीय अध्याय में 'धार्याण्यास्येन वैशद्यरुचिसौगन्ध्यमिच्छता…कंकोलकफलं पत्रं तांबूलस्य शुभं तथा' एवं सुश्रुत में अन्नपानविधि अध्याय में इसका उल्लेख है।

रासायनिक संगठन—पान के पत्तों में एक सुगन्धि उड़नशील तैल (०.२–१.०%), स्टार्च, शर्करा, टॅनिन एवं डायास्टेस (Diastase, 0.8–1.8%) ये पदार्थ पाये जाते हैं। इसका तैल हलके पीले रंग का, सुगन्धि, स्वाद में तीक्ष्ण तथा दाहकारक एवं ०.९५८–१.०५७ वि० गु० वाला रहता है। इस तैल में चविकॉल (Chavicol), कॅडेनीन (Cadenene), चविबेटॉल (Chavibetol), यूजेनॉल का सभाजिक (Isomeride of Eugenol) एवं सेस्किटर्पेन (Sesquiterpene) ये पदार्थ पाये जाते हैं। जावा एवं मनिला के तैल में फेनॉल (Phenols) की मात्रा बहुत (५५%) रहती है। पुराने पत्तों की अपेक्षा नवीन पत्तों में तैल, डायास्टेस एवं शर्करा की मात्रा अधिक रहती है। चविकॉल यह कार्बोलिक एसिड की अपेक्षा ५ गुना अधिक प्रतिदूषक (Antiseptic) है जो इसके स्वरस में रहता है।

गुण और प्रयोग—पान उत्तम दीपन, पाचन, श्लेष्मघ्न, वातहर, पित्तप्रकोपक, उष्ण, स्वर्य, सुगंधि, शोथघ्न, व्रणरोपक, प्रतिदूषक, कृमिघ्न, वृष्य एवं मुंह की कंडू–मल–क्लेद–दुर्गन्ध नाशक है।

इसका प्रयोग पीनस, कास, कफविकार, आध्मान तथा शोथादि में एवं कफविकारों में अनुपान के रूप में बहुत किया जाता है। सुपारी, चूना, कत्था एवं इलायची आदि पान के पत्ते में रख कर उसका बीड़ा बनाकर मुखशुद्धि आदि के लिये लोग खाते हैं। इसको खाते खाते लोगों को इसका व्यसन हो जाता है। कोकेन खाने वाले पान में कोकेन रखकर खाते हैं। कई औषधों को पान में रख कर खाने की प्रथा है।

जिसने पान कभी नहीं खाया है उसे प्रथम इसके सेवन के पश्चात् मुंह में जलनसी मालूम होती है, गले में एक तरह की जकड़न मालूम होती है, स्वाद ग्रहण करने की शक्ति कम होती है एवं मुंह आदि में छाले पड़ जाते हैं। कुछ देर तक बेचैनी, जी का धंसना, मूर्च्छा, संन्यास, कुछ उत्तेजना एवं स्वेदोत्पत्ति आदि लक्षण किसी-किसी में होते हैं।

इसके तैल के सेवन के पश्चात् मुख तथा आमाशय में उष्णता का अनुभव होता है। प्रारंभ में केन्द्रीय वातनाडी संस्थान की उत्तेजना के पश्चात् अधिक मात्रा से एक तरह का नशा उत्पन्न होता है। इसमें डायास्टेस (Diastase) की पर्याप्त मात्रा होने के कारण यह स्टार्च आदि पिष्टमय पदार्थों के पाचन में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त पान चबाने से लालास्राव की वृद्धि होती है जो पाचन में सहायक होती है। भात खाने वालों में इससे विशेष लाभ होता है और यदि वे पान बंद कर दें तो उनका पाचन ठीक नहीं होता।

पान खाने का जिन्हें व्यसन हो जाता है उन्हें पान खाने से अच्छा मालूम होता है। उनका मन प्रसन्न होता है, थकावट दूर होती है, प्यास तथा भूख मालूम नहीं पड़ती एवं कुछ कामोत्तेजना होती है। यह तीव्र मादक नहीं होता तथा इसके व्यसन से कोई विषैले परिणाम नहीं होते। सोकर उठने पर, स्नान के पश्चात्, भोजन के पश्चात् एवं वमन के पश्चात्, पान के सेवन का विधान है।[1]

(१) कफप्रधान रोगों में यह बहुत लाभदायक होता है। तमक श्वास, श्वसनिका शोथ एवं स्वरयंत्र शोथ आदि में पान का रस पिलाते हैं एवं पान को ऊपर से बांधते हैं। बच्चों के कास,

१. पथ्यं सुप्तोत्थिते स्नाते भुक्ते वांते च संगरे। सभायां विदुषां राज्ञां कुर्यात् तांबूलचर्वणम् ॥

श्वासकृच्छ्र, श्वसनिकाशोथ एवं प्रतिश्याय आदि में पान के पत्तों को एरंडतैल लगाकर, गरम कर छाती पर बांधने से बहुत लाभ होता है।

(२) रोहिणी (डिफ्थीरिया Diphtheria) नामक बच्चों में अधिक होने वाले घातक गले के विकार में ४ पत्तों का रस थोड़े गरम पानी में मिलाकर गरारा करने को देते हैं। पान के तैल को १ बूंद की मात्रा में करीब आध पाव उष्ण जल में मिलाकर इसी प्रकार प्रयोग करते हैं तथा उसकी बाष्प सूंघते हैं।

(३) गांठ, शोथ एवं व्रण पर इसके पत्तों को गरम कर बांधने से शोथ एवं वेदना कम होती है एवं व्रण जल्दी अच्छा होता है। इसी प्रकार स्तनों पर बांधने से दुग्ध रुक जाता है तथा सूजन कम होती है। पान के रस में थोड़ा चूना मिलाकर शोथ आदि पर पोल्टिस के रूप में व्यवहार करते हैं।

(४) कोंकण की तरफ पान के फलों को मधु के साथ खांसी में देते हैं।

(५) उड़ीसा में इसके मूल को काली मिर्च के साथ संततिनियमन के लिये सेवन करते हैं।

(६) नेत्राभिष्यंद एवं रतौंधी में पत्तों का रस मधु मिलाकर आंख में डाला जाता है।

निषेध—नेत्ररोग, रक्तपित्त, क्षत, वातविकार, विषबाधा, शोष, मदात्यय, मोह एवं मूर्च्छा में इसका सेवन निषिद्ध है।[1]

मात्रा—स्वरस ½–१ तो०।

अथ बिल्वः (बेल)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

बिल्वः शाण्डिल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि।[2] श्रीफलस्तुवरस्तिक्तो ग्राही रूक्षोऽग्निपित्तकृत्।
वातश्लेष्महरो बल्यो लघुरुष्णश्च पाचनः॥ १३॥

बेल के नाम तथा गुण—बिल्व, शाण्डिल्य, शैलूष, मालूर और श्रीफल ये सब संस्कृत नाम बेल के हैं। बेल-कषाय तथा तिक्त रस युक्त, ग्राही, रूक्ष, अग्निवर्धक, पित्तकारक, वात कफनाशक, बलकारक, लघु, उष्णवीर्य तथा पाचक है॥ १३॥

३ बेल

हिं०–बेल, श्रीफल। **बं०, म०**–बेल। **गु०**–बीली। **क०**–बेलपत्रे। **ते०**–मारेडु, बिल्वपंडु। **ता०**–बिल्वम्, बिल्वपझम। **मा०**–बील, बोलो। **मल०**–कुवलप-पेझम। **सिन्ध०**–बिल, कटोरी। **उडि०**–बेलो। **अ०**–सफरजले हिंदी। **फा०**–बेह हिंदी, बल, शुल्ल। **अं०**–Bengal Quince (बेंगॉल क्विन्स); Bael fruit (बेल फ्रुट)। **लै०**–*Aegle marmelos Corr.* (इगल् मार्मेलोस् कॉर)। Fam. Rutaceae (रूटॅसी)।

यह आसाम, ब्रह्मा, बंगाल, बिहार, युक्तप्रान्त, अवध, झेलम, मध्य और दक्षिण हिन्दुस्तान तथा सिलोन में जंगली और प्रायः सभी स्थानों में बागी दोनों प्रकार से उत्पन्न होता है।

इसका **वृक्ष**–मध्यमाकार का ५० फुट से भी ऊँचा होता है। शाखाओं पर सीधे, मोटे, तीक्ष्ण एक इञ्च तक लम्बे कांटे होते हैं। टहनियों पर पत्ते विषमवर्ती रहते हैं। प्रत्येक सींक पर तीन-तीन

---

१. न नेत्ररोगे न च रक्तपित्ते क्षते न वाते न विषे न शोषे।
मदात्यये नापि च मोहमूर्च्छाश्वासेषु ताम्बूलमुशन्ति वैद्याः॥ (सुषेणदेवः)

२. गन्धगर्भः शलाटुश्च कण्टकी च सदाफलः। (क्वचित्कः)

पत्रकों से युक्त पत्ते रहते हैं। **पत्रक**–कसौंदी के पत्तों के आकार वाले एवं अंडाकार–भालाकार होते हैं। बीचवाला पत्ता अन्य दो से कुछ बड़ा होता है। फाल्गुन-चैत्र में पुराने पत्ते गिर जाते हैं और चैत्र-वैशाख में क्रम से नवीन पत्ते निकल आते हैं। इसी समय में हरियाली लिये सफेद रङ्ग के, ४, ५ पंखड़ियों (अन्तर्दल) वाले एवं करीब १ इञ्च चौड़े फूल लगते हैं और उनमें मधु के समान मन्द गन्ध निकलती है। **फल** (बीजिमांसल फल–Berry)–गोलाकार ३–८ इञ्च व्यास के, हरिताभ रंग के, पकने पर पीताभ भूरे रंग के एवं चिकने होते हैं। बहिर्भित्ति (Epicarp) से बाह्य कठोर काष्ठमय छिलका बनता है जो करीब ३ मि. मि. मोटा, रक्ताभ रंग का एवं अन्दर से रेशेदार होता है। मध्यभित्ति एवं अन्तर्भित्ति से गूदा बनता है जो आवरण से चिपका हुआ तथा हलके रक्ताभ नारंगी रंग का होता है। **बीज**–बहुत, १०–१५ समूहों में, बिनौले के सदृश सफेद रोमों से युक्त एवं चिकने तथा रंगहीन गोंद से लिपटे रहते हैं। फलों में मन्द सुगंध आती है तथा इनका स्वाद गोंद की तरह होता है। बेल के दो तरह के फल होते हैं। लगाये हुये फल बड़े, सुस्वादु एवं कम बीज वाले होते हैं। जंगली फल छोटे, कुछ मादक एवं इसके बीज अधिक गोंद से लिपटे होते हैं तथा ये मछली मारने के काम में आते हैं।

बेल अपने यहां बहुत पवित्र माना गया है। सूतिकागार के निर्माण में एवं सूतिका के पलंग की लकड़ी बेल की लेने का चरकादि में विधान है। सुश्रुत में मेधायुष्कामीय अध्याय (चि० अ० २८) में विशिष्ट पद्धतिसे ऋग्वेदोक्त श्रीसूक्त के द्वारा बिल्व की आहुति आदि का विधान किया है जिससे अलक्ष्मी का नाश एवं आयुवृद्धि होती है।

बेल के मूल, त्वचा, पक्व-अपक्व फल, पत्र एवं पुष्प का औषध में व्यवहार किया जाता है। चूर्णादि के लिये कच्चे फल का, मुरब्बे के लिये अधपके फल का और पानक के लिये परिपक्व फल का गूदा लेना चाहिये। दशमूल आदि कषायों में मूल या वृक्ष की त्वचा ली जाती है।

रासायनिक संगठन—बेल के फलों में गोंद एवं पेक्टिन (Pectin) के अतिरिक्त प्रह्रासक (Reducing) शर्करा ३·७%, संपूर्णशर्करा ४·६%, तैल जिसमें मार्मेलोसिन (Marmelosin, $C_{13}H_{12}O_3$) नामक एक महत्व का रवेदार पदार्थ रहता है तथा उड़नशील तैल रहता है। पक्व फलों में टॅनिन सदृश पदार्थ अत्यल्प मात्रा में रहते हैं। इसके मूल, पत्र एवं छाल में प्रह्रासक शर्करा एवं टैनिन पाया जाता है। इसके बीजों में एक हलके पीले रंग का तैल होता है।

गुण और प्रयोग—कच्चा बेल कटु, तिक्त, कषाय, स्निग्ध, उष्ण, दीपन, ग्राही, वात-कफ-नाशक एवं आन्त्र को बल देने वाला है। **पक्व फल** मधुर, सुगन्धि, गुरु, विदाही, विष्टम्भि, दुर्जर, दोषकर, आनुलोमिक एवं दुर्गन्धयुक्त अधोवायु उत्पन्न करने वाला है। **बिल्वपत्र** वातहर, शोथहर, ज्वरहर, श्लेष्मनिःसारक, ग्राही एवं आमशूलघ्न होते हैं। **बिल्वमूल**–वातनाडीसंस्थान के लिये शामक, मधुर, छर्दिघ्न एवं वातहर है। **पुष्प**–अतिसार, तृषा एवं वमन में लाभदायक होते हैं। इसकी मज्जा का तैल उष्ण एवं उत्तम वातहर माना जाता है। इसके **बीज**–१॥ माशे की मात्रा में अच्छे विरेचक होते हैं।

बिल्व का उपयोग अतिसार, प्रवाहिका, संग्रहणी, मधुमेह, कर्णरोग, वातरोग, वमन, कामला, अर्श, शोथ एवं ज्वर में किया जाता है।

(१) इसके पके फल का गूदा मृदुविरेचक होने के कारण इसका जल में शर्बत बनाकर लेने से जीर्ण विबन्ध, अर्श, आध्मान एवं कुपचन में लाभ होता है। जिन्हें बार-बार विबन्ध एवं अतिसार क्रमशः हुआ करता है उन्हें नित्य सुबह यह दिया जाता है। स्निग्ध एवं मृदुविरेचक रूप में यह प्रवाहिका की रोग-निर्मुक्तावस्था एवं संग्रहणी की प्रारंभिक अवस्था में दिया जाता

है। प्रवाहिका में इसको लेते रहने से विबन्ध नहीं होता जिससे आन्त्रिक व्रण जल्दी अच्छे होते हैं। संग्रहणी (Sprue) की प्रारंभिक अवस्था में ताजा फल तथा शर्करा से अवश्य लाभ होता है।

(२) भुना हुआ कच्चा फल या कच्चे फल का सुखाया हुआ गूदा ग्राही एवं दीपन होने के कारण अतिसार, रक्तातिसार एवं प्रवाहिका में दिया जाता है। जब ज्वर न हो, रोगी दुर्बल हो तथा पाचन खराब हो गया हो तब इससे विशेष लाभ होता है। आंव, रक्त एवं कुंथन युक्त तीव्र प्रवाहिका में यद्यपि इसके चूर्ण को लाभदायक माना गया है तथापि इन अवस्थाओं की अपेक्षा जीर्ण विकारों में इसका गुणकारी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इसके सेवन के पश्चात् धीरे-धीरे रक्त कम होकर पाखाना बँधा होने लगता है। अधिक दिन लेते रहने से आंव भी कम हो जाती है तथा बाद में बिलकुल नहीं रहती। जीर्ण आंव की शिकायत होने पर इसके साथ बड़ी सोंफ एवं घोडवच मिलाकर क्वाथ बनाकर देते हैं। रक्तपित्त वाले रोगी को आंव होने पर यह विशेष लाभदायक है। अरारुट के साथ इसकी पेया बनाकर देने से आन्त्र को बल प्राप्त होता है। प्रवाहिका में बेल का कल्क, तिल का कल्क, दही की मलाई तथा घृत देते हैं। पित्त एवं रक्तातिसार में इसकी मज्जा एवं मुलेठी, शर्करा, मधु एवं तंडुलांबु के साथ देने से लाभ होता है। बिल्व एवं गुड़ का प्रयोग आमशूल, विबंध, कुक्षिशूल तथा रक्तातिसार में लाभदायक होता है। अत्युग्र ग्रहणी में बिल्व के साथ सोंठ एवं गुड़ मिलाकर सेवन करे एवं आहार में तक्र का सेवन करें। पुराने विकारों में बेल का मुरब्बा भी लाभदायक होता है। पुराने सोजाक में ताजा गूदा एवं कबाबचीनी दूध के साथ देते हैं।

(३) अर्श में सुखोष्ण मूलक्वाथ में रोगी को बैठावें। रक्तार्श में बिल्वमज्जा एवं तक्र का उपयोग लाभदायक होता है।

(४) बेल की जड़ शामक होने के कारण हृदय की धड़कन, उदासीनता, निद्रानाश तथा पागलपन इनमें दी जाती है। विषमज्वर में इसके जड़ की छाल का क्वाथ पिलाते हैं। जीरा एवं मूलत्वक् को पीसकर घी के साथ शुक-तारल्य में देते हैं। विषैले जन्तुओं के दंश में इसका लेप किया जाता है। बच्चों को जब कै एवं दस्त होते हैं तब इसको चावल के मांड के साथ उबालकर वह मांड चीनी मिलाकर देते हैं।

(५) इसके ताजे पत्तों का स्वरस ज्वर, कफज्वर, अभिष्यन्द, शोथ तथा कफ विकारों में देते हैं। दमा में इसका क्वाथ देते हैं। नेत्राभिष्यन्द में इसका स्वरस देते हैं तथा पत्तों का लेप पलकों पर करते हैं। शोथयुक्त विकारों में तथा व्रण पर पत्तों का पुल्टिस लाभदायक होता है। इसका स्वरस काली मिर्च के साथ जलशोथ, विबंध एवं कामला में देते हैं। यह शरीर की दुर्गंध को भी दूर करता है। मधुमेह में १-२ तोला स्वरस देने से लाभ होता है।

(६) बिल्वफल को गोमूत्र के साथ पीसकर अजाक्षीर के साथ तैल सिद्ध कर कर्णबिन्दु के रूप में प्रयोग करने से बाधिर्य में लाभ होता है।

मात्रा—चूर्ण २-८ माशा; प्रवाहीसत्व ½-२ ड्राम; क्वाथ ½-२ औंस।

अथ गम्भारी। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

गम्भारी भद्रपर्णी च श्रीपर्णी मधुपर्णिका। काश्मीरी काश्मरी हीरा काश्मर्यः पीतरोहिणी॥१४॥
कृष्णवृन्ता मधुरसा महाकुसुमिकाऽपि च। काश्मरी तुवरा तिक्ता वीर्योष्णा मधुरा गुरुः॥१५॥
दीपनी पाचनी मेध्या भेदिनी भ्रमशोषजित्। दोषतृष्णाऽऽमशूलार्शोविषदाहज्वरापहा॥१६॥

गम्भारी के नाम तथा गुण—गम्भारी, भद्रपर्णी, श्रीपर्णी, मधुपर्णिका, काश्मीरी, काश्मरी, हीरा, काश्मर्य, पीतरोहिणी, कृष्णवृन्ता, मधुरसा और महाकुसुमिका ये सब संस्कृत नाम गम्भारी के हैं। **गम्भारी**-मधुर, कषाय तथा तिक्त रस युक्त, उष्णवीर्य, गुरु, अग्निदीपक, पाचक, मेधा के लिये हितकर तथा मलभेदक होती है। वह भ्रम, शोष, वातादिक दोष, तृषा, आम, शूल, बवासीर, विष, दाह और ज्वर इन सब रोगों को दूर करने वाली होती है॥ १४-१६॥

अथ गम्भारीफलगुणानाह

तत्फलं बृंहणं वृष्यं गुरु केश्यं रसायनम्। वातपित्ततृषारक्तक्षयमूत्रविबन्धनुत्॥ १७॥
स्वादु पाके हिमं स्निग्धं तुवराम्लं विशुद्धिकृत्। हन्याद्दाहतृषावातरक्तपित्तक्षतक्षयान्॥१८॥

इसके फल के गुण—इसका फल बृंहण (धातुवर्धक), वृष्य (वीर्यवर्धक), गुरु, बालों के लिये हितकर और रसायन होता है। यह वात, पित्त, तृषा, रक्तक्षय, मूत्र-सम्बन्धी विबद्धता का नाशक है और पाक में मधुर रस, स्वाद में कषाय तथा अम्ल रसयुक्त, शीतवीर्य, स्निग्ध एवं शुद्धिकारक होता है। यह दाह, तृषा, वात, रक्तपित्त, क्षत और क्षय इन सब रोगों को दूर करता है॥१७-१८॥

४ गम्भारी

हि०, पं०—गम्भारी, खम्भारि, कम्भार, गम्भार, गम्हार, कुम्हार, कासमर। **बं०**—गामार गाछ, गम्भार। **म०**—शिवण। **गु०**—शीवण, सवन। **क०**—सीवनी। **ते०**—गुमारटेक। **ता०**—गुमड़ी। **आसाम**—गोमरी। **गरो०**—बोल्को बक। **मा०**—शेवण, शिवण, कुम्भेरन। **ले०**—*Gmelina arborea Linn.* (मेलीना आर्बोरिआ लिन.)। Fam. Verbenaceae (वर्बिनेसी)।

गम्भारी—इस देश के कई प्रान्तों में उत्पन्न होती है, विशेषकर दक्षिण, कोंकण, मध्यभारत, बरार, सिलोन, पश्चिमोत्तर-हिमालय, चट्टगांव, पूर्व बङ्गाल एवं बिहार आदि प्रान्तों में पाई जाती है। इसका वृक्ष-बड़ा होता है। ऊँचाई में कहीं-कहीं ६० फुट से भी ऊँचा वृक्ष देखने में आता है। छाल का रंग सफेद, ताजी छाल किञ्चित् पीलापन युक्त हरियाली लिये सफेद तथा सफेदी लिये भूरे रंग की होती है। छाल पर काले चिह्न या छोटे-छोटे गोल दाने होते हैं। इसकी **टहनियां**-श्वेताभ एवं रोमश होती हैं। **काट**-प्रायः आधा इञ्च मोटा, बिना रेशे का और हलका या गहरा नारंगी रंग से मिला रहता है। **पत्ते**-४-९ इञ्च लम्बे, ३-७ इञ्च चौड़े, लट्वाकार, चौड़े, प्रायः हृद्वत, नोकीले, अधरतल पर प्रायः क्षोदलिप्त, २-६ इञ्च लम्बे वृन्त से युक्त और आमने-सामने, परन्तु प्रायः एक सन्धि के दोनों पत्ते कुछ छोटे-बड़े होते हैं। वसन्त ऋतु में पुराने पत्ते गिरकर नये पत्ते निकलते हैं। इसी समय ३-८ इञ्च लम्बी मंजरियों में रक्ताभ या पीले रंग के १-१.५ इञ्च लम्बे फूल आते हैं और उन पर भूरे रंग की छींटें रहती हैं। फल-बहेड़े के समान परन्तु कुछ लम्बाई लिये अष्ठिल, अम्यण्डाकार, .७५-१ इञ्च व्यास वाले और २-१ कोश तथा बीज वाले होते हैं। वे जेठ आषाढ़ तक पक कर भूमि में गिर पड़ते हैं।

इसके दो भेद भी पाये जाते हैं जिनमें से एक में पुष्पव्यूह बड़े होते हैं तथा दूसरे में पत्ते कुछ छोटे, चर्मल, अधर तल पर नसें उभरी हुई तथा पुष्पव्यूह छोटे होते हैं।

यह दशमूल गण की औषध है। इसका 'कासमर' नाम काश्मर्य का और 'गम्हार' गम्भारी का अपभ्रंश है। इसके फल, मूल, त्वक् एवं पत्र का चिकित्सा में उपयोग होता है।

रासायनिक संगठन—इसके मूल में पीतवर्ण का गाढ़ा तैल, राल, क्षाराभ, अल्पतर बेंझोइक् एसिड एवं मैंगनीझ रहित राख ये पदार्थ पाये जाते हैं। इसके फल में ब्यूटिरिक् (Butyric)

तथा टार्टरिक (Tartaric) अम्ल, क्षाराम, शर्करासदृश पदार्थ, राल तथा अत्यल्प टैनिन ये पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके कोमल पत्र शीतल तथा स्नेहन; फल तृषाहर, दाहशामक, स्नेहन एवं रक्तपित्तघ्न; मूल कटु, दीपन, बल्य एवं आनुलोमिक; पुष्प बल्य, वृष्य एवं रक्तपित्तनाशक; बीजतैल कफ एवं पित्त का शमन करने वाला है।

(१) इसके कोमल पत्तों का स्वरस दुग्ध के साथ सोजाक में देते हैं। ग्रीष्मऋतु में होने वाले शिरःशूल में पत्तों को दुग्ध में पीसकर सर पर मलते हैं।

(२) दाह तथा तृषायुक्त पैत्तिक ज्वर मे इसके फल की मज्जा का शीतल क्वाथ शर्करा मिलाकर पिलाते हैं। रक्तपित्त में मधु के साथ इसके फल की मज्जा का प्रयोग किया जाता है। वायु के कारण गर्भशोष या बालशोष हो तो मुलेठी के साथ इससे सिद्ध दुग्ध का उपयोग लाभदायक होता है।

(३) इसके मूल का क्वाथ ज्वर, अपचन तथा शोथ में देते हैं। मुलेठी के साथ बनाया हुआ इसका क्वाथ मधु एवं शर्करा मिलाकर दुग्धवृद्धि के लिये देते हैं। स्तनपुष्टि के लिये इसके रस से सिद्ध तिल तैल में रूई भिगोकर उसके धारण का विधान है।

मात्रा—मूलचूर्ण ३-६ माशा; फल १-३ माशा।

प्रतिनिधि एवं व्यामिश्रण—(क) अरिया कासमर या बूढ़ीकासमर के नाम की एक अन्य वृक्ष जाति (Premna flavescens Ham.-प्रेम्ना फ्लॅवेसेन्स हॅम्) भी पाई जाती है जिसके पत्ते गंभारी के पत्तों से मिलते-जुलते हैं। इसकी पत्तियों में एक मंद प्रिय गंध होती है और इसके पुष्प तथा फल बहुत छोटे होते हैं जिनसे इसका भेद मालूम हो जाता है।

(ख) हि०-तुम्री, पिंडार, धवलपेड, पानी-गम्हार। **म०**-सिवनो, पितारी। **बं०**-पितालि। **ले०**-*Trewia nudiflora Linn.* (ट्रेविआ न्युडिफ्लोरा लिन.)। Fam. Euphorbiaceae (यूफोर्बिएसी)।

इसके भी गम्हार एवं सिवनी (म.) नाम होने के कारण वास्तविक गम्हार के स्थान पर इसका कहीं-कहीं प्रयोग लोग करते हैं। इसके बड़े-बड़े वृक्ष होते हैं। **छाल**-चिकनी और धूसर वर्ण की होती है। **पत्ते**-लट्वाकार, ३-८ इञ्च लंबे एवं ४-७ इञ्च चौड़े होते हैं। पर्णमूल गोल या हृद्वत् और पर्णवृन्त १·५-४ इञ्च लंबा होता है। **पुष्प**-हरित-पीत होते हैं और नवीन पत्तियों के आने के पहले ही निकलते हैं। नरपुष्पों की मंजरियां ४-८ इञ्च लंबी और नीचे की ओर लटकी हुई तथा स्त्री-पुष्प एकाकी अथवा २-३ और अग्रग होते हैं। **फल**-पकने पर छोटे आलू के समान दिखाई देता है। नवीन शाखाओं पर जातच्युत उपपत्रों के कारण उभरी हुई स्पष्ट रेखाएं होती हैं जिनके द्वारा वास्तविक गम्हार से इसकी भिन्नता मालूम होती है। इसके अतिरिक्त गम्हार की तरह इसकी पत्ती में दो छोटी पीली ग्रन्थियां नहीं होती यद्यपि दोनों के शिराक्रम में बहुत साम्य होता है। इसके मूल का उपयोग किया जाता है। मूल की छाल मोटी एवं चिकनी हलके भूरे रंग की होती है। इसका स्वाद कसैला एवं कडवा होता है। आमवात एवं वातरक्त में मूल को खिलाते हैं तथा लेप करते हैं। इससे उदरवात, पित्त एवं आमदोष का निर्हरण होता है।

अथ पाटला (पाढल) घण्टापाटलिश्च। तयोर्नामानि गुणांश्चाह

पाटलिः पाटलाऽमोघा मधुदूती फलेरुहा। कृष्णवृन्ता कुबेराक्षी[1] कालस्थाल्यलिवल्लभा ॥१९॥
ताम्रपुष्पी च कथिताऽपरा स्यात्पाटला सिता। मुष्कको मोक्षको घण्टापाटलिः काष्ठपाटला ॥२०॥

१. काचस्थाली इति पाठा०।

पाढल तथा घण्टापाढल के नाम और गुण—पाटलि, पाटला, अमोघा, मधुदूती, फलेरुहा, कृष्णवृन्ता, कुबेराक्षी, कालस्थाली, अलिवल्लभा और ताम्रपुष्पी ये सब संस्कृत नाम 'पाढल' के हैं। और जो दूसरा 'घण्टापाढल' है उसके संस्कृत नाम—पाटला सिता, मुष्कक, मोक्षक, घण्टापाटलि तथा काष्ठपाटला ये सब हैं॥ १९-२० ॥

पाटला तुवरा तिक्ताऽनुष्णा दोषत्रयापहा। अरुचिश्वासशोथास्रच्छर्दिहिक्कातृषाहरी ॥ २१ ॥

पाढल—कषाय तथा तिक्तरस युक्त एवं अनुष्णवीर्य है। यह त्रिदोष, अरुचि, श्वास, शोथ, रक्तप्रकोप, वमन, हिचकी और तृषा को दूर करने वाली है॥ २१ ॥

अथ तत्पुष्पफलयोर्गुणानाह

पुष्पं कषायं मधुरं हिमं हृद्यं कफास्रनुत्। पित्तातिसारहृत्कण्ठ्यं फलं हिक्काऽस्रपित्तहृत् ॥२२॥

इसके फूल तथा फल के गुण—फूल-कषाय तथा मधुररस युक्त, शीतवीर्य, हृदय को हितकर तथा कफ, रक्तविकार और पित्तातिसार का नाशक एवं कण्ठ के लिये हितकर है। फल-हिचकी तथा रक्तपित्त का नाशक है॥ २२ ॥

नोट—भावप्रकाशकार पाटला के दो भेद लिखते हैं एक 'पाटला' तथा दूसरी 'सिता पाटला'। किन्तु दोनों के गुणों में कोई भेद नहीं लिखा है। आधुनिक ग्रन्थकारों ने भी इसके दो प्रकार के वृक्षों का वर्णन किया है जिसमें से नं० ५ (पाटला) के पुष्प बाहर से लाल किन्तु अन्दर से पीली रेखाओं से युक्त होते हैं। यह दक्षिण में कम होने के कारण इसके स्थान पर वहां नं० ६ (सिता पाटला) का प्रयोग किया जाता है जिसके पुष्प पीले तथा गुलाबी रंग के होते हैं। श्री ठा० बलवन्तसिंह जी का मत है-काष्ठपाटला, मोक्षक यह भिन्न वर्ग तथा प्रजाति का वृक्ष है जिसका लैटिन नाम Schrebera swietenioides Roxb. (श्रेबेरा स्वीटेनिओइडिस् राक्स.); Fam. Oleaceae (ओलिएसी) है तथा इसी के क्षार को क्षारश्रेष्ठ कहा गया है। भावप्रकाशकार ने भी इसका (मोक्षक) स्वतंत्र वर्णन आगे वटादिवर्ग में किया है। इस दृष्टि से मोक्षक यह पाटला का पर्याय असमीचीन लगता है।

५ पाढ़ल

हि०-पाढ़ल, पाडर, पारल। **बं०**-पारुल गाछ। **म०, गु०**-पाड़ल। **क०**-हुडे। **उ०**-बोरो, पाढुली। **पं०**-पाढ़ल, पाडल। **कोल०**-कंडियोर। **सन्ता०**-पपरी, पडेर। **ने०**-परैर। **लि०**-सिगियन। **गोंड०**-उन्तकार, पड़र। **भील०**-पन, डन। **मा०**-पाडल, पडियालु। **ले०**-*Stereospermum suaveolens DC.* (स्टेरिओस्पर्मम् स्वावियोलेन्स डीसी)। Fam. Bignoniaceae (बिग्नोनिएसी)।

यह प्रायः समस्त भारत, हिमालय की तराई से ट्रावनकोर और टेन सरीम तक तथा सिलोन में किन्तु श्वेत भेद की अपेक्षा कुछ शुष्क भागों में पाया जाता है। इसका वृक्ष-३० से ६० फुट तक ऊँचा एवं सुन्दर होता है। इसके ऊँचे स्तम्भ पर शाखाएँ दिखाई पड़ती हैं। इसके नवीन भाग चिपचिपे, रोमश और ग्रन्थिमय होते हैं। **छाल**-चौथाई इञ्च मोटी, लगभग चिकनी, धूसर और काटने पर हलके पीले रंग की होती है और उसमें कड़े तथा मुलायम पर्त बारी बारी से निकलते हैं। **पत्ते**-विपरीत, १-२ फीट लम्बे और अयुग्म पक्षाकार होते हैं। पत्रक-संख्या में ५-९ प्रायः ७, अण्डाकार या आयताकार, ३-८ इञ्च लम्बे, २-३॥ इञ्च चौड़े, यकायक लम्बाग्र, अवृन्त या छोटे

वृन्त वाले, प्रायः मृदुरोमश परन्तु छोटे पौधे के पत्रक खुरखुरे और तीक्ष्ण दन्तुर होते हैं। वसन्त ऋतु में इसके पुराने पत्ते गिरकर नवीन पत्ते निकल आते हैं और प्रायः इसी समय वृक्षों पर नलिकाकार फूल आते हैं। पुष्प-सुगन्धित, १-१·५ इञ्च लम्बे, बाहर से लाल परन्तु भीतर पीली रेखाओं से युक्त होते हैं। फलियाँ-१८ से २४ इञ्च तक लम्बी, गोल एवं पृष्ठ पर बिन्दुकित होती हैं। बीज-सपक्ष होते हैं और कार्क सदृश और लम्बगोल रचनाओं में छिपे रहते हैं।

यह भी दशमूलगण का एक प्रसिद्ध द्रव्य है। इसके फल के भीतर से लम्बगोल टुकड़े निकाल कर जुलपित्ती तथा अधकपारी में बाँधे जाते हैं इसलिए कहीं-कहीं इस वृक्ष को अधकपारी कहते हैं। इसका छाल, पुष्प तथा फलमज्जा का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके सूखे हुए फूलों में शर्करा, एक तरह का लुआब तथा मांसल पदार्थ पाये जाते हैं। पुष्प जल में डालने से जल सुगन्धित हो जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके पुष्प वाजीकर, पौष्टिक एवं शीतल होते हैं। इसकी छाल कफघ्न, वातहर, अधोभाग दोषहर, त्रिदोषघ्न, विषघ्न एवं शोथहर है।

कफ तथा वातप्रधान रोगों में पाटला का प्रयोग करते हैं।

(१) फूलों का रस मधु के साथ हिचकी में देते हैं।

(२) मधुमेह, अश्मरी एवं मूत्राघात में इसके पंचांग का क्षार तैल के साथ खिलाते हैं।

(३) इसके छाल का फांट अम्लपित्त में देते हैं।

(४) इसके फूलों का गुलकन्द पौष्टिक माना जाता है।

(५) इसके मूल के घन क्वाथ में तैल मिलाकर अग्निदग्ध व्रण पर लगाते हैं तथा कोमल पत्तों से व्रणबन्धन करते हैं।

मात्रा—चूर्ण १-३ माशा।

६ सफेद पाढ़ल (घंटा पाढ़र)

हिं०-सफेद पाढ़ल, पाडर, परारी, घण्टा पाढ़र, कठपाडर। बं०-घंटा पारुल। म०, गु०-पाडल। ता०-पादिरि। ते०-कलिगोट्टु। कोल०-कंडियोर। ने०-पररी। भील०-पडुरनी। उ०-कोगारी पाटुली। अं०-Trumpet flower (ट्रम्पेट फ्लावर)। ले०-*Stereospermum chelonoides DC.* (स्टेरिओस्पर्मम् केलोनॉइडिस् डीसी.)।

यह आसाम से सिलोन तक की गीली भूमि में, कुमाऊँ के पहाड़ पर, मध्य और दक्षिण हिन्दुस्तान तथा राजपूताना आदि कई प्रान्तों में होता है। यह दक्षिण में पहाड़ी प्रान्तों में विशेषकर पाया जाता है।

इसका वृक्ष-३०-४० फुट तक ऊँचा होता है तथा कहीं-कहीं ६० फुट तक ऊँचा वृक्ष भी देखने में आता है। स्तम्भ-सीधा, बहुत ऊँचा एवं मोटा होता है और उस पर अनेक शाखा-प्रशाखाएँ होती हैं। नीचे की शाखाएँ भूमि के समानान्तर एवं ऊपर की सीधी होती हैं। छाल-भूरे रंग की, मोटी तथा खुरदरी होती है। पत्ते-१२-१८ इञ्च लम्बे, अयुग्म पक्षाकार, विपरीत और छोटी-छोटी टहनियों के अग्रपर समूहबद्ध होकर रहते हैं। पत्रक-संख्या में ७-११, चिकने, अंडाकार और ३·५-५ इञ्च बड़े होते हैं। फूल-बड़े, तूर्याकृति, पीले और गुलाबी रंग के, सुगन्धित एवं रुचिकर होते हैं। फलियाँ-१०-२० इञ्च लम्बी, पतली, घेरे में गोल न होकर सपक्ष या चार उभरी हुई रेखाओं से युक्त होती हैं।

प्रथम पाढल दक्षिण में कम मिलने के कारण वहाँ इस वृक्ष की छाल तथा पुष्प का पाटला के स्थान पर प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक रवेदार कडवा पदार्थ पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह शीतल, वातहर एवं ज्वरघ्न है। मस्तिष्क तथा वातनाडी संस्थान पर इसकी अवसादक क्रिया होती है।

इसके मूल का फांट ज्वर में रोगी को शांतता लाने के लिये देते हैं। इसके फूलों का रस पाचन ठीक होकर दूषित पित्त का निर्हरण हो इसलिये देते हैं।

मात्रा—चूर्ण १-३ माशा।

अथाग्निमन्थः। (अगेथू, अरनी इति च लोके) तस्य नामानि गुणाँश्चाह

अग्निमन्थो जयःस्याच्छ्रीपर्णी गणिकारिका। जया जयन्ती तर्कारी नादेयी वैजयन्तिका॥
अग्निमन्थः श्वयथुनुद्वीर्योष्णः कफवातहृत्। पाण्डुनुत्कटुकस्तिक्तस्तुवरो मधुरोऽग्निदः॥२४॥

अगेथू या अरनी के नाम तथा गुण—अग्निमन्थ, जय, श्रीपर्णी, गणिकारिका, जया, जयन्ती, तर्कारी, नादेयी और वैजयन्तिका ये सब संस्कृत नाम 'अगेथू' या 'अरनी' के हैं। अरनी या अगेथू शोथनाशक, उष्णवीर्य, कफवात तथा पाण्डु रोग को दूर करने वाला, कटु, तिक्त, कषाय तथा मधुर रस युक्त एवं अग्निवर्धक है॥ २३-२४॥

नोट—भावप्रकाशकार ने यद्यपि एक ही अग्निमंथ का वर्णन किया है तथापि अन्य निघंटुओं में लघु एवं बृहद् ऐसे दो भेद अग्निमंथ के लिखे हैं। दोनों के गुणों में विशेष अन्तर नहीं है किन्तु लघु अग्निमंथ को लेप, उपनाह एवं शोफ में विशेष उपयोगी लिखा है। 'लघ्वाग्निमंथस्य गुणाः प्रोक्ताः बृद्धाग्निमंथवत्। विशेषाल्लेपने चोपनाहे शोफे च कीर्तितः॥' (नि. र.)। सुश्रुत के वरुणादि गण में तर्कारी और अग्निमंथ ये दोनों शब्द आये हैं। इससे ऐसा मालूम होता है कि ये दोनों भिन्न द्रव्य हैं। आधुनिक ग्रन्थकारों ने प्रेम्ना इन्टेग्रिफोलिआ (बृहद् अग्निमंथ) एवं क्लेरोडेन्ड्रम् फ्लोमाइडीस् (क्षुद्र अग्निमंथ) ऐसे दो द्रव्यों का वर्णन किया है। ये दोनों ही एक वर्ग के हैं तथा इनके गुणों में भी साम्य होने के कारण दोनों को एक दूसरे के स्थान में प्रयोग किया जा सकता है। इनमें से प्रथम को कुछ लोगों ने तर्कारी माना है तथा द्वितीय को अग्निमंथ माना है। कुछ लोग इसके विपरीत मानते हैं जो अधिक उचित है क्योंकि क्लो० फ्लोमाइडिस् का स्थानिक नाम 'टेकार', तर्कारी का अपभ्रंश मालूम होता है। यहां दोनों का अलग अलग वर्णन दिया जा रहा है।

७ क्षुद्राग्निमंथ

हिं०-अरनी (णी), टेकार, उरिन। बं०-अरनी, गणियारी। संथा-पनजोत। मुंगे०-रैन। गु०-अरणी। म०-ऐरण, टांकळी। ता०-थलंजी ते०-तलूकि। क०-तगि। मल०-तिरूतालि। ले०-*Clerodendrum phlomidis Linn. f.* (क्लेरोडेन्ड्रम् फ्लोमाइडीस् लिन.)। Fam. Verbenaceae (वर्बिनेसी)।

यह महाराष्ट्र, गुजरात, सिंध आदि सब प्रान्तों में प्रायः बाडों पर या सूखी जगहों में पाई जाती है।

इसके गुल्म बड़े (छोटे वृक्ष), प्रायः शाखाएं प्रसरणशील और टहनियां हलके खाकी रंग की तथा मृदुरोमश होती हैं। पत्ते-विपरीत, चौड़े लट्वाकार अथवा कुछ-कुछ तिर्यगायताकार, अखण्ड या दूर-दूर गोलदन्तुर, प्रायः २×१·५ इञ्च बड़े, सवृन्त और मृदुरोमश (नवीन) या चिकने होते हैं। पुष्प-श्वेत, सुगंधि, पत्रकोणीय या अग्रग गुच्छों में आते हैं। आभ्यंतर नाल

·७५–१ इञ्च बड़ा और मुख व्यास में ·७५ इञ्च होता है। फल–अष्ठिल फल, करौंदे इतने बड़े, शीर्ष पर दबे हुए परन्तु अन्त में शुष्क होकर चार खण्डों में फट जाते हैं। जानवरों के प्रवाहिका तथा कृमिरोग में क्षुद्राग्निमंथ का उपयोग ग्रामीण करते हैं। बृहद् अग्निमंथ के अभाव में इसके पंचांग, मूल तथा पत्र का उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, दीपन, सारक, बल्य, रसायन, शोथहर एवं वातकफहर है।
वायु, कफ तथा सूजन जिन-जिन रोगों में होती है उनमें इसका उपयोग करते हैं। आमवात तथा अन्तरित ज्वर में इसकी जड़ सोंठ एवं मिरिच के साथ दी जाती है। इसके मूल का क्वाथ सोजाक, विस्फोटक ज्वरों की रोगमुक्तावस्था, आमवात तथा नाडीशूल में देते हैं। इसके पत्र तथा काण्ड का उपयोग मधुमेह में उपयोगी पाया गया है। आध्मान में इसके पत्ररस से लाभ होता है। मोच तथा शरीरपीडा में पत्तों को पीसकर उसका लेप किया जाता है। त्वचा के रोगों में ½ औं० पत्ररस दिन में दो बार पिलाते हैं।

मात्रा—चूर्ण १–२ माशा।

८ बृहदग्निमंथ

हिं०–अरनी, अरणी, अंगेथु, गणियारी, गनियार, गनियारी, वाकर। **बं०**–गनिर, गनियारि। **मा०**–अरणी। **म०**–नरवेल, अरणी। **पं०**–अगेथु, गनियार। **गु०**–अरणी। **संथा०**–कण्ड्रा-मिया। **फा०**–गनियार। **अवधी**–गन्नियारी। **गढ़वाल**–बकोरचा। **ता०**–इरुमै मुल्लै, मुन्नै। **ने०**–गिनेरी। **उडि०**–गन्धीना। **ते०**–घेबुनेलि। **मला०**–अप्पेल। **उत्क०**–अगबिथ। **ले०**–*Premna integrifolia Linn* (प्रेम्ना इन्टेग्रिफोलिआ लिन)। Fam. Verbenaceae (वर्बिनेसी)।

यह बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, अवध, गढ़वाल, राजपूताना, दक्षिण–हिन्दुस्तान, बम्बई, सिलोन तथा अन्यान्य प्रान्तों में विशेष रूप से समुद्री किनारों पर पाई जाती है।

इसका झाड़ीदार वृक्ष–२०–२५ फुट तक ऊँचा होता है। स्तम्भ छोटा तथा बहुत सी कांटेदार टहनियां नीचे लटकी हुई रहती हैं। छाल–पतली सफेदी–युक्त हलके पीले रंग की और लकड़ी हलकी किंचित दृढ़ होती है। पत्ते–विपरीत, लंबे, पर्णवृन्त से युक्त, साधारण हृदयाकृति किन्तु अग्र कुछ कटा हुआ तथा चिकने रहते हैं। चैत्र–वैशाख में छोटे-छोटे हरापन लिये सफेद रंग के फूल झूमकों में आते हैं। फल–छोटी मकोय के समान झूमकों में लगते हैं और पकने पर काले हो जाते हैं। पूरे वृक्ष में एक प्रकार की उग्र गंध आती है। इसका स्वाद खट्टा सा तथा कषाय रहता है। इसके मूल तथा पत्तों का व्यवहार किया जाता है।

इसका एक अन्य भेद प्रेम्ना लॅटिफोलिया राक्स. (Premna latifolia Roxb.) पाया जाता है। इसके पत्ते कुछ-कुछ दुर्गन्धयुक्त, प्रायः लट्वाकार, कभी-कभी अंडाकार, ३–५ इञ्च लंबे, २–३ इञ्च चौड़े, अखंड, लंबे नोकवाले तथा एक ओर (नीचे) या नवीन रहने पर दोनों तलों पर मृदुरोमश होते हैं। पुष्पव्यूह–त्रि–विभक्त और व्यास में २–५ इञ्च, रोमश और कोण पुष्पकों से युक्त होता है। बाह्यकोश शीर्ष पर दन्तुर होता है और दांत पांच होते हैं। आभ्यन्तर कोश स्पष्टतः द्व्योष्ठ होता है। फल–गोल, अग्रपर दबा हुआ और ·२५ इञ्च बड़ा होता है।

इसका जो भेद इस प्रान्त के शाल वनों में मिलता है उसे प्रे० मक्रोनॅटा राक्स (P. mucronata Roxb. कहते हैं। यह नम स्थानों में प्रायः बहुत बड़ा हो जाता है। नवीन शाखाओं पर प्रायः १–३ इञ्च लंबे मजबूत कांटे होते हैं और इनकी पत्तियां तीन-तीन या चार-चार एक चक्र में होती हैं। काट प्रायः ½ इञ्च मोटा, सफेद और बिना रेशे का होता है। पत्तियां मसलने पर

गंधयुक्त और सूखने पर काली हो जाती हैं। इस वृक्ष की लकड़ियों को परस्पर रगड़ने से आग पैदा होती है। इसके अन्य भी कई भेद होते हैं।

गुण और प्रयोग—यह कटु, उष्ण, तिक्त, शोथघ्न, वातहर, दीपन, श्लेष्मघ्न, ज्वरघ्न, सारक, शीत प्रशमन, अनुवासनोपग तथा गर्भाशय के लिये अवसादक है।

इसका प्रयोग वातरोग, कफरोग, शोथ, आमवात, नाडीशूल, पांडु, अर्श, अग्निमांद्य, विबंध, प्रतिश्याय, ज्वर एवं पार्यायिक तथा विस्फोटक ज्वर में किया जाता है।

(१) इसकी २ छटाक जड़ को चौगुने जल में १५ मिनट उबाल कर १–२ छटाक की मात्रा में दीपन, पाचन, पौष्टिक रूप में दो बार पिलाते हैं।

(२) गंडमाला तथा शोथ में इसको खिलाते हैं तथा बाह्य लेप भी करते हैं। ग्रन्थि पर बांस के पत्तों के साथ इसकी जड़ का लेप करने से लाभ होता है।

(३) अर्श में इसके क्वाथ में बैठाने से पीड़ा शांत होती है।

(४) उरुस्तम्भ में इसकी जड़ को गोमूत्र में पीस कर लेप करते हैं या करंज के साथ क्वाथ बनाकर उससे सिंचन करते हैं।

(५) वसामेह तथा इक्षुमेह में इसकी जड़ का क्वाथ पिलाया जाता है।

(६) इसकी जड़ को पीसकर घृत के साथ सेवन करने से १ सप्ताह में शीतपित्त, ददर्द तथा कोठ आदि अच्छे होते हैं।

(७) अतिस्थौल्य में इसका रस दिया जाता है।

मात्रा—चूर्ण १–२ माशा।

अथ श्योनाकः (सोनापाठा–अरलू)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

श्योनाकः शोषणश्च स्यान्नटकट्वङ्गटुण्टुकाः। मण्डूकपर्णपत्रोर्णशुकनासकुटन्नटाः ॥ २५ ॥
दीर्घवृन्तोऽरलुश्चापि पृथुशिम्बः कटम्भरः। श्योनाको दीपनः पाके कटुकस्तुवरो हिमः।
ग्राही तिक्तोऽनिलश्लेष्मपित्तकासप्रणाशनः ॥ २६ ॥

सोनापाठा या अरलू के नाम तथा गुण—श्योनाक, शोषण, नट, कट्वङ्ग, टुण्टुक, मण्डूकपर्ण, पत्रोर्ण, शुकनास, कुटन्नट, दीर्घवृन्त, अरलु, पृथुशिम्ब और कटम्भर ये सब संस्कृत नाम 'सोनापाठा' के हैं। सोनापाठा–अग्निदीपक, पाक में कटुरस तथा स्वाद में कषाय और तिक्तरस से युक्त, शीतवीर्य और मलसंग्राहक है। यह वात, कफ, पित्त तथा कास का विनाशक है ॥ २५–२६ ॥

अथ श्योनाकस्य बालप्रौढफलयोर्गुणानाह

टुण्टुकस्य फलं बालं रूक्षं वातकफापहम् ॥ २७ ॥
हृद्यं कषायं मधुरं रोचनं लघु दीपनम्। गुल्मार्शःकृमिहृत् प्रौढं गुरु वातप्रकोपणम् ॥ २८ ॥

इसके कोमल तथा प्रौढ फल के गुण—सोनापाठा का कोमल फल रूक्ष, वातकफनाशक, हृदय को हितकर, कषाय तथा मधुररस युक्त, रोचक, लघु तथा अग्निदीपक एवं गुल्म, बवासीर तथा कृमि का नाशक होता है। इसका प्रौढ़ (पूरा तैयार) फल–गुरु तथा वात को प्रकुपित करने वाला होता है ॥ २७–२८ ॥

९ सोनापाठा

हि०—सोनापाठा, शोनाक, सोनपत्ता, टेंटू, अरलु। **बं०**-शोण, सोनागाछ। **म०**-टेंटू। **गु०**-टेंडु। **ते०**-दुन्दिलुम, पंपन। **उ०**-पम्पोनिया। **पं०**-मुलिन, तात्पलङ्ग। **ता०**-पन, वंग। **ने०**-तोतिछ। **कोल०**-अरेंगेवनुं। **सन्ता०**-बनढाटक। **गोंड०**-जयमंगल। **आसा०**-केरिंग। **का०**-तातर। **बर्मा**-क्योंग-शा। **सिलो०**-तोतिछ। **ले०**-*Oroxylum indicum Vent.* (ओरोक्झाइलम् इण्डिकम् वेन्ट)। Fam. Bignoniaceae (बिग्नोनिएसी)।

यह सब प्रान्तों में कहीं-कहीं पाया जाता है किन्तु पश्चिम प्रान्त की सूखी भूमि में यह देखने में नहीं आता।

इसका **वृक्ष**-मध्यमाकार का होता है तथा शाखाएँ थोड़ी होती हैं। **छाल**-चौथाई इञ्च तक मोटी, कार्कयुक्त तथा बादामी सफेद रङ्ग की चिकनी, हलकी और कोमल होती है। इसको काटने से किंचित् हरियाली लिये रस निकलता है। **काट**-½-१ इञ्च मोटा, अन्दर की ओर रेशेदार, पीला और बाहर की ओर हरिताभ होता है। **लकड़ी**-पीलापन युक्त सफेद, हलकी और साररहित होती है। **पत्ते**-२-४ फोट लम्बे, द्विपक्षवत् सदल तथा शाखाओं पर प्रायः समूहबद्ध होकर पाये जाते हैं। पत्रनाल और पत्रदण्ड पर दाने पड़े होते हैं। **पत्रक**-२॥ ५ इञ्च लम्बे, १॥-४ इञ्च चौड़े, लट्वाकार या अण्डाकार, लम्बाग्र तथा अखण्ड होते हैं। **फूल**-बहुत बड़े, मांसल और जामुनी रंग के तथा अग्रग मंजरियों में सवृन्तकाण्डज क्रम से निकले रहते हैं। इनकी गन्ध अच्छी नहीं होती। **फलियाँ**-१-३ फुट लम्बी, २-३॥ इञ्च चौड़ी, चिपटी, तलवार के समान टेढ़ी एवं कठोर होती हैं। **बीज**-सफेद, चिपटे, गोल, २-३ इञ्च व्यास वाले तथा आधार के अतिरिक्त चारों ओर पंखयुक्त होते हैं। इसके मूल की छाल का दशमूल में उपयोग किया जाता है। यह हलके पीले रंग की रहती है तथा इसका स्वाद कुछ कड़वा तथा कुछ तीता रहता है। इसमें गन्ध नहीं होती।

रा० नि० ने इसके यद्यपि दो भेद लिखे हैं तथापि गुणों में अन्तर नहीं लिखा है। कुछ लोग 'अरलू' नाम से Ailanthus excelsa Roxb. (ऐलेन्थस् एक्सेल्सा राक्स.) लेते हैं और उसी को रा० नि० का श्योनाक भेद मानते हैं। ऐलेन्थस् एक्सेल्सा को कुछ लोगों ने महानिंब माना है।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में ओरोक्झाइलिन् (Oroxylin) नामक एक कड़वा रवेदार ग्लूकोसाइड, कटुपदार्थ, पेक्टिन, तैल एवं मोम आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—सोनापाठा के मूल की छाल उत्तम स्वेदजनन, कुछ वेदनास्थापन, दीपन, बस्तिरोगहर, स्तम्भन, व्रणरोपण एवं शोथहर है। इसके बीज रेचक होते हैं। इसकी छाल का प्रयोग आमवात, अतिसार, कास, अरुचि एवं ज्वर में किया जाता है।

(१) शोथ तथा वातप्रधान रोगों में श्योनाकमूल देते हैं। यह नवीन आमवात में बहुत लाभ करता है। सोंठ के साथ इसका फांट (१ : १०) बनाकर १ औंस दिन में त्रिवार देते हैं। इसके चूर्ण के साथ अफीम मिलाई जा सकती है। यह डोवर्स् पाउडर (Dover's powder) की अपेक्षा उत्तम स्वेदजनन तथा वेदनाहर है। छाल का क्वाथ अधिक स्तम्भन होने के कारण इसके फांट का प्रयोग उचित है। विबन्ध होने पर एरंड तैल का प्रयोग करना चाहिये। आमवात में इसके क्वाथ से शोथयुक्त संधियों को सेंकते हैं जिससे सूजन तथा पीड़ा कम होती है।

(२) इसकी छाल के कल्क तथा पद्मकेसर को गंभारी एवं कमल के पत्तों में लपेटकर, पुटपाक करके निकला हुआ रस शीत होने पर मधु मिलाकर, अतिसार में दिया जाता है।

(३) इसकी छाल से सिद्ध तैल का उपयोग कर्णस्राव तथा कर्णशूल में किया जाता है। बहुत दिन के प्रयोग के बाद इससे लाभ होता है।

(४) कहा जाता है कि अठन्नी भर छाल पीसकर छानकर दूध के साथ पिलाने से मिर्गी में लाभ होता है।

(५) कर्णमूल शोथ में इसके बीज और इरिमेद दोनों पीसकर लगाये तथा पिलाये जाते हैं।

मात्रा—चूर्ण १०-२० र० त्रिकटु के साथ।

अथ बृहत्पञ्चमूलम्। तस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

श्रीफलः सर्वतोभद्रा पाटला गणिकारिका। श्योनाकः पञ्चभिश्चैतैः पञ्चमूलं महन्मतम् ॥२९॥
पञ्चमूलं महत् तिक्तं कषायँ कफवातनुत्। मधुरं श्वासकासघ्नमुष्णं लघ्वग्निदीपनम् ॥ ३० ॥

बृहत् पञ्चमूल के लक्षण तथा गुण—बेल, गम्भारी, पाढल, अरनी और सोनापाठा इन पांचों वृक्षों के मूल एकत्र करने से 'बृहत् पञ्चमूल' होता है। **बृहत् पञ्चमूल**-तिक्त, कषाय तथा मधुर रसयुक्त, कफवात-नाशक एवं श्वास तथा कास को दूर करने वाला, उष्णवीर्य, लघु और अग्निदीपक होता है ॥ २९-३० ॥

अथ शालपर्णी (सरिवन) तस्या नामानि गुणाँश्चाह

शालपर्णी[१] स्थिरा सौम्या त्रिपर्णी पीवरी गुहा।
विदारिगन्धा दीर्घाङ्गी[२] दीर्घपत्रांऽशुमत्यपि ॥ ३१ ॥
शालपर्णी गुरुश्छर्दिज्वरश्वासातिसारजित् ॥ ३२ ॥
शोषदोषत्रयहरी बृंहण्युक्ता रसायनी। तिक्ता विषहरी स्वादुः क्षतकासक्रिमिप्रणुत् ॥३३॥

'सरिवन' के नाम तथा गुण—शालपर्णी, स्थिरा, सौम्या, त्रिपर्णी, पीवरी, गुहा, विदारिगन्धा, दीर्घाङ्गी, दीर्घपत्रा तथा अंशुमती ये सब संस्कृत नाम 'सरिवन' के हैं। **सरिवन**-पाक में गुरु और वमन, ज्वर, श्वास, अतीसार, शोष तथा त्रिदोष का नाशक है एवं बृंहण, रसायन, तिक्त तथा मधुर रसयुक्त और विष, क्षयकास तथा क्रमि का भी नाशक है ॥ ३१-३३ ॥

१० शालपर्णी

हि०-सरिवन, सालवन, गौरी, सर, दिंय रौथ। **बं०**-शालपान, शलपानी, छालानी। **म०**-सालवण, रानभाल। **पं०**-सरिवन, समेर। **गु०**-सालवण, समेरवो, पांदडियो। **क०**-मुई हॅवरा मरुवल होने, मरुल होन्ने, काडगांजि। **ते०**-सप्पा कुपोव, सप्पा कपोवा, शिया कुपना, कोल कुपोन्ना, गिता नरम। **उ०**-शार पाणि। **ले०**-*Desmodium gangeticum DC.* (डेस्मोडिअम् गॅन्जेटिकम् डीसी.)। Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी)।

यह भारत में प्रायः सर्वत्र प्राप्त होती है विशेषकर दून के शाल वनों में अधिक होती है।

इसके **पौधे** (उपक्षुप)-स्वावलम्बी परन्तु झुकी और फैली हुई शाखाओं से युक्त और २-४ फीट ऊँचे होते हैं। **काण्ड**-किंचित् कोणदार होते हैं। **पत्ते**-एकपत्रक, ३-६ इञ्च लंबे,

१. शालिपर्णी इति पाठा०। २. दीर्घाङ्गी इति पाठा०।

भिन्न भिन्न चौड़ाई के भालाकार-आयताकार या कम चौड़े और लट्वाकार तथा क्रमशः तीक्ष्णाग्र होते हैं। इनका अपर पृष्ठ मसृण, हरे रंग का और अधर पृष्ठ फीके हरे रंग का और रोमश होता है। **पुष्प**-श्वेताभ गुलाबी या जामुनी रंग के और ६-१२ इञ्च लंबी, विरल, पतली तथा अग्रज मंजरियों में श्रावणमास में लगते हैं। **फली**-आधा से पौन इञ्च लंबी, ६-८ संधियों की, टेढ़ी और टेढ़े सूक्ष्म रोमों से युक्त होने के कारण कपड़ों में चिपक जाने वाली होती है। जमीन पर फैले हुये अथवा न्यूनाधिक स्वावलंबी दोनों प्रकार के पौधे होते हैं। अल्प वृद्धि वाले पौधों में पत्ते केवल ३/४-१३/४ इञ्च लंबे और अति वृद्धि वाले पौधों में ३-६ इञ्च लंबे पत्ते होते हैं। इसके पत्तों का आकार शालपर्ण सदृश होने के कारण इसे शालपर्णी माना जाता है। इसके मूल तथा पंचांग का चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है। इस जाति तथा वर्ग के कुछ अन्य पौधों को भी शालपर्णी के नाम से ग्रहण कर लिया जाता है।

शालपर्णी और पृश्निपर्णी के विषय में वैद्यों में मतभेद है। कहीं-कहीं के वैद्य उसे शालपर्णी मानते हैं जिसे आगे पृश्निपर्णी लिखा गया है और इस शालपर्णी को वे पृश्निपर्णी मानते हैं। पृश्निपर्णी के पर्याय में क्रोष्टुविन्ना शब्द आया है जो Uraria (यूरेरिआ) जाति की पुच्छाकार मंजरी वाले क्षुपों के लिये ही उपयुक्त हो सकता है। इस दृष्टि से Uraria picta Desv. (यूरेरिआ पिक्टा डेस्व.) को पृश्निपर्णी मानना उचित मालूम पड़ता है। Uraria lagopoides DC. (यूरेरिआ लॅगोपाइडिस् डीसी.) के पत्र शालपत्र जैसे होने के कारण उसे शालपर्णी माना जा सकता है। कुछ लोग शालिपर्णी से शालिधान्य के क्षुप जैसे पत्र वाले क्षुप मानते हैं। इसी तरह इसके विभिन्न निघण्टुओं में दिये हुये पर्याय नामों के आधार पर लोग विभिन्न क्षुपों को शालपर्णी या पृश्निपर्णी सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं।

गुण और प्रयोग—शालपर्णी उष्ण, ज्वरघ्न, शोथघ्न, मूत्रजनन, बल्य, रसायन, वयस्थापन, बृंहण, सर्वदोषहर, अंगमर्द प्रशमन तथा विषघ्न है। इससे मूत्रदाह कम होता है।

इसका प्रयोग ज्वर, वातरोग, अतिसार, वमन, शोथ, प्रमेह, अर्श, कृमि, राजयक्ष्मा एवं क्षत कास में किया जाता है। श्वासनलिकाशोथ, फुफ्फुसशोथ तथा सूतिकाज्वर में इससे विशेष लाभ होता है। इसके पंचांग के क्वाथ में कालीमिर्च मिलाकर रक्तविकार में प्रयोग करते हैं।

मात्रा—चूर्ण ३/४-१ तोला।

अथ पृश्निपर्णी (पिठवन) तस्या नामानि गुणाँश्चाह

पृश्निपर्णी पृथक्पर्णी चित्रपर्ण्यहिपर्ण्यपि[1]।
क्रोष्टुविन्ना सिंहपुच्छी कलशी धावनिर्गुहा ॥ ३४ ॥
पृश्निपर्णी त्रिदोषघ्नी वृष्योष्णा मधुराऽसरा।
हन्ति दाहज्वरश्वासरक्तातीसारतृड्वमीः ॥ ३५ ॥

पिठवन के नाम तथा गुण—पृश्निपर्णी, पृथक्पर्णी, चित्रपर्णी, अहिपर्णी, क्रोष्टुविन्ना, सिंहपुच्छी, कलशी, धावनी और गुहा ये सब संस्कृत नाम पिठवन के हैं। **पिठवन**-त्रिदोष को दूर करने वाली, वृष्य, उष्णवीर्य, मधुररस युक्त तथा संग्राही होती है। यह दाह, ज्वर, श्वास, रक्तातिसार, तृषा और वमन को दूर करती है ॥ ३४-३५ ॥

१. अंघ्रिपर्ण्यपि इति पाठा०।

११ पृश्निपर्णी (१)

हि०-पिठवन, डाब्रा। **बं०**-शंकरजटा। **पं०**-देतेर्दानी। **म०**-पृश्निपर्णी, पिठवण। **गु०**-पीठवण, पीलो समेरवो। **ले०**-*Uraria picta Desv.* (युरेरिआ पिक्टा डेस्व.)। Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी)।

यह देहरादून और बाहरी हिमालय में प्रायः ऊसर भूमि एवं खुले हुए जंगलों में पाया जाता है।

इसके **क्षुप**-२-६ फीट ऊँचे, स्वावलम्बी तथा अल्प शाखाओं वाले होते हैं जिसमें पत्ते एक ही क्षुप में भिन्न तरह के होते हैं। **पत्ते**-नीचे के पत्ते छोटे और लगभग वृत्ताकार, इनके ऊपर ३-५ पत्रक सदलपर्ण जिनके पत्रक रेखाकार और इनके साथ कभी-कभी बड़े-बड़े आयताकार, भालाकार, ६×१३/४ इञ्च बड़े अपत्रक पर्ण भी रहते हैं। ऊपर के पत्ते ५-९ पत्रक तथा पत्रक ३१/२-६ इञ्च बड़े होते हैं। पत्रकों के मध्य में पीलापन लिये भूरे या पीले सफेद रंग के पट्टे होते हैं। **पुष्प**-छोटे, लाल और ३-४ इञ्च लम्बी, सघन, अग्रज और रंभाकार मंजरियों में निकले रहते हैं। फलवती होने पर ये मंजरियाँ पुच्छाकार मालूम होती हैं। **फली**-छोटी तथा ३-६ संधियों वाली होती है। अधिकांश लोग इसे पृश्निपर्णी मानते हैं। इसे शालपर्णी मानना उचित नहीं है। पृश्निपर्णी (२) को शालपर्णी माना जा सकता है क्योंकि उसके पत्र शालपत्र जैसे होते हैं।

गुण और प्रयोग—पृश्निपर्णी उष्ण, लघु, त्रिदोषघ्न, दीपनीय, वृष्य, वातहर, संग्राही, सन्धानीय, शोथहर, अंगमर्द प्रशमन तथा जीवाणुनाशक है।

इसका उपयोग ज्वर, कास, रक्तातिसार, रक्तार्श, तृषा एवं दाह में किया जाता है।

(१) बला तथा पृश्निपर्णी का क्वाथ, रक्तार्श एवं मदात्यय में लाभदायक है।

(२) अस्थिभग्न में मांसरस के साथ इसके मूल का चूर्ण २१ दिन तक सेवन करना चाहिये।

(३) इसके पंचांग का स्वरस फुरसा (Echis carinata) नामक सर्प के विष में लाभदायक माना जाता है।

मात्रा—३/४-१ तोला।

१२ पृश्निपर्णी (२)

हि०-पिठवन, पिठोनी, पितवन। **बं०**-चाकुले, चाकुलिआ। **म०**-डवला, पिठवण। **पं०**-पिठोनी, पिठौनी। **मा०**-पिठपन। **गु०**-नहानो समेरवो। **क०**-नवियल बोने। **ते०**-कोलकूपौन्ना। **ले०**-*Uraria lagopoides DC.* (युरेरिआ लॅगोपॉइडिस् डीसी.)। Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी)।

यह नेपाल, बंगाल, छोटानागपूर तथा अन्य उष्ण प्रान्तों के जंगली स्थानों में होती है।

इसके **क्षुप**-बहुवर्षायु काष्ठीय मूल से प्रतिवर्ष निकलते हैं। **शाखाएँ**-प्रसरी या अत्यन्त-प्रसरी और लगभग १२ इञ्च लम्बी होती हैं, जो मूल के समीप निकलती हैं। **पत्ते**-किंचित् वृत्ताकार या चौड़ाई लिये हुए आयताकार, एकपत्रक और त्रिपत्रक दोनों प्रकार के पत्ते मिले हुए या कभी-कभी केवल अपत्रक पत्ते होते हैं। **पुष्प**-पुष्पमंजरी ८-१२ इञ्च तक लम्बी, गोल तथा पुच्छाकार होती है जो स्थायी बाह्यकोश के पंख सदृश खण्डों के कारण बहुत सघन और शृगालपुच्छ (क्रोष्टुविन्ना) जैसी दिखाई देती हैं इसीसे कहीं-कहीं जंगलों में इसे सियारपुछिया भी कहते हैं। **फली**-एक इञ्च लम्बी, टेढ़ी-मेढ़ी तथा चिकनी होती है। इसके मूल का व्यवहार किया जाता है।

इसकी एक अन्य जाति युरेरिआ हॅमोसा वाल. (Uraria hamosa Wall.) होती है जिसमें मंजरियाँ लम्बी परन्तु सघन नहीं होतीं तथा पर्ण अपत्रक या त्रिपत्रक होते हैं। इसे उड़ीसा में सालपानी (शालपर्णी) कहते हैं। वस्तुतः 'सालपानी' नाम कई जाति के पौधों को दिया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह रसायन, बल्य, श्लेष्मघ्न एवं त्रिदोषघ्न है। इसके मूल का व्यवहार ½–१ तोला की मात्रा में किया जाता है।

अथ वार्त्ताकी (बड़ी कटेरी) तस्या नामानि गुणाँश्चाह

वार्त्ताकी क्षुद्रभण्टाकी महती बृहती कुली।
हिङ्गुली राष्ट्रिका सिंही महोट्टी दुष्प्रधर्षिणी।
बृहती ग्राहिणी हृद्या पाचनी कफवातहृत्॥ ३६॥
कटुतिक्ताऽऽस्यवैरस्यमलारोचकनाशिनी।
उष्णा कुष्ठज्वरश्वासशूलकासाग्निमान्द्यजित्॥ ३७॥

बड़ी कटेरी के नाम तथा गुण—वार्त्ताकी, क्षुद्रभण्टाकी, महती, बृहती, कुली, हिङ्गुली, राष्ट्रिका, सिंही, महोट्टी और दुष्प्रधर्षिणी ये सब संस्कृत नाम बड़ी कटेरी के हैं। बड़ी कटेरी-संग्राही (मलरोधक), हृदय को हितकर, पाचक, कफवात-नाशक, कटु तथा तिक्तरस-युक्त होती है। यह मुखकी विरसता तथा मल और अरुचि का नाश करने वाली, उष्णवीर्य तथा कुष्ठ, ज्वर, श्वास, शूल, कास और अग्नि की मन्दता इन सबों को दूर करने वाली होती है॥ ३६–३७॥

१३ बृहती (बड़ी कटेरी)

हि०–बनभंटा, बनभांटा, बड़ी कटाई, बड़ी कटेरी, बरहंटा, अंजड। **बं०**–व्याकुड, व्याकुर। **म०**–डोरले, चिंचुरटी वांगी। **गु०**–उभी रिंगणी। **ते०**–तेल्ल मुलक। **ता०**–पप्पर मुल्ली। **क०**–किरिगुलि। **मा०**–उभीकटाली। **मला०**–चेरुचुन्ड। **पं०**–कंडयारी। **फा०**–कटाई कलाँ। **ले०**–*Solanum indicum Linn.* (सोलॅनम् इण्डिकम् लिन.)। Fam. Solanaceae (सोलॅनॅसी)।

यह भारत के प्रायः सब प्रान्तों में कहीं न कहीं पाई जाती है, विशेषकर ऊसर भूमि में अधिक मिलती है।

इसका क्षुप–३–६ फीट ऊँचा ठीक भण्टे के क्षुप के समान होता है। **शाखाएँ**–श्वेत रोमश और किंचित टेढ़े तथा मृदु कांटों से भरी रहती हैं। **पत्ते**–३ से ६ इञ्च तक लम्बे तथा १ से ४ इञ्च तक चौड़े, कटे किनारे वाले या लहरदार, ठीक भण्टे के पत्तों के आकार के लट्वाकार या आयताकार होते हैं। अधरतल पर रोमश होने के कारण ये मैले सफेद रंग के और ऊपरी तल पर तारकाकार रोमों के कारण कुछ-कुछ खुरखुरे होते हैं। नीचे के तल पर मध्यपर्शुक पर अथवा नसों पर मृदु कंटकों से युक्त रहते हैं। **फूल**–भंटा के फूल के समान बैंगनी रंग के या कभी-कभी श्वेताभ, ·७५ इञ्च व्यास के और पांच दल वाले होते हैं। **फल**–गोल, कच्ची अवस्था में हरे, पकने पर पीले, तिहाई इञ्च व्यास के एवं प्रायः चिकने होते हैं। इनका स्थायी बाह्यकोश पहले जैसा छोटा ही रहता है। फल तथा फूल सालभर लगते रहते हैं। ताजे फल कड़वे तथा कटु रहते हैं लेकिन सूखने पर इनका कड़वापन चला जाता है।

इसका एक भेद ठंडे तथा आर्द्र स्थानों में पाया जाता है जिसे **ले०**–*Solanum torvum Swartz* (सोलॅनम् टॉर्वम् स्वार्ज़) तथा सं०–श्वेतबृहती कहते हैं।

इसके क्षुप–६–१० फीट ऊँचे तथा उपर्युक्त बृहती के समान होते हैं। ये अधिक ऊँचे, सीधे तथा शाखाएँ अल्प, सीधी, प्रायः मुलायम और उन पर कांटे बहुत कम होते हैं। **पत्ते**–३–७ इञ्च लम्बे, २–४ इञ्च चौड़े, ऊपर कम और नीचे अधिक रोमश (रोम तारकाकार) होते हैं। कांटे भी प्रायः मध्यशिरा पर नीचे की ओर केवल एक या दो होते हैं। **फूल**–श्वेत तथा बाह्यकोश में कांटे नहीं होते। फल–पहले से बड़े, ·५ इञ्च व्यास के तथा पीले होते हैं।

इसका एक अन्य भेद शुष्क भागों में पाया जाता है जिसे **ले०**–*Solanum melongena Linn.* (सोलॅनम् मेलोंगेना लिन.) एवं **हि०**–बनभण्टा, जंगली बैंगन, रोको, ठोको, गठेगनी कहते हैं।

यह बैंगन की ही जंगली जाति होती है जिसमें कांटे होते हैं। **पत्ते**-अंडाकार, ४-७ इञ्च बड़े, न्यूनाधिक अखंड, लहरदार या किंचित् खंडित (खंडगोल) होते हैं। **फूल**–नीले और प्रायः व्यास में १ इञ्च होते हैं। बाह्यकोश फल में बढ़ा हुआ रहता है। **फल**–चिकने, श्वेताभ-पीत, गोल और व्यास में करीब १ इञ्च होते हैं। इसके कृषिजन्य भेद में फल के रंग तथा आकारादि में बहुत भिन्नता आ जाती है।

नोट—प्राचीनों ने बृहतीद्वय का उल्लेख किया है जिससे कुछ लोग बृहती (बड़ी कटेरी) तथा कंटकारी (भटकटैया) ये दो द्रव्य लेते हैं। कुछ लोगों का मत है कि बृहतीद्वय अलग हैं तथा कंटकारी अलग है। बृहती के कई भेद प्राप्त भी होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें सोलेनीन एवं सोलेनिडीन नामक दो क्षाराभ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, दीपन, पाचन, ग्राही, वातघ्न, कफघ्न, हृद्य, कण्ठ्य, हिक्का-निग्रहण, शोथहर तथा अंगमर्द प्रशमन है।

इसका मूल कफ रोगों में दिया जाता है। इससे ज्वर कम होता है एवं श्वासावरोध कम होता है। इसके प्रयोग से उदरगत वात कम होने से शूल एवं मरोड़ दूर होती है। मूत्रकृच्छ्र में इसका उपयोग करते हैं। त्वग्रोगों में इसके पत्तों का लेप किया जाता है। वमन रोकने के लिये इसके पत्तों का स्वरस आर्द्रक के साथ पिलाते हैं। इसके फल अग्निदीपक माने जाते हैं तथा शिरःशूल में इसका लेप लाभदायक होता है।

मात्रा—चूर्ण १–२ माशा।

अथ कण्टकारी (भटकटैया, कटेरी)। तस्या नामान्याह

कण्टकारी तु दुःस्पर्शा क्षुद्रा व्याघ्री निदिग्धिका। कण्टालिका कण्टकिनी धावनी बृहती तथा॥

भटकटैया के नाम—कण्टकारी, दुःस्पर्शा, क्षुद्रा, व्याघ्री, निदिग्धिका, कण्टालिका, कण्टकिनी, धावनी और बृहती ये सब संस्कृत नाम भटकटैया के हैं॥ ३८॥

*** उभे च बृहत्यौ। यत आह सुश्रुतः—**
क्षुद्रा या क्षुद्रभण्टाकी बृहतीति निगद्यते॥ ३८॥

दोनों ही अर्थात् बड़ी कटेरी तथा भटकटैया (छोटी कटेरी) 'बृहती' कहलाती हैं क्योंकि 'सुश्रुत' महर्षि ने भी कहा है कि—क्षुद्रा (भटकटैया) और क्षुद्रभण्टाकी (बड़ी कटेरी) जो यह दो प्रकार की कटेरी होती है वे दोनों ही 'बृहती' नाम से कहलाती हैं॥ ३८॥

अथ श्वेतपुष्पायाः कण्टकार्या नामान्याह

श्वेता क्षुद्रा चन्द्रहासा लक्ष्मणा क्षेत्रदूतिका। गर्भदा चन्द्रमा चन्द्री चन्द्रपुष्पा प्रियङ्करी॥३९॥

सफेद फूल वाली भटकटैया के नाम—श्वेता, क्षुद्रा, चन्द्रहासा, लक्ष्मणा, क्षेत्रदूतिका, गर्भदा, चन्द्रमा, चन्द्री, चन्द्रपुष्पा और प्रियङ्करी ये सब संस्कृत नाम सफेद फूल वाली भटकटैया के हैं ॥ ३९ ॥

अथ कण्टकारीगुणानाह

कण्टकारी सरा तिक्ता कटुका दीपनी लघुः ॥ ४० ॥
रूक्षोष्णा पाचनी कासश्वासज्वरकफानिलान्। निहन्ति पीनसं पार्श्वपीडाकृमिहृदामयान् ॥४१॥

भटकटैया के गुण—भटकटैया-दस्तावर, तिक्त तथा कटुरसयुक्त, अग्निदीपक, लघु, रूक्ष, उष्णवीर्य और पाचक होती है। यह खाँसी, श्वास, ज्वर, कफ, वात, पीनस, पार्श्वपीडा (पसुली का दर्द), कृमि तथा हृद्रोग इन सबों को दूर करती है ॥ ४०–४१ ॥

अथ कण्टकारीद्वयफलगुणानाह

तयोः फलं कटु रसे पाके च कटुकं भवेत्। शुक्रस्य रेचनं भेदि तिक्तं पित्ताग्निकृल्लघु ॥
हन्यात्कफमरुत्कण्डूकासमेदःकृमिज्वरान् ॥ ४२ ॥

दोनों कटेरियों के फल के गुण—छोटी तथा बड़ी कटेरी के फल—पाक में कटुरसयुक्त, शुक्र का रेचन करने वाले, मल को भेदन करने वाले, कटु तथा तिक्तरस-युक्त, पित्त तथा अग्निवर्धक और लघु होते हैं और कफ, वात, खुजली, खाँसी, मेदरोग, कृमि तथा ज्वर को दूर करने वाले होते हैं ॥ ४२ ॥

अथ श्वेतपुष्पकण्टकार्या गुणानाह

तद्वत्प्रोक्ता सिता क्षुद्रा विशेषाद् गर्भकारिणी ॥ ४३ ॥

श्वेत फूल वाली भटकटैया के गुण—**सफेद फूल वाली भटकटैया** भी पूर्वोक्त इन सभी गुणों से युक्त होती है तथापि विशेष करके यह गर्भ धारण कराने वाली होती है ॥ ४३ ॥

१४ कंटकारी

हि०–कटेरी, लघुकटाई, कंटकारी, छोटी कटाई, भटकटैया, रेंगनी, रिगणी, कटाली, कटयाली। **बं०**–कंटकारी। **म०**–रिङ्गणी, भुईरिङ्गणी। **गु०**–बेठी भोरिंगणी, भोयरिंगणी। **क०**–नेल्ल गुल्लु। **ते०**–चल्लन मुलग। **मा०**–पसरकटाई। **पं०**–कंडियारी, वरुम्व। **ता०**–कंडनकत्तरि। **अ०**–हदक, इसिम, शौकतुल्अकरव। **फा०**–वादंगानवरीं, कटाई खुर्द। **ले०**–*Solanum xanthocarpum Schrad & Wendl* (सोलॅनम् झॅन्थोकार्पम् श्रॅड, वेण्ड.)। Fam. Solanaceae (सोलेनेंसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में और सब प्रकार की मिट्टी में पाई जाती है परन्तु रेतीली भूमि में यह अधिक उत्पन्न होती है। दक्षिण-पूर्व एशिया, मलाया एवं आस्ट्रेलिया के उष्ण प्रदेशों में भी यह पाई जाती है।

इसका परिप्रसरी क्षुप–बहुवर्षायु तथा अत्यन्त काँटेदार होता है। काण्ड–टेढ़े-मेढ़े एवं अनेक शाखाओं से युक्त रहते हैं। काँटे–सीधे, पीले, चिकने, चमकीले एवं ·५–·७ इञ्च तक लम्बे होते हैं। इनमें साथ में छोटे काँटे भी होते हैं। पत्ते–२–४ इञ्च लम्बे, १–३ इञ्च चौड़े, लट्वाकार, आयताकार या अण्डाकार, गहरे कटे हुए या पक्षवत् खण्डित होते हैं। पत्रखण्ड पुनः खण्डित या दन्तुर होते हैं। ये तारकाकार रोमों के कारण खुरदुरे होते हैं। फूल–गहरे नीले रंग के आते हैं। फल–गोल, ·५–१ इञ्च व्यास के, चिकने और पीले या कभी कभी सफेद होते हैं तथा हरी धारियों से युक्त होते हैं। बीज–चिकने एवं छोटे होते हैं। इसके मूल का उपयोग किया जाता है। यह हमेशा ताजा उपयोग में लाना चाहिये।

श्वेतकंटकारी का पौधा वर्षायु, कुछ छोटा एवं हलके रंग का होता है। पुष्प श्वेत रंग के आते हैं। मूल छोटा एवं पतला तथा शाखायुक्त होता है। यह शीतऋतु में होता है तथा वर्षा में गल जाता है। श्वेतकंटकारी का एक पर्याय लक्ष्मणा होने के कारण तथा यह भी 'गर्भकारिणी' होने के कारण 'लक्ष्मणा' के स्थान पर इसका उपयोग किया जाता है। लक्ष्मणा का आगे स्वतंत्र वर्णन आया है। यह पौधा उपर्युक्त कंटकारी का केवल स्थानभेद से उत्पन्न प्रकार (Variety) है या स्वतंत्र जाति (Species) है इस संबंध में अभी शोध चालू है। इसके स्वतंत्र स्पीसीज सिद्ध होने की अधिक संभावना है।

रासायनिक संगठन—इसमें सोलेनीन सदृश सोलेकार्पिडिन (Solacarpidin, $C_{26}H_{44}O_3N$) नामक एक क्षाराभ बहुत अल्पमात्रा में होता है जो फल में अधिक होता है। पत्तों की अपेक्षा मूल में यह अधिक होता है। इसके पंचांग में पोटॅशियम् क्लोराइड् एवं पोटॅशियम् नाइट्रेट् (Potassium chloride and Potassium nitrate) पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह उत्तम मूत्रल, कफनिःसारक एवं ज्वरहर है। इसके बीज वेदनास्थापक हैं।

इसका उपयोग कास, श्वास, प्रतिश्याय, ज्वर, अंगमर्द, पार्श्वपीडा, हृद्रोग, आध्मान, विबंध, अश्मरी तथा वमन में किया जाता है।

(१) गुडुच एवं इसकी जड़ का क्वाथ ज्वर एवं कास में बल्य रूप में दिया जाता है। इससे शरीर की पीड़ा कम होती है, कुछ पसीना होता है एवं मूत्र की मात्रा भी कुछ बढ़ती है।

(२) इससे गला एवं श्वासनलिका की शुष्कता कम होकर कफ ढीला होने लगता है इसलिये गले का शोथ, स्वरयन्त्रशोथ एवं श्वासनलिकाशोथ इनकी प्रथमावस्था में इससे अच्छा लाभ होता है। कफ की प्रथमावस्था में मूल के क्वाथ के साथ मधु एवं सैंधव दिया जाता है। द्वितीयावस्था में पत्रस्वरस या मूलक्वाथ में छोटीपीपल एवं मधु मिलाकर देते हैं जिससे खाँसी की तकलीफ कम होती है। तमक श्वास एवं उद्वेष्टन युक्त कास में इसके मूल के क्वाथ में सैंधव एवं हींग मिलाकर देते हैं। सुश्रुत ने तमक श्वास के लिये इसका मूलचूर्ण १ तोला तथा हींग ½ तोला, मधु के साथ ३ दिन सेवन करने को लिखा है। कास, श्वास तथा स्वरभेद में इससे सिद्ध घृत का उपयोग लिखा है। कास में इसके स्वरस से सिद्ध मुद्गयूष आँवले की खटाई डालकर उपयोग करने को लिखा है।

(३) इसके मूल का स्वरस मद्य मिलाकर पिलाने से वमन बन्द होता है।

(४) इसके मूल के क्वाथ को मूत्रकृच्छ्र, बस्तिगत अश्मरी एवं जलोदर में देते हैं। मूत्रदोष में इसके स्वरस में मधु मिलाकर पिलाते हैं। अश्मरी में बृहती तथा कंटकारी के मूल का चूर्ण मीठे दही के साथ ७ दिन पीने का विधान है।

(५) इसके बीज के धूम्रपान से कृमिदन्तजन्य शूल कम होता है तथा कभी-कभी तत्काल लाभ होता है। मुखपाक में पंचांग क्वाथ से गण्डूष कराते हैं। पीड़ायुक्त अर्श में इसके बीज की धूनी दी जाती है। वेदनायुक्त अंगोंपर इसके पत्तों का लेप किया जाता है।

(६) आमवात में इसके पत्रस्वरस में काली मिर्च मिलाकर पिलाते हैं तथा पत्तों का लेप करते हैं।

(७) गले की सूजन में फलों का स्वरस उपयोगी है।

(८) सोजाक में पंचांग का क्वाथ पिलाते हैं।

मात्रा—पत्रस्वरस ½–१ तोला; मूलक्वाथ (अष्टमांश) २–४ तोला; मूलचूर्ण १–२ माशा।

श्वेतकंटकारी—इसकी ताजी जड़ दूध में पीसकर मासिक के चौथे दिन पिलाने से गर्भधारणा होती है।

अथ गोक्षुरः। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

गोक्षुरः क्षुरकोऽपि स्यात्त्रिकण्टः स्वादुकण्टकः। गोकण्टको गोक्षुरको वनशृङ्गाट इत्यपि॥४४॥
पलङ्कषा श्वदंष्ट्रा च तथा स्यादिक्षुगन्धिका। गोक्षुरः शीतलः स्वादुर्बलकृद्बस्तिशोधनः॥४५॥
मधुरो दीपनो वृष्यः पुष्टिदश्चाश्मरीहरः। प्रमेहश्वासकासार्शःकृच्छ्रहृद्रोगवातनुत्॥४६॥

गोखरू के नाम तथा गुण—गोक्षुर, क्षुरक, त्रिकण्ट, स्वादुकण्टक, गोकण्टक, गोक्षुरक, वनशृङ्गाट, पलङ्कषा, श्वदंष्ट्रा तथा इक्षुगन्धिका ये सब संस्कृत नाम गोखरू के हैं। गोखरू—शीतवीर्य, स्वादु, बलकारक, बस्तिशोधक, मधुररसयुक्त, अग्निदीपक, वृष्य तथा पुष्टिकारक होता है। यह पथरी, प्रमेह, श्वास, खांसी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, हृद्रोग तथा वात को दूर करने वाला होता है॥ ४४–४६॥

१५ गोखरू (छोटा)

हि०-गोखरू, छोटा गोखरू, हाथीचिकार। **बं०**-गोक्षुर, गोखुरी। **म०**-सराटे, काटे गोखरू। **क०**-नेग्गिलुमुल्लु, नेगलु। **गु०**-न्हाना गोखरू, बेठा गोखरू। **ते०**-पल्लेरु मुल्लु। **ता०**-नेरिंजिल, नेरुंजी। **प०**-मखड़ा, मखर। **फा०**-खारे खसक, खारे सेहगोशा। **अ०**-हसक, बजरुक खस्क। **अं०**-Small Caltrops (स्मॉल् कॅल्ट्रोप्स्)। **ले०**-*Tribulus terrestris Linn.* (ट्रिब्युलस् टेरेस्ट्रिस लिन.)। Fam. Zygophyllaceae (झाइगोफाइलेइसी)।

छोटा गोखरू-प्रसर जाति की वनौषधि है। यह प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है विशेषकर बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, पश्चिमोत्तरप्रदेश, राजपूताना और मद्रास में अधिक उत्पन्न होता है। यह अन्य उष्णप्रदेशों में भी पाया जाता है।

इसका प्रसर-१½ फीट से ४ फीट के घेरे में भूमि पर फैला हुआ रहता है। **मूल**-पतला, चीमड़, करीब ५ इञ्च लम्बा, गोल एवं हलके भूरे रंग का रहता है। इसमें थोड़ी सी सुगन्ध रहती है एवं इसका स्वाद कुछ मिठास लिये हुए कसैला होता है। **शाखाएँ**-१–२ फीट लम्बी, रोमश तथा जमीन पर फैली हुई रहती हैं। **पत्ते**-विपरीत, २–३ इञ्च लम्बे, प्रायः असम तथा जोड़ी में आते हैं। **पत्रक**-आयताकार, ४–७ जोड़े, छोटे, ०·८–१·२ से. मि. लम्बे, आधार की तरफ कुछ तिरछे एवं इनका अग्र रोमश रहता है। **फूल**-छोटे छोटे, पाँच पंखड़ी वाले, पीले रंग के तथा पत्रकोणों में आते हैं। **फल**-छोटे-छोटे गोल किञ्चित् चिपटे होते हैं और उनपर पाँच जोड़े बड़े काँटे लगे रहते हैं। ये पाँच दलवाले होते हैं और सूखने पर प्रायः पाँचों दल त्रिकोणाकार पृथक् पृथक् हो जाते हैं तथा उनके दोनों छोर पर एक-एक बड़े काँटे, आधार पर दो छोटे काँटे एवं अन्य सतह पर सूक्ष्म काँटे रहते हैं। प्रत्येक दल में अनेक बीज पाये जाते हैं जिनके बीच में आड़े परत होते हैं।

इसके मूल एवं फल का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। प्रायः चूर्ण के लिये फल एवं क्वाथ के लिये मूल काम में लेते हैं।

इसी का एक जातिभेद सिंध, पंजाब तथा बलुचिस्तान में होता है। इसे **ले०**-*Tribulus alatus Del.* (ट्रिब्युलस् एलॅटस् डेल्); **अं०**-*Winged caltrops* (विंग्ड् कॅल्ट्रोप्स्); सिंध-लतक; हिं०-गोखुरेकलान; **पं०-हसक** कहते हैं। इसके फल एक तरफ मोटे तथा दूसरी तरफ संकुचित होते हैं एवं इसे पंख रहते हैं। इनमें दो बीज होते हैं। इसके गुण गोखरू के समान ही होते हैं। इससे पाखाना साफ होता है एवं प्रसूता को इसके फल की पेया पिलाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके फलों में अत्यल्प मात्रा में एक क्षाराम, ३·५% स्थिर तैल, कुछ उड़नशील तैल, राल एवं अधिक मात्रा में नाइट्रेट (Nitrates) ये पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—गोखरू शीतल, स्नेहन, मूत्रविरेचनीय, शोथहर, वातहर, बल्य, वृष्य एवं वेदनास्थापन है। मूत्र-संस्थान की श्लेष्मकला पर इसका प्रभाव बकु (Buchu) के पत्र एवं उहाअर्सी (Uva-ursi) के पुष्प सदृश होता है। इसका मूत्रल प्रभाव इसमें के नाइट्रेट एवं उड़नशील तैल के कारण होता है। यह शीतवीर्य होते हुये वृक्कोत्तेजक है। अधिक मात्रा से इससे शौच साफ होता है।

इसका उपयोग मूत्रकृच्छ्र, सोजाक, अश्मरी, बस्तिरोग, वृक्कविकार, प्रमेह, स्वप्नदोष, नपुंसकता एवं वीर्यक्षीणता में किया जाता है।

इसके फलों का फांट वृक्कविकार, अश्मरी तथा वातरक्त में मूत्रल औषधि के रूप में बहुत उपयोगी है। इसका उपयोग मूत्राघात, कास तथा हृदयविकार में भी किया जाता है। सोजाक तथा बस्तिशोथ में इसका क्वाथ देते हैं। इसका वेदना स्थापन गुण अल्प होने के कारण इसके साथ खोरासानी अजवाइन या अफीम मिलाई जाती है।

मूत्रकृच्छ्र में इससे सिद्ध दुग्ध का प्रयोग किया जाता है। मूत्र बहुत अम्ल होने पर तथा मूत्रकृच्छ्र में इसके क्वाथ में यवक्षार मिलाकर देते हैं। बस्तिशोथ या वृक्कशोथ में जब मूत्र क्षारीय, दुर्गन्ध युक्त एवं गंदला रहता है तब इसके क्वाथ में शिलाजीत देते हैं।

इसके चूर्ण को मधु के साथ खाकर ऊपर से बकरी का दूध सात दिन पीने से अश्मरी में लाभ होता है।

गोखरू तथा तिल इनका समभाग चूर्ण मधु एवं बकरी के दूध के साथ सेवन करने से हस्तमैथुनजन्य षाढ्य में लाभ होता है। गर्भाशय शुद्ध होकर वन्ध्यत्व नष्ट होने के लिये गोखरू देते हैं।

मात्रा—३–६ माशा।

१६ गोखरू बड़ा

हि०-बड़ा गोखरू, फरीदबूटी, दक्षिणी गोखरू। **बं०**-बड गोखरू। **म०**-मोठें गोखरू। **गु०**-ऊभा गोखरू, म्होटा गोखरू, कडवा गोखरू। **पं०**-गोखरू कलां, बड़ा भखड़ा (रा)। **उडि०**-गोक्षुरा। **क०**-आनेनेग्गिलु। **ते०**-पेड्डा पल्लेरू। **ता०**-पेरूनेरुंजि। **मल०**-कट्टु-नेरिंजल। **सिंहा०**-अतिनेरंचि। **अ०**-हसके कबीर। **फा०**-खारेखस के कलां, खसके कलाँ। **ले०**-*Pedalium murex Linn.* (पेडॅलिअम् म्युरेक्स लिन.)। Fam. Pedaliaceae (पेडॅलिएसी)।

यह दक्षिण में समुद्र के किनारे, गुजरात तथा सिलोन में बहुत उत्पन्न होता है।

इसका क्षुप-वर्षायु, नरम, मांसल तथा चिकना होता है। **शाखाएँ**-६–१८ इञ्च लम्बी तथा उत्थित प्रसरी होती हैं। **पत्ते**-न्यूनाधिक विपरीत, १–२ इञ्च लम्बे, अण्डाकार तथा लहरदार दन्तुर किनारे वाले होते हैं। **पुष्प**-पीले रंग के, १ इञ्च लम्बे तथा पत्रकोणों में निकले हुए होते हैं।

इनको मसलने से कस्तूरी जैसी सुगन्ध आती है। फल-चौकोनी, करीब ½ इञ्च लम्बा, ½ इञ्च चौड़ा तथा आधार की ओर प्रत्येक कोन पर एक-एक सीधा काँटा होता है। इसके ऊपर का भाग शंकाकार और भीतर से दो कोशवाला होता है। बीज-प्रत्येक कोश में दो दो बीज होते हैं। इसके पत्तों को जल में डालने पर जल एकदम लुआबदार हो जाता है। इसमें न स्वाद होता है न गन्ध होती है तथा कुछ समय बाद इसका लुआब भी निकल जाता है। इसके पत्ते तथा फलों का चिकित्सा में व्यवहार होता है।

रासायनिक संगठन—इसके फलों में एक क्षाराभ, वसा, राल तथा राख ५% होती है।

गुण और प्रयोग—बड़ा गोखरू स्नेहन, मूत्रजनन, वल्य तथा वाजीकर है। इसका मूत्रजनन धर्म बहुत उत्तम है तथा त्वरित मालूम पड़ता है।

(१) नये सोजाक में ताजे पंचांग का हिम करीब एक पाव की मात्रा में प्रत्येक समय ताजा बनाकर देना चाहिए। फल का काढ़ा देना हो तो उसके साथ मुलेठी एवं नागरमोथा मिलाना चाहिये। इससे मूत्रत्याग के समय जलन नहीं होती। इसके पत्तों का चूर्ण एक तोला दुग्ध एवं शर्करा के साथ सोजाक में तथा तज्जन्य संधिवात में देते हैं।

(२) स्वप्नदोष, कामशक्ति का ह्रास तथा अपने आप पेशाब हो जाना इन अवस्थाओं में इसके फल का फांट देते है। २½ तोला फल चूर्ण को २५ तोला उबलते जल में डालकर १ घंटे पश्चात् छान लें तथा बार-बार थोड़ा-थोड़ा पिलावें। फलचूर्ण को २ माशे की मात्रा में शर्करा, घृत एवं दुग्ध के साथ भी दे सकते हैं। इसका पौष्टिक तथा वाजीकर गुण कभी कभी स्पष्ट प्रतीत होता है।

(३) प्रसूति रोग में फलों का क्वाथ या पत्रस्वरस पिलाते हैं।

(४) यकृत तथा प्लीहा वृद्धि में पंचांग का रस या क्वाथ पिलाते हैं।

मात्रा—पत्रचूर्ण १ तोला; फल २-३ तोला फांट बनाकर ; फलचूर्ण २-४ माशा।

अथ लघुपंचमूलम् । तस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

शालपर्णी पृश्निपर्णी वार्त्ताकी कण्टकारिका। गोक्षुरः पञ्चभिश्चैतैः कनिष्ठं पञ्चमूलकम् ॥
पञ्चमूलं लघु स्वादु बल्यं पित्तानिलापहम्। नात्युष्णं बृंहणं ग्राहि ज्वरश्वासाश्मरीप्रणुत् ॥

लघु पञ्चमूल के लक्षण तथा गुण—सरिवन, पिठवन, बड़ी कटेरी, भटकटैया और गोखरू इन पांचों के मूल एकत्र करने से लघु पञ्चमूल कहलाता है। लघुपञ्चमूल-लघु, स्वादु, बलकारक, वातपित्त-नाशक, बृंहण ग्राही एवम् ज्वर, श्वास और पथरी को दूर करने वाला होता है तथा यह अत्यन्त उष्णवीर्य नहीं होता है ॥ ४७-४८ ॥

अथ दशमूलम् । तस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

उभाभ्यां पञ्चमूलाभ्यां दशमूलमुदाहृतम्।
दशमूलं त्रिदोषघ्नं श्वासकासशिरोरुजः। तन्द्राशोथज्वरानाहपार्श्वपीडाऽरुचीर्हरेत् ॥ ४९ ॥

दशमूल के लक्षण तथा गुण—पूर्वोक्त दोनों अर्थात् बृहत् तथा लघु पञ्चमूल के योग को दशमूल कहते हैं। दशमूल-त्रिदोषनाशक तथा श्वास, खांसी, शिर की पीड़ा, तन्द्रा, शोथ, ज्वर, आनाह, पार्श्वपीडा (पंसुलीका दर्द) एवम् अरुचि को दूर करनेवाला होता है ॥ ४९ ॥

अथ जीवन्ती (शाकविशेषः-शर्करावन्मधुरपुष्पा व्रततिर्भवति) । तस्या नामानि गुणाँश्चाह

जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया मधुस्रवा। माङ्गल्यनामधेया च शाकश्रेष्ठा पयस्विनी ॥
जीवन्ती शीतला स्वादुः स्निग्धा दोषत्रयापहा। रसायनी बलकरी चक्षुष्या ग्राहिणी लघुः ॥

जीवन्ती (जो कि एक प्रकार की शाक है तथा शक्कर के समान मीठे फूलों वाली लता होती है) के नाम तथा गुण-जीवन्ती, जीवनी, जीवा, जीवनीया, मधुस्रवा, माङ्गल्यनामधेया (मङ्गलवाचक सभी शब्द इनके पर्यायवाचक होते हैं), शाकश्रेष्ठा तथा पयस्विनी ये सब संस्कृत नाम जीवन्ती के हैं। जीवन्ती-शीतवीर्य, स्वादु, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, रसायन, बलकारक, नेत्र को हितकर, ग्राही और लघु होती है ॥ ५०-५१ ॥

नोट—जीवन्ती नामक शाकश्रेष्ठ के विषय मतभेद हैं। कुछ लोग जीवन्ती, स्वर्णजीवन्ती एवं ह्रस्व तथा दीर्घजीवन्ती आदि इसके भेद मानते हैं। अधिकांश विद्वान् लेप्टाडेनिआ रेटिक्युलॅटा (Leptadenia reticulata W. & A.) को जीवन्ती मानते हैं। कुछ लोग डेन्ड्रोबिअम् मैक्रीइ (Dendrobium macraei) को जीवन्ती मानते हैं। इन्हीं दो का यहाँ वर्णन किया गया है। कुछ लोगों ने ड्रेगिआ होल्युबिलिस् (Dregia volubilis) को जीवन्ती लिखा है जिसे कहीं २ 'लाखन' कहा जाता है तथा उसका मूर्वा के स्थान पर कहीं कहीं प्रयोग किया जाता है। पंजाबी में जिउन्ती नाम सिमिसिफ्यूजा फिटिडा (Cimicifuga toetida) को दिया हुआ है जो जीवन्ती शाक से बिलकुल भिन्न मालूम होती है।

श्रीयुत यादवजी ने इसके दो लेटिन नाम लेप्टाडेनिआ रेटिक्युलेटा एवं होलोस्टेमा एन्युलेर लिखे हैं तथा इसके नव्यमत में श्री डा० देसाई के होलोस्टेमा हिडिआनम् का वर्णन किया है। होलोस्टेमा हिडिआनम् (हो० एन्युलेर) को कुछ विद्वानों ने अर्कपुष्पी माना है तथा उसे जीवन्ती का भेद लिखा है। अर्कपुष्पी का आगे स्वतंत्र वर्णन आया हुआ है।

१७ जीवन्ती (१)

हि०-जीवन्ती, डोडी। गु०-दोडी, डोडी, खरखोडी, राडारुडी। म०-डोडी, राईदोडी, खीरखोडी। लै०-*Leptadenia reticulata W. & A.* (लेप्टाडेनिआ रेटिक्युलॅटा)। Fam. Asclepiadaceae (एस्क्लेपिएडेसी)।

यह लता सहारनपुर, शिवालिक के नीचे तथा बरकाला, रानीपूर एवं दक्षिण में भी मिलती है। देहरादून में मोथ्रानवाला के समीप घास के मैदानों में भी होती है। इसकी मधुर कलियों का रुचिकर शाक बनता है अतः शाकश्रेष्ठ जीवन्ती इसे मानना चाहिये

इसकी लता-क्षुपजातीय तथा चक्रारोही होती है। इसके पुराने काण्ड कार्क युक्त होते हैं और नवीन भाग श्वेताभ मृदु रोमश होते हैं। पत्ते-२-३ इञ्च लम्बे, १-१॥ इञ्च चौड़े, लट्वाकार-आयताकार या अंडाकार, नोकीले, सरल धार, चर्म सदृश और अधःपृष्ठ पर नीलाभ श्वेत रज से ढके होते हैं। इनका आधार प्रायः गोल या नोकीला होता है। पुष्प-कुछ मटमैले हरिताभ पीत रंग के होते हैं। फलियां-एकाकी, २-३ इञ्च लंबी, ॥-॥। इञ्च मोटी, सीधी, सरस परन्तु कठोर, चिकनी और उनका अग्रभाग मोटा परन्तु चोंचदार (टेढ़ा) होता है।

गुण और प्रयोग—जीवन्ती जीवनीय, शीतल, मधुर, लघु, त्रिदोषनाशक, चक्षुष्य, स्वर्य, ग्राही, बल्य एवं वृष्य है।

इसका उपयोग रक्तपित्त, क्षय, दाह, ज्वर, अतिसार, विषदोष, नक्तान्ध्य एवं व्रण में किया जाता है।

(१) ज्वरजन्य दाह में इसके मूल के क्वाथ में घृत मिलाकर पीने से लाभ होता है।

(२) इसका साग घृत के साथ पकाकर खाने से रतौंधी में लाभ होता है।

(३) अतीसार में इसका साग दही, अनार तथा स्नेह के साथ उपयोगी होता है।

मात्रा—३–६ माशा।

१८ जीवन्ती (२)

सं-स्वर्ण जीवन्ती (?)। हि०-जिवसाग। बं-जिवै, जीवन्ती। गु०-जिवन्ती। ले०-*Dendrobium macraei Lindl.* (डेन्ड्रोबिअम् मैक्रीइ लिंड)। Fam. Orchidaceae (ऑर्किडेसी)।

यह हिमालय पहाड़, खासिया पहाड़, सिक्किम, नीलगिरि के पहाड़ एवं दक्षिण, सीलोन, बर्मा तथा मलाया आदि में होती है।

इसके बांदे जामुन के वृक्षों पर पाये जाते हैं। जड (भौमिक काण्ड)-प्रसरणशील तथा वलय युक्त होती है जिससे अनेक लटकते हुवे, चमकीले तथा २–३ फीट लंबे काण्ड निकले रहते हैं। काण्ड पर विभिन्न दूरी पर मूलकाकार, कुछ दबे हुवे चमकीले तथा २–२॥ इञ्च लंबे कूटकंद (Pseuodobulbs) रहते हैं। पत्र–कूटकंद के अग्रभाग से, एकाकी, ४–८ इञ्च लंबा, करीब १ इञ्च चौड़ा, रेखाकार-आयताकार, कुण्ठिताग्र एवं अनेक समानान्तर पतली शिराओं से युक्त होता है। पुष्प–पत्र के आधार से निकले हुवे, १–३, करीब १ इञ्च बड़े तथा श्वेत वर्ण के रहते हैं। इनके ओष्ठ एवं चंचु (Spur) पीतवर्ण के रहते हैं। पुष्प कुछ ही घंटे विकसित रहते हैं।

इसके पंचांग का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह लघु, मधुर, शीतल, रसायन, स्नेहन, बल्य एवं वृष्य है। इसका उपयोग श्वास, कास, गले के विकार, क्षय, ज्वर, दाह, नेत्रविकार एवं रक्तविकार में किया जाता है। इसके पंचांग का क्वाथ अन्य सुगंधि पदार्थों के साथ त्रिदोष में देते हैं। धातुपात के कारण उत्पन्न दौर्बल्य में क्वाथ पिलाते हैं।

मात्रा—३ से ६ माशा।

अथ मुद्गपर्णी। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

मुद्गपर्णी काकपर्णी सूर्यपर्ण्यल्पिका[1] सहा ॥ ५२ ॥
काकमुद्गा च सा प्रोक्ता तथा मार्जारगन्धिका।
मुद्गपर्णी हिमा रूक्षा तिक्ता स्वादुश्च शुक्रला ॥ ५३ ॥
चक्षुष्या क्षतशोथघ्नी ग्राहिणी ज्वरदाहनुत्।
दोषत्रयहरी लघ्वी ग्रहण्यर्शोऽतिसारजित् ॥ ५४ ॥

मुगवन के नाम तथा गुण—मुद्गपर्णी, काकपर्णी, सूर्यपर्णी, अल्पिका, सहा, काकमुद्गा और मार्जारगन्धिका ये सब संस्कृत नाम मुगवन के हैं। **मुगवन**-शीतवीर्य, रूक्ष, तिक्तरसयुक्त, स्वादु, शुक्रजनक, नेत्र को हितकर, क्षत तथा शोथ का नाशक, ग्राही, ज्वर तथा दाह को दूर करने वाली, त्रिदोषनाशक तथा लघु होती है एवम् ग्रहणी, बवासीर तथा अतिसार को दूर करने वाली होती है ॥ ५२–५४ ॥

१. शूर्पपर्ण्यल्पिका इति पाठा०।

१९ मुद्गपर्णी

हि०-मुगवन, मुंगानी, बनमूंग, जंगली मूंग, रखाल कलमी। **बं०**-मुंगानी। **म०**-रानमुग। **गु०**-जंगली मग, अडबाऊ मग। **क०**-कोहसरु, आवरेगिड। **ते०**-कारु पेसारा, पिल्ल पेसर चेट्टु, कलबन्द चेट्टु। **पं०**-मुगवन। **ता०**-नरिप्पयरू। **ले०**-*Phaseolus trilobus Ait.* (फेसिओलस् ट्राइलोबस् एट.)। Fam. Leguminosae ((लेगुमिनोसी)।

यह मूँग के समान ही लता जाति की वनौषधि प्रायः सब प्रान्तों में उत्पन्न होती है। इसके **काण्ड** प्रसरी, १–२ फीट लम्बे, रोमश या चिकने होते हैं। **पत्रक**-कद में प्रायः बहुत परिवर्तनशील होते हैं और प्रायः वृन्त से छोटे ही होते हैं। ये प्रायः सर्वदा खण्डित, खण्ड तीन और गोल होते हैं। उपपत्र बहुत बड़े और पीठ से जुड़े हुए (प्रायः ½ तक) होते हैं। उपपत्रक छोटे परन्तु पर्णवत् होते हैं। मंजरी के शीर्ष पर पुष्पगुच्छ और बड़ा पुष्पदंड होता है। फली—पतली, लगभग २ इंच लम्बी एवं चिकनी होती है। बीज–६–१२ और श्वेताभ होते हैं।

इसके बीजों को कभी-कभी गरीब लोग खाने के लिये एकत्र करते हैं। पत्रकों के आकार के अनुसार इसे सूर्यपर्णी कह सकते हैं।

गुण और प्रयोग—मुद्गपर्णी शीतल, जीवनीय, शुक्रजनन, बलप्रद, चक्षुष्य एवं शामक है।

इसका प्रयोग वातरक्त, क्षय, ज्वर एवं दाह में किया जाता है। बिहार में ज्वर के लिये इसके पञ्चांग का प्रयोग किया जाता है। जीर्ण ज्वर में पुष्टि एवं निद्रा लाने के लिये इसके पत्तों का क्वाथ पिलाया जाता है। चूहे के विषमें सिन्धुवार, मुद्गपर्णी एवं माषपर्णी मधु के साथ खाने से लाभ होता है।

मात्रा—२–४ माशा।

अथ माषपर्णी। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

माषपर्णी सूर्यपर्णी काम्बोजी हयपुच्छिका।
पाण्डुलोमशपर्णी च कृष्णवृन्ता महासहा ॥ ५५ ॥
माषपर्णी हिमा तिक्ता रूक्षा शुक्रबलासकृत्।
मधुरा ग्राहिणी शोथवातपित्तज्वरास्रजित् ॥ ५६ ॥

बनउर्दी के नाम तथा गुण—माषपर्णी, सूर्यपर्णी, काम्बोजी, हयपुच्छिका, पाण्डुलोमशपर्णी, कृष्णवृन्ता और महासहा ये सब संस्कृत नाम बनउर्दी के हैं। **बनउर्दी**-शीतवीर्य, तिक्त तथा मधुररसयुक्त, रूक्ष, ग्राही, शुक्रजनक तथा कफकारक होती है। एवम् यह शोथ, वात, पित्त, ज्वर और रक्तविकार को दूर करने वाली होती है ॥ ५५–५६ ॥

२० माषपर्णी

हि०—मषवन, माषोनी, बन उड़दी, जंगली उड़द, बनउर्दी, बनउड़द। **बं०**-माषानी। **म०**—रानउड़ीद। **गु०**-जंगली अड़द। **क०**-काडद्यु, काडुलंद। **ते०**-रानो डिंडु, कारु मिनुरु। **ता०**-कट्टु अलदूं। **ले०**-*Teramnus labialis Spreng* (टेरॅम्नस् लेबिएलिस् स्प्रेंग)। Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी)।

यह सब प्रान्तों के जंगल झाड़ियों में कहीं न कहीं उत्पन्न होती है। यह लता जाति की वनौषधि झाड़ियों पर लिपटती हुई (चक्रारोही) बढ़ती है और वर्षा ऋतु में अधिक पाई जाती है। **पत्ते**-त्रिपत्रक और पत्रक भिन्न-भिन्न कद के होते हैं। **पत्रक**-कभी ·६–१·२ इञ्च और कभी

१-३ इञ्च लम्बे होते हैं। ये अण्डाकार या लट्वाकार (अग्रग्र पत्रक कभी-कभी अभिलट्वाकार), नीचे के तल पर तलशायी रोमों से युक्त होते हैं। सवृन्त पुष्पों की मञ्जरी बहुत पतली १½-५ इञ्च लम्बी और पुष्प-गुलाबी, नीलारुण या सफेद होते हैं। फली-पतली लम्बी सीधी या कुछ-कुछ टेढी होती है। बीज-ताजी अवस्था में लाल तथा सूखने पर काले तथा संख्या में लगभग १० होते हैं।

गुण और प्रयोग—माषपर्णी शीतल, बल्य, वृष्य, पुष्टिकारक, शुक्रजनन एवं जीवनीय है। इसका उपयोग ज्वर, दाह, रक्तपित्त, वातविकार, अंगवात एवं आमवात में किया जाता है। चरक ने वाजीकरण के लिये माषपर्णी खिलाई हुई समान वर्ण वत्सवाली प्रथम-प्रसवा गौ का दुग्ध, मधु, शर्करा एवं घृत के साथ सेवन करने का विधान किया है। इससे सिद्ध तैल का पिचु-धारण वातिक प्रदर में लाभदायक माना जाता है।

मात्रा—२-४ माशा।

अथ जीवनीयगणः। तस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

अष्टवर्गः सयष्टीको जीवन्ती मुद्गपर्णिका।
माषपर्णी गणोऽयं तु जीवनीय इति स्मृतः॥ ५७॥
जीवनो मधुरश्चापि नाम्ना स परिकीर्त्तितः।
जीवनीयगणः प्रोक्तः शुक्रकृद् बृंहणो हिमः॥ ५८॥
गुरुर्गर्भप्रदः स्तन्यकफकृत्पित्तरक्तहृत्। तृष्णां शोषं ज्वरं दाहं रक्तपित्तं व्यपोहति॥ ५९॥

जीवनीय गण के लक्षण तथा गुण—जीवक, ऋषभकादि पूर्वोक्त अष्टवर्ग की औषधियाँ, मुलेठी, जीवन्ती (डोंडी), मुगवन और वनउर्दी इन सब औषधियों को जीवनीयगण कहते हैं। जीवनीय गण का ही नामान्तर जीवन (जीवन गण) या मधुर (मधुर गण) भी ऋषियों ने कहा है। **जीवनीय गण**-शुक्रजनक, बृंहण, शीतवीर्य, गुरु, गर्भप्रद, स्तन्य (दुग्धवर्धक) तथा कफकारक एवं पित्त तथा रक्तदोष को दूर करने वाला तथा तृषा, शोष, ज्वर, दाह और रक्तपित्त इन सबों को नष्ट करने वाला होता है॥ ५७-५९॥

अथ शुक्लरक्तैरण्डौ। तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

शुक्ल एरण्ड आमण्डश्चित्रो गन्धर्वहस्तकः। पञ्चाङ्गुलो वर्द्धमानो दीर्घदण्डो व्यडम्बकः॥६०॥
वातारिस्तरुणश्चापि रुबूकश्च निगद्यते। रक्तोऽपरो रुबूकः स्यादुरुबूको रुबुस्तथा॥ ६१॥
व्याघ्रपुच्छश्च वातारिश्चञ्चुरुत्तानपत्रकः। एरण्डयुग्मं मधुरमुष्णं गुरु विनाशयेत्॥ ६२॥
शूलशोथकटीबस्तिशिरःपीडोदरज्वरान्। ब्रध्नश्वासकफानाहकासकुष्ठाममारुतान्॥ ६३॥

सफेद एरण्ड तथा लाल एरण्ड के नाम एवम् गुण—शुक्लैरण्ड, आमण्ड, चित्र, गन्धर्वहस्तक, पञ्चाङ्गुल, वर्धमान, दीर्घदण्ड, व्यडम्बक, वातारि, तरुण और रुबूक ये सब संस्कृत नाम सफेद एरण्ड के हैं। रक्तैरण्ड, रुबूक, उरुबूक, रुबु, व्याघ्रपुच्छ, वातारि, चञ्चु और उत्तानपत्रक ये सब लाल एरण्ड के संस्कृत नाम हैं। दोनों एरण्ड-मधुररसयुक्त, उष्णवीर्य तथा गुरु होते हैं एवम् ये दोनों-शूल, शोथ एवं कटि, बस्ति तथा शिरकी पीडा, उदररोग, ज्वर, ब्रध्ननामक-रोग, श्वास, कफ, आनाह, खाँसी, कुष्ठ और आमवात इन सबों को दूर करते हैं॥ ६०-६३॥

अथैरण्डपत्राग्रपत्रफलमज्जगुणानाह

एरण्डपत्रं वातघ्नं कफक्रिमिविनाशनम्।
मूत्रकृच्छ्रहरं चापि पित्तरक्तप्रकोपणम्। वातार्यग्रदलं गुल्मबस्तिशूलहरं परम्॥ ६४॥
कफवातकृमीन्हन्ति वृद्धिं सप्तविधामपि। एरण्डफलमत्युष्णं गुल्मशूलानिलापहम्॥ ६५॥
यकृत्प्लीहोदरार्शोघ्नं कटुकं दीपनं परम्।
तद्वन्मज्जा च विडभेदी वातश्लेष्मोदरापहः॥ ६६॥

एरण्ड के पत्ते, फुनगी, फल तथा मींगी के गुण—**एरण्ड के पत्ते**-वातनाशक तथा कफ, कृमि और मूत्रकृच्छ्र को दूर करनेवाले एवम् पित्त तथा रक्त को कुपित करनेवाले होते हैं। **कोमल पत्ते** (अग्रभाग के पत्ते) गुल्म और बस्ति-शूल को अत्यन्त दूर करनेवाले तथा कफ, वात, कृमि और सात प्रकार के वृद्धि रोग (अण्डवृद्धि) को भी दूर करने वाले होते हैं। **एरण्ड के फल**-अत्यन्त उष्णवीर्य, गुल्म, शूल, वायु, यकृत, प्लीहा, उदररोग तथा बवासीर को दूर करनेवाले एवम् कटुरसयुक्त तथा अत्यन्त अग्निदीपक होते हैं। **फल की मींगी** भी गुणों में इसके फलों के समान होती हुई भी मल को भेदन करने वाली एवं वात, कफ तथा उदर-सम्बन्धी रोगों को दूर करने वाली होती है॥ ६४-६६॥

नोट—भावप्रकाशकार ने श्वेत एवं रक्त भेद से एरण्ड के दो भेद लिखे हैं, यद्यपि दोनों के गुण समान ही होते हैं। सामान्यतः इसके दो भेद पाये जाते हैं। एक भेद बहुवर्षायु एवं बड़े फल तथा बड़े और लाल बीजों वाला होता है। दूसरा भेद एकवर्षायु एवं छोटे, भूरे और चित्तीदार बीजों वाला होता है। यह प्रतिवर्ष बोया जाता है। प्रथम में ४०% तैल होता है लेकिन वह अधिकतर जलाने एवं स्निग्धीकरण के काम आता है। इसके पत्तों का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। दूसरे में तैल ३७% होता है जो चिकित्सा में अधिकतर काम आता है। इसके मूल का भी उपयोग चिकित्सा में किया जाता है।

एक अन्य प्रकार का एरंड भी मिलता है जिसे व्याघ्रैरण्ड कहते हैं। इसके गुण एरंड से काफी भिन्न हैं। इसकी एक दूसरी जाति होती है जिसे लाल व्याघ्रैरण्ड कहते हैं। एरंड के पश्चात् व्याघ्रैरण्ड का वर्णन किया गया है।

२१ एरण्ड

हि०-अरंड, एरंड, एरंडी, रेंडी। **बं०**-भेरेंडा। **म०**-एरंड, एरंडी। **गु०**-एरंडो, एरंडियो, दिवेली। **ते०**-आमुडामु, एरंडमु। **ता०**-आमणक्कम्। **मल०**-चिट्टामणक्कु, आवणक्का। **क०** हरलु। **फा०**-बेदञ्जीर, तुख्मे बेदञ्जीर। **अ०**-खिरवा, वज़ुल, खिर्बअ। **अं०**-Castor-Oil plant (कॅस्टर ऑइल् प्लान्ट)। **लै०**-*Ricinus communis Linn.* (रिसिनस् कॉम्युनिस् लिन.)। Fam. Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)।

प्रायः सब प्रान्तों में एरण्ड की खेती की जाती है। यह अपने आप ही मैदानों, सड़कों के किनारे, परती जमीन एवं पहाड़ियों की खाली भूमि में उत्पन्न हुआ पाया जाता है।

इसका **क्षुप**-एक वर्षायु, ऊँचा, चिकना तथा क्षोदलिप्त रहता है। कभी-कभी यह झाड़ीदार या छोटे वृक्षसदृश भी हो जाता है। **पत्ते**-एकांतर, चौड़े, खंडित (त्रिपादानुत्तर-पाणिवत्), खण्ड ७ या अधिक एवं पत्रतट आरावत दन्तुर होता है। **पुष्प**-द्विलिंगी तथा सवृन्त-काण्डज पुष्पव्यूहों में आते हैं जिसमें पुंपुष्प पुष्पव्यूह के ऊपर के भाग में रहते हैं तथा स्त्रीपुष्प नीचे के भाग में रहते हैं। **फल**-गोल-गोल सघन गुच्छेदार लगते हैं, तथा इन पर मुलायम मुलायम

काँटे से होते हैं। फल पकने पर धूप की गरमी से फट जाते हैं और बीज भूमि में गिर पड़ते हैं। उसी समय गुच्छों को तोड़कर संग्रह करते हैं। प्रत्येक फल में तीन-तीन बीज होते हैं। बीज-गोल आयताकार तथा कुछ चिपटे, ४-१२ मि. मि. लंबे, एक तरफ से चिपटे किन्तु दूसरी तरफ कुछ गोल, लंबाई की अपेक्षा ⅔ चौड़े एवं ⅓ मोटे होते हैं। बीज का बाह्य त्वक् पतला, भिदुर, चिकना, चमकीला, भूरे रंग का तथा चितकबरा रहता है। इसका अन्तस्त्वक् पतला और मुलायम होता है। बीजावरण में ऊपर द्वारक के समीप एक सफेद बाह्य वृद्धि होती है जिससे कुछ २ ढँका हुआ वृन्तमु (Hilum) होता है। बीजावरण को हटा देने पर स्थूल तथा पीताभ श्वेत भ्रूणपोष (Endosperm) दिखाई देता है जिसके अन्दर तैलीय खाद्य पदार्थ संचित रहता है। भ्रूणपोष के मध्य में गर्भ होता है जिसमें दो पतले पत्र-सदृश बीजपत्र और उनके बीच छोटा भ्रूणाक्ष होता है। बीजों में नाममात्र की गंध एवं किंचित् तीता स्वाद होता है।

एरण्ड का अपने यहां बहुत प्राचीन काल से प्रयोग होता आ रहा है। इसकी इतनी अधिक खेती होती है जिससे इसके तेल का एवं बीजों का बहुत अधिक मात्रा में निर्यात होता है। तैल विशेषकर साबुन बनाने, मशीनों के स्निग्धीकरण (Lubrication) एवं चर्म-व्यवसाय आदि उद्योगों में उपयोग में लाया जाता है। चिकित्सा की दृष्टि से उत्तम प्रकार का तेल अपने यहाँ कम निकाला जाता है यद्यपि उसमें विशेष बाधाएँ नहीं हैं। उत्तम तैल फ्रांस तथा इटली से आता है। इसमें पहले बीजों को खूब अच्छी तरह साफ कर, ऊपर का छिलका हटा, बिना उष्णता पहुँचाये केवल दबाव के द्वारा तेल निकालते हैं। प्रथम दबाव में करीब आधा तेल निकालते हैं। इसे औषधि कार्य में व्यवहृत किया जाता है। फिर दुबारा दबाव देने पर करीब १६% तेल निकलता है वह अन्य व्यवसायों में काम में लाया जाता है। शीतविधि द्वारा निकाले तैल का स्वाद एवं गन्ध कम अप्रिय होता है। उष्ण विधि में बीजों को जल के साथ उबालते हैं। गरमी के कारण तैल जल पर नितर आता है। फिर इस तैल को अलग कर लेते हैं। दूसरी विधि में तैल को दबाव से ही निकालते हैं किन्तु बाहर से मंद आँच भी देनी पड़ती है। उष्णता से पतला हो जाने के कारण तेल अधिक मात्रा में तथा आसानी से निकलता है। इस तैल को धूप में रखकर शुभ्र बनाते हैं तथा बाद में जल के साथ उबालते हैं जिससे इसमें के अन्य पदार्थ निकलकर तेल स्वच्छ हो जाता है।

रासायनिक संगठन—रेंड के बीजों में करीब ५०% तैल रहता है। तैल निकालने के पश्चात् बची हुई खली में रिसिनाइन (Ricinine) नामक रवेदार पदार्थ, रिसिन (Ricin) नामक विषैला पदार्थ, तीव्र कार्य करने वाला लाइपेस् (Lipase) नामक किण्व एवं अन्य किण्व पाये जाते हैं।

इसके तैल में अनेक ग्लिसराइड्स (Glycerides) रहते हैं जिसमें से प्रधान स्नेहीय अम्ल रिसिनोलिक् एसिड (Ricinoleic acid, $C_{18} H_{34} O_3$) है जो इसका विरेचक द्रव्य माना जाता है। स्नेहीय अम्लों के ओलिक् (Oleic), लिनोलिक् (Linoleic) एवं अल्प मात्रा में स्टियरिक (Stearic) तथा हाइड्रॉक्सि स्टियरिक् (Hydroxy stearic) अम्ल पाये जाते हैं।

इसके बीजों में रिसिन नामक जो विषैला तत्व है वह इतना अधिक तीव्र है कि २, ३ बीज से मृत्यु तक हो सकती है। मुख की अपेक्षा सूचीवेध द्वारा प्रवेश करने से इसके विषैले परिणाम अधिक दिखलाई देते हैं। इससे आंत्र में रक्तस्रावयुक्त शोथ हो जाता है। इसमें कोई विरेचक गुण नहीं रहता। रिसिन एरण्ड तैल में नहीं पाया जाता। औषधि कार्य में बीजों का प्रयोग करते समय बीजों को दो फाक करके भीतर की जीभी जिसमें यह विष अधिक रहता है निकाल देना

चाहिये। कुछ समय तक दुग्ध में भिगोने एवं एक दो बार उबालने से भी इस विष का पर्याप्त शोधन होता है।

गुण और प्रयोग—एरंड तैल सौम्य, स्रंसन, स्तन्यजनन, दाहशामक एवं वातहर है। इसका मूल वृष्य एवं वातहर है। एरंड भेदनीय, स्वेदोपग, अंगमर्दप्रशमन, अधोभागहर एवं वातसंशमन है।

एरंड तैल बहुत अच्छा विरेचक द्रव्य है। इसका प्रभाव क्षुद्रांत्र (ग्रहणी) पर होता है। यह आंत्र की ग्रन्थियों एवं पुरस्सरण क्रिया को उत्तेजित करता है जिससे २-६ घंटों में साधारण विरेचन होता है। इससे साधारण पतले २-४ पाखाने होते हैं। आखिरी पाखाने के साथ तैल निकल जाता है तथा कभी कभी मरोड़ होती है। इसका कुछ अंश प्रचूषण के पश्चात् स्तन द्वारा उत्सर्गित होने के कारण स्तनपान करने वाले बच्चों को भी विरेचन हो जाता है। कुछ लोगों को इसकी आदत पड़ जाती है तथा कुछ लोगों में इससे विरेचन के पश्चात् विबंध हो जाता है। यह सम्भवतः बृहदांत्र की शिथिलता के कारण होता है जो २, ३ दिन रहती है।

बाल, वृद्ध, स्त्री, गर्भिणी एवं प्रसूता के लिये तथा अर्शविकार, गुदविदार, उदरगत शस्त्रकर्म, श्रोणिविकार, उदरावरणशोथ, जीर्ण विबंध तथा ज्वरजन्य विबंध आदि अवस्थाओं के लिये यह उत्तम तथा हानिरहित सौम्य विरेचक है। अजीर्णजन्य अतिसार विशेषकर बच्चों में होनेवाले अतिसार में इससे लाभ होता है। तीव्र प्रवाहिका के प्रारंभ में अहिफेन के साथ इसका प्रयोग लाभदायक होता है तथा जीर्ण विकार में भी इसका उपयोग किया जाता है। एरंड तैल को सुबह खाली पेट आदी के रस के साथ दिया जाता है। सोंठ के फांट के साथ या उष्ण चाय, कॉफी आदि के साथ भी इसको दे सकते हैं। शीतऋतु में इसको कुछ उष्ण करके देना चाहिये। इसके स्वाद एवं गंध को दूर करने के लिये इसे कैप्सूल में बंदकर या गोंद के साथ एमल्शन् बनाकर ले सकते हैं। बड़ों में इसकी प्रभावोत्पादक न्यूनतम एवं अधिकतम मात्रा ३० बूँद से लेकर १ पाव तक की है लेकिन प्रायः २ तोला की मात्रा मृदुरेचन के लिए पर्याप्त होती है। नवजात शिशु के लिये छोटे चाय के चम्मच बराबर मात्रा कोई बड़ी मात्रा नहीं है। विबंध में एरंड तैल की बस्ति भी दी जाती है।

कटिशूल, गृध्रसी, पार्श्वशूल, हृदयशूल, आमवात एवं संधिशोथ में इसके मूल का क्वाथ सोंठ के साथ पिलाने से लाभ होता है। इन अवस्थाओं में इसके तैल को शिलाजतु के साथ पिलाते हैं तथा इसकी मालिश भी करते हैं। नूतन तथा जीर्ण आमवात में नित्य सुबह एरंड तैल का प्रयोग लाभदायक है।

स्तनों पर इसके तैल को मर्दन कर ऊपर से एरंड पत्र बाँधने से उसमें की गाँठें विलीन होकर स्तन्य-वृद्धि होती है। स्तन-चूचुक-विदार में इसके तैल को लगाने से लाभ होता है।

आँखों में कोई चीज चली जावे तो स्वच्छ एरंड तैल डालने से वह निकल जाती है तथा आँखों की खुरखुराहट दूर होती है।

अर्श में एरंड तैल तथा घृतकुमारी का स्वरस मिलाकर लगाने से जलन कम होती है।

शिरःशूल में रेंडी के तेल की मालिश से लाभ होता है। दाह के शमन के लिये एरंडमज्जा को बकरी के दूध में पीसकर पादतल में मलते हैं। एरंड तैल के मर्दन से भी दाह का शमन होता है।

मात्रा—तैल १-२ तोला; मूलचूर्ण ½-१ तोला।

२२ व्याघ्रैरण्ड

हि०-व्याघ्रैरन्ड, जंगली एरंड। बं०-बागा भेरेन्दा, बाघभेरंड। म०-मोंगली एरंड। गोवा-गलमर्क। कोंक-काडएरडि। ता०-कट्टमनक्कु। से०-अडविआमुदमु। क०-कडहरलु। अ०, फा०-दंडेनहरी। ले०-*Jatropha curcas Linn.* (जॅट्रोफा कर्कस् लिन.)। Fam. Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)।

यह दक्षिण अमेरिका का आदिवासी है किन्तु प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है। दक्षिण में इसे लोग घरों में लगाते हैं।

इसका **वृक्ष**-छोटा एवं करीब १०-२० फीट ऊँचा होता है। इसकी छाल धूसरवर्ण की एवं काष्ठ मुलायम होता है। **पत्ते**-चिकने, बड़े, व्यास में ४-६ इञ्च एवं ३-५ खंडों में विभक्त होते हैं। **पुष्प**-पीताभवर्ण के होते हैं। **फल**-हरे रंग के, १ इञ्च लम्बे एवं सूखने पर भी बहुत दिन तक पेड़ में लगे रहते हैं। इसके बीजों में तैल होता है। इसके पत्तों को तोड़ने से सफेद रंग का बहुत दूध निकलता है। इसके दूध एवं मूल का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

इसी की दूसरी जाति जॅट्रोफा गॉसिपिफोलिआ लिन. (J. gossipifolia Linn.), **लाल व्याघ्रैरण्ड** सड़कों के किनारे तथा ऊसर भूमि में और अधिक मात्रा में उगी हुई पाई जाती है। इसके पौधे ३-६ फीट ऊँचे, पत्ते ३-५ खंडों में विभक्त एवं पुष्प लाल होते हैं। पत्रतट, पर्णवृन्त और उपपत्रों के ऊपर श्लेष्मोत्पादक ग्रंथियाँ रोमों के रूप में रहती हैं जिससे यह पौधा स्पर्श में चिपचिपा होता है। इसके मूल में कपूर जैसी गंध आती है। इसकी दातुन अच्छी समझी जाती है।

रासायनिक संगठन—व्याघ्रैरंड के बीजों में हलके पीले रंग का तैल ३०%, शर्करा, स्टार्च तथा कर्सिन (Curcin) नामक रिसिन जैसा विषैला पदार्थ पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—व्याघ्रैरण्ड का दुग्ध रक्तसांग्राहिक तथा व्रणरोपक है। इसकी जड़ वातानुलोमक, पाचन एवं ग्राही है। इसका तैल जमालगोटे जैसा तीव्र विरेचक होता है तथा इसकी क्रिया अनियन्त्रित होने के कारण तैल का आन्तरिक व्यवहार नहीं किया जाता।

इसके दुग्ध को क्षतपर लगाने से कोलोडिअन की तरह एक पतला स्तर व्रण पर बन जाता है जिससे रक्तस्राव रुकता है, उपसर्ग से व्रण की रक्षा होती है तथा व्रण का संकोच होने से व्रण जल्दी अच्छा होता है। इसे पामा, दाद, तथा छाजन पर लगाते हैं। इसके पत्तों के क्वाथ का भी इसी तरह उपयोग होता है एवं इससे कुल्ला करने से मसूड़े से खून जाना बन्द होकर दाँत मजबूत होते हैं। इसकी दतुअन से भी लाभ होता है। इसके तैल को खुजली, परिसर्प, छाजन तथा अन्य चर्मरोगों में एवं आमवात में लगाते हैं तथा व्रणशोधन के लिये भी इसका उपयोग करते हैं। दुग्धवृद्धि के लिये इसके पत्तों को जरा सा गरमकर स्तन पर बाँधते हैं या इसके क्वाथ से सेंककर फिर उन्हीं पत्तों को बाँधते हैं।

कोंकण की तरफ अजीर्ण, अतिसार तथा उदरशूल के लिये इसकी एक अंगुल लम्बी ताजी जड़, ७ दाना काली मिर्च एवं थोड़ा हींग इन सब को पीसकर उसका रस मट्ठे के साथ पिलाते हैं।

अथ शुक्लरक्तार्कौ [सफेद आक-लाल आक]। तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

श्वेतार्को गणरूपः स्यान्मन्दारो वसुकोऽपि च। श्वेतपुष्पः सदापुष्पः स चालर्कः प्रतापसः॥
रक्तोऽपरोऽर्कनामा स्यादर्कपर्णो विकीरणः।
रक्तपुष्पः शुक्लफलस्तथाऽऽस्फोटः प्रकीर्त्तितः॥ ६८॥

अर्कद्वयं सरं वातकुष्ठकण्डूविषव्रणान्।
निहन्ति प्लीहगुल्मार्शःश्लेष्मोदरशकृत्कृमीन्॥ ६९॥

सफेद आक तथा लाल आक के नाम और गुण—श्वेतार्क, गणरूप, मन्दार, वसुक, श्वेतपुष्प, सदापुष्प, अलर्क और प्रतापस ये सब संस्कृत नाम सफेद आक के हैं। लाल आक के संस्कृत नाम—रक्तार्क, अर्कनामा (सूर्य के वाचक सभी शब्द इसके पर्यायवाचक हैं), अर्कपर्ण, विकीरण, रक्तपुष्प, शुक्लफल तथा आस्फोट हैं। **दोनों प्रकार के आक**-दस्तावर तथा वात, कुष्ठ, खुजली, विष, व्रण, प्लीहा, गुल्म, बवासीर, कफ, उदररोग एवं मल के कृमि इन सबों को नष्ट करते हैं॥ ६७-६९॥

अथ शुक्लरक्तार्कयोः पुष्पगुणानाह

अलर्ककुसुमं वृष्यं लघु दीपनपाचनम्। अरोचकप्रसेकार्शःकासश्वासनिवारणम्॥ ७०॥
रक्तार्कपुष्पं मधुरं सतिक्तं कुष्ठकृमिघ्नं कफनाशनञ्च।
अर्शो विषं हन्ति च रक्तपित्तं संग्राहि गुल्मे श्वयथौ हितं तत्॥ ७१॥

सफेद आक तथा लाल आक के फूल के गुण—**सफेद आक का फूल**—वृष्य, लघु, अग्निदीपक तथा पाचक होता है एवम् यह अरुचि, प्रसेक (मुख से लार गिरना), बवासीर, खाँसी तथा श्वास को दूर करता है। **लाल आक का फूल**—मधुर तथा थोड़ा तिक्त रसयुक्त, संग्राही, गुल्म तथा शोथ में हितकर होता है एवम् यह कुष्ठ, कृमि, कफ, बवासीर, विष तथा रक्तपित्त को दूर करने वाला होता है॥ ७०-७१॥

अथार्कदुग्धगुणानाह

क्षीरमर्कस्य तिक्तोष्णं स्निग्धं सलवणं लघु। कुष्ठगुल्मोदरहरं श्रेष्ठमेतद्विरेचनम्॥ ७२॥

'आक' के दूध के गुण—यह तिक्त तथा कुछ लवणरस से युक्त, उष्णवीर्य, स्निग्ध और लघु होता है एवम् यह कुष्ठ, गुल्म तथा उदर रोग को दूर करता है और इसके प्रयोग से उत्तम विरेचन होता है॥ ७२॥

नोट—चरक ने अर्क का एक ही भेद लिखा है। सुश्रुत ने अर्क एवं अलर्क ये दो भेद लिखे हैं। भावप्रकाशकार श्वेत एवं रक्त ये दो भेद लिखते हैं। धन्वन्तरि निघण्टु में अर्क एवं राजार्क ये दो भेद दिये हैं। राजनिघण्टु में अर्क, राजार्क, शुक्लार्क एवं श्वेतमन्दारक ये ४ भेद लिखे हैं। राजार्क के जो अन्य पर्याय रा० नि० में दिये हैं वे भावप्रकाशोक्त श्वेतार्क से मिलते हैं। अरुणदत्त ने मन्दारक को श्वेतपुष्प लिखा है (सू. अ. १५)। इससे अनुमान होता है कि राजार्क तथा श्वेतमन्दारक ये श्वेतार्क के ही भेद होंगे। रा. नि. ने राजार्क को सदापुष्प एवं श्वेत मन्दारक को दीर्घपुष्प लिखा है। इससे ऐसा मालूम होता है कि श्वेत पुष्पवाले किन्तु जिसमें बारहो मास पुष्प आते हों उसे राजार्क एवं जिसके पुष्प श्वेत एवं दीर्घ हों उसे मन्दारक कहा गया हो।

आधुनिक ग्रन्थों में इसके दो भेद पाये जाते हैं किन्तु उनके लेटिन नामों में विद्वानों में मतभेद हैं। केलोट्रोपिस् जाइगेन्टीआ को कुछ विद्वान् श्वेतार्क (अलर्क, मदार) तथा केलोट्रोपिस् प्रोसेरा को रक्तार्क (अर्क) मानते हैं किन्तु अन्य विद्वान् इसके विपरीत मानते हैं। यहां पर दोनों का वानस्पतिक वर्णन अलग-अलग दिया गया है। चिकित्सा की दृष्टि से मंदार के सभी भेदों के गुण समान होते हैं। रक्तार्क या श्वेतार्क के भेद से उपयोगिता में कोई अन्तर नहीं होता।

२३ श्वेतार्क

सं०–अलर्क, मंदार। **हि०**–मदार, आक। **म०**–रूई, आक। **बं०**–आकंद। **गु०**–आकडो। **ता०**–वदावडम, एरुक्कु। **ते०**–मंदारमु, जिल्लेडु। **क०**–एक्क। **मल०**–एरिक्का। **अ०**–उषर, उषार। **फा०**–खरक, जहूक। **अं०**–मडार (Mudar); जायगॅन्टिक् स्वॅलोवर्ट (Gigantic Swallow-wort)। **ले०**–*Calotropis gigantea* (Linn.) R. Br. ex Ait. (कॅलोट्रोपिस् जाइगेन्टीआ लिन.)। Fam. Asclepiadaceae (एस्क्लेपिएडॅसी)।

यह हिमालय में ३००० फीट की ऊँचाई तक तथा पंजाब से लेकर दक्षिण भारत, आसाम, लंका एवं सिंगापूर में ऊसर भूमि में पाता जाता है। यह मलाया द्वीप तथा दक्षिण चीन में भी होता है।

इसका **क्षुप या छोटा वृक्ष**—बहुवर्षायु तथा ८–१० फीट तक ऊँचा रहता है। **पत्र**–अवृन्त, मोटे, क्षोदलिप्त हरे रंग के, अंडाकार या अमिलट्वाकार–आयताकार, ४–८ इञ्च लंबे, १.५–४ इञ्च चौड़े एवं पर्णतल की तरफ संकुचित हृदयाकार या प्रायः काण्ड को कुछ घेरे रहते हैं। **पुष्प**–१.५–२ इञ्च व्यास के, गंधहीन तथा अन्तर्दल फैले हुये एवं नीललोहित (Purplish) या श्वेत रंग के होते हैं। **फल**–करीब ४ इञ्च लंबे, मुड़े हुवे एवं फूलो से एक सेवनीक फल (Follicle) रहते हैं। **बीज**–महीन सिल्क की तरह गुच्छेदार रूई से युक्त तथा छोटे एवं चिपटे होते हैं। इसकी शाखाओं तथा पत्रादि से दुग्ध निकलता है। 'इसके गुण और प्रयोग आगे रक्तार्क के साथ ही दिये गये हैं।

२४ रक्तार्क (अर्क)

ले०—*Calotropis procera* (*Ait.*) *R. Br.* (कॅलोट्रॉपिस् प्रोसेरा एट.)।

यह भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों में उष्ण एवं शुष्क स्थानों में पाया जाता है। यह हिमालय के निचले भागों में तथा उत्तर-पश्चिम में उसके समीप के मैदानों में अधिक होता है। वजीरिस्तान, अफगानिस्तान, पर्शिआ, अरब, इजिप्त तथा अफ्रीका का उष्ण प्रदेश इन स्थानों में भी यह पाया जाता है। इसका **क्षुप**–स्वावलंबी एवं प्रायः ६–८ फीट ऊँचा होता है। **पत्र**–अवृन्त, प्रायः २।–६ इञ्च लंबे, १॥–३। इञ्च चौड़े, चौड़े लट्वाकार–आयताकार, अण्डाकार या अमिलट्वाकार होते हैं। **पुष्प**–१ इञ्च व्यास के, सुगन्ध युक्त एवं गुच्छों में आते हैं। अन्तर्दल श्वेताभ रहते हैं तथा सीधे ऊपर की ओर उठे हुये दलखण्डों के ऊपर जामुनी (आनीलारुण) रंग के दाग होते हैं। **फल**–३–४ इञ्च लंबे, २–३ इञ्च चौड़े, गोल अंडाकार होते हैं। **बीज**–रूईदार श्वेतार्क की तरह ही होते हैं। इसके पत्ते आदि से भी दूध निकलता है।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के अर्क के मूल, पत्र, पुष्प एवं क्षीर आदि का औषध में उपयोग किया जाता है। इनके मूल की छाल का विशेष उपयोग किया जाता है। इसके छोटे, मुड़े हुवे, २–५ मि. मि. मोटे एवं २–३.५ से. मि. चौड़े टुकड़े होते हैं। कभी-कभी इनमें उपमूल लगे रहते हैं। इसका बाह्यभाग मुलायम, हलके पीतवर्ण (Buff) का एवं लम्बाई में नालीदार होता है एवं अन्दर की सतह हलके पीले रंग की एवं रवेदार होती है। इसका भग्न छोटा एवं दुग्ध युक्त होता है। इसमें गंध नहीं होती तथा इसका स्वाद कडुआ एवं तीता होता है। ग्रीष्मऋतु में पुराने से पुराने बड़े (के. जाइगेन्टीआ) क्षुप के मूल की छाल को निकाल कर, शीतल जल से जल्दी धोकर खुली हवा में सुखावें। धूप में न रखें। जब उसमें का दूध सूख जाय तब ऊपर की कार्कयुक्त सतह निकाल कर बाकी भाग को सुखा एवं चूर्ण बना हवाबंद बोतलों में रखें।

औषध के अतिरिक्त इसके बीजों की रूई एवं छाल से तन्तुनिर्माण किया जा सकता है। इसके दुग्ध का चमड़े के व्यवसाय में उपयोग किया जाता है। इससे नये चमड़े की दुर्गंध दूर होकर उसका रंग पीला हो जाता है। चमड़े के बालों को साफ करने के लिये भी इसका उपयोग करते हैं।

इसके किसी-किसी वृक्ष पर एक प्रकार का शर्करावत् निर्यास संग्रहीत होता है ऐसा हकीम मानते हैं जिसे 'शुक्करूलउषर' कहा जाता है। जिन जातियों में लड़कियों की हत्या की प्रथा है उनमें इसके दुग्ध को जबरदस्ती बच्चे को पिलाते हैं। गर्भपात के लिये भी इसका आन्तरिक तथा स्थानिक प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—के. जाइगेन्टीआ के मूल की छाल में बीटा–एमाइरिन (B. amyrin) एवं जाइगेन्टीओल् (Giganteol) तथा आइसो जाइगेन्टीओल् (Iso Giganteol) ये दो समाभिक रवेदार सुषव (Isomeric crystalline alcohols) पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसकी **मूलत्वक्** कटु, तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, स्वेदजनन, पित्तस्रावी, कफघ्न, वामक, उद्वेष्टननिरोधी, रसग्रंथी एवं त्वचा के लिये उत्तेजक, जीवनविनिमय क्रिया को उत्तेजित करने वाली, बल्य एवं रसायन है। अल्प मात्रा में यह उत्तम स्वेदक एवं कफनिःसारक होते हुए भी अधिक मात्रा से इससे वमन, विरेचन तथा प्रक्षोभ उत्पन्न होता है। इसका वामक प्रभाव आमाशयप्रक्षोभ एवं वमनकेन्द्र की उत्तेजना से होता है। इसका उद्वेष्टननिरोधी गुण साधारण है किन्तु उसका श्वासनलिकाओं पर स्पष्ट प्रभाव दिखलाई देता है। रसायन होने के कारण इसे वानस्पतिक पारद कहा जाता है। इससे यकृत् की क्रिया अच्छी होकर पित्तस्राव ठीक होने लगता है। इसका उत्सर्ग त्वचा के द्वारा होने के कारण इससे त्वचा पर उत्तेजक प्रभाव दिखलाई देता है एवं छोटी रक्तवाहिनियों का विस्फार होता है।

(१) रक्तविकार, कुष्ठ, उपदंश या किसी भी कारण से उत्पन्न व्रण में इसका आंतरिक एवं बाह्य प्रयोग करते हैं। श्लीपद में इसके साथ रसकपूर या रससिन्दूर, सुरमा (स्रोतोञ्जन) एवं साभरशृंगभस्म देते हैं तथा कांजी में पीसकर शोथ पर लेप करते हैं। उपदंश में पारद की तरह इसका उपयोग होता है। उपदंश की द्वितीयावस्था में त्वचा पर उत्पन्न चकत्ते आदि इससे कम होते हैं। बद (Bubo) तथा गंडमाला में इसको खिलाते तथा इसके दूध को लगाते है। सभी प्रकार के चर्मरोगों में छाल को जल में पीस कर लगाते हैं या खुजली अधिक होने पर निमोली के तैल में घिसकर लगाते हैं। विशेषकर पुराने त्वग्रोगों में इससे अधिक लाभ होता है।

(२) सभी प्रकार के कफविकारों में इससे लाभ होता है। १५–३० र० चूर्ण को खिलाने से इपिकाक की तरह १ घंटे के अंदर वमन होकर कफ बाहर निकल जाता है तथा कभी कभी विरेचन भी होता है। प्रतिश्याय तथा गले का नूतन शोथ, श्वासनलिकाशोथ आदि में घोडबच के साथ अर्कादिचूर्ण (अर्कचूर्ण २, अफीम १, सैंधव ७; मात्रा–३–७ र०) का उपयोग किया जाता है। तमकश्वास तथा श्वसनिकाभिस्तीर्णता (Bronchiactasis) आदि व्याधियों में इसके प्रयोग से पर्याप्त लाभ होता है।

(३) यकृत् एवं प्लीहावृद्धि तथा उससे उत्पन्न उदर, पित्त का स्राव ठीक न होने के कारण उत्पन्न अतिसार तथा नई एवं पुरानी आँव में इसका बहुत उपयोग किया जाता है। आँव में छाल को ३०–४० रत्ती की बड़ी मात्रा में देना चाहिये किन्तु इसके साथ अफीम एवं सुगन्धि पदार्थ भी देने चाहिए अन्यथा वमन की संभावना रहती है। कुपचन में १ रत्ती छाल देने से पचनशक्ति बढ़ती है।

(४) जीर्ण ज्वर एवं विसर्गी ज्वर में इसका फांट पिलाते हैं। मलेरिया में इसकी छाल पान के साथ खिलाते हैं।

(५) जीर्ण आमवात में अर्कादिचूर्ण सोंठ के साथ रात को देने से पसीना होता है, संधिशूल कम होता है एवं निद्रा आती है।

इसके **दुग्ध** का मोटा लेप करने से त्वचा का दाह होकर फोड़े उत्पन्न होते हैं किन्तु पतला लेप अल्प वेदनाहर एवं लोमशातक है। इसके आन्तरिक प्रयोग से अत्यन्त विरेचन होता है। इसके गुण भी मूल की तरह ही होते हैं किन्तु इसका कम जादा प्रभाव होता है।

(१) यकृत् एवं प्लीहावृद्धि तथा तज्जन्य उदर में इसका आन्तरिक प्रयोग करते हैं।

(२) मोच, मरोड़ एवं संधिशोथ में नमक में इसको मिलाकर लगाने से सूजन कम होती है। दारुहरिद्रा के चूर्ण में इसको मिलाकर उसकी बत्ती भगंदर तथा नाडीव्रण में डालते हैं। दाद एवं छाजन आदि त्वचा के रोगों में एवं आमवात में इसको हलदी के साथ तिल के तैल में उबालकर मालिश करते हैं। अर्श में यद्यपि इसका लेप करते हैं तथापि इससे बहुत तकलीफ होती है। मुखरोगों में मधु के साथ इसे लगाते हैं। कृमिदन्त में दाँत के गढ़े में इसे लगाने से दर्द कम होता है।

इसके **पुष्प** दीपन, पाचन, कफघ्न एवं उद्वेष्टननिरोधी हैं। मूल की अपेक्षा ये गुण इसमें अधिक स्पष्ट दिखलाई देते हैं।

(१) क्षुधानाश तथा कुपचन में इससे अच्छा लाभ होता है।

(२) खाँसी एवं दमा में इसके फूलों को राब में उबालकर देते हैं।

इसके **पत्ते** वातहर, शोथहर, व्रणशोधक, व्रणरोपक एवं आनुलोमिक हैं।

(१) जीर्ण व्रण पर इसका चूर्ण डालने से व्रण जल्दी अच्छे होते हैं।

(२) इसके पत्तों को रेंडी का तेल लगाकर गरम करके सूजन पर बांधने से सूजन तथा पीड़ा कम होती है।

(३) बच्चों के आध्मान में पेट पर इनको बांधने से एकाएक पाखाना होकर आध्मान कम होता है।

(४) इसके पत्तों को तेल में उबाल कर चोट पर उसकी मालिश की जाती है।

(५) इसके पत्ते एवं सैंधव को समान भाग में लेकर बन्द हाँड़ी में गरम करके बनाई हुई राख तक्र के साथ उदररोग में देते हैं।

मात्रा-मूलत्वक्चूर्ण १½-२½ रत्ती; वामक १५-३० रत्ती; दुग्ध १-२ रत्ती; पत्रचूर्ण २ रत्ती-१ माशा; फूल १-३ रत्ती।

अथ सेहुण्डः [सेहुण्ड, थूहर]। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

सेहुण्डः सिंहतुण्डः स्याद्वज्री वज्रद्रुमोऽपि च।
सुधासमन्तदुग्धा च स्नुक् स्त्रियां स्यात्स्नुही गुडा ॥ ७३ ॥
सेहुण्डो रेचनस्तीक्ष्णो दीपनः कटुको गुरुः।
[1]शूलामाष्ठीलिकाऽऽध्मानकफगुल्मोदरानिलान् ॥ ७४ ॥

१. शूलमष्ठीलिका इति पाठा०।

[1]उन्मादमोहकुष्ठार्शः शोथमेदोऽश्मपाण्डुताः।
व्रणशोथज्वरप्लीहविषदूषीविषं हरेत् ॥ ७५ ॥

सेहुंड (थूहर) के नाम तथा गुण—सेहुंड, सिंहतुण्ड, वज्री, वज्रद्रुम, सुधा, समन्तदुग्धा, स्नुक् (स्नुह्), स्नुही (स्त्रीलिङ्ग में होता है) और गुडा ये सब संस्कृत नाम थूहर के हैं। थूहर—रेचक, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, कटु रस युक्त तथा गुरु होता है। यह—शूल, आमदोष, अष्ठीलिका, आध्मान, कफ-गुल्म, उदररोग, वात, उन्माद (पागलपन), मोह (मूर्च्छा), कुष्ठ, बवासीर, शोथ, मेदरोग, पथरी, पाण्डुरोग, व्रणशोथ, ज्वर, प्लीहा, विष और दूषीविष को दूर करता है ॥ ७३-७५ ॥

अथ स्नुहीदुग्धगुणानाह

उष्णवीर्यं स्नुहीक्षीरं स्निग्धञ्च कटुकं लघु। गुल्मिनां कुष्ठिनाञ्चापि तथैवोदररोगिणाम् ॥७६॥
हितमेतद्विरेकार्थं ये चान्ये दीर्घरोगिणः।

थूहर का दूध—उष्णवीर्य, स्निग्ध, कटुरसयुक्त और लघु होता है तथा यह गुल्म, कुष्ठ और उदररोग वालों के लिये एवम् जो दीर्घकाल से रोगी हैं उनके लिये भी विरेचन कराने में हितकर है ॥ ७६-७७ ॥

नोटः—सेहुण्ड की कई जातियाँ पाई जाती हैं। जिस सेहुण्ड में बहुत कांटे हों वह, अल्प एवं तीक्ष्ण कांटे वाले सेहुण्ड की अपेक्षा अच्छा माना गया है।[2] इसी प्रकार २-३ वर्ष पुराने सेहुण्डवृक्ष से शिशिर-ऋतु के अन्त में दुग्ध निकाल कर व्यवहार करने को लिखा है।[3] सुश्रुत ने (सु. अ. ३९) अधोभागहरगण में सेहुण्ड के मूल और क्षीर दोनों का उपयोग करने को लिखा है तथा स्नुक् एवं महावृक्ष ये दो अलग-अलग द्रव्य लिखे हैं। सुश्रुतने (सु. अ. ३८) श्यामादिगण में सुधा नाम से इसका उल्लेख किया है। चरक ने इसके दुग्ध को तीव्रतम विरेचन माना है तथा उचित प्रयोग से यह दोषों के महान् संचय को भी शीघ्र हरता है ऐसा लिखा है। किन्तु मृदुकोष्ठ वाले में, दोषों का संचय अल्प होने पर एवं अन्य उपाय से रोगी अच्छा हो सकता हो तो इसके प्रयोग का निषेध किया है।[4] चरक (सू. अ. १) में षोडशमूलिनी औषधियों में अधोगुडा शब्द आया है। उसका अर्थ श्रीभगीरथजी स्वामी ने 'गुडायाः (स्नुहेः) अधः (अधोभागः मूल) इति अधोगुडा' यह लिखा है तथा श्रीयादवजी ने इसका समर्थन किया है। (द्रव्यगुणविज्ञानम्, उत्तरार्ध द्वितीय खण्ड, पृ० ३३०)।

१. मेह इति पाठा०।
२. द्विविधः स मतो यश्च बहुभिश्चैव कण्टकैः।
सुतीक्ष्णैः कण्टकैरल्पैः प्रवरो बहुकण्टकः। (च. क. अ. १०)
३. तं विदार्याहरेत्क्षीरं शस्त्रेण मतिमान् भिषक्।
द्विवर्षं वा त्रिवर्षं वा शिशिरान्ते विशेषतः ॥ (च. क. अ. १०)
४. विरेचनानां सर्वेषां सुधा तीक्ष्णतमा मता। संघातं हि भिनत्त्याशु दोषाणां कष्टविभ्रमा ॥
तस्मान्नैषा मृदौ कोष्ठे प्रयोक्तव्या कदाचन। न दोषनिचये चाल्पे सति चान्यपरिक्रमे ॥
पाण्डुरोगोदरे गुल्मे कुष्ठे दूषीविषार्दिते। श्वयथौ मधुमेहे च दोषविभ्रान्तचेतसि ॥
रोगैरेवंविधैः ग्रस्तं ज्ञात्वा सप्राणमातुरम्। प्रयोजयेन्महावृक्षं सम्यग्स ह्यवचारितः ॥
सद्यो हरति दोषाणां महान्तमपि संचयम्। (च. क अ. १०)

आधुनिक उद्भिदवेत्ताओं ने इसकी निम्नलिखित जातियों का वर्णन किया है। यु० तिरुकेल्लि को कुछ लोगों ने सातला माना है तथा उसका वर्णन सप्तला के अन्तर्गत किया गया है।

१. Euphorbia neriifolia Linn. (युफोर्बिआ नेराइफोलिया लिन.); सेहुण्ड, थोहर, मन्सासिज।

२. E. nivulia Buch. & Ham. (यु० निवुलिया बुच; हैम); पटके, सिज, सेहुण्ड।

३. E. antiquorum Linn. (यु० ऐन्टिकोरम् लिन.); तिधारा सेहुण्ड।

४. E. trigona Haw. (यु० ट्राइगोना हॉ.); तिधारा सेहुण्डभेद।

५. E. tirucalli Linn. (यु० तिरुकेल्लि लिन.); लंकासिज, अंगुलिया थूहर, छिमिया सेहुण्ड।

६. E. royleana Boiss (यु० रायलिआना बायस); थोर, सुरू।

२५ थूहर

हि०–थूहर, सेंहुड, सेंहुर, सेंड, मुठरिया सीज, मुठिया सीज, सीझ, थोहर, पटके। **बं०**–मनसा सिज। **म०**–वई निवडुङ्ग, मिनगुटथोर। **गु०**–थोर, कांटलो, कंटालो। **ते०**–आकुजे, मुडु। **ता०, क०, मल**–इल्लैकल्लि। **फा०**–लादनाम्। **अ०**–ज़क़ुमफर्युन। **अं०**–Milk Hedge (मिल्क हेज), Common Dulkhedge (कामन् डक हेज)। **ले०**–*Euphorbia neriifolia Linn.* (युफोर्बिआ नेराइफोलिआ लिन.)। Fam. Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)।

यह बङ्गाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, पश्चिमोत्तरप्रदेश, दक्षिण तथा अन्य प्रान्तों में पाया जाता है। इसका झाड़–१०-१५ फीट तक ऊँचा होता है। शाखाएँ–सीधी और गूदेदार होती हैं। इसके डंठल और शाखाओं पर जगह-जगह कांटे रहते हैं और कांटे चौथाई से आध इञ्च तक लम्बे जोड़े में होते हैं। इन कंटकीभूत उपपत्रों के परस्पर मिलने से काण्ड पञ्चकोणीय बन जाता है। लकड़ी–कोमल होती है। प्रायः शाखाओं के अन्त में चारों ओर से गुच्छाकार पत्ते लगे रहते हैं। वे पत्थरचट्टे के समान मोटे, ६ से १२ इञ्च तक लम्बे, अभि-लट्वाकार होते हैं। अधःपत्रावलि (Involucre) पीताभ होती है। फूल–छोटे-छोटे हरापनयुक्त पीले और फल–आध इञ्च तक चौड़े होते हैं। बीज–चपटे तथा कोमल लोमयुक्त होते हैं। इसकी शाखाओं और पत्तों से दूध निकलता है।

इसकी दूसरी जाति यु० निवुलिया बुच, हैम (E. nivulia Buch. & Ham.) के वृक्ष–१०-३० फीट ऊँचे, शाखाएँ–सीधी, गोल, खण्डमय, चक्राकार क्रम में निकली हुई और सीधे दो-दो एक साथ कंटकीभूत उपपत्रों से युक्त होते हैं। पत्ते–अस्थायी, मांसल, ९ इञ्च लम्बे, २½ इञ्च चौड़े, रेखाकार अभिप्रासवत् अथवा सुवाकार कुण्ठिताग्र और अवृन्त होते हैं। शीत व ग्रीष्मकाल में पत्ते नहीं रहते। एकाभव्यूह (Cyathium) में अधः पत्रावलि (Involucre) पीली होती है। ये पौधे विशेषकर शुष्क तथा नग्न पहाड़ियों पर अधिक होते हैं। पहली जाति के पौधे गांवों की बाड़ों पर अधिक पाये जाते हैं।

चिकित्सा में इनके ताजे वा सुखाये दुग्ध, पत्र एवं मूल का व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें युफोर्बिन, राल, गोंद, रबर की तरह पदार्थ एवं कैल्शियम् मॅलेट ये पदार्थ पाये जाते हैं। सेहुण्ड की जाति में पाये जाने वाला दाहजनक द्रव्य इसमें बहुत रहता है।

गुण और प्रयोग—इसका क्षीर अत्यन्त तीव्र विरेचन है। इससे वमन तथा पानी की तरह जुलाब होते हैं। इसके काण्ड का रस रेचन है। इसके पत्र का रस मूत्रजनन है। इसके मूल का रस उत्तेजक एवं उद्वेष्टननिरोधि है।

(१) उदररोग में इसका क्षीर देते हैं। मिरिच को इसके क्षीर में डुबोकर सुखाकर रखते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर १–२ मिरिच के दाने खिलाते हैं। इसी प्रकार पिप्पली, लौङ्ग एवं त्रिवृतमूल आदि को इसके क्षीर की भावना देकर उनका उपयोग अत्यन्त तीव्र विरेचन की आवश्यकता होने पर करते हैं। उदर रोगी को विबन्ध होने पर भोजन के पूर्व इसके पत्तों का शाक खिलाते हैं। क्षीर चर्म पर लगने से दाह उत्पन्न होकर फोड़े उत्पन्न होते हैं।

(२) इसकी जड़ को मिरिच के साथ सूतिका-ज्वर एवं सर्पविष में देते हैं।

(३) इसके कांड का स्वरस त्वचा पर मलने से त्वचा लाल होती है। चर्मकील (Warts) में इसे लगाने से वे गिर पड़ते हैं। जीर्ण आमवात में संधिपीड़ा होने पर इसका स्वरस निंबौली के तेल में मिलाकर मलते हैं। इसके कांड को भूनकर उसका स्वरस निकाल कर मधु, टंकणक्षार तथा अडूसा के साथ कफविकारों में देते हैं। केवल स्वरस को कर्णशूल में डालते हैं।

(४) तमकश्वास में पत्तों का स्वरस या कांड का रस मधु के साथ देते हैं। पत्तों के अन्य गुण आगे शाक वर्ग में दिये हुये हैं।

(५) व्रण में इसके क्षीर को घृत के साथ मिलाकर लगाया जाता है।

मात्रा—मूल २ से ४ रत्ती; स्वरस २-५ बूँद; क्षीर ½–१ रत्ती।

२६ तिधारा थूहर

सं०–वज्रकण्टक, वज्री। **हि०**–तिधारासेंहुड, तिधारा थूहर। **बं०**–बाजबारग, तेशिरेमनसा, तेकाँटासिज। **म०**–तीनधारी निवडुंग। **ता०, मल०**–चतुरकल्ली। **ते०**–बोम्मजेमुडु। **अं०**–Triangular sponge (ट्राएन्गुलर स्पॉन्ज्)। **ले०**–*Euphorbia antiquorum Linn.* (युफोर्बिआ एन्टिकोरम् लिन.)। Fam. Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)।

यह प्रायः सभी प्रान्तों में पाया जाता है। इसके वृक्ष–१२-२५ फीट ऊँचे होते हैं। काण्ड–खण्डमय और शाखाएँ–प्रायः ३ या कभी-कभी ४-५ पक्षों वाली होती हैं। इन पर कंटकीभूत उपपत्र होते हैं जो छोटे होते हैं। काण्डखण्ड भी इसमें छोटे होते हैं तथा ऊपर के काण्डखंड प्रायः उतने ही लम्बे होते हैं जितने मोटे। पत्ते–छोटे-छोटे होते हैं तथा सब वृक्षों में नहीं होते। पुष्प–द्विलिंगी प्रायः ⅓ इञ्च बड़े हरिताभ पीत या लाल रंग के होते हैं। फल–⅓ इञ्च बड़े होते हैं। इसके दुग्ध, मूल एवं काण्ड का व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें युफोर्बिन ३५%, दो प्रकार की राल जिनमें से एक ईथर में घुलनशील तथा दूसरी न घुलने वाली, गोंद एवं रबर सदृश पदार्थ १·५% ये द्रव्य पाये जाते हैं। थूहर के जाति में पाया जाने वाला दाहजनक द्रव्य इसमें बहुत अल्प मात्रा में है।

गुण और प्रयोग—यह कफघ्न, ज्वरघ्न, रेचन एवं रक्तशोधक है। इससे कफ पतला होकर मुख एवं गुदा के द्वारा निकल जाता है। इसका प्रयोग प्लीहावृद्धि, कामला, कुष्ठ तथा सर्पविष में किया जाता है।

(१) बच्चों के कफविकारों में इसके कांड को गरम कर निकाले हुए रस में टंकणक्षार, मधु एवं अडूसा मिलाकर बहुत प्रयोग किया जाता है। बच्चों को इससे नुकसान नहीं होता। यदि मात्रा अधिक भी हो जाय तो इससे अधिक से अधिक एकाध वमन होता है तथा पाखाना साफ होता है।

(२) इसके मूल का क्वाथ जीर्ण आमवात एवं उपदंश में दिया जाता है।

(३) इसके दुग्ध को आमवातिक पीडा, दंतशूल एवं मस्से आदि में लगाते हैं।

(४) इसके दुग्ध को बेसन के साथ पकाकर गोली बनाकर सोजाक में देते हैं।

मात्रा—काण्डस्वरस बच्चों को १½-३ माशा; बड़ों को १½-२ तोला।

अथ सेहुण्डभेदः शातला। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

शातला सप्तला सारा विमला विदुला च सा। तथा निगदिता भूरिफेना चर्मकषेत्यपि॥
शातला कटुका पाके वातला शीतला लघुः। तिक्ता शोथकफानाहपित्तोदावर्त्तरक्तजित्॥

शातला (सेंहुड़ भेद) के नाम एवम् गुण—शातला, सप्तला, सारा, विमला, विदुला, भूरिफेना और चर्मकषा ये सब संस्कृत नाम शातला के हैं।

शातला—पाक में कटु, वातकारक, शीतवीर्य, लघु और तिक्तरसयुक्त होती है तथा यह शोथ, कफ, आनाह, पित्त, उदावर्त तथा रक्त-प्रकोप का नाश करती है॥ ७८-७९॥

नोटः—सप्तला एक संदिग्ध द्रव्य है—चरक क. अ. ११ में 'सप्तला शंखिनी' कल्प का वर्णन है। वहाँ सप्तला के मूल का एवं शंखिनी के फल का जो अधिक शुष्क न हों तथा जिनका छिलका निकाल दिया गया हो उनका व्यवहार कफ की अधिकतायुक्त गुल्म, गरदोष, हृद्रोग, कुष्ठ, शोफ एवं उदररोग में करने को लिखा है क्योंकि यह विकासि, तीक्ष्ण एवं रूक्ष होता है।[1] चरक ने विरेचनद्रव्यों में (सू. अ. २., वि. अ. ८) इसका उल्लेख किया है। सुश्रुत में श्यामादिगण में एवं उभयतोभागहर द्रव्यों में इसके स्वरस का तथा अधोभागहर द्रव्यों में मूल का उपयोग लिखा है। सप्तला के साथ प्रायः प्रत्येक स्थान पर शंखिनी का उल्लेख मिलता है। टीकाकारों ने शंखिनी को यवतिक्ता तथा कहीं यवतिक्ता भेद लिखा है। सप्तला का अर्थ कहीं पर स्नुहीभेद तथा कहीं पर यवतिक्ताभेद किया गया है। कहीं पर 'बुध्नामाहुः' तथा 'अपरे श्रीफलिकामाहुः' इस प्रकार उल्लेख करते हुए बुध्ना या श्रीफलिका नामक वनस्पति की तरफ निर्देश किया है। कुछ लोगों ने पीतदुग्ध सेंहुंण्ड को सप्तला लिखा है। उपर्युक्त वर्णन से यह मालूम होता है कि सप्तला यह कोई सेंहुड का ही भेद होगा। कुछ आधुनिक विद्वानों ने युफोर्बिआ तिरुकेलि लिन. (Euphorbia tirucalli Linn.), अंगुलिया थूहर-नामक सेंहुड के भेद को सप्तला माना है। श्रीमान् ठा. बलवन्त सिंह जी ने युफोर्बिआ ड्रैकन्क्युलॉइडस्, लैम (Euphorbia dracunculoides Lam.)-तितली के लिये सप्तला होने की सम्भावना पर विचार करने को लिखा है। (बिहार की वनस्पतियाँ, पृ. २४)

कुछ अन्य विद्वानों ने सप्तला को शिकाकाई (Acacia concinna DC.) लिखा है। सप्तला को 'विमला', 'भूरिफेना' एवं 'चर्मकषा' ये पर्याय शिकाकाई के होने की सम्भावना दर्शित करते हैं तथा यह भी वामक एवं विरेचक है। कुछ लोगों ने ले०-*Origanum vulgare Linn.* (ओरिगॅनम् हलगेर् लिन.), हि०-सथरा, Fam. Labiatae (लेबिएटी) को सप्तला लिखा है जिसमें का सुगन्धि उड़नशील तैल उत्तेजक एवं अतिसार में बल्य होता है तथा आमवात, दन्तशूल एवं कर्णशूल में उसका उपयोग किया जाता है।

यहाँ अंगुलिया थूहर, तितली एवं शिकाकाई तीनों का अलग अलग वर्णन किया गया है।

---

१. ते गुल्मगरहृद्रोगकुष्ठशोफोदरादिषु। विकासितीक्ष्णरूक्षत्वाद्योज्ये श्लेष्माधिकेषु तु॥ नातिशुष्कं फलं ग्राह्यं शंखिन्या निस्तुषीकृतम्। सप्तलायाश्च मूलानि गृहीत्वा भाजने क्षिपेत्॥

२७ सातला १ (अंगुलिया थूहर)

हि०-अंगुलिया थूहर, छिमिया सेहुण्ड। **बं०**-जटालंका, लंकासिज। **म०**-निवल, थोर, शेर। **गु०**-डांडलीओ थोर, खरसाणी थोर। **ता०**-कल्लि। **ते०**-जेमुडु। **क०**-मोंडगलि। **मल०**-तिरुकल्लि। **ले०**-*Euphorbia tirucalli Linn* (युफोर्बिआ तिरुक्कॅलि लिन.)। **Fam.** Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)।

यह बंगाल, बिहार, सिन्ध, कोंकण एवं गुजरात आदि स्थानों में पाया जाता है। इसका आदिम स्थान अफ्रीका है।

इसका **वृक्ष**-छोटा, १५-२० फीट ऊँचा होता है। इसे कहीं से काटने से बहुत दूध निकलता है। इसकी मुख्य शाखायें सीधी परन्तु उपशाखायें हरी, चिकनी, चमकीली, गोल (घेरे में), चक्राकार निकली हुई और बहुत पतली होती हैं। इसपर कांटे नहीं होते। **पत्ते**-बरसात में ½ इञ्च तक लम्बे एवं गूदेदार पत्र निकलते हैं। **पुष्प**-उपशाखाओं के बीच, छोटे एवं प्रायः स्त्री पुष्प रहते हैं। **फल**-५ मि. मि. चपटा एवं **बीज**-अंडाकार तथा, चिकना रहता है। इसके दुग्ध से मछली मरती है। इसके दुग्ध एवं छाल का प्रयोग चिकित्सा में किया जाता है।

रासायनिक संगठन—थूहर की तरह।

गुण और प्रयोग—इसका दुग्ध अत्यन्त प्रक्षोभकारक है। इससे वमन एवं विरेचन होता है तथा त्वचा पर इसे लगाने से फोड़े उत्पन्न होते हैं।

जीर्ण उपदंश में संधिपीडा के लिये इसके दुग्ध का प्रयोग करते हैं। नाडीशूल में दुग्ध का लेप लाभदायक होता है। इसको लगाने से मस्से गल कर गिर पड़ते हैं। इसको लगाते समय इसमें तिल का तेल मिला लेना चाहिये।

विरेचन के लिये २ बूंद दुग्ध, बेसन एवं मधु के साथ गोली बना कर दिया जाता है। इसके कोमल कांड एवं मूल का क्वाथ उदरशूल में दिया जाता है।

मात्रा—दुग्ध १-२ रत्ती।

२८ सातला २ (शिकाकाई)

हि०-शिकाकाई, सिकाकाई, चिकेकाई ऐला। **बं०**-बनरीठा। **म०**-शिकेकाई। **गु०** चिकाखाई। **ता०**-शीयक्काय्। **ते०**-शीकाय। **क०**-शिगे। **ले०**-*Acacia concinna DC.* (एकॅसिआ कॉन्सिन्ना डीसी.)। Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी)।

उत्तर भारत तथा हिमालय में उत्पन्न होने वाले वृक्ष गुणों की दृष्टि से दक्षिण में होने वालों की अपेक्षा श्रेष्ठ माने जाते हैं। इसके गुल्म प्रायः कम मिलते हैं किन्तु सभी स्थानों पर पाये जाते हैं।

इसका **गुल्म** (क्षुप)-बहुत फैला हुआ, अत्यन्त कांटेदार एवं लंबी आरोही शाखाओं से युक्त रहता है। उपशाखायें हल्की श्वेताभ और टेढे, मजबूत कांटो की पांच कतारों से युक्त रहती हैं। **पत्ते**-पक्षाकार एवं पत्रक खट्टे होते हैं। **फूल**-मुण्डक (Capitulum) पीताभ श्वेत या गुलाबी रंग के लगभग ½ इञ्च व्यास में होते हैं। **फली**-३-५ इञ्च लम्बी, १ इञ्च चौड़ी, मोटी, मांसल, चोंचदार एवं बीजों के बीच बीच संधियों पर संकुचित होती है। इसका स्वाद रीठे के समान परन्तु अधिक खट्टा, कम कडवा तथा अधिक तीता रहता है। इसे पानी में भिगोकर मसलने से रीठे के समान झाग निकलता है। सिर के बाल एवं रेशमी वस्त्र धोने के लिये इसका उपयोग करते हैं। इसके पत्र एवं फली का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसकी फली में सॅपोनिन् (Saponin) ११.२%, मॅलिक् एसिड् (Malic acid) १२.७५%, राल १%, ग्लूकोज् १३.९%, गोंद एवं रंजक द्रव्य २१.५%, तन्तु २२% एवं राख ३.७५% रहती है।

गुण और प्रयोग—इसकी फली उत्तेजक, कफघ्न, वामक एवं आनुलोमिक है। इसकी क्रिया रीठा या सेनेगा जैसी होती है। इससे नाड़ी की गति कम होती है तथा मूत्र की मात्रा बढ़ती है। इसके पत्र खट्टे, रोचक, यकृत् उत्तेजक तथा विरेचन होते हैं। इमली के बदले इनका उपयोग किया जा सकता है।

(२) पुराने कफविकारों में कफ पतला करने के लिये एवं श्वासावरोध कम करने के लिये इसके फलीयों का फांट (१-२०) २ से ४ तोले की मात्रा में देते हैं। इससे पाखाना भी साफ होता है।

(२) कामला में काली मिरिच के साथ इसके पत्तों का उपयोग किया जाता है। इससे विरेचन तथा कभी-कभी वमन भी होता है तथा पित्त का स्राव उचित होने लगता है। यकृत की क्रिया ठीक न होती हो तो भोजन में खटाई के लिये इसके पत्तों का एवं लाल मिर्चा के स्थान पर काली मिरच का उपयोग किया जाता है।

(३) इसके फली के क्वाथ से बाल धोने से जूंए आदि मरती हैं, रूसी नष्ट होती है तथा केशवृद्धि होती है। क्वाथ में बत्ती डुबोकर बच्चों के गुदा में डालने से पाखाना होकर कंडी निकल जाती है।

मात्रा—फली का फांट २-४ तो०। पत्रचूर्ण २-४ माशा।

२९ सप्तला ३ (तितली)

हि०—जायची, तितली। **संथा०**—परवा। **बं०**—छागल पुपटी, जायची। **पं०**—कंगी। **मद्रा०**—तिल्का-काड। **ले०**—*Euphorbia dracunculoides Lam.* (युफोर्बिआ ड्रॅकन्क्युलॉइडिस् लैम्)। Fam. Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)।

इसके **क्षुप**-एकवर्षायु, प्रायः ४-८ इञ्च ऊँचे, चिकने तथा सामान्यतः धूसर वर्ण के होते हैं। इसमें पीताभ क्षीर होता है। शाखायें प्रायः द्विविभक्त क्रम में निकली हुई रहती हैं। **पत्ते**-अभिमुख (नीचे कुन्तल) अवृन्त, रेखाकार, रेखाकार प्रासवत् या रेखाकार आयताकार और ·७-२ इञ्च लम्बे होते हैं। **पुष्प**-पुष्पाकार व्यूह एकाकी और द्विविभक्त काण्ड के बीच में होते हैं।

इसे कुछ लोग यवतिक्ता भी मानते हैं क्योंकि जव आदि के साथ खेतों में ही इसके क्षुप अधिकतर पाये जाते हैं। श्रीयुत ठा. बलवन्त सिंह जी ने इसे सप्तला या शंखिनी होने की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है तथा उनके मत से इसकी सप्तला होने की अधिक सम्भावना है।

वास्तविक **सुद्दाब** (Ruta graveolens Linn; Fam. Rutaceae रूटा-ग्रॅविओलेन्स) के स्थान पर कहीं-कहीं पंसारी इसको बेचते हैं जो गलत है।

ग्रामीण इसके बीज तैल को जलाने के काम में लेते हैं। चर्म रोगों में भी यह उपयोगी बतलाया जाता है।

अथ कलिहारी। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

कलिहारी तु हलिनी लाङ्गली शक्रपुष्प्यपि। विशल्याऽग्निशिखाऽनन्ता वह्निवक्त्रा च गर्भनुत्॥
कलिहारी सरा कुष्ठशोफार्शोव्रणशूलजित्॥ ८०॥
सक्षारा श्लेष्मजित्तिक्ता कटुका तुवराऽपि च। तीक्ष्णोष्णा कृमिहृल्लघ्वी पित्तला गर्भपातिनी॥८१॥

कलिहारी के नाम तथा गुण—कलिहारी, हलिनी, लाङ्गली, शक्रपुष्पी, विशल्या, अग्निशिखा, अनन्ता, वह्निवक्त्रा और गर्भनुत् ये सब संस्कृत नाम 'कलिहारी' के हैं। **कलिहारी**-दस्तावर, कुष्ठ, शोथ, बवासीर, व्रण तथा शूल को नष्ट करनेवाली, क्षारगुणयुक्त, कफनाशक तथा तिक्त, कटु और कषायरसयुक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, कृमि को दूर करनेवाली, लघु, पित्तजनक तथा गर्भ को गिरानेवाली होती है॥ ८०-८१॥

३० कलिहारी

हि०—कलिहारी, कलिकारी, करियारी, कलहिंस, कलारी, लांगुली, करिहारी। **बं०**—विषलांगुली, उलटचण्डाल। **म०**—कललावी, इंदै, लालि, खड्यानाग, नागकरिआ। **गु०**—कलगारी, दूधियोवछनाग। **क०**—लांगुलिक। **पं०**—मलिम, करियारी। **मा०**—राजाराड। **ते०**—अग्निशिखा, अडविनाभी। **ता०**—कलईपैकिशंगु। **मल०**—मेशोन्नि। **अं०**—The glory lily (दि ग्लोरी लिलि), Tiger's claws (टाइगर्स क्लॉज्)। **ले०**—*Gloriosa superba Linn.* (ग्लोरिओजा सुपर्बा लिन.)। Fam. Liliaceae (लिलीएसी)।

भारत के प्रायः सभी प्रान्तों के जंगल झाड़ियों में आप ही आप उत्पन्न होती है तथा बर्मा एवं लंका में भी पाई जाती है

इसकी **लता**-मृदु, आरोहणशील और सुन्दर होती है जो झाड़ियों या छोटे वृक्षों के ऊपर चढ़ी हुई पाई जाती है। **काण्ड**-पतला, कलम जितनी मोटाई का, गोल, मृदु एवं हरे रंग का होता है। यह १॥-२ फीट लम्बी होने पर भूमि की ओर नत हो जाती है किन्तु जब उसे किसी दूसरे वृक्ष का आश्रय मिलता है तब उसके सहारे ८-१० फुट तक ऊँची बढ़ जाती है। यह चौमासे के प्रारंभ में निकलती है और शीतकालके पहले ही सूख जाती है। इसका **भौमिक तना** हलाकार टेढ़ा, बेलनाकार परन्तु जगह-जगह कुछ संकुचित रहता है। इसीसे प्रतिवर्ष इसकी पुनरुत्पत्ति होती है। **पत्ते**-विषमवर्ती, ३ से ९ इञ्च तक लम्बे, पौन से एक इञ्च तक चौड़े, प्रायः विनाल, लट्वाकार-भालाकार एवं उनके अग्र सूत्राकार होते हैं जिनसे आश्रय को लपेट कर यह बढ़ती है। वर्षा के अन्त में इसमें फूल आते हैं। **फूल**-व्यास में ३-४ इञ्च, अधोमुखी और सुन्दर होते हैं। **पुष्पनाल**-३-६ इञ्च लंबा और उसका अग्र टेढ़ा होता है। **पंखुड़ियाँ**-६, लहरदार, नीचे आधार की ओर पीताभ, ऊपर नारंगी लाल और अन्त में पूर्णतः लाल होती हैं तथा जैसे-जैसे इनका विकास होता है वैसे-वैसे इनका रंग भी पीत से रक्त होता जाता है। **फलियाँ**-केराव की फलियों के समान होती हैं। उनमें केराव के आकार के गोल-गोल लाल रङ्ग के बीज होते हैं।

कंदों के भेद से कलिहारी दो प्रकार की मानी जाती है। जिसका कन्द लम्बा, गोल, दो भागों में विभक्त अथवा दो लम्बे टुकड़े समकोण के समान जुड़े हुए होते हैं वह पुरुषजाति और जिसका कन्द गोल, किञ्चित् लम्बा एक ही रहता है वह स्त्री जाति कहलाती है। पुरुषजाति की जड़-फूलने के समय संग्रह करनी चाहिये और स्त्रीजाति का कन्द फलने के बाद संग्रह किया जाता है।

इसके **कन्द** (भौमिक तना) का व्यवहार किया जाता है। यह श्वेत, मृदु, मांसल और स्वाद में तिक्त होता है। इसकी गणना सप्त उपविषों में की गई है यद्यपि यह साधारण मात्रा में विषैला नहीं है। सुखप्रसव एवं अपरापातन के लिये इसके लेप धारण आदि का विधान है।

लांगली यह नाम केंवाच के लिये भी आया हुआ है। कुछ लोग भूल से कोस्टस् स्पेसिओसस् (Costus speciosus (Koenn.) Sm.) को लांगली मानते हैं जो वास्तव में केमुक है।

शोधन—इसके कन्द को टुकड़े कर चार-पांच दिन कुछ सैंधव मिश्रित तक्र में भिगोकर गरम जल से धोकर सुखा लेने से इसका विष कम हो जाता है। प्रतिदिन तक्र नया डालना चाहिये। १ दिन गोमूत्र में भिगोकर रखने से भी यह शुद्ध हो जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें दो रालें, कषाय द्रव्य, एक कडुआ विषैला क्षाराभ सुपर्बाइन (Superbine) एवं अन्य क्षाराभ ग्लोरिओसाइन (Gloriosine) ये द्रव्य पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह कटु, उष्ण, दीपन, बल्य, वामक, रेचक, पित्तविरेचक, गर्भघातक एवं कृमिघ्न है। इससे आपेक्ष एवं पचननलिका तथा गर्भाशय का दाह होता है। १–२ रत्ती की मात्रा में इससे भूख एवं शक्ति बढ़ती है।

इसका प्रयोग सोजाक, त्वग्रोग, बिच्छू एवं सर्पविष, कुष्ठ, अर्श एवं कृमि में किया जाता है। यह गर्भ के लिये हानिप्रद माना जाता है।

(१) इसके कंद को कूट कर जल में बहुत देर तक धोते हैं जिससे नीचे पिष्टवत् पदार्थ जमता है। उसका प्रयोग सोजाक में करते हैं।

(२) इसके कंद को पीसकर शुष्क त्वग्रोगों में एवं बिच्छू आदि के काटने पर करते हैं जिससे वेदना कम होती है।

मात्रा—१–२ रत्ती।

अथ श्वेतरक्तकरवीरौ। तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

करवीरः श्वेतपुष्पः शतकुम्भोऽश्वमारकः। द्वितीयो रक्तपुष्पश्च चण्डातो लगुडस्तथा॥ ८२॥
करवीरद्वयं तिक्तं कषायं कटुकञ्च तत्। व्रणलाघवकृन्नेत्रकोपकुष्ठव्रणापहम्॥ ८३॥
वीर्योष्णं कृमिकण्डूघ्नं भक्षितं विषवन्मतम्॥ ८४॥

सफेद और लाल करवीर (कनेर) के नाम तथा गुण—करवीर, श्वेतपुष्प, शतकुम्भ और अश्वमारक ये सब 'सफेद कनेर' के संस्कृत नाम हैं। 'लाल कनेर' के संस्कृतनाम–रक्तपुष्प, चण्डात और लगुड ये सब हैं। दोनों कनेर–तिक्त, कषाय और कटुरसयुक्त, उष्णवीर्य और व्रण में लघुता कारक होते हैं एवम् ये दोनों नेत्रकोप (नेत्रसम्बन्धी रोगविशेष), कुष्ठ, व्रण, कृमि और खुजली को नष्ट करते हैं। यह खा लेने पर विष की भाँति हानिकारक होते हैं॥ ८२–८४॥

नोट—भावप्रकाशकार ने इसके श्वेत एवं रक्त ये दो भेद लिखे हैं। धन्वन्तरीनिघंटु में भी इसके दो भेद मिलते हैं किन्तु राजनिघंटु ने श्वेत, रक्त, पीत एवं कृष्ण ये ४ भेद लिखे हैं। यह अत्यन्त विषैला होने के कारण इसका आंतरिक प्रयोग बहुत कम मिलता है। भावप्रकाश में 'भक्षितं विषवन्मतम्' एवं ध० नि० में 'प्रक्षेपाद्विषमन्यथा' ऐसा लिखने से मालूम होता है कि इसका बाह्य प्रयोग ही अधिक किया जाता था। चरक एवं सुश्रुत में भी कुष्ठ एवं व्रण आदि के लिये इसके प्रयोग मिलते हैं। किन्तु चरक में कुष्ठ के लिये एवं सुश्रुत में अश्मरी और उदर के लिये इसके आन्तरिक प्रयोग भी मिलते हैं।[1] आन्तरिक प्रयोग के समय बहुत सावधानी की आवश्यकता है।

---

१. स्नाने पाने च मतः तथाष्टमश्चाश्वमारस्य (च. चि. अ ७–९५)। दूष्योदीरणं तु प्रत्याख्याय·········शुद्धकोष्ठन्तु मद्येन अश्वमारकगुंजाकाकादनी मूलकल्कं पाययेत् इक्षुकाण्डानि वा (सु. चि. अ. १४–८)। तिलापामार्गकदलीपलाशयववल्कजः। क्षारः पेयोऽविमूत्रेण शर्करानाशनः परः। पाटलाकरवीराणां क्षारमेवं समाचरेत् (सु. चि. अ. ९–२२–२३)।

आधुनिक विद्वानों ने श्वेत, रक्त एवं पीत इन ३ भेदों का ही उल्लेख किया है। कृष्ण करवीर का उल्लेख नहीं मिलता। श्वेत एवं रक्त करवीर का एक ही लेटिन नाम है। केवल पुष्प वर्ण में भिन्नता है। यहाँ पर श्वेत एवं रक्त का एक साथ तथा उसके पश्चात् पीत करवीर का वर्णन किया गया है। चिकित्सा में श्वेत एवं रक्त करवीर का ही अधिक व्यवहार किया जाता है।

३१ कनेर (श्वेत एवं रक्त)

हिं०–कनेर, कनइल, कनैल, करवीर। बं०–करावी, करवी। म०–कण्हेर। गु०–कणेर, करेण। ता०–अलरी। ते०–कस्तूरिपट्टे, गन्नेस। क०–कणगिलु। मल०–कणावीरम्। संथा०–राजबाहा। पं०–कनिर। अ०–दिफ्ली, सम्मुलहिमार। फा०–खरजहरा। अं०–Sweet-scented oleander (स्वीट सेंटेड ओलिएण्डर), Rooseberry spurge (रूजबेरी स्पर्ज)। ले०–*Nerium odorum Soland* (नेरियम् ओडोरम् सोलैंड)। Fam. Apocynaceae (एपोसाइनेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है। दक्षिण एवं उत्तरप्रदेश में यह जंगली होता है। बगीचों में फूलों के लिये यह लगाया हुआ मिलता है।

इसका **क्षुप**–मजबूत, सदा हरित, सीधी शाखाओं से युक्त एवं प्रायः १० फीट से अधिक ऊँचा नहीं होता। **पत्ते**–४–६ इञ्च लँबे, करीब १ इञ्च चौड़े, नुकीले एवं एक साथ ३–३ रहते हैं। **फूल**–सुगन्धयुक्त, श्वेत, रक्त एवं गुलाबी वर्ण के, करीब १½ इञ्च व्यास के एवं व्यस्त छत्राकार (Salver shaped) होते हैं। **फली**–करीब ५–६ इञ्च लंबी, चिपटी एवं गोलाकार होती है। **बीज**–भूरे वर्ण के रोमावृत अनेक बीज होते हैं। इसके काण्ड को काटने से दुग्ध बहता है।

इसके सभी भाग विषैले होते हैं। जानवर इसको नहीं खाते। आत्मघात, परहत्या एवं गर्भपात आदि के लिये इसके जड़ को खाते हैं। इसके पुष्प शिवजी को चढ़ाये जाते हैं। इसके मूलत्वक् एवं पत्र का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके मूल में नेरिओडोरिन (Neriodorin) नामक जल में अविलेय तथा नेरिओ डोरेन (Neriodorein) नामक जल में विलेय ये दो कडुवे पदार्थ पाये जाते हैं जो हृदय के लिये अत्यन्त विषैले होते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें उड़नशील तैल, कषायाम्ल, मोम, डिजिटॅलिन के सदृश नेरिन (Neriene) नामक रवेदार पदार्थ एवं रोसेजिनीन (Rosaginine) नामक ग्लूकोसाइड ये पदार्थ पाये जाते हैं। इसके पत्तों में ओलिएण्ड्रिन (Oleandrine) नामक क्षाराभ, सूडोक्युरारीन (Pseudocurarine) नामक ग्लूकोसाइड एवं नेरीन तथा नेरिएण्टाइन (Neriantine) ये द्रव्य पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, चक्षुष्य, ज्वरहर, शोथघ्न, हृदय के लिये घातक एवं कुष्ठ, कण्डू, नेत्रप्रकोप, त्वग्रोग तथा व्रण के लिये लाभदायक है। यह सब प्राणियों के लिये विषैला है। अल्प मात्रा में इसके मूल की क्रिया हृदय पर पीत कनेर की तरह होती है। मूल तीव्र मूत्रल एवं डिजिटॅलिस् तथा स्ट्रोफॅन्थस् के सदृश हृदय के लिये बलदायक है। पीत कनेर की अपेक्षा यह अधिक तीव्र है। ओलिएण्ड्रिन के सूचिकाभरण से हृदय की गति १०-१२ तक प्रतिमिनट कम हो जाती है जो स्वस्थावस्था में ७२–८० तक रहती है। यदि इसको और देते रहें तो हृदय एवं श्वसन दोनों की क्रिया बन्द हो जाती है। इसका आन्तरिक प्रयोग बहुत सावधानी के साथ करना चाहिये।

(१) अल्प मात्रा में हृद्रोग एवं तज्जन्य जलोदर में इसका बहुत सावधानी के साथ प्रयोग करने से मूत्रोत्सर्ग होकर जलोदर कम होता है। इसे खाली पेट नहीं देना चाहिये। अधिक मात्रा से शीत आकर नाडी की गति बहुत कम हो जाती है, आक्षेप आते हैं एवं हृदय तथा श्वसन क्रिया बन्द पड़ती है।

(२) सर्पदंश में इसकी जड़ की छाल १-२ रत्ती की मात्रा में या १-२ पत्ते थोड़े-थोड़े अन्तर से देते हैं। इतनी अधिक मात्रा से वमन तथा एकाध दो पाखाना हो जाता है। ज्यादा से ज्यादा यह ६ माशे तक दिया जाता है।

(३) इसकी जड़ की छाल एवं पत्तों का बाह्य प्रयोग ही अधिक किया जाता है। त्वग्रोग, व्रणशोथ, कुष्ठ, कण्डू, शुष्क एवं पपड़ी युक्त त्वचा के विकारों में इसके मूल को तैल में पकाकर उस तैल की मालिश करते हैं। शोथ में पत्ते के क्वाथ से सेंकते हैं। व्रण, अर्श, कुष्ठ, दाद तथा चकत्तां आदि पर इसकी जड़ को गोमूत्र में घिसकर लगाने से शोथ एवं पीडा कम होती है। अधिक दीर्घ व्रण में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये अन्यथा इसमें के सत्त्व का शोषण होकर तीव्र विषैले सार्वदेहिक परिणाम हो सकते हैं। उपदंशजन्य व्रण पर इसके मूल को जल में घिसकर लगाने से वेदना कम होती है एवं इसी प्रकार इसके पत्तों के क्वाथ से प्रक्षालन करने से भी लाभ होता है। इसके पंचांग के स्वरस से सिद्ध तैल का व्यवहार पामा, कण्डू आदि त्वचा के रोगों में किया जाता है। नेत्रकोप में कोमल पत्तों को तोड़ने से प्राप्त रस को डालने से लाभ होता है। पलित में इसको दूध में पीसकर लगाने से लाभ होता है।

मात्रा—मूलत्वक् चूर्ण ½-१ रत्ती।

३२ कनेर (पीत)

हि०-पीला कनेर। **बं०**-कल्केफुल, कोलका फूल। **म०**-पिंवली कण्हेर। **गु०**-पीली करेण। **ता०**-पच्चैअलरि। **ते०**-पचागन्नेरु। **अं०**-Yellow oleander (यलो ओलिएण्डर); Exile Tree (एक्साइल ट्री); Lucky nut (लकी नट)। **ले०**-*Thevetia neriifolia Juss.* (थिवेटिआ नेराइफोलिआ जस्.)। Fam. Apocynaceae (एपोसाइनेसी)।

यह प्रायः सभी प्रान्तों में पाया जाता है। उष्ण प्रदेशों में यह अधिक होता है। यह अमेरिका का आदिवासी है परन्तु अब भारत में सर्वत्र फैल गया है। इसके पुष्पों के लिये यह बगीचों में लगाया जाता है।

इसका **क्षुप**-सदाहरित, सुन्दर एवं करीब १२ फीट ऊँचा होता है। **पत्ते**-रेखाकार-भालाकार, चमकीले एवं नुकीले होते हैं। **फूल**-घंटाकृति, पीतवर्ण के, किञ्चित् गन्धयुक्त, पाँच दलवाले तथा शाखाओं के अग्र पर होते हैं। **फल**-गोल, कच्ची अवस्था में हलके हरे रंग का तथा पकने पर भूरे रंग का १½-२ इञ्च व्यास का होता है जिसके अन्दर एक विशिष्ट त्रिकोणाकृति गुठली होती है। **बीज**-गुठली के अन्दर हलके पीतवर्ण के २ बीज रहते हैं। इसके प्रत्येक भाग से दुग्ध निकलता है।

इसके बीज अत्यन्त विषैले होते हैं तथा आत्महत्या, परहत्या एवं गर्भपात आदि के लिये प्रयोग किये जाते हैं। जानवरों के लिये भी यह विषैले होते हैं। इसकी छाल का व्यवहार चिकित्सा में किया जाता है। कोमल टहनियों को छाल को खुली हवा में सुखाकर प्रयोग करना चाहिये। सुखाकर रखी हुई छाल कुछ महीनों में निःसत्त्व हो जाती है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों के गूदे में ५७% तैल पाया जाता है जिससे एक थिवेटीन (Thevetin) नामक रवेदार, श्वेतवर्ण का ग्लूकोसाइड प्राप्त किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें अन्य विषैले तत्त्व भी रहते हैं। इसकी छाल में भी यह पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसका क्षीर दाहजनक तथा तीव्र विषैला है। इसकी छाल कड़वी, भेदन, प्रभावशाली ज्वरघ्न तथा नियतकालिक-ज्वरप्रतिबन्धक है। छाल की मात्रा अधिक होने

से पानी की तरह पतले दस्त एवं वमन होता है। इसके फल से वमन होता है। छाल की क्रिया तीव्र होने के कारण इसको हमेशा कम मात्रा में ही प्रयोग करना चाहिये।

बिल्ली में इसके ग्लूकोसाइड के सूचिकाभरण से देखा गया है कि ·२ ग्राम प्रति कि. ग्राम की मात्रा में देने से वह दो घण्टे के अन्दर मर जाती है। इसका मुख्य विषैला परिणाम हृदय की मांसपेशियों पर होता है।

तीव्र विषैला होने के कारण इसका आन्तरिक प्रयोग बहुत कम किया जाता है।

(१) पार्यायिक ज्वर में इसकी छाल का टिंक्चर (५ मे १) १०, १५ बूँद की मात्रा में दिन में ३ बार दिया जाता है। १ रत्ती इसकी छाल का चूर्ण १५ रत्ती सिंकोना के बराबर गुणकारक होता है। ½ रत्ती घनक्वाथ देने से ज्वर की पारी नहीं आती। ज्वर आने पर फांट का प्रयोग करते हैं। इसको खाली पेट कभी भी प्रयोग न करें। इससे बहुत पसीना होकर शरीर ठंडा होता है। यदि थकावट हो तो उष्ण दुग्ध एवं थोड़ी अच्छी मदिरा देनी चाहिये।

(२) हृदयरोग तथा हृदयोदर में इसके प्रयोग से हृदय को बल मिलता है जिससे रुधिराभिसरणक्रिया ठीक होने लगती है। वृक्कों में रक्ताभिसरण अधिक होने से मूत्रोत्सर्ग अधिक होकर उदर कम होता है। इसका यह प्रभाव डिजिटॅलिस् तथा इसी प्रकार कार्य करने वाली अन्य औषधियों जैसे कुटू (हेलीबोर नाइग्रम्), श्वेत रक्त कनेर एवं जंगली प्याज आदि की तरह होता है। इस प्रकार की औषधियों का मिश्रण करके नहीं देना चाहिये। इनके साथ स्वेदजनन, मूत्रजनन तथा विरेचन द्रव्यों का प्रयोग किया जा सकता है।

मात्रा—टिंक्चर (५ में १) १०-१५ बूँद; घनक्वाथ ½ रत्ती।

अथ धत्तूरः। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

धत्तूरधूर्त्तधुत्तूरा उन्मत्तः कनकाह्वयः। देवता कितवस्तूरी महामोही शिवप्रियः ॥ ८५ ॥
मातुलो मदनश्चास्य फले मातुलपुत्रकः। धत्तूरो मदवर्णाग्निवातकृज्ज्वरकुष्ठनुत् ॥ ८६ ॥
कषायो मधुरस्तिक्तो यूकालिक्षाविनाशकः। उष्णो गुरुर्व्रणश्लेष्मकण्डूकृमिविषापहः ॥ ८७ ॥

धतूर के नाम तथा गुण—धत्तूर, धूर्त्त, धुत्तूर, उन्मत्त, कनकाह्वय (सुवर्ण वाचक सभी शब्द), देवता, कितव, तूरी, महामोही, शिवप्रिय, मातुल और मदन ये सब इसके संस्कृत नाम हैं। इसके फल को 'मातुलपुत्रक' कहते हैं। धतूरा-मद, वर्ण तथा वातकारक एवं जठराग्निवर्धक, ज्वर-कुष्ठ-नाशक, कषाय, मधुर तथा तिक्तरसयुक्त, जूयें और लीखों को दूर करने वाला, उष्णवीर्य, गुरु तथा व्रण, कफ, खुजली, कृमि एवं विष का नाशक होता है ॥ ८५-८७ ॥

३३ धतूरा

हि०-धतूर, धतूरा, धातूरा। **बं०**-धुतुरा, धुत्तूरा। **म०**-धोत्रा। **गु०**-धंतूरो, धत्तूरो। **पं०**-धत्तूर, धत्तूरा। **मल०**-उन्मं, उन्मत्तं। **क०**-मदकुणिके। **ते०**-उम्मेत्त, धुत्तुरम्। **ता०**-उम्मत्तई। **फा०**-तातूरह, तातूरा। **अ०**-जौजमासम, जौजुलमासेल। **अं०**-Datura (दतूरा,), Thornapple (थार्नेपल्)। Fam. Solanaceae (सोलेनॅसी)।

नोट—राजनिघण्टु ने इसके श्वेत, नील, कृष्ण, रक्त एवं पीत ये पाँच भेद लिखे हैं तथा उनमें से कृष्ण पुष्पवाला अधिक गुणकारी माना है[1]। धन्वन्तरिनिघंटु एवं इसमें इसके भेदों का उल्लेख

---

१. सितनीलकृष्णलोहितपीतप्रसवाश्च सन्ति धत्तूराः।
सामान्यगुणोपेतास्तेषु गुणाढ्यस्तु कृष्णकुसुमः स्यात् ॥

नहीं है। चरक में धुत्तूर का उल्लेख नहीं है किन्तु 'कनक' का उल्लेख आया है[1]। लेकिन टीकाकारों ने कनक के कई अर्थ किये हैं। सुश्रुत ने अलर्कविष में इसका उपयोग लिखा है[2]। यद्यपि तमक श्वास में इसका बहुत उपयोग होता आ रहा है तथापि प्राचीनों ने इसका उल्लेख नहीं किया है।

आधुनिक विद्वानों ने भी इसके कई भेदों का वर्णन किया है। इनके गुणों में विशेष अन्तर नहीं है। पाश्चात्य चिकित्सा में स्ट्रॅमोनिअम् (राजधतूरा) का उपयोग किया जाता है, जिसके बीज काले होते हैं।

यहाँ पर कुछ भेदों का वानस्पतिक वर्णन अलग-अलग किया गया है। किन्तु गुणों में साम्य होने के कारण उनको एक साथ ही लिखा गया है।

(क) लै०-Datura stramonium Linn. (दतूरा स्ट्रॅमोनिअम् लिन.), Datura tatula Linn. (दतूरा टॅटुला लिन.), **हि०-राजधतूरा।**

यह हिमालय के मन्द कटिबन्ध में काश्मीर से लेकर सिक्किम तक ९००० फीट की ऊँचाई तक, मध्य भारत के पहाड़ी प्रदेश, दक्षिणी एवं अन्य प्रान्तों में भी पाया जाता है।

इसका **क्षुप**-एकवर्षायु तथा करीब २-४ फीट ऊँचा होता है। **काण्ड**-हरा या जामुनी रंग का काला होता है। **पत्ते**-अण्डाकार, धार पर लहरदार या गहरे विच्छेदों से युक्त, करीब ७ इञ्च लंबे, ५ इञ्च चौड़े, हलके हरे रंग के, चिकने (कोमल पत्र-लोमयुक्त) तथा पर्णवृन्त से युक्त होते हैं। इनमें उग्रगन्ध रहती है तथा इनका स्वाद कडवा एवं अरुचिकारक होता है। **पुष्प**-श्वेत भूरे या कभी-कभी बैंगनी आभायुक्त, दलपत्र करीब ३-६ इञ्च लंबे तथा संख्या में ५ रहते हैं। **फल**-अण्डाकार, ऊर्ध्वमुख, चार खण्डों से युक्त तथा कठोर, लंबे एवं छोटे कंटकों से ढका हुआ, शीर्ष पर चार फांक में खुलनेवाला एवं इसके आधार पर बाहर और नीचे की ओर मुड़ा हुआ स्थायी प्रवृद्ध बाह्यदल रहता है। **बीज**-चिपटे, वृक्काकार, करीब ३ मि० मि० लंबे, २ मि० मि० चौड़े, १ मि० मि० मोटे, काले से भूरे रंग के, खुरदरे, स्वाद में कडवे, तैलीय एवं अत्यल्प गन्धवाले रहते हैं।

दतूरा टॅटुला के क्षुप ऊपर के समान ही होते हैं। इसके काण्ड, पर्णवृन्त एवं पत्तों की प्रधान शिराएँ कुछ लालिमा किये हुए होती हैं एवं दलपत्र ताजी अवस्था में बैंगनीपन लिये हुए नीले रंग के तथा सूखने पर बैंगनी आभायुक्त हरे रंग के होते हैं। इसके पत्ते पहले की अपेक्षा कुछ गहरे हरे रंग के होते हैं।

इनके बीज, पुष्पयुक्त अग्रभाग एवं पत्तों का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। पाश्चात्य वैद्यक में इसके टिंक्चर एवं शुष्क तथा प्रवाही सत्व का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों एवं पुष्पयुक्त अग्रभाग में क्षाराभ की मात्रा ०.४७-०.६५% होती है जिसमें मुख्यतया हायोसायमीन (Hyoscyamine) एवं अल्पमात्रा में ॲट्रोपीन (Atropine) तथा हायोसीन (Hyoscine) रहते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें क्लोरोजेनिक् एसिड (Chlorogenic acid) एवं गहरे रंग का उड़नशील तैल (०.०४५%) पाया जाता है।

इसके बीजों में क्षाराभ की मात्रा ०.१-०.५% (औसतन ०.२%) रहती है जिसमें हायोसायमीन अधिक एवं ॲट्रोपीन तथा हायोसीन अल्प रहते हैं। इसमें १५-३०% स्थिर तैल भी होता है।

१. च. चि. अ. ७, अ. २३।

२. श्वेतो पुनर्नवाश्चास्य दद्याद्धत्तरकायुताम। (सु. क. अ. ७)

(ख) लै०-Datura metel Linn. (दतूरा मेटल् लिन.)। हिं-काला धतूरा।

यह भारतवर्ष के प्रायः सभी भागों में परती भूमि में पाया जाता है।

इसका **पौधा**-वर्षायु, ३-५ फीट ऊँचा एवं चिकना होता है। **पत्ते**-अंडाकार-भालाकार, कुछ लहरदार, नोकीले, पर्णवृन्त की तरफ असम, कुछ दन्तुर या खण्डित, ऊपर के दोनों पृष्ठों पर चिकने, पतले, अकेले या युग्म जिसमें से एक बड़ा (७-८ इञ्च) एक छोटा एवं प्रायः ४ इञ्च लंबे तथा ३ इञ्च चौड़े होते हैं। **पुष्प**-सीधे एवं ६.५-७ इञ्च लम्बे होते हैं। आभ्यन्तर दल श्वेत, प्रायः बाहर से नीललोहित एवं अन्दर से पीताभ होते हैं। **फल**-गोलाकार, लटकते हुये, छोटे काँटों से युक्त, १। इञ्च व्यास के एवं इनका स्फुटन अनियमित होता है। **बीज**-कर्णाकृति, चिपटे, ४-५ मि० मि० लम्बे, ३-४ मि० मि० चौड़े एवं १ मि० मि० मोटे होते हैं। इनका किनारा लहरदार, मोटा तथा ३ धारियों से युक्त होता है। इनकी बाह्य सतह पीताभ, भूरी तथा गढेदार होती है। इनमें गन्ध नहीं होती तथा इनका स्वाद कड़वा होता है।

(ग) लै०-Datura innoxia Miller (दतूरा इन्नॉक्सिआ मिलर)।

यह यद्यपि मेक्सिको का आदिवासी है तथापि अपने यहाँ भी अब बहुत उत्पन्न होता है।

यह (घ) के समान ही होता है किन्तु यह मृदुरोमश होता है तथा इसके आभ्यन्तर कोश १० कोणों से युक्त होते हैं। इसके फल के काँटे कमजोर होते हैं तथा बीज भूरे रङ्ग के होते हैं।

रासायनिक सङ्गठन—(ख) एवं (ग) के पत्तों में क्षाराभ की मात्रा ०.२५-०.५५% रहती है जिसमें मुख्यतया हायोसायमीन एवं अल्पमात्रा में हायोसीन रहता है।

ख—के बीजों में हायोसीन ०.२% एवं अल्पमात्रा में हायोसायमीन रहता है। इसके अतिरिक्त राल एवं तैल भी इसमें पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—धतूरा के पत्ते एवं बीज वेदनाहर, उद्वेष्टननिरोधी, संज्ञानाशक, कासहर, श्वासहर, नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक एवं शोथहर हैं। धतूरे की क्रिया बेलाडोना (Belladona) की तरह होती है किन्तु श्वासनलिकाओं पर इसकी क्रिया अधिक तीव्र होने के कारण उनका अधिक विस्फार होता है। यह ॲसीटिल्कोलीन् (Acetylcholine) के कार्य को रोकता है जिससे श्वासनलिकाओं में रहने वाले प्राणदा (Vagus) नाड़ी के अग्रों का घात होने से श्वासनलिकाओं का विस्फार होता है। कभी-कभी इससे हृदय की गति में अनियमितता आती है। इससे विबन्ध नहीं होता। अधिक मात्रा में यह अत्यन्त तीव्र विष है। कुछ लोगों में यह उन्मादकारक होने के कारण उनके लिये यह वाजीकर है।

(१) तमक श्वास में उद्वेष्टन रोकने के लिये इसका बहुत प्रयोग किया जाता है। इसके चूर्ण का धूँआ या इसकी बनी सिगरेट का धूम्रपान इसमें लाभदायक होता है। इसका आन्तरिक प्रयोग भी किया जाता है। धूएँ के लिए धतूरा की पत्ती, कलमी सोरा, काले चाय की पत्ती, लोबेलिआ एवं अनीसी का तैल इनसे बना हुआ मिश्रण (पल्व लोबेलिआ कम्पाउण्ड) मिलता है जिसमें से चाय की चम्मच बराबर चूर्ण को कमरे में जलाते हैं।

(२) पारी से आने वाले शीतज्वर में इसके बीज दही के साथ ज्वर आने के पूर्व खिलाते हैं। इससे ज्वरजन्य कष्ट कम होता है।

(३) उदरशूल, पित्ताश्मरीशूल एवं वृक्कशूल आदि में वेदनाहर एवं उद्वेष्टननिरोधीरूप में इसका उपयोग करते हैं।

(४) शोथ पर इसके पत्तों का लेप करने से वेदना एवं शोथ कम होता है। अण्डशोथ, आमवात, सन्धिशोथ, आध्मान, फुफ्फुसावरणशोथ, नाडीशूल एवं गृध्रसी आदि में इसके पत्तों के काथ

से सेंक, पत्तों का बन्धन या इससे सिद्ध तैल की मालिश की जाती है। इसके पत्तों के स्वरस का भी उपयोग किया जाता है। शोथयुक्त अर्श तथा गुदविदार में इसका मलहम उपयोगी है। अनेक चर्मरोगों में तथा वातिकविकारों में इससे सिद्ध तैल का उपयोग किया जाता है। स्तनशोथ पर हरिद्रा के साथ इसका पोल्टिस बाँधने से शोथ एवं दुग्ध कम होता है।

(५) उन्माद, धनुर्वात एवं जलसंत्रास आदि में इसका प्रयोग करते हैं।

शोधन—इसके बीजों को दुग्ध से साथ दोलायन्त्र में शोधन कर लेना आवश्यक है।

विषपरिणाम—इसके बीजों को ठग लोग दूसरों को बेहोश कर लूटने के लिये अन्नादि के साथ मिलाकर खिला दिया करते हैं या इसकी सिगरेट आदि पिला देते हैं। इससे गले में शुष्कता, चक्कर, चेहरा लाल, आँखों की पुतलियों का विकास, उन्माद, प्रलाप, एवं संन्यास ये लक्षण होकर मृत्यु हो सकती है। उन्माद में रोगी काल्पनिक वस्तुओं को पकड़ने जैसी क्रियायें करने लगता है।

विषचिकित्सा—वमन, आमाशयप्रक्षालन, उत्तेजक औषधियों का प्रयोग, शीतल जल से छींटा देना एवं कृत्रिम श्वसन करना चाहिये। प्रलाप अधिक होने पर अफीम का उपयोग किया जा सकता है। शर्करा मिश्रित दुग्ध तथा घृत पिलाना भी हितकर है। बिनौले की गरी को दुग्ध के साथ पीसकर पिलाते हैं। कपास के पंचांग का क्वाथ, चौलाई की जड़, गिलोय, दही, नीबू का रस इनका उपयोग भी किया जाता है।

पाश्चात्य वैद्यक के फाइसोस्टिग्मीन् या पाइलोकार्पीन नाइट्रेट (१/४–१/२ ग्रेन) इनका प्रयोग बहुत सावधानीपूर्वक किया जा सकता है।

मात्रा—बीजचूर्ण १/२–१ रत्ती; पत्रचूर्ण १/२–१½ रत्ती; धूम्रपान के लिये पत्रचूर्ण ५–१५ रत्ती; बीज का टिंक्चर (४ में १) ५–१५ बूँद (५ बूँद से प्रारम्भ करें); टिंक्चर स्ट्रॅमोनिअम् ५–३० बूँद।

अथाटरूषः [अडूसा]। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

वासको वासिका वासा भिषङ्माता च सिंहिका। सिंहास्यो वाजिदन्ता स्यादाटरूषोऽटरूषकः॥
अटरूषो वृषस्ताम्रः सिंहपर्णश्च स स्मृतः। वासको वातकृत्स्वर्यः कफपित्तास्रनाशनः॥८९॥
तिक्तस्तुवरको हृद्यो लघुशीतस्तृडर्त्तिहृत्। श्वासकासज्वरच्छर्दिमेहकुष्ठक्षयापहः॥९०॥

अडूसा के नाम तथा गुण—वासक, वासिका, वासा, भिषङ्माता, सिंहिका, सिंहास्य, वाजिदन्ता, आटरूष, अटरूषक, अटरूष, वृष, ताम्र और सिंहपर्ण ये सब संस्कृत नाम अडूसा के हैं। अडूसा–वातकारक, स्वर उत्तम करनेवाला, तिक्त तथा कषाय–रसयुक्त, हृदय को हितकर, लघु और शीतवीर्य होता है। यह–कफ, पित्त, रक्तकोप (या रक्तपित्त), तृषा, श्वास, खांसी, ज्वर, वमन, प्रमेह, कुष्ठ एवं क्षय को दूर करता है॥ ८८–९०॥

नोट—प्राचीन ग्रन्थों में अडूसा एक ही प्रकार का लिखा है। श्री डा. देसाई ने अडूसा, अधाटोडा वासिका (Adhatoda vasica) के अतिरिक्त एक श्वेत (रक्तपुष्प) अडूसा, जस्टिसिआ पिक्टा (Justicia picta) एवं अन्य काला अडूसा (नील निर्गुण्डी), जस्टिसिआ जेण्डारुसा (Justicia gendarussa) इनका वर्णन किया है। केरल देश में अडूसा का अन्य छोटा भेद अधाटोडा बेड्डोमी सी. बी. क्ला. (Adhatoda beddomei C. B. Clarke) का अधिक व्यवहार किया जाता है क्योंकि वह अधिक गुणकारी होता है ऐसा कोट्टयम से प्रकाशित 'आयुर्वेदिक् फ्लोरा मेडिका' में लिखा हुआ है। उसके पुष्प बिलकुल श्वेत होते हैं।

३४ अडूसा

हि०–अडूसा, अडुस, अरूस, बाकस, बिसोंटा, रूसा, अरुशा। **बं०**–बासक, बाकस। **म०**–अडुलसा। **मा०**–अडुसो। **गु०**–अरडुसो (सी)। **क०**–आडुसोगे। **ते०**–आडा सारं, अडुसरमु। **मल०**–वलिय आटलोटकम्। **ता०** अटतोटै। **पं०**–भेकर। **फा०**–वाँसः, ख्वाजा। **अ०** हशीशतुस्सुआल। **अं०**–Malabar nut (मलाबारनट)। **ले०**–*Adhatoda vasica, Nees.* (अधाटोडा वासिका नीज) Fam. Acanthaceae (एकॅन्थेसी)।

यह भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों में एवं हिमालय के निचले भागों में ४००० फीट की ऊंचाई तक उत्पन्न होता है।

इसका **क्षुप**–सदाहरित, झाड़ीदार, दुर्गन्धयुक्त, ३–८ फीट ऊँचा एवं प्रायः समूहबद्ध होकर उगता है। काण्ड की गाँठें फूली हुई रहती हैं। **पत्ते**–५–८ इञ्च लम्बे, १॥–२॥ इञ्च चौड़े, भालाकार या अण्डाकार, दोनों सिरों पर नोकीले, अखण्ड, अत्यन्त सूक्ष्म मृदुरोमश, विशेषकर नये पत्ते एवं १/२–१ इञ्च लम्बे पर्णवृन्त से युक्त होते हैं। **पुष्प**–श्वेत, विनाल, द्व्योष्ठी एवं १·२ इञ्च लम्बे होते हैं तथा १–३ इञ्च लम्बी मञ्जरियों में पाये जाते हैं जो उपशाखाओं के अग्र पर प्रायः समूहबद्ध रहती हैं। पुष्पों पर २ टेढ़ी बैंगनी धारियाँ होती हैं। इसमें बड़े बड़े कोणपुष्पक और वृन्तपत्र भी रहते हैं। **फली**–पौन इञ्च लम्बी, तिहाई इञ्च चौड़ी, मुद्गराकार, लम्बाई में धारीदार मृदुरोमश एवं ४ छोटे बीजों से युक्त होती है। इसके पत्तों से एक प्रकार का पीला रंग निकलता है। इसके पत्र, पुष्प एवं मूलत्वक् का व्यवहार चिकित्सा में किया जाता है। मूलत्वक् पुराने क्षुप की लेनी चाहिये।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में एक कडुवा रवेदार क्षाराभ वॅसिसिन (Vasicine, $C_{11}H_{12}N_2O$) करीब ·२५%, अधाटोडिक एसिड, उड़नशील तैल, वसा, राल, शर्करा, गोंद एवं पीत रंजक द्रव्य ये पाये जाते हैं। मूलत्वक् में भी क्षाराभ की करीब इतनी ही मात्रा होती है। यह क्षाराभ मद्यसार में घुलनशील, शीत जल में अल्प एवं उष्ण जल में अधिक घुलनशील होता है। यह क्षाराभ हरमल (Peganum harmala) में पाये जाने वाले पेगॅनीन (Peganine) के सदृश होता है।

गुण और प्रयोग—अडूसा उत्तेजक, कफनिःसारक, शीतवीर्य, उद्वेष्टननिरोधी, स्वर्य, कृमिघ्न, कुष्ठहर, रक्तपित्तघ्न, श्वासहर, कासहर एवं क्षयघ्न है। इसके पुष्प तिक्त, कटु, ज्वरघ्न, मूत्रजनन, उद्वेष्टननिरोधी एवं शीतल हैं। इसकी मूलत्वक् ज्वरघ्न, मूत्रजनन, कफनिःसारक, नियतकालिकज्वरहर, कृमिघ्न एवं कोथप्रशमन है। उद्वेष्टननिरोधी गुण मूल एवं पत्र की अपेक्षा पुष्पों में एवं कफनिःसारक गुण पत्तों की अपेक्षा मूल में अधिक रहता है। पत्र स्वेदजनन हैं। इसका प्रधान गुण कफ को पतला करना एवं आसानी से बाहर निकालना है। अधिक मात्रा में इससे वमन एवं विरेचन होता है।

इसमें के क्षाराभ वासिसिन को जानवरों में शिरान्तर्गत सूचिकाभरण से देखा गया कि रक्तसंवहन एवं महास्रोत पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता। इससे श्वासनलिकाओं में अल्प किन्तु स्थायी विस्फार होता है जो ॲट्रोपीन साथ में देने से अधिक हो जाता है। इसमें का कफनिःसारक गुण सम्भवतः मुख्यतया इसमें के उड़नशील तैल के कारण है।

इसके पत्ते निम्न श्रेणी के जलाश्रयी जीव, धुरा, पराश्रयी जीवाणु, मच्छर, मक्खी एवं गोबर आदि के लिये विषैले माने जाते हैं।

(१) कफविकारों में इसका बहुत प्रयोग करते हैं। नवीन श्वसनीशोथ में इससे आराम मिलता है विशेषकर जब कफ गाढा तथा चिपचिपा होता है। जीर्ण श्वसनीशोथ में इससे खाँसी में आराम मिलता है तथा कफ ढीला होकर आसानी से बाहर निकल जाता है। कफयुक्त प्रलेपक ज्वर में इसका बहुत उपयोग करते हैं। इनमें इसके पुटपाक करके निकाले स्वरस को ½–१½ तो० की मात्रा में आर्द्रकस्वरस या छोटी पीपल, कुछ सैंधव एवं मधु के साथ देते हैं। श्वास, कास एवं रक्तपित्त में अडूसा, द्राक्षा एवं हर्रा इनका क्वाथ मधु एवं शर्करा के साथ उपयोगी है। नये श्वसनीशोथ में कण्टकारी, जवासा, नागरमोथा, सोंठ एवं अडूसा इनका क्वाथ उपयोगी है। बच्चों के कफविकारों में इसके स्वरस के साथ टंकण देते हैं। वासावलेह का भी अच्छा उपयोग होता है।

(२) राजयक्ष्मा में हाथ-पैर आदि में जलन, ज्वर एवं ऊर्ध्वग रक्तपित्त होने पर वासाघृत (च. चि. अ. ८) का उपयोग किया जाता है। इसमें पत्रस्वरस, वंशलोचन, तालीसपत्र, कोहडे का रस एवं मधु भी दिया जाता है। नवीन प्रयोगों से देखा गया है कि राजयक्ष्मा में इसका कोई प्रभाव नहीं है। केवल इससे वातनाडियों पर शामक प्रभाव के कारण एवं कफ के पतला होने से खाँसी में आराम मिलता है।

(३) तमकश्वास में इसके पत्तों का धूम्रपान लाभदायक है। इसके साथ धतूरे के पत्र का उपयोग करने से जल्दी गुण होता है। इसका आंतरिक प्रयोग भी किया जाता है। इससे सिद्ध घृत का प्रयोग करते हैं। यह तमकश्वास के आवेग को बन्द करने में समर्थ नहीं है।

(४) रक्तपित्त में इसका स्वरस मधु के साथ देते हैं। इसके फूलों के गुलकंद तथा पत्रचूर्ण का भी उपयोग किया जाता है। वासाघृत (च. चि. अ. ४) मधु के साथ सेवन करने से रक्तपित्त जल्दी रुकता है।

(५) मलेरिया में इसके पत्तों के चूर्ण या मूलत्वक्चूर्ण का उपयोग करते हैं।

(६) आध्मान, अतिसार एवं प्रवाहिका में इसका स्वरस दिया जाता है। इससे आंत्रस्थ जीवाणुओं का नाश होता है एवं अन्न का सड़न रुकता है।

(७) आमवातिक संधिशोथ, शोथ एवं नाडीशूल आदि में पत्तों का पोल्टिस लगाया जाता है।

(८) त्वचा के रोगों में इसका रस पिलाते हैं तथा इसके पत्तों का लेप एवं क्वाथ से स्नान आदि कराते हैं।

(९) जंतुघ्न होने के कारण इसके पत्तों को जल में रखने पर जल खराब नहीं होता। इसके पत्तों में फल बांध कर रखने से फल सड़ता नहीं। इसका मद्यसारीय अर्क मक्खी, पिस्सू एवं मच्छर आदि के लिये घातक होता है। खेत में इसके पत्तों का खाद देने से इनमें रोग नहीं होते। ऊनी कपड़ों में इसके पत्ते रखने से कीड़े नहीं लगते।

मात्रा—पत्रचूर्ण १–२ माशा, स्वरस ½–१½ तोला, मूलत्वक् ४ र०–१ माशा, पुष्प ५–१० र० क्वाथ १–२ तो०।

३५ रक्तपुष्प अडूसा

ले०–*Justicia picta Linn.* (जस्टिसिआ पिक्टा लिन)। Fam. Acanthaceae (एकेन्थेसी)।

यह बागों में लगाया हुआ मिलता है। इसके क्षुप बड़े होते हैं। इसके पत्ते दीर्घवृत्ताकार, ३–८ इञ्च बड़े, गहरे हरे रंग के एवं इन पर सफेद छींटे रहते हैं। इसके काण्ड की गांठें फूली हुई और रक्ताभ होती हैं। इसमें गहरे लाल वर्ण के पुष्प आते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके गुण अडूसा के समान ही होते हैं किन्तु इसमें स्नेहन एवं शोधघ्न ये गुण अधिक हैं। बच्चों के गले में जब कफ से घुरघुराहट होती है तब इसके पत्तों का पुटपाक करके निकाला स्वरस एवं टंकणक्षार देते हैं। इसको मधु एवं छोटी पीपल के साथ भी दिया जाता है। दुग्ध के कारण स्तन में शोथ होने पर या अन्य स्थान में शोथ होने पर इसके पत्तों को नारियल के रस में पीसकर बांधने से सूजन कम होती है।

मात्रा—बच्चों में १०–२० बूँद स्वरस मधु एवं छोटी पीपल के साथ।

३६ काला अडूसा

सं०–नीलनिर्गुण्डी ? **हिं०**–काला अडूसा, नील निर्गुण्डी। **बं०**–जगतमदन, मामलक। **म०**–काला अडूलसा, कालीशंबालू। **बंब०**–वाकस। **ता०, मल०**–करुनोचचि। **ते०**–नल्लनोचिलि। **ले०**–*Justicia gendarussa Burm.* (जस्टिसिआ जेन्डारुसा बर्म)। Fam. Acanthaceae (एकेन्थेसी)।

इसके क्षुप बागों में रास्ते के किनारों पर लगाये जाते हैं।

इसके **क्षुप**–२–४ फीट ऊँचे होते हैं। **काण्ड**–कभी कभी धारीदार होते हैं। **पत्ते**–३–५ इञ्च लम्बे, प्रासवत् या रेखाकार 'प्रासवत्', चिकने एवं ½ इञ्च लम्बे पर्णवृन्त से युक्त होते हैं। **पुष्प**–बरसात में श्वेतवर्ण के पुष्प अवृन्त काण्डज क्रम में निकले रहते हैं। पुष्पों के अन्दर जामुनी रंग के चिह्न रहते हैं। बीजकोष ½ इञ्च, सूक्ष्म, लोमयुक्त तथा ४ बीजों से युक्त होता है। इसके पत्तों में मनोहर गन्ध आती है। इसके पत्तों का स्वरस चिकित्सा में उपयोग में लाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, ज्वरघ्न, कफनिःसारक, वामक एवं रेचन है। यह वनस्पति अत्यन्त तीव्र होती है इसलिये बाल एवं वृद्ध में इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। इससे वमन एवं विरेचन होने लगता है। इसके प्रयोग के समय चावल की मांड घृत डालकर देनी चाहिये।

(१) फुफ्फुस के विकारों में इसका प्रयोग करते हैं। तीव्र कफविकारों में इसके २–४ पत्ते एवं अपामार्ग की राख ½ तो०, एक तोला मधु के साथ देते हैं। न्युमोनिया (Pneumonia) में चार पत्तों का रस, सहेजन की छाल का रस एवं सामुद्र नमक मधु के साथ देते हैं।

(२) ज्वर एवं आमवात में इससे पसीना निकलता है। आमवात में इसके पत्तों के क्वाथ से सेकने से आराम मिलता है।

(३) इसका रस सरसों के तेल के साथ पिलाने से वमन होता है।

(४) इसके रस को तैल में मिलाकर गांठों पर लगाया जाता है।

अथ पर्पटः [पित्तपापडा]। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

पर्पटो वरतिक्तश्च स्मृतः पर्पटकश्च सः। कथितः पांशुपर्यायस्तथा कवचनामकः॥ ९१॥
पर्पटो हन्ति पित्तास्रभ्रमतृष्णाकफज्वरान्। संग्राही शीतलस्तिक्तो दाहनुद्वातलो लघुः॥ ९२॥

पित्तपापड़ा के नाम तथा गुण—पर्पट, वरतिक्त, पर्पटक, पांशुपर्याय ('पांशु' वाचक सभी शब्द इसके पर्यायवाची हैं) एवं कवचनामक ('कवच'वाची सभी शब्द इसके पर्यायवाचक हैं) ये सब संस्कृत नाम 'पित्तपापड़ा' के हैं। **पित्तपापड़ा**–संग्राही, शीतवीर्य, तिक्तरसयुक्त, दाह को दूर करने वाला, वातकारक और लघु होता है एवं यह पित्त, रक्तदोष, भ्रमरोग, तृषा, कफ और ज्वर इन सबों को नष्ट करता है॥ ९१–९२॥

नोट—पित्तपापड़ा के नाम से विभिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न वर्गों की वनस्पतियों का एवं उनके उपभेदों का उपयोग किया जाता है इस कारण इसके लेटिन नामों में पर्याप्त विभिन्नता पाई जाती है। जिन द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है उनमें उपर्युक्त शास्त्रीय गुणों में से कुछ न कुछ पाये जाते हैं। अन्य निघण्टुओं में भी उपर्युक्त प्रकार के ही गुण लिखे हैं। चरक में तृष्णानिग्रहण गण में इसका पाठ है एवं रक्तपित्त, ज्वर, कुष्ठ, संग्रहणी, पांडु एवं अतिसार आदि में इसका उपयोग किया गया है।

विभिन्न ग्रन्थों में निम्नलिखित विभिन्न वनस्पतियों का पर्पट नाम से उल्लेख है :—

(१) Oldenlandia corymbosa, Linn. Fam. ; Rubiaceae (ओल्डेन्लेण्डिआ कोरिम्बोसा, लिन. रुबिएसी), बं०–खेतपापड़ा।

इसका बंगाल में अधिक व्यवहार किया जाता है। श्रीयुत यादवजी ने अपनी पुस्तक में जो नव्य मत दिया है उसे श्री डॉ० देसाई ने इसी वर्ग के हेडिओटिस् बाइफ्लोरा (Hedyotis biflora) के अन्तर्गत किया है। लेकिन डॉ० देसाई ने इसका बंगाली नाम खेतपापरा ही लिखा है। श्री डॉ० चोप्रा ने खेतपापरां का नाम ओ० बाइफ्लोरा, लिन. (O. biflora, Linn.) लिखा है। श्री बापालालजी की पुस्तक में हे० बर्मानिआना (H. burmanniana) का भी उल्लेख है। इन उपर्युक्त नामों से ऐसा मालूम होता है कि ये या तो एक दूसरे के पर्याय हों या एक ही वनस्पति के उपभेदों में से हों।

(२) Fumaria indica, Pugsley; Fam. Fumariaceae (फ्युमेरिया इण्डिका, पगस्ले, फ्युमेरिएसी), हिं–शाहतराभेद—यह शाहतरा, फ्यु० ऑफिसिनॅलिस् (Fumaria officinalis) का भेद है। इन दोनों का व्यवहार पंजाब, सिंध, राजपुताना, उत्तरप्रदेश और बिहार के वैद्य पर्पट नाम से करते हैं ऐसा श्री यादवजी ने लिखा है।

(३) Polycarpea corymbosa, Lam. ; Fam. Caryophyllaceae (पॉलिकार्पीआ कोरिम्बोसा, लॅम् , कॅरियोफाइलेसी)। श्री ठा० बलवन्तसिंहजी लिखते हैं कि उत्तरप्रदेश में अनेक स्थानों पर पर्पट के नाम से इसका व्यवहार किया जाता है।

(४) (क) Justicia procumbens, Linn. ; Fam. Acanthaceae (जस्टिसिआ प्रोकम्बेन्स, लिन, एकेन्थेसी)। बम्ब०–घांटी पित्तपापडा। इसे श्री डा. चोपरा ने नं० २ का प्रतिनिधि लिखा है। कुछ लोगों ने ज. डिफ्यूजा विल्ड (J. diffusa Wild) को घांटी पित्तपापड़ा माना है।

(ख) Rungia repens, Nees. ; Fam. Acanthaceae (रंजिआ रिपेन्स, नीज; एकन्थेसी)। श्री यादवजी ने लिखा है कि गुजरात के वैद्य 'खडसलियो' नाम से इसका व्यवहार करते हैं। श्री बापालालजी ने नं० ४ (क) को 'खडसलीयो पीतपापडो' लिखा है।

(ग) Rungia parviflora, Nees. (रंजिआ पार्विफ्लोरा, नीज.)—इसका भी 'खडसलीयो' नाम से व्यवहार किया जाता है।

(घ) Peristrophe bicalyculata, Nees. ; Fam. Acanthaceae (पेरिस्ट्रोफ बाइकॅलिकुलेटा, नीज. एकेन्थेसी)। श्री डा० सखाराम अर्जुन ने 'बाम्बेड्रग्स' पुस्तक में इसका 'घाटीपित्तपापड़ा, नाम से उल्लेख किया है। इसका विशेष वर्णन आगे काकजंघा के अन्तर्गत किया गया है।

(५) Glossocardia linearifolia, Cass. ; Fam. Compositae (ग्लॉसोकार्डिआ लिनिएरिफोलिआ, कॅस; कॉम्पोझिटी)। श्री डा० देसाई ने इसका 'पूना' का नाम पित्तपापडा दिया है तथा अन्य प्रान्तों में भी कहीं-कहीं इसका पित्तपापडा के स्थान पर व्यवहार किया जाता है।

(६) Mollugo stricta, Linn. ; Fam. Ficoidaceae (मोल्युगो स्ट्रिक्टा , लिन.; फिकोइडीसी)। श्री डॉ० देसाई ने इसका संस्कृत नाम 'पर्पटका' लिखा है।

३७ पर्पट (१)

सं०–क्षेत्रपर्पट, पर्पट। **हि०**–दमनपापड़ा। **बं०**–खेतपापड़ा। **म०**–परिपाठ, पाप्टी। **गु०**–परपट। **ता०**–पर्पदागम। **ते०**–वेरिनेल्लावेमु। **गोआ**–पोपटो, कझुरी। **ले०**–*Oldenanldia corymbosa Linn.* (ओल्डेन्लेण्डिआ कोरिम्बोसा लिन.); Fam. Rubiaceae (रुबिएसी)।

यह भारतवर्ष के प्रायः सभी भागों में ६००० फीट की ऊँचाई तक होता है। इसके क्षुप गीले स्थानों एवं सूखे धान के खेतों में पाये जाते हैं।

इसका **क्षुप**–वर्षायु, ३–१५ इञ्च ऊँचा, अनेक शाखाओंवाला, प्रसरणशील, प्रायः चिकना या कभी-कभी मृदुरोमश होता है। **पत्ते**–रेखाकार, रेखाकार-मालाकार या पतले लम्बे परन्तु अण्डाकार प्रासवत् एवं ·५–२ इञ्च लम्बे होते हैं। **पुष्प**–सूक्ष्म, प्रायः दो-दो एक साथ और सफेद होते हैं। **फली**–गोलाकार एवं चिकनी होती है। **बीज**–हलके भूरे रंग के एवं कोणयुक्त होते हैं। इसके तथा इसके अन्य उपभेदों के ताजे अथवा सुखाये हुये पौधे का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। बंगाल के वैद्य पर्पट के नाम से इसका प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके पंचांग में दो समान प्रकार के क्षाराभ बाइफ्लोरीन एवं बाइफ्लोरोन (Biflorine and Biflorone) तथा एक रंजित द्रव्य ये पदार्थ पाये जाते हैं। क्षाराभ की मात्रा शुष्क पौधे के वजन के अनुपात में ०·१२% तक रहती है। इसकी राख में सोडियम् , पोटॅशियम् एवं कॅल्शियम् के क्षार विशेषकर क्लोराइड पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—खेतपापड़ा, शीतल, ज्वरघ्न, दाहशामक, कफघ्न, तिक्तपौष्टिक एवं अल्प स्तम्भन है। इसका उपयोग ज्वर, यकृतविकार, कामला एवं कृमि में किया जाता है।

(१) पित्त तथा वातप्रधान ज्वर में इसका बहुत उपयोग किया जाता है। अर्धविसर्गी ज्वर एवं जीर्ण मलेरिया में इसका क्वाथ दिया जाता है। इससे शरीर का दाह, तृष्णा, आमाशयिक प्रक्षोभ, भ्रम एवं सुस्ती आदि दूर होती है तथा पसीना एवं पेशाब अधिक होती है। पित्तज्वर में इसके साथ 'शाहतराभेद' का उपयोग करते हैं। सन्ततज्वर में वमन, विरेचन, भ्रम एवं शरीर में शिथिलता आदि लक्षण होने पर इसके साथ हंसराज, ब्राह्मी, चन्दन, खस, नागरमोथा, गुडुच एवं हरी चाय का क्वाथ बनाकर पिलाते हैं। खेतपापड़ा, गुडुच, नागरमोथा, चिरायता एवं घोड़वच इनका पंचभद्र नामक क्वाथ सब प्रकार के ज्वरों में दिया जाता है। दाहशान्ति के लिये चन्दन एवं इसका लेप किया जाता है। इसके स्वरस को हाथ-पैर की जलन में लगाते हैं।

(२) क्षेत्रपर्पट, रोमान्तिका (Measles) के लिए बिल्कुल निश्चित औषध मानी जाती है।

(३) गले एवं श्वासनलिका की सूजन में इसके धूम्रपान से कफ ढीला होकर शीघ्र गिरने लगता है। तमकश्वास में छोटी पीपल, मुलेठी एवं क्षेत्रपर्पट मधु के साथ देते हैं तथा इससे थोड़ा धूम्रपान भी कराते हैं।

मात्रा—२ से ८ माशा।

३८ पर्पट (२)

हिं०–शाहतराभेद, पित्तपापड़ा, धमगजरा। **बं०**–बनशुल्फा। **म०**–पित्तपापड़ा, शातरा। **गु०**–पित्तपापड़ा। **ता०**–तुरा। **ते०**–चाटराशि। **अ०**–शाहतरज। **फा०**–शाहतर। **ले०**–*Fumaria indica* Pugsley (फ्युमेरिआ इण्डिका, पगस्ले); Fam. Fumariaceae (फ्युमॅरिएसी)।

यह पंजाब, दिल्ली, चित्तौड़ एवं खानदेश तथा अन्य सभी प्रान्तों में गेहूँ के खेतों में जाड़े के दिनों में पाया जाता है।

इसका क्षुप-(क्षुद्र वनस्पति) अनेक शाखाओं वाला स्वावलम्बी या प्रसरणशील एवं ½-१ फूट ऊँचा होता है। **पत्ते**-गाजर के पत्ते के समान बहु विभक्त होते हैं। **पुष्प**-श्वेताभ या गुलाबीलाल, सिरे पर जामुनी रंग के और २-३ इञ्च लम्बे होते हैं। पुष्प के बाह्यदल दो, आभ्यन्तर दल २-२, और इनमें बाहरवाले नीचे की ओर चोंचदार, भीतर के दोनों ऊपर की ओर संयुक्त, पुंकेशर ६, तीन-तीन एक साथ मिले हुए रहते हैं। फल-गोलाकार और बीज छोटे होते हैं। इसके पंचांग का उपयोग किया जाता है। **शाहतरा**-नामक फारस से आने वाला द्रव्य इसी की दूसरी जाति फ्यु० ऑफिसिनॅलिस् लिन (F. officinalis Linn.) से प्राप्त होता है। यह स्वाद में कडुआ, कुछ तीता एवं कषाय रहता है। भारतीय की अपेक्षा फारसी शाहतरा अधिक गुणकारी होता है तथा उसी का अधिक प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—शाहतरा में फ्युमॅरिक् ॲसिड (Fumaric acid) एवं फ्युमेरिन (Fumarine) नामक एक क्षाराभ रहता है। क्षाराभ की मात्रा ६% तक रहती है जिस पर इसके गुण निर्भर हैं।

गुण और प्रयोग—शाहतरा स्वेदजनन, मूत्रल, स्रंसन एवं तिक्तपौष्टिक है। इसकी क्रिया 'घाटीपित्तपापडा' के समान होती है किन्तु उससे यह अधिक लाभदायक है।

इसके पंचांग के क्वाथ का उपयोग ज्वर, प्रतिश्याय, रक्तविकार, गंडमाला, राजयक्ष्मा दण्डाणुजन्य त्वचा के विकार, यकृत्पीडा, कुष्ठ, उपदंश एवं अन्य त्वचा के विकारों में किया जाता है। कफज्वर में गोल मिरिच के साथ इसका क्वाथ देते हैं। पित्तज्वर में इसका क्वाथ बहुत ही लाभदायक है। प्रतिश्याय आदि में इसका बहुत व्यवहार करते हैं। इससे पसीना होता है, पेशाब अधिक होता है शरीरपीडा कम होती है एवं पाखाना साफ होता है। इसके लिये २½ तोला शाहतरा, बनफशाह ½ तोला, मिरिच एवं सोंठ ½ तोला, मुनक्का १ तोला एवं जल १ सेर इनका चतुर्थांश क्वाथ बनाकर ५ तोला दिन में ३-४ बार देते हैं। आन्त्रशैथिल्य से उत्पन्न कुपचन में शाहतरा लाभदायक है।

मात्रा—क्वाथ २½ से ५ तोला; चूर्ण २ से ७ माशा।

३९ पर्पट (३)

हि०-पित्तपापडा प्रतिनिधि। **गु०**-झीणा पाननो ओखराड़। **ता०**-निलैसेदचि। **ले०**-*Polycarpea corymbosa Lam.* (पॉलिकार्पिआ कोरिम्बोसा लॅम्)। Fam. Caryophyllaceae (कॅरियोफाइलेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है। उत्तरप्रदेश में पूर्वी जिलों में क्वार-कार्तिक महीने में प्रायः बाजरे के खेतों में इसके पौधे उगे हुए मिलते हैं और ग्रामीण पित्तप्रकोप की शान्ति के लिये इसका पित्तपापडा के नाम से व्यवहार करते हैं। उत्तरप्रदेश में अनेक स्थानों पर पर्पट के नाम से इसका व्यवहार किया जाता है। छोटा नागपूर तथा सोन के आसपास पथरीली एवं बलुई जमीन में यह पाया जाता है।

इसका क्षुप-अनेक शाखाओं से युक्त ३-६ इञ्च ऊँचा एवं कभी १२ इञ्च ऊँचा होता है। **शाखाएँ**-अत्यन्त कृश, तूलरोमश और सीधी होती हैं। **पत्ते**-रेखाकार और अभिमुख होते हैं। **पुष्प**-रजतवर्ण, बहुत छोटे तथा शीर्षस्थ सघन द्विविभक्त मंजरियों में आते हैं। बाह्यदल भूरे और फल बन जाने पर चमकीले या रजतवर्ण और आभ्यन्तरदल सूक्ष्म एवं रक्तवर्ण के होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें सापुनसत्त्व पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसका उपयोग सर्पादि के दंश में विषनिवारण के लिये बाह्याभ्यन्तर करते हैं। इसके पत्तों को पीसकर, व्रण, व्रणशोथ एवं फोड़े आदि पर बाँधते हैं। इसके पत्तों का स्वरस राब के साथ कामला में पिलाया जाता है।

मात्रा—१-३ माशा।

४० पर्पट (४)

म०-घाटी पित्तपापड़ा। **ता०**-नेरिपुट्टी। **ले०**-*Justicia procumbens Linn.* (जस्टिसिआ प्रोकम्बेन्स लिन.)। Fam. Acanthaceae (एकॅन्थेसी)।

यह दक्षिण में बरसात के दिनों में अधिक होता है।

इसका **क्षुप**-करीब ९-१० इञ्च ऊँचा होता है। इसके **पत्ते**-¾-१½ इञ्च लम्बे, ⅓-¾ इञ्च चौडे तथा सूक्ष्मरोमावृत होते हैं। **फूल**-छोटे तथा हलके जामुनी रंग के होते हैं। पुष्पित होने पर इनको उखाड़ कर सुखाकर रखना चाहिये। इसकी गंध हृल्लासकारक होती है। इसी वर्ग के अन्य क्षुपों का भी पर्पट नाम से कहीं-कहीं व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक कडुआ क्षाराभ पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह मूत्रल, मृदुविरेचक एवं स्वेदकारक है। कडुए पदार्थों के साथ इसका क्वाथ पित्तज्वर में देने से पसीना होता है, दाह कम होता है, पेशाब अधिक होता है एवं एक दो पाखाना होकर यकृच्छोथ एवं यकृत्पीडा कम होती है। नेत्राभिष्यन्द में इसके पत्रस्वरस को डालने से लाभ होता है। इसका शाहतरा के स्थान पर प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—१-३ माशा।

J. diffusa Willd. (ज. डिफ्यूजा विल्ड.) के मूल का उपयोग मुंडा जाति के लोग पागलपन में करते हैं। यह रांची, सरकार तथा डेक्कन में होता है।

४१ पर्पट (५)

हिं०-सेरी, दांतरीसा। **बम्ब०**-फत्तरसुवा। **पूना**-पित्तपापड़ा। **तै०**-परपलकम्। **ले०**-*Glossocardia linearifolia Cass.* (ग्लॉसोकार्डिआ लिनिएरिफोलिआ कॅस्.)। Fam. Compositae (कॉम्पोझिटी)।

यह मध्यभारत, दक्षिण तथा अन्य प्रान्तों में प्रायः चट्टानों के ऊपर पाया जाता है।

इसका **क्षुप**-छोटा, सुन्दर, गंधयुक्त, १-६ इञ्च या कभी-कभी १० इञ्च तक ऊँचा, चिकना तथा अनेक शाखाओं वाला होता है। **पत्ते**-१-२ बार पक्षवत्-खण्डित, एकान्तर और खण्ड रेखाकार होते हैं। **पुष्प**-छोटे तथा पीले रंग के मुण्डकों (Capitulum) में आते हैं। प्रान्तीय जिह्वाकार पुष्प, स्त्रीपुष्प और प्रायः अकेला रहता है। केन्द्रीय पुष्प उभयलिंग, संख्या में कम और नालाकार होते हैं। अधःपत्रावलि (Involucre) के पत्र बाहर की ओर प्रायः संख्या में तीन और छोटे तथा भीतर के आयताकार, बड़े और धार पर झिल्ली सदृश होते हैं। इसका स्वाद कडुआ एवं गन्ध साधारण सोवा जैसी होती है। इसके पंचांग का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके मूल में उड़नशील तैल तथा पत्र, पुष्प एवं काण्ड में एक क्षाराभ पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह स्वेदजनन, ज्वरघ्न एवं गर्भाशयसंकोचक है। इसके गुण पित्तपापड़ा जैसे ही होते हैं किन्तु इसकी क्रिया यकृत् की अपेक्षा गर्भाशय पर अधिक होती है। इसका क्वाथ अन्य सुगंधि पदार्थों के साथ अनार्तव एवं पीडितार्तव में दिया जाता है। दाँतों से रक्तस्राव होने पर या दन्तकृमि में इसका उपयोग किया जाता है।

मात्रा—१-२ माशा।

४२ पर्पट (६)

सं०–पर्पटका। **हिं०**–तपझाड। **बं०**–जोलपप्र। **बम्ब०**–खरस। **ले०**–*Mollugo stricta Linn.* (मोल्युगो स्ट्रिक्टा लिन.)। Fam. Ficoidaceae (फिकोइडिसी)।

यह प्रायः सब जगह ऊसर या जोताऊ भूमि में होता है।

इसका क्षुप–(क्षुद्र वनस्पति) ३-१० इञ्च ऊँचा होता है। शाखायें–अनेक, पतली, नालीदार या कोणयुक्त होती हैं। पत्ते–अभिमुख या चक्राभास क्रम में निकले हुये, .५-१.७ इञ्च लम्बे तथा प्रायः मांसल होते हैं। पुष्प–सूक्ष्म, हरित या श्वेत होते हैं। फल–आयताकार और तीन पक्षवाला होता है। इसका स्वाद कड़वा होता है। इसका साग बनाकर खाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह दीपन, आनुलोमिक, विषमज्वरहर एवं आर्तवजनन है। प्रसूता को इसकी साग खिलाई जाती है। इससे भूख बढ़ती है, पाखाना साफ होता है तथा आर्तवशुद्धि होती है। विषमज्वर में भी इसे खिलाते हैं।

अथ निम्बः। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

निम्बः स्यात्पिचुमर्दश्च पिचुमन्दश्च तिक्तकः। अरिष्टः पारिभद्रश्च हिङ्गुनिर्यास इत्यपि॥९३॥
निम्बः शीतो लघुर्ग्राही कटुपाकोऽग्निवातनुत्[1]।
अहृद्यः श्रमतृट्कासज्वरारुचिकृमिप्रणुत्। व्रणपित्तकफच्छर्दिकुष्ठहृल्लासमेहनुत्॥ ९४॥

नीम के नाम तथा गुण–निम्ब, पिचुमर्द, पिचुमन्द, तिक्तक, अरिष्ट, पारिभद्र और हिङ्गुनिर्यास ये सब संस्कृत नाम 'नीम' के हैं। नीम–शीतवीर्य, लघु, ग्राही, पाक में कटुरसयुक्त, जठराग्नि को मन्द करनेवाला, हृदय को अहितकर तथा वात, श्रम, तृषा, खाँसी, ज्वर, अरुचि, कृमि, व्रण, पित्त, कफ, वमन, कुष्ठ, हृल्लास तथा प्रमेह इन सबों का नाशक होता है॥

अथ निम्बस्य पत्रफलयोर्गुणानाह

निम्बपत्रं स्मृतं नेत्र्यं कृमिपित्तविषप्रणुत्। वातलं कटुपाकञ्च सर्वारोचककुष्ठनुत्॥ ९५॥
निम्बफलं रसे तिक्तं पाके तु कटुभेदनम्। स्निग्धं लघूष्णं कुष्ठघ्नं गुल्मार्शःकृमिमेहनुत्॥९६॥

'नीम' के पत्ते तथा फलों के गुण : **नीम के पत्ते**—नेत्र को हितकर, कृमि-पित्त-विष के नाशक, वातकारक, पाक में कटुरसयुक्त तथा सभी प्रकार की अरुचि और कुष्ठ को दूर करने वाले होते हैं। **नीम का फल**–रस में तिक्त तथा पाक में कटु, मल का भेदन करने वाला, स्निग्ध, लघु, उष्णवीर्य. कुष्ठ, गुल्म, बवासीर, कृमि तथा प्रमेह का नाशक होता है॥ ९५-९६॥

---

१. कृत इति पाठा०।

४३ नीम

हिं०–नीम। **बं०**–निम, निमगाछ। **म०**–निंब, लिंब, कडूनिंब, बालंतनिंब। **गु०**–लींबडो, लीमडो। **पं०**–निंब, निम। **उरि०**–नीमो। **ता०**–वेप्पु, वेम्बु। **ते०**–वेप। **मल०**–आर्यवेप्पु, वेप्पू। **क०**–बेविनमर। **अ०**–आजाद दरख्तुल हिंद। **फा०**–नीब। **अं०**–Neem Tree (नीम ट्री), Margosa (मार्गोसा), Indian Lilac (इण्डियन् लिलॅक्)। **ले०**–*Azadirachta indica, A. Juss* (अझाडिरेक्टा इन्डिका, ए. जस); *Melia azadirachta, Linn.* (मेलिआएझाडिरेक्टा, लिन.)। Fam. Meliaceae (मेलिएसी)।

नीम के लगाये वृक्ष इस देश के सभी प्रान्तों में पाये जाते हैं और सभी लोग इसको भली-भाँति जानते हैं। दक्षिण एवं बर्मा के शुष्क जंगलों में यह जंगली स्वरूप में पाया जाता है। यह ४०-५० फीट ऊँचा, अनेक शाखा-प्रशाखाओं से युक्त, सघन और छायादार होता है। छोटी-छोटी टहनियों के अन्त में ८-१५ इञ्च लम्बे असमपक्षवत् पत्ते रहते हैं। पत्रक-संख्या में १४-१९, विपरीत या एकान्तर, टेढ़े, मालाकार, ४-५ अंगुल लम्बे, १-१½ अंगुल चौड़े, नुकीले और दन्तुर होते हैं। वसन्त ऋतु में पुराने पत्ते गिर जाते हैं और नवीन पत्ते निकलने के साथ छोटे छोटे सफेद रंग के सुगंधयुक्त फूलों के गुच्छे लगते हैं। फल–करीब ½ इञ्च खिरनी के समान लम्बाई लिये गोल होते हैं जिसमें एक एक बीज होते हैं। बीजों को निम्बोली कहते हैं। इसकी छाल से एक स्वच्छ, चमकीला अम्बर के वर्ण का गोंद निकलता है।

इसकी छाल करीब १० मि. मि. मोटी, बाहर से भूरे-धूसर वर्ण की, खुरदरी शल्कसम एवं फटी हुई तथा अन्दर से पीताभ, परतदार एवं मोटे रेशों से युक्त होती है।

इसकी छाल, मूलत्वक्, पत्र, गोंद, फल, बीज, पुष्प, ताड़ी एवं तैल का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके काण्डत्वक् में एक कड़ुवा पदार्थ मार्गोसीन (Margosine), निम्बिडिन (Nimbidin, 0·5%), निम्बिन (Nimbin, $C_{28}H_{40}O_8$, 0·03%), निम्बिनिन् (Nimbinin $C_{27}H_{30}O_9$), निम्बोस्टेरोल् एवं पुष्पों में पाये जाने वाले उड़नशील तैल की तरह एक उड़नशील तैल ये पदार्थ पाये जाते हैं। इसमें करीब ६% टॅनिन भी रहता है। इसके बाह्यत्वक् में टॅनिन अधिक रहता है तथा अन्तस्त्वक में कड़ुवे पदार्थ पाये जाते हैं। इसके अन्तस्त्वक् का क्वाथ बनाना चाहिये। इसके पत्तों में भी कड़ुवा पदार्थ रहता है जो छाल की अपेक्षा कम मात्रा में होते हुए भी जल में अधिक मात्रा में एवं जल्दी घुलता है।

इसके बीजों में ३१% तक एक तेल रहता है जो गहरे पीले रंग का, कड़ुवा, तीता एवं दुर्गन्धयुक्त होता है। इसमें करीब २% कड़ुवे पदार्थ रहते हैं जिनमें निम्बिन, निम्बिनिन, निम्बिडिन एवं तैल में घुलनशील एक द्रव निम्बिडोल (Nimbidol, 0·6%) ये पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त इस तैल में ओलिक् ॲसिड (Oleic acid, 49-61·9%), लिनोलिक् ॲसिड (Linoleic acid, 2·12-15%), पामिटिक् ॲसिड् (Palmitic acid, 12·62-15%), स्टियरिक् ॲसिड् (Stearic acid, 14·4-21·3%), ॲरॅचिडिक् ॲसिड् (Arachidic acid, 1·3-1·8%), एवं लिंग्नोसेरिक ॲसिड् (Lignoceric acid, 0·74%) ये रहते हैं। इस तैल के साबुन बनाने लायक भाग से बचे हुए हिस्से में निम्बोस्टेरॉल रहता है।

इस तैल में 0 427% गंधक पाया जाता है। इसके तैल से अत्यन्त कड़ुआ एवं जल में घुलने वाला सोडियम् मार्गोसेट (Sodium margosat*e*, B. C. P. W.) नामक एक लवण बनाया गया है।

गुण और प्रयोग—इसकी अन्दर की छाल शीतल, कडुवी, पौष्टिक, नियतकालिकज्वर-प्रतिबन्धक, ग्राही, त्वग्दोषहर, कृमिघ्न एवं रसायन है। सम्पूर्ण छाल अधिक ग्राही होती है। त्वचा पर निम्बत्वक् की क्रिया सोमल की तरह होती है। इसका ज्वरघ्न गुण सिंकोना की तरह है। इसकी मूलत्वक् कृमिघ्न (आन्त्रिक) मानी जाती है।

इसके पत्ते शोथघ्न, त्वचा के लिये उत्तेजक, त्वग्दोषहर, व्रणशोधक, व्रणरोपक, कृमिघ्न, प्रतिदूषक, यकृतोत्तेजक, कुष्ठहर एवं अधिक मात्रा में वामक होते हैं।

इसका तेल उष्ण, वातहर, प्रतिदूषक, व्रणशोधक, व्रणरोपक, उत्तेजक, केश्य, कृमिघ्न, कुष्ठघ्न एवं रसायन है। निम्ब के सभी अङ्गों की अपेक्षा इसका तैल अधिक प्रभावशाली है।

(१) नीम की छाल का चूर्ण **मलेरिया** के लिये बहुत लाभदायक है। शोथयुक्त ज्वर एवं विषमज्वर तथा ज्वर के पश्चात् दौर्बल्य दूर करने के लिये इसके चूर्ण या क्वाथ का उपयोग किया जाता है। किनीन आदि से जब लाभ नहीं होता तब इसका उपयोग करते हैं। ज्वर में इसके साथ धनियाँ, सोंठ, लौंग, दालचीनी या मिरिच, चिरायता तथा ग्राहीपन कम करने के लिये कुटकी का उपयोग किया जाता है। श्वेतप्रदर में बबूल की छाल एवं नीम की छाल का क्वाथ लाभदायक होता है।

(२) इसके पत्तों का उपयोग त्वचा के विकार, व्रण, क्षत तथा कुष्ठ में किया जाता है। चर्मविकारों में इससे स्नान कराया जाता है। व्रण, पामा, कण्डू, छाजन, अरुंषिका, दूषितव्रण, पुराने व्रण एवं अन्य चर्मविकारों में इससे स्नान कराते हैं, इसके पत्तों को पीस कर बाँधते हैं या इससे सिद्ध घृत का मलहम आदि लगाते हैं। अर्श, बद, गांठ एवं व्रणशोथ में इसका पोल्टिस बाँधा जाता है। विचर्चिका (Weeping eczema) में यदि इसके पत्तों को पीस कर बाँध दें और जब तक अपने से निकले नहीं तब तक रहने दें तो बहुत जल्दी लाभ होता है। कुष्ठ में इसके पञ्चाङ्ग के चूर्ण या क्वाथ का स्नान, पान एवं लेपादि में उपयोग होता है। इसके पत्तों को पीस कर आँवला या हरीतकी के साथ खाने से कुष्ठ में लाभ होता है। यद्यपि इसके पत्तों का स्वरस आन्त्र के कृमियों (केंचुआ) में लाभदायक माना जाता है तथापि श्रीकेस और म्हसकर का मत है कि ४ ड्राम की मात्रा में इसके प्रयोग से कोई लाभ नहीं हुआ। इसके देने के पहले और पश्चात् विरेचन नहीं दिया गया था। फिरंग में इसका रस १ पाव की मात्रा में सुबह शाम पिलाते हैं। सोजाक में शिश्न में शोथ होकर मूत्र रुकता है तब इसके क्वाथ में रोगी को बैठाते हैं जिससे पेशाब होने लगती है। कामला में अधिक मात्रा में इसका स्वरस मधु के साथ सुबह पिलाया जाता है। इसके साथ सोंठ भी देते हैं। कभी-कभी अधिक मात्रा से वमन हो जाता है। प्रसूता को प्रथम दिन से ही इसका स्वरस देने से हर प्रकार से लाभ होता है। इससे गर्भाशय का संकोच होकर स्राव की शुद्धि होती है एवं शोथ कम होता है। भूख लगना, पाखाना साफ होना, ज्वर न आना या कम आना एवं बच्चे का स्वास्थ्य अच्छा रहना ये सब लाभ इसके देने से होते हैं। मसूरिका (Small pox) में इसके पत्तों से हवा की जाती है एवं रोगी के बिस्तर पर इसको बिछाते हैं। इसके कोमल पत्तों की दो रत्ती की गोली बना कर मुलेठी के साथ देने से लाभ होता है। पत्तों को पुस्तक तथा कपड़े आदि में रखने से कीड़े नहीं लगते। ज्वर में घृत एवं मधु के साथ इसके पत्तों का धूप दिया जाता है।

(३) इसके तैल का कुष्ठ फिरंग, श्लीपद, व्रण, दूषितव्रण, गण्डमाला, आमवात एवं विषमज्वर में उपयोग किया जाता है। कुष्ठ, फिरंग, त्वचा के रोग एवं विषमज्वर आदि में इसको ५–१० बूँद की मात्रा में दिन में २ बार देते हैं। इसका बाह्य प्रयोग भी करते हैं।

अपची, नाडीव्रण, पामा, कण्डू, छाजन, दद्रु, विसर्प, आमवात, उदर्द, शीतपित्त एवं दूषित व्रण में तैल को लगाते हैं। कुष्ठव्रण में इसके साथ चौलमोगरा का तैल मिलाकर लगाते हैं। तैल से दाह होने पर इसमें ½ तिलतैल मिलाकर उपयोग करना चाहिये। आमवात में इसकी मालिश के साथ-साथ इसका आन्तरिक प्रयोग भी किया जाता है। शिरःशूल में सर पर इसको मलते हैं। खालित्य एवं पालित्य में इसके नस्य का विधान है। आन्त्रिक कृमि में पत्रस्वरस की तरह इसके तैल को १–४ ड्राम की मात्रा में देने से लाभ नहीं देखा गया, यद्यपि पूर्ण मात्रा से किसी किसी में अतिसार, हृल्लास तथा बेचैनी होती है।

इसके तैल से बने हुए लवण सोडियम या पोटेशियम् मार्गोसेट (Margosate) का उपयोग त्वचा, मांसपेशी तथा सिरा के द्वारा किया जाता है। इसका शरीर में जीवाणुविरोधी कार्य होता है। पामा (Scabies), छाजन (Eczema) एवं स्फोट (Pemphigus) में इससे अच्छा लाभ होता है। फिरंग की प्रथम एवं द्वितीयावस्था में चिकित्सा जिनमें नहीं की गई उनकी अपेक्षा इसके द्वारा अधिक लाभ होता है। इसमें इसे ०.०१–०.३२ ग्राम सूचिकाभरण द्वारा दिया जाता है। फिरंग की तृतीयावस्था या द्वितीयावस्था के अन्त के ग्रन्थि (गमा) तथा त्वचा के विकार इससे जल्दी अच्छे होते हैं, यद्यपि इसका परिणाम पाश्चात्य चिकित्सा की अन्य पारद, आयोडाइड आदि औषधियों के इतना संतोषजनक नहीं होता। कुष्ठ एवं फिरंगादि में तैल की अपेक्षा इसके सूचिकाभरण एवं मार्गोसिक् ॲसिड के स्थानिक प्रयोग से अधिक लाभ होता है।

(४) इसके फल विरेचक एवं स्नेहन हैं तथा कृमि, अर्श एवं मूत्रविकार में इनका उपयोग करते हैं। अर्श में इसके बीज को गुड़ के साथ खिलाते हैं।

(५) इसके पुष्प का फांट ज्वर के पश्चात् बल्यरूप में एवं पाचन की खराबी में देते हैं।

(६) इसकी ताड़ी में शर्करा, ॲल्ब्युमिन, गोंद एवं लौह, खटिक तथा अल्युमिनिअम् के लवण होते हैं। यह दीपन, पोषक, बलप्रद, कृमिघ्न, रसायन एवं चर्मविकारों में लाभदायक मानी जाती है।

मात्रा—अन्तस्त्वक् चूर्ण २–४ माशा; स्वरस ½–१ छटाँक; तैल ५–१० बूँद।

अथ महानिम्बः। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

महानिम्बः स्मृतो द्रेका रम्यको विषमुष्टिकः। केशमुष्टिर्निम्बकश्च कार्मुको जीव इत्यपि ॥९७॥
महानिम्बो हिमो रूक्षस्तिक्तो ग्राही कषायकः ॥ ९८ ॥
कफपित्तभ्रमच्छर्दिकुष्ठहृल्लासरक्तजित्। प्रमेहश्वासगुल्मार्शोमूषिकाविषनाशनः ॥ ९९ ॥

महानिम्ब के नाम तथा गुण—महानिम्ब, द्रेका, रम्यक, विषमुष्टिक, केशमुष्टि, निम्बक, कार्मुक और जीव ये सब संस्कृत नाम 'बकायन' के हैं। बकायन—शीतवीर्य, रूक्ष, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त और ग्राही (मलावरोधक) होता है। यह कफ, पित्त, भ्रम, वमन, कुष्ठ, हृल्लास, रक्तदोष, प्रमेह, श्वास, गुल्म, बवासीर और चूहे का विष इन सबों का नाशक होता है॥

नोट—महानिंब के विषय में कुछ भ्रम है। भावप्रकाश, धन्वन्तरि एवं मदनपाल निघंटुओं में निंब तथा महानिंब ये दो भेद मिलते हैं। राजनिघंटु में एक तृतीय भेद कैडर्य का उल्लेख किया है। कैडर्य नाम कायफल के लिये आता है। किन्तु टीकाकारों ने उसका अर्थ पर्वतनिंब भी किया है। चरक एवं सुश्रुत में 'पर्वतनिंब' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। कुछ लोगों ने कैडर्य को

मीठा नीम, ले०–मुरया कोनिजीआई स्प्रेंग (Murraya koenigii Spreng) माना है किन्तु रा० नि० ने कैडर्य का स्वाद कटु तिक्त कषाय लिखा है। एइलेन्थस् एक्सेल्सा राक्स (Ailanthus excelsa Roxb) को कुछ लोगों ने महानिंब माना है जिसको पंजाबी में 'अरुअ' कहने के कारण कुछ लोग अरलू के स्थान पर प्रयोग करते हैं या अरलू (श्योनाक) का भेद मानते हैं। अधिकांश लोगों ने बकायन को, जिसका ले०–नाम मेलिआ एझेडॅरॅक् (Melia azedarach) है उसे महानिंब माना है। निघंटुओं में महानिंब का पर्याय 'द्रेका' दिया हुआ है तथा बकायन को पंजाब में ड्रेक कहते भी हैं। अर्श में महानिम्ब का प्रयोग वाग्भट ने किया है (चि० अ० ८) एवं वैद्य तथा हकीमी में बकायन के फलों का प्रयोग प्रचलित है। महानिंब का 'अक्षीर' यह पर्याय अन्य निघंटुओं ने दिया है तथा निंब का पर्याय 'हिंगुनिर्यास' दिया हुआ है जो क्रमशः बकायन एवं नीम की ओर संकेत करते हैं। सुश्रुत में पिप्पल्यादिगण (सू० अ० ३८) में महानिंब के फल का एवं अधोभागहरवर्ग (सू० अ० ३९) में 'रम्यक' नाम से इसकी त्वचा का उल्लेख है।

आकाश नीम—नीम चमेली नामक वृक्ष होता है। इसका लेटिन नाम मिलिंगटोनिया हॉर्टेन्सिस् लिन, (Millingtonia hortensis Linn. fi; Fam. Bignoniaceae) है। इसके सुन्दर ऊँचे वृक्ष होते हैं जो बगीचों में इसके सुन्दर पत्र एवं श्वेत सुगंधित पुष्पों के लिये लगाये जाते हैं। इसमें एक तिक्त द्रव्य तथा टॅनिन् होता है तथा ज्वरघ्न गुण के लिये इसका प्रयोग करते हैं।

यहाँ पर दोनों प्रकार के महानिम्बों का वर्णन अलग-अलग किया गया है।

४४ (क) महानिंब (बकायन)

हिं०–बकायन, बकाइन, महानीम। **बं०**–घोड़ानिम, महानिम। **म०**–बकाणानिंब। **गु०**–बकानलिंबडो। **क०**–बेट्टदबेउ। **ते०**–तुरक वेपक, कोंड वेप। **ता०**–मलैवेम्बु। **पं०**–द्रेक, धरेक, बकइन। **कोल०**–गरनिम। **आसाम०**–थमगा। **ने०**–बकैनु। **सिन्धु०**–बकयुन, ड्रेक। **फा०**–आजाद दरख्त। **अ०**–बान्, हबींत। **अं०**–Persian Lilac (पर्शियन् लिलॅक्); The Bead Tree (बीड ट्री)। **ले०**–*Melia azedarach Linn.* (मेलिआ एझेडॅरॅक् लिन)। *Fam.* Meliaceae (मेलिएसी)।

प्रायः सब प्रान्तों में इसका वृक्ष पाया जाता है। बकायन का वृक्ष सुन्दर, मध्यमाकार का, नीम वृक्ष से छोटा और अचिरस्थायी होता है। नीम के पत्तों के समान इसके भी पत्ते होते हैं। **पत्ते**–प्रायः त्रिपक्षवत्, २ फीट लम्बे और शाखाओं पर दलबद्ध होकर रहते हैं। **पत्रक**–प्रासवत्, आरावत् दन्तुर, लम्बाग्र, नीम जैसे किन्तु उससे कुछ कम लम्बे तथा कम मुड़े हुए होते हैं। **पुष्प**–लिलॅक (Lilac) एवं सुगन्धित रहते हैं जिसके आभ्यंतर दल फैले हुए, श्वेत या बैंगनी रंग के होते हैं तथा बीच में पुंकेसरों की गहरे बैंगनी रंग की नलिका रहती है। **फल**–नीम की तरह अष्ठिल फल प्रायः १ इञ्च से कम लम्बे होते हैं। **बीज**–प्रत्येक फल में ५ बीज होते हैं जिनके बीच में मणि के समान छिद्र होता है जिसके कारण इनकी माला बनाई जाती है।

इसके मूल की ताजी अन्तस्त्वक्, पुष्प, फलमज्जा एवं पत्र का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसकी अन्तस्त्वक् में हलके पीतवर्ण का, कडुवा तथा राल की तरह का पदार्थ रहता है जो उबलते जल में घुलता है। बाह्यत्वक् में टॅनिन् रहता है। इसमें शर्करा भी पाई जाती है।

गुण और प्रयोग—बकायन के गुण साधारणतः नीम के समान हैं। यह कृमिघ्न, त्वग्दोषहर, गर्भाशयसंकोचक, वेदनाहर, अर्शोघ्न एवं शोथन है। अधिक मात्रा में यह वामक, विरेचक एवं संज्ञानाशन है। इससे केंचुए मरते हैं।

प्रसूता में शिरःशूल एवं गर्भाशयपीडा कम करने के लिये इसके पुष्पों को पीसकर सर पर एवं पेडू पर बाँधते हैं। रक्तविकार के कारण उत्पन्न कुष्ठ, गण्डमाला एवं खालित्य आदि त्वचा के विकारों में इसके बीज, छाल या पत्रस्वरस को देते हैं। अर्श में इसके फल की मज्जा का उपयोग किया जाता है। इसके पुष्प एवं पत्तों को पीसकर स्नायविक शिरःशूल में लेप करते हैं। इसके पत्तों का क्वाथ हिस्टीरिया में पिलाते हैं।

मात्रा—छाल ३ से ६ माशा; फलमज्जा २ से ८ रत्ती।

४५ (ख) महानिंब

हिं०–महानिंब, घोडाकरंज। **बं०**–महानिम। **म०**–महारूख। **गु०**–मोटो अडुंसो, अरलबो। **पं०**–अरूअ। **ता०**–पेरुमरुत्तु। **ते०**–पेद्दमानु। **क०**–दोड्डुमणि। **मल०**–पेरुमरम्। **उरि०**–महानिम, महाल। **ले०**–*Ailanthus excelsa Roxb.* (एइलेन्थस् एक्सेल्सा राक्स)। Fam. Simarubaceae (सिमारुबेसी)।

यह भारत के कई प्रान्त—उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिमी पेनिनसुला, कर्नाटक एवं गुजरात आदि में पाया जाता है।

इसका वृक्ष ६० से ८० फीट ऊँचा होता है। **छाल**–धूसर वर्ण की होती है। **पत्ते**–२–३ फीट लंबे, पक्षवत्, संयुक्त पत्र होते हैं। **पत्रक**–२½″–६″ लंबे, २–३″ चौड़े, अधरतल पर रोमश, नोकदार, दन्तुर धारवाले, तिरछे आधारवाले, संख्या में १०–१२ जोड़े, १–२″ लंबे वृन्त से युक्त एवं आधार के पास दो रोमश ग्रंथियों से युक्त होते हैं। पत्तों में उग्र गंध आती है। **पुष्प**–पीताभ, बड़ी-बड़ी मंजरियों में आते हैं। **फल**–छीमी की तरह बीच से फूला हुआ एवं अन्त में अकुड़ेदार होता है जिसमें एक बीज रहता है। इसकी लकड़ी हलकी तथा मुलायम होती है।

इसकी छाल का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। इसमें गन्ध नहीं होती किन्तु इसका स्वाद बहुत कडवा होता है। यह मोटी, खुरदरी तथा रवेदार होती है। इसका बाह्यभाग तथा अन्दर का भाग पीताभ श्वेत रहता है तथा अन्दर रेशे मालूम होते हैं। भिगाने से यह फूलती है, चिपचिपी होती है तथा उसमें अप्रिय गन्ध आती है।

इसे कुछ लोगों ने महानिंब तथा कुछ लोगों ने श्योनाक-भेद माना है।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में एइलेन्टिक् ॲसिड (Ailantic acid) नामक एक अत्यन्त कडुआ, रक्ताभ भूरे रंग का पदार्थ पाया जाता है जो जल में आसानी से घुल जाता है किन्तु मद्यसार में आसानी से नहीं घुलता।

गुण और प्रयोग—यह कडुआ, पौष्टिक, दीपन, ग्राही एवं ज्वरहर है। इसका प्रभाव कुरैया के समान होता है।

प्रसूता को इसके पत्रस्वरस या ताजी छाल के रस को नारियल के दूध, गुड़, मधु एवं सुगंधित पदार्थों के साथ खीर बनाकर देने से प्रसवपश्चात् पीडा कम होती है। इसकी छाल एवं पत्तों का क्वाथ प्रसवपश्चात् दौर्बल्य के लिये बल्यरूप में देते हैं। जीर्णज्वर या दौर्बल्य में इसके प्रयोग से बल बढ़ता है। अग्निमांद्य में इसके छाल का रस १½ औं० की मात्रा में दिन में दो बार

देते हैं। एइलेन्टिक् एसिड को बल्य एवं रसायनरूप में ३-१३ र० की मात्रा में दिया जाता है किन्तु अधिक मात्रा में इससे हृल्लास, वमन एवं विरेचन होता है।

मात्रा—१/४-१/२ तो०।

अथ पारिभद्रः (फरहद)। तस्य नामानि तत्पत्रस्य च गुणाँश्चाह

पारिभद्रो निम्बतरुर्मन्दारः पारिजातकः।

पारिभद्रोऽनिलश्लेष्मशोथमेदःकृमिप्रणुत्। तत्पत्रं पित्तरोगघ्नं कर्णव्याधिविनाशनम्[1] ॥१००॥

फरहद के नाम तथा गुण—पारिभद्र, निंबतरु, मन्दार और पारिजातक ये सब संस्कृत नाम फरहद के हैं। **फरहद**—वायु, कफ, शोथ, मेदरोग और कृमि का नाशक होता है। **इसके पत्ते**—पित्तरोग तथा कान के रोगों को दूर करने वाले होते हैं॥ १०० ॥

नोट—पारिभद्र के जो पर्याय निंबतरु, मंदार एवं पारिजातक दिये हुये हैं उनसे कुछ भ्रम उत्पन्न होता है। इसी प्रकार देवदार एवं पर्वतनिंब के लिये भी पारिभद्र नाम का उपयोग किया गया है। पारिभद्र से अधिकांश विद्वान् फरहद का ग्रहण करते हैं। संदर्भ के आधार पर या टीकाकारों के मतानुसार पारिभद्र का अर्थ निंब, देवदार या पारिजातक किया जा सकता है। पारिजाता यह नाम हरसिंगार के लिये अधिक प्रचलित होने के कारण एवं पारिभद्र का पारिजातक यह पर्याय होने के कारण हरसिंगार को ही कुछ लोग पारिभद्र मानते हैं। कुछ विद्वानों के मत से हरसिंगार 'शेफालिका' हो सकती है किन्तु भावप्रकाशकार तथा अन्य निघंटुकारों ने शेफाली(लिका) को निर्गुण्डीभेद लिखा है।

पारिभद्रक नाम से सुश्रुत ने पूतनाप्रतिषेध (उ. अ. ३२-३) के लिये एवं कृमि (उ. अ. ५४-२६) के लिये उपयोग लिखा है। पारिजातक नाम से प्लीहोदर (चि. १४-१२) में एवं पारिजात नाम से उदकमेह (चि. ११-८) में उल्लेख है। यहाँ पर फरहद एवं हरसिंगार दोनों का अलग-अलग वर्णन किया गया है।

४६ फरहद

हि०-फरहद, पांगारा। **बं०**-पाल् ते मादार। **म०**-पाङ्गारा। **गु०**-पांडेरवो, पनरवो। **क०**-होंगर, हलिवाणदमर। **ते०**-मोदुगो, बरिदे चेट्टु, वारिजमु। **ता०**-कल्याण मुरुक्क। **अं०**-Coral Tree (कोरल ट्री)। **ले०**-*Erythrina indica Lam.* (एरिथ्रिना इण्डिका लॅम्.)। Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में कहीं न कहीं पाया जाता है, विशेषकर कोंकण और उत्तर कनारा में अधिक मिलता है।

इसका वृक्ष मध्यमाकार का, शीघ्रता से बढ़ने वाला तथा समय पाकर नष्ट हो जाने वाला होता है। कोमल डालियों पर सीधे, काले रङ्ग के तीक्ष्ण काँटे रहते हैं। **छाल**-चिकनी तथा हरी, भूरी, हलकी पीली या श्वेत खड़ी रेखाओं से युक्त एवं पतली पपड़ियाँ छूटने पर हरी होती है। **पत्ते**-पलाशपत्र के समान त्रिदल होते हैं। पत्रक ४-६ इञ्च के घेरे में गोलाकार और किञ्चित् नुकीले होते हैं। अग्र का पत्रक सबसे बड़ा होता है। पुष्पदंड ४ इञ्च लम्बा और मंजरी प्रायः ६ इञ्च लम्बी होती है। **फूल**-अत्यन्त रक्त वर्ण के सुहावने दिखाई पड़ते हैं। पुष्प का बाह्यकोश एक ओर मूल तक फट जाता है और अग्र पर पाँच दाँत बन जाते हैं। आभ्यंतर दल पाँच होते हैं

[1] पुष्पं पित्तरुजं हन्ति कर्णव्याधिं विनाशयेत्॥ (नि. र.)

जिनमें एक सबसे बड़ा होता है। इनके बीच से लाल पुंकेसरों का गुच्छा निकला रहता है। इनमें गन्ध नहीं होती। **फलियाँ**-६-१० इञ्च लम्बी, चिपटी, चोंचदार, किंचित् टेढ़ी, ताजी अवस्था में हरी किन्तु बाद में काली हो जाती हैं। **बीज**-संख्या में ६-१२, चिकने, भूरे या लाल, अंडाकार तथा करीब १ इञ्च बड़े होते हैं।

इसी का एक उपभेद होता है जिसके पुष्प मटमैले श्वेताभ रंग के होते हैं।

इसकी दूसरी जाति ए. सुबरोजा राक्स. (E. suberosa Roxb.), धवलढाक-उत्तर-भारत में अधिक होती है। इसके वृक्ष छोटे होते हैं। इसकी छाल मोटी कार्क वाली, पत्रक चौड़े लट्वाकार या तिर्यगायताकार एवं पुष्प का बाह्यकोश द्वयोष्ठक होता है।

फरहद की छाल एवं पत्र का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। छाल हृल्लासकारक तो होती है किन्तु कड़वी नहीं होती।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में दो प्रकार की राल एवं एक कड़वा एरिथेराइन (Erytherine) नामक विषैला क्षाराभ पाया जाता है जो कुचले के क्षाराभ स्ट्रिक्नीन (Strychnine) के विषैले प्रभाव का निवारक (Antidote) माना जाता है। यह क्षाराभ पत्तों में भी पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—फरहद की छाल ज्वरहर, ग्राही, बल्य, कृमिघ्न, स्वप्नजनन एवं शोथहर होती है। इसके पत्ते मूत्रल, मृदुविरेचक, आर्तवजनन, दुग्धवर्धक, शोथहर, व्रणशोधक एवं कृमिघ्न होते हैं। केन्द्रीयवातनाडीसंस्थान के ऊपर इसकी छाल का शामक प्रभाव पड़ने के कारण उसकी क्रिया कम होती है या बन्द होती है। हृदय पर भी इसका शामक प्रभाव पड़ता है। कुचले के प्रभाव के विरुद्ध इसका प्रभाव पड़ता है।

इसकी छाल को रक्तयुक्त आँव, ज्वर तथा निद्रा लाने के लिये प्रयोग करते हैं। नेत्राभिष्यंद में छाल को पीसकर पलकों पर लगाते हैं। इसकी छाल के अन्दर के भाग पर घी लगाकर तथा उस पर घी के दिये का काजल जमाकर इसका नेत्र के विकारों में अञ्जन कराया जाता है। वाजीकरण के लिये सफेद फूल के फरहद की कोमल जड़ को पीस कर शीतल दूध के साथ पिलाते हैं।

इसके पत्तों का स्वरस फिरंग, उपदंश, ज्वर, अनार्तव, कष्टार्तव, मूत्रकृच्छ्र एवं कृमि में पिलाया जाता है। व्रणप्रक्षालन के लिये एवं कर्णशूल, दंतशूल आदि के लिये भी इसका उपयोग करते हैं। पत्तों का लेप शोथ, बद, संधिपीडा तथा व्रण पर किया जाता है। इससे वेदना कम होती है। आर्तवशुद्धि तथा दुग्धवृद्धि के लिये नारियल के दूध के साथ इसके पत्तों को उबालकर बनाया हुआ क्वाथ प्रसूता को पिलाया जाता है।

मात्रा—त्वक्चूर्ण ३-१ तो०; पत्रस्वरस ३-१ तो०।

४७ पारिजाता, हरसिंगार

सं०-शेफालिका। **हि०**-हरसिंगार, पारिजाता, कूरी, सिहारु। **बं०**-शेफालिका, शिउली। **म०**-पारिजातक। **गु०**-हारशणगार। **पं०**-कूरी, पकर। **ता०**-पवलमल्लिकै। **ते०**-पगडमल्ले। **मल०**-पविझमल्लि। **क०**-पारिजात। **अं०**-Night Jasmine (नाइट जस्मीन); Weeping Nyctanthes (वीपिंग् निक्टेन्थिस्); Tree of Sorrow (ट्री ऑफ् सारो)। **ले०**-*Nyctanthes arbor-tristis, Linn.* (निक्टॅन्थिस् आर्बोर्-ट्रिस्टिस्, लिन.)। Fam. Oleaceae (ओलिएसी)।

यह मध्यभारत तथा हिमालय के निचले प्रदेशों में बहुत होता है। यह प्रायः सब प्रांतों के बागों में लगाया हुआ मिलता है।

इसका **वृक्ष**—छोटा, झाड़ीदार तथा कभी-कभी २५-३० फीट ऊँचा होता है। **छाल**—हलके भूरे रंग की तथा खुरदरी होती है। **काष्ठ**—श्वेत तथा हरित हलके लाल या पीताभ भूरे रंग का होता है। **पत्ते**—जपापत्र की तरह, करीब ४ इञ्च लम्बे, २½ इञ्च चौड़े, विपरीत, स्पर्श में अत्यन्त रूक्ष (खर), नुकीले, अंडाकार, आधार को तरफ गोल, नीचे का पृष्ठ मृदुरोमश, पत्रतट अखंड या दूर-दूर पर कुछ दन्तुर एवं मजबूत पर्णवृन्त से युक्त होते हैं। **पुष्प**—अत्यन्त सुगन्धित होते हैं। इनकी पंखड़ियाँ श्वेत एवं पुष्पवृन्त केसरिया वर्ण के होते हैं। ये रात को खिलते हैं तथा सुबह झड़ जाते हैं। **फल**—चिपटे, गोल, हरे रंग के, करीब ¾ इञ्च व्यास के एवं किनारे पर दबे हुए रहते हैं। बाद में ये भिदुर एवं भूरे रंग के हो जाते हैं। **बीज**—छोटे, दो, चिपटे तथा अंडाकार होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके पुष्पों में एक सुगंधित उड़नशील तैल रहता है। पुष्पवृन्त से एक प्रकार का रंग निकाला जाता है जिससे रेशमी वस्त्र रंगा जाता है। इसके पत्तों में एक निक्टेन्थाइन (Nyctanthine) नामक क्षाराभ पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—पारिजातक ज्वरघ्न, कफघ्न, यकृत् उत्तेजक, मृदुविरेचक एवं शामक है। इसके पत्र सॅन्टोनिन् (Santonin) जैसे कृमिघ्न, ज्वरघ्न, तिक्तपौष्टिक, पित्तद्रावक एवं मृदुविरेचक होते हैं। बच्चों के लिये इसके पत्तों का स्वरस अच्छा मृदुविरेचक होता है।

(१) इसके पत्तों का (शेफालिकादलैः) मंद आंच पर बनाया हुआ क्वाथ गृध्रसी (Sciatica) के लिये बहुत लाभदायक माना जाता है (चक्रदत्त)। शेफालिका यह नाम नीलनिर्गुण्डी के पर्याय में आया हुआ है तथा व्यवहार में निर्गुण्डी का उपयोग गृध्रसी में किया जाता है। इस दृष्टि से हरसिंगार के पत्तों की अपेक्षा निर्गुण्डी का प्रयोग उचित मालूम पड़ता है।

(२) जीर्ण ज्वर के लिये इसके ७-८ कोमल पत्तों का स्वरस, आर्द्रकस्वरस एवं मधु मिलाकर देते हैं। मलेरिया में यह बहुत लाभदायक है। जीर्ण मलेरिया में इसके साथ त्रिकटु का प्रयोग उचित है। इससे यकृत् एवं प्लीहावृद्धि कम होती है। पाण्डु होने पर इसके साथ लौह का प्रयोग किया जाता है। इसके सेवन के समय पथ्य में दुग्ध, घृत एवं शर्करा का अधिक उपयोग किया जाता है।

(३) बच्चों के कृमि (केंचुए) के लिये पत्तों के स्वरस को चीनी मिलाकर देते हैं।

(४) खांसी तथा दमा में इसकी छाल के चूर्ण को १-२ र० की मात्रा में पान में रखकर दिन में ३-४ बार देने से कफ का चिपचिपापन कम होता है।

(५) इसके बीजों को जल में पीसकर सर के गंज पर लगाते हैं जिससे नये बाल उगते हैं।

मात्रा—पत्र २-४; छालचूर्ण १-२ र०।

अथ काञ्चनारो रक्तकाञ्चनारश्च, तयोर्नामानि तत्पुष्पस्य गुणाँश्चाह

काञ्चनारः काञ्चनको गण्डारिः शोणपुष्पकः ॥ १०१ ॥
कोविदारश्च मरिकः कुद्दालो युगपत्रकः।
कुण्डली ताम्रपुष्पश्चाश्मन्तकः स्वल्पकेशरी ॥ १०२ ॥
काञ्चनारो हिमो ग्राही तुवरः श्लेष्मपित्तनुत्। कृमिकुष्ठगुदभ्रंशगण्डमालाव्रणापहः ॥१०३॥

कोविदारोऽपि तद्वत्स्यात्तयोः पुष्पं लघु स्मृतम्।
रूक्षं संग्राहि पित्तास्रप्रदरक्षयकासनुत् ॥ १०४ ॥

कचनार तथा लाल कचनार के नाम और गुण—काञ्चनार, काञ्चनक, गण्डारि और शोणपुष्पक ये सब संस्कृत नाम कचनार के हैं। कचनारभेद कोविदार के संस्कृत नाम—कोविदार, मरिक, कुद्दाल, युगपत्रक, कुण्डली, ताम्रपुष्प, अश्मन्तक और स्वल्पकेशरी ये सब हैं। **कचनार**—शीतवीर्य, मलावरोधक, कषायरसयुक्त, कफ, पित्त, कृमि, कुष्ठ, गुदभ्रंश, गण्डमाला और व्रण को दूर करनेवाला होता है। इसी प्रकार से कचनारभेद कोविदार के भी गुण हैं। दोनों कचनारों के फूल-लघु, रूक्ष, मलावरोधक एवं पित्त, रक्त-प्रदर, क्षय तथा कास (खांसी) को दूर करने वाले होते हैं ॥ १०१–१०४ ॥

नोट—भावप्रकाशकार ने काञ्चनार एवं कोविदार ये दो भेद लिखे हैं किन्तु दोनों के गुण समान ही लिखे हैं। रा० नि० एवं ध० नि० ने कोविदार एवं काञ्चनार ये पर्यायरूप में लिये हैं किन्तु रा० नि० ने इसके 'पीत पुष्प', 'गिरिज', 'महापुष्प' आदि अन्य पर्यायों का भी उल्लेख किया है। नि० र० ने पीत, रक्त एवं श्वेत ये ३ भेद दिये हैं तथा उनके गुणों का स्वतंत्र उल्लेख किया है।

आधुनिक उद्भिदवेत्ताओं ने भी इसकी कई जातियों का उल्लेख किया है। बौहिनिआ वेरिगेटा (Bauhinia variegata) को अधिकांश लोगों ने काञ्चनार माना है। इसके पुष्प चमकीले बैंगनी, गुलाबी, किरमिजी, श्वेत आदि रंगों के होते हैं। इसी प्रकार बौहिनिआ पर्प्यूरिआ (B. purpurea) को कोविदार मानते हैं क्योंकि इसको कहीं-कहीं स्थानिक भाषा में कोइलार कहते हैं जो संभवतः कोविदार का अपभ्रंश है। इसके पुष्प गहरे गुलाबी, नीलारुण या चमकीले बैंगनी आदि रंगों के होते हैं। इससे ऐसा मालूम होता है कि केवल पुष्पवर्ण के आधार पर कोविदार या काञ्चनार का भेद नहीं किया जा सकता। वास्तव में इनके गुणों में अन्तर न होने के कारण इसकी आवश्यकता भी नहीं है। वैसे तो ध० नि० एवं रा० नि० ने इन्हें पर्याय ही माना है। कुछ लोगों ने श्वेत पुष्प को काञ्चनार एवं रक्तपुष्प को कोविदार माना है:

बौ० टोमेन्टोसा (B. tomentosa) के पुष्प पीतवर्ण के होते हैं।

भावप्रकाशकार ने कोविदार के पर्याय में अश्मंतक का उल्लेख किया है। रा० नि० एवं ध० नि० दोनों ने अश्मंतक का कोविदार से अलग स्वतंत्र वर्णन किया है। श्री ठा० बलवन्तसिंह जी 'बिहार की वनस्पतियां, नामक पुस्तक में लिखते हैं, 'उपर्युक्त दोनों जातियों को [इसी वर्ग के बौ० रेसिमोसा लॅम. (B. racemosa Lam.) एवं बौ० मलबारिका राक्स. (B. malabarice Roxb.)] कुछ ग्रन्थकारों ने प्राचीनों का अश्मंतक माना है, परन्तु इसमें सन्देह है।'

४८ कचनार

(क) हिं०-कचनार, कञ्चनार, कचनाल, गोरिआव। बं०-काञ्चन, रक्त काञ्चन। कोल०-जुरजु, बुज, बुरंग। म०-कोरल, काञ्चन। सन्ता०-झिंजर। गु०-चम्पाकाटी। ने०-टकी। मल०-चुवन्नमंदारम्। क०-केंयुमन्दार। ते०-देवकाञ्चनमु। ता०-सेगपुमुन्थरी। अं०-Mountain Ebony (माउन्टेन् एबोनी)। ले०-*Bauhinia variegata Linn.* (बौहिनिया वेरिगेटा लिन.)। Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी)।

यह हिमालय के निचले प्रदेशों में, सिकमं की ओर तथा सब प्रान्तों में उत्पन्न होता है। इसका वृक्ष मध्यमाकार का अचिरस्थायी होता है। छाल-भूरे रङ्ग की और लकड़ी-किञ्चित

भूरापन युक्त बादामी रङ्ग की होती है। **पत्ते**-एकान्तर, ३-६ इञ्च लंबे तथा उतने ही चौड़े, द्विखण्डित, खण्ड लगभग चौथाई या तिहाई दूरी तक गहरे (युग्मपत्र), पत्राग्र गोल, पंखे की तरह फैली हुई संख्या में १३-१५ शिराओं वाले एवं करीब एक इञ्च लंबे वृन्त से युक्त होते हैं। **पुष्प**-शीत ऋतु में पत्ते गिर जाने के पश्चात् ही सुगंधित पुष्प गिरे हुए पत्तों के कोणों से निकले रहते हैं। पुष्पदंड छोटे तथा आपत्र या नीलारुण रंग के होते हैं। कलिकाएँ घेरे में गोलाई लिये होती हैं। **पुष्प**-बड़े, श्वेत, गुलाबी, चमकीले बैंगनी तथा किरमिजी रङ्ग के होते हैं। श्वेत पुष्पों का एक या अधिक दलपत्र चित्रित पीतवर्ण का होता है। दलपत्रों में मजबूत मध्यशिरा होती है और आधार से लाल बैंगनी रंग की शिराएँ निकली रहती हैं। **फली**-लंबी, चिपटी कुछ मुड़ी हुई, करीब १ फुट तक लंबी एवं १०-१५ बीजों से युक्त होती है।

(ख) सं०-कोविदार। **हिं०**-कोविदार, खैरवाल, सोना, कोइना (ला) र। **बं०**-देवकाञ्चन, रक्तकाञ्चन। **संथा०**-सिंहरा। **ता०**-मंदारि, पेद्दाआरि। **ते०**-कांचनम्। **ले०**-*Bauhinia purpurea Linn.* (बौहिनिआ पर्प्युरिआ लिन.)।

इसके भी (क) की तरह के ही मध्यम ऊँचाई के वृक्ष होते हैं। ये छोटे रहने पर ही फूलने-फलने लगते हैं। **पत्ते**-बहुत गहराई तक कटे हुए, आयताकार, ५-७ इञ्च लम्बे, खंड के अग्र प्रायः कोणीय एवं पत्रसिराएँ ९-११ रहती हैं। **पुष्प**-पुष्पकलिका गहरे हरे या भूरे रंग की एवं पाँच कोणों से युक्त होती है। पुष्प (क) की अपेक्षा छोटे, पाँच दलपत्रों से युक्त, चमकीले बैंगनी, नीलारुण या गहरे गुलाबी रंग के होते हैं। काञ्चनार तथा कोविदार दोनों में बाह्यनाल लंबा और पूर्ण पुंकेशर ३-५ होते हैं। **फली**-लम्बी हरिताभ बैंगनी रंग की होती है। इसकी जड़ विषैली होती है।

(ग) सं०-पीत कोविदार। **ता०**-तिरुवत्ती। **ते०**-कांचीनो। **म०**-सोन। **सिलो०**-कहपेतन। **ले०**-*Bauhinia tomentosa Linn.* (बौहिनिया टोमेन्टोसा लिन.)।

यह लंका में अधिक होता है। इसके पुष्प पीतवर्ण के किन्तु आधार की तरफ कुछ हलके भूरे या किरमिजी रंग के धब्बों से युक्त होते हैं।

सभी की छाल, पत्र एवं पुष्पों का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। कोमल कलिकाओं का शाक बनाया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में टैनिन होता है। इससे एक प्रकार का गोंद भी निकलता है।

गुण और प्रयोग—कांचनार की छाल, ग्राही, रसायन, बल्य, व्रणशोधक एवं व्रणरोपक है। इसके पुष्प रक्तपित्तहर हैं। छाल की क्रिया त्वचा तथा रसग्रंथियों पर होती है जिससे वहाँ की विनिमयक्रिया सुधरती है। इसकी अधिक मात्रा से वमन तथा विरेचन होता है।

(१) गंडमाला तथा अपची में इसकी छाल का बहुत प्रयोग किया जाता है। इसका क्वाथ गुग्गुल के साथ पिलाते हैं तथा इससे व्रणप्रक्षालन करते हैं। गंडमाला में सोंठ एवं इसका चूर्ण चावल के धोवन के साथ देते हैं। इसकी छाल को पीसकर लेप भी करते हैं। नये रोग में इससे अधिक लाभ होता है। इसकी छाल का क्वाथ कुष्ठ, चर्मरोग, अतिसार एवं व्रण में दिया जाता है। मसूरिका में इसके क्वाथ में सुवर्णमाक्षिक भस्म डालकर पिलाते हैं। खदिरफल, दाडिमपुष्प एवं इसकी छाल के क्वाथ से कुल्ला करने से अधिक लालास्राव तथा गले के विकारों में लाभ होता है।

रक्तपित्त में इसके पुष्प का चूर्ण मधु के साथ चटाते हैं तथा इसकी शाक खिलाते हैं। पुष्पों का क्वाथ रक्तप्रदर, रक्तार्श, रक्तमेह तथा कास एवं रक्तातिसार आदि में दिया जाता है। मृदुविरेचक रूप में इसके पुष्पों को चीनी के साथ खिलाते हैं।

इसके मूल का चूर्ण मट्ठे के साथ अर्श में दिया जाता है। मूल का क्वाथ अपचन तथा आध्मान में दिया जाता है।

मात्रा—त्वक्चूर्ण २-४ माशा। पुष्पकलिकाचूर्ण १-२ माशा।

अथ शोभाञ्जनः (सहिजना), (श्यामः श्वेतो रक्तश्च) तन्नामानि तद्गुणाँश्चाह

शोभाञ्जनः शिग्रुतीक्ष्णगन्धकाक्षीवमोचकाः।
तद्बीजं श्वेतमरिचं मधुशिग्रुः सलोहितः। शिग्रुः कटुः कटुः पाके तीक्ष्णोष्णो मधुरो लघुः॥१०५॥
दीपनो रोचनो रूक्षः क्षारस्तिक्तो विदाहकृत्। संग्राही शुक्रलो हृद्यः पित्तरक्तप्रकोपणः॥१०६॥
चक्षुष्यः कफवातघ्नो विद्रधिश्वयथुक्रिमीन्। मेदोऽपचीविषप्लीहगुल्मगण्डव्रणान्हरेत्॥१०७॥
श्वेतः प्रोक्तगुणो ज्ञेयो विशेषाद्दाहकृद्भवेत्।
प्लीहानं विद्रधिं हन्ति व्रणघ्नः पित्तरक्तहृत्। मधुशिग्रुः प्रोक्तगुणो विशेषाद्दीपनः सरः॥१०८॥

सहिजन के भेद, नाम तथा गुण—सहिजन के १. श्याम सहिजन, २. श्वेत सहिजन तथा ३. लाल सहिजन इस प्रकार से ३ भेद होते हैं। शोभाञ्जन, शिग्रु, तीक्ष्णगन्धक, अक्षीव और मोचक ये सब संस्कृतनाम सहजन के हैं। सहजन के बीज को **'श्वेतमरिच'** कहते हैं। जो 'लाल सहजन' होता है उसे 'मधुशिग्रु' कहते हैं। शिग्रु अर्थात् **श्याम सहजन**—स्वाद तथा पाक में कटुरसयुक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, मधुर, लघु, अग्निदीपक, रोचक, रूक्ष, क्षार, तिक्तरसयुक्त, विदाहकारक, मलावरोधक, शुक्रजनक, हृदय को हितकर, पित्त-रक्त को कुपित करने वाला, नेत्रों को हितकर, कफ-वात-नाशक एवं विद्रधि, शोथ, कृमि, मेदरोग, अपची, विष, प्लीहा, गुल्म, गलगण्ड और व्रण का नाशक होता है। इसी प्रकार से 'सफेद सहजन' के भी गुण हैं किन्तु वह विशेष करके दाहकारक तथा प्लीहा, विद्रधि, व्रण और पित्त-रक्त का नाशक होता है। मधुशिग्रु अर्थात् 'लाल सहजन' के भी पूर्वोक्त सभी गुण हैं किन्तु विशेष करके वह अग्निदीपक तथा सारक (दस्तावर) होता है॥

अथ शिग्रुवल्कलपत्रस्वरसगुणानाह

शिग्रुवल्कलपत्राणां स्वरसः परमार्तिहृत्॥ १०९॥

सहजन की छाल तथा पत्तों के स्वरस के गुण—सहजन की छाल तथा पत्तों का स्वरस असह्य पीड़ा को दूर करता है॥ १०९॥

अथ शिग्रुबीजगुणानाह

चक्षुष्यं शिग्रुजं बीजं तीक्ष्णोष्णं विषनाशनम्। अवृष्यं कफवातघ्नं तन्नस्येन शिरोऽर्त्तिनुत्॥११०॥

सहजन के बीज—नेत्रों को हितकर, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, विषनाशक, अवृष्य और कफ-वात-नाशक होते हैं। सहजन के बीजों का चूर्ण करके नस्य लेने (सूंघने) से शिर की पीड़ा दूर होती है। इसके पुष्प तथा पुष्प-मधु के गुण आगे शाकवर्ग में दिये हुवे हैं॥ ११०॥

४९ सहिजना

हि०–सहिजना, सहिजन, सहजन, सहजना, सैजन, मुनगा। **बं०**–सजिना। **म०**–शेवगा, शेगटा। **मा०**–सहिजनो, सहिंजणो। **क०**–नुग्गे। **ते०**–मुनग। **गु०**–सेकटो, सरगवो। **ता०**–मोरुंगै, मुरिणकै। **पं०**–सोंइजना। **मला०**–मुरिण्णा। **ब्राह्मी०**–डोडलों बिन। **यू०**–सिनोह। **फा०**–सर्व-कोही। **अं०**–Horse Radish Tree (हॉर्स रैडिश ट्री); Drum Stick Tree (ड्रम स्टिक् ट्री)। **ले०**–*Moringa pterygosperma Gaertn.* (मोरिङ्गा टेरीगोस्पर्मा गेर्ट.)। Fam. Moringaceae (मोरिंगेसी)।

यह हिमालय के निचले प्रदेशों में चेनाब से लेकर अवध तक जंगलीरूप में तथा भारत के प्रायः सभी प्रांतों में एवं बर्मा में लगाया हुआ मिलता है।

इसका **वृक्ष** साधारण वृक्षों के समान छोटा, २०–२५ फुट ऊँचा होता है। **छाल**–चिकनी, मोटी, कार्कयुक्त, भूरे रङ्ग की एवं लम्बाई में फटी हुई और लकड़ी कमजोर होती है। **पत्ते**–संयुक्त, प्रायः त्रिपक्षवत् तथा १–२ फीट क्वचिद् ५ फीट तक लंबे होते हैं। **पत्रक**–अंडाकार, लट्वाकार, विपरीत एवं करीब ½–¾ इञ्च लंबे होते हैं। कार्त्तिक महीने से वसन्त ऋतु के आरम्भ तक फूलों के गुच्छे टहनियों के अन्त में दिखाई पड़ते हैं। **पुष्प**–श्वेतवर्ण के तथा मधु की तरह गन्धवाले होते हैं। **फलियाँ**–गोल, त्रिकोणाकार, अंगुलिप्रमाण मोटी, ९-२० इञ्च लम्बी, बीजों के बीच बीच में पतली एवं बड़ी-बड़ी खड़ी ९ रेखाओं से युक्त होती हैं। उनमें सफेद, सपक्ष, त्रिकोणाकार तथा लगभग १ इञ्च लंबे बीज होते हैं। बीजों को **सफेद मरिच** भी कहते हैं। इससे गोंद भी निकलता है जो पहले दुधिया रहता है किन्तु बाद में वायु का सम्पर्क होने पर ऊपर से गुलाबी या लाल हो जाता है। इसकी कच्ची सेमों का साग और अचार बनाते हैं। इसकी छाल के रेशों से कागज, चटाई, डोरी आदि बनाते हैं। जानवर—विशेषकर ऊँट—इसकी टहनियों को खाते हैं।

इसके मूल, मूल की ताजी छाल, फली, पत्र, बीज एवं गोंद आदि का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। इसकी जड़ बाहर से खुरदरी, जालीदार, हलके भूरे रंग की एवं अन्दर से श्वेत रंग की होती है। हार्सरैडिश की तरह इसका स्वाद कुछ तीता एवं गन्ध भी तीक्ष्ण होती है।

मोरिंगा कोन्केनेन्सिस् निम्मो (Moringa concanensis Nimmo) नामक एक जाति दक्षिण राजपूताना तथा सिन्ध में होती है। इसकी फलियाँ कड़वी होती हैं। इसके पुष्प अधिकांश लाल होते हैं।

लाल, काले एवं श्वेतपुष्प भेद से सहजन ३ प्रकार का माना जाता है। अधिकांश श्वेतपुष्प का ही सहजन देखा जाता है। सम्भव है स्थानभेद से कहीं कहीं रक्त तथा श्यामवर्ण के भी सहजन प्राप्त होते हों। भावप्रकाशकार रक्तपुष्प वाले को मधुशिग्रु कहते हैं। संभव है इस (श्वेत जो अधिकांश मिलता है) वृक्ष के पुष्पों में मधु की तरह गंध होने से इसका नाम मधुशिग्रु दिया हो।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में करीब ३६% एक निर्गन्ध स्वच्छ तैल रहता है जो सूक्ष्म यन्त्रों में स्निग्धीकरण के काम आता है। यह रखने से खराब भी नहीं होता। बेन ऑइल (Ben-oil) नामक तैल जो घड़ीसाज व्यवहार में लाते हैं वह अधिकतर अफ्रीका में होने वाले इसी की जाति के वृक्ष (M. aptera, मो. आप्टेरा) के बीजों से निकाला जाता है। सुगंध-व्यवसाय में भी इसका उपयोग करते हैं। अस्थिर गन्ध भी इसमें स्थायी हो जाती है।

इसके मूल में स्पाइरोचिन् (Spirochin) नामक कार्यशील क्षारीय द्रव्य (Basic) एवं टेरिगोस्पर्मिन् (Pterygospermin) नामक एक प्रतिजैविकीय पदार्थ (Antibiotic) रहता है। इसमें एक उग्र दुर्गन्धयुक्त तैल भी पाया जाता है।

स्पाइरोचिन नामक क्रियाशील द्रव्य ग्रामग्राही (Gram positive) उपसर्गों, विशेषकर स्तबक गोलाणु एवं मालागोलाणुजन्य (Staphylococcal and streptococcal) उपसर्गों में लाभदायक है। यह अधिच्छदीय (Epithelial) कोषाओं की कार्यवृद्धि करता है तथा इसमें कुछ वेदनाहरण का भी गुण है। वातनाडियों पर इसका सामान्यतया अवसादक प्रभाव (General paralysing effect) पड़ता है। इससे गर्भाशय के अनियमित संकोचों का शमन होकर उसे बल मिलता है।

टेरिगोस्पर्मिन अनेक प्रकार के छत्राणुओं (Fungi) की वृद्धि को रोकता है। इसके साथ अल्प मात्रा में न्यूक्लिक् ॲसिड (Nucleic acid) होने पर इसकी कार्यशीलता बहुत बढ़ जाती है। यह ७५००० में १ एवं ४०००० में १ इस अल्प प्रमाण में क्रमशः ग्रामग्राही एवं ग्रामत्यागी (Gram negative) जीवाणुविरोधी कार्य करता है। ॲलिसिन् (Allicin) की तरह यह रक्त एवं आमाशयिक रस की उपस्थिति में कार्यशील रहता है किन्तु अग्न्याशयिक रस (Pancreatic Juice) की उपस्थिति में इसकी कार्यशीलता नष्ट हो जाती है।

गुण और प्रयोग—सहिजन के मूल की ताजी छाल उष्ण, कटु, दीपन, पाचन, उत्तेजक, वातानुलोमक, वातहर, कफहर, कृमिघ्न, शिरोविरेचन, स्वेदजनन, मूत्रजनन, चक्षुष्य, शोथहर एवं व्रणदोषनाशक है। वृक्कशोथ में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। इसका बाह्यलेप त्वग्रागकारक है।

इसका उपयोग अपची, गुल्म, विद्रधि, शोथ, प्लीहावृद्धि, कृमि, रजःकृच्छ्र, हिक्का, श्वास, कफज्वर, पाचन के विकार एवं व्रण में किया जाता है।

इसके नये वृक्ष की मूल को ज्वर, अपस्मार, अपतंत्रक, अंगघात, जीर्ण आमवात, जलोदर, यकृद्-वृद्धि, प्लीहावृद्धि तथा अपचन में देते हैं। सैंधव एवं हींग के साथ मूलत्वक् का क्वाथ विद्रधि, शोथ, फोड़े, अश्मरी, अपस्मार एवं अपतंत्रक में दिया जाता है। संत्रे का छिलका, जायफल एवं इसकी मूलत्वक् का मद्यसारीय अर्क मूर्च्छा, चक्कर, स्नायविक दौर्बल्य, अपतंत्रक, आध्मान एवं उद्वेष्टन-युक्त आन्त्रिक विकारों में लाभदायक है। मुखजाड्य, अर्दित, पक्षाघात आदि वातनाडीसंस्थान के रोगों में इसका स्वरस दिया जाता है।

व्रणशोथ पर छाल को पीसकर लेप करते हैं तथा खिलाते हैं। गले की शिथिलता, मुखविकार, कृमिदंत में इसके क्वाथ से कुल्ला कराते हैं। इसकी ताजी जड़ को सरसों एवं आदी के साथ पीस कर प्रतिक्षोभक एवं विस्फोटकारक प्रलेप के रूप में उपयोग करते हैं। संधिशोथ तथा शरीर की पीड़ा में छाल का उष्ण लेप थोड़ी देर के लिये करते हैं।

इसके बीजों के तेल की संधिवात, आमवात तथा वातरक्त में मालिश करते हैं। मूर्च्छा में बीजों का चूर्ण नाक में डालते हैं।

इसका गोंद ग्राही होता है तथा आमवात में प्रयोग किया जाता है। इसके पुष्प को दूध में उबालकर वाजीकरण के लिये पिलाते हैं। इसकी फली का साग आंत्रकृमिप्रतिबंधक मानते हैं। इसके कोमल पत्तों का साग खाने से शौच साफ होता है।

मात्रा—मूलत्वक् ४ से ८ माशा।

अथ श्वेतपुष्पा नीलपुष्पा चापराजिता (कोयल) तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

आस्फोता गिरिकर्णी स्याद्विष्णुक्रान्ताऽपराजिता। अपराजिते कटू मेध्ये शीते कण्ठ्ये सुदृष्टिदे॥
कुष्ठमूत्रत्रिदोषामशोथव्रणविषापहे। कषाये कटुके पाके तिक्ते च स्मृतिबुद्धिदे॥ ११२॥

सफेद तथा नीले फूल की कोयल के नाम तथा गुण—आस्फोता, गिरिकर्णी, विष्णुक्रान्ता और अपराजिता ये दोनों प्रकार की 'कोयल' के संस्कृत नाम हैं। दोनों कोयल—कटु, तिक्त तथा कषायरसयुक्त, मेधा के लिये हितकर, शीतवीर्य, कण्ठस्वर को उत्तम बनाने वाली, देखने की शक्ति को बढ़ाने वाली तथा कुष्ठ, मूत्ररोग, त्रिदोष, आम, शोथ, व्रण एवं विष को नष्ट करनेवाली, विपाक में कटुरसयुक्त, स्मृति तथा बुद्धि को देने वाली होती है॥ १११-११२॥

नोट—भावप्रकाशकार आस्फोता, गिरिकर्णी, विष्णुक्रान्ता तथा अपराजिता ये चार पर्याय लिखते हैं। ध. नि. एवं रा. नि. में इसके 'अश्वक्षुर', 'श्वेतस्पन्दा' आदि अन्य पर्याय दिये हुए हैं किन्तु विष्णुक्रान्ता का वहाँ उल्लेख नहीं है। आगे शंखपुष्पीभेद में विष्णुक्रान्ता[1] का उन्होंने स्वतन्त्र उल्लेख किया है जिसके ध. नि. ने नील, शुक्ल एवं रक्तपुष्पभेद से ३ भेद किये हैं। वहाँ पर रा. नि. ने (शंखपुष्पी के अतिरिक्त) नीलपुष्पा, अपराजिता ये पर्याय विष्णुक्रान्ता के दिये हैं। भावप्रकाशकार शंखपुष्पी के पर्यायों में विष्णुक्रान्ता का उल्लेख नहीं करते।

अधिकांश विद्वानों ने अपराजिता को क्लिटोरिआ टर्नेटिआ लिन. (Clitoria ternatea Linn.) माना है तथा इसके नील एवं श्वेतपुष्प भेद पाये भी जाते हैं। किन्तु केरल में इसका (क्लि. टर्नेटिआ को) शंखपुष्पी नाम से व्यवहार करते हैं ऐसा उल्लेख 'आयुर्वेदिक फ्लोरा मेडिका' में है। इसी प्रकार एव्होल्व्ह्युलस् ॲल्सिनॉइडीस् लिन. (Evolvulus alsinoides Linn.) जिसे अधिकांश विद्वान् शंखपुष्पी मानते हैं उसका केरल में विष्णुक्रान्ता नाम से व्यवहार किया जाता है।

श्री ठा० बलवन्तसिंह जी का मत है कि एव्होल्व्ह्युलस् ॲल्सिनाइडीस् (पुष्प नीले) को ही विष्णुक्रान्ता मानना चाहिये तथा नीलापराजिता को विष्णुक्रान्ता नहीं मानना चाहिये। इसी प्रकार शंखपुष्पी के पुष्पों का श्वेत होना आवश्यक होने के कारण ए. अल्सिनॉइडीस् से मिलती जुलती उसी वर्ग की अन्य जाति कन्व्हॉल्व्युलस् प्लुरिकॉलिस् चाइसी (Convolvulus pluricaulis Choisy) को शंखपुष्पी मानना चाहिये जिसके पुष्प हलके गुलाबी या श्वेत रंग के पाये जाते हैं तथा जिनके गुणों में विशेष अन्तर नहीं है। कुछ लोगों ने कन्स्कोरा डिकसेटा शुल्ट (Canscora decussata Schult) को शंखपुष्पी माना है।

शंखपुष्पी का आगे स्वतन्त्र वर्णन किया गया है। यहाँ अपराजिता (क्लिटोरिआ टर्नेटिआ) का वर्णन किया गया है।

५० अपराजिता

हि०—अपराजिता, कोयल, कालीज़र। **बं०—**अपराजिता। **म०—**गोकर्णी, काजली, गोकर्ण। **पं०—**धनन्तर। **गु०—**गरणी। **क०—**शंखपुष्प, गिरिकर्णिके। **ता०—**काक्कणनकोटी। **ते०—**दिटेन। **मल०—**शंखपुष्पम्। **फ़ा०—**मज्रेरियुन्-इ-हिंदी। **अं०—**Winged-leaved clitoria (विंग्ड लिव्ह्ड क्लिटोरिआ)। **ले०—***Clitoria ternatea Linn.* (क्लिटोरिआ टर्नेटिआ लिन.)। Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी.)।

[1] विष्णुक्रान्ता कटुस्तिक्ता कफवातामयापहा। (ध. नि.)

यह सब प्रान्तों में पाई जाती है। अधिकतर यह बगीचों में लगाई हुई मिलती है। बस्तियों के आस-पास वन्य अवस्था में भी कभी-कभी दिखाई देती है। पुष्पभेद से यह नील एवं श्वेत दो प्रकार की होती है।

इसकी **लता**—बहुवर्षायु, सुन्दर तथा पतले काण्ड की होती है। यह वृक्षों या झाड़ियों पर लिपटती हुई (चक्रारोही) बढ़ती है। **पत्ते**—संयुक्त, असम-पक्षवत् (Imparipinnate) रहते हैं। **पत्रक**—प्रायः ५ कभी-कभी ७, अण्डाकार एवं १-२ इञ्च लम्बे होते हैं। **पुष्प**—जलसीप के आकार वाले नलीयुक्त, गोल, चमकीले नीले अथवा कभी-कभी श्वेत पुष्प, १½-२ इञ्च बड़े एवं पत्रकोणीय पुष्पदण्ड में एकाकी रहते हैं। ध्वजदल चम्मच के आकार का और पक्षदलों के नीचे फैला रहता है। कोणपुष्पक बड़े, स्थायी तथा पर्णसदृश होते हैं। **फली**—२-४ इञ्च लम्बी, चिपटी, नुकीली तथा सीधी या बहुत थोड़ी मुड़ी हुई होती है। **बीज**—६-१० अण्डाकार, चिपटे, चिकने तथा गहरे भूरे रंग के होते हैं।

इसके मूल का अधिक उपयोग किया जाता है। इसके पुष्प, पत्र एवं बीज आदि का भी उपयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसकी जड़ की छाल में स्टार्च, टैनिन, राल तथा ११% राख होती है। बीज में तैल, कड़ुवी भूरे रङ्ग की राल तथा ६% राख होती है।

गुण और प्रयोग—इसकी जड़ भेदन, मूत्रल एवं वेदनास्थापन है। इससे वमन भी होता है। वमन के साथ-साथ पेट में दर्द होकर विरेचन भी होता है। कभी-कभी वमन नहीं भी होता। इसके बीज जलप की तरह किन्तु सौम्य भेदन तथा अल्प मूत्रजनन हैं। विरेचन के लिये बीजों के साथ सोंठ एवं सैंधव का उपयोग किया जाता है।

इसका उपयोग उदर, कफविकार, ज्वर, मूत्रविकार, गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, शोथ, नेत्ररोग, उन्माद, आमवात, कुष्ठ एवं विष में किया जाता है।

(१) सभी प्रकार के जलोदर में विरेचन के लिये इसका उपयोग करते हैं। इससे विष का निर्हरण होता है।

(२) शुक्रमेह, बस्तिशोथ एवं मूत्रकृच्छ्र में इसकी जड़ का फांट पिलाया जाता है।

(३) बच्चों के कास-श्वास में बीजों को सेंक पीसकर थोड़ा गुड़ एवं सैंधव मिलाकर पिलाने से दस्त के साथ कफ निकल कर आराम मिलता है। कफ विकारों में मूल को दूध के साथ पिलाते हैं।

(४) अर्धावभेदक में श्वेत अपराजिता की जड़ के स्वरस का नस्य कराया जाता है।

(५) इसके पत्तों का रस, आर्द्रकरस के साथ पसीना रोकने के लिये देते हैं। त्वग्रोगों में पत्तों का फांट पिलाते हैं। कान के चारों तरफ सूजन होकर ग्रन्थियों की वृद्धि होने पर पत्तों को सैंधव के साथ पीसकर लगाते हैं।

(६) सर्पविष में इसकी जड़ की छाल तथा निर्गुण्डी मूलत्वक् को जल में पीस कर पिलाने से लाभ होता है। (च० चि० अ० २५)

मात्रा—मूलत्वक् चूर्ण १॥-३ माशा; बीजचूर्ण १०-२० र०।

अथ सिन्दुवारः (मेउड़ी-सेन्दुवार) निर्गुण्डी (नीलसम्हालू) इति च तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

सिन्दुवारः श्वेतपुष्पः सिन्दुकः सिन्दुवारकः ।
नीलपुष्पी तु निर्गुण्डी शेफाली सुवहा च सा ॥ ११२ ॥
सिन्दुकः स्मृतिदस्तिक्तः कषायः कटुको लघुः ।
केश्यो नेत्रहितो हन्ति शूलशोथाममारुतान् । कृमिकुष्ठारुचिश्लेष्मज्वरान्नीलापि तद्विधा ॥

सम्हालू जिसे लोक भ मेउडी तथा सेन्दुवार कहते हैं, उसके भेद, नाम तथा गुण—सम्हालू दो प्रकार का होता है एक सफेद फूल वाला, दूसरा नीले फूल वाला। सफेद फूल वाले सम्हालू के संस्कृत नाम—सिन्दुवार, सिन्दुक और सिन्दुवारक ये सब हैं। नीले फूल वाले सम्हालू के संस्कृत नाम—निर्गुण्डी, शेफाली और सुवहा ये सब हैं। सम्हालू-(सफेद फूल वाला) स्मरण-शक्तिवर्धक, तिक्त, कषाय और कटुरसयुक्त, लघु, केश तथा नेत्र के लिये हितकारी होता है एवं यह शूल, शोथ, आमवात, कृमि, कुष्ठ, अरुचि और कफ-ज्वर को नष्ट करता है। इसी भांति नीले फूक वाले सम्हालू के भी गुण हैं ॥ ११३-११४ ॥

अथ सिन्दुवारपत्रगुणानाह

सिन्दुवारदलं जन्तुवातश्लेष्महरं लघु ॥ ११५ ॥

सम्हालू के पत्तों के गुण—**सम्हालू के पत्ते**—कृमि, वात और कफ को दूर करने वाले तथा लघु होते हैं ॥ ११५ ॥

नोट—सम्हालू के दो भेदों का भावप्रकाशकार ने वर्णन किया है। 'निर्गुण्डी' यह नीले सम्हालू के लिये कहा गया है। निर्गुण्डी का ही पर्याय शेफाली दिया गया है। ध० नि० ने 'सिन्दुवार' के श्वेत एवं नील भेद दिये हैं तथा 'शेफालिका' के भी निर्गुण्डी (नीलपुष्प) एवं शुक्ला ये भेद दिये हैं। इसी प्रकार रा० नि० एवं म० नि० ने भी शेफाली से नील (निर्गुण्डी) का ग्रहण किया है। श्री ठा० बलवन्त सिंहजी शेफालिका यह नाम हरसिंगार (Nyctanthes arbortristis) के लिए उचित समझते हैं। हरसिंगार का वर्णन पहले पृष्ठ १३५ पर किया गया है।

कुछ लोगों ने 'नीलनिर्गुण्डी' नाम जस्टिसिआ जेन्डारुसा (Justicia gendarussa) को दिया है जिसका पृष्ठ २२३ पर वर्णन किया गया है।

आधुनिक उद्भिज्जवेत्ताओं ने भी इसके कई भेदों का वर्णन किया है। वाइटेक्स नेगुण्डो (Vitex negundo) में श्वेत या हलके नीले दोनों प्रकार के पुष्प पाये जाते हैं तथा पत्रक भी अखंड या दन्तुर दोनों प्रकार के होते हैं। इसके अतिरिक्त इसका एक भेद वाइटेक्स ट्राइफोलिआ (Vitex trifolia) भी पाया जाता है। रेणुकबीज, जिनका पृष्ठ २५१ पर वर्णन किया गया है वे भी ईरान में होनेवाली निर्गुण्डी जाति के वृक्षों के फल हैं।

५१ सम्हालू-निर्गुण्डी

हि०—सम्मालू, सम्हालू, सन्दुआर, सिनुआर, मेउड़ी। **बं०**—निशिन्दा। **म०**—लिंगड, निगड, निर्गुण्डी। **पं०**—बन्न, मरवन, मौरा। **गु०**—नगोड़, नगड़। **ता०**—नोच्चि। **म०**—करिनोच्चि। **तै०**—वाविली, तेल्लावाविलि। **क०**—बिलिनेक्कि। **फा०**—पंजंबगुस्त। **अ०**—असलक। **अं०**—Five Leaved Chaste Tree (फाइव लीव्ड चेस्ट ट्री), Indian Privet (इण्डियन

प्रिवेट)। **लै०**—*Vitex negundo Linn.* (वाइटेक्स नेगुण्डो लिन.)। Fam. Verbenaceae (वर्बिनेसी)।

इसके वृक्ष प्रायः सब प्रान्त के वन, उपवन, नदियों के किनारे, गावों के आसपास की परती जमीन में और बागों में भी पाये जाते हैं।

इसके बड़े बड़े **गुल्म** प्रायः ६–२८ फीट ऊँचे अथवा कभी कभी बड़े वृक्ष के समान होते हैं। इस पर श्वेताभ रोमावरण होता है। **छाल**–पतली, चिकनी तथा धूसरवर्ण की होती है। **पत्ते**–सदल तथा ३-५ पत्रकों से युक्त होते हैं। **पत्रक**–भालाकार, लम्बाग्र, अखण्ड या गोल दन्तुर, २–५ इञ्च लम्बे, ½–१½ इञ्च चौड़े तथा छोटे बड़े आकार के होते हैं। अग्र का पत्रक लम्बा एवं उसका वृन्त भी लम्बा होता है। नीचे के पत्रक या बगल वाले पत्रक छोटे तथा छोटे या बिना वृन्त के होते हैं। ये ऊपर से इरे तथा नीचे श्वेताभवर्ण के होते हैं। **पुष्प**–आयताकार और २–८ इञ्च लम्बी मञ्जरियों में निकले रहते हैं। ये श्वेत या हलके नीले (बैंगनी) रङ्ग के होते हैं। **फल**–छोटे, गोल, ¼ इञ्च व्यास के तथा पकने पर काले रङ्ग के होते हैं।

इसकी जड़ पर एक पराश्रयी वनस्पति पाई जाती है जो एलेक्ट्रा पैराझिटिका वेर. चित्रकूटेन्सिस् (Aleotra parasitica, A. Rich, Var. Chitrakutensis) है। यह वर्षाकाल में होती है तथा अक्तूबर नवंबर तक परिपक्व होने पर इसके कंद को संग्रह कर सुखा कर इसका चूर्ण बना प्रयोग करते हैं। बिहार के वैद्य इसको गलितकुष्ठ के लिये उपयोगी बतलाते हैं। प्रारंभिक परीक्षण से देखा गया है कि ४ ग्राम दैनिक विभक्त मात्रा से लाभ होता है। अधिक मात्रा से अतिसारादि उपद्रव होते हैं। (प्रसाद, बी. एन्; लेप्रसी रिव्यू, जुलाई ६२ खण्ड XXXIII, अंक ३.)

इसकी एक दूसरी जाति होती है जिसे (लै०) वाइटेक्स ट्राइफोलिया लिन. (Vitex trifolia Linn.) कहते हैं। इसके **पत्ते**–१-३ पत्रक होते हैं। **पत्रक**–१-३ इञ्च लम्बे, सभी अवृन्त, अभिलट्वाकार या अभिलट्वाकार-आयताकार, अखण्ड तथा किञ्चित् कुण्ठिताग्र होते हैं। **पुष्प**–हलके नीले वर्ण के होते हैं। **फल**–काले रङ्ग के तथा १/६ इञ्च व्यास में होते हैं।

इनके पंचांग तथा पत्तों का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। कुछ विद्वानों के मत से दन्तुर पत्र अधिक लाभदायक माने जाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में एक रंगहीन गन्धयुक्त उड़नशील तैल तथा एक राल होती है। इसके बीजों में अम्ल राल, कषाय आर्गेनिक अम्ल, मॅलिक् एसिड, अत्यल्प क्षाराभ तथा रंजक द्रव्य होते हैं।

गुण और प्रयोग—यह कटु, तिक्त, कषाय, उष्ण, लघु, दीपन, वेदनास्थापन, वातहर, कफहर, ज्वरघ्न, मूत्रजनन, आर्तवजन, कृमिघ्न, मस्तिष्कबलदायक, शोथघ्न, विषहर, बल्य एवं रसायन है। शोथघ्न, वेदनास्थापन एवं वातहर गुण बहुत प्रभावशाली हैं। इसके पुष्प शीतल तथा पित्तनाशक हैं। (सु. सू. अ. ४६)

इसका प्रयोग आमवात, वातव्याधि, कास, ज्वर, प्रदर, शूल, अपचन, आध्मान, अपची, क्षय, कुष्ठ, शोथ, व्रण, प्लीहावृद्धि एवं कृमि में किया जाता है। सभी प्रकार के रोगों में शिलाजतु के साथ इसका प्रयोग लाभदायक होता है।

(१) शोथयुक्त सभी व्याधियों में यह बहुत ही लाभदायक है। फुफ्फुसशोथ, फुफ्फुसावरण-शोथ, उदरावरणशोथ, किसी प्रकार का संधिशोथ, तीव्र आमवातिक संधिशोथ एवं सोजाक में कभी-कभी होनेवाले अंडशोथ में इसका अन्तर्बाह्य प्रयोग करते हैं। इसके पत्तों को पीसकर हाँडी में

गरम कर शोथ पर दिन में ३, ४ बार बाँधना चाहिये। इसके साथ करञ्ज, नीम तथा धतूरे के पत्तों का भी उपयोग करने से अधिक लाभ होता है। निर्गुण्डी में आनुलोमिक गुण न होने के कारण शोथ में प्रारंभ में नागदन्ती या रसकपूर जैसे विरेचक औषध का उपयोग करना चाहिये।

(२) कफज्वर, फुफ्फुसपाक तथा फुफ्फुसावरणशोथ आदि में इसके पत्तों का स्वरस या क्वाथ छोटी पीपल के साथ पिलाते हैं तथा पत्तों से सेकते हैं। प्रतिश्याय तथा गले के शोथ में इसके सूखे पत्तों का धूम्रपान कराया जाता है तथा पत्तों का क्वाथ छोटी पीपल एवं घोड़बच के साथ पिलाते हैं। कास में पत्रस्वरससिद्धघृत का उपयोग लाभदायक है। राजयक्ष्मा में इसके पंचांग के स्वरस से सिद्ध घृत या स्वरस में घृत मिलाकर प्रयोग करते हैं।

(३) आमवात में निर्गुण्डी, तुलसी एवं भँगरैया का स्वरस अजवायन के चूर्ण के साथ देते हैं तथा पत्तों से सेंकते हैं। गृध्रसी में नीले पुष्पवाली निर्गुण्डी के पत्तों का क्वाथ पिलाते हैं तथा पत्तों से सेंकते हैं।

(४) शीतज्वर, विषमज्वर एवं सूतिकाज्वर आदि में इसके पत्तों का चूर्ण, पंचांगस्वरस, फांट या क्वाथ को देते हैं तथा इसके क्वाथ से शरीर पोंछते हैं। इससे शरीर का दाह एवं दुर्गन्धि कम होती है। विषमज्वर में प्लीहावृद्धि होने पर इसके पत्र एवं हरीतकी को गोमूत्र के साथ देते हैं या पत्तों को कुटकी एवं रसौत के साथ देते हैं। सूतिकाज्वर में इससे आर्तवशुद्धि होती है तथा गर्भाशय एवं उसके आसपास के अङ्गों का शोथ भी कम होता है। इसमें आन्तरिक प्रयोग के साथ इसके पत्तों को गरम करके बाँधते हैं। ज्वर में वमन तथा तृषाशान्ति के लिये इसके पुष्प मधु के साथ खिलाते हैं।

(५) नहरुवा कृमि में इसको खिलाते हैं तथा इससे सेंकते हैं।

(६) इसके मूल एवं पत्रस्वरस से सिद्ध तैल का शोथ, व्रण, नाडीव्रण, कुष्ठ, अपची, गंडमाला तथा सन्धिपीड़ा में व्यवहार किया जाता है। कर्णपूय में मधु के साथ इस तैल को कान में डालते हैं।

(७) सोजाक में पेशाब रुकने पर इसके उष्ण क्वाथ में रोगी को बैठाते हैं।

(८) पाँव की जलन में पत्तों को बाँधते हैं। शिरःशूल में पत्तों को पीसकर सर पर बाँधते हैं तथा फलों के चूर्ण का नस्य देते हैं। सोते समय सर के नीचे पत्तों की तकिया भी रखते हैं।

(९) कीड़े आदि से रक्षा करने के लिये चावल, कपड़े तथा पुस्तकों में इसके पत्ते रखते हैं।

मात्रा—पत्रस्वरस १-२ तो०; पत्रचूर्ण ¼-½ तो०; मूलत्वक् १-३ मा०।

अथ कुटजः (कुडा-कोरैया) तस्य नामगुणानाह

कुटजः कूटजः कौटो वत्सको गिरिमल्लिका ॥ ११६ ॥
कालिङ्गः शक्रशाखी च मल्लिकापुष्प इत्यपि। इन्द्रो यवफलः प्रोक्तो वृक्षकः पाण्डुरद्रुमः ॥
कुटजः कटुको रूक्षो दीपनस्तुवरो हिमः। अर्शोऽतिसारपित्तास्रकफतृष्णाऽऽमकुष्ठनुत् ॥

कुडा के नाम तथा गुण—कुटज, कूटज, कौट, वत्सक, गिरिमल्लिका, कालिङ्ग, शक्रशाखी, मल्लिकापुष्प, इन्द्र (इन्द्र पर्यायवाचक सभी शब्द), यवफल, वृक्षक और पाण्डुरद्रुम ये सब कुडा के संस्कृत नाम हैं।

कुडा—कटु तथा कषायरसयुक्त, रूक्ष, अग्निदीपक और शीतवीर्य होता है। एवम् यह बवासीर, **अतिसार**, पित्त, रक्त, कफ, तृषा आम तथा कुष्ठ को दूर करता है॥ ११६-११८ ॥

५२ कूड़ा

हि०—कूड़ा, कोरयां, कुड़ा, कौरैयाँ, कुरैय्याँ। **बं०**—कुरचि। **म०**—पांढरा कुड़ा। **गु०**—कड़ो। **क०**—कोरासिमिन। **ते०**—काककोडिसे, पला कोडसा। **उ०**—कुड़िया। **ता०**—वेप्पालै, कोडगपल। **मल०**—वेनपाला। **फा०**—जबाने गुजस्खे तल्ख। **अ०**—लसनुल्लास फिरुलमुरं, तिबाज। **अं०**—Kurchi, Conessi or Tellicherry Bark (कुर्चि, कोनेसि या तेल्लिचेरि बार्क)। **ले०**—*Holarrhena antidysenterica Wall.* (होलेर्हेना एन्टिडिसेन्टेरिका वाल्)। Fam. Apocynaceae (एपोसाइनेसी)।

यह भारतवर्ष के प्रायः सभी भागों में आर्द्र भूमि को छोड़कर तथा हिमालय की ४००० फीट ऊँची चोटियों पर उत्पन्न होता है। इसके छोटे छोटे वृक्ष दून और सहारनपुर के जङ्गलों में बहुत होते हैं। कहीं कहीं इसको रोपित भी किया जाता है।

कूड़े का वृक्ष बहुत ऊँचा नहीं होता, प्रायः ८-१० हाथ ऊँचा वृक्ष देखने में आता है। **छाल**—चौथाई इञ्च तक मोटी, खुरदरी, भूरे रंग की होती है। लकड़ी हलकी पीली और कोमल होती है। **पत्ते**-५-१० इञ्च लम्बे तथा २-४ इञ्च चौड़े, नोकीले, लट्वाकार-अण्डाकार या कुछ आयताकार चिकने या मृदुरोमश एवं प्रधान शिराएँ १०-१४ युग्म होती हैं। **फूल**-सफेद आते हैं और उनमें कुछ सुगन्धि जान पड़ती है। **फलियाँ**—दो दो एक साथ परन्तु असंयुक्त, ८ से १६ इञ्च तक लम्बी, पतली, तिहाई इञ्च मोटी और कुछ टेढ़ी होती हैं। **बीज**—जई के समान आध इञ्च तक लम्बे, रेखाकार, आयताकार और अन्त के सिरे पर प्रायः हलके भूरे रङ्ग के रोमगुच्छ से युक्त होते हैं। इन्हें इन्द्रजव कहते हैं, और वे स्वाद में कड़वे होते हैं। **इन्द्रजव** तथा इसकी आर्द्र छाल का विशेष व्यवहार किया जाता है। इसी वृक्ष को श्वेत कुटज या पुंकुटज कहा जाता है तथा गुण में यह 'प्रतिनिधि तथा व्यामिश्रण' में लिखित राइटिया टिन्क्टोरिया, सं०—कृष्ण कुटज या स्त्रीकुटज जिसके बीजों को मीठा इन्द्रजव कहते हैं उससे उत्कृष्ट है।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल एवं बीजों में अनेक प्रकार के क्षाराभ (Alkaloids) पाये जाते हैं जिनमें कोनेसाइन (Conessine, $C_{24}H_{40}N_2$), कुर्चिन (Kurchine, $C_{23}H_{38}N_2$), कुर्चिसीन (Kurchicine, $C_{20}H_{36}ON_2$) तथा होलेर्हेनाइन (Holarrhenine, $C_{24}H_{38}ON_2$) आदि मुख्य हैं। इसकी छाल में सम्पूर्ण क्षाराभों की अधिकतम मात्रा ४·५% से अधिक नहीं होती तथा बीजों में यह छाल की अपेक्षा कम होते हैं। प्रायः छाल में १·५% और बीज में ·०२५% यह रहते हैं।

इसके विभिन्न क्षाराभों का प्रयोग जानवरों पर तथा मनुष्यों में किया गया है तथा उसके परिणामों का अध्ययन किया गया है जिसमें सम्पूर्ण क्षाराभ अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।

(१) संपूर्ण क्षाराभ (Total alkaloids)—नवीन आमातिसार (Acute Amoebic Dysentery) में इसकी ½ र० (१ ग्रेन) की मात्रा में प्रतिदिन पेश्यन्तर्य सूचिकाभरण करने से एमेटीन (Emetine) की अपेक्षा अधिक लाभ हुआ। एमेटीन के समान इससे कोई विषैला प्रभाव जैसे अवसाद (Depression), वमन, प्रक्षोभ (Irritation) एवं संचायि (Cumulative) प्रभाव नहीं हुआ। इसको प्र. दि. १ र० (२ ग्रेन) की मात्रा में भी सूचिकाभरण करने से एमेटिन के समान शारीरिक वा मानसिक किसी भी प्रकार का अवसाद (Depression) नहीं होता। सिवाय अत्यधिक मात्रा के इसका गर्भाशय पर कोई विषैला प्रभाव नहीं पड़ता। इसके सूचिकाभरण के स्थान पर केवल कुछ पीड़ा एवं सूजन हो जाती है जो २४ से ४८ घन्टे में दूर हो जाती है। इससे कोई स्थानिक कोथ (Necrosis) या रक्तस्राव नहीं होता, जैसा एमेटीन में होता है। पुराने रोगियों में इसके सूचिकाभरण से विशेष लाभ नहीं होता।

(२) कुरची बिस्मथ आयोडाइड Kurchi bismuth iodide) – यह नारंगी लाल रंग का चूर्ण होता है। इसमें २७% सम्पूर्ण क्षाराभ तथा २२·८५% बिस्मथ तथा आयोडीन (Iodine) ५०·१५% रहता है। पुराने आमातिसार (Chronic Amoebic Dysentery) में इसका मुख द्वारा प्रयोग लाभदायक है। इसको ५ र० (१० ग्रेन) दिन में दो बार १० से २० दिन तक दिया जाता है। इससे नाडी की गति, वेग, बल एवं रक्त के दबाव पर कोई दुष्परिणाम नहीं होता। हृद्-विकारों के रोगियों में भी इसके देने से कोई विषैला प्रभाव नहीं दिखलाई देता। एमेटीन के समान वमन, अतिसार आदि अन्य प्रक्षोभक उपद्रव भी इसके प्रयोग से नहीं होते न कोई संचायि (Cumulative) प्रभाव ही होता है। इसके सेवन से १/२ घंटा पूर्व क्षारीय मिश्रण देना चाहिये क्योंकि प्रायः अतिसार में पाखाने की प्रतिक्रिया अम्ल होती है जिसमें कुरची कम प्रभावशाली होती है। उपर्युक्त सूचिकाभरण के साथ इसका प्रयोग किया जा सकता है अथवा इसके साथ एमेटीन की सूई भी दी जा सकती है। इन क्षाराभों का प्रभाव अमीबाजन्य यकृत् विकृति पर अभी निश्चित नहीं हुआ है।

(३) कोनेसाइन (Conessine)—इस क्षाराभ को भी सूचिकाभरण द्वारा दिया जा सकता है लेकिन इसकी अपेक्षा संपूर्ण क्षाराभ का प्रयोग करना अधिक अच्छा है। जानवरों में प्रयोग से मालूम हुआ है कि यह हृदय, श्वसन-संस्थान तथा मस्तिष्क के लिये हानिकर है। यह २८०, ००० में १ हिस्से के अनुपात में भी अमीबा के लिये क्षारीय घोल में ८ मिनट में तथा बिना क्षारीय घोल में १८ मिनट में घातक है जब कि एमेटीन २००, ००० में १ भाग में घातक होती है। इसके सूचिकाभरण से भी संपूर्ण क्षाराभ के समान स्थानिक प्रतिक्रिया होती है लेकिन जानवरों के समान मनुष्यों में कोई विशेष विषैला प्रभाव नहीं पड़ता। एक विशेष महत्त्व की बात यह है कि यह क्षाराभ परख नली (In vitro) में क्षय दण्डाणु (Tubercle bacillus) की वृद्धि रोकने में समर्थ है

गुण और प्रयोग—इसकी आर्द्र छाल कड़वी, अग्निदीपक, पाचक, ग्राही, अतिसारहर, ज्वरहर एवं रक्तसंग्राहक है।

इसका प्रयोग रक्तातिसार, संग्रहणी, प्रवाहिका, ज्वरातिसार, जीर्णज्वर, पचन संस्थान के अनेक विकार, श्वास एवं वृक्कशूल आदि रोगों में किया जाता है। इसको पुटपाक, अवलेह, क्वाथ, फांट, चूर्ण या अरिष्ट के रूप में व्यवहार में लाते हैं। सुगन्धि, संग्राही तथा अतिसार-नाशक अन्य औषधियों के साथ इसके क्वाथ या चूर्ण का प्रयोग लाभदायक है। इसकी छाल को खट्टे मट्ठे के साथ पीस कर लेने से अधिक गुण होता है। यह बच्चों एवं गर्भिणी में बिना किसी भय के दी जा सकती है।

(१) अतिसार की किसी भी अवस्था में यह औषधि बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। विशेष कर रक्तातिसार तथा पुराने आमातिसार (Chronic amoebic dysentery) में इसके प्रवाही सत्त्व (Liquid extract) का स्वतंत्र प्रयोग या उसके साथ इसबगोल, एरंड तैल या इन्द्रजव आदि को देने से बहुत लाभ होता है। इसके क्वाथ या फांट के साथ अतीस, बोडवच या मोचरस मिलाकर दे सकते हैं। एमेटीन के सूचिकाभरण के साथ इसको मुख द्वारा लेने से अधिक लाभ देखा गया है। इससे बनी हुई औषधियां जैसे कुर्चिसॉल (Kurchisol), कुर्चिकाइड (Kurchi-loid), कुर्चिबार्क एक्स्ट्राक्ट (Kurchi bark extract) आदि डाक्टरी दुकानों में बिकती हैं जिनका प्रयोग सुगम है एवं उनके क्षाराभों की मात्रा भी निश्चित रहती है। कुटज एमिकाकुआन्हा के समान कार्यकर औषधि है तथा इसमें इसके कुछ भी दोष नहीं हैं। आयुर्वेदिक योगों में

अवलेहादि के अतिरिक्त कुटजाष्टक क्वाथ (शार्ङ्ग.) एवं पाठाद्य चूर्ण (चक्र.), लघु एवं बृहद् गंगाधर चूर्ण आदि उपयोगी हैं।

(२) प्रसूति के पश्चात् योनिमार्ग की शिथिलता दूर करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

(३) जीर्ण ज्वर में इसका प्रयोग लाभदायक सिद्ध हुआ है। इससे सिनकोना की तरह वमन, हृल्लास, शिरःशूल आदि नहीं होता।

(४) इसकी कोमल फली तथा पत्रों की साग बच्चों में केंचुवें की बीमारी में देते हैं।

(५) इसका लेप आमवात एवं संधिशोथ में लाभदायक है तथा जलशोथ में इसके चूर्ण को शरीर पर मला जाता है।

(६) दन्तशूल में इसके क्वाथ से कुल्ला करने से लाभ होता है।

मात्रा—त्वक् चूर्ण १–४ मा; त्वक् चूर्ण १–४ तो. क्वाथ बना कर; फांट (१० में १) १ से २ औंस; प्रवाहीसत्त्व ६०–१२० बूंद; कुर्चि बिस्मथ आयोडाइड ४ ग्रा. द्वि. प्र. दि. २ हफ्ते तक।

नोट—इन्द्रयव प्रकरण भी देखें।

प्रतिनिधि और व्यामिश्रण—(क) राइटिया (Wrightia) की विभिन्न उपजातियाँ जैसे—रा० टिन्क्टोरिया, रा० टोमेन्टोसा, (W. tinctoria R. Br.; W. tomentosa Roem. & Schult.) विशेषकर रा० टिन्क्टोरिया का गलती से अथवा मिलावट के रूप में कुटज के स्थान पर प्रयोग किया जाता रहा लेकिन इनमें कार्यकारी औषधि गुण बहुत ही अल्प मात्रा में रहते हैं। इसके वृक्ष छोटे तथा इसकी छाल लाल-भूरे रंग की करीब-करीब चिकनी होती है। इसके मूल गहरे भूरे रङ्ग के या काले तथा कुटज से कम कड़ुवे होते हैं। इसके पत्र कुटज से छोटे होते हैं। इसके पुष्प श्वेत चमेली की तरह तथा सुगन्धित होते हैं। फलियां दो-दो एक साथ अग्रपर परस्पर जुड़ी हुई (फटने के समय दोनों अलग), ३-१२ इञ्च लम्बी और पृष्ठ पर सफेद दागों से युक्त होती हैं। बीज १/२ से ३/४ इञ्च लम्बे, आधार के निचले सिरे पर श्वेत रेशमी तूल गुच्छ से युक्त एवं अन्त में नुकीले होते हैं। संस्कृत में इसको असित कुटज या स्त्रीकुटज कहते हैं तथा इसके बीजों को हिन्दी में मीठा इन्द्रजव कहा जाता है।

गुण और प्रयोग—अल्प मात्रा में इससे आमाशय तथा यकृत की क्रिया सुधरती है लेकिन अधिक मात्रा से वमन तथा विरेचन होता है।

(१) इसके पत्तों का स्वरस १/२ चम्मच की मात्रा में कर्नाटक, तेलगुप्रांत और मद्रास की तरफ कामला के लिये बहुत व्यवहार में आता है।

(२) सड़े हुये दाँत के गढ़े के अन्दर इसके पत्तों को पीसकर रखने से दन्तशूल दूर होता है लेकिन यह मसूड़े तथा गाल में नहीं लगाना चाहिये, अन्यथा इससे दाह उत्पन्न होता है।

(३) इसके पत्तों तथा छाल का क्वाथ अन्य कड़ुवी औषधियों के साथ दीपक, पाचक, बल्य तथा ज्वरहर है। इसका उपयोग ज्वर के पश्चात् अथवा अन्य तीव्र रोगों की संनिवृत्तावस्था में एवं पचनसंस्थान के विकारों (Bowel complaints) में किया जाता है।

(४) मीठा इन्द्रजव बलवर्धक है तथा धातुपौष्टिक के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है।

अथ कण्टककरञ्जघृतकरञ्जौ। (करञ्ज-करञ्जभेद)। तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

करञ्जो नक्तमालश्च करजश्चिरबिल्वकः। घृतपूर्णकरञ्जोऽन्यः प्रकीर्यः पूतिकोऽपि च ॥ ११९ ॥
स चोक्तः पूतिकरञ्जः सोमवल्कश्च स स्मृतः।

करञ्जः कटुकस्तीक्ष्णो वीर्योष्णो योनिदोषहृत्।
कुष्ठोदावर्त्तगुल्मार्शोव्रणक्रिमिकफापहः ॥ १२० ॥

करञ्ज के भेद, नाम तथा गुण—करञ्ज के दो भेद होते हैं—१ कण्टककरञ्ज, २ घृतकरञ्ज। 'कण्टककरञ्ज' के संस्कृत नाम—करञ्ज, नक्तमाल, करज और चिरबिल्वक ये सब हैं। 'घृतकरञ्ज' के संस्कृत नाम—प्रकीर्य, पूतिक, पूतिकरञ्ज और सोमवल्क ये सब हैं। **करञ्ज**—कटुरसयुक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, योनिदोष को दूर करने वाला तथा कुष्ठ, उदावर्त्त, गुल्म, बवासीर, व्रण, कृमि तथा कफ का नाशक होता है ॥ ११९-१२० ॥

अथ करञ्जपत्रफलगुणानाह

तत्पत्रं कफवातार्शःकृमिशोथहरं परम्। भेदनं कटुकं पाके वीर्योष्णं पित्तलं लघु ॥ १२१ ॥
तत्फलं कफवातघ्नं मेहार्शःकृमिकुष्ठजित्। घृतपूर्णकरञ्जोऽपि करञ्जसदृशो गुणैः ॥ १२२ ॥

करञ्ज के पत्ते तथा फलों के गुण—**करञ्ज के पत्ते** कफ, वायु, बवासीर, कृमि तथा शोथ को अत्यन्त नष्ट करने वाले होते हैं। ये मल को भेदन करने वाले, पाक में कटु रस युक्त, उष्णवीर्य, पित्तजनक तथा लघु होते हैं। **इसके फल**—कफ, वात, प्रमेह, बवासीर कृमि और कुष्ठ नाशक होते हैं। **घृतकरञ्ज** के गुण भी करञ्ज के समान ही हैं ॥ १२१-१२२ ॥

नोट—भावप्रकाशकार करञ्ज के ३ भेद १. करञ्ज (नक्तमाल, चिरबिल्व), २. घृतकरञ्ज (प्रकीर्य, पूतिकरञ्ज, सोमवल्क) एवं ३ करञ्जी (उदकीर्य, षड्ग्रन्था, हस्तिवारुणी) लिखते हैं जिनमें से प्रथम दो के गुण समान लिखे हैं। अन्य निघंटुकारों ने भी इसके कई भेदों का उल्लेख किया है किन्तु इनके पर्यायवाची नामों के कारण भ्रम उत्पन्न होता है। उन्हीं नामों को किसी ने एक के साथ जोड़ा है तो किसी ने दूसरों के साथ जोड़ा है। इस तरह यह कहना कठिन है कि जिसे भावप्रकाशकार करञ्ज लिखते हैं उसी को अन्य निघंटुकारों ने करञ्ज माना है या जिसे ये घृतकरञ्ज एवं करञ्जी लिखते हैं उसे ही अन्य निघंटुकारों ने भी घृतकरञ्ज एवं करञ्जी माना है।

आधुनिक विद्वानों ने भी (वृक्ष) करञ्ज, कंटकरञ्ज एवं चिरबिल्व नाम से इसके ३ भेदों का वर्णन किया है। भावप्रकाशकार चिरबिल्व करञ्ज का पर्याय मानते हैं। कुछ विद्वान् उदकीर्य नाम करञ्ज को देते हैं जो यहाँ करञ्जी के लिये आता है। प्रकीर्य नाम कण्टकरञ्ज के लिये कहा जाता है। यहां पर वृक्ष करञ्ज एवं लताकरञ्ज का स्वतन्त्र वर्णन किया गया है तथा करञ्जी के अन्तर्गत चिरबिल्व का वर्णन किया गया है।

५३ करञ्ज (वृक्ष करञ्ज)

सं०—करञ्ज, नक्तमाल, उदकीर्य। **हिं०**—करञ्ज, करजवा, किरमाल, पापर, दिठोरी। **बं०**—डहर करञ्जा। **म०**—करञ्ज। **गु०**—कणझी, करञ्ज। **पं०**—सूचचेइन। **ता०**—पुंगम्, पुंकु। **ते०**—पुंगु, कानुगुचेट्टु। **मला०**—पोंन्नम्, उन्नेमरम्। **कं०**—होंगे। **अं०**—Smooth Leaved Pongamia (स्मूथ लीव्ड पोंगेमिया), Indian Beech (इण्डियन बीच)। **ले०**—*Pongamia glabra Vent.* (पोन्गेमिआ ग्लॅब्रा वेण्ट.)। Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है। सड़कों के किनारे, बगीचों में एवं नदी तथा समुद्री किनारों पर यह बहुत पाया जाता है। इसका वृक्ष साधारण वृक्षों की ऊँचाई का होता है और सदा हरा-भरा रहता है। इसकी छाया ठण्ढी और प्रिय होती है। शाखायें लटकी हुई

होती हैं। **पत्ते**—पक्षवत्, ८-१४ इञ्च लम्बे एवं पत्रदण्ड आधार पर फूला हुआ होता है। **पत्रक**—हरे रङ्ग के चमकीले, चिकने, संख्या में ५-७, आयताकार या लट्वाकार, नुकीले, २-५ इञ्च लम्बे एवं छोटे वृन्त से युक्त होते हैं। **फूल**—जरा गुलाबी और आसमानी छाया लिये हुये श्वेतवर्ण के गुच्छों में आते हैं। एक दलपत्र बड़ा होता है जो अन्य चार दलपत्रों को ढक कर रखता है। सूखने के पहिले ही असंख्य संख्या में पुष्प जमीन पर गिर कर भूमि को आच्छादित कर देते हैं। **फलियाँ**—चिकनी, चिपटी, कठोर, एक बीजयुक्त, गहरे धूसर रङ्ग की तथा १-२ इञ्च लम्बी सेम के आकार की होती हैं। **बीज**—चिपटे कृष्णाभ रक्त वर्ण के कुछ सिकुड़नदार गोलाई लिये आयताकार एवं तैल युक्त होते हैं।

इसके पत्र, कांड एवं मूल की त्वचा, तैल एवं बीजों का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। बीजों का तैल जलाने के काम भी आता है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में २७-३६·४% एक कड़ुवा, भूरे रङ्ग का एवं विशिष्ट गन्ध का तैल पाया जाता है। इसे पोंन्गेमॉल (Pongamal) या होंगे तैल (Hongay oil) कहते हैं। इस तैल से करंजीन (Karanjin, S_{18} H_{12} O_4) नामक एक रवेदार पदार्थ प्राप्त किया गया है। बीजों में अत्यल्प मात्रा में उड़नशील तैल रहता है। इसकी छाल में एक क्षाराभ एवं हरिताभ भूरे रंग की अम्लस्वभावी राल पाई जाती है।

गुण और प्रयोग—करंज कुष्ठघ्न, आमवातघ्न, कृमिघ्न, व्रणरोपण, कासहर, पाचन एवं त्वचा के रोगों में लाभदायक है।

(१) इसके बीजों का तेल बहुत अच्छा कृमिघ्न, पराश्रयी जीवाणुनाशक तथा व्रणरोपक है। खुजली (Scabies) के लिये यह बहुत उपयोगी है। यह दद्रु, पामा, विचर्चिका, विसर्प, सर की खुजली, परिसर्प (Herpes) आदि त्वचा के रोगों में एवं संधिवात में लाभदायक है। त्वचा के रोगों में इसके साथ समान मात्रा में नींबू का रस मिलाकर लगाते हैं।

(२) वातिक पीडा, आमवात तथा संधिवात में इसके पत्तों के क्वाथ से सेंकते हैं तथा इसके बीजों के तैल से मालिश करते हैं।

(३) दुर्गन्धयुक्त व्रण की शुद्धि के लिए तथा नाडीव्रण के पूरण के लिये इसके मूल का स्वरस लगाते हैं।

(४) सोजाक में इसकी जड़ का स्वरस, नारियल का दूध एवं चूने का जल मिलाकर देते हैं।

(५) इसके बीजों का चूर्ण ज्वरहर तथा बल्य मानते हैं। कुकास एवं अन्य प्रकार की खाँसी में इसके बीज को घिसकर देने से लाभ होता है।

(६) इसके पत्तों को अपचन, अतिसार, आध्मान तथा गुल्म में खिलाते हैं। इससे उदरशूल कम होता है एवं अन्न का पाचन भी ठीक होता है। शीतपित्त में पत्र-स्वरस, दही, नमक एवं काली मिर्च के साथ देते हैं।

(७) मधुमेह में इसके पुष्पों का फाण्ट पिलाते हैं। खालित्य में पुष्प पीस कर सर पर बाँधते हैं।

(८) व्रणशोथ पर इसके पत्तों को निर्गुण्डी के पत्तों के साथ पीस कर बाँधने से सूजन कम हो जाती है।

(९) रक्तार्श में इसके मूल को गोमूत्र में पीस कर पिलाते हैं तथा पथ्य में तक्र देते हैं।

मात्रा—बीज ½-२½ रत्ती बच्चों को, १ माशा बड़ों को;
मूलस्वरस ३ माशा; छाल १-३ माशा।

५४ करंज (कंट करंज)

सं०-पूतिकरंज, लताकरंज, कण्टकिकरंज, विटपकरंज, कुबेराक्ष, प्रकीर्य। **हिं०**-करंज, करंजवा, करंजुआ, कंटकरंज (जा), कंजा, करंजु, कट्करेजा, सागरगोटा। **बं०**-काँटा करंजा, नाटा करंजा, नाटा। **म०**-सागर गोटा, गज्रा, गजरघोटा, गाजगा। **गु०**-काँचका, कांक। **क०**-गज्जिकेकायि। **ते०**-गचकाय। **ता०**-कझ शिके। **मला०**-कलंचिकुरु। **फा०**-खाये इब्लीस। **अ०**-अक्तमक्त, इजुलविलादत। **अं०**-Bonduc nut (बॉण्डक् नट्); Physic nut (फिझिक् नट्); Fever nut (फीवर् नट्)। **ले०**-*Caesalpinia bonducella Fleming* (सिसल्पिनिआ बॉण्ड्युसेल्ला फ्लेमिंग); C. crista Linn. (सि. क्रिस्टा लिन.)। Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी)।

यह भारतवर्ष, बर्मा एवं लंका के उष्ण प्रदेशों में विशेषकर समुद्री किनारों पर तथा पहाड़ियों पर २५०० फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। यह बंगाल तथा दक्षिण में बहुत होता है। इसे खेत और बागों की मेंड पर लगाते हैं।

इसके सघन एवं विस्तृत कांटेदार **गुल्म** या लता होती है। **शाखाएं**-फैली हुई तथा आरोहणशील होती हैं। इन पर सीधे, तीक्ष्ण तथा पीले रंग के कांटे होते हैं। छोटी शाखाएं घनरोमश होती हैं। **उपपत्र** (Stipules) ६-८ जोड़े, २-३ इञ्च लंबे तथा पत्र के आधार पर रहते हैं। **पत्ते**-संयुक्त द्विपक्षाकार तथा १-२ फीट लंबे होते हैं। पत्रदण्ड के कांटे टेढ़े होते हैं। **पत्रक**-६-९ जोड़े, $\frac{3}{4}$-१$\frac{1}{2}$ इञ्च लंबे, $\frac{1}{2}$-१ इञ्च चौड़े, मुलायम, पतले, लट्वाकार, आयताकार, रोमश कुण्ठिताग्र, ऊपर से चिकने किन्तु अधो पृष्ठ मृदुरोमश एवं अत्यन्त सूक्ष्म वृन्त से युक्त होते हैं। **पुष्प**-इसके पीले तथा लंबी मंजरियों में होते हैं। **फलियां**-चौड़ी, आयताकार, २-३ इञ्च लंबी, करीब २ इञ्च चौड़ी, १-२ बीजों से युक्त और ऊपर से कांटों से ढकी रहती हैं। **बीज**-संख्या में १-२, गोल या अंडाकार, करीब $\frac{1}{2}$-$\frac{3}{4}$ इञ्च बड़े, सीसे के रंग के चिकने तथा कठोर आवरण वाले होते हैं। बीजों के अन्दर पीताभ श्वेत रंग का गूदा रहता है जो स्वाद में अत्यन्त कडवा होता है।

बीजों को फूलने तक सेंक कर या केवल फोड़कर अन्दर का गूदा निकालकर काम में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त पत्र एवं मूलत्वक् का भी चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। इसके बीजों में मज्जा करीब ४२% एवं छिलका ५८% होता है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में बोण्ड्युसिन (Bonducin, $C_{20}H_{28}O_8$) नामक एक कडुआ ग्लुकोसाइड चूर्णरूप में पाया जाता है। यह श्वेत रंग का होता है। यह जल में नहीं घुलता किन्तु मद्यसार तथा तैलों में घुल जाता है। इसके अतिरिक्त बीजों में २०-२४% हलके पीले रंग का गाढा दुर्गन्धयुक्त तैल, स्टार्च, शर्करा, सिटोस्टेरॉल् (Sitosterol), फाइटोस्टेराल् (Phytosterol) एवं हेप्टोकोसेन (Heptocosane) ये पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके बीजों की मज्जा उष्ण, रूक्ष, बल्य, नियतकालिक ज्वर प्रतिबन्धक, ज्वरहर, शोथघ्न, अल्प स्तम्भन, रक्तस्तम्भक, वेदनाहर एवं कृमिघ्न है। इसका उपयोग विषमज्वर, सूतिकाज्वर, शूल, श्वास, वातविकार, चर्मरोग, शोथ एवं व्रण आदि में किया जाता है।

(१) इसके बीज अर्धविसर्गीज्वर, साधारणज्वर, संतत ज्वर, शीतज्वर तथा विशेषकर मलेरिया (Malaria) के लिये बहुत ही लाभदायक हैं। बीजों का चूर्ण काली मिरिच के साथ ५-१० र० की मात्रा में ज्वर आने के पूर्व दिया जाता है। इसे खाली पेट नहीं देना चाहिये। क्विनीन की तरह ही यह लाभदायक माना जाता है। ज्वर के पश्चात् बल्य रूप में भी इसका प्रयोग करते हैं।

(२) सूतिकाज्वर में या प्रसूतावस्था में बीजों के प्रयोग करने से सभी प्रकार से लाभ होता है। इससे ज्वर कम होता है। गर्भाशय का संकोच होता है, शूल कम होता है, आर्तव शुद्धि होती है एवं यदि कहीं व्रण हुआ हो तो वह भी अच्छा हो जाता है।

(३) उदरशूल में वेदना कम करने के लिये तथा वमन में करीब १ बीज की $\frac{1}{2}$ मज्जा, २, ३ लौंग के साथ देते हैं। शूल में इसका धूम्रपान भी लाभदायक होता है। अजीर्ण में हींग के साथ इसका उपयोग किया जाता है। कुपचन में मिरिच के साथ इसका चूर्ण मट्ठे के साथ देते हैं। रक्तातिसार में गाँजा के साथ इसका उपयोग किया जाता है।

(४) क्षयज कास तथा श्वास में बीजों का क्वाथ पिलाते हैं।

(५) इसके बीजों का चूर्ण एरंडपत्र पर डालकर अंडवृद्धि एवं अंडशोथ पर बाँधते हैं तथा इसको खिलाते हैं। इसके (पूतिकरंज) पत्तों का स्वरस श्लीपद में लाभदायक होता है (सु० चि० १९)। बीजों को पीसकर एरंड तैल के साथ अन्य प्रकार के शोथ पर भी बाँधते हैं।

(६) बीजों को दबाकर निकाला हुआ तैल मुँह पर के दाग, तारुण्यपिटिका एवं आमवात में लगाया जाता है। कर्णस्राव में इसे डालते हैं। दुष्टव्रण एवं क्षत आदि में इससे लाभ होता है। बीजों को तैल में पकाकर सिद्ध किया हुआ तैल भी इस प्रकार उपयोग में लाया जाता है।

(७) इसकी जड़ एवं पत्ते ज्वरघ्न हैं। इसके पत्तों का स्वरस जीर्णज्वर, शीतपित्त, उपदंश की द्वितीयावस्था में उत्पन्न चर्मविकार, कृमि एवं यकृत विकार में दिया जाता है।

मात्रा—बीजमज्जा ५-१० र०; मूल ५-१० र०; पत्रस्वरस १-२ तो०।

अथ करंजी (अरारी)। तस्या नामगुणानाह

उदकीर्यस्तृतीयोऽन्यः षड्ग्रन्था हस्तिवारुणी।
मर्कटी वायसी चापि करञ्जी करभञ्जिका ॥ १२३ ॥
करञ्जी स्तम्भनी तिक्ता तुवरा कटुपाकिनी।
वीर्योष्णा वमिपित्तार्शःकृमिकुष्ठप्रमेहजित् ॥ १२४ ॥

करञ्ज के उक्त भेदों से भिन्न एक तीसरा करञ्ज और होता है जिसे करञ्जी (अरारी) कहते हैं, उसके नाम तथा गुण—उदकीर्य, षड्ग्रन्था, हस्तिवारुणी, मर्कटी, वायसी, करञ्जी और करभञ्जिका ये सब करञ्जी के संस्कृत नाम हैं। करञ्जी—स्तम्भक, तिक्त तथा कषाय रस युक्त, पाक में कटु रस युक्त और उष्णवीर्य होती है। यह—वमन, पित्त, बवासीर, कृमि, कुष्ठ तथा प्रमेह को दूर करने वाली होती है ॥ १२३-१२४ ॥

नोट—यह भी करंज का एक भेद है। पहले वर्णन किये हुए वृक्ष करंज एवं लताकरंज के अतिरिक्त एक तीसरा भेद चिरबिल्व नाम से पाया जाता है जिसका यहां वर्णन किया गया है। भावप्रकाशकार चिरबिल्व नाम नक्तमाल के पर्याय में लेते हैं। कुछ लोग उदकीर्य नाम नक्तमाल के लिये उचित मानते हैं जो यहां करंजी के पर्याय में आया है।

५५ चिरबिल्व (करंजभेद)

सं०-चिरबिल्व, पूतिकरंज। **हिं०**-चिलबिल, चिरमिल, पापरी, करंजी, बनचिल्ला। **म०**-वावल। **गु०**-कणझो, चरेल। **उड़ि०**-दुरंजा, करंजी। **ता०**-अयम्। **ते०**-नविलि **क०**-रसविज। **ले०**-*Holoptelia integrifolia Planch.* (हॉलोप्टेलिआ इन्टेग्रिफोलिआ प्लँच)। Fam. Ulmaceae (अल्मॅसी)।

यह हिमालय के निचले प्रदेश, अजमेर, बुंदेलखंड, बिहार, आसाम एवं पश्चिम प्रायद्वीप में प्रायः घाटियों तथा नदियों के किनारे पाया जाता है।

इसके **वृक्ष**–छोटे या बड़े एवं करंज के समान ही दिखलाई देते हैं। **शाखाएँ**–लटकी हुई, गुच्छाकार तथा श्वेत रंग की होती हैं। **काण्ड**–मजबूत होता है। **पत्ते**–दो कतारों में निकले हुये, अण्डाकार या लट्वाकार, प्रायः (परिपक्व) अखण्ड, २-४·५ इञ्च लम्बे, १·५-७·७५ इञ्च चौड़े, नोकदार, दुर्गन्ध युक्त एवं बिन्दुकित होते हैं। हरे पत्तों में पारदर्शक बिन्दु होते हैं। शुष्क पत्तों में अधर तल पर छोटे छोटे उभरे हुये बिन्दु दिखाई देते हैं। **पुष्प**–बहुत छोटे, हरित, शाखाओं के अग्र पर गुच्छों में पतझड़ होने पर निकलते हैं। फल–सपक्ष, चिपटा, प्रायः १ इञ्च लम्बा, गोल या अण्डाकार एवं नताग्र होता है। फल भेद से इसके ३, ४ भेदों का उल्लेख है। इसके पत्तों एवं काष्ठ में दुर्गन्ध होती है।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में लुआबदार पदार्थ बहुत होता है।

गुण और प्रयोग—यह शोथहर, शोणितोत्क्लेशक एवं करंज के समान गुण वाला है। इसकी छाल को उबाल कर उसका लुआब अथवा मूल को पीस कर संधिशोथ पर लगाते हैं तथा उबली हुई छाल को ऊपर से बांध देते हैं। इसके पत्तों का कल्क तैल में उबाल कर वह तैल व्रण पर लगाते हैं। दाद पर बीज को जल में घिसकर लगाया जाता है।

अथ गुञ्जा-श्वेता रक्ता च। तयोर्नामगुणानाह

श्वेता गुञ्जोच्चटा प्रोक्ता कृष्णला चापि सा स्मृता।
रक्ता सा काकचिञ्ची स्यात्काकणन्ती च रक्तिका ॥ १२५ ॥
काकादनी काकपीलुः सा स्मृता काकवल्लरी।
गुञ्जाद्वयन्तु केश्यं स्याद्वातपित्तज्वरापहम् ॥ १२६ ॥
मुखशोषभ्रमश्वासतृष्णामदविनाशनम्। नेत्रामयहरं वृष्यं बल्यं कण्डूं व्रणं हरेत् ॥ १२७ ॥
कृमीन्द्रलुप्तकुष्ठानि रक्ता च धवलाऽपि ॥ १२८ ॥

सफेद तथा लाल गुञ्जा के नाम तथा गुण—श्वेतगुंजा, उच्चटा (श्वेतोच्चटा), और कृष्णला ये सब संस्कृत नाम सफेद घुँघुची के हैं। लाल घुँघुची के संस्कृत नाम—रक्तगुञ्जा, काकचिञ्ची, काकणन्ती, रक्तिका, काकादनी, काकपीलु और काकवल्लरी ये सब हैं। **दोनों प्रकार की घुँघुची** केश के लिये हितकर, वात, पित्त, ज्वर, मुख का सूखना, भ्रमरोग, श्वास, तृषा, मद तथा नेत्ररोग को नष्ट करने वाली होती है। यह वृष्य, बलकारक तथा खुजली, व्रण, कृमि, इन्द्रलुप्तरोग तथा कुष्ठ इन सबों को भी दूर करनेवाली होती है ॥ १२५-१२८ ॥

५६ गुञ्जा (श्वेत, रक्त)

हि०–गुंजा, घुंघची, घुँघुची, चिरमी, चिरमिटी, घुमची, करजनी, रत्ती, चौंटली। **बं०**–कुँच। **म०**–गुञ्ज। **गु०**–चणोठी। **क०**–गुलगुंति, गुरुगुंजी। **मल०**–कुन्नि। **ता०**–कुन्थमणि, कुँरि। **पं०**–चर्मंटी। **ते०**–गुरुगिंज। **फा०**–चश्मे खरूस, सुर्ख। **अं०**–Jequirity (जेक्विरिटी)। **लें०**–*Abrus precatorius Linn.* (एब्रस् प्रिकेटोरिअस् लिन.)। Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी)।

गुंजा प्रायः सब प्रान्तों के जङ्गल-झाड़ियों में उत्पन्न होती है तथा हिमालय में ३००० फीट की ऊँचाई तक पायी जाती है। इसकी **लता**–सुन्दर तथा चक्रारोही होती है। **शाखायें**–पतली,

लचीली तथा काष्ठमय होती हैं। यह बरसात के दिनों में खूब हरी भरी दिखाई देती है। **पत्ते**–इमली के जैसे, २-३½ इञ्च लम्बे, युग्म पक्षाकार होते हैं। **पत्रक**–१०-२० जोड़े, विपरीत, आधे से एक इञ्च लम्बे, ⅙ इञ्च तक चौड़े, रेखाकार-आयताकार, अखण्ड तथा दोनों सिरों पर कुछ गोल एवं स्वाद में मीठे रहते हैं। **पुष्प**–वर्षाकाल में ३ इञ्च लम्बी और गुच्छे में निकली हुई मञ्जरियों में प्रायः सफेद या गुलाबी छाया लिये हुये या हलके बैंगनी रङ्ग के आते हैं। **फली**–१-१½ इञ्च लम्बी नुकीली तथा गुच्छों में आती है। यह शीतकाल के अन्त तक पक जाती है। **बीज**–छोटे, चिकने, चमकीले, कड़े, काले दाग के साथ और सिन्दूरवर्ण के या कभी कभी बिलकुल श्वेत रंग के या बिलकुल काले, संख्या में ३-६ तथा अण्डाकार होते हैं। इसकी **जड़**–काष्ठमय, अनेक शाखाओं से युक्त टेढ़ी मेढ़ी होती है।

नोट—मूलविषों के अन्तर्गत सुश्रुत में इसका उल्लेख है (सु० क० अ० २)। चरक में स्थावर विष वर्ग में इसका पाठ नहीं है। उच्चटा नाम से वाजीकरण के लिये इसका प्रयोग किया गया है। गुञ्जा बीज में जो विष होता है वह उबालने से नष्ट हो जाता है तथा इसका विषैला प्रभाव केवल अधस्त्वगीय प्रवेश से ही होता है। वंगसेन ने गृध्रसी में वेदना शान्ति के लिये शिराप्रच्छन्न करके गुञ्जाकल्क लेप का निर्देश किया है।[1] बाह्य प्रयोग में गुञ्जा की उपयोगिता होने पर शुद्ध गुञ्जाबीज का ही व्यवहार करना चाहिये।

इसकी जड़ गुणों में कुछ कुछ **मुलेठी के समान** होती है तथा उसमें भी मुलेठी में पाया जाने वाला ग्लिसिहाइझिन् (Glycyrrhizin) नामक तत्त्व होता है। इस कारण कभी कभी मुलेठी के प्रतिनिधि रूप में यह ले ली जाती है। किन्तु इसे मुलेठी मानना उचित नहीं है। गुञ्जा की जड़, शोधित (श्वेत) बीज एवं पत्र का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—गुंजा के बीजों में ॲब्रिन् (Abrin) नामक एक विषैला तथा प्रक्षोभक प्रभूजिन जातीय द्रव्य है। इसके अतिरिक्त बीजों में विषैले प्रभूजिन जातीय अन्य द्रव्य, वसाविच्छेदक किण्व (Fat-splitting enzyme), ॲब्रूसिक् ॲसिड (Abrussic acid), हीमॅग्लूटिनिन् (Haemagglutinin) एवं यूरिएस् (Urease) पाये जाते हैं। बीजों के छिलकों में लाल रंजक द्रव्य होता है।

इसके मूल में मुलेठी में पाया जाने वाला द्रव्य ग्लिसिहाइझिन् (Glycyrrhizin) करीब १५% एवं अम्ल राल ८% पाई जाती है।

इसके पत्तों में भी करीब १०% ग्लिसिहाइझिन् (Glycyrrhizin) एवं ॲब्रिन् (Abrin) रहता है।

ॲब्रिन् (Abrin) यह अत्यन्त विषैला द्रव्य है। इसमें ग्लोब्युलिन् (Globulin) एवं ॲल्ब्युमोस (Albumose) ये दो प्रभूजिन (Protein) होते है जिनमें से प्रथम अधिक शक्तिशाली है। यह द्रव्य उबालने से नष्ट हो जाता है। इसको एरंड बीज में पाये जाने वाले रिसिन (Ricin) सदृश मानते हैं। शरीर भार के प्रति किलोग्राम के लिये $\frac{१}{१०००}$ से $\frac{१}{२०००}$ मिलिग्राम की मात्रा में इसका अधस्त्वगीय सूचिकाभरण घातक होता है। बीजों के क्वाथ को आँखों में डालने से भी मृत्यु हो सकती है क्योंकि वहाँ अत्यन्त तीव्र प्रक्षोभ उत्पन्न होता है तथा विष का प्रचूषण होता है। त्वचान्तर्गत प्रयोग से स्थानिक अत्यन्त तीव्र प्रक्षोभ उत्पन्न होकर शोथ एवं त्वचा में रक्तस्राव होता है। मुख द्वारा सेवन से इससे अल्प या बिलकुल ही प्रक्षोभ नहीं होता एवं आमाशय में पहुँचने पर यह विषरहित हो जाता है। जानवरों में अतिसूक्ष्मातिसूक्ष्म मात्रा में

१. द्वित्रिस्थानेषु गृध्रस्यां शिरा प्रच्छन्नवेधिता। गुञ्जाकल्केन लिप्ता च सद्यस्त्यजति वेदनाम् ॥ वंगसेनः ॥

सूचिकाभरण से उनमें इस विष के प्रति सहनशीलता उत्पन्न हो जाती है। चर्मकार चर्म के लोभ में जानवरों को मारने के लिये बीजों की वर्ति बनाकर चमड़े में प्रवेश करते थे। गर्भपात कराने के लिये भी इस प्रकार की वर्तियों का उपयोग किया जाता था।

शोधन—श्वेतगुंजा के बीज गोदुग्ध में १ प्रहर उबाल कर, छिलके निकाल कर गरम जल से धोकर फिर प्रयोग करना चाहिये। कांजी में भी स्वेदन करने से इनकी शुद्धि हो जाती है।

विष प्रभाव—बिना शोधन के बीजों का प्रयोग तीव्र वामक एवं विरेचक होता है। अधिक मात्रा में प्रयोग से भी इस प्रकार के विसूचिका सदृश लक्षण उत्पन्न होते हैं। यदि इसके प्रयोग से बेचैनी आदि हो तो चौलाई का रस मिश्री मिला कर पिलाना चाहिये तथा ऊपर से दूध पिलाना चाहिये।

गुण और प्रयोग—गुंजा की जड़ की क्रिया मुलेठी की तरह होती है। पत्ते भी मधुर होते हैं। यह भी मुलेठी की ही तरह मधुर, स्नेहन, कफ शामक, मूत्रजनन एवं व्रणरोपण है। इसके बीज उष्ण, बल्य, वृष्य, केश्य, वातहर एवं स्थानिक प्रक्षोभक हैं।

(१) स्वरभंग में श्वेत गुंजा के पत्र कबाबचीनी के साथ या अकेले मिश्री मिलाकर चूसने को दिये जाते हैं। मुखपाक में भी पत्र चूसने से लाभ होता है। वेदनायुक्त शोथ पर पत्र स्वरस या पत्र कल्क को तैल में मिलाकर लगाया जाता है। व्रण पर भी इसका उपयोग करते हैं। उपदंश में लाल गुंजा के पत्र ½ माशा, जीरा २ माशा तथा मिश्री १ तोला मिलाकर दिन में दो बार ७ दिन तक प्रयोग किया जाता है।

(२) वीर्य विकार में २ माशे जड़ को दूध में पका कर भोजन के पूर्व रात में देते है। कास तथा मूत्र रोगों में भी जड़ का अन्य औषधों के साथ उपयोग करते हैं।

(३) इसकी जड़ तथा फल से सिद्ध तैल गण्डमाला, गलग्रन्थि आदि पर लगाया जाता है तथा उसका नस्य देते हैं।

(४) दाद तथा खुजली पर बीजों के कल्क तथा भृंगराजपत्र-स्वरस से सिद्ध तैल का उपयोग किया जाता है। श्वेत कुष्ठ में तैलपाक के पूर्व उसमें चित्रककल्क मिलाते हैं। पत्रस्वरस का भी चित्रकमूल के साथ श्वेत कुष्ठ में प्रयोग किया जाता है।

(५) अंञ्जिन या छिलका निकाले बीजों का फांट आँखों की फूली या रोहा में प्रक्षोभक औषध के रूप में उपयोग किया जाता था किन्तु कभी-कभी इससे अनियंत्रित शोथ आदि होकर आँख भी नष्ट हो जाने के कारण अब इसका उपयोग नहीं करते हैं।

(६) बीजों का कल्क खालित्य, गृध्रसी, अंगघात तथा अन्य वातिक विकारों पर लगाते हैं।

मात्रा—मूल २-४ माशा, बीज ½-१½ रत्ती।

अथ कपिकच्छूः (कौंच)। तस्या नामगुणानाह

कपिकच्छूरात्मगुप्ता वृष्या प्रोक्ता च मर्कटी। अजडा कण्डुरा व्यङ्गा दुःस्पर्शा प्रावृषायणी॥
लाङ्गली शूकशिम्बी च सैव प्रोक्ता महर्षिभिः।
कपिकच्छूर्भृशं वृष्या मधुरा बृंहणी गुरुः। तिक्ता वातहरी बल्या कफपित्तास्रनाशिनी॥

कौंच (केवांच) के नाम तथा गुण—कपिकच्छू, आत्मगुप्ता, वृष्या, मर्कटी, अजडा, कण्डुरा, व्यङ्गा, दुःस्पर्शा, प्रावृषायणी, लाङ्गली और शूकशिम्बी ये सब कौंच के पर्यायवाचक शब्द महर्षियों ने कहे हैं। **कौंच**—अत्यन्त वृष्य, मधुर तथा तिक्तरस युक्त, बृंहण, गुरु, वातनाशक, बलकारक तथा कफ, पित्त एवम् रक्तदोष नाशक है॥ १२९-१३०॥

अथ तद्बीजगुणानाह

तद्बीजं वातशमनं स्मृतं वाजीकरं परम्॥ १३१॥

इसके बीज के गुण—कौंच के बीज-वातशामक एवम् अत्यन्त वाजीकरण हैं॥ १३१॥

५७ कपिकच्छू (केवाँच)

हि०-केवाँच, कौंच, कौंछ, केवाछ, खुजनी। **बं०**-आलकुशी। **म०**-खाज कुहिली, कुहिली, कवच। **गु०**-कवच, कौंचा। **क०**-नासुगुन्नी। **ते०**-पिल्ली अडुगु। **ता०**-पुनाइक काली, पुनैकछि। **पं०**-कवांच, कूंच। **अं०**-Cowhage (काउहेज); Cowitch (काउइच)। **ले०**-*Mucuna pruriens Bek.* (म्युक्युना प्रुरिएन्स बेक्)। Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी)।

यह भारतवर्ष के सभी मैदानी भागों में एवं लंका तथा बर्मा में पाया जाता है। यह सभी उष्ण प्रदेशों में होता है एवं इसकी खेती भी की जाती है।

इसकी लता-पतली, चक्रारोही, एकवर्षायु तथा चौमासे में अधिक होती है। पत्ते-त्रिपत्रक एवं २½-५½ इञ्च लंबे पर्णवृन्त से युक्त होते हैं। **पत्रक**-३-६ इञ्च लम्बे, पार्श्वपत्रक किञ्चित् हृद्वत् और लट्वाकार एवं अग्रय पत्रक तिर्यगायताकार (Rhomboid), पतले तथा ऊपर चिकने किन्तु अधर तल पर तलशयी रोमों से युक्त होते हैं। **पुष्प**-नीलारुण (Purple), १½ इञ्च तक लम्बे, सघन, लटकी हुई और ६-१२ इञ्च लम्बी मंजरियों में आते हैं। **फली**-२-३ इञ्च लम्बी, ½ इञ्च चौड़ी, दोनों अग्रों पर विपरीत दिशाओं में टेढ़ी, कुछ फूली सी एवं लम्बाई में धारियों से युक्त होती है। यह भूरे रंग के करीब ०·१ इञ्च लम्बे सघन दृढ रोमों से ढकी रहती है। ये रोम शरीर में लगाने से अत्यन्त खुजली उत्पन्न हो कर दाह तथा सूजन उत्पन्न होती है। **बीज**-प्रत्येक फली में ५-६ काले चमकीले तथा अन्तर्भित्ति के पतले आवरण में ढके रहते हैं।

कौंच जंगली और बागी दो प्रकार का होता है, जंगली के फलियों के ऊपर तीक्ष्ण रोवें होते हैं। इसके शरीर में लगने से खुजलाहट, सूजन और पीड़ा उत्पन्न होती है। बागी किवाँच को बाग और खेतों में लगाते हैं। यह दो प्रकार का होता है। एक की फलियों के ऊपर रोवें कम होते हैं और उनमें अधिक तीक्ष्णता नहीं होती और दूसरे में रोवें नहीं होते हैं। दोनों की तरकारी बनती है। किन्तु इसकी तरकारी सर्वप्रिय नहीं होती। रोवें निकाल कर ही तरकारी बनाते हैं।

नोट—चरक में ऋषभी नाम से बल्यवर्ग में, कच्छुरा नाम से पुरीषविरजनीय गण में एवं मधुरस्कंध में ऋष्यप्रोक्ता नाम से तथा सुश्रुत में कच्छुरा नाम से विदारिगन्धादि गण तथा वातसंशमनवर्ग में इसका उल्लेख है। 'पंजाब में सफेद रंग के कौंच के बीज पन्सारी बेचते हैं। ये चरक में लिखी हुई काकाण्डोला[1] नाम की सेम की जाति के बीज हैं' (श्री यादवजी कृत द्रव्यगुणविज्ञानम्, उत्तरार्धं द्वितीय खण्ड, पृष्ठ १७३)।

इसके बीज, मूल एवं फली के ऊपर के रोमों का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। चिकित्सा की दृष्टि से जंगली केंवाच के बीजों का ही व्यवहार करना चाहिये।

रासायनिक संगठन—इसमें राल, टॅनिन, वसा एवं मॅग्नॅनीज़ रहता है। बीजों की मज्जा की अपेक्षा ऊपर के छिलके में मॅग्नॅनीज़ (Manganese) अधिक रहता है।

गुण और प्रयोग—केवांच के बीज पौष्टिक, उत्तेजक, वाजीकर एवं वातशामक होते हैं। फली के ऊपर के रोम उत्तम आंत्रकृमिघ्न होते हैं। इसकी जड़ वातनाड़ियों के लिये बल्य, उत्तेजक एवं मूत्रजनन है। रोम के स्थानिक प्रयोग से कण्डू, दाह, शोथ एवं स्फोट उत्पन्न होता है।

---

१. काकाण्डोलात्मगुप्तानां माषवत्फलमादिशेत् (चरक सू० अ० २७-३२)।

(१) इसके रोमों को घृत, मधु या गुड़ के साथ गोला बनाकर केंचुए की बीमारी में खिला देते हैं। इससे प्रक्षोभ उत्पन्न होकर कृमि बाहर निकलते हैं। इसके पश्चात् विरेचन देना आवश्यक है।

(२) इसके बीजों की मज्जा का चूर्ण या पाक (वानरीवटिका) आदि बनाकर वाजीकरण के लिये प्रयोग किया जाता है। प्रायः वाजीकरण के प्रत्येक योग में इसका उपयोग किया जाता है।

(३) इसकी जड़ का क्वाथ या स्वरस वातनाडी-दौर्बल्य, अंगघात, अर्दित एवं अवबाहुक आदि वातरोगों में तथा ज्वर में भ्रम उत्पन्न होने पर देते हैं। यह मूत्रजनन होने के कारण इसे वृक्करोग में पिलाते हैं तथा शरीर पर लेप भी करते हैं। हैजा में इसके फांट में मधु मिलाकर पिलाने से लाभ होता है। पक्वातिसार तथा रक्तातिसार में मूल का कल्क दिया जाता है तथा पथ्य में मूलसिद्ध दुग्ध का प्रयोग करते हैं (सु० उ० अ० ४०-७४)। श्लीपद में मूल का लेप किया जाता है। इसके मूलक्वाथ के धारण से योनिसंकोच होता है (भा० प्र०)।

(४) इसके रोमों से बनाया हुआ मलहम स्थानिक उत्तेजक तथा साधारण स्फोटोत्पादक माना जाता है।

मात्रा—बीजचूर्ण २-६ माशा; रोम ५-१० रत्ती।

अथ मांसरोहिणी। तस्या नामगुणानाह

मांसरोहिण्यतिरुहा वृत्ता चर्मकषा[1] वसा[2]। प्रहारवल्ली विकशा वीरवत्यपि कथ्यते॥
स्यान्मांसरोहिणी वृष्या सरा दोषत्रयापहा॥ १३२॥

मांसरोहिणी के नाम तथा गुण—मांसरोहिणी, अतिरुहा (अग्निरुहा), वृत्ता, चर्मकषा, वसा, प्रहारवल्ली, विकशा और वीरवती ये सब पर्यायवाचक शब्द हैं। **मांसरोहिणी**–वीर्यवर्द्धक, सारक (दस्तावर) और त्रिदोषनाशक है॥ १३२॥

५८ मांसरोहिणी

हि०–मांसरोहिणी, रोहण, रोहिनी, रोहन, रोहिना, रकत रोहन। **म०, बं०**–रोहण। **गु०**–रोण, रोहणी। **कोल०**–रोहिनी। **सन्ता०**–रोहन। **गोंड०**–सोइमि। **भील०**–रोयटा। **ता०**–शेम्मरम्। **क०**–स्वामीमर। **ते०**–सूमि, सोमिडमनु। **अं०**–Red wood tree (रेड वुड् ट्री) **ले०**–*Soymida febrifuqa A. Juss*. (सॉयमिडा फेब्रीफ्युजा ए. जस्.)। Fam. Meliaceae (मेलिएसी)।

यह प्रायद्वीप से उत्तर की तरफ मेरवारा तक तथा मिर्जापुर एवं छोटा नागपुर आदि स्थानों में पाई जाती है।

इसका वृक्ष–बहुत ऊँचा और स्तम्भ मोटा होता है। **इसकी छाल**–तिहाई इञ्च मोटी नीलापन युक्त खाकी अथवा कालापनयुक्त भूरे रंग की एवं कड़वी होती है। **लकड़ी**–लालीयुक्त भूरे रंग की और खूब टिकाऊ होती है। **पत्ते**–पक्षवत् तथा ९-१८ इञ्च लंबे होते हैं। **पत्रक**–२ से ४ इञ्च तक लम्बे, अण्डाकार या आयताकार, लगभग अवृन्त, चिकने, तिर्यक् आधार वाले तथा संख्या में ३ से ६ जोड़े होते हैं। नवीन पत्ते ग्रंथियों से युक्त और लाल होते हैं। पत्रक-दण्ड तथा

१. चर्मकरी इति पाठा०।
२. कशा इति पाठा०—गुण तथा आकृति की दृष्टि से इसका वसा पर्याय अधिक उचित है।

पत्रक-सिरा सर्वदा लाल बनी रहती है। **फूल**–नन्हें-नन्हें हरियाली लिये सफेद रंग के अग्रथ मंजरियों में आते हैं। **फल**–१ से २॥ इञ्च बड़े, बहुत कठोर, भूरे लाल रंग के किन्तु पकने पर काले एवं अग्र पर खुल जाते हैं। प्रत्येक फल में अगणित पङ्खदार बीज होते हैं जो आषाढ़, श्रावण में पककर गिर जाते हैं।

इसकी छाल का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

नोट—चरक में बल्य एवं सुश्रुत में न्यग्रोधादिगण में इसका उल्लेख है। सुश्रुत के टीकाकार डल्हण ने रोहिणी का अर्थ कुटकी, कायफल, कड़ुवी तुम्बी तथा हरीतकी भेद आदि किये हैं। इसके रकतरोहक, रोहिनी आदि प्रचलित नाम मांसरोहिणी के समानार्थक मालूम होते हैं तथा इसकी छाल भी मांसवर्ण की होती है। इस दृष्टि से इसके मांसरोहिणी होने में सन्देह नहीं मालूम पड़ता। अन्य निघंटुकारों ने इसके गुणों में 'ग्राही' लिखा है जो अधिक उचित मालूम पड़ता है। उपर्युक्त डल्हण की टीका के अनुसार यदि किसी द्रव्य को रोहिणी माना जाय तो उस अवस्था में 'सरा' यह उचित हो सकता है।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में एक रंगहीन, जल में न घुलने वाला किन्तु मद्यसार में घुलनशील रालयुक्त कड़वा पदार्थ एवं अधिक मात्रा में टॅनिक् ॲसिड् तथा गॅलिक् ॲसिड् रहता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल शीत, ग्राही, तिक्त, कषाय, वृष्य, पौष्टिक, अल्प नियतकालिक ज्वर-प्रतिबन्धक, सन्धानीय, व्रणरोपण एवं कण्ठशुद्धिकर है। अधिक मात्रा में इससे चक्कर एवं संज्ञानाश होता है। ओक वृक्ष की छाल की तरह इसका क्वाथ बाह्य प्रयोग में व्यवहार में लाते हैं। आन्तरिक प्रयोग के लिये चूर्ण का ही व्यवहार उचित है।

(१) विसर्गी या जीर्णज्वरों में शरीर व आंतों में जब शिथिलता आती है तब इसका चूर्ण देते हैं। मलेरिया में इसका क्वाथ १ औंस की मात्रा में दिन में ३ बार देने से लाभ होता है।

(२) पुरानी आंव तथा अतिसार में इससे अच्छा लाभ होता है।

(३) इसकी छाल के क्वाथ से व्रण धोते हैं, बस्ति देते हैं तथा कुल्ले कराते हैं।

मात्रा—त्वक् चूर्ण ३० रत्ती त्रिवार।

अथ चिल्हकः 'चिल्ह' इति लोके तस्य नामगुणानाह

चिल्हको वातनिर्हारः श्लेष्मघ्नो धातुपुष्टिकृत्। आग्नेयो विषवधस्य फलं मत्स्यनिषूदनम्॥१३३॥

चिल्हक के गुण—चिल्हक वातनाशक, कफ को दूर करने वाला, धातु की पुष्टि करने वाला और आग्नेय (अत्यन्त गरम) होता है और इसका फल–विषतुल्य मछलियों को मारने वाला होता है॥ १३३॥

५९ चिल्हक

हि०–चिल्ला, चिलर, चिल्हक। **म०**–मस्सी, करी लैंज। **संथा०**–चोरचो। **खर०**–बेरी। **कोल**–रोरी। **उडि०**–गिरटि। **ले०**–*Casearia tomentosa Roxb*. (केसिएरिआ टोमेण्टोसा राक्स.)। Fam. Samydaceae (सॅमिडेसी)।

यह सब जगह पाया जाता है। शाल वनों के पास या झाडीदार जंगलों में यह बहुत होता है। **इसके वृक्ष**–छोटे एवं शाखाएँ दिगन्तसम फैली हुई होती हैं। **छाल**–मोटी- भंगुर एवं चौकोर

टुकड़ों में छूटती है। काष्ठ-पीताभ श्वेत, कठोर एवं खुरदरा होता है। पत्ते-आयताकार (छोटे लट्वाकार या अण्डाकार), अधरपृष्ठ की नसों पर मृदु रोमश, २-७ इञ्च लम्बे, २ इञ्च चौड़े एवं दन्तुर होते हैं। पत्रसिरायें रक्ताभ होती हैं। पुष्प-हरिताभ पीत वर्ण के पुष्प नवीन टहनिओं पर आते हैं। फल-मांसल, अण्डाकृति, ३/४ इञ्च बड़े, कडवे एवं ६ रेखाओं से युक्त होते हैं। फलों का चूर्ण पानी में डाल देने से मछलियां मर जाती हैं। इसके सभी भागों का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

नोट—अन्य निघण्टुओं में इसका उल्लेख नहीं पाया जाता। इसकी एक दूसरी उपजाति केसिएरिआ एस्क्युलेण्टा राक्स. (C esculenta Roxb.), के मूल एवं पत्र का उपयोग समरंगा या स्वर्णमूला नाम से यकृत्-वृद्धि, अर्श तथा यकृतोद्भव मधुमेह में किया जाता है।

गुण और प्रयोग—जलशोथ में फल का गूदा खिलाते हैं, सर्वांग में छाल का लेप करते हैं तथा पत्रक्वाथ से स्नान कराते हैं। इससे पेशाब अधिक होती है।

अथ टङ्कारी। तस्या गुणानाह

टङ्कारी वातजित्तिक्ता श्लेष्मघ्नी दीपनी लघुः। शोथोदरव्यथाहन्त्री हिता पीठविसर्पिणाम् ॥१३४॥

टङ्कारी के गुण—टङ्कारी वातनाशक, तिक्तरसयुक्त कफघ्न, अग्निदीपक, पाक में लघु तथा शोथ एवं उदररोग को दूर करने वाली होती है। यह पीठ पर के विसर्प के लिये हितकर है॥१३४।

नोट—टंकारी का उल्लेख अन्य निघण्टुओं में नहीं मिलता। लघु अग्निमन्थ (Clerodendrum phlomidis) को कहीं-कहीं 'टेकारी कहते हैं जो 'तर्कारी' का अपभ्रंश मालूम पड़ता है। इसका वर्णन २८१ पृष्ठ पर किया गया है। टंकारी नाम से फाइसेलिस् मिनिमा (Physalis minima) का वर्णन आधुनिक उद्भिदवेत्ताओं ने किया हैं जिसका यहाँ वर्णन किया जा रहा है। यह विदेश से आने वाले मकोय की जाति के फल 'काकनज' (Physalis alkekenji Linn.) के प्रतिनिधि माने जाते हैं। डॉ० देसाई ने सम्भवतः इसका उल्लेख फा. इण्डिका (P. indica) नाम से किया है।

६० टंकारी

सं०-टंकारी, लक्ष्मीप्रिया, चिरपोटा। हिं०-तुलसीपति। बं०-बनटेपारि। **म०**-थानमोडी, चिरबोटी, चिरबुटले। **गु०**-पोपटी, पर्पोटी। **पं०**-हुब्बककनज। **क०**-बोंडुल। **ता०**-सिसयकालि। **ते०**-कुपण्टे। **ले०**-*Physalis mimima Linn.* (फाइसेलिस् मिनिमा लिन.)। Fam. Solanaceae (सोलेनॅसी)।

यह सब प्रान्तों में पाया जाता है। इसका क्षुप-६-१८ इञ्च ऊँचा, नरम लोमयुक्त एवं वर्षजीवी होता है। **पत्ते**-२ इञ्च लंबे, अण्डाकार तथा दन्तुर होते हैं। **पुष्प**-घण्टाकृति, पीतवर्ण तथा १/२ इञ्च बड़े होते हैं। फल-१½ इञ्च लबा, १/२ इञ्च चौड़ा, लाल रंग का रुचिकर होता है जिसमें छोटे-छोटे अनेक बीज होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके फल बलकारक, मूत्रजनन एवं विरेचक होते हैं। 'काकनज' के स्थान पर इनका उपयोग किया जाता है। सोजाक में फलों को खिलाते हैं। स्तनशिथिलता दूर करने के लिये इसके पंचांग को चावल की धोवन में पीस कर लेप करते हैं। मलावष्टम्भ में इसके फलों का पाक बहुत लाभदायक है। तमकश्वास में इसकी जड़ तथा टंकण का लावा मधु के साथ देने से श्वासावरोध कम होकर कफ निकलता है।

मात्रा—३-६ माशा।

अथ वेतसः। तस्य नामगुणानाह

वेतसो नम्रकः प्रोक्तो वानीरो वञ्जुलस्तथा। अभ्रपुष्पश्च विदुलो रथः शीतश्च कीर्त्तितः॥
वेतसः शीतलो दाहशोथार्शोयोनिरुक्प्रणुत्। हन्ति वीसर्पकृच्छ्रास्रपित्ताश्मरिकफानिलान्॥

वेतस के नाम तथा गुण—वेतस, नम्रक, वानीर, वञ्जुल, अभ्रपुष्प, विदुल, रथ और शीत ये सब वेतस के नाम हैं। **वेतस**-शीतल है तथा दाह, शोथ, अर्श (बवासीर), योनिरोग, विसर्प, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, अश्मरी (पथरी), कफ तथा वात को दूर करने वाला है॥ १३५-१३६॥

नोट—वेतस के विषय में विद्वानों में मतभेद है। भावप्रकाश, ध० नि०, रा० नि० आदि में वेतस तथा जलवेतस इन दो भेदों का उल्लेख है। रा० नि० ने वेत्र[1] नाम से एक स्वतन्त्र द्रव्य का भी उल्लेख किया है। अन्य निघंटुओं ने वेतस के पर्याय में या स्वतंत्ररूप से वेत्र का उल्लेख नहीं किया है। कुछ विद्वान् वेतस से बेंत का ग्रहण करते हैं जो कॅलॅमस् टेनुइस् (*Calamus tenuis*) है। कुछ लोगों के मत से वेतस से वेदमुश्क का ग्रहण उचित है जो सॅलिक्स कॅप्रिआ (*Salix caprea*) है। कुछ विद्वानों के मत से इसी जाति के सॅ० ॲल्बा (S. alba) को वेतस मानना चाहिये। इसी जाति के अन्य उपभेद (जलमाला) सॅ० टेट्रास्पर्मा (S. tetrasperma) एवं सॅ० ॲक्मोफाइला (S. acmophylla) को जलवेतस माना जाता है।

भावप्रकाशकार वंजुल और वानीर पर्याय में लिखते हैं किन्तु चरक[2] में दोनों का साथ-साथ उल्लेख होने से ऐसा मालूम होता है कि ये दो अलग वनस्पतियाँ हैं। च० चि० अ० ४-३६ में वेत्र तथा वेतस भी साथ-साथ आये हैं जिससे ये भी दो अलग द्रव्य हैं ऐसा मालूम होता है। वंजुल नाम से चरक में वेदनास्थापन महाकषाय में एवं आसवयोनिसार वृक्षों (सु० अ० २५) में तथा सुश्रुत में न्यग्रोधादिगण में उल्लेख है। 'विदुल' नाम चरक में वमनोपग महाकषाय (सू. अ. ४) में आया है जिसका अर्थ चक्रपाणि हिज्जल करते हैं। सुश्रुत (सू. अ. ३९) में ऊर्ध्वभागहरगण में विदुल आता है वहाँ डल्हण उसका अर्थ वेतस करते हैं। श्रीयुत यादव जी विदुल नाम हिज्जल के पर्याय में मानते हैं। हिज्जल (समुद्रफल) में वामक गुण देखा भी जाता है। चरक में वेतस नाम से उसकी मूलत्वक् का उपयोग रक्तपित्त (चि. अ. ४) में एवं सुश्रुत में जीर्णज्वर (उ. अ. १९) में मूल का उपयोग किया हुआ है। चरक में वेत्र नाम से रक्तपित्त (चि. अ. ४), शोथ (चि. अ. १२) एवं ऊरुस्तम्भ (चि. अ. २७) में उपयोग किया गया है।

गुणों की दृष्टि से वेदमुश्क के गुण भावप्रकाशोक्त वेतस से मिलते हैं। यहाँ पर वेदमुश्क एवं बेंत का अलग अलग वर्णन किया गया है। जलवेतस के अन्तर्गत वेदमुश्क की अन्य उपजाति जलमाला का वर्णन किया गया है।

६१ वेतस १ (वेदमुश्क)

सं०-वेतस, वानीर, गन्धपुष्प। **हिं०, पं०**-वेदमुश्क। **पश्तो०**-खगवल। **अ०**-खिलाफुल् बलखी। **फा०**-वेदेमुश्क, शुर्बस्बेद। **अं०**-Willow विलो; Sallow (सॅलो)। **ले०**-*Salix caprea Linn.* (सॅलिक्स कॅप्रिआ लिन.)। Fam. Salicaceae (सॅलिकॅसी)।

---

१. वेत्रो वेतो योगिदण्डः सुदण्डो मृदुपर्वकः।
वेत्रः पंचविधः शैत्यकषायो भूतपित्तहृत॥ रा. नि.

२. क. अ. १, ९; सि. अ. १०, १९।

यह फारस, ईरान, उत्तरपश्चिम सीमाप्रान्त एवं भारतवर्ष में काश्मीर तथा पंजाब में होता है।

इसका **वृक्ष**—छोटा तथा १५-३० फीट ऊँचा होता है। **छाल**—पतली, लचीली, कषाय एवं बहुत कड़वी होती है। **पत्ते**—एकांतर, हरे, बड़े, अंडाकार, दन्तुर एवं नुकीले होते हैं। मध्यशिरा ऊपर के पृष्ठ पर कुछ श्वेत किन्तु अधोपृष्ठ पर रोमश होती है। **पुष्प**—पीतवर्ण के तथा सुगन्धित होते हैं।

इसके पंचांग का व्यवहार किया जाता है। इसके पुष्पों से बनाये अर्क का 'अर्क वेदमुश्क' नाम से यूनानी चिकित्सा में बहुत व्यवहार किया जाता है। इससे स्रवित हुई शर्करा, वेद अंगबीन का भी उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में ४-१०% टॅनिक ऍसिड, २-७% एक रवेदार ग्लूको-साइड, सॅलीसिन (Salicin), मोम, वसा एवं गोंद होता है। इसके पुष्पों में एक सुगन्धित उड़नशील तैल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल ग्राही, शीतल, ज्वरहर, दाहप्रशमन, वेदनास्थापक, मूत्रल, शिरःशूल नाशक, हृदय को बल देने वाली, उत्तेजक एवं वाजीकर है। इसके पुष्प रोचक एवं पत्ते ज्वरहर होते हैं।

(१) इसकी छाल का क्वाथ विषम ज्वर, पैत्तिक ज्वर, नूतन आमवात तथा कफक्षय में देते हैं। इससे दाह, शिरःशूल, संधिपीड़ा, संधिशोथ एवं रक्तष्ठीवन कम होता है। अर्श में छाल का लेप किया जाता है। रक्तष्ठीवन में इसके काण्ड की राख खिलाते हैं।

(२) इसके फूलों का अर्क उष्ण ज्वर तथा हृदय की धड़कन में पिलाते हैं। नेत्राभिष्यन्द तथा शिरःशूल में इसमें कपड़ा भिगो कर उसकी पट्टी रखते हैं।

मात्रा—छाल ½-१ तो०; अर्क १-२ तोला।

६२ वेतस २ (बेंत)

सं०—वेत्र, वेतस ?। **हिं०**—बेंत। **बं०**—छांचि बेत। **म०**—वेत। **क०**—वेतसु। **गु०**—नेतर। **ते०**—जतयुर् कुलो। **पं०**—बैंत। **ता०**—बेत्तम्। **फा०**—बेंत, हर्जा खिरज़ा। **अ०**—खीरज़ा, खलाफ, हरर्जा। **अं०**—Cane (केन)। **ले०**—*Calamus tenuis Roxb.* (कॅलॅमस् टेनुइस् राक्स.)। Fam. Palmeae (पामेइ)।

यह जलप्राय भूमि में २ हजार फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

इसकी **लता**—सघन, आरोही तथा कांटेदार होती है। यह काँटों की सहायता से फैलती है। **काण्ड**—चिकना, हरा, और कोषमय पत्राधारों से ढँका हुआ रहता है। **पत्ते**—२-४ फीट लंबे, पक्षाकार और पत्रदण्ड काँटों से युक्त होते हैं। **पत्रक**—६-१२ इञ्च लंबे, ½-¾ इञ्च चौड़े, रेखाकार, भालाकार, नुकीले एवं तीन शिराओं से युक्त होते हैं। पत्रक के किनारे तथा शिरा पर भी कांटे होते हैं। पत्रनाल और पत्रकोष पर भी प्रायः १ इञ्च तक लंबे और सीधे कांटे होते हैं। पत्रकोष से चाबुक के सदृश ८ फीट तक लंबी एक रचना फ्लॅजेलम् (Flagellum) निकली रहती है जिस पर भी टेढ़े काँटे होते हैं। **पुष्प**—पत्रकोषों के अन्दर एकलिंगी पुष्पों की विदण्डिक मंजरियाँ पाई जाती हैं। **फल**—प्रायः ½ इञ्च लंबा एवं काले किनारे के वल्कपत्रों से ढका हुआ रहता है। शीतऋतु में फल पक जाते हैं। बेंत की कई जातियाँ पाई जाती हैं।

गुण और प्रयोग—इसको कुछ विद्वान् वेतस मानते हैं तथा वेतस के स्थान पर इसका प्रयोग करते हैं। इसकी जड़ ज्वरहर, पित्तहर, पौष्टिक एवं विरेचक मानी जाती है। इसके फल का गूदा ग्राही होता है। इसके कोमल अंकुरों का शाक तिक्तपौष्टिक माना जाता है।

अथ जलवेतसः। तस्य नामगुणानाह

निकुञ्चकः परिव्याधो नादेयो जलवेतसः। जलजो वेतसः शीतः [1]कुष्ठहृद्वातकोपनः॥ १३७॥

जलवेतस के नाम तथा गुण—निकुञ्चक, परिव्याध, नादेय और जलवेतस ये सब पर्यायवाचक शब्द हैं। जलवेतस—शीतल, कुष्ठनाशक तथा वात को कुपित करनेवाला होता है॥ १३७॥

६३ जलवेतस (जलमाला)

सं०—जलवेतस, वंजुल ?। **हिं०**—जलमाला, सुकूलवेत, बंद। **म०**—वालुञ्ज। **बं०**—पानिजामा। **ता०**—अत्रुपलै। **ते०**—एतिपाल। **फा०**—बेदसादा, बेदलैला। **अ०**—खिलाफ्, सफ्साफ। **ले०**—*Salix tetrasperma Roxb.* (सॅलिक्स टेट्रास्पर्मा राक्स)। Fam. Salicaceae (सॅलिकॅसी)।

इसका वृक्ष प्रायः नदी नालों के किनारे पाया जाता है। हिमालय में ६००० फीट की ऊँचाई तक यह होता है। काश्मीर तथा पश्चिमोत्तर प्रान्त में इसे लगाते हैं।

इसका **वृक्ष**—साधारण ऊँचा तथा सुन्दर होता है। **छाल**—कृष्णाभ, तन्तुमय, चिमड़, कड़वी, कषाय तथा कुछ सुगन्धित होती है। **पत्ते**—३-६ इञ्च लंबे, रेखाकार-भालाकार, चिकने, पत्रोदर हरा, पत्रपृष्ठ सफेद एवं पत्रवृन्त लाल रंग का होता है। **पुष्प**—सफेदी लिये पीले और कुछ सुगन्धित मंजरियों में आते हैं। **फल**—करीब ५ इञ्च लम्बा होता है तथा प्रत्येक फल में ४-६ बीज होते हैं। इसकी छाल एवं पत्र का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। इसके लचीले पतले काण्ड से टोकरियाँ बनायी जाती हैं। इसकी अन्य उपजातियों को बेत, लैला, मजनूँ तथा भैंसा आदि नामों से पुकारा जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके गुण भी वेदमुश्क की तरह ही हैं। इसकी छाल पौष्टिक, ज्वरघ्न, तथा नियतकालिकज्वरप्रतिबंधक है। रक्तातिसार, यकृत एवं प्लीहा शोथ तथा कामला में इसके ताजे पत्तों का रस देते हैं।

मात्रा—छाल ½-१ तो०; रस २-५ तो०; अर्क ५-१० तो०।

अथेज्जलः (समुद्रफल इति लोके) तस्य नामगुणानाह

इज्जलो हिज्जलश्चापि निचुलश्चाम्बुजस्तथा। जलवेतसवद्वेद्यो हिज्जलोऽयं विषापहः॥ १३८॥

इज्जल (समुद्रफल) के नाम तथा गुण—इज्जल, हिज्जल, निचुल और अम्बुज, ये सब पर्याय-वाचक शब्द हैं। इज्जल-गुणों में 'जलवेतस' के ही समान है तथा विशेषतः यह विषनाशक है॥१३८॥

६४ इज्जल (समुद्रफल)

हिं०—इज्जल, इंजर, हिज्जल, समुद्रफल। **बं०**—हिज्जल। **म०**—सत्फल, समुद्रफल। **गु०**—समुद्र फल। **मा०**—समंदर फल। **आसा०**—हिंडोल। **सन्ता०**—हिंजल। **कोल०**—सपरंग। **उरि०**—

[1] १. संग्राही इति पाठा०।

किजोलो। ते०-कणपु, कणिगि। ता०-समुद्रपुछानि। क०-केंपुकणगिन। मल०-चरियसंस्करवडि। ले०-*Barringtonia acutangula* (*Linn*). *Gaertn*. (बॅरिंग्टोनिआ एक्युटेन्ग्युला, (लिन) गार्ट)। Fam. Lecythidaceae (लेसिथिडेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है किन्तु बंगाल तथा दक्षिण में अधिक देखने में आता है। इसका **वृक्ष**-मध्यमाकार का और बारहों मास हरा-भरा रहता है। **छाल**-आध इञ्च तक मोटी कालापन युक्त भूरे रङ्ग की और खुरदरी होती है। **पत्ते**-अभि-लट्वाकार या अभि-प्रासवत्, २×५ इञ्च या कभी-कभी ३×४ इञ्च बड़े, सूक्ष्म दन्तुर तथा ½ इञ्च लंबे वृन्त से युक्त होते हैं। **पुष्प**-लाल रंग के पुष्प करीब २ फीट लंबी, नीचे लटकती हुई सवृन्त काण्डज मंजरियों में आते हैं तथा जल्दी ही झड़ जाते हैं। पुंकेशर लालवर्ण के होते हैं। **फल**-१।-१॥ इञ्च लंबा, बादाम जैसा, चार उभारों से युक्त और अग्र पर स्थायी बाह्यपुट के साथ रहता है। यह ताजी अवस्था में लाल किन्तु पकने पर काला तथा कठोर हो जाता है। इसे जल में भिगोने पर यह मुलायम हो जाता है। इसका स्वाद प्रारंभ में मधुर तथा बाद में कडवा और मितली लाने वाला होता है। फल की छाल पतली रहती है तथा इसमें १ बीज रहता है। इसके फल का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। इसकी छाल मछलियों के लिये विषैली है।

नोट—मदनपालनिघण्टु में निचुल नाम जलवेतस के पर्याय में आया है किन्तु उसमें हिज्जल का भी स्वतंत्र वर्णन किया हुआ है। ध० नि० में भी निचुल नाम वेतस के पर्याय में आया है। वास्तव में निचुल नाम हिज्जल (समुद्रफल) के लिये ही उचित है जिसका ऊपर वर्णन किया गया है। चरक (सू० अ० २) में निचुल नाम से विरेचनद्रव्यों में इसका उल्लेख है। श्रीयुत यादवजी ने 'विदुल' नाम इसके (हिज्जल) पर्याय में माना है जो गुणों की दृष्टि से उचित मालूम पड़ता है किन्तु भावप्रकाशकार विदुल नाम वेतस के पर्याय में लिखते हैं। चक्रपाणि विदुल का अर्थ वमनोपग महाकषाय (सू० अ० ४) की टीका में हिज्जल करते हैं किन्तु दूसरे स्थान (च० सि० अ० १०-३८) में विदुल का अर्थ वेतस भी किया मिलता है।

रासायनिक संगठन—इसके फल में साबुन की तरह एक पदार्थ रहता है। फल के चूर्ण को जल में हिलाने से फेन निकलता है जो बहुत देर तक रहता है। फेन का स्वाद प्रारंभ में मधुर एवं बाद में कडवा तथा तीता मालूम होता है।

गुण और प्रयोग—समुद्रफल कफघ्न, वामक, आनुलोमिक एवं वेदनास्थापन है। इसकी क्रिया मदनफल की तरह होती है। वृद्धों में मदनफल तथा बच्चों में समुद्रफल देते हैं। इसकी जड़ कडवी तथा पार्यायिक ज्वर में लाभदायक होती है।

(१) बच्चों के प्रतिश्याय, कास, फुफ्फुसपाक आदि कफविकारों में इसे देते हैं। यदि इसके देने के पश्चात् वमन न हो तो नमक डालकर उष्ण जल पिलाना चाहिये। इससे वमन होकर कफ निकल जाता है तथा पाखाना भी होता है। यदि इसके प्रयोग से कुछ दुष्परिणाम मालूम पड़े तो चावल की मांड घी मिलाकर दें। समुद्रफल को पीसकर छाती तथा पेट पर भी लगाते हैं।

(२) तमकश्वास में ६ माशा समुद्रफल व सफेद कोयल की जड़ ६ माशे दूध में घिसकर देते हैं जिससे वमन-विरेचन होकर आराम मिलता है।

(३) शिरःशूल में इसके बीजों का नस्य लाभदायक होता है।

(४) इसके पत्तों का रस मधु मिलाकर आमातिसार में देने से लाभ होता है।

(५) आँखों से पानी जाता हो तो समुद्रफल को जल में घिसकर लगाने से लाभ होता है।

(६) उदरशूल, आनाह आदि में नमक, अजवायन के साथ इसका चूर्ण दिया जाता है।

(७) पार्यायिक ज्वरों में काली मिर्च एवं तुलसी पत्र के साथ इसे देते हैं।

मात्रा—१-२ रत्ती।

अथाङ्कोटः (अङ्कोल-ढेरा)। तस्य नामगुणानाह

अङ्कोटो दीर्घकीलः स्यादङ्कोलश्च निकोचकः। अङ्कोटकः कटुस्तीक्ष्णः स्निग्धोष्णस्तुवरो लघुः॥ रेचनः कृमिशूलामशोफग्रहविषापहः। विसर्पकफपित्तास्रमूषकाहिविषापहः॥१४०॥

अंकोल के नाम तथा गुण—अंकोट, दीर्घकील, अङ्कोल और निकोचक ये सब 'अङ्कोल' के नाम हैं। अङ्कोल-कटु तथा कषाय (कसेला) रसयुक्त, तीक्ष्ण तथा उष्णवीर्य, स्निग्ध, लघु (हलका), रेचक (दस्तावर) होता है एवं कृमि, शूल, आम, शोथ (सूजन), ग्रहबाधा, विष, विसर्प, कफ, पित्त, रक्तविकार एवं मूसा तथा सर्प के विष को दूर करने वाला होता है॥१३९-१४०॥

अथाङ्कोटफलस्य गुणानाह

तत्फलं शीतलं स्वादु श्लेष्मघ्नं बृंहणं गुरु। बल्यं विरेचनं वातपित्तदाहक्षयास्रजित्॥१४१॥

अङ्कोल के फल का गुण—अङ्कोल का फल-शीतल, स्वादिष्ट, कफनाशक, बृंहण, पाक में गुरु, बलकारक, विरेचक एवं वायु, पित्त, दाह, क्षय तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है॥१४१॥

६५ अङ्कोट

हि०-अङ्कोल, ढेरा, टेरा, ढेला। **बं०**-आंकोड, बाघ, आंकडा, अकरकंटा। **म०**-अंकोल। **गु०**-आंकोल, अंकोल। **क०**-अंकोले-मर। **ते०**-कुडगु; अंकोलमु। **ता०**-अलंगी। **सन्ता०**-डेला, ढेला। **ले०**-*Alangium lamarckii thwaites* (एलॅन्जिअम् लेमार्काइ थ्वेट्स)। Fam. Alangiaceae (एलेन्जियेसी)।

यह मध्य और दक्षिण भारत, उत्तर-प्रदेश, बंगाल, बिहार, हिमालय की घाटी से गङ्गा तक और राजपुताना आदि कई प्रान्तों में पाया जाता है। यह प्रायः नदी-नालों की ढालों पर अधिक होता है।

इसका छोटा वृक्ष, काँटेदार देखने में सुन्दर और सघन होता है। **छाल**—धूसर रङ्ग की, मोटी एवं खुरदरी होती है। **जड़**-भारी, पीताभ, तेलिया तथा मजबूत होती है। जड़ की छाल, दालचीनी की अपेक्षा भूरे रङ्ग की रहती है। **पत्ते**-कनेर के पत्तों के समान तीन से पाँच इञ्च लम्बे, १ से २। इञ्च चौड़े, आयताकार, आयताकार-प्रासवत् या कोई अंडाकार होते हैं। पुष्पोद्गम के पूर्व पत्ते गिर जाते हैं। **फूल**-सुगन्धित सफेद रङ्ग के होते हैं। **फल**-कच्ची अवस्था में नीले और पकने पर जामुनी लाल, ॥४-॥६ इञ्च बड़े तथा मांसल होते हैं। **बीज**-गुठलीदार और बड़े होते हैं। Aesculus indica colebr. (एस्क्युलस् इन्डिका कोले.) को 'कंढार, बंखोर, अंकोल' आदि नामों से क्वचित् वर्णित किया जाता है किन्तु प्रस्तुत अङ्कोट के प्रतिनिधि के रूप में उक्त वनस्पति का व्यवहार नहीं करना चाहिये।

इसकी जड़ की छाल, पत्र, बीज एवं बीज तैल का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। इसका स्वाद कड़वा एवं गन्ध अप्रिय होती है।

रासायनिक संगठन—इसकी जड़ की छाल में ॲलेन्जाइन (Alangine) नामक एक कड़वा क्षाराभ एवं पोटॅशियम् क्लोराइड (Potassium chloride) पाया जाता है। इस क्षाराभ के रवे नहीं बनते तथा यह जल में भी नहीं घुलता। यह मद्यसार में घुल जाता है।

बिल्ली में ॲलेन्जाइन सल्फेट (Alangine sulphate) नामक इसके लवण के शिरान्तर्गत सूचिकाभरण से रक्तनिपीड कम होता है जो १, २ मिनट में ही स्वाभाविक हो जाता है। इससे हृदय अवसादित होता है तथा आन्त्र की पुरःसरण क्रिया बढती है। इससे श्वास अनियमित हो जाता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल उष्ण, कड़वी, वामक, स्वेदजनक, मूत्रल, रेचक, ज्वरहर, कृमिघ्न एवं विषहर है। अल्प मात्रा में (१–३ र०) यह हृल्लासकारक, स्वेदजनन एवं मूत्रल है। अधिक मात्रा (३ माशा) में यह वामक एवं विरेचक है। इसके गुण मदार तथा पपिकाक, के समान हैं। वामक मात्रा में प्रयोग से आमाशय में दाह तथा हृदय एवं रक्तवाहिनियों पर अवसादक प्रभाव पड़ता है।

(१) कुष्ठ, उपदंश तथा सभी प्रकार के त्वचा के विकारों में इसकी मूलत्वक् ½–१ रत्ती की मात्रा में दिन में तीन बार देते हैं तथा बीज तैल या जड को पीसकर लगाते हैं।

(२) प्रतिश्याय, इन्फ्लुएन्जा एवं संधिपीडा युक्त ज्वर (डेंग्यु) में इसकी जड़ घोडवच या सोंठ के साथ चावल की मांड में उबालकर देते हैं तथा पत्तों को पीसकर जरा गरम कर पीड़ा युक्त स्थान पर बाँधते हैं।

(३) यकृतोदर, जलोदर एवं वृक्कजन्य शोफ में इसकी मूलत्वक् ३ रत्ती की मात्रा में दे से विरेचन होता है तथा यकृत् की क्रिया सुधरती है। इसके साथ यवक्षार का प्रयोग करने से मूत्र भी बढ़ता है।

(४) चूहे के विष में तथा सर्पविष में यह लाभदायक माना जाता है। सर्प विष में २० रत्ती की मात्रा में मूल का चूर्ण चावल की धोवन के साथ देते हैं।

मात्रा—मूलत्वक् १–३ रत्ती; वामक ३ माशा।

अथ बलाचतुष्टयम् तस्य नामगुणानाह

बलावाट्यालिका वाट्या सैव वाट्यालकाऽपि च। महाबला पीतपुष्पा सहदेवी च सा स्मृता
ततोऽन्याऽतिबला ऋष्यप्रोक्ता कङ्कतिका च सा। गाङ्गेरुकी नागबला झषा ह्रस्वगवेधुका॥

बलाचतुष्टय (चारों प्रकार के बला) के नाम तथा गुण—(१) बला, वाट्यालिका, वाट्या तथा वाट्यालका ये सब नाम बला (खिरैंटो) के हैं। (२) महाबला, पीतपुष्पा और सहदेवी ये सब नाम महाबला के हैं। (३) अतिबला, ऋष्यप्रोक्ता और कङ्कतिका ये सब अतिबला (कंघी) के नाम हैं। (४) गांगेरुकी, नागबला, झशा तथा ह्रस्वगवेधुका ये सब नाम नागबला के हैं॥ १४२–१४३॥

बलाचतुष्टयं शीतं मधुरं बलकान्तिकृत्। स्निग्धं ग्राहि समीरास्रपित्तास्रक्षतनाशनम्॥

बलाचतुष्टय—शीतवीर्य, मधुररसयुक्त, बलकारक, कान्तिकारक, स्निग्ध एवं ग्राही होता है और वायु रक्तपित्त, रक्तविकार तथा व्रण को दूर करने वाला होता है॥ १४४॥

***बरियारा, सहदेवी, ककहिया, गुलशकरी, इति बलाचतुष्टयम्॥ १४४॥**

यहाँ पर 'बलाचतुष्टय' से १. बरियारा, २. सहदेई, ३. ककहिया, ४. गुलशकरी—इन चारों को ही समझना चाहिये॥ १४४॥

बलामूलत्वचश्चूर्णं पीतं सक्षीरशर्करम्। मूत्रातिसारं हरति दृष्टमेतन्न संशयः॥ १४५॥
हरेन्महाबला कृच्छ्रम् भवेद्वातानुलोमिनी। हन्यादतिबला मेहं पयसा सितया समम्॥१४६॥

'बरियारे' के जड़ की छाल का चूर्ण यदि दूध तथा शक्कर के साथ मिलाकर पीया जाय तो मूत्रातिसार को दूर करता है, यह परीक्षा करके देखा गया है, अत एव इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। 'महाबला' मूत्रकृच्छ्र को दूर करती है तथा इससे वायु का अनुलोमन भी होता है। 'ककहिआ' का चूर्ण दूध तथा चीनी के साथ खाने से प्रमेह नष्ट होता है॥ १४५–१४६॥

नोट—भावप्रकाशकार बला के ४ भेद लिखते हैं। आधुनिक उद्भिज्जवेत्ताओं ने भी बला प्रजाति (Sida) की कई जातियों का वर्णन किया है। इनमें से अतिबला (कंघी) निस्संदेह ॲब्युटिलॉन् (Abutilon) प्रजाति की वनस्पति है। अधिकांश विद्वानों ने सिडा कॉर्डिफोलिआ (Sida cordifolia) को बला माना है, किन्तु श्री ठा० बलवन्तसिंह जी ने (पीत पुष्प) सिडा रॉम्बिफोलिया (Sida rhombifolia) को वास्तविक बला लिखा है जिसको अन्य विद्वानों ने महाबला माना है। कुछ विद्वान् रॉम्बिफोलिआ का अन्य उपभेद (श्वेत पुष्प) सिडा रॉम्बोइडिआ (Sida rhomboidea) को महाबला मानते हैं। भावप्रकाशकार महाबला के पर्याय में सहदेवी लिखते हैं लेकिन वास्तव में सहदेवी यह भिन्न वर्ग की व्हर्नोनिआ सिनेरिआ (Vernonia cinerea) है। चरक-सुश्रुत में महाबला नाम नहीं आया है किन्तु सहदेवा नाम है। सम्भव है कि चरक, सुश्रुतोक्त सहदेवा ही महाबला हो तथा गलती से सहदेवा के स्थान पर सहदेवी छप गया हो।

नागबला—के सम्बन्ध में अधिक मतभेद हैं। सिडा व्हेरोनिसीफोलिआ या सिडा ह्युमिलिस् (Sida veronicaefolia; Syn–Sida humilis) को अधिकांश विद्वान् नागबला मानते हैं। यह भूमि पर सर्प की तरह टेढ़ी-मेढ़ी फैलती है। कुछ विद्वान् गुलसकरी को नागबला मानते हैं क्योंकि नागबला के पर्याय में गांगेरुकी आया है। गुलसकरी के ले० नाम के विषय में भी मतभेद है। सिडा स्पाइनोसा (Sida spinosa) को कुछ लोगों ने गुलसकरी लिखा है किन्तु श्री ठा० बलवन्तसिंह जी ने उसे अशुद्ध बतलाया है तथा वे ग्रेविआ हिर्सुटा (Grewia hirsuta) को गुलसकरी मानते हैं। नागबला का चतुष्फला पर्याय इसके लिये उपयुक्त मालूम होता है। इसे तथा इसके अन्य भेद ग्रे० पोप्यूलिफोलिया (Grewia populifolia) को गांगेरुकी (गंगरेन) कहते हैं जिससे इन्हें नागबला माना जाता है। इनके अतिरिक्त सिडा ॲक्यूटा (Sida acuta) एवं अन्य भेद भी पाये जाते हैं। यहां पर संक्षेप में उपर्युक्त भेदों का स्वतन्त्र वर्णन किया गया है। वास्तव में गुणों की दृष्टि से इनमें विशेष अन्तर न होने के कारण एक के स्थान में दूसरे का व्यवहार किया जा सकता है।

६६ बला (बरियारा)

हिं०–बरियार, बरियारा, बरियाल, खरेठी, खरैटी, खिरैंटी। बीजबन्द (बीज)। बं०–बेडेला म०–चिकणा। गु०–बलदाणा (बीज), खरेटी, बल, बला। क०–किसंगी, हेट्टुटि गिडा। ते०–चिरिबेण्डा, मुत्तवु। ता०–अखिल-मनैपुण्डु। मा०–खरेंटी। पं०–खरैहटी, सिमक। अं०–Country mallow (कंन्ट्री मॅलो); Sida (सिडा)। ले०–*Sida cordifolia Linn.* (सिडा कॉर्डिफोलिआ लिन.)। Fam. Malvaceae (माल्वेसी)।

यह सब प्रान्तों में प्रायः बारहों मास पाया जाता है। किन्तु वर्षा ऋतु में इसकी बहुलता खेतों और मेड़ों पर देखने में आती है। इसकी जड़ और डंडी बहुत मजबूत होती है जो आसानी से नहीं टूटती।

इसका **क्षुप**—छोटा, २-४ फीट ऊँचा, स्वावलम्बी, मृदुरोमश तथा अनेक शाखाओं से युक्त रहता है। **स्तम्भ**-काष्ठमय एवं रेशेदार होता है। छाल-हल्के पीताभ भूरे रङ्ग की होती है। **पत्ते**-१-२ इञ्च लम्बे, हृदयाकृति, लट्वाकार-आयताकार, तूलरोमश, गोलदन्तुर, ७-९ शिराओं से युक्त एवं ½-१½ इञ्च लम्बे पर्णवृन्त से युक्त होते हैं। **पुष्प**-बरसात के अन्त में छोटे पीले रङ्ग के फूल आते हैं जिनमें ७-१० स्त्रीकेसर होते हैं। **फल**-छोटे, मूंग जितने बड़े होते हैं। **बीज**-गहरे भूरे या काले रङ्ग के छोटे बीज रहते हैं जिन्हें **बीजबन्द** कहा जाता है। ग्रन्थितृण (पृ० २५३) के बीजों को भी बीजबन्द कहा जाता है। जड़-प्रायः २-५ इञ्च लम्बी तथा ½ इञ्च मोटी होती है। इसकी जड़, पत्र, बीज एवं पञ्चांग का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके पञ्चांग में एक क्षाराभ, तैल, फाइटोस्टेरॉल (Phytosterol), म्यूसिन, राल, रालीय अम्ल एवं पोटॉशियम् नाइट्रेट (Potassium nitrate) ये पदार्थ पाये जाते हैं। इसके पत्र, काण्ड एवं मूल में क्षाराभ की मात्रा ०·०८५% रहती है किन्तु बीजों में यह ०·२% होती है। इसके क्षाराभ में प्रधान अंश एफेड्रीन (Ephedrine) का रहता है।

गुण और प्रयोग—बला (बरियरा) शीतवीर्य, बल्य, रसायन, वृष्य, प्रजास्थापन, संग्राही वातपित्तहर एवं स्निग्ध है।

इसका उपयोग रक्तपित्त, प्रमेह, प्रदर, वातविकार एवं व्रण में किया जाता है।

(१) शुक्रमेह में इसके पञ्चांग का स्वरस देने से लाभ होता है।

(२) श्वेत प्रदर, बारबार पेशाब होना तथा सोजाक में इसके जड़ की छाल का चूर्ण शर्करा तथा दुग्ध के साथ प्रयोग करते हैं।

(३) अर्धाङ्ग, अर्दित, मन्यास्तम्भ, अवबाहुक, गृध्रसी तथा शिरःशूल आदि वातविकारों में इसकी केवल जड़ या हींग और सैंधव मिलाकर जड़ का प्रयोग करते हैं तथा दुग्ध के साथ सिद्ध तैल का बाह्य प्रयोग करते हैं।

(४) नेत्राभिष्यंद में इसके पत्र पीसकर बाँधते हैं।

(५) उपदंश, फिरंग तथा क्षत में इसकी जड़ को पीसकर बाँधने से व्रण जल्दी अच्छे होते हैं। पञ्चांग के क्वाथ से व्रण प्रक्षालन भी किया जाता है।

(६) (महा) बला की जड़ एवं सोंठ का क्वाथ कम्पयुक्त विषम ज्वरों में लाभदायक होता है।

(७) हृदय को बल देने के लिये मकरध्वज तथा कस्तूरी के साथ इसका प्रयोग करते हैं।

(८) राजयक्ष्मा में दूध के साथ इसकी जड़ से सिद्ध घृत का उपयोग मधु मिलाकर करते हैं।

(९) श्लीपद में (महा) बला की जड़ एवं हरिताल पीसकर लेप करते हैं।

(१०) रसायन के लिये इसकी जड़ (½-१ पल) को दूध के साथ पीसकर पिलाते हैं तथा आहार में घृत युक्त दूध भात खिलाते हैं। इससे आयु वृद्धि होती है।

मात्रा—मूल ६ माशा-१ तोला, पञ्चांग ६ मा०-१ तोला।

६७ महाबला, सहदेवी ?

सं०-सहदेवा, क्षेत्रबला। **हिं०**-सहदेई, सहदेया, पीतबला। **बं०**-पीतबेड़ेला। **म०**-चिकणी, सहदेवी, तुपकड़ी। **गु०**-खेतराऊबल, खेतराऊबलदाणा। **पं०**-सहदेवि। **ते०**-मयिलमाणिक्यम्।

ता०-मयिरमाणिक्कम्। **लै०**-*Sida rhombifolia Linn.* (सिडा रॉम्बिफोलिया लिन.)। Fam. Malvaceae (माल्वेसी)।

यह क्षुप जाति की वनौषधि प्रायः सब प्रान्तों में कहीं न कहीं पाई जाती है। यह ऊसर भूमि में अधिक होती है। इसका **क्षुप** १-४ फीट ऊँचा, झाड़दार और सीधा होता है। **पत्ते**-२-३ इंच लम्बे, अभिलट्वाकार या तिर्यगायतकार तथा दन्तुर होते हैं। **फूल**-पीले रङ्ग के बरियारे के फूलों के आकार वाले किन्तु उनसे कुछ बड़े होते हैं। **फल**-बरियारे के ही समान होते हैं।

यह एक परिवर्तनशील जाति बतलाई जाती है जिसके अन्तर्गत कई उपभेद बतलाये गये हैं। इसी के उपभेद सिडा रॉम्बॉइडिआ (Sida rhomboidea) के पुष्प श्वेतवर्ण के होते हैं।

यद्यपि भावप्रकाशकार इसे सहदेवी लिखते हैं तथापि यह वास्तविक सहदेवी नहीं है। सहदेवा यह नाम इसके लिये अधिक उपयुक्त है क्योंकि चरक सुश्रुत में बला के भेदों में सहदेवा का उल्लेख है। सहदेवी का आगे स्वतंत्र वर्णन किया गया है जो भिन्न वर्ग की वनस्पति है।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में लुआब बहुत होता है।

गुण और प्रयोग—इसके गुण भी बला सदृश ही होते हैं। शीतज्वर तथा आमवात में सोंठ के साथ इसकी जड़ का क्वाथ पिलाते हैं। मूत्रकृच्छ्र में इसकी जड़ के क्वाथ से वेदना कम होती है। क्षत पर मूलस्वरस की पट्टी रखने से व्रण जल्दी अच्छा होता है। हरिताल के साथ इसकी जड़ के लेप से श्लीपद में लाभ होता है।

मात्रा—६ मा० से १ तोला।

६८ सहदेवी

सं०-सहदेवी। **हिं०**—सहदेई, सहदैया। **बं०**-छोट कुकसिमा। **म०**-सहदेवी, सायिदेवि, सादोडी। **गु०**-सदोडी, शेदरडी। **ता०**-नैचिट्टे। **ते०**-घेरिट्टेकरनिना। **मल०**-पिरिना। **क०**-सहदेवी। **अं०**-Fleabane (फ्लीबेन)। **लै०**-*Vernonia cinerea Less.* (वर्नोनिआ सिनेरिआ लेस्)। Fam. Compositae (कॉम्पोझिटी)।

यह बरसात के दिनों में परित्यक्त भूमि में सब जगह होती है।

इसका **क्षुप**-स्वावलंबी अथवा प्रसरणशील, रोमश तथा ८ इञ्च से ३ फीट तक ऊँचा होता है। **काण्ड**-पतला, रेखा युक्त एवं रोमश होता है। **शाखायें**-प्रायः श्वेताभ रोमश होती हैं। **पत्ते**-कई तरह के अर्थात् रेखाकार, अंडाकार, लट्वाकार या अभिलट्वाकार, अखंड या दन्तुर, रोमश, अवृन्त अथवा क्रमशः संकुचित होकर सूक्ष्म वृन्त से लगे होते हैं। **पुष्प**-हलके जामुनी रंग के पुष्प ·२५ इञ्च लंबे और आयताकार मुण्डक में आते हैं। अधःपत्रावलि-घंटिकाकार, ·२ इञ्च लंबी और उसके पत्र प्रायः रेखाकार, लंबाग्र और उनका अग्र कंटक सदृश तीक्ष्ण होता है।

यह सहदेवी बलाभेद नहीं है किन्तु जिस सहदेवी के बारे में यह मान्यता है कि जड़ शिखा में बाँधने से ज्वर कम होता है वह यही है।

गुण और प्रयोग—यह शीतवीर्य, स्वेदजनक, कृमिघ्न एवं शोथहर है। ज्वर में पसीना लाने के लिये इसका क्वाथ या स्वरस पिलाते हैं तथा शरीर पर लगाते हैं। अर्श में इसका स्वरस दिया जाता है। यह पेशाब की जलन तथा वस्ति के उद्वेष्टन में लाभदायक है। इसका लेप शोथ में उपयोगी है।

इसके बीज कृमिनाशक, विषहर तथा घोड़ों के लिये पौष्टिक माने जाते हैं। नेत्राभिष्यन्द में पुष्पों का व्यवहार किया जाता है।

मात्रा—स्वरस ६ मा०–१ तोला; बीज ४ र०–१ मा०।

६९ अतिबला (कंघी)

हिं०–कंघी, ककही, ककहिया, कंगही। **बं०**–पेटारी। **म०**–मुद्रा, मुद्रिका, करंडी, पेटारी। **पं०**–पीली बूटी, अतिखिरते। **गु०**–खपाट, कांसकी, डावली। **मा०**–डाबी। **क०**–श्रीमुद्रिगिडा। **ते०**–तुत्तुरुबेंड। **सिन्ध०**–सिम्बुल। **सन्ता०**–मिरुबहा। **ता०**–तुत्ति। **फा०**–दरख्ते शाहनाह। **अ०**–मश्तुलगूल। **अं०**–Indian Mallow (इण्डियन् मॅलो)। **ले०**–*Abutilon indicum* (*Linn.*) *Sw.* (एब्युटिलोन् इन्डिकम् (लिन.) स्व.)। Fam. Malvaceae (माल्वेसी)।

यह वनौषधि प्रायः गरम प्रान्तों में अधिक पाई जाती है। इसका **क्षुप**–झाड़दार, २–२॥ हाथ ऊँचा और पुराना होने पर ४–५ हाथ तक ऊँचा देखा जाता है। इस पर मृदु श्वेताभ मखमली रोमावरण होता है। **पत्ते**–पर्कातर, ३⁄४–१ इञ्च लम्बे, गिलोय के पत्तों के आकार वाले, दन्तुर, मृदु-रोमश तथा लम्बे वृन्त से युक्त होते हैं। **फूल**–पीले नारङ्गी रङ्ग के प्रायः सन्ध्याकाल में खिलते हैं। **फल**–चक्राकार गोल कंघी की तरह होते हैं। इनसे प्रायः बालक छापा किया करते हैं। **बीज**–बरियारे के बीजों से कुछ बड़े होते हैं। इन्हें भी बीजबंद कहा जाता है।

इसकी एक दूसरी जाति होती है जिसे **हिं०**–बड़ी कंघी, **ले०**–*Abutilon hirtum G. Don.* (एब्युटिलोन् हिर्टम् जी. डॉन्.) कहते हैं। इसमें मृदुरोमावरण के अतिरिक्त चिपचिपे रोम तथा शाखाओं और पुष्पदंडों पर लम्बे मुलायम रोयें भी होते हैं। इसका भी अतिबला के नाम से प्रयोग किया जा सकता है।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में लुआब बहुत होता है जो उष्ण जल में आ जाता है। पत्तों की राख १६% होती है जिसमें क्षारीय सल्फेट, क्लोराइड, मॅग्नेशियम् फास्फेट यथा कॅल्शियम् कार्बोनेट आदि लवण होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसकी जड़ वातहर, रसायन, मूत्रजनन; बीज स्नेहन, मृदुरेचन, वाजीकर, कासहर; छाल मूत्रजनन एवं पत्र स्नेहन, वेदनाहर हैं।

(१) सोजाक, मूत्रकृच्छ्र एवं वस्तिविकार आदि में इसके पत्तों का क्वाथ या बीजों का प्रयोग बहुत लाभदायक होता है। मूत्रकृच्छ्र तथा रक्तमूत्र में मूल का क्वाथ लाभदायक है। प्रमेह में पेशाब साफ होने के लिये दूध एवं शर्करा के साथ इसकी छाल देते हैं।

(२) मसूढ़े ढीले हों तथा दाँत में दर्द हो तो इसके पत्ते के क्वाथ से कुल्ला कराते हैं। वेदना-युक्त स्थान पर इससे सेंकते हैं। व्रण तथा फोड़े आदि पर इसके पुष्प तथा पत्तों का लेप किया जाता है।

(३) ज्वर में दाहशान्ति के लिये इसके पत्ते तथा मूल का क्वाथ दिया जाता है।

(४) रक्तप्रदर में इसकी जड़ का चूर्ण शर्करा एवं मधु के साथ दिया जाता है।

(५) इसके बीज नपुंसकता, अर्श, सोजाक तथा वस्तिविकारों में दिये जाते हैं।

(६) पित्तातिसार में पत्रस्वरस में घृत मिलाकर खिलाते हैं।

(७) गुदा पर इसके बीजों के धूप से सूत्र-कृमि नष्ट होते हैं।

मात्रा—मूल ६ माशा–१ तोला; बीज ४–८ माशा।

७० नागबला १

सं०–भूमिबला, नागबला, विश्वदेवा। **हिं०**–फरीदबूटी ? **म०**–भुईबल, भुईचिकणा। **गु०**–भोंयबल। **बं०**–जोंका। **ता०**–पलुपन्दु। **ते०**–गायपूआकु। **ले०**–*Sida veronicaefolia Lam.* (सिडा व्हेरोनिसीफोलिआ लॅम्.) Syn-Sida humilis Cav. (सिडा ह्युमिलिस् कॅव्ह.)। Fam. Malvaceae (माल्वेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में पाई जाती है। इसका **क्षुप** (प्रसर)–बहुवर्षायु, रोमश, लम्बी शाखाओं से युक्त तथा जमीन पर अथवा झाड़ियों पर फैला हुआ होता है। भूमि पर सर्प की तरह टेढ़े-मेढ़े यह फैला होने के कारण इसे नागबला कहते हैं। **पत्ते**–१⁄२–१ इञ्च लम्बे, प्रायः लट्वाकार, हृद्वत, दन्तुर, रोमश तथा लंबाग्र होते हैं। **पुष्प**–पीले रङ्ग के छोटे अनेक पुष्प आते हैं।

गुण और प्रयोग—गर्भिणी अतिसार में इसके पत्तों का फाण्ट देते हैं। मूत्र-कृच्छ्र में पुष्प तथा कोमल फल चीनी के साथ देते हैं। क्षत तथा ठोकर लगने पर पत्तों को पीसकर बाँधते हैं।

नागबला की जड़—यह बहुत उत्तम रसायन, पुष्टिदायक आयुवर्धक तथा बलवर्धक मानी गयी है। राजयक्ष्मा तथा क्षतक्षय आदि में यह बहुत लाभदायक मानी जाती है। रसायन के लिये इसकी जड़ की छाल १⁄२–१ तोले दूध में पीसकर अथवा घृत एवं मधु के साथ इसका चूर्ण-सेवन का विधान है। पथ्य में घृत-दुग्धयुक्त रक्तशालि अथवा साठी चावल का भात खावे (च. चि. अ. १)। इसी प्रकार प्रतिदिन १⁄२ तोले से बढ़ाकर ४ तोले तक की मात्रा में इसका चूर्ण दूध के साथ खावे तथा आहार में दूध ही पीवे। क्षतक्षयी के लिये इस प्रकार एक महीने प्रयोग से पुष्टि, आयु, बल तथा आरोग्य की वृद्धि होती है (च० चि० अ० ११)। राजयक्ष्मा में दूध के साथ नागबला का चूर्ण सेवन करने से लाभ होता है (सु० उ० अ० ४१)। शोढल ने घृत एवं मधु के साथ क्षय के लिये इसका प्रयोग लिखा है। हृद्रोग, कास तथा श्वास में भी दूध के साथ इसका चूर्ण दिया जाता है (चक्र)।

उपर्युक्त गुण जिसमें मिलें वही शास्त्रीय नागबला हो सकती है। **मात्रा**—मूल १⁄२ से १ तो०।

७१ नागबला २ (गुलसकरी ?)

सं०–कण्टकिनीबला। **हिं०**–गुलशकरी, जङ्गली मेथी। **बं०**–गोरक्षचाकुले, बोन मेथी। **म०**–नागबला। **मा०**–गङ्गेरण। **पं०**–गङ्गेरण, गङ्गेरन। **गु०**–कांटालोबल। **फा०**–शनबलिदेवरी। **अ०**–शमलोदेदस्ती। **ले०**–*Sida spinosa Linn.* (सिडा स्पाइनोसा लिन.)। Fam. Malvaceae (माल्वेसी)। यह इस देश के अधिक उष्ण भागों में पश्चिमोत्तर प्रदेश से दक्षिण तक पाई जाती है।

इसका **क्षुप**–अनेक शाखाओं से युक्त, स्वावलम्बी तथा श्वेताभ वर्ण का होता है। **शाखाएँ**–पतली, खुरदरी एवं किञ्चित् सूक्ष्म रोवेंदार होती हैं। **पत्ते**–१–११⁄२ इञ्च लम्बे, अंडाकार, कुछ नुकीले, दन्तुर और मोटे होते हैं। पत्तों के नीचे सन्धि पर प्रायः तीक्ष्ण कांटे होते हैं। **फूल**–आध इञ्च के घेरे में गोलाकार, ५ पंखड़ियों से युक्त सफेद रङ्ग के आते हैं। **फल**–पाँच पंखड़ीवाले होते हैं तथा सूखने पर ५ भाग हो जाते हैं। **बीज**–५–१ बीज होते हैं। कुछ विद्वानों ने इसके दो भेद माने हैं जिसमें श्वेतपुष्प के क्षुप को सि० ॲल्बा (S. alba) तथा पीतपुष्प वाले को सि० ॲल्निफोलिआ (S. alnifolia) लिखा है। इसकी जड़ तथा पत्तों का उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके पत्र स्नेहन तथा मूत्रजनन हैं। इसकी जड़ बल्य तथा ज्वरघ्न है। विषम ज्वर में मूलत्वक तथा सोंठ का क्वाथ पिलाते हैं। मूत्रकृच्छ्र, सोजाक तथा मूत्रेन्द्रिय के अन्य विकारों में इसके पत्तों का उपयोग किया जाता है। **मात्रा**—६ माशा-१ तोला।

७२ नागबला ३ (गुलसकरी, गांगेरुकी)

सं०-गुडशर्करा। **हि०**-गुलसकरी, कुकुरांड, कुकुरबिचा। **संता०**-सेतकट, सेताण्डीर। **बिहा०**-सेतारेपडी, सेतापेट्टू, सेताजरका। **म०**-गोवाली। **ले०**-*Grewia hirsuta, Vanb.* (ग्रेविआ हिर्सुटा, वॅन्ब)। Fam. Tiliaceae (टिलिएसी)। यह उत्तरपश्चिम भारत, नेपाल तथा कोंकण में पाया जाता है।

इसके **क्षुप**-१½-३ फीट ऊँचे तथा रोमश होते हैं। इसकी जड़ के पास से अनेक शाखायें निकली रहती हैं। **पत्ते**-विचित्र प्रकार के, रेखाकार, लट्वाकार-मालाकार या गोलाई लिये हुये आयताकार, लम्बाग्र, अल्पवृन्त युक्त तथा तीक्ष्ण दन्तुर होते हैं। **पुष्प**-पीतवर्ण के होते हैं। **फल**-प्रायः चार खण्ड वाले तथा मृदुरोमों से ढँके रहते हैं।

नागबला का चतुष्फला यह पर्याय इसे उपयुक्त होने के कारण कुछ इसे नागबला मानते हैं। किन्तु श्री ठा० बलवन्त सिंह जी इसे गुलसकरी मानते हैं तथा इसे 'गुडशर्करा' का अपभ्रंश मानते हैं। अन्य विद्वानों ने गुलसकरी पूर्वोक्त नागबला २ को माना है।

इसे या इससे मिलती जुलती एक छोटी वृक्ष जाति ग्रेविआ पोप्युलीफोलिया वाह. (Grewia populifolia Vahl.) को गांगेरुकी (गंगरेन) कहते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि यह ग्रे० पोप्युलीफोलिआ ही गांगेरुकी है जिसे नागबला नहीं मानना चाहिये क्योंकि गांगेरुकी यह नागबला का पर्याय मानना उचित नहीं। गांगेरुक (फल) का चरक सू० अ० २७ तथा सू० अ० ४६ में उल्लेख है। गांगेरुक (फल) यह धन्वन के समान गुण वाला मधुर, कुछ कषाय, शीतल तथा पित्त-कफनाशक है। तलवार आदि से घाव होने पर इसके (गाङ्गेरुकी) मूल का स्वरस उसमें भरकर बाँधने से वेदना नष्ट होती है (शा० ध० म० खं० अ० १-२०)।

गुण और प्रयोग—शुक्रदौर्बल्य में इसके मूल का उपयोग किया जाता है। फोड़े पर इसके मूल को पीसकर बांधने से फोड़ा पककर जल्दी अच्छा होता है। आमातिसार में इसके पत्तों के क्वाथ से बहुत लाभ होता है।

अथ लक्ष्मणा। तस्या लक्षणगुणानाह

पुत्रकाकाररक्ताल्पबिन्दुभिर्लाञ्छितच्छदा ॥ १४७ ॥
लक्ष्मणा पुत्रजननी बस्तगन्धाकृतिर्भवेत्। कथिता पुत्रदाऽवश्यं लक्ष्मणा मुनिपुङ्गवैः ॥१४८॥

'लक्ष्मणा' के लक्षण तथा गुण—जिसके पत्तों पर लाल रङ्ग के छोटे-छोटे बिन्दुओं से पुरुष का आकार बना हो, तथा जो देखने में बस्तगन्धा (वन अजवायन) के समान मालूम पड़े उसे पुत्र को उत्पन्न करने वाली 'लक्ष्मणा' समझनी चाहिये। श्रेष्ठ मुनियों ने इसे अवश्य पुत्र देनेवाली बतलाया है ॥ १४७-१४८ ॥

७३ लक्ष्मणा

लक्ष्मणा यह एक सन्दिग्ध वनस्पति है। भावप्रकाशकार इसके परिचय में लिखते हैं कि इसके पत्तों पर पुरुषाकृति रक्त-चिह्न होते हैं तथा इसका आकार बस्तगन्धा की तरह होता है। बस्तगन्धा

का अर्थ कुछ लोगों ने वन अजवायन किया है। कुछ ने इसका अर्थ बकरे की गन्ध सदृश गंध वाला किया है जो उचित नहीं मालूम पड़ता। तुलसी की तरह के क्षुप को भी बस्तगन्धा कहा गया है। मदनपाल निघण्टु में लक्ष्मणा के परिचय में 'गोक्षीरसदृशं पुष्पं र मक्लिसमन्वितम्। रक्तबिन्दु-युतं पत्रं लक्ष्मणाऽऽकार उच्यते' लिखा है। कोश में लक्ष्मणा का अर्थ हंस जाति का पक्षी दिया हुआ है। ध० नि० एवं रा० नि० में एक विशेष प्रकार की श्वेत कंटकारी का लक्ष्मणा नाम से उल्लेख किया हुआ है किन्तु रा० नि० ने आगे मूलकादि वर्ग में फिर से लक्ष्मणा नामक अन्य वनस्पति का उल्लेख किया है जिसके गुणों में 'स्त्रीवन्ध्यत्वविनाशिनी' दिया हुआ है। इससे ऐसा मालूम होता है कि उस समय भी श्वेत जाति की कंटकारीविशेष को लक्ष्मणा मानते थे जैसा आजकल कुछ विद्वान् मानते हैं। यद्यपि श्वेत कंटकारी में गर्भकारक गुण हैं तथापि लक्ष्मणा उससे भिन्न है क्योंकि एक ही स्थान पर दोनों का उल्लेख मिलता है (अ० हृ० शा० अ० १-४०)। अन्य निघंटुओं ने इसे शीत, मधुर, रसायन, बल्य, त्रिदोषघ्न एवं स्त्रीवन्ध्यत्वविनाशक लिखा है। पुत्रप्राप्ति के लिये सुश्रुत (शा० अ० २-३३) में लक्ष्मणा को दूध के साथ कूचकर उसका रस दाहिने नासा पुट में डालने के लिये लिखा है। नवजात शिशु के लिये उत्पन्न होने के दूसरे दिन लक्ष्मणासिद्ध घृत के पान कराने का विधान है (सु० शा० अ० १०)। वन्ध्यत्व नाशन के लिये इसकी जड़ को दूध के साथ सेवन करने का विधान है।

चीन में ॲरॅलिआ क्विन्क्वीफोलिआ (Aralia quinquefolia; Fam. Araliaceae) नामक एक पौधा पाया जाता है जिसे वहाँ जिन्सेंग (Ginseng) कहते हैं। इसकी जड़ को वहाँ अत्यन्त प्रभावशाली औषध मानते हैं। संभवतः इसका कारण इसका मानवाकृति से सादृश्य हो सकता है। इसको वहाँ के चिकित्सक रोग निवारक एवं जराव्याधि विनाशक मानते हैं। लक्ष्मणा के वर्णन में 'पुत्रकाकार' का अर्थ यदि मानवाकृति कंद करे तो दोनों में पर्याप्त साम्यता मालूम होती है क्योंकि जितना महत्व अपने यहाँ लक्ष्मणा को दिया जाता है वैसा ही जिन्सेंग को चीन में दिया जाता है। इसका पौधा छोटा एवं पत्ते करतलाकार होते हैं। इसकी जड़ का स्वाद कुछ कड़ुआ तथा सुगन्धयुक्त होता है।

निम्नलिखित वनस्पतियों को लक्ष्मणा नाम दिया हुआ मिलता है किन्तु इनके लक्ष्मणा होने में सन्देह है।

(क) Ipomoea sepiaria Koen. (आइपोमिआ सेपिएरिआ कोएन्.)
Fam. Convolvulaceae (कन्वोल्व्युलेसी)। गु०—हनुमानवेल।

(ख) Atropa mandragora (एट्रोपा मेण्ड्रागोरा)। Fam. Atropaceae (एट्रोपेसी)। संभवतः इस वनस्पति का उचित नाम Mandragora autumnalis Spreng; Fam. Solanaceae (मॅन्ड्रागोरा ऑटम्नॅलिस् स्प्रे.; सोलेनॅसी) है।

(ग) Smithia geminiflora Roth (स्मिथिआ जेमिनिफ्लोरा रॉथ)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

(घ) Biophytum sensitivum (Linn.) DC. (बायोफाइटम् सेन्सिटिवम् डीसी.)। Fam. Geraniaceae (जिरॅनिएसी)।

अथ स्वर्णवल्ली (सोनबेल)। तस्या नामगुणानाह

स्वर्णवल्ली रक्तफला काकायुः काकवल्लरी। स्वर्णवल्ली शिरःपीडां त्रिदोषान्हन्ति दुग्धदा ॥१४९॥

'सोनबेल' के नाम तथा गुण—स्वर्णवल्ली, रक्तफला, काकायु और काकवल्लरी ये सब संस्कृत

नाम 'सोनबेल' के हैं। **सोनबेल**—शिर की पीड़ा तथा त्रिदोष को दूर करती है, एवं दूध को बढ़ाने वाली होती है॥ १४९॥

७४ स्वर्णवल्ली

'स्वर्णवल्ली' की लता कैसी होती है, इस सम्बन्ध में कोई वर्णन अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलता। रक्तफला विशेषण के उल्लेख के कारण आकाशवल्ली इसका पर्याय नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त आकाशवल्ली का स्वतन्त्र रूप में भी भावप्रकाशकार ने इसी वर्ग में वर्णन किया है। प्राचीन ग्रन्थों में भी स्वर्णवल्ली का स्वतन्त्र रूप में कोई विशिष्ट प्रयोग वर्णित नहीं है। इसीलिये व्यवहार में भी इसका शुद्ध या व्यामिश्रित रूप उपलब्ध नहीं है।

अथ कार्पासी (कपास)। तस्या नामगुणानाह

कार्पासी तुण्डकेशी च समुद्रान्ता च कथ्यते। कार्पासकी लघु कोष्णा मधुरा वातनाशिनी॥

'कपास' के नाम तथा गुण—कार्पासी, तुण्डकेशी और समुद्रान्ता ये सब नाम 'कपास' के हैं। **कपास**—लघु, किञ्चित् उष्णवीर्य, मधुर तथा वातनाशक होता है॥ १५०॥

अथ तत्पत्रबीजयोर्गुणानाह

तत्पलाशं समीरघ्नं रक्तकृन्मूत्रवर्द्धनम्। तत्कर्णपिडकानादपूयास्रावविनाशनम्॥ १५१॥
तद्बीजं स्तन्यदं वृष्यं स्निग्धं कफकरं गुरु॥ १५२॥

इसके पत्ते तथा बीजों के गुण—**कपास के पत्ते**-वायुनाशक, रक्त तथा मूत्रवर्धक होते हैं एवम् कर्णपिडका (कान की फुन्सी), कर्णनाद (कान में शब्द होना) और कर्णपूयास्राव (कान से पीब का आना) इन सब को नाश करने वाले होते हैं। **कपास के बीज**—दुग्धवर्धक, वृष्य (वीर्यवर्धक), स्निग्ध, कफकारक तथा पाक में गुरु होते हैं॥ १५१–१५२॥

७५ कपास

हि०-कपास, रूई। **म०**-कापसी, कापूस। **गु०**-बोण, कपास। **बं०**-कार्पास, तुला। **ते०**-पत्तिचेट्टु, कार्पासमु। **क०**-हत्ति। **ता०**-परुत्ति। **फा०**-पंबः। **अ०**-नवातुलकुलं। **अं०**-Cotton Plant (कॉटन प्लॅण्ट), Indian Cotton (इण्डियन कॉटन)। **ले०**-*Gossypium herbaceum Linn.* (गॉसिपिअम् हर्बेसिअम् लिन.); Fam. Malvaceae (माल्वेसी)।

कपास के बीज के नाम—**हि०**-विनौला। **म०**-सरकी। **गु०**-कपासिया। **मा०**-कांकड़ा। **अ०**-हब्बुलकुत्न। **फा०**-पंबः दाना।

कपास या रूई यह सुप्रसिद्ध द्रव्य है। भारतवर्ष के अनेक भागों में बहुलता से इसकी खेती की जाती है। मिस्र, अमेरिका तथा संसार के अन्य उष्ण प्रदेशों में भी इसकी खेती की जाती है।

यह गुल्म जाति की वनस्पति ४–५ फीट तक ऊँची होती है। इसके **पत्ते**-हाथ के पंजे के समान कई भागों में विभक्त रहते हैं। प्रायः ३ से ७ भाग तक देखने में आते हैं। **फूल**-घंटाकार पीले रङ्ग के होते हैं, उनके बीच का हिस्सा बैंगनी रङ्ग का होता है। **फल**-डोडी या फल गोलाकार होता है तथा उसके भीतर सफेद रूई से लिपटे हुये ५–७ बीज होते हैं। **बीज**-किंचित् काले रङ्ग के, चने के समान गोल होते हैं और उनके भीतर सफेद मज्जा होती है। **जड़**-बाहर से पीले रङ्ग की तथा अन्दर से सफेद होती है। जड़ की छाल गंधयुक्त, पतली, चिमड़, रेशेदार, धारीदार एवं

करीब १ फीट तक लम्बी होती है। छाल का स्वाद कुछ तीता एवं कषाय होता है। प्रतिवर्ष प्रायः चौमासे के आरम्भ में खेतों में बीजों को रोपण करते हैं, और फाल्गुन-चैत में रूई संग्रह कर पौधे को काट कर खेत साफ कर देते हैं।

जाति—इसकी निम्न अन्य जातियाँ भी पाई जाती हैं। देशभेद से भी यह अनेक प्रकार का होता है।

उद्यान कार्पास—**सं०**-उद्यानकार्पास। **हि०**-नर्मा। **म०**-देवकापसीण। **गु०**-हिरवणी। **पं०**-कपस। **संता०**-बुदिकरकोम। **ले०**-*Gossypium arboreum Linn.* (गॉसिपिअम् आर्बोरिअम् लिन.)।

यह एक प्रकार की कपास होती है, जिसका बागों में रोपण करते हैं। इसके पौधे-बहुवर्षायु, ८–१० फीट तक ऊँचे होते हैं। पत्ते और फल भी कुछ बड़े होते हैं, तथा फूल लाल रङ्ग के होते हैं।

अरण्य कार्पासी—**सं०**-भारद्वाजी (च० सू० अ० ४, रा० नि०)। **हि०**-जंगली कपास, वनकपासी। **म०**-रानकापूस। **ले०**-*Thespesia lampas Dalz & Gibs* (थेस्पेसिआ लॅम्पस् डा., गि.)।

यह जाति जंगलों में स्वयं उत्पन्न होती है। इसके **क्षुप**-झाड़ीदार, दृढ़ तथा ४–६ फीट ऊँचे होते हैं। **पत्ते**-करतलाकार, ३ खण्डयुक्त या अखण्ड एवं व्यास में ४–५ इञ्च होते हैं। **फूल**-पीले रङ्ग के तथा मध्य में प्रायः लाल रङ्ग के होते हैं। इसकी रुई कुछ पीताभ होती है।

रासायनिक संगठन—कपास की जड़ की छाल में एक रङ्गहीन या पीताभ अम्ल राल ८% तक पाई जाती है जो आक्सीजन के संयोग से चमकीले रक्ताभ भूरे रङ्ग की हो जाती है। इसके अतिरिक्त इसमें डिहाइड्रोक्सि बेन्जोइक एसिड (Dihydroxy benzoic acid), सॅलिसिलिक् एसिड (Salicylic acid), स्नेहाम्ल, बिटेन (Betaine), सेरिल ॲल्कोहोल् (Ceryl alcohol), फाइटोस्टेरॉल् (Phytosterol), शर्करा एवं फेनॉल के सदृश दो पदार्थ पाये जाते हैं। बीजों में १०–२९% हलके पीले रङ्ग का गन्धहीन तथा स्वादहीन तैल पाया जाता है जिसमें ग्लिसराइड्स, स्नेहाम्ल, फॉस्फोलिपिन् (Phospholipin), फाइटोस्टेरॉल् (Phytosterols) तथा रंजक द्रव्य पाये जाते हैं। तैल के फेनॉलयुक्त भाग से एक सुनहले वर्ण का गॉसिपॉल् (Gossypol) नामक विषैला रवेदार पदार्थ पाया जाता है जो जल में नहीं घुलता किन्तु मद्यसार आदि अन्य द्रवों में घुलता है। यह छाल में पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—कपास के **बीज**-स्तन्यजनन, स्नेहन, स्रंसन, श्लेष्म निःसारक, बल्य एवं नाडीसंस्थान के लिये पौष्टिक हैं। इसकी **रुई** उपशोषण तथा रक्षण है। **पुष्प**-उत्तेजक तथा सौमनस्यजनन हैं। कोमल **पत्ते**-स्नेहन तथा मूत्रजनन हैं। **तैल**-स्नेहन, पौष्टिक तथा अधिक मात्रा में स्निग्ध विरेचक है।

इसकी जड़ की छाल गर्भाशयसंकोचक एवं आर्तवजनन है। गर्भाशय पर इसकी क्रिया अर्गट (Ergot) की तरह होती है। इससे गर्भाशय का अच्छी तरह संकोच होकर रक्तस्राव रुकता है। इसकी अधिक मात्रा से गर्भपात होता है।

(१) प्रसव के बाद इसकी छाल का क्वाथ पिलाने से गर्भाशय का संकोच होता है। यह आँवल (अपरा) गिरने के बाद पिलाना चाहिए। यदि आधे घण्टे में गर्भाशय संकुचित होकर गेंद की तरह न मालूम पड़े तथा नाडी की गति तेज हो तो फिर दुबारा इसे देना चाहिये।

पीडितार्तव तथा शीत से उत्पन्न अनार्तव में छाल के क्वाथ से लाभ होता है। श्वेत प्रदर में इसकी जड़ को चावल के धोवन के साथ देते हैं।

(२) प्रसूता को दुग्ध वृद्धि के लिये बीजों को पेया बनाकर देते हैं। बीजों की चाय प्रवाहिका में उपयोगी है। शीतज्वर में ज्वर के पूर्व इसका क्वाथ पिलाते हैं।

(३) इसके पुष्पों का शरबत उदासीनता-प्रधान मानसिक रोगों (Hypochondriasis) में पिलाते हैं।

(४) घाव में रुई जलाकर भरने से रक्तस्राव रुकता है तथा घाव जल्दी अच्छा होता है। रुई का उपयोग शीत से रक्षा, उष्णता पहुँचाने तथा व्रण संरक्षण के लिये करते हैं।

(५) इसके कोमल पत्तों का रस आमातिसार में देते हैं।

मात्रा—मूलत्वक् २-४ माशा; बीजचूर्ण ३-६ माशा।

बनकपासी[1]—इसका उपयोग कपास की तरह ही किया जाता है। इसकी जड़ तथा फल सोजाक में देते हैं।

नर्मा—इसमें कपास की अपेक्षा स्निग्धता अधिक रहने के कारण इसके पत्ते तथा जड़ का लेपों में अधिक उपयोग करते हैं। मूत्रकृच्छ्र में पत्तों को दूध में पीसकर पिलाते हैं।

अथ वंशः (बांस)। तस्य नामगुणानाह

वंशस्त्वक्सारकर्मारत्वचिसारतृणध्वजाः। शतपर्वा यवफलो वेणुमस्करतेजनाः॥ १५३॥
वंशः सरो हिमः स्वादुः कषायो बस्तिशोधनः। छेदनः कफपित्तघ्नः कुष्ठास्रव्रणशोथजित्॥

'बाँस' के नाम तथा गुण—वंश, त्वक्सार, कर्मार, त्वचिसार, तृणध्वज, शतपर्वा, यवफल, वेणु, मस्कर और तेजन ये सब नाम 'बाँस' के हैं। **बाँस**—सारक, शीतवीर्य, स्वादिष्ट, कषायरसयुक्त, बस्तिशोधक, छेदक, कफपित्तनाशक एवं कुष्ठ, रक्तविकार, व्रण तथा शोथ इन सब को दूर करने वाला होता है॥ १५३-१५४॥

अथ वंशस्य करीरयवयोर्गुणानाह

तत्करीरः कटुः पाके रसे रूक्षो गुरुः सरः। कषायः कफकृत्स्वादुर्विदाही वातपित्तलः॥१५५॥
तद्यवास्तु सरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः। वातपित्तकरा उष्णा बद्धमूत्राः कफापहाः॥

'बाँस' के अङ्कुर तथा यव (चावल) के गुण—**बाँस का अङ्कुर**—पाक में कटु रसयुक्त, रूक्ष, गुरु, सारक, कटु तथा कषायरसयुक्त, कफकारक, स्वादिष्ट, दाहजनक एवं वात-पित्त को उत्पन्न करने वाला होता है। **बांस के यव (चावल)**—सारक, रूक्ष, कषायरसयुक्त, पाक में कटुरसयुक्त, वातपित्तकारक, उष्णवीर्य, मूत्ररोधक तथा कफनाशक होते हैं॥ १५५-१५६॥

७६ बाँस

हि०—बाँस। **गु०**—बाँस। **म०**—बांबू। **बं०**—बाँश। **ते०**—वेदरू, बोंगा। **ता०**—मुंगिल। **कोल०**—कटंगा। **मा०**—वांव। **सन्ताल०**—माट। **अ०**—कसब। **अं०**—Bamboo (बांबू)। **ले०**—*Bambusa arundinacea Willd.* (बांबुसा अरुण्डिनेसिया विल्ड)। Fam. Gramineae (ग्रॅमिनी)।

१. भारद्वाजी हिमा रुच्या व्रणशस्त्रक्षतापहा। (रा. नि.)

बाँस इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में उत्पन्न किया जाता है और छोटी-छोटी पहाड़ियों के आस-पास आप ही आप जंगली भी उत्पन्न होता है। छोटे, बड़े, मोटे, पतले, ठोस और पोले इन भेदों से बांस कई प्रकार का होता है। इसकी ऊँचाई ३०-४० फीट से १०० फीट तक होती है और मोटाई ३-४ से १२-१६ इंच तक होती है। इसके **पत्ते**—१-२॥ इञ्च चौड़े और ५-६ इञ्च तक लम्बे होते हैं। प्रायः बाँस का वृक्ष पुराना होने पर फूलता-फलता है और कोई-कोई बाँस अवधि के पूर्व ही फूलने-फलने लगता है। इसके **फूल**—छोटे-छोटे सफेद होते हैं और **फल**—जव के आकार के दिखाई पड़ते हैं। इसको वेणुबीज कहते हैं। इसकी कई अन्य जातियाँ होती हैं। बाँस के संबंध में शेष वर्णन वंशलोचन के साथ पृष्ठ ५८ पर किया गया है।

अथ नलः (नरसल) तस्य नामगुणानाह

नलः पोटगलः शून्यमध्यश्च धमनस्तथा। नलस्तु मधुरस्तिक्तः कषायः कफरक्तजित्।
उष्णो हृद्बस्तियोन्यर्त्तिदाहपित्तविसर्पहृत्॥ १५७॥

'नरसल' के नाम तथा गुण—नल, पोटगल, शून्यमध्य और धमन ये सब नाम 'नरसल' के हैं। **नरसल**—मधुर, तिक्त तथा कषायरसयुक्त और उष्णवीर्य होता है, एवम् कफ, रक्तविकार, हृदय, बस्ति तथा योनि सम्बन्धी पीड़ा, दाह, पित्त और विसर्प को दूर करने वाला होता है॥ १५७॥

नोट—नल के सम्बन्ध में जो वर्णन निघंटुओं में मिलता है उससे कुछ भ्रम उत्पन्न होता है। भावप्रकाशकार नल का एक ही भेद लिखते हैं तथा इन्होंने इसे उष्णवीर्य लिखा है किन्तु इसको पित्तविकार, कफविकार, रक्तदोष एवं विसर्प इत्यादि में लाभदायक माना है। रा० नि० तथा ध० नि० में नल एवं महानल (देवनाल) ये दो भेद मिलते हैं जिनमें से नल को शीतवीर्य एवं रक्तपित्तहर माना है तथा महानल को अधिक वीर्यशाली एवं रसक्रिया में उपयोगी लिखा है। नल के जो प्रयोग सुश्रुत-चरकादि में मिलते हैं उनसे ऐसा मालूम होता है कि यह शीतवीर्य है तथा पित्त विकार, विसर्प, मूत्रविकार आदि में उपयोगी है। उन प्रयोगों में इसके साथ कुश, दूर्वा आदि पित्तशामक एवं मूत्रजनक इसी प्रकार के द्रव्यों का उल्लेख है जिससे ऐसा अनुमान होता है कि नल भी इन्हीं के वर्ग का द्रव्य है। कुछ आधुनिक ग्रन्थकारों ने ग्रेमिनी (Gramineae) वर्ग के फ्रॅग्माइटीज कर्का (Phragmites kirka) को नल माना है। इसी वर्ग में कुश, दूर्वा आदि द्रव्य भी आते हैं।

कुछ अन्य आधुनिक विद्वानों ने नल को लोबेलिआ निकोटिआनिफोलिआ (Lobelia nicotianaefolia) माना है जो कम्पॅनुलेसी (Campanulaceae) वर्ग का है तथा जिसका पाश्चात्य चिकित्सा में कफनिःसारक रूप में तमकश्वास के लिये प्रयोग किया जाता है। यह विषैला द्रव्य है। नल के परिचय में कहीं पर 'वंशपत्रो मृदुच्छदः। छिद्रांत्रो नर्तको रन्ध्री मृत्युपुष्पो विभीषणः' यह भी श्लोक मिलता है जो उपर्युक्त लोबेलिआ के लिये अधिक उचित मालूम पड़ता है। भावप्रकाशकार भी नल को उष्ण एवं कफहर मानते हैं किन्तु इन्होंने भी इसका वर्णन कुश, कास, दूर्वा आदि के साथ किया है अतः नल के ग्रॅमिनी वर्ग के फ्रॅग्माइटीज कर्का होने की संभावना भी कम नहीं है। स्वरूप की दृष्टि से दोनों द्रव्यों में पर्याप्त साम्यता पाई जाती है। लोबेलिआ दक्षिण की तरफ ही प्राप्त होता है। यहाँ पर दोनों द्रव्यों का अलग-अलग वर्णन किया गया है।

७७ नरकट

हि०—नरकट। **म०**—नल। **गु०**—नाली, नाहरी। **कोल०**—जंकई। **ले०**—*Phragmites kirka Trin.* (फ्रॅग्माइटीज कर्का ट्रिन.)। Fam. Gramineae (ग्रॅमिनी)।

यह दलदलों या नदियों के किनारे होता है।

इसका **पौधा**—१०–२० फीट ऊँचा तथा बाँस की तरह दिखलाई देता है। इसके कांड के पर्व पीले तथा छोटे होते हैं। लंबे भूमिशायी कांडों द्वारा ये शीघ्र अपनी संख्या-वृद्धि करते हैं। **पत्ते**—कड़े, सीधे, खड़े, १–२ फीट लंबे एवं १ से १½ इञ्च चौड़े होते हैं। पुष्पव्यूह की छोटी दण्डिकायें धूसर या भूरे रंग की होती हैं।

इसका एक अन्य भेद अरुण्डो डोनॅक्स लिन. (Arundo donax Linn.) भी पाया जाता है जो ६–१२ फीट ऊँचा होता है।

इसके मूल का क्वाथ स्नेहन, मूत्रल, आर्तवजनन एवं दुग्ध कम करने वाला है। इसमें ग्रेमाइन (Gramine, $C_{11}H_{14}N_2$) तथा डोनेक्सेराइन (Donaxarine, $C_{15}H_{16}O_2N_2$) नामक दो क्षाराभ पाये जाते हैं जिनमें से प्रथम की अल्पमात्रा से कुत्ते में रक्त दबाव बढ़ता है किन्तु अधिक मात्रा से कम हो जाता है।

७८ नरसल, देवनल

हि०—नरसल, नल। **म०**—देवनल, बोकेनल, ढवनल, नल। **बं०**—बड़ानल। **क०**—काडहोगे सोप्पु। **ता०**—काट्टुपुगैयिलै। **कच्छ०**—आँची। **गु०**—नाली। **ते०**—अडवियोगाकु। **अं०**—Wild tobacco (वाइल्ड टोबॅको); Lobelia (लोबेलिआ)। **ले०**—*Lobelia nicotianaefolia Heyne.* (लोबेलिआ निकोटिआनिफोलिआ हेन्.)। Fam. Lobeliaceae (लोबेलियेसी)।

यह पश्चिमी घाट में बम्बई से त्रावनकोर तक २–७ हजार फीट की ऊँचाई तक, कोंकण, माथेरान, दक्षिण, महाराष्ट्र का दक्षिण प्रदेश, नीलगिरी, मलाबार तथा मैसूर में पाया जाता है।

इसका **क्षुप**—५–१२ फीट ऊँचा, द्विवर्षायु या बहुवर्षायु होता है। **काण्ड**—ऊपर की तरफ पोला तथा ऊपर की ओर इससे शाखाएँ निकली रहती हैं। **पत्ते**—तंबाकू की तरह, संख्या में बहुत, हलके हरे रंग के, छोटे पर्णवृन्त से युक्त, नीचे के १२×२ इञ्च बड़े तथा ऊपर के क्रमशः छोटे, भालाकार, महीन दाँतों से युक्त एवं मृदुरोमश होते हैं। **पुष्प**—जामुनी आभायुक्त, श्वेत वर्ण के, १ फीट तक लंबी मंजरिओं में आते हैं। **फल**—८ मि० मि० व्यास के गोल सामान्य स्फोटीफल होते हैं। **बीज**—बहुत छोटे, अंडाकार, दबे हुवे, पीताभ भूरे रंग के तथा स्वाद में अत्यन्त तीते होते हैं। इसके पुष्पदंड पर एक गाढा, पीले रंग का स्राव जमा हुआ पाया जाता है। इसमें एक प्रकार की अप्रिय गंध होती है। इसके **वायवीय भाग** को अक्तूबर तथा नवम्बर में तोड़कर छाया में सुखाकर उपयोग में लाया जाता है। सूखे हुए पौधे पर राल की तरह एक पदार्थ लगा रहता है तथा इसका स्वाद उष्ण एवं तीता होता है। इसकी धूल से नाक तथा गले में तंबाकू की तरह प्रक्षोभ होता है। इसकी नली से बन्सी बनाई जाती है जिसे कोंकण में पावा कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें मुख्यतया लोबेलीन (Lobeline, $C_{22}H_{27}O_2N$) नामक एक क्षाराभ पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—लोबेलीन की क्रिया बहुत कुछ तंबाकू में पाये जाने वाले निकोटीन (Nicotine) की तरह होती है। इससे हल्लास उत्पन्न होकर कफ निकलता है। पाश्चात्य

चिकित्सा में उद्वेष्टनयुक्त श्वसनिकाशोथ (Bronchitis) के लिए इसका बहुत उपयोग किया जाता है। तमकश्वास (Asthma) में आवेग के समय तथा बाद में भी इसके टिंक्चर का १० बूँद दिन में ३ बार अन्य औषधियों के साथ उपयोग किया जाता है। उद्वेष्टनयुक्त कास में भी इससे लाभ होता है। इसके श्वसनकेन्द्र को उत्तेजित करने के कारण फुफ्फुसपाक तथा कार्बन मॉन् आक्साइड एवं मॉर्फीन की विषाक्तता में इसका उत्तेजक रूप में प्रयोग करते हैं।

इसकी फली या पत्तों को थोड़ी देर चबाने से चक्कर, शिरःशूल, कंप एवं अन्त में हल्लास तथा वमन होता है। पूर्ण मात्रा से शीघ्र ही तीव्र वमन होता है तथा इसके साथ-साथ हृल्लास, प्रस्वेद तथा शिथिलता उत्पन्न होती है।

विष प्रभाव—अधिक मात्रा से उपर्युक्त लक्षण अत्यंत तीव्र होते हैं तथा साथ में गले में जलन, ऐच्छिक क्रियाओं का धीरे-धीरे ह्रास, तीव्र तथा कमजोर नाडी, शैत्य, निपात एवं मूर्च्छा या संन्यास होता है। कुछ में मृत्यु के पूर्व आक्षेप होते हैं। मृत्यु श्वसन के रुकने से होती है। ५–८ र० पत्रचूर्ण या बीज से तीव्र वमन होता है तथा ४ माशे (१ ड्राम) पत्रचूर्ण से मृत्यु हुई है। इसका विषैला परिणाम इसके प्रयोग के पश्चात् कभी-कभी वमन के द्वारा ओषधि न निकलने के कारण होता है। **मात्रा**—चूर्ण ½–१½ र०; टिंक्चर लोबेलिआ इथेरिआ ५–१५ बूँद।

प्रतिनिधि एवं व्यामिश्रण—(१) लोबेलिआ एक्सेल्सा (Lobelia excelsa Lesch.) का इसके प्रतिनिधि के रूप में व्यवहार किया जाता है। यह इसी की तरह होता है किन्तु इसमें मुलायम रोमयुक्त मोटे पत्र होते हैं तथा मंजरी बैंगनी आभायुक्त हलके पीताभ रंग के घने पुष्पों से युक्त होती है। इसके परागाशय (Anther) पृष्ठ भाग पर चिकने होते हैं।

(२) लोबेलिआ इन्फ्लेटा लिन. (Lobelia inflata Linn.) का पाश्चात्य चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है जो अमेरिका में उत्पन्न होता है।

(३) व्हर्बस्कम् थॅप्सस लिन. (Verbascum thapsus Linn.); Fam. Scrophulariaceae (स्क्रोफ्युलेरिएसी) तथा कम्पोझिटी (Compositae) वर्ग के पौधों की कभी-कभी इसमें मिलावट रहती है।

अथ भद्रमुञ्जः (रामशर-सरपत इति वा) मुञ्जश्च (मूंज)। तयोर्नामगुणानाह

भद्रमुञ्जः शरो बाणस्तेजनश्चेक्षुवेष्टनः ॥ १५८ ॥
मुञ्जो मुञ्जातको बाणः स्थूलदर्भः सुमेखलः।
मुञ्जद्वयन्तु मधुरं तुवरं शिशिरं तथा ॥ १५९ ॥
दाहतृष्णाविसर्पास्रमूत्रकृच्छ्राक्षिरोगजित्। दोषत्रयहरं वृष्यं मेखलासूपयुज्यते ॥ १६० ॥

'सरपत' तथा 'मूँज' के नाम और गुण—भद्रमुञ्ज, शर, बाण, तेजन और इक्षुवेष्टन ये सब नाम 'सरपत' के हैं। मुञ्ज, मुञ्जातक, बाण, स्थूलदर्भ और सुमेखल ये सब नाम 'मूञ्ज' के हैं। उक्त दोनों प्रकार के मूञ्ज—मधुर, कषाय रसयुक्त, शीतवीर्य और वृष्य होते हैं एवं दाह, तृषा, विसर्प, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, नेत्ररोग तथा त्रिदोष को दूर करनेवाले होते हैं और 'मेखला' बनाने में इनका उपयोग होता है ॥ १५८–१६० ॥

७९ भद्रमुञ्ज

हि०–भद्रमुञ्ज, रामसर, सरपत, कंडा। **क०**–रामसपु, सरगोलु। **सन्ताल०**–सर। **ते०**–वेल्लुपोनिक। **सिन्ध०**–सर। **बं०**–शर। **म०**–शर। **पं०**–करकाना। **गु०**–तीरकांस। **ले०**–*Saccharum munja Roxb.* (सॅकेरम् मुंज राक्स.)। Fam. Gramineae (ग्रॅमिनी)।

भद्रमुञ्ज—यह उत्तर भारत, पंजाब तथा गंगा के ऊपरी मैदान में उत्पन्न होता है।

यह तृणजाति की बहुवर्षायु वनस्पति प्रायः नदियों के किनारे गुच्छों में उगती है। यह १२ से १८ फीट तक ऊँचा होता है। पत्ते—बहुत पतले-पतले, ५–७ फीट लम्बे, ॥।–१ इञ्च चौड़े तथा तीक्ष्णाग्र होते हैं। डंठल के अन्त में पीताभ सफेद से रक्ताभ बैंगनी बारीक फूलों का घनहरा लगता है। इसके कांड, पत्र तथा पत्रकोषों से निकाले रेशे काम में लिये जाते हैं। इसकी एक और जाति होती है जिसे मूंज कहा जाता है जो आकार प्रकार में छोटी होती है।

शर तथा मूंज की जड़ का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह शीतल, तृष्णानिग्राहक, मूत्रल एवं वृष्य है। व्रण में तथा प्रसूता के कमरे में इसकी जड़ से धूपन किया जाता है।

मात्रा—मूल ३–६ माशा।

अथ कासः। तस्य नामगुणानाह

कासः कासेक्षुरुद्दिष्टः स्यादिक्षुरसस्तथा।
इक्ष्वालिकेक्षुगन्धा च तथा पोटगलः स्मृतः॥ १६१॥
कासः स्यान्मधुरस्तिक्तः स्वादुपाको हिमः सरः।
मूत्रकृच्छ्राश्मदाहास्रक्षयपित्तजरोगजित्॥ १६२॥

'कास' के नाम तथा गुण—कास, कासेक्षु, इक्षुरस, इक्ष्वालिका, इक्षुगन्धा तथा पोटगल ये सब नाम कास के हैं। कास—मधुर तथा तिक्तरसयुक्त, विपाक में मधुर, शीतवीर्य और सारक होता है एवं मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी (पथरी), दाह, रक्तविकार, क्षय तथा पित्त सम्बन्धी रोग को दूर करता है॥ १६१–१६२॥

८० कास

हिं०–कास, कासी, कांस घास। **बं**–केशे। **म०**–कसई। **गु०**–कांसडो। **क०**–किरयिकागच्छ, कासलु। **ते०**–रेलु। **ता०**–नाणल्। **मा०**–कास। **अं०**–Thactch grass (थॅच ग्रास)। **अं०**–Saccharum spontaneum Linn. (सॅकेरम् स्पॉण्टेनियम् लिन.)। Fam. Gramineae (ग्रॅमिनी)।

यह सभी प्रान्तों में उत्पन्न होता है।

कास तृणजातीय वनस्पति प्रायः नदियों के किनारे तथा दलदलों के आस-पास अधिक देखने में आती है। इसके पौधे ५–७ फीट (कभी-कभी १८ फीट तक) ऊँचे होते हैं। काण्ड ठोस होते हैं। **पत्ते**–१–२॥ फीट लम्बे, बहुत कम चौड़े (१⁄२–३⁄४ इञ्च) तथा उनके किनारे मुड़े हुये होते हैं। **पुष्पदण्ड**–॥।–२ फीट लम्बा होता है जिस पर श्वेत वर्ण के पुष्प गुच्छों में आते हैं। शरदऋतु में ये पुष्पित होते हैं तथा शीत ऋतु में फलते हैं। इसका प्रायः छप्पर और टट्टी बनाने में उपयोग किया जाता है। इसके मूल का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसकी जड़ स्तन्यजनन एवं मूत्रल है। इसका उपयोग मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, रक्तार्श, रक्तप्रदर एवं कपोत, पारावत आदि के मांस के खाने से उत्पन्न अजीर्ण में किया जाता है।

मात्रा—मूल ३–६ माशा।

अथ गुन्द्रः (पटेर-गोंदपटेर इति च)। तस्य नामगुणानाह

गुन्द्रः पटेरको गुल्मः शृङ्गवेराभमूलकः। गुन्द्रः कषायो मधुरः शिशिरः पित्तरक्तजित्।
स्तन्यशुक्ररजोमूत्रशोधनो मूत्रकृच्छ्रहृत्॥ १६३॥

गोंद पटेर के नाम तथा गुण—गुन्द्र, पटेरक, गुल्म और शृङ्गवेराभमूलक ये सब नाम 'गोंदपटेर' के हैं। **गोंद पटेर**–कषाय तथा मधुर रसयुक्त, शीतवीर्य, रक्तपित्त एवं मूत्रकृच्छ्र को दूर करनेवाला, एवं दूध, शुक्र, रज और मूत्र का शोधन करनेवाला होता है॥ १६३॥

८१ गोंद पटेर (गुन्द्र)

हि०–पटेर, गोंदपटेर। **म०**–रामबाण। **ले०**–*Typha angustata Bory &Chaub.* (टाइफा अँगस्टॅटा बो., चौ.)। Fam. Typhaceae (टाइफेसी)।

नोट—आगे वर्णित एरका और गोंदपटेर एक ही जाति की वनस्पतियाँ हैं। इनका वर्णन आगे एक साथ ही किया गया है।

अथैरका (मोथीतृणविशेषः)। तस्या नामगुणानाह

एरका गुन्द्रमूला च शिविर्गुन्द्रा शरीति च। एरका शिशिरा वृष्या चक्षुष्या वातकोपिनी।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीदाहपित्तशोणितनाशिनी॥ १६४॥

'एरका' के नाम तथा गुण—एरका, गुन्द्रमूला, शिवि, गुन्द्रा और शरी ये सब पर्यायवाचक शब्द हैं। **एरका**–शीतवीर्य, वृष्य, नेत्रों के लिये हितकर, वात को कुपित करने वाली एवं मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, दाह, पित्त तथा रक्तविकार को दूर करने वाली होती है॥ १६४॥

८२ एरका

हि०–एरका, पटेरा। **बं०**–होगला। **म०**–रामबाण। **गु०**–घाबाजरीयुं। **अं०**–Elephant grass (एलिफेण्ट ग्रास)। **ले०**–*Typha elephantina Roxb.* (टाइफा एलिफेण्टीना रा.)। Fam. Typhaceae (टाइफेसी)।

एरका—पश्चिमोत्तर हिन्दुस्तान आसाम एवं दक्षिण तक के दलदलों में एवं सिंधु के डेल्टा में अधिक पाई जाती है। यह दलदलों में उत्पन्न होने वाली तृणजातीय वनस्पति ६ से १२ फीट तक लम्बी होती है तथा यह समूहबद्ध होकर उगती है। पत्ते–मूलीय, ४–६ फीट लंबे, पौन से डेढ़ इञ्च तक चौड़े और नतोदर होते हैं। इनकी धार अग्र की ओर लहरदार होती है। पुष्प–नारीपुष्पों की विदण्डिक मंजरियाँ ८–२० इञ्च लंबी और भूरी नारंगी रंग की होती हैं। इन्हीं पुष्पदण्डों से ८-२२ इञ्च लंबी नरपुष्पों की मंजरियाँ भी निकली रहती हैं। इसकी एक दूसरी जाति T. angustata (टाइफा अँगस्टेटा) भी पाई जाती है। इनमें मुख्य भेद दोनों की पत्तियों में होता है। पहली जाति में कोषमय पत्राधार के ऊपर पत्ती का घेरा त्रिभुजाकार और दूसरी जाति में क्वचित् गोलाकार होता है। इनकी पत्तियों की चटाइयाँ बनती हैं।

गुण और प्रयोग—यह शीतल, मूत्रल, ग्राही, वीर्यवर्धक, चक्षुष्य तथा अश्मरी, दाह एवं रक्तपित्तनाशक है। इसके पुष्पों को कूचकर व्रण पर बांधने से व्रण जल्दी भर जाता है।

मात्रा—३–६ माशा।

अथ कुशः (कुशा) क्षुरपत्रश्च (डाभ) तयोर्नामानि गुणांश्चाह

कुशो दर्भस्तथा बर्हिः सूच्यग्रो यज्ञभूषणः।
ततोऽन्यो दीर्घपत्रः स्यात्क्षुरपत्रस्तथैव च ॥ १६५ ॥
दर्भद्वयं त्रिदोषघ्नं मधुरं तुवरं हिमम्।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीतृष्णाबस्तिरुक्प्रदरास्रजित् ॥ १६६ ॥

कुश तथा डाभ के नाम और गुण—कुश, दर्भ, बर्हि, सूच्यग्र और यज्ञभूषण ये सब 'कुशा' के नाम हैं, और दीर्घपत्र एवं क्षुरपत्र ये दो नाम 'डाभ' के हैं। **दर्भद्वय** (उपर्युक्त कुशा तथा डाभ ये दोनों)—त्रिदोषनाशक, मधुर तथा कषायरसयुक्त, शीतल एवं मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी (पथरी), तृषा, बस्तिसम्बन्धी रोग तथा रक्त प्रदर को दूर करने वाले होते हैं ॥ १६५–१६६ ॥

८३ कुश, दर्भ

हि०–कुशा, दाभ, कुस घास। **म०**–दर्भ। **बं०**–कुश। **पं०**–दभ, द्रभ। **गु०**–दामडो, दरभ। **क०**–वीलीय, बुट्टशशी। **ते०**–कुश, दर्बालु। **ता०**–दर्भ। **ले०**–*Eragrostis cynosuroides Beauv.* (इरेग्रॉस्टिस् साइनोसुरोइडीस् बी.); Syn. Desmostachya bipinnata Stapf (डिस्मोस्टेचिआ बाइपिन्नॉटा स्टा.)। Fam. Gramineae (ग्रॉमिनी)।

कुश—मूञ्ज की जाति की मूञ्ज से छोटी एक प्रकार की घास है। इसके पत्ते, काण्ड, धनहरा आदि मूञ्ज के ही आकार के परन्तु मूञ्ज से छोटे होते हैं। यह खुले हुए घास के मैदानों में सर्वत्र पाया जाता है।

इसके पौधे मोटे, बहुवर्षायु, दृढ़ तथा १–३ फीट ऊँचे होते हैं। **मूलस्तम्भ**–सीधा खड़ा परन्तु बहुत गहराई तक होता है। **पत्ते**–१८ इञ्च तक लम्बे, ·२ इञ्च चौड़े, अग्र पर काँटे की तरह तीक्ष्ण और पत्रतट सूक्ष्म रोमों के कारण तेज धार का होता है। **पुष्पदण्ड**–६–१८ इञ्च लम्बा तथा सीधा होता है। **बीज**–1/8 इञ्च लम्बे, अण्डाकार तथा चपटे होते हैं। वर्षाऋतु में पुष्प तथा शीतऋतु में फल लगते हैं।

इसकी छोटी जाति को कुश तथा बड़ी जाति को दर्भ कहते हैं। दर्भ के पत्ते लम्बे तथा खर होते हैं। चरक सुश्रुत में कुश, काश तथा दर्भ इनका एक साथ अनेक स्थानों में प्रयोग आया है। डल्हण ने इन तीनों का परिचय इस प्रकार दिया है—कुशः ह्रस्वदर्भः। ह्रस्वो मृदुः सूचीपत्रः॥ कासः चामरपुष्पः चामरपत्रः॥ दर्भः पृथुलः खरपत्रः दीर्घः॥ रा० नि० ने इसका एक श्वेत दर्भ भेद लिखा है जिसे अधिक गुणकारी माना है। इनके मूल का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

गुण और प्रयोग—कुश एवं दर्भ शीतल, मूत्रविरेचन, स्तन्यजनन एवं पिपासाहर है। प्रदर, आँव, दाह, रक्तार्श, अश्मरी एवं बस्तिविकारों में इसका उपयोग किया जाता है। प्रदर, रक्तप्रदर एवं रक्तार्श में इसकी जड़ एवं बला को चावल के धोवन के साथ पीसकर देने से लाभ होता है। **मात्रा**—३–६ माशा।

अथ कत्तृणम् (रोहिस इति च)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

कत्तृणं रौहिषं देवजग्धं सौगन्धिकं तथा। भूतिकं ध्यामपौरञ्च श्यामकं धूपगन्धिकम् ॥
रौहिषं तुवरं तिक्तं कटुपाकं व्यपोहति। हृत्कण्ठव्याधिपित्तास्रशूलकासकफज्वरान् ॥१६८॥

'रोहिस' नाम से प्रसिद्ध कत्तृण के नाम तथा गुण—कत्तृण, रौहिष, देवजग्ध, सौगन्धिक, भूतिक, ध्यामपौर, श्यामक तथा धूमगन्धिक ये सब 'रोहिस'वाचक शब्द हैं। **रोहिस**–स्वाद में कषाय तथा तिक्तरसयुक्त एवं विपाक में कटुरसयुक्त होता है और हृदय तथा कण्ठसम्बन्धी रोग, पित्तरक्त (रक्त पित्त), शूल, कास (खाँसी) तथा कफज्वर को नष्ट करता है ॥ १६७–१६८ ॥

८४ रोहिष घास

हि०–रोहिस, रूसा घास, रतहर, मिरचा गन्ध। **बं०**–अगम घास। **म०**–रोहिषगवत। **क०**–डुंल्लु। **फा०**–खवालमागून, खलालमामून, खवालमामून। **गु०**–रोंडसो। **अं०**–Rosha Grass (रोषा ग्रास)। **ले०**–*Cymbopogon schoenanthus Linn.* (साइम्बोपोगोन् स्कीनैन्थस् लिन.)। Fam. Gramineae (ग्रेमिनी)।

यह मध्य भारत, दक्षिण और पश्चिमोत्तर प्रान्त तथा पञ्जाब में अधिक पाई जाती है। यह वन उपवनों में आप ही आप उत्पन्न होती है और वाटिकाओं में भी रोपण की जाती है।

यह ५–६ फीट ऊँची एक सुगन्धित घास है। इसकी जड़ बारहों मास जीवित रहती है। **काण्ड**–चिकने, पत्रयुक्त तथा प्रायः रक्ताभ होते हैं। **पत्ते**–बहुत लम्बे, क्रमशः पतले, चिकने, कोमल, नुकीले, कांडासक्त तथा आधार पर गोल या तांबूलाकार होते हैं। पत्तों को मसलने से सुगन्ध आती है। **पुष्प**–लाल, बादामी रङ्ग के पत्रकोश से ढकी हुई विदण्डिक मञ्जरियां आती हैं। वर्षा एवं शीतकाल में फूल-फल आते हैं।

रासायनिक संगठन—इसकी पत्तियों से एक सुगन्धित तेल (Geranium oil–जिरेनियम् ऑयल्) निकाला जाता है। कोमल घास से तेल अधिक एवं उत्तम प्रकार का निकलता है। इसका रङ्ग फीका ललाई लिये जामुनी रङ्ग का होता है। इसमें गन्ध गुलाब जैसी तथा स्वाद में यह अदरख की तरह चरपरा एवं रुचिकर होता है।

गुण और प्रयोग—इसमें का तेल उष्ण, स्वेदजनन, मूत्रजनन, ज्वरघ्न, उत्तेजक, चेतनाकारक एवं त्वग्रागकारक है। नूतन आमवात में तैल मलने से लाभ होता है। गंजापन (इन्द्रलुप्त) पर इस तैल को मलते हैं। प्रतिश्याय, ज्वर, अजीर्ण तथा कफविकारों में इसके क्वाथ से लाभ होता है।

मात्रा—३–६ माशा।

अथ भूतृणम् (शरवाण) तस्य नामगुणानाह

गुह्यबीजं तु भूतीकं सुगन्धं जम्बुकप्रियम्। भूतृणं तु भवेच्छत्रा मालातृणकमित्यपि ॥१६९॥
भूतृणं कटुकं तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रेचनं लघु। विदाहि दीपनं रूक्षमनेत्र्यं मुखशोधनम् ॥१७०॥
अवृष्यं बहुविट्कञ्च पित्तरक्तप्रदूषणम् ॥ १७१ ॥

शरवाण के नाम तथा गुण—गुह्यबीज, भूतीक, सुगन्ध, जम्बुकप्रिय, भूतृण, छत्रा और मालातृणक ये सब शरवाण के नाम हैं। **शरवाण**–कटु तथा तिक्तरसयुक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, रेचक, लघुपाकी, दाहजनक, अग्निदीपक, रूक्ष, नेत्रों के लिये अहितकर, मुख को शुद्ध करनेवाला,

अवृष्य (वीर्यवृद्धि नहीं करने वाला), अत्यन्त मल उत्पन्न करने वाला और पित्तरक्त को दूषित करने वाला होता है ॥ १६९-१७१ ॥

नोट—भूतृण के लेटिन नाम के सम्बन्ध में मतभेद हैं। श्री यादवजी ने साइम्बोपोगोन् ज्वरांकुश (Cymbopogon jwarankusa) को भूतृण माना है जिसका वर्णन पहले पृष्ठ २६१ पर 'लामज्जक' के अन्तर्गत किया जा चुका है। कुछ विद्वानों ने हरी चाय, साइम्बोपोगोन् साइट्रेटस् (Cymbopogon citratus) को भूतृण माना है किन्तु इसे श्री यादवजी 'जम्बीरतृण' मानते हैं जिसका चरक सू० अ० २७ में हरित वर्ग में एवं सुश्रुत सू० अ० ४६ में शाक वर्ग में वर्णन आया है। यहाँ पर निम्न वर्णन हरीचाय का किया गया है।

८५ भूतृण ? (हरीचाय)

हि० शरवाण, भूतृण, गन्धतृण, अगियाखर, हरीचाय, गन्धबेना। **बं०**–गन्धतृण। **गु०**–लीलीचा। **म०**–हिरवा चहा, ओला चहा। **क०**–मज्जिगेहुल्लु। **पं०**–गन्धतृण, शरवाण, रामकपूर। **ता०**–कर्पूर पुल्ल। **ते०**–चिप्पगड्डि। **अं०**–Lemon Grass (लेमन् ग्रास)। **ले०**–*Cymbopogon citratus (DC.) Stapf.* (साइम्बोपोगॉन् साइट्रेटस् डीसी. स्टा०); *Andropogon citratus DC.* (एण्ड्रोपोगॉन साइट्रेटस डीसी.)। Fam. Gramineae (ग्रॅमिनी)।

यह भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों में विशेषकर पंजाब और संयुक्त प्रान्त की पहाड़ी भूमि तथा वाटिकाओं में भी उत्पन्न होती है। यह ५-७ फीट ऊँची घास है। **पत्ते**–३-४ फीट लम्बे, पौन इंच चौड़े होते हैं। **पुष्प**–उभयलिङ्गी पुष्प की मञ्जरियाँ वर्षाकाल में आती हैं। इसकी पत्ती को मसलने से उसमें से नींबू की तरह सुगन्ध आती है। इस तृण का फांट बनाकर उसमें दूध और चीनी मिलाकर चाय की तरह पीते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एक सुगन्धित उड़नशील तैल होता है जिसे Indian Melissa oil (इंडियन् मेलिसा ऑइल्), Indian oil of Verbena (इण्डियन् ऑइल् ऑफ् वर्बेना) कहते हैं। यह गहरे पीत या भूरे से लाल रङ्ग का नींबू की गन्ध जैसा होता है। इस तैल में प्रधान रूप से सिट्राल (Citral, $C_{10}H_{16}O$) नामक पदार्थ होता है जिसे आयोनॉन् (Ionone) नामक एक अन्य पदार्थ में रासायनिक विधि से परिवर्तित किया जा सकता है। आयोनॉन् का सुगन्धि द्रव्यों एवं विटामिन् ए (Vitamin A) के बनाने में उपयोग होता है। आयोनॉन् में हायोलेट जैसी तीव्र सुगन्ध होती है।

गुण और प्रयोग—हरी चाय उष्ण, स्वेदजनन, मूत्रजनन, ज्वरघ्न, वातानुलोमन, उत्तेजक, चेतनाकारक, उद्वेष्टननिरोधि, मुखशुद्धिकर, कफवातहर, दीपन, पाचन एवं रुचिकर है। इसका तैल बाह्य प्रयोग में त्वग्रागकारक एवं वातहर है।

प्रतिश्याय, ज्वर, वमन, अतिसार, आध्मान, शूल, आक्षेप एवं विसूचिका में इसके फाण्ट से बहुत लाभ होता है। विसूचिका में इससे वमन रुकता है एवं उत्तेजना आती है। इसका तैल आध्मान, शूल तथा विसूचिका में ½-२ बूँद की मात्रा में देते हैं। मलेरिया ज्वर में हरी चाय का उपयोग किया जाता है। कटिशूल, आमवात तथा पीडा आदि में इसके तैल की मालिश की जाती है।

मात्रा—तैल ½-२ बूँद, तृण ३-६ माशा।

अथ नीलदूर्वा (हरीदूब) तस्या नामानि गुणाँश्चाह

नीलदूर्वा रुहाऽनन्ता भार्गवी शतपर्विका। शष्पं सहस्रवीर्या च शतवल्ली च कीर्तिता ॥१७२॥
नीलदूर्वा हिमा तिक्ता मधुरा तुवरा हरेत्। कफपित्तास्रवीसर्पतृष्णादाहत्वगामयान् ॥१७३॥

'हरी दूब' के नाम तथा गुण—नीलदूर्वा, रुहा, अनन्ता, भार्गवी, शतपर्विका, शष्प, सहस्रवीर्या और शतवल्ली ये सब 'हरी दूब' के नाम हैं। **हरी दूब**–शीतवीर्य, तिक्त, मधुर तथा कषायरसयुक्त एवं कफ, पित्तरक्त, विसर्प, तृषा, दाह और चर्मरोग को दूर करने वाली होती है ॥ १७२-१७३ ॥

हि०–हरी दूब, नीली दूब, रामघास। **बं०**–नीलदूर्वा, दूर्वा। **म०**–नीलदूर्वा, हरली, नीली-हारेयाली। **संथाल०**–घोबीघास। **गु०**–खडओ, लीलीओ, धरो। **क०**–गरिके। **पं०**–दूबड़ा। **ते०**–दूलु, गरिकेग। **ता०**–अरुवमपिल्लू। **अ०**–उन्न। **फा०**–मर्ग। **अं०**–Creeping Cynodon (क्रीपिंग साइनोडोन्)। **ले०**–*Cynodon dactylon (Linn.) Pers.* (साइनोडॉन् डॅक्टीलोन पर्स.)। Fam. Gramineae (ग्रॅमिनी)।

दूब–तृणजाति की वनस्पति सब प्रान्तों के वन, उपवन, खेत सब जगह उत्पन्न होती है। गर्मी के दिनों में प्रायः सूख सी जाती है, परन्तु बरसात का पानी पड़ने से फिर हरी-भरी हो जाती है। जलाशय और कुंये के पास बारहों मास हरी भरी देखने में आती है। इसकी डंडियाँ पतली-पतली होती हैं, और भूमि पर फैली हुई रहती हैं। अन्तवाली शाखायें जिन पर कोमल बारीक फूल आते हैं, वे जमीन से उठी रहती हैं। **पत्ते**–पतले, ४-६ अंगुल लंबे, रेखाकार होते हैं। बीज–बहुत छोटे होते हैं।

गुण और प्रयोग—दूर्वा शीतल, वर्ण्य, प्रजास्थापन, रक्तस्कंदन, व्रणरोपण, मूत्रजनन तथा कफपित्तहर है।

(१) बस्तिशोथ, सोजाक तथा मूत्रमार्ग के दाह में इसकी जड़ का क्वाथ पिलाते हैं।

(२) त्वचा के रोगों में इसकी जड़ का क्वाथ पिलाते हैं। सद्योव्रण तथा त्वचा के रोगों में इसकी पत्तियों का लेप उपयोगी है। इससे रक्तस्राव रुकता है।

(३) अतिसार, पैत्तिक वमन, उदर, जलोदर, अत्यार्तव, गर्भपात, उन्माद, अपस्मार तथा रक्तमेह आदि में इसका स्वरस पिलाया जाता है।

(४) नेत्राभिष्यंद में पत्र-कल्क का लेप करते हैं।

(५) अर्श में जलन कम करने के लिये पत्तों का लेप किया जाता है।

मात्रा—स्वरस ६ माशा-१ तोला; मूल ३-६ माशा।

अथ श्वेतदूर्वा। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

दूर्वा शुक्ला तु गोलोमी शतवीर्या च कथ्यते।
श्वेता दूर्वा कषाया स्यात्स्वाद्वी व्रण्या च जीवनी। तिक्ता हिमा विसर्पास्रतृट्पित्तकफदाहहृत् ॥

'सफेद दूब' के नाम तथा गुण—शुक्लदूर्वा, गोलोमी और शीतवीर्या ये नाम सफेद दूब के हैं। **सफेद दूब**–कषाय, तिक्त एवं स्वादु रसयुक्त, व्रण (घाव) के लिये हितकर, जीवनशक्ति को बढ़ाने वाली, शीतवीर्य एवं विसर्प, रक्तविकार, तृषा, पित्त, कफ तथा दाह को दूर करने वाली होती है ॥ १७४ ॥

८७ श्वेत दूर्वा

हि०—सफेद दूब।

यह भी दूब के समान ही घास है जिसके पत्ते सफेदीपन लिये होते हैं। यह कोई भिन्न जाति है या केवल स्थान-भेद से इसमें सफेद पत्ते होते हैं यह कहना कठिन है। अभी इसमें अनुसंधान की आवश्यकता है। यह अधिक पित्तशामक मानी जाती है।

अथ गण्डदूर्वा (गांडरदूब) तस्या नामानि गुणाँश्चाह

गण्डदूर्वा तु गण्डाली मत्स्याक्षी शकुलादनी । गण्डदूर्वा हिमा लोहद्राविणी ग्राहिणी लघुः ॥
तिक्ता कषाया मधुरा वातकृत्कटुपाकिनी । दाहतृष्णाबलासास्रकुष्ठपित्तज्वरापहा ॥ १७६ ॥

गांडर दूब के नाम तथा गुण—गण्डदूर्वा, गण्डाली, मत्स्याक्षी और शकुलादनी, ये सब नाम गांडर दूब के हैं । **गांडर दूब**-शीतवीर्य, लोहे को पिघलाने वाली, मलसंग्राहक (मल को रोकने वाली), लघु, तिक्त, कषाय एवं मधुर रसयुक्त, विपाक में कटु रसयुक्त, वातकारक एवं दाह, तृषा कफ, रक्तविकार, कुष्ठ तथा पित्तज्वर को दूर करने वाली होती है ॥ १७५–१७६ ॥

८८ गण्डदूर्वा

हि०-गांडरदूब, गठीलादूब, गण्डदूर्वा ।

गांडरदूब-दूब की जाति की एक वनस्पति है, जो दूब से बड़ी होती है और यह प्रायः जलाशयों के किनारे अधिक उत्पन्न होती है । उसकी डंठी मोटी और बड़ी होती है । **पत्ते**-दूब के समान परन्तु दूब से बहुत बड़े होते हैं । गंठि मोटी होती हैं ।

वाराहीकन्दः (गेठी इति लोके) । तस्य लक्षणनामगुणानाह

वाराहीकन्दसंज्ञस्तु पश्चिमे गृष्टिसंज्ञकः । वाराहीकन्द एवान्यैश्चर्मकारालुको मतः ॥१७७॥
अनूपसम्भवे देशे वराह इव लोमवान् । वाराहवदना गृष्टिर्वरदेत्यपि कथ्यते ॥ १७८ ॥
वाराही तु रसे स्वाद्वी तिक्ता पाके पुनः कटुः ।
शुक्रायुःस्वरवर्णाग्निबलपित्तविवर्द्धिनी । कफकुष्ठमरुन्मेहकृमिहृच्च रसायनी ॥ १७९ ॥

वाराहीकन्द के लक्षण नाम और गुण - जिसका 'वाराहीकन्द' नाम है, उसी को पश्चिम देश में 'गृष्टि' कहते हैं और 'वाराहीकन्द' को ही कुछ लोग 'चर्मकारालुक' कहते हैं । अनूप (जलप्राय) देश में यह सूअर के बालों की तरह कठिन रोम से युक्त कन्द वाला होता है । इसके वाराहवदना, गृष्टि, वरदा ये सब नाम हैं ।

वाराहीकन्द-यह मधुर तथा तिक्तरसयुक्त, पाक में कटु और रसायन एवं शुक्र, आयु, स्वर, वर्ण, जठराग्नि, बल और पित्त को बढ़ाने वाला एवं कफ, कुष्ठ, वात, प्रमेह तथा कृमि को दूर करने वाला होता है ॥ १७७–१७९ ॥

नोट—वाराही कंद के स्थान पर डायोस्कोरिआ बल्बिफेरा (Dioscorea bulbifera) एवं टेक्का एस्पेरा (Tecca aspera) इन दो द्रव्यों का उपयोग किया जाता है । अधिकांश विद्वान् प्रथम के कंद को वाराही कन्द मानते हैं । उसकी अनेक उपजातियां भी पाई जाती हैं । यहां दोनों का अलग-अलग वर्णन किया गया है ।

८९ वाराही कन्द (१)

हिं०-वाराही कन्द, गेंठी । म०-डुकर कन्द, कडूकरांदा । गु०-डुकरकंद, वणा बेल । बं०-रतालु । ले०-*Dioscorea bulbifera Linn.* (डायोस्कोरिआ बल्बिफेरा लिन) । Fam. Dioscoreaceae (डायोस्कोरिएसी) ।

यह दून और सहारनपूर के वनों में ५ हजार फीट की ऊँचाई तक तथा सभी स्थानों में पाया जाता है ।

इसकी **लता**—आरोही तथा वामावर्त होती है । **कांड**-चिकने तथा पत्रकोणों में लगभग १ इञ्च व्यास की कन्द सदृश रचनाएँ होती हैं । **पत्ते**-साधारण एकान्तर, २॥–६ इञ्च लंबे, १॥।–४ इञ्च चौड़े, पतले, पुच्छाकार लंबे नोकवाले तथा आधार पर तांबूलाकार होते हैं । इनके आधारीय खण्ड गोल और पत्राधार पर ९ शिराएँ होती हैं । **पुष्प**-नरपुष्पों की मंजरियाँ नीचे की ओर लटकी हुई, २–४ इञ्च लंबी और प्रायः पत्रकोणों में समूहबद्ध होकर निकली हुई रहती हैं । नारीपुष्पों की मञ्जरियाँ ४–१० इञ्च लंबी होती हैं । **फल**-३ पंख वाले और बीज भी आधार पर सपंख होते हैं । **कन्द**-छोटे आकार का भूरे रंग का होता है जिस पर सूअर की तरह रोम होते हैं । यह भीतर से पीताभ श्वेत होता है । इसकी अन्य जातियों का भी प्रयोग किया जाता है । कुछ में कन्द बहुत गहरे बैठते हैं तथा वे अधिक मुलायम होते हैं ।

रासायनिक संगठन—इसकी लता में एक विषैला ग्लूकोसाइड पाया जाता है । इसके कंद में स्टार्च होता है ।

गुण और प्रयोग—यह कुछ रक्तसंग्राहक तथा ग्राही है । रक्तातिसार, प्रवाहिका, उदरशूल, अर्श आदि रोगों में इसके फलों को जीरा तथा शर्करा के साथ देते हैं । त्वचा के रोगों में भी इसका व्यवहार किया जाता है ।

मात्रा—३–६ माशा ।

९० वाराहीकंद (२)

हि०-वाराहीकंद, भेवर के कंद, भेवर की बेल । ले०-*Tacca aspera Roxb.* (टॅक्का एस्पेरा राक्स.) । Fam. Taccaceae (टॅक्केसी) ।

यह बर्मा, चटगांव, तेनासरिम तथा मलय प्रायद्वीप में होता है ।

इसका क्षुप-बहुवर्षायु एवं मूलस्तंभ कंदवत, आयताकार, एवं मुड़ा हुआ रहता है । **पत्ते**-दीर्घ-वृत्ताकार, अंडाकार, ८–१६ × ४–८ इञ्च; लंबाग्र, शिराएँ स्पष्ट एवं उनके बीच का भाग उभरा हुआ होता है । **पुष्प**-हरिताभ बैंगनी कुछ पीत होते हैं । **फल**-करीब १॥ इञ्च लंबा, आयताकार तथा मांसल होता है ।

गुण और प्रयोग—इसके कंद बल्य होते हैं तथा इनका उपयोग रक्तपित्त एवं चर्मरोगों में किया जाता है ।

मात्रा—३–६ माशा ।

अथ विदारीकन्दः । तस्य नामगुणानाह

विदारी स्वादुकन्दा च सा तु क्रोष्ट्री सिता स्मृता ।
इक्षुगन्धा क्षीरवल्ली क्षीरशुक्ला पयस्विनी ॥ १८० ॥
विदारी मधुरा स्निग्धा बृंहणी स्तन्यशुक्रदा ॥ १८१ ॥
शीता स्वर्या मूत्रला च जीवनी बलवर्णदा ।
गुरुः पित्तास्रपवनदाहान् हन्ति रसायनी ॥ १८२ ॥

विदारी कन्द के नाम तथा गुण—विदारी, स्वादुकन्दा, क्रोष्ट्री, सिता, इक्षुगन्धा, क्षीरवल्ली, क्षीरशुक्ला तथा पयस्विनी के सब नाम विदारीकन्द के हैं ।

विदारीकन्द—मधुर रसयुक्त, स्निग्ध, बृंहण, दुग्धवर्धक और शुक्र को बढ़ाने वाला, शीतवीर्य, स्वर को उत्तम बनाने वाला, मूत्रकारक, जीवनी शक्ति बढ़ाने वाला, बल तथा

वर्ण को देनेवाला, गुरु, रसायन एवं पित्त, रक्त, वायु और दाह को नष्ट करने वाला होता है ॥ १८१-१८२ ॥

विदारीकन्द के विदारी एवं क्षीरविदारी ये दो भेद चरक ने मधुरस्कंध (वि. अ. ८) में लिखे हैं। प्युरेरिआ टयुबरोजा (Pueraria tuberosa) को विदारी एवं आइपोमिआ डिजिटेटा (Ipomoea digitata) को क्षीरविदारी अधिकांश विद्वानों ने माना है। 'भुइकुम्हड़ा' नाम उपर्युक्त दोनों कन्दों को तथा ट्राईकोसॅन्थिस् कॉर्डेटा राक्स (Trichosanthes cordata Roxb.) के कन्द को भी देते हैं। सम्भव है डायोस्कोरिएसी (Dioscoreaceae) वर्ग जिस वर्ग का वाराहकन्द है उसी वर्ग के विदारी एवं क्षीरविदारी भी हों। उत्तरप्रदेश में अधिकतर प्यु. टयुबरोजा को एवं बंगाल में आ. डिजिटेटा को विदारीकन्द माना जाता है। एक क्षीर युक्त लता लेट्सोमिया सेटोसा राक्स (Lettsomia setosa, Roxb.) के कन्द का स्तन्यवर्धक के रूप में प्रयोग प्रचलित है। संभव है यह क्षीरविदारी हो। यहाँ पर प्रथम दो का अलग-अलग वर्णन किया गया है।

९१ विदारीकन्द (१)

हि०-विदारीकन्द, विलाईकन्द, भुइकुम्भड़ा, सुराल, पाताल कोहड़ा। म०-वेंदर, घोड़वेल। गु०-खाखर वेल, फगियो, फगड़ानो वेली, विदारी। बं०-शिमीय। ते०-दारी, नेल्लगुम्मुडु। मा०—गोरवेल। ले०-*Pueraria tuberosa DC.* (प्युरॅरिआ टयुबरोजा डीसी.) Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

यह कोंकण के पहाड़ों पर, दक्षिण, कनारा, पश्चिम-हिमालय, शिमला, कुमाऊ, नेपाल, विन्ध्याचल, उड़ीसा और छोटा नागपुर में उत्पन्न होता है और बिहार में भी कहीं-कहीं पाया जाता है। यह नदी-नालों के करारों में अधिक पाया जाता है।

यह अत्यन्त विस्तार में फैलने वाली लताजाति की वनस्पति अचिरस्थायी होती है। इसका कांड पोला-सा होता है। छाल-भूरे रङ्ग की आध इञ्च तक मोटी होती है। लकड़ी-छिद्रयुक्त कोमल होती है। पत्ते-पलाश के समान पक्षाकार त्रिपत्रक होते हैं। पत्रक-४-६ इञ्च लम्बे, ३-४ इञ्च चौड़े, अग्रग पत्रक तिर्यगायताकार और पार्श्वपत्रक तिरछे लट्वाकार तथा अधरतल पर श्वेत तलशायी रेशमतुल्य सघन रोओं से युक्त होते हैं। पुष्प-६-१८ इञ्च लम्बी मंजरियों में आते हैं। पुष्प नीले या नीलरक्त रङ्ग के सुन्दर दिखलाई देते हैं। फलियाँ-२-३ इञ्च तक लम्बी, चिपटी, बीजों के बीच दबी हुई और खाकी रङ्ग के रोवों से भरी रहती हैं। प्रत्येक फली में २-६ तक बीज रहते हैं। प्रायः पत्तों के गिरने पर नवीन पत्तों के निकलने के प्रथम ही फूल आते हैं।

जमीन के नीचे इसमें प्रायः कई कन्द रहते हैं, जो कांड से दृढ़मूल शाखा के द्वारा जुड़े रहते हैं और नीचे भी मूल शाखा पुनः निकली रहती है। इन्हीं को विदारीकन्द कहते हैं। यह गोल कुम्हड़े के आकार के भूरे रङ्ग का एवं लम्बाई में २ फीट तक तथा घेरे में २॥ फीट तक बड़ा होता है। पुराना कन्द २० सेर से भी अधिक वजन का देखने में आता है, किन्तु छोटे कन्द की अपेक्षा बड़े कन्द हीनवीर्य समझे जाते हैं। छोटे कन्द उखाड़ने के बाद कुछ दिनों तक बिगड़ते नहीं हैं परन्तु बड़े कन्द बहुत जल्द सड़-गल जाते हैं। छोटे-छोटे कन्दों के पतले-पतले कतरे कर सुखाने से वे दूध के समान श्वेत दिखाई पड़ते हैं तथा विदारीकन्द नाम से बाजार में बिकते हैं। बड़े कन्द की अपेक्षा छोटे कन्द का स्वाद अच्छा और मीठा होता है। छोटे-छोटे मुलायम और नवीन कन्द हरिद्वार आदि की सब्जीमण्डियों में 'सराल' के नाम से बिकते हैं। कन्दों में कुछ-कुछ मुलेठी का स्वाद आता है इसलिये विदारी को 'स्वादुकन्दा', 'इक्षुविदारी'

आदि नाम दिया गया है। ये लताएँ घोड़ों को बहुत प्रिय होती हैं जिससे इन्हें 'गजवाजिप्रिया' 'घोड़वेल' कहा गया है।

गुण और प्रयोग—यह स्तन्यजनन, मूत्रजनन तथा पौष्टिक है। शोथ पर पीस कर इसे बांधते हैं। बल एवं दुग्धवृद्धि के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। अधिक मात्रा से इससे वमन होता है।

मात्रा—¼-½ तोला।

९२ विदारीकन्द (२) क्षीरविदारी

हि०-बिलाईकन्द, विदारीकन्द, भुइकुम्हड़ा। बं०-भुइ कुमड़ा। म०-भुईकोहला। गु०-विदारीकन्द। क०-नेलकुम्बल। ते०-मत्तपलतिगा, नेल्लगुम्मुडु। मल०-मोतलकूंट। ता०-फकमोदिक। ले०-*Ipomoea digitata Linn.* (आइपोमिया डिजिटॅटा लिन.)। Fam. Convolvulaceae (कॉन्वॉल्व्युलेसी)।

यह भारतवर्ष के उष्ण कटिबंध में विशेषकर आर्द्र प्रदेशों जैसे बङ्गाल, आसाम आदि में पाया जाता है।

यह लता जाति की वनस्पति झाड़दार और विस्तार में फैलने वाली होती है। पत्ते-३-७ इञ्च के घेरे में हाथ के पन्जे के समान ५-७ भागों में विभक्त रहते हैं। फूल-नलिकाकार, चौथाई इञ्च गोल ऊपर का भाग १॥ इञ्च से २॥ इञ्च के घेरे में होता है, और यह बैंगनी रङ्ग का दिखाई पड़ता है। फल-चार छिलके वाले गोलाकार छोटे-छोटे होते हैं और वे झूमकों में आते हैं। उनके भीतर एक प्रकार की पर्तदार रूई से ढके हुये त्रिकोणाकार अर्द्धगोल बीज रहते हैं। बीजों के रोपण करने से लता उत्पन्न होती है। इसके नीचे जो कन्द बैठता है वह रताल् के आकार का होता है। इसका वजन एक सेर से अधिक नहीं होता। कन्द बाहर से भूरे रङ्ग का तथा खुरदरा होता है। काटने पर अन्दर से यह श्वेत रङ्ग का दिखाई देता है तथा उसमें से बहुत क्षीर निकलता है। इसकी सुखाई हुई कचरी बहुत हलकी रहती है तथा उसमें मण्डल दिखलाई देते हैं। इसका स्वाद पिष्टमय, कुछ कसैला एवं कड़ुवा सा होता है।

रासायनिक संगठन—इसके कन्द में पिष्टमय पदार्थ अधिक होता है। इसके अतिरिक्त १०% शर्करा, एवं अत्यन्त अल्प प्रमाण में जालप में पायी जाने वाली आनुलोमिक राल होती है।

गुण और प्रयोग—यह अनुलोमक, पित्तसारक, स्तन्यजनक, स्नेहक तथा उत्तम पौष्टिक है। इससे भूख लगती है, अन्न पचता है, शौच साफ होता है, शरीर का वर्ण सुधरता है एवं वजन बढ़ता है। काडलीवर तैल से अधिक अच्छा इससे कार्य होता है।

किसी भी कारण से शिथिलता आयी हो और वजन कम हुआ हो तो इसके चूर्ण को घृत में भूनकर दूध एवं शर्करा के साथ पेया बनाकर देने से बहुत जल्दी वजन बढ़ता है। यकृत् एवं प्लीहावृद्धि में इसका चूर्ण देने से पित्तस्राव ठीक होकर शौच साफ होता है। दुग्धवृद्धि के लिये द्राक्षासव के साथ इसे देते हैं।

मात्रा—कन्द चूर्ण ¼-½ तोला।

अथ मुशलीकन्दः। तस्य लक्षणगुणानाह

तालमूली तु विद्वद्भिर्मुशली परिकीर्तिता।
मुशली मधुरा वृष्या वीर्योष्णा बृंहणी गुरुः।
तिक्ता रसायनी हन्ति गुदजान्यनिलं तथा ॥ १८३ ॥

काली मूसली के नाम तथा गुण—विद्वान् लोग 'तालमूली ही को 'मुशली' कहते हैं, अर्थात तालमूली, मुशली ये दोनों नाम 'काली मूसली' के हैं। काली मूसली–मधुर तथा तिक्त रस युक्त, वृष्य (वीर्यवर्धक), उष्णवीर्य, बृंहण (रक्तादिधातुवर्धक), गुरुपाकी, रसायन एवम् अर्श (बवासीर) तथा वात का नाशक होता है ॥ १८१ ॥

मुसली दो प्रकार की होती है। काली एवं सफेद। काली मुसली का लेटिन नाम कर्क्युलिगो ओर्किओइडिस् (Curculigo orchioides) एवं सफेद मुसली का एस्पेरेगस् एडस्केन्डेन्स् (Asparagus adscendens) है। जो दो विभिन्न वर्गों की है। कुछ लोग क्लोरोफाइटम् एरून्डिनेसिअम् (Chlorophytum arundinaceum) को सफेद मुसली मानते हैं। यहाँ पर इनका अलग अलग वर्णन किया गया है।

९३ काली मूसली

हि०–स्याह मूसली, काली मूशली। **म०,गु०**–काली मूसली। **बं०**–तालमूली। **क०**–नेलताल। **ते०**–नेल तडि गड्डा। **ता०**–निलधनैका। **पं०**–स्याह मूसली। **मा०**–काली मूसली। **फा०**–मुशली स्याह। **अ०**–मुसली अबियज। **ले०**–*Curculigo orchioides Gaertn.*(कर्क्युलिगो ऑर्किओइडिस् गार्टे)। Fam. Amaryllidaceae (अॅमेरिलिडेसी)।

यह बंगाल, बिहार, युक्तप्रान्त, दक्षिण देश के बाँस के बनों में तथा हिमालय में यमुना से खासिया पहाड़ तक प्रायः सर्वत्र उत्पन्न होती है।

काली मूसली—तृणजातीय वनौषधि, वर्षा ऋतु में घास अथवा दूसरे वृक्षों की छाया में देखने में आती है। ४–५ पत्ते वाले खजूर के वृक्ष को तरह इसका नवीन क्षुप होता है। मूलस्तम्भ सीधा और मोटा होता है। पुरानी चक्राकार पत्र सन्धिओं के कारण यह ताल वृक्ष के स्कन्ध जैसा दिखलाई देता है। इसकी सन्धियों से सूत्राकार परन्तु मांसल उपमूल निकलते रहते हैं और शीर्ष से लगभग ३ या ४ पत्ते भूमि के ऊपर निकलते रहते हैं। इसके पत्ते–बिना डंठल के खजूर के पत्तों से कुछ पतले, सकरे और प्रासवत् होते हैं। इसकी लम्बाई ६ से १८ इञ्च तक और चौड़ाई १–१॥ इञ्च तक होती है। पुष्पदण्ड–छोटा, बीच से निकला हुआ, ऊपर की ओर क्रमशः मोटा (Clavate) और कुछ चिपटा होता है। इसके फूल–नलिकाकार पीले रङ्ग के दो कतारों में होते हैं। फल–½ इञ्च तक लम्बे, अण्डाकार होते हैं। बीज–काले और चमकीले होते हैं। इसके मूलस्तम्भ का चिकित्सा में व्यवहार होता है। यह बाहर से काले भूरे रङ्ग का तथा अन्दर से श्वेत होता है। दो वर्ष पुराने क्षुप का कन्द प्रयोग में लाना चाहिये। इसका स्वाद कुछ कड़ुवा तथा लबाबदार होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें तैलीय द्रव्य १¾%, राल तथा कषाय द्रव्य ४%, गोंद २०%, पिष्टमय पदार्थ ४३½%, सीठी १४% एवं जल ४½% रहता है। सूखे कन्द से ८½% राख मिलती है जिसमें कॅल्शियम ऑक्जॅलेट (Calcium oxalate) रहता है।

गुण और प्रयोग—काली मुसली स्नेहन, मूत्रजनन, बल्य तथा कुछ वृष्य है। मूत्रमार्ग पर इसकी विशेष क्रिया होती है। अर्श, कामला, श्वास, अतिसार तथा शूल में इसका उपयोग किया जाता है। त्रावणकोर की तरफ दूध के साथ इसकी पेया बनाकर सोजाक, मूत्रकृच्छ्र तथा अत्यार्तव में बहुत प्रयोग करते हैं। रोगयुक्तावस्था में इसका सेवन किया जाता है। अनेक वृष्य पाकों में इसका उपयोग किया गया है। जङ्गली लोग चोट तथा अस्थिभङ्ग पर इसका बाह्य प्रयोग करते हैं।

मात्रा—कन्द ¼–½ तो०।

९४ सफेद मूसली (१)

सं०–श्वेत मुशली, मुसली। **हि०**–सफेद मुशली, खैरूव। **म०**–सफेद मुसली, पाटली मुसली। **गु०**–धोली मुसली। **ता०**–तन्निरविट्टगं। **ते०**–सल्लोगड्डा। **मल०**–शेडेवेली। **अ, फा०**–शकाकुले हिन्दी। **ले०**–*Asparagus adscendens Roxb.* (एस्पेरेगस् एड्स्केन्डेन्स् राक्स.)। Fam. Liliaceae (लिलिएसी)।

यह पश्चिम हिमालय, पञ्जाब, गुजरात, रतलाम, बम्बई, रुहेलखण्ड, अवध तथा मध्य भारत में पाया जाता है। उत्तम सफेद मुसली रतलाम से आती है।

इसका क्षुप–स्वावलम्बी तथा कांटेदार होता है। **शाखाएँ**–झुकी हुई, आरोहणशील, धूसर-वर्ण की नालीदार और कोणयुक्त होती हैं। प्रधान कांड–लम्बा, ऊँचा, मोटा, गोल और चिकना होता है। **कांटे**–आधे से पौन इंच लम्बे, सीधे और मोटे होते हैं। पत्राभास काण्ड–आधे से दो इञ्च लम्बे, केशाकार, गोल ६–२० की संख्या में एक साथ गुच्छबद्ध रहते हैं।

मूलस्तम्भ से श्वेत, कन्दसदृश तथा लम्बगोल मूलों का गुच्छा निकला रहता है। छाल निकालकर सुखाई हुई सफेद, झुर्रीदार, २–२½ इञ्च लम्बी, सूजा के इतनी मोटी, कुछ ऐंठी हुई, कड़ी तथा आसानी से टूटने वाली, जड़ें बाजार में मिलती हैं। अधिक से अधिक यह ½ इञ्च मोटी रहती है। इसका स्वाद लबाबदार किन्तु अच्छा रहता है। इसे पानी में डालने से यह फूलकर शतावरी जैसी दिखलाई देती है।

रासायनिक सङ्गठन—इसके जल में घुलनशील भाग ७७½%, जल ६% तथा सीठी १२½% रहती है। जलविलेय भाग में मांसल पदार्थ रहता है। इसमें पिष्ट बिल्कुल नहीं रहता। सूखी हुई जड़ में ३½% राख रहती है।

गुण और प्रयोग—यह शीत, लघु, स्नेहन एवं उत्तम बल्य है।

इसमें स्टार्च न होने के कारण इसको मधुमेह में दिया जा सकता है। सभी प्रकार के दौर्बल्य में १ तोला चूर्ण १ तोला चीनी मिलाकर दूध के साथ देते हैं। नपुंसकता, शुक्रमेह, प्रदर, अतिसार तथा प्रवाहिका में इसे देते हैं।

मात्रा—चूर्ण ½ से १ तोला।

९५ सफेद मूसली (२)

हि०–सफेद मूसली, गेरॅंग अडा। **ले०**–*Chlorophytum arundinaceum Baker* (क्लोरोफाइटम् एरुण्डिनेसिअम् बेकर)। Fam. Liliaceae (लिलिएसी)।

यह इस देश के कई प्रान्तों में प्रायः बरसात के दिनों में देखने में आती है, इसका क्षुप होता है। पत्ते– १५″×२·५″ बड़े तथा प्रासवत् होते हैं। पुष्पध्वज पहले, ५–१५″ इञ्च लम्बा और पुष्प श्वेत होते हैं। पुष्पों की भाजी बनाकर खाई जाती है। इसकी जड़ के पास लम्बे सूत्राकार जड़ों के गुच्छे निकलते हैं। जिनके अग्र पर मोटे, बेलनाकार, १–१·५″×·५–·६ इञ्च बड़े कन्द होते हैं जो भीतर से भूरे सफेद रङ्ग के होते हैं। इसकी अन्य दो जातियाँ C. laxum Br. (क्लो. लॅक्सम्) एवं C. tuberosum Baker (क्लो. ट्युबरोजम्) भी पाई जाती हैं।

इन कन्दों को कुछ लोग सफेद मुसली मानते हैं तथा पहले जिस सफेद मुसली का वर्णन किया जा चुका है उसे शतावरी भेद मानते हैं। इसका भी उपयोग सफेद मुसली के समान किया जाता है।

अथ शतावरी महाशतावरी च । तयोर्नामानि तयोस्तदङ्कुरस्य च गुणांश्चाह

शतावरी बहुसुता भीरुरिन्दीवरी वरी । नारायणी शतपदी शतवीर्या च पीवरी ॥ १८४ ॥
महाशतावरी चान्या शतमूल्यूर्ध्वकण्टिका । सहस्रवीर्या हेतुश्च ऋष्यप्रोक्ता महोदरी ॥१८५॥
शतावरी गुरुः शीता तिक्ता स्वाद्वी रसायनी ।
मेधाऽग्निपुष्टिदा स्निग्धा नेत्र्या गुल्मातिसारजित् ॥ १८६ ॥
शुक्रस्तन्यकरी बल्या वातपित्तास्रशोथजित् ।
महाशतावरी मेध्या हृद्या वृष्या रसायनी ॥ १८७ ॥
शीतवीर्या निहन्त्यर्शोग्रहणीनयनामयान् । तदङ्कुरस्त्रिदोषघ्नो लघुरर्शःक्षयापहः ॥ १८८ ॥

'छोटी शतावर' तथा 'बड़ी शतावर' के नाम और गुण तथा उन दोनों के अङ्कुर के क्रम से गुण—शतावरी, बहुसुता, भीरुः, इन्दीवरी, वरी, नारायणी, शतपदी, शतवीर्या और पीवरी ये सब नाम 'छोटी शतावर' के हैं। 'बड़ी शतावर' के नाम–महाशतावरी, शतमूली, ऊर्ध्वकण्टिका, सहस्रवीर्या, हेतुः, ऋष्यप्रोक्ता और महोदरी ये सब हैं। छोटी शतावर–मधुर तथा तिक्त रसयुक्त, गुरु, शीतवीर्य, रसायन, मेधा (धारणा शक्ति) कारक, जठराग्निवर्धक, पुष्टिदायक, स्निग्ध, नेत्रों के लिये हितकर, शुक्रवर्धक, स्तनों में दूध बढ़ाने वाली, बलकारक एवम् गुल्म, अतिसार, वात, पित्तरक्त तथा शोथ को दूर करने वाली होती है। बड़ी शतावर–मेधा तथा हृदय के लिये, हितकर, वृष्य, रसायन, शीतवीर्य, एवम् अर्श, ग्रहणी तथा नेत्ररोग को दूर करने वाली होती है। इन दोनों के अङ्कुर–लघु एवम् त्रिदोष, अर्श तथा क्षय के नाशक होते हैं ॥ १८४–१८८ ॥

९६ शतावर

हि०–सतावर, सतावरि, सतमूली, शतावर, सरनोई। **बं०**–शतमूली। **म०**–शतावरी। **गु०**–शतावरी। **ता०**–पाणियनाकु। **ले०**–*Asparagus racemosus Willd.* (एसरपेरेगस् रेसिमोसस् विल्ड.)। Fam. Liliaceae (लिलिएसी)।

शतावर—इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में उत्पन्न होती है। उत्तरी भारत में यह अधिक होती है। इसका क्षुप–कांटेदार, बहुवर्षायु, आरोहणशील तथा लता की तरह अनेक शाखाओं से युक्त फैला हुआ रहता है। शाखायें–त्रिकोण युक्त, चिकनी किन्तु रेखान्वित होती हैं। इसमें वास्तविक पत्र के स्थान पर कांटे होते हैं। कांटे–कुछ कुछ टेढ़े तथा $\frac{1}{4}$–$\frac{1}{2}$ इञ्च लम्बे होते हैं। पत्राभासकाण्ड–पत्र की तरह दिखलाई देने वाले, कांटों के कोणों में सूत्राकार पतले $\frac{1}{2}$–१ इञ्च लम्बे तथा दृढ़ पत्राभास काण्ड के गुच्छे होते हैं। फूल–छोटे, सफेद रङ्ग के तथा सुगन्धित गुच्छों में आते हैं। फल–छोटे छोटे, गोल तथा पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं, जिनमें १-२ बीज रहते हैं। मूलस्तम्भ से कन्दसदृश श्वेत लम्बगोल परन्तु दोनों सिरों पर पतले मूलों के गुच्छे निकले रहते हैं जिनका चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

जाति—इसकी एक बड़ी जाति होती है जिसे सं–महाशतावरी एवं ले०–*A. sarmentosus Linn.* (ए. सार्मेन्टोसस् लिन.) कहते हैं। यह दक्षिण में होती है। इसकी लता बड़ी होती है तथा इसके मूलस्तम्भ से बहुत से कन्द निकले रहते हैं जो स्वादहीन होते हैं। इसकी एक कण्टकहीन जाति 'शरजोई', कौन्टा, ले०–A. filicinus Buch. & Ham. (ए० फिलिसिनस् बु. हैम.) जौनसार में ९ हजार फीट की ऊँचाई तक पाई जाती है। यह स्वावलम्बी होती है।

इसमें कांटे नहीं होते एवं पत्राभासकाण्ड चिपटे होते हैं। सफेद मुसली (१), शतावरी जाति की है।

रासायनिक संगठन—दोनों शतावरी के ताजे कन्दों में जल में घुलने वाला पदार्थ ५२ $\frac{1}{2}$%, सीठी ३३$\frac{1}{2}$% तथा जल ९% रहता है। जल में घुलनशील भाग में ७% शर्करा होती है। शुष्ककन्द की राख ४% निकलती है।

गुण और प्रयोग—शतावरी मधुर, शीत, गुरु, स्नेहन, स्तन्यजनन, मूत्रजनन, शुक्रजनन बल्य, वृष्य, वयःस्थापन, चक्षुष्य, अग्निवर्धक, अल्पसग्राहक एवं त्रिदोषघ्न है।

इसका उपयोग अन्य औषधों के साथ नपुंसकता, शुक्रमेह, शुक्रतारल्य, नेत्ररोग, अतिसार, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त तथा अपस्मार में किया जाता है। बलवृद्धि के लिये दुग्ध एवं शर्करा के साथ इसकी पेया बनाकर देते हैं। इसके अङ्कुरों की तरकारी कुपचन में देते हैं। इससे सिद्ध तैलों का बाह्य प्रयोग शिरोरोग, चर्मरोग, वातव्याधि तथा दौर्बल्य में करते हैं।

मात्रा—२ तोला दुग्ध के साथ।

अथाश्वगन्धा । तस्या नामगुणानाह

गन्धान्ता वाजिनामादिरश्वगन्धा हयाह्वया । वराहकर्णी वरदा बलदा कुष्ठगन्धिनी ॥१८९॥
अश्वगन्धाऽनिलश्लेष्मश्वित्रशोथक्षयापहा । बल्या रसायनी तिक्ता कषायोष्णाऽतिशुक्रला ॥

'असगन्ध' के नाम और गुण—अश्वगन्धा, हयाह्वया (हय के पर्यायवाचक समस्त शब्द इसके द्योतक हैं), वराहकर्णी, वरदा, बलदा, कुष्ठगन्धिनी और वाजी (घोड़ा) के जितने पर्यायवाचक शब्द हैं वे आदि में लगाकर अन्त में 'गन्ध' शब्द लगाने से जितने शब्द हों, उन सबों को इसका पर्यायवाची शब्द समझना चाहिये, जैसे – वाजिगन्धा, हयगन्धा इत्यादि।

असगन्ध—तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, उष्णवीर्य, बलकारक अत्यन्त शुक्रवर्धक, रसायन एवं वात, कफ, श्वित्र (श्वेत कुष्ठ), शोथ और क्षय को दूर करने वाला होता है ॥ १८९–१९० ॥

९७ असगन्ध

हि०–असगन्ध, अश्वगन्धा, नागोरी असगन्ध। **बं०**–अश्वगन्धा, आसकन्द, ढोरगुंज। **गु०**–आसन्ध। **संथा०**–घोड़ा इन, घोड़ाआकुन। **क०**–अंगरबेरु। **ते०**–पैन्नेरुगड्डु, पिल्ली आंड्रा, अश्वगन्धी। **ता०**–चुवदिगं। **फा०**–बेहमनबरीं। **अं०**–Winter cherry (विंटरचेरी)। **ले०**–*Withania somnifera Dunal* (विथेनिआ सॉम्नीफेरा)। Fam. Solanaceae (सोलेनेसी)।

असगन्ध इस देश के अनेक भागों के कुछ गरम और साधारण प्रान्तों में विशेषकर पश्चिम के शुष्क प्रदेशों में अधिक होती है। भारत के अतिरिक्त यह लङ्का, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, सिंध, भूमध्यसागरीय प्रदेश, उत्तमाशाअन्तरीप, आदि देशों में पाई जाती है। मालवा में इसकी खेती की जाती है। इसका क्षुप–भंटा के क्षुप के समान सघन होता है। इसकी ऊँचाई—३-४ फीट की होती है। शाखायें—टेढ़ी मेढ़ी तारकाकार रोमों से युक्त होती हैं। पत्ते–अखंड, लटवाकार, लगभग कुण्ठिताग्र, सरलधार से युक्त, २-४ इञ्च लम्बे १-२ इञ्च चौड़े, सूक्ष्म तारकाकार रोमों से युक्त, फलकमूल क्रमशः संकुचित एवं $\frac{1}{4}$–$\frac{1}{2}$ इञ्च तक लम्बे पर्णवृन्त से युक्त होते हैं। पुष्प–प्रायः ५ एक साथ सचूडाकार गुच्छों में, छोटे, हरिताभ या पीताभ पत्रकोणों में निकलते हैं। फल–पत्रदण्ड के पास $\frac{1}{4}$ इञ्च बड़े फल लगते हैं और वे प्रवृद्ध बाह्य कोश के पतले छिलके के परदे में रहते हैं। उनका आकार मटर के समान होता है और पकने पर वे

लाल हो जाते हैं। फलों से दूध जम जाता है। बीज–वनभण्टा के बीज के समान छोटे छोटे चिपटे बीज होते हैं। इसका क्षुप ३–४ वर्ष के बाद नष्ट हो जाता है।

इसकी जड़ १–१½ फीट लम्बी, १–१½ इञ्च मोटी, मूली की तरह शंकाकार, मजबूत, चिकनी, बाहर से हलके भूरे रङ्ग की तथा अन्दर से श्वेत होती है। मूल का मन छोटा तथा स्टार्च युक्त होता है। ताजी जड़ में अश्व के मूत्र सदृश गन्ध आती है जिससे इसे अश्वगन्धा कहा जाता है। इसका स्वाद कड़वा तथा तीक्ष्ण होता है।

नोट—असगन्ध दो प्रकार की होती है। एक जिसका ऊपर वर्णन किया गया है तथा दूसरी नागौरी असगन्ध के नाम से बाजार में बिकने वाली। इन दोनों की जड़ें भिन्न दिखलाई देने के कारण ऐसा अनुमान था कि नागौरी असगन्ध यह उपर्युक्त असगंध का कोई कृषिजन्य परिवर्तित रूप हो। किन्तु नई खोज से यह सिद्ध किया गया है कि नागौरी असगंध की स्वतन्त्र जाति (Species) ही होती है जिसका नया नामकरण विथेनिया अश्वगंधा (Withania ashwagandha) किया गया है।

वाजीकर, बल्य तथा बृंहण गुण के लिये खाने के काम में बाजारी असगन्ध (नागौरी) लेना चाहिये तथा वातघ्न गुण के लिये अपस्मारादि व्याधियों में, लेपादि बाह्य प्रयोगों में तथा तैलादि में उपर्युक्त असगन्ध के मूल लेने चाहिये। इसका दुग्ध में स्वेदन करके शोधन कर लेना चाहिये। असगन्ध के पञ्चांग तथा विशेषकर जड़ का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसकी जड़ में उड़नशील तैल, रवेदार विथेनियॉल (Withaniol $C_{25}H_{35}O_5$) नामक पदार्थ, हेन्ट्रियाकॉन्टेन् (Hentriacontane), फाइटोस्टेरॉल तथा तैल ये पदार्थ होते हैं। इनके अतिरिक्त इसमें ३ विभिन्न क्षाराभ (Alkaloid) होते हैं जिनमें से सॉम्निफेरिन् (Somniferin $C_{12}H_{16}N_2$) रवेदार होता है।

गुण और प्रयोग—**नागौरी (बाजारी) असगन्ध** उष्ण, मधुर, बृंहणीय, बल्य, रसायन, वृष्य एवं शोथहर है। क्षय, बालशोष, सुखण्डी, वार्धक्य आदि में इसके ½–१ तो० चूर्ण को थोड़े घृत में गरम कर दूध एवं शर्करा मिलाकर देते हैं। यह उत्तम पौष्टिक है। बच्चों के लिये यह बहुत ही अच्छा है। इससे बच्चों का सूखना बन्द हो जाता है। स्त्रियों के कटिशूल एवं श्वेत प्रदर में इससे लाभ होता है।

जङ्गली असगन्ध—अवसादक, स्वापजनक एवं मूत्रजनक है। इसका अवसादक प्रभाव वातनाडियों पर होता है न कि हृदयपर। अल्प मात्रा में धतूरे जैसा मद इससे उत्पन्न होता है तथा कामोत्तेजना होती है।

बद, ग्रन्थि, शोथ तथा फोड़े आदि पर इसके लेप से लाभ होता है। तिलाओं में इसका उपयोग किया जाता है इससे सिद्ध तैल दौर्बल्य तथा वातव्याधि में मालिश के उपयोग में आता है।

इसके बीज स्वापजनन एवं मूत्रजनन हैं। अधिक मात्रा में विषैले होते हैं। आमवात में इसके ताजे पत्ते बाँधते हैं।

मात्रा—नागौरी असगन्ध चूर्ण ३–६ माशा।

अथ पाठा (पाढी)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

पाठाऽम्बष्ठाऽम्बष्ठकी च प्राचीना पापचेलिका। एकाष्ठीला रसा प्रोक्ता पाठिका वरतिक्तिका॥
पाठोष्णा कटुका तीक्ष्णा वातश्लेष्महरी लघुः।
हन्ति शूलज्वरच्छर्दिकुष्ठातीसारहृद्रुजः। दाहकण्डूविषश्वासकृमिगुल्मगरव्रणान्॥ १९२॥

'पाढ' के नाम तथा गुण—पाठा, अम्बष्ठा, अम्बष्ठकी, प्राचीना, पापचेलिका, एकाष्ठीला, रसा, पाठिका और वरतिक्तिका ये सब नाम 'पाढ' के हैं। पाढ—उष्णवीर्य, कटुरसयुक्त, तीक्ष्ण, लघु, वात–कफनाशक एवं शूल, ज्वर, वमन, कुष्ठ, अतीसार, हृद्रोग, दाह, कण्डू (खुजली), विष, श्वास, क्रिमि, गुल्म, उदररोग और व्रण को दूर करने वाली होती है॥ १९१–१९२॥

प्राचीनों ने पाठा के दो भेद माने हैं। एक लघु पाठा तथा दूसरी राजपाठा (बड़ी पाठा) इनमें से लघु पाठा यह सिसॅम्पेलॉस् पॅरेरा (Cissampelos pareira) है। राजपाठा या पाठा ही के स्थान पर इसी वर्ग की अन्य वनस्पतियों का भी उपयोग विभिन्न स्थानों में किया जाता है। साइक्लिआ पेल्टेटा (Cyclea peltata) एवं साइक्लिआ बर्मेनी (Cyclea burmanni)– यह केवल आसाम एवं खासिया पर्वत से पूर्व को तरफ तथा दक्षिण में पश्चिमी, पूर्वी घाट एवं कोंकण में पाई जाती है तथा दक्षिण में इन्हीं का अधिक प्रयोग छोटी एवं बड़ी पाठा के नाम से किया जाता है यद्यपि सि० पॅरेरा भी वहाँ पाई जाती है। उत्तरी भारत में यह (साइक्लिआ) नहीं पाई जाती, किन्तु स्टिफॅनिआ हर्नेण्डिफोलिआ (Stephania hernandifolia) नामक बड़ी जाति पाई जाती है, जिसे राजपाठा कह सकते हैं। बंगाल की तरफ आकनादि नाम से इसका अधिक उपयोग किया जाता है। गुजरात तथा काठियावाड में इसी वर्ग की पातालगरुडी का उपयोग पाठा के स्थान पर करते हैं जो उचित नहीं है। एक ही वर्ग की तथा स्वरूप-गुणादि में साम्य होने के कारण पाठा नाम से इनका उपयोग भिन्न भिन्न स्थानों में किया जाता है।

९८ पाठा

सं०-लघुपाठा, पीलुफला, अविद्धकर्णी। **हि०**–पाठा, पाठ, पाढ, पाठी, पाढी, पुरइन पाढी। **बं०**–आकनादि, निमुक, एकलेजा। **म०**–पहाड़ वेल। **गु०**–वेणीवेल, करेढियुं। **क०**–पडवलि। **ता०**–अप्पाट्टा, पोंमुतूतै। **गोवा०**–पारवेल। **ते०**–पाटा, विरुबोड्डि। **ले०**–*Cissampelos pareira Linn.* (सिसॅम्पेलॉस् पॅरेरा लिन.)। **अं०**–Velvet leaf (वेल्वेट लीफ)। Fam. Menispermaceae (मेनिस्पर्मेसी)।

यह इस देश के सभी उष्ण एवं साधारण भागों में सिंध, पंजाब, शिमला, देहरादून तथा दक्षिण में कोंकण से लंका तक पाई जाती है। एशिया, पूर्व अफ्रिका तथा अमेरिका के उष्ण प्रदेशों में भी होती है।

यह लता–खुली हुई पथरीली जगहों में प्रायः छोटे वृक्षों और झाडियों पर फैली हुई पाई जाती है। **शाखाएँ**–पतली, सीधी एवं कचित् लोमयुक्त होती हैं। **पत्र**–लट्वाकार या कभी-कभी वृत्ताकार–वृक्काकार हृदयाकृति, एकांतर, १–४ इञ्च बड़े, नोकरहित एवं कचित् नुकीले रहते हैं। पर्णनाल प्रायः पृष्ठ भाग से जुड़ा हुवा तथा पृष्ठ के बराबर या अधिक लंबा होता है। **पुष्प**–एकलिंग, छोटे, श्वेताभ, किंचित् पीत वर्ण के वर्षा काल में आते हैं। नरमंजरी लंबी, अनेक पुष्पों से युक्त, मृदुरोमश तथा पत्रकोणों से निकली रहती है। **फल**–रक्त या नारंग वर्ण के, कुछ गोलाकार, ४ मि. मि. बड़े एवं रोमावृत रहते हैं। **बीज**–मुड़े हुवे होते हैं।

इसके मूल का उपयोग चिकित्सा में किया जाता है। इसकी सूखी हुई जड़ के लंबे गोल, अण्डाकार या दबे हुये टुकड़े, कभी-कभी लंबाई में टूटे हुये मिलते हैं। ये व्यास में ½ से ४ इञ्च तक मोटे एवं ४ इञ्च से लेकर ४ फीट तक लंबे होते हैं। बाहर से ये भूरे बादामी रंग के तथा लंबाई में झुर्रीदार होते हैं। इन झुर्रियों पर अनुप्रस्थ चक्राकार कुछ उभार रहते हैं। अन्दर से ये काष्ठमय, पीताभ भूरे रंग के एवं सुषिर होते हैं तथा इनमें स्पष्ट किन्तु प्रायः अपूर्ण चक्राकार

रेखाएँ तथा मज्जक किरणें (Medullary rays) दिखलाई देती हैं। इसका स्वाद प्रारम्भ में कुछ मधुर एवं सुगन्धित तथा बाद में अत्यन्त कड़ुवा होता है।

रासायनिक संगठन—इसकी जड़ में ०·७२% क्षाराभ पाये जाते हैं जिसमें बेबीराइन (Bebeerine) भी रहता है। अल्प मात्रा में एक रवेदार डेयामेट्टीन (Deyamettin) नामक पदार्थ एवं एक राल पाई जाती है।

गुण एवं प्रयोग—पाठामूल, उष्ण, तिक्त, ग्राही, स्तन्यशोधक, ज्वरहर, बल्य, बस्तिशोधक एवं मूत्रजनक है। अल्प मात्रा में इससे भूख बढ़ती है, अन्न का पाचन होता है तथा आंत्र की श्लेष्मलकला को बल मिलता है। अधिक मात्रा से पाखाना साफ होता है। संपूर्ण क्षाराभ का अनैच्छिक मांसपेशी पर अवसादक प्रभाव पड़ता है।

इसका उपयोग कुपचन, अतिसार, ज्वर, मूत्रविकार, शोफ, कास, आर्तव-विकार एवं अर्श में किया जाता है। पॅरेरारूट (Pareira root) जो कि कोण्ड्रोडेण्ड्रोन टोमेण्टोजम् (Chondrodendron tomentosum Ruiz & Pav.) की जड़ है उसके स्थान पर इसका उपयोग किया जाता है। मूत्रमार्ग की श्लेष्मल त्वचा पर इसका शामक संग्राही एवं बलदायक प्रभाव पड़ता है। यह वस्ति के लिये उत्तम प्रतिदूषक (Antiseptic) है।

(१) मूत्रसंस्थान के विकारों में इसकी जड़ का फांट दिया जाता है। वस्तिशोथ, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, सान्द्रमेह, रक्तमूत्र तथा अन्य विकारों में इससे अच्छा लाभ होता है। इन विकारों में इसे अधिक मात्रा में देते हैं। इसके साथ मुलेठी तथा गुडूची का प्रयोग अधिक उपयोगी है।

(२) कुपचन, उदरशूल, अतिसार, रक्तातिसार एवं ज्वरातीसार आदि विकारों में इसको अन्य सुगन्धि द्रव्यों के साथ देते हैं।

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा।

प्रतिनिधि—

(१) ले०–*Stephania hernandifolia* (*Willd.*) *Walp.* (स्टिफॅनिआ हर्नेण्डिफोलिआ, वाल्प)। सं०–राजपाठा। बं०–आकनादि, नेमुक।

यह भी देखने में पाठा के समान लता होती है किन्तु दोनों की पुष्पमंजरिओं में अन्तर होता है। पाठा में बाह्यकोश के दल ४ (पुं-पुष्प) और २ (स्त्री-पुष्प) एवं आभ्यंतर दल ४ संयुक्त (पुं-पुष्प) और १ (स्त्री-पुष्प) होते हैं। इसमें बाह्य कोश के दल ६-१० एवं आभ्यंतर दल ३-५ होते हैं। इसमें पाठा की अपेक्षा पत्ते बड़े (३–५"×२½–४") और शिराजाल कम सघन होता है। इसके फल बड़े एवं बीज मुड़कर करीब करीब गोल हो जाते हैं।

इसमें कुछ सॅपोनिन् (Saponin) होते हैं। इसकी जड़ का भी उपयोग पाठा की तरह अतिसार, कुपचन तथा मूत्रविकारों में किया जाता है। इसका सत्त्व मेंढक के लिये अत्यन्त विषैला होता है।

(२) ले०–*Cyclea peltata H. f. & T.* (साइक्लिआ पेल्टेटा)। सं०–राजपाठा भेद। म०–पाडल, पाडावल। गु०–कालीपाट।

यह लता आसाम तथा खासिया से पूर्व की तरफ एवं दक्षिण में कोंकण, माथेरान, महाबलेश्वर तथा सिलोन तक पाई जाती है।

इसकी शाखाएँ-धारीदार एवं अल्प रोमश होती हैं। पत्ते-पतले, रोमश, ३–६"×२–४" बड़े एवं १–२¾" लंबे पर्णवृन्त से युक्त रहते हैं। पर्णवृन्त पाठा की तरह ही फलक से पृष्ठ की ओर

जुड़ा रहता है। पुष्प–बहुत छोटे, हरे रंग के एवं फल वृक्काकार तथा रोमश रहते हैं। इसी का एक और भेद सा. बर्मेनी (C. burmanni Miers.) भी पाया जाता है।

लघु पाठा (सि. पॅरेरा) में बाह्य कोश के दल आपस में मिले नहीं रहते किन्तु इसमें ये मिले हुवे तथा संख्या में ४–८ होते हैं।

दक्षिण में पाठा नाम से इसका बहुत उपयोग किया जाता है। इसके पंचांग का उपयोग होता है।

गुण और प्रयोग—यह कड़वी, वातहर, स्वेदजनक एवं मूत्रजनक है। छोटे बच्चों के उदर शूल, आँव, अतिसार एवं अर्श में इसकी जड़ पीस कर देते हैं। इसके साथ अतीस एवं करंज देते हैं। पैत्तिक कुपचन में इसका स्वरस सोंठ के साथ देते हैं। प्रमेह में मट्ठे के साथ जड़ देते हैं।

मात्रा—मूल चूर्ण ½ से १ माशा।

अथ श्वेता त्रिवृत् (निसोत श्वेत)। तस्या नामगुणानाह

श्वेता त्रिवृत् त्रिभण्डी स्यात् त्रिवृता त्रिपुटाऽपि च। सर्वानुभूतिः सरला निशोत्रा रेचनीति च॥
श्वेता त्रिवृद्रेचनी स्यात्स्वादुरुष्णा समीरहृत्। रूक्षा पित्तज्वरश्लेष्मपित्तशोथोदरापहा॥१९४॥

सफेद निसोत के नाम तथा गुण—श्वेता त्रिवृत, त्रिभण्डी, त्रिवृता, त्रिपुटा, सर्वानुभूति, सरला, निशोत्रा और रेचनी ये सब नाम सफेद निसोत के हैं।

सफेद निसोत—रेचक, स्वादु, उष्णवीर्य, रूक्ष, वातनाशक एवं पित्तज्वर, कफ, पित्त, शोथ और उदररोग को दूर करने वाली होती हैं॥ १९३–१९४॥

९९ निसोत

हिं०–निसोत, निशोथ, पितोहरी। **बं०**–तेउड़ी, तिउरी, दूधकलमी। **म०**–निशोत्तर, तेंड, फुटकरी, शेतवड। **क०**–तिगडे। **ते०**–तेल्ल, तेगड़। **ता०**–शिवदै, चिवदै। **गु०**–नसोतर। **अ०**–तुर्बुद। **अं०**–Turpeth root (टरपेथ रूट); Indian Jalap (इण्डियन जालप)। **ले०**–*Operculina turpethum, Silva Manso* (ऑपेर्क्युलिना टर्पेथम्, सिल्वा मॅन्सो); Syn. *Ipomoea turpethum R. Br.* (आइपोमिआ टरपेथम्)। Fam. Convolvulaceae (कॉन्वॉल्व्युलेसी)।

निशोत इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में ३००० फीट की ऊँचाई तक पाई जाती है। बगीचों में लगाई हुई भी मिलती है। लंका, मलाया द्वीप एवं ऑस्ट्रेलिया में भी यह अधिक होती है।

यह लता जाति की वनौषधि बारहो मास पाई जाती है परन्तु वर्षा ऋतु में विस्तार से फैली अधिक देखने में आती है। इसका काण्ड तीन धार वाला होता है इसलिये इसको त्रिवृता कहते हैं। यह बहुत लंबा, आरोही तथा ऐंठा हुआ रहता है। पुराना होने पर यह कुछ कड़ा, भूरे रङ्ग का तथा मृदु रोमश हो जाता है। स्राव कुछ कुछ दुग्धसदृश होता है। पत्ते—नीचे के पत्ते चौड़ाई लिये हुए लट्वाकार, हृद्वत, प्रायः २–४ इञ्च लम्बे, ½ से ३ इञ्च तक चौड़े, लम्बाग्र तथा तीक्ष्णाग्र होते हैं। ऊपर के पत्ते प्रायः आयताकार, कुण्ठित रोमश अग्रयुक्त एवं सवृन्त (वृन्त ·७५–३ इञ्च लम्बे) होते हैं। पुष्प—घंटिकाकार सफेद तथा २–३ इञ्च लम्बे होते हैं। परागाशय (Anthers) जल्दी ही आपस में ऐंठ जाते हैं। फल—½–¾ इंच बड़े तथा गोल होते हैं। फलत्वक् का बाहरी भाग जब फट जाता है तो भीतरी पारदर्श परदा रह जाता है जिसके अन्दर दो गह्वर और ४–१ काले एवं चिकने बीज होते हैं।

इसकी जड़ लम्बी, पतली, मांसल एवं बहुत शाखायुक्त होती है। बाहर से भूरे या अरुणाभ धूसर रङ्ग के ½–२ इञ्च तक मोटे तथा एक तरफ फटे हुए टुकड़े मिलते हैं। इस पर बाहर से गहरी धारियाँ होती हैं जिससे यह देखने में रस्सी की तरह दिखलाई देती है। इसका भग्न छाल में छोटा एवं काष्ठ में रेशेदार होता है। इसमें साधारण गन्ध एवं स्वाद में यह अरुचिकर होती है।

आयुर्वेद में दो प्रकार की त्रिवृत् का वर्णन किया गया है। एक अरुण (श्वेताभ) या दूसरी श्याम (काली) रङ्ग की। काली निशोथ अधिक तीव्र होने के कारण मूर्च्छा, दाह, भ्रम आदि उपद्रव करती है। अधिक दोष होने पर तथा क्रूरकोष्ठवालों के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है। अच्छी भूमि में उत्पन्न, गम्भीर, श्लक्ष्ण तथा सरल मूल को लेकर उसके भीतर का काष्ठ भाग निकाल दें और बाहरी त्वचा को सुखाकर रख लें (च० उ० अ० ७)। बाजार में इसमें काण्डके टुकड़े भी मिले रहते हैं जिनमें विरेचक गुण कम रहता है। वास्तव में निसोत की एक ही लता पाई जाती है। बाजार में श्वेत और कृष्ण ये भेद बिकते हैं और यह चिन्हार नामक लता (जिसके मूर्वा होने की अधिक संभावना है) के काण्ड हैं। वास्तविक निसोत कहीं कहीं विधारा नाम से भी बेची जाती है।

रासायनिक संगठन—इसकी जड़ में ५–१०% एक राल पाई जाती है जिसका कुछ भाग ईथर में घुलनशील रहता है जो अॅल्फा-टर्पेथीन् (A–turpethin) एवं बीटा-टर्पेथिन (B-turpethin) का मिश्रण होता है। ईथर में अविलेय राल को टर्पेथिन् (Turpethin) कहते हैं। राल के अतिरिक्त कुछ उड़नशील तैल, वसायुक्त द्रव्य, अल्ब्यूमिन, स्टार्च, पीत रञ्जक पदार्थ, लिगनिन् एवं लौहऑक्साइड पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—निशोथ विरेचक, भेदनीय एवं अधोभागहर है। यह सुखविरेचनों में श्रेष्ठ मानी गई है। पाश्चात्य चिकित्सा में प्रयुक्त जालप (Jalap) की तरह ही इसके भी गुण हैं। इससे पतले एवं पीले रङ्ग के दस्त होते हैं। पेट में मरोड़ न हो इसलिये इसके साथ सोंठ जैसे सुगन्धि पदार्थ तथा सैंधव का उपयोग किया जाता है। जालप की अपेक्षा यह अल्प एवं विलम्ब से कार्य करती है इसलिये इसकी अपेक्षा अधिक मात्रा में देना पड़ता है किन्तु इससे किसी प्रकार का दुष्परिणाम नहीं होता। इसका स्वाद एवं गन्ध भी हृल्लासकारक नहीं होती।

ज्वर, रक्तपित्त, अर्श, विसर्प, वातशोफ, कामला एवं राजयक्ष्मा आदि में इसका प्रयोग किया जाता है। वातरोग, विशेषतः आध्मानयुक्त या खिन्नवृत्ति रहने पर यह उपयोगी है। अर्श, उदर एवं गुल्म में इसकी शाक का उपयोग करते हैं।

मात्रा—३–५ माशा।

अथ श्यामा त्रिवृत् (काली निसोत)। तस्या नामानि गुणांश्चाह

त्रिवृच्छ्यामाऽर्द्धचन्द्रा च पालिन्दी च सुषेणिका।
मसूरविदला काली कैषिका कालमेषिका॥
श्यामा त्रिवृत्ततो हीनगुणा तीव्रविरेचिनी।
मूर्च्छादाहमदभ्रान्तिकण्ठोत्कर्षणकारिणी॥ १९६॥

'काली निसोत' के नाम तथा गुण—श्यामा, त्रिवृत्, अर्धचन्द्रा, पालिन्दी, सुषेणिका, मसूरविदला, काली, कैषिका और कालमेषिका ये सब 'काली निसोत' के नाम हैं। काली निसोत सफेद निसोत की अपेक्षा हीन गुणवाली तथा तीव्र रेचक होती है एवं मूर्च्छा, दाह, मद और भ्रान्ति को उत्पन्न करने वाली एवं कण्ठ का उत्कर्षण करने वाली होती है (पृष्ठ ३९८ भी देखें)॥ १९५–१९६॥

अथ लघुदन्ती बृहद्दन्ती च (एरण्डवत्पत्रविटपा) तयोर्नामानि गुणांश्चाह

लघुदन्ती विशल्या च स्यादुदुम्बरपर्ण्यपि। तथैरण्डफला शीघ्रा श्येनघण्टा घुणप्रिया॥१९७॥
वाराहाङ्गी च कथिता निकुम्भश्च मकूलकः।
द्रवन्ती शम्बरी चित्रा प्रत्यक्पर्ण्याखुपर्ण्यपि॥ १९८॥
उपचित्रा श्रुतश्रोणी न्यग्रोधी च तथा वृषा।
दन्तीद्वयं सरं पाके रसे च कटु दीपनम्॥ १९९॥
गुदाङ्कुराश्मशूलास्रकण्डूकुष्ठविदाहनुत्। तीक्ष्णोष्णं हन्ति पित्तास्रकफशोथोदरक्रिमीन्॥

छोटी दन्ती तथा बड़ी दन्ती के नाम और गुण—लघुदन्ती, विशल्या, उदुम्बरपर्णी, एरण्डफला, शीघ्रा, श्येनघण्टा, घुणप्रिया, वाराहाङ्गी, निकुम्भ और मकूलक ये सब नाम छोटी दन्ती के हैं। द्रवन्ती, शम्बरी, चित्रा, प्रत्यक्पर्णी, आखुपर्णी, उपचित्रा, श्रुतश्रोणी, न्यग्रोधी और वृषा ये सब नाम बड़ी दन्ती के हैं। इसके पत्ते और शाखायें एरण्ड (रेंड़) की तरह होती हैं। दोनों प्रकार की दन्ती—स्वाद तथा विपाक में कटुरस युक्त, सारक, अग्निदीपक, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य एवं अर्श के मस्से, पथरी, शूल, रक्तविकार, कण्डू (खुजली), कुष्ठ, दाह, पित्तरक्त, कफ, शोथ, उदररोग और क्रिमि को नष्ट करने वाली होती है॥ १९७–२००॥

नोट—भावप्रकाशकार दन्ती के दो भेद लघुदन्ती एवं द्रवन्ती (बृहद्दन्ती) लिखते हैं। इनमें लघुदन्ती यह प्रसिद्ध है जिसे ले० में बॅलिओस्पर्मम् मॉन्टेनम् कहते हैं। द्रवन्ती के सम्बन्ध में मतभेद है। कुछ लोगों ने व्याघ्रैरण्ड (जेट्रोफा कर्कस्) को द्रवन्ती माना है। किन्तु इसकी जड़ में रेचक गुण न होने के कारण श्री यादवजी इसको स्वीकार नहीं करते। भावप्रकाशकार आगे 'क्षुद्रदन्तीफलं तु स्यान्मधुरं रसपाकयोः' एवं उसके आगे 'जयपालो दन्तिबीजं विख्यातं........' लिखते हैं। लघुदन्ती के बीज जयपाल नहीं हैं यह निश्चित है किन्तु इसका स्वतन्त्र वृक्ष होता है जिसे ले० में क्रोटन् टिग्लिअम् कहते हैं। इसलिये 'जयपालो दन्तीबीजं विख्यातम्' में दन्ती का अर्थ बृहद्दन्ती (द्रवन्ती) किया जाय तो उपर्युक्त श्लोक का अर्थ ठीक हो जाता है। यदि भावप्रकाशकार को यहाँ दन्ती से लघुदन्ती का तात्पर्य होता तो वह स्पष्ट लिखते क्योंकि पहले वह 'क्षुद्रदन्तीफलं तु स्यान्मधुरं.........' ऐसा क्षुद्रदन्तीफल के लिये स्पष्ट लिख चुके हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यदि द्रवन्ती (बृहद्दन्ती) यह जयपाल वृक्ष को मान लिया जाय तो सब सन्देह दूर हो जाता है। श्री यादवजी का भी मत जयपाल वृक्ष को द्रवन्ती मानने की तरफ है। कुछ लोगों ने क्रोटन पॉलिएण्ड्रम् (Croton polyandrum) को द्रवन्ती माना है किन्तु वास्तव में यह केवल दन्ती (बॅलिओस्पर्मम् मोन्टेनम्) का पर्याय है न कि कोई अलग भेद। चरक में दन्ती का एक तीसरा भेद नागदन्ती आया है। इसे श्री डॉ० वा० ग० देसाई एवं श्री ठा० बलवन्त सिंह जी ने क्रोटन् ऑब्लॉंगिफोलिआ माना है जो सर्वसम्मत है। यहाँ पर, द्रवन्ती (जयपाल वृक्ष) एवं नागदन्ती का अलग-अलग वर्णन किया गया है। जेट्रोफाकर्कस् (व्याघ्रैरण्ड) का वर्णन पहले पृष्ठ ३०२ पर किया जा चुका है।

१०० दन्ती

हि०–दन्ती, छोटीदन्ती, ताम्बा। **म०**–दान्ती, लघुदन्ती, दांतरा। **बं०**–दन्ती, हाकुन। **ते०**–कोंदाआमादम्। **ता०**–नागदन्ती। **गु०**–दन्ती। **फा०**–दन्द, वेदञ्जीर खताई। **अ०**–हब्बुस्सला। **ले०**–*Boliospermum montanum Muell-Arg.* (बॅलिओस्पर्मम् मॉन्टेनम् मुएल आर.)। Fam. Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)।

छोटी दन्ती प्रायः सब प्रान्तों में पाई जाती है। विशेषकर काश्मीर से भूटान तक तथा आसाम और खासिया पहाड़ से चटगाँव तक एवं दक्षिण में कोंकण ट्रावनकोर तक जङ्गलों में उत्पन्न होती है। आर्द्र स्थानों में प्रायः अन्य वृक्षों आदि की छायादार जगहों में अधिक पाई जाती है।

यह गुल्म–जाति की वनस्पति ३ से ६ फीट तक ऊँची होती है। प्रायः जड़ से ही अधिक शाखाएँ निकलती हैं। **पत्ते**–प्रायः अञ्जीर और गूलर के आकार के होते हैं, इस लिये इसको उदुम्बरपर्णी कहते हैं। लम्बाई, चौड़ाई में इसका आकार भिन्न-भिन्न होता है। नीचे वाले पत्ते ६ से १२ इञ्च लम्बे, अञ्जीर के पत्तों के समान कटे किनारे वाले ३ से ५ भागों में विभक्त तथा किञ्चित् नुकीले होते हैं और ऊपर वाले पत्ते गूलर के पत्तों के आकार वाले २-३ इञ्च लम्बे और भालाकार होते हैं। **फूल**–एकलिंगी, गुच्छाकार हरिताभ रंग के होते हैं। **फल**–किंचित् रोमश, ३ खण्ड का एवं करीब ½ इञ्च लम्बा होता है। **बीज**–भूरे, बाह्यवृद्धि से युक्त तथा एरण्ड से छोटे होते हैं। इसकी जड़ एवं बीज औषधि के काम में आते हैं। **जड़**–अङ्गुली के बराबर मोटी, सीधी और कभी-कभी टूटी हुई होती है। जड़ की छाल भूरे रंग की खुरदरी एवं काष्ठ भाग श्वेत, पीताभ, मुलायम किन्तु चीमड़ रहता है। यद्यपि जमालगोटे को दन्तीबीज कहते हैं तथापि जमालगोटा उक्त दन्ती का बीज नहीं है।

संग्रहविधि—दन्ती तथा द्रवन्ती के हाथी दाँत के सदृश कठिन, स्थूल एवं श्याम ताम्र वर्ण के मूल को छोटी पीपल के चूर्ण एवं मधु का लेप करके कुशा के बीच में रख कर मिट्टी का लेप करके पुटपाक करे। फिर धूप में सुखा लें। इस प्रकार अग्नि एवं धूप से इसका विकाशी गुण नष्ट हो जाता है। (च० क० अ० १२)

रासायनिक संगठन—इसकी जड़ में राल एवं स्टार्च पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—दन्ती की जड़, कटु, उष्ण, शोथघ्न, ज्वरघ्न, रेचन एवं कफपित्तनाशक है। इसका उपयोग, उदर, जलोदर, शोथ, कामला, यकृद्विकार, आध्मान, गुल्म, अर्श एवं ज्वर में किया जाता है। इसके बीज अत्यन्त तीव्र रेचन होते हैं। इसके बीजों का तैल तिक्त, कटु, कषाय एवं अधोभाग दोषहर है तथा कृमि, कुष्ठ, कफ, वात और दूष्योदर को दूर करने वाला एवं दुष्टव्रणशोधक है।

(१) ज्वर में तक्र के साथ इसकी जड़ देने से यकृत् की क्रिया ठीक होकर शौच के द्वारा दूषित पित्त निकल जाता है।

(२) जलोदर, हृदयोदर, यकृदुदर, वृक्कविकृतिजन्य उदर आदि में इसकी जड़ का विरेचनार्थ प्रयोग करते हैं। कामला में भी विरेचन के लिये इसका उपयोग करते हैं।

(३) श्वास में इसके पत्तों का उपयोग किया जाता है।

(४) त्वचा के विकारों में इसका उपयोग किया जाता है।

(५) इसके बीज एवं तैल जमालगोटे की तरह तीव्र रेचक होते हैं।

प्रयोगविधि—इसको सौंफ आदि सुगन्धि पदार्थों के साथ क्वाथ के रूप में देना चाहिये। अधिक मात्रा में यह क्षोभक एवं मादक है जिसके निवारण के लिये मधुर-स्निग्ध पदार्थ, शर्बत तथा दूध आदि का उपयोग करना चाहिये।

मात्रा—१-३ माशा; बीज ½–१ र०।

अथ लघुदन्तीफलम्। तस्य गुणानाह

क्षुद्रदन्तीफलं तु स्यान्मधुरं रसपाकयोः। शीतलं सृष्टविण्मूत्रं गरशोथकफापहम् ॥ २०१ ॥

छोटी दन्ती के फल का गुण—छोटी दन्ती का फल—रस और पाक में मधुर रसयुक्त, शीतवीर्य, मल और मूत्र को निकालने वाला, विष, शोथ तथा कफ का नाशक होता है॥ २०१॥

अथ जयपालः (जमालगोटा)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

जयपालो दन्तिबीजं विख्यातं तिन्तिडीफलम्। जयपालो गुरुः स्निग्धो रेची पित्तकफापहः॥

जमालगोटा के नाम तथा गुण—जयपाल, दन्तिबीज, तिन्तिडीफल ये सब जमालगोटा के विख्यात नाम हैं। **जमालगोटा**—गुरु, स्निग्ध, रेचक एवं पित्त-कफ का नाशक होता है॥ २०२॥

नोट—यहाँ दन्तिबीज का अर्थ बड़ीदन्ती (द्रवन्ती) का बीज उचित मालूम पड़ता है क्योंकि क्षुद्रदन्ती का बीज जयपाल नहीं है।

१०१ जमालगोटा (द्रवन्तीबीज)

हि०–जमालगोटा। **बं०, म०**–जयपाल। **प०**–जपोलोटा। **गु०**–नेपालो। **ता०**–नेवलिम्। **ते०**–नेपालवेमु। **क०**–नेपाल, जापालबीज। तुख्मे वेदअञ्जीर, तुख्मे बेदंजीरखताई। **अ०**–हब्बुस्सलातीन। **फा०**–तुख्मे बेदअञ्जीर खताई। **अं०**–Croton oil seed (क्रोटन् ऑइल सीड)। **ले०**–*Croton tiglium Linn.* (क्रोटन् टिग्लिअम् लिन.)। Fam. Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)।

यह आसाम, बंगाल, ब्रह्मा तथा समस्त भारत में पाया जाता है। इसका **वृक्ष**–छोटा होता है और वह बारहो मास हरा-भरा रहता है। इसकी शाखायें रोमयुक्त छोटी-छोटी होती हैं। **पत्ते**–२-४ इञ्च लम्बे, चौड़े अण्डाकार, चिकने, नोकीले, दन्तुर और ३-५ शिराओं से युक्त होते हैं। **फूल**–हरिताभ पीत रङ्ग के मंजरी के रूप में आते हैं। **फल**–प्रायः १ इञ्च लम्बे अण्डाकार और त्रिकोणयुक्त होते हैं। **बीज**–बादामी रङ्ग के होते हैं जिन्हें जयपाल (जमालगोटा) कहा जाता है। इसके बीज एवं बीज-तैल का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

शोधन—आयुर्वेद में शोधन करके ही जमालगोटे का व्यवहार किया जाता है। जमालगोटे के छिलके एवं दो दलों के बीच के अंकुर (जीभ) को निकाल, गोदुग्ध में ३ घण्टे तक स्वेदन करे। फिर शीतल होने पर गरम जल से धो, नींबू के रस के पीस, मिट्टी के कोरे तवे पर बिछा कर सुखा ले। इस प्रकार करने से यह शुद्ध हो जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में एक स्थिर तैल, टिग्लिनिक् अम्ल (Tiglinic acid), क्रोटनिक् या कार्टेनिलिक अम्ल (Crotonic or quartenylic acid) एवं क्रोटन तैल (Croton oil) रहता है। क्रोटन तैल में मुख्य क्रियाशील तत्त्व क्रोटोनोलिक अम्ल (Crotonolic acid) होता हैं जिसके अतिरिक्त टिग्लिक् अम्ल या मैथिल् क्रोटनिक अम्ल (Tiglic acid

or Methyl crotonic acid), क्रोटोनाल् (Crotonol) जिसमें रेचनगुण नहीं होता किन्तु जो त्वचा के लिये प्रक्षोभक होता है, कुछ उड़नशील तैल जिनके कारण इसमें गन्ध होती है एवं कुछ स्नेहाम्ल पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह कटु, उष्ण, विरेचन, दीपन, कफ-वातहर, कृमि एवं जलोदर नाशक है। बाह्य प्रयोग में यह प्रक्षोभक एवं विस्फोटजनक है। यह अत्यन्त तीव्र रेचन है। अधिक मात्रा में यह विष है। इसके तैल के एक बूँद प्रयोग से पचीसो पतले दस्त होते हैं तथा पेट में बहुत मरोड़ होता है। इससे आन्त्र की श्लेष्मकला में कुछ शोथ भी हो जाता है। यद्यपि इससे कृमि भी गिरते हैं तथापि कृमि के लिये इसका प्रयोग नहीं करते, रक्तगत जलीय अंश को जब जल्दी कम करना रहता है तब इसका उपयोग करते हैं।

(१) मस्तिष्कगत रक्तस्रावजन्य अर्धांग आदि में इसका प्रयोग करते हैं। इससे जलीय अंश कम होकर रक्तस्राव कम होता है तथा मस्तिष्कगत दबाव कम होता है। रोगी बेहोश हो तो तैल का एक बूंद मक्खन में मिलाकर जीभ पर लगा दें।

(२) हृदयोदर में भी जलीय अंश को कम करने के लिये इसका प्रयोग करते हैं, किन्तु कभी-कभी इसके प्रयोग के बाद दस्त बन्द नहीं होते।

(३) आमवात, सन्धिशोथ, वातविकार तथा तिलाओं के रूप में इसके तैल का बाह्य प्रयोग किया जाता है।

विषप्रभाव—इसकी अधिक मात्रा से दाह, मरोड़, शूल, रक्तयुक्त दस्त, एवं दौर्बल्य आदि लक्षण होते हैं। इसके निवारण के लिये जल में कत्था घिसकर या नींबू का रस पिलावे।

मात्रा—बीज ¼-½ र०, तैल ½-१ बूंद मक्खन के साथ।

१०२ नागदन्ती

नागदन्ती कटुस्तिक्ता रूक्षा वातकफापहा। मेधाकृद्विषदोषघ्नी पाचनी शोथनाशिनी ॥
गुल्मशूलोदरव्याधिकुष्ठदोषनिकृन्तनी ॥ (रा० नि०)

सं०-हस्तिदन्ती (च० सू० अ० १), नागदन्ती (च० वि० अ० ८)। **हि०**-हकूम, पुतेर, पुथरी, चुक। **म०**-घणसर। **बं०**-बरागाच्छ। **ने०**-अच। **ते०**-भुतन् कुसुम। **ले०**-*Croton oblongifolius, Roxb.* (क्रोटन् ऑब्लौंगिफोलिअस्, राक्स.)। Fam. Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)।

यह प्रायः समस्त भारत में विशेषकर दक्षिण कोंकण, लंका, बंगाल, बिहार एवं बर्मा में होता है। इसका **वृक्ष**-छोटे आकार का तथा दूर से देखने पर आम की तरह दिखाई देता है। **मूलस्तम्भ**—सीधा एवं छाल चिकनी तथा राख के रङ्ग की होती है। **पत्ते**—६-१२ इञ्च लम्बे, सवृन्त, चिमड़े, एकान्तर तथा शाखाओं पर समूहबद्ध, दन्तुर, आयताकार या अण्डाकार तथा चिकने होते हैं। **पुष्प**-एकलिङ्ग, हलके हरे रङ्ग के, ५-१२ इञ्च लम्बी मंजरियों में आते हैं। **फल**-गोल, मांसल, ·४५ इन्च बड़े एवं ६ धारियों से युक्त होते हैं। **बीज**-चिकने और भूरे रंग के होते हैं। **मूल**-ऐंठी हुई एवं कुछ चिपटी होती है। इसकी छाल मोटी, खुरदरी, भूरे रङ्ग की एवं अन्दर से पीली एवं उस पर कुछ भूरे रङ्ग के धब्बे होते हैं। मूलत्वक् का स्वाद कपूर की तरह तीता एवं सुगन्धयुक्त होता है। इसकी मूलत्वक्, पत्र एवं बीजों का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग–इसकी मूलत्वक् शोथघ्न, ज्वरघ्न, रेचक, शिरोविरेचक एवं विषनाशक है।

(१) तीव्र शोथयुक्त आभ्यन्तर विकार (Acute inflammatory conditions) जैसे—न्युमोनिया, फुफ्फुसावरण शोथ, अण्डशोथ, यकृत शोथ, फोड़ा तथा गलका आदि अवस्थाओं में

इनको निर्गुण्डी तथा करञ्ज के साथ देने से लाभ होता है। इनमें इसका बाह्य लेप भी करते हैं। इसकी अधिक मात्रा से सिवाय विरेचन के कोई अन्य तीव्र परिणाम नहीं होता एवं विरेचन से लाभ ही रहता है।

(२) ज्वर में नवसादर के साथ इसका उपयोग करते हैं। इससे यकृत की क्रिया ठीक होकर पित्त की शुद्धि होती है एवं दूषित पित्त शौच द्वारा निकल जाता है तथा यकृतदाह कम होता है। यकृत के शोथ में यह बहुत ही उत्तम औषध है।

(३) सर्पविष में इसको १ से २ तोला की मात्रा में हर दो घण्टे पर देते हैं। कोंकण में इसका बहुत प्रचार है।

मात्रा—½-१ तोला सुगन्धि द्रव्यों के साथ।

अथैन्द्रवारुणी महेन्द्रवारुणी च। (इन्द्रायण–बड़ी इन्द्रायण)। तयोर्नामगुणानाह

ऐन्द्रीन्द्रवारुणी चित्रा गवाक्षी च गवादनी।
वारुणी च पराऽप्युक्ता सा विशाला महाफला ॥ २०३ ॥
श्वेतपुष्पा मृगाक्षी च मृगैर्वारुर्मृगादनी। गवादनीद्वयं तिक्तं पाके कटु सरं लघु ॥२०४॥
वीर्योष्णं कामलापित्तकफप्लीहोदरापहम् ॥ २०५ ॥
श्वासकासापहं कुष्ठगुल्मग्रन्थिव्रणप्रणुत्। प्रमेहमूढगर्भामगण्डामयविषापहम् ॥ २०६ ॥

'इन्द्रायण' तथा 'बड़ी इन्द्रायण' के नाम और गुण–ऐन्द्री, इन्द्रवारुणी, चित्रा, गवाक्षी, गवादनी और वारुणी ये सब नाम 'इन्द्रायण' के हैं। दूसरी जो 'बड़ी इन्द्रायण' है, उसके नाम—विशाला, महाफला, श्वेतपुष्पा, मृगाक्षी, मृगैर्वारु और मृगादनी ये सब हैं। **इन्द्रायण-बड़ी इन्द्रायण ये दोनों**—स्वाद में तिक्त रस और विपाक में कटु रसयुक्त, सारक, लघु, उष्णवीर्य एवम् कामला, पित्त, कफ, प्लीहा, उदररोग, श्वास, कास, कुष्ठ, गुल्म, ग्रन्थि, व्रण, प्रमेह, मूढगर्भ, आमदोष, गण्डरोग (गलगण्ड, गण्डमाला आदि) तथा विष को दूर करने वाली होती हैं॥

नोट—उपर्युक्त इन्द्रवारुणी एवं विशाला के अतिरिक्त इन्द्रवारुणी का एक अन्य भी भेद पाया जाता है। ध. नि. ने भी ३ भेद लिखे हैं।

१०३ इन्द्रायण

हि०-इनारुन, इन्द्रायण, इन्दायन, इन्द्रारुन। **बं०**-राखालशा। **म०**-इन्द्रावण, कडुवृंदावन, कडु इन्द्रायण। **मा०**-तूम्बणबेल, तूसतूंबा, तूस। **गु०**-इन्द्रवरणा, इन्द्रावणा। **क०**-हामेक्के, हाबुमेक्के कायि। **ते०**-एतिपुच्छा, एटिपुच्चा, पुरतकाय, पापर, एटि पुच्चकायि। **ता०**-पेयक्कूमुट्टी, पेदिकारि। कौड, तुम्बी, घोरूम्बा, तुम्बा। **फा०**-खुरबुज एतल्ख, हिन्दबानहे तल्ख। **अ०**-हञल, अलकम। **अं०**-Colocynth (कोलोसिंथ)। **ले०**-*Citrullus colocynthis Schrad* (सिट्रुलस् कोलोसिन्थिस् श्रेड)। Fam. Cucurbitacae (कुकुर्बिटेसी)।

यह बङ्गाल, बिहार, मध्यप्रदेश, पश्चिमोत्तर प्रदेश, मध्य और दक्षिण भारत तथा राजपूताना आदि अनेक प्रान्तों में पाई जाती है। रेतीली भूमि में अधिक उत्पन्न होती है तथा गङ्गा, यमुना सोन, सरयू आदि नदियों के दियारे में बाहुल्य से देखने में आती है। जहाँ यह अधिक रहती है वहाँ दूसरे अन्न की उत्पत्ति अधिक परिमाण में नहीं होती। इस कारण किसान लोग इसको

समूल नष्ट करने के प्रयत्न में लगे रहते हैं। यह एशिया एवं अफ्रीका के उष्ण प्रदेशों में भी पाई जाती है।

यह लता जाति की वनस्पति वर्षजीवी या बहुवर्षजीवी भी होती है। वर्षा ऋतु के सिवा सब ऋतुओं में मिलती है। वर्षा ऋतु में नदियों की बाढ़ के कारण रेतीली भूमि के पानी में डूबने से इसकी लता नष्ट हो जाती है, किन्तु जड़ सजीव रहती है और वही वर्षान्त के बाद अंकुरित होकर लता रूप में बढ़ करके वसन्त ऋतु तथा गरमी के दिनों में फूल, फल देती है। जिस भूमि में वर्षा का पानी इकट्ठा नहीं होता अथवा जहाँ नदियों की बाढ़ नहीं आती, वहां ऊँची भूमि वाली लता नष्ट नहीं होती, बल्कि वर्षा ऋतु में भी फूल-फल देती रहती है। फलों का संग्रह करना गरमी में ही अच्छा होता है, क्योंकि इसके फल कड़ी धूप के कारण खूब सूख जाते हैं और बिगड़ने नहीं पाते तथा बरसात में संग्रह किये हुए फल प्रायः सड़-गल कर खराब हो जाते हैं। इसकी लता बहुधा भूमि पर फैली एवं स्पर्श में अत्यन्त कर्कश होती है। इसके सूत्र (Tendrils) निःशाख या द्विशाख होते हैं। **पत्ते**-विषमवर्ती, २-२॥ इञ्च के घेरे में लम्बे-चौड़े, ऊपर से हलके हरे एवं नीचे से धूसर रंग के, स्पर्श में कर्कश, अनियमित कटे किनारे वाले तथा तरबूज के पत्तों के आकार वाले त्रिकोणाकार होते हैं। खेतों में रोपण की हुई इन्द्रायण के पत्ते बड़े एवं तरबूज के पत्तों के बराबर दिखलाई पड़ते हैं। **फूल**-पाँच पंखड़ी वाले, हलके पीले रङ्ग के तथा व्यास में ·५-·७ इञ्च होते हैं। **फल**-२-२॥ इञ्च के घेरे में गोलाकार, कच्ची अवस्था में हरे रंग के और पकने पर सन्तरे के समान पीले रंग के सफेद छींटेदार एवं चिकने होते हैं। फलों के भीतर किंचित् पीलापनयुक्त सफेद रङ्ग की, सूखी हुई सुषिर एवं अत्यन्त कड़वी गूदी होती है और गूदी के बीच छोटे-छोटे ⅙-⅕ इञ्च बड़े, चिपटे, तरबूज के बीज के आकार वाले, हलके भूरे रङ्ग के **बीज**-होते हैं। फल का **छिलका**-कोमल होता है। मूल एवं बीज विरहित फल का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। पाश्चात्य चिकित्सा में केवल अपक्व फल की सुखाई हुई मज्जा का व्यवहार करते हैं। इसके सभी अङ्ग कड़वे होते हैं तथा इसकी सूखी गर्द नाक एवं आंखों में जाने से अत्यन्त प्रक्षोभ करती है।

रासायनिक संगठन—इसकी फलमज्जा में एक कड़ुवा विरेचक क्षाराम, विरेचक रालें एवं अल्प मात्रा में ग्लाइकोसाइड पाया जाता है। ये सभी अनियत रूप (Amorphous) होते हैं। इनके अतिरिक्त अॅल्फा एलॅटेरिन् (a-elaterin) आदि अन्य द्रव्य जो होते हैं उनका कोई विशिष्ट प्रभाव नहीं होता। छिलका निकाले फल में बीजों की मात्रा ७५% होती है। बीजों में १५% तैल, अत्यल्प मात्रा में एक क्षाराम, एक किण्व (Enzyme) एवं फाइटोस्टैरॉल् (Phytosterol) द्रव्य होते हैं।

इसके मूल में अॅल्फा एलॅटेरिन् (a-elaterin), सॅपोनिन् (Saponin) तथा कुछ राल पाई जाती है।

गुण और प्रयोग—इसकी फलमज्जा अत्यन्त कड़वी एवं तीव्र विरेचक है। इसकी १-२ रत्ती की मात्रा से २, ३ घंटे में पानी जैसे पतले दस्त होते हैं। इससे यद्यपि मूत्र की मात्रा भी बढ़ती है तथापि इस कार्य के लिये इसका प्रयोग नहीं करते क्योंकि इससे बहुत मरोड़ होती है। इसका अल्पमात्रा में शोषण होकर मूत्र एवं दुग्ध द्वारा उत्सर्ग होता है। इसकी अधिक मात्रा से विषैला परिणाम होकर मृत्यु होती है। इसकी विषैली मात्रा ०·६-१ ग्राम (४-८ रत्ती) एवं घातक मात्रा ४ ग्राम (३० रत्ती) है। एक स्त्री ने गर्भपात के लिए ६० रत्ती की मात्रा खाई किन्तु ५० घंटे में उसकी मृत्यु हुई।

इसकी जड़ विरेचक एवं शोथहर है। बीजों में विरेचक गुण नहीं है।

(१) कफप्रधान रोगों में इसका प्रयोग करते हैं। इससे स्रोतोवरोध दूर होता है। आमवात, संधिशोथ, जलोदर, कामला, यकृद्दाल्युदर, प्लीहोदर तथा तीव्र विबन्ध में इसकी जड़ का चूर्ण सोंठ एवं गुड़ के साथ देते हैं। पाश्चात्य चिकित्सा में प्रयुक्त एक्स्ट्रॅक्टम कोलोसिन्थिडिस् कम्पोजिटम् (Extractum Colocynthidis Compositum) का भी व्यवहार किया जा सकता है। अनार्तव में मूल का उपयोग करते हैं।

(२) इसकी जड़ को नूतन शोथ पर लेप करते हैं। स्तनशोथ तथा बच्चों के उदर आदि पर इसको जल में घिस कर लगाते हैं।

(३) इसके बीजों के तेल का उपयोग बाल काले रहने के लिये करते हैं।

विष चिकित्सा—कषाय द्रव्य (Dil. Tannic acid solution) से आमाशय प्रक्षालन के पश्चात् दुग्ध पिलाना चाहिये।

मात्रा—फलचूर्ण १-२½ रत्ती; मूलचूर्ण १-३ माशा।

१०४ इन्द्रायण भेद

हि०-भाकुरा। **म०**-विसलंबी। **बं०**-गोमुक। **गु०**-कोठिंबन। **पं०**-कचरी। **ले०**-*Cucumis trigonus, Roxb.* (कुकुमिस् ट्राइगोनस्, रॉक्स.)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुर्बिटेसी)।

यह भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों में खुली हुई शुष्क जगहों में कहीं न कहीं पायी जाती है।

यह लता जातिकी वनौषधि प्रसरणशील एवं स्पर्श में कर्कश होती है। इसमें तंतु (Tendrils) निःशाख होते हैं। यद्यपि इसके लता पत्र नष्ट हो जाते हैं परन्तु इसकी जड़ भूमि के भीतर जीवित रहती है। समय आने पर उसी जड़ में से अंकुर निकल कर लता रूप में परिणत होता है। **पत्ते**-स्पर्श में कर्कश, १-२ इञ्च लम्बे तथा चौड़े (कभी-कभी और बड़े), गोलाकार किन्तु पांच से सात भागों में विभक्त रहते हैं और प्रत्येक भाग किंचित् लम्बाई युक्त गोलाकार, अग्र पर गोल और कुछ दंतुर सा होता है। **पुष्प**-पीले रंग के और व्यास में ½ इञ्च बड़े होते हैं। पुरुष जाति के फूल गुच्छों में और स्त्री जाति के फूल एक-एक करके आते हैं। **फल**-चिकने तरबूज के आकारवाले गोलाकार, किंचित् त्रिकोणाकार, १॥ इञ्च लम्बे और १। इञ्च मोटे तथा १० हरी रेखाओं से युक्त होते हैं। पकने पर ये रेखाएं हलके पीले रंग की हो जाती हैं। इसकी मज्जा कड़ुवी होती है। **बीज**-श्वेत एवं दीर्घ वृत्ताभ होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके फल में कोलोसिन्थिन (Colocynthin) या तत्सम पदार्थ पाया जाता है। बीजों से निकाला तेल जलाने के काम आता है।

गुण और प्रयोग—इन्द्रायण के स्थान पर इसका उपयोग किया जाता है। इसकी मज्जा कड़ुवी तथा तीव्र विरेचक होती है। इसके मूल का क्वाथ सौम्य विरेचक होता है। इसके बीज शीतल, ग्राही तथा पित्त विकार में उपयोगी होते हैं।

१०५ विशाला (महाकाल, इन्द्रायण भेद)

सं०-विशाला, महाकाल। **हि०**-लाल इन्द्रायण, महुरार, महर। **म०**-कौंडल, काकतोंडि, कवंडल। **गु०**-रातां इन्द्रायणां। **बं०**-माकाल। **ता०**-कुरट्टै। **ते०**-अब्वरगूदं। **क०**-कालेमंदलि। **अ०**-हंजले-अह्मर। **फा०**-हंजले सुर्ख। **ले०**-*Trichosanthes palmata, Roxb.* (ट्राइकोसॅन्थिस् पामेटा, रॉक्स)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुर्बिटेसी)।

इसकी विशाल आरोही लता झाड़ियों पर फैली हुई अथवा ऊँचे वृक्षों पर चढ़ी हुई पाई जाती है। शाखाएं लम्बी तथा नीचे की ओर लटकी हुई रहती हैं। सूत्र (Tendrils) २-५ शाखाओं वाले होते हैं। पत्ते-२½-५ इञ्च लम्बे तथा उतने ही चौड़े, दन्तुर, प्रायः पाणिवत् खण्डित, खण्ड ३-५ एवं प्रायः अधर तल पर फैली हुई गाढे रंग की गोल ग्रन्थियों से युक्त होते हैं। पुष्प-श्वेत एवं व्यास में २½-३ इञ्च होते हैं। फल-१½-२ इञ्च व्यास के गोल या दीर्घ वृत्ताभ, पकने पर लाल रंग के एवं १० नारंगी रंग की पतली धारियों से युक्त होता है। फल का छिलका मोटा होता है एवं मज्जा कृष्णाभ हरित होती है। बीज-दीर्घ वृत्ताभ एवं चिकने होते हैं।

इसकी जड़ एवं मूल का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

रायायनिक संगठन—इसमें एक ट्राइकोसैन्थिन् (Trichosanthin) नामक कड़वा द्रव्य पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसकी फलत्वक् वामक किन्तु अल्प मात्रा में कफनिःसारक है। मज्जा भेदन है। मूल श्वयथुहर एवं ज्वरहर है। यद्यपि जंगली जाति के फल तीव्र विरेचक होते हैं किन्तु रोपित विशाला के फल पकाकर खाने योग्य हो जाते हैं।

तमक श्वास, डिफ्थीरिया एवं गले के शोथयुक्त विकार तथा श्वासनलिका-शोथ में कफ चिपचिपा होकर श्वासावरोध होता है तब इसके फलत्वक् या मूल की छाल को थोड़ा सा चिलम में रख कर धूम्रपान कराते हैं जिससे वमन होकर कफ निकलने लगता है। कभी-कभी रक्त भी गिरता है। इससे श्वासावरोध कम होता है एवं गले की सूजन भी कम होती हैं। फुफ्फुस-शोथ में मूलत्वक् का क्वाथ देने से ज्वर एवं श्वासावरोध कम होता है।

व्रणशोथ पर इसकी जड़ घिस कर लगाते हैं। स्तनशोथ, गलका, कार्बंकल आदि फोड़े पर इन्द्रायण की जड़ के साथ इसकी जड़ को शीतल जल में घिस कर मोटा लेप करते हैं। इसके फल से सिद्ध गरी का तेल कर्णस्राव में डालते हैं तथा शिरःशूल एवं प्रतिश्याय में प्रयोग करते हैं।

मात्रा—फलत्वक् ½-१ र० दिन में ३ बार।

अथ नीली [नील]। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

नीली तु नीलिनी तूणी काला दोला च नीलिका।
रञ्जनी श्रीफली तुच्छा ग्रामीणा मधुपर्णिका॥ २०७॥
क्लीतका कालकेशी च नीलपुष्पा च सा स्मृता।
नीलिनी रेचनी तिक्ता केश्या मोहभ्रमापहा॥ २०८॥
उष्णा हन्त्युदरप्लीहवातरक्तकफानिलान्। आमवातमुदावर्त्तं मदं च विषमुद्धतम्॥ २०९॥

'नील' के नाम तथा गुण—नीली, नीलिनी, तूणी, काला, दोला, नीलिका, रञ्जनी, श्रीफली, तुच्छा, ग्रामीणा, मधुपर्णिका, क्लीतका, कालकेशी और नीलपुष्पा ये सब नाम 'नील' के हैं। नील-तिक्त रसयुक्त, रेचक, बालों के लिये हितकर, उष्णवीर्य, एवम् मोह, भ्रम, उदररोग, प्लीहा, वातरक्त, कफ, बायु, आमवात, उदावर्त्त, मदरोग और उग्र विष को दूर करने वाली होती है॥

१०६ नील

हिं०-नीली, नीली वृक्ष, लील। **म०**-गुली, नील। **बं०**-नील। **मा०**-लील। **गु०**-गली। **क०**-नीली। **ता०**-अवरि। **ते०**-निली चेट्टु, अविरि। **फा०**-नील, नीलज, हिमामजनुन। **अ०**-नीलज, वस्मा। **अं०**-Indigo (इण्डीगो)। **ले०**-*Indigofera tinctoria Linn.* (इण्डीगोफेरा टिङ्क्टोरीआ, लिन.)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

पहले इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में नील रङ्ग के लिये नीलहे साहेब लोग इसकी खेती करते थे। किन्तु इस समय कृत्रिम नील रङ्ग के आने से इसकी खेती प्रायः नष्ट ही हो गयी है।

इसका क्षुप-४ से ६ फीट तक ऊँचा होता है। शाखाएं-पतली, दुर्बल, कोणदार, अल्परोमयुक्त एवं फैली हुई होती हैं। पत्ते-असम पक्षवत् संयुक्त पत्र होते हैं। पत्रक-३-६ जोड़े, शरपुंखा के समान, अंडाकार या अंडाकार लट्वाकार, ०·५-०·९ इञ्च लंबे, पतले तथा कालापन लिये हुए हरे रंग के होते हैं। तोड़ने से इसके पत्ते सीधे टूटते हैं। पुष्प-पतली पत्रकोणज मंजरियों में हलके नीलाभ गुलाबी रंग के आते हैं। फलियाँ-पतली एक इञ्च तक लंबी होती हैं, जिनमें ८ से १२ तक बीज होते हैं। इसकी कई अन्य जातियाँ होती हैं। इसकी जड़, पत्र, बीज तथा नील रंग का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके पौधों को सड़ा करके एक इण्डिकन् (Indican) नामक ग्लूकोसाईड प्राप्त किया जाता है। इसके पौधे से ५०% तक नील प्राप्त किया जाता है।

गुण और प्रयोग—नील रंग का बाह्यलेप दाहशामक, व्रणरोपण, त्वग्दोषहर, केशवर्धक एवं केशरंजक है।

यह विषघ्न, यकृदुत्तेजक, शामक, विरेचन, अल्प मूत्रजनन, कासहर एवं कृमिघ्न है। अधिक मात्रा से पतले दस्त होते हैं। किन्तु अल्प मात्रा से इससे शौच साफ होता है। अन्य गुण गौण हैं। इसकी जड़ में भी यही गुण कम मात्रा में पाये जाते हैं। पत्तों में जड़ की अपेक्षा और कम गुण होता है।

(१) यकृत् एवं प्लीहा वृद्धि तथा जलोदर में मूल का घन देते हैं। अर्श में इसके साथ-साथ नील तथा पत्तों का लेप भी करते हैं। इसका उपयोग कुकास तथा न्युमोनिया में भी होता है।

(२) अपस्मार तथा लघु वातविकारों में नील देते हैं।

(३) पागल कुत्ता काटने पर इसका स्वरस २ औंस की मात्रा में पिलाते हैं तथा दंशस्थान पर पत्तों का लेप करते हैं। इतनी अधिक मात्रा से कुछ शिरःशूल तथा विरेचन होता है। यह संखिया के विष में भी उपयोगी है।

(४) त्वचा के विकार में नील का बहुत अधिक प्रयोग कराते हैं। दग्धव्रण एवं जीर्णव्रण आदि में इसका लेप करने से व्रण जल्दी अच्छे होते हैं। खिजाबों में पत्तों का उपयोग किया जाता है। विषैले जन्तुओं के काटने पर इसका लेप उपयोगी है।

मात्रा—नील ½-र०; मूल का घन १-२ र०; क्वाथ ५-१० तो०।

अथ शरपुङ्खः [सरफोंका]। तस्य नामलक्षणगुणानाह

शरपुङ्खः प्लीहशत्रुर्नीलीवृक्षाकृतिश्च सः। शरपुङ्खो यकृत्प्लीहगुल्मव्रणविषापहः।
तिक्तः कषायः कासास्रश्वासज्वरहरो लघुः॥ २१०॥

सरफोंका के नाम तथा गुण-शरपुंख, प्लीहशत्रु और नीलीवृक्षाकृति (नीलवृक्ष के समान आकारवाला) ये सब नाम 'सरफोंका' के हैं। सरफोंका-तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, लघु एवम्-यकृत्, प्लीहा, गुल्म, व्रण, विष, कास, रक्तविकार, श्वास और ज्वर को दूर करता है॥ २१०॥

१०७ सरफोंका।

हि०—सरफोंका, सरफोका। **बं०**—बननील। **म०**—उन्हाली। **गु०**—शरपंखो। **ते०**—तेल्ल वेंपल्लि, मुलु बेम्पली। **क०**—फंकी। **पं०**—झोजरु। **ता०**—काटकोरिनिल्। **ले०**-*Tephrosia purpurea, Linn.* (टेफ्रोसिया पर्पुरिया, लिन.)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

सरफोंका-क्षुपजाति की वनस्पति प्रायः सब प्रान्तों में आपही आप उत्पन्न होती है। यह हिमालय में ६००० फीट की ऊँचाई तक पाई जाती है। इसका **क्षुप**—लगभग २-२॥ फीट ऊँचा, झाड़दार, सीधा एवं बहुत शाखाओं से युक्त होता है। कांड चिकने या किंचित् रोमश होते हैं। **पत्ते**—३-६ इञ्च लंबे होते हैं। **पत्रक**-संख्या में १३-२१, ३/४-१ इञ्च लंबे, नील या मेथी के पत्तों के समान आयताकार, नताग्र या रोमशाग्र एवं ऊपर से चिकने किन्तु नीचे से अस्पष्ट मृदु रोमश होते हैं। पत्रक को तोडने से वह बाण के पुंख के आकार के समान टूटता है **इसलिये इसे** शरपुंखा कहा जाता है। **फूल**—१/४ इञ्च लंबे; सवृन्त, लाल या जामुनी एवं ५ इञ्च लंबी मंजरियों में निकले रहते हैं। **फली**—१½-२ इञ्च लंबी, अल्प मुड़ी हुई, ६-१० बीजों से युक्त एवं अन्ततः चिकनी होती है। यह बरसात में अधिक होता है।

इसकी जड़ एवं पंचांग का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

नोट—इसके एक अन्य भेद श्वेत शरपुंखा का भी उल्लेख है जो रसायन आदि में उपयोगी होती है। T. villosa Pers. (टे० विलोसा पर्स.) नामक एक भेद पाया जाता है जिसका क्षुप छोटा, जमीन पर फैला हुआ एवं श्वेतरोम से आवृत रहता है। संभवतः यही शास्त्रीय श्वेत शरपुंखा है।

रासायनिक संगठन—इसकी जड़ में टेफ्रोसिन् (Tephrosin), डेग्युलिन् (Deguelin), आइसो टेफ्रोसिन् (Isotephrosin), रोटेनॉन् (Rotenone) आदि द्रव्य पाये जाते हैं। पत्तों में करीब २% ओसिरिटिन् (Osyritin) नामक ग्लूकोसाइड् होता है। पंचांग में करीब ६% राख निकलती है जिसमें थोड़ी मात्रा में मैंगनीज् रहता है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, कडुवा, आनुलोमिक, पित्तसारक, मूत्रजनक, कफघ्न, विषहर, बल्य, कृमिघ्न एवं रक्तशोधन है। इसकी जड़ का उपयोग आध्मान, कुपचन, जीर्ण अतिसार, कास, पैत्तिक ज्वर, यकृत-प्लीहवृद्धि एवं रक्तस्राव में किया जाता है।

(१) यकृत एवं प्लीहावृद्धि में इसकी जड़ को हरीतकी के साथ देने में अच्छा लाभ होता है। गुल्म में पंचांग का क्षार ४ माशे हरीतकी के साथ देते हैं। अर्श में तक्र के साथ जड़ को देते हैं। रक्तस्राव में तण्डुलाम्बु के साथ इसको देते हैं।

(२) कास में मूल का धूम्रपान कराया जाता है।

(३) उदरशूल में जड़ की ताजी छाल मिरिच के साथ पीसकर गोली बनाकर देते हैं।

(४) खुजली में बीजों का लेप या बीजतैल का लेप उपयोगी है। गंडमाला में मूल का लेप किया जाता है।

मात्रा—मूलचूर्ण ३-६ माशा; स्वरस १-२ तोला; क्षार १-२ माशा।

अथ वृद्धदारुकः (विधारा)। तस्य नामगुणानाह

[[1]वृद्धदारुक आवेगी छागान्त्री वृष्यगन्धिका। वृद्धदारुः कषायोष्णः कटुस्तिक्तो रसायनः॥ वृष्यो वातामवातार्शःशोथमेहकफप्रणुत्। शुक्रायुर्बलमेधाऽग्निस्वरकान्तिकरः सरः॥ २॥]

१. अयं कोष्ठस्थः पाठः क्वचित्कस्तथाऽप्युपयोगित्वादत्रोल्लिखितः।

'विधारा' के नाम तथा गुण—वृद्धदारुक, आवेगी, छागान्त्री और वृष्यगन्धिका ये नाम 'विधारा' के हैं। **विधारा**—कषाय, कटु तथा तिक्त रसयुक्त, रसायन, वृष्य (वीर्यवर्धक), सारक, उष्णवीर्य तथा शुक्र आयु, बल, मेधाशक्ति, जठराग्नि, स्वर और कान्ति को उत्पन्न करने वाला, एवम् वायु, आमवात, अर्श, शोथ, प्रमेह तथा कफ का नाशक है॥ १-२॥

विधारा भी एक संदिग्ध द्रव्य है। कुछ विद्वान् घावपत्ता को विधारा' मानते हैं। ठा० बलवन्तसिंहजी के मत से आइपोमिया पेटलॉएडिआ (Ipomoea petaloidea, Chois.) या कम से कम इसी कुल की कोई लता विधारा हो सकती है। श्री डा० देसाई ने आइपोमिआ बाइलोबा (Ipomoea biloba, Forsk.) की जड़ को वृद्धदारक माना है। अष्टांगसंग्रह की टीका में इसका परिचय इस प्रकार है।

त्रिकोणकाण्डा सुबहुप्रताना फलेषु पीता कुसुमेषु रक्ता।
पत्रैः सदुग्धैः मृदुरोमवद्भिस्ताम्बूलतुल्यैर्घनमूलकन्दैः॥

उपर्युक्त वर्णन से यह निश्चित ही मालूम होता है कि विधारा अवश्य ही त्रिवृत कुल की ही लता है। यहाँ पर उपर्युक्त तीनों का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

१०८ वृद्धदारक (घावपत्ता)

सं०—वृद्धदारु। **हि०**—समुद्रशोख, घावपत्ता, विधारा। **म०**—समुद्रशोक। **गु०**—समुदरशोष, वरधारो। **बं०**—बिजताड़, बिद्धताडक। **ते०**—समुद्रपाल। **ता०**—समुद्रपच्चै। **अं०**—Elephant Creeper)। **ले०**—*Argyreia speciosa, Sweet.* (आर्जीरिआ स्पेसिओजा, स्वीट.)। Fam. Convolvulaceae (कन्वोल्व्युलेसी)।

यह पश्चिमी शुष्क प्रदेशों को छोड़कर भारतवर्ष के सब भागों में १००० फीट की ऊँचाई तक पाई जाती है।

इसकी लता—बड़ी एवं वृक्षों पर फैली हुई होती है। नवीन शाखाओं पर श्वेताभ या तूल रोमश सघन-आवरण रहता है। **पत्ते**—लट्वाकार, हृद्वत्, व्यास में ६-१२ इञ्च, कुण्ठित या तीक्ष्णाग्र, ऊपरी पृष्ठ पर चिकने, अधः पृष्ठ पर मखमली श्वेताभ रोमावरण से युक्त एवं ३-९ इञ्च लम्बे पर्ण वृन्त से युक्त होते हैं। **पुष्प**—घंटाकृति, २-३ इञ्च बड़े, बाहर से सफेद और तूल रोमश एवं भीतर से गहरे गुलाबी या जामुनी रंग के होते हैं। **फल**—लम्बगोल, ½ इञ्च बड़े, कच्ची अवस्था में हलके हरिताभ तथा पकने पर पीताभ भूरे रंग के होते हैं। **बीज**—भूरापन लिये सफेद रंग के तथा ३ धार वाले होते हैं।

इसके काण्ड के टुकड़े एवं जड़ का विधारा नाम से प्रयोग होता है। इसके पत्तों का एवं नई लता की जड़ का भी चिकित्सा में व्यवहार होता है।

गुण और प्रयोग—इसकी जड़ को ३-६ माशा देने से दस्त साफ होता है। बंगाल में पौष्टिक रूप में इसकी जड़ का प्रयोग करते हैं। आमवात तथा वात विकारों में इसकी जड़ से लाभ होता है। आमवात में इसके पत्तों को पीस कर गरम करके संधिशोथ पर बांधते हैं। व्रण-शोथ पर इसके पत्तों को बांधते हैं।

असगंध एवं विधारे का सम भाग चूर्ण ३ माशा दूध के साथ सेवन से श्वेत प्रदर में लाभ होता है।

मात्रा—मूल चूर्ण १॥-३ माशा।

१०९ वृद्धदारु (दोपातीलता)

सं०–वृद्धदारु, मर्यादवल्ली[1]। **हि०**–दोपातीलता, विधारा। **बं०**–छागलखुरी। **म०**–मर्यादवेल, मर्दविल। **गु०**–मरजादवेल। **क०, ता०**–अडुंबु। **ले०**–*Ipomoea biloba, Forsk.* (आइपोमिआ बाइलोबा फॉर.)। Fam. Convolvulaceae (कन्वोल्व्युलेसी)।

यह भारतवर्ष के सभी भागों में, विशेषतया समुद्र के किनारे रेतीली भूमि में अधिक पाई जाती है।

इसकी **लता**–बहुवर्षायु तथा विस्तृत फैलने वाली होती है। काण्ड–रेतों पर फैले हुये, नये रहने पर मांसल एवं जामुनी रंग के तथा पुराने होने पर रस्सी की तरह हो जाते हैं। **पत्ते**–मोटे १·५–२·५ इञ्च लंबे तथा प्रायः उससे अधिक चौड़े एवं अग्र से द्विविभक्त होने के कारण कचनार की तरह दिखलाई देते हैं। पत्ते बकरे के खुर सदृश दिखलाई देने के कारण इसे छागलखुरी कहते हैं। आधार की तरफ पत्ते रूपानवत् होते हैं तथा वहाँ दो बड़ी रंगीन ग्रंथियाँ होती हैं। **पुष्प**–बड़े तथा रक्ताभ जामुनी रंग के होते हैं। **फल**–आधा इञ्च बड़े, अंडाकार तथा चिकने होते हैं। **बीज**–मृदुरोमश होते हैं। **मूल**–बड़ा लंबा, काष्ठमय, मजबूत, ऐंठा हुआ, करीब ½ इञ्च मोटा तथा अनेक उपमूलों से युक्त रहता है। इसकी जड़ एवं पत्तों का चिकित्सा में व्यवहार करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके पञ्चांग में राल ७·२७%, अल्प मात्रा में उड़नशील तैल, बहुत लुआबदार पदार्थ तथा समुद्र के अनेक क्षार एवं स्नेहन पदार्थ रहते हैं। जड में गाढ़ा पीले रंग का दूध, पिष्ट पदार्थ एवं क्षाराम पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके पत्ते शोथहर, वेदनास्थापक, कासहर, एवं मूत्रजनक हैं। मूल अनन्तमूल की तरह रसायन है तथा इसका सुखाया हुआ स्वरस रेचक होता है।

(१) आमवात तथा संधिशोथ में इसकी जड़ देते हैं तथा पत्तों को पीसकर लेप करते हैं।

(२) जलोदर, उदरशूल तथा कास में इसका पत्र-स्वरस पिलाते हैं।

(३) शोथ, वद, जलशोथ, शिरःशूल एवं मोच आदि में पत्तों को पीस कर बांधते हैं।

मात्रा—पत्रस्वरस ½–१ तो०, शुष्कमूल ⅓–½ तो०, सुखाया हुआ मूल स्वरस ५–६ र०।

११० वृद्धदारु

ले०–*Ipomoea petaloidea, Chois.* (आइपोमिआ पेटलॉइडिआ कॉय.)। Fam. Convolvulaceae (कन्वोल्व्युलेसी)।

इसकी लता बहुत विस्तृत तथा झाड़दार होती है। **काण्ड**–चिकना तथा उस पर २–४ उभरी हुई रेखायें अथवा पंख सदृश धारायें होती हैं। **पत्ते**–नीचे के लट्वाकार, प्रायः ७ इञ्च × ५·५ इञ्च बड़े, २–३ इञ्च के वृन्त से युक्त और ऊपर में लट्वाकार–प्रासवत से प्रासवत्–आयताकार, १·५–३ इञ्च एवं चिकने तथा रक्ताभ एवं दृढ़ मध्यपर्शुक वाले होते हैं। पत्राग्र–द्विविभक्त या कुण्ठित रोमश होता है। **पुष्प**–न्यूनाधिक पीत (कभी-कभी श्वेत भी) होते हैं। **फल**–आधा इञ्च अंडाकार होता है। **बीज**–छोटे तथा सूक्ष्म लहरदार होते हैं।

इसके काण्ड एवं मूल के टुकड़े विधारा के नाम से प्रयोग में लाये जाते हैं।

---

१. मर्यादवल्लिका शीता ग्राहिणी सारिका गुरुः। पाककाले चोष्णा स्याद्वातला गर्भकारिणी॥ विसूचिकां च शूलं च वान्ति चामं च नाशयेत्॥ (नि० र०)

अथ यवासो दुरालभा च। [जवासा-धमासा] तयोर्नामानि गुणांश्चाह

**यासो यवासो दुःस्पर्शो धन्वयासः कुनाशकः। दुरालभा दुरालम्भा समुद्रान्ता च रोदिनी॥
गान्धारी कच्छुराऽनन्ता कषाया हरिविग्रहा। यासः स्वादुः सरस्तिक्तस्तुवरः शीतलो लघुः॥
कफमेदोमदभ्रान्तिपित्तासृक्कुष्ठकासजित्। तृष्णाविसर्पवातास्रवमिज्वरहरः स्मृतः॥२१३॥
यवासस्य गुणैस्तुल्या बुधैरुक्ता दुरालभा॥ २१४॥**

'जवासा' और 'धमासा' के नाम तथा गुण—यास, यवास, दुःस्पर्श, धन्वयास और कुनाशक ये नाम 'जवासा' के हैं। दुरालभा, दुरालम्भा, समुद्रान्ता, रोदिनी, गान्धारी, कच्छुरा, अनन्ता, कषाया और हरिविग्रहा इतने नाम 'धमासा' के हैं। **जवासा**—मधुर, तिक्त और कषाय रसयुक्त, सारक, शीतवीर्य, लघु एवं कफ, मेद, मदरोग, भ्रान्ति, रक्तपित्त, कुष्ठ, कास, तृष्णा, विसर्प, वातरक्त, वमन और ज्वर को दूर करता है। **धमासा**–इसे पण्डितों ने 'जवासा' के समान गुणवाला बताया है। यवासा (जवासा) तथा दुरालभा (धमासा) ये दो भिन्न द्रव्य हैं। गुणों में समानता होने के कारण कहीं-कहीं एक दूसरे के स्थान में इनका प्रयोग हुआ है। धन्वयास (मरुभूमि में होने वाला यवास) यह दुरालभा का पर्याय अधिक उचित है॥ २११–२१४॥

१११ जवासा

हि०, म०–जवासा, यवासा। **बं०**–जवसा। **गु०**–जवासो। **फा०**–खारेशुतुर, शुतुरखार। **अ०**–अलगुल, हाज। **अं०**–Arabian or Persian Manna Plant (अरेबियन या पर्शियन मन्नाप्लांट)। **ले०**–*Alhagi camelorum, Fisch.* (अॅल्हागी कॅमेलोरम् फिस्.)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

यह दक्षिण महाराष्ट्र, गुजरात, सिंध, बलूचिस्तान, पंजाब, उत्तरप्रदेश तथा राजपुताना में होता है। यह शुष्क ऊसर भूमि में या नदियों के किनारे पाया जाता है। ग्रीष्म में जब अन्य वनस्पतियाँ सूख जाती हैं तब यह हरा-भरा रहता है।

इसके **गुल्म**–छोटे-छोटे १–२॥ हाथ ऊँचे, अनेक शाखाओं से युक्त कांटेदार होते हैं। **पत्ते**–छोटे-छोटे, चिकने, आयताकार, रोमश कुंठिताग्र तथा नीचे की ओर झुके हुए होते हैं। पत्रकोणों में सामान्य शाखाओं के अतिरिक्त प्रायः १½ इञ्च तक लम्बे कांटे होते हैं। **फूल**–वसन्त में लाल रंग के फूल १½ इञ्च लम्बी मंजरियों में आते हैं। **फली**–एक इन्च लम्बी, सीधी या टेढ़ी तथा मालाकार होती है।

यास शर्करा[1]—यवासा के क्षुप से एक प्रकार का निर्यास निकल कर कुछ रक्ताभ या भूरापन लिये सफेद रंग के दानों के रूप में जम जाता है उसे यूनानी में **तुरंजबीन** नाम से बहुत व्यवहार में लाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि यह फारस से संगृहीत होकर भारत में आती है। भारतीय पौधों से यह शर्करा प्राप्त होती है या नहीं इसकी जानकारी नहीं है। डल्हण ने 'यवासक्वाथघनीभावात्-शर्करा कृता यवासशर्करा' लिखा है अर्थात् इसके घनसत्त्व को वह यासशर्करा मानते हैं।

रासायनिक संगठन—इसकी शर्करा में कई प्रकार की शर्करा जैसे इक्षुशर्करा २६·४%, इतर शर्करा (Invert sugar, 11·6%) एवं मेलिझिटोज (Melizitose 47·1%) पायी जाती है।

---

१. कषायमधुरा शीता सतिक्ता यासशर्करा। (च. सू. अ. २७)
यवासशर्करा मधुरकषाया तिक्तानुरसा श्लेष्महरा सरा च। (सु. सू. अ. ४५)

गुण और प्रयोग—यवासा-शीतवीर्य, कफघ्न, स्वेदजनन, मूत्रजनन, आनुलोमिक एवं पित्त-हर है। इसका उपयोग प्रतिश्याय, कास, श्वास, ज्वर, रक्तपित्त, भ्रम, तृषा एवं अर्श में किया जाता है। ऊँट को यह खाने को देते हैं।

(१) मुलेठी एवं जवासे का मिश्रित घन क्वाथ कफज विकारों की प्रारम्भिक अवस्थाओं में बहुत लाभदायक है। इनमें इसका क्वाथ पीने को देते हैं तथा इसके बाष्प से धूपन कराते हैं जिससे कफ ढीला हो कर निकलने लगता है। तमक श्वास में इसका धूम्रपान लाभदायक है।

(२) अर्श में इसके आंतरिक प्रयोग के साथ इसके क्वाथ से धोते हैं या पंचांग का लेप करते हैं। आमवात में इससे सिद्ध तैल का बाह्य प्रयोग किया जाता है।

तुरंजबीन—यह कफहर, वृष्य, पित्तविरेचक एवं मृदु सारक है। बच्चों या मृदुकोष्ठ वालों के लिये सारक रूप में या अन्य सारक औषधियों की शक्ति बढ़ाने के लिये यह प्रयोग में लाया जाता है।

मात्रा—क्वाथ ४–८ तोला; घनसत्त्व ४–७ रत्ती, यासशर्करा १–३ माशा।

११२ धमासा

हि०-धमासा, हिंगुआ, धमहर। **बं०**-दुरालभा। **मा०**-**गु०**-धमासो। **म०**-धमासा। **पं०**-धमाह, धमाहा। **फा०**-बादा वर्द। **अ०**-शुकाई। **ले०**-*Fagonia arabica Linn.* (फॅगोनिया अरेबिका लिन.)। Fam. Zygophyllaceae (झाइगोफाइलेसी)।

यह पंजाब, प० राजपुताना, दक्षिण, प० खानदेश, कछ, सिंध, बलूचिस्तान, वजीरिस्तान तथा पश्चिम में अफगानिस्तान तक पाया जाता है।

इसका **क्षुप**-फीके हरे रंग का अनेक शाखाओं वाला, छोटा फैला हुआ, १–३ फीट ऊँचा तथा तीक्ष्ण कांटेदार होता है। **पत्र**-विपरीत; पत्रक-१–३ इञ्च लम्बे, अखंड, रेखाकार दीर्घवृत्ताकार होते हैं। दो पत्र चार कांटे तथा एक पुष्प यह चक्राकार क्रम में एक साथ रहते हैं। **पुष्प**-पत्रकोण में फीके गुलाबी रंग के फूल आते हैं। **फल**-पांच खंड वाला तथा शीर्ष पर एक कांटा रहता है। घास के रंग के इसके टुकड़े बाजार में बिकते हैं। इसका स्वाद लुआबदार तथा जल में डालने पर ये चिपचिपे हो जाते हैं। इसके पंचांग का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

गुण और प्रयोग—धमासा शीतवीर्य, ज्वरहर, कफहर, दाहप्रशमन, तृष्णानिग्रहण, मूत्रजनन, कोथप्रशमन, एवं व्रणरोपण है।

अर्श, दाह, वमन, भ्रम, प्रलाप, विषमज्वर एवं रक्तपित्त[1] में इसके हिम का प्रयोग करते हैं। मसूरिका के प्रतिबंधन के लिये भी इसे देते है।

(१) ज्वर में आधे से ४ तोला चूर्ण का हिम पिलाते हैं तथा इसी हिम से शरीर भी पोछते हैं जिससे प्यास कम होती हैं तथा शरीर का दाह एवं कंडू कम होती है। कफज ज्वर में तथा गले और श्वसनसंस्थान के विकारों में इससे अच्छा लाभ होता है। इससे गले की खुश्की कम हो कर कफ निकलने लगता हैं। श्वास में धूम्रपान लाभदायक है। इसको ईख के रस के साथ उबाल कर अवलेह बनाते हैं जिसका गले तथा फुफ्फुसों के विकारों में अनुपान के रूप में प्रयोग करते हैं। इसकी गोली मुह में रखकर चूसते हैं।

(२) इसके क्वाथ से व्रण-प्रक्षालन करने से बिना पूय हुये व्रण जल्दी अच्छा होता है। मुख-पाक में इसके क्वाथ से गण्डूष करने से लाभ होता है।

मात्रा—½–१ तोला हिम बना कर।

१. अनन्ता संग्राहकरक्तपित्तप्रशमनानाम् (च० सू० अ० २५)

अथ मुण्डी महामुण्डी च। तयोर्नामगुणानाह

मुण्डी भिक्षुरपि प्रोक्ता श्रावणी च तपोधना।
श्रवणाह्वा मुण्डतिका तथा श्रवणशीर्षका ॥ २१५ ॥
महाश्रावणिकाऽन्या तु सा स्मृता भूकदम्बिका।
कदम्बपुष्पिका च स्यादव्यथाऽतितपस्विनी ॥ २१६ ॥
मुण्डतिका कटुः पाके वीर्योष्णा मधुरा लघुः।
मेध्या गण्डापचीकृच्छ्रकृमियोन्यर्तिपाण्डुनुत् ॥ २१७ ॥
श्लीपदारुच्यपस्मारप्लीहमेदोगुदार्तिहृत्।
महामुण्डी च तत्तुल्या गुणैरुक्ता महर्षिभिः ॥ २१८ ॥

मुण्डी तथा महामुण्डी के नाम व गुण—मुण्डी, भिक्षु, श्रावणी, तपोधना, श्रवणाह्वा, मुण्डतिका और श्रवणशीर्षका इतने नाम 'मुण्डी' के हैं। महामुण्डी के नाम-महाश्रावणिका, भूकदम्बिका, कदम्बपुष्पिका, अव्यथा और अतितपस्विनी ये सब हैं। **मुण्डी**-विपाक में कटु, स्वाद में मधुर रसयुक्त, उष्णवीर्य, लघु, मेधा के लिये हितकर एवं गलगण्ड, अपची, मूत्रकृच्छ्र, कृमिरोग, योनिरोग, पाण्डु, श्लीपद, अरुची, अपस्मार (मिर्गी), प्लीहा, मेदरोग तथा गुदा सम्बन्धी पीड़ा (अर्श) को दूर करने वाली होती है। महामुण्डी-इसे महर्षियों ने गुणों में 'मुण्डी' के समान ही बतलाया है ॥ २१५–२१८ ॥

११३ मुण्डी

हि०-मुण्डी, गोरखमुण्डी। **बं०**-मुरमुरिया, छागल नादी। **म०**-मुण्डी, बरस बोडी। **गु०**-गोरखमुण्डी, बोडीयोकल्हार। **ते०**-बोडे सोंर, बोडा तरपु। **ता०**-कोट्टक, कोट्टक करण्डई। **मला०**-मिरनगनी, अट्टकामन्नी। **अ०**-कमदर्युस्। **फा०**-रानदरूम्मी-तल्ख। **ले०**-*Sphaeranthus indicus Linn.* (स्फिरॅन्थस् इण्डिकस् लिन.)। Fam. Compositae (कॉम्पोझिटी)।

यह प्रसरजाति की वनौषधि भारतवर्ष के प्रायः सब गरम प्रान्तों में, हिमालय में कुमाऊं से सिकम ५००० फीट की ऊँचाई तक तथा आसाम, सिलहट एवं दक्षिण की ओर सिलोन तक पाई जाती है। जलाशयों के समीप जहाँ वर्षा का पानी इकट्ठा होकर शरद ऋतु में सूख गया हो, धान, जव, गेहूँ, चने आदि के खेतों में, चैत्र, वैशाख के महीने में बहुलता से देखने में आती है।

यह प्रतिवर्ष वर्षा के बाद जाड़े के दिनों में उत्पन्न होती है और बरसात का पानी पड़ने पर सड़-गल कर नष्ट हो जाती है। इसका क्षुप-सुगन्धित, अनेक शाखाओं से युक्त एक फुट तक ऊँचा होता है किन्तु डण्डियों के कोमल होने से प्रायः भूमि की ओर नत होकर प्रसररूप में १–२ फीट के घेरे में फैल जाता है। शाखायें-कोमल, किञ्चित रोमयुक्त तथा सपक्ष होती हैं। **पत्ते**-अवृन्त, आगे लट्वाकार या आगे प्रासवत्, दन्तुर, आधार की तरफ संकुचित होकर काण्ड सम्पृक्त, मृदुरोमश तथा १–२ इञ्च लम्बे होते हैं। **मुण्डक**-पत्राभिमुख, किरमिजीरंग के, विषमलिंग, संयुक्त, ·५–·७५ इञ्च लम्बे, व्यूहाक्ष दीर्घित और अधःपत्रावलि के पत्र रेखाकार तथा तीक्ष्णाग्र होते हैं।

इसके पंचांग का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

भेद—बंगाल तथा सिलहट की तरफ दलदल वाले स्थानों में स्फिरॅन्थस् अफ्रिकॅनस लिन S. africanus Linn.) नामक एक भेद पाया जाता है जिसमें काण्ड के ऊपर के पक्षों पर

रोम नहीं होते, पत्र १–३ इञ्च लम्बे, मुण्डक ¼–½ इञ्च तथा अधःपत्रावलि के पत्र बहुत छोटे तथा तीक्ष्ण नहीं होते।

दक्षिण में मैसूर, त्रावनकोर की तरफ धान के खेतों में एक भेद स्फिरॅन्थस् ॲमेरन्थॉइडिस् (S. amaranthoides) पाया जाता है जिसमें काण्ड कभी-कभी छोटी उंगली बराबर मोटा किन्तु छोटा, शाखायें–८–१२ इञ्च, पत्ते–२–४ इञ्च लम्बे तथा मुण्डक ½–१ इञ्च बड़े होते हैं। संभवतः यह दूसरा भेद, **महामुण्डी** हो सकता है।

रासायनिक संगठन—इसमें स्फेरेन्थाईन (Sphaeranthine) नामक एक कडुवा क्षाराभ तथा ताजे पुष्पित पौधे में ·०२२% एक उड़नशील तैल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—मुंडी दीपन, मूत्रजनन, आनुलोमिक, रक्तशोधक, रसायन, बल्य एवं कृमिघ्न है। इसकी जड़ एवं बीज कृमिघ्न हैं। पुष्प–रसायन, शीतल तथा बल्य हैं। फल या पंचांग मछलियों के लिये विषैला है। इसमें का तैल त्वचा एवं मूत्र द्वारा उत्सर्गित होता है।

(१) मूत्रेन्द्रिय विकार में इससे लाभ होता है। सम्पूर्ण मूत्र मार्ग का शोधन होकर बार-बार पेशाब होना कम होता है। परमा तथा जीर्ण अष्ठीला शोथ (Chronic Prostatitis) में इससे लाभ होता है। इसमें इसका अर्क भी देते हैं।

(२) त्वचा के रोगों में इसका लेप करते हैं तथा इसके क्वाथ को पिलाते हैं। वातरक्त में इसका चूर्ण मधु एवं घृत के साथ देते हैं तथा अनुपान में गुडूची क्वाथ पिलाते हैं। गात्र दौर्गन्ध्य में मुण्डीचूर्ण काँजी के साथ देते हैं। बार-बार फोड़े फुन्सी होने में इससे लाभ होता है।

(३) ग्रंथि, गण्डमाला, अपची, दौर्बल्य, श्लीपद, अर्श आदि जीर्ण रोगों में इसको अधिक देने से लाभ होता है। इनमें इसका स्वरस पिलाते हैं।

मात्रा—पुष्प चूर्ण १–२ माशा; स्वरस १–२ तोला।

अथापामार्गः [चिरचिरा] । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

अपामार्गस्तु शिखरी ह्यधःशल्यो मयूरकः ।
मर्कटी दुर्ग्रहा चापि किणिही खरमञ्जरी ॥ २१९ ॥
अपामार्गः सरस्तीक्ष्णो दीपनस्तिक्तकः कटुः । पाचनो रोचनश्छर्दिकफमेदोऽनिलापहः ।
निहन्ति हृद्रुजाध्मानार्शःकण्डूशूलोदरापचीः ॥ २२० ॥

'चिरचिरा' के नाम तथा गुण—अपामार्ग, शिखरी, अधःशल्य, मयूरक, मर्कटी, दुर्ग्रहा, किणिही, खरमञ्जरी इतने नाम 'चिरचिरा' के हैं। **चिरचिरा**-तिक्त तथा कटु रसयुक्त, सारक, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, पाचक, रोचक (भोजन में रुचि उत्पन्न करनेवाला) एवं वमन, कफ, मेद, वायु, हृद्रोग, आध्मान (अफरा), अर्श, कण्डू, शूल, उदररोग और अपची को दूर करता है॥

११४ चिरचिरा।

हि०–लटजीरा, चिचिरी, चिरचिरा, चिचड़ा। **म०**–आघाड़ा। **बं०**–आपांग। **गु०**–अघेड़ो। **क०**–उत्तरणी। **ते०**–अपामार्गमु। **सा०**–आंधी झाड़ो, ओंगा। **ता०**–नायु रुवि। **मला०**–वलियकटलाटि। **फा०**–खारवाझ गूनह। **अ०**–अत्कुमह। **अं०**–The Prickly-Chaff Flower (दी प्रिक्ली-चॅफ फ्लावर)। **ले०**–*Achyranthes aspera, Linn.* (एचिरेन्थिस् एस्पेरा लिन.)। **Fam. Amaranthaceae** (एमेरेन्थेसी)।

यह शहर या गाँव के बाहर बागों या जंगलों में बिना बोए ही उत्पन्न होता है। यह प्रायः भारतवर्ष के सब प्रान्तों में ३००० फीट तक पाया जाता है। इसका **क्षुप**–स्वावलंबी, १–३ फीट ऊँचा तथा शाखायें कुछ आरोहणशील एवं पर्वों के ऊपर मोटी होती हैं। **पत्ते**–चौलाई के पत्तों की तरह कुछ गोल, अंडाकार, नोकीले एवं १–५ इञ्च लंबे होते हैं। इसके पत्तों और कांड पर बहुत सूक्ष्म सफेद-सफेद रोम होते हैं। पुष्पदंड लगभग डेढ़ फुट तक लम्बा होता है उस पर कुछ लाल गुलाबी पीलापन लिये हुए फूल निकलते हैं। उसी दंड पर काँटेदार छोटे-छोटे फल उल्टे लगते हैं। ये काँटेदार फल कपड़े पर चिपट जाते हैं इसलिए कहीं-कहीं इसे 'कुत्ता' नाम से भी पुकारते हैं। जब फल पक जाते हैं तो इनके अन्दर से चावल निकलते हैं। इसके मूल, बीज, पत्र एवं पंचांगक्षार का चिकित्सा में प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके पत्र में २४, शाखाओं में ८ तथा मूल में ८½% राख रहती है। इसमें यवक्षार बहुत पाया जाता है जो पत्तों में २१½, शाखाओं में ३८ तथा मूल में २८½% रहता है। इसके अतिरिक्त चूना, सोराखार, नमक, लौह तथा गन्धक आदि अन्य द्रव्य इसमें पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—अपामार्ग, उष्ण, तिक्त, कटु, तीक्ष्ण, दीपन, पाचन, पित्तविरेचक, वामक, मूत्रजनन, कफघ्न, विषघ्न, कृमिघ्न, अम्लतानाशक एवं शिरोविरेचन (बीज) है।

इसका प्रयोग कफ, मेद, वात, अर्श, आनाह, शूल, जलोदर, शोफ, अपची, व्रण, त्वचा के विकार, कुष्ठ एवं सर्पादि के विष में करते हैं।

(१) कुपचन, आमाशय की शिथिलता, पीड़ा एवं हृल्लास में अपामार्ग, अन्य कडुवे पदार्थों के साथ भोजन के पूर्व देते हैं जिससे पाचक रस की वृद्धि होती है तथा शूल कम होता है। भोजनोपरांत देने से अम्लता कम होती है तथा श्लेष्मा का विलयन होता है। इसमें भोजन के २–३ घण्टे बाद गरम-गरम क्वाथ देते हैं। इसका यकृत पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। इससे पित्तवाहिनी नलिका का शोथ कम होकर पित्तस्राव उचित होता है। पित्ताश्मरी तथा अर्श में इससे अच्छा लाभ होता है। अर्श में इसकी जड़ को तण्डुलोदक के साथ पीसकर मधु मिलाकर देते हैं। रक्तार्श में बीज का लेप भी उपयोगी होता है।

(२) मूत्रेन्द्रिय विकारों में इसके साथ मुलेठी, गोखरू तथा पाठा का उपयोग करते हैं। वृक्कजन्य जलोदर में इससे लाभ होता है। इससे मूत्र की अम्लता कम होने से तथा इसका दाहशामक प्रभाव होने के कारण परमा, बस्तिशोथ, वृक्कशोथ तथा अश्मरी में इसको देते हैं। अश्मरी में इसका क्षार भेड़ के मूत्र के साथ दिया जाता है।

(३) जीर्ण कफ विकारों में इसका क्षार बहुत ही लाभदायक होता है। इससे गाढ़ा कफ पतला होकर निकलने लगता है। इसमें चतुःषष्टि पिप्पली, अतीस, कुपीलु, घृत एवं मधु के साथ अपामार्गक्षार दिया जाता है।

(४) सर्पविष, वृश्चिकदंश, मूषिक विष तथा पागल कुत्ते के काटने पर इसका उपयोग करते हैं। इनमें मूल, पंचांग या बीज का लेप तथा मूल पीसकर पिलाते है।

(५) आँख की फूली में इसकी जड़ को मधु के साथ पीसकर अंजन कराते हैं। दन्तशूल में पत्रस्वरस मसूड़ों पर मलते हैं तथा दाँतों के गढ़ों में क्षार भरते हैं। इससे दतुअन करने से लाभ होता है। बाधिर्य, कर्णशूल तथा कर्ण नाद में इससे सिद्ध तैल कान में डालते हैं। सन्धिशोथ में पत्ते

को पीसपर गरमकर बाँधते हैं। इसके पंचांग के क्वाथ से स्नान कराने से कण्डू दूर होती है। सद्यः क्षत में खून रोकने के लिये इसका पत्रस्वरस लगाते हैं।

मात्रा—मूल तथा बीज ½–१ तोला; क्षार ४–८ रत्ती; मूल क्वाथ १½–५ तोला।

अथ रक्तापामार्गः [लाल चिरचिरा]। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

रक्तोऽन्यो वशिरो वृत्तफलो धामार्गवोऽपि च।
प्रत्यक्पर्णी केशपर्णी कथिता कपिपिप्पली ॥ २२१ ॥
अपामार्गोऽरुणो वातविष्टम्भी कफहृद्धिमः। रूक्षः पूर्वगुणैर्न्यूनः कथितो गुणवेदिभिः ॥

'लाल चिरचिरा' के नाम तथा गुण—दूसरा जो 'लाल चिरचिरा' है उसके नाम—वशिर, वृत्तफल, धामार्गव, प्रत्यक्पर्णी, केशपर्णी, कपिपिप्पली ये सब हैं। लाल चिरचिरा-वायु को स्तब्ध करने वाला, कफनाशक, शीतवीर्य तथा रूक्ष होता है। इसे द्रव्यगुण के जानने वालों ने उपर्युक्त चिरचिरा के गुणों से न्यून गुणवाला बताया है ॥ २२१–२२२ ॥

११५ लाल चिरचिरा

हि०—लाल ओंगा; लाल चिरचिरा। बं०—रक्तापांग। म०—तांबड़ा आघाड़ा, लाल आगाड़ा। गु०—रातो अघेड़ो।

लाल चिरचिरे का क्षुप उक्त (सफेद) चिरचिरे के समान ही होता है। पत्ते इत्यादि भी एक ही समान होते हैं। परन्तु पत्ते पर लाल धब्बे होते हैं और काण्ड पर भी कुछ ललाई होती है। इसके पत्ते सफेद की अपेक्षा कुछ मोटे और बड़े होते हैं और बीज कुछ पतले होते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से इसकी एक अन्य जाति (Species), ए. बाइडेन्टेटा ब्लूम (A. bidentata Blume) का उल्लेख मिलता है किन्तु वह रक्त भेद ही है ऐसा नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वानों ने एक भेद (Variety), ए. रुब्रो. फुस्का (A. rubro-fusca) का उल्लेख किया है।

अथापामार्गफलगुणानाह

अपामार्गफलं स्वादु रसे पाके च दुर्जरम्। विष्टम्भि वातलं रूक्षं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥

'चिरचिरा' के फल का गुण—यह रस तथा विपाक में मधुर रस युक्त, दुर्जर (जल्दी हजम नहीं होने वाला), विष्टब्धताकारक, वातजनक, रूक्ष तथा रक्तपित्त को दूर करने वाला होता है ॥ २२३

अथ कोकिलाक्षः (तालमखाना)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

कोकिलाक्षस्तु काकेक्षुरिक्षुरः क्षुरकः क्षुरः। भिक्षुः काण्डेक्षुरप्युक्त इक्षुगन्धेक्षुबालिका ॥
क्षुरकः शीतलो वृष्यः स्वाद्वम्लः पिच्छिलस्तथा।
तिक्तो वातामशोथाश्मतृष्णादृष्ट्यनिलास्रजित् ॥ २२५ ॥

'तालमखाना' के नाम और गुण—कोकिलाक्ष, काकेक्षु, इक्षुर, क्षुरक, क्षुर, भिक्षु, काण्डेक्षु, इक्षुगन्धा और इक्षुबालिका ये सब नाम तालमखाना के हैं। तालमखाना-शीतवीर्य, वृष्य, मधुर,

अम्ल तथा तिक्त रसयुक्त, पिच्छिल एवं वात, आम, शोथ, अश्मरी (पथरी), तृषा, दृष्टि रोग और वातरक्त को दूर करने वाला होता है ॥ २२४–२२५ ॥

११६ तालमखाना

हि०—तालमखाना। बं०—कुलियाखारा, कुलेखाड़ा। गु०—एखरो। म०—तालीखाना, कोलसुन्दा। ते०—गोलिमिडि केट्ठ, निर्गुविवेर। क०—कुलुगोलिके, बलिकेल। ता०—निरमुल्ली। ले०—*Hygrophila spinosa, T. And.* (हाइग्रोफिला स्पाइनोसा)। Syn. Asteracantha longifolia Nees (एस्टेराकेन्था लाँगिफोलिआ नीज)। Fam. Acanthaceae (एकेन्थेसी)।

तालमखाना-क्षुपजाति की वनस्पति प्रायः समस्त भारत में ताल, तलैया में जल के निकट उत्पन्न होती है। इसके छोटे छोटे क्षुप-गूमा के समान पर गूमा से बड़े, गठीले और कहीं कहीं २–२½ हाथ तक ऊँचे देखे जाते हैं। गाँठों के चारों ओर प्रायः १ इञ्च लम्बे पीले रङ्ग के तीक्ष्ण काँटे होते हैं, जो प्रायः ६–६ की संख्या में चक्रिक क्रम से निकले रहते हैं। पत्ते-अवृन्त, गाँठों पर चक्रिक क्रम में ६ की संख्या में जिनमें से बाहरी दो पत्ते अधिक लम्बे (७″ × ०.७″), आयताकार-भालाकार या अभिभालाकार तथा भीतरी ४ पत्ते १½ इञ्च लंबे होते हैं। पुष्प-गाँठों पर समूहबद्ध होकर ४ जोड़े में नीले बैंगनी रङ्ग के करीब १½ इञ्च लम्बे तथा द्वयोष्ठ होते हैं। फल-पतला, चिपटा ८ मि० मि० लंबा, रेखाकार, आयताकार नुकीला तथा ४–८ बीजों से युक्त होता है। बीज-छोटे रक्ताभ और रोमश होते हैं। बीजों को जल में भिगाने से लुआब बनता है।

इसके बीज, मूल, पत्र एवं पंचांग के क्षार का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में २१% एक पीले रङ्ग का स्थिर तैल पाया जाता है। इसके अतिरिक्त डायास्टेस (Diastase), लाइपेस (Lipase) एवं प्रोटिएस (Protease) ये द्रव्य भी इसमें होते हैं।

गुण और प्रयोग—यह शीतल, मूत्रजनन, मधुर, स्निग्ध, शुक्रशोधन, स्तन्यजनन, संतर्पण, बल्य एवं वृष्य हैं। इसकी जड़ तथा बीजों में विशेष रूप से मूत्रल गुण है। बीजों में रहने वाले पोटाशियम् के लवण एवं पिच्छिल द्रव्य के कारण इसका मूत्रक प्रभाव पड़ता है।

इसका उपयोग जलोदर, यकृतोदर, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, परमा, बस्तिशोथ कामला, वातरक्त, एवं जननेन्द्रिय-विकारों में किया जाता है। यकृत में अवरोध उत्पन्न होने के कारण उत्पन्न शोथ में इससे लाभ होता है।

(१) परमा तथा बस्तिशोथ में इसके मूल का क्वाथ देते हैं जिससे मूत्र की वृद्धि होती है तथा वेदना कम होती है। इसमें बीजों को भी दूध के साथ दिया जाता है।

(२) यकृतोदर में मूल का क्वाथ या पञ्चांग की राख देते हैं।

(३) शोथ में भी इसकी राख गोमूत्र या जल के साथ देते हैं।

(४) वाजीकरण के लिये केवाँच एवं इसके बीजों का शर्करायुक्त चूर्ण धारोष्ण दुग्ध के साथ देते हैं।

(५) कास में पत्ते उपयोगी होते हैं तथा सन्धि-पीड़ा एवं परमा में इसका लेप किया जाता है।

मात्रा—मूलक्वाथ ४ तो०; बीजचूर्ण २–४ माशा; क्षार २–५ र०; भस्म १–२ माशा।

अथास्थिसंहारः (हड़संहारी) । तस्य नामानि गुणांश्चाह

ग्रन्थिमानस्थिसंहारीवज्राङ्गीवाऽस्थिश्रृङ्खला । अस्थिसंहारकः प्रोक्तोवातश्लेष्महरोऽस्थियुक् ॥
उष्णः सरः कृमिघ्नश्चदुर्नामघ्नोऽक्षिरोगजित् । रूक्षः स्वादुर्लघुर्वृष्यः पाचनः पित्तलः स्मृतः ॥

हड़संधारी के नाम व गुण—ग्रन्थिमान्, अस्थिसंहारी, वज्राङ्गी, अस्थिश्रृंखला, ये सब हड़संधारी के नाम हैं। हड़संधारी—वात-कफनाशक, टूटी हुई हड्डियों को जोड़नेवाली, उष्णवीर्य, सारक तथा कृमि, अर्श (बवासीर) और नेत्र रोग को दूर करने वाली, रूक्ष, स्वादिष्ट, लघु, वृष्य, पाचक और पित्तजनक होती है ॥ २२६-२२७ ॥

अथ तद्वटिकाया निर्माणविधिं गुणांश्चाह

काण्डं त्वग्विरहितमस्थिश्रृङ्खलाया-माषार्द्धद्विदलमकञ्चुकं तदर्द्धम् ।
संपिष्टं सुतनु ततस्तिलस्य तैले-संपक्वं वटकमतीव वातहारि ॥ २२८ ॥

इसकी वटिका बनाने की विधि तथा गुण—हड़संधारी के टुकड़ों के छिलके को दूर कर उसमें छिल्का अलग की हुई उरद के दाल को आधा परिमाण मिलाकर पीसने के बाद टिकिया बनाकर तिल के तेल में पका डाले, यह टिकिया वात को हरण करने वाली होती है ॥ २२८ ॥

११७ हड़संधारी

हि०-हड़जोड़, हड़संधारी, हड़जोड़ी, हड़जोरवा। बं०-हाड़भांगा, हाड़जोड़ा। गु०-हाड़ सौंकल । म०-कांडवेल । क०-मंगरवल्ली । तै०-नाल्लेरु, नुल्लेरोतिगे । ता०-पेरंडै । ले०-*Vitis quadrangularis, Wall.* (वाइटिस् कॉड्रैन्ग्युलेरिस्, वाल.); Syn. Cissus quadrangularis, Linn. (सिसस् कॉड्रैन्ग्युलेरिस्, लिन.) । Fam. Vitaceae (वाइटेसी) ।

हड़जोड़ी—लता जाति की वनौषधि प्रायः गरम प्रदेशों में अधिक होती है। यह वाटिकाओं आदि में लगाई हुई अधिक पायी जाती है।

जिस प्रकार लतायें वृक्षों की डालियों से लिपटती हुई फैलती हैं उस प्रकार यह नहीं बढ़ती पर वृक्षों का सहारा ले उस पर चढ़ती और लटकती रहती हैं। काण्ड-चौपहल, हरा, बीच-बीच में सन्धियों से युक्त एवं मांसल होता है। संधियों पर सूत्र होते हैं और नवीन काण्ड संधियों पर तन्तुओं के विपरीत दिशा में पत्र होते हैं। पत्र-एकान्तर, छोटे वृन्तवाले, हृदत चौड़े, १-२½ इञ्च बड़े, मोटे, दन्तुर, उपपत्रयुक्त एवं संख्या में अल्प रहते हैं। पुष्प-छोटे तथा हरित-श्वेतवर्ण के आते हैं। फल-गोल, करीब ६ मि० मि० बड़े, पकने पर लाल तथा एक बीजयुक्त होते हैं। बीज-हलके भूरे रंग के, ५ मि० मि० बड़े तथा चिकने होते हैं। दक्षिण की तरफ कोमल काण्ड एवं पत्तों का साग बना कर खाते हैं। काण्ड तोड़ने पर बहुत रस निकलता है। इसके काण्ड एवं पत्तों का उपयोग चिकित्सा में किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें कॅल्शियम् ऑक्जॅलेट् (Calcium oxalate) एवं १०० ग्राम ताजे पौधे में २६७ मि० ग्रा० कॅरोटीन (Carotene); १०० ग्रा० कोमल काण्ड में ३९८ मि० ग्रा०, नीचे के भाग में २३२ मि० ग्रा० तथा ताजे स्वरस में ४७९ मि० ग्राम विटामिन सी (Vitamin C) की मात्रा पाई जाती है।

गुण और प्रयोग—यह रूक्ष, वात-कफशामक, रक्तशोधक, दीपन, पाचन, अर्शोघ्न, वृष्य, सन्धानीय एवं रक्तसंग्राहक है।

इसका प्रयोग अस्थिभंग, पाचनविकार, स्कर्वी (Scurvy), आर्तवविकार, तमकश्वास एवं रक्तदोष में किया जाता है।

(१) कुपचन में कोमल काण्ड एवं पत्तों का शाक खिलाते हैं या इनको बन्द पात्र में जलाकर उसकी राख खिलाते हैं।
(२) आर्तव की अधिकता में इसका स्वरस, गोपीचन्दन, घृत एवं मधु खिलाते हैं।
(३) तमकश्वास में काण्ड को पीसकर देते हैं।
(४) अस्थिभंग में इसका बाह्याभ्यन्तर प्रयोग किया जाता है।
(५) कर्णस्राव एवं नासा से रक्तस्राव होने पर इसका स्वरस डालते हैं।
मात्रा—स्वरस १ से २ तोला।

अथ कुमारी (घीकुआँर) । तस्या नामगुणानाह

कुमारी गृहकन्या च कन्या घृतकुमारिका । कुमारी भेदनी शीता तिक्ता नेत्र्या रसायनी ॥
मधुरा बृंहणी बल्या वृष्या वातविषप्रणुत् । गुल्मप्लीहयकृद्वृद्धिकफज्वरहरी हरेत् ॥
ग्रन्थ्यग्निदग्धविस्फोटपित्तरक्तत्वगामयान् ॥ २३० ॥

'घीकुआर' के नाम तथा गुण—कुमारी, गृहकन्या, कन्या और घृतकुमारिका ये नाम 'घीकुआर' के हैं। घीकुआर—मल को भेदन करने वाली, शीतल, तिक्त तथा मधुर रसयुक्त, नेत्रों के लिये हितकर, रसायन, बृंहण, बलकारक, वृष्य एवं वात, विष, गुल्म, प्लीहा, यकृत की वृद्धि, कफज्वर, ग्रन्थि, अग्निदग्ध (आग से जलजाना), विस्फोटक, पित्त, रक्तविकार और चर्मरोग को नाश करने वाली होती है ॥ २२९-२३० ॥

११८ घीकुआँर

हि०-घीकुआँर, ग्वार पाठा, घीग्वार, कारपाठी । बं०-घृतकुमारी । म०-कोरफड, कोरकांड । गु०-कुंवार । क०-लोलिसर । तै०-कलबन्द । ता०-कत्ताले । फा०-दरख्ते सिब्र । अ०-तसब्बार अलसी । ले०-*Aloe barbadensis, Mill.* (एलो बार्बाडेन्सिस् मिल.) । Syn. A. vera Tourn. ex Linn. (एलो वेरा) । Fam. Liliaceae (लिलिएसी) ।

कुमारीसार—ऐलेयक, कृष्ण बोल । हि०-एलुआ, एलुवा, मुसब्बर । म०-कालाबोळ, एलिया । बं०-मोषब्बर । गु०-एळियो । फा०-शबयार । अ०-सिब्र । अं०-Common Indian Aloe (कॉमन् इण्डियन् एलो); Curacao Aloe (क्युराकाओ एलो); Barbados Aloe (बार्बाडोस् एलो) । Musabbar (मुसब्बर) ।

यह भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र होती है। इसका क्षुप-छोटा, बहुवर्षायु, मांसल एवं १ से २ फीट ऊँचा होता है। पत्ते-मांसल, मोटे, हरे, भालाकार, सीधे फैले हुये, कुछ नतोदर, १ से २ फीट लम्बे ४ इञ्च तक चौड़े एवं दन्तुर होते हैं। इनके भीतर घी के समान पीताभ गूदा रहता है। पुष्प-पत्तों के बीच से लम्बा पुष्पदण्ड निकलता हैं जिसमें रक्ताभ पीत पुष्प आते हैं।

भारतवर्ष में इसके २-३ भेद (Varieties) पाये जाते हैं। दक्षिण एवं मध्यप्रदेश में होने वाले के पत्ते आधार की तरफ नीलारुण रंग के एवं उनके कांटे कम दृढ होते हैं। मद्रास से रामेश्वरम् तक समुद्री किनारे पर होने वाले क्षुप छोटे तथा उनके दांत सामान्य दन्तुर (Dentate) होते हैं। काठियावाड के किनारे होने वाले क्षुप से जाफराबादी मुसब्बर प्राप्त किया जाता है। इसे गलती से कुछ लोगों ने ए० अबीसीनिया कहा है।

इसके पत्तों को काटने से एक पीले रंग का पिच्छिल रस निकलता है जिसे संग्रह करके गाढ़ा कर लेते हैं। शीत होने पर यह जम जाता है जिसे एलुआ कहते हैं। विभिन्न स्थानों से प्राप्त घीकुवार तथा गाढ़ा बनाने की भिन्न विधि के परिणामस्वरूप यह कई प्रकार का मिलता है। यदि सूर्यताप से या हलकी आंच पर रस गरम करके बनाया जाता है तो यह कुछ चिकना तथा अपारदर्शक बनता है जिसे यकृताभ (Hepatic) एलुवा कहते हैं। किन्तु यदि रस को तीव्र अग्नि पर जल्दी से गाढ़ा करते हैं तो यह कुछ पारदर्शक बनता है जिसे ग्लासी या विट्रिअस (Glassy or vitreous) एलो कहते हैं। इसमें एक प्रकार की विशिष्ट गंध आती है तथा इसका स्वाद कड़ुआ एवं हृल्लासकारक होता है।

एलुआ के भेद—ब्रिटिशफार्माकोपिआ में चार प्रकार का एलुआ राजमान्य है।

(१) Curacao or Barbados aloes (क्यूराकाओ या बार्बाडोस् एलो)—यह चाकलेटी बादामी रङ्ग का होता है जो इसके भेद Var. officinalis (ऑफिसिनॅलिस्) से बनाते हैं।

(२) Socotrine aloes (सोकोट्राइन एलो)—यह A. perryi (ए० पेरी) से प्राप्त होता है तथा इसका रंग पीताभ या कृष्णाभ बादामी होता है।

(३) Zangibar aloes (जंजिबार एलो)—यह भी ए० पेरी से प्राप्त किया जाता है किन्तु इसका वर्ण यकृताभ बादामी होता है।

(४) Cape aloes (केप एलो)—यह A. ferox (ए० फेरॉक्स) से प्राप्त करते हैं तथा इसका वर्ण गहरा बादामी या हरिताभ बादामी रहता है। इन चार में से यही लाल स्वरूप का होता है।

इनके अतिरिक्त केप एलो सदृश नेटाल एलो, अरबी कोका-एलो एवं जाफर बादी एलो आदि भेद भी पाये जाते हैं।

परीक्षा एवं प्रमाण—इसमें काला कत्था, पत्थर या लोहा आदि की मिलावट करते हैं। मद्यसारीय घोल की नील लोहितातीत प्रकाश में परीक्षा करने पर इसके घोल का वर्ण गहरा बादामी एवं कत्थे सा काला दिखाई देता है। एलुआ में आर्द्रता ११% से कम, राख ४% से कम, मद्यसार में अविलेय भाग १०% से कम एवं जल में विलेय भाग ५०% से अधिक होता है। शोरे के तेजाब में इसका चूर्ण डालने से बादामी या रक्ताभ बादामी घोल बनता है तथा फेन निकलता है।

रासायनिक संगठन—एलुआ में एलोइन (Aloin) नामक एक कार्यकारी तत्त्व रहता है जो कई ग्लूकोसाइड का मिश्रण है। एलोइन की मात्रा पहले में ३०%, दूसरे तथा तीसरे भेद में उससे कम एवं चौथे में १०% रहती है। एलोइन का मुख्य भाग Berbaloin (बार्बालोइन) नामक हलका पीला ग्लूकोसाइड है जो जल में विलेय होता है। इनके अतिरिक्त Isobarbaloin (आइसोबार्बालोइन) जो केवल क्युराकाओ एलो में रहता है एवं B barbaloin (बिटा बार्बालोइन), Aloe-emodin (एलो एमोडिन), राल तथा जल में घुलनशील कुछ पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण एवं प्रयोग—घीकुआँर तिक्त, मधुर, शीतवीर्य, भेदन, दीपन, पाचन, बल्य, शोथहर, व्रणरोपण, नेत्र्य एवं शोणितास्थापन है।

एलुआ भेदन, उष्ण, तीक्ष्ण, आर्तवजनन एवं कृमिघ्न है। अल्पमात्रा में यह दीपन-पाचन, तिक्त एवं बल्य है। इससे यकृत की क्रिया में सुधार होकर अन्न का सात्म्यीकरण ठीक होता है। अधिक मात्रा (१–२ रत्ती) से पेट में मरोड़ होकर १०–१२ घंटे में विरेचन होता है। इसका

प्रभाव बड़ी आंत पर होता है, जिससे कटिस्थ अंगों जैसे गर्भाशय, गुदा तथा अन्य अवयवों में रक्ताधिक्य होता है।

(१) विरेचक गुण के कारण विबन्ध में इसका प्रयोग अन्य वातानुलोमक एवं उद्वेष्टन निरोधी औषधियों के साथ करते हैं। गर्भिणी या स्तनपान कराने वाली स्त्रियों में इसका प्रयोग नहीं करते। बाजार में बिकने वाली अनेक विरेचक औषधियों में यह रहता है। घीकुआँर के रस का भी सैन्धव एवं हरिद्रा के साथ विबन्ध, गुल्म, पांडु, पाचनविकार तथा यकृत प्लीहा रोगों में उपयोग करते हैं।

(२) स्त्रियों के विकार जैसे अनार्तव, पांडु, विबंध में इसको देने से लाभ होता है।

(३) इसके स्वरस का बाह्य लेप स्तनशोथ, नेत्राभिष्यन्द, चर्मविकार, अर्श एवं व्रण में हरिद्रा के साथ करने से शोथ एवं दाह कम होता है। सूत्रकृमि में एलुवा की बस्ति देते हैं।

मात्रा—स्वरस १–२ तोला; एलुवा १–२ रत्ती।

पुनर्नवा

पुनर्नवा के दो भेद-रक्त एवं श्वेत, निघण्टुओं में मिलते हैं। रा. नि. में एक नील भेद भी लिखा है, जो दिखलाई नहीं देता। दो भिन्न वर्गों की दो वनस्पतियाँ Boerhaavia diffusa (बोएर्हॅविया डिफ्यूजा) एवं Trianthema portulacastrum (ट्रायन्थेमा पोर्टुलेकॅस्ट्रम्-पथरी) का उपयोग पुनर्नवा के नाम से हो रहा है। इनमें से प्रथम को अधिकांश विद्वानों ने रक्तपुनर्नवा माना है जो उचित नहीं है। वास्तव में प्रथम में ही रक्तपुष्प एवं श्वेतपुष्प के भेद से दो भेद पाये जाते हैं तथा द्वितीय में भी श्वेतपुष्प एवं रक्तपुष्प भेद देखे जाते हैं। ऐसी स्थिति में केवल बोएर्हॅविया को रक्त पुनर्नवा एवं ट्रायन्थिमा (पथरी) को श्वेतपुनर्नवा मानना उचित नहीं है। रा. नि. में पुनर्नवा के भेदों के अतिरिक्त वर्षाभू एवं वसुक[1] नामों से दो अलग वनस्पतियों का उल्लेख किया गया है। पुनर्नवा के पर्यायों में क्षुद्रवर्षाभू यह पर्याय आया हुआ है। श्री ठा० बलवन्त सिंह जी पुनर्नवा और वर्षाभू दो भिन्न वनस्पतियाँ मानते हैं न कि पर्याय। इस सम्बन्ध में 'बिहार की वनस्पतियाँ' नामक पुस्तक में वे लिखते हैं—

'मेरे मत से पुनर्नवा और वर्षाभू दो सर्वथा भिन्न वनस्पतियाँ हैं परन्तु दोनों के रूप और गुणों में बहुत कुछ साम्य होने से निघण्टुकारों ने दोनों में बहुत गड़बड़ कर दिया है। अनेक स्थान के वैद्य आज भी इसे ही (ट्रायन्थिमा) पुनर्नवा और कुछ इसे केवल श्वेतपुनर्नवा मानते हैं। स्मरण रखना चाहिये कि श्वेत और रक्त भेद पुनर्नवा और वर्षाभू दोनों में ही होते हैं। अतः रक्तपुनर्नवा और श्वेतपुनर्नवा Boerhaavia (बोएर्हॅविया) जातियों को और रक्तवर्षाभू तथा श्वेतवर्षाभू Trianthema (ट्राएन्थेमा–पथरी) की जातियों को कहना चाहिये। वर्षाभू की ही किसी जाति को वसुक–मानना चाहिये।'

उपर्युक्त स्पष्टीकरण के आधार पर The Wealth of India (Raw Materials) Vol I नामक पुस्तक में उल्लिखित श्री चक्रवर्ती का यह मत कि B. diffusa को रक्तपुनर्नवा एवं T. portulacastrum को श्वेत पुनर्नवा मानना चाहिये उचित नहीं मालूम पड़ता। दोनों वनस्पतियों में गुणों में कुछ समता पाई जाती है जिस कारण संभव है निघण्टुकारों ने दोनों नामों को पर्याय में दिया हो। निघण्टुकारों ने वर्ण के आधार पर श्वेत एवं रक्त के गुण अलग लिखे हैं या इन दो उपर्युक्त भेदों के अलग-अलग गुण दिये हैं यह कहना कठिन है।

---

१. वर्षाभूवसुकौ वर्णकफमान्द्यानिलापहौ। शाके रूक्षतरौ गुल्मप्लीहशूलापहारकौ॥

वर्षाभू (पथरी) केवल बरसात में उगती है तथा शीतकाल तक सूख जाती है इसी कारण इसे वर्षाभू कहा गया है। पुनर्नवा यद्यपि वर्षाकाल में अधिक होती है तथापि अन्य ऋतुओं में भी मिलती हैं। यहाँ पर दोनों का अलग-अलग वर्णन किया गया है।

अथ श्वेतपुनर्नवा । तस्या नामानि गुणाँश्चाह

**पुनर्नवा श्वेतमूला शोथघ्नी दीर्घपत्रिका । कटुः कषायानुरसा पाण्डुघ्नी दीपनी परा ।
शोफानिलगरश्लेष्महरी ब्रध्नोदरप्रणुत् ॥ २३१ ॥**

सफेद पुनर्नवा के नाम और गुण—पुनर्नवा, श्वेतमूला, शोथघ्नी और दीर्घपत्रिका इतने नाम सफेद पुनर्नवा के हैं। सफेद पुनर्नवा—कटु तथा कषाय रसयुक्त, पाण्डुरोगनाशक, अत्यन्त अग्निदीपक एवं शोथ, वायु, विष, कफ, ब्रध्न और उदररोग को दूर करने वाली होती है ॥ २३१ ॥

अथ रक्तपुष्पा पुनर्नवा । तस्या नामगुणानाह

**पुनर्नवाऽपरा रक्ता रक्तपुष्पा शिलाटिका । शोथघ्नी क्षुद्रवर्षाभूर्वर्षकेतुः कठिल्लकः ॥ २३२ ॥
पुनर्नवाऽरुणा तिक्ता कटुपाका हिमा लघुः । वातला ग्राहिणी श्लेष्मपित्तरक्तविनाशिनी ॥**

लाल पुनर्नवा के नाम व गुण—रक्तपुनर्नवा, रक्तपुष्पा, शिलाटिका, शोथघ्नी, क्षुद्रवर्षाभू, वर्षकेतु और कठिल्लक ये सब हैं। लाल पुनर्नवा—तिक्त रसयुक्त, विपाक में कटु रसयुक्त, शीतल, हलकी, वातकारक, मलसंग्राही एवं कफ, पित्त और रक्तविकार को दूर करने वाली होती है ॥ २३२-२३३ ॥

११९ वर्षाभू (पथरी)

हि०–सफेद पुनर्नवा, पथरी, विषखपरा, सुफेद गदपुरना। **बं०**–साबुनी। **म०**–वसु। **गु०**–साटोडी। **क०**–बिलेगणजलि, मुच्चुकोनि। **ते०**–गलिजेरू। **ता०**–शरूनै। **पं०**–विशकाप्रा। **ले०**–*Trianthema portulacastrum Linn.* (ट्रायन्थेमा पोर्टुलेकॅस्ट्रम, लिन.)। Fam. Ficoidaceae (फिकॉइडेसी)।

यह भारतवर्ष के सभी भागों में एवं बलूचिस्तान, लंका तथा अन्य उष्ण प्रदेशों में पाई जाती है। इसका **क्षुप**-प्रसरणशील, मांसल तथा अनेक द्विविभक्त शाखाओं वाला होता है। यह बरसात में उगता है और शीत काल तक सूख जाता है। कोमल अवस्था में पुनर्नवा जैसा दिखलाई देने के कारण कुछ लोग इसे श्वेत पुनर्नवा मानते हैं। **पत्तियाँ**-मांसल लगभग अभिमुख, किन्तु प्रत्येक जोड़े में एक छोटी तथा दूसरी बड़ी, ऊपर वाली बड़ी १८ से २७ मि.मि. लंबी, १८–३१ मि. मि. चौड़ी तथा नीचे की ९–१८ मि.मि. लंबी एवं ६–१८ मि. मि. चौड़ी, चिकनी, अभिलट्वाकार, आयताकार या अण्डाकार, प्रायः लाल एवं लहरदार धार वाली होती हैं। पर्णवृन्त ६–१८ मि. मि. लंबा, आधार की तरफ फैला हुआ एवं पतला रहता है। **पुष्प**–एकाकी, बिनाल, श्वेत या गुलाबी रंग के फूल द्विविभक्त शाखाओं के बीच से निकलते हैं। नरकेसर संख्या में १०–२० होते हैं। बीजकोश छोटा एवं १–५ काले रंग के वृक्काकार छोटे बीजों से युक्त होता है। **जड़**-ताजी अवस्था में कुछ मधुराभ किन्तु सूखने पर कड़ुवी एवं हृल्लास कारक होती है।

इसकी जड़ एवं पंचांग का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—पुनर्नवा में पाया जाने वाला क्षाराभ पुनर्नवीन (Punarnavine) इसमें भी पाया जाता है जो शुष्क द्रव्य में ०·०१% तक होता है। इसके अतिरिक्त सेपोनिन् (Saponin) एवं एक अन्य क्षाराभ जिसका रासायनिक सूत्र $C_{32}H_{46}O_6N_2$ है, पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके पत्र मूत्रल होते हैं तथा इनका उपयोग पुनर्नवा जैसा होता है किन्तु जड़–तीव्ररेचन होती है। गर्भिणी को देने पर आंत्र-प्रक्षोभ के साथ साथ गर्भाशय पर भी प्रभाव होने से कभी कभी गर्भपात भी होता है। इसके पत्तों का शाक दीपन वातहर एवं कफघ्न है।

(१) जिनमें तीव्र विरेचन की आवश्यकता रहती है उन रोगों में इसके मूल का चूर्ण सोंठ के साथ मिला कर २, ३ बार में थोड़ा-थोड़ा करके देते हैं। यकृतोदर, जीर्ण मलावष्टम्भ एवं तज्जन्य कंडु आदि त्वचा के रोग तथा पांडु में इसे देते हैं। इससे रेचन होकर शोथ कम हो जाता है। इससे श्वास में भी लाभ होता है।

(२) गर्भाशय विकार के कारण उत्पन्न अनार्तव में भी इसका प्रयोग करते हैं।

मात्रा—१५ ६० गुंजा।

१२० पुनर्नवा

हि०–लाल पुनर्नवा, सांठ, गदहपुर्ना। **बं०**–पुनर्नवा। **म०**–पुनर्नवा, घेंटुली। **गु०**–राती साटोडी, वसेडो। **क०**–सनाडिका। **ते०**–अटात मामिडि। **पं०**–खट्टन। **ता०**–मुकरटै। **अ०**–इन्दकूकी। **अं०**–Hogweed; Horse purslene (हागवीड, हॉर्स पर्सलेन)। **ले०**–*Boerhaavia diffusa Linn.* (बोरहॅविया डिफ्यूझा लिन.)। Fam. Nyctaginaceae (निक्टॅजिनेसी)।

यह भी भारतवर्ष, बलूचिस्तान, लंका तथा अन्य उष्ण प्रदेशों में पाया जाता है। यह रेतीली तथा परती जमीन में अधिक होता है। इसका **क्षुप**–फैलने वाला, बहुवर्षायु, मृदुरोमश या चिकना होता है। इसके काण्ड ०·६–०·९ मी. लम्बे, प्रायः ललाई लिये हुये कड़े, पतले, गोल एवं पर्वसन्धि पर मोटे होते हैं। क्वचित् केवल हरे काण्ड के क्षुप भी देखने में आते हैं। शाखाएँ कई गज तक फैल जाती हैं। **पत्ते**–सनाल, चौड़े, लट्वाकार, प्रत्येक पर्वसन्धि पर छोटे बड़े जोड़े में। बड़े २·५–३·७ से. मी. लम्बे एवं छोटे १२–१७ मि. मी. लम्बे तथा अधर तल पर श्वेताभ चिकने होते हैं। **पुष्प**–छोटे, गुलाबी या श्वेत लगभग अवृन्त, ४–१० की संख्या में एक लम्बे दण्ड पर आते हैं। पुंकेशर २–३ होते हैं। **फल**–६ मि. मी. लम्बा, ५ धारीदार, चिपचिपा तथा एक बीज से युक्त होता है। **जड़**–बड़ी तथा मूलकाकार होती है।

भेद–इसके दो भेद और पाये जाते हैं। एक में मूल कन्दसदृश तथा पत्रादि छोटे होते हैं। यह शुष्क भूमि में अधिक होती है। दूसरी लता जाति की होती है। इसे B. repanda, Willd (बो. रिपॅन्डा, वाइल्ड) कहते हैं। यह आरोहणशील या प्रसरणशील होती है। इसमें आमने सामने के दोनों पत्ते प्रायः कद में समान होते हैं। इसकी जड़ कन्द सदृश मोटी किन्तु भंगुर होती है।

चिकित्सा में इसके पत्र एवं मूल का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में पुनर्नवीन (Punarnavine) नामक कार्यकारी क्षाराभ की मात्रा शुष्क द्रव्य में ०·०१% तक होती है। मूल में संपूर्ण क्षाराभ की मात्रा ०·०४% होती है। इसके अतिरिक्त इसमें पोटॅशियम नाइट्रेट (Potassium nitrate), सल्फेट (Sulp-

hates), क्लोराइड (Chlorides) ६·५% एवं स्थिर तैल होता है। बिल्ली में क्षाराभ के शिरान्तर्गत सूचिकाभरण से रक्त का दबाव बढ़ता है तथा मूत्रत्याग अधिक होता है।

गुण और प्रयोग—पुनर्नवा मधुर, तिक्त, उष्ण, रूक्ष, स्वेदोपग, वयःस्थापन, विरेचन, दीपन, मूत्रविरेचन, कफघ्न, अधिक मात्रा में वामक एवं शोथहर है।

इसका प्रयोग शोथ, सर्वांगशोथ, उदर, कामला, मूत्राल्पता, पाण्डु, हृद्रोग, श्वास, उरःक्षत, सोजाक, विषविकार एवं नेत्रविकारों में किया जाता है।

(१) पुनर्नवा के मूत्रल गुण के कारण अनेक शोथयुक्त विकारों में इसका प्रयोग किया जाता है। नूतन यकृत-विकार तथा जीर्ण उदरावरणशोथ के कारण उत्पन्न जलोदर में अन्य मूत्रल औषधियों की अपेक्षा इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। जब वृक्क का कार्य ठीक होता रहता है उस अवस्था में यह अच्छा कार्य करती है। इसमें उपस्थित पोटैशियम् के लवण इसमें के कार्यकारी क्षाराभ के कार्य को बढ़ाते हैं। उन रोगियों में जिनके मूत्र में अल्ब्यूमिन अधिक रहता है उतना अच्छा मूत्रल प्रभाव नहीं पड़ता। यकृत, वृक्क, उदरावरण आदि अवयवों में जब बहुत अधिक अवयवीय विकार हो जाता है तब इससे केवल अस्थायी लाभ होता है। शोथ में इसको पीस कर गरम कर लेप भी करते हैं।

(२) हृद्रोग में कास, श्वास, जलोदर एवं पैर की सूजन कम करने के लिये कुटकी, चिरायता एवं सोंठ के साथ इसका प्रयोग करते हैं। हृदय पर इसकी क्रिया कुछ डिजिटैलिस सदृश होती है।

(३) कामला में पित्त के निर्हरण के लिये इसका प्रयोग करते हैं।

(४) कफयुक्त श्वास में तथा श्वसनिकाशोथ में सोंठ तथा वच के साथ इसको देने से कफ निकलता है। अधिक मात्रा से वमन होकर भी कफ निकल जाता है।

(५) इसके शाक का उपयोग शोथ में तथा कुपचन में करते हैं।

(६) अभिष्यन्द आदि नेत्र रोगों में इसकी ताजी जड़ मधु में पीस कर आँख में लगाते हैं तथा आंतरिक प्रयोग भी करते हैं।

(७) वृश्चिकदंश, सर्पदंश, मूषिकविष आदि में इसका बाह्य एवं आंतरिक प्रयोग लाभदायक माना जाता है।

(८) रसायन के लिये इसके मूल के उपयोग का विधान है।

मात्रा—मूल-स्वरस ६ मा०–१ तो०; पत्रस्वरस १–२ तो०। वामक—मूल चूर्ण ५–१० माशा।

अथ गन्धप्रसारणी (पसरन)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

प्रसारणी राजबला भद्रपर्णी प्रतानिनी। सरणी सारणी भद्रा बला चापि कटम्भरा ॥२२४॥
प्रसारणी गुरुर्वृष्या बलसन्धानकृत्सरा। वीर्योष्णा वातहृत्तिक्ता वातरक्तकफापहा ॥२२५॥

प्रसारणी के नाम तथा गुण—प्रसारणी, राजबला, भद्रपर्णी, प्रतानिनी, सरणी, सारणी, भद्रा, बला और कटम्भरा इतने नाम 'पसरन' के हैं। प्रसारणी-तिक्तरसयुक्त, गुरु, वृष्य, बलकारी, सन्धानकारक, सारक, उष्णवीर्य एवं वात, वातरक्त और कफ को दूर करने वाली होती है॥

नोट—गंधप्रसारणी नाम से उत्तर भारत में पेडेरिया फिटोडा (Paederia foetida) का व्यवहार किया जा रहा है। दक्षिण में केरल में प्रसारणी नाम से मेरेमिया ट्राइडेन्टटा (Meremia tridentata Hall) का व्यवहार किया जाता है ऐसा 'आयुर्वेदिक फ्लोरामेडिका, कोट्टयम्' नामक पुस्तक में दिया हुआ है। कहीं कहीं कन्वॉल्व्यूलस् आर्वेन्सिस् (Convolvulus arvensis Linn.) का प्रसारणी नाम से व्यवहार किया जाता है। राजस्थान में (हि०) खींप, (ले०) लेप्टाडेनिया स्पारशियम् वा० (Leptadenia spartium Wt.—Asclepiadaceae) का व्यवहार किया जाता है। इस दृष्टि से शास्त्रीय प्रसारणी का निर्णय अभी नहीं हो सका है।

१२१ गन्धप्रसारिणी

हि०–प्रसारणी, प्रसरनी, पसरन, गन्धाली। बं०–गन्ध भादुलिया। म०–प्रसारण, हिरनवेल। गु०–प्रसारणि। ते०–सविरेला। आसाम०–वेडोली सुट्टा। ले०–*Paederia foetida Linn.* (पैडेरिया फिटीडा लिन.)। Fam. Rubiaceae (रूबिएसी)।

मध्य और पूर्व हिमालय में ५००० फीट तक तथा कलकत्ता की तरफ एवं मलाया में उत्पन्न होती है।

यह लताजाति की वनौषधि बहुत विस्तार में फैलने वाली होती है। इसकी डंडियाँ–पतली, चिकनी, लम्बी एवं मजबूत होती हैं। नवीन शाखाएं–कोमल होती हैं। पुरानी लताओं की जड़–१–१॥ इञ्च मोटी होती है। पत्ते–अभिमुख (आमने सामने), आकार में छोटे बड़े, २ से ६ इञ्च तक लम्बे, १–२॥ इञ्च चौड़े, अण्डाकार-लट्वाकार, आयताकार-लट्वाकार या लम्बे लट्वाकार, नोकीले एवं लम्बे पत्रदण्ड से युक्त होते हैं। दोनों पत्तों के बीच में प्रतिग्रन्थि पर दो-दो संयुक्त पुंखपत्र होते हैं। पुष्प–जामुनी गुलाबी रंग के, नलिकाकार पुष्प-मंजरियों में आते हैं। फल–चिपटा, चिकना, पांच रेखाओं से युक्त तथा १ बीजयुक्त होता है। बीज–चिकना, चिपटा एवं पतले आवरण से युक्त होता है।

इसकी लताओं में एक प्रकार की बुरी गन्ध होती है। जहाँ यह फैली हुई होती है वहां इसके निकट जाने पर इसकी बुरी गन्ध जान पड़ती है किन्तु जब इसको मसलते हैं तब बड़ी बुरी गन्ध पैदा होती है। पत्तों को उबाल कर क्वाथ बनाने पर दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है।

इसकी जड़ एवं पत्रादि का उपयोग किया जाता है। इसको मूल के साथ शरद्काल में उखाड़ कर संग्रह करना चाहिये।

रासायनिक संगठन—इसमें उड़नशील तैल एवं एक क्षाराभ पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, तिक्त, सर, गुरु, वृष्य, बल्य एवं वातकफ-शामक है। मूल को अधिक मात्रा से वमन होता है।

(१) आमवात, वातरक्त तथा संधिविकार में इसका बाह्य एवं आभ्यन्तर प्रयोग बहुत लाभदायक माना जाता है। इसको खिलाते हैं तथा लेप करते हैं। इसके साथ चित्रकमूल एवं त्रिकटु का भी उपयोग लाभदायक है। साथ में पत्तों का शाक भी खिलाते हैं।

(२) वातविकारों में इसके तैल का अभ्यङ्ग एवं आन्तरिक प्रयोग बहुत लाभदायक है।

(३) उदरशूल, आनाह एवं विबन्ध में पत्तों का कल्क उष्ण करके खिलाते हैं।

मात्रा—स्वरस १–२ तोला; चूर्ण २–४ माशा।

अथ कृष्णशारिवा (करिआवांसा)। तस्या नामान्याह

कृष्णा तु शारिवा श्यामा गोपी गोपवधूश्च सा ॥ २२६ ॥

कृष्णशारिवा (काली अनन्तमूल) के नाम—शारिवा, श्यामा, गोपी और गोपवधू ये नाम कृष्णशारिवा के हैं॥ २२६॥

छइयं जम्बूदलपत्रा सुगन्धा 'कलघण्टिके'ति प्रसिद्धा ।
गोपी—गोपस्य स्त्री, पुंयोगात् ङीप् ॥ २३६ ॥

इसके पत्ते जामुन के पत्तों के समान होते हैं, और इसमें सुगन्धि होती है। एवं यह 'कलघण्टिका' के नाम से प्रसिद्ध है।

यहाँ पर 'गोपी' इस पद में 'गोप की स्त्री' इस अर्थ में 'पुंयोगादाख्यायाम्' (४-१-४८) इस सूत्र से पुंयोग होने से 'गोप' शब्द से 'ङीप्' प्रत्यय हुआ है, ऐसा समझना चाहिये ॥ २३६ ॥

अथ श्वेतशारिवा । तस्या नामान्याह

धवला शारिवा गोपा गोपकन्या कृशोदरी ।
स्फोटा श्यामा गोपवल्ली लताऽऽस्फोता च चन्दना ॥ २३७ ॥

श्वेतशारिवा के नाम—धवलशारिवा, शारिवा, गोपा, गोपकन्या, कृशोदरी, स्फोटा, श्यामा, गोपवल्ली, लता, आस्फोता और चन्दना ये नाम श्वेत शारिवा के हैं ॥ २३७ ॥

छइयमपि जम्बूदलपत्रा दुग्धगर्भा व्रततिर्भवति । गोपा–गां पातीति गोपा, गोपकन्या । श्यामापदेन कृष्णा श्वेताऽपि शारिवा कथ्यते, शाश्वतेन शारिवामात्रे शारिवापदस्य प्रयुक्तत्वात् । तद्यथा—

'शारिवायां निशि श्यामाश्यामौ च हरितासितौ' इति ॥ २३७ ॥

यह भी जामुन के समान पत्तोंवाली तथा दुग्धगर्भा (भीतर जिसके दूध हो ऐसी) लता होती है। यहाँ पर 'गोपा' का 'गायों को पालन करने वाली' अर्थ है। 'आतोऽनुपसर्गे कः (३-२-३) इस सूत्र से कप्रत्यय हुआ बाद को टाप् प्रत्यय होने से 'गोपा' पद सिद्ध हुआ ऐसा समझना चाहिये। और 'श्यामा' पद से काली तथा श्वेत दोनों शारिवा को समझना चाहिये। क्योंकि 'शाश्वत' कोशकार ने 'शारिवा' पद को शारिवा मात्र में (दोनों शारिवा में) प्रयोग किया है 'शारिवायाम्०' इत्यादि से ॥ २३७ ॥

अथ सारिवाद्वयस्य गुणानाह

सारिवायुगलं स्वादु स्निग्धं शुक्रकरं गुरु । अग्निमान्द्यारुचिश्वासकासामविषनाशनम् ।
दोषत्रयास्रप्रदरज्वरातीसारनाशनम् ॥ २३८ ॥

दोनों शारिवा (अनन्तमूल) के गुण - दोनों शारिवा—स्वादिष्ट, स्निग्ध, शुक्र को उत्पन्न करने वाली, गुरु एवं अग्निमन्दता, अरुचि, श्वास (दमा), खांसी, आम, विष, त्रिदोष, रक्तप्रदर, ज्वर और अतिसार को नष्ट करती है ॥ २३८ ॥

नोट—सारिवा के दो भेद श्वेत एवं कृष्ण ये हैं। इसमें से श्वेत सारिवा, अनन्तमूल (कपूरी) है। कृष्णसारिवा के स्थान पर करण्टा एवं दुधलत दो चीजों का व्यवहार किया जाता है। अनन्तमूल (श्वेत सारिवा) कम मिलने के कारण उत्तरप्रदेश के बाजारों में अधिकतर सारिवा के नाम से करण्टा के काण्ड बिकते हैं। जब केवल सारिवा लेने को लिखा हो तब अनन्तमूल लेना चाहिये एवं सारिवाद्वय लिखा हो तब अनन्तमूल एवं दुधलत या करण्टा का ग्रहण उचित है। करण्टा की पत्तियाँ कुछ-कुछ जामुन की पत्ती से मिलती जुलती होने के कारण इसे 'जम्बुपत्रा

सारिवा' भी कहते हैं। यहाँ सबका वानस्पतिक वर्णन अलग अलग किया गया है एवं गुण प्रयोगादि अनन्तमूल के दिये हैं।

१२२ कृष्णसारिवा, दुधलत

सं०–कृष्णसारिवा। हि०–कालीसर, काली अनन्तमूल, दुधलत। बं०–कृष्ण अनन्तमूल, श्यामालता। म०–श्यामलता। क०–करीउंबु। ते०–नलतिग। ले०–*Ichnocarpus fruitescens R. Br.* (इक्नोकार्पस् फ्रूटेसेन्स)। Fam. Apocynaceae (एपोसाइनेसी)।

यह हिमालय प्रान्त के नैपाल, गङ्गा नदी के आस-पास, बङ्गाल, आसाम, सिलहट, चटगाँव और दक्षिण आदि प्रायः सभी प्रान्तों में उत्पन्न होती है। यह लता जाति की वनौषधि छोटे वृक्षों या गुल्मों पर चढ़ जाती है और सदा हरी भरी रहती है। शाखाएँ–प्रायः मुरचई रङ्ग की होती हैं। पत्ते–अण्डाकार या चौड़ाई लिए हुए आयताकार, तीक्ष्णाग्र, या कुछ-कुछ लम्बाग्र, चिकने, २–३ इञ्च लम्बे तथा $\frac{3}{4}$ से १$\frac{1}{2}$ इञ्च चौड़े एवं $\frac{1}{8}$ इञ्च लम्बे वृन्त से युक्त होते हैं। पुष्प–१–३ इञ्च लम्बी पुष्पमञ्जरियाँ पत्रकोण या शाखाग्र से निकलती रहती हैं जिनमें छोटे-छोटे श्वेत सुगन्धित पुष्प रहते हैं। आभ्यन्तर दलों के खण्ड रोमश एवं मरोड़े हुए रहते हैं। फलियाँ–लम्बी एवं दो-दो एक साथ रहती हैं। बीज–नालीदार एवं रोमगुच्छ से युक्त होते हैं।

इसकी जड़ अनन्तमूल जैसी ही दिखलाई देती है। इस पर की छाल कृष्णाभ भूरे रंग की एवं काष्ठ से चिपकी रहती है। काष्ठ भाग अनन्तमूल की अपेक्षा अधिक कड़ा रहता है। क्वचित् यह फटी हुई रहती है। इसमें अनन्तमूल जैसी गन्ध नहीं रहती।

गुण और प्रयोग—इससे गुणधर्म अनन्तमूल जैसे ही हैं। सारिवाद्वय कहने पर इसका (कृष्ण) एवं अनन्तमूल (श्वेत) का ग्रहण करते हैं। ज्वर में पत्रयुक्त काण्ड का क्वाथ देते हैं।

कृष्ण सारिवा नाम से या अनन्तमूल के स्थान पर कहीं-कहीं निम्नलिखित लता का व्यवहार किया जाता है।

१२३ कृष्णसारिवा, जम्बुपत्राकारिका, करण्टा

ले०–*Cryptolepis buchanani Roem. & Schult.* (क्रिप्टोलेपिस् बुचनेनी रो. शु.)। Fam. Asclepiadaceae (एस्क्लेपिएडेसी)।

इसकी लता भारतवर्ष के सभी भागों में होती है। यह बहुत फैलने वाली एवं काष्ठीय होती है। पत्ते–चिकने, आयताकार, अण्डाकार, जामुन के पत्र-सदृश क्षोद लिप्त रहते हैं। पत्रसिराएँ पत्रतट के पहले ही परस्पर मिली हुई रहती हैं। पुष्प–पाण्डुरपीत और फलियाँ–दो-दो एक साथ रहती हैं। काण्डत्वक्–रक्ताभ कृष्ण एवं पतले परतों में छूटने वाली होती है। इस लता से अत्यधिक दूध निकलता है। इसके मूल में कोई गन्ध नहीं होती।

१२४ श्वेतसारिवा, अनन्तमूल, कपूरी

हि०–अनन्तमूल, कपूरी, सालसा। बं०–अनन्तमूल। म०–उपलसर, उपलसरी। गु०–उपलसरी, कागडियों कुंढेर, कपूरी मधुरी। ते०–पालसुगन्धी। ता०–नन्नारी। क०–नमडबेरू। अं०–Indian Sarsaparilla (इंडियन् सारसापरिला)। ले०–*Hemidesmus indicus R. Br.* (हेमीडेस्मस् इण्डिकस्)। Fam. Asclepiadaceae (एस्क्लेपिएडेसी)।

यह इस देश के सब प्रान्तों में विशेषतः बिहार, बंगाल, सुन्दरबन, पश्चिमी घाट, मध्य प्रदेश, दक्षिण एवं लंका में पाई जाती है। इसकी लता–बहुवर्षायु, पतली, फैलने वाली या लपेट कर चढ़ने वाली गुल्मजातीय होती है। मूलस्तम्भ–काष्ठमय होता है। काण्ड–पतला, गोल,

चिकना या सूक्ष्म रोमयुक्त, लम्बाई में सूक्ष्म धारियों से युक्त एवं पर्व पर मोटा होता है। पत्र–विपरीत परन्तु प्रायः दूर-दूर, विभिन्न आकार के दीर्घवृत्त आयताकार से लेकर रेखाकार भालाकार, २-४ इञ्च लम्बे तथा विभिन्न चौड़ाई के (·३–१·५ इञ्च), ऊपर से चिकने, गहरे हरे रंग के एवं सफेद चिह्नों से युक्त, नीचे से हलके रंग के या कभी कभी श्वेत मृदुरोमश, नोकीले किन्तु चौड़े, पत्र के अग्र कुण्ठित, जालिका विन्यास युक्त एवं ३-४ मि. मि. लम्बे पर्णवृन्त से युक्त होते हैं। पुष्प–छोटे, बाहर से हरिताभ किन्तु भीतर बैंगनी रंग के पत्र कोणीय गुच्छों में आते हैं। फली–४–६ इञ्च लंबी, पतली, गोल, दो दो एक साथ परन्तु अपसारी, अग्र की ओर क्रमशः संकुचित, सीधी या कुछ टेढ़ी-मेढ़ी, सूक्ष्म धारीदार तथा चिकनी होती है। बीज–६·८ मि. मि. लम्बे, अण्डाकार, आयताकार, चिपटे, काले रंग के एवं श्वेत रोमगुच्छ से युक्त होते हैं।

मूल–इसके मूल का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। यह करीब १२ इञ्च लम्बा, ३–६ मि. मि. मोटा, गोल, कठोर, मुड़ा हुआ कुछ पतले उपमूलों से युक्त, बाहर से गहरे बादामी रंग का तथा कभी कभी कुछ भूरे रंग का होता है। मध्य भाग पीत एवं काष्ठमय रहता है जिसके चारों ओर का भाग श्वेत रहता है। इसकी छाल भूरे रंग की, कार्क युक्त, चौड़ाई में फटी हुई एवं लम्बाई में धारीदार एवं आसानी से मध्य भाग से अलग की जा सकती है। इसमें कुछ कपूर जैसी मधुर गन्ध आती है तथा इसका स्वाद कुछ कडुआ, तिक्त किन्तु रोचक होता है। इसके स्थान पर करण्टा के काण्ड भी बिकते हैं जिसमें गन्ध नहीं होती। पुरानी गन्धहीन हो जाने पर इसका व्यवहार नहीं करना चाहिये। इसमें उड़नशील गन्धयुक्त कार्यकारी तत्त्व होने के कारण इसका क्वाथ न बनाकर फाँट बना व्यवहार करना चाहिये। यह तत्त्व विशेषतया इसकी छाल में रहता है इसलिये पतली-पतली जड़ या जड़ की छाल का उपयोग करना चाहिये।

रासायनिक संगठन–इसकी ताजी जड़ में ०·२२५% एक उड़नशील तैल होता है जिसका ८०% भाग एक काउमॅरिन (Coumarin) सदृश गन्धयुक्त रवेदार पदार्थ (2–Hydroxy–4–Methoxy benzaldehyde) से युक्त होता है। इसके अतिरिक्त दो स्टेराल् (Sterol–Hemidesterol, Hemidesmol), राल, कषाय द्रव्य, शर्करा, कुछ ठोस पदार्थ एवं कुछ ग्लाइकोसाइड (Glycoside) ये पदार्थ इसमें पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग–अनन्तमूल मूत्रविरेचन, मूत्रविरजन, स्वेदजनन, अग्निवर्धक, त्वक्-दोषहर, रक्तशोधक, वर्ण्य, जीवनविनिमय क्रिया के लिए उत्तेजक, रसायन, बल्य, दाहप्रशमन, पुरीषसंग्रहणीय एवं स्तन्यशोधन है। इसका प्रयोग ज्वर, कुष्ठ, कण्डु आदि चर्म रोग, फिरंग, जीर्ण आमवात, प्रदर, अग्निमांद्य, अरुचि, अतिसार, प्रमेह एवं श्वास-कासादि में किया जाता है। इसके फाँट से मूत्र की मात्रा दुगनी या चौगुनी बढ़ती है तथापि इससे वृक्क को कोई हानि नहीं होती। इसका स्वेदजनन कार्य साधारण है इसलिये साथ में अन्य ज्वरघ्न ओषधियों का प्रयोग करना चाहिये। इसमें जीवन-विनिमय क्रिया को उत्तेजित करने वाला धर्म बहुत महत्त्व का है। इसके साथ गुडूची एवं सुगन्धि द्रव्य मिलाकर प्रयोग करने से अधिक लाभ होता है।

(१) वृक्कशोथ जिसमें मूत्र की मात्रा कम हो, मूत्र गाढा एवं लाल रंग का हो तब इसका फाँट गुडुच एवं जीरे के साथ देने से मूत्रमार्ग का शोथ तथा दाह कम होता है।

(२) फिरंग की द्वितीयावस्था तथा अन्य चर्म रोगों में इसको गुडुच के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

(३) बच्चों की दुर्बलता तथा पाण्डु आदि में वायविडंग के साथ इसको देने से बहुत लाभ होता है।

(४) प्रदर में इससे अच्छा लाभ होता है। उपदंश या सोजाक से गर्भस्राव होता हो तो इसका प्रारम्भ से ही उपयोग करते हैं। इससे बच्चा गौर वर्ण का होता है।

(५) व्रण पर इसकी मूल का लेप करते हैं। नेत्राभिष्यंद में इसका दुग्ध डालते हैं।

मात्रा–फाँट ५–१० तोला; कल्क ३–६ माशा।

अथ भृङ्गराजः (भाँगरा)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

भृङ्गराजो भृङ्गरजो मार्कवो भृङ्ग एव च। अङ्गारकः केशराजो भृङ्गारः केशरञ्जनः ॥२३९॥
भृङ्गारः कटुकस्तीक्ष्णो रूक्षोष्णः कफवातनुत् ॥ २४० ॥
केश्यस्त्वच्यः कृमिश्वासकासशोथामपाण्डुनुत्। दन्त्यो रसायनो बल्यः कुष्ठनेत्रशिरोऽर्त्तिनुत्॥

भाङ्गरा के नाम तथा गुण—भाङ्गरा के संस्कृत नाम–भृङ्गराज, भृङ्गरज, मार्कव, भृङ्ग, अङ्गारक, केशराज, भृङ्गार और केशरञ्जन ये सब हैं। **भांगरा**–कटुरसयुक्त, तीक्ष्ण, रूक्ष, गरम, कफ–वात नाशक, केशों के लिये हितकर, त्वचा को साफ करने वाला, दाँतों के लिये हितकर, रसायन, बलकारक एवं कृमि, श्वास, कास, शोथ, आम, पाण्डुरोग, कुष्ठ, नेत्ररोग तथा शिरोरोग को दूर करता है ॥ २३९–२४१ ॥

नोट–अन्य निघंटुओं में इसके श्वेत, पीत एवं कृष्ण (नील) इन तीन भेदों का वर्णन है। कृष्ण भृङ्गराज क्या है, इसका निर्णय नहीं हुआ है। श्वेत पुष्प का भृङ्गराज सर्वत्र पाया जाता है जिसे Eclipta alba (एक्लिप्टा एल्बा) कहते हैं। पीत पुष्प का भृङ्गराज बंगाल, आसाम, कोंकण तथा मद्रास के समतल भागों में होता है जिसे Wedelia calendulacea (वेडेलिआ कॅलेण्डुलेसिआ) कहते हैं। दोनों एक ही वर्ग के हैं तथा गुणों की दृष्टि से दोनों में विशेष अन्तर नहीं है इसलिये दोनों के गुण तथा प्रयोग एक साथ ही दिये हैं।

१२५ भाङ्गरा

हि०–भाङ्गरा, भङ्गरा, भंगरैया। बं–भीमराज, केसुरिया, केसरी। म०–माका। गु०–भांगरो। क०–गर्ग। ते०–गुंटकल, लगरा। ता०–करीशलकन्नी। फा०–जमर्दर। अ०–कदीमुल-बिंत। ले०–*Eclipta alba Hassk.* (एक्लिप्टा एल्बा हास्क.)। Fam. Compositae (कम्पोज़िटी)।

श्वेत भांगरा–इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में आर्द्र स्थानों में उत्पन्न होता है। पहाड़ों पर यह ६००० फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

इसका क्षुप–प्रसर की तरह भूमि पर फैला हुआ रहता है। शाखायें अनेक, भूमि से उठी हुई, खुरखुरी और ग्रन्थियों पर प्रायः मूलयुक्त रहती हैं। पत्ते–छोटे बड़े विविध आकार वाले दो इञ्च तक लम्बे, चौथाई इञ्च चौड़े, अण्डाकार या आयताकार, नोकीले और विपरीत रहते हैं। पुष्प–छोटे वृन्त से युक्त एवं छोटे छोटे मुण्डकों में आते हैं जिनमें प्रान्तीय पुष्प स्त्रीलिंग और जिह्वाकार एवं केन्द्रीय पुष्प घंटिकाकार होते हैं।

पीले फूल का भाङ्गरा–आसाम, बङ्गाल, कोंकण तथा मद्रास आदि प्रान्तों में पाया जाता है। इसको लेटिन् में Wedelia calendulacea Less. (वेडेलिआ कॅलेण्डुलेसिया लेस.) कहते हैं। इसका प्रसर १८ इञ्च तक बड़ा होता है। इसके काण्ड जमीन के नीचे प्रायः १–२ फीट लंबाई में फैले रहते हैं जिनसे स्वावलम्बी शाखायें ऊपर की ओर निकली रहती हैं। पत्ते–आयताकार प्रासवत्, २–३ इंच लंबे, लगभग अखण्ड या दन्तुर होते हैं। अधः पत्रावली के पत्र लगभग

की चक्रों में और बाहर के ३–५ पत्र बड़े एवं पर्णाकार होते हैं। पुष्पों के मुण्डक पीले होते हैं जिसमें प्रान्तीय जिह्वाकार पुष्प संख्या में लगभग आठ होते हैं।

भृङ्गराज के स्वरस एवं पंचांग का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। इसको उबालने से इसका गुण नष्ट होता है इसलिये इसके स्वरस का प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन– श्वेत भृङ्गराज में अधिक मात्रा में राल तथा एक्लिप्टाइन (Ecliptine) एवं निकोटीन (Nicotine) नामक क्षाराभ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—भृङ्गराज तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, वातानुलोमक, रसायन, कफवातहर, चक्षुष्य, त्वग्दोषहर, केश्य एवं वर्ण्य है। इसका प्रयोग कुपचन, यकृतविकार, पाण्डु, कास, श्वास, कुष्ठ, चर्म रोग एवं पलित में करते हैं। इसकी अधिक मात्रा से वमन होता है।

(१) यकृत पर इसकी विशेष क्रिया होती है जिससे पाचन सुधर कर शरीर की सभी क्रियाएं ठीक होती हैं। यकृत दोष के कारण उत्पन्न यकृत वृद्धि, प्लीहा वृद्धि, कामला, अर्श, उदर, शिरःशूल, त्वचा के रोग, चक्कर आदि में इससे लाभ होता है।

(२) जीर्ण चर्मरोग जैसे कुष्ठ, कण्डू, व्रण, पलित, इन्द्रलुप्त तथा वृश्चिक-दंशपर इसका लेप करते हैं तथा पिलाते हैं। बाल काला करने के लिये तथा बढ़ाने के लिये इसका रस काशीश के साथ लेप करते हैं। अग्निदग्ध व्रण पर मरवा, मेंहदी तथा इसकी पत्ती का लेप करने से जलन दूर होती है तथा व्रण का दाग भी नहीं रहता। इससे सिद्ध तैल का नस्य, केश्य रूप में प्रयोग किया जाता है जिससे शिरःशूल, दृष्टिमान्द्य एवं पालित्य आदि में लाभ होता है।

(३) रसायन के लिये विशेष कर नील भृङ्गराज के सेवन का विधान है। एक महीने तक इसके स्वरस-पान के साथ दुग्धाहार पर रहने से बल एवं वीर्य की वृद्धि होती है तथा शतायु होता है।

(४) छोटे बच्चों की खांसी में इसका १–२ बूंद स्वरस मधु के साथ देते हैं, जिससे गले की घरघराहट भी कम होती है।

(५) इसके बीज वाजीकर होते हैं।

मात्रा—स्वरस ½–१ तोला; बीज १–३ माशा।

अथ शणपुष्पी । तस्या नामानि गुणाँश्चाह

शणपुष्पी स्मृता घण्टा शणपुष्पसमाकृतिः। शणपुष्पी कटुस्तिक्ता वामिनी कफपित्तजित्॥२४२॥

शणपुष्पी के नाम तथा गुण—शणपुष्पी, घण्टा तथा शणपुष्पसमाकृति (शणपुष्प के समान आकृति वाली) ये नाम 'शणपुष्पी' के हैं। शणपुष्पी–यह कटु तथा तिक्तरसयुक्त, वमन कराने वाली एवं कफ-पित्तनाशक होती है॥ २४२॥

१९६ शणपुष्पी

हि०–शनपुष्पी, सुनक, सनई, बनसन, पटसन, झुनझुनिया। **बं०**–वनशण। **म०**–घागरी, तिरत, खुलखुल। **गु०**–घुघरो। **क०**–गिजि गिल। **ते०**–चेलेफेरिंटा। **ता०**–वेल्लैनिकलुकिलुप्पै। **ले०**–*Crotalaria verrucosa Linn.* (क्रोटेलेरिया वेरूकोसा लिन.)। Fam. Leguminoceae (लेगुमिनोसी)।

शणपुष्पी—प्रायः भारत के गरम प्रान्तों में उत्पन्न होती है और सिलोन में भी पाई जाती है।

इसका क्षुप–सीधा, अनेक शाखाओं से युक्त एवं ३-४ फीट ऊँचा होता है। शाखाएँ चार धारीयुक्त होती हैं। पत्ते–चौड़ाई लिये तिर्यगायताकार, १–२ इञ्च बड़े क्वचित् इससे भी बड़े, गोल-दन्तुर या कभी-कभी अल्प खण्डित लहरदार, मृदुरोमश एवं छोटे वृन्त से युक्त होते हैं। पुष्प–पर्ण विपरीत या अग्रग, ३–७ पुष्प युक्त मंजरियों में, १·५–३″ बड़े नील या पीताभ आते हैं। फली–अल्पवृन्त युक्त, १ इञ्च लंबी, एवं १२ या अधिक बीजों से युक्त होती है।

इसके पत्तों का चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह तिक्त, पित्तनाशक, कफघ्न एवं स्नेहन है। पत्तों का लेप शीतल एवं त्वग्दोषहर है। त्वचा के विकारों में इनका बाह्याभ्यंतर प्रयोग करते हैं। पत्तों के स्वरस से लालास्राव कम होता है।

अथ त्रायमाणा । तस्या नामानि गुणाँश्चाह

बलभद्रा त्रायमाणा त्रायन्ती गिरिजाऽनुजा। त्रायन्ती तुवरा तिक्ता सरा पित्तकफापहा। ज्वरहृद्रोगगुल्मार्शोभ्रमशूलविषप्रणुत्॥ २४३॥

त्रायमाणा के नाम तथा गुण—बलभद्रा, त्रायमाणा, त्रायन्ती, गिरिजा तथा अनुजा ये नाम 'त्रायमाणा' के हैं। त्रायमाणा–तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, सारक, पित्त कफनाशक एवम् ज्वर, हृद्रोग, गुल्म, अर्श, भ्रम, शूल और विष को दूर करने वाली होती है॥ २४३॥

नोट—त्रायमाण एक संदिग्ध द्रव्य हो गया है। विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न द्रव्यों का त्रायमाण नाम से उल्लेख किया है किन्तु आजकल अधिकांश विद्वान् **जेन्शियाना कुर्रो** (Gentiana kurroo Royle) को त्रायमाण मानते हैं। इसका वर्णन पहले कुटकी के वर्णन के पश्चात् किया जा चुका है (पृष्ठ ७१) क्योंकि कुटकी में प्रायः इसकी मिलावट रहती है। जिन गुणों के लिये आचार्यों ने त्रायमाण का प्रयोग किया है वे इसमें मिलते हैं तथा इसका प्रादेशिक पर्वतीय नाम त्रायमाण भी कहीं-कहीं मिलता है। तिक्त, सारक आदि गुण तथा ज्वर, गुल्म आदि में लाभ करने के कारण एवं पर्वतीय स्थानों में होने वाले (गिरिजा) इस अत्यन्त उपयोगी द्रव्य की त्रायमाणा होने की अधिक संभावना है। चरक में तिक्त स्कंध में (वि. अ. ८), रक्तपित्त के लिये (चि. अ. ४), ज्वर में (चि. अ. ३), गुल्म की चिकित्सा में (चि. अ. ५), पैत्तिक अतिसार में (चि. अ. १०) एवं विसर्प में (चि. अ. ११) तथा सुश्रुत में लाक्षादिगण (सू. अ० ३८) में इसका उल्लेख है। इसके संबंध में अन्य मतों का संक्षेप में उल्लेख अप्रासंगिक न होगा।

(१) श्री डा० वा० ग० देसाई ने ओषधि-संग्रह नामक ग्रन्थ में त्रायमाण नाम से डेल्फिनियम् झलिल् (Delphinium zalil) का वर्णन किया है जिसका पंचांग ईरान से आता है। इसका पंजाबी नाम उन्होंने 'गाफिझ', ईरानी नाम झलिल् अदफ़क् (अस्परग) दिया है। मुहीते आजम नामक ग्रंथ में गाफिस का संस्कृत नाम त्रायमाण दिया है। इसी पुस्तक में डा० देसाई ने 'वाफिथ', गाफिस् नाम से ईरान में होने वाला जेन्शियाना का भेद जेन्शियाना डेहुरिका (Gentiana dehurica) का उल्लेख किया है। इससे मालूम होता है कि ईरान से आनेवाले इन दोनों द्रव्यों को गाफिस् के नाम से प्रयोग करते हैं।

(२) श्री यादवजी ने 'द्रव्यगुणविज्ञान' में श्री वैद्यराज विद्याधरजी विद्यालंकार, पो० सोलन, जि० शिमला के मत का उल्लेख करते हुए एक वनस्पति का वर्णन किया है, किन्तु उसके लेटिन नाम को नहीं लिखा है। श्री प्रियव्रतजी शर्मा ने 'द्रव्यगुणविज्ञान' में त्रायमाणानाम से जेन्शियाना

कुर्रो का वर्णन किया है जो उपर्युक्त श्री यादवजी की पुस्तक में वर्णित वनस्पति से मिलता है। इससे ऐसा मालूम होता है कि श्री यादव जी की पुस्तक में की वनस्पति जेन्शियाना कुर्रो ही है किन्तु इन्होंने इसमें श्री देसाई के जिस नव्यमत का उल्लेख किया है वह श्री देसाई ने अपनी पुस्तक में डेल्फिनिअम् के अन्तर्गत किया है न कि जेन्शियाना के वर्णन में।

(३) श्री ठाकुर दलजीत सिंहजी 'यूनानी द्रव्यगुणविज्ञान' में गाफिस नाम से जे० डेहुरिका का वर्णन करते हैं जिसका भारतीय भेद जे० कुर्रो मानते हैं। इसका स्थानीय नाम त्रायमाण होने का उल्लेख है।

(४) कुछ वंगीय वैद्य, त्रायमाण नाम से शुष्क उदुम्बर जातीय अन्यफल 'बलाडुमुर', 'भुई-डुमूर' Ficus heterophylla (फिकस् हेटेरोफाइला) या उसके भेद का प्रयोग करते हैं जिसमें सारक गुण न होकर कुछ स्तंभन गुण ही होता है।

(५) कुछ लोग बनफसा को, कुछ पियारांगा या कहीं कहीं ममीरी नाम से भी बिकने वाली थॅलिक्ट्रम् फोलियोलोसम् (Thalictrum foliolosum) की जड़ को त्रायमाणा मानते हैं। ममीरी का नेत्र रोगों में अधिक उपयोग होता है किन्तु त्रायमाणा के गुणों में उसके नेत्र्य होने के संबंध में कुछ भी उल्लेख नहीं है।

पहले कुटकी के साथ जेन्शियाना कुर्रो का वर्णन (पृष्ठ-७१) किया जा चुका है। यहाँ अन्य द्रव्यों का वर्णन किया जा रहा है।

१२७ त्रायमाण (१)

ले०-*Delphinium zalil Aitch. & Hemsl* (डेल्फिनिअम् जलील ऐ., हे.)। Fam. Ranunculaceae (रेनन्क्युलेसी)। हिं-असवर्। बं०-गुड्जलील। पं०-असवर्ग, गाफिस्। इरा०-झलिल् असफ़क्। अ०-झरिर।

अफगानिस्तान, फारस आदि देशों में यह होता है। इसका क्षुप बहुवर्षायु होता है। **पत्र**-छोटे तथा पीताभ होते हैं। **पुष्प**-चमकीले, पीले रंग के मृदुरोमश तथा उनके नीचे कोमल कांडे रहते हैं। **फल**-छोटे, शिराओं से युक्त, नोकदार, डंठलदार एवं तीन कोष्ठयुक्त होता है। **बीज**-कोणयुक्त, हलके भूरे या कपिल रंग के होते हैं। **जड़**-लंबी होती है। इसके पुष्पयुक्त पंचांग का आयात होता है जो वस्त्र रंगने के काम आता है। यह हलके हरिताभ पीले रंग का एवं ताजी अवस्था में मधु जैसा सुगंधित रहता है।

रासायनिक संगठन—इसमें आइसोहॅम्नेटिन् (Isorhamnetin, $C_{16}H_{12}O_7$), क्वेर्सेटिन् (Quercetin) तथा संभवतः केम्फेरोल (Kaempferol) नामक तत्त्व पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह तिक्त, पौष्टिक, मूत्रजनन, कोष्ठवातप्रशमन, आनुलोमिक, दीपन, वेदनाहर एवं अपक्षालक (detergent) है। इससे पित्तस्राव होता है, जिससे पाचन उत्तेजित होता है। भूख लगती है तथा शौच साफ होता है। इसका क्वाथ बनाकर दिया जाता है। अधिक मात्रा से हानि होती है।

इसका प्रयोग कुपचन, आध्मान, अग्निमांद्य, उदरशूल, अर्श, कामला, प्लीहावृद्धि, शोथ, सभी प्रकार के उदर, जीर्णज्वर एवं पित्तज्वर में किया जाता है। पित्तज्वर में इसका अधिक उपयोग करते हैं।

इसकी राख नींबू के रस के साथ मिलाकर या घृत के साथ खुजली आदि त्वचा के रोगों में लगाई जाती है। जव के आटे के साथ इसके पञ्चांग का चूर्ण पकाकर उसकी लुगदी सूजन या फोड़े पर बाँधते हैं।

मात्रा—$\frac{1}{2}$-१ तो० क्वाथ बनाकर।

१२८ त्रायमाण (२)

ले०-*Thalictrum foliolosum D C.* (थॅलिक्ट्रम् फोलिओलोसम् डीसी.)। Fam. Ranunculaceae (रेनन्क्युलेसी)। हिं०-ममीरा, पीली जड़ी, शुद्रक, चवन्नीगाछ। बं०-गुर-वियानि। बंब-ममीरी, पीआरंग। अ०-ममीरा चीनी।

त्रायमाण सदृश कुछ गुण इसमें मिलने के कारण इसको कुछ लोग त्रायमाण मानते हैं। यह नेत्र्य होने के कारण वास्तविक ममीरी Coptis teeta Wall (कॉप्टिस् टीटा वाल्) का प्रतिनिधि भी इसे मानते हैं। पिआरंग नाम से बजार में बिकनेवाला द्रव्य इसी की जड़ है, ऐसा मानते हैं, किन्तु इसमे सन्देह है।

यह हिमालय में सर्वत्र ५००० से ८००० फीट तक एवं खासिआ पहाड़ों पर ४००० से ६००० फीट की ऊँचाई तक होता है। इसका **क्षुप**-३-४ फीट ऊँचा, बहुवर्षायु तथा दृढ़ होता है। **पत्ते**-पक्षाकार संयुक्त एवं पत्राधार कोषमय होता है। **पत्रक**-४·६ मि० मि०, बड़ी चवन्नी की तरह गोलाई लिये हुए तथा धार पर प्रायः गोल दन्तुर होते हैं। **पुष्प**-श्वेत या हलके हरे रंग के गुच्छे में आते हैं। **फल**-छोटे, आयताकार, दोनों तरफ नोकीले तथा धारीदार होते हैं।

मूलस्तम्भ—गाँठदार, पतले उपमूलों से युक्त एवं तोड़ने पर पीला होता है। इसका स्वाद कड़ुवा होता है। इसके मूल का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें ८$\frac{1}{2}$% बर्बेरीन (Berberine) एवं थॉलिक्ट्राइन् (Thalictrine) नामक तत्त्व होते हैं। मूल में का यह भाग जल में आसानी से घुल जाता है किन्तु मद्यसार में कम घुलता है।

गुण और प्रयोग—यह तिक्त-पौष्टिक, विषमज्वरनाशक, सारक, एवं मूत्रल है। इसका प्रयोग विषमज्वर, अग्निमांद्य, कुपचन एवं रोगनिवृत्ति के पश्चात की दुर्बलता में करते हैं। नेत्ररोग में इसको घिसकर पलकों पर लेप करते हैं।

मात्रा—२-५ रत्ती।

१२९ त्रायमाण (३)

ले०-*Ficus heterophylla Linn. f.* (फिकस् हेटेरोफाइला लिन); Fam. Moraceae (मोरॅसी)। बं०-भुइडुमूर, बालाडुमूर।

इसे वंगीय वैद्य त्रायमाण नाम से प्रयोग में लाते हैं। यह भारत के सभी उष्ण स्थानों में होता है। इसका **गुल्म**-झाड़दार या कभी-कभी जमीन या चट्टानों पर फैला हुआ होता है। **शाखाएँ**-मृदुरोमश होती हैं। **पत्ते**-सनाल, आकार में छोटे बड़े, अण्डाकार या कुछ भालाकार खुरदरे एवं कटे किनारेवाले होते हैं। **फल**-का अग्र भाग मोटा तथा गोलाकार होता है। **बीज**-गोलाकार होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके मूल का रस शूल में देते हैं। इसके पत्तों का रस दूध के साथ अतिसार में दिया जाता है। कास, श्वास में इसके मूल की छाल धनिया के साथ चूर्ण रूप में दी जाती है।

अथ मूर्वा। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

मूर्वा मधुरसा देवी मोरटा तेजनी स्रुवा। मधुलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलुपर्ण्यपि ॥२४४॥
मूर्वा सरा गुरुः स्वादुस्तिक्ता पित्तास्रमेहनुत्। त्रिदोषतृष्णाहृद्रोगकण्डूकुष्ठज्वरापहा ॥२४५॥

मूर्वा के नाम तथा गुण—मूर्वा, मधुरसा, देवी, मोरटा, तेजनी, स्रुवा, मधूलिका, मधुश्रेणी, गोकर्णी और पीलुपर्णी ये सब नाम मूर्वा के हैं। मूर्वा स्वादिष्ट, तिक्त रसयुक्त, सारक, गुरु एवं पित्तरक्त, प्रमेह, त्रिदोष, तृषा, हृद्रोग, कण्डू (खुजली), कुष्ठ तथा ज्वर को दूर करने वाली होती है॥

मूर्वा एक संदिग्ध द्रव्य है। अनेक स्थानों पर विभिन्न प्रयोगों में मूर्वा का उल्लेख मिलता है। सुश्रुत के टीकाकार डल्हण के समय ही यह द्रव्य संदिग्ध रहा है ऐसा उनकी टीका से मालूम होता है। क्योंकि उन्होंने उसके परिचय में निम्न तीन प्रकार के मतों का विभिन्न स्थानों पर वर्णन किया है।

(१) मूर्वा चोरस्नायुः, यथा पूर्वदेशे गुणान् कुर्वन्ति धनुषाम् (सु. सू. अ. २२);
मूर्वा कन्दलीसदृशः स्वल्पविटपः 'इगौड़' इति लोके। (सु. सू. अ. २९)
(२) मूर्वा धनुर्गुणोपयोग्या 'दुधऊ' इति लोके।
(३) अन्ये कोविदारयुग्मपत्रां लताविशेषां मूर्वामाचक्षते।

इन वचनों से ऐसा मालूम पड़ता है कि प्रथम एवं द्वितीय मत उन्हें कुछ मान्य थे और तृतीय मत स्वीकार्य नहीं था। इसी प्रकार श्रीकण्ठ (सन् १२००–१२५०) ने 'मूर्वा स्वनामख्याता तदभावे जिङ्गलमूलम्' लिखा है जिससे यह अनुमव होता है कि उनके समय में भी यह द्रव्य सन्दिग्ध रहा है।

विभिन्न निघण्टुओं के अनुसार मूर्वा मधुर, तिक्त, सर, गुरु, त्रिदोषशामक एवं ज्वर, प्रमेह, हृद्रोग, कुष्ठ, वमन एवं पाण्डु रोग में लाभदायक है। सुश्रुत में आरग्वधादिगण, पटोलादिगण, पित्तसंशमन वर्ग एवं विरेचन विकल्प अध्याय में इसका उल्लेख है। चरक में तृप्तिघ्न, स्तन्यशोधन, दशेमानि में एवं तिक्तस्कन्ध में इसका पाठ है। क्षीरशोधन एवं वमनोपग द्रव्य के रूप में भी इसका उल्लेख है।

इसके स्वरूप-वर्णन से ऐसा मालूम होता है कि यह कोई मजबूत रेशेवाली लता विशेष होगी जिसका मौर्वी आदि बनाने में उपयोग किया जाता रहा है। विभिन्न निघण्टुओं ने इसके रूप-परिचयात्मक जो नाम दिये हैं वे सम्भवतः एक ही वनस्पति के लिये नहीं हैं। आज मूर्वा नाम से ली जानेवाली वनस्पतियों में से किसी में एक तो दूसरी में दूसरा नाम सार्थक मालूम पड़ता है। सम्भव है कि प्रत्यक्षतः न देखने के कारण विभिन्न आचार्यों द्वारा प्रयुक्त सभी नामों को एक साथ पर्याय में लिख दिया गया है। इसी प्रकार मोरटा को कुछ निघण्टुकारों ने इसके पर्याय में लिखा है और कुछ ने मूर्वा-विशेष कहकर दूसरे द्रव्य के रूप में भी उल्लेख किया है।

निम्नलिखित द्रव्यों का मूर्वा नाम से प्रयोग हो रहा है।

(१) **मरुआबेल, चिन्हार**—सम्भवतः डल्हण ने इसे ही-धनुर्गुणोपयोग्या 'दुधऊ' इति लोके—कहा है। अतिरसा, गोकर्णी, स्रुवा आदि पर्याय इसके लिये उचित मालूम पड़ते हैं। यह क्षीरबहुललता होती है। रॉक्सबर्ग के मतानुसार वनस्पति सृष्टि में अत्यन्त मजबूत रेशों में इसके काण्डत्वक् के निकाले हुये रेशों की गणना की जानी चाहिये। इसके स्थानिक थारू नाम मारवी या मरुआबेल मूर्वा से मिलते-जुलते मालूम पड़ते हैं। इसमें मूर्वा के गुण भी मिलते हैं। इन्हीं आधारों से श्री ठा० बलवन्तसिंहजी ने इसे मूर्वा माना है।

(२) **बंगीय मूर्वा**—यह डल्हणोक्त प्रथम द्रव्य चोरस्नायु या इगौड़ मालूम पड़ता है। इसे बंगाल के वैद्य मूर्वा मानते हैं।

(३) **मालक्षन, मालुआ बेल**—सम्भवतः यही डल्हणोक्त कोविदारयुग्मपत्रा या अन्योक्त पृथक्पर्णी है जिसकी बड़ी विस्तृत लतायें होती हैं तथा पत्ते कचनार जैसे द्विविभक्त होते हैं।

(४) **मोरवेल, रानजाई**—बम्बई के तरफ इसको मूर्वा मानते हैं। इसके लिये त्रिपर्णी नाम सार्थक मालूम पड़ता है।

(५) **मुरहरी, मोरहरी**—चित्रकूट में यह मुरहरी नाम से प्रसिद्ध है। मधुरसा, पीलुपर्णी, तेजनी आदि पर्याय इसके लिये उपयुक्त प्रतीत होते हैं। सम्भवतः डल्हण-निर्णीत मोरटा यह हो।

(६) **मरोड़फली**—इसके ऐंठे हुये फलों को उत्तरप्रदेश में मूर्वा नाम से लिया जाता है जो वास्तव में 'आवर्तनी' है न कि मूर्वा।

संक्षेप में प्रत्येक का स्वतन्त्र वर्णन यहाँ किया जा रहा है। इनमें से चिन्हार की मूर्वा होने की अधिक सम्भावना है।

१३० मूर्वा (१)

मिर्जापुर—जरतोर, चिन्हार। थारु—मारवी, मरुआबेल। खर—सिटी, चिटी। संथा—कोंगा, सिटकी। ले०—*Marsdenia tenacissima. W. & A.* (मार्सडेनिया टेनॅसिसिमा)। Fam. Asclepiadaceae (एस्क्लेपिएडेसी)।

यह दून के खैर के जंगल, हिमालय के नीचे का भाग तथा बिहार में प्रायः शुष्क पर्वतमालाओं एवं झाड़ीदार जंगलों में पाई जाती है।

इसकी लता—मोटी, मजबूत काण्ड की, दुग्धयुक्त एवं चक्रारोही होती है। इसका नवीन भाग रोमश एवं काण्डत्वक् धूसर, कार्कयुक्त एवं नालीदार होता है। पत्ते—४-६ इञ्च लम्बे, ३-४ इञ्च चौड़े-स्पर्श में मखमली तलवाले, चौड़ाई लिये हुये लट्वाकार, लम्बाग्र एवं आधार की तरफ फलकमूल यकायक बहुत गहरा फटा हुआ हृदय होता है। पत्रनाल—२·५ इञ्च लम्बा होता है। पुष्प—हरित-पीत प्रायः दुर्गन्धयुक्त एवं गुच्छों में आते हैं। फली—४·५-५ इञ्च लम्बी एवं व्यास में १·२-१·४ इञ्च, रोमश और आधार से एक तिहाई दूरी पर सबसे अधिक मोटी होती है।

नवीन शाखाओं की त्वचा से सफेद रेशम जैसे रेशे निकलते हैं जिनसे मछली मारने की रस्सी एवं धनुष की डोरी (मौर्वी) बनाई जाती है। यह **विषमज्वर** में बहुत उपयोगी बतलायी जाती है। इसका मूल तथा काण्ड सफेद निसोथ (श्वेत त्रिवृत) के नाम से बाजार में बिकता है। (ठा० बलवन्तसिंह)

इसकी एक दूसरी उपजाति M. hamiltonii, Wight (मॉ. हमिल्टोनाई) भी मिलती है जिसे मोरन अडा भी कहीं-कहीं कहते हैं। इसमें पुष्प छोटे और आभ्यन्तर कोश बाहर से सफेद होते हैं।

लाखन—नामक एक और इसी वर्ग की बड़ी लता होती है जिसे लकवा में बहुत लाभदायक समझा जाता है। इसका ले० नाम Dregia volubilis Benth. ex Hook. f. (ड्रेगिया वॉल्यूबिलिस्) है।

१३१ मूर्वा (२)

सं०—चोरस्नायु ? बं०, म०—घणरूप। बं—गोराचक्र, मूर्वा। उ० प्र०—नागदमन। ले०—*Sansevieria roxburghiana Schult.* (सॅन्सेविरिया रॉक्सबर्घियाना शु०); Fam. Haemodoraceae (हिमोडोरेसी)।

यह कारोमंडल तट पर पाया जाता है। बगीचों में गमलों में यह लगाया हुआ मिलता है।

इसमें जमीन के नीचे दिगन्तसम फैला हुआ अन्तर्भूमिशायी काण्ड होता है, जिससे जगह-जगह पत्रगुच्छ ऊपर निकले रहते हैं।

पत्ते-खड़े, १२-१८″ लम्बे, १-१·३″ चौड़े, अधरतल पर उन्नतोदर, बीच में सबसे अधिक चौड़े, दोनों तटों पर श्वेताभ पट्टियों से युक्त होने के कारण चित्रित एवं इनका अग्र तीक्ष्ण, कठोर एवं १ इञ्च लम्बा होता है। पत्तों के बीच से **पुष्पध्वज**-निकलता है। व्यूह सवृन्त काण्डज, घना १२″×२″ बड़ा एवं पुष्प २-३ एक साथ उन्नत स्थानों से निकलते हैं।

इससे भी मजबूत रेशे निकलते हैं, जिनका मौर्वी बनाने में उपयोग होता है। पूर्वी भारत, बंगाल एवं उड़ीसा में इसका मूर्वा के नाम से प्रयोग कहीं-कहीं होता है।

इसके पत्र एवं मूल का चिकित्सा में उपयोग होता है।

गुण और प्रयोग—पुरानी खाँसी में इसकी जड़ का रस मधु के साथ देते हैं। इसके कोमल पत्तों का रस बच्चों को गले का कफ ढीला होकर निकालने के लिये देते हैं।

१३२ मूर्वा (३)

सं०–कोविदार युग्मपत्रा, पृथक्पर्णी। **हि०**–मालझंन, माहुल, माळो, महुलाइन। **बं०**–चेहुर **ते०**–अड्डा। **था०**–महुलन। **खर०**–महुलान। **संथा**–लमकलर, गोमलर। **उ०**–सियालपत्ता। **ले०**–*Bauhinia vahlii W. & A.* (बौहिनिया वाह्ली)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

यह हिमालय के निम्न भागों में ३००० फीट तक एवं आसाम, मध्यप्रदेश तथा बिहार में नम एवं छायादार स्थानों में वृक्षों पर फैली हुई पाई जाती है।

इसकी **लता**–बहुत बड़ी तथा आरोहणशील होती है। शाखाओं के अग्र पर प्रायः दो-दो सूत्र रहते हैं। नवीन शाखाओं, पत्रनालों एवं पत्तों के अधः पृष्ठों पर रक्ताभ या मखमली रोमावरण होता है। **पत्ते**– १ से १½ फीट तक चौड़े, चौड़ाई में कभी-कभी अधिक नहीं तो लम्बाई-चौड़ाई में बराबर, द्विखण्डित, खण्ड गहराई तक कटे हुये एवं फलकमूल गहरा, हृद्वत् होता है। **पुष्प**-श्वेत तथा मलाई के रंग के, समस्थ काण्डज व्यूह में आते हैं। **फली**–कठोर, ६-१२ इञ्च लम्बी, १½-२ इञ्च चौड़ी एवं रोमश होती है।

इसके पत्तों के पत्तल आदि बनाये जाते हैं। छाल के रेशों से रस्सियाँ बनाई जाती हैं। इसकी फलियों को आग में चिटका कर बीज निकाले जाते हैं, जिन्हें खाते हैं।

देहरादून के व्यापारियों द्वारा इसके मूल **मूर्वा**–नाम से बेचे जाते हैं। डल्हण ने इसका माल नाम से उल्लेख किया है एवं इसे कोविदार सदृश पर्ण वाला कहा है। डल्हण के समय से ही कुछ लोग इसे मूर्वा नाम से प्रयोग करते रहे हैं। किन्तु वह मत डल्हण को मान्य नहीं था क्योंकि अश्मंतक के परिचय में उसके लिये 'मालुया-सदृशपत्रः' लिखा है न कि 'मूर्वासदृशपत्रः'।

इसमें एक गोंद होता है। वाह्यत्वक् में टैनिन की मात्रा १७% एवं काण्ड में ७% होती है।

इसका मूल ज्वरघ्न, फल अतिसारघ्न एवं मूल-स्वरस क्षय में पिलाने के लिये लाभदायक माना जाता है। बीज बल्य माने जाते हैं।

१३३ मूर्वा (४)

हि०–चुरनहार। **उ०**–गोलरंग। **देह०**–बेलकंगु, बेलकम। **म०**–रानजाई। **गु०**–मोरवेल। **ले०**–*Clematis gouriana Roxb.* (क्लेमॅटिस् गोरियाना राक्स.)। Fam. Ranunculaceae (रेननक्युलेसी)।

यह पश्चिम हिमालय में ५००० फीट तक एवं भारत के सभी प्रान्तों में १ से ३ हजार फीट तक होती है।

यह लता जाति का एक विस्तृत क्षुप है, जिसकी कई उपजातियाँ इस प्रान्त में पाई जाती हैं। नवीन भाग मृदु रोमश होता है। **पत्ते**-संयुक्त पक्षवत् होते हैं। पत्रनाल सूत्रसदृश होता है, जिससे ये लताएँ दूसरे वृक्षों पर चढ़ती हैं। **पत्रक**-अण्डाकार, आयताकार, हृद्वत् तीक्ष्णाग्र, एवं ऊपर से चमकीले होते हैं। **पुष्प**-प्रायः श्वेत वर्ण के एवं त्रिविभक्त मञ्जरियों में होते हैं। **फल**–रोमश एवं पंखवद् पुच्छदार होते हैं।

महाराष्ट्र के कुछ लोगों ने इसे मूर्वा माना है, किन्तु इसके किसी भाग से रेशे नहीं निकलते; इसलिये इसे मूर्वा मानना उचित नहीं है। मूर्वा को 'धनुर्गुणोपयोग्या' होना आवश्यक है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक तिक्त विषैला तत्व पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह स्रंसन, कुष्ठघ्न एवं स्वेदजनन है। इसके पत्ते तथा ताजे काण्ड को पीसकर चर्म पर लगाने से छाले पड़ते हैं।

उपदंश, गण्डमाला, रक्तपित्त, कुष्ठ एवं खुजली में इसके पञ्चांग का फाँट देते हैं। इससे त्वचा की विनिमय-क्रिया ठीक होती है। ज्वर एवं नये सन्धिवात में इससे लाभ होता है।

१३४ मूर्वा (५)

सं०–पीलुपर्णी, मधुरसा, तेजनी, मोरटा। **चित्रकूट**–मुरहरी। **ता०**–भूमि चकरे। **ते०**–मोरिनिका। **गु०**–विका। **ले०**–*Maerua arenaria Hook. f. & Th.* (मेरुआ एरेनेरिया हुक.)। Fam. Capparidaceae (कॅपेरिडेसी)।

यह पंजाब, सिंधु, गुजरात, दक्षिण एवं मध्यभारत में होती है।

इसकी आरोही झाड़ीदार लता होती है। **पत्र**–१ से २ इञ्च लम्बे, ½-१ इञ्च चौड़े, अण्डाकार-आयताकार, कुण्ठिताग्र एवं चिकने होते हैं। **पुष्प**–हरिताभ श्वेत, समशिख (कोरिम्ब) गुच्छों में आते हैं। **फल**–हलके भूरे रंग के तथा प्रत्येक बीजों के बीच में संकुचित होते हैं। **बीज**-भूरे, गोल तथा काँटेदार होते हैं।

इसकी जड़ रसायन, बल्य एवं उत्तेजक मानी जाती है।

१३५ मूर्वा (६)

सं०–मूर्वा, आवर्तनी, आवर्तमाला। **हि०**–मरोडफली, मरोरफली, ऐंठनी, गोमठी। **म०**–केवण, मुरडशेंग। **बं०**–आरमोरा। **गु०**–मरडासिंग, मरडासिंगी। **ता०**–वलंबुरी। **ते०**–आडामति। **ले०**–*Helicteres isora Linn.* (हेलिक्टेरीज आइसोरा लिन,); Fam. Sterculiaceae. (स्टर्क्यूलिएसी)।

यह पश्चिम एवं मध्य भारत के शुष्क जंगलों में, बिहार से लेकर जम्मू तक तथा पश्चिमी पेनिनसुला में पाई जाती है।

इसका गुल्म या छोटा वृक्ष होता हैं। **पत्ते**-फालसे की तरह तथा ऊपर से खुरदरे होते हैं, मध्यनाड़ी के भाग असमान होते हैं। **शिराएँ**–५-७ होती हैं। **पुष्प**-टेढ़े, अनियताकार तथा लालरंग के होते हैं। **फल**–१-२ इंच लम्बे ऐंठे हुये तथा पाँच खण्ड युक्त होते हैं। यह पाँच स्त्री-केशरों से बने हुए होते हैं। इनका मूर्वा नाम गलती से प्रयोग किया जा रहा है। इसकी छाल से सफेद दृढ़ रेशे भी निकाले जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह शीतल, कषाय, त्रिदोषघ्न एवं क्रमिनाशक है।

इसके फल स्नेहन एवं ग्राही होते हैं तथा बच्चों के मरोड़ एवं आनाह में लाभदायक हैं।

इसकी छाल या फल अतिसार तथा प्रवाहिका में लाभदायक है। शूल में मूल, छाल या फल दिया जाता है। पेट की बीमारियों में इसका चूर्ण भूनकर २½–३ माशे की मात्रा में घृत एवं शर्करा के साथ दिया जाता है।

इसके मूल की छाल का क्वाथ मधुमेह में दिया जाता है। खुजली में इसके फल को घिस कर लेप करने से लाभ होता है।

मात्रा—१½–३ माशा।

अथ काकमाची (मकोय)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

काकमाची ध्वाङ्क्षमाची काकाह्वा चैव वायसी। काकमाची त्रिदोषघ्नी स्निग्धोष्णा स्वरशुक्रदा॥
तिक्ता रसायनी शोथकुष्ठार्शोज्वरमेहजित्। कटुर्नेत्रहिता हिक्काच्छर्दिहृद्रोगनाशिनी ॥२४७॥

मकोय के नाम तथा गुण—काकमाची, ध्वाङ्क्षमाची, काकाह्वा और वायसी ये सब नाम मकोय के हैं। **मकोय**—तिक्त तथा कटुरस युक्त, त्रिदोषनाशक, स्निग्ध, उष्ण, स्वर को ठीक करने वाली, शुक्रजनन, रसायन, नेत्र के लिये हितकर एवं शोथ, कुष्ठ, अर्श (बवासीर), ज्वर, प्रमेह, हिक्का, वमन और हृद्रोग को दूर करने वाली होती है॥ २४६–२४७॥

१३६ मकोय

हि०—मकोय, छोटी मकोय। बं०—काकमाची, गुडकामाई। म०—कांगोणी। गु०—पीलुडी। फा०—रूबाहतुर्बुक। अ०—इनबुस्सालब। अं०—Garden Nightshade (गार्डेन नाइटशेड)। ले०—*Solanum nigrum Linn.* (सोलॅनम् नाइग्रम् लिन.)। Fam. Solanaceae (सोलेनॅसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में एवं ८००० फीट तक पश्चिम हिमालय में उत्पन्न होती है।

इसका क्षुप–१–१॥ हाथ तक ऊँचा होता है और शाखायें-सघन होती हैं। यह गर्मी में नष्ट हो जाता है और वर्षा के अन्त में उत्पन्न हो जाड़े में खूब हरा-भरा दिखलाई पड़ता है। इसके पत्ते–अखण्ड, लहरदार या कभी कभी दन्तुर या खण्डित, लट्वाकार, प्रासवत् लट्वाकार या आयताकार, ४×१·७ इञ्च तक बड़े और उनका फलक-प्रायः वृन्त पर नीचे तक फैला रहता है। पुष्प–छोटे, सफेद और पत्रकोण से हट कर निकले हुए पुष्पदंड पर समस्थ मूर्धज क्रम में निकले रहते हैं। फल-गोल और पकने पर काले हो जाते हैं। कभी-कभी लाल या पीले भी होते हैं।

इसके फल एवं पंचांग का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। चरक में तिक्तस्कन्ध में इसका पाठ है। इसके शाक का प्रयोग चरक ने वातरक्त, अर्श, ऊरुस्तम्भ आदि में किया है।

रासायनिक संगठन—इसमें सोलेनिन (Solanin) नामक एक क्षाराभ पाया जाता है। इसके अतिरिक्त सॅपोनिन् भी इसमें होता है। इसमें का विषैला द्रव्य बहुत अल्प मात्रा में इसमें होता है। इसकी विषाक्तता की परीक्षा करने के लिए भेड़ों को खिला कर देखा गया है।

गुण और प्रयोग—यह त्रिदोषशामक, अनुष्णशीत, तिक्त, कटु, रसायन, कुष्ठघ्न, भेदन (सारक), मूत्रजनन, वृष्य, स्वेदजनन एवं वेदनाहर है। इसके ताजे पत्तों का स्वरस गरम करके दिया जाता है। इसके फल ज्वर, अतिसार, नेत्ररोग एवं हृद्रोग में लाभदायक हैं।

इसका प्रयोग शोथ, कुष्ठ, नेत्र रोग, हृद्रोग, जीर्णयकृत-वृद्धि, रक्तष्ठीवन, अर्श, ज्वर एवं कंडू में किया जाता है।

(१) इसका प्रधान कार्य यकृत पर होता है। जीर्ण यकृत्वृद्धि, अर्श, उदर, रक्तष्ठीवन, चर्मरोग तथा आंव आदि यकृत विकार के कारण होने वाले रोगों में इससे लाभ होता है। इससे शौच साफ होता है तथा मूत्र द्वारा भी दोष निकलते हैं।

(२) जीर्ण चर्म रोग विशेषकर कंडू, सोराइसिस (Psoriasis) तथा दाद में इसके कोमल कांड तथा पत्तों का शाक खिलाते हैं एवं पत्रलेप भी करते हैं।

(३) किसी भी प्रकार के शोथ में इसका बाह्यान्तर प्रयोग लाभदायक है। इसका शाक शोथ में खिलाते हैं। जलशोथ में इसका स्वरस अधिक मात्रा में दिया जाता है।

मात्रा—स्वरस १–२ तोला।

अथ काकनासा। तस्या नामगुणानाह

काकनासा तु काकाङ्गी काकतुण्डफला च सा॥ २४८॥
काकनासा कषायोष्णा कटुका रसपाकयोः।
कफघ्नी वामनी तिक्ता शोथार्शश्वित्रकुष्ठहृत्॥ २४९॥

काकनासा के नाम तथा गुण—काकनासा, काकाङ्गी और काकतुण्डफला ये नाम काकनासा के हैं। काकनासा—कषाय, कटु तथा तिक्त रसयुक्त, उष्णवीर्य, विपाक में कटु रसयुक्त, कफनाशक, वमन कराने वाली एवं शोथ, अर्श, सफेद कुष्ठ को दूर करने वाली होती है॥ २४८–२४९॥

काकनासा संदिग्ध द्रव्य है। कई वनस्पतियों के फलों को जो काक तुण्ड सदृश दिखलाई देते हैं, काकनासा नाम से ग्रहण किया जाता है। चरक में मधुर स्कन्ध में तथा च्यवनप्राश में इसका उल्लेख है। कासचिकित्सा के त्र्यूषणादि घृत में एवं अपस्मार, योनिरोग आदि की चिकित्सा में उल्लेख है। सुश्रुत में अनुवासनवस्ति-द्रव्यों में इसका उल्लेख है। चक्रपाणि एवं डल्हण की टीकाओं में इसे 'वायसफला' लिखा हुवा है। अन्य टीकाकारों ने इसका प्रादेशिक नाम कौवाटोटी, कौवाठोडी, कौवाडोडी आदि दिया है। कहीं-कहीं काकनासा एवं काकजंघा ये एक दूसरे के पर्याय दिये हैं, जो उचित नहीं मालूम होता। इस वनस्पति के निर्णय में काकतुण्डवत् फल का होना आवश्यक है। साथ ही इसमें उष्ण, कटु, कफनाशक, वामक एवं चर्मरोगनाशक गुण भी होना आवश्यक है। अर्वाचीन निघंटुकारों एवं टीकाकारों ने जिन विभिन्न वनस्पतियों का उल्लेख कौवाटोडी या काकनासा नाम से किया है उनमें अधिकांश विदेशी वनस्पतियां हैं जो कुछ काल से यहां भी प्रचुर होने लग गई हैं। काकनासा तो चरक-सुश्रुत के समय से चली आ रही है ऐसी अवस्था में इन्हें काकनासा मानना कहाँ तक उचित होगा? काकनासा के स्थान पर ली जाने वाली कुछ वनस्पतियों का संक्षेप में यहाँ वर्णन किया गया है। पटोलभेद, कौआठोटी, ले०—*Trichosanthes cucumerina Linn.* (ट्राइकोसॅन्थिस् क्युकुमेरिना लिन.) के फल पकने पर कौवे खाते हैं इसलिये कुछ लोग इसके काकनासा होने का अनुमान करते हैं। इसका वर्णन पटोल के साथ किया गया है। कुछ लोगों ने Pentatropis microphylla W. & A. (पेन्टाट्रोपिस् माइक्रोफाइला); Fam. Asclepiadaceae (एस्क्लेपिएडेसी) को तथा कुछ ने बृहती (Solanum indicum Linn. सोलेनम् इण्डिकम्) को काकनासा माना है।

१३७ काकनासा (१)

ले०–*Asclepias curassavica Linn.* (एस्क्लेपियस् कुरेसॅविका लिन.): Fam. Asclepiadaceae (एस्क्लेपिएडेसी)। **सं०**–काकतुण्डी, रक्तपुष्पा। **बं०**–कुरकी, कुर्की। **पं०**–काकतुण्डी। **अं०**–Bastard Ipecacuanha (बॅस्टर्ड इपेकॅक्युआन्हा)।

यह वेस्ट इण्डीज का विदेशी पौधा है किन्तु अब बागों में तथा गावों के आस-पास मिलता है।

इसका **क्षुप**–स्वावलम्बी तथा २ फीट ऊँचा होता है। **पत्र**–आमने-सामने, २–३ इञ्च लम्बे, भालाकार या आयताकार-भालाकार होते हैं। **पुष्प**–नारङ्ग या (स्कारलेट) रक्त रंग के गुच्छों में आते हैं। **फली**–दो-दो एक साथ, ३ इञ्च लम्बी तथा काकतुण्ड सदृश होती है। **जड़**–बहुत, पतली, हलके पीले रंग की तथा भीतर से श्वेत रहती है। स्वाद कडुवा तथा तीता होता है। इसमें दुग्ध होता है। इसकी जड़, पञ्चांग एवं पत्र का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके पञ्चांग में एस्क्लेपिॲडिन् (Asclepiadin) नामक एक ग्लुकोसाइड होता है। इसकी जड़ में विंसेटॉक्सिन (Vincetoxin) नामक द्रव्य होता है जिसकी क्रिया इमेटीन (Emetine) सदृश होती है।

गुण और प्रयोग—इसके कार्यकारी तत्त्व की क्रिया इमेटीन सदृश होती है। अर्क से भी इसका सादृश्य है। इससे रक्तवाहिनियों का संकोच एवं बड़ी धमनियों का विस्फार होता है। हृदय के लिये यह अवसादक है। अल्प मात्रा में यह आमाशय उत्तेजक, यकृत के लिये उत्तेजक, पित्तस्रावक, स्वेदजनन एवं कफघ्न है। अधिक मात्रा में यह वामक एवं विरेचक है।

इसका प्रयोग कृमि, रक्तस्राव, राजयक्ष्मा, सोजाक, आमातिसार तथा अर्श में किया जाता है।

(१) इसके पत्तों या पुष्पों का लेप रक्तस्राव रोकने के लिये करते हैं।

(२) कफविकारों में इसको देने से कफ पतला होकर निकलता है।

(३) सोजाक में इसका क्वाथ ताजा बनाकर देते हैं।

१३८ काकनासा (२)

हि०–बिछुआ। **म०**–विंचु। **बं०**–बाघनोकी। **ले०**–*Martynia diandra Glox.* (मार्टिनिआ डाइएण्ड्रा ग्लोक्स.) Fam. Pedaliaceae (पेडॅलिएसी)।

यह मेक्सिको (Mexico) का आदिवासी होते हुये भी भारत में काफी फैल गया है तथा कूड़े आदि के स्थानों पर होता है।

इसका **क्षुप**–३, ४ फीट ऊँचा, मोटा, स्पर्श में मृदुरोमश, चिपचिपा तथा भींगा हुआ सा होता है। **पत्ते**–६–९ इञ्च लम्बे, विपरीत, तांबूलाकार, दूर-दूर पर दन्तुर एवं तट पर लहरदार होते हैं एवं इनका पृष्ठ प्रायः ओसकणों के समान एक चिपचिपे पदार्थ के सूक्ष्म बिन्दुओं से ढका रहता है। **फूल**–३–४ इञ्च लम्बी और अग्रय मंजरियों में नीचे की ओर लटके हुये, गुलाबी या गहरे बैंगनी रंग के एवं आकार में तिलपुष्प के समान होते हैं। **फल**–काले रङ्ग का, बहुत कठोर, अग्र पर दो तीक्ष्ण एवं टेढ़े कांटों से युक्त होता है। इन फलों का भ्रमवश काकनासा या वृश्चिकाली नाम से प्रयोग चल रहा है, जो गलत है। फल का स्वरूप कुछ कुछ बिच्छू के समान होने से तथा बिच्छू के काटने पर इसका लेप उपयोग में आने से इसे बिछुआ कहते हैं।

गुण और प्रयोग—बिच्छू के काटने पर इसके फल को घिस कर लेप करते हैं। अपके से फल का निकाला हुआ तैल पामा आदि चर्म रोगों में उपयोगी बतलाया गया है। इसके पत्तों को अपस्मार में प्रयोग करते हैं तथा अपची में लेप करते हैं।

१३९ काकनासा (३)

ले०–*Thunbergia alata Boj.* (थन्बर्जिआ एलेटा); Fam. Acanthaceae (एकेन्थेसी)।

यह लता संभवतः अफ्रीका की आदिवासी है। अपने यहाँ उद्यानों में लगाई हुई पाई जाती है।

इसकी लता पतली तथा आरोही होती है। **पत्ते**–मृदुरोमश, लट्वाकार, हृदयाकार, एवं वृन्त प्रायः सपंख रहता है। **पुष्प**–पीत या श्वेताभ एवं भूरे या बैंगनी रंग की आँख से युक्त होते हैं। **फल**–काकतुण्ड सदृश होते हैं। कुछ लोग इसे काकनासा मानते हैं।

अथ काकजङ्घा। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

काकजङ्घा नदीकान्ता काकतिक्ता सुलोमशा। पारावतपदी दासी काका चापि प्रकीर्त्तिता॥
काकजंघा हिमा तिक्ता कषाया कफपित्तजित्। निहन्ति ज्वरपित्तास्रव्रणकण्डूविषक्रिमीन्॥

काकजङ्घा के नाम तथा गुण—काकजङ्घा, नदीकान्ता, काकतिक्ता, सुलोमशा, पारावतपदी, दासी और काका ये सब नाम काकजङ्घा के हैं। काकजङ्घा–शीतवीर्य, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त एवं कफ, पित्त, ज्वर, रक्तपित्त, व्रण (घाव), कण्डू (खुजली), विष और क्रिमि को दूर करनेवाली होती है॥ २५०–२५१॥

नोट–काकजङ्घा के स्थान पर उत्तर प्रदेश में मसी का ग्रहण किया जाता है किन्तु यह निःसंदिग्ध रूप से काकजङ्घा नहीं माना जा सकता। डॉ० देसाई ने Leea hirta (लीआ हिर्टा) को काकजङ्घा माना है। श्री डा. बलवन्तसिंह जी ने 'सिमजंगा' नामक वृक्ष की तरफ ध्यान आकर्षित किया है क्योंकि उसके स्थानिक नाम तथा गुण काकजङ्घा से मिलते-जुलते हैं। शास्त्रीय गुणों की दृष्टि से काकजङ्घा विषमज्वरनाशक, कफ-पित्तशामक, तिक्त, चर्मरोगनाशक एवं रक्तपित्त, बाधिर्य, क्षत, विष, एवं कृमि में लाभदायक होनी चाहिये। रा. नि. एवं ध. नि. इसे उष्ण मानते हैं। काकनासा, काकजङ्घा, काकमाची आदि काकसम्बन्धी वनस्पतियों का उल्लेख ग्रन्थों में आया है और टीकाकारों ने कहीं २ एक को दूसरे का पर्याय बतलाया है।

१४० काकजङ्घा (१)

हि०–काकजंघा, मसी। **बं०**–नासकागा। **म०**–रान किरायता। **ले०**–*Peristrophe bicalyculata* Nees (पेरिस्ट्रोफ बाईकेलीक्युलेटा नीस्)। Fam. Acanthaceae (एकेन्थेसी)।

यह सर्वत्र पाया जाता है। इसका **क्षुप**–३–६ फीट ऊँचा एवं **शाखायें**–प्रसरणशील होती हैं। **काण्ड**–षट्कोण एवं सन्धियाँ फूली हुई रहती हैं। **पत्ते**–रोमश, नोक वाले तथा नीचे बड़े एवं ऊपर छोटे होते हैं। नीचे के पत्ते ४·२५″ × २·७५″ होते हैं। पुष्पवाहक शाखाएँ अत्यन्त शाखाओं से युक्त और अन्तिम छोटी २ शाखाएँ केवल दो २ पुष्पों वाली होती हैं जिनमें प्रायः एक पुष्प अर्ध विकसित रहता है। **पुष्प**–छोटे, गुलाबी या जामुनी रंग के आते हैं।

गुण और प्रयोग—काकजंघा के स्थान पर उत्तरप्रदेश में इसी का व्यवहार किया जा रहा है। किन्तु इसके काकजंघा होने में सन्देह है। इसको सर्पविष में उपयोगी बतलाया जाता है।

१४१ काकजंघा (२)

सं०-काकजंघा। **हि०**-चिरईगोड़ा, मिजुरगोरवा। **असा०**-ओसाई। **बं०**-बोरूना गोडा। **ले०**-*Vitex peduncularis Wall.* (वाइटेक्स पेडन्क्युलेरिस् वाल.)। Fam. Verbenaceae (वर्बिनेसी)।

यह बिहार, मध्यप्रदेश, आसाम तथा पूर्वी बंगाल से तेनासरिम् तक होता है।

इसके वृक्ष-छोटे २०, २५ फीट ऊँचे, एवं शाखाएँ मृदुरोमश होती हैं। पत्ते-संयुक्त एवं त्रिपत्रक होते हैं। पत्रक-लम्बे, मालाकार, ४·५"×१" बड़े, नोकीले, अधरतल पर सूक्ष्म पीतवर्ण की ग्रन्थियों से युक्त होते हैं। वृन्त प्रायः सपक्ष होते हैं। पुष्प-६-११ इञ्च लम्बी मञ्जरियों में श्वेतवर्ण के तथा कण्ठ में पीले पुष्प आते हैं। फल-मांसल, गुठलीदार एवं ·३५-·४ इञ्च बड़ा होता है।

इसके पत्तों का व्यवहार किया जाता है। इसकी एक अन्य जाति V. leucoxylon Linn. (वा ल्यूकोक्साइलोन् लिन.) पायी जाती है।

इनके स्थानिक नाम सिमजंवा, मुरगी-गोडा, चिरई गोडा आदि काकजंघा के समानार्थक मालूम पड़ते हैं तथा इसका जंगली लोग विशिष्ट विषमज्वर Blackwater Fever (ब्लैक वाटर फीवर) में प्रयोग भी करते हैं। काकजंघा को शास्त्रकारों ने विषमज्वर में उपयोगी बतलाया है। वरुण वृक्ष के पत्तों की तरह इसकी त्रिपत्रक पत्तियाँ होने के कारण इसे कहीं-कहीं वरुना भी कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में एक उड़नशील तैल, अधिक मात्रा में टैनिन्, गोंददार पदार्थ एवं कुछ ग्लूकोसाइड सदृश पदार्थ होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके पत्तों का फांट मलेरिया जैसे ज्वरों में विशेषकर Blackwater fever (ब्लैक वाटर फीवर) में प्रयोग किया जाता है। दो औंस ताजे या छाया में सुखाये पत्तों को ४० औंस जल में ५।१० मिनट उबाल कर १ घंटा सीझने देते हैं। चाय की तरह बना यह फांट कुछ चीनी मिला कर दिन भर में ८ से १० औंस की मात्रा में दिया जाता है।

१४२ काकजंघा (३)

सं०, हि०, बं०, म०—काकजंघा। **ले०**-*Leea hirta Roxb.* (लीया हिर्टा राक्स.)। Fam. Vitaceae (विटेसी)।

यह सिक्किम हिमालय, आसाम, पूर्व बंगाल, सिलहट एवं अण्डमान में होती है। इसकी १·२-३ मी. ऊँची झाड़ी होती है। नये काण्ड मृदुरोमश; पत्ते-संयुक्त; पत्रक-७·५-१८×२·५-४·५ से. मी., आयताकार या अण्डाकार-आयताकार, लम्बाग्र, असम दन्तुर, रोमश, अधोपृष्ठ गोल, चिपटे, चकत्तों से युक्त एवं पत्रदण्ड कोणदार; पुष्प-श्वेत मंजरियों में; फल-६ मि० मि० व्यास के, दबे हुवे गोल एवं पकने पर काले होते हैं। इसकी जड़ का चिकित्सा में व्यवहार करते हैं।

गुण और प्रयोग—यह स्नेहन तथा संग्राहक है। इसके पंचांग में क्षयनाशक गुण भी पाया गया है।

अथ नागपुष्पी। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

नागपुष्पी श्वेतपुष्पा नागिनी रामदूतिका। नागिनी रोचनी तिक्ता तीक्ष्णोष्णा कफपित्तनुत्। विनिहन्ति विषं शूलं योनिदोषवमिक्रिमीन्॥ २५२॥

नागपुष्पी के नाम तथा गुण—नागपुष्पी, श्वेतपुष्पा, नागिनी और रामदूतिका ये नाम नागपुष्पी के हैं। **नागपुष्पी**—तिक्त रसयुक्त, रोचक, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य एवं कफ, पित्त, विष, शूल, योनिसम्बन्धी दोष, वमन तथा क्रिमि को नष्ट करने वाली होती है॥ २५२॥

१४३ नागपुष्पी

हि०—नागपुष्पी। **म०**—नागाली।

नागपुष्पी लता जाति की वनौषधि जङ्गल में वृक्षों पर फैली हुई रहती है। एक २ शाखा में एक २ पत्ता होता है। फूल-सफेद और काले रंग के होते हैं। बेल के नीचे कन्द बैठता है। उपर्युक्त वर्णन सुना जाता है किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से इसका निर्णय अभी नहीं हो सका है। नागपुष्पी का उल्लेख रा. नि., ध. नि. में नहीं मिलता। चिकित्सा में भी इसका विशेष प्रयोग नहीं होता।

अथ मेषशृंगी (मेढाशिङ्गी)। तस्या नामानि तत्फलस्य च गुणाँश्चाह

मेषशृङ्गी विषाणी स्यान्मेषवल्ल्यजशृङ्गिका। मेषशृङ्गी रसे तिक्ता वातला श्वासकासहृत्॥ रूक्षा पाके कटुः पित्तव्रणश्लेष्माक्षिशूलनुत्॥ २५४॥ मेषशृङ्गीफलं तिक्तं कुष्ठमेहकफप्रणुत्। दीपनं स्रंसनं कासक्रिमिव्रणविषापहम्॥ २५५॥

मेढ़ाशिंगी के नाम तथा गुण—मेषशृङ्गी, विषाणी, मेषवल्ली और अजशृङ्गिका ये सब संस्कृत नाम हैं। **मेढ़ाशिंगी**-तिक्त रसयुक्त, वातकारक, रूक्ष, विपाक में कटु रसयुक्त एवं श्वास, कास, पित्त, व्रण, कफ और नेत्रशूल को दूर करने वाली होती है। **मेढ़ाशिंगी का फल**—तिक्त रसयुक्त, अग्निदीपक, स्रंसन एवं कुष्ठ, प्रमेह, कफ, कास, क्रमि, व्रण और विष को नष्ट करने वाला होता है॥ २५३-२५५॥

नोट—मेषशृङ्गी भी सन्दिग्ध द्रव्य है। अधिकांश विद्वानों ने 'गुडमार' को मेषशृङ्गी माना है। कुछ ने 'मरोडफली' को मेषशृङ्गी माना है। मरोडफली को कुछ मूर्वा के स्थान पर ग्रहण करते हैं जिसका पहले मूर्वा के अन्तर्गत वर्णन किया जा चुका है। मेषशृङ्गी का सुश्रुत में वरुणादिगण एवं सालसारादिगण में उल्लेख है। सुश्रुत में वरुणादिगण में अजशृङ्गी एवं मेषशृङ्गी दोनों का एक जगह पाठ किया है इससे ये दो अलग द्रव्य मालूम पड़ते हैं किन्तु भावप्रकाश एवं ध. नि. दोनों का पर्याय के रूप में उल्लेख करते हैं। चरक में तिल्वक कल्प एवं शीतज्वरोक्त अगुर्वादि तैल में उल्लेख है। सुश्रुत ने विष एवं अक्षिविकार में इसका प्रयोग किया है। यहाँ गुडमार का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है।

१४४ मेढ़ाशिंगी

सं०—मधुनाशिनी। **हि०**—मेढ़ासिंगी, गुडमार। **बं०**—मेषसिंगी। **म०**—मेढ़ाशिंगी, कावली। **ता०**—शिरुकुरंज। **ते०**—पोडापत्री। **ले०**—*Gymnema sylvestre R. Br.* (जिमनेमा सिल्वेस्ट्रे)। Fam. Asclepiadaceae (एस्क्लेपिएडेसी)।

यह कोंकण, त्रावणकोर, गोवा, दक्षिण भारत में विशेष रूप से होती है। बिहार एवं उ० प्र० में भी कहीं-कहीं मिलती है तथा बागों में लगाई हुई पाई जाती है।

इसकी लता-चक्रारोही, पतले काण्ड की, काष्ठमय, रोमश तथा बहुत फैली हुई होती है। पत्ते-अभिमुख, अण्डाकार-आयताकार या लट्वाकार, कभी-कभी हृद्वत्, १-२ इञ्च लम्बे, कभी-कभी ३ इञ्च लम्बे, नोकदार एवं मृदुरोमश होते हैं। पुष्प-सूक्ष्म, पीले, समस्थ मूर्धजक्रम में निकले

छुप एवं आभ्यन्तर कोश घण्टिकाकार-चक्राकार होते हैं। फली-२-३ इञ्च लम्बी, '२-'३ इञ्च मोटी, कठोर, मालाकार क्रमशः नोकीली होती है। दो में से प्रायः एक फली का विकास नहीं होता। इसके सर्वांग में दूध होता है। मूल-१-३ इञ्च मोटा तथा बाहर से मुलायम एवं उस पर बीच-बीच में सीधी, लंबाई में गड्ढेदार नालियां होती हैं। मूल सूखने पर छाल पतली होकर आड़े-बल में फट जाती है। इसका स्वाद साधारण कड़वा होता है।

इसकी पत्तियों को चबाने से जीभ की स्वाद ग्रहणशक्ति नष्ट हो जाती है जिससे १-२ घण्टे तक मधुर तथा तिक्तरस का स्वाद नहीं मालूम पड़ता। इसी से इसे **गुडमार** या मधुनाशिनी कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें Gymnemic acid (जिम्नेमिक् एसिड) नामक एक पदार्थ होता है। पत्तों में ॲन्थ्राक्विनोन कम्पाउण्ड (Anthraquinone compound) होता है।

गुण और प्रयोग—इसके गुण इपिकाक तथा उतरण जैसे हैं। यह कफघ्न तथा वामक है। इसके पत्तों के सेवन से मधुमेह में लाभ होता है।

(१) मधुमेह में इसके पत्तों को चबाने से या इसके पत्र चूर्ण को १-२ माशे की मात्रा में गोदुग्ध वा मधु के साथ सेवन से लाभ होता है।

(२) जड़ की छाल से हृल्लास, स्वेदोत्पत्ति एवं अधिक मात्रा (१५-३० र०) से वमन होता है। इससे कफ निकलता है एवं शरीर पीड़ा कम होती है।

(३) सर्पदंश में मूल का क्वाथ पिलाते हैं तथा लेप करते हैं जिससे वमन, विरेचन होकर विष कम होता है। बाद में उत्तेजक औषधियाँ देते हैं।

(४) पत्तों को पीसकर सूजन तथा व्रण पर लेप करते हैं।

मात्रा—पत्रचूर्ण १-२ माशा, मूलत्वक् १-२ र० कफघ्न, १५-३० र० वामक।

अथ हंसपदी (हंसराज)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

हंसपादी हंसपदी कीटमाता त्रिपादिका। हंसपादी गुरुः शीता हन्ति रक्तविषव्रणान्। विसर्पदाहातीसारलूताभूताग्निरोहिणीः ॥ २५६ ॥

हंसराज के नाम तथा गुण—हंसपादी, हंसपदी, कीटमाता और त्रिपादिका ये संस्कृत नाम हंसराज के हैं। **हंसराज**—गुरु, शीतवीर्य एवं रक्तविकार, विष, व्रण, विसर्प, दाह, अतीसार, लूता-विष, भूतग्रह और अग्निरोहिणी (कक्षास्फोट) को दूर करती है ॥ २५६ ॥

१४५ हंसराज

हि०-हंसपदी, समलपत्ती, हंसराज, गोधापदी। **बं०**-गोयलिया लता, कालीसाइ। **गु०**-हंसराजा। **म०**-हंसपदी, हंसराजा। **फा०**-परसा उशाँ, परस्यां ग्शां। **अ०**-शारूजीनां, शारूल अर्ज। **अं०**-Maiden hair (मैडेन हेयर)। **लै०**-*Adiantum lunulatum Burm.* (एडीएण्टम् लुनुलेटम् बर्म.)। Fam. Polypodiaceae (पॉलिपोडियसी)।

यह उत्तरी भारत के आर्द्र स्थानों में एवं दक्षिण के पश्चिमी मैदानों तथा पहाड़ियों के निचले भागों में होती है।

यह वनस्पति सुन्दर तथा छोटी होती है। इसमें अन्तर्भूमिशायी कांड होता है। इसमें केवल पत्ते बाहर निकले रहते हैं। पत्रदण्ड काला, चमकीला होता है। पत्रक-कुछ-कुछ वृत्ताकार या अण्डाकार, आयताकार, '५-१'३ इंच लम्बे, अग्र की ओर का किनारा सरल और आधार की

ओर का किनारा घुमावदार होता है। इसमें पुष्प नहीं होते। अधर तल के किनारे पर बीजाणु कोष (Sporagia) होते हैं। इसका चरक में कण्ठ्य महाकषाय, मधुर स्कन्ध तथा सुश्रुत में विदारिगन्धादि गण में पाठ है। चिकित्सा में पंचांग का व्यवहार किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह मधुर, शीत, कण्ठ्य, कुछ ग्राही, कफघ्न एवं कुछ मूत्रजनन है। अधिक मात्रा से वमन होता है। इसका प्रयोग ज्वर, रक्तविकार, विसर्प, विषविकार एवं कण्ठ विकार में करते हैं। बच्चों के कास में इससे लाभ होता है। इसके पंचांग का शरबत बना कर ½-१ तो० की मात्रा में प्रयोग करते हैं।

मात्रा—१०-३० रत्ती।

अथ सोमलता। तस्या नामगुणानाह

सोमवल्ली सोमलता सोमक्षीरी द्विजप्रिया। सोमवल्ली त्रिदोषघ्नी कटुस्तिक्ता रसायनी ॥

सोमलता के नाम तथा गुण—सोमवल्ली, सोमलता, सोमक्षीरी और द्विजप्रिया ये सब सोमलता के पर्यायवाची शब्द हैं। **सोमलता**-कटु तथा तिक्तरसयुक्त, त्रिदोषनाशक एवं रसायन होती है ॥

सोमलता

सोमलता नामक दिव्य औषधि क्या है? इस सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने विचार किया है किन्तु अभी तक इसका निर्णय नहीं हो सका है। वास्तव में सुश्रुत में ही इसके संबंध में लिखा है कि अधर्मी, कृतघ्न, भेषजद्वेषी तथा ब्राह्मणद्वेषी लोगों को यह दिखलाई नहीं देती। आधुनिक युग में कौन सा ऐसा व्यक्ति होगा जो किसी न किसी अवगुण से युक्त न हो। उपर्युक्त वचन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह वनस्पति उस काल में भी अप्राप्य या दुष्प्राप्य रही हो और उसके स्थान पर उसके प्रतिनिधि द्रव्यों का प्रयोग होता रहा हो। सोम का वर्णन ऋग्वेद तथा पौराणिक साहित्य में भी है। यज्ञ के पूर्व आनन्ददायक पेय के रूप में सोमरस-पान किया जाता रहा। सोम को ओषधिराज लिखा है। इसी प्रकार के एक द्रव्य का उल्लेख प्राचीन पारसी धर्म ग्रंथ 'जन्द अवस्ता' में है, जिसे होम कहते हैं। संभव है होम यह सोम का परिवर्तित रूप हो। इसी आधार पर होम नाम से प्रयुक्त द्रव्यों को कुछ विद्वानों ने सोम माना है।

सुश्रुत में इसके संबंध में विशद वर्णन मिलता है। यह हिमालय, विन्ध्य, काश्मीर, मलय आदि स्थानों में होती है। इसके स्थान, नाम, आकृति, वीर्य भेद से २४ प्रकार होते हैं। इस लता में शुक्ल पक्ष में एक-एक पत्र प्रतिदिन बढ़ कर पूर्णिमा को १५ पत्ते हो जाते हैं तथा कृष्ण पक्ष में एक-एक पत्र घट कर अमावस्या को यह बिना पत्र के हो जाती है। इस लता में दुग्ध होता है तथा नीचे कन्द भी होता है। कायाकल्प के लिये कुटी प्रावेशिक विधि से इसके सेवन का वर्णन सुश्रुत में किया है। यह श्रेष्ठ मादक द्रव्य है। इससे बल, वाक्शक्ति, स्फूर्ति, सौमनस्य एवं अमरत्व की प्राप्ति होती है। प्रत्येक रोग को दूर कर यह मन को आनन्द देने वाली लता है। इसमें अन्य मादक द्रव्यों का कोई दोष नहीं होता।

सोम के नाम से जिनका उल्लेख किया जाता है उनमें से कुछ का संक्षेप में यहाँ वर्णन दिया गया है, यद्यपि दिव्य गुण वाली सोम इनमें से कोई मालूम नहीं पड़ती।

१४६ सोम (१)

सं०-सोम। **हि०**-हुटगंठा। **पं०**-असमानिया, बुदशुर, चेवा। **स०**-फोग। **ई०**-होम, हुम। **क०**-खम, खंड। **अं०**-Ephedra; Ma-huang (एफेड्रा, मा-हॉग)। **लै०**-*Ephedra ger-*

ardiana (Wall) Stapf; E. nebrodensis (Tineo) Stapf (एफेड्रा जेराडिआना; ए. नेब्रोडेन्सिस्) । Fam. Gnetaceae (ग्नेटेसी) ।

इनमें से ए. जेराडिआना हिमालय के शुष्क एवं ऊँचे स्थानों में ७-१६ हजार फीट तक बहुत होता है । पंगी, लाहौल, कनवार, सिमला जिले के शाली स्थान, कश्मीर एवं लद्दाख में बहुत होता है । ए० नेब्रोडेन्सिस्, लाहौल, पश्चिमी तिब्बत, बलूचिस्तान एवं वजीरीस्तान में होता है ।

औषध के लिए इसके कांड का संग्रह वसन्त ऋतु में करते हैं ।

ए० जेराडिआना का क्षुप-छोटा, सर्पणशील, कड़ा तथा गुच्छे के रूप में होता है । शाखाएं-प्रतिग्रंथि पर दो और अभिमुख या अनेक एक चक्र में निकली रहती हैं । ये सीधी, हरी एवं रेखा युक्त होती हैं । पर्व करीब ½ इञ्च से १½ इञ्च लम्बे होते हैं तथा दियासलाई की सींक की तरह दिखलाई देते हैं । पुराने काण्ड की त्वचा धूसर हो जाती है । पत्ते-वल्क सदृश होते हैं और प्रत्येक ग्रन्थि पर इन वल्कपत्रों के मिलने से एक पीवाभ या भूरा करीब २ मि. मि. लंबा द्विविभक्त कोष बना होता है । पुष्प-नरपुष्पों की अण्डाकार विदण्डिक मंजरियाँ अकेली या २-३ के गुच्छे में रहती हैं जिनमें ४-८ नरपुष्प होते हैं । नारीपुष्पों की मंजरी प्रायः अकेली और १-२ पुष्पों से युक्त होती है । फल-७·५-१० मि. मि. लम्बा, लट्वाकार, लाल, मधुर तथा खाने लायक होता है । बीज-१-२ दोनों तरफ फूले हुये होते हैं ।

काण्ड में तीव्र गन्ध होती है तथा इसका स्वाद कषाय होता है ।

रासायनिक संगठन—इसके काण्ड में लीव्हो-एफेड्रीन (l-ephedrine), डेक्स्ट्रो-फाय-एफेड्रीन (d-f-ephedrine) तथा तत्सम अन्य क्षाराभ पाये जाते हैं । भारतीय एफेड्रा में संपूर्ण क्षाराभ की मात्रा ०·२८-२·८% तक पाई जाती है तथा उसमें l-ephedrine (लीव्हो-एफेड्रीन) की मात्रा ७०% तक होती है ।

गुण और प्रयोग—एफेड्रा के गुण धर्म उसमें के उपर्युक्त दो क्षाराभो के कारण होते हैं, जिनमें से द्वितीय का रक्तभार, श्वसनिका एवं मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों पर हलका प्रभाव पड़ता है । यह कम विषैला है तथा इसमें अन्य आनुबन्धिक दोष कम होते हैं । तमक श्वास (Asthma) के आवेगों को रोकने के लिये सोम का सत्त्व (Extract) उपयोगी है । विशुद्ध क्षाराभो की अपेक्षा यह सस्ता होने के कारण गरीबों के लिये यह अधिक अच्छा पड़ता है ।

हृदय को उत्तेजना (Cardiac stimulant) देने की दृष्टि से भी यह उपयोगी है । इसका टिंक्चर (Tincture), एपिडेमिक ड्रॉप्सी (Epidemic dropsy) के कारण उत्पन्न हृदय दौर्बल्य (Left heart failure) में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है । न्युमोनिया, डिप्थेरिया आदि औपसर्गिक रोगों के कारण उत्पन्न हृदय की विषाक्तता में यह बहुत ही अच्छा हृदयोत्तेजक सिद्ध हुआ है । हृदय की काथिक विकृति में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये । इसके प्रवाही सत्त्व की ५ सी० सी० मात्रा में ½ ग्रेन सम्पूर्ण क्षाराभ होते हैं ।

मात्रा—सोमसत्त्व क्षाराभ (एफेड्रीन) ⅓-१½ ग्रेन; टिंक्चर एफेड्रा ३०—६० बूंद ।

१४७ सोम (२)

सं०-सोम, सौम्या (राजनिघण्टु) । **हिं०**-सोम, सोमलता, वाघ दूध । **म०**-रानशेर, **मुं०**-कुलतोमा (शेर का दूध) । **ले०**-*Sarcostemma brevistigma W. & A.* (सार्कोस्टेमा ब्रेविस्टिग्मा); Fam. Asclepiadaceae (एस्क्लेपिएडेसी) ।

यह कोंकण, डेकन, उत्तरी सरकार, कर्नाटक तथा हॉर्सलीकोंडा में ४५०० फीट तक शुष्क पत्थरों के बीच होती है । रांची, सिंगभूमि, मुंगेर, पुरी तथा बंगाल में भी पायी जाती है ।

यह प्रसरणशील वनस्पति होती है जो चट्टानों तथा झाड़ियों पर फैली रहती है । इसमें दूध बहुत होता है । इसमें पत्ते-स्थाई नहीं होते जिससे शाखा-काण्ड हरे, चिकने, ⅛-¼ इञ्च व्यास के तथा ४-८ इञ्च की दूरी पर संधियुक्त होते हैं । पुष्प-श्वेत, ⅓ इञ्च व्यास में, सुगन्धित और प्रायः शाखाओं पर सवृन्त मूर्धज (Umbel) क्रम में निकले रहते हैं । फली-पतली, ४-५ इञ्च लम्बी क्रमशः नुकीली तथा सीधी होती है ।

इसका सोम-प्रतिनिधि के रूप में व्यवहार किया जाता है । कुछ तो वास्तविक सोम ही इसे मानते हैं । राजनिघण्टु ने इसका सोमवल्ली प्रतिनिधि के रूप में वर्णन किया है—

> **सौम्या महिषवल्ली च प्रतिसोमाऽन्त्रवल्लिका ।**
> **अपत्रवल्लिका प्रोक्ता काण्डशाखा षडाह्वया ।**
> **रसवीर्यविपाके च सोमवल्लीसमा स्मृता ॥ रा० नि०**

गुण और प्रयोग—अर्क दुग्ध की तरह इसके दूध का भी उपयोग होता है जो बहुत गुणकारी माना जाता है और इसी लिये इसको वाघ दूध कहते हैं । राक्सवर्ग के मतानुसार इसका दूध खट्टा होता है तथा यात्री तृषा शमन के लिये इसका उपयोग करते हैं । शुष्क काण्ड वामक माना जाता है ।

अथाकाशवल्ली (अमरवेल) । तस्या नामानि गुणाँश्चाह

आकाशवल्ली तु बुधैः कथिताऽमरवल्लरी ॥ २५८ ॥
खवल्ली ग्राहिणी तिक्ता पिच्छिलाऽक्ष्यामयापहा । तुवराऽग्निकरी हृद्या पित्तश्लेष्मामनाशिनी

अमरवेल के नाम तथा गुण—आकाशवल्ली का ही पर्यायवाचक शब्द अमरवल्लरी है, ऐसा पण्डित लोग कहते हैं, अर्थात्-आकाशवल्ली, खवल्ली, अमरवल्लरी ये नाम अमरवेल के हैं ।

अमरवेल—तिक्त तथा कषाय रस युक्त, मलसंग्राहक, पिच्छिल, नेत्ररोगनाशक, जठराग्नि-वर्धक, हृदय के लिये हितकर एवं पित्त, कफ तथा आम को नष्ट करनेवाली होती है ॥ २५८-२५९ ॥

नोट—प्राचीन ग्रन्थों में अमरवेल का उल्लेख नहीं है । अमृतवल्ली शब्द आया है, जिसका अर्थ टीकाकारों ने गुडूची किया है । कुछ विद्वानों ने अमरबेल नाम (Cuscuta reflexa (कस्कुटा रिफ्लेक्सा) को दिया है तथा आकाशबेल (Cassytha filiformis) कॅसिथा फिलिफॉर्मिस् को दिया है । दोनों ही पराश्रयी लताएँ (Parasitic climber) हैं । दोनों एक स्थान पर उगी हुई नहीं पाई जातीं । दोनो का स्वतन्त्र वर्णन किया गया है ।

१४८ अमरवेल (१)

हिं०—आकाश वेल, अमर वेल । **बं०**—आलोक लता । **म०**—आकाश वेल, अमर वेल । **गु०**—अमर वेल । **अ०**—मून, कसूस । **पं०**—निराधार । **फा०**—अफ्तीमून । **अं०**—Dordar (डॉडॅर) **ले०**—*Cuscuta reflexa Roxb.* (कस्कुटा रिफ्लेक्सा राक्स.) । Fam. Convolvulaceae (कॉन्व्हॉलव्हुलेसी) ।

यह भारत के सभी मैदानी भागों में तथा ८००० फीट की ऊँचाई तक पाई जाती है ।

इसकी लता—परोपजीवी होती है तथा जिस किसी वृक्ष पर फैलती है उसे अपने बोझ से झुका तक देती है । कभी-कभी इतनी फैलती है कि सारे वृक्ष को ढक देती है । अधिकतर बेर,

बबूल के वृक्षों पर फैली रहती है। इसमें पत्ते नहीं होते। काण्ड-पतले एवं प्रायः पीले रंग के आपस में गुथे हुये होते हैं। पुष्प-⅙-⅕ इञ्च लम्बे, श्वेताभ या गुलाबी, सुगंधित, नलिकाकार, एकाकी या गुच्छों में आते हैं। फल-⅙-⅕ इञ्च व्यास के, दबे हुये, गोल एवं मांसल होते हैं। इसके मूल आधारादि वृक्ष के कांडों से संसक्त रहते हैं, जहाँ से वे अपना आहार ग्रहण करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें कुस्कुटिन (Cuscutin) नामक एक रवेदार रंजक पदार्थ ०·२% होता है। इसके अतिरिक्त लॅक्टोन (Lactone) के समान गुण वाला कस्कुटॅलिन् (Cuscutalin) १%, बदामी रंग का मोम ०·१% तथा अपचायक शर्करा (Reducing sugar) होती है।

इसके बीजों में स्थिर तैल ३%, रंजक द्रव्य अमरबेलिन (Amarbelin), कडवी राल तथा अपचायक शर्करा (Reducing sugar) पाई जाती हैं।

गुण और प्रयोग—यह आनुलोमक, पित्तसारक, तथा यकृतोत्तेजक है। आश्रयी वृक्ष के अनुसार इसके गुण-धर्म में कुछ परिवर्तन हो सकता है।

(१) इसका फाण्ट खुजली तथा व्रण-प्रक्षालन के काम में आता है।

(२) यकृत वृद्धि तथा विबंध हो तो इसका रस देने से दूषित पित्त निकल जाता है तथा विबंध भी दूर होता है।

(३) इसके बीजों को उबाल कर उससे पेट सेंकने से वायु का अनुलोमन होता है।

(४) कुछ लोगों ने इसका बाघरवेल नाम से उल्लेख किया है तथा लिखा है कि पंजाब में दाइयाँ इसके क्वाथ को गर्भपात कराने के लिये प्रयोग में लाती हैं।

१४९ अमर बेल (२)

हि०—अमर बेल। **ले०**—*Cassytha filiformis Linn.* (कॅसिथा फिलिफॉर्मिस् लिन.)। Fam. Lauraceae (लॉरेसी)।

यह भारत में सभी स्थानों पर विशेषकर समुद्री किनारों पर अधिक होती है।

इसकी लता—पराश्रयी, पत्रहीन, उपर्युक्त प्रथम अमरबेल की तरह होती है, तथा शाल, करौंदा, कुटज तथा जामुन आदि वृक्षों पर फैली रहती है। इसका रंग पहली की अपेक्षा अधिक हरा होता है। **पुष्प**-अवृन्त, श्वेत, ·५-१·५ इञ्च लम्बी मंजरियों में रहते हैं और उनके आधार पर तीन चौड़े तथा लम्बे और लट्वाकार कोणपुष्पक होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें एक क्षाराभ होता है।

गुण और प्रयोग—यह बल्य, केश्य, व्रणरोपण एवं वृष्य है।

(१) इससे सर के बाल धोने से जूयें आदि नष्ट होते हैं। इसे पीसकर तेल में मिलाकर केश वृद्धि के लिये काम में लाते हैं। मक्खन तथा सोंठ के साथ इसे व्रणरोपण के लिये काम में लाते हैं।

(२) इसका क्वाथ यकृत प्लीहोदर, गण्डमाला, क्षय आदि लक्षणयुक्त व्याधि में प्रयोग करते हैं।

अथ पातालगरुडी। तस्या नामगुणानाह

छिलिहिण्टो महामूलः पातालगरुडाह्वयः। छिलिहिण्टः परं वृष्यः कफघ्नः पवनापहः॥२६०॥

'पातालगरुडी' के नाम तथा गुण—छिलिहिण्ट, महामूल, पातालगरुड, ये सब पर्यायवाचक शब्द हैं। **पातालगरुडी**—अत्यन्त वृष्य (वीर्यवर्धक), कफ तथा वायु को शमन करने वाली होती है॥ २६०॥

१५० पाताल गरुडी

हि०-पातालगरुडी, छिरेटा, फरीदबूटी, चिरहिंटा, छिरहटा, जलजमनी। **बं०**-हयेर। **म०**-वासनवेल, मुयूँपाडल, तान्द्दीचावेल। **गु०**-पातालगलोरी, वेवडी। **ते०**-दूसरैतिगे। **क०**-दागुडी। **ता०**-कातुक कोदी। **ले०**-*Cocculus hirsutus (Linn.) Diels* (कॉक्युलस् हिर्सुटस्)। Fam. Menispermaceae (मेनिस्पर्मेसी)।

यह इस देश के प्रायः सब गरम और साधारण प्रान्तों में हिमालय से दक्षिण तक पायी जाती है।

इसकी आरोही लता-झाड़ियों आदि पर फैली हुई रहती है। शाखायें तथा पत्र मृदु श्वेताभ रोमावरण से ढके रहते हैं। **पत्ते**-इनके आकार और कद में बड़ी विभिन्नता रहती है। नीचे के पत्ते प्रायः लट्वाकार, आयताकार, ३″×२″ तक बड़े और ऊपर के क्रमशः छोटे और आयताकार होते हैं। **पुष्प**-एकलिंग, हरिताभ एवं सूक्ष्म होते हैं। **फल**-काले बैंगनी रङ्ग के, चने के बराबर, एवं चिकने होते हैं तथा इनके भीतर काला रस रहता है। पुष्प वर्षा में एवं फल शीत में लगते हैं। **मूल**-काफी नीचे चला जाता है तथा मजबूत होता है।

इसके पत्तों को जल में मसलने से जल जम जाता है। इसलिये इसे जलजमनी कहते हैं। इसकी जड़ को सर्पविष में बहुत उपयोगी बतलाया गया है इसलिये इसका पातालगरुडी नाम सार्थक मालूम पड़ता है। प्राचीन ग्रन्थों में इसका वर्णन नहीं पाया जाता। इसकी जड़ एवं पत्तों का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। पाठामूल के स्थान पर इसकी जड़ ली जाती है।

गुण और प्रयोग—इसकी जड़ उष्ण, स्वेदजनन, सौम्य, बलवर्धक, मूत्रजनन, मूत्रमार्ग के लिये शामक एवं ग्राही, ज्वरहर, वायुहर एवं शोधन है। यह सार्सापरिला की तरह उपयोगी है। पत्ते दाहप्रशमन, मूत्रजनन, शोथहर, स्तन्यजनन एवं त्वक्दोष नाशक हैं।

(१) इसकी जड़ का बकरी के दूध में तैयार किया हुआ क्वाथ पीपल, सोंठ, आदि सुगन्धि द्रव्यों के साथ जीर्ण आमवात, विशेषकर यदि उपदंश के कारण उत्पन्न हो, सन्धिशोथ तथा त्वचा के रोगों में देते हैं।

(२) जमाया हुआ स्वरस शीतवीर्य होने के कारण जीरक एवं मिश्री के साथ नूतन सोजाक में बहुत उपयोगी है।

(३) पत्तों को पीसकर शोथ, चोट आदि पर बाँधने से लालिमा एवं पीड़ा कम होती है। शिरःशूल में भी बाँधते हैं।

(४) इसकी जड़ का प्रयोग बस्तिशोथ तथा अन्य प्रमेहों में किया जाता है।

मात्रा—स्वरस १-२ तोला; मूल-३-६ माशा।

अथ वन्दा। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

वन्दा वृक्षादनी वृक्षभक्ष्या वृक्षरुहाऽपि च। बन्दाकः स्याद्धिमस्तिक्तः कषायो मधुरो रसे।
मङ्गल्यः कफवातास्ररक्षोव्रणविषापहः॥ २६१॥

'वन्दा' के नाम तथा गुण—वन्दा, वृक्षादनी, वृक्षभक्ष्या, वृक्षरुहा और बन्दाक ये नाम 'बान्दा' के हैं। बान्दा-तिक्त, कषाय तथा मधुर रसयुक्त, शीतवीर्य, मङ्गलप्रद एवं कफ, वातरक्त, राक्षसबाधा, व्रण और विष को दूर करता है॥ २६१॥

१५१ बान्दा (१)

हि०-बन्दा, बांदा, बंदाक । बं०-बरमांदा, मान्दा । म०-बांडागुल । गु०-बांदो । ते०-बादनीका । अ०-खरकतानां । ले०-*Loranthus longiflorus Desr.* (लोरॅन्थस् लॉगिफ्लोरस् डेस. ; Syn. Dendrophthoe falcata (Linn. f.) Etting. (डेन्ड्रोफ्थो फॅल्केटा । Fam. Loranthaceae (लोरॅन्थेसी) ।

यह भारत में सर्वत्र पाया जाता है। इस कुल की वनस्पतियाँ अर्धपराश्रयी होती हैं। जिन वृक्षों के ऊपर यह उगती है, उनसे अपना भोजन ग्रहण करती है तथा स्वतः हरी होने के कारण स्वयं भी अपने लिये भोजन निर्माण करती है।

उपर्युक्त बांदा अनेक प्रकार के वृक्षों पर उगा हुआ पाया जाता है। यह काष्ठीय होता है। शाखायें-चिकनी, चीमड़, कुछ लटकती हुई तथा कुछ सीधी एवं ३-४ फीट लम्बी होती हैं। पत्ते-३-६ इञ्च लम्बे, १-२ इञ्च चौड़े, चिकने, अनेक आकार के तथा मोटे होते हैं। फूल-रक्त, नारङ्ग या गुलाबी रंग के, १-२ इञ्च लम्बे और उनका सवर्ण कोश नालाकार होता है। फल-मांसल एवं बीज चिपचिपे होते हैं। इसके पुष्प एवं पत्तों का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह शीत, कषाय, कफघ्न, वातनाशक, मूत्रविरेचनीय, रक्तविकार नाशक एवं व्रणरोपक है।

(१) शोथ पर इसके पत्तों एवं पुष्प को पीस-गरम कर लेप करने से सूजन दूर होती है।

(२) इसके पुष्पों का प्रभाव हृदय एवं रक्तवाहिनियों पर होता है। हृदयोद्भूत श्वास, क्षयोद्भूत श्वास, फुफ्फुसशोथ, रक्तपित्त, अपस्मार, उन्माद एवं ज्वर में प्रलाप होने पर इसे देते हैं।

मात्रा—स्वरस १-२ तोला।

नोट—उपर्युक्त बांदे की और दो-तीन जातियां होती हैं। इनके अतिरिक्त एक अन्य प्रजाति का बांदा होता है। जिसकी भी दो उपजातियां पाई जाती हैं। इनमें किशमिश काबली प्रभावकर द्रव्य है जिसका संक्षेप में यहां वर्णन किया गया है।

१५२ बाँदा (२)

ले०-*Viscum album Linn.* (विस्कम् ॲल्बम् लिन.); Fam. Loranthaceae (लोरॅन्थेसी)। जौ०-चुल्लू का बांदा। यू०-किशमिश काबली। अ०-दिब्क, मवीजजे असली।

यह हिमालय में काश्मीर से नेपाल तक ३०००-७००० फीट तक होता है। ये प्रायः अखरोट एवं गुलाब कुल के पौधों पर उगते हैं। कहीं-कहीं रास्ना पत्र के नाम से भी इनका प्रयोग होता है।

इसके क्षुप-पराश्रयी होते हैं। इसके सब भाग हरे होते हैं। शाखाएं-द्विविभक्त या चाक्रिक क्रम में निकली रहती हैं। पत्ते-२ इञ्च लम्बे, ½ इञ्च चौड़े, विनाल, आयताकार या ऊपर से भालाकार होते हैं। आधार पर इनमें ३-५ शिराएं होती हैं। पुष्प-प्रति गुच्छे में ३-५ पुष्प होते हैं। फल-⅓ इञ्च लम्बे, सफेद, चिकने तथा पारदर्शक होते हैं। बाजार में मटर जितने बड़े, नरम, झुर्रीदार और भूरे रंग के सूखे फल मिलते हैं। इनके भीतर एक छोटा बीज तथा चिपचिपा पदार्थ होता है।

इन फलों का चिकित्सा में प्रयोग होता है।

गुण और प्रयोग—इसकी क्रिया हृदय पर डिजिटेलिस सदृश होती है, जिससे हृदय को बल मिलता है तथा मूत्र की वृद्धि होती है। गर्भाशय पर इसका प्रभाव अर्गट की तरह होता है, जिससे गर्भाशय का संकोच होता है।

(१) हृद्रोग एवं जलोदर में इसे देने से लाभ होता है।

(२) अत्यार्तव एवं प्रसवोत्तर रक्तस्राव में पिपरामूल के साथ इसका फाण्ट देने से लाभ होता है।

(३) प्लीहावृद्धि, अपस्मार, कटिपीडा, गुल्म, अर्श क्षत, व्रण, कर्णपूय आदि में इसका व्यवहार किया जाता है।

मात्रा—फल ५-१५ रत्ती।

अथ वटपत्री। तस्या नामगुणानाह

वटपत्री तु कथिता मोहिन्यैरावती बुधैः। वटपत्री कषायोष्णा योनिमूत्रगदपहा ॥२६२॥

'वटपत्री' के नाम तथा गुण—वटपत्री को विद्वान् लोग मोहिनी और ऐरावती कहते हैं। वटपत्री-कषाय रसयुक्त, उष्णवीर्य एवम् योनि तथा मूत्रसम्बन्धी रोगों को दूर करने वाली होती है ॥ २६२ ॥

१५३ वटपत्री

इसका निर्णय अभीतक नहीं हो सका है। निम्नलिखित वनस्पति को कुछ विद्वान् वटपत्री मानते हैं।

ले०-*Saxifraga ligulata Wall.* (सॅक्सीफ्रेगा लीगुलेटा वाल.)। Fam. Saxifragaceae (सॅक्सीफ्रेगेसी)।

यह पाषाणभेद का ही भेद है तथा इसका वर्णन हरीतक्यादि वर्ग में पाषाणभेद के अंतर्गत पृष्ठ १०५ पर किया गया है।

अथ हिङ्गुपत्री। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

हिङ्गुपत्री तु कवरी पृथ्वीका पृथुका पृथुः ॥ २६३ ॥
हिङ्गुपत्री भवेद्रुच्या तीक्ष्णोष्णा पाचनी कटुः। हृद्वस्तिरुग्विबन्धार्शःश्लेष्मगुल्मानिलापहा॥

हिङ्गुपत्री के नाम तथा गुण—हिङ्गुपत्री, कवरी, पृथ्वीका, पृथुका और पृथु ये सब नाम हिङ्गुपत्री के हैं। हिङ्गुपत्री-कटुरसयुक्त, रुचिजनक, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, पाचक एवं हृद्रोग, बस्तिरोग, विबन्ध, अर्श, कफ, गुल्म और वायु को दूर करने वाली होती है ॥ २६३-२६४ ॥

१५४ हिंगुपत्री

हिंगुपत्री तथा आगे वर्णन की हुई वंशपत्री के विषय में थोड़ा मतभेद है। चरक में अपस्मार एवं उन्माद की चिकित्सा में क्रमशः हिंगुपत्री एवं हिंगुशिवादिका इनका प्रयोग आया है। इसकी टीका में चक्रपाणि 'वंशपत्री' लिखते हैं। 'नाडीहिंगु' या 'डीकामाली' जिसका वर्णन पहले हरीतक्यादि वर्ग में किया जा चुका है, उसे 'हिंगुपत्री' कह सकते हैं, क्योंकि उसकी पत्र-कलिकाओं के ऊपर किसी-किसी ऋतु में पीला गोंद बूंद के रूप में निकला रहता है। इसकी छाल कट जाने पर वहाँ से भी गोंद निकलता है। इसमें उग्र गन्ध होती है। इसे डीकामाली या नाडीहिंगु कहते हैं। इस आधार पर नाडीहिंगु को हिंगुपत्री माना जा सकता है। हरीतक्यादि वर्ग में पृष्ठ ५५ पर नाडी हिंगु (डिकामाली) का वर्णन देखें।

वंशपत्री । तस्या नामानि गुणाँश्चाह

वंशपत्री वेणुपत्री पिण्डा हिङ्गुशिवाटिका । हिङ्गुपत्रीगुणा विज्ञैर्वंशपत्री च कीर्त्तिता ॥२६५॥

वंशपत्री के नाम तथा गुण—वंशपत्री, वेणुपत्री, पिण्डा और हिङ्गुशिवाटिका ये नाम वंशपत्री के हैं। **वंशपत्री**-इसे विद्वानों ने गुणों में हिङ्गुपत्री के समान बताया है ॥ २६५ ॥

१५५ वंशपत्री

वंशपत्री भी संदिग्ध है। भावप्रकाशकार इसके गुण हिङ्गुपत्री की तरह ही बतलाते हैं। चक्रपाणि हिङ्गुपत्री की टीका में वंशपत्री लिखते हैं। सम्भव है ये दोनों एक ही हों और डीकामाली या नाडीहिङ्गु के ही पर्याय हों। हींग का पेड़ जिस प्रजाति (Genus) का है उसी प्रजाति (Ferula-फेरूला) के एक अन्य पेड़ के पत्ते देखने में कुछ बांस के पत्तों की तरह दिखलाई देते हैं। सम्भव है उसी में से किसी का वंशपत्री नाम हो।

अथ मत्स्याक्षी । तस्या नामानि गुणाँश्चाह

मत्स्याक्षी वाह्लिका मत्स्यगन्धा मत्स्यादनीति च। मत्स्याक्षी ग्राहिणी शीतकुष्ठपित्तकफास्त्रजित्॥ लघुस्तिक्ता कषाया च स्वाद्वी कटुविपाकिनी ॥ २६६ ॥

मत्स्याक्षी के नाम तथा गुण—मत्स्याक्षी, वाह्लिका, मत्स्यगन्धा और मत्स्यादनी ये नाम मत्स्याक्षी के हैं। **मत्स्याक्षी**—मलसंग्राहक, शीतवीर्य, लघु, तिक्त तथा कषाय रस युक्त, स्वादिष्ट, विपाक में कटुरस युक्त एवं कुष्ठ, पित्त, कफ और रक्तविकार को दूर करने वाली होती है ॥ २६६ ॥

नोट—यह भी संदिग्ध द्रव्य है। ब्राह्मी के पर्याय में अमरसिंह ने मत्स्याक्षी लिखा है। कुछ **गुडरी** साग को मत्स्याक्षी कहते है। संक्षेप में इसका यहाँ वर्णन किया है।

१५६ मत्स्याक्षी ? गुडरी साग

ले०-*Alternanthera sessilis, (Linn.) R. Br.* (आल्टरनेन्थेरा सेसिलिस्); Fam. Amaranthaceae (एमरेन्थेसी)। **बं०**-शालिञ्च।

यह भारत के सभी उष्ण प्रदेशों में नम जगहों में पाया जाता है।

इसका **क्षुप**-परिप्रसरी अथवा ग्रन्थिमूल प्रसरी होता है। कभी-कभी शाखायें उत्थित प्रसरी होकर आस-पास की झाड़ियों पर फैली रहती हैं। **पत्ते**–लम्बे, अण्डाकार, आयताकार या अन्य प्रकार के भी होते हैं। **पुष्प**-श्वेत या गुलाबी रंग के मुण्डकाकार गुच्छों में आते हैं। पुष्प खिलने पर आधार भाग में गुलाबी और ऊपर सफेद होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके नूतन भाग पौष्टिक (Nutritious) होते हैं तथा इसमें प्रोटीन (Protein) ५% तथा लौह १६·७ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्रा० होता है।

गुण और प्रयोग—यह ज्वरहर, पित्त-विरेचक तथा दुग्धवर्धक है। इसके पत्रशाक का उपयोग किया जाता है।

अथ सर्पाक्षी (-'सरहटी-गण्डिनी'ति च)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

**सर्पाक्षीस्याच्च गण्डाली तथा नाडीकलापकः ॥ २६७ ॥
सर्पाक्षी कटुका तिक्ता सोष्णा कृमिनिकृन्तनी । वृश्चिकोन्दुरुसर्पाणां विषघ्नी व्रणरोपिणी ॥**

सर्पाक्षी के नाम तथा गुण—सर्पाक्षी, गण्डाली और नाडीकलापक ये नाम सर्पाक्षी के हैं।

सर्पाक्षी—कटु तथा तिक्त रसयुक्त, उष्णवीर्य, व्रण का रोपण करने वाली, कृमिनाशक तथा बिच्छू, मूषक और सर्प के विषों को नष्ट करने वाली है ॥ २६७-२६८ ॥

नोट—सर्पाक्षी भी बिलकुल निःसंदिग्ध द्रव्य नहीं है। रास्ना के नाम से लिये जाने वाले द्रव्यों में से एक ऑफिओराइझा मुन्गोस् को कुछ लोगों ने सर्पाक्षी माना है। कुछ ने पॉलिगोनम् प्लेबेजम् को सर्पाक्षी माना है। दूर्वा के पर्याय में सर्पाक्षी, मीनाक्षी ये शब्द आये हैं। डल्हण ने कल्पस्थान अ० ६ में इसे 'रक्तपुष्पा पूर्वदेशे प्रसिद्धा' एवं अ० ८-११७ में 'लोहितपुष्पा शंखपुष्पी-भेदा' लिखा है। बंगीय ब्राह्मी के साथ कुछ विद्वानों ने इसका वर्णन किया है। यहाँ संक्षेप में दोनों का वर्णन किया गया है।

१५७ सर्पाक्षी (१)

ले०-*Ophiorrhiza mungos Linn.* (ऑफिओराइझा मुन्गोस् लिन.)। Fam. Rubiaceae (रूबिएसी)। **सं०**-सर्पाक्षी। **हि०**-सरहटी। **बं०**-गन्धनाकुली। **म०**-मुंगसवेल, नागवेली। **ता०**-कीरिप्पुंडु। **कोंक०**-गडंपाताळि। **क०**-पाताल गरुड।

यह खासिया पहाड़ एवं आसाम में २००० फीट तक, एवं पश्चिमीघाट, ट्रावनकोर एवं तिनेवेल्ली के पहाड़ों पर होता है।

इसका **क्षुप**-करीब ४५-६० सें० मी० बड़ा होता है। **पत्ते**-१०-२० से० मी० बड़े, भालाकार, आधार की तरफ संकुचित, लम्बाग्र एवं ऊपर से चमकीले हरे रंग के होते हैं। **पुष्प**-श्वेत; **फली**-छोटी; एवं **बीज**-अनेक तथा भूरे रंग के होते हैं। **मूल**-बहुत मजबूत, टेढ़े-मेढ़े, ६ इञ्च लम्बे, स्वाद में कड़वे, तथा उसकी छाल पतली एवं कपिशवर्ण की होती है। कहीं-कहीं मूल का रास्ना के नाम से उपयोग किया जाता है। चिकित्सा में मूल का उपयोग होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें स्टार्च, राल, स्नेह तथा एक क्षाराभ रहता है।

गुण और प्रयोग—यह तिक्त पौष्टिक, दीपन एवं पाचन है। इसकी जड़ का क्वाथ कुपचन, अतिसार आदि में दिया जाता है। लंका में सर्पदंश, वृश्चिक दंश, कुत्ते का विष आदि के लिये इसकी बहुत प्रशंसा है।

१५८ सर्पाक्षी ? (२) मुनियारा

ले०-*Polygonum plebejum R. Br.* (पॉलिगोनम् प्लेबेजम्); Fam. Polygonaceae (पॉलिगोनेसी)। **हि०**-रानी फूल।

यह भारत के सभी उष्ण स्थानों में तथा कभी-कभी ७००० फीट की ऊँचाई पर काश्मीर से भूटान तक होती है।

इसके **क्षुप**-प्रसरी होते हैं। मूल के पास से अनेक शाखायें निकल कर इतस्ततः फैली रहती हैं पुष्पित अवस्था में शाखायें २-८ इञ्च तक लम्बी होती हैं। **पत्ते**-रेखाकार, आयताकार एवं छोटे पौधों में अभिलट्वाकार, तथा ४-१७ मि. मि. लम्बे होते हैं। उपपत्र छोटे एवं झालरदार होते हैं। **पुष्प**-छोटे, गुलाबी एवं **फल**-चिकने, चमकीले एवं त्रिकोणाकृति होते हैं। इसके कई भेदोपभेद होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका शाक की तरह उपयोग किया जाता है। इसकी जड़ का आन्त्र विकारों में एवं पंचांग का चूर्ण न्युमोनिया में दिया जाता है।

अथ शङ्खपुष्पी । तस्या नामानि गुणाँश्चाह

शङ्खपुष्पी तु शङ्खाह्वा मङ्गल्यकुसुमाऽपि च । शङ्खपुष्पी सरा मेध्या वृष्या मानसरोगहृत् ॥ रसायनी कषायोष्णा स्मृतिकान्तिबलाग्निदा । दोषापस्मारभूताश्रीकुष्ठक्रिमिविषप्रणुत् २७०

शङ्खपुष्पी के नाम तथा गुण—शङ्खपुष्पी, शङ्खाह्वा (शङ्ख के पर्यायवाची सब शब्द), मङ्गल्यकुसुमा ये सब नाम 'शङ्खपुष्पी' के हैं। शङ्खपुष्पी-कषाय रस युक्त, उष्णवीर्य, सारक, मेधा के लिये हितकर, वृष्य, मानसरोग को दूर करने वाली, रसायन, स्मृतिशक्ति, कान्ति, बल, जठराग्नि इन सबों को बढ़ाने वाली एवं दोष, अपस्मार, भूतबाधा, दरिद्रता, कुष्ठ, कृमि और विष को नष्ट करने वाली होती है ॥ २६९–२७० ॥

नोट—शंखपुष्पी का 'विष्णुक्रान्ता' यह भेद अन्य निघण्टुकारों ने दिया है। भावप्रकाशकार ने 'विष्णुक्रान्ता' यह अपराजिता का पर्याय दिया है। वास्तव में विष्णुक्रान्ता यह अपराजिता या नीलापराजिता नहीं है। यह नीले फूल वाली शंखपुष्पी-भेद ही होना चाहिये। अन्य निघण्टुकारों ने विष्णुक्रान्ता के नील, श्वेत, एवं रक्त ये तीन भेद दिये हैं, जिनमें रक्त पुष्प वाले भेद को **सर्पाक्षी** नाम दिया है। अधिकांश विद्वानों ने एव्होल्व्हुलस् अल्सिनॉइडीस् को शङ्खपुष्पी माना है। वास्तव में इसके पुष्प नीले होते हैं। इस दृष्टि से इसे विष्णुक्रान्ता मानना अधिक उपयुक्त है। उसी वर्ग की तथा उससे मिलती-जुलती अन्य वनस्पति कन्व्हॉल्व्हयुलस् प्लुरिकालिस् को, जिसके पुष्प श्वेत होते हैं, शंखपुष्पी मानना अधिक उपयुक्त है (ठा० बलवन्तसिंह)। कुछ विद्वानों ने 'दानकुनी' को शङ्खपुष्पी माना है जो उचित नहीं मालूम पड़ता। विष्णुक्रान्ता एवं शङ्खपुष्पी के गुण एक साथ ही दिये गये हैं तथा दानकुनी का अलग वर्णन किया गया है। शंखपुष्पी विशेष रूप से मेध्य होती है। (च० चि० अ० १)

१५९ शङ्खपुष्पी

हि०—शङ्खाहुली, शङ्खपुष्पी। **ले०**—*Convolvulus pluricaulis, Chois.* (कन्व्हॉल्व्हयुलस् प्लुरिकॉलिस् को.); Fam. Convolvulaceae (कन्व्हॉल्व्हयुलेसी)।

इसके **क्षुप**-प्रायः प्रसरणशील होते हैं। मूलस्तम्भ-काष्ठीय होता है। शाखाएं ४–१२ इञ्च लम्बी, रोमश, कुछ उठी हुई या फैली हुई रहती हैं। **पत्ते**-रेखाकार या नीचे की ओर के न्यूनाधिक अभिप्रासवत् एवं ·५–१·५ इञ्च लम्बे होते हैं। **पुष्प**-हलके गुलाबी रंग के या श्वेत होते हैं। बाह्यदल रोमश, रेखाकार प्रासवत् एवं आभ्यन्तर अंश कुप्पी के आकार का और बाहर से रोमयुक्त होता है। विष्णुक्रान्ता तथा शंखपुष्पी में अन्तर यह है कि विष्णुक्रान्ता में कुक्षिवृन्त दो और प्रायः पुनः द्विविभक्त होते हैं और शंखपुष्पी में केवल दो कुक्षियाँ होती हैं।

१६० विष्णुक्रान्ता (नील शङ्खपुष्पी)

हि०—शंखावली, शंखपुष्पी। **म०**—सांखवेल। **गु०**—शंखावली। **ले०**—*Evolvulus alsinoides Linn.* (एव्होल्व्हयुलस् अल्सेनाइडीस् लिन.)। Fam. Convolvulaceae (कन्व्हॉल्व्हयुलेसी)।

यह भारत के सभी प्रदेशों में तथा हिमालय पर ६००० फीट तक होती है।

इसके **क्षुप**-प्रसरणशील तथा सुन्दर होते हैं। शाखाएं-मूल के ऊपर से ४–१५ इञ्च लम्बी अनेक शाखाएं निकल कर चारों ओर फैली रहती हैं। **पत्ते**-अखण्ड, रेखाकार से लेकर अण्डाकार तक ·२५–·५ इञ्च तक लम्बे, (कभी-कभी १ इञ्च), एवं पृष्ठलग्न तथा रेशम तुल्य मुलायम रोमों से युक्त होते हैं। **पुष्प**-भड़कीले नीले रंग के होते हैं और दो या तीन की संख्या में

पतले पुष्पदण्डों के अग्र पर रहते हैं। बाह्यदल रोमश और प्रासवत् होते हैं। आभ्यंतर कोश कभी-कभी श्वेत और कुछ-कुछ चन्द्राकार होते हैं। फल में २–४ फाँक होते हैं।

गुण और प्रयोग—शंखपुष्पी सारक, मेध्य, वृष्य, बल्य, कषाय, कटु, तिक्त एवं दीपन है। इसका उपयोग मानसरोग, उन्माद, अपस्मार, अनिद्रा, भ्रम एवं विष में किया जाता है।

(१) उन्माद में २–४ तोला ताजी शंखपुष्पी का स्वरस देने से दस्त साफ होता है और मद उतरता है। ज्वर में भी निद्रा के लिये एवं प्रलाप कम करने के लिये इसका फांट या इसे जीरक के साथ दूध में पीसकर देते हैं।

(२) बद्धकोष्ठ, गुल्म, आनाह आदि में इसकी जड़ देने से दस्त साफ होता है तथा शारीरिक विष निकल जाता है।

(३) इसके पत्तों का धूम्रपान जीर्णकास तथा श्वास में लाभदायक है।

(४) रक्तस्राव विशेषकर रक्तवमन में इसके स्वरस से लाभ होता है।

(५) पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र तथा शुक्रदौर्बल्य में भी यह लाभदायक है। गर्भाशय-दौर्बल्य के कारण जिनमें गर्भधारणा नहीं होती उन्हें इससे लाभ होता है।

मात्रा—स्वरस २–४ तोला, चूर्ण १–६ माशा। फांट ४–८ तोला।

१६१ दानकुनी (शंखपुष्पी ?)

सं०–शंखपुष्पी। **हि०**–संखाहुली ? **बं०**–दानकुनी। **म०**–ययोची, दण्डोत्पल। **ले०**–*Canscora decussata Schult* (कन्स्कोरा डिकसेटा शुल्ट)। Fam. Gentianaceae (जेन्शिआनेसी)।

यह आर्द्र स्थानों में तथा ४००० फीट की ऊँचाई तक सब प्रदेशों में पायी जाती है।

यह वास्तव में शंखपुष्पी नहीं है। बंगाल के वैद्यों के द्वारा इसे शंखपुष्पी मानकर ग्रहण करने के कारण इसको कहीं-कहीं संखाहुली कह दिया जाता है।

इसके **क्षुप**-६–१५ इंच ऊँचे तथा चौकोर, सीधे, चिकने एवं सपक्ष काण्ड के होते हैं। **पत्ते**-अवृन्त, विपरीत, प्रासवत् या आयताकार-प्रासवत् ३, ३ शिराओं वाले, नीचे १ इञ्च तक लंबे किन्तु ऊपर क्रमशः छोटे होते हैं। **पुष्प**-श्वेत, अनियताकार और कुछ कुछ द्वयोष्ठ होते हैं। बाह्यदल सपक्ष और चार पुंकेसरों में एक बहुत बड़ा होता है। फली में बहुत बीज होते हैं। दानकुनी का स्वाद कड़वा होता है।

इसके पंचांग का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह दीपन, आनुलोमक तथा मज्जातंतु के लिये बलकारक है। उन्माद में इसका स्वरस २–४ तोले की मात्रा में देने से शौच होता है एवं मद उतरता है। बद्धकोष्ठ, गुल्म एवं आनाह आदि में इसकी जड़ देने से शौच साफ होकर शारीरिक विष निकल जाता है।

मात्रा—स्वरस १–२ तोला।

अथार्कपुष्पी । तस्या नामगुणानाह

अर्कपुष्पी क्रूरकर्मा पयस्या जलकामुका। अर्कपुष्पी कृमिश्लेष्ममेहपित्तविकारजित् ॥२७१॥

अर्कपुष्पी के नाम तथा गुण—अर्कपुष्पी, क्रूरकर्मा, पयस्या और जलकामुका ये नाम अर्कपुष्पी के हैं। अर्कपुष्पी-क्रिमि, कफ, प्रमेह और पित्तविकार को दूर करने वाली होती है ॥ २७१ ॥

नोट—अर्कपुष्पी को कुछ लोगों ने जीवन्ती-भेद माना है। रा. नि. में इसके परिचय में 'खर्णेरेति च कथ्यते' लिखा है। गुजराती में निम्नलिखित लता को खरणेर कहा जाता है।

जिसके कारण इसे श्री बापालालजी ने अर्कपुष्पी माना है। डल्हण के समय में भी यह संदिग्ध ही रही है। सु. शा. अ. १० में अर्कपुष्पी की टीका में—'अर्कपुष्पी पयस्या अर्कसदृशपयःपुष्पा, श्वेतदूर्वाविशेषा केचिदाहुः, वृक्षजातिमन्ये' लिखा है। दूसरे स्थान पर इसे 'अर्कपुष्पी अर्कपत्रसदृशी लता' लिखा है।

१६२ अर्कपुष्पी

हि०-अर्कपुष्पी, मोरन अड़ा, रानी मारपी, छरिवेल। म०-खानदोडका, शिरदोडी, तुलतुली। गु०-खरणेर, खरिवेल। ले०-*Holostemma rheedianum Spreng* (होलोस्टेमा हिडियेनम स्प्रेंग)। Fam. Asclepiadaceae (एस्क्लेपिएडेसी)।

यह हिमालय के उष्ण प्रदेश तथा पश्चिमी पेनिन्सुला में पायी जाती है।

इसकी लता—बड़ी, आरोही, चिकनी, चमकदार तथा कांड पोले रहते हैं। पत्ते—आयताकार लट्वाकार, गुडुच के समान, ३–७ इंच लंबे, लम्बाग्र, फलकमूल के पास बहुत भीतर की ओर धँसे हुये, कठोर एवं अधरतल पर मृदु रोमश होते हैं। पुष्प—सुगंधयुक्त, भीतर लाल बैंगनी और बाहर श्वेत या हलके गुलाबी रंग के प्रायः सचूड़ क्रम में आते हैं। फली—४–५ इञ्च लंबी आयताकार परन्तु सिरे पर क्रमशः पतली होकर कुंठिताग्र रहती है तथा उसके पृष्ठ पर दाने रहते हैं। इसकी जड़ तथा पत्तों का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह स्नेहन, शीतल, मूत्रजनन तथा शोथघ्न है। इसका प्रमेह, अश्मरी, मूत्ररोग में प्रयोग किया जाता है। इसके पत्तों का शाक के रूप में भी प्रयोग होता है।

(१) नये सोजाक में इसकी जड़ का क्वाथ जीरा, मिश्री तथा दूध मिलाकर देने से पेशाब की जलन कम होती है।

(२) शुक्रमेह में इसकी जड़ तथा सफेद सेमल की जड़ घिसकर ६ माशे की मात्रा में चीनी मिलाकर दिन में दो बार देते हैं।

(३) नेत्राभिष्यंद में इसे घिसकर पलकों पर लेप करते हैं।

मात्रा—मूल चूर्ण १/४ तो० क्वाथ बनाकर।

अथ लज्जालुः। तस्या नामानि गुणांश्चाह

लज्जालुः स्याच्छमीपत्रा समङ्गा जलकारिका। रक्तपादी नमस्कारी नाम्ना खदिरकेत्यपि॥
लज्जालुः शीतला तिक्ता कषाया कफपित्तजित्। रक्तपित्तमतीसारं योनिरोगान् विनाशयेत्॥

लज्जावन्ती के नाम तथा गुण—लज्जालु, शमीपत्रा, समङ्गा, जलकारिका, रक्तपादी, नमस्कारी और खदिरका ये सब नाम लज्जावन्ती के हैं। लज्जावन्ती—तिक्त तथा कषाय रस युक्त, शीतवीर्य एवम् कफ, पित्त, रक्तपित्त, अतीसार और योनिरोग को नष्ट करने वाली होती है।

नोट—अधिकांश विद्वानों ने माइमोसा प्युडिका को लज्जालु माना है। कुछ विद्वान् बायोफाइटम सेनसिटिवम् को लज्जालु मानते हैं। भावप्रकाशकार ने अलम्बुषा नाम से लज्जालु भेद दिया है, जिसे बायोफाइटम् मान सकते हैं। श्रीकण्ठ ने अलम्बुषा का अर्थ मुण्डितिका (गोरखमुण्डी) किया है, जो उचित नहीं मालूम पड़ता। लज्जालु, माइमोसा प्युडिका होनी चाहिये। चरक में सन्धानीय एवं पुरीषसंग्रहणीय महाकषाय में तथा सुश्रुत में प्रियङ्ग्वादिगण एवं अम्बष्ठादिगण में समङ्गा नाम से इसका उल्लेख है। इनमें लज्जालु एवं 'नमस्कारी' नाम का उल्लेख नहीं है।

अभिधानमञ्जरी में काञ्चनपुष्पी पर्याय जो दिया है वह बायोफाइटम् की दृष्टि से ठीक है, जिसे लज्जालु-भेद (अलम्बुषा) कह सकते हैं। कुछ विद्वानों ने नेप्ट्यूनिआ ओलेरॅसिआ लोर. (Neptunia oleracea Lour.; Fam. Leguminosae) को लज्जालु माना है। यह तालाबों में होता है तथा यह शीतल एवं संग्राही होता है।

१६३ लज्जालु

हि०-लज्जावन्ती, छुई-मुई, लजारू, लाजवती, लजउनी। बं०-लज्जावती, लाजक। म०-लाजाळू, लाजरी। गु०-रीसामणी। ता०-तोट्टा च्चुरंगी। ते०-मुणुगु दामरगु। ले०—*Mimosa pudica, Linn.* (माइमोसा प्युडिका लिन.)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

यह सम्भवतः उष्ण कटिबन्धज अमेरिका का आदिवासी है। अब यह समस्त भारत में पाया जाता है। इसको बागों में भी लगाते हैं।

इसका **गुल्म**—काँटेदार तथा फैला हुआ होता है। **पत्रवृन्त**—लम्बे होते हैं जिनसे चार पत्रक दण्ड पाणिवत् निकले रहते हैं। **पत्रक**—रेखाकार एवं अधिक से अधिक १/२ इञ्च लम्बे, बबूल की तरह होते हैं। **मुण्डक** (पुष्प गुच्छ)—गुलाबी रंग के पुष्पों के मुण्डक, पत्र कोणीय पुष्पदण्डों के अग्र पर होते हैं। पुंकेशर ४ और बहुत बड़े होते हैं। फली-१/२–३/४ इञ्च लम्बी होती है जिस पर बीजों के बीच की सन्धियों पर सूक्ष्म काँटे होते हैं। बीज—प्रत्येक में ३-४ होते हैं। शीतकाल में पुष्प आते है। जड़—चीमड़, खट्टी एवं कुछ तीती होती है। इसको स्पर्श करने से इसके पत्रक संकुचित हो जाते हैं। इसकी जड़ का विशेष प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें माइमोसीन (Mismosine) नामक एक क्षाराभ पाया जाता है। इसकी जड़ में कषाय द्रव्य रहता है तथा इसकी राख ५१/२% निकलती है।

गुण और प्रयोग—यह संग्राहक है। इससे छोटी रक्तवाहिनियों का संकुचन होता है। रक्त तथा पित्तप्रधान रोगों में इसे देते हैं।

(१) इसकी जड़ का क्वाथ रक्तयुक्त आँव तथा सिकतामेह में देते हैं।

(२) अर्श में इसके पत्तों का चूर्ण दुग्ध के साथ पिलाते हैं।

मात्रा—स्वरस १–२ तोला।

अथालम्बुषा (लज्जालुभेदः)। तस्या नामगुणानाह

अलम्बुषा खरत्वक् च तथा मेदोगला स्मृता। अलम्बुषा लघुः स्वादुः क्रिमिपित्तकफापहा॥

अलम्बुषा के नाम तथा गुण—अलम्बुषा, खरत्वक् और मेदोगला ये नाम अलम्बुषा के हैं। यह लज्जावन्ती का भेद है। अलम्बुषा—लघु (हलकी), स्वादिष्ट एवं क्रिमि, पित्त तथा कफ को दूर करने वाली होती है॥ २७४॥

१६४ अलम्बुषा ? (लकजन)

हि०-लज्जालू, लकजन। म०-लाजरी। गु०-रीसामणी, झरेर। मल०-मुकुट्टी, तीणरानाझी। ले०-*Biophytum sensitivum (Linn.) DC.*। (बायोफाइटम् सेन्सिटिवम्, लिन. डीसी.)। Fam. Geraniaceae (जिरॅनिएसी)।

यह भारत के सभी उष्ण प्रदेशों में पाया जाता है।

इसके क्षुप–छोटे तथा सुन्दर होते हैं। सदलपर्ण तथा पुष्पदण्ड जमीन के बराबर ३–४ इंच लंबे, रोमश एवं कभी-कभी सशाख काण्ड के अग्र से एक साथ निकले रहते हैं। **सदलपर्ण**–१½–५″ लंबे, इनके अग्रस्थित दल '२·५″ लंबे, नीचे की ओर के दल क्रमशः छोटे, अवृन्त, आयताकार या आयताकार-अभिलट्वाकार होते हैं। **पुष्पदण्ड**–प्रायः पत्तियों से लंबे, घन रोमश, अनेक कोणपुष्पकों एवं सवृन्त और पीले पुष्पों से युक्त रहते हैं। निद्रागति (Sleep movement) के कारण दो-दो पत्रक रात्रि में परस्पर सट जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह शीतल, तिक्त, कषाय तथा कफघ्न है। रक्तपित्त, अतीसार तथा योनिरोगों में इसका प्रयोग किया जाता है।

(१) मूत्राश्मरी एवं सोजाक में इसके मूल का क्वाथ देते हैं।

(२) कुकास में जड़ को मधु के साथ देते हैं।

(३) अर्श में इसे पीसकर लेप करते हैं। अंडवृद्धि में भी इसको बांधते हैं।

अथ दुग्धिका (दुद्धी)। तस्या नामानि गुणांश्चाह

दुग्धिका स्वादुपर्णी स्यात्क्षीरा विक्षीरिणी तथा। दुग्धिकोष्णा गुरू रूक्षा वातला गर्भकारिणी॥ स्वादुक्षीरा कटुस्तिक्ता सृष्टमूत्रा मलापहा। स्वादुर्विष्टम्भिनी वृष्या कफकुष्ठक्रिमिप्रणुत्॥

दुद्धी के नाम तथा गुण—दुग्धिका, स्वादुपर्णी, क्षीरा, विक्षीरिणी ये नाम दुद्धी के हैं। दुद्धी–कटु तथा तिक्तरस युक्त, उष्णवीर्य, गुरु, रूक्ष, वातकारक, गर्भकारक, स्वादिष्ट दूध युक्त, मूत्र का प्रवर्त्तन तथा मल का निवारण करने वाली, स्वादिष्ट, विष्टम्भजनक, वृष्य (वीर्यवर्धक), एवं कफ, कुष्ठ और क्रिमि को नष्ट करनेवाली होती है॥ २७५–२७६॥

नोट—दूधी के अतिरिक्त एक छोटी दूधी होती है जिसके २, ३ प्रकार पाये जाते हैं। इनका संक्षेप में स्वतंत्र वर्णन किया गया है।

१६५ दुद्धी

हि०-दुद्धी, दुधिया, दुद्धि, दूधी। **बं०**-बरा, खरूई। **म०**-मोठी नायटी। **गु०**-नागला, दुधेली, राती। **ते०**-ननबाल। **ता०**-अमूपच्छै अरिस्सि। **ले०**-*Euphorbia hirta, Linn.* (युफोर्बिया हिर्टा, लिन.); Fam. Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)।

यह भारत के समस्त उष्ण भागों में होती है।

इसके **क्षुप**–वर्षायु, रोमश तथा २ फीट तक ऊंचे होते हैं। **काण्ड**–प्रायः चतुष्कोणीय होते हैं। **पत्र**–अभिमुख, मध्यशिरा के दोनों ओर के खण्ड छोटे-बड़े, तीक्ष्ण दन्तुर, अण्डाकार आयताकार या आयताकार-प्रासवत्, ¾–१½ इञ्च तक लम्बे एवं तीक्ष्ण या संकुचित अग्रवाले होते हैं। एकामव्यूह सूक्ष्म एवं गुच्छीकृत होता है। **फली**–छोटी एवं रोमावृत होती है जिसमें रक्ताभ भूरे रंग के छोटे बीज होते हैं। इसको तोड़ने से दूध निकलता है। पुष्प एवं फल आने पर इसे सुखा कर रखते हैं। इसके पंचांग का व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इससे जलविलेय पदार्थ जैसे गॅलिक एसिड (Gallic acid), क्वेर्सेटिन (Quercetin), फिनॉलीय द्रव्य, एक ग्लाइकोसाइड तथा शर्करा पाई जाती है। इनके अतिरिक्त सुरासार विलेय द्रव्य, कुछ उड़नशील द्रव्य एवं मोम भी होता है।

गुण और प्रयोग—हृदय एवं श्वसनक्रिया पर इसका अवसादक प्रभाव पड़ता है तथा केन्द्रीय प्रभाव से श्वसनिकाओं का विस्फार होता है। आमाशय में इससे स्थानिक क्षोभ उत्पन्न

होकर अधिक मात्रा से उत्क्लेश एवं वमन होता है। इसलिये इसका प्रयोग भोजनोपरान्त अधिक जल के साथ थोड़ी-थोड़ी मात्रा में करना चाहिये।

(१) जीर्ण कफविकारों एवं तमकश्वास में इसका क्वाथ देते हैं। इसके साथ अन्य कफनिःसारक द्रव्य देने चाहिये।

(२) इसका स्वरस रक्तयुक्त आंव तथा शूल में दिया जाता है।

(३) बच्चों के कृमि, पेट के विकार तथा कफविकारों में इसे देते हैं।

(४) स्तन्यवर्धक रूप में इसका स्वरस पिलाया जाता है।

(५) वमन रोकने के लिए इसकी जड़ का प्रयोग किया जाता है।

(६) चर्मकील तथा दद्रु पर इसका दूध लगाते हैं।

मात्रा—स्वरस १०–२० बूँद; शुष्क चूर्ण २–५ रत्ती।

१६६ छोटी दूधी (१)

ले०-*Euphorbia thymifolia, Linn.* (युफोर्बिआ थाइमीफोलिया, लिन.)। Fam. Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)।

यह भी भारत के सभी मैदानी एवं छोटे पहाड़ी स्थानों पर एवं काश्मीर में ५५०० फीट तक होती है।

इसके **पौधे** बहुत छोटे ताम्रवर्ण के तथा फैले हुई शाखाओं से युक्त होते हैं। **पत्ते**–सूक्ष्म, अभिमुख, द्विपंक्ति, तिर्यक् आयताकार या गोल एवं गोलदन्तुर होते हैं। गुच्छीकृत एकामव्यूह हरित या गुलाबी तथा मृदुरोमश होते हैं।

गुण और प्रयोग—यह विशेष रेचक तथा उत्तेजक है। इसका रस दाद तथा अन्य चर्मरोगों में लगाते हैं। कफ एवं पित्त को निकालने के लिये इसका स्वरस दूध के साथ देते हैं। इसकी जड़ अनार्तव में दी जाती है।

१६७ छोटी दूधी (२)

ले०-*Euphorbia microphylla, Heyne* (युफोर्बिआ माइक्रोफाइला, हेन); Fam. Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)।

यह बंगाल, बुन्देलखण्ड, बिहार तथा प० प्रायद्वीप में होती है।

इसका **क्षुप** भी पहले की तरह होता है। यह श्वेतवर्ण का होता है। **पत्ते**–कुछ छोटे और कभी-कभी केवल अग्र पर दन्तुर होते हैं। इसमें एकामव्यूह चिकने होते हैं।

गुण और प्रयोग—स्तन्यवर्धक रूप में इसका प्रयोग करते हैं।

१६८ छोटी दूधी (३)

ले०-*Euphorbia hypericifolia, Linn.* (युफोर्बिआ हाइपेरिसी फोलिया, लिन.)। Fam. Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)। **पं०**-हजारदाना।

यह भारत के समस्त उष्ण भागों में तथा ४५०० की ऊँचाई तक हिमालय पर होती है।

इसका **क्षुप**–करीब ६–२४ इञ्च बड़ा होता है। **पत्ते**–आयताकार या कुछ अभिअंडाकार, सूक्ष्म दन्तुर, एवं १·७″ से छोटे होते हैं। एकामव्यूह, छोटे, ०·०७ इञ्च बड़े होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें फेनॉलीय द्रव्य, सुगन्धि तैल एवं क्षाराभ होता है।

गुण और प्रयोग—यह संग्राही एवं मादक है।

(१) बच्चों के उदरशूल में पत्र-स्वरस दूध के साथ देते हैं।

(२) शुष्क पत्र का फांट आंव, अतिसार, अत्यार्तव तथा श्वेतप्रदर में देते हैं।

(३) इसका दूध चर्मकील पर लगाते हैं।

अथ भूम्यामलकी (भुँइआमला) । तस्या नामगुणानाह

भूम्यामलकिका प्रोक्ता शिवा तामलकीति च । बहुपत्रा बहुफला बहुवीर्याऽजटाऽपि च ॥
भूधात्री वातकृत्तिक्ता कषाया मधुरा हिमा । पिपासाकासपित्तास्रकफकण्डूक्षतापहा ॥२७८॥

भुँइ आमला के नाम तथा गुण—भूम्यामलकिका, शिवा, तामलकी, बहुपत्रा, बहुफला, बहुवीर्या, अजटा और भूधात्री ये सब नाम भुँइ आमला के हैं।

भुँइ आमला—तिक्त, कषाय एवं मधुर रस युक्त, वातकारक, शीतवीर्य एवं तृषा, खाँसी, पित्त, रक्त, कफ, खुजली और क्षत को दूर करने वाली है ॥ २७७-२७८ ॥

१६९ भूआमला

हि०-भुंई आमला, भूमि आंवरा, **बं०**-भुंई आम्ला। **क०**-किरूनेल्लि। **ते०**-नेल वुसरि। **गु०**-भोंयआवली। **म०**-भुई आंवली। **ले०**-*Phyllanthus niruri, Linn.* (फाइलॅन्थस् निरुरी, लिन.)। Fam. Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में वर्षा ऋतु में अधिक मिलती है। पहाड़ों पर यह ४००० फीट की ऊँचाई तक पाई जाती है।

इसका **क्षुप**-६ से १२ इञ्च तक ऊँचा होता है। **शाखाएँ**-सीधी, पतली तथा देखने में पक्षवत् पत्र सदृश मालूम होती हैं। **पत्ते**-दीर्घवृत्ताकार, आयताकार एवं ०·१५-०·७५ इञ्च लंबे होते हैं। **फूल**-छोटे, हरे या श्वेताभ, प्रायः २-३ पुपुष्प एवं १ स्त्रीपुष्प पत्रकोण में रहते हैं। **फल**-गोल, आंवला की तरह, ०·०८-०·१२ इञ्च व्यास के ०·२-०·३ इञ्च लम्बे दण्ड पर आते हैं। **बीज**-भूरे रंग के, खड़ेबल में सूक्ष्म दानेदार रेखाओं से युक्त एवं आड़ेबल में महीन धारीदार होते हैं।

इसकी एक अन्य जाति होती है जिसे Phyllanthus urinaria Linn. (फॉइलॅन्थस् युरिनॅरिआ लिन.) कहते हैं। इसमें **पत्ते**-०·१२-०·४ इञ्च लंबे, किसी किसी में ०·६ इञ्च तक लंबे, आयताकार या रेखाकार-आयताकार; **फूल**-रक्ताभ; **फल**-दबे हुये, गोल, ऊपर से शल्क (कीलक) युक्त; **बीज**-सूक्ष्म एवं आड़ेबल में महीन नालीदार होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में एक कड़ुआ द्रव्य फाइलेन्थिन (Phyllanthin) पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह कासहर, श्वासहर, शीत, मूत्रजनन, स्रंसन, दाहशामक, शोथहर, व्रणरोपण तथा नियतकालिक ज्वर प्रतिबन्धक है।

यह कामला, मलेरिया, यकृत्-प्लीहावृद्धि, दाह, मूत्ररोग, रक्तविकार तथा व्रण में उपयोगी है।

(१) इसके पंचांग का क्वाथ मलेरिया में दिया जाता है।

(२) मूत्रमार्ग के विकारों तथा जलशोथ में इससे लाभ होता है। इससे मूत्र की मात्रा बढ़ती है तथा जलन कम होती है।

(३) कामला में इसकी १ तोला जड़ दूध में पीस कर दोनों समय देते हैं।

(४) इसके कोमल काण्ड का फाण्ट आंव में देते हैं।

(५) व्रणशोथ तथा व्रण पर इसके पंचांग का चावल की पेया के साथ बना पोल्टिस बांधा जाता है।

(६) त्वचा के रोगों में पत्तों को नमक के साथ पीस कर बांधते हैं।

मात्रा—स्वरस १ से २ तोला; चूर्ण ३-६ माशा।

अथ ब्राह्मी मण्डूकपर्णी च । तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

ब्राह्मी कपोतवङ्का च सोमवल्ली सरस्वती । मण्डूकपर्णी माण्डूकी त्वाष्ट्री दिव्या महौषधी ॥
ब्राह्मी हिमासरा तिक्ता लघुर्मेध्या च शीतला । कषाया मधुरा स्वादुपाकाऽऽयुष्या रसायनी ॥
स्वर्या स्मृतिप्रदा कुष्ठपाण्डुमेहास्रकासजित् । विषशोथज्वरहरी तद्वन्मण्डूकपर्णिनी ॥ २८३ ॥

ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी के नाम तथा गुण—ब्राह्मी, कपोतवङ्का, सोमवल्ली और सरस्वती ये नाम ब्राह्मी के हैं। मण्डूकपर्णी, माण्डूकी, त्वाष्ट्री, दिव्या और महौषधी ये नाम मण्डूकपर्णी के हैं। ब्राह्मी-शीतवीर्य, सारक (दस्तावर), तिक्त, कषाय और मधुर रसयुक्त, लघु, मेधा के लिए हितकर, शीतल, विपाक में मधुर रस युक्त, आयु को बढ़ाने वाली, रसायन, स्वर को उत्तम करने वाली, स्मरण-शक्ति को बढ़ाने वाली एवं कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, रक्तविकार, खांसी, विष, शोथ तथा ज्वर को दूर करने वाली होती है। **मण्डूकपर्णी**-इसके भी समस्त गुण ब्राह्मी के समान ही हैं॥

नोट—भावप्रकाशकार ब्राह्मी तथा मण्डूकपर्णी दोनों के समान गुण लिखते हैं। वास्तव में ये दो भिन्न वनस्पतियाँ हैं। सुश्रुत चि० २८-४ में ब्राह्मी तथा मण्डूकपर्णी दोनों के अलग-अलग प्रयोग दिये हुये हैं। उत्तर प्रदेश के अधिकांश वैद्य जिसको ब्राह्मी मानते हैं यह वास्तव में मण्डूकपर्णी है जिसका लेटिन नाम हाइड्रोकोटाइल् एशियाटिका है। इसकी २, ३ किस्में तथा एक अन्य जाति भी पाई जाती है। इनके अतिरिक्त बंगाल के वैद्य जलनीम (हर्पेस्टिस् मोनिएरा) को ब्राह्मी मानते हैं। हो सकता है कि दोनों के गुणों में कुछ समानता पाई जाती हो और इसी कारण भावप्रकाशकार ने इनके गुण एक समान लिखे हों। इनमें से हाइड्रोकोटाइल् एशियाटिका निश्चित रूप से मण्डूकपर्णी मालूम होती है क्योंकि इसका बिहार प्रान्त का स्थानिक नाम बेंगसाग है, जिसका अर्थ मेंढक का शाक है। यहाँ दोनों का अलग-अलग वर्णन किया है।

१७० ब्राह्मी (वंगीय), जलनीम

हि०-ब्राह्मी, जलनीम, ब्रह्मी। **बं०**-ब्राह्मीशाक, ऊधाबिनि। **म०**-ब्राह्मी। **ते०**-शम्ब्रनी चेट्टु। **ता०**-नीराब्रह्मि। **अं०**-Bacopa (बॅकोपा)। **ले०**-*Bacopa monnieri (Linn.) Pennell* (बॅकोपा मोनिएराइ (लिन.) पेन्नेल); B. monniera Wetts. (बॅ० मोनिएरा वेट); Herpestis monniera (Linn.) H. B. & K. (हर्पेस्टिस् मोनिएरा)। Fam. Scrophulariaceae (स्क्रोफ्युलॅरिएसी)।

पानी के समीप आर्द्र स्थानों में यह सर्वत्र पाई जाती है।

इसका **क्षुप**-प्रसरी एवं किञ्चित् मांसल होता है। **पत्ते**-अभिलट्वाकार, आयताकार या सुवा के आकार के अखण्ड, अवृन्त, कुण्ठिताग्र, सूक्ष्म काले चिह्नों से युक्त एवं ६-२५ × २·५-१० मि० मि० बड़े होते हैं। **पुष्प**-जामुनी मिला हुआ श्वेत या गुलाबी रंग का होता है। **फली**-५ मि० मि० लम्बी, अण्डाकार, चिकनी तथा नुकीली होती है, जिसमें सूक्ष्म बीज होते हैं।

इसका स्वाद कड़वा होने से तथा जल के समीप होने से इसे जलनीम भी कहते हैं। इसके पंचांग का व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक क्षाराभ ब्राह्मीन (Bramhine, 0·01–0·02%) पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसमें का क्षाराभ मेढ़क, चूहे तथा गिनीपिग आदि के लिये बहुत ही विषैला है। इससे रक्त का दबाव कम होता है। अल्प मात्रा से रक्त का दबाव कुछ बढ़ता है तथा श्वसन क्रिया को भी बल मिलता है। अत्यल्प मात्रा से भी अनैच्छिक मांसपेशियां, जैसे आन्त्र, गर्भाशय आदि उत्तेजित होती हैं। चिकित्सा की मात्रा में इसके क्षाराभ का प्रभाव स्ट्रिकनीन की तरह पड़ता है जिससे हृदय को बल मिलता है।

यह वातनाडी-संस्थान के लिये बल्य, मूत्रल एवं विरेचक है। इसका प्रयोग अपस्मार, उन्माद तथा स्वरभंग में किया जाता है।

(१) आमवात में इसके स्वरस का बाह्य प्रयोग करते हैं।

(२) बच्चों के सर्दी, खाँसी आदि में इसका स्वरस एक चम्मच देने से वमन तथा विरेचन होकर लाभ होता है।

(३) अवसाद, मानसिक दौर्बल्य आदि अवस्थाओं में इसके पत्तों का चूर्ण उपयोगी है।

(४) अपस्मार, हिस्टीरिया आदि में इससे बना ब्राह्मी घृत उपयोगी है।

मात्रा—स्वरस ½–१ तोला; चूर्ण ४–८ रत्ती।

१७१ मण्डूकपर्णी

हि०–ब्रह्ममाण्डूकी, ब्राह्मीभेद। **बं०**–थोलकुरी। **गु०**–खडब्राह्मी। **क०**–वंदेलग। **ते०**–मण्डूक ब्राह्मी। **ता०**–व्रह्मी। **म०**–कारिवणा। **अं०**–Indian Pennywort (इण्डियन पेनीवर्ट)। **ले०**–*Centella asiatica (Linn.) Urban* (सेन्टेला एशियाटिका (लिन.) अरबन); Hydrocotyle asiatica, Linn. (हाइड्रोकोटाइल एशियाटिका, लिन.)। Fam. Umbelliferae (अम्बेलीफेरी)।

यह भारत तथा लंका में आर्द्र स्थान पर ६००० फीट की ऊँचाई तक पाई जाती है। यह विदेशों में भी पाई जाती है।

इसका **क्षुप**—रूप में कुछ भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। **काण्ड**–लंबे, प्रसरी एवं ग्रन्थियों पर मूलों से युक्त होते हैं। **पत्ते**–गोल वृक्काकार, अखण्ड परन्तु धार पर प्रायः गोल-दन्तुर, १.३–६.३ से. मी. व्यास में एवं लंबे वृन्त से युक्त होते हैं। **पुष्प**–ग्रन्थियों से कई पुष्पदण्ड एक साथ निकलते हैं, जिनमें लाल रंग के पुष्प संख्या में ३–५, सवृन्त मूर्धज होते हैं। **फल**–८ मि. मी. लंबे तथा चिपटे होते हैं, जिनमें चिपटे बीज होते हैं।

इसकी अन्य किस्में होती हैं, जिनमें एक में पत्ती बड़ी एवं फल सफेद तथा दूसरी में पत्ती छोटी तथा लाल फल होते हैं। एक अन्य जाति हा. रोटन्डिफोलिया (H. rotundifolia Roxb.) भी होती है जिसका **क्षुप**–बहुत कोमल, **पत्ते**–पतले झिल्ली के समान, स्पष्टतः ५–७ खण्डित एवं व्यास में १८ मि. मी. तक होते हैं। इसमें प्रत्येक पुष्पदंड में पुष्प १०–१५ तक एवं अवृन्त होते हैं। इसमें कोणपुष्पक सूक्ष्म होते हैं। पहले में वे स्पष्ट, प्रत्येक पुष्पदण्ड के साथ दो-दो, तथा चौड़े लट्वाकार होते हैं। इसके पत्तों एवं काण्ड का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। इसको छाया में सुखाकर चूर्ण बनाकर बन्द बोतलों में रखना चाहिये।

रासायनिक संगठन—इसमें एक क्षाराभ हाइड्रोकोटिलिन (Hydrocotylin, $C_{22}H_{33}NO_8$), एक ग्लाइकोसाइड, एशियाटिकोसाइड (Asiaticoside), अल्प उड़नशील तैल, स्थिरतैल तथा राळीय द्रव्य पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त वेलेराइन (Vellarine), पेक्टिक एसिड

(Pectic acid) तथा विटामिन सी. (Ascorbic acid) पाये जाते हैं। शुष्क पौधे में सेन्टोइक् एसिड (Centoic acid–$C_{30}H_{48}O_6$) तथा सेन्टेलिक् एसिड (Centellic acid, $C_{30}H_4C_6$) पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह रसायन, बल्य, मूत्रजनन, वयःस्थापन, मेध्य, रक्तशोधक, कुष्ठघ्न, व्रणशोधक एवं व्रणरोपक है। अधिक मात्रा में यह मादक है। इससे शिरःशूल, चक्कर आना तथा कभी-कभी संन्यास (Coma) की अवस्था भी हो जाती है। इससे त्वचा की रक्तवाहिनियों का विस्फार होता है।

इसका प्रयोग वातिक विकार, चर्मरोग एवं रक्तविकार में किया जाता है।

(१) त्वचा के विकारों में यह अच्छी लाभदायक है। कुष्ठ में इससे कुछ लाक्षणिक लाभ एवं साधारण स्वास्थ्य ठीक होता है। फिरंग की द्वितीयावस्था एवं तृतीयावस्था तथा जीर्ण आमवात में इसको देते हैं। फिरंग में इसके देने से एक सप्ताह में त्वचा मुलायम पड़कर छूटने लगती है। अन्य त्वचा रोगों में भी इससे लाभ होता है। इसका चूर्ण व्रण पर लगाते हैं तथा इसे खिलाते हैं। इसके प्रयोग से यदि कण्डू हो तो कुछ दिन इसे रोकना चाहिये तथा रेचक औषध देनी चाहिये।

(२) बच्चों के खूनी आँव में २ से ४ पत्तों का स्वरस, जीरक एवं मिश्री के साथ पिलाते हैं तथा नाभि के नीचे लेप करते हैं।

(३) बच्चों को शब्दोच्चारण ठीक करने के लिये इसे चबाने को देते हैं।

(४) स्मरणशक्ति बढ़ाने के लिये इसका चूर्ण दुग्ध के साथ दिया जाता है।

मात्रा – चूर्ण २–४ रत्ती; ताजे पत्ते ८–१२ प्रौढ़ के लिये; २–४ बालकों के लिये।

अथ द्रोणा (गूमा)। तस्या नामगुणानाह

द्रोणा च द्रोणपुष्पी च फलेपुष्पा च कीर्त्तिता। द्रोणपुष्पी गुरुः स्वादू रूक्षोष्णा वातपित्तकृत्॥
सतीक्ष्णलवणा स्वादुपाका कट्वी च भेदिनी। कफामकामलाशोथतमकश्वासजन्तुजित्॥२८३॥

गूमा के नाम तथा गुण—द्रोणा, द्रोणपुष्पी और फलेपुष्पा ये नाम गूमा के हैं। **गूमा**–गुरु, स्वादिष्ट, रूक्ष, उष्ण, वात-पित्त कारक, तीक्ष्ण, लवणरसयुक्त, विपाक में मधुररसयुक्त, कटु, मल को भेदन करने वाली एवं कफ, आम, कामला, शोथ, तमकश्वास और क्रिमि को दूर करती है॥ २८२–२८३॥

१७२ गूमा

हिं०–गूमा। **बं०**–घलघसे, हलकषा, दण्ड कलस। **गु०**–कुबो। **म०**–तुंबा। **ले०**–*Leucas cephalotes Spreng.* (ल्युकस सिफॅलोटिस स्प्रेंग.); Fam. Labiatae (लेबिएटी)।

यह प्रायः सब स्थानों में वर्षा में अधिक दिखाई पड़ती है। इसका **क्षुप**–आधे से २–३ फीट तक ऊँचा होता है। शाखायें चौपहल एवं रोमश होती हैं। **पत्ते**–२–३ इंच लंबे तथा आधा इंच चौड़े अथवा न्यूनाधिक होते हैं। ये अण्डाकार-प्रासवत् या लट्वाकार, गोल एवं आरावत् दन्तुर एवं रोमश दन्तुर होते हैं। **पुष्पगुच्छ**–श्वेत, प्रायः अग्रज, गोल, व्यास में १–२ इंच एवं प्रायः लम्बाग्र कोणपुष्पकों से घिरे हुये रहते हैं और पुष्पगुच्छ के शीर्ष पर प्रायः दो पत्तियाँ रहती हैं। पुष्प आकृति में द्रोण के सदृश होते हैं, इसलिये इसे द्रोणपुष्पी कहते हैं। पुष्प शरद् में आते हैं तथा ग्रीष्म में यह सूख जाता है। इस प्रजाति में अनेक जातियाँ हैं जिनमें से कई एक को गूमा कहा जाता है।

इसके पंचांग का चिकित्सा में व्यवहार होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक सुगन्धित तैल तथा क्षाराम पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, कटु, स्वेदजनन, वातप्रशमन, स्रंसन एवं कफघ्न है। इसका प्रयोग प्रतिश्याय, कास, अग्निमांद्य, विषमज्वर एवं त्वचा के रोगों में किया जाता है।

(१) जुकाम में इसका फांट या स्वरस देते हैं। कफज्वर में टंकणक्षार तथा मधु के साथ इसका स्वरस देते हैं। इसके फूलों का शर्बत भी जुकाम आदि में लाभदायक है।

(२) आध्मान तथा उदरशूल में इसका स्वरस दिया जाता है।

(३) खुजली में इसका रस शरीर पर मलते हैं।

(४) सरदी से उत्पन्न शिरःशूल में इसके स्वरस का नस्य उपयोगी है।

(५) कामला में इसके पत्तों का रस नेत्रों में डालते हैं।

मात्रा—स्वरस ½–१ तोला।

अथ सुवर्चला (हुरहुर-श्वेत, पीत)। तयोर्नामगुणानाह

सुवर्चला सूर्यभक्ता वरदा बदराऽपि च। सूर्यावर्त्ता रविप्रीताऽपरा ब्रह्मसुदुर्लभा ॥२८४॥
सुवर्चला हिमा रूक्षा स्वादुपाका सरा गुरुः। अपित्तला कटुः क्षारा विष्टम्भकफवातजित् ॥
अन्या तिक्ता कषायोष्णा सरा रूक्षा लघुः कटुः। निहन्ति कफपित्तास्रश्वासकासारुचिज्वरान् ॥
विस्फोटकुष्ठमेहास्रयोनिरुक्कृमिपाण्डुताः ॥ २८६ ॥

हुरहुर तथा ब्रह्मसुवर्चला के नाम और गुण—सुवर्चला, सूर्यभक्ता, वरदा, बदरा, सूर्यावर्त्ता और रविप्रीता ये नाम हुरहुर के हैं। एक दूसरे प्रकार की भी 'हुरहुर' होती है, जिसका ब्रह्मसुदुर्लभा नाम है। हुरहुर-शीतवीर्य, रूक्ष, विपाक में मधुररसयुक्त, सारक, गुरु, किञ्चित पित्तजनक, कटुरसयुक्त, क्षारीय एवं विष्टम्भ, कफ और वात को दूर करने वाली होती है। और **द्वितीय हुरहुर** (ब्रह्मसुदुर्लभा)-तिक्त-कषाय और कटुरसयुक्त, उष्णवीर्य, सारक, रूक्ष, लघु एवं कफ, पित्त-रक्त, श्वास, कास, अरुचि, ज्वर, विस्फोटक, कुष्ठ, प्रमेह, रक्तविकार, योनिरोग, कृमि तथा पाण्डुरोग को दूर करने वाली होती है॥ २८४–२८६॥

नोट—उपर्युक्त वनस्पति को अधिकांश विद्वानों ने आजकल मिलने वाली हुरहुर माना है। हुरहुर के दो भेद पाये जाते हैं। गाइनेन्ड्रोप्सिस् पेन्टाफाइला (Gynandropsis pentaphylla) नामक श्वेत हुरहुर तथा क्लिओम् विस्कोसा (Cleome viscosa) नामक पीत हुरहुर। एक अन्य क्लि० मोनोफाइला (C. monophylla Linn.) नामक बैंगनी हुरहुर भी होता है।

श्वेत हुरहुर के पत्र पर्णनाल पर सूर्य के साथ घूमते हैं, जिससे उपर्युक्त सूर्यभक्ता, सूर्यावर्ता, रविप्रीता आदि नाम इस (श्वेत हुरहुर) के लिये सार्थक मालूम पड़ते हैं। कुछ विद्वान् इसमें उग्रगन्ध होने से इसे उग्रगन्धा, अजगन्धा मानते हैं। इसका मराठी नाम तिलवण इसके तिलपर्णी होने का सन्देह पैदा करता है। कुछ ने इसे कर्णस्फोटा माना है। बंगाली वैद्य सुवर्चला नाम से इसे लेते हैं। यहाँ दोनों हुरहुर का वर्णन किया गया है। हुरहुर को शास्त्रीय सुवर्चला, अजगन्धा तिलपर्णी, आदित्यभक्ता, सूर्यमुखी या कर्णस्फोटा इनमें से कदा माना जाय यह सन्देहास्पद है। मालवा, रोटंडीफोलिया (Malva rotundifolia Lill.; Fam. Malvaceae) का स्थानिक नाम सोंचल होने के कारण कुछ विद्वान् उसे सुवर्चला मानते हैं।

---

१. ब्रह्मसुवर्चला इति पाठा०।

१७३ हुरहुर (श्वेत)

हि०–हुरहुर सफेद, करेला, चमनी। **को०**–सेत काटाझड़ा। **म०**–तिलवण, माटवण, माब्ली। **बं०**–हुरहुरिया। **गु०**–धोळी तलवर्णी। **ते०**–वामिटम्। **मल०**–तैवेल। **ता०**–कडुगु, वेलै। **ले०**–*Gynandropsis pentaphylla, DC.* (गाइनेन्ड्राप्सिस् पेन्टाफाइला डीसी.)। Fam. Capparidaceae (कॅपेरिडेसी)।

यह भारत के सभी उष्ण स्थानों में होता है।

इसका क्षुप १–३ फीट ऊँचा एवं दुर्गन्धयुक्त होता है। पत्ते–सपत्रक, पाणिवत्, पत्रक प्रायः पाँच, अभिलट्वाकार, ग्रन्थिक रोमश एवं चिपचिपे होते हैं। पुष्प-श्वेत या बैंगनी होते हैं, जिसमें ६ नरकेसर होते हैं। फली-गोल, चिकनी, लम्बी एवं लम्बे वृन्त से युक्त होती है। बीज-राई के समान किन्तु छोटे होते हैं। इसके बीज एवं मूल का व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगटन–इसमें एक उड़नशील तैल होता है। बीजों में क्लिओमिन (Cleomin) नामक तत्त्व होता है।

गुण और प्रयोग– इसके बीज राई की तरह दाहजनक, दीपन, पाचन, उत्तेजक एवं कृमिघ्न हैं। जड़ उत्तेजक तथा स्वेदजनन है। पत्तों को पीस कर त्वचा पर लेप करने से यह पीत हुरहुर की अपेक्षा कम रक्तिमोत्पादक है।

(१) ज्वर में कमजोरी आने पर उत्तेजना लाने के लिये समूल क्षुप का स्वरस ½–१ तो० पिलाते हैं।

(२) पूतिकर्ण एवं कर्णशूल में इसके पत्तों का रस कान में डालते हैं, किन्तु इससे जलन होकर तकलीफ होती है।

(३) ग्रन्थि बैठाने के लिये इसके पत्तों का लेप किया जाता है।

१७४ हुरहुर (पीत)

हि०–चमनी, हुरहुरपीला, केदार इनावर (सं०)। **म०**–पिवली तिलवण। **गु०**–पीली तलवर्णी। **बं०**–हुरहुरिया। **ले०**–*Cleome viscosa, Linn.* (क्लिओम् विस्कोसा, लिन.); C. isocardia Linn. (आइसोकॅर्ड्रा लिन.)। Fam. Capparidaceae (कॅपेरिडेसी)।

यह भारत के सभी भागों में होती है। इसका क्षुप भी पहले की तरह होता है किन्तु इसमें सपत्रक पर्ण में पत्रकों की संख्या ३–५ तक होती है एवं फूल-पीले होते हैं। इसमें नरकेशर छोटे होते हैं। फली-चिपटी, रेशादार एवं छोटे वृन्त से युक्त होती है। इसके बीज एवं पत्तों का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। इसीकी एक अन्य जाति क्लि० मोनोफाइला, लिन. (C. monophylla, Linn.) होती है जिसमें पर्ण अपत्रक एवं पुष्प बैंगनी होते हैं।

रासायनिक संगठन– इसके बीजों में ०·१% विस्कोसिक अम्ल (Viscosic acid), ०·०४% विस्कोसिन (Viscosin) पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह स्वेदजनन, उत्तेजक, कोष्ठवात-प्रशमन एवं कृमिघ्न है। पत्तों का रस कोथप्रशमन एवं मूल कृमिघ्न है। इसके बीज एवं पत्तों का प्रभाव राई की तरह होता है। श्वेत की अपेक्षा इसके पत्ते अधिक दाहजनक हैं, क्योंकि इसके लेप से त्वचा त्वरित लाल हो जाती है एवं फोड़े भी हो जाते हैं।

(१) इसके बीज केचुओं की बीमारी में देते हैं।

(२) आन्तरिक शोथ कम करने के लिये राई की अपेक्षा इसके पत्तों का लेप अधिक प्रभावशाली होता है। स्फोटोत्पादन के लिये या त्वक्-रागोत्पादन के लिये इसके पत्तों या पञ्चांग का लेप करते हैं।

(३) पूतिव्रण एवं बाधिर्य में इसके पत्तों का स्वरस तेल मिलाकर कान में डालते हैं।

मात्रा—बीज १-३ माशा।

अथ वन्ध्याकर्कोटकी (वनककोडा)। तस्या नामानि गुणांश्चाह

वन्ध्याकर्कोटकी देवी कन्या योगीश्वरीति च। नागारिर्नक्रदमनी विषकण्टकिनी तथा॥२८७॥
वन्ध्याकर्कोटकी लघ्वी कफनुद् व्रणशोधिनी। सर्पदर्पहरी तीक्ष्णा विसर्पविषहारिणी॥२८८॥

वन ककोड़ा के नाम तथा गुण— वन्ध्याकर्कोटकी, देवी, कन्या, योगीश्वरी, नागारि, नक्रदमनी और विषकण्टकिनी ये नाम वन ककोड़ा के हैं। वनककोड़ा–लघु, कफनाशक, व्रणशोधक, साँप के अहङ्कार को दूर करने वाली (विष के प्रभाव को दूर करने वाली), तीक्ष्णवीर्य एवं विसर्प तथा विष को नष्ट करने वाली होती है॥ २८७-२८८॥

१७५ वनककोड़ा

हि०–बाँझककोड़ा, वनककोड़ा, बांझखेखसा। **बं०**–तित्काकरोल। **म०**–वांझकटोली। **गु०**–बांझकंटोला, कंकोडीं। **क०**–माडहागल। **ता०**–पलुप्पकै। **ते०**–आगाकर। **ले०**–*Momordica dioica Roxb.* (मोमोर्डिका डायोइका राक्स.)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुर्बिटेसी।

यह इस देश के प्रायः सब प्रान्तों के जङ्गल झाड़ियों में उत्पन्न होती है और वर्षा ऋतु में अधिक पाई जाती है। हिमालय में ५००० फीट की ऊँचाई तक पाई जाती है।

इसकी लता, पत्र आदि खेखसा के समान ही होते हैं, केवल अन्तर यह है कि खेखसा में फल लगता है और इसमें फल नहीं लगता इसलिए इसको वन्ध्याकर्कोटकी कहते हैं। इसका कारण यह है कि यह द्विधैकलिंगक वनस्पति है, इसलिये नर और नारी पुष्पों की लतायें पृथक् होती हैं। नरपुष्पों की लता को वन्ध्याकर्कोटकी या बाँझककोड़ा और फल देने वाली नारी पुष्पों को उत्पन्न करने वाली लताएँ कर्कोटकी कही जाती हैं। इसकी लता-आरोही, चिकनी प्रायः दुर्गन्धयुक्त एवं कोनदार काण्ड वाली होती है। तन्तु निःशाख होते हैं। पत्ते–आकार में छोटे-बड़े हुआ करते हैं जो २ से ४ इञ्च के घेरे में लम्बाई युक्त गोलाकार, हृद्वत्, ३ भागों में विभक्त या अखण्ड, प्रायः लहरदार एवं दन्तुर धार वाले रहते हैं। पुष्प-बड़े, पीत वर्णके; नर पुष्प–पतले एवं २-६ इञ्च लम्बे पुष्पदण्डों से युक्त होते हैं एवं नारीपुष्पों के दण्ड छोटे या उतने ही बड़े होते हैं। नरपुष्प में कोणपुष्पक बड़ा एवं पुष्प को आच्छादित किये रहता है तथा नारीपुष्प में यह छोटा होता है। फल–यह १-३ इञ्च लम्बा, दीर्घ वृत्ताभ और तीक्ष्णाग्र अथवा अण्डाकार होता है तथा इस पर मुलायम काँटे सदृश बाह्य वृद्धियाँ होती हैं। जड़ बहुवर्षायु एवं कन्दवत् होती है।

इसकी पत्ती एवं फल का शाकार्थ उपयोग होता है तथा कन्द एवं पत्रादि का चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है। कर्कोटकी का स्वतंत्र वर्णन (गुण, प्रयोग आदि) आगे शाकवर्ग में आया है।

रासायनिक संगठन—इसकी राख में मैंगनीज होता है। इसमें क्षाराभ भी पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह थोडीसी रक्तसंग्राहक, विषनाशक, कफघ्न एवं व्रणहर है। इसका कन्द कफनाशक एवं सभी विषों को दूर करने वाला है।

(१) इसके कन्द को भूनकर या उसका चूर्ण रक्तार्श में देते हैं।

(२) सर्पविष तथा बिच्छू के काटने पर इसका प्रयोग करते हैं। इसकी जड़ को पीस कर पिलाते हैं तथा नस्य देते हैं।

(३) ज्वर में शाक के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है (सु० उ० ३९-१५०)। तीव्र ज्वर एवं प्रलाप में इसका बाह्य लेप किया जाता है।

(४) मूत्रकृच्छ्र में मूल को दूध के साथ पिलाते हैं।

मार्कण्डिका (सनाय)। तस्या नामगुणानाह

मार्कण्डिका भूमिवल्ली मार्कण्डी मृदुरेचनी॥ २८९॥
मार्कण्डिका कुष्ठहरी ऊर्ध्वाधःकायशोधिनी। विषदुर्गन्धकासघ्नी गुल्मोदरविनाशिनी॥

सनाय के नाम तथा गुण—मार्कण्डिका, भूमिवल्ली, मार्कण्डी और मृदुरेचनी (मृदु विरेचन करने वाली) ये नाम सनाय के हैं। सनाय—कुष्ठनाशक, ऊपर तथा नीचे से शरीर का शोधन करने वाली एवं विष, दुर्गन्ध, खाँसी, गुल्म तथा उदर रोग को दूर करने वाली होती है॥ २८९-२९०॥

१७६ सनाय

हि०–देशी सनाय। **बं०**–सोनपात, सोनामुखी। **म०**–सोनामुखी। **गु०**–मीठीआकबल, सोना मुखी। **ते०**–नेलातेनगेडु। **ता०**–निलाविरै। **अ०**–सनाय मक्की। **अं०**–Indian or Tinnevelly Senna (इंडियन या तिनेवेल्ली सेना)। **ले०**–*Cassia angustifolia, Vahl* (केशिया ॲंगस्टिफोलिया)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

इसका आदि स्थान अरब तथा सोमालीलैंड है। किन्तु अब इसकी खेती दक्षिण भारत में तिनेवेल्ली, मदुरा तथा त्रिचनापल्ली जिलों में होती है। मैसूर में भी इसकी उपज का प्रयत्न किया गया है।

इसका सीधा गुल्म २-३ फीट ऊँचा होता है। पत्ते–संयुक्त होते हैं जिनमें पत्रक १-८ जोड़े होते हैं। पत्रक–अण्डाकार भालाकार, २.५-७ से० मी० लम्बे तथा ७-८ मि० मि० चौड़े (१-२ इञ्च × ०.२-०.६ इन्च) एवं चिकने होते हैं। पुष्प–पत्रकोणीय सदण्डिक (Raceme) मंजरियों में पीतवर्ण के पुष्प आते हैं। फली–चिपटी, १.४ से २.८ इन्च लम्बी, करीब ०.८ इंच चौड़ी एवं हरिताभ भूरी होती है। यह के० ॲक्यूटिफोलिया की फली से कम चौड़ी किन्तु अधिक लम्बी होती है। बीज–संख्या में ५-७, गहरे भूरे रंग के, अभिलट्वाकार एवं दबे हुए होते हैं। इसकी फली एवं पत्तों का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

ब्रिटिश फारमाकोपिया (British pharmacopoeia) में दो जाति की सनाय मान्य है। एक उपर्युक्त सनाय तथा दूसरी ॲलेक्सैंण्ड्रियन सेना (Alexandrian senna) जो कि केशिया ॲक्यूटिफोलिया (Cassia acutifolia Delile) के जंगली पौधों से प्राप्त होती है। यह अफ्रीका तथा सूडान में होती है। इसको भारत में भी उगाने का प्रयत्न किया गया है। एक तीसरा भेद के० ऑब्होवेटा (Cassia obovata (L.) Collad) होता है, जिसे इटालियन सेना (Italiansenna)

कहते हैं, सिंध, पंजाब, गुजरात, दक्षिण महाराष्ट्र एवं डेक्कन में पाया जाता है। यह देशी सनाय (Country senna) के नाम से भारतीय बाजार में सनाय के प्रतिनिधि रूप में बिकती है।

रासायनिक संगठन—इसमें हीन (Rhein, $C_{14} H_5 O_2 (OH)_2 COOH$), एलो-एमोडीन (Aloe-emodin, $C_{14} H_5 O_2 (OH)_2 CH_2 OH$), केम्फेरिन (Kaempferin), एवं आइसोहॅम्नेटिन (Isorhamnetin) मुक्त रूप में या ग्लाइकोसाइड के रूप में होते हैं। इनके अतिरिक्त केम्फेरॉल (Kaempferol), माइरिसिल् अॅल्कोहोल (Myricyl alcohol) तथा फाइटोस्टेरोलिन (Phytosterolin) भी पाये जाते हैं।

इनके अतिरिक्त इसके पत्तों में गोंद, कॅल्शियम ऑक्सॅलेट (Calcium oxalate), राल तथा कुछ ग्लाइकोसाइड सम द्रव्य होते हैं। मेथिल अॅन्थ्रा किनोन (Methyl-anthraquinone) से संजात (Derivatives) कुल द्रव्य की मात्रा १-४% तक पाई गई है।

गुण और प्रयोग—यह रेचन औषध है। इसका छोटी आंतों पर प्रभाव होता है, जिससे पुरस्सरण की क्रिया बढ़ती है। सेवन के ६-१० घण्टे पश्चात साफ शौच होता है। इसमें कुछ मरोड़ होती है जो संभवतः इसके पत्तों में के रालीय द्रव्य के कारण या पत्तों में रहने वाले एमोडीन (Emodin) के कारण होती है। इसे दूर करने के लिये तथा स्वाद ठीक करने के लिये इसके साथ सुगन्धि द्रव्य या क्षारीय विरेचन एवं मुलेठी या द्राक्षा देना चाहिये। इसका उत्सर्ग दूध द्वारा होने के कारण दूध में विरेचक गुण आ जाता है।

(१) जिनको कब्ज की शिकायत रहती है, उन्हें इसको दिया जाता है।

(२) पित्तज्वर में विरेचन के लिये इसे देने से दूषित पित्त निकल जाता है, जिससे दाह, शिरःशूल आदि कम हो जाते हैं

(३) आवेष्टन युक्त विबन्ध (Spastic constipation), या प्रक्षोभयुक्त बृहदांत्र (Irritable colon) एवं बृहदांत्र शोथ (Colitis) में इसका प्रयोग निषिद्ध है।

मात्रा—५-१५ रत्ती।

अथ देवदाली पीतदेवदाली च। खेखसावत्फलव्रततिः। तयोर्नामानि गुणांश्चाह

देवदाली तु वेणी स्यात्कर्कटी च गरागरी। देवताडो वृत्तकोशस्तथा जीमूत इत्यपि ॥२९१॥
पीता परा खरस्पर्शा विषघ्नी गरनाशिनी। देवदाली रसे तिक्ता कफार्शःशोफपाण्डुताः।
नाशयेद्वामनी तीक्ष्णा क्षयहिक्काकृमिज्वरान् ॥ २९२ ॥

देवदाली के नाम तथा गुण—देवदाली, वेणी, कर्कटी, गरागरी, देवताड, वृत्तकोश और जीमूत ये नाम देवदाली के हैं। दूसरी पीतदेवदाली के नाम-खरस्पर्शा, विषघ्नी और गरनाशिनी ये सब हैं। देवदाली-तिक्तरसयुक्त, वमन कराने वाली, तीक्ष्ण, एवं कफ, अर्श (बवासीर), शोथ, पाण्डुरोग, क्षय, हिचकी, कृमि तथा ज्वर को नष्ट करने वाली होती है ॥ २९१-२९२ ॥

अथ तत्फलगुणानाह

देवदालीफलं तिक्तं कृमिश्लेष्मविनाशनम्। स्रंसनं गुल्मशूलघ्नमर्शोघ्नं वातजित्परम् ॥२९३॥

देवदाली घघरबेल के फल का गुण—यह तिक्तरसयुक्त, स्रंसन एवं कृमि, कफ, गुल्म, शूल, अर्श तथा वायु को दूर करने वाला होत है ॥ २९३ ॥

१७७ देवदाली

हि०-देवदाली, सोनैया, बन्दाल, घघरबेल, घुसरान। बं०-बिंदाल, घोषालता, देवताड़, देयाताड़। म०-देवडांगरी, कुकरवेल। गु०-कुकड़वेल। ते०-पनिबिर। क०-देवडंगर। अं०-Bristly Luffa (ब्रिस्टलि लफा)। ले०-*Luffa echinata Roxb.* (लुफा एचिनॅटा राक्स.)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

यह-सिन्ध, गुजरात, बिहार, देहरादून, उत्तरी अवध, बुंदेलखंड, उत्तर प्रदेश, और बङ्गाल आदि स्थानों में अधिक उत्पन्न होती है।

इसकी लता-खेकसा (कर्कोटकी) के समान होती है, कर्कोटकी का विस्तार अधिक सघन होता है, परन्तु देवदाली का विस्तार बहुत कम होता है। इसके काण्ड पतले एवं पांच कोन वाले होते हैं। तन्तु द्विशाख शाखाओं वाले होते हैं। **पत्ते**-१-२½ इञ्च के घेरे में गोलाकार, वृक्काकार, लट्वाकार, पञ्च कोणाकार, अथवा पाँच भागवाले एवं गहरे कटे किनारे वाले तथा प्रत्येक भाग दन्तुर दीर्घवृत्ताभ होते हैं। **पत्रदण्ड**-१-२ इञ्च लम्बा होता है। **पुष्प**-श्वेत तथा व्यास में ½-१ इञ्च होते हैं। पुं-पुष्प-२-८ इञ्च लंबी मंजरियों में और उन्हीं पत्रकोणों में एकाकी स्त्री-पुष्प निकले रहते हैं। **फल**-१ से १॥ इञ्च लम्बे, लगभग आधा इञ्च मोटे, १/६-१/३ इञ्च लंबे सघन कड़े रोम (बाह्यवृद्धि) अथवा कोमल काँटों से आच्छादित रहते हैं। फल कच्चे होते हैं, तो यह काँटे हरे रङ्ग के और सूखने पर भूरे रङ्ग के हो जाते हैं। फलों के मुँह पर सूक्ष्म ढक्कन (Lid) होता है। जब फल जाड़े में पक कर सूख जाता है, तब यह ढक्कन अपने आप फल से अलग हो कर गिर जाता है और फल के अन्दर के रेशेवाले तीन छिद्रों में से बीज निकलना आरम्भ होता है। इस लता का स्वाद बहुत कड़ुवा होता है। इसके फल का उपयोग किया जाता है। पंचांग का प्रयोग भी किया जा सकता है।

इसी प्रजाति की एक दूसरी लता लुफा ग्रॅविओलेन्स राक्स. (Luffa graveolens. Roxb.) होती है, जिसमें पुष्प पीले रंग के, तन्तु ३-५ शाखाओं वाले, पुंपुष्प गुच्छबद्ध, पुंकेशर पांच (देवदाली में केवल ३) किन्तु फल देवदाली की तरह काँटेदार होते हैं। काँटे कुछ मुलायम होते हैं।

पीले, लाल और सफेद फूलों के भेद से देवदाली तीन प्रकार की मानी जाती है। इसमें सफेद फूल की देवदाली अधिक मिलती है, पीले फूल की कहीं कहीं देखने में आती है और लाल फूल की देवदाली कम देखने में आती है। परन्तु गुणों में सब समान ही हैं। रक्त एवं पीत का रसायन के लिये उपयोग होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक एचिनेटिन् (Echinatin) नामक कड़वा पदार्थ तथा सॅपोनिन होता है। बीजों में तेल होता है जो कड़वा नहीं होता।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, कड़वा, मूत्रजनन, विरेचन, शिरोविरेचन, व्रणशोधक एवं व्रणरोपक है। अधिक मात्रा से हैजे की तरह वमन एवं विरेचन होता है। गर्भिणी में गर्भपात हो जाता है। इसका प्रभाव कड़वी तरोई की तरह होता है।

इसका प्रयोग कामला, जलोदर, हिक्का, कास, श्वास, क्षय, कृमि, यकृत् प्लीहावृद्धि एवं आन्त्रशूल में किया जाता है।

(१) इसके एक फल को कूटकर रात में जल में भिगो दे। सुबह इसे मसल, कपड़े से छान ५-१० बूंद शिरोविरेचन के लिये नाक में डाले। इससे दिनभर पानी बहता है। कफज शिरोरोग तथा कामला में इसका प्रयोग करते हैं। कामला में इसके फल को मट्ठे के साथ

खिलाते हैं तथा इसके पंचांग के क्वाथ से नहलाते हैं। नस्य के लिये १ रत्ती चूर्ण का भी नस्य कराते हैं।

(२) इसका फांट या टिंक्चर (१ में २०), १०-२० बूँद की मात्रा में यकृत्-प्लीहावृद्धि, बाल यकृत् की प्रारंभिक अवस्था तथा इनसे उत्पन्न जलोदर में लाभदायक है। इससे मूत्र की मात्रा बढ़ती है तथा विरेचन भी होता है।

(३) इसके फांट से व्रण, दूषित व्रण आदि धोये जाते हैं।

(४) कफज्वर में अन्य कफनिःसारक द्रव्यों के साथ इसका प्रयोग लाभदायक है।

(५) चूहे के विष में दही के साथ इसको देने से लाभ होता है। (सुश्रुत)।

मात्रा—१-२ रत्ती।

अथ जलपिप्पली। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

जलपिप्पल्यभिहिता शारदी शकुलादनी।
मत्स्यादनी मत्स्यगन्धा लाङ्गलीत्यपि कीर्त्तिता॥ २९४॥
जलपिप्पलिका हृद्या चक्षुष्या शुक्रला लघुः॥ २९५॥
संग्राहिणी हिमा रूक्षा रक्तदाहव्रणापहा। कटुपाकरसा रुच्या कषाया वह्निवर्द्धिनी॥२९६॥

जलपीपल के नाम तथा गुण—जलपिप्पली, शारदी, शकुलादनी, मत्स्यादनी, मत्स्यगन्धा और लाङ्गली ये नाम जलपीपल के हैं। **जलपीपल**-हृदय तथा नेत्रों के लिये हितकर, शुक्रजनक, लघु, मलसंग्राहक, शीतवीर्य, रूक्ष, रक्तविकार, दाह और व्रण को नष्ट करने वाली, विपाक में कटुरस युक्त, रुचिकारक, कटु तथा कषाय रसयुक्त एवं अग्निवर्धक होती है॥ २९४-२९६॥

१७८ जलपीपल

हि०—जलपीपल, पनिसि (स)गा, भुईओकरा, बुकन बूटी। **बं०**—बुकन, कांचड़ा। **म०**—जल-पिप्पली, रतवेल। **गु०**-रतवेलीयो। **अं०**-Purple Lippia (पर्पल लिपिआ)। **ले०**-*Lippia nodiflora Mich.* (लिप्पिआ नोडिफ्लोरा मिक्.)। Fam. Verbenaceae (वर्बिनेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों की गीली भूमि में अधिक पाई जाती है तथा बलूचिस्तान में भी होती है।

यह **प्रसर**-(प्रसरी क्षुप) जाति की वनौषधि भूमि पर फैली हुई रहती है। **पत्ते**-अभिमुख, अभिलट्वाकार, आरावत् दन्तुर, कुंठिताग्र तथा ·५-१ इंच लंबे होते हैं। **पुष्प**-श्वेत रंग के छोटे पुष्प आते हैं, जो कोणपुष्पकों से युक्त, पत्रकोणीय, सदण्ड मुण्डकाकार व्यूह में आते हैं। **फल**-यही बाद में फल में परिवर्तित हो जाते हैं, जो पिप्पली की तरह दिखलाई पड़ते हैं। इसके स्वरस का उपयोग करते हैं। चरक में शाकवर्ग में इसका उल्लेख मिलता है

रासायनिक संगठन इसमें एक कड़वा पदार्थ पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह कटु, स्नेहन, मूत्रजनन, संग्राही एवं ज्वरहर है।

(१) सूजन पर इसका पोल्टिस बांधने से जलन कम होती है तथा जल्दी पकती है।

(२) इसके पत्तों का फांट बच्चों के अजीर्ण, अतिसार, साधारण सरदी तथा प्रसूति ज्वर में दिया जाता है।

मात्रा—स्वरस ½-२ चम्मच।

अथ गोजिह्वा। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

गोजिह्वा गोजिका गोभी दार्विका खरपर्णिनी।
गोजिह्वा वातला शीता ग्राहिणी कफपित्तनुत्॥ २९७॥
हृद्या प्रमेहकासास्रव्रणज्वरहरी लघुः। कोमला तुवरा तिक्ता स्वादुपाकरसा स्मृता॥२९८॥

गोजिह्वा के नाम तथा गुण—गोजिह्वा, गोजिका, गोभी, दार्विका और खरपर्णिनी ये नाम गोभी के हैं। **गोजिह्वा**-वातकारक, शीतवीर्य, ग्राही, कफ-पित्तनाशक, हृदय के लिये हितकर, प्रमेह-कास-रक्तविकार, व्रण तथा ज्वर को दूर करने वाली एवं लघु, कोमल, कषाय, तिक्त तथा मधुर रसयुक्त और विपाक में मधुर होती है॥ २९७-२९८॥

नोट—गोजिह्वा के विषय में विद्वानों में कुछ मतभेद देखा जाता है। कुछ ने एलिफॅन्टोपस् स्केबर (Elephantopus scaber) को गोजिह्वा माना है किन्तु श्री ठा० बलवन्तसिंहजी ने इसके स्थानिक नामों के आधार पर इसे गोजिह्वा न मानकर 'मयूरशिखा' माना है। कुछ ने यूनानी में प्रचलित द्रव्य गावजबान इसे माना है, जिसका ले० नाम ओनोस्मा ब्रॅक्टिएटम् है। कुछ इसे गावजबान से भिन्न मानते हैं। कुछ ने **कॅकसीनिया ग्लॉका** (Caccinia glauca, Savi) को गावजबान माना है जो बलूचिस्तान में होता है तथा गुण में बल्य, मूत्रल एवं स्नेहन है तथा इसका आमवात एवं फिरंग में प्रयोग किया जाता है।

चरक के दशेमानि में गोजिह्वा का उल्लेख नहीं है। शाक में इसका उल्लेख मिलता है, तथा विसर्प के लेपों में भी वर्णन है। चरक, सुश्रुत दोनों इसे व्रणरोपण मानते हैं। सुश्रुत में उपदंश, व्रण एवं ग्रन्थिविसर्प में तथा शाक के रूप में इसका प्रयोग मिलता है।

यहां पर दोनों का वर्णन किया गया है।

१७९ गोजिह्वा (१)

सं०-मयूरशिखा ? **हि०**—गोभी। **बं०**—लता, गोजिया। **म०**—गोजीभ, हस्तिपत। **गु०**—भोंपाथरी, गलजीभी। **बि०**—मयूरजूटी, माराचूड़ा, मयूरचुटिया, मयूरशिखार। **ले०**—*Elephantopus scaber Linn.* (एलिफॅन्टोपस् स्केबर लिन.)। Fam. Compositae (कम्पोज़िटी)।

यह भारत के सभी उष्ण भागों में होती है। इसका **क्षुप**—स्वावलम्बी तथा ८-१८ इञ्च ऊँचा होता है। मूलीय **पत्ते**-पत्र-गुच्छों के रूप में, ४-६ इञ्च लम्बे एवं अभिलट्वाकार या अभिप्रासवत् होते हैं। काण्ड पतला, द्विविभक्त तथा रोमयुक्त होता है, जिस पर पत्ते १-३ इञ्च लंबे, अवृन्त एवं काण्डसंसक्त तथा दूर दूर होते हैं। **पुष्पव्यूह**—मुण्डक के रूप में आते हैं जो सूक्ष्म तथा समूह-बद्ध होकर प्रायः ३, पत्रवत् एवं हृद्वत् कोणपुष्पकों के बीच में रहते हैं। प्रत्येक मुण्डक में पुष्प-संख्या प्रायः २-५ तक होती है।

मुण्डकगुच्छ कोणपुष्पकों के साथ मयूर की शिखा के सदृश दिखलाई देते हैं। इसके आदि-वासियों में प्रचलित नाम मयूरशिखा के समानार्थक हैं, जिससे इसे श्री ठा० बलवन्त सिंह जी ने शास्त्रीय मयूरशिखा माना है।

रासायनिक संगठन—इसके पत्ते एवं काण्ड के सुरासारीय सत्त्व में प्रति जैविकीय क्रिया (Antibiotic activity) पाई गई है।

गुण और प्रयोग—यह स्नेहन, शीतल, मूत्रजनन, बल्य एवं ज्वरनाशक है।

(१) इसके पंचांग का क्वाथ मूत्रकृच्छ्र में पिलाते हैं।

(२) ज्वर में इसके पंचांग को चावल की पेया में पका कर देते हैं। इससे पेट का दर्द भी दूर होता है।

(३) रक्तातिसार तथा बच्चों के अतिसार में इसका मूल उपयोगी होता है।

(४) इसको गरी के तेल में पका कर व्रण एवं छाजन पर लगाते हैं।

(५) इसकी जड़ को वमन रोकने के लिये देते हैं तथा मिरिच के साथ चूर्ण बनाकर दन्तशूल में लगाते हैं।

१८० गोजिह्वा (२) गावजबान

सं०–गोजिह्वा, दर्वीपत्रा, वृषजिह्वा, खरपत्रा। **हिं०-म०-गु०-फा०**–गाजबाँ, गावजबान। **अ०**–लिसानुस्सौर। **ले०**–*Onosma bracteatum Wall.* (ओनोस्मा ब्रॅक्टिएटम् वाल्.)। Fam. Boraginaceae (बोरॅजिनेसी)।

यह ईरान, अफगानिस्तान तथा पश्चिमी हिमालय में काश्मीर से कुमाऊँ तक ११५०० फीट तक पाया जाता है।

इसका **क्षुप**–१५ इञ्च ऊँचा तथा रोमश होता है। **पत्र**–मूलीय, ६"×१" बड़े, सवृन्त, मालाकार एवं ऊपर के २"×$\frac{3}{4}$", लम्बाग्र, अण्डाकार, मालाकार, एवं ऊपरी सतह, रोम के कारण खुरदरी होती हैं। रोम का आधार दानेदार होता है। नीचे की सतह मृदु दबे हुये रोम से युक्त होती है। **पुष्प**–बैंगनी रंग के गुच्छों में आते हैं जो २-३ इञ्च व्यास के तथा रोमश होते हैं। **फल**–१-६ इञ्च बड़े, अण्डाकार तथा नोकदार होते हैं। इसके पंचांग का व्यवहार किया जाता है। यूनानी वाले इसके पत्तों को बर्गे गावजबान एवं पुष्पों को गुलेगावजबान के नाम से व्यवहार करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों को जल में भिगोने से काफी लुआब निकलता है, जिसका स्वाद नमकीन होता है। इसकी राख में सोडियम् ९$\frac{1}{2}$%, पोटॅशियम् १४$\frac{1}{2}$%, कॅल्शियम् २७%) मॅग्नेशियम् २$\frac{3}{4}$% एवं लौह १% आदि के लवण पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह बल्य, हृद्य, मूत्रल, रसायन, स्नेहन एवं सौमनस्यजनन है। इसका प्रयोग फिरंग, आमवात, हृदय की धड़कन, मूत्रकृच्छ्र, आमाशय एवं बस्तिप्रक्षोभ एवं ज्वर में किया जाता है।

(१) विषमज्वर में जब ठंड लगती है तब इसे आसव के साथ देने से प्यास कम होती है तथा बेचैनी दूर होती है।

(२) फिरंग तथा सोजाक से उपरान्त संधिशोथ में चोपचीनी के साथ इसका क्वाथ उपयोगी है।

(३) हृदय की धड़कन तथा मूत्रकृच्छ्र में इसके फॉट का प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—४-६ माशा दूध के साथ; पुष्प १-६ माशा।

अथ नागदमनी। तस्या नामगुणानाह

विज्ञेया नागदमनी बलामोटा विषापहा। नागपुष्पी नागपत्रा महायोगेश्वरीति च॥ २९९॥
बलामोटा कटुस्तिक्ता लघुः पित्तकफापहा। मूत्रकृच्छ्रव्रणान् रक्षो नाशयेज्जालगर्दभम्॥३००॥
सर्वग्रहप्रशमनी निःशेषविषनाशिनी। जयं सर्वत्र कुरुते धनदा सुमतिप्रदा॥ ३०१॥

नागदमनी के नाम तथा गुण—नागदमनी, बलामोटा, विषापहा, नागपुष्पी, नागपत्रा और महायोगेश्वरी ये नाम नागदमनी के हैं। **नागदमनी**—कटु तथा तिक्त रसयुक्त, लघु एवं पित्त, कफ, मूत्रकृच्छ्र, व्रण, राक्षसबाधा, जालगर्दभ, सम्पूर्णग्रहबाधा और समस्त विष को दूर करने वाली तथा सर्वत्र जय करने वाली, धन तथा अच्छी मति को देने वाली होती है॥ २९९-३०१॥

नोट—यह सन्दिग्ध द्रव्य है। मूर्वा नाम से पूर्वी भारत में प्रयुक्त सॅन्सेवेरिया राक्सबर्घियाना को कुछ लोग नागदौन मानते हैं। इसका पहले मूर्वा के साथ वर्णन किया जा चुका है। डा० वा० ग० देसाई ने सुदर्शन की एक जाति, क्राइनम् एशियाटिकम् लिन. (Crinum asiaticum Linn.) को नागदमनी लिखा है। कुछ ने दमनक (आर्टिमिसिआ), जिसका भावप्रकाशकार पुष्पवर्ग में स्वतन्त्र वर्णन करते हैं, नागदमनी नाम से उल्लेख किया है। श्री ठा० बलवन्त सिंहजी ने 'विहार की वनस्पतियाँ' नामक पुस्तक में एक वनस्पति प्युपेलिया लेप्पासिया का उल्लेख किया है जिसे कुछ लोग नागदमनी मानते हैं। सुदर्शन एवं दमनक का आगे स्वतन्त्र वर्णन आया हुआ है। यहाँ संक्षेप में प्युपेलिया लेप्पासिया का वर्णन किया गया है।

१८१ नागदमनी ?

सं०–नागदमनी ? **ले०**–*Pupalia lappacea, Moq.* (प्युपेलिया लेप्पॅसिया मो०)। Fam. Amaranthaceae अॅमेरेन्थेसी)।

बिहार में यह मुंगेर, पलामू, संथाल परगना आदि स्थानों में विशेषकर पथरीली भूमि में होती है।

इसमें गुल्मक रोमश होते हैं। शाखाएँ कमजोर होती हैं। **पत्ते**–मृदुरोमश, अभिमुख, लट्वाकार, लट्वाकार-आयताकार या प्रासवत्, १-४ इञ्च लम्बे होते हैं। **फलगुच्छ**—मुण्डकाकार, व्यास में ५ इञ्च एवं उस पर टेढ़े सूक्ष्म काँटे होते हैं, जिससे सम्पर्क में आने पर ये कपड़ों में चिपट जाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसे कुछ लोगों ने सर्पविष में उपयोगी माना है।

अथ वीरतरुः। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

वेल्लन्तरो जगति वीरतरुः प्रसिद्धः श्वेतासितारुणविलोहितनीलपुष्पः।
स्याज्जातितुल्यकुसुमः शमिसूक्ष्मपत्रः स्यात्कण्टकी विजलदेशज एव वृक्षः॥ ३०२॥
वेल्लन्तरो रसे पाके तिक्तस्तृष्णाकफापहः। मूत्राघाताश्मजिद्ग्राही योनिमूत्रानिलार्त्तिजित्॥

वीरतरु के नाम तथा गुण—वेलन्तर और वीरतरु ये दो नाम जगत में प्रसिद्ध हैं, इसके पुष्प–जाती (चमेली) के फूलों के समान होते हैं और वे सफेद, काले, अरुण, गाढ़े लाल तथा नीले रङ्ग के होते हैं। पत्ते–शमी के पत्तों के समान सूक्ष्म होते हैं और यह काँटेदार तथा निर्जल प्रदेशों में उत्पन्न होने वाला वृक्ष होता है। वीरतरु–विपाक तथा रस में तिक्त तथा ग्राही होता है एवं तृषा, कफ, मूत्राघात, पथरी, योनिरोग, मूत्ररोग एवं वातिक पीड़ा को नष्ट करने वाला होता है।

१८२ वीरतरु

हिं०–बेकन्तर, बीरतरु, बरबेल, वरतुकी। **ते०**–लतुग। **मा०**–खड़ी कंलई, कुंरात, खेरी। **अजमेर०**–खेड़ी। **राजपुताना०**–खेन। **म०**–सिगमकाटी। **गु०**–केल्लंतरो। **ता०**–विड़तल्लै, बेल्लतुरू। **ले०**–*Dichrostachys cinerea W. & A.* (डाइकॉस्टॅचिस् सिनेरिया)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसि)।

यह पश्चिमोत्तर प्रदेश, मध्य भारत, राजपूताना, डेक्कन, दक्षिण महाराष्ट्र तथा उत्तरी कन्नड से सिलोन तक होता है। मलाया तथा उत्तरी आस्ट्रेलिया में भी यह पाया जाता है।

यह वृक्ष-झाड़दार, मध्यमाकार का या छोटे कद का कांटेदार होता है। इस पर सीधे, दृढ़, और तीखे कांटे रहते हैं। पत्ते-द्विपक्षवत् ३·२-६·३ से० मी० लम्बे होते हैं, जिसमें प्रधान पत्रदण्ड मृदुरोमश तथा प्रत्येक उपपक्ष के बीच ग्रन्थि होती है। उपपक्ष-८-१४ जोड़े, १-१·६ से० मी० लम्बे एवं दिनाल होते हैं, जिस पर सूक्ष्म, तिर्यक्, रेखाकार, विनाल पत्रक-१२-२० जोड़ों की संख्या में होते हैं। सितम्बर से अक्तूबरतक इस पर २·५-३·८ से० मी० लम्बी विदण्डिक पुष्पमञ्जरी में पुष्प आते हैं। मञ्जरी का ऊपर का आधा भाग पीत एवं नीचे का आधा भाग लाल रहता है। ऊपर के पुष्पों के परागयुक्त पुंकेसर पीत रहते हैं तथा नीचे के परागरहित पुंकेसर बहुत लम्बे एवं लाल रहते हैं। फली-५-७·५ से० मी० लम्बी, ०·६-१·० से० मी० चौड़ी, चिपटी, गहरे भूरे रंग की तथा पकने पर ऐंठी हुई रहती है जिसमें ६-१० बीज होते हैं। सुश्रुत में इसका उल्लेख मिलता है।

गुण और प्रयोग—इसकी जड़ ग्राही होती है तथा आमवात, पथरी तथा वृक्क विकार में प्रयोग की जाती है। नेत्र-विकार में इसके कोमल पत्तों को पीसकर लगाते हैं।

अथ छिक्कनी (नकछिकनी)। तस्या नामगुणानाह

छिक्कनी क्षवकृत्तीक्ष्णा छिक्किका घ्राणदुःखदा। छिक्कनी कटुका रुच्या तीक्ष्णोष्णा वह्निपित्तकृत्। वातरक्तहरी कुष्ठक्रिमिवातकफापहा ॥ २०४ ॥

नकछिकनी के नाम तथा गुण—छिक्कनी, क्षवकृत, तीक्ष्णा, छिक्किका और घ्राणदुःखदा ये नाम नकछिकनी के हैं। **नकछिकनी**—कटुरसयुक्त, रुचिकारक, तीक्ष्ण तथा उष्णवीर्य, अग्नि तथा पित्तजनक, एवं वातरक्त, कुष्ठ, क्रिमि, वात और कफ को नष्ट करने वाली होती है ॥ २०४ ॥

१८३ नकछिकनी

हि०—नकछिकनी छिकनी। **बं०**—हांचुटी, मेचिट्ट। **म०**—नाक शिंकणी। **गु०**—नाक छींकणी। **ले०**—*Centipeda orbicularis, Lour.* (सेंटिपीडा ऑर्बिक्युलेरिस् लोर०)। Fam. Compositae (कम्पोझिटी)।

यह प्रायः इस देश के सब प्रान्तों में विशेषकर आर्द्रभूमि में अधिक उत्पन्न होती है।

क्षुप बहुत छोटे, सुन्दर, पर जमीन पर फैले हुए रहते हैं। शाखायें-मूल के पास से निकलकर फैली हुई रहती हैं। **पत्ते**-बहुत छोटे, ६-१०×३-४ ५ मि० मि० बड़े, अभिप्रासवत् या अभिलट्वाकार, आयताकार और दूर-दूर दन्तुर होते हैं। पुष्प-छोटे छोटे गोल मुण्डक में आते हैं, जिनमें प्रान्तीय पुष्प-स्त्री-पुष्प कई चक्रों में और जिह्वाकार; केन्द्रीय पुष्प उभयलिंग तथा नालाकार एवं संख्या में कम होते हैं। अधःपत्रावलि दो चक्रों में रहती है।

इसका चरक तथा सुश्रुत दोनों में उल्लेख है। चरक में इसे शिरोविरेचनोपग माना है तथा शिरोरोग एवं कटुस्कंध में पाठ है और सुश्रुत में अतिसार एवं विसूचिका के लिये इसे उपयोगी बतलाया है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक क्षाराम, अत्यल्प सॅपोनिन, एक ग्लाइकोसाइड, उड़नशील तैल एवं अम्लस्वभावी कड़वा द्रव्य माइरियोगाइनिन् (Myriogynin) पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह शिरोविरेचन, दीपन, ग्राही, उष्ण, कृमिघ्न एवं वातनाशक है

(१) प्रतिश्याय, सिर के भारीपन एवं अर्धावभेदक में इसके स्वरस या चूर्ण का नस्य देते हैं, जिससे बहुत छींकें आकर आराम मिलता है।

(२) दन्तशूल में इसके पंचांग का उष्ण कल्क गालों के बाहर से लगाया जाता है।

(३) इसके बीज कृमिघ्न होते हैं।

अथ कुकुन्दरः (कुकुरवँदा)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

**कुकुन्दरस्ताम्रचूडः सूक्ष्मपत्रो मृदुच्छदः ॥ ३०५ ॥
कुकुन्दरः कटुस्तिक्तो ज्वररक्तकफापहः।
तन्मूलमार्द्रं निक्षिप्तं वदने मुखशोषहृत् ॥ ३०६ ॥**

कुकरवँदा के नाम तथा गुण—कुकुन्दर, ताम्रचूड, सूक्ष्मपत्र और मृदुच्छद ये नाम कुकुरवँदा के हैं। **कुकुरवँदा**-कटु तथा तिक्तरसयुक्त, ज्वर, रक्त और कफ को दूर करने वाला होता है। इसकी जड़ गीली (ताजी) यदि मुख में रक्खी जाय तो मुख का सूखना बन्द हो जाता है ॥ ३०५-३०६ ॥

१८४ कुकुरवंदा

हि०—कुकरोंदा, कुकुरवंदा, कुकुसुंगा। **बं०**—कुकुरनिर्मुली, भाबूर्डा, मांगरूड, गंगावली। **ता०**—नारकरंडे। **ले०**—*Blumea lacera DC.* (ब्लुमिया लॅसेरा डीसी.)। Fam. Compositae (कम्पोझिटी)।

यह सब प्रान्तों में २००० फीट तक उत्पन्न होता है। इसका **क्षुप**-वर्षायु, धूसरवर्ण का मृदुरोमश तथा टर्पेंटाइन की जैसी तीव्रगंध युक्त होता है। **पत्ते**-३·८-१२·५×२·२-६·३ से. मी. बड़े, नीचे के सनाल, कटे हुए तथा ऊपर के न्यूनाधिक विनाल, दीर्घवृत्ताकार आयताकार, मृदुरोमश दन्तुर तथा आधार क्रमशः संकुचित होता है। पुष्प-पीत तथा मुण्डक में आते हैं। फल-छोटे, आयताकार तथा कुछ चतुष्कोणीय होते हैं। इसकी ३, ४ अन्य जातियाँ देखने में आती हैं। समस्त क्षुप में उग्र गंध आती है।

रासायनिक संगठन-इसमें उड़नशील तैल, तथा कपूर पाया जाता है। इससे तथा विशेषकर ब्लु. बालसमीफेरा नामक जाति से जो कपूर निकाला जाता है, उसे नागी कपूर या पत्री कपूर कहते हैं, जिसका वर्णन कर्पूर के साथ किया जा चुका है।

गुण और प्रयोग—यह कड़वा, दीपन, वायुनाशी, कफघ्न, रक्तस्तंभक तथा ज्वरनाशक है। इसके गुण कपूर से मिलते-जुलते हैं) इसका स्वरस कृमिघ्न, ग्राही, ज्वरहर, उत्तेजक एवं मूत्रल है। मूल का विसूचिका में प्रयोग किया जाता है। इसकी जड़ मुख में रखने से मुखशोथ में लाभ होता है।

(१) रक्तार्श में इसका स्वरस मिरिच के साथ देते हैं।

(२) इसके (ब्लु. बालसमीफेरा के) स्वरस में बना लौहभस्म का प्रयोग वृक्कजन्य उदर में करते हैं। मूत्र रुकने पर स्वरस देते हैं।

(३) ज्वर में इसको निर्गुण्डी-क्वाथ के साथ देने से पसीना होता है तथा कफ निकलता है।

मात्रा—पत्रचूर्ण ५-१५ रत्ती; स्वरस १ तोला।

अथ सुदर्शना । तस्या नामगुणानाह

सुदर्शना सोमवल्ली चक्राह्वा मधुपर्णिका । सुदर्शना स्वादुरुष्णा कफशोथास्रवातजित्॥२०७॥

सुदर्शन के नाम तथा गुण—सुदर्शना, सोमवल्ली, चक्राह्वा और मधुपर्णिका ये नाम सुदर्शन के हैं। **सुदर्शन**–स्वादिष्ट, उष्णवीर्य एवं कफ, शोथ और रक्तवात को दूर करने वाला होता है ॥२०७॥

नोट—क्राइनम् (Crinum) की विभिन्न जातियों को सुदर्शन माना जाता है। श्री डा० वा० ग० देसाई ने क्रा० एशियाटिकम् को (सं०) नागदमनी माना है, किन्तु इसका हिन्दी नाम सुदर्शन भी दिया है। कुछ ने गुडूचीभेद टिनोस्पोरा मलबारिका (Tinospora malabarica (Lam.) Miers.) जो पद्मगुडूची है, उसको सुदर्शन लिखा है। क्राइनम् की ३ जातियां पाई जाती हैं जिनमें से कुछ बागों में भी लगाई हुई मिलती हैं। यहां क्राइनम् का वर्णन किया गया है।

१८५ सुदर्शन

हि०–सुदर्शन, सुखदर्शन। **बं०**–सुखदर्शन। **म०**–गदाभी कंद, गदनीचा कांदा। **ता०**–विषमुंगिल। **ले०**–*Crinum latifolium Linn.* (क्राइनम् लॅटिफोलियम् लिन.)। Fam. Amaryllidaceae (एमेरिलिडेसी)।

यह समस्त भारत में होता है तथा बागों में लगाया हुआ भी पाया जाता है।

इसका **क्षुप**–बहुवर्षायु तथा २, ३ हाथ ऊँचा होता है। **पत्ते**–भूमि से निकलते मालूम पड़ते हैं, जो २॥–४ फीट तक लम्बे होते हैं एवं जिनकी चौड़ाई मध्य भाग में ३–४॥ इञ्च तक होती है। **पुष्प**–बैंगनीपन लिये हुवे सफेद रंग के सुगंधित सुन्दर फूल बीच में से निकलते हैं। **कन्द**–गोलाकार, व्यास में ५ इञ्च तक एवं उसकी मोटी गर्दन ३–५ इञ्च तक लम्बी होती है। हर साल पत्ते सूखकर नये आते हैं तथा पत्ते बड़े होने से पहले ही फूल आ जाते हैं।

इसकी अन्य जातियां क्रा० एशियाटिकम् लिन. (C. asiaticum Linn.) एवं क्रा० डेफिक्सम् केर (C.defixum Ker-Gawl) भी पाई जाती हैं।

इसके पत्र एवं कन्द का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, मधुर, तीक्ष्ण, जंतुघ्न, कुष्ठघ्न, शोथहर, वामक, कफनाशक एवं ज्वरहर है।

(१) कर्णशूल में इसके पत्तियों को गरम करके उसका स्वरस निकाल कर डालते हैं।

(२) इसके पत्तों को गरम कर तथा एरण्ड तैल लगाकर बाँधने से सभी प्रकार की सूजन, फोड़े, बवासीर आदि कम होती है। संधिशोथ पर यह उपयोगी है। त्वचा के रोगों में इसका स्वरस या इससे सिद्ध तैल लगाते हैं।

(३) कंद का प्रयोग कफज विकारों में वामक द्रव्य के रूप में किया जाता है। शुष्क द्रव्य (क्रा० एशियाटिकम्) की मात्रा दुगनी देनी पड़ती है।

मात्रा—कंदस्वरस १–२ तोला वमनार्थ।

अथाखुकर्णी (मूसाकर्णी) तस्या नामानि गुणांश्चाह

आखुकर्णी त्वाखुपर्णी पर्णिका भूदरीभवा। आखुकर्णी कटुस्तिक्ता कषाया शीतला लघुः।
विपाके कटुका मूत्रकफामयकृमिप्रणुत् ॥ ३०८ ॥

मूसाकर्णी के नाम तथा गुण—आखुकर्णी, आखुपर्णी, पर्णिका और भूदरीभवा ये नाम मूसाकर्णी के हैं। मूसाकर्णी–कटु, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, शीतल, लघु, विपाक में कटुरसयुक्त एवं मूत्र तथा कफ-सम्बन्धी रोग और कृमि को दूर करने वाली होती है ॥ ३०८ ॥

१८६ मूसाकर्णी

हि०–मूसाकानी, चूहाकानी, मूसाकर्णी। **बं०**–इन्दुरकाणीपाना। **म०**–उन्दिरकानी। **गु०**–उन्दरकानी। **ले०**–*Ipomoea reniformis, Chois* (आईपोमिया रेनीफॉर्मिस् को०)। Fam. Convolvulaceae (कन्व्हॉल्व्युलेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में पाई जाती है, विशेष कर उड़ीसा, बंगाल तथा दक्षिण हिन्दुस्तान में उत्पन्न होती है।

यह प्रसरी क्षुप जाति की वनस्पति प्रायः वर्षा में उत्पन्न होती है तथा सितम्बर से दिसम्बर तक फूलती-फलती है। इसकी प्रायः प्रत्येक गांठ से जड़ निकल कर यह फैलती जाती है। **पत्ते**–वृक्काकार, आध से १॥ इञ्च घेरे में लम्बाई की अपेक्षा चौड़ाई में अधिक, दन्तुर एवं गोल होते हैं। **फूल**–छोटे तथा पीले रंग के आते हैं। **फल**–दो-दो बीज वाले होते हैं। चिकित्सा में इसके पंचांग का व्यवहार किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह शोधन, मूत्रल, रसायन, कृमिघ्न, त्वक्-दोषहर एवं आनुलोमिक है। इसकी क्रिया मण्डूकपर्णी की तरह होती है तथा अनन्तमूल की तरह या उसके साथ इसका प्रयोग किया जाता है।

(१) इसका प्रयोग त्वचा के रोगों में किया जाता है। इससे पाखाना साफ होता है तथा शारीरिक शिथिलता दूर होती है।

(२) कृमि के लिये इसके स्वरस एवं रक्त शालि (लाल चावल) की पीठी के साथ बनी पूपलिका (पुआ) निर्धूम अंगारे पर पका कर, विडङ्ग तैल एवं लवण के साथ देने का विधान है। (चरक वि० ७–२६, सु० उ० ५४–२७)

मात्रा—५–१० रत्ती फांट बनाकर।

अथ मयूरशिखा (मोरशिखा)। तस्या नामगुणानाह

मयूराह्वशिखा प्रोक्ता सहस्राहिर्मधुच्छदा। नीलकण्ठशिखा लघ्वी पित्तश्लेष्मातिसारजित्॥

मोरशिखा के नाम तथा गुण—मयूराह्वशिखा ('मयूर' के पर्यायवाचक शब्दों के अन्त में 'शिखा' जोड़ देने से जो शब्द बनते हैं वे सब; जैसे—नीलकण्ठशिखा आदि), सहस्राहि और मधुच्छदा ये नाम मोरशिखा के हैं। **मोरशिखा**–लघु एवं पित्त, कफ तथा अतिसार को नष्ट करने वाली होती है ॥ ३०९ ॥

नोट—अनेक वनस्पतियों को जो मयूरशिखा की आकृति की तरह दिखलाई देती हैं, मयूरशिखा के नाम से विभिन्न स्थानों पर प्रयुक्त किया जा रहा है। चरक-सुश्रुत में इसका वर्णन देखा नहीं जाता। भा० प्र० में इसे लघु एवं पित्त-कफनाशक तथा अतिसार में उपयोगी लिखा है।

गोजिह्वा के अन्तर्गत वर्णित एलिफॅण्टोपस् स्केबर लिन. (Elephantopus scaber Linn.) को श्री ठा० बलवन्त सिंह जी उसके स्थानिक नामों के आधार पर मयूरशिखा मानते हैं। सेलोसिआ क्रिस्टॅटा (Celosia cristata) को कुछ ने मयूरशिखा माना है। कुछ ने एडियण्टम्

कॉडेटम् (Adiantum caudatum) को तथा कुछ ने अॅक्टिनोप्टेरिस् डाइकोटोमा (Actinopteris dichotoma) को मयूरशिखा लिखा है। यहाँ संक्षेप में इनका वर्णन किया गया है।

१८७ मयूरशिखा (१)

ले०–*Actinopteris dichotoma, Bedd.* (अॅक्टिनोप्टेरिस् डाइकोटोमा बेड.); Fam. Polypodiaceae (पॉलिपोडिएसी)

यह सभी स्थानों पर विशेषतया पेनिनसुला, शुष्क पहाड़ी स्थानों में ४००० फीट तक एवं नीलगिरी पर २००० फीट तक एवं कुमाऊं में होती है।

इसका क्षुप बहुत सुन्दर, ३–७ इञ्च ऊँचा एवं छोटे ताड़ की तरह दिखलाई देता है। बरसात में सूखी पहाड़ियों में पत्थरों के बीच में कहीं-कहीं यह दिखलाई देता है। पत्ते–व्यास में १–१·५ इञ्च, तालपत्र की तरह लम्बे पतले पत्रदण्ड पर रहते हैं जो मयूरशिखा की तरह दिखलाई देते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका रक्तस्तम्भक एवं कृमिघ्न रूप में प्रयोग किया जाता है।

१८८ मयूरशिखा (२)

ले०–*Adiantum caudatum Linn.* (एडिएण्टम् कॉडेटम् लिन.)। Fam. Polypodiaceae (पॉलिपोडिएसी)।

यह सभी स्थानों में, मैदानी भागों एवं पहाड़ियों के निचले ढालों पर पाई जाती है।

इसका क्षुप-हंसपदी की जाति का होता है। पत्रदण्ड–६–१६ इञ्च लम्बा, मृदुरोमश तथा चमकीले बादामी रंग का होता है। पत्रक–विनाल या कुछ आयताकार तथा एक किनारा सीधा एवं दूसरा कटादृश होता है। अधरतल पर, किनारे पर बीजाणुकोष केवल खण्डों के अन्त में होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका चर्मरोग, मधुमेह, कास तथा ज्वर में प्रयोग किया जाता है।

१८९ मयूरशिखा (३)

हि०–लालमुर्गा। **ले०**–*Celosia cristata Linn.* (सेलोसिआ क्रिस्टॅटा लिन.)। Fam. Amaranthaceae (एमेरेन्थेसी)।

यह बागों में लगायी हुई पाई जाती है एवं मैदानी भाग तथा हिमालय में ५००० फीट तक भी पाई जाती है। इसका क्षुप-मरसे के समान होता है। केवटीमोथा के अन्तर्गत वर्णित सफेद मुर्गा का यह भेद है। इसके पत्र प्रायः चौड़े होते हैं। पुष्प-छोटे तथा अत्यन्त सघन मंजरी में आते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके पौधे में बिटॅनिन् (Betanin) तथा नाइट्रोजन पदार्थ एवं इसके बीजों में एक स्थिर तैल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके पुष्प ग्राही होते हैं। इनका प्रयोग अतिसार तथा रक्तप्रदर में किया जाता है।

इसके बीज स्नेहन हैं तथा मूत्रकृच्छ्र, कास एवं संग्रहणी में प्रयोग किये जाते हैं।

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे पूर्वखण्डे मिश्रप्रकरणे चतुर्थो गुडूच्यादिवर्गः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ पुष्पवर्गः

तत्रादौ कमलम्। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

वा पुंसि पद्मं नलिनमरविन्दं महोत्पलम्। सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम् ॥ १ ॥
पङ्केरुहं तामरसं सारसं सरसीरुहम्। बिसप्रसूनराजीवपुष्कराम्भोरुहाणि च ॥ २ ॥
कमलं शीतलं वर्ण्यं मधुरं कफपित्तजित्। तृष्णादाहास्रविस्फोटविषवीसर्पनाशनम् ॥ ३ ॥

कमल के नाम—पद्म (यह नपुंसकलिङ्ग कभी २ पुंल्लिङ्ग में भी व्यवहृत होता है), नलिन, अरविन्द, महोत्पल, सहस्रपत्र, कमल, शतपत्र, कुशेशय, पङ्केरुह, तामरस, सारस, सरसीरुह, बिसप्रसून, राजीव, पुष्कर और अम्भोरुह ये सब संस्कृत में होते हैं।

कमल—शीतल, वर्ण्य (शरीर के रङ्ग) को उत्तम करने वाला, मधुर रस युक्त, कफ–पित्त नाशक एवम्—तृष्णा, दाह, रक्तविकार, विस्फोट (शरीर में छोटी २ फुंसियों का होना), विष, और विसर्प को दूर करने वाला होता है ॥ १–३ ॥

अथ नामोल्लेखपूर्वकं कमलभेदाँस्तद्गुणाँश्चाह

विशेषतः सितं पद्मं पुण्डरीकमिति स्मृतम्। रक्तं कोकनदं ज्ञेयं नीलमिन्दीवरं स्मृतम् ॥४॥
धवलं कमलं शीतं मधुरं कफपित्तजित्। तस्मादल्पगुणं किञ्चिदन्यद्रक्तोत्पलादिकम् ॥५॥

कमल के भेदों के नाम—विशेष करके श्वेत कमल "पुण्डरीक" कहा जाता है। लाल कमल को "कोकनद" एवम् नीले कमल को "इन्दीवर" कहते हैं।

श्वेतकमल—शीतल, मधुर एवम् कफ–पित्त का नाशक होता है। **रक्तकमल** आदि श्वेतकमल की अपेक्षा न्यूनगुणवाले होते हैं ॥ ४–५ ॥

नोट—भावप्रकाशकार कमल के ३ भेद श्वेत, रक्त तथा नील लिखते हैं। आगे श्वेत कुवलय (श्वेत कुमुद) का तथा कल्हार (रक्त कुमुद) का अलग वर्णन करते हैं। इसके अतिरिक्त एक स्थल कमल का और वर्णन करते हैं। अन्य निघण्टुओं ने वर्ण के आधार पर जो नाम दिये हैं उनमें आपस में पर्याप्त मतभिन्नता पाई जाती है। चरक, सुश्रुतादि में भी इनके कई भेदों का उल्लेख है। आधुनिक वानस्पतिक वर्गीकरण की दृष्टि से नेलंबिअम् स्पेसिओजम् में श्वेत एवं रक्त दो भेद पाये जाते हैं। इसे अधिकांश विद्वानों ने कमल माना है। इसमें नीला भेद नहीं पाया जाता। दूसरी प्रजाति (Genus) निंफिया की श्वेत, रक्त तथा नील जातियां (Species) पायी जाती हैं। इस प्रजाति को कुमुद कोई) मानते हैं। संभव है इसी प्रजाति के नील जाति (Species) को कमल का नील भेद मान लिया गया हो। गुणों की दृष्टि से दोनों (कमल एवं कुमुद) में पर्याप्त समता होने के कारण एक का दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है। सभी प्रकार के कमल वर्ण्य कषाय एवं रक्तपित्तहर होते हैं। (च. सू. अ. २७)

पुण्डरीक प्रायः श्वेत कमल को, कोकनद रक्तकमल को एवं इन्दीवर नील कमल को कहा गया है।

विकसित होने की दृष्टि से इनके दो भेद सूर्य-विकाशी एवं चन्द्र-विकाशी मानते हैं। जो प्रातः खिलते हैं तथा शाम को संकुचित हो जाते हैं उन्हें सूर्यविकाशी तथा जो रात को खिले रहते हैं तथा दिन को संकुचित रहते हैं उन्हें चन्द्र-विकाशी कहा जाता है। कमल सूर्य-विकाशी तथा कुमुद प्रायः चन्द्रविकाशी होते हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कमल (नेलंबिअम् स्पेसिओजम्) में कोई जाति (Species) भेद नहीं पाया जाता है केवल वर्ण-भेद से दो प्रकार श्वेत एवं गुलाबी पाये जाते हैं। इसमें पत्तियाँ तथा पुष्प प्रायः पानी की सतह के ऊपर निकले रहते हैं। इसमें स्त्री-केशर पृथक्-पृथक् कर्णिका में इतस्ततः धंसे हुए तथा बाह्यदल (Sepals) कर्णिका के नीचे से निकले रहते हैं। इसमें दूध होता है तथा पत्र-नाल पर दूर-दूर छोटे कांटे होते हैं।

कुमुद (निंफिया) में पत्तियां तथा पुष्प प्रायः पानी की सतह तक निकले रहते हैं। इनमें स्त्री केशर चक्राकार स्थित, न्यूनाधिक परस्पर संयुक्त और कर्णिका में किंचित धंसे रहते हैं। ऊपर के कुछ बाह्यदल कर्णिका से संलग्न रहते हैं। यहाँ कमल का वर्णन किया गया है। कुमुद का आगे वर्णन किया गया है।

१ कमल

हि०-कमल, पुरइन। बं०-पद्म्। उड़ि०-पदम। म०-गु०-कमल। प०-कवलककरी। क०-बिलिया तावरे। ते०-कलाका, तम्मिपुव्वु। ता०-तामरै, अम्बल। मला०-तमर। अ०-कातिलुन्नहल। अं०-Sacred lotus (सैक्रेड लोटस्)। ले०-*Nelumbium speciosum Willd.* (नेलंबियम् स्पेसिओजम् विल्ड)। Fam. Nymphaeaceae (निंफिएसी)

यह भारत के सभी उष्ण प्रदेशों में होता है।

यह तालाबों में होने वाला विस्तृत जलीय क्षुप है। इसकी जड़ कीचड़ में फैलती है। पत्र-पतले, १-३ फूट व्यास के, चक्राकार, चिकने, चमकीले, नतोदर तथा वृन्तगोलायत (Peltate) होते हैं। पत्रनाल—बहुत लम्बा तथा उस पर दूर दूर छोटे कांटे होते हैं। फूल-एकाकी, ४-१० इंच व्यास में, श्वेत या गुलाबी, सुगंधित तथा लंबे दंड पर आता है। गर्मी तथा वर्षा काल में यह फूलते हैं।

कर्णिका (बीजाधार) स्पंज के समान एवं धूसर होती है जिसमें ½ इञ्च लंबे, गोल, काले तथा चिकने बीज रहते हैं। इन्हें (हिं) कमलगट्टा, (सं) पद्मबीज, (म) कमलकाकडी, (गु०) पवडी कहा जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके कंद तथा बीजों में राल, ग्लूकोज, मेटार्बिन (Metarbin), टैनिन, वसा तथा नेलंबिन (Nelumbine) नामक क्षाराभ पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—कमल के पुष्प-(पंखुड़ियाँ) शीत, दाह प्रशमन, हृदय-बल्य, हृदय-संरक्षक, रक्तसंग्राहक, मूत्रजनन, मूत्र विरजनीय एवं ग्राही होते हैं।

इनका प्रयोग रक्तपित्त, ज्वर, मूत्रकृच्छ्र, एवं अतिसार में किया जाता है।

(१) तीव्र ज्वर में हृदय पर ज्वर का कुप्रभाव न हो तथा उसे बल मिले इस दृष्टि से इसका फांट मिश्री मिलाकर दिया जाता है। इसके साथ श्वेत तथा रक्तचंदन, बालक, मुलेठी, मुस्तक मिलाते हैं। डिजिटैलिस की तरह इसका हृदय पर प्रभाव पड़ता है जिससे धड़कन कम होकर हृदय को बल मिलता है।

(२) सगर्भावस्था में रक्तस्राव प्रारंभ होने पर इसके फांट से त्वरित लाभ होता है।

मात्रा—पंखड़ियां १-२ तो० फांट बनाकर।

अथ पद्मिनी। तस्या लक्षणनामगुणानाह

मूलनालदलोत्फुल्लफलैः समुदिता पुनः। पद्मिनी प्रोच्यते प्राज्ञैर्बिसिन्यादि च सा स्मृता॥

पद्मिनी के लक्षण—मूल, नाल, पत्र और फल से युक्त, खिले हुए कमल को विद्वान् लोग "पद्मिनी" कहते हैं।

पंचांग (पद्मिनी) के नाम—इसके बिसिनी आदि भी नाम हैं॥ ६॥

"आदिशब्दान्नलिनी-कमलिनीत्यादि॥ ६॥

यहाँ पर-आदि पद से—नलिनी, कमलिनी इत्यादि भी नामान्तर समझना चाहिये॥ ६॥

पद्मिनी शीतला गुर्वी मधुरा लवणा च सा। पित्तासृक्कफनुद्रूक्षा वातविष्टम्भकारिणी॥ ७॥

पद्मिनी—शीतल, पाक में गुरु, मधुर तथा लवण रस युक्त, रूक्ष, एवम्-वातविष्टम्भ (अधो वायु का शुद्ध न खुलना) पैदा करने वाली होती है, तथा पित्त, रक्तविकार और कफ की नाशक होती है॥ ७॥

अथ नवपत्रादि। तस्य नामान्याह

संवर्तिका नवदलं बीजकोशस्तु कर्णिका। किञ्जल्कः केशरः प्रोक्तो मकरन्दो रसः स्मृतः।
पद्मनालं मृणालं स्यात्तथा बिसमिति स्मृतम्॥ ८॥

कमल के नवीन पत्ते आदि के नाम—संवर्तिका—यह कमल के नवीन पत्तों का नाम है। कर्णिका—बीजकोश (जिसमें बीज रहते हैं) का नामान्तर है। किञ्जल्क-कमल के केशर को कहते हैं।

मकरन्द—कमलपुष्प के रस का वाचक है। मृणाल तथा बिस ये दो नाम कमल के नाल के हैं॥ ८॥

कमल के विभिन्न अंगों के अन्य पर्यायवाची तथा विभिन्न भाषाओं के नाम—**कमलकर्णिका—सं०**-बीजकोश, वराटक। हिं०-कमल का छत्ता। **म०**-धांगुड, दांपणी। **गु०**-धीतेलां, कुमडा (रात्रिविकाशी)।

कमलनाल-सं०-बिस, मृणाल। **हिं०**-मुरार, भसींड। **म०** भिसें।

कमलकन्द—सं०-शालूक, करहाटक। **गु०**-लोढ।

अथ संवर्तिका (नये पत्ते)। तस्या गुणानाह

संवर्तिका हिमा तिक्ता कषाया दाहतृट्प्रणुत्। मूत्रकृच्छ्रगुदव्याधिरक्तपित्तविनाशिनी॥ ९॥

संवर्तिका (कमल के नवीन पत्र)-शीतल, तिक्त तथा कषाय रस युक्त एवम्—दाह, प्यास, मूत्रकृच्छ्र, गुदासम्बन्धी रोग (अर्श आदि) और रक्तपित्त को नष्ट करने वाली होती है॥९॥

अथ कर्णिका। तस्या गुणानाह

पद्मस्य कर्णिका तिक्ता कषाया मधुरा हिमा। मुखवैशद्यकृल्लघ्वी तृष्णाऽस्रकफपित्तनुत्॥१०॥

कर्णिका(बीज कोश)—तिक्त, कषाय तथा मधुर रस युक्त, शीतल, लघु और मुख को स्वच्छ करने वाली एवम्—तृषा, रक्तविकार, कफ तथा पित्त को नाश करने वाली होती है॥१०॥

कमल के बीज—इसके बीज पौष्टिक, मधुर, स्नेहन, ग्राही, रक्तसंग्राहक, गर्भसंस्थापक एवं शीत होते हैं। खाद्य के रूप में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

इसकी पेया बनाकर वमन तथा हिचकी में देने से लाभ होता है। प्रदर में भी इसे देते हैं।

मात्रा—¼-½ तो० पेया बनाकर।

अथ किञ्जल्कः (केशर)। तस्य गुणानाह

किञ्जल्कः शीतलो वृष्यः कषायो ग्राहकोऽपिसः ।
कफपित्ततृषादाहरक्तार्शोविषशोथजित् ॥ ११ ॥

किञ्जल्क (कमल का केशर)—शीतल, वृष्य (वीर्यवर्धक), कषाय रस युक्त, ग्राही एवम्—कफ, पित्त, तृषा, दाह, रक्तार्श (खूनी बवासीर), विष और शोथ को दूर करने वाला होता है ॥ ११ ॥

कमल का केशर—यह ग्राही, शीतवीर्य, रक्तपित्तशामक एवं दाहप्रशमन होता है।

इसका चूर्ण मिश्री के साथ रक्तार्श, रक्तप्रदर तथा ऊर्ध्वग रक्तपित्त में देने से लाभ होता है।

मात्रा—चूर्ण ५-१५ रत्ती।

अथ मृणालं शालूकञ्च । तयोर्गुणानाह

मृणालं शीतलं वृष्यं पित्तदाहास्रजिद् गुरु ॥ १२ ॥
दुर्जरं स्वादुपाकञ्च स्तन्यानिलकफप्रदम् । संग्राहि मधुरं रूक्षं शालूकमपि तद्गुणम् ॥१३॥

मृणाल (कमल नाल)—शीतल, वृष्य (वीर्यवर्धक), गुरु, कठिनता से पचने वाला, रूक्ष, विपाक में मधुर, संग्राही, मधुर रस युक्त, दुग्धवर्धक, वायु तथा कफ को उत्पन्न करने वाला एवम्—पित्त, दाह और रक्त विकार को दूर करने वाला होता है।

शालूक (कमल कन्द)—यह भी गुणों में मृणाल के तुल्य ही होता है ॥ १२-१३ ॥

इसकी पेया बनाकर अतिसार, रक्तातिसार एवं कुपचन में दी जाती है। अर्श में चूर्ण का उपयोग करते हैं। चर्मरोगों में इसका लेप किया जाता है।

मात्रा—½-१ तो० पेया बनाकर।

अथ स्थलकमलम् । तस्य नामगुणानाह

पद्मचारिण्यतिचराऽव्यथा पद्मा च शारदा । पद्माऽनुष्णा कटुस्तिक्ता कषाया कफवातजित् ।
मूत्रकृच्छ्राश्मशूलघ्नी श्वासकासविषापहा ॥ १४ ॥

स्थलकमल के नाम—पद्मचारिणी, अतिचरा, अव्यथा, पद्मा और शारदा ये सब हैं।

स्थलकमल—किञ्चित् उष्णवीर्य, कटु, तिक्त तथा कषाय रस युक्त एवम्—कफ, वात, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, शूल, श्वास, कास तथा विष को दूर करने वाला है ॥ १४ ॥

नोट—इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट में इसका उल्लेख नहीं है। वृंद के 'सिद्धयोग' में स्थलपद्म का प्रयोग मिलता है। इसके कल्क को दूध के साथ पिलाने से प्लीहा रोग तथा सभी प्रकार के शोथ में लाभदायक माना है। श्री कण्ठ ने इसको 'माणकम्' लिखा है। इसके कहीं चार प्रकार मानते हैं—

चतुर्धा स्थलपद्मानि सेवन्ती गुलदावदी । नैपाली च गुलाबश्च बकुलश्च कदम्बकः ॥ १ ॥

निम्न दो पौधों को स्थल कमल कुछ विद्वानों ने माना है।

२ स्थलपद्म (१)

ले०-*Ionidium suffruticosum Ging.* (आयोनिडिअम् सफ्रुटिकोसम्)। Fam. Violaceae (व्हायोलेसी)। हिं०—रतनपुरुष।

इसके छोटे बहुवर्षायु क्षुप बुन्देलखण्ड, आगरा, बंगाल, मद्रास, गुजरात, खानदेश तथा कर्नाटक में पाये जाते हैं। **पत्ते**-कुन्तल क्रम में, लगभग अवृन्त, '७-१" लंबे और मालाकार होते हैं। **पुष्प**-एकाकी तथा गुलाबी रंग के आते हैं। पाँच आभ्यन्तर दलों में, एक दल लम्बे दलदण्ड (Claw) और लगभग वृत्ताकार दलोत्सर (limb) से युक्त होता है। मूल तथा पंचांग का चिकित्सा में व्यवहार होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक क्षाराभ पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह शीतल, स्नेहन एवं मूत्रजनन होता है। मधुमेह में इसे लाभदायक माना जाता है। बच्चों के उदरविकार में इसकी जड़ देते हैं। उष्णताजन्य शिरःशूल एवं गरमी में दाहशान्ति के लिए भी इसका उपयोग होता है।

३ स्थलपद्म (२)

ले०-*Hibiscus mutabilis Linn.* (हिबिस्कस् म्यूटेबिलिस्)। Fam. Malvaceae (माल्वेसी)। सं०—पद्मचारिणी। हिं०—गुलियाजैव। बं०—थलपद्म।

यह बागों में लगाया मिलता है। इसका आदि स्थान चीन है।

इसका **वृक्ष**-छोटा तथा कांटे विहीन होता है। शाखाएँ मृदुरोमश होती हैं। **पत्ते**-हृदयाकार, दन्तुर, ४ इञ्च व्यास में तथा ३ इञ्च लंबे दण्ड से युक्त होते हैं। **पुष्प**-३-४ इञ्च व्यास में आते हैं जो प्रातः खिलने पर श्वेत या गुलाबी रंग के तथा शाम तक गहरे लाल रंग के हो जाते हैं। **फल**-गोल, चिपटे तथा रोमश होते हैं। **बीज**-वृक्काकार एवं खरखरे होते हैं।

गुण और प्रयोग—मलाया तथा चीन में इसके पुष्पों को वक्ष तथा फुफ्फुस विकारों में प्रयोग करते हैं तथा इसे उत्तेजक मानते हैं। इसके पत्तों को शोथ पर बाँधते हैं।

अथ कुमुदम् "कमोदनी" इति लोके । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

श्वेतं कुवलयं प्रोक्तं कुमुदं कैरवं तथा । कुमुदं पिच्छिलं स्निग्धं मधुरं ह्लादि शीतलम् ॥१५॥

कुमुद के नाम—श्वेतकुवलय, कुमुद, कैरव ये सब संस्कृत में हैं। इसे लोक में "कमोदनी" कहते हैं।

कुमुद-पिच्छिल, स्निग्ध, मधुररसयुक्त, शीतल एवम् चित्त को आह्लादित (प्रसन्न) करने वाला है ॥ १५ ॥

अथ कुमुदिनी । तस्या नामगुणाँश्चाह

कुमुद्वती कैरविका तथा कुमुदिनीति च ॥ १६ ॥
सा तु मूलादिसर्वाङ्गैरुक्ता समुदिता बुधैः ।
पद्मिन्या ये गुणाः प्रोक्ताः कुमुदिन्याश्च ते स्मृताः ॥ १७ ॥

कुमुदिनी के नाम—कुमुद्वती, कैरविका और कुमुदिनी ये सब हैं। **लक्षण**—मूल, नाल, पत्रादिकों के सहित जो कुमुद है उसे "कुमुदिनी" कहते हैं।

गुण—पद्मिनी के जो गुण पूर्व में कह चुके हैं वे ही सब कुमुदिनी के भी समझने चाहिये ॥ १६-१७ ॥

अथ कल्हारम् । तन्नामगुणानाह

सौगन्धिकं तु कल्हारं हल्लकं रक्तसन्ध्यकम् । कल्हारं शीतलं ग्राहि विष्टम्भि गुरु रूक्षणम् ॥

कल्हार के नाम—सौगन्धिक, कल्हार, हल्लक और रक्तसन्ध्यक ये सब कल्हार (लालकुमुद) के पर्यायवाची शब्द हैं।

कल्हार—शीतल, ग्राही, वातविष्टम्भ को उत्पन्न करने वाला, पाक में गुरु एवं रूक्ष होता है ॥ १८ ॥

नोट—कमल तथा कुमुद के संबंध में विशेष विवरण कमल के नोट के अन्तर्गत दिया जा चुका है। गुणों की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त साम्यता है। जिससे एक का दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है। कुमुद (निंफिया) में वर्ण के अनुसार ४ भेद (Species) पाये जाते हैं पीत वर्ण का भेद भी विदेशों में पाया जाता है। यहाँ श्वेत कुमुद (निं० अल्बा) का वर्णन किया गया है। अन्यों का केवल संक्षेप में भेद बतलाया गया है।

४ कुमुद

हि०—कुमुद, कमोदनी, कोईं, कुईं। **बं०**—शालुक, सुन्दी। **गु०**—पोयणु। **म०**—कमोद। **फा०**—नीलूफर। **अ०**—अर्नबुल्मा। **अं०**—Water lily (वाटर लिली)। **ले०**—*Nymphaea alba Linn.* (निम्फिआ अल्बा लिन)। Fam. Nymphaeaceae (निम्फिएसी)।

यह काश्मीर में जलाशयों में पाया जाता है।

इसका जलीय क्षुप बहु वर्षायु होता है। इसकी जड़ें जलाशय की सतह में फैलती हैं। **पत्ते**—गोल, हृदयाकार, चमकीले तथा जल की सतह पर तैरते रहते हैं। पत्रनाल १० फुट तक लंबा होता है तथा पत्र फलक के मध्य में जुटा रहता है। **पुष्प**—श्वेत, तथा २-५ इञ्च व्यास में आते हैं। **बाह्यदल**—४, बाहर से कुछ हरिताभ तथा अन्दर से श्वेत होते हैं। **आभ्यंतर दल**—करीब १० होते हैं जो अन्दर की तरफ पुंकेशर में बदल जाते हैं। **फल**—स्पंज सदृश होता है जो जल के अन्दर पक्व होकर फट जाता है जिसमें से बीज बाहर निकल कर जल पर तैरते हैं। **बीज**—छोटे, कच्चे लाल एवं पकने पर काले होते हैं। इन्हें भेंट या बेरा कहते हैं। बिहार और बंगाल में इनका लावा बनाकर उसके लड्डू बनाते हैं। उनको वहाँ रामदाने के लड्डू कहते हैं।

अन्य जातियाँ—

(१) Nymphaea rubra Roxb. (नि. रूब्रा)। रक्त, गुलाबी या श्वेत वर्ण के ३-८ इञ्च व्यास के पुष्प इसमें आते हैं। यह सभी स्थानों पर होता है। इसमें पुष्प केवल सुबह ही खिलते हैं।

(२) N. pubescens Willd. (नि. प्यूबेसेन्स)। यह उपर्युक्त के समान ही है किन्तु इसमें पुष्प कुछ छोटे तथा पत्र अधोतल पर रोमश होते हैं।

(३) N. stelleta Willd. (नि. स्टेल्लेटा)। इसमें पुष्प नीले, हलके बैंगनी तथा ३-६ इञ्च व्यास में आते हैं। यह भी सभी उष्ण भागों में होता है।

रासायनिक संगठन—नि. अल्बा के मूलों में निम्फीन (Nymphaeine) नामक क्षाराभ तथा अन्य कषाय द्रव्य पाये जाते हैं। इस क्षाराभ का वातनाडी संस्थान के ऊपर विषैला प्रभाव पड़ता है। इसके पुष्पों में हृदय पर परिणाम करने वाला निम्फैलिन (Nymphalin) नामक

ग्लूकोसाइड पाया जाता है। इसमें के क्षाराभ का चूहा, मेढक, गिनी पिग तथा कबूतर के मस्तिष्क पर घातक परिणाम होता है तथा श्वसन संस्थान की विषाक्तता होकर मृत्यु होती है।

पुष्प एवं कंद के क्षाराभों का अल्प मात्रा में शामक (Sedative) प्रभाव पड़ता है।

गुण और प्रयोग—इसके गुणादि कमल जैसे ही होते हैं। मूल ग्राही एवं कुछ मादक होता है। पुष्प कामसादक होते हैं।

इसके मूल को प्रवाहिका में देते हैं। पुष्प तथा फल का फांट अतिसार में दिया जाता है तथा इसे स्वेदजनक मानते हैं।

अथ वारिपर्णी शैवालञ्च (जलकुम्भी—सिवार)। तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

वारिपर्णी कुम्भिका स्याद्वारिमूली खमूलिका।
शैवालं जलनीली स्याच्छैवलं जलजञ्च तत् ॥ १९ ॥
वारिपर्णी हिमा तिक्ता लघ्वी स्वाद्वी सरा कटुः।
दोषत्रयहरी रूक्षा शोणितज्वरशोषकृत् ॥ २० ॥
शैवालं तुवरं तिक्तं मधुरं शीतलं लघु। स्निग्धं दाहतृषापित्तरक्तज्वरहरं परम् ॥ २१ ॥

वारिपर्णी (जलकुम्भी) के नाम—वारिपर्णी, कुम्भिका, वारिमूली, खमूलिका ये सब हैं।
जलकुम्भी—शीतल, तिक्त तथा कटुरसयुक्त, स्वादिष्ट, पाकमें लघु, दस्तावर, रूक्ष, त्रिदोषनाशक एवम्-रक्तविकार, ज्वर तथा शोष को उत्पन्न करने वाली है।

शैवाल (सेवार) के नाम—शैवाल, जलनीली, शैवल और जलज ये सब हैं। **सेवार**—कषाय, तिक्त तथा मधुर रस युक्त, शीतल, लघु, स्निग्ध और दाह, तृषा, पित्त, रक्तविकार, और ज्वर को अत्यन्त दूर करने वाला होता है ॥ १९-२१ ॥

नोट—मूल पाठ में श्री लाला शालिग्राम जी की टीका में इस प्रकार भेद है।

"वारिपर्णी कुम्भिका स्याच्छैवालं शैवलञ्च तत्।
वारिपर्णी हिमा तिक्ता······ज्वरहरं परम् ॥"

इससे ऐसा मालूम होता है कि कुम्भिका तथा शैवाल पर्यायवाची नाम हैं किन्तु आगे दोनों के गुण अलग अलग दिये होने से यह संदेह दूर हो जाता है तथा उपर्युक्त पाठभेद गलत मालूम होता है। कुम्भिका तथा शैवाल, दो भिन्न द्रव्य हैं। अमरकोश में भी 'वारिपर्णी तु कुम्भिका' तथा 'जलनीली तु शैवालं शैवलः' दिया हुआ है।

वारिपर्णी (कुम्भिका) के गुणों में 'शोणित ज्वर शोषकृत' के स्थान पर हृत होना चाहिये। सभी टीकाकारों ने गुणों में लिखा है कि यह रक्तविकार, ज्वर तथा शोष में लाभदायक है।

कुम्भिका से जलकुम्भी नामक द्रव्य लिया गया है। अन्य कुछ द्रव्यों के लिये भी यह नाम आता है। जलकुम्भी नाम चरक, सुश्रुत, रा. नि. तथा ध. नि. में नहीं मिलता। अधिकांश विद्वानों ने पिस्टिया स्ट्रेटिओटीस लिन. (Pistia stratiotes Linn.) को जलकुम्भी माना है। एक अन्य बड़ी जलकुम्भी भी पाई जाती है जो इचोर्निया क्रेसिपीस (Eichhornia crassipes Solms) है। यह विदेशी पौधा है जो संभवतः सौन्दर्य की दृष्टि से बागों आदि में लगाया जाने लगा है। इनका अलग-अलग वर्णन किया गया है। शैवाल के संबंध में जलकुम्भी के वर्णन के पश्चात् विवेचन किया गया है।

५ जलकुम्भी (वारिपर्णी) (१)

हिं०–कुम्भी, जलकुम्भी। बं०–टोका पाना। म०–प्रश्नी, गोंडाल, शेवंळ। गु०–जल शंखलां। ता०–आकाश तामरै। अं०–The wester-Lettuce (दी वेस्टर लेट्यूस)। ले०–*Pistia stratiotes Linn.* (पिस्टिया स्ट्रेटिओटीस्)। Fam. *Araceae* (एरेसी)।

यह समस्त भारत में, तालाबों तथा गढों में जहाँ जल जमा रहता है, पायी जाती है।

इसके क्षुप–जलाशयों के ऊपर तैरते रहते हैं। देखने में छोटी गोभी जैसे दिखलाई देते हैं। पत्ते–विनाल, मांसल, १–३″ लंबे, अभिलट्वाकार, चक्राकार गुच्छों में आते हैं। पुष्पव्यूह–पीले या श्वेत पत्रावरण से आवृत होता है। मूल–मूल से डोरे डोरे जैसे कई उपमूल निकले रहते हैं।

इसके पंचांग, पत्ते, मूल तथा इसकी राख का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें ३१% राख होती है जिसमें से जल में घुलनशील क्षार ६% होते हैं। क्षार में पोटेशियम् क्लोराइड ७३% तथा पोटेशियम सल्फेट २२% होता है।

गुण और प्रयोग—यह शीतल, मूत्रजनन, आनुलोमिक, एवं कास शामक है। इसकी गंध से खटमल मरते हैं। इसका प्रयोग मूत्रकृच्छ्र, अर्श, गलगण्ड एवं चर्म रोग में किया जाता है।

(१) मूत्रकृच्छ्र में इसके पत्तों का क्वाथ पिलाते हैं तथा पीसकर पेड़ू पर बांधते हैं।

(२) अर्श पर पत्तों को पीस गरम कर बांधते हैं।

(३) सर की दाद पर इसकी राख लगाते हैं। चर्मरोगों में इसके स्वरस से बना गरी का तेल लगाते हैं।

(४) भस्म गोमूत्र के साथ गलगंड में देते हैं।[1]

मात्रा—स्वरस १–२ तोला; चूर्ण २–८ माशा।

६ जलकुम्भी (२)

हिं०–बड़ी जलकुम्भी। बं०–कचूरीपान। मल०–कोलावझा। ता०–आकाशथामरै। ले०–पिशाचिथामर। ले०–*Eichhornia crassipes Solms* (इकोर्निया क्रेसिपीस)। Fam. Pontederiaceae (पोंटेडेरियेसी)।

यह सुन्दर विदेशी पौधा भारत में समस्त जलाशयों में पाया जाता है।

इसका क्षुप–बहुवर्षायु तथा जल में तैरने वाला होता है। इसकी जड़ें–लम्बी तथा रेशेदार, रोएंदार होती हैं जो छिछले जल में कीचड़ में जम जाती हैं। पत्ते–चक्राकार गुच्छों में, चम्मच के आकार के गोल, चौड़े, २–८″ व्यास में आते हैं जिनका नाल–पुंगी की तरह बहुत फूला हुआ होता है जिससे यह जल पर तैरता है। पुष्प–सुन्दर, नीलाभ बैगनी रंग के, १–१.५ इञ्च लंबे, निवापसम (Funnel-shaped), ६–१० इञ्च लंबे पुष्पदण्ड पर आते हैं। बहुत बीज वाले फल (Capsule) आते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके ताजे पत्तों में कैरोटीन (Carotene) पाया जाता है। इसमें पोटेशियम की काफी मात्रा होने से खाद के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके पुष्प घोड़ों के चर्मरोगों में उपयोगी माने जाते हैं।

---

१. जलकुम्भीकजं भस्म पक्वं गोमूत्र गालितम्।
पिबेत्कोद्रवतक्राशी गलगण्डोपशान्तये॥ (वृन्द)

७ सिवार (१)

शैवाल—जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि शैवाल तथा कुम्भिका एक द्रव्य नहीं हैं वरन् दो भिन्न द्रव्य हैं। हिन्दी का सेवार शब्द शैवाल से ही बना अपभ्रंश मालूम पड़ता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से शैवाल शब्द का अर्थ है कि जो जल में होता हो।

चरक सुश्रुतादि में शैवाल का उल्लेख है। विसर्प के लेपों में इसका अधिक उल्लेख है। ध. नि. में इसके पर्यायों में जलमुस्त शब्द आया है जिससे ऐसा मालूम होता है कि इसमें मोथे की तरह नीचे मूल का कुछ स्वरूप हो।

अपने यहाँ नदियों आदि में एक पौधा पाया जाता है जो सिरैटोफाइलम् डिमर्सम (Ceratophyllum demersum Linn.) है। यह सिरैटोफाइलेसी (Ceratophyllaceae) वर्ग का पौधा है जो वनस्पतियों के उस विभाग के अन्तर्गत आता है जिनमें पुष्प बीजादि वाली वनस्पतियाँ आती हैं। यह ॲल्गी (Algae) विभाग का नहीं है जिनमें काण्ड, पत्र तथा मूल जैसे अलग-अलग अंगों की उत्पत्ति नहीं हुआ करती। समुद्र में पाई जाने वाली कुछ ॲल्गी ऐसी होती हैं जिनको सेवार कहा जा सकता है।

नदियों में पाया जाने वाला एक अन्य क्षुप वेलिसनेरिया स्पाइरेलिस् (Vellisneria spiralis Linn.) है जिसे कुछ ने सेवाल लिखा है।

नदियों में एक सेवार पाई जाती है जिसे गरमी के दिनों में लोग भैंसों आदि को खिलाते हैं। इसमें नीचे मोथे की तरह राइजोम पाये जाते हैं। ध. नि. में लिखा जलमुस्त पर्याय संभवतः इसके लिये अभिप्रेत हो। इससे जल का स्वरूप नीला सा होने से जलनीली पर्याय भी इसके लिये ठीक मालूम पड़ता है। इस सेवार का वनस्पति शास्त्र की दृष्टि से विनिश्चय अभी तक नहीं किया जा सका है।

यहां पर प्रथम दो का वर्णन किया जा रहा है जिन्हें अधिकांश विद्वानों ने सेवार लिखा है।

हिं०–सिवार, सेवार। बं०–शेओयाला। म०–शेवाल, शेवाळे। गु०–शेवाल। फा०–चश्मबजग। अ०–तुहलब। ले०–*Ceratophyllum demersum Linn.* (सिरैटोफाइलम् डिमर्सम्)। Fam. Ceratophyllaceae (सिरैटोफाइलेसी)।

यह सभी जगह पाया जाता है। इसके जलीय क्षुप–८ से ३६ इंच लंबे होते हैं जिनकी शाखायें तथा पत्तियाँ पानी से बाहर निकालने पर आपस में गुंथकर जाल सा बन जाती हैं। पत्ते–करीब १ इंच लंबे होते हैं जिनके खण्ड जल में फैले रहते हैं। इनकी मोटाई तथा पत्र दन्त में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। पुष्प–छोटे तथा पुं पुष्प एवं स्त्री पुष्प भिन्न दण्डों पर आते हैं।

इसके पंचांग का व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके रोओं में माइरोफाइलिन (Myrophyllin) पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह शीतवीर्य तथा ज्वरहर है। पैत्तिक विकार, रक्तपित्त आदि में इसका प्रयोग करते हैं।

मात्रा—स्वरस १–२ तोला।

८ सिवार (२)

हिं०–सेवार। म०–शेवाळ। ग०–जलसपोलियन। ते०–पुनस्तू। ले०–*Vellisneria spiralis Linn.* (वेलिसनेरिया स्पाइरेलिस्)। Fam. Hydrocharitaceae (हाइड्रोचेरिटेसी)।

यह समस्त भारत में होता है। इसके क्षुप-जल में डूबे हुए, काण्डहीन तथा आपस में गुंथे हुये होते हैं। पत्ते-रेखाकार, बहुत लंबे तथा पारभासक होते हैं। पुष्प-पुं पुष्प छोटे पत्रावृत व्यूह में होते हैं और बहुत छोटे तथा संख्या में बहुत होते हैं। परिपक्व होने पर वे व्यूह से अलग हो कर जल के ऊपर आ जाते हैं तथा खिल जाते हैं। स्त्री पुष्प, लंबे कुण्डलित वृन्त से युक्त होते हैं तथा परिपक्व होने पर कुण्डल खुलकर वे ऊपर आ जाते हैं तथा परिषेचन होने पर फिर वृन्त का कुण्डल हो कर नीचे चले जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह दीपन तथा शोथघ्न है। इसका प्रयोग श्वेतप्रदर में करते हैं। फोड़े पर इसको बांधने से जलन कम होती है तथा जल्दी फूट जाता है।

अथ शतपत्री [गुलाब]। तस्या नामानि गुणांश्चाह

शतपत्री तरुण्युक्ता कर्णिका चारुकेशरा। महाकुमारी गन्धाढ्या लाक्षापुष्पा[1] अतिमञ्जुला॥
शतपत्री हिमा हृद्या ग्राहिणी[2] शुक्रला लघुः। दोषत्रयास्रजिद्वर्ण्या कट्वी तिक्ता च पाचनी॥

शतपत्री (गुलाब) के संस्कृत नाम-शतपत्री, तरुणी, कर्णिका, चारुकेशरा, महाकुमारी, गन्धाढ्या, लाक्षापुष्पा और अतिमञ्जुला ये सब हैं। शतपत्री—शीतल, हृदय को हितकर, संग्राही, शुक्रजनक, लघु, त्रिदोष तथा रक्तविकार को दूर करनेवाली, शरीर के वर्ण को उत्तमबनाने वाली, कटु तथा तिक्त रसयुक्त और पाचक होती है॥ २२-२३॥

१ गुलाब

नोट—गुलाब का फूल सुप्रसिद्ध है। चिकित्सा के अतिरिक्त सुगंध के लिए इसका बहुत उपयोग होता है। कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह विदेशी पौधा है। चरक सिद्धिस्थान अध्याय १० में स्वर्णयूथिका, प्रियंगु, रक्तयूली इत्यादि सांग्राहिक द्रव्यों के साथ तरुणी का भी उल्लेख है। भा० प्र० भी इसे ग्राही लिखते हैं। गुलकंद का उपयोग मृदुसारक द्रव्य के रूप में प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसलिए तरुणी शब्द गुलाब के लिए ही है अथवा अन्य किसी भिन्न द्रव्य के लिये है यह संदेह होता है। शतपत्री शब्द भी कई अर्थों में आता है।

गुलाब की कई जातियाँ तथा उनके भेद पाये जाते हैं। उत्तर-पश्चिम हिमालय तथा कश्मीर में पहाड़ों पर यह वन्य अवस्था में भी पाया जाता है। अधिकतर यह बागों में लगाया हुआ मिलता है। फूलों के वर्ण-भेद से, सुगंधभेद से, कांटों की उपस्थिति या अभाव की दृष्टि से इसके अनेक भेद पाये जाते हैं। करीब एक लाख पुष्पों से १ तोला इत्र प्राप्त होता है जिसका सुगन्ध के लिए उपयोग होता है।

हि०, म०, गु०—गुलाब। बं०—गोलाप। ता०—इराशा, गोलप्पु। क०—गुलाबि। ते०—गुलाबीपुवु। फा०—गुले सुर्ख, गुल, गुले गुलाब। अ०—वर्द, वर्दे अहमर। अं०—Rose (रोज)। ले०—*Rosa centifolia Linn.* (रोजा सेन्टिफोलिया)। Fam. Rosaceae (रोजेसी)।

यह सभी जगह बागों में लगाया हुवा मिलता है।

इसका क्षुप ५-७ फीट ऊंचा होता है। शाखाएँ-कांटों से युक्त होती हैं तथा कांटे असमान, बड़े एवं टेढ़े होते हैं। कांटों के अतिरिक्त इन पर चिपचिपे रोएँ भी होते हैं। पत्ते-संयुक्त तथा

१. वृष्या इति पाठा०। २. 'सरा च' इति पाठा०।

पत्रक संख्या में प्रायः ५ तथा मृदुरोमश होते हैं। पत्रदण्ड पर कांटे नहीं होते। पुष्प-प्रायः गुलाबी, बड़े, सुगंधयुक्त तथा लंबे दंड पर हिलते रहते हैं। बाह्यदल स्थायी तथा अन्तर्दल अंदर मुड़े हुये होते हैं।

सेवती गुलाब—(Rosa alba-रोजा ॲल्बा) नामक एक विशेष भेद होता है जिसमें पुष्प श्वेत होते हैं।

चिकित्सा के लिए वसंत ऋतु में उत्पन्न पुष्पों की छाया में सुखाई हुई कलिकाओं का उपयोग करना चाहिये। इसके केशर इत्यादि भागों को निकाल कर केवल पंखड़ियों का उपयोग गुलकंद बनाने में किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें उड़नशील तैल, टैनिक अम्ल, मैलिक अम्ल, तथा कुछ राल आदि द्रव्य पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—गुलाब शीतवीर्य, मृदुसारक, पाचन, त्रिदोषघ्न, पौष्टिक, हृद्य एवं वर्ण्य है। इससे शौच साफ होकर भूख बढ़ती है तथा शरीर पुष्ट होता है। ग्रीष्म ऋतु में स्त्रियों तथा बच्चों को गुलकंद खिलाया जाता है। गुलकंद तथा गुलाबजल का अनुपान के लिए उपयोग करते हैं। नेत्रबिन्दु में गुलाबजल का उपयोग किया जाता है।

मुख व्रण में इसका स्थानिक प्रयोग हितकर है। शोथ में इसका लेप किया जाता है तथा व्रण पर इसका चूर्ण डालते हैं। इसके चूर्ण को शरीर पर मलने से स्वेदाधिक्य कम हो कर दुर्गंध दूर होती है।

सेवती गुलाब का प्रयोग ज्वर में शीतलता लाने के लिए करते हैं। इससे हृदय की धड़कन भी कम होती है।

मात्रा—गुलकंद १ से २ तोला; चूर्ण १ से ३ माशा; अर्क २ से ४ तोला।

अथ वासन्ती (नेवारी)। तस्या नामानि गुणांश्चाह

नेपाली कथिता तज्ज्ञैः सप्तला नवमालिका। वासन्ती शीतला लघ्वी तिक्ता दोषत्रयास्रजित्॥

वासन्ती (नेवारी) के संस्कृत नाम—नेपाली, सप्तला, नवमालिका और वासन्ती ये सब हैं। वासन्ती-तिक्तरसयुक्त, शीतल, लघु एवम् त्रिदोष तथा रक्तविकार को दूर करने वाली है॥ २४॥

नोट—नेवारी को कुछ विद्वानों ने जस्मिनम् आर्बोरेसेन्स माना है तथा कुछ ने आइक्जोरा आर्बोरिया (Ixora arborea Roxb.) माना है। 'वासन्ती' नाम इसके वसन्त ऋतु में पुष्पित होने का द्योतक मालूम पड़ता है। 'नेपाली' पर्याय, इसका नेपाल देश से कुछ संबंध बतलाता है। या नेपाली के स्थान पर नेवाली शब्द हो सकता है जिसका अपभ्रंश नेवारी हो गया होगा।

चमेली, बेला, जूही इत्यादि के साथ ही इसका वर्णन होने से इसके जस्मिन् जाति के ही होने की अधिक संभावना है। ज. आर्बोरेसेन्स को कुछ ने कुन्द माना है। कुन्द का आगे स्वतंत्र वर्णन किया गया है। यहां नेवारी (ज. आर्बोरेसेन्स) का वर्णन किया जा रहा है। निघंटुओं द्वारा वर्णित इन सुगंधयुक्त विभिन्न वनस्पतियों के पर्यायों में पर्याप्त मतभिन्नता पाई जाती है।

० नेवारी

हि०—नेवारी, वासन्ती, चमेली। बं०—बुराकुन्दा, नवमल्लिका। मु०—कुसर। ता०—नागमल्ली। ते०—नागमल्ले। ले०—Jasminum arborescens *Roxb.* (जस्मिनम् आर्बोरेसेन्स)। *Fam. Oleaceae* (ओलिएसी)।

यह हिमालय में ४००० फीट की ऊंचाई तक तथा बंगाल, छोटा नागपूर, उड़ीसा, मध्य तथा दक्षिण भारत एवं गंजम् और विजगापट्टम् के पहाड़ों पर होता है।

यह झाड़ीदार वृक्ष होता है। शाखाएँ–रोमश होती हैं। पत्ते–साधारण, विपरीत, ५–७·५ से. मी. लंबे, अण्डाकार या अण्डाकार-आयताकार, लम्बाग्र, तथा १–२ से. मी. लंबे पत्रनाल से युक्त होते हैं। पुष्प–अत्यंत सुगन्धित, सफेद रंग के, २·५–३·३ से. मी. व्यास में एवं मृदुरोमश होते हैं। इनके खण्ड नलिका से बड़े या बराबर होते हैं। अन्तर्दल नलिका १–१·३ से. मी. तथा खण्ड ९–१२ रहते हैं। स्त्री केशर (Carpel) १, आयताकार या अंडाकार, १·३ से. मी. लंबा एवं काला होता है।

रासायनिक संगठन—पुष्पों में एक उड़नशील तैल होता है।

गुण और प्रयोग—इसके पत्ते तिक्त, कषाय, बल्य तथा दीपन होते हैं। इसके फल बल्य माने जाते हैं।

श्वसनिकाओं में कफ जमा होने पर इसके पत्तों का स्वरस, मरिच, लहसुन तथा अन्य उत्तेजक औषधियों के साथ वामक औषध के रूप में देते हैं।

संथाल लोग इसका प्रयोग मासिक विकारों में करते हैं। इसकी जड़ सर्पविष में लाभदायक मानी गई है।

अथ वार्षिकी (बेला)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

श्रीपदी षट्पदानन्दा वार्षिकी मुक्तबन्धना ॥ २५ ॥

वार्षिकी शीतला लघ्वी तिक्ता दोषत्रयापहा। कर्णाक्षिमुखरोगघ्नी तत्तैलं तद्गुणं स्मृतम् ॥

वार्षिकी (बेला) के संस्कृत नाम—श्रीपदी, षट्पदानन्दा, वार्षिकी और मुक्तबन्धना ये सब हैं। वार्षिकी (बेला)—शीतल, लघु, तिक्तरसयुक्त एवम्–त्रिदोष, कान, नेत्र, मुखसम्बन्धी समस्त रोग को दूर करने वाली होती है। तथा इसके तेल के भी ये ही सब गुण हैं ॥ २५–२६ ॥

११ बेला

हि०–मोगरा, मोतिया बेला। **म०**–मोगरा। **गु०**–डोलर, मोगरो। **क०**–मल्लिगे। **ता०**–अडुक्कु मल्लि। **बं०**–मोतिया। **लै०**–Jasminum sambac Ait. (जस्मिनम् सम्बॅक्)। *Fam. Oleaceae* (ओलिएसी)।

यह भारत में सभी स्थानों पर बागों में लगाया मिलता है। अन्य उष्ण प्रदेशों में भी यह होता है।

इसका झाड़ीदार गुल्म होता है। नवीन शाखायें मृदुरोमश होती हैं। पत्ते–पतले, विपरीत, ३·८–११·५×२·२–६·३ से. मी., विभिन्न आकार के, प्रायः अण्डाकार, चिकने तथा ४–६ जोड़ी बगल की स्पष्ट शिराओं से युक्त होते हैं। पत्रनाल ३–६ मि. मि. लंबा तथा रोमश, होता है। पुष्प–अत्यन्त सुगन्धित, श्वेत, एकाकी अथवा ३ एक साथ रहते हैं। बाह्यदल १·३ से. मी लंबा, रोमश एवं ६–१० मि. मि. लंबे ५–९ विभागों में रहता है। अन्तर्दल नलिका १–३ से. मी. तथा उसके खण्ड नलिका के बराबर होते हैं। स्त्री केशर परिपक्व होने पर ६ मि. मि., गोल, काला तथा बाह्यदल से घिरा रहता है।

बागवानी में इसके अनेक प्रकार पाये जाते हैं। जिनमें चार मुख्य हैं। (१) मोतिया बेला—इसमें पुष्प द्विगुण एवं गोल अन्तर्दल युक्त तथा कली गोल रहती है। (२) बेला—इसमें

भी द्विगुण अन्तर्दल कुछ लंबे रहते हैं। (३) हजारा बेला—इसमें पुष्प के अन्तर्दल द्विगुण नहीं रहते हैं। (४) मोगरा—अन्तर्दल बहु चक्रों में, गोल तथा कलिका १ इञ्च व्यास में रहती है।

अन्य निघंटुओं ने जो विभिन्न भेद वार्षिकी, ग्रैष्मी, अतिमुक्ता, मल्लिका लिखे हैं वे सब इसी ज० सम्बॅक् के ही भेद हैं। वार्षिकी में वर्षाकाल में पुष्प आते हैं। ग्रैष्मी में ग्रीष्म ऋतु में फूल आते हैं। जिसमें फूल छोटे-छोटे होते हैं उसे अतिमुक्ता कहा गया है। भावप्रकाशकार गुण की दृष्टि से मल्लिका को उष्ण वीर्य लिखते हैं और वार्षिकी को शीतवीर्य। अतिमुक्ता यह पर्याय भावप्रकाशकार माधवी के लिये लिखते हैं जो दूसरी लता होती है।

इसके पत्र, पुष्प तथा मूल का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके पुष्पों में एक सुगंधि उड़नशील तैल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह त्रिदोषघ्न, शोथघ्न, व्रणरोपक, स्तन्यनाशन एवं गर्भाशयोत्तेजक है।

(१) प्रसूता को स्तनशोथ होने पर इसके पुष्पों को पीसकर बाँधते हैं जिससे दुग्धस्राव बंद होकर शोथ कम होता है।

(२) इसकी ३ माशे जड़ का क्वाथ अनार्तव तथा अनियमितार्तव में देते हैं।

(३) रक्तप्रवाहिका में इसकी ३-४ पत्तियों को जल में पीस, छान, मिश्री मिलाकर २-३ बार में देते हैं।

(४) पुराने व्रणों पर इसकी पत्तियों का लेप किया जाता है।

मात्रा—मूल ३ माशा; पत्र ३-४।

अथ मालती स्वर्णजाती च (जाई—पीलीजाई)। तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

जातिर्जाती च सुमना मालती राजपुत्रिका। चेतिका हृद्यगन्धा च सा पीता स्वर्णजातिका ॥
जातीयुगं तिक्तमुष्णं तुवरं लघु दोषजित्। शिरोऽक्षिमुखदन्तार्त्तिविषकुष्ठानिलास्रजित् ॥२८॥

जाई–पीलीजाई के संस्कृत नाम—जाति, जाती, सुमना, मालती, राजपुत्रिका, चेतिका और हृद्यगन्धा ये सब "जाई" के नाम हैं; यदि पीली जाई हो तो उसे "स्वर्णजातिका" कहते हैं। दोनों जाती (जाई–पीलीजाई) तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, उष्ण, लघु, दोषनाशक एवम्–शिर, आंख, मुख और दांतों के रोगों को दूर करने वाली तथा विष, कुष्ठ, वायु और रक्तविकार को नष्ट करने वाली होती हैं ॥ २७–२८ ॥

१२ चमेली

हि०–चमेली, चम्बेली, चंबेली। **बं०**–चमेली, जाति। **गु०**–चंबेली। **म०**–चमेली। **ता०**–पिच्चि। **ते०**–जाति। **अ०**–यासमीन, यास मून। **फा०**–यास मन। **अं०**–Spanish Jasmine (स्पॅनिश जस्मिन)। **लै०**–*Jasminum grandiflorum Linn.* (जस्मिनम् ग्रैन्डिफ्लोरम्)। Fam. Oleaceae (ओलिएसी)।

यह भारत में सभी स्थानों पर बागों में लगाया मिलता है। इसका आदि स्थान उत्तर पश्चिम हिमालय मानते हैं। उत्तर प्रदेश में इसकी विस्तृत पैमाने पर खेती की जाती है।

इसके गुल्म–बड़े, आरोही तथा फैलने वाले होते हैं। शाखाएँ–धारीदार होती हैं। पत्ते–विपरीत, संयुक्त तथा २–५ इन्च लंबे होते हैं। पत्रक संख्या में ७–११, अंतिम अग्र का पत्रक बड़ा

तथा बगल के पत्रक विनाल तथा अग्र के जोड़े का आधार मिला हुआ रहता है। पुष्प–सुगंधित सफेद, बाहर से कुछ गुलाबी तथा १॥ इञ्च तक व्यास में रहते हैं।

जाती का **स्वर्णजाती** भेद लिखा हुआ है जिसमें पीले रंग के पुष्प आते हैं। उपर्युक्त जाति (Species) में पीला फूल नहीं पाया जाता। किन्तु जस्मिन् की एक अन्य जाति, ज० ह्यूमाइल (J. humile) होती है जिसमें पीले सुगंधित फूल आते हैं। संभवतः यही स्वर्ण जाती हो।

कर्पूरादि वर्ग में गन्धमालती नामक एक द्रव्य का वर्णन आया है। वहाँ पर एक लता ॲर्गेनोस्मा कॅरियोफाइलॅटा का वर्णन (पृ. २६१) आया है जिसे भी मालती कहते हैं। इसमें पुष्प सफेद आते हैं किन्तु यह ॲपोसाइनेसी (Apocynaceae) वर्ग की लता है। चमेली के पुष्प तथा पत्तों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके पुष्पों में उड़नशील तैल तथा पत्तों में एक क्षाराभ एवं सेलिसिलिक अम्ल होता है।

गुण और प्रयोग—यह शीत, तिक्त, व्रणरोपण, व्रणशोधन एवं कुष्ठघ्न है।

(१) त्वचा के विकारों में इसके पत्तों का बाह्य प्रयोग किया जाता है। मुखपाक तथा दंतपीड़ा में पत्ते चबाने को देते हैं। पूतिकर्ण में पत्तों से बनाया तेल कान में डालते हैं। अंगुलियों के बीच का भाग सड़ने पर पत्तों को पीसकर लेप करते हैं। कॉर्न (Corn) पर ताजा रस लगाते हैं।

(२) पुष्पों का लेप नेत्ररोग, विस्फोट, शिरःशूल आदि में करते हैं। इससे बना तेल शिरःशूल तथा ठंडक के लिए लगाया जाता है।

अथ यूथिका पीतयूथिका च (जूही—सुवर्णजूही)। तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

यूथिका गणिकाऽम्बष्ठा सा पीता हेमपुष्पिका। यूथीयुगं हिमं तिक्तं कटुपाकरसं लघु ॥२९॥
मधुरं तुवरं हृद्यं पित्तघ्नं कफवातलम्। व्रणास्रमुखदन्ताक्षिशिरोरोगविषापहम् ॥ ३० ॥

जूही तथा सुवर्ण जूही के संस्कृत नाम—यूथिका, गणिका, अम्बष्ठा ये नाम जूही के हैं, यदि पीली जूही हो तो उसे "हेमपुष्पिका" कहते हैं। दोनों जूही–शीतल, तिक्त-मधुर तथा कषाय रस युक्त, एवम् पाक में तथा आस्वाद में कटुरसयुक्त, लघु, हृदय को हितकर, पित्तनाशक, कफ तथा वात जनक और व्रण, रक्तविकार, मुख-दांत-नेत्र-शिरसम्बन्धी समस्त रोग तथा विष विकार को दूर करने वाली हैं ॥ २९-३० ॥

१३ जूही

हि०–जूही। क०–कदर मल्लिगे। ते०–मागधी। ता० उसिमल्लिगै। ले०–Jasminum auriculatum Vahl. (जस्मिनम् ऑरीक्युलेटम्)।

Fam. Oleaceae (ओलिएसी)।

यह दक्षिण, कर्नाटक तथा पश्चिम प्रायद्वीप में होती है। भारत के सभी स्थानों पर इसकी खेती होती है। उत्तर प्रदेश में तो व्यापारिक दृष्टिकोण से इसकी खेती करते हैं।

इसका गुल्म–मृदुरोमश, लता के समान आरोहणशील या फैला हुआ रहता है। पत्ते–प्रायः साधारण, कभी कभी त्रिपत्रक जिसमें दो नीचे के पत्रक बहुत छोटे या कभी कभी अनुपस्थित, बीच का पत्रक २-३'२ × १-१'५ से. मि., चौड़ाई लिए हुए अण्डाकार या गोल, मृदुरोमश या चिकना

होता है। पुष्प–श्वेत, सुगंधि गुच्छों में आते हैं। बाह्यदल नलिका ४ मि. मि. लम्बी तथा दन्तुर एवं अन्तर्दल नलिका १३ मि. मि. लंबी तथा उसके खण्ड ५-८ एवं ६ मि. मि. लंबे होते हैं।

यद्यपि पीतयूथिका का वर्णन भा० प्र० ने किया है तथापि, उपर्युक्त जाति में पीले फूल नहीं होते किन्तु ज. हेटेरोफाइलम् (J. heterophyllum) नामक जाति में पीले सुगंधित फूल होते हैं।

डा० देसाई ने उपर्युक्त जाति (ज. ऑरीक्युलेटम्) का वर्णन जाई के अन्तर्गत किया है।

इसके पत्ते तथा फूलों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें सुगंधि तैल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके गुण चमेली की ही तरह हैं। यह भी शीतवीर्य, व्रणरोपण एवं व्रणशोधन है। (१) मुखपाक में पत्तों को चबाने को देते हैं या त्रिफला दारुहल्दी के साथ इसके पत्तों के कषाय से कुल्ला कराते हैं। अंगुलियों के बीच के स्थान सड़ जाने पर पत्तों का लेप उपयोगी है। व्रण पर पत्तों को पीसकर बांधते हैं।

(२) कर्ण विकारों में इसके पत्तों से पकाया तिल का तेल कान में डालते हैं।

(३) पुष्पों को क्षय में दिया जाता है।

अथ चम्पकः (चम्पा)। तस्य नामगुणानाह

चाम्पेयश्चम्पकः प्रोक्तो हेमपुष्पश्च स स्मृतः। एतस्य कलिका गन्धफलेति कथिता बुधैः ॥३१॥
चम्पकः कटुकस्तिक्तः कषायो मधुरो हिमः। विषक्रिमिहरः कृच्छ्रकफवातास्रपित्तजित् ॥३२॥

चम्पा के संस्कृत नाम—चाम्पेय, चम्पक, हेमपुष्प ये सब हैं। इसकी कली को पण्डित लोग "गन्धफली" कहते हैं। चम्पा–कटु-तिक्त-कषाय-मधुर रस युक्त, शीतल एवम् विष, क्रिमि, मूत्रकृच्छ्र, कफ, वात, रक्तविकार या वातरक्त और पित्त को दूर करने वाला है ॥ ३१-३२ ॥

१४ चम्पा

हि०–चम्पा। बं०–चांपा, चाम्पा। म०–सोन चांफा, पिंवळा चांफा। गु०–राय चम्पो, पीळो चम्पो। क०–संपगे। ते०–सम्पङ्गी। ता०–शंपगि। ले०–Michelia champaca Linn. (माइकेलिया चम्पक)। *Fam. Magnoliaceae* (मॅग्नोलिएसी)।

चम्पा के वृक्ष प्रायः वाटिकाओं में रोपण किये जाते हैं किन्तु पूर्वी हिमालय में ३००० फीट तक तथा आसाम, प० घाट एवं दक्षिण भारत में यह वन्य अवस्था में भी पाया जाता है।

इसका वृक्ष छोटा करीब २० फीट ऊँचा होता है और बारहो मास हरा भरा रहता है। पत्ते–८-१० इञ्च लम्बे, २॥ से ४ इञ्च तक चौड़े, नोकीले, चिकने और चमकीले होते हैं। फूल–२ इञ्च के घेरे में घंटाकार फीके पीले या नारङ्गी रङ्ग के सुगन्धित होते हैं। फल–लंबे, १-४ धूसर बीजों से युक्त होते हैं।

नोट—चंपक के अन्य प्रकारों का भी उल्लेख मिलता है जैसे क्षीर चंपक, नागचंपक (नागकेसर), नीलचंपक (हरा चंपा) एवं भूचंपक आदि, जो विभिन्न वनस्पतियाँ हैं।

इसके पंचांग, विशेष रूप से छाल तथा पुष्पों का व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके पुष्प तथा छाल में उड़नशील तैल होता है। छाल का क्वाथ करने से यह तेल उड़ जाता है। इसलिये इसका फाण्ट या चूर्ण बनाकर प्रयोग करना चाहिये।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल-ज्वरहर, मूत्रल, कफहर, दीपन एवं तिक्त पौष्टिक है। पुष्प-उत्तेजक, उद्वेष्टन निरोधी, चक्षुष्य, दाहशामक, मूत्रल, कुष्ठ, कण्डू व्रणहर एवं दीपन है। जड़ की छाल-विरेचन, आर्तवजनन, एवं शोथहर है।

इसका प्रयोग ज्वर, चर्मरोग, उपदंश, शोथ तथा आर्तव विकारों में करते हैं।

(१) विषम ज्वर में इसका फांट पिलाते हैं।

(२) उपदंश की द्वितीयावस्था में त्वचा के विकार या सन्धि में विकृति होने पर इसकी छाल का प्रयोग करते हैं।

(३) मूल की छाल अनार्तव में दी जाती है। व्रणशोथ पर इसे दही में पीसकर लगाते हैं।

(४) सोजाक में पुष्पों का फांट पिलाने से जलन कम होती है।

(५) त्वचा के रोगों में पुष्पों का प्रयोग करते हैं।

(६) तिल के तेल में पुष्पों को पीसकर शिरःशूल, अक्षि पीडा, चक्कर, आदि में सर पर बांधते हैं।

(७) पत्तों का रस शहद के साथ उदरशूल में देते हैं।

मात्रा—त्वक् चूर्ण ५-१५ रत्ती।

अथ बकुलः ("मौलसिरी" इति लोके)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

बकुलो मधुगन्धश्च सिंहकेसरकस्तथा। बकुलस्तुवरोऽनुष्णः कटुपाकरसो गुरुः॥
कफपित्तविषश्वित्रकृमिदन्तगदापहः॥ ३३॥

मौलसिरी के संस्कृत नाम—बकुल, मधुगन्ध, सिंहकेसरक ये सब हैं। **मौलसिरी**-कषायरसयुक्त, किञ्चित् उष्ण, पाक तथा रस में कटु, गुरु, एवम्-कफ, पित्त, विष, श्वेतकुष्ठ, कृमि एवं दाँतों के रोगों को दूर करने वाला है॥ ३३॥

अथ बृहद्बकुलः (बड़ी मौलसिरी)। तस्य नामगुणानाह

शिवमल्ली पाशुपत एकाष्ठीलो वको वसुः॥ ३४॥
वकोऽनुष्णः कटुस्तिक्तः कफपित्तविषापहः। योनिशूलतृषादाहकुष्ठशोथास्त्रनाशनः॥ ३५॥

बड़ी मौलसिरी के संस्कृत नाम—शिवमल्ली, पाशुपत, एकाष्ठील, वक, वसु ये सब हैं। **बड़ी मौलसिरी**-किञ्चित् उष्ण, कटु, तथा तिक्त रसयुक्त एवम्-कफ, पित्त, विष, योनिशूल, तृषा, दाह, कुष्ठ, शोथ और रक्तविकार को दूर करने वाली है॥ ३४-३५॥

नोट—भावप्रकाशकार बकुल की दो जातियों का उल्लेख करते हैं जिनमें बड़ी को शिवमल्ली, पाशुपत, एकाष्ठील, वक एवं वसु कहा गया है। वक नाम होने से इसे कुछ अगस्त मानते हैं किन्तु अगस्त का स्वतंत्र वर्णन आगे आया हुआ है। वानस्पतिक दृष्टि से बकुल की कोई भिन्न जाति (Species) का उल्लेख नहीं पाया जाता। संभव है केवल स्थानादि भेद से कहीं-कहीं बड़े आकार के वृक्ष हो जाते हों जिन्हें बृहद् बकुल कहा गया हो।

१५ मौलसिरी

हि०—मौलसिरी। **बं०**—बकुल। **म०**—बकुळ, ओवली। **गु०**—बोलसरी। **क०**—बकुळ। **ते०**—पोगड **ता०**—मगिलम। **ले०**—Mimusops elengi Linn. (मिम्युसोप्स एलेन्गी)। *Fam. Sapotaceae* (सेपोटेसी)।

शोभा तथा सुगंध के लिए यह सभी जगह बागों में लगाया हुआ पाया जाता है। दक्षिण तथा अंडमान में अधिक होता है।

इसके **वृक्ष**-५० फीट तक ऊँचे, सघन, चिकने पत्तों से युक्त, झोपड़ाकार और सुहावने दिखाई पड़ते हैं तथा बारहो मास हरे भरे रहते हैं। **छाल**-धूसर एवं कुछ फटी हुई तथा काष्ठसार लाल रंग का होता है।

पत्ते-जामुन के पत्तों के समान ३॥ इञ्च लम्बे, १॥ इञ्च चौड़े, नोकदार एवं किनारों पर लहरदार तथा पौन इञ्च दण्ड से युक्त होते हैं। **फूल**-सफेद, लगभग एक इञ्च गोल चक्राकार होते हैं और उनसे अत्यन्त सुगन्धि आती है जो इनके सूखने पर भी चिरकाल तक बनी रहती है। **फल**-किञ्चित् लम्बाई लिये गोल, पौन इञ्च से १ इञ्च लम्बे, ऊपर से साफ, कच्ची अवस्था में हरे रङ्ग के और पकने पर पीले एवं कषाय मधुर हो जाते हैं जिनमें एक बड़ा बीज रहता है। ग्रीष्म से शरद तक यह फूलता है तथा बाद में फलता है।

इसकी छाल, फल तथा पुष्पों का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक संगठन—बीजों में सैपोनिन एवं एक तैल होता है। छाल में कषाय द्रव्य, रबर सदृश पदार्थ, मोम, रंजक द्रव्य, स्टार्च एवं राख होती है। फूलों में उड़नशील तैल होता है। फल में शर्करा होती है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल कषाय एवं पौष्टिक है। फल संग्राहक एवं स्नेहन हैं।

(१) दांत हिलते हों या अन्य दन्त विकारों में इसका बहुत उपयोग किया जाता है। इससे दतुअन करते हैं। छाल को या कच्चे फलों को चबाने को देते हैं। छाल के क्वाथ से गण्डूष भी कराते हैं। इससे अत्यधिक लालास्राव में भी लाभ होता है। बीजों से भी लाभ होता है।

(२) छाल का क्वाथ जीर्ण ज्वर में पौष्टिक रूप में देते हैं।

(३) सूखे फूलों का नस्य शिरःशूल में दिया जाता है।

(४) पुरानी आंव में पके फल खिलाते हैं।

अथ कदम्बः। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

कदम्बः प्रियको नीपो वृत्तपुष्पो हलिप्रियः। कदम्बो मधुरः शीतः कषायो लवणो गुरुः॥
सरो विष्टम्भकृद्रूक्षः कफस्तन्यानिलप्रदः॥ ३६॥

कदम्ब के संस्कृत नाम—कदम्ब, प्रियक, नीप, वृत्तपुष्प और हलिप्रिय ये सब हैं। **कदम्ब**-मधुर, कषाय तथा लवण रस युक्त, शीतल, गुरु, सारक, रूक्ष, वातविष्टम्भ (वायु का न खुलना) को उत्पन्न करने वाला, कफकारक, दुग्धवर्धक और वायुजनक होता है॥ ३६॥

नोट—अन्य निघंटुओं ने इसके कई भेदों का उल्लेख किया है। इनके विभिन्न पर्यायों में से धाराकदम्ब, धूलिकदंब, भूकदंब, राजकदंब, एवं नीप मुख्य हैं। इनमें से संभवतः कुछ एक-दूसरे के पर्याय हैं तथा कुछ भेद हैं। सुप्रसिद्ध कदंब वृक्ष तो राजकदंब मालूम पड़ता है जिसका विस्तार से नीचे वर्णन किया गया है। संभवतः इसे ही नीप कहा गया है। भूकदंब तो मुण्डी है जिसका पहले (पृ० ४१३) वर्णन आ चुका है। कदंब के ही वर्ग के कुछ उससे मिलते जुलते दो अन्य वृक्ष, **ले०**—*Mytragyna parvifolia* Korth. (मिट्रागाइना पार्विफोलिया), **हिं०**—करम, कैमा एवं **ले०**—*Adina cordifolia* Benth. & Hook. f. (एडिना कॉर्डिफोलिया), **हिं०**—जातकदम, हलदू , **सं०**—हरिद्रु, **आसा०**—केलिकदंब पाये जाते हैं जो संभवतः उपर्युक्त भेदों में से हैं। इनमें से प्रथम धारा कदंब एवं द्वितीय धूलिकदंब हो सकता है।

१६ कदम्ब

हि०-कदम, कदम्ब । बं०-कदम । म०-कळम्ब । गु०-कदम्ब । क०-कड़व । ते०-कदंबमु । ता०-वेल्लइ कदम्ब । ले०-Anthocephalus cadamba Miq. (एंथोसिफेलस् कदम्ब)। Fam. Rubiaceae (रूबिएसी)। यह हिमालय के निचले भागों में नेपाल से पूर्व की तरफ वर्मा तक तथा दक्षिण में उत्तरी सरकार तथा पश्चिमी घाट में होता है। सभी स्थानों पर बागों में लगाया हुआ भी पाया जाता है।

कदम्ब का वृक्ष-४०-५० फीट ऊँचा, बड़ा और छायादार होता है। पत्ते-महुवे के पत्तों के समान लम्बाई युक्त अण्डाकार, ५-९ इञ्च लंबे होते हैं। इन पर सिरायें बहुत स्पष्ट होती हैं। पुष्प गुच्छ १-२ इञ्च के घेरे में, गोलाकार नारङ्गी रङ्ग के अनेक पुष्पगुच्छ होते हैं और उनसे विशेष कर रात्रि में सुगन्धि आती है। फल-कच्चे में हरे और पकने पर फीके नारङ्गी रङ्ग के, १-१॥ इञ्च व्यास में, गोल तथा मधुराम्ल होते हैं। चिकित्सा में फल तथा छाल का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में राख १०% रहती है जिसमें चूना रहता है। इसमें का प्रधान तत्त्व सिन्कोटैनिक अम्ल (Cinchotannic acid) की तरह है तथा इसकी छाल का रंग भी सिंकोना में के लाल द्रव्य की तरह है। इसमें का क्षाराभ हृदयावसादक है।

गुण और प्रयोग—यह तिक्त पौष्टिक, शीतवीर्य, ज्वरघ्न, मूत्र स्तंभन (Antidiuretic), व्रणरोपण, शुक्रशोधन, वेदनास्थापन, एवं विषघ्न है।

इसका प्रयोग ज्वर, रक्तातिसार, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदोष एवं मुखपाक में किया जाता है।

(१) इसकी छाल का रस, जीरा एवं मिश्री के साथ बच्चों के ज्वर, वमन एवं अतिसार में दिया जाता है।

(२) नेत्राभिष्यंद में अन्य औषधियों के साथ इसका रस पलकों पर लगाते हैं।

(३) मुखपाक में छाल का या पत्तों का कषाय गण्डूष के लिए दिया जाता है।

(४) फल का रस ज्वरजन्य पिपासा में उपयोगी मानते हैं।

मात्रा—त्वक् ५-१० रत्ती।

अथ कुब्जकः (कूजा)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

कुब्जको भद्रतरुणी वृत्तपुष्पोऽतिकेसरः। महासहा कण्टकाढ्या नीलालिकुलसंकुला ॥३७॥
कुब्जकः सुरभिः स्वादुः कषायानुरसः सरः। त्रिदोषशमनो वृष्यः शीतहर्त्ता च स स्मृतः ॥

कूजा के संस्कृत नाम-कुब्जक, भद्रतरुणी, वृत्तपुष्प, अतिकेसर, महासहा, कण्टकाढ्या, नीलालिकुलसंकुला ये सब हैं। कूजा-सुगन्धयुक्त, आरम्भ में मधुर, अन्त में कषाय रसयुक्त, सारक, त्रिदोषनाशक, वृष्य (वीर्यवर्धक) और शीत को दूर करने वाला है॥ ३७-३८ ॥

१७ कूजा

हि०-कूजा, कुजई। बं०-कूजा। ले०-*Rosa moschata Herrm* (रोज़ा मॉस्केटा)। Fam. Rosaceae (रोज़ेसी)।

यह मध्य तथा पश्चिम हिमालय के साधारण उष्ण प्रदेशों में मुरी से नेपाल तक २ हजार से ११ हजार फीट तक होता है।

गुलाब की जाति की यह इतस्ततः फैलने वाली विस्तृत लता होती है। काण्ड-५" तक मोटे तथा ५० फीट तक ऊँचे होते हैं। कांटे भूरे रंग के होते हैं। पत्ते-संयुक्त, २"-६" लंबे एवं

वृन्त पर कांटे होते हैं। पत्रक-संख्या में ५-९, अंडाकार, तीक्ष्णाग्र, दन्तुर, १-३" लंबे एवं अधरपृष्ठ पर मृदुरोमश होते हैं। पुष्प-श्वेत, सुगंधि, १-१·५" व्यास में एवं इनके वृन्त पर कांटे नहीं होते। फल-नारंगी, रक्त या हलके लाल रंग के, गोल या अंडाकार एवं व्यास में ०·३-०·६" रहते हैं। पुष्पकाल अप्रिल से जून एवं फलोद्गम अक्तूबर से फरवरी तक।

गुण और प्रयोग—यह सारक, त्रिदोषघ्न तथा वृष्य है। इसका प्रयोग पैत्तिक विकार, दाह एवं नेत्र रोगों में किया जाता है।

अथ मल्लिका। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

मल्लिका मदयन्ती च शीतभीरुश्च भूपदी ॥ ३९ ॥
मल्लिकोष्णा लघुर्वृष्या तिक्ता च कटुका हरेत्।
वातपित्तास्यदृग्व्याधिकुष्ठारुचिविषव्रणान् ॥ ४० ॥

मल्लिका (बेला, मोतिया) के संस्कृत नाम— मल्लिका, मदयन्ती, शीतभीरु, भूपदी ये सब हैं। मल्लिका-उष्ण, लघु वृष्य, तिक्त तथा कटु रसयुक्त एवम्—वात, पित्त, मुख-नेत्र-सम्बन्धी रोग, कुष्ठ, अरुचि, विष तथा व्रण को दूर करने वाली है॥ ३९-४० ॥

१८ मल्लिका

यह जस्मिनम् सम्बॅक् (Jasminum sambac) की ही एक जाति (Variety) है जिसका वर्णन बेला (वार्षिकी) के अन्तर्गत (पृष्ठ ४९०) किया जा चुका है। गुण की दृष्टि से यह उससे कुछ समान ही है किन्तु इसे भा० प्र० उष्णवीर्य एवं वार्षिकी को शीतवीर्य मानते हैं।

अथ माधवी (वासन्ती)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

माधवी स्यात्तु वासन्ती पुण्ड्रको मण्डकोऽपि च। अतिमुक्तो विमुक्तश्च कामुको भ्रमरोत्सवः ॥
माधवी मधुरा शीता लघ्वी दोषत्रयापहा ॥ ४१ ॥

माधवी के संस्कृत नाम—माधवी, वासन्ती, पुण्ड्रक, मण्डक, अतिमुक्त, विमुक्त, कामुक, भ्रमरोत्सव ये सब हैं। माधवी-मधुर रसयुक्त, शीतल, लघु तथा त्रिदोषनाशक है॥ ४१ ॥

१९ माधवी

हि०-माधवी। बं०-माधवी लता। म०-मधु मालती, हलदवेल। गु०-रगतपीती, माधवी लता। ता०-अडिगम। ते०-माधवतीगे। अं०-Clustered Hiptage (क्लस्टर्ड हिप्टेज)। ले०-*Hiptage madablota Gaertn.* (हिप्टेज मैडेब्लोटा)। Fam. Malpighiaceae (मॅल्पिघिएसी)।

यह दक्षिण, सिवालिक, कुमाऊं, पूर्वीबंगाल, आसाम, नेपाल तथा अंडमान में होती है एवं बागों में भी यह लगाई जाती है।

इसकी लता-बहुत विस्तार में फैलने वाली होती है और निकटवर्ती वृक्ष पर चढ़ कर उसको ढक देती है। इसका स्तम्भ-मजबूत होता है और शाखाएं मोटी होती हैं।

पत्ते-अण्डाकार, लट्वाकार-आयताकार या आयताकार-प्रासवत्, लम्बाग्र, अभिमुख, चिकने चमकीले एवं ४-७" लंबे तथा २·५" चौड़े होते हैं। पुष्प-आकर्षक, श्वेत तथा सुगंधि रहते हैं। आभ्यंतर दल झालरदार रहते हैं जिनमें से एक दल पीला रहता है। प्रत्येक स्त्री केशर में एक बड़ा और दो छोटे पक्ष (wing) होते हैं। इसकी छाल तथा पत्तों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें हिप्टेजिन (Hiptagin) नामक एक ग्लूकोसाइड पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके पत्ते कुष्ठघ्न हैं। त्वचा के रोगों में पत्तों को पीसकर लगाया जाता है। खुजली (Scabies) में यह लाभदायक है।

इसकी छाल कड़वी तथा सुगंधि है तथा इसका जीर्ण आमवात तथा श्वास में उपयोग किया जाता है।

कमर पतली करने के लिए जड़ को मट्ठे के साथ पिलाना चाहिये। (चक्रदत्त)

अथ केतकः सुवर्णकेतकी च (केवड़ा-पीला केवड़ा) तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

केतकः सूचिकापुष्पो जम्बुकः क्रकचच्छदः। सुवर्णकेतकी त्वन्या लघुपुष्पा सुगन्धिनी॥
केतकः कटुकः स्वादुर्लघुस्तिक्तः कफापहः। उष्णा तिक्तरसा ज्ञेया चक्षुष्या हेमकेतकी॥४३॥

केवड़ा के संस्कृत नाम—केतक, सूचिकापुष्प, जम्बुक, क्रकचच्छद, ये सब हैं। पीला केवड़ा के संस्कृत नाम—सुवर्णकेतकी, लघुपुष्पा, सुगन्धिनी ये सब हैं। **केवड़ा**–कटु, मधुर तथा तिक्त रस युक्त, लघु, तथा कफनाशक है। **पीला केवड़ा**–उष्ण, तिक्तरस युक्त एवम् नेत्रों के लिये हितकर होता है॥ ४२-४३॥

२० केवड़ा

हि०–केवड़ा। **बं०**-केया। **म०**–केवडा। **गु०**–केवड़ो। **ते०**–मुगलीपुवु। **ता०**–तालहै। **क०**–केदगे। **फा०**–गुलकेरी। **अ०**–कादी। **अं०**–Screw Pine (स्क्रू पाइन)। **लै०**–*Pandanus odoratissimus Roxb.* (पेन्डेनस् ओडोरेटिसिमस्)। Fam. Pandanaceae (पेन्डेनेसी)।

भारतीय प्रायद्वीप के दोनों तरफ समुद्री किनारों तथा अण्डमान में यह पाया जाता है। सभी स्थानों में बागों में लगाया हुआ भी मिलता है।

इसका गुल्म या छोटा वृक्ष करीब १०-१२ फीट ऊँचा होता है। काण्ड से वायवीयमूल निकल कर उसे सहारा देते हुए जमीन में घुसे रहते हैं। पत्ते–सघन, चमकीले, हरे, तलवार की तरह, ३-७ फीट तक लंबे, पतले तथा किनारों एवं मध्यशिरा पर तीक्ष्ण कांटों से युक्त होते हैं। पुष्प–पत्रावृत अवृन्त-काण्डज व्यूह (Spadix) में आते हैं जिनके पत्रकोश (Spathe) सुगन्धित तथा श्वेतवर्ण के होते हैं। पुं पुष्प एवं स्त्री पुष्प भिन्न-भिन्न वृक्षों पर होते हैं। पुं पुष्प व्यूह में कई गुच्छ, ५-१०×२·५-३·८ से. मी. बड़े रहते हैं किन्तु स्त्रीपुष्प व्यूह में एक ही गुच्छ, ५ से. मी. व्यास का रहता है। फल–गोल या आयताकार, १५-२५ से. मी. लंबा चौड़ा, पीत या रक्तवर्ण का होता है। वर्षा ऋतु में पुष्प एवं शरद् ऋतु में फल आते हैं।

भावप्रकाशकार इसके दो भेद मानते हैं। (१) केतक तथा (२) सुवर्ण केतकी। सुवर्णकेतकी के पुष्प कुछ छोटे, स्वर्ण वर्ण के तथा अधिक सुगन्धि वाले माने जाते हैं। आधुनिक राक्सबर्ग जैसे वैज्ञानिकों का मत है कि सुगन्ध पुं पुष्प में अधिक होती है।

पेन्डेनस की ऐसी भी कुछ जातियां (Species) पाई जाती हैं जिनके पत्तों में कांटे नहीं होते। इसके पुष्प एवं पत्तों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके पुष्पों में ०·१-०·३% सुगन्धित तैल होता है।

गुण और प्रयोग—यह सौमनस्यजनन, हृद्य, मस्तिष्क को बल देने वाला, दुर्गन्ध हर एवं कफनाशक है।

(१) इसका अर्क ज्वर में देने से पसीना आकर ताजगी मालूम पड़ती है।

(२) इसके तैल की मालिश से शिरःशूल, कटिशूल एवं आमवातादि में लाभ होता है।

(३) चर्मरोगों में पत्तों का उपयोग किया जाता है।

(४) गुल्म में इसके क्षार का प्रयोग किया जाता है। (सुश्रुत)

मात्रा—अर्क ४-६ तोला; शर्बत २-४ तो०।

अथ किङ्किरातः (गौडादौ प्रसिद्धः) तस्य नामानि गुणाँश्चाह

किङ्किरातो हेमगौरः पीतकः पीतभद्रकः॥ ४४॥
किङ्किरातो हिमस्तिक्तः कषायश्च हरेदसौ। कफपित्तपिपासाऽस्रदाहशोषवमिक्रिमीन्॥४५॥

किङ्किरात (यह गौड़ आदि देशों में प्रसिद्ध है) के संस्कृत नाम—किङ्किरात, हेमगौर, पीतक, पीतभद्रक ये सब हैं। **किङ्किरात**–तिक्त तथा कषाय रस युक्त, शीतल तथा कफ, पित्त, प्यास, रक्तविकार, दाह, शोष, वमन तथा क्रिमि को दूर करता है॥ ४४-४५॥

२१ किंकिरात

आगे वटादिवर्ग में बब्बूल (किंकिरात) का वर्णन आया है। या तो इसके फूलों के महत्त्व को बतलाने के लिए इसका यहां स्वतंत्र वर्णन किया गया हो या यह बब्बूल का कोई भेद हो। पीले पुष्प की कटसरैया को भी कुछ विद्वान् किंकिरात मानते हैं।

दक्षिण की तरफ एक बब्बूल की जाति का छोटा वृक्ष **म०**–देवबाभूळ, **लै०**–*Acacia latromun Willd.* (अकेसिया लेट्रोमन); Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी) पाया जाता है। यदि बब्बूल से भिन्न किंकिरात हो तो इसके होने की संभावना है।

यह छोटा सा वृक्ष होता है जिसका ऊपर का भाग पुराने वृक्षों में छत्र की तरह फैल जाता है। इसमें पुष्प सफेद आते हैं जो बाद में पीले हो जाते हैं।

पागल कुत्ते के काटने पर इसकी ताजी जड़, ४ तोले की मात्रा में ठंडे जल में पीस कर ७ दिन पिलाते हैं।

अथ कर्णिकारः ("पांगारा" इति महाराष्ट्रे प्रसिद्धः) तस्य नामानि गुणाँश्चाह

कर्णिकारः परिव्याधः पादपोत्पल इत्यपि॥
कर्णिकारः कटुस्तिक्तस्तुवरो शोधनो लघुः। रञ्जनः सुखदः शोथश्लेष्मास्रव्रणकुष्ठजित्॥४६॥

कर्णिकार (यह "पांगारा" इस नाम से महाराष्ट्र में प्रसिद्ध है) के संस्कृत नाम–कर्णिकार, परिव्याध, पादपोत्पल ये सब हैं। कर्णिकार–कटु, तिक्त तथा कषाय रस युक्त, कोष्ठशोधक, लघु, रंग देने वाला, सुख पहुँचाने वाला, एवम्—शोथ, कफ, रक्तविकार, व्रण और कुष्ठ को दूर करने वाला है॥ ४६॥

२२ कर्णिकार

कर्णिकार क्या है इस संबन्ध में कुछ मतभेद हैं। हरीतक्यादि वर्ग में (पृ० ६८) आरग्वध के पर्याय में कर्णिकार शब्द आया है। जैसे बब्बूल का पर्याय किंकिरात होते हुए भी उसके पुष्पों के महत्त्व की दृष्टि से उसका दो स्थानों पर स्वतंत्र वर्णन किया है वैसे ही संभवतः इसका यहाँ फिर से वर्णन किया गया है। ध० नि० ने कर्णिकार को आरग्वध भेद माना है। 'पांगारा', इति महाराष्ट्रे प्रसिद्धः' यह जो प्रारंभ में दिया हुआ है वह उचित नहीं मालूम पड़ता। मराठी में पांगारा यह पारिभद्र, Erythrina indica (एरिथ्रिना इण्डिका) का नाम है जिसका पहले वर्णन (पृ० ३३४) किया जा चुका है।

कुछ विद्वानों ने उलटकंबल, Abroma augusta (एब्रोमा ऑगस्टा) को कर्णिकार माना है। कुछ ने बं०–कनकचम्पा, Pterospermum acerifolium (टेरोस्पर्मम् एसेरिफोलियम्) को कर्णिकार माना है किन्तु यह तो मुचकुंद है। मुचकुंद के लिये गलती से लोगों ने Pterospermum suberifolium (टे० सुबेरिफोलियम्) नाम लिखा है।[1] मुचकुंद का आगे स्वतंत्र वर्णन आया हुआ है।

अथाशोकः। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

अशोको हेमपुष्पश्च वञ्जुलस्ताम्रपल्लवः। कङ्केलिः पिण्डपुष्पश्च गन्धपुष्पो नटस्तथा ॥४७॥
अशोकः शीतलस्तिक्तो ग्राही वर्ण्यः कषायकः। दोषापचीतृषादाहकृमिशोषविषास्रजित्[2] ॥

अशोक के संस्कृत नाम—अशोक, हेमपुष्प, वञ्जुल, ताम्रपल्लव, कङ्केलि, पिण्डपुष्प, गन्धपुष्प, नट ये सब हैं। अशोक-तिक्त तथा कषाय रस युक्त, शीतल, ग्राही, शरीर के वर्ण को उत्तम करने वाला एवम् वातादिदोष, अपची, तृषा, दाह, क्रिमि, शोष, विष और रक्तविकार को दूर करने वाला है ॥ ४७–४८ ॥

नोट—यद्यपि अशोक वृक्ष, Saraca indica Linn. (साराका इण्डिका) है तथापि कहीं-कहीं Polyalthia longifolia (पॉलिएल्थिया लौंगिफोलिया) को गलती से लोग अशोक मानते हैं।

असली अशोक का उपयोग रक्तप्रदर आदि गर्भाशय के विकारों में बहुत प्रचलित है किन्तु इस गुण का उल्लेख चरक, सुश्रुत, भा० प्र०, रा० नि०, ध० नि०, में देखने में नहीं आता। सुश्रुत में लोध्रादिगण में इसका पाठ है जिसमें ये द्रव्य योनिदोषों मे उपयोगी बतलाये गये हैं। चरक में वेदनास्थापनगण एवं कषायस्कंध में उल्लेख है। वृन्द ने प्रथम रक्तप्रदर में इसका उपयोग किया है।

यहाँ प्रथम असली अशोक का तथा बाद में दूसरे अशोक का संक्षेप में वर्णन किया है।

२३ अशोक (१), असली अशोक

हिं०–अशोक। **बं०**–असोक। **म०, गु०**–अशोक। **क०**–अशोक। **ता०**–अचोकम्। **ले०**–*Saraca indica Linn.* (सराका इन्डिका)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी।

यह मध्य और पूर्वी हिमालय, पूर्व बंगाल और दक्षिण भारत में पाया जाता है तथा अनेक प्रकार की वाटिकाओं में भी देखने में आता है। बङ्गाल में इसका अधिक आदर है और प्रायः वहाँ के सब वाटिकाओं में देखा जाता है।

---

१. श्री ठा० बलवन्तसिंह—बिहार की वनस्पतियां, पृ. १७.

२. शोषापची''''''कृमिशोथविषास्रजित्। इति पाठा०।

इसका **वृक्ष**–बड़ा, सीधा और झोपड़ाकार होता है तथा यह बारहो मास हरा भरा दिखाई पड़ता है। **लकड़ी**–हलकी, किंचित् लाली युक्त भूरे रंग की होती है। **पत्ते**–सम-पक्षवत् एवं **पत्रक**–पतली २ टहनियों पर३ से ६ जोड़े रहते हैं और वे ३ से ९ इञ्च तक लम्बे, आयताकार या आयताकार प्रासवत्, चिकने, तीक्ष्ण या लम्बाग्र एवं चर्मल होते हैं। नई २ टहनियाँ नीचे की ओर झुकी हुई रहती हैं और उनके पत्ते अत्यन्त कोमल, एक दूसरे से सटे हुए, तांबे के रंग के लाल मनोहर दिखाई पड़ते हैं। इसीलिए इसको ताम्रपल्लव कहते हैं। वसन्त ऋतु में इस पर फूल तथा शरद् में फल आते हैं। **पुष्प**—सघन गुच्छों में आते हैं और वे नारंगी रंग से लेकर अत्यन्त रक्तवर्ण तक परम सुहावने होते हैं। इसमें कोण पुष्पक एवं बाह्यदल रंगीन होते हैं। बाह्यदल ४ तथा आयताकार होते हैं। आभ्यंतरदल नहीं रहते। पुंकेशर ७–८, करीब १ इञ्च लम्बे एवं गहरे लाल रंग के होते हैं। **फलियां**–६ से १० इञ्च तक लम्बी, चिपटी, १ से १॥ इञ्च चौड़ी तथा दोनों सिरों पर कुछ-कुछ टेढ़ी होती हैं। प्रत्येक फली में ४ से ८ तक बीज रहते हैं। **बीज**–१–१॥ इञ्च लम्बे एवं कुछ चिपटे होते हैं।

इसकी **छाल**–का चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है। यह पतली, ६ मि. मी. मोटी, बाहर से धूसराभ भूरे रंग की, कुछ चिकनी, अंदर से हलके भूरे रंग की, सूखने पर रक्ताभ भूरे रंग की, लंबाई में झुर्रीदार कठोर एवं रेशेदार होती है। इसका स्वाद कड़वा होता है।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में कषाय द्रव्य (Tannins), कैटेचोल (Catechol) एवं लौहयुक्त सेन्द्रीय द्रव्य पाये जाते हैं। राख की मात्रा १०% रहती है।

गुण और प्रयोग—यह शीत, कषाय, तिक्त, वेदनास्थापन, ग्राही एवं रक्तसंग्राहक है। इससे गर्भाशय की शिथिलता दूर होती है तथा उसकी अन्तःकला एवं अण्डाशय (Ovary) पर कुछ उत्तेजक प्रभाव पड़ता है।

इसका उपयोग **रक्तप्रदर**–कष्टार्तव, श्वेतप्रदर, रक्तार्श, रक्तातिसार एवं गर्भाशय के विकारों में किया जाता है। अर्गट की तरह सभी प्रकार के रक्तप्रदर में इसका प्रयोग किया जा सकता है।

(१) रक्तप्रदर में इसकी छाल का क्षीरपाक करके सुबह पिलाते हैं। (चक्रदत्त)

मात्रा—१ से २ तोला (क्षीरपाक करके)।

२४ अशोक (२)

हिं०–अशोक, असोक, देवदारु। **बं०**–देव दारु। **म०**–अशोक। **ते०**–असोकमु। **क०**–पुत्रजीवी। **ले०**–*Polyalthia longifolia Benth. & Hook. f.* (पॉलीएल्थिया लौंगीफोलिया)। Fam. Annonaceae (अन्नोनेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है, विशेष कर सड़कों के किनारे देखने में आता है। इसे वाटिकाओं में भी लगाते हैं।

इसका **वृक्ष**–सीधा खड़ा होता है। **शाखाएँ**–सघन नहीं होतीं। पतली-पतली टहनियों पर पत्ते विषमवर्ती रहते हैं। **छाल**–पतली और **लकड़ी**–किंचित् पीलापन युक्त सफेद होती है। **पत्ते**–६ से ९ इञ्च तक लंबे, किंचित् अण्डाकार, मालाकार, लहरदार धारवाले और चमकीले होते हैं। **फूल**–हरापन युक्त पीले रंग के अथवा पीलापन युक्त सफेद रंग के आते हैं। **फल**–जामुन के समान गोल होते हैं। कच्ची अवस्था में नीले रंग के और पकने पर लाल हो जाते हैं।

गुण और प्रयोग—गलती से इसकी छाल का कहीं-कहीं असली अशोक के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। यह ज्वरनाशक होती है।

अथाम्लाटनः (बाणपुष्प इति गौडादौ प्रसिद्धः) तस्य नामानि गुणाँश्चाह

अम्लातोऽम्लाटनः प्रोक्तस्तथाऽम्लातक इत्यपि ॥ ४९ ॥
कुरण्टको वर्णपुष्पः स एवोक्तो महासहः । अम्लाटनः कषायोष्णः स्निग्धः स्वादुश्च तिक्तकः ॥

अम्लाटन (यह "बाणपुष्प" के नाम से गौड़ आदि देशों में प्रसिद्ध है) के संस्कृत नाम—अम्लात, अम्लाटन, अम्लातक, कुरण्टक, वर्णपुष्प, महासह ये सब हैं। **अम्लाटन**-कषाय तथा तिक्त-रस युक्त, उष्ण, स्निग्ध एवम् स्वादिष्ट है ॥ ४९-५० ॥

२५ बाणपुष्प

इसके संस्कृत पर्याय-अम्लात, अम्लाटन, अम्लातक, कुरण्टक आदि कटसरैया के बोधक हैं। इसलिये बाणपुष्प, कटसरैये का ही कोई भेद मालूम पड़ता है ॥ २५ ॥

अथ सैरेयकः (कटसरैया) तस्य नामानि भेदान् गुणाँश्चाह

सैरेयकः श्वेतपुष्पः सैरेयः कटसारिका । सहाचरः सहचरः स च भिन्द्यपि कथ्यते ॥ ५१ ॥
कुरण्टकोऽत्रपीते स्याद्रक्त कुरबकः स्मृतः । नीले बाणा द्वयोरुक्तो दासी चार्त्तगलश्च सः ॥५२॥
सैरेयः कुष्ठवातास्रकफकण्डूविषापहः । तिक्तोष्णो मधुरोऽनम्लः[1] सुस्निग्धः केशरञ्जनः ॥५३॥

सफेद फूलवाली कटसरैया के संस्कृत नाम—सैरेयक, श्वेतपुष्पसैरेयक, सैरेय, कटसारिका, सहाचर, सहचर, भिन्दी ये सब हैं। पीले फूल वाली कटसरैया का संस्कृत नाम—कुरण्टक है। लाल फूलवाली का संस्कृत नाम—कुरबक है। नीले फूलवाली कटसरैया के संस्कृत नाम—बाणा, बाण, (बाण शब्द पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग दोनों में है), दासी, आर्तगल ये सब हैं। **कटसरैया**-तिक्त, मधुर तथा किञ्चित् अम्लरस युक्त, उष्ण, अतिस्निग्ध, केशों को रंगनेवाली होती है तथा कुष्ठ, वात-रक्त, कफ, खुजली एवं विष का नाश करती है।

नोट—सैरेयक के पुष्पों के आधार पर विभिन्न भेद किये हुए हैं। ये सब Barleria (बार्लेरिया) की विभिन्न जातियाँ हैं जिनके साधारण स्वरूप में साम्यता रहती है। यहाँ वानस्पतिक वर्णन केवल पीत का किया गया है। गुणकर्म भी सब के प्रायः समान ही होने से एक साथ ही सबका वर्णन किया गया है। निम्न भेदों का उल्लेख निघण्टुओं ने किया है।

(१) श्वेत पुष्प—सहचर, Barleria cristata Linn. (बार्लेरिया क्रिस्टेटा)।
(२) पीत „ —कुरंटक, „ prionitis „ („ प्रियोनाइटिस्)।
(३) रक्त „ —कुरबक, „ cristata „ („ क्रिस्टेटा)।
(४) नील „ —दासी, आर्तगल, बाण, B. strigosa Willd. („ स्ट्राइगोसा)।

B. cristata (बा. क्रिस्टेटा) में स्थानभेद से पुष्प वर्ण तथा पत्रादि में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। इसमें श्वेत तथा गुलाबी दोनों प्रकार के फूल पाये जाते हैं। हिमालय पर होने वाले पौधों में जामुनी नील वर्ण के पुष्प होते हैं।

बार्लेरिया की अन्य अनेक जातियाँ भी पाई जाती हैं जिन्हें बागों में शोभा के लिए भी लगाते हैं।

[1] दन्त्यः इति पाठा०।

२६ कटसरैया

हिं०—कटसरैया, पियाबांसा। बं०—कांटाजाती। म०—कोरांटी। गु०—पीलो कांटारीयो। ले०—*Barleria prionitis Linn.* (बार्लेरिया प्रियोनाइटिस्)। Fam. Acanthaceae (अॅकेन्थेसी)।

कटसरैया सभी उष्ण प्रान्तों में पाई जाती है तथा बागों में भी लगाई जाती है।

इसका **क्षुप**-झाड़दार, कांटेदार तथा २ से ५ फीट तक ऊँचा होता है। **पत्ते**-१.५ से ४ इञ्च लंबे, कण्टकित अग्रयुक्त, अंडाकार (शाखाओं में आयताकार-प्रासवत्), विपरीत तथा अखण्डतट वाले होते हैं। **पुष्प**-पीले तथा उनके दलाग्र भी कंटकित होते हैं। शीत ऋतु में ये आते हैं। **डोडी**-१ इञ्च लंबी होती है जिनमें दो चिपटे बीज पाये जाते हैं।

कटसरैया के पत्र एवं मूल का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—पीत सैरेयक में एक क्षाराम पाया गया है तथा इसमें पोटॅशियम् (Potassium) काफी रहता है।

गुण और प्रयोग—सैरेयक, तिक्त, अम्ल, उष्ण, कफनिःसारक, कुछ स्वेदजनक, शोथहर, व्रण-रोपण, विषघ्न एवं केशरंजक है।

इसका उपयोग कास, शोथ, दंतशोथ, चर्मरोग एवं चूहे के विष में किया जाता है।

(१) बच्चों के कफयुक्त खांसी में इसके पत्तों का स्वरस मधु या शर्करा मिलाकर देते हैं। शुष्क कास में सूखी हुई छाल का चूर्ण चटाते हैं।

(२) जलशोथ (Anasarca) में मूल की ताजी छाल या पंचांग की राख खांड के साथ देते हैं।

(३) चूहे के विष में मूल को मधु तथा चावल की धोवनके साथ देते हैं। (वाग्भट उ० ३८)।

(४) दांत हिलते हों तो नील सैरेयक के पत्तों के कषाय से गण्डूष कराते हैं (चक); दंत-शूल में नमक के साथ पत्तों का लेप मसूड़ों पर करते हैं।

(५) ग्रन्थि, शोथ आदि में मूल का लेप, व्रण पर पंचांग सिद्ध तैल एवं बरसात में पैर न फटे इसलिये तलवे पर पत्तों का लेप किया जाता है। कुष्ठादि चर्मरोगों में इसका लेप एवं आन्तरिक प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—स्वरस ½-१ तोला; क्वाथ ५-१० तो०।

अथ कुन्दम् । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

कुन्दं तु कथितं माध्यं सदापुष्पञ्च तत्स्मृतम् । कुन्दं शीतं लघु श्लेष्मशिरोरुग्विषपित्तहृत् ॥

कुन्द के संस्कृत नाम—कुन्द, माध्य, सदापुष्प ये सब हैं। **कुन्द**-शीतल, लघु तथा कफ, शिरोरोग, विष और पित्त को दूर करने वाला है ॥ ५४ ॥

२७ कुन्द

हिं०—कुन्द, कुन्दे का वृक्ष, कुन्द फूल। बं०—कुन्द। म०—कस्तूरी मोगरा। गु०—मोगरो। ता०—मल्लिगै। ते०—कुंदमु। ले०—*Jasminum pubescens Willd.* (जसमीनम् प्युबेसेन्स)। Fam. Oleaceae (ओलिएसी)।

यह सब स्थानों पर होता है। बागों में शोभा के लिये भी लगाते हैं।

इसका गुल्म-बड़ा, रोमश, लतासदृश आरोहणशील होता है। पत्ते-विपरीत, ३·८-७×१·६-३.८ से० मी०, अण्डाकार एवं लम्बाग्र तथा वृन्त ६-१० मि. मी. घन रोमश होता है। पुष्प-बेला के समान या उससे कुछ लंबे, गुच्छों में, श्वेत, सुगन्धित एवं दल पत्र आयताकार तथा भालाकार होते हैं। यद्यपि यह वर्ष भर फूलता है किन्तु शीत ऋतु में बहुत अधिक फूलता है।

इसके पुष्प, पत्र एवं मूल का प्रयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके पत्तों का पुल्टिस बनाकर पुराने व्रणों पर बाँधने से व्रणरोपण होने लगता है। इसकी जड़ सर्पविष में उपयोगी बतलाई गई है। पुष्प एवं पिप्पली को तण्डुलांबु के साथ श्वास में पिलाने से लाभ होता है। (सु. उ. अ. ५१-३७)।

अथ मुचुकुन्दः। (नाम्नैव प्रसिद्धः)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

मुचुकुन्दः क्षत्रवृक्षश्चित्रकः प्रतिविष्णुकः। मुचुकुन्दः शिरःपीडापित्तास्रविषनाशनः॥ ५५॥

मुचुकुन्द (यह इसी नाम से प्रसिद्ध है) के संस्कृत नाम-मुचुकुन्द, क्षत्रवृक्ष, चित्रक, प्रतिविष्णुक, ये सब हैं। मुचुकुन्द-शिर की पीडा, पित्त, रक्तविकार एवम् विष का नाशक है॥ ५५॥

२८ मुचकुन्द

हिं०, म०, बं०, गु०—मुचकुन्द। ले०-*Pterospermum acerifolium Willd.*[1] (टेरोस्पर्मम् एसेरिफोलियम्)। Fam. Sterculiaceae (स्टर्क्यूलिएसी)।

यह हिमालय में ४००० फीट तक तथा बंगाल, चटगांव, खासिया पहाड़, मणीपूर में तथा दक्षिण में विशेष रूप से बम्बई प्रान्त में लगाया हुआ मिलता है।

इसका वृक्ष-ऊँचा तथा सुन्दर होता है। पत्ते-६-१५ इञ्च बड़े, खण्डित, अखण्ड या दन्तुर, हृद्वत, शिराविन्यास पाणिवत तथा अधर तल पर श्वेत मृदुरोमश होते हैं। पुष्प-बड़े, श्वेत तथा सुगंधित होते हैं। आभ्यंतर दल ३½-४½ इञ्च लम्बे होते हैं। फल-लंब गोल तथा कड़े होते हैं।

इसके पुष्पों का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह स्वच्य, वेदनाहर एवं रक्तस्तंभक है।

(१) इसके फूल कांजी में पीसकर शिरःशूल में बांधने से लाभ होता है। हिमांशु तैल में यह डाला जाता है।

(२) पत्राधः रोम रक्तस्तंभक माने जाते हैं।

(३) रक्तार्श में इसका लेप एवं घृत शर्करा के साथ बनाया हलुवा उपयोगी है।

(४) चेचक के व्रणों पर इसके पुष्प एवं छाल को जलाकर कबीले के साथ मिलाकर लगाते हैं।

---

१. "ग्रन्थों में भूल से एक दूसरी जाति P. suberifolium Lam. को मुचकुंद नाम दिया हुआ मिलता है।" —ठा० बलवन्तसिंह, बिहार की वनस्पतियाँ, पृष्ठ १७। कुछ विद्वानों ने P. acerifolium को कर्णिकार माना है। कर्णिकार संभवतः आरग्वध है। चरक में मुचकुंद का उल्लेख नहीं मिलता। सुश्रुत में विद्रधि अध्याय (चि० १८-१०) में है।

अथ तिलकः (तिलाभपुष्पस्तिलकनाम्नैव प्रसिद्धः)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

तिलकः क्षुरकः श्रीमान्पुरुषश्छिन्नपुष्पकः॥
तिलकः कटुकः पाके रसे चोष्णो रसायनः। कफकुष्ठक्रिमीन्वस्तिमुखदन्तगदान्हरेत्॥५६॥

तिलक (इसके फूल तिल के फूल के सदृश होते हैं अतः यह इसी नाम से प्रसिद्ध है) के संस्कृत नाम—तिलक, क्षुरक, श्रीमान्, पुरुष, छिन्नपुष्पक ये सब हैं। तिलक-पाक तथा रस में कटु, उष्ण, रसायन एवम्-कफ, कुष्ठ, क्रिमि, वस्ति-मुख-दन्त-सम्बन्धी रोगों को दूर करने वाला है॥ ५६॥

२९ तिलक[1]

हिं०-तिलक, तिलिया, तिलका। संथाल-हुण्डू। ले०-*Wendlandia exerta DC.* (वेन्डलेण्डिया एक्जर्टा)। Fam. Rubiaceae (रूबिएसी)।

यह हिमालय के उष्ण प्रदेशीय शुष्क जंगलों में चेनाब से नेपाल तक, ४००० फीट की ऊंचाई तक एवं उड़ीसा, मध्यभारत कोंकण एवं उत्तरी डेक्कन में पाया जाता है।

यह खुली हुई और छोटी-छोटी वनस्पतियों से रहित भूमि जैसे नालों के ढालों पर अधिक होते हैं।

इसके वृक्ष-सुन्दर, झुके हुए तथा छोटे होते हैं। पत्ते-चर्मवत, आयताकार या लट्वाकार-प्रासवत, लम्बाग्र तथा ४-९×१-३·५ इञ्च बड़े होते हैं। शिराएँ १०-१० जोड़ी तथा उपपत्र चौड़े, प्रायः लट्वाकार एवं अग्र पर टेढ़े होते हैं। पुष्प-⅙ इञ्च व्यास में, सुगन्धित एवं श्वेत होते हैं। आभ्यंतरदल मुड़े हुए एवं उनके स्वतंत्र खण्ड आभ्यंतरनाल से बड़े होते हैं। पुष्पकाल—मार्च, अप्रैल। उस समय वृक्ष का शिखर सफेद चांदनी से ढँका मालूम पड़ता है। फल-$\frac{1}{10}$ इञ्च व्यास के, श्वेत एवं मृदुरोमावृत होते हैं। छाल-रक्ताभ होती है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल रेचक तथा चबाने से लालास्राव वर्धक होती है।

अथ बन्धुजीवः (गोजुनिया)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

बन्धूको बन्धुजीवश्च रक्तो माध्याह्निकोऽपि च।
बन्धूकः कफकृद् ग्राही वातपित्तहरो लघुः॥ ५७॥

दुपहरिया के संस्कृत नाम—बन्धूक, बन्धुजीव, रक्त, माध्याह्निक ये सब हैं। दुपहरिया-कफकारक, ग्राही, वात-पित्तनाशक और लघु है॥ ५७॥

---

१. **नोट**—निघण्टुओं में वर्णित इस तिलक वृक्ष के बारे में अभी तक किसी को पता नहीं था कि यह वृक्ष कैसा होता है तथा इसका लेटिन नाम क्या है। सर्वप्रथम श्री ठा० बलवन्तसिंह जी ने अपनी पुस्तक 'बिहार की वनस्पतियाँ' (पृ० ६८) में अनेक प्रमाणों के आधार पर तिलक को Wendlandia exerta DC. (वेण्डलैण्डिया एक्जर्टा) सिद्ध किया है तथा इसका वैज्ञानिक वर्णन किया है। इसके जंगलों में प्रचलित स्थानिक नाम, शास्त्रीय परिचयात्मक पर्याय तथा प्रचलित गुणकर्म सभी आधारों से यह तिलक सिद्ध होता है।

३० दुपहरिया

हिं०–गुल दुपहरिया। **बं०**–बान्धुली। **म०**–तांबडी दुपारीं। **गु०**–बपोरियो। **ता०**–नागपू। **पं०**–गुल दुपहरिया। **ले०**–*Pentapetes phoenicea Linn.* (पेन्टापेटिस् फीनीसिया)। Fam. Sterculiaceae (स्टर्क्युलिएसी)।

यह उत्तर पश्चिम भारत, बंगाल तथा गुजरात में पाया जाता है। सभी भागों में बागों में लगाया भी जाता है। यह प्रायः जलाशयों में तथा चावल के खेतों में होता है।

इसका **क्षुप**–२–५ फीट ऊँचा होता है। **पत्ते**–३–५ इञ्च लम्बे, प्रासवत्, तीक्ष्ण दन्तुर अथवा गोल-अभ्यारावत् तथा केवल एक शिरावाले होते हैं। **पुष्प**–लाल रंग के, बड़े तथा दण्ड पर दो-दो एक साथ नीचे की तरफ लटके रहते हैं। दोपहर के समय खिलने से इसे गुल दुपहरिया कहते हैं। फल–कुछ लंब गोल, खुरदरा तथा पांच विभागों से युक्त, जिनमें प्रत्येक में ८–१२ बीज रहते हैं। पुष्प काल—जुलाई में बीज बोने से सितम्बर, अक्तूबर तक फूलता है।

इसके मूल, पुष्प तथा फल का उपयोग किया जाता है।

वक्तव्य—यद्यपि राजनिघंटु ने इसके कृष्ण, श्वेत, पीत तथा रक्त चार भेद लिखे हैं तथापि केवल श्वेत भेद पाया जाता है। चरक दशेमानि में इसका उल्लेख नहीं है। विषचिकित्सा (चि. अ. २५–१७९) में इसके मूल से नस्य के लिए लिखा है। सुश्रुत इसकी जड़ ऊर्ध्वभाग हर गण में उल्लेख करते हैं। कुछ विद्वानों ने Ixora (आइक्जोरा) की जाति तथा कुछ ने Hibiscus (हिबिस्कस्) की जाति को बन्धूक लिखा है।

गुण और प्रयोग—यह विषघ्न एवं स्नेहन है। फल में स्नेहन धर्म है। मूल ऊर्ध्वभाग दोषहर है।

अथ जपापुष्पम् (गुड़हर, अढ़ौल)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

ओड्रपुष्पं जपा चाथ त्रिसन्ध्या साऽरुणा सिता।
जपा संग्राहिणी केश्या त्रिसन्ध्या कफवातजित्॥ ५८॥

अढ़ौल के नाम –ओड्रपुष्प और जपा हैं। लाल तथा सफेद फूल वाली अढ़ौल का नाम–त्रिसन्ध्या है। **जपा**–संग्राही और केशों को उत्तम बनाने वाला होता है। **त्रिसन्ध्या**–कफ तथा वायु को नाश करने वाली होती है॥ ५८॥

३१ गुड़हर

हिं०–ओड्रहुल, ओ(अ)ड़हुल, अढ़ौल, गुड़हल, जवाकुसुम। **बं०**–जबाफुल। **म०**–जासूवन्द, **गु०**–जासुद, जासुस। **ते०**–दासनमु। **ता०**–शश्पात्तुप्पु। **क०** दासणिगे। **फा०**–अंगिरा हिन्दी। **अं०**–Shoe Flower (शू फ्लावर)। **ले०**–*Hibiscus rosa-sinensis Linn.* (हिबिस्कस् रोजा-साइनेन्सिस्)। Fam. Malvaceae (माल्वेसी)। यह प्रायः सब प्रान्त के बागों में रोपण किया जाता है।

इसका **गुल्म**–छोटा, सदाहरित, काष्ठीय, सुन्दर एवं ५–८ फीट ऊंचा होता है। **पत्ते**–चमकीले हरे, अंडाकार, दन्तुर तथा शहतूत के जैसे होते हैं। **पुष्प**–प्रायः लाल, घंटाकार, बड़े, ४–६ इञ्च व्यास में एवं जननांग बीच से बाहर निकले हुए रहते हैं। **फली**–गोलाकार तथा अनेक बीजों से युक्त होती है।

विविध प्रकार के फूलों जैसे इकहरे, दोहरे, तथा लाल, पीले, सफेद रंग के भेदों से यह कई प्रकार का पाया जाता है तथा हमेशा फूलता रहता है।

इसके पुष्प, कलिका तथा मूलत्वक् का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके पुष्प के खाने योग्य भाग (६१·६%) में प्रति १०० ग्राम में कैल्शियम् (Calcium, 4·04), फास्फोरस् (Phosphorus, 26·68), एवं लोह (Iron, 1·69) मिलीग्राम पाया गया है। इनके अतिरिक्त थियामिन (Thiamine, 0·031 mg%), राइबोफ्लेविन Riboflavin, 0·058 mg%), नियासिन (Niacin, 0·61 mg. %) एवं विटामिन सी (Ascorbic acid 4 16 mg. %) पाये जाते हैं।

फूलों को पीसकर उससे एक रंग प्राप्त किया जाता है जिसका उपयोग बाल, भौं तथा मदिरा आदि रंगने के काम में करते हैं।

पत्तों में केरोटीन (Carotene, 7·34 mg. per. 100 g. of fresh material) पाया जाता है जिनका चारे के लिए उपयोग करते हैं।

गुण और प्रयोग—जपा ग्राही, रक्तसंग्राहक, केश्य, हृद्य एवं मस्तिष्क के लिये बलप्रद है। इसका प्रयोग प्रदर, प्रमेह एवं ज्वर में किया जाता है।

(१) काली गाय के मूत्र में फलों को पीसकर लगाने से गंजापन दूर होकर बाल बढ़ते हैं। ताजे फूलों को पीसकर लगाने से बालों का रंग सुन्दर हो जाता है।

(२) फूल की १०–१२ कलियाँ दूध में पीसकर पिलाने से तथा पथ्य में दूध देने से प्रदर अच्छा होता है।

(३) यूनानी वाले इसका शर्बत हृदय तथा मस्तिष्क की दुर्बलता, उन्माद तथा पैत्तिक ज्वर में देते हैं।

(४) इसकी जड़ अल्थिया (Althaea) के स्थान पर खांसी के लिए काम में लाई जाती है।

(५) मुँह के छाले में इसे चबाने से लाभ होता है।

मात्रा—पुष्प ३–६ माशा।

अथ सिन्दूरी (सेन्दुरिया)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

सिन्दूरी रक्तबीजा च रक्तपुष्पा सुकोमला। सिन्दूरी विषपित्तास्रतृष्णावान्तिहरी हिमा॥

सेन्दुरिया के संस्कृत नाम—सिन्दूरी, रक्तबीजा, रक्तपुष्पा और सुकोमला ये सब हैं। **सेन्दुरिया**—शीतल तथा विष, पित्त, रक्तविकार, तृषा, और वमन को दूर करने वाली है॥ ५९॥

३२ सिन्दुरिया

हिं०—सें (सिं) दुरिया, लटकन, सदा सुहागन। **बं०**–लटकन। **म०**–शेन्द्री। **ता०, ते०**–जाफर। **ले०**–*Bixa orellana Linn.* (बिक्सा ओरिलाना)। Fam. Bixaceae (बिक्सेसी)।

सेंदुरिया—एक प्रसिद्ध फूल है जिसके वृक्ष को बागों में लगाते हैं तथा दक्षिण, बंगाल तथा आसाम में भी कहीं कहीं पाया जाता है। मैसूर में इसकी खेती भी की जाती है।

इसका **वृक्ष**–छोटा, शाखा प्रशाखाओं करके सघन, झाड़दार एवं सुन्दर होता है। **पत्ते**–हृद्वत्, लंबाग्र, चिकने, चमकीले एवं ४–६ इञ्च लम्बे होते हैं। **पुष्प**–छोटे, गुलाबी, पाँच अन्तर्दलवाले एवं बीच से स्त्री केशर बाहर निकला रहता है। **फल**–धतूरा की तरह मृदु कंटकित होता है। **बीज**–करीब ५०, छोटे एवं सिन्दूरवर्ण स्तर से ढके हुवे होते हैं जिनसे एक रंग तैयार किया जाता है। इसका एक अन्य प्रकार होता है जिसमें पुष्प श्वेत एवं फल हरा रहता है।

इसमें के रंग को निकालने के लिये बीजों को कूटकर गरम जल में मसलकर लकड़ी के पात्रों में कई दिन रखते हैं। फिर छानकर १ सप्ताह और रखते हैं। फिर नीचे बैठे हुवे रंग को अलग कर सुखा लेते हैं। बीजों में यह रंग ॲन्नाटो (Annatto) ४·८-६% होता है जिसका उपयोग अहितकर न होने के कारण खाद्यपदार्थों जैसे मक्खन, दूध तथा तेलों के रंगाने में किया जाता है। यह तैल विलेय होता है।

चिकित्सा में पंचांग का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—बीजों में प्रधान रंजक द्रव्य बिक्सिन (Bixin, $C_{25}H_{30}O_4$) तथा स्नेह, राल तथा तिक्त पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसकी फल मज्जा ग्राही है किन्तु अधिक मात्रा में स्रंसन है। बीज एवं मूल रोचक, ज्वरघ्न एवं ग्राही हैं।

(१) मूल की छाल ज्वर में दी जाती है।

(२) बीज सोजाक में देते हैं।

(३) पत्तों का फांट कामला में दिया जाता है। **मात्रा**—छाल ३ से ६ माशे।

अथ मुनिवृक्षः (अगस्तिया)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

अथागस्त्यो वङ्गसेनो मुनिपुष्पो मुनिद्रुमः॥ ६० ॥

अगस्तिः पित्तकफजिच्चातुर्थिकहरो हिमः। रूक्षो वातकरस्तिक्तः प्रतिश्यायनिवारणः ॥६१॥

अगस्तिया के संस्कृत नाम—अगस्त्य, वङ्गसेन, मुनिपुष्प, अगस्ति और मुनिद्रुम ये सब हैं। **अगस्तिया**-तिक्तरसयुक्त, शीतल, रूक्ष, वातकारक एवम् पित्त, कफ, चातुर्थिक (चौथिया) ज्वर और प्रतिश्याय (जुखाम) को दूर करने वाला है॥ ६० ६१ ॥

इसके पुष्प के गुण आगे शाकवर्ग में दिये हुवे हैं।

३३ अगस्त

हि०—अगस्त, हथिया, अगथिया, अगस्तिया। **बं०**—बक। **म०**—हदगा, अगस्ता। **क०**—अगचे। **गु०**—अगथियो। **ते०**—अविसी। **ता०**—अगति। **लै०**—*Sesbania grandiflora Linn.* (सेसबेनिया ग्रॅन्डीफ्लोरा)। Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी)।

इसको बागों में लगाते हैं तथा दक्षिण एवं बंगाल में विशेष रूप से होता है।

इसका **वृक्ष**-१५-२० फीट ऊँचा, सीधा, तथा शीघ्र बढ़ने वाला होता है। **पत्ते**-संयुक्त, एकान्तर, ६-१२ इञ्च लंबे, शिरीष जैसे होते हैं। **पत्रक**-१६ से ३० युग्म, आयताकार, एवं कुंठिताग्र होते हैं।

पुष्प-२ से ४ इञ्च लंबे, श्वेत एवं लाल तिरछे तथा नौकाकार आते हैं। **फली**-लटकती हुई, १२-१५ इञ्च लंबी, पतली एवं चारधार वाली होती है। अगस्ततारा के उदय काल (प्रायः सितम्बर) में पुष्प लगते हैं और पौष में फली पक जाती है। पुष्प एवं कोमल पत्तों का शाक एवं अचार बनाते हैं।

इसकी छाल, पत्र, पुष्प एवं मूल का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके पुष्प वातकर एवं क्षय, कासनाशक तथा रतौंधी में लाभकर हैं। (सु. सू. अ. ४६)। मूल उष्ण, वातहर, कफघ्न एवं शोथघ्न है। पत्र आनुलोमिक एवं शिरोविरेचन हैं। छाल ग्राही है।

इसका उपयोग कास, प्रतिश्याय, ज्वर एवं नेत्ररोगों में किया जाता है।

(१) फुफ्फुसपाक में मूल त्वक पान के साथ या स्वरस १ से २ तोला मात्रा में मधु के साथ देने से कफ निकलता है तथा पसीना आकर ज्वर कम होता है।

(२) प्रतिश्याय में शिरःशूल तथा नेत्र विकार में पुष्प एवं पत्र स्वरस का नस्य देते हैं।

(३) अनार्तव में पुष्पों का साग देते हैं।

(४) मसूरिका में छाल का फांट दिया जाता है।

(५) चोट लगने पर पत्तों का लेप एवं संधिशोथ में मूल का लेप किया जाता है।

(६) दृष्टिमांद्य में पुष्प रस आंख में डालते हैं।

मात्रा—मूल स्वरस १ से २ तोला।

अथ तुलसी शुक्ला कृष्णा च। तयोर्नामगुणानाह

तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहुमञ्जरी। अपेतराक्षसी गौरी भूतघ्नी देवदुन्दुभिः॥ ६२ ॥

तुलसी कटुका तिक्ता हृद्योष्णा दाहपित्तकृत्। दीपनी कुष्ठकृच्छ्रास्रपार्श्वरुक्कफवातजित्॥

शुक्ला कृष्णा च तुलसी गुणैस्तुल्या प्रकीर्त्तिता॥ ६३ ॥

तुलसी के संस्कृत नाम—तुलसी, सुरसा, ग्राम्या, सुलभा, बहुमञ्जरी, अपेतराक्षसी, गौरी, भूतघ्नी, देवदुन्दुभि ये सब हैं। तुलसी-कटु तथा तिक्तरस युक्त, हृदय को हितकर, उष्ण, दाह तथा पित्त कारक, अग्निदीपक एवम् कुष्ठ, मूत्रकृच्छ्र, रक्तविकार, पसली की पीड़ा, कफ और वायु को दूर करने वाली है। सफेद तथा काली तुलसी दोनों ही गुणों में समान मानी जाती हैं॥ ६२-६३ ॥

३४ तुलसी

हि०—तुलसी। **बं०**—तुलसी। **गु०**—तुलसी। **ते०**—गग्गेर चेट्टु। **म०**—तुळस। **ता०**—तुलशी। **क०**—एरेड तुलसी। **अं०**—Holy Basil (होली बेसील)। **लै०**—*Ocimum sanctum Linn.* (ओसीमम् सॅंक्टम्)। Fam. Labiatae (लेबिटएटी)।

यह प्रायः सब गरम और साधारण प्रान्तों के बन उपवनों में आप ही उत्पन्न होती है और पवित्र मानी जाने से घर में भी लगाते हैं।

यह क्षुप जाति की वनस्पति १ से २॥ फीट तक ऊंची होती है और समस्त क्षुप से तीव्र गन्ध आती है। शाखायें सीधी और फैली हुई रहती हैं। **पत्ते**-१ से २ इञ्च तक लम्बे और अण्डाकार तथा सुगंधित होते हैं। शाखाओं के अन्त में मञ्जरी लगती है। जिसके पत्ते हरे सफेदी लिये होते हैं उसको सफेद तुलसी और जिसके पत्ते और डंडियां कालापन युक्त हरे होते हैं उसको काली तुलसी कहते हैं। तुलसी की अन्य भी कई जातियां (Species) पाई जाती है जिनमें से ऑ० ग्रेटिस्सिमम् (O. gratissimum Linn.) को **रामतुलसी** कहते हैं।

कृष्णतुलसी अधिक गुणकारी समझी जाती है। इसके पत्ते एवं बीजादि का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में ०·७% उड़नशील तैल पाया जाता है जो कफनिःसारक, प्रतिदूषक तथा कीड़ों को भगाता है।

गुण और प्रयोग—तुलसी के पत्र या उसका स्वरस उष्ण, रूक्ष, कफनिःसारक, शीतहर, वातहर, स्वेद जनन, दीपन, कृमिघ्न, दुर्गन्धनाशक एवं प्रतिदूषक हैं।

इसका उपयोग कास, श्वास, पार्श्वशूल, विषमज्वर, बालयकृत् वृद्धि, विषविकार, एवं पाचन के विकारों में करते हैं। इसका विशेष प्रयोग इन व्याधियों में अन्य औषधि के अनुपान के रूप में किया जाता है।

इसके बीज मधुर, स्निग्ध, शीत एवं मूत्र जनन होते हैं जिनका उपयोग मूत्रकृच्छ्रादि विकारों में किया जाता है।

पत्तों के स्वरस का बाह्य उपयोग कर्णशूल, व्रण प्रक्षालन, कृमि-कीट-दंश एवं चर्मरोगों में किया जाता है।

मात्रा—स्वरस १ से २ तोला; बीज १ से २ माशा।

अथ मरुबकः (मरुआ)। तस्य नामानि गुणाश्चाह

मारुतोऽसौ मरुबको मरुन्मरुरपि स्मृतः। फणी फणिज्जकश्चापि प्रस्थपुष्पः समीरणः ॥६४॥
मरुदग्निप्रदो हृद्यस्तीक्ष्णोष्णः पित्तलो लघुः ॥ ६५ ॥
वृश्चिकादिविषश्लेष्मवातकुष्ठक्रिमिप्रणुत्। कटुपाकरसो रुच्यस्तिक्तो रूक्षः सुगन्धिकः ॥६६॥

मरुवा के संस्कृत नाम—मारुत, मरुबक, मरुत, मरु, फणी, फणिज्जक, प्रस्थपुष्प, समीरण ये सब हैं। मरुआ—पाक तथा रसमें कटु, रुचिकारक, तिक्त रसयुक्त, रूक्ष, सुगन्धयुक्त, अग्निवर्धक, हृदय को हितकर, तीक्ष्ण, उष्ण, पित्तजनक, लघु एवम् बिच्छु आदि के विष, कफ, वात, कुष्ठ और क्रिमी का नाशक है ॥ ६४-६६ ॥

३५ मरुआ

हि०—मरुआ, मरवा। **बं०**—मुरुं। **म०**—मरवा। **गु०**—मरवो। **ते०**—मरवमु। **फा०**—मरजन, जोस। **अं०**—Sweet Marjoram (स्वीट मारजोरम्)। **लै०**—*Origanum majorana Linn.* (ऑरीगेनम् मेंजोराना)। Fam. Labiatae) (लेबिएटी)।

मरुआ प्रायः सब प्रान्तों की वाटिकाओं में रोपण किया जाता है।

यह क्षुपजाति की वनस्पति १-२ फीट ऊंची होती है और इससे सुगन्धि आती है। पत्ते—लम्बे अंडाकार किञ्चित् लालिमायुक्त सफेदी मायल एवं सुगन्धित होते हैं। उस पर तुलसी के समान मञ्जरी लगती है। सफेद और काले रंगों के भेद से यह दो प्रकार का होता है। इनमें सफेद, औषधि और काला शिव-पूजन के काम में आता है ॥ ३९ ॥

इसके पंचांग एवं उसकी राख का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें सुगन्धितैल तथा कुछ तिक्त पदार्थ पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, सुगन्धि, वातानुलोमक, स्वेदजनन, आर्तवजनन, कफनिःसारक, यकृतबल्य एवं कुष्ठघ्न है।

इसका उपयोग आध्मान, शूलादि पाचन विकार, प्रतिश्याय, अनार्तव एवं व्रण के लिये करते हैं।

(१) उदरशूल में पत्तों को सफेद हुरहुर के पत्तों के साथ देते हैं। अतिसार में फांट देते हैं।

(२) इसका स्वरस या पंचांग की राख व्रण रोपण एवं वेदनास्थापन होने से पुराने व्रण में लाभ करती है। **मात्रा**—स्वरस ५-१० बूंद; तैल २-६ बूंद; पंचांग ५-३० रत्ती।

अथ दमनकः (दवना)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

उक्तो दमनको दान्तो मुनिपुत्रस्तपोधनः। गन्धोत्कटो ब्रह्मजटो विनीतः कलपत्रकः ॥ ६७ ॥
दमनस्तुवरस्तिक्तो हृद्यो वृष्यः सुगन्धिकः। ग्रहणाद् विषकुष्ठास्रक्लेदकण्डूत्रिदोषजित् ॥६८॥

दवना के संस्कृत नाम—दमनक, दान्त, मुनिपुत्र, तपोधन, गन्धोत्कट, ब्रह्मजट, विनीत, कलपत्रक और दमन ये सब हैं। दवना—कषाय तथा तिक्त रसयुक्त, हृदय को हितकर, वृष्य (वीर्य वर्धक), सुगन्धित एवम् विष, कुष्ठ, रक्तविकार, क्लेद, खुजली तथा त्रिदोष का नाशक है ॥

नोट—अनेक विद्वानों ने दमनक का ले. ॰प आ. सिवरसियाना (A. siversiana) दिया है।

३६ दवना

हि०—दौना, दवना। **बं०**—दोना। **म०**—दवणा। **गु०**—डमरो। **अ०**—अफसंतीन। **लै०**—*Artemisia vulgaris Linn.* (आर्टिमिसिया वल्गॅरिस्)। Fam. Compositae (कम्पोजिटी)।

इसको वाटिकाओं में लगाते हैं। पश्चिम हिमालय, खासिया पहाड़, आबू, पश्चिम घाट, कोंकण, लंका आदि जगहों में यह आप ही आप जङ्गली उत्पन्न होता है।

इसके क्षुप-४ से ८ फीट ऊँचे एवं गंध युक्त होते हैं। पत्ते-नीचे के २-४ इञ्च लंबे, १-२ इञ्च चौड़े, सनाल, लट्वाकार, एक या दो बार पक्षाकार क्रम से विच्छिन्न, दोनों पृष्ठों पर रोमश एवं नीचे के पृष्ठ पर राख या श्वेत वर्ण के होते हैं। ऊपर के पत्ते प्रायः विनाल, रेखाकार मालाकार, सरल धार वाले, तथा तीन विच्छेदों से युक्त होते हैं। इसको डा० देसाई ने क्षुरपर्ण नाम दिया है तथा दमनक, आ० सिवरसियाना को माना है। इसके पंचांग का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें ०.२% उड़नशील तैल पाया जाता है। इसमें यवक्षार पर्याप्त मात्रा में रहता है।

गुण और प्रयोग—यह तिक्त, दीपन, पाचन, उद्वेष्टनरोधी, आर्तवजनन, आनुलोमिक, वामक एवं व्रणरोपण है।

इसका फांट वातरोग, उद्वेष्टनयुक्त रोग, श्वास एवं भूतोन्माद में देते हैं। बालकों की उदर सम्बन्धी व्याधियों, आध्मान, कृमि आदि में यह बहुत उपयोगी है।

इसके क्वाथ से दुष्ट व्रण प्रक्षालन किया जाता है तथा कर्णशूल में इसके स्वरस को डालते हैं।

मात्रा—स्वरस ५-१० बूंद।

अथ बर्बरी (वनतुलसी)। तस्या भेदसहितं नामानि गुणांश्चाह

बर्बरी तुवरी तुङ्गी खरपुष्पाऽजगन्धिका। पर्णाशस्तत्र कृष्णे तु कठिल्लककुठेरकौ ॥ ६९ ॥
तत्र शुक्लेऽर्जकः प्रोक्तो वटपत्रस्ततोऽपरः। बर्बरीत्रितयं रूक्षं शीतं कटु विदाहि च ॥ ७० ॥
तीक्ष्णं रुचिकरं हृद्यं दीपनं लघुपाकि च। पित्तलं कफवातास्रकण्डूकृमिविषापहम् ॥ ७१ ॥

वन तुलसी के संस्कृत नाम-बर्बरी, तुवरी, तुङ्गी, खरपुष्पा, अजगन्धिका, पर्णाश ये सब हैं। काली वन तुलसी का संस्कृत नाम—कठिल्लक और कुठेरक है। सफेद वन तुलसी का संस्कृत नाम-अर्जक है। तीसरी जाति की वन तुलसी का संस्कृत नाम-वटपत्र है। तीनों बर्बरी-रूक्ष, शीतल, कटुरसयुक्त विदाही, तीक्ष्ण, रुचिकारक, हृदय को हितकर, अग्निदीपक, पाक में लघु, पित्तजनक तथा कफ, वात, रक्तविकार, खुजली, कृमि और विष का नाशक होती है ॥ ६९-७१ ॥

नोट—भावप्रकाशकार बर्बरी के ३ भेद लिखते हैं।

(१) कठिल्लक, कुठेरक (कृष्णपुष्प)। (२) अर्जक (श्वेतपुष्प)। (३) वट्पत्र। अन्य निघंटुओं ने भी इसी प्रकार या तो इन्हें स्वतंत्र या एक दूसरे का भेद बतलाया है। ये सभी तुलसी वर्ग के ही द्रव्य मालूम पड़ते हैं। बर्बरी यह ऑ० बेसिलिकम् (O. basilicum Linn.) है। ऑर्थोसिफॉन् ग्रेन्डिफ्लोरस् (Orthosiphon grandiflorus Boldingh) के अर्जक होने की संभावना पर विचार करने के लिये श्री ठा० बलवन्त सिंह जी ने 'बिहार की वन-

स्पतियां" में लिखा है क्योंकि इसको बनारस के आसपास अजगुर कहा भी जाता है तथा डल्हणोक्त 'अर्जकः बर्बरिकाकारो लघुमंजरीकः सूक्ष्मपत्रो निर्गंधः श्वेतकुठेरकः (सु० सू० अ० ३८–१८) वचन भी इसके लिये ठीक बैठता है।

३७ बर्बरी (सबजा)

हि०—बर्बरी, बर्बरी, वन तुलसी, बार्बर, सबजा। **बं०**—बाबुई तुलसी। **म०**—सबजा। **गु०**—डमरो, रान तुलसी। **ते०**—भू तुलसी। **ता०**—तिरतुलपतची। **पं०**—बबरि। **अं०**—Common-Sweet-Basil (कामन स्वीट् बेसिल्)। **ले०**—*Ocimum basilicum Linn.* (ऑसीमम् बेसिलीकम्)। Fam. Labiatae (लेबिएटी)।

यह भारत के गरम तथा साधारण प्रान्तों में विशेष कर पंजाब में अधिक पाई जाती है। सभी प्रान्तों में बागों में लगाई हुई भी पाई जाती है।

इसका **क्षुप**—सीधा, १–२फीट तक ऊँचा होता है। **शाखायें**—हरे रङ्ग की अथवा फीकी पीलापन युक्त हरे रङ्ग की होती हैं। **पत्ते**—१–२ इञ्च लम्बे, अंडाकार और नोकीले होते हैं। शाखाओं के अन्त में फूलों की मञ्जरी लगती है। उसी में बीजकोष लगते हैं। **बीज**—नन्हें २ काले रङ्ग के किंचित् लम्बे, एक ओर महराब का चिह्न और दूसरी ओर चिपटे तथा मोटी नोकवाले होते हैं। वे गन्धहीन होते हैं परन्तु उनका स्वाद तेलिया और कुछ चरपरा होता है। इनको पानी में भिगोने से लुबाबदार से दीख पड़ते हैं। इन्हें तुख्म शर्बती कहते हैं। किसी ने इसे तुख्म रैंहाँ भी लिखा है।

इसके पंचांग तथा बीज का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें एक सुगंधि तैल पाया जाता है। यह पीताभ हरा एवं जल से हलका होता है। रखने से यह जमकर इसके रवे बनते हैं जिन्हें बेसिल कॅंफर (Basil camphor) कहते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका स्वरस तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, वात प्रशमन, वातनाड़ी संस्थान उत्तेजक, स्वेदजनन एवं कृमिघ्न है। इसके बीज मधुर, स्निग्ध, शीतल, मूत्रजनन एवं स्तंभन हैं। इसका प्रयोग उन्माद, संन्यास, जीर्णवातिक ज्वर, कास, अजीर्ण, अतिसार, सर्प एवं वृश्चिक विष, दद्रु एवं व्रण में किया जाता है।

(१) कास में इसका स्वरस मधु के साथ पिलाते हैं। इसमें बीज का फांट भी लाभदायक है।

(२) बीज का फांट ग्राही होने के कारण आमातिसार में देते हैं।

(३ । सर्पविष में इसका स्वरस ४–५ तोला, चार चार घंटे पर पिलाते हैं। बिच्छू काटने पर पत्तों को पीसकर लेप करते हैं।

(४) कर्णपीड़ा, दंतशूल आदि में स्वरस का बाह्य प्रयोग किया जाता है। सर की रूसी, दाद आदि में स्वरस लगाने से लाभ होता है। बीजों को धोकर व्रण पर बांधते हैं।

(५) सोजाक में बीजों का फांट दिया जाता है।

(६) वाजीकरण में लिये बीज १ से २ ड्राम की मात्रा में देते हैं।

मात्रा—स्वरस $\frac{1}{2}$–१ चायका चम्मच; बीज $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ तोला, दुग्ध एवं शर्करा के साथ फांट बनाकर।

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे पञ्चमः–

पुष्पवर्गः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ वटादिवर्गः

तत्रादौ वटः। तस्य नामानि गुणांश्चाह

वटो रक्तफलः शृङ्गी न्यग्रोधः स्कन्धजो ध्रुवः। क्षीरी वैश्रवणो वासो बहुपादो वनस्पतिः ॥१॥
वटः शीतो गुरुर्ग्राही कफपित्तव्रणापहः। वर्ण्यो विसर्पदाहघ्नः कषायो योनिदोषहृत् ॥ २ ॥

बरगद के संस्कृत नाम—वट, रक्तफल, शृङ्गी, न्यग्रोध, स्कन्धज, ध्रुव, क्षीरी, वैश्रवण, वास, बहुपाद, वनस्पति ये सब हैं। बरगद—कषाय रसयुक्त, शीतल, गुरु, ग्राही, शरीर के वर्ण को उत्तम करने वाला एवम् कफ, पित्त, व्रण, विसर्प, दाह और योनिसंबन्धी दोषों को दूर करता है ॥१–२॥

१ बड़

हि०—बड़, बरगद। **बं०**—वट, बड़गाछ। **म०**—वड। **क०**—आल, आलदमारा। **ते०**—मारि। **गु०**—बड़। **फा०**—दरख्तेरीश। **अ०**—कबिरूल अश्जार। **अं०**—Banyan Tree (बनियन ट्री)। **ले०**—*Ficus bengalensis Linn.* (फाइकस् बेंगालेन्सिस्)। Fam. Moraceae (मोरेसी)।

यह सब प्रान्तों में उत्पन्न होता है। ग्राम के पास लोग इसको पवित्र जान कर लगाते हैं। हिमालय के जङ्गल और दक्खन के पहाड़ियों पर यह जंगली उत्पन्न होता है।

इसका **वृक्ष**—बहुत विशाल और शाखायें फैली हुई प्रायः भूमि की ओर नत हो जाती हैं। **पत्ते**—लम्बे चौड़े और मोटे होते हैं। **फल**—छोटे छोटे झरबेर के समान, कच्ची अवस्था में हरे रङ्ग के और पकने पर लाल हो जाते हैं। शाखाओं से लाल तथा पीले रङ्ग के अङ्कुर निकल कर भूमि की ओर बढ़ते हैं। इसको वटजटा, बरोह या बड़ की दाढ़ी कहते हैं। यह जटा बढ़ते बढ़ते पृथ्वी में घुस जाती हैं और खम्भे के समान दीखाई देती है।

इसके पंचांग का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—छाल में ११% टैनिन होता है।

गुण और प्रयोग—बड़ शीत, ग्राही, स्तम्भन, मूत्रसंग्रहणीय एवं व्रणरोपण है।

(१) इसका क्षीर वेदनास्थापन एवं व्रणरोपण है तथा इसको कटिपीडा, सन्धिपीड़ा एवं बरसात में होने वाले हाथ-पैर की अंगुलियों के व्रणों पर लगाते हैं। सड़े हुये दांत में लगाने से पीड़ा दूर होती है।

(२) इसकी छाल का क्वाथ बहुमूत्र में एवं फल मधुमेह में देते हैं। छाल को अतिसार तथा प्रवाहिका में भी देते हैं।

(३) वटजटा सोजाक में, वमन रोकने के लिये तथा बाह्य लेप के रूप में चर्मरोग में प्रयोग की जाती है

मात्रा—चूर्ण ३ से ६ माशा; क्वाथ ५ से १० तोला।

अथ पिप्पलः (पीपल)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

बोधिद्रुः पिप्पलोऽश्वत्थश्चलपत्रो गजाशनः। पिप्पलो दुर्जरः शीतः पित्तश्लेष्मव्रणास्रजित्।
गुरुस्तुवरको रूक्षो वर्ण्यो योनिविशोधनः ॥ ३ ॥

पीपल के संस्कृत नाम—बोधिद्रु, पिप्पल, अश्वत्थ, चलदल और गजाशन ये सब हैं। पीपल—कषाय रसयुक्त, कठिनता से पचने वाला, शीतल, गुरु, रूक्ष, वर्ण को उत्तम बनाने वाला, योनिका शोधन करने वाला एवम् पित्त, कफ, व्रण तथा रक्तविकार को दूर करने वाला है॥ ३॥

२ पीपल

हि०-पीपल वृक्ष। बं०-अश्वत्थ। म०-पिंपळ। क०-अरलो। गु०-पीपलो। ते०-राविचेट्टु। ता०-अरशमरम्। फा०-दरख्ते लरज़ा। अ०-शज्रतुल मुर्त अश। ले०-*Ficus religiosa Linn.* (फाइकस् रिलीजिओसा) Fam. Moraceae (मोरेसी)।

पीपल के वृक्ष इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में लगाये हुये पाये जाते हैं और हिमालय पहाड़ के जङ्गलों, बंगाल तथा मध्य भारत में भी पाये जाते हैं। इसका वृक्ष बहुत ऊँचा होता है और खूब फैलता है। पत्ते-गोलाकार और नोकीले होते हैं। पत्रदण्ड-लम्बा होता है। इसमें भी बड़ के समान छोटे २ गोल फल लगते हैं। इसकी छाया सघन और प्रिय होती है। पीपल वृक्ष पवित्र माना जाता है॥ २ ॥

इसकी छाल, छाल की राख, पत्र एवं फल का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—छाल में ४% टैनिन होता है।

गुण और प्रयोग—यह शीत, मूत्रसंग्रहणीय, रक्तसंग्राहक, पौष्टिक, स्तम्भन एवं व्रणनाशक है। इसके पत्ते एवं फल आनुलोमिक हैं। छाल का जलीय सत्व स्टेफिलोकोकस ऑरियस (Staphylococcus aureus) एवं एस्चेरिचिया कोलाई (Escherichia coli) जीवाणु रोधी है।

(१) वाजीकरण के लिये इसके फल, मूल, छाल एवं कोपल को दूध में पका, मधु एवं शर्करा मिलाकर पिलाते हैं। (सु. चि. अ. २६)

(२) इसकी छाल की राख पानी में डालकर ऊपर का जल पिलाने से हिक्का एवं वमन में लाभ होता है।

(३) सोजाक में कोपल दूध में पकाकर पिलाते हैं। छाल का भी प्रयोग सोजाक में किया जाता है।

(४) व्रणप्रक्षालन, उत्तरबस्ति, कुश, गण्डूष आदि के लिये इसकी छाल का क्वाथ या पञ्चवल्कल क्वाथ का प्रयोग किया जाता है जो बहुत उपयोगी है।

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा; क्वाथ ५ से १० तो०।

अथ पिप्पलभेदः (गजदण्डसहोरा) इति लोके। तस्य नामानि गुणांश्चाह

पारीषोऽन्यः पलाशश्च कपिचूतः कमण्डलुः। गर्दभाण्डः कन्दरालः कपीतनसुपार्श्वकौ॥४॥
पारीषो दुर्जरः स्निग्धः क्रिमिशुक्रकफप्रदः। फलेऽम्लो मधुरो मूले कषायस्वादुमज्जकः॥५॥

पारीष पीपल (यह पीपल का भेद है, लोक में इसी नाम से प्रसिद्ध है) के संस्कृत नाम—पारीष, पलाश, कपिचूत, कमण्डलु, गर्दभाण्ड, कन्दराल, कपीतन और सुपार्श्वक ये सब हैं।

पारीष पीपल—दुर्जर (कठिनता से पचने वाला), स्निग्ध (चिकना), कृमि, शुक्र तथा कफ को उत्पन्न करने वाला, फल में अम्ल जड़ में मधुर, मज्जा (मींगी) में कषाय रसयुक्त एवम् स्वादिष्ट होता है॥ ४-५॥

३ पारीष पीपल

हि०-पारिसपीपल, पारस पीपर, गजदन्डसिहारे (सहोरा)। बं०-गज शुण्डी, पराश पिपुल। म०-भेंडी। गु०-पारस पीपलो। क०-हुबिरसी। ते०-गङ्गराइवि। ता०-पूवरशु। ले०-*Thespesia populnea Soland ex Correa* (थेस्पेसिया पोपुल्निया)। Fam. Malvaceae (माल्वेसी)।

यह समुद्री किनारों के जङ्गल एवं सड़कों के किनारे लगाया हुआ अधिक पाया जाता है।

इसका वृक्ष-मध्यमाकार का सदा हरा भरा और जल्दी बढ़ने वाला होता है। पत्ते-३-५ इञ्च लंबे, २-३ इञ्च व्यास के, पीपल के पत्तों के आकार वाले और पीपल से छोटे नोकवाले होते हैं। फूल-घंटाकार, पाँच पंखड़ी वाले, पीले एवं मुरझाने पर प्रायः गुलाबी रङ्ग के होते हैं। फल-गूलर के समान परन्तु दृढ़ होता है। इसके अन्दर ४ बीज एरण्ड के बीज की आकृति के होते हैं परन्तु बहुत बड़े। हरे फलों को चीरने से बहुत सा स्वर्णवर्ण का पीला दूध निकलता है। फल सूखने पर हरापन छोड़ कर खाकी रंग के होकर चिटक जाते हैं परन्तु बीज अलग नहीं होते।

नोट—पारीष की गणना क्षीरी वृक्षों में की गई है इसलिये किसी किसी वटजातीय (Ficus) वृक्ष को कुछ लोग पारीष मानते हैं। इस दृष्टि से पीपल की तरह जिनके पत्ते होते हैं ऐसे फाइकस् आर्नोशियाना (F. arnottiana) एवं फाइकस् रम्फाई (F. rumphii) को पारीष माना जा सकता है। थेस्पेसिया पोपुल्निया के छाल में यद्यपि क्षीर नहीं होता तथापि उसके फल में होता है।

इसकी छाल तथा पक्व फलों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—पुष्पदल में पोपुलिनिन (Populinin), पोपुल्नेटिन (Populnetin) एवं हर्बेसेटिन (Herbecetin) ये द्रव्य पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके फलों की राख तेल में मिला कर खुजली, दाद आदि चर्मरोगों में लगाई जाती है एवं इसकी छाल का क्वाथ पिलाते हैं।

मात्रा—त्वक् २-६ माशा।

अथ नन्दीवृक्षः (बेलिया पीपर)। तस्य नामगुणानाह

नन्दीवृक्षोऽश्वत्थभेदः प्ररोही गजपादपः। स्थालीवृक्षः क्षयतरुः क्षीरी च स्याद्वनस्पतिः॥६॥
नन्दीवृक्षो लघुः स्वादुस्तिक्तस्तुवर उष्णकः। कटुपाकरसो ग्राही विषपित्तकफास्रजित्॥७॥

बेलिया पीपर के संस्कृत नाम—नन्दीवृक्ष, अश्वत्थभेद, प्ररोही, गजपादप, स्थालीवृक्ष, क्षयतरु, क्षीरी और वनस्पति ये सब हैं।

नन्दीवृक्ष—स्वादिष्ट, तिक्त तथा कषायरस युक्त, पाक में कटु रस युक्त, लघु, ग्राही, उष्ण, एवम् विष, पित्त, कफ तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है॥ ६-७॥

४ बेलिया पीपल

हि०-बेलिया पीपल (र), कामरूप। बं०-कम्रुप। ते०-बेरंजुवि। गु०-नांदरुखीवड़। म०-नन्दी वृक्ष, नांदुक। ले०-*Ficus retusa Linn.* (फाइकस् रेट्यूसा)। Fam. Moraceae (मोरेसी)।

यह छोटा नागपुर, बिहार, मध्यभारत, दक्षिण, लंका तथा सुन्दरबन में होता है।

इसका वृक्ष-साधारण ऊँचा होता है तथा प्ररोह अल्प या नहीं रहते। पत्ते-२ से ४ इञ्च लंबे एवं करीब उतने ही चौड़े, कुछ अंडाकार, चमकीले एवं छोटे वृन्त से युक्त होते हैं। फल-अंडाकार होते हैं।

इसके पत्ते एवं छाल का उपयोग किया जाता है।

नोट—नन्दीवृक्ष का अभी तक निर्णय नहीं हुआ है। कुछ विद्वानों ने संभवतः इसके गुजराती नाम नाँदरूखीवड को आधार पर इसे नन्दी वृक्ष माना है।

गुण और प्रयोग—(१) यकृत् वृद्धि में एक तोला छाल दूध में पीसकर पिलाते हैं। (२) पत्ते एवं छाल को कूटकर आमवात में संधिशोथ पर बांधते हैं। मूल एवं पत्तों से पकाया तेल व्रण तथा चोट पर लगाते हैं।

मात्रा—त्वक् ५ से १० माशा।

अथोदुम्बरः (गूलर)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेमदुग्धकः॥ ८॥
उदुम्बरो हिमो रूक्षो गुरुः पित्तकफास्रजित्। मधुरस्तुवरो वर्ण्यो व्रणशोधनरोपणः॥ ९॥

गूलर के संस्कृत नाम—उदुम्बर, जन्तुफल, यज्ञाङ्ग और हेमदुग्धक ये सब हैं।

गूलर—मधुर तथा कषायरस युक्त, शीतल, रूक्ष, गुरु, वर्ण को उत्तम करने वाला, व्रण का शोधन तथा रोपण (घाव भरना) करने वाला एवम्—पित्त, कफ तथा रक्तविकार को दूर करने वाला है॥ ८-९॥

५ गूलर

हि०-गूलर, गुल्लर। बं०-यज्ञ डुमुर। म०-उम्बर, उम्बराचे झाड़। गु०-उम्बरो, कमरडो। क०-अतिमर। अ०-जमीज़। ते०-अति चेट्टु। ता०-अत्तिमरम्। फा०-अञ्जीरे आदम, समर पिस्ता। ले०-*Ficus glomerata Roxb.* (फाइकस् ग्लोमेरॅटा)। Fam. Moraceae (मोरेसी)।

गूलर इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है। पहाड़ी भूमि और पहाड़ों पर भी इसके वृक्ष पाये जाते हैं।

इसके वृक्ष ६० फीट तक ऊँचे फैले हुये होते हैं। पत्ते-५-७ इञ्च लम्बे, अण्डाकार, गहरे हरे और चिकने चमकीले होते हैं। फल-१-२ इञ्च व्यास में सटे हुए गुच्छों में लगते हैं। कच्चे फल हरे और पकने पर लाल हो जाते हैं। फलों के भीतर प्रायः छोटे २ कीड़े होते हैं।

इसके सभी अंगो का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—छाल में १४% टैनिन होता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल स्तंभन; पक्वफल शीत, स्तम्भन एवं रक्तसंग्राहक; क्षीर शीतल, स्तंभन, रक्तसंग्राहक, पौष्टिक एवं शोथहर है।

(१) सभी प्रकार के रक्तपित्त के लिये इसके फल तथा छाल का उपयोग किया जाता है। विशेष रूप में, रक्तप्रदर, अत्यार्तव, आसन्न गर्भपात, रक्तमेह आदि में इसको देते हैं।

(२) मधुमेह में फल या मूल का रस दिया जाता है।

(३) इसका क्षीर रक्तातिसार में लाभदायक है। बच्चों के अतिसार, वमन तथा दौर्बल्य में इसको १० बूंद दूध के साथ देते हैं।

(४) मूल को आंव में देते हैं।

मात्रा—छाल ½-१ तोला; फल २ से ४; क्षीर १० से २० बूँद दुग्ध एवं शर्करा के साथ।

अथ काकोदुम्बरिका (कठूमर)। तस्या नामानि गुणांश्चाह

काकोदुम्बरिका फल्गुर्मलयूर्जघनेफला। मलयुः[1] स्तम्भकृत्तिक्ता शीतला तुवरा जयेत्। कफपित्तव्रणश्वित्रकुष्ठपाण्ड्वर्शःकामलाः॥ १०॥

कठूमर के संस्कृत नाम—काकोदुम्बरिका, फल्गु, मलयु और जघनेफला ये सब हैं।

कठूमर—तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, मलस्तम्भ करनेवाला (मल को बांधने वाला), शीतल एवम्—कफ, पित्त, व्रण, श्वेतकुष्ठ, पाण्डु, अर्श तथा कामला रोग को दूर करने वाला है॥ १०॥

६ कठूमर

हि०-कठूमर, कट (ठ) गुलरिया, कठगूलर। बं०-काठडुमुर। म०-भुई उम्बर, बोखाड़ा। गु०-टेडउँबरो। ते०-ब्रम्ह मेडिचेट्टु। ता०-पेअट्टिस। ले०-*Ficus hispida Linn.* (फाइकस् हिस्पिडा)। Fam. Moraceae (मोरेसी)।

कठूमर भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है। यह नदी नालों के किनारे अधिकतर होता है।

इसका वृक्ष-मध्यमाकार का शीघ्र बढ़ने वाला होता है। किन्तु कहीं कहीं पथरीली भूमि का वृक्ष बड़ा झाड़ सा दिखाई पड़ता है। इसकी कोमल टहनियों पर सूक्ष्म रोवें होते हैं। पत्ते-विपरीत, लम्बे, किञ्चित् अण्डाकार, जड़की ओर गोलाकार, नोकदार और दन्तुर होते हैं। आकार में वे एक समान नहीं होते बल्कि, छोटे बड़े हुआ करते हैं। वे साधारणतः ४ इञ्च तक चौड़े तथा ९ इञ्च लम्बे होते हैं और पत्रदण्ड-१॥ इञ्च तक लम्बा होता है। नई शाखाओं के पत्ते १२ इञ्च तक लम्बे एवं सूक्ष्म रोवेंदार होते हैं। स्पर्श में वे रूखे और खुरदरे होते हैं। फल-हलके हरे या पीत हरिताभ गूलर के समान लगते हैं। इस कारण इसको "उदुम्बरफल" तथा "जङ्गली गूलर" कहते हैं। देखने में फलों का आकार अंजीर के समान होता है इस कारण इसे जङ्गली अंजीर भी कहते हैं। फलों के ऊपर सूक्ष्म रोवें होते हैं। इसकी छाल एवं फल का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में टैनिन, सैपोनिन एवं एक ग्लूकोसाइड पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके फल एवं छाल वामक तथा विरेचक हैं और छाल अल्प मात्रा में पौष्टिक है।

(१) इसका उपयोग यकृत्वृद्धि में करते हैं। इससे कामला में भी लाभ होता है।

(२) फलों को कूटकर तथा पकाकर शोथ, गांठ आदि पर बांधते हैं।

(३) विषमज्वर में छाल का चूर्ण दूध के साथ देते हैं।

(४) श्वित्र के लिए सुश्रुत (चि. अ. ९) में प्रयोग दिया है जिसमें गूलर तथा कठगूलर के मूल का सुखोष्ण क्वाथ पिलाकर रोगी को धूप में बैठाते हैं जिससे श्वित्र पर फोड़े आ जाते हैं। उनको फोड़कर उस पर चीते या हाथी का चमड़ा जला, तैल में मिलाकर लेप का विधान है।

---

१. मलपू इति पाठः.

अथ प्लक्षः (पाखर) । तस्य नामानि गुणांश्चाह

प्लक्षो जटी पर्करी च पर्कटी च स्त्रियामपि ॥ ११ ॥
प्लक्षः कषायः शिशिरो व्रणयोनिगदापहः। दाहपित्तकफास्र[1]घ्नः शोथहा रक्तपित्तहृत् ॥१२॥

पाखर के संस्कृत नाम—प्लक्ष, जटी, पर्करी, पर्कटी (यह स्त्रीलिङ्गी भी होता है) ये सब हैं।

पाखर—कषाय रसयुक्त, शीतल एवम् व्रण, योनिसम्बन्धी रोग, दाह, पित्त, कफ, रक्तविकार, शोथ तथा रक्तपित्त को दूर करने वाला है ॥ ११–१२ ॥

७ पाकर

हि०–पाकर, पाखर, पिलखन, पकरिया, पकरी। **बं०**–पाकी, पाकुर। **म०**–पाईट, पिंपरी वृक्ष। **गु०**–पीप, पीपर। **क०**–बसारी। **ते०**–जुव्वि। **ता०**–कुरुगु। **ले०**–*Ficus infectoria Roxb.* (फाइकस् इन्फेक्टोरिया)। Fam. Moraceae (मोरेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है।

पाकर के वृक्ष–बड़, पीपर के समान जङ्गल और ग्रामों में बड़े २ होते हैं। **पत्ते**–४–५ इञ्च लम्बे, आम के पत्तों के समान पर इनसे चौड़े होते हैं। इनकी शाखायें सघन और छाया उत्तम होती है। फल–पत्तों के डंडियों पर छोटे २ पीपर वृक्ष के फल के समान लगते हैं। ये पकनेपर सफेद या कुछ काल एवं बिन्दुकित होते हैं।

गुण और प्रयोग—यह शीत, व्रणरोपक, रक्तपित्तघ्न एवं योनिरोग नाशक है।

इसकी छाल का क्वाथ गण्डूष, व्रणप्रक्षालन एवं डूश के लिए काम में लाया जाता है।

अथ शिरीषः (सिरस)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

शिरीषो भण्डिलो भण्डी भण्डीरश्च कपीतनः। शुकपुष्पः शुकतरुर्मृदुपुष्पः शुकप्रियः ॥१३॥
शिरीषो मधुरोऽनुष्णस्तिक्तश्च तुवरो लघुः। दोषशोथविसर्पघ्नः कासव्रणविषापहः ॥१४॥

सिरस के संस्कृत नाम–शिरीष, भण्डिल, भण्डी, भण्डीर, कपीतन, शुकपुष्प, शुकतरु, मृदुपुष्प और शुकप्रिय ये सब हैं।

सिरस—मधुर, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, किञ्चित उष्ण, लघु एवम्–वातादिक दोष, शोथ, विसर्प, कास (खांसी), व्रण तथा विष को दूर करने वाला है ॥ १३–१४ ॥

८ सिरस

हि०–सिरस, सिरिस। **बं०**–शिरीषगाछ। **म०**–शिरस, चिचोला। **गु०**–सरसडो, काकीयो सरस। **क०**–बागेमर। **ते०**–दिरसन। **ता०**–वाकै। **ले०**–*Albizzia lebbeck Benth.* (आल्बीज़िया लेबेक्)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है तथा लगाया भी जाता है।

सिरस के वृक्ष–बड़े २ और सघन होते हैं। **पत्ते**–इमली के पत्तों के समान; उपपक्ष (Pinnae) २ से ४ जोड़े; **पत्रक**–¾–२½ इञ्च लम्बे, ६ से ८ जोड़े, तिरंक्, कडे एवं छोटे वृन्त से युक्त होते हैं। प्रधान पर्णवृन्त के आधार पर एक बड़ी ग्रन्थि होती है। **पुष्प**–सवृन्त, हरिताभ पीत, मुण्डक (Heads) में आते हैं। **फली**–६ से १२ इञ्च लम्बी, ¾–१½ इञ्च चौड़ी, पतली, हलके पीले रंग की होती है जिनमें ६–१० बीज होते हैं।

---

१. कफामघ्नः इतिपाठा०।

इसके वृक्ष से एक प्रकार का बबूर के गोंद के समान गोंद निकलता है जो पानी में डालने से गल जाता है।

नोट—शीरीष की एक अन्य जाति होती है जिसे ले०–आ० ओडोरेटिस्सिमा (A. odoratissima), **काला शिरीष** कहते हैं। इसमें उपपक्ष २ से ५ जोड़े; पत्रक ½–१½ इञ्च लंबे, ६ से २४ जोड़े वृन्तहीन होते हैं। इसमें प्रधान पर्णवृन्त तथा ऊपर के १–२ उपपक्ष के वृन्त के आधार पर ग्रन्थि होती है। पुष्प–धूसर, अवृन्त एवं सशाख मुण्डक में आते हैं। **फली**–६–१२ इञ्च लंबी, १–१½ इञ्च चौड़ी, पारभासक या चमकीली एवं ८–१२ बीजों से युक्त होती है।

इसका एक अन्यभेद **श्वेत शिरीष** पाया जाता है। यह आ० प्रोसेरा (A. procera) है। इसकी छाल श्वेत या हरित श्वेत, उपपक्ष ३–६ जोड़े एवं पत्रक ५–११ जोड़े, १ से २½ इञ्च लंबे होते हैं। पुष्प–मुण्डक काले शिरीष की तरह होते हैं। **फली**–४–८ इञ्च × ½–१ इञ्च, भूरी एवं ८–१२ बीज युक्त होती है। इसे मराठी में किन्हइ कहते हैं तथा इसे प्राचीनों का कटभी या किणिही मानना उचित है ऐसा श्री ठा० बलवन्तसिंह जी का मत है।

शिरीष की छाल एवं बीज का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें गोंद, सेपोनिन एवं टैनिन ७–११% होता है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, तिक्त, कषाय, त्रिदोषघ्न, **विषघ्न**, त्वक् दोषहर, कासहर, पौष्टिक, वाजीकर एवं ग्राही है।

(१) शुक्रस्तंभन के लिये पुष्पों का प्रयोग करते हैं। वीर्य गाढा करने के लिये इसके बीजों को दूध एवं शर्करा के साथ देते हैं। छाल का चूर्ण घृत के साथ शरीर को पुष्ट बनाने के लिये उपयोगी है।

(२) छाल के क्वाथ से कुल्ला करने से दांत मजबूत होते हैं।

(३) गंडमाला में बीजों का लेप किया जाता है तथा खिलाते भी हैं।

(४) रतौंधी में पत्तों का क्वाथ पिलाते हैं तथा स्वरस आंख में लगाते हैं।

मात्रा—छाल का चूर्ण ३ से ६ माशा; बीजचूर्ण १ से २ माशा; पुष्प या पत्रस्वरस १ से २ तोला।

अथ क्षीरिवृक्षपञ्चकं त्वक्पञ्चकञ्च। तयोर्लक्षणं तत्पत्रस्य च गुणांश्चाह

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपारीषप्लक्षपादपाः। पञ्चैते क्षीरिणो वृक्षास्तेषां त्वक्पञ्चवल्कलम् ॥

"क्षीरिवृक्ष—पञ्चक" से प्रसिद्ध वृक्षों के हिन्दी नाम—बरगद, गूलर, पीपल, पारीष और पाकर इन्हीं पाचों क्षीरिवृक्षों के समुदाय को क्षीरिवृक्ष–पञ्चक समझना चाहिये। एवम् इन्हीं पांचों के वल्कल को "पञ्चवल्कल" समझना चाहिये ॥ १५ ॥

***केचित्तु पारीषस्थाने शिरीषं, वेतसं परे, वा वदन्तीति विशेषः ॥ १५ ॥**

यहाँ पर मूल में कोई विद्वान् पारीष के स्थान में शिरीष तथा और दूसरे विद्वान् वेतस का पाठ मानते हैं। यह विशेष समझना चाहिये ॥ १५ ॥

क्षीरिवृक्षा हिमा वर्ण्या योनिरोगव्रणापहाः।
रूक्षाः कषाया मेदोघ्ना विसर्पामयनाशनाः ॥ १६ ॥
शोथपित्तकफास्रघ्नाः स्तन्या भग्नास्थियोजकः।
त्वक्पञ्चकं हिमं ग्राहि व्रणशोथविसर्पजित् ॥ १७ ॥

तेषां पत्रं हिमं ग्राहि कफवातास्रनुल्लघु। विष्टम्भाध्मानजित्तिक्तं कषायं लघु लेखनम् ॥१८॥

क्षीरिवृक्षपञ्चक—कषाय रसयुक्त, शीतल, वर्ण को उत्तम करने वाले, रूक्ष, दुग्धवर्धक, टूटी हुई हड्डियों के जोड़ने वाले एवम् योनिरोग, व्रण, मेद, विसर्प, शोथ, पित्त, कफ तथा रक्त-विकार के नाशक हैं। **पञ्चवल्कल** (उक्त क्षीरिवृक्षों की छाल)—शीतल, ग्राही एवम् व्रण, शोथ तथा विसर्पनाशक है।

क्षीरिवृक्षपत्र—तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, शीतल, ग्राही, लघु, किंचित् लेखन एवम् कफ, वात, रक्तविकार, विष्टम्भ और आध्मान को दूर करने वाले होते हैं ॥ १६-१८ ॥

अथ शालः (साखू)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

शालस्तु सर्जकार्श्याश्वकर्णकाः शस्यशम्बरः। अश्वकर्णः कषायः स्याद् व्रणस्वेदकफक्रिमीन् ॥
ब्रध्नविद्रधिबाधिर्ययोनिकर्णगदान् हरेत् ॥ १९ ॥

साखू के संस्कृत नाम—शाल, सर्ज, कार्श्य, अश्वकर्णक, और शस्यशम्बर ये सब हैं।

साखू—कषायरसयुक्त एवम्–व्रण, स्वेद, कफ, क्रिमि, ब्रध्न, विद्रधि, बहरापन एवं योनि तथा कर्णसम्बन्धी रोग को दूर करने वाला है ॥ १९ ॥

९ शाल

हि०–शाल, साल, साखु, सखुआ। **बं०**–शालगाछ, तलूरा। **म०**–रालचा वृक्ष। **गु०**–शलवृक्ष, रालनुं झाड़। **ते०**–जलरि चेट्टु, इनुमद्धि। **ता०**–कुंगिलियम्। **उरिया**–सल्व। **नेपा०**–सकब। **अं०**–The Sal tree (दि साल ट्री)। **ले०**–*Shorea robusta Gaertn. f.* (शोरीया रोबस्टा)। Fam. Dipterocarpaceae (डिप्टेरोकार्पेसी)।

शाल के वृक्ष बहुत बड़े विशाल होते हैं। ये हिमालय पहाड़, सतलज नदी से आसाम तक, मध्य हिन्दुस्तान के पूर्वीभाग, बंगाल के पश्चिमी भाग और छोटा नागपूर के जङ्गलों में होते हैं। इसके **पत्ते**–६-१०×४-६ इञ्च एवं बड़े अण्डाकार–आयताकार होते हैं। **फूल**–पीले रङ्ग के झुमकों में वसन्त ऋतु में लगते हैं और **फल**–छोटे होते हैं। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और बड़े काम की होती है। इसके गोंद को राल कहते हैं। फल वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में पक जाते हैं।

शालसार ताजा काट कर निकालने पर लाल या सफेद दोनों तरह का होता है जिनमें से श्वेत शाल अच्छा माना जाता है। शाल के निर्यास को राल कहते हैं जिसका कर्पूरादि वर्ग में वर्णन किया जा चुका है।

नोट—यद्यपि भा० प्र० में अश्वकर्ण, शाल का पर्याय एवं अजकर्ण, सर्जक का पर्याय दिया है तथापि ये चार भिन्न वृक्ष हो सकते हैं क्योंकि सुश्रुत सालसारादिगण में साल, अजकर्ण एवं अश्वकर्ण नामक ३ वृक्ष तथा चरक में कषाय स्कन्ध में साल, सर्ज, अश्वकर्ण एवं अजकर्ण नामक ४ वृक्षों का वर्णन मिलता है। इस दृष्टि से अश्वकर्ण यह डिप्टेरोकार्पस ॲलेटस् (Dipterocarpus alatus), हि०-गर्जन एवं अजकर्ण यह टर्मिनेलिया टोमेन्टोझा (Terminalia tomentosa), हि०-असन हो सकता है।

अथ शालभेदः (सर्जकः)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

सर्जकोऽन्योऽजकर्णः स्याच्छालो मरिचपत्रकः ॥ २० ॥
अजकर्णः कटुस्तिक्तः कषायोष्णो व्यपोहति। कफपाण्डुश्रुतिगदान् मेहकुष्ठविषव्रणान् ॥२१॥

सर्ज (यह साखू का भेद है) के संस्कृत नाम—सर्जक, अजकर्ण, शाल और मरिचपत्रक ये सब हैं।

सर्ज—कटु तिक्त तथा कषायरसयुक्त, उष्ण एवम् कफ, पाण्डु, कर्णसम्बन्धी रोग, प्रमेह, कुष्ठ, विष तथा व्रण को दूर करने वाला होता है ॥ २०-२१ ॥

१० सर्जक

हि०–बड़ा साल। **बं०**–कुन्द्रो। **म०**–सफेद डामर, चन्द्रुस। **गु०**–धूप। **क०**–दमर। **ते०**–तेल्लदामरमु। **ता०**–वेल्ल कुनुरिकम्। **यूना०**–संद्रस, सुंद्रस। **ले०**–*Vateria-indica Linn.* (वेटेरिया इण्डिका)। Fam. Dipterocarpaceae (डिप्टेरोकार्पेसी)।

यह पश्चिम भारत और दक्षिण हिन्दुस्तान के जंगलों में बहुत होता है। इसका **वृक्ष** बहुत हरा भरा और सुहावना दिखाई पड़ता है। **पत्ते**–४ से १० इञ्च तक लम्बे तथा ३॥ इञ्च तक चौड़े, जड़ की ओर गोलाकार और अण्डाकार होते हैं। **फूल**–आध से पौन इञ्च के घेरे में गोलाकार होते हैं। **फल**–२-२॥ इञ्च लम्बे गोल होते हैं।

अथ शल्लकी (सलई)। तस्या नामानि गुणांश्चाह

शल्लकी गजभक्ष्या च सुवहा सुरभी रसा। महेरुणा कुन्दुरुकी वल्लकी च बहुस्रवा ॥२२॥
शल्लकी तुवरा शीता पित्तश्लेष्मातिसारजित्। रक्तपित्तव्रणहरी पुष्टिकृत्समुदीरिता ॥२३॥

सलई के संस्कृत नाम—शल्लकी, गजभक्ष्या, सुवहा, सुरभि, रसा, महेरुणा, कुन्दुरुकी, वल्लकी और बहुस्रवा ये सब हैं।

सलई—कषाय रसयुक्त, शीतल, पुष्टिकारक एवम्–पित्त, कफ, अतिसार, रक्तपित्त तथा व्रण को दूर करने वाली कही हुई है ॥ २२-२३ ॥

११ सालई

हि–सालई, सलई। **बं०**–सलै। **म०**–सालई वृक्ष। **गु०**–शालेडुं, धूपडो, सालेडा। **कुमाऊं**–अदुंकु। **गोंड**–सल्ल। **संताल**–सारगा। **क०**–मादिमर **ता०**–कुंदुरुकम्। **मा०**–सेलो। **ते०**–परंगिसाम्राणि। **ले०**–*Boswellia serrata Roxb.* (बॉस्वेलिया सेरेटा)। Fam. Burseraceae (बर्सेरेसी)।

यह पश्चिम हिमालय के नीचे के जंगलों में, मध्य भारत, बिहार से राजपूताना तक, दक्षिण और कोंकण आदि प्रान्तों में होता है। आसाम तथा बंगाल में नहीं होता।

शालई का **वृक्ष** ३० फीट तक ऊँचा होता है। शाखाएँ नीचे की ओर झुकी हुई होती हैं। **छाल**–रक्ताभपीत या हरित श्वेत, चिकनी और कागज के समान छूटने वाली होती है। संयुक्त पत्तियां शाखाओं के अग्रपर दलबद्ध रहती हैं। **पत्रक**–आमने-सामने या कुछ अन्तर देकर, ८ से १५ जोड़े होते हैं जो लम्बे, नीम के पत्तों के समान मालाकार या रेखाकार तथा दन्तमय धारवाले होते हैं। **पुष्प**–छोटे एवं श्वेत रङ्ग के होते हैं। पुष्प के बाह्य कोश एवं आभ्यंतरकोश के दल ५-५; पुंकेशर ५ बड़े और ५ छोटे होते हैं। **फल**–मांसल और तीन धार वाला होता है जो पकने पर तीन भागों में फटता है।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में चीरा लगाने से एक तरह का गोंद निकलता है जिसे 'सलईगूगल' कहते हैं। प्राचीनों ने इसी को कुन्दुरु लिखा है लेकिन आजकल बाजार में बिकने

वाला कुन्दुरु इसी जाति के विदेशी वृक्ष, बॉ० फ्लोरिबंडा का गोंद है जो अरब एवं अफ्रीका से आता है। 'कुन्दुरु एवं सलई गूगल' का वर्णन पहले कर्पूरादि वर्ग में (पृष्ठ २१२) किया जा चुका है।

गुण और प्रयोग—सलई की छाल शीतल, पुष्टिकर, ग्राही तथा त्वच्य होती है।

इसका प्रयोग अतिसार, रक्तातिसार, रक्तपित्त, अर्श, कुष्ठ एवं व्रण में किया जाता है।

(१) अतिसार में इसकी छाल, शर्करा तथा मधु का उपयोग किया जाता है। रक्तातिसार में इसे दूध में घिसकर शहद मिलाकर पिलाते हैं।

(२) श्वास में इसके चूर्ण को घृत एवं मधु के साथ चटाया जाता है।

(३) अन्य द्रव्यों के साथ इसके क्वाथ से व्रण-प्रक्षालन किया जाता है।

(४) सलई के फल तथा फूल का उपयोग कफविकार, वातविकार, अर्श, कुष्ठ तथा अरुचि में किया जाता है।

मात्रा—त्वक्चूर्ण ३-६ माशा।

अथ शिंशपा (शीसम)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

शिंशपा पिच्छिला श्यामा कृष्णसारा च सा गुरु।
कपिला सैव मुनिभिर्भस्मगर्भेतिकीर्त्तिता॥
शिंशपा कटुका तिक्ता कषाया शोषहारिणी। उष्णवीर्या हरेन्मेदःकुष्ठश्वित्रवमिक्रिमीन्॥
वस्तिरुग्व्रणदाहास्रबलासान् गर्भपातिनी॥ २५॥

शीसम के संस्कृत नाम – शिंशपा, पिच्छिला, श्यामा और कृष्णसारा ये सब हैं। यदि वही शीसम भारी एवं कपिल (भूरा) रङ्ग का हो तो उसका संस्कृत नाम—'भस्मगर्भा' है।

शीसम—कटु, तिक्त तथा कषायरसयुक्त, उष्णवीर्य, गर्भगिराने वाला एवम्-शोष, मेद, कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, वमन, क्रिमि, वस्तिसबन्धी रोग, व्रण, दाह, रक्तविकार और कफ का नाशक है॥

१२ शीसम

हि०-सीसम; कपिलवर्ण-शीसम, शीशो, शीसव। बं०-शिशु। म०-शिसव। गु०-सीस। क०-अगरू गिड़। ते०-सिंशुप। ता०-नोट्टे। ले०-*Dalbergia sissoo Roxb.* (डालबर्गीया सिस्सू)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

सीसो के वृक्ष प्रायः सब प्रान्तों में लगाये जाते हैं तथा पश्चिम हिमालय में ४००० फीट तक, नेपाल की तराई, सिक्किम तथा ऊपरी आसाम के जंगलों में पाये जाते हैं। इसका वृक्ष बड़ा और विशाल हुआ करता है। इसकी लकड़ी मजबूत होता है। इसके लकड़ी से बहुत सुन्दर सन्दूक, पलङ्ग, प्रभृति अनेक वस्तुएं तैयार होती हैं। इसके **पत्ते**-गोल, नोकदार, बेर के पत्तों के समान पर इनसे कुछ बड़े तथा पाढ़ी के पत्तों के समान होते हैं। ये चिकने और ऊपर से चमकीले होते हैं। **फूल**-बहुत छोटे २ गुच्छों में और **फली**-लम्बी, पतली और चिपटी होती है। **बीज**-छोटे २ और चिपटे होते हैं। इसकी लकड़ी श्यामता और ललाई लिये भूरे रङ्ग की दृढ़ होती है।

इसकी एक अन्य जाति डा० लेटिफोलिया (D. latifolia Roxb.) होती है जिसकी लकड़ी भी फर्नीचर बनाने के काम में आती है जिसे अंग्रेजी में इंडियन रोजवुड (Indian Rosewood) कहते हैं।

रासायनिक संगठन—लकड़ी के सार में ५·३५% गाढ़ा तेल होता है। फली में टैनिन २% होता है।

गुण और प्रयोग—इसकी लकड़ी चर्मरोग एवं वमन में लाभदायक है। इसके पत्तों का क्वाथ सोजाक में देते हैं। इसका तेल व्रणशोधन है एवं कुष्ठ, कृमि, वातविकार एवं कफ-नाशक है।

मात्रा—सार-लकड़ी ५ से ७ माशा।

अथ ककुभः (अर्जुन)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

ककुभोऽर्जुननामाख्यो नदीसर्जश्च कीर्त्तितः। इन्द्रद्रुर्वीरवृक्षश्च वीरश्च धवलः स्मृतः॥२६॥
ककुभः शीतलो हृद्यः क्षतक्षयविषास्रजित्। मेदोमेहव्रणान् हन्ति तुवरः कफपित्तहृत्॥२७॥

अर्जुन के संस्कृत नाम—ककुभ, अर्जुन के संज्ञावाचक सभी शब्द (जैसे अर्जुन, गाण्डीवी, पार्थ, धनञ्जय, कर्णारि आदिक), नदीसर्ज, इन्द्रद्रु, वीरवृक्ष, वीर और धवल ये सब हैं।

अर्जुन—कषाय रसयुक्त, शीतल, हृद्य (हृदय को हितकर) एवम्-क्षत, क्षय, विष, रक्तविकार, मेद, प्रमेह, व्रण (प्रमेह सम्बन्धी व्रण), कफ तथा पित्त का नाशक होता है॥ २६-२७॥

१३ अर्जुन

हि०-अर्जुन, कहू, कोह। बं०-अर्जुन गाछ। म०-अर्जुन, अर्जुन सादड़ा। गु०-अर्जुन। पं०-जुमरा। ते०-तेल्लमद्दि। क०-मत्ति। ता०-मरुदमरम्। ले०-*Terminalia arjuna W. & A.* (टर्मिनेलिया अर्जुन)। Fam. Combretaceae (कॉम्ब्रेटेसी)।

यह सब प्रान्तों में कहीं न कहीं पाया जाता है किन्तु हिमालय को तराई, छोटा नागपूर, मध्यभारत, बंबई एवं मद्रास में अधिक होता है।

इसका **वृक्ष**—६०-७० फीट तक ऊंचा होता है। **पत्ते**-अमरूद के पत्ते के समान ३ से ६ इञ्च तक लम्बे, छोटी २ टहनियों पर कहीं विपरीत और कहीं एकान्तर लगे रहते हैं। इसके पीले रङ्ग के नन्हें २ **फूलों** के धनहरे से आते हैं। **फल**-कमरख के समान ५ पहल वाले, १-१॥ इञ्च लम्बे एवं कुछ अण्डाकार होते हैं॥ १३॥

इसकी छाल का प्रयोग किया जाता है। यह मोटी, चिकनी, गुलाबीपन लिये धूसर या श्वेताभ होती है तथा पतले परतों में छूटती है। बजार में इसके टुकड़े चपटे या कुछ मुड़े हुवे, ६ इञ्च या अधिक लंबे, ४ इञ्च चौड़े एवं ०·१-०·४ इञ्च मोटे मिलते हैं। अन्दर से यह हलकी धूसर एवं सूक्ष्म धारीदार होती है। भग्न छोटा तथा गुलाबीपन लिये हुवे; स्वाद कषाय रहता है।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में जल-विलेय चूनें (Calcium) के लवण बहुत (२५%) होते हैं। इसके अतिरिक्त टैनिन १५·८%, रवेदार पदार्थ अर्जुनाइन, शर्करा, अल्प मात्रा में मैग्नेशियम् के लवण, रंजक द्रव्य एवं सेन्द्रीय अम्ल पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—अर्जुन शीतवीर्य, कफ-पित्तशामक, हृद्य, हृदयोत्तेजक, रक्तसंग्राहिक, शोणितास्थापन, शोथघ्न, संधानीय एवं व्रणरोपण है।

इसका उपयोग हृदय के विकार, क्षतक्षय, कास, विष, रक्तविकार, रक्तपित्त, प्रमेह, ज्वर एवं व्रण में किया जाता है।

(१) हृदय के सभी प्रकार के रोगों में इसकी छाल को दूध में क्षीरपाक विधि से पकाकर देना चाहिये।

(२) रक्तपित्त में इसको देने से रक्तवाहिनियों का संकोच होकर तथा इसमें के चूने के कारण रक्त का जमने का कार्य बढने से लाभ होता है।

(३) व्रण, अस्थि भग्न, शोथ आदि में इसका बाह्य एवं आभ्यन्तर प्रयोग किया जाता है।

नोट—अर्जुन के कर्मों के विषय में प्राचीन एवं नवीन आचार्यों में पर्याप्त मतभिन्नता है। आधुनिक वैज्ञानिकों का मत है कि इसका प्रभाव केवल इसमें के चूना एवं सेन्द्रीय अम्लों के कारण है। इस सम्बन्ध में विस्तृत अनुसंधान आवश्यक है। संभव है अर्जुन यह टर्मिनेलिया से अतिरिक्त अन्य कोई वृक्ष हो। इस दृष्टि से आगे तिनिश के साथ वर्णित जारूल वृक्ष के विषय में विचार आवश्यक है जिसे कहीं-कहीं अर्जुन कहा गया है।

मात्रा—त्वक् ½ से १ तोला क्षीरपाक बनाकर; चूर्ण १ से ३ माशा।

अथ बीजकः (विजयसार)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

बीजकः पीतसारश्च पीतशालक इत्यपि। बन्धूकपुष्पः प्रियकः सर्जकश्चासनः स्मृतः ॥२८॥
बीजकः कुष्ठवीसर्पश्वित्रमेहगुद क्रिमीन्। हन्ति श्लेष्मास्रपित्तञ्च त्वच्यः केश्यो रसायनः॥२९॥

विजयसार के संस्कृत नाम—बीजक, पीतसार, पीतशालक, बन्धूकपुष्प, प्रियक, सर्जक और असन ये सब हैं।

विजयसार—त्वचा के लिये हितकर, बालों को उत्तम बनाने वाला, रसायन एवम्-कुष्ठ, वीसर्प, श्वेतकुष्ठ, प्रमेह, गुदा के कृमि, कफ, रक्तविकार, पित्त या रक्तपित्त को दूर करने वाला है॥

नोट—निघंटुओं ने बीजक एवं असन को एक वृक्ष माना है किन्तु ये दोनों भिन्न हैं। असन यह शाल या सर्जभेद है जिसका लै० नाम टर्मिनेलिया टोमेन्टोजा (Terminalia tomentosa) है। बंबई की तरफ 'असाना' नाम से ब्रिडेलिया मॉन्टेना (Bridelia montana Willd.) को ग्रहण किया जाता है।

१४ विजैसार

हिं०—विजयसार, विजेसार, विजैसार। **बं०**-पियाशाल, पीतशाल। **म०**-बिबला। **गु०**-बीयों। **ते०**-वेंगि। **क०**-होन्नेमर। **मा०**-बिजैसार। **अ०**-दम्म उल अखवैन हिन्दी। **अं०**-Indian Kino tree (इण्डियन् काइनो ट्री)। **लै०**-*Pterocarpus marsupium Roxb.* (टेरोकार्पस् मार्सुपियम्)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

यह दक्षिण भारत, बिहार और पश्चिमी प्रायद्वीप में होता है।

इसका वृक्ष-सुन्दर बहुत बड़ा किन्तु अचिरस्थायी होता है। छाल-तिहाई इञ्च मोटी, पीताभ धूसर रङ्ग की खुरदरी होती है। पत्ते—पक्षवत एवं ५-७ पत्रक युक्त जो आयताकार या अण्डाकार, ३-५ इञ्च लंबे, कुण्ठित या नताग्र, ऊपरी तल पर चमकीले एवं प्रधान शिराएँ अनेक एवं स्पष्ट होती हैं। फूल-चौथाई इञ्च के घेरे में किंचित् पीले या सफेद मंजरियों में आते हैं। फलियाँ-१-२ इञ्च व्यास में, गोल एवं चिपटी होती हैं जिसमें छोटे बीज होते हैं। छाल में घाव करने से लाल रस निकलता है जो कुछ दिनों में सूखकर काला और कड़ा हो जाता है। इसको उबाल कर सुखाकर काम में लाते हैं। इसको मलाबार काइनो (Malabar kino) कहते हैं।

यह गाढ़े लाल रंग के, चमकीले, पहलदार टुकड़ों में होता है। इसे किनारे से देखने से मानिक की तरह लाल पारदर्शक दिखलाई देता है। इसको तोड़ने से भूरे रंग का चूरा निकलता है

१. व्रणक्रिमीन् इति पाठा०।

तथा सतह चमकीली होती है। इसे चबाने से यह दांत में चिपकता है तथा लार, लाल हो जाती है। इसमें गंध नहीं होती तथा स्वाद कषाय रहता है। रखने से इसका कषायत्व कम हो जाता है। इसके गोंद एवं काष्ठसार का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—गोंद में काइनो टैनिक एसिड (Kino tannic acid) पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह शीत, कफपित्तशामक, रसायन एवं प्रमेहनाशक है। इसका उपयोग प्रमेह, कुष्ठ, चर्मरोग, रक्तपित्त एवं रक्तविकार में किया जाता है। इसका गोंद तीव्र संग्राहक है एवं छाल ग्राही है।

(१) अतिसार, प्रवाहिका में गोंद खिलाते हैं। दाँत के दर्द में दांत में इसे रखते हैं।
(२) प्रमेह में इसके काण्डसार का क्वाथ पिलाते हैं।
(३) पत्तों का लेप शोथ एवं त्वचा के रोगों पर किया जाता है।

मात्रा—गोंद २ से ८ रत्ती; चूर्ण ३ से ६ माशा; क्वाथ ५ से १० तोला।

अथ खदिरः। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

खदिरो रक्तसारश्च गायत्री दन्तधावनः। कण्टकी बालपत्रश्च बहुशल्यश्च यज्ञियः॥ ३० ॥
खदिरः शीतलो दन्त्यः कण्डूकासारुचिप्रणुत् ॥ ३१ ॥
तिक्तः कषायो मेदोघ्नः कृमिमेहज्वरव्रणान्। श्वित्रशोथामपित्तास्रपाण्डुकुष्ठकफान् हरेत्॥

खैर के संस्कृत नाम—खदिर, रक्तसार, गायत्री, दन्तधावन, कण्टकी, बालपत्र, बहुशल्य और यज्ञिय ये सब हैं।

खैर-तिक्त तथा कषायरसयुक्त, शीतल, दाँतों के लिए हितकर एवम् खुजली, खांसी, अरुचि, मेद, कृमि, प्रमेह, ज्वर, व्रण, श्वेतकुष्ठ, शोथ, आम, पित्त, रक्तविकार, पाण्डु, कुष्ठ तथा कफ को दूर करने वाला है॥ ३०-३२॥

१५ खैर

हि०-खैर, कत्था। **बं०**-खयेर गाछ। **म०**-खैर, काथ। **गु०**-खेर, काथो। **ते०**-चंड्र। **ता०**-करंगालि। **अं०**-Black Catechu (ब्लैक कॅटेच्यु)। **लै०**-*Acacia catechu Willd* (अॅकेसिया कटेच्यु)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

यह भारत में अनेक स्थानों पर होता है। पंजाब, उत्तर पश्चिम हिमालय, मध्यभारत, बिहार, गंजम, कोंकण एवं दक्षिण में विशेष रूप से शुष्क जंगलों में होता है।

इसका वृक्ष, मध्यम प्रमाण का, काँटेदार, होता है। छाल गहरे धूसराभ भूरे रंग की, ½ इञ्च मोटी एवं लंबे परतों में छूटने वाली तथा अन्दर से भूरी या लाल होती है। शाखाएं पतली होती हैं। काँटे युग्म, टेढे, चमकीले भूरे या काले एवं ये उपपत्रों के रूपान्तर होते हैं। पत्र-१०-१५ से मी० लंबे एवं वृन्त पर काँटे तथा ४-५ ग्रन्थियाँ होती हैं। उपपक्ष २०-६०, ३·८-५ से मी० लंबे होते हैं। पत्रक-प्रत्येक उपपक्ष पर ६०-१०० की संख्या में, ४·५-६×१·२५ मि० मी० बड़े, रेखाकार तथा अवृन्त होते हैं। पुष्प-छोटे, श्वेताभ या हलके पीले, ५-१० से मी० लंबी मंजरियों में आते हैं। आभ्यन्तर कोश बाह्य कोश से लगभग दूना रहता है। फली-५-७·५ से० मी० लंबी, १-१·६ से० मी० चौड़ी, चिपटी, पतली, धूसर, चमकीली एवं उसका अग्र नोकीला त्रिकोणाकार एवं मूल संकुचित होकर ३-६ मि० मी० लंबा, नाल सदृश हो गया

रहता है। बीज–३–१० की संख्या में रहते हैं। इसके अन्य भेदों का वर्णन स्वतन्त्र किया गया है।

कुछ पुराने वृक्षों के काष्ठ के अन्दर दरारों में एक रवेदार या चूर्ण रूप में कृष्णाभ श्वेत पदार्थ जमा पाया जाता है जिसे **खदिरसार** (खेरसाल) कहते हैं। यह बहुत महंगा होता है तथा खांसी एवं गले के विकारों में काम में आता है।

खैर के सार (अन्दर की लकड़ी) भाग को जल के साथ उबालकर कत्था निकालते हैं जो प्रधान रूप से दो प्रकार का होता है। प्रथम धूसर रंग का खाने के या औषध के काम आता है तथा दूसरा लाली लिये भूरा या हलका नारंगी विभिन्न उद्योगों में, एक तीसरा प्रकार बम्बई की तरफ सुपाड़ी से बनाया हुआ भी मिलता है। एक चौथा कत्था विदेशी वृक्ष अंकेरिया गम्बीर (Uncaria gambir Roxb. Fam. Rubiaceae) से प्राप्त होता है।

रासायनिक संगठन—इसकी अन्दर की लकड़ी में कैटेचिन (Catechin) एवं कैटेचूटैनिक ऍसिड (Catechutannic acid) होते हैं जिनमें से इसका कषायत्व दूसरे वाले द्रव्य के कारण होता है जो कत्थे में करीब ५०% होता है।

गुण और प्रयोग—खैर शीत, ग्राही, कफ, शुक्र को सुखाने वाला, रक्तपित्त-प्रशमन एवं पाचन है। इसका प्रयोग कुष्ठ, चर्मरोग, खांसी तथा गला, मुख, मसूढ़े की शिथिलता, अतिसार, प्रमेह, रक्तविकार एवं व्रण में किया जाता है। कत्थे में भी यही गुण हैं।

(१) कुष्ठ में इसको खिलाते हैं तथा इससे स्नानादि भी कराते हैं।

(२) संग्रहणी, अतिसार तथा खट्टी डकार में कत्था उपयोगी है।

(३) खांसी विशेष रूप से शुष्क कास में इसको मुह में चूसने के लिये देते हैं। कफ युक्त खांसी में इससे कफ कम होता है।

(४) मसूढ़े से खून आता हो तो इसके क्वाथ से कुल्ला कराते हैं।

(५) मुख में छाले पड़ गये हों तब कत्थे को चूसने को देते हैं।

मात्रा—त्वक् चूर्ण १ से ३ माशा; कत्था १ से ६ रत्ती; क्वाथ ५ से १० तोला।

अथ श्वेतखदिरः (पपरिया कत्था)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

खदिरः श्वेतसारोऽन्यः कदरः सोमवल्कलः। कदरो विशदो वर्ण्यो मुखरोगकफास्रजित् ॥

सफेद खैर के संस्कृत नाम—श्वेतखदिर, श्वेतसार, कदर और सोमवल्कल ये सब हैं।

सफेद खैर—विशद गुणयुक्त, वर्ण को उत्तम बनाने वाला एवम्—मुखरोग, कफ तथा रक्त-विकार को दूर करने वाला है ॥ ३३ ॥

१६ सफेद खैर

हि०–सफेद खैर, पपरिया खैर। बं०–श्वेत खदिर। म०–पांढ़रा खैर। गु०–गोरंड, खेर धोका सार वालो। क०–विलिय तर्जि, विकियर्ति। ते०–तेल चंड। ता०–कोविल। ले०–*Acacia suma Kurg.* (अँकेसिया सुमा)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

यह बंगाल, बिहार एवं पश्चिम प्रायद्वीप आदि प्रान्तों में पाया जाता है।

इसका वृक्ष–खदिर वृक्ष के समान ही होता है। इसमें केवल छाल सफेद तथा शाखाएं टेढ़ी-मेढ़ी होती हैं। आभ्यन्तर कोश बाह्य कोश से अधिक बड़ा नहीं होता। सफेद खैर का एक अन्य भेद A. ferruginea (अँ. फेरूजिनिया), गुजरात, बरार तथा दक्षिण में मिलता है।

गुण और प्रयोग—यह खदिर के समान ही होने से उसी की तरह इसके भी गुण-कर्म हैं।

अथ इरिमेदः। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

इरिमेदो विट्खदिरः कालस्कन्धोऽरिमेदकः। इरिमेदः कषायोष्णो मुखदन्तगदास्रजित्। हन्ति कण्डूविषश्लेष्मकृमिकुष्ठविषव्रणान् ॥ ३४ ॥

दुर्गन्ध खैर के संस्कृत नाम—इरिमेद, विट्खदिर, कालस्कन्ध और अरिमेदक ये सब हैं।

दुर्गन्ध खैर—कषायरसयुक्त, उष्ण एवम्–मुख तथा दांत सम्बन्धी रोग, रक्तविकार, खुजली, विष, कफ, कृमि, कुष्ठ, विष-व्रण को दूर करने वाला है ॥ ३४ ॥

१७ दुर्गन्ध खैर

हि०–दुर्गन्ध खैर, गन्धबबूल, गुआ–बबूल। बं०–गुया बाब्ला। म०–गुआबाभूल, घाणेरा खैर। गु०–गन्धिलो खर, इरिमेद। अं०–The Cassie Flower (दी केसी फ्लावर)। ले०–*Acacia farnesiana Willd.* (अँकेसिया फार्नेसियाना)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है तथा लगाया भी जाता है।

इसका वृक्ष छोटा या झाड़ बड़ा १५ फीट तक कांटेदार होता है। छाल–हलके भूरे रङ्ग की खरदरी होती है। कांटे मुलायम चौथाई से आध इञ्च लम्बे सीधे होते हैं। पत्ते–उपपक्ष ४–८ जोड़े, ½–१ इञ्च या १½ इञ्च लंबे और प्रत्येक उपपक्ष में पत्रक १०–२० जोड़े एवं पर्णवृन्त छोटा तथा एक ग्रंथि से युक्त होता है। पुष्प गुच्छ–१–१½ इञ्च लंबे आते हैं। पुष्प–गहरे नारंग वर्ण के सुगन्धित होते हैं। फली–२–३ इञ्च लंबी, टेढी, अस्फोटी और लम्बगोल होती है।

इसकी जड़ तथा जड़ की छाल में तीव्र दुर्गन्ध होने के कारण इसे विट्खदिर कहा जाता है। यह नवंबर से मार्च तक पुष्पित होता है तथा इसके पुष्पों का सुगंध भी निकाला जाता है। इससे गोंद भी प्राप्त होता है।

विलायती बबूल, रेंवा (Acacia leucophloea Willd.) को भी कुछ इरिमेद मानते हैं।

रासायनिक संगठन—इसकी फली एवं छाल में टैनिन होता है। फूलों से इत्र निकाला जाता है।

गुण और प्रयोग—बबूल की तरह ही हैं। छाल ग्राही तथा स्नेहन होती हैं। कोमल पत्तों को पीसकर सोजाक में देते हैं। शुक्रतारल्य में छाल का प्रयोग करते हैं।

अथ रोहीतकः (रोहेडा) तस्य नामानि गुणांश्चाह

रोहीतको रोहितको रोही दाडिमपुष्पकः। रोहीतकः प्लीहघाती रुच्यो रक्तप्रसादनः ॥३५॥

रोहेडा के संस्कृत नाम—रोहीतक, रोहितक, रोही तथा दाडिमपुष्पक ये सब हैं।

रोहेडा—रुचिकारक, रक्त को साफ करने वाला एवम् प्लीहा को नष्ट करने वाला है ॥३५॥

१८ रोहेडा

हि०–रोहेडा, रोहिड़ा, रोहेड़ा। म०–रोहिड़ा। गु०–रोहिड़ो। ले०–*Tecomella undulata Seem.* (टेकोमेला अण्डयूलेटा)। Fam. Bignoniaceae (बिगनोनिएसी)।

यह सिन्ध, पञ्जाब, गुजरात और राजपूताना से पूर्व की ओर यमुना तक पाया जाता है।

इसका वृक्ष–झाड़दार मध्यमाकार का होता है और बारहो मास हरा भरा रहता है। पत्ते–५–१२·५×१–३·२ से. मी. बड़े, लंबे आयताकार, कुण्ठिताग्र, अखण्ड एवं लहरदार धार वाले और देखने में अनारपत्र के समान मालूम पड़ते हैं। फूल–अनार के फूल के समान अत्यन्त लाल या नारंगी रंग के आते हैं। **फलियां**–६–७ इञ्च लम्बी, तिहाई इञ्च चौड़ी और पतली एवं कुछ टेढ़ी होती हैं। **बीज**–२·५×१ से० मी० (पक्षसहित) बड़े होते हैं।

इसकी छाल का प्रयोग किया जाता है। छाल–२–८ मि. मी. मोटी, कुछ मुड़ी हुई, बाहर से खुरदरी, धूसर या कुछ श्वेताभ भूरे रंग की, लंबे एवं आडे बल में फटने से विभिन्न आकार के भागों में फटी हुई सी, भीतर से चिकनी पीताभ भूरी तथा भग्न छोटा एवं अन्दर की तरफ रेशेदार होता है। इसका स्वाद कषाय तथा तिक्त होता है।

नोट—रोहितक के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। रा० नि० ने इसके दो भेद श्वेत तथा रक्त माने हैं। इसके पर्याय दाडिम पुष्प एवं दाडिमच्छद ठीक मालूम पड़ते हैं। टे० अण्डयूलेटा के पत्ते एवं फूल अनार की तरह होते हैं। इस दृष्टि से यही शास्त्रीय रोहीतक मालूम पड़ता है।

रोहीतक नाम से व्यवहार में लाया जाने वाला अन्य वृक्ष अमूरा रोहीतक (Amoora rohituka W. & A.); मेलिएसी (Fam. Meliaceae) है। यह उत्तरप्रदेश में गोंडा से पूर्व की तरफ, बंगाल, आसाम तक एवं दक्षिण में पाया जाता है। इसका वृक्ष–छोटा, सुन्दर, शाखाएँ नीचे झुकी हुई। पत्ते–पक्षवत् १–३ फीट लंबे; पत्रक ४–७ जोड़े, ३–९ × ¾–४ इञ्च बड़े, अखण्ड, चिकने, तीक्ष्णाग्र, कुछ कुछ लम्बाग्र, एवम् फलकमूल तिरछा होता है। पुष्प–छोटे, श्वेत, एकलिंग होते हैं। फल–३खण्ड का पीला तथा१½ इञ्च व्यास में होता है। बीज–नारंगी लाल रङ्ग के होते हैं जिनमें तेल होता है। इस तेल को आमवात में मलने के काम में लिया जाता हैं। इसकी छाल–२ से ८ मि. मि. मोटी, बाहर से एक समान, गहरे भूरे रङ्ग की तथा अन्दर से रक्ताभ भूरी, बाहर से लंबाई में फटी हुई एवं सूक्ष्म आडी धारियों तथा कुछ उत्सेधों से युक्त होती है। इसका स्वाद कषाय होता है तथा यह ग्राही है। ध० नि० ने रोहीतक को सारक लिखा है इस दृष्टि से प्रथम टे० अण्डयूलेटा के ही रोहीतक होने की अधिक संभावना है।

बाजार में रोहीतक नाम से फरहद की छाल मिलती है। यह ५–१५ मि० मि० मोटी, खुरदरी, बाहर से भूरे या श्वेताभ और हलके पीताभ रङ्ग (Buff colour) के भागों में फटी हुई, अन्दर से पीताभभूरी एवं लंबाई में धारीदार चिकनी होती है। इसमें कोई स्वाद नहीं रहता।

चरक चि० अ० १३ में रोहितक लता का उल्लेख है जिससे ऐसा मालूम पड़ता है कि कोई ऐसी लता भी थी जिसका उपयोग रोहीतक नाम से किया जाता था।

गुण-कर्म—रोहीतक तिक्त, कषाय, शीत, कफ-पित्तशामक, सारक एवं यकृत्, प्लीहा, गुल्म एवं उदररोग को दूर करने वाली है। इसका यकृत् तथा प्लीहा वृद्धि में विशेष उपयोग किया जाता है।

मात्रा—त्वक्चूर्ण १ से ३ माशा; क्काथ में ½–१ तोला।

अथ बब्बूलः (बबूर)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

बब्बूलः किङ्किरातः स्यात्किङ्किराटः सपीतकः ॥ ३६ ॥
स एव कथितस्तज्ज्ञैराभाषट्पदमोदिनी। बब्बूलः कफनुद् ग्राही कुष्ठक्रिमिविषापहः ॥३७॥

बबूर के संस्कृत नाम—बब्बूल, किङ्किरात, किङ्किराट, सपीतक तथा आभाषट्पदमोदिनी ये सब द्रव्य-गुण के जानने वालों ने बतलाये हैं।

बबूर—ग्राही एवम्-कफ, कुष्ठ, क्रिमि तथा विष का नाशक है ॥ ३६–३७ ॥

१९ बबूल

हि०–बबूर, बबूल, कीकर। बं०–बावला। म०–बाभूल। गु०–बावल। क०–पुलई। ते०–नल्लतुम्म। ता०–करू बेलमरम्। फा०–मुगिलाँ। अ०–अमुगिलाँ। ले०–*Acacia arabica Willd.* (अकेसिया अरेबिका)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

यह सिंध तथा डेक्कन का आदिवासी होते हुवे भी अब सभी स्थानों में पाया जाता है।

इसका वृक्ष–मध्यमाकार का, कंटक युक्त, होता है। छाल–गहरे भूरे या काले रंग की एवं लम्बाई में फटी हुई होती है। पत्ते–संयुक्त; उपपक्ष ४–९ जोड़े, २·५ से० मी० लम्बे; पत्रक १०–२५ जोड़े, ३–६×१·२–२ मि० मि० बड़े, रेखाकार होते हैं। पुष्प–चमकीले पीले, गोल एवं मधुर गन्धि होते हैं। फली–३–६ इञ्च लम्बी, ०·५ इञ्च चौड़ी, माला की तरह बीच-बीच में सिकुड़ी हुई, टेढ़ी, मृदु रोमश एवं ८–१२ बीजों से युक्त होती है। कांटे सीधे, नुकीले तथा पर्णवृन्त के नीचे जोड़ी में आते हैं।

इसका गोंद विभिन्न आकार एवं नाप के टुकड़ो में, भूरा, लाल या हलका पीला, गन्धहीन, स्वादहीन एवं अपने से दुगने जल में पूर्णतः घुलनशील होता है।

इसका गोंद, छाल एवं फली का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—गोंद में ॲरेबिक् ॲसिड के साथ बने चूना तथा मॅग्नेशियम् के लवण होते हैं। इसकी छाल में १२%, तथा फली में २०% तक टैनिन होता है।

गुण और प्रयोग—इसका गोंद स्नेहन, ग्राही तथा पौष्टिक है। मुख के छाले, शुष्क कास, गले का सूखना आदि में इसको चूसने से लाभ होता है। मूत्रकृच्छ्र, अतिसार तथा मधुमेह में इसको खिलाते हैं। इसकी छाल संग्राहक है। इसके क्काथ के गण्डूष से मुखरोग, दांत हिलना तथा गले की शिथिलता में लाभ होता है।

इसकी फली का चूर्ण चीनी मिलाकर स्वप्नदोष, शीघ्रपतन आदि में देते हैं।

मात्रा—फली चूर्ण ३ से ६ माशा; गोंद ३ से ६ माशा।

अथारिष्टकः (रीठा)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

अरिष्टकस्तु मङ्गल्यः कृष्णवर्णोऽर्थसाधनः। रक्तबीजः पीतफेनः फेनिलो गर्भपातनः ॥
अरिष्टकस्त्रिदोषघ्नो ग्रहजिद् गर्भपातनः ॥ ३८ ॥

रीठा के संस्कृत नाम—अरिष्टक, मङ्गल्य, कृष्णवर्ण, अर्थसाधन, रक्तबीज, पीतफेन, फेनिल और गर्भपातन ये सब हैं।

रीठा—त्रिदोषनाशक, ग्रहबाधा को दूर करने वाला एवम् गर्भ को गिराने वाला है ॥ ३८ ॥

२० रीठा

हि०–रीठा। बं०–रीठेगाछ। म०–रीठा, रिठा। गु०–अरीठा। ते०–कुंकुडु। क०–कुकुटे कायि। ता०–पोन्नान कोट्टइ। अ०–बुन्दक हिन्दी। फा०–फुन्दुके फारसी। अं०–Soap nut Tree of North India (सोपनट ट्री ऑफ नार्थ इण्डिया)। ले०–*Sapindus mukorossi Gaertn.* (सेपिन्डस मुकोरोसी)। Fam. Sapindaceae (सेपिन्डेसी)।

उत्तर पश्चिम भारत, बंगाल तथा आसाम में इसके लगाये पेड़ पाये जाते हैं तथा हिमालय में ४००० फीट तक यह होता है।

इसका **वृक्ष**-सुन्दर होता है। **पत्ते**-संयुक्त, शाखाग्र पर समूहबद्ध एवं **पत्रक** १०-१६, २-६ × $\frac{३}{४}$-२$\frac{१}{२}$ इञ्च बड़े, मालाकार, आयताकार, एकान्तर या न्यूनाधिक विपरीत, तीक्ष्णाग्र या कुंठिताग्र, चिकने एवं आधार पर तिर्यक् होते हैं। **पुष्प**-मंजरियों में $\frac{१}{२}$ इञ्च व्यास के एवं श्वेत या बैंगनी रंग के होते हैं। **फल**-मांसल, पीत या हलके भूरे, कुछ गोलाई लिये हुवे, $\frac{३}{४}$ इञ्च व्यास के तथा पानी में डालने से फेन उत्पन्न करने वाले होते हैं।

इसकी एक जाति से० ट्राइफोलिएटस् (S. trifoliatus Linn.) दक्षिण तथा पश्चिम भारत में गाँवों के आसपास होती है और बंगाल तथा अन्य स्थानों में लगाये हुवे इसके पेड़ पाये जाते हैं। इसमें **पत्रक**-२-३ जोड़े, ३-७ × १-४ इञ्च, मालाकार, तीक्ष्णाग्र या लंबाग्र एवं ऊपर की ओर चमकीले होते हैं। **पुष्प**-मटमैले श्वेत होते हैं। **फल**-२-३ खण्ड युक्त, मांसल, कच्चे में रक्ताभ पीत रोमों से आवृत तथा पकने पर चिकना तथा झुर्रीदार होता है।

एक अन्य जाति से० एमार्जिनेटस् (S. emarginatus Vahl.) जिसे पहले से० ट्राइफोलिएटस् का पर्याय मानते थे अब स्वतन्त्र जाति मानी जाती है। इसके **वृक्ष** छायादार होते हैं। **पत्रक**-२ से ३ जोड़े, आयताकार या अंडाकार, कभी-कभी अभिलट्वाकार, कुंठित या द्विविभक्त अग्रवाले और २$\frac{१}{२}$-६ इञ्च लम्बे होते हैं। **पुष्प**-श्वेत एवं **फल**-पकने पर २,३ खण्डों के होते हैं।

रीठे के फलों का उपयोग रेशमी, सूती और मूल्यवान कपड़ों के धोने के लिये किया जाता है। चिकित्सा में फलों का उपयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—रीठे में सॅपोनिन (Saponin) बहुत होता है।

गुण और प्रयोग—इसके फल का गूदा उष्ण, तिक्त, स्निग्ध, विषहर, कफघ्न, वामक एवं वातहर है। अधिक मात्रा में यह वामक तथा रेचन है। इससे वमन शीघ्र होता है तथा कोई नुकसान नहीं होता। यह इपीकाक का प्रतिनिधि है।

इसका लेप वेदनास्थापन तथा शोथघ्न है।

(१) श्वास, कास आदि में कफ निकालने के लिये इसको वामक रूप में देते हैं।

(२) अर्धावभेदक तथा श्वास में इसका नस्य लाभदायक है।

(३) अफीम की विषाक्तता में वमन कराने के लिये इसका पानी देते हैं।

(४) इसका **लेप** कुष्ठ, कण्डु, संधिशोथ, विस्फोट, गण्डमाला एवं बिच्छू, गोजर तथा मधुमक्खी काटने पर किया जाता है।

मात्रा—कफघ्न ५ से १० रत्ती; वामक १ से २ ड्राम।

अथ पुत्रजीवः (पितौंजिया)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

पुत्रजीवो गर्भकरो यष्टीपुष्पोऽर्थसाधकः ॥ ३९ ॥
पुत्रजीवो गुरुर्वृष्यो गर्भदः श्लेष्मवातहृत्। सृष्टमूत्रमलो रूक्षो हिमः स्वादुः पटुः कटुः ॥४०॥

पितौंजिया के संस्कृत नाम—पुत्रजीव, गर्भकर, यष्टीपुष्प और अर्थसाधक ये सब हैं।

पितौंजिया—स्वादिष्ट, कटु तथा लवण रस युक्त, गुरु, वृष्य (वीर्यवर्धक), गर्भदायक, मूत्र तथा मल की प्रवृत्ति कराने वाला, रूक्ष तथा शीतल है। एवम् कफ तथा वात को नष्ट करने वाला है ॥ ३९-४० ॥

२१ पितौंजिया

हि०-जियापोता, पितौंजिया। **बं०**-जिया पुन्ता। **म०**-पुत्र जीव। **गु०**-पुत्र जीवक। **क०**-पुत्र जीव। **ते०**-कुड्रु जीवि। **ले०**-*Putranjiva roxburghii Wall.* (पुत्रन्जीव रॉक्सबरघाई)। Fam. Euphorbiaceae (यूफर्बिएसी)।

पितौंजिया—इस देश के गरम प्रान्तों में पाया जाता है। यह जंगली और बागों में भी लगाया हुआ पाया जाता है। इसका **वृक्ष**-मध्यमाकार का होता है और बारहो मास हरा भरा सुहावना दीखाई पड़ता है। शाखायें प्रायः लटकी हुई रहती हैं। **छाल**-कालापन युक्त खाकी रङ्ग की होती है। **पत्ते**-द्विपंक्ति, चमकदार, प्रासवत् या आयताकार एवं पत्रतट प्रायः लहरदार होता है। **पुष्प**-पुंपुष्प पीताभ तथा स्त्री पुष्प हरिताभ होते हैं। **फल**-झर बेर के आकार के, श्वेताभ तथा स्थायी कुक्षिवृन्त से युक्त होने के कारण नोकीले होते हैं।

जिनके लड़के पैदा होते ही मर जाया करते हैं वे लोग इसके गुठलियों की माला पहनते हैं।

गुण और प्रयोग—ज्वर तथा प्रतिश्याय में पत्र तथा फलों का क्वाथ पिलाते हैं। गुठलियों को घिसकर शिरःशूल में लगाया जाता है। फोड़े आदि पर लेप करने से वेदना कम होती है। सभी प्रकार के विषों में इसकी मज्जा को शीत जल में पीसकर बाह्याभ्यन्तर प्रयोग करते हैं।

अथेङ्गुदः (हिङ्गोट)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

इङ्गुदोऽङ्गारवृक्षश्च तिक्तकस्तापसद्रुमः। इङ्गुदः कुष्ठभूतादिग्रहव्रणविषक्रिमीन् ॥
हन्त्युष्णः श्वित्रशूलघ्नस्तिक्तकः कटुपाकवान् ॥ ४१ ॥

हिङ्गोट के संस्कृत नाम—इङ्गुद, अङ्गारवृक्ष, तिक्तक और तापसद्रुम ये सब हैं।

हिङ्गोट—तिक्तरसयुक्त, विपाक में कटुरसयुक्त, उष्ण एवम् कुष्ठ, भूतादि-ग्रहबाधा, व्रण, विष, क्रिमि, श्वेतकुष्ठ तथा शूल का नाशक है ॥ ४१ ॥

२२ हिंगोट

हि०-हिंगोट हिंगन, इंगुआ। **बं०**-हिंगोन। **म०**-हिंगण। **गु०**-हङ्गोरीओ। **क०**-इङ्गलगिद। **ते०**-गरा, गारि। **ता०**-नन्जुन्द। **ले०**-*Balanites roxburghii Planch.* (बेलेनाईटीस् रॉक्सबरघाई)। Fam. Simarubaceae (सिमेरूबेसी)।

यह भारत के शुष्क भागों में दक्षिण-पूर्व पंजाब एवं दिल्ली से सिक्किम, बंगाल, मध्यभारत बम्बई तथा दक्षिण में होता है।

इसका **वृक्ष** या गुल्म करीब २० फीट तक होता है। शाखाओं पर मजबूत, सीधे, पर्णयुक्त, पत्रकोणीय या पत्रों के पार्श्व में कांटे होते हैं। **पत्ते**-द्विपत्रक एवं अवृन्त; **पत्रक**-अण्डाकार, अभिलट्वाकार या अभि-प्रासवत्, $\frac{३}{४}$-१$\frac{१}{२}$ इञ्च बड़े होते हैं। **पुष्प**-हरिताभ पीत एवं सुगन्धि होते हैं। **फल**-अष्ठिल, अण्डाकार, १$\frac{३}{४}$-२$\frac{३}{४}$ इञ्च लम्बे, हलकी ५ धारियों वाले एवं पकने पर हलके पीले होते हैं। गूदा मधुर, $\frac{१}{२}$ इञ्च मोटा एवं उग्रगन्धि होता है। गुठली में एक बीज तैल युक्त होता है। बीज में ४३% पीले रंग का स्वादहीन तेल होता है। इसके गूदे को खाया जाता है तथा सिल्क को साफ करने के काम आता है।

रासायनिक संगठन—फल के गूदे में ७·२% सॅपोनिन पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल तथा फल का गूदा कफघ्न, कृमिघ्न, कुष्ठघ्न एवं विरेचक होता है। अपक्व फल तीव्र विरेचक होता है। पुराने कफ विकारों में गूदे को खिलाते हैं। व्रण तथा अग्निदग्ध व्रण पर इसका तेल लगाते हैं।

मात्रा—गूदा १–५ रत्ती कफघ्न; १०–२० रत्ती विरेचक।

अथ जिङ्गिनी। तस्या नामानि गुणांश्चाह

जिङ्गिनी झिङ्गिनी झिङ्गी सुनिर्यासा प्रमोदिनी॥ ४२॥
जिङ्गिनी मधुरा सोष्णा कषाया योनिशोधिनी। कटुका व्रणहृद्रोगवातातीसारहृत् पटुः॥

जिङ्गिनी के संस्कृत नाम—जिङ्गिनि, झिङ्गनी, झिङ्गी, सुनिर्यासा तथा प्रमोदिनी ये सब हैं।

जिङ्गिनी—मधुर, कटु, कषाय तथा लवण रसयुक्त, उष्ण, योनि शोधक एवम्-व्रण, हृद्रोग, वात तथा अतीसार को दूर करने वाली है॥ ४२–४३॥

२३ जिंगिनी

हि०–जिंगना, जिंगन। **म०**–मोयी, मुयी। **गु०**–मवेडी, शिंपटी। **क०**–उडी मरम। **बं०**–जिओल। **ते०**–गमपेना। **ले०**–*Odina woodier Roxb.* (ओडिना वुडियर)। Fam. Anacardiaceae (ॲनाकार्डिएसी)।

यह इस देश में प्रायः गरम प्रान्तों में अधिक पाया जाता है। इसका वृक्ष–मध्यमाकार का होता है और वह अधिक दिन तक नहीं ठहरता। इसके स्तम्भ से एक प्रकार का गोंद निकलता है। **पत्ते**–पक्षवत, मोटे एवं टहनियों के अग्र पर दलबद्ध रहते हैं। **पत्रक**–५–९, विपरीत, लम्बाग्र, लट्वाकार और तिरछे फलक मूल वाले होते हैं। **पुष्प**–छोटे, पीताभहरित तथा एकलिंग होते हैं एवं दोनों प्रकार के पुष्पों की मंजरियां पृथक्-पृथक् रहती हैं। **फल**–½ इञ्च लम्बे, टेढ़े, आयताकार, चिपटे, एवं गुठलीदार होते हैं। काण्ड में स्टार्च बहुत होता है इससे इसे हाथी बड़े चाव से खाते हैं। इसकी डालियों को गाड़ देने से लग जाती हैं।

औषध में गोंद तथा छाल का उपयोग करते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका गोंद स्नेहन तथा संग्राहक है। छाल संग्राहक एवं व्रणरोपण है।

(१) छाल का क्वाथ पिलाने से प्यास दूर होती है। इससे कुल्ला करने से गले की शिथिलता, खांसी तथा दंतपीडा दूर होती है। इसको अतिसार में देते हैं।

(२) छाल के क्वाथ से सिद्ध तेल पुरानें व्रण पर लगाते हैं।

(३) पत्तों को उबालकर शोथ पर बांधते हैं।

(४) छाल का स्वरस हथियार से कटे व्रण पर डालनें से शीघ्र रोपण होता है।

(५) इसका गोंद अतिसार में देते हैं। मोच आदि में इसको नारियल के पानी में पीसकर लेप करते हैं।

अथ तमालः। तस्य नामानि गुणांश्चाह

तमाल उक्तस्तापिच्छः कालस्कन्धोऽसितद्रुमः।
लोकस्कन्धो नीलध्वजो नीलतालश्च स स्मृतः॥
तमालः शालवद्वेद्यो दाहविस्फोटहृत् पुनः॥ ४३॥

तमाल के संस्कृत नाम—तमाल, तापिच्छ, कालस्कन्ध, अमितद्रुम, लोकस्कन्ध, नीलध्वज और नीलताल ये सब हैं।

तमाल—गुणोंमें साखू की भाँति समझना चाहिये, किन्तु विशेषतः यह दाह तथा विस्फोट का नाशक है॥ ४४॥

नोट—कर्पूरादिवर्ग में तमालपत्र का वर्णन किया जा चुका है किन्तु यह उससे भिन्न वृक्ष है। जिस वृक्ष का नीचे वर्णन किया जा रहा है उसे दक्षिण में तमाल कहते हैं। वास्तव में यही तमाल है कि नहीं इस सम्बन्ध में अभी अनुसंधान की आवश्यकता है।

२४ तमाल

हि०–तमाल। **बं०**–तमाल गाछ। **ते०**–पसुपुवर्णे। **म०**–तमाल वृक्ष। **गु०**–तमाल। **ता०**–पुमक्की। **क०**–जारिगेहुलि। **अं०**–Indian Gamboge Tree (इण्डियन गॅम्बोज ट्री)। **ले०**–*Garcinia morella Desr.* (गार्सिनिया मोरेला)। Fam. Guttiferae (गट्टिफेरी)।

तमाल—पूरब बङ्गाल के जङ्गलों में, खासिया पहाड़ एवं प० घाट में उत्तर कनारा से दक्षिण में ट्रावनकोर तक, ३००० फीट की ऊचाई तक पाया जाता है।

इसका वृक्ष छोटा तथा सदाहरित होता है और शाखाएं फैली हुई होती हैं। **पत्ते**–३ से ५×१½ से २½ इञ्च, अण्डाकार भालाकार एवं दोनों तरफ क्रमशः संकुचित होते हैं। **फूल**–एकलिंगी जिनमें पुंपुष्प की अपेक्षा स्त्री पुष्प बड़े होते हैं। **फल**–गोल, ¾ इञ्च व्यास में, चारखण्ड युक्त एवं **बीज**–४, गहरे भूरे, अण्डाकार या वृक्काकार होते हैं।

गॅम्बोज (Gamboge)—तमाल वृक्ष की छाल में घाव करने से एक पीले रंग का तरल राल जैसा पदार्थ प्राप्त होता है जिसे सूखने पर **गॅम्बोज** (Gamboge) कहते हैं। यह भूरे पीले रंग के टुकड़ो में प्राप्त होता है तथा इसका स्वाद कुछ कटु होता है। जल के साथ इसका पीला घोल (इमल्शन) बनता है जो अमोनिया मिलाने से स्वच्छ एवं गहरे नारंग रक्त वर्ण का हो जाता है। इसे **गोटगनबा** भी कहा जाता है। इसकी अन्य जातियों से भी यह प्राप्त होता है किन्तु वह निकृष्ट श्रेणी का होता है।

भारत में अपने यहां के वृक्षों से इसका संग्रह कम किया जाता है और अधिकतर बजार में बिकने वाला गॅम्बोज स्याम, कम्बोडिया आदि से आता है। यह गा. हॅनबुरी (G. hanburyi) नामक जाति जो स्याम में होती है उससे निकाला जाता है। दस वर्ष पुराने वृक्ष की छाल में, वर्षा ऋतु में, कुन्तल (Spiral) चीरा लगाते हैं तथा नीचे बांस के टुकड़े लगा देते हैं जिसमें इसे संग्रह कर फिर पतले बांसों में १ महिना रखते हैं, जिससे यह जम जाता है। बाद में इन्हें आग पर गरम करते हैं जिससे बांस चटक कर यह अलग हो जाता है। यह २–५ से. मी. व्यास के लंबे, बेलनाकार, रक्ताभ पीत या भुरापन लिये नारंग वर्ण के टुकड़ों में होता है जिसकी सतह पर बांस के अन्दर की धारियों के निशान दिखलाई देते हैं। कभी-कभी यह अंदर से पोला होता है।

इसे बजार में **उसारे रेवन्द** कहा जाता है किन्तु यह रेवन्द चीनी (हीअम् एमोडी–Rheum emodi नामक गुल्म की मूल) का उसारा (सत्व) नहीं है। इसे कुछ विद्वान् कंकुष्ठ भी मानते हैं। औषध के अतिरिक्त इसका रंग के लिये उपयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजों में ३०% गाढ़ा स्नेह होता है। यह भूरापन लिये पीला होता है तथा खाद्य के रूप में काम में आता है। इसके बीजावरण, काण्डत्वक्, पत्र तथा फलों में एक पीला रंजक द्रव्य मोरेलीन (Morellin, $C_{33}H_{38}O_7$) पाया जाता है जो पूयोत्पादक

दण्डाणु, माइक्रोकोकस् पायोजेनीज हेराइटी ऑरियस् (Micrococcus pyogenes var. aureus) का नाशक है। गॅम्बोज में मुख्यतया राल तथा गोंद जैसे पदार्थ होते हैं।

गुण और प्रयोग—गॅम्बोज तीक्ष्ण विरेचन है। इससे पानी जैसे पतले दस्त होते हैं। इसकी क्रिया इन्द्रायण के फल की तरह होती है। इसे कृमिघ्न भी मानते हैं। रक्तभाराधिक्य में शीघ्र विरेचन कराने की आवश्यकता होने पर इसे देते हैं। जलोदर, अनार्तव तथा कृमि रोग में इसका उपयोग किया जाता है।

अधिक मात्रा से पाचन संस्थान के अंगो पर तीव्र प्रक्षोभक क्रिया होकर मरोड, वमन आदि होकर मृत्यु भी हो सकती है। १ ड्राम मात्रा से मृत्यु हुई है।

मात्रा—¼–½ गुंजा सुगंधि द्रव्य के साथ।

अथ तूणी। तस्या नामगुणानाह

तूणी तुन्नक आपीनस्तुणिकः कच्छकस्तथा। कुठेरकः कान्तलको नन्दीवृक्षश्च नन्दकः ॥४५॥
तूणी रक्तः कटुः पाके कषायो मधुरो लघुः। तिक्तो ग्राही हिमो वृष्यो व्रणकुष्ठास्रपित्तजित् ॥

तून के संस्कृत नाम—तूणी, तुन्नक, आपीन, तुणिक, कच्छक, कुठेरक, कान्तलक, नन्दीवृक्ष और नन्दक ये सब हैं।

तून—कषाय, मधुर तथा तिक्त रसयुक्त, विपाक में कटु रसयुक्त, रक्तवर्ण, लघु, ग्राही, शीतल, वृष्य (वीर्यवर्धक) एवम् व्रण, कुष्ठ, रक्तविकार, पित्त या रक्तपित्त का नाशक है ॥४५-४६॥

२५ तून

हि०–तुन, तून, तूनी, महानिम। **बं०**–तूनगाछ। **म०**–तूणी, कूरक। **गु०**–तूणी। **ता०**–तूनमरम्। **ते०**–नन्दि वृक्षमु। **क०**–बिलिगंधगिरि। **अं०**–The Toon (दि तून)। **ले०**–*Cedrela toona Roxb.* (सेड्रेला तून)। Fam. Meliaceae (मेलिएसी)।

यह हिमालय के निचले प्रदेशों में ४००० फीट तक, आसाम, बंगाल, छोटा नागपूर, पश्चिमी घाट एवं दक्षिण प्रायद्वीप में होता है।

इसका **वृक्ष**–ऊंचा या मध्यम ऊंचाई का, ७०–१०० फीट तक होता है। **पत्ते**–सदल पर्ण, १–२½ फीट लंबे; पत्रक ५–१२ जोड़े, मालाकार या आयताकार-मालाकार, ३–७ इञ्च लंबे, अखण्ड, सवृन्त तथा तिरछे फलक मूल वाले होते हैं। **पुष्प**–छोटे, सुगंधित तथा नवीन टहनियों पर निकलते हैं। **फली**–१ इञ्च तक लंबी आयताकार होती है। **बीज**–दोनों सिरों पर सपक्ष होते हैं। इसकी लकड़ी फर्नीचर बनाने के काम आती है। छाल तथा पुष्प का उपयोग चिकित्सा में किया जाता है।

रासायनिक संगठन—फूलों में लाल रंजक द्रव्य निकटॅन्थिन् (Nyctanthin, $C_{15}H_{18}O_3$) होता है जो पारिजाता के रंजक द्रव्य के समान होता है। छाल में टेनिक एसिड, कडुवी राल, साइट्रिक ॲसिड, स्टार्च तथा अन्य द्रव्य होते हैं। इसमें कोई क्षाराभ नहीं पाया गया है। राख में चूना (Calcium) काफी होता है। काष्ठ में ०·४४% स्वर्ण पीत रंग का उड़नशील तैल होता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल ग्राही, बल्य, पौष्टिक एवं अल्प प्रमाण में ज्वर प्रतिबंधक है। पुष्प गर्भाशय संकोचक हैं।

(१) बच्चों के जीर्ण अतिसार आदि में छाल का प्रयोग करते हैं। विषम ज्वर में दस्त होते हों तो इसको दिया जाता है।

(२) गर्भाशय की शिथिलता के कारण यदि अत्यार्तव हो तो पुष्प या छाल का फांट देते हैं।

(३) छाल का लेप या चूर्ण व्रण पर लगाने से व्रण का संकोचन अच्छा होता है।

मात्रा—छाल २½ तोला फांट बनाकर काली मिर्च के साथ।

अथ भूर्जपत्रः (भोजपत्र)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

भूर्जपत्रः स्मृतो भूर्जश्चर्मी बहुलवल्कलः। भूर्जो भूतग्रहश्लेष्मकर्णरुक्पित्तरक्तजित् ॥ ४७ ॥
कषायो राक्षसघ्नश्च मेदोविषहरः परः ॥ ४८ ॥

भोजपत्र के संस्कृत नाम—भूर्जपत्र, भूर्ज, चर्मी, तथा बहुलवल्कल ये सब हैं।

भोजपत्र—कषाय रसयुक्त एवम् भूतग्रहबाधा, कफ तथा कर्ण सन्बन्धी रोग, पित्त, रक्तविकार तथा राक्षसबाधा का नाशक है। और विशेषतः यह मेद तथा विष को दूर करने वाला है ॥ ४७–४८ ॥

२६ भोजपत्र

हि०–भोजपत्र, भूजपत्र, भोजपत्तर। **बं०**–भूजिपत्र। **म०**–भूर्जपत्र। **ते०**–भोजपत्रमु। **अं०**–Himalayan Silver Birch (हिमालयन् सिल्व्हर बर्च)। **ले०**–*Betula utilis D. Don.* (बेटुला यूटिलिस्)। Fam. Betulaceae (बेटुलेसी)।

यह गरम हिमालय में काश्मीर में ७ से १२ हजार फीट तक और सिक्कम में ९ से १४ हजार फीट तक और भूटान में उत्पन्न होता है।

इसका **वृक्ष**–४०–६५ फीट तक ऊँचा होता है। **छाल**-चिकनी, चमकीली, सफेद या किञ्चित लाली युक्त सफेद, आड़े धब्बेदार (Lenticel) पर्त के पर्त, कागज के समान एक साथ सटी रहती है और वह आसानी से पृथक् पृथक् हो जाती है। **पत्ते**–२–३ इञ्च तक लम्बे, १½ इञ्च चौड़े, लट्वाकार, लम्बाग्र, दन्तुर एवं नये पत्ते पीत रालीय बिन्दुओं से युक्त होने के कारण चिपचिपे होते हैं। **फूल**–बारीक मञ्जरियों में आते हैं और **फल**–काष्ठवत् गोल होते हैं। वृक्ष की छाल को ही भोजपत्र कहते हैं। प्राचीन काल में इनका लिखने के काम में प्रयोग किया जाता था।

इसकी एक अन्य जाति बे. अल्नाइडीस (B. alnoides Buch.) होती है जिसके पेड़ १०० फीट तक ऊंचे होते हैं। छाल मोटे परतों में छूटती है तथा धब्बे छोटे होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें बेटुलिन (Betulin) तथा उड़नशील तैल पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल का क्वाथ वातानुलोमक एवं प्रतिदूषक होता है। इसे कामला, पैत्तिक ज्वर एवं योषापस्मार में दिया जाता है। कर्णस्राव तथा विषाक्त व्रण प्रक्षालन के लिये भी इसका उपयोग करते हैं।

इसके पत्र उत्तेजक एवं स्तम्भन माने जाते हैं। भूतबाधा एवं ग्रह दोष में इसका धूप दिया जाता है।

मात्रा—क्वाथ ५ से १० तोला; चूर्ण १–२ माशा।

अथ पलाशः (ढाक)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

पलाशः किंशुकः पर्णो यज्ञियो रक्तपुष्पकः। क्षारश्रेष्ठो वातपोथो ब्रह्मवृक्षः समिद्वरः ॥४९॥
पलाशो दीपनो वृष्यः सरोष्णो व्रणगुल्मजित्।
भग्नसंधानकृद् दोषग्रहण्यर्शः क्रिमीन् हरेत् ॥

कषायः कटुकस्तिक्तः स्निग्धो गुदजरोगजित् ॥ ५० ॥

ढाक के संस्कृत नाम—पलाश, किंशुक, पर्ण, यज्ञिय, रक्तपुष्पक, क्षारश्रेष्ठ, वातपोथ, ब्रह्मवृक्ष तथा समिद्वर ये सब हैं।

ढाक—कषाय, कटु तथा तिक्त रस युक्त, अग्निदीपक, वृष्य (वीर्यवर्धक), सारक, उष्ण, टूटी अस्थियों को जोड़ने वाला, स्निग्ध एवम्–व्रण, गुल्म, वातादिक दोष, ग्रहणी, अर्श (बवासीर), क्रिमि तथा गुदा में उत्पन्न होने वाले रोगों को दूर करता है ॥ ४८–५० ॥

अथ तत्पुष्पफलयोर्गुणानाह

तत्पुष्पं स्वादु पाके तु कटु तिक्तं कषायकम् ॥ ५१॥
वातलं कफपित्तास्रकृच्छ्रजिद् ग्राहि शीतलम् । तृड्दाहशमकं वातरक्तकुष्ठहरं परम् ॥ ५२ ॥
फलं लघूष्णं मेहार्शःक्रिमिवातकफापहम् । विपाके कटुकं रूक्षं कुष्ठं गुल्मोदरप्रणुत् ॥ ५३ ॥

ढाक के फूल—स्वादिष्ट, तिक्त तथा कषाय रस युक्त, विपाक में कटु रस युक्त, वातजनक, कफ–पित्त, रक्तविकार तथा मूत्रकृच्छ्रनाशक, ग्राही, शीतल, तृषा और दाह को शमन करने वाले एवम् वातरक्त तथा कुष्ठ को अत्यन्त दूर करने वाले होते हैं।

ढाक के फल—लघु, उष्ण, विपाक में कटु रस युक्त, रूक्ष एवम्–प्रमेह, अर्श, क्रिमि, वात, कफ, कुष्ठ, गुल्म तथा उदररोग के नाशक हैं ॥ ५१–५३ ॥

२७ ढाक

हि०–ढाक, पलाश, परास, टेसू। **बं०**–पलाश गाछ। **म०**–पळस। **गु०**–खाखरो। **मु०**–खाकरो। **क०**–मुत्तग। **ते०**–मोदुगु। **ता०**–पलासु। **अं०**–The Forest flame (दि फॉरेस्ट फ्लेम)। **ले**–Butea frondosa Koen. ex Roxb. (ब्यूटिया फ्रॉन्डोसा)। Fam. Leguminosae (लेग्यूमिनोसी)।

यह अत्यन्त शुष्क भागों को छोड़कर प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है और इसको वाटिकाओं में भी रोपण करते हैं।

इसके वृक्ष–छोटे या मध्यम ऊँचाई के होते हैं तथा समूहों में रहते हैं। **पत्ते**–त्रिपत्रक होते हैं। **पत्रक**–१० से २० से० मी० चौड़े, कर्कश, ऊपर से कुछ चिकने किन्तु नीचे मृदु रोमश तथा उभरी हुई शिराओं से युक्त होते हैं। अग्र पत्रक तिर्यगायताकार, वृन्त की तरफ कुछ पतला या अभि अंडाकार, कुण्ठिताग्र या खण्डिताग्र एवं बगल के तिर्यक् अण्डाकार होते हैं। **पुष्प**–बड़े, सुन्दर, नारंग रक्तवर्ण के होते हैं जो प्रायः पत्रहीन शाखाओं पर एकसाथ बहुत होते हैं। स्वरूप में ये दूर से सुग्गे की चोंच की तरह मालूम होने से इसे किंशुक कहा जाता है। **फली**–१२·५–२० × २·५–५ से० मी० बड़ी, अग्र की तरफ एक बीज युक्त होती है। **बीज**–चिपटे, वृक्काकार, २५–३८ मि० मी० लंबे, १६–२५ मि० मी० चौड़े, १·५–२·० मि० मी० मोटे, रक्ताभ भूरे, चमकीले, सिकुड़नयुक्त, स्वाद में कुछ कटु एवं तिक्त तथा गंध हलकी होती है। **इसका गोंद** (Bengal Kino–बंगाल किनो)–रक्तवर्ण, सूखने पर कृष्णाभरक्त, भंगुर और चमकदार होता है।

इसके बीज, पुष्प तथा गोंद का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—बीजों में १८% स्वादहीन तेल, अलब्यूमिनाभ द्रव्य, शर्करा तथा पुष्पों में ग्लूकोसाइड १·५% पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके बीज कृमिघ्न, भेदन तथा कुष्ठघ्न हैं। पुष्प–मूत्रजनन हैं। गोंद उत्तम ग्राही है।

(१) इसके ताजे, कीड़ों द्वारा न खाये हुये बीज, केंचुवे (Round worm–राउण्ड वर्म) के लिये सैन्टोनिन (Santonin) की तरह लाभप्रद होते हैं। इसका स्वाद अच्छा नहीं रहता तथा कभी कभी इससे मिचली, पेट में दर्द या वमन हो सकता है। छिलका निकाल कर बीज देने से दस्त नहीं होता किन्तु छिलके के साथ देने से दस्त होता है।

(२) बीजों को नींबू के रस के साथ घिसकर दाद आदि चर्म रोगों में लगाते हैं।

(३) गोंद अतिसार, प्रवाहिका तथा भोजनोपरान्त गले में खट्टा पानी आता हो तब देते हैं।

(४) फूलों का फांट शोरे के साथ मूत्रावरोध में पिलाया जाता है तथा फूलों से पेडू, कमर आदि सेंकते हैं।

मात्रा—बीजचूर्ण ५–१० रत्ती, गोंद ५–१५ रत्ती।

अथ शाल्मलिः (सेमर)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

शाल्मलिस्तु भवेन्मोचा पिच्छिला पूरणीति च।
रक्तपुष्पा स्थिरायुश्च कण्टकाढ्या च तूलिनी ॥ ५४ ॥
शाल्मली शीतला स्वाद्वी रसे पाके रसायनी।
श्लेष्मला पित्तवातास्रहारिणी रक्तपित्तजित् ॥ ५५ ॥

सेमर के संस्कृत नाम—शाल्मलि, मोचा, पिच्छिला, पूरणी, रक्तपुष्पा, स्थिरायु, कण्टकाढ्या तथा तूलिनी ये सब हैं। **सेमर**–रस तथा विपाक में मधुर रसयुक्त, शीतल, रसायन, कफजनक एवम्–पित्त, वात, रक्तविकार या वातरक्त तथा रक्तपित्त को दूर करने वाला होता है। इसके पुष्पों के गुण आगे शाकवर्ग में दिये हुये हैं।

२८ सेमर

हि०–सेमर, सेमल। **बं०**–शिमुल गाछ, रक्त सिमुल। **म०**–कांटे सांवर, लाल सांवर। **गु०**–शेमलो, सीमुलो। **ते०**–बुरूग चेट्टु। **ता०**–शालवघु। **मा०**–शेमळ, सरमलो। **अं०**–Silk Cotton Tree (सिल्क काटन ट्री)। **ले०**–*Bombax malabaricum DC.* (बॉम्बॅक्स मालाबारिकम्)। Fam. Bombacaceae (बाम्बेकेसी)।

सेमर—इस देश के प्रायः सब प्रान्तों के वन, उपवन और वाटिकाओं में उत्पन्न होता है।

इसके वृक्ष–बहुत विशाल और मोटे हुआ करते हैं। डालियों पर छोटे-छोटे नुकीले कांटे होते हैं। सतिवन के पत्तों के समान इसके **पत्ते**–एक एक डण्डी के अन्त में ५–७ फैले हुये होते हैं। **फूल**–लाल। पुष्पदल–मोटा, लुआबदार एवं २–३ इञ्च तक लम्बा होता है। **फल**–५–६ इञ्च लम्बे, लम्ब गोलाकार, काष्ठवत् एवं हरे होते हैं और उनके भीतर रेशम जैसी रूई तथा काले बीज होते हैं। इसके १–१॥ साल के छोटे वृक्ष के मूल निकाल कर सुखा लेते हैं जिन्हें सेमल मूसली कहा जाता है।

इसके पुष्प, गोंद तथा कंद का उपयोग किया जाता है। गोंद का आगे स्वतंत्र वर्णन किया गया है।

रासायनिक संगठन—बीजों में स्नेह २२·३% होता है।

गुण और प्रयोग—सेमल मुसली स्नेहन, संग्राहक, पौष्टिक, बृंहण तथा वयःस्थापन है। जननेन्द्रिय पर इसकी कुछ उत्तेजक क्रिया होती है।

(१) इसका १ तोला चूर्ण १ तोला चीनी के साथ १० तोले जल में घोलकर वाजीकरण के लिये पिलाते हैं।

(२) कोमल फल मूत्रजनन होते हैं तथा मूत्रकृच्छ्र में बहुत लाभ करते हैं। यह पाठा की तरह मूत्रेन्द्रिय के लिये शामक होते हैं।

(३) इसके पुष्प, पोस्ते का बीज, चीनी एवं दूध उबालकर अर्श में दिन में ३ बार पिलाते हैं।

(४) गांठों की सूजन पर पत्तों को पीसकर लगाते हैं।

(५) इसके कांटों को मुहांसे आदि पर लगाने से लाभ होता है।

मात्रा—सेमल मूसली चूर्ण ½-१ तोला; फल चूर्ण १ से ३ माशा; पुष्प १ से २ तोला।

अथ मोचरसः। तस्य नामानि गुणांश्चाह

निर्यासः शाल्मलेः पिच्छा शाल्मलीवेष्टकोऽपि च।
मोचास्रावोमोचरसो मोचनिर्यास इत्यपि ॥ ५६ ॥
मोचास्रावो हिमो ग्राही स्निग्धो वृष्यः कषायकः।
प्रवाहिकाऽतिसारामकफपित्तास्रदाहनुत् ॥ ५७ ॥

मोचरस के संस्कृत नाम—शाल्मलिनिर्यास, पिच्छा, शाल्मलीवेष्टक, मोचास्राव, मोचरस, और मोचनिर्यास ये सब हैं।

मोचरस—कषाय रसयुक्त, शीतल, ग्राही, स्निग्ध, वृष्य (वीर्यवर्धक) एवम्—प्रवाहिका अतीसार, आम, कफ, पित्त, रक्तविकार तथा दाह को दूर करने वाला होता है ॥ ५६–५७ ॥

२९ मोचरस

हि०—मोचरस, सेमर का गोंद। बं०—मोचरस, शिमुलेर आटा। म०—सांवरी चा डीक। गु०—शेमलानो गुन्द। अं०—Gum of Silk Cotton Tree (गम् आफ् सिल्क काटन ट्री)।

सेमर वृक्ष के गोंद को "मोचरस" कहते हैं। यह सेमर वृक्ष के स्तम्भ से जहां कीड़े आदि डंक से छिद्र कर देते हैं निकलता है। यह ताजेपन में भूरे रंग का, फिर लाल होता है तथा पुराना होने पर काला सीसम के रंग का हो जाता है। यह भंगुर, पोला तथा हलका होता है। जल में डालने पर यह फूलता है। इसका स्वाद कषाय होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें कॅटेच्यूटैनिक असिड (Catechutannic acid) रहता है।

गुण और प्रयोग—यह कषाय, शोणितास्थापन, वेदनास्थापन, स्नेहन, जोरदार संग्राहक एवं बल्य होता है। इसका उपयोग जीर्ण अतिसार, संग्रहणी आंव तथा अत्यार्तव में किया जाता है।

मात्रा—१ से ३ माशा।

अथ कूटशाल्मलिः (कालासेमर)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

कुत्सितः शाल्मलिः प्रोक्तो रोचनः कूटशाल्मलिः।
कूटशाल्मलिकस्तिक्तः कटुकः कफवातनुत् ॥ ५८ ॥
भेद्युष्णः प्लीहजठरयकृद्गुल्मविषापहः। भूतानाहविबन्धास्रमेदःशूलकफापहः ॥ ५९ ॥

काला सेमर के संस्कृत नाम—कुत्सितशाल्मलि, रोचन, कूटशाल्मलि और कूटशाल्मलिक ये सब हैं।

काला सेमर—तिक्त तथा कटु रसयुक्त, कफ वातनाशक, मल का भेदन करने वाला, उष्ण एवम्—प्लीहा, उदररोग, यकृत्, गुल्म, विष, भूतबाधा, आनाह, मलबन्ध, रक्तविकार, मेद, शूल तथा कफ का नाशक है ॥ ५८–५९ ॥

३० कूटशाल्मली

हिं०—सफेद सेमल, हतिआन, कटन। बं०—श्वेत सेमुल। म०—पांढ़री सांवर। ते०—बुरूगु। ता०—इलवम्। क०—बिलिबूरग। अं०—White Silk Cotton Tree (ह्वाइट सिल्क काटन ट्री); True Kapok Tree (ट्रू कॅपोक ट्री)। ले०—*Ceiba pentandra* (*Linn.*) *Gaertn.*; *Syn. Eriodendron anfractuosum DC.* (सेबा पेन्ट्एन्ड्रा; एरिओडेन्ड्रोन ॲन्फ्रॅक्ट्यूओझम)। Fam. Bombacaceae (बाम्बेकेसी)।

यह पश्चिम तथा दक्षिण के उष्ण प्रदेशों के जंगलों में पाया जाता है।

इसका वृक्ष-मध्यमाकार का, ५०–१०० फीट ऊँचा होता है। शाखाएं-भूमि के समानान्तर एवं चारों तरफ फैली रहती हैं। केवल नवीन शाखाओं पर कांटे होते हैं। पत्ते-सेमर जैसे करतलाकार संयुक्त होते हैं। फूल-श्वेत रंग के आते हैं। फल-६ इञ्च लंबे, २ इञ्च व्यास के, गोलाकार लंबे होते हैं जिनके भीतर चमकीली सिल्क की तरह रुई से लिपटे काले बीज रहते हैं।

इससे गहरे लाल रंग का अपारदर्शी **गोंद** प्राप्त होता है जिसे दक्षिण में **हत्तिमानके** गोंद कहते हैं।

एक साल से कम आयु के वृक्षों की जड़ सफेद मुसली या सिमुल मुसला के नाम से बेची जाती है किन्तु वास्तविक सफेद मुसली इससे भिन्न है जिसका वर्णन पृष्ठ ३९१ पर किया गया है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में २०–२५% हलके पीले या भूरे रंग का तेल निकलता है।

गुण और प्रयोग—इसकी मुसली मूत्रजनन, बल्य तथा वाजीकर होती है। गोंद संग्राहक होता है। कोमल पत्ते और फल स्नेहन और संग्राहक होते हैं।

(१) मुसली की पेया अतिवीर्यपात से उत्पन्न थकावट में दी जाती है। उदर तथा शोथ में भी मूत्रजनन होने के कारण देते हैं जिससे सूजन कम होती है।

(२) बच्चे रात में सोते समय पेशाब करते हैं उस अवस्था में इसका गोंद दिया जाता है। अतिसारादि में भी इसे देते हैं।

(३) सोजाक में कोमल पत्ते पीसकर देते हैं।

मात्रा—सेमर के समान।

अथ धवः (धौरा)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

धवो धटो नन्दितरुः स्थिरो गौरो धुरन्धरः। धवः शीतः प्रमेहार्शःपाण्डुपित्तकफापहः ॥
मधुरस्तुवरस्तस्य फलञ्च मधुरं मनाक् ॥ ६० ॥

धौरा के संस्कृत नाम—धव, धट, नन्दितरु, स्थिर, गौर तथा धुरन्धर ये सब हैं।

धौरा—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, शीतल एवम्—प्रमेह, अर्श, पाण्डु, पित्त तथा कफ का नाशक है। धौरा का फल-थोड़ा मधुर रसयुक्त होता है ॥ ६० ॥

३१ धौरा

हि०–धौरा, धौं, धव, धों, धववृक्ष। **बं०**–धाउया गाछ। **म०**–धावड़ा, धामोड़ा, धवल। **गु०**–धावड़ो। **क०**–दिंदुग। **ते०**–येल्लमद्दि। **अं०**–Axle-wood (ॲक्सेल-वुड)। **ले०**–*Anogeissus latifolia Wall.* (एनोजिस्सस् लेटीफोलिया)। Fam. Combretaceae (कॉम्ब्रेटेसी)।

यह पूर्व बंगाल तथा आसाम को छोड़कर प्रायः सब प्रान्तों में कहीं न कहीं पाया जाता है। इसका वृक्ष बड़ा या मध्यम ऊँचाई का होता है। छाल–$\frac{1}{2}$ इञ्च मोटी, चिकनी, श्वेताभ धूसर एवं पपड़ी छूटने के कारण कुछ गढेदार होती है। पत्ते–चौड़े, आयताकार, अंडाकार, २–४ इञ्च लंबे, कुण्ठित या गोलाग्र, सनाल एवं पृष्ठ पर बिन्दुकित होते हैं। फरवरी में गहरे लाल रंग के पत्र गिरते हैं तथा मार्च अप्रैल तक वृक्ष पर्णहीन रहता है। पुष्प–छोटे, हरिताभ, मुण्डक के रूप में सितंबर से जनवरी तक आते हैं। फल–चिपटे, द्विपक्ष, चोंचदार एवं दिसम्बर से मार्च तक पकते हैं।

इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और लचकदार होती है और गाड़ी के धूरे तथा औजारों की मुठ्ठियां आदि बनाने के काम आती है। इसका पर्याय धुरन्धर तथा व्यापारी नाम Axle-wood इसीलिये पड़ा है।

इससे गोंद प्राप्त होता है जो बबूल के गोंद के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल तथा पत्तों में टैनिन (Tannin) बहुत होता है।

गुण और प्रयोग—यह शीत, स्तम्भन, रक्तरोधक एवं व्रणरोपक है। इसका उपयोग, अतिसार, प्रवाहिका, अर्श, रक्तपित्त, प्रमेह एवं विष में किया जाता है।

मात्रा—क्वाथ ५ से १० तोला; गोंद ५ से १० रत्ती।

अथ धन्वङ्गः (धामिन) तस्य नामानि गुणांश्चाह

धन्वङ्गस्तु धनुर्वृक्षो गोत्रवृक्षः सुतेजनः ॥ ६१ ॥
धन्वङ्गः कफपित्तास्रकासहृत्तुवरो लघुः। बृंहणो बलकृद्रूक्षः सन्धिकृद् व्रणरोपणः ॥ ६२ ॥

धामिन के संस्कृत नाम—धन्वङ्ग, धनुर्वृक्ष, गोत्रवृक्ष तथा सुतेजन ये सब हैं।

धामिन—कषाय रस युक्त, लघु, बृंहण (रस–रक्तादि–वर्धक), बलकारक, रूक्ष, सन्धानकारक (अस्थियों को टूटने पर जोड़ने वाला), व्रण का रोपण करने वाला एवम्–कफ–पित्त, रक्तविकार तथा खांसी को दूर करने वाला है ॥ ६१–६२ ॥

३२ धामिन

हि०–धामिन, धामन। **म०**–धामणीचा वृक्ष। **गु०**–धामण। **बं०**–धामना गाछ। **ते०**–चरचि। **ता०**–सहचि, थड़। **क०**–बुतले। **ले०**–*Grewia tiliaefolia Vahl.* (ग्रेविआ टिलीफोलिआ)। Fam. Tiliaceae (टिलीएसी)।

यह हिमालय पहाड़ के निचले भागों में जमुना से नेपाल तक, ४००० फीट की ऊँचाई तक एवं मध्यभारत, मद्रास, बिहार एवं उड़ीसा में पाया जाता है। इसका वृक्ष–मध्यमाकार का होता है। पत्ते–२ से ५ इञ्च तक लम्बे तथा १ से ४ इञ्च तक चौड़े, अण्डाकार, मध्यशिरा के दोनों ओर के भाग छोटे-बड़े, प्रायः कुण्ठताग्र, गोल दन्तुर, आधार का भाग एक ओर अत्यधिक बढ़ा हुआ एवं १ इञ्च लंबे वृन्त से युक्त होते हैं। पुष्प–सफेद रङ्ग के छोटे २ फूलों के गुच्छे लगते हैं

जिनके भीतर पीलापन झलकता है। फल–२ से ४ खण्ड के, मटर के समान एवं पकने पर काले पड़ जाते हैं। इसके फल खाने लायक खट्टे होते हैं। इसकी छाल का उपयोग किया जाता है। यह बाहर से धूसर या गहरे भूरे रंग की तथा मोटी होती है। पत्तों को बाल धोने के लिये काम में लाया जाता है। लकड़ी का भी उपयोग फर्नीचर इत्यादि बनाने के लिये किया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल कटु, मधुर, शीत, स्नेहन तथा रक्तसंग्राहिक होती है।

(१) इसके अन्तर्छाल का रस १ से २ तोले की मात्रा में रक्त युक्त आंव में पिलाया जाता है।

(२) केंवाच की फली शरीर में लगने से खुजली होने पर छाल को शरीर पर मलते हैं जिससे त्वरित आराम मिलता है।

(३) अफीम के विष को उतारने के लिये इसकी लकड़ी का कोयला वमन कराने के लिये देते हैं।

मात्रा—छाल स्वरस १ से २ तोला।

अथ करीरः। तस्य नामानि गुणांश्चाह

करीरः क्रकरीपत्रो ग्रन्थिलो मरुभूरुहः। करीरः कटुकस्तिक्त स्वेद्युष्णो भेदनः स्मृतः ॥
दुर्नामकफवातामगरशोथव्रणप्रणुत् ॥ ६३ ॥

करील के संस्कृत नाम—करीर, क्रकरीपत्र, ग्रन्थिल तथा मरुभूरुह ये सब हैं।

करील—कटु तथा तिक्त रस युक्त, स्वेदजनक, उष्ण, मल का भेदन करने वाला एवम् अर्श, कफ, वात, आम, विष, शोथ तथा व्रण को दूर करने वाला होता है ॥ ६३ ॥

३३ करील

हि०–करीर, करील, करेल। **बं०**–करील। **म०**–नेवती, किरल, सोदद। **गु०**–केरडो, केर। **क०**–चिप्पुरी। **ते०**–करीरमु। **फा०**–सोदाब। **ता०**–सेंगम्। **ले०**–*Capparis aphylla Roth.* (कॅपेरिस् एफीला)। Fam. Capparidaceae (कॅपेरीडेसी)।

यह पंजाब, सिंध, कच्छ, प० राजपुताना, गुजरात एवं दक्षिण के उत्तरी भाग में शुष्क प्रदेशों में होता है। इसका वृक्ष–झाड़दार, कांटेदार, घना, बारीक शाखाओं से भरा हुआ एवं ६–७ फीट तक ऊँचा होता है। पत्ते–केवल नवीन शाखाओं पर होते हैं तथा ये $\frac{1}{8}$ इञ्च लम्बे, रेखाकार, नोकीले, स्वाद में कटु तथा शीघ्र ही गिर जाते हैं। फूल–गुलाबी रङ्ग के, $\frac{3}{4}$ इञ्च व्यास के गुच्छों में वसन्त ऋतु में फूलते हैं। फल–गोल $\frac{1}{2}$–$\frac{3}{4}$ इञ्च व्यास के, लाल या गुलाबी एवं छोटे से वृन्त पर आते हैं।

इसकी कली एवं फलों का अचार बनाते हैं। औषध में कली, फल तथा छाल का उपयोग करते हैं।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल तिक्त एवं स्रंसन, स्वेदजनन, अर्शोघ्न एवं शोथहर है। कोमल पत्ते तथा शाखा स्फोटजनन होते हैं। फल संग्राहक होते हैं।

(१) दंतशूल में पत्ते तथा नवीन शाखाएँ चबाने को देते हैं। सूजन, फोड़े आदि पर इसे लगाने से लाभ होता है।

(२) अतीसार तथा पुरानी आंव में फलों का अचार देते हैं।

(३) मूल तथा मूल की छाल आमवात तथा विषमज्वर में दी जाती है।

मात्रा—त्वक् चूर्ण १ से २ माशा।

अथ शाखोटः (सहोरा) । तस्य नामानि गुणांश्चाह

शाखोटः पीतफलको भूतावासः खरच्छदः ।
शाखोटो रक्तपित्तार्शोवातश्लेष्मातिसारजित् ॥ ६४ ॥

सहोरा के संस्कृत नाम—शाखोट, पीतफलक, भूतावास और खरच्छद ये सब हैं।
सहोरा–रक्तपित्त, अर्श, वात, कफ तथा अतिसार को दूर करने वाला होता है ॥ ६४ ॥

३४ सिहोरा

हि०–सहोरा, सिहोड़ (ड़ा), सिहोर । **बं०**–शेओडा । **म०**–सहोड़, करवती । **गु०**–साहोड़ा । **ते०**–मारिग्गिके चेट्टु । **ता०**–पिरे । **क०**–आखोड़ । **ले०**–*Streblus asper Lour.* (स्ट्रेब्लस् असपेर्) । Fam. Moraceae (मोरेसी) ।

सहोरे के वृक्ष जांगल देशों के अधिक शुष्कभागों में रुहेलखंड से पूर्व और दक्षिण की ओर ट्रावनकोर तक तथा बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश आदि प्रान्तों में अधिक होते हैं। ये क्षीरी वृक्ष–अत्यन्त गठीले, झाड़दार और मध्यमाकार तथा २० फीट तक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते कुछ गोल, छोटे छोटे, दोनों ओर से खरदरे और २–४ इञ्च लम्बे होते हैं। उन पर छोटी २ उठी हुई बून्दे होती हैं। **फूल**–सफेद रङ्ग के, पुरुष और स्त्रीजाति के अलग अलग लगते हैं। **फल**–पीले रंग के और उनमें एक एक बीज निकलने हैं। पौष से फाल्गुन महीने तक इसके फूल लगते हैं और वैसाख से आषाढ़ तक फल पक जाते हैं। बकरी के दूध मे इसके क्षीर को डालने से दूध जम जाता है। (रा० नि०) । इसकी छाल एवं क्षीर का उपयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में तिक्त द्रव्य पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—(१) इसकी छाल का क्वाथ ज्वर, अतिसार तथा प्रवाहिका में दिया जाता है। गोमूत्र के साथ क्वाथ को श्लीपद में देते हैं।

(२) इसके मूल को पुराने व्रण तथा नाड़ी व्रण में लगाते हैं। हाथ पैर फटने पर इसका दूध लगाते हैं।

अथ वरुणः (बरना) । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

वरुणो वरणः सेतुस्तिक्तशाकः कुमारकः ।
वरुणः पित्तलो भेदीश्लेष्मकृच्छ्राश्ममारुतान् ॥ ६५ ॥
निहन्ति गुल्मवातास्रकृमींश्चोष्णोऽग्निदीपनः ।
कषायो मधुरस्तिक्तः कटुकोरूक्षको लघुः ॥ ६६ ॥

बरना के संस्कृत नाम—वरुण, वरण, सेतु, तिक्तशाक और कुमारक ये सब हैं।

बरना—कषाय, मधुर, तिक्त तथा कटु रस युक्त, रूक्ष लघु, पित्तजनक, मल का भेदन करने वाला, उष्ण, अग्निदीपक एवम्—कफ, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, वायु, गुल्म, वातरक्त तथा कृमि को दूर करने वाला होता है ॥ ६५–६६ ॥

३५ बरना

हि०–वरुन, बरना । **बं०**–बरुन गाछ, बरुण गाछ । **म०**–वायवर्णा । **गु०**–वरणो, कागडाकेरी । **क०**–नारूवे । **ते०**–मगलिंगम् । **ता०**–मरलिङ्गम । **ले०**–*Crataeva nurvala Buch.-Ham.* (क्रे० नुर्वाला) । Fam. Capparidaceae (कॅपेरीडेसी) ।

यह मालाबार और कनारा में नदियों के आस पास पाया जाता है तथा सभी स्थानों पर लगाया हुआ भी होता है। इसका वृक्ष–मध्यमाकार का होता है और शाखाएँ–फैली हुई रहती हैं। **छाल**–आध इञ्च मोटी सफेद रङ्ग की होती है। टहनियों पर सफेद दाग होते हैं। **पत्ते**–तीन-तीन पत्रकों के पाणिवत् सदल पर्ण होते हैं जो बेल की तरह किन्तु लंबे वृन्त से युक्त दिखलाई देते हैं। **पत्रक**–लट्वाकार या मालाकार एवं लम्बाग्र होते हैं। **पुष्प**–श्वेत, पीत या गुलाबी, भिन्न-भिन्न रंग के होते हैं। **फल**–नीबू के आकार के तथा पकने पर लाल हो जाते हैं। पत्तों का स्वाद कड़वा तथा उन्हें मसलने से उग्र गंध आती है।

इसकी छाल, पत्ते तथा पुष्पों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—छाल में सैपोनिन तथा टॅनिन पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह तिक्त, उष्ण, वातनाशक, दीपन, स्रंसन, मूत्रजनन, अश्मरीघ्न, एवं शोथघ्न है। ताजे पत्तों का लेप करने से त्वचा लाल हो जाती है तथा फोड़े निकल आते हैं।

(१) अश्मरी, शर्करा, बस्तिशूल, मूत्रकृच्छ्र आदि मूत्रविकारों में इसकी छाल का प्रयोग अपामार्ग, पुनर्नवा, यवक्षार, गोखरू, मुलेठी इत्यादि के साथ किया जाता है।

(२) मूल का क्वाथ मधु मिलाकर गण्डमाला तथा अपक्व विद्रधि में दिया जाता है। (च० द०) । गण्डमाला में लेप भी किया जाता है। क्वाथ में सोंठ एवं कचनार की छाल भी मिलाई जा सकती है।

(३) पेट फूलना तथा कुपचन में पत्तों का फांट बनाकर देते हैं। इससे वमन बंद होता है।

(४) पत्तों का साग मेद कम करने के लिये खिलाते हैं।

(५) पुष्प ग्राही तथा पित्तविरेचक माने जाते हैं।

मात्रा—क्वाथ ५ से १० तोला; मूल या त्वक् चूर्ण ३–६ माशा।

अथ कटभी । तस्य नामानि तत्फलस्य च गुणाँश्चाह

कटभी स्वादुपुष्पश्च मधुरेणुः कटम्भरः । कटभी तु प्रमेहार्शोनाडीव्रणविषक्रिमीन् ॥ ६७ ॥
हन्त्युष्णा कफकुष्ठघ्नी कटू रूक्षा च कीर्तिता । तत्फलं तुवरं ज्ञेयं विशेषात्कफशुक्रहृत् ॥६८॥

कटभी के संस्कृत नाम—कटभी, स्वादुपुष्प, मधुरेणु तथा कटम्भर ये सब हैं।

कटभी—कटुरसयुक्त, रुक्ष, उष्ण एवम्—प्रमेह, अर्श, नाडीव्रण (नासूर), विष, क्रिमि, कफ तथा कुष्ठ को नाश करने वाली होती है।

कटभी का फल—कषाय रस युक्त तथा विशेषतः कफ और शुक्र का नाशक होता है ॥६७-६८॥

३६ कटभी ? कुम्भी, कुम्भीर

नोट—कटभी के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। ज्योतिष्मती का नाम भी कटभी दिया हुआ है। श्री ठा० बलवन्तसिंह जी श्वेत शिरीष, आलबीजिया प्रोसेरा (Albizzia procera) को कटभी मानते हैं। श्री बापालाल शाह वैद्य कॅरेया आर्बोरिया (Careya arborea) को कटभी कुम्भी दोनों मानते हैं जिसे अन्य विद्वानों ने केवल कुम्भी माना है। शिरीष के अन्तर्गत श्वेत शिरीष का वर्णन किया जा चुका है जिसके कटभी होने की अधिक संभावना है। यहां संक्षेप में कुम्भी का भी वर्णन किया जा रहा है।

हि०, बं०–कुम्भी । **म०**–कुम्भा । **ले०**–*Careya arborea Roxb.* (कॅरेया आर्बोरिया) । Fam. Lecythidaceae (लेसीथीडेसी) ।

यह हिमालय के निचले भागों में कांगड़ा से लेकर पूर्व में बंगाल तथा मध्य, पश्चिम एवं दक्षिण भारत में ५००० फीट तक होता है।

इसके वृक्ष-छोटे या मध्यम ऊँचाई के होते हैं। पत्ते-बहुत बड़े, ६-१५ इञ्च लंबे, अभिलट्वाकार (ऊपर की ओर चौड़े तथा नीचे की ओर संकुचित), चिकने, गोल दन्तुर एवं टहनियों के अग्रपर समूहबद्ध होकर रहते हैं। पुष्प-श्वेत या गुलाबी, गुच्छे में रहते हैं। फल-गोलाई लिये हुये, हरे, २½-३ इञ्च व्यास के एवं शीर्षपर बाह्यनाल से युक्त रहते हैं।

इसकी छाल का प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में १९% टैनीन होता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल उत्तम स्तम्भन है।

(१) सूखी खांसी में छाल के क्वाथ से कुल्ला कराते हैं तथा इसकी गोली चूसने को देते हैं। खांसी में ताजी छाल का रस या पुष्प मधु के साथ देते हैं।

(२) प्रदर में छाल को ६ से १२ रत्ती की मात्रा में घृत एवं मधु के साथ देते हैं। विस्फोटक ज्वर जैसे मसूरिका में ज्वर तथा कण्डू दूर करने के लिये छाल का प्रयोग करते हैं।

(३) पीडा युक्त शोथ तथा व्रण पर छाल को पीस कर बांधते हैं तथा व्रण प्रक्षालन के लिये इसका क्वाथ प्रयोग करते हैं।

(४) सर्प विष में छाल का रस पिलाते हैं तथा पीसकर दश स्थान पर बांधते हैं।

मात्रा—छाल १ से ३ माशा।

अथ मोक्षः (मोखावृक्ष) पलाशवत्पर्वतवृक्षः।
तस्य नामानि गुणांश्चाह

मोक्षस्तु मोक्षकोऽपि स्याद् गोलीढोगोलिहस्तथा।
क्षारश्रेष्ठः क्षारवृक्षो द्विविधः श्वेतकृष्णकः॥ ६९॥
मोक्षकः कटुकस्तिक्तो ग्राहकणः कफवातहृत्। विषमेदोगुल्मकण्डूबस्तिरुक्क्रमिशुक्रनुत्॥७०॥

मोखा के संस्कृत नाम—मोक्ष, मोक्षक, गोलीढ, गोलिह, क्षारश्रेष्ठ तथा क्षारवृक्ष ये सब हैं। यह सफेद तथा काले के भेद से दो प्रकार का होता है।

मोखा—कटु तथा तिक्त रसयुक्त, ग्राही, उष्ण एवम्—कफ, वात, विष, मेद, गुल्म, खुजली, बस्तिसम्बन्धी रोग, कृमि तथा शुक्र का नाशक है॥ ६९-७०॥

नोट—गुडूच्यादिवर्ग में पाटला के भेद में मोक्षक को बतलाया गया है किन्तु मोक्षक यह उससे भिन्न है। इसी प्रकार इसमें भी दो भेद श्वेत एवं कृष्ण, भावप्रकाशकार ने माने हैं। यहां दोनों का वर्णन किया गया है। मोक्षक अधिकतर श्वेत को कहा गया है।

३७ मोखा

सं०–मोक्षक, श्वेत मोक्षक। हि०–मोखा, एकसिरा। बं०–घण्टा पारुल। म०–मोखाडा। ता०–मगलिंगम्। ते०–मगलिंग। ले०–*Schrebera swietenioides Roxb.* (श्रेबेरा स्वीटेनियोइडिस्)। Fam. Oleaceae (ओलिएसी)।

यह कुमाऊं से पूर्व, मध्यभारत तथा राजपुताना में पाया जाता है।

इसका वृक्ष-मध्यम ऊँचाई का होता है। पत्ते-पक्षवत् सदल होते हैं। पत्रक-संख्या में ३-७, लट्वाकार, आयताकार या लट्वाकार-प्रासवत्, ३-७ इञ्च लंबे, फलक क्रमशः

संकुचित होकर सूक्ष्म वृन्त से युक्त और अग्र किंचित् लम्बाग्र होता है। पुष्प-श्वेताभ, बाह्यकोश घंटिकाकार, और आभ्यंतर कोश व्यस्त छत्राकार होते हैं। फल-नीचे की ओर लटका हुआ, नाशपाती के आकार का, २·५ इञ्च लंबा तथा १ इञ्च चौड़ा होता है। बीज-प्रत्येक कोष्ठ में २-४ कोनदार सपक्ष बीज होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके जड़ से सिद्ध घृत कुष्ठ में लाभदायक है। (सु० चि० अ० ९)। इसका क्षार अच्छा माना गया है तथा मुखरोग तथा ग्रहणी आदि में लाभदायक बताया गया है। बिहार में आदिवासियों में बच्चों के अण्डकोश बढ़ने पर इसके फल को कमर में बांधने की प्रथा है।

३७ (क) कालामोखा

सं—कृष्णमोक्षक ?। हि०–कालामूका, रतनगरुर। बं०–भूतपत्र, भूतकेशी। ले०–*Elaeodendron glaucum Pers.* (एलिओडेन्ड्रोन् ग्लॉकम्)। Fam. Celastraceae (सिलेस्ट्रेसी)।

यह अनेक स्थानों में पाया जाता है तथा बगीचों में लगाया हुआ भी मिलता है।

इसके छोटे वृक्ष होते हैं। पत्ते-गहरे हरे रंग के, चिकने, २-६ × १-३ इञ्च बड़े, लट्वाकार, नोकीले, सवृन्त (वृन्त १ इञ्च तक) एवं गोल या नोकीले दांतों वाले होते हैं। पुष्प-हरित-श्वेत या भूरे; फल-अष्ठिल तथा ½ इञ्च लंबे होते हैं।

गुण और प्रयोग–इसकी छाल ग्राही एवं शोथघ्न होती है। भूतोन्माद में पत्तियों का धूआं दिया जाता है जिससे चेतना आती है तथा शिरःशूल में नस्य दिया जाता है।

अथ जलशिरीषिका (जलसिरिस-टिण्टिनी-ढाढोन इति च)।
तस्य नामानि गुणांश्चाह

शिरीषिका टिण्टिनिका' दुर्बलाऽम्बुशिरीषिका। त्रिदोषविषकुष्ठार्शोहरी वारिशिरीषिका॥७१॥

ढाढोन के संस्कृत नाम—शिरीषिका, टिण्टिनिका, दुर्बला, अम्बुशिरीषिका तथा वारिशिरीषिका ये सब हैं। **ढाढोन**—त्रिदोष, विष, कुष्ठ तथा बवासीर को दूर करने वाला होता है॥ ७१॥

३८ जलसिरिस

जल शिरीष क्या है इसका निर्णय अभी नहीं किया जा सका है। संभव है शिरीष की तरह का कोई वृक्ष हो जो जल के समीप होता हो। मराठी नाम 'जल शिरसी' यह ट्राइकोडेस्मा झेलेनिकम् (Trichodesma zeylanicum R. Br.) के लिये लिखा हुआ मिलता है। अभी इसके विषय में अधिक अन्वेषण की आवश्यकता है।

अथ शमी (छोंकरा)। तस्या नामानि गुणांश्चाह

शमी शक्तुफला तुङ्गा केशहन्त्री शिवाफला।
मंगल्या च तथा लक्ष्मीः शमीरः साऽल्पिका स्मृता। ७२॥
शमी तिक्ता कटुः शीता कषाया रेचनी लघुः।
कफकासभ्रमश्वासकुष्ठार्शःकृमिजित् स्मृता॥ ७३॥

शमी के संस्कृत नाम—शमी, शक्तुफला, तुङ्गा, केशहन्त्री, शिवाफला, मङ्गल्या तथा लक्ष्मी ये सब हैं। छोटे शमीवृक्ष का नाम 'शमीर' है।

शमी—तिक्त, कटु तथा कषाय रसयुक्त, शीतल, रेचक, लघु एवम्-कफ, कास (खाँसी), भ्रमरोग श्वास, कुष्ठ, अर्श तथा कृमि का नाशक है ॥ ७२-७३ ॥

३९ छोंकर (शमी)

हि॰—छोंकर, शमी छिकुर। **बं॰**-शाँई। **म॰**-शमी। **गु॰**-खीजड़ो, खमड़ी। **ता॰** कलिसम्, वण्णि। **ते॰**—जम्मि। **पं॰**-जंड, जंडी। **ले॰**-*Prosopis spicigera Linn.* (प्रोसोपिस् स्पिसिजेरा) Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

यह पञ्जाब, सिन्ध, राजपूताना, गुजरात, और बुन्देलखण्ड में अधिक होती है और इस को वाटिकाओं में भी लगाते हैं। इसका काँटेदार वृक्ष छोटा होता है और शाखायें पतली होती हैं। काँटे शंकाकार, सीधे तथा कुछ चिपटे होते हैं। **पत्ते**-द्वि-पक्षवत्, उपपक्ष प्रायः दो जोड़े, विपरीत, १-२ इञ्च लम्बे और उपपक्षों के प्रत्येक जोड़े के बीच में एक-एक ग्रंथि होती है। पत्रक ८-१२ जोड़े, अवृन्त, तिर्यगायताकार, चिकने, चमड़े जैसे कड़े एवं उनका अग्र कड़ा और तीक्ष्ण होता है। **पुष्प**-पीताभ, छोटे, २-३ इञ्च लम्बी मंजरी में आते हैं। **फली**-लटकी हुई, बीच-बीच में संकुचित तथा ५-१० इञ्च लम्बी होती है जिनमें १०-१५ बीज मधुर फलमज्जा के भीतर रहते हैं।

कच्ची फलियों का साग बनाकर मारवाड़ तथा पंजाब में खाते हैं। दशहरा को लोग इस वृक्ष का पूजन करते हैं।

इसकी छाल, पुष्प तथा फली का उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल संग्राहक एवं रक्तपित्तशामक होती है। इसकी फली केश को हानि पहुचाने वाली होती है। (च. सू. अ. २७, सु. सू. अ. ४६)। बालों को हटानें के लिये इसकी राख को मलते हैं।

गर्भपात न हो इसलिये इसके फूलों को कूट कर मिश्री मिलाकर गर्भिणी को खिलाया जाता है।

अथ सप्तपर्णः (छतिवन-सतौना)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः ॥ ७४ ॥
सप्तपर्णो व्रणश्लेष्मवातकुष्ठास्रजन्तुजित्। दीपनः श्वासगुल्मघ्नः स्निग्धोष्णस्तुवरः सरः ॥७५॥

छतिवन के संस्कृत नाम—सप्तपर्ण, विशालत्वक, शारद तथा विषमच्छद ये सब हैं।

छतिवन—कषायरसयुक्त, अग्निदीपक, स्निग्ध, उष्ण, सारक एवम्-व्रण, कफ, वात, कुष्ठ रक्तविकार, जन्तु, श्वास तथा गुल्म का नाशक है। ७४-७५ ॥

४० सतौना

हि॰—सतौना, सतवन, छतिवन, सतिवन। **बं॰**-छातिम। **म॰**—सातवीण। **गु॰**—सातवण। **क॰**-हाले। **ते॰**—एडाकुलरि। **ता॰**-एलिलैप्पालै। **ले॰**—*Alstonia scholaris R. Br.* (एल्स्टोनिया स्कोलेरिस्)। Fam. Apocynaceae (एपोसाइनेसी)।

सतिवन का वृक्ष प्रायः सब आर्द्र प्रान्तों में पाया जाता है। किन्तु विशेषरूप से प० समुद्र के किनारे के जंगलों में अधिक पाया जाता है।

इसका वृक्ष-सुन्दर, विशाल, सीधा, सदाहरित एवं क्षीरयुक्त होता है। शाखाएं तथा पत्ते चक्रिक क्रम में निकले रहते हैं।

पत्ते—प्रति चक्र में ३-७, प्रायः ६, चिकने, आयताकार-भालाकार या अभिअंडाकार ऊपर से चमकीले किन्तु नीचे से श्वेताभ, ४-८ इञ्च लंबे तथा ६-१३ मि॰ मी॰ लंबे वृन्त से युक्त होते हैं। **पुष्प**—हरिताभ श्वेत तथा गुच्छों में आते हैं। **फली**—दो-दो एक साथ, नीचे लटकी हुई, १-२ फीट लंबी तथा ३ मि॰ मी॰ व्यास की होती है। **बीज**-६ मि॰ मी॰ लंबे, चिपटे तथा रोमश होते हैं।

छाल—टहनियों की ३-४ मि॰ मी॰ मोटी, मुड़ी हुई एवं काण्ड की ७ मि॰ मी॰ मोटी होती है। बाहर से नवीन छाल गहरे धूसर या भूरे रंग की तथा पुरानी बहुत खुरदरी, असमान, फटी हुई होती है तथा उन पर अनेक गोल या आडे धूसर या सफेद धब्बे रहते हैं। अन्दर से यह भूरे-पीताभ या गहरे धूसराभ भूरे रंग की, कुछ धारीदार तथा गढ़ेदार रहती है। यह गंधहीन एवं स्वाद में तिक्त रहती है।

इसकी छाल, पत्र, पुष्प तथा दुग्ध का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—छाल में क्षाराभ की मात्रा ०·१६-०·२७% रहती है जिस में प्रधानतया एचिटेमाइन (Echitamine, $C_{23} H_{28} O_4 N_2 H_2O$) की तथा अल्प मात्रा में एचिटामिडीन (Echitamidine, $C_{20} H_{26} O_3 N_2$) रहता है। इन क्षाराभों का मलेरिया के लिये कोई लाभदायक परिणाम नहीं पाया गया है। क्षीर में केउटचौक (Caoutchouc) तथा राल होती है तथा इसका स्वाद कडुवा होता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल उष्ण, तिक्त, तिक्तपौष्टिक, कषाय, स्तंभन, कृमिघ्न, स्तन्यजनन, दीपन एवं कुष्ठघ्न है। इसका उपयोग ज्वर, विषमज्वर, अतिसार, प्रवाहिका, चर्मरोग एवं कृमि में किया जाता है।

(१) इससे ज्वर कम होता है। आधुनिक परीक्षणों से देखा गया है कि मलेरिया में कोई विशेष लाभ नहीं होता, केवल ज्वर का वेग कम होता है तथा बाद में तिक्त पौष्टिक रूप में इससे लाभ होता है जिससे पाचन सुधरता है तथा मन्दज्वर भी चला जाता है।

(२) अतिसार एवं प्रवाहिका की जीर्णावस्था में समग्र त्वचा का क्वाथ लाभदायक होता है।

(३) प्रसूति के पश्चात् इसके साथ सुगंधि द्रव्य देने से दुग्ध की मात्रा बढ़ती है तथा ज्वर, नहीं आता तथा पाचन ठीक रहता है।

(४) पुराने व्रणों पर इसका लेप करते हैं। चर्मरोगों में क्षीर का लेप भी लाभदायक है।

मात्रा—त्वक् चूर्ण ४-८ माशा; क्वाथ के लिये २-४ तोला; घनसत्व ½–¾ तोला।

अथ तिनिशः (तिरिच्छ)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

तिनिशः स्यन्दनो नेमी रथद्रुर्वञ्जुलस्तथा। तिनिशः श्लेष्मपित्तास्रमेदःकुष्ठप्रमेहजित् ॥
तुवरः श्वित्रदाहघ्नो व्रणपाण्डुकृमिप्रणुत् ॥ ७६ ॥

तिरिच्छ के संस्कृत नाम—तिनिश, स्यन्दन, नेमी, रथद्रु तथा वञ्जुल ये सब हैं।

तिरिच्छ—कषाय रस युक्त एवम् कफ, पित्त, रक्तविकार, मेद, कुष्ठ, प्रमेह, श्वेतकुष्ठ, दाह, व्रण, पाण्डु तथा कृमि का नाशक है ॥ ७६ ॥

नोट—तिनिश के संस्कृत पर्यायों के आधार पर यह निःसंदेह यूजिनिया डलबर्जिओइडिस् (Ougeinia dalbergioides) वृक्ष है। किन्तु गलती से कहीं-कहीं इसका नाम लाजरस्ट्रोमिया फ्लोस रेजिनी (Lagerstroemia flos-reginae) लिखा मिलता है जिसे अर्जुन भी कहा गया है। यहाँ दोनों का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

४१ तिनिश, पानन

हि० सानन, पानन, सन्दन। **बं०**–तिनिश। **गु०**–तणछ। **म०**–तिमस। **ता०**–नारिवेगई। **ते०**–तेल्ल मोट्टुकु। **ले०**–*Ougeinia dalbergioides Benth.* (यूजिनिया डल्बर्जिओडिस्)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

यह हिमालय में ५००० हजार फीट तक पञ्जाब से भूटान तक एवं अवध, बुंदेलखण्ड, छोटा-नागपुर, मध्य भारत, उड़ीसा, सरकार, मध्यप्रदेश, बंबई तथा मारवाड़ में होता है।

इसके **वृक्ष**–छोटे तथा टेढ़े-मेढ़े होते हैं। **शाखा**–पतली तथा श्वेताभ होती है। **पत्ते**–त्रिपत्रक तथा प्रायः नीचे से कुछ रजावृत होते हैं। अग्रय पत्रक ३–६ इञ्च लंबे, अंडाकार, वृत्ताकार या अभिअंडाकार, कुण्ठिताग्र, एवं अखण्ड या गोल-दन्तुर होते हैं। पार्श्व पत्रक छोटे, विपरीत तथा तिर्यक् होते हैं। **पुष्प**–श्वेत या गुलाबी एवं प्रायः पुराने काण्ड से बहुत बड़ी संख्या में निकलते हैं। **फली**–२–४×$\frac{1}{2}$ इञ्च लंबी होती है।

इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होने के कारण प्रायः गाड़ी के धुरों के लिए काम में लाई जाती है। इसके स्थानिक नाम तिनसा तथा सानन संस्कृत पर्याय तिनिश एवं स्यन्दन के अपभ्रंश मालूम पड़ते हैं। इसी तरह रथद्रु नाम इसका रथ में उपयोग की ओर संकेत करता है।

इसकी लकड़ी में घाव करने से एक प्रकार का गोंद भी प्राप्त होता है।

गुण और प्रयोग—यह कषाय, ग्राही, कफपित्त शामक, रसायन एवं वयस्थापन (सु० चि० अ० १) है। इसका उपयोग कुष्ठ (च० चि० अ० ७), रक्तातिसार (सु० उ० अ० ४०), प्रमेह, रक्तदोष एवं ज्वर में किया जाता है।

(१) इसके छाल का क्वाथ ज्वरहर माना जाता है तथा जब पेशाब का रंग गहरा होता है तब इसे पिलाते हैं।

(२) इसका गोंद अतिसार तथा प्रवाहिका में देते हैं।

४२ जारूल

हि०—जरुल, जारुल, अर्जुन? **बं०**–जरूल। **म०**–ताम्हण। **ता०**—कोदली। **ते०**–वारगोगु। **ले०**—*Lagerstroemia flos-reginae Retz.* (लाजरस्ट्रोमिया फ्लोस रेजिनी)। Fam. Lythraceae (लिथरेसी)।

यह पूरब बङ्गाल, आसाम और रत्नागिरी आदि प्रान्तों में उत्पन्न होता है।

यह प्रायः नदियों के किनारे तथा पहाड़ियों से निर्गम स्थान पर होता है। इसको शोभा के लिये बागों में लगाते भी हैं।

इसका **वृक्ष**–बड़ा, ३०–६० फीट तक ऊंचा होता है। **पत्ते**–४ से ८ इञ्च तक लम्बे कुछ चौड़े, किञ्चित् अण्डाकार, आयताकार-भालाकार और नुकीले होते हैं। **फूल**–सुन्दर, २ ३ इञ्च के घेरे में बैंगनी युक्त लाल होते हैं। बाह्यदल श्वेत रज से आवृत होते हैं। **फल**–१$\frac{1}{2}$–१ इञ्च बड़े कुछ गोल होते हैं।

रासायनिक संघटन—इसके प्रत्येक भाग में विशेष करके पुराने पत्तों एवं पके फलों में इन्सु-लिन (Insulin) के समान, रक्तगत शर्करा की मात्रा को कम करने वाला पदार्थ पाया गया है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल तथा पत्ते-रेचक होते हैं। बीज मादक माने जाते हैं। मूल ग्राही तथा ज्वरनाशक है। छाल का क्वाथ ज्वर में दिया जाता है। मुख के व्रणों में फल का स्थानिक उपयोग किया जाता है।

अथ भूमीसहः (सागोन)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

भूमीसहो द्वारदारुर्वरदारुः खरच्छदः। भूमीसहस्तु शिशिरो रक्तपित्तप्रसादनः॥ ७७॥

सागोन के संस्कृत नाम – भूमीसह, द्वारदारु, वरदारु तथा खरच्छद ये सब हैं।

सागोन—शीतल एवं रक्तपित्त को शुद्ध करने वाला है॥ ७७॥

४३ सागोन

सं०—शाक, साग। **हि०**–सागोन, सागवन, साग़ु (ग) वान। **बं०**–सेगुन गाछ। **म०**–**गु०**–सागवान। **क०**–तेगिन। **ते०**–तेकु। **ता०**–टेकु। **अं०**–Indian Teak Tree (इण्डियन टीक ट्री)। **ले०**—*Tectona grandis Linn.* (टेक्टोना ग्रैन्डिस)। Fam. Verbenaceae (वर्बिनेसी)।

इसके **वृक्ष** दक्षिण तथा मध्य भारत में अधिक होते हैं। यह **वृक्ष**–बहुत ऊँचा, सीधा और विशाल होता है। ५०–६० फीट की ऊंचाई पर शाखाएं होती हैं। इसके **पत्ते**–बहुत लम्बे चौड़े, ऊपर से खरदरे और नीचे से सफेद रोयेंदार होते हैं। इनको हाथ से मलने से हाथ लाल हो जाता है। **फूल**–सफेद रंग के गुच्छों में आते हैं। **फल**–छोटे, $\frac{1}{2}$ इञ्च व्यास के, गोलाकार रोमश होते हैं। सागोन एक प्रयोजनीय और प्रसिद्ध काष्ठ है। इसकी लकड़ी से तख्ते, बक्स, आलमारी इत्यादि बहुत चीजें बनाते हैं। यह हलकी, चिकन और टिकाऊ होती है तथा इसमें दीमक नहीं लगती। इसके सभी भागों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके काष्ठ में क्विनीन सदृश पदार्थ टेक्टोक्विनीन (Tectoquinine), राल २·९३% जो चर्म के लिये प्रक्षोभक होती है, कुछ उड़नशील तेल तथा अन्य स्नेह पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल या काष्ठ पित्तशामक कुछ स्तम्भन एवं कृमिघ्न है। शोथ एवं शिरःशूल में इसका लेप किया जाता है। कुपचन, पित्त प्रकोप तथा पेट की जलन में इसका चूर्ण ३–१२ माशे की मात्रा में देते हैं।

इसके पुष्प तथा बीज मूत्रजनन हैं। मूत्रावरोध में फूलों से पेड़ू पर सेंकते हैं तथा फांट पिलाते हैं।

बीजों का तेल केशवर्धक है तथा खुजली (पामा) में लगाया जाता है।

इसके पत्तों का रस खपड़े में गरम करके विसर्प पर लगाते हैं। पत्तों को पीस कर बिसारी (Whitlow) पर बांधते हैं।

सर्प (फुरसा) दंश से रक्तस्राव होता हो तो इसके कोमल अंकुरों के रस से बंद होता है।

मात्रा—त्वक् चूर्ण ३–१२ माशा।

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे षष्ठो वटादिवर्गः समाप्तः॥ ६॥

अथ आम्रादिफलवर्गः

तत्रादावाम्रः (आम) । तस्य नामान्याह

आम्रश्चूतो रसालश्च सहकारोऽतिसौरभः । कामाङ्गो मधुदूतश्च माकन्दः पिकवल्लभः ॥ १ ॥

आम के संस्कृत नाम—आम्र, चूत, रसाल, सहकार, अतिसौरभ, कामाङ्ग, मधुदूत, माकन्द और पिकवल्लभ ये सब हैं ॥ १ ॥

अथाम्रपुष्पगुणानाह

आम्रपुष्पमतीसारककफपित्तप्रमेहनुत् । असृग्दुष्टिहरं शीतं रुचिकृद् ग्राहि वातलम् ॥ २ ॥

आमका फूल-शीतल, रुचिकारक, ग्राही, वातजनक, एवम्-अतीसार, कफ, पित प्रमेह तथा रक्तदोष को दूर करने वाला होता है ॥ २ ॥

अथामाम्रफलम् (अमिया) । तस्य गुणानाह

आमं बालं कषायाम्लं रुच्यं मारुतपित्तकृत् । तरुणं तु तदत्यम्लं रूक्षं दोषत्रयास्रकृत् ॥ ३ ॥

अमिया (आम के कच्चे फल) कषाय तथा अम्लरसयुक्त, रुचिकारक एवं वात और पित्त को उत्पन्न करने वाला होता है । प्रौढ़ आम का कच्चा फल—तो अत्यन्त अम्ल रस युक्त तथा रूक्ष होता है एवम् त्रिदोष तथा रक्त विकार को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ ३ ॥

अथ शुष्कामाम्रफलम् (अमचूर) । तस्य लक्षणगुणानाह

आम्रमामं त्वचाहीनमातपेऽतिविशोषितम् । अम्लं स्वादु कषायं स्याद्भेदनं कफवातजित् ॥४॥

अमचूर के लक्षण—कच्चे आम के ऊपर का छिलका उतार कर यदि उसे धूप में डाल दिया जाय तो अत्यन्त सूख जाने पर उसे अमचूर कहते हैं । अमचूर-अम्ल तथा कषाय रस युक्त, स्वादिष्ट, मल का भेदन करने वाला एवम् कफ तथा वात को दूर करने वाला होता है ॥ ४ ॥

अथ पक्वाम्रफलम् (पका आम) । तस्य गुणानाह

पक्वं तु मधुरं वृष्यं स्निग्धं बलसुखप्रदम् । गुरु वातहरं हृद्यं वर्ण्यं शीतमपित्तलम् ॥
कषायानुरसं वह्निश्लेष्मशुक्रविवर्द्धनम् ॥ ५ ॥

पका आम का फल-आरम्भ में मधुर तथा अन्त में कषाय रसयुक्त, वृष्य (वीर्यवर्धक), स्निग्ध, बल तथा सुख को देने वाला, गुरु, वात नाशक, हृदय को हितकर, वर्ण को उत्तम करने वाला, शीतल, थोड़ा पित्तजनक एवम् जठराग्नि, कफ तथा शुक्र का बढ़ाने वाला होता है ॥ ५ ॥

अथ वृक्षपक्वाम्रफलगुणानाह

तदेव वृक्षसम्पक्वं गुरु वातहरं परम् । मधुराम्लरसं किञ्चिद्भवेत्पित्तप्रकोपणम् ॥ ६ ॥

वृक्ष ही में पका हुआ आम का फल—वृक्ष में यदि आम पका हो तो वह मधुर तथा अम्ल रस युक्त, गुरु, अत्यन्त वातनाशक तथा किञ्चित् पित्त को प्रकुपित करने वाला होता है ॥ ५ ॥

अथ कृत्रिमपक्वचूषिताम्रफलगुणानाह

आम्रं कृत्रिमपक्वञ्च तद्भवेत्पित्तनाशनम् । रसस्याम्लस्य हीनत्वु माधुर्याच्च विशेषतः ॥ ७ ॥
चूषितं तत्परं रुच्यं बलवीर्यकरं लघु । शीतलं शीघ्रपाकि स्याद्वातपित्तहरं सरम् ॥ ८ ॥

कृत्रिम रीति से पकाये हुए (पाल के) आम के फल—यदि आमका फल कृत्रिम रीति से पकाया गया हो तो वह पित्तनाशक होता है क्योंकि उसमें का अम्ल रस निकल जाता है तथा मधुर रस की विशेषता हो जाती है । वह यदि चूसा जाय तो अत्यन्त रुचिजनक, बल वीर्यकारक, लघु, शीतल, शीघ्र हजम होने वाला, सारक एवम् वात-पित्त नाशक है ॥ ७-८ ॥

अथ गालिताम्ररसगुणानाह

तद्रसो गालितो बल्यो गुरुर्वातहरः सरः । अहृद्यस्तर्पणोऽतीव बृंहणः कफवर्द्धनः ॥ ९ ॥

निचोड़े आम का रस-बलकारक, गुरु, वातनाशक, सारक, हृदय के लिये अहितकर, अत्यन्त सन्तर्पण करने वाला, बृंहण रस रक्तादि वर्धक) एवं कफ की वृद्धि करने वाला होता है ॥ ९ ॥

अथाम्रखण्डगुणानाह

तस्य खण्डं गुरु परं रोचनं चिरपाकि च । मधुरं बृंहणं बल्यं शीतलं वातनाशनम् ॥ १० ॥

पके आम के टुकड़े—गुरु, अत्यन्त रोचक, देर में हजम होने वाले, मधुर रस युक्त, बृंहण (रस रक्तादि वर्धक), बलकारक, शीतल एवम् वातनाशक होते हैं ॥ १० ॥

अथ दुग्धयुक्ताम्रगुणानाह

वातपित्तहरं रुच्यं बृंहणं बलवर्द्धनम् । वृष्यं वर्णकरं स्वादु दुग्धाम्रं गुरु शीतलम् ॥ ११ ॥

दुग्धाम्र (दूध के साथ खाने पर पका आम का फल—स्वादिष्ट, वातपित्त नाशक, रोचक, बृंहण, बलवर्धक, वृष्य (वीर्यवर्धक), वर्ण को को उत्तम करने वाला, गुरु तथा शीतल होता है ॥११॥

अथाम्रातियोगः (आम बहुत खाना) । तस्य दोषानाह

मन्दानलत्वं विषमज्वरं च रक्तामयं बद्धगुदोदरं च ।
आम्रातियोगो नयनामयं वा करोति तस्मादति तानि नाद्यात् ॥ १२ ॥
एतदम्लाम्रविषयं मधुराम्लपरं न तु । मधुरस्य परं नेत्रहितत्वाद्या गुणा यतः ॥ १३ ॥

आम्रातियोग (अधिक आम खाने) के दोष—जठराग्नि की मन्दता, विषमज्वर, रक्तसम्बन्धी-रोग, अत्यन्त मल का अवरोध और नेत्र सम्बन्धी रोग उत्पन्न करता है । इसलिये अधिक आम नहीं खाना चाहिये । यह निषेध अम्ल (खट्टे) आम के विषय में है नकि मधुर तथा अम्ल रस युक्त आम के विषय में है, क्योंकि मधुर रस में नेत्रों को हित पहुँचाना आदि गुण वर्तमान ही हैं ॥ १२-१३ ॥

अथाम्रातियोगदोषनिवृत्त्युपायमाह

शुण्ठ्यम्भसोऽनुपानं स्यादाम्राणामतिभक्षणे । जीरकं वा प्रयोक्तव्यं सह सौवर्चलेन च ॥१४॥

आम्रातियोग से उत्पन्न हुए दोषों की निवृत्ति का उपाय—आम अधिक खा लेने पर सोंठ के साथ जल पीना चाहिये अथवा सोंचल नोन के साथ जीरा खाना चाहिये ॥ १४ ॥

अथाम्रावर्त्तः (अमावट) । तस्य लक्षणं गुणांश्चाह

पक्वस्य सहकारस्य पटे विस्तारितो रसः । घर्मशुष्को मुहुर्दत्त आम्रावर्त्त इति स्मृतः ॥ १५ ॥
आम्रावर्त्तस्तृषाच्छर्दिवातपित्तहरः सरः । रुच्यः सूर्यांशुभिः पाकाल्लघुश्च स हि कीर्त्तितः ॥१६॥

अमावट के लक्षण—पके आम के रस को निकाल, कपड़े पर पसार कर धूप में सुखावे, जब सूख जाय तब उसी पर पुनः रस डाले और सुखावे इसी भांति सुखा कर जो मोटी पर्त्त तैयार होती है उसी को 'अमावट' कहते हैं।

अमावट—प्यास, वमन, वात तथा पित्त का नाशक, सारक तथा रोचक होता है। एवम् सूर्य के किरणों से सूख कर परिपक्व होने से लघु होता है ॥ १५–१६ ॥

अथाम्रबीजम् (कोइलिया)। तस्य गुणानाह

आम्रबीजं कषायं स्याच्छर्द्यतीसारनाशनम्। ईषदम्लञ्च मधुरं तथा हृदयदाहनुत् ॥ १७ ॥

आम्रबीज (आम की गुठली की मींगी)—कषाय, मधुर एवम् किंचित् अम्ल रस युक्त तथा वमन, अतिसार एवम् हृदय के दाह को दूर करने वाला होता है ॥ १७ ॥

अथाम्रनवपल्लवः। तस्य गुणानाह

आम्रस्य पल्लवो रुच्यः कफपित्तविनाशनः ॥ १८ ॥

आम के नवीन पल्लव—रुचिकारक तथा कफ और पित्त के नाशक होते हैं ॥ १८ ॥

१ आम

हि०, बं०–आम। **म०**–आम्बा। **गु०**–आम्बो। **ते०**–मामिडिचेट्टु। **ता०**–मांगाय, मामरं। **क०**–अंव, अंभ। **फा०**–अम्बः। **अ०**–अम्बज। **अं०**–Mango Tree (मैंगो ट्री)। **ले०**–*Mangifera indica Linn.* (मैंजीफेरा इण्डिका)। Fam. Anacardiaceae (ॲनेकार्डिएसी)।

आम सर्वप्रिय और सर्वप्रसिद्ध फल है। इस देश में कोई ऐसा मनुष्य न होगा जो आम को न जानता हो। इसका वृक्ष बड़ा होता है और छोटी २ टहनियों के अन्त में पत्ते सघन लगते हैं। माघ फागुन में आम का बौर होता है और ग्रीष्म ऋतु में फल पकते हैं। **फल**–किंचित् लम्बाई लिये गोल होता है और उसके भीतर गुद्दी होती है जो गुठली से लिपटी हुई रहती है।

आम का वृक्ष इस देश में प्रायः सर्वत्र लगाया हुआ पाया जाता है। संभवतः वन्य अवस्था में यह सिक्कम, आसाम के नंबर जंगल, खासीया पहाड़, सतपुरा पर्वतश्रेणी के नदियों के उद्गम स्थान तथा पश्चिम घाट में पाया जाता है। इसकी दो जाति होती है— बीजू और कलमी। बीजू–बीज से उत्पन्न होता है और कलमी–डालियों में जोड़ कलम कर के उत्पन्न किया जाता है। बीजू–वृक्ष–बड़े २ होते हैं और कलमी के वृक्ष अधिक ऊँचे नहीं होते। ये दोनों ही स्वाद के भेद से अनेक प्रकार के होते हैं। किसी का स्वाद खट्टा, किसी का खट्टा–मीठा और किसी का मीठा होता है। कलमी आम प्रायः सुस्वादु होते हैं और इसी को लोग पसन्द करते हैं। इसके फल भी छोटे और बड़े के भेद से कई प्रकार के होते हैं तथा इनके रंग भी मिश्रित हरे, पीले, गुलाबी अनेक प्रकार के होते हैं। संसार के सब फलों में उत्तम और अधिक गुणकारी आम का ही फल है इसलिये इसको फलों का राजा कहते हैं। कवियों की कल्पना है कि जिस प्रकार स्वर्ग में अमृत है उसी प्रकार पृथ्वी में आम का फल है।

इसके फल, मज्जा, पत्ते एवं छाल का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके फल में विटामिन ए, बी, डी एवं अधिक मात्रा में सी पाया जाता है। इसके अतिरिक्त साइट्रिक एसिड एवं अल्प मात्रा में गॅलिक् एसिड होता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल उत्तम रक्तसंग्राहक है तथा इसका क्वाथ फुफ्फुस, आंत्र एवं गर्भाशय से रक्तस्राव होने पर दिया जाता है। रक्तार्श तथा अत्यार्तव में मज्जा १० से १५ रत्ती की मात्रा में देते हैं।

छिलके के साथ कच्चा फल पीस कर आमाशय एवं गले की शिथिलता तथा गले के अर्बुद में देते हैं।

कच्चे फल का शरबत (पन्ना) लू लगने पर पिलाते हैं।

गुठली के अन्दर की मज्जा अतिसार तथा प्रवाहिका में दी जाती है।

मात्रा—मज्जा १० से १५ रत्ती; छाल ३–६ माशा।

अथाम्रातकः (अम्बाडा)। तन्नामानि तत्पक्वापक्वफलगुणाँश्चाह

आम्रातकः पीतनश्च मर्कटाम्रः कपीतनः। आम्रातमम्लं वातघ्नं गुरूष्णं रुचिकृत्सरम् ॥ १९ ॥
पक्वन्तु तुवरं स्वादु रसे पाके हिमं स्मृतम्। तर्पणं श्लेष्मलं स्निग्धं वृष्यं विष्टम्भि बृंहणम् ॥
गुरु बल्यं मरुत्पित्तक्षतदाहक्षयास्रजित् ॥ २० ॥

अम्बाडा के संस्कृत नाम – आम्रातक, पीतन, मर्कटाम्र, कपीतन और आम्रात ये सब हैं।

अम्बाडा—अम्ल रस युक्त, वातनाशक, गुरु, उष्ण, रुचिकारक और सारक होता है।

अम्बाडा का पक्वफल—कषाय रस युक्त, स्वादिष्ट, विपाक में मधुर, शीतल, सन्तर्पण करने वाला, कफजनक, स्निग्ध, वृष्य, विष्टम्भक (वायु को स्तब्ध करने वाला), बृंहण, गुरु, बलकारक, एवम् वात, पित्त, क्षत, दाह, क्षय और रक्तविकार का नाशक है ॥ १९–२० ॥

२ अम्बाडा

हि०–अम्बाडा अमड़ा, अमरा, आमड़ा। **बं०**–आमडा। **म०**–अंबाडा, ढोर आंबा। **गु०**–अंबेडा। **क०**–अंबर। **ते०**–अंबालमु। **अं०**–Indian Hog plum. (इण्डियन हॉग प्लम्)। **ले०**–*Spondias mangifera Willd.* (स्पॉण्डिएस् मॅंजीफेरा)। Fam. Anacardiaceae (ॲनेकार्डिएसी)।

अम्बाडा का वृक्ष बड़ा होता है। **पत्ते**–संयुक्त तथा १–१½ फीट लंबे होते हैं। **पत्रक**–३ से ६ इंच लम्बे, १½–२ इञ्च चौड़े, तथा चमकीले, दीर्घवृत्ताभ आयताकार, लम्बाग्र तथा किनारे के चारों ओर रहने वाली शिरा में अन्य शिराएँ मिलती हैं। **पुष्प**–हरिताभ, श्वेत वर्ण तथा छोटे होते हैं। वसन्त ऋतु में इसके सब पत्ते गिर जाते हैं और मञ्जरी लगती है। **फल**–गुच्छों में, हरिताभ एवं अण्डाकार लगते हैं। इनका अचार बनाते हैं। यह देशी और विलायती भेद से दो प्रकार का होता है। विलायती को स्पौ० डलसिस् (S. dulcis) कहते हैं। देशी के फल कच्ची अवस्था में अम्ल किन्तु पकने पर बाहरी भाग में अम्ल तथा अंदर से मधुर होते हैं। विलायती के फल गहरे अंबर वर्ण के, अत्यन्त अम्ल एवं इसमें खराब आम के जैसी गंध आती है।

सुखाये हुये अपक्व फलों का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह ग्राही तथा रक्तपित्त शामक होते हैं। छाल अतिसार में देते हैं। कर्णशूल में पत्तों का रस डालते हैं। फल का रस पित्तप्रकोप में देते हैं।

अथ राजाम्रः (कलमी आम)। तन्नामानि तत्फलस्य गुणाँश्चाह

राजाम्रष्टङ्क आम्रातः कामाङ्गो राजपुत्रकः ॥ २१ ॥
राजाम्रं तुवरं स्वादु विशदं शीतलं गुरु। ग्राहि रूक्षं विबन्धाध्मवातकृत्कफपित्तनुत् ॥ २२ ॥

कलमी आम के संस्कृत नाम—राजाम्र, टङ्क, आम्रात, कामाङ्ग तथा राजपुत्रक ये सब हैं। **कलमी आम**—कषाय तथा मधुर रस युक्त, विशद गुण युक्त, शीतल, गुरु, ग्राही, रूक्ष एवम्—विबन्ध, आध्मान, तथा वातकारक होता है और कफ तथा पित्त का नाशक होता है ॥ २१-२२ ॥

३ कलमी आम

सब प्रकार के कलमी आमों में लंगड़ा आम प्रसिद्ध है। हाजीपुर और बनारस का लंगड़ा आम सबसे अच्छा होता है, बम्बई का लंगड़ा मध्यम प्रकार का समझा जाता है। पूरब का गोला, लखनऊ का सुफेदा, रामपुर का फजरी, मुरादाबाद का कलमी आदि आम अच्छे होते हैं। जिस आम में रेशा बहुत कम रहता है, गूदा अधिक रहता है तथा जो स्वाद में खूब मीठा सर्वप्रिय होता है उसी को उत्तम समझना चाहिये। यह जितना मीठा होता है उतने ही उसमें गुण भी अधिक होते हैं। आम में जो पुष्टिकारक, बलकारी, वीर्य को उत्पन्न करना इत्यादि गुण हैं वे सब भली प्रकार से पके हुए और मीठे ही आम में होते हैं। अन्य वर्णन आम के साथ लिखा गया है।

अथ कोशाम्रः। तस्य नामानि तत्फलस्य च गुणाँश्चाह

कोशाम्र उक्तः क्षुद्राम्रः कृमिवृक्षः सुकोशकः। कोशाम्रः कुष्ठशोथास्रपित्तव्रणकफापहः ॥२३॥
तत्फलं ग्राहि वातघ्नमम्लोष्णं गुरु पित्तलम्। पक्वन्तु दीपनं रुच्यं लघूष्णं कफवातनुत् ॥२४॥

कोशाम्र आम के संस्कृत नाम—कोशाम्र, क्षुद्राम्र, कृमिवृक्ष तथा सुकोशक ये सब हैं।

कोशाम्र—कुष्ठ, शोथ, रक्तविकार, पित्त या रक्तपित्त, व्रण और कफ का नाशक है। कोशाम्र आम का फल-ग्राही, वातनाशक, अम्लरसयुक्त, उष्ण, गुरु तथा पित्तजनक होता है। यदि इसके फल पके हों तो अग्निदीपक, रुचिकारक, लघु, उष्ण एवं कफ तथा वात के नाशक होते हैं ॥

४ कोशाम्र

हि०—कोशम्भ, कुसुम, कोसम। **क०**—चकोत। **म०**—कोसिंब। **ता०**—पुमरम्। **मल**—पुपम। **गु०**—कोसुंब। **अं०**—Ceylon Oak (सिलोन् ओक्)। **ले०**—*Schleichera trijuga* Willd. (श्लीकेरा ट्राइज्यूगा)। Fam. Sapindaceae (सेपिण्डेसी)।

यह सतलज से नेपाल तक, दक्षिण तथा सिवालिक पहाड़ के ऊपर मध्य भारत में पाया जाता है।

इसका वृक्ष बड़ा छायादार तथा सुन्दर होता है। **पत्ते**—पक्षवत् तथा ८-१६ इञ्च लंबे होते हैं। **पत्रक**—२ से ४ जोड़े, अखण्ड, ३-१० इञ्च लंबे, आयताकार, अवृन्त तथा चिकने होते हैं। नीचे वाले पत्रक ऊपर के पत्रकों की अपेक्षा छोटे होते हैं। **फूल**—मञ्जरी में आते हैं और वे पीलापन युक्त हरे रंग के होते हैं। **फल**—१½ इञ्च लम्बे गोल, दानेदार और किञ्चित् नोकीले होते हैं। **बीज**—१ से ३, चिकने तथा लंबगोल चिपटे होते हैं। इस पर लगी हुई लाख बहुत उत्तम मानी जाती है। बीज की गुद्दी तथा बाह्यवृद्धि (Aril) खाई जाती है। इसकी **छाल**—मोटी, मुलायम, बाहर से धूसर, खुरदरी तथा भीतर से फीके लाल रंग की होती है। तोड़ने से भग्न छोटा होता है। स्वाद कुछ कषाय तथा गंध हलकी। इसकी छाल तथा बीज तैल का उपयोग किया जाता है। कलकत्ते की तरफ बीजों को **पक** कहते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजों में साइनोजेनेटिक ग्लूकोसाइड पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसकी छाल कषाय होती है तथा पानी में घिस कर खुजली आदि चर्मरोगों पर लगाई जाती है। बीजों का तेल, जिसे **मकासर तेल** कहते हैं, खुजली पर

लगाया जाता है। इसको बालों में लगाने से बाल स्वच्छ होते हैं तथा बढ़ते हैं। बीजों का चूर्ण जानवरों के व्रणों पर डालते हैं जिससे कीड़े निकल जाते हैं।

अथ पनसः (कटहल)। तन्नामानि तत्पकापक्वफलगुणाँश्चाह

पनशः कण्टकिफलः पलसोऽतिबृहत्फलः। पनसं शीतलं पक्वं स्निग्धं पित्तानिलापहम् ॥२५॥
तर्पणं बृंहणं स्वादु मांसलं श्लेष्मलंभृशम्। बल्यं शुक्रप्रदं हन्ति रक्तपित्तक्षतव्रणान् ॥२६॥
आमं तदेव विष्टम्भि वातलं तुवरं गुरु। दाहकृन्मधुरं बल्यं कफमेदोविवर्द्धनम् ॥ २७ ॥

कटहर के संस्कृत नाम—पनश कन्टकिफल, पलस तथा अतिबृहत्फल ये सब हैं।

कटहर के पके फल—शीतल, स्निग्ध, पित्त तथा वात के नाशक, सन्तर्पणकारक, बृंहण, स्वादिष्ट, मांस तथा कफ की अत्यन्त वृद्धि करने वाले, बलदायक, शुक्रजनक, एवम् रक्तपित्त, क्षत तथा व्रण को दूर करनेवाले होते हैं। वे ही यदि कच्चे हों तो विष्टम्भकारक, वातजनक, कषाय तथा मधुररसयुक्त, गुरु, दाहकारक, बलदायक, कफ तथा मेद की वृद्धि करने वाले होते हैं ॥ २५-२७ ॥

अथ पनसबीजगुणानाह

पनसोद्भूतबीजानि वृष्याणि मधुराणि च। गुरूणि बद्धविट्कानि सृष्टमूत्राणि संवदेत् ॥२८॥

कटहर के बीज—वृष्य (वीर्यवर्धक), मधुर रस युक्त, गुरु, मल को बांधने वाले एवम् मूत्र की प्रवृत्ति करानेवाले होते हैं ॥ २८ ॥

अथ पनसमज्जगुणानाह

मज्जा पनसजो वृष्यो वातपित्तकफापहः। विशेषात्पनसो वर्ज्यो गुल्मिभिर्मन्दवह्निभिः ॥२९॥

कठहल के बीज की मींगी—वृष्य (वीर्यवर्धक) एवम् वात, पित्त तथा कफ की नाशक होती है। विशेषरूप से कटहल खाना गुल्म तथा मन्दाग्निरोगवाले रोगियोंको छोड़ देना चाहिये।

५ कटहर

हि०—कटहर, कटहल, कठैल। **बं०**—कांटाल। **म०**—फणस। **गु०**—फनस। **क०**—हलसु। **ते०**—पनसकायि। **ता०**—पेलाकायि। **अं०**—Jack Tree (जैक ट्री)। **ले०**—*Artocarpus integrifolia Linn f.* (आर्टोकार्पस् इन्टेग्रिफोलिया)। Fam. Moraceae (मोरेसी)।

कटहर—विशेष कर गरम प्रान्तों में रोपण किया जाता है। पश्चिम घाट के जङ्गलों में यह आपही आप उत्पन्न होता है और दक्षिण, बिहार तथा बंगाल में अधिक होता है।

इस का वृक्ष बड़ा होता है। **छाल**—खुरदरी रहती है जिससे दुधिया क्षीर निकलता है। **पत्ते**—४-८ इञ्च लम्बे, कुछ चौड़े, मोटे, किंचित् अण्डाकार और किंचित् कालापन युक्त हरे रङ्ग के होते हैं। स्तम्भ और मोटी शाखाओं पर फूल फल लगते हैं। **फूल**—२ से ६ इञ्च तक लम्बे, १-२ इञ्च गोल अण्डाकार और किंचित् पीले रङ्ग के होते हैं। **फल**—बहुत बड़े-बड़े, १-२ फीट एवं लम्बाई युक्त गोल होते हैं। उसके ऊपर कोमल काँटे होते हैं। **गूदा**—बीज के चारों तरफ लिपटा हुआ मोटा होता है जो कच्ची अवस्था में सफेद तथा पकने पर पीला हो जाता है। कच्चे फलकी तरकारी बनाते हैं तथा पके फल को खाते हैं। बीजों में स्टार्च रहता है जिन्हें पकाकर खाते हैं।

रासायनिक संगठन—फलों में विटामिन 'ए' तथा 'सी' तथा लौह, खटिक एवं फास्फोरस तथा प्रोटीन आदि द्रव्य होते हैं। बीजों में विटामिन बी$_1$ तथा बी$_2$ पाये जाते हैं। काष्ठ में पीत रंजक द्रव्य होता है। छाल में टैनिन होता है। सूखे क्षीर में रवेदार पदार्थ आर्टोस्टेनोन (Arto-

stenone $C_{30}H_{56}O$) पाया जाता है जिसका परिवर्तन आर्टोस्टेरोन (Artosterone) में किया गया है जिसमें पुंस्त्वजनक (Androgenic–ॲण्ड्रोजेनिक) गुण पर्याप्त मात्रा में होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका पका फल गुरु, शीत, मृदु सारक, वृष्य, बृंहण, तर्पण तथा बल्य है किन्तु कच्चा विबन्धकारक होता है। पत्तों का चर्म विकारों में प्रयोग करते हैं। क्षीर का लेप फोड़े आदि पकाने के लिये करते हैं।

अथ लकुचः (बडहर)। तन्नामानि तत्पक्वफलगुणाँश्चाह

लकुचः क्षुद्रपनसो लिकुचो डहुरित्यपि। आमं लकुचमुष्णञ्च गुरु विष्टम्भकृत्तथा ॥ ३० ॥
मधुरञ्च तथाऽम्लञ्च दोषत्रितयरक्तकृत्। शुक्राग्निनाशनं वाऽपि नेत्रयोरहितं स्मृतम् ॥३१॥
सुपक्वं तत्तु मधुरमम्लं चानिलपित्तहृत्। कफवह्निकरं रुच्यं वृष्यं विष्टम्भकञ्च तत् ॥ ३२ ॥

बड़हर के संस्कृत नाम—लकुच, क्षुद्रपनस, लिकुच तथा डहु ये सब हैं।

बड़हर के कच्चे फल—उष्ण, गुरु, विष्टम्भकारक, मधुर तथा अम्लरस युक्त, त्रिदोष एवं रक्त विकार को उत्पन्न करने वाले, शुक्र और जठराग्नि को नष्ट करने वाले तथा नेत्रों के लिये अहितकर होते हैं। **पके फल**—मधुर तथा अम्ल रसयुक्त, वात तथा पित्त के नाशक, कफ और जठराग्नि के वर्धक, रोचक, वृष्य (वीर्यवर्धक) तथा विष्टम्भक होते हैं ॥ ३०–३२ ॥

६ बड़हल

हि०—बड़हल (र), बरहर, बरहल। **बं०**—डेओ, मादार, डेलो, डहुया। **म०**—वोटोंबा। **गु०**—लकुच। **ता०**—इलगुसम्। **ते०**—कम्मरेगु। **अं०**—Monkey Jack (मंकीजॅक)। **ले०**—*Artocarpus lakoocha Roxb.* (आर्टोकार्पस् लकूच)। Fam. Moraceae (मोरेसी)।

यह गरम प्रान्त में कुँमायू से पूरब की ओर और दक्षिण में ट्रावनकोर तक तथा अनेक प्रान्तों में उत्पन्न होता है।

बड़हर का **वृक्ष**—२० से ३० फीट ऊंचा होता है। इसके **पत्ते**—५ से १२ इञ्च लम्बे, २ से ६ इञ्च चौड़े, अंडाकृति तथा रुक्ष होते हैं। **पुष्प**—एकलिङ्गी होते हैं। **फल**—गोल गांठदार, २ से ४ इञ्च व्यास के होते हैं। कच्चे में हरे तथा स्वाद में खट्टे और पकने पर मटमैले पीले रङ्ग के और स्वाद में खट्टेमीठे होते हैं। इनके भीतर कटहर के समान रेशा और बीज होते हैं पर कटहर से छोटे होते हैं। इसलिये इसको क्षुद्रपनस भी कहते हैं। वसन्त ऋतु में यह फूलता तथा वर्षा में फलता है।

रासायनिक संगठन—छाल में ८·५% टैनिन होता है। इसके फल में रंजक द्रव्य इसकी अन्य जाति (Species) की अपेक्षा अधिक होता है।

गुण और प्रयोग—इसके बीज विरेचक होते हैं। विरेचन के लिये एक दो बीज या थोड़ासा क्षीर देते हैं। छाल का चूर्ण व्रण पर डालते हैं जिससे मवाद सूख जाता है तथा फांट से फुन्सियां तथा व्रण आदि धोते हैं।

इसके फल को अहिततम (निकृष्टतम) बतलाया गया है। (अ. हृ. सू. अ. ६)।

अथ कदली (केला)। तन्नामानि तत्पक्वापक्वफलगुणांश्चाह

कदली वारणा मोचाऽम्बुसारांऽशुमतीफला। मोचाफलं स्वादु शीतं विष्टम्भि कफकृद्[1] गुरु ॥
स्निग्धं पित्तास्रतृड्दाहक्षतक्षयसमीरजित्। पक्वं स्वादु हिमं पाके स्वादु वृष्यञ्च बृंहणम् ॥

[1] कफनुद् इति पाठा०।

क्षुत्तृष्णानेत्रगदहृन्मेहघ्नं रुचिमांसकृत् ॥ ३४ ॥

केला के संस्कृत नाम—कदली, वारणा, मोचा, अम्बुसारा तथा अंशुमतीफला ये सब हैं।

केला के कच्चे फल—स्वादिष्ट, शीतल, विष्टम्भक, कफकारक, गुरु, स्निग्ध एवम्-पित्त, रक्तविकार, प्यास, दाह, क्षत, क्षय, तथा वात को दूर करने वाले होते हैं।

पके फल—स्वादिष्ट, शीतल, विपाक में मधुर रसयुक्त, वृष्य (वीर्यवर्धक), बृंहण (रस-रक्तादि-वर्धक), रुचि तथा मांस को बढ़ाने वाले एवम्-भूख, प्यास, नेत्ररोग तथा प्रमेह के नाशक हैं॥

अथ कदलीभेदान् गुणनिर्देशपूर्वकमाह

माणिक्यमर्त्यामृतचम्पकाद्या भेदाः कदल्या बहवोऽपि सन्ति।
उक्ता गुणास्तेष्वधिका भवन्ति निर्दोषता स्याल्लघुता च तेषाम् ॥ ३५ ॥

केले के भेदों के नाम—माणिक्यकदली, मर्त्यकदली, अमृतकदली तथा चम्पककदली इत्यादि केले के बहुत से भेद हैं।

उक्त भेदों के गुण—जो गुण सामान्यरूप से पूर्व में केले के कह आये हैं वे सब इनमें विशेष रूप से रहते हैं तथा ये निर्दोष एवं लघु भी अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। केले के **फूल** एवं कन्द के गुण आगे शाकवर्ग में दिये हुवे हैं।

७ केला

हि०—केला, कदली, केरा। **बं०**—केला, कला। **म०**—केळ। **गु०**—केला। **क०**—बालि। **ते०**—अरटि। **ता०**—वालै। **फा०**—मोज, मोझ। **अ०**—तलह। **अं०**—Plantain (प्लॅन्टेन)। **ले०**—*Musa sapientum Linn.* (म्यूसा सेपिएन्टम्)। Fam. Musaceae (म्यूसेसी)।

केले का वृक्ष प्रायः सब प्रान्तों में होता है। फलने पर इसका पेड़ नष्ट हो जाता है। अन्तर्भूमिशायी कन्द से अंकुर निकल वृक्ष तैयार हो जाता है। इसके बड़े बड़े लम्बे पत्ते मुलायम होते हैं। हवा के झोंकों से जगह २ फट जाते हैं। इसके पत्तों पर भोजन करते हैं।

भारतवर्ष में उत्पन्न होने वाले फलों में आम के बाद केला ही है। सब प्रकार के केलों में बम्बई का लाल केला, कलकत्ते का चाटिम केला, चम्पक केला (पीला केला) प्रशंसा के योग्य हैं। पर्वती केला, काला केला, राजभोग, मानभोग, चीनिया आदि केले भी बढ़ियां गिने जाते हैं। अच्छी किस्म के फलों में बीज नहीं होते।

इसकी दो जातियां (Species) होती हैं। उपर्युक्त म्यू०सेपिएन्टम् में फल छोटे होते हैं तथा कच्चे खाये जा सकते हैं तथा दूसरी म्यू०पॅराडिसिका (Musa paradisica) जाति में फल बड़े होते हैं किन्तु केवल पकने पर ही खाये जा सकते हैं। इसके जंगली वृक्ष बिहार तथा पूर्वी हिमालय में ४००० फीट तक पाये जाते हैं।

रासायनिक संगठन—केले के पञ्चाङ्ग की राख में पोटॅशियम होता है। कच्ची अवस्था में इसमें टैनिन होते हैं। पक्व फल में शर्करा, विटामिन 'सी', कुछ 'बी', खनिज द्रव्य एवं अन्य द्रव्य होते हैं।

गुण और प्रयोग इसके पके फल बल्य, रक्तपित्त शामक, संग्राहक, तथा जीवनीय हैं। इससे रक्त की मात्रा बढ़ती है, आन्त्र की क्रिया सुधरती है तथा रक्त की अम्लता कम होती है। इसको अतिसारादि में पथ्य के रूप में देते हैं। कच्चे केले का प्रयोग अन्य द्रव्यों के साथ मधुमेह में किया जाता है। इसके फूलों का रस दही के साथ अत्यार्तव में देते हैं। फूलों की सब्जी रक्तपित्त में

तथा मधुमेह में देते हैं। काण्ड का रस अपस्मार, अपतन्त्रक आदि वातिक विकारों में देते हैं तथा यह तृषा शामक होता है। इसका शरबत खांसी में दिया जाता है।

अथ चिर्भिटम् (कचरिया, फूट)। तन्नामानि पक्वापक्वतत्फलगुणांश्चाह

चिर्भिटं धेनुदुग्धं च तथा गोरक्षकर्कटी ॥ ३६ ॥
चिर्भिटं मधुरं रूक्षं गुरु पित्तकफापहम्। अनुष्णं ग्राहि विष्टम्भि पक्वं तूष्णञ्च पित्तलम् ॥३७॥

कचरिया के संस्कृत नाम—चिर्भिट, धेनुदुग्ध तथा गोरक्षकर्कटी ये सब हैं।

कचरिया—मधुर रसयुक्त, रूक्ष, गुरु, पित्त-कफहर, किंचित उष्ण, ग्राही, विष्टम्भी (दस्त साफ न लाने वाली) होती है एवम् पका फल-उष्ण तथा पित्तजनक होता है ॥ ३६-३७ ॥

८ फूट

हि०—फूट, फूंट। **बं०**—फुटि। **म०**—फूट। **ले०**—*Cucumis momordica Roxb.* (क्युक्युमिस् मोमोर्डिका)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

फूट—प्रायः सब प्रान्तों की रेतीली भूमि में उत्पन्न होता है और खेतों में इसको रोपण करते हैं।

इसकी **लता**-होती है। **पत्ते**-गोलाकार, गहरे कटे किनारे वाले या प्रायः पांच भागवाले तथा बारीक दन्तुर होते हैं। **फूल**-छोटे-छोटे होते हैं। **फल**-१ से २ फीट लंबे, बेलनाकार, ३ से ६ इंच व्यास के, चिकने, कच्ची अवस्था में गहरे हरे रंग के तथा पकने पर नीबू जैसे पीतवर्ण के होते हैं। इसके दो भेद होते हैं। एक वर्षा में होता है तथा दूसरा ग्रीष्म में। इसको कच्चा या पकाकर लोग खाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके बीज दाहप्रशमन माने जाते हैं।

अथ नारिकेलः (नारियल)। तन्नामानि तत्फलसाधारणगुणांश्चाह

नारिकेलो दृढफलो लाङ्गली कूर्चशीर्षकः। तुङ्गः स्कन्धफलश्चैव तृणराजः सदाफलः ॥ ३८ ॥
नारिकेलफलं शीतं दुर्जरं वस्तिशोधनम्। विष्टम्भि बृंहणं बल्यं वातपित्तास्रदाहनुत् ॥ ३९ ॥

नारियल के संस्कृत नाम—नारिकेल, दृढफल, लाङ्गली, कूर्चशीर्षक, तुङ्ग, स्कन्धफल, तृणराज तथा सदाफल ये सब हैं।

नारियल का फल—शीतल, दुर्जर (देर में हजम होने वाला), वस्तिशोधक, विष्टम्भक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), बलकारक एवम्-वात, पित्त, रक्तविकार तथा दाह को दूर करने वाला होता है ॥ ३८-३९ ॥

अथ कोमलजीर्णतत्फलयोर्गुणानाह

विशेषतः कोमलनारिकेलं निहन्ति पित्तज्वरपित्तदोषान्।
तदेव जीर्णं गुरु पित्तकारि विदाहि विष्टम्भि मतं भिषग्भिः ॥ ४० ॥

नारियल का कोमल फल—विशेषतः पित्तज्वर तथा पित्तदोष को दूर करने वाला होता है। पुराना फल-गुरु, पित्तकारक, विदाही तथा विष्टम्भक होता है ऐसा वैद्यों का मत है ॥ ४० ॥

अथ नारिकेलजलगुणानाह

तस्याम्भः शीतलं हृद्यं दीपनं शुक्रलं लघु। पिपासापित्तजित्स्वादु वस्तिशुद्धिकरं परम् ॥४१॥

नारियल का जल—स्वादिष्ट, शीतल, हृदय को हितकर, अग्निदीपक, शुक्रजनक, लघु, अत्यन्त वस्तिशोधक एवम् प्यास तथा पित्त को शान्त करने वाला होता है ॥ ४१ ॥

अथ नारिकेलादीनां शिरोगुणानाह

नारिकेलस्य तालस्य खर्जूरस्य शिरांसि तु। कषायस्निग्धमधुरबृंहणानि गुरूणि च ॥ ४२ ॥

नारियल, ताड़ तथा खजूर के शिर (मस्तक पर होने वाला मीठा गूदा)—कषाय तथा मधुर रसयुक्त, स्निग्ध, गुरु एवम् बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक) होते हैं ॥ ४२ ॥

९ नारियल

हि०—नारियल, नरियल, गरी, गिरी। **बं०**—नारिकेल, डाब। **म०**—(फल) नारळी, नारळ, (वृक्ष) माड़। **गु०**—नारि(ळ)यल। **ते०**—टकाई। **ता०**—तेंगाई, टेन्ना। **फा०**—जोज हिन्दी नारीयल, नारगील। **अ०**—नारजिल। **अं०**—Coconut (कोकोनट्)। **ले०**—*Cocos nucifera Linn.* (कोकस् न्यूसीफेरा)। Fam. Palmea (पामी)।

नारियल—यह भारत के उष्ण एवं आर्द्र प्रदेशों, विशेषकर समुद्र, नदी आदि के किनारे लगाया हुआ पाया जाता है।

इसका **वृक्ष**-सीधा या कुछ टेढ़ा, ८० फीट या अधिक ऊँचा, आधार की तरफ कुछ मोटा जहाँ से मूल निकलते हैं एवं कचित् शाखायुक्त होता है। **पत्ते**-६ से १८ फीट लंबे, पक्षवत् संयुक्त; पत्रक २ से ३ फीट लंबे, क्रमशः नोकदार एवं कम चौड़े होते हैं। **पुष्प**-प्रत्येक पत्र के कोण से ४ से ६ फीट लंबा, नारंग या तृण वर्ण का कोशावृत पुष्प व्यूह निकलता है जिसमें स्त्रीपुष्प नीचे की तरफ, संख्या में कम, १ इंच लंबे तथा गोल होते हैं और पुंपुष्प, अधिक, छोटे मधुर गन्ध वाले एवं अग्रभाग पर होते हैं। **फल**-अंडाकार, त्रिकोण युक्त, ६ से १२ इंच लंबा तथा एक बीज युक्त होता है। फलभित्ति का बाह्यस्तर मोटा तथा रेशेदार होता है जो कठोर अन्तस्तर को घेरे रहता है। अन्तस्तर के अन्दर बीज रहता है। अन्तस्तर के एक सिरे पर ३ छिद्र रहते हैं जिनमें से किसी एक से बीजोद्भेद के समय अंकुर निकलता है। गरी के अन्दर अपक्व अवस्था में बहुत पानी रहता है किन्तु पक्वावस्था में यह कम हो जाता है।

नारियल के अनेक प्रकार (Varieties) होते हैं जिनमें से कुछ के पेड़ छोटे तथा कुछ के ऊंचे रहते हैं। फलों का रंग, आकार तथा संख्या के अनुसार भी अनेक प्रकार पाये जाते हैं।

इसके सभी अंगों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—ताजी १०० ग्राम गरी में आर्द्रता ३६·३, प्रोटीन ४·५, तेल ४१·६, कर्बोज १३, रेशा ३·६, चूना ·०१ तथा फास्फोरस ·२४ ग्राम और लोह १·७ मि० ग्रा०, विटामिन 'सी' १ मि० ग्रा०, बी' $_1$ १५ एकक, अत्यल्प 'ए', तथा 'ई' ·२ मि० ग्रा० एवं कुछ ताम्र भी रहता है।

सूखे गरी में तेल ५७-७५% रहता है जो अन्य तैलों की अपेक्षा अधिक सुपाच्य होता है। इसे आसानी से चर्म सोख लेता है तथा इसमें जल भी पर्याप्त मिल पाता है इसलिए मलहम आदि बनाने में इसका उपयोग करते हैं।

डाब (हरा नारियल) के जल में सोडियम् १०५, पोटेशियम ३१२, कैल्शियम २९, मॅग्नेशियम् ३०, लोह '१०, ताम्र '०४, फॉस्फोरस ३७, गंधक २४, क्लोरीन १८३, विटामिन 'सी' २'२–३'७, मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम में एवं विटामिन 'बी' अल्प रहता है। एक डाब में करीब १ औंस तक शर्करा रहती है।

इसकी ताजी मीठी ताडी में शर्करा बहुत रहती है तथा १०० सी० सी० में विटामिन 'सी' १६–३० मि० ग्रा० रहता है।

गुण और प्रयोग– नारियल मधुर, वृष्य, बृंहण, बल्य शीत एवं बस्तिशोधक है। (१) डाब का पानी शीत, मूत्रजनन, तृष्णा निग्रहण एवं ज्वरघ्न है। इसे ज्वर, सोजाक तथा हैजे में देते हैं। (२) इसका तेल केश्य एवं व्रणरोपक होता है। क्षय में इसका उपयोग काडलिवर आईल की तरह करते हैं। (३) इसकी ताड़ी या उससे बना मद्य दाहशामक, मूत्रल, बल्य, सौमनस्यजनन, निद्राजनन, वाजीकरण एवं बृंहण होता है। (४) इसके पुष्प ग्राही होते हैं। (५) चिपटे कृमि के लिये एक नारियल की गरी खिलाते हैं किन्तु साथ में विरेचन देना आवश्यक है। (६) इसका मूल मूत्रल एवं कषाय है तथा अश्मरी, प्रमेह एवं अत्यार्तव में इसका क्वाथ देते हैं। (७) इसके कवच को जलाकर निकाला तेल चर्मरोगों में बाहर से प्रयुक्त होता है। (८) नारियल का दूध क्षय, दुर्बलता आदि में तथा शस्त्रक्रिया के पूर्व एवं पश्चात् पिलाते हैं जिससे 'शाक' एवं रक्तस्राव का भय नहीं रहता।

अथ कालिन्दम् (तरबूज)। तन्नामानि पक्वापक्वतत्फलगुणांश्चाह

कालिन्दं कृष्णबीजं स्यात्कालिङ्गञ्च सुवर्तुलम्। कालिन्दं ग्राहि दक्पित्त शुक्र हृच्छीतलं गुरु॥
पक्वन्तु सोष्णं सक्षारं पित्तलं कफवातजित्॥ ४३॥

तरबूज के संस्कृत नाम—कालिन्द, कृष्णबीज, कालिङ्ग तथा सुवर्तुल ये सब हैं।

तरबूज के कच्चे फल– ग्राही, शीतल, गुरु एवम्–दृष्टि की शक्ति, पित्त तथा शुक्र नष्ट करने वाले होते हैं। पके फल–उष्ण, क्षारयुक्त, पित्तजनक एवम्–कफ तथा वात को दूर करने वाले होते हैं॥ ४३॥

१० तरबूज

हि०–तरबूज, तरबूजा। **बं०**–तरमुज। **म०**–कलिंगड। **गु०**–तड़बूज। **ता०**–कोमाट्टि। **ते०**–पुच्चकाया, तरबूजं। **फा०**–हिन्दवाना, हिन्ददानह। **अ०**–बतिख हिन्दी, ज़की। **अं०**–Watermelon (वाटर मेलन्)। **लै०**–*Citrullus vulgaris Schrad* (सिट्रयुलस् वल्गॅरिस्)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

प्रायः सब प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है। नदियों के किनारे, दियारे पर एवं रेतीली भूमि में अच्छा फल लगता है।

इसकी खुरदरी लता–खेतों में पसरी हुई रहती है। पत्ते–इन्द्रायन के पत्तों के समान गहरे कटे किनारे वाले होते हैं। फूल–एक इंच के घेरे में गोलाकार होते हैं। फल–बड़े बड़े पेठे और कोहड़े के आकार वाले होते हैं। गूदी–लाल या सफेद होती है। बीज–चिपटे, लाल, भूरे या काले होते हैं॥ ११॥

रासायनिक संगठन—बीजों में २० से ४०% पीले रंग का तेल होता है। फल में काफी मात्रा में पेक्टिन तथा रस में सिट्रयुलिन ०'१७% होता है।

गुण और प्रयोग—बीज शीतल, मूत्रजनन तथा बल्य होते हैं। बीजों का तेल बादाम के तेल के स्थान में उपयोग में आता है। फल मूत्रल तथा शीतल होता है।

अथ खर्बूजम् (खर्बूजा)। तन्नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

दशाङ्गुलं तु खर्बूजं कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥ ४४॥

खर्बूजं मूत्रलं बल्यं कोष्ठशुद्धिकरं गुरु। स्निग्धं स्वादुतरं शीतं वृष्यं पित्तानिलापहम्॥४५॥
तेषु यच्चाम्लमधुरं सक्षारञ्च रसाद्भवेत्। रक्तपित्तकरं तत्तु मूत्रकृच्छ्रकरं परम्॥ ४६॥

खर्बूजा के संस्कृत नाम—दशाङ्गुल और खर्बूजा ये हैं। **खर्बूजा के फल**–अत्यन्त स्वादिष्ट, मूत्रजनक, बलकारक, कोष्ठशुद्धि करनेवाले, गुरु, स्निग्ध, शीतल, वृष्य (वीर्यवर्धक) एवम्–पित्त तथा वायु को दूर करने वाले होते हैं। इनमें जो अम्ल, मधुर एवम् क्षार रसयुक्त होते हैं वे रक्तपित्त तथा मूत्रकृच्छ्र को अत्यन्त करने वाले होते हैं॥ ४४॥

११ खरबूजा

हि०–खरबूज, खरबूजा, खर्बूजा, चिभुड। **बं०**–खरमुज। **म०**–खरबूज। **गु०**–तलिया शकर टेटी, तलियाभीमड़ा। **ते०**–खरबूज। **क०**–षड्भुजा। **फा०**–खरपुजह, खरपुजा। **अ०**–बितिख, खर्पुजह, खरपुजाह। **अं०**–Melon (मेलन्)। **लै०**–*Cucumis melo Linn.* (क्युक्युमिस् मेलो)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

प्रायः सब प्रान्तों के खेतों में यह रोपण किया जाता है। उत्तर पश्चिमी उष्ण तथा शुष्क प्रदेशों में अधिक रोपण किया जाता है। नदियों के किनारे रेतीली भूमि में यह अधिक उत्पन्न होता है।

इसकी लता–भूमि पर पसरी हुई रहती है। पत्ते–रोमश, गोलाकार एवं उनमें कहीं कहीं नोक-सा निकला रहता है। फूल–पीले रङ्ग के आते हैं। फल–गोलाकार कुछ चिपटे रहते हैं। पकने पर वे किञ्चित् हरापन युक्त पीले रंग के या सफेदी मायल हो जाते हैं। उनके चारों ओर रेखायें रहती हैं जो नीले रंग की होती हैं। गूदी के भीतर बीजों के समूह का लसीला गोला रहता है। बीज–लम्बाई युक्त चिपटे होते हैं। बीजों का चिकित्सा में प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजों में तेल होता है। फल में खटिक, ताम्र, फॉस्फोरस, लोह तथा विटामिन 'ए', 'बी$_1$', 'बी$_2$' तथा 'सी' आदि द्रव्य होते हैं।

गुण और प्रयोग—बीज शीतल, मूत्रजनन एवं बल्य हैं; फल शीतल हैं तथा पुराने एक्जीमा के लिए लाभदायक माने जाते हैं। मूत्रकृच्छ्र में बीज देते हैं।

अथ त्रपुसम् (खीरा, बालमखीरा)। तस्य नामानि पक्वापक्वतत्फलतद्बीजगुणाँश्चाह

त्रपुसं कण्टकिफलं सुधावासः सुशीतलम्। त्रपुसं लघु नीलञ्च नवं तृट्क्लमदाहजित्॥४७॥
स्वादु पित्तापहं शीतं रक्तपित्तहरं परम्। तत्पक्वमम्लमुष्णं स्यात्पित्तलं कफवातनुत्॥४८॥
तद्बीजं मूत्रलं शीतं रूक्षं पित्तास्रकृच्छ्रजित्॥ ४८॥

खीरा के संस्कृत नाम—त्रपुस, कण्टकिफल, सुधावास तथा सुशीतल ये सब हैं। खीरे के छोटे, नीले तथा नवीन फल–स्वादिष्ट, शीतल एवम्—प्यास, क्लान्ति, दाह तथा पित्त को दूर

करनेवाले होते हैं और रक्तपित्त को तो अत्यन्त नष्ट करनेवाले होते हैं। खीरे के पके फल-अम्लरसयुक्त, उष्ण, पित्तजनक एवम्-कफ तथा वात को नष्ट करनेवाले होते हैं। खीरे के बीज-मूत्रजनक, शीतल, रूक्ष एवम्-पित्त, रक्तविकार तथा मूत्रकृच्छ्र को दूर करनेवाले होते हैं ॥४७-४८॥

१२ खीरा

हि०-खीरा, बालमखीरा। बं०-क्षीरा, शशा। म०-तौसे। क०-तसेयकायि। गु०-तांसली। ते०-दोसकाई। ता०-मुल्लुवेरक्केरी। फा०-शियार खुर्द, खयार, वादरङ्ग। अ०-कंशद। अं०-Cucumber (क्युकुम्बर)। ले०-Cucumis sativus Linn. (क्युक्युमिस सटाइवस्)। *Fam. Cucurbitaceae* (कुकुर्बिटेसी)।

प्रायः सब प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है।

इसकी बेल-खेतों में फैली हुई रहती है। पत्ते-५-६ इञ्च के घेरे में गोलाकार और पाँच कोण वाले होते हैं। फूल-पीले रङ्ग के आते हैं। फल-६ से १२ इञ्च तक लम्बे होते हैं और उनमें ककड़ी के समान बीज होते हैं। एक बड़ी जाति का खीरा होता है जिसको-बालम खीरा-कहते हैं। इसकी लम्बाई अधिक होती है। इसका एक प्रकार 'मुंडोसा' मद्रास की तरफ अधिक प्रचलित है जिसके फलों पर छोटे काँटे होते हैं।

रासायनिक संगठनः—इसके फलों में खटिक, फास्फोरस, लौह, विटामिन सी तथा विटामिन बी, पाया जाता है। बीजों में तेल होता है। बीजों की राख में फॉस्फेट अधिक (P_2O_5, ०·६२%) रहते हैं।

गुण और प्रयोग—यह शोथहर है। शोथ पर, इसको काटकर उसमें नमक डालकर बांधने से सूजन कम होती है तथा पूय एक स्थान पर इकट्ठा हो जाता है। बीज का उपयोग बस्तिशूल में करते हैं।

अथ गुवाकः (सुपारी)। तन्नामानि तत्फलनामगुणाँश्चाह

घोरण्टः पूगी पूगश्च गुवाकः क्रमुकोऽस्य तु। फलं पूगीफलं प्रोक्तमुद्वेगं च तदीरितम् ॥ ४९ ॥
पूगं गुरु हिमं रूक्षं कषायं कफपित्तजित्। मोहनं दीपनं रुच्यमास्यवैरस्यनाशनम् ॥ ५० ॥

सुपारी के संस्कृत नाम—घोरण्ट, पूगी, पूग, गुवाक तथा क्रमुक ये सब हैं।

इसके फल के संस्कृत नाम—पूगीफल तथा उद्वेग हैं।

सुपारी-कषाय रसयुक्त, गुरु, शीतल, रूक्ष, मोहजनक, अग्निदीपक, रोचक एवम्-कफ, पित्त तथा मुख की विरसता को दूर करने वाली होती है ॥ ४९-५० ॥

अथार्द्रस्विन्नतत्फलगुणानाह

आर्द्रं तद् गुर्वभिष्यन्दि वह्निदृष्टिहरं स्मृतम्।
स्विन्नं दोषत्रयच्छेदि दृढमध्यं तदुत्तमम् ॥ ५१ ॥

कच्ची सुपारी-गुरु, अभिष्यन्दी एवम्-जठराग्नि तथा दृष्टि को मन्द करनेवाली होती है। स्विन्न (चिकनी) सुपारी-त्रिदोषनाशक होती है तथा जिसका मध्यभाग दृढ़ हो वह सुपारी उत्तम होती है ॥ ५१ ॥

१३ सुपारी

हि०-सुपारी, सोपारी, सुपाड़ी, कसेली। बं०-सुपारी, सुपारी। म०-सुपारी, पोफल (फळ)। गु०-सोपारी। ता०-कमुगु। क०-कडि, अडिके। ते०-पोका। फा०-पोपिल। अ०-

फोफिल। अं०-Betel Nut Palm (बेटल् नट् पाम)। ले०-*Areca catechu Linn.* (एरेका कॅटेचू)। Fam. Palmae (पामी)।

सुपारी एक बहुत प्रसिद्ध वस्तु है जो प्रतिदिन के व्यवहार में पान के साथ या अकेली खाने के काम आती है। इसके वृक्ष बङ्गाल, आसाम, सिलहट, मैसूर, कनारा, मलाबार तथा दक्षिण हिन्दुस्तान के कई प्रान्तों में तटीय प्रदेशों में लगाये हुये पाये जाते हैं।

यह वृक्ष ताड और नारियल के समान ऊँचा (४०-६० फीट) पर बाँस के समान पतला होता है। पत्ते-बड़े २, पक्षवत, नारियल के पत्तों के समान ४ से ६ फीट लम्बे, जिनमें ऊपर के उपपक्ष (Piunae) मिले हुये तथा वृन्त का नीचे का भाग चौड़ा तथा फैला हुआ होता है। फूल-पत्रकोशावृत गुच्छ में, जिन में पुंपुष्प छोटे, अधिक तथा स्त्रीपुष्प बड़े रहते हैं। फल-अंडाकार, १½-२" चौड़ा तथा २-२½" लम्बा एवं पकने पर चमकीले नारंगी रंग का होता है जिसके अन्दर सुपारी (बीज) रहती है।

सुपारी आकार, नाप तथा स्वाद आदि के अनुसार अनेक प्रकार की होती है। परन्तु एक साधारण सुपारी (धूसर भूरे रङ्ग की) और दूसरी (लाल सुपारी) दक्षिणी सुपारी ये ही दो प्रसिद्ध हैं। इनमें से दूसरी उबाल कर बनाते हैं। पकने से कुछ पूर्व सुपारी को निकाल कर जल तथा पूर्व वर्ष के तैयार 'घन' (छोगारू) में उबालते हैं। नया क्वाथ बनाना हो तो जामुन, लाल चंदन, पीपल इत्यादि की छाल से बनाते हैं। इससे स्वाद, टिकाऊपन तथा रंग अच्छा हो जाता है तथा इसके दोष दूर हो जाते हैं। बालू में भूनकर खाने से भी दोष दूर हो जाते हैं।

रासायनिक संगठन—साधारण सुपारी में टैनिन २१ से ३०% किन्तु चिकनी सुपारी में ९ से १५% रहता है। इसमें खटिक फॉस्फोरस, लौह तथा अनेक क्षाराभ जिनमें से मुख्य अॅरेकोलिन (Arecoline, $C_6H_{11}O_2N$, ०·१%) है, पाये जाते हैं। यह क्षाराभ वात नाड़ी संस्थान के लिये विषैला है जिससे आक्षेप तथा अंगघात होता है। इसकी क्रिया पाइलोकार्पिन (Pilocarpine) की तरह होती है। इसके लवण के इन्जेक्शन घोड़ों के पेट फूलकर पीड़ा होने में देते हैं जिससे विरेचन होता है। जानवरों के चिपटे कृमि में भी इसे देते हैं। मनुष्यों में इसका उपयोग नहीं करते हैं। इसमें एक लाल रंग पाया जाता है जो क्षारीय खौलते जल में घुलता है तथा अम्ल से प्रक्षेपित हो जाता है। छोगारू का कत्थे जैसा उपयोग भी किया जाता है।

गुण और प्रयोग - यह शीत रूक्ष, कषाय, मुखशुद्धिकर, वृष्य एवं कृमिघ्न होती है। ताजी मादक एवं कभी-कभी चक्कर लाने वाली होती है। इसे वातनाड़ियों के लिये बल्य तथा आर्तवप्रवर्तक भी मानते हैं। इसको चबाने से कुछ उत्तेजना आती है तथा मन प्रसन्न होता है। इसका उपयोग अतिसार, कृमि तथा मूत्रविकार आदि में करते हैं। इसको जलाकर मंजन भी बनाते हैं।

(१) चिपटे कृमि के लिये एक कच्ची सुपारी दूध में पीस कर पिलाते हैं।

(२) रक्तमिश्रित आंव में ¼-½ सुपारी का चूर्ण दिया जाता है।

विष प्रभाव—अधिक मात्रा में यह विषैली होने के कारण केवल जानवरों के कृमि में ही इसका उपयोग अब किया जाता है। हमेशा चबाने से कैन्सर होने की संभावना व्यक्त की गई है।

अथ तालः (ताड)। तन्नामानि तत्पक्वफलमज्जगुणाँश्चाह

तालस्तु लेख्यपत्रः स्यात्तृणराजो महोन्नतः ॥ ५२॥
पक्वं तालफलं पित्तरक्तश्लेष्मविवर्द्धनम्। दुर्जरं बहुमूत्रञ्च तन्द्राऽभिष्यन्दशुक्रदम् ॥ ५३ ॥

तालमज्जा तु तरुणः किञ्चिन्मदकरो लघुः। श्लेष्मलो वातपित्तघ्नः सस्नेहो मधुरः सरः ॥५४॥

ताड़ के संस्कृत नाम–ताल, लेख्यपत्र, तृणराज तथा महोन्नत ये सब हैं। पका ताड़ का फल–पित्त, रक्त तथा कफ की वृद्धि करनेवाला, देरमें हजम होनेवाला, मूत्र की अत्यन्त प्रवृत्ति करने वाला एवम्–तन्द्रा, अभिष्यन्द तथा शुक्र को उत्पन्न करनेवाला होता है। ताड़ की मींगी जो कि खूब तैयार होगई हो वह किञ्चित मदकारक, लघु, कफजनक, स्नेहयुक्त, मधुर, सारक एवम्–वात तथा पित्त का नाशक होती है ॥ ५२–५४ ॥

अथ तालरसः (ताडी)। नवीनस्य प्राचीनस्य च नामानि गुणाँश्चाह

तालजं तरुणं तोयमतीव मदकृन्मतम्। अम्लीभूतं तदा तु स्यात्पित्तकृद्वातदोषहृत् ॥ ५५ ॥

ताड़ का ताजाजल (ताड़ी)–अत्यन्त मदकारक होता है। यदि वही पुराना होने से खट्टा होगया हो तो पित्तकारक एवम्–वात दोष को दूर करने वाला होता है ॥ ५५ ॥

१४ ताड़

हि०–ताड़, ताल, तार। **बं०**–ताल। **म०**–ताड़। **ता०**–पनै मरम। **क०**–तालिमारा। **ते०**–ताति। **गु०**–तड़। **फा०**–ताल। **अ०**–तार। **अं०**–The Palmyra Palm (दी पामीरा पाम्)। **ले०**–*Borassus flabellifer Linn.* (बोरेसस् फ्लेबेलिफेर)। Fam. Palmae (पामी)।

यह प्रायः सभी स्थानों पर विशेषकर शुष्क प्रदेशों में, पेनिनसुला के तटीय प्रदेशों, बंगाल तथा बिहार में होता है।

ताड़ का वृक्ष–१०० फीट तक ऊँचा होता है और उसके स्तम्भ की गोलाई २½–७ फीट तक होती है। स्तम्भ के सिरे पर ३ से ५ फीट के घेरे में ३०–४० पत्ते एक साथ सटे हुये गोलाकार, और कटे हुए किनारेदार होते हैं। पत्रदंड–२ से ४ फीट का होता है। यह पुरुष और स्त्री जाति के भेद सेदो प्रकार का होता है। स्त्री जाति पर नारियल के फल के समान फल लगते हैं और पुरुष जाति पर बाल आते हैं। पुंपुष्पव्यूह का गलती से गजपिप्पली के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। फल बड़े तथा रेशेदार होते हैं जिनके भीतर तीन खण्ड होते हैं जिनमें से प्रत्येक में बीज होता है। इसके पुष्पित अक्ष को चीरा लगाने से रस प्राप्त होता है जिसे ताजे अवस्था में नीरा तथा बाद में ताड़ी कहते हैं। इसको पकाकर गुड़ तथा मिश्री प्राप्त की जाती है।

रासायनिक संगठन—नीरा में शर्करा तथा यीस्ट (Yeast) रहता है। यीस्ट से विटामिन बी प्राप्त होता है। पुंजाति से प्राप्त नीरा में शर्करा कुछ अधिक होती है। नीरा को रखने से स्वतः संधान प्रारम्भ हो जाता है तथा ६ से ८ घंटे के अन्दर इसमें ३% तक मद्यसार एवं ०·१% अम्ल तैयार हो जाता है। बाद में मद्यसार की मात्रा ५% तक बढ़ कर रुक जाती है। तत्पश्चात् अम्ल की वृद्धि होकर सिरका बन जाता है।

गुण और प्रयोग—इसका फल मधुर, शीत, बल्य, बृंहण तथा पित्तहर है। बीज मूत्रल तथा वातपित्तशामक है। इसके नूतन पुष्पित भाग की राख अम्लतानाशक एवं विषमज्वरहर होती है। इसका उपयोग अम्लपित्त में तथा विषमज्वर में विशेषकर यकृत प्लीहावृद्धि होने पर करते हैं तथा चावल का मांड के साथ लेप भी करते हैं। इससे त्वचा लाल होकर फोड़े आते हैं।

नीरा उत्तेजक, कफनाशक एवं मूत्रल होती है तथा इसे आल्हाद कारक पेय के रूप में पीते हैं। तालमिश्री कास, वक्ष के विकार तथा बालकों के लिये सारक रूप में प्रयोग में आती है।

अथ बिल्वः (बेल)। तन्नामानि तद्बालफलनामगुणाँश्चाह

बिल्वः शाण्डिल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि। बालं बिल्वफलं बिल्वकर्कटी बिल्वपेशिका ॥
ग्राहिणी कफवातामशूलघ्नी बिल्वपेषिका ॥ ५६ ॥

बेल के संस्कृत नाम–बिल्व, शाण्डिल्य, शैलूष, मालूर तथा श्रीफल ये सब हैं। बेल के कच्चे फल के संस्कृत नाम–बालबिल्वफल, बिल्वकर्कटी तथा बिल्वपेशिका ये सब हैं।

बेल के कच्चे फल–ग्राही एवम् कफ, वात, आम तथा शूल को नष्ट करने वाले होते हैं ॥५६॥

अन्यच्च

बालं बिल्वफलं ग्राहि दीपनं पाचनं कटु। कषायोष्णं लघु स्निग्धं तिक्तं वातकफापहम् ॥

ग्रन्थान्तर में कहे हुये कच्चे बेल के फल के गुण–यह ग्राही, अग्निदीपक, पाचक, कटु–तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, उष्ण, लघु, स्निग्ध एवम् वात तथा कफ को दूर करने वाले होते हैं ॥ ५७ ॥

अथ पक्वतत्फलगुणानाह

पक्वं गुरु त्रिदोषं स्याद् दुर्जरं पूतिमारुतम्। विदाहि विष्टम्भकरं मधुरं वह्निमान्द्यकृत् ॥५८॥

बेल का पका फल–मधुर रसयुक्त, गुरु, त्रिदोषजनक, देर में हजम होने वाला, दुर्गन्धयुक्त अधोवायु को करने वाला, विदाही, विष्टम्भ तथा अग्निमन्दता को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ ५८ ॥

अथ पक्वापेक्षया बालस्य बिल्वफलस्य गुणाधिक्यमाह

फलेषु परिपक्वं यद् गुणवत्तदुदाहृतम् ॥ ५९ ॥
बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमामं तद्धि गुणाधिकम्। द्राक्षाबिल्वशिवाऽऽदीनां फलं शुष्कं गुणाधिकम् ॥

पके फल की अपेक्षा बेल के कच्चे फल के गुणाधिक्य का वर्णन—सामान्यरूप से फलों में पका फल ही अधिक गुणकारी कहा गया है किन्तु यह नियम बेल के फल के लिये नहीं है ऐसा समझना चाहिये, क्योंकि बेल का कच्चा फल ही विशेष गुणकारी होता है।

एवम्—द्राक्षा (दाख), बेल तथा हरड़ आदि के फल यदि सूखे हों तो अधिक गुणकारी होते हैं ॥ ५९–६० ॥

१५ बेल का फल

नोट—बेल के सम्बन्ध में अन्य वर्णन गुडूच्यादिवर्ग में पृ० २७४–२७६) किया जा चुका है।

अथ कपित्थः (कैथ)। तन्नामानि तत्पक्वापक्वफलगुणाँश्चाह

कपित्थस्तु दधित्थः स्यात्तथा पुष्पफलः स्मृतः। कपिप्रियो दधिफलस्तथा दन्तशठोऽपि च ॥
कपित्थमामं संग्राहि कषायं लघु लेखनम्। पक्वं गुरु तृषाहिक्काशमनं वातपित्तजित् ॥
स्यादम्लं तुवरं कण्ठशोधनं ग्राहि दुर्जरम् ॥ ६२ ॥

कैथ के संस्कृत नाम–कपित्थ, दधित्थ, पुष्पफल, कपिप्रिय, दधिफल तथा दन्तशठ ये सब हैं। कैथ का कच्चा फल—कषाय रसयुक्त, संग्राही, लघु तथा लेखन होता है। पका फल—अम्ल तथा कषाय रसयुक्त, गुरु, कण्ठ को साफ करने वाला, ग्राही, देर में हजम होने वाला एवम्–प्यास तथा हिक्का को शमन करने वाला और वात तथा पित्त को दूर करने वाला होता है ॥

१६ कैंथ

हिं०–कै(कैं)थ, कैथा, कैंत, कइंत। **बं०**–कयेद्, कयेत बेल। **म०**–कंवठ। **गु०**–कोठ। **क०**–बेलु। **ते०**–वेलग। **ता०**–वलामरं। **अं०**–Wood Apple (वुड ॲपल), Elephant Apple (एलिफेन्ट ॲपल्)। **ले०**–*Feronia elephantum Correa* (फेरोनिया एलिफॅन्टम्)। Fam. Rutaceae (रूटेसी)।

यह इस देश के प्रायः सूखे प्रान्तों में अधिक उत्पन्न होता है तथा दक्षिण में वन्य अवस्थाओं में पाया जाता है।

इसका **वृक्ष**–बहुत बड़ा होता है और उस पर सीधे काँटे होते हैं। वृक्ष से बबूर के गोंद के समान एक प्रकार का गोंद निकलता है। **पत्ते**–संयुक्त, सदलपर्ण, ३ से ४ इञ्च लंबे होते हैं। **पत्रक**–अंडाकार या अभिअंडाकार, छोटे छोटे, एक-एक सींक पर तीन तीन अथवा ५ या ७–७ रहते हैं। **फूल**–फीके लाल रंग के होते हैं। **फल**–२–३ इञ्च के घेरे में गोल होते हैं और छिलका कठोर होता है। भीतर सुगंधित, स्वादु, खाने लायक गूदी होती है और गूदी में छोटे-छोटे अनेक चिपटे बीज होते हैं। इसमें एक आश्चर्यजनक गुण यह है कि यदि हाथी कैंत के फल को खाजावे तो इसका गूदा हाथी के पेट में रह जाता है और गूदा रहित अखंडित फल मल के साथ बाहर निकल आता है। इसके दो भेद होते हैं। एक में फल छोटे तथा अम्ल होते हैं। तथा दूसरे में फल बड़े तथा मीठे होते हैं। पक फल को चीनी के साथ या शरबत बनाकर या चटनी के रूप में खाया जाता है। इसकी जेली भी बनाई जाती है। इसके पत्र, गोंद तथा फल का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—फल में खनिज तत्व विशेषकर खटिक, फॉस्फोरस तथा लोह अधिक होते हैं। इसके अतिरिक्त राइबोफ्लेविन (Riboflavine) तथा विटामिन 'सी', एवं पेक्टिन (Pectin 3 to 5%) होता है। इसके पत्तों में उड़नशीलतैल ०·७३% होता है जिसमें मुख्य भाग एस्ट्रॅगॉल (Estragol, $C_{10} H_{12} O$) का होता है।

गुण और प्रयोग—इसका फल–गुणों में बेल की तरह होता है। यह विशेष रूप से रक्तपित्त-शामक होता है। पत्ते वातानुलोमक होते हैं

(१) इसका फल रक्तपित्त, अतिसार तथा प्रवाहिका में दिया जाता है। इसके गोंद से उदर की मरोड़ कम होती है।

(२) बच्चों के अजीर्ण में पत्तों का उपयोग करते हैं।

अथ नारङ्गः (नारङ्गी)। तन्नामानि मधुराम्लनारङ्गयोर्गुणाँश्चाह

नारङ्गो नागरङ्गः स्यात्त्वक्सुगन्धो मुखप्रियः ॥ ६३ ॥

नारङ्गो मधुराम्लः स्याद्रोचनो वातनाशनः। अपरं त्वम्लमत्युष्णं दुर्जरं वातहृत् सरम् ॥६४॥

नारङ्गी के संस्कृत नाम—नारङ्ग, नागरङ्ग, त्वक्सुगन्ध तथा मुखप्रिय ये सब हैं।

नारङ्गी–मधुर तथा अम्लरसयुक्त, रोचक एवम् वातनाशक होती है और दूसरी जाति की नारङ्गी अम्लरसयुक्त, अत्यन्त उष्ण, देर में हजम होने वाली, सारक तथा वातनाशक होती है॥

१७ नारङ्गी

हि०–नारङ्गी, संतरा, संत्रा। **बं०**–कमलानेबु। **म०**–नारिंग, संत्रा। **गु०**–नारङ्गी। **फा०**–किस्मे अज नारंज, नारंज। **अ०**–नारंज। **अं०**–Orange (ऑरेंज)। **ले०**–*Citrus reticulata Blanco* (साइट्रस रेटिक्युलेटा)। Fam. Rutaceae (रूटेसी)।

यह सब प्रान्तों की वाटिकाओं में रोपण किया जाता है। आसाम, सिक्किम, मध्य भारत, पंजाब तथा कुर्ग में इसकी अधिक खेती की जाती है।

इसका **वृक्ष**–छोटा होता है। **पत्ते**–चिकने ४–५ इञ्च लम्बे नीबू के पत्ते के आकार वाले होते हैं। पर्णवृन्त करीब-करीब पक्षहीन होता है। **फूल**–सफेद रंग के आते हैं और उनसे सुगन्ध आती है। **फल**–२ इञ्च के घेरे में गोलाकार और दोनों ओर दबे हुए होते हैं, पकने पर वे नारङ्गी रङ्ग के हो जाते हैं।

इसकी एक अन्य जाति होती है जिसमें फल बहुत खट्टा होता है उसे सा. ऑरॅन्शिअम् लिन. (C. aurantium Linn.) कहते हैं। इसका चिकित्सा की दृष्टि से यह महत्त्व है कि इसमें विटामिन 'ए' का पूर्वरूप एवं विटामिन बी बहुत होता है तथा इसके छिलके कुछ दीपन एवं सुगंधि के लिये काम में आते हैं।

संतरे के स्थान, स्वरूप आदि भेद से अनेक भेद पाये जाते हैं।

रासायनिक संगठन—छिलके में एक तेल होता है जिसमें लिमोनेन (Limonene) बहुत होता है। इसकी शाखा तथा पत्तों से पेटिट्ग्रेन आईल (Petitgrain oil) प्राप्त किया जाता है। फल में विटामिन 'सी', 'बी', 'ए' एवं खनिज द्रव्य, शर्करा, अम्ल द्रव्य एवं पेक्टिन आदि द्रव्य होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका रस ज्वरहर, तृषाशामक, दुर्जर, हृद्य, रुचिकारक एवं वातघ्न है।

अथ तिन्दुकः (तेंदू)। तन्नामानि पक्वापक्वतत्फलगुणाँश्चाह

तिन्दुकः स्फूर्जकः कालस्कन्धश्चासितकारकः। स्यादामं तिन्दुकं ग्राहि वातलं शीतलं लघु ॥
पक्वं पित्तप्रमेहास्रश्लेष्मघ्नं मधुरं गुरु ॥ ६५ ॥

तेंदू के संस्कृत नाम—तिन्दुक, स्फूर्जक, कालस्कन्ध तथा असितकारक ये सब हैं।

तेंदू का कच्चा फल–ग्राही, वातजनक, शीतल एवम् लघु होता है। **पकाफल**–मधुर रस-युक्त, गुरु एवम्-पित्त, प्रमेह, रक्तविकार तथा कफ का नाशक होता है।

१८ तेंदू

हि०–तेंदू, गाब, गाभ। **बं०**–गाब। **म०**–टेंबुरणी। **गु०**–टींबरू। **ते०**–तुमिदि। **ता०**–तुम्बिक। **अं०**–Gaub Persimon (गॉब पर्सिमॉन्)। **ले०**–*Diospyros embryopteris Pers.* (डायोस्पाईरॉस एम्ब्रीओप्टेरिस्)। Fam. Ebenaceae (एबेनेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है। विशेष कर बङ्गाल में अधिक होता है।

इसका **वृक्ष**–मध्यमाकार का, शाखा-प्रशाखा करके सघन और बारहोमास हरा-भरा रहता है। **छाल**–भूरे रंग की होती है। **पत्ते**–२ इञ्च चौड़े, ५–९ इञ्च तक लम्बे, किंचित् अण्डाकार, आयताकार, चिकने, चर्मसदृश और चमकीले होते हैं। **फूल**–सफेद, पत्रदण्ड के पास झुमकों में आते हैं। **फल**–२–३ इञ्च के घेरे में गोलाकार और पकने पर कुछ पीले रंग के हो जाते हैं। ये रक्तकिट्टावरण से ढके रहते हैं। इसके भीतर लसीली गूदी होती है। मल्लाह लोग सन के साथ इसकी गूदी को मिला कर नाव के छेदों को बन्द करते हैं। **बीज**–४ से ८ रहते हैं। इसको बंदर बहुत खाते हैं। इस आधार पर इसे 'मर्कटतिन्दुक' एवं इसकी अन्य जाति डॉ० मेलॅनोक्जाइलोन (D. melanoxylon, Roxb.) को तिन्दुक श्री ठा० बलवन्तसिंह जी ने माना है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में तेल होता है। छाल तथा फल में टैनिन होता है। फलों में पेक्टिन बहुत होता है। इसके ईथरीय सत्त्व में, ईस्चेरिचिया कोलाई (Escherichia coli) जीवाणुनाशक शक्ति होती है।

गुण और प्रयोग—इसकी गुद्दी अच्छी संग्राहक होती है। इसको जीर्ण अतिसार तथा प्रवाहिका में देते हैं। बीजों का तेल भी अतिसारादि में दिया जाता है। विषम ज्वर में छाल देते हैं। मुखपाक में फल के फांट से कुल्ला कराते हैं तथा व्रण एवं क्षत पर स्वरस लगाते हैं।

मात्रा—शुष्क गुद्दी १ से ५ रत्ती।

अथ कुपीलुः। यस्य फलं कुचिला इति लोके 'मकरतेंदुआ' इति च। तन्नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

तिन्दुको यस्तु कथितो जलदो दीर्घपत्रकः ॥ ६६ ॥
कुपीलुः कुलकः काकतिन्दुकः काकपीलुकः। काकेन्दुर्विषतिन्दुश्च तथा मर्कटतिन्दुकः ॥६७॥
कुपीलुः शीतलं तिक्तं वातलं मदकृल्लघु। परं व्यथाहरं ग्राहि कफपित्तास्रनाशनम् ॥६८॥

कुपीलु (जिसके फल को लोक में 'कुचिला' कहते हैं तथा जो 'मकरतेंदुआ' भी कहलाता है) के संस्कृत नाम – तिन्दुक, जलद, दीर्घपत्रक, कुपीलु, कुलक, काकतिन्दुक, काकपीलुक, काकेन्दु, विषतिन्दु तथा मर्कटतिन्दुक ये सब हैं।

कुचिला–तिक्तरसयुक्त, शीतल, वातजनक, मदकारक, लघु, अत्यन्त व्यथा को दूर करने वाला, ग्राही एवम्–कफ, पित्त तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥ ६६–६८ ॥

१९ कुचला

हि०–कुचला, कुचिला। **बं०**–कुँचिला। **म०**–काजरा। **गु०**–झेर कोंचला। **क०**–कंजि, हेमुष्टि, कासर। **ते०**–मुसिडे। **ता०**–एट्टेमारं, काकोठीं। **फा०**–कुचूला, फुलूसंमाही, इजराकी। **अ०**–इम्बुलगुराब, अजराकि, खानेकुल् केल्ला। **अं०**–Poison-nut tree (पॉइजन नट ट्री); Nux-vomica tree (नक्स-वोमिका ट्री)। **ले०**–*Strychnos nux-vomica Linn.* (स्ट्रिक्नॉस नक्स वोमिका)। Loganiaceae (लोगेनिएसी)।

यह गोरखपूर, बिहार, उड़िसा तथा विशेष रूप से दक्षिण में पाया जाता है।

इसका **वृक्ष**–बड़ा होता है एवं किसी किसी में काँटे भी होते हैं। **स्तम्भ**–मोटा और सीधा रहता है। **पत्ते**–३ से ६ इञ्च तक लंबे, $1\frac{1}{4}$–२ इंच चौड़े, दीर्घवृत्ताकार, चिकने चमकीले तथा ५ शिराओं से युक्त जिनमें पार्श्व की शिराएँ अस्पष्ट रहती हैं। **फूल**–छोटे-छोटे हरापन युक्त सफेद आते हैं। फूला हुआ वृक्ष बहुत सुहावना दिखाई पड़ता है। **फल**–गोल, चिकने, नारङ्गी के बराबर १ से ३ इञ्च व्यास में और उसी रङ्ग में आते हैं। इसके भीतर एक प्रकार का कड़वा सफेदकोमल पदार्थ (गूदी) भरा रहता है जिसमें अनेक बीज रहते हैं। **बीज**–$\frac{3}{4}$ इञ्च के घेरे में, चिपटे, गोल, एक तरफ से उन्नतोदर तथा दूसरी तरफ से नतोदर और चमकीले सफेद मखमली रेशों से भरे रहते हैं।

इसके बीज, छाल, पत्ते, काष्ठ आदि का उपयोग किया जाता है। बीजों का ही अधिक उपयोग होता है।

शोधन—बीजों को शोधन करके व्यवहार करना चाहिये। सात दिन गोमूत्र में रखकर छिलके निकाल कर, गोदुग्ध में उबाले। फिर गाय के घी में भून कर चूर्ण बना प्रयोग करें।

रासायनिक संगठन—इसके समस्त भागों में प्रधान रूप से स्ट्रिकनीन् (Strychnine) तथा ब्रूसीन (Brucine) एवं अल्प अन्य क्षाराभ पाये जाते हैं। छाल में ब्रूसीन ही अधिक होता है। बीज में १·५२–३·४२% क्षाराभ होता है जिसमें करीब आधा स्ट्रिकनीन होता है। बीजों में एक ग्लूकोसाइड, लोगॅनिन् (Loganin) एवं अत्यल्प ताम्र पाया जाता है। अन्य जाति के बीजों की मिलावट से इसके क्षाराभों की मात्रा में कमी हो जाती है अन्यथा बीजों को रखने से इसमें परिवर्तन नहीं होता।

गुण और प्रयोग—यह कटु, तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, उत्तेजक, बल्य एवं वाजीकर है। इसका उपयोग, पाचन के विकार, वातरोग तथा हृदय की दुर्बलता में किया जाता है।

यह केन्द्रीय वातनाड़ी संस्थान, विशेष कर सुषुम्ना तथा प्रेरक केन्द्रों को उत्तेजित करता है।

(१) इसका चूर्ण देने से भूख बढ़ती है तथा पाचक रसों की वृद्धि होती है। इसके टिंचर से आंत्र की गति बढ़ती है इसलिये इसे जीर्ण विबंध में अन्य मृदुविरेचन औषधियों के साथ देते हैं। कुपचन, शूल आदि विकारों में इससे लाभ होता है।

(२) वातिक संस्थान के लिए उत्तेजक होने के कारण अनेक वातविकारों जैसे अर्दित, अर्धांग, गतिभ्रंश, ज्ञानभ्रंश, पेशीशोष, कंप, नाडीशूल, बाधिर्य, घटसर्प से उत्पन्न या अधिक बोलने से उत्पन्न आवाज न निकलना एवं तंबाकू के अधिक सेवन से उत्पन्न आन्ध्य आदि में इससे लाभ होता है।

(३) बच्चों के शय्यामूत्र, हस्तमैथुन या अतिमैथुन से उत्पन्न नपुंसकता में इसे देते हैं। वार्धक्य में वाजीकरण के लिये कुचला, लोह तथा काली मिरिच देते हैं।

(४) हृदय तथा श्वसन-संस्थान की दुर्बलता में इसके देने से उन-उन अंगों को बल मिलता है। इसके साथ अन्य औषधियों को देना पड़ता है।

(५) इसके जड़ की छाल को नींबू के रस में घोंटकर बनाई गोली विसूचिका में दी जाती है। कृमियुक्त व्रण में पत्तों का पुल्टिस लगाया जाता है। गाय को पत्ते खिलाने से दूध में कड़ुवाहट आती है तथा वह अधिक सुपाच्य या पाच्य माना जाता है। कुछ पक्षी, जानवर इसके फल को खाते हैं। जानवरों को मारने के लिये भी इसका उपयोग करते हैं।

विषलक्षण एवं चिकित्सा—इसको अधिक मात्रा में देने से मृत्यु हो सकती है इसलिये इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिये। प्रारम्भ में इससे बेचैनी, घबड़ाहट, प्रतिवर्ती (Reflex) का बढ़ना, पेशीस्फुरण, गले एवं चलने में भारीपन एवं एकाएक किसी अंग में विक्षेप आदि लक्षण होते हैं। ये लक्षण १५ से २० मिनट में प्रारम्भ होते हैं। कभी कभी एक घंटे बाद भी होते हैं किन्तु एकाएक तीव्र रूप में। बाद में स्फुरण, कंप तथा धनुर्वात जैसे आक्षेप आने लगते हैं। मृत्यु श्वासावरोध से होती है। चिकित्सा में प्रथम वमन कराना, जिसके लिये अर्कमूलत्वचा, मैनफल, झिंक सल्फेट का उपयोग या नलिका द्वारा आमाशय-प्रक्षालन कराना चाहिये। फिर दूध में गाय का घी या अंडे की सफेदी, या शोधित कोयला का चूर्ण या पोटॅशियम् परमैंगनेट आदि द्रव्य खिलाना चाहिये। पेशियों को शिथिल करने वाले द्रव्य जैसे अफीम, बेलाडोना, कपूर, गाँजा, तंबाकू आदि का उपयोग मुख द्वारा या सूचिकाभरण से करना चाहिये। इसके लिये क्लोरोफार्म या ईथर सुंघाना ज्यादा अच्छा है। बारबिटोन श्रेणी की औषधियों का शिरा द्वारा सूचिकाभरण शिथिलता तथा नींद लाने के लिये अच्छा है। इसकी साधारण घातक मात्रा, बीजों की ११·५५ से ४६·३८ ग्रेन तथा स्ट्रिकनीन की १·५४ ग्रेन है। इससे कम से भी मृत्यु हुई है तथा इससे बहुत अधिक मात्रा के सेवन के पश्चात् भी चिकित्सा से रोगी बचाये गये हैं।

मात्रा—१ से ४ ग्रेन ($\frac{1}{2}$–२ रत्ती)।

अथ राजजम्बू (बड़ी जामुन)। तन्नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

फलेन्द्रा कथिता नन्दी राजजम्बूर्महाफला। तथा सुरभिपत्रा च महाजम्बूरपि स्मृता। राजजम्बूफलं स्वादु विष्टम्भि गुरु रोचनम् ॥ ६९ ॥

बड़ी जामुन के संस्कृत नाम—फलेन्द्रा, नंदी, राजजम्बू, महाफला, सुरभिपत्रा और महाजम्बू ये सब हैं।

बड़ी जामुन का फल—स्वादिष्ट, विष्टम्भक, गुरु तथा रोचक होता है ॥ ६९ ॥

२० बड़ीजामुन

हि०—बड़ी जामुन, फरेन्द्र (न), फड़ेना, फलेन्द्रा, राजजामुन। **बं०**—बड़जाम, कालजाम। **म०**—जाम्भूळ। **गु०**—जाम्बुन। **क०**—दोड्डनिरलु, दोदुनिरली (लु)। **ते०**—पेद्दनेरेडि, नेरडुं चेट्टु। **ता०**—नागै, सम्बल। **अं०**—Jambul Tree (जाम्बुल ट्री)। **ले०**—*Eugenia jambolana Lam.* (युजेनिया जम्बोलेना)। Syzygium cumini Skeels (सिझिजियम क्यूमिनाइ)। Fam. Myrtaceae (मिर्टेसी)।

यह अत्यन्त शुष्क मार्गों को छोड़कर सब प्रान्तों में पायी जाती है। इसका वृक्ष बड़ा होता है और वह सदा हरा भरा रहता है। पत्ते-विपरीत, दीर्घवृत्ताकार, दीर्घवृत्ताकार भालाकार, अंडाकार या आयताकार, लम्बाग्र या कुण्ठिताग्र, चिकने, चमकीले, ३ से ६ इञ्च लंबे तथा ½ से १ इञ्च लंबेवृन्त से युक्त होते हैं। फूलों की मञ्जरियाँ किञ्चित् हरापन युक्त सफेद होती हैं और उससे सुगन्ध आती है। फल-आध से डेढ इञ्च तक लम्बे, गोल, पकने पर बैंगनीयुक्त काले रङ्ग के हो जाते हैं। उसमें गुठी होती है।

जाति-जामुन की कई जातियाँ होती हैं। भावप्रकाश में आगे जलजम्बू का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त क्षुद्रजम्बू, काकजम्बू, भूमिजम्बू (E. operculata), गुलाबजामुन (E. jambos) आदि भेद पाये जाते हैं। राजजंबू का वर्णन ऊपर किया गया है जो सबमें श्रेष्ठ है। जलजम्बू या क्षुद्रजम्बू का आगे वर्णन किया गया है।

जामुन के फल, मज्जा, छाल तथा पत्तों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—बीजों में एलेजिक् ॲसिड (Ellagic acid), सुगन्धितैल, स्थिरतैल, तथा राल होती है।

गुण और प्रयोग—जामुन वातजनक, कफपित्तशामक, ग्राही, मूत्रसंग्रहणीय तथा पत्ते वमनरोधक हैं।

(१) इसकी छाल कषाय एवं स्तंभन होने के कारण इसके क्वाथ का उपयोग गण्डूष तथा व्रण प्रक्षालन के लिये तथा अतिसार आदि में करते हैं। इसका ताजा रस बकरी के दूध में मिलाकर बच्चों के अतिसार में देते हैं।

(२) बीज मधुमेह के लिये उपयोगी समझे जाते हैं। कुत्तों में इसके जलीय सत्व के सूचिकाभरण से रक्तगत शर्करा का प्रमाण कम हो जाता है किन्तु मुख द्वारा प्रयोग से यह प्रभाव नहीं दिखलाई देता।

(३) पत्तों का रस रक्तातिसार तथा अत्यार्तव में दिया जाता है।

(४) पत्तों को पीसकर लोहचूर्ण में मिलाकर रखने से एक उत्तम प्रकार का लोह क्षार तैयार होता है जिसे पांडु तथा स्त्रियों के पांडु सहित अतिसार में देते हैं।

(५) इसका सिरका तथा आसव दीपन, पाचन होता है तथा उसे मधुमेह, अतिसार आदि में देते हैं।

मात्रा—बीजचूर्ण १ से ३ माशा; स्वरस १ से २ तोला।

अथ जलजम्बुका (छोटी जामुन, नदी जामुन)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

क्षुद्रजम्बुः सूक्ष्मपत्रा नादेयी जलजम्बुका। जम्बूः संग्राहिणी रूक्षा कफपित्तास्रदाहजित् ॥

छोटी जामुन के संस्कृत नाम—क्षुद्रजम्बू, सूक्ष्मपत्रा, नादेयी तथा जलजम्बुका ये सब हैं।

छोटी जामुन-संग्राही, रूक्ष एवम्-कफ, पित्त, रक्तविकार तथा दाह को दूर करने वाली होती है ॥ ७० ॥

२१ छोटी जामुन

हि०—छोटी जामुन, कठ जामुन, वन जामुन। **ले०**—*Eugenia heyneana Wall.* (युजेनिया हेनियाना)। Fam. Myrtaceae (मिर्टेसी)।

इसके छोटे-छोटे गुल्मवत् वृक्ष या गुल्म होते हैं। यह जामुन का ही भेद है। यह नदी नालों के किनारे अधिक होता है। अन्य भेदों का उल्लेख जामुन के साथ किया जा चुका है।

अथ बदरी (बेर)। तस्या नामान्याह

पुंसि स्त्रियाञ्च कर्कन्धूर्बदरी कोलमित्यपि ॥ ७१ ॥
फेनिलं कुवलं घोण्टा सौवीरं बदरं महत्। अजप्रिया कुहा कोली विषमोभयकण्टका ॥७२॥

छोटे बेर के संस्कृत नाम—कर्कन्धु (यह पुंल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग में होता है), बदरी, अजप्रिया कुहा, कोली, विषमा तथा उभयकण्टका ये सब हैं।

बड़े बेर के संस्कृत नाम—फेनिल, कुवल, घोण्टा और सौवीर ये सब हैं।

बड़े बेर से कुछ छोटा जो होता है उसे कोल कहते हैं ॥ ७१-७२ ॥

तत्र बदरविशेषाणां लक्षणानि गुणांश्चाह

पच्यमानं सुमधुरं सौवीरं बदरं महत्। सौवीरं बदरं शीतं भेदनं गुरु शुक्रलम् ॥ ७३ ॥
बृंहणं पित्तदाहास्रक्षयतृष्णानिवारणम्। सौवीरं लघु सम्पक्वं मधुरं कोलमुच्यते ॥ ७४ ॥
कोलन्तु बदरं ग्राहि रुच्यमुष्णञ्च वातहृत्। कफपित्तकरं चापि गुरु सारकमीरितम् ॥ ७५ ॥
कर्कन्धूः क्षुद्रबदरं कथितं पूर्वसूरिभिः। अम्लं स्यात्क्षुद्रबदरं कषायं मधुरं मनाक् ॥ ७६ ॥
स्निग्धं गुरु च तिक्तञ्च वातपित्तापहं स्मृतम्।
शुष्कं भेद्यग्निकृत्सर्वं लघु तृष्णाक्लमास्रजित् ॥ ७७ ॥

बेर के भेद तथा उनके लक्षण और गुण—**सौवीर के लक्षण**-जो बेर, पका हुआ अत्यन्त मीठा और बड़ा हो उसे सौवीर कहते हैं। **सौवीर (बेर)**—शीतल, मल का भेदन करने वाला, गुरु, शुक्रजनक, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक) एवम्-पित्त, दाह, रक्तविकार, क्षय तथा प्यास को दूर करने वाला होता है।

कोल के लक्षण—जो सौवीर नामक बेर छोटा, मधुर तथा पका हुआ हो उसे कोल समझना चाहिये। कोल (बेर)—ग्राही, रोचक, उष्ण, कफ तथा पित्तजनक, गुरु, सारक एवम् वातनाशक होता है।

कर्कन्धू के लक्षण—छोटे बेर को कर्कन्धू कहते हैं। कर्कन्धू—अम्ल, तिक्त, कषाय तथा किञ्चित् मधुर रसयुक्त, स्निग्ध, गुरु एवम्—वात तथा पित्त नाशक है।

सभी प्रकार के बेर यदि सूखे हों तो वे—मलभेदक, जठराग्निवर्धक, लघु एवम् प्यास, क्लान्ति तथा रक्तविकार के नाशक होते हैं॥ ७३-७७॥

नोट—भावप्रकाशकार बेर के तीन भेद सौवीर, कोल तथा कर्कन्धू लिखते हैं जो क्रमशः एक दूसरे से छोटा होता है। सौवीर सबसे बड़ा है जिसे उन्नाव या राजबदर कहा जाता है। इसका उपयोग करना चाहिये। दूसरा कोल है जो साधारण बेर होता है। तीसरा सबसे छोटा कर्कन्धू है जिसे झड़बेरी, झडबेर कहते हैं। राजनिघंटु ने चौथा भेद घोण्टा (Zizyphus xylopyra, Willd—झिझीफस् क्साइलोपाइरा) लिखा है जिसे काठ-बेर कहते हैं। भावप्रकाशकार ने इसे सौवीर का पर्याय बतलाया है। एक अन्य वल्ली बदर (*Z.* oenoplia–झि. इनोप्लिया) एवं अन्य भेद भी होते हैं। यहाँ संक्षेप में मुख्य भेदों का वर्णन किया गया है।

२२ उन्नाव (सौवीर, राजबदर)

सं०–सौवीर, राजबदर। **हि०**–उन्नाव। **अं०**–Jujube (जुजुब)। **ले०**–*Zizyphus sativa Gaertn.* (झिझीफस् सटाइवा); *Z.* vulgaris Lam. (झि० वल्गेरिस्)। Fam. Rhamnaceae (हॅम्नेसी)।

यह पंजाब, हिमालय में ६५०० फीट तक, पूर्व में बङ्गाल तक, उत्तरपश्चिम सीमांत प्रदेश तथा बलूचिस्तान में होता हैं। अधिकतर चीन, ईरान आदि देशों से यह आते हैं।

इसका **वृक्ष**-छोटा तथा कांटेदार होता है। **पत्ते**-अंडाकार या गोल होते हैं। **पुष्प**-सितम्बर के अन्त में छोटे हरिताभ श्वेत आते हैं। **फल**-लाल, बहुत झुर्रीदार, १ से १॥ इञ्च लंबा, १ इञ्च चौड़ा, बेर की तरह गोल रहता है जिसका गूदा गुठली से चिपका हुआ, मीठा, पीला तथा हलका होता है। गुठली लंबी, कड़ी तथा झुर्रीदार होती है।

इसके पत्तों को चबाने से सभी प्रकार के स्वाद का ज्ञान ५ से २० मिनट के लिये समाप्त हो जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें शर्करा तथा लबाब रहता है।

गुण और प्रयोग—यह मधुर, स्नेहन तथा कफशामक है। छाल ग्राही, व्रणरोपण तथा व्रण-शोधन है।

(१) इसका शरबत खांसी में दिया जाता है। सूखी खांसी में उन्नाव, गोंद, चीनी तथा गुलाब पत्ती को पकाकर तैयार की गई गोली मुँह में रखकर चूसते हैं।

(२) पत्तों को पीसकर बिच्छू काटने पर बाँधते हैं।

(३) छाल का क्वाथ शीतज्वर में अतिसार तथा शिथिलता आने पर देते हैं। इससे व्रण प्रक्षालन भी किया जाता है। **मात्रा**—५ से ७ बेर।

२३ बेर (कोल, बदर)

हि०–बेर, बैर, बदर। **बं०**–कुल बेर। **म०**–बोर, बोरीचे झाड। **गु०**–बोर। **ता०**–इलंदै। **ते०**–रेगु चेट्टु। **अ०**–सिदर नब्क। **अं०**–Plum (प्लम)। **ले०**–*Zizyphus jujuba Lam.* (झिझिफस् जुजुबा)। Fam. Rhamnaceae (हॅम्नेसी)।

बेर प्रायः सब प्रान्तों में होता है। यह जंगलों में आपही आप उत्पन्न होता है और बागों में रोपण किया जाता है।

इसका **वृक्ष**-मध्यमाकार का होता है और शाखायें बहुत होती हैं। वृक्ष और शाखायें छोटे-छोटे तीक्ष्ण काँटों से भरी रहती हैं। **पत्ते**-१-१॥ इञ्च के घेरे में गोलाई लिये लम्बे होते हैं। **फूल**-हरापन युक्त सफेद आते हैं। **फल**-संख्या में बहुत, अण्डाकार, पकने पर फीके पीले या नारंगी रंग के होते हैं। **गुठली**—कठोर होती है।

गुण और प्रयोग—इसके फल स्नेहन, रक्तस्तम्भक, पाचन, रक्तशोधन, हृद्य, उदर्द प्रशमन, श्रमहर एवं वातसंशमन हैं। इसके बीज हिक्का निग्रहण एवं नेत्र्य हैं। इसका पत्रलेप ज्वर एवं दाहनाशक है। इसकी छाल, विस्फोट शामक तथा अतिसार में लाभदायक है।

२४ झडबेर (कर्कन्धू, क्षुद्रबदर)

हि०–झडबेर, झरबेर, झडबेरी। **पं०**–कोकनबेर। **म०**–जंगलीबोर। **गु०**–चणीआंबोर, चणीबोर। **ले०**–*Zizyphus nummularia W. & A.* (झिझीफस् न्युम्यूलेरिया)। Fam. Rhamnaceae (हॅम्नेसी)।

यह शुष्क भागों में प्रायः सभी जगह पाया जाता है।

इसका **वृक्ष**-झाड के समान एक गज तक ऊँचा और शाखायें-सूक्ष्म काँटों से भरी हुई पतली-पतली भूमि की ओर नत रहती हैं। **पत्ते**-उक्त बेर के पत्तों के आकार के परन्तु उनसे छोटे होते हैं। **फल**-छोटे-छोटे उन्नाव के समान होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके फल शीतल ग्राही एवं पित्तशामक होते हैं। इसकी पत्तियाँ पामा तथा फोड़े पर लगाई जाती हैं।

अथ प्राचीनामलकम् (पानी आंवला)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

प्राचीनामलकं लोके पानीयामलकं स्मृतम्। प्राचीनामलकं दोषत्रयजिज्ज्वरघाति च ॥७८॥

पानी आँवला के संस्कृत नाम—प्राचीनामलक तथा पानीयामलक हैं। पानी आँवला–त्रिदोष तथा ज्वर को दूर करने वाला होता है॥ ७८॥

२५ पानी आमला

हि०–पानी आमला, पानी आंवड़ (रा), पनियाला। **बं०**–पानिआमला। **म०**–पान आंवळा, तांबर। **गु०**–तालिसपत्र। **अं०**–Puneala plum (पनियाला प्लम्)। **ले०**–*Flacourtia cataphracta Roxb.* (फ्लाकोर्शिया कॅटाफ्रॅक्टा)। Fam. Flacourtiaceae (फ्लाकोर्शियेसी)।

यह बङ्गाल, आसाम, चट्टगांव, कोंकण आदि प्रान्तों में पाया जाता है।

इसका **वृक्ष**-छोटे कद का होता है और शाखाओं पर लंबे एवं बहुविभक्त काँटे होते हैं। **पत्ते**-३ से ५ इञ्च लम्बे, आयताकार या आयताकार-भालाकार, लम्बाग्र, चिकने एवं गोल या आरावत् दन्तुर होते हैं। **फूल**-बहुत छोटे २ बेर के समान होते हैं। **फल**-झरबेर के समान गोलाकार, व्यास में ·८-१ इंच, खानेलायक और पकने पर लाल हो जाते हैं। इसके फल में विशेष गंध रहती है। गुद्दी भूरापन लिये हरी तथा रसदार रहती है।

रासायनिक संगठन—बीजों में तेल होता है।

गुण और प्रयोग—यह पित्तशामक है। पित्तप्रकोप में इसको देते हैं। इससे वमन तथा विरेचन रुक जाता है। दंतशूल तथा मसूडे से खून आता हो तो इसके पत्ते तथा छाल के क्वाथ से कुल्ला कराते हैं।

अथ लवली (हरफारेवडी)। तस्या नामानि तत्फलगुणांश्चाह

सुगन्धमूला लवली पाण्डुः कोमलवल्कला ॥ ७९ ॥
लवलीफलमश्मार्शःकफपित्तहरं गुरु। विशदं रोचनं रूक्षं स्वाद्वम्लं तुवरं रसे ॥ ८० ॥

हरफारेवड़ी के संस्कृत नाम—सुगन्धमूला, लवली, पाण्डु तथा कोमलवल्कला ये सब हैं।

हरफारेवड़ी का फल—विशद गुणयुक्त, रोचक, रूक्ष, गुरु, स्वादिष्ट, अम्ल तथा कषाय रसयुक्त एवम्–पथरी, अर्श, कफ तथा पित्त को नष्ट करनेवाली होती है ॥ ७९-८० ॥

२६ हरफारेवड़ी

हि०–हरफारेवड़ी (री), लवली, हरफरौरी। **बं०**–नोयाल, हरफल। **म०**–रायआँवळ। **गु०**–खाटी आंवळ। **ता०**–अरिनेल्लि। **ते०**–राचयुसरिके। **क०**–करिनेल्लि। **अं०**–Star gooseberry (स्टार गूजबेरी), Country gooseberry (कन्ट्री गूजबेरी)। **लै०**—*Cicca acida* (*Linn.*) *Merrill* (सिक्का ॲसिडा); Syn. Phyllanthus distichus Muell. Skells (फाइलेन्थस् डिस्टिकस्)। Fam. Euphorbiaceae (युफोर्बिएसी)।

प्रायः यह सब प्रान्त की वाटिकाओं में लगाई हुई देखने में आती है।

इसका वृक्ष–मध्यमाकार का, २० फीट ऊँचा तथा सुहावना दिखाई पड़ता है। पत्ते–कसौंदी के पत्तों के आकार वाले, सींकों के दोनों ओर एकान्तर लगते हैं। देखने में ये यद्यपि पक्षवत् सपत्रक मालूम होते हैं तथापि ये अपत्रक होते हैं। वसन्त ऋतु में इस पर फूल लगते हैं। फूल–बारीक गुलाबी रङ्ग के गुच्छों में मोटी मोटी डालियों पर आते हैं। फल–खट्टे, नतशीर्ष, गोल, सतह पर ८ से १० नालिओं से युक्त एवं खानें लायक होते हैं। इसको कच्चा या पकाकर, खाते हैं तथा अचार, मुरब्बा आदि भी बनाते हैं। पत्तों का साग बनाते हैं।

रासायनिक संगठन—फलों में ॲसेटिक ॲसिड होता है। मूल की छाल में टैनिन्, सॅपोनिन्, गॅलिक् ॲसिड तथा एक रवेदार पदार्थ होता है।

गुण और प्रयोग—फल अम्ल तथा ग्राही है। मूल तथा बीज विरेचक होते हैं। पत्ते तथा मूल का सर्पविष में प्रयोग किया जाता है। इसके मूल की छाल का रस विषैला रहता है तथा इससे सर में दर्द, सुस्ती, तीव्र उदर शूल तथा मृत्यु होती है।

अथ करमर्दः, करमर्दिका च (करौंदा–करौंदी)। तयोर्नामानि पक्वापक्वतत्फलगुणाँश्चाह

करमर्दः सुषेणः स्यात्कृष्णपाकफलस्तथा। तस्माल्लघुफला या तु सा ज्ञेया करमर्दिका ॥८१॥
करमर्दद्वयं त्वाममम्लं गुरु तृषाहरम्। उष्णं रुचिकरं प्रोक्तं रक्तपित्तकफप्रदम् ॥
तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघु पित्तसमीरजित् ॥ ८२ ॥

करौंदा के संस्कृत नाम—करमर्द, सुषेण तथा कृष्णपाकफल ये सब हैं। इसकी अपेक्षा छोटे फल जिसके हों उसे संस्कृत में 'करमर्दिका' कहते हैं।

दोनों प्रकार के करौंदे के कच्चे फल–अम्ल (खट्टे), पाक में गुरु, तृष्णानाशक, उष्ण, रुचिजनक तथा रक्तपित्त और कफ के वर्धक होते हैं। **पके फल**–मीठे, रुचिजनक, लघु, एवम्–पित्त तथा वायु के नाशक होते हैं ॥ ८१–८२ ॥

२७ करौंदा

हि०–करौंदा, करौंदा। **बं०**–करमचा। **म०**–करवंद। **गु०**–करमदां। **क०**–करिजिगे। **ते०**–वाका, करवन्दे। **ता०**–कलक्के। **लै०**–*Carissa carandas Linn.* (केरिसा कॅरण्डस्)। Fam. Apocynaceae (एपोसाइनेसी)।

यह प्रायः बाग-बगीचों में रोपण किया जाता है तथा सभी भागों में होता है।

इसका वृक्ष–छोटा, झाड़दार और सदा हरा भरा रहता है। इस पर तीक्ष्ण युग्म कांटे होते हैं। पत्ते–१॥–२ इञ्च लम्बे, १–१॥ इञ्च चौड़े नीबू के पत्तों के समान होते हैं। फूल–सफेद रङ्ग के आते हैं और उनसे सुगन्ध आती है। फल–झरबेर के आकारवाले, ½–१ इञ्च लम्बे, काले या सफेदी युक्त लाल रङ्ग के होते हैं। इनका स्वाद अत्यन्त खट्टा होता है। इसकी अन्य दो तीन जातियाँ होती हैं जिनमें से एक दक्षिण की तरफ होती है जिसमें फल बड़े होते हैं तथा अन्य छोटे फल वाली सभी स्थानों पर होती है जिसे मूल में करमर्दिका कहा गया है।

गुण और प्रयोग—इसके फल, मूल तथा पत्तों का उपयोग किया जाता है। यह शीतल, रक्तपित्तशामक एवं हृद्य है। यह प्रशीताद नामक मसूड़े के रोग में जिसमें मसूढ़े से खून आता है, लाभदायक है।

इसकी जड़ कटु, तिक्त, वामक एवं मूत्रजनन है। इसका उपयोग सर्प ने काटा है या नहीं इसकी परीक्षा के लिये करते हैं। इसको शीत जल में घिसकर पिलाते हैं। यदि सांपने काटा है तो वमन नहीं होता। नींबू के रस में कपूर के साथ इसे घिसकर बच्चों को होने वाले सफेद पानीदार फोड़ों पर लेप करते हैं। विषमज्वर में पत्तों का क्वाथ पिलाते हैं।

अथ प्रियालः (चिरौंजी)। तस्य नामानि तत्फलस्य च गुणाँश्चाह

प्रियालस्तु खरस्कन्धश्चारो बहुलवल्कलः। राजादनस्तापसेष्टः सन्नकद्रुर्धनुष्पटः ॥८३॥
चारः पित्तकफास्रघ्नस्तत्फलं मधुरं गुरु। स्निग्धं सरं मरुत्पित्तदाहज्वरतृषाऽपहम् ॥८४॥

चिरौंजी के संस्कृत नाम प्रियाल, खरस्कन्ध, चार, बहुलवल्कल, राजादन, तापसेष्ट, सन्नकद्रु और धनुष्पट ये सब हैं।

चिरौंजी–पित्त, कफ तथा रक्तविकार को दूर करने वाली होती है। **चिरौंजी के फल**—मधुर, गुरु, स्निग्ध, मल–सारक एवम्–वात, पित्त, दाह, ज्वर तथा तृषा को दूर करने वाले होते हैं ॥

अथ तन्मज्जगुणानाह

प्रियालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः। हृद्योऽतिदुर्जरः स्निग्धो विष्टम्भी चामवर्द्धनः ॥

चिरौंजी की मींगी—मधुर रसयुक्त, वृष्य (वीर्यवर्धक), हृदय को हितकर, अत्यन्त देर में पचने वाली, स्निग्ध, मल का विष्टम्भ करने वाली, आम को बढ़ानेवाली तथा पित्त और वायु को नष्ट करने वाली होती है ॥ ८५ ॥

२८ चिरौंजी

हि०–चिरौंजी, चिरौंजी। **बं०**–चिरौंजी, पियाल। **म०, गु०**–चारोळी। **क०**–चारबीज, नरकल **ते०**–सारुपपु। **ता०**–मुडइमा। **फा०**–नुकले खाजा, नुकुलखाजह। **अ०**–हब्बुस्समाना,

इब्बुल समनह । ले०-*Buchanania latifolia Roxb.* (बुचनॅनिया लेटिफोलिया) । Fam. Anacardiaceae (अॅनेकार्डिएसी) ।

यह इस देश के गरम और सूखे प्रान्तों में अधिक पाई जाती है ।

चिरौंजी का वृक्ष मध्यमाकार का होता है । कहीं कहीं ५० फीट तक ऊँचा वृक्ष देखा जाता है । छाल-मोटी, गहरे धूसर वर्ण की एवं चौकोर आकार में फटी हुई होने से मगर के चमड़े की तरह दिखलाई देती है । पत्ते-कड़े, अखण्ड, आयताकार या लट्वाकार-आयताकार एवं ६–१० इञ्च लंबे होते हैं । फूल-श्वेत एवं मञ्जरियों में चौथाई इञ्च के घेरे में गोलाकार होते हैं । फल-लम्बाई युक्त गोलाकार दबे हुए, ½ इञ्च व्यास के, एक बीजयुक्त तथा काले रंग के होते हैं । फल तथा उसके भीतर की मज्जा जिसे चिरौंजी कहते हैं खाई जाती है । इसके वृक्ष से गोंद भी निकलता है ।

रासायनिक संगठन—मज्जा में ५१·८% तेल, २१·६% प्रोटिन तथा ५% शर्करा होती है । तेल हलके पीले रंग का, सुगंधित तथा बादाम या जैतून के तेल सदृश होता है । छाल में टैनिन होता है ।

गुण और प्रयोग—चिरौंजी बहुत अच्छी पौष्टिक एवं बृंहण है । इसको बादाम के स्थान पर उपयोग में ला सकते हैं । इसकी पेया खाँसी में दी जाती है । बालों को काला बनाने के लिये तेल का उपयोग करते हैं । त्वचा के रोगों में इसका उबटन बनाकर लगाते हैं ।

गोंद का उपयोग अतिसार में करते हैं ।

अथ राजादनः (खिरनी) । तस्य नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

राजादनः फलाध्यक्षो राजन्या क्षीरिकाऽपि च ॥ ८६ ॥
क्षीरिकायाः फलं वृष्यं बल्यं स्निग्धं हिमं गुरु । तृष्णामूर्च्छामदभ्रान्तिक्षयदोषत्रयास्रजित् ॥

खिरनी के संस्कृत नाम—राजादन, फलाध्यक्ष, राजन्या तथा क्षीरिका ये सब हैं ।

खिरनी के फल—वृष्य, बलकारक, स्निग्ध, शीतल, गुरु एवम्—तृषा, मूर्च्छा, मद, भ्रान्ति, क्षय, त्रिदोष तथा रक्तविकार को दूर करने वाले होते हैं ॥ ८६–८७ ॥

२९ खिरनी

हि०—खिरनी, खिर्नी, खिन्नी । **बं०**—क्षीर खेजूर, **म०**—खिरणी, रांजण । **गु०**—रायण काकडिआ । **क०**—खिरणी मारा । **ता०**—पल्ल, पले । **ते०**—पालमानु । **ले०**—*Mimusops hexandra Roxb.* (माइमुसोप्स हेक्सॅंड्रा) । Fam. Sapotaceae (सॅपोटेसी) ।

यह प्रायः सब प्रान्तों में पायी जाती है । विशेषकर दक्खन से गुजरात तक और बान्दा में अधिक मिलती है ।

इसके वृक्ष कहीं बड़े और कहीं छोटे दिखाई पड़ते हैं । पत्ते–२–३ इञ्च लम्बे, १–२॥ इञ्च चौड़े अण्डाकार होते हैं और वे टहनियों के अन्त में सघन रहते हैं । फूल-चक्राकार, छोटे-छोटे सफेद या फीके पीले रङ्ग के आते हैं । फल-आध इञ्च तक लम्बे, चिपटे और पकने पर पीले हो जाते हैं । इसकी लकड़ी कड़ी होती है । इसके फल खाये जाते हैं । छाल तथा बीज तैल का उपयोग किया जाता है ।

रासायनिक संगठन—इसके फल में फल शर्करा ७०% होती है । बीजों में तेल पाया जाता है ।

गुण और प्रयोग—छाल संग्राही है एवं तेल बल्य तथा स्नेहन होता है । छाल का प्रयोग बकुल की छाल की तरह किया जाता है ।

अथ विकङ्कतः (कण्टाई) । तस्य नामानि तत्पक्वफलगुणाँश्चाह

विकङ्कतः स्रुवावृक्षो ग्रन्थिलः स्वादुकण्टकः । स एव यज्ञवृक्षश्च कण्टकी व्याघ्रपादपि ॥
विकङ्कतफलं पक्वं मधुरं सर्वदोषजित् ॥ ८८ ॥

कण्टाई के संस्कृत नाम—विकङ्कत, स्रुवावृक्ष, ग्रन्थिल, स्वादुकण्टक, यज्ञवृक्ष, कण्टकी तथा व्याघ्रपाद् ये सब हैं । **कण्टाई के फल**—यदि पके हों तो वे मधुर रसयुक्त सभी दोषों को दूर करने वाले होते हैं ॥ ८८ ॥

३० विकंकत (कंटाई)

हि०—कंटाई, बिलंगरा, कंजू । **बं०**—बइंचि गाछ, बैंची, । **म०**—बेहकल काकेर । **गु०**—कांकोड़ । **क०**—हलुमाणिका । **ते०**—कानरेगु चेट्टु । **ता०**—सोट्टकला । **अं०**—Governor's Plum (गवर्नर्स प्लम) । **ले०**—*Flacourtia ramontchi L' Herit* (फ्लेकोर्शिया रामोंशी) । Fam. Flacourtiaceae (फ्लेकोर्शियेसी) ।

यह हिमालय, बिहार, मध्यभारत, दक्खन, कोंकण आदि प्रदेशों में उत्पन्न होता है ।

इसका वृक्ष छोटा होता है । शाखाओं पर काँटे रहते हैं । पत्ते-विभिन्न आकार के, चमकीले, प्रायः ४ इञ्च से कम लंबे, वृत्ताकार या आयताकार-अभिलट्वाकार, कुंठिताग्र एवं गोल या आरावत् दन्तुर होते हैं । फूल-पीताभ हरित और बारीक होते हैं । फल-आध इञ्च के घेरे में गोलाकार, गूदेदार, चिकने और पकने पर गहरे बैंगनी या लाल हो जाते हैं । बीज-अनेक तथा छोटे २ होते हैं । इसके कई भेद पाये जाते हैं । फलों का स्वाद तीक्ष्ण किंतु मधुर होता है तथा गंध भी अच्छी होती है ।

गुण और प्रयोग—फल दीपन एवं पाचन होते हैं । कामला एवं प्लीहा वृद्धि में फल देते हैं । छाल कषाय एवं मूत्रल होती है ।

अथ पद्माक्षम् (कमलगट्टा) । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

पद्मबीजं तु पद्माक्षं गालोड्यं पद्मकर्कटी । पद्मबीजं हिमं स्वादु कषायं तिक्तकं गुरु ॥ ८९ ॥
विष्टम्भि वृष्यं रूक्षञ्च गर्भसंस्थापकं परम् । कफवातकरं बल्यं ग्राहि पित्तास्रदाहनुत् ॥ ९० ॥

कमलगट्टा के संस्कृत नाम—पद्मबीज, पद्माक्ष, गालोड्य, तथा पद्मकर्कटी ये सब हैं । **कमलगट्टा**—स्वादिष्ट, कषाय तथा तिक्तरसयुक्त, शीतल, गुरु, विष्टम्भक, वृष्य (वीर्यवर्धक), रूक्ष, गर्भ को विशेषतः स्थापित करनेवाला, कफ तथा वातजनक, बलदायक, ग्राही एवम् पित्त, रक्तविकार या रक्तपित्त और दाह को दूर करने वाला होता है ॥ ८९–९० ॥

३१ कमलगट्टा

हि०—कमलगट्टा, कमल के बीज । **बं०** पद्म बीचि । **म०**—कमलाक्ष, कमळाचे बीज । **गु०**-कमळ काकड़ी, पबड़ी । **क०**—तावड़े बीज, पद्माक्ष । **ते०**-तामरकारा, तामरकाई । **यू०**-गुलहार । **अ०**—बालके कुवति ।

कमल के बीजों को कमलगट्टा कहते हैं । यह रीठे की गुठली के समान परन्तु लम्बाई युक्त गोल तथा चिकना होता है और कमलकोष के भीतर से निकलता है । छिलका-कठोर होता है और गिरी सफेद होती है । गिरी के बीच में हरे रङ्ग की पत्ती रहती है । उसको निकाल कर व्यवहार में लाना चाहिये ।

नोट—अन्य वर्णन कमल के साथ (पृष्ठ ४८०) किया गया है ।

अथ मखान्नम् (मखाना) । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

मखान्नं पद्मबीजाभं पानीयफलमित्यपि । मखान्नं पद्मबीजस्य गुणैस्तुल्यं विनिर्दिशेत् ॥९१॥

मखाना के संस्कृत नाम—मखान्न, पद्मबीजाभ तथा पानीयफल ये सब हैं।

मखाना—गुणों में कमलगट्टा के समान ही समझना चाहिये ॥ ९१ ॥

३२ मखाना

हि०—मखाना, मखाना। **बं०**—माखाना। **गु०**—मखाणा। **म०**—मखाणे, मकाणे। **ते०**—मेल्लुनिपदमगु। **प०**—जवेर। **अं०**—Fox nut (फॉक्स नट), Gorgon fruit (जार्गन फ्रूट)। **ले०**—*Euryale ferox Salisb.* (युरीएल फेराक्स)। Fam. Nymphaeaceae (निम्फिएसी)।

यह उत्तर, मध्य तथा पश्चिम भारत के स्वच्छ पानी के तालाबों तथा झीलों में होता है।

इसका **क्षुप**—कांडहीन, कांटेदार तथा कमल के समान जल में होता है। **पत्ते**—कमल के समान, तैरते हुये, गोलाकार, १ से ४ फीट व्यास में, ऊपर से हरे किन्तु नीचे से लाल या बैंगनी, मृदुरोमश एवं शिराओं पर कांटों से युक्त होते हैं। **फूल**—१ २ इञ्च लम्बे, भीतर की ओर लाल चमकीले और बाहर से हरे रङ्ग के होते हैं। **फल**—दो से चार इञ्च के घेरे में गोलाकार एवं कांटेदार होते हैं। **बीज**—मटर या मटर से कुछ बड़े होते हैं। यह संख्या में ८ से २० एवं काले रहते हैं। इन्हें कच्चे या भूनकर खाते हैं। बालू में भूनने से ये फूल जाते हैं जिन्हें **मखाना** कहा जाता है। इसका आटा अरारूट के समान होता है।

रासायनिक संगठन—सौ भाग मखाने में प्रोटीन ९·७, आर्द्रता १२·८, कार्बोहाइड्रेट ७६.९, स्नेह ०·१; लौह १·४ मि० ग्रा० १०० ग्राम में, एवं अल्प खटिक, फॉस्फोरस तथा कॅरोटीन आदि द्रव्य पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—मखाना बल्य, वाजीकर एवं ग्राही है। इसको प्रसवान्त दौर्बल्य, शुक्रस्राव एवं वीर्याल्पता में दूध में पकाकर खिलाते हैं। यह सुपाच्य होता है तथा आहार के रूप में इसका उपयोग किया जा सकता है।

अथ शृङ्गाटकम् (सिंघाड़ा) । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

शृङ्गाटकं जलफलं त्रिकोणफलमित्यपि ॥ ९२ ॥
शृङ्गाटकं हिमं स्वादु गुरु वृष्यं कषायकम् । ग्राही शुक्रानिलश्लेष्मप्रदं पित्तास्रदाहनुत् ॥९३॥

सिंघाड़ा के संस्कृत नाम—शृङ्गाटक, जलफल तथा त्रिकोणफल ये सब हैं।

सिंघाड़ा—स्वादिष्ट तथा कषायरसयुक्त, शीतल, गुरु, वृष्य (वीर्यवर्धक), ग्राही, शुक्र, वात तथा कफजनक एवम्-पित्त, रक्तविकार और दाह को दूर करने वाला होता है ॥ ९२-९३ ॥

३३ सिंघाड़ा

हि०-सिंघाड़ा(रा) सिंहाड़ा(रा)। **बं०**-पानिफल, सिंगाड़े। **म०**-शिंघाड़े, शिंगाडा। **गु०**-शींघोड़ा। **क०**-सिंगाड़े। **ते०**-परिकिगडु। **अं०**-Water caltrops (वाटर कॅल्ट्रॉप्स्); Water Chestnut (वाटर चेस्टनट)। **ले०**-*Trapa bispinosa Roxb.* (ट्रॅपा बाइस्पाइनोसा)। Fam. Onagraceae (ओनेग्रेसी)।

सिंघाड़ा—प्रसिद्ध पानीय फल अनेक प्रान्तों के बड़े छोटे ताल तलैयों में उत्पन्न होता है। इसका जलीय **क्षुप**—जलकुम्भी के समान पानी के ऊपर फैला रहता है। **पत्ते**—जलकुम्भी के

समान होते हैं परन्तु वे त्रिकोणाकार होते हैं। **फूल**-सफेद आते हैं जो शाम को फूलते हैं। **फल**-तिधारे होते हैं और उनके ऊपर २ कांटे होते हैं जो देखने में बैल के सिर की तरह दिखाई देते हैं। **छिलका**-मोटा होता है और गुदी सफेद होती है। फल को उबाल कर या कच्चा ही छिलका निकाल कर आहार के रूप में खाया जाता है। काश्मीर में एक बिना कांटे की जाति पाई जाती है।

रासायनिक संगठन—इसमें मॅंगनीज तथा स्टार्च होता है।

गुण और प्रयोग—यह शीत, पौष्टिक, वृष्य, शोणितास्थापन ग्राही, दीपन, दाहहर एवं भ्रमहर है।

इसकी पेया अतिसार, आंव एवं प्रदर में दी जाती है। पित्त प्रकृति वालों को तथा गर्भिणी को इससे लाभ होता है।

अथ कैरविणीफलम् (भेंट) तस्य नामानि गुणाँश्चाह

उक्तं कुमुद्वबीजन्तु बुधैः कैरविणीफलम् । भवेत्कुमुद्वतीबीजं स्वादु रूक्षं हिमं गुरु ॥ ९४ ॥

कुमुदनी बीज के संस्कृत नाम—कुमुद्वतीबीज, कैरविणीफल तथा कुमुदबीज ये सब विद्वानों ने बताये हैं।

कुमुदनी के बीज—स्वादिष्ट, रूक्ष, शीतल तथा पाकमें गुरु होते हैं ॥ ९४ ॥

३४ कैरविणीफल (बेरा)

हि०-बेरी, कुमुद के बीज, कुमुदबीज, बेरा, घंघोल के दाने, भटबेरा, भेटबेरा। **बं०**-हेलाबीज, शुन्दी बीज। **गु०**-पोयणानाबीज। **फा०**-तुख्म नीलोफर। **अ०**-करनबुल् माय।

कुमुद फूल के बीज को कैरविणीफल कहते हैं। इसके संबंध में अन्य वर्णन पुष्पवर्ग में कुमुद के अन्तर्गत (पृष्ठ ४८४) किया जा चुका है।

अथ मधूकः (महुआ, बनमहुआ) । तस्य नामानि तत्पुष्पफलगुणाँश्चाह

मधूको गुडपुष्पः स्यान्मधुपुष्पो मधुस्रवः । वानप्रस्थो मधुष्ठीलो जलजेऽत्र मधूलकः ॥९५॥
मधूकपुष्पं मधुरं शीतलं गुरु बृंहणम् । बलशुक्रकरं प्रोक्तं वातपित्तविनाशनम् ॥ ९६ ॥
फलं शीतं गुरु स्वादु शुक्रलं वातपित्तनुत् । अहृद्यं हन्ति तृष्णाऽस्रदाहश्वासक्षतक्षयान् ॥९७॥

महुआ के संस्कृत नाम—मधूक, गुडपुष्प, मधुपुष्प, मधुस्रव, वानप्रस्थ तथा मधुष्ठील ये सब हैं। जो महुआ जल में होता है उसे "मधूलक" कहते हैं।

महुवे के फूल—मधुर, शीतल, गुरु, बृंहण (रसरक्तादि-वर्धक), बल तथा शुक्रजनक एवम्-वात और पित्त को दूर करने वाले होते हैं।

महुवे के फल—स्वादिष्ट, शीतल, गुरु, शुक्रजनक, हृदय के लिए अहितकर, वात तथा पित्त को दूर करने वाले एवम्-तृषा, रक्तविकार, दाह, श्वास, क्षत तथा क्षय नाशक हैं ॥ ९५-९७ ॥

३५ महुआ

हि०-महुआ, महुया, महुवा। **बं०**-मौल, मउल। **म०**-मोहड। **गु०**-महुडो। **क०**-इप्पेमरा। **ते०**-इपा, पिन्ना, इप्प। **ता०**-कट्टइल्लुपि। **फा०**-गुलचकां। **ले०**-*Bassia latifolia Roxb.* (बेसिया लॅटिफोलिया)। Fam. Sapotaceae (सॅपोटेसी)।

यह बंगाल, बिहार, युक्तप्रान्त, मध्यभारत, दक्षिण आदि प्रान्तों में लगाया हुवा पाया जाता है और कुमाऊँ की तराइयों में आप ही आप जंगली उत्पन्न होता है।

इसका **वृक्ष**-बड़ा हुआ करता है और सदा हरामरा रहता है। पत्ते-५ से ९ इंच तक लम्बे, चर्मवत्, दीर्घवृत्ताभ, या आयताकार-दीर्घवृत्ताभ, किंचित् लम्बाग्र, आकार गोल या संकुचित, १० से १४ शिराओं से युक्त टहनियों के अन्त में एक साथ गुच्छों में रहते हैं। **फूल**-सफेद रङ्ग के गूदेदार छोटी २ शाखाओं के अन्त में गुच्छों में आते हैं और वे सूखने पर दाख के समान हो जाते हैं। **फल**-१ से २ इञ्च लंबे, अण्डाकार, नुकीले, गूदेदार तथा हरिताभ पीत रङ्ग के होते हैं। **बीज**-किञ्चित् लाली युक्त बीज होते हैं। उनके भीतर सफेद गूदी होती है। गूदी से तेल निकाला जाता है। रसदार फूलों (Corollas-अन्तर्दल) को आटे में मिलाकर रोटी बनाकर गरीब लोग खाते हैं। इसके तेल का उपयोग किया जाता है। इसके फूलों से मद्य बनाया जाता है। थोड़ा सा तैयार मद्य फूलों में रहता है जिससे इनको खाने से कुछ नशा हो जाता है। इसका मद्य स्वाद में तेलिया, कषाय एवं धूएँ जैसा दुर्गन्धी रहता है जो रखने से कुछ सुधरता है।

रासायनिक संगठन—इसमें सॅपोनिन तथा अन्य क्षाराभ होता है।

गुण और प्रयोग—इसका नया मद्य अहितकारक होता है तथा इससे आमाशय में दाह, अनिद्रा, शिरःशूल, बेचैनी एवं मानसिक विकार होते हैं। पुराना मद्य काम में लाया जा सकता है। इसके फूल शीत, बल्य, पौष्टिक एवं स्नेहन होने के कारण इनका क्वाथ ज्वर एवं कास में देते हैं। अंडशोथ में फूलों से सेकते हैं। इनको घी में भूनकर अर्शवालों को देते हैं। इसकी छाल का खुजली और सन्धिवात में उपयोग किया जाता है। तैल वातनाशक होता है।

३६ जलमहुआ

हि०-जलमहुआ। **बं०**-जल मउल। **म०**-जलमोहा। **क०**-तोरे इप्पे। **ते०**-पिन्ना। **गु०**-जलमहुडो। **क०**-जल महे। **ता०**-इलपि। **ले०**-*Bassia longifolia Linn.* (बेसिया लॉगीफोलिया)। Fam. Sapotaceae (सॅपोटेसी)।

जलमहुआ—नदी नालों के किनारे या आर्द्र जङ्गलों में उत्पन्न होता है। यह दक्षिण में अधिक होता है। इसके वृक्ष पत्ते आदि महुवे के समान होते हैं पर उनसे छोटे होते हैं।

नोट—उपर्युक्त वृक्ष के गुण धर्म महुवे के सदृश ही होते हैं। इसे भावप्रकाश में जल में होने वाला लिखा है किन्तु यह जल के अन्दर नहीं होता।

अथ परूषकम् (फालसा)। तस्य नामानि तत्पक्वापक्वफलगुणाँश्चाह

परूषकं तु परुषमल्पास्थि च परापरम्। परूषकं कषायाऽम्लमामं पित्तकरं लघु ॥ ९८ ॥
तत्पक्वं मधुरं पाके शीतं विष्टम्भि बृंहणम्। हृद्यन्तु पित्तदाहास्रज्वरक्षयसमीरहृत् ॥ ९९॥

फालसा के संस्कृत नाम—परूषक, परुष, अल्पास्थि तथा परापर ये सब हैं।

फालसा के कच्चे फल—कषाय तथा अम्ल रसयुक्त, पित्तकारक तथा लघु होते हैं। **पके फल**—विपाक में मधुर रसयुक्त, शीतल, विष्टम्भक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), हृदय के लिए हितकर एवम् पित्त, दाह, रक्तविकार, ज्वर, क्षय तथा वात को दूर करने वाले होते हैं ॥ ९८-९९ ॥

३७ फालसा

हि०-फालसा। **बं०**-फलसा। **म०**-फालसा। **क०**-बेट्टहा, दागल। **ते०**-चिट्टित। **गु०**-फालसा। **फा०**-फालसा, पालसह। **अ०**-फालसह। **ले०**-*Grewia asiatica Linn.* (ग्रिविया एशियाटिका)। Fam. Tiliaceae (टिलिएसी)।

इसको अनेक प्रान्तों के लोग बागों में रोपण करते हैं। इसकी अन्य जातियों को भी फालसा कहा जाता है।

इसका **वृक्ष**-छोटा होता है। **पत्ते**-४-५ इञ्च लम्बे, २-२॥ इञ्च चौड़े गोलाकार एवं दंतुर होते हैं। दन्त अनियमित होते हैं तथा आधार की तरफ कुछ तिरछे होते हैं। **फूल**-झूमकों में पीले रंग के आते हैं। **फल**-मटर के समान गोल, कच्ची अवस्था में हरे रङ्ग के और पकने पर जामुनी रङ्ग के हो जाते हैं। इसका स्वाद खट्टा तथा कुछ मधुर होता है। इसका शरबत बनाकर लोग गरमी के दिनों में पीते हैं।

रासायनिक संगठन—फल में साइट्रिक अम्ल, शर्करा तथा अल्प विटामिन 'सी' होता है।

गुण और प्रयोग—इसके पके फल शीत, विष्टम्भि, पित्तशामक, हृद्य एवं तृष्णाशामक हैं।

(१) इसका उपयोग हृद्रोग, पित्तप्रकोप, ज्वर एवं दाह आदि में शरबत बनाकर करते हैं।

(२) इसके मूल की छाल आमवात में लाभप्रद मानी जाती है।

(३) पत्तों को पूय युक्त फुन्सियों पर लगाते हैं। इसके पत्तों के ईथरीय सत्व में पूयजनक जीवाणु (Staphylococcus aureus and Escherichia coli-स्टॅफिलोकोकस ऑरिअस् एवं एस्चेरिचिया कोलाई) नाशक शक्ति पाई गई है।

(४) इसकी अन्तर्छाल को जल में भिगोकर, मसलकर, छानकर पीने से मधुमेह में लाभ होता है।

अथ तूतः (सहतूत)। तस्य नामानि तत्पक्वापक्वफलगुणाँश्चाह

तूतस्तूलश्च पूगश्च क्रमुको ब्रह्मदारु च। तूतं पक्वं गुरु स्वादु हिमं पित्तानिलापहम् ॥
तदेवामं गुरु सरमम्लोष्णं रक्तपित्तकृत् ॥ १०० ॥

सहतूत के संस्कृत नाम—तूत, तूल, पूग, क्रमुक तथा ब्रह्मदारु ये सब हैं।

सहतूत के पके फल—स्वादिष्ट, गुरु, शीतल एवम्-पित्त तथा वात के नाशक होते हैं।

यदि **कच्चे फल** हों तो वे-अम्ल रसयुक्त, उष्ण, पाक में गुरु एवम्-रक्तपित्त को उत्पन्न करने वाले होते हैं ॥ १०० ॥

३८ तूत

हि०-सहतूत, तूत। शाहतूत। **बं०**-तूँत। **म०**-तूते। **गु०**-शेतूर। **ते०**-पुतिका। **ता०**-कम्बली। **फा०**-शाहतूत, तूततुर्श। **अ०**-तूत, तूद हामीज। **अं०**-Mulberry (मलबेरी)। **ले०**-*Morus indica Griff.* (मोरस् इण्डिका)। Fam. Moraceae (मोरेसी)।

तूत—आसाम, बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश आदि प्रान्तों में उत्पन्न होता है तथा बागों में लगाया भी जाता है।

इसका **वृक्ष**-मध्यमाकार का होता है। **पत्ते**-२ से ५ इञ्च लम्बे, २-३ इञ्च चौड़े, अंडाकार, अञ्जीर के पत्तों के समान कटे हुए होते हैं। **फूल**-मंजरियों में आते हैं।

तूत की दो-तीन जातियां होती हैं जिनके पत्ते आदि एक समान होते हैं। इसके पत्ते को रेशम के कीड़े बड़े चाव से खाते हैं। इसलिए रेशम के कीड़े पालने वाले प्रायः इसका वृक्ष रोपण कर रखते हैं।

इनमें से एक के फल पीताभ श्वेत एवं मीठे तथा दूसरे के मधुराम्ल एवं रक्ताभ कृष्ण होते हैं। वन्य तथा ग्राम्य भेद से भी इसके भेद होते हैं।

इसकी एक जाति मो० लिविगेटा (M. laevigata Wall.) सिक्किम की तराई में प्रायः वन्य अवस्था में मिलती है जिसका नेपाली नाम किमू या किम्बू होता है। तूत के पर्याय में क्रमुक आया है और क्रमुक से लोग पूग (सुपाड़ी) का ग्रहण करते हैं किन्तु चरकोक्त चार त्वगासवयोनि वृक्षों में क्रमुक के स्थान पर पूग का ग्रहण उचित नहीं जान पड़ता। वहां तो क्रमुक से कोई ऐसी छाल अभिप्रेत है जिसमें अन्य द्रव्यों के समान टैनन गुण हो। इन आधारों पर श्री ठा० बलवन्तसिंहजी ने चरकोक्त त्वगासवयोनि वृक्षों में के क्रमुक को पूग न मानकर इस तूद के भेद को माना है। (बिहार की वनस्पतियाँ, पृष्ठ १२३)।

गुण और प्रयोग—इसका रस दाहशामक, पिपासाहर एवं कुछ कफघ्न है। इसका ज्वर में प्रयोग करते हैं। इसकी छाल कृमिघ्न तथा विरेचक होती है। इसके पत्तों के क्वाथ से स्वरभंग में गण्डूष कराते हैं। इसकी जड़ कृमिघ्न तथा ग्राही होती है।

मात्रा—त्वक्क्वाथ ५ से १० तोला; फलस्वरस २ से ५ तोला।

अथ दाडिमः (अनार)। तस्य नामानि तत्फलभेदाँश्चाह

दाडिमः करको दन्तबीजो लोहितपुष्पकः। तत्फलं त्रिविधं स्वादु स्वाद्वम्लं केवलाम्लकम् ॥

अनार के संस्कृत नाम—दाडिम, करक, दन्तबीज तथा लोहितपुष्पक ये सब हैं।

फल के भेद—अनार के फल स्वाद में तीन प्रकार के होते हैं। (१) कोई मधुर रसयुक्त, (२) कोई मधुर तथा अम्ल रसयुक्त (३) और कोई केवल अम्ल ही होते हैं ॥ १०१ ॥

अथ तत्फलभेदानां गुणानाह

तत्तु स्वादु त्रिदोषघ्नं तृड्दाहज्वरनाशनम्। हृत्कण्ठमुखगन्धघ्नं तर्पणं शुक्रलं लघु ॥ १०२ ॥
कषायानुरसं ग्राहि स्निग्धं मेधाबलावहम् ॥ १०३ ॥
स्वाद्वम्लं दीपनं रुच्यं किञ्चित्पित्तकरं लघु। अम्लन्तु पित्तजनकमामं वातकफापहम् ॥१०४॥

मीठे अनार—आरम्भ में मीठे अन्त में कसैले, सन्तर्पण करने वाले, शुक्रजनक, लघु, ग्राही, स्निग्ध, मेधा तथा बलवर्धक एवम्—त्रिदोष, तृषा, दाह, ज्वर, हृदय तथा कण्ठ-सम्बन्धी रोग, और मुख के दुर्गन्ध को दूर करने वाले होते हैं।

कुछ मीठे कुछ खट्टे अनार—अग्निदीपक, रुचिजनक, लघु तथा किंचित पित्तकारक होते हैं। **खट्टे अनार**—अम्ल रसयुक्त, पित्तजनक एवम्—आम, वात तथा कफ के नाशक होते हैं॥

३९ अनार

हि०—अनार, दाड़िम। **बं०**—दाड़िम, डालिम गाछ। **म०**—डाळिम्ब। **गु०**—दाड़म। **क०**—दालिम्ब। **ते०**—दालिम्बकाया। **ता०**—मादलै, मडलै, मडलम। **अं०**—Pomegranate (पोमेग्रेनेट्)। **ले०**—*Punica granatum Linn.* (प्युनिका ग्रॅनेटम्)। Fam. Punicaceae (प्युनिकेसी)।

प्रायः सब प्रान्त की वाटिकाओं में अनार के वृक्ष लगाये जाते हैं। यह हिमालय में ३ से ६ हजार फीट तक तथा अफगानिस्तान एवं फारस में वन्य रूप में पाया जाता है। इसका वृक्ष छोटा अनेक शाखा प्रशाखा करके झाड़दार होता है। पत्ते—विपरीत या न्यूनाधिक विपरीत या समूहबद्ध, अत्यन्त सूक्ष्म पारभासक छींटों से युक्त, १–२॥ इञ्च लम्बे, आयताकार या अभिलट्वाकार, चिकने एवं आधार की तरफ छोटे वृन्त से युक्त रहते हैं। फूल—अत्यन्त लाल रङ्ग के होते हैं। फल—गोल और छिलका मोटा होता है। फलों में सफेदीयुक्त लाल अथवा गुलाबी रङ्ग के अगणित

नोकदार दाने होते हैं। सूखने पर वह अनारदाना कहलाता है। इसके संपूर्ण फल, जड़ या कांड की छाल, फल की छाल एवं स्वरस आदि का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—फल के छिलके में पीतरंजक पदार्थ एवं गॅलोटॅनिक अम्ल (Gallo-tannic acid 28%) रहता है। मूल की छाल में ०·५–०·९% तथा काण्डत्वक् में ०·५% क्षाराभ पाये जाते हैं जिनमें पेलेटीराइन (Pelletierine) मुख्य हैं। इनमें गॅलोटॅनिक अम्ल २२% होता है।

गुण और प्रयोग—अनार हृद्य, ग्राही, रोचक, रक्तशोधक एवं शीतल है। (१) इसकी छाल अत्यन्त ग्राही एवं कृमिघ्न होती है। यह विशेष रूप से स्फीत कृमि (Tape worm) में लाभदायक होती है। कृमि के लिए १ छटाक ताजी छाल को २० छटाक जल में उबाल कर, आधा शेष रहने पर, छानकर १, १ छटाक प्रत्येक आधे घंटे पर, ४ बार खाली पेट पिलावें तथा बाद में एरंडतैल दें। अतिसार तथा संग्रहणी में भी छाल का उपयोग किया जाता है। (२) फल का छिलका अत्यन्त ग्राही होने से, अतिसार प्रवाहिका में इसका क्वाथ पिलाते हैं। संपूर्ण फल को जरा भूनकर, कूटकर, रस निकाल उसका भी उपयोग इनमें करते हैं।

मात्रा—फल का छिलका, मूलत्वक् १ से २ माशा।

अथ बहुवारः (लिसोड़ा)। तस्य नामानि तत्पक्वापक्वफलस्य च गुणाँश्चाह

बहुवारस्तु शीतः स्यादुद्दालो बहुवारकः। शेलुः श्लेष्मातकश्चापि पिच्छिलो भूतवृक्षकः ॥
बहुवारो विषस्फोटव्रणवीसर्पकुष्ठनुत्। मधुरस्तुवरस्तिक्तः केश्यश्च कफपित्तहृत् ॥ १०६ ॥
फलमामन्तु विष्टम्भि रूक्षं पित्तकफास्रजित्। तत्पक्वं मधुरं स्निग्धं श्लेष्मलं शीतलं गुरु ॥

लिसोड़ा के संस्कृत नाम—बहुवार, शीत, उद्दाल, बहुवारक, शेलु, श्लेष्मातक, पिच्छिल तथा भूतवृक्षक ये सब हैं।

लिसोड़ा—विष, विस्फोट, व्रण, वीसर्प, कुष्ठ, कफ तथा पित्त का नाश करने वाला, केशों के लिये हितकर एवम्—मधुर, कषाय तथा तिक्त रसयुक्त होता है।

लिसोड़ा के कच्चे फल—विष्टम्भक, रूक्ष तथा पित्त, कफ और रक्तविकार को दूर करनेवाले हैं। **पके फल**—मधुर, स्निग्ध, कफजनक, शीतल तथा गुरु होते हैं। ॥ १०५–१०७ ॥

४० लिसोड़ा

हि०—लिसोड़ा, लिसोरा, छोटा लसोरा। **बं०**—बहुवार। **म०**—भोंकर। **गु०**—गूंदा, गुंदा वड। **क०**—चल्ले काथि। **ते०**—चिन्न नक्केरू। **ता०**—नरिविलि। **फा०**—सपिस्तां, सिपिस्तां। **अ०**—सपिस्तां दबक। **अं०**—(फलनाम) Sebestan (सेबेस्टान्)। **ले०**—*Cordia myxa Roxb.* (कॉर्डिया मिक्सा); C. dichotoma Forst. f. (कॉ० डाइकोटोमा)। Fam. Boraginaceae (बोरेजिनेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों के वन उपवनों में तथा लगाया हुआ पाया जाता है।

इसका वृक्ष—४०–५० फीट तक ऊँचा होता है। डालियाँ—टेढ़ी-मेढ़ी कुबड़ी सी होती हैं। पत्ते—१ से ४–५ इञ्च के घेरे में गोलाकार और शाखाओं पर विषमवर्ती लगते हैं। फल—०·५ से १ इञ्च बड़े, पीताभ भूरे एवं पकने पर गुलाबी या कुछ काले होते हैं जिनके भीतर बीच की गुठली के बाहर एक गाढ़ा, मधुर एवं पारदर्शक गूदा होता है। इसे लोग खाते हैं।

इसका एक भेद बड़ा लसोड़ा नाम का गुजरात, उत्तरी कनारा एवं दक्खिन में होता है जिसका लेटिन नाम कॉ. वालिशिआई (C. wallichii G. Don.) है। इसके फल कफनिःसारक, ग्राही तथा स्नेहन होते हैं।

एक अन्य भेद गोंदी नाम का होता है। इसका लेटिन नाम कॉ. रोथाई (C. rotbii Roem & Schult) है। इसका वृक्ष-छोटा; फल-अंडाकार १ से १·३ से. मी. बड़े, लंबाई में धारीदार, पकने पर पीत या रक्ताभ भूरे एवं खाने लायक होते हैं। यह पंजाब, सिंध, गुजरात, दक्खिन तथा लंका में होता है।

लिसोड़ा के फल, छाल, पत्र एवं बीजमज्जा का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—छाल में टॅनिन होता है।

गुण और प्रयोग—इसके फल शीत, ग्राही, कृमिघ्न, विषघ्न, मूत्रल, स्नेहन एवं कफनिःसारक हैं। इनके क्वाथ का उपयोग कफ ढीला करने के लिये, मूत्र की जलन कम करने के लिये तथा अतिसार में करते हैं।

छाल का उपयोग जीर्णज्वर एवं कुपचन में करते हैं। इसके बीज की मज्जा का लेप दद्रु में लाभदायक माना जाता है।

अथ कतकः (निर्मली)। तस्य नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

पयःप्रसादी कतकः कतकं तत्फलं च तत्। कतकस्य फलं नेत्र्यं जलनिर्मलताकरम्॥
वातश्लेष्महरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु॥ १०८॥

निर्मली के संस्कृत नाम—पयःप्रसादी और कतक ये हैं। इसके फल को भी 'कतक' ही कहते हैं किन्तु यह नपुंसकलिङ्ग में होता है।

निर्मली के फल—मधुर तथा कषाय रस युक्त, नेत्रों के लिये हितकर, जल को निर्मल करने वाले, गुरु एवम्—वात तथा कफ को दूर करने वाले होते हैं॥ १०८॥

४१ निर्मली

हिं०-निर्मली। **बं०**-निर्मली। **म०**-निर्मळी। **गु०**-निर्मली, कतकडो। **क०**-चिल्लिकायि। **ता०**-तेतन कोट्टई। **ते०**-कतकमु। **ले०**-*Strychnos potatorum Linn.* (स्ट्रिक्नोस पोटेटोरम)। Fam. Loganiaceae (लोगेनिएसी)।

इसका वृक्ष सोन नदी के किनारे, मध्यभारत तथा दक्षिण की ओर पाया जाता है। यह ४० फीट तक ऊँचा होता है। पत्ते-प्रायः २॥ इञ्च लम्बे, एक इञ्च चौड़े अंडाकार होते हैं। फूल-सफेद रङ्ग के आते हैं और उनसे सुगन्ध आती है। फल-गोल, पकने पर काले रङ्ग के होते हैं। इसमें गोल कुछ चिपटे बीज होते हैं जो चिमड़े होते हैं।

गुण और प्रयोग—निर्मली के बीजों में विष नहीं रहता। इसका उपयोग जल साफ करने के लिये करते हैं। इसके बीजों को काटकर मिट्टी के घड़े के अन्दर रगड़ते हैं, फिर पानी भरते हैं। इससे पानी की गन्दगी नीचे बैठ जाती है।

नेत्राभिष्यन्द में बीजों को जल में घिस कर अञ्जन करते हैं।

शोजाक, मधुमेह तथा जीर्ण अतिसार में बीजों का उपयोग किया जाता है। जीर्ण अतिसार में आधा बीज मट्ठे में घिसकर पिलाते हैं।

अथ द्राक्षा (दाख)। तस्या नामानि तत्पक्वापक्वफलस्य तद्भेदानां च गुणाँश्चाह

द्राक्षा स्वादुफला प्रोक्ता तथा मधुरसाऽपि च। मृद्वीका हारहूरा च गोस्तनी चापि कीर्त्तिता॥
द्राक्षा पक्वा सरा शीता चक्षुष्या बृंहणी गुरुः। स्वादुपाकरसा स्वर्या तुवरा सृष्टमूत्रविट्॥
कोष्ठमारुतकृद् वृष्या कफपुष्टिरुचिप्रदा॥ १११॥
हन्ति तृष्णाज्वरश्वासवातवातास्रकामलाः। कृच्छ्रास्रपित्तसंमोहदाहशोषमदात्ययान्॥११२॥
आमा स्वल्पगुणा गुर्वी सैवाम्ला रक्तपित्तकृत्।
वृष्या स्याद् गोस्तनी द्राक्षा गुर्वी च कफपित्तनुत्॥

दाख के संस्कृत नाम—द्राक्षा, स्वादुफला, मधुरसा, मृद्वीका, हारहूरा और गोस्तनी ये सब हैं।

दाख के पके फल—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, विपाक में मधुर रसयुक्त, सारक, शीतल, नेत्रों के लिये हितकर, बृंहण, गुरु, स्वर को उत्तम करने वाले, मूत्र तथा मल की प्रवृत्ति कराने वाले, कोष्ठ में वातकारक, वृष्य, कफ-पुष्टि तथा रुचि के उत्पन्न करने वाले एवम्—तृषा, ज्वर, श्वास, वात, वातरक्त, कामला, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, मोह, दाह, शोष तथा मदात्यय रोग को दूर करने वाले होते हैं। कच्चे दाख के फल-पके की अपेक्षा अल्प गुण वाले एवम् गुरु होते हैं। वे ही यदि खट्टे हों तो रक्तपित्त कारक होते हैं।

गोस्तनी-दाख (मुनक्का)—वीर्यवर्धक, गुरु तथा कफ और पित्त का नाशक होती है॥

*गोस्तनी 'मुनक्का' इति लोके॥ १०९-११३॥

यहाँ पर "मूल में गोस्तनी पद से मुनक्का का बोध लोक में होता है" ऐसा समझना चाहिये॥ १०९-११३॥

अबीजाऽन्या स्वल्पतरा गोस्तनीसदृशी गुणैः।
द्राक्षा पर्वतजा लघ्वी साऽम्ला श्लेष्माम्लपित्तकृत्॥
द्राक्षा पर्वतजा यादृक् तादृशी करमर्दिका॥ ११४॥

दूसरी जाति की जो थोड़े बीजवाली दाख होती है वह—यद्यपि गुणों में मुनक्का के ही समान होती है तथापि उसमें अपेक्षाकृत स्वल्प गुण होते हैं।

पर्वत पर उत्पन्न होने वाली जो दाख है उसे "पर्वतजा" द्राक्षा कहते हैं। वह—पाक में लघु होती है। किन्तु यदि खट्टी हो तो वह—कफ तथा अम्लपित्त को उत्पन्न करने वाली होती है।

करमर्दिका के गुण—जिस भाँति "पर्वतजा" दाख के होते हैं वैसे ही इसके भी होते हैं॥११४॥

*अबीजा = ईषद्बीजा 'किसमिस' इति लोके। पर्वतजा = 'पहाड़ी' इति लोके। करमर्दिका = 'करौंदी' इति लोके॥ ११४॥

यहाँ पर मूल में "अबीजा" पद से 'थोड़े बीज वाली" यह अर्थ समझना चाहिये इसी को लोक में "किसमिस" कहते हैं। "पर्वतजा" को पहाड़ीदाख" तथा "करमर्दिका" को लोक में "करौंदी" दाख कहते हैं॥ ११४॥

४२ दाख

हिं०-दाख, मुनक्का, अंगूर। **बं०**-मनेका। **म०**-अंगूर, द्राक्ष। **गु०**-धराख, दराख। **क०**-द्राक्षे। **ते०**-द्राक्षा। **ता०**-कोट्टन। **फा०**-अंगूर, मवेज़ (सूखा)। **अ०**-इनुस् सजीव। **अं०**-Grapes (ग्रेप्स)। **ले०**-*Vitis vinifera Linn.* (विटिस् विनिफेरा)। Fam. Vitaceae (विटेसी)।

अंगूर, किसमिस, दाख, बड़ी दाख सब एक ही जाति की लताओं के फल हैं। कच्चे, पके, बीजहीन तथा छोटे, बड़े, सूखे आदि फलों के भेद से यह भिन्न भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं।

यह लता जाति की वनस्पति फ़ारस, अफ़ग़ानिस्तान आदि विदेशों के सिवा इस देश में भी कई जगह किन्तु विशेषरूप से उत्तर पश्चिमी भागों में अधिक उत्पन्न होती है। पत्ते-गोलाकार, पांच दल तथा कटे किनारे वाले और कंगूरेदार होते हैं। फूल-हरे रङ्ग के सुगन्धित होते हैं। फूल तथा फल गुच्छों में आते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान और फारस आदि देशों के अंगूर अच्छे होते हैं। काश्मीर में किसमिस, मुनक्का, हीसानी और मस्का नामक कई जातियों के अंगूर उत्पन्न होते हैं। औरङ्गाबाद का अंगूर लाल और स्वादिष्ट होता है। दौलताबाद के अंगूर देश देशान्तरों में भेजे जाते हैं। सब जगह की जलवायु भिन्न होती है इस कारण प्रत्येक स्थान के फलों में कुछ न कुछ भेद होता है।

रासायनिक संगठन—पक्व फल में शर्करा, कुछ सेन्द्रीय अम्ल द्रव्य जैसे मॅलिक्, टार्टरिक्, रेसेमिक् अम्ल तथा आर्सेनिक् (१०० सी० सी० रस में ०·०५ मि० ग्रा०); कच्चे फल में आक्झेलिक् अम्ल एवं बीज में स्थिर तैल होता है। इससे आसव, अरिष्ट, सिरका, मॉन्डी आदि बनाई जाती है इसके फलों का अधिक उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—पक्व फल शीतल, संतर्पण, पाचन, स्रंसन, बल्य, कण्ठ्य, रक्तपित्त शामक है। सूखे फल शीतल, स्नेहन, कफ शामक, स्रंसन हैं। अपक्व फल का रस बहुत ग्राही होता है। गर्मी के दिनों में इसको काटने से एक रस बहता है जो त्वग्दोषहर है।

रक्तपित्त, पांडु दौर्बल्य आदि में अंगूर से लाभ होता है। ज्वर में इससे दाह एवं तृषा शांत होती है तथा मूत्र भी साफ होता है। मुनक्का का उपयोग खांसी, पेशाब की जलन, तथा शौच साफ होने के लिये करते हैं।

अथ क्षुद्रखजूरी-पिण्डखर्जूरी-छोहारा च। तासां नामानि गुणाँश्चाह

भूमिखर्जूरीका स्वाद्वी दुरारोहा मृदुच्छदा। तथा स्कन्धफला काककर्कटी स्वादुमस्तका ११५
पिण्डखर्जूरिका त्वन्या सा देशे पश्चिमे भवेत्। खर्जूरी गोस्तनाकारा परद्वीपादिहागता ॥११६॥
जायते पश्चिमे देशे सा छोहारेति कीर्त्यते। खर्जूरीत्रितयं शीतं मधुरं रसपाकयोः ॥ ११७ ॥
स्निग्धं रुचिकरं हृद्यं क्षतक्षयहरं गुरु। तर्पणं रक्तपित्तघ्नं पुष्टिविष्टम्भशुक्रदम् ॥ ११८ ॥
कोष्ठमारुतहृद् बल्यं वान्तिवातकफापहम्। ज्वरातिसारक्षुत्तृष्णाकासश्वासनिवारकम् ११९
मदमूर्च्छामरुत्पित्तमद्योद्भूतगदान्तकृत्। महतीभ्यां गुणैरल्पा स्वल्पखर्जूरिका स्मृता ॥१२०॥

खजूर के संस्कृत नाम—भूमिखर्जूरिका, स्वाद्वी, दुरारोहा, मृदुच्छदा, स्कन्धफला, काककर्कटी तथा स्वादुमस्तका ये सब हैं। और दूसरी जाति का जो खजूर है वह पश्चिम (काबुल आदि) देशों में उत्पन्न होता है उसका संस्कृत नाम—पिण्डखर्जूरिका (हिन्दी नाम—पिण्डखजूर है)। एवम्-तीसरी जाति का जो खजूर है जो कि आकार में गौ के स्तन की भाँति होता है तथा दूसरे द्वीप से इस भारतवर्ष में आया है उसको लोग "छुहारा" कहते हैं। और वह भी पश्चिम के देशों में उत्पन्न होता है।

उक्त तीनों प्रकार के खजूर-रस में तथा विपाक में मधुर रसयुक्त, शीतल, स्निग्ध, रुचिकर, हृदय को हितकर, गुरु, सन्तर्पणकारक, बलवर्धक एवम्-क्षत, क्षय, रक्तपित्त, कोष्ठस्थित-वायु, वमन, वात, कफ, ज्वर, अतिसार, भूख, प्यास, कास, श्वास, मद, मूर्च्छा, वातपित्त, मद्य से उत्पन्न रोग

को दूर करने वाले होते हैं। दोनों बड़े खजूर (पिण्डखजूर, छुहारा) से गुण में कम होने से खर्जूर को स्वल्पखर्जूरिका कहते हैं ॥ ११५-१२० ॥

अथ खर्जूरीतरुतोयगुणानाह

खर्जूरीतरुतोयं तु मदपित्तकरं भवेत्। वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं बलशुक्रकृत् ॥ १२१ ॥

खजूर के वृक्षों के जल—रुचिकारक, अग्निदीपक, मद, पित्त, बल तथा शुक्र को उत्पन्न करने वाले एवम्—वात तथा कफ के नाशक होते हैं ॥ १२१ ॥

अथ पिण्डखर्जूरीभेदः (सुलेमानी खजूर)। तस्य नामगुणानाह

सुलेमानी तु मृदुला दलहीनफला च सा। सुलेमानी श्रमभ्रान्तिदाहमूर्च्छाऽस्रपित्तहृत् ॥

सुलेमानी खजूर (यह "पिण्ड खजूर" का भेद है) के संस्कृत नाम—सुलेमानी, खर्जूरी, मृदुला तथा दलहीनफला ये सब हैं।

सुलेमानी खजूर-श्रम, भ्रान्ति, दाह, मूर्च्छा तथा रक्तपित्त को दूर करने वाला होता है ॥१२२॥

४३ खर्जूरी-पिण्ड खर्जूरी (खजूर)

हि०-खजूर, देशी खजूर, खिजूर। **बं०**-खेजूर गाछ। **म०**-शिन्दी। **क०**-इचुली। **ते०**-इण्टाचेट्टु पेड्डयिता। **गु०**-खजूर। **फा०**-तमर रुतब, खुरमाय हिन्दी। **अ०**-खुरमातर, रतब हिन्दी। **अं०**-Date (डेट)। **ले०**-*Phoenix sylvestris Roxb.* (फोनिक्स सिल्वेस्ट्रिस)। Fam. Palmae (पामी)।

देशी खजूर इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में उत्पन्न होता है। इसका **वृक्ष**-ताड़वृक्ष के समान होता है किन्तु इसकी ऊंचाई कम होती है। **पत्ते**-६ से ७ फीट लम्बे तथा पक्षाकार होते हैं। **पत्रक**-६ से १२ इञ्च लंबे, एक इञ्च चौड़े, तीक्ष्णाग्र, विपरीत एवं अग्र में एक पत्रक रहता है। **पुष्प**-एकलिंगी भिन्न-भिन्न वृक्षों पर आते हैं। कृत्रिम परागण की इसमें आवश्यकता होती है। **फल**-१ से १½ इञ्च लंबा, गोलाकार, पीत एवं पकने पर रक्ताभ रहता है। फल के अन्दर बीज रहता है। प्रायः पुष्प एवं फल काल के समय घोर वर्षा हुआ करती है जिसमें फल बनने में बहुत कठिनाई होती है।

इसके वृक्ष से जो रस निकलता है उसे खजूरी कहते हैं। इससे मद्य बनता है तथा गुड़ भी बनाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इसके फल बल्य एवं पौष्टिक होते हैं। इसके वृक्ष का रस शीतल मूत्रजनन तथा पौष्टिक पेय माना जाता है। इसकी जड़ दंतशूल में उपयोगी है। इसका मद्य दीपन, पाचन तथा उत्तेजक होता है। यह अन्य विदेशी मद्यों की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है। इसकी शर्करा अधिक पौष्टिक तथा सारक है।

४४ छुहारा, ४५ पिण्ड खजूर

हि०-पिंडखजूर, छुहारा, छोहारा। **बं०**-सोहारा। **म०**-खारीक। **गु०**-खारेक। **क०**-इचुल, करिइंचुली, करिइंचुल। **ते०**-खजूरपुपण्डु। **फा०**-खुर्मा, खुर्मा खुश्क। **अ०**-तमर। **अं०**-Date Palm (डेट पाम)। **ले०**-*Phoenix dactylifera Linn* (फोनिक्स डॅक्टिलिफेरा)। Fam. Palmae (पामी)।

छुहारा—ईरान, फारस, काबुल आदि देशों में उत्पन्न होता है और इस देश के पञ्जाब सिन्ध प्रान्तों में रोपण किया जाता है।

इसके वृक्ष—ताड़ और नारियल के वृक्षों के समान होते हैं और **पत्ते**-खजूर के पत्तों के समान पर उनसे कुछ बड़े होते हैं। **फल**-भी खजूर से बड़ा होता है।

जिस प्रकार अंगूर, किसमिस, मुनक्के आदि एक ही जाति के लताओं के फल हैं और कच्चे, पके, बीजहीन, छोटे, बड़े, सूखे आदि फलों के भेद से वे भिन्न भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं उसी प्रकार खजूर, छोहारा, पिण्डखजूर आदि एक ही जाति के वृक्षों के फल हैं। इस देश में होने से उसको देशी खजूर कहते हैं और वह गुण में हीन होता है। जिस प्रकार काबुल, फारस आदि देशों के अंगूर, अनार, नासपाती आदि फल इस देश में उत्पन्न हुये फलों की अपेक्षा सुस्वादु और वीर्यवर्द्धक होते हैं उसी प्रकार काबुल फारस प्रभृति देशों के खजूर सुस्वादु और अधिक गुणवान् होते हैं। अधपके सूखे फल को छुहारा और पके हुये फलों को पिण्ड खजूर या खजूर कहते हैं। इसके सिवा सुलेमानी खजूर, पिण्डखजूर का ही भेद है।

रासायनिक संगठन—फलों में विटामिन ए, बी, डी, तथा प्रशीताद (Scurvy-स्कर्वी) नाशक विटामिन होते हैं।

गुण और प्रयोग—खजूर शीतल, स्नेहन, वृष्य, तर्पण, गुरु, वातपित्तहर एवं कफनिःसारक है। इसका उपयोग क्षय, क्षतक्षय, कास, श्वास, दाह एवं रक्तपित्त में किया जाता है।

इसका गोंद अतिसार तथा मूत्रविकारों में लाभदायक है। इसके वृक्ष का रस शीतल तथा सारक होता है।

अथ वातादः (बादाम)। तस्य नामानि तन्मज्जगुणाँश्चाह

वातादो वातवैरी स्यान्नेत्रोपमफलस्तथा। वातादः उष्णः सुस्निग्धो वातघ्नः शुक्रकृद् गुरुः।
वातादमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः।
स्निग्धोष्णः कफकृन्नेष्टो रक्तपित्तविकारिणाम् ॥ १२४ ॥

बादाम के संस्कृत नाम—वाताद, वातवैरी तथा नेत्रोपमफल ये सब हैं।

बादाम – उष्ण, स्निग्ध, शुक्रकारक, गुरु एवम्-वातनाशक होता है।

बादाम की मींगी—मधुर, वीर्यवर्धक, स्निग्ध, उष्ण, कफकारक एवम्-पित्त तथा वात को दूर करने वाली होती है तथा रक्तपित्त के रोगियों को हितकर नहीं होती है॥ १२३-१२४।

४६ बादाम

हि०-बादाम, बदाम। **बं०**-बादाम। **म०**-बदाम। **गु०**-बदाम। **ते०**-बदाम। **ता०**-वडुमै। **फा०**-बदाम। **अ०**-लोजल। **अं०**-Almond (ऑलमन्ड)। **लै०**-*Prunus amygdalus Batsch.* (प्रुनस् एमिग्डेलस्)। Fam. Rosaceae (रोसेसी)।

भारत के पंजाब एवं कश्मीर के शीतल प्रान्तों में इसकी उपज की जाती है। यह अफगानिस्तान, ईरान तथा युरोप में भी होता है।

इसका वृक्ष-मध्यमाकार का होता है। टहनियों के अन्त में पत्ते गुच्छों में रहते हैं। **पत्ते**-भालाकार और बारीक कंगूरेदार होते हैं। **फूल**-सफेद रङ्ग के आते हैं जिनपर लाल रङ्ग के धब्बे रहते हैं। **फल**-लम्बाई युक्त गोल होते हैं। **बीज**-अण्डाकार और चिपटे होते हैं। कच्चे फलों का कश्मीर में साग बनाकर खाते हैं। कच्चे फल खट्टे और पके फल खटमीठे होते हैं।

बादाम के दो प्रकार पाये जाते हैं। एक की मींगी मधुर तथा दूसरे की कड़वी होती है। बदाम की स्थान भेद से अनेक जातियाँ पाई जाती हैं। मीठा बादाम खाने के योग्य होता है। कड़वा अत्यन्त विषैला होता है।

रासायनिक संगठन—कड़वे बादाम में अत्यन्त विषैला तत्व हाइड्रोसायेनिक एसिड होता है। करीब ६० कड़वे बदाम में वयस्क मनुष्य के लिये घातक प्रमाण में विष होता है। यह विष उसके उड़नशील तैल में होता है।

मीठे बदाम में स्थिर तैल ३५-६२% होता है। यह विष इसमें यदि हो तो बहुत ही कम होता है।

गुण और प्रयोग—बदाम मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्ण, बृंहण, बल्य, वातहर, वातनाड़ी बल्य, उत्तेजक एवं कफपित्तकर है।

बदाम को रातभर गरम पानी में भिगोकर दूसरे दिन थोड़ी देर पकाकर उसकी पेया बनाते हैं। यह श्वसन एवं मूत्रजननेन्द्रिय संस्थान के रोगों, मधुमेह तथा स्त्रियों के कटिशूल एवं श्वेत प्रदर में देते हैं।

मात्रा—पेया २ से ४ तोला।

नोट—देशी बादाम (जंगली बादाम), लै०-टर्मिनेलिया कॅटेप्पा, कॉम्ब्रेटेसी (*Terminalia catappa Linn. Fam. Combretaceae*) नामक एक अन्य वृक्ष भी पाया जाता है। इसमें बादाम सदृश बीज पाया जाता है तथा बीज तैल का प्रयोग बादाम के तैल के स्थान पर भी करते हैं। इसकी छाल संग्राही होती है एवं पत्तों का मलहम चर्मरोगों में काम में लाया जाता है।

अथ सेवम्। तस्य नामगुणानाह

मुष्टिप्रमाणं बदरं सेवं सिविलिकाफलम्[1] **॥ १२५ ॥**
सेवं समीरपित्तघ्नं बृंहणं कफकृद् गुरु। रसे पाके च मधुरं शिशिरं रुचिशुक्रकृत् ॥ १२६ ॥

सेव के संस्कृत नाम मुष्टिप्रमाण, बदर अथवा मुष्टिप्रमाणबदर, सेव तथा सिविलिकाफल ये सब हैं।

सेव-रस तथा विपाक में मधुरस युक्त, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), कफकारक, गुरु, शीतल, रुचि तथा शुक्र को उत्पन्न करने वाला होता है॥ १२५-१२६॥

४७ सेव

हि०-सेव, सेब। **बं०**-सेव। **म०, गु०**-सफरचंद। **क०**-सेबु। **अ०**-तुफाह। **फा०**-सेब, सिब। **अं०**-Apple Tree (ॲपल् ट्री)। **लै०**-*Pyrus malus Linn.* (पायरस मॅलस्)। Fam. Rosaceae (रोझेसी)।

हिमालय, पंजाब, सिंध, उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश, मध्यभारत एवं डेक्कन में इसकी उपज की जाती है। उत्तर पश्चिम हिमालय में वन्य भी पाया जाता है।

इसका वृक्ष-३० फीट से अधिक ऊँचा नहीं होता। नयी शाखा, पत्र का अधर पृष्ठ, एवं पुष्प व्यूह, श्वेताभ रजावरण से ढके रहते हैं। **पत्ते**-२ से ३ इञ्च, अंडाकार, गोल दन्तुर एवं कुछ लम्बाग्र होते हैं। **पुष्प**-१½-२ इञ्च व्यास के एवं गुलाबी होते हैं। फल-गोल, छोटे डंठल एवं

---

१. सिम्बि(ञ्चि)तिका इति पाठा.।

स्थाई बाह्यदल से युक्त एवं दोनों तरफ से अन्दर धंसा हुआ होता है। खट्टा तथा मीठा ऐसे दो भेद पाये जाते हैं। पके फल को लोग खाते हैं तथा उसका मुरब्बा भी बनाते हैं।

इसकी छाल एवं मूल का भी उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—पत्ते एवं छाल में एक ग्लूकोसाइड फ्लोरिजिन् (Phlorizin) होता है। बीजों में ॲमिग्डॅलिन पाया जाता है। फ्लोरिजिन् के प्रयोग से वृक्क द्वारा शर्करा का अधिक उत्सर्ग होने लगता है। फल में मॅलिक अम्ल, खटिक, फॉस्फेट आदि होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके फल मधुर, शीत, ग्राही, शुक्रल, बृंहण, कफकर, एवं वातपित्तहर होते हैं। यह हृदय, मस्तिष्क, यकृत एवं आमाशय को शक्ति देनेवाला है। रक्तातिसार तथा आमातिसार में सेव का मुरब्बा देते हैं। विबंध में भी इसका उपयोग होता है।

इसकी छाल का क्वाथ पार्यायिक ज्वर में दिया जाता है।

इसकी जड़ कृमिघ्न, दाहशामक एवं निद्राजनक है।

अथामृतफलम् (यद् बदक्सान-काबिल-प्रभृतिषु देशेषु "नाशपाती" तिनाम्ना प्रसिद्धम्) तस्य गुणानाह

अमृतफलं लघु वृष्यं सुस्वादु त्रीन्हरेद्दोषान्। देशेषु मुद्गलानां-बहुलं तल्लभ्यते लोकैः १२७

अमृत फल—यह बदक्सान तथा काबिल आदि देशों में "नाशपाती" नाम से प्रसिद्ध है।

नाशपाती-लघु, वृष्य (वीर्यवर्धक), अत्यन्त स्वादिष्ट एवम् तीनों दोषों को दूर करने वाली होती है और मुगलों के देश में इसे बहुलता से लोग पाते हैं ॥ १२७ ॥

४८ नाशपाती

सं०—टङ्क। **हि०**—नाशपाती। **म०**—नासपती। **ता०**—पेरिक्के। **ते०**—बेरिकाय। **अं०**—Pear (पीअर)। **ले०**—*Pyrus communis Linn.* (पाइरस कम्युनिस्)। Fam. Rosaceae (रोझेसी)।

उत्तर पश्चिम हिमालय में इसकी बहुत उपज की जाती है। यह कश्मीर, ईरान एवं अफगानिस्तान आदि में भी होती है।

इसका **वृक्ष** मध्यमाकार का होता है तथा नये वृक्षों की टहनियों पर कुछ कांटे होते हैं। **पत्ते**-चौड़ाई लिये हुए अंडाकार, अखण्ड या कुण्ठित दन्तुर एवं पतले और पत्र बराबर लंबे वृन्त से युक्त होते हैं। **पुष्प**-श्वेत आते हैं। **फल**-यह स्थान भेद से अनेक आकार प्रकार का होता होता है। काश्मीर आदि की नासपाती अधिक मुलायम रहती है। स्वाद में यह मधुर होती है। इसकी कलम करके सुधारी हुई जाति को **नाक** कहा जाता है जो अधिक मधुर तथा मुलायम होता है।

गुण और प्रयोग—यह कषाय, मधुर, गुरु, शीतवीर्य, वातकर एवं ज्वरहर है।

कुछ पक्व फल को काटकर, सुखाकर उसका चूर्ण बना, आटे में मिला रोगी को पथ्यरूप में दिया जाता है।

इसके बीज, जिन्हें अंच् या अंचक कहते हैं, उनकी मज्जा पौष्टिक मानी जाती है।

अथ पीलुः। तस्य नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

पीलुर्गुडफलः स्रंसी तथा शीतफलोऽपि च। पीलु श्लेष्मसमीरघ्नं पित्तलं भेदि गुल्मनुत् ॥
स्वादु तिक्तञ्च यत्पीलु तन्नात्युष्णं त्रिदोषहृत् ॥ १२८ ॥

पीलू के संस्कृत नाम—पीलु, गुडफल, स्रंसी तथा शीतफल ये सब हैं।

पीलु—मल का भेदन करने वाला, पित्तजनक एवम् कफ, वायु तथा गुल्म को दूर करने वाला है। जो पीलू-स्वादिष्ट तथा तिक्तरस युक्त होता है वह अत्यन्त उष्ण नहीं होता तथा त्रिदोषनाशक होता है ॥ १२८ ॥

४९ पीलु

हि०—पीलु, छोटा पीलु, खरजाल। **बं०**—पीलुगाछ। **म०**—पिलु। **गु०**—पीलु, खारी जाल **क०**—गेनुमर। **ते०**—गोगु। **ता०**—पेरुन्गोलि। **फा०**—दरख्ते मिस्वाक्। **अ०**—अराक। **पं०**—पीलु, जाल, वण। **राजपु०** झाल। **ले०**—*Salvadora persica Linn.* (साल्वेडोरा पर्सिका)। Fam. Salvadoraceae (साल्वेडोरेसी)।

यह राजपुताना, बिहार, कोंकण, सरकार, डेक्कन, कर्नाटक, बलूचिस्तान, सिंध आदि स्थानों में शुष्क प्रदेशों में होता है।

इसका **वृक्ष**-छोटा एवं सदा हरा भरा रहता है। स्तम्भ-टेढ़ा मेढ़ा होता है और शाखायें नीचे झुकी हुई और दुर्बल होती हैं। **पत्ते**-विपरीत, चर्मसदृश या मांसल, अण्डाकार, आयताकार, १।-२ इञ्च लंबे तथा दोनों सिरों पर गोल होते हैं। इस पर छोटे-छोटे फूल बारहो मास आते रहते हैं और वे हरापन युक्त सफेद होते हैं। **फल**-आध इञ्च गोल, चिकने और पकने पर लाल हो जाते हैं। सूंघने पर इनमें राई आदि के समान तीक्ष्ण गंध आती है तथा इसमें एक बीज होता है। एक दूसरा बड़ा पीलु होता है जिसको लॅटिन में–Salvadora oleoides Dcne. (साल्वेडोरा ओलीओडीस्) कहते हैं। इसके फल पकने पर पीले, सूखने पर लाली लिये भूरे रङ्ग के होते हैं।

रासायनिक संगठन—पीलु में एक क्षाराभ ट्राइमेथिलामाइन (Trimethylamine) पाया जाता है। बड़े पीलु में भी यह क्षाराभ होता है तथा बीज में दोनों प्रकार के तेल होते हैं।

गुण और प्रयोग—**लघु पीलु** के पत्ते विरेचक होते हैं तथा कास में दिये जाते हैं। इसके बीजों का तेल राई के तेल की तरह होता है तथा आमवातादि में लगाया जाता है। इसके जड़की छाल उत्तेजक, स्वेदजनन एवं कुछ मूत्रजनन है। इसका क्वाथ ज्वर में दौर्बल्य तथा प्रलाप दूर करने के लिये देते हैं। इसको गर्भिणी को न दें।

वृद्धपीलु के पत्ते वातनाशक होने के कारण उनको गरम करके पीड़ायुक्त स्थानों को सेंकते हैं। छाल उत्तेजक एवं उष्ण होने के कारण ज्वर में दौर्बल्य होने पर तथा आर्तव रुक जाने पर देते हैं। **फल**-उष्ण, दीपन ,वातहर एवं मूत्रजनक हैं। इनमें शर्करा बहुत रहती है। संधिवात एवं प्लीहा वृद्धि में फल देते हैं। बीज आनुलोमिक एवं विषघ्न हैं। सर्पविष में इनका उपयोग करते हैं। बीजों का तेल स्वेदजनन एवं उत्तेजक होने के कारण पुराने सन्धिरोगों में इसकी मालिश की जाती है। इस तेल को किंकणेल या खिकणेल कहते हैं।

अथाक्षोटः (अखरोट) तस्य नामगुणानाह

पीलुः शैलभवोऽक्षोटः कर्परालश्च कीर्तितः। अक्षोटकोऽपि वाताद्सदृशः कफपित्तकृत् ॥१२९॥

अखरोट के संस्कृत नाम—शैलभव पीलु अक्षोट तथा कर्पराल ये सब हैं। (जो पीलू पर्वत पर उत्पन्न होता है उस को "अखरोट" कहते हैं)।

अखरोट- गुणों में बादाम के सदृश होता है एवम् कफ तथा पित्त का वर्धक होता है ॥ १२९

५० अखरोट

हि०—अखरोट, अक्षोट, पहाडी पीलु। **बं०**—आखरोट। **पं०**—अखरोट। **म०**—अक्रोड। **गु०**—अखरोड। **ते०**—अक्षोलमु। **ता०**—अक्रोट्टु। **क०**—आखोट। **आसा०**—कवसिंग। **फा०**—चार मग्ज, जिर्दगां। **अ०**—जोज़ हिन्दी, जोज़ेजुल हिन्द, जोज़। **अफगा०**—उग्घस्। **अं०**—Walnut (वालनट) **ले०**—*Juglans regia Linn.* (जगलान्स रेजीया)। Fam. Juglandaceae (जगलैन्डेसी)।

यह हिमालय के उष्ण भागों में ३ से १० हजार फीट तक एवं खासिया पर्वत तथा बलुचिस्तान में होता है। कश्मीर में इसकी बहुत उपज की जाती है।

इसका वृक्ष ऊंचा होता है तथा छाल धूसर एवं लम्बाई में फटी होती है। शाखाओं पर मृदु रजावरण होता है। **पत्ते**—असम पक्षवत्, एकान्तर तथा ६ से १५ इञ्च लम्बे होते हैं। पत्रक-संख्या में ५-१३, दीर्घवृत्ताभ से लेकर आयताकार भालाकार, ३-८ × १·५-४ इञ्च बड़े, न्यूनाधिक विनाल एवं प्रायः अखण्ड होते हैं। **पुष्प**—छोटे, पीताभ हरे एवं एक लिंगी होते हैं। **फल**—कुछ लंबाई लिये हुये गोल एवं २ इञ्च व्यास में एवं बाह्यस्तर (Exocarp) हरा तथा चर्मवत् रहता है। इसके अन्दर अन्तस्तर कठोर काष्ठीय, सिकुडनदार एवं दो कोष्ठ युक्त होता है जिसमें ४ खण्डवाला तैल से भरा हुआ, टेढ़ा मेढ़ा धूसर श्वेत रंग का बीज होता है। इन्हीं बीजों को लोग खाते हैं।

स्थान भेद से अन्तस्तर (Endocarp) के स्वरूप के अनुसार इसके कई प्रकार होते हैं। इसमें सबसे अच्छा **कागजी अखरोट** होता है जो बड़ा, अन्तस्तर पतला तथा उसकी मींगी श्वेत तथा अधिक स्वादिष्ट रहती है। इसकी **छाल डण्डासा** के नाम से बिकती है जिसको दांत साफ करने के लिये तथा चबाकर होंठ लाल करने के लिये उपयोग में लाते हैं। बाल रंगने के लिये हरे फल के छिलकों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें तैल, अनेक पोषक तत्त्व, विटामिन 'बी', 'ए','सी', लेसिथिन तथा अनेक खनिज होते हैं। खनिज में लोह, ताम्र, खटिक, फास्फोरस, यशद, कोबाल्ट, मैंगनेशियम, आर्सेनिक, गंधक, आयोडिन, मैंगेनीज, पोटेशियम् तथा सोडियम् होते हैं। इनके अतिरिक्त कच्चे फलों में विटामिन 'सी' बहुत होता है। पत्तों में विटामिन 'सी' एवं उड़नशील तैल रहता है। इनका जलीय सत्त्व अनेक जीवाणु के लिये घातक होता है।

गुण और प्रयोग—इसकी मींगी, पौष्टिक, बल्य, बृंहण, क्षतक्षयनाशक एवं आमवातहर होती है। आमवात, वातरक्त आदि में इसका उपयोग करते हैं। इसके पत्ते पौष्टिक एवं कृमिघ्न होते हैं। इनका क्वाथ गंडमाला में लाभदायक होता है। इसकीछाल को पीसकर शोथपर लगाते हैं। इसका तेल स्फीतकृमि में लाभदायक माना जाता है।

नोट—एक जङ्गली अखरोट होता है जो आसाम तथा विशेषरूप से दक्षिण में होता है। यह एल्यूराइटिस् मोलुक्केना (Aleurites moluccana, Willd.), युफोर्बियसी (Fam. Euphorbiaceae) है। इसके फल अंडाकार, दो इञ्च व्यास के होते हैं जिसके अन्दर दो बीज अखरोट जैसे निकलते हैं। इसमें तेल होता है। यह १ से २ औंस की मात्रा में विरेचक होता है। बीजों को भूनकर खाया जाता है जिसमें कुछ विरेचक गुण रहता है। इन्हें बिना भूने नहीं खाना चाहिये क्योंकि इसमें एक विषैला तत्व होता है जो भूनने से नष्ट हो जाता है। बीजों की बत्ती बनाकर जलाते हैं जिससे इसे 'दी कैंडल नट ट्री' (The candle nut tree) भी कहते हैं।

भावप्रकाशकार अखरोट को पर्वत पर होने वाला पीलु कहते हैं किन्तु इसके स्वरूपादि से इनमें कोई साम्य नहीं मालूम पड़ता।

अथ बीजपूरः (बिजौरा)। तस्य नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

बीजपूरो मातुलुङ्गो रुचकः फलपूरकः। बीजपूरफलं स्वादु रसेऽम्लंदीपनं लघु॥ १३०॥
रक्तपित्तहरं कण्ठजिह्वाहृदयशोधनम्। श्वासकासारुचिहरं हृद्यं तृष्णाहरं स्मृतम्॥ १३१॥

बिजौरा नीबू के संस्कृत नाम—बीजपूर, मातुलुङ्ग, रुचक तथा फलपूरक ये सब हैं।

बिजौरा के फल—स्वादिष्ट, अम्लरसयुक्त, अग्निदीपक, लघु, हृदय के लिये हितकर, कण्ठ-जिह्वा तथा हृदय को शोधन करने वाले एवम्-रक्तपित्त श्वास-कास-अरुचि तथा तृषा को दूर करने वाले होते हैं॥ १३०-१३१॥

५१ बिजोरा

हि०—बिजोरा नीबु, तुरंज। **बं०**—टावालेबु, छोलोंगनेबु, बेगपूर। **म०**—महालुङ्ग। **गु०**—बिजोरू। **क०**—मादळ। **ता०**—मादलम्। **ते०**—लुंगमु, मादिफलमु। **फा०**—तुरंज, तरज। **अ०**—उत्तरुज, उतरज। **अं०**—Citron (सिट्रोन)। **ले०**—Citrus medica Linn. (साइट्रस मेडिका)। Fam. Rutaceae (रूटेसी)।

इसके वृक्ष छोटे, करीब १० फीट ऊँचे होते हैं और वाटिकाओं में लगाये जाते हैं। चटगांव तथा सिताकुंड, खासिया एवं गारो पहाड़ों पर तथा कुमाऊँ में सरजू के किनारे यह वन्य भी पाया जाता है। **शाखाएँ**—मोटी, छोटी, कंटीली एवं इतस्ततः फैली होती हैं। इसके **पत्ते**—नीबू के पत्ते के आकार वाले परन्तु लम्बाई चौड़ाई में उनसे बड़े होते हैं। **वृन्त**—इस प्रजाति में वृन्त प्रायः पक्षयुक्त हुआ करता है किन्तु इस जाति में यह पक्षहीन या अल्प किनारेदार तथा छोटा होता है। **फूल**—सफेद आते हैं। **फल**—लम्बाई युक्त गोल, ४-६ इंच व्यास में और नोकदार सा होता है। इसका छिलका मोटा, खुरदरा, उभारदार एवं पकने पर पीले रंग का होता है। इसकी गुद्दी हलकी पीली, अल्प, साधारण अम्ल या मधुराम्ल किन्तु स्वादहीन होती है। इसके दो वर्ग मुख्यरूप से किये जाते हैं। एक मीठे तथा दूसरे खट्टे। इसके कई उपभेद पाये जाते हैं जिनमें ये मुख्य हैं।

(१) **छांगुरा**—गुद्दीहीन तथा छोटे फल। (२) **तुरंज**—बड़े फल, अम्ल किन्तु छिलका मधुराम्ल। (३) **बजौरा**—छोटे, अम्ल, रस से भरे एवं पतले छिलके वाले फल। (४) एक विशेष प्रकार उत्तर पश्चिम भारत में होता है जिसमें फल का स्वरूप मुड़ी हुई अंगुलियों से युक्त करतल के समान दिखलाई देता है।

रासायनिक संगठन—छिलके में अत्यंत सुगंधित तेल होता है जिसे सिट्रोन तेल (Citron oil) कहते हैं।

गुण और प्रयोग—यह अम्ल, दीपन, हृद्य, वमनरोधक, अरुचिनाशक एवं शोणितास्थापन है।

इसका छिलका ग्राही, सुगंधि तथा तिक्त पौष्टिक होता है। पुष्प तथा कलियां अल्प स्वप्नजनन एवं ग्राही होती हैं। मूल को पीसकर कृमि, वमन तथा मूत्राश्मरी में देते हैं। ज्वर में पत्तों का फांट पिलाते हैं।

अथ मधुकर्कटी (बिजौराभेद, चकोतरा)। तस्या नामगुणानाह

बीजपूरोऽपरः प्रोक्तो मधुरो मधुकर्कटी॥ १३२॥
मधुकर्कटिका स्वाद्वी रोचनी शीतला गुरुः। रक्तपित्तक्षयश्वासकासहिक्काभ्रमापहा॥ १३३॥

चकोतरा नीबू के संस्कृत नाम—दूसरी जाति का जो बिजौरा होता है उसे मधुर तथा मधु-कर्कटी कहते हैं।

चकोतरा (नीबू)–स्वादिष्ट, रोचक, शीतल, गुरु, एवम् रक्तपित्त, क्षय, श्वास, कास, हिक्का तथा भ्रमरोग को दूर करता है ॥ १३२–१३३ ॥

५२ चकोतरा

हि०, बं०–चकोतरा, महानिबू । **म०**–पोपनस । **गु०**–ओबकोतल । **ते०**–एपरंनासा । **ता०**–पंबालेमसु । **क०**–सकोतरे, सक्कोटा । **अं०**–Shaddock (शेडॉक्), Pummelo (प्यूमेलो) । **ले०**–*Citrus decumana Linn.* (साइट्रस डेक्युमॅना) । Fam. Rutaceae (रूटेसी) ।

इसको बागों में लगाते हैं । इसका **वृक्ष**–छोटा, करीब १५ फीट ऊँचा होता है और सदा हरा भरा रहता है । **पत्ते**–गहरे हरे, बिजोरे से भी बड़े २ होते हैं । **वृन्त**–चौड़े पक्षयुक्त होते हैं । **फूल**–सफेद रंग के आते हैं । **फल**–बड़े २, गोल एवं ६–८ इंच व्यास के फल भी देखने में आते हैं जो पकने पर फीके पीले रंग के होते हैं । इसके गूदी के दाने फीके गुलाबी या श्वेत रंग के होते हैं और स्वाद में मीठे होते हैं । इसके बीजयुक्त, बीजहीन एवं छोटे, बड़े आदि भेद होते हैं । पतले छिलके वाला बंबई का चकोतरा सबसे अच्छा होता है । ग्रेपफ्रूट (Grape fruit) नामक जाति सा. पॅरॅडिसि (C. paradisi) के फल की अपेक्षा ये बड़े, छिलका मोटा तथा कड़ा, गूदा ठोस एवं अलग अलग फल पेड़ पर लगते हैं ।

रासायनिक संगठन—छिलके में सुगन्धित तेल पाया जाता है ।

गुण और प्रयोग—फल पोषक, हृद्य एवं तृषाशामक होता है । इसके पत्ते अपस्मार, कंपवात तथा आक्षेपयुक्त कास में दिये जाते हैं ।

अथ जम्बीरद्वयम् । तस्य नामानि तत्फलगुणाँश्चाह

स्याज्जम्बीरो दन्तशठो जम्भजम्भीरजम्भलाः । जम्बीरमुष्णं गुर्वम्लं वातश्लेष्मविबन्धनुत् ॥
शूलकासकफोत्क्लेशच्छर्दितृष्णाऽऽमदोषजित् ।
आस्यवैरस्यहृत्पीडावह्निमान्द्यक्रिमीन् हरेत् ॥
स्वल्पजम्बीरिका तद्वत्तृष्णाच्छर्दिनिवारिणी ॥ १३५ ॥

जम्बीरीनीबू के संस्कृत नाम—जम्बीर, दन्तशठ, जम्भ, जम्भीर तथा जम्भल ये सब हैं ।

जमीरीनीबू—उष्ण, गुरु, अम्लरसयुक्त एवम्–वात–कफ–मल का विबन्ध–शूल–कास–कफोत्क्लेश–वमन–तृषा–आमसम्बन्धी दोष–मुख की विरसता–हृदय की पीड़ा–अग्नि की मन्दता तथा क्रिमि को दूर करने वाला होता है । छोटा जमीरीनीबू का संस्कृत नाम–स्वल्पजम्बीरिका है । यह यद्यपि गुणों में जमीरीनीबू के समान है परन्तु विशेषतः तृषा तथा वमन का नाशक है ॥ १३४–१३५ ॥

५३ जमीरीनीबू

हि०–जमीरीनीबू, बड़ानीबू, पहाड़ीकागजी । **बं०**–जामीरालेबू, गोंडा लेंबु । **म०**–इड लिंबु । **गु०**–गोदडिया लिंबु, दोडिंगा । **क०**–काहलिम्बे । **ते०**–जांभिर निम्म । **ता०**–पेरियएलुमिच्चई । **अं०**–Lemon (लेमन) । **ले०**–*Citrus limon Linn.* (साइट्रस् लिमन्) । Fam. Rutaceae (रुटेसी) ।

उत्तरप्रदेश, मैसूर, मद्रास तथा बंबई में इसे लोग अपने बगीचों में लगाते हैं । इसका **वृक्ष**–झाड़ीदार, छोटा, १०–१२ फीट ऊँचा एवं कंटकित होता है । पर्णवृन्त या तो पक्षहीन रहता है या पक्ष बहुत छोटे होते हैं । **पुष्प**–एकाकी या कभी-कभी युग्म, १॥–२ इंच व्यास के होते हैं ।

फल–आयताकार, अंडाकार, अग्र कुछ बाहर निकला हुआ, चमकीले पीले रंग का, छिलका मोटा एवं अन्दर से हलका पीला तथा स्वाद में खट्टा होता है । इसका एक प्रकार पठानकोट के पास **गलगल** नाम का होता है । अन्य विदेशी प्रकार भी पाये जाते हैं जिनमें बीज नहीं रहता है ।

रासायनिक संगठन—इसमें विटामिन 'सी' नीबू की अपेक्षा अधिक रहता है । इसके अतिरिक्त विटामिन 'बी' १, कॅरोटीन तथा साइट्रिक अम्ल आदि द्रव्य पाये जाते हैं । रस में न्यूमोनिया रोधी तत्त्व एवं तृणाणुनाशक तत्त्व होते हैं । छिलके में सुगंधीतैल एवं तिक्त द्रव्य होता है ।

गुण और प्रयोग—यह अम्ल, वातकफनाशक, दीपन, पाचन एवं तृष्णा निवारक है । अतिसार, संग्रहणी आदि में इसे देते हैं । इसका शरबत बनाकर पीते हैं तथा अन्य पदार्थों में खटाई के लिये इसका उपयोग किया जाता है ।

अथ निम्बूकम् (कागजी नीबू) । तस्य नामगुणानाह

निम्बूः स्त्री निम्बुकं क्लीबे निम्बूकमपि कीर्त्तितम् । निम्बूकमम्लं वातघ्नं दीपनं पाचनं लघु ॥

कागजी नीबू के संस्कृत नाम—निम्बू (यह स्त्रीलिङ्गी है), निम्बुक (यह नपुंसकलिङ्गी है) तथा निम्बूक ये सब हैं ।

कागजीनीबू—अम्लरसयुक्त, अग्निदीपक, पाचक, लघु तथा वातनाशक होता है ॥ १३६ ॥

अन्यच्च

निम्बुकं कृमिसमूहनाशनं-तीक्ष्णमम्लमुदरग्रहापहम् ।
वातपित्तकफशूलिने हितं-कष्टनष्टरुचिरोचनं परम् ॥ १३७ ॥
त्रिदोषवह्निक्षयवातरोग-निपीडितानां विषविह्वलानाम् ।
मन्दानले बद्धगुदे प्रदेयं-विषूचिकायां मुनयो वदन्ति ॥ १३८ ॥

अन्य कहे हुए कागजी नीबू के और भी गुण—**कागजी नीबू**—कृमिसमूह का नाशक, तीक्ष्ण, अम्लरसयुक्त, उदरपीड़ा तथा ग्रहबाधा को दूर करनेवाला, वात-पित्त तथा कफ सम्बन्धी शूलरोगवालों के लिए हितकर, कष्ट से जिनकी अन्न की रुचि नष्ट हो गई है उसे पुनः उत्पन्न करने वाला होता है और त्रिदोष अग्निक्षीणता तथा वातरोग से पीड़ित, विष से विह्वल, मन्दाग्नि, मलबन्ध तथा हैजा रोग से युक्त रोगियों को कागजीनीबू खिलाना हितकर है ऐसा मुनियों का मत है ॥

५४ नींबू

हि०–कागजी नीबु, नींबू । **बं०**–कागदी लेंबु, पति लेंबु । **म०**–लिंबु । **गु०**–लींबु, कागदी लीम्बु । **ता०**–एलुमिच्चै । **क०**–लिम्बे । **ते०**–निम्म पंडु । **फा०**–लिमुने तुर्श, लींबू, लीमूं । **अ०**–लिमुने हामिज, लेमू हामिज । **अं०**–Lime (लाइम्) । **ले०**–*Citrus medica var. acida* (साइट्रस् मेडिका भेद ॲसिडा) । Fam. Rutaceae (रूटेसी) ।

इसकी सभी स्थानों पर, ४००० फीट की ऊँचाई तक उपज की जाती है तथा हिमालय की उष्ण घाटियों में यह वन्य अवस्था में भी पाया जाता है ।

इसके **वृक्ष**–छोटे, ५–१० फीट ऊँचे, कंटकित झाड़ीदार होते हैं । **पत्ते**–वृन्त थोड़ा सा पक्षयुक्त होता है । **पुष्प**–छोटे, आधा इंच व्यास में, एक साथ ३ से १० की संख्या में पत्रकोण में आते हैं । **फल**–गोल, १–१॥ इञ्च व्यास में, चिकना या झुर्रीदार; छिलका पतला तथा गुद्दी से लगा हुआ,

हरा तथा पकने पर कुछ पीत; गुद्दी पीत हरित, अम्ल, सुगंधि एवं अंदर की कली छोटी तथा चमकीली रहती है।

इसके भी अनेक कृषित उपभेद पाये जाते हैं।

रासायनिक संगठन—रस में साइट्रिक अम्ल, बिटामिन 'सी' एवं छिलके में उड़नशील तेल होता है।

गुण और प्रयोग—यह दीपन, पाचन, किंचित् उष्ण, चक्षुष्य, हृद्य, रक्तपित्तप्रशमन, तृष्णानिग्रहण, ज्वरहर एवं मूत्रजनन है।

रक्तपित्त, आमवात, ज्वर, अतिसार, वमन तथा पित्त के विकारों में इसका रस दिया जाता है। खटाई के लिये भी इसका उपयोग करते हैं।

अथ मिष्टनिम्बूफलम् (मीठा नींबू)। तस्य गुणानाह

मिष्टनिम्बूफलं स्वादु गुरु मारुतपित्तनुत् ॥ १३९ ॥
गलरोगविषध्वंसिकफोत्क्लेशि च रक्तहृत्। शोषारुचितृषाच्छर्दिहरं बल्यञ्च बृंहणम् ॥१४०॥

मीठे नीबू का संस्कृत नाम—मिष्टनिम्बू है।

मीठा नीबू—स्वादिष्ट, गुरु, बलकारक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), कफ सम्बन्धी रोगों को उत्पन्न करने वाला एवम् वात-पित्त-गले के रोग-विष-रक्तविकार-शोष-अरुचि-तृषा तथा वमन को दूर करने वाला होता है ॥ १३९-१४० ॥

५५ मीठा नीबू

हि०-मीठानीबू, शरबती नींबू। **बं०**-मीठा लेंबू। **म०**-साखरलिंबू। **गु०**-मीठालिम्बू। **ता०**-कोलुमिचंगै। **ते०**-गजनिम्मा। **क०**-इम्बे। **फा०**-लिमुने शिरीं। **अ०**-लिमू नेहुलु। **अं०**-Sweet Lime (स्वीट लाइम्)। **ले०**-*Citrus limettioides Tanaka* (साइट्रस् लिमेट्टिओइडिस्)। Fam. Rutaceae (रूटेसी)।

मध्य तथा उत्तरीभारत में इसकी उपज की जाती है।

इसका **वृक्ष**-छोटा तथा कागजी नींबू जैसा होता है। **पत्ते**-संतरे के पत्ते जितने बड़े किन्तु हलके रंग के तथा तैल ग्रन्थियाँ अधिक स्पष्ट रहती हैं। वृन्त पक्षयुक्त होते हैं। **पुष्प**-बड़े तथा श्वेत होते हैं। **फल**-गोल, ३-५ इञ्च व्यास में, हलके पीले या हलके हरे रंग के; छिलका पतला एवं चिकना; गुद्दी मधुर या स्वादहीन रहती है। यह बरसात के अंत में फलता है जब कि अन्य नींबू कम मिलते हैं।

रासायनिक संगठन—छिलके में जंबीरनीबू जैसी गंध का तेल होता है।

गुण और प्रयोग—फल को कामला तथा ज्वर में देते हैं। इसको लोग खाते भी हैं।

५६ मोसंबी

नोट—यद्यपि यह भारत एवं चीन का आदिवासी है तथापि भावप्रकाशकार इसका उल्लेख नहीं करते। इसी प्रजाति का यह उपयोगी फल होने के कारण संक्षेप में यहाँ इसका वर्णन किया जा रहा है।

हि०, बं०, म०, गु०-मोसंबी। **अं०**-Mozambique Orange (मोझंबीक आरेंज); Sweet Orange (स्वीट आरेंज)। **ले०**-*Citrus sinensis* (*Linn.*) *Osbeck.* (साइट्रस साइनेन्सिस्)

अनेक प्रान्तों में इसकी उपज की जाती है। इसका **वृक्ष**-२० फीट तक ऊँचा, फैला हुआ होता है। पर्णवृन्त का पक्ष कम चौड़ा रहता है। **फल**-गोल, स्वर्णपीत या नारंगी वर्ण का; छिलका मोटा अंदर गुद्दी में चिपका हुआ; गुद्दी पीत, नारंग या रक्ताभ एवं स्वाद मधुर या अम्ल रहता है।

रासायनिक संगठन—इसके फल में प्रशीताद विरोधी विटामिन रहता है। फूलों से प्राप्त नेरोली तेल (Neroli oil) एवं पत्तों से प्राप्त पेटिटग्रेन तेल (Petitgrain oil) का उपयोग सुगंधि इत्रों के लिए करते हैं।

गुण और प्रयोग—फल का रस ज्वर, तृष्णा, प्रतिश्याय, क्षुधानाश, पैत्तिक विकार एवं पैत्तिक अतिसार में दिया जाता है। छिलका दीपन एवं बल्य होता है। मुहांसे पर छिलके को रगड़ने से लाभ होता है।

अथ कर्मरङ्गम् (कमरख)। तस्य नामगुणानाह

कर्मरङ्गं शिरालं च बृहदम्लं रुजाकरम्। कर्मरङ्गं हिमं ग्राहि स्वाद्वम्लं कफवातहृत् ॥ १४१ ॥

कमरख के संस्कृत नाम—कर्मरङ्ग, विशाल, बृहदम्ल तथा रुजाकर ये सब हैं।

कमरख—स्वादिष्ट तथा अम्ल रसयुक्त, शीतल, ग्राही एवम्—कफ तथा वात को दूर करने वाला होता है। १४१ ॥

५७ कमरख

हि०-कमरख। **बं०**-काम रांगा। **म०**-कमळर, कर्मर। **क०**-दारेहुळि। **गु०**-कमरख। **ते०**-तमर्ता। **ता०**-तमर्तै। **अं०**-Carambola (करम्बोला)। **ले०**-*Averrhoa carambola Linn.* (एवेहोआ कॅरेम्बोला)। Fam. Oxalidaceae (ऑक्सेलिडेसी)।

यह गरम प्रान्तों की वाटिकाओं में रोपण किया जाता है। इसका **वृक्ष**-छोटा, १५-३० फीट ऊँचा एवं सदाहरित होता है और शाखायें बहुत होती हैं। **पत्ते**-कसौंदी के पत्तों के समान अण्डाकार और नुकीले होते हैं। **फूल**-छोटे छोटे सफेद या किञ्चित् लाली लिये आते हैं। **फल**-३-४ इञ्च लम्बे, पाँच कोनेवाले, गूदेदार, सुगंधि, हरे रंग के एवं पकने पर पीले रंग के होते हैं। कच्ची अवस्था में इनका स्वाद कषाय रहता है किन्तु पकने पर किंचित् मधुराम अम्ल हो जाता है।

इसके दो प्रकार खट्टे एवं मीठे पाये जाते हैं जिनमें से मीठा बंगाल की तरफ होता है।

इसका साग, चटनी, अचार एवं शर्बत बनाया जाता है। इससे लोहे इत्यादि धातुओं में लगी जंग छुड़ाई जाती है।

रासायनिक संगठन—इसमें विटामिन 'ए', १०० ग्राम में २४० एकक होता है तथा एसिड पोटेशियम् आक्सॅलेट (Acid potassium oxalate) भी पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—पका फल शीतल, बल्य, रोचक एवं रक्तशोधक है। इसका शरबत बनाकर ज्वर, रक्तपित्त, रक्तार्श एवं तृष्णा आदि में पिलाते हैं।

अथाम्लिका (इमली)। तस्या नामानि तत्पक्कफलगुणांश्चाह

अम्लिका चुक्रिकाऽम्ली च चुका दन्तशठाऽपि च।
अम्ला च चिञ्चिका चिञ्चा तिन्तिडीका च तिन्तिडी ॥ १४२ ॥
अम्लिकाऽम्ला गुर्वातहरी पित्तकफास्रकृत्। पक्का तु दीपनी रूक्षा सरोष्णा कफवातनुत् ॥

इमली के संस्कृत नाम—अम्लिका, चुक्रिका, अम्ली, चुक्रा, दन्तशठा, अम्ला, चिञ्चिका, चिञ्चा, तिन्तिडीका तथा तिन्तिडी ये सब हैं।

कच्ची इमली—अम्ल रसयुक्त, गुरु, वातनाशक, एवम् पित्त-कफ तथा रुधिरविकार को करने वाली होती है। पकी इमली—अग्निदीपक, रूक्ष, सारक, उष्ण एवम्—कफ तथा वातनाशक होती है॥ १४२-१४३॥

५८ इमली

हि०–इमली। बं०–तेंतुल। म०–चिंच। क०–हुणिसे। गु०–आंबली। ते०–चिंत। ता०–पुळि। फा०–तिमिर हिन्दी। अ०–तमर हिन्दी। अं०–Tamarind Tree (टेमरिंड ट्री)। ले०–*Tamarindus indica Linn.* (टेमरीण्डस् इण्डिका)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

इमली के वृक्ष प्रायः सब प्रान्तों में उत्पन्न होते हैं। इसका वृक्ष–बहुत बड़ा होता है और सदा हरा भरा रहता है। शाखायें–बहुत फैली हुई होती हैं। पत्ते–२ से ५ इञ्च लम्बे, संयुक्त पक्षाकार होते हैं। पत्रक–संख्या में १० से २० जोड़े, ८-३०×५-८ मि. मी. बड़े, आयताकार कुण्ठिताग्र, चिकने एवं शिराविन्यास जालीदार होता है। फूल–लाली युक्त पीले रंग के आते हैं। फलियां–३ से ८ इञ्च लंबी, १ इञ्च चौड़ी, ०·४ इञ्च मोटी कुछ टेढ़ी एवं भूरे रंग की होती हैं। बीज–३ से १२, चिकने, चमकीले, चिपटे तथा भूरे रंग के होते हैं। इमली का स्वाद अम्ल एवं मधुर रहता है तथा इसमें सुगंध रहती है।

इसके फल, बीज, पत्र, पुष्प एवं क्षार का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। खटाई के लिये भी इसका उपयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें साइट्रिक ॲसिड (Citric acid), टार्टरिक् ॲसिड (Tartaric acid), पोटॅशियम बाइटार्टरेट (Potassium bitartrate) एवं शर्करा आदि द्रव्य होते हैं।

गुण और प्रयोग—फलमज्जा तृषाशामक, रोचक, एवं सौम्य विरेचक होती है। ज्वर में विबन्ध एवं दाह होने पर इसका पन्ना बनाकर देते हैं। विबन्ध में सनाय आदि के साथ इसको देते हैं यद्यपि तीव्र विरेचक द्रव्यों के कार्य को यह कम करती है।

फली की शुष्क त्वचा की राख (क्षार) पेट के दर्द एवं मन्दाग्नि में दी जाती है। इसके छाल की राख क्षारीय एवं मूत्रजनन होती है तथा सोजाक में दी जाती है।

पत्तों को पीसकर व्रणशोथ में बांधते हैं। इसके बीज प्रमेह में लाभदायक होते हैं।

मात्रा—फल ४ से ३० माशा, बीजचूर्ण १ से ३ माशा, क्षार ५–१५ रत्ती।

नोट—इमली का पर्याय तिन्तिडीका दिया हुआ है किन्तु तिन्तिडीक एक अन्य द्रव्य है। मसूर जैसे लाल रंग के खट्टे दाने (फल) समाक दाने के नाम से मिलते हैं। यूनानी चिकित्सक इनके छिलकों का उपयोग करते हैं। यह ले०–*Rhus parviflora. Roxb.* (हृस् पार्विफ्लोरा); Fam. Anacardiaceae (ॲनाकार्डिएसी) के फल हैं। नमक मिलाकर इमली की तरह इनका भी उपयोग किया जाता है।

यह ग्राही, हृद्य, दीपन, शीत एवं रक्तपित्तशामक होते हैं। इनको पैत्तिक अतिसार, रक्तातिसार, वमन एवं हृल्लास में देते हैं। ज्वर में दाह एवं तृषा कम करने के लिये इनका उपयोग किया जाता है।

अथाम्लवेतसः (अमलवेंत)। तस्य नामानि तत्फलगुणांश्चाह

स्यादम्लवेतसश्चुक्रं शतवेधि सहस्रनुत्। अम्लवेतसमत्यम्लं भेदनं लघु दीपनम्॥ १४४॥
हृद्रोगशूलगुल्मघ्नं पित्तलं लोमहर्षणम्। रूक्षं विण्मूत्रदोषघ्नं प्लीहोदावर्त्तनाशनम्॥१४५॥
हिक्काऽऽनाहारुचिश्वासकासाजीर्णवमिप्रणुत्॥
कफवातामयध्वंसिच्छागमांसद्रवत्वकृत्। चणकाम्लगुणं ज्ञेयं लोहसूचीद्रवत्वकृत्॥ १४६॥

अम्लवेतस के संस्कृत नाम—अम्लवेतस, चुक्र, शतवेधि तथा सहस्रनुत् ये सब हैं।

अम्लवेतस–अत्यन्त अम्ल रसयुक्त, मलभेदक, लघु, अग्निदीपक, पित्तजनक, खाने से रोमाञ्च करने वाला, रूक्ष, बकरे के मांस को पकाने के समय डालने से शीघ्र गलाने वाला, लोहे की सूई को गलानेवाला, गुणों में चनाखार के समान एवम्–हृद्रोग-शूल-गुल्म-मल तथा मूत्रगत दोष-प्लीहा-उदावर्त्त-हिचकी-आनाह (अफरा)-अरुचि-श्वास-कास (खांसी)-अजीर्ण-वमन-कफ तथा वातसम्बन्धी रोग इन सबों को नष्ट करने वाला होता है॥ १४४-१४६॥

५९ अम्लवेतस्

अम्लवेतस क्या द्रव्य है इस संबन्ध में विद्वानों में मतभेद है। यहाँ इसका फलवर्ग में पाठ किया गया है जिससे यह कोई फल ही है ऐसा अनुमान होता है। चरक (सू० अ० २५) में इसका भेदनीय, दीपनीय आनुलोमिक, वातश्लेष्महर, हृद्य, श्वासहर एवं दीपनीय महाकषाय (च० सू० अ० ४) में पाठ है। निम्न द्रव्यों को अम्लवेतस माना जा रहा है जिनमें से थैकल या निम्बु प्रजाति (Citrus) के किसी खट्टे फल को अम्लवेतस होने की अधिक संभावना है।

(१) रेवंद चीनी क्षुप (Rheum emodi Wall.)–हीयम् एमोडी; Fam. Polygonaceae–पोलीगोनेसी) की सुखाई हुई शाखाएँ–यह देखने में चोटी की तरह गुँथी हुई अमलबेत के नाम से बाजार में बिकती हैं। इनका स्वाद कुछ खट्टा होता है। (यादवजी-द्रव्यगुणविज्ञान उ० पृ० १२९)। इसकी पीली जड़ का उपयोग विरेचक गुण के लिये रेवाचीनी के नाम से किया जाता है।

(२) थैकल—यह आसाम की तरफ होने वाले एक वृक्ष गार्सिनिया पेडंक्युलेटा (Garcinia pedunculata Roxb.; Fam. Guttiferae-वर्ग, गट्टीफेरी) के फल हैं। यह गोल, ३-४·५ इञ्च व्यास के, पीत रंग के, खट्टे एवं स्वादिष्ट होते हैं। इनका उपयोग नींबू या जमीरी नींबू की तरह किया जाता है और इसीके अम्लवेतस होने की अधिक संभावना है।

(३) चुक्र—यह चूका साग, रूमेक्स व्हेसिकेरियस् (Rumex vesicarius Linn.) है जिसका वर्णन आगे शाकवर्ग में आया है।

(४) निम्बु (साइट्रस–Citrus) प्रजाति के फल—कुछ विद्वानों ने चकोतरा को अम्लवेतस माना है किन्तु चकोतरा इतना खट्टा नहीं होता। इस प्रजाति में अनेक प्रकार के खट्टे फल अवश्य पाये जाते हैं। संभव है कि इनमें से कोई अत्यम्ल फल अम्लवेतस सिद्ध हो।

अथ वृक्षाम्लकम् (विषाम्बिल, कोकम)। तस्य नामानि तत्पक्वापक्वफलगुणांश्चाह

वृक्षाम्लं तिन्तिडीकञ्चचुक्रं स्यादम्लवृक्षकम्। वृक्षाम्लमाममम्लोष्णं वातघ्नं कफपित्तलम्॥
पक्वन्तु गुरु संग्राहि कटुकं तुवरं लघु॥ १४८॥

अम्लोष्णं रोचनं रूक्षं दीपनं कफवातकृत्। तृष्णाऽर्शोग्रहणीगुल्मशूलहृद्रोगजन्तुजित् ॥१४९॥

कोकम के संस्कृत नाम—वृक्षाम्ल, तिन्तिडीक, चुक तथा अम्लवृक्षक ये सब हैं।

कोकम का कच्चा फल—अम्लरसयुक्त, उष्ण, कफ तथा पित्त को उत्पन्न करने वाला एवम् वात नाशक होता है।

पका फल—कटु, थोड़ा कषाय तथा अम्लरसयुक्त, गुरु, संग्राही, उष्ण, रोचक, रूक्ष, अग्निदीपक, तथा कफवातकारक एवम्—तृषा-अर्श-ग्रहणी-गुल्म-शूल-हृद्रोग तथा जन्तु नाशक होता है ॥ १४७-१४९ ॥

६० कोकम

हि०-कोकम। **म०**-अमसूल, कोकम, रतांबि, भिरंड, बीरुंड। **गु०**-कोकम। **क०**-मुगिन हुळि। **गोवा०**-भ्रिंडाओ। **ता०**-मुर्गल। **अं०**-Kokam Butter Tree (कोकम बटर ट्री)। **ले०**-*Garcinia indica Chois.* (गार्सिनिया इण्डिका)। Fam. Guttiferae (गट्टिफेरी)।

कोंकण, कनारा आदि दक्षिणी प्रान्तों में यह पाया जाता है। इसका **वृक्ष**-छोटा होता है। शाखायें झुकी हुई रहती हैं। **पत्ते**-अंडाकार, आयताकार-भालाकार, २·५-३·५ इञ्च लम्बे, १-१·५ इञ्च चौड़े और ऊपर से गहरे हरे किन्तु नीचे से हलके रंग के होते हैं। **फल**-गोल, १-१·५ इञ्च व्यास के तथा पकने पर जामुनी लाल रंग के होते हैं जिनमें ५-८ बड़े-बड़े बीज होते हैं। बीज निकाले हुए सुखाये हुए फल को अमसूल या कोकम कहा जाता है। बीजों से तेल निकलता है जो मोम जैसा जम जाता है। इसे कोकम का घी या तेल कहते हैं। कोकम का स्वाद मधुराम्ल रहता है तथा इसको खटाई के लिये लोग काम में लाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें मॅलिक् अम्ल एवं अल्प विचाम्ल या निम्बुकाम्ल रहता है। बीजों में गाढ़ा मोम जैसा तेल होता है।

गुण और प्रयोग—यह हृद्य, ग्राही, उष्ण, वातकफनाशक एवं रक्तपित्तप्रशमन है। छाल स्तम्भन है। तेल स्तम्भन एवं व्रणरोपण है। पैत्तिक रोगों में पके फल का शरबत पिलाते हैं। अतिसार, रक्तातिसार, संग्रहणी आदि में कोकम का फांट पिलाते हैं। इनमें पुटपाक करके निकाला पत्तों का रस भी देते हैं।

बरसात या शीतऋतु में हाथ-पैर फटते हैं उसमें इसका तेल गरम करके लगाते हैं।

अथ चतुरम्लं पञ्चाम्लं च। तयोर्लक्षणमाह

अम्लवेतसवृक्षाम्लबृहज्जम्बीरनिम्बुकैः। चतुरम्लं हि पञ्चाम्लं बीजपूरयुतैर्भवेत् ॥ १५० ॥

चतुरम्ल के लक्षण—अम्लवेतस, कोकम, जमीरी नीबू (बड़ा) और कागजी नीबू इन चारों के योग को 'चतुरम्ल'' कहते हैं।

पञ्चाम्ल के लक्षण—यदि चतुरम्ल (अम्लवेतस, कोकम, जमीरी नीबू, कागजी नीबू) में बिजौरा नीबू का और योग कर दिया जाय तो "पञ्चाम्ल" हो जाता है ॥ १५० ॥

अथ परिभाषामाह

फलेषु परिपक्वं यद् गुणवत्तदुदाहृतम्। बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमामं तद्धि गुणाधिकम् ॥
फलेषु सरसं यत्स्याद् गुणवत्तदुदाहृतम् ॥ १५१ ॥
द्राक्षाबिल्वशिवाऽऽदीनां फलं शुष्कं गुणाधिकम्। फलतुल्यगुणं सर्वं मज्जानमपि निर्दिशेत्॥

फलं हिमाग्निदुर्वातव्यालकीटादिदूषितम्। अकालजं कुभूमीजं पाकातीतं न भक्षयेत् ॥१५२॥
***पाकातीतं = पाकमतिक्रम्य स्थितम् ॥ १५२ ॥**

फल विषयक परिभाषा—फलों में जो पका होता है वह कच्चे की अपेक्षा अधिक गुणकारी होता है किन्तु यह नियम बेल के फल के लिये नहीं है क्योंकि बेल का फल कच्चा ही अधिक गुणकारी होता है। फलों में जो सरस होता है वह सूखे की अपेक्षा अधिक गुणकारी होता है किन्तु दाख, बेल तथा हरड़ आदि के फल सूखे ही अधिक गुणकारी होते हैं। फल के गुण के समान उसकी मींगी के भी गुण समझना चाहिये। जो फल—पाला, अग्नि, आँधी, सर्प तथा कीड़े आदि से खराब हो गये हों तथा अकाल अथवा दुष्टभूमि में उत्पन्न हुये हों एवम् अधिक पक जाने से खराब हो गये हों उन्हें कभी नहीं खाना चाहिये ॥ १५१-१५२ ॥

यहाँ पर मूल में "पाकातीत" पद का "पकने की मर्यादा को लांघ गये हों'' अर्थात् अधिक पक जाने से खराब हो गये हों ऐसा अर्थ समझना चाहिये ॥ १५१-१५२ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे
सप्तम आम्रादिफलवर्गः समाप्तः ॥ ७ ॥

अथाष्टमो धात्वादिवर्गोपरनामको धातूपधातुरसोपरसरत्नोपरत्नविषोपविषवर्गः

तत्र धातूनां लक्षणानि गुणांश्चाह

तत्रादौ धातुसंख्यामाह

स्वर्णं रूप्यञ्च ताम्रं च रङ्गं यशदमेव च । सीसं लौहञ्च सप्तैते धातवो गिरिसम्भवः ॥ १ ॥

धातुओं की संख्या—सोना, चांदी, तांबा, रांगा, जस्ता, सीसा और लोहा ये सात ७ धातु पर्वत में उत्पन्न होने (खान से निकलने) वाले हैं ॥ १ ॥

अथ धातुशब्दस्य निरुक्तिमाह

वलीपलितखालित्यकार्श्याबल्यजरामयान् । निवार्य देहं दधति नृणां तद्धातवो मताः ॥ २ ॥

धातु शब्द की निरुक्ति—मनुष्यों के वली, पलित, खालित्य (शिर से बाल झड़जाना), कृशता, निर्बलता, बुढ़ापा, रोग इन सब को दूर करके जो देह को स्थिर (कार्य करने में समर्थ) रखते हैं वे "धातु" कहलाते हैं ॥ २ ॥

तत्रादौ सुवर्णस्योत्पत्तिनामान्याह

पुरा निजाश्रमस्थानां सप्तर्षीणां जितात्मनाम् । पत्नीर्विलोक्य लावण्यलक्ष्मीसम्पन्नयौवनाः॥
कन्दर्पदर्पविध्वस्तचेतसो जातवेदसः । पतितं यद्धरापृष्ठे रेतस्तद्धेमतामगात् ॥
कृत्रिमञ्चापि भवति तद्रसेन्द्रस्य वेधतः ॥ ४ ॥

सोने की उत्पत्ति—पहले एक समय जितेन्द्रिय सप्तर्षिगण अपने आश्रम में बैठे हुये थे, उस समय लावण्य तथा शोभा से पूर्ण यौवन वाली उनकी पत्नियों को देखकर कामदेव से जितेन्द्रियपने का अभिमान नष्ट हो जाने से (कामपीडित होने से) अग्निदेव का जो वीर्य स्खलित होकर धरातल पर पड़ा वही सोना हुआ अर्थात् तभी से सोने की उत्पत्ति हुई और पारे के वेध से कृत्रिम सोना भी होता है ॥ ३-४ ॥

***मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । वसिष्ठश्चेति सप्तैते कीर्त्तिताः परमर्षयः ॥३-४॥**

यहाँ पर मूल में "सप्तर्षि" पद से १ मरीचि, २ अङ्गिरा ३ अत्रि, ४ पुलस्त्य, ५ पुलह, ६ क्रतु ७ वशिष्ठ ये ७ परमर्षियों का बोध करना चाहिये ॥ ३-४ ॥

स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेम हाटकम् ॥ ५ ॥
तपनीयं च गाङ्गेयं कलधौतञ्च काञ्चनम् । चामीकरं शातकुम्भं तथा कार्त्तस्वरं च तत् ॥६॥
जाम्बूनदं जातरूपं महारजतमित्यपि ॥ ७ ॥

सोना के संस्कृत नाम—स्वर्ण, सुवर्ण, कनक, हिरण्य, हेम, हाटक, तपनीय, गाङ्गेय, कलधौत, काञ्चन, चामीकर, शातकुम्भ, कार्त्तस्वर, जाम्बूनद, जातरूप तथा महारजत ये सब हैं ॥ ५-७ ॥

अथोत्तमसुवर्णलक्षणमाह

दाहे रक्तं सितं छेदे निकषे कुङ्कुमप्रभम् । तारशुल्बोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेम सत् ॥८॥

उत्तम सुवर्ण के लक्षण—जो सुवर्ण तपाने में लाल, काटने में सफेद, कसौटी (कसने) में केशर के समान, चाँदी तथा तांबा से रहित, स्निग्ध, कोमल तथा तौल में भारी हो तो उसे उत्तम समझना चाहिये ॥ ८ ॥

***सद् = उत्तमम् ॥ ८ ॥**

यहां पर मूल में "सत्" पद से "उत्तम" यह अर्थ समझना चाहिये ॥ ८ ॥

अथ निकृष्टसुवर्णलक्षणमाह

तच्छ्वेतं कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं दलम् । दाहे छेदेऽसितं श्वेतं कषे त्याज्यं लघु स्फुटम् ॥

निकृष्ट सुवर्ण के लक्षण—जो सुवर्ण देखने में कुछ सफेद, कठिन, रूखा, खराब वर्णवाला, मैल के सहित, जोर वाला (गांठ के सदृश), तापने तथा काटने में काला, कसने में सफेद, तौल में हलका तथा घन की चोट से टूटने वाला हो उसे निकृष्ट समझ कर औषध के कार्य मे त्याग कर देना चाहिये ॥ ९ ॥

***दलं = "जोर" इति लोके । स्फुटं = यद्घनाहतं स्फुटति ॥ ९ ॥**

यहां पर मूल में "दल" पद का "जोर" यह लोक प्रसिद्ध अर्थ तथा "स्फुट" का 'घन की चोट से टूटने वाला' यह अर्थ समझना चाहिये ॥ ९ ॥

अथ सम्यङ्मारितसुवर्णगुणानाह

सुवर्णं शीतलं वृष्यं बल्यं गुरु रसायनम् । स्वादु तिक्तं च तुवरं पाके च स्वादु पिच्छिलम् ॥
पवित्रं बृंहणं नेत्र्यं मेधास्मृतिमतिप्रदम् । हृद्यमायुष्करं कान्तिवाग्विशुद्धिस्थिरत्वकृत् ।
विषद्वयक्षयोन्मादत्रिदोषज्वरशोषजित् ॥ ११ ॥

अच्छे प्रकार से भस्म किया हुआ सुवर्ण–मधुर, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, विपाक में मधुर, पिच्छिल, पवित्र, बृंहण (रस-रक्तादिवर्द्धक), नेत्र के लिये हितकर, शीतल, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, गुरु, रसायन, हृदय को हितकर, मेधा (धारणशक्ति), स्मृति, बुद्धि, आयु, कान्ति, वाणी की शुद्धि तथा स्थिरता को करने वाला एवम्–दोनों प्रकार के (स्थावर-जङ्गम) विष, क्षय, उन्माद, त्रिदोष, ज्वर तथा शोष को दूर करने वाला होता है ॥ १०-११ ॥

अथासम्यङ्मारितसुवर्णदोषानाह

बलं सवीर्यं हरते नराणां रोगव्रजान् पोषयतीह काये ।
असौख्यकृच्चापि सदा सुवर्णमशुद्धमेतन्मरणञ्च कुर्यात् ॥ १२ ॥
असम्यङ्मारितं स्वर्णं बलं वीर्यञ्च नाशयेत् ।
करोति रोगान् मृत्युं च तद्धन्याद्यत्नतस्ततः ॥ १३ ॥

ठीक से भस्म न किये हुये सुवर्ण के दोष–अशुद्ध सुवर्ण भस्म–मनुष्यों के बल तथा वीर्य को नष्ट करता है तथा शरीर में रोगों को पुष्ट करता है, सदा दुःख पहुंचाता है और अन्त में मृत्यु भी कर देता है । अच्छी तरह से बिना शोधे भस्म किया हुआ सुवर्ण— बल तथा वीर्य को नष्ट करता है एवम् रोग तथा मृत्यु को देता है अतएव यत्नपूर्वक उसकी भस्म बनानी चाहिये ॥ १२-१३ ॥

अथ रूप्यम् । तस्योत्पत्तिमाह

त्रिपुरस्य वधार्थाय निर्निमेषैर्विलोचनैः । निरीक्षयामास शिवः क्रोधेन परिपूरितः ॥ १४ ॥
अग्निस्तत्कालमपतत्तस्यकस्माद्विलोचनात् । ततो रुद्रः समभवद् वैश्वानर इव ज्वलन् ॥१५॥
द्वितीयादपतन्नेत्रादश्रुबिन्दुस्तु वामकात् । तस्माद्रजतमुत्पन्नमुक्तकर्मसु योजयेत् ॥ १६ ॥

चांदी की उत्पत्ति—त्रिपुरासुर के वध के लिए क्रोध से युक्त होकर शिवजी निर्निमेष-दृष्टि से जब उसे देखने लगे तब उसी समय उनके एक नेत्र से अग्नि निकली उस से अग्नि के समान रुद्र भगवान् प्रज्वलित हो उठे, और दूसरे बाएँ नेत्र से आंसू की बूंदें निकलीं उन्हीं से चांदी की उत्पत्ति हुई, जिसका वैद्यक शास्त्रानुकूल कर्म में उपयोग लेना चाहिये ॥ १६ ॥

अथ कृत्रिमरूप्योत्पत्तिमाह

कृत्रिमं च भवेत्तद्धि वङ्गादिरसयोगतः ॥ १७ ॥

कृत्रिम (बनावटी) चांदी की उत्पत्ति—कृत्रिम चांदी उसे कहते हैं जोकि—वङ्ग आदि में पारा का योग करने से तैयार की जाती है ॥ १७ ॥

अथ रूप्यनामान्याह

रूप्यं तु रजतं तारं चन्द्रकान्ति सितप्रभम् ॥ १८ ॥

चांदी के संस्कृत नाम—रूप्य, रजत, तार, चन्द्रकान्ति तथा सितप्रभ ये सब हैं ॥ १८ ॥

अथोत्तमाधमयो रूप्ययोर्लक्षणान्याह

गुरु स्निग्धं मृदु श्वेतं दाहे छेदे घनक्षमम् । वर्णाढ्यं चन्द्रवत्स्वच्छं रूप्यं नवगुणं शुभम् ॥
कठिनं कृत्रिमं रूक्षं रक्तं पीतदलं लघु । दाहच्छेदघनैर्नष्टं रूप्यं दुष्टं प्रकीर्त्तितम् ॥ १९ ॥

उत्तम चांदी के लक्षण—जो चांदी तौल में भारी, स्निग्ध, कोमल, तपाने तथा काटने में सफेद, घन की चोट को सहने वाली अर्थात् टुकड़े २ न होने वाली, उत्तम वर्णवाली, चन्द्रमा के समान स्वच्छ कान्ति युक्त होती है अर्थात् इन नव गुणों से युक्त होती है वह उत्तम समझी जाती है।

निकृष्ट चांदी के लक्षण—जो चांदी कठिन, कृत्रिम (बनावटी), रूक्ष, लाल, पीले दल (जोर) वाली, तौल में हल्की, तपाने, काटने तथा घन की चोट मारने पर जो अलग २ बिखर जाने वाली होती है वह खराब समझी जाती है ॥ १९ ॥

अथ सम्यङ्मारितरूप्यगुणानाह

रूप्यं शीतं कषायाम्लं स्वादुपाकरसं सरम् । वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित् ।
प्रमेहादिकरोगांश्च नाशयत्यचिराद् ध्रुवम् ॥ २० ॥

अच्छी तरह से शुद्धकर भस्म किये हुये चांदी के गुण—चांदी भस्म—कषाय, अम्ल तथा मधुर रस युक्त एवम्—विपाक में भी मधुर रस युक्त, शीतल, सारक, युवावस्था को स्थिर रखने वाला, स्निग्ध, लेखन एवम्—वात—पित्त तथा प्रमेहादि रोगों को शीघ्र तथा निश्चित रूपसे दूर करने वाला है ॥ २० ॥

अथासम्यङ्मारितरूप्यदोषानाह

तारं शरीरस्य करोति तापं विध्वंसनं यच्छति शुक्रनाशम् ।
वीर्यं बलं हन्ति तनोश्च पुष्टिं महागदान्पोषयति ह्यशुद्धम् ॥ २१ ॥

बिना अच्छी तरह से शोधी हुई एवम् कच्ची चांदी के भस्म के दोष-अशुद्ध चांदी शरीर को संतप्त तथा नष्ट करने वाली, शुक्रनाशक एवम्-शरीर के वीर्य, बल तथा पुष्टि को नष्ट करने वाली और महारोगों की वृद्धि करने वाली होती है ॥ २१ ॥

अथ ताम्रम् । तस्योत्पत्तिमाह

शुक्रं यत् कार्त्तिकेयस्य पतितं धरणीतले । तस्मात्ताम्रं समुत्पन्नमिदमाहुः पुराविदः ॥ २२ ॥

तांबा की उत्पत्ति-कार्त्तिकेय भगवान् का जो शुक्र पृथ्वीतल पर गिरा उसी से तांबे की उत्पत्ति हुई ऐसा पुराणज्ञ लोग कहते हैं ॥ २२ ॥

अथ ताम्रनामान्याह

ताम्रमौदुम्बरं शुल्बमुदुम्बरमपि स्मृतम् । रविप्रियं म्लेच्छमुखं सूर्यपर्यायनामकम् ॥ २३ ॥

तांबा के संस्कृत नाम—ताम्र, औदुम्बर, शुल्ब, उदुम्बर, रविप्रिय, म्लेच्छमुख तथा सूर्य के पर्याय वाची (अर्क-तपन-अहस्कर-भास्कर इत्यादि सभी) शब्द ये सब हैं ॥ २३ ॥

अथोत्तमताम्रलक्षणान्याह

जपाकुसुमसङ्काशं स्निग्धं मृदु घनक्षमम् । लौहनागोज्झितं ताम्रं मारणाय प्रशस्यते ॥२४॥

उत्तम तांबा के लक्षण—भस्म करने के लिये वही तांबा उत्तम होता है जो कि—अढ़ौल के फूल के समान लाल वर्ण वाला, स्निग्ध, कोमल, घन की चोट सहने वाला, लोहा तथा सीसा से रहित होता है ॥ २४ ॥

अथाधमताम्रलक्षणान्याह

कृष्णं रूक्षमतिस्तब्धं श्वेतञ्चापि घनासहम् । लौहनागयुतञ्चेति शुल्बं दुष्टं प्रकीर्त्तितम् ॥

निकृष्ट तांबा के लक्षण—जो तांबा—काला, रूखा, अत्यन्त कठिन, सफेद, घन की चोट न सहने वाला, लोहा तथा सीसा से युक्त होता है उसे निकृष्ट अर्थात् भस्म करने के अयोग्य समझना चाहिये ॥ २५ ॥

अथ सम्यङ्मारितताम्रगुणानाह

ताम्रं कषायं मधुरं च तिक्तमम्लं च पाके कटु सारकं च ।
पित्तापहं श्लेष्महरं च शीतं तद्रोपणं स्याल्लघु लेखनञ्च ॥ २६ ॥
पाण्डूदरार्शोज्वरकुष्ठकासश्वासक्षयान् पीनसमम्लपित्तम् ।
शोथं कृमिं शूलमपाकरोति प्राहुः परे बृंहणमल्पमेतत् ॥ २७ ॥

अच्छी प्रकार से भस्म किये हुये तांबे के गुण—उत्तम ताम्रभस्म—कषाय, मधुर, तिक्त तथा अम्लरस युक्त, विपाक में कटु रस युक्त, सारक, पित्त तथा कफ नाशक, शीतल, रोपण (घाव भरने वाला), लघु, लेखन एवम्—पाण्डु तथा उदर रोग, अर्श, ज्वर, कुष्ठ, कास, श्वास, क्षय, पीनस, अम्लपित्त, शोथ, क्रिमि तथा शूलका नाश करने वाला होता है। और कोई २ इसे थोड़ा बृंहण (रस रक्तादिवर्धक) भी मानते हैं ॥ २६–२७ ॥

अथसम्यङ्मारितताम्रस्य दोषाष्टकमाह

एको दोषो विषे ताम्रेत्वसम्यङ्मारितेऽष्ट ते । दाहः स्वेदोऽरुचिर्मूर्च्छाक्लेदो रेको वमिर्भ्रमः ॥

अच्छे प्रकार से भस्म न किये हुये तांबे के आठ दोष—विष में तो केवल एक ही दोष है किन्तु

अच्छे प्रकार से भस्म न किये हुए तांबे में १ दाह, २ स्वेद (पसीना), ३ अरुचि, ४ मूर्च्छा ५ क्लेद (शरीर की आर्द्रता), ६ विरेचन, ७ वमन तथा ८ भ्रम का होना ये ८ दोष होते हैं अर्थात् उसके सेवन से उक्त दोष उत्पन्न होते हैं ॥ २८ ॥

॥ रेकः = विरेकः ॥ २८ ॥

यहां पर मूल में "रेक" पदसे विरेक अर्थात् विरेचन अर्थ समझना चाहिये ॥ २८ ॥

अथ रङ्गम् (रांगा) । तस्य नामानि भेदांश्चाह

रङ्गं वङ्गं त्रपु प्रोक्तं तथा पिच्चटमित्यपि । खुरकं मिश्रकं चापि द्विविधं वङ्ग मुच्यते ॥ २९ ॥
उत्तमं खुरकं तत्र मिश्रकं त्ववरं मतम् ॥ ३० ॥

रांगा के संस्कृत नाम—रङ्ग, वङ्ग, त्रपु तथा पिच्चट ये सब हैं। रांगा के भेद-क्षुरक तथा मिश्रक ये दो भेद रांगा के होते हैं। इसमें "क्षुरक" उत्तम होता है एवम् "मिश्रक" निकृष्ट होता है ऐसा विद्वानों का मत है ॥ २९-३० ॥

अथ सम्यङ्मारितरङ्गगुणानाह

रङ्गं लघु सरं रूक्षमुष्णं मेहकफक्रिमीन् । निहन्ति पाण्डुं सश्वासं चक्षुष्यं पित्तलं मनाक् ॥
सिंहो यथा हस्तिगणं निहन्ति तथैव वङ्गोऽखिलमेहवर्गम् ।
देहस्य सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं विदधाति नूनम् ॥ ३२ ॥

अच्छे प्रकार से भस्म किये हुये रांगे के गुण-रांगा का उत्तम भस्म-लघु, सारक, रूक्ष, उष्ण, नेत्रों के लिये हितकर, किञ्चित् पित्तजनक एवम्-प्रमेह, कफ, क्रिमि, पाण्डु और श्वास रोग को दूर करता है। और जिस प्रकार सिंह हाथियों के झुण्ड को नष्ट कर डालता है उसी प्रकार वंग (रांगा) भी सभी प्रकार के प्रमेहों को नष्ट कर डालता है। और देह सम्बन्धी सुख, इन्द्रियों की प्रबलता और पुष्टि ये सब सेवन करने वाले लोगों को निश्चित रूप से करता है ॥ ३१-३२ ॥

अथ यशदम् (जस्ता) । तस्य नामगुणानाह

यशदं रङ्गसदृशं रीतिहेतुश्च तन्मतम् । यशदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत् ।
चक्षुष्यं परमं मेहान् पाण्डुं श्वासं च नाशयेत् ॥ ३३ ॥

जस्ता के संस्कृत नाम—यशज, रङ्गसदृश और रीतिहेतु ये सब हैं।

जस्ता-कषाय तथा तिक्तरसयुक्त, शीतल, नेत्रों के लिये परम हितकर-एवम्-कफ-पित्त-समस्त प्रमेह-पाण्डु और श्वास को दूर करता है ॥ ३३ ॥

अथ सीसम् । तस्योत्पत्तिं नामानि चाह

दृष्ट्वा भोगिसुतां रम्यां वासुकिस्तु मुमोच यत् । वीर्यं जातस्ततो नागः सर्वरोगापहो नृणाम् ।
सीसं ब्रध्नं च वप्रं च योगेष्टं नागनामकम् ॥ ३५ ॥

सीसा की उत्पत्ति—एक समय वासुकिनामक सर्पराज का किसी सुन्दरी नागकन्या को देखकर कामपीड़ित होने से जो शुक्र स्खलित हुआ उसी से मनुष्यों के सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करने वाले सीसे की उत्पत्ति हुई इसी से इसे "नाग" कहते हैं ॥

सीसा के संस्कृत नाम—सीस, ब्रध्न, वप्र, योगेष्ट और नागनामक (नाग के पर्यायवाची) शब्द, ये सब हैं ॥ ३४-३५ ॥

॥ नागनामकम्=नागो भुजङ्ग इत्यादि ॥ ३५ ॥

यहां पर मूल में "नागनामक" पद से नाग के पर्यायवाची-नाग-भुजङ्ग-सर्प-उरग-द्विजिह्व इत्यादि सभी शब्द समझना चाहिये ॥ ३४-३५ ॥

अथ सीसस्य गुणानाह

सीसं रङ्गगुणं ज्ञेयं विशेषान्मेहनाशनम् ॥ ३६ ॥
नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति व्याधिं विनाशयति जीवनमातनोति ।
वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति मृत्युं च नाशयति सन्ततसेवितः सः ॥ ३७ ॥

सीसा—सीसा गुणों में रांगा के समान ही है किन्तु विशेषतः यह प्रमेह नाशक होता है। और यदि निरन्तर सेवन किया जाय तो नाग (सीसा) सौ नाग (हाथी) के समान बल देता है, व्याधि नाश करता है, जीवन की वृद्धि करता है, जठराग्नि को प्रदीप्त करता है, कामदेव सम्बन्धी बल को बढ़ाता है तथा मृत्यु को भी नष्ट करता है अर्थात् अनियत विपाक वाले मृत्यु से रक्षा करता है ॥ ३६-३७ ॥

अथाशुद्धवङ्गनागयोर्दोषानाह

पाकेन हीनौ किल वङ्गनागौ कुष्ठानि गुल्मांश्च तथाऽतिकष्टान् ।
कण्डूप्रमेहानिलसादशोथभगन्दरादीन् कुरुतः प्रयुक्तौ ॥ ३८ ॥

अशुद्ध वंग (रांगा) तथा सीसा के दोष-भलीभांति से यदि भस्म न किये गये हों तो प्रयोग करने से रांगा तथा सीसा ये दोनों कुष्ठ-गुल्म, अत्यन्त कष्ट, खुजली, प्रमेह, वायुरोग, शरीर का अवसन्न होना, शोथ, भगन्दर, आदि रोगों को उत्पन्न करते हैं ॥ ३८ ॥

अथ लोहम् । तस्योत्पत्तिं नामानि चाह

पुरा लोमिनदैत्यानां निहतानां सुरैर्युधि । उत्पन्नानि शरीरेभ्यो लोहानि विविधानि च ॥
लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायसायसी ॥ ३९ ॥

लोहा की उत्पत्ति—पहले समय में एक बार युद्ध में देवताओं द्वारा मारे हुये लोमिन नामक दैत्यों के शरीर से अनेक प्रकार के लोहा उत्पन्न हुये।

लोहा के संस्कृत नाम—लोह (यह स्त्रीलिङ्ग को छोड़ कर अन्य सभी लिङ्गों में होता है), शस्त्रक, तीक्ष्ण, पिण्ड, कालायस तथा अयस् ये सब हैं ॥ ३९ ॥

अथ लोहस्य सप्तदोषानाह

गुरुता दृढतोत्क्लेदः कश्मलं दाहकारिता । अश्मदोषः सुदुर्गन्धो दोषाः सप्तायसस्य तु ॥४०॥

लोहा के सात ७ दोष—गुरुता, दृढता, उत्क्लेद (वमन होने के समान मालूम होना), कश्मल (मूर्छा), दाह उत्पन्न करना, खान में रहने से पत्थर सम्बन्धी दोष, अत्यन्त दुर्गन्ध ये सब हैं ॥ ४० ॥

अथ लोहगुणानाह

लोहं तिक्तं सरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु । रूक्षं वयस्यं चक्षुष्यं लेखनं वातलं जयेत् ॥ ४१ ॥
कफं पित्तं गरं शूलं शोथार्शः प्लीहपाण्डुताः । मेदोमेहक्रिमीन् कुष्ठं तत्किट्टं तद्वदेव हि ॥४२॥

लोहा के गुण—लोहा-तिक्त-मधुर तथा कषायरस युक्त, सारक, शीतल, गुरु, रूक्ष, आयु को स्थिर रखने वाला, नेत्रों के लिये हितकर, लेखन गुण विशिष्ट, वातजनक एवम्-कफ-पित्त-विष-शूल-शोथ, अर्श, प्लीहा, पाण्डु, मेद, प्रमेह, क्रिमि तथा कुष्ठ को दूर करनेवाला होता है। लोहा के किट्ट (मैल) के गुण—लोहकिट्ट के भी गुण लोहे के समान ही होते हैं ॥ ४२ ॥

अथाशुद्धलोहदोषानाह

षण्ढत्वकुष्ठामयमृत्युदं भवेद्हृद्रोगशूलौ कुरुतेऽश्मरीञ्च।
नानारुजानाञ्च तथा प्रकोपं करोति हृल्लासमशुद्धलोहम् ॥ ४३ ॥
जीवहारि मदकारि चायसं चेदशुद्धिमदसंस्कृतं ध्रुवम्।
पाटवं न तनुते शरीरके दारुणां हृदि रुजाञ्च यच्छति ॥ ४४ ॥

अशुद्ध लोहा के दोष – नपुंसकता, कुष्ठरोग, मृत्यु, हृद्रोग, शूल, पथरी, अनेक प्रकार के रोगों का प्रकोप, हृल्लास (उबकाई) ये सब बिना शुद्ध किये हुये लोहे के भस्म के सेवन से होते हैं। और यदि लोहे का शोधन तथा संस्कार न किया गया हो तो उसका भस्म जीवन को नष्ट करने वाला, मदकारक, शरीर में फुर्तीपन का अभाव तथा हृदय में असह्य पीड़ा का करने वाला होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ४३-४४ ॥

अथ लोहसेविनां त्याज्यपदार्थानाह

कूष्माडं तिलतैलञ्च माषान्नं राजिकां तथा। मद्यम्लरसं चापि त्यजेल्लोहस्य सेवकः ॥४५॥

लोहा सेवन करने वाले लोगों के लिये त्याग करने योग्य पदार्थ—सफेद कोंहड़ा, तिल का तैल, उरद के बने हुये पदार्थ, राई, मद्य, अम्लरस युक्त पदार्थ (खटाई आदि), इन सब को लोह सेवन करने वाला व्यक्ति छोड देवे ॥ ४५ ॥

अथ सारलोहस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

क्षमाभृच्छिखराकाराण्यङ्गान्यम्लेन लेपिते। लौहे स्युर्यत्र सूक्ष्माणि तत्सारमभिधीयते ॥
लौहं साराह्वयं हन्याद् ग्रहणीमतिसारकम् ॥ ४६ ॥
अर्द्धं सर्वाङ्गजं वातं शूलं च परिणामजम्। छर्दिं च पीनसं पित्तं श्वासं कासं व्यपोहति ॥४७॥

सारलोह के लक्षण—जिस लोहे के ऊपर अम्ल (खट्टे पदार्थ) रस का लेपन करने से पर्वत के शिखर की भांति आकारवाले सूक्ष्म २ अङ्ग उत्पन्न हो जायं उसे सारलोह समझना चाहिये।

सारलौह-ग्रहणी, अतिसार, अर्धाङ्ग तथा सर्वाङ्गवात, परिणामशूल, वमन, पीनस, पित्त, श्वास तथा कास को दूर करने वाला होता है ॥ ४६-४७ ॥

अथ कान्तलौहस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

यत्पात्रे न प्रसरति जले तैलबिन्दुः प्रतप्ते-हिङ्गुर्गन्धं त्यजति च निजं तिक्ततां निम्बवल्कः।
तप्तं दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमिं-कृष्णाङ्गः स्यात् सजलचणकः कान्तलोहं तदुक्तम् ॥
गुल्मोदरार्शःशूलाममामवातं भगन्दरम्। कामलाशोथकुष्ठानि क्षयं कान्तमयो हरेत् ॥४९॥
प्लीहानमम्लपित्तञ्च यकृच्चापि शिरोरुजम् ॥ ५० ॥
सर्वान् रोगान् विजयते कान्तलोहं न संशयः। बलं वीर्यं वपुःपुष्टिं कुरुतेऽग्निं विवर्द्धयेत् ॥५१॥

कान्तलोह के लक्षण—जिस लोहे के पात्र में जल रखकर उसमें तेल का बूंद डालने से यदि वह न फैले, तथा जिसके तपाये पात्र में गरम करने से हींग अपने गन्ध को छोड़ दे, और नीम की छाल गरम करने से अपनी कड़वाहट कोछोड़ दे, एवम् जिसमें दूध खौलाने से जोरों से उबाल आने पर भी वह भूमिपर न गिरे और जिसमें चने भिगोने से काले हो जायं उसे कान्तलोह समझना चाहिये।

कान्तलौह—गुल्म, उदररोग, अर्श, शूल, आम, आमवात, भगन्दर, कामला, शोथ, कुष्ठ, क्षय, प्लीहा, अम्लपित्त, यकृत तथा शिर के रोग इत्यादि सभी रोगों को निःसन्देह दूर करता है। और शरीर में बल, वीर्य की वृद्धि तथा पुष्टि करता है एवम् अग्निवर्द्धक होता है ॥ ४८-५१ ॥

अथ किट्टी । तस्या नामगुणानाह

ध्मायमानस्य लोहस्य मलं मण्डूरमुच्यते।
लोहसिंहानिका किट्टी सिंहानञ्च निगद्यते। यल्लोहं यद्गुणं प्रोक्तं तत्किट्टमपि तद्गुणम् ॥५२॥

किट्टी के लक्षण—लोह को अग्नि में धौंकाने से जो मल निकलता है उसे मण्डूर (किट्टी) कहते हैं। संस्कृत नाम-लोहसिंहानिका, किट्टी, सिंहान तथा मण्डूर ये सब हैं।

किट्टी-जिस लोहे के जो गुण हैं उसके मैल (किट्टी) के भी वे ही गुण होते हैं।

अथोपधातवः । तेषां संख्यामाह

सप्तोपधातवः स्वर्णमाक्षिकं तारमाक्षिकं। तुत्थं कांस्यं च रीतिश्च सिन्दूरञ्च शिलाजतुः ॥५३॥

उपधातुओं की संख्या—१ सोनामाखी, २ रूपामाखी, ३ तूतिया, ४ कांसा, ५ पीतल, ६ सिन्दूर, ७ शिलाजीत ये सात उपधातु हैं ॥ ५३ ॥

* उपधातवः-गौणा धातवः ॥ ५३ ॥

यहां पर "उपधातु" से "गौणधातु" यह अर्थ समझना चाहिये ॥ ५३ ॥

अथोपधातुष्वपि तत्तत्प्रधानधातुगुणाः स्वल्पमात्रया सन्तीत्याह

उपधातुषु सर्वेषु तत्तद्धातुगुणा अपि। सन्ति किन्त्वेषु ते गौणास्तत्तदंशाल्पभावतः ॥५४॥

उपर्युक्त सभी उपधातुओं में जिनके जो प्रधान धातु हैं उनके भी गुण उनमें रहते हैं किन्तु प्रधान के गुण गौणभाव से (थोड़ी मात्रा में ही) रहते हैं क्योंकि—धातु का अंश उपधातु में बहुत थोड़ा रहता है ॥ ५४ ॥

तत्र सुवर्णमाक्षिकम् (सोनामाखी) । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

स्वर्णमाक्षिकमाख्यातं तापीजं मधुमाक्षिकम् ॥ ५५ ॥
ताप्यं माक्षिकधातुश्च मधुधातुश्च स स्मृतः। किञ्चित्सुवर्णसाहित्यात्स्वर्णमाक्षिकमीरितम् ॥
उपधातुः सुवर्णस्य किञ्चित्स्वर्णगुणान्वितम्। तथा च काञ्चनाभावे दीयते स्वर्णमाक्षिकम् ॥
किन्तु तस्यानुकल्पत्वात्किञ्चिदूनगुणास्ततः। न केवलं स्वर्णगुणा वर्त्तन्ते स्वर्णमाक्षिके ॥५८॥
द्रव्यान्तरस्य संसर्गात्सन्त्यन्येऽपि गुणा यतः। सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं वृष्यं रसायनम् ॥
चक्षुष्यं वस्तिरुक्कुष्ठपाण्डुमेहविषोदरान्। अर्शः शोथं विषं कण्डूं त्रिदोषमपि नाशयेत् ॥६०॥

सोनामाखी के संस्कृत नाम—स्वर्णमाक्षिक, तापीज, मधुमाक्षिक, ताप्य, माक्षिकधातु और मधुधातु ये सब हैं।

सोनामाखी—थोड़े सोने की भी मिलावट होने से किंचित् सोने के गुणों से युक्त 'सोनामाखी' को सोने का उपधातु कहते हैं। तथा सोने के अभाव में इसे देते भी हैं किन्तु सोने का अनुकल्प होने से इसमें सोने की अपेक्षा कम गुण रहता है और इसमें केवल सोने के ही गुण नहीं रहते हैं किन्तु दूसरे भी द्रव्यों का संयोग होने से अन्यों के भी गुण रहते हैं। सोनामाखी मधुर तथा तिक्त रसयुक्त, वृष्य (वीर्यवर्धक), रसायन, नेत्रों के लिए हितकर एवम्-वस्ति (मूत्राशय) सम्बन्धी रोग, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, विष, उदररोग, अर्श, शोथ, खुजली तथा त्रिदोषनाशक है॥

अथाशुद्धसुवर्णमाक्षिकदोषानाह

मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भितां नेत्रगदान्सकुष्ठान्।
तथैव मालां व्रणपूर्विकां च करोति तापीजमशुद्धमेतत्॥ ६१॥

अशुद्ध सोनामाखी के दोष—यदि यह सोनामाखी शोधी हुई न हो तो अग्नि की मन्दता, बल की हानि, अत्यन्त विष्टम्भ, नेत्ररोग, कुष्ठ तथा व्रणमाला (कण्ठमाला) आदि रोगों को उत्पन्न करने वाली होती है॥ ६१॥

अथ तारमाक्षिकम् (रूपामाखी) तस्य नामानि गुणाँश्चाह

तारमाक्षिकमन्यत् तु तद्भवेद् रजतोपमम्। किञ्चिद्रजतसाहित्यात्तारमाक्षिकमीरितम्॥६२॥
अनुकल्पतया तस्य ततो हीनगुणाः स्मृताः। न केवलं रूप्यगुणा यतः स्यात्तारमाक्षिकम्॥
स्वादु पाके रसे किञ्चित्तिक्तं वृष्यं रसायनम्। चक्षुष्यं बस्तिरुक्कुष्ठपाण्डुमेहविषोदरान्।
अर्शः शोथं क्षयकण्डूं त्रिदोषमपि नाशयेत्॥ ६४॥

रूपामाखी के संस्कृत नाम—तारमाक्षिक, रौप्यमाक्षिक आदि हैं।

रूपामाखी—दूसरा जो रूपामाखी है वह गुण में चाँदी के तुल्य ही होता है और कुछ चाँदी का संयोग होने से इसे 'रूपामाखी' कहते हैं। चाँदी का अनुकल्प होने से उसकी अपेक्षा इसके गुण स्वल्प होते हैं। और इसमें केवल चांदी ही के गुण नहीं रहते हैं बल्कि दूसरे द्रव्यों का भी योग होने से औरों के भी गुण आ जाते हैं। रूपामाखी-विपाक में मधुर रसयुक्त तथा मधुर एवं किञ्चित् तिक्तरसयुक्त, वीर्यवर्धक, रसायन, नेत्रों के लिये हितकर एवम् बस्ति (मूत्राशय) सम्बन्धी रोग, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, विष, उदररोग, अर्श, शोथ, क्षय, खुजली तथा त्रिदोष को दूर करता है॥

अथाशुद्धतारमाक्षिकदोषानाह

मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भितां नेत्रगदान्सकुष्ठान्।
तथैव मालां व्रणपूर्विकाञ्च करोति तापीजमिदञ्च तद्वत्॥ ६५॥

अशुद्ध रूपामाखी के दोष—यह भी सोनामाखी की भांति यदि शोधी हुई न हो तो अग्नि की मन्दता, बल की हानि, अत्यन्त विष्टम्भ, नेत्ररोग, कुष्ठ तथा व्रणमाला (गण्डमाला आदि) रोगों को उत्पन्न करती है॥ ६५॥

अथ तुत्थम् (तूतिया) खर्परश्च (खपरिया)
तुत्थनामगुणान् खर्परगुणाँश्चाह

तुत्थं वितुन्नकं चापि शिखीग्रीवं मयूरकम्। तुत्थं ताम्रोपधातुर्हि किञ्चित्ताम्रेण तद्भवेत्॥६६॥
किञ्चित्ताम्रगुणं तस्माद्वक्ष्यमाणगुणं च तत्। तुत्थकं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु॥६७॥

लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत्। विषाश्मकुष्ठकण्डूघ्नं खर्परं चापि तद्गुणम्॥६८॥

तूतिया के संस्कृत नाम—तुत्थ, वितुन्नक, शिखिग्रीव तथा मयूरक ये सब हैं।

तूतिया—यह ताँबे का उपधातु है, इससे कुछ ताँबा का भी अंश इसमें रहता है अतः कुछ ताँबे के गुण और अन्य द्रव्यों के संयोग से आगे कहे हुए गुण इसमें होते हैं। तूतिया—कटु तथा कषायरस युक्त, क्षार, वमन कराने वाला, लघु, लेखन, मलभेदक, शीतल, नेत्रों के लिए हितकर, एवम् कफ-पित्त-विष-पथरी-कुष्ठ तथा खुजली को दूर करने वाला होता है। **खपरिया**—खपरिया भी तूतिया के समान गुण वाली होती है॥ ६६–६८॥

अथ कांस्यम् (काँसा)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

ताम्रत्रपुजमाख्यातं कांस्यं घोषं च कंसकम्। उपधातुर्भवेत्कांस्यं द्वयोस्तरणिरङ्गयोः॥६९॥
कांस्यस्य तु गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिसदृशाजनैः। संयोगजप्रभावेण तस्यान्येऽपि गुणाः स्मृता॥
कांस्यं कषायं तिक्तोष्णं लेखनं विशदं सरम्। गुरु नेत्रहितं रूक्षं कफपित्तहरं परम्॥ ७१॥

काँसा के संस्कृत नाम—ताम्रत्रपुज, कांस्य, घोष तथा कंसक ये सब हैं।

काँसा—तांबा तथा रांगा इन दोनों का उपधातु कांसा होता है। अतः अपनी उत्पत्ति का मूलकारण तांबा तथा रांगा के होने से लोग कांसा को उपर्युक्त धातुओं (तांबा तथा रांगा) के सदृश गुणवाला बतलाते हैं, अर्थात् जो तांबा तथा रांगा के गुण हैं वे ही कांसा के भी होते हैं परन्तु स्वल्पमात्रा में, अन्य द्रव्यों का भी संयोग होने से अन्यों के भी गुण होते हैं। कांसा-कषाय तथा तिक्त रसयुक्त, उष्ण, लेखन, विशद गुणयुक्त, सारक, गुरु, नेत्रों के लिए हितकर, रूक्ष तथा कफ और पित्त का नाशक होता है॥ ६९–७१॥

अथारकूटम् (पीतल—कच्चापीतल)। तस्यनामगुणानाह

पित्तलं स्वारकूटं स्यादारो रीतिश्च कथ्यते। राजरीतिर्ब्रह्मरीतिः कपिला पिङ्गलापि च॥७२॥
रीतिरप्युपधातुः स्यात्ताम्रस्य यशदस्य च। पित्तलस्य गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिसदृशा जनैः॥७३॥
संयोगजप्रभावेण तस्याप्यन्ये गुणाः स्मृताः॥ ७४॥
रीतिकायुगलं रूक्षं तिक्तञ्च लवणं रसे। शोधनं पाण्डुरोगघ्नं क्रिमिघ्नं नातिलेखनम्॥ ७५॥

पीतल के संस्कृत नाम—पित्तल, आरकूट, आर एवं रीति हैं। इसके दूसरे भेद के नाम—राजरीति, ब्रह्मरीति, कपिला तथा पिङ्गला ये सब हैं।

पीतल—तांबा तथा जस्ता का उपधातु है, इससे अपने मूलकारण (तांबा तथा जस्ता) के सदृश ही इसके भी गुण लोगों ने बतलाये हैं। और अन्य द्रव्यों के संयोग से इसमें अन्यों के भी गुण रहते हैं। दोनों प्रकार के पीतल-तिक्त तथा लवण रसयुक्त, रूक्ष, शोधक, अत्यन्त लेखन नहीं अर्थात् किञ्चित् लेखन एवम्-पाण्डु और क्रिमिरोग के नाशक हैं॥ ७२-७५॥

सिन्दूरम्। तस्य नामगुणानाह

सिन्दूरं रक्तरेणुश्च नागगर्भश्च सीसजम्। सीसोपधातुः सिन्दूरं गुणैस्तत्सीसवन्मतम्॥७६॥
संयोगजप्रभावेण तस्यान्येऽपि गुणाः स्मृताः। सिन्दूरमुष्णं वीसर्पकुष्ठकण्डूविषापहम्।
भग्नसन्धानजननं व्रणशोधनरोपणम्॥ ७७॥

सिन्दूर के संस्कृत नाम—सिन्दूर, रक्तरेणु, नागगर्भ तथा सीसज ये सब हैं। **सिन्दूर**—सीसा का उपधातु सिन्दूर है, अतः सीसा के समान इसके भी गुण हैं, अन्य द्रव्यों के संयोग-प्रभाव से इसके

अन्य भी गुण होते हैं। सिन्दूर-उष्ण एवम् वीसर्प, कुष्ठ, खुजली तथा विष का नाशक है तथा टूटी अस्थियों को जोड़ने वाला, व्रण का शोधन और रोपण (पूरा) करने वाला होता है ॥७६-७७॥

अथ शिलाजतु (शिलाजीत) तस्योत्पत्ति भेदान् नामानि गुणांश्चाह

निदाघे घर्मसन्तप्ता धातुसारं धराधराः। निर्यासवत्प्रमुञ्चन्ति तच्छिलाजतु कीर्त्तितम् ॥७८॥
सौवर्णं राजतं ताम्रमायसं तच्चतुर्विधम्। शिलाजत्वद्रिजतु च शैलनिर्यास इत्यपि ॥७९॥
गैरेयमश्मजं चापि गिरिजं शैलधातुजम्। शिलाजं कटु तिक्तोष्णं कटुपाकं रसायनम् ॥८०॥
छेदि योगवहं हन्ति कफमे[1]हाश्मशर्कराः। मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं वातार्शांसि च पाण्डुताम् ॥
अपस्मारं तथोन्मादं शोथकुष्ठोदरक्रिमीन् ॥ ८२ ॥

शिलाजीत की उत्पत्ति—ग्रीष्म ऋतु में धूप से तप्त होकर पर्वत धातुओं के सार भाग को गोंद की भांति छोड़ते हैं अर्थात् पर्वतों पर गर्मी में जो धातुओं का सार पिघल कर पत्थरों से निकलता है—उसे "शिलाजीत" कहते हैं। भेद-१ सौवर्ण (सोने का), २ राजत (चांदी का), ३ ताम्र (तांबे का), ४ आयस (लोहेका) इस भांति शिलाजीत के ४ भेद हैं।

संस्कृत नाम—शिलाजतु, अद्रिजतु, शैलनिर्यास, गैरेय, अश्मज, गिरिज तथा शैलधातुज ये सब हैं।

शिलाजीत—कटु तथा तिक्त रस युक्त, पाक में कटु, रसायन, मलों का छेदन करने वाला, योगवाही एवम्-कफ, प्रमेह, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, श्वास, बादी बवासीर, पाण्डुरोग, अपस्मार, उन्माद, शोथ, कुष्ठ तथा उदर के क्रिमि इन सबों को नष्ट करने वाला होता है ॥७८-८२॥

अथ गुणलक्षणसहिताँस्तद्भेदानाह

सौवर्णं तु जपापुष्पवर्णं भवति तद्रसात्। मधुरं कटु तिक्तं च शीतलं कटुपाकि च ॥ ८३ ॥
राजतं पाण्डुरं शीतं कटुकं स्वादुपाकि च। ताम्रं मयूरकण्ठाभं तीक्ष्णमुष्णं च जायते ॥८४॥
लौहं जटायुपक्षाभं सतिक्तं लवणं भवेत्। विपाके कटुकं शीतं सर्वश्रेष्ठमुदाहृतम् ॥ ८५ ॥

सौवर्ण (सोने का) शिलाजीत के लक्षण—यह जपा (अड़ौल) के पुष्प के समान लाल वर्ण का होता है। **सौवर्णशिलाजीत**-यह मधुर, कटु तथा तिक्त रस युक्त, विपाक में कटु रस युक्त तथा शीतल होता है।

राजत (चांदी का) शिलाजीत के लक्षण—यह पाण्डुर वर्ण का होता है। **राजत शिलाजीत**-यह कटु रस युक्त, विपाक में मधुर रस युक्त तथा शीतल होता है।

ताम्र (तांबे का) शिलाजीत के लक्षण—यह मयूर के कण्ठ के समान वर्ण वाला होता है। **ताम्रशिलाजीत**-यह तीक्ष्ण तथा उष्ण होता है।

लौह (लोहे का) शिलाजीत के लक्षण—यह जटायु (गिद्ध) के पक्ष के सदृश वर्ण वाला होता है। **लौह शिलाजीत**-यह तिक्त तथा लवण रसयुक्त, विपाक में कटु रस युक्त तथा शीतल होता है और यही सर्वश्रेष्ठ होता है ॥ ८३-८५ ॥

अथ रसः। तत्र रसशब्दस्य निरुक्तिमाह

रसायनार्थिभिर्लोकैः पारदो रस्यते यतः। ततो रस इति प्रोक्तः स च धातुरपि स्मृतः ॥

रस शब्द की निरुक्ति—रसायन को चाहने वाले लोग इस पारे का सेवन (भक्षण) करते हैं

१. मेदोऽश्मशर्कराः इति पाठा०।

इससे यह 'रस' कहलाता है। और शरीर का पोषण करने से 'धातु' भी कहलाता है अर्थात् रस तथा धातु पद से पारे का बोध किया जाता है ॥ ८६ ॥

अथ पारदः। तस्योत्पत्ति भेदानाह

शिवाङ्गात्प्रच्युतं रेतः पतितं धरणीतले। तद्देहसारजातत्वाच्छुक्लमच्छमभूच्च तत् ॥८७॥
क्षेत्रभेदेन विज्ञेयं शिववीर्यं चतुर्विधम्। श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णं तत् तु भवेत्क्रमात् ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च खलु जातितः ॥ ८८ ॥
श्वेतं शस्तं रुजां नाशे रक्तं किल रसायने। धातुवादे तु तत्पीतं खे गतौ कृष्णमेव च ॥८९॥

पारे की उत्पत्ति—श्री शिवजी के अङ्ग से स्खलित होकर जो वीर्य पृथ्वी पर गिरा वही 'पारा' हुआ। और देह के सारभाग (वीर्य) से उत्पन्न होने से वह सफेद तथा स्वच्छ हुआ। भेद-क्षेत्र-भेद से शिववीर्य (पारा) चार प्रकार का होता है। जैसे—सफेद, लाल, पीला तथा काला और ये क्रम से ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र ४ जाति के कहलाते हैं अर्थात् ब्राह्मण जाति का पारा सफेद वर्ण का, क्षत्रिय जाति का-लाल वर्ण का, वैश्य जाति का-पीले वर्ण का, और शूद्र जाति का-काले वर्ण का होता है। उपर्युक्त भेदों का उपयोग-सफेद वर्ण का पारा-रोगों के नाश करने में उत्तम होता है। लाल वर्ण का पारा-रसायन के कार्य में, पीले वर्ण का पारा-धातुवाद अर्थात् सोना चांदी आदि बनाने के कार्य में और काले वर्ण का पारा आकाश गमन के कार्य में उत्तम होता है ॥ ८७-८९ ॥

अथ पारदस्य नामगुणानाह

पारदो रसधातुश्च रसेन्द्रश्च महारसः ॥ ९० ॥
चपलः शिववीर्यञ्च रसः सूतः शिवाह्वयः। पारदः षड्रसः स्निग्धस्त्रिदोषघ्नो रसायनः ॥ ९१ ॥
योगवाही महावृष्यः सदा दृष्टिबलप्रदः। सर्वामयहरः प्रोक्तो विशेषात्सर्वकुष्ठनुत् ॥ ९२ ॥

पारा के संस्कृत नाम—पारद, रसधातु, रसेन्द्र, महारस, चपल, शिववीर्य, रस, सूत, शिवजी के नामवाचक सभी शब्द (जैसे-शिव, रुद्र, हर, धूर्जटि इत्यादि) ये सब हैं।

पारद—पारा मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय तथा तिक्त इन छः रसों से युक्त, स्निग्ध, त्रिदोष नाशक, रसायन, योगवाही, अत्यन्त वीर्यवर्धक, सदा नेत्रों की शक्ति तथा बल को देने वाला, सम्पूर्ण रोगों को दूर करने वाला तथा विशेष रूप से कुष्ठ का नाशक होता है ॥ ९०-९२ ॥

अथ पारदस्यावस्थाभेदेन नामानि सर्वश्रेष्ठतां चाह

स्वस्थो रसो भवेद् ब्रह्मा बद्धो ज्ञेयो जनार्दनः। रञ्जितः [1]कामितश्चापि साक्षाद्देवो महेश्वरः ॥
मूर्च्छितो हरति रुजं बन्धनमनुभूय खे गतिं कुरुते।
अजरीकरोति हि मृतः कोऽन्यः करुणाऽऽकरः सूतात् ॥ ९४ ॥
असाध्यो यो भवेद्रोगो यस्य नास्ति चिकित्सितम् ॥
रसेन्द्रो हन्ति तं रोगं नरकुञ्जरवाजिनाम् ॥ ९५ ॥

पारे का अवस्था भेद से नाम—स्वस्थ पारा-ब्रह्मा, बद्ध (बंधा हुआ) पारा-जनार्दन (विष्णु), रञ्जित तथा कामित पारा-साक्षात् महेश्वर संज्ञक होता है।

१. क्रामित इति पाठा०।

पारे की सर्वश्रेष्ठता—पारा–मूर्च्छित होकर रोगों को दूर करता है और बन्धन का अनुभव करके अर्थात् बद्धपारा–आकाश में चलने की शक्ति देता है और मरा हुआ होकर अर्थात् मृतपारा–मनुष्यों को अजर (वृद्धावस्थाशून्य) करता है, अतः पारे से बढ़ कर कोई दूसरा कृपासागर नहीं हो सकता है। मनुष्य, हाथी तथा घोड़ों के जो रोग असाध्य हो गये हों अथवा जिन रोगों की चिकित्सा नहीं हो सकती है ऐसे रोगों को केवल पारा ही दूर कर देता है ॥ ९३–९५ ॥

अथ फलनिर्देशपूर्वकं पारदस्थितदोषानाह

मलं विषं वह्निगिरित्वचापलं नैसर्गिकं दोषमुशन्ति पारदे।
उपाधिजौ द्वौ त्रपुनागयोगजौ दोषौ रसेन्द्रे कथितौ मुनीश्वरैः ॥ ९६ ॥
मलेन मूर्च्छा मरणं विषेण दाहोऽग्निना कष्टतरः शरीरे।
देहस्य जाड्यं गिरिणा सदा स्युश्चाञ्चल्यतो वीर्यहृतिश्च पुंसाम्।
वङ्गेन कुष्ठं भुजगेन षण्ढो भवेदतोऽसौ परिशोधनीयः ॥ ९७ ॥
वह्निर्विषं मलं चेति मुख्या दोषास्त्रयो रसे। एते कुर्वन्ति सन्तापं मृतिं मूर्च्छां नृणां क्रमात्॥९८॥
अन्येऽपि कथिता दोषा भिषग्भिः पारदे यदि। तथाऽप्येते त्रयो दोषा हरणीया विशेषतः॥९९॥

पारे के स्वाभाविक दोष—मल, विष, अग्नि, गिरिदोष, चपलता ये सब हैं और आगन्तुक दोष–रांगा और सीसा के योग से होने वाले अन्य दो हैं। इस भांति से पारे के सब ७ दोष मुनीश्वरों ने कहे हैं।

उक्त दोषों के फल–मल से मूर्च्छा, विष से मरण, अग्नि से शरीर में अत्यन्त कष्टकर दाह, गिरि से सदा शरीर की जड़ता, चपलता से पुरुषों का वीर्यनाश, वङ्ग (रांगा) से कुष्ठ, भुजग अर्थात् नाग से नपुंसकता ये सब क्रम से होते हैं। अतः पारे का शोधन उक्त दोष की निवृत्ति के लिये परमावश्यक है। मुख्यरूप से तो पारा में–१ अग्नि–२ विष तथा ३ मल ये ही तीन दोष होते हैं। ये तीनों क्रम से मनुष्यों को १ सन्ताप–२ मरण–३ मूर्च्छा करने वाले होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी दोष यद्यपि पारे में ऋषियों ने कहे हैं तथापि पारे के ये ३ दोष ही विशेषरूप से दूर करने योग्य हैं ॥ ९७–९९ ॥

अथासंस्कृतपारदसेवननिषेधमाह

संस्कारहीनं खलु सूतराजं यः सेवते तस्य करोति बाधाम्।
देहस्य नाशं विदधाति नूनं कष्टांश्च रोगाञ्जनयेन्नराणाम् ॥ १०० ॥

असंस्कृत पारे के सेवन का निषेध—जो कोई विना संस्कार किये हुये ही पारे का सेवन करता है तो वह उस (सेवन करने वाले) को पीड़ा पहुंचाता है, देह का नाश कर देता है, निश्चित रूप से मनुष्यों के रोगों को उत्पन्न करता है। तात्पर्य यह है कि भूल कर भी असंस्कृत पारे का सेवन नहीं करना चाहिये अन्यथा कष्टाधिक्य से मृत्यु तक हो जाती है ॥ १०० ॥

अथोपरसाः । तेषां संख्यामाह

गन्धो हिङ्गुलमभ्रतालकशिलाः स्रोतोऽञ्जनं टङ्कणं
राजावर्तकचुम्बकौ स्फटिकया शङ्खः खटी गैरिकम्।
कासीसं रसकं कपर्दसिकताबोलाश्च कुङ्कुष्ठकं
सौराष्ट्री च मता अमी उपरसाः सूतस्य किञ्चिद्गुणैः ॥ १०१ ॥

उपरसों की संख्या—गन्धक, हिङ्गुल, अभ्रक, हरताल, मैनशिल, सुरमा, सुहागा, राजावर्तक, चुम्बक, फिटकरी, शंख, खरिया, गेरू, कसीस, खपरिया, कौड़ी, बालु, बोल, कङ्कुष्ठ एवं सोरठी माटी ये सब उपरस कहे जाते हैं क्योंकि ये कुछ रस (पारा) के गुणों से युक्त होते हैं ॥ १०१ ॥

अथ हिङ्गुलम् । तस्य नामानि सलक्षणभेदान् गुणांश्चाह

हिङ्गुल दरदं म्लेच्छमिङ्गुलं स्चूर्णपारदम्। दरदस्त्रिविधः प्रोक्तश्चर्मारः शुकतुण्डकः ॥ १०२ ॥
हंसपादस्तृतीयः स्याद् गुणवानुत्तरोत्तरम् ॥ १०३ ॥
चर्मारः शुक्लवर्णः स्यात्स पीतः शुकतुण्डकः। जपाकुसुमसङ्काशो हंसपादो महोत्तमः ॥१०४॥
तिक्तं कषायं कटु हिङ्गुलं स्यान्नेत्रामयघ्नं कफपित्तहारि।
हृल्लासकुष्ठज्वरकामलाश्च प्लीहामवातौ च गरं निहन्ति ॥ १०५ ॥

हिङ्गुल के संस्कृत नाम—हिङ्गुल, दरद, म्लेच्छ, इङ्गुल और चूर्णपारद ये सब हैं। भेद—हिङ्गुल तीन प्रकार का होता है। १ चर्मार, २ शुकतुण्डक, ३ हंसपाद। इनमें से एक दूसरे की अपेक्षा उत्तरोत्तर गुणवान् होता है जैसे–चर्मार की अपेक्षा शुकतुण्ड और शुकतुण्ड की अपेक्षा हंसपाद अधिक गुणवान् होता है ॥

उक्त भेदों के लक्षण—चर्मार–सफेद वर्ण का होता है, शुकतुण्ड–पीले वर्ण का एवम् हंसपाद जो कि सर्वोत्तम है वह जपाकुसुम (अढ़ौल के फूल) के समान लाल वर्ण का होता है।

हिङ्गुल—तिक्त, कषाय, कटुरस युक्त एवम्–नेत्रसंबन्धी–रोग, कफ, पित्त, हृल्लास (उबकाई), कुष्ठ, ज्वर, कामला, प्लीहा, आमवात और विष को दूर करने वाला होता है ॥

अथ हिङ्गुलोत्थं पारदं शुद्धमित्याह

उदूर्ध्वपातनयुक्त्या तु डमरुयंत्रपाचितम्। हिङ्गुलं तस्य सूतं तु शुद्धमेव न शोधयेत् ॥

हिंगुल से निकाले हुये पारे की शुद्धि की अनावश्यकता—उर्ध्वपातन की युक्ति से डमरूयन्त्र में पकाया हुआ जो हिंगुल है, उससे निकाला हुआ जो पारा है वह स्वयं शुद्ध होता है अतः उसकी पुनः शुद्धी करने की आवश्यकता नहीं रहती है ॥ १०६ ॥

अथ गन्धकः । तस्योत्पत्तिं नामानि भेदांश्चाह

श्वेतद्वीपे पुरा देव्याः क्रीडन्त्या रजसाऽऽप्लुतम्। दुकूलं तेन वस्त्रेण स्नातायाः क्षीरनीरधौ ॥
प्रसृतं यद्रजस्तस्माद्गन्धकः समभूत्ततः। गन्धको गन्धिकश्चापि गन्धपाषाण इत्यपि ॥१०८॥
सौगन्धिकश्च कथितो बलिर्बलरसोऽपि च। चतुर्धा गन्धकः प्रोक्तो रक्तः पीतः सितोऽसितः ॥

गन्धक की उत्पत्ति—पहले एक समय श्वेतद्वीप में क्रीड़ा करती हुई श्री पार्वती जी का वस्त्र रजोधर्म होने से रज से भीग गया तब उसी समय क्षीर समुद्र में स्नान करने से जो रज इधर उधर फैला उसी से गन्धक की उत्पत्ति हुई। गन्धक के संस्कृत नाम—गन्धक, गन्धिक, गन्धपाषाण, सौगन्धिक, बलि तथा बलरस ये सब हैं।

भेद—गन्धक ४ प्रकार का होता है। १ रक्तवर्ण का, २ पीत वर्ण का, ३ श्वेत वर्ण का, ४ कृष्णवर्ण का होता है ॥ १०७–१०९ ॥

अथ गन्धकभेदानामुपयोगविषयानाह

रक्तो हेमक्रियासूक्तः पीतश्चैव रसायने। व्रणादिलेपने श्वेतः कृष्णः श्रेष्ठः सुदुर्लभः ॥११०॥

गन्धक के उक्त भेदों के उपयोग—रक्तवर्ण का गन्धक–सोना बनाने के कार्य में उपयुक्त होता है, पीत वर्ण का गन्धक–रसायन के कार्य में आता है, श्वेत वर्ण का गन्धक–व्रण आदि के ऊपर लेप करने के लिये उपयोगी होता है एवं कृष्णवर्ण का गन्धक–पूर्वोक्त सभी कार्यों में में श्रेष्ठ होता है किन्तु यह अत्यन्त दुर्लभ होता है ॥ ११० ॥

***श्रेष्ठः = हेमक्रियाऽऽदिषु सर्वत्र प्रशस्ततरः ॥ ११० ॥**

यहाँ पर "श्रेष्ठ" पद से "हेमक्रिया (सोना बनाने) आदि पूर्वोक्त सभी कार्यों में अत्यन्त प्रशस्त होता है" यह अर्थ समझना चाहिये ॥ ११० ॥

अथ गन्धकगुणानाह

गन्धकः कटुकस्तिक्तो वीर्योष्णस्तुवरः सरः। पित्तलः कटुकः पाके जन्तुकण्डूविसर्पजित्।
हन्ति कुष्ठक्षयप्लीहकफवातान् रसायनः ॥ १११ ॥

गन्धक—कटु, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, विपाक में कटु रसयुक्त, उष्णवीर्य, सारक, पित्तजनक, रसायन एवम्–क्रिमि, खुजली, विसर्प, कुष्ठ, क्षय, प्लीहा, कफ तथा वात को दूर करने वाला होता है ॥ १११ ॥

अथाशुद्धगन्धकदोषानाह

अशोधितो गन्धक एष कुष्ठं करोति तापं विषमं शरीरे।
सौख्यं च रूपं च बलं तथौजः शुक्रं निहन्त्येव करोति चास्रम् ॥ ११२ ॥

अशुद्ध गन्धक के दोष—बिना शोधा हुआ गन्धक यदि भक्षण किया जाय तो वह कुष्ठ, शरीर में विषम ज्वर तथा रक्तविकार को करता है एवम्—सुख, रूप, बल, ओज एवं शुक्र को नष्ट करता है ॥ ११२ ॥

अथाभ्रकम्। तस्योत्पत्तिमाह

पुरा वधाय वृत्रस्य वज्रिणा वज्रमुद्धृतम्। विस्फुलिङ्गास्ततस्तस्य गगने परिसर्पिताः ॥११३॥
ते निपेतुर्घनध्वानाच्छिखरेषु महीभृताम्। तेभ्य एव समुत्पन्नं तत्तद्गिरिषु चाभ्रकम् ॥११४॥
तद्वज्रं वज्रजातत्वादभ्रमभ्ररवोद्भवात्। गगनात्स्खलितं यस्माद्गगनं च ततो मतम् ॥ ११५ ॥

अभ्रक की उत्पत्ति—पहले एक समय जब इन्द्र ने वृत्रासुर के वध के लिए वज्र उठाया तब उससे उसकी चिनगारियाँ निकल कर आकाश में फैल गईं। और उसके बाद वे सब मेघ का शब्द होने पर पर्वतों के शिखरों पर जाकर गिर पड़ीं और जिन २ पर्वतों पर वे गिरी थीं उन्हीं २ पर्वतों पर उन चिनगारियों से अभ्रक की उत्पत्ति हुई।

अभ्रक के कतिपय नामों के पड़ने का हेतु—वज्र से उत्पन्न होने से इसे 'वज्र', अभ्र अर्थात् मेघ के शब्द होने से उत्पत्ति हुई अतः 'अभ्रक' और गगन अर्थात्—आकाश से गिरा अतएव इसे 'गगन' भी कहते हैं ॥ ११३–११५ ॥

अथाभ्रकभेदाँस्तेषामुपयोगविषयानाह

विप्रक्षत्रियविट्शूद्रभेदात्तस्याच्चतुर्विधम्। क्रमेणैव सितं रक्तं पीतं कृष्णं च वर्णतः ॥११६॥
प्रशस्यते सितं तारे रक्तं तत्तु रसायने। पीतं हेमनि कृष्णं तु गदेषु द्रुतयेऽपि च ॥११७॥

अभ्रक के भेद—१ ब्राह्मण–२ क्षत्रिय, ३ वैश्य तथा ४ शूद्र ये ४ जातियाँ अभ्रक की होती हैं। उनके जाति वर्ण—क्रम से अर्थात् ब्राह्मण जाति का अभ्रक सफेद रङ्ग का, क्षत्रिय जाति का लाल रंग का, वैश्य जाति का पीले रंग का और शूद्र जाति का काले रंग का होता है।

उक्त भेदों के उपयोग—चाँदी बनाने के कार्य में सफेद अभ्रक का, रसायन के कार्य में लाल अभ्रक का, सोना बनाने में पीले अभ्रक का और रोग नष्ट करने में काले अभ्रक का उपयोग किया जाता है ॥ ११६–११७ ॥

अथाभ्रकस्यान्यानपि भेदाँल्लक्षणगुणनिर्देशपूर्वकमाह

पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रं चेति चतुर्विधम्। मुञ्चत्यग्नौ विनिक्षिप्तं पिनाकं दलसञ्चयम् ॥११८॥
अज्ञानाद्भक्षणं तस्य महाकुष्ठप्रदायकम्। दर्दुरं त्वग्निनिक्षिप्तं कुरुते दर्दुरध्वनिम् ॥ ११९ ॥
गोलकान्बहुशः कृत्वा स स्यान्मृत्युप्रदायकः। नागं तु नागवद्वह्नौ फूत्कारं परिमुञ्चति ॥
तद्भक्षितमवश्यं तु विदधाति भगन्दरम्। वज्रं तु वज्रवत्तिष्ठेत्तन्नाग्नौ विकृतिं व्रजेत् ॥१२१॥
सर्वाभ्रेषु वरं वज्रं व्याधिवार्द्धक्यमृत्युहृत् ॥ १२२ ॥

अभ्रक के और भी भेदों के नाम—१ पिनाक, २ दर्दुर, ३ नाग, ४ वज्र, ये ४ भेद अभ्रक के हैं। उक्त भेदों के लक्षण—पिनाक नामक अभ्रक के लक्षण—अग्नि में डाल देने पर जिससे परत निकल-निकल कर अलग होने लगें उसे 'पिनाक' समझना चाहिये।

पिनाक—यदि अज्ञान से खा लिया जाय तो महाकुष्ठ हो जाता है।

दर्दुर के लक्षण—जो अग्नि में छोड़ने पर मेढक की भाँति शब्द करे वह 'दर्दुर' कहलाता है। दर्दुर–इसे खा लेने से शरीर में बहुत सी गाँठों की उत्पत्ति होकर मृत्यु हो जाती है।

नागनामक अभ्रक के लक्षण अग्नि में डालने पर जिससे साँप के समान फुंकार निकले उसे 'नाग' समझना चाहिये। नाग–इसके खाने से भगन्दर अवश्य हो जाता है।

वज्र के लक्षण—जो कि अग्नि में डालने पर किसी तरह की विकृति को न प्राप्त होकर वज्र की भाँति स्थिर रहता है वह "वज्र" नामक अभ्रक कहलाता है। वज्र–सम्पूर्ण अभ्रकों में वज्र नामक ही अभ्रक सर्वश्रेष्ठ होता है, क्योंकि यह रोग, बुढ़ापा तथा मृत्यु को भी दूर करने वाला होता है ॥ ११८–१२२ ॥

अथोत्पत्तिस्थानाभेदेनाभ्रकस्य गुणभेदानाह

अभ्रमुत्तरशैलोत्थं बहुसत्त्वं गुणाधिकम्। दक्षिणाद्रिभवं स्वल्पसत्त्वमल्पगुणप्रदम् ॥ १२३ ॥

उत्पत्ति स्थान के भेद से अभ्रक के गुणों में भेद–उत्तर के पर्वतों पर उत्पन्न होने वाला अभ्रक—अत्यन्त वीर्यशाली अतएव अधिक गुणकारी होता है और दक्षिण के पर्वतों पर उत्पन्न होने वाला अभ्रक—स्वल्प वीर्यवाला अतएव स्वल्प गुणकारी होता है ॥ १२३ ॥

अथ मृताभ्रकगुणानाह

अभ्रं कषायं मधुरं सुशीतमायुष्करं धातुविवर्द्धनं च।
हन्यात्त्रिदोषं व्रणमेहकुष्ठप्लीहोदरग्रन्थिविषक्रिमींश्च ॥ १२४ ॥

रोगान्हन्ति द्रढयति वपुर्वीर्यवृद्धिं विधत्ते तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव।
दीर्घायुष्काञ्जनयति सुतान्विक्रमैःसिंहतुल्यान् मृत्योर्भीतिं हरति सततं सेव्यमानं मृताभ्रम्॥

अभ्रक भस्म (मृत अभ्रक)—यह कषाय तथा मधुर रसयुक्त, अत्यन्त शीतल, आयु को बढ़ाने वाला, धातुवर्धक एवम्–त्रिदोष, व्रण, प्रमेह, कुष्ठ, प्लीहा, उदररोग, ग्रन्थि (गिल्टी), विष तथा क्रिमि को दूर करने वाला होता है।

यदि मृत अभ्रक (अभ्रक भस्म) का नित्य सेवन किया जाय तो वह— रोगों को दूर करता है तथा शरीर को दृढ़ और वीर्य की वृद्धि करता है और नित्य तरुणाई से भरा हुआ सौ स्त्रियों से रमण करने की शक्ति देता है तथा सिंह के समान पराक्रमी, दीर्घ आयु वाले पुत्रों को उत्पन्न करता है और मृत्यु के भय को दूर करता है॥ १२४-१२५॥

अथाशुद्धाभ्रकदोषानाह

पीडां विधत्ते विविधां नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डुगदं च शोथम्।
हृत्पार्श्वपीडां च करोत्यशुद्धमभ्रं त्वसिद्धं गुरु तापदं स्यात्॥ १२६॥

अशुद्ध अभ्रक के दोष—बिना शोधन किया हुआ अभ्रक– सेवन करने से मनुष्यों को अनेक प्रकार की पीड़ा करता है एवम्—कुष्ठ, क्षय, पाण्डुरोग, शोथ, हृदय तथा पार्श्व (पसुली) में पीड़ा करता है।

असिद्ध अभ्रक के दोष— यदि अभ्रक भस्म असिद्ध (कच्ची) हो तो सेवन करने से अत्यन्त ताप देने वाला होता है॥ १२६॥

अथ हरितालम्। तस्य गुणलक्षणसहितान् भेदान् गुणाँश्चाह

हरितालं तु तालं स्यादालं तालकमित्यपि। हरितालं द्विधा प्रोक्तं पत्राख्यं पिण्डसंज्ञकम्॥
तयोराद्यं गुणैः श्रेष्ठं ततो हीनगुणं परम्। स्वर्णवर्णं गुरु स्निग्धं सपत्रं चाभ्रपत्रवत्॥१२८॥
पत्राख्यं तालकं विद्याद् गुणाढ्यं तद्रसायनम्। निष्पत्रं पिण्डसदृशं स्वल्पसत्त्वं तथा गुरु॥
स्त्रीपुष्पहारकं स्वल्पगुणं तत्पिण्डतालकम्। हरितालं कटु स्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम्।
कण्डूकुष्ठास्यरोगास्रकफपित्तकचव्रणान्॥ १३०॥

हरताल के संस्कृत नाम–हरिताल, ताल, आल और तालक ये सब हैं। भेद—हरताल दो प्रकार का होता है। १ पत्राख्य (तबकिया) हरताल, २ पिण्डसंज्ञक हरताल। इन में से पहला जो पत्राख्य (तबकिया) हरताल है वह गुणों में श्रेष्ठ होता है और दूसरा जो पिण्डसंज्ञक हरताल है वह हीन गुणवाला होता है। पत्राख्य (तबकिया) हरताल के लक्षण–सोने के समान वर्ण वाला, गुरु, स्निग्ध, अभ्रक के पत्र के समान पत्रवाला जो पत्राख्य (तबकिया) हरताल होता है, वह गुणों से युक्त तथा रसायन होता है। और जो पत्र से रहित पिण्ड के समान पिण्डहरताल होता है, वह स्वल्प वीर्यशाली, गुरु, स्त्री के पुष्प को नष्ट करने वाला एवं अल्प गुणयुक्त होता है। हरताल— कटु तथा कषाय रसयुक्त, स्निग्ध, उष्ण होता है एवम्–विष, खुजली, कुष्ठ, मुख के रोग, रक्तविकार, कफ, पित्त, केश तथा व्रण (घाव) को नष्ट करनेवाला होता है॥ १२७-१३०॥

अथाशुद्धस्यासम्यङ्मारितस्य च हरितालस्य दोषानाह

हरति च हरितालं चारुतां देहजातां सृजति च बहुतापञ्चाङ्गसङ्कोचपीडाम्।
वितरति कफवातौ कुष्ठरोगं विदध्यादिदमशितमशुद्धं मारितं चाप्यसम्यक॥ १३१॥

बिना शोधा हुआ दोनों प्रकार का हरताल—भक्षण करने से शरीर की सुन्दरता को दूर करता है, अत्यन्त ताप को उत्पन्न करता है, अङ्गों में सङ्कोच की पीड़ा देता है एवम्—कफ, वात तथा कुष्ठ को करता है॥ १३१॥

अथ मनःशिला (मैनसिल)। तस्या नामानि गुणांश्चाह

मनःशिला मनोगुप्ता मनोह्वा नागजिह्विका। नैपाली कुनटी गोला शिला दिव्यौषधिः स्मृता॥
मनःशिला गुरुर्वर्ण्या सरोष्णा लेखनी कटुः। तिक्ता स्निग्धा विषश्वासकासभूतकफास्रनुत्॥

मैनशिल के संस्कृत नाम—मनःशिला, मनोगुप्ता, मनोह्वा, नागजिह्विका, नैपाली, कुनटी, गोला, शिला तथा दिव्यौषधि ये सब हैं।

मैनशिल—यह कटु तथा तिक्त रसयुक्त, गुरु, शरीर के वर्ण को उत्तम बनाने वाली, सारक, उष्ण, लेखन तथा स्निग्ध होती है एवम्—विष, श्वास, कास, भूतबाधा, कफ तथा रक्तविकार को दूर करने वाली होती है॥ १३२-१३३॥

अथाशुद्धायास्तस्यादोषानाह

मनः शिला मन्दबलं करोति जन्तुं ध्रुवं शोधनमन्तरेण।
मलानुबन्धं किल मूत्ररोधं सशर्करं कृच्छ्रगदं च कुर्यात्॥ १३४॥

अशुद्ध मैनशिल के दोष—बिना शोधी हुई मैनशिल–सेवन करने वाले मनुष्य के बल को मन्द करने वाली तथा मल का अनुबन्ध (दस्त की रुकावट), मूत्ररोध और शर्करायुक्त मूत्रकृच्छ्र रोग को पैदा करती है॥ १३४॥

अथ स्रोतोऽञ्जनं सौवीरं च (काला, सफेद सुरमा)। तयोर्नामलक्षणगुणानाह

अञ्जनं यामुनंचापि कापोताञ्जनमित्यपि। तत्तु स्रोतोऽञ्जनं कृष्णं सौवीरं श्वेतमीरितम्॥
वल्मीकशिखराकारे भिन्नमञ्जनसन्निभम्। घृष्टं तु गैरिकाकारमेतत्स्रोतोऽञ्जनं स्मृतम्॥
स्रोतोऽञ्जनसमं ज्ञेयं सौवीरं तत्तु पाण्डुरम्। स्रोतोऽञ्जनं स्मृत स्वादु चक्षुष्यं कफपित्तनुत्॥
कषायं लेखनं स्निग्धं ग्राहि च्छर्दिविषापहम्। सिध्मक्षयास्रहृच्छीतं सेवनीयं सदा बुधैः॥
स्रोतोऽञ्जनगुणाः सर्वे सौवीरेऽपिमता बुधैः। किन्तु द्वयोरञ्जनयोः श्रेष्ठं स्रोतोऽञ्जनं स्मृतम्॥

सुरमा के साधारण संस्कृत नाम—अञ्जन, यामुन तथा कापोताञ्जन ये सब हैं।

भेद और उनके लक्षण— सुरमा में जो काला होता है उसे संस्कृत में "स्रोतोऽञ्जन" कहते हैं और जो सफेद होता है उसे "सौवीर" कहते हैं। लक्षण—स्रोतोऽञ्जन (काला सुरमा)—यह वल्मीक (बांबी) के शिखर के समान आकारवाला, तोड़ने पर अञ्जन के टुकड़ों के समान एवं घिसने पर "गेरू" के समान होता है।

सौवीर (सफेद सुरमा)—यह पाण्डुर वर्ण का तथा गुणों में काले सुरमे के समान ही होता है।

काला सुरमा—स्वादिष्ट, कषाय रसयुक्त, नेत्रों के लिये हितकर, लेखन, स्निग्ध, ग्राही, तथा शीतल होता है एवम्—कफ, पित्त, वमन, विष, सिध्म (क्षुद्रकुष्ठ के भेद), क्षय, तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है। अतएव बुद्धिमानों को सदा इसे सेवन करना चाहिये। काले सुरमे में जो गुण हैं वे ही सब सफेद सुरमे में भी रहते हैं ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं।

किन्तु इन दोनों अञ्जनों में श्रेष्ठ 'स्रोतोऽञ्जन' काला सुरमा ही समझा जाता है॥१३५-१३९॥

अथ टङ्कणः (सोहागा) । तस्य गुणानाह

टङ्कणोऽग्निकरो रूक्षः कफघ्नो वातपित्तकृत् ॥ १४० ॥

सुहागा—अग्निकारक, रूक्ष, कफनाशक त । वात और पित्त को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ १४० ॥

*** अयमुपरसत्वात् पुनरुक्तः ॥ १४० ॥**

यहाँ पर यह समझना चाहिये कि–यह उपरस होने से पुनः यहाँ पर कहा गया है ॥ १४० ॥

अथ स्फटिका (फटकिरी) । तस्या नामानि गुणाँश्चाह

स्फटी च स्फटिका प्रोक्ता श्वेता शुभ्रा च रङ्गदा । दृढरङ्गा रङ्गदृढा रङ्गाङ्गाऽपि च कथ्यते ॥
स्फटिका तु कषायोष्णा वातपित्तकफव्रणान् । निहन्ति श्वित्रवीसर्पान् योनिसङ्कोचकारिणी ॥

फटकिरी के संस्कृत नाम—स्फटी, स्फटिका, श्वेता, शुभ्रा, रङ्गदा, दृढरङ्गा, रङ्गदृढा, रङ्गाङ्गा ये सब हैं ।

फिटकिरी—कषाय रस युक्त, उष्ण, योनिमार्ग को संकुचित करने वाली एवम्—वात, पित्त, कफ, व्रण (घाव), श्वेत कुष्ठ तथा विसर्प को दूर करने वाली होती है ॥ १४१–१४२ ॥

अथ राजावर्त्तः (रेवटी) । तस्य नामगुणानाह

राजावर्त्तो नृपावर्त्तो राजन्यावर्त्तकस्तथा । आवर्त्तमणिसंज्ञश्च ह्यावर्त्तोऽपि तथैव च ॥१४३॥
राजावर्त्तः कटुस्तिक्तः शिशिरः पित्तनाशनः । राजावर्त्तः प्रमेहघ्नश्छर्दिहिक्कानिवारणः ॥१४४॥

रेवटी के संस्कृत नाम—राजावर्त्त, नृपावर्त्त, राजन्यावर्त्तक, आवर्त्तमणिसंज्ञक, आवर्त्त (आवर्त्तक) ये सब हैं । राजावर्त्त-कटु तथा तिक्त रसयुक्त, शीतल, पित्तनाशक एवम्—प्रमेह, वमन तथा हिचकी को दूर करने वाली होती है ॥ १४३–१४४ ॥

अथ चुम्बकः । तस्य नामगुणानाह

चुम्बकः कान्तपाषाणोऽयस्कान्तो लौहकर्षकः । चुम्बको लेखनः शीतो मेदोविषगरापहः ॥

चुम्बक के संस्कृत नाम—चुम्बक, कान्तपाषाण, अयस्कान्त और लौहकर्षक ये सब हैं ।

चुम्बक—लेखन, शीतल तथा मेद, विष और गर (उपविष) को नष्ट करने वाला होता है । यहाँ पर-नानाप्राण्यङ्गजमलविरुद्धौषधभस्मनाम् । विषाणाञ्चाल्पवीर्याणां योगो गर इति स्मृतः ॥ १ ॥

अर्थ—अनेक प्रकार के प्राणियों के अङ्गों का मल, विरुद्ध औषधों के भस्म, अल्पवीर्य वाले विषों के परस्पर योग को 'गर' कहते हैं । यह गर का विशेष अर्थ समझना चाहिये ॥ १४५ ॥

अथ गैरिकं सुवर्णगैरिकं च (गेरू-सोनागेरू) । तयोर्नामगुणानाह

गैरिकं रक्तधातुश्च गैरेयं गिरिजं तथा । सुवर्णगैरिकं त्वन्यत्ततो रक्ततरं हि तत् ॥ १४६ ॥
गैरिकद्वितयं स्निग्धं मधुरं तुवरं हिमम् । चक्षुष्यं दाहपित्तास्रकफहिक्काविषापहम् ॥ १४७ ॥

गेरू के संस्कृत नाम—गैरिक, रक्तधातु, गैरेय, गिरिज ये सब हैं ।

गेरू के भेद—गेरू से भिन्न एक प्रकार का और भी गेरू होता है जो इसकी अपेक्षा अत्यन्त लाल रङ्ग का होता है उसे संस्कृत में 'स्वर्णगैरिक' कहते हैं । दोनों गेरू (गेरू-

सोना गेरू)—यह मधुर तथा कषाय रस युक्त, स्निग्ध, शीतल, नेत्रों के लिये हितकर एवम्-दाह-पित्त-रक्तविकार-कफ-हिचकी तथा विष इन सबों को दूर करने वाले होते हैं ॥ १४६–१४७ ॥

अथ खटिका गौरखटिका च (खडिया, गौरखरिया) । तयोर्नामगुणानाह

खटिका कठिनी चापि लेखनी च निगद्यते । खटी दाहास्रजिच्छीता मधुरा विषशोथजित् ॥
लेपादेतद्गुणा प्रोक्ता भक्षिता मृत्तिकासमा । खटी गौरखटी द्वे च गुणैस्तुल्ये प्रकीर्त्तिते ॥

खड़िया के संस्कृत नाम—खटिका, कठिनी तथा लेखनी ये सब हैं ।

खड़िया—मधुर रस युक्त, शीतल एवम्-दाह-रक्तविकार-विष तथा शोथ को दूर करने वाली होती है । लेप करने से ही उक्त गुण खड़िया के ज्ञात होते हैं । खाने पर तो मिट्टी के समान गुण वाली होती है । खड़िया तथा गौर खरिया ये दोनों ही–गुणों में समान ही मानी जाती हैं ॥

अथ वालुका (बालू) । तस्या नामगुणानाह

वालुका सिकता प्रोक्ता शर्करा रेतजाऽपि च । वालुका लेखनी शीता व्रणोरःक्षतनाशिनी ॥

बालू के संस्कृत नाम—वालुका, सिकता, शर्करा और रेतजा ये सब हैं ।

बालू—लेखन, शीतल तथा व्रण और उरःक्षत को दूर करने वाली होती है ॥ १५० ॥

अथ तुत्थभेदः खर्परी (खपरिया) तस्या नामगुणानाह

खर्परी तुत्थकं तुत्थादन्यत्तद्रसकं स्मृतम् । ये गुणास्तुत्थके प्रोक्तास्ते गुणा रसके स्मृताः ॥

खपरिया के संस्कृत नाम—खर्परी, तुत्थक, रसक, तुत्थभेद ये सब हैं ।

खपरिया—जो गुण तूतिया के कहे हुये हैं वे ही सब इसके भी होते हैं ॥ १५१ ॥

अथ काशीशम् (कसीस) । तस्य नामानि भेदान् गुणाँश्चाह

काशीशं धातुकाशीशं पांशुकाशीशमित्यपि । तदेव किञ्चित्पीतं तु पुष्पकाशीशमुच्यते ॥ १५२॥
काशीशमम्लमुष्णं च तिक्तञ्च तुवरं तथा । वातश्लेष्महरं केश्यं नेत्रकण्डूविषप्रणुत् ॥
मूत्रकृच्छ्राश्मरीश्वित्रनाशनं परिकीर्तितम् ॥ १५३ ॥

कसीस के संस्कृत नाम—काशीश, धातुकाशीश, पांशुकाशीश ये सब हैं । भेद—कसीस यदि थोड़ा पीला हो तो उसका संस्कृत नाम—पुष्पकाशीश होता है । कसीस-अम्ल, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, उष्ण (गरम), बालों के लिये हितकर, वात, कफ, नेत्रों की खुजली, विष, मूत्र-कृच्छ्र, पथरी तथा श्वेत कुष्ठ को दूर करने वाला होता है ॥ १५२–१५३ ॥

अथ सौराष्ट्री मृत्तिका (सोरठी माटी) । तस्या नामगुणानाह

सौराष्ट्री तुवरी काली मृत्तालकसुराष्ट्रजे ॥ १५४ ॥
आढकी चापि सा ख्याता मृत्स्ना च सुरमृत्तिका । स्फटिकाया गुणाः सर्वे सौराष्ट्र्या अपि कीर्त्तिताः

सोरठी माटी के संस्कृत नाम—सौराष्ट्री, तुवरी, काली, मृत्तालक, सुराष्ट्रज, आढकी, मृत्स्ना तथा सुरमृत्तिका ये सब हैं । **सोरठी माटी**—फिटकिरी के जितने गुण कह आये हैं वे सब सोरठी माटी के भी होते हैं ॥ १५४–१५५ ॥

अथ कृष्णमृत्तिका (काली मिट्टी) तस्य नामगुणानाह

मृन्मृदा मृत्तिका मृत्स्ना क्षेत्रजा कृष्णमृत्तिका ।
कृष्णमृत् क्षतदाहास्रप्रदरश्लेष्मपित्तनुत् ॥ १५६ ॥

काली मिट्टी के संस्कृत नाम—मृद्, मृदा, मृत्तिका, मृत्स्ना, क्षेत्रजा, कृष्णमृत्तिका और कृष्णमृत् ये सब हैं। काली मिट्टी—क्षत, दाह, रक्तप्रदर या रक्तविकार, प्रदररोग, कफ तथा पित्त को दूर करने वाली होती है ॥ १५६ ॥

अथ कर्दमः (कीचड़) तस्यगुणानाह

पङ्कस्तु जलकल्कश्च चुलुकः कर्दमो मलः । चिकिलः पलितो द्रापः पल्वलश्च निषद्वरः ॥
कर्दमो दाहपित्तास्रशोथघ्नः शीतलः सरः ॥ १५७ ॥

कीचड़ के संस्कृत नाम—पङ्क, जलकल्क, चुलुक, कर्दम, मल, चिकिल, पलित, द्राप, पल्वल तथा निषद्वर ये सब हैं। कीचड़–शीतल तथा सारक होता है एवम्–दाह, पित्त, रक्तविकार और शोथ को नष्ट करने वाला होता है ॥ १५७ ॥

अथ कपर्द्दकम् (कौड़ी) । तस्य नामगुणानाह

कपर्दको वराटश्च कपर्दी च वराटिका । कपर्दिका हिमा नेत्रहिता स्फोटक्षयापहा ॥
कर्णस्रावाग्निमान्द्यघ्नी पित्तास्रकफनाशिनी ॥ १५८ ॥

कौड़ी के संस्कृत नाम—कपर्दक, वराट, कपर्दी, वराटिका तथा कपर्दिका ये सब हैं।

कौड़ी—शीतल, नेत्रों के लिये हितकर, विस्फोट, क्षय, कर्णस्राव, अग्नि की मन्दता, पित्त, रक्तविकार तथा कफ को नष्ट करने वाली होती है ॥ १५८ ॥

अथ शङ्खः । तस्य नामगुणानाह

शङ्खः समुद्रजः कम्बुः सुनादः पावनध्वनिः ।
शङ्खो नेत्र्यो हिमः शीतो लघुः पित्तकफास्रजित् ॥ १५९ ॥

शङ्ख के संस्कृत नाम—शंख, समुद्रज, कम्बु, सुनाद तथा पावनध्वनि ये सब हैं।

शङ्ख—नेत्रों के लिये हितकर, शीतल, लघु एवम्—पित्त, कफ तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥ १५९ ॥

अथ बोलम् । तस्य नामानि गुणांश्चाह

बोलगन्धरसप्राणपिण्डगोपरसाः समाः । बोलं रक्तहरं शीतं मेध्यं दीपनपाचनम् ॥
मधुरं कटु तिक्तं च दाहस्वेदत्रिदोषजित् । ज्वरापस्मारकुष्ठघ्नं गर्भाशयविशुद्धिकृत् ॥ १६० ॥

बोल के संस्कृत नाम–बोल, गन्धरस, प्राण, पिण्ड तथा गोपरस ये सब हैं। बोल–मधुर, कटु तथा तिक्तसयुक्त, रुधिरविकार नाशक, शीतल, मेधाशक्ति के लिये हितकर, अग्निदीपक, एवम्—दाह, स्वेद (पसीना), त्रिदोष, ज्वर, अपस्मार (मिर्गी) तथा कुष्ठ को दूर करने वाला होता है ॥ १६० ॥

बोल, हीराबोल

हिं०–बोल, हीराबोल । बं०–करम, बंदरकरम । अं०–Myrrh (मिर्ह)। ले०–*Commiphora myrrha Holmes* (कॉम्मिफोरा मिर्ह)। Fam. Burseraceae (बर्सेरेसी)।

इसका वृक्ष उत्तर पूर्व अफ्रीका तथा अरब में पाया जाता है। यह करीब १० फीट ऊँचा होता है। इसकी अन्य प्रजातियाँ भी होती हैं जो २५–३० फीट तक ऊँची होती हैं।

यह उपर्युक्त वृक्ष का निर्यास है। इसका संग्रह सोमालीलैण्ड में होता है। वहाँ से यह अदन को भेजा जाता है जहाँ से बंबई के रास्ते या सीधे इसका यूरोप में निर्यात होता है।

अधिकतर यह अपने आप ही निकला हुआ पाया जाता है किन्तु कभी-कभी वृक्षों में चीरा लगाकर भी इसे प्राप्त करते हैं। यह पीताभ श्वेत गाढ़ा तरल पदार्थ होता है जो वृक्ष से निकलते ही गरमी से सूखकर रक्ताभ भूरा हो जाता है।

स्वरूप—इसके विभिन्न नाप के टुकड़े या गोल दाने १–४ इञ्च व्यास के होते हैं। यह बाहर से रक्ताभ भूरा या रक्ताभ पीला तथा चूर्णीकृत दिखलाई पड़ता है। यह आसानी से तोड़ा जा सकता है तथा तोड़ने पर अंदर से यह गहरा भूरा तैलीय एवं कभी-कभी श्वेत चिह्नों से युक्त होता है। इसमें विशिष्ट गंध एवं स्वाद, सुगंधि, तिक्त एवं कटु होता है।

परीक्षा—(१) जल के साथ घोटने से इसका पीला इमल्शन बनता है। (२) ईथरीय सत्व को सुखाकर उसका संयोग शोरे के तेजाब के धूएँ या ब्रोमीन के धूएँ से करने पर गहरा बैंगनी रंग इसमें आता है। (३) इसमें मद्यसार में अघुलनशील भाग ७०% से अधिक न हो तथा राख ५% से अधिक न हो।

इसका एक भेद **बीसाबोल** होता है जो अन्य वृक्ष से निकलता है। वह अधिक गंधयुक्त होता है। उपर्युक्त परीक्षा से इसे अलग किया जा सकता है। संग्रह करते समय इसके साथ ही गोंद, गुग्गुलु आदि का भी संग्रह होने के कारण बोल में इनकी भी मिलावट होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें उड़नशील तैल, राल, गोंद आदि द्रव्य पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह आर्तवजनन, श्लेष्मलकला के लिये उत्तेजक, प्रतिदूषक, कफनाशक एवं दीपन है।

इसका प्रयोग अनार्तव, गर्भाशय शैथिल्य, श्वेतप्रदर, बस्तिशोथ, कास, श्वास एवं कुपचन में करते हैं।

मुख पाक, गले की खराश एवं मसूड़े की सूजन में इसके द्रव से कुल्ला (गण्डूश) करने से लाभ होता है। इसका लेप व्रण पर किया जाता है। दंत मंजन में इसे डालते हैं। सुगंध के लिये धूप में इसका उपयोग होता है। मात्रा—½–२ रत्ती।

अथ कङ्कुष्ठः । तस्योत्पत्तिं भेदाँश्चाह

हिमवत्पादशिखरे कङ्कुष्ठमुपजायते । तत्रैकं रक्तकालं स्यात्तदन्यदण्डकं स्मृतम् ॥ १६१ ॥

कंकुष्ठ की उत्पत्ति—हिमालय के पास के पर्वतों के शिखर पर कंकुष्ठ की उत्पत्ति होती है।

भेद—इसके दो भेद हैं। पहला रक्तकाल, दूसरा अण्डक–ये दोनों संस्कृत नाम हैं ॥१६१॥

*हिमवत्पादशिखरे = हिमवतः प्रत्यन्तपर्वतानां शिखरे ॥ १६१ ॥

यहाँ पर मूल में 'हिमवत्पादशिखरे' इस पद का 'हिमालय के पास के पर्वतों के शिखर पर' यह अर्थ समझना चाहिये ॥ १६१ ॥

अथोत्तमाधमकङ्कुष्ठयोर्लक्षणमाह

पीतप्रभं गुरु स्निग्धं श्रेष्ठं कङ्कुष्ठमादिमम् । श्यामं पीतं लघु त्यक्तसत्वं नेष्टं तथाऽण्डकम् ॥

उत्तम कंकुष्ठ के लक्षण—इस में जो पहला भेद (रक्तकाल-संज्ञक) है, वह पीले रङ्गकी कान्तिवाला गुरु तथा स्निग्ध होता है और वही उत्तम होता है।

अधम कंकुष्ठ के लक्षण—जो अण्डक संज्ञक भेद होता है वह सांवला तथा पीला होता है एवम् लघु और निःसार होता है अतः यह निकृष्ट समझा जाता है ॥ १६२ ॥

अथ कङ्कुष्ठस्य नामगुणानाह

कङ्कुष्ठं काककुष्ठं च विरङ्गं कोलकाकुलम् ॥ १६३ ॥
कङ्कुष्ठं रेचनं तिक्तं कटूष्णं वर्णकारकम् । कृमिशोथोदराध्मानगुल्मानाहकफापहम् ॥ १६४ ॥

कंकुष्ठ के संस्कृत नाम—कङ्कुष्ठ, काककुष्ठ, विरङ्ग तथा कोलकाकुल ये सब हैं।

कंकुष्ठ—यह तिक्त तथा कटुरस युक्त, रेचक, उष्ण, वर्णकारक एवम्—कृमि, शोथ, उदररोग, आध्मान, गुल्म, आनाह (अफरा) तथा कफ को दूर करने वाला होता है ॥ १६३–१६४ ॥

कंकुष्ठ क्या है इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद रहा है। भावप्रकाशकार इसके दो भेद मानते हैं तथा उत्पत्ति हिमालय में मानते हैं। रसरत्नसमुच्चय में भी इसके दो भेद 'नलिकाख्य' एवं 'रेणुक' दिये हैं। यह पीतवर्ण का तीव्र विरेचक पदार्थ है जिसकी यवमात्रा (½ रत्ती) से विरेचन होता है तथा यह सत्वरूप होने के कारण इसका सत्व नहीं निकाला जाता ऐसा भी उल्लेख है।

उपर्युक्त शास्त्रीय वर्णन के आधार पर अनेक विद्वानों ने 'गम्बोज' को कंकुष्ठ माना है जो उचित मालूम पड़ता है। इसका वर्णन वटादिवर्ग (पृष्ठ ५३३) में किया जा चुका है।

अन्य मतों में कुछ इसे तत्काल जन्मे हुवे हाथी के बच्चे की विष्ठा, कुछ घोड़े के बच्चे की नाल, कुछ मुर्दासंग (सीसे का यौगिक), स्वर्णक्षीरी, रेवंदचीनी, इत्यादि पदार्थ मानते हैं जिनमें से रेवंदचीनी को ककुष्ठ माना जा सकता है। रेवंदचीनी की जड़ गॅम्बोज के जितनी तीव्र विरेचक नहीं होती। इसका संक्षेप में वर्णन आगे दिया जा रहा है। गॅम्बोज को बाजार में उसारे रेवंन्द (रेवंदचीनी का सत) कहते हैं किन्तु यह रेवंदचीनी का उसारा (सत) नहीं है। गॅम्बोज (उसारे रेवंद) यह एक वृक्ष का निर्यास है और रेवंदचीनी यह एक गुल्म की जड़ है। रेवंदचीनी की जड़ के सत्व की तरह गॅम्बोज में गुण होने के कारण संभवतः गॅम्बोज को भी उसारे रेवंद कहा जाता होगा।

रेवंदचीनी

सं०–पीतमूला, अम्लपर्णी। **हि०**–रेवंदचीनी। **नेपा०**–पदमचल। **गढ़**–अर्चु। **अं०, फा०**–रेवंद, रेवास। **अं०**–Rhubarb (ह्रूबार्ब)। **ले०**–*Rheum emodi Wall.* (हिअम् एमोडी)। Fam. Polygonaceae (पॉलिगोनेसी)।

यह हिमालय, नेपाल, सिक्किम में ११ से १२ हजार फीट की ऊँचाई तक एवं सिमला, कांगड़ा जिला तथा चीन तिब्बत आदि देशों में होती है।

इसका पौधा दृढ़ होता है। काण्ड–पर्णवत्, मजबूत, ४–५ फीट लम्बा, हरी एवं भूरी धारीयों से युक्त होता है। मूलपत्र–बहुत बड़े, लम्बे वृन्त से युक्त, गोलाकार या चौड़ाई लिये अंडाकार, आधार हृदयाकार, ५–७ शिराओं से युक्त, नीचे से मृदुरोमश किन्तु ऊपरी सतह कुछ खुरदरी होती है। पुष्प–छोटे एवं गहरे बैंगनी एवं फल–बैंगनी, ½ इञ्च लम्बे, अंडाकार–आयताकार होते हैं। इसकी शाखा एवं पत्ती जो अम्ल होती हैं, सुखाकर, वेणी की तरह गूथकर अमलबेत के नाम से बेची जाती है।

इसकी अन्य जाति हि० वेब्बिआनम् (R. *w*ebbianum Royle) में पुष्प हलके पीताभ, छोटे एवं फल भी छोटे होते हैं। यह नेपाल से काश्मीर तक १०–१४ हजार फीट तक पाईजाती है।

इस प्रजाति की विभिन्न जातियों के मूल का रेवंदचीनी के नाम से व्यवहार होता है। ६–७ वर्ष पुराने पौधे की मूल का पुष्पोद्गम के पूर्व संग्रह किया जाता है।

इसके टुकड़े भूरे पीले रंग के लंबगोल, १ से ८ इञ्च लंबे, ½ से ३ इञ्च तक व्यास के, लंबाई में झुर्रीदार तथा धारीदार होते हैं। इसका स्वाद तिक्त एवं कषाय तथा इसमें विशेष गन्ध रहती है। इसे चबाने से इसमें के कैल्शियम् ऑक्जेलेट के कारण करकरापन मालूम होता है तथा इससे लार पीली हो जाती है।

रासायनिक संगठन—इसमें मुख्य रूप से ॲन्थ्रॅक्विनोन (Anthraquinone) से व्युत्पन्न द्रव्य पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—यह अल्प मात्रा (½–४ रत्ती) में तिक्त, दीपन एवं ग्राही है। अधिक मात्रा (१–२ माशा) से इसका प्रभाव बृहदांत्र पर होकर ६ से ८ घंटे में विरेचन होता है जो इसमें के ग्राही तत्व के कारण अपने आप बाद में रुक जाता है। मृदु विरेचक रूप मे तथा अजीर्ण से उत्पन्न अतिसार में इसे देते हैं। जीर्ण विबन्ध में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। इससे मूत्र का रंग गहरा हो जाता है। इसके साथ सोंठ, सौंफ आदि सुगंध द्रव्य देने से मरोड़ नहीं होती।

इसको जल में पीसकर लेप करने से सूजन कम होती है।

अथ रत्नम् । तस्य निरुक्तिमाह

धनार्थिनो जनाःसर्वे रमन्तेऽस्मिन्नतीवयत् । ततो रत्नमिति प्रोक्तं शब्दशास्त्रविशारदैः॥१६५॥

रत्न शब्द की निरुक्ति—धन को चाहने वाले सभी लोग इसमें अत्यन्त रमण करते हैं अर्थात् अधिक आनन्दित हो अपना चित्त लगाते हैं—इससे शब्दशास्त्र के जानने वालों ने इसे 'रत्न' कहा है ॥ १६५ ॥

अथ रत्ननामान्याह

रत्नं क्लीबे मणिः पुंसि स्त्रियामपि निगद्यते । तत्तु पाषाणभेदोऽस्ति मुक्तादि च तदुच्यते ॥

रत्न के संस्कृत नाम—रत्न (यह नपुंसकलिङ्गी होता है), मणि (यह पुंल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग दोनों में होता है) ये दोनों हैं। यह (रत्न) पत्थर के भेद हीरा आदि का तथा मोती आदि का बोधक होता है ॥ १६६ ॥

*तथा चामरसिंहः—

रत्नं मणिर्द्वयोरश्मजातौ मुक्ताऽऽदिकेऽपि च ॥ १६६ ॥

यहाँ पर अमरसिंह ने भी अमरकोश में इसी बात को कहा है कि—"रत्न (नपुंसकलिङ्गी) तथा मणि (यह पुंलिङ्गी तथा स्त्रीलिङ्गी भी है) ये दोनों शब्द पत्थर की जाति हीरा आदि और मोती आदि के वाचक हैं।" यह समझना चाहिये ॥ १६६ ॥

अथ रत्नानां संख्यामाह

रत्नं गारुत्मतं पुष्परागो माणिक्यमेव च । इन्द्रनीलश्च गोमेदस्तथा वैदूर्यमित्यपि ॥
मौक्तिकं विद्रुमश्चेति रत्नान्युक्तानि वै नव ॥ १६७ ॥

रत्नों की संख्या—रत्न (हीरा), गारुत्मत (पन्ना), पुष्पराग (पुखराज), माणिक्य (मानिक), इन्द्रनील (नीलम), गोमेद, वैदूर्य (लहसुनिया), मौक्तिक (मोती), विद्रुम (मूंगा) ये नव रत्न कहे हुये हैं ॥ १६७ ॥

अथ विष्णुधर्मोत्तरेऽपि नवरत्ननिरूपणमाह

मुक्ताफलं हीरकं च वैदूर्यं पद्मरागकम् ॥ १६८ ॥
पुष्परागं च गोमेदं नीलं गारुत्मतं तथा । प्रवालयुक्तान्येतानि महारत्नानि वै नव ॥१६९॥

विष्णुधर्मोत्तर में भी नवरत्न का निरूपण इस प्रकार है कि—१ मोती, २ हीरा, ३ लहसुनिया, ४ मानिक, ५ पोखराज, ६ गोमेद, ७ नीलम, ८ पन्ना, ९ मूंगा ये नव महारत्न हैं ॥ १६८–१६९ ॥

तत्र हीरकः । तस्य नामानि सलक्षणान् भेदानाह

हीरकः पुंसि वज्रोऽस्त्री चन्द्रो मणिवरश्च सः । स तु श्वेतः स्मृतो विप्रो लोहितः क्षत्रियः स्मृतः ।
पीतो वैश्योऽसितः शूद्रश्चतुर्वर्णात्मकश्च सः ॥ १७० ॥

हीरा के संस्कृत नाम—हीरक (पुंलिङ्ग), वज्र (पुंलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग), चन्द्र और मणिवर ये सब हैं । भेदों के लक्षण—जो हीरा सफेद रङ्ग का होता है वह—ब्राह्मण, लाल रङ्ग का—क्षत्रिय, पीले रङ्ग का—वैश्य, असित रंग का शूद्र वर्ण का होता है, इस भांति से हीरा की ४ जातियां होती हैं ॥ १७० ॥

अथ तद्भेदानां गुणानाह

रसायने मतो विप्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः । क्षत्रियो व्याधिविध्वंसी जरामृत्युहरः स्मृतः ॥
वैश्यो धनप्रदः प्रोक्तस्तथा देहस्यदार्ढ्यकृत् । शूद्रो नाशयति व्याधीन् वयःस्तम्भं करोति च ॥

हीरा के भेदों के गुण—ब्राह्मण वर्ण का हीरा—रसायन के लिये उपयोगी तथा सर्वसिद्धियों का देनेवाला होता है । क्षत्रिय वर्ण का हीरा—रोगों को नष्ट करने वाला एवम् जरा (बुढ़ापा) तथा मृत्यु को दूर करने वाला होता है । वैश्यवर्ण का हीरा धन देनेवाला तथा देह को दृढ़ करने वाला होता है । शूद्रवर्ण का हीरा—रोगों को नाश करने वाला तथा आयु को स्थिर रखने वाला अर्थात् शरीर में वृद्धावस्थाजन्य क्षीणता को नहीं आने देने वाला होता है ॥ १७१–१७२ ॥

अथ पुंस्त्रीनपुंसकभेदात् त्रिविधस्य तस्य लक्षणानिगुणानुपयोगविषयाँश्चाह

पुंस्त्रीनपुंसकानीह लक्षणीयानि लक्षणैः । सुवृत्ताः फलसम्पूर्णास्तेजोयुक्ता बृहत्तराः ॥
पुरुषास्ते समाख्याता रेखाबिन्दु विवर्जिताः । रेखाबिन्दुसमायुक्ताः षडस्रास्ते स्त्रियः स्मृताः ॥

हीरे के अन्य प्रकार से तीन भेद—हीरे के पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक ये तीन भेद होते हैं जो आगे कहे जाने वाले लक्षणों से पहचाने जाते हैं । लक्षण—पुरुष जाति के जो हीरे होते हैं वे भली भाँति गोलाकार, फल से पूर्ण, तेज से युक्त, अत्यन्त बड़े एवम् रेखा तथा बिन्दु से रहित होते हैं । स्त्री जाति के हीरे—पूर्वोक्त गुणों से युक्त होते हुये केवल रेखा बिन्दुओंसे युक्त तथा ६ कोण वाले होते हैं ॥ १७३–१७४ ॥

* षडस्त्रा=षट्कोणा ॥ १७३–१७४ ॥

यहाँ पर मूल में "षडस्राः" पद से ६ कोण वाले यह अर्थ समझना चाहिये ॥ १७३–१७४ ॥

त्रिकोणाश्च सुदीर्घास्ते विज्ञेयाश्च नपुंसकाः । तेषु स्युः पुरुषाः श्रेष्ठा रसबन्धनकारिणः ॥
स्त्रियः कुर्वन्ति कायस्य कान्तिं स्त्रीणां सुखप्रदाः । नपुंसकास्त्ववीर्याः स्युरकामा सत्त्ववर्जिताः
स्त्रियः स्त्रीभ्यः प्रदातव्याः क्लीवंक्लीवे प्रयोजयेत् । सर्वेभ्यः सर्वदादेयाःपुरुषा वीर्यवर्धना ॥

नपुंसक जाति के हीरे—त्रिकोण युक्त तथा अधिक लम्बे होते हैं ।

गुण—इनमें पुरुष-जाति के हीरे-श्रेष्ठ तथा रस के बन्धन करने वाले होते हैं । स्त्री-जाति के हीरे-शरीर की कान्ति को बढ़ाने वाले एवम् विशेष रूप से स्त्रियों के लिये सुखदायी होते हैं । नपुंसकजाति के हीरे—वीर्यहीन, काम ह्रासक तथा शक्ति से रहित होते हैं ।

उपयोग के विषय—स्त्री जाति के हीरे—स्त्रियों के लिये, नपुंसक जाति के हीरे—नपुंसकों के लिये देने चाहिये एवं वीर्यवर्धक पुरुष जाति के हीरे—सभी के लिये सदा देने योग्य होते हैं ॥ १७५–१७७ ॥

अथाशुद्धहीरकदोषानाह

अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्वव्यथां तथा । पाण्डुतां पङ्गुलत्वं च तस्मात्संशोध्य मारयेत् ॥

अशुद्ध हीरा के दोष—विना शोधन किया हुआ हीरा—कुष्ठ, पसलियों में पीड़ा, पाण्डु तथा पङ्गु रोग (पङ्गुल) को उत्पन्न करने वाला होता है अत एव शोधन करके भस्म करना उचित है १७८ ॥

अथ मारितस्य वज्रस्य गुणानाह

आयुः पुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च । सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रं न संशयः ॥

भली भाँति शुद्ध हीरे के भस्म के गुण—हीराभस्म—आयु, पुष्टि, बल, वीर्य, शरीर का सुन्दर वर्ण तथा सुख की वृद्धि करता है । अतः सेवन करने से वह सम्पूर्ण रोगों को दूर करने वाला होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १७९ ॥

अथ गारुत्मतम् (पन्ना इति लोके) । तस्य नामान्याह

गारुत्मतं मरकतमश्मगर्भो हरिन्मणिः ॥ १८० ॥

पन्ना के संस्कृत नाम-गारुत्मत , मरकत, अश्मगर्भ और हरिन्मणि ये सब हैं ।

अथ माणिक्यम् (चुन्नी) । तस्य नामान्याह

माणिक्यं पद्मरागः स्याच्छोणरत्नञ्च लोहितम् ॥ १८१ ॥

मानिक के संस्कृत नाम—माणिक्य, पद्मराग, शोणरत्न और लोहित ये सब हैं ॥ १८१ ॥

अथ पुष्परागः (पुखराज) । तस्य नामान्याह

पुष्परागो मञ्जुमणिः स्याद्वाचस्पतिवल्लभः ॥ १८२ ॥

पोखराज के संस्कृत नाम—पुष्पराग, मन्जुमणि तथा वाचस्पतिवल्लभ ये सब हैं ॥ १८२ ॥

अथेन्द्रनीलं गोमेदश्च (नीलम और गोमेदमणि) । तयोर्नामान्याह

नीलं तथेन्द्रनीलञ्च गोमेदः पीतरत्नकम् ॥ १८३ ॥

नीलम के संस्कृत नाम—नील और इन्द्रनील ये सब हैं।
गोमेद के संस्कृत नाम—गोमेद तथा पीतरत्नक ये सब हैं ॥ १८३ ॥

अथ वैदूर्यम् (लहसुनिया) । तस्य नामान्याह

वैदूर्यं दूरजं रत्नं स्यात्केतुग्रहवल्लभम् ॥ १८४ ॥

लहसुनिया के संस्कृत नाम—वैदूर्य, दूरज रत्न तथा केतुग्रहवल्लभ ये सब हैं ॥ १८४ ॥

अथ मौक्तिकम् । तस्य नामान्युद्भवस्थानानि गुणाँश्चाह

मौक्तिकं शौक्तिकं मुक्ता तथा मुक्ताफलञ्च तत् । शुक्तिः शङ्खो गजः क्रोडः फणी मत्स्यश्च दर्दुरः ॥
वेणुरेते समाख्यातास्तज्ज्ञैर्मौक्तिकयोनयः । मौक्तिकं शीतलं वृष्यं चक्षुष्यं बलपुष्टिदम् ॥

मोती के संस्कृत नाम—मौक्तिक, शौक्तिक, मुक्ता तथा मुक्ताफल ये सब हैं। मोती के उत्पत्ति स्थान—सीप, शङ्ख, हाथी, सूअर, साँप, मछली, मेढक और बाँस ये आठ मोतियों के निकलने के स्थान मोतियों के विषय में अभिज्ञ लोगों ने बतलाये हैं ॥

मोती—शीतल, वीर्यवर्धक, नेत्रों के लिये हितकर, बल तथा पुष्टि को देने वाला होता है ॥ १८५ ॥

अथ प्रवालः (मूँगा) । तस्य नामान्याह

पुंसि क्लीबे प्रवालः स्यात्पुमानेव तु विद्रुमः ॥ १८६ ॥

मूँगा के संस्कृत नाम—प्रवाल (यह पुँलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग में होता है) तथा विद्रुम (यह केवल पुँल्लिङ्ग में होता है) ये सब हैं ॥ १८६ ॥

अथ रत्नानां गुणानाह

रत्नानि भक्षितानि स्युर्मधुराणि सराणि च । चक्षुष्याणि च शीतानि विषघ्नानि धृतानि च ॥
मङ्गल्यानि मनोज्ञानि ग्रहदोषहराणि च ॥ १८७ ॥

रत्नों के गुण—पूर्वोक्त रत्नों के भस्म खाने पर मधुर रसयुक्त, सारक, नेत्रों के लिये हितकर, शीतल तथा विषनाशक होते हैं। और धारण करने पर-मङ्गलदायक, सुन्दरता को बढ़ाने वाले तथा ग्रह सम्बन्धी दोषों को दूर करने वाले होते हैं ॥ १८७ ॥

किं रत्नं कस्य ग्रहस्य प्रीतिकारित्वेन दोषहरं भवतीति प्रश्ने तदुत्तरमाह, रत्नमालायाम्—

माणिक्यं तरणेः सुजातममलं मुक्ताफलं शीतगो-
र्माहेयस्य तु विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गारुत्मतम् ।
देवेज्यस्य च पुष्परागमसुराचार्यस्य वज्रं शने-
र्नीलं निर्मलमन्ययोर्निगदिते गोमेदवैदूर्यके ॥ १८८ ॥

"कौन रत्न किस ग्रह की प्रसन्नता उत्पन्न करने से उसके दोष को दूर करने वाले होते हैं" इस प्रश्न का उत्तर "रत्नमाला" में इस प्रकार दिया हुआ है—

मानिक—सूर्य का, अच्छी जाति का निर्मल मोती–चन्द्रमा का, मूंगा-मङ्गल का, पन्ना-बुध का, पोखराज-बृहस्पति का, हीरा-शुक्र का, निर्मल नीलम-शनि का, गोमेद और लहसुनिया ये दोनों-क्रम से राहु तथा केतु के रत्न कहे हुये हैं। अतः इनके धारण करने से उन उन ग्रहों के दोष दूर होते हैं ॥ १८८ ॥

अथोपरत्नानि । तेषां निरूपणमाह

उपरत्नानि काचश्च कर्पूराश्मा तथैव च । मुक्ताशुक्तिस्तथा शङ्ख इत्यादीनि बहून्यपि ॥१८९॥

उपरत्नों का निरूपण—काच, कर्पूरनिया, सीप तथा शंख इत्यादि बहुत से उपरत्न हैं ॥१८९ ॥

***उपरत्नानि = गौणरत्नानि । कर्पूराश्मा = कर्पूरा, कर्पूरनिया । मुक्ताशुक्तिः = 'सीप' इति लोके प्रसिद्धा॥ १८९ ॥**

यहां पर मूल में—"उपरत्न" से गौणरत्न अर्थ समझना चाहिये। "कर्पूराश्मा" से कर्पूरा या कर्पूरनिया, "मुक्ताशुक्ति" से "सीप" अर्थ समझना चाहिये ॥ १८९ ॥

अथ तेषां गुणानाह

गुणा यथैव रत्नानामुपरत्नेषु ते तथा । किन्तु किञ्चित्ततो हीना विशेषोऽयमुदाहृतः ॥१९०॥

उपरत्नों के गुण—रत्नों में जो गुण होते हैं वे ही गुण उपरत्नों में भी होते हैं किन्तु विशेषता यह है कि रत्नों की अपेक्षा इनमें स्वल्प होते हैं ॥ १९० ॥

अथ विषम् । तस्य नाम भेदानाह

विषं तु गरलः क्ष्वेडस्तस्य भेदानुदाहरे । वत्सनाभः सहारिद्रः सक्तुकश्च प्रदीपनः ॥
सौराष्ट्रिकः शृङ्गिकश्च कालकूटस्तथैव च । हालाहलो ब्रह्मपुत्रो विषभेदा अमी नव ॥ १९१ ॥

विष के संस्कृत नाम—विष (नपुंसकलिङ्ग), गरल तथा क्ष्वेड ये सब हैं।

भेद–१ वत्सनाभ, २ हारिद्र, ३ सक्तुक, ४ प्रदीपन, ५ सौराष्ट्रिक, ६ शृङ्गिक, ७ कालकूट, ८ हालाहल, ९ ब्रह्मपुत्र ये ९ भेद स्थावर विष के होते हैं ॥ १९१ ॥

विषवर्ग

वक्तव्य—यहां पर विषों के ९ भेद बतलाये गये हैं जिनमें से वत्सनाभ एवं शृङ्गिक व्यवहार में प्रयोग में लाये जाते हैं। अन्य विषों का व्यावहारिक ज्ञान लुप्तप्राय है। वत्सनाभ एवं शृङ्गिक के नाम से जिन द्रव्यों का व्यवहार में उपयोग किया जाता है वह एकोनाइट (Aconite) की विभिन्न जातियों (Species) के मूल हैं किन्तु इनका जो स्वरूप निम्न मूल श्लोकों में वर्णन किया गया है वह एकोनाइट से पूर्ण रूप से मेल नहीं खाता। चूंकि एकोनाइट की और भी अनेक विषैली जातियां पाई जाती हैं इसलिये संभव है कि उपर्युक्त विषों में से कुछ अन्य भेद भी इन्हीं में से हों। इस संबन्ध में व्यापक अनुसंधान की आवश्यकता है।

तत्र वत्सनाभः । तस्य स्वरूपनिरूपणमाह

सिन्दुवारसदृक्पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा । यत्पार्श्वे न तरोर्वृद्धिर्वत्सनाभः स भाषितः ॥

वत्सनाभ विष के स्वरूप का वर्णन–जिसके पत्ते संभालू के पत्तों के समान हों तथा आकार बछड़े की नाभि के समान हो और जिसके नजदीक दूसरे वृक्षों की वृद्धि न हो सकती हो उसे 'वत्सनाभ' समझना चाहिये ॥ १९२ ॥

वक्तव्य—व्यवहार में जिस द्रव्य का उपयोग किया जाता है उससे उपर्युक्त वर्णन मेल नहीं खाता।

वत्सनाभ

हिं०—विष, मीठा विष, बच्छनाग, बचनाग, तेलिया विष। **बं०**-कठ विष, बत्सनाब विष, विष। **म०**—बचनाग। **गु०**—बच्छनाग, वसनाग। **क०**—वसनाबी। **ते०**—नाभि, वसनाभि। **पं०**—मीठा विष। **ता०**—वत्सनाभि। **अ०**—विष। **फा०**—विषनाग, जहर। **अं०**-Aconite (एकोनाइट)। **ले०**-*Aconitum ferox Wall.* (एकोनाइटम फेरॉक्स)। Fam. Ranunculaceae (रेनन्क्यूलेसी)।

यह हिमालय की चोटियों पर, नेपाल तथा आसाम में उत्पन्न होता है। इसका क्षुप–१-२ हाथ ऊँचा होता है। पत्ते–करतलाकार एवं अनेक भागों में विभक्त होते हैं। पुष्प–लंबे पुष्पदण्ड पर नीले पुष्प आते हैं। मूल–युग्म एवं कंदसदृश होता है जिसमें नये वर्ष का कन्द १-१ १/५ इञ्च लम्बा २/५-३/५ इञ्च मोटा, अंडाकार आयताकर से लेकर दीर्घवृत्ताकार, कुछ सूत्राकार उपमूलों से युक्त एवं तोड़ने पर कुछ पिष्टमय पीताभ होता है। तथा पहले वर्ष का कन्द बहुत सिकुड़ा हुआ एवं झुर्रीदार होता है। इसमें गन्ध नहीं होती और स्वाद में पहले मीठा और फिर कुछ कड़वा जान पड़ता है। चबाने से थोड़ी देर बाद चिनचिनाहट और शून्यता मालूम होती है जो कुछ समय तक बनी रहती है।

वक्तव्य—भारत में एकोनाइट (Aconite) की २४ जातियां (Species) पाई जाती हैं। एकोनाइटम नेपेल्लस (Aconitum napellus Linn.) जो ब्रिटिश फार्माकोपिया में मान्य है अपने यहां नहीं होता। उसका प्रतिनिधि ए. चॅस्मेन्थम् है जिसका विस्तृत वर्णन आगे श्रृङ्गिक के अन्तर्गत किया गया है। यह ए. नेपेल्लस से अधिक वीर्यवाला होता है। यह भी बाजार में कम आता है। ए. फेराक्स के नाम से बाजार में इसके साथ ए. डिनोह्राइझम (A. deinorrhizum Stapf) एवं ए. बालफोराई (A. balfourii Stapf) के मूल अधिक मात्रा में आते हैं। इसमें ए. लेसिनिएटम (A. laciniatum Stapf) एवं ए. स्पाइकेटम (A. spicatum Stapf) के मूलों का भी मिश्रण रहता है। इन्हीं में से सफेद जाति के नाम से ए. डिनोह्राइझम तथा ए. बालफोराई के मूल बिकते हैं। वत्सनाभ तथा शृङ्गिक इन्हीं विभिन्न जातियों में से हैं तथा इनके गुणकर्मों में समानता होने के कारण एक का दूसरे के स्थान पर प्रयोग होता है। शृङ्ग के समान मूल वैसे तो कुछ-कुछ सभी जातियों का है किन्तु ए. डिनोह्राइझम का कुछ अधिक शृङ्ग समान मालूम होता है। मूलों को काला बनाने के लिये व्यापारी कई प्रक्रियाओं को करते हैं। एक में इन्हें कसीस के साथ गोमूत्र में भिगोकर उबालते हैं तथा बाद में सुखाकर ऊपर से सरसों का तेल लगा देते हैं। ऐसी धारणा है कि इस विधि से इसमें कीड़े नहीं लगते।

उपर्युक्त विषैली जातियों के अतिरिक्त एकोनाइट की कुछ ऐसी भी जातियां हैं जिनमें विषैलापन नहीं होता जैसे **अतिविषा एवं प्रतिविषा**। इनको मुख में रखने से चुनचुनाहट नहीं होती जैसी विषैली जातियों में होती है। इनका वर्णन पहले हरीतक्यादि वर्ग में (पृष्ठ १२७) किया गया है। इन विषैली जातियों के गुणधर्मों में समानता होने के कारण इसके गुण, प्रयोग आदि आगे शृङ्गिक के साथ ही दिये गये हैं।

अथ हारिद्रः । तस्य स्वरूपनिरूपणमाह

हरिद्रातुल्यमूलो यो हारिद्रः स उदाहृतः ॥ १९३ ॥

हारिद्र विष का स्वरूप—हल्दी के तुल्य जिसकी जड़ हो उसे "हारिद्र विष' कहते हैं ॥१९३॥

अथ सक्तुकः । तस्य स्वरूपमाह

यद्ग्रन्थिः सक्तुकेनैव पूर्णमध्यः स सक्तुकः ॥ १९४ ॥

सक्तुक का स्वरूप–जिसकी गाँठें भीतर से सत्तू के समान चूर्ण से युक्त हों वह "सक्तुक" विष कहलाता है ॥ १९४ ॥

अथ प्रदीपनः । तस्य स्वरूपमाह

वर्णतो लोहितो यः स्याद्दीप्तिमान् दहनप्रभः। महादाहकरः पूर्वैः कथितः स प्रदीपनः ॥१९५॥

प्रदीपन विष का स्वरूप— जिसका वर्ण लाल हो तथा जो अग्नि के समान कान्ति वाला एवम् अत्यन्त दाहकारक हो उसे "प्रदीपन" विष पूर्व के विद्वानों ने कहा है ॥ १९५ ॥

अथ सौराष्ट्रिकः । तस्य स्वरूपमाह

सुराष्ट्रविषये यः स्यात्स सौराष्ट्रिक उच्यते ॥ १९६ ॥

सौराष्ट्रिक विष का स्वरूप—सुराष्ट्र (गुजरात) देश में जो उत्पन्न होने वाला विष है उसे "सौराष्ट्रिक" कहते हैं ॥ १९६ ॥

अथ शृङ्गिकः । तस्य स्वरूपमाह

यस्मिन् गोशृङ्गके बद्धे दुग्धं भवति लोहितम्। स शृङ्गिक इति प्रोक्तो द्रव्यतत्त्वविशारदैः ॥

शृङ्गिक का स्वरूप—द्रव्यों के तत्त्व को जानने वाले पण्डितों ने उसे "शृङ्गिक" कहा है जिसे गौ के सींग में बांध देने से उसका दूध लाल वर्ण का हो जाता है ॥ १९७ ॥

शृङ्गिक विष

वक्तव्य—इससे संबंधित वक्तव्य पहले विषवर्ग एवं वत्सनाभ के साथ लिखा गया है जिसे पाठक वहीं देखें। एकोनाइट की एक महत्त्व की जाति का वर्णन, गुण, प्रयोग आदि यहाँ दिया जा रहा है जो सभी विषैली एकोनाइट के लिये सामान्य है। वत्सनाभ से निम्न जाति अधिक वीर्यवान् होने के कारण ग्रन्थोक्त प्रमाण से इसको आधी मात्रा में योगों में डालना चाहिये।

सं०–शृङ्गिक (जो रोग को नष्ट करे या जो शृङ्ग के सदृश हो)। हिं–मोहरी, पिऊं, सिंघिया विष। कश्मी०–बनबलनग, मोहरी। अं०–Indian Aconite (इण्डियन एकोनाइट)। ले०–*Aconitum chasmanthum Stapf ex Holmes* (एकोनाइटम चेस्मेन्थम)। Fam. Ranunculaceae (रेनन्क्यूलेसी)।

यह पश्चिम हिमालय के चित्राल एवं हजारा से कश्मीर तक, ७००० से १२००० फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है।

इसका क्षुप–द्विवर्षायु एवं २ से ४ फीट ऊंचा होता है। पत्ते–अनेक, नीचे के अधिक लंबे वृन्त युक्त फलक १ ३/५-२ २/५ इञ्च लंबा एवं २-३ ३/५ इञ्च चौड़ा, करतलाकार त्रिखण्डित जिनके खण्ड अनेक रेखाकार भागों में विभक्त रहते हैं। पुष्प–नीले या नील मिश्रित श्वेताभ प्रायः १ फीट लंबे गुच्छ में आते हैं। फल–फलियां कंगुरेदार होती हैं।

मूल–युग्म एवं कन्दसदृश होता है। नये वर्ष का कन्द शंक्वाकार, शंक्वाकार–बेलनाकार, आधार की तरफ चौड़ा, क्वचित् २ इंच तक लंबा एवं १/२-३/४ इञ्च मोटा, गहरे भूरे या कृष्णाभ भूरे रंग का, चिकना किन्तु सूखनेपर झुर्रीदार एवं अनेक उपमूलों या टूटे हुये उनके चिन्हों से युक्त होता है। तोड़ने पर भग्न उपास्थिसदृश (Cartilaginous), कठोर, बाह्य भाग में भूरापन लिये हुवे एवं भीतर श्वेत होता है। प्रथमवर्ष का कंद सिकुड़ा हुआ, एवं गहरी झुर्रीयों से युक्त होता है। यह बाहर से कृष्ण एवं अन्दर संपूर्ण भूरा होता है। इनका स्वाद प्रारंभ में कुछ कड़वा तथा बाद में चुनचुनाहट बनी रहती है। इनका संग्रह सितंबर के अंत में किया जाता है।

शोधन—इन्हीं मूलों का शोधन के पश्चात् चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। इनको टुकड़े टुकड़े कर, ३ दिन ताजे गोमूत्र में भिगोकर, चौथे दिन गाय के दूध में दोलायंत्र में ३ घंटे मंद आँच पर पकावे। फिर उष्णजल से धोकर छाया में सुखा लें। इस विधि से इनका विषैलापन कम हो जाता है। बाह्य प्रयोग के लिये अशोधित द्रव्य का उपयोग किया जा सकता है।

रासायनिक संगठन—इसमें इन्डेकोनाइटीन (Indaconitine, $C_{34}H_{47}O_{10}N$) नामक विषैला क्षाराभ ४·३% होता है। यह क्षाराभ की मात्रा ब्रिटिश फार्माकोपिया में मान्य द्रव्य ए. नेपेल्लस से १० गुना अधिक है किन्तु एकोनाइटीन से केवल ०·७ गुना कार्यकर है। इसके विलयन की अत्यल्प मात्रा को जिह्वाग्र पर लगाने से उसी की तरह चुनचुनाहट होती है। इसके अतिरिक्त इसमें एकोनाइटिक एसिड एवं स्टार्च पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, व्यवायि, ज्वरघ्न, स्वेदजनन, हृदयोत्तेजक, पीडाशामक, शोथहर, कफवातहर एवं वल्य है। यह अत्यन्त विषैला होनेके कारण इसका सावधानी के साथ प्रयोग करना चाहिये। आधुनिक मत के अनुसार इसके प्रयोग से वातनाड़ियों के परिसरीय अंतिम भागों की क्रिया कम हो जाती है। अल्प मात्रा में इसका हृदय पर कोई परिणाम नहीं होता है किन्तु अधिक मात्रा से नाडी की गति तथा शक्ति कम होती है जिससे रक्त का दबाव भी कम हो जाता है। हृदय के विकारों में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

आयुर्वेद में इसका प्रयोग अन्य औषधियों के साथ ज्वर, अतिसार, अग्निमांद्य, ग्रहणी, कास, श्वास एवं वातरोगों में किया जाता है। शोथ के कारण जब ज्वर हो तथा शरीर के किसी अंग में पीडा हो तो इससे अच्छा लाभ होता है।

शरीर के किसी अंग में जब पीडा रहती है तब इसका बाह्य लेप भी करते हैं। इसका प्रचूषण चर्म से भी होने के कारण बाह्य लेप में भी सावधानी आवश्यक है। (विस्तृत प्रयोगों के लिये रसरत्नसमुच्चय अ० २९ देखें)।

विषलक्षण—अधिक मात्रा से विषैले लक्षण उत्पन्न होते हैं। अंगुलियों में शून्यता तथा बाद में चुनचुनाहट एक विशिष्ट लक्षण है। पेट में गरमी का अनुभव, हृल्लास, श्वास तथा नाडी की मन्द गति तथा चर्म शीतल एवं आर्द्र आदि लक्षण विषाक्तता के द्योतक हैं।

विष चिकित्सा—इसमें रोगी को लेटाकर रखना, उष्णता पहुंचाना, वमन कराना या आमाशय प्रक्षालन कराना एवं आवश्यक होने पर कृत्रिम श्वसन कराना आदि उपाय करने चाहिये। उत्तेजक औषधियां जैसे स्ट्रिकनीन, एट्रोपीन, कोरामीन, डिजिटॅलिस आदि का आवश्यकतानुसार प्रयोग करना चाहिये। गाय के घृत में सोहागा मिलाकर पिलाने से या घृत एवं शहद के साथ अर्जुन की छाल का चूर्ण चटाने से भी विष प्रभाव दूर होता है (रसकामधेनु)।

मात्रा—$\frac{१}{१६}$ से $\frac{१}{८}$ रत्ती।

अथ कालकूटः । तस्योत्पत्तिं स्वरूपञ्चाह

देवासुररणे देवैर्हतस्य पृथुमालिनः । दैत्यस्य रुधिराज्जातस्तरुरश्वत्थसन्निभः ॥
निर्यासः कालकूटोऽस्य मुनिभिः परिकीर्त्तितः । सोऽहिक्षेत्रे शृङ्गवेरे कोङ्कणे मलये भवेत् ॥

कालकूट विष का उत्पत्तिस्थान—देवता तथा असुरों के युद्ध में जब देवताओं ने पृथुमाली नामक दैत्य को मारा तब उसके रुधिर से जो पीपल के समान वृक्ष उत्पन्न हुआ, उसी के गोंद को मुनियों ने "कालकूट" कहा है। वह अहिक्षेत्र, शृङ्गवेर, कोंकण तथा मलय देश में उत्पन्न होता है ॥१९८॥

अथ हालाहलः । तस्य स्वरूपमुत्पत्तिं चाह

गोस्तनाभफलो गुच्छस्तालपत्रच्छदस्तथा । तेजसा यस्य दह्यन्ते समीपस्था द्रुमादयः ॥
असौ हालाहलो ज्ञेयः किष्किन्धायां हिमालये । दक्षिणाब्धितटे देशे कोङ्कणेऽपि च जायते ॥

हालाहल विष का स्वरूप—जिसके फलों के गुच्छे—दाख के फलों के गुच्छों के समान हों तथा पत्ते—ताल के पत्तों के समान हों, एवम्—जिसके तेज से समीप के पेड़ जल जाते हों, उसे "हालाहल" विष समझना चाहिये। यह—किष्किन्धा, हिमालय पर्वत, दक्षिण समुद्रतट के देश तथा कोंकण में उत्पन्न होता है ॥ १९९ ॥

अथ ब्रह्मपुत्रः । तस्य स्वरूपमाह

वर्णतः कपिलो यः स्यात्तथा भवति सारतः । ब्रह्मपुत्रः स विज्ञेयो जायते मलयाचले ॥

ब्रह्मपुत्र विष का स्वरूप—जिसका वर्ण कपिल रङ्ग का हो तथा जिसका सार भाग भी कपिल वर्ण का हो उसे "ब्रह्मपुत्र विष" जानना चाहिये और वह मलय पर्वत पर उत्पन्न होता है ॥२००॥

अथ विषस्य लक्षणोपयोगसहितान् भेदानाह

ब्राह्मणः पाण्डुरस्तेषु क्षत्रियो लोहितप्रभः । वैश्यः पीतोऽसितः शूद्रो विष उक्तश्चतुर्विधः ॥
रसायने विषं विप्रं क्षत्रियं देहपुष्टये । वैश्यं कुष्ठविनाशाय शूद्रं दद्याद्वधाय हि ॥ २०२ ॥

विष के भेद—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ये ४ भेद विष के हैं। उनके लक्षण—इनमें ब्राह्मण जाति का विष—पाण्डुर (श्वेत) वर्ण का, क्षत्रिय जाति का विष—रक्तवर्ण का, वैश्य जाति का विष—पीले वर्ण का तथा शूद्र जाति का विष—काले वर्ण का होता है।

उपयोग—इनमें ब्राह्मण जाति का विष—रसायन के कार्य में, क्षत्रिय जाति का विष—शरीर को पुष्ट करके के लिये, वैश्य जाति का विष—कुष्ठ दूर करके के लिये तथा शूद्र जाति का विष—वध करने के कार्य में उपयोगी होता है ॥ २०१–२०२ ॥

अथ विषस्य दुर्गुणानाह

विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च । आग्नेयं वातकफहृद्योगवाहि मदावहम् ॥२०३॥

विष के दुर्गुण—विष—प्राणनाशक, व्यवायी, विकाशी, आग्नेय, वात तथा कफ नाशक, योगवाही तथा मदावह होता है ॥ २०३ ॥

***व्यवायि = सकलकायगुणव्यापनपूर्वकं पाकगमनशीलम् । विकाशि = ओजःशोषपूर्वकं सन्धिबन्धशिथिलीकरणशीलम् । आग्नेयम् = अधिकाग्न्यंशम् । योगवाहि = सङ्गिगुणग्राहकम् । मदावहं = तमोगुणाधिक्येन बुद्धिविध्वंसकम् ॥ २०३ ॥**

यहां पर मूल में "व्यवायि" का "प्रथम सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर तत्पश्चात् पचने वाला" यह अर्थ समझना चाहिये और "विकाशि" पद का 'शरीर में स्थित ओज को सुखाता हुआ सारे सन्धिबन्धनों को शिथिल करने वाला"; "आग्नेयम्" पद का "अधिक अग्नि के अंश से युक्त"; "योगवाहि" पद का "अपने साथी के गुणों को उत्तेजित करने वाला" तथा "मदावहम्" पद का "तमो गुण की अधिकता से बुद्धि का विध्वंस करने वाला" यह अर्थ समझना चाहिये ॥ २०३ ॥

अथ शोधितविषस्य गुणानाह

तदेव युक्तियुक्तं तु प्राणदायि रसायनम् । योगवाहि त्रिदोषघ्नं बृंहणं वीर्यवर्द्धनम् ॥ २०४ ॥

शुद्ध किया हुआ विष—यदि पूर्वोक्त विषों को युक्ति युक्त करके अर्थात् शास्त्रानुकूल शुद्ध करके खाया जाय तो वे ही प्राण शक्ति को बढ़ाने वाले, रसायन (जरा-अपमृत्यु को दूर करने वाले), योगवाही, त्रिदोषनाशक, बृंहण (रस रक्तादि वर्धक) एवं वीर्यवर्धक हो जाते हैं ॥ २०४ ॥

अथ विषशोधनस्यावश्यकतामाह

ये दुर्गुणा विषेऽशुद्धे ते स्युर्हीना विशोधनात् । तस्माद्विषं प्रयोगेषु शोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥

विषों के शोधने की आवश्यकता—जो दुर्गुण अशुद्ध (बिना शोधे हुए) विष में कहे हुये हैं, वे सब शोधन करने से अत्यन्त कम हो जाते हैं। अतः औषधियों में विष का शोधन करके ही प्रयोग करना उचित है ॥ २०५ ॥

अथोपविषाः । तेषां निरूपणमाह

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गली करवीरकः । गुञ्जाऽहिफेनो धत्तूरः सप्तोपविषजातयः ॥ २०६ ॥

उपविषों का निरूपण—(१) मदार का दूध, (२) थूहर का दूध, (३) कलिहारी, (४) कनेर, (५) घुंमची, (६) अफीम एवं (७) धतूरा ये सात उपविष की जातियाँ हैं ॥ २०० ॥

***उपविषाः = गौणविषाः । एषां गुणास्तत्र तत्र द्रष्टव्याः ॥ २०६ ॥**

यहाँ पर मूल में "उपविष" का "गौणविष" यह अर्थ समझना चाहिये और इन सब के गुण जहाँ २ पर पहले उल्लिखित हों वहाँ २ पर कृपया देख लें, जैसे—

मदार के	दूधका गुण—	गुडूच्यादिवर्ग—	पृ० ३०३
थूहर के	,,	,,	,, ३०७
कलिहारीका	गुण	,,	,, ३१२
कनेर का	,,	,,	,, ३१४
गुञ्जा का	,,	,,	,, ३५४
अफीम का	,,	हरीतक्यादिवर्ग—	,, १४७
धतूरे का	,,	गुडूच्यादिवर्ग—	,, ३१७

इन सब स्थानों पर देख लें ॥ २०६ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे अष्टम धात्वादिवर्गः समाप्तः ॥ ८ ॥

अथ नवमो धान्यवर्गः

तत्र धान्यानां भेदाः । तानाह

शालिधान्यं व्रीहिधान्यं शूकधान्यं तृतीयकम् ।
शिम्बीधान्यं क्षुद्रधान्यमित्युक्तं धान्यपञ्चकम् ॥ १ ॥

धान्यों के भेद— १ शालिधान्य, २ व्रीहिधान्य, ३ शूकधान्य, ४ शिम्बीधान्य, ५ क्षुद्रधान्य ये ५ भेद हैं ॥ १ ॥

अथ शाल्यादीनां भेदानाह

शालयो रक्तशाल्याद्या व्रीहयः षष्टिकादयः । यवादिकं शूकधान्यं मुद्गाद्यं शिम्बिधान्यकम् ॥
कङ्ग्वादिकं क्षुद्रधान्यं तृणधान्यञ्च तत्स्मृतम् ॥ २ ॥

शालिधान्य आदि के भेद—शालिधान्य के-रक्तशालि (लाल चावल) आदि, व्रीहिधान्य के-षष्टिक (साठी) आदि, शूकधान्य के-जौ आदि, शिम्बीधान्य के-मूंग आदि, क्षुद्रधान्यके कंगुनी आदि भेद हैं और क्षुद्रधान्य का नामान्तर तृणधान्य भी है ॥ २ ॥

अथ शालिधान्यम् तस्य लक्षणमाह

कण्डनेन विना शुक्ला हैमन्ताः शालयः स्मृताः ॥ ३ ॥

शालिधान्य के लक्षण—बिना कूटे ही जो सुफेद होते हों तथा हेमन्त ऋतु में उत्पन्न हों वे शालिधान्य (जड़हन) कहलाते हैं ॥ ३ ॥

अथ शालयः (चावल) । तेषां जातिभेदेन नामान्याह

रक्तशालिः सकलमः पाण्डुकः शकुनाहृतः । सुगन्धकः कर्दमको महाशालिश्च दूषकः ॥ ४ ॥
पुष्पाण्डकः पुण्डरीकस्तथा महिषमस्तकः । दीर्घशूकः काञ्चनको हायनो लोध्रपुष्पकः ॥ ५ ॥
इत्याद्याः शालयः सन्ति बहवो बहुदेशजाः ।
ग्रन्थविस्तरभीतेस्ते समस्ता नात्र भाषिताः ॥ ६ ॥

शाली (चावलों) के जातिभेद से नाम—रक्तशालि, कलम, पाण्डुक, शकुनाहृत, सुगन्धक, कर्दमक, महाशालि, दूषक, पुष्पाण्डक, पुण्डरीक, महिषमस्तक, दीर्घशूक, काञ्चनक, हायन और लोध्रपुष्पक इत्यादि शालि (चावल) बहुत से देशों में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के होते हैं, जिनका यहां पर पूर्ण वर्णन ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से नहीं किया जारहा है ॥ ४–६ ॥

अथ शालीनां गुणानाह

शालयो मधुराः स्निग्धा बल्या बद्धाल्पवर्चसः । कषाया लघवो रुच्याः स्वर्या वृष्याश्च बृंहणाः ॥
अल्पानिलकफाः शीताः पित्तघ्ना मूत्रलास्तथा ॥ ७ ॥

शालियों (अगहनी चावलों) के गुण—शालि (अगहनी चावल)-मधुर तथा कषाय रसयुक्त, स्निग्ध, बलकारक, थोड़ी मात्रा में बंधे हुये मल को निकालने वाले, लघु, रुचिकारक, कण्ठ स्वर को

उत्तम बनाने वाले, वृष्य (वीर्यवर्धक), बृंहण (रसरक्तादिवर्धक), किंचित् वात तथा कफ कारक, शीतल, पित्तनाशक और मूत्रक (मूत्र को अधिक मात्रा में उत्पन्न करने वाले) होते हैं ॥ ७ ॥

अथ दग्धमृज्जातशालिगुणानाह

शालयो दग्धमृज्जाताः कषाया लघुपाकिनः। सृष्टमूत्रपुरीषाश्च रूक्षाः श्लेष्मापकर्षणाः ॥८॥

जली हुई मिट्टी में उत्पन्न होने वाले शालि के गुण—जो शालि (अगहनी चावल)-जली हुई मिट्टी में उत्पन्न हुये हैं वे कषाय रसयुक्त, लघुपाकी (शीघ्र पचनेवाले), मूत्र तथा मल को निकालने वाले, रूक्ष तथा कफ का अपकर्षण करने वाले अर्थात् बढ़े हुये कफ को कम करने वाले होते हैं ॥८॥

अथ कैदारजशालिगुणानाह

कैदारा वातपित्तघ्ना गुरवः कफशुक्रलाः। कषायाश्चाल्पवर्चस्का मेध्याश्चैव बलावहाः ॥९॥

केदार (जुते हुये खेत) में बोने से उत्पन्न हुए जो चावल होते हैं वे-कषाय रसयुक्त, वात-पित्त नाशक, गुरु, कफ तथा शुक्र की वृद्धि करने वाले, थोड़ी मात्रा में मल को निकालने वाले, मेधाशक्ति के लिये हितकर तथा बलकारक होते हैं ॥ ९ ॥

***कैदाराः = कृष्टक्षेत्रजा उप्ताः ॥ ९ ॥**

यहाँ पर मूल में 'कैदार' पद से 'जुते हुए खेत में बोने से उत्पन्न हुये चावल' यह अर्थ समझना चाहिये ॥ ९ ॥

अथ स्थलजशालिगुणानाह

स्थलजाः स्वादवः पित्तकफघ्ना वातवह्निदाः।
किञ्चित्तिक्ताः कषायाश्च विपाके कटुका अपि ॥ १० ॥

स्थलज शालि के गुण—स्थलज (बिना जुती हुई भूमि में उत्पन्न हुये अर्थात् बिना जोते बोये स्वयम् उत्पन्न हुये) जो शालि होते हैं वे-स्वादिष्ट, पित्त तथा कफ नाशक, वात तथा जठराग्निवर्धक, किंचित् तिक्त रसयुक्त, कसैले तथा विपाक में कटु रसयुक्त होते हैं ॥ १० ॥

***स्थलजाः = अकृष्टभूमिजाताः स्वयं जाताः ॥ १० ॥**

यहाँ पर मूल में 'स्थलज' पद से 'बिना जुती हुई भूमि में उत्पन्न हुये अर्थात् बिना जोते बोये स्वयम् उत्पन्न हुये' यह अर्थ समझना चाहिये ॥ १० ॥

अथ वापितशालिगुणानाह

वापिता मधुरा वृष्या बल्याः पित्तप्रणाशनाः।
श्लेष्मलाश्चाल्पवर्चस्काः कषाया गुरवो हिमाः ॥ ११ ॥

***वापिताः = कृष्टक्षेत्रेऽकृष्टक्षेत्रे च ॥ ११ ॥**

बोये हुये शालि के गुण—वापित (जुते हुये या बिना जुते हुये खेत में बोने से उत्पन्न हुये) जो शालि (अगहनी चावल) हैं वे-मधुर तथा कषाय रसयुक्त, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, पित्तनाशक, कफ जनक, थोड़ी मात्रा में मल को निकालने वाले, गुरु तथा शीतल होते हैं ॥ ११ ॥

अथावापितशालिगुणानाह

वापितेभ्यो गुणैः किञ्चिद्धीनाः प्रोक्ता अवापिताः ॥ १२ ॥

अवापित शालि के गुण—वापित की अपेक्षा अवापित शालि गुणों में कुछ न्यून होते हैं ॥ १२ ॥

***कृष्टक्षेत्रेऽकृष्टक्षेत्रे वा ॥ १२ ॥**

यहाँ पर भी मूल में 'अवापित' पद का वापित की भांति ही जुते तथा बिना जुते खेत में बिना बोने से उत्पन्न हुये (अगहनी चावल)' यह अर्थ समझना चाहिये ॥ १२ ॥

अथ नव-पुराण-रोपित-शालिगुणानाह

रोपितास्तु नवा वृष्याः पुराणा लघवः स्मृताः।
तेभ्यस्तुरोपिता भूयः शीघ्रपाका गुणाधिकाः ॥ १३ ॥

रोपण किये शालि (चावल) यदि नये हों तो-वीर्यवर्धक और यदि पुराने हों तो लघु होते हैं। और उन्हीं से पुनः रोपण किये हुये शालि (चावल)-शीघ्र पचनेवाले तथा अधिक गुणकारी होते हैं॥१३॥

अथ छिन्नरूढशालिगुणानाह

छिन्नरूढा हिमा रूक्षा बल्याः पित्तकफापहाः।
बद्धविट्काः कषायाश्च लघवश्चाल्पतिक्तकाः ॥ १४ ॥

जो काटने के पश्चात् पुनः उगे हुये शालि (चावल) होते हैं वे—शीतल, रूक्ष, बलकारक, पित्त तथा कफ नाशक, मलको बांधने वाले, कसैले, लघु तथा किञ्चित् तिक्त रसयुक्त होते हैं ॥ १४ ॥

अथ रक्तशालिः। तस्य गुणानाह

रक्तशालिर्वरस्तेषु बल्यो वर्ण्यस्त्रिदोषजित्। चक्षुष्यो मूत्रलः स्वर्यः शुक्रलस्तृड्ज्वरापहः॥१५॥
विषव्रणश्वासकासदाहनुद् वह्निपुष्टिदः तस्मादल्पान्तरगुणाः शालयो महदादयः ॥ १६ ॥

रक्तशालि—यह सभी शालिधान्यों में श्रेष्ठ होता है तथा बलकारक, शरीर के वर्ण को उत्तम करने वाला, त्रिदोषनाशक, नेत्रों के लिये हितकर, मूत्रजनक, कण्ठ स्वर को उत्तम करने वाला, शुक्रजनक, जठराग्नि को पुष्ट करने वाला, एवम् तृषा, ज्वर, विष, व्रण, श्वास, कास, तथा दाह को दूर करने वाला होता है और इसकी अपेक्षा महाशालि आदि जो दूसरे शालि (चावल) हैं वे स्वल्प गुण वाले होते हैं ॥ १५-१६ ॥

***रक्तशालिः 'दाऊदखानी' इति लोके मगधदेशे प्रसिद्धः ॥ १५-१६ ॥**

यहाँ पर मूल में "रक्तशालि" से मगध देश में "दाऊदखानी" नाम से प्रसिद्ध चावल समझना चाहिये ॥ १५-१६ ॥

अथ व्रीहिधान्यम् तस्य लक्षणसहितान् भेदान् गुणाँश्चाह

वार्षिकाः कण्डिताः शुक्ला व्रीहयश्चिरपाकिनः। कृष्णव्रीहिः पाटलश्च कुक्कुटाण्डक इत्यपि ॥
शालामुखो जतुमुख इत्याद्या व्रीहयः स्मृताः। कृष्णव्रीहिःस विज्ञेयो यत्कृष्णतुषतण्डुलः ॥
पाटलः पाटलापुष्पवर्णको व्रीहिरुच्यते। कुक्कुटाण्डाकृतिर्व्रीहिः कुक्कुटाण्डक उच्यते ॥१९॥
शालामुखः कृष्णशूकः कृष्णतण्डुल उच्यते। लाक्षावर्णं मुखं यस्य ज्ञेयो जतुमुखस्तु सः ॥२०॥
व्रीहयः कथिताः पाके मधुरा वीर्यतो हिमाः। अल्पाभिष्यन्दिनो बद्धवर्चस्काः षष्टिकैः समाः॥

कृष्णव्रीहिर्वरस्तेषां तस्मादल्पगुणाः परे ॥ २१ ॥

व्रीहिधान्य के लक्षण—जो चावल वर्षा ऋतु में पैदा होते है अर्थात् पक कर तैयार होते हैं एवम् ओखली में छांटने से जो सफेद होते हैं तथा देर में पकते हैं वे व्रीहिधान्य कहलाते हैं। व्रीहि-धान्य के भेद-कृष्णव्रीहि, पाटल, कुक्कुटाण्डक, शालामुख और जतुमुख ये सब व्रीहि धान्य के भेद हैं।

कृष्णव्रीहि के लक्षण—जिसकी भूसी तथा चावल दोनों काले हों वे "कृष्णव्रीहि" कहलाते हैं।

पाटल (व्रीहि) के लक्षण—जिसका रङ्ग पाटला (पाढ़ल) के पुष्प के सदृश हो वह पाटल (व्रीहि) कहलता है।

कुक्कुटाण्डक (व्रीहि) के लक्षण—आकार में जो मुर्गे के अण्डे के समान होता है उसे कुक्कुटा-ण्डक (व्रीहि) कहते हैं।

शालामुख (व्रीहि) के लक्षण—जिसके शूक (धान्य के मुख पर रहने वाला सूक्ष्म, लम्बा कांटा) तथा चावल दोनों कृष्णवर्ण के हों उसे शालामुख (व्रीहि) समझना चाहिये।

जतुमुख (व्रीहि) के लक्षण—जिसका मुख लाख के सदृश लाल रङ्ग का हो उसे जतुमुख (व्रीहि) समझना चाहिये॥

व्रीहिधान्य—पाक में मधुर, शीतवीर्य, किञ्चित् अभिष्यन्दी, मल को बांधने वाले, गुण में षष्टिक (साठी चावल) के समान होते हैं। इन व्रीहियों में कृष्णव्रीहि सर्वोत्तम होता है और इसकी अपेक्षा अन्य व्रीहिधान्य न्यून गुणवाले होते हैं॥ १७-२१ ॥

अथ षष्टिकाः (साठीचावल)। तेषां लक्षणमाह

गर्भस्था एव ये पाकं यान्ति ते षष्टिका मताः ॥ २२ ॥

षष्टिक (साठी चावल) के लक्षण—जो धान्य-गर्भ में ही अर्थात् बिना फूटे ही पक जाते हैं, वे-षष्टिक धान्य कहलाते हैं (और ६० दिन में पक कर तैयार होने वाले धान को भी षष्टिक कहते हैं)॥ २२ ॥

अथ तेषां नामान्याह

षष्टिकः शतपुष्पश्च प्रमोदकमुकुन्दकौ। महाषष्टिक इत्याद्याः षष्टिकाः समुदाहृताः।
एतेऽपि व्रीहयः प्रोक्ता व्रीहिलक्षणदर्शनात् ॥ २३ ॥

षष्टिक (साठी धान्य) के भेद—षष्टिक, शतपुष्प, प्रमोदक, मुकुन्दक और महाषष्टिक ये सब षष्टिक के भेद हैं। और ये भी व्रीहि कहलाते हैं क्योंकि इनमें व्रीहि के लक्षण-वर्षा ऋतु में पक कर तैयार होना आदि देखे जाते हैं॥ २३ ॥

अथ तेषां गुणानाह

षष्टिका मधुरा शीता लघवो बद्धवर्चसः। वातपित्तप्रशमनाः शालिभिः सदृशा गुणैः ॥२४॥

षष्टिकधान्य मात्र—मधुर, शीतल, लघु, मल को बाँधने वाले, वात तथा पित्त को शमन करने वाले और गुणों में शालिधान्य के सदृश होते हैं॥ २४ ॥

तत्र षष्टिकाया गुणानाह

षष्टिका प्रवरा तेषां लघ्वी स्निग्धा त्रिदोषजित् ॥ २५ ॥
स्वाद्वी मृद्वी ग्राहिणी च बलदा ज्वरहारिणी।
रक्तशालिगुणैस्तुल्या ततः स्वल्पगुणाः परे ॥ २६ ॥

षष्टिक नामक षष्टिक धान्य के गुण—षष्टिक-सम्पूर्ण षष्टिक धान्यों में उत्तम होता है और लघु, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, स्वादिष्ट, मृदु, ग्राही, बलदायक तथा ज्वर को दूर करने वाला और गुणों में रक्तशालि के समान होता है। शेष षष्टिकधान्य इसकी अपेक्षा स्वल्प गुणवाले होते हैं॥ २५-२६ ॥

१ चावल (धान)

हिं०—चावल, धान। **म०**—तांदूल, भात। **गु०**—भात, चोरवा। **बं०**—धान, चावल। **ता०**—अरशी, नेल्लु। **ते०**—धान्यमु, ओदलु। **क०**—भट्ठा। **अं०**—Rice (राइस), Paddy (पॅड्डी-धान)। **ले०**—*Oryza sativa Linn.* (ओरिझा सटाइवा)। Fam. Gramineae. (ग्रेमिनी)।

यह सभी स्थानों पर कृषित होता है। इसका क्षुप—छोटा, जलीय, वर्षायु होता है। काण्ड गोल एवं पोला होता है। पत्ते—बहुत, खुरदरे, पतले तथा मालाकार होते हैं। पुष्प-गुच्छ के रूप में, अनेक शाखायुक्त तथा झुके हुवे रहते हैं जिनमें पुंकेशर ६ तथा स्त्रीकेशर की कुक्षि पंखसदृश एवं संख्या में २ होती हैं। लाल चावल में स्त्रीकेशर लाल रहते हैं।

यद्यपि चावल की एक ही जाति (Species) है तथापि इसके सैकड़ों प्रकार पाये जाते हैं। भावप्रकाशकार भी इससे सहमत होते हुए इसके मुख्य ४ भेद, १ शालि, २ रक्तशालि, ३ व्रीहि एवं ४ षष्टिक करते हैं। इनमें से प्रथम हेमन्त ऋतु में पककर तैयार होता है। दूसरा लाल रंग का होता है। तीसरा वर्षाकाल में पककर तैयार होता है। चौथा ६० दिन में या जल्दी तैयार होता है। अधिकतर प्रथम ही होता है।

स्थानभेद, पकने के ऋतु के भेद, पकने के काल (अवधि) भेद, चावल के अन्दर रहने वाले पिष्टमय पदार्थ, चावल या धान के रंग, आकार, नाप, शूक रहित या शूक युक्त भेद से इसके अनेक प्रकार मिलते हैं।

षठिया किस्म में अधिकतर लाल चावल के प्रकार पाये जाते हैं। यह लाली बहुत अन्दर तक नहीं रहती। किसी-किसी अच्छे प्रकार में भी लाल चावल होते हैं तथा इनका स्वाद भी अच्छा होता है। इसीलिए कहीं-कहीं चावल को रंग देते हैं किन्तु यह रंग जल से धोने पर निकल जाता है।

नये चावल की अपेक्षा पुराना चावल सुपाच्य होता है। परीक्षणों से देखा गया है कि नये चावल की पचन क्षमता पुराने की अपेक्षा आधी से कम होती है। रखने से इसमें के स्टार्च में परि-वर्तन होने से यह प्रभाव देखा जाता है। पकाने में भी नये का भात चिपचिपा तथा गोला सा हो जाता है किन्तु पुराने का बहुत अच्छा बनता है।

चावल साफ करने की विधि के अनुसार भी चावल के पोषक तत्वों में परिवर्तन हो जाता है। कुछ उबाल कर फिर धान छुड़ाये हुए भुजिया चावल (Paraboiled-पैराबॉइल्ड) में तथा हाथ कुटे चावल में, मिल से साफ किये हुवे की अपेक्षा नाइट्रोजन द्रव्य अधिक रहते हैं।

निम्न तालिका से इसका अन्तर साफ मालूम होता है।

रासायनिक संगठन—

— — —	जल	अलब्यूमिनाभ द्रव्य	स्नेह	कार्बोहाइड्रेट	रेशा	राख
हाथ कुटा चावल	१२·२	८·५	०·६	७८·०	०·६	०·७
मिल का साफ किया हुआ चावल	१३·०	६·९	०·४	७९·२	०	०·५
भुजिया, हाथकुटा चावल	१२·६	८·५	०·६	७७·४	०	०·९
भुजिया, मिल का साफ किया हुआ चावल	१३·३	६·४	०·४	७९·१	०	०·८
लावा	१४·७	७·५	०·१	७४·३	०	३·४
चिउड़ा	१२·२	६·६	१ २	७८·२	०	१·८

गुण और प्रयोग—प्रधान भोजन के रूप में अनेक प्रान्तों में इसका उपयोग किया जाता है।

इसको अधिक जल में पतला पकाकर अतिसार, संग्रहणी तथा अन्य पाचन के विकारों में देते हैं।

चावल की [illegible] दाहशामक तथा स्नेहन होने से ज्वर, दाह एवं आन्त्रिकप्रदाह आदि में दी जाती है।

अथ शूकधान्यानि । तत्र यवभेदानाह

यवस्तु सितशूकः स्यान्निःशूकोऽतियवः स्मृतः।
तोक्यस्तद्वत्स हरितस्ततः स्वल्पश्च कीर्त्तितः॥ २७॥

शूक धान्यों में जौ के लक्षण सहित भेद—जौ-यह सफेद शूक (सूई या टूंड) से युक्त होता है। अतियव-इसमें शूक नहीं होता है। तोक्य-यह शूक से रहित, हरे रङ्ग का तथा छोटा होता है॥ २७।

*शूकधान्यानि तेषु यवः प्रसिद्धः। अतियवो निःशूकः कृष्णारुणवर्णो यवः। तोक्यो हरितो निःशूकः स्वल्पो यवः "जई" इति प्रसिद्धः॥ २७॥

यहाँ पर "शूकधान्यों में "जव" प्रसिद्ध है। अतियव-यह शूक रहित काले तथा अरुण (लाल) रङ्ग का होता है। तोक्य-यह हरे रङ्ग का शूक रहित छोटा जव होता है और "जई" इस नाम से लोक में प्रसिद्ध है।"

अथ तेषां गुणानाह

यवः कषायो मधुरः शीतलो लेखनो मृदुः। व्रणेषु तिलवत्पथ्यो रूक्षो मेधाऽग्निवर्धनः॥
कटुपाकोऽनभिष्यन्दी स्वर्यो बलकरो गुरुः। बहुवातमलो वर्णस्थैर्यकारी च पिच्छिलः॥२९॥
कण्ठत्वगामयश्लेष्मपित्तमेदःप्रणाशनः। पीनसश्वासकासोरुस्तम्भलोहिततृट्प्रणुत्॥
अस्मादतियवो न्यूनस्तोक्यो न्यूनतरस्ततः॥ ३०॥

जौ—कषाय तथा मधुर रस युक्त, विपाक में कटु रसयुक्त, शीतल, लेखन, कोमल, व्रणों में तिल के समान पथ्य, रूक्ष, मेधा तथा जठराग्नि को बढ़ाने वाला, किंचित् अभिष्यन्दी, कण्ठ स्वर को

उत्तम करने वाला, बलकारक, गुरु, अधिक रूप से वात तथा मल को करने वाला, शरीर के वर्ण को स्थिर रखने वाला, पिच्छिल एवम्—कण्ठ तथा चर्म सम्बन्धी रोग, कफ, पित्त, मेद, पीनस, श्वास, कास, ऊरुस्तम्भ, रक्तविकार तथा तृषा को दूर करने वाला है।

अतियव—यह जौ की अपेक्षा न्यून गुणवाला होता है।

जई—यह अतियव से भी न्यून गुण वाला होता है॥ २८-२९॥

२ जव

हि०-जव, जो, जौ। म०-जव। क०-जवेगोधी। ता०-वार्लि अरिसि। ते०-यव धान्य। फा०-जव, जओ। अ०-शईर, श्अईर। गु०-जव। अं-Barley (बारली)। ले०-*Hordeum vulgare Linn.* (हॉरडीयम् वल्गेयर)। Fam. Gramineae (ग्रेमिनी)।

इसकी खेती उत्तर भारत में विशेष होती है। उपज का ८०% भाग उत्तरप्रदेश, बिहार तथा उड़ीसा में होता है। पंजाब में १३% एवं अन्य प्रान्तों में मिलाकर ७% उपज होती है। दक्षिण में बहुत ही नाममात्र खेती की जाती है।

इसका **क्षुप**—वर्षायु तथा २-३ फीट ऊंचा होता है। **मूल**—बहुत तथा रेशेदार होते हैं। **पत्ते**—रेखाकार भ लाकार, ९-१२ इञ्च लंबे तथा $\frac{1}{2}$-$\frac{1}{2}$ इञ्च चौड़े एवं मध्यपर्शुक श्वेत रहती है। **बाली** शूकयुक्त होती है। सपुष्पशल्क (Lemma-लेम्मा) पर शूक रहता है। यह शल्क एवं अन्त:वृन्तपत्रक (Palea) दाने से लगा रहता है। इसके कई प्रकार पाये जाते हैं। **जई (तोक्य)** यह यव का भेद या **भारतीय ओट** (Indian oat) जिसका लेटिन नाम एवेना बाइजेंटिना (Avena byzantina C. Koch) है, हो सकता है।

गेहूँ के आटे में मिलाकर इसकी रोटी बनाई जाती है। इससे माल्ट तथा मद्य बनाये जाते हैं। जिसमें स्टार्च अधिक रहता है उसको माल्ट बनाने के काम में लाते हैं जिसमें प्रोटीन अधिक रहता है उसको खाने के काम में लिया जाता है। विशेष पद्धति से ऊपर का छिलका साफ करके पर्ल बार्ली (Pearl Barley) बनाते हैं। जव का सत्तू बनाकर खाया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें कार्बोहाइड्रेट ६९ ३ भाग, प्रोटीन ११·५, खनिज १·५ जिनमें खटिक, लोह एवं विटामिन 'सी' को छोड़कर अन्य थोड़ी मात्रा में होते हैं। इसके प्रोटीन का 'जैव मूल्य' ६४ है जब कि गेहूँ का ६७ रहता है।

गुण और प्रयोग—यह सुपाच्य होता है तथा भूनकर पीसकर इसकी मण्ड, पेया इत्यादि बनाकर रोगी को पथ्य के रूप में देते हैं। कुपचन, ज्वर, अतिसार, मूत्रकृच्छ्र तथा प्रदाह युक्त विकारों में यवमण्ड का उपयोग किया जाता है।

इसके क्षार का वर्णन पहले हरीतक्यादिवर्ग (पृष्ठ १६३) में किया जा चुका है।

अथ गोधूमः (गेहूँ)। तस्य नामानि सलक्षणभेदानाह

गोधूमः सुमनोऽपि स्यात्त्रिविधः स च कीर्त्तितः। महागोधूम इत्याख्यः पश्चाद्देशात्समागतः॥

गेहूं के संस्कृत नाम—गोधूम तथा सुमन हैं। भेद—१ महागोधूम, २ मधूली, ३ दीर्घगोधूम इन भेदों से यह ३ प्रकार का होता है।

महागोधूम—यह पश्चिम के देशों (पंजाब आदि) से आता है॥ ३१॥

मधूली तु ततः किञ्चिदल्पा सा मध्यदेशजा। निःशूको दीर्घगोधूमः क्वचिन्नन्दीमुखाभिधः॥

मधूली—यह "बड़ा गेहूं" की अपेक्षा कुछ छोटा होता है, और मध्यदेश (आगरा-मथुरा आदि) में उत्पन्न होता है।

दीर्घगोधूम—यह शूक (टूंड़) रहित होता है तथा इसे कहीं २ नन्दीमुख भी कहते हैं ॥३२॥

अथ गोधूमगुणानाह

गोधूम मधुरः शीतो वातपित्तहरो गुरुः। कफशुक्रप्रदो बल्यः स्निग्धः सन्धानकृत्सरः ॥३३॥
जीवनो बृंहणो वर्ण्यो व्रण्यो रुच्यः स्थिरत्वकृत् ॥ ३४ ॥

गेहूं—यह मधुर, शीतल, गुरु, कफप्रद (कफ को पैदा करने वाला), वीर्यजनक, बलकारक, स्निग्ध, सन्धानकारक (टूटी अस्थियों को जोड़ने वाला), सारक, जीवनी शक्ति को बढ़ाने वाला, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), वर्ण को उत्तम करने वाला, व्रण के लिये हितकर, रुचिकारक, स्थिरता को करने वाला एवम् वात तथा पित्त नाशक होता है ॥ ३३-३४ ॥

***कफप्रदो नवीनो न तु पुराणः।**
"पुराणयवगोधूमक्षौद्रजाङ्गलशूलभुग्" ॥
इति वाग्भटेन वसन्ते गृहीतत्वात् ॥ ३३-३४ ॥

यहां पर—"कफप्रद" पद होने से "नवीन गेहूं कफ को बढ़ाने वाला होता है न कि पुराना" यह समझना चाहिये। क्योंकि-यदि पुराना गेहूं भी कफप्रद होता तो वाग्भट वसन्तऋतु के पथ्य में—पुराना जौ तथा गेहूं, मधु, जङ्गलीजीवों के मांस का कबाब इत्यादि के मध्य में गेहूं का नाम न लेते ॥ ३३-३४ ॥

अथ मधूलीनन्दीमुखयोर्गुणानाह

मधूली शीतला स्निग्धा पित्तघ्नी मधुरा लघुः। शुक्रला बृंहणी पथ्या तद्वन्नन्दीमुखः स्मृतः॥३५॥

मधूली (गेहूं)—मधुर रसयुक्त, शीतल, स्निग्ध, लघु, शुक्रजनक, बृंहण (रसरक्तादिवर्धक), पथ्य और पित्तनाशक होता है।

नन्दीमुख (गेहूं) यह भी पूर्वोक्त मधूली के समान गुणों में होता है ॥ ३५ ॥

३ गेहूं

हि०—गेहूं। **बं०**—गम। **म०**—गहूं। **गु०**—घउ, घेऊं। **क०**—गोधी। **ते०**—गोदुमेलु। **फा०**—गंदुम। **ता**-गोदूमै। **अ०**—हिन्ता। **अं०**—Wheat (ह्वीट)। **ले०**—*Triticum sativum Lam.* (ट्राइटिकम् सटाइवम्)। Fam. Gramineae (ग्रेमिनी)।

अनेक प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है। संसार भर में अन्न के लिये इसकी उपज की जाती है। यह मैसूर, मद्रास में कम होता है। उत्तरभारत में यह अधिक होता है।

इसके पौधे जव के समान होते हैं। यद्यपि इसकी ३-४ जातियां होती हैं तथापि उपर्युक्त जाति ही अधिक बोई जाती हैं। इसके अनेक प्रकार होते हैं। इनमें भी शूक युक्त या विहीन भेद पाये जाते हैं। कड़ा, मुलायम तथा लाल एवं श्वेत आदि दाने के भेद होते हैं। खाने के लिये कड़े दाने वाला तथा स्टार्च के लिये मुलायम गेहूँ काम में लाया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन द्रव्य ८ से २४ भाग, कार्बोहाइड्रेट ६८-७०, स्नेह १-२ तथा राख १.५-२ भाग रहती है। मुलायम गेहूं में प्रोटीन कम रहता है। इसमें लोह, ताम्र, यशद, मैंगनीज एवं मैगनेशियम् खनिज होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसको अन्न के रूप में उपयोग में लाया जाता है। चोकरयुक्त आटे की रोटी विबंध में लाभदायक रहती है।

अथ शिम्बीधान्यम्। तत्रादौ तस्य नामान्याह

शमीजाः शिम्बिजाः शिम्बीभवाः सूप्याश्च वैदलाः ॥ ३६ ॥

शिम्बीधान्य के संस्कृत नाम—शमीज, शिम्बिज, शिम्बीभव, सूप्य और वैदल ये सब हैं ॥३६॥

अथ शिम्बीधान्यस्य गुणानाह

वैदला मधुरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः। वातलाः कफपित्तघ्ना बद्धमूत्रमला हिमाः ॥
ऋते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मानकारिणः ॥ ३७ ॥

शिम्बीधान्य—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, रूक्ष, विपाक में कटुरसयुक्त, वातजनक, कफ तथा पित्त-नाशक, मूत्र तथा मल को बांधने वाले और शीतल होते हैं। और शिम्बीधान्यों में मूंग तथा मसूर को छोड़कर शेष सभी आध्मान (अफरा) करने वाले होते हैं ॥ ३७ ॥

***मुद्गमसूरयोराध्मानकारित्वमन्यवैदलापेक्षया, न तु सर्वथा, एतयोरपि किञ्चिदाध्मानकारित्वदर्शनात् ॥ ३७ ॥**

"अन्य शिम्बी धान्यों की अपेक्षा मूंग और मसूर आध्मान करने वाले नहीं होते न कि सर्वथा आध्मान करने वाले नहीं होते, क्योंकि ये दोनों भी किंचित् मात्र आध्मान करनेवाले होते हैं, ऐसा देखा गया है" ॥ ३७ ॥

अथ मुद्गः (मूँग) सभेदस्य तस्य गुणानाह

मुद्गो रूक्षो लघुर्ग्राही कफपित्तहरो हिमः। स्वादुरल्पानिलो नेत्र्यो ज्वरघ्नो वनजस्तथा ॥
मुद्गो बहुविधः श्यामो हरितः पीतकस्तथा। श्वेतो रक्तश्च तेषान्तु पूर्वः पूर्वो लघुः स्मृतः ॥
सुश्रुतेन पुनः प्रोक्तो हरितः प्रवरो गुणैः। चरकादिभिरप्युक्त एष एव गुणाधिकः ॥ ४० ॥

मूंग—स्वादिष्ट, रूक्ष, लघु, ग्राही, कफ तथा पित्तनाशक, शीतल, किंचित् वायुकारक, नेत्र के लिये हितकर तथा ज्वरनाशक है और जंगल में उत्पन्न होने वाली मूंग गुणों में मूंग के समान ही है।

मूंग के भेद और उनके गुण—श्याम, हरी, पीली, सफेद तथा लाल इन भेदों से मूंग कई प्रकार की होती है। और इनमें एक दूसरी की अपेक्षा पूर्व २ लघु होती है। (अर्थात्-लाल की अपेक्षा सुफेद, सुफेद से पीली, पीली से हरी, हरी से श्याम लघु होती है।) किन्तु सुश्रुत ने तो विशेषतः और मूंगों की अपेक्षा हरीमूंग को गुणों में श्रेष्ठ बतलाया है। और चरकादि महर्षियों ने भी इसी को (हरी मूंगको) अधिक गुणकारी बतलाया है ॥ ३८-४० ॥

४ मूंग

हि०—मूंग, मुंग। **बं०**—मुग। **म०**—मूग, हिरवे मूग। **गु०**—मग, कच्छी। **ता०**—पच्चैयमेरू। **क०**—हेसरु। **ते०**—पच्चापेसलु। **फा०**—बुनुमाष, बनोमाश, माष। **अ०**—मजमाश, माष मज। **अं०**—Green Gram (ग्रीन् ग्राम)। **ले०**—*Phaseolus aureus Roxb.* (फेसीओलस् ऑरियस्)। Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी)।

यह इस देश के खेतों में बोई जाती है और पश्चिमोत्तर हिमालय के ६ हजार फीट ऊँची भूमि में भी जङ्गली उत्पन्न होती है। इसका क्षुप-१-२ फुट ऊँचा होता है। इसके पत्ते-उड़द के

समान होते हैं। समस्त क्षुप पर रेशमवत् बारीक रोवें होते हैं। फूल-पीले आते हैं। फलियां-१॥-२ इञ्च लम्बी और कुछ टेढ़ी होती हैं।

बीज—हरे रंग के होते हैं। अन्दर की दाल पीले रंग की होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन २२ भाग, कार्बोहाइड्रेट ५४-५६, स्नेह १·३-२·७, रेशा ४·१-५·८ एवं राख ३·६-४·४ भाग रहती है।

गुण और प्रयोग—यह अन्य दालों की अपेक्षा हल्की एवं सुपाच्य होती है। मुद्ग यूष का उपयोग पथ्य के रूप में करते हैं।

अथ माषः (उरद) तस्य गुणानाह

माषो गुरुः स्वादुपाकः स्निग्धो रुच्योऽनिलापहः। स्रंसनस्तर्पणो बल्यः शुक्रलो बृंहणः परः॥ भिन्नमूत्रमलः स्तन्यो मेदःपित्तकफप्रदः। गुदकीलार्दितश्वासपक्तिशूलानि नाशयेत्॥ ४२॥ कफपित्तकरा माषाः कफपित्तकरं दधि। कफपित्तकरा मत्स्या वृन्ताकं कफपित्तकृत्॥ ४३॥

उरद-गुरु, विपाक में मधुररसयुक्त, स्निग्ध, रुचिकारक, वातनाशक, स्रंसन, सन्तर्पण करने वाला, बलकारक, शुक्र-जनक, अत्यन्त बृंहण, (रस-रक्तादि वर्धक), मूत्र तथा मल का भेदन करने वाला, दुग्धवर्धक, मेद-पित्त-कफ को बढ़ाने वाला एवम्-गुदकील-अर्दितवात (मुँह का लकवा)-श्वास-पक्तिशूल (अन्न के पचने पर शूल होना) इन सब रोगों को दूर करने वाला होता है।

कफ तथा पित्त कारक द्रव्य चतुष्टय-उरद, दही, मछली और बैंगन ये चारों द्रव्य कफ तथा पित्त को बढ़ाने वाले होते हैं॥ ४१-४३॥

५ उड़द

हि०-उड़द, उड़िद, उरद, उरिद, उर्दी। **बं०**-माष कलाय। **म०**-उड़ीद। **ता०**-उलुंडु। **गु०**-अड़द। **क०**-उड्डु। **ते०**-उद्दुलु। **फा०**-माष। **अ०**-माषा। **अं०**-Black Gram (ब्लॅक् ग्राम्)। **ले०**-*Phaseolus mungo Linn.* (फेसीओलस् मुंगो)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

उड़द इस देश में बहुत प्रसिद्ध है। इसकी उपज हर प्रान्त में होती है। इससे दाल, बड़े इत्यादि बनते हैं।

इसका क्षुप-झाड़ीदार फैला हुआ, एक फीट ऊंचा, अनेक शाखायुक्त एवं रोमावृत होता है। पुष्प-पीले होते हैं। फली-पतली, गोल, १½-२½ इञ्च लंबी एवं बीजों के बीच-बीच में भीतर दबी हुई होती है। बीज-८ से १५, काले या गहरे भूरे या कभी-कभी हरे होते हैं। ये हरे होते हुये भी मूंग की तरह अन्दर से पीले न होकर सफेद होते हैं।

भावप्रकाश इसके दो भेद माष एवं महामाष या राजमाष (श्वेत, रक्त, कृष्ण) लिखते हैं। उपर्युक्त उड़द के छोटे तथा बड़े पाये भी भेद जाते हैं जिनमें बड़े में दाने कुछ काले तथा अच्छे होते हैं। ये दोनों भिन्न-भिन्न काल में बोये जाते हैं। संभव है भावप्रकाशोक्त महामाष बड़े काले रंग की उड़द का प्रकार हो या जिसका आगे लोबिया के नाम से वर्णन किया गया है वह हो।

रासायनिक संगठन—इसमें फॉस्फोरिक ॲसिड की मात्रा अन्य दालों की अपेक्षा ५ से १० गुना अधिक रहती है। इसमें प्रोटीन २२, कार्बोहाइड्रेट ५५, तेल १ एवं राख ४ भाग रहती है। इसके प्रोटीन भी अन्य दालों की तरह न होकर कुछ मांस के समान होते हैं।

गुण और प्रयोग—यह मधुर, बल्य, वृष्य, बृंहण, उष्ण, वातनाशक, कफपित्त वर्धक एवं स्तन्यजनन है। वातविकार एवं संधिरोग में इसका क्वाथ देते हैं। हड्डियों में पीड़ा होने से यदि

निद्रानाश हो तो इसकी जड़ देते हैं। यह मादक होती है। वातविकारों में बाह्याभ्यन्तर उड़द का उपयोग किया जाता है। उड़द के लड्डू नाड़ी संस्थान के लिये बल्य हैं।

अथ राजमाषः (बोड़ा)। यस्य च "वेरातरा—लोबिया" इत्यादयो भेदाः। तस्य नामानि तद्भेदगुणाँश्चाह

राजमाषो महामाषश्चपलश्च बलः स्मृतः। राजमाषो गुरुः स्वादुस्तुवरस्तर्पणः सरः॥४४॥ रूक्षो वातकरो रुच्यः स्तन्यो भूरिबलप्रदः। श्वेतो रक्तस्तथा कृष्णस्त्रिविधः स प्रकीर्त्तितः॥ यो महांस्तेषु भवति स एवोक्तो गुणाधिकः॥ ४५॥

राजमाष के संस्कृत नाम—राजमाष, महामाष, चपल तथा बल ये सब हैं। इसी के "वेरातरा", "लोबिया" इत्यादि लोक में भेद होते हैं। राजमाष-गुरु, स्वादिष्ट तथा कषाय रस युक्त, सन्तर्पण करने वाला, सारक, रूक्ष, वातकारक, रुचिकारक, दुग्धवर्धक तथा अत्यन्त बलकारक होता है।

भेद—सफेद, लाल तथा काला इन भेदों से यह तीन प्रकार का होता है। गुण-इनमें जो बड़ा होता है वही सबसे अधिक गुणशाली समझा जाता है॥ ४४-४५॥

नोट—राजमाष से कुछ लोग लोबिया का ग्रहण करते हैं तथा कुछ पूर्वोक्त उड़द का काले रंग का बड़ा भेद लेते हैं। यहाँ लोबिया का वर्णन किया जा रहा है।

६ राजमाष (लोबिया)

हि०-राजमाष, बोड़ा, चौरा, लोबिया। **बं०**-बरबटी कलाय, बर्बटी। **म०**-चवळया, अलंसंदे। **गु०**-चोळा। **क०**-अलसंदे। **ते०**-अलसन्दलु। **ता०**-करामणि। **फा०**-लोबह, लोबिया। **अ०**-फरिका, फिरीका। **अं०**-Chinese Beans (चाइनीज् बीन); Cowpeas (काउपीज्)। **ले०**-*Vigna catiang Walp.* (विग्ना कॅटियङ्ग)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

इसकी अनेक स्थानों पर खेती की जाती है।

यह वर्षायु, अनेक मांसल पतले काण्ड के द्वारा जमीन पर फैलने वाला क्षुप है। पत्ते-त्रिपत्रक एवं लंबेवृन्तवाले; पत्रक, बड़े, गहरे हरे एवं अण्डाकार होते हैं। पुष्प-पर्व से ३-६ एक साथ, एक इञ्च व्यास के, श्वेत, हलके गुलाबी, हलके नीले रंगों के भेद से २, ३ प्रकार के होते हैं जो मुरझाने के समय भीतर से पीले हो जाते हैं। फली-पतली, गोल एवं विभिन्न प्रकार के अनुसार भिन्न-भिन्न लम्बाई की होती है। लम्बी १८ इंच से २ फीट तक एवं छोटी ४ से ५ इञ्च तक हुआ करती है। बीज-फली के अनुसार छोटे तथा बड़े एवं रंग में प्रकार के अनुसार क्रीम जैसे, भूरे, फीके लाल, हलके बैंगनी या काले हुआ करते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजों में प्रोटीन २४·६, कार्बोहाइड्रेट ५५·७, स्नेह ०·७, रेशा ३·८, राख ३·२ एवं आर्द्रता १८ भाग रहती है।

गुण और प्रयोग—इसके बीज मूत्रल तथा आमाशय बलप्रद एवं कृमिनाशक हैं। यह अच्छा पोषक द्रव्य है।

अथ निष्पावः । स तु राजशिम्बीबीजम् [भटवाँसु] इति लोके । तस्यनामानि गुणाँश्चाह

निष्पावो राजशिम्बिः स्याद्वल्लकः श्वेतशिम्बिकः ।
निष्पावो मधुरो रूक्षो विपाकेऽम्लो गुरुः सरः ॥ ४६ ॥
कषायः स्तन्यपित्तास्रमूत्रवातविबन्धकृत् । विदाह्युष्णो विषश्लेष्मशोथहृच्छुक्रनाशनः ॥

निष्पाव यह लोक में राजशिम्बी का बीज अथवा भटवांसु इस नाम से प्रसिद्ध है। इसके संस्कृत नाम-निष्पाव, राजशिम्बि, वल्लक तथा श्वेतशिम्बिक ये सब हैं। निष्पाव—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, विपाक में अम्लरसयुक्त, रूक्ष, गुरु, सारक, विदाही, उष्ण और दुग्ध-पित्त तथा रक्त को बढाने वाला, मूत्र तथा वात का विबन्ध करने वाला एवम्-विष-कफ-शोथ तथा शुक्र का नाशक होता है ॥ ४६-४७ ॥

७ निष्पाव

हि०-निष्पाव, भटवासु, बल्लार, सेम । **बं०**-मखानसिम । **म०**-पावटे, वाल । **गु०**-ओलीया, ओलियवाल । **क०**-अवरे । **ते०**-अनुमुल । **ता०**-मोचै । **अं०**-Flat Bean (फ्लॅट बीन) । **ले०**-*Dolichos lablab Linn.* (डोलिकोस् लबलब्) । Fam, Leguminosae (लेग्युमिनोसी) ।

यह जंगली तथा कृषित दोनों प्रकार का सभी स्थानों पर होता है। दक्षिण में विशेष रूप से मैसूर में यह अधिक होता है।

इसकी लता होती है। पत्ते-त्रिपत्रक होते हैं। पुष्प-सीधे दण्ड पर विभिन्न रंगों के किन्तु विशेष रूप से गुलाबी और श्वेत रहते हैं। फली-आयताकार, ३ इञ्च लम्बी तथा ४ से ६ बीज युक्त होती है। हरी फलियों के ऊपर की तैल ग्रन्थियों से दुर्गन्धयुक्त तैल निकलता है। इसके अनेक प्रकार, बीजों के रंग, आकार आदि के अनुसार होते हैं।

रासायनिक संगठन—अखंड बीज में जल १४·६, प्रोटीन १७·१, स्नेह २·२, कार्बोहाइड्रेट ५७·४, रेशा ५·० एवं राख ३·६ भाग रहती है। दाल में जल १२·१, प्रोटीन २४·४, स्नेह १·५, कार्बोहाइड्रेट ५७·८, रेशा १·२ एवं राख ३ भाग रहती है।

गुण और प्रयोग—इसकी हरी फलियों का साग खाया जाता है। कफज विकारों में इसे देते हैं। मूल विषैले माने जाते हैं।

अथ वनमुद्गः [मोठ] । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

मकुष्ठो वनमुद्गः स्यान्मकुष्ठकमुकुष्ठकौ ॥ ४८ ॥
मकुष्ठो वातलो ग्राही कफपित्तहरो लघुः । वह्निजिन्मधुरः पाके कृमिकृज्ज्वरनाशनः ॥ ४९ ॥

मोठ के संस्कृत नाम—मकुष्ठ, वनमुद्ग, मकुष्ठक और मुकुष्ठक ये सब हैं।

मोठ—वातकारक, ग्राही, कफ तथा पित्त की नाशक, लघु, अग्नि को जीतने वाली, पाक में मधुर रसयुक्त, कृमिकारक तथा ज्वरनाशक होती है ॥ ४८-४९ ॥

८ मोठ

हि०-मोठ, मोट । **बं०**-वनमूग । **म०**-मटक्या, मठ । **गु०**-मठ । **क०**-मडकी । **ते०**-वनमुद्ग चेट्टु । **ता०**-तुक्कप्यारे । **फा०**-माषहिन्दी, माशहिन्दी । **अं०**-Aconite Leaved Kidney

Bean (एकोनाईट लीव्ड कीडनी बीन्) । **ले०**-*Phaseolus aconitefolius Jacq.* (फेसीओलस एकोनाइटीफोलीयस्) । Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी) ।

यह भी अनेक प्रान्तों में होती है। इसका क्षुप-मुद्गपर्णी की तरह फैला हुआ तथा अल्प रोमश होता है। पत्ते-त्रिपत्रक होते हैं। पुष्प-छोटे होते हैं। फली-दृढ़ तथा बीज बड़े होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन २३, कार्बोहाइड्रेट ५६, अत्यल्प तेल, रेशा ४ तथा राख ३½ भाग रहती है।

गुण और प्रयोग—आहार के रूप में दाल का उपयोग किया जाता है। इसको ज्वर में देते हैं। मूल मादक होता है।

अथ मसूरः (मसूरी) । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

मङ्गल्यको मसूरः स्यान्मङ्गल्या च मसूरिका । मसूरो मधुरः पाके संग्राही शीतलो लघुः ॥
कफपित्तास्रजिद्रूक्षो वातलो ज्वरनाशनः ॥ ५० ॥

मसूरी के संस्कृत नाम—मङ्गल्यक, मसूर, मङ्गल्या तथा मसूरिका ये सब हैं।

मसूरी—विपाक में मधुर रसयुक्त, ग्राही, शीतल, लघु, वातकारक, रूक्ष एवम्-कफ-पित्त-रक्तविकार तथा ज्वर को दूर करने वाली होती है ॥ ५० ॥

९ मसूर

हि०-मसूर, मसूरक, मसूरी । **बं०**-मसुरि । **म०**-मसुर । **गु०**-मसूर । **क०**-चणगि । **ता०**-मिसुर । **ते०**-मसूर पप्पु । **फा०**-बुनो सुर्ख, नेव सुर्ख, विसुक, मरजूनक । **अ०**-अदस् । **अं०**-Lentil (लॅंटिल्) । **ले०**-*Ervum lens Linn.* (एर्वम् लेन्स); Lens culinaris Medic (लेन्स कलिनेरिस्) । Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)

यह समस्त भारत में शीतऋतु में बोया जाता है। इसका क्षुप-१ से २ फीट ऊँचा, सीधा, झाड़ीदार एवं चने की तरह होता है। पत्ते-संयुक्त, पक्षवत् एवं अग्र सूत्रसम होता है। पत्रक-४ से ६ जोड़े, अवृन्त, मालाकार एवं छोटे होते हैं। पुष्प-सफेद, बैंगनी या गुलाबी, विभिन्न प्रकार के भेदानुसार होते हैं। फली-छोटी, ½ इञ्च लम्बी एवं २ बीज युक्त होती है। बीज-गोल, किंचित् चिपटे तथा भूरे रंग के होते हैं। दाल-लाल रंग की होती है।

रासायनिक संगठन—दाल में प्रोटीन २५, कार्बोहाइड्रेट ६०, स्नेह १ तथा राख २ भाग रहती है।

गुण और प्रयोग—दाल की तरह इसे खाते हैं। यह पौष्टिक किन्तु उष्ण मानी जाती है। विबंध में इसको देते हैं। पुराने व्रण में इसको पीसकर लगाते हैं।

अथाढकी (अरहर) । तस्य नामगुणानाह

आढकी तुवरी चापि सा प्रोक्ता शणपुष्पिका ॥ ५१ ॥
आढकी तुवरा रूक्षा मधुरा शीतला लघुः । ग्राहिणी वातजननी वर्ण्या पित्तकफास्रजित्॥५२॥

अरहर के संस्कृत नाम—आढकी, तुवरी और शणपुष्पिका ये सब हैं।

अरहर—कषाय तथा मधुर रसयुक्त, रूक्ष, शीतल, लघु, ग्राही, वातजनक, शरीर के वर्ण को उत्तम करने वाली एवम् पित्त-कफ तथा रक्तविकार को दूर करने वाली है ॥ ५१-५२ ॥

१० अरहर

हि०–अरहड़, अड़हर, रहर, रहरी, रहड़, तूर। **बं०**–आढ़री, अड़र। **म०**–तुरी, तूर। **गु०**–तुरदाल्य, तुवर। **क०**–तोगरि। **ते०**–कंदुलु। **ता०**–तोवरै। **फा०**–शाखल। **अ०**–शाखुल, शांज्। **अं०**–Pigeon Pea (पीजन् पी); Red Gram (रेड ग्राम)। **ले०**–*Cajanus indicus* Spreng. (केजेनस् इन्डीकस्)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है। इसका **वृक्ष**–४-१० फीट ऊंचा एवं झाड़दार होता है। **पत्ते**-त्रिपत्रक रहते हैं। पत्रक-१॥-२ इञ्च लम्बे एवं आयताकार भालाकार होते हैं। इनके अधःपृष्ठ पर सूक्ष्म ग्रन्थियां होती हैं। **पुष्प**-पीले एवं बैंगनी धारीयुक्त होते हैं। **फलियां**–२-४ इंच लम्बी होती हैं। प्रत्येक फली में ३ से ५ तक बीज रहते हैं। बीज को ही अरहर कहते हैं। यद्यपि इसके अनेकों भेदोपभेद होते हैं तथापि इनके दो प्रकार (Variety), अरहर एवं तूर (var. bicolor; var. flavus) होते हैं। प्रथम का वर्णन ऊपर दिया हुआ है। द्वितीय में क्षुप छोटा, पुष्प पीत, फली छोटी एवं २ से ३ बीजयुक्त हुआ करती है। यह जल्दी परिपक्व होती है। बीजों से दाल बनाने की दो विधियां प्रचलित हैं। एक में आर्द्र करके बनाते हैं तथा दूसरे में वैसे ही दल कर बनाते हैं। दल कर बनाने में दाल अच्छी होती है तथा जल्दी पकती है किन्तु दलने में टूटने से मंहगी पड़ती है। भिगो कर बनाने में अधिक दाल निकलती है किन्तु यह देर में पकती है। अच्छी दाल मोटी, छोटी तथा गोल होती है तथा दूसरी चिपटी, बीच में छोटे गर्तदार, पतली तथा बड़ी होती है जो जल्दी नहीं पकती।

रासायनिक संगठन—दाल में प्रोटीन २२·३, स्नेह १·७, खनिज ३·६, कार्बोहाइड्रेट ५७·२ भाग एवं खटिक, फास्फोरस, विटामिन 'ए' तथा 'बी' १ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका भोजन में बहुत उपयोग किया जाता है। इसके पत्ते तथा दाल को पीसकर, गरम करके स्तन पर दूध बंद करने के लिये बांधते हैं। दाल के लेप से शोथ कम होता है कामला में पत्तों का रस नरासा सैंधव मिलाकर पिलाते हैं।

अथ चणकः (चना)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

चणको हरिमन्थः स्यात्सकलप्रिय इत्यपि। चणकः शीतलो रूक्षः पित्तरक्तकफापहः। लघुः कषायो विष्टम्भी वातलो ज्वरनाशनः॥ ५३॥

चना के संस्कृत नाम—चणक, हरिमन्थ और सकलप्रिय ये सब हैं।

चना—कषायरसयुक्त, शीतल, रूक्ष, लघु, विष्टम्भक, वातकारक एवम् पित्त-रक्तविकार-कफ तथा ज्वर का नाशक है॥ ५३॥

अथ भर्जनादिभेदेन तस्य गुणभेदानाह

**स चाङ्गारेण सम्भृष्टस्तैलभृष्टश्च तद्गुणः। आर्द्रभृष्टो बलकरो रोचनश्च प्रकीर्त्तितः॥ ५४॥
शुष्कभृष्टोऽतिरूक्षश्च वातकुष्ठप्रकोपणः। स्विन्नः पित्तकफं हन्यात् सूपः क्षोभकरो मतः॥५५॥
आर्द्रोऽतिकोमलो रुच्यः पित्तशुक्रहरो हिमः। कषायो वातलो ग्राही कफपित्तहरो लघुः॥**

भुने हुए आदि भेदों से चने के गुणों में भेद—अङ्गारे (केवल अग्नि) से भुने हुये चने के गुण—यदि चना केवल अग्नि से भुना हुआ हो तो पूर्वोक्त गुणों से युक्त होता है। तेल में भुना हुआ चना भी पूर्वोक्त गुणों से युक्त होता है। गीला भुना हुआ चना—बलदायक तथा रुचिकारक होता है। सूखा भुना हुआ चना—अत्यन्त रूक्ष एवं वात तथा कुष्ठ को कुपित करने वाला होता है। उबाला हुआ चना–पित्त तथा कफ का नाशक होता है। चने की रांधी हुई दाल–क्षोभ उत्पन्न करने वाली होती है। भिगोया हुआ चना—कषाय रसयुक्त, अत्यन्त कोमल, रुचिकारक, शीतल, वातजनक, ग्राही, लघु, एवम्-पित्त, शुक्र तथा कफ-पित्त को नष्ट करने वाला होता है। इसके पत्तों के गुण आगे शाकवर्ग में दिये हुवे हैं॥ ५४-५६॥

११ चना

हि०–चने, छोला, रहिला, बूंट। **म०**–हरबरा, चणें। **बं०**–छोला। **गु०**–चण्या, चणा। **क०**–कडले। **ता०**–कडलै। **ते०**–सनगलु। **फा०**–नखूद। **अ०**–हमस। **पं०**–छोले। **अं०**–Gram (ग्राम); Bengal Gram (बैंगाल ग्राम); Chick Pea (चिक् पी)। **ले०**–*Cicer arietinum Linn.* (सीसर् एरीएटीनम्)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में प्रतिवर्ष इसकी खेती की जाती है। इसका **क्षुप**—सीधा या फैला हुआ, अनेक शाखायुक्त, १ से १½ फीट ऊंचा एवं रोमश होता है। **पत्ते**-पक्षवत् होते हैं जिनके पत्रक दीर्घवृत्ताभ, ६ मि० मी० लम्बे, ४ मि० मी० चौड़े, दन्तुर एवं ग्रन्थियुक्त रोमों से आवृत रहते हैं। **पुष्प**-छोटे, एकाकी तथा पत्रकोण में आते हैं जो विभिन्न प्रकारों में भिन्न-भिन्न रंग एवं नाप के होते हैं। **फली**-आयताकार, ¾-१ इञ्च लम्बी तथा प्रायः दो बीजों से युक्त होती है। **बीज**-गोल, नोकदार, ०·२-०·४ इञ्च व्यास के, चिकने या सिकुड़नदार, भूरे, पीले या श्वेत रंग के होते हैं। पत्तों पर रहने वाले रोम ग्रन्थियों से एक प्रकार का अम्ल स्राव होता है जिसका पहले हरीतक्यादि वर्ग (पृ० १६२) में 'चणकाम्ल' के नाम से वर्णन किया जा चुका है। चने के रंग तथा नाप के अनुसार कई भेद किये गए हैं जिनमें मुख्य दो वर्ग हैं। प्रथम में सभी रंगों के चने आते हैं। दूसरे में काबुली आते हैं जो सफेद एवं बहुत बड़े होते हैं। कुछ विद्वानों ने काबुली के क्षुप को भिन्न जाति (Species) का माना है।

रासायनिक संगठन—चने में प्रोटीन १७·१, स्नेह ५·३, खनिज २·७, रेशा ३·९, कार्बोहाइड्रेट ६१·२, खटिक, फास्फोरस, विटामिन 'ए' तथा बी१ एवं आर्द्रता ९·८ रहती हैं। छिलके निकाले भुने हुये चने में प्रोटीन २२·५, स्नेह ५·१, खनिज २·२, रेशा ०, कार्बोहाइड्रेट ५८·९, खटिक, फास्फोरस एवं आर्द्रता ११·२ रहती है।

गुण और प्रयोग—चने का विभिन्न रूपों में आहार द्रव्य के रूप में उपयोग किया जाता है।

अथ कलायः (मटर)। तस्य नामगुणानाह

कलायो वर्त्तुलः प्रोक्तः सतीनश्च हरेणुकः। कलायो मधुरः स्वादुः पाके रूक्षश्च शीतलः॥५७॥

मटर के संस्कृत नाम—कलाय, वर्त्तुल, सतीन तथा हरेणुक ये सब हैं।

मटर—मधुर रसयुक्त, विपाक में भी मधुर, रूक्ष तथा शीतल होता है। इसके साग का वर्णन आगे शाकवर्ग में दिया हुआ है॥ ५७॥

१२ मटर

हिं०–मटर, मट्टर। **बं०**–मटर। **म०**–वाटाणे। **गु०**–मटाणा, वटाणा। **क०**–बटाणि। **ते०**–गुंडुसानगलु। **ता०**–पटाणी। **फा०**–जलबान, कसंग। **अ०**–खलज, हुब्बुल बकर। **अं०**–Field Pea (फील्ड पी); Garden Pea (गार्डन् पी)। **ले०**–*Pisum sativum Linn.* (पाइसम् सॉटिवम्)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

मटर—एक प्रसिद्ध खाद्य अन्न प्रायः सब प्रान्तों में प्रतिवर्ष बोया जाता है।

इसका **क्षुप**-वर्षायु तथा सूत्रों के द्वारा आरोहणशील होता है। पत्ते-पक्षवत्, पत्रक १ से ३ जोड़े, अंतिम सूत्रों में परिवर्तित तथा पत्राधार फूला हुआ होता है। पुष्प-अनियमिताकार, द्विलिंगी एवं अपने वर्गविशिष्ट स्वरूप का होता है। फली-अनेक बीजों से युक्त, चिपटी, लंबी तथा अग्र पर कुछ टेढ़ी नोकदार होती है। इसके अनेक प्रकार पाये जाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन २१, कार्बोहाइड्रेट ५४, स्नेह १, रेशा ५ एवं राख ३ भाग रहती है। इसमें ट्राइगोनेल्लीन (Trigonelline) नामक क्षाराभ पाया जाता है। परिपक्व बीजों के तेल में लैंगिक हारमोन विरोधी गुण रहता है। इससे पौरुष हारमोन निष्क्रिय होकर वन्ध्यत्व प्राप्त होता है।

गुण और प्रयोग—कच्चे मटर से दस्त होते हैं। आहार में इसको अन्न की तरह व्यवहार में लाते हैं।

अथ त्रिपुटः (खेसारी)। तस्य नामगुणानाह

त्रिपुटः खण्डिकोऽपि स्यात्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ। त्रिपुटो मधुरस्तिक्तस्तुवरो रूक्षणो भृशम्॥ कफपित्तहरो रुच्यो ग्राहकः शीतलस्तथा। किन्तु खञ्जत्वपङ्गुत्वकारी वातातिकोपनः॥५९॥

खेसारी के संस्कृत नाम—त्रिपुट तथा खण्डिक ये दो हैं।

खेसारी - मधुर, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, अत्यन्त रूक्ष, रुचिकारक, ग्राही, शीतल एवम् कफ तथा पित्त को नष्ट करनेवाली होती है और सेवन करने से लंगड़ा तथा पंगुला बना देने वाली और वायु को अत्यन्त कुपित करनेवाली होती है॥ ५८-५९॥

१३ खेसारी

हि-खेसारी, खिसारी, कसूर, मटरभेद। बं०-खेसारी। म०-लाग। गु०-लांग। फा०-मासंग। अ०-हबुल बकर, खल्लज। अं०-Chickling Vetch (चिक्लिंग वेच)। ले०-*Lathyrus sativus Linn.* (लैथीरस् सेटीवस्)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

प्रायः सब प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है और उत्तर भारत में अधिक उत्पन्न होती है। इसकी शाखायें पंखदार होती हैं। पत्ते-पक्षवत् तथा अग्र २ या ३ सूत्रों में विभाजित रहते हैं। पत्रक पतले, १-२½ इञ्च लंबे, रेखाकार-भालाकार, लम्बाग्र एवं संख्या में २-४ रहते हैं। फूल-नीलापन युक्त लाल या श्वेत होते हैं। फलियां-१-१॥ इञ्च लम्बी, एक किनारे पर पंखदार तथा ४ से ५ बीजों से युक्त होती हैं। अकाल के समय गरीब इसकी दाल खाते हैं। इसका चारे के रूप में उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—बीजों में एक विषैला पदार्थ होता है।

गुण और प्रयोग—बीजों का तेल तीव्र तथा हानिकारक विरेचक होता है। इसकी दाल खाने से लकवा जैसा लॅथिरिज्म (Lathyrism) नामक रोग होता है। यह रोग जानवरों को भी होता है। कुछ विद्वानों के मत से इसके साथ मिले अन्य द्रव्यों के कारण यह रोग होता है।

अथ कुलत्थः (कुलथी)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

कुलत्थिका कुलत्थश्च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥ ६०॥
कुलत्थः कटुकः पाके कषायः पित्तरक्तकृत्। लघुर्विदाही वीर्योष्णः श्वासकासकफानिलान्॥ हन्ति हिक्काऽश्मरीशुक्रदाहानाहान् सपीनसान्। स्वेदसंग्राहको मेदोज्वरक्रिमिहरः सरः॥

कुलथी के संस्कृत नाम—कुलत्थिका तथा कुलत्थ ये दो हैं।

कुलथी—कषायरसयुक्त, विपाक में कटुरसयुक्त, पित्त तथा रुधिर विकार को करने वाली, लघु, विदाही, उष्णवीर्य, पसीने को रोकने वाली, सारक एवम्-श्वास, कास, कफ, वायु, हिचकी, पथरी, शुक्र, दाह, आनाह (अफरा), पीनस, मेद, ज्वर तथा क्रिमिको दूर करने वाली होती है॥

१४ कुलथी

हि०-कुरथी, कुलथी। म०-कुळीथ। क०-हुरूली। ते०-उलवलु। गु० कुलथी। ता०-कोळ्ळु। फा०-किछत, माशहिन्दी, हब्बुल्कलत। अं०-Horse-gram (हॉर्स ग्राम)। ले०-*Dolichos biflorus Linn.* (डोलिकोस् बाईफ्लोरस्)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

कुलथी- इस देश में प्रायः सर्वत्र होती है। दक्षिण में जानवरों को खिलाने के लिये इसकी बहुत खेती की जाती है।

इसका **क्षुप**—झाड़ीदार, आरोहणशील, पतला, धूसर रोमश, १२ से १८ इञ्च ऊंचा एवं मूल से अनेक पतली शाखाओं से युक्त होता है। पत्ते-त्रिपत्रक एवं २ इञ्च लंबे वृन्तयुक्त होते हैं। पत्रक-पीताभ हरे, १½ इञ्च लम्बे, तिर्यक् अंडाकार एवं अग्र तीक्ष्ण और रोमश होता है। पुष्प-छोटे पीताभ श्वेत रंग के आते हैं। फली-चिपटी, १½-२ इञ्च लम्बी, ¼ इञ्च चौड़ी तथा कुछ टेढ़ी होती है। बीज-५-६ हलके लाल, काले चितकबरे, चिपटे, ⅙-⅕ इंच बड़े एवं चमकीले होते हैं। इसको विशेष रूप से घोड़ों को खिलाते हैं। इसको बिना दाल बनाये ही उपयोग में लाते हैं। गरीब इसको खाते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजों में प्रोटीन २२, स्नेह ०·५, खनिज ३·१, रेशा ५·३, कार्बोहाइड्रेट ५७.१, खटिक ०·२८, फास्फोरस ०·३९%, लोह ७·६ मि० ग्रा०, निकोटिनिक् ॲसिड १·५ मि० ग्रा० एवं विटामिन 'ए' ११९ एकक प्रति १०० ग्राम में पाया जाता है। इसमें युरियस् (Urease) काफी होता है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, मूत्रल, वात-कफनाशक, मेदहर एवं अश्मरीघ्न है। इसका क्वाथ अश्मरी, श्वास, कास एवं श्वेतप्रदर में दिया जाता है।

मात्रा—३ से ६ माशा।

अथ तिलः। तस्य तद्भेदानां च गुणानाह

तिलः कृष्णः सितो रक्तः सवन्योऽल्पतिलः स्मृतः। तिलो रसे कटुस्तिक्तो मधुरस्तुवरो गुरुः॥
विपाके कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः कफपित्तनुत्।
बल्यः केश्यो हिमस्पर्शस्त्वच्यः स्तन्यो व्रणे हितः॥ ६४॥
दन्त्योऽल्पमूत्रकृद् ग्राही वातघ्नोऽग्निमतिप्रदः। कृष्णः श्रेष्ठतमस्तेषु शुक्लो मध्यमः सितः॥
अन्ये हीनतराः प्रोक्तास्तज्ज्ञै रक्तादयस्तिलाः॥ ६५॥

तिल का संस्कृत नाम—तिल ही है। भेद—काले, सफेद तथा लाल रङ्गों के भेद से तिल ३ प्रकार के होते हैं। जो तिल जङ्गलों में होता है वह वन्यतिल और अल्पतिल नाम से प्रसिद्ध है।

तिल—कटु, तिक्त, मधुर तथा कषाय रसयुक्त, विपाक में कटुरस युक्त, स्वादिष्ट, गुरु, स्निग्ध, उष्ण, कफ तथा पित्तनाशक, बलकारक, केशों के लिये हितकर, स्पर्श में शीतल, त्वचा के लिये हितकर, दुग्धवर्धक, व्रण में काम पहुँचाने वाला, दांतों के विकारों को दूर करनेवाला, थोड़ा

मूत्रकारक, ग्राही, वातनाशक, जठराग्नि तथा बुद्धि को बढ़ाने वाला होता है। तिलों में काला तिल--वीर्यवर्धक तथा सर्वोत्तम होता है। सफेद तिल--गुणों में मध्यम होता है। इससे अन्य जो लाल वगैरे तिल हैं वे गुणों में अत्यन्त हीन हैं ऐसा निघण्टु के विद्वानों का मत है॥ ६३-६५॥

१५ तिल

हि०-तिल, तील, तिली। **बं०**-तिलगाछ। **म०**-तीळ। **गु०**-तल। **क०**-बुल्लेल्लु। **ते०**-नुव्वुलु। **ता०**-एल्लु। **फा०**-कुंजद। **अ०**-सिमासिम, बजरुल्खुल खाखुलवर्री। **अं०**-Gingelli (जिंजेल्ली), Sesame (सीसेम)। **ले०**-*Sesamum indicum* *Linn.* (सिसेमम् इंडिकम्)। Fam. Pedaliaceae (पेडालिएसी)।

इसकी प्रायः सभी प्रान्तों में खेती की जाती है। इसका **क्षुप**-२½ से ४½ फीट ऊँचा, काण्ड चौपहल एवं अनेक शाखायुक्त होता है। **पत्ते**-नीचे से ऊपर विभिन्न प्रकार के, दन्तुर या अखण्ड होते हैं। **पुष्प**-विभिन्न रंगों के, श्वेत से लेकर गहरे बैंगनी रंग के एवं नलिकाकार द्वयोष्ठ होते हैं। **फली**-१½ से २ इञ्च लंबी, करीब ½-१ इञ्च गोलाई में एवं अनेक बीजों से युक्त होती है। **बीज**-विभिन्न प्रकार के अनुसार श्वेत, मन्दश्वेत, हलके भूरे, गहरे भूरे या काले रंग के हुआ करते हैं। ये चिपटे, अंडाकार तथा एक इञ्च की लम्बाई में ६ से ८ तथा चौड़ाई में १० से १२ आते हैं। विभिन्न ऋतुओं में बोने के अनुसार इनके भेद हुआ करते हैं।

रासायनिक संगठन--इनमें प्रकार तथा स्थानभेद से तेल की मात्रा ३७-५७% एवं कार्बोहाइड्रेट १४ से २२% एवं प्रोटीन २१ से २६% पाया जाता है। काले तिल में प्रोटीन अधिक तथा कार्बोहाइड्रेट कम रहता है। भूरे की अपेक्षा श्वेत में प्रोटीन अधिक पाया जाता है। ताजे पत्तों में काफी लुआब रहता है।

गुण और प्रयोग- तिल का तथा इसके तेल का उपयोग नित्य के व्यवहार में किया जाता है। यह स्नेहन, आनुलोमिक, मूत्रजनन, वाजीकर, आर्तवजनन, स्तन्यजनन, बल्य, व्रणशोधन रोपण तथा केशवर्धन है।

(१) अर्श में इसको मक्खन के साथ खिलाते हैं तथा पीसकर गरमकर इससे सेकते हैं।

(२) मछली खाकर अजीर्ण हो तो इसके पंचांग का क्षार देते हैं। उदर शूल में तिल को सुगंधि पदार्थ के साथ पीसकर गोली बनाकर देते हैं। तिल से दांत मजबूत रहते हैं।

(३) खांसी में तिल का क्वाथ, चीनी मिलाकर पिलाते हैं। सूखी खांसी में ताजे पत्तों का हिम थोड़ा थोड़ा पिलाते हैं।

(४) मूत्राश्मरी में तिलक्षार दूध तथा शहद के साथ देते हैं।

(५) इसका गर्भाशय पर संकोचक प्रभाव होने से अनार्तव इत्यादि में से इसका उपयोग करते हैं।

(६) इसका पुल्टिस व्रण पर बांधते हैं। तेल का भी उपयोग व्रण पर लगाने के लिये करते हैं।

मात्रा--बीज १ से २ तोला; पंचांगक्षार ५ से १५ रत्ती।

अथातसी (तीसी)। तस्या नामगुणानाह

अतसी नीलपुष्पी च पार्वती स्यादुमा क्षुमा॥ ६६॥

अतसी मधुरा तिक्ता स्निग्धा पाके कटुर्गुरुः। उष्णा दृक्छुक्रवातघ्नी कफपित्तविनाशिनी॥

तीसी के संस्कृत नाम--अतसी, नीलपुष्पी पार्वती, उमा तथा क्षुमा ये सब हैं।

तीसी--मधुर तथा तिक्त रसयुक्त, स्निग्ध, विपाक में कटुरसयुक्त, गुरु, उष्ण एवम् नेत्रों की शक्ति, शुक्र, वात, कफ तथा पित्त को दूर करनेवाली होती है॥ ६६-६७॥

१६ तीसी

हि०-तीसी, तिसी, अलसी, मसीना। **बं०**-तिसी, मसीना। **म०**-जवस, अळशी। **गु०**-अलशी। **क०**-अगसि। **ते०**-अविसि। **ता०**-अलिविराई। **फा०**-तुख्मे कतान, वजुरग, वजुर्ग। **अ०**-बजरूल कतान, बजरूल कुनान, बजरुलकर्ता। **अं०**-Common Flax (कामन फ्लेक्स), Linseed (लिन्सीड)। **ले०**-*Linum usitatissimum* *Linn.* (लीनम् यूसिटेटिसिमम्)। Fam. Linaceae (लिनेसी)।

तीसी--प्रायः सब प्रान्तों के खेतों में बोई जाती है। इसका **पौधा**-१॥-२ फीट ऊँचा होता है। **पत्ते**-छोटे, रेखाकार या भालाकार एवं ३ शिराओं से युक्त होते हैं। **फूल**-नीले रङ्ग के घंटाकार; **फल**-गोल घुंडी सा ऊपर को नोकीला एवं ५ कोषयुक्त होता है। **बीज**-प्रत्येक कोष में १० के करीब, चिपटे, चिकने, गहरे भूरे एवं चमकीले होते हैं।

पीले एवं श्वेत रंग के बीजों के भेद मध्यभारत तथा राजपुताना में होते हैं जिनमें तेल अधिक मात्रा में तथा कुछ हलके रंग का निकलता है। भूरे में भी छोटे-बड़े भेद होते हैं। बड़े में तेल अधिक रहता है। इसके बीज एवं तेल का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। तेल का वार्निश, पेन्ट आदि में उपयोग करते हैं। कांड से लिनेन (Linen) तन्तु बनाते हैं जिसके कपड़े बनाये जाते हैं।

रासायनिक संगठन--तीसी में तेल ३८ से ४५% रहता है। घानी से निकालने में २५-३०% ही प्राप्त होता है। इसमें प्रोटीन २०-२५%, पिच्छिल द्रव्य ६%, मोम, राल, फास्फेट, शर्करा १८% एवं अल्प ग्लाइकोसाइड, लिनामेरिन (Linamarin) रहता है। इसके पुष्प एवं अपक्व बीजों में हाइड्रोसाइनिक् अम्ल ०·६९% तक एवं क्षाराभ लिपरीन (Liparine) रहता है।

गुण और प्रयोग- इसके बीज, स्नेहन, मार्दवकर, बल्य, वेदनास्थापन, मूत्रजनन एवं वातहर हैं। तेल विरेचन एवं व्रणरोपण है।

(१) इसके तेल को या बीजों को सौम्यविरेचक रूप में देते हैं। (२) बीजों को कूटकर, पानी मिलाकर, पकाकर, पुल्टिस के रूप में शोथ आदि पर बाँधने से नवीन शोथ दब जाता है या पककर जल्दी फूट जाता है। इसका तेल तथा चूने का पानी मिला जले पर लगाते हैं। (३) इसके बीजों का फाँट खाँसी में देते हैं।

मात्रा--तेल २ से ४ ड्राम; बीज १ बड़ा चम्मच।

अथ तुवरी ("तोरी, तोडिस" इति लोके)। तस्या गुणानाह

तुवरी ग्राहिणी प्रोक्ता लघ्वी कफविषास्रजित्। तीक्ष्णोष्णा वह्निदा कण्डूकुष्ठकोष्ठक्रिमिप्रणुत्॥

तुवरी (जिसे लोक में तोरी या तोडिस कहते हैं) के गुण--तोरी-ग्राही, लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, जठराग्निवर्धक एवम्--कफ, विष, रक्तविकार, खुजली, कुष्ठ तथा कोष्ठस्थित क्रिमि को दूर करनेवाली होती है॥ ६८॥

१७ तोरी

हि०–तोरी, तीरा, लाही, तारा मिरा, सेओहा, तिउरा। **पं०**–असू, तारा। **बं०**–श्वेतसरिश। **अं०**–Rocket Salad (राकेट सलाद)। **ले०**–*Eruca sativa Mill.* (एरुका सटाइवा)। Fam. Cruciferae (क्रुसीफेरी)।

यह पश्चिम हिमालय में १० हजार फीट की ऊँचाई तक होती है। उत्तरभारत में इसकी खेती की जाती है। पंजाब एवं अल्पमात्रा में उत्तरप्रदेश तथा ग्वालियर में शीतकालीन फसलों के साथ इसको बोते हैं।

इसका क्षुप—सरसों के जैसा होता है। यह २ से ४ फीट ऊँचा होता है। **पत्ते** ३ से ७ इञ्च लम्बे, मांसल, दन्तुर, आधे से अधिक पक्षवत् खण्डित एवं खण्ड प्रायः रेखाकार–आयताकार होते हैं। **पुष्प**–बड़े, श्वेताभ या पीताभ एवं बैंगनी शिराओं से युक्त होते हैं। **फली** एक इञ्च लंबी, सीधी, ऊपर की ओर उठी हुई एवं काण्ड से लगी हुई होती है। **बीज**–अनेक, छोटे, हलके रक्ताभ भूरे, अंडाकार, चिकने एवं प्रत्येक कोष्ठ में दो कतारों में रहते हैं। राई, सरसों में इसकी मिलावट की जाती है। इसके तेल को लोग जलाने, खाने एवं मालिश इत्यादि के काम में लाते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजों में से २०% हलके पीले रंग का, कुछ कड़वा एवं तीक्ष्ण गंध का तेल प्राप्त होता है। उत्तरप्रदेश के बीजों का तेल पंजाब की अपेक्षा कम तीक्ष्ण होता है। यह तेल ५, ६ महिने रखने से उसकी तीक्ष्णता कम हो जाती है। इसमें एक तीक्ष्ण गंध का उड़नशील तेल भी होता है जिसे चर्म पर लगाने से दाह होता है।

गुण और प्रयोग—इसके नये पत्ते दीपन एवं मूत्रल होते हैं इसके बीज सरसों की तरह प्रतिक्षोभक होते हैं। चर्मरोगों में तेल का उपयोग किया जाता है। कोमल पौधों का साग बनाते हैं।

अथ सर्षपो रक्तः—पीतश्च (लाल सरसों और पीली सरसों)। तयोर्नामगुणानाह

सर्षपः कटुकः स्नेहस्तुन्तुभश्च कदम्बकः। गौरस्तु सर्षपः प्राज्ञैः सिद्धार्थ इति कथ्यते ॥६९॥
सर्षपस्तु रसे पाके कटुः स्निग्धः सतिक्तकः। तीक्ष्णोष्णः कफवातघ्नो रक्तपित्ताग्निवर्धनः ॥
रक्षोहरो जयेत्कण्डूं कुष्ठकोष्ठक्रिमिग्रहान्। यथा रक्तस्तथा गौरः किन्तु गौरो वरो मतः ॥७१॥

सरसो (लाल सरसो) के संस्कृत नाम—सर्षप, कटुक, स्नेह, तुन्तुभ और कदम्बक ये सब हैं। सफेद सरसो (पीली सरसो) का संस्कृत नाम—गौर सर्षप और सिद्धार्थ है। सरसो-विपाक में कटुरस युक्त, स्निग्ध, कटु तथा तिक्त रसयुक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, कफ और वात का नाशक, रक्तपित्त तथा जठराग्नि को बढ़ाने वाला, रक्षों की बाधा को दूर करनेवाला एवम् खुजली, कुष्ठ, कोष्ठस्थित क्रिमि तथा ग्रहबाधा को नष्ट करनेवाला होता है। सफेद सरसो, गुणों में यद्यपि लाल सरसो के समान ही है तथापि अपेक्षाकृत सफेद ही उत्तम होता है। सरसो के शाक का वर्णन आगे शाकवर्ग में दिया हुआ है ॥ ६९–७१ ॥

१८ सरसों

हि०–सरसों, सरिसो, सर्सो। **बं०**–सरीसा। **म०**–शिरशी। **गु०**–शरशव, सरशव। **क०**–सासवे। **ते०**–आवालु। **ता०**–कडुगु। **फा०**–सर्षफ, सरशफ, सिपन्दान। **अ०**–उर्फ अबीयद, खर्दले अबयज्, हुर्फ। **अं०**–Yellow Sarson (यलो सरसों); Indian Colza (इण्डियन् कोलझा)।

ले०–*Brassica campestris var. sarson Prain* (ब्रासिका केम्पेस्ट्रिस् वेराइटी सरसों)। Fam. Cruciferae (क्रूसीफेरी)।

इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है। बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश एवं पंजाब में यह अधिक होती है। इसका क्षुप–३ से ५ फीट तक ऊँचा होता है। **पत्ते**–काण्ड की जड़ से सटे हुए, लम्बे, गहरे कटे किनारे वाले और चिकने होते हैं। **फूल**–अत्यन्त सुहावने पीले रङ्ग के आते हैं। **फलियाँ**–२–३ इञ्च लम्बी और गोल होती हैं। इनमें से जो पीले रङ्ग के बीज निकलते हैं उन्हीं को सरसों कहते हैं।

इसके कई प्रकार पाये जाते हैं। रंग भेद से पीला तथा भूरा, फली में के कोष्ठ की संख्यानुसार (२, ३, ४), फली की काण्ड के साथ की स्थिति, लटकी हुई या सीधी खड़ी के अनुसार ये भेद होते हैं। इससे 'सरसों का तेल' निकालते हैं सरसों के खाने के तेल में इसकी अन्य जातियों के बीजों का तेल भी मिला रहता है।

रासायनिक संगठन–इसमें ३५ से ४८% स्थिर तैल, ०·२७% उड़नशील तैल एवं प्रोटीन २०% एवं एरुसिक् एसिड (Erucic acid) रहता है।

गुण और प्रयोग—इसका तेल खाने एवं मालिश के काम आता है। आमवातादि में कपूर मिलाकर इससे मालिश की जाती है। गरम जल में इसको मिलाकर पुलटिस के रूप में इसका प्रयोग करते हैं। इसमें का उड़नशील तैल प्रतिक्षोभक होता है एवं इसको चर्म पर लगाने से फोड़े आ सकते हैं।

अथ राजिका कृष्णराजिका च (राई, कृष्णराई)। तयोर्नामानि गुणांश्चाह

राजीतु राजिका तीक्ष्णगन्धा क्षुजनिकाऽऽसुरी। क्षवः क्षुताभिजनकः कृष्णीका कृष्णसर्षपः ॥
राजिका कफपित्तघ्नी तीक्ष्णोष्णा रक्तपित्तकृत्। किञ्चित् रूक्षाऽग्निदा कण्डूकुष्ठकोष्ठक्रिमीन्हरेत् ॥
अतितीक्ष्णा विशेषेण तद्वत्कृष्णाऽपि राजिका ॥ ७३ ॥

राई के संस्कृत नाम—राजी, राजिका, तीक्ष्णगन्धा, क्षुज्जनिका तथा आसुरी ये सब हैं। काली राई के संस्कृत नाम—क्षव, क्षुताभिजनक, कृष्णिका तथा कृष्णसर्षप ये सब हैं।

राई—कफ तथा पित्तनाशक, तीक्ष्ण, उष्ण, रक्तपित्तकारक, किञ्चित् रूक्ष, जठराग्निवर्धक एवम् खुजली, कुष्ठ तथा कोष्ठस्थित क्रिमि को दूर करनेवाली होती है।

काली राई यह वैसे तो गुणों में राई ही के समान होती है किन्तु उसकी अपेक्षा विशेषतः अत्यन्त तीक्ष्ण होती है ॥ ७२ ७३ ॥

१९ राई

हि०–राई, लाल राई, माकड़ा राई। **बं०**–राइ, सरिषा। **म०**–राई। **गु०**–राई। **क०**–सासि। **ते०**–आवालु। **ता०**–कडुगु। **अ०**–खरदल, खर्दल। **फा०**–सर्शफ। **अं०**–Indian Mustard (इंडियन मस्टर्ड)। **ले०**–*Brassica juncea Linn.* (ब्रासीका जून्सिआ)। Fam. Cruciferae (क्रूसीफेरी)।

राई–सरसों के समान खेतों में बोई जाती है। **क्षुप**–सरसों के समान होता है। **पत्ते**–साधारण, एकान्तर, मूलीय एवं काण्डीय तथा गहरे कटे हुये होते हैं। **पुष्प**–चमकीले पीले होते हैं। **फली**–

पतली एवं आधार से फट जाती है। बीज-रक्ताभ भूरे, सरसों से छोटे एवं सिकुड़नदार होते हैं। इनसे भी तेल निकाला जाता है।

एक बनारसी राई और होती है जिसका ले० नाम *Brassica nigra Linn.* (ब्रासिका नाइग्रा) है। इसके बीजों पर सूक्ष्म जाली दिखलाई देती है। इनसे तेल नहीं निकालते किन्तु चटनी-अचार इत्यादि में इसे डालते हैं।

रासायनिक संगठन--राई में तेल ३५'५, प्रोटीन २४'६, रेशा ८ एवं राख ५'२ भाग रहती है। इसका तेल अधिक स्वच्छ तथा सरसों के जैसी गंध इसमें नहीं होती।

गुण और प्रयोग--कम मात्रा में यह दीपन, पाचन, उत्तेजक तथा स्वेदजनन है। अधिक मात्रा (४-८ माशा) से वमन होता है। इससे वमन कराने से बाद में थकावट नहीं आती।

इसका बाह्य प्रयोग लेप के रूपमें आन्तरिक शोथ में करते हैं। इससे त्वचा लाल होकर अधिक देर रखने से फोड़े भी होजाते हैं। इसे एक घंटे से अधिक कदापि न रखे। प्रतीश्याय में इसकातेल नाक एवं पावों पर मलते हैं।

अथ क्षुद्रधान्यम्। तस्य नामगुणानाह

क्षुद्रधान्यं कुधान्यं च तृणधान्यमिति स्मृतम्। क्षुद्रधान्यमनुष्णं स्यात्कषायं लघु लेखनम्॥
मधुरं कटुकं पाके रूक्षं चक्लेदशोषकम्। वातकृद् बद्धविट्कं च पित्तरक्तकफापहम्॥ ७५॥

क्षुद्रधान्य के संस्कृत नाम—क्षुद्रधान्य, कुधान्य तथा तृणधान्य ये सब हैं।

क्षुद्रधान्य—किञ्चित् उष्ण, कषाय तथा मधुर रस युक्त, लघु, लेखन, विपाक में कटु रसयुक्त, रूक्ष, क्लेद (आर्द्रता) को सुखाने वाला, वातकारक, मल को बांधने वाला एवम्-पित्त, रक्तविकार तथा कफ का नाशक होता है॥ ७४-७५॥

अथ कङ्गुः (कङ्गुनी) तस्य नामभेदगुणानाह

स्त्रियां कङ्गुप्रियङ्गु द्वे कृष्णारक्ता सिता तथा। पीता चतुर्विधा कङ्गुस्तासां पीता वरा स्मृता।
कङ्गुस्तु भग्नसन्धानवातकृद् बृंहणी गुरुः। रूक्षा श्लेष्महराऽतीव वाजिनां गुणकृद् भृशम्॥

कङ्गुनी का संस्कृत नाम—कङ्गु तथा प्रियङ्गु (ये दोनों स्त्रीलिङ्गी हैं) हैं। भेद--काली, लाल, सफेद तथा पीली इन भेदों से कङ्गुनी ४ प्रकार की होती है। इनमें से पीली कंगुनी ही सर्वोत्तम होती है।

कंगुनी—टूटी हुई अस्थियों को जोड़ने वाली, वातकारक, बृंहण (रसरक्तादि वर्धक), गुरु, रूक्ष, अत्यन्त कफनाशक और घोड़ों के लिये विशेषरूप से गुण करनेवाली होती है॥७६ ७७॥

२० कंगुनी

हि०-कंगुनी, कगनी, टंगुनी। **बं०**-कांगुनी। **म०**-कांग। **ता०**-तेनई। **गु०**-कांग। **क०**-नवणे। **ते०**-कोरलु। **फा०**-गाल, अरजुन। **अ०**-दुख्न। **ले०**-*Setaria italica Beauv.* (सेटारिया इटेलिका)। Fam. Gramineae (ग्रेमिनी)।

कंगुनी की खेती प्रायः सब प्रान्तों में होती है। यह ६ हजार फीट की ऊंचाई तक हो सकने के कारण हिमालय के तराई प्रदेश में भी इसे लोग बोते हैं। इसकी सालभर तक पैदावार की जा सकती है तथा यह १०० दिन में तैयार हो जाती है। अधिकतर वर्षा के प्रारम्भ में इसे बोते हैं।

इसका क्षुप-३-३½ फीट ऊंचा, पतला एवं बाल के बोझ से झुका हुआ होता है। पत्ते-१२-१८ इञ्च लम्बे, ½ इञ्च चौड़े, हलके हरे एवं रेखाकार भालाकार होते हैं। पुष्पव्यूह-अवृन्त काण्डज (Spike-स्पाइक्), ६-१२ इञ्च लम्बा, ¾-१½ इञ्च व्यास का तथा शूकयुक्त होता है। बाल-बाजरे के समान किन्तु उससे छोटे प्रायः ६ इञ्च लम्बे एवं ½-१½ इञ्च व्यास के होते हैं। भेद के अनुसार ये लंबे भी होते हैं।

धान्य विभिन्न रंगों के हुआ करते हैं। ये चिकने चमकीले, पीले, श्वेत, मलाई के रंग के नारंग रक्त, बैंगनी, काले, हरिताभ श्वेत एवं हलके पीत रंगों के होते हैं। बालों में से जो बारीक दाने निकलते हैं। उन्हीं को कंगुनी कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन ११, स्नेह ४, कार्बोहाइड्रेट ७०, रेशा ५ एवं राख ३ भाग रहती है। इसमें एक विषैला ग्लूकोसाइड तथा तैलीय क्षाराभ पाया गया है।

गुण और प्रयोग—चावल की तरह इसे लोग खाते हैं। प्रसवपीडा को कम करने के लिये इसका उपयोग करते हैं। आमवात में इसका लेप किया जाता है।

अथ चीनाकः (चीना) तस्य नामगुणानाह

चीनाकः काककङ्गुश्च सुश्लक्ष्णः श्लक्ष्णकः स्मृतः।
चीनाकः कङ्गुभेदोऽस्ति स ज्ञेयः कङ्गुवद् गुणैः॥ ७८॥

चीना के संस्कृत नाम—चीनाक, काककंगु, सुश्लक्ष्ण, श्लक्ष्णक तथा कंगुभेद ये सब हैं।

चीना—कङ्गुनी का भेद है अतः इसके भी गुण कंगुनी के समान ही समझने चाहिये॥ ७८॥

२१ चीना

हि०-चीना, चिन्ना, चैना। **बं०**-चिने। **म०**-वरिवव। **गु०**-चीणे, चीणा। **क०**-बरगु। **ता०**-पनिवरगु। **ते०**-वरिगलु। **अं०**-Indian Millet (इंडियन मिलेट)। **ले०**-*Panicum miliaceum Linn.* (पेनीकम मिलिएसिअम्)। Fam. Gramineae (ग्रेमिनी)।

सभी स्थानों पर इसकी खेती की जाती है। यह शीघ्र होनेवाला क्षुद्र धान्य है। क्षुप-सीधा, वर्षायु एवं १८-२४ इञ्च ऊंचा होता है। पत्ते-पतले, रेखाकार तथा पर्व को घेरे रहते हैं। पुष्पव्यूह-अनेक शाखायुक्त तथा शाखाग्र पर शूचिकायें (Spikelets) एक या दो-दो रहती हैं। अंतिम या चतुर्थ बुसपत्र (Glume-ग्लूम) पर पुष्प रहता है जो धान्य में परिवर्तित होता है। धूसर, पीले, चमकीले हलके पीले आदि रंगों के भेद से यह कई प्रकार का होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन १३, स्नेह १, कार्बोहाइड्रेट ६९, रेशा २, राख ३ एवं आर्द्रता १२ भाग रहती है।

गुण और प्रयोग—क्षुप का सोजाक में उपयोग करते हैं। धान्य को पकाकर या पीसकर उपयोग में लाते हैं।

अथ श्यामाकः (सामा)। तस्य नामगुणानाह

श्यामाकः श्यामकः श्यामस्त्रिबीजः श्यावविप्रियः। सुकुमारो राजधान्यं तृणबीजोत्तमश्च सः॥
श्यामाकः शोषणो रूक्षो वातलः कफपित्तहृत्॥ ७९॥

सामा के संस्कृत नाम—श्यामाक, श्यामक, श्याम, त्रिबीज, अविप्रिय, सुकुमार, राजधान्य, तथा तृणबीजोत्तम ये सब हैं। सामा–शोषण करने वाला, रूक्ष, वातजनक एवम् कफ तथा पित्त को दूर करने वाला होता है ॥ ७९ ॥

२२ सावाँ

हि०–सांवा, सावाँ। **बं०**–सावा, शामुला, श्यामाधान। **म०**–जंगली सामा, सामुल। **गु०**–सामो, सामोघास। **ते०**–ओडुलु। **ता०**–कुदैवलि पिल्लु। **क०**–समै, सवै। **अं०**–Japanese Barnyard Millet (जापानीज बार्नयार्ड मिलेट)। **ले०**–*Echinochloa frumentacea Link* (एचिनोच्लोआ फ्रूमेन्टेसिआ)। Fam. Gramineae (ग्रेमिनी)।

सभी स्थानों पर इसकी खेती की जाती है। वर्षा के प्रारम्भ में अन्य धान्यों के साथ इसे बोते हैं। यह बहुत जल्दी (६ सप्ताह) तैयार हो सकता है।

इसका क्षुप–वर्षायु, २ से ४ फीट ऊंचा, पत्ते चौड़े, शूकिकायें बड़ी एवं बीज छोटे, चिकने, चमकीले, आधार पर गोल एवं अग्र नोकीला रहता है।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन ६, स्नेह २, खनिज ४, रेशा १०, कार्बोहाइड्रेट ६६ तथा आर्द्रता १२ भाग रहती है। इसमें विटामिन 'बी' १ पर्याप्त रहता है।

गुण और प्रयोग—इसका पंचांग पैत्तिक विकार तथा विबंध में लाभदायक माना जाता है। इस धान्य को गरीब खाते हैं। इसको उबाल कर या कुछ भूनकर खाया जाता है।

अथ कोद्रवः वनकोद्रवश्च (कोदो-वनकोदो)। तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

कोद्रवः कोरदूषः स्यादुद्दालो वनकोद्रवः। कोद्रवो वातलो ग्राही हिमः पित्तकफापहः ॥
उद्दालस्तु भवेदुष्णो ग्राही वातकरो भृशम् ॥ ८० ॥

कोदो के संस्कृत नाम—कोद्रव तथा कोरदूष ये सब हैं। वनकोदो के संस्कृत नाम—उद्दाल तथा वनकोद्रव ये सब हैं।

कोदो—वायुकारक, ग्राही शीतल एवम् पित्त तथा कफ का नाशक होता है।

वनकोदो—गरम, ग्राही तथा अत्यन्त वातकारक होता है ॥ ८० ॥

२३ कोदो

हि०–कोदो धान, कोदव, कोदो। **बं०**–कोदो आधान। **म०**–कोद्र, हरिक, कोद्रु। **गु०**–कोदरा। **क०**–हारक। **ते०**–अरिकेलु। **ता०**–वरगु। **अ०**–कोद्रु। **फा०**–कोदिरम। **ले०**–*Paspalum scrobiculatum Linn.* (पास्पेलम् स्क्रोबिक्यूलेटम्)। Fam. Gramineae (ग्रेमिनी)।

सभी भागों में यह वन्य अथवा कृषितरूप में होता है।

कोदो—एक प्रकार का तृणजातीय धान्य वर्षाकाल के आरम्भ ही में रोपण किया जाता है और आश्विन कार्तिक में काट लिया जाता है। इसका क्षुप–वर्षायु, सीधा खड़ा एवं १½–२ फीट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते–पतले, बास के समान लम्बे होते हैं। इसकी मंजरी बाहर नहीं निकलती बल्कि सींकों के बीच में ही रह कर पक जाती है। इसके बीज सरसों के समान, छिलका सहित काले रङ्ग के और भूसी निकालने पर किंचित पीलापन युक्त सफेद रङ्ग के होते हैं। इस अन्न में

विशेषता यह है कि–भूसी सहित रखने से यह पचासों वर्ष तक नहीं बिगड़ता। इसको भूसी निकाल कर गरीब कृषक खाते हैं। इसमें आटा भी कम निकलता है तथा भूसी हटाने में भी कठिनाई रहती है। इसके कई प्रकार पाये गये हैं।

रासायनिक संगठन—इसके भूसी निकाले धान्य में प्रोटीन १२, कार्बोहाइड्रेट ७७, रेशा १ एवं राख १ भाग रहती है। कभी-कभी इसके पौधे तथा धान्य में मादक तत्त्व उत्पन्न हो जाते हैं जिससे चक्कर आदि आने लगते हैं।

गुण और प्रयोग—मधुमेह से पीड़ित व्यक्ति के लिये चावल के स्थान पर इसको दिया जाता है।

अथ चारुकः (शरबीज)। तस्य नामगुणानाह

चारुकः शरबीजः स्याच्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ। चारुको मधुरो रूक्षो रक्तपित्तकफापहः ॥
शीतलो लघुर्वृष्यश्च कषायो वातकोपनः ॥ ८१ ॥

शरबीज (सरपत के बीज) का संस्कृत नाम—चारुक तथा शरबीज है।

शरबीज—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, रूक्ष, शीतल, लघु, वीर्यवर्धक, वात को कुपित करने वाले एवम् रक्तपित्त तथा कफ के नाशक होते हैं।

२४ शरबीज

इसका विवरण पहले गुडूच्यादिवर्ग (पृष्ठ ३८०) में किया गया है।

अथ वंशयवाः (बांस के बीज)। तेषां गुणानाह

यवा वंशभवा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः। बद्धमूत्राः कफघ्नाश्च वातपित्तकराः सराः ॥८२॥

बांस के बीज के संस्कृत नाम—वंशयव तथा वंशबीज हैं।

बांस के बीज—कषाय रसयुक्त, रूक्ष, विपाक में कटु रसयुक्त, मूत्र का विबन्ध (रुकावट) करने वाले, वात तथा पित्तकारक, सारक–एवम् कफनाशक होते हैं।

२५ वंशयव

इसका विवरण पहले गुडूच्यादिवर्ग में पृष्ठ ३७७ पर किया गया है।

अथ कुसुम्भबीजम् (कुसुम के बीज, करें)। तस्य नामगुणानाह

कुसुम्भबीजं वरटा सैव प्रोक्ता वरट्टिका ॥ ८३ ॥
वरटा मधुरा स्निग्धा रक्तपित्तकफापहा। कषाया शीतला गुर्वी स्याद्वृष्याऽनिलापहा ॥८४॥

कुसुम के बीज (करें, बरें) के संस्कृत नाम—कुसुम्भबीज, वरटा, तथा वरट्टिका ये सब हैं।

कुसुम के बीज—मधुर तथा कषाय रस युक्त, स्निग्ध, शीतल, गुरु, किंचित वीर्यवर्धक एवम्–रक्तपित्त–कफ तथा वात को दूर करने वाले होते हैं ॥ ८३–८४ ॥

२६ कुसुम के बीज

इसका विवरण हरीतक्यादिवर्ग में पृष्ठ ११२ पर दिया गया है।

अथ गवेधुका (गरहेडुआ) । तस्या नामगुणानाह

गवेधुका तु विद्वद्भिर्गवेधुः कथिता स्त्रियाम् । गवेधुःकटुका स्वाद्वी कार्श्यकृत्कफनाशिनी ॥८५॥

गरहेडुआ के संस्कृत नाम—गवेधुका और गवेधु (यह स्त्री लिङ्ग है) ये दो विद्वानों ने बतलाये हैं । **गरहेडुआ**—कटुरस युक्त, स्वादिष्ट, कृशता करने वाला एवम्—कफनाशक होता है ॥ ८५ ॥

२७ गरहेडुवा

हि०-गरहेडुआ, गरहेडु (डु) वा, सन्कु । **बं०**-गड़गड़, देधान, गुरगुड़ । **म०**-कसई । **गु०**-कसई । **अं०**- Adlay (अॅडले); Jobs Tears (जॉब्स् टियरस्) **ले०**-*Coix lachryma jobi Linn.* (कोइक्स लेक्रिमा जोबी) । Fam. Gramineae (ग्रेमिनी) ।

यह बङ्गाल के गड्ढों और चावल के खेतों में उत्पन्न होता है तथा अन्य प्रान्तों में भी पाया जाता है ।

इसका पौधा-३ से ६ फीट तक ऊँचा होता है । पत्ते-४ से १८ इञ्च तक लम्बे, १-१॥ इञ्च चौड़े, रेखाकार प्रासवत् एवं उनका किनारा तीक्ष्ण तथा कठोर होता है । पुष्प दण्ड-१ से २½ इञ्च लम्बे, चिपटे या ३ पहलवाले एवं पत्रकोण से एकसाथ कई निकले रहते हैं । फल-अण्डाकार या नाशपाती के आकार का या अश्रुक स्वरूप का, ०·३ इञ्च लम्बा तथा चमकीला होता है जिसके अन्दर सफेद या हलके भूरे रंग का चावल जैसा दाना (वास्तविक फल) निकलता है । इसके नाप, आकार, रंग, कठोरता के भेद से कई प्रकार पाये जाते हैं । इसके फल तथा मूल का उपयोग किया जाता है ।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन १०-२०, कार्बोहाइड्रेट ७१-७४, स्नेह ३-४ एवं आर्द्रता १० भाग रहती है । इसमें खनिज अन्य धान्यों की अपेक्षा कम रहते हैं । कोइसीन (Coicin) नामक एक प्रोलेमीन (Prolamine) इससे प्राप्त किया गया है जिसमें ल्यूसिन (Leucine) तथा ग्लुटेमिक अॅसिड (Glutamic acid) काफी रहता है ।

गुण और प्रयोग—इसका चावल की तरह उपयोग किया जा सकता है । इसका क्वाथ मूत्रजनन होने से मूत्रकृच्छ्र में दिया जाता है । मूल का उपयोग पीड़ितार्तव में करते हैं । इसकी रोटी खाने से चरबी कम होती है ।

अथ नीवारः (तीनी) । तस्य नामगुणानाह

प्रसाधिका तु नीवारस्तृणान्नमिति च स्मृतम् । नीवारः शीतलो ग्राही पित्तघ्नः कफवातकृत् ॥

तीनी के संस्कृत नाम—प्रसाधिका, नीवार और तृणान्न ये सब हैं ।

तीनी—शीतल, ग्राही, पित्तनाशक एवम् कफ तथा वातकारक है ॥ ८६ ॥

२८ तीनी

हि०-तीनि, तीन्नी, जंगलीदाल । **बं०**-उड़िधान्य । **म०**-देवभात । **गु०**-वंटो । **क०**-ज्वर-हुमेचे । **तै०**-निवरीवट्टु । **ता०**-वछीपुल्लु । **आसा०**-फुटकी । **ले०**-*Hygroryza aristata Nees.* (हाइग्रोहाइझा एरिस्टेटा) । Fam. Gramineae (ग्रेमिनी) ।

समस्त भारत में यह पाया है । यह एक जलीय घास की जाति का पौधा है जो तालाबों या जलीय भूमि पर फैला हुआ रहता है । वर्षा ऋतु में आसाम में चावल के खेतों पर यह फैला हुआ

पाया जाता है । काण्ड १ से १½ फीट लम्बे होते हैं । इसके चावल को गरीब लोग खाते हैं । इस घास को जानवर खाते हैं ।

गुण और प्रयोग—इसके चावल शीतल, ग्राही, सुपाच्य एवं पित्तशामक माने जाते हैं ।

अथ यावनालः (पनेरा, जुआर) तस्य गुणानाह

यावनालो हिमः स्वादुर्लोहितः श्लेष्मपित्तजित् । अवृष्यस्तुवरो रूक्षः क्लेदकृत्कथितो लघुः ॥

जुआर (पनेरा) का संस्कृत नाम यावनाल है ।

जुआर—स्वादिष्ट, कषाय रसयुक्त, शीतल, किंचित वीर्यवर्द्धक, रूक्ष, क्लेदकारक, लघु एवम् रक्त विकार, कफ तथा पित्त को नष्ट करने वाला होता है ॥ ८७ ॥

२९ जुआर

हि०-जुआर, ज्वार, जुवार । **बं०**-जुयारा, जोयार । **म०**-जोंधळे, ज्वारी । **गु०**-जुवार । **क०**-जोळा **ते०**-जोन्नलु । **ता०**-चोलं । **फा०**-जुरेमका, जिरंहमका, गावरस हिन्दी । **अ०**-हंतारुमिया खंदरूस, हिन्तये रूमिया । **ले०**-*Sorghum vulgare (Linn.) Pers.* (सोर्घम् वल्गेर) । Fam. Gramineae (ग्रेमिनी) ।

सब प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है । क्षुप-वर्षायु, १० से १५ फीट ऊंचा; काण्ड ½-१½ इञ्च मोटा; पत्ते-२ से ३½ इञ्च लम्बे, १-३ इञ्च चौड़े, चिकने, किनारा खुरदरा तथा मध्य शिरा श्वेत; बाल-विभिन्न स्वरूप का रहता है ।

इसके अनेक भेदोपभेद होते हैं ।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन ९, कार्बोहाइड्रेट ७२, स्नेह २, रेशा २, राख २ तथा तथा आर्द्रता १३ रहती है । इसके पत्तों में हाइड्रोसायनिक अॅसिड पाया जाता है । बीजों में ग्लुकोसाइड धुरिन (Dhurin) पाया जाता है ।

गुण और प्रयोग—इसका अन्न के रूप में उपयोग किया जाता है । यह मूत्रजनन तथा कुछ वृष्य होता है ।

अथ परिभाषामाह

धान्यं सर्वं नवं स्वादु गुरु श्लेष्मकरं स्मृतम् । तत्तु वर्षोषितं पथ्यं यतो लघुतरं हि तत् ॥
वर्षोषितं सर्वधान्यं गौरवं परिमुञ्चति । न तु त्यजति वीर्यं स्वं क्रमान्मुञ्चत्यतः परम् ॥८९॥
एतेषु यवगोधूमतिलमाषा नवा हिताः । पुराणा विरसा रूक्षा न तथा गुणकारिणः ॥ ९० ॥

धान्यविषयक परिभाषा-सभी प्रकार के धान्य यदि नवीन हों तो वे स्वादिष्ट, गुरु तथा कफकारक होते हैं । यदि वे वर्ष भर के रक्खे पुराने हों तो पथ्य होते हैं क्योंकि वे अत्यन्त लघु हो जाते हैं । वर्ष भर के रक्खे पुराने सभी धान्य गुरुता छोड़ देते हैं किन्तु अपने वीर्य को नहीं छोड़ते हैं । वर्ष भर के बाद जैसे २ वे पुराने होते जाते हैं वैसे २ अपने २ वीर्य को क्रम से थोड़ी-२ मात्रा में छोड़ते जाते हैं । किन्तु-जव, गेहूं, तिल, उरद ये नवीन ही अवस्था में अपने २ गुणों से युक्त रहते हैं और हितकर होते हैं । पुराने होने पर वे विरस तथा रूक्ष हो जाते हैं तथा उतने गुणकारी नहीं होते हैं ॥ ८८-९० ॥

* पुराणा वर्षद्वयादुपरि स्थिताः। यवादयो नवाः स्वस्थान् प्रति हिताः। पथ्याशिनां तु पुराणा हिताः।

"पुराणयवगोधूमक्षौद्रजाङ्गलशूल्यभुग्।"

इति वसन्ते वाग्भटेनोक्तत्वात् ॥ ९० ॥

यहां पर मूल में "पुराण" पद से दो वर्ष के ऊपर के रक्खे हुए जो धान्य हों वे पुराने कहलाते हैं। और जव आदि धान्य यदि नवीन हों तो वे स्वस्थ मनुष्यों के लिये ही हितकर होते हैं। पथ्य रखने वाले रोगियों के लिये तो पुराने अर्थात् दो वर्ष के अन्दर तक हितकर होते हैं और उनके लिये नवीन हितकर नहीं होते हैं। क्योंकि-वसन्त में पथ्य द्रव्यों के वर्णन में वाग्भट ने "पुराण-यवगोधूम०—" इत्यादि से 'पुराना जव तथा गेहूं, मधु, जंगली जीवों के मांस का कबाब खाना हितकर है" ऐसा कह कर पुराना जव, गेहूं पथ्य बतलाया है ॥ ८८–९० ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे
नवमो धान्यवर्गः समाप्तः ॥ ९ ॥

अथ शाकवर्गः

तत्र शाकनिरूपणमाह

पत्रं पुष्पं फलं नालं कन्दं संस्वेदजं तथा। शाकं षड्विधमुद्दिष्टं गुरुं विद्याद्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

शाक का निरूपण—१ पत्र, २ पुष्प, ३ फल, ४ नाल, ५ कन्द और ६ संस्वेदज ये ६ प्रकार के शाक माने गये हैं, इनमें एक दूसरे की अपेक्षा उत्तरोत्तर गुरु समझना चाहिये। जैसे—पत्र की अपेक्षा पुष्पशाक गुरु होता है उसकी अपेक्षा फल शाक अधिक गुरु होता है इत्यादि क्रम से उत्तरोत्तर गुरु होते हैं ॥ १ ॥

अथ शाकानां गुणानाह

प्रायः शाकानि सर्वाणि विष्टम्भीनि गुरूणि च। रूक्षाणि बहुवर्चांसि सृष्टविण्मारुतानि च ॥१॥
शाकं भिनत्ति वपुरस्थि निहन्ति नेत्रं वर्णं विनाशयति रक्तमथापि शुक्रम्।
प्रज्ञाक्षयं च कुरुते पलितं च नूनं हन्ति स्मृतिं गतिमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३ ॥
शाकेषु सर्वेषु वसन्ति रोगास्ते हेतवो देहविनाशनाय।
तस्माद् बुधः शाकविवर्जनं तु कुर्यात्तथाऽम्लेषु स एव दोषः ॥ ४ ॥

सभी प्रकार के शाकों के सामान्यरूप से गुण—प्रायः सभी शाक (पत्र-पुष्पादिक ६ प्रकार के)-विष्टम्भक, गुरु, रूक्ष, विशेष रूप से मल निकालने वाले अर्थात् अधिक टट्टी निकालने वाले, मल तथा अधोवायु की प्रवृत्ति कराने वाले होते हैं और द्रव्यगुण जानने वाले विद्वान् लोग शाक के विषय में यह भी कहते हैं कि-शाक-शरीरस्थित हड्डियों का भेदन करने वाला अर्थात् उनकी सारताको नष्ट करने वाला, नेत्रों की शक्ति, रक्त, शुक्र, बुद्धि, स्मरणशक्ति तथा गति (चलने की शक्ति) को नष्ट करने वाला एवम्—पलित (अकाल में बालों का सफेद होना) को करने वाला होता है।

सभी शाकों में रोग रहते हैं और वे ही रोग देह के नष्ट करने में हेतु होते हैं। इससे समझदार लोगों को चाहिये कि—शाक का खाना छोड़ दें और अम्ल (खट्टे) पदार्थों में भी पूर्वोक्त दोष होने से उनका सेवन परित्याग करना उचित है ॥ २—४ ॥

*एतानि शाकनिन्दकानि वचनानि सामान्यानि ॥ २—४ ॥

यहां पर इतना और समझना चाहिये कि—ये सब शाक की निन्दा करनेव के पूर्वोक्त वचन सामान्य रूप से हैं ॥ २—४ ॥

अथ शाकेषु विशिष्टानि। तत्र पत्रशाकानि।

तत्रापि वास्तूकद्वयम् (दोनों बथुआ)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

वास्तूकं वास्तुकं च स्यात्क्षारपत्रं च शाकराट्। तदेव तु बृहत्पत्रं रक्तं स्याद्गौडवास्तुकम् ॥
प्रायशो यवमध्ये स्याद्यवशाकमतः स्मृतम्। वास्तूकद्वितयं स्वादु क्षारं पाके कटूदितम् ॥
दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्रबलप्रदम्। सरं प्लीहास्रपित्तार्शः कृमिदोषत्रयापहम् ॥ ७ ॥

शाक के विषय में विशेष वचन निम्नलिखित ये हैं-शाकों में प्रथम पत्रशाक का वर्णन करते हैं। उसमें भी प्रथम दोनों प्रकार के बथुवा के विषय में विशेष वचनों का उल्लेख करते हैं। बथुवा के संस्कृत नाम—वास्तूक, वास्तुक, क्षारपत्र और शाकराट् ये सब हैं।

बड़ा बथुआ का लक्षण तथा संस्कृत नाम—जो बथुआ बड़े पत्तों वाला एवम् रक्तवर्ण का होता है, उसे "गौड़ वास्तुक" कहते हैं। बथुआ अधिकतर जव के खेत में होता है, अतः संस्कृत में इसे "यवशाक" भी कहते हैं। दोनों बथुआ-स्वादिष्ट, क्षारयुक्त, विपाक में कटुरस युक्त, अग्निदीपक, पाचक, रुचिकारक, लघु, शुक्र तथा बल को बढ़ाने वाले, सारक एवम् प्लीहा, रक्तपित्त, बवासीर, कृमि तथा त्रिदोष के नाशक हैं ॥ ५-७ ॥

१ बथुआ

हि०-बथुआ, बथुया, चिल्लीशाक। **बं०**-बेतुया, वेतोशाक। **म०**-चाकवत, चकवत। **गु०**-टांको, बथवों, बाथरो, चीलो। **ता०**-परुपुकिरै। **क०**-विलिय चिल्लीके। **फा०**-मुसेलेसा, सरमक, सलमह्। **अ०**-रोक् बतुल बजामेल, कुतुफ, कतफ। **अं०**-Lambs Quarters (लैम्बस् कार्टरस्)। **ले०**-*Chenopodium album Linn.* (चिनोपोडियम् एलबम्)। Fam. Chenopodiaceae (चिनोपोडिएसी)।

भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों के खेतों में यह बहुलता से पाया जाता है विशेष कर यह आपही आप बिना बोये उत्पन्न होता है।

इसका क्षुप-गंधहीन, सीधा या झुका हुआ, १-१½ फीट तक ऊँचा होता है। **पत्ते**- आकार में छोटे-बड़े त्रिकोणाकार, नुकीले एवं कई प्रकार के होते हैं। डण्डियों के अन्त में बारीक पुष्प और बीजकोषों के गुच्छे लगते हैं। इसके श्वेत, हरित एवं कुछ लाल ऐसे तीन प्रकार (Varieties) पाये जाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें कॅरोटीन (Carotene) तथा विटामिन 'सी' होता है।

गुण और प्रयोग—यह सारक एवं कृमिघ्न है। जलने पर इसके पत्तों का लेप दाह शान्ति के लिये लगाते हैं। कुपचन में इसका साग देते हैं।

२ सुगन्धवास्तुक

एक सुगन्धवास्तूक (C. ambrosioides-चि. एम्ब्रोसिओइडिस्) नामक अन्य जाति होती है जो बंगाल, सिलहट, दक्षिण एवं बिहार में पाई जाती है। **इसका क्षुप**-२ से ४ फीट ऊंचा, सुगन्धित ग्रन्थिरोमश; **पत्ते**-आयताकार या प्रासवत, कुण्ठिताग्र तथा नीचे के लहरदार एवं दन्तुर; **पुष्प**-छोटे, हरित, असंख्य एवं लम्बी मंजरीमें गुच्छबद्ध होकर निकले हुये; **फल**-गोल, कुछ दबे हुये एवं फलभित्ती से आवृत **बीज**-छोटे, वृक्काकार, $\frac{1}{30}$ इञ्च व्यास के, भूरे, चिकने, चमकीले एवं स्वाद में कटुतिक्त रहते हैं। समग्र वनस्पति में तीव्र गंध आती है।

रासायनिक संगठन—पुष्प एवं फल आने पर मूल को छोड़कर बाकी भाग से एक उड़नशील तैल (०·१७%) निकाला जाता है जो अमेरिका के इसके एक प्रकार से पाये जाने वाले तेल, चिनोपोडियम ऑईल (Chenopodium oil) का भारतीय प्रतिनिधि है। इस तेल का मुख्य कृमिघ्न तत्व एस्कॅरिडॉल् (Ascaridol) भारतीय तेल में ४०-४५% रहता है जब कि अमेरिकी तेल में यह ६०% तक रहता है। इसलिए इसे अधिक मात्रा (५-२० मिनिम) में देना पड़ता है। इस पौधे के सभी अंगों में सॅपोनिन रहता है जो मूल में अधिक रहता है। इसके अतिरिक्त इसमें विटामिन 'सी' एवं मॅग्नेशियम् फॉस्फेट पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इस तेल का उपयोग बहुत सावधानी के साथ आंत्रस्थ कृमियों के लिये स्वतंत्र या अन्य औषध के साथ करते हैं। अंकुश कृमि (Hookworm-हुक्वर्म) के लिये यह बहुत

उपयोगी है। विशेष विवरण आदि आधुनिक डाक्टरी ग्रन्थों में देखें। इसके बीज ५ से २० रत्ती की मात्रा में चीनी के साथ कृमि विकार के लिये खिलाते हैं।

अथ पोतकी (पोई)। तस्या नामगुणानाह

पोतक्युपोदिका सा तु मालवाऽमृतवल्लरी। पोतकी शीतला स्निग्धा श्लेष्मला वातपित्तनुत्॥
अकण्ठ्या पिच्छिला निद्राशुक्रदा रक्तपित्तजित्। बलदा रुचिकृत्पथ्या बृंहणी तृप्तिकारिणी ॥

पोई के संस्कृत नाम—पोतकी, उपोदिका, मालवा तथा अमृतवल्लरी ये सब हैं।

पोई—शीतल, स्निग्ध, कफजनक, वात तथा पित्तनाशक, किञ्चित् कण्ठ के लिये हितकर, पिच्छिल, निद्रा तथा शुक्र को देनेवाली, रक्तपित्त को दूर करनेवाली, बलदायक, रुचिकारक, पथ्य, बृंहण (रस—रक्तादिवर्धक) एवम् तृप्तिकारक होती है ॥ ८-९ ॥

३ पोय

हि०-पोय (शाक), पोय का साग, पोई का साग। **बं०**-पूंई, पुईशाक। **म०**-मायाळ। **गु०**-पोथी। **क०**-बसले। **ते०**-बच्चलि। **ता०**-बसलक्किरै। **अं०**-Indian Spinach (इण्डियन् स्पाइनॅक)। **ले०**-*Basella rubra Linn.* (बेसिला रुब्रा)। Fam. Basellaceae (बेसेलेसी)।

यह इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में बोई जाती है तथा वन्य भी पाई जाती है।

इसका क्षुप—बहुवर्षायु, फैलनेवाला लतासदृश होता है। **पत्ते**-शीशम के पत्ते के समान गोलाकार परन्तु उनसे मोटे, ५×३ इञ्च बड़े और गूदेदार होते हैं। पत्रदण्ड से कोमल सींक निकल कर उस पर क्रमशः लाल मिश्रित सफेद रङ्ग के फूल आते हैं। **फल**-छोटे ३ गोल, किञ्चित् नोकीले एवं पकने पर कालापन युक्त बैंगनी रङ्ग के हो जाते हैं। सफेद और लाल कांड के भेद से यह दो प्रकार की होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें खटिक, लोह तथा विटामिन 'ए', 'बी$_1$', 'बी$_2$' एवं प्रोटीन रहता है।

गुण और प्रयोग—यह शीतल तथा स्नेहन है। इसका स्वरस, उदर्द एवं गर्भिणी तथा बालकों के विबंध में देते हैं। सोजाक में भी इसे दिया जाता है। उदर्द में इसको शरीर पर मलते भी हैं।

अथ श्वेतरक्तमारिषौ (सफेद व लाल मरसा)। तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

मारिषो वाष्पको मार्ष श्वेतो रक्तश्च सस्मृतः। मारिषो मधुरः शीतो विष्टम्भी पित्तनुद् गुरुः ॥
वातश्लेष्मकरो रक्तपित्तनुद् विषमाग्निजित्। रक्तमार्षो गुरुर्नाति सक्षारो मधुरः सरः।
श्लेष्मलः कटुकः पाके स्वल्पदोष उदीरितः ॥ ११ ॥

मरसा के संस्कृत नाम—मारिष, वाष्पक और मार्ष ये सब हैं। भेद-सफेद तथा रक्तवर्ण के भेद से मरसा दो प्रकार का होता है।

मरसा (सफेद)—मधुर रसयुक्त, शीतल, विष्टम्भजनक, पित्तनाशक, गुरु, वात तथा कफकारक एवम्-रक्तपित्त तथा विषमाग्नि को शमन करने वाला होता है।

लाल मरसा—किंचित् गुरु, क्षारयुक्त मधुर रस वाला, सारक, कफजनक, पाक में कटुरसयुक्त तथा स्वल्प दोषवाला कहा हुआ है ॥ १०-११ ॥

४ सफेद मरसा

हि०-मरसा। बं०-सादानटे। गु०-डांभो। ता०- तन्डुकिरई। ते०-टोटाकुड़ा। म०- भाजी, माठाची भाजी। ले०-*Amaranthus blitum var. oleracea Duthie* (ॲमॅरेन्थस् ब्लाइटम वेर ओलेरेसिआ)। Fam. Amaranthaceae (ॲमॅरेन्थेसी)।

सभी भागों में इसकी उपज की जाती है।

इसका क्षुप गूदेदार तथा सीधा होता है। पत्ते आयताकार होते हैं। इसके बीजों को भी भूनकर खाते हैं।

रासायनिक संगठन— इसमें प्रोटीन २·९% एवं लोह अधिक मात्रा में (१८·१८ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम में) रहता है।

गुण और प्रयोग— यह शीत, पित्तशामक एवं रक्तपित्तशामक है। इसका साग खाते हैं।

५ लाल मरसा

हि०-लाल मरसा, लाल साग। बं०-डेंगुआ। म०-माठ। क०-दन्गु। ते०-टोटाकुरा। ले०-*Amaranthus gangeticus. Linn.* (ॲमॅरेन्थस् गॅंजेटिकस्)। Fam. Amaranthaceae (ॲमॅरेन्थेसी)।

प्रायः सब प्रान्तों के खेतों में इसका रोपण करते हैं।

इसका क्षुप-२-३ फुट ऊँचा और हरिताभ या गहरा लाल होता है। पत्ते-उक्त मरसे के आकार वाले, प्रकार के अनुसार किंचित् हरापनयुक्त लाल या नीलापन युक्त लाल अथवा चमकिले लाल रङ्ग के एवं विभिन्न आकारवाले होते हैं। डण्डियों के चारों ओर सघन गुलाबी रङ्ग के बारीक फूलों के गुच्छे लगते हैं। बीज-उक्त मरसा के समान होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके कोमल काण्ड में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज एवं विटामिन 'ए', 'बी१' तथा 'सी' पाये जाते हैं। बीजों में सॅपोनिन् रहता है जो अल्प विषैला रहता है।

गुण और प्रयोग—यह रक्तपित्तशामक एवं व्रणरोपण है। अतिसार, रक्तातिसार एवं रक्तप्रदर में इसको देते हैं। व्रण प्रक्षालन एवं मुखपाक में इसका उपयोग करते हैं।

अथ तण्डुलीयः (चौलाई)। तस्य नामगुणानाह

तण्डुलीयो मेघनादः काण्डेरस्तण्डुलेरकः। भण्डीरस्तण्डुलीबीजो विषघ्नश्चाल्पमारिषः॥
तण्डुलीयो लघुः शीतो रूक्षः पित्तकफास्रजित्। सृष्टमूत्रमलो रुच्यो दीपनो विषहारकः॥

चौलाई के संस्कृत नाम— तण्डुलीय, मेघनाद, काण्डेर, तण्डुलेरक, भण्डीर, तण्डुलीबीज, विषघ्न तथा अल्पमारिष ये सब हैं।

चौलाई—लघु, शीतल, रूक्ष, मूत्र तथा मल को निकालने वाली, रुचिकारक, अग्निदीपक एवम् पित्त, कफ, रक्तविकार तथा विष को दूर करने वाली होती है॥ १२-१३॥

६ चौलाई

हि०-चौलाई का शाक, चौराई का साग, कटैली चवलाई। बं०-कांटा नटे। म०-कांटेमाठ। गु०-कांटालो डांभो। क०-मुल्लुहरिवेसोप्पु। ते०-मोला टोटा कुरा। ता०-मुलुकोरै। अं०- Prickly Amaranth (प्रिक्ली ॲमॅरेन्थ)। ले०-*Amaranthus spinosus Linn.* (ॲमॅरेन्थस् स्पाईनोसस्)। Fam. Amaranthaceae (ॲमॅरेन्थेसी)।

यह इस देश के प्रायः सब प्रान्तों के खेत, बाग, बगीचों में और बीरान भूमि में आप ही आप उत्पन्न होती है। इसका क्षुप-२ फीट तक ऊँचा और शाखाएं झाड़ीदार होती हैं। पत्ते-१॥-२ इंच लम्बे, चौड़े भालाकार किन्तु नोकरहित होते हैं। पत्तों की जड़ में महीन तीक्ष्ण काँटे होते हैं। काण्ड पर बारीक फूलों के गुच्छे रहते हैं। इनमें से बारीक काले रङ्ग के गोल चमकीले बीज निकलते हैं।

काँटे वाली, बिना काँटे वाली, हरे पत्ते की, लाल पत्ते की और नीलापन युक्त लाल अथवा लालीयुक्त नीले पत्ते की, इस प्रकार चौलाई कई प्रकार की होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें काफी पोषक तत्व रहते हैं। इसमें प्रोटीन ३, स्नेह ०·३, कार्बोहाइड्रेट ८, खनिज ३·६, खटिक ०·८, लोह २३ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम में रहता है।

गुण और प्रयोग—यह शीतल, मूत्रजनन, स्नेहन एवं गर्भाशय के लिये वेदनास्थापन तथा शक्तिदायक और स्तन्यजनन है।

(१) इसकी जड़ का क्वाथ मुलेठी तथा अपामार्ग के साथ सोजाक में दिया जाता है।

(२) रक्तप्रदर के लिये इसका बहुत उपयोग करते हैं। इसमें इसके मूल के साथ आंवला, अशोक की छाल एवं दारुहल्दी का उपयोग किया जाता है। इससे पीड़ा भी कम होती है तथा रक्तस्राव बंद होता है। श्वेतप्रदर में इसके साथ हिराबोल देते हैं। इससे गर्भपात की आदत दूर होती है। मासिक के काल के समय गर्भिणी को इसे ३-४ दिन देते हैं।

(३) स्तन्यवृद्धि के लिये इसके पंचांग को अरहर की दाल के साथ पकाकर देते हैं। जानवरों में भी इसका उपयोग करते हैं।

(४) गांठ, फोड़े आदि जल्दी पकाने के लिये मूल का लेप करते हैं। विसर्प तथा अन्य दाहयुक्त चर्मरोग में दाहशांति के लिये इसके पत्तों को पीसकर लेप करते हैं।

अथ पानीयतण्डुलीयम् (जलचौलाई)। (चौलाईभेदो जलतण्डुलीयं शास्त्रे कञ्चटमिति प्रसिद्धम्)। तस्य नामगुणानाह

पानीयतण्डुलीयं तु कञ्चटं समुदाहृतम्। कञ्चटं तिक्तकं रक्तपित्तानिलहरं लघु॥ १४॥

जल चौलाई (यह चौलाई का भेद है और शास्त्र में "कञ्चट" नाम से प्रसिद्ध है) के संस्कृत नाम—पानीयतण्डुलीय, जलतण्डुलीय तथा कञ्चट ये सब हैं।

जल चौलाई—तिक्त रस युक्त, लघु एवम्-रक्तपित्त तथा वायुदोष को नष्ट करने वाली होती है॥ १४॥

७ जलचौलाई

यह भी ॲमॅरेन्थस् की जल के समीप होने वाली कोई जाति (Species) है।

८ रामदाना

रामदाना—इस नामके बीज इसकी एक जाति ॲ० कॉडेटस् (A. caudatus Linn.) से प्राप्त होने हैं जो श्वेत या पीले एवं गोल मोटे किनारेदार होते हैं। इसके क्षुप-ऊँचे; पत्ते-लम्बे वृन्त युक्त, दीर्घवृत्ताभ; पुष्प-चमकीले पीत या गहरे रक्त लटकी हुई मंजरी में आते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में आक्जेलिक ॲसिड रहता है।

गुण और प्रयोग—रामदाने में पौष्टिक तत्व रहते हैं। इसका पंचांग मूत्रल एवं रक्तशोधक है। इसे अर्श तथा मूत्रकृच्छ्र में देते हैं। गण्डमाला में भी इसे देते हैं तथा बाहर से लेप करते हैं।

अथ पलक्या (पालक) । तस्या नामानि गुणांश्चाह

पलक्या वास्तुकाकारा छुरिका चीरितच्छदा ॥
पलक्या वातला शीता श्लेष्मला भेदिनी गुरुः । विष्टम्भिनी मदश्वासपित्तरक्तकफापहा ॥१६॥

पालक के संस्कृत नाम—पलक्या, वास्तुकाकारा, छुरिका तथा चीरितच्छदा ये सब हैं।

पालक—वातजनक, शीतल, कफकारक, मलभेदक, गुरु, विष्टम्भ उत्पन्न करने वाला-एवम् मद (नशा), श्वास, पित्त, रक्त तथा कफ को दूर करने वाला होता है।

९ पालक

हि०-पालक शाक, पला। बं०-पालंग शाक। म०-पालख, पालक। गु०-पालखनी भाजी। क०-पालक्य। ता०-वसैइलकिरै। ते०-मट्टरवच्चलि। अं०-Spsinach (स्पाइनॅक्)। ले०-*Spinacia oleracea Linn.* (स्पाइनेसिया ओलेरेसिया)। Fam. Chenopodiaceae (चिनोपोडिएसी)।

सभी प्रान्तों में इसको लगाया जाता है। इसका क्षुप-करीब १ फूट ऊँचा रहता है। काण्ड-पोला तथा कोणयुक्त रहता है। पत्ते-मोटे, मांसल, हरे, कुछ त्रिकोणाकार एवं लंबेवृंत से युक्त होते हैं। पुष्प-बहुत छोटे गुच्छों में आते हैं। पुंजाति के क्षुप में पुष्प काण्ड के अंत में एवं स्त्रीजाति के पुष्प पत्र कोण में आते हैं। इसमें एक प्रकार गोल पत्तों एवं चिकने बीजों वाला होता है। प्रथम में बीज कांटेदार होते हैं।

इसके बीज एवं पत्तों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें आयोडीन (Iodine), लेसिथिन् (Lecithin), कॅरोटिन् (Carotin), आक्जेलिक ॲसिड (Oxalic acid) एवं आर्सेनिक् (Arsenic) होता है।

गुण और प्रयोग—यह शीत, मूत्रजनन, रोचन, शोथघ्न एवं दाहशामक है।

(१) पंचांग का क्वाथ शोथयुक्त ज्वरों में देते हैं।

(२) आंत्रविकारों में इसका साग उपयोगी है।

(३) अश्मरी में पत्तों का रस या क्वाथ पिलाते हैं।

(३) इसके बीज सारक एवं शीतल हैं तथा यकृतशोथ, कामला एवं श्वासकृच्छ्र में दिये जाते हैं।

अथ कालशाकम् (नाडीका शाक) । तस्या नामगुणानाह

नाडिकं कालशाकं च श्राद्धशाकं च कालकम् । कालशाकं सरं रुच्यं वातकृत्कफशोथहृत् ।
बल्यं रुचिकरं मेध्यं रक्तपित्तहरं हिमम् ॥ १७ ॥

नाडीका शाक के संस्कृत नाम - नाडिक, कालशाक, श्राद्धशाक और कालक ये सब हैं।

नाडीका शाक—सारक, रोचक, वातकारक, कफ तथा शोथ नाशक, बलदायक, रुचि को उत्पन्न करने वाला, मेधा के लिये हितकर अथवा पवित्र, शीतल एवम्-रक्तपित्तनाशक है॥ १७॥

१० कालशाक (नाड़ीका शाक)

हि०-नारिचा, नाड़ी का शाक, तीता पाट। बं०—नालिता शाक, तितपाट, चिनत्तेपात, नर्चा। म०-चोंचे, सण। गु०-छूँछ। ले०-*Corchorus capsularis Linn.* (कोर्कोरस कॅपसुलेरिस्)। Fam. Tiliaceae (टिलिएसी)।

यह गरम प्रदेशों में अधिक उत्पन्न होता है। इसका क्षुप-३-४ फीट तक ऊँचा होता है। पत्ते-२-४ इञ्च लम्बे, आध से पौन इञ्च चौड़े, प्रासवत् अथवा आयताकार, लम्बाग्र एवं आरावत् दन्तुर होते हैं। फूल-पीले रङ्ग के आते हैं। फल-गोलाकार पाँच भाग वाले तथा पृष्ठ पर दानेदार होते हैं। बीज-ताम्ररंग के होते हैं। इसके कृषित भेद में यह १०।१२ फीट तक ऊँचा होता है।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में कॅपसूलेरिन् (Capsularin) नामक एक क्षाराभ पाया गया है।

गुण और प्रयोग—इसके पत्तों का फांट ज्वर में देने से मूत्र एवं स्वेद अधिक आता है तथा मुँह का सूखना कम होता है। कुपचन, अतिसार तथा आंव में पत्तों का हिम देते हैं। इसके बीज विरेचन हैं।

अथ पट्टशाकः (पटुआ शाक) । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

पट्टशाकस्तु नाडीको नाडीशाकश्च स स्मृतः । नाडीको रक्तपित्तघ्नो विष्टम्भो वातकोपनः ॥

पटुआ शाक के संस्कृत नाम—पट्टशाक, नाडीक और नाडीशाक ये सब हैं। **पटुआशाक**-रक्तपित्तनाशक, विष्टम्भजनक एवम् वात को कुपित करने वाला होता है ॥ १८ ॥

११ पट्टशाक (पटुआ शाक)

हि०-पटुआ, पटवा, पटुए का शाक, कोष्ट। बं०-मीठा पाट, कलिता पाट। म०-मोठे चोंचे। गु०-मोटी छूँछ। ले०-*Corchorus olitorius Linn.* (कोर्कोरस् ओलिटोरियस्)। Fam. Tiliaceae (टिलिएसी)।

यह कई प्रान्तों में आप ही आप जङ्गली उत्पन्न होता है किन्तु बंगाल में नहीं होता।

इसका क्षुप-३ फीट तक ऊँचा होता है। पत्ते-२-४ इञ्च लम्बे, १-२ इञ्च चौड़े, चिकने, अण्डाकार और पर्णमूल के पास दो पुच्छ सदृश रचनाओं से युक्त होते हैं। फूल-बड़े तथा गहरे पीले रङ्ग के आते हैं। फल-१-२ इञ्च लम्बे होते हैं। बीज-धूसराभ हरित या नीलाभ कृष्ण तथा कालशाक की अपेक्षा छोटे होते हैं। इसके पत्ते तथा कोमल काण्ड लोग खाते हैं।

इसका कृषित भेद कालशाक से भी ऊँचा जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके फलों में विटामिन 'सी' पाया गया है।

गुण और प्रयोग—इसके पत्ते स्नेहन, दाहशामक, संग्राहक, मूत्रजनन एवं बल्य हैं। इसके पत्तों का फांट बल्य तथा ज्वर शामक मानते हैं। इसके बीज विरेचन होते हैं।

अथ कलम्बी (कलमी शाक) । तस्या नामगुणानाह

कलम्बी शतपर्वी च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ । कलम्बी स्तन्यदा प्रोक्ता मधुरा शुक्रकारिणी ॥

कलमी शाक का संस्कृत नाम—कलम्बी और शतपर्वी है।

कलमी शाक—मधुर रसयुक्त, दुग्धवर्धक तथा शुक्र को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ १९ ॥

१२ कलम्बी

हि०-कलंबी शाक, करमी, कलमी का साग, करेमु। बं०-कलमी शाक। ते०-तोमे वचलि। म०-नालीची भाजी। गु०-नाळीनी भाजी। अं०-Swamp Cabbage (स्वॅम्प कॅबेज)। ले०-*Ipomoea aquatica Forsk.* (आइपोमिया ॲक्वेटिका)। Fam. Convolvulaceae (कन्वॉल्व्युलेसी)।

यह लता जाति की वनस्पति प्रायः सब प्रान्तों के सजल स्थान में जल के ऊपर तैरती हुई या समीप की भूमि पर फैली हुई दिखाई देती है। पर्व से इसकी जड़ निकलकर कीचड़ में फैलती है। डंडी पोली होती है। पत्ते-३ से ६ इञ्च लम्बे, दीर्घवृत्ताभ या अंडाकार-आयताकार, आधार की तरफ हृदयाकार या दो कोनें निकले हुये (Hastate) एवं लम्बे वृन्त से युक्त होते हैं। फूल-नलिकाकार, १-२ इञ्च लम्बे, निसोत के समान, श्वेत या हलके जामुनी (कंठ में गाढ़े जामुनी) रंग के तथा एकाकी या ५ के समूह में आते हैं। फल-०·८ से. मी. व्यास में, गोलाभ, चिकना तथा २ से ४ घनरोमश बीज युक्त होता है। इसकी नवीन शाखाओं तथा पत्तों का शाक होता है।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में पर्याप्त खनिज तथा विटामिन 'ए', 'बी', 'सी', तथा 'ई' पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका स्वरस संखिया तथा अफीम की विषाक्तता में वमन कराने के लिये देते हैं। इसका सुखाया हुआ स्वरस विरेचक होता है। स्त्रियों के शारीरिक एवं तन्त्रिकीय (Nervous) दुस्वास्थ्य में इसका उपयोग किया जाता है। इसको अर्श में भी देते हैं। कलिकाओं को दाद पर लगाते हैं।

अथ लोणी बृहल्लोणी च (नोनिया, बड़ा नोनिया-कुल्फा)। तयोर्नामगुणानाह

लोणाऽलोणी च कथिता बृहल्लोणी तु घोटिका। लोणी रूक्षा स्मृता गुर्वी वातश्लेष्महरी पटुः॥
अर्शोघ्नी दीपनी चाम्ला मन्दाग्निविषनाशिनी।
घोटिकाऽम्ला सराचोष्णा वातकृत्कफपित्तहृत् ॥ २१ ॥
वाग्दोषव्रणगुल्मघ्नी श्वासकासप्रमेहनुत्। शोथे लोचनरोगे च हिता तज्ज्ञैरुदाहृता ॥ २२ ॥

नोनिया का संस्कृत नाम—लोणा तथा लोणी हैं। बड़ी नोनियां का संस्कृत नाम—बृहल्लोणी और घोटिका हैं। **नोनिया**—लवण तथा अम्लरसयुक्त, रूक्ष, गुरु, अग्निदीपक एवम् वात, कफ, अर्श (बवासीर) अग्नि की मन्दता तथा विष का नाश करने वाली है।

बड़ी नोनिया—इसके गुण के जानने वालों द्वारा इसे अम्लरसयुक्त, सारक, उष्ण, वातकारक एवम्—कफ, पित्त, वाणी दोष (बोलने में हकलाना आदि दोष) व्रण, गुल्म, श्वास, खांसी और प्रमेह को दूर करने वाली तथा शोथ और नेत्ररोग में हितकर बतलायी गयी है ॥ २०-२२ ॥

१३ छोटी लोणा

हिं०—छोटीलोणा, नोनीसाग, छोटी लोनिया, जंगलीलोनिया। **बं**—क्षुद्रे णुनी, वनणुनी। **म०**—घुई घोळ, लहान घोळ। **गु०**—लुणी। **क०**—गोळि। **ते०**—पइल कुर। **ता०**—कोरिल कीरई। **अ०**—बुल्क तुरहमका। **ले०**—*Portulaca quadrifida Linn.* (पोर्टुलेका क्वाड्रीफीडा)। Fam. Portulacaceae (पोर्टुलेकेसी)।

छोटी लोणा एक प्रसिद्ध शाक है जो सब जगह होता है। यह जमीन पर फैला हुआ होता है। शाखा-सूत जैसी पतली तथा सन्धि से मूल निकले हुवे रहते हैं। पत्ते-$\frac{1}{4}$-$\frac{1}{2}$ इंच, विपरीत, अंडाकार या अंडाकार-भालाकार एवं अल्पवृन्त युक्त होते हैं। पुष्प-पीले होते हैं। यह ललाई लिये हरे रंग की एवं स्वाद में खारी और खट्टी होती है।

गुण और प्रयोग—इसके ताजे पत्तों का लेप विसर्प में लगाया जाता है। इसका फांट मूत्रकृच्छ्र में एवं बीज कृमिघ्न रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं।

१४ बड़ी लोणा

हिं०—बड़ी लोणा, लोणाशाक, कुल्फा। **बं०**—बड़णुनी। **म०**—घोळ। **गु०**—लुणी, म्होटी। **फा०**—खुल्फा, खुर्फा। **अ०**—बकुतुल हुमका। **अं०**—*Garden* purslane (गार्डन पर्सलेन)। **ले०**—*Portulaca oleracea Linn.* (पोर्टुलेका ओलेरेसीया)। Fam. Portulacaceae (पोर्टुलेकेसी)।

कुल्फा—यह प्रसिद्ध साग सीधा या जमीन पर फैला हुआ सभी स्थानों पर होता है। पत्ते-स्फानवत्-आयताकार, गोलखण्डिताग्र एवं $\frac{1}{2}$-१$\frac{1}{2}$ इञ्च लम्बे होते हैं। पुष्प-पीले होते। बीज-दानेदार होते हैं। इसका साग बनाते हैं। इसमें कुछ अम्लता रहती है।

रासायनिक संगठन—इसमें पिच्छिल पदार्थ एवं पोटेशियम् ऑक्जेलेट पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह शीतल, शोथहर एवं रक्तशोधक है। इसके बीज स्नेहन, मूत्रजनन एवं कृमिघ्न हैं।

वृक्कशोथ, बस्तिशोथ में इसका साग तथा बीज देते हैं। इसका स्वरस सभी प्रकार के रक्तपित्त में तथा ज्वर में लाभदायक है। अर्श में इसका साग देते हैं। इसको ताजा पीसकर विसर्प, मोच, चोट, सूजन एवं हाथ पैर की जलन आदि में दाह एवं शोथ कम करने के लिये बांधते हैं।

अथ चांगेरी (तिनपतिया)। तस्या नामानि गुणांश्चाह

चाङ्गेरी चुक्रिका दन्तशठाम्बष्ठाऽम्ललोणिका। अश्मन्तकस्तु शफरी कुशली चाम्लपत्रकः॥
चाङ्गेरी दीपनी रुच्या रूक्षोष्णा कफवातनुत्। पित्तलाऽम्ला ग्रहण्यर्शःकुष्ठातीसारनाशिनी॥

तिनपतिया के संस्कृत नाम—चाङ्गेरी, चुक्रिका, दन्तशठा, अम्बष्ठा, अम्ललोणिका, अश्मन्तक, शफरी, कुशली और अम्लपत्रक ये सब हैं।

चांगेरी—अम्लरसयुक्त, अग्निदीपक, रुचिकारक, रूक्ष, ऊष्ण, पित्तजनक एवम्—कफ, वात ग्रहणी, अर्श, कुष्ठ तथा अतीसार को दूर करने वाली है ॥ २३-२४ ॥

१५ चाङ्गेरी

हिं०—चांगेरी, तिनपतिया, अंबिलोना। **पं०**—खटकल, खट्टी बूटी। **बं०**—अमरूल। **म०**—आंबटी, अंबुटी, मुईसर्पटी। **गु०**—आम्बोती। **क०**—सिवर्गी। **ते०**—पुलि चिंत। **ता०**—पुलियारे। **अं०**—Indian Sorrel (इण्डियन सॉरेल)। **ले०**—*Oxalis corniculata Linn.* (ऑक्झेलिस् कोर्नीक्युलेटा)। Fam. Oxalidaceae (आक्झेलिडेसी)।

यह प्रायः सभी गरम प्रान्तों की ऊसर भूमि, खंडहर तथा घरों के आसपास आप ही आप जङ्गली उत्पन्न होती है। यह प्रसरी वनस्पति जमीन पर फैली हुई रहती है। ग्रंथियों से आगन्तुकमूल निकले रहते हैं। पत्ते-त्रिपत्रक एवं लंबे वृन्त से युक्त होते हैं। पत्रक-अभिहृदवत् होते हैं। उपपत्र-आयताकार एवं वृन्तलग्न रहते हैं। पुष्प-पीले रंग के पुष्प, पत्तों से छोटे दण्ड पर प्रायः दो-दो आते हैं। फली-मृदु रोमश अनेक बीज युक्त एवं पकने पर अपने आप फूटती है।

इसका स्वाद खट्टा होता है तथा इसका साग बनाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें अॅसिड पोटॅशियम ऑक्जेलेट पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह अम्ल, रोचक, उष्ण, दीपन, ग्राही, अर्शोघ्न एवं वातकफ नाशक है। इससे छोटी धमनियों का संकोचन होकर रक्तस्राव रुकता है।

कुपचन में अन्न में अम्लता लाने के लिये इसका उपयोग करते हैं। खूनी आँव तथा गुदभ्रंश में इसे देते हैं। शोथ पर इसको पीसकर बांधने से पीड़ा एवं दाह कम होकर सूजन उतरती है। धतूरे के विष के निवारण के लिये इसका रस पिलाते हैं।

अथ चुक्रिका (चूक)। तस्या नामगुणानाह

चुक्रिका स्यात्तु पत्राम्ला रोचनी शतवेधिनी ॥ २५ ॥

चुक्रा त्वम्लतरा स्वाद्वी वातघ्नी कफपित्तकृत्। रुच्या लघुतरा पाके वृन्ताकेनातिरोचनी ॥

चूक के संस्कृत नाम—चुक्रिका, पत्राम्ला, रोचनी तथा शतवेधिनी ये सब हैं। चूक-अत्यन्त अम्ल रसयुक्त (अत्यन्त खट्टा), स्वादिष्ट, वातनाशक, कफ तथा पित्त को उत्पन्न करनेवाला, रुचिकारी, विपाक में अत्यन्त लघु तथा बैगन के साथ खाने में अत्यन्त रुचिकारक है ॥ २५-२६ ॥

१६ चूका

हि०—चूका (शाक)। **बं०**—चुका, पालंग। **म०**—चुका, आंबट चुका। **गु०**—चुको, खारो भाजी। **क०**—हुलीचकोत। **फा०**—तुरश्क बड़ा, तुर्श खुरासानी, तरह हिरा साई। **अ०**—हुम्माज बुक्लेहा मेजा, बुल्फ येह मिज़ई। **अं०**—Bladder Dock (ब्लॅडर डॉक्)। **ले०**—*Rumex vesicarius Linn.* (रूमेक्स वेसिकेरियस्)। Fam. Polygonaceae (पॉलिगोनेसी)।

यह पश्चिम पञ्जाब और सिन्ध नदी के आस पास पहाड़ी ज़मीन में अधिक होता है और दूसरे प्रान्त में भी कहीं कहीं पाया जाता है। इसका क्षुप-६ से १२ इञ्च तक ऊँचा, पाण्डुर हरित, कुछ मांसल एवं मूल के पास से ही दो मार्गों में बँटा रहता है। पत्ते-अंडाकार-लट्वाकार या आयताकार, १ से ३ इञ्च लंबे, आधार स्फानवत् या हृदवत् या दो कोने निकले हुवे तथा लम्बे वृन्त से युक्त होते हैं। पुष्प-श्वेत या गुलाबी होते हैं। इसके बीज यूनानी वैद्यक में तुख्म हुम्माज नाम से व्यवहार में आते हैं। इसका साग बनाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह दीपन, रुचिकर, सारक, शोथघ्न एवं वेदना स्थापन है। पचन नलिका के विकार में इसका साग देते हैं। आमाशय में दाह, आंव, वमन एवं क्षुधा नाश आदि में इसे देते है।

इसके बीज शीतल, ग्राही, लेसदार तथा दाह शामक होते हैं। इनका उपयोग पित्त विकार, पित्तातिसार, मूत्र मार्ग में दाह एवं आमाशय शोथ में करते हैं।

पत्तों का लेप सूजन पर तथा कीटदंश पर करते हैं। दंतशूल में भी रस लगाते हैं।

अथ चञ्चुकी (भाफली) तस्या नामगुणानाह

चिञ्चा चञ्चुश्चञ्चुकी च दीर्घपत्रा सतिक्तका। चञ्चुः शीता सरा रुच्या स्वाद्वी दोषत्रयापहा ॥
धातुपुष्टिकरी बल्या मेध्या पिच्छिलका स्मृता ॥ २७ ॥

चञ्चुकी के संस्कृत नाम—चिञ्चा, चञ्चु, चञ्चुकी, दीर्घपत्रा तथा सतिक्तका ये सब हैं। चंचु—स्वादिष्ट, शीतल, सारक, रुचिकारक, त्रिदोषनाशक, धातु को पुष्ट करनेवाला, बलदायक, मेधा के लिये हितकर तथा पिच्छिल है ॥ २७ ॥

१७ चंचु

हि०— चंचु शाक, चोंच, (वा) भाफली। **बं०**—बिलनलिता। **म०**—हरणखुरी, मगरमिठी। **गु०**—उभी बहुफली, छुंछडो। **ले०**—*Corchorus fascicularis Lam.* (कोर्कोरस् फॅसीक्यूलेरिस्)। Fam. Tiliaceae (टिलिएसी)।

यह गरम प्रान्तों में अधिक उत्पन्न होता है। इसका क्षुप-एक फुट ऊंचा, प्रसरणशील एवं वर्षायु होता है। पत्ते-१-२ इञ्च लम्बे, पाव से आध इञ्च तक चौड़े, एकान्तर, आयताकार-भालाकार तथा दन्तुर होते हैं। फूल-पीले रङ्ग के, २ से ५ एक वृन्त पर पत्तों के सामने आते हैं। फलियाँ-मृदुरोमश, करीब १/२ इञ्च लम्बी, ३-४ एक साथ एवं प्रत्येक ३-४ कोष्ठ युक्त होती हैं। बीज-अनेक, काले एवं कोनयुक्त होते हैं।

इसके पंचांग का उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह उत्तम स्नेहन एवं बल्य है। इसका क्वाथ सोजाक में देते हैं जिससे पेशाब की मात्रा बढ़कर जलन इत्यादि कम होती है।

मात्रा—१/२ से १ तोला।

अथ हिलमोचिका (हरकुच)। तस्य नामगुणानाह

ब्राह्मी शङ्खधराऽऽचारी मत्स्याक्षी हिलमोचिका। शोथं कुष्ठं कफं पित्तं हरते हिलमोचिका ॥

हरकुच के संस्कृत नाम—ब्राह्मी, शङ्खधरा, आचारी, मत्स्याक्षी तथा हिलमोचिका ये सब हैं। हरकुच— शोथ, कुष्ठ, कफ तथा पित्त का नाशक है ॥ २८ ॥

१८ हरकुच शाक

हि०—हरकुच। **बं०**—हिलेंचा शाक, हिंलंचशाक, हिंगचा। **ले०**—*Enhydra fluctuans Lour.* (एन्हाइड्रा फ्लक्चुअन्स)। Fam. Compositae (कम्पोझिटी)।

यह आसाम, बिहार और बङ्गाल में पाया जाता है।

यह जल के निकटवर्त्ती स्थान और दलदल में उत्पन्न होने वाली प्रसरणशील वनस्पति है। इसकी शाखा १-२ फीट लम्बी, मांसल, रोमश, भूमि पर पसरी हुई रहती है और गाँठों से मूल निकल कर भूमि में घुस जाते हैं। पत्ते-विपरीत, अवृन्त, रेखाकार-आयताकार १ से ३ इञ्च लंबे और दन्तुर होते हैं। फूल (मुण्डक)-पीले, दण्डरहित, व्यास में ३ से ७ इञ्च एवं विषमलिंग होते हैं। इनमें प्रान्तीय पुष्प स्त्रीलिंग, जिह्वाकार एवं कई चक्रों में तथा केन्द्रीय पुष्प उभयलिंग होते हैं। अधःपत्रावलि के पत्र केवल चार होते हैं।

इसके पत्ते कुछ कड़वे होते हैं तथा बंगाल में इसका साग बनाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके शुष्क पौधे में उड़नशील तेल, स्टिग्मॅस्टेरॉल् (Stigmasterol) एवं अत्यल्प कड़वा पदार्थ होता है।

गुण और प्रयोग—यह मृदुसारक, पित्तशामक, स्नेहन तथा त्वचा एवं वातिक विकारों में लाभदायक है।

(१) त्वचा के रोग तथा वातिक विकारों में इसका स्वरस १ तोले की मात्रा में पिलाते हैं।

(२) यकृत का कार्य ठीक न होता हो तो चावल की मांड़ में इसको उबालकर सैंधव तथा सरसों का तेल डालकर देते हैं।

नोट—टीकाकारों ने हिलमोचिका को कहीं कहीं हुरहुर लिखा है जो वास्तव में इससे भिन्न है।

अथ शितिवारः (चौपतिया)। तस्य नामलक्षणगुणानाह

शितिवारः शितिवरः स्वस्तिकः सुनिषण्णकः। श्रीवारकः सूचिपत्रः पर्णकः कुक्कुटः शिखी ॥

चाङ्गेरीसदृशः पत्रैश्चतुर्दल इतीरितः। शाको जलाप्लुते देशे चतुष्पत्रीति चोच्यते ॥ ३० ॥

सुनिषण्णो हिमो ग्राही मेदोदोषत्रयापहः ॥ ३१ ॥
अविदाही लघुः स्वादुः कषायो रूक्षदीपनः । वृष्यो रुच्योज्वरश्वासमेहकुष्ठभ्रमप्रणुत् ॥३२॥

चौपतिया के संस्कृत नाम—शितिवार, शितिवर, स्वस्तिक, सुनिषण्णक, श्रीवारक, सूचिपत्र, पर्णक, कुक्कुट और शिखी ये सब हैं।

लक्षण—**चौपतिया** के पत्ते चांगेरी (तिनपतिया) के पत्तों के समान होते हैं और इसके पत्रदण्ड में ४ पत्रक रहते हैं इसी से इसको चतुष्पत्री अर्थात् चौपतिया कहते हैं। यह शाक जलयुक्त देश में उत्पन्न होता है।

चौपतिया—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, शीतल, ग्राही, किंचित् विदाही, लघु, रूक्ष, अग्निदीपक, वीर्यवर्धक, रुचिकारक एवं–मेद, त्रिदोष, ज्वर, श्वास, प्रमेह, कुष्ठ तथा भ्रम रोग नाशक है ॥ २९–३२ ॥

नोट—शितिवार तथा सुनिषण्णक वास्तव में दो भिन्न द्रव्य हैं जब कि यहां इन्हें पर्यायों में लिखा गया है। यहां जिसका स्वरूप वर्णन श्लोक में आया है वह चौपतिया साग है। शितिवार इससे भिन्न है जिसका वर्णन पहले कर्पूरादिवर्ग (पृष्ठ २६४) में कैवर्तमुस्तक के अन्तर्गत किया जा चुका है।

१९ चौपतिया

हि०–चौपतिया, सुनसुनिया साग। बं०–सुसुनी शाक, शुनिशाक, शुशुनो शाक। ले०–*Marsilea minuta Linn.* (मार्सिलिया माइन्यूटा)। Fam. Rhizocarpeae (राइझोकार्पी)।

यह शाकवर्गीय वनस्पति भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों के सजल स्थान में कहीं न कहीं पायी जाती है। वर्षा ऋतु में यह अधिक उत्पन्न होती है। इसमें नीचे विसर्पी, पतला, एवं सशाख काण्ड होता है। इसके छत्ते–पानी के ऊपर तैरते हुए दिखाई पड़ते हैं। प्रत्येक पत्रदण्ड पर चार-चार पत्ते स्वस्तिक क्रम में निकले रहते हैं, इस कारण इसे चतुष्पत्री या चौपतिया भी कहते हैं। पत्ते और दण्ड आकार में छोटे बड़े हुआ करते हैं। पत्ते–चांगेरी के पत्तों के समान किन्तु उनसे बड़े होते हैं। बीजाणुकोष एक विशेष प्रकार की अण्डाकार परन्तु कुछ-कुछ चिपटी रचना के अन्दर रहते हैं जो फल की तरह मालूम होती है।

गुण और प्रयोग—इसका साग निद्राजनक तथा दीपन होता है। निद्रा लाने के लिये तथा अग्निमांद्य में इसका उपयोग करते हैं।

अथ मूलकपत्रम् (मुरई का पत्ता)। तस्य गुणानाह

पाचनं लघु रुच्योष्णं पत्रं मूलकजं नवम्। स्नेहसिद्धं त्रिदोषघ्नमसिद्धं कफपित्तकृत् ॥ ३३ ॥

नवीन मुरई के पत्ते का शाक—पाचक, लघु (हल्का), रुचिकारक तथा उष्ण होता है। तेल में भुना हुआ शाक–त्रिदोष–नाशक होता है। बिना भुना हुआ—कफ तथा पित्तकारक होता है ॥ ३३ ॥

२० मूली के पत्ते

इसका परिचय कंदशाक वर्ग में दिया जायगा।

अथ द्रोणपुष्पी पत्रम् (गूमा का पत्ता)। तस्य गुणानाह

द्रोणपुष्पीदलं स्वादु रूक्षं गुरु च पित्तकृत्। भेदनं कामलाशोथमेहज्वरहरं कटु ॥ ३४ ॥

गुमा के पत्ते का शाक—स्वादिष्ट, कटुरसयुक्त, रूक्ष, गुरु, पित्तकारक, मलभेदक एवं–कामला, शोथ, प्रमेह तथा ज्वर को दूर करनेवाला होता है ॥ ३४ ॥

२१ गूमा

इसका पूर्ण विवरण गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ ४६३) में दिया गया है।

अथ यवानीशाकम् (अजवाइन का शाक)। तस्य गुणानाह

यवानीशाकमाग्नेयं रुच्यं वातकफप्रणुत्। उष्णं कटु च तिक्तं च पित्तलं लघु शूलहृत् ॥३५॥

अजवाइन के पत्ते का शाक–आग्नेय (अग्नि के गुणों से युक्त), रुचिकारक, उष्ण, कटु तथा तिक्त रसयुक्त, पित्तजनक, लघु एवम्–वात, कफ तथा शूल को दूर करनेवाला होता है ॥

२२ अजवाइन

इसका पूर्ण परिचय हरीतक्यादि वर्ग (पृष्ठ २५) में दिया जा चुका है।

अथ दद्रुघ्नपत्रम् (पमार, चकवड़ शाक)। तस्य गुणानाह

दद्रुघ्नपत्रं दोषघ्नमम्लं वातकफापहम्। कण्डूकासक्रिमिश्वासदद्रुकुष्ठप्रणुल्लघु ॥ ३६ ॥

चकवड़ के पत्ते–दोषनाशक, लघु, अम्लरस युक्त, वात, कफ, खुजली, खांसी, क्रिमि, श्वास, दाद और कुष्ठ को दूर करनेवाले होते हैं ॥ ३६ ॥

२३ चकवड़

इसका पूर्ण विवरण हरीतक्यादि वर्ग (पृष्ठ ११५) में दिया गया है।

अथ सेहुण्डः (थूहर)। तत्पत्रस्य गुणानाह

सेहुण्डस्य दलं तीक्ष्णं दीपनं रेचनं हरेत्। आध्मानाष्ठीलिकागुल्मशूलशोथोदराणि च ॥३७॥

थूहर के पत्ते—तीक्ष्ण, अग्निदीपक, रेचक (दस्तावर) एवम्—आध्मान (अफरा), अष्ठीलिका, गुल्म, शूल, शोथ तथा उदररोग को दूर करने वाले होते हैं ॥ ३७ ॥

२४ थूहर

इसका पूर्ण परिचय गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ ३०७) में दिया गया है।

अथ पर्पटः (पित्तपापड़ा)। तस्य गुणानाह

पर्पटो हन्ति पित्तास्रज्वरतृष्णाकफभ्रमान्। संग्राही शीतलस्तिक्तो दाहनुद्वातलो लघुः ॥

पित्तपापड़ा—तिक्त रस युक्त, ग्राही, शीतल, वातजनक, लघु एवम्—पित्त, रक्तविकार, ज्वर, प्यास, कफ, भ्रमरोग तथा दाह को दूर करने वाला होता है ॥ ३८ ॥

२५ पित्तपापड़ा

इसका पूर्ण विवरण गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ ३२४) में किया गया है।

अथ गोजिह्वा । तस्या गुणानाह

गोजिह्वा कुष्ठमेहास्रकृच्छ्रज्वरहरी लघुः ॥ ३९ ॥

गोजिह्वा के पत्ते—लघु एवम् कुष्ठ, प्रमेह, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र तथा ज्वर को दूर करने वाले होते हैं ॥ ३९ ॥

२६ गोजिह्वा

इसका पूर्ण वर्णन गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ ४७१) में दिया गया है।

अथ पटोलपत्रम् । तस्य गुणानाह

पटोलपत्रं पित्तघ्नं दीपनं पाचनं लघु। स्निग्धं वृष्यं तथोष्णं च ज्वरकासक्रिमिप्रणुत् ॥ ४० ॥

परवर के पत्ते—पित्तनाशक, अग्निदीपक, पाचक, लघु, स्निग्ध, वीर्यवर्धक, उष्ण, एवम्—ज्वर, खांसी तथा क्रिमि को नष्ट करने वाले होते हैं ॥ ४० ॥

२७ पटोल-पत्र

इसका परिचय आगे फलशाक वर्ग में लिखा गया है।

अथ गुडूचीपत्रम् (गिलोयशाक) । तस्य गुणानाह

गुडूचीपत्रमाग्नेयं सर्वज्वरहरं लघु। कषायं कटु तिक्तं च स्वादुपाकं रसायनम् ॥ ४१ ॥
बल्यमुष्णं च संग्राहि हन्यादोषत्रयं तृषाम् । दाहप्रमेहवातास्रकामलाकुष्ठपाण्डुताः ॥४२॥

गिलोय के पत्ते—आग्नेय (अग्नि के गुणों से युक्त), सर्व प्रकार के ज्वर को दूर करने वाले, लघु, कषाय, कटु तथा तिक्त रसयुक्त, विपाक में मधुर रस युक्त, रसायन, बलकारक, उष्ण, ग्राही, एवम्—त्रिदोष, तृषा, दाह, प्रमेह, वात, रक्तविकार या वातरक्त, कामला, कुष्ठ तथा पाण्डु रोग को दूर करने वाले होते हैं ॥ ४१-४२ ॥

२८ गिलोय शाक

इसका विस्तृत वर्णन गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ २६९) में किया गया है।

अथ कासमर्दः (कसौंदी शाक) । तस्य नामानि तत्पत्रस्य गुणांश्चाह

कासमर्दोऽरिमर्दश्च कासारिः कर्कशस्तथा । कासमर्ददलं रुच्यं वृष्यं कासविषास्रनुत् ॥ ४३ ॥
मधुरं कफवातघ्नं पाचनं कण्ठशोधनम् । विशेषतः कासहरं पित्तघ्नं ग्राहकं लघु ॥ ४४ ॥

कसौंदी के संस्कृत नाम—कासमर्द, अरिमर्द, कासारि तथा कर्कश ये सब हैं। कासमर्द के पत्ते—मधुर रसयुक्त, रुचिकारक, वीर्यवर्धक, पाचक, कण्ठ को शुद्ध करने वाले, लघु, ग्राही, एवम्—खांसी, विष, रक्तविकार, कफ तथा वात को नाश करने वाले होते हैं और विशेषतः ये कासनाशक तथा पित्त को दूर करने वाले होते हैं ॥ ४३-४४ ॥

२९ कसौंदी

हि०-कसौंदी, कसौंदी। बं०-कालकासुन्दा। म०-कासविंदा। गु०-कासोंदरो। क०-दोड्डुतगचे। ते०-कसि। मला०-पोन्ना वीर। ता०-पैदाविरै। अं०-The Negro Coffee

(दी निग्रो कॉफी)। ले०-*Cassia occidentalis Linn.* (कॅशिआ ऑक्सीडेन्टॅलिस्)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

कसौंदी—क्षुप जाति की वनस्पति वर्षा ऋतु में अधिक होती है। इसका क्षुप-३-४ फोट तक ऊँचा तथा कुछ दुर्गन्ध युक्त होता है। कांड—कुछ नालीदार होता है। पत्ते-संयुक्त एवं ६ से १२ इञ्च लम्बे तथा वृन्त के आधार पर एक ग्रन्थि युक्त होते हैं। पत्रक-लट्वाकार, लट्वाकार-आयताकार या लट्वाकार-प्रासवत, १½ से ४ इञ्च लम्बे, मुलायम एवं प्रायः लम्बाग्र होते हैं। पुष्प—पीले रङ्ग के होते हैं। फली-४-५ इञ्च लम्बी तथा चिपटी होती है।

इसके पत्र,मूल तथा बीजों का उपयोग किया जाता है। बीजों को भूनकर कॉफी की तरह व्यवहार में लाते हैं।

भेद—इसका एक अन्य भेद कॅ०सोफेरा (C. sophera) होता है। इसके क्षुप-४ से ७ फीट ऊँचे; पत्रक ६ से १२ जोड़े, प्रायः १ से ३ इञ्च लम्बे, लम्बे प्रासवत, तीक्ष्णाग्र या लम्बाग्र एवं वृन्त आधारीय ग्रंथि एक किन्तु भिन्न आकार की होती है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में टॅनिक् ॲसिड, म्युसिलेज, तैल, एमोडिन (Emodin), टॉक्सअल्ब्यूमिन (Toxalbumin) एवं क्राइसोरॉबिन (Chrysorobin) पाया जाता है। विरेचन द्रव्य इनको भूनने से नष्ट हो जाते हैं। यह विरेचन द्रव्य सनाय जैसे इसके पत्तों में भी होते हैं।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, कण्ठशोधन, कफघ्न, स्रंसन, ज्वरहर एवं कुष्ठघ्न है। इसकी जड़ मूत्रजनन है। इसका पंचांग विरेचन है। पत्र एवं बीज ज्वरहर हैं।

(१) कफज्वर, कुकास, श्वास आदि में पत्रस्वरस मधु के साथ देते हैं। इससे वमन तथा विरेचन भी होता है।

(२) पंचांग के क्वाथ से वायु का अनुलोमन होता है तथा शौच साफ होता है।

(३) पत्तों का लेप व्रणशोथ, विसर्प आदि दाहयुक्त चर्म रोगों में किया जाता है। त्वचा के रोगों में मूल तथा पत्तों का क्वाथ एवं लेप उपयोगी है।

(४) उदर तथा जलशोथ में मूल का उपयोग करते हैं।

मात्रा—स्वरस ½ से १ तोला; पंचांग ३ से ६ माशा; फल ३ से ६ माशा।

कासमर्द भेद—इसमें एमोडिन तथा क्राइसोफेनिक ॲसिड पाया जाता है। इसके भी गुण कासमर्द के समान हैं। इसके पत्तों का बाह्य प्रयोग दाद में करते हैं। पंचांग का क्वाथ खांसी में दिया जाता है।

अथ चणकशाकम् (चने का शाक) । तस्य गुणानाह

रुच्यं चणकशाकं स्याद् दुर्जरं कफवातकृत् । अम्लं विष्टम्भजनकं पित्तनुद्दन्तशोथहृत् ॥४५॥

चने का शाक—रुचिकारक, देर में हजम होने वाला, कफ तथा वातकारक, अम्लरस युक्त, विष्टम्भ पैदा करने वाला एवम्—पित्त तथा दांतों के शोथ को दूर करने वाला होता है ॥ ४५ ॥

३० चना

चने का वर्णन शिम्बीधान्य वर्ग (पृष्ठ ६४९) में किया गया है।

अथ कलायशाकम् (मटर का शाक)। तस्य गुणानाह

कलायशाकं भेदि स्याल्लघु तिक्तं त्रिदोषजित् ॥ ४६ ॥

मटर का शाक—मल का भेदन करने वाला, लघु, तिक्तरस युक्त, एवम् त्रिदोष-नाशक होता है ॥ ४६ ॥

३१ मटर

इसका परिचय शिम्बीधान्य वर्ग (पृष्ठ ६४९) में दिया गया है।

अथ सार्षपं शाकम् (सरसों का शाक)। तस्य गुणानाह

कटुकं सार्षपं शाकं बहुमूत्रमलं गुरु।

अम्लपाकं विदाहि स्यादुष्णं रूक्षं त्रिदोषकृत। सक्षारलवणं तीक्ष्णं स्वादु शाकेषु निन्दितम् ॥

सरसों का शाक—कटुरस युक्त, बहुत मूत्र तथा मल को करने वाला, गुरु, विपाक में अम्लरस युक्त, विदाही, उष्ण, रूक्ष, त्रिदोष कारक, क्षार युक्त लवण रस वाला, तीक्ष्ण और स्वादिष्ट होता है। एवम् यह शाकों में निन्दनीय होता है ॥ ४७ ॥

३२ सरसों

इसका वर्णन शिम्बीधान्य वर्ग (पृष्ठ ६५४) में किया गया है।

इति पत्रशाकानि ॥

अथ पुष्पशाकानि। तत्रागस्तिपुष्पस्य गुणानाह

अगस्तिकुसुमं शीतं चातुर्थिकनिवारणम्।

नक्तान्ध्यनाशनं तिक्तं कषायं कटुपाकि च। पीनसश्लेष्मपित्तघ्नं वातघ्नं मुनिभिर्मतम् ॥४८॥

अगस्त का पुष्प—तिक्त तथा कषायरस युक्त, विपाक में कटुरस युक्त, शीतल एवम् चौथिया ज्वर, नक्तान्ध्य (रतौंधी), पीनस, कफ, पित्त तथा वात को नष्ट करने वाला होता है ऐसा मुनि लोग मानते हैं ॥ ४८ ॥

३३ अगस्त

इसका विवरण पुष्पवर्ग (पृष्ठ ५०८) में दिया गया है।

अथ कदलीपुष्पम् (केले का फूल)। तस्य गुणानाह

कदल्याः कुसुमं स्निग्धं मधुरं तुवरं गुरु। वातपित्तहरं शीतं रक्तपित्तक्षयप्रणुत् ॥ ४९ ॥

केले का फूल—मधुर तथा कषायरस युक्त, स्निग्ध, गुरु, शीतल एवम्—वात-पित्त, रक्तपित्त तथा क्षय को दूर करने वाला होता है ॥ ४९ ॥

३४ केला

इसका परिचय फलवर्ग (पृष्ठ ५५७) में दिया गया है।

अथ शिग्रोः मधुशिग्रोः च पुष्पं (सहजना एवं उसके भेद के फूल)। तयोर्गुणानाह

शिग्रोः पुष्पं तु कटुकं तीक्ष्णोष्णं स्नायुशोथनुत्।

कृमिहृत्कफवातघ्नं विद्रधिप्लीहगुल्मजित्। मधुशिग्रोस्त्वक्षिहितं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ ५० ॥

सहजन का फूल—कटुरस युक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, स्नायुगत शोथ को दूर करने वाला एवम् कृमि, कफ, वात, विद्रधि, प्लीहा तथा गुल्म को नष्ट करने वाला होता है।

मधुशिग्रु (सहजन भेद) का फूल—नेत्रों के लिये हितकर तथा रक्तपित्त को दूर करने वाला होता है ॥ ५० ॥

३५ सहजना

इसका विवरण गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ ३४०) में किया गया है।

अथ शाल्मलीपुष्पम् (सेमल के फूल)। तस्य गुणानाह

शाल्मलीपुष्पशाकं तु घृतसैन्धवसाधितम्। प्रदरं नाशयत्येव दुःसाध्यं च न संशयः ॥५१॥
रसे पाके च मधुरं कषायं शीतलं गुरु। कफपित्तास्रजिद् ग्राहि वातलं च प्रकीर्तितम् ॥५२॥

सेमल के फूल का शाक—यदि यह घी तथा सेन्धा निमक डाल कर बनाया जाय तो सेवन करने से दुःसाध्य प्रदर को दूर करता है इसमें कोई संशय नहीं है। और यह कषाय तथा मधुररस युक्त, विपाक में मधुररस युक्त, शीतल, गुरु, ग्राही, वातजनक एवम् कफ, पित्त तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥ ५१-५२ ॥

३६ सेमर

इसका विवरण वटादिवर्ग (पृष्ठ ५३७) में दिया गया है।

इति पुष्पशाकानि।

अथ फलशाकानि। तत्रकूष्माण्डम् (पेठा)। तस्य नामानि तद्बाल-मध्यम-वृद्धफलानां च गुणानाह

कूष्माडं स्यात्पुष्पफलं पीतपुष्पं बृहत्फलम् ॥ ५३ ॥

कूष्माण्डं बृंहणं वृष्यं गुरु पित्तास्रवातनुत्। बालं पित्तापहं शीतं मध्यमं कफकारकम् ॥५४॥
वृद्धं नातिहिमं स्वादु सक्षारं दीपनं लघु। बस्तिशुद्धिकरं चेतोरोगहृत्सर्वदोषजित् ॥ ५५ ॥

पेठा के नाम—कूष्माण्ड, पुष्पफल, पीतपुष्प तथा बृहत्फल ये सब हैं। पेठा—बृंहण (बलवर्धक), वृष्य (वीर्यवर्धक), गुरु एवम् पित्त, रक्तविकार तथा वात को नष्ट करने वाला होता है। कच्चा पेठा—शीतल तथा पित्तनाशक होता है।

मध्यम अवस्था का पेठा—कफकारक होता है। पका पेठा—स्वादिष्ट, क्षारयुक्त, किंचित् शीतल, अग्निदीपक, लघु, बस्ति (मूत्राशय) का शोधन करने वाला, मानसिक रोग (उन्माद आदि) तथा सम्पूर्ण दोषों को दूर करने वाला होता है ॥ ५४-५५ ॥

३७ पेठा

हि०-पेठा, भूरा कुम्हड़ा, भतुआ, रकसा कोंहड़ा। बं०-कुमड़ा। म०-कोहळा। गु०-भुरुं कोहळुं। क०-दार कोहोला। ता०-पुशनीकै। ते०-गुम्मडि। फा०-पजदाब, पदुब। अ०-महद्दवः। अं०-The Ash Gourd (दी ॲश गोर्ड)। ले०-*Benincasa cerifera Savi* (बेनिन्कॅसा सेरीफेरा)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

पेठा-प्रायः सब प्रान्तों में रोपण किया जाता है। इसकी लता-मचान आदि के सहारे खूब फैलती है। पत्ते-कद्दू के समान ४-६ इञ्च के घेरे में गोलाकार, कटे किनारे वाले या ५ भाग वाले होते हैं। फूल-पीले रङ्ग के आते हैं। फल-गोलाई युक्त, किञ्चित लम्बे तथा लम्बाई में १ से १'५ फीट होते हैं। इसकी गुद्दी सफेद रहती है। बीज-अनेक, चिपटे एवं किनारेदार होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके फल में आर्द्रता ९६, प्रोटीन ०'४, स्नेह ०'१, कार्बोहाइड्रेट ३'२, खनिज ०'३ भाग तथा विटामिन बी, २१ अ. एकक प्रति १०० ग्राम में रहता है।

गुण और प्रयोग—इसका फल मूत्रजनन, सौम्य विरेचक, बल्य, पौष्टिक, पित्तशामक, रक्तपित्त प्रशमन एवं रक्त संग्राहक है।

इसका उपयोग रक्तपित्त, रक्तष्ठीवन, आन्तरिक रक्तस्राव, पागलपन, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, तृष्णा एवं प्रमेह में किया जाता है।

इससे रक्ताभिसरण की तेजी कम होती है। अधिक मात्रा में शौच साफ होकर नींद आती है।

(१) उन्माद में इसका रस पिलाते हैं जिससे शौच साफ होकर नींद आती है।

(२) राजयक्ष्मा में रक्तष्ठीवन होने पर इसका रस देते हैं।

(३) अर्श में कूष्माण्डपाक देते हैं।

(४) इसके बीज तथा बीजों का तेल चिपटे कृमियों के उपसर्ग में लाभदायक है।

मात्रा—स्वरस २ से ४ औंस; बीजचूर्ण ३ से ६ माशा।

अथ कूष्माण्डी (कुम्हड़ी)। तस्यानामगुणानाह

कूष्माण्डी तु भृशं लघ्वी कर्कारुरपि कीर्तिता।
कर्कारुर्ग्राहिणी शीता रक्तपित्तहरा गुरुः। पक्वा तिक्ताऽग्निजननी सक्षारा कफवातनुत्॥

कुम्हड़ी का संस्कृत नाम—अत्यन्त लघु पेठे को "कूष्माण्डी" कहते हैं, इसी का नाम "कर्कारु" भी है।

कुम्हड़ी—ग्राही, शीतल, रक्तपित्त नाशक तथा गुरु होती है। पकी कुम्हड़ी-तिक्तरस युक्त, अग्निवर्धक, क्षार युक्त एवम्—कफ तथा वात को दूर करने वाली होती है॥ ५६॥

३८ कूष्माण्डी (कोहला)

हि०-कुम्हरा, सफेद कद्दू। बं-सादा कुम्हरा। म०-कौला। ता०-सुरईकई। अं०-Vegetable Marrow (वेजिटेबुल मॅरो); Field Pumpkin (फील्ड पम्पकिन)। ले०-*Cucurbita pepo Linn.* (कुकुरबिटा पेपो)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

यह सभी प्रान्तों में कृषित अवस्था में होता है। इसकी लता-वर्षायु, दृढ़ एवं खरदरी से रोमश होती है। पत्ते-गोलाकार, अल्प खण्डित एवं वृन्त तीक्ष्ण रोमश होते हैं। पुष्प-पीले रङ्ग के आते हैं। फल-कई प्रकार के किन्तु सामान्यतः नाशपाती के आकार वाले या कुछ आयताकार होते हैं। इसका डण्ठल कड़ा, अनेक गहरी धारियों से युक्त एवं फल के आधारीय भाग में फूला हुआ नहीं रहता।

इसके अनेक प्रकार होते हैं। गुद्दी हल्के रंग की एवं गंधहीन होती है। बीजों को तथा उसके तेल को खाने के काम में लाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें आर्द्रता ९५, प्रोटीन ०'५, स्नेह ०'१, कार्बोहाइड्रेट ४, एवं खनिजों में ०'३ तथा अत्यल्प खटिक, आर्सेनिक और विटामिन 'सी' १०० ग्राम में १८ मि० ग्रा० रहता है।

बीजमज्जा में प्रोटीन, तैल (३८%), रालीय द्रव्य एवं सॅलिसिलिक् ॲसिड आदि द्रव्य होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके ताजे बीज, चिपटे कृमियों (Taenicide) में लाभदायक हैं। ३० से ६० ग्राम बीजों को कूटकर दूध एवं मधु मिलाकर खालीपेट पिलाते हैं। बाद में विरेचन देते हैं। इसके पत्तों का लेप जलने पर करते हैं।

नोट-कुम्हड़े के निम्नलिखित अन्य भेद भी पाये जाते हैं।

(क) हि०-लाल कुम्हड़ा, सीताफल। अं०-Red Gourd (रेड गोर्ड); Squash (स्कॅश)। ले०- C. maxima Duchesne (कु. मॅक्सिमा)। इसमें भी फल विभिन्न नाप के होते हैं एवं डंठल न तो धारीदार रहता है न फल से लगा भाग बढ़ा हुआ रहता है। इसका गूदा पकने पर पीताभ या रक्ताभ रहता है। इसके बीज श्वेत या भूरे तथा उनके किनारे भी उसी तरह होते हैं। इसके पत्र, पुष्प, फल एवं बीज का उपयोग खाद्य रूप में किया जाता है। बीज कृमिघ्न, मूत्रल तथा बल्य होते हैं।

(ख) ले०-*C. moschata Duchesne ex Poir.* (कु. मास्केटा)। इसमें के फल का डंठल धारीदार एवं फल से लगाभाग बढ़ा हुआ रहता है। इसमें बीज धूसराभ श्वेत या पीताभ किन्तु किनारे गहरे रंग के होते हैं। इसके अन्य भाषा नाम एवं इसका व्यवहार (क) की तरह ही होता है।

अथ अलाबूर्दीर्घा-वर्त्तुला च तस्या नामानि भेदांस्तत्फलगुणाँश्चाह

अलाबूः कथिता तुम्बी द्विधा दीर्घा च वर्तुला॥ ५७॥
मिष्टतुम्बीफलं हृद्यं पित्तश्लेष्मापहं गुरु। वृष्यं रुचिकरं प्रोक्तं धातु पुष्टिविवर्धनम्॥ ५८॥

लौकी का संस्कृत नाम—अलाबू तथा तुम्बी है। भेद-लम्बी तथा गोल भेद से लौकी दो प्रकार की होती है अर्थात्-१ दीर्घा अलाबू, २ वर्त्तुला अलाबू।

मीठी लौकी का फल—गुरु, रुचिकारक, वीर्यवर्धक, हृदय के लिये हितकर, पित्त तथा कफ नाशक एवम् धातु की पुष्टि को विशेष रूप से करने वाला होता है॥ ५७-५८॥

३९ अलाबू (लौकी)

हि०-तुम्बी, लौआ, लौकी, कद्दू, कदुआ, मीठी तोम्बी, लम्बाकद्दू। बं०-लाउ। म०-दुध्या भोंपळा। गु०-दुधियुं, तुंबड़ी। क०-उवलकाई। ते०-अलबुबु, आनपकाया। फा०-कदु शीरिन्। अ०-युक्तिनेहुलुकुरा। अं०-White Gourd (व्हाइट गोर्ड)। ले०-*Lagenaria vulgaris Ser* (लॅगेनेरिया वल्गॅरिस्)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में रोपण की जाती है। खेत, बाग, मचान, छप्पर आदि पर फैली हुई इसकी बेल देखने में आती है। इसके पत्ते-मृदुरोमश, ६-७ इञ्च के घेरे में गोलाकार, पञ्च कोणाकार या पांच खण्डवाले होते हैं। फूल-सफेद रङ्ग के आते हैं। फल-१-२ हाथ लम्बा गोल या गोल अथवा चिपटा गोल विभिन्न आकार का होता है। कृषिजन्य इसके अनेक आकार होते हैं। कृषिजन्य की गुद्दी मीठी होती है तथा वन्य की कडवी होती है।

गुण और प्रयोग—इसके कृषित प्रकार को लोग सब्जी इत्यादि के काम में लाते हैं। वन्य-भेद जो स्वाद में कडवा होता है उसका चिकित्सा में उपयोग होता है जिसका आगे वर्णन दिया गया है।

अथ कटुतुम्बी (कड़वी लौकी)। तस्या नामगुणानाह

इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी स्यात्सा तुम्बी च महाफला।
कटुतुम्बी हिमा हृद्या पित्तकासविषापहा। तिक्ता कटुर्विपाके च वातपित्तज्वरान्तकृत् ॥५९॥

कड़वी तुम्बी के संस्कृत नाम— इक्ष्वाकु, कटुतुम्बी, तुम्बी और महाफला ये सब हैं।

कड़वी तुम्बी—तिक्तरसयुक्त, विपाक में कटु रसयुक्त, शीतल, हृदय के लिए हितकर एवम्- पित्त, खांसी, विष, वात तथा पित्तज्वर को नष्ट करने वाली होती है ॥ ५९ ॥

४० कटुतुम्बी (कड़वी तुम्बी)

हि०—कटुलौकी, कड़वी तोंबी, तित लौकी, तितुआ लौका, तुमरी, तुम्बी। बं०—तितलाउ, तित लाओ। म०—कडु भोपळा। गु०—कड़वी तुम्बरी। क०—कहि सोरे। फा०—कदूय तल्ख। अ०—कर अउल् मुर, करउब् मुर। अं०—Bitter Gourd (बिटर गोर्ड)। ले०—*Lagenaria vulgaris Ser.* (लॅगेनेरिया वल्गेरिस्)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

कड़वी तुम्बी—इसके लता-पत्र-पुष्पादि सब उक्त अलाबू के समान होते हैं। फल—यह बहुत कड़वा होता है। यह इसका वन्य भेद है।

रासायनिक संगठन—बीजों में सॅपोनिन् होता है।

गुण और प्रयोग—इसकी गुद्दी अत्यन्त कड़वी, वामक एवं भेदन होती है। इन्द्रायण की तरह इसका प्रभाव है। इससे हैजे जैसी अवस्था होती है।

प्राचीन ग्रन्थों में वमन कराने के लिये इसका उपयोग लिखा है। अल्प मात्रा में इससे मिचली आकर कफ निकलता है तथा शौच साफ होता है। कामला तथा कास श्वास में इसे देते हैं। कामला में पत्तों का क्वाथ देते हैं। यह भी विरेचन होता है। दाह एवं शोथ पर गुद्दी को लगाते हैं। पत्तों से सिद्ध तैल गंडमाला, गांठ या बद आदि पर मलते हैं।

अथ कर्कटी (ककडी)। तस्या नामानि तत्पक्वापक्वफलगुणांश्चाह

एर्वारुः कर्कटी प्रोक्ता कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ ६० ॥
कर्कटी शीतला रूक्षा ग्राहिणी मधुरी गुरुः। रुच्या पित्तहरा सामा पक्वा तृष्णाऽग्निपित्तकृत् ॥

ककड़ी का संस्कृत नाम—एर्वारु तथा कर्कटी है।

कच्ची ककड़ी—मधुररस युक्त, शीतल, रूक्ष, ग्राही, गुरु, रुचिकारक तथा पित्तनाशक होती है। पकी ककड़ी—तृषा, जठराग्नि तथा पित्त को बढ़ाने वाली होती है ॥ ६०—६१ ॥

४१ ककड़ी

हि०—ककड़ी (री)। बं०—कांकुर। म०—कांकडी। क०—सौते। ते०—दोसकाया। ता०—वेल्लरिक्कै। फा०—ख्यार जाब, ख्यार दराल। अ०—किस्सा कद्स। अं०—Snake Cucumber (स्नेक् कुकुम्बर)। ले०—*Cucumis utilissimus Roxb.* (कुकुमिस युटिलिस्सिमस्)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

यह युक्तप्रान्त, पञ्जाब आदि प्रान्तों में अधिक उत्पन्न होती है। इसकी लता खूब फैलती है। पत्ते—पञ्च कोणाकार और दन्तुर होते हैं। फूल—पीले रङ्ग के आते हैं। फल—कुछ इञ्चों से लेकर ३ फीट तक लंबे होते हैं। यह हलके या गहरे हरे रंग के एवं कोमल अवस्था में मृदु रोमश होते हैं। बीज—छोटे छोटे होते हैं।

इसके अनेक प्रकार पाये जाते हैं जिनमें कडवा भेद भी होता है। गरमी के दिनों में इसे लोग कच्चा या सब्जी के रूप में खाते हैं।

गुण और प्रयोग—ककड़ी शीत, पाचन एवं मूत्रजनन है। बीज शीत, मूत्रजनन एवं बल्य हैं। पत्तों की राख कफ निस्सारक है।

(१) बीजों का उपयोग मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात में करते हैं। इसमें बीज ४ भाग, दारु हल्दी १ भाग, मुलेठी १ भाग इनको पीसकर चावल की मांड के साथ पिलाते हैं।

(२) गेहूँ, मकई, अरहर, मूंग आदि प्रोटीन युक्त आहार से उत्पन्न कुपचन में ककड़ी का उपयोग किया जाता है। इसे भोजन के साथ या भोजनोत्तर देते हैं। अजीर्ण से वमन हो तो बीजों को मट्ठे में पीसकर पिलाते हैं।

(३) श्वास नलिकाओं में कफ जमा हो तो पत्तों की राख देते हैं।

अथ चिचिण्डः (चिचिण्डा)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

चिचिण्डः श्वेतराजिः स्यात्सुदीर्घो गृहकूलकः।
चिचिण्डो वातपित्तघ्नो बल्यः पथ्यो रुचिप्रदः। शोषणोऽतिहितः किञ्चिद् गुणैर्न्यूनः पटोलतः ॥

चचेंड़ा के संस्कृत नाम—चिचिण्ड, श्वेतराजि, सुदीर्घ तथा गृहकूलक ये सब हैं।

चचेंड़ा—वात तथा पित्त नाशक, बलदायक, पथ्य, रुचिकारक तथा शोष (क्षय) रोगी के लिये अत्यन्त हितकर होता है। एवम्—यह गुणों में परवल से कुछ कम होता है ॥ ६२ ॥

४२ चचेण्डा

हि०—चचेंडा, चिचिंडा, चिचेंडा। बं०—चिचिंगा। म०—पड़वळ। गु०—पंडोलुं। ते०—पोटल काया। अं०—Snake Gourd (स्नेक गोर्ड)। ले०—*Trichosanthes anguina Linn.* (ट्रॉइकोसेंथीस् ऍग्विना)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

चिचेंडा—खेतों में बोया जाता है। इसकी लता—विस्तार से फैलती है। पत्ते—कटे किनारे वाले पंचकोणाकार होते हैं। फूल—पीले रङ्ग के आते हैं। फल—ककड़ी के समान लम्बा होता है परन्तु इसके दोनों छोर पतले होते हैं और इस पर लम्बी सफेद धारियां होती हैं। इसकी सब्जी लोग खाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके बीज शीतल होते हैं।

अथ कारवेल्लं कारवेल्ली च (करेला, करेली) तयोर्नामानि गुणांश्चाह

कारवेल्लं कठिल्लं स्यात्कारवेल्ली ततो लघुः। कारवेल्लं हिमं भेदि लघु तिक्तमवातलम् ॥६३॥
ज्वरपित्तकफास्रघ्नं पाण्डुमेहकृमीन् हरेत्। तद्गुणा कारवेल्ली स्याद्विशेषाद्दीपनी लघुः ॥६३॥

करेला के संस्कृत नाम—कारवेल्ल तथा कठिल्ल हैं। करेली का संस्कृत नाम—कारवेल्ली है। यह करेला की अपेक्षा छोटी होती है। करेला—तिक्त रसयुक्त, शीतल, मलभेदक, लघु, किंचिद् वातजनक होता है और ज्वर, पित्त, कफ, रक्तविकार, पाण्डु, प्रमेह तथा कृमि का नाशक होता है।

करेली—इसके गुण उक्त करेला के भाँति होते हैं किन्तु विशेष कर यह अग्निदीपक तथा लघु होती है ॥ ६३—६४ ॥

४३ करेला

हि०—करेला, करैला, करइला, करेली। बं०—करोला, बड़ा मसिया, उच्छे। म०—कारलें, कारली। गु०—कारेला, करेलुं। क०—हागल। ते०—काकर। ता०—पागल। फा०—कारेलाह। अ०—

किस्सा उश्शिमार, कसायुल हिमार। अं०-Carilla Fruit (कॅरिल्ला फ्रूट); Bitter Gourd (बिटर गोर्ड)। ले-*Momordica charantia Linn.* (मोमोर्डिका चेरण्टिआ)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

प्रायः सब प्रान्तों में इसे रोपण करते हैं। इसकी लता-मृदुरोमश होती है। पत्ते-१ से ५ इञ्च के घेरे में गोलाकार, गहरे कटे किनारे वाले एवं ५-७ भागों में विभक्त रहते हैं। फूल-चमकीले पीले रङ्ग के आते हैं। फल-१ से ५ इञ्च लंबे, बीच में मोटे तथा दोनों तरफ नोकीले, त्रिकोणाकृति उभारों के कारण ऊबड़ खाबड़, हरे किन्तु पकने पर पीले रंग के हो जाते हैं। बीज-चिपटे होते हैं।

इसके कृषिजन्य अनेक प्रकार, आकार तथा नाप के अनुसार पाये जाते हैं जिनमें से छोटे फल को करेली कहते हैं। इसके कड़वे स्वाद को कम करने के लिये सब्जी बनाने के पूर्व नमक के जल में इसे भिगोकर रखते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें गंधयुक्त उड़नशील तैल, कॅरोटीन, ग्लूकोसाइड, सॅपोनिन् एवं मोमोरिडिसाइन (Momoridicine) नामक क्षाराभ पाया जाता है। बीजों में ३२% विरेचक तैल होता है।

गुण और प्रयोग—इसके फल पित्तशामक, आनुलोमिक, कृमिघ्न एवं मूत्रजनन हैं। वृन्त-युक्त कोमल पत्ते कड़वे, मूत्रजनन, वामक एवं विरेचक हैं। कभी-कभी इससे वमन विरेचन अधिक होता है उस समय उसके निवारण के लिये घी भात खिलाना चाहिये। प्रयोग से देखा गया है कि खरगोश में इससे रक्तगत शर्करा की मात्रा कम हो जाती है। इस आधार पर इसके मधुमेह में लाभदायक सिद्ध होने की संभावना है।

(१) यकृत् प्लीहावृद्धि के साथ जलोदर हो तथा विषम ज्वर हो तब इसके पत्तों का रस देते हैं।

(२) पित्तप्रकोप, श्वसनिका शोथ आदि में वमन कराने के लिये पत्र रस दिया जाता है। केंचुवे की बीमारी में इसे गरम जल के साथ देते हैं।

(३) आमवात, वातरक्त, यकृत् प्लीहा वृद्धि एवं जीर्ण त्वचा के रोगों में बिना कड़वापन दूर किये फल की सब्जी लाभदायक होती है।

(४) पुराने त्वचा के रोगों में पत्तों का लेप किया जाता है।

(५) इसकी जड़ के क्वाथ से गर्भपात हो सकता है।

मात्रा—स्वरस १ से २ ड्राम; बच्चों को ½-१ ड्राम।

अथ महाकोशातकी (नेनुआ)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

महाकोशातकी प्रोक्ता हस्तिघोषा महाफला ॥ ६५ ॥
धामार्गवो घोषकश्च हस्तिपर्णश्च स स्मृतः। महाकोशातकी स्निग्धा रक्तपित्तानिलापहा॥६६॥

नेनुआ के संस्कृत नाम—महाकोशातकी, हस्तिघोषा, महाफला, धामार्गव, घोषक तथा हस्तिपर्ण ये सब हैं। नेनुआ-स्निग्ध एवम् रक्तपित्त तथा वायु को नष्ट करनेवाली होती है॥ ६५-६६ ॥

४४ नेनुआ

हि०-नेनुआ, बड़ी तोरई, घिया तोरई। बं०-धुंदुल, धुन्दुल। म०-घोसाळें। गु०-गुलका। क०-अरहिरे तुप्पिरी। ता०-पिचुक्कु। ते०-नेति बीर, बीर काया। फा०-खियार अं०-Sponge Gourd (स्पंज गोर्ड)। ले०-*Luffa aegyptiaca Mill ex Hook f.* (लूफा एजिप्टिएका)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुर्बिटेसी)।

नेनुआ—एक बहुत प्रसिद्ध तरकारी प्रायः सब प्रान्तों में उत्पन्न होती है। इसकी लता विस्तार में फैलने वाली होती है। पत्ते-४-६ इंच के घेरे में, गोलाकार, ५ या क्वचित ७ भाग वाले होते हैं। फूल-पीले रङ्ग के एवं हरी शिराओं से युक्त होते हैं। फल-५ से १२ इञ्च लंबे एवं लंबाई में धारीदार होते हैं। बीज—धूसर या काले, ⅜-½ इञ्च, चिपटे एवं अल्प पंखयुक्त होते हैं।

इसके कृषित एवं वन्य भेद होते हैं। कृषित की सब्जी बनाई जाती है। इसके पके फल का जाला स्पंज की तरह काम में आता है।

रासायनिक संगठन—इसके वन्य भेद में एक रक्तसंस्रावी सॅपोनिन तथा कड़वा विषैला पदार्थ रहता है।

गुण और प्रयोग—वन्य भेद के पत्तों का रस तथा बीज विरेचक एवं वामक होते हैं। सभी प्रकार के व्रण पर इसके पत्र स्वरस से बनाया मलहम लाभदायक होता है। गांठ आदि पर पत्तों के रस में गुड़, चूना या सिंदूर मिलाकर लेप करते हैं।

अथ राजकोशातकी (तोरई)। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

धामार्गवः पीतपुष्पो जालिनी कृतवेधना। राजकोशातकी चेति तथोक्ता राजिमत्फला॥६७॥
राजकोशातकी शीता मधुरा कफवातकृत्। पित्तघ्नी दीपनी श्वासज्वरकासकृमिप्रणुत्॥६८॥

तोरई के संस्कृत नाम—धामार्गव, पीतपुष्प, जालिनी, कृतवेधना, राजकोशातकी तथा राजिमत्फला ये सब हैं। तोरई-मधुर रसयुक्त, शीतल, अग्निदीपक, कफ तथा वातकारक एवम्-पित्त, श्वास, ज्वर, खांसी तथा कृमि को दूर करने वाली होती है॥ ६७-६८ ॥

४५ तोरई

हि०-तोरई, तरोई, तुरई। बं०-घोषा लता, झिंगा। म०-दोडका, शिराळें। गु०-तुरिया, घिसोडां, तुरया। क०-हीरे। ते०-बीर। ता०-मीर्कु। ले०-*Luffa acutangula Roxb.* (लूफा एक्यूटँगुला)। *Fam. Cucurbitaceae* (कुकुर्बिटेसी)।

तोरई-सभी प्रान्तों में रोपण की जाती है तथा वन्य भी पाई जाती है। इसकी लता और पत्ते नेनुआ के समान होते हैं। फूल-पीले किन्तु पुंकेशर ३ रहते हैं जब कि नेनुआ में ५ रहते हैं। फल-६ से १२ इञ्च लंबे, आधार की तरफ संकुचित एवं १० धारीदार होते हैं। इसमें कभी-कभी कड़वे फल होते हैं। वह वास्तव में जंगली प्रकार नहीं है। जंगली प्रकार का स्वतंत्र आगे वर्णन किया गया है।

रासायनिक संगठन—फल में कड़वा द्रव्य एवं बीजों में तैल रहता है। कुत्तों में इस तैल से वमन, विरेचन एवं लालास्राव की वृद्धि होती है।

गुण और प्रयोग—इसके बीज वामक तथा विरेचक हैं। इसका साग बनाते हैं। रोहो में इसके ताजे पत्तों का रस आंख में डालते हैं। पत्तों का लेप प्लीहा वृद्धि, अर्श एवं कुष्ठ में किया जाता है।

४६ जंगली तोरई

हि०-कड़वी तरोई। ले०-लू. एक्यूटँगुला प्रकार अमारा (L. acutangula (Linn.) Roxb. var. amara Clarke)। यह पश्चिम की तरफ अधिक होती है।

इसके पत्ते तथा पुष्प तोरई के जैसे होते हैं। इसके पत्ते उसकी अपेक्षा छोटे, भूरे रङ्ग के, नये कोमल अवस्था के उनकी तरह मुलायम किन्तु बाद में खुरदरे हो जाते हैं। फल–२ से ४ इञ्च लंबा, १ से १½ इञ्च मोटा, तोरई जैसा १० धारीदार किन्तु कड़वा होता है। इसके सभी अंग कड़वे होते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजों में तेल होता है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, वामक, विरेचक, मूत्रजनन, व्रणशोधन एवं विषघ्न है। अल्प-मात्रा में इससे भूख बढ़ती है, शौच साफ होता है तथा उदर के सभी इन्द्रियों का कार्य ठीक होता है। अधिक मात्रा से वमन विरेचन होता है।

(१) यकृत, प्लीहा वृद्धि से उत्पन्न जलोदर में इसके पंचांग का टिंचर (१ : २०) लाभ-दायक है।

(२) सड़ने लगे व्रण को धोने के लिये इसका हिम (दो फल+शीतजल १ पाइंट) उपयोग में लाते हैं।

मात्रा—टिंचर १० से २० बूँद।

अथ पटोलः (परवल)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

पटोलः कुलकस्तिक्तः पाण्डुकः कर्कशच्छदः। राजीफलः पाण्डुफलो राजेयश्चामृतफलः ॥६९॥
बीजगर्भः प्रतीकश्च कुष्ठहा कासभञ्जनः। पटोलं पाचनं हृद्यं वृष्यं लघ्वग्निदीपनम् ॥
स्निग्धोष्णं हन्ति कासास्रज्वरदोषत्रयक्रिमीन् ॥ ७० ॥

परवर के संस्कृत नाम—पटोल, कुलक, तिक्त, पाण्डुक, कर्कशच्छद, राजीफल, पाण्डुफल, राजेय, अमृतफल, बीजगर्भ, प्रतीक, कुष्ठहा तथा कासभञ्जन ये सब हैं।

परवर—पाचक, हृदय के लिये हितकर, वीर्यवर्धक, लघु, अग्निदीपक, स्निग्ध, उष्ण एवम्—खाँसी, रक्तविकार, ज्वर, त्रिदोष तथा क्रिमि को नष्ट करने वाला होता है ॥ ६९–७० ॥

अथ पटोलस्य मूल–नाल–पत्र–फलानां गुणानाह

पटोलस्य भवेन्मूलं विरेचनकरं सुखात् ॥ ७१ ॥
नालं श्लेष्महरं पत्रं पित्तहारी फलं पुनः। दोषत्रयहरं प्रोक्तं तद्वत्तिक्ता पटोलिका ॥ ७२ ॥

परवर की जड़—सुखपूर्वक विरेचन करने वाली होती है।

परवर की डंडी (नाल)–कफनाशक है। परवर के पत्ते–पित्तनाशक होते हैं। परवल का फल—त्रिदोषनाशक होता है। कड़वे परवर के भी गुण पूर्वोक्त परवर की भाँति ही होते हैं। संस्कृत में इसे "पटोलिका" कहते हैं। यह तिक्तरसयुक्त होती है ॥ ७१–७२ ॥

४७ परवल

हिं०–परवर, परवल, पलवल, परोर, परोरा। **बं०**–पटोल, पलता। **म०**–परवल। **क०**–पडवल। **ता०**–पुड़ले। **ते०** पोटल, आडर। **गु०**–पटोल। **ले०**–*Trichosanthes dioica Roxb.* (ट्राइकोसेन्थिस् डाओइका)। *Fam. Cucurbitaceae* (कुकुरबिटेसी)।

यह उत्तर भारत के मैदानी प्रदेश में तथा आसाम एवं पूर्वबङ्गाल तक होता है। इसकी खेती भी की जाती है। इसकी लता होती है। काण्ड रोमश होते हैं। पत्ते–२×३ इञ्च बड़े, अंडाकार आयताकार, हृदयाकार, तीक्ष्णाग्र, लहरदार दन्तुर एवं रूखे होते हैं। फूल–सफेद रङ्ग के आते हैं। फल–२–३ इंच लंबे, आयताकार या गोलाभ और पकने पर नारंग रक्त हो जाते हैं।

इसका एक वन्य प्रकार होता है वह कड़वा होता है। कृषित के फल साग के लिये काम में लाये जाते हैं। चिकित्सा में वन्य के पंचांग का उपयोग करते हैं। उपर्युक्त वन्य प्रकार के अतिरिक्त एक जाति ट्रा. कुकुमेरिना (T. cucumerina) के फल भी कड़वे होते हैं। यह १ से ३ इञ्च लम्बे, दीर्घवृत्ताभ–तर्कांकार एवं दोनों तरफ चोंच की तरह नोकदार होते हैं। यह कच्ची अवस्था में हरे, सफेद धारियों से युक्त एवं पकने पर गहरे लाल हो जाते हैं। इनका भी तिक्त पटोल के स्थान पर उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—मूल में सॅपोनिन, इन्द्रायण की तरह कड़वा पदार्थ, कुछ उड़नशील तेल तथा स्थिर तेल पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—कड़वा परवर उष्ण, पित्त को न बढ़ाने वाला, वृष्य, कफघ्न, ज्वरनाशक एवं रेचन है। यह कामला, उदर, रक्तविकार, कण्डू, कुष्ठ, जीर्णज्वर एवं दाह में लाभ-दायक है। पित्तप्रधान रोग में रेचन के लिये पटोल का उपयोग करते हैं।

इसकी जड़ तीव्र रेचक होती है। हरे फल की गुद्दी भी रेचक होती है। पत्ते दीपन, पाचन, बल्य, तिक्त पौष्टिक एवं अधिक मात्रा में वामक एवं रेचक हैं।

इसके पत्ते तथा धनियां का क्वाथ पित्तज्वर में देते हैं। त्वचा के रोगों में इसे गुडूची के साथ देते हैं तथा पत्तों का रस लगाते हैं।

मात्रा—गुद्दी १ से २ रत्ती।

अथ बिम्बी (कुन्दुरी, कन्दूरी)। तस्य नामानि तत्फलगुणांश्चाह

बिम्बी रक्तफला तुण्डीतुण्डीकेरी च बिम्बिका। ओष्ठोपमफला प्रोक्ता पीलुपर्णी च कथ्यते ॥
बिम्बीफलं स्वादु शीतं गुरु पित्तास्रवातजित्। स्तम्भनं लेखनं रुच्यं विबन्धाध्मानकारकम् ॥

कन्दूरी के संस्कृत नाम–बिम्बी, रक्तफला, तुण्डी, तुण्डीकेरी, बिम्बिका, ओष्ठोपमफला और पीलुपर्णी ये सब हैं। कन्दूरी का फल–स्वादिष्ट, शीतल, गुरु, स्तम्भन, लेखन, रुचिकारक तथा विबन्ध और आध्मान (अफरा) को करनेवाला एवम्–पित्त, रक्तविकार तथा वात को दूर करने वाला होता है ॥ ७३–७४ ॥

४८ कन्दूरी (कुन्दरू)

हिं०–कन्दूरी, कुनली, कुनरी, कुन्दरी, कुन्दुरू। **बं०**–तेला कुचा। **म०**–तोंडली। **गु०**–घोलां, घोली, टिंडोरॉं। **क०**–तोंडे। **ता०**–कोवै। **ते०**–दोंडा तिगे। **अं०**– Ivy-gourd (आइवी-गोर्ड)। **ले०**–*Coccinia indica W. & A.* (कोक्सीनिया इण्डिका)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

यह सभी प्रान्तों में होती है। इसकी लता–आरोही, बहुवर्षायु, निःशाख तन्तुओं से युक्त एवं मूल लम्बे कन्दवत् होते हैं। काण्ड–पांच कोण युक्त होता है। पत्ते–प्रायः १½–३½ इञ्च बड़े, हृद्वाकार या वृत्ताकार, ३ से ५ खण्ड या कोणयुक्त, चिकने एवं दूर-दूर पर किञ्चित् दन्तुर होते हैं। पुष्प–श्वेत होते हैं। फल–मांसल, दीर्घवृत्ताभ या बेलनाकार, १–२ इञ्च लम्बे, ½–१ इञ्च व्यास के, कच्ची अवस्था में १० श्वेत धारियों से युक्त, चिकने, चमकीले हरे तथा पकने पर गहरे लाल रङ्ग के रहते हैं।

इसके कई प्रकार होते हैं जिनमें जङ्गली कड़वी होती है। चिकित्सा में पंचांग का एवं शाकार्थ फल का उपयोग होता है।

रासायनिक संगठन—इसके कोमल फलों में आर्द्रता ९३·१, प्रोटीन १·२, स्नेह ०·१, रेशा १·६, कार्बोहाइड्रेट ३·५, खनिज ०·५, खटिक ·०४, फास्फोरस् ०·०३%, लोह १·४ मि. ग्रा. प्रति १०० ग्राम, विटामिन 'ए' २६० अ. एकक प्र. १०० ग्रा. एवं विटामिन 'सी' २८ मि. ग्रा. प्र. १०० ग्रा. रहता है। इसके रस में अमाइलेस् पाया जाता है। इनके अतिरिक्त एक किण्व, हारमोन एवं क्षाराभ भी पाये गये हैं।

गुण और प्रयोग—यह स्नेहन, मूत्रसंग्रहणीय, कफनाशक एवं व्रणरोपक है।

इसका उपयोग मधुमेह, सोजाक, प्रदर, कास तथा व्रण में किया जाता है।

(१) मधुमेह में लता का स्वरस वसंत कुसुमाकर आदि रस योगों के अनुपान के लिये देते हैं। इसमें मूल का स्वरस १ तो० या चूर्ण ½-१ तोला, वंगेश्वर या सोमनाथ रस के साथ दिया जाता है। साथ में शाकार्थ फल भी देते हैं। कर्नल चोपरा के प्रयोगों में इसे मधुमेह के लिये निरुपयोगी बतलाया गया है।

(२) व्रण एवं त्वचा के रोगों में पत्तों का स्वरस लगाते हैं। जीभ में छाले होने पर फल को चबाते हैं।

अथ शिम्बीः—पुस्तशिम्बी च (सेम-सेमभेद)। तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

शिम्बिः शिम्बी पुस्तशिम्बी तथा पुस्तकशिम्बिका। शिम्बीद्वयं च मधुरं रसे पाके हिमं गुरु॥
बल्यं दाहकरं प्रोक्तं श्लेष्मलं वातपित्तजित्॥ ७५॥

सेम का संस्कृत नाम—शिम्बि तथा शिम्बी है। सेम भेद का संस्कृत नाम—पुस्तशिम्बि तथा पुस्तकशिम्बिका है। उक्त दोनों प्रकार की सेम—रस तथा विपाक में मधुर (मीठी), शीतल, गुरु, बलकारक तथा दाह और कफ को उत्पन्न करने वाली एवम् वात और पित्त को दूर करने वाली होती है॥ ७५॥

४९ सेम

सेम को अनेक प्रकार होते हैं। धान्यवर्ग में निष्पाव के अन्तर्गत एक सेम का उल्लेख किया गया है जिसके अनेक प्रकार पाये जाते हैं। उन्हीं भेदोपभेदों में से उपर्युक्त शिम्बी के भेद हो सकते हैं।

अथ कोलशिम्बिः तस्या नामानि गुणाँश्चाह

कोलशिम्बिः कृष्णफला तथा पर्यङ्कपट्टिका॥ ७६॥
कोलशिम्बिः समीरघ्नी गुर्व्युष्णा कफपित्तकृत्। शुक्राग्निसादकृद् वृष्या रुचिकृद् बद्धविड् गुरुः॥

कोलशिम्बि के संस्कृत नाम—कोलशिम्बि, कृष्णफला तथा पर्यङ्कपट्टिका ये सब हैं। कोलशिम्बि—वातनाशक, अधिक उष्ण, कफ तथा पित्त कारक, वीर्यवर्धक, रुचिकारक, मल को बाँधने वाली, गुरु एवम् शुक्र तथा जठराग्नि को क्षीण करने वाली होती है॥ ७६-७७॥

५० कोलशिम्बि

यह भी प्रथमोक्त सेम के भेदों में से हो सकती है या अन्य लता हि०—बड़ासेम; बं०—माखन सेम; ले०—कॅनॅवेलिया ग्लेडिएटा (*Canavalia gladiata* (*Jacq.*) *DC.*) हो सकती है। इसके भी कई प्रकार सेम की लम्बाई तथा बीजों की संख्या के अनुसार होते हैं। इसकी लता—बड़ी होती है। फूल—श्वेत तथा गुलाबी होते हैं। फली—८-१२ इञ्च लम्बी, १-१½ इञ्च चौड़ी, तलवार के आकार की होती है। बीज—गुलाबी, धूसर या श्वेत होते हैं। इसकी कोमल फलियों का शाकार्थ उपयोग किया जाता है। कैंवाच की एक अन्य जाति होती है जिसकी फली का भी सेम के नाम से व्यवहार किया जाता है।

अथ शोभाञ्जनफलम् (सहेजन की फली)। तस्य गुणानाह

शोभाञ्जनफलं स्वादु कषायं कफपित्तनुत्। शूलकुष्ठक्षयश्वासगुल्मह्रद् दीपनं परम्॥ ७८॥

सहेजन की फली—स्वादिष्ट, कषाय रस युक्त, अत्यन्त अग्निदीपक, एवम्—कफ, पित्त, शूल, कुष्ठ, क्षय, श्वास तथा गुल्म को दूर करने वाली होती है॥ ७८॥

५१ सहेजन की फली

सहिजन का परिचय गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ ३४०) में दिया गया है॥ ५१॥

अथ वृन्ताकम् (बैंगन, भण्टा)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

वृन्ताकं स्त्री तु वार्त्ताकुर्भण्टाकी भाण्टिकाऽपि च।
वृन्ताकं स्वादु तीक्ष्णोष्णं कटुपाकमपित्तलम्॥
ज्वरवातबलासघ्नं दीपनं शुक्रलं लघु।

बैंगन के संस्कृत नाम—वृन्ताक, वार्त्ताकु (स्त्रीलिङ्ग), भण्टाकी तथा भाण्टिका ये सब हैं। बैंगन—स्वादिष्ट, विपाक में कटुरस युक्त, तीक्ष्ण, उष्ण तथा किञ्चित पित्तजनक, ज्वर, वायु तथा कफ को नष्ट करने वाला, अग्निदीपक, शुक्रजनक और लघु होता है॥ ७९॥

अथ तद्बालवृद्धफलयोर्गुणानाह

तद्बालं कफपित्तघ्नं वृद्धं पित्तकरं गुरु॥ ८०॥

बैंगन का छोटा फल—कफ तथा पित्तनाशक होता है। बड़ा फल—गुरु तथा पित्तकारक होता है॥ ८०॥

अथाङ्गारपरिपाचितवृन्ताकफलगुणानाह

वृन्ताकं पित्तलं किञ्चिदङ्गारपरिपाचितम्। कफमेदोऽनिलामघ्नमत्यर्थं लघु दीपनम्॥ ८१॥

अङ्गारे पर भुना हुआ बैंगन—किञ्चित पित्तजनक, अत्यन्त लघु, अग्निदीपक एवम्—कफ-मेद-वायु तथा आम को दूर करने वाला होता है॥ ८१॥

अथ तैललवणान्वितवृन्ताकफलस्य श्वेतवृन्ताकस्य च गुणानाह

तदेव हि गुरु स्निग्धं सतैलं लवणान्वितम्। अपरं श्वेतवृन्ताकं कुक्कुटाण्डसमं भवेत्।
तदर्शःसु विशेषेण हितं हीनं च पूर्वतः॥ ८२॥

अङ्गारे पर भुने हुए उसी बैंगन में यदि तेल तथा निमक डाल दिया जाय तो वह-गुरु तथा स्निग्ध होता है। भेद—एक दूसरे प्रकार का और बैंगन होता है जिसे संस्कृत में "श्वेतवृन्ताक" तथा हिन्दी में "सफेद बैंगन" कहते हैं। वह आकार में मुर्गे के अण्डे के समान होता है। सफेद बैंगन—अर्श में विशेष करके हितकर होता है और पूर्वोक्त बैंगन की अपेक्षा यह हीन गुण वाला होता है॥ ८२॥

५२ भंटा

हि०–भंटा, बैगन, बैगुन। बं०–बेगुन। म०–वांगे, वांगी। गु०–रिङ्गणा, वँगण, वंताक। क०–बदने। तै०–वंकाया। ता०–कत्तरिकाइ। फा०–बादंगान। अ०–बादं जान, बादंजान, बाजंजान। अं०–Bringal (ब्रिंजल); Egg–Plant (एग प्लॅन्ट)। ले०–*Solanum melongena Linn.* (सोलेनम् मेलोंगेना)। Fam. Solanaceae (सोलेनेसी)।

यह गुडूच्यादि वर्गोक्त बृहती के अन्तर्गत वर्णित एक जाति का कृषित प्रकार है। यह प्रसिद्ध फल शाक प्रायः सब प्रान्तों मे उत्पन्न होता है। इसका क्षुप–३ फुट तक ऊँचा होता है। पत्ते–वन भांटे के समान परन्तु इनसे लम्बे चौड़े होते हैं। फूल–कंटकारी के समान बैगनी रङ्ग के और फल–गोल लम्बे होते हैं। किसी के फल गोल, हरे और बैंगनी रङ्ग के, किसी के गोलाई लिये लम्बे सफेद होते हैं।

गुण और प्रयोग–इसके वन्य प्रकार का बृहती की तरह उपयोग होता है। कृषित का शाकार्थ उपयोग करते हैं।

अथ डिण्डिशः (टिंडा) तस्य नामगुणानाह

डिण्डिशो रोमशफलो मुनिनिर्मित इत्यपि ॥ ८३ ॥
डिण्डिशो रुचिकृद्भेदी पित्तश्लेष्मापहः स्मृतः। सुशीतो वातलो रूक्षो मूत्रलश्चाश्मरीहरः ॥

टिंडा के संस्कृत नाम–डिण्डिश, रोमशफल तथा मुनिनिर्मित ये सब हैं।

टिंडा–रुचिकारक, मलभेदक, अत्यन्त शीतल, वातजनक, रूक्ष, मूत्र लाने वाला एवम् पित्त, कफ तथा पथरी को दूर करने वाला होता है ८३–८४ ॥

५३ टिंडा

हि०–ढेंड्स, टिंडा। म०–ढेंडसे, दिंडशी। ले०–*Citrullus vulgaris var. fistulosus* (सिट्रुलस् वल्गेरिस् प्रकार फिस्चुलोसस्)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुर्बिटेसी)।

उत्तरप्रदेश, पंजाब तथा बम्बई में इसकी उपज की जाती है।

इसका क्षुप आरोही या प्रसरणशील होता है तथा काण्ड दृढ़ होता है। इसके फल–छोटे, बड़े, २–३ इञ्च व्यास के गोल, हलके या गहरे हरे रंग के होते हैं। बीज–कुछ कृष्णाभ होते हैं। इनमें से हलके रंग के फल अधिक अच्छे होते हैं।

रासायनिक संगठन–इसमें आर्द्रता ९२·३, प्रोटीन १·७, स्नेह ०·१, खनिज ०·६, कार्बोहाइड्रेट ५·३, खटिक ०·०२, फास्फोरस ०·०३%, लोह ०·९ मि० ग्राम प्र० १०० ग्रा०, विटामिन 'ए' २८ अ० एकक् प्रति १०० ग्रा० आदि पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग–इसका फल शाकार्थ व्यवहार में लाते हैं। बीजों को सुखाकर भूनकर उपयोग में लाते हैं।

अथ पिण्डारम् (पिण्डार)। तस्य गुणानाह

पिण्डारं शीतलं बल्यं पित्तघ्नं रुचिकारकम्। पाके लघु विशेषेण विषशान्तिकरं स्मृतम् ॥

पिण्डालु–शीतल, बलकारक, पित्तनाशक, रुचिकारक, विपाक में लघु होता है। एवम् यह विशेष करके विष का शमन करने वाला होता है ॥ ८५ ॥

५४ पिंडार

हि०–पिंडार, पिंडारी, पिंडारू, पिंडालु। बं०–पिरालो। गु०–गंगेडा। म०–पेंढर, पेंढारी, पेंढू, पेंदूर। क०–पेराळु। ते०, ता०–नलैक। ले०–*Randia uliginosa* DC. (रॅन्डिया युलिजिनोसा) Fam. Rubiaceae (रूबिएसी)।

यह पूर्व, मध्य, पश्चिम तथा दक्षिण भारत में होता है। उत्तर में कम होता है।

इसके वृक्ष–छोटे; टहनियां मोटी और कृष्णाभ; कांटे कम; पत्ते–अण्डाकार, आयताकार या कभी कभी अभिलट्वाकार, २–८×१–४ इञ्च बड़े, टहनियों पर गुच्छाकार क्रम में निकले हुये; पुष्प–१–२ इञ्च व्यास के बड़े, श्वेत, सुगंधि; फल–मांसल, दीर्घवृत्ताभ, २–२·५ इञ्च व्यास के, पकने पर पीले, चिकने तथा अमरूद की तरह दिखलाई देते हैं। कच्चे फल का शाकार्थ उपयोग करते हैं।

नोट–पिंडार नाम एक अन्य वृक्ष ट्रेविआ न्यूडिफ्लोरा (Trewia nudiflora Linn.) को भी लिखा मिलता है जिसका गंभारी के स्थान पर कहीं कहीं प्रयोग किया जाता है। उसका वर्णन पृष्ठ २७८ पर किया जा चुका है। यहां शाकवर्ग में जिसका वर्णन आया है वह उपर्युक्त रॅ. युलिजिनोसा है। इसके गुणों में विषघ्न गुण भी लिखा हुआ है। इस वृक्ष का स्थानिक नाम 'गद पिंडार' भी मिलता है जो इसके अगद के रूप में व्यवहार का द्योतक है। शाकार्थ इस के फल का उपयोग भी करते हैं। डा० देसाई ने इसे 'गांगेरुक' लिखा है।

गुण और प्रयोग–इसका पका फल मधुर, शीतल एवं मूत्रजनन है। कच्चा फल स्तंभन है। कच्चे फल को आग में भूनकर ऊपर का भाग अतिसार एवं आंव में देते हैं। अन्दर का बीज का भाग नहीं देते।

अथ कर्कोटी (ककोडा, खेखसा)। तस्या नामानि गुणांश्चाह

कर्कोटकी पीतपुष्पा महाजालीति चोच्यते। कर्कोटी मलहृत्कुष्ठहृल्लासारुचिनाशिनी।
श्वासकासज्वरान्हन्ति कटुपाका च दीपनी ॥ ८६ ॥

ककोड़ा के संस्कृत नाम–कर्कोटकी, पीतपुष्पा और महाजाली ये सब हैं। ककोड़ा–विपाक में कटुरस युक्त, अग्निदीपक, मलनाशक एवम्–कुष्ठ, हृल्लास (जी मचलाना), अरुचि, श्वास, खांसी तथा ज्वर का नाशक है ॥ ८६ ॥

५५ ककोड़ा (खेकसा)

हि०–खेकसा, खेखसा, ककोड़ा, ककोरा। बं०–वनकरेला। म०–कर्टोली, कांटोलें। गु०–कंटोला, कोडा। ते०–आगाकर। क०–माडहा। ता०–एगारवल्लि। ले०–*Momordica dioica, Roxb.* (मोमोर्डिका डायोइका)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुर्बिटेसी)।

सभी प्रान्तों में यह होता है। इसकी लता–आरोहणशील, चिकनी एवं प्रायः दुर्गंधयुक्त होती है। काण्ड–कोनदार होते हैं। तन्तु बिना शाखा के होते हैं। पत्ते–हृदयाकार, लट्वाकार, अखण्ड या ३ खण्ड वाले, प्रायः लहरदार दन्तुर किनारेवाले एवं २–४½ इञ्च व्यास के होते हैं। पुष्प–पीले होते हैं। इसमें नर एवं नारी पुष्पों की लताएँ अलग-अलग होती हैं। नर पुष्प की लता में फल न लगने के कारण उसे बांझ खेखसा, या वन्ध्याकर्कोटकी कहा जाता है। फल देने वाली, नारीपुष्प की लता होती है जिसे कर्कोटकी कहते हैं। नरपुष्प पतले एवं २ से ६ इञ्च लंबे दण्ड से युक्त तथा नारीपुष्प के दण्ड छोटे या उतने ही बड़े होते हैं। फल–१ से ३ इञ्च

लंबा, दीर्घ वृत्ताभ एवं तीक्ष्णाग्र या अण्डाकार होता है तथा इस पर मुलायम कांटे सदृश उभार होते हैं। इसमें नीचे कन्दवत् बहुवर्षायु मूल होता है जो शलगम की तरह किन्तु लंबा, पीताभ श्वेत, गोल कंकणाकृति चिन्हों से युक्त एवं स्वाद में कसैला होता है।

इसकी स्त्री जाति की लता के कंद का उपयोग चिकित्सा में करते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका कंद कुछ रक्तसंग्राहक होता है। इसे रक्तार्श में देते हैं। मधुमेह में कंदचूर्ण वंगभस्म के साथ देते हैं। इसकी अधिक मात्रा से वमन होता है।

इसको पीसकर इसका लेप ज्वर एवं प्रलाप में शरीर पर किया जाता है। इसके फल का चूर्ण या फांट का नस्य के लिये उपयोग करते हैं।

मात्रा—१ से ५ ड्राम शर्करा के साथ।

अथ डोडिका। तस्या नामानि गुणांश्चाह

डोढिका विषमुष्टिश्च डोडिस्यपि सुमुष्टिका ॥ ८७ ॥
डोडिका पुष्टिदा वृष्या रुच्या वह्निप्रदा लघुः। हन्ति पित्तकफार्शांसि कृमिगुल्मविषामयान्॥

डोडिका के संस्कृत नाम—डोडिका, विषमुष्टि, डोडी और सुमुष्टिका ये सब हैं। डोडिका—पुष्टिदायक, वीर्यवर्धक, रुचिकारक, जठराग्नि को दीप्त करने वाला, लघु एवम्—पित्त, कफ, अर्श, कृमि, गुल्म तथा विषरोग को दूर करने वाला है॥ ८७-८८॥

५६ डोडिका

नोट—इसके सम्बन्ध में मतभेद है। कोई इसे करेरुआ मानते हैं। कोई जीवन्ती शाक मानते हैं। अधिक संभावना जीवन्ती शाक की है जिसका वर्णन पहले गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ २९१) में किया जा चुका है।

अथ कण्टकारीफलं (कटेरी का फल)। तस्य गुणानाह

कण्टकारीफलं तिक्तं कटुकं दीपनं लघु। रूक्षोष्णं श्वासकासघ्नं ज्वरानिलकफापहम् ॥ ८९ ॥

कटेरी का फल—तिक्त तथा कटुरसयुक्त, अग्निदीपक, लघु, रूक्ष, उष्ण एवम्—श्वास, खांसी, ज्वर, वायु तथा कफ को दूर करने वाला होता है॥ ८९॥

५७ कंटकारी फल

कंटकारी का पूर्ण परिचय गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ २९०) में दिया गया है।

इति फलशाकानि।

अथ नालशाकानि। तत्र सार्षपनालगुणानाह

तीक्ष्णोष्णं सार्षपं नालं वातश्लेष्मव्रणापहम्। कण्डूकृमिहरं दद्रुकुष्ठघ्नं रुचिकारकम् ॥९०॥

सरसों का नाल—तीक्ष्ण, उष्ण, रुचिकारक एवम्—वात, कफ, व्रण, खुजली, कृमि, दाद तथा कुष्ठ को दूर करने वाला होता है।

५८ सरसों का नाल

सरसों का विवरण शिम्बीधान्य वर्ग (पृष्ठ ६५४) में किया गया है।

इति नालशाकानि

अथ कन्दशाकानि। तत्र सूरणम् (जमीकन्द)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

सूरणः कन्द ओलश्च कन्दलोऽर्शोघ्न इत्यपि। सूरणो दीपनो रूक्षः कषायः कण्डुकृत् कटुः॥
विष्टम्भी विशदो रुच्यः कफार्शः कृन्तनो लघुः। विशेषादर्शसे पथ्यः प्लीहगुल्मविनाशनः॥
सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते। दद्रूणां कुष्ठिनां रक्तपित्तिनां न हितो हि सः।
सन्धानयोगं सम्प्राप्तः सूरणो गुणवत्तरः ॥ ९३ ॥

कन्द शाकों में सूरन (जिमीकन्द) के संस्कृत नाम—सूरन, कन्द, ओल, कन्दल तथा अर्शोघ्न ये सब हैं।

सूरन—कषाय तथा कटुरसयुक्त, अग्निदीपक, रूक्ष, खुजली पैदा करने वाला, विष्टम्भक, विशद गुण युक्त, रुचिकारक, लघु एवम्—कफ तथा अर्श को नष्ट करने वाला होता है। और यह विशेष रूप से अर्श के रोगियों के लिये पथ्य है तथा प्लीहा और गुल्म का नाशक है।

सम्पूर्ण कन्दशाकों में सूरन श्रेष्ठ समझा जाता है किन्तु यह दाद, कुष्ठ तथा रक्तपित्त के रोगियों के लिये हितकर नहीं होता है।

और यदि सूरन का सन्धान के साथ योग हो अर्थात् इसका अचार आदि बनाया जाय तो विशेष गुणकारी हो जाता है॥ ९१-९३॥

५९ सूरन कन्द

हि०-सूरन कन्द, जमी कन्द, जिमिकन्द, जिमीकन्द, ओल। **बं०**-ओल। **म०**-सुरण। **गु०**-सूरण। **क०**-सूरण, सुर्णगड्डे। **ते०**-कन्द। **ता०**-कर्णैकिलंगु। **फा०**-ओला। **ले०**-*Amorphophallus campanulatus Blume.* (एमोर्फोफेलस् कम्पॅनुलेटस्)। Fam. Araceae (ॲरेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में उत्पन्न होता है। कहीं इसको रोपण करते हैं, कहीं आप ही आप उगता है। इसका क्षुप दृढ़ होता है। इसके नीचे बड़े बड़े कन्द होते हैं। पत्र-पुष्पित होने के बहुत बाद आता है। पत्रफलक १ से ३ फीट चौड़ा, अनेक भागों में विभक्त, हरे रंग का एवं छत्र की तरह फैला हुआ रहता है। पत्रवृन्त २ से ३ फीट लंबा, दृढ़, कुछ कांटों जैसे उभारों से खुरदरा, हरे रंग का तथा हलके रंग के धब्बों से युक्त होता है। यह ऊपर ३ भागों में विभक्त हो जाता है जिसमें कटे हुए पत्रक लगे होते हैं। पुष्पव्यूह-पत्रावृत अवृन्त काण्डज (Spadix) स्वरूप का तथा हरिताभ बैंगनी रंग का होता है। पुं एवं स्त्री पुष्पव्यूह अलग-अलग होते हैं। फल-लाल तथा २ से ३ बीजों से युक्त होता है। कन्द (Corm)-शीर्ष पर धंसा हुआ, गोलार्ध के सदृश, ८ से १० इञ्च व्यास का तथा हलके भूरे रंग का होता है।

इसके अनेक प्रकार वन्य एवं कृषित होते हैं। वन्य के कन्द बहुत प्रक्षोभक तथा रक्ताभ श्वेत होते हैं क्योंकि उसमें कॅल्शियम् आक्झेलेट (Calcium oxalate) के रवे होते हैं। कृषित (प्रायः श्वेत) में खुजली कम होती है। चिकित्सा में प्रायः वन्य कन्द का एवं शाकार्थ कृषित का उपयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें आर्द्रता ७८·७, प्रोटीन १·२, स्नेह ८०.१, कार्बोहाइड्रेट १८·४, खनिज ०·८, खटिक ०·०५, फॉस्फोरस् ०·०२%, लोह ०·४ मि० ग्रा०, विटामिन 'ए' ४३४ अ० एकक एवं विटामिन 'बी$_1$', २० अ० ए० प्रति १०० ग्राम रहता है।

गुण और प्रयोग—यह कटु, वातहर, दीपन, पाचन एवं रुचिकर है। इसका उपयोग अर्श, कास, श्वास, प्लीहावृद्धि, गुल्म, आमवात एवं आन्त्र के रोगों में किया जाता है। कन्दशाक में इसे श्रेष्ठ मानते हैं।

(१) अर्श में इसका बहुत उपयोग किया जाता है। इससे यकृत् की क्रिया ठीक होती है, शौच साफ होता है तथा अर्श की रक्तवाहिनियों का संकोचन होता है। इसका पुटपाक करके फिर साग बनाना चाहिये या चूर्ण करके रखना चाहिये। कांजी में संधान करके रखने से यह अधिक गुण वाला होता है। पर्याप्त धोने से तथा अधिक पकाने से भी इसका दोष दूर होता है। कच्चे सूरण के प्रयोग से मुह में खुजली आदि होती है जिसके निवारण के लिए इमली आदि अम्ल पदार्थ का उपयोग करना चाहिये।

(२) आंत्र के रोगों में इसका शाक देते हैं।

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा।

अथालुकम् (आलुक)। तस्य नामानि भेदांश्चाह

आलुकं वीरसेनश्च वीरं वीरारुकं तथा। आरुकमप्यालुकं तत्कथितं वीरसेनकम् ॥ ९४ ॥
काष्ठालुकशङ्खालुकहस्त्यालुकानि कथ्यन्ते। पिण्डालुकमध्वालुक[1]रक्तालुकानि चोक्तानि ॥

आलुक के संस्कृत नाम—आरूक, वीरसेन, वीर, वीरारुक, आरुक, आलुक तथा वीरसेनक ये सब हैं। भेद—१ काष्ठालुक, २ शंखालुक, ३ हस्त्यालुक, ४ पिण्डालुक, ५ मध्वालुक, ६ रक्तालुक ये सब आलू के भेद हैं ॥ ९४–९५ ॥

काष्ठालुकं=काठिन्ययुक्तम् (कठालू)। शङ्खालुकं=श्वेततायुक्तम् (शङ्खालू)। हस्त्यालुकं=दीर्घतायुक्तं महाशरीरञ्च। पिण्डालुकं=वर्तुलम् (सुथनी, पिण्डालू)। मध्वालुकं=मधुरतायुक्तं रोमान्वितम् (दीर्घसुथनी)। रक्तालुकम्=("रक्तालू, रतालू, रतण्डा" इति च) ॥ ९४–९५ ॥

यहाँ पर काष्ठालुक आदि का निम्नलिखित अर्थ समझना चाहिये।

काष्ठालुक—यह कठिनतायुक्त होता है। इसे हिन्दी में "कठालू" कहते हैं।

शंखालुक—यह सफेदी लिये हुये होता है, इसका हिन्दी नाम "शंखालू" है।

हस्त्यालुक—यह लम्बाई लिये हुये आकार में अत्यन्त बड़ा होता है।

पिण्डालुक—यह गोल होता है, इसे लोक में सुथनी या पिण्डालू कहते हैं।

मध्वालुक—यह मीठापन लिये हुये होता है तथा इसके ऊपर लम्बे-लम्बे रोवें होते हैं। हिन्दी में इसे "दीर्घ सुथनी" कहते हैं।

रक्तालुक—यह लाल रंग का होता है, इसे लोक में "रक्तालू-रतालू या रतण्डा" कहते हैं ॥

अथालुकमात्रगुणानाह

आलुकं शीतलं सर्वं विष्टम्भि मधुरं गुरु ॥ ९६ ॥
सृष्टमूत्रमलं रूक्षं दुर्जरं रक्तपित्तनुत्। कफानिलकरं बल्यं वृष्यं स्वल्पाग्निवर्द्धनम्[2] ॥ ९७ ॥

सभी प्रकारके आलुक-शीतल, विष्टम्भजनक, मधुर रसयुक्त, गुरु, मूत्र तथा मल को निकालने वाले, रूक्ष, देर में हजम होने वाले, कफ तथा वायु को उत्पन्न करने वाले, बलकारक, वीर्यवर्धक, किंचित् जठराग्नि को बढ़ानेवाले एवम् रक्तपित्त को नष्ट करने वाले होते हैं ॥९६–९७॥

---

१. सप्तालुक इति पाठा०। २. स्तम्भविवर्धनम् इति पाठा०।

६० आलुकभेद

अं०—Yam (यॅम्)। लै०—*Dioscorea sp.* (डायोस्कोरिआ जातियां)। Fam. Dioscoreaceae (डायोस्कोरिएसी)।

इस प्रजाति (Genus) में अनेक जातियां होती हैं। भारत में करीब ५० जातियां (Species) पाई जाती हैं जिनमें कुछ वन्य एवं कुछ कृषित होती हैं। इनमें दो मुख्य प्रकार की लताएं होती हैं। एक वामावर्त तथा दूसरी दक्षिणावर्त।

ये वर्षायु लताएं होती हैं जिनमें से कृषित के कन्दों का उपयोग खाने के लिये किया जाता है। भावप्रकाशकार इसके आकार, रंग, स्वाद आदि के आधार पर अनेक भेद लिखते हैं। जितनी जातियां भारत में होती हैं उनमें अनेक प्रकार के कन्द पाये भी जाते हैं। इनमें बहुत बड़े, लम्बे गोल, बहुत गहराई में होने वाले, सतह के पास होने वाले, एकाकी, गुच्छों में अनेक, मुलायम, कठोर, रोएँदार, बिना रोएँदार आदि प्रकार पाये जाते हैं। इनमें से कुछ वन्य जातियों को जानवर भी खाते हैं। कुछ कन्दों में क्षाराभ (Dioscorine-डायोस्कोरिन), सॅपोनिन् एवं टैनिन् आदि होने से ये विषैले एवं अस्वादु होते हैं।

कुछ लताओं में ऊपर पत्रकोणों में छोटी कन्दवत् रचनाएं भी पाई जाती हैं।

इन्हीं कंदों में से वाराहीकंद है जिसका गुडूच्यादिवर्ग (पृष्ठ ३८६) में वर्णन किया गया है।

रासायनिक संगठन—इनमें स्टार्च, विटामिन बी एवं कॅल्शियम् आग्झेलेट काफी रहता है। प्रोटीन, खटिक एवं लोह कम रहता है। इसकी विभिन्न जातियों में डायोस्कोरिन् (Dioscorine, C_3, H_1, O_2, N) क्षाराभ की मात्रा कम या अधिक रहती है। इससे युक्त कन्दों के अधिक सेवन से श्वसनाघात हो सकता है। सॅपोनिन (Saponin) युक्त कन्दों का उपयोग सिल्क, ऊन आदि धोने के लिये किया जाता है। इनकी कुछ अमेरिकी जातियों से कॉर्टिजोन (Cortisone) जैसे संधिवात में उपयोगी द्रव्य निर्माण के लिये आवश्यक प्रारम्भिक द्रव्य प्राप्त किये गये हैं। मद्यसार बनाने के लिये भी इनका उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—इनमें से कुछ कन्दों का आलू की तरह भोज्य द्रव्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। अकाल आदि के समय पहाड़ी लोग इनका उपयोग करते हैं। इनको काफी धोकर, पकाकर या भूनकर प्रयोग करते हैं जिससे विषैलापन निकल जाता है तथा खाने से गले में खुजली आदि नहीं होने पाती। कच्चा खाने से इसमें के कॅल्शियम् आग्झेलेट से गले में खराश आदि हो जाती है।

नोट—नित्य व्यवहार में लाये जाने वाला आलू इससे भिन्न सोलॅनम् ट्युबरोजम् (Solanum tuberosum) के कन्द हैं। इसी प्रकार शकरकंद भी इससे भिन्न आइपोमिया बटाटास् (Ipomoea batatas Lam.) के कन्द हैं।

अथालुकी रक्तालुभेदः। तस्या लक्षणं गुणाँश्चाह

रक्तालुभेदो या दीर्घा तन्वी च प्रथिताऽऽलुकी।
आलुकी बलकृत्स्निग्धा गुर्वी हृत्कफनाशिनी ॥
विष्टम्भकारिणी तैले तलिताऽतिरुचिप्रदा ॥ ९८ ॥

रक्तालू के भेद का संस्कृत नाम आलुकी है। लक्षण-यह रतालु का भेद है एवं इससे लम्बी तथा पतली होती है। आलुकी—बलकारक, स्निग्ध, गुरु, हृदत कफ को दूर करने वाली, एवम् विष्टम्भजनक होती है और तेल में तली हुई अत्यन्त रुचिकारक होती है ॥ ९८ ॥

नोट—रक्तालु भेद लिखने के कारण इनके पूर्वोक्त आलुक भेदों में से किसी लता के कन्द होने की अधिक सम्भावना है। प्रसंगतः अरूई का वर्णन यहां दिया जा रहा है।

६१ अरूई

हि०–अरुई, अरई, घुइयां। **बं०**–काचू। **म०**–अळवाचा कान्दा, आळु। **गु०**–अलवी। **क०**–केसवे। **ता०**–शिमेळं। **ते०**–चम्मडुम्पा। **अ०**–हुयाकल्कास, कलकलास। **ले०**–*Colocasia antiquorum Schott.* (कोलोकेसिया ऐन्टीकोरम्)। Fam. Araceae (ॲरेसी)।

यह नदी, तालाब, दलदल आदि के किनारे तथा जंगलों के छायादार, आर्द्र स्थानों में वन्य अवस्था में होती है। अनेक स्थानों पर इसकी खेती भी की जाती है।

इसका **क्षुप**–बहु वर्षायु होता है। पर्णवृन्त १½ से ७ फीट तक लंबा होता है। **पत्ते**–बहुत बड़े एवं हृदयाकार होते हैं। **कन्द**–विभिन्न नाप एवं आकार के होते हैं। ये ½ से १ इञ्च व्यास के गोल आकृति से लेकर ६ इञ्च व्यास एवं २४ इञ्च तक लम्बे होते हैं। किसी में एक समान थोड़े कन्द होते हैं तो किसी में विभिन्न नाप के अनेक कन्द होते हैं। इसके अन्दर के रंग के आधार से भी पीले, नारंगी, लाल या बैंगनी प्रकार होते हैं। वैसे तो इसके अनेक प्रकार होते हैं तथापि इसके दो वर्ग दिखलाई देते हैं। एक में पत्ते एवं वृन्त गहरे बैंगनी तथा दूसरे में हरे होते हैं। गहरे बैंगनी का चिकित्सा में उपयोग करते हैं। इसके स्वाद में कुछ चरपरापन रहता है जो प्रकार के अनुसार कम या अधिक होता है।

रासायनिक संगठन—इसके कन्द के रस में अमाइलेस (Amylase) रहता है। इसमें कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन काफी रहता है तथा यह आलू की अपेक्षा १½ गुना अधिक पोषक है। अन्य स्टार्च युक्त खाद्यद्रव्य की अपेक्षा यह अधिक सुपाच्य है तथा इसमें विटामिन ए, 'बी'१ एवं खटिक तथा फॉस्फोरस भी काफी रहता है। इसके पत्तों में भी विटामिन 'ए' का पूर्व भाग एवं विटामिन 'सी' रहता है। इसमें के कॅल्शियम् आग्झेलेट के कारण यह गले में लगता है जिसके लिये इसको पकाकर तथा पकते समय थोड़ा 'पकाने का सोडा' डाल कर प्रयोग में लाते हैं। इसके स्टार्च के कण छोटे होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके कन्द तथा कोमल पत्तों का शाकार्थ उपयोग करते हैं।

इसके पर्णवृन्त का स्वरस रक्तस्तम्भक होता है। क्षत पर लगाने से रक्तस्राव रुककर जल्दी व्रणपूरण होता है। गांठ आदि पर पर्णवृन्त को नमक के साथ पीस कर बांधते हैं।

यकृत् वृद्धि एवं अर्श में अरुई के कन्दों का साग खिलाते हैं।

अथ मूलकद्वयम् (मूली, बड़ी मूली)।
तस्य नामानि भेदान् गुणाँश्चाह

मूलकं द्विविधं प्रोक्तं तत्रैकं लघुमूलकम्। शालामर्कटकं विस्रं शालेयं मरुसम्भवम् ॥ ९९ ॥
चाणक्यमूलकं तीक्ष्णं तथा मूलकपोतिका। नेपालमूलकं चान्यत्तद्भवेद्गजदन्तवत् ॥१००॥
लघुमूलं कटूष्णं स्याद्रुच्यं लघु च पाचनम्। दोषत्रयहरं स्वर्यं ज्वरश्वासविनाशनम् ॥१०१॥
नासिकाकण्ठरोगघ्नं नयनामयनाशनम् ॥ १०२ ॥
महत्तदेव रूक्षोष्णं गुरु दोषत्रयप्रदम्। स्नेहसिद्धं तदेव स्याद् दोषत्रयविनाशनम् ॥ १०३ ॥

मूली के भेद—१ मूली, २ बड़ी मूली, इस प्रकार से मूली के दो भेद होते हैं। इनमें जो पहिली मूली अर्थात् छोटी मूली होती है उसके संस्कृत नाम-लघुमूलक, शालामर्कटक, विस्र,

शालेय, मरुसंभव, चाणक्यमूलक, तीक्ष्ण तथा मूलकपोतिका ये सब हैं। दूसरी जो हाथी के दाँत की तरह बड़ी मूली होती है, उसका संस्कृत नाम—नेपालमूलक है।

छोटी मूली—कटु रसयुक्त, रुचिकारक, लघु, पाचक, त्रिदोषनाशक, कण्ठस्वर को उत्तम करने वाली एवम्–ज्वर, श्वास, नाक, कण्ठ तथा नेत्र के रोगों को दूर करने वाली होती है।

बड़ी मूली—रूक्ष, उष्ण, गुरु एवं त्रिदोषकारक होती है।

बड़ी मूली यदि तेल में भूनी हुई हो तो भी त्रिदोषनाशक होती है॥ ९९–१०३ ॥

६२ मूली

हि०–मूली, मुरई। **बं०**–मूला। **म०**–मुळा। **गु०**–मूळा। **क०**–मुलङ्गी। **ता०**–मुलंगि। **ते०**–मुल्लङ्कि। **फा०**–तुख, तुर्ब। **अ०**–फ़जल, हुजल। **अं०**–Radish (रॅडिश्)। **ले०**–*Raphanus sativus Linn.* (रॅफेनस् सेटाइवस्)। Fam. Cruciferae (क्रुसीफेरी)।

मूली सभी प्रांतों में बोई जाती है। इसका **कन्द**–गाजर के समान पर सफेद होता है। **पत्ते**–नवीन सरसों के पत्तों के समान; **फूल**–सफेद सरसों के फूल के आकार के और **फल**–भी सरसों ही के समान किन्तु उससे कुछ मोटा और लगभग १–२ इञ्च लंबा होता है। **बीज**–सरसों से बड़े होते हैं।

भावप्रकाशकार इसके दो भेद छोटी मूली–चाणक्यमूलक तथा बड़ी मूली—नेपालमूलक लिखते हैं। बड़ी मूली नेपाल इत्यादि की तरफ होती है। इसमें गंध कम होती है। छोटी मूली के भी आकार के अनुसार, लंबी, दीर्घवृत्ताभ एवं शलजमाकार ये ३ भेद होते हैं। इसके पंचांग का शाकार्थ एवं कन्दस्वरस और बीज का चिकित्सार्थ प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में उड़नशील तैल होता है। कन्द में आर्सेनिक ·०१ मि० ग्रा० प्र० १०० ग्राम में रहता है। मूल तथा बीज में स्थिर तैल भी पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—कच्ची (कोमल) मूली त्रिदोषहर एवं परिपक्व, बिना पकाये खाने से त्रिदोषकारक तथा पकाकर खाने से त्रिदोषहर एवं सूखी त्रिदोषहर है। इसके पत्तों का स्वरस मूत्रल एवं मृदुविरेचक होता है। आनाह, शूल, अर्श एवं अश्मरी में इसको देते हैं।

इसके बीज कफनिःसारक, पाचन, वातानुलोमन मूत्रल एवं मृदुविरेचक हैं। अनार्तव में बीज खिलाते हैं।

मूली के कन्द का नित्य शाकार्थ प्रयोग करने से पुराना विबंध दूर होता है। अन्य सूखे शाकों की तरह यह विष्टम्भ एवं वातकारक नहीं है (सु० सू० अ० ४६)। यह पाचन एवं वातानुलोमक है।

मात्रा—स्वरस २ से ४ तोला; बीज चूर्ण १ से ३ माशा।

अथ गृञ्जनम् (गाजर)। तस्य नामगुणानाह

गृञ्जनं गाजरं प्रोक्तं तथा नारङ्गवर्णकम्। गाजरं मधुरं तीक्ष्णं तिक्तोष्णं दीपनं लघु।
संग्राहि रक्तपित्तार्शोग्रहणीकफवातजित् ॥ १०४ ॥

गाजर के संस्कृत नाम—गृञ्जन, गाजर और नारङ्गवर्णक ये सब हैं। **गाजर**–मधुर तथा तिक्त रसयुक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, अग्निदीपक, लघु, ग्राही एवम्–रक्तपित्त, अर्श, ग्रहणी, कफ तथा वात को दूर करने वाला होता है॥ १०४ ॥

६३ गाजर

हिं०, म०, बं०, गु०—गाजर । **क०**—गर्जरि । **ते०, ता०**—गाजार । **फा०**-जर्दक । **अ०**—जजर । **अं०**—Carrot (कॅरट्) । **ले०**-*Daucus carota var. sativa DC.* (डॅकस् कॅरोटा प्रकार सटाइवा) । Fam. Umbelliferae (अम्बेलिफेरी) ।

यह इस देश के प्रायः सब प्रान्तों के खेतों में रोपण किया जाता है ।

इसका **क्षुप**-वर्षायु या द्विवर्षायु, सीधा अनेक शाखा युक्त एवं १ से ४ फीट ऊंचा होता है । **पत्ते**-पक्षवत् अनेक भागों में विभक्त होते हैं । **पुष्प**-श्वेत या पीताभ होते हैं जो गोलाभ छत्राकार गुच्छ में आते हैं । **फल**—⅛ इञ्च लम्बे, आयताकार एवं रोमश होते हैं । **मूल**—२ से १२ इञ्च लम्बा एवं मांसल होता है । इसके अनेक प्रकार रंग एवं आकार के अनुसार होते हैं । चिकना, कोमल, चमकीला लाल या नारंगी रंग का गाजर अच्छा माना जाता है ।

उपर्युक्त प्रकार यह कृषित प्रकार है । वन्य भेद में कन्द पतले, लम्बे, काष्ठीय, क्रमशः नोकीले, तीव्र गन्ध वाले एवं अस्वादु, चरपरे तथा कुछ कड़वे होते हैं । अधिकतर बोने के लिये इसके बीज यूरोप तथा अमेरिका से आते हैं यद्यपि अपने यहां बीजों की प्राप्ति का प्रयत्न कश्मीर, कुलू आदि में किया जा रहा है ।

गाजर का उपयोग शाक, सलाद, अचार, हलुवा, मुरब्बा आदि के रूप में किया जाता है । मक्खन आदि रंगने के लिये इसका रस काम में लाते हैं ।

रासायनिक संगठन—गाजर में आर्द्रता ८६, प्रोटीन ०.९, स्नेह ०.१, कार्बोहाइड्रेट १०.७, रेशा १.२, खनिज १.१, खटिक ०.०८, फास्फोरस ०.०३%, लोह १.५ मि० ग्रा० प्र० १०० ग्राम, **कॅरोटीन** (विटामिन 'ए' का पूर्वरूप) २००० से ४३०० ए० प्र० १०० ग्रा० एवं विटामिन 'बी', 'डी' तथा 'सी' रहते हैं ।

वृद्धि के साथ इसके प्रोटीन की मात्रा कम होती है तथा शर्करा की मात्रा बढ़ती है । कॅरोटीन की मात्रा भी वृद्धि के साथ बढ़ती है । यह श्वेत गाजर में नहीं रहता । पेट्रोल तथा ईथर के द्वारा प्राप्त इसके पीतसत्व के सूचिकाभरण से रक्तगत शर्करा की मात्रा कम होती है ।

इसको पकाने से इसके पौष्टिक तत्व बहुत कम हो जाते हैं । वाष्प द्वारा पकाने से इतना ह्रास नहीं होता । कॅरोटीन का शोषण गाजर को महीन पीसकर या कसकर खाने से होता है ।

इसके बीजों में सुगन्धि तैल तथा स्थिर तैल होता है । पत्तों में भी उड़नशील तैल होता है ।

गुण और प्रयोग—यह मूत्रजनन, बल्य एवं पोषक है । इसमें के कॅरोटीन के कारण जो विटामिन 'ए' का पूर्वरूप (Precursor) है, इसका अधिक उपयोग किया जाता है ।

इसके बीज सुगंधि, मूत्रजनन, गर्भाशय उत्तेजक, बल्य एवं वृष्य हैं ।

गाजर को कसकर के सूत्रकृमि में खिलाते हैं । कामला में इसका क्वाथ देते हैं । गाजर को कसकर, गरम कर लेप करने से शोथ, व्रण, दग्धव्रण आदि में लाभ होता है ।

इसके बीजों का उपयोग सर्वांगशोफ एवं वृक्करोग में करते हैं । गर्भाशय की पीड़ा एवं प्रसव के समय बीजों को देते हैं । इससे गर्भपात की संभावना रहती है ।

अथ कदलीकन्दः (केलाकन्द) । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

शीतलः कदलीकन्दो बल्यः केश्योऽम्लपित्तजित् ।
वह्निकृद्दाहहारी च मधुरो रुचिकारकः ॥ १०५ ॥

केले का कन्द—शीतल, बलकारक, बालों के लिये हितकर, जठराग्निवर्धक, मधुर रस युक्त, रुचिकारक एवम् अम्लपित्त तथा दाह को नष्ट करने वाला होता है ॥ १०५ ॥

६४ कदली कन्द

केले का विवरण आम्रादि फल वर्ग (पृष्ठ ५५७) में दिया गया है ॥ ७० ॥

अथ मानकन्दः । तस्य नामगुणानाह

मानकः स्यान्महापत्रः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ । मानकः शोथहृच्छीतो रक्तपित्तहरो लघुः ॥

मानकन्द का संस्कृत नाम—मानकन्द और महापत्र है । **मानकन्द**-शीतल, लघु एवम्-शोथ तथा रक्तपित्त को दूर करने वाला होता है ॥ १०६ ॥

६५ मानकन्द

हि०—मानकन्द । **बं०**—मानकचू । **म०**—कांसाळू । **अं०**—Giant taro (जायन्ट टारो) । **ले०**-*Alocasia indica (Roxb.) Schott.* (एलोकेसिया इंडिका) । Fam. Araceae (एरॅसी) ।

प्रायः इसको बागों में लगाते हैं और आसाम तथा बंगाल में इसकी उपज की जाती है । इसका **क्षुप**-अरुई की तरह किन्तु उससे बड़ा एवं ३ से ६ फीट ऊँचा होता है । **स्कंध**-मांसल, फूला हुआ, ४ से ८ इञ्च व्यास का होता है । **पत्ते**-२ से ३ फीट लंबे, पुंखवत् त्रिभुजाकार होते हैं । इसके अग्र खण्ड त्रिभुजाकार एवं पार्श्व खण्ड लट्वाकार होते हैं । **पुष्प**-पुं पुष्प एवं स्त्री पुष्प पत्रावृत व्यूह में पृथक् पृथक्, ४ से ८ इञ्च लंबे वृन्त पर आते हैं । **फल**-बाली के रूप में आते हैं जिसमें दाने (फल) लाल होते हैं । स्कन्ध से मूल निकले रहते हैं एवं मूल स्तम्भ से निकले हुए मूलों के अग्र कन्द सदृश होते हैं । स्कन्ध तथा छोटे कन्द खाये जाते हैं । इसके कई भेदोपभेद पाये जाते हैं जिनमें एक मीठा तथा दूसरा कड़वा होता है । मीठे का उपयोग किया जाता है । इसको प्रयोग के पूर्व उबाल कर धोना पड़ता है ।

रासायनिक संगठन—इसमें स्टार्च काफी होता है । इसमें कॅल्शियम् आग्झेलेट भी होता है । इसका आटा चावल की अपेक्षा अधिक सुपाच्य होता है ।

गुण और प्रयोग—मानकन्द सुपाच्य, पौष्टिक, मूत्रजनन, अल्प मृदुविरेचन एवं स्कंध स्वरस रक्तसंग्राहक एवं कषाय है ।

इसके सूखे कंद के चूर्ण को चावल की मांड के साथ पकाकर, छानकर देने से शोथ और जलोदर में लाभ होता है । उस समय आहार में और कोई पदार्थ नहीं दिया जाता ।

कंद का साग पुराने विबंध एवं उससे उत्पन्न अर्श में दिया जाता है ।

कर्णस्राव में इसके स्कंध को भूनकर निकाला स्वरस डालने से लाभ होता है । मूल को कस कर गरम करके उससे सन्धिशोथ में सेंकते हैं ।

मात्रा—मूल चूर्ण १ से २ तोला ।

अथ वाराहीकन्दः (गेंठी) । तस्य गुणानाह

वाराही पित्तला बल्या कट्वी तिक्ता रसायनी । आयुःशुक्राग्निकृन्मेहकफकुष्ठानिलापहा ॥

वाराहीकन्द—कटु तथा तिक्त रस युक्त, पित्तजनक, बलकारक, रसायन तथा आयु, शुक्र

और जठराग्नि को बढ़ाने वाला एवम्—प्रमेह, कफ, कुष्ठ और वायु को नष्ट करने वाला होता है ॥ १०७ ॥

६६ वाराही कन्द

इसका विवरण गुडूच्यादिवर्ग (पृष्ठ ३८६) में एवं आलुक के वर्णन के साथ इसी वर्ग (पृष्ठ ६९५) में किया जा चुका है।

अथ हस्तिकर्णा। तस्यास्तत्कन्दस्य च गुणानाह

गजकर्णा तु तिक्तोष्णा तथा वातकफाञ्जयेत्। शीतज्वरहरी स्वादुः पाके तस्यास्तु कन्दकः॥
पाण्डुशोथकृमिप्लीहगुल्मानाहोदरापहः। ग्रहण्यर्शोविकारघ्नो वनसूरणकन्दवत्॥ १०९॥

हस्तिकर्णा के संस्कृत नाम—गजकर्णा और हस्तिकर्णा इसके संस्कृत नाम हैं।

हस्तिकर्णा—तिक्तरसयुक्त, उष्ण, विपाक में मधुर रसयुक्त एवम्–वात–कफ तथा शीतज्वर को दूर करने वाला होता है।

इसका कन्द—जङ्गली सूरन के कन्द की भांति, पाण्डु, शोथ, कृमि, प्लीहा, गुल्म, आनाह (अफरा), उदररोग, ग्रहणी तथा अर्श के विकारों को नष्ट करने वाला होता है ॥ १०८–१०९ ॥

नोट—टीकाकारों ने इसे भूपलाश, रक्तएरण्ड तथा कुछ ने मानकन्द का बड़ा भेद लिखा है किन्तु निम्न वर्णित क्षुप ही हस्तिकर्ण है।

६७ हस्तिकर्ण

हि०—हत्कन, हस्तिकर्ण पलाश, समुद्रक। बं०—ढोलसमुद्र। म०—दिंढा। ले०—*Leea macrophylla Horn.* (लिआ मॅक्रोफाइला)। Fam. Vitaceae (विटेसी)।

भारत के समस्त उष्णप्रदेश एवं आसाम में यह होता है।

इसका क्षुप—१ से ३ फीट ऊंचा, मोटा तथा बहुवर्षायु कन्द से प्रति वर्ष निकलता है। पत्ते—हाथी के कान की तरह बहुत बड़े, १ से २ फीट लम्बे एवं कटुवाकार–हृद्वत होते हैं। उपपत्र बहुत बड़े होते हैं। पुष्प—श्वेत होते हैं। फल—काले एवं झुमकेदार होते हैं। इसके कन्द का उपयोग चिकित्सा में किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह ग्राही, वेदनास्थापक एवं रक्तस्कन्दक है।

कन्द को पीसकर व्रण, दाद एवं नारूकृमि पर लगाते हैं। इससे वेदना कम होती है और स्थानिक रक्तस्राव भी रुकता है।

कहीं-कहीं क्षय में भी इसका उपयोग किया जाता है।

अथ केमुकम् (केमुआं)। तस्य गुणानाह

केमुकं कटुकं पाके तिक्तं ग्राहि हिमं लघु ॥ ११० ॥
दीपनं पाचनं हृद्यं कफपित्तज्वरापहम्। कुष्ठकासप्रमेहास्रनाशनं वातलं कटु ॥ १११ ॥

केमुक—विपाक में कटुरसयुक्त, स्वाद में तिक्त तथा कटुरसयुक्त, ग्राही, शीतल, लघु, अग्निदीपक, पाचक, हृदय के लिये हितकर, वातजनक एवम् कफ, पित्त, ज्वर, कुष्ठ, कास, प्रमेह तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥ ११०–१११ ॥

६८ केमुक

हि०—केमुआ, केमुक, केवुक कन्द, केवा। म०—पेवा। ते०, क०—चेंगल्वकोष्टू। बं०—केऊ। ले०—*Costus speciosus (Koen) Sm.* (कोस्टस् स्पेसिओसस्)। Fam. Zingiberaceae (जिंजिबेरेसी)।

यह प्रायः सभी स्थानों पर किन्तु विशेष रूप से बंगाल तथा कोंकण में होता है। इसे शोभा के लिए बागों में भी लगाते हैं। आर्द्र तथा छायादार स्थानों में वर्षा में यह अधिक होता है।

इसका क्षुप—२ से ६ फीट ऊँचा होता है। मूलस्तम्भ कन्दवत् तथा अदरख के समान होता है। पत्ते—भालाकार, ६ से १२ इंच लंबे एवं अधर तल पर रोमश होते हैं। पुष्प—कांड के अग्र पर, सफेद, ३–४ इञ्च बड़े, निर्गन्ध पुष्प, व्यूह में आते हैं जिनके कोणपुष्पक भड़कीले लाल होते हैं। इसके कन्द को पकाकर खाते हैं। यह निर्गंध, कुछ कसैला एवं कुछ लुआबदार होता है।

नोट—गलती से इसे कहीं-कहीं कलिहारी माना जाता है। इसी प्रकार कुष्ठ के नाम से भी इसका गलत उपयोग, विशेष रूप से दक्षिण में होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें स्टार्च होता है।

गुण और प्रयोग—इसे बल्य, कुछ विरेचन, रक्तशोधक एवं कृमिनाशक मानते हैं। इसके ताजे कंदों का मुरब्बा रुचिकारक एवं पौष्टिक मानते हैं। हड्डियों में पीड़ा होने पर इसका उपयोग करते हैं।

नवीन प्रयोगों से देखा गया है कि कलिहारी की तुलना में इसमें गर्भाशय संकोचक गुण अधिक होता है (कु० प्रे० तिवारी तथा अन्य; आ० अनु० पत्रिका, भाग १, अंक २)।

अथ कसेरु, चिचोढं च। तयोर्गुणानाह

कसेरु द्विविधं तत्तु महद्राजकसेरुकम्। मुस्ताकृति लघु स्याद्यत्तच्चिचोढमिति स्मृतम्॥ ११२॥
कसेरुकद्वयं शीतं मधुरं तुवरं गुरु। पित्तशोणितदाहघ्नं नयनामयनाशनम्।
ग्राहि शुक्रानिलश्लेष्मारुचिस्तन्यकरं स्मृतम् ॥ ११३ ॥

कसेरू के भेद—१ बड़ा, २ छोटा, भेद से कसेरू दो प्रकार का होता। उनके संस्कृत नाम—जो बड़ा कसेरू होता है उसे "राजकसेरुक" कहते हैं और छोटा मोथे के समान आकार वाला होता है उसे "चिचोढ़" कहते हैं।

दोनों प्रकार के कसेरू—शीतल, मधुर तथा कषाय रसयुक्त, गुरु, ग्राही एवम्–शुक्र, वायु, कफ, अरुचि तथा दुग्धवर्धक होते हैं और पित्त, रक्तविकार, दाह, नेत्ररोग इन सबका नाश करने वाले होते हैं ॥ ११२–११३ ॥

६९ कसेरू

हि०—कसेरू। बं०—केसूर। म०—कचरा। अं०—Water chestnut (वाटर चेस्टनट)। ले०—*Scirpus kysoor Roxb.* (स्किर्पस् कायसूर)। Fam. Cyperaceae (साइपेरेसी)।

सभी प्रान्तों में यह होता है।

इसके पौधे—तालाबों में प्रायः एक फुट या अधिक गहरे पानी में होते हैं। काण्ड—४ से ६ फीट ऊँचा तथा ३ पहल का होता है। पत्ते—एक इञ्च चौड़े तथा काण्ड के बराबर या कुछ कम लंबे होते हैं। पुष्प मंजरी—करीब-करीब ३ फीट लंबी होती है। फल—छोटे, धूसर या कृष्णवर्ण के होते

हैं। कन्द—ऊपर से काले रंग के, अंदर से श्वेत, जायफल इतने बड़े एवं कुछ गोलाई लिये हुये होते हैं। इनका स्वाद कुछ मधुर एवं सुगन्धित होता है।

स्कि० आर्टिक्युलेटस् (S. articulatus Linn.) तथा साइपेरस् एस्क्यूलेन्टस् (Cyperus esculentus Linn.) के कन्दों को जो कसेरू जैसे ही होते हैं 'चिचोड़ा' कहा जाता है जो भावप्रकाशोक्त चिचोढ है।

कसेरू को भून कर, उबाल कर या वैसे ही खाया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें कार्बोहाइड्रेट ६३, प्रोटीन ७, गोंद ७, रेशा ६ एवं राख २·५ भाग होती है।

गुण और प्रयोग—यह मधुर, शीत, ग्राही, कफ-वातवर्धक, शुक्रल तथा स्तन्य है।

इसका उपयोग तृषा, दाह, अतिसार एवं वमन में किया जाता है। गर्भावस्था में गर्भपात की संभावना होने पर तथा प्रसूता को दुग्धवृद्धि के लिये इसे देते हैं। हैजे में इसे गुलाबजल में पीस कर पिलाते हैं जिससे प्यास कम होती है, दस्त एवं वमन कम होता है तथा हृदय को बल भी मिलता है।

अथ शालूकम् भिस्साण्डश्च । तयोर्नामानि गुणांश्चाह

पद्मादिकन्दः शालूकं करहाटश्च कथ्यते ॥ १२४ ॥

मृणालमूलं भिस्साण्डं [1]जलालूकश्च कथ्यते । शालूकं शीतलं वृष्यं पित्तदाहास्रनुद् गुरु ११५॥

दुर्जरं स्वादुपाकञ्च स्तन्यानिलकफप्रदम् । संग्राहि मधुरं रूक्षं भिस्साण्डमपि तद्गुणम्॥११४॥

कमल आदि के कन्दों के संस्कृत नाम—कमलकन्द, शालूक तथा करहाट ये सब हैं। मृणाल (कमल के नाल) के मूल भाग के संस्कृत नाम—मृणालमूल, भिस्साण्ड और जलालूक ये सब हैं। **कमलकन्द**—शीतल, वीर्यवर्धक, गुरु, कठिनता से हजम होने वाला, दुग्ध, वायु तथा कफ को करने वाला, ग्राही, रूक्ष, मधुर रसयुक्त, विपाक में भी मधुर एवम्-पित्त, दाह और रक्तविकार को दूर करने वाला होता है।

भसींडा—गुणों में कमल कन्द के ही समान होता है॥ ११४-११६ ॥

७० कमलकन्द, भसींडा

वास्तव में भसींडा यह कमल के नाल का आधारीय भाग है जो मोटा तथा लंबा होता है एवं कुमुद में आधारीय भाग कन्दवत् होता है। कमल का पूर्ण परिचय पुष्पादिवर्ग (पृष्ठ ४७९) में दिया गया है॥

अथ निषिद्धशाकान्याह

बालं ह्यनार्त्तवं जीर्णं व्याधितं कृमिभक्षितम् । कन्दं विवर्जयेत्सर्वं यद्वाऽग्न्यादिविदूषितम् ।
अतिजीर्णमकालोत्थं रूक्षसिद्धमदेशजम् ॥ ११७ ॥

कर्कशं कोमलं चातिशीतव्यालादिदूषितम् । संशुष्कं सकलं शाकं नाश्नीयान्मूलकं विना ११८

निषिद्ध (न खाने योग्य) शाक—जो कन्द-कच्चा, बिना ऋतु के (असमय में) होने वाला, पुराना, रोगयुक्त, कीड़ों से खाया हुआ अर्थात् जिसमें कीड़े आदि पड़े हों या खाये हों अथवा अग्नि आदि से दूषित हो गये हों उन सबों को त्याग देना चाहिये।

[1] जलालुवं इति पाठः।

जो शाक—अत्यन्त पुराना, अकाल में उत्पन्न हुआ, बिना तेल आदि के पकाया हुआ, अशुभ स्थान श्मशान आदि में उत्पन्न हुआ, कठिन, कोमल, अत्यन्त शीत पड़ने तथा सर्पादि से दूषित हुआ हो उसे त्याग देना चाहिये।

एवम्—सभी सूखे शाक नहीं खाने चाहिये, किन्तु मूली के लिये यह नियम नहीं है, उसे सूखी भी खा सकते हैं॥ ११७-११८ ॥

रूक्षसिद्धम् = अतैलादिसिद्धम् । अदेशजम् = अशुभस्थानजम् ॥ ११८-११८ ॥

यहाँ पर मूल में "रूक्षसिद्ध" पद का "बिना तेल आदि के पकाया हुआ" तथा "अदेशज" पद का "अशुभ स्थान श्मशान आदि में उत्पन्न हुआ" अर्थ समझना चाहिये॥ ११७-११८ ॥

इति कन्दशाकानि।

अथ संस्वेदजशाकानि । तेषां नामानि गुणानाह

उक्तं संस्वेदजं शाकं भूमिच्छत्रं शिलीन्ध्रकम् । क्षितिगोमयकाष्ठेषु वृक्षादिषु तदुद्भवेत् ॥११९॥

सर्वे संस्वेदजाः शीता दोषलाः पिच्छिलाश्च ते । गुरवश्छर्द्यतीसारज्वरश्लेष्मामयप्रदाः ॥१२०॥

श्वेताशुचिस्थलीकाष्ठवंशगोमयसम्भवाः । नातिदोषकरास्ते स्युः शेषास्तेभ्यो विगर्हिताः ॥

संस्वेदज शाक के संस्कृत नाम—संस्वेदज, भूमिच्छत्र और शिलीन्ध्रक ये सब हैं।

उत्पत्ति स्थान—संस्वेदज शाक-पृथ्वी, गोबर, काष्ठ तथा वृक्षादिकों पर उत्पन्न होता है।

संस्वेदज शाक—शीतल, दोषकारक, पिच्छिल, गुरु एवम्-वमन, अतिसार, ज्वर और कफ सम्बन्धी रोगों को उत्पन्न करने वाले होते हैं।

किन्तु जो संस्वेदज शाक-श्वेत वर्णवाले, पवित्र स्थान, काष्ठ, बांस तथा गोबर पर उत्पन्न होने वाले होते हैं, वे अत्यन्त दोषकारक नहीं (साधारण दोषकारक) होते हैं। शेष अर्थात् इनसे अन्य स्थान में उत्पन्न होने वाले संस्वेदज शाक निन्दित (त्याज्य) होते हैं॥ ११९-१२१ ॥

७१ छत्रक

हि०-भुईं छत्ता, भुईं फोड़ छत्ता छतोना, छाता, सांप की छत्री, खुमी, धरतीफूल। बं०—कोड़क छाता, व्यांगेर छाता, छातकुड़, भुईं छाति, छात कुण्ड। पं०—खेओफोरे। सिं०—खुम्मी। म०—अळम्बे। गु०—बिलाडीनो टोप। अं०—Mush-room (मशरूम)। ले०—*Agaricus campestris Linn.* (एगेरिकस् कॅमपेस्ट्रिस्)। Fam. Agaricaceae (एगेरिकेसी)।

यह सभी प्रांतों में होता है किंतु पंजाब में अधिक होता है।

भुईं छत्ता-वर्षा ऋतु में आप ही आप जमीन फोड़कर उत्पन्न होता है। यह खाद की ढेरी पर अधिक होता है। इसका क्षुप-६-७ इञ्च ऊँचा होता है और इसमें कोई डाली नहीं होती, केवल एक डण्डी जो जमीन फोड़ कर निकलती है उस पर गोल छत्ते के आकार का एक छत्र होता है।

छत्र के नीचे की सतह से पतले परदे लटकते हैं जिन्हें गिल (Gill) कहा जाता है जिसमें अनेक बीजाणु (Spores) रहते हैं।

छत्रक के अनेक प्रकार होते हैं जिनमें से कुछ विषैले होते हैं। निम्नलिखित लक्षणों से यद्यपि इसका ज्ञान हो सकता है तथापि अनुभव के आधार पर ही इसका आसानी से ज्ञान होता है। जब तक निश्चित ज्ञान न हो तब तक इनका प्रयोग उचित नहीं है। इनकी उपज भी की जाती है।

निर्विष के लक्षण—छोटे, शीर्ष का भाग २ से ४ इञ्च चौड़ा, दुर्गंधहीन, श्वेत या गुलाबी, गिल गुलाबी, कांड से अलग तथा बीजाणु गहरे बैंगनी, ठोस, घास या कचरे के ढेर पर होने वाले, छत्र के नीचे कांड पर वलययुक्त प्रायः विषैले नहीं होते।

विषैले छत्रक—बहुत भंगुर या कड़े, छत्र चमकीला, पतला, गिल समान लंबाई के, गढ़े में उत्पन्न, कृमि द्वारा खाये हुए, तोड़ने पर नीले रंग के, दुर्गंधयुक्त, स्वाद में कड़वे, अम्ल, खराब, डण्ठल के आधार भाग पर कटोरी जैसी रचना युक्त, पकाने पर चमकीले पीले हो जाने वाले, छायादार स्थान में होने वाले एवं दुग्ध जैसे रसयुक्त अखाद्य होते हैं।

गुण और प्रयोग—यह पौष्टिक एवं कामवर्धक होते हैं। मांस के समान यह पौष्टिक है। इसका साग आमाशय की दुर्बलता से उत्पन्न दुर्बलता तथा कृशता में दिया जाता है। क्षय में दूध तथा शर्करा के साथ इसे उबालकर देते हैं।

मात्रा—५ से १० तोला।

इति श्रीलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे
दशमः शाकवर्गः समाप्तः ॥ १० ॥

अथैकादशो मांसवर्गः

अथ मांसम्। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

मांसं तु पिशितं क्रव्यमामिषं पललं पलम्। मांसं वातहरं सर्वं बृंहणं बलपुष्टिकृत् ॥
प्रीणनं गुरु हृद्यञ्च मधुरं रसपाकयोः ॥ १ ॥

मांसवर्ग में प्रथम मांस के संस्कृत नाम—मांस, पिशित, क्रव्य, आमिष, पलल तथा पल ये हैं। सभी मांस–रस तथा विपाक में मधुर रसयुक्त, बृंहण (रस रक्तादि वर्धक), बल तथा पुष्टि के करने वाले, सन्तर्पण कारक, गुरु, हृदय के लिये हितकर तथा वातनाशक होते हैं ॥ १ ॥

अथ मांसभेदानाह

मांसवर्गो द्विधा ज्ञेयो जाङ्गलानूपभेदतः ॥ २ ॥

मांस के भेद—मांसवर्ग दो भागों में विभक्त है, १—जाङ्गल (जङ्गली जीवों के) मांस २—आनूप (जल के समीप या जल में रहने वाले जीवों के) मांस ॥ २ ॥

अथ जाङ्गलमांसस्य भेदान् गुणाँश्चाह

मांसवर्गेऽत्र जङ्घाला बिलस्थाश्च गुहाशयाः। तथा पर्णमृगा ज्ञेया विष्किराः प्रतुदस्तथा ॥
प्रसहा अथ च ग्राम्या अष्टौ जाङ्गलजातयः। जाङ्गला मधुरा रूक्षास्तुवरा लघवस्तथा ॥४॥
बल्यास्ते बृंहणं वृष्या दीपना दोषहारिणः। मूकतां मिन्मिनत्वं च गद्गदत्वार्दिते तथा ॥५॥
बाधिर्यमरुचिच्छर्दिप्रमेहमुखजान् गदान्। श्लीपदं गलगण्डञ्च नाशयन्त्यनिलामयान् ॥६॥

जाङ्गल मांस के भेद—इस मांसवर्ग में—१–जङ्घाल (जङ्घा के बल से चलने वाले), २–बिलस्थ (बिल में रहने वाले), ३–गुहाशय (गुफा में सोने वाले), ४–पर्णमृग (वृक्षों पर चढ़ने वाले), ५—विष्किर (कुरेद २ कर खाने वाले), ६—प्रतुद (चोंच से पदार्थ को निकाल कर खाने वाले) ७—प्रसह (जबरदस्ती से छीन कर खाने वाले), ८—ग्राम्य (ग्राम में रहने वाले) ये ८ जातियां "जाङ्गल" होती हैं। इन्हीं का मांस "जाङ्गल" मांस कहलाता है।

जाङ्गल मांस—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, रूक्ष, लघु, बलकारक, बृंहण (रसरक्तादि वर्धक), वीर्यवर्धक, अग्निदीपक, दोषनाशक एवम्—मूकता (गूंगापन), मिन्मिनापन, तोतलापन, अर्दित-वात (मुंह का लकवा), बहिरापन, अरुचि, वमन, प्रमेह, मुख में होने वाले रोग, श्लीपद (फीलपांव), गलगण्ड और वातसम्बन्धी रोग को दूरकरने वाला होता है ॥ ३–६ ॥

अथानूपमांसस्य भेदान् गुणाँश्चाह

कूलेचराः प्लवाश्चापि कोशस्थाः पादिनस्तथा। मत्स्या एते समाख्याताः पञ्चधाऽऽनूपजातयः॥
अनूपा मधुराः स्निग्धा गुरवो वह्निसादनाः। श्लेष्मलाः पिच्छिलाश्चापि मांसपुष्टिप्रदा भृशम् ॥
तथाऽभिष्यन्दिनस्ते हि प्रायः पथ्यतमाः स्मृताः ॥ ८ ॥

आनूप मांस के भेद—१ कूलेचर (नदी आदि के किनारे पर चलने वाले), २ प्लव (जल के ऊपर तैरने वाले पक्षी), ३ कोशस्थ (ढकने के मध्य में रहने वाले), ४ पादी (पांव वाले जल के जीव), ५ मत्स्य (मछली), ये ५ प्रकार की जातियां आनूप कहलाती हैं ।

आनूपमांस—मधुररसयुक्त, स्निग्ध, गुरु, जठराग्नि को मन्द करने वाला, कफ उत्पन्न करने वाला, पिच्छिल, मांस को अत्यन्त पुष्ट करने वाला, अभिष्यन्दी तथा प्रायः करके अत्यन्त पथ्य होता है ॥ ७-८ ॥

अथ जाङ्गलाः । तत्र जङ्घालानां गणनां लक्षणानि विशिष्टगुणाँश्चाह

हरिणैणकुरङ्गर्ष्यपृषतन्यङ्कुशम्बराः ॥ ९ ॥
राजीवोऽपि च मुण्डी चेत्याद्या जङ्घालसंज्ञकाः ।
हरिणस्ताम्रवर्णः स्यादेणः कृष्णः प्रकीर्त्तितः ॥ १० ॥
कुरङ्गईषत्ताम्रः स्यादेणतुल्याकृतिर्महान् । ऋष्यो नीलाङ्गको लोके स रोझ इति कीर्त्तितः ॥
पृषतश्चन्द्रबिन्दुः स्याद्धरिणात्किञ्चिदल्पकः । न्यङ्कुर्बहुविषाणोऽथ शम्बरो गवयो महान् ॥
राजीवस्तु मृगो ज्ञेयो राजिभिः परितो वृतः । यो मृगः शृङ्गहीनः स्यात्स मुण्डीति निगद्यते ॥
जङ्घालाः प्रायशः सर्वे पित्तश्लेष्महराः स्मृताः । किञ्चिद्वातकराश्चापि लघवो बलवर्द्धनाः ॥

जाङ्गल जीवों में प्रथम जङ्घाल संज्ञक जीवों की गणना—हरिण, एण, कुरङ्ग, ऋष्य, पृषत, न्यङ्कु, शम्बर, राजीव और मुण्डी इत्यादि जंघालसंज्ञक जीव हैं ।

लक्षण—**हरिण**-यह तांबे के समान वर्णवाला मृग होता है । **एण**-यह कृष्ण वर्ण का मृग होता है । **कुरङ्ग**-यह किंचित् तांबे में समान वर्ण वाला, आकार में एण मृग के समान किन्तु उससे बड़ा होता है । **ऋष्य**-यह नीले वर्ण का होता है, इसे लोक में "रोझ" कहते हैं । **पृषत**-इसके ऊपर चन्द्र के समान बिन्दु होते हैं और यह हरिण से कुछ छोटा होता है । **न्यङ्कु**-इसके बहुत से झाड़दार सींग होते हैं, इसे "बारहसिंगा" कहते हैं । **शम्बर**-यह गवय (गौ के समान पशु-विशेष-नीलगाय) की अपेक्षा बड़ा होता है । **राजीव**-वह मृग कहलाता है जिसके शरीर पर बहुत सी रेखायें हों । **मुण्डी**-यह मृग (हरिण) सींग से रहित होता है ।

जङ्घाल जीवों के मांस-प्रायः करके पित्त तथा कफ नाशक, किंचित् वातकारक, लघु तथा बलवर्धक होते हैं ॥ ९-१४ ॥

अथ बिलेशयः (बिलनिवासी प्राणी) तेषां गणनां गुणांश्चाह

गोधाशशभुजङ्गाखुशल्लक्याद्या बिलेशयाः । बिलेशया वातहरा मधुरा रसपाकयोः ॥
बृंहणा बद्धविण्मूत्रा वीर्योष्णाश्च प्रकीर्त्तिताः ॥ १५ ॥

बिलेशय (बिल के रहने वाले) प्राणियों की गणना—गोह, खरगोश, सांप, मूसा, साही आदि जीव बिलेशय कहलाते हैं ।

बिलेशय जीवों का मांस—वात नाशक, रस तथा विपाक में मधुर, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), उष्णवीर्य, मल तथा मूत्र का विबन्ध करने वाला होता है ॥ १५ ॥

अथ गुहाशयाः (गुफानिवासी प्राणी) । तेषां गणनां गुणांश्चाह

सिंहव्याघ्रवृका ऋक्षतरक्षुद्वीपिनस्तथा । बभ्रुजम्बूकमार्जारा इत्याद्याः स्युर्गुहाशयाः ॥१६॥

गुहाशय (गुफा में रहने वाले) जीवो की गणना—सिंह, बाघ, भेड़िया, भालु, तरस (लकड़-बग्घा), चित्रव्याघ्र (चीता), बभ्रु (नेवला), गीदड़, बिलार इत्यादि गुहाशय जीव हैं ॥ १६ ॥

***तरक्षुः—'तेंदुआबाघ" इति लोके । द्वीपी = "चित्रव्याघ्र" इति लोके ।**
स्थूलपुच्छो रक्तनेत्रो बभ्रुदेहः स नाकुलः ॥ १६ ॥

यहां पर मूल में "तरक्षु" से "तेंदुआबाघ" और "द्वीपी" से "चित्रव्याघ्र" (चीता) समझना चाहिये और "बभ्रु" से स्थूल पूंछ तथा लाल नेत्रों वाला, पीले रंग का जो जीव (नेवला) होता है उसका ग्रहण करना चाहिये ॥ १६ ॥

गुहाशया वातहरा गुरूष्णा मधुराश्च ते । स्निग्धा बल्या हिता नित्यं नेत्रगुदविकारिणाम् ॥

गुहाशय जीवों का मांस—वातनाशक, गुरु, उष्ण, मधुर, स्निग्ध, बलकारक तथा नेत्र और गुदा रोग (अर्श) वालों के लिये नित्य हितकर होता है ॥ १७ ॥

अथ पर्णमृगाः (वृक्षों पर चढ़ने वाले प्राणी) । तेषां गणनां गुणाँश्चाह

वनौका वृक्षमार्जारो वृक्षमर्कटिकाऽऽदयः । एते पर्णमृगाः प्रोक्ताः सुश्रुताद्यैर्महर्षिभिः ॥१८॥

पर्णमृग (वृक्ष पर चढ़ने वाले) जीवो की गणना—वानर, वृक्षविडाल (वन बिलाव), रूषी वानर आदि को सुश्रुतादि महर्षियों ने "पर्णमृग" संज्ञक बतलाया है ॥ १८ ॥

***वनौका = वानरः । वृक्षमार्जारो = वृक्षविडालः । वृक्षमर्कटिका = 'रूषी वानर' इति लोके ॥ १८ ॥**

यहां पर मूल में—"वनौका" से "वानर" तथा "वृक्षमार्जार" से वृक्षविडाल अर्थात् पेड़ पर रहने वाले वन बिलाव और "वृक्षमर्कटिका" से "रूषी वानर" नाम से लोक में प्रसिद्ध जीव का ग्रहण करना चाहिये ॥ १८ ॥

स्मृताः पर्णमृगा वृष्याश्चक्षुष्या शोषिणे हिताः । श्वासार्शः कासशमनाः सृष्टमूत्रपुरीषकाः ॥

पर्णमृग संज्ञक जीवों का मांस—वीर्यवर्धक, नेत्रों के लिये हितकर, शोष (क्षय) रोगियों के लिये हितकारी, मूत्र तथा मल को निकालने वाला एवम्—श्वास, अर्श (बवासीर) और खांसी को दूर करने वाला होता है ॥ १९ ॥

अथ विष्किराः (विष्किरपक्षी) । तेषां गणनां गुणांश्चाह

वर्त्तका लाववर्त्तीरकपिञ्जलकतित्तिराः । कुलिङ्गकुक्कुटाद्याश्च विष्किरा समुदाहृताः ॥ २० ॥
विकीर्य भक्षयन्त्येते यस्मात्तस्माद्धि विष्किराः । कपिञ्जल इति प्राज्ञै कथितो गौरतित्तिरिः ॥
विष्किरा मधुराः शीताः कषायाः कटुपाकिनः ।
बल्या वृष्यास्त्रिदोषघ्नाः पथ्यास्ते लघवः स्मृताः ॥ २२ ॥

विष्किर (कुरेद २ कर खाने वाले) पक्षियों की गणना—वर्त्तका, (बटेर-जङ्गली गौरैया), लाव (लवा), वर्त्तीर (कपिञ्जल के सदृश पक्षिविशेष), कपिञ्जलक (गौर तीतर), तीतर, कुलिङ्ग (गौरैया) और मुर्गा इत्यादि पक्षी विष्किर कहलाते हैं । विष्किर शब्द की निरुक्ति—जो पक्षी पहले चोंच आदि से बिखेर कर पीछे खाते हैं इसीसे वे "विष्किर" कहलाते हैं और कपिञ्जल को विद्वान् लोग "गौरतित्तिरि" कहते हैं ।

विष्किर पक्षियों का मांस—मधुर, शीतल, कषाय (कसैला), विपाक में कटु रस युक्त, बलकारक, वीर्यवर्धक, त्रिदोषनाशक, पथ्य तथा लघु होता है ॥ २०-२२ ॥

अथ प्रतुदाः (चोंच से खानेवाले पक्षी)। तेषां गणनां गुणांश्चाह

कालकण्ठकहारीतकपोतशतपत्रकाः ।
पारावतः खञ्जरीटः पिकाद्याः प्रतुदाः स्मृताः ।
प्रतुद्य भक्षयन्त्येते तुण्डेन प्रतुदास्ततः ॥ २३ ॥

प्रतुद पक्षियों की गणना—कालकण्ठक (धूयें के रंग का जलकौवा), हरियल, पडुखी (कपोत भेद), शतपत्रक (कठफोरा), पारावत (कबूतर), खिड़रिच, कोयल आदि पक्षी "प्रतुद" कहलाते हैं ।

प्रतुद शब्द की निरुक्ति—जो पक्षी चोंच से निखोर कर खाते हैं इसीसे वे "प्रतुद" कहे जाते हैं ॥ २३ ॥

*हारीतः="हरियल" इति लोके। कपोतो धवलः पाण्डुः । शतपत्रो बृहच्छुकः । "दार्वाघाटः" इत्यमरः । 'कठफोरा' इति लोके ॥ २३ ॥

यहां पर "हारीत" से लोक प्रसिद्ध "हरियल" तथा कपोत पद से उसीका भेद शुक्लपीत वर्ण की पडुखी एवम् "शतपत्रक" से अमरकोश के प्रमाण से दार्वाघाट अर्थात् लोकप्रसिद्ध "कठफोरा" का बोध करना चाहिये ॥ २३ ॥

प्रतुदा मधुराः पित्तकफघ्नास्तुवरा हिमाः । लघवो बद्धवर्चस्काः किञ्चिद्वातकराः स्मृताः ॥

प्रतुद संज्ञक पक्षियों के मांस—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, पित्त, तथा कफनाशक, शीतल, लघु, मल को गाढ़ा करने वाले तथा किञ्चित् वातकारक होते हैं ॥ २४ ॥

अथ प्रसहाः (दूसरे से छीनकर खानेवाले पक्षी)। तेषां गणनां गुणांश्चाह

काको गृध्र उलूकश्च चिल्लश्च शशघातकः । चाषो भासश्च कुरर इत्याद्याः प्रसहाः स्मृताः ॥

प्रसह संज्ञक (दूसरे से जबरदस्ती छीन कर खानेवाले) पक्षियों की गणना—कौवा, गीध, उल्लू, चील्ह, बाज, नीलकण्ठ, भास (गीध का भेद) और कुरांकुर या कडांकुल इत्यादि पक्षी प्रसह संज्ञक हैं ॥ २५ ॥

*शशघातकः="बाज" इति लोके । चाषः="नीलकण्ठ" इति लोके। भासः= गृध्रविशेषः स्यात् । कुररः="कुरांकुर" इति लोके ॥ २५ ॥

यहां पर "शशघातक" का लोकप्रसिद्ध "बाज" पक्षी, "चाष" का "नीलकण्ठ" इस नाम से लोकप्रसिद्ध पक्षी, "भास" का गीध के भेद का पक्षी, "कुरर" का "कुरांकुर" इस नाम से लोकप्रसिद्ध पक्षी का ग्रहण करना चाहिये ॥ २५ ॥

प्रसहाः कीर्त्तिता एते प्रसह्याच्छिद्य भक्षणात् ॥ २६ ॥

"प्रसह" शब्द की निरुक्ति—जो पक्षी दूसरे से जबरदस्ती छीनकर खाते हैं इससे वे "प्रसह" कहलाते हैं ॥ २६ ॥

प्रसहाः खलु वीर्योष्णास्तन्मांसं भक्षयन्ति ये । तेशोषभस्मकोन्मादशुक्रक्षीणा भवन्ति हि ॥

प्रसह संज्ञक के मांस—ये सब उष्णवीर्य होते हैं, अतः जो उनके मांस को खाते हैं उनको शोष (क्षय), भस्मक रोग, पागलपन तथा शुक्रक्षीणता हो जाती है ॥ २७ ॥

अथ ग्राम्याः (ग्राम्यपशु)। तेषां गणनां गुणांश्चाह

छागमेषवृषाश्वाद्या ग्राम्याः प्रोक्ता महर्षिभिः । ग्राम्या वातहराः सर्वे दीपनाः कफपित्तलाः ।
मधुरा रसपाकाभ्यां बृंहणा बलवर्द्धनाः ॥ २८ ॥

ग्राम्य (गांव के अन्दर रहने वाले) पशुओं की गणना—बकरा, भेड़ा (मेढ़ा), बैल (गोजाति), घोड़ा आदि पशुओं को महर्षियों ने "ग्राम्य" संज्ञक कहा है ।

ग्राम्य पशुओं का मांस—वातनाशक, अग्निदीपक, कफ तथा पित्तकारक, रस तथा विपाक में मधुर रसयुक्त, बृंहण (रस-रक्तादि वर्द्धक) एवम् बल को बढ़ाने वाला होता है ॥ २८ ॥

अथानूपाः । तत्र कूलेचराणां गणनां गुणांश्चाह

लुलायगण्डवाराहचमरीवारणादयः । एते कूलेचराः प्रोक्ता यतः कूले चरन्त्यपाम् ॥ २९ ॥

आनूप जाति के जीवों में कूलेचर संज्ञक जीवों की गणना—भैसा, गैंडा, सूअर, चमरी (Yak-याक्) जाति की गाय और हाथी ये "कूलेचर" संज्ञक जीव कहलाते हैं ।

"कूलेचर" शब्द की निरुक्ति-जो जीव नदी आदि जलाशयों के तट पर चरने वाले होते हैं उन्हें "कूलेचर" कहा जाता है ॥ २९ ॥

* लुलायो=महिषः । गण्डः=खड्गः । चमरी=चमरपुच्छी गौः ॥ २९ ॥

यहां पर मूल में "लुलाय" से भैसा, "गण्ड" से गैंडा, चमरी से जिस गोजाति के पशु की पूंछ से चमर बनाया जाता है उस चमरी जाति का ग्रहण करना चाहिये ॥ २९ ॥

कूलेचरा मरुत्पित्तहरा वृष्या बलावहाः । मधुराः शीतलाः स्निग्धा मूत्रलाः श्लेष्मवर्धनाः ॥

कूलेचर संज्ञक जीवों का मांस—वात तथा पित्त को दूर करने वाला, वीर्यवर्धक, बलकारक, मधुर रसयुक्त, शीतल, स्निग्ध, मूत्रकारक तथा कफ को बढ़ाने वाला होता है ॥ ३० ॥

अथ प्लवाः (जलपर तैरने वाले पक्षी)। तेषां गणनां गुणांश्चाह

हंससारसकारण्डबकक्रौञ्चशरारिकाः ॥ ३१ ॥
नन्दीमुखी सकादम्बा बलाकाद्याः प्लवाः स्मृताः ।
प्लवन्ति सलिले यस्मादेते तस्मात्प्लवा स्मृताः ॥ ३२ ॥

प्लवसंज्ञक पक्षियों की गणना—हंस, सारस, कारण्ड (करंड), बगला, क्रौञ्च, शरारिका, नन्दीमुखी, कादम्ब, बगुली आदि ये सब "प्लव" संज्ञक हैं ।

प्लव शब्द की निरुक्ति-जो पक्षी जल पर तैरने वाले होते हैं वे "प्लव" कहे जाते हैं ॥ ३१-३२ ॥

* कारण्डः=कपर्दिकाक्षो बृहद्धंसभेदः । क्रौञ्चः=शरद्विहङ्गः स्यात्-"टेंक" इति लोके । शरारिका="सिन्धु" इति लोके ॥

स्थूला कठोरा वृत्ता च यस्याश्चञ्चूपरि स्थिता। गुटिका जम्बुसदृशी प्रोक्ता नन्दीमुखीति सा ॥

* कादम्बः="करवा" इति लोके । बलाका="बगुली" इति लोके ॥ ३१-३२ ॥

यहां पर मूल में—"कारण्ड" पद से 'कपर्दिकाक्ष", बड़े हंस का भेद, काले रंग के बड़े २ पैर वाले पक्षी; "क्रौञ्च" से शरद् ऋतु का पक्षी, "टेंक" नाम से प्रसिद्ध; "शरारिका" से "सिन्धू" नाम से लोक प्रसिद्ध पक्षी का ग्रहण करना चाहिये । "नन्दीमुखी" से उस पक्षीका ग्रहण करना चाहिये कि जिसके चोंच के ऊपर मोटी, कठोर, गोल, जामुन के फल के समान गुटिका हो और "कादम्ब" से लोक प्रसिद्ध करवा अर्थात् बत्तख का तथा "बलाका" से "बगुली" का बोध करना चाहिये ॥३१-३२॥

प्लवाः पित्तहराः स्निग्धा मधुरा गुरवो हिमाः । वातश्लेष्मप्रदाश्चापि बलशुक्रकराः सराः ॥३३॥

प्लव संज्ञक पक्षियों का मांस—पित्तनाशक, स्निग्ध, मधुररसयुक्त, गुरु, शीतल, वात तथा कफ को उत्पन्न करने वाला, बल तथा शुक्रवर्धक एवम् सारक होता है ॥ ३३ ॥

अथ कोशस्थाः (ढकनेके मध्यमें रहनेवाले प्राणी)। तेषां गणनां गुणांश्चाह

शङ्खः शङ्खनखश्चापि शुक्तिशम्बूककर्कटाः । जीवा एवंविधाश्चान्येकोशस्थाः परिकीर्त्तिताः॥३४॥

कोशस्थ (ढकने के मध्य में रहने वाले) प्राणियों की गणना—शंख, क्षुद्रशंख (छोटे शंख), सितुही, घोंघा, केकड़ा, (यहाँ पर सु० सू० ४६ अ० में कोशस्थ जीवों में "भल्लुक" का पाठ है अतः "कर्कट" पाठ ठीक नहीं मालूम पड़ता है अत एव "भल्लुक" से बड़ी "कौड़ी" का ग्रहण करना चाहिये) ये सब तथा इसी प्रकार के अन्य भी जो जीव हैं वे सब "कोशस्थ" कहलाते हैं ॥ ३४ ॥

***शङ्खनखः = क्षुद्रशङ्खः ॥ ३४ ॥**

यहाँ पर "शङ्खनख" से क्षुद्रशङ्ख अर्थात् "छोटे शङ्ख" का ग्रहण करना चाहिये ॥ ३४ ॥

कोशस्था मधुराः स्निग्धा वातपित्तहरा हिमाः । बृंहणा बहुवर्चस्का वृष्याश्च बलवर्द्धनाः ॥३५॥

कोशस्थ जीवों का मांस—मधुर रस युक्त, स्निग्ध, वात तथा पित्त नाशक, शीतल, बृंहण (रस रक्त-मांसादि वर्धक), अधिक मात्रा में मल निकालने वाला, वीर्यवर्धक तथा बलवर्धक होता है ॥३५॥

अथ पादिनः (पांवोंके प्राणी)। तेषां गणनां गुणाँश्चाह

कुम्भीरकूर्मनक्राश्च गोधामकरशङ्कवः । घण्टिकः शिशुमारश्चेत्याद्यः पादिनः स्मृताः ॥३६॥

पादी अर्थात् पांव वाले प्राणियों की गणना—कुम्भीर, कछुआ, नाक, गोह, मगर, शाकुचा, घड़ियाल, सूस इत्यादि जीव पादी (पांव वाले) कहलाते हैं ॥ ३६ ॥

***कुम्भीरो = मारको जलजन्तुः । कूर्मः = कच्छपः । नक्रः = "नाकः" इति लोके (सरय्वादिनदीषु बहुलः)। गोधा = "गोहि" जलजन्तुः । मकरः = "मगर" इति लोके । शङ्कुः = "शाकुचा" इति लोके । घण्टिकः = "घड़ियाल" इति लोके । शिशुमारः = "सूस" इति लोके ॥ ३६ ॥**

यहाँ पर मूल में—"कुम्भीर" से मारने वाला नाक के भेद का जीव विशेष; "कूर्म" से कछवा; "नक्र" के लोक प्रसिद्ध-नाक (सरयू आदि नदियों में अधिक रूप से रहने वाला); "गोधा" से गोह नामक जल का जीव; "मकर" से मगर नाम से प्रसिद्ध जीव; "शंकु" से शाकुचा नामक जीव; "घण्टिक" से घड़ियाल; "शिशुमार" से सूस नाम से प्रसिद्ध जीव समझना चाहिये ॥३६॥

पादिनोऽपि च ये ते तु कोशस्थानां गुणैः समाः ॥ ३६ ॥

पादी अर्थात् पांव वाले जीवों का मांस—गुणों में उपर्युक्त कोशस्थ जीवों के मांस के समान होता है ॥ ३७ ॥

अथ मत्स्याः (मछली)। तेषां नामानि गुणांश्चाह

मत्स्यो मीनो विसारश्च झषो वैसारिणोऽण्डजः । शकुली पृथुरोमा च स सुदर्शन इत्यपि ॥ रोहिताद्यास्तु ये जीवास्ते मत्स्याः परिकीर्त्तिताः । मत्स्याः स्निग्धोष्णमधुरा गुरवः कफपित्तलाः॥ वातघ्ना बृंहणा वृष्या रोचका बलवर्द्धनाः । मद्यव्यवायसक्तानां दीप्ताग्नीनाञ्च पूजिताः ॥४०॥

मछलियों के संस्कृत नाम—मत्स्य, मीन, विसार, झष, वैसारिण, अण्डज, शकुली, पृथुरोमा और सुदर्शन ये सब हैं।

मछलियों की गणना—रोहू आदि जो जीव हैं (जिनका आगे वर्णन आने वाला है) उनकी गणना मत्स्यों (मछलियों) के अन्तर्गत समझनी चाहिये।

मछली का मांस—स्निग्ध, उष्ण, मधुर रस युक्त, गुरु, कफ तथा पित्तजनक, वातनाशक, बृंहण, वृष्य, रोचक, बलवर्द्धक तथा मद्य (शराब) पीने तथा मैथुन करने में आसक्त चित्त वालों एवम् प्रदीप्त जठराग्नि वालों के लिये हितकर होता है ॥ ३८-४० ॥

अथ जङ्घालाः (जांघ के बल से चलने वाले प्राणी)। तत्र हरिणस्य मांसगुणानाह

हरिणः शीतलो बद्धविण्मूत्रो दीपनो लघुः । रसे पाके च मधुरः सुगन्धिः सन्निपातहा ॥

हरिन का मांस—शीतल, मल तथा मूत्र का विबन्ध करने वाला, अग्निदीपक, लघु, रस तथा विपाक में मधुर रस युक्त, अच्छे गन्ध वाला तथा सन्निपातनाशक होता है ॥ ४१ ॥

अथैणहरिणः (कालाहरिण)। तस्य मांसगुणानाह

एणः कषायो मधुरः पित्तास्रकफवातहृत् । संग्राही रोचनो बल्यो ज्वरप्रशमनः स्मृतः ॥२२॥

काले हरिण का मांस—कषाय तथा मधुर रस युक्त, संग्राही, रोचक, बलकारक एवम्—पित्त, रक्तविकार, कफ, वात तथा ज्वर का नाशक होता है ॥ ४२ ॥

अथ कुरङ्गः। तस्य मांसगुणानाह

कुरङ्गो बृंहणो बल्यः शीतलः पित्तहृद् गुरुः । मधुरो वातहृद् ग्राही किञ्चित्कफकरः स्मृतः ॥

कुरङ्गनामक मृग का मांस—बृंहण (रस—रक्तादिवर्धक), बलकारक, शीतल, पित्तनाशक, गुरु, मधुररसयुक्त, वातनाशक, ग्राही तथा किंचित् कफ करने वाला होता है ॥ ४३ ॥

अथ ऋष्यः (रोझ)। तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

ऋष्यो नीलाण्डकश्चापि गवयो रोझ इत्यपि । गवयो मधुरो बल्यः स्निग्धोष्णः कफपित्तलः ॥

ऋष्य (रोझ) नामक मृग के संस्कृत नाम—ऋष्य, नीलाण्डक, गवय, रोझ ये सब हैं। (यहाँ पर "रोझ" संस्कृत का नाम नहीं मालूम पड़ता है, ग्रन्थानुरोध से लिख दिया गया है)।

रोझ का मांस—मधुर रस युक्त, बलकारक, स्निग्ध, उष्ण, एवम् कफ तथा पित्त जनक होता है ॥ ४४ ॥

अथ पृषतः (चित्तलमृग)। तस्य मांसगुणानाह

पृषतस्तु भवेत्स्वादुर्ग्राहकः शीतलो लघुः । दीपनो रोचनः श्वासज्वरदोषत्रयास्रजित् ॥ ४५ ॥

चित्तल मृग का मांस—स्वादिष्ट, ग्राही, शीतल, लघु, अग्निदीपक, रोचक एवम्—श्वास (दमा), ज्वर, त्रिदोष तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥ ४५ ॥

अथ न्यङ्कुः (बारहसिंगा)। तस्य मांसगुणानाह

न्यङ्कुः स्वादुर्लघुर्बल्यो वृष्यो दोषत्रयापहः ॥ ४६ ॥

न्यङ्कुसंज्ञक मृग का मांस—स्वादिष्ट, लघु, बलकारक, वीर्यवर्धक तथा त्रिदोषनाशक होता है ॥ ४६ ॥

अथ साबरम् । तस्य मांसगुणानाह

साबरं पललं स्निग्धं शीतलं गुरु च स्मृतम् । रसे पाके च मधुरं कफदं रक्तपित्तहृत् ॥ ४७ ॥

सांबर मृग का मांस—स्निग्ध, शीतल, गुरु, रस तथा विपाक में मधुर रस युक्त, कफजनक एवम्—रक्तपित्त को दूर करने वाला होता है ॥ ४७ ॥

अथ राजीवः । तस्य मांसगुणानाह

राजीवस्तु गुणैर्ज्ञेयः पृषतेन समो जनैः ॥ ४८ ॥

राजीव मृग का मांस—गुणों में चित्तलमृग के मांस के समान ही होता है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ४८ ॥

अथ मुण्डी । तस्य मांसगुणानाह

मुण्डी तु ज्वरकासास्रक्षयश्वासापहो हिमः ॥ ४९ ॥

मुण्डी मृग का मांस—शीतल तथा ज्वर, खांसी, रक्तविकार, क्षय और श्वास को दूर करने वाला होता है ॥ ४९ ॥

अथ बिलेशयाः । तत्र शशः (खरगोश) । तस्य नामानि मांसगुणांश्चाह

लम्बकर्णः शशः शूली लोमकर्णो बिलेशयः । शशः शीतो लघुर्ग्राही रूक्षः स्वादुः सदा हितः । वह्निकृत्कफपित्तघ्नो वातसाधारणः स्मृतः । ज्वरातीसारशोषास्रश्वासामयहरश्च सः ॥ ५० ॥

बिलेशय संज्ञक जीवों में खरगोश के संस्कृत नाम—लम्बकर्ण, शश, शूली, लोमकर्ण तथा बिलेशय ये सब हैं ।

खरगोश का मांस—शीतल, लघु, ग्राही, रूक्ष, स्वादिष्ट, सभी ऋतुओं में हितकर, जठराग्नि को प्रज्वलित करने वाला, कफ तथा पित्त नाशक, साधारण वात कारक एवम्—ज्वर, अतीसार, शोष, रक्तविकार तथा दमा को दूर करने वाला होता है ॥ ५० ॥

अथ सेधा (सेह, साही)। तस्या नामानि मांसगुणांश्चाह

सेधा तु शल्यकः श्वाविरुच्यन्ते तद्गुणा अथ । शल्यकः श्वासकासास्रशोषदोषत्रयापहः ॥

साही के संस्कृत नाम—सेधा, शल्यक और श्वावित् ये सब हैं ।

साही का मांस—श्वास, खांसी, रक्तविकार, शोष तथा त्रिदोष को दूर करनेवाला होता है ॥ ५१ ॥

अथ पक्षिणः (पक्षी) । तेषां नामानि मांसगुणांश्चाह

पक्षी खगो विहङ्गश्च विहगश्च विहङ्गमः । शकुनिर्विः पतत्री च विष्किरो विकिरोऽण्डजः । धान्याङ्कुरचरा येऽत्र तेषां मांसं लघूत्तमम् । आनूपं बलकृन्मांसं स्निग्धं गुरुतरं स्मृतम् ॥५१॥

पक्षी के संस्कृत नाम—पक्षी, खग, विहङ्ग, विहग, विहङ्गम, शकुनि, वि, पतत्री, विष्किर, विकिर तथा अण्डज ये सब है ।

पक्षियों में जो धान के अङ्कुर चरने वाले हैं, उनका मांस—हल्का तथा उत्तम होता है । **आनूप अर्थात् जल के किनारे रहने वाले पक्षियों का मांस**—बलकारक, स्निग्ध तथा अत्यन्त गुरु होता है ॥ ५२ ॥

अथ तेषु विष्किरेषु वर्त्तकः (बटेर) । तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

वर्तीको वर्त्तकश्चित्रस्ततोऽन्या वर्त्तका स्मृता ।
वर्त्तकोऽग्निकरः शीतो ज्वरदोषत्रयापहः । सुरुच्यः शुक्रदो बल्यो वर्त्तकाऽल्पगुणा ततः॥५३॥

पूर्वोक्त विष्किर संज्ञक पक्षियों में वर्त्तक अर्थात् बटेर के संस्कृत नाम— वर्तीक, वर्त्तक तथा चित्र ये सब हैं । इससे अन्य प्रकार का एक बटेर होता है जिसे संस्कृत में "वर्त्तका" कहते हैं ।

बटेर का मांस—जठराग्निकारक, शीतल, सुरुचिकारक, शुक्र उत्पन्न करने वाला, बलकारक एवम्—ज्वर तथा त्रिदोष को नष्ट करने वाला होता है । और दूसरे प्रकार का जो बटेर है उसका मांस—पूर्वोक्त बटेर के मांस की अपेक्षा स्वल्प गुण वाला होता है ॥ ५३ ॥

अथ लावः (लवा)। तस्य मांसगुणसहितान् भेदान् मांसगुणाँश्चाह

लावा विष्करवर्गेषु ते चतुर्धा मता बुधैः ॥ ५४ ॥
पांशुलो गौरकोऽन्यस्तु पौण्ड्रको दर्भरस्तथा ।
लावा वह्निकराः स्निग्धा गरघ्ना ग्राहका हिताः ॥ ५५ ॥
पांशुलःश्लेष्मलस्तेषु वीर्योऽष्णोनिलनाशनः । गौरो लघुतरो रूक्षो वह्निकारी त्रिदोषजित् ॥५६॥
पौण्ड्रकः पित्तकृत्किञ्चिल्लघुर्वातकफापहः । दर्भरो रक्तपित्तघ्नो हृद्रामयहरो हिमः ॥५७॥

विष्किर वर्ग के पक्षियों में जो लवा है, उसके ४ भेद पण्डितोंने कहे हैं । उसमें प्रथम—पांशुल, दूसरा—गौरक, तीसरा—पौण्ड्रक एवं चौथा—दर्भर भेद है ।

लवा पक्षियों का मांस—अग्निकारक, स्निग्ध, विषनाशक, ग्राही तथा हितकर(पथ्य) होता है । **पांशुल संज्ञक लवा का मांस**—कफकारक, उष्णवीर्य तथा वातनाशक होता है । **गौरक संज्ञक लवा का मांस**—अत्यन्त लघु, रूक्ष, अग्नि वृद्धिकारक एवम् त्रिदोषनाशक होता है । **पौण्ड्रक संज्ञक लवा का मांस**—पित्तकारक, किञ्चित् लघु, वात तथा कफनाशक होता है । **दर्भर संज्ञक लवा का मांस**—रक्तपित्तनाशक, हृद्रोगको दूर करनेवाला तथा शीतल होता है ॥ ५४-५७ ॥

अथ वार्त्तीकः (बगेरा, बटेरा) । तस्य नामानि मांसगुणानाह

वर्त्तीको वर्तिचटको वार्त्तीकश्चैव स स्मृतः । वर्त्तीको मधुरः शीतो रूक्षश्च कफपित्तनुत्॥५८॥

बगेरा के संस्कृत नाम—वर्त्तीक, वर्त्तिचटक तथा वार्त्तीक ये सब हैं ।

बगेरा का मांस—मधुर रस युक्त, शीतल, रूक्ष एवम् कफ तथा पित्तनाशक होता है ॥ ५८ ॥

अथ कृष्णतित्तिरिर्गौरतित्तिरिश्च (तीतर) । तयोर्नामानि मांसगुणाँश्चाह

तित्तिरिः कृष्णवर्णः स्यात्स तु गौरः कपिञ्जलः । तित्तिरिर्बलदो ग्राही हिक्कादोषत्रयापहः ॥
श्वासकासज्वरहरस्तस्माद्गौरोऽधिको गुणैः ॥ ५९ ॥

तीतर के भेद और लक्षण—तीतर २ प्रकार का होता है । १ तीतर, २ गौर तीतर । काले रङ्ग का जो तीतर होता है उसे कृष्णतित्तिरि, या तित्तिरि, संस्कृत में कहते हैं । यदि वही तीतर गौर वर्ण का हो तो उसे संस्कृत में गौरतित्तिरि या कपिञ्जल कहते हैं । **तीतर का मांस**—बलदायक, ग्राही एवम्—हिचकी, त्रिदोष, श्वास, खांसी तथा ज्वर को दूर करने वाला होता है । **गौर तीतर का मांस**—तीतर के मांस की अपेक्षा अधिक गुणकारी होता है ॥ ५९ ॥

अथ चटकः (गौरैया, चिडा)। तस्य नामानि मांसगुणानाह

चटकः कलविङ्कः स्यात्कुलिङ्गः कालकण्ठकः ॥ ६० ॥

कुलिङ्गः शीतलः स्निग्धः स्वादुः शुक्रकफप्रदः। सन्निपातहरो वेश्मचटकश्चातिशुक्रलः ॥६१॥

गौरैया के संस्कृत नाम—चटक, कलविङ्क, कुलिङ्ग और कालकण्ठक ये सब हैं।

गौरैया का मांस—शीतल, स्निग्ध, स्वादिष्ट, शुक्र तथा कफ को उत्पन्न करने वाला एवम् सन्निपात को दूर करने वाला होता है। घर में रहने वाले गौरैया का मांस—अत्यन्त शुक्र को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ ६०-६१ ॥

अथ कुक्कुटो वनकुक्कुटश्च (मुरगा—वनमुरगा)। तयोर्नामानि मांसगुणाँश्चाह

कुक्कुटः कृकवाकुः स्यात्कालज्ञश्चरणायुधः। ताम्रचूडस्तथा दक्षो यामनादी शिखण्डिकः ॥६२॥

कुक्कुटो बृंहणः स्निग्धो वीर्योष्णोऽनिलहृद् गुरुः। चक्षुष्यः शुक्रकफकृद् बल्यो वृष्यः कषायकः॥

आरण्यकुक्कुटः स्निग्धो बृंहणः श्लेष्मलो गुरुः। वातपित्तक्षयवमिविषमज्वरनाशनः ॥ ६४ ॥

मुरगा का संस्कृत नाम—कुक्कुट, कृकवाकु, कालज्ञ, चरणायुध, ताम्रचूड, दक्ष, यामनादी तथा शिखण्डिक ये सब हैं। वनमुरगा का संस्कृत नाम—वनकुक्कुट तथा आरण्यकुक्कुट आदि हैं।

मुरगा का मांस—बृंहण (रस—रक्तादि वर्धक), स्निग्ध, उष्णवीर्य, वायु को नष्ट करने वाला, गुरु, नेत्रों के लिये हितकर, शुक्र तथा कफकारक, बलदायक, वृष्य (वीर्यवर्धक) तथा कषाय रसयुक्त होता है। **वनमुरगा का मांस**—स्निग्ध, बृंहण (रस रक्तादि वर्धक), कफजनक, गुरु, एवम् वात, पित्त, क्षय, वमन तथा विषमज्वर को दूर करने वाला होता है ॥ ६२-६४ ॥

अथ प्रतुदाः तत्र हारीतः (हरियल)। तस्य नामानि मांसगुणांश्चाह

हारीतो रक्तपीतः स्याद्धरितोऽपि स कथ्यते।

हारीतो रूक्ष उष्णश्च रक्तपित्तकफापहः। स्वेदस्वरकरः प्रोक्तः ईषद्वातकरश्च सः ॥ ६५ ॥

प्रतुद जाति के पक्षियों में हरियल के संस्कृत नाम—हारीत, रक्तपीत और हरित ये सब हैं।

हरियल का मांस—रूक्ष, उष्ण, रक्तपित्त तथा कफनाशक, स्वेद (पसीना) लाने वाला, स्वर को उत्तम करने वाला एवम् किञ्चित् वातकारक होता है ॥ ६५ ॥

अथ पाण्डुर्धवलपाण्डुश्च (पण्डुक)। तयोर्नामानि मांसगुणांश्चाह

पाण्डुस्तु द्विविधो ज्ञेयश्चित्रपक्षः कलध्वनिः ॥ ६६ ॥

द्वितीयो धवलः प्रोक्तः स कपोतः स्फुटध्वनिः। चित्रपक्षः कफहरो वातघ्नो ग्रहणीप्रणुत् ॥६७॥

धवलः पाण्डुरुद्दिष्टो रक्तपित्तहरो हिमः। रसे पाके च मधुरः संग्राही वातशान्तिकृत् ॥६८॥

पंडुक का भेद एवं नाम—पंडुक दो प्रकार का होता है, उसमें जो अनेक प्रकार के रङ्गों से युक्त पङ्खवाला तथा अस्फुट एवम् मधुर ध्वनि करने वाला पंडु होता है उसे संस्कृत में चित्रपक्ष, पाण्डु तथा कलध्वनि कहते हैं। दूसरा पंडु जो (सफेद) है उसे धवल पाण्डु संस्कृत में कहते हैं। यह स्फुट शब्द करने वाला कबूतर है।

चित्रपक्ष का मांस—कफ को दूर करने वाला, वातनाशक एवम् ग्रहणी रोग को नष्ट करने वाला होता है। **धवलपाण्डु**—रक्तपित्त को दूर करने वाला, शीतल, रस तथा विपाक में मधुर रसयुक्त, संग्राही एवम् वायु को शमन करने वाला होता है ॥ ६६-६८ ॥

अथ मयूरः (मोर)। तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

मयूरश्चन्द्रकी केकी मेघरावो भुजङ्गभुक्। शिखी शिखावलो बर्हीं शिखण्डी नीलकण्ठकः ॥

शुक्लापाङ्गः कलापी च मेघनादानुलास्यपि। रसे पाके च मधुरः संग्राही वातशान्तिकृत् ॥७०॥

मोर के संस्कृत नाम—मयूर, चन्द्रकी, केकी, मेघराव, भुजङ्गभुक्, शिखी, शिखावल, बर्ही, शिखण्डी, नीलकण्ठक, शुक्लापाङ्ग, कलापी तथा मेघनादानुलासी ये सब हैं।

मोर का मांस—रस तथा विपाक में मधुर रसयुक्त, संग्राही तथा वायु को शमन करने वाला होता है ॥ ६९-७० ॥

अथ पारावतः (कबूतर, परेवा)। तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

पारावतः कलरवः कपोतो रक्तलोचनः।

पारावतो गुरुः स्निग्धो रक्तपित्तानिलापहः। संग्राही शीतलस्तज्ज्ञैः कथितो वीर्यवर्द्धनः ॥७१॥

परेवा के संस्कृत नाम—पारावत, कलरव, कपोत तथा रक्तलोचन ये सब हैं।

परेवा का मांस—गुरु, स्निग्ध, रक्तपित्त तथा वायुनाशक, संग्राही, शीतल तथा वीर्य को बढ़ाने वाला होता है, ऐसा द्रव्य गुण के विद्वानों ने कहा है ॥ ७१ ॥

अथ पक्ष्यण्डानि (पक्षियोंके अण्डे)। तेषां गुणानाह

नातिस्निग्धानि वृष्याणि स्वादुपाकरसानि च।
वातघ्नान्यतिशुक्राणि गुरूण्यण्डानि पक्षिणाम् ॥

पक्षियों के अण्डे—अत्यन्त स्निग्ध नहीं (किञ्चित् स्निग्ध) होते हैं और वृष्य (वीर्यवर्धक), विपाक तथा रस में मधुर रस युक्त, वातनाशक तथा अत्यन्त शुक्र को उत्पन्न करने वाले होते हैं ॥ ७२ ॥

अथ ग्राम्याः। तत्र छागः (बकरा)। तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

छागलो बर्करश्छागो बस्तोऽजश्छेलकः स्तुभः ॥ ७३ ॥
अजा छागी स्तुभा चापि छेलिका च गलस्तनी।
छागमांसं लघु स्निग्धं स्वादुपाकं त्रिदोषनुत् ॥ ७४ ॥

नातिशीतमदाहि स्यात्स्वादु पीनसनाशनम्। परं बलकरं रुच्यं बृंहणं वीर्यवर्द्धनम् ॥ ७५ ॥

ग्राम्य पशुओं में बकरा के संस्कृत नाम—छागल, बर्कर, छाग, बस्त, अज, छेलक तथा स्तुभ ये सब हैं। बकरी के संस्कृत नाम—अजा, छागी तथा स्तुभा ये सब हैं। जिस के गले मे स्तन के समान मांस लटकता हो उस बकरी को संस्कृत में—गलस्तनी तथा छेलिका कहते हैं।

बकरे का मांस—लघु, स्निग्ध, विपाक में मधुर रस युक्त, त्रिदोषनाशक, अत्यन्त शीतल नहीं (किञ्चित् शीतल), दाह न पैदा करने वाला, स्वादिष्ट, पीनस रोग को दूर करने वाला, अत्यन्त बलकारक, रोचक, बृंहण तथा वीर्यवर्धक होता है ॥ ७३-७५ ॥

अथाप्रसूताजाया बालकाजासुतस्य च मांसगुणानाह

अजायास्त्वप्रसूताया मांसं पीनसनाशनम्। शुष्ककासेऽरुचौ शोषे हितमग्नेश्च दीपनम् ॥७६॥

अजासुतस्य बालस्य मांसं लघुतरं स्मृतम्। हृद्यं ज्वरहरं श्रेष्ठं सुखदं बलदं भृशम् ॥ ७७ ॥

बिना ब्याई हुई बकरी का मांस—पीनस रोगनाशक, सूखी खांसी, अरुचि तथा शोष रोग में हितकारक एवम् अग्निदीपक होता है।

बकरी के छोटे बच्चों का मांस—अत्यन्त लघु, हृदय को हितकर, ज्वरनाशक, अत्यन्त सुख तथा बल को देने वाला अतएव श्रेष्ठ होता है ॥ ७६-७७ ॥

अथ निष्कासिताण्ड-वृद्ध-व्याधिमृतानां छागानां मांसस्य छागमुण्डस्य च गुणानाह

मांसं निष्कासिताण्डस्य छागस्य कफकृद् गुरु। स्रोतःशुद्धिकरं बल्यं मांसदं वातपित्तनुत्॥७८॥
वृद्धस्य वातलं रूक्षं तथा व्याधिमृतस्य च। ऊर्ध्वजत्रुविकारघ्नं छागमुण्डं रुचिप्रदम् ॥७९॥

जिस बकरे के अण्ड-कोश निकाल लिये गये हैं उसके अर्थात् बधिया किये हुए बकरे का **मांस**—कफकारक, गुरु, स्रोतों की शुद्धि करने वाला, बलकारक, मांसवर्धक, वात तथा पित्त नाशक होता है। **बुड्ढे बकरे का मांस**—वायु को उत्पन्न करने वाला तथा रूक्ष होता है। **रोग से पीड़ित हो कर मरे हुए बकरे का मांस**—भी वात कारक तथा रूक्ष होता है। **बकरे का मुण्ड (शिर)**—जत्रु [कांख तथा कन्धे के सन्धि स्थान] के ऊपर भाग में होने वाले रोगों को दूर करने वाला तथा रुचिजनक होता है ॥ ७८-७९ ॥

अथ मेषः (मेढा)। तस्य नामान्यण्डविहीनस्य तस्य च मांसगुणाँश्चाह

मेढ्रो मेढो हुडो मेष उरणोऽप्येडकोऽपि च। अविर्वृष्णिस्तथोर्णायुः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥८०॥
मेषस्य मांसं पुष्टौ स्यात्पित्तश्लेष्मकरं गुरु। तस्यैवाण्डविहीनस्य मांसं किञ्चिल्लघु स्मृतम् ॥

मेढा के संस्कृत नाम—मेढ्र, मेढ, हुड, मेष, उरण, एडक, अवि, वृष्णि और ऊर्णायु ये सब हैं।

मेढे का मांस—पुष्टि के लिये उत्तम, पित्त तथा कफ को उत्पन्न करने वाला एवम् गुरु होता है। अण्डकोश निकाले हुये (बधिया किये हुये) **मेढे का मांस**—किञ्चित् लघु होता है और शेष गुण पूर्वोक्त होते हैं ॥ ८०-८१ ॥

अथैडकः। (दुम्बा मेढा)। तस्य नामानि तद्भेदस्य च मांसगुणाँश्चाह

एडकः पृथुशृङ्गः स्यान्मेदःपुच्छस्तु दुम्बकः। एडकस्य पलं ज्ञेयं मेषामिषसमं गुणैः ॥ ८२ ॥
मेदःपुच्छोद्भवं मांसं हृद्यं वृष्यं श्रमापहम्। पित्तश्लेष्मकरं किञ्चिद्वातव्याधिविनाशनम् ॥८३॥

एडक अर्थात् मोटी सींग वाले मेढा का सं० नाम—एडक और पृथुशृङ्ग है। इसकी सींग बड़ी मोटी होती है। दुम्बा मेढ़ा का संस्कृत नाम—मेदःपुच्छ तथा दुम्बक है। इसकी पूँछ मेद बढ़ जाने से बड़ी चौड़ी हो जाती है। **एडक संज्ञक मेढे का मांस**—गुणों में पूर्वोक्त मेढ़े के मांस के समान ही समझना चाहिये। **दुम्बा मेढे का मांस**—हृदय को हितकर, वीर्यवर्धक, श्रम को दूर करने वाला, पित्त तथा कफ कारक एवम् किञ्चित् वातरोग को नष्ट करने वाला होता है ॥ ८२-८३ ॥

अथ वृषभः (बैल)। तस्य नामानि मांसगुणानाह

बलीवर्दस्तु वृषभः ऋषभश्च तथा वृषः। अनड्वान्सौरभेयोऽपि गौरुक्षा भद्र इत्यपि ॥ ८४ ॥
सुरभिः सौरभेयी च माहेयी गौरुदाहृता। गोमांसं सुगुरु स्निग्धं पित्तश्लेष्मविवर्द्धनम्।
बृंहणं वातहृत् बल्यमपथ्यं पीनसप्रणुत् ॥ ८५ ॥

बैल के संस्कृत नाम—बलीवर्द, वृषभ, ऋषभ, वृष, अनड्वान् (अनडुह्), सौरभेय, गौः (गो), उक्षा (उक्षन्) तथा भद्र ये सब हैं। गौ के संस्कृत नाम—सुरभि, सौरभेयी, माहेयी तथा गौः (गो) ये सब कहे हुये हैं।

गोमांस—अत्यन्त गुरु, स्निग्ध, पित्त तथा कफ को बढ़ानेवाला, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), वात को दूर करने वाला, बलकारक, अस्वस्थों के लिये अपथ्य तथा पीनस रोग नाशक होता है ॥ ८४-८५ ॥

अथाश्वः (घोड़ा)। तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

घोटकेऽप्यश्वतुरगास्तुरङ्गमाश्च तुरङ्गाः। वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः ॥ ८६ ॥
अश्वमांसन्तु तुवरं वह्निकृत्कफपित्तलम्। वातहृद् बृंहणं बल्यं चक्षुष्यं मधुरं लघु ॥ ८७ ॥

घोड़े के संस्कृत नाम—घोटक, अश्व, तुरग, तुरङ्ग, तुरङ्गम, वाजि, वाह, अर्व (अर्वन्), गन्धर्व, हय, सैन्धव तथा सप्ति ये सब हैं।

घोड़े का मांस—कषाय तथा मधुर रस युक्त, अग्निकारक, कफ तथा पित्त को उत्पन्न करने वाला, वातनाशक, बृंहण (रस—रक्तादि वर्धक), बलकारक, नेत्रों के लिये हितकर तथा लघु होता है ॥ ८६-८७ ॥

अथ कूलेचराः। तत्रः महिषः (भैंसा)। तस्य नामानि मांसगुणांश्चाह

महिषो घोटकारिः स्यात्कासरश्च रजस्वलः ॥ ८८ ॥
पीनस्कन्धः कृष्णकायो लुलायो यमवाहनः। महिषस्यामिषं स्वादु स्निग्धोष्णं वातनाशनम्॥
निद्राशुक्रप्रदं बल्यं तनुदार्ढ्यकरं गुरु। वृष्यञ्च सृष्टविण्मूत्रं वातपित्तास्रनाशनम् ॥ ९० ॥

कूलेचर संज्ञक पशुओं में भैंसा के संस्कृत नाम—महिष, घोटकारि, कासर, रजस्वल, पीनस्कन्ध, कृष्णकाय, लुलाय और यमवाहन ये सब हैं॥

भैंसे का मांस—स्वादिष्ट, स्निग्ध, उष्ण, वातनाशक, निद्रा तथा शुक्र को उत्पन्न करने वाला, बलकारक, शरीर को पुष्ट करने वाला, गुरु, वीर्यवर्धक, मूत्र तथा मल को निकालने वाला एवम् वातपित्त तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥ ८८-९० ॥

अथ मण्डूकः (मेंढक)। तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

मण्डूकः प्लवगो भेको वर्षाभूर्दर्दुरो हरिः। मण्डूकः श्लेष्मलो नातिपित्तलो बलकारकः ॥९१॥

मेढक के संस्कृत नाम—मण्डूक, प्लवग, भेक, वर्षाभू, दर्दुर तथा हरि ये सब हैं।

मेढक का मांस—कफ पैदा करने वाला, अत्यन्त पित्तकारक नहीं (थोड़ा पित्तकारक), तथा बलकारक होता है ॥ ९१ ॥

अथ पादिनः। तत्र कच्छपः (कछुआ)। तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

कच्छपो गूढपात्कूर्मः कमठो दृढपृष्ठकः। कच्छपो बलदो वातपित्तनुत्पुंस्त्वकारकः ॥ ९२ ॥

कूलेचरों के अन्तर्गत पादी अर्थात् पांववाले जीवों में कछुये का संस्कृत नाम—कच्छप, गूढपाद, कूर्म, कमठ, तथा दृढपृष्ठक ये सब हैं।

कछुये का मांस—बलदायक, वात-पित्त को दूर करने वाला एवम् पुंस्त्व (मैथुनशक्ति) बढ़ाने वाला है ॥ ९२ ॥

अथ विशेषाः । तत्र सद्योहतस्य मांसगुणानाह

सद्योहतस्य मांसं स्याद्व्याधिघाति यथाऽमृतम् । वयस्यं बृंहणं सात्म्यमन्यथा तद् विवर्जयेत्॥

मांस विषयक विशेष बातों में तत्काल मारे गये जीवों के मांस का गुण—अमृत के समान व्याधि को दूर करने वाला, आयु को स्थिर करने वाला, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक) तथा हितकर होता है। यदि तत्काल का मारा हुआ जीव न हो तो उसका मांस नहीं खाना चाहिये ॥ ९३ ॥

अथ स्वयं मृतस्य मांसगुणानाह

स्वयं मृतस्य चाबल्यमतीसारकरं गुरु ॥ ९४ ॥

स्वयं मरे हुये जीवों का मांस—बलकारक नहीं होता है अर्थात् निर्बलता-कारक, अतीसार को उत्पन्न करने वाला तथा गुरु होता है ॥ ९४ ॥

अथ वृद्धबालयोर्मांसगुणानाह

वृद्धानां दोषलं मांसं बालानां बलदं लघु ॥ ९५ ॥

बुड्ढे जीवों का मांस—दोषों को बढ़ाने वाला होता है। **बच्चे जीवों का मांस**—बलकारक तथा लघु होता है ॥ ९५ ॥

अथ सर्पव्यालदष्टयोर्मांसयोः शुष्कमांसस्य च गुणानाह

सर्पदष्टस्य मांसञ्च शुष्कमांस त्रिदोषकृत् । त्रिदोषकृद् व्यालदष्टं शुष्कं शूलकरं परम् ॥ ९६ ॥

सर्प के काटने से मरे हुए जीवों का मांस—त्रिदोषकारक तथा उसी का सूखा मांस भी त्रिदोषकारक होता है। और हिंस्र जीव व्याघ्रादिकों से काटे हुये जीवों का मांस भी त्रिदोषकारक ही होता है किन्तु-सूखा मांस अत्यन्त शूलकारक होता है ॥ ९६ ॥

अथ विषादिमृतस्य मांसगुणानाह

विषाम्बुरुङ्मृतस्यैतन्मृत्युदोषरुजाकरम् ।
क्लिन्नमुत्क्लेशजनकं कृशं वातप्रकोपणम् । तोयपूर्णं शिराराजं मृतमप्सु त्रिदोषकृत् ॥ २७ ॥

विष से, जल में डूब कर अथवा रोग से पीड़ित होकर मरे जीवों का मांस—मृत्युदायक, दोषकारक तथा रोगों को उत्पन्न करने वाला होता है। **क्लिन्न (सड़ा गला) मांस**—उत्क्लेश (वमन की इच्छा) को उत्पन्न करने वाला होता है। **कृश (दुर्बल) जीवों का मांस**—वायु को प्रकुपित करने वाला होता है। **जल में मरे हुये जीवों का मांस**—त्रिदोषकारक होता है क्योंकि उसकी जितनी शिरायें (नाड़ियां) होती हैं वे सब जल से पूर्ण रहती हैं ॥ ९७ ॥

अथ जात्यादिपरत्वेन मांसस्य गुणानाह

विहङ्गेषु पुमाञ्छ्रेष्ठः स्त्री चतुष्पदजातिषु ।
परार्द्धं लघु पुंसां स्यात्स्त्रीणां पूर्वार्द्धमादिशेत् । देहमध्यं गुरुप्रायं सर्वेषां प्राणिनां स्मृतम् ॥
पक्षक्षेपाद्विहङ्गानां तदेव लघु कथ्यते । गुरूण्यण्डानि सर्वेषां गुर्वी ग्रीवा च पक्षिणाम् ॥९९॥

उरःस्कन्धोदरं कुक्षी पादौ पाणी कटी तथा । पृष्ठत्वग्यकृदन्त्राणि गुरूणीह यथोत्तरम् ॥१००॥
लघुवातकरं मांसंखगानां धान्यचारिणाम् । मत्स्याशिनां पित्तकरं वातघ्नं गुरु कीर्त्तितम्॥१०१॥
फलाशिनां श्लेष्मकरं लघु रूक्षमुदीरितम् । बृंहणं गुरु वातघ्नं तेषामेव पलाशिनाम् ॥१०२॥
तुल्यजातिष्वल्पदेहा महादेहेषु पूजिताः । अल्पदेहेषु शस्यन्ते तथैव स्थूलदेहिनाः ॥१०३ ॥

जीवों के जाति आदि की प्रधानता से मांस का गुण—जाति की प्रधानता-पक्षियों में पुरुष जाति के जीवों का मांस-श्रेष्ठ होता है तथा चौपायों (बकरा आदि) में स्त्री जाति के जीवों का मांस-श्रेष्ठ होता है। अङ्ग की प्रधानता-पुरुष संज्ञक जीवों के शरीर में नीचे भाग का मांस-लघु होता है। तथा स्त्रीसंज्ञक जीवों के ऊपरी भाग का मांस लघु होता है। सम्पूर्ण जीवों के शरीर में मध्य भाग का मांस—प्रायः करके गुरु होता है किन्तु पक्षियों का वही (मध्यभाग का मांस) पंखों के बराबर इधर उधर हिलाने से लघु होता है। सम्पूर्ण पक्षियों के अण्डे तथा गर्दन गुरु होते हैं। छाती, कन्धा, उदर, दोनों कोख, दोनों पैर, दोनों हाथ, कमर, पीठ, त्वचा, यकृत (जिगर) और आंत ये सब एक दूसरे की अपेक्षा उत्तरोत्तर गुरु होते हैं। भोजन की प्रधानता—धान्य भोजन करने वाले पक्षियों का मांस—लघु तथा वातकारक होता है। मछली भोजन करने वाले पक्षियों का मांस—पित्तकारक, वातनाशक तथा गुरु होता है। फलभोजी पक्षियों का मांस—कफ कारक, लघु तथा रूक्ष होता है। मांसभोजी पक्षियों का मांस—बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), गुरु तथा वातनाशक होता है।

सजातीयों में शरीर की छुटाई बड़ाई की प्रधानता—समान जाति वाले जीवों में यदि में वे बड़े शरीर वाले हैं तो उनमें जो अपेक्षाकृत छोटे शरीरवाले हैं उनका मांस श्रेष्ठ होता है। एवम्—समान जाति के छोटे शरीरवाले जीवों में जो अपेक्षाकृत स्थूल शरीर वाले हैं उनका मांस—श्रेष्ठ होता है ॥ ९८-१०३ ॥

अथ मत्स्याः । तत्र रोहितः (रोहू) । तस्य लक्षणं मांसमुण्डयोर्गुणांश्चाह

रक्तोदरो रक्तमुखो रक्ताक्षो रक्तपक्षतिः । कृष्णपुच्छो झषः श्रेष्ठो रोहितः कथितो बुधैः ॥१०४॥
रोहितः सर्वमत्स्यानां वरो वृष्योऽर्दितार्त्तिजित् ।
कषायानुरसः स्वादुर्वातघ्नो नातिपित्तकृत् । ऊर्ध्वजत्रुगतान् रोगान् हन्याद्रोहितमुण्डकम् ॥

मछलियों में रोहू मछली के लक्षण—जिस मछली का उदर, मुख, नेत्र तथा अगल बगल के छोटे छोटे पंख ये सब रक्तवर्ण के हों एवम्—पूंछ काली हो तो पण्डित लोग उसे "रोहू मछली" कहते हैं।

सम्पूर्ण मछलियों में रोहू नामक मछली ही श्रेष्ठ होती है। **रोहू का मांस**-वीर्यवर्धक अर्दित-वात (मुंह का लकवा) को दूर करने वाला, आरम्भ में स्वादिष्ट, अन्त में कषायरसयुक्त, वात-नाशक और अत्यन्त पित्तकारक नहीं (किञ्चित् पित्तकारक) होता है। **रोहू का मुण्ड**—जत्रु (कन्धा तथा काँख की सन्धि) से ऊपर के भागों में होने वाले रोगों को दूर करने वाला होता है ॥ १०४-१०५ ॥

अथ शिलीन्ध्रः । तस्य मांसगुणानाह

शिलीन्ध्रः श्लेष्मलो बल्यो विपाके मधुरो गुरुः । वातपित्तहरो हृद्यः आमवातकरश्च सः ॥

शिलीन्ध्र मछली का मांस—कफकारक, बलदायक, विपाक में मधुर रसयुक्त, गुरु, वात-पित्तनाशक, हृदय के लिये हितकर तथा आमवात कारक होता है ॥ १०६ ॥

अथ भाकुरः । तस्य मांसगुणानाह

भाकुरो मधुरः शीतो वृष्यः श्लेष्मकरो गुरुः । विष्टम्भजनकश्चापि रक्तपित्तहरः स्मृतः ॥१०७॥

भाकुर मछली का मांस—मधुररसयुक्त, शीतल, वीर्यवर्धक, कफकारक, गुरु, विष्टम्भ उत्पन्न करने वाला तथा रक्तपित्त नाशक होता है ॥ १०७ ॥

अथ मोचिका । तस्याः मांसगुणानाह

मोचिका वातहृद् बल्या बृंहणी मधुरा गुरुः । पित्तहृत्कफकृद्रुच्या वृष्या दीप्ताग्नये हिता ॥

मोचिका मछली का मांस—वात को दूर करनेवाला, बलकारक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), मधुर रसयुक्त, गुरु, पित्तनाशक, कफकारक, रोचक, वीर्यवर्धक एवम् दीप्त अग्निवाले पुरुषों के लिये हितकर होता है ॥ १०८ ॥

अथ पाठीनः । तस्य मांसगुणानाह

पाठीनः श्लेष्मलो बल्यो निद्रालुः पिशिताशनः । दूषयेद्रुधिरं पित्तं कुष्ठरोगं करोति च ॥

पाठीन मछली का मांस—कफकारक, बलदायक, निद्रा को लाने वाला होता है। यह मछली मांस खाने वाली होती है अतः इसका मांस रुधिर को दूषित करने वाला एवम् पित्त तथा कुष्ठ रोग को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ १०९ ॥

अथ शृङ्गी (सींगी)। तस्या मांसगुणानाह

शृङ्गी तु वातशमनी स्निग्धा श्लेष्मप्रकोपणी । रसे तिक्ता कषाया च लघ्वी रुच्या स्मृताबुधैः॥

शृङ्गी मछली का मांस—वायु को शमन करने वाला, स्निग्ध, कफ को प्रकुपित करने वाला, तिक्त तथा कषाय रस युक्त, लघु तथा रुचिकारक होता है ॥ ११० ॥

अथेल्लीसः (हिलूसा) । तस्य मांसगुणानाह

इल्लीसो मधुरः स्निग्धो रोचनो वह्निवर्द्धनः । पित्तहृत्कफकृत्किञ्चिल्लघुर्वृष्योऽनिलापहः ॥

हिलूसा मछली का मांस—मधुर रस युक्त, स्निग्ध, रोचक, अग्निवर्धक, पित्त को दूर करने वाला, कफकारक, किंचित् लघु, वीर्यवर्धक तथा वायुनाशक होता है ॥ १११ ॥

अथ शष्कुली (सौरी) । तस्या मांसगुणानाह

शष्कुली ग्राहिणी हृद्या मधुरा तुवरा स्मृता ॥ ११२ ॥

सौरी मछली का मांस—ग्राही, हृदय के लिये हितकर और मधुर तथा कषाय रस युक्त होता है ॥ ११२ ॥

अथ गर्गरः (गर्गरा) । तस्य मांसगुणानाह

गर्गरः पित्तलः किञ्चिद्वातजित्कफकोपनः ॥ ११३ ॥

गर्गरा मछली का मांस—पित्तजनक, किञ्चित् वातनाशक, एवम् कफ को कुपित करने वाला होता है ॥ ११३ ॥

अथ कविका । तस्या मांसगुणानाह

कविका मधुरा स्निग्धा कफघ्नी रुचिकारिणी ।
कञ्चित्पित्तकरी वातनाशिनी वह्निवर्द्धिनी ॥ ११४ ॥

कविका मछली का मांस—मधुर रस युक्त, स्निग्ध, कफनाशक, रुचिकारक, किञ्चित् पित्तकारक, वातनाशक एवम् जठराग्नि को बढ़ाने वाला होता है ॥ ११४ ॥

अथ वर्मिमत्स्यः (वर्मी) । तस्य मांसगुणानाह

वर्मिमत्स्यो हरेद्वातं पित्तं रुचिकरो लघुः ॥ ११५ ॥

वर्मी मछली का मांस—वात तथा पित्त को दूर करने वाला, रुचिकारक एवम् लघु होता है ॥ ११५ ॥

अथ दण्डमत्स्यः । तस्य मांसगुणानाह

दण्डमत्स्यो रसे तिक्तः पित्तरक्तं कफं हरेत् । वातसाधारणः प्रोक्तः शुक्रलो बलवर्द्धनः ॥११६॥

दण्ड मछली का मांस—तिक्त रस युक्त, पित्तरक्त तथा कफ को दूर करने वाला, वायु के लिये साधारण, शुक्रजनक तथा बलवर्द्धक होता है ॥ ११६ ॥

अथैरङ्गः । तस्य मांसगुणानाह

एरङ्गो मधुरः स्निग्धो विष्टम्भी शीतलो लघुः ॥ ११७ ॥

एरङ्ग मछली का मांस—मधुर रस युक्त, स्निग्ध, विष्टम्भ करने वाला, शीतल तथा लघु होता है ॥ ११७ ॥

अथ महाशफरः (पपता) । तस्य मांसगुणानाह

महाशफरसंज्ञस्तु तिक्तः पित्तकफापहः । शिशिरो मधुरो रुच्यो वातसाधारणः स्मृतः ॥११८॥

महाशफरी मछली का मांस—तिक्त तथा मधुर रसयुक्त, पित्त तथा कफनाशक, शीतल, रुचिकारक एवम् वात के लिये साधारण होता है ॥ ११८ ॥

अथ गरघ्नी । तस्या मांसगुणानाह

गरघ्नी मधुरा तिक्ता तुवरा वातपित्तहृत् । कफघ्नी रुचिकृल्लघ्वी दीपनी बलवीर्यकृत् ॥११९॥

गरघ्नी मछली का मांस—मधुर-तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, वात पित्त तथा कफ नाशक, रुचिकारक, लघु, अग्निदीपक एवम् बल तथा वीर्य को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ ११९ ॥

अथ मद्गुरः । तस्य मांसगुणानाह

मद्गुरो वातहृद् बल्यो वृष्यः कफकरो लघुः ॥ १२० ॥

मद्गुर मछली का मांस—वातनाशक, बलकारक, वीर्यवर्धक, कफकारक एवम् लघु होता है ॥ १२० ॥

अथ सपादमत्स्यः (टेंगरा)। तस्य मांसगुणानाह

सपादमत्स्यो मेधाकृन्मेदःक्षयकरश्च सः। वातपित्तकरश्चापि रुचिकृत्परमो मतः ॥१२१॥

सपाद मछली का मांस—मेधा शक्ति को बढ़ाने वाला, मेदोवृद्धि को दूर करनेवाला, वात तथा पित्तकारक एवं रुचि को अत्यन्त उत्पन्न करनेवाला होता है ॥ १२१ ॥

अथ प्रोष्ठी। तस्या मांसगुणानाह

प्रोष्ठी तिक्ता कटुः स्वादुः शुक्रदा कफवातजित्।
स्निग्धाऽऽस्यकण्ठरोगघ्नी रोचनी च लघुः स्मृता ॥ १२२ ॥

प्रोष्ठी मछली का मांस—तिक्त तथा कटुरस युक्त, स्वादिष्ट, शुक्रजनक, कफ तथा वात नाशक, स्निग्ध, मुख और कण्ठ सम्बन्धी रोगों को दूर करने वाला, रोचक एवम् लघु होता है ॥

अथ क्षुद्रमत्स्याः। तेषां मांसगुणानाह

क्षुद्रमत्स्याः स्वादुरसा दोषत्रयविनाशनाः। लघुपाका रुचिकरा बलदास्ते हिता मताः ॥

छोटी मछलियों का मांस—स्वादिष्ट, त्रिदोष नाशक, विपाक में लघु, रुचिकारक तथा बलदायक होता है ॥ १२३ ॥

अथातिक्षुद्रमत्स्याः। तेषां मांसगुणानाह

अतिसूक्ष्माः पुंस्त्वहरा रुच्याः कासानिलापहाः ॥ १२४ ॥

अत्यन्त छोटी मछलियों का मांस—पुंस्त्व (रमण करने की शक्ति) को दूर करनेवाला, रुचिकारक एवम् खांसी तथा वायु को दूर करने वाला होता है ॥ १२४ ॥

अथ मत्स्यगर्भः (मत्स्याण्डः)। तस्य गुणानाह

मत्स्यगर्भो भृशं वृष्यः स्निग्धः पुष्टिकरो लघुः। कफमेदःप्रदो बल्यो ग्लानिकृन्मेहनाशनः ॥

मछली के अण्डे—अत्यन्त वीर्यवर्धक, स्निग्ध, पुष्टिकारक, लघु, कफ तथा मेदा को बढ़ानेवाले, बलकारक, ग्लानि उत्पन्न करनेवाले एवम् प्रमेह को नष्ट करने वाले होते हैं ॥ १२५ ॥

अथ शुष्कमत्स्याः (सूखी मछली)। तेषां मांसगुणानाह

शुष्कमत्स्या नवा बल्या दुर्जरा विड्विबन्धिनः ॥ १२६ ॥

सूखी मछलियां—ये यदि नई हों तो बलकारक, देर में हजम होनेवाली, एवम् मल का विबन्ध करने वाली होती हैं ॥ १२६ ॥

अथ दग्धमत्स्यः (भूंजी मछली)। तस्य मांसगुणानाह

दग्धमत्स्यो गुणैः श्रेष्ठः पुष्टिकृद् बलवर्द्धनः ॥ १२७ ॥

भूंजी मछली—गुणों में श्रेष्ठ, पुष्टिकारक तथा बल को बढ़ाने वाली होती है ॥ १२७ ॥

अथ कूपजादिमत्स्याः। तेषां मांसगुणानाह

कौपमत्स्याः शुक्रमूत्रकुष्ठश्लेष्मविवर्द्धनाः। सरोजा मधुराः स्निग्धा बल्या वातविनाशनाः ॥
नादेया बृंहणा मत्स्या गुरवोऽनिलनाशनाः। रक्तपित्तकरा वृष्याः स्निग्धोष्णाः स्वल्पवर्चसः ॥

चौण्ड्याः पित्तकराः स्निग्धा मधुरा लघवो हिमाः। तडागा गुरवो वृष्याः शीतला मलमूत्रदाः ॥
ताडागवन्निर्झरजा बलायुर्मतिदृष्टिदाः ॥ १२८ ॥

कुयें में रहने वाली मछलियों का मांस—शुक्र, मूत्र, कुष्ठ तथा कफ को बढ़ानेवाला होता है।

सरोवर में रहनेवाली मछलियों का मांस—मधुर रसयुक्त, स्निग्ध, बलकारक तथा वायु को नष्ट करने वाला होता है।

नदियों में रहने वाली मछलियों का मांस—बृंहण (रस—रक्तादिवर्धक), गुरु, वातनाशक, रक्तपित्तकारक, वीर्यवर्धक, स्निग्ध, उष्ण एवं स्वल्प मात्रा में मल को निकालने वाला होता है।

चौंढा या हौज में रहने वाली मछलियों का मांस—पित्तकारक, स्निग्ध, मधुर रसयुक्त, लघु तथा शीतल होता है।

तालाब की मछलियों का मांस—गुरु, वीर्यवर्धक, शीतल, मल तथा मूत्र को निकालने वाला होता है।

झरनों में रहनेवाली मछलियों का मांस—गुणों में तालाबों में रहनेवाली मछलियों के समान ही होता है किन्तु विशेष करके बल, आयु, बुद्धि तथा दृष्टि शक्ति को बढ़ानेवाला होता है ॥ १२४ ॥

अथर्तुविशेषे मत्स्यविशेषाणां मांसगुणानाह

हेमन्ते कूपजा मत्स्याः शिशिरे सारसा हिताः। वसन्ते ते तु नादेया ग्रीष्मे चौण्ड्यसमुद्भवाः ॥
तडागजाता वर्षासु तास्वपथ्या नदीभवाः। नैर्झरा शरदि श्रेष्ठा विशेषोऽयमुदाहृतः ॥१२९॥

विशेष २ ऋतुओं में विशेष २ मछलियों के मांस का गुण—हेमन्त ऋतु (अगहन-पूसमास) में-कूप में रहने वाली मछलियों का मांस; शिशिर ऋतु (माघ-फागुनमास) में—सरोवर में रहनेवाली मछलियों का मांस; वसन्त ऋतु (चैत-वैशाख मास) में—नदीमें रहने वाली मछलियों का मांस और ग्रीष्म ऋतु (जेठ-आषाढ़ मास) में-चौंढा या हौज की मछलियों का मांस हितकर होता है। वर्षा ऋतु (सावन-भादा मास) में-तालाब की मछलियों का मांस-हितकर और नदी की मछलियों का मांस अपथ्य (अहितकर) होता है। शरद् ऋतु (क्वार-कातिक मास) में—झरनों की मछलियों का मांस—उत्तम होता है। इस प्रकार से मछलियों के मांस के सम्बन्ध में जो विशेषतायें थीं उनका वर्णन कर दिया गया है ॥ १२९ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभाव विरचिते भावप्रकाशे
मिश्रप्रकरणे एकादशो मांसवर्गः समाप्तः ॥

अथ द्वादशः कृतान्नवर्गः

तत्रान्नानां साधनप्रकारान् सिद्धानां गुणाँश्चाह । तत्र परिभाषामाह

समवायिनि हेतौ ये मुनिभिर्गणिता गुणाः । कार्येऽपि तेऽखिलाज्ञेयाः परिभाषेति भाषिताः ॥
क्वचित्संस्कारभेदेन गुणभेदो भवेद्यतः । भक्तं लघु पुराणस्य शालेस्तच्चिपिटो गुरुः ॥ २ ॥
क्वचिद्योगप्रभावेण गुणान्तरमपेक्षते । कदन्नं गुरु सर्पिश्च तद्युक्तं सुपचं भवेत् ॥ ३ ॥

अब इस कृतान्न वर्ग में अन्नों को सिद्ध करने का प्रकार तथा सिद्ध हुये अन्नों का गुण कहते हैं। उसमें प्रथम परिभाषायें कहते हैं—

परिभाषा—समवायिकरण (अन्नादि द्रव्यों) में जो गुण मुनियों ने गिनाये हैं वे सभी गुण, कार्य अन्नादि द्रव्यों से बने हुये पदार्थ भात आदि में भी होते हैं ऐसा समझना चाहिये। यह परिभाषा सामान्यरूप से मुनियों ने कही है। किन्तु कहीं कहीं संस्कार भेद से गुण में भी भेद हो जाता है अर्थात् समवायिकारण का गुण कार्य में पूर्ण रूप से नहीं आता है। जैसे कि—पुराने शालि (जड़हन) चावल का भात हलका होता है किन्तु उसी (जड़हन) का चिउड़ा गुरु होता है। यहाँ पर संस्कार भेद से गुण में भेद हुआ है। और कहीं-कहीं संयोग के प्रभाव से भी गुणों में अन्तर पड़ जाता है। जैसे-पृथक् २ स्वयं कदन्न (खराब अन्न) तथा घी दोनों ही गुरु होते हैं किन्तु यदि इन दोनों का संयोग हो जाय तो जल्दी हजम होने वाले हो जाते हैं। यहाँ पर परस्पर संयोग के प्रभाव से गुण में अन्तर हुआ है ॥ १-३ ॥

अथ भक्तम् (भात)। तस्य नामानि साधनं गुणाँश्चाह

भक्तमन्नं तथाऽन्धश्च क्वचित्कूरं च कीर्त्तितम्। ओदनोऽस्त्री स्त्रियां भिस्सा दीदिविः पुंसि भाषितः ॥
सुधौतांस्तण्डुलान् स्फीतांस्तोये पञ्चगुणे पचेत्। तदुक्तं प्रस्रुतं चोष्णं विशदं गुणवन्मतम् ॥
भक्तं वह्निकरं पथ्यं तर्पणं रोचनं लघु। अधौतमस्रुतं शीतं गुर्वरुच्यं कफप्रदम् ॥ ६ ॥

भात के संस्कृत नाम-भक्त, अन्न, अन्ध (अन्धस्), कूर (कहीं २ यह भात का नाम कहा है), ओदन (यह स्त्रीलिङ्ग को छोड़ कर शेष लिंगों में होता है), भिस्सा (यह केवल स्त्रीलिङ्ग में होता है) और दीदिवि (यह केवल पुँलिङ्ग में होता है) ये सब हैं।

निर्माणविधि—प्रथम चावलों को उत्तम रीति से धो डाले, पश्चात् कुछ क्षण के बाद जब वह कुछ फूल जाय तब उसे ५ गुने जल में पकावे। सिद्ध होने पर उतार कर उसीमें से मांड़ निकाल लेवे, यह माड़ निकाला हुआ गरम भात विशद गुणयुक्त अत्यन्त गुणकारी होता है।

भात—अग्निकारक, पथ्य, संतर्पण करने वाला, रोचक तथा लघु होता है। यदि यही भात बिना धोये तथा मांड़ निकाले ही सिद्ध किया हुआ हो एवं शीतल हो तो गुरु, अरुचि उत्पन्न करने वाला तथा कफकारक होता है ॥ ४-६ ॥

अथ दाली (दाल)। तस्या नामानि साधनगुणांश्चाह

दलितन्तु शमीधान्यं दालिर्दाली स्त्रियामुभे। दाली तु सलिले सिद्धा लवणार्द्रकहिङ्गुभिः ॥
संयुक्ता सूपनाम्नी स्यात्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ। सूपो विष्टम्भको रूक्षः शीतस्तु स विशेषतः।
निस्तुषो भृष्टससिद्धो लाघवं सुतरां व्रजेत् ॥ ८ ॥

दाल के लक्षण—शमीधान्य (मूंग, उरद, अरहर आदि) को दल देने से दाल बनती है। संस्कृत नाम—दालि और दाली ये दो हैं। ये दोनों शब्द स्त्रीलिङ्गी हैं।

निर्माण विधि—दाल को जल में पकावे और उसमें सेंधानमक, अदरक तथा हींग आवश्यकतानुसार डाल दे तो उस सिद्ध हुई दाल को संस्कृत में "सूप" कहते हैं।

सूप (दाल)—विष्टम्भकारक, रूक्ष तथा विशेषतः शीतल होती है और वही दाल यदि प्रथम भून कर छिल्का निकाल कर पश्चात् बनाई जाय तो अत्यन्त लघु होती है ॥ ७-८ ॥

अथ कृशरा (खिचड़ी)। तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

तण्डुला दालिसंमिश्रा लवणार्द्रकहिङ्गुभिः। संयुक्ताः सलिले सिद्धाः कृशरा कथिता बुधैः ॥
कृशरा शुक्रला बल्या गुरुः पित्तकफप्रदा। दुर्जरा बुद्धिविष्टम्भमलमूत्रकरी स्मृता ॥ १० ॥

खिचड़ी बनाने की विधि—चावलों में बराबर की दाल मिलाकर यदि जल में पकाई जाय और उसमें आवश्यकतानुसार सेंधा निमक, अदरख तथा हींग डाल दिया जाय तो सिद्ध होने पर उसे पण्डित लोग संस्कृत में 'कृशरा' कहते हैं।

खिचड़ी—शुक्रजनक, बलकारक, गुरु, पित्त तथा कफकारक, देर में हजम होने वाली एवम् बुद्धि बढ़ाने वाली, विष्टम्भ करने वाली तथा मल एवं मूत्र को कराने वाली होती है ॥९-१०॥

अथ तापहरी। तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

घृते हरिद्रासंयुक्ते माषजा भर्जयेद्वटीम् ॥ ११ ॥
तण्डुलांश्चापि निर्धौतान्सहैव परिभर्जयेत्। सिद्धयोग्यं जलं तत्र प्रक्षिप्य कुशलः पचेत् ॥
लवणार्द्रकहिङ्गूनि मात्रया तत्र निक्षिपेत्। एषा सिद्धि समायाता प्रोक्ता तापहरी बुधैः ॥
भवेत्तापहरी बल्या वृष्या श्लेष्माणमाचरेत्। बृंहणी तर्पणी रुच्या गुर्वी पित्तहरी स्मृता ॥

तापहरी बनाने की विधि—प्रथम उरद को पीस कर उसकी बरी बनाले, पश्चात् उसे हलदी पड़े हुये घी में खूब भूने और उसी के साथ ही साथ धुले हुये चावलों को भी भूने। पश्चात् उसमें पक जाने योग्य जल डाल कर चतुरता के साथ पकावे और उसमें आवश्यकतानुसार सेंधा निमक, अदरख तथा हींग डाल दे। जब सिद्ध हो जाय तो उतार ले, इसी को पण्डित लोग "तापहरी" कहते हैं। तापहरी—बलकारक, वीर्यवर्धक, कफकारक, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), संतर्पण कारक, रोचक, गुरु तथा पित्तनाशक होती है ॥ ११—१४ ॥

अथ क्षीरिका (खीर)। तस्या नामानि साधनं गुणाँश्चाह

पायसं परमान्नं स्यात्क्षीरिकाऽपि तदुच्यते। शुद्धेऽर्द्धपक्वे दुग्धे तु घृताक्तांस्तण्डुलान्पचेत् ॥
ते सिद्धाः क्षीरिका ख्याता ससिताऽऽज्ययुतोत्तमा।
क्षीरिका दुर्जरा प्रोक्ता बृंहणी बलवर्द्धिनी ॥
विष्टम्भिनी हरेत् पित्तं रक्तपित्ताग्निमारुतान् ॥ १६ ॥

खीर के संस्कृत नाम—पायस, परमान्न तथा क्षीरिका ये सब हैं।

निर्माणविधि—शुद्ध आधे औटाये हुये दूध में प्रथम घी में भुजे हुये चावलों को डालकर पकावे और उसमें चीनी (शक्कर) तथा घी भी उचित मात्रा में डाल दे, पश्चात् सिद्ध होने पर उतार ले इसी को क्षीरिका (खीर) कहते हैं।

खीर—देर में हजम होने वाली, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), बल बढ़ाने वाली, विष्टम्भ करने वाली एवम्—पित्त, रक्तपित्त तथा वायु को दूर करने वाली और अग्नि को मन्द करने वाली होती है ॥ १५-१६ ॥

अथ नारिकेरक्षीरी (नारियल की खीर)। तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

नारिकेरं तनूकृत्य छिन्नं पयसि गोः क्षिपेत्। सितागव्याज्यसंयुक्ते तत्पचेन्मृदुनाऽग्निना ॥
नारिकेरोद्भवा क्षीरी स्निग्धा शीताऽतिपुष्टिदा। गुर्वी सुमधुरा वृष्या रक्तपित्तानिलापहा ॥

नारिकेरक्षीरी (नारियल की खीर) बनाने की विधि—नारियल को छीलकर उसकी गिरी के छोटे २ टुकड़ों को साफ चीनी (शक्कर) तथा गाय के घी के साथ उचित मात्रा में दूध में डाल कर मन्द अग्नि से धीरे २ पकावे। जब सिद्ध हो जाय तब उतार ले। इसी को नारियल की खीर कहते हैं। **नारियल की खीर**—स्निग्ध, शीतल, अत्यन्त पुष्टिकारक, गुरु, मधुर, वीर्यवर्धक एवम्—रक्तपित्त तथा वायु को नष्ट करने वाली होती है ॥१६—१८ ॥

अथ सेविका (सेमई)। तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

समितावर्त्तिकाः कृत्वा सुसूक्ष्मा यवसन्निभा। शुष्काः क्षीरेणसंसाध्या भोज्याघृतसिताऽन्विताः॥
सेविका तर्पणी बल्या गुर्वी पित्तानिलापहा। ग्राहिणी सन्धिकृद्रुच्या तां खादेन्नातिमात्रया ॥

सेमई बनाने की विधि—मैदा की अत्यन्त पतली २ यव के समान बत्ती बना करके सुखावे। पश्चात् उसे दूध में पकावे और घी तथा चीनी मिलाकर भोजन करे।

सेमई—तृप्तिकारक, बलदायक, गुरु, ग्राही, भग्न सन्धानकारक (टूटी हुई हड्डियों को अथवा उखड़ी हुई सन्धियों को जोड़ने वाली), रुचिकारक, एवम् पित्त तथा वायु को नष्ट करने वाली होती है। किन्तु इसे अधिक मात्रा में नहीं खाना चाहिये ॥ १९-२० ॥

अथ समिता (मैदा)। तस्याः साधनमाह

गोधूमा धवला धौताः कुट्टिताः शोषितास्ततः। प्रोक्षिता यन्त्रनिष्पिष्टाश्चालिताः समिताः स्मृताः॥

मैदा बनाने की विधि—प्रथम सफेद गेहूं लेकर उसे धो डाले और ओखली में कूट कर सुखा डाले। पश्चात् फटक कर खूब महीन जाता में पिसवाकर बारीक चलनी या पतले कपड़े में रखकर चलवा डाले। इसी आटा को मैदा कहते हैं ॥ २१ ॥

अथ मण्डकः (मण्डा)। तस्य साधनमाह

वारिणा कोमलां कृत्वा समितां साधु मर्दयेत्। हस्तचालनया तस्या लोप्त्रीं सम्यक्प्रसारयेत्॥
अधोमुखघटस्यैतद्विस्तृतं प्रक्षिपेद् बहिः। मृदुना वह्निना साध्या सिद्धो मण्डक उच्यते ॥

मण्डा बनाने की विधि—मैदा को जल से अच्छी तरह माड़ कर मुलायम कर ले, पश्चात् उसकी लोई बनाकर उसे हाथ से बढ़ा २ कर रोटी के समान करले, पुनः उसे औंधे मुख वाले घड़ा के पेंदी पर रखकर मन्द आंच से पकावे, जब सिद्ध हो जाय तब उतार ले, इसी को मण्डक (मण्डा) करते हैं ॥ २२-२३ ॥

*लोप्त्री (लोई) इति लोके ॥ २२-२३ ॥
यहां पर मूल में "लोप्त्री" पद से लोक में प्रसिद्ध "लोई" का ग्रहण करना चाहिये ॥२२-२३॥

अथ सानुपानं मण्डकगुणानाह

दुग्धेन साज्यखण्डेन मण्डकं भक्षयेन्नरः। अथवा सिद्धमांसेन सतक्रवटकेन वा ॥ २४ ॥
मण्डको बृंहणो वृष्यो बल्यो रुचिकरो भृशम्। पाकेऽपि मधुरो ग्राही लघुर्दोषत्रयापहः ॥

अनुपान के सहित मण्डा के गुण—अनुपान—मनुष्य को चाहिये कि मण्डा को घी और खांड़-मिले हुये दूध के साथ अथवा पकाये हुए मांस के साथ या दही बड़े के साथ खावे ॥

मण्डा—बृंहण (रस रक्तादि वर्धक), वीर्यवर्धक, बलकारक, अत्यन्त रोचक, विपाक में मधुर रस युक्त, ग्राही, लघु एवम् त्रिदोषनाशक होता है ॥ २४-१५ ॥

अथ पोलिका (मैदे की रोटी)। तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

कुर्यात्समितयाऽतीव तन्वीं पर्पटिकां ततः ॥ २६ ॥
स्वेदयेत्तप्तके तां तु पोलिकां जगदुर्बुधाः। तां खादेल्लप्सिकायुक्तां तस्या मण्डकवद् गुणाः ॥

पोलिका (रोटी) के बनाने की विधि—मैदा को गूद कर उसकी अत्यन्त पतली पापड़ के समान रोटी बना ले, पश्चात् उसे तवे पर रख कर सेंक डाले, सिद्ध हो जाने पर इसे पण्डित लोग पोलिका कहते हैं।

अनुपान—इसे लप्सी के साथ खाना चाहिये।

पोलिका—इसके गुण पूर्वोक्त मण्डा के समान होते हैं ॥ २६—२७ ॥

अथ लप्सिका (लप्सी)। तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

समितां सर्पिषा भृष्टां शर्करां पयसि क्षिपेत्। तस्मिन्घनीकृते न्यस्येल्लवङ्गं मरिचादिकम्।
सिद्धैषा लप्सिका ख्याता गुणानस्या वदाम्यहम् ॥ २८ ॥
लप्सिका बृंहणी वृष्या बल्या पित्तानिलापहा। स्निग्धा श्लेष्मकरी गुर्वी रोचनी तर्पणी परम्॥

लप्सी बनाने की विधि—प्रथम मैदा को लेकर घी में भून डाले पश्चात् मात्राऽनुसार शक्कर के साथ पानी में डालकर पकावे, जब गाढ़ा हो जाय तब उसमें लौंग, मरिच आदि डाल कर उतार ले। इसी को "लप्सी" कहते हैं।

लप्सी—बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), वीर्यवर्धक, बलदायक, स्निग्ध, कफकारक, गुरु, रोचक, अत्यन्त तृप्तिकारक एवम् पित्त तथा वायुनाशक होती है ॥ २८-२९ ॥

अथ रोटिका (रोटी)। तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

शुष्कगोधूमचूर्णेन किञ्चित्पुष्टाञ्च पोलिकाम् ॥ ३० ॥
तप्तके स्वेदयेत्कृत्वा भूयोऽङ्गारेऽपि तां पचेत्। सिद्धैषा रोटिका प्रोक्ता गुणानस्याः प्रचक्ष्महे॥३१॥
रोटिका बलकृद्रुच्या बृंहणी धातुवर्द्धनी। वातघ्नी कफकृद् गुर्वी दीप्ताग्नीनां प्रपूजिता॥३२॥

रोटी बनाने की विधि—सूखे गेहूं के आटे को जल से खूब गूंधकर उस सूखे आटा का पलोथन लगा २ कर पूर्वोक्त पूरी से कुछ मोटी रोटी बेलकर बनाले पश्चात् उसे तवा पर रख कर मामूली तरह से सेक कर पुनः बहुत से अँगारों पर रखकर पका ले, जब वह सिद्ध हो जाय तब उसे रोटी कहते हैं। रोटी—बलकारक, रुचिजनक, बृंहण, धातुवर्धक वातनाशक, कफकारक तथा गुरु होती है। यह प्रदीप्त अग्निवालों के लिये उत्तम होती है ॥ ३०-३२ ॥

*तप्तकं= "तावा" इति लोके ॥ ३०-३२ ॥
यहां पर मूल में "तप्तक" से "तावा" का बोध करना चाहिये ॥ ३०-३२ ॥

अथाङ्गारकर्कटी (बाटी) । तस्याः साधनं गुणांश्चाह

शुष्कगोधूमचूर्णन्तु साम्बु गाढं विमर्दयेत् । विधाय वटकाकारं निर्धूमेऽग्नौ शनैः पचेत ॥३३॥
अङ्गारकर्कटी ह्येषा बृंहणी शुक्रला लघुः । दीपनी कफकृद्बल्या पीनसश्वासकासजित् ॥ ३४ ॥

बाटी बनाने की विधि—सूखे गेहूं के आटे में जल डाल कर खूब कड़ा मांड कर उसकी गोलाकार कुछ चिपटी लोई बना के पश्चात् उसे निर्धूम आग पर धीरे २ खूब सेंक ले, यही तैयार हो जाने पर बाटी कहलाती है। बाटी—बृंहण (रस—रक्तादिवर्धक), शुक्रजनन, लघु, अग्निदीपक, कफकारक, बलदायक एवम्—पीनस, श्वास तथा खांसी को दूर करने वाली होती है ॥ ३३–३४ ॥

अथ यवरोटिका । तस्या गुणानाह

यवजा रोटिका रुच्या मधुरा विशदा लघुः । मलशुक्रानिलकरी बल्या हन्ति कफामयान् ॥३६॥

जौ की रोटी—रुचिकारक, मधुररसयुक्त, विशद गुण वाली, लघु, मल, शुक्र, वायु तथा बल को करने वाली एवम् कफ सम्बन्धी रोगों को दूर करने वाली होती है ॥ ३५ ॥

अथ बलभद्रिका(चमसीरोटिका) (छिल्केदार उरद की रोटी) । तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

चूर्णं यच्छुष्कमाषाणां चमसी साऽभिधीयते ।
चमसीरचिता रोटी कथ्यते बलभद्रिका । रूक्षोष्णा वातला बल्या दीप्ताग्नीनां सुपूजिता ॥

चमसी बनाने की विधि—सूखे उरद को पीस कर जो चूर्ण (आटा) तैयार होता है उसे चमसी कहते हैं।

चमसी की बनी हुई रोटी का संस्कृत नाम—बलभद्रिका है। चमसी की रोटी-रूक्ष, उष्ण, वायु को उत्पन्न करने वाली, बलकारक, एवम् प्रदीप्त अग्नि वालों के लिये अत्यन्त उत्तम होती है ॥ ३६ ॥

अथ धूमसी (धुआँस) । तस्याः साधनविधिमाह

माषाणां दालयस्तोये स्थापितास्त्यक्तकञ्चुकाः । आतपे शोषिता यन्त्रे पिष्टास्ता धूमसी स्मृता ॥

धुआंस बनाने की विधि—उरद की दाल को प्रथम जल में भिगो दे, पश्चात् उसके छिलके को निकाल कर उसे धूप में डाल दे, जब सूख जाय तब चक्की में पीस कर आँटा तैयार कर ले, इसी को धुआंस कहते हैं ॥ ३७ ॥

अथ झर्झरी । तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

धूमसीरचिता चैव प्रोक्ता झर्झरिका बुधैः । झर्झरी कफपित्तघ्नी किञ्चिद्वातकरी स्मृता ॥३८॥

झर्झरी (धुआंस की रोटी) बनाने की विधि—धुआंस को गूंथ कर जो रोटी बनायी जाती है उसे संस्कृत में "झर्झरी" कहते हैं। झर्झरी—कफ तथा पित्त नाशक एवम् किंचित् वातकारक होती है ॥ ३८ ॥

अथ चणकरोटिका (चने की रोटी) । तस्या गुणानाह

चणकस्या रोटिका रूक्षा श्लेष्मपित्तास्रनुद्गुरुः । विष्टम्भिनी न चक्षुष्या तद्गुणा चापि शष्कुली॥

चने की रोटी—चने के आटे की जो रोटी बनाई जाती है, वह—रूक्ष, गुरु, विष्टम्भ करने

वाली, नेत्रों के लिये हित न करने वाली, एवम्—कफ पित्त तथा रक्तविकार को दूर करने वाली होती है।

चने की पूड़ी—यह भी गुणों में चने की रोटी के समान ही होती है ॥ ३९ ॥

अथ पिष्टिका (पीठी) । तस्या निर्माणप्रकारमाह

द्वालिः संस्थापिता तोये ततोऽपहृतकञ्चुका । शिलायां साधु सम्पिष्टा पिष्टिका कथिता बुधैः ॥

पीठी बनाने की विधि—हर एक प्रकार के दाल को जल के भिगोने के बाद उसके छिलके को अलग कर के सिल पर अच्छी तरह से पीस देने से पीठी तैयार होती है। इसी को संस्कृत में पण्डित लोग "पिष्टिका" कहते हैं ॥ ४० ॥

अथ बेढमिका (बेढई) । तस्याः साधनं गुणांश्चाह

माषपिष्टिकया पूर्णगर्भा गोधूमचूर्णतः । रचिता रोटिका सैव प्रोक्ता बेढमिका बुधैः ॥ ४१ ॥
भवेद्वेढमिका बल्या वृष्या रुच्याऽनिलापहा । उष्णा सन्तर्पणी गुर्वी बृंहणी शुक्रला परम् ॥
भिन्नमूत्रमला स्तन्यमेदःपित्तकफप्रदा । गुदकीलार्दितश्वासपक्तिशूलानि नाशयेत् ॥ ४३ ॥

बेढ़ई बनाने की विधि—गेहूं के आटे को गूंथकर उसके लोई के अन्दर उरद की पीठी भर कर जो रोटी बनाई जाती है उसी को पण्डित लोग संस्कृत में 'बेढमिका' कहते हैं।

बेढई—बलदायक, वीर्यवर्धक, रुचिकारक, वातनाशक, उष्ण, सन्तर्पण कारक, गुरु, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), अत्यन्त शुक्रजनक, मूत्र तथा मल का भेदन करने वाली, दुग्धवर्धक, मेद, पित्त तथा कफ कारक एवम् गुदकील, अर्दित वात (मुंह का लकवा), श्वास तथा परिणामशूल को नष्ट करने वाली है ॥ ४१–४३ ॥

अथ पर्पटः (पापड) । तत्र माषोद्भवस्य तस्य साधनं गुणांश्चाह

धूमसीरचिता हिङ्गुहरिद्रालवणैर्युताः । जीरकस्वर्जिकाभ्याञ्च तनूकृत्य च वेल्लिताः ॥ ४४ ॥
पर्पटास्ते सदाऽङ्गारभृष्टाः परमरोचकाः । दीपनाः पाचनाः रूक्षा गुरवः किञ्चिदीरिताः ॥४५॥

पापड़ बनाने की विधि—धुआंस को जल के साथ भली-भांति गूंथकर उसमें मात्राऽनुसार हींग, हरदी, सेंधा नमक, जीरा और सज्जीखार डाल कर लोई बनावे और उसे बेलन से पतला बेल कर रोटी के समान बना ले, इसी को पर्पट (पापड़) कहते हैं। उक्त पापड़—सदाआग पर भूंज कर खाने से अत्यन्त रोचक, अग्निदीपक, पाचक, रूक्ष, तथा किंचित् गुरु होते हैं ॥४४-४५॥

अथ मुद्ग–चणकोद्भव–स्नेहभृष्टानां पर्पटानां गुणानाह

मौद्गाश्च तद्गुणाः प्रोक्ता विशेषाल्लघवो हिताः ॥ ४६ ॥
चणकस्य गुणैर्युक्ताः पर्पटाश्चणकोद्भवाः । स्नेहभृष्टास्तु ते सर्वे भवेयुर्मध्यमा गुणैः ॥ ४७ ॥

मूंग के पापड़—यद्यपि गुणों से उड़द के पापड़ के समान होते हैं तथापि विशेष कर यह लघु तथा हितकर होते हैं।

चने के बने हुए पापड़—गुणों में चने के समान ही होते हैं।

स्नेह (तैल आदि) में भुने हुए सभी पापड़—पूर्वोक्त अपने २ गुणों की अपेक्षा मध्यम गुण वाले होते हैं। अर्थात् जो उरद-मूंग आदि के पापड़ों के गुण कहे हुये हैं उनकी अपेक्षा इस में न्यून गुण होते है ॥ ४६–४७ ॥

अथ पूरिका तैलपक्का घृतपक्का च (तेल व घी में पकी हुई कचौरी)। तयोः साधनं गुणांश्चाह

**माषाणां पिष्टिकां पूर्वाल्लवणार्द्रकहिङ्गुभिः। तया पिष्टिकया पूर्णा समिता कृतपोलिका ॥४८॥
ततस्तैलेन पक्का सा पूरिका कथिता बुधैः। रुच्या स्वादी गुरुः स्निग्धा बल्या पितास्रदूषिका ॥
चक्षुस्तेजोहरी चोष्णा पाके वातविनाशिनी। तथैव घृतपक्काऽपि चक्षुष्या रक्तपित्तहृत् ॥५०॥**

तेल की पूरी बनाने की विधि—उरद की पीठी में मात्रानुसार सेंधानिमक, अदरक तथा हींग डालकर उसे मैदा की लोई के अन्दर रख कर उस को बेलकर बारीक रोटी बना ले, उसके बाद उसे तेल में पका डाले, सिद्ध होने पर उसी को पण्डित लोग संस्कृत में पूरिका कहते हैं। **तेल की कचौरी**—रुचिकारक, स्वादिष्ट, गुरु, स्निग्ध, बलकारक, पित्त तथा रक्त को दूषित करने वाली, नेत्रों के तेज को हरण करने वाली, पाक में उष्ण एवम् वातनाशक होती है।

घी की **कचौरी**—यह भी गुणों में उक्त कचौरी के समान ही होती है किन्तु विशेषकर नेत्रों के लिये हितकर तथा रक्तपित्त-नाशक होती है ॥ ४८–५० ॥

अथ वटकः शुष्कः सरसश्च (सूखा व रसदार बरा)। तयोः साधनं गुणांश्चाह

**माषाणां पिष्टिकां युक्तां लवणार्द्रकहिङ्गुभिः। कृत्वा विदध्याद्वटकांस्तांस्तैलेषु पचेच्छनैः ॥५१॥
विशुष्का वटका बल्या बृंहणा वीर्य्यवर्द्धनाः। वातामयहरा रुच्या विशेषादर्दितापहाः ॥५२॥
विबन्धभेदिनः श्लेष्मकारिणोऽत्यग्निपूजिताः। संचूर्ण्य निक्षिपेत्तक्रे भृष्टं जीरकहिङ्गु च ॥५३॥
लवणं तत्र वटकान्सकलानपि मज्जयेत्। शुक्रलस्तत्र वटको बलकृद्रोचनो गुरुः ॥ ५४ ॥
विबन्धहृद्विदाही च श्लेष्मलः पवनापहः। राज्यक्तयाऽतिरोचन्या पाचन्या तांस्तु भक्षयेत् ॥**

उरद का सूखा बरा बनाने की विधि—उरद की पीठी में मात्रानुसार सेंधानिमक, अदरक, तथा हींग डालकर खूब फेंटकर उसकी बड़ी २ गोली बनाले, पश्चात तेल में डालकर धीरे २ मन्द आंच से पकावे. जब सिद्ध हो जाय तब उतार ले, यही सूखा बरा कहलाता है।

उरद का सूखा बरा—बलकारक, बृंहण, वीर्यवर्धक, वात सम्बन्धा रोगों को दूर करने वाला, रुचिकारक, विशेष करके अर्दितवात (मुंहके लकवे) को दूर करने वाला, विबन्धनाशक, कफकारक एवम् अत्यन्त दीप्त अग्नि वालों के लिये उत्तम होता है।

रसदार बरा बनाने की विधि-भूना हुआ जीरा तथा हींग का चूर्ण और सेंधानिमक तक्र (मट्ठा) में डालकर उसी में सूखे बरे को डुबो देने से वे ही रसदार बरे कहलाते हैं।

रसदार बरा—शुक्रजनक, बलकारक, रोचक, गुरु, विबन्ध को दूर करने वाला, विदाही, कफकारक तथा वातनाशक होता है।

यदि इसे रायता में डालकर भक्षण करे तो अत्यन्त रोचक और पाचक होता है ॥ ५१–५५ ॥

***राज्यक्ता (राइता) इति लोके ॥ ५१–५५ ॥**

यहां पर मूल में "राज्यक्ता" से राइता का ग्रहण करना चाहिये ॥ ५१–५५ ॥

अथ काञ्जिकावटकः (काञ्जी बरा)। तस्य साधनं गुणांश्चाह

**मन्थनी नूतना धार्या कटुतैलेन लेपिता। निर्मलेनाम्बुनाऽऽपूर्य तस्यां चूर्णं विनिक्षिपेत् ॥
राजिकाजीरकलवणहिङ्गुशुण्ठीनिशाकृतम् ॥ ५६ ॥**

**निक्षिपेद्वटकांस्तत्र भाण्डस्यास्यञ्च मुद्रयेत्। ततो दिनत्रयादूर्ध्वमम्लाः स्युर्वटका ध्रुवम् ॥५७॥
काञ्जिकावटको रुच्यो वातघ्नः श्लेष्मकारकः। शूलघ्नोऽजीर्णदाहनुद् नेत्ररोगे तु नो हितः ॥५८॥**

काञ्जी बरा बनाने की विधि—एक नवीन मिट्टी का मजबूत पात्र (हांडी) लेकर उसके अन्दर कडुवा तैल चुपड़ कर उस में स्वच्छ जल भर दे, तत् पश्चात मात्रानुसार राई, जीरा, सेंधानिमक, हींग, सोंठ और हलदी का चूर्ण उसमें डालकर बाद में उरद के बरों को उसी में डुबो दे और पात्र का मुख बन्दकर दे, पुनः जब तीन दिन बीत जाय तब चौथे दिन बरे सब खट्टे हो जायेंगे तब पात्र का मुख खोल दे। यही बरे काञ्जी के बरे कहलाते हैं। **काञ्जी के बरे**—रुचिकारक, वातनाशक, कफकारक, शूलनाशक, एवम्—अजीर्ण तथा दाह को दूर करनेवाले और नेत्ररोग में अहितकर होते हैं ॥ ५६–५८ ॥

अथाम्लिकावटकाः (इमलीके बरे)। तेषां साधनं गुणांश्चाह

**अम्लिकां स्वेदयित्वा तु जलेन सह मर्दयेत्। तन्नीरे कृतसंस्कारे वटकान्मज्जयेज्जनः ॥५९॥
अम्लिकावटकास्ते तु रुच्या वह्निप्रदीपनाः। वटकस्य गुणैः पूर्वैरेतेऽपि च समन्विताः ॥६०॥**

इमली के बरे बनाने की विधि—इमली को उबालकर जल के साथ मलकर के उसका रस तैयार करले, पुनः उसका संस्कार करके अर्थात सरसों, हींग, जीरा, सेंधानिमक, सोंठ, हरदी आदि मसाला डाल करके पीछे से उरद के सूखे बरों को उसीमें भिगो दे, जब भीग जायं तब उन्हें कार्य में ले, ये ही इमली के बरे कहलाते हैं। **इमली के बरे**—रुचिकारक, अग्नि को प्रदीप्त करने वाले एवम् पूर्वोक्त उरद के सूखे बरों के गुणों से युक्त होते हैं ॥ ५९–६० ॥

अथ मुद्गवटकाः (मूंग के बरे)। तक्रमज्जितानां च तेषां गुणानाह

मुद्गानां वटकास्तक्रे मज्जिता लघवो हिमाः। संस्कारजप्रभावेण त्रिदोषशमना हिताः ॥६१॥

मूंग के बरे बनाने की विधि—उरद के बरों की भांति मूंग के भी बरे बनाकर तक्र (मट्ठे) में भिगो दे और पूर्वोक्त भुना जीरा तथा हींग और सेंधानिमक का चूर्ण उसमें डाल दे, भीगने पर ये ही मूंग के बरे कहलाते हैं। **मूंगके बरे**—लघु, शीतल एवम् संस्कार के प्रभाव से अर्थात मसाला आदि डालने से त्रिदोष को शमन करने वाले तथा हितकर होते हैं ॥ ६१ ॥

अथ माषवटिकाः (उरदकी बरी)। तेषां साधनं गुणांश्चाह

**माषाणां पिष्टिका हिङ्गुलवणार्द्रकसंस्कृता। तया विरचिता वस्त्रे वटिकाः साधु शोषिताः ॥
भर्जितास्तप्ततैलैस्ता अथवाऽम्बुप्रयोगतः। वटकस्य गुणैर्युक्ता ज्ञातव्या रोचना भृशम् ॥**

उरद की बरी बनाने की विधि—उरद की पीठी को पीस कर उसमें मात्राऽनुसार हींग, सेंधा निमक तथा अदरक आदि डालकर खूब फेंटे पश्चात उसकी छोटी २ बरी बना कर कपड़े पर रखकर धूप में खूब सुखा डाले और सूख जाने पर उसे तेल में भून कर अथवा पानी में उबालकर सिद्ध करके, इसी को उरद की बरी कहते हैं। **उरद की बरी**—गुणों में पूर्वोक्त उरद के बरों के समान होती है और अत्यन्त रुचिकर होती है ॥ ६२–६३ ॥

अथ कूष्माण्डकवटी (पेठे की बरी)। तस्या गुणानाह

कूष्माण्डकवटी ज्ञेया पूर्वोक्तवटिकागुणा। विशेषात्पित्तरक्तघ्नी लघ्वी च कथिता बुधैः ॥६४॥

पेठे की बरी (कोहड़ौरी) बनाने की विधि—पूर्वोक्त उरद की बरी बनाने के समय पीठी में पेठे के छोटे २ बारीक टुकड़े कद्दूकश से तैयार करके डाले और पूर्वोक्त मसाला डालकर कपड़े पर

सुखाले। यही पेठे की [illegible] है। पेठे की बरी—गुणों में उरद की बरी के समान होती है किन्तु विशेष करके यह [illegible] रक्तविकार को दूर करने वाली एवम् लघु होती है ऐसा विद्वानों का मत है ॥ ६४ ॥

[illegible]थ मुद्गवटी ([illegible]ूंगकी बरी) । तस्या गुणानाह

मुद्गानां वटिका तद्वद्रचिता साधिता तथा। पथ्या रुच्या तथा लघ्वी मुद्गसूपगुणा स्मृता ॥

मूंग की बरी बनाने की विधि—मूंग की बरी, उरद की बरी के समान ही बनाई तथा पकाई जाती है। मूंग की बरी—पथ्य, रुचिकारक तथा लघु होती है एवम् मूंग के दाल के जो गुण पूर्व में कह आये हैं वे सभी इसमें रहते हैं ॥ ६५ ॥

आथालीकमत्स्यः । तस्य साधनप्रकारमाह

माषपिष्टिकया लिप्तं नागवल्लीदलं महत् ॥ ६६ ॥
तत्तु संस्वेदयेद्युक्त्या स्थाल्यामास्तारकोपरि।ततो निष्कास्य तं खण्ड्यं ततस्तैलेन भर्जयेत् ॥

अलीकमत्स्य (यह खाने में मछली के समान होता है) बनाने की विधि—बड़े २ पान के पत्तों को लेकर उनके ऊपर उरद की पीठी लपेट दे और एक बटुलोई में जल भरकर उनके मुख पर वस्त्र बांधकर उसी के ऊपर उन सबों को रख कर आंच पर रख दे और युक्ति से इस तरह भाफ से उबाले कि वे सब सिद्ध हो जायं, पुनः उतारकर उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले, तत्पश्चात् तेल में पका डाले ॥ ६६–६७ ॥

***खण्ड्यं = खण्डन योग्यमिति यावत् ॥ ६६–६७ ॥**

यहाँ पर "खण्ड्य" पद का—"टुकड़े टुकड़े कर डाले" यह अर्थ समझना चाहिये ॥६६–६७॥

अलीकमत्स्य उक्तोऽयं प्रकारः पाकपण्डितैः। तं वृन्ताकभटित्रेण वास्तूकेन च भक्षयेत् ॥६८॥

अलीक मत्स्य बनाने का यही पूर्वोक्त प्रकार पाकविद्या के विद्वानों ने बतलाया है। इसे बैगन के कबाब (लोहे के सीक में खोंस कर आग पर भुने हुये बैगन) के साथ या बैगन के भर्ते के साथ अथवा बथुआ के साथ खावे ॥ ६८ ॥

अथ क्वथिता (कढी) । तस्याः साधनं गुणाश्चाह

स्थाल्यां घृते वा तैले वा हरिद्रां हिङ्गु भर्जयेत्।
अवलेहनसंयुक्तं तक्रं तत्रैव निक्षिपेत्। एषा सिद्धा समरिचा क्वथिता कथिता बुधैः ॥ ६९ ॥

कढ़ी बनाने की विधि—कढ़ाई या बटुलोई में घी अथवा तेल डालकर उसमें हींग तथा हरदी डाल कर प्रथम भून डाले तत्पश्चात् उसमें अरिहन अर्थात् जल में घोला हुआ बेसन और उसी के साथ तक्र (मट्ठा) भी मिलाकर डालकर पकावे और काली मिर्च तथा मात्राऽनुसार सेंधानिमक भी डाल दे, जब यह सिद्ध होजाय तो उतार ले, इसी को विद्वान् लोग कढ़ी कहते हैं ॥ ६९ ॥

***अवलेहनम् "अरिहन" इति लोके ॥ ६९ ॥**

यहां पर 'अवलेहनम्" पद से लोक प्रसिद्ध "अरिहन" लेना चाहिये ॥ ६९ ॥

क्वथिता पाचनी रुच्या लघ्वी वह्निप्रदीपनी। कफानिलाविबन्धघ्नी किञ्चित्पित्तप्रकोपणी॥७०॥

कढ़ी—पाचक, रुचिकारक, लघु, अग्निदीपक, किञ्चित् पित्त को प्रकुपित करने वाली एवम्—कफ, वायु तथा विबन्ध को दूर करने वाली होती है ॥ ७० ॥

अलीकमत्स्यस्य गुणानाह

अलीकमत्स्याः शुष्का वा किं वा क्वथितया पुनः। बृंहणा रोचना वृष्या बल्या वातगदापहाः॥७१॥
कोष्ठशुद्धिकराः शुष्काः किञ्चित्पित्तप्रकोपणाः। अर्दिते सहनुस्तम्भे विशेषेण हिताः स्मृताः ॥

अलीक मत्स्य—अलीक मत्स्य चाहे सूखे हों या कढ़ी में भिगोये हुये हों दोनों ही बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), रोचक, वीर्यवर्धक, बलकारक, वातरोग-नाशक तथा कोष्ठ की शुद्धि करने वाले होते हैं। सूखे अलीक मत्स्य—विशेष करके किञ्चित् पित्त को प्रकुपित करने वाले और अर्दितवात (मुंह का लकवा) तथा हनुस्तम्भ रोग में विशेष हितकर होते हैं ॥ ७१–७२ ॥

अथ मुद्गार्द्रवटकाः (अदरक बड़ा) । तेषां साधनं गुणांश्चाह

मुद्गपिष्टीविरचितान् वटकांस्तैलपाचितान्। हस्तेन चूर्णयेत्सम्यक् तस्मिंश्चूर्णं विनिक्षिपेत् ॥
भृष्टं हिङ्ग्वार्द्रकं सूक्ष्मं मरिचं जीरकं तथा। निम्बूरसं यवानीं च युक्त्या सर्वं विमिश्रयेत्॥
मुद्गपिष्टिं पचेत्सम्यक् स्थाल्यामास्तारकोपरि। तस्यास्तु गोलकं कुर्यात्तन्मध्ये पूरणं क्षिपेत् ॥
तैले तान्गोलकान्पक्त्वा क्वथितायां निमज्जयेत्। गोलकाःपाचकैःप्रोक्तास्ते स्वार्द्रकवटा अपि ॥
मुद्गार्द्रकवटा रुच्या लघवो बलकारकाः। दीपनास्तर्पणाः पथ्यास्त्रिषु दोषेषु पूजिताः ॥ ७७ ॥

अदरक का बड़ा बनाने की विधि—प्रथम मूंग की पीठी के बरे बनाकर तेल में पका डाले, पश्चात् उसे हाथ से मसल कर चूर्ण कर डाले। पुनः उसमें—भुना हुआ हींग, अदरख के पतले २ छोटे २ टुकड़े, मरिच, जीरा, नीबू के रस, अजवाइन इन सबों को युक्तिपूर्वक यथायोग्य चूर्ण करके मिला दे। और मूंग की पीठी को बटुलोई में जल भर कर उसके ऊपर कपड़ा रख कर उसी के ऊपर रख कर भाप से सिद्ध कर ले। जब तैयार हो जाय तब उसके बड़े-बड़े गोले कर, बरे बनाकर उसी के अन्दर पूर्वोक्त चूर्ण किये हुये पदार्थों को भर तैल में पका डाले, जब तैयार हो जाय तब कढ़ी में भिगो दे। भींग जाने पर इसी को पाकविद्या में कुशल लोग अदरक बड़ा कहते हैं।

अदरक बड़ा—रुचिकारक, लघु, बलकारक, अग्निदीपक, तृप्तिकारक, पथ्य तथा तीनों दोषों में ही उत्तम होता है अर्थात् हानिकारक नहीं होता है ॥ ७३–७७ ॥

अथ वेसनम् (वेसन) । तस्य साधनमाह

दालयश्चणकानां तु निस्तुषा यन्त्रपेषिताः। तच्चूर्णं वेसनं प्रोक्तं पाकशास्त्रविशारदैः ॥ ७८ ॥

बेसन बनाने की विधि—बिना छिलके की चने की दाल को चक्की में पीसकर आटा तैयार करले। इसी को पाकशास्त्र (रसोई बनाने की विद्या) में निपुण लोग बेसन कहते हैं ॥ ७८ ॥

अथ वेसनवटिका (फुलौरी) । तस्या साधनं गुणांश्चाह

वटिकावेसनस्यापि क्वथितायां निमज्जिता। रुच्या विष्टम्भजननी बल्या पुष्टिकरी स्मृता ॥७९॥

फुलौरी बनाने की विधि—बेसन का बरी बनाकर यदि कढ़ी में भिगो दी जाय तो उसे फुलौरी कहते हैं।

फुलौरी—रुचिकारक, विष्टम्भजनक, बल तथा पुष्टि करने वाली होती है ॥ ७९ ॥

***एवमन्येऽपि वेसनभवाः प्रकाराः खण्डनखण्डप्रभृतयो बोद्धव्याः ॥ ७९ ॥**

इस प्रकार से अन्य भी बेसन से बनाये जाने वाले खण्डन आदि पदार्थों के बनाने की विधियां होती हैं। उन्हें स्वयं समझ लेना चाहिये। ग्रन्थ बढ जाने के भय से नहीं लिखी जा रही हैं ॥७९॥

अथ मांसस्य प्रकाराः । तत्र शुद्धमांसम् । तस्य प्रकारमाह

पाकपात्रे घृतं दद्यात्तैलन्च तदभावतः । तत्र हिङ्गु हरिद्रां च भर्जयेत्तदनन्तरम् ॥ ८० ॥
छागादेरस्थिरहितं मांसं तत्खण्डितं भवम् । धौतं निर्गालितं तस्मिन्घृते तद्भर्जयेच्छनैः ॥
सिद्धयोग्यं जलं दत्त्वा लवणन्तु पचेत्ततः । सिद्धे जलेन सम्पिष्य वेशवारं परिक्षिपेत् ॥ ८२ ॥

मांस बनाने के प्रकारों में प्रथम शुद्ध मांस बनाने की विधि—मांस बनाने के पात्र में प्रथम घी अथवा अभाव में तेल ही डाल कर उस में हींग और हरदी डाल कर भूने, तत्पश्चात् बकरे आदि का मांस लेकर उस के टुकड़े कर डाले, यदि हड्डियां हों तो उन्हें फेंक दे, पुनः उन टुकड़ों को धोकर तथा जल खूब नितारकर उपर्युक्त घी अथवा तेल में धीरे २ भूने, और सिद्ध होने योग्य जल छोड़ कर तथा सेंधा निमक मात्राऽनुसार डालकर पकावे, जब पक जाय तब जल के साथ वेशवार पीस कर उसी में छोड़ दे ॥ ८०–८२ ॥

अथ वेशवारः (पिसा हुआ मसाला)। तद्द्रव्याण्याह

द्रव्याणि वेशवारस्य नागवल्लीदलानि च । तण्डुलाश्च लवङ्गानि मरिचानि समासतः ॥८३॥

वेशवार के द्रव्य—पान के पत्ते, चावल, लौंग, मरिच ये सब संक्षेप में वेशवार में पड़ने वाले द्रव्य हैं ॥ ८३ ॥

***वेशवारः "वेगर" इति लोके ॥ ८३ ॥**

यहां पर "वेशवार" से लोक प्रसिद्ध "वेगर" समझना चाहिये ॥ ८३ ॥

अथ शुद्धमांसस्य गुणानाह

अनेन विधिना सिद्धं शुद्धमांसमिति स्मृतम् ॥ ८४ ॥
शुद्धमांसं परं वृष्यं बल्यं रुच्यञ्च बृंहणम् । त्रिदोषशमनं श्रेष्ठं दीपनं धातुवर्द्धनम् ॥ ८५ ॥

शुद्ध मांस—इस पूर्वोक्त विधि से सिद्ध किया हुआ मांस "शुद्ध–मांस" कहलाता है। यह अत्यन्त वीर्यवर्धक, बलकारक, रोचक, बृंहण (रस–रक्तादि वर्धक), त्रिदोष को शमन करने वाला, अत्यन्त अग्निदीपक तथा धातुवर्धक होता है ॥ ८४–८५ ॥

अथ सहद्रकम् ("सेहण्डुक, सहवींसु" इति लोके)। तस्य साधनं गुणांश्चाह

छागादेर्मांसमूर्वादेः कुट्टितं खण्डितं पुनः । शुद्धमांसविधानेन पचेदेतत्सहद्रकम् ।
सहद्रकं गुणैर्ग्रन्थे शुद्धमांसगुणं स्मृतम् ॥ ८६ ॥

सहद्रक (इसे लोक में-सेहुण्डक या सहवींसु-कहते हैं) बनाने की विधि-बकरे आदि के ऊरु आदि स्थानों के मांस को कूट २ कर खूब टुकड़े करके पूर्वोक्त शुद्ध मांस बनाने की विधि के अनुसार पका डाले, इसको सहद्रक कहते हैं। सहद्रक—द्रव्य-गुण-ग्रन्थों में इसके गुण शुद्ध मांस के समान ही कहे हुए हैं ॥ ८६ ॥

अथ तक्रमांसम् (अखनी)। तस्य साधनं गुणांश्चाह

पाकपात्रे घृतं दत्त्वा हरिद्रां हिङ्गु भर्जयेत् । छागादेः सकलस्यापि खण्डान्यपि च भर्जयेत् ॥
सिद्धयोग्यं जलं दत्त्वा पचेन्मृदुतरं तथा । जीरकादियुते तक्रे मांसखण्डानि भावयेत् ॥८८॥
तक्रमांसन्तु वातघ्नं लघु बल्यं बलप्रदम् । कफघ्नं पित्तलं किञ्चित्सर्वाहारस्य पाचनम् ॥८९॥

अखनी बनाने की विधि—पाक बनाने के बर्त्तन में घी डाल कर उसमें हल्दी तथा हींग को प्रथम भून डाले, तत्पश्चात् उसी में बकरे आदि के सम्पूर्ण अङ्गों के मांस के टुकड़ों को भून डाले, तत्पश्चात् उसमें सिद्ध होने योग्य जल डाल कर पुनः मन्द २ अग्नि से पकावे। पश्चात् जीरा आदि पड़े हुये तक्र (मट्ठा) में उन मांस के टुकड़े को डाले। यही 'अखनी' कहलाती है।

अखनी—वातनाशक, लघु, रुचिकारक, बलकारक, कफनाशक, किञ्चित् पित्तजनक तथा सम्पूर्ण खाये हुए पदार्थों को पचाने वाली होती है ॥ ८७–८९ ॥

अथ हरीसा (आसा)। तस्य साधनं गुणांश्चाह

पाकपात्रे तु बृहति मांसखण्डानि निक्षिपेत् । पानीयं प्रचुरं सर्पिः प्रभूतं हिङ्गु जीरकम् ॥
हरिद्रामार्द्रकं शुण्ठीं लवणं मरिचानि च । तण्डुलांश्चापि गोधूमाञ्जम्बीराणां रसान् बहून् ॥
यथा सर्वाणि वस्तूनि सुपक्वानि भवन्ति हि । तथा पचेत् निपुणो बहुमण्डस्थितिर्यथा ॥
एषा हरीसा बलकृद्वातपित्तापहा गुरुः । शीतोष्णा शुक्रदा स्निग्धा सरा सन्धानकारिणी ॥

हरीसा (आस) बनाने की विधि—एक बहुत बड़े पात्र में मांस के टुकड़ों को डाल कर उसी में अधिक मात्रा में जल तथा घी और हींग, जीरा, हल्दी अदरख, सोंठ, सेंधा निमक, मरिच, चावल, गेहूँ और जमीरी नीबू का रस इन सबों को डाले, तथा इस भांति चतुरता से पकावे कि उपर्युक्त सब वस्तुयें भली भांति पक भी जायें और अधिक मात्रा में मांड (रस) भी रह जाय। इसी को-हरीसा-कहते हैं। हरीसा—बलकारक, वात तथा पित्तनाशक गुरु, शीतोष्ण, शुक्रजनक, स्निग्ध, सारक (मल को निकालने वाला) तथा सन्धान-कारक (टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने वाला) होता है ॥ ९०–९३ ॥

अथ तलितमांसम् (तला हुआ मांस)। तस्य साधनं गुणांश्चाह

शुद्धमांसविधानेन मांसं सम्यक्प्रसाधितम् । पुनस्तदाज्ये सम्भृष्टं तलितं प्रोच्यते बुधैः ॥
तलितं बलमेधाऽग्निमांसौजःशुक्रवृद्धिकृत् । तर्पणं लघु सुस्निग्धं रोचनं दृढताकरम् ॥ ९५ ॥

तलित मांस (तला हुआ मांस) बनाने की विधि—पूर्वोक्त शुद्ध मांस बनाने की विधि के अनुसार भली भांति सिद्ध किये हुए मांस को पुनः घी में डाल कर जो अच्छी तरह से भूना जाता है, उसे पण्डित लोग तलित मांस अर्थात् तला हुआ मांस कहते हैं। तलित मांस (तला हुआ मांस)—बल, मेधाशक्ति, अग्नि, मांस, ओज तथा शुक्र की वृद्धि करने वाला, तृप्तिकारक, लघु, अत्यन्त स्निग्ध, रोचक, तथा शरीर को दृढ़ करने वाला होता है ॥ ९४–९५ ॥

अथ शूल्यपलम् (कबाब)। तस्य साधनं गुणांश्चाह

कालखण्डादिमांसानि ग्रथितानि शलाकया । घृतं सलवणं दत्त्वा निर्धूमे दहने पचेत् ॥ ९६ ॥
तत् शूल्यमिति प्रोक्तं पाककर्मविचक्षणैः ॥ ९७ ॥
शूल्यं पलं सुधातुल्यं रुच्यं वह्निकरं लघु । कफवातहरं बल्यं किञ्चित्पित्तकरं हि तत् ॥ ९८ ॥

शूल्य पल (कबाब) बनाने की विधि—कलेजे आदि अङ्गों के मांस को कूट कर उस में घी तथा निमक मिला कर लोहे की सलाई पर लपेट कर या उसी में गूँथ कर निर्धूम (बिना धूयें की) अग्नि पर कुछ ऊँचाई से रख कर धीरे २ पकावे, इसी को पाक करने में निपुण लोग शूल्य पल (कबाब) कहते हैं।

कबाब—अमृत के तुल्य स्वादिष्ट, रुचिकारक, अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, लघु, कफ तथा वातनाशक, बलकारक, एवम्—किञ्चित् पित्तकारक होता है ॥ ९६–९८ ॥

अथ मांसशृङ्गाटकम् (मांस का सिंगाड़ा)। तस्य साधनं गुणांश्चाह

शुद्धमांसं तनूकृत्य कर्त्तितं स्वेदितं जले। लवङ्गहिङ्गुलवणमरिचार्द्रकसंयुतम् ॥ ९९ ॥
एलाजीरकधान्याकनिम्बूरससमन्वितम्। घृते सुगन्धे तद् भृष्टं पूरणं प्रोच्यते बुधैः ॥१००॥
शृङ्गाटकं समितया कृतं पूरणपूरितम्। पुनः सर्पिषि सम्भृष्टं मांसशृङ्गाटकं वदेत् ॥ १०१ ॥
मांसशृङ्गाटकं रुच्यं बृंहणं बलकृद् गुरु। वातपित्तहरं वृष्यं कफघ्नं वीर्यवर्धनम् ॥ १०२ ॥

मांस का सिंगाड़ा बनाने की विधि—शुद्ध मांस के पतले २ तथा छोटे २ टुकड़े करके उसे जल में उबाले। पश्चात् उसमें—लौंग, हींग, सेन्धानिमक, मरिच, अदरख, छोटी इलायची, जीरा, धनिया इन सबों का यथायोग्य चूर्ण और नीबू का रस डाल करके सुगन्धित घी में भून डाले, इसी को पण्डित लोग पूरण (मैदा के सिंगाड़ा के अन्दर भरे जाने वाला द्रव्य) कहते हैं। इसके उपरान्त मैदा को जल में सान कर उसकी लोई के अन्दर उक्त पूरण संज्ञक द्रव्यों को भर कर सिंगाड़ा के आकार का बना ले और उसे घी में भून ले, इसी को मांस का सिंगाड़ा कहते हैं।

मांस का सिंगाड़ा—रुचिकारक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), बलकारक, गुरु, वात तथा पित्तनाशक, वृष्य, कफनाशक तथा अत्यन्त वीर्यवर्धक होता है ॥ ९९–१०२ ॥

अथ सिद्धमांसरसः (सुरुवा)। तस्य गुणानाह

सिद्धमांसरसो रुच्यः श्रमश्वासक्षयापहः। प्रीणनो वातपित्तघ्नः क्षीणानामल्परेतसाम् ॥
विश्लिष्टभग्नसन्धीनां शुद्धानां शुद्धिकाङ्क्षिणाम् ॥ १०३ ॥
स्मृत्योजोबलहीनानां ज्वरक्षीणक्षतोरसाम्। शस्यते स्वरहीनानां दृष्ट्यायुःश्रवणार्थिनाम् ॥
प्रकाराः कथिताः सन्ति बहवो मांससम्भवाः। ग्रन्थविस्तरभीतेस्ते मया नात्र प्रकीर्त्तिताः ॥

सिद्धमांसरस (सुरुवा) रुचिकारक, श्रम, श्वास तथा क्षय को दूर करने वाला, तृप्तिदायक, वात तथा पित्तनाशक होता है; एवम् क्षीण, अल्पवीर्य या जिनकी सन्धियाँ उखड़ गई हैं या टूट गई हैं, या जो वमन विरेचनादि से शुद्ध हुये हैं अथवा वमन विरेचनादि से शोधन करना चाहते हैं, किंवा स्मरणशक्ति ओज तथा बल से हीन हैं, या ज्वर से क्षीण अथवा उरःक्षत रोग से पीड़ित हैं, या जिनका स्वर हीन हो गया है अथवा दृष्टिशक्ति आयु तथा श्रवणशक्ति की वृद्धि चाहने वाले जो लोग हैं उनके लिये उत्तम होता है। इस प्रकार से बहुत से मांस बनाने के प्रकार अन्यत्र कहे हुये हैं किन्तु ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से यहां पर उन सबका वर्णन नहीं किया जा रहा है ॥ १०३–१०५ ॥

अथ शाकपाकविधिः। तामाह

हिङ्गुजीरयुते तैले क्षिपेच्छाकं सुखण्डितम् ॥ १०६ ॥
लवणं चात्र चूर्णादि सिद्धे हिङ्ग्वुदकं क्षिपेत्। इत्येवं सर्वशाकानां साधनेऽभिहितो विधिः ॥

शाक बनाने की विधि—शाक को पहले टुकड़े २ करके और धो करके पीछे तेल में हींग तथा जीरा का तड़का दे करके उसी में डाल दे, जब गल जाय तब उसमें सेंधा निमक, खटाई का चूर्ण तथा हींग घोला हुआ जल छोड़ कर पक जाने पर उतार ले। हर एक शाकों को बनाने के लिये प्रायः करके यही विधि काम में ली जाती है ॥ १०६–१०७ ॥

अथ पक्वान्नसाधनविधिमाह। तत्र मण्ठकः ("मठरी" इति लोके)। तस्य साधनविधिमाह

समितां मर्दयेदाज्यैर्जलेनापि च सन्नयेत्। तस्यास्तु वटिकां कृत्वा पचेत्सर्पिषि नीरसम् ॥
एलालवङ्गकर्पूरमरिचाद्यैरलङ्कृते ॥ १०८ ॥
मज्जयित्वा सितापाके ततस्तञ्च समुद्धरेत्। अयं प्रकारः संसिद्धौ मण्ठ इत्यभिधीयते ॥

पकवान बनाने की विधियों में प्रथम मण्ठक (लोकप्रसिद्ध मठरी) बनाने की विधि कहते हैं—प्रथम मैदा को घी तथा जल से खूब मर्दन करे, पश्चात् उसको टिकिया बनाकर घी में खूब तल ले, फिर चीनी की चाशनी बना कर उसमें छोटी इलायची, लौंग, कपूर, मरिच आदि डालकर उसीमें उक्त टिकियों को डुबो दे, जब खूब भींग जाय तब निकाल कर काम में ले, इस प्रकार से तैयार हुये पकवान को मण्ठ अर्थात् मठरी कहते हैं ॥ १०८–१०९ ॥

सन्नयेत् = मर्दयेत् ॥ १०८–१०९ ॥
यहाँ पर मूल में "सन्नयेत्" पद का "खूब मर्दन करे" यह अर्थ समझना चाहिए ॥

अथ मण्ठस्य गुणानाह

मण्ठस्तु बृंहणो वृष्यो बल्यः सुमधुरो गुरुः। पित्तानिलहरो रुच्यो दीप्ताग्नीनां सुपूजितः ॥
समिताशर्करासर्पिर्निर्मिता अपरेऽपि ये। प्रकारा अमुना तुल्यास्तेऽपि चेत्तद्गुणाः स्मृताः ॥

मठरी—बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), वृष्य, बलकारक, अत्यन्त मधुर, गुरु, पित्त तथा वायु को दूर करने वाली, रुचिकारक तथा प्रदीप्त अग्नि वालों के लिये अत्युत्तम होती है।

इसी के समान मैदा, शक्कर तथा घी के योग से बने हुये अन्य प्रकार के भी जो पकवान बालू-साही आदि हैं, उसके भी ये ही सब गुण होते हैं ॥ ११०–१११ ॥

अथ सम्पावः (गुजिया)। तस्य साधनं गुणांश्चाह

पर्पटयः साज्यसमितानिर्मिता घृतभर्जिताः। कुट्टिताश्चालिताः शुद्धशर्कराभिर्विमर्दिताः ॥
तत्र चूर्णं क्षिपेदेलालवङ्गमरिचानि च। नारिकेरं सकर्पूरं चारबीजान्यनेकधा ॥ ११३ ॥
घृताक्तसमिता पुष्टरोटिका रचिता ततः। तस्यान्तःपूरणं तस्य कुर्यान्मुद्रां दृढां सुधीः ॥
सर्पिषि प्रचुरे तान्तु सुपचेन्निपुणो जनः। प्रकारज्ञैः प्रकारोऽयं सम्पाव इति कीर्त्तितः ॥
मण्ठकेन समो ज्ञेयः सम्पावोऽपि गुणैर्जनैः ॥ ११६ ॥

गुजिया बनाने की विधि—घी का मोयन देकर मैदा की पतली २ रोटी बेल कर उसे घी में खखंरी तल करके पश्चात् कूट कर चलनी से चाल ले और उसमें अन्दाज से बूरा मिला कर खूब मर्दन करे। पुनः इलायची, लौंग, मरिच, नारियल की मींगी का बुरादा (बारीक २ टुकड़े), कपूर, चिरौंजी आदि द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर घी का मोयन देकर माड़े हुये मैदे की मोटी रोटी बेल कर उसके अन्दर (पूर्वोक्त चूर्ण किये हुये द्रव्यों को) भरकर उसका मुख दृढ़ता से युक्तिपूर्वक बन्द कर दे, तत्पश्चात्, अधिक घी कड़ाई में डाल कर उसमें अच्छी तरह से पकावे। पकवान बनाने की विधियों के जानने वाले लोगों ने इस प्रकार से बने हुये पदार्थ को "सम्पाव" अर्थात् गुजिया कहा है।

गुजिया—गुणों में मठरी के समान ही होती है ऐसा पाकशास्त्रज्ञों का मत है।

अथ कर्पूरनालिका । तस्याः साधनं गुणांश्चाह

घृताढ्यया समितया लम्बं कृत्वा पुटं ततः । लवङ्गोषणकर्पूरयुतया सितयाऽन्वितम् ॥
पचेदाज्येन सिद्धैषा ज्ञेया कर्पूरनालिका । सम्पावसदृशा ज्ञेया गुणैः कर्पूरनालिका ॥ ११८ ॥

कर्पूरनालिका बनाने की विधि—घी का मोयन देकर मड़े हुये मैदा की लोई बेलकर लम्बा सम्पुट बनाकर उसके अन्दर लौंग, मरिच तथा कपूर का चूर्ण और बूरा (दानेदार चीनी) भरकर उस का मुख दृढ़ता से बन्द करके घी में पकावे, सिद्ध होने पर इसी को "कर्पूरनालिका कहते हैं।

कर्पूरनालिका—गुणों में गुजिया के समान ही होती है ॥ ११७-११८ ॥

अथ फेनिका (फेनी)। तस्याः साधनं गुणांश्चाह

समितायाः घृताढ्यायाः वर्त्तीर्दीर्घाः समाचरेत् । तास्तु सन्निहिता दीर्घाः पीठस्योपरि धारयेत्॥
वेल्लयेद्वेल्लनेनैता यथैका पर्पटी भवेत् । ततश्छुरिकया तान्तु संलग्नामेव कर्त्तयेत् ॥ १२० ॥
ततस्तु वेल्लयेद्भूयः सट्टकेन च लेपयेत् । शालिचूर्णं घृतं तोयं मिश्रितं सट्टकं वदेत् ॥
ततः संवृत्य तल्लोप्त्रीं विदधीत पृथक्पृथक् । पुनस्तां वेल्लयेल्लोप्त्रीं यथा स्यान्मण्डलाकृतिः ॥
ततस्तां सुपचेदाज्ये भवेयुश्च स्फुटाः स्फुटाः । सुगन्धया शर्करया तद्धूलनमाचरेत् ॥
सिद्धैषा फेनिकानाम्नी मण्ठकेन समा गुणैः । ततः किञ्चिल्लघुरियं विशेषोऽयमुदाहृतः ॥

फेनी बनाने की विधि—घी का मोयन देकर मड़े हुये मैदा की लम्बी २ बत्ती बना कर उसे चकला पर पास २ सटाकर रखकर लम्बाई की तरफ से बेलन से ऐसा बेले कि जिसमें एक रोटी की तरह हो जाय, उसके बाद छूरी से एक दूसरे से लगी हुई को काट २ कर, उसको पुनः अलग २ बेल और उन पर चावल का चूर्ण, घी और जल को खूब मिलाने से जो सट्टक तैयार होता है, उसका लेप करे। फिर उन सबों को अलग २ समेट कर लोई बनाकर ऐसा बेले कि जिसमें चक्राकार रोटी बन जाय। तत्पश्चात् घी में उन सबको अच्छी तरह से पकावे, तैयार होने पर उसमें फुटका-फुटका सा पड़ जायगा।

पुनः सुगन्धित शक्कर में उन सबों को सान दे अथवा चाशनी से डुबोकर निकाल ले। इस प्रकार से तैयार हुई पकवान को फेनी कहते हैं।

फेनी—गुणों में मठरी के समान होती है, किन्तु विशेषकर उसकी अपेक्षा किञ्चित लघु होती है ॥ ११९-१२४ ॥

*वेल्लयेत् = प्रसारयेत् । वेल्लनः = 'बेलन' इति लोके । पर्पटी = रोटी । लोप्त्री 'लोई' इति लोके ॥ ११९-१२४ ॥

यहाँ पर मूल में "वेल्लयेत" का "बेले", "वेल्लन" पद का लोक प्रसिद्ध "बेलन", "पर्पटी" का "रोटी" और "लोप्त्री" का "लोई" अर्थ समझना चाहिये ॥ ११९-१२४ ॥

अथ शष्कुली (खस्तापूरी)। तस्याः साधनं गुणांश्चाह

समितायाः घृताक्तायाः लोप्त्रीं कृत्वा च वेल्लयेत् । आज्ये तां भर्जयेत्सिद्धा शष्कुली फेनिकागुणा ॥

खस्ता पूरी बनाने की विधि—घी का मोयन देकर मैदा माड़ कर उसकी लोई बना डाले, पश्चात् उन सबों को बेल कर घी में पका डाले, सिद्ध होने पर इसी को संस्कृत में—"शष्कुली" कहते हैं।

खस्ता पूरी-गुणों में फेनी के समान होती है ॥ १२५ ॥

अथ सेविकामोदकाः (सेव के लड्डू)। तेषां साधनं गुणांश्चाह

घृताढ्यया समितया कृत्वा सूत्राणि तानि तु । निपुणो भर्जयेदाज्ये खण्डपाकेन योजयेत् ॥
युक्तेन मोदकान् कुर्यात्ते गुणैर्मण्ठका यथा ॥ १२६ ॥

सेव के लड्डू बनाने की विधि—घी का मोयन देकर मैदा माड़ कर उसके सूत्र अर्थात् सेव बना ले और उसे घी में भून ले, जब सिक जाय तब उतार कर शक्कर की चाशनी में डुबो कर उस का लड्डू बांध ले, उसी को सेव का लड्डू कहते हैं।

यह—गुण में मठरी के समान ही होता है ॥ १२६ ॥

अथ मुक्तामोदका मुद्गमोदका वा (बूँदी के लड्डू)। तेषां साधनं गुणांश्चाह

मुद्गानां धूमसीं सम्यग्घोलयेन्निर्मलाऽम्बुना ॥ १२७ ॥
कटाहस्य घृतस्योर्ध्वं झर्झरं स्थापयेत्ततः । धूमसीन्तु द्रवीभूतां प्रक्षिपेज्झर्झरोपरि ॥ १२८ ॥
पतन्ति बिन्दवस्तस्मात्तान्सुपक्वान्समुद्धरेत् । सितापाकेन संयोज्य कुर्याद्धस्तेन मोदकान् ॥
लघुर्ग्राही त्रिदोषघ्नः स्वादुः शीतो रुचिप्रदः । चक्षुष्यो ज्वरहृद्बल्यस्तर्पणो मुद्गमोदकः ॥१३०॥

बूंदी के लड्डू बनाने की विधि—मूंग की धुंवास को साफ जल में गाढ़ा २ घोल कर खूब फेंट डाले, फिर कढ़ाई में ज्यादा घी रखकर उसे आग पर चढ़ा दे और कढ़ाई के ऊपर झरनी रखकर उस पर पूर्वोक्त घोले हुये धुआंस को धीरे २ डाले तो जो बूंद के समान कढ़ाई में गिरे उन सबों को सिक जाने पर निकाल २ कर चीनी की चासनी में भिगोता जाय, बाद को सबों को चासनी में से निकाल कर हाथ से लड्डू बना ले। इसी को बूंदी के लड्डू कहते हैं।

बून्दी के लड्डू—लघु, ग्राही, त्रिदोषनाशक, स्वादिष्ट, शीतल, रुचिकारक, नेत्रों के लिये हितकर, ज्वरनाशक, बलकारक तथा तृप्तिदायक होते हैं ॥ १२७-१३० ॥

*"झर्झरं झर्झरा"वेति लोके ॥ १२७-१३० ॥

यहां पर मूल में झर्झर या झर्झरा से लोकप्रसिद्ध झरनी का बोध करना चाहिये ॥१२७-१३०॥

अथ वेसनमोदकाः (मोतीचूर के लड्डू)। तेषां साधनं गुणांश्चाह

एवमेव प्रकारेण कार्या वेसनमोदकाः ॥ १३१ ॥
ते बल्या लघवः शीताः किञ्चिद्वातकरास्तथा । विष्टम्भिनो ज्वरघ्नाश्च पित्तरक्तकफापहाः ॥

मोतीचूर के लड्डू बनाने की विधि—इसी प्रकार से अर्थात् उपर्युक्त बूंदी के समान बेसन के भी लड्डू बनाने चाहिये। बेसन के लड्डू—बलकारक, लघु, शीतल, किञ्चिद् वायु उत्पन्न करने वाले, विष्टम्भकारक, ज्वरनाशक तथा पित्त, रक्तविकार और कफ को दूर करने वाले होते हैं ॥

अथ दुग्धकूपिका । तस्याः साधनं गुणांश्चाह

तण्डुलचूर्णविमिश्रितनष्टक्षीरेण सान्द्रपिष्टेन । दृढकूपिकां विदध्यात्ताञ्च पचेत्सर्पिषा सम्यक् ॥
अथ तां कोरितमध्यां घनपयसा पूर्णगर्भाञ्च । सट्टकमुद्रितवदनां तप्तघृते सुपक्ववदनाञ्च ॥
अथ पाण्डुखण्डपाके स्नपयेत्कर्पूरवासिते कुशलः ।
अथ दुग्धकूपिका सा बल्या पित्तानिलापहा चैव ॥ १३४ ॥
वृष्या शीता गुर्वी शुक्रकरी च तर्पणी रुच्या । विदधाति कायपुष्टिं दृष्टिं दूरप्रसारिणीं सुचिरम् ॥

दुग्धकूपिका बनाने की विधि—चावलों के चूर्ण में छेना (दूध को खटाई आदि डाल कर फाड़ देने से जो घन भाग अलग हो जाता है उसे छेना कहते हैं) मिलाकर खूब मर्दन करे, तत्पश्चात उसकी मजबूत कुप्पी बना ले और उसे घी में पका ले, उसके बाद कूपी के मध्य भाग में छेद करके गाढे दूध से उसे भर दे, पश्चात पूर्वोक्त सट्टक से उसका मुख दृढ़ता से बन्द कर दे, पश्चात पुनः घी में पका दे, जब इसका मुख सिक जाय तब कर्पूर से सुवासित सफेद चीनी की चाशनी में उसे भिगो दे। इसी को पाकशास्त्र में कुशल लोग–दुग्धकूपिका कहते हैं।

दुग्धकूपिका—बलकारक, पित्त तथा वायु को नष्ट करनेवाली, वृष्य, शीतल, गुरु, शुक्र-जनक, तृप्तिकारक, रुचिजनक एवम्—शरीर की पुष्टि तथा चिर काल तक दूर तक देखने की शक्ति को करने वाली होती है ॥ १३३–१३६ ॥

अथ कुण्डलिनी ("जलेबी" इति लोके)। तस्याः साधनं गुणांश्चाह

नूतनं घटमानीय तस्यान्तः कुशलो जनः। प्रस्थार्द्धपरिमाणेन दध्नाऽम्लेन प्रलेपयेत् ॥१३७॥
द्विप्रस्थां समितां तत्र दध्यम्लं प्रस्थसम्मितम्। घृतमर्द्धशरावञ्च घोलयित्वा घटे क्षिपेत् ॥
आतपे स्थापयेत्तावद् यावद्याति तदम्लताम्। ततस्तत्प्रक्षिपेत्पात्रे सच्छिद्रे भाजने तु तत् ॥
परिभ्राम्य परिभ्राम्य सुसन्तप्ते घृते क्षिपेत्। पुनःपुनस्तदावृत्या विदध्यान्मण्डलाकृतिम् ॥
तां सुपक्वां घृतान्नीत्वा सितापाके तनुद्रवे। कर्पूरादिसुगन्धे च स्नापयित्वोद्धरेत्ततः ॥१४१॥
एषा कुण्डलिनी नाम्ना पुष्टिकान्तिबलप्रदा। धातुवृद्धिकरी वृष्या रुच्या चेन्द्रियतर्पणी ॥

जलेबी बनाने की विधि—पाकविद्या में जो निपुण हो, वह एक नवीन घड़ा लेकर उसके अन्दर आधा प्रस्थ (३२ रुपये भर) खट्टा दही लेकर उससे चारो तरफ लेप कर दे, उसके बाद २ प्रस्थ (१२८ रुपये भर अर्थात १ सेर ९ छटाक ३) भर) मैदा, १ प्रस्थ (६ छटाक २) भर खट्टा दही, आधा शराव (३ छटाक १) भर) घी, इन सबों को खूब घोल कर उक्त घड़े मे रख कर धूप में जब तक उक्त पदार्थ खट्टे न हो जायं तब तक रहने दे। खट्टे हो जाने के बाद घड़े में से निकाल कर उक्त पदार्थों को जिसमें एक छिद्र कनिष्ठिका अंगुली जाने लायक से कुछ छोटा हो, उस पात्र में रखकर खौलते हुए घी की कढ़ाई में पात्र को घुमा २ कर मण्डलाकार एक मण्डल के भीतर दूसरा मण्डल इस भांति से जैसा छोटा या बड़ा बनाना हो, वैसा मण्डल बना ले, और जब वह पक जाय तब निकाल कर पतली चीनी की चाशनी में डुबो दे और ऊपर से कपूर आदि सुगन्धित पदार्थों का चूर्ण बुरका दे, तत्पश्चात धीरे से निकाल कर अलग पात्र में रख दे, इसी को जलेबी कहते हैं ॥

जलेबी—पुष्टि, कान्ति तथा बल को देने वाली, धातुवर्धक, [illegible]र्यवर्धक, रुचिकारक तथा इन्द्रिय अर्थात रसनेन्द्रिय को तृप्त करने वाली होती है ॥ १३७–१४२ ॥

अथ पश्चात् परिवेष्याणि। तत्र रसाला (श्रीखण्ड)। तस्याः साधनं सेवनार्हजनान् गुणाँश्चाह

आदौ माहिषमम्लमम्बुरहितं दध्याढकं शर्करां
शुभ्रां प्रस्थयुगोन्मितां शुचिपटे किञ्चिच्च किञ्चित्क्षिपेत्।
दुग्धेनार्द्धघटेन मृण्मयनवस्थाल्यां दृढं स्रावये-
देलाबीजलवङ्गचन्द्रमरिचैर्योग्यैश्च तद्योजयेत् ॥
भीमेन प्रियभोजनेन रचिता नाम्ना रसाला स्वयं
श्रीकृष्णेन पुरा पुनः पुनरियं प्रीत्या समास्वादिता।

एषा येन वसन्तवर्जितदिने संसेव्यते नित्यश-
स्तस्य स्यादतिवीर्यवृद्धिरनिशं सर्वेन्द्रियाणां बलम् ॥ १४४ ॥
ग्रीष्मे तथाशरदि ये रविशोषिताङ्गा ये च प्रमत्तवनितासुरतातिखिन्नाः।
ये चापि मार्गपरिसर्पणशीर्णगात्रा-स्तेषामियं वपुषि पोषणमाशु कुर्यात् ॥ १४५ ॥
रसाला शुक्रला बल्या रोचनी वातपित्तजित् ॥ १४६ ॥
दीपनी बृंहणी स्निग्धा मधुरा शिशिरा सरा। रक्तपित्तं तृषां दाहं प्रतिश्यायं विनाशयेत् ॥

भोजन के पश्चात परोसने योग्य पदार्थों में प्रथम श्रीखण्ड बनाने की विधि कहते हैं—प्रथम भैंस का जल रहित खट्टा दही १ आढक (३ सेर ३ छटाक १) भर), सफेद शक्कर का बूरा २ प्रस्थ (१ सेर ९ छटाक ३) भर), और आधा घट (२ आढक अर्थात ५ सेर ६ छटाक २) भर) दूध लेकर इन सबको एक साफ कपड़े पर धीरे २ डाल कर खूब मसल कर के नीचे एक मिट्टी के पात्र में छान ले, पश्चात उसमें छोटी इलायची के बीज, लौंग, कपूर, मरिच इत्यादि द्रव्यों का चूर्ण आवश्यकताऽनुसार डाल दे। इसी को श्रीखण्ड कहते हैं, इसे सर्वप्रथम उत्तम भोजन करने तथा बनाने वाले कुन्तीपुत्र भीम ने बनाया था और इसे स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने अत्यन्त स्वादिष्ट होने से बारम्बार लेकर प्रीतिपूर्वक खाया था, तथा इसे जो कोई वसन्त ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में प्रतिदिन खाता है, उसके वीर्य की अत्यन्त वृद्धि और सम्पूर्ण इन्द्रियों में बल की वृद्धि होती है। एवम् ग्रीष्म तथा शरद् ऋतु में सूर्य की किरणों से जिनके शरीर सूख गये हैं, जो काम मद से मतवाली स्त्रियों के साथ रमण करने से अत्यन्त खिन्न हो गये हैं तथा अत्यन्त मार्ग चलने से जिनके शरीर शिथिल हो गये हैं, उन लोगों के लिये यह श्रीखण्ड तत्काल शरीर की पुष्टि करने वाला होता है।

श्रीखण्ड—शुक्रजनक, बलकारक, रोचक, वात तथा पित्तनाशक, अग्निदीपक, बृंहण, स्निग्ध, मधुर, शीतल, सारक एवम् रक्तपित्त, तृषा, दाह और जुकाम को दूर करने वाला होता है ॥ १४३ १४७ ॥

अथ शर्करोदकम् (सरबत)। तस्य साधनं गुणांश्चाह

जलेन शीतलेनैव घोलिता शुभ्रशर्करा। एलालवङ्गकर्पूरमरिचैश्च समन्विता ॥ १४८ ॥
शर्करोदकनाम्ना तत्प्रसिद्धं विदुषां मुखैः। शर्करोदकमाख्यातं शुक्रलं शिशिरं सरम् ॥१४९॥
बल्यं रुच्यं लघु स्वादु वातपित्तप्रणाशनम्। मूर्च्छाच्छर्दितृषादाहज्वरशान्तिकरं परम् ॥१५०॥

शर्बत बनाने की विधि—सफेद चीनी को शीतल जल में घोलकर उसमें इलायची, लौंग, कपूर, तथा मरिच पीस कर डाल दे. पश्चात छान कर पीवे, इसी को पण्डित लोग शर्बत कहते हैं।

शर्बत—शुक्रजनक, शीतल, सारक, बलकारक, रोचक, लघु, स्वादिष्ट, वात तथा पित्तनाशक एवम्–मूर्च्छा, वमन, प्यास, दाह तथा ज्वर को अत्यन्त शान्त करने वाला होता है। १४८–१५०॥

अथ प्रपाणकानि (सरबत)। तत्राम्रफलप्रपाणकम्। तस्य साधनं गुणांश्चाह

आम्रमाम्रं जले स्विन्नं मर्दितं दृढपाणिना। सिताशीताम्बुसंयुक्तं कर्पूरमरिचान्वितम् ॥१५१॥
प्रपाणकमिदं श्रेष्ठं भीमसेनेन निर्मितम्। सद्यो रुचिकरं बल्यं शीघ्रमिन्द्रियतर्पणम् ॥१५२॥

प्रपाणक अर्थात सरबत अथवा पना में प्रथम आमका पना बनाने की विधि—कच्चा आम जल में उबाल कर हाथ से खूब मसलकर उसका रस निकाल ले और उसमें सफेद चीनी, शीतल जल मात्राऽनुसार डाल कर पुनः कपूर तथा मरिच का चूर्ण मिला दे।

इसी को आम का पना कहते हैं, यह उत्तम होता है। इसे भीमसेन ने सर्वप्रथम बनाया था। यह पीने से तत्काल ही रुचि को बढ़ाने वाला, बलकारक तथा शीघ्र इन्द्रियों को तृप्त करने वाला होता है॥ १५१-१५२॥

अथाम्लिकाफलपानकम्। तस्य साधनं गुणांश्चाह

अम्लिकायाः फलं पक्वं मर्दितं वारिणा दृढम्। शर्करामरिचैर्मिश्रं लवङ्गेन्दुसुवासितम्॥१५३॥
अम्लिकाफलसम्भूतं पानकं वातनाशनम्। पित्तश्लेष्मकरं किञ्चित्सुरुच्यं वह्निबोधनम्॥

इमली का पना बनाने की विधि—इमली के पके फलों को प्रथम जल में भिगो दे, तत्पश्चात् हाथ से खूब मसल कर छानकर उसमें साफ शक्कर, मरिच, लवङ्ग तथा कपूर का चूर्ण मिला दे।

इमली का पना—वातनाशक, एवम् किञ्चित् पित्त तथा कफकारक, अत्यन्त रोचक और जठराग्नि को उद्दीप्त करने वाला होता है॥ १५३-१५४॥

अथ निम्बुकफलपानकम्। तस्य साधनं गुणांश्चाह

भागैकं निम्बुजं तोयं षड्भागं शर्करोदकम्। लवङ्गमरिचैर्मिश्रं पानं पानकमुत्तमम्॥१५५॥
निम्बूकफलभवं पानमत्यम्लं वातनाशनम्। वह्निदीप्तिकरं रुच्यं समस्ताहारपाचकम्॥१५६॥

नीम्बू का पानक बनाने की विधि—निम्बू का रस १ भाग, चीनी का शर्बत ६ भाग, इन दोनों को एकत्र कर उसमें लवङ्ग तथा मरिच मात्राऽनुसार मिला देने से पीने योग्य उत्तम पानक तैयार होता है। निम्बू का पानक—अत्यन्त अम्ल रसयुक्त, वातनाशक, अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, रोचक तथा सभी प्रकार के आहार को पचाने वाला होता है १५५-१५६॥

अथ धान्याकपानकम्। तस्य साधनं गुणांश्चाह

शिलायां साधु सम्पिष्टं धान्याकं वस्त्रगालितम्।
शर्करोदकसंयुक्तं कर्पूरादिसुसंस्कृतम्। नूतने मृण्मये पात्रे स्थितं पित्तहरं परम्॥ १५७॥

धनियें का पानक बनाने की विधि तथा गुण—धनियें को प्रथम सिल पर भली भाँति पीस कर वस्त्र से छान ले, पश्चात् उसमें मात्राऽनुसार चीनी का शर्बत मिलाकर तथा कपूर आदि सुगन्धित द्रव्यों से सुगन्धित करके नवीन मिट्टी के पात्र में रख दे, पश्चात् इच्छानुसार पीने से यह पित्त को अत्यन्त नष्ट करता है॥ १५७॥

अथ काञ्जी। तस्यागुणानाह

काञ्जिकं रोचनं रुच्यं पाचनं वह्निदीपनम्॥ १५८॥
शूलाजीर्णविबन्धघ्नं कोष्ठशुद्धिकरं परम्। न भवेत्काञ्जिकं यत्र तत्र जालिः प्रदीयते॥१५९॥

काञ्जी—रोचक, तथा स्वयं रुचने वाली, पाचक, अग्निदीपक एवम् शूल, अजीर्ण तथा विबन्ध (मलबन्ध) को नष्ट करने वाली एवम् कोष्ठ को अत्यन्त शुद्ध रखने वाली होती है।

यदि काञ्जी न मिले तो उसके अभाव में निम्नलिखित जाली का प्रयोग करना चाहिये॥

ॐकाञ्जीविधिर्वटकावसरे लिखितः॥ १५८-१५९॥

यहां पर यह और भी समझ लेना चाहिये कि—काञ्जी बनाने की विधि पूर्व में वटक बनाने की विधि में कह आये हैं अतः पुनः उल्लेख नहीं किया गया॥ १५८-१५९॥

अथ जालिः। तस्य साधनं गुणांश्चाह

आममाम्रफलं पिष्टं राजिकालवणान्वितम्। भृष्टहिङ्गुयुतं पूतं घोलितं जालिरुच्यते॥१६०॥
जालिर्हरति जिह्वायाः कुण्ठत्वं कण्ठशोधिनी। मन्दं मन्दन्तु पीता सा रोचनी वह्निबोधिनी॥

जाली बनाने की विधि—आम के कच्चे फल को पीसकर उसमें मात्राऽनुसार राई तथा सेंधा नमक मिलाकर घोल ले, पश्चात् छान कर उसमें भुने हुए हींग का चूर्ण मिला दे। इसी को जाली कहते हैं।

जाली—जीभ की जड़ता को दूर करने वाली तथा कण्ठ को शुद्ध करने वाली होती है। एवम् यदि इसे धीरे २ पिया जाय तो यह रोचक तथा अग्नि को बढ़ाने वाली होती है॥१६०-१६१॥

अथ तक्रम् (छाछ)। तस्य साधनं गुणांश्चाह

तुर्यांशेन जलेन संयुतमतिस्थूलं सदम्लं दधि
प्रायोमाहिषमम्बुकेन विमले मृद्भाजने गालयेत्।
भृष्टं हिंगु च जीरकञ्चलवणं राजीञ्च किञ्चिन्मितां
पिष्टां तत्र विमिश्रयेद्भवति तत्तक्रं न कस्य प्रियम्॥

तक्रं रुचिकरं वह्निदीपनं पाचनं परम्। उदरे ये गदास्तेषां नाशनं तृप्तिकारकम्॥ १६३॥

छाछ बनाने की विधि—प्रायः करके अत्यन्त गाढ़ा तथा खट्टा भैंस का दही लेकर उसमें चतुर्थांश जल मिला कर मथ डाले, तत्पश्चात् वस्त्र से स्वच्छ मिट्टी के पात्र में छान ले और उसमें मात्राऽनुसार भुनी हुई हींग, भुना हुआ जीरा, सेंधानिमक, इन सब का चूर्ण तथा थोड़ी मात्रा में राई पीसकर मिला देनेसे छाछ तैयार हो जाता है, जो किसको प्रिय नहीं लगता है अर्थात् सभी लोग इसे रुचि से पीते हैं।

छाछ—रुचिकारक, अग्निदीपक, अत्यन्त पाचक एवम् उदरसम्बन्धी जितने रोग हैं सभी को नष्ट करने वाला तथा तृप्ति देने वाला होता है॥ १६३॥

अथ दुग्धम् (दूध)। तस्य भोजनान्ते पानगुणानाह

विदाहीन्यन्नपानानि यानि भुङ्क्ते हि मानवः। तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं भोजनान्ते पयः पिबेत्॥

भोजन के अन्त में दूध पीने के गुण—यदि मनुष्य भोजन में विदाही (दाहकारक) अन्न पानादि का प्रयोग करे तो उसे उचित है कि—उससे उत्पन्न होने वाले दाह की शान्ति के लिये भोजन के अन्त में दुग्धपान अवश्य करे॥ १६४॥

दुग्धस्यापरे गुणा उक्ता एव दुग्धवर्गे॥ १६४॥

यहां पर यह भी समझना चाहिये कि इसके अतिरिक्त दुग्ध के अन्य जो गुण हैं, वे आगे दुग्धवर्ग में कहे जायेंगे। अतः यहां उनका उल्लेख नहीं किया गया॥ १६४॥

अथ सक्तवः (सत्तू)। तस्य साधनविधिमाह

धान्यानि भ्राष्ट्रभृष्टानि यन्त्रपिष्टानि सक्तवः॥ १६५॥

सत्तू बनाने की विधि—भाड़ में भूजे हुये चावल जौ आदि धान्यों को यदि चक्की में पीस दिया जाय तो वे सत्तू कहलाते हैं॥ १६५॥

तत्र यवसक्तवः । तेषां गुणानाह

यवजाः सक्तवः शीता दीपना लघवः सराः । कफपित्तहरा रूक्षा लेखनाश्च प्रकीर्त्तिताः॥१६६॥
ते पीता बलदा वृष्या बृंहणा भेदनास्तथा । तर्पणा मधुरा रुच्याः परिणामे बलावहाः॥१६७॥
कफपित्तश्रमक्षुत्तृड्व्रणनेत्रामयापहाः । प्रशस्ता घर्मदाहाध्वव्यायामार्त्तशरीरिणाम् ॥१६८॥

जौ का सत्तू—शीतल, अग्निदीपक, लघु, सारक, कफ तथा पित्त नाशक, रूक्ष तथा लेखन गुण युक्त होता है। यदि सत्तू को जल में घोल कर पीया जाय तो वह बलदायक, वीर्यवर्धक, बृंहण, मल का भेदन करने वाला, तृप्तिकारक, मधुर, रुचनेवाला, परिणाम में (पचने पर) बल देने वाला एवम् कफ, पित्त, श्रम, भूख, प्यास, व्रण तथा नेत्ररोग को दूर करने वाला होता है। और धूप, दाह, चलने की थकावट, व्यायाम इनसे पीड़ित लोगों के लिये हितकर है॥१६६-१६८॥

अथ चणकयवसक्तवः । तेषां साधनं गुणाँश्चाह

निस्तुषैश्चणकैर्भृष्टैस्तुर्यांशैश्च यवैः कृताः । सक्तवः शर्करासर्पिर्युक्ता ग्रीष्मेऽतिपूजिताः ॥१६९॥

जौ मिले हुए चनों का सत्तू बनाने की विधि—चने को भून कर उसके छिलके को अलग कर के उस में भुने जौ को चने की अपेक्षा चतुर्थांश मिला कर पीस कर तैयार करने से जो सत्तू होता है उसे यव मिश्रित चने का सत्तू कहते हैं।

यवमिश्रित चने का सत्तू—यदि शकर तथा घी मिला कर ग्रीष्म ऋतु में खाया जाय तो अत्युत्तम होता है॥ १६९ ॥

अथ शालिसक्तवः । तेषां गुणानाह

सक्तवः शालिसम्भूता वह्निदा लघवो हिमाः । मधुरा ग्राहिणो रुच्याः पथ्याश्च बलशुक्रदाः ॥

चावल का सत्तू—अग्निकारक, लघु, शीतल, मधुर रसयुक्त, ग्राही, स्वयं रुचिकर, पथ्य, एवम् बल तथा शुक्र को उत्पन्न करने वाला होता है॥ १७० ॥

अथ सक्तुविषये सामान्यपरिभाषामाह

न भुक्त्वा न रदैश्छित्त्वा न निशायां न वा बहून् । नजलान्तरितानद्भिः सक्तूनद्यान्न केवलान् ॥
पृथक्पानं पुनर्दानं सामिषं पयसा निशि । दन्तच्छेदनमुष्णञ्च सप्त सक्तुषु वर्जयेत् ॥ १७०॥

सत्तू के विषय में सामान्य परिभाषायें—भोजन करने के उपरान्त या दांतों से काट २ कर या रात्रि में, अथवा अधिकमात्रा में, किंवा सत्तू खाने के बीच में बार २ जल पीपी कर या जल के साथ केवल सत्तू को कभी नहीं खाना चाहिये।

सत्तू के सम्बन्ध में त्याग करने योग्य ७ बातें—१ सत्तू खाने के समय पृथक् जल पान करना, २ एक बार सत्तू जिसने खा लिया पुनः उसी समय दुबारा उसे सत्तू देना, ३ मांस के साथ सत्तू खाना, ४ केवल जल के साथ सत्तू खाना, ५ रात्रि में सत्तू भोजन करना, ६ दांतों से काट २ कर खाना, ७ गरम करके खाना, ये ७ बातें सत्तू के विषय में त्याग करने योग्य हैं॥ १७१-१७२ ॥

अथ धानाः (बहुरी) तासां साधनं गुणाँश्चाह

यवास्तु निस्तुषा भृष्टाः स्मृता धाना इति स्त्रियाम् ।
धानाः स्युर्दुर्जरा रूक्षास्तृट्प्रदा गुरवश्च ताः । तथा मेहकफच्छर्दिनाशिन्यः सम्प्रकीर्तिताः ॥

बहुरी बनाने की विधि—जौ को कूट कर तथा भूसी अलग कर जो भाड़ में भूना जाता है उसे "बहुरी" कहते हैं। इसे संस्कृत में "धाना" कहते हैं। धाना शब्द स्त्रीलिङ्ग में होता है।

बहुरी—देर में हजम होने वाली, रूक्ष, प्यास लगाने वाली, गुरु एवम्-प्रमेह, कफ तथा वमन को नष्ट करने वाली होती है॥ १७३ ॥

अथ लाजाः (खील) । तेषां साधनं गुणाँश्चाह

येषां स्युस्तण्डुलास्तानि धान्यानि सतुषाणि च । भृष्टानि स्फुटितान्याहुर्लाजा इति मनीषिणः॥
लाजाः स्युर्मधुराः शीता लघवो दीपनाश्च ते । स्वल्पमूत्रमला रूक्षा बल्याः पित्तकफच्छिदः॥
छर्द्यतीसारदाहास्रमेहमेदस्तृषाऽपहाः ॥ १७५ ॥

खील बनाने की विधि—जिन धान्यों के चावल होते हैं वे धान्य भूसी (छिलके) के साथ ही अर्थात् बिना कूटे ही यदि भून दिये जायं तो खिल जाते हैं। उन्हीं को पण्डित लोग संस्कृत में "लाजाः" कहते हैं। (इस का प्रयोग नित्य पुंल्लिङ्ग बहुवचन में ही होता है) और हिन्दी में "खील" कहते हैं।

खील—मधुर रस युक्त, शीतल, लघु, अग्निदीपक, स्वल्प मूत्र तथा मल को लाने वाले, रूक्ष, बलकारक, एवम्—पित्त, कफ, वमन, अतिसार, दाह, रक्तविकार, प्रमेह, मेद तथा तृषा को दूर करने वाले होते हैं॥ १७४-१७५ ॥

अथ चिपिटाः (चिउडा) । तेषां साधनं नामानि गुणाँश्चाह

शालयः सतुषा आर्द्रा भृष्टा अस्फुटितास्ततः । कुट्टिताश्चिपिटाःप्रोक्तास्ते स्मृताः पृथुका अपि ॥
पृथुका गुरवो वातनाशनाः श्लेष्मला अपि । सक्षीरा बृंहणा वृष्या बल्या भिन्नमलाश्च ते ॥

चिउडा बनाने की विधि—शालि (जड़हन) धान्य भूसी के सहित ही भिगो कर गीले ही यदि भून दिये जायं और खिलने न पावे तो उसे उखल में कूट कर पश्चात् भूसी अलग कर देने से वे ही संस्कृत में 'चिपिट' और हिन्दी में "चिउड़ा" कहे जाते हैं और 'पृथुक' भी संस्कृत नाम इन्हीं का है।

चिउडा—गुरु, वातनाशक, कफकारक, क्षारयुक्त, बृहण (रस रक्तादिवर्धक), वीर्यवर्धक, बलकारक, तथा मल भेदन करने वाला होता है॥ १७६-१७७ ॥

अथ होलकः (होरहा) । तस्य साधनं गुणाँश्चाह

अर्द्धपक्वैः शमीधान्यैस्तृणभृष्टैश्च होलकः । होलकोऽल्पानिलो मेदःकफदोषत्रयापहः ॥
भवेद् यो होलको यस्य स च तत्तद्गुणो भवेत् ॥ १७८ ॥

होरहा बनाने की विधि—अधपके, शमी धान्य चना आदि को तृण की अग्नि में भून देने से वे होरहा कहलाते हैं। संस्कृत में इसी को "होलक" कहते हैं।

होरहा—किञ्चित् वातकारक तथा मेद, कफ और त्रिदोष को नष्ट करने वाला होता है। और शेष गुण होरहा जिस अन्न का बनाया जाय उसी के समान होते हैं॥ १७८ ॥

अथ ऊची (ऊंबी) । तस्या साधनं गुणाँश्चाह

मञ्जरी स्वर्द्धपक्वा या यवगोधूमयोर्भवेत् । तृणानलेन संभृष्टा बुधैरूचीति सा स्मृता ॥
ऊची कफप्रदा बल्या लघ्वी पित्तानिलापहा ॥ १७९ ॥

ऊंबी बनाने की विधि—जव या गेहूं की अधपकी जो मञ्जरी होती है, वह यदि तृण की अग्नि में भून दी जाय तो उसे पंडित लोग संस्कृत में ऊची कहते हैं।

ऊंबी—कफकारक, बलदायक, लघु एवम् पित्त तथा वायु को नष्ट करने वाली होती है ॥ १७९ ॥

* ऊंबी = "उम्बी, उमिया" इति लोके ॥ १७९ ॥
ऊंबी को लोक में "उम्बी या उमिया" कहते हैं ॥ १७९ ॥

अथ कुल्माषाः (घुघुरी)। तेषां साधनं गुणाँश्चाह

अर्धस्विन्नास्तु गोधूमा अन्येऽपि चणकादयः ॥ १८९ ॥
कुल्माषा इति कथ्यन्ते शब्दशास्त्रेषु पण्डितैः। कुल्माषागुरवो रूक्षा वातला भिन्नवर्चसः ॥

घुघुरी बनाने की विधि—गेहूं, इसके अतिरिक्त चना आदि जो अन्न हैं वे यदि आधे सीजा कर दिये जायं तो शब्दशास्त्र के विद्वान् लोग उसे संस्कृत में "कुल्माष" कहते हैं।

घुघुरी—गुरु, रूक्ष, वात-कारक तथा मल का भेदन करने वाली होती है ॥ १८०-१८१ ॥

अथ पललम् (तिलकुट)। तस्य नामानि साधनं गुणाँश्चाह

पललन्तु समाख्यातं सैन्धवं तिलपिष्टकम्। पललं मलकृद् वृष्यं वातघ्नं कफपित्तकृत् ॥
बृंहणं च गुरु स्निग्धं मूत्राधिक्यनिवर्त्तकम् ॥ १८२ ॥

तिलकुट बनाने की विधि—यदि तिलों को कूट कर उसमें गुड या शक्कर मिला दिया जाय तो उसे संस्कृत में "पलल" कहते हैं।

तिलकुट—मलकारक, वीर्यवर्धक, वातनाशक, कफ तथा पित्त-कारक, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), गुरु, स्निग्ध, एवम् मूत्र की यदि अधिक प्रवृत्ति होती हो तो उसे रोकने वाला होता है ॥ १८२ ॥

अथ पिण्याकः (तिलकी खली)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

तिलकिट्टन्तु पिण्याकस्तथा तिलखलिः स्मृता। पिण्याको लेखनो रूक्षो विष्टम्भी दृष्टिदूषणः ॥

तिल की खली के संस्कृत नाम—तिलकिट्ट, पिण्याक तथा तिलखलि ये सब हैं।

तिल की खली—लेखन गुण युक्त, रूक्ष, विष्टम्भकारक, एवम् दृष्टि को दूषित करने वाली होती है ॥ १८३ ॥

अथ तण्डुलः (चावल)। तस्य गुणानाह

तण्डुलो मेहजन्तुघ्नः स नवस्त्वतिदुर्जरः ॥ १८४ ॥

चावल—प्रमेह तथा जन्तुओं का नाशक होता है। परन्तु यदि वही नवीन हो तो अत्यन्त दुर्जर (देर में हजम होने वाला) होता है ॥ १८४ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभाव विरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे द्वादशः कृतान्नवर्गः समाप्तः ॥ १२ ॥

अथ वारिवर्गः

तत्र पानीयस्य नामानि गुणाँश्चाह

पानीयं सलिलं नीरं कीलालं जलमम्बु च। आपो वार्वारि कं तोयं पयः पाथस्तथोदकम् ॥
जीवनं वनमम्भोऽर्णोऽमृतं घनरसोऽपि च ॥ १ ॥
पानीयं श्रमनाशनं क्लमहरं मूर्च्छापिपासापहं-
तन्द्राच्छर्दिविबन्धहृद्बलकरं निद्राहरं तर्पणम्।
हृद्यं गुप्तरसं ह्यजीर्णशमकं नित्यं हितं शीतलं-
लघ्वच्छं रसकारणं निगदितं पीयूषवज्जीवनम् ॥ २ ॥

जल के संस्कृत नाम—पानीय, सलिल, नीर, कीलाल, जल, अम्बु, आपः (अप् यह नित्य बहुवचनान्त है) वार्, वारि, क, तोय, पयः (पयस्), पाथः (पाथस्), उदक, जीवन, वन, अम्भः (अम्भस्), अर्णः (अर्णस्), अमृत तथा घनरस ये सब हैं।

जल—श्रम को दूर करने वाला, क्लान्तिनाशक, मूर्च्छा तथा प्यास को नष्ट करने वाला एवम् तन्द्रा, वमन और विबन्ध को हटाने वाला, बलकारक, निद्रा को दूर करने वाला, तृप्तिदायक, हृदय के लिये हितकर, अव्यक्त रस वाला, अजीर्ण का शमन करने वाला, सदा हितकारक, शीतल, लघु, स्वच्छ, सम्पूर्ण मधुरादि रसों का कारण एवम् अमृत के समान जीवनदाता शास्त्रों में कहा हुआ है ॥ १-२ ॥

अथ पानीयस्य भेदानाह

पानीयं मुनिभिः प्रोक्तं दिव्यं भौममिति द्विधा।
दिव्यं चतुर्विधं प्रोक्तं धाराजं करकाभवम्। तौषारञ्च तथा हैमं तेषु धारं गुणाधिकम् ॥४॥

जल के भेद—मुनियों ने दिव्य तथा भौम इन भेदों से जल दो प्रकार का कहा है। इस में दिव्य जल—१ धाराज, २ करकाभव, ३ तौषार, ४ हैम इन भेदों से ४ प्रकार का कहा हुआ है। इन में धार अर्थात् धाराज जो जल है वह अन्य की अपेक्षा अधिक गुणकारी होता है ॥ ३-४ ॥

अथ धाराजलस्य लक्षणानि गुणांश्चाह

धाराभिः पतितं तोयं गृहीतं स्फीतवाससा। शिलायां वसुधायां वा धौतायां पतितञ्च तत् ॥
सौवर्णे राजते ताम्रे स्फाटिके काचनिर्मिते। भाजने मृण्मये वाऽपि स्थापितं धारमुच्यते ॥६॥
धारं नीरं त्रिदोषघ्नमनिर्देश्यरसं लघु। सौम्यं रसायनं बल्यं तर्पणं ह्लादि जीवनम् ॥७॥
पाचनं मतिकृन्मूर्च्छातन्द्रादाहश्रमक्लमान्। तृष्णां हरति तत् पथ्यं विशेषात्प्रावृषि स्मृतम् ॥

धार जल के लक्षण—धारा रूप से आकाश से गिरा हुआ जल यदि धुली हुई स्वच्छ शिला या पृथ्वी पर गिरा हो तो उसे लेकर स्वच्छ मोटे वस्त्र से छान कर सोना, चांदी, तांबा, स्फटिक, कांच अथवा मिट्टी इनमें से चाहे जिस किसी के बने हुये बर्त्तन में रख दे, इसीको धारसंज्ञक जल कहते हैं।

धारजल—त्रिदोषनाशक तथा अनिर्देश्यरस वाला है (इस में कौन सा रस है इसका जिह्वा के द्वारा ठीक २ निर्णय नहीं हो सकता अतः इसे अनिर्देश्यरस वाला कहते हैं), लघु,

सौम्य (सोमगुण युक्त), रसायन, बलकारक, तृप्तिदायक, आह्लाद उत्पन्न करने वाला, जीवन स्वरूप, पाचक, बुद्धिवर्द्धक, एवम्-मूर्च्छा, तन्द्रा, दाह, श्रम, क्लान्ति, प्यास इन सबों को दूर करने वाला तथा वर्षा ऋतु का विशेषतः पथ्य होता है ॥ ५-८ ॥

अथ धाराजलस्य भेदानाह

धाराजलं च द्विविधं गाङ्गसामुद्रभेदतः ॥ ९ ॥

धाराजल के भेद—गाङ्ग तथा सामुद्र इन भेदों से धाराजल दो प्रकार का होता है ॥ ९ ॥

अथ गाङ्गसामुद्रयोर्जलयोर्लक्षणं गुणांश्चाह

आकाशगङ्गासम्बन्धिजलमादाय दिग्गजाः । मेघैरन्तरिता वृष्टिं कुर्वन्तीति वचः सताम् ॥
गाङ्गमाश्वयुजे मासि प्रायो वर्षति वारिदः । सर्वथा तज्जलं ज्ञेयं तथव चरके वचः ॥ ११ ॥
स्थापिते हेमजे पात्रे राजते मृण्मयेऽपि वा । शाल्यन्नं येन संसिक्तं भवेदक्लेदि वर्णवत् ॥
तद्गाङ्गं सर्वदोषघ्नं ज्ञेयं सामुद्रमन्यथा । तत्तु सक्षारलवणं शुक्रदृष्टिबलापहम् ॥ १२ ॥
विस्रञ्च दोषलं तीक्ष्णं सर्वकर्मसु नो हितम् । सामुद्रं त्वाश्विने मासि गुणैर्गाङ्गवदादिशेत् ॥

गाङ्गजल के लक्षण—सत्पुरुषों का यह कथन है कि—दिग्गज लोग आकाश गङ्गा का जल लेकर मेघों के द्वारा छिपे हुये होकर बरसाते हैं। प्रायः करके मेघ आश्विन (क्वार) मास में जो जल बरसाता है उसे सर्वथा (निश्चित रूप से) उक्त गङ्गाजल ही समझना चाहिये। चरक में भी इसके विषय में वचन मिलता है कि—सोना-चांदी अथवा मिट्टी के बर्त्तन में रखते हुए जिस धारा जल में भिगोया हुआ शालि धान्य का चावल क्लिन्न तथा विवर्ण न हो जाय अर्थात् जैसा का तैसा बना रह जाय तो उसे सम्पूर्ण दोषों को नष्ट करने वाला गाङ्गसंज्ञक धाराजल समझना चाहिये।

सामुद्रसंज्ञक धाराजल के लक्षण—यदि उक्त क्रम से भिगोया हुआ चावल अन्यथा अर्थात् क्लिन्न तथा विवर्ण हो जाय (फूल जाने से रङ्ग बदल जाय) तो उसे सामुद्र (धाराजल) समझना चाहिये।

सामुद्र संज्ञक धाराजल—क्षार तथा लवण रस युक्त, शुक्र तथा दृष्टिशक्ति (या दृष्टि शक्ति और बल) नाशक, विस्र (दुर्गन्ध युक्त), दोषकारक तथा तीक्ष्ण होता है। एवम् यह सम्पूर्ण कार्यों में अहितकर होता है अर्थात् किसी भी कार्य में हितकर नहीं होता है। किन्तु यदि यही सामुद्रसंज्ञक धाराजल आश्विन मास का बरसा हुआ संग्रहीत हो तो गुणों में गाङ्गजल के तुल्य ही हितकर होता है ऐसा समझना चाहिये ॥ १०-१४ ॥

अथ शरदि वर्षासु च जलस्य निर्विषत्वे च हेतुमाह

यतोऽगस्त्यस्य दिव्यर्षेरुदयात्सकलं जलम् । निर्मलं निर्विषं स्वादु शुक्रलं स्याददोषलम् ॥

शरद तथा वर्षा ऋतु में क्रम से जल के निर्विष तथा सविष होने का कारण यह है कि—उस समय (आश्विन मास शरद ऋतु में) आकाश में अगस्त्य नामक तारा के उदय होने से सम्पूर्ण जल निर्मल, निर्विष, स्वादिष्ट तथा शुक्रजनक होता है, एवम् दोषजनक भी नहीं होता है ॥

अत एवाह

फूत्कारविषवातेन नागानां व्योमचारिणाम् । वर्षासु सविषं तोयं दिव्यमप्याश्विनं विना ॥

अत एव शास्त्र में कहा है कि—वर्षाऋतु में आकाशचारी नागों (दिव्य-सर्पों) के फूत्कार (फुफकार) सम्बन्धी विषयुक्त वायु से दूषित हो जाने से दिव्य (आकाश-सम्बन्धी) जल विषयुक्त

हो जाता है। किन्तु वही (दिव्यजल) आश्विन में विषयुक्त नहीं होता है। अतः आश्विन का जल सर्वोत्तम तथा ग्राह्य होता है ॥ १६ ॥

अथानार्त्तवजलस्य लक्षणं गुणानाह

अनार्त्तवं प्रमुञ्चन्ति वारि वारिधरास्तु यत् । तत्त्रिदोषाय सर्वेषां देहिनां परिकीर्त्तितम् ॥१७॥

अनार्तवसंज्ञक धाराजल—मेघ जो अनार्तव (बिना ऋतु के) जल बरसाते हैं वह सभी प्राणियों के लिये त्रिदोषकारक होता है।

***अनार्त्तवं पौषादिमासचतुष्टयविषयम् ॥ १७ ॥**

यहां पर मूल में "अनार्त्तव" शब्द से बिना ऋतु के अर्थात् पूस आदि (पूस, माघ, फागुन, चैत) ४ मासों में" यह अर्थ समझना चाहिये ॥ १७ ॥

अथ करकाजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

दिव्यवाय्वग्निसंयोगात् संहताः खात् पतन्ति याः ।
पाषाणखण्डवच्चापस्ताः कारक्योऽमृतोपमाः ॥ १८ ॥
करकाजं जलं रूक्षं विशदं गुरु च स्थिरम् । दारुणं शीतलं सान्द्रं पित्तहृत्कफवातकृत् ॥ १९ ॥

करकाजल के लक्षण—आकाशस्थ वायु तथा अग्नि के संयोग से घन होकर जो पत्थर के टुकड़े की भांति जल (ओला) गिरता है वह करका या कारकी अर्थात् करका (ओला) सम्बन्धी जल कहलाता है तथा वह अमृत के समान स्वादिष्ट होता है।

करका जल—रूक्ष, विशद, गुरु, स्थिर, शीतल तथा सान्द्र इन गुणों से युक्त, कठिन, पित्त-नाशक तथा कफ और वात को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ १८-१९ ॥

अथ तौषारजलस्य लक्षणं गुणांश्चाह

अपि नद्याः समुद्रान्ते वह्निरापस्तदुद्भवाः । धूमावयवनिर्मुक्तास्तुषाराख्यास्तु ताः स्मृताः ॥

तौषार (तुषार सम्बन्धी) जल के लक्षण—नदी से लेकर समुद्र पर्यन्त तक के जल में जो अग्नि रहता है, उससे अर्थात् अग्नि से उत्पन्न होने वाले धूम के अंश से रहित जो जल है वह तुषार संज्ञक कहलाता है ॥ २० ॥

*अपि नद्याः समुद्रान्ते वह्निः = नदीमारभ्य समुद्रपर्यन्ते वह्निरास्ते । तदुद्भवाः-वह्निभवाः, धूमावयवनिर्मुक्ताः = धूमांशरहिताः, आपः = तुषाराख्याः । "तुष" इति लोके "तुषार" इति च ॥ २० ॥

यहां पर मूल में—"अपि नद्याः समुद्रान्ते वह्निः" इन पदों का "नदी से लेकर समुद्र पर्यन्त तक के जल में जो अग्नि रहती है" "तदुद्भवाः" पद का—"उससे अर्थात् अग्नि से उत्पन्न होने वाले"; "धूमावयवनिर्मुक्ताः" पद का "धूम के अंश से रहित" यह अर्थ समझना चाहिए। तथा लोक में "तुष-" तथा "तुषार" ये दो नाम तुषार के प्रसिद्ध हैं यह भी समझना चाहिये।

अपथ्याः प्राणिनां प्रायो भूरुहाणान्तु ता हिताः ।
तुषाराम्बु हिमं रूक्षं स्याद्वातलमपित्तलम् । कफोरुस्तम्भकण्ठाग्निमेहगण्डादिरोगकृत् ॥

उक्त तुषार सम्बन्धी जल प्राणि मात्र के लिये अपथ्य है किन्तु केवल वृक्षों के लिये हितकर होता है।

तुषार सम्बन्धी जल—शीतल, रूक्ष, वातजनक, किञ्चित पित्तकारक एवम्–कफ, ऊरुस्तम्भ, कण्ठ तथा अग्नि सम्बन्धी रोग, प्रमेह तथा गलगण्डादि रोग को दूर करने वाला होता है ॥ २१ ॥

अथ हैमजलस्य लक्षणं गुणांश्चाह

हिमवच्छिखरादिभ्यो द्रवीभूयाभिवर्षति ।
यत्तदेव हिमं हैमं जलमाहुर्मनीषिणः । हिमाम्बु शीतं पित्तघ्नं गुरु वातविवर्द्धनम् ॥ २२ ॥

हैम (हिम सम्बन्धी) जल के लक्षण—हिमालय के शिखर आदि स्थानों से द्रवीभूत होकर (पिघल कर) जो हिम (बर्फ) बरसता है अर्थात आकाश से वायु द्वारा उड़ २ कर इधर उधर गिरता है उसी को हिम कहते हैं और उसके सम्बन्धी जल को पण्डित लोग संस्कृत में "हैमजल" कहते हैं ।

हिम सम्बन्धी जल—शीतल, पित्तनाशक, गुरु एवम् वायु को बढ़ाने वाला होता है ॥२२॥

हैमं जलम् = कुहेसजलम् ॥ २२ ॥

यहां पर "हैम जल" से लोक प्रसिद्ध "कुहेसा का जल" यह अर्थ समझना चाहिये ॥ २२ ॥

अन्ये तु

और्वानलधूमेरितमम्बु समुद्रस्य यद्घनीभूतम् ।
पवनानीतमुदीच्यां तद्धिममिति कथ्यते सद्भिः ॥ २३ ॥

अन्य आचार्य लोग तो यह कहते हैं कि—वडवानल के धूयें से प्रेरित होकर जो समुद्र का जल वायु द्वारा उत्तर दिशा में पहुंचाये जाने पर घनभाव को प्राप्त हो जाता है उसे पण्डित लोग हिम कहते हैं ॥ २३ ॥

***हिमं = "कुहेसा" इति लोके ॥ २४ ॥**

यहां पर मूलमें "हिम" पदका लोक प्रसिद्ध "कुहेसा" अर्थ समझना चाहिये ॥ २३ ॥

हिमन्तु शीतलं रूक्षं दारुणं सूक्ष्ममित्यपि ।
न तद् दूषयते वातं न च पित्तं न वा कफम् ॥ २४ ॥

हिम—शीतल तथा रूक्ष होता है एवम् दारुण (कठिन), तथा सूक्ष्म भी होता है । और यह न तो पित्त न वात, और न कफ किसी को भी दूषित करता है ॥ २४ ॥

अथ भौमजलस्य भेदानाह

भौममम्भो निगदितं प्रथमं त्रिविधं बुधैः । जाङ्गलं परमानूपं ततः साधारणं क्रमात् ॥ २५ ॥

भौम (भूमि सम्बन्धी) जल के भेद—विद्वानों ने भौम जल को प्रथम–जाङ्गल, आनूप और साधारण इन भेदों से तीन प्रकार का माना है। इनके लक्षण तथा गुण क्रम से आगे कहते हैं ॥२५॥

अथ भौमभेदस्य जाङ्गलादिजलत्रयस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

अल्पोदकोऽल्पवृक्षश्च पित्तरक्तामयान्वितः । ज्ञातव्यो जाङ्गलो देशस्तत्रस्थं जाङ्गलं जलम् ॥
बह्वम्बुर्बहुवृक्षश्च वातश्लेष्मामयान्वितः । देशोऽनूप इति ख्यात आनूपं तद्भवं जलम् ॥२७॥
मिश्रचिह्नस्तु यो देशः सहि साधारणः स्मृतः । तस्मिन्देशे यदुदकं तत्तु साधारणं स्मृतम् ॥
जाङ्गलं सलिलं रूक्षं लवणं लघु पित्तनुत् । वह्निकृत्कफहृत्पथ्यं विकारान्हरते बहून् ॥ २९ ॥

आनूपं वार्यभिष्यन्दि स्वादु स्निग्धं घनं गुरु । वह्निहृत्कफकृद्हृद्यं विकारान्कुरुते बहून् ॥
साधारणं तु मधुरं दीपनं शीतलं लघु । तर्पणं रोचनं तृष्णादाहदोषत्रयप्रणुत् ॥ ३१ ॥

भौम जल के भेदों में जो जाङ्गल आदि जल के ३ भेद हैं उनके क्रम से प्रथम केवल लक्षण तत्पश्चात् क्रम से गुण ये हैं—जाङ्गल जल के लक्षण—जहाँ पर थोड़े जल तथा थोड़े वृक्ष होते हों और पित्त तथा रक्त सम्बन्धी विकार अधिक उत्पन्न होते हों उसी जाङ्गल देश तथा वहां के जल को जाङ्गल जल समझना चाहिये ।

आनूप जल के लक्षण—जहाँ पर अधिक रूप से जल तथा वृक्ष होते हों और वात तथा कफ सम्बन्धी रोग भी अधिक रूप से होते हों उसे अनूप देश तथा वहां के जल को आनूप जल समझना चाहिये ।

साधारण जल के लक्षण—जहाँ पर जाङ्गल तथा अनूप दोनों देशों के चिह्न मिले हुये मिलते हों तो उसे साधारण देश तथा वहाँ के जल को साधारण जल समझना चाहिये ।

जाङ्गल जल—रूक्ष, लवणरसयुक्त, लघु, पित्तनाशक, अग्निवर्धक, कफनाशक, पथ्य एवम् अनेक प्रकार के विकारों को नष्ट करने वाला होता है ।

आनूप जल—अभिष्यन्दी, स्वादिष्ट, स्निग्ध, घन, गुरु, अग्नि को नष्ट करने वाला (मन्दाग्नि कारक), कफकारक, हृदय के लिये हितकर एवम् बहुत से रोगों को उत्पन्न करने वाला होता है ।

साधारण जल—मधुररसयुक्त, अग्निदीपक, शीतल, लघु, तृप्तिकारक, रोचक एवम् प्यास, दाह तथा त्रिदोष को दूर करने वाला होता है ॥ २९–३१ ॥

अथ भौमानामेव नादेयादीनां लक्षणानि गुणांश्च ।
तत्र नादेयस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

नद्या नदस्य वा नीरं नादेयमिति कीर्त्तितम् ॥ ३२ ॥
नादेयमुदकं रूक्षं वातलं लघु दीपनम् । अनभिष्यन्दि विशदं कटुकं कफपित्तनुत् ॥ ३३ ॥

भौम जल के अन्य प्रकार से नादेयादि भेदों के लक्षण तथा गुण क्रम से ये हैं। नादेय के लक्षण—नदी या नद के जल को "नादेय" कहते हैं। नादेय जल—रूक्ष, वातजनक, लघु, अग्निदीपक, ईषत् अभिष्यन्दी, विशद गुण युक्त, कटु रस युक्त एवम्—कफ तथा पित्त को दूर करने वाला होता है ॥ ३२–३३ ॥

अथ शीघ्रवहत्वादिभेदेन च नादेयजलानां गुणभेदानाह

नद्यः शीघ्रवहा लघ्व्यः सर्वा याश्चामलोदकाः । गुर्व्यः शैवलसंछन्ना मन्दगाः कलुषाश्च याः ॥
हिमवत्प्रभवाः पथ्या नद्योऽश्माहतपाथसः । गङ्गाशतद्रुसरयूयमुनाऽऽद्या गुणोत्तमाः ॥३५॥
सह्यशैलभवा नद्यो वेणागोदावरीमुखाः । कुर्वन्ति प्रायशः कुष्ठमीषद्वातकफावहाः ॥३६॥

शीघ्र तथा मन्द गति से बहने के भेद से एवम्-देश भेद से नदियों के जलों में जो गुणभेद होते हैं वे ये हैं—शीघ्रगति से बहने वाली—ऐसी जितनी नदियां होती हैं उन सबों का जल लघु तथा स्वच्छ होता है। मन्द गति से बहने वाली या सेवार से ढके हुये जल वाली किंवा मलिन जल वाली—ऐसी जो नदियां हैं उन सबों का जल गुरु होता है ।

हिमालय से निकल कर बहने वाली या पत्थरों से टक्कर खानेवाली–ऐसी जो गङ्गा, शतद्रू (सतलज), सरयू तथा यमुना आदि नदियां हैं उनका जल पथ्य एवम् गुणों में उत्तम होता है ।

सह्यपर्वत से निकल कर बहने वाली—ऐसी जो वेणा तथा गोदावरी आदि नदियां हैं उन

सरों का जल प्रायः करके कुष्ठ रोग उत्पन्न करने वाला एवम् किञ्चित् वात तथा कफ कारक होता है ॥ ३४-३६ ॥

परिभाषा

नदीसरस्तडागस्थे कूपप्रस्रवणादिजे। उदके देशभेदेन गुणान्दोषांश्च लक्षयेत् ॥ ३७ ॥

परिभाषा—नदी, सरोवर, तालाब, कूआं तथा झरना आदि ये सब जैसे जाङ्गल आदि देशों में स्थित हों उनके अनुसार इनके जलों के गुण तथा दोष समझने चाहिये ॥ ३७ ॥

अथौद्भिदजलस्य लक्षणं गुणांश्चाह

विदार्य भूमिं निम्नां यन्महत्या धारया स्रवेत्।
तत्तोयमौद्भिदं नाम वदन्तीति महर्षयः ॥ ३८ ॥

औद्भिदं वारि पित्तघ्नमविदाह्यतिशीतलम्। प्रीणनं मधुरं बल्यमीषद्वातकरं लघु ॥ ३९ ॥

औद्भिद जल के लक्षण—नीची जमीन को फोड़कर जो बड़ी धारा से निकल कर बहे उस जल को महर्षि लोग औद्भिदसंज्ञक कहते हैं।

औद्भिद जल—पित्तनाशक, अविदाही, अतिशीतल, तृप्तिकारक, मधुररसयुक्त, बलकारक, एवम् किञ्चित् वातकारक तथा लघु होता है ॥ ३८-३९ ॥

अथ नैर्झरजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

शैलसानुस्रवद्वारिप्रवाहो निर्झरो झरः। स तु प्रस्रवणश्चापि तत्रस्थं नैर्झरं जलम् ॥ ४० ॥
नैर्झरं रुचिकृत्क्षीरं कफघ्नं दीपनं लघु। मधुरं कटुपाकं च वातलं स्यादपित्तलम् ॥ ४१ ॥

नैर्झर जल के लक्षण—पर्वत के शिखर से गिरते हुये जल के प्रवाह को संस्कृत में निर्झर, झर तथा प्रस्रवण (हिन्दी में झरना) कहते हैं। एवम् उसी के जल को नैर्झर जल (झरने का जल) कहते हैं।

नैर्झर जल—रुचिकारक, कफनाशक, अग्निदीपक, लघु, मधुर रसयुक्त, विपाक में कटु-रसयुक्त, वातकारक तथा ईषत् पित्तकारक (पाठान्तर में पित्तकारक) होता है ॥ ४०-४१ ॥

अथ सारसजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

नद्याः शैलाद्विरुद्धाया यत्र संस्रुत्य तिष्ठति। तत्सरो जलजच्छन्नं तदम्भः सारसं स्मृतम् ॥४२॥
सारसं सलिलं बल्यं तृष्णाघ्नं मधुरं लघु। रोचनं तुवरं रूक्षं बद्धमूत्रमलं स्मृतम् ॥ ४३ ॥

सारस जल के लक्षण—नदी का जल जहां पर पर्वत आदि से रोके जाने पर झर २ के संचित होता जाता है और कमल के पत्तों से जहां पर ढका रहता है उस संचित जल युक्त प्रदेश को सर कहते है तथा उसके जल को सारस जल कहते हैं। सारस जल—बलकारक, प्यास को शान्त करने वाला, मधुर तथा कषाय रस युक्त, लघु, रोचक, रूक्ष, मूत्र तथा मल का विबन्ध करने वाला होता है ॥ ४२-४३ ॥

अथ ताडागजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

प्रशस्तभूमिभागस्थो बहुसंवत्सरोषितः। जलाशयस्तडागः स्यात्ताडागं तज्जलं स्मृतम् ॥४४॥
ताडागमुदकं स्वादु कषायं कटुपाकि च। वातलं बद्धविण्मूत्रमसृक्पित्तकफापहम् ॥ ४५ ॥

ताडाग जल के लक्षण—प्रशस्त (उत्तम) भूमि का जो भाग है उस पर स्थित अनेक वर्षों का पुराना जो जलाशय है उसे "तड़ाग" कहते हैं। और तत्सम्बन्धी जल को "ताडाग जल" कहते हैं।

ताडाग जल (तालाब का जल)—स्वादिष्ट, कषाय रसयुक्त, विपाक में कटुरसयुक्त, वात-जनक, मल मूत्र का विबन्ध करने वाला एवम् रक्तपित्त तथा कफ को दूर करने वाला होता है ॥४४-४५॥

अथ वाप्य जलस्य लक्षणं क्षारमिष्टयोस्तयोर्गुणांश्चाह

पाषाणैरिष्टकाभिर्वा बद्धः कूपो बृहत्तरः। ससोपानो भवेद्वापी तज्जलं वाप्यमुच्यते ॥ ४६ ॥
वाप्यं वारि यदि क्षारं पित्तकृत्कफवातहृत्। तदेव मिष्टं कफकृद्वातपित्तहरं भवेत् ॥ ४७ ॥

वाप्य जल के लक्षण—जो कूआं पत्थर तथा ईटों से बँधा हुआ हो तथा बहुत बड़ा हो और जिस में उतरने के लिए सीढ़ियां भी बनी हों तो उसे वापी (बावड़ी) कहते हैं। और उस के जल को "वाप्य जल" कहते हैं।

वाप्य जल (बावड़ी का जल)—यदि खारा हो तो पित्तकारक एवम् कफ तथा वात को दूर करने वाला होता है। और यदि वही (जल) मीठा हो तो कफकारक एवम् वात तथा पित्त नाशक होता है ॥ ४६-४७ ॥

अथ कौपजलस्य लक्षणं स्वादुक्षारयोस्तयोर्गुणाँश्चाह

भूमौ खातोऽल्पविस्तारो गम्भीरो मण्डलाकृतिः। बद्धोऽबद्धः सकूपः स्यात्तदम्भः कौपमुच्यते॥
कौपं पयो यदि स्वादु त्रिदोषघ्नं हितं लघु। तत्क्षारं कफवातघ्नं दीपनं पित्तकृत्परम् ॥४९॥

कौप जल के लक्षण—जो गड्ढा थोड़े विस्तार का अर्थात् कम चौड़ा मण्डलाकार (गोलाकार मुंह वाला), गहरा होता है एवम् वह चाहे ईटे आदि से बंधा हो या न बंधा हो तो उसे कूप अर्थात् कूंआ कहते हैं। और उसी के जल को "कौप जल" कहते हैं।

कौपजल (कूयें का जल)—यदि स्वादिष्ट हो तो त्रिदोषनाशक, हितकारी तथा लघु होता है। और यदि खारा हो तो कफ तथा वात नाशक, अग्निदीपक और अत्यन्त पित्तकारक होता है ॥ ४८-४९ ॥

अथ चौञ्ज्यजलस्य लक्षणं गुणांश्चाह

शिलाकीर्णं स्वयं श्वभ्रं नीलाञ्जनसमोदकम्। लतावितानसंच्छन्नं चौञ्ज्यमित्यभिधीयते
अश्मादिभिरबद्धं यत्तच्चौञ्ज्यमिति वा परे। यत्रस्थमुदकं चौञ्ज्यं मुनिभिस्तदुदाहृतम्॥
चौञ्ज्यं वह्निकरं नीरं रूक्षं कफहरं लघु। मधुरं पित्तनुद्रुच्यं पाचनं विशदं स्मृतम् ॥ ५२ ॥

चौञ्ज्य जल के लक्षण—जो गड्ढा अपने आप हो गया हो और जिस में पत्थर के टुकड़े हों, एवं जल नीले अञ्जन के समान हो तथा लताओं के विस्तार से ढका हो तो उसे संस्कृत में चौञ्ज्य (चोंड़ा) कहते हैं। अन्य आचार्यों का मत है कि जो गड्ढा पत्थर आदि से न बांधा हुआ हो उसे चौञ्ज्य कहते हैं। और इस के जल को मुनि लोग "चौञ्ज्य जल" कहते हैं।

चौञ्ज्यजल—अग्निकारक, रूक्ष, कफनाशक, लघु, मधुर रस युक्त, पित्तनाशक, रोचक, पाचक तथा विशद गुण युक्त होता है ॥ ५०-५२ ॥

अथ पाल्वलजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

अल्पं सरः पल्वलं स्याद्यत्र चन्द्रर्क्षगे रवौ ॥ ५३ ॥
न तिष्ठति जलं किञ्चित्तत्रत्यं वारि पाल्वलम् । पाल्वलं वार्यभिष्यन्दि गुरु स्वादु त्रिदोषकृत् ॥

पाल्वल जल के लक्षण—सूर्य जब चन्द्रमा के नक्षत्र पर हों तब जिस में कुछ भी जल न रहता हो ऐसे छोटे २ तलैये को पल्वल कहते हैं। और इस के जल को पाल्वल जल कहते हैं।

पाल्वल जल—अभिष्यन्दी, गुरु, स्वादिष्ट तथा त्रिदोषकारक होता है ॥ ५३–५४ ॥

*रवौ = सूर्ये, चन्द्रर्क्षगे = कर्कटराशिस्थे, श्रावणे मासीति यावत् । अत्र चन्द्रर्क्षं मृगशिरस्तत्रग इति मुख्यार्थः ॥ ५३–५४ ॥

यहाँ पर "रवि" से सूर्य, तथा "चन्द्रर्क्षग" पद से–"चन्द्र की राशि कर्क में स्थित अर्थात् श्रावण मास में—" यह अर्थ समझना चाहिये, किन्तु वस्तुतः यह अर्थ नहीं हो सकता क्योंकि श्रावण वर्षा ऋतु में सर्वत्र वर्षा का जल रहता ही है। अतः उक्त पद का चन्द्र नक्षत्र मृगशिर पर स्थित अर्थात् वृष राशि पर स्थित अर्थ समझना चाहिये जो ज्येष्ठ मास में पड़ता है—उस समय जिस में जल न ठहरता हो यह अर्थ युक्तियुक्त है ॥ ५३–५४ ॥

अथ विकिरजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

नद्यादिनिकटे भूमिर्या भवेद्वालुकामयी । उद्धाट्यते ततो यत्तु तज्जलं विकिरं विदुः ॥ ५५ ॥
विकिरं शीतलं स्वच्छं निर्दोषं लघु च स्मृतम् । तुवरं स्वादु पित्तघ्नं क्षारं तत्पित्तलं मनाक् ॥

विकिर जल के लक्षण—नदी आदि के निकट जो बालुकामय भूमि हो वहाँ पर जो जल खन कर निकाला जाता है उसे विकिर-जल कहते हैं। विकिर जल शीतल, स्वच्छ, निर्दोष, लघु, कषाय तथा मधुररस युक्त एवम् पित्तनाशक होता है। यदि वही जल खारा हो तो किञ्चित् पित्त-कारक होता है ॥ ५५–५६ ॥

अथ कैदारजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

केदारः क्षेत्रमुद्दिष्टं कैदारं तज्जलं स्मृतम् । कैदारं वार्यभिष्यन्दि मधुरं गुरु दोषकृत् ॥ ५७ ॥

कैदार जल के लक्षण—केदार—यह शब्द क्षेत्र (खेत) का पर्यायवाची है, अतः इस के जल को कैदार जल कहते हैं। कैदार जल—अभिष्यन्दी, मधुर रस युक्त, गुरु तथा वातादि-दोष कारक होता है ॥ ५७ ॥

अथ वृष्टिजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

वार्षिकं तदहर्वृष्टं भूमिस्थमहितं जलम् । त्रिरात्रमुषितं तत्तु प्रसन्नममृतोपमम् ॥ ५८ ॥

वृष्टि जल (वर्षा के जल) के लक्षण—तत्काल वर्षा होकर जो जल पृथ्वी पर जमा रहता है उसे वार्षिक जल (वृष्टि का जल) कहते हैं, यह अहितकारक होता है। किन्तु यही ३ रात्रि के बाद मिट्टी बैठ जाने से यदि स्वच्छ हो तो अमृत के समान गुणकारी होता है ॥ ५८ ॥

अथ हेमन्तादिकालविशेषे विहितं जलविशेषमाह

हेमन्ते सारसं तोयं ताडागं वा हितं स्मृतम् । हेमन्ते विहितं तोयं शिशिरेऽपि प्रशस्यते ॥
वसन्तग्रीष्मयोः कौपं वाप्यं वा नैर्झरं जलम् । नादेयं वारि नादेयं वसन्तग्रीष्मयोर्बुधैः ॥
विषवल्लुनवृक्षाणां पत्राद्यैर्दूषितं यतः । औद्भिदं वाऽऽन्तरिक्षं वा कौपं वा प्रावृषि स्मृतम् ।

शस्तं शरदि नादेयं नीरमंशूदकं परम् ॥ ६१ ॥

हेमन्तादि काल विशेष में जलविशेष का विधान—हेमन्त (अगहन–पूस) ऋतु में सरोवर या तालाब का जल विशेष हितकर होता है और जो जल हेमन्त में हितकर कहा गया है वही (सरोवर या तालाब का जल) शिशिर (माघ–फाल्गुन) में भी उत्तम होता है। वसन्त (चैत–बैशाख) तथा ग्रीष्म (जेठ–आषाढ़) ऋतु में कूंआ, बावड़ी या झरना का जल उत्तम होता है। वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतु में नदी का जल पीने के लिये बुद्धिमान् व्यक्ति को कभी नहीं लेना चाहिये, क्योंकि उस समय वह (नदी का जल) जंगली वृक्षों के पत्तों के पड़ने से दूषित होकर विषैला हो जाता है। औद्भिद, आकाश से उत्तम भूमि पर गिरा हुआ या कूयें का जल वर्षा ऋतु में उत्तम होता है। शरद (क्वार–कार्तिक) ऋतु में नदी का अथवा अंशूदक संज्ञक जल अति हितकर होता है ॥५९–६१॥

अथांशूदकजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

दिवा रविकरैर्जुष्टं निशि शीतकरांशुभिः । ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रयापहम् ॥ ६२ ॥
अनभिष्यन्दि निर्दोषमान्तरिक्षजलोपमम् । बल्यं रसायनं मेध्यं शीतं लघु सुधासमम् ॥

अंशूदक जल के लक्षण—जिस जल के ऊपर दिन में सूर्य की किरणें और रात में चन्द्रमा की किरणें पड़ी हों उसे "अंशूदक" कहते हैं। अंशूदक—स्निग्ध गुणयुक्त, त्रिदोषनाशक, अनभिष्यन्दी (अभिष्यन्दी नहीं), निर्दोष, आंतरिक्ष जल के समान, बलकारक, रसायन, मेधा के लिये हितकर, शीतल, लघु तथा अमृत के समान होता है ॥ ६२–६३ ॥

*रविकरैर्जुष्टमित्युक्ते दिवापदं समस्तदिवसप्राप्त्यर्थं, शीतकरांशुभिर्जुष्टमित्युक्ते निशीतिपदं समस्तरात्रिप्राप्त्यर्थम् ॥६२॥

यहाँ पर "रविकरैर्जुष्टम्" ऐसा कहने पर पुनः "दिवा" पद का उल्लेख करने से "सारा दिन सूर्य की किरणें पड़ी हों" तथा "शीतकरांशुभिर्जुष्टम्" ऐसा कहने पर पुनः "निशा" पद का उल्लेख करने से "सारी रात चन्द्रमा की किरणें पड़ी हों" ऐसा अर्थ समझना चाहिए ॥ ६२–६३ ॥

अन्यच्च

शरदि स्वच्छमुदयादगस्त्यस्याखिलं हितम् ॥ ६४ ॥

इसके अतिरिक्त अन्य वचन—शरद ऋतु में अगस्त्य तारा के उदय होने से सभी प्रकार के जल स्वच्छ हो जाते हैं अतः वे सभी हितकारी होते हैं ॥ ६४ ॥

वृद्धसुश्रुतस्तु

पौषे वारि सरोजातं माघे तत्तु तडागजम् । फाल्गुने कूपसम्भूतं चैत्रे चौण्ड्यं हितम् मतम् ॥
वैशाखे नैर्झरं नीरं ज्येष्ठे शस्तं तथौद्भिदम् । आषाढे शस्यते कौपं श्रावणे दिव्यमेव च ॥६६॥
भाद्रे कौपं पयः शस्तमाश्विने चौण्ड्यमेव च । कार्तिके मार्गशीर्षे च जलमात्रं प्रशस्यते ॥

वृद्ध सुश्रुत के तो इस विषय में ये वचन हैं कि—पूस मास में–सरोवर का जल, माघ मास में–तालाब का जल, फागुन मास में–कूयें का जल, चैत मास में—चौण्ड्य (चौंड़े का) जल, वैशाख मास में–झरने का जल, जेठ मास में औद्भिद जल, आषाढ़ मास में – कूयें का जल, श्रावण मास में–आकाश (वर्षा) का जल, भादो मास में–कूयें का जल, क्वार मास में—चौण्ड्य (चौंड़े का) जल, कार्तिक तथा अगहन मास में—सम्पूर्ण जल प्रशस्त होता है ॥ ६५–६७ ॥

अथ जलग्रहणस्य समयमाह

भौमानामम्भसां प्रायो ग्रहणं प्रातरिष्यते । शीतत्वं निर्मलत्वञ्च यतस्तेषां मतो गुणः ॥६८॥

जल ग्रहण करने का समय—सभी प्रकार के भौम (भूमि सम्बन्धी) जलों के ग्रहण करने का समय प्रायः करके प्रातःकाल उत्तम होता है क्योंकि उस समय वे निर्मल तथा शीतल रहते हैं। अत एव और समयों की अपेक्षा अधिक गुणकारी होते हैं ॥ ६८ ॥

अथ जलस्य पानविधिमाह

अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नं निरम्बुपानाच्च स एव दोषः ।
तस्मान्नरो वह्निविवर्द्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि ॥ ६९ ॥

जल पीने की विधि—भोजन के समय अधिक जल पीने से अन्न नहीं पचता है, और एकदम कुछ भी जल न पीने से भी उक्त दोष होता है अर्थात् अन्न नहीं पचता है। अतएव मनुष्य को चाहिये कि उक्त समय में अग्नि बढ़ाने के लिए थोड़ा २ कर के बारम्बार जल पीवे ॥ ६९ ॥

अथ शीतलजलपानस्य विषयानाह

मूर्च्छापित्तोष्णदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये । श्रमे भ्रमे विदग्धेऽन्ने तमके वमथौ तथा ।
ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतमम्भः प्रशस्यते ॥ ७० ॥

शीतल जलपान के विषय (योग्य लोग)–मूर्च्छा, पित्त सम्बन्धी रोग, गरमी, दाह, विष, रक्त-विकार, मदात्यय, श्रम, भ्रमरोग, तमक श्वास, वमन, ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त इन सब रोगवालों के लिये तथा जिनका अन्न न पचा हुआ हो ऐसे लोगों के लिये शीतल जल पीना हितकर होता है ॥ ७० ॥

अथ शीतलजलपानस्य निषेधविषयानाह

पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे । आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यःशुद्धौ नवज्वरे ॥७१॥
अरुचिग्रहणीगुल्मश्वासकासेषु विद्रधौ । हिक्कायां स्नेहपाने च शीताम्बु परिवर्जयेत् ॥७२॥

शीतल जलपान के निषेध के विषय—अर्थात् शीतल जल पीना जिन रोगों में निषिद्ध है उनका निर्देश—पार्श्वशूल (पसली का दर्द), जुकाम, वातरोग, गलग्रह, अफारा, बद्धकोष्ठ, तथा वमन विरेचनादि द्वारा शोधन कर्म करने के तत्काल बाद में एवम् नवीन ज्वर, अरुचि, ग्रहणी, गुल्म, श्वास, खांसी, विद्रधि, हिचकी तथा स्नेहपान (तैल आदि पीने पर) इन सबों में शीतल जल पीना त्याग कर देना चाहिये ॥ ७१–७२ ॥

अथाल्पजलपानस्य विषयानाह

अरोचके प्रतिश्याये मन्देऽग्नौ श्वयथौ क्षये । मुखप्रसेके जठरे कुष्ठे नेत्रामये ज्वरे ।
व्रणे च मधुमेहे च पिबेत्पानीयमल्पकम् ॥ ७३ ॥

थोड़े जलपान के विषय अर्थात् जिन में थोड़ा जल पीना उचित है उन रोगों का निर्देश—अरुचि, जुकाम, मन्दाग्नि, शोथ, क्षय, मुखप्रसेक (मुख में जल भर आना), उदररोग, कुष्ठ, नेत्रविकार, ज्वर, व्रण और मधुमेह इन रोगों में रोगी को थोड़ा जल पीना उचित है ॥ ७३ ॥

अथ जलपानस्यावश्यकतामाह

जीवनं जीविनां जीवो जगत् सर्वन्तु तन्मयम् । नातोऽत्यन्तनिषेधेन कदाचिद्वारि वार्य्यते ॥

जलपान की आवश्यकता—जीवन (जल) प्राणियों का जीवन स्वरूप है और सम्पूर्ण जगत जलमय है। अतः जल का अत्यन्त निषेध के साथ कभी नहीं निवारण करे अर्थात् एक दम से जल पीने का निषेध कभी नहीं करना चाहिये किन्तु अति स्वल्पमात्रा में देना ही चाहिये ॥ ७४ ॥

हारीतश्च

तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यःप्राणविनाशिनी । तस्माद् देयं तृषाऽऽर्त्ताय पानीयं प्राणधारणम् ॥
तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति । अतः सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वारयेत् ॥

इस विषय में "हारीत" भी कहते हैं कि—अत्यन्त प्यास बड़ी भयंकर होती है क्योंकि उससे सद्यः प्राण निकल जाता है, इसलिये जो अत्यन्त प्यास से पीड़ित हो उसे प्राण धारण करने का प्रधान साधन जल अवश्य पीने के लिये देना चाहिये। और जो प्यासा होता है उसे अन्त में मूर्च्छा हो जाती है और मूर्च्छा होने से अन्त में वह प्राणों को छोड़ देता है, अतः सभी अवस्थाओं में कभी भी जल पीने का निषेध नहीं करना चाहिये ॥ ७५–७६ ॥

अथ गुणवतस्तोयस्य लक्षणान्याह

अगन्धमव्यक्तरसं सुशीतं तर्षनाशनम् । स्वच्छं लघु च हृद्यञ्च तोयं गुणवदुच्यते ॥ ७७ ॥

गुणकारी जल के लक्षण—जो जल गन्धरहित हो तथा जिसका रस पूर्ण रूप से न मालूम पड़ता हो एवं जो अति शीतल, पीने से शीघ्र प्यास को शान्त करने वाला, स्वच्छ, लघु तथा हृदय के लिये हितकर या हृदय को प्रिय हो तो उसे प्रशस्त गुणवाला अर्थात् उत्तम जल समझना चाहिये ॥ ७७ ॥

अथावगुणकारिजलस्य लक्षणानि दुर्गुणाँश्चाह

पिच्छिलं कृमिलं क्लिन्नं पर्णशैवालकर्दमैः । विवर्णं विरसं सान्द्रं दुर्गन्धं न हितं जलम् ॥७८॥
कलुषं छन्नमम्भोजपर्णनीलीतृणादिभिः । दुःस्पर्शमसंस्पृष्टं सौरचान्द्रमरीचिभिः ॥ ७९ ॥
अनार्त्तवं वार्षिकं तु प्रथमं तच्च भूमिगम् । व्यापन्नं परिहर्त्तव्यं सर्वदोषप्रकोपणम् ॥ ८० ॥
तत् कुर्यात्स्नानपानाभ्यां तृष्णाऽऽध्मानचिरज्वरान् ।
कासाग्निमान्द्याभिष्यन्दकण्डूगण्डादिकं तथा ॥ ८१ ॥

अवगुण करने वाले जल के लक्षण–जो जल–पिच्छिल, कृमियुक्त और पत्ते, सेवार तथा कीचड़ से खराब हो गया हो, एवम् विकृत वर्ण का, विरस, गाढ़ा तथा दुर्गन्ध युक्त हो गया हो वह हितकारी नहीं होता है। और जो जल—गंदला तथा कमल के पत्ते, सेवार तथा तृण आदि से ढंका हुआ, एवं जिसके स्पर्श से खुजली होने लगे और जिस पर सूर्य तथा चन्द्रमा की किरणें कभी न पड़ती हों, और जो अनार्त्तव (पूस, माघ, फागुन, चैत इन ४ मासों में वर्षा का), और प्रथम वर्षा का भूमि पर स्थित जल हो तथा दूषित हो तो ऐसा जल पीने के लिये सर्वथा त्याग करने योग्य होता है क्योंकि वह सब दोषों को प्रकुपित करने वाला होता है। और उक्त जल को जो कोई पीने तथा नहाने के कार्य में लेता है तो उसे तृषा, अफारा, जीर्णज्वर, खांसी, अग्नि की मन्दता, अभिष्यन्द, खुजली तथा गलगण्ड आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ७८–८१ ॥

अथ दूषितजलस्य निर्दोषीकरणोपायमाह

निन्दितं चापि पानीयं क्वथितं सूर्यतापितम् । सुवर्णं रजतं लौहं पाषाणं सिकतामपि ॥८२॥
भृशं सन्ताप्य निर्वाप्य सप्तधा साधितं तथा । कर्पूरजातिपुन्नागपाटलादिसुवासितम् ॥८३॥

शुचिसान्द्रपटस्रावि क्षुद्रजन्तुविवर्जितम् । स्वच्छं कनकमुक्ताऽऽद्यैः शुद्धं स्याद्दोषवर्जितम् ॥
पर्णमूलविसग्रन्थिमुक्ताकनकशैवलैः । गोमेदेन च वस्त्रेण कुर्यादम्बुप्रसादनम् ॥ ८५ ॥

दूषित जल को निर्दोष (शुद्ध) करने का उपाय—जो जल उक्त प्रकार से निन्दित हो उसे काढ़े की भांति पकावे, या सूर्य की किरणों से गरम कर दे अर्थात् धूप में रख दे, वा सोना, चांदी, लोहा, पत्थर, बालू को खूब गरम कर २ के सात बार उक्त जल में बुझा दे, तदुपरांत कपूर, चमेली का पुष्प, सुलतानचम्पा का पुष्प, पाढ़ल पुष्प आदि से सुवासित कर दे, और स्वच्छ तथा गाढे वस्त्र से छान दे जिस से छोटे २ कृमि दूर हो जायं, इस प्रकार से स्वच्छ किया हुआ अथवा सोना या मोती आदि के द्वारा शुद्ध किया हुआ जल स्वच्छ तथा दोष रहित हो जाता है। पत्ते, मूल, बिसग्रन्थि (कमल का मूल), मोती, सोना, सेवार, गोमेदमणि तथा वस्त्र इन सबों से जल को स्वच्छ करना चाहिये ॥ ८२–८५ ॥

अथ पीतजलस्य परिपाककालानाह

पीतं जलं जीर्य्यति यामयुग्माद्यामैकमात्राच्छृतशीतलञ्च ।
तदर्धमात्रेण शृतं कदुष्णं पयःप्रपाके त्रय एव कालाः ॥ ८६ ॥

पीये हुये जलके पचने में समय का परिमाण—पीया हुआ साधारण जल दो प्रहर (६ घण्टे) में पच जाता है।

औटा कर ठंढा किया हुआ जल पीने से वह १ प्रहर (३ घण्टा) में पचता है। और औटा कर किंचित् गरम जल पीने से आधे प्रहर (१॥ घण्टे) में पच जाता है। इस भांति से जल के पचने में ३ प्रकार के समय के परिमाण हैं ॥ ८६ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे
मिश्रप्रकरणे त्रयोदशो वारिवर्गः समाप्तः ॥ १३ ॥

अथ दुग्धवर्गः

अथ दुग्धस्य नामानि गुणाँश्चाह

दुग्धं क्षीरं पयः स्तन्यं बालजीवनमित्यपि । दुग्धं सुमधुरं स्निग्धं वातपित्तहरं सरम् ॥ १ ॥
सद्यःशुक्रकरं शीतं सात्म्यं सर्वशरीरिणाम् । जीवनं बृंहणं बल्यं मेध्यं वाजीकरं परम् ॥
वयःस्थापनमायुष्यं सन्धिकारि रसायनम् ॥ २ ॥

दूध के संस्कृत नाम—दुग्ध, क्षीर, पयः (पयस्), स्तन्य तथा बालजीवन ये सब हैं।

दूध—मधुररसयुक्त, स्निग्ध, वात तथा पित्त को दूर करने वाला, सारक, तत्काल शुक्र को उत्पन्न करने वाला, शीतल, सम्पूर्ण प्राणियों के लिये सात्म्य (अनुकूल), जीवनी शक्ति को देने वाला, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), बलकारक, मेधा शक्ति के लिये हितकर, अत्यन्त वाजीकरण, अवस्था को स्थिर रखने वाला, आयु को बढ़ाने वाला, सन्धानकारक तथा रसायन है ॥ १–२ ॥

अथ दुग्धपानार्हजनानाह

विरेकवान्तिवस्तीनां सेव्यमोजोविवर्द्धनम् ॥ ३ ॥
जीर्णज्वरे मनोरोगे शोषमूर्च्छाभ्रमेषु च । ग्रहण्यां पाण्डुरोगे च दाहे तृषि हृदामये ॥ ४ ॥
शूलोदावर्त्तगुल्मेषु वस्तिरोगे गुदाङ्कुरे । रक्तपित्तेऽतिसारे च योनिरोगे श्रमे क्लमे ॥ ५ ॥
गर्भस्रावे च सततं हितं मुनिवरैः स्मृतम् । बालवृद्धक्षतक्षीणाः क्षुद्व्यवायकृशाश्च ये ॥
तेभ्यः सदाऽतिशयितं हितमेतदुदाहृतम् ॥ ६ ॥

दूध पीने के योग्य लोग—जिन्होंने विरेचन, वमन तथा वस्ति का प्रयोग किया है, ऐसे लोगों के लिये दूध सेवन करने के योग्य और ओजोवर्धक है। तथा जीर्णज्वर, मानसिकरोग, शोष, मूर्च्छा, भ्रम, ग्रहणी, पाण्डुरोग, दाह, तृषा, हृद्रोग, शूल, उदावर्त्त, गुल्म, वस्तिरोग, अर्श, रक्त-पित्त, अतिसार, योनिरोग, श्रम, क्लान्ति, गर्भस्राव, इन सब रोगों में दूध पीना सर्वदा हितकर होता है, ऐसा मुनियों का मत है और जो बालक, वृद्ध तथा क्षतक्षीण हैं या भूख और मैथुन से कृश हो गये हैं ऐसे लोगों के लिये यह (दूध) सदा अत्यन्त हितकर कहा हुआ है ॥ ३—६ ॥

अथ गोदुग्धस्य गुणानाह

गव्यं दुग्धं विशेषेण मधुरं रसपाकयोः । दोषधातुमलस्रोतःकिञ्चित्क्लेदकरं गुरु ॥ ७ ॥
शीतलं स्तन्यकृत्स्निग्धं वातपित्तास्रनाशनम् । जरासमस्तरोगाणां शान्तिकृत् सेविनां सदा ॥

गाय के दूध के गुण—गाय का दूध विशेष कर स्वाद तथा विपाक में मधुर रसयुक्त, शीतल, दुग्धवर्धक, स्निग्ध, वात-पित्त तथा रक्तविकार को नष्ट करने वाला, दोष-धातुमल तथा नाड़ियों में किञ्चित् क्लेद (आर्द्रता) उत्पन्न करने वाला, गुरु एवम् निरन्तर सेवन करने वालों की वृद्धावस्था तथा समस्तरोगों को शमन करने वाला होता है ॥ ७-८ ॥

अथ कृष्णाऽऽदीनां गवां दुग्धस्य गुणानाह

कृष्णाया गोर्भवेद् दुग्धं वातहारि गुणाधिकम् ॥ ९ ॥
पीतायाः हरते पित्तं तथा वातहरं भवेत् । श्लेष्मलं गुरु शुक्लाया रक्ता चित्रा च वातहृत् ॥

काली गाय का दूध—वातनाशक, औरों की अपेक्षा अधिक गुणकारी होता है। पीली गायका दूध-पित्त तथा वातनाशक होता है। सफेद गाय का दूध—कफकारक तथा गुरु होता है। लाल तथा चितकबरी गाय का दूध—वातनाशक होता है॥ ९-१०॥

अथ सद्यः प्रसूताया विवत्सायाश्च गोर्दुग्धगुणानाह

बालवत्सविवत्सानां गवां दुग्धं त्रिदोषकृत्॥ ११॥

हाल की ब्याई हुई अर्थात् छोटे बछड़े वाली तथा जिसके बच्चे मर गये हैं ऐसी गायों का दूध—त्रिदोषकारक होता है॥ ११॥

अथ बष्कयिण्या गोः (वाखरीगाय के) दुग्धगुणानाह

बष्कयिण्यास्त्रिदोषघ्नं तर्पणं बलकृत्पयः॥ १२॥

वाखरी (बकेन) गाय का दूध—त्रिदोषनाशक, तृप्तिकारक तथा बलकारक होता है॥१२॥

अथ देशविशेषेण गोदुग्धगुणानाह

जाङ्गलानूपशैलेषु चरन्तीनां यथोत्तरम्। पयो गुरुतरं स्नेहो यथाऽऽहारं प्रवर्त्तते॥ १३॥

देश विशेष से गाय का दूध—जाङ्गल देश, आनूप देश तथा पर्वतों पर चरने वाली गायों का दूध उत्तरोत्तर एक दूसरे की अपेक्षा अधिक गुरु होता है अर्थात् जाङ्गल देश में चरने वाली गाय की अपेक्षा आनूप देश में चरने वाली का दूध अधिक गुरु होता है, उसकी अपेक्षा पर्वत पर चरनेवाली गाय का दूध अधिक गुरु होता है, क्योंकि आहार के अनुसार ही दूध में स्नेहपदार्थ (घी) रहता है और उसी के न्यूनाधिक्य से न्यून तथा अधिक गुरु दूध होता है अर्थात् जिसमें अधिक स्नेह भाग रहेगा वह दूध अधिक गुरु होगा, जिसमें कम रहेगा वह कम गुरु होगा॥ १३॥

अथाहारविशेषेण गोदुग्धस्य गुणविशेषानाह

स्वल्पान्नभक्षणाज्जातं क्षीरं गुरु कफप्रदम्। तत्तु बल्यं परं वृष्यं स्वस्थानां गुणदायकम्। पलालतृणकार्पासबीजजं रोगिणे हितम्॥ १४॥

आहार विशेष से गाय का दूध—जो गाय चारे के साथ थोड़ा अन्न भी खाती है उससे जो उन्हें दूध उतरता है वह गुरु, कफकारक, बलदायक तथा अत्यन्त वृष्य (वीर्यवर्धक) होता है। अत एव वह स्वस्थ लोगों के लिये गुणदायक होता है। और जो गाय पैरा (भूसा), घास तथा कपास का बीज खाकर दूध देती हैं उन का दूध—रोगियों के लिये हितकर होता है॥ १४॥

अथ माहिषदुग्धस्य गुणानाह

माहिषं मधुरं गव्यात्स्निग्धं शुक्रकरं गुरु। निद्राकरमभिष्यन्दि क्षुधाऽऽधिक्यहरं हिमम्॥१५॥

भैंस का दूध—गाय के दूध की अपेक्षा अधिक मधुर, स्निग्ध (स्नेहपदार्थ युक्त), शुक्रकारक, गुरु, निद्रा लाने वाला, अभिष्यन्दी (कफवर्धक), भूख को अधिकरूप से नष्ट करने वाला तथा शीतल होता है॥ १५॥

अथाजादुग्धस्य गुणानाह

छागं कषायं मधुरं शीतं ग्राहि तथा लघु। रक्तपित्तातिसारघ्नं क्षयकासज्वरापहम्॥ १६॥
अजानामल्पकायत्वात्कटुतिक्तनिषेवणात्। स्तोकाम्बुपानाद्व्यायामात्सर्वरोगापहं पयः॥१७॥

विभिन्न दुग्ध एवं मट्ठा आदि का पोषणात्मक संगठन

पदार्थ	प्रतिशत %							प्रति १०० ग्राम जीवतिक्ति (Vitamin)				
	प्रोभूजिन	स्नेहांश	कार्बोज	कॅल्शियम्	फॉस्फोरस	लौह	कॅलरीमान	ए अ. इ.	बी$_{1}$ माइ. ग्रा.	निकोटिनिक एसिड मि. ग्रा.	रिबोफ्लेविन माइ. ग्रा.	सी मि. ग्रा.
दुग्ध-मातृ	१·०	३·९	७·०	०·०२	०·०१	०·२	६७	२·८	—	—	३०	—
,, गाय	३·३	३·६	४·८	०·१२	०·०९	०·२	६५	१८०	५१	०·१	२००	२
,, भैंस	४·३	८.८	५·१	०·२१	०·१३	०·२	११७	१६२	—	०·१	—	—
,, बकरी	३·७	५·६	४·७	०·१७	०·१२	०·३	८४	१८२	—	—	४०	—
,, गर्दभी	१·६-२·०	१·१-१·५	६·२७-६·८	—	—	—	—	—	—	—	—	—
,, घोड़ी	२·१-२·५	१·६-१·८	६·०-६·५	—	—	—	—	—	—	—	—	—
,, भेड़	१·५०	२	१·४१	—	—	—	३०	+	+	+	+	+
,, मक्खन निकाला	२·५	०·१	४·६	०·१२	०·०९	०·२	२९	—	—	०·१	—	१
मट्ठा	०·८	१·१	०·५	०·०३	०·०३	०·८	१५	लेश	—	—	—	—
दही	२·९	२·९	३ ३	०·१२	०·०९	०·३	५१	१३०	—	—	६०	—
मक्खन	१·८५	८१·५	—	—	—	—	७६२	—	—	—	—	—
घी	—	१००	—	—	—	—	९००	—	—	—	—	—
मलाई	२·५	३०	४·५	—	—	—	५७५	—	—	—	—	—

बकरी का दूध—कषाय तथा मधुर रसयुक्त, शीतल, ग्राही, लघु, एवम्—रक्तपित्त, अतिसार, क्षय, खांसी तथा ज्वर को दूर करने वाला होता है। बकरियाँ शरीर से छोटी होती हैं, और कटु तथा तिक्तरसयुक्त पत्ते आदि खाती हैं, थोड़ा जल पीती हैं एवम् व्यायाम (चलना, फिरना) अधिक करती हैं अतः उनका दूध सर्वरोगनाशक होता है॥ १६-१७॥

अथ मृग्यादिदुग्धस्य गुणानाह

मृगीणां जाङ्गलोत्थानामजाक्षीरगुणं पयः॥ १८॥

जाङ्गल देश की हरिणियों का दूध—बकरी के दूध के समान गुणों से युक्त होता है॥१८॥

तत्राविकदुग्धस्य गुणानाह

आविकं लवणं स्वादु स्निग्धोष्णं चाश्मरीप्रणुत्। अहृद्यं तर्पणं केश्यं[1] शुक्रपित्तकफप्रदम्॥
गुरु कासानिलोद्भूते केवले चानिले वरम्॥ १९॥

भेड़ी का दूध—लवण तथा मधुर रसयुक्त, स्निग्ध, उष्ण, अश्मरीनाशक, हृदय के लिये अहितकर, तृप्तिकारक, केशों के लिये हितकर, शुक्र-पित्त तथा कफ को उत्पन्न करनेवाला तथा गुरु होता है। एवम् वात से उत्पन्न होनेवाली खांसी तथा केवल वातरोग में हितकर होता है॥१९॥

अथ घोटकीदुग्धस्य गुणानाह

रूक्षोष्णं वडवाक्षीरं बल्यं शोषानिलापहम्। अम्लं पटु लघु स्वादु सर्वमेकशफं तथा॥२०॥

घोड़ी का दूध—रूक्ष, उष्ण, बलकारक, शोष तथा वायु को नष्ट करने वाला, अम्ल तथा लवण रसयुक्त, लघु और स्वादिष्ट होता है। एवम् घोड़े की भांति जितने एक शफ अर्थात् अखण्डित खुर वाले हैं उनके भी दूध पूर्वोक्त गुणवाले होते हैं॥ २०॥

अथौष्ट्रदुग्धस्य गुणानाह

औष्ट्रं दुग्धं लघु स्वादु लवणं दीपनं तथा। कृमिकुष्ठकफानाहशोथोदरहरं सरम्॥ २१॥

ऊंटिनी का दूध—लघु, मधुर तथा लवण रसयुक्त, अग्निदीपक, सारक एवम्—कृमि, कुष्ठ, कफ, अफरा, शोथ तथा उदर विकार को दूर करने वाला होता है॥ २१॥

अथ हस्तिनीदुग्धस्य गुणानाह

बृंहणं हस्तिनीदुग्धं मधुरं तुवरं गुरु। वृष्यं बल्यं हिमं स्निग्धं चक्षुष्यं स्थिरताकरम्॥२२॥

हथिनी का दूध—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), गुरु, वीर्यवर्धक, बलकारक, शीतल, स्निग्ध, नेत्रों के लिये हितकर तथा शरीर को दृढ़ करने वाला होता है॥२२॥

अथ नारीदुग्धस्य गुणानाह

नार्या लघु पयः शीतं दीपनं वातपित्तजित्। चक्षुःशूलाभिघातघ्नं नस्याश्च्योतनयोर्वरम्॥

स्त्री का दूध—लघु, शीतल, अग्निदीपक, एवम् वात, पित्त, नेत्रों का शूल तथा अभिघात को दूर करने वाला होता है, एवम् नस्य तथा आश्च्योतन कर्म के लिये उत्तम होता है॥ २३॥

---

१. वृष्य इति पाठा०।

अथ धारोष्णादिदुग्धस्य गुणानाह

धारोष्णं गोपयो बल्यं लघु शीतं सुधासमम्। दीपनञ्च त्रिदोषघ्नं तद्धाराशिशिरं त्यजेत्॥
धारोष्णं शस्यते गव्यं धाराशीतन्तु माहिषम्। शृतोष्णमाविकं पथ्यं शृतशीतमजापयः॥२५॥
आमं क्षीरमभीष्यन्दि गुरु श्लेष्मामवर्द्धनम्। ज्ञेयं सर्वमपथ्यं तु गव्यमाहिषवर्जितम्॥२६॥
नारीक्षीरं त्वाममेव हितं न तु शृतं हितम्। शृतोष्णं कफवातघ्नं शृतशीतन्तु पित्तनुत्॥२७॥
अर्द्धोदकं क्षीरशिष्टमामाल्लघुतरं पयः। जलेन रहितं दुग्धमतिपक्वं यथा यथा।
तथा तथा गुरु स्निग्धं वृष्यं बलविवर्धनम्॥ २८॥

गाय का धारोष्ण दूध—बलकारक, लघु, शीतल, अमृत के समान, अग्निदीपक तथा त्रिदोषनाशक होता है। किन्तु यदि वह (गाय का दूध) धाराशीतल अर्थात् दुहने के बाद देर तक रखने से शीतल हो गया हो तो उसे छोड़ देना चाहिये अर्थात् धारोष्ण का पूर्वोक्त गुण न होने से नहीं पीना चाहिये, यदि पीना हो तो गरम करके पीवे।

धारोष्ण (दुहने के समय जो उष्णता रहती है उससे युक्त) दूध—गाय का उत्तम होता है।

धाराशीत (दुहने के समय जो उष्णता रहती है उसके निकल जाने के बाद शीतल हुआ) दूध—भैंस का उत्तम होता है।

उबाला हुआ गरम २ दूध—भेड़ का पथ्य होता है।

उबाल कर शीतल किया हुआ दूध—बकरी का पथ्य होता है।

गाय तथा भैंस के दूध को छोड़ कर शेष सभी के कच्चे दूध को अभिष्यन्दी, गुरु, कफ तथा आम को बढ़ाने वाला तथा अपथ्य समझना चाहिये किन्तु स्त्री का दूध तो कच्चा ही हितकर होता है। यदि वही औंटाया हुआ हो तो हितकर नहीं होता है।

साधारण रूप से औंटाया हुआ गरम दूध—कफ तथा वातनाशक होता है और औंटाकर शीतल किया हुआ-पित्तनाशक होता है। दूध में यदि आधा भाग जल मिलाकर औंटाया जाय और जब पानी जल कर केवल दूध का भाग शेष रह जाय तब उतार ले—यह दूध कच्चे की अपेक्षा अधिक लघु होता है।

बिना जल छोड़े दूध को जितना ही अधिक औंटाया जायगा उतना ही अधिक उत्तरोत्तर गुरु, स्निग्ध, वीर्य तथा बल को बढ़ाने वाला होता जायगा॥ २४-२८॥

अथ पीयूष-किलाट-क्षीरशाक-तक्रपिण्ड-मोरटानां-लक्षणानि गुणाँश्चाह

क्षीरं तत्कालसूताया घनं पीयूषमुच्यते। नष्टदुग्धस्य पक्वस्य पिण्डः प्रोक्तः किलाटकः॥२९॥

पीयूष, किलाट, क्षीरशाक, तक्रपिण्ड तथा मोरट के लक्षण और गुण—**पीयूष के लक्षण**—तत्काल की ब्याई हुई गाय, भैंस आदि के गाढ़े दूध को "पीयूष" कहते हैं।

किलाटक के लक्षण—बिगड़े हुये दूध को यदि औंटाते २ गाढ़ा करके पिण्डाकार बना लिया जाय तो उसे किलाटक कहते हैं॥ २९॥

*पीयूषं "पेवस" इति लोके। किलाटकः 'खरेटा' "गिजिरी" वा इति लोके॥ २९॥

यहां पर मूल में—"पीयूष" से लोकप्रसिद्ध "पेवस" का तथा "किलाटक" से लोकप्रसिद्ध "खरेटा—या-गिजिरी" का बोध करना चाहिये॥ २९॥

अपक्वमेव यन्नष्टं क्षीरशाकं हि तत्पयः॥ ३०॥

क्षीरशाक के लक्षण—जो दूध बिना औटाये ही (कच्चा ही) फट गया हो उसे क्षीरशाक कहते हैं ॥ ३० ॥

क्षीरशाकं 'तुषिमरा' वा 'खिरिसा' इति लोके ॥ ३० ॥

यहां पर "क्षीरशाक" से लोकप्रसिद्ध "तुषिमरा—या-खिरिसा" का बोध करना चाहिये ॥ ३० ॥

**दध्ना तक्रेण वा नष्टं दुग्धं बद्धं सुवाससा । द्रवभावेन सहितं तक्रपिण्डः स उच्यते ॥३१॥
नष्टदुग्धभवं नीरं मोरटं जेज्जटोऽब्रवीत् । पीयूषश्च किलाटश्च क्षीरशाकं तथैव च ॥३२॥
तक्रपिण्ड इमे वृष्या बृंहणा बलवर्द्धनाः । गुरवः श्लेष्मला हृद्या वातपित्तविनाशनाः ॥३३॥
दीप्ताग्नीनां विनिद्राणां विद्रधौ चाभिपूजिताः । मुखशोषतृषादाहरक्तपित्तज्वरप्रणुत् ॥
लघुर्बलकरो हृद्यो मोरटः स्यात्सितायुतः ॥ ३४ ॥**

तक्रपिण्ड के लक्षण—जो दूध-दही अथवा तक्र (छाछ) के संयोग से फट गया हो अथवा फाड़ा गया हो उसे यदि वस्त्र में बांध कर लटका दिया जाय तो द्रवपदार्थ हीन होने पर अर्थात् पानी का भाग निकल जाने पर उसे "तक्रपिण्ड" कहते हैं।

मोरट के लक्षण—उक्त प्रकार से दूध के फट जाने के बाद वस्त्र में बाँधने पर जो जल टपक कर गिरता है उसे "मोरट" कहते हैं, ऐसा "जेज्जट" आचार्य का कथन है ॥

पीयूष-किलाट-क्षीरशाक तथा तक्रपिण्ड ये सब—वीर्यवर्धक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), बलको बढ़ाने वाले, गुरु, कफकारक, हृदय को हितकर, वात तथा पित्तनाशक, दीप्त अग्निवाले तथा जिन्हें नींद नहीं आती है ऐसे लोगों के लिये एवं विद्रधि रोग वालों के लिये अत्युत्तम होते हैं। और मोरट यदि बूरा से युक्त हो तो-लघु, बलकारक, रुचिजनक एवम् मुखशोष, प्यास, दाह, रक्तपित्त तथा ज्वर को दूर करने वाला होता है ॥ ३१-३४ ॥

अथ सन्तानिका (मलाई) गुणानाह

सन्तानिका गुरुः शीता वृष्या पित्तास्रवातनुत् । तर्पणी बृंहणी स्निग्धा बलासबलशुक्रला ॥३५

मलाई—गुरु, शीतल, वीर्यवर्धक, तृप्तिकारक, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), स्निग्ध, कफ, बल तथा शुक्र को उत्पन्न करने वाली एवम् पित्त-रक्तविकार तथा वात को दूर करने वाली होती है ॥ ३५ ॥

अथ खण्डादियुक्तस्य दुग्धस्य गुणानाह

**खण्डेन सहितं दुग्धं कफकृत्पवनापहम् । सितासितोपलायुक्तं शुक्रलं त्रिमलापहम् ।
सगुडं मूत्रकृच्छ्रघ्नं पित्तश्लेष्मकरं परम् ॥ ३६ ॥**

खांड पड़ा हुआ दूध—कफकारक तथा वातनाशक होता है।
बूरा या मिश्री पड़ा हुआ दूध-शुक्रजनक तथा त्रिदोषनाशक होता है। गुड़ पड़ा हुआ दूध—मूत्र-कृच्छ्रनाशक एवम् पित्त तथा कफ को अधिक उत्पन्न करने वाला होता है ॥ ३६ ॥

अथ प्रभातादिभवस्य दुग्धस्य गुणानाह

**रात्रौ चन्द्रगुणाधिक्याद्व्यायामाकरणात्तथा । प्राभातिकं पयः प्रायः प्रादोषाद् गुरु शीतलम् ॥
दिवाकरकराघाताद्व्यायामानिलसेवनात् । प्राभातिकात्तु प्रादोषं लघु वातकफापहम् ॥३८॥**

प्रातः आदि समयों के दूध का गुण—प्रातःकाल का दूध प्रायः करके सायंकाल के दूध की अपेक्षा अधिक गुरु तथा शीतल होता है क्योंकि-रात्रि में चन्द्रमा के गुणों की अधिकता रहती है तथा व्यायाम (चलने फिरने का श्रम) नहीं किया जाता है। और सायंकाल का दूध प्रातःकाल के दूध की अपेक्षा लघु एवम् वात तथा कफनाशक होता है, क्योंकि-दिन में शरीर पर सूर्य की किरणें पड़ती रहती हैं एवम् व्यायाम (चलने फिरने का श्रम) तथा वायु सेवन होता रहता है ॥ ३७-३८ ॥

अथ दुग्धसेवनस्य समयविशेषेण गुणविशेषानाह

**वृष्यं बृंहणमग्निदीपनकरं पूर्वाह्णकाले पयो मध्याह्ने तु बलावहं कफहरं पित्तापहं दीपनम् ।
बाले वृद्धिकरं क्षयेऽक्षयकरं वृद्धेषु रेतोवहं रात्रौ पथ्यमनेकदोषशमनं चक्षुर्हितं संस्मृतम् ॥
वदन्ति पेयं निशि केवलं पयो भोज्यं न तेनेह सहौदनादिकम् ।
भवत्यजीर्णं न शयीत शर्वरीं क्षीरस्य पीतस्य न शेषमुत्सृजेत् ॥ ४० ॥
विदाहीन्यन्नपानानि दिवा भुङ्क्ते हि यन्नरः । तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं रात्रौ क्षीरं सदा पिबेत् ॥
दीप्तानले कृशे पुंसि बाले वृद्धे पयःप्रिये । मतं हिततमं दुग्धं सद्यःशुक्रकरं यतः ॥ ४२ ॥**

समय विशेष में दूध पीने के विशेष गुण—दिन के पूर्व भाग (सुबह से १० बजे तक) में दुग्धपान (दूध पीना) वीर्यवर्धक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक) तथा अग्नि को दीप्त करने वाला होता है। मध्याह्न काल में दुग्धपान-बलकारक, कफ तथा पित्त को दूर करने वाला एवम् अग्निदीपक होता है।

बाल्यावस्था में दुग्धपान-शरीर की वृद्धि करने वाला होता है।

क्षय अवस्था में—क्षय का निवारण करने वाला और वृद्धावस्था में दुग्धपान शुक्र की रक्षा करने वाला होता है।

रात्रि में दुग्धपान-पथ्य (हितकर), अनेक दोषों को शमन करने वाला एवम् नेत्रों के लिये हितकर ऋषियों द्वारा कहा गया है।

और कोई आचार्य यह कहते हैं कि—रात्रि में केवल दूध पीना चाहिये, उसके साथ भात आदि नहीं खाना चाहिये, क्योंकि इससे अजीर्ण होता है, और रात्रि में नींद भी नहीं आती है, और दूध पीने के बाद पात्र में कुछ शेष भाग न रख छोड़े अर्थात् जितना पीना हो उतना ही दूध लेकर पीवे अथवा दूध यदि कुछ अधिक हो जाय तो भी पीने से हानि नहीं हो सकती अतः दूध कभी पीकर नहीं छोड़ देना चाहिये।

मनुष्य दिन में जो कुछ विदाही (दाह पैदा करने वाले) अन्न-पान आदि का सेवन करता है उससे होने वाले दाह की शान्ति के लिये रात्रि में उसे प्रतिदिन दूध अवश्य पीना चाहिये। जिनकी अग्नि प्रदीप्त है या जो कृश हैं उन सभी के लिये एवम् बालक, वृद्ध तथा जिन्हें दूध प्रिय हो ऐसे लोगों के लिये दुग्ध पान अत्यन्त हितकर होता है क्योंकि यह (दुग्धपान) तत्काल (पीते ही पीते) शुक्र की वृद्धि करने वाला होता है ॥ ३९-४२ ॥

अथ मथितदुग्धस्य गुणानाह

क्षीरं गव्यमथाजं वा कोष्णं दण्डाहतं पिबेत् । लघु वृष्यं ज्वरहरं वातपित्तकफापहम् ॥४३॥

मथे हुये दूध के गुण—गाय अथवा बकरी का दूध यदि औटाया हुआ मथानी से मथ कर किञ्चित् उष्ण रहते ही पीवे तो वह लघु, वीर्यवर्धक, एवम्—ज्वर, वात, पित्त तथा कफ को दूर करने वाला होता है ॥ ४३ ॥

अथ दुग्धफेनम् (झाग)। तस्य गुणानाह

गोदुग्धप्रभवं किं वा छागीदुग्धसमुद्भवम्। भवेत् फेनं त्रिदोषघ्नं रोचनं बलवर्द्धनम् ॥४४॥
वह्निवृद्धिकरं वृष्यं सद्यस्तृप्तिकरं लघु। अतीसारेऽग्निमान्द्ये च ज्वरे जीर्णे प्रशस्यते ॥ ४५ ॥

गाय अथवा बकरी के दूध का फेन—त्रिदोषनाशक, रोचक, बलवर्धक, अग्नि की वृद्धि करने वाला, वीर्यवर्धक, तत्काल तृप्ति देने वाला, लघु एवम् अतीसार, अग्नि की मन्दता तथा पुराने ज्वर में हितकर होता है ॥ ४४-४५ ॥

अथ निन्दितदुग्धस्य लक्षणमाह

विवर्णं विरसं चाम्लं दुर्गन्धं ग्रथितं पयः। वर्जयेदम्ललवणयुक्तं कुष्ठादिकृद् यतः ॥ ४६ ॥

निन्दित दूध के लक्षण—जो दूध-विवर्ण (बदरङ्ग हो गया हो), विरस (खराब स्वाद वाला), खट्टा, दुर्गन्धयुक्त, ग्रन्थि पड़ा हुआ (फटा हुआ) एवम् खटाई या निमक पड़ा हुआ हो उसे छोड़ देना चाहिये अर्थात न पीवे, क्योंकि उक्त दूध के पीने से कुष्ठ आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभाव विरचिते भावप्रकाशे
मिश्रप्रकरणे चतुर्दशो दुग्धवर्गः समाप्तः ॥ १४ ॥

अथ दधिवर्गः

तत्र दध्नो गुणानाह

दध्युष्णं दीपनं स्निग्धं कषायानुरसं गुरु। पाकेऽम्लं ग्राहि[1] पित्तास्रशोथमेदःकफप्रदम् ॥ १ ॥
मूत्रकृच्छ्रे प्रतिश्याये शीतगे विषमज्वरे। अतीसारेऽरुचौ कार्श्ये शस्यते बलशुक्रकृत् ॥ २ ॥

दही—उष्ण, अग्निदीपक, स्निग्ध, किञ्चित् कषाय रस युक्त, गुरु, विपाक में अम्लरसयुक्त, ग्राही एवम् पित्त, रक्तविकार, शोथ, मेद और कफ को उत्पन्न करने वाला होता है। और मूत्र-कृच्छ्र, जुखाम, शीत विषमज्वर, अतीसार, अरुचि तथा कृशता में उत्तम होता है और बल तथा शुक्र को बढ़ाने वाला होता है ॥ १-२ ॥

अथ दधिभेदानाह

आदौ मन्दं ततः स्वादु स्वाद्वम्लञ्च ततः परम्। अम्लं चतुर्थमत्यम्लं पञ्चमं दधि पञ्चधा ॥

दही के भेद—१ मन्द, २ स्वादु, ३ स्वाद्वम्ल, ४ अम्ल, ५ अत्यम्ल इस भांति से दही के पांच भेद होते हैं ॥ ३ ॥

अथ मन्दादिदध्नो लक्षणं गुणाँश्चाह

मन्दं दुग्धवदव्यक्तरसं किञ्चिद्घनं भवेत्। मन्दं स्यात्सृष्टविण्मूत्रं दोषत्रयविदाहकृत् ॥ ४ ॥
यत्सम्यग्घनतां यातं व्यक्तस्वादुरसं भवेत्। अव्यक्ताम्लरसं तत्तु स्वादु विज्ञैरुदाहृतम् ॥ ५ ॥
स्वादु स्यादत्यभिष्यन्दि वृष्यं मेदःकफावहम्। वातघ्नं मधुरं पाके रक्तपित्तप्रसादनम् ॥६॥
स्वाद्वम्लं सान्द्रमधुरं कषायानुरसं भवेत्। स्वाद्वम्लस्य गुणा ज्ञेया सामान्यदधिवज्जनैः ॥
यत्तिरोहितमाधुर्यं व्यक्ताम्लत्वं तदम्लकम्। अम्लं तु दीपनं पित्तरक्तश्लेष्मविवर्द्धनम् ॥ ८ ॥
तदत्यम्लं दन्तरोमहर्षकण्ठादिदाहकृत्। अत्यम्लं दीपनं रक्तवातपित्तकरं परम् ॥ ९ ॥

मन्द दही के लक्षण—जो दही—दूध के समान (ठीक से नहीं जमा हुआ), अव्यक्त रस-वाला तथा कुछ गाढ़ा होता है उसे "मन्द" कहते हैं।

मन्द दही—मल तथा मूत्र की प्रवृत्ति करने वाला, त्रिदोष और दाह को उत्पन्न करने वाला होता है।

स्वादु दही के लक्षण—जो दही भली भांति गाढ़ा हो गया हो और जिस का स्वादु (मधुर) रस अच्छी तरह प्रगट हो रहा हो तथा अम्लरस अव्यक्त हो (ठीक से नहीं मालूम पड़ता हो) उसे विद्वानों ने "स्वादु" संज्ञक दही बताया है।

स्वादु संज्ञक दही—अत्यन्त अभिष्यन्दी, वीर्यवर्धक, मेद तथा कफ को उत्पन्न करने वाला, वातनाशक, विपाक में मधुर रसयुक्त तथा रक्तपित्त को शांत करने वाला होता है।

स्वाद्वम्ल संज्ञक दही के लक्षण—गाढ़ा, मधुर रसयुक्त तथा अन्त में कषाय रस युक्त दही को "स्वाद्वम्ल" संज्ञक दही कहते हैं।

---

१. श्वास इति पाठा०।

स्वाद्वम्लसंज्ञक दही—गुणों में साधारण दही के समान होता है ऐसा विद्वानों का मत है। **अम्लसंज्ञक दही के लक्षण**—जिस दही में मधुर रस छिपा हुआ हो और अम्ल रस प्रगट हो रहा हो उसे "अम्ल" संज्ञक दही समझना चाहिये। **अम्लसंज्ञक दही**—अग्निदीपक एवम् पित्त, रक्तविकार तथा कफ को बढ़ाने वाला होता है।

अत्यम्ल संज्ञक दही के लक्षण—जिस दही के खाने से दांत हर्षित हो जायं तथा रोंगटे खड़े हो जायं और कण्ठ आदि में दाह होने लगे उसे "अत्यम्ल" संज्ञक दही जानना चाहिये।

अत्यम्ल संज्ञक दही—अग्निदीपक एवम् रक्तविकार, वात तथा पित्त को अत्यन्त उत्पन्न करने वाला होता है ॥ ४-९ ॥

अथ गोदधिगुणानाह

गव्यं दधि विशेषेण स्वाद्वम्लं च रुचिप्रदम्। पवित्रं दीपनं हृद्यं पुष्टिकृत्पवनापहम्।
उक्तं दध्नामशेषाणां मध्ये गव्यं गुणाधिकम् ॥ १० ॥

गाय का दही—विशेष रूप से मधुर तथा अम्लरसयुक्त, रुचि उत्पन्न करने वाला, पवित्र, अग्निदीपक, हृदय के लिये हितकर, पुष्टिकारक तथा वातनाशक होता है और सम्पूर्ण दहियों के बीच में गाय का ही दही अधिक गुण करने वाला कहा हुआ है ॥ १० ॥

अथ माहिषदधिगुणानाह

माहिषं दधि सुस्निग्धं श्लेष्मलं वातपित्तनुत्।
स्वादुपाकमभिष्यन्दि वृष्यं गुर्वस्रदूषकम् ॥ ११ ॥

भैंस का दही—अत्यन्त स्निग्ध, कफजनक, वात तथा पित्त नाशक, विपाक में मधुररसयुक्त, अभिष्यन्दी, वीर्यवर्धक, गुरु तथा रक्त को दूषित करने वाला होता है ॥ ११ ॥

अथाजदधिगुणानाह

आजं दध्युत्तमं ग्राहि लघु दोषत्रयापहम्। शस्यते श्वासकासार्शःक्षयकार्श्येषु दीपनम् ॥१२॥

बकरी का दही—उत्तम, ग्राही, लघु, त्रिदोषनाशक, अग्निदीपक एवम्—श्वास, खांसी, अर्श, क्षय तथा कृशता में हितकर होता है ॥ १२ ॥

अथ पक्वदुग्धजातस्य दध्नो गुणानाह

पक्वदुग्धभवं रुच्यं दधि स्निग्धं गुणोत्तमम्। पित्तानिलापहं सर्वधात्वग्निबलवर्द्धनम् ॥ १३ ॥

पकाये हुये दूध से तैयार किया हुआ **दही**—रुचिकारक, स्निग्ध, उत्तम गुणवाला, पित्त तथा वात को दूर करने वाला एवम्—सम्पूर्ण धातु, अग्नि तथा बल को बढ़ाने वाला होता है ॥ १३ ॥

अथ निःसारदुग्धजनितदध्नो गुणानाह

असारं दधि सङ्ग्राहि शीतलं वातलं लघु। विष्टम्भि दीपनं रुच्यं ग्रहणीरोगनाशनम् ॥१४॥

निःसार दूध का दही—संग्राही, शीतल, वातजनक, लघु, विष्टम्भकारक, अग्निदीपक, रुचिकारक एवम्—ग्रहणीरोग को नष्ट करने वाला होता है ॥ १४ ॥

अथ गालितदध्नो गुणानाह

गालितं दधि सुस्निग्धं वातघ्नं कफकृद् गुरु। बलपुष्टिकरं रुच्यं मधुरं नातिपित्तकृत् ॥ १५ ॥

गालित (वस्त्र से छाने हुये) दही—अति स्निग्ध, वातनाशक, कफकारक, गुरु, बल तथा पुष्टि को करने वाला, रुचिजनक, मधुररसयुक्त तथा अत्यन्त पित्तकारक नहीं होता है अर्थात् किञ्चित् पित्त करने वाला होता है ॥ १५ ॥

अथ शर्कराऽऽदिसहितस्य दध्नो गुणानाह

सशर्करं दधि श्रेष्ठं तृष्णापित्तास्रदाहजित्। सगुडं वातनुद् वृष्यं बृंहणं तर्पणं गुरु ॥ १६ ॥

शक्कर मिला हुआ दही—श्रेष्ठ होता है एवम् तृष्णा (प्यास), पित्त, रक्तविकार तथा दाह को नष्ट करने वाला होता है।

गुड़ मिला हुआ दही—वातनाशक, वीर्यवर्धक, बृंहण (रस रक्तादिवर्धक), तृप्तिकारक तथा गुरु होता है ॥ १६ ॥

अथ रात्रौ दधिभक्षणस्य निषेधमाह

न नक्तं दधि भुञ्जीत न चाप्यघृतशर्करम्। नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना ॥ १७ ॥

रात्रि में दही खाने का निषेध—रात्रिमें दही नहीं खाना चाहिये, और बिना घी तथा शक्कर के या बिना मूंगकी दाल के वा बिना मधुके अथवा गरम किंवा बिना आंवला के दही नहीं खाना चाहिये ॥ १७ ॥

❀ अयमर्थः

रात्रौ दधि न भुञ्जीत, भुञ्जीत चेत्तदा—अघृतशर्करममुद्गसूपमक्षौद्रमुष्णं विनाऽऽमलकश्च दधि न भुञ्जीत। तेन घृतशर्कराऽऽदियुक्तं दधि रात्रावपि भुञ्जीतेत्यर्थः।

यहां पर उपर्युक्त श्लोक का वास्तविक अर्थ यह समझना चाहिये कि—रात्रि में दही कभी नहीं खाना चाहिये, यदि खाना ही हो तो घी, शक्कर, या मूंग की दाल वा शहद किंवा आंवला के बिना अथवा गरम न खाय, इससे यह सिद्ध हुआ कि—घी, शक्कर आदि से युक्त दही रात्रि में भी खायें।

❀ तथा च

शस्यते दधि नो रात्रौ शस्तं चाम्बुघृतान्वितम्। रक्तपित्तकफोत्थेषु विकारेषु तु नैव तत् ॥१॥

तथा इसी विषय में और भी कहा है कि—रात्रि में दही खाना उचित नहीं है किन्तु यदि जल तथा घी मिला हुआ हो तो खाना उचित है। किन्तु रक्त, पित्त तथा कफ सम्बन्धी विकारों में वह भी अर्थात् जल तथा घी से मिला हुआ भी दही खाना उचित नहीं होता है अर्थात् अहितकर होता है ॥ १ ॥

तद् = अम्बुघृतान्वितमपि (॥ १ ॥) ॥ १७ ॥

यहां पर "तत्" पद का "वह भी अर्थात् जल तथा घी से मिला भी दही" यह अर्थ समझना चाहिये (॥ १ ॥) ॥ १७ ॥

अथ ऋतुविशेषेण दध्नो विधिनिषेधावाह

हेमन्ते शिशिरे चापि वर्षासु दधि शस्यते । शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशस्तद्विगर्हितम् ॥१८॥

ऋतु विशेष से दही खाने की विधि तथा निषेध—हेमन्त (अगहन-पूस), शिशिर (माघ-फागुन) तथा वर्षा (सावन-भादो) ऋतु में दही खाना उत्तम है। शरद् (क्वार-कार्त्तिक), ग्रीष्म (जेठ-आषाढ़) तथा वसन्त (चैत-वैशाख) ऋतु में दही खाना प्रायः करके निन्दित है अर्थात् निषिद्ध है ॥ १८ ॥

अथ विधिमन्तरेण दधिसेवने दुर्गुणानाह

ज्वरासृक्पित्तवीसर्पकुष्ठपाण्ड्वामयभ्रमान् । प्राप्नुयात्कामलां चोग्रां विधिं हित्वा दधिप्रियः ॥

विना विधि के दही सेवन करने के दुर्गुण—जो दही का प्रेमी व्यक्ति विधि को छोड़ कर अर्थात् जब जिस भांति दही खाने की विधि है उसके विरुद्ध सदा दही खाता रहता है तो उसे ज्वर, रक्तपित्त, विसर्प, कुष्ठ, पाण्डु तथा भ्रम रोग एवम् प्रचण्ड रूप से कामला रोग उत्पन्न हो जाता है। अतः विधिपूर्वक दही खाना चाहिये ॥ १९ ॥

अथ दध्नः सरमस्तुनोर्लक्षणं गुणाँश्चाह

दध्नस्तूपरि यो भागो घनः स्नेहसमन्वितः । स लोके सर इत्युक्तो दध्नो मण्डस्तु मस्त्विति ॥
सरः स्वादुर्गुरुर्वृष्यो वातवह्निप्रणाशनः । सोऽम्लो वस्तिप्रशमनः पित्तश्लेष्मविवर्द्धनः ॥२१॥
मस्तु क्लमहरं बल्यं लघु भक्ताभिलाषकृत् ॥ २२ ॥
स्रोतोविशोधनं ह्लादि कफतृष्णानिलापहम् । अवृष्यं प्रीणनं शीघ्रं भिनत्ति मलसञ्चयम् ॥

सर के लक्षण—दही के ऊपर जो गाढ़ा तथा स्नेह (घी) से युक्त भाग होता है उसे लोक में सर (साढ़ी) कहते हैं।

मस्तु के लक्षण—और दही के मांड (पानी) को मस्तु (दही का तोड़) कहते हैं।

सर—जो सर स्वादिष्ट होता है वह गुरु, वीर्य वर्धक, वात तथा जठराग्नि नाशक होता है और यदि वह (सर) अम्ल रस युक्त होता है, तो वस्ति के रोगों का प्रशमन करता है एवम्-पित्त तथा कफ को बढ़ाता है।

मस्तु (दही का तोड़)—क्लान्ति को दूर करने वाला, बलदायक, लघु, अन्न खाने की अभिलाषा को उत्पन्न करने वाला, स्रोतोमार्ग (नाड़ियों के मार्ग) को शुद्ध करने वाला, आह्लादजनक एवम् कफ, तृषा तथा वायु को नष्ट करने वाला, अवृष्य (किञ्चित् वीर्यवर्धक) तथा शीघ्र संचित मल का भेदन करने वाला होता है ॥ २०–२२ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे
पञ्चदशो दधिवर्गः समाप्तः ॥ १५ ॥

अथ तक्रवर्गः

तत्र तक्रस्य पृथक्पृथङ् नामानि लक्षणं गुणाँश्चाह

घोलं तु मथितं तक्रमुदश्विच्छच्छिकाऽपि च । ससरं निर्जलं घोलं मथितं त्वसरोदकम् ॥१॥
तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्विदर्द्धवारिकम् । छच्छिका सारहीना स्यात्स्वच्छा प्रचुरवारिका ॥
घोलं तु शर्करायुक्तं गुणैर्ज्ञेयं रसालवत् ॥ २ ॥

तक्र (मट्ठा) के भिन्न २ लक्षणों के अनुसार भिन्न २ संस्कृत नाम—घोल, मथित, तक्र, उदश्वित और छच्छिका ये सब हैं। अर्थात् उक्त ५ भेद तक्र के होते हैं।

लक्षण—**घोल**—विना जल मिलाये यदि मलाई के सहित दही को मथा जाय तो उसे "घोल" कहते हैं। **मथित**—यदि दही की मलाई अलग कर विना जल मिलाये ही मथ दिया जाय तो उसे "मथित" कहते हैं। **तक्र**—जिस दही में चतुर्थांश जल मिला कर मथा जाय तो उसे तक्र कहते हैं।

उदश्वित्—जिस दही में आधा जल मिलाकर मथा जाय उसे "उदश्वित" कहते हैं।

छच्छिका—जिस दही में से प्रथम मथ कर मक्खन निकाल लिया हो पुनः उसी में अधिक मात्रा में स्वच्छ जल डालकर फिर मथा जाय तो उसे "छच्छिका" कहते हैं ॥ १–२ ॥

***मथितम् = 'महुया' वा 'मथुवा' इति लोके । छच्छिका "छाछ" = इति लोके ॥१–२॥**

यहां पर—"मथितम्" से लोकप्रसिद्ध "महुया" या "मथुवा" का तथा "छच्छिका" से लोकप्रसिद्ध "छाछ" का ग्रहण करना चाहिये ॥ १–२ ॥

घोलं तु शर्करायुक्तं गुणैर्ज्ञेयं रसालवत् । वातपित्तहरं ह्लादि मथितं कफपित्तनुत् ॥ ३ ॥
तक्रं ग्राहि कषायाम्लं स्वादुपाकरसं लघु । वीर्योष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वातनाशनम् ॥४॥
ग्रहण्यादिमतां पथ्यं भवेत्संग्राहि लाघवात् । किञ्च स्वादुविपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपणम् ॥५॥
अम्लोष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वातनाशनम् । कषायोष्णविकाशित्वाद्रौक्ष्याच्चापि कफापहम् ॥
न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः ।
यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥ ७ ॥
उदश्वित् कफकृद् बल्यमामघ्नं परमं मतम् । छच्छिका शीतला लघ्वी पित्तश्रमतृषाहरी ॥
वातनुत् कफकृत् सा तु दीपनी लवणान्विता ॥ ८ ॥

घोल—घोल में यदि शक्कर मिला हुआ हो तो वह गुणों में रसाल (सिखरन) के समान होता है एवम् वात तथा पित्तनाशक और आह्लादजनक होता है।

मथित—यह कफ तथा पित्तनाशक होता है। तक्र—यह कषाय तथा मधुर रस युक्त, विपाक में मधुर रस युक्त, ग्राही, लघु, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, वीर्यवर्धक, तृप्तिकारक तथा वातनाशक होता है।

ग्रहणी आदि के रोगियों को तक्र हितकर होता है क्योंकि यह लघु होने से मल का संग्राहक होता है और विपाक में मधुर रस युक्त होने से पित्त को प्रकुपित भी नहीं करता है एवम् अम्लरस युक्त, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, वीर्यवर्धक तथा तृप्तिकारक होने से यह वातनाशक होता है और कषाय रसयुक्त, उष्णवीर्य, विकाशी तथा रूक्ष होने से यह कफनाशक होता है। तक्र का सेवन

करने वाला व्यक्ति कभी भी बीमार नहीं पड़ता है, और तक्र के प्रभाव से नष्ट हुये रोग पुनः कभी उत्पन्न नहीं हो सकते, अस्तु जिस प्रकार से देवताओं के लिये सुखकारी अमृत है उसी भाँति पृथ्वी तल में मनुष्यों के लिये तक्र सुखकारी, ऋषियों ने बताया है।

उदश्वित्—कफकारक, बलवर्धक तथा अत्यन्त आमनाशक होता है।

छाछ—शीतल, लघु एवम् पित्त, श्रम तथा तृषा को दूर करने वाला, वातनाशक तथा कफ कारक होता है और यदि इसमें सेंधानिमक मिला हो तो अग्निदीपक होता है ॥ ३-८ ॥

अथोद्धृतस्तोकोद्धृतानुद्धृतघृतानां तक्राणां गुणानाह

समुद्धृतघृतं तक्रं पथ्यं लघु विशेषतः ॥ ९ ॥
स्तोकोद्धृतघृतं तस्माद् गुरु वृष्यं कफापहम्। अनुद्धृतघृतं सान्द्रं गुरु पुष्टिकफप्रदम् ॥१०॥

घी निकाला हुआ तक्र—पथ्य (रोगियों के लिये हितकर) तथा लघु होता है। यदि कुछ घी निकाल लिया गया हो और कुछ अंश घी का रह गया हो तो ऐसा तक्र—उपर्युक्त तक्र (घी निकाले हुये तक्र) की अपेक्षा गुरु, वीर्यवर्धक तथा कफनाशक होता है। और यदि घी न निकाला हुआ हो तथा गाढा हो तो ऐसा तक्र-गुरु एवम् पुष्टिकारक तथा कफजनक होता है ॥ ९-१० ॥

अथ दोषविशेषे व्याधिविशेषे च तक्रविशेषानाह

वातेऽम्लं शस्यते तक्रं शुण्ठीसैन्धवसंयुतम्। पित्ते स्वादु सितायुक्तं व्योषक्षारयुतं कफे ॥
हिङ्गुजीरयुतं घोलं सैन्धवेन च संयुतम्। भवेदतीव वातघ्नमर्शोऽतीसारहृत्परम् ॥ १२ ॥
रुचिदं पुष्टिदं बल्यं वस्तिशूलविनाशनम्। मूत्रकृच्छ्रे तु सगुडं पाण्डुरोगे सचित्रकम् ॥ १३ ॥

दोषविशेष में तथा रोगविशेष में विशेष २ तक्रों का प्रयोग—वातदोष की अधिकता में—अम्लरसयुक्त एवम् सोंठ तथा सेन्धा निमक मिला हुआ तक्र उत्तम अर्थात् हितकारी होता है। पित्त की अधिकता में—मधुर रसयुक्त तथा चीनी मिश्रित तक्र उत्तम हितकारी होता है। कफ की अधिकता में—सोंठ, मिरच तथा पीपर मिश्रित तक्र उत्तम हितकारी होता है।

हींग, जीरा (ये दोनों भुने हुये हों,) तथा सेंधा निमक से युक्त घोल—अत्यन्त वातनाशक, अर्श तथा अतिसार को अत्यन्त दूर करने वाला, रुचिजनक, पुष्टिकारक, बलदायक एवं वस्तिशूल नाशक होता है। गुड़युक्त घोल—मूत्रकृच्छ्र में एवम् चित्रक (चीता) मिश्रित घोल—पांडुरोग में देना हितकर है।

अथ पक्वापक्वतक्रयोर्गुणानाह

तक्रमामं कफं कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च। पीनसश्वासकासादौ पक्वमेव प्रयुज्यते ॥ १४ ॥

कच्चा (बिना पकाया हुआ) तक्र-कोष्ठ स्थित कफ को नष्ट करता है तथा कण्ठ में कफ करने वाला होता है। अतः पकाये हुए तक्र का ही—पीनस, श्वास तथा कास आदि में प्रयोग करना उचित है क्योंकि हितकर होता है ॥ १४ ॥

अथ तक्रसेवनविषयानाह

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च तथा वातामयेषु च। अरुचौ स्रोतसां रोधे तक्रं स्यादमृतोपमम् ॥
तत्तु हन्ति गरच्छर्दिप्रसेकविषमज्वरान्। पाण्डुमेदोग्रहण्यर्शोमूत्रग्रहभगन्दरान् ॥१५॥
मेहं गुल्ममतीसारं शूलप्लीहोदरारुचीः। श्वित्रकोष्ठगतव्याधीन् कुष्ठशोथतृषाकृमीन् ॥१६॥

तक्र सेवन करने के विषय—शीतकाल में तथा अग्नि की मन्दता, वातरोग, अरुचि तथा नाड़ियों के अवरोध में तक्र अमृत के समान गुणकारी होता है। और यह—गर (संयोगज विष), वमन, प्रसेक (कफजन्य लार आदि गिरना), विषमज्वर, पाण्डुरोग, मेदरोग, ग्रहणी, अर्श (बवासीर), मूत्रग्रह (मूत्र का बन्द होना), भगन्दर, प्रमेह, गुल्म, अतीसार, शूल, प्लीहा, उदररोग, अरुचि, श्वित्र (श्वेतकुष्ठ), कोष्ठगत रोग, कुष्ठ, शोथ, तृषा, तथा कृमिरोग को नष्ट करने वाला होता है ॥ १४-१६ ॥

अथ तक्रस्य निषेधविषयानाह

नैव तक्रं क्षये[1] दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले। न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपित्तजे ॥ १७ ॥

तक्र निषेध के विषय—तक्र—क्षय रोग में तथा ग्रीष्म ऋतु में एवम् दुर्बल व्यक्ति तथा मूर्च्छा, भ्रम, दाह तथा रक्तपित्त रोग युक्त व्यक्ति को नहीं देना चाहिये। अर्थात् देना अहितकर होता है ॥ १७ ॥

अथ गव्यादीनां विशिष्टतक्राणां गुणानाह

यान्युक्तानि दधीन्यष्टौ तद्गुणं तक्रमादिशेत् ॥ १८ ॥

गाय आदि के दूध के दही से बने हुये तक्र के गुण—जो पूर्व में (दधिवर्ग में) गाय आदि के दूध के बने हुए आठ प्रकार के दहियों के गुण कह आये हैं वेही सब गुण उन दहियों से बने हुये तक्र के भी होते हैं, ऐसा समझना चाहिये ॥ १८ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे षोडशस्तक्रवर्गः समाप्तः ॥ १६ ॥

---

१. क्षते इति पाठा०।

अथ नवनीतवर्गः

तत्र नवनीतस्य नामगुणानाह

म्रक्षणं सरजं हैयङ्गवीनं नवनीतकम्। नवनीतं हितं गव्यं वृष्यं वर्णबलाग्निकृत् ॥ १ ॥
संग्राहि वातपित्तासृक्क्षयार्शोऽर्दितकासहृत्। तद्धितं बालके वृद्धे विशेषादमृतं शिशोः ॥ २ ॥

मक्खन के संस्कृत नाम—म्रक्षण, सरज, हैयङ्गवीन तथा नवनीतक ये सब हैं।

गाय का मक्खन—हितकर, वीर्यवर्धक, वर्ण को उत्तम करने वाला, बल तथा अग्नि को बढ़ाने वाला, मलसंग्राही, एवम् वात, पित्त, रक्तविकार, क्षय, अर्श, अर्दित वात तथा कास को दूर करने वाला होता है। तथा यह—बालक और वृद्ध के लिये हितकर एवम् विशेषकर के शिशु (अत्यन्त छोटे बच्चों) के लिये अमृत के समान गुणकारी होता है ॥ १–२ ॥

अथ माहिषनवनीतस्य गुणानाह

नवनीतं महिष्यास्तु वातश्लेष्मकरं गुरु। दाहपित्तश्रमहरं मेदःशुक्रविवर्द्धनम् ॥ ३ ॥

भैंस का मक्खन—वात तथा कफ कारक, गुरु एवम् दाह, पित्त तथा श्रम को दूर करने वाला और मेद तथा शुक्र की वृद्धि करने वाला होता है ॥ ३ ॥

अथ दुग्धोत्थनवनीतस्य गुणानाह

दुग्धोत्थं नवनीतं तु चक्षुष्यं रक्तपित्तनुत्। वृष्यं बल्यमतिस्निग्धं मधुरं ग्राहि शीतलम् ॥४॥

दूध से निकला हुआ मक्खन—नेत्रों के लिये हितकर, रक्तपित्तनाशक, वीर्यवर्धक, बलकारक, अत्यन्त स्निग्ध, मधुर रसयुक्त, ग्राही तथा शीतल होता है ॥ ४ ॥

अथ सद्योनिःसारितनवनीतस्य गुणानाह

नवनीतं तु सद्यस्कं स्वादु ग्राहि हिमं लघु। मेध्यं किञ्चित्कषायाम्लमीषत्तक्रांशसङ्क्रमात् ॥५॥

तत्काल का निकाला हुआ मक्खन—स्वादिष्ट, ग्राही, शीतल, लघु, मेधा के लिये हितकर एवम् किञ्चित् तक्र का अंश मिला रहने से किञ्चित् कषाय तथा अम्ल रस से युक्त भी होता है ॥५॥

अथ चिरन्तननवनीतस्य गुणानाह

सक्षारकटुकाम्लत्वाच्छर्द्यर्शःकुष्ठकारकम्। श्लेष्मलं गुरु मेदस्यं नवनीतं चिरन्तनम् ॥ ६ ॥

पुराना मक्खन—क्षार, कटु तथा अम्ल रस युक्त होने से वमन, अर्श तथा कुष्ठ को उत्पन्न करने वाला होता है एवम् कफजनक, गुरु तथा मेद को बढ़ाने वाला होता है ॥ ६ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे
सप्तदशो नवनीतवर्गः समाप्तः ॥ १७ ॥

अथ घृतवर्गः

तत्र घृतस्य नामगुणानाह

घृतमाज्यं हविः सर्पिः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ। घृतं रसायनं स्वादु चक्षुष्यं वह्निदीपनम् ॥१॥
शीतवीर्यं विषालक्ष्मीपापपित्तानिलापहम्। अल्पाभिष्यन्दि कान्त्योजस्तेजोलावण्यवृद्धिकृत् ॥
स्वरस्मृतिकरं मेध्यमायुष्यं बलकृद्गुरु। उदावर्त्तज्वरोन्मादशूलानाहव्रणान् हरेत्।
स्निग्धं कफकरं रक्षःक्षयवीसर्परक्तनुत् ॥ ३ ॥

घी के संस्कृत नाम—घृत, आज्य, हविस् तथा सर्पिस् ये सब हैं।

घी—रसायन, स्वादिष्ट, नेत्रों के लिये हितकर, अग्निदीपक, शीतवीर्य, किंचित् अभिष्यन्दी, कान्ति, ओज, तेज और लावण्य की वृद्धि करने वाला, स्वर को स्वच्छ करने वाला तथा स्मरण शक्ति को बढ़ाने वाला, मेधा (धारणाशक्ति) के लिये हितकर, आयु को बढ़ाने वाला, बलकारक, गुरु, स्निग्ध, कफकारक एवम् विष, अलक्ष्मी (दरिद्रता), पाप, पित्त, वायु, उदावर्त्त, ज्वर, उन्माद, शूल, आनाह (अफारा), व्रण, रक्षोग्रह, क्षय, वीसर्प तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥१–३॥

अथ गव्यघृतस्य गुणानाह

गव्यं घृतं विशेषेण चक्षुष्यं वृष्यमग्निकृत्। स्वादुपाककरं शीतं वातपित्तकफापहम् ॥४॥
मेधालावण्यकान्त्योजस्तेजोवृद्धिकरं परम्। अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं वयसः स्थापकं गुरु ॥५॥
बल्यं पवित्रमायुष्यं सुमङ्गल्यं रसायनम्। सुगन्धं रोचनं चारु सर्वाज्येषु गुणाधिकम् ॥६॥

गाय का घी—विशेष करके नेत्रों के लिये हितकर, वीर्यवर्धक, अग्निवर्धक, विपाक में मधुर-रसयुक्त, शीतल, वात पित्त तथा कफ को नष्ट करने वाला एवम् मेधाशक्ति, लावण्य, कान्ति, ओज तथा तेज की अत्यन्त वृद्धि करने वाला, अलक्ष्मी, पाप तथा रक्षोग्रह को दूर करने वाला, अवस्था को स्थिर रखने वाला, गुरु, बलकारक, पवित्र, आयु को बढ़ाने वाला, मङ्गलदायक, रसायन, सुगन्धयुक्त, रोचक एवम् सम्पूर्ण घृतों में उत्तम तथा अधिक गुणकारी होता है ॥ ४–६ ॥

अथ माहिषघृतस्य गुणानाह

माहिषन्तु घृतं स्वादु पित्तरक्तानिलापहम्। शीतलं श्लेष्मलं वृष्यं गुरु स्वादु विपच्यते ॥७॥

भैंस का घी—स्वादिष्ट, शीतल, कफजनक, वीर्यवर्धक, गुरु, विपाक में मधुर रसयुक्त एवम् पित्त और रक्त विकार तथा वात को नष्ट करने वाला होता है ॥ ७ ॥

अथाजघृतस्य गुणानाह

आजमाज्यं करोत्यग्निं चक्षुष्यं बलवर्द्धनम्। कासे श्वासे क्षये चापि हितं पाके भवेत् कटु ॥८॥

बकरी का घी—जठराग्निकारक, नेत्रों के लिये हितकर, बलवर्धक, कास, श्वास तथा क्षय रोग में हितकर एवम् विपाक में कटुरसयुक्त होता है ॥ ८ ॥

अथौष्ट्रघृतस्य गुणानाह

औष्ट्रं कटु घृतं पाके शोषक्रिमिविषापहम् । दीपनं कफवातघ्नं कुष्ठगुल्मोदरापहम् ॥ ९ ॥

ऊंटिनी का घी—विपाक में कटुरसयुक्त, अग्निदीपक, कफ-वात नाशक एवम् शोष, क्रिमि, विष, कुष्ठ, गुल्म तथा उदररोग को नष्ट करने वाला होता है ॥ ९ ॥

अथाविकघृतस्य गुणानाह

पाके लघ्वाविकं सर्पिः सर्वरोगविनाशनम् ॥ १० ॥
वृद्धिं करोति चास्थ्नां वा अश्मरीशर्कराऽपहम् । चक्षुष्यमग्निसंधुक्षं वातदोषनिवारणम् ॥

भेड़ी का घी—पाक में लघु, सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करने वाला, हड्डियों की वृद्धि करने वाला, नेत्रों के लिए हितकर, जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला एवम् पथरी, शर्करा तथा वात सम्बन्धी दोषों को दूर करने वाला होता है ॥ १०–११ ॥

अथ नारीघृतस्य गुणानाह

कफेऽनिले योनिदोषे पित्ते रक्ते च तद्धितम् । चक्षुष्यमाज्यं स्त्रीणां वा सर्पिः स्यादमृतोपमम्॥

स्त्री का घी—अमृत के समान होता है तथा यह नेत्रों के लिये हितकर, एवम् कफ, वात, योनिदोष, पित्त तथा रक्तविकार में भी हितकर होता है ॥ १२ ॥

अथ वडवाघृतस्य गुणानाह

वृद्धिं करोति देहाग्नेर्लघु पाके विषापहम् । तर्पणं नेत्ररोगघ्नं दाहनुद् वडवाघृतम् ॥ १३ ॥

घोड़ी का घी—देह तथा अग्नि की वृद्धि करने वाला, पाक में लघु, विषनाशक, तृप्तिकारक, नेत्ररोगनाशक तथा दाह को दूर करने वाला होता है ॥ १३ ॥

अथ दुग्धनिःसृतघृतस्य गुणानाह

घृतं दुग्धभवं ग्राहि शीतलं नेत्ररोगहृत् । निहन्ति पित्तदाहास्रमदमूर्च्छाभ्रमानिलान् ॥ १४ ॥

दूध से निकाला हुआ घी—ग्राही, शीतल, नेत्ररोगनाशक एवम्—पित्त, दाह, रक्तविकार, मद, मूर्च्छा, भ्रम तथा वात को दूर करने वाला होता है ॥ १४ ॥

अथ ह्यस्तनदुग्धोत्थघृतस्य गुणानाह

हविर्ह्यस्तनदुग्धोत्थं तत्स्याद्धैयङ्गवीनकम् । हैयङ्गवीनं चक्षुष्यं दीपनं रुचिकृत्परम् ।
बलकृद् बृंहणं वृष्यं विशेषाज्ज्वरनाशनम् ॥ १५ ॥

एक दिन के पहिले के दूध से निकाले हुए घी को संस्कृत में "हैयङ्गवीन" कहते हैं। **हैयङ्गवीन**—यह नेत्रों के लिये हितकर, अग्निदीपक, अत्यन्त रुचिकारक, बलवर्धक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), वीर्यवर्धक तथा विशेष कर के ज्वरनाशक होता है ॥ १५ ॥

अथ पुराणघृतस्य गुणानाह

वर्षादूर्ध्वं भवेदाज्यं पुराणं तत् त्रिदोषनुत् । मूर्च्छाकुष्ठविषोन्मादापस्मारतिमिरापहम् ॥१६॥
यथा यथाऽखिलं सर्पिः पुराणमधिकं भवेत् । तथा तथा गुणैः स्वैः स्वैरधिकं तदुदाहृतम् ॥

पुराना घी—एक वर्ष से ऊपर का रक्खा हुआ घी पुराना कहलाता है। **पुराना घी**—त्रिदोषनाशक एवम्, मूर्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद, मिर्गी तथा तिमिर रोग को दूर करने वाला होता है।

पूर्वोक्त सभी घृत—जैसे २ अधिक पुराने होते जायेंगे वैसे २ अपने २ गुणों को अधिक करते जायेंगे अर्थात् उत्तरोत्तर अधिक गुणकारी होते जायेंगे ॥ १६–१७ ॥

अथ नवीनघृतस्य विषयानाह

योजयेन्नवमेवाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे । बलक्षये पाण्डुरोगे कामलानेत्ररोगयोः ॥ १८ ॥

नवीन घी के प्रयोग करने के विषय—भोजन, तर्पण, परिश्रम, बल का क्षय, पाण्डु, कामला तथा नेत्ररोग इन सबों में नवीन घृत का ही प्रयोग करना चाहिये ॥ १८ ॥

अथ घृतप्रयोगस्याविषयानाह

राजयक्ष्मणि बाले च वृद्धे श्लेष्मकृते गदे ॥ १९ ॥
रोगे सामे विषूच्यां च विबन्धे च मदात्यये । ज्वरे च दहने मन्दे न सर्पिर्बहु मन्यते ॥२०॥

घी प्रयोग करने के अविषय—बालक तथा वृद्ध लोगों के लिये, एवम् राजयक्ष्मा, कफजन्यरोग, आमयुक्त रोग, विषूचिका (हैजा), मलबन्ध, मदात्यय, ज्वर तथा अग्नि की मन्दता इन सबों में घी देना अत्यन्त प्रशस्त नहीं है ॥ १९–२० ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणेऽष्टादशो
घृतवर्गः समाप्तः ॥ १८ ॥

अथ मूत्रवर्गः

तत्र गोमूत्रगुणानाह

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं क्षारं तिक्तकषायकम् । लघ्वग्निदीपनं मेध्यं पित्तकृत्कफवातहृत् ॥ १ ॥
शूलगुल्मोदरानाहकण्डूवक्षिमुखरोगजित् । किलासगदवातामवस्तिरुक्कुष्ठनाशनम् ॥
कासश्वासापहं शोथकामलापाण्डुरोगहृत् ॥ २ ॥
कण्डूकिलासगदशूलमुखाक्षिरोगान्गुल्मातिसारमरुदामयमूत्ररोधान् ।
कासं सकुष्ठजठरक्रिमिपाण्डुरोगान्गोमूत्रमेकमपि पीतमपाकरोति ॥ ३ ॥
सर्वेष्वपि च मूत्रेषु गोमूत्रं गुणतोऽधिकम् । अतोऽविशेषात्कथने मूत्रं गोमूत्रमुच्यते ॥ ४ ॥
प्लीहोदरश्वासकासशोथवर्चोग्रहापहम् ॥ ५ ॥
शूलगुल्मरुजाऽऽनाहकामलापाण्डुरोगहृत् । कषायं तिक्ततीक्ष्णं च पूरणात्कर्णशूलहृत् ॥ ६ ॥

गोमूत्र—कटु-तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, क्षार, लघु, अग्निदीपक, मेधा के लिये हितकर, पित्तकारक, कफ तथा वातनाशक एवम् शूल, गुल्म, उदररोग, आनाह (अफारा), खुजली, नेत्र तथा मुखसम्बन्धी रोग, किलास रोग (कुष्ठभेद), वात, आम, वस्तिसम्बन्धी रोग, कुष्ठ, कास, श्वास, शोथ, कामला तथा पाण्डुरोग को नष्ट करने वाला होता है।

और केवल एक गोमूत्र पान करने से खुजली, किलास रोग, शूल, मुख तथा नेत्र सम्बन्धी रोग, गुल्म, अतिसार, वातरोग, मूत्ररोध, कास, कुष्ठ, उदररोग, क्रिमि तथा पाण्डुरोग ये सब दूर हो जाते हैं।

और सम्पूर्ण मूत्रों में गोमूत्र ही सबसे अधिक गुणकारी होता है, अतः जहाँ पर सामान्य रूप से केवल "मूत्र" शब्द का प्रयोग आवे वहां पर "गोमूत्र" का ही बोध करना चाहिए।

गोमूत्र—कषाय तथा तिक्त रसयुक्त, तीक्ष्ण गुण युक्त, कान में डालने से कर्णशूलनाशक एवम्-प्लीहा, उदररोग, श्वास, कास, शोथ, मलरोध, शूल, गुल्म, आनाह (अफरा), कामला तथा पाण्डु रोग को दूर करने वाला होता है ॥ १–६ ॥

अथ मनुष्यमूत्रगुणानाह

नरमूत्रं गरं हन्ति सेवितं तद्रसायनम् । रक्तपामाहरं तीक्ष्णं सक्षारलवणं स्मृतम् ॥ ७ ॥

मनुष्य का मूत्र—तीक्ष्ण, क्षार तथा लवण रसयुक्त, गरसंज्ञक विष, रक्तविकार तथा पामारोग नाशक होता है एवम् यह सेवन करने से रसायन है ॥ ७ ॥

अथ मूत्रस्य सामान्यपरिभाषामाह

गोऽजाऽविमहिषीणां तु स्त्रीणां मूत्रं प्रशस्यते । खरोष्ट्रेभनराश्वानां पुंसां मूत्रं हितं स्मृतम् ॥

मूत्रविषयक सामान्य परिभाषा—गाय, बकरी तथा भैंस इनमें स्त्री जाति का मूत्र उत्तम होता है, तथा गदहा, ऊंट, हाथी, मनुष्य तथा घोड़ा इनमें पुरुष जाति का मूत्र हितकारक होता है अर्थात् जहां पर प्रयोग करना हो तो वहां पर उक्त मूत्रों का ही ग्रहण करना चाहिये ॥ ८ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे
एकोनविंशो मूत्रवर्गः समाप्तः ॥ १८ ॥



अथ तैलवर्गः

तत्र तैलस्य स्वरूपं गुणं चाह

तिलादिस्निग्धवस्तूनां स्नेहस्तैलमुदाहृतम् । तत्तु वातहरं सर्वं विशेषात्तिलसम्भवम् ॥ १ ॥

तेल का स्वरूप—तिल आदि स्निग्ध (स्नेहयुक्त) वस्तुओं के स्नेह भाग को मुनि लोग "तैल" कहते हैं।

तेल—सभी प्रकार के तेल यद्यपि वातनाशक होते हैं तथापि तिल का तेल विशेष रूप से वात को नष्ट करने वाला होता है ॥ १ ॥

अथ तिलतैलगुणानाह

तिलतैलं गुरु स्थैर्यबलवर्णकरं सरम् । वृष्यं विकाशि विशदं मधुरं रसपाकयोः ॥ २ ॥
सूक्ष्मं कषायानुरसं तिक्तं वातकफापहम् । वीर्येणोष्णं हिमं स्पर्शे बृंहणं रक्तपित्तकृत् ॥ ३ ॥
लेखनं बद्धविण्मूत्रं गर्भाशयविशोधनम् । दीपनं बुद्धिदं मेध्यं व्यवायि व्रणमेहनुत् ॥ ४ ॥
श्रोत्रयोनिशिरःशूलनाशनं लघुताकरम् । त्वच्यं केश्यं च चक्षुष्यमभ्यङ्गे भोजनेऽन्यथा ॥५॥
छिन्नभिन्नच्युतोत्पिष्टमथितक्षतपिच्चिते । भग्नस्फुटितविद्धाग्निदग्धविश्लिष्टदारिते ॥ ६ ॥
तथाऽभिहतनिर्भुग्नमृगव्याघ्रादिविक्षते । वस्तौ पानेऽन्नसंस्कारे नस्ये कर्णाक्षिपूरणे ॥
सेकाभ्यङ्गावगाहेषु तिलतैलं प्रशस्यते ॥ ७ ॥

तिल का तेल—गुरु, स्थिरता तथा बल कारक, वर्ण को उत्तम करने वाला, सारक, वृष्य (वीर्यवर्धक), विकाशी, विशद, रस तथा पाक में मधुर, सूक्ष्म गुण युक्त, आरम्भ में तिक्तरसयुक्त पश्चात् कषाय रस युक्त, वात तथा कफ नाशक, उष्णवीर्य, स्पर्श में शीतल, बृंहण (रस रक्तादि वर्धक), रक्तपित्तकारक, लेखन, मल तथा मूत्र को बांधने वाला, गर्भाशय का शोधन करने वाला, अग्निदीपक, बुद्धिदायक, मेधा के लिये हितकर, व्यवायि गुण युक्त, व्रण तथा मेह को दूर करने वाला, कान, योनि तथा शिर सम्बन्धी शूल नाशक, शरीर में लघुता करने वाला, अभ्यङ्ग (शरीर में मालिश) करने से त्वचा, केश तथा नेत्रों के लिये हितकर, किन्तु भोजन करने से अन्यथा होता है अर्थात् त्वचा, केश तथा नेत्र के लिये अहितकर होता है। एवम्-छिदजाने, भिदजाने, गिरजाने, पिसजाने, मसलजाने, घाव होजाने, पिचजाने, टूटजाने, फटजाने, बिंधजाने, अग्नि से जलजाने, हड्डियों के अपने स्थान से हटजाने, चिरजाने, चोट लगजाने, किसी अङ्ग के टेढ़े हो जाने तथा मृग या बाघ आदिसे घायल हो जाने पर तिलका तेल हितकर होता है, एवम्—वस्तिकर्म, पीने तथा अन्न के संस्कार करने (छौकने) में और नस्य (नास) लेने तथा कान व आंख में डालने में एवम् सेकने, मर्दन तथा अवगाहन करने में तिल का तेल उत्तम होता है ॥ २—७ ॥

तिल—इसका अन्य विवरण ६५२ पृष्ठ पर किया गया है।

ननु बृंहणलेखनयोः कथं समानाधिकरण्यमित्याह

रूक्षादिदुष्टः पवनः स्रोतः संकोचयेद् यदा । रसोऽसम्यग्वहन् कार्श्यं कुर्याद्रक्तान्यवर्द्धयन् ॥८॥
तेषु प्रवेष्टुं सरतासौक्ष्म्यस्निग्धत्वमार्दवैः । तैलं क्षमं रसं नेतुं कृशानां तेन बृंहणम् ॥ ९ ॥
व्यवायिसूक्ष्मतीक्ष्णोष्णसरत्वैर्मेदसः क्षयम् । शनैः प्रकुरुते तैलं तेन लेखनमीरितम् ॥१०॥
द्रुतं पुरीषं बध्नाति स्खलितं तत्प्रवर्त्तयेत् । ग्राहकं सारकञ्चापि तेन तैलमुदीरितम् ॥ ११ ॥

यहां पर यह शङ्का होती है कि—परस्पर विरुद्ध धर्म वाले बृंहण तथा लेखन ये दोनों एक साथ तिल के तेल में कैसे रहते हैं ? इसीका उत्तर देते हुये कहते हैं कि—रूक्षादि पदार्थों के सेवन करने से जब वायु दुष्ट होकर स्रोतोमार्ग को संकुचित करता है तब रस भली भांति नहीं बहने पाता और उससे रक्त की भी वृद्धि नहीं होने पाती अतः उक्त रस शरीर में कृशता करने लगता है। ऐसी स्थिति में तिलतैल—उन संकुचित स्रोतों में अपने सरता, सूक्ष्मता, स्निग्धता तथा मृदुता इन सब गुणों के द्वारा प्रवेश करने के लिये तथा रसों को सर्वत्र यथास्थान पहुंचाने के लिये समर्थ होता है, इसी से कृश (दुर्बल) लोगों के लिये बृंहण (रस–रक्त–मांसादि का वर्धक) कहा गया है। और व्यवायी, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, उष्ण तथा सर इन सब गुणों से युक्त होने से इनके द्वारा मेदा का धीरे २ क्षय करता है, अतः तिल का तेल "लेखन" कहा गया है। और पतले मल को बांधता है तथा जो मल अपने स्थान से हट चुका है उसकी प्रवृत्ति कराता है अतः क्रमसे तेल ग्राहक तथा सारक दोनों कहा गया है ॥ ८–११ ॥

अथ घृततैलयोः परिभाषामाह

घृतमब्दात्परं पक्वं हीनवीर्यं प्रजायते । तैलं पक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिकम् ॥ १२ ॥

घी तथा तेल की परिभाषा—एक वर्ष से अधिक पुराना होने पर पकाया हुआ घी हीनवीर्य हो जाता है किन्तु तेल चाहे पकाया हुआ हो अथवा कच्चा ही हो जैसे २ पुराना होता जाता है वैसे २ अधिक गुणकारी होता है ॥ १२ ॥

अथ सर्षपराजिका तैलयोर्गुणानाह

दीपनं सार्षपं तैलं कटुपाकरसं लघु । लेखनं स्पर्शवीर्योष्णं तीक्ष्णं पित्तास्रदूषकम् ॥ १३ ॥
कफमेदोऽनिलार्शोघ्नं शिरःकर्णामयापहम् । कण्डूकुष्ठकृमिश्वित्रकोठदुष्टक्रिमिप्रणुत् ॥ १४ ॥
तद्वद्राजिकयोस्तैलं विशेषान्मूत्रकृच्छ्रकृत् ॥ १५ ॥

सरसों का तेल–अग्निदीपक, रस तथा विपाक में कटु रस युक्त, लघु, लेखन, स्पर्श तथा वीर्य में उष्ण, तीक्ष्ण, पित्त तथा रक्त को दूषित करने वाला एवम्—कफ, मेद, वायु, बवासीर, शिर तथा कान सम्बन्धी रोग, खुजली, कुष्ठ, कृमि, श्वेतकुष्ठ, कोठ तथा दुष्ट कृमि को नष्ट करने वाला होता है, इसी प्रकार से दोनों प्रकार के राई के तेल के भी गुण हैं—किन्तु विशेष कर उन दोनों के तेल मूत्रकृच्छ्र–कारक होते हैं ॥ १४–१५ ॥

राजिकयोः=कृष्णराजिकारक्तराजिकयोः ॥ १५ ॥

यहां पर मूल में "राजिकयोः" पद से "दोनों प्रकार की राई अर्थात् काली राई तथा लाल राईके" यह अर्थ समझना चाहिये ॥ १५ ॥

इनका अन्य विवरण पृष्ठ ६५४–६५६ पर किया गया है ।

अथ तुवरीतैलगुणानाह

तीक्ष्णोष्णं तुवरीतैलं लघु ग्राहि कफास्रजित् । वह्निकृद्विषहृत्कण्डूकुष्ठकोठकृमिप्रणुत् ॥
मेदोदोषापहं चापि व्रणशोथहरं परम् ॥ १६ ॥

तुवरी का तेल–तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, ग्राही, कफ तथा रक्तविकार को दूर करने वाला, अग्निकारक, विषनाशक एवम्—खुजली, कुष्ठ, कोठ कृमि, तथा मेद सम्बन्धी दोष को नष्ट करने वाला, एवम् व्रण तथा शोथ को अत्यन्त दूर करने वाला होता है ॥ १६ ॥

इसका अन्य विवरण पृष्ठ ६५४ पर किया गया है ।

अथातसीतैलगुणानाह

अतसीतैलमाग्नेयं स्निग्धोष्णं कफपित्तकृत् । कटुपाकमचक्षुष्यं बल्यं वातहरं गुरु ॥ १७ ॥
मलकृद्रसतः स्वादु ग्राहि त्वग्दोषहृद् घनम् ॥ १८ ॥
वस्तौ पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये कर्णस्य पूरणे । अनुपानविधौ चापि प्रयोज्यं वातशान्तये ॥१९॥

अलसी का तेल—आग्नेय (अग्नि के अधिक अंशों से युक्त), स्निग्ध, उष्ण, कफ तथा पित्त कारक, विपाक में कटु रसयुक्त, नेत्रों के लिए अहितकर, बलकारक, वातनाशक, गुरु, मलकारक, मधुर-रस युक्त, ग्राही, त्वचा गत दोष को दूर करने वाला और घन है और वस्तिकर्म पीने तथा मालिश करने में एवम् नस्य (नास) लेने तथा कानमें डालने के लिये और वायु को शान्त करने के लिये अनुपान विधिमें अलसी के तेल का प्रयोग करना चाहिये ॥ १७–१९ ॥

इसका अन्य विवरण पृष्ठ ६५३ पर किया गया है ।

अथ कुसुम्भतैलगुणानाह

कुसुम्भतैलमम्लं स्यादुष्णं गुरु विदाहि च । चक्षुर्भ्यामहितं बल्यं रक्तपित्तकफप्रदम् ॥ २० ॥

कुसुम का तेल—अम्लरस युक्त, उष्ण, गुरु, विदाही, नेत्रों के लिये अहितकर, बलकारक एवम् रक्तपित्त तथा कफ कारक है ॥ २० ॥

इसका अन्य विवरण पृष्ठ ११२ पर किया गया है ।

अथ खसबीज (पोस्त) तैलगुणानाह

तैलं तु खसबीजानां बल्यं वृष्यं गुरु स्मृतम् । वातहृत्कफहृच्छीतं स्वादुपाकरसं च तत् ॥

पोस्ता का तेल—बलकारक, वीर्यवर्धक, गुरु, वात तथा कफ नाशक, शीतल एवम् रस तथा विपाक में मधुर होता है ॥ २१ ॥

इसका अन्य विवरण पृष्ठ १४५ पर किया गया है ।

अथैरण्डतैलगुणानाह

एरण्डतैलं तीक्ष्णोष्णं दीपनं पिच्छिलं गुरु । वृष्यं त्वच्यं वयःस्थापि मेधाकान्तिबलप्रदम् ॥
कषायानुरसं सूक्ष्मं योनिशुक्रविशोधनम् । विस्रंस्वादु रसे पाके सतिक्तं कटुकं रसम् ॥२३॥
विषमज्वरहृद्रोगपृष्ठगुह्यादिशूलनुत् । हन्ति वातोदरानाहगुल्माष्ठीलाकटिग्रहान् ॥ २४ ॥
वातशोणितविड्बन्धब्रध्नशोथामविद्रधीन । आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः ॥
एक एव निहन्ताऽयमेरण्डस्नेहकेसरी ॥ २५ ॥

रेंड़ी का तेल—तीक्ष्ण, उष्ण, अग्निदीपक, पिच्छिल गुण युक्त, गुरु, वीर्यवर्धक, त्वचा के लिये हितकर, अवस्था को स्थिर रखने वाला, मेधा, कान्ति तथा बल को देने वाला, मधुर, तिक्त तथा कटुरस युक्त, अन्तमें कषाय रसयुक्त, विपाक में मधुररसयुक्त, सूक्ष्म (सूक्ष्मस्रोतों में प्रवेश करने वाला), योनि तथा शुक्र का शोधन करने वाला, विस्र (दुर्गन्ध युक्त), सारक एवम्—विषम-ज्वर, हृद्रोग, पीठ तथा गुह्य (गुदा) आदि का शूल, वात, उदर सम्बन्धी रोग, आनाह (अफरा), गुल्म, अष्ठीला, कटिग्रह (कमर का अकड़जाना), वातरक्त, मलबन्ध, ब्रध्न, शोथ, आम और विद्रधि को दूर करने वाला होता है ।

शरीररूपी जङ्गल के अन्दर विचरने वाले आमवात रूपी गजराज को अकेला ही नाश करने वाला यह रेंडी का तेल रूपी सिंह है ॥ २२-२५ ॥

इसका अन्य विवरण पृष्ठ २९९-३०१ पर किया गया है।

अथ सर्जरसतैलगुणानाह

तैलं सर्जरसोद्भूतं विस्फोटव्रणनाशनम्। कुष्ठपामाकृमिहरं वातश्लेष्मामयापहम् ॥ २६ ॥

सर्जरस का तेल—विस्फोटक (फोड़ा), व्रण, कुष्ठ, खुजली, कृमि, वात तथा कफसम्बन्धी रोग को दूर करने वाला होता है ॥ २६ ॥

इसका अन्य विवरण पृष्ठ २११ एवं ५२० पर किया गया है।

अथ सर्व तैलानां गुणानाह

तैलं स्वयोनिगुणकृद्वाग्भटेनाखिलं मतम्। अतः शेषस्य तैलस्य गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिवत् ॥

सभी प्रकार के तैलों के गुण—"वाग्भट" का यह मत है कि—सभी तेल अपने २ मूल द्रव्यों के अनुरूप गुणवाले होते हैं अर्थात् जिसका जो गुण होता है उसके तेल का भी वही गुण होता है। अतः अवशिष्ट तेलों के गुण उनके द्रव्यों के समान ही समझने चाहिये ॥ २७ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे
विंशस्तैलवर्गः समाप्तः ॥ २० ॥

अथ सन्धानवर्गः

तत्र काञ्जिकस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

सन्धितं धान्यमण्डादि काञ्जिकं कथ्यते जनैः। काञ्जिकं भेदि तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनं लघु ॥
दाहज्वरहरं स्पर्शात्पानाद्वातकफापहम्। माषादिवटकैर्यत्तु क्रियते तद् गुणाधिकम् ॥ २ ॥
लघु वातहरं तत्तु रोचनं पाचनं परम्। शूलाजीर्णविबन्धामनाशनं वस्तिशोधनम् ॥ ३ ॥

काञ्जी के लक्षण—जो धान्य और मण्डक आदि किसी पात्र में रख कर उस में जल डाल कर उस पात्र का मुंह ३ दिन ढँक कर रक्खा रहता है उसी को कांजिक (कांजी) कहते हैं।

कांजी—मल का भेदन करने वाली, तीक्ष्ण, उष्ण, रोचक, पाचक, लघु, स्पर्श (लगाने) से दाह तथा ज्वर को दूर करने वाली, पीने से वात तथा कफ को नष्ट करने वाली होती है। और यही-कांजी—यदि उरद के बड़े आदि से तैयार की जाय तो अधिक गुणकारी होती है। अर्थात् वह—लघु, वातनाशक, रोचक तथा अत्यन्त पाचक, वस्तिशोधक एवम् शूल, अजीर्ण, विबन्ध तथा आम को नष्ट करने वाली होती है ॥ १—३ ॥

अथ काञ्जिकसेवनायोग्यजनानाह

शोषमूर्च्छाभ्रमार्त्तानां मदकण्डूविशोषिणाम्। कुष्ठिनां रक्तपित्तिनां काञ्जिकं न प्रशस्यते ॥
पाण्डुरोगे यक्ष्मणि च तथा शोषातुरेषु च। क्षतक्षीणे तथा श्रान्ते मन्दज्वरनिपीडिते ॥
एतेषां न हितं प्रोक्तं काञ्जिकं दोषकारकम् ॥ ५ ॥

काञ्जी सेवन के अयोग्य लोग—जो लोग-शोष, मूर्च्छा या भ्रम से आर्त्त हैं, अथवा-मद तथा खुजली से सूखते जाते हैं, किंवा कुष्ठ तथा रक्तपित्त रोग वाले हैं, उन लोगों के लिये कांजी उत्तम (हितकर) नहीं होती है। एवम्—पाण्डुरोग, यक्ष्मा तथा शोष रोग से पीड़ित और क्षत से क्षीण, परिश्रम से थके हुए तथा मन्दज्वर से जो पीड़ित हैं उन लोगों के लिये भी कांजी हितकर नहीं होती प्रत्युत दोषों को उत्पन्न करने वाली ही होती है ॥ ४-५ ॥

अथ तुषोदकस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

तुषोदकं यवैरामैः सतुषैः शकलीकृतैः ॥ ६ ॥

तुषोदक के लक्षण—कच्चे तथा भूसी के सहित जो टुकड़े २ किये हुये जौ हैं उन्हें सन्धान की रीति से यदि रख दिया जाय तो जो जल भाग है उसी को "तुषोदक" कहते हैं ॥ ६ ॥

*यवैः = उदके संहितैः सन्धानवर्गोक्तत्वात् ॥ ६ ॥

यहां पर "यवैः" पद से "सन्धानवर्ग" में कहे हुये होने से जल में सन्धान की रीति से रक्खे हुये जौ यह अर्थ समझना चाहिये ॥ ६ ॥

तुषाम्बु दीपनं हृद्यं पाण्डुक्रिमिगदापहम्। तीक्ष्णोष्णं पाचनं पित्तरक्तकृद्वस्तिशूलनुत् ॥ ७ ॥

तुषाम्बु अर्थात् तुषोदक—अग्निदीपक, हृदय के लिये हितकर, तीक्ष्ण, उष्ण, पाचक एवम् पाण्डु तथा क्रिमिरोग नाशक, पित्त तथा रक्तविकार को उत्पन्न करने वाला और वस्तिशूल नाशक होता है ॥ ७ ॥

अथ सौवीरस्य लक्षणं गुणांश्चाह

सौवीरं तु यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुषैः कृतम् । गोधूमैरपि सौवीरमाचार्य्याः केचिदूचिरे ॥८॥
सौवीरं तु ग्रहण्यर्शःकफघ्नं भेदि दीपनम् । उदावर्त्ताङ्गमर्दास्थिशूलानाहेषु शस्यते ॥ ९ ॥

सौवीर के लक्षण—कच्चे अथवा पके भूसी रहित जौ के टुकड़ों से उक्त संधान की रीति से जो जल तैयार होता है उसे "सौवीर' कहते हैं। कोई २ आचार्य ऐसा कहते हैं कि—इसी भांति जो गेहूँ के टुकड़ों से तैयार किया जाता है उसे "सौवीर" कहते हैं। **सौवीर**—मलभेदक, अग्निदीपक तथा ग्रहणी, अर्श और कफ नाशक एवम् उदावर्त्त, अङ्गमर्द (शरीर में दर्द) हड्डियों में शूल की भाँति दर्द तथा आनाह (अफरा) में उत्तम (हितकर) होता है ॥ ८–९ ॥

अथारनालस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

आरनालं तु गोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः । पक्वैर्वा सन्धितैस्तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः ॥१०॥

आरनाल के लक्षण—कच्चे अथवा पके हुए भूसी रहित गेहूँ के टुकड़ों से सन्धान की रीति से तैयार किये हुए को "आरनाल" कहते हैं। **आरनाल**—गुणों में सौवीर की भाँति ही होता है ॥ १० ॥

अथ धान्याम्लस्य लक्षणं गुणांश्चाह

धान्याम्लं शालिचूर्णं च कोद्रवादिकृतं भवेत् ।
धान्याम्लं धान्ययोनित्वात्प्रीणनं लघु दीपनम् ।
अरुचौ वातरोगेषु सर्वेष्वास्थापने हितम् ॥ ११ ॥

धान्याम्ल के लक्षण—शालि (जड़हन) चावलों के चूर्ण अथवा कोदो आदि के चावलों के चूर्ण से सन्धान की रीति से जो तैयार होता है उसे 'धान्याम्ल" कहते हैं। **धान्याम्ल**—इसका योनि (उपादान कारण) धान्य होने से यह—तृप्तिकारक, लघु, अग्निदीपक एवम् अरुचि, सभी प्रकार के वातरोग तथा आस्थापन वस्ति में हितकर होता है ॥ ११ ॥

अथ शिण्डाक्या लक्षणं गुणाँश्चाह

शिण्डाकी राजिकायुक्तैः स्यान्मूलकदलद्रवैः । सर्षपस्वरसैर्वाऽपि शालिपिष्टकसंयुतैः ॥१२॥

शिण्डाकी के लक्षण—राई तथा मूली के पत्तों के रस अथवा सरसों के स्वरस और शालि (जड़हन) के चावलों के चूर्ण से सन्धान की रीति से जो तैयार होता है उसे "शिण्डाकी" कहते हैं । १२ ॥

***सन्धितैरिति शेषः ॥ १२ ॥**

यहाँ पर "सन्धितैः" यह विशेषण ऊपर से लगाना चाहिये जिससे "सन्धान की रीति से जो तैयार होता है" यह अर्थ निकले ॥ १२ ॥

शिण्डाकी रोचनी गुर्वी पित्तश्लेष्मकरी स्मृता ॥ १३ ॥

शिण्डाकी—रोचक, गुरु एवम् पित्त तथा कफ को उत्पन्न करने वाली होती है ॥ १३ ॥

अथ शुक्तस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च । यत्र द्रवेऽभिषूयन्ते तच्छुक्तमभिधीयते ॥ १४ ॥
शुक्तं कफघ्नं तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनं लघु । पाण्डुक्रिमिहरं रूक्षं भेदनं रक्तपित्तकृत् ॥ १५ ॥

शुक्त के लक्षण—कन्द, मूल तथा फल आदि तेल तथा निमक के सहित जिस द्रव पदार्थ में डुबोये जाकर सन्धान की रीति से बनाये जाते हैं उसे शुक्त कहते हैं।

शुक्त—कफनाशक, तीक्ष्ण, उष्ण, रोचक, पाचक, लघु, रूक्ष, मलभेदक, रक्तपित्तकारक एवम् पाण्डु तथा क्रमि को दूर करने वाला होता है ॥ १४–१५ ॥

अथासुतम् (संधान) । तस्य लक्षणं गुणांश्चाह

कन्दमूलफलाढ्यं यत्तत्तु विज्ञेयमासुतम् । तद्रुच्यं पाचनं वातहरं लघु विशेषतः ॥ १६ ॥

कन्द, मूल तथा फल आदि से युक्त जो कांजी है उसे "आसुत" कहते हैं। **आसुत**—रुचिकारक, पाचक, वातनाशक तथा विशेष कर लघु होता है ॥ १६ ॥

अथ मद्यस्य नामानि लक्षणं गुणाँश्चाह

मद्यन्तु सीधुमैरेयमिरा च मदिरा सुरा । कादम्बरी वारुणी च हालाऽपि बलवल्लभा ॥१७॥
पेयं यन्मादकं लोकैस्तन्मद्यमभिधीयते । यथाऽरिष्टं सुरा सीधुरासवाद्यमनेकधा ॥ १८ ॥
मद्यं सर्वं भवेदुष्णं पित्तकृद्वातनाशनम् । भेदनं शीघ्रपाकं च रूक्षं कफहरं परम् ॥ १९ ॥
अम्लं च दीपनं रुच्यं पाचनं चाशुकारि च । तीक्ष्णं सूक्ष्मं च विशदं व्यवायि च विकाशि च ॥

मद्य के संस्कृत नाम—मद्य, सीधु, मैरेय, इरा, मदिरा, सुरा, कादम्बरी, वारुणी, हाला तथा बलवल्लभा ये सब हैं। लक्षण–नशा लाने वाला, पीने योग्य जो द्रव्य है उसे लोग "मद्य" कहते हैं। भेद–मद्य के अरिष्ट, सुरा, सीधु तथा आसव आदि अनेक प्रकार हैं ॥

सभी प्रकार के मद्य—उष्ण, पित्तकारक, वातनाशक, मलभेदक, शीघ्र पचने वाले, रूक्ष, अत्यन्त कफनाशक, अम्ल रस युक्त, अग्निदीपक, रुचिकारक, पाचक, एवम् शीघ्रकारिता, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, विशद, व्यवायि तथा विकाशि गुणों से युक्त होते हैं ॥ १७-२० ॥

अथारिष्टस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

पक्वौषधाम्बुसिद्धं यन्मद्यं तत्स्यादरिष्टकम् ॥ २१ ॥

अरिष्ट के लक्षण—पकाई हुई औषध तथा जल से सिद्ध किया हुआ जो मद्य होता है उसे "अरिष्ट" कहते हैं ॥ २१ ॥

***अरिष्टं = मद्यमिति लोके । यथा—द्राक्षारिष्टं, दशमूलारिष्टम्, बब्बूलारिष्टमिति ॥ २१ ॥**

यहां पर "अरिष्ट" पद से लोक में प्रसिद्ध "मद्य" का ग्रहण करना चाहिये । जैसे—
द्राक्षारिष्ट (दाख का अरिष्ट), दशमूलारिष्ट, बब्बूलारिष्ट इत्यादि ॥ २१ ॥

अरिष्टं लघुपाकेन सर्वतश्च गुणाधिकम् । अरिष्टस्य गुणा ज्ञेया बीजद्रव्यगुणैः समाः ॥ २२ ॥

अरिष्ट—पाक में लघु होता है एवम् सब से अधिक गुणकारी होता है। और अरिष्ट के गुण जिन द्रव्यों का वह बनाया जाता है उसके समान होते हैं ॥ २२ ॥

अथ सुराया लक्षणं गुणाँश्चाह

शालिषष्टिकपिष्टादिकृतं मद्यं सुरा स्मृता । सुरा गुर्वी बलस्तन्यपुष्टिमेदःकफप्रदा ।
ग्राहिणी शोथगुल्मार्शोग्रहणीमूत्रकृच्छ्रनुत् ॥ २३ ॥

सुरा के लक्षण—शालि (जड़हन) तथा साठी के चावलों के चूर्ण आदि से जो मद्य तैयार किया जाता है उसे "सुरा" कहते हैं।

सुरा—गुरु, ग्राही तथा बल, स्तनों में दूध की वृद्धि, शरीर की पुष्टि, मेद तथा कफ को करने वाला एवम् शोथ, गुल्म, अर्श (बवासीर), ग्रहणी तथा मूत्रकृच्छ्र को दूर करने वाला होता है ॥ २३ ॥

अथ सुराभेदस्य वारुण्या लक्षणगुणानाह

पुनर्नवाशालिपिष्टिविहिता वारुणी स्मृता । संहितैस्तालखर्जूररसैर्या साऽपि वारुणी ।
सुरावद्वारुणी लघ्वी पीनसाध्मानशूलनुत् ॥ २४ ॥

सुरा का भेद वारुणी के लक्षण—पुनर्नवा तथा शालि के चावलों के चूर्ण से जो सुरा बनाई जाती है उसे "वारुणी" कहते हैं । और ताल तथा खजूर के रस को सन्धान की रीति से रखने पर जो तैयार होता है उसे भी "वारुणी" कहते हैं ।

वारुणी—गुणों में यद्यपि सुरा के समान ही होती है तथापि यह उसकी अपेक्षा लघु एवम् पीनस, आध्मान (अफरा) तथा शूल को दूर करने वाली होती है ॥ २४ ॥

***सुरातो भेदार्थं लघ्वीति ॥ २४ ॥**

यहां पर "लध्वी" इस पद से "सुरा" से इसका (वारुणी का) भेद दिखलाते हैं । अर्थात् "सुरा" गुरु होती है और "वारुणी" लघु होती है यह समझना चाहिये ॥ २४ ॥

अथ द्विविधसीधोर्लक्षणगुणानाह

इक्षोः पक्वै रसैः सिद्धः सीधुः पक्वरसश्च सः । आमैस्तैरेव यः सीधुः स च शीतरसः स्मृतः ॥
सीधुः पक्वरसः श्रेष्ठः स्वराग्निबलवर्णकृत् । वातपित्तकरः सद्यः स्नेहनो रोचनो हरेत् ॥ २६ ॥
विबन्धमेदःशोफार्शःशोफोदरकफामयान् । तस्मादल्पगुणः शीतरसः संलेखनः स्मृतः ॥२७॥

दो प्रकार के सीधु के लक्षण-ईख के पके हुये रस से जो मद्य तैयार होता है वह "पक्वरस सीधु" कहलाता है । और जो ईख के कच्चे रस से तयार होता है वह "शीतरस सीधु' कहलाता **पक्वरस सीधु**—श्रेष्ठ, स्वर तथा वर्ण को उत्तम करने वाला, अग्नि तथा बलकारक, वात तथा पित्त को करने वाला, तत्काल स्नेहन करने वाला, रोचक एवं विबन्ध, मेद, शोथ, बवासीर, उदर का शोथ तथा कफ सम्बन्धी विकारों को नष्ट करने वाला होता है । **शीतरस सीधु**-यह पक्वरस सीधु की अपेक्षा अल्प गुणकारी तथा अधिक लेखन गुण विशिष्ट होता है ॥ २५-२७ ॥

अथासवस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ॥ २८ ॥

आसव के लक्षण—बिना पकाये हुये औषध तथा जलसे जो मद्य बनाया जाता है वह "आसव" कहलाता है ॥ २८ ॥

*** यथा—लोहासवादिः ॥ २८ ॥**

जैसे—"लोहासव" आदि बनता है इतना यहां पर और समझना चाहिये ॥ २८ ॥

आसवस्य गुणा ज्ञेया बीजद्रव्यगुणैः समाः ॥ २९ ॥

आसव—इसके गुण बीजद्रव्यों (जिन द्रव्यों से आसव बनाया जाता है उसे "बीजद्रव्य" समझना चाहिये) के गुणों के समान होते हैं ॥ २९ ॥

अथ नवपुराणमदिरागुणानाह

मद्यं नवमभिष्यन्दि त्रिदोषजनकं सरम् । अहृद्यं बृंहणं दाहि दुर्गन्धं विशदं गुरु ॥ ३० ॥
जीर्णं तदेव रोचिष्णु क्रिमिश्लेष्मानिलापहम् । हृद्यं सुगन्धिगुणवल्लघु स्रोतोविशोधनम् ॥

नई मदिरा—अभिष्यन्दी, त्रिदोषजनक, सारक, हृदय के लिये अहितकर, बृंहण, दाह उत्पन्न करने वाली, दुर्गन्ध तथा विशद गुण युक्त एवम् गुरु होती है ।

पुरानी मदिरा—रुचि को उत्पन्न करने वाली, हृदय के लिये हितकर, सुगन्ध युक्त, गुणकारक, लघु, स्रोतोमार्ग का शोधन करने वाली एवम् क्रिमि, कफ तथा वायु को नष्ट करने वाली होती है ॥ ३०-३१ ॥

अथ सात्त्विकादिमनुष्याणां मद्येन जाताश्चेष्टा आह

सात्त्विके गीतहास्यादि राजसे साहसादिकम् । तामसे निन्द्यकर्माणि निद्रां च मदिराऽऽचरेत्

सात्त्विकादि मनुष्यों की मद्य से उत्पन्न हुई चेष्टायें-मदिरा सात्त्विक (सत्त्वगुणी) मनुष्योंमें पीने से गाना तथा हंसना आदि कार्यों को कराने लगती है—राजस (रजोगुणी) मनुष्यों में साहस आदि कार्यों को, तामस (तमोगुणी) मनुष्यों में निन्द्यकर्म तथा निद्रा को कराती है ॥ ३२ ॥

***आचरेत्=कुर्यात् ॥ ३२ ॥**

यहां पर "आचरेत्" पद से "कराने लगती है" यह भावार्थ समझना चाहिये ॥ ३२ ॥

अथ मद्यपानप्रकारमाह

विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम् । प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा ॥३३॥
किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् । अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽमृतम् ॥३४॥

मद्य पीने का प्रकार—जो मनुष्य प्रसन्न होता हुआ, हितकारक अन्नों के साथ, बलानुसार यथासमय, विधिपूर्वक, मात्रा के साथ मद्य पीता है, तो उसे वह (मद्य) अमृत के समान गुणकारी होता है । क्योंकि—मद्य का स्वभाव जिस प्रकार अन्न का है ठीक वैसा ही है, जैसे अन्न—अविधिपूर्वक सेवन करने से रोग उत्पन्न करने वाला होता है और विधिपूर्वक सेवन करने से अमृत के समान गुणकारी होता है वैसे ही मद्य को भी समझना चाहिये ॥ ३३-३४ ॥

अथ मद्यगन्धस्य दूरीकरणोपायमाह

मुस्तैलवालुगदजीरकधान्यकैला यश्चर्वयन्सदसि वाचमभिव्यनक्ति ।
स्वाभाविकं मुखजमुज्झति पूतिगन्धं-गन्धञ्च मद्यलशुनादिभवञ्च नूनम् ॥ ३५ ॥

मद्य के गन्ध को दूर करने का उपाय—नागरमोथा, कूठ, एलवालु जीरा, धनिया और इलायची इन सब को चबाता हुआ जो मद्य पीने वाला मनुष्य सभा के मध्य में बातचीत करता है, उसके मुख की स्वाभाविक दुर्गन्ध तथा मद्य एवम् लहशुन आदि से उत्पन्न गन्ध निश्चय दूर हो जाती है ॥३५॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे-
एकविंशः सन्धानवर्गः समाप्तः ॥ २१ ॥

अथ मधुवर्गः

तत्र मधुनो नामगुणानाह

मधु माक्षिकमाध्वीकक्षौद्रसारघमीरितम् । मक्षिकावरटीभृङ्गवान्तं पुष्परसोद्भवम् ॥ १ ॥
मधु शीतं लघु स्वादु रूक्षं ग्राहि विलेखनम् । चक्षुष्यं दीपनं स्वर्यं व्रणशोधनरोपणम् ॥ २ ॥
सौकुमार्यकरं सूक्ष्मं परं स्रोतोविशोधनम् । कषायानुरसं ह्लादि प्रसादजनकं परम् ॥ ३ ॥
वर्ण्यं मेधाकरं वृष्यं विशदं रोचनं हरेत् । कुष्ठार्शःकासपित्तास्रकफमेहक्लमक्रिमीन् ॥ ४ ॥
मेदस्तृष्णावमिश्वासहिक्काऽतीसारविड्ग्रहान् । दाहक्षतक्षयांस्तत्तु योगवाह्यल्पवातलम् ॥ ५ ॥

मधु (शहद) के संस्कृत नाम—मधु, माक्षिक, माध्वीक, क्षौद्र, सारघ, मक्षिकावान्त, वरटीवान्त, भृङ्गवान्त तथा पुष्परसोद्भव ये सब हैं।

मधु—शीतल, लघु, स्वादिष्ट, रूक्ष, ग्राही, विलेखन, नेत्रों के लिये हितकर, अग्निदीपक, स्वर को उत्तम बनाने वाला, व्रण का शोधन तथा रोपण करने वाला, सुकुमारता करने वाला, सूक्ष्म (सूक्ष्मस्रोतोगामी), स्रोतोमार्ग का अत्यन्त शोधन करने वाला, आरम्भ में मधुर अन्त में कषाय रस-युक्त, आह्लादकारक, अत्यन्त प्रसादजनक, वर्ण (शरीर के रङ्ग) को उत्तम करने वाला, मेधाशक्ति को उत्पन्न करने वाला, वीर्यवर्धक, विशद गुणयुक्त, रोचक, योगवाही (जिसके साथ इसका योग हो उसके सदृश गुण को करने वाला), थोड़ा वातजनक एवम् कुष्ठ, अर्श, कास, पित्त, रक्तविकार, कफ, प्रमेह, क्लान्ति, क्रिमि, मेद, तृषा, वमन, श्वास, हिचकी, अतीसार, मलबन्ध, दाह, क्षत और क्षय को नष्ट करने वाला होता है ॥ १-५ ॥

अथ मधुभेदानाह

माक्षिकं भ्रामरं क्षौद्रं पौत्तिकं छात्रमित्यपि । आर्घ्यमौद्दालकं दालमित्यष्टौ मधुजातयः ॥६॥

मधु के भेद—१ माक्षिक, २ भ्रामर, ३ क्षौद्र, ४ पौत्तिक, ५ छात्र, ६ आर्घ्य, ७ औद्दालक, ८ दाल, इस प्रकार से ये ८ मधु की जातियाँ हैं ॥ ६ ॥

अथ तेषां लक्षणं गुणांश्च ।

तत्र माक्षिकस्य लक्षणगुणानाह

मक्षिकाः पिङ्गवर्णास्तु महत्यो मधुमक्षिकाः । ताभिः कृतं तैलवर्णं माक्षिकं परिकीर्त्तितम् ॥
माक्षिकं मधुषु श्रेष्ठं नेत्रामयहरं लघु । कामलाऽर्शःक्षतश्वासकासक्षयविनाशनम् ॥ ८ ॥

पूर्वोक्त भेदों में प्रथम माक्षिकजातीय मधु के लक्षण—पिङ्गल वर्ण वाली जो बड़ी मधुमक्खियाँ होती हैं उनके द्वारा उत्पन्न किये हुये तेल के समान वर्णवाले मधु को "माक्षिक" कहते हैं।

माक्षिकजातीय मधु—सभी प्रकार के मधुओं में श्रेष्ठ होता है एवम् नेत्र सम्बन्धी रोगों को दूर करने वाला, लघु तथा कामला, अर्श, क्षत, श्वास, कास और क्षय को नष्ट करने वाला होता है ॥ ७-८ ॥

अथ भ्रामरस्य लक्षणगुणानाह

किञ्चित्सूक्ष्मैः प्रसिद्धेभ्यः षट्पदेभ्योऽलिभिश्चितं । निर्मलं स्फटिकाभं यत्तन्मधु भ्रामरं स्मृतं ॥
भ्रामरं रक्तपित्तघ्नं मूत्रजाड्यकरं गुरु । स्वादुपाकमभिष्यन्दि विशेषात्पिच्छिलं हिमम् ॥

भ्रामरजातीय मधु के लक्षण—प्रसिद्ध, छ पैरों वाले भौरों से कुछ छोटे भ्रमरों (भौरों) से संगृहीत, स्फटिक के समान निर्मल, जो मधु होता होता है उसे "भ्रामर" कहते हैं।

भ्रामरजातीय मधु—रक्तपित्तनाशक, मूत्र में जडता उत्पन्न करने वाला, गुरु, विपाक में मधुर रस युक्त, अभिष्यन्दी, विशेष रूप से पिच्छिल और शीतवीर्य होता है ॥ ९-१० ॥

अथ क्षौद्रस्य लक्षणगुणानाह

माक्षिकाः कपिलाः सूक्ष्माः क्षुद्राऽऽख्यास्तत्कृतं मधु । मुनिभिः क्षौद्रमित्युक्तं तद्वर्णात्कपिलं भवेत् ॥
गुणैर्माक्षिकवत्क्षौद्रं विशेषान्मेहनाशनम् ॥ ११ ॥

क्षौद्रजातीय मधु के लक्षण—कपिल वर्ण की सूक्ष्म जो "क्षुद्रा" नामक मधुमक्खियां होती हैं उनके द्वारा बनाये गये कपिल वर्ण के मधु को मुनियों ने "क्षौद्र" कहा है।

क्षौद्रजातीय मधु—गुणों में पूर्वोक्त माक्षिक जातीय मधु के सदृश होता है, और विशेष रूप से प्रमेहनाशक होता है ॥ ११ ॥

अथ पौत्तिकमधुनो लक्षणगुणानाह

कृष्णा या मशकोपमा लघुतराः प्रायो महापीडिका
वृक्षाणां पृथुकोटरान्तरगताः पुष्पासव कुर्वते ।
तास्तज्ज्ञैरिह पुत्तिका निगदितास्ताभिः कृतं सर्पिषा
तुल्यं यन्मधु तद्वनेचरजनैः संकीर्तितं पौत्तिकम् ॥ १२ ॥

पौत्तिकं मधु रूक्षोष्णं पित्तदाहास्रवातकृत् । विदाहि मेहकृच्छ्रघ्नं ग्रन्थ्यादिक्षतशोषि च ॥

पौत्तिकजातीय मधु के लक्षण—प्रायः करके मच्छरों के समान अत्यन्त छोटी २ काले रङ्ग की, काटने से अत्यन्त पीड़ा पहुँचाने वाली, वृक्षों के कोटरों (खोढ़रों) में रहने वाली जो मधु-मक्खियां होती है, जिन्हें उनके जानने वाले लोग "पुत्तिका" कहते हैं उनके द्वारा संगृहीत, घी के समान जो मधु होता है उसे जंगली कोल, भिल्लादि लोग "पौत्तिक" कहते हैं।

पौत्तिकजातीय मधु—रूक्ष, उष्ण, पित्त-दाह-रक्तविकार तथा वात कारक, विदाही, प्रमेह तथा मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करने वाला, एवम्—गांठ आदि तथा क्षत (घाव) को सुखाने वाला होता है ॥ १२-१३ ॥

अथ छात्रमधुनो लक्षणं गुणांश्चाह

वरटाः कपिलाः पीताः प्रायो हिमवतो वने ॥ १४ ॥
कुर्वन्ति च्छत्रकाकारं तज्जं छात्रं मधु स्मृतम् । छात्रं कपिलपीतं स्यात्पिच्छिलं शीतलं गुरु ॥
स्वादुपाकं कृमिश्वित्ररक्तपित्तप्रमेहजित् । भ्रमतृण्मोहविषहृत्तर्पणञ्च गुणाधिकम् ॥ १६ ॥

छात्रजातीय मधु के लक्षण—प्रायः करके हिमालय पर्वत के जङ्गलों में कपिल तथा पीत वर्ण की मधुमक्खियां छत्ते के आकार का घर बनाती हैं, अत एव उस छत्र से उत्पन्न हुये मधु को "छात्र" कहते हैं।

छात्रजातीय मधु—कपिल तथा पीत वर्ण युक्त, पिच्छिल, शीतल, गुरु, विपाक में मधुर रस युक्त, तृप्तिदायक, अधिक गुणकारी एवम्—कृमि, श्वेत कुष्ठ, रक्तपित्त, प्रमेह, भ्रम, तृषा, मोह तथा विष को दूर करने वाला होता ॥ १४-१६ ॥

अथार्घ्यस्य लक्षणगुणानाह

मधूकवृक्षनिर्यासं जरत्कार्वाश्रमोद्भवम् । स्रवत्यार्घ्यं तदाख्यातं श्वेतकं मालवे पुनः ॥ १७ ॥ तीक्ष्णतुण्डास्तु याः पीता मक्षिकाः षट्पदोपमाः । अर्घ्यास्तास्तत्कृतं यत्तदार्घ्यमित्यपरे जगुः॥ आर्घ्यं मध्वतिचक्षुष्यं कफपित्तहरं परम् । कषायं कटुकं पाके तिक्तञ्च बलपुष्टिकृत् ॥ १९ ॥

आर्घ्यजातीय मधु के लक्षण—"जरत्कारु" ऋषि के आश्रम में उत्पन्न हुये, महुये के वृक्ष से जो गोंद स्रवता है, उसे "आर्घ्य" कहते हैं तथा मालवा देश में उसी को "श्वेतक" कहते हैं। किन्तु अन्य कोई २ आचार्य ऐसा कहते हैं कि—भौंरों के समान आकारवाली, पीले रंग की तथा तीक्ष्ण मुखवाली जो मधुमक्खियां होती हैं, उन्हें "अर्घ्या" कहते हैं, और उनसे संगृहीत मधु को "आर्घ्य" कहते हैं।

आर्घ्यजातीय मधु—नेत्रों के लिये अत्यन्त हितकर और विशेष रूप से कफ तथा पित्त को दूर करने वाला, कषाय तथा तिक्त रस युक्त, विपाक में कटु रस युक्त एवम्—बल तथा पुष्टि-कारक होता है ॥ १७-१९ ॥

अथौद्दालकमधुनो लक्षणगुणानाह

प्रायो वल्मीकमध्यस्थाः कपिलाः स्वल्पकीटकाः । कुर्वन्ति कपिलं स्वल्पं तत्स्यादौद्दालकं मधु॥ औद्दालकं रुचिकरं स्वर्यं कुष्ठविषापहम् । कषायमुष्णमम्लञ्च कटुपाकञ्च पित्तकृत् ॥ २१ ॥

औद्दालकजातीय मधु के लक्षण—प्रायः करके वल्मीक (विमवट) के अन्दर रहने वाले, कपिल वर्ण के छोटे २ कीड़े, जो कपिल वर्ण का थोड़ी मात्रा में मधु बनाते हैं उसी को "औद्दालक" कहते हैं।

औद्दालकजातीय मधु—रुचिकारक, स्वर को उत्तम बनाने वाला, कषाय तथा अम्ल रस युक्त, उष्ण, विपाक में कटुरसयुक्त एवम् पित्तकारक होता है ॥ २०-२१ ॥

अथ दालमधुनो लक्षणगुणानाह

संस्रुत्य पतितं पुष्पाद्यत्तु पत्रोपरि स्थितम् । मधुराम्लकषायञ्च तद्दालं मधु कीर्त्तितम् ॥२२॥ दालं मधु लघु प्रोक्तं दीपनीयं कफापहम् । कषायानुरसं रूक्षं रुच्यं छर्दिप्रमेहजित् ॥ २३ ॥ अधिकं मधुरं स्निग्धं बृंहणं गुरु भारिकम् ॥ २४ ॥

दालजातीय मधु के लक्षण—फूलों से टपक करके जो पुष्परस (मधु) पत्तों पर गिरता है और जो मधुर, अम्ल तथा कषाय रसयुक्त होता है उसे "दाल" कहते हैं।

दालजातीय मधु—(पाक में) लघु, अग्निदीपक, कफनाशक, अधिक मधुररसयुक्त, अन्त में कषाय रसयुक्त, रूक्ष, रुचिकारक, स्निग्ध गुण युक्त, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), तौल में गुरु एवम् वमन तथा प्रमेह को दूर करने वाला होता है ॥ २२-२४ ॥

* लघु पाके। गुरु भारिकं, तुलितम् ॥ २२-२४ ॥

यहां पर मूल में "लघु" पद का "विपाक में लघु" ऐसा अर्थ समझना चाहिये।

और "गुरु भारिकम्" इस पद का "तौल में गुरु" (भारी) यह अर्थ समझना चाहिये।

अथ नवपुराणमधुगुणानाह

नवं मधु भवेत्पुष्ट्यै नातिश्लेष्महरं सरम् । पुराणं ग्राहकं रूक्षं मेदोघ्नमतिलेखनम् ॥ २५ ॥

नया मधु—पुष्टिकारक, कफ को अत्यन्त दूर करने वाला नहीं (किञ्चित् कफनाशक), तथा सारक होता है।

पुराना मधु—ग्राही, रूक्ष, अत्यन्त लेखन गुण विशिष्ट एवम् मेद को दूर करने वाला होता है ॥ २५ ॥

अथ परिभाषामाह

मधुनः शर्करायाश्च गुडस्यापि विशेषतः । एकसंवत्सरे वृत्ते पुराणत्वं स्मृतं बुधैः ॥ २६ ॥

परिभाषा—मधु, शक्कर, (चीनी) तथा गुड़ इन सबों को एक वर्ष बीत जाने पर पण्डित लोग पुराना कहते हैं। अर्थात्—एक वर्ष के अन्दर के ये सब नये और बाद एक वर्ष के पुराने कहलाते हैं ॥ २६ ॥

अथ शीतलोष्णमधुनोर्गुणदोषानाह

विषपुष्पादपि रसं सविषा भ्रमरादयः । गृहीत्वा मधु कुर्वन्ति तच्छीतं गुणवन्मधु ॥ २७ ॥ विषान्वयात्तदुष्णन्तु द्रव्यैरौष्ण्येन वा सह । उष्णार्त्तस्योष्णकाले च स्मृतं विषसमं मधु ॥

शीतल तथा उष्ण मधु की क्रम से गुणकारिता और दोषकारिता—विषैले भौंरे आदि विष के फूलों से भी रस लेकर मधु बनाते हैं, अत एव शीतल मधु ही गुणकारी होता है।

और विष के फूलों का सम्बन्ध होने से मधु यदि उष्ण या उष्ण द्रव्यों के साथ, वा उष्ण काल में वा गर्मी से दुःखी रोगियों के लिये प्रयोग किया जाता हो तो विष के समान होता है ॥२७-२८॥

अथ मधूच्छिष्टम् (मोम) तस्य नामगुणानाह

मयनं तु मधूच्छिष्टं मधुशेषं च सिक्थकम् । मध्वाधारो मदनकं मधूषितमपि स्मृतम् ॥२९॥ मदनं मृदु सुस्निग्धं भूतघ्नं व्रणरोपणम् । भग्नसन्धानकृद्वातकुष्ठवीसर्परक्तजित् ॥ ३० ॥

मोमके संस्कृत नाम—मयन, मधूच्छिष्ट, मधुशेष, सिक्थक, मध्वाधार, मदनक तथा मधूषित ये सब हैं।

मोम—मृदु गुण युक्त, अत्यन्त स्निग्ध, भूतग्रहनाशक, व्रण का रोपण करने वाला, टूटे हुये अस्थियों को जोड़ने वाला एवम्—वात, कुष्ठ, वीसर्प तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥ २९-३० ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे द्वाविंशो मधुवर्गः समाप्तः ॥ २२ ॥

अथ इक्षुवर्गः

तत्रादाविक्षोर्नामगुणानाह

इक्षुर्दीर्घच्छदः प्रोक्तस्तथा भूरिरसोऽपि च। गुडमूलोऽसिपत्रश्च तथा मधुतृणः स्मृतः ॥ १ ॥
इक्षवो रक्तपित्तघ्ना बल्या वृष्याः कफप्रदाः। स्वादुपाकरसाः स्निग्धा गुरवो मूत्रला हिमाः॥

ऊख के संस्कृत नाम—इक्षु, दीर्घच्छद, भूरिरस, गुडमूल, असिपत्र तथा मधुतृण ये सब हैं।

सभी प्रकार की इख—रक्तपित्तनाशक, बलकारक, वीर्यवर्धक, कफजनक, रस तथा विपाक में मधुर, स्निग्ध, गुरु, मूत्रकारक, एवम् शीतवीर्य होती हैं ॥ १-२ ॥

हि०–ईख, गन्ना। **अं०**–Sugar Cane (सुगर केन)। **ले०**–Saccharum officinarium Linn. (सेक्करम् ऑफिसिनेरम्)। *Fam. Gramineae* (ग्रॅमिनी)।

इसकी खेती भारतवर्ष के सभी उष्ण प्रदेशों में की जाती है। भावप्रकाशकार इसके १३ भेदों का उल्लेख करते हैं। आजकल भी इसके अनेक कृषित प्रकार पाये जाते हैं।

इसके काण्ड स्वरस, मूल स्वरस तथा शर्करा, राब आदि इक्षुविकारों का उपयोग किया जाता है। अनेक योगों को टिकाऊ बनाने के लिए शर्करा आदि का उपयोग करते हैं। इसमें शर्करा आदि के अतिरिक्त कॅल्शियम् ऑक्जेलेट भी पाया जाता है।

यह मधुर, शीतल, मूत्रल, सारक, बल्य, कण्ठ्य, श्रमहर, शुक्रशोधक तथा वात एवं कफ-वर्धक है। इसका मूल शीतल, मूत्रल एवं वृष्य है। यह मधुर होते हुये भी शीतवीर्य होने से वात-वर्धक होता है (सुश्रुत)। इसको मूत्रजनन द्रव्यों में श्रेष्ठ माना गया है (चरक)। इसका उपयोग रक्तपित्त, गुल्म, उदर, कामला एवं पांडु आदि में भी किया जाता है। इसका बाह्य प्रयोग पित्ता-भिष्यन्दे में किया गया है।

अथेक्षुभेदानाह

पौण्ड्रको भीरुकश्चापि वंशकः शतपोरकः। कान्तारतापसेक्षुश्च काण्डेक्षुः सूचिपत्रकः ॥ ३ ॥
नैपालो दीर्घपत्रश्च नीलपोरोऽथ कोशकृत्। मनोगुप्ता च इत्येता जातयस्तत्र कीर्तिताः ॥४॥

ऊख के भेद—पौड्रक, भीरुक, वंशक, शतपोरक, कान्तार, तापसेक्षु, काण्डेक्षु, सूचिपत्रक, नैपाल, दीर्घपत्र, नीलपोर, कोशकृत तथा मनोगुप्ता ये सब ऊखकी जातियां मानी गई हैं ॥ ४-४ ॥

अथ श्वेतपौण्ड्रक–भीरुकेक्षुगुणानाह

वातपित्तप्रशमनो मधुरो रसपाकयोः। सुशीतो बृंहणो बल्यः पौण्ड्रको भीरुकस्तथा ॥ ५ ॥

पौण्ड्रक तथा भीरुक ये दोनों ईख—वात तथा पित्त को शमन करने वाली, रस तथा विपाकमें मधुर, अत्यन्त शीतल, बृंहण (रस–रक्तादिवर्धक) एवम् बलकारक होती हैं ॥ ५ ॥

अथ कोशकारेक्षुः। तस्य गुणानाह

कोशकारो गुरुः शीतो रक्तपित्तक्षयापहः ॥ ६ ॥

कोशकार नामक ईख—गुरु, शीतल एवम् रक्तपित्त तथा क्षय को नष्ट करने वाली होती है ॥ ६ ॥

अथ कान्तारेक्षुगुणानाह

कान्तारेक्षुर्गुरुर्वृष्यः श्लेष्मलो बृंहणः सरः ॥ ७ ॥

कान्तार संज्ञक ईख—गुरु, वीर्यवर्धक, कफजनक, बृंहण (रसरक्तादि वर्धक) तथा सारक होती है ॥ ७ ॥

अथ वंशकेक्षुगुणानाह

दीर्घपोरः सुकठिनः सक्षारो वंशकः स्मृतः ॥ ८ ॥

वंशक नामक ईख—लंबे २ पोरों वाली, अत्यन्त कठिन तथा क्षारयुक्त होती है ॥ ८ ॥

अथ शतपोरकेक्षुगुणानाह

शतपर्वा भवेत्किञ्चित्कोशकारगुणान्वितः। विशेषात्किञ्चिदुष्णश्च सक्षारः पवनापहः ॥ ९ ॥

शतपोरक संज्ञक ईख—औरों की अपेक्षा अधिक पोरोंवाली, किंचित् कोशकार संज्ञक ऊख के गुणों से युक्त, विशेष करके किंचित् उष्ण, क्षारयुक्त तथा वात नाशक होती है ॥ ९ ॥

अथ तापसेक्षुगुणानाह

तापसेक्षुर्भवेन्मृद्वी मधुरा श्लेष्मकोपनी। तर्पणी रुचिकृच्चापि वृष्या च बलकारिणी ॥१०॥

तापसेक्षु संज्ञक ईख–कोमल, मधुर रसयुक्त, कफ को कुपित करने वाली, तृप्तिकारक, रुचि को उत्पन्न करने वाली, वीर्यवर्धक, तथा बलकारक होती है ॥ १० ॥

अथ काण्डेक्षुगुणानाह

एवं गुणैस्तु काण्डेक्षुः स तु वातप्रकोपणः ॥ ११ ॥

काण्डेक्षु नामक ईख–गुणों में यद्यपि "तापसेक्षु" के समान ही होती है तथापि यह वात को विशेष रूप से कुपित करने वाली होती है ॥ ११ ॥

अथ सूचीपत्र-नीलपोर-नैपाल-दीर्घपत्राणां गुणानाह

सूचीपत्रो नीलपोरो नैपालो दीर्घपत्रकः। वातलाः कफपित्तघ्नाः सकषाया विदाहिनः ॥१२॥

सूचीपत्र, नीलपोर, नैपाल तथा दीर्घपत्रक संज्ञक ईख–वातजनक, कफ तथा पित्त नाशक, कषाय रसयुक्त तथा विदाही होती हैं ॥ १२ ॥

अथ मनोगुप्तेक्षुगुणानाह

मनोगुप्ता वातहरी तृष्णाऽऽमयविनाशिनी। सुशीता मधुराऽतीव रक्तपित्तप्रणाशिनी ॥१३॥

मनोगुप्ता संज्ञक ईख–वातनाशक, तृषा रोग को दूर करने वाली, अति शीतल, अत्यन्त मधुर एवम् रक्तपित्त को नष्ट करने वाली होती है ॥ १३ ॥

अथ बाल-तरुण-वृद्धेक्षुगुणानाह

बाल इक्षुः कफं कुर्यान्मेदोमेहकरश्च सः। युवा तु वातहृत् स्वादुरीषत्तीक्ष्णश्च पित्तनुत् ॥
रक्तपित्तहरो वृद्धः क्षतहृद् बलवीर्यकृत् ॥१४॥

बाल (कच्ची) अर्थात् थोड़े दिनों की ईख—कफकारक एवम् मेद तथा प्रमेह रोग को उत्पन्न करने वाली होती है।

युवा (अधपकी) ईख—वातनाशक, स्वादिष्ट, किंचित् तीक्ष्ण एवम् पित्तनाशक होती है।

वृद्ध (पकी) ईख—रक्तपित्त को दूर करने वाली, क्षतनाशक एवम् बल तथा वीर्य उत्पन्न करने वाली होती है ॥ १४ ॥

अथेक्षोरङ्गभेदेन गुणभेदानाह

मूले तु मधुरोऽत्यर्थं मध्येऽपि मधुरः स्मृतः। अग्रे ग्रन्थिषु विज्ञेय इक्षुः पटुरसोजनैः ॥१५॥

ईख के अङ्गभेद से गुणभेद—जड़ भाग में अत्यन्त मधुर रसयुक्त, मध्यभाग में मधुर रसयुक्त और अग्रभाग तथा गांठों में लवण रस युक्त ईख होता है, ऐसा लोगों को जानना चाहिये ॥ १५ ॥

अथ चूषितेक्षुगुणानाह

दन्तनिष्पीडितस्येक्षो रसः पित्तास्रनाशनः। शर्करासमवीर्यः स्यादविदाही कफप्रदः ॥१६॥

दांतों से चूसे हुये ईख का रस-पित्त तथा रक्तविकार को दूर करने वाला, शक्कर के समान वीर्यवाला, अविदाही (किंचित् दाह करने वाला) एवं कफ उत्पन्न करने वाला होता है ॥ १६ ॥

अथ यान्त्रिकेक्षुरसगुणानाह

मूलाग्रजन्तुग्रन्थ्यादिपीडनान्मलसङ्करात्। किञ्चित्कालविधृत्या च विकृतिं याति यान्त्रिकः ॥
तस्माद्विदाही विष्टम्भी गुरुः स्याद्यान्त्रिको रसः ॥ १७ ॥

कोल्हू में पिरे हुये ईख का रस —ईख का यह मूल, अग्रभाग, जन्तु एवम् गांठ आदि के कोल्हू में पिरे जाने से तथा मैल के मिल जाने से और कुछ काल तक रक्खे रहने से विकृत (खराब) हो जाता है, अत एव वह विदाही, विष्टम्भजनक तथा गुरु होता है ॥ १७ ॥

अथ पर्युषितेक्षुरसगुणानाह

रसः पर्युषितो नेष्टो ह्यम्लो वातापहो गुरुः। कफपित्तकरः शोषी भेदनश्चातिमूत्रलः १८ ॥

बासी ईख का रस—हितकर नहीं होता है और यह अम्ल रस युक्त, वातनाशक, गुरु, कफ तथा पित्त कारक, शोष उत्पन्न करने वाला, मलभेदक एवम् अत्यन्त मूत्रजनक होता है ॥ १८ ॥

अथ पक्वेक्षुरसगुणानाह

पक्वो रसो गुरुः स्निग्धः सुतीक्ष्णः कफवातनुत्। गुल्मानाहप्रशमनः किञ्चित्पित्तकरः स्मृतः ॥

पकाया हुआ ईख का रस—रूक्ष, स्निग्ध, अत्यन्त तीक्ष्ण, कफ तथा वात नाशक, किंचित् पित्तकारक एवम् गुल्म तथा आनाह (अफारा) को दूर करने वाला होता है ॥ १९ ॥

अथेक्षुरसनिर्मितपदार्थगुणानाह

इक्षोर्विकारास्तृड्दाहमूर्छापित्तास्रनाशनाः। गुरवो मधुरा बल्याः स्निग्धा वातहराः सराः ॥
वृष्या मोहहराः शीता बृंहणा विषहारिणः ॥ २० ॥

ईख के रस में बने हुए पदार्थ—तृषा, दाह, मूर्च्छा, पित्त तथा रक्तविकार को दूर करने वाले, गुरु, मधुर रसयुक्त, बलकारक, स्निग्ध, वातनाशक, सारक, वीर्यवर्धक, मोह को दूर करने वाले, शीतल, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक) तथा विषनाशक होते हैं ॥ २० ॥

अथ फाणितम् ("चरका, राब, छोवा" इति लोके)।

तस्य लक्षणगुणानाह

इक्षो रसस्तु यः पक्वः किञ्चिद्गाढो बहुद्रवः। स एवेक्षुविकारेषु ख्यातः फाणितसंज्ञया ॥
फाणितं गुर्वभिष्यन्दि बृंहणं कफशुक्रकृत्। वातपित्तश्रमान्हन्ति मूत्रबस्तिविशोधनम् ॥

फाणित (चरका, राब, छोवा इस नाम से लोक प्रसिद्ध) के लक्षण—ईख का जो पकाया हुआ रस कुछ गाढ़ा अंश तथा अधिक द्रव भाग से युक्त होता है वही ईख के रस से बने हुए पदार्थों में फाणित (राब) नाम से विख्यात है।

फाणित (राब)—गुरु, अभिष्यन्दी, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), कफ तथा शुक्र को उत्पन्न करने वाला, वात, पित्त तथा श्रम को दूर करने वाला एवम् मूत्र तथा वस्ति का अधिक शोधन करने वाला होता है ॥ २१ ॥

अथ मत्स्यण्डी ("रावकाकब, खण्डराब" इति लोके।

तस्य लक्षणगुणानाह

इक्षो रसो यः सुपक्वो घनः किञ्चिद्द्रवान्वितः ॥ २२ ॥
मन्दं मन्दं स्यन्दते तस्मात्तन्मत्स्यण्डी निगद्यते। मत्स्यण्डी भेदिनी बल्या लघ्वी पित्तानिलापहा ॥
मधुरा बृंहणी वृष्या रक्तदोषापहा स्मृता ॥ २३ ॥

मत्स्यण्डी ("राव काकब, खण्डराव" इस नाम से लोक प्रसिद्ध) के लक्षण—ईख का जो पकाया हुआ रस अधिक घन भाग तथा स्वल्प द्रव भाग से युक्त होता है उसे मत्स्यण्डी कहते हैं और इससे मन्द २ रस झरता है इस कारण से इसका "मत्स्यण्डी" नाम रक्खा गया है।

मत्स्यण्डी—मलभेदक, बलकारक, लघु, पित्त तथा वात को दूर करने वाली, मधुर रसयुक्त, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), वीर्यवर्धक एवम् रक्तसंबन्धी दोष को नष्ट करने वाली होती है ॥२२-२३॥

अथ गुडस्य लक्षणं गुणांश्चाह

इक्षो रसो यः सुपक्वो जायते लोष्टवद् दृढः ॥ २४ ॥
स गुडो गौडदेशे तु मत्स्यण्ड्येव गुडो मतः। गुडो वृष्यो गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्रशोधनः।
नातिपित्तहरो मेदःकफक्रिमिबलप्रदः ॥ २५ ॥

गुड के लक्षण—ईख का जो रस पकाते २ गाढ़ा होने पर ढेले के समान बांधने से दृढ़ हो जाता है उसे "गुड" कहते हैं। किन्तु "गौड़" देश में "मत्स्यण्डी" को ही "गुड" मानते हैं।

गुड—वीर्यवर्धक, गुरु, स्निग्ध, वातनाशक, मूत्र शोधन करने वाला, अत्यन्त पित्तनाशक नहीं (किञ्चित् पित्तनाशक) एवम्—मेद, कफ, क्रिमि तथा बल को उत्पन्न करने वाला होता है ॥२४-२५॥

अथ पुराणगुडस्य गुणानाह

गुडो जीर्णो लघुः पथ्योऽनभिष्यन्द्यग्निपुष्टिकृत्। पित्तघ्नो मधुरो वृष्यो वातघ्नोऽसृक्प्रसादनः ॥

पुराना गुड—लघु, पथ्य, अनभिष्यंदी (किञ्चित् अभिष्यन्दी), अग्निजनक तथा पुष्टिवर्धक, पित्तनाशक, मधुर, वीर्यवर्धक, वातनाशक, एवम् रक्त को स्वच्छ (दोषरहित) करने वाला होता है ॥ २६ ॥

अथ नवीनगुडस्य गुणानाह

गुडो नवः कफश्वासकासक्रिमिकरोऽग्निकृत् ॥ २७ ॥

नवीन गुड़—कफ, श्वास, कास तथा कृमि को उत्पन्न करने वाला एवम् जठराग्नि की वृद्धि करने वाला होता है ॥ २७ ॥

अथानुपानभेदेन गुडस्य गुणानाह

श्लेष्माणमाशु विनिहन्ति सहार्द्रकेण पित्तं निहन्ति च तदेव हरीतकीभिः ।
शुण्ठ्या समं हरति वातमशेषमित्थं दोषत्रयक्षयकराय नमो गुडाय ॥ २८ ॥

अनुपान भेद से गुड़ के गुण—गुड़ यदि अदरक के साथ सेवन किया जाय तो कफ को शीघ्र नष्ट करता है । और हरीतकी (हर्रे) के साथ सेवन करने से पित्त को दूर करता है । एवम् सोंठ के साथ गुड़ का सेवन करने से समस्त वातसम्बन्धी विकारों को दूर करता है। इस प्रकार से तीनों दोषों को दूर करने वाले गुड़ के लिये नमस्कार है अर्थात् तीनों दोषों को दूर करने से गुड़ ओषधियों में सर्वोत्तम है ॥ २८ ॥

अथ खण्डस्य गुणानाह

खण्डन्तु मधुरं वृष्यं चक्षुष्यं बृंहणं हिमम् । वातपित्तहरं स्निग्धं बल्यं वान्तिहरं परम् ॥२९॥

खण्ड—मधुर रसयुक्त, वीर्यवर्धक, नेत्रों के लिये हितकर, बृंहण (रस रक्तादि वर्धक), शीतवीर्य, वात तथा पित्त नाशक, स्निग्ध, बलकारक एवम् अत्यन्त वमन को दूर करने वाला होता है ॥ २९ ॥

*** खण्डमिति प्रसिद्धं (खांड) ॥ २९ ॥**

यहां पर "खण्ड" इस पद से लोक प्रसिद्ध "खांड" का ग्रहण करना चाहिये ॥ २९ ॥

अथ शर्करा ("चीनी" इति लोके) । तस्या लक्षणगुणानाह

खण्डन्तु सिकतारूपं सुश्वेतं शर्करा सिता । सिता सुमधुरा रुच्या वातपित्तास्रदाहहृत् ।
मूर्च्छाच्छर्दिज्वरान्हन्ति सुशीता शुक्रकारिणी ॥ ३० ॥

शर्करा ("चीनी" इस नाम से लोक प्रसिद्ध) के लक्षण—जो खांड़ बालू के समान तथा श्वेत हो उसे "शर्करा" अथवा "सिता" कहते हैं ।

चीनी—अति मधुर, रुचिकारक, वात, पित्त, रक्तविकार तथा दाह को दूर करने वाली, अतिशीतल, शुक्र को उत्पन्न करने वाली एवम्—मूर्च्छा, वमन तथा ज्वर को नष्ट करने वाली होती है ॥ ३० ॥

अथ पुष्पसिता सितोपला च (फूल से बनाई हुई चीनी और मिश्री) । तयोर्गुणानाह

भवेत्पुष्पसिता शीता रक्तपित्तहरी लघुः । सितोपला सरा लघ्वी वातपित्तहरी हिमा ॥ ३१ ॥

पुष्पसिता (फूलों से बनाई हुई चीनी)—शीतल, लघु एवम् रक्तपित्त को दूर करने वाली होती है ।

सितोपला (मिश्री)—सारक, लघु, शीतवीर्य एवम् वात तथा पित्त को दूर करने वाली होती है ॥ ३१ ॥

अथ मधुखण्डगुणानाह

मधुजा शर्करा रूक्षा कफपित्तहरा गुरुः । छर्द्यतीसारतृड्दाहरक्तहृत्तुवरा हिमा ॥ ३२ ॥

मधुखण्ड (शहद से बनी हुई खांड़ अथवा शक्कर)—रूक्ष, कफ तथा पित्त नाशक, गुरु, कषाय रसयुक्त, शीतवीर्य एवम्—वमन, अतीसार, तृषा, दाह तथा रक्तविकार को दूर करने वाली होती है ॥ ३२ ॥

अथ परिभाषामाह

यथा यथैषां नैर्मल्यं मधुरत्वं यथा यथा । स्नेहलाघवशैत्यादि सरत्वञ्च तथा तथा ॥ ३३ ॥

परिभाषा—जैसे २ इन (खांड, बूरा आदि) सब में निर्मलता तथा मधुरता (मिठास) अधिक होती जाती है वैसे २ इनमें, स्निग्धता, लघुता, शीतलता एवम्—सारकता आदि (गुण) भी बढ़ते जाते हैं, अर्थात् निर्मलता तथा मधुरता के अनुसार ही इन सब में स्निग्धता आदि गुण रहते हैं ॥ ३३ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे
त्रयोविंश इक्षुवर्गः समाप्तः ॥ २३ ॥

अथ अनेकार्थनामवर्गः

वक्तव्य—प्रस्तुत अनेकार्थ वर्ग के पर्यायों को मूलनिघंटु भाग में आये पर्यायों के साथ मिलाकर अध्ययन करने से अनेक परिवर्तन देखे गये, इसलिये पादटिप्पणी में इनका स्पष्टीकरण किया गया है। कुछ पर्याय इनमें ऐसे हैं जो ठीक होते हुवे भी मूल भावप्रकाश निघंटु में नहीं हैं किन्तु अन्य निघंटुओं में हैं। कुछ पर्याय, मूल पर्यायों से कुछ ही भिन्न हैं जैसे किसी में केवल लिंगभेद है या किसी में केवल विशेषण का अन्तर है। कुछ ऐसे भी पर्याय हैं जिनका उल्लेख कहीं नहीं मिलता। इसी प्रकार संभव है कि कुछ पर्याय अनेकार्थवाची होते हुये भी यहाँ उनका उल्लेख न हुआ हो। परिशिष्ट में दी हुई संपूर्ण पर्यायों की सूची से इनका ज्ञान हो सकता है।

तत्र द्व्यर्थानि नामान्याह

दो अर्थ वाले शब्द

अश्मन्तकः—अम्ललोणिका कोविदारश्च।

१ अश्मन्तक—तिनपतिया और कचनार।

कठिल्लकः—कारवेल्लः, रक्तपुनर्नवा च।

२ कठिल्लक—करैला और लाल पुनर्नवा।

कुलकः—पटोलः, कुपीलुश्च (कुपीलुः 'कुचिला' इति लोके प्रसिद्धः)।

३ कुलक—परवर और कुचिला।

कोशातकी—महाकोशातकी, राजकोशातकी च।

४ कोशातकी—नेनुआ और तरोई।

दीप्यकः—यवानी, अजमोदा च।

५ दीप्यक—अजवाइन और अजमोद।

मरुबकः—फणिज्जकः, पिण्डीतकश्च, (फणिज्जकः='मरुआ' इति लोके, पिण्डीतकः='मैनफल' इति लोके)।

६ मरुबक—मरुआ और मैनफल।

मधूलिका—मूर्वा, जलयष्टी च।

७ मधूलिका—मूर्वा और जलमुलेठी।

रुचकम्—सौवर्चलं, बीजपूरकञ्च।

८ रुचक—सोंचरनमक और बिजौरा नींबू।

लोणिका—लोणीशाकं, चाङ्गेरीशाकञ्च।

९ लोणिका—नोनीशाक और चांगेरीशाक (तिनपतिया)।

वसुकः—रक्तार्कः,[1] क्षारलवणं च।[2]

१० वसुक—लाल आक और रेहगवा नोन।

बाह्लीकम्—कुङ्कुमं, हिङ्गु च।

११ बाह्लीक—केशर और हींग।

वितुन्नकम्—धान्यकं, तुत्थञ्च।

१२ वितुन्नक—धनियाँ और नीला थोथा।

स्वादुकण्टकः—गोक्षुरः, विकङ्कतश्च।

१३ स्वादुकण्टक—गोखरू और कंटाई।

अग्निमुखी—भल्लातकी, लाङ्गली च।

१४ अग्निमुखी—भिलावा और कलिहारी।

अग्निशिखम्—कुङ्कुमं, कुसुम्भञ्च।

१५ अग्निशिखा—केसर और कुसुम (बर्रे)।

अजशृङ्गी—मेषशृङ्गी, कर्कटशृङ्गी च।

१६ अजशृङ्गी—मेंढाशिङ्गी और काकडासिङ्गी।

---

१. वसुक पर्याय श्वेतार्क (मन्दार) का होने से यहाँ रक्तार्क के स्थान पर श्वेतार्क होना चाहिये।

२. क्षारलवण के लिये वसुक पर्याय मूल में नहीं है। ध. नि. ने. वसुक पर्याय 'उद्भिदलवण' के लिये दिया है।

प्रियङ्गु—फलिनी, कङ्गुश्च।

१७ प्रियङ्गु—फूलप्रियङ्गु और कंगुनी।

भृङ्गः—भृङ्गराजः, त्वक् च।

१८ भृङ्ग—भांगरा और तज।

समङ्गा—मञ्जिष्ठा, लज्जालुश्च।

१९ समङ्गा—मंजीठ और लजालू।

अमोघा—विडङ्गं, पाटला च।

२० अमोघा—वायबिडंग और पाढल।

मोचा—कदली, शाल्मलिश्च।

२१ मोचा—केला और सेमर।

कुटन्नटः—श्योनाकः, कैवर्तीमुस्तञ्च।

२२ कुटन्नट—सोनापाठा और केवटी मोथा।

कुनटी—धन्याकं, मनःशिला च।

२३ कुनटी—धनियाँ और मैनसिल।

घोण्टा—पूगः, बदरी च।

२४ घोण्टा—सुपारी और बेर।

त्रिपुटा—त्रिवृत्, सूक्ष्मैला च।

२५ त्रिपुटा—निशोथ और छोटी इलायची।

शटी—कर्चूरः, गन्धपलाशी च।

२६ शटी—कचूर और गन्धपलाशी (कपूर-कचरी)।

दन्तशठः—जम्बीरः, कपित्थश्च।

२७ दन्तशठ—जम्बीरी नीबू और कैथा।

दन्तशठा—अम्लिका, चाङ्गेरी च।

२८ दन्तशठा—इमली और तिनपतिया।

अरुणम्[1]—मञ्जिष्ठा, अतिविषा च।

२९ अरुणा—मजीठ और अतीस।

कणा—पिप्पली, जीरकञ्च।

३० कणा—पीपल और जीरा।

तालपर्णी[2]—मुशली, मुरा च।

३१ तालपर्णी—मूसली और मुरा (एकाङ्गी)।

पीलुपर्णी—मूर्वा, बिम्बी च।

३२ पीलुपर्णी—मूर्वा और कन्दूरी।

ब्राह्मणी—भार्ङ्गी, स्पृक्का च।

३३ ब्राह्मणी—भारङ्गी और स्पृक्का।

अपराजिता[3]—विष्णुक्रान्ता, शालिपर्णी च

३४ अपराजिता—कोयल और शालिपर्णी।

आस्फोता—अपराजिता, सारिवा च।

३५ आस्फोता—अपराजिता (कोयल) और श्वेत सारिवा (अनन्तमूल)।

पारावतपदी—ज्योतिष्मती, काकजङ्घा च।

३६ पारावतपदी—मालकांगुनी और काकजङ्घा।

शारदी[4]—शारिवा, जलपिप्पली च।

३७ शारदी—अनन्तमूल और जलपीपल।

उग्रगन्धा—वचा, यवानी च।

३८ उग्रगन्धा—घोडवच और अजवाइन।

परिव्याधः—कर्णिकारः, जलवेतसश्च।

३९ परिव्याध—कर्णिकार और जलवेतस।

अञ्जनम्—स्रोतोञ्जनम्, सौवीरञ्च।

४० अञ्जन—काला सुरमा और सफेद सुरमा।

अग्निः—चित्रकः, भल्लातश्च।

४१ अग्नि—चीता और भिलावा।

कृमिघ्नः—विडङ्गः, हरिद्रा च।

४२ कृमिघ्न—वायविडङ्ग और हरदी।

तेजनः—शरः, वेणुश्च।

४३ तेजन—सरपत और बांस।

तेजनी—तेजस्वती, मूर्वा च।

४४ तेजनी—तेजवल और मूर्वा।

रोचनः—कम्पिल्लः, रोचना च।

४५ रोचन—कबीला और गोलोचन।

---

१. मञ्जिष्ठा एवं अतिविषा का पर्याय अरुणा आया हुआ है न कि अरुणम्।

२. तालपर्णी यह न मुशली का पर्याय है न मुरा का। अन्य निघण्टुओं में यह मिश्रेया का पर्याय दिया हुआ है। मुशली का पर्याय तालमूली मिलता है एवं मुरा का शालपर्णिका मिलता है।

३. 'अपराजिता' यह नाम शालिपर्णी (पाठा०—शालपर्णी) के पर्यायों में नहीं आया है।

४. 'शारदी' यह 'सारिवा' के पर्यायों में नहीं है।

[**रोचना**—गोरोचना, रक्तकह्लारश्च[1]]।
४६ रोचना—गोलोचन और लाल कुमुद।
राजादनम्—क्षीरिका, प्रियालश्च।
४७ राजादन—खिरनी और चिरौंजी।
शकुलादनी—कटुका, जलपिप्पली च।
४८ शकुलादनी—कुटकी और जलपीपल।
गोलोमी—श्वेतदूर्वा, वचा च।
४९ गोलोमी—सफेद दूब और घोडवच।
पद्मा—पद्मचारिणी, भार्ङ्गी च।
५० पद्मा—स्थलकमल और भारङ्गी।
श्यामा—सारिवा, प्रियङ्गुश्च।
५१ श्यामा—अनन्तमूल और प्रियङ्गु।
उत्तमा—त्रिफला, सर्वतोभद्रा च।
५२ उत्तमा—त्रिफला और गम्भारी।
धान्यम्—धान्याकं, शाल्यादि च।
५३ धान्य—धनिया और शालि (जड़हन) आदि धान्य।
सहस्रवीर्या—नीलदूर्वा, महाशतावरी च।
५४ सहस्रवीर्या—हरी दूब और बड़ी शतावर।
सेव्यम्—उशीरं, लामज्जकञ्च।
५५ सेव्य—खस और लामज्जक।
उदुम्बरः—जन्तुफलं, ताम्रञ्च।
५६ उदुम्बर—गूलर और तांबा।
ऐन्द्री—इन्द्रवारुणी, इन्द्राणी[2] च।
५७ ऐन्द्री—इन्द्रायन, निर्गुण्डी और बड़ी इलायची।
कटम्भरा—कटुका, श्योनाकश्च।
५८ कटम्भरा—कुटकी और सोनापाठा।
क्षारः—यवक्षारः स्वर्जिका च।
५९ क्षारः—जवाखार और सज्जीखार।
गण्डीरः—गण्डारी, मञ्जिष्ठा च [गण्डारी शाकविशेषो 'गण्डानी' इति लोके]।
६० गण्डीर—गण्डारी शाक (इसे लोक में 'गण्डानी' भी कहते हैं) और मंजीठ।
गान्धारी—दुरालभा गन्धपलाशी च।
६१ गान्धारी—धमासा और गन्धपलाशी[3] (कपूरकचरी)।
चित्रा—इन्द्रवारुणी, बृहद्दन्ती च।
६२ चित्रा—इन्द्रायन और बड़ी दन्ती।
तुण्डीकेरी—कार्पासी, बिम्बी च।
६३ तुण्डीकेरी—कपास और कन्दूरी।
धीरा—गुडूची, क्षीरकाकोली च।
६४ धीरा—गिलोय और क्षीरकाकोली।
बालपत्रः—खदिरः, यवासश्च[4]।
६५ बालपत्र—खैर और जवासा।
वारि—बालकम्, उदकञ्च।
६६ वारि—सुगन्धबाला और जल।
अङ्गारवल्ली—भार्ङ्गी गुञ्जा च।
६७ अङ्गारवल्ली—भारङ्गी और गुंजा (घुंघची)।
अमृणालम्—लामज्जकम्, उशीरञ्च।
६८ अमृणाल—लामज्जक और खस।
कुण्डली—गुडूची, कोविदारश्च।
६९ कुण्डली—गिलोय और कचनार।
गन्धफली—प्रियङ्गुः, चम्पककलिका च।
७० गन्धफली—प्रियङ्गु और चम्पेकी कली।
दीर्घमूलः[5]—यवासः, शालिपर्णी च।
७१ दीर्घमूल—जवासा और सरिवन।
पिच्छिला—शाल्मली शिंशपा च।
७२ पिच्छिला—सेमर और सीसम।
पुष्पफलः—कपित्थः, कूष्माण्डश्च।
७३ पुष्पफल—कैथा और पेठा।

१. कल्हार के पर्यायों में रोचना नहीं है।
२. भा. प्र. में इन्द्राणी के निर्गुण्डी तथा बृहदेला पर्याय नहीं हैं किन्तु रा. नि. ने दिये हैं।
३. कपूरकचरी का गन्धारिका पर्याय भा. प्र. में है, गान्धारी नहीं है।
४. भा. प्र. में यवासा का बालपत्र पर्याय नहीं है किन्तु रा. नि. एवं ध. नि. में है।
५. यवासा और शालपर्णी का दीर्घमूलः पर्याय भा. प्र. में नहीं है किन्तु रा. नि. एवं ध. नि. में यवासा के लिये दीर्घमूलः एवं शालिपर्णी के लिये दीर्घमूला पर्याय मिलते हैं।

पोटगलः—नलः, काशश्च।
७४ पोटगल—नरसल और कास।
यवफलः—कुटजः, वंशश्च।
७५ यवफल—कुड़ा और बांस।
देवी—मूर्वा, स्पृक्का च।
७६ देवी—मूर्वा और स्पृक्का।
विश्वा—शुण्ठी, अतिविषा च।
७७ विश्वा—सोंठ और अतीस।
शीतशिवम्—सैन्धवं, मिश्रेया[1] च।
७८ शीतशिव—सेन्धा नमक और मिश्रेया।
कर्कशः—काम्पिल्यः, कासमर्दश्च।
७९ कर्कश—कबीला और कसौंदी।
चर्मकषा—सातला, मांसरोहिणी च।
८० चर्मकषा—सातला और मांसरोहिणी।
नन्दिवृक्षः—अश्वत्थभेदः (अधोमुखपत्रशाखो 'बेलिया पीपर' इति लोके), तूणिश्च।
८१ नन्दिवृक्ष—पीपलभेद (अधोमुख पत्ते तथा शाखाओं वाला 'बेलिया पीपर' इस नाम से लोकप्रसिद्ध वृक्ष) और तून।
पयः—क्षीरम्, उदकञ्च।
८२ पयः—दूध और जल।
रुहा—दूर्वा, मांसरोहिणी[2] च।
८३ रुहा—दूब और मांसरोहिणी।
सिंही—बृहती, वासा च।
८४ सिंही—बड़ी कटेरी और अडूसा।
कतकम्—विडलवणम्,[3] निर्मलीफलं च।
८५ कतक—विरियां सञ्चर नोन और निर्मली का फल।
कण्टकाढ्या—कुब्जकः, शाल्मली च।
८६ कण्टकाढ्या—कूजा और सेमर।
यक्षधूपः—सरलनिर्यासः,[4] रालश्च।
८७ यक्षधूप—गन्धाबिरोजा और राल।
द्राविडी—शटी, सूक्ष्मैला च।
८८ द्राविडी—कचूर और छोटी इलायची।
हट्टविलासिनी—हरिद्रा, नखी च।
८९ हट्टविलासिनी—हरदी और नखी।
तिलपर्णम्[5]—रक्तचन्दनम्, ग्रन्थिपर्णं च।
२० तिलपर्ण—लालचन्दन और गठिवन।
मधुरः—जीवकः जीवनीयगणश्च।
९१ मधुर—जीवक और जीवनीय गण।
लोहद्राविणी[6]—गण्डदूर्वा अम्लवेतसश्च।
९२ लोहद्राविणी—गांडरदूब और अमलवेत।
नागिनी—ताम्बूली, नागपुष्पी च।
९३ नागिनी—पान और नागपुष्पी।
मृदुरेचनी—त्रिवृत्[7], मार्कण्डिका च।
९४ मृदुरेचनी—निसोत और सनाय।
नटः—श्योनाकः, अशोकश्च।
९५ नट—सोनापाठा और अशोक।
वनस्पतिः—वटः, नन्दिवृक्षश्च।
९६ वनस्पति—बरगद और बेलियापीपर।
मन्दारः—श्वेतार्कः, महानिम्बश्च।[8]
९७ मन्दार—सफेद आक और बकायन।

१. मिश्रेया के लिये शीतशीव पर्याय भा. प्र. में नहीं है किन्तु ध. नि. एवं रा. नि. में है।
२. मांसरोहिणी का पर्याय अतिरुहा आया है नकि केवल रुहा। ध. नि. में रुहा है।
३. विडलवण का पर्याय कृतक है नकि कतक।
४. भा. प्र. में सरलनिर्यास के लिये वृक्षधूप आया है नकि यक्षधूप।
५. मूल में तैलपर्णकम् यह ग्रन्थिपर्ण के लिये पर्याय आया है।
६. गण्डदूर्वा का पर्याय लोहद्राविणी आया है एवं अम्लवेतस के लिये यह पर्याय नहीं है।
७. त्रिवृत का रेचनी पर्याय आया है नकि मृदुरेचनी।
८. महानिम्ब के लिये मन्दार पर्याय नहीं है। भा. प्र. में पारिभद्र के पर्याय में मन्दार लिखा है।

अम्बुजः—कमलम्[1], इज्जलश्च ।
९८ अम्बुज—कमल और इज्जल (समुद्रफल) ।
कबरी—बर्बरी[2], हिङ्गुपत्री च ।
९९ कबरी—बर्बरी (वनतुलसी और हींगपत्री ।
कुमारी—घृतकुमारिका, शतपत्री[3] च ।
१०० कुमारी—घीकुवार और गुलाब ।
वरतिक्तकः—पाठा, पर्पटश्च ।
१०१ वरतिक्तक—पाढ़ी और पित्तपापड़ा ।
चित्रकः—एरण्डः,[4] अनलनामा च ।
१०२ चित्रक—एरण्ड और चिता ।
यज्ञियः—खदिरः, पलाशश्च ।
१०३ यज्ञिय—खैर और पलाश ।
रक्तबीजः—अरिष्टकः, कन्दुरी[5] च ।
१०४ रक्तबीज—रीठा और कन्दुरी ।
क्षारश्रेष्ठः—पलाशः, मोक्षकश्च ।
१०५ क्षारश्रेष्ठ—पलाश और मोखा ।
श्वेतपुष्पः—श्वेतार्कः, इन्द्रवारुणी च ।
१०६ श्वेतपुष्प—सफेद आक और इन्द्रायण
तुवरी—सौराष्ट्री, आढकी च ।
१०७ तुवरी—सोरठी माटी और अरहर ।
कुम्भिका—कट्फलः, वारिपर्णी च ।
१०८ कुम्भिका—कायफल और जलकुम्भी ।
राजपुत्रिका—रेणुका, जाती च ।
१०९ राजपुत्रिका—रेणुका और जाई (चमेली) ।
रक्तपुष्पः—रक्तार्कः, कन्दुरी[5] च ।
११० रक्तपुष्प—लाल आक और कन्दुरी ।
सप्तला—शातला, वासन्ती च ।
१११ सप्तला—शातला और नेवारी ।
विषमुष्टिकः—महानिम्बः विषतिन्दुकश्च ।[6]
११२ विषमुष्टिक—बकायन और कुचला ।
रक्तफला—स्वर्णवल्ली, वटश्च ।
११३ रक्तफला—सोनवेल और बरगद ।
चन्द्रहासा—गुडूची, लक्ष्मणा[7] च ।
११४ चन्द्रहासा—गिलोय और लक्ष्मणा ।

इति द्व्यर्थानि नामानि ।

अथ त्र्यर्थानि नामान्याह

तीन अर्थ वाले शब्द

क्रमुकः—पूगः, तूदः, पट्टिकालोध्रश्च ।
१ क्रमुक—सुपारी, सहतूत और पठानी लोध ।
क्षुरकः—कोकिलाक्षः, गोक्षुरः, तिलकनामपुष्पविशेषश्च ।
२ क्षुरक—तालमखाना, गोखरू और तिलकनामक पुष्पविशेष ।
प्रियकः—प्रियङ्गुः,[8] कदम्बः, असनश्च ।
३ प्रियक—प्रियङ्गु, कदम और असना ।
पृथ्वीका—कालाजाजी, बृहदेला, हिङ्गुपत्री च ।

१. कमल के लिये अंबुज पर्याय अन्य निघंटुओं में है ।
२. बर्बरी के पर्याय में कबरी नहीं मिलता ।
३. शतपत्री का पर्याय महाकुमारी आया है नकि कुमारी ।
४. एरण्ड का पर्याय चित्रः दिया हुआ है ।
५. कन्दुरी नाम सन्दिग्ध है । रक्तबीज यह अनार का पर्याय अन्य निघण्टु में है । अनार का रक्तपुष्प पर्याय अन्य निघण्टुओं में मिलता है ।
६. विषमुष्टिक पर्याय कुचला के लिये भा. प्र. में नहीं है ।
७. लक्ष्मणा के लिये चन्द्रहासा पर्याय भा. प्र., रा. नि., ध. नि. में नहीं है ।
८. प्रियंगु का पर्याय प्रियक नहीं मिलता ।

४ पृथ्वीका—कलौंजी, बड़ी इलायची और हिंगुपत्री ।
भूतीकम्—भूनिम्बं, कत्तृणं,[1] भूस्तृणश्च ।
५ भूतीक—चिरायता, रोहिष और भूतृण ।
सोमवल्कः—कट्फलः, श्वेतखदिरः, घृतपूर्णकरञ्जश्च ।
६ सोमवल्क—कायफर, सफेदखैर और घियाकरञ्ज ।
सौगन्धिकम्—कह्लारं,[2] कतृणं, गन्धकश्च ।
७ सौगन्धिक—कल्हार (लाल कुमुद), रोहिस और गन्धक ।
भृङ्गः—भृङ्गराजः, त्वग्, भ्रमरश्च ।
८ भृङ्ग—भांगरा, तज और भौंरा ।
अरिष्टः—निम्बः, रसोनं, मद्यञ्च ।
९ अरिष्ट—नीम, लहसुन और मद्य ।
मर्कटी—कपिकच्छुः, अपामार्गः, करञ्जी च ।
१० मर्कटी—केवांच, चिचिढ़ा और करञ्जी ।
अम्बष्ठा—पाठा, चाङ्गेरी, माचिका च ।
११ अम्बष्ठा—पाढ़ी, चांगेरी और माचिका)
कृष्णा—पिप्पली, कालाजाजी, नीली[3] च
१२ कृष्णा—पीपर, कलौंजी और नील ।
क्षीरिणी—दुग्धिका[4] क्षीरकाकोली, श्वेतसारिवा[5] च ।
१३ क्षीरिणी—दुद्धी, क्षीरकाकोली और सफेद सारिवा (अनन्तमूल) ।
मधुपर्णी—गुडूची, गम्भारी, नीली च ।
१४ मधुपर्णी—गिलोय, गम्भारि और नील ।
मण्डूकपर्णः—श्योनाकः, स स्त्रियां तु मञ्जिष्ठा, ब्रह्ममाण्डूकी च ।
१५ मण्डूकपर्ण—सोनापाठा, स्त्रीलिङ्ग मण्डूकपर्णी—मजीठ और ब्रह्ममांडूकी ।
श्रीपर्णी—गम्भारी, गणिकारिका, कट्फलं च ।
१६ श्रीपर्णी—गम्भारि, अरनी और कायफर ।
अमृता—गुडूची, हरीतकी, धात्री च ।
१७ अमृता—गिलोय, हर्रा और आंवला ।
अनन्ता—दुरालभा, नीलदूर्वा, लाङ्गली च
१८ अनन्ता—धमासा, हरी दूब और कलिहारी ।
ऋष्यप्रोक्ता—अतिबला, महाशतावरी, कपिकच्छुश्च ।
१९ ऋष्यप्रोक्ता—ककही, बड़ी शतावर और केवांच ।
कृष्णवृन्ता—पाटला, गम्भारी, माषपर्णी च ।
२० कृष्णवृन्ता—पाढ़ल, गम्भारि और माषपर्णी ।
जीवन्ती—गुडूची, शाकविशेषः, वन्दा[6] च
२१ जीवन्ती—गिलोय, जीवन्ती शाकविशेष और बन्दा ।
लता—सारिवा, प्रियङ्गुः, ज्योतिष्मती च ।
२२ लता—अनन्तमूल (सारिवा), प्रियङ्गु और मालकांगुनी ।
समुद्रान्ता—दुरालभा, कार्पासी, स्पृक्का च
२३ समुद्रान्ता—धमासा, कपास और स्पृक्का ।
हैमवती—हरीतकी, श्वेतवचा, पीतक्षुद्रः सेहुण्डश्च[7] (यस्य मूलं 'चोक' इति प्रसिद्धम्) ।

१. भूनिम्ब का पर्याय भूतीक नहीं दिखलाई देता ।
२. कल्हार का सौगन्धिक पर्याय भा. प्र. में नहीं है ।
३. रा. नि. में नीली का कृष्णा पर्याय है ।
४. क्षीरा तथा विक्षीरिणी ये पर्याय दुग्धिका के दिये हुये हैं ।
५. श्वेतसारिवा के लिये क्षीरिणी पर्याय नहीं है ।
६. वन्दा का पर्याय जीवन्ती नहीं है यद्यपि जीवन्तीभेद, स्वर्ण जीवन्ती एक प्रकार का बांदा ही होता है ।
७. वास्तव में यह सेहुण्ड भेद नहीं है ।

२४ हैमवती—हर्रा, सफेद वच और पीले दूध का सेहुंड, मदमाद (इसके मूल को लोक में 'चोक' कहते हैं)।

अव्यथा—हरीतकी, महाश्रावणी, पद्मचारिणी च।

२५ अव्यथा-हर्रा, बड़ी गुण्डी और स्थलकमल।

षड्ग्रन्था—गन्धपलाशी, वचा, करञ्जा च।

२६ षड्ग्रन्था—कपूरकचरी, वच और करञ्जी।

वरदा—सुवर्चला ('हुरहुर' इति लोके), अश्वगन्धा, वाराही ('गेठी'ति लोके)।

२७ वरदा—हुरहुर, असगन्ध और वाराहीकंद ('गेंठी' नाम से लोकप्रसिद्ध)।

इक्षुगन्धा—काशः, कोकिलाक्षः, क्षीरविदारी (गोक्षुरः) च।

२८ इक्षुगन्धा—कास, तालमखाना और विदारी। (और इक्षुगन्धिका=गोखरू भी है)।

कालस्कन्धः—तमालः तिन्दुकं कालखदिरश्च।[1]

२९ कालस्कन्ध—तमाल, तेन्दू और दुर्गन्धखैर।

महौषधम्—शुण्ठी, रसोनः, विषञ्च।[2]

३० महौषध-सोंठ,लहसुन और विष (वत्सनाभ)।

मधु—क्षौद्रं, पुष्परसः, मद्यञ्च।

३१ मधु—शहद, फूल का रस और मद्य।

कपीतनः—आम्रातकः, शिरीषः, गर्दभाण्डश्च।

३२ कपीतन—अम्बाडा, सिरस और पारस पीपल।

मदनः—पिण्डीतकः, धत्तूरः, सिक्थकञ्च।

३३ मदन—मैनफल, धतूर और मोम।

शतपर्वा—वंशः, दूर्वा, वचा च।

३४ शतपर्वा—बांस, दूब और बच।

सहस्रवेधी[3]-अम्लवेतसः,मृगमदः, हिङ्गु च

३५ सहस्रवेधी—अमलबेत, कस्तूरी और हींग।

ताम्रपुष्पी—धातकी, पाटला, श्यामा त्रिवृच्च।[4]

३६ ताम्रपुष्पी—धायका फूल, पाढ़कभेद और काली निशोथ।

सदापुष्पः—श्वेतार्कः, रक्तार्कः,[5] कुन्दश्च।

३७ सदापुष्प—सफेद आक, लाल आक और कुन्द।

सुरभिः—शल्लकी, सुरा, एलवालुकं[6] च।

३८ सुरभि—सालई, सुरा और एलवालुक।

लक्ष्मीः—ऋद्धिः, वृद्धिः, शमी च।

३९ लक्ष्मी—ऋद्धि, वृद्धि और शमी।

कालानुसार्यम्—कालीयकं,तगरं, शैलेयञ्च।

४० कालानुसार्य—पीला चन्दन (कलम्बक), तगर और भूरिछरीला।

चाम्पेयः—चम्पकः नागकेसरः,पद्मकेसरञ्च[7]।

४१ चाम्पेय—चंपा,नागकेशर और कमलका केसर।

नादेयी—गणिकारिका, जलजम्बूः, जलवेतसश्च।

४२ नादेयी-अग्निमंथ, जलजामुन और जलबेंतस।

पाक्यम्—विडम्, सौवर्चलम्[8],यवक्षारश्च।

४३ पाक्य—बिरिया संचर नमक, कालानोन और जवाखार।

विशल्या—लाङ्गली,गुडूची लघुदन्ती च।

४४ विशल्या—कलिहारी,गिलोय और छोटीदंती

इन्द्रद्रुः—ककुभः, देवदारुः,[1] कुटजश्च।

४५ इन्द्रद्रु-अर्जुन, देवदार और कुडा।

काश्मीरं काश्मीरी च—कुङ्कुमम्, पुष्करमूलम्, गम्भारी च।

४६ काश्मीर और काश्मीरी—केशर, पुष्करमूल और गम्भारि।

गुन्द्रः[2]—एरकः, मुञ्जः शरश्च।

४७ गुन्द्र—गोंदपटेर, मूंज और सरपत।

गुन्द्रा—प्रियङ्गुः, गवेधुका,[3] भद्रमुस्तकञ्च

४८ गुन्द्रा—प्रियङ्गु, गर हेडुआ और नागरमोथा।

चुक्रम्-शुक्रम्, अम्लवेतसम्, वृक्षाम्लञ्च।

४९ चुक्र—चूक, अमलबेंत और कोकम।

पारिभद्रः-निम्बः, पारिजातः, देवदारुश्च।[4]

५० पारिभद्र—नीम, फरहद और देवदारु।

पीतदारुः—हरिद्रा,[5] देवदारुः[6] सरलश्च।[7]

५१ पीतदारु—हरदी, देवदार और धूपसरल।

वीरः—ककुभः, वीरणं, काकोली च।

५२ वीर—कोह, वीरण तृण और काकोली।

वीरतरुः—ककुभः,[8] वीरणम्, शरश्च।[9]

५३ वीरतरु—कोह, वीरण तृण और सरपत।

मयूरः—अपामार्गः, अजमोदा, तुत्थञ्च।

५४ मयूर—चिचिड़ा, अजमोद और तूतिया।

रक्तसारः—रक्तचन्दनं, पतङ्गः, खदिरश्च।

५५ रक्तसार—लालचन्दन, पतङ्ग और खैर।

वदरा[10]—सुवर्चला, अश्वगन्धा,वाराही च।

५६ बदरा—हुरहुर, असगंध और वाराहीकंद।

वशिरः—रक्तापामार्गः, गजपिप्पली, समुद्रलवणञ्च।

५७ वशिर—लाल अपामार्ग, गजपीपर और समुद्री नोन।

सौवीरम्—अञ्जनभेदः, बदरम्, सन्धानभेदश्च।

५८ सौवीर-सफेद सुरमा, बेर, कांजी का भेद।

वञ्जुलः—अशोकः, वेतसः, तिनिशश्च।

५९ वञ्जुल—अशोक, वेतस और तिनिस।

शिला—मनःशिला,शिलाजतु,[11]गैरिकञ्च।[12]

६० शिला—मैनसिल, शिलाजीत और गेरू।

सोमवल्ली—वाकुची, गुडूची, ब्राह्मी च।

६१ सोमवल्ली—बाकुची, गिलोय और ब्राह्मी।

अक्षीवः—शोभाञ्जनः, महानिम्बः,[13] समुद्रलवणञ्च।

१. कालखदिर पर्याय भा. प्र. ने नहीं दिया है। हरिमेद (विट्खदिर) का पर्याय कालस्कन्ध दिया हुआ है।

२. ध. नि. में विष का पर्याय महौषध दिया है।

३. भा. प्र. में अम्लवेतस् के पर्याय शतवेधी एवं सहस्रनुत हैं एवं कस्तूरी का पर्याय सहस्रभित है।

४. रा. नि. ने श्यामाविशेष का ताम्रपुष्पिका पर्याय दिया है।

५. रक्तार्क के लिये सदापुष्प पर्याय नहीं दिया हुआ है।

६. भा. प्र. में एलवालुक का सुगन्धि पर्याय दिया है न कि सुरभिः।

७. रा. नि. ने पद्मकेसर का पर्याय चाम्पेयकं दिया है।

८. सौवर्चल का पर्याय मन्थपाकं आया है न कि पाक्यम्।

१. देवदारुः का पर्याय भा. प्र. ने इन्द्रदारु लिखा है।

२. मुंज एवं शर के लिये गुन्द्रः पर्याय नहीं दिखलाई देता।

३. गवेधुका का गुन्द्रा पर्याय नहीं मिलता किन्तु एरका का पर्याय गुन्द्रा है।

४. देवदारु का पर्याय पारिभद्र नहीं मिलता।

५. हरिद्रा का पर्याय पीतदारु नहीं है किन्तु दारुहरिद्रा का है।

६. देवदारु का पर्याय पीतदारु नहीं है।

७. सरल का पर्याय पीतवृक्ष दिया हुआ है।

८. ककुभ का पर्याय वीरवृक्ष है। वीरतरु अन्य वृक्ष है।

९. शर का पर्याय वीरतरु नहीं मिलता।

१०. बदरा के स्थान पर वरदा अधिक उचित है क्योंकि अश्वगन्धा तथा वाराही का पर्याय वरदा है।

११. शिलाजतु का पर्याय शिलाजं है।

१२. गैरिक के पर्याय गैरेयं, गिरिजं हैं न कि शिला।

१३. महानिम्ब का अक्षीर पर्याय अन्य निघण्टुओं में मिलता है, अक्षीव नहीं।

६२ अक्षीव—सहिजन, बकायन और समुद्री नोन।

कारवी—काळाजाजी, शताह्वा, अजमोदा च।

६३ कारवी—कलौंजी, सोआ और अजमोदा।

धामार्गवः—रक्तापामार्गः, राजकोशातकी, महाकोशातकी च।

६४ धामार्गव—लाल अपामार्ग, तरोई और नेनुआ।

दुःस्पर्शः—यवासः, कपिकच्छुः, कण्टकारी च।

६५ दुःस्पर्श—जवासा, कौंच और भटकटैया।

पलाशः—किंशुकः, गन्धपलाशी,[1] पत्रञ्च[2]।

६६ पलाश—पलाश, कपूरकचरी और तेजपात।

कालमेषी—मञ्जिष्ठा, वाकुची, श्यामा त्रिवृच्च।

६७ कालमेषी—मजीठ, बकुची और काली निसोथ।

पलङ्कषा—गुग्गुलुः, गोक्षुरः, लाक्षा च।

६८ पलङ्कषा—गूगल, गोखरू और लाख।

मधुरसा—द्राक्षा, मूर्वा, गम्भारी च।

६९ मधुरसा—दाख, मूर्वा और गंभारि।

रसा—रास्ना, शल्लकी, पाठा च।

७० रसा—रास्ना, सलई और पाढ़ी।

श्रेयसी—हरीतकी, रास्ना, गजपिप्पली च

७१ श्रेयसी—हर्रा, रास्ना और गजपीपल।

लोहम्—अयः, कांस्यम्[3], अगुरु च।

७२ लोह—लोहा, कांसा और अगर।

सहा—मुद्गपर्णी, बलाभेदः ('ककही' इति लोके), शतपत्री[4] ('सेवती गुलाब' इति लोके)।

७३ सहा—मुगवन, बरियारा का भेद (लोक प्रसिद्ध 'ककही') और सेवती गुलाब।

सुवहा—रास्ना, नाकुली,[5] नीलपुष्पः सिन्दुवारश्च।

७४ सुवहा—रास्ना, नाकुली और नीले फूलकी मेउड़ी।

कठिल्लकः—कारवेल्लः, रक्तपुनर्नवा, कृष्णवर्वरी च।

७५ कठिल्लक—करेला, लाल गदहपुर्ना और काली बर्बरी।

मधूलिका—मूर्वा, यष्टी, जलमधूकश्च।

७६ मधूलिका—मूर्वा, मुलेठी और जल महुआ

वितुन्नकम्—धान्यकम्, तुत्थकम्, गोनर्दश्च।

७७ वितुन्नक—धनिया तूतिया और केवटी मोथा।

देवी—स्पृक्का, मूर्वा, वन्ध्याकर्कोटी च।

७८ देवी—स्पृक्का, मूर्वा और बांझ खेकसा।

वसुकः—शिवमल्ली, श्वेतार्कः, रोमकः[6] च

७९ वसुक—बड़ी मौलसिरी, सफेद आक और सांभर नोन।

गण्डीरः—शाकविशेषः, मञ्जिष्ठा, गण्डदूर्वा च।

८० गण्डीर—गण्डारी नामक शाकविशेष, मंजीठ और गांडर दूब।

लाङ्गली—कलिहारी, जलपिप्पली, नारिकेलश्च।

८१ लाङ्गली—कलिहारी, जलपीपल और नारियल।

पिच्छिला—शिंशपा, शाल्मलिः, भूतवृक्षश्च।

८२ पिच्छिला—शीशम, सेमर और लिसोढ़ा।

महासहा—माषपर्णी, अम्लातकः, कुब्जकश्च।

८३ महासहा—माषपर्णी, बाणपुष्प और कूजा।

चन्द्रिका—मेथी, चन्द्रशूरः, श्वेतकण्टकारी च।

८४ चन्द्रिका—मेथी, चनसूर और सफेद भटकटैया।

इति त्र्यर्थानि नामानि।

---

१. गन्धपलाशी का पर्याय पलाशी है न कि पलाशः।

२. ध. नि. एवं रा. नि. ने पलाशी पर्याय तेजपत्र के लिये लिखा है।

३. ध. नि. एवं रा. नि. ने कांस्य का पर्याय लोह लिखा है।

४. शतपत्री का सहा पर्याय भा. प्र., रा. नि. एवं ध. नि. में नहीं है।

५. नाकुली का सुरसा पर्याय भा. प्र. में है, सुवहा नहीं।

६. रा. नि. एवं ध. नि. में रोमक के वसुक, वसु पर्याय मिलते हैं।

अथ चतुरर्थकानि नामान्याह

चार अर्थ वाले शब्द

श्वेतपुष्पा—इन्द्रवारुणी, सिन्दुवारः, श्वेतार्कः, सैरेयकश्च।

१ श्वेतपुष्पा—इन्द्रायण, मेउड़ी, सफेद आक और कटसरैया।

कारवी—पृथ्वीका[1], शतपुष्पा, काळाजाजी, अजमोदा च।

२ कारवी—पृथ्वीका, शतपुष्पा, कलौंजी और अजमोदा।

अम्बष्ठा—पाठा, चाङ्गेरी, माचिका, यूथिका च इति।

३ अम्बष्ठा—पाढ़ी, चांगेरी, माचिका और जूही।

इति चतुरर्थकानि नामानि।

अथ बह्वर्थकानि नामान्याह

बहुत अर्थवाले शब्द

अक्षशब्दः स्मृतोऽष्टासु सौवर्चलबिभीतके। कर्षपद्माक्षरुद्राक्षशकटेन्द्रियपाशके॥ १॥

१ अक्ष–(१) काला नमक, (२) बहेड़ा, (३) कर्षनामक तौल (४) कमलगट्टा, (५) रुद्राक्ष, (६) गाड़ी, (७) इन्द्रिय और (८) पासा (जुआ खेलने का साधन) इन ८ अर्थों में अक्ष का प्रयोग होता है॥ १॥

काकाख्यः काकमाची च काकोली काकणन्तिका। काकजङ्घा काकनासा काकोदुम्बरिकाऽपि च॥
सप्तस्वर्थेषु कथितः काकशब्दो विचक्षणैः॥ २॥

२ काक–(१) कौवा, (२) मकोय, (३) काकोली, (४) काक गुञ्जा, (५) काकजङ्घा, (६) काकनासा और (७) कठूमर इन सात अर्थों में काक शब्द का प्रयोग होता है॥ २॥

सर्पद्विरदमेषेषु सीसके नागकेसरे। नागवल्ल्यां नागदन्त्यां नागशब्दः प्रयुज्यते॥ ३॥

३ नाग–(१) साँप, (२) हाथी, (३) भेड़ा, (४) सीसा (धातु), (५) नागकेसर, (६) पान और (७) नागदन्ती (दन्तीभेद) इन ७ अर्थों में नाग शब्द का प्रयोग होता है॥ ३॥

मांसेद्रवे चेक्षुरसे पारदे मधुरादिषु। बोले[2] रागे विषे नीरे रसो नवसु वर्त्तते॥ ४॥

४–रसः–(१) मांस का रस, (२) द्रव पदार्थ, (३) ऊख का रस, (४) पारा, (५) मधुरादि ६ प्रकार के रस, (६) बोल, (७) राग (अनुराग), (८) विष और (९) जल इन ९ अर्थों में रस शब्द का प्रयोग होता है॥ ४॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे चतुर्विंशोऽनेकार्थवर्गःसमाप्तः॥२४॥

इति भावप्रकाशे पूर्वखण्डे प्रथमभागे द्रव्यगुणप्रकरणापरनामकं षष्ठं मिश्रप्रकरणं समाप्तम्॥ ६॥

समाप्तश्चायं निघण्टुभागः।

---

१. पृथ्वीका का पर्याय कारवी नहीं मिलता। पृथ्वीका, बृहदेला तथा हिंगुपत्री दोनों का पर्याय है किन्तु इनके कारवी पर्याय न होने से यहाँ दोनों में से कोई नहीं हो सकता। ध. नि. में कारवी का एक अन्य पर्याय कटुतुम्बी (त्रपुसविशेष) दिया है।

२. स्वादेति पाठा०।

निघण्टु परिशिष्ट १

१ अ०–अंजबार । ले०–Polygonum viviparum Linn. (Fam. Polygonaceae).

इसके पौधे कश्मीर से सिक्किम तक पाये जाते हैं। वास्तविक अंजबार संभवतः बाहर से आता है एवं यह उसका भारतीय प्रतिनिधि है। यह कषाय एवं रक्तस्तंभक है। सोजाक, प्रदर एवं व्रण में इसके क्वाथ से प्रक्षालन किया जाता है। रक्तपित्त एवं रक्तातिसार में इसका प्रयोग करते हैं।

२ हिं०–अंजीर । सं०–फल्गु । अं०–Fig. ले०–Ficus carica Linn. (Fam. Moraceae).

इसके मध्यम प्रमाण के वृक्ष बलूचिस्तान में होते हैं। उत्तर पश्चिम भारत तथा दक्षिण में इसको लगाते हैं। इसके अनेक प्रकार पाये जाते हैं। इसके सुखाये फलों को माला की तरह गूँथकर बेचते हैं। यह स्नेहन, विरेचक तथा पोषक है। ताजे हरे फल का दूध दाहक तथा स्फोटोत्पादक होता है। मात्रा २ से ४ फल।

३ हिं०–अंबर । सं०–अग्निजार, तुन्दामय (रा. नि.)। अं०–Ambergris.

ह्वेल मछली की आंतों में होने वाली यह रोगजन्य ग्रन्थि होती है जो मछली के मरने के बाद समुद्री किनारों पर तैरती हुई या शिकार के पश्चात् आंतों में पाई जाती है। रसेन्द्रचूणामणि (अ० ११) में अंबर को अग्निनक्र नामक समुद्र के प्राणी का जरायु बतलाया गया है। राजनिघण्टु में इसे 'तुन्दामय' (पेट का रोग) कहा गया है जिससे ऐसा मालूम होता है कि उस समय भी यह ज्ञान था कि यह पेट में होने वाली व्याधिरूप ग्रन्थि है। ताजी अवस्था में इसमें विष्ठा जैसी गंध होती है। यह बाहर से धूसर, श्याम, भीतर से कुछ श्वेत तथा सूक्ष्म दानेदार, हलका, हलकी मीठी गन्धयुक्त, भिदुर, एवं गरम करने से मोम जैसा पिघलता है तथा जल में अविलेय किन्तु उष्ण सुरासार, ईथर तथा तेल में विलेय होता है। यह उष्ण, कटु, त्रिदोषघ्न, वातघ्न, दीपन, पाचन, बल्य एवं वाजीकर होता है। इसका उपयोग धनुर्वात, पक्षाघात, नपुंसकता तथा शीतजन्य हृदय एवं मस्तिष्क के विकारों में करते हैं। मात्रा—१ से २ रत्ती।

४ हिं०–अगर-अगर । अं०–Agar-agar.

इसे जेलिडियम अमान्साइ (Gelidium amansii Kutz) तथा अन्य समुद्री काई (Algae) से बनाते हैं। यह कुछ पारभासक, चीमड़, वर्णहीन,

चमकीला, अरयरप गंधयुक्त एवं स्वाद में गोंद जैसा पदार्थ होता है जो विभिन्न स्वरूपों में बिकता है। यह शीत जल में फूल जाता है तथा उबलते जल में घुल जाता है किन्तु ठंडा होने पर फिर जेली की तरह जम जाता है। यह मल की मात्रा को बढ़ा कर मृदु विरेचक का काम करता है। सेवन के पश्चात् यह जलीय अंश को सोखकर फूल जाता है तथा आंत्र की पुरस्सरण गति को बढ़ाता है।

५ हिं०–अर्गट। अं०–Ergot. ले०–Claviceps purpurea Tulasne (Fam. Hypocreaceae)।

यह एक फफूंद है जो Secale cereale Linn. नामक पौधे के विकृत गर्भाशय पर उत्पन्न होता है। यह १ से ३ से. मी. लंबा, १ से ५ मि. मी. चौड़ा, दोनों तरफ नोकीला, गहरा बैंगनी या काला होता है तथा उसके प्रत्येक पृष्ठ पर लंबाई में एक धारी होती है। भीतर यह श्वेत या गुलाबीपन लिये होता है। इसकी गंध एवं स्वाद अप्रिय होता है।

गर्भाशय तथा परिसरीय धमनिकाओं पर इसका संकोचक प्रभाव पड़ता है इसलिये गर्भाशय संकोच को बढ़ाने के लिए या रक्तस्राव रोकने के लिए पाश्चात्य चिकित्सा में इसका तथा इसके सत्व का उपयोग किया जाता है।

६ सं०–अधःपुष्पी। हिं०–अन्धाहुली। ले० Trichodesma indicum R. Br. (Fam. Boraginaceae)। इसके पौधे सभी मैदानी भागों में होते हैं। नीले या श्वेत वर्ण के पुष्प खिलने पर नीचे की तरफ लटक जाते हैं जिससे इसे अधोपुष्पी कहते हैं।

यह शोथहर, मूत्रल एवं विषघ्न है। सन्धिशोथ एवं फोड़े आदि पर इसका मूल पीसकर लेप करते हैं। सर्पविष में मूल का उपयोग किया जाता है। अपरस में भी इसे उपयोगी मानते हैं।

७ हिं०–अनानास। अं०–Pineapple. ले०–Ananas comosus Merr. (Fam. Bromeliaceae).

ब्राझील का आदिवासी यह बहुवर्षायु पौधा अब आसाम, बंगाल तथा पश्चिमी किनारे पर लगाया हुआ पाया जाता है। इसमें छोटे काण्ड पर गुच्छाकार, लंबे एवं दन्तुर पत्तों का समूह निकला रहता है। फल बड़ा, खुरदरा तथा भीतर से पीले या हलके नारंगी रंग का रहता है। इसके अनेक प्रकार होते हैं। इसका फल खाया जाता है। यह कुछ मूत्रल एवं पाचक होता है। कच्चे फल का रस विरेचक, कृमिघ्न तथा गर्भपातक होता है।

८ अ०, फा०–अफसंतीन। अं०–Wormwood. ले०–Artemisia absinthium Linn. (Fam. Compositae).

यह सुगंधि तथा कड़वा क्षुप कश्मीर में ५-७ हजार फीट की ऊँचाई तक होता है। पुष्पवर्ग में दमनक का अरबी नाम अफसंतीन दिया गया है वह वास्तव में भारतीय अफसंतीन है, एवं यह विलायती अफसंतीन है। इसमें एक तेल होता है जो पाचन संस्थान के लिये उत्तेजक तथा बल्य होता है। अफसंतीन का उपयोग यकृत्शोथ, जीर्णज्वर, कृमि, आर्तवदोष एवं वातरोगों में करते हैं।

९ हिं०–अयापान। ले०–Eupatorium triplinerve Vahl. Syn. E. ayapana Vent. (Fam. Compositae).

यह अमेरिका का पौधा बागों में लगाया मिलता है। यह सुगन्ध युक्त एवं प्रसरणशील होता है। इसके पत्तों का उपयोग किया जाता है। पत्ते भालाकार, ऊपर से हरे, ३ शिराओं से युक्त, पतले एवं २-३ इंच लंबे तथा करीब ½ इंच चौड़े होते हैं।

अल्प मात्रा में, उत्तेजक तथा बल्य होने के कारण ज्वर पूर्व की शीतावस्था तथा नवीन शोथयुक्त अवस्थाओं में इसे देते हैं। इसका फांट स्वेदल है तथा अधिक मात्रा में वामक है। इसका स्वरस रक्तस्तंभक होता है जिसका आंतरिक एवं बाह्य प्रयोग किया जाता है।

१० सं०–अरण्यजीरक, सोमराजी। हिं०–करजीरी। ले०–Centratherum anthelminticum Kuntze (Fam. Compositae).

इसका वर्षायु पौधा समस्त भारत में पाया जाता है। इसके फल ⅙ इंच लंबे, १० धारीयुक्त, गहरे बादामी, श्वेताभ रोमावृत, शीर्ष पर सूक्ष्म भूरे रोमों से युक्त एवं स्वाद में कड़वे होते हैं।

यह सूत्रकृमि में लाभदायक होते हैं। अंकुशकृमि में इससे लाभ नहीं होता है।

११ सं०–आर्तगल। हिं०–करोनी, कुरथुवा। बंब०–शंकेश्वर। ले०–Xanthium strumarium Linn. (Fam. Compositae)

इसके क्षुप समस्त भारत में पाये जाते हैं। यह रूक्ष तथा कर्कश होते हैं। इसमें के स्त्री–मुण्डक (पुष्पव्यूह) एक कांटेदार, ०·५–१ इञ्च बड़े फल की तरह रचना बनाते हैं। इसके फलों का उपयोग आंख में रोहा होने पर अंजनादि के रूप में किया जाता है। इसकी पत्ती तथा मूल स्वेदल, लालास्राववर्धक, शामक, मूत्रल, एवं शोथघ्न होते हैं। जीर्णज्वर में इसके पत्तों का क्वाथ दिया जाता है। मसूरिका में जलन कम करने के लिये इसका उपयोग करते हैं। गंडमाला तथा पीड़ायुक्त ग्रंथियों पर फलों का लेप करते हैं। भावप्रकाश में नील सैरेयक को आर्तगल कहा गया है किन्तु श्री ठा. बलवन्तसिंहजी ने इसे आर्तगल माना है।

१२ सं०–आरुक। हिं–आड़ू। अं–Peach. ले–Prunus persica Batsch. (Fam. Rosaceae).

इसके लगाये वृक्ष हिमालय, निलगिरि, उत्तर भारत एवं मणीपूर में पाये जाते हैं। इसके फल जो खटमिट्ठे होते हैं खाये जाते हैं। इसके पुष्प विरेचक एवं मूत्रल हैं। इसका फल किंचित् उष्ण, बृंहण, किंचित् दोषकर तथा शीघ्र पचनेवाला होता है (च. सू. अ. २७)। इसके बीजों का तेल बालों में लगाते हैं।

ध० लि० ने आरुक की ४ जातियां मानी हैं जो कि आड़ू, आलुबुखारा, आलूबालू तथा आलूचा हो सकती हैं ऐसा श्री यादवजी ने लिखा है।

१३ आलूबोखारा। ले०–Prunus domestica Linn. (Fam. Rosaceae).

इसके फल काश्मीर तथा पंजाब में होते हैं। इनका स्वाद खटमिट्ठा होता है। इन्हें लोग खाते हैं। यह शीतल, मृदुसारक एवं पित्तप्रशमन हैं।

१४ हिं०–आलूचा। अं०–Plum. ले०–Prunus domestica Linn. var. insititia Bailey. (Fam. Rosaceae).

इसके वृक्ष हिमालय में पाये जाते हैं। यह आलुबुखारा का ही भेद है। इसके फल पीले, रक्ताभ एवं पकने पर मधुर रसदार होते हैं।

१५ हिं०–इपीकाक। अं०–Ipecacuanha। ले०–Cephaelis ipecacuanha (Brot.) A. Rich. (Fam. Rubiaceae)

ब्राजील में होनेवाले उपर्युक्त विदेशी पौधे की जड़ का पाश्चात्य चिकित्सा में प्रयोग होता है। पहले भारत में यह नहीं होता था। अपने यहां के अनेक पौधों विशेषरूप से अन्त्रमूल, काकनासा (Asclepias curassavica) को इसके समान गुणवाला बतलाया गया है, किन्तु प्रयोगों से अभी इनकी पुष्टि नहीं हुई है। इसकी उपज का प्रयत्न अपने यहां किया जा रहा है तथा अब प० बंगाल में यह बहुतायत से होता है।

यह कफनिःसारक, वामक एवं स्वेदजनन है। बाह्य प्रयोग से यह क्षोभक है। इसका सत्त्व एमेटीन आमातिसार के लिये बहुत प्रयोग में आता है।

१६ हिं०–इसबगोल। सं०–इषद्गोल। ले०–Plantago ovata Forsk. (Fam. Plantaginaceae).

इसके पौधे पंजाब, सिंध तथा फारस आदि में पाये जाते हैं। इसके विभिन्न भेदों के बीज तथा बीजों की भूसी का व्यवहार किया जाता है। बीज छोटे, नौकाकार, कठोर, पारभासक, कुछ गुलाबी एवं जल में भिगोने पर काफी लुआब युक्त हो जाते हैं।

जीर्ण अतिसार तथा विबंध में इसका उपयोग करते हैं। यह मल की मात्रा को बढ़ाकर विबंध में लाभ करते हैं। बीज कठोर होने के कारण इनको कुछ घंटे जल में भिगोकर उपयोग में लाना चाहिये नहीं तो इनसे कभी-कभी प्रक्षोभ होकर कष्ट बढ़

सकता है। कभी-कभी इनसे मार्गावरोध भी हो सकता है। यह दोष भूसी में नहीं रहता। भूसी में पिच्छिलता होने के कारण पाचन संस्थान के किसी भी क्षोभयुक्त विकार में इसे देते हैं। अतिसार, प्रवाहिका, शुष्क कास, ज्वर एवं तृषा आदि में भी इसका उपयोग किया जाता है। मात्रा–½ से १ तोला।

१७ उटंगन। ले०–Blepharis edulis Pers. (Fam. Acanthaceae).

इसके पौधे पंजाब, सिंध तथा बलूचिस्तान में पाये जाते हैं। बाजार में इसके बीज मिलते हैं जो चिपटे तथा रोमाच्छादित होते हैं। जल में भिगोने पर इनसे काफी लुआब निकलता है। यह प्रायः बाहर से आयातित होते हैं। अन्य औषधियों के साथ इनका उपयोग नपुंसकता आदि के लिये करते हैं।

१८ सं०–उत्तमारणी, इन्दीवरी, वृश्चिकाली ?। हिं०–उतरन। ले०–Pergularia extensa N. E. Br. Syn. Daemia extensa R. Br (Fam. Asclepiadaceae).

यह बहुवर्षायु, दुग्धयुक्त, रोमश, कुछ दुर्गंधयुक्त, चक्रारोही लता समस्त भारत में पाई जाती है। इसकी फलियां १·५–२ इंच लंबी, नोकदार एवं मुलायम कंटक सदृश रचनाओं से ढँकी होती हैं जिसके आधार पर इसे शास्त्रीय वृश्चिकाली होने की संभावना श्री ठा० बलवन्तसिंहजी ने व्यक्त की है। इसके पत्तों का स्वरस कफनिःसारक एवं वामक होता है। पत्तों के कल्क का लेप कार्बंकल फोड़े पर लाभदायक होता है। आमवात में मूलत्वक् को दुग्ध के साथ विरेचन के लिये देते हैं। इसमें के ग्लूकोसाइड का गर्भाशय पर पिट्यूटरीन के सदृश प्रभाव पड़ता है। यह अनैच्छिक मांसपेशियों एवं रक्तवह संस्थान को उत्तेजित करता है तथा इससे रक्त का दबाव बढ़ता है।

१९ सं०–उरुमाण। हिं०–जर्दालु, खुबानी, खुरमानी। अं०–Apricot. ले०–Prunus armeniaca Linn. (Fam. Rosaceae).

इसके मध्यम आकार के वृक्ष उत्तर पश्चिम भारत में विशेषकर ६ से ९ हजार फीट की ऊंचाई पर लगाये हुये पाये जाते हैं। इसके फल ताजे तथा सुखाये हुये खाये जाते हैं। इसके बीजों को बदाम की तरह खाते हैं। बदाम की तरह इसमें भी कड़ुवा भेद होता है। यह मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्ण, बृंहण, बल्य तथा त्रिदोषहर है (सु. सू. अ. ४६, च. सू. अ. २७)।

२० बं०, हिं०–उलटकंबल। सं०–पिशाचकार्पास ?, पीवरी ?, अं०–Devil's Cotton. ले०–Abroma augusta Linn. (Fam. Sterculiaceae).

इसकी विस्तार में फैलने वाली मृदुरोमश झाड़ी उत्तरप्रदेश, बंगाल एवं आसाम में पाई जाती है। इसके मूल की छाल का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। इसके रेशे का उपयोग रस्सी बनाने के लिये किया जाता है। मूल भूरे रंग का, लंबाई

में सिकुड़ा हुआ, बीच-बीच में दानेदार, गंधहीन, चीमड़ तथा स्वादहीन होता है। ताजी अवस्था में काटने पर इससे गाढ़ा गोंद निकलता है तथा सूखी छाल जल में डालने पर लसदार हो जाती है। यह गर्भाशय के लिये बल्य, आर्तवजनन एवं स्नेहन है। पीडितार्तव तथा अन्य गर्भाशय विकारों में इसका प्रयोग बंगाल की तरफ देखा जाता है।

मात्रा—गाढ़ा लसदार गोंद २ माशा।

२१ हिं०, अ०–उश(ष)क अं–Gum Ammoniac. ले०–Dorema ammoniacum D. Don. (Fam. Umbelliferae).

इसके क्षुप फारस में होते हैं। यह इसका निर्यास है जो कि कीड़े आदि के क्षत से अपने आप बाहर निकलकर जम जाता है या नीचे गिरा हुआ प्राप्त होता है। इसके टुकड़े ५–२५ मि. मी. व्यास के, अपारदर्शक, बाहर से पीताभ किन्तु अन्दर से श्वेत तथा तोड़ने पर चमकीले मोम जैसे दिखलाई देते हैं। इसमें एक विशेष गंध होती है तथा इसका स्वाद कुछ तीतापन लिये कड़वा होता है। जाड़े में यह कड़ा तथा भंगुर हो जाता है किन्तु गरमी में नरम होकर आपस में चिपक जाता है। श्री यादवजी, सुश्रुतोक्त ऊषक कोई क्षारविशेष मानते हैं। अति प्राचीनकाल से यह कफनिःसारक, उत्तेजक एवं उद्वेष्टननिरोधी रूप में व्यवहार में आरहा है। इसका उपयोग प्रतिश्याय, कास, श्वास तथा यकृत-प्लीहावृद्धि में करते हैं। शोथ आदि पर इसका बाह्य उपयोग भी किया जाता है। इसकी जड़ धूपन के लिये काम आती है।

मात्रा—३ से ७ रत्ती।

२२ हिं०–उस्त (स्तू) खुदूस। ले०–1. Lavandula stoechas Linn. (Fam. Compositae). 2. Prunella vulgaris Linn.; Syn. Brunella vulgaris Linn. (Fam. Labiatae).

उपर्युक्त दोनों ही पौधों को उस्तखुदूस नाम दिया हुआ मिलता है। इनमें से द्वितीय, हिमालय तथा दक्षिण के पर्वतों पर पाया जाता है तथा प्रथम भूमध्यसागरीय प्रदेश का आदिवासी है जो पश्चिम भारत में बागों में लगाया पाया जाता है। संभव है दोनों में कुछ गुण समान हों। वास्तव में यूनानी हकीम जिस द्रव्य का उपयोग करते हैं वह फारस की खाड़ी से आता है। इसको मेध्य, वातनाड़ीबल्य, कफहर, शोथहर एवं वातानुलोमक मानते हैं। इसका उपयोग मास्तिष्क दौर्बल्यजन्य रोग जैसे अपस्मार, विस्मृति, पक्षाघात आदि एवं प्रतिश्याय, कास, श्वास, आमवात, नाड़ीशूल एवं शोथ में करते हैं।

२३ हिं०–ऊटकटेरा। सं०–उत्कण्टक। ले०–Echinops echinatus Linn. (Fam. Compositae).

यह समस्त भारत में ५००० फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसका पौधा

रोमश १–३ फीट ऊँचा, अनेक शाखायुक्त एवं वर्षायु होता है। पत्ते ३ से ५ इञ्च लंबे, कांटेदार तथा अधरतल पर तूल रोमश होते हैं। पुष्पगुच्छ संयुक्त, श्वेत, गोल, २ इञ्च के घेरे में तथा कांटेदार होते हैं। यह तिक्त, पौष्टिक एवं मूत्रल होता है। इसका उपयोग कामला, कुपचन, स्वरभंग, गठिया तथा अपतंत्रक में किया जाता है।

२४ हिं०–ऊदसलीब मामेख। ले०–Paeonia officinalis Linn. (Fam. Ranunculaceae).

यह दक्षिण युरोप तथा पश्चिम एशिया में होता है तथा इसका मूल बाहर से आता है। इसका भारतीय प्रतिनिधि P. emodi Wall. पश्चिम हिमालय में कश्मीर से कुमाऊँ तक ५ से १० हजार फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। ऊदसलीब की जड़ १ से २ इंच लंबी, $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ इञ्च मोटी, बीच में मोटी तथा दोनों तरफ पतली, बाहर से भूरी, भीतर पिष्टमय सफेद एवं कुछ तीती होती है। यह आर्तव प्रवर्तक एवं वातनाडियों के लिये बल्य है। गर्भाशय विकार, अपस्मार अपतंत्रक आदि वातरोग, उदरशूल, पित्तावरोध एवं जलोदर में इसका चूर्ण दिया जाता है। बच्चों को रक्तशोधनार्थ इसे देते हैं। इसके बीज विरेचक एवं वामक होते हैं। इसके फूलों का फांट अतिसार में लाभदायक है।

मात्रा—१ से ३ माशा।

२५ हिं०–कतीरा, कताद। अं०–Tragacanth Gum. ले०–Astragalus gummifer Labill. & other sp. of Astragalus. (Fam. Leguminosae)

इसकी छोटी, अनेक शाखायुक्त तथा कांटेदार झाड़ियाँ करीब १ मीटर ऊँची होती हैं जो दक्षिण तथा पूर्वी युरोप की आदिवासी हैं। यद्यपि भारत में अॅस्ट्रॅगॅलस की अनेक जातियां (स्पीसीज) होती हैं तथापि कतीरा गोंद प्राप्त किया जा सकता है ऐसी A. strobiliferus Royle है जो ऊपरी कुर्रम तथा चित्राल में पाई गई है। इसमें चीरा लगाने की विधि के अनुसार गोंद की लंबी पट्टियां या छोटे टुकड़े प्राप्त होते हैं। फारस से आनेवाला कतीरा सबसे अच्छा होता है। दूसरा स्मिर्ना से आता है वह उतना अच्छा नहीं होता। फारसी कतीरा की पट्टियां ३ से० मी० लंबी, १ से० मी० चौड़ी, एवं २ मि० मी० मोटी, कुछ पारभासक, गंधहीन एवं प्रायः स्वादहीन होती हैं। जल में भिगोने पर यह काफी फूल जाता है। व्यापारी कतीरा कई प्रकार का होता है। जो अच्छा होता है उसका उपयोग औषधि निर्माण एवं सौंदर्य प्रसाधन आदि में किया जाता है तथा हीन श्रेणी का वस्त्रोद्योग में काम आता है।

भारतीय कतीरा (Sterculia gum, Karaya gum). यह ले०–Sterculia urens Roxburgh (Fam. Sterculiaceae); हिं०–कुल्लू, गुलू तथा

इसकी अन्य जातियों से प्राप्त होता है जो अनेक स्थानों पर होते हैं। कुल्लू के बड़े वृक्ष होते हैं। इसकी छाल सफेद तथा कागज की तरह छूटनेवाली होती है तथा पत्ते ५ खण्ड युक्त एवं पुष्प लाल-भूरे होते हैं। इसका गोंद विभिन्न आकार के टुकड़ों में होता है जो श्वेताभ, हलका भूरा या कुछ गुलाबीपन लिये होता है। इसपर छाल के छोटे टुकड़े लगे रहते हैं। इसमें सिरके जैसी कुछ गंध होती है तथा स्टार्च के कण नहीं होते जो वास्तविक कतीरा में होते हैं।

एक अन्य वृक्ष-सं०-गलगल; हि०-कुंबी, पीलीकपास; अं०-Yellow cotton tree; ले०-Cochlospermum religiosum (Linn.) Alston (Fam. Cochlospermaceae) भारत में अनेक स्थानों पर पाया जाता है। इसके गोंद को हॉगगम (Hoggum) या कतीरा-हिन्दी (Katira gum) कहते हैं। इसका छोटा या मध्यम आकार का वृक्ष होता है। इसका काष्ठ बहुत मुलायम, पत्ते ५ खण्डयुक्त, पुष्प बड़े चमकीले पीत तथा फल के अन्दर के बीज पीले रंग की रेशम जैसी रूई से ढँके रहते हैं। इसका गोंद हलके पीताभ श्वेत रंग का, कुछ पारभासक, आवेष्ठन में धारीदार एवं तोडने पर चिपटे शल्कों में टूटता है। इसे भारतीय कतीरा या वास्तविक कतीरा के स्थान पर उपयोग में लाते हैं।

कतीरा—शीतल, पिच्छिल, दाहशामक, रक्तस्तम्भक एवं मृदुसारक होता है। इसका उपयोग कास, गले के विकार, रक्तप्रदर एवं बस्तिक्षोभ में करते हैं।

२६ हिं०-कॅस्कॅरा। Cascara Sagrada. ले०-Rhamnus purshiana Dc. (Fam. Rhamnaceae).

अमेरिका तथा केनिया में होने वाले इस वृक्ष की छाल का उपयोग मृदुविरेचक के रूप में किया जाता है। वृक्ष से छुड़ाने के बाद इस छाल को कम से कम एक वर्ष तक रख दिया जाता है तब इसको उपयोग में लाते हैं। पतली छाल अधिक अच्छी मानी जाती है। इस पर बाहर से रजताभ धूसर काई आदि लगी रहती है। इसका वर्ण गहरा बैंगनीपन लिये भूरा होता है। इसका स्वाद कड़वा तथा इसमें हलकी गंध होती है।

२७ हिं०-कॉफी। अं०-Coffee. ले०-Coffea arabica Linn. (Fam. Rubiaceae).

इस सुप्रसिद्ध पेय के बीज एक झाड़ी या छोटे वृक्ष से प्राप्त होते हैं जिसकी खेती दक्षिण में की जाती है। इसके कई अन्य भेदोपभेद होते हैं। कुछ वन्य जातियाँ भी हिमालय तथा दक्षिण में पाई गई हैं। उपर्युक्त जाति अबसीनिया से अरबों द्वारा आयी हुई मानते हैं। काफी के बीजों को भूनकर, बुकनी कर जल में उबालकर पेय बनाते हैं जो उत्तेजक तथा मूत्रल होता है। कुछ अन्य बीजों को इसमें मिलावट के लिये या इसके प्रतिनिधि रूप में व्यवहार में लाया जाता है।

२८ हिं०-कायपुटी। काजुपुट। अं०-Cajuput Tree. ले०-Melaleuca leucadendron Linn. (Fam. Myrtaceae).

यह आस्ट्रेलिया का आदिवासी वृक्ष अब भारत के बगीचों में भी लगाया हुआ मिलता है। इसका वृक्ष मध्यम आकार का होता है। इसकी छाल सफेद, मुलायम एवं पपड़ियों में छूटती है। इसके पत्ते आयताकार-दीर्घवृत्ताकार तथा तैलीय ग्रन्थियों के धब्बों से युक्त, पुष्प छोटे, श्वेताभ मंजरी में तथा फल गोल एवं कड़े होते हैं। इसके पत्तों से एक सुगंधि तैल प्राप्त किया जाता है। यह रंगहीन या कुछ पीताभ, स्वाद में कड़वा एवं कर्पूरवत् गंध युक्त होता है। अधिकतर यह फ्रांस तथा नेदरलैण्ड से आता है। इसका तेल वातानुलोमक, कफनिःसारक एवं प्रतिक्षोभक है। इसका बाह्य प्रयोग सन्धिशोथादि में, दन्तशूल में तथा मच्छर आदि भगाने के लिये करते हैं। कास, स्वरभंग तथा आध्मान में इसका आन्तरिक प्रयोग चीनी में मिलाकर करते हैं।

२९ हिं०-कासनी ग्राम्य। अं०-Garden Endive. ले०-Cichorium endivia Linn. (Fam. Compositae).

इसके पौधे सभी स्थानों पर लगाये पाये जाते हैं जिनमें से चौड़ी तथा मुड़ी हुई पत्तीवाला प्रकार अच्छा माना जाता है। यह पित्तशामक एवं शोथहर होता है। इसकी जड़ ज्वर, आर्तवविकार तथा कुपचन में दी जाती है। इसके फल पैत्तिकविकार, ज्वर, शिरःशूल तथा कामला में दिये जाते हैं। बीजों का शरबत मूत्रकृच्छ्र में देते हैं।

३० हिं०-कासनी वन्य। अं०-Chicory, Wild Endive. ले०-Cichorium intybus Linn. (Fam. Compositae).

इसके पौधे पंजाब, उ० प० सीमांतप्रदेश तथा हैदराबाद में पाये जाते हैं। बंबई में इसे लगाते भी हैं। इसका उपयोग ज्वर, वमन, विरेचन तथा प्लीहावृद्धि में करते हैं। इसके बीज मूत्रकृच्छ्र में दिये जाते हैं। इसके मूल का उपयोग काफी में मिश्रण के लिए किया जाता है।

३१ हिं०-काहू—यह बागी तथा वन्य दो प्रकार का होता है।

१ बागी सलाद। अं०-Garden Lettuce; ले०-Lactuca sativa Linn. (Fam. Compositae).

२ वन्य काहू। अं०-Prickly Lettuce; ले०-Lactuca serriola Linn. (Fam. Compositae).

बागी सलाद की खेती सब स्थानों पर करते हैं, जिसके पत्तों का उपयोग सलाद के रूप में किया जाता है। इसके अनेक भेदोपभेद पाये जाते हैं। इसमें अनेक विटामिन तथा खनिज होने के कारण इसकी गणना पोषक सागों में की जाती है।

वन्यकाहू के पौधे हिमालय में ६ से १२ हजार फीट की ऊंचाई तक पाये जाते हैं। इसके पत्र खण्डित एवं कंटकित होते हैं। बीज धूसर, आयताकार, १ से० मी० लंबे तथा १–२ मि० मी० चौड़े होते हैं। इस पौधे से, पत्तों की अपेक्षा बीजों का अधिक संग्रह किया जाता है।

बीजों का चूर्ण कास में तथा क्वाथ अनिद्रा में देते हैं। निद्रानाश तथा पित्तज शिरः शूल में इनका लेप लाभदायक है। इन्द्रलुप्त या बालों को गिरने से रोकने के लिये इसको कूठ के साथ पीसकर लेप करते हैं। बीजों के सेवन से कामवासना की कमी तथा शुक्र में गाढ़ापन होता है। बीजों का तेल भी निद्राजनन, ज्वरहर तथा बालों के लिये हितकर माना जाता है।

इन पौधों में दुग्ध होता है जिसे संग्रह किया जाता है। इसे काहू की अफीम कहते हैं। वन्य पौधे से प्राप्त काहू की अफीम अधिक अच्छी होती है। पाश्चात्यवैद्यक में प्रयुक्त काहू की अफीम (Lactucarium) प्रायः L. virosa Linn. से प्राप्त की जाती है जो विदेश से आती है। इसके छोटे २-टुकड़े, बाहर से धूसराभ या हलके ललाई लिये भूरे रंग के किन्तु अन्दर से हलके भूरे रंग के, कुछ सुषिर, कड़वे एवं अफीम जैसी गंध से युक्त होते हैं। यह मूत्रल, शामक एवं निद्राजनन मानी जाती है। इसका उपयोग अनिद्रा, कास, श्वास तथा ज्वरजन्य प्रलाप में किया जाता है।

३२ हिं०–कुंगकु। अं०–Euonymus. ले०–Euonymus tingens Wall. (Fam. Celastraceae).

इसका छोटा वृक्ष हिमालय में ६५००–१०,००० फीट की ऊँचाई तक सतलज से नेपाल तक पाया जाता है। इसकी छाल नेत्र रोगों में लाभदायक मानी जाती है। जीर्ण विबंध तथा कुपचन में इसको देते हैं। वास्तविक यूनिमस जो कि E. atropurpureus Jacq की छाल है एवं जो उ० अमेरीका से आती है, उसका यह भारतीय प्रतिनिधि है। यूनिमस का उपयोग पित्तविरेचक रूप में किया जाता है। इसके भीतर की छाल जो पीतवर्ण होती है उसका नेपाल में टीका की तरह उपयोग करते हैं।

३३ सं०–कृष्णबीज । हिं०–कालादाना । ले०–Ipomoea hederacea Jacq. (Fam. Convolvulaceae).

इसकी लोमयुक्त, लपेटकर चढ़नेवाली लताएँ होती हैं जिनके काण्ड पर पीछे की ओ मुड़े हुए घने लंबे लोम होते हैं। यह समस्त भारत में होती है। पत्ते सवृन्त, लोमश, लट्वाकार हृद्वत् , ३ से ५ इंच लंबे, त्रिखण्डित एवं पुष्प भड़कदार नीले या गुलाबी रंग के होते हैं। इसके बीजों का उपयोग किया जाता है। यह ५·५ मि० मी० लंबे, ३·७ मि० मी० चौड़े, काले एवं चिकने होते हैं। १००

बीजों का वजन करीब ३ से ४ माशा होता है। इसका स्वाद प्रारम्भ में मधुराम किन्तु बाद में चरपरा होता है। इसका चूर्ण अच्छा विरेचक है। जलापा का यह अच्छा प्रतिनिधि है।

कौडेना (I. muricata Jacq.) के बीज जो कुछ बादामी, ८·५ मि० मी० लंबे एवं ६ मि० मी० चौड़े होते हैं, इसके प्रतिनिधि रूप में उपयोग में आते हैं।

मात्रा—२ से ३ माशा।

३४ हिं०–कोकेन। अं०–Coca, Cocaine plant. ले०–Erythroxylum coca Lam. (Fam. Erythroxylaceae).

इसकी झाड़ी या छोटे वृक्ष होते हैं जिसकी खेती जावा तथा ईस्टइण्डोज तथा वेस्टइण्डोज में की जाती है। इसके पत्ते अंडाकार तथा गहरे हरे रंग के, पुष्प पीताभ श्वेत एवं फल छोटे, कड़े तथा गहरेलाल रंग के होते हैं। भारतवर्ष में इसकी कृषि का प्रयत्न सफल नहीं हुआ है एवं इसके व्यापार पर सरकारी नियंत्रण है। इसकी पत्तियां स्वाद में कड़वी होती हैं तथा इसके सेवन से उत्तेजना होती है तथा आह्लाद मालूम पड़ता है। इसको पत्तियों से कोकेन नामक क्षाराभ प्राप्त किया जाता है जिसका उपयोग स्थानिक स्वापजनन के लिये किया जाता है।

३५ सं०–कोश। हिं०-रेशम का कोया, आबरेशम । अं०–Silk pod, Cocoons.

यह रेशम के कृमि के द्वारा बनाया हुआ एक प्रकार का कीटगृह है। रेशम के कीड़े अधिकतर शहतूत के पत्तों पर पाले जाते हैं। ये कीड़े अपने मुँह से एक प्रकार का तार निकाल कर अपने ही ऊपर लपेट कर यह कीटगृह बनाते हैं जिसके अन्दर स्वतः मर जाते हैं। कभी-कभी ये बाहर भी निकल जाते हैं लेकिन तब वह कोश अच्छा नहीं होता। यह कोश पीताभ श्वेत एवं अण्डाकार होता है। इसे कैंची से कतरकर, कीड़े को निकालकर फिर चूर्ण करके व्यवहार में लाते हैं। यह उष्ण, रूक्ष, मस्तिष्कादि उत्तमांगों को बल देने वाला, वर्ण्य एवं कफनिःसारक है। इसकी भस्म लेखन तथा व्रणरोपण है एवं नेत्ररोग तथा सद्योव्रण पर इसे लगाते हैं।

३६ फा०–खत्मी। हिं०–गुलखैरो। ले०–Althaea officinalis Linn. (Fam. Malvaceae).

यह बहुवर्षायु क्षुप पंजाब, कश्मीर तथा यूरोप में भी पाया जाता है। बगीचों में लगाये हुये हॉलीहाक (Hollyhock), जो ले०-A. rosea Cav. है, की तरह यह दिखलाई देता है। इसके मूल अनेक, ३० से० मी० तक लंबे, श्वेत, रेशेदार एवं हलकी गंधयुक्त तथा स्वाद में मधुर एवं लुआबदार होते हैं। इन्हें रेशाखत्मी कहते हैं। इसके फलों को गुलखेरू एवं बीजों को तुख्मखत्मी कहते हैं। इसकी

अच्छ स्नेहन होती है। इसे प्रतिश्याय, खांसी एवं अतिसारादि में देते हैं। इसके बीज एवं पत्तों को शोथपर बांधते हैं। मात्रा ५ से ७ माशा।

३७ अ०-खुब्बाजी। अं०-Mallow Leaves, Malvae Folia ले०-Malva sylvestris Linn. (Fam. Malvaceae).

इसका सीधा पौधा कश्मीर से कुमाऊँ तक तथा बिहार, दक्खन एवं बागों में लगाया मिलता है। इसके पत्ते ३ से ७ खण्ड वाले, लंबे वृन्तयुक्त, पुष्प बैंगनी रंग के, फल चिकने एवं बीज वृक्काकार होते हैं। इसके पत्तों का साग खाते हैं। इसमें काफी पिच्छिल पदार्थ होता है। यह स्नेहन, शीतल एवं प्रतिदूषक है। कास तथा अन्य फुप्फुस रोगों में तथा बस्तिदाह आदि में इसका उपयोग करते हैं। इसके पुष्प एवं अपक्व फल कुकास में दिये जाते हैं। फोड़े आदि पर इसका बाह्य लेप किया जाता है।

इसके अन्य भेद M. rotundifolia Linn. को भी खुब्बाजी कहा जाता है। इसे कुछ लोग सुवर्चला (पृ० ४६४) मानते हैं। इसके पौधे सिमला, कुमाऊँ, उत्तरप्रदेश के मैदानी भाग तथा दक्षिण में पाये जाते हैं। इसका उपयोग मधुमेह, आमाशय विकार तथा आर्तव प्रवर्तक रूप में करते हैं। इसका उपयोग स्वेदन के लिये तथा पोल्टिस के रूप में भी किया जाता है। अन्य प्रयोग खुब्बाजी की तरह हैं।

३८ हिं०-खूनखराबा, हीरादोखी। सं०-रक्तनिर्यास। अं०-Dragon's blood. ले०-Daemonorops draco Blume and other sp. (Fam. Palmae).

बेंत की तरह इसकी आरोही एवं काँटेदार लताएँ सुमात्रा, बोर्निओ एवं पेनांग में होती हैं। इसके फलों पर एक तरह की राल रहती है जिसे बोरे आदि से रगड़ कर निकालते हैं तथा बाद में धूप या बाष्प से विभिन्न आकार के टुकड़ों में बनाते हैं। यह गहरा लाल, चबाने पर किरकिरा तथा गंध एवं स्वादहीन होता है। शुद्ध रूप में यह पूर्ण रूप से सुरासार में विलेय होता है। बाजार के द्रव्य में २०-४० % अन्य मिलावट पाई जाती है। दूसरे भी वृक्षों के निर्यास का इसमें मिश्रण होता है। वार्निश, रंग एवं दन्त मंजनों में इसका उपयोग करते हैं। इसका रक्तातिसार, प्रवाहिका एवं नेत्र रोगों में उपयोग करते हैं। मात्रा १ से १॥ माशा।

३९ हिं०-खूबकलां, खाकसी (र)। ले०-Sisymbrium irio Linn. (Fam. Cruciferae).

इसके पौधे उत्तर भारत, राजपुताना, पंजाब, पेशावर, बलुचिस्तान तथा कोहाट में होते हैं। फारस से बीजों का आयात होता है। इसके बीज अत्यन्त छोटे, ललाई लिये पीले तथा लंबगोल होते हैं। जल में डालने पर यह लुआबदार हो जाते हैं तथा इनका स्वाद राई की तरह तीक्ष्ण होता है। यह पौष्टिक एवं उत्तम कफ निःसारक हैं। कफज्वर, श्वास, स्वर भंग तथा अन्य कफविकारों में इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है। सूजन पर इसका पुल्टिस बांधते हैं।

४० हिं०-गर्जन। सं०-अश्वकर्ण। ले०-Dipterocarpus alatus Roxb. and other sp. (Fam. Dipterocarpaceae).

इसके ऊंचे वृक्ष आसाम तथा अंडमान के जंगलों में होते हैं। इसके कई अन्य भेद पाये जाते हैं। इससे एक प्रकार का राळीय तेल प्राप्त होता है। सुजाक में गर्जन का तेल लाभदायक होता है। इसकी क्रिया कोपैबा की तरह होती है। इसका बाह्य प्रयोग व्रण में करते हैं।

४१ अ० गार, हब्बुलगार। अं०-Sweet Bay, True Laurel Bay, Berries। ले०-Laurus nobilis Linn. (Fam. Lauraceae).

इस सुगंधित पत्तों वाले, छोटे वृक्ष को युरोप तथा अमेरिका में सौंदर्य के लिये लगाते हैं। अपने यहां भी इसे लगाने का प्रयत्न किया गया है। इसके फल बाहर से आते हैं यह अंडाकार, १५ मि. मी. लंबे, १० मि. मी. चौड़े, काले, कुछ झुर्रीदार तथा एक बीज युक्त होते हैं। इनका स्वाद कडवा तथा इनमें विशेष गंध होती है। इसके पत्ते तथा फल सुगन्धि, उत्तेजक तथा मादक होते हैं एवं इनका पहले हिस्टीरिया, अनार्तव तथा उदर शूल में प्रयोग किया जाता था लेकिन अब आंतरिक प्रयोग कम किया जाता है। इसके तेल का बाह्य प्रयोग मोच, मरोड तथा पशु चिकित्सा में किया जाता है। पत्तों का उपयोग सुगन्धि के लिये मसाले के रूप में किया जाता है। यूनानी चिकित्सक इसका कफज एवं वातिक विकारों में तथा मूत्र रोगों में उपयोग करते हैं।

४२. सं०-गिरिपर्पट, वनवृन्ताक। हिं०-पाप्रा, पाप्री, बनककडी। अं०-Indian Podophyllum। ले०-Podophyllum hexandrum Royle; Syn. P. emodi Wall. (Fam. Berberidaceae).

इसके पौधे हिमालय में सिक्किम से हजारा तक, ९ से १४ हजार फीट की ऊँचाई तक तथा काश्मीर में ६ हजार फीट तक पाये जाते हैं। इसके मूल तथा रेजिन का उपयोग किया जाता है। मूल के टुकड़े कुछ गोल या चिपटे, गांठदार, पीताभ धूसर या मटमैले, २-४ से. मी. लंबे तथा १-२ से. मी. मोटे, भीतर से हलके रंग के, स्वाद में कटुतिक्त तथा हलकी गंध युक्त होते हैं। यह विदेशी पौधे P. peltatum Linn. का अच्छा प्रतिनिधि है। इसमें पोडोफाइलीन (Podophyllin) नामक रेजिन अधिक होता है। यह रेजिन पित्त विरेचक होता है। इसकी क्रिया अत्यन्त उग्र किन्तु धीरे-धीरे होती है। अन्य वातानुलोमक द्रव्यों के साथ इसकी गोली जीर्ण विबन्ध में दी जाती है। आंखों के लिये यह अत्यन्त प्रक्षोभक होने से इसको सावधानी से उपयोग में लाना चाहिये। मात्रा—रेजिन १ से २ रत्ती।

४३ हिं०-गुलब्बास। अं०-Four O' clock Plant. ले०-Mirabilis jalapa Linn. (Fam. Nyctaginaceae).

इसकी वर्षायु झाड़ी होती है जो बागों में सौन्दर्य के लिये लगाते हैं। इसमें कुप्पी के आकार के, सुगन्धित, श्वेत, पीत, बैंगनी, लाल आदि रंगों के फूल आते हैं जो दोपहर के बाद खिलते हैं तथा सुबह मुकुलित हो जाते हैं। इसकी गांठदार जड़ों को गलती से जलापा के स्थान पर प्रयोग किया जाता रहा जो वास्तव में भिन्न है। इसमें भी अल्प विरेचक गुण होता है। इसके बीजों को काली मिर्च में मिलावट के लिये उपयोग में लाते हैं।

४४ हिं०-गेंदा। सं०-झण्डु। ले०-Tagetes erecta Linn. (Fam. Compositae).

इसे फूलों के लिए बागों में लगाते हैं। यह कटु, कषाय है और ज्वर एवं मूत्रग्रह का नाश करने वाला है (रा० नि०)। इसके फूलों का रस रक्तार्श में देते हैं। इसके पत्तों को शोथ पर लगाते हैं तथा इनका स्वरस कर्णशूल में डाला जाता है। पुष्पों का नेत्र विकार तथा व्रण में बाह्य उपयोग करते हैं।

४५ सं०-गोरक्षी, गोरक्षचिंचा, शीतफल, रावणाम्लिका। हिं०-गोरखइमली। ले०-Adansonia digitata Linn. (Fam. Bombacaceae).

अफ्रीका का आदिवासी यह वृक्ष उत्तरप्रदेश, बिहार, बंबई तथा मद्रास में लगाया हुआ मिलता है। इसका वृक्ष नीचे से मोटा (३० फीट) एवं शंक्वाकार होता है। फल लौकी की तरह ९ से १२ इंच लंबे, ४ इंच व्यास के तथा कठोर कवच वाले होते हैं। इसका गूदा खट्टा होता है एवं बीज चमकीले वृक्काकार होते हैं। अत्यधिक स्वेद तथा ज्वर निवारण के लिये अफ्रीकी, इसके पत्तों का उपयोग करते हैं। फल का भी उपयोग ज्वर तथा प्रवाहिका में करते हैं। यह शीतवीर्य है तथा दाह, पित्त, वमन, अतिसार एवं विषम ज्वरों में लाभदायक है।

४६ म०-चांदकुड़ा। सं०-वल्कलवृक्ष। अं०-The Upas Tree. ले०-Antiaris toxicaria Lesch. (Fam. Moracae

इसके विशाल वृक्ष पश्चिम घाट के जंगलों में पाये जाते हैं। इसके काण्ड को क्षत करने से एक प्रकार का दुग्ध निकलता है जो बाद में जमकर गहरे बादामी रंग का हो जाता है। अल्प मात्रा में यह रक्तवह संस्थान को उत्तेजित करता है किन्तु अधिक मात्रा से हृदय पर इसका विषैला परिणाम होता है। कोंकण में इसके बीज का उपयोग ज्वर, उदरशूल एवं आमातिसार में करते हैं।

४७ हिं०-चाय। अं०-The tea plant. ले०-Camellia sinensis (Linn.) O. Kuntze (Fam. Theaceae; Ternstroemiaceae).

इस वृक्ष या झाड़ी की खेती आसाम, बंगाल, दक्षिण, उत्तर तथा अन्य पहाड़ी स्थानों पर की जाती है। कुछ इसे आसाम का आदिवासी मानते हैं तथा कुछ दक्षिण यूनान तथा इण्डोचीन के ऊपरी भाग का मानते हैं लेकिन इसका पेय के रूप में प्रचार चीन से प्रारम्भ हुआ है। इसके पत्ती को उबालकर प्रसिद्ध पेय बनता है जो कषाय, उत्तेजक तथा मूत्रल होता है।

४८ हिं०-चिलगोजा। सं०-निकोचक। ले०-Pinus gerardiana Wall. (Fam. Pinaceae).

इसके वृक्ष उत्तर पश्चिम हिमालय में ५८०० से १२००० फीट की ऊँचाई तक तथा बलूचिस्तान में पाये जाते हैं। इसका फल करीब १ इंच लम्बा, गोल, एक तरफ से कुछ चिपटा और भूरे रंग का होता है। ऊपर का छिलका पतला और दबाने से टूट जाता है जिसके अन्दर स्वादिष्ट मज्जा होती है। इसकी मज्जा स्निग्ध, गुरु, उष्ण, वातहर, पित्तवर्धक, बल्य, वृष्य एवं बृंहण है।

४९ सं०-चौहार, कीटमारी यवानी। हिं०-किरमानी अजवायन। अं०-Worm seed; Santonica. ले०-Artemisia maritima Linn. (Fam. Compositae).

इसकी छोटी झाड़ी प० हिमालय में कश्मीर से कुमाऊँ तक ७ से ९ हजार फीट की ऊँचाई तक पाई जाती है। यही भारतीय जाति है जिसमें Santonin पाया जाता है, जो केंचुवे की बिमारी में बहुत उपयोगी है।

५० हिं०-जलधनियां, देवकांडर, प्लेग की बूटी। सं०-काण्डीर (ध. नि.)। ले०-Ranunculus sceleratus Linn. (Fam. Ranunculaceae).

धनियां की तरह कटी पत्तीवाला यह क्षुप शीतकाल में नदी नालों के समीप पाया जाता है जिसमें फल पिप्पली के समान होने से इसे कुछ जल पिप्पली मानते हैं जो वास्तव में भिन्न द्रव्य है। यह उष्ण, स्फोटोत्पादक आर्तवजनन एवं पाचक है। इसको प्लेग की गांठों पर लगाते हैं तथा खिलाते हैं। पारद तथा अन्य धातुओं के मारण में इसका उपयोग करते हैं। (बिहार की वनस्पतियां, पृ० १, ठा० बलवन्त सिंह; सचित्र आयुर्वेद नवम्बर १९४९, श्री पं० भगीरथस्वामी)।

५१ हिं०-जलापा। अं०-Jalap Radix। ले०-Exogonium purga Benth. (Fam. Convolvulaceae).

इसकी बहुवर्षायु लता होती है जो मेक्सिकन एण्डिस की आदिवासी है। यद्यपि निलगिरी तथा पूना में इसको उगाने का प्रयत्न सफल कर रहा है तथा गंगा के ऊपरी पठारों के बगीचों में भी लगाई मिलती है तथापि उपयोग के लिये यह बाहर से मँगाई जाती है। इस लता के भौमिक काण्ड के पर्वों से कन्दवत् मूल निकलते हैं जिनका जलापा नाम से व्यवहार होता है। यह ४-१५ से. मी. लंबे, १० से. मी.

तक व्यास में, गहरे भूरे रंग के, टकुली के आकार के या कुछ चौपहल या कुछ नाशपाती के आकार के होते हैं। इनके आधे हिस्से में छोटे २ आड़े निशान होते हैं तथा दूसरे में लम्बाई में धारियां होती हैं। इनमें धूएँ जैसी गंध आती है। इनका स्वाद प्रारम्भ में मधुराभ किन्तु बाद में तीता होता है। इसका उपयोग तीव्र विरेचन के लिये करते हैं जिससे पानी जैसे पतले दस्त होते हैं।

गुलब्बास की जड़ को भी कहीं-कहीं गलती से जलापा कहा जाता है जिसमें की अल्प विरेचक गुण पाया जाता है। त्रिवृत् का उपयोग जलापा के स्थान पर किया जा सकता है जो अधिक उपयोगी है।

५२ हिं०–जहरमार। लै०–Phaseolus lunatus Linn. a variety.

जहरमार नाम से सफेद धारी युक्त काले रंग के बीज मिलते हैं जिनका बाह्य लेप शोथ में लाभदायक होता है। इसकी द्विवर्षायु बड़ी लता होती है जो देखने में सेम जैसी होती है किन्तु इसके पुष्प की आभ्यन्तर रचना में अन्तर होता है।

५३ हिं०–जहरमोहरा। सं०–नागपाषाण। अं०–Serpentine.

यह एक खनिज पत्थर है जो चीन, खता, तिब्बत, खुरासान तथा मध्य भारत में पाया जाता है। यह अनेक रंगों का होता है किन्तु जो पीताभ हरितवर्ण का होता है वह श्रेष्ठतर माना जाता है। यह खता पर्वतमाला से प्राप्त होने के कारण इसे जहरमोहरा खताई कहते हैं। यह मेध्य, हृद्य तथा विषघ्न है। विषों के दुष्प्रभाव को दूर करने के लिये यूनानी चिकित्सा में यह सर्वोत्तम माना जाता है। हृदय की धड़कन में इसकी पिष्टी देते हैं। दंशविषों पर इसका लेप भी किया जाता है।

५४ अ., फा–जूफा। अं०–Hyssop. लै०–Hyssopus officinalis Linn. (Fam. Labiatae).

यह बहुवर्षायु सुगंधि पौधा हिमालय में काश्मीर से कुमाऊं तक ८ से ११ हजार फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है। इसमें पत्र रेखाकार–आयताकार, फूल नीलापन लिये बैंगनी एवं गहरे बादामी रंग के बीज होते हैं। इसका स्वाद कडवापन लिये कटु होता है। झूफा यबिस नाम से सीरिया एवं इरान से आयात होनेवाला द्रव्य गुणों में इसी के सदृश होता है। कुछ विद्वान् दोनों एक ही मानते हैं तथा कुछ भिन्न मानते हैं। यह कफनिःसारक, वातानुलोमक, शोथहर एवं कृमिघ्न है। इसका उपयोग प्रतिश्याय, कास, श्वास, कफज्वर, पाचन के विकार तथा कृमि में करते हैं। सलाद, सूप आदि को सुगन्धित करने के लिये भी इसका उपयोग करते हैं। मात्रा ३ से ६ माशा।

५५ अ०–जैतून का तेल। अं०–Olive oil. लै०–Olea europoea Linn. (Fam. Oleaceae).

इसके छोटे वृक्ष अमेरिका, आस्ट्रेलिया, भूमध्यसागरीय प्रदेश एवं बलूचिस्तान में पाये जाते हैं। इसके पके फलों से एक तेल प्राप्त होता है जो शुद्ध रूप में हलके पीले या हरिताभ पीले रंग का, हलकी गंध युक्त एवं स्वादहीन होता है। यह पोषक एवं मृदुसारक होता है। इसका बाह्य प्रयोग स्नेहन के लिये किया जाता है।

५६ अं०–डिजिटेलिस। लै०–Digitalis purpurea Linn. & D. lanata Ehrh. (Fam. Scrophulariaceae).

इन पौधों की खेती हिमालय में, विशेष रूप से कश्मीर में की जाती है। पाश्चात्य चिकित्सा में इसके पत्तों का हृदय रोग में बहुत प्रयोग किया जाता है। हृदय विकार के कारण शोथ आदि हों तो इससे लाभ होता है। इससे मूत्र की मात्रा बढ़ती है तथा हृदय की गति कम होकर उसे बल मिलता है।

५७ हिं०–तंबाखू। लै०–Nicotiana tabacum Linn. (Fam. Solanaceae)

इस पौधे की खेती समस्त भारत में की जाती है। इसके पत्तों का सेवन अनेक प्रकार से व्यसन के रूप में किया जाता है। शोथ पर इसके पत्तों से सेंकने से लाभ होता है। दंतशूल में इसका मंजन उपयोगी है। इसका अत्यधिक सेवन हानिकर होता है।

५८ हिं०–तीखुर। सं०–तवक्षीर।

(क) लै०–Maranta arundinacea Linn. (Fam. Marantaceae).
अं०–West Indian Arrowroot.

(ख) लै०–Curcuma angustifolia Roxb. (Fam. Zingiberaceae)
अं०–The East Indian Arrowroot; Travancore Starch.

तीखुर यह श्वेतवर्ण का अत्यंत सूक्ष्म चूर्ण होता है जिसके कण आपस में चिपके रहने के कारण यह विभिन्न आकार के छोटे-छोटे ढेलों के रूप में मिलता है। रासायनिक दृष्टि से यह एक प्रकार का स्टार्च होता है।

वास्तविक तीखुर प्रथम पौधे म० अरुण्डिनेसिया से प्राप्त होता है। यह पौधा यद्यपि उष्णकटिबंधीय अमेरीका का आदिवासी है तथापि उत्तरप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, बंगाल, आसाम तथा केरलमें होता है। इसका पौधा सीधा, पतला, ०·६ से १·८ मीटर ऊँचा; पत्ते बड़े, अंडाकार-भालाकार; पुष्प श्वेत गुच्छों में; एवं राइजोम (कन्द) बड़े, मांसल, बेलनाकार अभिलटवाकार होते हैं। नील या पीत कन्द भेद से इसके दो प्रकार पाये जाते हैं जिसमें नीले कंदसे अधिक तीखुर निकलता है। इसके अन्य भेद भी पाये जाते हैं। इन्हीं कंदों को कूटकर स्टार्च निकालते हैं। शुष्क अवस्था में इसमें न तो कोई गंध रहती है न स्वाद, किन्तु आर्द्र करने पर या पकाने पर इसमें हलकी गंध आती है। इसके कण १०–५० माइक्रोन बड़े एवं अंडाकार या दीर्घवृत्ताकार होते हैं।

दूसरा पौधा क० अँगस्टिफोलिया जिससे भी तीखुर प्राप्त होता है, मध्यभारत, बंगाल, बंबई, मद्रास तथा हिमालय के कुछ निचले भागों में होता है। इससे जो तीखुर प्राप्त होता है उसके कण कुछ बड़े, लंबाई लिये नाशपाती के आकार के या मुद्गराकार होते हैं। बजार के तीखुर में टेपिओका, शकरकंद, चावल तथा आलू आदि से प्राप्त स्टार्च की भी मिलावट रहती है।

तीखुर बच्चों के लिये या रोगियों के लिये सुपाच्य खाद्य के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। स्टार्च के रूप में भी इसका उपयोग किया जाता है।

५९ सं०-तुवरक। ले०-Hydnocarpus wightiana Blume; Syn. H. laurifolia (Dennst.) Sleumer. (Fam. Flacourtiaceae).

दक्षिण में इसका वृक्ष पाया जाता है। इसका एक भेद H. kurzii (King.) Warb; Syn. Taraktogenos kurzii King. आसाम तथा चटगांव में पाया जाता है जो गुणकर्म में पहले के समान ही है। चिकित्सा में उपर्युक्त दोनों के बीजों का तेल उपयोग में लाया जाता है जिनमें से प्रथम के तेल को विशेषकर हिड्नोकार्पस आइल (Hydnocarpus Oil) तथा द्वितीय के तेल को चौलमोगरा तेल (Chaulmoogra Oil) कहते हैं। इन्हीं वृक्षों से मिलता हुआ एक अन्य वृक्ष Gynocardia odorata R. Br. आसाम की तरफ पाया जाता है जिसके बीजों के तेल को भी चौलमौगरा तेल कहते हैं यद्यपि इसमें कुष्ठघ्न गुण नहीं हैं।

उपर्युक्त प्रथम दो वृक्षों के बीज तथा बीज तैल का कुष्ठ एवं अन्य चर्मरोगों में बाह्याभ्यंतर प्रयोग किया जाता है। इसे ५ से ६० बूँद क्रमशः बढाते हुये मक्खन, मलाई या घी के साथ देते हैं। सुश्रुत में इस वृक्ष का विस्तार से वर्णन है (चि० अ० १३-२०; सू० अ० ४५-१२२)। उस वर्णन से ऐसा मालूम होता है कि यह ठीक समुद्री किनारों पर होता है। एक तुवर नाम का अन्य वृक्ष Avicennia officinalis Linn. समुद्री किनारों पर पाया जाता है जिसके शास्त्रीय तुवरक होने की संभावना व्यक्त की गई है।

६० सं०-तृणकान्त। फा०, हिं०-कहरुवा। अं०-Amber. ले०-Pinus succinifera (Goppert.) Cornw.

अतिप्राचीन काल के उपर्युक्त वृक्ष की यह अश्मीभूत राल है जो कोयले आदि की खानों में पाई जाती है। पूर्व एशिया तथा बर्मा में यह अधिक पाया जाता है। आसाम तथा कच्छ में भी यह मिलता है। यह हलके पीले या रक्ताभवर्ण का, कुछ पारभासक एवं एक विशिष्ट कोण से देखने से हलका हरा दिखलाई देता है। इसे रगड़ने से इस पर चमक आती है, हलकी सुगंध निकलती है एवं विद्युतसंचार

होने के कारण छोटे घासफूस या कागज के टुकड़ों को यह आकर्षित कर लेता है। इसीसे इसे कहरुवा (कह = सूखीघास, रुबा = खीचनेवाला) कहते हैं।

इसको सिगरेट पीने की नली, कर्णाभूषण आदि बनाने के काम में लाया जाता है। यह रूक्ष, स्तम्भन एवं हृद्य है। इसका उपयोग हृदय रोग एवं रक्तपित्त में करते हैं।

मात्रा—पिष्टी १-२ माशे।

६१ सं०-तैलपत्र, सुगंधपत्र। ले०-Eucalyptus globulus Labill. (Fam. Myrtaceae).

इसके वृक्ष लगाये हुए पाये जाते हैं। इसके पत्तों से एक स्वच्छ या हलका पीताभ उड़नशील तैल प्राप्त किया जाता है। इसमें कर्पूराभ गंध तथा स्वाद होता है। यह तेल प्रतिदूषक, दुर्गन्धनाशक एवं ज्वरशामक होता है। खांसी, जुकाम तथा दमा आदि में इसे सूंघने को दिया जाता है। आमवातादि में अन्य तेलों के साथ इसे मिलाकर मालिश करते हैं। जीर्ण कफविकारों में इसे या इसके पत्तों का फांट देते हैं। इसका मलहम जले हुए पर लगाते हैं।

६२ हिं०-तोदरी। ले०-Lepidium iberis Linn. (Fam. Cruciferae).

इसके कंटीले पौधे दक्षिण यूरोप से साइबेरिया तक होते हैं। इसके बीज फारस से आते हैं। रंग भेद से यह लाल, पीली तथा सफेद मानी जाती है जो संभवतः नीचे लिखे हुए पौधों के बीज हैं। इनमें पीली अच्छी मानी जाती है। इसके दाने चिपटे, सूक्ष्म तथा मसूर की तरह होते हैं एवं जल में डालने पर लुआबदार हो जाते हैं। यह वाजीकर, स्तन्यजनन, पौष्टिक, मूत्रजनन तथा कफनिःसारक है। इसका लेप शोथहर है। श्वासनलिका शोथ में इसका क्वाथ देने से कफ निकलकर ज्वर कम हो जाता है। बीजों के तेल की संधिशोथ में मालिश की जाती है। मात्रा—½-१ तोला।

६३ हिं०-तोदरी सफेद। ले०-Mathiola incana R. Br. (Fam. Cruciferae).

बागों में इसके पौधे लगाये जाते हैं। इसके बीज तोदरी की तरह ही उपयोग में आते हैं।

६४ हिं०-तोदरी सुर्ख। ले०-Cheiranthus cheiri Linn. (Fam. Cruciferae).

दक्षिण यूरोप का आदिवासी यह पौधा बागों में लगाया मिलता है। इसके बीजों का तोदरी की तरह ही उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त इसके पुष्प हृद्य एवं आर्तवजनन हैं तथा पक्षाघात एवं नपुंसकता में दिये जाते हैं।

६५ हिं०-दरियाई नारियल। अं०-Sea Coconut Palm; Double Coconut Palm. ले०-Lodoicea maldivica (Poir) Pers. (Fam. Palmae)

यह नारियल की जाति का ऊंचा वृक्ष बागों में लगाया हुआ मिलता है। इसके फल बहुत बड़े तथा वजनी होते हैं। बाजार में इसकी सूखी मज्जा के सफेद वर्ण के बेडौल टुकड़े मिलते हैं जो बहुत कठिन होने से गुलाबजल में घिसकर प्रयोग में लाये जाते हैं। विसूचिका में तथा अफीम, बचनाग आदि की विषाक्तता में इसे जहरमोहरा खताई के साथ देते हैं। दंशविष पर इसका लेप लाभदायक है। इसका जल पित्त-शामक तथा अम्लता को कम करता है। मात्रा—४ से ८ रत्ती।

६६ अं०-दरूनज अकरबी। ले०-Doronicum pardalianches Linn. (Fam. Compositae).

इसके पौधे यूरोप में होते हैं। यह देखने में बिच्छू (अकरब) जैसी होने के कारण इसे दरूनज अकरबी कहा जाता है। यह बाहर से मटियाली और भीतर से श्वेत होती है। यह सभी हृद्रोगों की प्रधान औषधि मानी जाती है। पक्षवध आदि वातरोग, गर्भाशय शूल तथा विषप्रभाव में भी इसका उपयोग करते हैं। दंशविष में इसका लेप भी किया जाता है।

भारतवर्ष में इसकी निम्न जातियां पाई जाती हैं जिन्हें भी इसी नाम से व्यवहार किया जाता है।

(क) D. hookeri Hook. f.—यह सिक्किम हिमालय में लाचेन तथा टुंगु में १२-१४ हजार फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है। इसकी जड़ सुगंधि तथा बल्य होती है। (ख) D. roylei DC. यह पश्चिम हिमालय में कश्मीर से गढ़वाल तक, १० हजार फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है। अधिक ऊंचाई पर चढ़ते समय चक्कर आदि न हो इसके लिये इसका उपयोग करते हैं।

६७ सं०-दुग्धफेनी। हिं०-दुधल, कानफूल। अं०-Dandelion Root. ले०-Taraxacum officinale Weber (Fam. Compositae).

दुग्धयुक्त बहुवर्षायु यह यूरोपीय पौधा हिमालय में तथा नीलगिरि पर पाया जाता है। इसकी जड़ का उपयोग किया जाता है। यह ६ से १५ से. मी. लंबी, ५-१५ मि. मी. मोटी, गोल या कुछ चिपटी, भूरापन लिये काली या पीताभ भूरी, लंबाई में सिकुड़नदार एवं मूलों के चिह्नों से युक्त, गंधहीन, स्वाद में कड़वी एवं आसानी से टूटनेवाली होती है। यह तिक्त, मूत्रजनन एवं सौम्यविरेचक है। यह यकृत् के लिए उत्तेजक होने के कारण इसका कामला, यकृत्वृद्धि, कोष्ठबद्धता एवं कुपचन आदि रोगों में प्रयोग करते हैं। कासनी तथा अन्य मूलों की इसमें मिलावट की जाती है। मात्रा—४ से १२ माशा।

६८ सं०-निर्विषा (षी)। हिं०-निर्विषी, जद्वार। ले०-Delphinium denudatum Wall. (Fam. Ranunculaceae).

इसके पौधे पश्चिम हिमालय में कुमाऊं से कश्मीर तक ८ से १२ हजार फीट की ऊंचाई तक होते हैं। वत्सनाभ आदि में इसके जड़ की मिलावट की जाती है। हकीम इसका अधिक व्यवहार करते हैं। इसकी जड़ तिक्त, विषघ्न, रसायन, बल्य, वेदनाशामक, श्वयथुविलयन तथा लेखन है। इसका प्रयोग आंतरिक विष, दंशविष, वातरोग, कफरोग, चर्मरोग आदि अनेक रोगों में किया जाता है। दंतशूल में इसे लगाते हैं।

६९ हिं०-पपीता। सं०-एरण्डकर्कटी, मधुकर्कटी, गोपालकर्कटी। ले०-Carica papaya Linn. (Fam. Caricaceae).

उष्णकटिबंधीय मध्यअमेरिका का आदिवासी यह छोटा वृक्ष अब समस्त-भारत में लगाया हुआ पाया जाता है। इसके पके फलों को खाया जाता है। इसके कच्चे फल तथा अन्य भागों से एक प्रकार का दूध निकाला जाता है जिससे पपेन (Papain) नामक एक पाचक किण्व प्राप्त किया जाता है। जिनमें प्रभूजिन जातीय खाद्य द्रव्यों का पाचन ठीक न होता हो उनको इसे देते हैं। इसका क्षीर मुहांसे आदि दूर करने के लिये लगाते हैं।

७० हिं०-पिपरमिन्ट। अं०-Peppermint. ले०-Mentha piperata Linn. (Fam. Labiatae).

यह पुदीने की जाति का बहुवर्षायु, गंधयुक्त विदेशी क्षुप है जो काश्मीर, निलगिरी, देहरादून, दिल्ली तथा बागों में लगाया हुआ पाया जाता है। इससे पिपरमिंट तेल प्राप्त होता है जिसको अत्यधिक शीत करने से उसका सत्त्व मेंथाल (Menthol) अलग हो जाता है जो तेल में करीब ५०-५५% होता है। इसका पौधा, तेल या सत्त्व दीपन, पाचन एवं वातानुलोमक है तथा आध्मान, हृल्लास एवं वमन में दिया जाता है। इसके तेल का उपयोग औषधियों को सुगंधित करने के लिये करते हैं। यह प्रतिदूषक एवं स्थानिक संज्ञाहर होने से दन्तशूल, आमवात, नाडीशूल एवं शिरःशूल आदि में इसे लगाते हैं। प्रतिश्यायादि में इसे सूंघने को देते हैं।

७१ म०-पिसा। उरि०-क्षारचंपा। ले०-Actinodaphne hookeri Meissn. (Fam. Lauraceae).

इसके मध्यम आकार के वृक्ष महाराष्ट्र में माथेरान तथा महाबलेश्वर में पाये जाते हैं। उड़ीसा के पूर्वतटीय जंगलों में भी यह होता है। इसके बीज की मज्जा से लारिक एसिड (Lauric acid) प्राप्त किया जाता है जिसका उपयोग अपक्षालक के निर्माण में किया जाता है। इसके पत्तों का हिम मधुमेह तथा मूत्ररोगों में दिया जाता है। बीजों का तेल मोच आदि पर लगाते हैं।

७२ हिं०-पिस्ता । सं०-मुकूलक । लै०-Pistacia vera Linn. (Fam. Anacardiaceae).

इस सुप्रसिद्ध मेवे के वृक्ष की सीरिया, फिलस्तीन एवं फारस में उपज की जाती है। इसके पत्तों पर एक कीटगृह बनता है जिसे पिस्ते का फूल (गुले पिस्ता, बुजगुंज) कहते हैं। यह एक तरफ से गुलाबी, दूसरी तरफ से कुछ पीताभ श्वेत, स्वाद में खट्टे एवं कषाय होते हैं। बीजों के छिलके को पोस्ते पिस्तः (पोस्त बेहँ पिस्तः) कहते हैं। पिस्ता गुरु, स्निग्ध, मधुर, उष्ण, बल्य, बृंहण, वृष्य, वातहर तथा कफपित्तवर्धक होता है (चरक सू० अ० २७; सु० सू० अ० ४६)। पिस्ते का फूल खाँसी मे उपयोगी है । बीजों का छिलका अतिसार, हल्लास एवं वमन में देते हैं।

७३ हिं०-पुदीना । स०-पूतिहा । अं०-Spearmint लै०-Mentha spicata Linn. & other sp. (Fam. Labiatae).

इस पौधे को बागों में लगाते हैं तथा हिमालय के पहाड़ों पर यह वन्य स्वरूप में भी पाया जाता है। इसकी कई जातियां होती हैं जिनका पुदीना नाम से उपयोग होता है। यह दीपन, पाचन, उद्वेष्ठननिरोधी, मूत्रल एवं आर्तवजनन है। इसका उपयोग अजीर्ण, वमन, शूल, आध्मान, कफज्वर एवं कृमि में करते हैं।

७४ अ०-फरासियून। हि०—पहाड़ीगंदना। अं०-Horehound, Hoarhound. लै०-Marrubium vulgare Linn. (Fam. Labiatae).

इसके ऊंचे, बहुवर्षायु पौधे कश्मीर में ५-८ हजार फीट की ऊंचाई तक एवं उ० प० सीमान्त प्रदेश तथा बलूचिस्तान में पाये जाते हैं। युरोप तथा अमेरीका में भी इसकी उपज की जाती है। इसके पत्ते मोटे, रोमश, दीर्घवृत्ताकार–अंडाकार; पुष्प छोटे, श्वेत, गुच्छों में; एवं फल अत्यन्त छोटे होते हैं। इसमें हलकी, कुछ कस्तूरी जैसी गंध होती है तथा इसका स्वाद चरपरा, कडवा किन्तु सुगन्धित होता है। इसकी सूखी पत्तियां तथा पुष्पित अग्र का व्यवहार किया जाता है। यह तिक्त, कफनिःसारक, मूत्रल एवं वातानुलोमक है। इसका फांट या अन्य औषधों के साथ इसका घनसत्व प्रतिश्याय, कास तथा अन्य कफजविकारों में दिया जाता है।

७५ हिं० बनफ्शा। लै०-Viola odorata Linn. (Fam. Violaceae).

इसके क्षुप कश्मीर मे ५ से ६ हजार फीट की ऊंचाई तक पाये जाते हैं। यह अन्य पर्वतीय स्थानों में लगाये हुए भी मिलते हैं। इसकी अन्य कई जातियां (Species) होती हैं जो अन्य प्रान्तों में भी पाई जाती हैं। केवल फूलों को गुलबनफ्शा कहा जाता है। ईरान से भी यह आता है। इसका क्षुप छोटा होता है। पत्ते हृदयाकृति, रोमश एवं ब्राह्मी की तरह दिखलाई देते हैं। फूल बैंगनी नीले रंग के तथा सुगंधयुक्त होते हैं जो पुराने होने पर भूरे या पीताभ श्वेत हो जाते हैं।

यह ज्वरघ्न, स्वेदजनन, कफनिःसारक एवं पित्तशामक है। प्रतिश्याय आदि कफज रोगों में इसका हिम या फांट देते हैं। इसका गुलकन्द विबंध में देते हैं। इसकी जड़ वामक होती है।

७६ अ०-बलसाँ। हब्बुल्बलसां, तुख्मबलसाँ (फल)। लै०-Commiphora opobalsamum (Linn.) Engl. (Fam ·Burser ceae).

इसके वृक्ष लालसागर के दोनों तरफ, अबसीनिया, अरब, अदन तथा यमन में पाये जाते हैं। इसको चीरा लगाने से एक पीला रालदार तैलीय पदार्थ प्राप्त होता है। यह सुगंधि एवं तिक्त होता है। इसके फल काली मिर्च की तरह किन्तु कुछ लम्बोतरे, बड़े एवं रंग में कुछ पीलापन लिये काले से लाल होते हैं। यह स्वाद में कड़वे होते हैं। इनकी मींगी श्वेत होती है। इसके फल दीपन, कफनिःसारक एवं आर्तवजनन होते हैं। इसका निर्यास ग्राही, स्नेहन, कफनिःसारक एवं व्रणशोधन होता है। इसका उपयोग पूयमेह, कफरोग तथा वातरोगों में करते हैं।

७७ हिं०-बहमन सफेद। लै०-Centaurea behen Linn. (Fam. Compositae).

इस पौधे की जड़ फारस से आती है। इसको यूनानी हकीम बृंहण तथा वाजीकर रूप में प्रयोग करते हैं। एक अन्य बहमन सुर्ख का भी इसी तरह उपयोग किया जाता है।

७८ हिं०-बादावर्द। सं०-ब्रह्मदण्डी । लै०-Amberboa divaricata Kuntze (Fam. Compositae).

नदियों के किनारे रेतीली भूमि में और ऊसर भूमि में इसके क्षुप अनेक स्थानों में पाये जाते हैं। यह जमीन पर फैलने वाला, वर्षायु तथा दृढ क्षुप होता है जिसके काण्ड द्विविभक्त नालीदार और कोनकार होते हैं। पत्ते भिन्न-भिन्न प्रकार के, अवृन्त, १-२ इञ्च या अधिक लंबे, आयताकार या अभिलट्वाकार, अखण्ड, दन्तुर या खण्डित और खण्ड प्रायः लहरदार धार वाले होते हैं। मुण्डक लगभग १ इञ्च लंबे, बोतल के आकार के, जामुनी रंग के एवं कंटकित होते हैं। इस कुल की Tricholepis glaberrima DC. तथा अन्य वनस्पतियों को भी ब्रह्मदण्डी कहा जाता है। इनमें से प्रथम बल्य एवं सारक है तथा इसका ज्वर, कास आदि में उपयोग करते हैं। द्वितीय का उपयोग श्वित्र, चर्मरोग तथा मज्जातन्तु दौर्बल्य में एवं वृष्य रूप में किया जाता है।

७९ हिं० बादियाण रूमी, सौंफ, अनीसून। अं०-Anise. लै०-Pimpinella anisum Linn. (Fam. Umbelliferae).

उत्तरपश्चिम भारत, उत्तरप्रदेश, पंजाब तथा उड़ीसा में इसकी खेती की जाती है। यह सौंफ से छोटे, उससे अधिक हरे, पीताभ श्वेत या कृष्णाभ पीत होते हैं।

यह स्वाद में कुछ कड़वे तथा इनमें विशिष्ट गंध होती है। यह दीपन, वातानुलोमक एवं मूत्रल हैं। इनका उपयोग शूल, आध्मान एवं कफविकारों में करते हैं। इनके तेल का भी उपयोग इसी प्रकार किया जाता है।

एक अन्य बादियान खताई नामक फल चीन तथा हिन्दचीन से आते हैं। यह हिं०-अनसफल; अं०-Star Anise of China; ले०-Illicium verum Hook. f. (Fam. Magnoliaceae) हैं। इसका बादियान रूमी की तरह उपयोग होता है। इसके ताजे फलों से भी सुगंधि तैल प्राप्त होता है जिसका सौंफ एवं बादियाण के तेल की तरह ही उपयोग किया जाता है।

८० हिं०, पं०, बं०-बाबूना। ले०-Matricaria chamomilla Linn. (Fam. Compositae).

इसके पौधे पंजाब एवं गंगा के ऊपरी मैदान में पाये जाते हैं। यह यूरोप में भी होता है। इसके पीले, सेवती के समान सुगन्धित एवं कड़वे पुष्पों का उपयोग किया जाता है। यह विदेशी द्रव्य (अं०) कॅमोमाईल (Chamomile), ले०-Anthemis nobilis Linn. का अच्छा प्रतिनिधि है जो अब अपने यहां भी बागों में लगाया या बाहर से आया हुआ मिलता है एवं जिसमें श्वेत रंग के दोहरे तथा बड़े फूल होते हैं।

यह श्वयथु विलयन, वातानुलोमक, उत्तेजक, पौष्टिक तथा अधिक मात्रा में वामक है। सामान्य दौर्बल्य, अपचन, आनाह, अपतंत्रक, ज्वर एवं आर्तव विकारों में इसका फांट देते हैं। आमवात तथा संधिशोथ में इसका तेल मालिश करते हैं। मात्रा-१ से ४ माशा।

८१ हिं०-बिरंजासिफ, बरंजासिफ। बंब०-रोजमरी। अं०-Milfoil, Yarrow. ले०-Achillea millefolium Linn. (Fam. Compositae).

छत्तेदार फूलवाले इसके बहुवर्षायु क्षुप प० हिमालय में ३५००-१२००० फीट की ऊंचाई तक, विशेषकर सिमला के आस-पास पाये जाते हैं। युरोप में इसका क्वाथ बल्य, उत्तेजक तथा वातानुलोमक रूप में प्रयोग करते हैं। यह स्वेदजनन बल्य, आर्तवजनन एवं मूत्रजनन है। इसमें एक प्रकार का नीले रंग का सुगंधि तैल पाया जाता है।

८२ हिं०-बिही। अं०-Quince. ले०-Cydonia oblonga Mill. (Fam. Rosaceae).

इसके छोटे वृक्ष उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रदेश, पंजाब, काश्मीर तथा निलगिरि पर लगाये हुये मिलते हैं। इसके सेब जैसे सुनहले फल होते हैं जिनको पकाकर खाते हैं। इन फलों के अंदर पांच विभाग होते हैं जिसके प्रत्येक भाग में २ खड़ी

कतारों में गोंद से आवृत अनेक बीज होते हैं। यह ६ से ७ मि० मी० लंबे, एक तरफ से कुछ उन्नतोदर एवं रक्ताभ होते हैं। इन्हें जल में भिगाने से लुआब निकलता है। यह बाजार में बिहीदाना के नाम से बिकते हैं। इसके फल बल्य, हृद्य, ग्राही एवं मूत्रल हैं। बीज अतिसारादि में देते हैं। बीजों को गरम जल में डालने से जो लुआब निकलता है वह शीत, ग्राही, स्नेहन, कफघ्न तथा बल्य होता है एवं इसका खांसी तथा अतिसार में प्रयोग करते हैं। व्रण विशेषकर दग्धव्रण पर इसे लगाते हैं।

८३ पं०-बेबरंग, कखुम। ले०-Myrsine africana Linn. (Fam. Myrsinaceae).

इसकी झाड़ी या छोटे वृक्ष कश्मीर से नेपाल तक तथा खासिया पहाड़ों पर पाये जाते हैं। इसके फल छोटे, गोल, मांसल तथा गहरे बैंगनी रंग के होते हैं तथा प्रत्येक फल में एक बीज होता है। वास्तविक वायविडंग की तरह इसका उपयोग स्फीतकृमि में लाभदायक होता है। जलोदर तथा शूल में सौम्यविरेचक की तरह इसका उपयोग करते हैं। चर्मरोगों में इससे बना मलहम लाभदायक माना जाता है।

८४ सं०-भव्य। हिं०-चाल्ता। ले०-Dillenia indica Linn. (Fam. Dilleniaceae).

इसके सुन्दर वृक्ष कुमाऊं एवं गढ़वाल से लेकर पूर्व में आसाम, बंगाल एवं दक्षिण तथा मध्यभारत में पाये जाते हैं। इसकी सुन्दर दन्तुर पत्तियों तथा श्वेत सुगन्धित फूलों के लिये इसे बागों में भी लगाते हैं। इसके फल ३ से ५ इञ्च व्यास के होते हैं। फलों का आवरण इसके ५ बाह्य दलों से बना होता है जिसके अन्दर गूदे में लिपटे अनेक बीज होते हैं। खटाई के लिये इनका प्रयोग करते हैं। इसकी पत्ती तथा छाल ग्राही होती है। ज्वर तथा खांसी में फल का शरबत देते हैं। इससे शौच भी साफ होता है। यह मधुर, अम्ल, कषाय, शीत, हृद्य, विष्टम्भि, मुखशोधक, पित्तकफवर्धक, गुरू एवं ग्राही होता है (च. सू. अ. २७ ; सु. सू. अ. ४६)।

८५ ने०-मचिनो। हि०-गंधपूरा का तेल। अं०-Oil of Wintergreen. ले०-Gaultheria fragrantissima Wall. (Fam. Ericaceae).

इसके पौधे नेपाल से भूटान तक, खासिया पर्वत, पश्चिमघाट, नीलगिरी, पुलनी तथा ट्रावनकोर में पाये जाते हैं। इसमें एक उड़नशील तेल पाया जाता है। यह रंगहीन या हलका पीला तथा विशिष्ट गंध एवं स्वाद युक्त होता है। इसके तेल का आमवातादि में बाह्याभ्यन्तर प्रयोग किया जाता है। इसमें के मेथिल सॅलिसिलेट के कारण यह लाभदायक होता है। चीनी में मिलाकर इसका आंतरिक प्रयोग करते हैं। इससे अंकुश कृमि में भी लाभ होता है। मात्रा-५ से १५ बूंद।

८६ हिं०—ममीरा, ममीरी। सं०—महातिक्त, पीतमूला, हेमतन्तु। आसाम—मिष्मीतीता। अं०—Gold thread। ले०—Coptis teeta Wall. (Fam. Ranunculaceae).

इसका क्षुप आसाम की उत्तरी सीमा पर मिष्मी पर्वतों पर पाया जाता है। चीन में इसकी खेती की जाती है और 'चीनी ममीरा' अत्युत्तम माना जाता है। इसके मूल (राइजोम) का उपयोग करते हैं। ये १ से ३ इञ्च लंबे, झुर्रीदार, गोल, पत्र एवं मूल के चिह्नों से गांठदार, बाहर से भूरापन के लिये पीत, तोड़ने पर पीत या सुवर्ण पीत तथा चक्राकार, अल्प गंध युक्त एवं चबाने पर अत्यन्त कड़वे तथा लाला को पीत कर देते हैं। कुटकी तथा पियारांगा में इसकी मिलावट की जाती है। यह तिक्त पौष्टिक, दीपन, पाचन, नेत्र्य एवं बल्य है। सभी प्रकार के नेत्र रोगों में इसका बाह्य प्रयोग किया जाता है। साधारण दौर्बल्य, विषमज्वर तथा कुपचन में इसका आंतरिक प्रयोग करते हैं। चीन में इसे मधुमेह में लाभदायक माना जाता है।

८७ हिं०—माजूफल। सं०—मायाफल। ले०—Quercus infectoria Oliv. (Fam. Fagaceae).

यह ग्रीस, एशिया माइनर तथा सीरिया में होता है। एक प्रकार के कृमि Cynips tinctoria Oliver द्वारा उत्पन्न यह एक प्रकार का कीटगृह है जो उपर्युक्त वृक्षों की नवीन शाखाओं पर पाया जाता है। यह गोल, १०–२५ मि. मी० व्यास का, वजनदार, गोल उभारों से युक्त तथा आधार की तरफ छोटे से डंठल से से युक्त होता है। इसका रंग प्रारम्भ में नीलाभ धूसर, फिर हरा तथा अन्त में जब इसमें से छेद करके भीतर का कृमि बाहर निकल जाता है तब श्वेत हो जाता है। हरा अच्छा माना जाता है। इसका स्वाद कषाय होता है। यह कषाय, स्तम्भन, कफघ्न एवं विषघ्न है। इसका उपयोग अतिसार, प्रवाहिका तथा विषाक्तता में करते हैं। दंत मंजनों में इसे डालते हैं तथा व्रण पर इसका बाह्य प्रयोग करते हैं जिससे रक्तस्राव रुकता है।

८८ हिं०—मिरचा (लाल, हरी)। बं०—लंका। सं०—कटुवीरा। ले०—Capsicum annum Linn. (Fam. Solanaceae).

उष्ण कटिबन्धीय अमेरिका के इस आदिवासी पौधे की अब भारत में व्यापक खेती की जाती है। इसके अनेक प्रकार पाये जाते हैं। मसाले के रूप में इसका बहुत उपयोग किया जाता है। यह वातानुलोमक तथा त्वग् राग कारक है। शिथिलता प्रधान कुपचन में इसका उपयोग अच्छा होता है। वातिक पीडा आदि में प्रतिक्षोभक के रूप में इसका बाह्यप्रयोग करते हैं।

८९ सं-मुंजातक। हिं०—सालममिश्री, पंजासालब। Eulophia campestris Wall. (Fam. Orchidaceae).

यह सभी मैदानी भागों में होता है। इसका पौधा छोटा होता है। इसमें दो रेखाकार, २५–४० से. मी. लंबे पत्र तथा गुलाबी धारीयुक्त पीत या हरे पुष्प होते हैं। कंद पंजा की तरह होता है। मुंजातक शीत, गुरु, मधुर, स्निग्ध, तर्पण, बृंहण, परम वृष्य एवं वातपित्तहर है (च. सू. अ. २७)। सालब नाम से या इसके प्रतिनिधि रूप में इसकी अन्य जातियों से तथा निम्न अन्य क्षुपों का भी उपयोग करते हैं।

क. Orchis latifolia Linn. (Fam. Orchidaceae); हिं०—सालब। यह हिमालय में ८ से १२ हजार फीट की ऊंचाई पर होता है। इसके कंद ग्राही एवं कफनिःसारक होते हैं।

ख. O. laxiflora Lam.; ग. O. mascula Linn.; हिं०-सालब मिश्री। यह यूरोप, अफगानिस्तान एवं फारस आदि में होते हैं। इनके कंद भी ग्राही, कफनिःसारक एवं बल्य होते हैं।

घ. Allium macleanii Baker. (Fam. Liliaceae); हिं०—बादशाही सालब। यह अफगानिस्तान से आता है।

९० सं०-मुक्तवर्चा। हिं०—कुप्पी, आमाभाजी। ले०—Acalypha indica Linn. (Fam. Euphorbiaceae).

इसके पौधे सभी मैदानी भागों में पाये जाते हैं। पत्ते लंबे वृन्तयुक्त होते हैं तथा कोणपुष्पक पर्णतुल्य तथा कुप्पीसदृश नतोदर होते हैं जिसमें फल छिपा रहता है। इसके पंचांग का उपयोग किया जाता है। यह कफघ्न, वामक, स्रंसन, कृमिघ्न, मूत्रल एवं त्वग्दोषहर है। आंव में इसकी भाजी खिलाते हैं जिससे इसे आमाभाजी भी कहा जाता है। इसका ताजा स्वरस बच्चों में वमन कराने के लिये देते हैं। इसका क्वाथ अच्छा मृदुविरेचन है।

९१ हिं०—मेरड्डू। ले०-Polygala chinensis Linn. (Fam. Polygalaceae).

इसके पौधे प्रायः सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। इसके मूल में सॅपोनिन होने के कारण इसका सेनेगा (Senega) की तरह उपयोग किया जाता है। कफनिःसारक रूप में इसका उपयोग खांसी दमा आदि में करते हैं। अधिक मात्रा से वमन तथा विरेचन होता है।

९२ हिं०—मैदालकड़ी। ले०—Litsea glutinosa (Lour.) C. B. Robins (Fam. Lauraceae).

इसकी सदाहरित झाड़ी या वृक्ष सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। इसकी पत्तियों में एक विशेष प्रकार की सुगंध पाई जाती है। इसकी छाल का उपयोग अतिसार, प्रवाहिका तथा कफ-वात विकारों में करते हैं। मोच, चोट, रक्तस्राव तथा अन्य शोथ पर इसका बाह्यलेप करते हैं।

९३ हिं०-रतनजोत। रतनजोत नाम से कई वनस्पतियों का उपयोग किया जाता है। तेल आदि को रंगने के लिये इनका अधिक उपयोग करते हैं। निम्नलिखित द्रव्य रतनजोत नाम से लिये जाते हैं :—

(क) अं०-Alkanet Root. ले०-Alkanna tinctoria Tanscher (Fam. Boraginaceae).

इसके पौधे द० यूरोप, हंगरी एवं टर्की में होते हैं। इसकी जड़ का उपयोग आधुनिक औषधनिर्माण में, तैल मलहम आदि को लाल रंगने के लिये किया जाता है।

(ख) ले०-Onosma bracteatum Wall. (Fam. Boraginaceae).

इसके पौधे कश्मीर, कुमाऊं तथा बलूचिस्तान में पाये जाते हैं। इसका उपयोग अल्कानेट के प्रतिनिधि रूप में किया जाता है।

(ग) हिं०-लालजड़ी। ले०-Geranium wallichianum D. Don (Fam. Geraniaceae).

यह रोमश वनस्पति कुरमघाटी, कश्मीर, सिमला तथा कुमाऊं में पाई जाती है। इसकी जड़ मोटी लाल, पत्ते करतलाकार विभक्त एवं पुष्प नील-बैंगनी रंग के होते हैं। इसका उपयोग दंतशूल में किया जाता है तथा यह रक्तसंग्राहक होती है।

(घ) ले०-Clausena pentaphylla (Roxb.) DC. (Fam. Rutaceae).

इसके तीक्ष्णगंध, ३-४ फीट ऊंचे क्षुप कुमाऊ के निचले क्षेत्र, नेपाल, सिक्कम, अवध के जंगली भाग तथा चंपारन में पाये जाते हैं। इसकी छाल का उपयोग पशुओं के घाव में करते हैं।

(ङ) ले०-Potentilla nepalensis Hook. (Fam. Rosaceae).

इसके पौधे हिमालय में मुरी तथा कश्मीर से कुमाऊ तक ५ से ८ हजार फीट की ऊंचाई तक पाये जाते हैं। इसकी राख दग्धव्रण में लगाई जाती है।

९४ सं०-रुदन्ती। हिं०-रुद्रवन्ती। ले०-Cressa cretica Linn. (Fam. Convolvulaceae).

इसका चने की तरह छोटा क्षुप होता है जो सभी स्थानों में प्रायः आर्द्र एवं क्षारीय भूमि में होता है। इस जड़ी से सदा पानी टपकता रहता है इसलिये वहां

की भूमि आर्द्र रहती है। यह उष्ण, कटु, तिक्त एवं क्षयकृमिनाशक, रक्तपित्तघ्न, रसायन एवं कफ, श्वास तथा प्रमेह की नाशक है (रा. नि.)।

९५. हिं०-रुद्राक्ष। अं०-Utrasum Bead Tree. ले०-Elaeocarpus ganitrus Roxb. (Fam. Elaeocarpaceae)

इसके मध्यम आकार के वृक्ष नेपाल, बिहार, बंगाल, आसाम, मध्यप्रदेश, बंबई एवं कभी-कभी बागों में लगाये मिलते हैं। इसके पत्ते ३–६ इञ्च लंबे, अण्डाकार प्रासवत् या आयताकार, पुष्प श्वेत, फल गोल, नीले, ½–१ इंच व्यास के एवं गुठली ४–५ खड़ी नालियों से युक्त एवं पृष्ठ पर दानेदार होती है जिसके अन्दर बीज तथा कोश ४–५ होते हैं। इन गुठलियों को साफकर, पालिशकर इनकी माला बनाते हैं। बड़े आकार के तथा नालियों की कमी या अधिकता से इनका मूल्य बढ़ जाता है। इसका गूदा खट्टा होता है तथा इसे अपस्मार में लाभदायक माना जाता है।

९६ हिं०-रूमी मस्तगी। ले०-Pistacia lentiscus Linn. (Fam. Anacardiaceae).

यह भूमध्यसागरीय गुल्म का निर्यास है। यह छोटे, ४–८ मि० मी० बड़े, गोल, कुछ चिपटे, पीताभ श्वेत दानों के रूप में बजार में बिकती है। नवीन होने पर यह वर्ण हीन होती है किन्तु हाथ आदि के स्पर्श से श्वेत चूर्णावृत मालूम होती है। इसमें हलकी गंध तथा इसका स्वाद कुछ मधुर होता है। तोड़ने पर कणों में टूटती है तथा बाद में चिपचिपी हो जाती है। इसकी अन्य जातियों से भी मस्तगी मिलती है जो गहरे रंग की, कम चमकीली, सुरासार में कम घुलनशील किन्तु ताड़पीन के तेल में अधिक घुलनशील होती है। यह कफघ्न, मूत्रजनन, शोथघ्न, वर्ण्य, मुख-दुर्गन्धनाशक एवं दन्तदार्ढ्यकृत है। खांसी, मन्दाग्नि तथा रक्तस्राव में इसका आन्तरिक प्रयोग करते हैं। दांतों के गढ्ढों को भरने के लिये, गोलियों पर आवरण के लिये तथा वार्निश के काम में भी यह आती है।

९७ हिं०-रेगमाही, रेत की मछली। अं०-The Common Indian Shink, Sand Lizard. ले०-Mabuya carinata (Schneider).

यह एक प्रकार की गिरगिट या छिपकली होती है। इसके हाथ पैर काटकर, पेट से अन्नादि निकाल कर नमक भरकर सुखा लेते हैं। यूनानी चिकित्सा में इसको परमोत्तम वाजीकर रूप में प्रयोग करते हैं।

९८ हिं०-रोजमरी। अ०-इकली लुल् जबल। अं०-Rosmary. ले०-Rosmarinus officinalis Linn. (Fam. Labiatae).

यह सुगंधि पौधा युरोप, एशिया माइनर तथा उत्तर अफ्रीका का आदिवासी है। भारतवर्ष में यह बागों में लगाया हुआ पाया जाता है। इसके पुष्पित शाखाओं से एक सुगन्धि तेल प्राप्त किया जाता है जिसका प्रयोग बाह्यरूप में इन्द्रलुप्त में किया

जाता है जिससे केशों की वृद्धि अच्छी होती है। इसको अधिक लगाने से छाले भी पड़ सकते हैं।

९९ हिं०–लाइकोपोडियम। अं०–Lycopodium Spores; Vegetable Sulphur. ले०–Lycopodium clavatum Linn. (Fam. Lycopodiaceae).

क्षुद्रजाति के ये प्रसरणशील पौधे सिक्किम हिमालय तथा खासिया पर्वतों पर पाये जाते हैं। इनके बीजाणुओं का उपयोग गोली बनाने के लिये सहायक द्रव्य के रूप में किया जाता है जिससे गोलियाँ आपस में न चिपकें। इसी प्रकार गले, नाक, कान आदि में प्रयुक्त प्रधमन चूर्णों में भी औषध की मात्रा बढ़ाने के लिये इसका उपयोग करते हैं। अत्यन्तसूक्ष्म किन्तु एक समान आकार तथा नाप के होने के कारण इनका उपयोग इयत्तात्मक सूक्ष्मदर्शिकी (Quantitative microscopy) में किया जाता है। यह बीजाणु हलके पीले, अत्यन्त सूक्ष्म मुलायम चूर्ण के रूप में प्राप्त होते हैं जो जल पर डालने पर बिना भींगे हुवे फैल जाते हैं। ज्वाला में यह चमक के साथ जलते हैं। यह गंध एवं स्वादहीन होते हैं।

१०० हिं०–सकमुनिया। अं०–Scammony Gum-resin. ले०–Convolvulus scammonia Linn. (Fam. Convolvulaceae).

इस भूमध्यसागरीय लता को अपने यहां भी लगाने का प्रयत्न किया गया है। इसकी जड़ को काटकर एक रालीय पदार्थ प्राप्त किया जाता है जिसे सकमुनिया कहते हैं। आजकल इस पौधे से यह कम निकाला जाता है। ज्यादातर अब जिससे यह प्राप्त करते हैं उसका पौधा ओरिझाबा (मेक्सिकन एण्डीज) में होता है। यह ले०–Ipomoea orizabensis (Pellet.) Ledanois (Fam. Convolvulaceae) है। इसकी जड़ से उपर्युक्त राल प्राप्त की जाती है। यह हलका बादामी चूर्ण-रूप में या पारभासक बादामी भंगुर टुकड़ों में होता है जिसमें विशिष्ट गंध तथा कुछ तीता स्वाद होता है। बंबई में यह सीरिया तथा एशिया माइनर से आयात होता है वहां इसमें मिलावट की जाती है। त्रिवृत के सदृश इसका उपयोग जलविरेचक के रूप में जलोदर तथा सर्वाङ्गशोथ आदि में करते हैं।

१०१ हिं०–समुद्रशोष, समुन्दरसोख, कम्मरकस। ले०–Salvia plebeia R. Br. (Fam. Labiatae).

इसके सीधे, चौपहल अनेक काण्ड वाले एवं १–२ फीट ऊंचे क्षुप सभी भागों में प्रायः नदी नालों के समीप कंकरीली भूमि में पाये जाते हैं। इसके पत्ते लट्वाकार-आयताकार या लट्वाकार-प्रासवत्, गोलदन्तुर, १–३ इञ्च लंबे एवं तल में झुर्रीदार होते हैं। श्वेत वर्ण के पुष्प मंजरी में आते हैं। इसके बीजों को जल में भिगोने पर बहुत लुआब निकलता है और वे परस्पर चिपक जाते हैं। इसके बीज

उष्ण, स्नेहन, तथा पौष्टिक होते हैं। इनका उपयोग वीर्य स्तम्भन के लिये किया जाता है।

१०२ हिं०– साबूदाना। अं०–Sago.

साबूदाना यह एक प्रकार के स्टार्च से बनाया पदार्थ है। ले०–Metroxylon sagu Rottb. एवं M. rumphii Mart. (Fam. Palmae). नामक ताड़ की जाति के वृक्ष जो मलाया, इन्डोनेशिया, फिलिपाइन में होते हैं उनसे वास्तविक साबूदाना बनाया जाता है। इसके स्टार्च को अलग करके चलनी द्वारा इसके दाने बनाते हैं तथा बाद में उनको भूनते हैं। इसके वृक्ष अपने यहां कहीं कहीं बागों में लगाये मिलते हैं।

आजकल भारत में जिस साबूदाने का व्यवहार हो रहा है वह ले०–Manihot esculenta Crantz (Fam. Euphorbiaceae); अं०–Cassava; Tapioca, के कन्दों से प्राप्त स्टार्च से बनाया जाता है। इस द० अमेरिका के झाड़ीदार पौधे की खेती केरल, मद्रास तथा दक्षिण के अन्य भागों में की जाती है जिसके कृषिजन्य अनेक भेदोपभेद होते हैं। इसमें जो मीठे कंद होते हैं उनको सकरकन्द की तरह खाते हैं। कन्दों को काटकर रखने से यह खराब नहीं होते। इसके आटे इत्यादि का उपयोग भी किया जाता है। इसके कन्दों से स्टार्च को अलग कर बाद में साफ करते हैं। इसके कण, ५–१५–३५ माइक्रोन नाप के होते हैं। साबूदाना, धोये हुये स्टार्च को धूप में सुखा, कपड़े की थैलियों या यंत्रों से दानेदार बना, पात्रों में १०-१५ मिनिट गरम करके बाद में गरम हवा से सुखाकर तैयार करते हैं। आकार, रंग तथा गरम करने की तीव्रता के अनुसार इसके कई प्रकार होते हैं। साबूदाने का उपयोग बच्चों तथा रोगियों के लिये सुपाच्य खाद्य की दृष्टि से किया जाता है।

इसके अतिरिक्त आलू या अन्य द्रव्यों से प्राप्त स्टार्च से भी साबूदाना बनाया जा सकता है।

१०३ हिं०–सिकोना। ले०–Cinchona sp. (Fam. Rubiaceae).

इसके विभिन्न जातियों की खेती बंगाल तथा मद्रास में होती है। यह दक्षिण अमेरिका का आदिवासी वृक्ष है। पाश्चात्य चिकित्सा में इसकी छाल का मलेरिया में उपयोग किया जाता था। आजकल इसके सत्व क्विनीन का अधिक उपयोग करते हैं। मलेरिया के अतिरिक्त इसका दीपन एवं तिक्त पौष्टिक रूप में उपयोग किया जाता है।

१०४ सं०–सीताफल, गण्डगात्र, कृष्णबीज। हिं०–शरीफा। अं०–Custard Apple. ले०–Annona squamosa Linn. (Fam. Annonaceae).

इसके छोटे वृक्ष जंगली तथा लगाये हुये मिलते हैं। इसके फल ३-४ इञ्च व्यास के, पीताभ हरे, मज्जा पीताभ श्वेत, स्वादिष्ट एवं बीज भूरापन युक्त काले होते हैं। यह

शीत, मधुर, बल्य, बृंहण एवं तृप्तिजनन है। दाह एवं रक्तपित्त में इसे देते हैं। इसकी जड़ विरेचक होती है। इसके बीज एवं पत्र पीस कर जूँ मारने के लिये लगाते हैं किन्तु यह आंखों के लिये प्रक्षोभक होते हैं। इसलिये आंख में न जाय इसकी सावधानी रखनी चाहिये। इसके बीज गर्भपातक होते हैं। पत्तों का लेप फोड़ों पर लगाते हैं।

१०५ हिं०-सुद्दाब, सिताब। अं०-Garden Rue. ले०-Ruta graveolens Linn. (Fam. Rutaceae).

इसके पौधे बगीचों में लगाये पाये जाते हैं जिनमें एक तीक्ष्ण गंध होती है तथा स्वाद कडुवा होता है। इसका क्षुप तथा तेल उपयोग में आता है। इसमें 'तितली' (पृष्ठ ३१२) की मिलावट की जाती है। यह उत्तेजक, प्रतिक्षोभक, आर्तवजनन एवं उद्वेष्टन निरोधी है। इसका मुख्य प्रभाव गर्भाशय तथा वातनाड़ीसंस्थान पर पड़ता है। इसका उपयोग आर्तव विकार, आमवात, अपतंत्रक, शूल, आनाह तथा प्रतिश्याय में करते हैं।

१०६ अ०-सुरंजाने तल्ख। हिं०-सुरंजान कड़वा। ले०-Colchicum luteum Baker (Fam. Liliaceae).

इसके पौधे पश्चिम हिमालय में प्राप्त होते हैं। इसके कंद तथा बीजों का उपयोग किया जाता है। विदेशी द्रव्य जो C. autumnale Linn.से प्राप्त होता है उसका यह अच्छा प्रतिनिधि है। इसका एक मीठा भेद भी बिकता है जिसे सुरंजाने शीरी कहते हैं किन्तु इसमें वे गुण नहीं होते। कड़वे सुरंजान का कंद छोटा, कड़वा, गंधहीन, कुछ शंक्वाकार या चौड़ाई लिये अंडाकार, एक तरफ से उन्नतोदर, भूरापन लिये धूसरवर्ण का एवं पारभासक या अपारदर्शक होता है। इसकी चिपटी सतह पर लंबाई में एक नाली होती है। बाह्य पृष्ठ पर लंबाई में अनियमित धारियां पाई जाती हैं। ताजे कंद १५-३५ मि. मी. लंबे तथा १०-२० मि. मी. व्यास में होते हैं। सूखा कंद आसानी से टूटता है तथा अंदर से श्वेत तथा पिष्टमय दिखलाई देता है।

इसमें एक क्षाराभ Colchicine, ०·२१ से ०·२५ प्रतिशत तथा स्टार्च रहता है। इसके क्षाराभ तथा कंद का प्रयोग वातरक्त (Gout) में किया जाता है। अधिक मात्रा से आंत्रशूल, अतिसार तथा वमन होता है।

१०७ सं०-सूची। अ०-लुफ्फाह। अं०-इंडियन बेलाडोना। ले०-Atropa acuminata Royle ex Lindley (Fam. Solanaceae).

इसके पौधे हिमालय में ६ से १२ हजार फीट तक पाये जाते हैं। इसके मूल, पत्र तथा सत्त्व का पाश्चात्य चिकित्सा में स्थानिक स्वापजनन एवं वेदनाहर तथा शामक, उद्वेष्टनरोधी एवं कनीनिका विकासी द्रव्य के रूप में बहुत प्रयोग होता है। इसका विदेशी भेद A. belladona Linn.; सं०-लक्ष्मणा ?, जिसकी विदेशों में व्यापक खेती होती है अपने यहां सफलतापूर्वक उपजाया गया है। अफीम की विषाक्तता में भी इसे देते हैं। यह अत्यन्त तीव्र औषध है और अधिक मात्रा से विषपरिणाम जैसे मुह, गला तथा चर्म में शुष्कता, कनीनिका विकास एवं चक्कर आते हैं। इसकी चिकित्सा के लिए वमन आदि सामान्य विषचिकित्सा के साथ अल्प मात्रा में मारफीन का प्रयोग किया जाता है।

१०८ हिं०-स्ट्रोफॅन्थस्। ले०-Strophanthus kombe Oliv. (Fam. Apocynaceae).

इसकी आरोही लता अफ्रीका में होती है। विषाक्त बाण बनाने के लिये इसका आदिवासी उपयोग करते हैं। प्रत्येक फूल से दो फलियां निकलती हैं जिनमें छोटे-छोटे बीज होते हैं। बीज भालाकार, भालाकार-रेखाकार, कुछ चिपटे, १२-१८ मि. मी. लंबे, ३-५ मि. मी. चौड़े, ०.५-२ मि. मी. मोटे एवं धूसराभ हरे रोम से आवृत होते हैं। इनके अग्र पर लंबे शूक पर रोमों का एक गुच्छ रहता है जिन्हें निकाल दिया जाता है। इनमें हलकी गंध होती है तथा इनका स्वाद अत्यंत कड़वा होता है। यद्यपि यह जाति अपने यहां नहीं होती तथापि इसके अन्य भेद पाये जाते हैं जिनका अभी पर्याप्त संशोधन होना बाकी है। इनसे प्राप्त ग्लाइकोसाइड का उपयोग डिजिटॅलिस की तरह हृदयरोगों में किया जाता है।

१०९ हिं०-हजरतबेर, बेरपत्थर। अ०-हज्रुल् यहूद। अं०-Fossil Encrinite.

यह एक प्रकार का अश्मीभूत पदार्थ है जो आकार में बेर की तरह होता है तथा इसका रंग मटियाला भूरा होता है। इसपर आडी झुर्रियां पड़ी रहती हैं तथा अन्दर से यह हरापन लिये श्वेत होता है। इसको जल में घिसकर अश्मरी में देते हैं।

११० हिं०-हत्थाजोडी। ले०-Selaginella species (Fam. Selaginellaceae).

यह क्षुद्र वनस्पति पथरीली, सूखी और खुली जगहों में पाई जाती है। सुबह यह ताजी हरी एवं जमीन पर फैली रहती है किन्तु दिन चढ़ने पर क्रमशः संकुचित होते हुये देखने में बिलकुल शुष्क एवं कड़ी मालूम होती है। यदि इसे उखाड़कर जल में डाल दें तो शीघ्र फैलकर हरी ताजी मालूम होने लगती है। संभवतः इसके इसी वैशिष्ट्य के कारण इसका अनेक रोगों में उपयोग बतलाया जाता है। वातविकार, अपस्मार, सूखारोग, आर्तव विकार, रक्तपित्त, धातुदौर्बल्य तथा प्रसूति रोग में इसको उपयोगी बतलाया जाता है।

१११ हि०—हरमल, इस्पंद । ले०-Peganum harmala Linn. (Fam. Rutaceae).

इसके ३० से ९० से० मी० ऊँचे बहुवर्षायु पौधे प्रायः सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। इसके बीजों का उपयोग किया जाता है। बीज मटमैले हलके भूरे रंग के, विभिन्न आकार के किन्तु कोणयुक्त, २·५–४ मि० मी० लंबे, १·५– ३ मि० मी० चौड़े तथा इनका बाह्यस्तर जालीदार होता है। ये स्वाद में कड़वे तथा इनकी गंध अरुचिकर होती है। बीज स्वापक, कृमिघ्न, उद्वेष्टननिरोधी, वेदनाहर, हृल्लासकर, वामक, वाजीकर एवं आर्तवप्रवर्तक होते हैं। इनका श्वास, कास, हिचकी, अपतंत्रक, शूल, कष्टार्तव तथा ज्वर में उपयोग करते हैं।

मात्रा—२ से ४ माशा।



परिशिष्ट २

भावप्रकाश निघण्टुस्थ शब्दानांवर्णानुक्रमणिका

अ

अंकोटः-अंकोटकः ३६५
अंकोटकः ३६५
अंकोटफलं ३६५
अंकोलः-अंकोटकः ३६५
अंगारकः-भृंगारः ४२९
अंगारककर्कटी ७२८
अंगारवल्ली ८००
" -भार्गी १०१
अंगारवल्ली (पा०)-लाक्षा ११३
अंगारवृक्षः-इंगुदः ५३१
अंघ्रिपर्णी-पृश्निपर्णी २८६
अंजनं ६१९, ७९९
अंजनकेशी-नलिका २६६
अंजनद्वय ६१९
अंबष्ठकी-पाठा ३९४
अंबष्ठा-पाठा ३९४
" -यूथी ४९२
अंबिका-माक्षिका ८६
अंबुशिरीषिका-वारिशिरीषिका ५४५
अंबुसारा-मोचा ५५६
अंशुमतीफला-मोचा ५५६
अंशुमती-शालपर्णी २८५
अंशूदकं ७५५
अक्षः-बिभीतकः ९
अक्षपाकं (पा०)-सौवर्चलं १६१
अक्षीवं-सामुद्रं १५८
अक्षीवः-शिग्रुः ३२९
अक्षोटः-अक्षोटकः ५९१
अक्षोटकः ५९१
अगस्तिः ५०८
अगस्तिकुसुमं ६७८
अगस्त्यः-अगस्तिः ५०८
अगुरु १९४
अगुरुस्नेहः १९४
अग्निः ७९९
अग्निकः-भल्लातकः १३८
अग्निमंथः २८१
अग्निमुखी ७९८
" -भल्लातकः १३८
अग्निशिखम् ७९८
अग्निशिखा-कलिहारी ३१२
अग्निसंस्पर्शा-पर्पटी २६५
अजः-छागः ७१५
अजकर्णः ५२०
अजगन्धिका-बर्बरी ५११
अजटा-भूधात्री ४६०
अजडा-कपिकच्छूः ३५६
अजप्रिया-कर्कन्धू ५७१
अजमोदा २६, ७९८
अजमोदिका-यवानिका २५
अजशृंगीका-मेषशृंगी ४४३
अजशृङ्गी ७९८
" -कर्कटशृंगी ९८
अजा अप्रसूता ७१५
" -छागी ७१५
अजाजी-जीरकः ३०
अजामूत्रं ७७८
अटरूषः-वासकः ३२०
अण्डकं-कंकुष्ठभेदं ६२३
अण्डजः ७१०, ७१२
अण्डानि ७१८
" पक्षिणां ७१५
अतसी ६५२
अतसीतैलं ७८१
अतिकेसरः-कुब्जकः ४९६
अतिचरा-पद्मा ४८२
अतितपस्विनी-महामुंडी ४१३
अतिबला ३६६
अतिबृहत्फलः-पनसं ५५५
अतिमंजुला-शतपत्री ४८८
अतिमुक्तः-माधवी ४९७
अतिरुहा-मांस-रोहिणी ३५८
अतिलम्बी-शतपुष्पा ३५
अतिविषा १२६, ७९९, ८०१
अतिसौरभः-आम्रः ५५०
अद्रिजतु-शिलाजं ६१२
अधशल्यः-अपामार्गः ४१४
अध्वरा-मेदा ६१
अनन्ता-कलिहारी ३१२
" -दुरालभा ४११
" -नीलदूर्वा ३८४
अनड्वान्-वृषः ७१६
अनलनामा-चित्रकः २१
अनार्यकं-अगुरु १९४
अनार्यतिक्तः-किराततिक्तः ३७
अनुजा-त्रायन्ती ४३१
अनूप (मांसं) जातयः-पंच ७०५

अनूपदेशः ७५०
अनेकार्थनामवर्गः ७९८
अन्धकः-तुंबुरुः ५६
अन्धस्-भक्तं ७२४
अन्नं-भक्तं ७२४
अपराजिता ३४२, ७९९
अपराजिते ३४२
अपामार्गः ४१४
अपामार्गः, अरुणः ४१६
अपामार्गफलं ४१६
अपेतराक्षसी-तुलसी ५०९
अबीजा (द्राक्षा) ५८५
अब्धिकफः-
समुद्रफेनः ६०
अभया-हरीतकी ३
अभ्रं ६१४, ६१७
" उत्तरशैलोत्थं ६१७
" कृष्णं ६१७
" चतुर्विधं ६१७
" दक्षिणाद्रि भवं ६१७
" पीतं ६१७
" सितं ६१७
" रक्तं ६१७
अभ्रकं ६१६
अभ्रपुष्पः-वेतसः ३६१
अमरवल्लरी-खवल्ली ४४७
अमितद्रुमः-तमालः ५३२
अमोघा ७९९
" -पाटला २७८
" -विडंगः ५२
अमृणालं ८००
" -उशीरं २३९
" -लामज्जकं २६१
अमृतं-पानीयं ७४७
अमृत (कदली) ५५७
अमृतवल्लरी-गुडूची २६९
अमृतफलं-आमलकी १०
अमृतफलः-पटोलं ६८६
अमृता-आमलकी १०
अमृता-गुडूची २६९
" -हरीतकी ३
अम्बालिका-माचिका ८६
अम्बु-पानीयं ७४७
अम्बुजः-हिज्जलः ३६३
अम्बुनाम-बालकं २३७
अम्बष्ठा-माचिका ८६
अम्भः-पानीयं ७४७
अम्भोजं ७५७
अम्भोरुहं-कमलं ४७९
अम्लपत्रकः-चांगेरी ६७१
अम्ललोणिका ७९८
" -चांगेरी ६७१
अम्लवेतसं ५९९, ६००
अम्लवृक्षकं-वृक्षाम्लं ५९९
अम्ला-अम्लिका ५९७
अम्लाटनः ५०२
अम्लातः-अम्लाटनः ५०२
अम्लातकः-अम्लाटनः५०२
अम्लिका ५९७, ७९९
" अम्ला ५९७
" पक्वा ५९७
अम्लिकाफलपानकं ७४२
अम्लिकावटकः ७३१
अम्ली-अम्लिका ५९७
अयस्-लोहं ६०७
अयस्कान्तः-चुंबकः ६२०
अरण्य हलदीकन्दः ११७
अरलुः-श्योनाकः २८३
अरविन्दं-कमलं ४७९
अरिमेदकः-इरिमेदः ५२७
अरिष्टं ७८५
अरिष्टः-निंबः ३२८
" -लशुनः १३०
अरिष्टकः ५२९
अरुणम् ७९९
अरुणा-अतिविषा १२६
" -मंजिष्ठा ११०
अरुष्करः-भल्लातकः १३८
अर्कक्षारः १७१
अर्कक्षीरं ३०३, ६३४
अर्कद्वयं ३०३
अर्कनामा-रक्तार्कः ३०२
अर्कपर्णः-रक्तार्कः ३०२
अर्कपुष्पी ४५५
अर्घ्याः ७९०
अर्जकः-बर्बरी, शुक्ला ५११
अर्जुननामाख्यः-
ककुभः ५२३
अर्णः-पानीयं ७४७
अर्थसाधकः-पुत्रजीवः ५३०
अर्थसाधनः-अरिष्टकः ५२९
अर्द्धोदकक्षीरशिष्टं
पयः ७६३
अर्धचन्द्रा-त्रिवृत्
श्यामा २९८
अर्वः-अश्वः ७१७
अर्शोघ्नः-सूरणः ६९३
अलंबुषा ४५७
अलक्तः-लाक्षा ११३
अलर्ककुसुमं ३०३
अलर्कः-श्वेतार्कः ३०२
अलाबूः-तुम्बी ६८१
अलिवल्लभा-पाटला २७८
अलीकमत्स्यः ७३२, ७३३
अल्पजलपानस्य-
विषयान् ७५६
अल्पतिलः-वन्यतिलः ६५१
अल्पदेहिनः (मांसं) ७१९
अल्पमारिषः-
तण्डुलीयः ६६६
अल्पास्थि-परुषकं ५८०
अल्पिका-मुद्गपर्णी २९६
अवदातकं-लामज्जकं २६१
अवलेहनम् ७३२
अवल्गुजः-वाकुची १२३
अविः-मेषः ७१६
अविप्रियः-श्यामाकः ६५७

अविमूत्रं ७७८
अव्यथा-पद्मा ४८२
" -महामुण्डी ४१३
" -हरीतकी ३
अशोकः ५००
अशोका-कटुकी ६९
अश्मगर्भः-गारुत्मतं ६२७
अश्मघ्नः-पाषाणभेदकः१०४
अश्मजं-शिलाजं ६१२
अश्मन्तकः ७९८
" -कोविदारः ३२६
अश्मभेदः-
पाषाणभेदकः १०४
अश्वः ७०९, ७१७
अश्वकर्णः ५२०
अश्वकर्णकः-अश्वकर्णः ५२०
अश्वगंधा ३९३
" -काकोली,
क्षीरकाकोली
प्रतिनिधिः ६३
अश्वत्थः ५१९
" -पिप्पलः ५१३
अश्वत्थफला-हपुषाभेदः ५०
अश्वत्थभेदः ८०१
" -नन्दीवृक्षः ५१५
अश्वमारकः-
श्वेतकरवीरः ३१४
अश्व मूत्रं ७७८
अष्टवर्गः ६१, २९८
अष्टवर्गस्यप्रतिनिधिः ६३
असनः-बीजकः ५२४
असारंदधि ७६८
असितकारकःतिन्दुकः५६७
असिपत्रः-इक्षुः ७९२
असृग्-स्पृक्का २६४
अस्थिसंहारकः ४१८
अस्थिश्रृंखला-
अस्थिसंहारकः ४१८
अस्थिश्रृंखलावटकं ४१८
अस्थिसंहारी-
अस्थिसंहारकः ४१८
अहिपर्णी-पृश्निपर्णी २८६
अहिफेनः ६३४
अहिफेनकं-आफूकं १४७

आ

आकाशवल्ली-खवल्ली ४४७
आखु ७०६
आखुकर्णी ४७६
आखुपर्णी-आखुकर्णी ४७६
" -द्रवन्ती ३९९
आर्घ्यं (मधु) ७८८, ७९०
आजं दधि ७६८
आज्यं ७२५, ७२७
" आजं ७७५
" -घृतं ७७५
" नवं ७७७
" पुराणं ७७६
" क्षीणां ७७६
आटरूषः-वासकः ३२०
आढकी ६४७
" -सौराष्ट्री ६२१
आत्मगुप्ता-कपिकच्छूः३५६
आनूपं (भौमजलं) ७५१
आनूपचरन्तीनां
दुग्धं ७६०
आन्तरिक्षंवारि ७५४
आपः-पानीयं ७४७
आपीनः-तूणी ५३४
आफूकं १४७
आभाषट्पदमोदिनी-
बब्बूलः ५२८
आमं क्षीरं ७६३
आमण्डः-शुक्लएरण्डः २९८
आमलकं (त्रिलिंग)-
आमलकी १०
आमलकी १०
आम्रं, कृत्रिमपक्वं ५५०
आम्रं (कृत्रिमपक्वं),
चूषितं ५५०
आम्रं, दुग्ध युक्तं ५५१
" पक्वं ५५०
" बालं ५५०
" वृक्षसंपक्वं ५५०
आम्रः ५५०
आम्रः, गालितोरसः ५५१
आम्रखण्डं ५५१
आम्रगन्धा-आम्र-
गंधिहरिद्रा ११६
आम्रगंधिहरिद्रा ११६
आम्रपल्लवः ५५२
आम्रपुष्पं ५५०
आम्रबीजं ५५२
आम्रमामं, त्वचाहीन-
मातपेऽतिविशो-
षितम् ५५०
आम्राणामतिभक्षणे ५५१
आम्रातं, अम्लं ५५३
" पक्वं ५५३
आम्रातः-राजाम्रं ५५३
आम्रातकः-आम्रातं ५५३
आम्रातियोगः ५५१
आम्रादिफलवर्गः ५५०
आम्रावर्त्तः ५५१
आरः-पित्तलं ६११
आरग्वधः ६८
आरग्वधफलं ६८
आरण्यकुक्कुटः ७१४
आरनालं ७८४
आरुकं-आलुकं ६९४
आरेवतः-आरग्वधः ६८
आर्तगलः-सैरेयः
(नील) ५०२
आर्द्रमरिचं १७
आर्द्रकं १४, ७२४, ७२५,
७३०, ७९६
आर्द्रिका-आर्द्रकं १४

आलं-हरितालं ६१८
आलुकं ६९४
आलुकी ६९५
" तैलेतलिता ६९५
आवर्तः-राजावर्तः ६२०
आवर्तमणिसंज्ञः-
राजावर्तः ६२०
आविकंपयः ७६२
आवेगी-वृद्धदारुः ४०८
आसवः ७८५, ७८६
आसुतं ७८५
आसुरं-बिडं १५९
आसुरी-राजिका ६५५
आस्फोटः-रक्तार्कः ३०२
आस्फोता ७९९
" -अपराजिता ३४२
" -धवलशारिवा ४२६

इ

इंगुदः ५३१
इंगुलं-हिंगुलं ६१५
इक्षुः ७९२
" अग्रे ७९४
" ग्रन्थिषु ७९४
" बाल ७९३
" मध्ये ७९४
" मूले ७९४
" युवा ७९३
" वृद्धः ७९३
इक्षुगन्धा-कासः ३८०
" -क्षुरकः ४१६
" -विदारी ३८७
इक्षुगन्धिका-गोक्षुरः २९२
इक्षुवालिका-क्षुरकः ४१६
इक्षुभेदाः ७९२
इक्षुरः-क्षुरकः ४१६
इक्षुरसः-कासः ३८०
इक्षुवर्गः ७९२
इक्षुवेष्टनः-भद्रमुंजः ३७९
इक्षोर्विकाराः ७९४
इक्ष्वाकुः-कटुतुम्बी ६८२
इक्षवालिका-कासः ३८०
इज्जलः-हिज्जलः ३६३
इन्दीवरं-नील (पद्मं) ४७९
इन्दीवरी-शतावरी ३९२
इन्द्रः-कुटजः ३४६
इन्द्रदारु-देवदारु १९६
इन्द्रद्रुः-ककुभः ५२३
इन्द्रनामानि-इन्द्रयवं ७६
इन्द्रनीलं-नीलं ६२७
इन्द्रनीलः ६२५
इन्द्रयवः-इन्द्रयवं ७६
इन्द्रवारुणी ४०३, ८००
इन्द्राणी ८००
इभमूत्रं ७७८
इरा-मद्यं ७८५
इरिमेदः ५२७
इल्लीसः ७२०
इष्टकापथकं-लामज्जकं २६१

उ

उक्षा-वृषः ७१६
उग्रगन्धः-लशुनः १३०
उग्रगन्धा ७९९
" -(महाभरी-
वचा, कुलिंजन) ४५
उग्रगन्धा-यवानिका २५
" -वचा ४३
उच्चटा-श्वेतगुंजा ३५४
उत्तमा ८००
उत्तानपत्रकः-रक्त-
एरण्डः २९८
उत्कटं-त्वचं २२४
उत्पलं-कुष्ठं ९१
उदकं ८००, ८०१
" नादेयं ७५१
" -पानीयं ७४७
उदकीर्यः-करंजी ३५३
उदरं ७१९
उदश्वित् ७७१
उदीच्यं-बालकं २३७
उदुम्बरं-ताम्रं ६०५
उदुम्बरः ५१६, ५१९, ८००
उदुम्बरपर्णी-
लघुदन्ती ३९९
उद्गारशोधनः-
कृष्णजीरः ३०
उद्दालः ६५८
उद्दालः-बहुवारः ५८३
उद्वेगं-पूगीफलं ५६२
उन्मत्तः-धुत्तूरः ३१७
उपकालिका-
उपकुंचिका ३०
उपकुञ्चिका-सूक्ष्मैला २२२
उपकुञ्ची-उपकुंचिका ३०
उपकुल्या १९
" -पिप्पली १५
उपचित्रा-द्रवन्ती ३९९
उपरत्नानि ६२८
उपरसाः ६१४
उपविषा-अतिविषा १२६
उपविषाः, सप्तजातयः ६३४
उभयकंटका-कर्कन्धू ५७१
उमा-अतसी ६५२
उरः ७१९
उरणः-मेषः ७१६
उरुबूकः-रक्तएरण्डः २९८
उलूकः ७०८
उशीरं ८००
" -वीरणमूलं २३९
उष्ट्रमूत्रं ७७८
उष्ण संयोगात् मधु ७९१

ऊ

ऊची ७४५
ऊर्णायुः-मेषः ७१६
ऊर्ध्वकंटिका-
महाशतावरी ३९२

ऊषणं १७
" -शुण्ठी १२
" -पिप्पलीमूलं १९
ऊषणः-चित्रकः २१
ऊषणा-चव्यं २०
" -पिप्पली १५

ऋ

ऋक्षः ७०६
ऋद्धिः ६१, ६२
ऋषभः ६१
" -वृषः ७१६
" -वृषभः ६१
ऋषभकः ६१
ऋष्यः ७०६
" -गवयः ७११
ऋष्यप्रोक्ता-अतिबला ३६६
" -महाशतावरी ३९२

ए

एकाष्ठीलः-वकः ४९४
एकाष्ठीला-पाठा ३९४
एडकः-मेषः ७१६
एडगजः-चक्रमर्दः १२५
एणः ७११
एरका ३८१
एरङ्गः ७२१
एरण्डतैलं ७८१
एरण्डपत्रं २९९
एरण्डफलं २९९
एरण्डफला-लघुदन्ती ३९९
एरण्डमज्जा २९९
एरण्डयुग्मं २९८
एर्वारुः-कर्कटी ६८२
एलवालु ७८७
एलवालुकं-एलालु २६२
एला २३२, ७८७
एलापर्णी-रास्ना ७९
एला सूक्ष्मा २२२
" स्थूला २२१

ऐ

ऐन्द्री ८००
" -इन्द्रवारुणी ४०३
ऐरावती-वटपत्री ४५१
ऐलवालुकं-एलालु २६२
ऐलेयं-एलालु २६२

ओ

ओड्रपुष्पं-जपा ५०६
ओदनः (पु०, न०) ७२४
ओलःसूरणः ६९३
ओष्ठोपमफला-बिम्बी ६८७

औ

औदुम्बरं-ताम्रं ६०५
औद्दालकंमधु ७८८, ७९०
औद्भिदं १६१
" तोयं ७५२
" नीरं ७५५
" वारि ७५४
औष्ट्रं दुग्धं ७६२

क

कं-पानीयं ७४७
कंकतिका-अतिबला ३६६
कंकुष्ठं ६२३, ६२४
कंकुष्ठकं ६१४
कंकेलिः-अशोकः ५००
कंकोलं २५८
कंगुः ६३५, ६५६, ७७७
" कृष्णा ६५६
" चतुर्विधा ६५६
" पीता ६५६
" रक्ता ६५६
" सिता ६५६
कंगुनी-ज्योतिष्मती ९०
कंटकारिका २९४
कंटकारी २८९–९०
" फलं २९०, ६९२
कंटकिनी-कंटकारी २८९
कंटकिफलः-पनसं ५५५
कंसकम्-कांस्यं ६११
कंटालिका-कंटकारी २८९
कंबुः-शंखः ६२२
ककुभः ५२३
कक्कोलं (पा०)-
कंकोलं २५८
ककुन्दनी-
ज्योतिष्मती ९०
कच्छुकः-तूणी ५३४
कच्छपः ७१०, ७१७
कच्छुरा-दुरालभा ४११
कच्चटं ६६७
कटंकटेरी-दारुहरिद्रा ११८
कटंभरः-कटभी ५४३
कटंभरः-श्योनाकः २८३
कटंभरा ८००
" -कटुकी ६९
" -प्रसारणी ४२४
कटभी ५४३
" -ज्योतिष्मती ९०
कटभीफलं ५४३
कटसारिका-सैरेयः
(श्वेत) ५०२
कटी ७१९
कटुकः-सर्षपः ६५४
कटुका ६९, ८००
कटुतिक्तः–
किराततिक्तः, ७३
कटुत्रिकं १९
कटुपर्णी-हेमक्षीरी ९६
कटुभद्रं-आर्द्रकं १४
" -शुण्ठी १२
कटुम्बरा (पा०)-
कटुका ६९
कटुकरोहिणी-कटुकी ६९
कट्फलः १००
कट्वङ्गः-श्योनाकः २८३

कट्वी-कटुका ६९
कठिल्लकः-बर्बरी, कृष्ण ५११
'कठफोरा'-शतपत्रः ७०८
कठिनी-खटी ६२१
कठिल्लं-कारवेल्लं ६८३
कठिल्लकः ७९८
" -पुनर्नवाऽरुणा ४२२
कणा ७९९
,, -जीरकः ३०
,, -पिप्पली १५
कणामूलं १९, २०
कण्टकाढ्या ८०१
" -कुब्जकः ४९६
" -शाल्मली ५३७
कण्टकिफलं-त्रपुसं ५६१
कण्टकी-खदिरः ५२५
" (पा०)-श्रीफलः २७४
" -विकंकतः ५७७
कण्डुरा-कपिकच्छूः ३५६
कतकं ८०१
" -कतकः
तत्फलं च ५८४
कतकः ५८४
कतृणं-रौहिषं ३८३
कदन्नं ७२४
कदम्बः ४९५
कदम्बकः-सर्षपः ६५४
कदम्बपुष्पिका-
महामुंडी ४१३
कदरः ५२६
कदली ७९९
" -मोचा ५५६
कदलीकन्दः ६९८
कनकं-सुवर्णं ६०८, ७५८
कनकः-गुग्गुलुः
हिरण्याख्यः २०४
कनकाह्वयः-धुत्तूरः ३१७
कनिष्ठं पंचमूलकम् २९४
कन्दः-सूरणः ६९३
कन्दरालः-पारीषः ५१४
कन्दुरुः २१२
कन्दलः-सूरणः ६९३
कन्या-कुमारी ४१९
,, -वन्ध्याक-
र्कोटकी ४६६
कपर्दः ६१४
कपर्दकः-कपर्दिका ६२२
कपर्दिका ६२२
कपर्दी ६२२
कपिंजलः-गौरतित्तिरिः ७१३
कपिंजलकः ७०७
कपिकच्छूः ३५६
" बीजं ३५७
कपिचूतः-पारीषः ५१४
कपितैलः-सिल्हकः २१५
कपित्थं, आमं ५६५
" पक्वं ५६५
कपित्थः ५६५, ७९९, ८००
कपित्थत्वचं-एलालु २६२
कपित्थफलं (पा०)-
एलालु २६२
कपिनामकः-सिल्हकः २१५
कपिप्रियः-कपित्थः ५६५
कपिला-पित्तलभेदं ६११
" -रेणुका २५१
कपिवल्ली-गजपिप्पली २०
कपीतकं (पा०)-
दारुहरिद्रा ११८
कपीतनः-आम्रातं ५५३
" -पारीषः ५१४
" -शिरीषः ५१८
कपिपिप्पली-रक्त
(अपामार्गः) ४१६
कपोतः ७०८
" -पारावतः ७१५
कपोतचरणा-नलिका २६६
कपोतवंका-ब्राह्मी ४६१
कमठः-कच्छपः ७१७
कमण्डलुः-पारीषः ५१४
कमलं ४७९
" -पद्मं ४७९
कमलिनी-पद्मिनी ४८१
कम्पिल्लः ७९९
करकः-दाडिमः ५८२
करकाजं जलं ७१९
करकाभवं (दिव्यं
पानीयं) ७४७
करंजः ३४९
" पत्रं ३५०
" फलं ३५०
करंजी ३५२
करजः-करंजः ३४९
करभंजिका ३५३
करमर्दः ५७४
करमर्दद्वयं ५७४
करमर्दिका द्राक्षा ५८५
" -लघु करमर्दः ५७४
करवीरः ३१४
करवीरकः ६३४
करवीरद्वयं ३१४
करहाटः-पद्मादिकन्दः ७०२
" -मदनः ७७
करीरः ५४१
कर्कटः ७१०
कर्कटश्रृंगी ९८, ७९८
कर्कटाख्या-कर्कटश्रृंगी ९८
कर्कटी-देवदाली ४६८
कर्कन्धू-क्षुद्रबदरं ५७१
कर्कशः ८०१
" -कांपिल्लः ६६
कर्कशच्छदः-पटोलं ६८६
कर्कारुः-कूष्माण्डी ६८०
कर्कोटी ६९१
कर्कोटकी-कर्कोटी ६९१

कर्चूरः २१५, ७९९
कर्णिका-कमल
बीजकोशः ४८१
कर्णिका-शतपत्री ४८८
कर्णिकारः ४९९, ७९९
" -आरग्वधः ६८
कर्दमः ६२२, ७५७
कर्दमकः-शालिभेदः ६३५
कर्पूरः (रं) १७३, ७५७
" अपक्वः १७३
" पक्वः १७३
कर्पूरनालिका ७३८
कर्पूरा-आम्रगंधि-
हरिद्रा ११६
कर्पूरादिवर्गः १७३
कर्परालः-अक्षोटकः ५८१
कर्पूराश्मा ६२८
कर्पूरोद्विविधः १७३
कर्मरंगं ५९७
कर्मारः-वंशः ३७६
कर्षफलः-बिभीतकः ९
कलंबकं-कालीयकं १९०
कलधौतं-सुवर्णं ६०२
कलध्वनिः-चित्र-
पक्षपाण्डुः ७१४
कलविंकः-कुलिंगः ७१४
कलम्बी ६६९
कलपत्रकः-दमनः ५१०
कलरवः-पारावतः ७१५
कलापी-मयूरः ७१५
कलायः ६४९
कलायशाकं ६७८
कलिंगं-इन्द्रयवं ७६
कलिद्रुमः-बिभीतकः ९
कलियुगालयः-
बिभीतकः ९
कलिहारी ३१२
कल्पकः-कर्चूरः २४५
कवचनामकः-पर्पटः ३२३
कवरी-हिंगुपत्री ४५१
कषाया-दुरालभा ४११
कसेरू द्विविधं ७०१
कसेरुकद्वयं ७०१
कस्तूरिका-कस्तूरी १७८
कस्तूरी १७८
,, अधमा १७८
,, कामरूपोद्भवा १७८
,, काश्मीरी १७८
,, त्रिविधा १७८
,, नैपाली १७८
,, मध्यमा १७८
,, श्रेष्ठा १७८
कांचनकः-कांचनारः ३३६
कांचनम्-सुवर्णं ६०२
कांचनारः ३३६
,, कोविदारः, पुष्पं ३३७
कांचनाह्वयः-
नागपुष्पः २२९
कांचनी-हरिद्रा ११४
कांजिकं ७४२, ७८३
कांजिकं माषादिवटकैः
कृतं ७८३
कांजिकसेवनाऽ-
योग्यजनान् ७८३
कांजिकावटकः ७३१
कांपिल्लः ६६
कांबोजी-माषपर्णी २९७
कांस्यं ६०९
काकः ७०८
काककङ्गुः-चीनाकः ६५७
काककर्कटी-भूमि-
खर्जूरिका ५८६
काककुष्ठं-कंकुष्ठं ६२४
काकचिंची-रक्तगुंजा ३५४
काकजंघा ४४१, ७९९
काकणन्ती-रक्तगुंजा ३५४
काकतिक्ता-काकजंघा ४४१
काकतिन्दुकः-कुपीलुः ५६८
काकतुण्डफला
-काकनासा ४३९
काकनासा ४३९
काकपर्णी-मुद्गपर्णी २९१
काकपीलुः-रक्तगुंजा ३५४
काकपीलुकः-कुपीलुः ५६८
काकपुच्छं-ग्रन्थिपर्णं २५२
काकमाची ४३८
काकमुद्गा-मुद्गपर्णी २९१
काकवल्लरी-स्वर्णवल्ली ३७३
" -रक्तगुंजा ३५४
काका-काकजंघा ४४१
काकाङ्गी-काकनासा ४३९
काकादनी-रक्तगुंजा ३५४
काकायुः-स्वर्णवल्ली ३७३
काकाह्वा-काकमाची ४३८
काकेक्षुः-क्षुरकः ४१६
काकेन्दुः-कुपीलुः ५६८
काकोदुम्बरिका
-मलयुः ५१७
काकोली ६२, ६६
काकोल्यौ ६१
काचः ६२८
काचस्थाली (पा०)-
पाटला २७८
काण्डतिक्तः
-किराततिक्तः ७३
काण्डरुहा-कटुका ६९
काण्डेक्षुः ७९२, ७९३
,, -क्षुरकः ४१६
कादम्बरी-मद्यं ७८५
कादम्बा ७०९
कान्तपाषाणः-चुंबकः ६२०
कान्तमयः ६०८
कान्तलकः-तूणी ५३४
कान्तलोहं ६०८
कान्ता-प्रियंगुः २४८

कान्तारः (इक्षुः) ७९२,७९३
कापोतः-स्वर्जिका १६३
कापोतांजनं-अंजनं ६१९
कामांगः-आम्रः ५५०
कामाह्वः-राजाम्रं ५५२
कामुकः-माधवी ४९७
काम्पिल्यः ८०१
कायस्था-हरीतकी ३
कायस्थिका-काकोली ६२
कारक्यः ७४९
कारण्डः ७०९
कारवी-अजमोदा २६
„ -उपकुंचिका ३०
„ -चन्द्रशूरं २९
„ -शतपुष्पा २५
कारवेल्लः ७९८
काल खदिरः ८०४
कासमर्दः ६७६
कार्तस्वरं-सुवर्णं ६०२
कार्पासकी ३७४
„ पलाशं ३७४
„ बीजं ३७४
कार्पासी ८००
„ -कार्पासकी ३७४
कार्मुकः-महानिंबः ३३१
कार्यः-अश्वकर्णः ५२०
कालकं-कालशाकं ६६८
कालकण्ठकः ७०८
„ -कुलिंगः ७१४
कालकूटः ६२९,६३२
कालकेशी-नीलिनी ४०६
कालज्ञः-कुक्कुटः ७१५
कालमेषिका-त्रिवृत् श्यामा ३९८
कालमेषिका-मंजिष्ठा ११०
कालमेषी-बाकुची १२३
कालशाकं ६६८
कालसारं-कालीयकं १९०
कालस्कन्धः ८०४
कालस्कन्धः-हरिमेदः ५२७
„ -तमालः ५३२
„ -तिन्दुकः ५६७
कालस्थाली-पाटला २७८
काला-नीलिनी ४०६
„ -मंजिष्ठा ११०
कालाजाजी ८०३
„ -उपकुंचिका ३०, ४०
कालानुसार्यं-तगरं १९९
कालानुसार्यकम् -कालीयकं १९०
कालानुसार्यकं -शैलेयं २४२
कालायसः-लोहं ६०७
कालिंगं-इन्द्रयवं ७६
„ -कालिन्दं ५६०
कालिंगः-कुटजः ३४६
कालिका-उपकुंचिका ३०
कालिन्दं ५६०
„ पक्वं ५६०
कालीयं-कालीयकं १९०
काली-त्रिवृद् श्यामा ३९८
„ -सौराष्ट्री ६२१
कालीयकं ८०४
„ -पीताभं (चंदनं) १९०
कालीयकः-दारुहरिद्रा ११८
कालेयकः-दारुहरिद्रा ११८
काशः ८०१
काशीशं ६२१
काश्मरी २७६
„ फलं २७७
काश्मीरं-कुंकुमं २३२
„ -पुष्करमूलं ९४
काश्मर्यः-काश्मरी २७६
काश्मीरी-काश्मरी २७६
काष्ठपाटला-पाटला-सिता २७८
काष्ठालुकं ६९४
कांस्यम् ६११
कासः ३८०
कासभंजनः-पटोलं ६८६
कासमर्दः ८०१
कासमर्ददलं ६७६
कासरः-महिषः ७१७
कासारिः-कासमर्दः ६७६
कासीसं ६१४
कासेक्षुः-कासः ३८०
किंकिरातः ४९९
„ -बब्बूलः ५२८
किंजल्कः-(कमल) केशरः ४८१, ४८२
किंशुकः-पलाशः ५३५
किट्टं ६०९
किट्टी-किट्टं ६०९
किणीही-अपामार्गः ४१४
कितवः-चोरकः २५४
„ -धुत्तूरः ३१७
किराततिक्तः ७२
किरातक भेदः-नैपालः ७२
किरातकः-किराततिक्तः ७२
किलाटः ७६४
किलाटकः ७६३
किलिमं-देवदारु १९६
कीटमाता-हंसपादी ४४४
कीलालं-पानीयं ७४७
कुंकुमं २३२, ७९८
„ अधमं २३२
„ उत्तमं २३२
„ काश्मीरं २३२
„ पारसीकं २३२
„ बाह्लीकं २३२
„ मध्यमं २३२
कुंजरा-धातकी १०८

कुकुन्दरः ४७५
„ आर्द्रमूलं ४७५
कुक्कुटः ७०७,७१४
कुक्कुरं-स्थौणेयकं २५३
कुक्षी ७१९
कुचन्दनं-पतंगं १९३
कुञ्चिका-मेथिका ३७
कुञ्ची-उपकुंचिका ३०
कुटजः ३४६, ८०१
कुटजबीजं-इन्द्रयवं ७६
कुटन्नटः ७९९
„ -श्योनाकः २८३
कुटन्नटं-वितुन्नकं २६४
कुटिलं-तगरं १९९
कुठेरकः-तूणी ५३४
„ -बर्बरी कृष्ण ५११
कुण्डलिनी ७५०
कुण्डली ८००
„ -कोविदारः ३३६
„ -गुडूची २९९
कुत्सितः शाल्मलिः-कूटशाल्मलिकः ५३८
कुद्दालः-कोविदारः ३३६
कुधान्यं-क्षुद्रधान्यं ६५६
कुनटी ७९९
„ -धान्यकं ३२
„ -मनःशिला ६१९
कुनाशकः-यासः ४११
कुन्दं ५०३
कुन्दः-कुन्दुरुः २१२
कुन्दुरुकी-शल्लकी ५२१
कुपीलुः ५६८,७९८
कुबेराक्षी-पाटला २७८
कुब्जकः ४९६, ८०१
कुमारकः-वरुणः ५४२
कुमारी ४१९
कुमुदं ४८३
कुमुदः गुग्गुलुः २०४
कुमुदबीजं-कुमुद्वती-बीजं ५७९
कुमुदिका-कट्फलः १००
कुमुदिनी ४८३
कुमुद्वती-कुमुदिनी ४८३
„ बीजं ५७९
कुम्भालूखलकं-गुग्गुलुः २०४
कुम्भिका-कट्फलः १००
„ -वारिपर्णी ४८५
कुम्भीरः ७१०
कुरङ्गः ७०६, ७११
कुरण्टकः-अम्लाटनः ५०२
„ -सैरेयः (पीत) ५०२
कुरबकः-सैरेयः (रक्त) ५०२
कुररः ७०८
कुरुविन्दः-मुस्तं २४३
कुलकः ७९८
„ -कुपीलुः ५६८
कुलत्थः ६४०
कुलत्थिका-कुलत्थः ६५०
कुलिंगः ७०७, ७१४
कुली-बृहती २८८
कुलीरविषाणिका-कर्कट श्रृंगी ९८
कुल्माषाः ७४६
कुवलं-सौवीरं ५७१
कुशः ३८२
कुशेशयम्-कमलं ४७९
कुष्ठं ९१
कुष्ठगन्धिनी-अश्वगंधा ३९३
कुष्ठघ्नी-बाकुची १२३
कुष्ठभेदं-पुष्करमूलं ९४
कुसुम्भं ११२, ७९८
कुसुम्भतैलं ७८१
कुस्तुम्बुरु-धान्यकं ३२
कुहा-कर्कन्धू ५७१
कुहेसजलं-हैमंजलं ७५०
कूटजः-कुटजः ३४६
कूटशाल्मलिः-कूटशाल्मलिकः ५३८
कूटशाल्मलिकः ५३८
कूपः ७५२, ७५३
कूपसम्भूतं (जलं) ७५५
कूरं-भक्तं ७२४
कूर्चशीर्षकः-जीवकः ६१
„ -नारिकेलः ५५८
कूर्मः-कच्छपः ७१०, ७१७
कूलेचराः ७०५, ७०९
कूष्माण्डं, मध्यमं ६७९
कूष्माण्डः ८००
कूष्माण्डक वटी ७३१
कूष्माण्डी-कर्कारुः ६८०
कृकवाकुः-कुक्कुटः ७१४
कृतकं-बिडं १५९
कृतमालः-आरग्वधः ६८
कृतान्नवर्गः ७२४
कृमिघ्नः ७९९
„ -विडंगः ५२
कृमिघ्नी-हरिद्रा ११४
कृमिजं-अगुरु १९४
कृमिजग्धं-अगुरु १९४
कृमिवृक्षः-कोशाम्रः ५५४
कृशरा ७२५
कृशा (पा०)-मांसरोहिणी ३५८
कृशोदरी-धवल-शारिवा ४२६
कृष्णं-मरिचं १७
कृष्ण (अगुरु) १९४
कृष्णकायः-महिषः ७१७
कृष्णजीरः ३०
कृष्णतित्तिरिः-तित्तिरिः ७१३
कृष्णपाकफलः-करमर्दः ५७४

कृष्णफला-कोल-
शिम्बिः ६८८
कृष्णफला-वाकुची १२३
कृष्णबीजं-कालिन्दं ५६०
कृष्णभेदा-कटुकी ३९
कृष्णमृत् ६२२
कृष्णमृत्तिका-कृष्णमृत् ६२२
कृष्णराजिका ६५५
,, तैलं ७८०
कृष्णला-श्वेतगुंजा ३५४
कृष्णवर्णः-अरिष्टकः ५२९
कृष्णवृन्ता-काश्मरी २७६
,, -पाटला २७८
,, -माषपर्णी २९७
कृष्णशारिवा ४२५
कृष्णसर्षपः-कृष्ण-
राजिका ६५५
कृष्णसारा-शिंशपा ५२२
कृष्णा ८०३
,, -पर्पटी २६५
,, -पिप्पली १५
कृष्णागुरु १९४
कृष्णीका-कृष्ण-
राजिका ६५५
केकी-मयूरः ७१५
केतकः ४९८
केतुग्रहवल्लभं-वैदूर्यं ६२७
केदारः ७५४
केमुकं ६००
केशनाम-वालकं २३७
केशपर्णी-रक्त
(अपामार्गः) ४१६
केशमुष्टिः-महानिम्बः ३३१
केशरंजनः-भृंगारः ४२९
केशरः-नागपुष्पः २२९
केसराजः-भृङ्गारः ४२९
केशी-माचिका ८६
केशहन्त्री-शमी ५४५
कैषिका-त्रिवृत्श्यामा २९८
कैटर्यः-कट्फलः १००
कैदारं वारि ७५३
कैरवं-कुमुदं ४८३
कैरविका-कुमुदिनी ४८३
कैरवी-मेथिका ३७
कैरविणीफलं-कुमुद्वती-
बीजं ५७९
कैरातः-किराततिक्तः ७३
कैवर्तीमुस्तकं-वितुन्नकं २६४
कैवर्तीमुस्तं ७११
कोकनदं-रक्तं (पद्मं) ४७९
कोकिलाक्षः-क्षुरकः ४१६
कोटिवर्षा-स्पृक्का २६४
कोद्रवः ६५८
कोमलवल्कला-लवली ५७४
कोरंगी-सूक्ष्मैला २२२
कोलं-लघुसौवीरं
संपक्वं ५७१
कोलकं-कंकोलं २५८
कोला-पिप्पली १५
कोलकाकुलं-कंकुष्ठं ६२४
कोली-कर्कन्धू ५७१
कोलवल्ली-गजपिप्पली २०
कोलशिम्बिः ६८८
कोविदारः ३३६,७९८,८००
कोशकारः (इक्षुः) ७९२
कोशकृत् (इक्षुः) ७९२
कोशातकी ७९८
कोशाम्रः ५५४
,, पक्वफलं ५५४
कोशस्थाः ५५४, ७१०
कोषफलं-कंकोलं २५८
कौटः-कुटजः ३४६
कौन्ती-रेणुका २५१
कौपं पयः, क्षारं ७५३
कौपं पयः, स्वादु ७५३
कौपं वारि ७५४
कौप्यं जलं ७५४
कौशिकः-गुग्गुलुः २०४
क्रकचच्छदः-केतकः ४९८
क्रकरीपत्रः-करीरः ५४१
क्रमुकः-पूतं ५८१
,, -पट्टिकालोध्रः १२८
,, -पूगं ५६२
क्रव्यं-मांसं ७०५
क्रूरकर्मा-अर्कपुष्पी ४५५
क्रोडः ६२८
क्रोडकसेरुकः
-नागरमुस्तकः २४३
क्रोष्टुविन्ना-पृश्निपर्णी २८६
क्रोष्ट्री-विदारी ३८७
क्रौंचः ७०९
क्लीतकं-यष्टीमधु ६५
क्लीतिका-नीलिनी ४०६
क्लीतनकं-मधुयष्टीभेदः ६५
क्वथिता ७३२
क्षत्रवृक्षः-मुचकुन्दः ५०४
क्षयतरुः-नन्दीवृक्षः ५१५
क्षवः-कृष्णराजिका ६५५
क्षवकृत्-छिक्कनी ४७४
क्षारं-टंकणं १६९
क्षारः ८००
,, अर्कः १७१
,, चिंचा १७१
,, तिलनालजः १७१
,, पलाशः १७१
,, यवक्षारः १६३
,, वज्रिः १७१
,, शिखरिः १७१
,, स्वर्जिका १६३
क्षारत्रयं १७१
क्षारद्वयं १७१
क्षारलवणं ७९८
क्षारवृक्षः-मोक्षकः ५४४
क्षारश्रेष्ठः-पलाशः ५३५
,, -मोक्षकः ५४४
क्षाराष्टकं १७१
क्षीरम् ७५६, ८०१

क्षीरम् एकशफं सर्वं ७६२
,, दण्डाहतं ७६५
,, -दुग्धं ७५९
क्षीरकाकोली ६२,८००,८०३
क्षीरशाकं ७६३, ७६४
क्षीरशुक्ला
-क्षीरकाकोली ६२
क्षीरशुक्ला-विदारी ३८७
क्षीरा-दुग्धिका ४५८
क्षीरिका ५७६, ७२५, ८००
क्षीरिणी ८०३
क्षीरिवृक्षपत्रं ५२०
क्षीरिवृक्षाः ५१९
क्षीरयष्टिका-क्षीर-
काकोली ६२
क्षीरवल्ली-विदारी ३८७
क्षीरिणी-क्षीर-
काकोली ६२
क्षीरी-नन्दीवृक्षः ५१५
,, -वटः ५१३
क्षुताभिजनकः-कृष्ण
राजिका ६५५
क्षुद्रपत्री-वचा ४३
क्षुजनिका-राजिका ६५५
क्षुद्रचंदनं-रक्तचंदनं १९१
क्षुद्रजम्बुः-जम्बूः ५७१
क्षुद्रदन्तीफलं ४०१
क्षुद्रधान्यं ६६५, ६५६
क्षुद्रपनसः-लकुचः ५२६
क्षुद्रघंटाकी-बृहती २८८,२९७
क्षुद्रमत्स्याः ७२२
(क्षुद्रशंखः-शंखनखः) ७१०
क्षुद्र बदरं-कर्कन्धू ५७१
क्षुद्रवर्षाभू
-पुनर्नवाऽरुणा ४२२
क्षुद्रा-कंटकारी २७९
,, सिता-श्वेतकंटकारी २९०
क्षुद्राम्रः-कोशाम्रः ५५४
क्षुमा-अतसी ६५२
क्षुरः-क्षुरकः ४१६
क्षुरकं-रंगभेदं ६०६
क्षुरकः ४१६
,, -गोक्षुरः २९२
,, -तिलकः ५०५
क्षुरपत्रः-कुशभेदः ३८२
क्षेत्रं-केदारः ७५४
क्षेत्रजा-कृष्णमृत् ६२२
क्षेत्रदूतिका
-श्वेतकंटकारी २९०
क्षेमकः-चोरकः २५४
क्षौद्रं-मधु ७८८, ७८९
क्ष्वेडः-विषं ६२९

ख

खंजरीटः ७०८
खगः ७१२
खटिका-खटी ६२१
खटी ६१४, ६२१
खण्डं ७२७, ७९६
खण्डिकः-त्रिपुटः ६५०
खण्डेन सहितं दुग्धं ७६४
खदिरका-लज्जालुः ४५६
खदिरः ५२५, ८००
खदिरः श्वेतसारः
-कदरः ५२६
खमूलिका-वारिपर्णी ४८५
खरच्छदः-भूमीसहः ५४५
,, -शाखोटः ५४२
खरत्वक्-अलंबुषा ४५७
खरपर्णिनी-गोजिह्वा ४७१
खरपुष्पा-बर्बरी ५११
खरमंजरी-अपामार्गः ४१४
खरमूत्रं ७७८
खरशाकः-भार्गी १०१
खरशाखा (पा०)
-लाक्षा १७३
खरस्कन्धः-चारः ५७५
खरस्पर्शा-देवदाली,
पीता ४६८
खराश्वा-अजमोदा ३९
खर्जूरः, शिरः ५७९
खर्जूरिका स्वल्पा ५८६
खर्जूरीगोस्तनाकारा ५८६
खर्जूरीतरुतोयं ५८७
खर्जूरीत्रितयं ५८६
खर्जूरी महती ५८६
खर्परं ६३१
खर्परी-रसकं ६३१
खर्बूजं ५६१
,, अम्लमधुरं
सक्षारं ५६१
खल्ली ४४७
खसतिलः-खाखसः १४५
खसफलक्षीरं-आफूकं १४६
खसबीजं १५३
खसबीजानां तैलं ७८१
खाखसः १४५
खाखसतिलः १५३
खाखसफलो-
द्भवंवल्कलं १४५

ग

गंगा (नदी) ७५१
गंजा-भंगा १४१
गंडः ७०९
गंडदूर्वा ३८६
गंडारिः-कांचनारः ३३६
गंडारी ८००
गंडाली-गंडदूर्वा ३८६, ८०१
,, -सर्पाक्षी ४५२
गंडीरः ८००
गंडीरी-मंजिष्ठा ११०
गणरूपः-श्वेतार्कः ३०२
गणहासकः-चोरकः २५४
गणिका-यूथी ४९२
गणिकारिका २८५
,, -अग्निमंथः २८१
गगनं-अभ्रं ६१६

गजः ६२८
गजकर्णा ७००
,, -गजपिप्पली २०
गजपादपः-नन्दीवृक्षः ५१५
गजपिप्पली २०
गजभक्ष्या-शल्लकी ५२१
गजाशनः-पिप्पलः ५१३
गडाख्यं १५७
गदं ७८७
गन्धः ६१४
गन्धकः ६१५
,, असितः ६१५
,, चतुर्धा ६१५
,, पीतः ६१५
,, सितः ६१५
,, रक्तः ६१५
गन्धकुटी-मुरा २४६
गन्धकोकिला २६०
गन्धगर्भः (पा०)
-श्रीफलः २७४
गन्धनाकुली-सर्पांगी ८२
गन्धपलाशी ७९९, ८००
गन्धपाषाणः-गन्धकः ६१५
गन्धपुष्पः-अशोकः ५००
गन्धफला-चम्पक
कलिका ४९३
गन्धफला-प्रियंगुः २४८
,, -मेथिका ३७
गन्धफली ८००
गन्धप्रियंगुका २४८
गन्धमार्जारवीर्यं १८४
गन्धमालती २६०
गन्धमूलिका-गंध-
पलाशी २४७
गन्धरसः-वोलं ६२२
गन्धर्वः-अश्वः ७१७
गन्धर्वहस्तकः-शुक्ल-
एरण्डः २९८

गन्धवधूः-गन्ध-
पलाशी २४७
गन्धसारः-चन्दनं १८६
गन्धाढ्या-शतपत्री ४८८
गन्धारिका-गन्ध-
पलाशी २४७
गन्धिकः-गन्धकः ६१५
गन्धोत्कटः-दमनः ५१०
गम्भारी ८०३
,, -काश्मरी २७६
गरघ्नी ७२१
गरनाशिनी-देवदाली,
पीता ४६८
गरलः-विषं ६२९
गरागरी-देवदाली ४६८
गर्गरः ७२०
गर्दभाण्डः-पारीषः ५१४
गर्भंकरः-पुत्रजीवः ५३०
गर्भदा-श्वेतकंटकारी २९०
गर्भनुत्-कलिहारी ३१२
गर्भपातनः-अरिष्टकः ५२९
गलस्तनी-छागः ७१५
,, -छेलिका ७१५
गवयः ७११
गवयः महान्-शंबरः ७०६
गवाक्षी-इन्द्रवारुणी ४०३
गवादनी-इन्द्रवारुणी ४०३
गवादनीद्वयं ४०३
गवेधुका-गवेधुः ६६०
गव्यंदधि ७६८
गव्याज्यं ७२६
गांगं (धारं) ७४८
गांगेयं-सुवर्णं ६०२
गांगेरुकी-नागबला ३६६
गाजरं ६९७
गान्धारी ८००
,, -दुरालभा ४११
गायत्री-खदिरः ५२५
गारुत्मतं ६२५, ६२८

गालवः-लोध्रः १२८
गालितं दधि ७६९
गालोड्यं-पद्मबीजं ५७७
गिरिकर्णी-अपराजिता ३४२
गिरिजं-गैरिकं २०६
,, -शिलाजं ६१२
गिरिजा-त्रायन्ती ४२१
गिरिभिद्-पाषाण-
भेदकः १०४
गिरिमल्लिका-कुटजः ३४६
गुंजा ६३४, ८००
,, श्वेता ३५४
गुंजाद्वयं ३५४
(गुंजा) रक्ता ३५४
गुग्गुलुः २०४
,, नवः २०५
,, पुराणः २०५
गुग्गुलोः जातयः २०४
गुच्छकं-ग्रंथिपर्णं २५२
गुडः ७९५
,, अनुपानभेदेन ७९६
,, जीर्णः ७९५
,, नवः ७९६
गुडपुष्पः-मधूकः ५७९
गुडफलः-पीलुः ५९०
गुडमूलः-इक्षुः ७९२
गुडविषये परिभाषा ७९७
गुडस्य पुराणत्वं ७९१
गुडा-सेहुण्डः ३०६
गुडूचिका-गुडूची २६९
गुडूची २६९, ८००, ८०२-३
गुडूच्यादिवर्गः २६९
गुन्द्रः ३८१
गुन्द्रमूला-एरका ३८१
गुन्द्रा-एरका ३८१
,, -नागरमुस्तकः २४२
,, -प्रियंगुः २४८
गुल्मः-गुन्द्रः ३८१
गुवाकः-पूगं ५६२

गुहा-शालपर्णी २८५
,, -पृश्नीपर्णी २८६
गुहाशयाः ७०५, ७०६
गुह्यबीजं-भूतृणं ३८३
गूढपादः-कच्छपः ७१७
गृञ्जनं-गाजरं ६९७
गृध्रः ७०८
गृष्टिः-वाराही ३८६
गृहकन्या-कुमारी ४१९
गैरिकं ६१४, ६२०
गैरिकद्वितयं ६२०
गैरेयं-गैरिकं ६२०
,, -शिलाजं ६१२
गोपयः ७२६
गोकंटकः-गोक्षुरः २९२
गोकर्णी-मूर्वा ४३३
गोक्षुरः २९२, २९४, ७९८,
८०४
गोक्षुरकः-गोक्षुरः २९२
गोजिका-गोजिह्वा ४७१
गोजिह्वा ४७१
गोत्रवृक्षः-धन्वंगः ५४०
गोदावरी (नदी) ७५१
गोधा ७०६, ७१०
गोधूमः ६४२, ७२६, ७२९
गोनर्द-वितुन्नकं २६४
गोपकन्या-धवल-
शारिवा ४२६
गोपरसः-वोलं ६२२
गोपवधूः-कृष्ण-
शारिवा ४२५
गोपवल्ली-धवल-
शारिवा ४२६
गोपा-धवलशारिवा ४२६
गोपी-कृष्णशारिवा ४२५
गोपुरं-वितुन्नकं २६४
गोभी-गोजिह्वा ४७१
गोमूत्रं ७७८
गोमेदं ६२६, ७५८

गोमेदः ६२५, ६२७, ६२८
गोरक्षकर्कटी-चिर्भिटं ५५८
गोरोचना २३५, ८००
गोला-मनः शिला ६१९
गोलिहः-मोक्षकः ५४४
गोलीढः-मोक्षकः ५४४
गोलोमी ८००
,, -दूर्वाशुक्ला ३८५
,, -वचा ४३
गोस्तनी-द्राक्षा ५८५
गौः ७१६
गौः-वृषः ७१६
गौरः-धवः ५३९
गौरकः (लावः) ७१३
गौरखटी-खटीभेदः ६२१
गौरतित्तिरिः
-कपिंजलः ७०७, ७१३
गौरसर्षपः-सिद्धार्थः ६५४
गौरी-गोरोचना २३५
,, -तुलसी ५०९
ग्रन्थिकं-ग्रंथिपर्णं २५२
,, -पिप्पलीमूलं १९
ग्रन्थिपर्णं २५२, ८०१
ग्रन्थिमान्-अस्थिसंहा
रकः ४१८
ग्रन्थिलः-करीरः ५४१
-विकंकतः ५७७
ग्रन्थिसु, इक्षुः ७९४
ग्रामीणा-नीलिनी ४०६
ग्राम्याः ७०५, ७०९
ग्राम्या-तुलसी ५०९
ग्रीवा ७१८

घ

घंटा-शणपुष्पी ४३०
घंटापाटलिः
-पाटला सिता २७८
घंटिकः ७१०
घनरसः-पानीयं ७४७

घनसारः-कर्पूरः १७३
घुणप्रिया-लघुदन्ती ३९९
घुणवल्लभा-अतिविषा १२६
घुसृणं-कुंकुमं २३२
घृतं ७२५-२६, ७७५
,, औष्ट्रं ७७६
,, गव्यं ७७५
,, दुग्धभवं ७७६
,, पक्वं ७८०
,, माहिषं ७७५
,, वडवायाः ७७६
घृतकुमारिका-कुमारी ११९
घृतपूर्णकरंजः ३४९
घृतप्रयोगस्य विषयान् ७७७
घृतवर्गः ७७५
घोटकः-अश्वः ७१७
घोटकारिः-महिषः ७१७
घोण्टा ७९९
,, -सौवीरं ५७१
घोरण्टः-पूगं ५६२
घोलं ७७१
घोलं शर्करायुक्तं ७७१
घोषं-कास्यं ६११
घोषकः-महाकोशातकी ६८४
घ्राणदुःखदा-छिक्किका ४७४

च

चंचुः-रक्तएरण्डः २९८
चंचुकी-चंचुः ६७२
चंपकः ४९३
चक्रकारकं-नखं २३६
चक्रमर्दः १२५
चक्रमर्दफलं १२५
चक्रलक्षणिका-गुडूची २६९
चक्रवर्तिनी-पर्पटी २६५
चक्रा-कर्कटशृंगी ९८
चक्रांगी-कटुका ६९
चक्राह्वा-सुदर्शना ४७६
चक्री-चक्रमर्दः १२५

चतुष्यं-पौष्करं २६७
चटकः-कुलिङ्गः ७१४
चटकाशिरः-पिप्पलीमूलं १५
चणकः ६४८
„ अंगारसम्भृष्टः ६४८
„ आर्द्रः ६४८
„ आर्द्रभृष्टः ६४८
„ तैलभृष्टः ६४८
„ शुष्कभृष्टः ६४८
„ स्विन्नः ६४८
„ सूपः ६४८
चणकयवसक्तवः ७४४
चणकाम्लं १६२
चणकयारोटिका ७२८
चण्डः-चोरकः २५४
चण्डातः-रक्तकरवीरः ३१४
चतुरंगुलः-आरग्वधः ६८
चतुरम्ल ६००
चतुरूषणं १९
चतुर्बीजं ४०
चन्दनं (नः) १८६
चन्दनं, श्रेष्ठं १८६
चन्दना-धवलशारिवा४२६
चन्दनानि १९४
चन्द्रः-कांपिल्लः ६६
„ -हीरकः ६२६
चन्द्रकान्ति-रूप्यं ६०४
चन्द्रकी-मयूरः ७१५
चन्द्रद्युतिः-चन्दनं १८६
चन्द्रपुष्पा
-श्वेतकंटकारी २९०
चन्द्रबाला-स्थूलैला २२१
चन्द्रमा-श्वेतकंटकारी २९०
चन्द्रशूरं ४०
चन्द्रसंज्ञः-कर्पूरः १७३
चन्द्रहासा ८०२
„ -गुडूची २६०
चन्द्रहासा
-श्वेतकंटकारी २९०
चन्द्रिका-चन्द्रशूरं ३९
„ -मेथिका ३७
चन्द्री-श्वेतकंटकारी २९०
चपलः-पारदः ६१३
„ -राजमाषः ६४५
चपला-पिप्पली १५
चमरी ७०९
चमसी ७२८
चमसीरचिता रोटी ७२८
चम्पक (कदली) ५५७
चम्पककलिका ८००
चरणायुधः-कुक्कुटः ७१४
चर्मकरी (पा०)
-मांसरोहिणी ३५८
चर्मकषा ८०१
„ -मांसरोहिणी३५८
„ -शातला ३१०
चर्मकारालुकः
-वाराही ३८६
चर्महन्त्री-चन्द्रशूरं ३९
चर्मारः-हिंगुलभेदं ६१५
चर्मी-भूर्जः ५३५
चलपत्रः-पिप्पलः ५१३
चविका-चव्यं २०
चविकायाः फलं
-गजपिप्पली २०
चव्यं २०, २४
चांगेरी ६७१, ७९९
चांगेरीशाकं ७९८
चांपेयः-चंपकः ४९३
„ -नागपुष्पः २२९
चाणक्यमूलकं
-लघुमूलकं ६९६
चातुर्जातकं २३२
चामीकरं-सुवर्णं ६०२
चारः ५७५
चारफलं ५७५
चारबीजं ७३७
चाक्रकः ६५९
चारुकेशरा-शतपत्री ४८८
चाषः ७०८
चिंचा-अम्लिका ५९७
„ -चंचुः ६७२
चिंचाक्षारः १७१
चिंचिका-अम्लिका ५९७
चिकिलः-कर्दमः ६२२
चिचिण्डः ६८३
चिचोडं-लघुकसेरुकं ७०१
चित्रः-वर्त्तकः ७१३
„ -शुक्लएरण्डः २९८
चित्रकः २१, २४, ७९९
„ -मुचकुन्दः ५०४
चित्रतण्डुलः-विडंगः ५२
चित्रपत्तः (पाण्डुः) ७१४
चित्रपर्णी-पृश्निपर्णी २८६
चित्रा ८००
„ -इन्द्रवारुणी ४०३
„ -द्रवन्ती ३९९
चिपिटः ७२४, ७४५
चिरबिल्वकः-करंजः ३४९
चिर्भिटं ५५८
„ पक्वं ५५८
चिल्लः ७०८
चिल्हकः ३५९
चीनाकसंज्ञः कर्पूरः १७५
चीरितच्छदा-पलक्या ६६८
चुक्र १७२
„ -अम्लवेतसं ५९९
„ -वृक्षाम्लं ५९९
चुक्रा-अम्लिका ५९७
चुक्रिका-अम्लिका ५९७
चुम्बकः ६१४, ६२०
चुलुकः-कर्दमः ६२२
चूतः-आम्रः ५५०
चूर्णपारदं-हिंगुलं ६१५
चेतकी-हरीतकी २
चेतिका-जाती ४९१
चोकं-हेमक्षीरीमूलं ९६
चोचं-त्वचं २२४
चोरकः २५४
चौञ्ज्यं (जलं) ७५३, ७५५
चौञ्ज्याः (मत्स्याः)७२३

छ

छर्दनः-मदनः ७७
छच्छिका ७७१
छत्रा-धान्यकं ३३
„ -भूतृणं ३८३
„ -मिश्रेया ३५
छागं दुग्धं ७६०
छागः ७०९, ७१५
छागमुण्डं ७१६
छागलः-छागः ७१५
छागस्य, निष्कासि-
ताण्डस्य, मांसं ७१६
छागान्त्री-वृद्धदारुः ४०८
छागी ७१५
छात्रं (मधु) ७८८, ७८९
छिक्कनी ४७४
छिक्किका-छिक्कनी ४७४
छिन्नपुष्पकः-तिलकः ५०५
छिन्नरुहा-गुडूची २६९
छिन्ना-गुडूची २६९
छिन्नोद्भवा-गुडूची २६९
छिलिहिण्टः ४४८
छेलकः-छागः ७१५
छेलिका-छागः ७१५
छोहारा-खर्जूरीगोस्त-
नाकारा ५८६

ज

जंघाल संज्ञकाः ७०६
जंघालाः ७०७
जंबीरं ५९४, ७९९
जंबीरः-जंबीरं ५९४
जंबीरिका स्वल्पा ५९४
जघनेफला-मलयुः ५१७
जटामांसी-मांसी २४०
जटायुः-गुग्गुलुः २०४
जटिला-मांसी २४०
जटिलोग्रा-वचा ४३
जटी-प्लक्षः ५१८
जतुः-लाक्षा ११३
जतुकं-हिंगु ४०
जतुका-पर्पटी २६५
जतुकृत्-पर्पटी २६५
जतुकृष्णा-पर्पटी २६५
जननी-पर्पटी २६५
जनार्दनः-बद्धपारदः ६१३
जनी-पर्पटी २६५
जन्तुनाशनः-विडंगः ५२
जन्तुफलं ८००
जन्तुफलः-उदुम्बरः ५१६
जपा ५०६
जम्बुकः-केतकः ४९८
जम्बुकप्रियं-भूतृणं ३८३
जम्बूः ५७१
जम्बूकः ७०६
जम्भः-जंबीरं ५९४
जम्भलः-जंबीरं ५९४
जम्भीरः-जँबीरं ५९४
जयंती-अग्निमंथः २८१
जयः-अग्निमंथः २८१
जयपालः ४०१
जया-अग्निमंथः २८१
„ -भंगा १४१
जरणः-जीरकः ३०
(जलं) दिव्यं ७४७
जलं नैर्झरं ७५२
„ -पानीयं ७४७
„ साधारणं ७५१
„ हैमं ७५०
जलकल्कः-कर्दमः ६२२
जलकामुका-अर्कपुष्पी४५५
जलकारिका-लज्जालुः ४५६
जलग्रहणस्य समयं ७५६
जलजं-शैवालं ४८५
जलजम्बुका-जम्बूः ५७१
जलजोवेतसः ३६३
जलदः-कुपीलुः ५६८
जलनीली-शैवालं ४८५
जलपानविधि ७५६
जल पान (शीतल)
निषेधविषयान् ७५६
जल पान (शीतल)
विषयान् ७५६
जलपानस्यावश्यकता
७५६, ७५७
जलपिप्पलिका ४७०
जलपिप्पली ४७०, ७९९,
८००
जलफलं-शृंगाटकं ५७८
जलमाम्रं ७५५
जलयष्टी ७९८
जलवेतसः ७९९
„ -जलजोवेतसः ३६३
जलालूकं-मृणालमूलं ७०२
जलालूवं (पा०)
-मृणालमूलं ७०२
जलेनरहितं दुग्धं ७६३
जांगलं (भौमंजलं) ७५०
जांगलचरन्तीनां पयः७६०
जांगल (मांस) जातयः,
अष्टौ ७०५
जांगलदेशः ७५०
जांबूनदं-सुवर्णं ६०२
जातरूपं-सुवर्णं ६०२
जातिः-जाती ४९१, ७५७
जातिकोशं-जातीफलं २१६
जाती ४९१, ७४२–४३
जाती (पा०)-मेथिका ३७
जातीपत्री २१८
जातीफलं २१६
जातीफलरसं-आमलकी१०
जातीयुगं ४९१

जालिनी -राजकोशातकी ६८५
जिंगिनी ५३२
जिंगी-मंजिष्ठा ११०
जीमूतः-देवदाली ४६८
जीरकं ५५१, ७९९
जीरकः ३०, ७२९, ७८७
जीरक त्रितयं ३०
जीर्णपत्रः-पट्टिकालोध्रः १२८
जीवः-महानिंबः ३३१
जीवकः ६१, ६३, ८०१
जीवनं-पानीयं ७४७
जीवनगणः २९८
जीवनी-जीवन्ती २९५
जीवनीयगणः २९८, ८०१
जीवन्ती २९८
„ -गुडूची २६९
„ -हरीतकी ३
जीवा-जीवन्ती २९५
ज्योतिः-मेथिका ३७
ज्योतिष्का-ज्योतिष्मती ९०
ज्योतिष्मती ९०, ७९९

झ

झरः-निर्झरः ७५२
झर्झरं ७३९
झर्झरिका ७२८
झर्झरी ७२८
झषः ७१०
झषा-नागबला २६६
झिंगिनी-जिंगिनी ५३२
झिंगी-जिंगिनी ५३२

ट

टङ्कणं १६९, ६१४
टङ्कणः ६२०
टङ्कारी ३६०
टुण्टुकः २८३

ड

डहुः-लकुचं ५५६
डिण्डिशः ६९०
डोडि-डोडिका ६९२
डोडिका ६९२

त

तक्रं ७२७, ७४७, ७७१
„ आमं ७७२
„ अनुद्घृतघृतं ७७२
„ गव्यादीनां ७७३
„ दोषविशेषे व्याधि-विशेषेच ७७२
„ पक्वं ७७२
„ समुद्घृतघृतं ७७२
„ स्तोकोद्घृतघृतं ७७२
तक्रपिण्डः ७६४
तक्रमांसं ७३४
तक्रवटकः ७२७
तक्रवर्गः ७७१
तक्रसेवनविषयान् ७७२
तक्रस्यनिषेधविषयान् ७७३
तगरं १९९, ८०४
तगरद्वयं १९९
तडागः ७५२
तडागजं जलं ७५५
तंडुलः ७२४, ७२५, ७४६
„ नवः ७४६
„ -विडंगः ५२
तण्डुलीबीजः-तण्डुलीयः ६६६
तण्डुलेरकः-तण्डुलीयः ६६६
तनुत्वक्-दारुसिता २२६
तन्त्रिका-गुडूची २६९
तपनीयं-सुवर्णं ६०२
तपस्विनी-मांसी २४०
तपोधनः-दमनः ५१०
तपोधना-मुण्डनिका ४१३
तसकं ७२७
तमालः ५३२, ८०४
तमालपत्रं-पत्रकं २२८
तरक्षुः ७०६, ७०७
तरणिः ६११
तरुणी-शतपत्री ४८८
तरुणः-शुक्लएरण्डः २९८
तर्कारी-अग्निमंथः २८१
तांबूलं २७१
तांबूलवल्ली-तांबूलं २७१
तांबूली-तांबूलं २७१
ताडाकं उदकं ७५२
ताडागं तोयं ७५४
तापसद्रुमः- गुदः ५३१
तापसेक्षुः ७९२, ७९३
तापसेष्टः-चारः ५७५
तापहरी ७२५
तापिच्छः-तमालः ५३२
तापीजं-सुवर्णमाक्षिकं ६०९
ताप्यं-सुवर्णमाक्षिकं ६०९
तामरसं-कमलं ४७९
तामलकी-भूधात्री ४६०
ताम्रं ६०२, ६०५, ६११, ८००
ताम्रः-वासकः ३२०
ताम्रचूडः-कुकुन्दरः ४७५
„ -कुक्कुटः ७१४
ताम्रत्रपुजं-कांस्यं ६११
ताम्रपल्लवः-अशोकः ५००
ताम्रपुष्पः-कोविदारः ३३६
ताम्रपुष्पी-धातकी १०८
„ -पाटला २७८
तारं-रूप्यं ६०३, ६०४
तारमाक्षिकं ६०९-१०
तार्क्ष्यजं-रसांजनं १२२
तार्क्ष्यशैलं-रसांजनं १२२
तालं-हरितालं ६१८
तालः ५६३
तालकं-हरितालं ६१४, ६१८
ताल शिरः ५५९
तालजं अम्लीभूतं तोयं ५६४
तालजं तरुणं तोयं ५६४

तालपर्णी ७९९
तालफलं, पक्वं ५६३
तालमज्जा ५६४
तालमूली-मुशली ३८९
तालीसं ५५२
तिंतिडी-अम्लिका ५९७
तिंतिडीकं-वृक्षाम्लं ५९९
तिंतिडीका-अम्लिका ५९७
तिंतिडीफलं-जयपालः ४०१
तिक्तः-पटोलं ६८६
तिक्तकः-निंबः ३२८
„ -इंगुदः ५३१
तिक्तशाकः-वरुणः ५४२
तिक्ता-कटुका ६९
तित्तिरः ७०७
तित्तिरिः ७१३
तिनिशः ५४७
तिन्दुकं ८०४
„ आमं ५६७
„ पक्वं ५६७
तिन्दुकः ५६७
„ -कुपीलुः ५६८
तिरीटः-लोध्रः १२८
तिलः ६५१, ६६१
„ कृष्णः ६५१
„ रक्तः ६५१
„ सितः ६५१
तिलकः ५०५
तिलकिट्टं-पिण्याकः ७४६
तिलखलिः-पिण्याकः ७४६
तिलतैलं ७७९
तिलनालजक्षारः १७१
तिलपर्णं ८०१
„ -रक्तचंदनं १९१
तिलभेदः-खाखसः १४५
तिलसम्भवं तैलं ७७९
तिल्वः-लोध्रः १२८
तिष्यफला-आमलकी १०
तीक्ष्णं-लघुमूलकं ६९६
तीक्ष्णं-लोहं ६०७
तीक्ष्णगन्धकः-शिग्रुः ३३९
तीक्ष्णगन्धा-राजिका ६५५
तीक्ष्णतण्डुला-पिप्पली १५
तीक्ष्णा-छिक्कनी ४७४
तुंगः-नारिकेलः ५५८
तुंगा-शमी ५४५
तुंगी-बर्बरी ५११
तुंबुरुः ५६
तुगा-वंशरोचना ५८
तुगाक्षीरी-वंशलोचना ५८
तुच्छा-नीलिनी ४०६
तुणिकः-तूणी ५३४
तुण्डकेशी-कार्पासकी ३७४
तुण्डीकेरी ८००
„ -बिम्बी ६८७
तुत्थं ६०९, ७९८
„ -तुत्थकं ६१०
तुत्थकं-रसकं ६२१
तुत्थभेदं-रसकं ६२१
तुत्था-सूक्ष्मैला २२२
तुन्तुभः-सर्षपः ६५४
तुन्नकः-तूणी ५३४
तुम्बी-कटुतुम्बी ६८२
„ द्विधा ६८१
„ वर्तुला ६८१
तुरगः-अश्वः ७१७
तुरङ्गः-अश्वः ७१७
तुरङ्गमः-अश्वः ७१७
तुरुष्कः-सिल्हकः २१५
तुलसी ५०९
„ कृष्णा ५०९
„ शुक्ला ५०९
तुवरी ६५३
„ -आढकी ६४७
„ -बर्बरी ५११
„ -सौराष्ट्री ६२१
तुवरीतैलं ७८०
तुषाम्बु ७८३
तुषाराम्बु ७४९
तुषोदकं-तुषाम्बु ७८३
तूणिः ८०१
तूणी ५३४
„ -नीलिनी ४०६
तूतं ५८१
„ आमं ५८१
„ पक्वं ५८१
तूतः-तूतं ५८१
तूरी-धुत्तूरः ३१७
तूलः-तूतं ५८१
तूलिनी-शाल्मली ५३७
तृणधान्यं ६३५
„ -क्षुद्रधान्यं ६५६
तृणध्वजः-वंशः ३७६
तृणराजः-तालः ५६३
„ -नारिकेलः ५५८
तृणान्नं-नीवारः ६६०
तेजनः ७९९
„ -भद्रमुंजः ३७९
„ -वंशः ३७६
तेजनी ७९९
„ -तेजवती ८९
„ -मूर्वा ४३३
तेजवती ८९
तेजस्वती ७९९
तेजस्विनी-तेजवती ८९
तेजोह्वा-तेजवती ८९
तैलं ७७९
„ अखिलं ७८२
„ अतस्याः ७८१
„ एरण्डस्य ७८१
„ कुसुम्भस्य ७८१
„ खसबीजानां ७८१
„ तुवर्याः ७८०
„ पक्वमपक्वं ७८०
„ राजिकयोः ७८०
„ सर्जरसोद्भूतं ७८२
„ सार्षपं ७८०

तैलपर्णकं-ग्रंथिपर्णं २५२
तैलपर्णिकः-चन्दनं १८६
तैलवर्गः ७७९
तोक्यः ६४०
तोयं अत्रगुणकारि ७५७
,, गुणवत् ७५७
,, -पानीयं ७४७
तौषारं-(दिव्यंपानीयं)७४७
त्रपु-रंगं ६०६,६१४
त्रपुसं ५६१
,, पक्वं अम्लं ५६१
,, लघु नीलंच नवं ५६१
त्रायन्ती ४२१
त्रायमाणा-त्रायन्ती ४२१
त्रिकटः-गोक्षुरः २९२
त्रिकटु १९
त्रिकोणफलं-शृंगाटकं ५७८
त्रिजातकं-त्रिसुगंधि २३२
त्रिदन्ती-महामेदा ६१
त्रिपर्णी-शालपर्णी २८५
त्रिपादिका-हंसपादी ४४४
त्रिपुटः ६५०
त्रिपुटा ७९९
,, -श्वेता त्रिवृत् ३९७
,, -स्थूलैला २२१
त्रिफला १२, ८००
त्रिभण्डी-श्वेतात्रिवृत् ३९७
त्रिवृत् ७९९
त्रिवृत् श्यामा ३९८
त्रिवृत् श्वेता ३९७
त्रिवृता-श्वेतात्रिवृत् ३९७
त्रिसन्ध्या-जपा
(अरुणा, सिता) ५०६
त्रिसुगंधि २३२
त्रुटिः-सूक्ष्मैला २२२
त्र्यर्थानि नामानि ८०२
त्र्यूषणं १९
त्वक् २३२, ७१९, ७९९
,, -दारुसिता २२६
त्वक्क्षीरी-वंशलोचना ५८
त्वक्पंचकं ५१९
त्वक्पत्रं-त्वचं २२४
त्वक्सारः-वंशः ३७६
त्वक्सुगन्धः-नारंगः ५६६
त्वकस्वाद्वी (पा०)
-दारुसिता २२६
त्वचं २२४
त्वचिसारः-वंशः ३७६
त्वाष्ट्री-मंडूकपर्णिनी ४६१

द

दक्षः-कुक्कुटः ७१४
दग्धमत्स्यः ७२२
दण्डहस्ती-पिण्डतगरं १९९
दद्रुघ्नः-चक्रमर्दः १२५
दद्रुघ्नपत्रं ६७५
दधि ६४४, ७६७
,, अत्यम्लं ७६७
,, अम्लं ७६७
,, अविधिना सेवने
दुर्गुणान् ७७०
दधि असारं ७६८
,, आजं ७६८
,, गव्यं ७६८
,, गालितं ७६९
,, भक्षण विधिः ७३२
,, मन्दं ७६७
,, माहिषं ७६८
,, सगुडं ७६९
,, सशर्करं ७६९
,, स्वादु ७६७
,, स्वाद्वम्लं ७६७
दधित्थः-कपित्थः ५६५
दधिफलः-कपित्थः ५६५
दधिवर्गः ७६७
दध्नो ऋतुविशेषेण
विधिनिषेधौ ७७०
दन्तधावनः-खदिरः ५२५
दन्तनिष्पीडितस्ये-
क्षोरसः ७९४
दन्तबीजः-दाडिमः ५८२
दन्तशठः ७९९
,, -कपित्थः ५६५
,, -जंबीरं ५९४
दन्तशठा ७९९
,, -अम्लिका ५९७
,, -चांगेरी ६७१
दन्तिबीजं-जयपालः ४०१
दन्तीद्वयं ३९९
दमनः ५१०
दमनकः-दमनः ५१०
दरदं-हिंगुलं ६१५
दरदः त्रिविधः ६१५
दर्दुरं-अभ्रभेदं ६१७
दर्दुरः ६२८
,, -मण्डूकः ७१७
दर्भः-कुशः ३८२
दर्भद्वयं ३८२
दर्भरः (लावः) ७१३
दलहीनफला
-सुलेमानी ५८७
दशमूलं २९४
दशांगुलं-खर्बूजं ५६१
दाडिमः ५८२
दाडिमपुष्पकः
-रोहीतकः ५२७
दाडिमफलं ५८२
,, अम्लकं ५८२
,, स्वादु ५८२
,, स्वाद्वम्लं ५८२
दान्तः-दमनः ५१०
दारु-आम्रगंधिहरिद्रा ११६
,, -देवदारु १९६
दारुभद्रं-देवदारु १९६
दारुसिता २२६
दारुहरिद्रा ११८

दार्वाघाटः-शतपत्रः ७०८
दार्विका-गोजिह्वा ४७१
दार्वी ११८
दार्वीभेदा-आम्रगंधि-
हरिद्रा ११६
दालंमधु ७८८, ७९०
दालिः (स्त्री)-
दाली ७२४, ७२५, ७२९
दाली (स्त्री) ७२४
दासपुरं-वितुन्नकं २६४
दासी-काकजंघा ४४१
,, -सैरेयः (नील) ५०२
दिव्यं (पानीयं)
७४७, ७५५
दिव्या-मंडूकपर्णिनी ४६१
दिव्यौषधिः-मनः
शिला ६१९
दीदिविः (पु) ७२४
दीपनी-मेथिका ३७
दीप्यकः ७९८
,, -अजमोदा २६
दीप्यका-यवानिका २५
दीप्या-यवानिका २५
दीर्घकीलः-अंकोटकः ३६५
दीर्घगोधूमः
-गोधूमभेदः ६४१
दीर्घच्छदः-इक्षुः ७९२
दीर्घजीरकः-जीरकः ३०
दीर्घदण्डः-शुक्लएरण्ड २९८
दीर्घपत्रः (इक्षुः)
७९२, ७९३
,, -कुशभेदः ३८२
दीर्घपत्रकः-कुपीलुः ५४८
दीर्घपत्रा-शालपर्णी २८५
दीर्घपत्रिका
-(श्वेतपुनर्नवा) ४२२
दीर्घफलः-आरग्वधः ६८
दीर्घमूलः ८००
दीर्घवृन्तः-श्योनाकः २८३
दीर्घशूकः-शालिभेदः ६३५
दीर्घाङ्गी-शालपर्णी २८५
दीर्घाङ्गी-शालपर्णी २८५
दुग्धं ७२५, ७२७, ७४३,
७५९, ७६४–६५
दुग्धं अजायाः,
शृतशीत ७६३
(दुग्धं) आमं ७६३
,, औष्ट्रं ७६२
,, कृष्णायागोः ७५९
,, खण्डेन
सहितं ७६४
दुग्धं गव्यं ७५९
,, चित्रा गोः ७५९
,, छागं ७६०
,, जलेन रहितं ७६३
,, पीतायागोः ७५९
,, बष्कयिण्यागोः ७६०
,, बालवत्सगवां ७६०
,, माहिषं ७६०
,, रक्ता गोः ७५९
,, वडवायाः ७६२
,, विवत्सगवां ७६०
,, शुक्लाया गोः ७५९
,, शैलेषु चरन्तीनां ७६०
,, सगुडं ७६४
,, सिता सितोपला
युक्तं ७६४
,, शृतशीतं ७६३
,, शृतोष्णं आविकं ७६३
,, स्वल्पान्न
भक्षणाज्जातं ७६०
दुग्धकूपिका ७३९
दुग्धपानार्हजनान् ७५९
दुग्धफेनम् ७६६
दुग्धवर्गः ७५९
दुग्धाम्रं ५५१
दुग्धिका ४१८, ८०३
दुम्बकः-दुम्बकं ७१६
दुरारोहा-भूमि-
खर्जूरिका ५८६
दुरालंभा-दुरालभा ४११
दुरालभा ४११, ८००
दुर्गन्धः-पलांडुः १३४
दुर्ग्रहा-अपामार्गः ४१४
दुर्बला-वारिशिरीषिका ५४५
दुष्पत्रः-चोरकः २५४
दुष्प्रधर्षिणी-बृहती २८८
दुःस्पर्शः-यासः ४११
दुःस्पर्शा-कंटकारी २८९
,, -कपिकच्छूः ३५६
दूरजं-वैदूर्यं ६२७
दूर्वा ८०१
,, शुक्ला ३८५
दूषकः-शालिभेदः ६३५
दूषितजलस्य-
निर्दोषीकरणोपायं ७५७
दृढपृष्ठकः-कच्छपः ७१७
दृढफलः-नारिकेलः ५५८
दृढरंगा-स्फटिका ६२०
देवकुसुमं-लवंगं २१९
देवजग्धं-रौहिषं ३८३
देवता-धुत्तूरः ३१७
देवताडः देवदाली ४६८
देवतामणि-महामेदा ६१
देवदारु १९६
देवदाली ४६८
,, पीता ४६८
देवदालीफलं ४६८
देवदुन्दुभिः-तुलसी ५०९
देवधूपः-गुग्गुलुः २०४
देवनिर्मिता-गुडूची २६९
देवी ८०१
,, -मूर्वा ४३३
,, -वन्ध्याकर्कोटकी ४६६
,, -स्पृक्का २६४
देशः साधारणः ७५०

दैत्या-मुरा २४६
दोला-नीलिनी ४०६
द्रवन्ती ३९९
द्राक्षः-ऋषभः ६१
द्राक्षा ५८५, ६००
,, अबीजा स्वल्प-
तराच ५८५
,, आमा ५८५
,, आमा, अम्लाच ५८५
,, करमर्दिका ५८५
,, गोस्तनी ५८५
,, पक्वा ५८५
,, पर्वतजा ५८५
,, शुष्कं फलं ५६५
द्रापः-कर्दमः ६२२
द्राविडं-बिडं १५९
द्राविडः-कर्चूरः २४५
द्राविडी ८०१
,, -सूक्ष्मैला २२२
द्रुकिलिमं-देवदारु १९६
द्रेका-महानिंबः ३३१
द्रोणपुष्पी ४६३
,, दलं ६७५
द्रोणा-द्रोणपुष्पी ४६३
द्वारदारुः-भूमीसहः ५४९
द्विजप्रिया-सोमवल्ली ४४५
द्विजा-रेणुका २५१
द्वीपान्तरवचा ४७
द्वीपी ७०६, ७०७
द्व्यर्थानि नामानि ७९८

ध

धटः-धवः ५३९
धत्तूरः ३१७, ६२४
धनहरः-चोरकः २५४
धनिका ७९९
धनुर्वृक्षः-धन्वंगः ५४०
धनुष्पटः-चारः ५७५
धन्वंगः ५४०
धन्वयासः-यासः ४११
धमनः-नलः ३७७
धमनी-नलिका २६६
धर्मपत्तनम् १७
धवः ५३९
धवफलं ५३९
धवलः-ककुभः ५२३
धवल कमलं ४७९
धवल पाण्डुः ७१४
धवलपाण्डुः-कपोतः ७०८
धवलशारिवा ४२६
धातकी १०८
धातुः-पारदः ६१२
धातुकाशीशं-काशीशं ६२१
धातुद्रावकं-टंकणं १६९
धातुपुष्पी-धातकी १०८
धातुमत्-सौवर्चलं १६१
धात्री-आमलकी १०
धात्रीपत्रं-तालीसं २५५
धात्रीफलं-आमलकी १०
धात्वादिवर्गः ६०२
धानकं-धान्यकं ३३
धाना (स्त्री) ७४४
,, -धान्यकं ३३
धानयेकं-धान्यकं ३३
धान्यं ८००
,, -धान्यकं ३३
,, नवं ६६१
धान्यकं ३३,७८७,७९८
धान्यपंचकं ६३५
धान्यवर्गः ६२५
धान्याकं ८००
,, (पानकं) ७४२
धान्याम्लं ७८४
धामार्गवः-रक्त
(अपामार्गः)- ४१६
,, -राजकोशातकी ६८५
(धारं) गांगं ७४८
,, -धाराजं (पानीयं)
७४७
,, -सामुद्रं ७४८
धाराजं (दिव्यं पानीयं) ७४७
धाराशिशिरं (गोपयः) ७६२
धाराशीतं माहिषं
(दुग्धं) ७६२
धारोष्णं गोपयः ७६२
धावनिः-पृश्निपर्णी २८६
धावनी-कंटकारी २८९
धीरं-कुंकुमं २३२
धीरः-ऋषभः ६१
धीरा ८००
,, -क्षीरकाकोली ६२
,, -गुडूची २६९
धुत्तूरा-धत्तूरः ३१७
धुरन्धरः-धवः ५३९
धूपगन्धिकं-रौहिषं ३८३
धूमसी ७२८-२९
धूर्तः-धत्तूरः ३१७
धेनुका-धान्यकं ३३
धेनुदुग्धं-चिर्भिटं ५५८
ध्यामपौरं-रौहिषं ३८३
ध्रुवः-वटः ५१३
ध्वांक्षनाशिनी
--हपुषाभेदः ५०
ध्वांक्षमाची
-काकमाची ४३८

न

नकुलेष्टा-सर्पांगी ८२
नक्तमालः-करंजः ३४९
नक्रः ७१०
नक्रदमनी
-वन्ध्याकर्कोटकी ४६६
नखं २३६
नखी ८०१
,, -स्वल्पं नखं २३६
नखद्वयं २३६
नटः-अशोकः ५००
,, -मदनः ७७
,, -श्योनाकः २८३

नटी-नलिका २६६
नतम्-तगरं १९९
नदी ७५२
नदीकान्ता-काकजंघा ४४१
नदीसर्जः-ककुभः ५२३
नद्यःमन्दगाः ७५१
,, शीघ्रवहाः ७५१
,, सह्यशैलभवाः ७५१
,, हिमवत्प्रभवाः ७५१
नन्दकः-तूणी ५३४
नन्दितरुः-धवः ५३९
नन्दिनी-चन्द्रशूरं ३९
,, -रेणुका २५१
नन्दिवृक्षः ८०१
नन्दी-राजजम्बू ५७०
नन्दीमुखः ६४२
,, -दीर्घगोधूमः ६४१
नन्दीमुखी ७०९
नन्दीवृक्षः ५१५
,, -तूणी ५३४
नमस्कारी-लज्जालुः ४५६
नम्रकः-वेतसः ३६१
नरमूत्रं ७७८
नलः ३७७,८०१
नलदं-उशीरं २२९
,, -लामज्जकं २६१
नलिका २६६
नलिनं-कमलं ४७९
नलिनी-पद्मिनी ४८१
नली-नलिका २६६
नवं मधु ७९१
नवनीतं ७७४
,, गव्यं ७७४
,, चिरन्तनम् ७७४
,, दुग्धोत्थं ७७४
,, माहिष्याः ७७४
,, सद्यस्कं ७७४
नवनीतकम्
-नवनीतं ७७४
नवनीतवर्गः ७७४
नवमालिका-वासन्ती ४८९
नवरत्नानि ६२५,६२६
नहुषं-तगरं १९९
(नाकः) ७१०
नाकुलः ७०७
नाकुली-सर्पांगी ८२
नागं ६०५,६१४
,, -अभ्रभेदं ६१७
नागः-नागपुष्पः २२९
,, -सीसं ६०६
नागकिंजल्कः
-नागपुष्पः २२९
नागकेशरं २३२
नागकेशरः-नागपुष्प :२२९
नागगर्भः-सिन्दूरं ६११
नागजिह्विका
-मनःशिला ६१९
नागदमनी-बलामोटा ४७२
नागनामकं-सीसं ६०६
नागपत्रा-बलामोटा ४७२
नागपुष्पं (पुष्पे) २३०
नागपुष्पः(वृक्षे) २२९
नागपुष्पी-नागिनी ४४२
,, -बलामोटा ४७२
नागबला ३६६
नागरं २४
,, -शुण्ठी १२
नागरंगः-नारंगः ५६६
नागरमुस्तकं २४३
नागरमुस्तकः २४३
नागसुगन्धा-सर्पांगी ८२
नागवल्लरी-तांबूलं २७१
नागवल्लीदलं ७३२
नागारिः-वन्ध्याक-
र्कोटकी ४६६
नागिनी ४४२
,, -तांबूलं २७१
नाडीकः ६६९
नाडीकलापकः-सर्पाक्षी ४५२
नादेयंनीरं ७५५
,, वारि ७५४
नादेयः-जलजोवेतसः ३६३
नादेयी-अग्निमंथः २८१
,, -जम्बूः ५७१
नारंगः ५६६
,, अपरः ५६६
नारंगवर्णकं-गाजरं ६९७
नारायणी-शतावरी ३९२
नारिकेरं ७२५
नारिकेरोद्भवा क्षीरी ७२६
नारिकेलं, कोमलं ५५८
,, जीर्णं ५५८
नारिकेलः ५५८
,, शिरः ५५९
नारिकेलफलं ५५८
नारिकेलाम्भः ५५९
नारीक्षीरं ७६२,७६३
निकुंचकः-जलजोवेतसः ३६३
निकुम्भः-लघुदन्ती ३९९
निकोचकः-अंकोटकः ३६५
निचुलः-हिज्जलः ३६३
निम्बः ३२८
निंबकः-महानिंबः ३३१
निंबतरुः-पारिभद्रः ३३४
निंबपत्रं ३२८
निंबफलं ३२८
निदिग्धिका-कंटकारी २८९
निन्दित दुग्धस्य
-लक्षणं ७६६
निम्बुकं-निम्बूकं ५९५
निम्बूः(स्त्री)-निंबूकं ५९५
निम्बूकं ५९५, ६००
निम्बूकफल पानकं ७४२
निर्गुण्डी (नील) ३४४
निर्झरः ७५२
निर्झरजा (मत्स्याः) ७२३

निर्मध्या-नलिका २६६
निर्मलीफलम् ८०१
निशाख्या-हरिद्रा ११४
निशाचरः-चोरकः २५४
निशोत्रा-श्वेतात्रिवृत् ३९७
निषद्वरः-कर्दमः ६२२
निषिद्धशाकानि ७०२
निष्कुटिः-स्थूलैला २२१
निष्पावः ६४६
नीपः-कदम्बः ४९५
नीरं-पानीयं ७४७,८०७
नीलं ६२६, ६२८
नीलकण्ठकः-मयूरः ७१५
नीलकण्ठशिखा ४७७
नीलतालः-तमालः ५३२
नीलदूर्वा ३८४,८००
नीलध्वजः-तमालः ५३२
नील(पद्म)-इन्दीवरं ४७९
नीलपुष्पं-ग्रंथिपर्णं २५२
नीलपुष्पा-नीलिनी ४०६
नीलपुष्पी-अतसी ६५२
,, -निर्गुण्डी ३४४
नीलपोरः(इक्षुः)७९२,७९३
नीलाण्डकः-गवयः ७११
नीलालिकुलसंकुल।
-कुब्जकः ४९६
नीलिका-नीलिनी ४०६
नीलिनी ४०६
नीली ८०३
,, -नीलिनी ४०६
नीलीवृत्ताकृतिः
-शरपुंखः ४०७
नीवारः ६६०
नृपावर्तः-राजावर्तः ६२०
नेत्रोपमफलः-वातादः ५८८
नेपालमूलकं
-महत् मूलकं ६९६
नेपाली-वासन्ती ४८९
नेमी-तिनिशः ५४७
नैपालः (इक्षुः) ७९२,७९३
नैपाली-मनःशिला ६१९
नैर्झरंजलं ७५४,७५५
न्यग्रोधः-वटः ५१३,५१९
न्यग्रोधी-द्रवन्ती ३९९
न्यङ्कुः ७०६,७११

प

पंकः-कर्दमः ६२२
पंकेरुहं-कमलं ४७९
पंचकोलं २४
पंचमूलं महत् २८५
,, लघु २९४
पंचवल्कलम्-त्वक्-
पंचकं ५१९
पंचांगुलः-शुक्लएरण्डः २९८
पंचाम्लं ६००
पक्वः (इक्षु) रसः ७९४
पक्वदुग्धभवं दधि ७६८
पक्षिणःआनूपमांसं ७१२
,, धान्यांकुरचराः ७१२
पक्षी ७१२
पच्चंपचा-दारुहरिद्रा ११८
पटेरकः-गुन्द्रः ३८१
पटोलः ६८३, ७९८
पटोलः-पटोलं ६८६
पटोलपत्रं ६७६,६८६
पटोलस्यमूलं ६८६
पटोलिका ६८६
पट्टरंजकं-पतंगं १९३
पट्टिकालोध्रः १२८
पट्टी-पट्टिकालोध्रः १२८
पथ्या (पा०)
-ज्योतिष्मती ९०
पतंगं १९३
पत्तूरं-पतंगं १९३
पत्र-पत्रकं २२८
पत्रकं २३२
पत्रनामकं-पत्रकं २२८
पत्राख्यं तालकं ६१८
पत्राख्यं-तालीसं २५५
पत्राम्ला-चुक्रा ६७२
पत्रोर्णः-श्योनाकः २८३
पथ्या-हरीतकी ३
पद्मं-कमलं ४७९
पद्मः-गुग्गुलुः २०४
पद्मकं २०२
पद्मकर्कटी-पद्मबीजं ५७७
पद्मगंधिः-पद्मकं २०२
पद्मचारिणी ८००
,, -पद्मा ४८२
पद्मनालं-मृणालं ४८१
पद्मपत्रं-पुष्करमूलं ९४
पद्मपत्रा-आम्रगंधि-
हरिद्रा ११६
पद्मबीजाभं-मखान्नं ५७८
पद्मरागः-माणिक्यं ६२७
पद्मरागकं ६२६
पद्मा ४८२,८००
,, -भार्गी १०१
पद्माक्षं-पद्मबीजं ५७७
पद्माटः-चक्रमर्दः १२५
पद्मादिकन्दः-शालूकं ७०२
पद्माह्वयं-पद्मकं २०२
पद्मिनी ४८०,४८३
पनशः-पनसं ५५५
पनसं ५५५
,, आमं ५५५
पनसजोमज्जा ५५५
पनसबीजं ५५५
पयः ७२७,८०१
,, अजायाःशृत-
शीतं ७६३
, अर्द्धोदकंक्षीर
शिष्टं ७६३
,, आविकं ७६२
,, जांगलचरस्त्रीनां ७६०

पयः-दुग्धं ७५९
,, (पानं) पूर्वाह्ण-
काले ७६५
पयः पानं बाले ७६५
,, पानं रात्रौ ७६५
,, पानं वृद्धेषु ७६५
,, -पानीयं ७४७
,, प्रपाके कालाः ७५८
,, प्रसादी-कतकः ५८४
,, प्रादोषं ७६४
,, प्राभातिकं ७६४
,, मृगीणां ७६२
पयस्या-अर्कपुष्पी ४५५
पयस्विनी-क्षीरकाकोली६२
,, -जीवन्ती २९५
,, -विदारी ३८७
परमान्नं-क्षीरिका ७२५
परापरं-परूषकं ५८०
परिपेलवं-वितुन्नकं २६४
परिव्याधः ७९९
,, -कर्णिकारः ४९९
,, -जलजोवेतसः ३६३
परुषं-परूषकं ५८०
परूषकं ५८०
,, आमं ५८०
,, पक्वं ५८०
पर्कटी-प्लक्षः ५१८
पर्करी-प्लक्षः ५१८
पर्जनी-दारुहरिद्रा ११८
पर्जन्या-दारुहरिद्रा ११८
पर्णः-पलाशः ५३५
पर्णकः-सुनिषण्णः ६७३
पर्णनीली ७५७
पर्णमृगाः ७०५,७०७
पर्णाशः-बर्बरी ५११
पणिका-आखुकर्णी ४७६
पर्पटः ३२३,६७५,७२९
पर्पटकः-पर्पटः ३२३
पर्पटाःचणकोद्भवा ७२९
,, मौद्गाः ७२९
,, स्नेहमृष्टाः ७२९
पर्पटिका-पोलिका ७२७
पर्पटी २६५
पर्यंकपट्टिका
-कोलशिम्बिः ६८८
पर्युषितो (इक्षु) रसः ७९४
पर्वतजा द्राक्षा ५८५
पलंकषः-गुग्गुलुः २०४
पलंकषा-गोक्षुरः २९२
,, लाक्षा ११३
पललं ७४६
,, -मांसं ७०५
पललः-कर्दमः ६२२
पलसः-पनसं ५५५
पलाण्डुः १३४
पलाल तृष्णकार्पास
बीजाहारजं
(गोक्षीरं) ७६०
पलाशः ५३५
,, -पारीषः ५१४
पलाशक्षारः १७१
पलाशपुष्पं ५३६
पलाशफलं ५३६
पलाशी-गन्धपलाशी २४७
पलितः-कर्दमः ६२२
पल्वलं ७५४
पशुमेहनकारिका
-चन्द्रशूरं ३९
पांशुकाशीशं-काशीशं६२१
पांशुपर्यायः-पर्पटः ३२३
पांशुलः (लावः) ७१३
पांशुलवणं-औद्भिदं १६१
पाक्यं-यवक्षारः १६२
,, -बिडं १५९
पाटलः-व्रीहिभेदः ६३७
पाटला२७८,२८५,७५७,७९९
,, पुष्पं २७९
पाटला फलं २७९
,, सिता २७८
पाटलिः-पाटला २७८
पाठा ३९४
पाठिका-पाठा ३९४
पाठी-चित्रकः २१
पाठीनः ७२०
पाणी ७१९
पाण्डुः ७१४
,, -लवली ५७४
पाण्डुकः-शालिभेदः ६३५
पाण्डुपुत्री-रेणुका २५१
पाण्डुफलः-पटोलं ६८६
पाण्डुरद्रुमः-कुटजः ३४६
पाण्डुलोमशपर्णी
-माषपर्णी २९७
पातालगरुडाह्वयः
-छिलिहिण्टः ४४८
पाथः-पानीयं ७४७
पादिनः ७०५,७१०
पादौ ७१९
पानीयं ७४७
पानीयफलं-मखान्नं ५७८
पानीयामलकं
-प्राचीनामलकं ५७३
पापचेलिका-पाठा ३९४
पायसं-क्षीरिका ७२५
पारदः ६१२-१३
,, कृष्णः ६१३
,, क्षत्रियः ६१३
,, पीतः ६१३
,, ब्राह्मणः ६१३
,, रक्तः ६१३
,, वैश्यः ६१३
,, शूद्रः ६१३
पारसीक यवानी २९
पारसीक वचा ४५
पारावतपदी ७९९
,, -काकजंघा ४४१
,, -ज्योतिष्मती ९०

पारावतः ७०८,७१५
पारिजातकः
-पारिभद्रः ३३४
पारिभद्रः ३३४
,, -निंबः ३२८
पारिभद्र पत्रं ३३४
पारिभव्यं-कुष्ठं ९१
पारीषः ५१४,५१९
पार्वती-अतसी ६५२
पालिन्दी-त्रिवृत्-
श्यामा २९८
पाल्वलं जलं ७५४
पावनध्वनिः-शंखः ६२२
पाशुपतः-वकः ४९४
पाषाणं ७५७
पाषाणभेदः-रत्नं,मणिः६२५
पाषाणभेदकः १०४
पिंगला-पित्तलभेदं ६११
पिकः ७०८
पिकवल्लभः-आम्रः ५५०
पिचुमन्दः-निंबः ३२८
पिचुमर्दः-निंबः ३२८
पिच्चटं-रंगं ६०६
पिच्छा-मोचास्रावः ५३८
पिच्छिलः-बहुवारः ५८३
पिच्छिला ८००
,, -शाल्मली ५३७
,, -शिंशपा ५२२
पिण्डं-लोहं ६०७
पिण्डः-बोलं ६२२
,, -मदनः ७७
पिण्डखर्जूरिका ५८६
पिण्डनगरं १९९
पिण्डतालकं ६१८
पिण्डपुष्पः-अशोकः ५००
पिण्डा-वंशपत्री ४५२
पिण्डारं ६९०
पिण्डालुकं ६९४
पिण्डीतकः ७९८
,, -मदनः ७७
पिण्या-ज्योतिष्मती ९०
पिण्याकः ७४६
पित्तलं ६११
पिनाकं-अभ्रभेदं ६१७
पिप्पलः ५१३
पिप्पली १५,२४,७९९,८०३
,, आर्द्रा १५
पिप्पलीमूलं १९,२४
पिशुनं-कुंकुमं २३२
पिष्टिका ७२९
पीतकं-कुंकुमं २३२
,, -दारूहरिद्रा ११८
पीतकः-किंकिरातः ४९९
पीतदारु-दारूहरिद्रा ११८
पीतदुग्धा-हेमक्षीरी ९६
पीतद्रुः-दारूहरिद्रा ११८
पीतनः-आम्रातं ५५३
पीतपुष्पा-कर्कोटी ६९१
,, -महाबला २६६
पीतफलकः-शाखोटः ५४२
पीतफेनः-अरिष्टकः ५२९
पीतबीजा-मेथिका ३७
पीतभद्रकः-किंकिरातः४९९
पीतरत्नकं-गोमेदः ६२७
पीतरोहिणी-काश्मरी २७६
पीतवृक्षः-सरलः १९७
पीतशालकः-बीजकः ५२४
पीतसारः-बीजकः ५२४
पीता-दारूहरिद्रा ११८
,, -हरिद्रा ११४
पीताभं-कालीयकं १९०
पीनस्कन्धः-महिषः ७१७
पीयूषं ७६३,७६४
पीलुः ५९०
,, शैलभवः
-अक्षोटकः ५९१
पीलुपर्णी ७९९
पीलुपर्णी-मूर्वा ४३३
पीवरी-शतावरी ३९२
,, -शालपर्णी २८५
पुण्डरीकं-सितपद्मं ४७९
पुण्डरीकः-शालिभेदः ६३५
पुण्ड्रकः-माधवी ४९७
पुत्तिकाः ७८९
पुत्रजीवः ५३०
पुनर्नवाऽरुणा ४२२
पुनर्नवा (श्वेता) ४२२
पुनर्नवारक्ता-पुनर्नवा-
ऽरुणा ४२२
पुन्नागः ७५७
पुन्नाटः-चक्रमर्दः १२५
पुरः-गुग्गुलुः २०४
पुराणं मधु ७९१
,, सर्पिः ७७६
पुरुषः-तिलकः ५०५
पुष्करं-कमलं ४७९
,, -पुष्करमूलं ९४
पुष्करमूलं ९४
पुष्पकाशीशं-काशीशं
किंचित् पीतं ६२१
पुष्पफलं-कूष्माण्डं ६७९
पुष्पफलः ८००
,, -कपित्थः ५६५
पुष्परसोद्भवं-मधु ७८८
पुष्परागं ६२६,६२८
पुष्परागः ६२५,६२७
पुष्पवर्गः ४७९
पुष्पसिता ७९६
पुस्तकशिम्बिका
-पुस्तशिम्बी ६८८
पुस्तशिम्बी ६८८
पूगं आर्द्रं ५६२
पूगं, दृढमध्यं ५६२
,, स्विन्नं ७९९
पूगः ७९९
,, -तूतं ५८१

पूगः-पूगं ५६२
पूगी-पूगं ५६२
पूगीफलं ५६२
पूतना-हरीतकी ३
पूतिकः-करंजः,
घृतपूर्णः ३४९
पूतिकरंजः-करंजः
घृतपूर्णः ३४९
पूतिफली-बाकुची १२३
पूरणी-शाल्मली ५३७
पूरिका ७२९
,, घृतपक्का ७३०
,, तैलेन पक्का ७३०
पृथक्पर्णी-पृश्निपर्णी २८६
पृथुः-हिंगुपत्री ४५१
पृथुका-हिंगुपत्री ४५१
पृथुपलाशिका-गंध
पलाशी २४७
पृथुरोमा ७१०
पृथुशिंवः-श्योनाकः २८३
पृथुश्रृंगः-एडकः ७१६
पृथ्वी-उपकुंचिका ३०
पृथ्वीका-उपकुंचिका ३०
,, -स्थूलैला २२१
,, हिंगुपत्री ४५१
पृश्निपर्णी २८६, २९४
पृषतः ७०६, ७११
पेलवपुटं (पा०)
(मुस्तावत्)
-वितुन्नकं २६४
पेलवपुरं (मुस्तावत्)
-वितुन्नकं २६४
पोटगलः-कासः ३८०
,, -नलः ३७७
पोतकी ६६५
पोलिका ७२७, ७३०
पौण्डरीयकं-पौण्डर्यं २६७
पौण्डर्यं २६७
पौण्ड्रकः (इक्षुः) ७९२
पौड्रण्कः-(लावः) ७१३
पौत्तिकं (मधु) ७८८, ७८९
पौष्करं-पुष्करमूलं ९४
प्रकीर्यः-करंजःघृतपूर्णः३४९
प्रतानिनी-प्रसारणी ४२४
प्रतापसः-श्वेतार्कः ३०२
प्रतिविषा-अतिविषा १२६
प्रतिविष्णुकः
-मुचकुन्दः ५०४
प्रतीकः-पटोलं ६८६
प्रतुदाः ७०५, ७०८
प्रत्यकपर्णी-द्रवन्ती ३९९
,, -रक्त
(अपामार्गः) ४१६
प्रदीपनः ६२९, ६३१
पपुन्नाटः १२५
,, -चक्रमर्दः १२५
प्रपौण्डरीकं-पौण्डर्यं २६७
प्रमोदिनी-जिंगिनी ५३२
प्ररोही-नन्दीवृक्षः ५१५
प्रवरं-अगुरु १९४
प्रवालः (लं) ६२६, ६२८
प्रवालफल-रक्तचंदनं १९१
प्रसहाः ७०५, ७०८
प्रसारणी ४२४
प्रस्थपुष्पः-मरुत् ५१०
प्रस्थिका-माचिका ८६
प्रस्रवणं-निर्झरः ७५२
प्रस्रवणः ७५२
प्रहारवल्ली-मांस-
रोहिणी ३५८
प्राचीना-पाठा ३९४
प्राचीनामलकं ५७३
प्राणः-बोलं ६२२
प्रावृषायणी-कपिकच्छू३५६
प्रियकः-कदम्बः ४९५
,, -बीजकः ५२४
प्रियंकरी-श्वेतकंटकारी२९०
प्रियंगुः २४८, ७९९, ८००
प्रियङ्गुः-कंगुः ६५६
प्रियंगुफलं २४८
प्रिया-प्रियंगुः २४८
प्रियालः ८००
,, -चारः ५७५
प्रियालमज्जा ५७५
प्लक्षः ५१८–१९
प्लवं-वितुन्नकं २६४
प्लवगः-मण्डूकः ७१७
प्लवाः ७०५, ७०९
प्लीहशत्रुः-शरपुंखः ४०७
प्लीहहन्त्री-हपुषाभेदः ५०

फ

फंजी-भार्गी १०१
फणिज्झकः ७९८
,, -मरुत् ५१०
फणी ६२८
,, -मरुत् ५१०
फलं, आमं ५६५
,, परिपक्वं ५६५
फलत्रिकं-त्रिफला १२
फलपूरकः-बीजपूरः ५९३
फलाध्यक्षः-क्षीरिका ५७६
फलिनी ७९९
,, -प्रियंगुः २४८
फलेन्द्रा-राजजम्बू ५७०
फलेपुष्पा-द्रोणपुष्पी ४६३
फलेरुहा-पाटला २७८
फल्गुः-मलयुः ५१७
फाणितम् ७९५
फेनः-समुद्रफेनः ६०
फेनिका ७३८
फेनिलं-सौवीरं ५७१
फेनिलः-अरिष्टकः ५२९

ब

बकः ७०९
बकुलः ४९४
बदरं महत्-सौवीरं ५७१

बदरं-सेवं ५८९
बदरा-सुवर्चला ४६४
बदरी ७९९
,, -कर्कन्धू ५७१
बन्दाकः ४४९
बन्धुजीवः-बन्धूकः ५०५
बन्धूकः ५०५
बन्धूकपुष्पः-बीजकः ५२४
बब्बूलः ५२८
बभ्रु ७०६
बर्करः-छागः ७१५
बर्बरी ५११
बर्बरीत्रितयं ५११
बर्हिः-कुशः ३८२
बर्हिणं-पिण्डतगरं १९९
बर्हिबर्हं-स्थौणेयकं २५३
बर्हिष्ठं-बालकं २३७
बर्ही-मयूरः ७१५
बलः-राजमाषः ६४५
बलदा-अश्वगंधा ३९३
बलभद्रा-त्रायन्ती ४३१
बलभद्रिका ७२८
बलरसः-गन्धकः ६१५
बलवल्लभा-मद्यं ७८५
बला ३६६
,, -प्रसारणी ४२४
बलाका ७०९
बलाचतुष्टयं ३६६
बलामूलत्वचः ३६७
बलामोटा ४७२
बलिः-गन्धकः ६१५
बलीवर्दः-वृषः ७१६
बस्तः-छागः ७१५
बहुपत्रा-भूधात्री ४६०
बहुपत्रिका-मेथिका ३७
बहुपर्णी-मेथिका ३७
बहुपादः-वटः ५१२
बहुपुष्पा-धानकां १०८
बहुफला-भूधात्री ४६०
बहुबीजा-मेथिका ३७
बहुमंजरी ५०९
बहुमूलकं-वीरणं २३८
बहुलवल्कलः-चारः ५७५
,, -भूर्जः ५३५
बहुला-स्थूलैला २२१
बहुवारः ५८३
बहुवारकः-बहुवारः ५८३
बहुवारफलं, आमं ५८३
,, पक्वं ५८३
बहुवीर्या-भूधात्री ४६०
बहुशल्यः-खदिरः ५२५
बहुसुता-शतावरी ३९२
बहुस्रवा-शल्लकी ५२१
बह्वर्थकानिनामानि ८०७
बष्कयिण्याःगोःदुग्धं ७६०
बाकुची १२३
बाकुचीफलं १२३
बाणः-भद्रमुंजः ३७९
,, -मुंजः ३७९
,, -सैरेयः (नील)५०२
बाणा-सैरेयः (नील) ५०२
बालं-बालकं २३७
बाल इक्षुः ७९३
बालकं ८००
बालजीवनम्-दुग्धं ७५९
बालपत्रः ८००
,, -खदिरः ५२५
बालमूलिका-माचिका ८६
बालेयं-वितुन्नकं २६४
बाल्हिका-मत्स्याक्षी ४५२
बाल्हीकं ७९८
,, -कुंकुमं २३२
,, -हिंगु ४०
बिडं १५९
बिभीतकः (त्रिलिंगः) ९
बिभीतमज्जा ९
बिम्बी ७९९, ८००
बिम्बीफलं ६८७
बिलस्थाः ७०५
बिलेशयः-शशः ७१२
बिलेशयाः ७०६
बिल्वं ६००
,, आमं ६००
,, शुष्कफलं ५६५
बिल्वः-श्रीफलः २७४, ५६५
बिल्वकर्कटी-बिल्वफलं,
बालं ५६५
बिल्वपेशिका-बिल्व-
फलं, बालं ५६५
बिल्वफलं, पक्वं ५६५
,, बालं ५६५
बिसं-मृणालं ४८१
बिसप्रसूनं-कमलं ४७९
बिसिनी-पद्मिनी ४८०
बीजकः ५२४
बीजपूरं ६००
बीजपूरः ५९३
बीजपूरकं ७९८
बीजपूरफलं ५९३
बीजपूरोऽपरः,मधुरः
-मधुकर्कटी ५९३
बृहच्छुकः-शतपत्रः ७०८
बृहज्जंबीरं ६००
बृहज्जीरकः-उपकुंचिका ३०
बृहती २८८–८९, ८०१
,, -कंटकारी २८९
बृहत्पत्रः-पट्टिकालोध्रः १२८
बृहत्फलं-कूष्माण्डं ६७९
बृहत्यौ २८९
बृहदम्लं-कर्मरंगं ५९७
बृहदेला-स्थूलैला २२१
बृहद्दन्ती ८००
बृहल्लोणी-चोटिका ६७०
बेढमिका ७२९
बोधिद्रुः-पिप्पलः ५१३
बोधिनी-मेथिका ३७
बोलं ६२२

बोलः-बोलं ६१४, ६२२
ब्रध्नं-सीसं ६०६
ब्रह्मकुशा-अजमोदा २६
ब्रह्मजटः-दमनः ५१०
ब्रह्मदर्भा-यवानिका २५
ब्रह्मदारु-तूतं ५८१
ब्रह्मपुत्रः ६२९, ६३३
ब्रह्ममांडूकी ८०३
ब्रह्मरीतिः-पित्तलभेदं ६११
ब्रह्मवृक्षः-पलाशः ५३५
ब्रह्मसुदुर्लभा-सुवर्चला,
अन्या ४६४
ब्रह्मसुवर्चला (पा०)
-सुवर्चला, अन्या ४६४
ब्रह्मा-स्वस्थो रसः ६१३
ब्राह्मणयष्टिका-भार्गी १०१
ब्राह्मणी ७९९
,, (पा०)-लाक्षा११३
,, -स्पृक्का २६४
ब्राह्मी ४६१

भ

भंगा १४१
भंगुरा-अतिविषा १२६
भक्तं ७२४
,, अधौतमस्रुतं ७२४
,, पुराणशालेः ७२४
भण्टाकी-वृन्ताकं ६८९
भण्डिलः-शिरीषः ५१८
भण्डी-मंजिष्ठा ११०
,, -शिरीषः ५१८
भण्डीतकी-मंजिष्ठा ११०
भण्डीरः-शिरीषः ५१८
भण्डीरी-मंजिष्ठा ११०
भद्रः-वृषः ७१६
भद्रतरुणी-कुब्जकः ४९६
भद्रपर्णी-काश्मरी २७६
,, -प्रसारणी ४२४
भद्रमुंजः ३७९
भद्रमुस्तं
-नागरमुस्तकः २४३
भद्रयवा-इन्द्रयवं ७६
,, -कुटजफलं ७६
भद्रवती-कट्फलः १००
भद्रश्री-चन्दनं १८६
भद्रा-कट्फलः १००
,, -चन्द्रशूरं ३९
,, -प्रसारणी ४२४
भद्रैला-स्थूलैला २२१
भल्लातः ७९९
भल्लातक मज्जा १३८
भल्लातकं (त्रिलि) १३८
भल्लातकः १३९
भल्लातकफलं १३८
भल्लातक वृन्तं १३८
भल्लातकी ७९८
भल्ली-भल्लातकः १३८
भल्लूकः (पा०) ७१०
भस्मगंधा-रेणुका २५१
भस्मगर्भा-शिंशपा
(कपिला, गुरुश्च) ५२२
भाकुरः ७२०
भाण्टिका-वृन्ताकं ६८९
भार्गवी-नीलदूर्वा ३८४
भार्गी १०१
भार्ङ्गी ७९९,८००
भासः ७०८
भिक्षुः-क्षुरकः ४१६
,, -मुण्डतिका ४१३
भिन्दी-सैरेयः(श्वेत) ४०२
भिन्नयोजिनी
-पाषाणभेदकः १०४
भिषङ्माता-वासकः ३२०
भिस्सा(स्त्री) ७२४
भिस्साण्डं ७०२
भीरु-शतावरी ३९२
भीरुकः (इक्षुः) ७९२
भुजंगः ७०६
भुजंगभुक्-मयूरः ७१५
भुजंगाक्षी-सर्पाक्षी ८२
भूकदम्बिका
-महामुण्डी ४१३
भूतघ्नी-तुलसी ५०९
भूतजटा-मांसी २४०
भूतवासः-बिभीतकः ९
भूतवृक्षकः-बहुवारः ५८३
भूतावासः-शाखोटः ५४२
भूतिकं-रौहिषं ३८३
भूतीकं-भूतृणं ३८३
भूतृणं ३८३
भूदरीभवा-आखुकर्णी ४७६
भूधात्री ४६०
भूनिम्बः-किराततिक्तः ७३
भूपदी-मल्लिका ४९७
भूमिखर्जूरिका ५८६
भूमिवल्ली
-मार्कण्डिका ४६७
भूमीसहः ५४९
भूम्यामलकिका
-भूधात्री ४६०
भूरिफेना-शातला ३१०
भूरिरसः-इक्षुः ७९२
भूर्जः ५३५
भूर्जपत्रः-भूर्जः ५३५
भृंगं-त्वचं २२४
भृंगः ७९९
,, -भृंगारः ४२९
भृंगरजः-भृंगारः ४२९
भृंगराजः ७९९
,, -भृंगारः ४२९
भृंगवान्तं-मधु ७८८
भृंगारः ४२९
भृगुभवा-भार्गी १०१
भेकः-मण्डूकः ७१७
भौमं अम्भः ७५०
,, (पानीयं) ७४७
भ्रमरोत्सवः-माधवी ४९७

भ्रामरं (मधु) ७८८,७८९

म

मंगल्यः-अरिष्टकः ५२९
मंगल्यकः-मसूरः ६४७
मंगल्यकुसुमा
-शंखपुष्पी ४५४
मंगल्या-गोरोचना २३५
मंगल्या-मसूरः ६४७
,, -वचा ४३
,, -शमी ५४५
मंजिष्ठा ११०, ७९९, ८००, ८०३
मंजुमणिः-पुष्परागः ६२७
मंजूषा-मंजिष्ठा ११०
मंडली-गुडूची २६९
मंडूकपर्णः-श्योनाकः २८३
मंडूकपर्णिनी ४६१
मंडूकपर्णी-मंजिष्ठा ११०
,, -मंडूकपर्णिनी ४६१
मकरः ७१०
मकरन्दः-(कमल)रसः ४८१
मकुष्ठः ६४६
मकुष्ठकः-मकुष्ठः ६४६
मकूलकः-लघुदन्ती ३९९
मक्षिकावान्तं-मधु ७८८
मखान्न ५७८
मणिः-रत्नं ६२५
मणिच्छिद्रा-मेदा ६१
मणिमन्थं-सैन्धवं १५४
मणिवरः-हीरकः ६२६
मण्डः ७३७
मण्डकः ७२६, ७२७
,, -माधवी ४९७
,, सानुपान ७२७
मण्डली-गुडूची २६९
मण्डूकः ७१७
मण्डूकपर्णः ८०३
मण्डूरं-किट्टं ६०९
मत्स्यः ६२८, ६४४, ७०५, ७१०
मत्स्यगंधा
-जलपिप्पलिका ४७०
,, -मत्स्याक्षी ४५२
,, -हपुषाभेदः ५०
मत्स्यगर्भः ७२२
मत्स्यण्डी ७९५
मत्स्यपित्ता-कटुकी ६९
मत्स्यविशेषाणां मांसं
-ऋतु विशेषे ७२३
मत्स्यशकला-कटुका ६९
मत्स्याक्षी ४५२
,, -गंडदूर्वा ३८६
,, -हिलमोचिका ६७३
मत्स्यादनी
-जलपिप्पलिका ४७०
,, -मत्स्याक्षी ४५२
मथितं ७७१
मदनः ७७
,, -धुत्तूरः ३१७
मदनकं-मयनं ७९१
मदयन्ती-मल्लिका ४९७
मदिरा-मद्यं ७८५
मद्यं ७८५
,, -जीर्णं ७८६
,, -नवं ७८६
मद्यगन्धस्य
दूरीकरणोपायं ७८७
मद्यपानप्रकारं ७८७
मद्येनजाताश्चेष्टा
सात्विकादि-
मनुष्याणाम् ७८७
मधु ७८८, ८०४
,, उष्णसंयोगात् ७९१
,, औद्दालकं ७८८, ७९०
मधुकर्कटिका ५९३
मधुकर्कटी
-मधुकर्कटिका ५९३
मधुगन्धः-बकुलः ४९४
मधुच्छदा-नीलकण्ठ-
शिखा ४७७
मधुजातयः, अष्टौ ७८८
मधुजाशर्करा ७९७
मधुतृणः-इक्षुः ७९२
मधुदूतः-आम्रः ५५०
,, -पाटला २७८
मधुधातुः-सुवर्ण-
माक्षिकं ६०९
मधुनः पुराणत्वं ७९१
मधुपर्णिका-काश्मरी २७६
,, -नीलिनी ४०६
,, -सुदर्शना ४७६
मधुपर्णी ८०३
,, -गुडूची २६९
मधुपुष्पः-मधूक ५७९
मधुमक्षिकाः ७८८
मधुमाक्षिकं
-सुवर्णमाक्षिकं ६०९
मधुरः ८०१
,, -जीवकः ६१
मधुरगणः
-जीवनीयगणः २९८
मधुरसा-काश्मरी २७६
,, -द्राक्षा ५८५
,, -मूर्वा ४३३
मधुरा-मिश्रेया ३५
,, -शतपुष्पा ३५
मधुरेणुः-कटभी ५४२
मधुलिका-मूर्वा ४३३
मधुवर्गः ७८८
मधुशिग्रुः ३३९
मधु,शीतं ७९१
मधुशेषं-मयनं ७९१
मधुश्रेणी-मूर्वा ४३३
मधुष्ठीलः-मधूकः ५७९
मधुस्रवः-मधूकः ५७९
मधुस्रवा-जीवन्ती २९५

मधूकः ५७९
मधूकपुष्पं ५७९
मधूकफलं ५७९
मधूकवृक्षनिर्यासं ७९०
मधूच्छिष्टं-मयनं ७९१
मधूलकः-जलमधूकः ५७९
मधूलिका ७९८
,, -मधुयष्टिभेदः ६५
मधूली-गोधूम-
भेदः ६४१, ६४२
मधूषितं-मयनं ७९१
मध्वाधारः-मयनं ७९१
मध्वालुकं ६९४
मनःशिला ७१९, ७९९
मनोगुप्ता (इक्षुः) ७९२, ७९३
,, -मनःशिला ६१९
मनोह्वा-मनःशिला ६१९
मन्दारः-पारिभद्रः ३३४
,, -श्वेतार्कः ३०२
मन्थपाकं-सौवर्चलं १६१
मन्था-मेथिका ३७
मयूरः ७१५
मयूरकं-तुत्थकं ६१०
मयूरकः-अपामार्गः ४१४
मयूरविदला
-त्रिवृत्श्यामा ३९८
,, -माचिका ८६
मयूराह्वशिखा
-नीलकण्ठशिखा ४७७
मरकतं-गारुत्मतं ६२७
मरिकः-कोविदारः ३३६
मरिचं १७, १९, २४, ७२७
,, आर्द्रं १७
मरिचपत्रकः-अजकर्णः ५२०
मरुः-मरुत् ५१०
मरुत् ५१०
मरुन्माला-स्पृक्का २६४
मरुबकः ७९८
,, -मदनः ७७
मरुबकः-मरुत् ५१०
मरुभूरुहः-करीरः ५४१
मरुसंभवं-लघुमूलकं ६९६
मर्कटतिन्दुकः-कुपीलुः ५६८
मर्कटाम्रः-आम्रातं ५५३
मर्कटी-अपामार्गः ४१४
,, -कपिकच्छूः ३५६
,, -करंजी ३५३
मर्त्यं (कदली) ५५७
मलः-कर्दमः ६२२
मलपू (पा०) ५१७
मलयजः-चन्दनं १८६
मलयुः ५१७
मल्लिका ४९७
मल्लिकापुष्पं-कुटजः ३४६
मसूरः ६४३, ६४७
मसूरिका-मसूरः ६४७
मस्करः-वंशः ३७६
मस्तदारु-देवदारु १९६
मस्तु-दध्नोमण्डः ७७०
महत् मूलकं ६९६
महती खर्जूरी ५८६
महती-बृहती २८८
महाकुमारी-शतपत्री ४८८
महाकुसुमिका
-काश्मरी २७६
महाकोशातकी ६८४, ७९८
महागोधूमः
-गोधूमभेदः ६४१
महाजंबू-राजजंबू ५७०
महाजाली-कर्कोटी ६९१
महानिंबः ३३१
महानीलः, गुग्गुलुः २०४
महापत्रः-मानकः ६९९
महाफला
-महाकोशातकी ६८४
,, -विशाला ४०३
,, -राजजम्बू ५७०
महाबला ३६६
(महाभरी) वचा ४७
महामाषः-राजमाषः ६४५
महामुण्डी ४१३
महामूलः-छिलिहिण्टः ४४८
महामेदा ६१
महामोही-धुत्तूरः ३१७
महायोगेश्वरी
-बलामोटा ४७२
महारजतं-सुवर्णं ६०२
महारसः-पारदः ६१३
महाशतावरी ३९२, ८००
महाश्रावणिका
-महामुण्डी ४१३
महासहः-अम्लाटनः ५०२
महासहा-कुब्जकः ४९६
,, -माषपर्णी २९७
महिलाह्वया-प्रियंगुः २४८
महिषः ७१७
महिषाक्षः-गुग्गुलुः २०४
महिषीमूत्रं ७७८
महेरुणा-शल्लकी ५२१
महेश्वरः-रंजितःका-
(क्रा) मितश्च पारदः ६१३
महोत्पलं-कमलं ४७९
महोदरी-महाशतावरी ३९२
महोन्नतः-तालः ५६३
महोष्ट्री-बृहती २८८
महौषधं ८०४
,, -लशुनः १३०
,, -शुण्ठी १२
महौषधी-मंडूकपर्णिनी ४६१
मांगल्यनामधेया
-जीवन्ती २९५
मांसं ७०५
,, अजासुतस्य
बालस्य ७१५
मांसं, अप्सुसृतं ७१८
,, अल्पदेहिनः ७१९
,, कृशं ७१८

मांस, क्लिन्नं ७१८
„ खगानां, धान्य
चारिणाम् ७१९
मांसं खगांना फलाशिनां
७१९
„ छागस्य निष्कासि-
„ ताण्डस्य ७१६
„ छागस्य वृद्धस्य ७१६
„ „ व्याधि-
मृतस्य ७१६
„ तलितं ७२५
„ देहमध्यं ७१८
„ परार्द्धं ७१८
„ पुमान् ७१८
„ (पूर्वार्द्धं) ७१८
„ पृष्ठः ७१९
„ बालानां ७१८
„ मत्स्यविशेषाणां,
ऋतुविशेषे ७२३
„ मेषस्य अण्ड-
विहीनस्य ७१६
मांसं त्रिषाम्बुरक्तमृतस्य ७१८
„ विहंगानां ७१८
„ वृद्धानां ७१८
„ व्यालदष्टं ७१८
„ व्यालदष्टं शुष्कं ७१८
„ शुष्कं ७२४
„ श्रेष्ठः ७१८,७१९
„ सद्योहतस्य ७१८
„ सर्पदष्टस्य ७१८
„ सर्पदष्टस्यशुष्कं ७१८
„ सिद्धं ७२७
„ स्त्रियः ७१८
„ स्वयंमृतस्य ७१८
मांसरसः सिद्धः ७३६
मांसरोहिणी ३५८,८०१
मांसवर्गः ७०५
„ आनूपः ७०५
„ जांगलः ७०५

मांसशृङ्गाटकं ७३६
मांसी २४०
माकन्दः-आम्रः ५५०
माक्षिकं-मधु ७८८
माक्षिकधातुः
-सुवर्णमाक्षिकं ६०९
मागधी-पिप्पली १५
माचिका ८६,८०३
माणिक्यं ६२५,६२७-२८
माणिक्य (कदली) ५५७
माण्डूकी-मंडूकपर्णिनी ४६१
मातुलः-धुत्तूरः ३१७
मातुलपुत्रकः
-धुत्तूरफलं ३१७
मातुलानी-भंगा १४१
मातुलुंगः-बीजपूरः ५९३
मादिनी-भंगा १४१
माधवी ४९७
माध्यं-कुन्दं ५०३
माध्याह्निकः-बन्धूकः ५०५
माध्वीकं-मधु ७८८
मानकः ६९९
मायूरः-अजमोदा २६
मारिषः ६६५
„ रक्तः ६६५
मारुतः-मरुत् ५१०
मार्कण्डिका ४६७
मार्कण्डी-मार्कण्डिका ४६७
मार्कवः-भृंगारः ४२९
मार्जारः ७०६
मार्जारगन्धिका
-मुद्गपर्णी २९६
मार्षः-मारिषः ६६५
मालती-जाती ४९१
मालतीफलं-जातीफलं २१६
मालवा-पोतकी ६६५
मालातृणकं-भूतृणं ३८३
मालूरः-बिल्वः २७४, ५६५
माषः ६४४, ७२८-३०

माषदाल्यः ७२८
माषपर्णी २९७-९८
माषवटिका ७३१
माहिषं दधि ७६८
„ दुग्धं ७६०
माहेयी-गौः ७१६
मिथिनी (पा०)
-मेथिका ३७
मिश्रकं-रंगभेदं ६०६
मिश्रपुष्पा-मेथिका ३७
मिश्रेया ३५, ८०१
मिष्टनिंबुफलं ५९६
मिसिः-मिश्रेया ३५
„ -शतपुष्पा ३५
मीनः ७१०
मुंजः ३७९
मुंजद्वयं ३७९
मुंजातकः-मुंजः ३७९
मुकुन्दः-कुन्दुरुः २१२
मुकुन्दकः-षष्टिकभेदः ६३८
मुकुष्ठकः-मकुष्ठः ६४६
मुक्तबन्धना-वार्षिकी ४९०
मुक्ता-मौक्तिकं ६२८, ७५८
मुक्तादि ६२५
मुक्ताफलं
-मौक्तिकं ६२६, ६२८
(मुक्तामोदका) ७३९
मुक्ताशुक्तिः ६२८
मुखदूषकः-पलांडुः १३४
मुखप्रियः-नारंगः ५६६
मुचुकुन्दः ५०४
मुण्डतिका ४१३
मुण्डी ७०६, ७१२
„ -मुण्डतिका ४१३
मुद्गः ६२५, ६४३
„ पीतकः ६४३
„ रक्तः ६४३
„ वनजः ६४३
„ श्यामः ६४३

मुद्गः श्वेतः ६४३
„ हरितः ६४३
मुद्गपर्णी २९६, २९८
मुद्ग मोदकः ७३९
मुद्गवटकाः ७३१
मुद्गवटिका ७३२
मुद्गसूपः ७३२
मुद्गार्द्रवटकाः ७३३
मुद्गोबहुविधः ६४३
मुनिच्छदा-मेथिका ३७
मुनिद्रुमः-अगस्तिः ५०८
मुनिनिर्मितः
-डिण्डिशः- ६९०
मुनिपुत्रः-दमनः ५१०
मुनिपुष्पः-अगस्तिः ५०८
मुरा २४६, ७९९
मुशली ३८९ ७९९
मुष्ककः-पाटलासिता २७८
मुष्टिप्रमाणं बदरं
-सेवं ५८९
मुस्तं (त्रिलि०) २४३
मुस्तकं-मुस्तं २४३
मुस्तकः-मुस्तं २४३
मुस्ता ७८७
मूत्रं ७७८
„ नरस्य ७७८
मूर्वा ४३३,७९८-९९,८०१
मूलकं, द्विविधं ६९६
„ महास्नेहसिद्धं ६९६
„ लघु ६९६
मूलकपोतिका
-लघुमूलकं ६९६
मृगनाभिः-कस्तूरी १७८
मृगमदः-कस्तूरी १७८
मृगाक्षी-विशाला ४०३
मृगादनी-विशाला ४०३
मृगोणां जांगलोत्थानां
पयः ७६२
मृगैर्वारुः-विशाला ४०३
मृणाल ४८१-४८२

मृणालमूलं-भिस्साण्डं ७०२
मृत्-कृष्णमृत् ६२२
मृत्तालकं-सौराष्ट्री ६२१
मृत्तिका ६२१
„ -कृष्णमृत् ६२२
मृत्स्ना-कृष्णमृत् ६२२
„ -सौराष्ट्री ६२१
मृदा-कृष्णमृत् ६२२
मृदुच्छदः-कुकुन्दरः ४७५
मृदुच्छदा
-भूमिखर्जूरिका ५८६
मृदुपुष्पः-शिरीषः ५१८
मृदुरेचनी-मार्कण्डिका ४६७
मृदुला-सुलेमानी ५८७
मृद्वीका-द्राक्षा ५८५
मेघनादः-तण्डुलीयः ६६६
मेघनादानुलासी
-मयूरः ७१५
मेघरावः-मयूरः ७१५
मेढः-मेषः ७१६
मेढ्ः-मेषः ७१६
मेथिका ३७,४०
„ वन्या ३७
मेथिनी-मेथिका ३७
मेथी ३७
मेदःपुच्छः ७१६
मेदे ६१,६३
मेदोगला-अलंबुषा ४५७
मेदोभवा-मेदा ६१
मेषः ७०९,७१६
मेषलोचनः-चक्रमर्दः १२५
मेषवल्ली-मेषश्रृंगी ४४३
मेषश्रृंगी ४४३,७९८
मेषश्रृंगीफलं ४४३
मेषस्य, अण्डविहीनस्य
मांसं ७१६
मैरेयं-मद्यं ७८५
मोक्षः-मोक्षकः ५४४
मोक्षकः ५४४

मोक्षकः कृष्णकः ५४४
„ द्विविधः ५४४
„ -पाटलासिता २७८
„ श्वेतः ६४४
मोचकः-शिग्रुः ३३९
मोचनिर्यासः
-मोचास्रावः ५३८
मोचरसः-मोचास्रावः ५३८
मोचा ५५६,७९९
„ -शाल्मली ५३७
मोचाफलं ५५६
„ पक्वम् ५५६
मोचास्रावः ५३८
मोदकः,(सेविकायाः) ७३९
मोरटं ७६४
मोरटा-मूर्वा ४३३
मोहिनी-वटपत्री ४५१
मौक्तिकं ६२५,६२८
म्रक्षणं-नवनीतं ७७४
म्लेच्छं-हिंगुलं ६१५
म्लेच्छकन्दः-लशुनः १२०
म्लेच्छमुखं-ताम्रं ६०५

य

यकृत् ७१९
यक्षधूपः ८०१
यज्ञभूषणः-कुशः ३८२
यज्ञवृक्षः-विकंकतः ५७७
यज्ञांगः-उदुम्बरः ५१६
यज्ञियः-खदिरः ५२५
„ -पलाशः ५३५
यमवाहनः-महिषः ७१७
यमुना (नदी) ७५१
यवं-इन्द्रयवं ७६
यवः ६२५,६४०,६६१,७२६
यवक्षारः ८००
यवजः क्षारः १७१
यवजारोटिका ७२८
यवनेष्टः-पलांडुः १३४

यवनेष्टः-लशुनः १३०
यवफलः ८०१
,, -कुटजः ३४६
,, -वंशः ३०६
यवशाकं-वास्तूकं ६६३
यवसक्तवः ७४४
यवसाह्वया-यवानिका २५
यवाग्रजः-यवक्षारः १६३
यवानिका २५, ४०
यवानी २९, ७९८
यवाः, वंशभवाः ६५९
यवासः ८००
,, -यासः ४११
यशदं ६०२, ६०६, ६११
यष्टीकः २९८
यष्टीपुष्पः-पुत्रजीवः ५३०
यष्टीमधु ६५
यष्टीमधुकं ६५
यान्त्रिको (इक्षु) रसः ७९४
यामनादी-कुक्कुटः ७१४
यामुनं-अंजनं ६१९
यावः-लाक्षा ११३
यावशूकः १७१
,, -यवक्षारः १६३
यासः ४११
युक्तरसा-रास्ना ७९
युगपत्रकः-कोविदारः ३३६
यूथिका-यूथी ४९२
यूथीयुगं ४९२
योगजं-अगुरु १९४
योगीश्वरी-वन्ध्याक-
कोंटकी ४६६
योगेष्टं-सीसं ६०६
योग्यं-ऋद्धिः ६२
,, -वृद्धिः ६२
योजनवल्ली-मंजिष्ठा ११०
योषित्प्रिया-हरिद्रा ११३

र

रंगं ६०२, ६०६, ६११
रंगदा-स्फटिका ६२०
रंगदृढा-स्फटिका ६२०
रंगांगा-स्फटिका ६२०
रंजनं-पतंगं १९३
रंजना-पर्पटी २६५
रंजनी-नीलिनी ४०६
रक्तं-कुंकुमं २३२
रक्तं (पद्म)-कोकनदं ४७९
रक्तः-बन्धूकः ५०५
रक्त (अपामार्गः) ४१६
रक्तएरण्डः २९८
रक्तकल्हारः ८००
रक्तकालं-कंकुष्ठभेदं ६२३
रक्त (गुंजा) ३५४
रक्तचन्दनं १९१, ८०१
रक्तधातुः-गैरिकं ६२०
रक्तपादी-लज्जालुः ४५६
रक्तपीतः-हारीतः ७१४
रक्तपुनर्नवा ७९८
रक्तपुष्पः-रक्तकरवीरः ३१४
,, -रक्तार्कः ३०२
रक्तपुष्पकः-पलाशः ५३५
रक्तपुष्पा
-पुनर्नवाऽरुणा ४२२
,, -शाल्मली ५३७
,, -सिन्दूरी ५०७
रक्तफलः-वटः ५१३
रक्तफला-बिम्बी ६८७
,, -स्वर्णवल्ली २७३
रक्तबीजः-अरिष्टकः ५२९
रक्तबीजा-सिन्दूरी ५०७
रक्तयष्टिका-मंजिष्ठा ११०
रक्तराजिका तैलं ७८०
रक्तः रेणुः-सिन्दूरं ६१२
रक्तलोचनः-पारावतः ७१५
रक्तशालिः
-शालिभेदः ६३५, ६३७
रक्तसन्ध्यकं-कल्हारं ४८४
रक्तसर्पपः ६५४
रक्तसारं-पतंगं १९३
,, -रक्तचन्दनं १९१
रक्तसारः-खदिरः ५२५
रक्तांगं-रक्तचंदनं १९१
रक्तांगः-कांपिल्लः ६६
रक्तांगी-मंजिष्ठा ११०
रक्तार्कः ३०२, ७९८
रक्तार्कपुष्पं ३०२
रक्तालुकं ६९४
रक्तालुभेदः-आलुकी ६९५
रक्तिका-रक्तगुंजा ३५४
रक्तोत्पलादिकं ४७९
रङ्गसदृशं-यशदं ६०६
रजतं-रूप्यं ६०४
रजस्वलः-महिषः ७१७
रत्नं ६२५
,, -वैदूर्यं ६२७
रत्नानि ६२८
,, -नव ६२५
रथः-वेतसः ३६१
रथद्रुः-तिनिशः ५४७
रम्यकः-महानिंबः ३३१
रविप्रियं-ताम्रं ६०५
रविप्रीता-सुवर्चला ४६४
रसः ८०७
रसः-पारदः ६१२-१३
रसकं ६१४, ६२१
रसगर्भं-रसांजनं १२२
रसधातुः-पारदः ६१२
रसना-रास्ना ७९
रसा-पाठा ३९४
,, -रास्ना ७९
,, -शल्लकी ५२१
रसाञ्जन १२२
रसाञ्जनाख्यं १२२
रसाम्लं-चुक्रं १७२
रसायनी-गुडूची २६९
,, -मंजिष्ठा ११०
रसालः ७७१

रसालः-आम्रः ५५०
रसाला ७४०
रसेन्द्रः-पारदः ६१३, ६१४
रसोनः-लशुनः १३०, ८०४
रसोनकः-लशुनः १३०-३१
रस्या-रास्ना ७९
राजकसेरुकं-महत्
कसेरुकं ७०१
राजकोशातकी ६८५, ७९८
राजधान्यं-श्यामाकः ६५७
राजन्या-क्षीरिका ५७६
राजन्यावर्तकः
-राजावर्तः ६२०
राजपुत्रकः-राजाम्रं ५५३
राजपुत्रिका-जाती ४९१
राजपुत्री-रेणुका २५१
राजबला-प्रसारणी ४२४
राजमाषः ६४५
,, कृष्णः ६४५
,, त्रिविधः ६४५
,, रक्तः ६४५
,, श्वेतः ६४५
राजरीतिः-पित्तलभेदं ६११
राजवृक्षः-आरग्वधः ६८
राजशिम्बिः-निष्पावः ६४६
राजादनं ८००
राजादनः-क्षीरिका ५७६
,, -चारः ५७५
राजाम्रं ५५३
राजाम्रः ५५३
राजार्हं-अगुरु १९४
राजावर्तः ६२०
राजावर्तकः ६१४
राजिका ६५५
,, तैलं ७८०
राजी-राजिका ६५५
राजीवं-कमलं ४७९
राजीवः ७०६, ७१२
राज्यक्ता ७३०
राठः(पा)-मदनः ७७
रात्रौ दधिभक्षणस्य
निषेधं ७६९
रात्रौ दधिभक्षणस्य
विधिं ७६९
रात्रौ (पयःपानं) ७६५
रामठं-हिंगु ४०
रामदूतिका-नागिनी ४४२
रामसेनकः-किराततिक्तः ७३
रालः ८०१
राष्ट्रिका-बृहती २८८
रास्ना ७९
रिपुः-चोरकः २५४
रीतिः-पित्तलं ६०९, ६११
रीतिकायुगलं ६११
रीतिहेतुः-यशदं ६०६
रुचकं ७९८
,, -सौवर्चलं १६१
रुचकः-बीजपूरः ५९३
रुजाकरं-कर्मरंगं ५९७
रुबुः-रक्तएरण्डः २९८
रुबूकः-रक्तएरण्डः २९८
,, -शुक्लएरण्डः २९८
रुहा ८०१
,, -नीलदूर्वा ३८४
रूप्यं ६०२, ६०४
,, कृत्रिमं ६०४
'रूषीवानर' ७०७
रेचनी-श्वेतात्रिवृत् ३९७
रेणुका २५१
रेतजा-वालुका ६२१
रोगाह्वयं-कुष्ठं ९१
रोचनः ७९९
,, -कांपिल्लः ६६
,, -कूटशाल्मलिकः ५३८
रोचना ७९९, ८००
,, -गोरोचना २३५
'रोझ'-गवयः ७०६, ७११
रोटिका ७२७, ७२९
रोटी ७२८
रोदिनी-दुरालभा ४११
रोमकं-गडाख्यं १५७
रोमशफलः-डिण्डिशः ६९०
रोहिणी-कटुका ६९
,, -हरीतकी ३
रोहितः ७१०, ७१९
रोहितकः-रोहीतकः ५२७
रोही-रोहीतकः ५२७
रोहीतकः ५२७
रौहिषं ३८३

ल

लंकोपिका-स्पृक्का २६४
लकुचं ५५६
,, - आमं ५५६
,, सुपक्वं ५५६
लकुचः-लकुचं ५५६
लक्ष्मणा ३७२, ८०२
,, -श्वेतकंटकारी २९०
लक्ष्मीः-ऋद्धिः ६२
,, -वृद्धिः ६२
,, -शमी ५८५
लगुडः-रक्तकरवीरः ३१४
लघुः-स्पृक्का २६४
लघुदन्ती ३९९
लघुपुष्पा-हेमकेतकी ४९८
लघुमूलं ६९६
लघुमूलकं ६९६
लज्जालुः ४५६, ७९९
लता-ज्योतिष्मती ९०
,, -धवलशारिवा ४२६
,, -प्रियंगुः २४८
,, -स्पृक्का २६४
लताकस्तूरिका १८३
लप्सिका ७२७
लम्बकर्णः-शशः ७१२
लयं (पा०)-लामज्जकं २६१
लवं-लामज्जकं २६१

लवंगं २१९, ७२९
लवणं ७२४–२५, ७२९–३०
,, औद्भिदं १६१
,, बिडं १५९
,, शाकम्भरीयं १५७
,, सामुद्रं १५८
,, सैन्धवं १५४
,, सौवर्चलं १६१
(लवणानि) १५४–१६१
लवणोदधिसंभवं
-सामुद्रं १५८
लवली ५७४
लशुनः १३०, ७८७
लांगली ६३४, ७९८
,, -कपिकच्छुः ३५६
,, -कलिहारी ३१२, ६३४
,, -जलपिप्पलिका४७०
,, -नारिकेलः ५५८
लाक्षा ११३
लाक्षापुष्पा-शतपत्री ४८८
लाक्षाप्रसादनः
-पट्टिकालोध्रः १२८
लाजाः (पु० बहु०) ७४५
लामजक २६१, ८००
लावः ७०७, ७१३
लिकुचः-लकुचं ५५६
लुलायः-महिषः७०९, ७१७
लेखनी-खटी ६२१
लेख्यपत्रः-तालः ५६३
लोकस्कन्धः-तमालः ५३२
लोचमस्तका-अजमोदा २६
लोणा-लोणी ६७०
लोणिका ७९८
लोणीशाकं ७९८
लोध्रः १२८
लोप्त्री ७२६
लोमकर्णः-शशः ७१२
लोमशा-वचा ४३
लोहं ६०७
लोहं-अगुरु १९४
लोहद्राविणी ८०१
लोहसिंहानिका-किट्टं ६०९
लोहितं-माणिक्यं ६२७
लोहितपुष्पकः
-दाडिमः ५८२
लोहित (शिग्रुः)
-मधुशिग्रुः ३३९
लौहं ६०२, ६०५, ७५७
,, साराह्वयं ६०८
लौहकर्षकः-चुंबकः ६२०

व

वंग-रंगं ६०६, ६१४
,, द्विविधं ६०६
वंगसेनः-अगस्तिः ५०८
वंजुलः-अशोकः ५००
,, -तिनिशः ५४७
,, -वेतसः ३६१
वंध्या-गोरोचना २३५
वंशः ३७६, ८०१
वंशकः (इक्षुः) ७९२, ७९३
वंशकरीरः ३७६
वंशक्षीरी-वंशरोचना ५८
वंशजा-वंशलोचना ५८
वंशपत्री ४५२
वंशयवः ३७६, ६५९
वंशरोचना ५८
वंशिकं-अगुरु १९४
वकः ४९४
वक्रा (पा०)
-कर्कटशृंगी ९८
वचा ४३, ७९९, ८००
,, द्वीपान्तर
(चोबचीनी) ४७
,, पारसीक
(हैमवती) ४३
,, सुगन्धा, उग्रगन्धा
(कुलिंजन) ४५
वचा सुगन्धा,
स्थूलग्रन्थिः
(महाभरी) ४७
वज्रं-अभ्रं ६१६, ६१७
वज्रः (ज्रं)
-हीरकः ६२६, ६२८
वज्रद्रुमः-सेहुण्डः ३०६
वज्राङ्गी
-अस्थिसंहारकः ४१८
वज्रिसारः १७१
वज्री-सेहुण्डः ३०६
वटः ५१३, ८०२
वटकः ७३०
वटका ७३०
वटपत्रः-बर्बरी भेदः ५११
वटपत्री ४५१
वटादिवर्गः ५१३
वटी ७२५
वडवाक्षीरं ७६२
वत्सकः-कुटजः ३४६
वत्सनाभः ६२९
वत्सादनी-गुडूची २६९
वधूः-गंधपलाशी २४७
,, -स्पृक्का २६४
वनं-पानीयं ७४७
वनजः-तुंबुरुः ५६
वनमुद्गः-मकुष्ठः ६४६
वनशृङ्गाटः-गोक्षुरः २९२
वनस्पतिः-नन्दीवृक्षः ५१५
,, -वटः ५१३
वनौका ७०७
वन्दा-वन्दाकः ४४९
वन्ध्याकर्कोटकी ४६६
वन्यतिलः ६५१
वन्यामेथिका ३७
वयस्था-आमलकी १०
,, -क्षीरकाकोली ६२
,, -गुडूची २६९
,, -हरीतकी ३

वरं-कुंकुमं २३२
वरटा ६५९
वरटीवान्तं-मधु ७८८
वरणः-वरुणः ५४२
वरतिक्तः-पर्पटः ३२३
वरतिक्तिका-पाठा ३९४
वरदा-अश्वगंधा ३९३
,, -वाराही ३८६
,, -सुवर्चला ४६४
वरदारुः-भूमीसहः ५४९
वरवर्णिनी-हरिद्रा ११४
वरा-त्रिफला १२
वराङ्गं-त्वचं २२४
वराटः-कपर्दिका ६२२
वराटिका-कपर्दिका ६२२
वराहकर्णी-अश्वगंधा ३९३
वरी-मेदामहामेदा
प्रतिनिधिः ६३
वरी-शतावरी ३९२
वरुणः ५४२
वर्णपुष्पः-अम्लाटनः ५०२
वर्त्तकः ७१३
वर्त्तका ७०७, ७१३
वर्त्तिका ७२६
वर्त्तिचटकः-वर्त्तीकः ७१३
वर्त्तीकः-वर्त्तकः ७१३
वर्त्तीरः ७०७
वर्तुलः-कलायः ६४९
वर्द्धमानः-शुक्लएरण्डः २९८
वप्रं-सीसं ६०६
वर्मिमत्स्यः ७२१
वर्षकेतुः-पुनर्नवाऽरुणा४२२
वर्षाभूः-मण्डूकः ७१७
वल्लकः-निष्पावः ६४६
वल्लकी-शल्लकी ५२१
वल्लरी-मेथिका ३७
वशिरं-सामुद्रं १५८
वशिरः-गजपिप्पली २०
वशिरः-रक्त
(अपामार्गः) ४१६
वसा-मांसरोहिणी ३५८
वसुः-वकः ४९४
वसुकः ७९८
,, -श्वेतार्कः ३०२
वसुच्छिद्रा-महामेदा ६१
वस्त्ररंजकं-कुसुंभं ११२
वस्त्ररंजिनी-मंजिष्ठा ११०
वन्हिज्वाला-धातकी १०८
वन्हिवक्त्रा-कलिहारी ३१२
वन्हिशिखं-कुसुंभं ११२
वांशी-वंशरोचना ५८
वाचस्पतिवल्लभः
-पुष्परागः ६२७
वाजिः-अश्वः ७१७
वाजिदन्ता-वासकः ३२०
वाजिनामा(गन्धान्ता)
-अश्वगंधा ३९३
वाट्या-बला ३६६
वाट्यालका-बला ३६६
वाट्यालिका-बला ३६६
वातपोथः-पलाशः ५३५
वातवैरी-वातादः ५८८
वातादः ५८८
वातादमज्जा ५८८
वातारिः-रक्तएरण्डः २९८
,, -शुक्लएरण्डः २९८
वातारि अग्रदलं २९९
वानप्रस्थः-मधूकः ५७९
वानरः ७०७
वानीरः-वेतसः ३६१
वापी ७५३
वाप्यं-कुष्ठं ९१
वाप्यंजलं ७५४
वाप्यंवारि, क्षारं ७५३
,, मिष्टं ७५३
वायसी-करंजी ३५३
,, काकमाची ४३८
वायसोली-काकोली ६२
वार्-पानीयं ७४७
वारणा ७०९
,, -मोचा ५५६
वाराहः ७०९
वाराहवदना-वाराही ३८६
वाराहाङ्गी-लघुदन्ती ३९९
वाराही ३८६, ६९९
,, -ऋद्धि, वृद्धि
प्रतिनिधि ६३
वाराहीकंदः-वाराही ३८६
वारि ८००
,, -पानीयं ७४७
वारिदनामकं-मुस्तं २४३
वारिपर्णी ४८५
वारिमूली-वारिपर्णी ४८५
वारिवर्गः ७४७
वारुणी ७८६
,, -इन्द्रवारुणी ४०३
,, -मद्यं ७८५
वार्ताकी २९४
,, -बृहती २८८
वार्त्ताकु (स्त्री०)
-वृन्ताकं ६८९
वार्त्तीकः-वर्त्तीकः ७१३
वार्षिकंजलं,
त्रिरात्रमुषितं ७५४
वार्षिकंजलं, अहर्वृष्टं ७५४
वार्षिकी ४९०
वालुका ६२१
वासः-वटः ५१३
वासकः ३२०
वासन्ती ४८९
वासन्ती-माधवी ४९७
वासपुष्पा-चन्द्रशूरं ३९
वासा ८०१
,, -वासकः ३२०
वासिका-वासकः ३२०
वास्तुकं-वास्तूकं ६६३

वास्तुकाकारा-पलक्या६६८
वास्तूकं ६६३, ७३२
वास्तूकद्वितयं ६६३
वाहः-अश्वः ७१७
विः ७१२
विकंकतः ५७७, ७९८
विकशा-मांसरोहिणी ३५८
विकसा-मंजिष्ठा ११०
विकिरं जलं ७५४
विकिरः ७१२
विकीरणः-रक्तार्कः ३०२
विक्षीरिणी-दुग्धिका ४५८
विजया-भंगा १४१
,, -हरीतकी ३
विट्खदिरः-इरिमेदः ५२७
विडंगं ५२, ७९९
विडंगः ५२, ७९९
विडलवणम् ८०१
वितुन्नकम् ७९८
,, -तुत्थकं ६१०
,, -धान्यकं ३३
विदारिगन्धा
-शालपर्णी २८५
विदारी ३८७
,, -जीवक, ऋषभक
प्रतिनिधि ६३
विदुलः-वेतसः ३६१
विदुला-शातला ३१०
विद्रुमः-प्रवालः ६२५, ६२८
विद्रुमलता-नलिका २६६
विनीतः-दमनः ५१०
विमला-शातला ३१०
विमुक्तः-माधवी ४९७
विरङ्गं-कंकुष्ठं ६२४
विशल्या-कलिहारी ३१२
,, -गुडूची २६९
,, -लघुदन्ती ३९९
विशालत्वक्-सप्तपर्णः ५४६
विशाला ४०३
विश्वं-शुण्ठी १२
विश्वभेषजम्-शुण्ठी १२
विश्वा १९, ८०१
,, -अतिविषा १२६
,, -शुण्ठी १२
विषं ६२९, ८०४
विषकण्टकिनी-
-वन्ध्याकर्कोटकी ४६६
विषघ्नी-देवदाली,
पीता ४६८
विषघ्नी-हपुषाभेदः ५०
विषतिन्दुः-कुपीलुः ५६८
विषनाशिनी-सर्पांगी ८२
विषपुष्पकः-मदनः ७७
विषभेदाः ६२९, ६३३
विषमच्छदः-सप्तपर्णः ५४६
विषमा-कर्कन्धू ५७१
विषमुष्टिः-डोडिका ६९२
विषमुष्टिकः-महानिंबः ३३१
विषा-अतिविषा १२६
विषाणी-ऋषभः ६१
,, -मेषशृंगी ४४३
विषापहा-बलामोटा ४७२
विष्किरः ७१२
विष्किराः ७०५, ७०७
विष्णुक्रान्ता ७९९
,, -अपराजिता ३४२
विष्वक्सेनाङ्गना
-प्रियंगुः २४८
विसारः ७१०
विस्रं-लघुमूलकं ६९६
विस्रा-हपुषा ५०
विहंगः ७१२
विहंगमः ७१२
विहगः ७१२
वीरं-आलुकं ६९४
,, -वीरणं २३८
वीरः-ककुभः ५२३
वीरणं २३८
वीरतरुः-वीरणं २३८
वीरवती-मांसरोहिणी ३५८
वीरवृक्षः-ककुभः ५२३
,, -भल्लातकः १३८
वीरसेनं ६९४
वीरसेनकं-आलुकं ६९४
वीरा-काकोली ६२
वीरारुकं-आलुकं ६९४
व्रीहयः ६३७—३८
व्रीहिधान्यं ६३५
वृकः ७०६
वृक्षकः-कुटजः ३४६
वृक्षधूपकः-श्रीवासः २०८
वृक्षभक्ष्या-बंदाकः ४४९
वृक्षमर्कटिका ७०७
वृक्षमार्जारः ७०७
वृक्षरुहा-बन्दाकः ४४९
वृक्षविडालः ७०७
वृक्षादनी-बंदाकः ४४९
वृक्षामयः-लाक्षा ११३
वृक्षाम्लं ५९९, ६००
,, आमं ५९९
,, पक्वं ५९९
वृत्तकोशः-देवदाली ४६८
वृत्तपुष्पः-कदंबः ४९५
,, -कुब्जकः ४९६
वृत्तफलः-रक्त
(अपामार्गः) ४१६
वृत्ता-मांसरोहिणी ३५८
वृद्धं-शैलेयं २४२
वृद्धदारुः ४०८
वृद्धदारुकः-वृद्धदारुः ४०८
वृद्धिः ६१
वृन्ताकं ६४४, ६८९
,, अङ्गार-
परिपाचितं ६८९
वृन्ताकं, तैल-
लवणान्वितं ६८९
वृन्ताकं, बालं ६८९

वृन्ताकं वृद्धं ६८९
,, श्वेतं ६८९
वृन्ताकभटित्रं ७३२
वृषः ७०९, ७१६
,, -वासकः ३२०
वृषभः ७१६
वृषा-द्रवन्ती ३९९
वृष्णिः-मेषः ७१६
वृष्यगन्धिका
-वृद्धदारुः ४०८
वृष्या-आमलकी १०
,, -कपिकच्छूः ३५६
वेणा (नदी) ७५१
वेणी-देवदाली ४६८
वेणुः-वंशः ३७६,६२८,७९९
वेणुपत्री-वंशपत्री ४५२
वेतसं ५१९
वेतसः ३६१
वेधमुख्यः-कर्चूरः २४५
वेधमुख्या-कस्तूरी १७८
वेल्लं-विडंगः ५२
वेल्लजं १७
वेशवारः ७३४
वेश्मचटकः ७१४
वेसनं ७३२
वेसनमोदकः ७३९
वेसनवटिका ७३३
वैजयन्तिका-अग्निमंथः२८१
वैणवी-वंशरोचना ५८
वैदलाः ६४३
वैदूर्यं ६२५—२८
वैदेही-पिप्पली १५
वैश्रवणः-वटः ५१३
वैसारिणः ७१०
व्यङ्गा-कपिकच्छू ३५६
व्यडम्बकः-शुक्लएरण्डः२९८
व्याघ्रः ७०६
व्याघ्रनखं-नखं २३६
व्याघ्रपाद्-विकंकतः ५७७
व्याघ्रपुच्छः-रक्तएरण्डः२९८
व्याघ्रायुधं-नखं २३६
व्याघ्री-कंटकारी २८९
व्याधिघातः
-आरग्वधः ६८
व्याप्यं (पा०)-कुष्ठं ९१
व्यालः-चित्रकः २१
व्योषं १९

श

शंकुः ७१०
शंकितः-चोरकः २५४
शंखः ६१४,६२२,६२८,७१०
शंखधरा-हिलमोचिका६७३
शंखनखः ७१०
शंखपुष्पी ४५४
शंखालुकं ६९४
शंखाह्वा-शंखपुष्पी ४५४
शकुनाहृतः
-शालिभेदः ६३५
शकुनिः ७१२
शकुलादनी ८००
,, -कटुका ६९
,, -गंदूडर्वा ३८६
शकुलादनी
-जलपिप्पलिका ४७०
शकुली ७१०
शक्तुफला-शमी ५४५
शक्रपुष्पी-कलिहारी ३१२
शक्रशाखी-कुटजः ३४६
शटी ७९९, ८०१
,, -कर्चूरः २४५
शठी-गन्धपलाशी ४१
शणपुष्पसमाकृतिः
-शणपुष्पी ४३०
शणपुष्पिका-आढकी ६४७
शणपुष्पी ४३०
शतकुंभः-श्वेतकरवीरः३१४
शतद्रु (नदी) ७५१
शतपत्रं-कमलं ४७९
शतपत्रकः ७०८
शतपत्री ४८८
शतपदी-शतावरी ३९२
शतपर्वा (इक्षुः) ७९३
शतपर्विका-नीलदूर्वा ३८४
,, -वचा ४३
शतपुष्पः-षष्टिकभेदः ६३८
शतपुष्पा ३५
शतपोरकः (इक्षुः) ७९२
शतमूली-महाशतावरी३९२
शतवल्ली-नीलदूर्वा ३८४
शतवीर्या-दूर्वा शुक्ला३८५
,, -शतावरी ३९२
शतवेधि-अम्लवेतसं ५९९
शतवेधिनी-चुक्रा ६७२
शतावरी ३९२
,, महाशतावरी,
अंकुरः ३९२
शताह्वा-शतपुष्पा ३५
शफरी-चांगेरी ६७१
शमी ५४५
शमीजाः-वैदलाः ६४३
शमीधान्यं ७२४
शमीपत्रा-लज्जालुः ४५६
शमीरः-शमी,
अलिपका ५४५
शम्पाकः-आरग्वधः ६८
शम्बरः ७०६
शम्बरी-द्रवन्ती ३९९
शम्बूकः ७१०
शरः ७९९
,, -भद्रमुंजः ३७९
शरपुंखः ४०७
शरारिका ७०९
शरी-एरका ३८१
शर्करा ७२७

शर्करा-वालुका ६२१
,, -सिता ७९६
शर्करायाः-पुराणत्वं ७९१
शर्करोदकं ७४१
शलाटुः (पा०)
-श्रीफलः २७४
शल्यकः ७१२
,, -मदनः ७७
शल्यपर्णी-मेदा ६१
शल्लकी ५२१, ७०६
शशः ७०६, ७१२
शशघातकः ७०८
शशिलेखा-बाकुची १२३
शष्कुली ७२८, ७३८
शष्पं-नीलदूर्वा ३८४
शस्त्रकं-लोहं ६०७
शस्यशंबरः-अश्वकर्णः ५२०
शाकंभरीयं-गडाख्यं १५७
शाकं षड्विधं ६६३
(शाकं संस्वेदजं) ७०३
शाकपाकविधिः ७३६
शाकराट्-वास्तूकं ६६३
शाकवर्गः ६६३
शाकश्रेष्ठा-जीवन्ती २९५
शाखोटः ५४२
शाण्डिल्यः-बिल्वः २७४,५६५
शातकुम्भं-सुवर्णं ६०२
शातला ३१०, ८०१
शारदः-सप्तपर्णः ५४६
शारदा-पद्मा ४८२
शारदी ७९९
,, -जलपिप्पलिका ४७०
शारिवा ७९९
शालः-अश्वकर्णः ५२०,५३२
शाल(भेदः)-अजकर्णः५२०
शालपर्णिका-मुरा २४६
शालपर्णी २८५, २९४.
शालामर्कटकं
-लघुमूलकं ६९६
शालामुखः-व्रीहिभेदः ६३७
शालिः ७२४
,, अवापितः ६३७
,, दग्धमृज्जातः ६३६
,, रोपितःपुराणश्च ६३७
,, स्थलजः ६३६
शालिधान्यं ६३५
शालिपर्णी ७९९, ८००
,, (पा०)
-शालपर्णी २८५
शालिसक्तवः ७४४
शालीना-मिश्रेया ३५
शालूकं ४८२, ७०२
शालेयं-लघुमूलकं ६९६
शालेया-मिश्रेया ३५
शाल्मलिः ७९९
,, -शाल्मली ५३७
शाल्मलिनिर्यासः
-मोचास्रावः ५३८
शाल्मली ५३७, ८००, ८०१
शाल्मलीपुष्पशाकं ६७९
शाल्मलीवेष्टकः
-मोचास्रावः ५३८
शाल्यादि ८००
शावरः-लोध्रः १२८
शिंशपा ५२२, ८००
शिखण्डिकः-कुक्कुटः ७१४
शिखण्डी-मयूरः ७१५
शिखरिधारः १७१
शिखरी-अपामार्गः ४१४
शिखावलः-मयूरः ७१५
शिखी-मयूरः ७१५
,, -सुनिषण्णः ६७३
शिखीग्रीवं-तुत्थकं ६१०
शिग्रुः ३३९
,, वल्कलपत्रं ३३९
,, श्वेतः ३३९
शिग्रुजं बीजं ३३९
शिग्रोः पुष्पं ६७८
शिण्डाकी ७८४
शितिवारः-सुनिषण्णः ६७३
शिम्बिः-शिम्बी ६८८
शिम्बिजाः-वैदलाः ६४३
शिम्बी ६८८
शिम्बीद्वयं ६८८
शिम्बीधान्यं ६३५
शिम्बीभवाः-वैदलाः ६४३
शिरालं-कर्मरंगं ५९७
शिरीषं ५१९
शिरीषः ५१८
शिरीषिका
-वारिशिरीषिका २४५
शिला-मनःशिला६१४,६१९
शिलाजं ६१२
,, ताम्रं ६१२
,, राजतं ६१२
,, लौहं ६१२
,, सौवर्णं ६१२
शिलाजतुः
-शिलाजं ६०९, ६१२
शिलाटिका
-पुनर्नवाऽरुणा ४२२
शिलापुष्पं-शैलेयं २४२
शिलीन्ध्रकं
-संस्वेदजंशाकं ७०३
शिवप्रियः-धुत्तूरः २१७
शिवं-आमलकी १०
शिवमल्ली-वकः ४९४
शिववीर्यं-पारदः ६१३
शिववीर्यः-पारदः ६१३
शिवा ६००
,, -भूधात्री ४६०
,, शुष्कंफलं ५६५
,, -हरीतकी ३
शिवाफला-शमी ५४५
शिवाह्वयः-पारदः ६१३
शिविः-एरका ३८१
शिशुमारः ७१०

शीघ्रा-लघुदन्ती ३९९
शीतः-बहुवारः ५८३
,, -वेतसः ३६१
शीतफलः-पीलुः ५९०
शीतभीरुः-मल्लिका ४९७
शीतलजलपानस्य
निषेधविषयान् ७५६
शीतलजलपानस्य
विषयान् ७५६
शीतशिवं ८०१
,, -सैन्धवं १५४
शीर्णरोमं-स्थौणेयकं २५३
शुकं-स्थौणेयकं २५३
शुकच्छदं-स्थौणेयकं २५३
शुकतरुः-शिरीषः ५१८
शुकतुण्डकः
-हिंगुलभेदं ६१५
शुकनासः-श्योनाकः २८३
शुकपुष्पं-स्थौणेयकं २५३
शुकपुष्पः-शिरीषः ५१८
शुकप्रियः-शिरीषः ५१८
शुकबर्हं-स्थौणेयकं २५३
शुकाभं-वितुन्नकं २६४
शुक्तं ७८४
,, -चुक्रं १७२
शुक्तिः ६२८, ७१०
शुक्लएरण्डः २९८
शुक्लकन्दा-अतिविषा १२६
शुक्लफलः-रक्तार्कः ३०२
शुक्ला-क्षीरकाकोली ६२
शुक्लापांगः-मयूरः ७१५
शुक्ला वचा-हैमवती ४५
शुण्ठी १२, २०१, ५५१,
७९६, ८०४
शुद्ध मांस ७३४
शुभा-वंशरोचना ५८
शुभ्रा-वंशरोचना ५८
,, -स्फटिका ६२०
शुल्बं-ताम्रं ६०३, ६०५
शृंगः-जीवकः ६१
शृंगवेरं-आर्द्रकं १४
,, -शुण्ठी १२
शृंगवेराभमूलकः
-गुन्द्रः ३८१
शृंगाटकं ५७८
शृंगिकः ६२९, ६३१
शृंगी-अतिविषा १२६
,, -कर्कटशृंगी ९८
,, -वटः ५१३
शृतशीतं अजापयः ७६३
शृतशीतं (दुग्धं) ७६३
शृतोष्णं आविकं
(दुग्धं) ७६३
शृतोष्णं (दुग्धं) ७६३
शूकधान्यं ६३५
शूकशिम्बी-कपिकच्छूः३५६
शून्यमध्यः-नलः ३७७
शूर्पपर्णी (पा०)
-मुद्गपर्णी २९६
शूली-शशः ७१२
शूल्यं पलं ७३५
शेफाली-निर्गुण्डी
(नील) ३४४
शेलुः-बहुवारः ५८३
शैलधातुजं-शिलाजं ६१२
शैलनिर्यासः
-शिलाजं ६१२
शैलूषः-बिल्वः २७४, ५६५
शैलेयं २४२
शैलेषु चरन्तीनां
दुग्धं ७६०
शैवलं-शैवालं ४८५, ७५८
शैवालं ४८५, ७५७
शोणपुष्पकः-
कांचनारः ३३६
शोणरत्नं-माणिक्यं ६२७
शोणिताभिधं-कुंकुमं २२२
शोथघ्नी-पुनर्नवाऽरुणा४२२
,, -(श्वेतपुनर्नवा) ४२२
शोफकृत्-भल्लातकः १३८
शोभांजनः-शिग्रुः ३३९
शोभांजनफलं ६८९
शोषणः-श्योनाकः २८३
शौक्तिकं-मौक्तिकं ६२८
शौण्डी-पिप्पली १५
श्यामः-श्यामाकः ६५७
श्यामकं-रौहिषं ३८३
श्यामा ८००
,, -कृष्णशारिवा ४२५
,, -त्रिवृत् ३९८
,, -धवलशारिवा ४२६
,, -प्रियंगुः २४८
,, -शिंशपा ५२२
श्यामाकः ६५७
श्येनघण्टा-लघुदन्ती ३९९
श्योनाकः २८३, २८५,
७९९, ८००, ८०३
श्रवणशीर्षका
-मुण्डतिका ४१३
श्रवणाह्वा-मुण्डतिका ४१३
श्रावणी-मुण्डतिका ४१३
श्रीखण्डं-चन्दनं १८६
श्रीपदी-वार्षिकी ४९०
श्रीपर्णिका-कट्फलः १००
श्रीपर्णी ८०३
,, -अग्निमंथः २८१
,, -काश्मरी २७६
श्रीप्रसूनकं-लवंगं २१९
श्रीफलं-आमलकी १०
श्रीफलः २७४, २८५
,, -बिल्वः ५६५
श्रीफली-नीलिनी ४०६
श्रीमान्-तिलकः ५०५
श्रीवारकः-सुनिषण्णः ६७३
श्रीवासः २०८
श्रीवेष्टः-श्रीवासः २०८

श्रीसंज्ञं-लवंगं २१९
श्रुतश्रोणी-द्रवन्ती ३९९
श्रेयसी-गजपिप्पली २०
,, -रास्ना ७९
,, -हरीतकी ३
श्लक्ष्णकः-चीनाकः ६५७
श्लेष्मातकः-बहुवारः ५८३
श्वदंष्ट्रा-गोक्षुरः २९२
श्वावित्-शल्यकः ७१२
श्वेतः (पारदः) ६१३
श्वेतकुवलयं-कुमुदं ४८३
श्वेतकं ७९०
श्वेतदूर्वा ८००
श्वेतपुष्पः
-श्वेतकरवीरः ३१४
,, -श्वेतार्कः ३०२
,, -सिन्दुकः ३४४
,, -सैरेयः (श्वेत) ५०२
श्वेतपुष्पा-नागिनी ४४२
,, -विशाला ४०३
श्वेतमरिचं-शिग्रुबीजं ३३९
श्वेतमूला
,, -(श्वेतपुनर्नवा) ४२२
श्वेतवृन्ताकं ६८९
श्वेतशिम्बिकः
-निष्पावः ६४६
श्वेतसारिवा ८०३
श्वेता, त्रिवृत् ३९७
श्वेतादूर्वा ३८५
श्वेता-श्वेतकंटकारी २९०
,, -स्फटिका ६२०
श्वेतार्कः ३०२

ष

षट्पदानन्दा-वार्षिकी ४९०
षड्ग्रन्था-करंजी ३५३
,, -गन्धपलाशी २४७
,, -वचा ४३
षड्‍‍ूषणं २४

षष्टिकः ६३५, ६३८

स

संकोचं-कुंकुमं २३२
संवर्त्तिका
-(कमल) नवदलं ४८१
संहितच्छत्रिका
-शतपुष्पा ३५
सकलप्रियः-चषकः ६४८
सक्तवः ७४३,
सक्तुकः ६२९, ६३०
सक्तुसेवन नियमान् ७४४
सगुडं दधि ७६९
सगुडं (दुग्धं) ७६४
सट्टकं ७३७
सतिक्तका-चंचुः ६७२
सतीनः-कलायः ६४९
सदापुष्पं-कुन्दं ५०३
सदापुष्पः-श्वेतार्कः ३०२
सदाफलः-श्रीफलः २७४
,, -नारिकेलः ५५८
सन्तानिका ७६४
सन्धानवर्गः ७८३
सप्तकद्रुः-चारः ५७५
सपादमत्स्यः ७२२
सपीतकः-बब्बूलः ५२८
सप्तपर्णः ५४६
सप्तला-वासन्ती ४८९
,, -शातला ३१०
सप्तालुकं (पा०) ६९४
सप्तिः-अश्वः ७१७
समंगा ७९९,
,, -मंजिष्ठा ११०
,, -लज्जालुः ४५६
समगंधिकं-उशीरं २३९
समन्तदुग्धा-सेहुण्डः ३०६
समिता ७२६, ७२७, ७३०
समिद्वरः-पलाशः ५३५
समीरणः-मरुत् ५१०

समुद्रजं-सामुद्रं १५८
समुद्रजः-शंखः ६२२
समुद्रफेनः ६०
समुद्रान्ता-कार्पासकी ३७४
,, -दुरालभा ४११
,, -स्पृक्का २६४
सम्पावः ७३७
सरः ७५२, ७७०
,, अम्लः ७७०
,, स्वादुः ७७०
सरजं-नवनीतं ७७४
सरणी-प्रसारणी ४२४
सरयू (नदी) ७५१
सरलः १९७
सरलनिर्यासः ८०१
सरलश्रावः-श्रीवासः २०८
सरला-श्वेतात्रिवृत् ३९७
सरसीरुहम्-कमलं ४७९
सरस्वती-ब्राह्मी ४६१
सरोजा (मत्स्याः) ७२२
सरोवारि ७५५
सर्जः-अश्वकर्णः ५२०
सर्जकः-बीजकः ५२४
सर्जकोअन्यः-अजकर्णः५२०
सर्जरसोद्धतं तैलं ७८२
सर्पांगी ८२
सर्पाक्षी ४५२
सर्पिः ७२४, ७२७
सर्पिः आत्रिकं ७७६
सर्पिः-घृतं ७७५
,, क्षीणां ७७६
सर्वतोभद्रा २८५, ८००
सर्वानुभूतिः
-श्वेतात्रिवृत् ३९७
सर्षपः ६५४
सलिलं-पानीयं ७४७
सशर्करंदधि ७६९
सहकारः-आम्रः ५५०

सहचरः-सैरेयः(श्वेत)५०२
सहदेवी-महाबला ३६६
सहद्रकं ७३४
सहस्रनुत्-अम्लवेतसं ५९९
सहस्रपत्रं-कमलं ४७९
सहस्रभिद्-कस्तूरी १७८
सहस्रवीर्या ८००
,, -नीलदूर्वा ३८४
,, -महाशतावरी ३९२
सहस्रवेधि-चुक्रं १७२
,, -हिंगु ४०
सहस्रा-माचिका ८६
सहस्राहिः
-नीलकण्ठशिखा ४७७
सहा-मुद्गपर्णी २९६
सहाचरः
-सैरेयः (श्वेत) ५०२
सागरजं-सामुद्रं १५८
साधारणं (भौमजलं) ७५१
साधारणदेशः ७५०
सानुजः-तुंबुरुः ५६
साबरं ७१२
सामुद्रं (धारं) ७४८
सामुद्रं लवणं १५८
सारघं-मधु ७८८
सारणी-प्रसारणी ४२४
सारसं-कमलं ४७९
,, तोयं ७५४
,, सलिलं ७५८
सारसः ७०९
सारा-शातला ३१०
सारिवा ७९९, ८००
सारिवायुगलं ४२६
सार्षपं तैलं ७८०
,, नालं ६९२
सिंहः ७०६
सिंहकेसरकः-बकुलः ४९४
सिंहतुण्डः-सेहुण्डः ३०६
सिंहपर्णः-वासकः ३२०

सिंहपुच्छी-पृश्निपर्णी २८६
सिंहास्यः-वासकः ३२०
सिंहिका-वासकः ३२०
सिंही ८०१
,, -बृहती २८८
सिकता-बालुका ६१४,
६२१, ७५७
सिक्थकम्-मयनं ७९१
सितच्छत्रा-शतपुष्पा ३५
सितपद्मं-पुण्डरीकं ४७९
सितप्रभम्-रूप्यं ६०४
सिता ७२५, ७२६, ७९६
,, -विदारी ३८७
,, -क्षुद्रा २९०
सिताभ्रः-कर्पूरः १७२
सितासितोपलायुतं,
(दुग्धं) ७६४
सितोपला ७९६
सिद्धमांसं ७२७
सिद्धमांसरसः ७३६
सिद्धार्थः-गौरसर्षपः ६५४
सिद्धिः-ऋद्धिः ६२
,, -वृद्धिः ६२
सिन्दुकः (श्वेत) ३४४
सिन्दूरं ६०९, ६११
सिन्दूरी ५०७
सिन्दुवारः
-सिन्दुकः (श्वेत) ३४४
सिन्दुवारकः
-सिन्दुकः (श्वेत) ३४४
सिन्दुवारदलं ३४४
सिन्धुजं-सैन्धवं १५४
सिम्बि(म्बि)काफलं (पा०)
-सेवं ५८९
सिल्हकः २१५
सिवितिकाफलं-सेवं ५८९
सिहानं-किट्टं ६०९
सीधुः-मद्यं ७८५
,, पक्वरसः ७८६

सीधुः शीतरसः ७८६
सीसं ६०२, ६०६
सीसजं-सिन्दूरं ६११
सुकोमला-सिन्दूरी ५०७
सुकोशकः-कोशाम्रः ५५४
सुखवर्चकः-स्वर्जिका १६३
सुगन्धं-ग्रंथिपर्णं २५२
,, -भूतृणं ३८३
सुगन्धः-कुन्दुरूः २१२
,, -कृष्णजीरः ३०
सुगन्धकः-शालिभेदः ६३५
सुगन्धमूला-लवली ५७४
सुगन्धा-रास्ना ७९
सुगन्धा स्थूलग्रन्थिः
-(महाभरी भेदः) ४७
,, -(महाभरीवचा,
कुलिंजन) ४५
सुगन्धि-एलालु २६२
सुगन्धिनी-हेमकेतकी ४९८
सुतेजनः-धन्वंगः ७४०
सुदर्शनः ७१०
सुदर्शना ४७६
सुदीर्घः-चिचिण्डः ६८३
सुधा-सेहुण्डः ३०६
सुधावासः-त्रपुसं ५६१
सुनादः-शंखः ६२२
सुनालं-लामज्जकं २६१
सुनिर्यासा-जिंगिनी ५३२
सुनिषण्णः ६७४
सुपर्णिका-बाकुची १२३
सुपार्श्वकः-पारीषः ५१४
सुभिक्षा-धातकी १०८
सुमनः-गोधूमः ६४१
सुमना-जाती ४९१
सुमुष्टिका-डोडिका ६९२
सुमेखलः-मुंजः ३७९
सुरंगं-पतंगं १९३
सुरतारका
-आम्रगंधिहरिद्रा १६१

सुरनायिका
-आम्रगंधिहरिद्रा ११६
सुरभिः-गौः ७१६
„ -मुरा २४६
सुरभिदारुकः-सरलः १९७
सुरभिपत्रा-राजजम्बू ५७०
सुरभी-शल्लकी ५२१
सुरभूरुहः-देवदारु १९६
सुरमृत्तिका-सौराष्ट्री ६२१
सुरसा-तुलसी ५०९
„ -रास्ना ७९
„ -सर्पांगी ८२
सुरा-मद्यं ७८५
सुराष्ट्रजं-सौराष्ट्री ६२१
सुरीमत्
-आम्रगंधिहरिद्रा ११६
सुलभा-तुलसी ५०९
'सुलेमानी'-खर्जूरीभेदः ५८७
सुलोमशा-काकजंघा ४४१
सुवर्चला ४६४
सुवर्चिका १६३
सुवर्णं ६०२, ६०३, ७५७
सुवर्णकः-आरग्वधः ६८
सुवर्णकेतकी
-हेमकेतकी ४९८
सुवर्णगैरिकं
-गैरिकभेदं ६२०
सुवर्तुलं-कालिन्दं ५६०
सुवहा-निर्गुण्डी (नील) ३४४
„ -रास्ना ७९
„ -शल्लकी ५२१
सुवासरा-चन्द्रशूरं ३९
सुव्रता-गन्धपलाशी २४७
सुषवी-उपकुञ्चिका ३०
सुषिरा-नलिका २६६
सुषेणः-करमर्दः ५७४
सुषेणिका-त्रिवृत्-
श्यामा ३९८
सूक्ष्मपत्रः-कुकुन्दरः ४७५
सूक्ष्मपत्रा-जम्बूः ५७१
सूक्ष्मा-सूक्ष्मैला २२२
सूक्ष्मैला ७९९, ८०१
सूचिकापुष्पः-केतकः ४९८
सूचिपत्रकः (इक्षुः)
७९२, ७९३
सूच्यग्रः-कुशः ३८२
सूतः-पारदः ६१३
सूपः ७२४
सूप्याः-वैदलाः ६४३
सूरणः ६९३
सूर्यपर्णी-माषपर्णी २९७
„ -मुद्गपर्णी २९६
सूर्यभक्ता-सुवर्चला ४६४
सूर्यावर्त्ता-सुवर्चला ४६४
सेतुः-वरुणः ५४२
सेधा-शल्यकः ७१२
सेवं ५८९
सेविका ७२६
सेव्यं ८००
„ -उशीरं २३९
„ -लामज्जकं २६१
सेहुण्डः ३०६
सैन्धवं १५४, ८०१
सैन्धवः १५४
„ -अश्वः ७१७
सैरेयः ५०२
„ -(श्वेत) सैरेयः ५०२
सैरेयकः-(श्वेत) सैरेयः ५०२
सोमक्षीरी-सोमवल्ली ४४५
सोमराजी-बाकुची १२३
सोमलता-सोमवल्ली ४४५
सोमवल्कः-कट्फलः १००
„ -करञ्जः, घृतपूर्णः ३४९
सोमवल्कलः-कद्रः ५२६
सोमवल्ली ४४५
„ -गुडूची २६९
„ -बाकुची १२३
सोमवल्ली-ब्राह्मी ४६१
„ -सुदर्शना ४७६
सोमा-गुडूची २६९
„ -बाकुची १२३
सौगन्धिकं-कल्हारं ४८४
„ -रौहिषं ३८३
सौगन्धिकः-गन्धकः ६१५
सौभाग्यं-टंकणं १६९
सौम्या-शालपर्णी २८५
सौरः-तुम्बुरुः ५६
सौरभः-तुम्बुरुः ५६
सौरभेयः-वृषः ७१६
सौरभेयी-गौः ७१६
सौराष्ट्रिकः ६२९, ६३१
सौराष्ट्री ६१४, ६२१
सौवर्चलं १६१, ५५१, ७९८
सौवीरं ५७१, ७८४, ७९९
„ -श्वेत (पांडुरं)
अंजनं ६१९
स्कन्धः ७१९
स्कन्धजः-वटः ५१३
स्कन्धफलः-नारिकेलः ५५८
स्कन्धफला
-भूमिखर्जूरिका ५८६
स्तन्यं-दुग्धं ७५९
स्तुभः-छागः ७१५
स्तुभा-छागी ७१५
स्थालीवृक्षः-नन्दी-
वृक्षः ५१५
स्थिरः-धवः ५३९
स्थिरा-शालपर्णी २८५
स्थिरायुः-शाल्मली ५३७
स्थूलग्रन्थिः सुगन्धा
-(महाभरीभेदः) ४७
स्थूलदर्भः-मुंजः ३७९
स्थूलवल्कलः
-पट्टिकालोध्रः १२८
स्थूला-स्थूलैला २२१
स्थूलैला २२१

स्थौणेयकं २४३
स्नुक्-सेहुण्डः ३०६
स्नुही (स्त्री)-सेहुण्डः ३०६
स्नुहीक्षीरं ३०७, ६३४
स्नेहः-सर्षपः ६५४
स्पृक्का २६४, ७९९, ८०१
स्फटिका ६१४, ६२१
स्फटी-स्फटिका ६२०
स्फुटध्वनिः कपोतः
-धवलपाण्डुः ७१४
स्फूर्जकः-तिन्दुकः ५६७
स्फोटा-धवलशारिवा ४२६
स्यन्दनः-तिनिशः ५४७
स्रंसी-पीलुः ५९०
स्रुवा-मूर्वा ४३३
स्रुवावृक्षः-विकंकतः ५७७
स्रोतोंजनं ६१४, ७९९
„ -कृष्ण अंजनं ६१९
स्वर्जिका १६३, १७१,
७२९, ८००
स्वर्जिकाभेदः
-सुवर्चिका १६३
स्वर्णं-सुवर्णं ६०२
स्वर्णजातिका
-पीता जाती ४९१
स्वर्णभूषणः-आरग्वधः ६८
स्वर्णमाक्षिकं
-सुवर्णमाक्षिकं ६०९
स्वर्णवल्ली ३७३, ८०२
स्वर्णांगः-आरग्वधः ६८
स्वल्पकेशरी
-कोविदारः ३३६
स्वल्पखर्जूरिका ५८६
स्वल्पजंबीरिका ५९४
स्वल्पपर्णी (पा०)
-मेदा ६१
स्वस्तिकः-सुनिषण्णः ६७३
स्वादुकण्टकः ७९८
„ -गोक्षुरः २९२
स्वादुकण्टकः-विकंकतः ५७७
स्वादुकन्दा-विदारी ३८७
स्वादुपर्णी-दुग्धिका ४५८
स्वादुपुष्पः-कटभी ५४२
स्वादुफला-द्राक्षा ५८५
स्वादुमस्तका
-भूमिखर्जूरिका ५८६
स्वाद्वी-दारुसिता २२६
„ -भूमिखर्जूरिका ५८६

ह

हञ्जिका-भार्गी १०१
हञ्जिका (पा०)-लाक्षा ११३
हंसः ७०९
हंसपदी-हंसपादी ४४४
हंसपादः-हिंगुलभेदं ६१५
हंसपादी ४४४
हट्टविलासिनी ८०१
„ -नखी २३६
„ -हरिद्रा ११४
हनुः-नखी २३६
हपुषा ५०
हबुषा-हपुषा ५०
हयः-अश्वः ७१७
हयपुच्छिका-माषपर्णी २९७
हयाह्वया-अश्वगन्धा ३९३
हरविलासिनी-हरिद्रा ११४
हरिः-मण्डूकः ७१७
हरिचन्दनं-कालीयकं १९०
हरिणः ७०६, ७११
हरितः-हारीतः ७१४
हरितालं ६१८
„ पत्राख्यं ६१८
„ पिण्डसंज्ञकं ६१८
हरिद्रा ११४, ७२५, ७२९,
७९९
हरिद्रुः-दारुहरिद्रा ११८
हरिन्मणिः-गारुत्मतं ६२७
हरिप्रियं-कालीयकं १९०
हरिमन्थः-चणकः ६४८
'हरियल' ७०८
हरिवालुकं-पुलालु २६२
हरिविग्रहा-दुरालभा ४११
हरीतकी ७९६
हरीतक्यादिवर्गः ३
हरीसा ७३५
हरेणुकः-कलायः ६४९
हरेणुका-रेणुका २५१
हलदी-हरिद्रा ११४
हलिनी-कलिहारी ३१२
हलिप्रियः-कदम्बः ४९५
हल्लकं-कल्हारं ४८४
हविः-घृतं ७७५
हविर्ह्यस्तनदुग्धोत्थं
-हैयङ्गवीनकम् ७७६
हस्तिनीदुग्धं ७६२
हस्तिवारुणी-करञ्जी ३५३
हस्त्यालुकं ६९४
हाटकम्-सुवर्णं ६०२
हायनः-शालिभेदः ६३५
हारहूरा-द्राक्षा ५८५
हारिद्रः ६२९–३०
हारीतः ७०८, ७१४
हाला-मद्यं ७८५
हालाहलः ६२९, ६३३
हिंगु ४०, ७२४-२५, ७२९-३०
हिंगुनिर्यासः-निंबः ३२८
हिंगुपत्री ४५१
हिंगुलं ६१४–१५
हिंगुली-बृहती २८८
हिंगुशिवाटिका
-वंशपत्री ४५२
हिज्जलः ३६३
हिण्डीरः-समुद्रफेनः ६०
हिमं ७५०
हिमनामा-कर्पूरः १७३
हिमवालुकः-कर्पूरः १७३
हिमाम्बु ७५०
हिमावती-हेमक्षीरी ९६

हिरण्यं-सुवर्णं ६०२
हिरण्यः, गुग्गुलुः २०४
हिरण्याक्षः (पा०)
-गुग्गुलुः २०४
हीरकं ६२६
हीरकः ६२६
„ असितः-शूद्र-
हीरकः ६२६
„ चतुर्वर्णात्मकः ६२६
„ नपुंसकः ६२६
„ पीतः-वैश्यहीरकः ६२६
„ पुरुषः ६२६
„ लोहितः-क्षत्रिय-
हीरकः ६२६
हीरकःश्वेतः-विप्रहीरकः ६२६
„ स्त्री ६२६
हीरा २७६
हुडः-मेषः ७१६
हृद्यगन्धा-जाती ४९१
हेतुः-महाशतावरी ३९२
हेमक्षीरी ९६
हेमं-सुवर्णं ६०२
हेमजलं-हिमाम्बु ७५०
हेमगौरः-किंकिरातः ४९९
हेमदुग्धकः-उदुम्बरः ५१६
हेमपुष्पः-चम्पकः ४९३
हेमपुष्पिका-पीतायूथी ४९२
हेमाह्वा-हेमक्षीरी ९६
हैमं जलम् ७५०
हैमं-(दिव्यं पानीयं) ७४७
हैमवती ४५
„ -हरीतकी ३
„ -हेमक्षीरी ९६
हैयङ्गवीनं ७७६
„ -नवनीतं ७७४
हैयङ्गवीनकम्
-हैयङ्गवीनम् ७७६
होलकः ७४५
ह्रस्वगवेधुका
-नागबला ३६६
ह्रस्वाङ्गः-जीवकः ६१
ह्रीबेरं-बालकं २३७

वर्णानुक्रम से द्रव्यों के विभिन्न भाषाओं के नाम

अ

अंकोट ३६५
अंकोल ३६५
अंकोलमु ३६५
अंकोलेमर ३६५
अंगरखेरु ३९३
अंगारवल्ली ४००
अंगिराहिन्दी ५०६
अंगुजा ४१
अंगुलिया थूहर २०८, २११
अंगूजह ४१
अंगूर ५८५-८६
अंगूर-भेद ५८६
अंगेथु २८२
अंघुजेह-इलरी ४१
अंजड २८८
अंजन ६११, ७९९
अंजवार ८०९
अंजीर ८०९
अंजीरे आदम ५१६
अंबः ५५२
अंब ५५२
अंबज ५५२
अंबर ५५२, ८०९
अंबर माइअ, २१५
अंबष्टा ८८
अंबाडा ५५३
अंबालमु ५५३
अंबिया हल्दी ११७
अंबिलोना ६७१
अंबुटी ६७१
अंबेडा ५५३
अंभ ५५२
अंशूदक संज्ञक जल ७५५
अइस १२७
अकरकंटा ३६५
अकरुन ४३
अकुरुन् ४३
अक्कम ९
अक्कमक्क ३५२
अक्रोटु ५९२
अक्रोड ५९२
अक्लिल्-उल्-मलिका ३९
अक्षीर ३३२
अक्षोट ५९२
अक्षोलमु ५९२
अखनी ७३४, ७३५
अखरीज ११२
अखरोट ५९१, ५९२
अखरोट-कागजी ५९२
अखरोट-जंगली ५९२
अखरोट-प्रकार ५९२
अखरोड ५९२
अखिलमनैपण्डु ३६७
अगचे ५०८
अगति ५०८
अगथिया ५०८
अगथियो ५०८
अगबिथ २८२
अगमघास ३८३
अगर १९४
अगर-अगर ८०९
अगर का इत्र १९६
„ काष्ठ १९४
अगरितुर्की ४३
अगरुचन्दन १९४
अगरुगिड ५२२
अगसि ६५३
अगस्त ४९४, ५०८
„ का पुष्प ६७८
अगस्ता ५०८
अगस्तिया ५०८
अगस्त्योदय के पश्चात्
जल ७४८
अगियाखर ३८४
अगेधु २८२
„ २८१
अग्नि ७९९
अग्निजार ८०९
अग्निनक्र] ८०९
अग्निबाण १६७
अग्निमत २२
अग्निमंथ-लघु, बृहत् २८१
अग्निमुखी ७९८
अग्निशिखा ११२, ३१३, ७९८
अघाडा ४१४
अघेडो ४१४
अच ४०२
अचोकम् ५००
अजकर्ण ५२०
अजगन्धा ४६४
अजगुर ५१२
अजफारुतिब २३७
अजमा २५
अजमायन २५
अजमूद २७
अंजमूदा २७
अजमो २५
अजमोत २७

अजमोद २७
अजमोदा २७, ७९८
,, वोमा २७
अजराकि ५६८
अजवां २५
अजवाइन २५, ७९८-९९
,, का शाक ६७५
,, बड़ी २६
अजवाण २५
अजवायन २५
,, का सत २६
,, खुरासानी २९
,, जंगली २७-२८
,, बन २८
अजवायनी खुरसानी २९
अजशृंगी ४४३, ७९८
अजूरी १००
अजोदावोमरु २७
अजोवां २५
अञ्जीबीलेतर १४
अटतौदै ३२१
अटात मामिडि ४२३
अट्टकामक्की ४१३
अडकई ८२
अडद ६४४
अडर ६४८
अडविआमुदमु ३०२
अडवितेलुगड्डु १३६
अडविनाभी ३१३
अडवि पसुपु ११७
अडवियोगाकु ३७८
अड्हर ६४८
अडिके ५६२
अडिगम ४९७
अडुकुमल्लि ४९०
अडुंबु ४१०
अडुलसा ३२१
अडुसरमु ३२१
अडुसो ३२१
अडूसा ३२०-२१, ८०१
,, काला, ३२०, ३२३
,, केरलीय ३२०
,, भेद, छोटा ३२०
,, रक्तपुष्प, ३२०, ३२२
,, श्वेत ३२०
अड्केबीलुबल्लि २१
अड्डा ४३६
अढौल ५०६
अणिले ७
अणिलेप ७
अण्डज ७१०
अण्डा ११
अतिअ १०५
अतिखिरते ३७०
अतिगल ५०२
अतिचेट्टु ५१६
अतितिप्पली २१
अतिनेरचि २९३
अतिबला ३६७, ३७०
अतिमधुरं ६५
अतिमर ५१६
अतिमुक्ता ४९१
अतियव ६४०
अतिरसा ४३४
अतिवखनी कली १२७
अतिवदयम १२७
अतिवस १२७
अतिविष १२७
अतिविषा १२७, ६३०, ७९९
अतीस १२७, ७९९, ८०१
,, भेद १२७
अत्कुमह ४१४
अत्तिमरम् ५१६
अत्रुपलै ३६२
अत्यन्त छोटी मछली ७२२
अथलक २५२
अद १४
अदरक १४, ७९६
अदरक बड़ा ७३३
अदरख १४
अदस् ६४७
अदित यलु ३९
अदुंकु ५२१
अद्रक १४
अधःपुष्पी ८१०
अधोगुडा ३०७
अनन्तमूल ४२६-२७, ७९९-८००
अनन्ता ४१२
अनसफल ८३२
अनानास ८१०
अनार ५२८, ५८२
अनारदाना ५८३
अनार्तव संज्ञक धारा जल ७४९
अनिलैकाय ७
अनीसून ८३१
अनुमुल ६४६
अनेकार्थनामवर्ग ७९८
अनैतिप्पली २१
अन्तमूल ८१
अन्तोमूल ८१
अन्त्रमूल ८१२
अन्त्रवल्लिका ४४७
अन्धाहुली ८१०
अपत्रवल्लिका ४४७
अपराजिता ३४२, ४५४, ७९९
,, नील पुष्पा ३४२
,, श्वेत पुष्पा ३४२
अपामार्ग चावल ४१५
,, फल ४१६
,, भेद रक्त ४१६
अपामार्गमु ४१४
अप्पाट्टा ३९५
अप्पेल २८२
अफयून १४७
अफसंतीन ५११, ८१०

अफसंतीन भारतीय ८११
,, विलायती ८११
अफीण १४७
अफीणना डोडा १४५
अफीम १४५-४७, ६३४
,, तुर्की, पर्शियन, यूरोपीय १४९
,, पटना या बंगाली १४६, १४८
,, बनारसी १४६, १४८
,, भारतीय १४८
,, मालवा १४६, १४८
अफू १४७
अफूचे बोंड १४५
अफ्तीमून ४४७
अफ्यून १४७
अफ्लात(तू)न २०५
अबहाल ५०
अबहुल ५०
अबिनी १४७
अबीर २४७
अब्कर १६७
अभिनि १४७
अभ्रक ६१६
अभ्रकभेद ६१७
अमचुर ५५०
अमडा ५५३
अमन २५
अमरदवल्ली २६९
अमरबेल ४४७-४८
अमरबेल (१) ४४७
,, (२) ४४८
अमरा ५५३
अमरूल ६७१
अमल १४७
अमलतास ६८
अमलवेंत ५८९, ५९९
अमला १०-११
अमसानिया ४४५
अमसूल ६००
अमावट ५५१
अमिया ५५०
,, हलदी ११६
अमुइकुरु १४
अमुगिलां ५२९
अमूपच्छै अरिसि ४५८
अमूसा २५
अमृडवल्ली २६९
अमृणाल ८००
अमृतवल्ली २६९, ४४७
अमृतवेल २६९
अमेलपोदी ८२
अमोघा ७९९
अम्बरी ११
अम्बल ४८०
अम्बली १०
अम्बाडी ८८
अम्बारी ८८
अम्बाहलद ११६
अम्बुल १०
अम्बेलिया ५२
अम्बेहलद ११७
अम्बोई ८८
अम्रितु २६९
अम्लकुची १०७
अम्लपर्णी ६२४
अम्लवेतस् ५९९
अयम् ३५३
अयापान ८११
अरंड २९९
अरअर ५०
अरई ६९६
अरकु ११३
अरगु ११३
अरजुन ६५६
अरटि ५५७
अरडुसो(सी) ३२१
अरण्यकार्पासी ३७५
अरण्यकुलत्थिका २६७
अरण्यजीरक १२४, ८११
अरनि १०४
अरनी २८१
,, (णी) २८१-८२
अरलवो ३३३
अरलु २८४
अरलु २८३-८४, ३३२
अरलो ५१४
अरशमरम् ५१४
अरशी ६३९
अरसिन ११४
,, उन्मत्त ९६
अरहड ६४८
अरहर ६४७
,, -दो प्रकार ६४८
अरहिरे तुप्पिरी ६८४
अराक ५९१
अरारी ३५३
अरिकेलु ६५८
अरिनेल्लि ५७४
अरिया कासमर, २७८
अरिष्ट ७८५
अरिसिन ११४
अरिहन ७३२
अरीठा ५२९
अरुअ ३३२-३३
अरुई-प्रकार ६९६
,, वन्य ६९६
,, वर्ग ६९६
अरुणं ७९९
अरुणा ७९९
अरुवमपिल्लु ३८५
अरुशा ३२१
अरूस ३२१
अरूई ६९६
अरेंगेवर्नु २८४
अर्क ३०३-४
,, निर्यास ३०५

अर्कपुष्पी २९५, ४५५–५६
अर्क भेद ३०३
अर्क मूल ८५
अर्क वेदमुश्क ३६२
अर्गट ८१०
अर्चु ६२४
अर्जक ५११–१२
अर्जुन ५२३–२४, ५४७–४८
,, गाछ ५२३
,, सादड़ा ५२३
अर्नबुलमा ४८४
अलंगी ३६५
अलर्क ४०३
अलगुल ४११
अलबुबु ६८१
अलम्बुषा ४५६–४५७
अलम्बे ७०३
अलरी ३१५
अलर्क ३०३–४
अलले ७
अलवाचा कान्दा ६९६
अलवी ६९६
अलशी ६५३
अलसन्दलु ६४५
अलसन्दे ६४५
अलसी ६५३
अलसी तेल ७८१
अलाबू ६८१
अलाबू दीर्घ ६८१
अलाबू वर्तुल ६८१
अलिविरइ ३९
अलिविराई ६५२
अलीक मत्स्य ७३२
अलीक मत्स्य
-कढ़ी में भिगोये ७३३
अलीक मत्स्य शुष्क ७३२
अलेवेरी ३९
अल्प जलपान के
योग्य रोगी ७५६
अल्ल १४
अल्लमू १४
अल्लिबीज ३९
अवरि ४०६
अवरे ६४६
अविद्धकर्णी ३९५
अविरि ४०६
अविसि ६५२
अविसी ५०८
अवीद शिकरान २९
अव्वर गूद ४०५
अशखार १६५
अशम २७
अशमता ओमान् २७
अशमदागां २७
अशेरिया ३९
अशेलीओ ३९
अशोक (१) ५००
अशोक (२) ५०१
अशोक ५००-१, ५२०
अश्मन्तक २३७,४३६,७९८
अश्वकर्ण ८२१
अश्वखुर ३४२
अश्वगन्धा ३९३
अश्वगन्धी ३९३
अश्वत्थ ५१४
अष्टवर्ग ६१–६४
अष्टवर्गप्रतिनिधि ६३–६४
असगन्ध ३९३
असगंध-जंगली ३९४
असगंध-नागौरी ३९४
असगंध-प्रकार ३९४
असन ५२०, ५२४
असवरग २६४
असरून २००
असरेले ८६
असलक ३४४
असली अशोक ५००
असलुल एजियानज् ३६
असलुसूस ६५
असवर् ४३२
असवर्ग ४३२
असाना ५२४
असारून १९९–२००
असित कुटज ३४९
असिशोंठि १४
असू ६५४
अस्रोक ५००-१
असोकमु ५०१
अस्परग ४३१
अस्ले लवनी २१५
अस्वद ७
अहलीलज़ ७
अहलीलज़ अस्फर ७
अहालीव ३९
अहिरावण १०७
अहेरो ३९

आ

आंकड़ा ३६५
आंकोड ३६५
आंकोल ३६५
आंघी झाडो ४१४
आंची ३७८
आंवट, चुका ६७२
आंबटी ६७१
आंबा ५५२
आंबा हलदी ११७
आंबोली ६७१
आंवडा १०
आंवरा १०
आँवला १०
आंवली ५९८
आइरी ६४८
आकंद ३०४
आक ३०४
आकडो ३०४
आकनादि ३९५–९६
आकाश-जल ७५५
आकाश तामरै ४८६
आकाश थामरै ४८६
आकाशनीम ३३२
आकाशमांसी २४०
आकाशवल्ली ३७४
आकाशवेल ४४७
आकुजे ३०८
आकुपत्री २२८
आखोट ५९२
आखोड ५४२
आगाकर ४६६, ६९१
आजाद दरख्तुल हिंद ३२९
आजाद दरख्त ३३२
आजामोदा २७
आडर ६८६
आडामति ४३७
आडासारं ३२१
आडुसोगे ३२१
आडू ८११–८१२
आतहृच १२७
आत्मगुप्ता ३५७
आदा १४
आदानपाकी १०६
आदी १४
आदु १४
आदो १४
आनपकाया ६८१
आनूप (भूमि) जल ७५१
आनूपमांस ७०६
आने नेग्गिलु २९३
आपांग ४१४
आफिम १४७
आब्रेगिड २९७
आब्रेशम ८१९
आबालु ६५४–५५
आम ५५०, ५५२
,, आदा ११६
,, कलमी ५५३, ५५४
,, चूसकर खाना ५५०
आम टुकड़े ५५१
,, दूध के साथ ५५१
,, नवीन पत्ते ५५
,, पका ५५०
,, पना ७५२
,, पाल में पकाया ५५०
,, बौर ५५०
,, भेद ५५४
,, रस ५५१
,, वृक्ष में पका ५५०
आमटी ५४
आमड़ा ५५३
आमड़ा-देशी,
विलायती ५५३
आमणक्कम् २९९
आमरो १०
आमलकी १०–११
आमलज ११
आमलज आमलय ११
आमलज्ज ११
आमलह ११
आमलां ११
आमला १०
आमलाह ११
आमली ११
आमाभाजी ८३५
आमाहल (र) द ११६
आमाहलदी ११६
आमुडामु २९९
आम्बा हलदर ११६
आम्बो ५५२
आम्रादि फलवर्ग ५५०
आम्लज्ञ ११
आरग्वध ६८, ५००, ५०४
आरग्वध भेद ५००
आरनाल ७८४
आरमोरा ४३७
आरार ५०
आरुक ८११
आरुक जातियां ८१२
आर्तगल ८११
आर्थ वेप्पू ३२९
आल १९३, ५१३
आलकुशी ३५७
आलदमारा ५१३
आलन १४७
आलीव ३९
आलु ६९६
आलुक ६९४
आलुक-दक्षिणावर्त ६९५
आलुक भेद ६९५
आलुक-वामावर्त्त ६९५
आलुबालु २६३
आलू ६९५
आलूचा ८१२
आलूबोखारा ८११
आलूबालू २६३, ८११
आले १४
आलोक लता ४४७
आवणक्का २९९
आवर्तनी ४३५, ३७
आवर्तमाला ४३७
आवलकाठी १०
आवली १०
आवले १०
आशाल बीज ३९
आश्विन का जल ७४९
आसंध ३९३
आसकन्द ३९३
आसरेहमहक ६५
आसव ७८६
आसा ७३५
आसुत ७८५
आस्फोता, ३४२, ७९९

इ

इंगलगिद ५२१
इंगुर ४१
इंगुरा ४१

इंगुरु १३
इंगुव ४१
इंगोरीओ ५३१
इंजर ३६३
इंजल ४०३
इंडियन बेलाडोना ८४०
इंदै ३१३
इकलिलुलमुलुक २३७
इकली लुल जबल ८३७
इक्षु वर्ग ७९२
इक्षुविदारी ३८८
इचचुरामूली ८५
इचुली ५८७
इचुलु ५८७
इजखिर २६१–६२
इजल ३६३
इञ्ची १४
इञ्जी १४
इडलिंबु ५९४
इण्टाचेट्टु ५८७
इनबुस्सालब ३३८
इनारुन ४०३
इन्दरजव ७६
इन्द्रायन ४०३
इन्दीवर ४७९
इन्दीवरी ८१३
इन्दुउप्पु १५४
इन्दुरकाणीपाना ४७७
इन्द्रजव ७६, ३४७
„ कडवा ७६
„ मीठा ७६, ३४७
इन्द्रवगाई २६१
इन्द्रयव ७६
„ मीठा ३४९
इन्द्ररवरणा ४०३
इन्द्रवारुणी ४०३
इन्द्रवारुणीभेद ४०३
इन्द्राणी ८००
इन्द्रायण ४०३
इन्द्रायण भेद ४०५
„ लाल ४०५
इन्द्रायन ८००
इन्द्रारुन ४०३
इन्द्रावण ४०३
इन्द्रावणा ४०३
इपा ५७९
इपीकाक ८१२
इप्प ५७९
इप्पली ६५
इप्पेमरा ५७९
इभरंकुश २६१
इमली ५९७–९९
„ का पना ७४२
इम्बे ५९६
इरतचै ५७
इरसा ९५
इरिमेद ५२७
इरुमैमुस्ले ३८२
इर्कसोलिंजान ४५
इलंदै ५७२
इलगुसम् ५५६
इलायची ७८७
„ अलेप्पी २२३
„ खुर्द २२३
„ गुजराती २२२
„ छोटी २२२
„ छोटी जंगली २२४
„ छोटी भेद २२३
„ „ श्यामिश्रण २२४
„ पूर्वी २२१
„ बड़ी २२१
„ मंगलोरी २२३
„ मलबारी २२३
„ मैसूरी २२३
इल्लपि ५८०
इल्लेकल्लि ३०८
इ(वि) सेस २१३
इषद्गोल ८१२
इसबगोल ८१२
इस्पंद ८४२

ई

ई १०३
ईख ७९२
„ -अग्रभाग ७९४
„ -अधपकी ७९४
„ -कच्ची ७९४
„ -काण्डेक्षु ७९३
„ -कान्तार ७९३
„ -कोशकार ७९२
„ -गांठ का भाग ७९४
„ -तापसेक्षु ७९३
„ -दीर्घपत्रक ७९३
„ -नीलपोर ७९३
„ -नैपाल ७९३
„ -पकी ७९४
„ -पौण्ड्रक ७९२
„ -भीरुक ७९२
„ -मध्यभाग ७९४
„ -मनोगुप्ता ७९३
„ -मूल भाग ७९४
„ -वंशक ७९३
„ -शतपोरक ७९३
„ -सूचीपत्र ७९३
ईख का रस-कोल्हूका ७९४
„ -दांतो से चूसा ७९४
„ -पकाया हुआ ७९४
„ -बासी ७९४
ईख के रस से बने पदार्थ ७९४
ईशरमूल ८३, ८५
ईश्वरमूल ८५
ईश्वरवेरु ८५

उ

उंडल २३२
उंडी २३२
उंबा २५
उग्रगंधा ४६४, ७७९

उच्चटा ३५५
उच्छे ६८३
उजर कांटा ९६
उटंगण बीज ६४
उटंगन ८१३
उट्टुलु ६४४
उड़द ६४४
„ -कृष्णायवा ६४४
„ -छोटा, बड़ा ६४४
„ -भेद ६४४
उडिद् ६४४
उडिधान्य ६६०
उडीद् ६४४
उडीमरम ५३२
उद्दु ६४४
उतरज ५९३
उतरन ८१३
उत्कण्टक ८१४
उत्तमा ८००
उत्तमारणी ८१३
उत्तरणी ४१४
उदकीर्य ३५०, ३५३
उदबिलाव जाति १८६
उदल बुज ४३
उदश्वित् ७७१–७२
उदुम्बर ८००
„ फल ५१७
उदुलबर्क १००
उद्भिद् लवण ७९८
उद्यानकार्पास ३७५
उन्तकार २७९
उन्दरकानी ४७७
उन्दिरकानी ४७७
उन्नाव ५७२
उन्नेमरं ३५०
उन्मं ३१७
उन्मत्तं ३१७
उन्मेत्त ३१७
उन्सुले हिन्दी १३६
उन्हाली ४०८
उपधातु ६०९
उपरत्न ६२८
उपरस ६१४
उपलसर ४२७
उपलसरी ४२७
उपलेट ९१
उप्पस् ५९२
उप्पु १५८
उभीकटाली २८८
उभीबहुफली ६७२
उभीरिंगणी २८८
उमिया ७४५
उम्बर ५१६
उम्बराचेझाड ५१६
उम्बरो ५१६
उम्बी ७४५, ७४६
उम्बेलिया ५२
उम्मत्तई ३१७
उरद ६४४
उरद (छिलकेदार) की रोटी ७२८
उरद (भिगोकर छिलका निकाले) की रोटी ७२८
उरिद् ६४४
उरिन २८१
उरुकुस्सफ ११४
उरुमाण ८१३
उर्दी ६४४
उर्फ़ अबीयद ६५४
उलट कंबल ५००, ८१३
उलट चण्डाल ३१३
उलवलु ६५१
उलुंडु ६४४
उल्लव ३७
उल्लू ७०८
उश (ष) क ८१४
उशनह २४२
उशबा ४९
उशबामग्रबी ४९
उशिदगरै १२५
उशनः २४२
उश्न ३८५
उषर ३०४
उषार ३०४
उसरिक ११
उसरिकाय ११
उसारे रेवन्द ५३३, ६२४
उसिमल्लिगै ४९२
उस्त (स्तु) खुदूस ८१४
उस्तुरक २१५

ऊ

ऊख के भेद ७९२
ऊंटकटेरा ८१४
ऊत्तरंज ५९३
ऊद १९४, २१४
ऊदकिराईत ७५
ऊदखाम १९४
ऊदफारसी १९४
ऊदसलीब ८१५
ऊधाबिर्नि ४६१
ऊभागोखरू २९३
ऊमरडो ५१६
ऊषक ८१४

ऋ

ऋद्धि ६३, ६४
ऋषभक ६१, ६४
ऋषभी ३५७
ऋष्य ७०६
ऋष्यप्रोक्ता ३५७

ए

एंद्राणी २५३
एककली लहसुन १३४
एककांदा लहसुन १३४
एकपुतिया लहसुन १३४
एकपुती लहसुन १३४

एकलेजा ३९५
एकसिरा ५४४
एकाङ्गी २४५, २४६, ७९९
एकाष्ठील ४९४
एकोनाइट ६२९, ६३०
एक्क ३०४
एजियानज ३६
एटके ३०८
एटि पुच्चकायि ४०३
,, पुच्चा ४०३
एट्टेमारं ५६८
एडक (मेढा) ७१६
एंडाकुलरि ५४६
एण ७०६
एतिपाल ३६३
एतिपुच्छा ४०३
एनुगा पिप्पल २१
एफिस ९९
एमेटीन ८१२
एरका ३८१
एरकुल् काफुर २४५
एरङ्ग मछली ७२१
एरण्ड २९९
,, एक वर्षायु २९९
,, बहुवर्षायु २९९
,, तैल ३००
,, भेद २९९
,, रक्त, श्वेत २९९
एरण्डकर्कटी ८२९
एरण्डमु २९९
एरण्डियो २९९
एरण्डी २९९
एरण्डो २९९
एरिक्का ३०४
एरुक्कु ३०४
एरूसारू ८७
एरेड तुलसी ५०९
एर्राकुटी २३७
एर्रापुर्वु १०९
एलचा २२१
एलची २२२
,, कागदी २२२
एलवालु ७८७
एलवालुक २६२–६३
,, (१) २६३
,, (२) २६३
,, -प्रकार २६३
एला २२२
एलाक्कि २२३
एलाक्के २२३
एलिगारं १६९
एलिया ४१९
एलियो ४१९
एलिलैप्पालै ५४६
एलुआ ४१९
,, भेद ४२०
एलुभिचै ५९५
एलुवा ४१९
एलेक्ट्रा पैराझिटिका ३४५
एलो केप ४२०
एलो कोका अरबी ४२०
एलो जाफरबादी ४२०
एलो नेटाल ४२०
एलो यकृताभ ४२०
एलो विट्रिअस ४२०
एल्लु ६५२
एसकदन्तिकुर २६३
एहलीलज-कावली ७

ऐ

ऐंठनी ४३७
ऐन्द्री ८००
ऐरण २८१

ओ

ओंगा ४१४
ओंवा २५
ओट-भारतीय ६४१
ओ (अ) ड्हुल ५०६
ओड्डुलु ६५८
ओड्हुल ५०६
ओणसुठि १३
ओदलु ६३९
ओबकोतल ५९४
ओमन २५
ओमम् २५
ओममी २५
ओमसु २५
ओमा २५
ओमु २५
ओरस ५०
ओरिस्रूट ९२, ९५
ओल ६९३
ओला ६९३
ओलाचहा ३८४
ओलियवाल ६४६
ओलिया ६४६
ओल्लेमेणसु १७
ओवली ४९४
ओवापान १०७
ओसाई ४४२

औ

औडा १०
औद्भिद जल ७५२, ७५५
औरा १०

क

कंकल २०
कंकुष्ठ ६२३, ६२४
कंकुष्ठ-नलिकाख्य ६२४
कंकुष्ठ, भेद ६२४
कंकुष्ठ-रेणुक ६२४
कंकोड़ी ४६६
कंकोल २५९, २६२
कंगही ३१०
कंगी ३१२
कंगु २४८–४९
कंगुनी ६५६–५७, ७९९
कंगुनीधान्य २४८
कंघी ३६७, ३७०

कंचट ६६७
कंचनार ३३७
कंजर ४५
कंजा ३५२
कंजि ५६८
कंजू ५७७
कंटकरंज ३५०, ३५२
कंट करंजा ३५२
कंटकारी २८९–९०
कंटकारी फल ६९२
कंटकारी श्वेत २९०, २९१, २९२
कंटकि करंज ३५२
कंटकिनीबला ३७१
कंटाई ५७७, ७९८
कंटालो ३०८
कंटोला ६९१
कंडन कत्तरि २९०
कंडयारी २८८
कंडा ३८०
कंडार ३६५
कंडियोर २७९–८०
कंड्रा-मिया २८२
कंदुलु ६४८
कंवठ ५६६
कंशद् ५६२
कइंत ५६६
ककड़ाव ९८
ककड़ासिंगी ९८
ककड़ी ६८२
ककर ९८
ककरी ६८२
ककहिया ३६६, ३७०
ककही ३७०
ककोडा ६९१
ककोरा ६९१
कक्कर ९८
कक्केमर ६८
कक्कोल १८४
कखुम ८३३
कगनी ६५६
कचनार ३३७, ७९८, ८००
कचनाल ३३७
कचरा ७०१
कचरिया ५५८
कचरी ४०५
कचवस्सल १३६
कचूर ४७,२४५,७९९,८०१
कचूर कचु २४७
कचूरा २४५
कचूरीपान ४८६
कचूरो २४५
कचोरसु २४५
कचोरा २४५
कचौरी-घी की ७३०
,, -तेल की ७३०
कच्चापीतल ६११
कच्छी ६४३
कच्छुरा ३५७
कछुआ ७१०, ७१७–१८
कजबुरह ३४
कज़बुरा ३४
कजूर २४५
कझशिके ३५२
कझुरी ३२५
कञ्जा १४२
कटंगा ३७६
कटंभरा ८००
कटह्ल्लुपि ५७९
कटकी ७०
कट (ठ) गुलरिया ५१७
कटन ५३९
कटभी ५१९, ५४३
कटयाली २९०
कटसरैया ५०२–३
कटसरैया-पीत ४९९, ५०२
कटहर ५५५
कटहर बीज ५५५
कटहर मज्जा ५५५
कटहल ५५५
कटाई कलाँ २८८
कटाई खुर्द २९०
कटाली २९०
कटीला नमक १६०
कटुक १८४
,, रोहणी ७०
,, रोहिनी ७०
कटुका ७०
कटुकी ७०
कटुकु रोगणी ७०
कटुकुरोणी ७०
कटुतुम्बी ६८२
कटुपर्णी ९६
कटुलौकी ६८२
कटुवीरा ८३४
कटेरी २८९–९०
कटेरी का फल ६९२
कटेरी बड़ी २८८
कटेरी बड़ी भेद २८८–८९
कटैली चवलाई ६६६
कटोरी २७४
कट्कलेजा ३५२
कट्टमनक्कु ३०२
कट्टु अलदूं २९७
कट्टुएलुपय ९
कट्टुक कस्तूरी १८३
कट्टु-करुवपत्तै २२८
,, नेरिंजल २९३
कट्टुमञ्जल ११७
कट्फल १००
कठ ९१
कठगूलर ५१७
कठजामुन ५७१
कठपाडर २८०
कठफोरा ७०८
कठविष ६२९
कठाल ६९४

कठिल्लक ५११, ७९८
कठुइंशीकुआ ४७
कठूमर ५१७
कठेल ५५५
कड़ल नीरे ६०
कडले ६४९
कडव ४९६
कडवह कण्टेला ९६
कडवा इन्द्रजव ७६
कड़वा कूठ ९२
कड़वा गोखरु २९३
कड़वी ७४
कडवी तरोई ६८५
,, तुम्बरी ६८२
,, तोंबी ६८२
,, लौकी ६८२
कडहरलु ३०२
कडि ५६२
कडु ७४
,, इन्द्रायण ४०३
कडुकेमरम ७
कडुकाय ७
कडुगु ६५४–५५
कडुभोपला ६८२
कडुवी तुंबी ३५९
कडु वृंदावन ४०३
कडू ७०, ७२
कडूकरांदा ३८६
कडूनिंब् ३२९
कडो ३४७
कढी ७३२
कणगिलु ३१५
कणगूगल २०६, २१२
कणझी ३५०
कणझो ३५३
कणपु ३६४
कणा ७९९
कणावीरम् ३१५
कणिगि ३६४
कणेर ३१५
कण्डियारी ९६
कण्हेर ३१५
कतकडो ५८४
कतकमु ५८४
कतफ ६६४
कताद ८१५
कतीरा ८१५, ८१६
,, -फारसी ८१५
,, -भारतीय ८१५
,, -हिन्दी ८१६
कत्तरिक्काइ ६९०
कत्तालै ४१९
कत्था ५२५–२६
,, -प्रकार ५२६
,, -विदेशी ५२६
कदंब ४९६
,, -भेद ४९५
कदंबमु ४९६
कदम्ब ७२४
कदम ४९६
कदम्बक ४८२
कदरमल्लिगे ४९२
कदली ५५७
कदलीकन्द ६९९
कदुआ ६८१
कदुशीरिन् ६८१
कदूय तलख ६८२
कद्दू १८१, ५२३, ६८१
कनइल ३१५
कनक ३१८
,, चंपा ५००
कनखाम ५५
कनपचेट्टू ८०
क (कि) नब १४२
कनाडा बाल्सम २१२
कनियार ६८
कनिर ३१५
कनुरिया ८८
कनेर ३१५, ६३४
,, -पीत ३१६
,, -रक्त ३१५
,, -श्वेत ३१५
कनैल ३१५
कन्द ६९३
कन्दूरी ६८७, ७९९–८००
कन्नलवंग पत्ते २२६
कपस ३७५
कपास ३७४, ८००
,, जाति ३७५
,, के पत्ते ३७४
,, बीज ३७४
कपासिया ३७४
कपिकच्छू ३५७
कपिला पोडि ६६
,, रंङ्ग ६६
कपीलो ६६
कपुर १७३
कपुरफुटी १०६
कपुरी जड़ी १०६
,, मधुरी १०६, २६५, ४२७
कपूर १७३
,, अपक्व १७३
,, कचरी २४५–४७, ७९९–८००
कपूर कचरी चीनी २४७
,, काचरी २४७
,, काचली ११७
,, कृत्रिम भीमसेनी १७४
,, कृत्रिम (संश्लिष्ट) १७३, १७४
,, चीनिया १७५
,, चीनी १७३, १७४
,, चूर्णकरने की विधि १७८
कपूर जापानी १७३, १७४
,, नागी १७३, १७४, ४७५

कपूर पक्व १७६
,, पत्री १७३, १७४, ४७५
,, बरास १७३
,, भीमसेनी १७३
कपूरी ४२६–२७
कफदरिया ६०
कफोर १३६
कबाब ७३५
,, चिनि २५९
,, चीनी २५९
,, ,, छोटी १८४
,, ,, परीक्षा २६०
,, ,, बड़ी १८४
,, ,, भारतीय २५९
,, ,, भेद २५९
कबाबह २५९
कबाबे सीनी २५९
कबीला ६६, ७९९, ८०१
कबूतर ७०८, ७१५
कमदर्युस् ४१३
कमरख ५९७
कमरी ५५
कमल ६६, ४७९–८०, ४८४
कमलकन्द ४८१–८२, ७०२
कमलकर्णिका ४८१
कमल काकड़ी ४८०, ५७७
,, केशर ४८१–८२
,, गट्टा ४८०, ५७७
,, चन्द्रविकाशी ४७९
,, छत्ता ४८१
,, जड़ ९५
,, नवदल ४८१
,, नवपत्र ४८१
,, नाल ४८१–८२
,, नील ४७९
,, पुष्प ४८१
,, फूल ७१
,, बीज ४८१, ५७७
,, बीजकोश ४८१
कमल भेद ४७९
,, रक्त ४७९
,, श्वेत ४७९
,, सूर्य विकाशी ४७९
कमलाक्ष ५७७
कमलागुरी ६६
कमलाचे बीज ५७७
कमला नेबु ५६६
कमिला ६६
कमीलह ६६
कमीला ६६
कमुगु ५६२
कमून अवियज़ ३१
कमून अस्वद ३२
कमूने किरमानी ३२
कमूमे मुलुकी २५
कमोद ४८४
कमोदनी ४८३–८४
कॅमोमाईल ८३२
कम्बली ५८१
कम्बिलाय ६६
कम्बील ६६
कम्बेला ६६
कम्भार २७७
कम्मरकस ८३८
कम्मरेगु ५५६
कम्रुप ५१५
कयेत् बेल ५६६
कयेत् ५६६
करंगल ६८
करंगालि ५२५
करंज ३५०, ३५२
,, भेद ३५०, ३५३
करंजवा ३५०, ३५२
करंजी ३५०, ३५३
करंजु ३५२
करंजुआ ३५२
करंटा ४२८
करंड ७०९
करंडी ३७०
कर अडल् मुर ६८२
करइला ६८३
करउब मुर ६८२
करकचेट्टु ७
करका जल ७४९
करकाना ३८०
करकाप्प ७
करका भव जल ७४७
करकीमास २३३
करकैया ७
करक्काय ७
करजनी ३५४
करजीरी ८११
करडई ११२
करडकंगोनी ९०
करण्टा ४२६
करनकुश २६१
करनफूल २१९
करनबुल् माय ५७९
करन् फल २१९
करप्स २७
करम् ४९५, ६२२
करमचा ५७५
करमर्दा ५७५
करमी ६६९
करर ११२
करवंद ५७५
करवती ५४२
करवन्दे ५७५
करवप्पु २१९
करवा ७०९
करवी ३१५
करवीर-अन्य निघंटूक्त भेद ३१४
,, -कृष्ण ३१४
,, -पीत ३१४, ३१५
,, -रक्त ३१४
,, -श्वेत ३१४, ३१५

करहाटक ४८१
करावी ३१५
करामणि ६४५
करिआबांसा ४२५
करिङ्चुलि ५८७
करिइंचुलु ५८७
करिगन्ने ९०
करिगा ५५
करिजिगे ५७५
करिजिरिगे ३२
करि जीरके ३२
करितुंबे २६५
करिनेल्लि ५७१
करिनोच्चि ३४४
करियातुं ७३
करियारी ३१३
करिलावचा २६२
करीउंबु ४२७
करीर ५४१
करीरमु ५४१
करील ५४१
करीलैज ३५९
करीशलक्की ४२९
करुकानम् २६७
करुनोचचि ३२३
करू ७१, ७४
करूई-तिथाई १०३
करूवेलमरं ५२९
करेढियुं ३९५
करेण ३१५
करेमु ६६९
करेरूआ ६९२
करेल ५४१
करेला ४६५, ६८३
करेली ६८३
करेलुं ६८३
करेला ६८३, ७९८
करोंदा ५७५
करोनी ८११

करोला ६८३
करौंदा ५७४–५७५
करौंदी ५७४
कर्कटशृंगी ९८
कर्कटिशृङ्गी ९८
कर्कन्धू ५७२–७३
कर्कोटकी ४६६, ६९१
कर्टोली ६९१
कर्णस्फोटा ४६४
कर्णिका ४८०–८१
कर्णिकार ४९९–५००,५०४,
७९९
कर्णैकिलंगु ६९३
कर्तुंम ११२
कर्दा मुलबिंत ४२९
कर्पूर तैल १०३
,, -धन्वन्तरी
निघण्टूक्त भेद १७५
कर्पूर नालिका ७३८
कर्पूरनिया ६२८
कर्पूर पक्व १७४
,, पुष्प ३८४
,, -(प्राचीन
ग्रंथो में) १७५
कर्पूरम् १७३
कर्पूर-राजनिघण्टूक्त
भेद १७४
कर्पूरवल्ली १०७
कर्पूरशिलाजतु १६७
कर्पूरहरिद्रा ११६
कर्पूरा ६२८
कर्पूरादि वर्ग १७३
कर्पूरीवेंड १८३
कर्पोकरशि १२४
कर्मर ५९७
कर्रं ११२, ६५९
कर्रया ७
कर्वि ७४
कलंचिकुरू ३५२

कलंब ४९६
कलंवक १९०
कलंवा १९०–९१
कलंबी ६६९
,, शाक ६६९
कलई पैकिशंगु ३१३
कलकलास ६९६
कलगारी ३१३
कलघण्टिका ४२६
कलपतीहींग ५५
कलपसी २४२
कलबन्द ४१९
कलवन्दचेट्टु २९७
कलमी आम ५५३, ५५४
,, शाक ६६९
,, शोरा १६८
,, साग ६६९
,, सोरा १६७
कलय बोगोटी ५४
कलरा ७
कललावी ३१३
कलवजी ३२
कलवन्दे ५७५
कलहिंस ३१३
कला ५५७
कलारी ३१३
कलावा ४८०
कलिंगड ५६०
कलिकारी ३१३
कलिगोट्टू २८०
कलिमास्कर १६५
कलिवशब्बुल असफर १६५
कलिसम् ५४६
कलिहारी ३१३, ६३४,
७००, ७९८
कलिहारी-भेद ३१३
कलोंजी ३२
कलौंजी ३२
,, जीरुं ३२

कलौंजी जीरें ३२
कल्मी शाक ६६९
कल्मीशोर १६७
कल्याण मुरुक ३३४
कल्लीनून १६७
कल्लि ३११
कल्लुवु २४२
कल्हार ४७९, ८००
कवंडल ४०५
कवच ३५७
कवल ककरी ४८०
कवसिंग ५९२
कवांच ३५७
कविका मछली ७२१
कविरूल अश्जार ५१३
कशकश १५४
कशकशा चेटि १४५
कशवचीनी ४८
कशशिंग १०३
कश्नीज ३४
कसंग ६४९
कसई ३८०, ६६०
कसव ३७६
कसबुल रायरह ७३
कसबुज़रीरा ७३
कसाबुल हिमार ६८४
कसि ६७६
कसीस ६२१
कसुंभ ११२
कसुम्बे ११२
कसुम्बो ११२
कसूर ६५०
कसूस ४४७
कसेरू ७०१
कसेली ५९२
कसोंदी ६७६, ८०१
कसौंदी ६७६
,, शाक ६७६
कॅस्कॅरा ८१६

कस्तुरि पट्टे ३१५
कस्तूरि पसुपु ११७
,, मंजल ११७
कस्तूरी १७८
कस्तूरी-अन्य प्राणियों
एवं वनस्पतियों में १८१
कस्तूरी अमेरिकन १८१
,, असली की
पहचान १८०
कस्तूरी उत्तम १७९
,, कृत्रिम १८०
,, दाना १८३
,, प्रकार १७९
,, भेंडा १८३
,, मृग १७८
,, मोगरा ५०३
कस्तुस्न् शारिरा ७३
कहपेतन ३३८
कहरूबा ८२६
कहिसोरे ६८२
कांक ३५२
कांकड़ा ३७४
कांकड़ी ६८२
कांकराश्रृङ्गी ९८
कांकुर ६८२
कांकोड ५७७
कांग ६५६
कांगुनी ६५६
कौंचका ३५२
कांचड़ा ४७०
कांचन ३३७
कांचनपुष्पी ४५७
कांचनार ३३६–३७
,, -अन्य
निघंटुक्त भेद ३३७
कांचनार जातियां ३३७
,, -रक्त ३३६
कांचीनी ३३८
कांजी ७४२, ७८३

कांजी-उरदी के बड़े
से बनी ७८३
कांजी सेवन के
अयोग्य लोग ७८३
कांटलो ३०८
कांटा करंजा ३५२
कांटाकुशम् ९६
कांटानटे ६६६
कांटाल ५५५
कांटालो डाभो ६६६
कांटालोबल ३७१
कांटे धोत्रा ९६
कांटेमाठ ६६६
कांटे सांवर ५३७
कांटोलें ६९१
कांठी ४५
कांड वेल ४१८
कांदा १३५
कांदो १३५–३६
कांराजाती ५०३
कांसकी ३७०
कांस घास ३८०
कांसडो ३८०
कांसाळू ६९९
कांसा ६११
काककोडिसे ३४७
काक जंघा ३२४, ४३९,
४४१–४४२, ७९९
काकजंघा (२) ४४२
,, (३) ४४२
,, उ० प्र० ४४१
काकजंबू ५७०
काकड़शिंगी ९८
काकड़ाशिंगी ९८
काकड़ासिंगी ९८, ७९८
काकतुण्डी ४४०
काकतोंडि ४०५
काकनज ३६०
काकनासा ४४१

काकनासा (१) ४४०
,, (२) ४४०
,, (३) ४४१
,, -भेद ४३९
काकमाची ८६, ४३८, ४४१
काकर ६८३
काकरसिंगी ९८
काकरासिंगी (थी) ९८
काकाण्डोला ३५७
काकीयो सरस ५१८
काकुलह सिगार २२३
काकुले कुबार २२१
,, जंजी २२१
काकोठीं ५६८
काकोली ६२, ६४
काक्कट शिंगी ९८
काक्कणन कोटी ३४२
कागर्जा नीबु ५९५
कागडाकेरी ५४२
कागडियों कुंडेर ४२७
कागदी लींबु ५९५
,, लेंबु ५९५
काच ६२८
काचू ६९६
काजरा ५६८
काजली ३४२
काजुपुट ८१७
काट कोरि निल ४०८
काट्टु पुगैयिलै ३७८
काटे गोखरू २९२
काठ डुमुर ५१७
,, बेर ५७२
काड एरडि ३०२
,, गांजि २८५
,, डयु २९७
काडरमन ११७
काड लिंबे ५९४
,, होगे सोप्पु ३७८
काडुलंद २९७
काडुसले १०७
काडेचिराईत ७३
काण्डशाखा ४४७
काण्डीर ८२३
कातिलुब्बहल ४८०
कातुक कोदी ४४९
काथो ५२५
कादी ४९८
कानकुटी २६७
कानफूल ८२८
कामभेर ८१
कानवेगु चेट्टु ५७७
कानुगु चेट्टु ३५०
कानोणी ४३८
कान्त लौह ६०८
कापसी ३७४
कापूर १७३
,, चीनी २५९
कापूस ३७४
काफल १००
कॉफी ८१६
काफूर १७३
कामरांगा ५९७
कामरूप ५१५
कामाट्चिपिल्लु २६१
काम्पिल्ल ५२, ६६
काम्बीला ६६
काय ५२५
कायछाल १००
कायपुटी ८१७
कायफर १००
कायफल १००, २२१,२५९
कारम् १६३
कारली ६८३
कारलें ६८३
कारांकुस २६१
कारिवणा ४६२
कारी २५४
कारुपुसुपु ११६
कारुपेसारा २९७
कारुमिनुरु २९७
कारेला ६८३
कारेलाह ६८३
कॉर्टिजोन ६९५
कार्पास ३७४
कार्पासमु ३७४
काल ९०
,, कण्ठक ७०८
,, का सुन्दा ६७६
कालकूट ६३२
कालजाम ५७०
कालजीरें ३२
कालमेघ ७५
काल लवण १६१
कालशाक ६६८
काला अगर १९४
,, अडूलसा ३२३
,, अडूसा ३२३
,, चित्रक २४
कालाजाजी ३२
कालाजिउजा १२४
काला जीरा ३२
कालादाना ८१८
काला धतूरा ३१९
कालानमक १६०–६१
काला नागकेशर २२९–३०
कालाबोल ४१९
कालामरी १७
कालामूका ५४५
कालामोखा ५४५
काला वाला २३७
,, शिरीष ५१९
,, सुरमा ७९९
,, सेमर ५३८
,, हरिण ७११
काली अनन्त मूल ४२५, ४२७
काली कुटकी ७०

काली निशोथ ३९८
,, निसोत ३९८
,, पाट ३९६
,, मरिच १७
,, मिट्टी ६२२
,, मिरीं १७
,, मिर्चं ८२२
,, मूशली ३९०
,, मूसली ६४, ३९०
कालीयक १९१
काली शंबालू ३२३
,, सर ४२७
कालीसाह ४४४
काली हलदी ११८
काले जीरे ३२
,, मंदलि ४०५
कालोतुंबो २६५
कालो वालो २३७
कात्रकी ४४३
काश २८२
काशमल १२०
काश मोई ११९
काष्ठपाटला २७९
कास ३८०
कासमर २७७
कासर्ना ८२८
,, ग्राम्य ८१७
,, वन्य ८१७
कासर ५६८
कासलु ३८०
कास विंदा ६७६
कासीं ३८०
कासौंदरो ६७६
कास्तूरी १७४
काहू ८१७
,, की अफीम ८१८
किकिरात ४९९
किगोरा ११९
किजल्क ४८२
किंजोलो ३६४
किंबू ५८२
किच्छिलिक किझंगु २४५
किट्टी ६०९
किणिही ५१९
किश २०८
किश्व १४२
किन्हह ५१९
किमू ५८२
किम्बील ६६
किरमानी अजवायन ८२३
किरमाल ३५०
किरमिंजी अजवां २८
किरयिकागच्छ ३८०
किरल ५४१
किरांबु २१९
किरात ७३
किरि गुलि २८८
किरिशिवनि १००
किरुनेल्लि ४६०
किरुमंजि ८१
किर्फा २२६
किलमोरा ११९
किलाटक ७६३, ७६४
किल्लत ६५१
किशमिश काबली ४५०
किश्मुल खरखाश बुस्तानी १४५
किसंगी ३६७
किसमिस ५८५–८६
किस्मे अज नारंज ५६६
किसा उत्तिहमार ६८४
किस्सा कद्स ६८२
कीकर ५२९
कीचड़ ६२२
कीटमारी यवानी ८२३
कीरिप्पुन्डु ४५३
कीलमोरा ११९
कुकुद्रु ५२९
कुंकुम २३३
कुंकुमपुव २३३
कुंगकु ८१८
कुंगिलियम् ५२०
कुङ्कुमपु २३३
कुंच ३५४
कुंचिला ५६८
कुंजद ६५२
कुंथमणि ३५४
कुंद ४८९
कुंदमु ५०३
कुंदुरुकम् ५२१
कुंदो २१३
कुंबी ८१६
कुंभिका ४८५–४८७
कुंभी ४८६
कुंरात ४७३
कुंरि ३५४
कुंवाडीयो १२५
कुंवार ४१९
कुंवे ५५
कुई ४८४
कुकडवेल ४६९
कुकनार १४६
कुकरवेल ४६९
कुकरोदा ४७५
कुकरौंधा जाति १७४
कुकुटेकायि ५२९
कुकुरनिर्मुली ४७५
कुकुरबिचा ३७२
कुकुरवंदा ४७५
कुकुरांड ३७२
कुकुसुंगा ४७५
कुचंदन १९२
कुचला ५६८
कुचिला ५६८, ७९८
कुचूला ५६८
कुजई १८१, ४९६
कुअर ४५

कुट ९१
कुटकी ७०, ७१, ३५९, ४३१, ८००, ८३४
कुटकी खुरासानी ७२
कुटज-असित ३४९
,, -कृष्ण ३४७
,, -पुं. ३४७
,, -प्रतिनिधि ३४९
,, -भेद ७६
,, -व्यामिश्रण ३४९
,, -श्वेत ३४७
,, -स्त्री ३४७, ३४९
कुटन्नट ७९९
कुठेरक ५११
कुडा ३४६–४७
कुडिया ३४७
कुडियोट्टि ९६
कुडुगु ३६५, ४६५
कुड्याचे बी ७६
कुड्ड ९१
कुण्डली ८००
कुतुफ ६६४
कुत्ता ४१५
कुदुम ८८
कुद्रैषलि पिस्लु ६५८
कुनटी ७९९
कुनरी ६८७
कुनली ६८७
कुन्द ५०३
कुन्दफूल ५०३
कुन्दरू ६८७
,, -जंगली ६८७
,, -प्रकार ६८७
कुन्दुर २१३
कुन्दुरी ६८७
कुन्दुरु २१२–१३, ५२१–२२ ६८७
कुन्दुरुखशोटी २१२
कुन्दुरुशाक २१२
कुन्दुरे जकर २१३
कुन्देका वृक्ष ५०३
कु(कि)म्रब १४२
कुब्जि ३५४
कुन्द्रो ५२१
कुपंटे ३६०
कुप्पी ८३५
कुबेराक्ष ३५२
कुबो ४६३
कुमडा ४८१, ६७९
कुमारिका ४८–४९
कुमारीसार ४१९
कुमुद ४७९–८०, ४८३–८४
,, -भेद ४८४
,, -के बीज ५७९
कुमुदनी २४९
कुमुदिनी ४८३
कुम्कुम ६६
कुम्भा ५४३
कुम्भी ५४३
कुम्भीर ५४३, ७१०
कुम्भी वृक्ष १००
कुम्भेरन २७७
कुम्रपिंडी १०६
कुम्हडाभेद ६८१
कुम्हड़ी ६८०
कुम्हरा ६८०
कुम्हार २७७
कुयें की मछली ७२३
कुरंग ७०६
कुरंगमृग ७११
कुरंटक ५०२
कुर ९१
कुरकी ४४०
कुरचि ३४७
कुरची वच ४५
कुरट्ट ४०५
कुरथी ६५१
कुरथुवा ८११
कुरवक ५०२
कुरांकुर ७०८
कुरासानी योमाम २९
,, -वाम २९
कुरिबिलण्डि ४९
कुरुक्कुम चेडि ९६
कुरुगु ५१८
कुरुमुलक १७
कुरुमिलगु १७
कुरेद कर खाने वाले पक्षी तथा उनका मांस ७०७
कुर्की ४४०
कुर्त्तुम ११२
कुलंजन ४५, ४७
कुलक ७९८
कुलञ्जनभेद ४७
कुलथी ६५०–६५१
कुलबेर ५७२
कुलिंजन ४५, ८२
,, -जानु ४५
कुलियाखारा ४१७
कुलीथ ६५१
कुलुगोलिके ४१७
कुलुतोआ ४४६
कुलेखाडा ४१७
कुल्फा ६७०–७१
कुल्ख १२५
कुल्लू ८१५, ८१६
कुवलय-पद्मम २७४
कुश ३८२
कुशा ३८२
कुष्ट ९१
कुष्ठ ९१, २६२, ७०१
कुष्ट-इ-शामी ८०
,, -ई-तल्ख ९१
कुष्ठविशेष ९५
कुष्माण्डी ६८०
कुसघास ३८२
कुसर ४८९
कुसुम ११२, ५५४, ७९८
,, का तेल ७८१

कुसुम के बीज ६५९
कुसुम फूल ११२
कुसुम्बा विरत्तुलु ११२
कुसुम्भ ११२
कुस्त-ई-तल्ख ९२
कुस्त-ई-सिरीन् ९२
कुस्तवेहेरी ९१
कुहिली ३५७
कुहुरुजीवि ५३१
कुहेसा का जल ७५०
कूंआ-जल ७५५
कूंच ३५७
कूआं ७५२
कूजा ९६, ८०१
कूट ९१
कूटशाल्मली ५३९
कूट ९१, ९५, ७८७
कूट-कड़वा, मीठा ९२
कूडा ३४७
कूयें का जल ७५३
,, ,, ,, -मीठा ७५३
कूरक ५३४
कूर्रा ३३५
कूलेचर ७०६, ७०९
कूसम ११२
कृतान्न वर्ग ७२४
कृत्रिम लवण १६०
कृमिगृह ८७–८८, ९९
कृमिघ्न ७९९
कृमिजत्तार १६७
कृष्णअगरु १९४
कृष्णे अनंतमूल ४२७
,, कुटज ३४७
,, जीरक ३२
कृष्णजीरा ३२
कृष्ण तुलसी ५०९
कृष्णनैल ९०
कृष्ण पुष्प ५११
,, बीज ८१८, ८३९
कृष्ण बोल ४१९
,, मोत्तक ५४४–५४५
,, राई ६५५
,, शारिवा ४२५
,, सारिवा ४२६–२७
कृष्णा सुगन्धमांसी २४०
कैंपुकणगिन ३६४
कैंयुमन्दार ३३७
कैंवाच ३१३
,, जंगली ३५७
,, बागी ३५७
,, भेद ३५७
केऊ ७०१
केकड़ा ७१०
केतक ४९८
केदगे ४९८
केदारइनावर ४६५
केदारकट्ट ७०
केंदार जल ७५४
केमुआं ७००, ७०१
केमुक ९४, ३१३, ७००–१
केम्पू २३
केया ४९८
केर ५४१
केरडो ५४१
केरा ५५७
केरिंग २८४
केल ५५७
केला ५५४, ७९९
,, -जाति ५५७
,, भेद ५५७
केलि कदंब ४९५
केलु १९६
केले का कन्द ६९९
,, ,, फूल ६७८
केलोन १९६
,, का तेल १९७
केलूंतरो ४७३
केवटीमोथा २४३, ७९९
केवड़ा ४९८
,, -पीला ४९८
केवडो ४९८
केवण ४३७
केवा ७०१
केवांच ३५७
केवाछ ३५७
केवुककन्द ७०१
केशर २२२–२३, ७९९
केशर व्यामिश्रण २३५
केशो ३८०
केसर ११२
केसवे ६९६
केसुरिया ४२९
केसुरी ४२९
केसूर ७०१
केसी २५३
केसु २५३
कैंत ५६६
कैडर्य ३३१, ३३२
कैथ ५६५–६६
,, -भेद ५६६
कैथा ५६६, ७९९–८००
कैदर्यमु १००
कैमा ४९५
कैरविणीफल ५७९
कैल- १९८
कैवर्त मुस्तक २६४, ६७४
कैवर्तमुस्ता २४३
कैसूरी कपूर १७५.
कोंई ४७९
कोंगकी २०२
कोंगा ४३५
कोंदा आमार्द ४००
कोंमाह्नि ५६०
कोह्ना (ला) र ३३८
कोइलार ३३७
कोइलिया (आम का बीज) ५५०

कोई ४८४
कोकनद ४७९
कोकनबेर ५७३
कोकनार १४५, १४७
कोकम ५९९–६००
,, का घी ६००
,, का तेल ६००
कोकेन ८१९
कोगारी पाटुली २८०
कोचिंदा १३६
कोटमल्लि ३४
कोटुवेलि २२
कोट्टक ४१३
,, करण्डुई ४१३
कोट्टन ५८५
कोठ ९१, ५६६
कोठिंबन ४०५
कोडक छाता ७०३
कोडगपल ३४७
कोडवेप ३३२
कोडा ६९१
कोडिमूली २४
कोडेना ८१९
कोतमल्ली ३४
कोत्तिमिरि ३४
कोथमीर ३४
कोथम्बरी ३४
कोथिंबीर ३४
कोथुंबुरी ३४
कोद्रा ६५८
कोदली ५४८
कोद्रव ६५८
कोदिरम ६५८
कोदिवल २२
कोदों ६५८
कोदोआधान ६५८
कोदो धान ६५८
कोद्द ६५८
कोद्दु ६५८
कोन्नरिगड्डे २४४
कोन्नेमर ६८
कोपडली ५४
कोप्पाता १०७
कोयल ३४२, ७०८, ७७९
कोरंजा २७
कोरड किलंगु २४३
कोरकांड ४१९
कोरनारि २४३
कोरफड ४१९
कोरया ३४७
कोरल ३३७
कोरलु ६५६
कोरांटी ५०३
कोरासिमिन ३४७
कोरिल कीरई ६७०
कोरैकाय ६८
कोरैया ३४६–४७
कोल ५७२
कोलकन्द १३६
कोलकांदा १३६
कोल कुपोन्ना २८५
कोलकूपोन्ना २८७
कोललु ६५१
कोलशिम्बी ६८८
कोलसुन्दा ४१७
कोलावञ्चा ४८६
कोलिंजन ४५
कोलुमिचंगै ५९६
कोलोफोनि १९९, २०८
कोविदार, ३३७–३८
कोविदार-पीत ३३८
,, -युग्मपत्रा ४३५-३६
कोविल ५२६
कोवै ६८७
कोश ८१९
कोशम्म ५५४
कोशाम्थ प्राणि तथा उनका मांस ७०६, ७१०
कोशातकी ७९८
कोशाम्र ५५४
कोष्टं ९१
कोष्ट ९१, ६६९
कोष्टकोलञ्जन ४५
कोष्ठ ९१
कोसम ५५४
कोसिब ५५४
कोसुंब ५५४
कोह ५२३
कोहटी नमक १५५
कोहलौरी ७३१
कोहला ६७९–८०
कोहसरु २९७
कोहीभंग २९
कौंच ३५६–५७
कौंछ ३५७
कौंडल ४०५
कौड ४०३
कौड़ी ६२२
कौण्टा ३९२
कौरसन ७९
कौला ६८०
कौवा ७०८
कौवाटोटी ४३९
कौवाठोडी ४३९
कौवाडोडी ४३९
कौवारोटी ४३९
क्योंग-शा २८४
क्रमुक ५८२
क्राइनम ४७६
क्रीड २६७
क्रोष्टविन्ना २८६–८७
क्रौंच ७०९
क्लेसिया १०३
क्वारपाटी ४१९
क्वाशिया १०२–१०३
क्षार ८००

क्षार तीक्ष्ण, मृदु १६४
,, लवण ७९८
क्षारश्रेष्ठ २७९
क्षारोदक १६४
क्षीरकाकोली ६२, ६४, ८००
क्षीरचंपक ४९३
क्षीर विदारी ३८८–८९
क्षीर शाक ७६४
क्षीरा ५६२
क्षीरिवृक्ष-पंचक ५१९
क्षीरीवृक्ष ५१५
क्षुद्र खर्जूरी ५८६
क्षुद्रजंबू ५७०
क्षुद्रदन्ती ४०१
क्षुद्रदन्ती फल ३९९
क्षुद्र धान्य ६५६
क्षुद्र पनस ५५३
क्षुद्रबदर ५७३
क्षुद्रवर्षाभू ४२१
क्षुद्राग्निमंथ २८१–८२
क्षुद्रेगुनी ६७०
क्षेत्र पर्पट ३२५
क्षेत्रवला ३६८

ख

खंदरूस ६६
खगनखार १६५
खजूर ५८७
खजूर पुपण्डु ५८७
खजूर-भेद ५८८
खटकल ६२१
खटिका ६२१
खट्टन ४२३
खट्टाशी १८५
खट्टी बूटी ६७१
खडकी रास्ना ८१
खडधो ३८५
खडसलीयो ३२४
,, -पीतपापड़ो ३२७
खड़िया ६२१
खड़ियाखार १६९
खड़ीकलई ४७३
खडब्राह्मी ४६२
खड्यानाग ३१३
खण्ड ४४५, ७९६
खण्डराब ७९५
खतास १८५
खदिरसार ५२६
खनिज पाषाणभेद १०५
खन्नुतेल १९८
खपरिया ६१०–६११, ६२१
खपाट ३७०
खबालमामून ३८३
खम ४४५
खमडी ५४६
खम्भारि २७७
खयार ५६२
खयेरगाछ ५२५
खरक ३०४
खरकताना ४५०
खरखोडी २९५
खरगोश ७०६, ७१२
खरजहरा ३१५
खरजाल ५९१
खरणेर ४५५, ४५६
खरदल ६५५
खरदारु ४५
खरपत्रा ४७२
खरपुजह ५६१
खरपुजा ५६१
खरपुजाह ५६१
खरबूज ५६१
खरबूजा ५६१
खरमुज ५६१
खरिवेल ४५६
खरूई ४५८
खरेटा ७६३
खरेटी ३६७
खरेंटी ३६७
खरैटी ३६७
खरैहटी ३६७
खर्मी ८१९
खर्जूरी ५८७
खर्दल ६५५
खर्दले अबयज़ ६५४
खर्परी ६२१
खर्पुजह ५६१
खर्बके हिन्दी ७०
खर्बूजा ५६१
खलज ६४९–५०
खलाफ ३६२
खलाल मामून ३८३
खवाल मागून ३८३
खशकदाने ११२
खस २३९, २६१, ८००
,, के कलों २९३
खसखशीचे बोंड १४५
खसखस १५४, २३९
,, -दाने १५४
,, -फल १५४
खस जाति २३८
खस पीतवर्ण २६१
खसबीज १४५
खसिलियर आशासिनी ४८
खस्ता पूरी ७३८
खांड ७९६–९७
खाकरो ५३६
खाकसी ८२०
खाखर बेल ३८८
खाखरो ५३६
खाजकुहिली ३५७
खाटी आंवळ ५७४
खानदोडका ४५३
खानिज लवण १६१
खाने-क-उले-कल्ला ५६८
खानेखसोल ७०
खाये इब्लीस ३५२
खारबाक्षगूनह ४१४

खारसज्जी १६५
खारीक ५८७
खारी जाल ५९१
खारीनोन १६७
खारी भाजी ६७२
खारेक ५८७
खारे खसक २९२
,, खस के कलों २९३
खारेशुतुर ४११
खारे सेहगोशा २९२
खारो १६३
खासुलवर्री ६५२
खिचड़ी ७२५
खिजूर ५८७
खिडरिच ७०८
खिर्नी ५७६
खियार ६८४
खिरणीमारा ५७६
खिरदारु ४५
खिरनी ५७६, ८००
खिरवा २९९
खिरिसा ७६४
खिरेंटी ३६७
खिर्वअ २९९
खिलाफ् ३६३
खिलाफुल वलखी ३६१
खिसारी ६५०
खींप ४२५
खीजडो ५४६
खीर ७२६
,, खेजूर ५७६
,, खोडी २९५
खीरजा ३६२
खीरा ५६१–६२
खील ७४५
खुजनी ३५७
खुबानी ८१३
खुब्बाजी ८२०
खुमी ७०३
खुम्भी ७०३
खुरबुज एतरूव ४०३
खुरमातर ५८७
खुरमानी ८१३
खुरमाय हिन्दी ५८७
खुरसाना २९
खुरासाण ओंवा २९
खुरासाणी अजमो २९
खुरासानी अजवाइन २८
,, अजवाण २९
,, अजवायन २९
,, अजोवान २९
,, ओंवा २९
,, कुटकी ७२
,, वच ४५
,, वचा ४५
,, वोमं २९
खुर्फा ६७१
खुर्मा ५८७
,, खुष्क ५८७
खुलंजान ४५
खुलंजान्-ए-कबीर ४५
खुलखुल ४३०
खुलांजाने कस्वी ४५
खुल्फा ६७१
खुशखुस्सीनी ४८
खुसरवे दारु एकलान् ४५
खूनखरावा ८२०
खूबकलां ८२०
खेकसा ६९१
खेखसा ६९१
खेजूर गाछ ५८७
खेड़ी ४७३
खेतराऊवल ३६८
खेतराउ वलदाणा ३६८
खेन ४७३
खेर ५२५
खेरतिक ७२
खेर धोला सार वालो ५२६
खेरबेकसीआ ७२
खेरसाल ५२६
खेरी ४७३
खेसारी ६५०
खैखरवाल ३३८
खैर ५२५, ८००
,, -दुर्गन्धित ५२७
खैरबबा २२३
खैरुव ३९१
खोलासइस १०८
ख्यार जाव ६८२
,, दराल ६८२
ख्यारशम्बर ६८
ख्यारेचम्बर ६८
ख्यारे शंबर ६८
ख्येन १४
ख्वगवल ३६१
ख्वाजा ३२१

ग

गंगराहत्रि ५१५
गंगा ७५१
गंगावली ४७५
गंगेडा ६९१
गंगरेण ३७१
गंगेरन ३६७, ३७१–७२
गंजा १४२
गजायि १४२
गंटुभारङ्गी १०२
गंडदूर्वा ३८६
गंडिनी ४५२
गंदुम ६४२
गंधकोकिला २६०
गंधनाकुली ४५३
गंधपलाशी २४७
गंधपु चेका १८७
गंध पुष्प ३६१
गंधपूरा का तेल ८३३
गंधप्रियंगु २४८–४९

गंधविरोज्ञ २१२
गंधमालती ४९२
गंधशटी २४७
गंधुन १३४
गंवार २७७
गगार २५८
गगेर चेट्टु ५०९
गच्छकाय ३५२
गजदण्ड सहोरा ५१४,-१५
गजदण्ड सिहारे ५१५
गजनिम्मा ५९६
गजपिपसो २१
गजपिप्पली ५६४
गजपीपर २१
गजपीपल २१
गजरवोटा ३५२
गजवाजिप्रिया ३८९
गजशुण्डी ५१५
गजिकैकायि ३५२
गज्ञा ३५२
गज्ञंजबीन ८८
गज्ञनाज्ञ ८७
गठिवन २५२
गठीला दूब ३८६
गठंगनी २८९
गडगड ६६०
गणियारी २८१–८२
गण्डगात्र ८३९
गण्ड दूर्वा ३८६
गण्डा १३५
गण्डानी ८००
गण्डारी शाक ८००
गण्डीर ८००
गदनीचा कांदा ४७६
गदपिडार ६९१
गदहपुर्ना ४२३
गदाभीकंद ४७६
गनियार २८२
गनियारी २८२
गनिर २८२
गन्ध ओतु १८५
गन्धक ६१५
गन्धतृण ३८४
गन्धपलाशी २४७, ७९९–८००
गन्धप्रसारणी ४२४–२५
गन्धप्रियंगु २५०
गन्धफली ८००
गन्धबबूल ५२७
गन्धबेना ३८४
गन्धभादुलिया ४२५
गन्धमांसी २४०
गन्धमार्जार १८५
गन्धमालती २६०–६१
गन्धमेणसु २५९
गन्धरास्ना ८२
गन्धशठी २४७
गन्धाविरोजा १९८–९९, २०८, ८०१
गन्धाविरोजा का डामर १९९
गन्धारिका ८००
गन्धाली ४२५
गन्धिलोखर ५२७
गन्धौना २८२
गन्ना ७९२
गन्नियारी २८२
गन्नेस ३१५
गम ६४२
गमपेना ५३२
गम्बोज ५३३, ६२४
गम्भार २७७
गम्भारी २७७, ६९१, ८००
गम्भारी भेद २७७
गम्हार २७७–७८
गरग्नी मछली ७२१
गरणी ३४२
गरनिम ३३२
गरमालो ६८
गरहेडुआ ६६०
गरहेडु(डु)वा ६६०
गरा ५३१
गरिके ३८५
गरिकेग ३८५
गरी ५५९
गरुड़वेल २६९
गर्ग ४२९
गर्गरा मछली ७२०
गर्जन ५२०, ८२१
गर्जरि ६९८
गर्डपातालि ४५३
गल ६५६
गलगल ५९५, ८१६
गलजीभी ४७१
गलमर्क ३०२
गलिजेरू ४२२
गली ४०६
गलो २६९
गशगशावेडि १४५
गसुगसालु १४५
गहुला २५०
गहूँ ६४२
गांगजल ७४८
गांगेरुक फल ३७२
गांगेरुकी ३६७, ३७२
गांगेरुक ६९१
गांजा १४२–४३
गांजो १४२
गांझा १४२
गांडर २३९
,, दूब ३८६
गाजगा ३५२
गाजबाँ ४७२
गाजर ६९७, ६९८
,, -बीज ६९८
,, -वन्य ६९८
गाजार ६९८
गाञ्जाई १४२

गाड़लवण १५८
गाढ़ लवण १५८
गान्धारी ८००
गाफिझ ४३१
गाफिस ४३१–३२
गाव ५६७
गाभ ५६७
गामार गाछ २७७
गाय ७१७
गाय पूआकु ३७१
गार ८२१
गारि ५३१
गाला ११३
गाव जबान २६५,४७१–७२
गावरस हिन्दी ६६१
गावल २५०
गिजिगिल ४३०
गिजिरी ७६३
गितानरम २८५
गिनसिन १४
गिनेरी २८२
गिन्सीखियाव १३
गिरटि ३५९
गिरिकर्णिके ३४२
गिरिकर्णी ३४२
गिरिपर्पट ८२१
गिरी ५५९
गिर्भि ७५
गिलास २६३
गिलो २६९
गिलोइ २७०
गिलोई २६९
गिलोय २६९–७०, ८००
गिलोय शाक ६७६
गीदड़ ७०६
गीध ७०८
,, भेद (मांस) ७०८
गुंज ३५४
गुंजा ३५४, ६३४, ८००
गुंजा रक्त ३५४
,, विष ३५५
,, श्वेत ३५४
गुंटकल ४२९
गुंडुसानगलु ६४९
गुंदावड ५८३
गुआ-बबूल ५२७
गुआवाभूल ५२७
गुक्कल २०५
गुक्कुलु चेट्टु २०५
गुगरू २०५
गुगल २०५
गुग्गुल २०५
गुग्गुलु २१२
गुचिआशूकचिन ४९
गुजराती इलायची २२२
गुजिया ७३७
गुटी ४९
गुड ७९५
,, -अनुपान भेदसे ७९६
,, -नवीन ७९६
,, -पुराना ७९१ ७९५
गुडकामाई ४३८
गुडनजी २६४
गुडमार ४४३–४४
गुडरीसाग ४५२
गुडशर्करा ३७२
गुडहर ५०६
गुड़हल ५०६
गुडा ३०७
गुडाखु २४७
गुडुच २६९
गुडूची ६४, ४४७
गुडूचीभेद २७०, ४७६
गुडूचीसत्व २७०, २७१
गुडूच्यादि वर्ग २६९
गुडजलील ४३२
गुन्द्र ३८१
गुफाशय प्राणी ७०६
गुमड़ी २७७
गुमारटेक २७७
गुम्मड़ि ६७९
गुयावाब्ला ५२७
गुरगुड़ ६६०
गुरन्द्रा २२८
गुरवियानि ४३३
गुरुगिंज ३५४
गुरुगुजी ३५४
गुरुच २६९
गुर्गियाह २६२
गुर्बए जबाद १८५
गुर्बए बेद ३६१
गुलंच २६९
गुलंचा २६९
गुल ४८८
गुलकंद ४८८
गुलका ६८४
गुलकेरी ४९८
गुलखेरू ८१९
गुलखैरो ८१९
गुलगुंति ३५४
गुलचका ५७९
गुलदावदी ४८२
गुलदुपहरिया ५०६
गुलबनफशा ८३०
गुलब्बास ८२२, ८२४
गुललाला १२७
गुलबेल २६९
गुलशकरी ३६६, ३७१
गुलसकरी ३६७, ३७१–७२
गुलहार ५७७
गुलाब ४८२, ४८८
,, जातियाँ ४८८
,, जामुन ५६०
गुलाबि ४८८
गुलाबी पुवु ४८८
गुलिया जैब ४८३
गुली ४०६

गुलू ८१५
गुले गुलाब ४८८
गुलेपिस्ता ८३०
गुलेमश्कर ११२
गुलेसंग २४२
गुले सुर्ख ४८८
गुल्लर ५१६
गुहाशय ७०५
गूंदा ५८३
गूंयूं ३२
गूगल २०५, २१२
,, उत्तम २०६
,, भेद २०६
,, शोधन २०६
गूमा ४६३
,, जाति ४६३
,, पत्ता ६७५
गूलमिरीएँ १७
गूलर ५१६, ८००
गेंदा ८२२
गेट्टे ५२२
गेठी ३८६
गेनुमर ५९१
गेरकायि १३९
गेरिविकि ५५
गेरू ६२०
गेरेंग अड ३९१
गेल ७७
गेलफल ७७
गेहूँ ६४२
,, -भेद ६४२
गैंडा ७०९
गैया ५४
गोंगुकुरु ८८
गोंडाल ४८६
गोंडा लेंबु ५९४
गोंदनी २४९
गोंदपटेर ३८१
गोंदली ५४
गोंदी ५८४
गोकर्ण ३४२
गोकर्णी ३४२, ४३४
गोकुहल जानम ९६
गोक्पस १३१
गोक्षुर २९२
गोक्षुरा २९३
गोखरू २९२, ७९८
गोखरू कलाँ २९३
,, छोटा २९२
,, ,, -भेद २९३
,, बड़ा २९३
गोखुरी २९२
गोखुरे कलान २९३
गोगु ५९१
गोजिया ४७१
गोजिह्वा ४७१–७२, ४७७, ६७६
गोजिह्वा (१) ४७१
,, (२) ४७२
गोजीभ ४७१
गोजुनिया ५०५
गोटगनबा ५३२
गोटी शूकचिन ४९
गोडी उंडी (फल) २३१
गोदडियालिंबु ५९४
गोदावरी ७५१
गोदुमेलु ६४२
गोदूमै ६४२
गोधापदी ४४४
गोपालककंटी ८२९
गोपित्त शुद्ध २३६
गोपोकरोनि ८५
गोभी ४७१
गोमठी ४३७
गोमरी २७७
गोमलर ४३६
गोमुक ४०५
गोमेद ६२७
गोयलियालता ४४४
गोरंड ५२६
गोरत्त चाकुले ३७१
गोरत्तचिंचा ८२२
गोरत्ती ८२२
गोरखइमली ८२२
गोरख गांजा १०६
गोरख गांजो १०६
गोरखबूटी १०६
गोरखमुण्डी ४१३, ४५६
गोरवेल ३८८
गोराचक्र ४३५
गोरिआव ३३७
गोरूचन्दन, २३५
गोरोचन २३५
गोरोचनमु २३५
गोरोचनम् २३५
गोरोचना २३५
गोलप्पु ४८८
गोल मरिच १७
,, मिरच १७
,, मिरिच १७
,, मिर्च १७
,, रंग ४३६
गोलाप ४८८
गोलि ६७०
गोलिमिडि केट्टु ४१७
गोलोचन २३५, ७९९–८००
गोलोमी ८००
गोवाली ३७२
गोमिअ सुलह २५६
गोष्टम् ९१
गोह ७०६, ७१०
गौ या बैल का शुद्ध पित्त २३६
गौरखडिया ६२१
गौर खरिया ६२१
गौर तीतर ७०७, ७१३

गौरी २८५
गौरैया ७०७, ७१४
ग्निएट २०८
ग्रन्थितृण २५२, २५३
ग्रन्थिपर्ण भेद २५२–५४
ग्राम्य पशु एवं उनका मांस ७०५, ७०९
ग्रेपफ्रूट ५९४
ग्रैष्मी ४९१
ग्वारपाठा ४१९

घ

घंघोल के दाने ५०९
घंटा पाढ़र २८०
घउ ६४२
घऊँला २४९–५०
घघरवेल ४६९
घड़ियाल ७१०
घणरूप ४३५
घलघसें ४६३
घांटी पित्त पापड़ा ३२४, ३२६–२७
घाघरवेल ४४८
घाटजारी २६१
घाणेरा खैर ५२७
घावा जरोयुं ३८१
घायमारी १०७
घावपत्ता ४०९
घिया तोरई ६८४
घी ६६१, ७७५
,, -ऊँटिनी का ७७६
,, -गाय का ७७५
,, -घोड़ी का ७७६
,, -ताजा ७७७
,, -दूध से निकाला ७७६
,, -नारी का ७७६
,, -पकाया हुआ एक वर्ष पुराना ७८०
,, -पुराना ७७७
घी-प्रयोग करने के विषय ७७७
,, -बकरी का ७७५
,, -भेड़ी का ७७६
,, -भैंस का ७७५
घीकुआँर भेद ४१९
घीग्वार ४१९
घुँघची ३५४, ८००
घुँइयाँ ६९६
घुघणे ४३०
घुघुरी ७४६
घुमची ३५४
घुसरान ४६९
घृत करंज ३५०
,, कुमारी ४१९
,, वर्ग ७७५
घेंटुली ४२३
घेऊँ ६४२
घेलेफेरिंटा ४३०
घोंघा ७१०
घोटवेल ४९
घोड़बच ७९९–८००
घोड़वच ४३
घोड़वेल ३८८–८९
घोड़ा ७०९
,, आकुल ३९३
,, करंज ३३३
,, निम ३३२
घोड़ावज ४३
घोड़ाहन ३९३
घोण्टा ५७२
घोरबच ४७
घोरवच ४३
घोरूम्बा ४०३
घोल ७७१
,, -शक्कर के साथ ७७१
घोलां ६८७
घोली ६८७
घोषालता ४६९
घोषालें ६८४

च

चंचु ६७२
चंचुशाक ६७२
चंडू ५२५
चंदन पीला १९०
,, मरं १८७
,, लाल १९१
,, सफेद १८७
चंपक-अन्य प्रकार ४९३
चंपा ४९३
चंपे की कली ८००
चंबेली ४९१
चई २०
चकवड़ १२५
चकवड शाक ६७५
चकवत ६६४
चकुन्दा १२५
चकोत ५५४
चकोतरा ५९३–९४, ५९९
चक्रमर्द भेद १२६
चक्षुष्या २६७
चक्सू २६७
चचेंडा ६८३
चणकबाब २५९
चणगि ६४७
चणा ६४९
,, नो खार १६२
चणी आंबोर ५७३
चणें ६४९
चणोठी ३५४
चण्या ६४९
चतरोई १२०
चतुरकल्ली ३०९
चतुष्पत्री १०५
चतुष्फला ३६७, ३७२
चनक लोनी १६२
चनसुर ३९
चना ६४८–४९

चनाखार १६२
चनु २७
चनुपाल विट्टलु २६७
चने ६४९
,, का खारा १६२
,, का शाक ६७७
,, का सिरका १६२
,, की पूड़ी ७२९
,, की रोटी ७२८
चन्दन १८७
,, तैल १८९
,, तैल के अन्य वृक्ष १८७, १८८
,, तैल मिलावट १८९
,, प्रयोग १८८
,, भेद १८८
,, मलयज १९४
,, रक्त १८८
,, श्वेत १८८
चन्दसुर ३९
चन्द्र ८२
चन्द्रमूल २४७
चन्द्रविकाशी कुमुद ४७९
चन्द्रशूर ३९
चन्द्रहिट्टू ६६
चन्द्रिका ३९
चन्दुल ५२१
चप्पनम् १९३
चब २०
चभिअरी २२०
चमनी ४६५
चमरी गाय ७०९
चमसी ७२८
,, रोटी ७२८
चमेली २६०, ४८९, ४९१
चम्पाकाटी ३३७
चम्मङ्कुप्पा ६९६
चय १०६
चरका ७९५
चरचि ५४०
चरस १४३, १४५
चरियसंस्करवडि ३६४
चरेल ३५३
चर्मटी ३५४
चलवमिरिथालु २५९
चल्लन मुलग २९०
चल्लेकायि ५८३
चवक २०
चवक्षी गाछ ४३३
चवलाई ६६६
चवल्या ६४५
चव्यं २०
चव्य २०
चव्यमु २०
चशुम २६७
चश्मत्रजग ४८७
चश्मीज़ज २६७
चस्मे खरूस ५५४
चांगेरी ६७१
चांगेरी शाक ७९८
चांदकुड़ा ८२२
चांदनीमूल २००
चांदी ६०४
चांपा ४९३
चाइना पैबू या पैरू ४८
चाकवत ६६४
चाकसू २६७
चाकुलिआ २८७
चाकुले २८७
चाक्षुस् २६७
चाटराशि ३२५
चान्दसूर ३९
चाब २०
चाबचीनी २०
चाभ २०
चाय ८२२
चारनीज ५७५
चारमग़ज़ ५९२
चारोली ५७५
चालता ८३३
चावल ६३५, ६३९, ७३६
,, -नया ७४६
,, -मिल का साफ किया हुआ ६४०
,, -हाथकुटा ६४०
,, -का सत्तू ७४४
चाष (नीलकण्ठ) ७०८
चिंच ५९८
चिंचुरटी वांगी २८८
चिंत ५९८
चिउड़ा ६४०, ७२४, ७४५
चिकणा ३६७
चिकणी ३६८
चिकाखाई ३११
चिकेकाई ऐला ३११
चिचडा ४१४
चिचिंगा ६८३
चिचिंडा ६८३
चिचिया ५०
चिचिरी ४१४
चिचेंडा ६८३
चिचोंड़ा ७०२
चिचोड ७०२
चिचोला ५१८
चिटी ४३५
चिट्टामणक्कु २९९
चिट्टित ५८०
चिड़ा ७१४
चिड़िया कन्द ६४
चितउर २२
चितरक २२
चिता २२
चितु २२
चित्तलमृग ७११
चित्ता २२
चित्तुरमोल २४
चित्रक २२
,, काला २४

चित्रक नीला २४
,, पीला २२
,, भेद २२
,, मूल २२
,, लाल २४
,, सफेद २२
चित्रमूलं २२
चित्रसूल २३
चित्रव्याघ्र ७०७
चित्रा २२, ११९, ८००
चित्रो २२
चिनगारी १०४
चिनलते पात ६६८
चिनाई कपूर १७५
चिंने ६५७
चिनोल २६७
चिन्न एलं २२३
चिन्ननक्केरु ५८३
चिन्ना ६५७
चिन्हार ३९८, ४३४–३५
चिप्पगड्डि ३८४
चिप्पुरी ५४१
चिबुड़ ५६१
चिभुल २५८
चिभ्र २६७
चिर १९८
चिरईगोड़ा ४४२
चिरचिरा ४१४
,, लाल ४१६
चिरपोटा ३६०
चिरफल ५७
चिरबिल्व ३५०, ३५३
चिरबुटले ३६०
चिरबोटी ३६०
चिरमिटी ३५४
चिरमिल ३५३
चिरमी ३५४
चिरहिटा ४४९
चिराइता ७३
चिराता ७३
चिरापूल १०६
चिरायता ७३, १११
,, छोटा ७५
,, देशी ७५
,, जापानी ७४
,, -बडा ७४
चिरिबेंडा ३६७
चिरुबूलै १०६
चिरेता ७३
चिरैता ७३
चिरोंजी ५७५
चिरौंजी ५७५, ८००
चिलगोजा ८२३
चिलबिल ३५३
चिलर ३५९
चिलिराध २५६
चिल्ला ३५९
चिल्लिकायि ५८४
चिल्लीशाक ६६४
चिल्ह ३५९
चिल्हक ३५९
,, -उपजाति ३६०
चिवदै ३९७
चीड १९८
चीड का गोंद २०८
,, जातियां १९८
चीढ़ १९८
चीणा ६५७
चीणे ६५७
चीत २२
चीता २२, ७०६, ७९९
चीना ६५७
चीनाककर्पूरः १७५
चीनिया कपूर १७५
चीनी ७९६
,, -पुरानी ७९१
,, -फूलों से बनाई ७९६
,, -शहद से बनी ७९७
चीनी कपूर १७३, १७५
,, कापूर १७५
,, दालचीनी २२५
,, ममीरा ८३४
चीनेर कर्पूर १७५
चीमेड २६७
चील १९८
चीलो ६६४
चील्ह ७०८
चुंबक ६२०
चुक ४०२
चुका १७२, ६७२
चुको ६७२
चुक्र १३
चुक्र ५९९
चुक्रिकशाक १७२
चुन्नी ६२७
चुरनहार ४३६
चुल्लू का बांदा ४५०
चुवदिगं ३९३
चुवन्न मंदारं ३३७
चुवन्ना अविल पोरी ८२
चूअ १०३
चूक १७२, ६७२
चूका १७२, ६७२
चूका शाक ६७२
,, साग ५९९
,, स्फटिक १७२
चूतस्ले १६९
चूया १०२
चूसल १६९
चूहाकानी ४७७
चेंगलब कोट्टु ७०१
चेअर २०
चेक्कीकोटुवेरी २४
चेटा सिंकोली २२८
चेप्पुंजेरिञल १०८
चेरु चुन्ड २८८
चेरुदेकु १०२

चेरू नगपू २३०
चेरैलु २५८
चेर्मर १३९
चेवा ४४५
चेहुर ४३६
चैकाणी २०
चैना ६५७
चोंच ६७२
चोंचे ६६८
चोंड़ा या हौज की मछली ७२३
चोंडे का जल ७५५
चोई २०
चोक ९६
चोखा मिरच १७
चोघारा २६५
चोपचीनी ४७
चोबचीनी ४८–४९
चोरक २५२, २५४–५५
चोरचो ३५९
चोरवा ६३९
चोरस्नायुः ४३४
चोरस्नायु ४३५
चोरा २५५
चोलं ६६१
चोला ६४५
चोहार कोरानोन १६१
चौकिया सोहागा १६९
चौक्ष्य जल ७५३
चौंटली ३५४
चौपतिया २६४, ६७३, ६७४
चौरा ६४५
चौराई का साग ६६६
चौलमोगरा तेल ८२६
चौलाई ६६६
,, -प्रकार ६६७
,, शाक ६६६
चौवर्चल १६१
चौहरा इलायची २२२
चौहार ८२३
,, कारा १६१
,, काला १६१
,, कोड़ा १६१

छ

छच्छिका ७७१
छडीलो २४२
छतिवन ५४६
छतोना ७०३
छत्रक-निर्विष ७०४
,, -प्रकार ७०३
,, -विषैले ७०४
छरिवेल ४५६
छरीला २४२
छांगुरा ५९३
छांचिवेत ३६२
छागलखुरी ४१०
छागलनादी ४१३
छागल पुपटी ३१२
छाछ ७४३, ७७१–७२
छातकुड ७०३
छातकुण्ड ७०३
छाता ७०३
छातिम ५४६
छालानी २८५
छिकनी ४७४
छिकुर ५४६
छिमियासेहुण्ड ३०८, ३११
छिद्रांत्र ३७७
छिरहटा ४४९
छिरेटा ४४८
छुंछड़ी ६७२
छुईमुई ४५७
छुहारा ५८७, ५८८
छुहारी अजमोद २९
छूँछ ६६८
छोंकर ५४६
छोंकरा ५४५
छोगारू ५६३
छोट इलायच २२२
,, कुकासिमा ३६९
,, नखी २३७
छोटा कलिया ७९
,, गोखरू २९२
,, चाँद ८२
,, चान्दा ८३
,, चिरायता ७५
,, नख २३७
,, पाषाणभेद १०८
,, पीलु ५९१
,, लसोरा ५८३
,, शंख ७१०
छोटी इलायची २२२–२३, ७९९, ८०१
छोटी कटाई २९०
,, जामुन ५७१
,, दन्ती ३९९, ४००
,, दूधी (१) ४५९
,, दूधी (२) ४५९
,, दूधी (३) ४५९
,, पीपल १६
,, मकोय ८६, ४३८
,, मछली ७२२
,, माई ८६–८७
,, मैन ८७
,, लोणी ६७०
,, लोनिया ६७०
छोला ६४९
छोले ६४९
छोलोंगनेबु ५९३
छोवा ७९५
छोहारा ५८६–८७

ज

जंकई ३७८
जंगली अखरोट ५९२
,, अंजीर ५१७
,, अडद २९७
,, उड़द २९७

जंगली उशबा ४९
,, एरंड ३०२
,, कपास ३७५
,, कांदो १३६
,, गूलर ५१७
,, गौरैया ७०७
,, जायफल १००, २१८
,, तोरई ६८५
,, दाल ६६०
,, पिकवन ८१
,, प्याज १३६
,, प्याज विदेशी कन्द १३७
,, बादाम ५८९
,, बैंगन २८९
,, बोर ५७३
,, मूंग २९७
,, मेथी ३९, ३७१
,, लहसुन १३४
,, लोनिया ६७०
,, सामा ६५८
,, हलदी ११७
जंघाल ७०५
जंघाल संज्ञक जीव ७०६
जंजबील १३
जंजबील शामी ८०
जंजबीले आबिस १३
जंजबीले रतब १४
जंड ५४६
जंडी ५४६
जंबीर तृण ३८४
जंबीरी नींबू ७९९
जई ६४१
जओ ६४१
जकी ५६०
जकुम फर्युन ३०८
जखमेहयान १०७
जगनमदन ३२३
जजबीलतुरक १३
जजर ६९८
जटामांशी २४०
जटामांसी २४०, २४६
,, भेद २४०
जटामाशी २४०
जटालक्का ३११
जडिका २१६
जनगुर कुली ३६२
जद्वार ८२९
जपा-भेद ५०७
जपोलोटा ४०१
जव ६४१
ज (जु) वाद १८५
जवादकस्तूरी १८४-८५
जवादी १८५
जवानेगुजस्वे तलख ३४७
जवाफुल ५०६
जब्दुल वहेर ६०
ज (जु) ब्वाद्ध १८५
जमर्दर ४२९
जमाल गोटा ४००-४०१
जमीकन्द ६९३
जमीज ५१६
जमीरीनीबू ५९४, ५९९
जम्बू ८३
जम्बूवत्पत्रा सारिवा ४२६
जम्मि ५४६
जयपाल ३९९, ४०१
जयफल २१६
जयमङ्गल २८४
जरंबाद २४५
जरकि हलद ११९
जरतोर ४३५
जर बम्दे हिन्दी ८५
जरु (रू) ल ५४८
जर्दक ६९८
जर्द चोब ११४
जर्दालु ८१३
जर्नब २५६
जल ७४७, ८००–८०१
जल-अवगुणकारी ७५७
,, -गुणकारी ७५७
,, -पचने में समय का परिमाण ७५८
जल की आवश्यकता ७५६, ७५७
जलकुम्भी ४८५–८६
जलकुम्भी (२) ४८६
जलकुम्भी बड़ी ४८५–८६
जल के भेद ७४७
जल ग्रहण का समय ७५६
जलचौलाई ६६७
जलजंबू ५७१
जलजमनी ४४९
जलजमुस्ता २४३
जलधनियां ८२३
जल नदी का ७५१
जलनीम ४६१
जलनीली ४८७
जल पर तैरने वाले पक्षी तथा उनका मांस ७०९
जलपिप्पली ४७०
जल पीने की विधि ७५६
जलपीपल ४७०, ७९९, ८००
जलवान ६४१
जलबेतस ३६१
जलमउल ५८०
जलमहुआ ५८०
जलमहुडो ५८०
जलमहे ५८०
जलमाला ३६१, ३६३
जलमुलेठी ७९८
जलमुस्त ४८७
जलमोहा ५८०
जलरिचेट्टु ५२०
जलवर्ग ७४७
जलवेतस ३६३, ३६४, ७९९
जलशंखला ४८६

जलशिरसी ५४५
जलशिरीष ५४५
जलसपोलियन ४८७
जलसिरिस ५४५
जलापा ८२२-२३
जलेबी ७४०
जव ६४०-४१
जवय ६५३
जवसा ४११
जवाइन २५
जवाकुसुम ५०६
जवाखार १६३, ८००
जवादियां कस्तूरी १८५
जवायन २५
जवासा ४११, ८००
जवासो ४११
जविन्द २५
जविलि ३५३
जवेगोधी ६४१
जवेर ५७८
जश्मीज़ज २६७
जस्ता ६०६
जहर ६२९
जहरमार ८२४
जहरमोहरा २२६, ८२४
जहरमोहरा खताई ८२४
जहलीलज़ ७
जहूक ३०४
जहेव ८७
जांगल (भूमि) जल ७५१
जांगल मांस ७०५
जांबुन ५७०
जांबूल ५७०
जांभिरनिम्म ५९४
जाई ४९१, ४९३
जाजिकाय २१६
जाजिके २१६
जाडिक्कै २१६
जातकदम ४९५
जाति ४९१
जातिको १०९
जाती २६०
जापानी कपूर १७३, १७५
जापानी चिरायता ७४
जापालबीज ४०१
जाफर ५०७
जाफरान २३३
जांमीरालेबु ५९४
जामुन-जातियाँ ५७०
जायचौ ३१२
जायपत्री २१८
जायफर २१६
जायफल २१६, २१८
,, जंगली १००
,, नकली २१८
जायित्री २१८
जारिगेहुलि ५२३
जारुल ५४८
जारूल ५२४, ५४८
जाल ५९१
जालप ३९८
जाली ७४२, ७४३
जावंत्री २१८
जावित्री १००, २१७–१८
जासल ५४८
जासवन्द ५०६
जासुद ५०६
जासुस ५०६
जिंगन ५३२
जिंगना ५३२
जिंतीयाण ७१
जिउन्ती २९५
जिओल ५३२
जिङ्गिनी ५३२
जिडिचेट्टु १३९
जिन्सेंग ३७३
जिफीयूसी ११
जिबसाग् २९६
जिबै २९६
जिमीकन्द ६९३
जियापुन्ता ५३१
जियापोता ५३१
जिर ३९
जिर्दगा ५९२
जिर्हमका ६६१
जिर्व २१५
जिलकारा ३१
जिललमूल ४३४
जिल्लेडु ३०४
जिवन्ती २९६
जिसुमी मारा ५७
जीडीविट्टुलु १३९
जीनान् २५
जीरकक्कृष्ण ३२
जीरये सफेद ३१
,, स्याह ३२
जीरा ३१, ७८७, ७९९
,, सफेद ३१
जीरिगे ३१
जीरुं ३१
जीरे ३१
जीरेस्याह ३२
जील करर ३१
जीलकर्र ३१
जीवक ६१, ६४, ८०१
जीव गुहाश भूमांस ७०७
जीवन्ती २९५–९६
,, (१) २९५
,, (२) २९६
,, दीर्घ २९५
,, भेद २९५, ४५५
,, शाक २९५, ६९२
,, स्वर्ण, ह्रस्व २९५
जुआर ६६१
जुजुब ५७२
जुंबदुलहेरे ६०
जुमरा ५२३

जुआरा ६६१
जुरजु ३३७
जुरेमका ६६१
जुवार ६६१
जुम्बि ५१८
जूफा ८२४
जूही ४८९, ४९२
जेटामाबशी २४०
जेठीमध ६५
जेन्शियन विदेशी ७१
जेमुदु ३११
जेष्टमधु ६५
जेष्टिमध ६५
जैतून का तेल ८२४
जैत्री २१८
जोंका ३७१
जोंधले ६६१
जो ६४१
जोज ५९२
ज़ोज़ हिन्दी ५९२
जोजहिन्दी, नारियल ५५९
जोजेजुल हिन्द ५९२
जोन्नलु ६६१
जोन्दियानाकुर्रो ४३१
जोयार ६६१
जोलपत्र ३२८
जोला ६६१
जोवान् २५
जोस ५१०
जौ ६४०–४१
,, का सत्त ६४४
,, की रोटी ७२८
,, चनामिश्रित सत्तू ७४४
जौजबूया २१६
जौजुत्तीब २१६
जौजुल कौसल ७७
जौजुस्मासेल ३१७
ज्योतिष्मती ९०, ५४३
ज्वरहुमेवे ६६०
ज्वार ६६१
ज्वारी ६६१

झ

झड़बेर ५७२–७३
झड़बेरी ५७२–७३
झण्डु ८२२
झरतम ११२
झरना ७५२
झरना-जल ७५२, ७५५
झरने की मछली ७२३
झरबेर ५७३
झरिर ४३२
झरिष्क ११९
झलिल अदक़क् ४३१
,, असफ़क् ४३२
झष ७१०
झाऊ ५०, ८६–८७
झाड की हलदी, १२१, १९१
झाडाचे मीठ १६३
झाडि-फू २१६
झारचंपा ८२९
झाव ८६–८७
झावुक ८६–८७
झिंगा ६८५
झिंजर ३३७
झितियानस नानूरव्वाह २५
झुक्ष-उल-कुत्ब ७७
झुनझुनिया ४३०
झुफह-यविस् १८१
झेरकोंचला ५६८
झोजरू ४०८

ट

टंक ५९०
टंकणखार १६९, १७०, ६२०
टंकण शुद्ध १६९
टंकारी ३६०
टंगुनी ६५६
टकाई ५५९
टकी ३३७
टांकणखार १६९
टांकली २८१
टांको ६६४
टाकला १२५
टागम २७
टावा लेबु ५९३
टिंकाल १६९
टिंटिनी ५४५
टिंडा ६९०
टिंडोरौं ६८७
टींबरू ५६७
टीडोंग २०८
टुटगोंठा ४४५
टेंक ७०९
टेंटु २८४
टेंट्ट २८४
टेंबुरणी ५६७
टेकार २८१
टेकारी ३६०
टेकु ५४९
टेत्रा ५५९
टेपिओका ८२६
टेरा ३६५
टेसू ५३६
टोकापाना ४८६
टोटाकुडा ६६६
टोटाकुरा ६६६

ठ

ठोको २८९

ड

डंडेनहरी ३०२
डहूया २५०
डण्डासा ५९२
डन २७९
डमरो ५११–१२
डरेकुदुम ८८
डवला २८७
डहर करंजा ३५०
डहुया ५५६
डांडलीओ थोर ३११
डांभो ६६६
डाब ५५९

डाबी ३७०
डाभ्रा २८७
डाभ ३८२
डाल फिलफिल १६
डालिम गाछ ५८२
डालिम्ब ५८२
ड्ग्वली ३७०
डिंगसोलिर ७००
डिकामाली ५५
डिकेमाली ५५
डिकामल्लि ५५
डिजिटेलिस ८२५
डीकामारी ५५, ४५१, ४५२
डुंबु ३८३
डुकरकंद ३८६
डुङ्गली १३५
डेंगुआ ६६६
डेओ ५५६
डेला ३६५
डेलो ५५६
डोडलोंविन ३४०
डोडिका ६९२
डोडी २९१
डोड्डा एलाकी २२१
डोलर ४९०
ड्रेक ३३२

ढ

ढवनल ३७८
ढांपणी ४८१
ढाक ५३५–३६
ढाढोन ५४५
ढुंढुल ६८४
ढेंड्स ६९०
ढेंडसे ६९०
ढेरा ३६५
ढेला ३६५
ढोर आंबा ५१३
ढोर गुञ्ज ३९३
ढोलसमुद्र ७००

त

तंग्र कङ्ग ५६
तंबाखू ८२५
तंबूल २७२
तंबोल २७२
तंरिकाय ९
तक्र ७७१
,, -कुछ घी निकाला ७७२
,, -गाय आदि के दूध के ७७३
,, -घी न निकाला ७७२
,, -घी निकाला ७७२
,, -दोष विशेष एवं व्याधि विशेष में ७७२
,, -निषेध का विषय ७७३
,, -बिना पकाया एवं पकाया ७७२
,, -वर्ग ७७१
,, सेवन के विषय ७७३
तक्र पिण्ड ७६४
तगचे १२५
तगर १९९–२००
,, असली २३८
,, गण्ठोडा १९९
,, पादुका १९९
,, भारतीय २००
तगरमूल १९९
तगर विदेशी २००
तगिरिस १२५
तग्गि २८१
तज २२५-२६, २२९, २६७, ७९९
तजक्सुम २५८
तड ५६४
तडबूज ५६०
तडिचेट्ट ९
तणछ ५४८
तनी ९
तनिकाय ९
तनितांडी ९
तनी ९
त(ति)न्कार १६९
तन्डुकिरई ६६६
तन्द्रा ९
तन्त्रिरविष्टुं ३९१
तन्नी ९
तपझाड ३२८
तमर ४८०, ५८७
,, -हतब ५८७
,, हिन्दी ५९८
तमर्ता ५९७
तमतैं ५९७
तमाल ५३३
,, गाछ ५३३
तमालजाति १७४
तमालपत्र २२५, २२८–२९, २५५, ५३३
तमालपाकु २७२
तमालवृक्ष ५३३
तम्बुल ५६
तम्मिपुल्लु ४८०
तरंज ५९३
तरबूज ५६०
तरबूजा ५६०
तरम राह के बीज ३९
तरमुज ५६०
तरस ७०६
तरहहिरासाई ६७२
तरुणी ४८८
तरोई ६८५, ७९८
तरोटा १२५
तल ६५२
तला हुआ मांस ७३५
तलिया भीमडा ५६१
,, शकर टेटी ५६१
तलुकि २८१
तलूरा ५२०
तलह ५५७

तवक्षीर ८२५
तरक्षीरी ५८
तर्कारी २८१, ३६०
तवाशीर ५८
तवासीर ५८
तसव्बार अलसी ४१९
तसेयकायि ५६२
तस्लेमेटांग १६९
तांदूल ६३९
तांबडा आघाडा ४१६
तांबडी दुपारी ५०६
तांबडे नागकेशर २३१
तांबर ५७३
तांसली ५६२, ६०५, ७२७, ८००
तागस २७
ताड ५६३–६४
ताडवृक्ष २१
ताडि ९
ताडी ५६४
तातर २८४
तातिं ५६४
तातूरह ३१७
तातूरा ३१७
तात्पत्र २८४
तान्ही चा वेल ४४९
तापहरी ७२५
ताबडेबीज ५७७
तामण ५४८
तामरकाई ५७७
तामरकारा ५७७
तामरें ४८०
ताम्बा ४००
ताम्रवल्ली ११०
तार ५६४
तारपीन का तेल २०८, २०९
तारा ६५४
तारा[illegible] ६५४
तारेकायि ९
तार्पीन तैलेर गाछ १९८
ताल ५६४
तालपर्णी ७९९
तालमखाना ४१६–१७
तालमिश्री ५६४
तालमूली ३९०, ७९९
तालहै ४९८
तालाव ७५२
,, का जल ७५३, ७५५
,, की मछली ७२३
तालिमारा ५६४
तालीखाना ४१७
तालीसपत्र २५२, २५४, २५६, २५८, २७३
तालीसपत्र (१) २५६
,, (२) २५६
,, (३) २५७
,, उत्तरप्रदेश २५६
,, गुजरात २५६
,, नेपाल २५७
,, पञ्जाब २५७
,, पूर्वीभारत २५७
,, बङ्गाल २५७
,, महाराष्ट्र २५६
,, राजपुताना २५६
तालीसपत्र प्रकार २५५
तालीसपत्री २२८
तालीसपर २५८
तालीसफर २५५, २५८
तिंतिडीक जाति ९९
तिउरा ६५४
तिउरी ३९७
तिगडे ३९७
तिनखन ७५
तिनपाट ६६८
तिनलाउ ६८२
तिनलाओ ६८२
तितली ३१०, ३१२, ८४०
तितलौकी ६८२
तितुआ लौका ६८२
तित्कांकरोल ४६६
तिथु १०३
तिधारा थूहर ३०९
,, सेहुण्ड ३०८–९
,, ,, भेद ३०८
तिनपतिया ६७१, ७९८-९९
तिनिश ५२४, ५४७, ५४८
तिन्तिडीक ५९८
तिन्तिडीका ५९८
तिन्दुक-अन्य जाति ५६७
ति[illegible]न्ना ६६०
ति[illegible]र्तागे २६९
ति[illegible]रली १५
तिप्पिली १५
तिमस ५४८
तिमिर हिन्दी ५९८
तिरत ४३०
तिरतुरपतची ५१२
तिरफल ५७
तिरिच्छ ५४७
तिरुकलि ३११
तिरुतालि २८१
तिरुवत्ती ३३८
तिल ६५२
तिलक ५०५
तिलका ५०५
तिल की खली ७४६
तिलकुट ७४६
तिलगाछ ६५२
तिल तैल ७६९
तिलपर्णी ४६४
तिलवण ४६४–६५
तिलिचा ५०५
तिली ६५२
तिल्लाकाड ३१२
तिल्वकमूल १२९
तिवाज ३४७

तिसल ५७
तिसी ६५३
तीक्ष्णक्षार १६४
तीखुर ११८, ८२५
तीणरानाझी ४५७
तीतर ७०७, ७१३
तीतापाट ६६८
तीनधारी निवडुंग ३०९
तीनि ६६०
तीनी ६६०
तीरकांस ३८०
तीरा ६५४
तील ६५२
तीसी ६५२, ६५३
तुङ्गमुस्ते २४३
तुम्बडी ६८१
तुंबा ४०३
तुंबिक ५६७
तुंब्रा ४६३
तुख ६९७
तुख्मखत्मी ८१९
तुख्म तरह तेजक ३९
तुख्मदुलह ५०
तुख्मनीलोफर ५७९
तुख्मबलसां ८३१
,, रेहां ५१२
तुख्मबञ्जे २९
तुख्मत्रिनग २९
तुख्मशामलीन ३७
,, शर्बती ५१२
तुख्मे कतान ६५३
,, कोकनार १५४
,, बेदंजीर खनाई ४०१
,, बेद अंजीर ४०१
तुख्मेवंग २९
तुग्गुर २००
तुण्डीकेरी ८००
तुत्ति २६०
तुत्तरवेंड ३७०
तुन ५३४
तुन्दामय ८०९
तुन्दुरलु ५६
तुपकडी ३६८
तुबर ६४८
तुमरी ६८२
तुमिथि ५६७
तुम्बर ५६
तुम्बी ४०३, ६८१-८२
तुम्बुरु ५६, ५७, ८९
तुम्बुरु फल ५६
तुम्बुल ५६
तुम्री २७८
तुम्बुरु ५६
तुरई ६८५
तुरक बेवक ३३२
तुरञ्ज ५९३
तुरञ्जबीन ४११
तुरदाल्य ६४८
तुरया ६८५
तुरस्कवड़ा ६७२
तुरा ३२५
तुरिया ६८५
तुरी ६४८
तुरुष्क २१६
तुर्बं ६९७
तुर्बुद ३९७
तुर्रे खुरासानी ६७२
तुलतुली ४५६
तुलशी ५०९
तुलस ५०९
तुलसी ५०९
तुलसी-काली ५०९
तुलसीपत्र ३६०
तुलसीभेद १७४, ५०९
तुलसी वर्ग ५११
तुलसी सफेद ५०९
तुला ३७४
तुलक प्यारे ६४६
तुवर ८२६
तुवरक ८२६
तुवरी का तेल ७८०
तुष ७४९
तुषभरा ७६४
तुषोदक ७८३
तुहलव ४८७
तूँत ५८१
तूगरू ५६
तूणी ५३४
तूत ५८१
,, -अन्य जाति ५८२
,, -जातियाँ ५८१
,, ग्राम्य, वन्य ५८१
तूततुर्श ५८१
तूतिया ६१०
तूते ५८१
तूतहामीज ५८१
तून ५३४, ८०१
तूनगाछ ५३४
तूनमरम ५३४
तूणी ५३४
तूफाह ५८९
तूर ६४८
तूरण बेल ४०३
तूस ४०३
तूसतूंबा ४०३
तृणकान्त ८२६
तेंगाई ५५९
तेंड ३९७
तेंतुल ५९८
तेंदुआ वाघ ७०६
तेंदू ५६७
,, -अन्य जाति ५६७
तेउडी ३९७
तेकांटासिज ३०९
तेंकु ५४९
तेगड ३९७

तेगिन ५४९
तेजक ३९
तेजन ७९९
तेजनी ४३५, ४३७, ७९९
तेजपत्ता २२८
तेजपत्र २२५, २२८
तेजपात २२८-२९
तेजफल ५६
तेजबल ८९, ७९९
तेजवती ८९
तेजवल्कल ८९
तेतनकोट्टई ५८४
तेतिलकामि २५०
तेनई ६५६
तेल अलसी का ७८१
,, कुसुम का ७८१
,, तिल ७७९
,, तुवरी का ७८०
,, दोनों राई का ७८०
,, पकाया या बिना पकाया ७८०
,, पोस्ता का ७८१
,, रेंडी का ७८१
,, सब प्रकार के ७८२
,, सरसों का ७८०
,, सर्जरस का ७८२
तेलचंद ५२६
तेलाकुचा ६८७
तेलिया विष ६२९
तेलियो देवदार १९८
तेल्ल ३९७
तेल्लदामरमु ५२१
तेल्लमद्दि ५२३
तेल्लमुलक २८८
तेल्लमोदुकु ५४८
तेल्ललिगाड्डा १३१
तेल्ल लुड्डुगु १३०
,, वेंपलि ४०८
तेल्लाचित्रा २२
तेल्लमङ्गा ५५
तेल्लावाविलि ३४४
तेशिरे मनसा ३०९
तेहीरे २५६
तैलपत्र ८२७
तैल वर्ग ७७९
तैवेल ४६५
तोंडली ६८७
तोंडे ६८७
तोअण्डी ९
तोक्य ६४०—४१
तोखांडी ९
तोगरि ६४८
तोट्टाचुरङ्गी ४५७
तोडिस ६५३
तोबे ९
तोतिल्ल २८४
तोदरी ८२७
,, सफेद ८२७
,, सुर्ख ८२७
तोन्दी ९
तोपचीनी ४८
तोमे वब्बलि ६६९
तोरई ६८५
,, -जङ्गली ६८५
तोरी ६५३—५४
तोरे हुप्पे ५८०
तोरै ९
तोलिबउल खुब्जा २५
तोवरै ६४८
तौषार जल ७४७, ७४९
तौसे ५६२
त्रायमाण ४३२
,, (१) ४३२
,, (२) ४३३
,, (३) ४३३
,, वंगीय ४३३
त्रायमाणा-विभिन्न द्रव्य ४३१
त्रिपर्णी ४३५
त्रिपुटा ७९९
त्रिफला १२, ८००
त्रिवृत्-अरुण ३९८
,, -कृष्ण ३९८
,, भेद ३९८
,, -श्याम ३९८
,, -श्वेत ३९८
त्वक्पत्र २२९
त्सलसूमा २५८

थ

थड ५४०
थमगा ३३२
थलश्री २८१
थलपद्म ४८३
थानमोडी ३६०
थुनेर २५२—५४, २५६
थुस २१३
थूनो २५६
थूम-एल-बरी १३४
थूहर ३०६, ३०८, ६७५
थूहर का दूध ३०७, ६३४
थूहर तिधारा ३०९
थूहर भेद ३०८
थैंकल ५९९
थोर ३०८, ३११
थोरपिंपली २१
थोरली गुञ्ज १९२
थोला मरी १७
थोहर ३०८

द

दकचु १०५
दक्षिणी गोखरू २९३
,, मरिच १७
दगडफूल २४२
दण्डकलस ४६३
दण्डमछली ७२१
दण्डोत्पल ४५५
दधिवर्ग ७६७

दन्तशठ ७९९
दन्तशठा ७९९
दन्ती ४००
,, बीज ४००
,, भेद ३९९
दन्तु ६६६
दन्द ४००
दभ ३८२
दमनक ४७३, ५११
दमन पापड़ा ३२५
दमर ५२१
दम्मउल अखवैन हिन्दी ५२४
दयालो २४९—५०
दरख्ते मिस्वाक् ५९१
,, रीश ५१३
,, लरजा ५१४
,, वसक १९८
,, शाहनाह ३७०
दरख्ते सिब्र ४१९
दरभ ३८२
दराख ५८५
दरियाइल्लूण १२८
दरियाई नारियल ८२८
दरूनज अकरबी ८२८
दरे झपक २१
दरेबांकि ८०
दर्बालु ३८२
दर्भ ३८२
दर्या का कफ ६०
दर्वीपत्रा ४७२
दवणा ५११
दवना ५१०—११
दशमूल २९४
दहिया २४९—५०
दहिरी १०९
दही ७६१, ७६७
,, -अत्यम्ल ७६८
,,- ऋतु के अनुसार खाने के नियम ७७०
दही-गाय का ७६८
,, -गुड़ के साथ ७६९
,, -दुष्परिणाम, बिना विधि सेवन से ७७०
,, -निःस्सार दूधका ७६८
,, -पकाये दूध का ७६८
,, बकरी का ७६८
,, भैंस का ७६८
,, मन्द ७६७
,, -रात में सेवन का निषेध ७६९
,, -रात में सेवन के लिए नियम ७६९
,, -वस्त्र से छाना हुआ ७६९
,, -शर्करा के साथ ७६९
,, -स्वादु ७६७
,, -स्वाद्वम्ल ७६७, ७६८
,, का तोड़ ७७०
,, की मलाई-खट्टी ७७०
,, की मलाई-मीठी ७७०
,, के भेद ७६७
दांतरा ४००
दांतरीसा ३२७
दाऊदखानी शालि ६३७
दाख ५८५—८६
(दाख) करौंदी ५८५
दाख, पहाड़ी ५८५
दागल ५८०
दागुडी ४४९
दाडम ५८२
दाडिम ५८२
दाडिमच्छद ५२८
दाडिम पुष्प ५२८
दानकुनी ४५४
दाना खसखस १५४
दान्ती ४००
दाभ ३८२
दाभडो ३८२
दारकोहोला ६७९
दारचीनी २२६
दारचोबह ११७, ११९
दारफिल्फिल् १६
दारशीशान् १००
दारसीनी २२६
दारहलद ११९
दारहल्द ११७
दारी ३८८
दारुगर्भ १७
दारुचीनी २२६
दारुसिता २२९
दारुहरदी ११९
दारुहरिद्रा ११९-२०, १९१
दारुहलद ११९
दारुहलदर ११९
दारुहलदी ११९
दारूडी ९६
दाल ७२४, ७२५
दालचीनी २२५—२६
,, असली सिंगापुरी २२५
,, चीनी २२५
,, तैल २२७
,, फल २३०
,, भारतीय २२९
,, भेद २२५
,, लङ्का की २२५
,, सीलोनी २२७,२२९
दालिंब ५८२
दालिंबकाया ५८२
दासणिगे ५०६
दासनमु ५०६
दासी ५०२
दिंटेन ३४२
दिंडशी ६९०
दिंडा ७००
दिथ २८५
दिगंरुह्लेर २५६
दिठोरी ३५०
दिदुंग ५४०

दिप्पली ३१५
दिवेली २९९
दिरमन ५१८
दिव्य जल ७४७
दीप्यक ७९८
दीर्घ पुष्प ३०२
,, मूल ८००
,, सुथनी ६९४
दुखन ६५६
दुग्ध-विभिन्न एवं मट्ठा आदि का संगठन ७६१
,, कूपिका ७४०
दुग्धपान-अन्य नियम ७६५
,, -क्षय अवस्था में ७६५
,, -बाल्यावस्था में ७६५
,, मध्याह्न में ७६५
,, रात्रि में ७६५
दुग्धफेनी ८२८
दुग्धवर्ग ७५९
दुद्धि ४५८
दुद्धी ४५८
दुधऊ ४३४
दुधल ८२८
दुधलत ४२६–२७
दुधवच ४५
दुधिया ४५८
दुधियुं ६८१
दुधेली ४५८
दुध्या भोपला ६८१
दुन्दिलुम २८४
दुपहरिया ५०६
दुमशिंग २५६
दुम्या मेटा ७१६
दुरजा ३५३
दुरालभा ४१२
दुर्गन्धखैर ५२७
दुष्पुचत्तु ८९
दूध ७४३, ७५९, ८०१
,, -अनूप देश की गाय का ७६०
,, -अर्धोदक, क्षीरशिष्ट ७६३
,, -उँटनी का ७६२
,, -औटा कर ठंडा किया हुआ ७६३
,, -औटाया, गरम ७६३
,, -कच्चा ७६३
,, -काली गाय का ७६०
,, -गर्दभी का ७६१
,, -गाय का ७५९, ७६१
,, -गायका आहार विशेष के अनुसार ७६०
,, -गायका धारोष्ण ७६३
,, -गुड़ पड़ा हुआ ७६४
,, -घोड़ी का ७६१, ७६२
,, -चितकबरी गाय का ७६०
,, -छोटे बछड़ेवाली गाय का ७६०
,, -जल बिना छोड़े, औटाया ७६३
,, -जांगल देश की गाय का ७६०
,, -जांगल देश की हरिणियों का ७६२
,, -नारी का ७६१, ७६२
,, -नारी का औटाया हुआ ७६३
,, -नारी का, कच्चा ७६३
,, -पर्वतों पर चरने वाली गाय का ७६०
,, -प्रातःकाल का ७६५
,, -पीने न योग्य के लक्षण ७६६
,, -बकरी का ७६१, ७६२
,, -बकरी का, उबालकर ठण्डा किया हुआ ७६३
दूध बकेन (बाखरी) गाय का ७६०
,, -बच्चा मर गया हो ऐसी गाय का ७६०
,, -बूरा या मिश्री पड़ा हुआ ७६४
,, -भेंड़ी का ७६१, ७६२
,, -भेंड़ का, उबाला गरम ७६३
,, -भैंस का ७६०, ७६१
,, -भैंस का धाराशीत ७६३
,, -मक्खन निकाला हुआ ७६१
,, -मथा हुआ, गाय-बकरी का ७६५
,, -लाल गाय का ७६०
,, -सफेद गाय का ७६०
,, -सायंकाल का ७६५
,, -हथिनी का ७६२
,, का झाग-गाय, बकरी के ७६६
,, खाँड के साथ ७६४
दूधपान-पूर्वाह्न में ७६५
दूध पीने योग्य लोग ७५९
दूधकलमी ३९७
दूधियोवछनाग ३१३
दूधी ४५८
,, छोटी ४५८
दूब ३८५, ८०१
,, -नीली-सफेद-हरी ३८५
दूबड़ा ३८५
दूर्वा ३८५, ४५३
दूलु ३८५
दूषित जल शुद्ध करने के उपाय ७५८
दूसरेनिंग ४४९
देक ३३२
देतेदानी २८७

देधान ६६०
देयाताड ४६९
देवकाञ्चन ३३८
देवकाञ्चनमु ३३७
देवकांडर ८२३
देवकापसीण ३७५
देवडंगर ४६९
देवडांगरी ४६९
देवनाड ४६९
देवदार १९६, ३३४
देवदारि चेट्टु १९६
देवदारु १९६, ५०१
देवदारु चेडि १९६
देवदाली ४६९
,, पीली, लाल, सफेद ४६९
देवनल ३७८
देवनाल ३७७
देवबाभूल ४९९
देवभात ६६०
देशी खजूर ५८७
,, चिरायता ७५
,, बादाम ५८९
,, सनाय ४६७
दोंडातिगे ६८७
दो अर्थवाले शब्द ७९८
दोडका ६८५
दोडिंगा ५९४
दोडी २९५
दोडुमार्ण ३३३
दोडुतगचे ६७६
दोडुनिरलु ५७०
दोडुनिरली (लु) ५७०
दोदामरदरिसिन ११९
दोना ५११
दोपनी २२८
दोपातीलता ४१०
दोसकाई ५६२
दोसकाया ६८२
दौना ५११
द्रभ ३८२
द्रवन्ती ३९९, ४०१
द्रवन्ती बीज ४०१
द्राक्ष ५८५
द्राक्षा ५८५
द्राक्षे ५८५
द्रेक ३३२
द्रेका ३३२
द्रोणलवण १६६
द्रीब २५३

ध

धंतूरो ३१७
धणे ३४
धतूर ३१७
धतूरा ३१७, ६३४
,, -अन्य निघंटूक्त भेद ३१७
धतूरा-काला ३१९
,, -कृष्ण ३१७
,, -नील ३१७
,, -रक्त ३१७
,, -राज ३१८
,, -श्वेत ३१७
धत्तूर ३१७
धत्तूरा ३१७
धत्तूरो ३१७
धनन्तर ३४२
धनबहुआ ८२
धनबहेरा ९८
धनियलु ३४
धनियाँ ३४, ७८७, ७९८–८००
धनिया का पत्ता ७४२
धने ३४
धन्नेरला ८२
धन्वन ३७२
धमगजरा ३२५
धमहर ४१२
धमासा ४११, ४१२, ८००
धमासो ४१२
धमाह ४१२
धमाहा ४१२
धरती फूल ७०३
धराख ५८५
धरेक ३३२
धरो ३८५
धव ५४०
धवई १०९
धवल ५४०
धवलपेड २७८
धवलबहुआ ८२–८३
धववृक्ष ५४०
धोंगुड ४८१
धा १०९
धाइफूल १०९
धाई १०९
धाउ या गाछ. ५४०
धाओला १०९
धाटिंग ९
धाणा ३४
धातकि १०९
धातकी १०९
धातूरा ३१७
धात्वादिवर्ग ६०२
धान ६३९
धानबहेरा ६८
धाना ३४
धानु ३४
धान्य ८००
,, -नया ६६१
,, -पुराना ६६१
धान्यमु ६३९
धान्यवर्ग ६३५
धान्याम्ल ७८४
धामण ५४०
धामडी ५४०
धामन ५४०

धामनागाछ ५४०
धामिन ५४०
धामोड़ा ५४०
धाय १०९
धाय के फूल १०९
धायटी १०९
धार जल ७४७
धाराकदम्ब ४९५
धावड़ा ५४०
धावड़ी ना फूल १०९
धावड़ो ५४०
धावणी १०९
धावस १०९
धावा १०९
धीतेलां ४८१
धीरा ८००
धुआंस ७२८
धुतुरा ३१७
धुतुरं ३१७
धुत्तूर ३१८
धुत्तूरा ३१७
धुन्दुल ६८४
धुव्रचिता २२
धूप १९७, २०८, ५२१
धूपडो २१२, ५२१
धूपसरल १९८
धूपसलसी १९८
धूमरास्मी ४५
धूलिकदंब ४९५
धेती १०९
धेबुनेश्चि २८२
धों ५४०
धोत्रा ३१७
धोनार कस्तूरी १८२
धोबी घास ३८५
धोबी की मट्टी १६६
धोली तलवणी ४६५
,, मुसली ३९१
धोलु जीरं ३१
धौं ५४०
धौरा ५३९, ५४०

न

नकछिकनी ४७४
नकली कलंबा १९१
नकुलकन्द ८२–८३
नक्तमाल ३५०, ३५३
नख २३७
नख-भेद २३७
नखमुचिप्प २३७
नखला २३७
नखी २३७
नखीगन्ध द्रव्य २३७
नग्गूद ६४९
नगड ३४४
नगोड ३४४
नची ६६८
नदियाँ-सह्य पर्वत से निकलने वाली ७५१
नदियाँ-हिमालय से निकलने वाली ७५१
नदियों का जल-मन्द बहने वाली ७५१
नदियों का जल-शीघ्र-गति से बहने वाली ७५१
नदियों की मछली ७२३
नदी ७५२
नदी-जल ७५५
नदी जामुन ५७१
ननवाल ४५८
ननजुन्द ५३१
नन्दिवृक्षमु ५३४
नन्दी ७०९
नदीवृक्ष ५१५–१६
नक्षारी ४२७
नयितयाग १०३
नबातुल खरखाश १४५
नबियल वोने २८७
नमक १५८
नमक काला १६१
,, दरिया १५८
,, शुद्ध १५४
,, साम्भर १५८
,, सिया १६१
,, स्याह १६१
नमकेसंग १५४
नमडबेरु ४२७
नमस्कारी ४५६
नमेरु २३१
नरकचूर ४७, ११८
नरकट ३७८
नरकल ५७५
नरवेल २८२
नरसल ३७७–७८, ८०१
नरिंचा ६६८
नरिप्पयरु २९७
नरियल ५५९
नरिविली ५८३
नर्तक ३७७
नर्मा ३७५–७६
नर्रा ७
नल ३७७–७८
नलतिग ४२७
नलभेद ३७७
नलिका २६६–६७
नलैक ६९१
नक्षजील कारा ३२
नक्षतुम्म ५२९
नक्षनोचिलि ३२३
नवणे ६५६
नवनीत वर्ग ७७४
नवमल्लिका ४८९
नवरत्न ६२५, ६२६
नवातुलकुल ३७४
नसोतर ३९७
नहरू १३१
नहानो समेरवो २८७
नांद्रुखीवड ५१५, ५१६

नांद्रुक ५१५
नाइरी ३७८
नाई ८२
नाक ७१०
नाकछींकणी ४७४
नाकशिंकणी ४७४
नाकुली ८२–८३, ८५
नाकुलीकन्द ८२
नाखून पर्य्यां २३७
नागकरिआ ३१३
नागकेशर २३२, ४९३
नागकेशर असली २३०
नागकेशर काला २२९–३०
नागकेशर पीला २३०
नागकेशर लाल २३०, २३१
नागकेसर २३०
,, (१) २३०
नागकेसरमु २३०
नागचंपक ४९३
नागचस्पा २३०
नागचांफा (वृक्ष) २३०
नागदन्ती ३९९–४००, ४०२
नागदमन ४२५
नागदमनी ४७३, ४७६
नागदौन ४७३
नागपाषाण ८२४
नागपुष्पी ४४३
नागपू ५०६
नागबला ३६७, ३७१
,, (१) ३७१
,, (२) ३७१
,, (३) ३७२
,, जड ३७१
नागमल्ली ४८९
नागमल्ले ४८९
नागमुस्तेलु २४४
नागरमथा २४४
नागरमोथ २४४
नागरमोथा २४३–४४
नागरमोथो २४४
नागरवेल २७२
नागला ४५८
नागवल्ली २७१
नागवेल २७२
नागवेली ४५३
नागसम्पिगे २३०
नागाली ४४३
नागीकपूर १७३
नागेश्वर २३०
नागेसर २३०
नागौ ५७०
नागोरी असगन्ध ३९३
नागौरी असगन्ध ३९४
नाटा ३५२
,, करञ्ज ३५२
नाडी का शाक ६६८
नाड़ीहिङ्गु ५२, ५५, ४५१–५२
नाणलू ३८०
नानुखा २५
नाभि ६२९
नायपालै ८१
नायुरुवि ४१४
नारङ्गी ५६६
,, -भेद ५६७
नारञ्ज ५६६
नारकरंडै ४७५
नारगील ५५९
नारजिल ५५९
नारदे हिन्दी २४०
नारल ५५९
नारली ५५९
नारिंग ५६६
नारिकेल ५५९
नारि (अ) पल ५५९
नारियल ५५८
नारियल-खीर ७२६
,, -प्रकार ५५९
नारिवेगाई ५४८
नारीहींग ५५
नारुवे ५४२
नारेमुष्क २३०
नालनिरेदु १०२
नालिताशाक ६६८
नाली ३७८
नालीनी भाजी ६६९
नालीची भाजी ६६९
नालु उपु १६१
नालुका २२५, २२९, २६६–६७
नाल्लेरू ४१८
नाशपार्ती ५९०
नासकागा ४४१
नासुगुन्नी ३५६–५७
नास्पती ५९०
निंब ३२९, ३३१–३२, ३३४
निंबतरु ३३४
निंब-भेद ३३१
निकोचक ८२३
निगड ३४४
निचनी २५८
निचुल ३६४
निन्द्रताछ २६७
निम ३२९
निमकशीश १५५
निमकशोर १६७
निमकसब्ज १५५
निमगाछ ३२९
निमुक ३९५
निम्बुप्रजाति ५९९
निम्मपण्डु ५९५
निरमुल्ली ४१७
निराधार ४४७
निर्गुण्डी ३४४, ८००
,, -कंद ३४५
,, जाति २५१–५२
,, नील ३४४

निर्गुण्डी बीज २५१
,, भारतीय २५२
,, भेद ३३४
निर्गुंधिवेरु ४१७
निर्मली ५८४
,, फल ८०१
निर्विश ९५, १०३
निर्विषा (षी) ८२९
निलघनंका ३९०
निलस्वंम्बु ७३
निलाविरै ४६७
निलीचेट्टू ४०६
निलेंसेदचि ३२६
निवरीवट्टु ६६०
निव्रल ३११
निशिन्दा ३४४
निशोत्तर ३९७
निशोथ ३९७, ७९९
निष्पाव ६४६, ६८८
निसोत ३९७
,, श्वेत ३९७
नींबू ५९५, ५९९
नींबू का पना ७४२
नीप ४९५
नीबं ३२९
नीम ३२९, ३३२
नीमचमेली ३३२
नीमो ३२९
नीरा ५६४
नीराब्रह्मि ४६१
नीरूह्मि १३५
नील ४०६
नीलकण्ठ ७१, ११८, १६९
नीलगाय (विशेष) ७०६
नीलचंपक ४९३
नीलज ४०६–७
नीलदूर्वा ३८५
नील निर्गुण्डी ३२०, ३२३, ३४४
नीलम ६२७
नीलवेमु ७३
नीलमह्याल् ३४४
नीलसैरेयक ८११
नीलाचित्रक २४
नीलाथोथा ७९८
नीलापराजिता ४५४
नीली ४०६
नीलीदूब ३८५
नीलीवृत्त ४०६
नीली हरियाली ३८५
नीलफर ४८४
नुकलेखाजा ५७५
नुग्गे ३४०
नुव्वुलु ६५२
नुल्लेरीतिगे ३१८
नेगलु २९२
नेग्गिलुमुल्लु २९२
नेतर ३६२
नेतिवीर ६८४
नेत्रबाला २३७
नेनुआ ६८४, ७९८
नेपाल ४०१
नेपालवेमु ४०१
नेपाली ४८९
,, धनियाँ ५६
,, धने ५६
नेपालो ४०१
नेमुक ३९६
नेरडुं चेट्टु ५७०
नेरदानचेट्टू ८०
नेरा २५८
नेरिंजिल २९२
नेरिअरिशिप्पाल २१५
नेरिंपुट्टी ३२७
नेरिवंगायम् १३६
नेरुंजी २९२
नेलकुम्बल ३८९
नेलगाह्नि ७५
नेलतडिगड्डा ३९०
नेलताल ३९०
नेलबुसरि ४६०
नेलवेड्डु ७३
नेलातेनगेड्डु ४६७
नेह्लगुम्मुड्डु २८८–८९
नेह्लि ११
नेह्लिकाय ११
नेह्लिकायि ११
नेह्लिमरं ११
नेल्लु ६२९
नेवर्ता ५४१
नेवला ७०६
नेवलिम् ४०१
नेवसुर्ख ६४७
नेवारी ४८९
नेवाली ४८९
नैचिट्टे ३६९
नैपाली ४८२
नोचि ३४४
नोनिया ६७०
नोनिहाद ७३
नोनीशाक ७९८
नोनीसाग ६७०
नोयाल ५७४
नोलवेल ८२, ८५
न्यंकु ७०६
न्हाना गोखरू. २९२

प

पंगानोम १५८
पंचमूल लघु २९४
पंजवगुस्त २५२
पंजनगुस्त ३४४
पंजासालब ८३५
पंडुक ७१४
पंडोलुं ६८३
पंपन, २८४
पंपरंनासा ५९६
पंपोनिया २८४

पंवः ३७४
पंवःदाना ३७४
पंवालेमंसु ५९४
पंवार १२५
पइलकुर ६७०
पक्र ५५४
पकर ३३५
पकरिया ५१८
पकरी ५१८
पकवानिमक १६७
पक्षियों के अण्डे ७१५
पर्त्ता ७१२
पखानभेद १०५
पगडमल्ले ३३५
पच्चांगन्नेरु ३१६
पच्चापेसलु ६४३
पच्चै अलरि ३१६
पच्चैयमेरू ६४३
पजदाव ६७९
पटवा ६६९
पटसन ८६, ८८ ४३०
पटाणी ६४९
पटियालोध १२८, १३०
पटुआ ८६, ६६९
पटुआशाक ६६९
पटुए का शाक ६६९
पटुवा ८८
पटेर ३८१
पटेरा ३८१
पटोल ६८६
पटोलपत्र ६७६
पटोलभेद ४३९
पट्टीलोध्र १३०
पठाणीलोद १३०
पठाणीलोधर १३०
पठानीलोध १३०
पठागीलोध्र १२९
पडर २७९
पडवल ६८३, ६८६
पडवलि ३९५
पडवास ८७
पडियालु २७९
पडुखी ७०८
पडुरनी २८०
पडेर २७९
पतंग १९२, १९३
,, धुनसरी १९३
,, सिंगापुरी १९३
,, सिलोनी १९३
पतिलेंबु ५९५
पत्तिचेट्टु ३७४
पत्थरचूर १०७
पत्थरफूल २४२
पत्रज २२८
पत्रीकपूर १७३
पथरचूर १०७
पथरी ४२१, ४२२
पदगोजी ४५
पदमचल ६२४
पदुमकाठ २०२
पदुव ६७९
पद्म ४८०
पद्मक २०२
पद्मकनुं लाकडुं २०२
पद्मकाष्ठ २०२
पद्मगुडूची २७०
पद्मगुलंच २७०
पद्मचारिणी ४८३
पद्मनाल ४८१
पद्मबीचि ५७७
पद्मबीज ४८०, ५७७
पद्मा ८००
पद्माक २०२
पद्माक्ष ५७७
पद्माख २०२
पद्मावती २६५
पद्मिनी ४८१
पन २८४
पनजोत २८१
पनडी २६५
पनखो ३३४
पनसकायि ५४५
पनिविर ४६९
पनिग्रान्ला ५७३
पन्निवरगु ६५७
पनिसि (स) गा ४७०
पनेरा ३६१
पनेवार १२५
पनैमरम् ५६४
पन्ना ६२७
पपरिया कत्था ५२६
,, खैर ५२६
पपरी २७९
पपीता ८२९
पपेन ८२९
पप्परमुल्ली २८८
पबड़ी ४८०, ५७७
पमार ६७५
परंगिसाव्राणि ५२१
परङ्गिचेक्कई ४८
परपट ३२५
परपलकं ३२७
परगी २८०
परवन ८६
परवर ६८६, ७९८
परवर कडवा ६८६
परवर का नाल ६८६
परवर का फल ६८६
परवर की जड़ ६८६
परवर के पत्ते ६७६, ६८६
परवल ६८६
,, -वन्य ६८७
परवा ३१२
परसाउशां ४४४
परस्यांवशां ४४४
परारी २८०
पराशपिपुल ५१५

परास ५३६
परिकिगड्डु ५७८
परिपाठ ३२५
परिव्याध ७९९
परुत्ति ३७४
परुपुकिरैं ६६४
पेरेरारूट ३९६
परेवा ७१५
परैर २७९
परोर ६८६
परोरा ६८६
पर्णबीज १०७
पर्णमृग ७०५
पर्पट ३२४–२६
„ (१) ३२५
„ (२) ३२५
„ (३) ३२६
„ (४) ३२७
„ (५) ३२७
„ (६) ३२८
„ -उत्तर प्रदेश ३२४
„ -बंगाल ३२४
पर्पटका ३२८, ३२८
पर्पटी २६५–६६
पर्पदागम ३२५
पर्पोटी ३६०
पर्लबाली ६४१
पर्वतनिंब ३३१, ३३४
पलता ६८६
पलवल ६८६
पलस ५३६
पलांडु वन १३६
पला ६६८
पलाकोडसा ३४७
पलाश ५३६
पलाशगाछ ५३६
पलाशगोंद ५३६
पलासु ५३६
पलुपन्दु ३७१
पलुप्पकै ४६६
पलै ५७६
पल्ल ५७६
पल्लेरु मुल्ल २९२
पत्रल मल्लिकै ३३५
पवांड़ १२५
पवांर १२५
पविझमल्लि ३३५
पशुमंजल ११६
पसर कटाई २९०
पसरन ४२४–२५
पसुपु ११४
पसुपुवर्णे ५३३
पहाडवेल ३९५
पहाड़ीकागजी ५९४
पहाडीगंदना ८३०
पहाड़ीपीपल १६
पहाडीपीलु ५९२
पांगनिमक १५८
पांगा १५८
पांगारा ३३४, ४९९–५००
पांच २६६
पांडेरवो ३३४
पांढरकुडा ३४७
पांढरा खैर ५२६
पांढरी मुसली ३९१
पांढरी सांवर ५३९
पांढ़रे जीरे ३१
पांढरेमिरे १७
पांदडियो २८५
पाईट ५१८
पाकी ५१८
पाकुर ५१८
पाख (क) र ५१८
पागल ६८३
पागल की दवा ८४
पाचक ९१
पाचपट २६६
पाची २६६
पाचोली २६६
पाटचोली २६६
पाटलाचार २७९
पाटलाभेद २७८, ५४४
पाटलासिता २७९
पाटा ३९५
पाटुली २७९
पाठ ३९५
पाठा-दक्षिण की ३९७
„ -भेद ३९५
„ -राज ३९५
„ -लघु ३९५
पाठी ३९५
पाठीन मछली ७२०
पाडर २७९, २८०
पाड़ल २७९, ३९६
पाडावल ३९६
पाढ ३९५
पाढ़ल २७८–७९
पाढल सफेद २८०
पाढी ३९४–९५
पाणकंदो १३६
पाणियनाकु ३९२
पाताल अगंधि ८२
„ कोहड़ा ३८८
„ गरुड़ ४५३
„ गरुड़ी ३९५, ४४८–४९
„ गरोरी ४४९
„ पद्मिनी ९५
पातेरचूर १०७
पाथर कुची १०७
पाथरचूर १०७
पादि प्राणी एवं उनका मांस ७१०
पादिरी २८०
पादी ७०६
पादेलोण १६०
पान २७१–७२

पान आंवला ५७३
„ की जड़ २५५
„ -जातियाँ २७२
पानन ५४८
पानभेद-धन्वन्तरि निघंटूक्त २७२
पानभेद-राजनिघंटूक्त २७२
पानमौरी ३६
पानांचा ओंवा १०७
पानि आमला ५७३
पानिजामा ३६३
पानिफल ५७८
पानी आंवड़ा (रा) ५७३
„ आंवला ५७३
„ गम्हार २७८
पापड़ ७२९
„ चने का ७२९
„ तला हुआ ७२९
„ मूँग का ७२९
पापर ३५०, ४०३
पापरी ३५३
पाप्टी ३२५, ८२१
पाम्रा ८२१
पारद ६१३
पारल २७९
पारवेल ३९५
पारस पीपर ५१५
„ पीपलो ५१५
पारसीक वचा ४५
पारावतपदी ७९९
पारिजात ३३४
पारिजातक ३३४–३५
पारिजाता ३३५
पारिभद्र ३३४, ५००
पारिभद्रक ३३४
पारिस पीपल ५१५
पारीष ५१५
„ पीपल ५१५
पारुल गाछ २७९
पालक्क ६७२
पालक्क शाक ६६८
पालक ६६८
„ प्रकार ६६८
„ शाक ६६८
पालक्य ६६८
पालख ६६८
पालखनीभाजी ६६८
पालते मादार ३३४
पालमानु ५७६
पालसह ५८०
पाल सुगन्धी ४२७
पालो २६९
पाल्वल जल ७५४
पावटे ६४६
पाशुपत ४९४
पाषाणभेद ७१, १०५, १०७–८, ४५१
पाषाणभेदक १०५, १०८
पाषाणभेदी १०७
पासनगाछि २६१
पिंगवी ९०
पिंडार २७८
पिंडारी ६९१
पिंडारू ६९१
पिंपरी वृक्ष ५१८
पिंपल ५१४
पिंपली १५
पिंवली कण्हेर ३१६
पिंवळे चन्दन १९०
पिऊँ ६३१
पिचि ४९१
पिचुक्कु ६८४
पिच्छिला ८००
पितवन २८७
पिठवण २८७
पिठवन २८६–८७
पिठोनी २८७
पिण्ड खजूर ५८७
पिण्ड खजूरी ५८६
„ खजूंरी ५८७
पिण्डार ६९०, ६९१
पिण्डालू ६९०, ६९१, ६९४
पिण्डीतक ७९८
पितकारी ८१
पितरो २२
पितवन २८७
पितारी २७८
पितालि २७८
पितोहरी ३९७
पितौंजिया ५३०, ५३१
पित्तपापड़ा ३२३, ३२५, ३२७, ६७५
पित्तपापड़ा-भेद ३२४
पिनैमारू २०८
पिक्का ५७९–८०
पिपरमिन्ट ८२९
पिपुल १५
पिप्पल चेट्टु १५
पिप्पल भेद ५१४
पिप्पलि १५
पिप्पलीवर्ग २५१
पिप्पलु १५
पियाज १३५
पियाज सहराई १३६
पियाबांसा ५०३
पियारांगा ४३२, ८३४
पियाल ५७५
पियाशाल ५२४
पिरङ्गीचेक्का ४८
पिरालो ६९१
पिरिना ३६९
पिरे ५४२
पिल़खन ५१८
पिलची ८७
पिलपिल दराज १५
पिलु ५९१
पिलो वालो २६१

पिल् गुष् घार्षं ८०
पिल्पिले अस्वद् १७
„ गिर्दं १७
पिल्लपेसर चेट्टु २९७
पिल्ली अड्डगु ३५७
„ आंड्रा ३९३
पिवला चांफा ४९२
पिवलावाला २६१
पिवली तिलवण ४६५
पिशाचकार्पास ८१२
पिशाचिथामर ४८६
पिसा ८२९
पिस्ता ८३०
पिस्ते का फूल ८३०
पीआरंग ४३३
पीत चन्दन १९०
पीठी ७२९
पीतकोविदार ३३८
पीतबला २६७
पीतबेडेला २६८
पीतमूला ६२४, ८३४
पीतयूथिका ४९२–९३
पीतल ६११
पीतशाल ५२४
पीतहुरहुर ४६४
पीप ५१८
पीपर १५, ५१८
पीपल १५, ५१३-१४, ७९९
पीपल छोटी १६
पीपल दराज़ १६
पीपल पहाडी १६
पीपल बड़ी १६, २०
पीपल सेद् ८०१
पीपलवृक्ष ५१४
पीपलो ५१४
पीपुल १५
पीयूष ७६३, ७६४
पीला कनेर ३१६
पीलाकेवड़ा ४९८
पीलाचन्दन १९०
पीलाचित्रक २२
पीलाधतूरा ९६
पीलानागकेशर २३०
पीलीकपास ८१६
पीलीकरेण ३१६
पीलीजडी ४३३
पीलीजाई ४९१
पीलीतलवणी ४६५
पीलीबूटी ३७०
पीलीसरसों ६५४
पीलु ५९१–९२
पीलु-वड़ा ५९१
पीलुगाछ ५९१
पीलुडी ४३८
पीलुनागकेसर २३०
पीलुपर्णी ४२५, ४३७, ७९९
पीलुफक्षा ३९५
पीलोकांटारीयो ५०३
पीलोचंपो ४९३
पीलोस मेखो २८७
पीवरी ८१३
पुंई ६६५
पुंकु ३५०
पुं कुटज ३४७
पुंगारे ७७
पुंगु ३५०
पुंडरीक ४७९
पुईशाक ६६५
पुखराज ६२७
पुक्ककाया ५६०
पुडलै ६८६
पुडोन ८८
पुण्डरीक २६७
पुण्डेरी २६७
पुतिका ५८१
पुत्रजीव ५३१
पुत्रजीवक ५३१
पुत्रजीवी ५०१
पुथोरिन १०३
पुदीना ८३०
पुनःसू ४८७
पुनर्नवा ४२१–२३
„ कन्द सहशमूल ४२३
„ नील ४२१
„ भेद् ४२१–४२३
„ रक्तपुष्प ४२१, ४२२
„ लताजाति ४२३
„ लाल ४२३, ७९८
„ श्वेत ४२१–२२
पुनाइक काली ३५७
पुनुगु १८५
पुनुगुपूने १८५
पुनक्कशि ३५७
पुन्नागवृक्ष २३२
पुपम् ५५४
पुमक्की ५३३
पुमरम् ५५४
पुरइन ४८०
पुरइनपाढी ३९५
पुलई ५२९
पुलि ५९८
पुलिचित ६७१
पुलियोरे ६७१
पुशतकुपिविट्टल् ३५
पुशनीकैं ६७९
पुष्करमूल ८०, ९२, ९५
पुष्प काशीश ६२१
पुष्प फल ८००
पुष्पवर्ग ४७९
पुस्तकाय ४०३
पूग ५८२
पूडोगंद १८५
पूतिकरंज ३५०, ३५२–५३
पूतिलवण १६७
पूतिहा ८३०
पून्त ११०
पूर्वीइलायची २२१

पूवरड्डु ५१५
पृथक्पर्णी ४३५–३६
पृथुरोमा ७१०
पृश्निपर्णी २८६, २८७
„ (१) २८७
पृश्निपर्णी (२) २८७
पृषत ७०६
पेंगी ९०
पेंचीत्तर २२
पेंडिदोंड १०६
पेंढारी ६९१
पेंढ् ६९१
पेंढुर ६९१
पेअट्टिस ५१७
पेटारी ३७०
पेठा ८००
पेड़ा ६७९
पेड्डुपिटा ५८७
पेड्डादुम्पराशष्टूकम् ४५
पेड्डापल्लेरु २९३
पेत्थरी ५०
पेथरा ५०
पेथिमसरी २६५
पेदिकारि ४०३
पेद्दजिलकुर्रा ३६
पेद्दनेरडि ५७०
पेद्दमानु ३३३
पेद्दाआरि ३३८
पेद्दायेलाकी २२१
पेयक्कू मुट्टी ४०३
पेयाज १३५
पेरंडै ४१८
पेरस्तइ ४५
पेरामुटिवेर २३७
पेरारद्दा ४५
पेरालु ६९१
पेरिक्के ५९०
पेरिय एलक्के २२१
पेरियमेलु-मिच्चई ५२४
पेरुंग्यम् ४१
पेरुंगायम् ४१
पेरुनेरुंजि २९३
पेरुमरं ३३३
पेरुमरुत्तु ३३३
पेरुम्मोलि ५९७
पेरेलम २२१
पेलाकायि ५५३
पेल्लीचित्रमूल २२
पेवस ७६३
पेवा ७०१
पैंढर ६९१
पैदाचिरे ६७६
पैम्नेरु गडड्डु ३९३
पोंमु तूतै ३९५
पोई ६६५
पोई का साग ६६५
पोका ५६२
पोखराज ६२७
पोगड ४९४
पोटगल ८०१
पोटल ६८६
पोटलकाया ६८३
पोडापत्री ४४३
पोडोफाइलीन ८२१
पोत्तिवुप्पु १६७
पोथी ६६५
पोनागम ६६
पोन्नं ३५०
पोन्नान कोट्टइ ५२९
पोन्नावीर ६७६
पोन्नुम्मत्तम् ९६
पोप ६६५
पोपटी ३२५, ३६०
पोपनस ५९४
पोपल १०५
पोपिल ५६२
पोफल ५६२
पोम १३१
पोय (शाक) ६६५
पोय का साग ६६५
पोयणानाबीज ५७९
पोयणु ४८४
पोप्कर ८०, ९४
पोस्त १४५–४६
„ -काला, लाल, सफेद १४६
पोस्त के डोडे १४५
पोस्तखै ९१
पोस्तदाना १५४
पोस्तबीज १५४
पोस्त बेरूँ पिस्तः ८३०
पोस्त लाल १४७
पोस्ता १४५
पोस्ता का तेल ७८१
पोस्तादाना १५४
पोस्तार गाछ १४५
पोस्तिल २५६
पोस्ते की डोडी १४६, १५४
पोस्ते कोकनार १४५
पोस्तोढेरी १४५
पोहकरमूल ९५
पौखीन १५
प्याज १३५
प्याज जङ्गली १३६
प्याज जङ्गली श्वेत उपजाति १३६
प्याज-लाल, सफेद १३५
प्रकीर्य ३५०, ३५२
प्रतिविषा १२७, ६३०
प्रतिसोमा ४४७
प्रतुद ७०५
प्रतुद पक्षी एवं उनका मांस ७०८
प्रदीपन विष ६३१
प्रपौण्डरीक २६७
प्रवाल ६२५
प्रश्नी ४८६

प्रसरनी ४२५
प्रसह ७०५
प्रसह पक्षी एवं उनका मांस ७०८
प्रसारण ४२५
प्रसारणि ४२५
प्रसारणी ४२५
,, -दक्षिण में ४२४
प्रसारिणी ६४
प्राचीनामलक २५५
प्रियङ्गु २४८–५०, ४८८, ७९९–८०१
प्रियंगु (१) २५०
,, (२) २५०
,, (३) २५०
,, प्रकार २४९
,, -फल २५१
,, -फूल २५०
,, बम्बई २४९–५०
,, मझा २५०
प्रोष्ठी मछली ७२२
प्लव ७०६
प्लेग की बूटी ८२३

फ

फंकी ४०८
फगडानो वेली ३८८
फगियो ३८८
फजल ६९७
फटकिरी ६२०
फडेना ५७०
फणस ५५५
फणिझक ७९८
फसरसुवा ३२७
फनस ५५५
फरंगीधतूरा ९६
फरवा ८६
फरस ८६
फरहद ३३४, ५२८
,, उपभेद ३३५
फरहद जाति ३३५
फरासियून ८३०
फरिका ६४९
फरीद बूटी २९३,३७१,४४९
फरेन्द्र (न) ५७०
फल्मोदिक ३८९
फलुङ्गु ८८
फल्सा ५८०
फलेन्द्रा ५७०
फल्गु ८०९
फाजा २०२
फाणित ७९५
फारमोसा कपूर १६५
फालसह ५८०
फाल्सा ५८०
फिटकिरी ६२०
फिनास ९
फिरीका ६४५
फिल्लमुरँ ३४७
फिल्जहूर: १२२
फिलझरह ११९
फिलफिले अवीद् १७
फिल्फिल् अस्वद् १७
,, गिर्द १७
,, दराज १६
,, स्याह १७
,, रसोदाय १७
फुंट ५५८
फुटकरी ३९७
फुटकी ६६०
फुटि ५५८
फुन्दु के फारसी ५२९
फुवहतु ११०
फुल्वाह ११०
फुल्ल संमाही ५६८
फुलौरी ७३३
फूट ५५८
फूट-भेद ५५८
फूम १३२
फूलप्रियंगु २५०, ७९९
फूला लवण १६२
फेनी ७३८
फेरूला ४५२
फोण्टा ७९९
फोत्र ४४५
फोफिल ५६३
फौहुल अन्नागीन ११०

ब

बंखोर ३६५
बंग १४२
बंगारसु ११२
बङ्गाल कार्डेमोम् २२२
बंगालकिनो ५३६
बंगालीरास्ना ८१
बंगि-अकु १४२
बंगीयब्राह्मी ४५३
बंगीयरास्ना ८०
बंद ३६३
बंदरकरम ६२२
बंदा ४४९
बंदाक ४५०
बंदुक २५६
बंदेलग ४६२
बंबई की जायपत्री २१८
,, जायफल २१८
,, -रास्ना ८१
बइझि गाछ ५७७
बइर ५७२
बक १९३
बकइन ३३२
बकमकाठ १९३
बकमकाष्ठ १९३
बकयुन ३३२
बकरा (री) ७०९, ७१५
बकरी-बिना ब्याई ७१५
,, के छोटे बच्चे का मांस ७१६

बकरे का मांस-बधिया किये ७१६
बकरे का मांस-बूढे ७१६
,, -व्याधि मृत ७१६
बकरे का मुण्ड (शिर) ७१६
बकाणानिंब ३३२
बकान लिंबडो ३३२
बकायन ३३२
बकुची १२४
बकुतुल हुलका ६७१
बकुल ४८२, ४९४
,, -जाति ४९४
,, -बृहद् ४९४
बकैनु ३३२
बकोरचा २८२
बखमा १२७
बगदास १८५
बगला ७०९
बगुली ७०९
बगेरा ७१३
बच ४३
बचनाग ६२९
,, -तेलिया ६३०
,, -सफेद ६३०
बच्चलि ६६५
बच्छनाग ६२९
बज ४३
बजरुल २९
बजरुलकतान ६५३
बजरुल् खरखाश १५४
बजरुलखस ६५२
बजरुल खरक २९२
जज़रुल बंज २९
बज़रुलविनग २९
बजरुलहस्बह ३७
बजरुल हुम्बा ३७
बजुलबंज २९
बजे ४३
बजौरा ५९३
बज्वाज २१८
बंज २९
बटेर ७०७, ७१३
बटेर भेद ७१३
बटेरा ७१३
बड ५१३
बड़गाछ ५१३
बड़गोखरू २९३
बड़जाम ५७०
बडणुनी ६७१
बड़हर ५५५–५६
बड़ाइलाची २२१
बड़ाकुलंजन ४५
बड़ागरूं मीठ १५८
बड़ागोखरू १८१
बड़ाचिरायता ७४
बड़ानल ३७८
बड़ानीबू ५९४
बड़ानोनिया ६७०
बड़ापीलु ५९१
बड़ाभखड़ा (रा) २९३
बड़ामसिया ६८३
बड़ासाल ५२१
बड़ासेम ६८८
बड़ीइन्द्रायण ४०३
बड़ीइलायची २२१, ८००
बड़ीइलायची भेद २२२
बड़ीकंघी ३७०
बड़ीकटाई २८८
बड़ीकटेरी २८८, ८०१
,, भेद २८८
बड़ीकौड़ी (पा०) ७१०
बड़ीगुमची १९२
बड़ीचोबचीनी ४९
बड़ीजलकुम्भी ४८६
बड़ीजामुन ५७०
बड़ीतोरई ४६८
बड़ीदन्ती ४०१, ८००
बड़ीदाख ५८६
बड़ीपाठा ३९५
बड़ीपीपल १६, २१
बड़ीमांही ८७
बड़ीमाई ८६–८७
बड़ीमुई ८७
बड़ीमूली ६९६
बड़ीलोणा ६७१
बड़ीशतावर ८००
बड़ीशेप ३६
बड़ीसरसटीलत २७०
बड़ीसोपु ३६
बड़ीसौंफ ३६
बड़ोसियालकांटा ९६
बणाबेल ३८६
बथवों ६६४
बथुआ ६६४
,, दोनों ६६३
बथुवा ६६४
बथेन १०५
बदनिके ८०
बदने ६९०
बदर ५७२
,, भेद ५७२
बदाबडम ३०४
बादाम ५८८
बन अजवायन २८
बनउच्छे ९०
बनउड़द २९७
बनउड़दी २९७
बनउर्दी २९७
बनकपासी ३७६
बनकरेला ६९१
बनचिञ्चा ३५३
बनजोवान २८
बनटेपारि ३६०
बनतुलसी ५११
बननील ४०८
बनपत्रक १०५

बनफसा ४३२
बनफ्शा ८३०
बनबलनग ६३१
बनबिलाव ७०७
बनभंटा २८८–८९
बनभौंटा २८८
बनमहुआ ५७९
बनमुरगा ७१४
बनमूंग २९७
बनमेथी ३९
बनरीठा ३११
बनशुल्फा ३२५
बनसन ४३०
बनसौंफ ३५
बनहरदी ११७
बनहलद ११७
बनहलदर ११७
बनहलदी ११७
बनहलुद ११७
बनहाटक २८४
बनारसी राई ६५६
बनोमाष ६४३
बन्दरलाटी ६८
बन्दा ४५०
बन्दाल ४६९
बन्धूक ५०६
,, भेद ५०६
बब्र ३४४
बपोरियो ५०६
यबंरी ५१२
बबरंग ५२
बबरि ५१२
बबुन १६९
बबूर ५२८–२९
बबूल ५२८
बब्बूल ४९९
बभनेटी १०२
बयदा ९
बरंग काबली ५२
बरंजकावली ५२
बरंजासिफ ८३२
बरगंडी पिच १९९
बरगद ५१३
बरगु ६५७
बरजद २०८
बरणो ५४२
बरतुली ४७३
बरना ५४२
बरबटी कलाय ६४५
बरबेल ४७३
बरमांदा ४५०
बरसवोडी ४१३
बरहण्टा २८८
बरहर ५५३
बरहल ५५३
बरा ४५८
,, -उरद का रसदार ७३०
,, -उरद का सूखा ७३०
,, कांजी का ७३०, ७३१
बरागाच्छ ४०२
बरास कपूर १७३
बरिदेचेट्टु ३३४
बरि बोज ४३
बरियार ३६७
बरियारा ३६६–६७
बरियाल ३६७
बरी, उरद की ७३१
,, -पेठे की ७३१–३२
बरुण गाछ ५४२
बरे–इमली के ७३१
,, -मूंग के ७३१
बर्कुलख्याल १४२
बर्गनंबोल २६२
बर्द ४८८
बर्द अहमर ४८८
बर्बटी ६४५
बर्बरी ५१२
,, भेद ५११
बरँ ११२, ६५९
बरेँ ११२, ७९८
बलंबुरी ४३७
बल २७४, ३६७
बलदाणा ३६७
बलरक्कसी-गिडा २३७
बलसाँ ८३१
बला ६४, ३६७
बलाचतुष्टय ३६६
बलाडुमूर ४३२
बलादुर १३९
बलाबीज २५३
बलाभेद ३६७
बलामर ५६६
बलिकेल ४१७
बलेलज ९
बलेला ९
बलेले ९
बलैलाह ९
बल्पिआ १०५
बल्ला ९
बल्लार ६४६
बल्लौ ४६२
बवंग १३५
बसन्त कद्दिमि चेट्टु ७७
बसर १३५
बसलकिरै ६६५
बसारी ५१८
बसेडो ४२३
बस्तगंधा ३७२
बस्तज २१३
बसवास (सः) २१८
बस्ल १३५
बहड़ा ९
बहमन लाल ६४
,, सफेद ६४, ८३१
,, सुर्ख ८३१
बहुरी ७४४, ७४५
बहुवार ५८३

बहेड़ा ९
बहेरा ९
बहेला ९
बांगडखार १६६
बांझककोडा ४६६
बांझकंटोला ४६६
बांझकर्टोली ४६६
बांझखेखसा ४६६, ६९१
बांडागुल ४५०
बांडा जायफल २१६
बांदगान ६९०
बांदा ८०, ४४९–५०
,, -भेद ४५०
,, (१) ४५०
,, (२) ४५०
बांदो ४५०
बांब ३७६
बांबू ३७६
बाँश ३७६
बांस ३७६,४५२,७९९,८०१
बांस-अंकुर ३७६
बांस-चावल ३७६
,, -बीज ६५९
,, कपूर ५८
,, काबर ५८
बाकस ३२१
बाकुची १२४
बागा-भेरेन्दा ३०२
बार्गा सलाद ८१७
बाघ ३६५, ७०६
बाघनोंकी ४४०
बाघभेरंड ३०२
बाजंजान ६९०
बाज ७०८
बाजबारग ३०९
बाजरूज्जरर्जार ३९
बाटी ७२८
बाण ५०२
बाणपुष्प ५०२
बाथरो ६६४
बादंगान वर्री २९०
बादनीका ४५०
बादर २५६
बादशाही सालब ८३५
बादाम ५८८
,, कच्चा ५८८
,, कडुवा ५८९
,, जंगली ५८९
,, देशी ५८९
,, पका ५८८
,, मीठा ५८९
बादावर्द ४१२, ८३१
बादियाँ ३६
बादियाण रूमी ८३१
बादियान ३६
बादियान खताई ८३२
बानर ७०७
बान् ३३२
बान्धुली ५०६
बाफली ६७२
बाबची १२४
बाबला ५२९
बाबिरंग ५२
बाबुई तुलसी ५१२
बाबूला ८३२
बाभूल ५२९
बामनहाटी १०४
बायबिरंग ५२
बायभिडङ्ग ५२
बायभिरङ्ग ५२
बायविडङ्ग ५२
बायविरङ्ग ५४
बारजद २०८
बारहसिंगा ७०६, ७११
बारिजमु ३३४
बारीक बेलदोड़े २२२
बार्बटी ५४
बार्बर ५१२
बालिं अरिसि ६४१
बालंत निंब ३२९
बालंतशोप ३५
बालकद्दू ७०
बालकम् २००
बालकेकुबति ५७७
बालछड़ २४०
बालपत्र ८००
बालबच ४४–४५, ९५
बालम खीरा ५६१, ५६२
बालमुश्क १९९
बालबेखण्ड ९५
बालहरडी ७
बालहरीतकी ७
बाला २३७
बालाडुमूर ४३२
बालुक २६३
बालू ६२१
बालूका साग २६३
बाल्हीक ७९८
बावंजी ९०
बावकुचि १२४
बावची १२४
बावडिङ्ग ५२
बावड़ी का जल ७५३
बासक ३२१
बाहवा ६८
बिंदाल ४६९
बिखेमहक ६५
बिछुआ ४४०
बिज ४३
बिजताडक ४०९
बिजोरा ५९३
,, नींबू ५९३
बिजोरू ५९३
बिजौरा ५९३
,, नींबू ७९८
,, भेद ५९३
बिड १६०

विद्रुताडक ४०९
विधारा ४०९
बिन १४२
बिनौला ३७४
बिबला ५२४
बिब्बा १२९
बिभीषण ३७१
बिम्बल २४३
बिरअ काबली ५२
,, काबुली ५२
बिरआसिफ ८३२
बिरजेलासा २०८
बिरिया (आ) नमक १६०
बिरिया सञ्चर नमक १६०, ८०१
बिरिया सोंचर नमक १६०
बिरोजा २०८
,, शोधन १९८
बिर्मी २५६
बिलङ्गरा ५७७
बिल २७५
बिलनलिता ६७२
बिलस्थ प्राणी ७०५
बिलाईकन्द ३८९
बिलाडीनो रोम ७०३
बिलावुर १२९
बिलार ७०६
बिलिगम्बागिरि ५३४
बिलिनेबि ३४४
बिलिबूरग ५३९
बिलियातावरे ४८०
बिली लोध्र १३०
बिलेशय प्राणी ७०६
बिल्लीलोटन २४०
बिल्वपंडु २७४
बिल्वपत्रम २७४
बिल्वम २७४
बिस ४८१
बिसौंटा ३२१
बिहरोजा २०८
बिही ८३२
बिहीदाना ८३३
बीखेवाला २३९
बीजक ५२४
बीजबन्द ६४, २५३, ३६७–६८, ३७०
बीयों ५२४
बीर ५७२, ६८५
बीरुंड ६००
बील २७४
बीली २७४
बीसाबोल ६२३
बुइ १०६
बुकन ४७०
बुकन बूटी ४७०
बुक पुचेट्ट १९३
बुज ३३७
बुजगुअ ८३०
बुट्टशशी ३८२
बुतले ५४०
बुदबुर ४४५
बुदिकरकोम ३७५
बुदुल २५६
बुध्ना ३१०
बुनोखुर्स ६४७
बुन्दक हिन्दी ५२९
बुराकुन्दा ४८९
बुरुगचेट्टु ५३७
बुरुगु ५३९
बुरुकतुरहमका ६७०
बुरुफ येह मिजई ६७२
बुल्लेल्लु ६५२
बुशपल २१६
बूंट ६४९
बूँदी के लड्डू ७३९
बूएजहूदान २०५
बूटी १४२
बूटीकासमर २७८
बूढीघासी २५०
बूर १०६, २६१
बूरा ७९७
बृहती २८८–८९, ४३९, ६९०
बृहतीद्वय २८९
बृहती भेद २८८–८९
बृहत्कक्कोल १८४
बृहत्पञ्चमूल २८५
बृहदेला ८००
बृहदग्निमंथ २८२
बृहद्दन्ती ३९९
बृहद्बकुलः ४९४
बेंगसाग ४६१
बेंत ३६१–६२
बेंदर ३८८
बेख-इ-बनफ्शा ९५
,, बरंदह २२
,, बरंदा २२
बेखबुरिंदा २२
बेगुन ६९०
बेट्टदबेउ ३३२
बेठागोखरू २९२
बेठी भोरिंगणी २९०
बेडा ९
बेडेला ३६७
बेडई ७२९
बेतुया ६६४
बेदअंजीर १८५
बेदरू ३७६
बेदलैला ३६३
बेदसादा ३६३
बेना २३९
बेवरङ्ग ५४, ८३३
बेर ५७१–७२, ७९९
,, -भेद ५७१
,, -साधारण ५७२
बेरजो २०८
बेर पत्थर ८४१

बेरा ५७९
बेरिकाय ५९०
बेरिङ्ग १०३
बेरी ३५९, ५७९
बेल २७४
बेलकंगु ४३६
बेलकम ४३६
बेल का फल ५६५
बेलजंगली २७५
बेलन्तर ४७३
बेलपत्रे २७४
बेला ४८९–९०, ४९७
,, -प्रकार ४९०
,, -भेद निघण्टुओं में ४९१
बेलियापीपर ५१५, ८०१
बेलियापीपल ५१५
बेलो २७४
बेलकुनुरिकं ५२१
बेशुलि १३१
बेविनमर ३२९
बेसन ७३३
बेहकल काकेर ५७७
बेहड़ा ९
बेहमनबर्री ३९३
बेहरी ९
बेहहिंदीं २७४
बेहाड़ा ९
बेहेड़ा ९
बैंगन ६८९–९०
,, -अंगारे पर भुजा ६८९
,, छोटा फल ६८९
,, जंगली २८९
,, -तैल लवणयुक्त ६८९
,, -बड़ा फल ६८९
,, -सफेद ६८९
बैंगुन ६९०
बैची ५७७
बैंत ३६२
बैर ५७२
बैल ७१६
बोंगा ३७६
बोंडुल ३६०
बोकेनल ३७८
बोकोम १९३
बोड़ा ६४५
बोडातरपु ४१३
बोडीअजमो २७
बोडीअजमोद २७
बोडीयो कल्हार ४१३
बोण ३७४
बोनझाऊ ८७
बोनमेथी ३७१
बोस्मजेमुड्ड ३०९
बोर ५७२
बोरक १६९
बोरीचे झाड ५७२
बोरुनागोडा ४४२
बोरो २७९
बोल ६२२
बोलसरी ४९४
बोलो २७४
बोल्कोबक २७७
बोहेरा ९
बौजमासम ३१७
ब्रह्मदण्डी ८३१
ब्रह्मदण्डी चेट्टु ९६
ब्रह्मदण्डु ९६
ब्रह्मपुत्र ६३३
ब्रह्ममाण्डूकी ४६२
ब्रह्ममेडिचेट्टु ५१७
ब्रह्मयष्टि १०२
ब्रह्मयष्टिका १०४
ब्रह्मी ४६१
ब्राह्मणी ७९९
ब्राह्मी ४५२, ४६१
ब्राह्मी उ० प्र० ४६१
ब्राह्मीभेद ४६२
ब्राह्मी वंगीय ४६१
ब्राह्मीशाक ४६१
ब्रिंडाओ ६००
ब्लेओफोरे ७०३

भ

भंग १४२
भंगरा ४२९
भंगरैया ४२९
भंगी १४२
भखड़ा २९२
भखर २९२
भटकटेया ९६
भटकटैया २८९–९०
भटबेरा ५७९
भटमिल ९६
भटवांसु ६४६
भटेउर २५४
भट्टा ६३९
भण्टा ६८९, ६९०
भतुआ ६७९
भद्रमुंज ३८०
भद्रमुष्टि २४३
भद्रमुस्ता २४३
भरभुरवा ९६
भरवन ३४४
भिव्य १२४
भव्य ८३३
भसींड ४८१
भसींडा ७०२
भांग १४२
,, स्त्री, पुरुष जाति १४२
भाँगरा ४२९, ७९९
,, -कृष्ण-नील-पीत श्वेत ४२९
भांगरा भेद ४२९
भांगारूड ४७५
भांगरो ४२९
भांट २५४
भाकुर मछली ७२०
भाकुरा ४०५

भाजी ६६६
भाटवण ४६५
भाड्ग्ङ्गी १०२
भाण्डीर २५४
भात ६३९, ७२४
,, -विना धोये, माँड निकाले का ७२४
भाफली ६७२
भाभिरङ्ग ५२
भारंग १०२
भारंगा १०३
भारंगी १०१–१०४ ७९९–८००
भारंगी (कोंकण) १०४
भारंगेली ५४
भारतीय-ओट ६४१
,, दालचीनी २२९
भारद्वाजी ३७५–७६
भारांगमूल १०२
भारिङ्गी १०२
भारिंगिके चेट्टु ५४२
भार्गी १०२
भालु ७०६
भावूर्डा ४७५
भिर्डा ८८
भिरण्ड ६००
भिलामो १३९
भिलावा १३९, ७९८–९९
भिसें ४८१
भीमराज ४२९
भीमसेनी कपूर १७३
भुंई आमला ४६०
,, आम्ला ४६०
,, ओकरा ४७०
भु (बु) इकल्लान १०६
भुइकांदा १३७
भुइकुम्हड़ा २८८
भुइजाम १०२–३
भुइडसूर ४३३
भुइ शेवरा २८५
भुई आंवली ४६०
,, उम्बर ५१७
,, घोल ६७०
,, चिकणा ३७१
,, छत्ता ७०३
,, छाति ७०३
,, डुमूर ४३२
,, फोड़ छत्ता ७०३
,, बल ३७१
,, रिंगणी २९०
,, सर्पटी ६७१
भुजिया चावल ६३९
भुरु कोहलु ६७९
भुरुङ्गी १०३
भुर्युपाडल ४४९
भूँजी मछली ७२२
भूआमला ४६०
भूआमला भेद ४६०
भूकदंब ४९५
भूचम्पक ४९३
भूजपत्र ५३५
भूतकर्शी ५४५
भूतजटा २७
भूतन् कुसुम ४०२
भूतपत्र ५४५
भूतिजटा २४०
भूतुलसी ५१२
भूतृण २६१, ३८४
भूर्त्रासर्जा १६५
भू-पलाश ७००
भूमि आंवरा ४६०
भूमिचक्रं ४३७
भूमिजंत्रु ५६०
भूमि जल ७५०
भूमिबला ३७१
भूरा कुम्हड़ा ६७९
भूरिछरीला २४२
भूर्जपत्र ५३५
भूर्जिपत्र ५३५
भृंगराज कृष्ण ४२९
भृंगराज पीत ४२९
भृङ्ग ७९९
भेंट ५७९
भेंडी ५१५
भेंवर के कन्द ३८७
भेकर ३२१
भेटबेरा ५७९
भेड़ के वाल १६४
भेड़िया ७०६
भेर बण्ड ९६
भेरेंडा २९९
भेला १३९
भेलातुर्का १३९
भेवर की बेल ३८७
भैंसा ७०९, ७१७
भैंसा गूगल २०६
भंरा ९
भोंकर ५८३
भोंयआवर्ला ४६०
भोंयबल ३७१
भोजपत्तर ५३५
भोजपत्र ५३४
,, -अन्य जाति ५३५
भोजपत्रमु ५३५
भोपाथर्रा ४७१
भोलङ्कुरी ४६२
भौम जल ७४७
भौंरा ३४४
भ्रान १८५

म

मंगचेट्टु ७७
मंगरवल्ली ४१८
मंगरिके ७७
मंगरेला ३२
मंगरैल ३२
मंगरैला ३२
मंजल ११४

मंजिष्ट ११०
मंजिष्टा ७९९
मंजीट ७५, ११०, १११, ७९९–८००
,, -अफगानी १११
,, -ईरानी १११
,, -नेपाली १११
,, -हिन्दुस्तानी १११
मंडूकपर्णी ४६२
,, -अन्य जाति ४६२
,, भेद ४६१
मंडकब्राह्मी ४६२
मडूर ६०९
मंदार २०४, ३३४
मंदारमु २०४
मंदारि ३३८
मउल ५७९
मकर तेंदुआ ५६८
मकरन्द ४८१
मकाणे ५७८
मकासर तेल ५५४
मकोय ४३८
मकोय जाति ३६०
मक्खन ७६१
,, -गाय का ७७४
,, -ताजा ७७४
,, -दूध से निकाला ७७४
मक्खन-पुराना ७७४
,, -भैंस का ७७४
मखमली चोधारी २६५
मखाणा ५७८
मखाणे ५७८
मखानसिम ६४६
मखाना ५७८
मखाना ५७८
मग ६४३
मगर ७१०
मगर मिठी ६७२
मगलिंग ५४४
मगलिंगम् ५४२, ५४४
मगिया माई ८७
,, मैन ८७
मगिलम ४९४
मचिनो ८३३
मचूटि २५३
मचोटी २५३
मछलियाँ एवं उनका मांस ७१०, ७११
मछलियों के गुण ऋतु के अनुसार ७२३
मछली के अण्डे ७२२
मजमाष ६४३
मजारपोश ४५
मजीट ११०
मजिगेहुल्लु ३८४
मझेरियुन्-ई-हिन्दी ३४२
मझ्वर् अझ्वा ८६
मञ्जिट्टी ११०
मञ्जिष्ठतीठी ११०
मञ्जिष्ठा ११०
मटक्या ६४६
मटर ६४९
मटर का शाक ६७८
,, भेद ६५०
मटाणा ६४९
मटिया नोन १६२
मट्टर ६४९
मट्टुरवल्लि ६८८
मट्ठा ७६१, ७७१
मठ ६४६
मठरी ७३७
मडकी ६४६
मडलम ५८२
मडलं ५८२
मणिमंथ १५५
मण्डचेट्टु ७७
मण्डा ७२६
मण्डा-अनुपान युक्त ७२७
मण्डारिटक ११०
मण्डूकपर्णी ४६१
मत्तपललिगा ३८९
मत्रि ५२३
मत्स्य ७०६, ७१०
मत्स्यण्डी ७९५
मत्स्याक्षी ४५२
मथित ७७१
मथुरा २५०
मथुवा ७७१
मदकुणिके ३१७
मदन ७७
मदार ३०३–४
मदार का दूध ६३४
मदिरा-नई ७८७
,, -पुरानी ७८७
,, -सात्विकादि मनुष्यों पर प्रभाव ७८७
मद्गुर मछली ७२१
मद्य ७८५
मद्य गन्ध दूर करने के उपाय ७८७
मद्यपान की विधि ७८७
मधु ७८८
मधु आर्घ्य ७९०
,, उष्ण संयोग से ७९१
,, औद्दालक ७९०
,, क्षौद्र ७८९
,, छात्र ७८९
,, दाल ७९०
,, नया ७९१
,, पुराना ७९१
,, पौत्तिक ७८९
,, भ्रामर ७८९
,, माक्षिक ७८८
,, शीतल ७९१
,, श्वेतक ७९०
मधुकर्कटी ८२९

मधुनाशिनी ४४३-४४
मधुमालती ४९७
मधुरसा ४२५, ४२७
मधुवर्ग ७८८
मधुशिग्रु ३४०
,, का फूल ६७९
मधूलिका ७९८
मनःशिला ६१९
मनस्किरैं २६३
मनिपसुपु ११९
मनेका ५८५
मन्दार ७९८
मन्दित्ता ११०
मन्सासिज ३०८
ममीरा २६७, ४३३, ८३४
ममीरार्चानी ४३३
ममीरी ४३२-३३, ८३४
मयनफल ७७
मयनाकांटार गाछ ७७
मयिरमाणिक्कं ३६९
मयिलमाणिक्यम् ३६८
मयूर खुटिया ४७१
मयूरजूटी ४७१
मयूरशिखा ४७१, ४७७, ४७८
,, (१) ४७८
,, (२) ४७८
,, (३) ४७८
मयूरशिखार ४७१, ४७७
मरकल्म् ७७
मरजन ५१०
मरजाद वेल ४१०
मरजूनक ६४७
मरडासिंग ४३७
मरडासिंगी ४३७
मरद उप्पु १६३
मरबाले ८०-८१
मरमञ्जिल ११९
मरलिंगम् ५४२
मरवप्पु १३६
मरवमु ५१०
मरवा ५१०
मरवो ५१०
मरसा ६६६
,, लाल ६६६
,, सफेद ६६६
मरि १७
मरिच १६, ७२७
मरिचमु १७
मरिचश्वेत १८
मरिचसफेद १७
मरिज्रह २८
मरितीखा १७
मरियलु १७
मरी १७
मरुआ ५१०, ७९८
मरुआबेल ४३४-३५
मरुदमरम् ५२३
मरुदम्पतै १००
मरुबक ७९८
मरुलहोन्ने २८५
मरुवलहोने २८५
मरुवा ५१०
मरोड़फली २४६, ४३५, ४३७, ४४३
मरोरफली ४३७
मर्कट तिन्दुक ५६७
मर्ग ३८५
मर्जे १७
मर्दाबिल ४१०
मर्यादवल्ली ४१०
मर्यादवेल ४१०
मलबारी एलची २२२
मलयज चन्दनं १९४
मलह अस्वद् १६१
मलह उल् अक्कर १५८
मलहठी ६५
मलहे उल् मुहीत १५८
मलाई ७६१, ७६४
मलाबार काइनो ५२४
मलिम ३१३
मलैतामर ४९
मलैवेंबु ३३२
मल्लिका ४९१, ४९७
मल्लिगे ४९०
मल्लिगे ५०३
मवेल ५८५
मवेडी ५३२
मस्तुलगूल ३७०
मषवन २९७
मसी ४४१
मसीना ६५३
मसुर ६४७
मसुरि ६४७
मसूर ६४७
मसूरक ६४७
मसूरपप्पु ६४७
मसूरी ६४७
मस्सी ३५९
महद्रुः ६७९
महर ४०५
महाकाल ४०५
महातिक्त ८३४
महानल ३७७
महानिंब २८४, ३३१-३३
,, (क) ३३२
,, (ख) ३३३
,, -दो प्रकार ३३२
महानिंबू ५९४
महानिम ३३२-३३, ५२४
महानीम ३३२
महाबला ६४, ३६७-६८
महाभरा वच ४७
महाभरी वच ४५, ४७
महाभरीवचा ४५
महामाष ६४४
महामुण्डी ४१३-१४

महामेदा ६१, ६४
महारुख ३३३
महाल ३३३
महालिंब २५०
महालुंग ५९३
महावृक्ष ३०७
महाशतावरी ३९२
महाशफरी (पपता) मछली ७२१
महिरावण १०७
महिषवल्ली ४४७
महुआ ५७९, ७७१
महुडो ५७५
महुया ५७९
महुरार ४०५
महुलन ४३६
महुलाइन ४३६
महुलाम ४३६
महुवा ५७९
महुवावृक्ष निर्यास ७९०
महेन्द्र वारुणी ४०३
मांगाय ५५२
मांदा ४५०
मांस ७०५
,, आनूप ७०५
,, गला सड़ा हुआ ७१९
,, जल से मरे जीवों का ७१९
,, जांगल ७०५
,, जांगल भेद ७०५
,, जीवों की जाति आदि की प्रधानता से ७१९
,, दुर्बल जीवों का ७१९
,, बाल जीवों का ७१८
,, बुड्ढे जीवों का ७१८
,, विष, जल एवं रोगसे मृत जीवों का ७१८
,, व्यालादि से काटा हुआ एवं शुष्क ७१८-१९
मांस शुष्क एवं सर्प दृष्ट से मृत का ७१८
,, सद्योहत जीवोंका ७१८
,, सर्पदष्टसे मृतका ७१८
,, सिंगाड़ा ७३६
,, स्वयं मृत जीवों का ७१८
मांसरोहिणी ३५८
,, वर्ग ७०५
माई छोटी ८६
,, बड़ी ८६, ८७
माकड़ा राई ६५५
माका ४२९
माकाल ४०५
माखन मेंम ६८८
माखाना ५७८
मागधी ४९२
माचभोंदर १८५
माचिका ८६, ८८
माजूफल ८३४
माट ३७६
माटे किस्सी ११९
माठ ६६६
माठाची भाजी ६६६
माड ५५९
माडहा ६९१
माडहागल ४६६
माणकम् ४८२
माणिक ६२७
मादल ५९३
मादलम् ५९३
मादले ५८२
मादिफलमु ५९३
मादिमर ५२१
माधवलोगे ४९७
माधवी ४९१, ४९७
माधवीलता ४९७
मानकचू ६९९
मानकन्द ६९९
मानकन्द-बड़ा ७००
,, -भेद ६९९
मानुवप्पु १६३
माब्ली ४६५
मामर ५५२
मामलक ३२३
मामिज्रा ७५
मामिडिचेट्टु ५५२
मामेख ८१५
मायाफल ८३४
मायाळ ६६५
मारबी ४३४-३५
माराचूडा ४७१
मारिं ५१३
मारेडु २७४
मालकांगणी ९०
मालकांगनी ९०
मालकांगुनी २४९, ७९९
मालकांगोणी ९०
मालकौनी ९०
मालक्षन ४३५-३६
मालटांगुन ९०
मालडी ५५
मालण ५५
मालती २६०-२६१, ४९२
,, (रसेब) २६०
माला अस्वद १६१
माली २६६
मालुआबेल ४३५
मालुया ४३६
मालू ४३६
मालो ४३६
माशहिन्दी ४५१, ६४६
माशो २८
माष ३५७, ६४३-४४
माषकलाय ६४४
माषपर्णी २९७
माषमज ६४३
माषहिन्दी ६४६

मापानी २९७
मापोनी २९७
मासंग ६५०
माहुल ४२६
मिजुरगोरवा ४४२
मिनगुटघोर ३०८
मिरच १७
मिरचा (लाल, हरी) ८३४
मिरचागन्ध २८३
मिरनगनी ४१३
मिरुवहा ३०७
मिरे १७
मिरेपांढरे १७
मिलह शोरी १५८
मिलहे अवकीर १५८
मिलहेतबजर्द १५४
मिलाओ १७
मिश्री ७९६
मिश्रेया ७९९
मिन्मीतीता ८३४
मिसुर ६४७
मिस्क १७८
मिस्कुरुम्मान २२०
मींडल ७७
मींढोल ७७
मीअः साइला २१५
मीठ १५८
मीठाइन्द्रजव ७६, ७७, ३४७, ३४९
मीटाकूठ ९२
मीठानीबू ५९६
मीठानीम ३२२
मीठापाट ६६९
मीठालिंबू ५९६
मीठालेंबू ५९६
मीठाविष ६२९
मीठीआकबल ४६७
मीठीतोम्बी ६८१
मीठीलकड़ी ६५
मीट्ठु १५८
मीन ७१०
मुंग ६४३
मुंगसवेल ४५३
मुंगानी २९७
मुंगिनहुलि ६००
मुंगिल ३७६
मुंजातक ८३५
मुंडितिका ४५६
मुंडी ४९५
मुंडोसा ५६२
मुकत्तै ४२३
मुकुट्टी ५५७
मुकुल २०५
मुकूलक ८३०
मुक्तवर्चा ८३५
मुक्लअर्जक २०५
मुग ६४३
मुगवन २९७
मुगलीपुवु ४९८
मुगवन २९७
मुगाम १२८
मुगिलो ५२९
मुचकुन्द ५००, ५०४
मुच्चकोनि ४२२
मुट्टाकाचि २४४
मुठरिया सीज ३०८
मुठियासीज ३०८
मुडहमा ५७५
मुडिवाल २२९
मुड्ड ३०८
मुणुगु दामरगु ४५७
मुण्डी ४१३,७०६
मुण्डीमेद ४१३
मुण्डीमृग ७१२
मुता २४३
मुत्तग ५२६
मुत्तवु ३६७
मुत्तुपलागमु २३७
मुथा २४३
मुद्गपर्णी २९७
मुद्गा ३७०
मुद्रिका ३७०
मुनक्का ५८५
मुनग ३४०
मुनगा ३४०
मुनियारा ४५३
मुन्नै २८२
मुयी ५३२
मुरंई ६९७
,, का पत्ता ६७४
मुरगा ७१४
मुरगी-गोडा ४४२
मुरडशेंग ४३७
मुरमुरिया ४१३
मुरहरी २४६, ४३५, ४३७
मुरा २४६, ७९९
मुरार ४८१
मुरिच १७
मुरिणकै ३४०
मुरिण्णा ३४०
मुर्गल ६००
मुर्गा ७०७
मुर्दासंग ६२४
मुर्रा २४६
मुर्रु ५१०
मुलंगि ६९७
मुलहठी ६५
मुला ६९७
मुलिज २८४
मुलुकीरै ६६६
मुलुवेम्पली ४०८
मुलेटी ६५
मुलेठी ६५
,, -प्रतिनिधि ३५५
मुल्लङ्कि ६९७
मुल्लुवेल्लरी ५६२
मुल्लुहरिवेसोप्पु ६६६

मुशलीकन्द ३८९
मुशलीस्याह ३९०
मुश्कवाला १९९
मुश्कबिलाव कस्तूरी १८५
मुश्कबिल्ली १८५
मुश्कवली १९९
मुष्क १७८
मुष्कदाना १८३
मुष्कबीज १८३
मुष्के जमीं २४३–४४
मुसब्बर २६३, ४१९
,, जाफराबादी ४१९
मुसली ३९१
,, अबियज ३९०
मुसिडे ५६८
मुस्ता २४३, ७८७
मूंग ६४३
मूँगा ६२८
मूँज ३७९–८०, ३८२
मूग ६४३
मूत्र ७७८
,, -ऊँट का ७७८
,, -गदहे का ७७८
,, -गाय का ७७८
,, -घोड़े का ७७८
,, -पुरुष का ७७८
,, -बकरी का ७७८
,, -भैंस का ७७८
,, -मनुष्य का ७७८
,, -हाथी का ७७८
मून ४४७
मूर्वा २९५, ३९८, ४३५, ४३७, ५४२, ४७२, ७९८–९९
मूर्वा (१) ४३५
,, (२) ४३५
,, (३) ४३६
,, (४) ४३६
,, (५) ४३७
मूर्वा (६) ४३७
,, -उत्तरप्रदेश ४३५
,, -चित्रकूट ४३५
,, -बम्बई ४३५
,, -वंगीय ४३४
,, -विभिन्न प्रकार ४३४
मूल विष ३५५
मूला ६९७
मूली ६९६–९७
,, के पत्ते ६७४
,, के भेद ६९६, ६९७
,, छोटी ६९७
,, बड़ी ६९६
मूसली ७९९
,, काली ३९०
,, प्रकार ३९०
,, सफेद ३९०–९१
मूसा ७०६
मूसाकर्णी ४७६–७७
मूसाकानी ४७७
मृगनाफा १७८
मृगनाभि १७८
मृणाल ४८१–८२
मृत्युपुष्प ३७७
मृदुत्वार १६४
मृदुच्छदः ३७७
मृदुपर्वक ३६१
मेंटुलु ३७
मेंडी ८१
मेंढक ७१७
मेंति ३७
मेंतुलु ३७
मेंत्रे ३७
मेंथाल ८२९
मेंहदी के फूल २४९
मेउडी ३४४
मेखक २१९
मेचिट्ट ४७४
मेढा ७१६
मेढा-बधिया किया हुआ ७१६
मेढाशिंगी ४४३, ७९८
मेढासिंगी ४४३
मेथी ३७
मेदा ६१, ६४
मेनफल ७७
मेरडू ८३५
मेल्लुनिपदमम ५७८
मेशोम्रि ३१३
मेषशृंगी ४४३
मेषसिंगी ४४३
मेरटापाट ८८
मैदल ७७
मैदा ७२६
,, लकड़ी ८३५
मैदे की रोटी ७२७
मैनफल ७७, ७९८
मैनसिल ६१९, ७९९
मैशाक्षी २०५
मोंगली एरंड ३०२
मोंडगलि ३११
मोइया ८६, ८८
मोचक २७९, ५४४
,, कृष्ण ५४४
,, श्वेत ५४४
मोखा ५४४
मोखाड़ा ५४४
मोखावृक्ष ५४४
मोगबीराकु २६५
मोगरा ४९०–९१
मोगरो ४९०, ५०३
मोचरस ५३८
मोचा ७९९
मोचिका मछली ७२०
मोचै ६४६
मोझ ५५७
मोट ६४६
मोटकालजीर ३२

मोटा कालेजीरे ३२
मोटी एलची २२१
,, छूंछ ६६९
मोटो अर्डुसो ३३२
,, पीपर २१
मोठी एलची २२१
मोठीनायटी ४५८
मोठें कोलञ्जन ४५
,, गोखरू २९३
,, चौंचे ६६९
मोठे वेलदोडे २२१
मोतलकंट ३८९
मोतिया ४९०, ४९७
,, वेला ४९०
मोती ६२८
मोतीचूर के लड्डू ७२९
मोथ २४३
मोथा २४३, २६४, ४८७
,, -भेद २४३
मोदुगु ५२६
मोदुगो ३२४
मोनिहाद्न्दी ७३
मोम ७९१
मोमाका १०८
मोयी ५३२
मोरंग इलायची २२२
मोर ७१५
मोरट ७६४
मोरटा ४३४–३५, ४३७
मोरन अडा ४३५, ४५६
मोरवेल ४३५, ४३६
मोरशिखा ४७७
मोरहरी ४३५
मोरिच १७
मोरिण्डा २५७
मोरिनिका ४३७
मोरुक्कै ३४०
मोलहशेब्वियम् १७
मोला टोटाकुरा ६६६
मोषज्वर ४१९
मोसंबी ५१६
मोहड ५७९
मोहरी ६३१
मौरी ३६
मौल ५७९
मौलसिरी ४९४
,, -बड़ी ४९४
म्होटा गोखरू २९३
म्होटी ६७१

य

यउपान २५
यज्ञडुमुर ५१६
यमानी २५
यमुना ७५१
ययोची ४५५
यव ६४०
यवक्षार १६३–६४, १७१
यवतिक्ता ३१०
,, भेद ३१०
यवधान्य ६४१
यवभेद ६४१
यवान २५
यवानी २५
यवारी २६६
यवासा ४११, ८००
यष्टिमधुकम् ६५
यष्टीमधु ६५
यासमन ४९१
यासमीन ४९१
यासमून ४९१
यासशर्करा ४११
युक्तिनेहुलुकुरा ६८१
यूनानी में गूगल के भेद २०६
यूनिमस ८१८
येखण्ड ४३
येरंजुवि ५१५
येरोचित्रमूलम् २३
येला १४२
येल्लइकदंब ४९६
येल्लमद्दि ५४०
योगिदण्ड ३६१
योयान् २५

र

रकत रोहन ३५८–३९
रकसा कोंहड़ा ६७९
रक्त एरंड २९९, ७००
रक्तकंबल १९२
रक्तकमल ४७९
रक्तकांचन ३३७, ३३८
रक्तकुमुद ४७९
रक्तचंदन १८८, १९१–९२
रक्तचंदनम् १९१
रक्तचिता २४
रक्तनिर्यास ८२०
रक्तपुनर्नवा ४२१
रक्तपुष्प अडूसा ३२२
रक्त पुष्प पुनर्नवा ४२२
रक्तपुष्पा ४४०
रक्तफला ३७४
रक्तमूली ४८८
रक्तशंदनम् १९१
रक्तशालि ६३७
रक्तापांग ४१६
रक्तार्क ३०३, ३०४
रक्तालुभेद ६९६
रक्तालू ६९४
रक्तीसिमुल ५३७
रक्तोचितो २३
रखाल कलमी २९७
रगतपीती ४९७
रचना ७९
रजन २०८
रतण्डा ६९४
रतनकाट २५८
रतन गरुर ५४५
रतनजोत २६६, ८३६

रतन पुरुष ४८२
रतन हिंदी ५८७
रतवेल ४७०
रतवेलीयो ४७०
रतहर ३८३
रतांजली १९१
रतांबि ६००
रतालु ३८६
रतालू ६९४
रतिपंचे २४२
रतेड २६०–६१
रत्ती ३५४
रत्न ६२५, ६२८
रन्भ्री ३७७
रब्बेसूस ६६
रम्यक ३२२
रवामुने ३१
रविप्रीता ४६४
रस ६१२
रसमाल २१५
रसवंती १२२
रसवत १२२
रसविज ३५३
रसाञ्जन १२२
रसाञ्जनमु १२२
रसुन १३१
रसोत १२२
रसौंत ११९, १२२
रहड़ ६४८
रहर ६४८
रहरी ६४८
रहिला ६४९
रांगखुर २८
रांगा ६०६
रांजण ५७६
रांतु नागकेशर २३१
राइ ६५५
राइता ७३०
राई ६५५
,, (दोनों) का तेल ७८०
राई दोडी २९५
राखालशा ४०३
राघ २५६
राचयुसरिके ५७४
राचामम् ५७
राजकदंब ४९५
राजजंबू ५७०
राजजामुन ५७०
राजधतूरा ३१८
राजपाठा ३९५–९६
,, भेद ३९६
राजबदर ५७२
राजबाहा ३१५
राजमाष ६४४–४५
,, भेद ६४४
राजयानज ३६
राजयाना ३६
राजादन ८००
राजाराड ३१३
राजार्क ३०३
राजावर्त ६२०
राजियाज ३६
राजियानह ३६
राजीव मृग ७०६, ७१२
राडारुडी २९५
राता इन्द्रायणा ४०५
राती ४५८
रातीसाटोडी ४२३
रातो अघेडो ४१६
रानउडीद २९७
रानकांदा १३६
रानकापूस ३७५
रानकिरायता ४४१
रानजाई ४३५–३६
रानतुलसी ५१२
रानदरुम्मी तख्ख ४१३
रानभाल २८५
रानमूग २९७
रानशेर ४४६
रानहलद ११७
रानीफूल ४५३
रानीमारपी ४५६
रानोडिंडु २९७
रान्धूनी २७
राब ७९५
रामकर्पूर ३८४
रामघास ३८५
राम तुलसी ५०९
रामदाना ६६०
रामपत्री १००, २१८
रामफल २१८
रामबाण ३८५
रामशर ३७९
रामसपु ३८०
रामसर ३८०
राय आंवळ ५७४
रायचम्पो ४९३
रावण काकडिआ ५७६
रायसन ७९
राल ५२०
राल का वृक्ष ५२०
रालुंइसाब ५२०
रावकाकव ७९५
रावणाम्लिका ८२२
राविचेट्टू ५१४
रासन ७९–८०
रास्ना ७९–८०, ८२, ९५, ४५३
,, उत्तरप्रदेशीय ७९
,, पत्र ४५०
,, भेद ८२, ९४
रिंगणा ६९०
रिंगणी २९०
रिठा ५२९
रियाही काफूर १७३
रिशवाल १९९
रीठा ५२९
,, अन्य जातियाँ ५३०
रीठे,गाछ ५२९
रीसामणी ४५७
रुई ३०४, ३७४
रुचक ७९८
रुदन्ती ८३६

रुद्रवन्ती ८३६
रुद्रास ८३७
रुंग २१९
रुद्रजटा ८५
रूपामाखी ६१०
रूबाहतुर्बुक ४३८
रूमी मस्तगी ८३७
रूपीवानर ७०७
रूसा ३२१
„ घास ३८३
रेंगनी २९०
रेंडी २९९
रेंडी का तेल ७८१
रेंवद् ६२४
„ चीनी ६२४–२५
„ „ का सत ६२४
„ „ छुप ५९९
रेंवा ५२७
रेगमाही ८३७
रेगुचेट्टु ५७२
रेजिन १९९
रेक्षिन २०८
रेणुक २५२
„ बीज २५१–५२, ३४४
„ „ ईरानी २५२
रेणुका २५१–५२
„ प्रतिनिधि २५१
रेत की मछली ८३७
रेलचेट्ट ६८
रेलु ३८०
रेवटी ६२०
रेवाचीनी १२९, ५९९
रेवास ६२४
रेशम का कोया ८१९
रेशमवाला २३९
रेशाखम्मी ८१९
रेह का नमक १६२
रेंन २८१
रोंडसो ३८३
रोंहिवा ५२७
रोको २८९
रोक् बतुल बजामेल ६६४
रोचन ७९९
रोचना ७९, ८००
रोजमरी ८३२, ८३७
रोझ-मृग ७०६, ७११
रोटी-गेहूँ की ७२७
रोण ३५८
रोवक ११०
रोयटा ३५८
रोरी ३५९
रोशना ७९
रोहण ३५८
रोहणी ३५८
रोहन ३५८
रोहिडो ५२७
रोहिणी-विभिन्न अर्थ ३५९
रोहितक ५२७
रोहिना ३५८
रोहिनी ३५८–५९
रोहिषगवत ३८३
रोहिष घास ३८३
रोहिस ३८३
रोहीतक-भेद ५२७
„ रक्त ४२८
„ श्वेत ४२८
रोहु मछली ७१९
रोहेड़ा ५२७
रौथ २८५

ल

लंका ८३४
लंकासिज ३०८, ३११
लंकोइकपुरी २६४
लइ १७
लई ८६
लकजन ४५७
लकड़बग्घा ७०६
लकुच ५५६
लक ११२
लका ११३
लक्ष्मणा २९१, ३७२–७३, ८४१
लक्ष्मी प्रिया ३६०
लखवी २६१
लगरा ४२९
लघु अग्निमंथ २८१, ३६०
लघुकङ्कोल १८४
लघु कटाई २९०
लघु दन्ती ३९९, ४००
लघु दन्ती फल ४०१
लघु पञ्चमूल २९४
लघुपाठा ३९५, ३९७
लजउनी ४५७
लजारू ४५७
लजाल ७९९
लज्जालु ४५७
„ भेद ४५७
लज्जालू ४५७
लज्जावती ४५७
लज्जावन्ती ४५६, ४५७
लटकन ५०७
लटजीरा ४१४
लतक २९३
लता ४९१
„ करञ्ज ३५०, ३५२–५३
„ कस्तूरी १२४, १८३
„ „ बीज १८१
„ फटकी ९०
लतुरा ४७३
लतुक ११२
लप्सी ७२७
लब्रान २१२–१३
लब्नी २१५
लब्नुले खशखाश १४७
लमकलर ४३६
लम्बा कद्दू ६८१
ललितापाट ६६९
लवंग २१९
„ कलिका २१९
„ पत्ते २२५

लवंग पत्ते २२६
लवंगमु २१९
लवका ११३
लवणभेद १६२
लवली ५७४
लवा ७०७, ७१३
„ ४ प्रकार एवं उनके मांस ७१३
लवाला २४४
लवींग २१९
लशुन १३१
लसण १३१
लसनुत्रास ३४७
लसूण १३१
लसोड़ा भेद ५८४
लहसुन १३१, १३४, ७८७
लहसुनिया ६२७
लहानघोल ६७०
लांग ६५०
लांगलीं ३१३
लांगुलिक ३१३
लांगुली ३१३
लाइकोपोडियम ८३८
लाई ११३
लाउ ६८१
लाक ११३
लाका ११३
लाख ११२
लाखन २९५, ४३५
लाग ६५०
लाजक ४५७
लाजरी ४५७
लाजवती ४५७
लाजालू ४५७
लादनां ३०८
लान्दर १३०
लामज्जक २६१–६२, ३८४, ८००
लाल आक ७९८
„ आगाड़ा ४१६
लाल इन्द्रायण ४०५
„ इलायची २२१
„ ओंगा ४१६
„ कुमुद ८००
„ कुम्हड़ा ६८१
„ चंदन १९१–१९२
„ चितउर २३
„ चिता २३
„ चित्रक २३–२४
„ चिरचिरा ४१६
„ चीत २३
„ चीता २३
„ जडी ८३६
„ झाऊ ८६
„ नागकेशर(२),२३०, २३१
लाल पुनर्नवा ४२३
„ मरसा ६६६
„ मुर्गा ४७८
„ राई ६५५
„ र्‍याग्रेरण्ड ३०२
„ शाल ५२०
„ सरसों ६५४
„ सांवर ५३७
„ साग ६६६
लालि ३१३
लावा ६४०, ७४५
लाहा ११३
लाही ११३, ६५४
लाहोरी नमक १५४
लाहौरीनमक १५४
लिंगड ३४४
लिंडीपीपल १५
लिंब ३२९
लिंबु ५९५
लिंबे ५९५
लिमुनेतुर्श ५९५
लिमुनेशिरी ५९६
लिमुनेहाजिम ५९५
लिमूनेहुलु ५९६
लिसानुस्सौर ४७२
लिसोडा ५८३
„ बड़ा ५८४
लिसोरा ५८३
लींबडो ३२९
लींबु ५९५
लींडी पीपल १५
लीमडो ३२९
लील ४०६
लीलीचा ३८४
लीलीभ्रो ३८५
लीसा २०८
लुंगमु ५९३
लुक ११३
लुकमकसूल ११३
लुणी ६७०–७१
लुनिया मिट्टी १६१
लुनु १३५
लुन्तक ७५
लुफ्फाह ८४०
लुरण्डु २२५
लेमूहाजिम ५९५
लोंग २१९
लोई ७२६
लोज १३०
लोजल ५८८
लोटासज्जी १६५
लोड ४८१
लोणा छोटी ६७०
„ बड़ी ६७१
„ शाक ६७१
लोणिका ७९८
लोदर १३०
लोद्धुगचेट्टु १२८
लोध १२८
लोधर १२८
लोध्र १२८–३०
लोनिया छोटी ६७०
लोबान २१२, २१४
लोबिया ६४४–४५

लोबिया भेद ६४५
लोबेलिया ३७७
लोलिसर ४१९
लोवह ६४५
लोविया ६४५
लोश १३०
लोहबान २१२, २१४
लोहा ६०७
लौंग २१९, ७२७
,, का तैल २२०
,, तेल निकाली हुई २२१
लौंगफल २२१
लौआ ६८१
लौकी ६८१

व

वंकाया ६९०
वंग २८४
वंगारम ११२
वंजुल ३६१, ३६२
वंटो ६६०
वंताक ६९०
वंशकपूर ५८
वंशपत्रः ३७७
वंशपत्री ४५१–५२
वंसयत्र ६५९
वंशरोचना ५८
वंशलोचन ५८, ६४, ३७७
वंशलोचनम् ५८
वंशलोचनमु ५८
वंशलोचना ५८
वंसलोचन ५८
वई निवडुंग ३०८
वक ४९४
वक्रदिवाना २९
वच ४३
,, खुरासानी ४५
वचनाग ६२९
वचाखुरासानी ४५
वचापारसीक ४५
वचामहाभरी ४५
वच्छनाग ६२९
वज ४३
वजरुलकनान ६५३
वजरुलकर्ता ६५३
वजुरग ६५३
वजुर्ग ६५३
वज्रकंटक ३०९
वज्री ३०९
वञ्जुल २९९
वज्‌ल्ल करप्स २७
वट ५१२
वटपत्र ५११
वटपत्री १०५, ४५१
वटपत्रीभेद १०५
वटाणा ६४९
वटाणि ६४९
वटादिवर्ग ५१२
वड ५१२
वडुमै ५८८
वण्डयम् ३७
वतिखहिन्दी ५६०
वत्सनाभ विष ६२९
वत्सनाभ ६२९
वत्सनाभि ६२९
वधारणी ४१
वनककडी ८२१
वनककोडा ४६६
वनकपासी ३७५
वनजामुन ५७१
वनणुनी ६७०
वनतुलसी २५२, ५११–१२
वनपत्रक १०५
वनपलांडु १२६
वनबाकरी १०२
वनबिलाव ७०७
वनमुद्ग चेट्टु ६४६
वनमूग ६४६
वनयमानी २७
वनवृन्ताक ८२१
वनशण ४३०
वनसेरई ७९
वनसोरई ७९
वनहरिद्रा ११७
वनहल्दी ११७
वन्ध्या कर्कोटकी ६९१
वन्य काहू ८१७
वन्यकुलत्थ २६७
वरगु ६५८
वरतंगि १९३
वरधारो ४०९
वराटक ४८१
वरिगलु ६५७
वरिवव ६५७
वरीआली ३६
वरुण ४४२, ५४२
वरुणगाछ ५४२
वरुना ४४२
वर्तीर ७०७
वर्मि, २५६
वर्मी मछली ७२१
वर्षाभू ४२१–२२
वलिय आटलोटकम् ३२१
,, कटलाट ४१४
वलीयारी ३६
वलुलुवै ९०
वलूची भाजी २६३
वल्कलवृक्ष ८२२
वल्लइपुंड ९३१
वल्लीपाल ८१
वल्लीपुल्लु ६६०
वल्लीबदर ५७२
वशाम्बु ४३
वष ५९१
वस ४३
वसनाग ६२९
वसनाद्री ६२९
वसनाभि ६२९
वसले ६६५
वसारे ६६
वसु ४९४

वसुक ४२१, ७९८
वसैइलक्किरैं ६६८
वस्मा ४०७
वह्वथुत्तेजक १६७
वांगी ६९०
वांगे ६९०
वाँसः ३२१
वाउचिगे १२४
वाकर २८२
वाकस ३२२
वाका ५७५
वाकै ५१८
वागेमर ५१८
वाघदूध ४४६
वाघनख २३७
वाटाणे ६४९
वणी ५४६
वादंजान ६९०
वानीर ३६१
वापी का जल ७५३
वावरंग ५२
वामनहाटी १०२
वामिटम ४६५
वामु २५
वायविलंग ५२
वायवर्णा ५४२
वायविडंग ५२, ६७, ७९९
वायविडङ्ग भेद ५४
वायसफला ४३९
वायसुरई ७९
वायुविडंघमु ५२
वायुविडङ्ग ५२
वायुविलंगम ५२
वारगोगु ५४८
वाराहीकन्द ३८६–८८, ६९५, ७००
वाराहीकन्द (१) ३८६
,, (२) ३८७
वारि ८००
वारिपर्णी (१) ४८६
वारुणी ७८६
वार्दजान ६९०
वार्षिकी ४९१, ४९७
वासं ६६
वाल १९२, ६४६
वाला २३९
वालि ५५७
वालुंज ३६२
वालुक बीज बंगाल २६२
वालुका ६२१
वालूची भाजी २६३
वाले ५५७
वालो २३७, २३९
वालिमलगु २५९
वावडीङ्ग ५२
वावरङ्ग ५६२
वावल ३५३
वाविली ३४४
वासनवेल ४४९
वासन्ती ४८९, ४९७
वासा ४३
विंधु ४४०
विकंकत ५७७
विका ४३७
विकिरजल ७५४
विजयसार ५२४
विजेसार ५२४
विजैसार ५२४
,, गोंद ५२४
विटनुन १६०
विटप करंज ३५२
विडङ्गभेद ५४
विडतङ्गै ४७३
विडलवण १६०
विडलोण १६०
विड्याचेपान २७२
वितिख ५६१
वितुन्नक ७९८
,, वृक्षत्वक् २६४
विदारी ३८८
विदारीकंद ३८७, ३८८
विदारीकन्द भेद ३८८
,, (१) ३८८
,, (२) ३८९
विदुल ३६१, ३६४
विधारा ३९८, ४०९–१०
विरंग ५२
विरङ्ग काबुली ५२
विल्वोङ्खि ३९५
विष्किर प्राणी ७०५
विसलंबी ४०५
विसुक ६४७
विलाईकंद ३८८
विलायती बबूल ५२७
विलिगार १६९
विलियचिल्लीके ६६४
विलियजिरिगे ३१
विलियजीरगे ३१
विलियतर्जि ५२६
विलियति ५२६
विलेयमेणसु १७
विलेसुलि १०६
विशकाग्रा ४२२
विशाला ४०३, ४०५
विश्वदेवा ३७१
विष ६२९
विषखपरा ४२२
विषभेद ६२९
विषों के नाम ६२९
विषमुंगिल ४७६
विषाग्बिल ५९९
विष्णुक्रान्ता २४२, ४५४
विसार ७१०
वीरकाया ६८४
वीरण २३९
वीरतरु ४७३
वीरनमूल २३९
वीलोथ ३८२
वुंडुड २५०
वुनुमाष ६४३
वुरंग ३३७

वृक्षकरंज २५०, २५२
वृक्ष पर चढ़ने वाले जीव ७०७
वृक्षाम्लकं ५९९
वृद्धदारक ४०९
वृद्धदारु ४०९–१०
वृद्धाग्निमंथ २८१
वृद्धि ६२, ६४
वृश्चिकाली ४४०, ८१२
वृषजिह्वा ४७२
वृष्टिजल ७५४
वृहद् अग्निमंथ २८१
वेंगण ६९०
वेंगयम १२५
वेंगा(का)रं १६९
वेंगुलकोष्टम् ९१
वेंडयम ३७
वेंथा ५०
वेंबु ३२९
वेखण्ड ४३
वेगर ७३४
वेगपूर ५९३
वेगि ५२४
वेट्टा ५८०
वेट्टिवेर २३९
वेट्टिवेलु २३९
वेडीहलद् ११७
वेडोली सुट्टा ४२५
वेणरमूल २३९
वेणा ७५१
वेणीवेल ३९५
वेणुबीज ३७७
वेत २६१–६२
वेतस २६१, २६४
„ (१) २६१
„ (२) २६२
वेतस भेद २६१
वेतोसाक ६६४
वेत्तिल २७२
वेत्तिलै २७२
वेत्तिलैकस्तूरी १८३
वेत्र २६१–६२
वेदंजीर खताई ४००
वेद अंगबीन ३६२
वेदमुश्क १८३, २६१
वेनंशुठी १३
वेनपाला ३४७
वेन्दयम ३७
वेप ३२९
वेप्पालै ३४७
वेप्पु ३२९
वेरातरा ६४५
वेरिंपल ८१
वेरिनेल्लावेमु ३२५
वेलग ५६६
वेललु ५६६
वेलिच इंगुरु १३
वेलै ४६५
वेल्लतुरु ४७३
वेल्लरिकै ६८२
वेल्लाकोटुवेरि २२
वेल्लिगारं १६९
वेल्लुपोनिक ३८०
वेल्लुल्लि १३१
वेल्लैनिकलुकिलुप्यै ४३०
वेवडी ४४९
वैदूर्य ६२७
वैसारिण ७१०
वोडेसोंर ४१३
वोम २५
वोमां २७
वोहरा २५
व्यांगेर छाता ७०३
व्याघ्रैरण्ड २९९, ३०२, ३९९
„ लाल २९९, ३०२
व्रीहिधान्य ६३७
व्वयम्पु ४३

श

शंकरजटा २८७
शंकेश्वर ८११
शंख ६२२, ६२८, ७१०
शंखपुष्प ३४२
शंखपुष्पी ३४२, ४५४-५५
शंखपुष्पीभेद ३४२, ४५३
शंखपुष्पी भेद-नील ४५४
शंखपुष्पी-वंगीय ४५५
शंखालू ६९४
शंखावली ४५४
शंखाहुली ४५४
शंखिनी ३१०
शंपंगि ४९३
शंबर ७०६
शईर ६४१
शकरकन्द ६९५, ८२६
शकाकुल मिश्री ६४
शकाकुले हिन्दी ३९१
शकुलादनी ८००
शकुली ७१०
शज्रतुल मुर्तअश ५१४
शज्रतुल् बल १९८
शटी २४५, ७९९
शठी २४५, २४७
शणपुष्पी ४३०
शतकाभेदी १०६
शतकुप्पी विरइ ३५
शतपत्री ४८८
शतमूली ३९२
शतावर ३९२
शतावरी ३९२
शतावरी जाति ३९३
शतावरी भेद ३९१
शनपुष्पी ४३०
शनबलिदेवरी ३७१
शपेसन्द ८५
शप्पकु १९३
शफ्रीकी १०५
शबयार ४१९
शब्जु ११
शमलोदेदस्ती ३७१

शमी ५४६
शम्बनी चेट्टु ४६१
शर ३८०
शरकोन्ने ६८
शरजोई ३९२
शरपंखो ४०८
शरपुंखा-श्वेत ४०८
शरपुंखाभेद ४०८
शरबर्ती नींबू ५९६
शरबाण ३८३-८४
शरबीज ६५९
शरशत्र ६५४
शरारिका ७०९
शरीफा ८३९
शरूनै ४२२
शलवृक्ष ५२०
शल्लकीनिर्यास २१२
शव्यमु १७
शशा ५६२
शप्पात्तुप्पु ५०६
शहद ७८८
शहद के भेद ७८८
शहाजीरें ३२
शांई ५४६
शाक ५४९, ६६३
शाक निषिद्ध ७०२
शाक संस्वेदज ७०३
शाकबनाने की विधि ७३६
शाकवर्ग ६६३
शाकश्रेष्ठ २९५
शाकनुजींरु ३१
शाकुत्रा ७१०
शाखल ६४८
शाखुल ६४८
शांज ६४८
शातरा ३२५
शातला ३१०
शामबारिंगी १०३
शामुला ६५८
शाम्भारि लवण १५८
शारदी ७९९
शारपाणि २८५
शारूजीनां ४४४
शारूल अर्ज ४४४
शाल ५२०, ५२४
शालगाछ ५२०
शालनिर्यास ५२०
शालपत्र २८७
शालपर्णिका ७९९
शालपर्णी २८५-८८, ८००
शालपान २८५
शालपानी २८५
शालवधु ५३७
शालसार ५२०
„ लाल ५२०
„ श्वेत ५२०
शालिंच ४५२
शालि-दाऊद खानी ६३७
शालिधान्य २८६, ६३५, ६३७, ८००
शालिपर्णी ७९९-८००
शालुक ४८४
शालूक ४८१-८२
शालेहुं ५२१
शाबरलोध्र १२८-२९
शाहतर ३२५
शाहतरज ३२५
शाहतरा ३२४
„ फारसी ३२६
„ भेद ३२४-२५
शाहतूत ५८१
शाहाजीरं ३२
शाहाजीरे ३१
शिंपटी ५३२
शिउली ३३५
शिकाकाई ३१०-११
शिकेकाई ३११
शिगे ३११
शिण्डाकी ७८४
शितरज २२
शितरस २२
शितवार २६४
शितिवार २६४, ६७४
शिन्दिल्कोडि २६९
शिन्दी १८७
शिमइसपू ३२
शिमहशोम्बु ३२
शिमीय ३८८
शिमुलगाछ ५३७
शिमुलेर आटा ५३८
शिमेळं ६९६
शिमैकिचिलिक् किलांगु २४७
शियाकुपना २८५
शियारखुर्द ५६२
शियाल कांटा ९६
शिरवोडी ४५६
शिरखी ६५४
शिरस ५१८
शिरसाल १९८
शिराळें ६८५
शिरीष ५१८, ५४५
शिरीषगाछ ५१८
शिरीष काला ५१९
शिरीष-जाति ५१९
शिरीषश्वेत ५१९
शिरुकुरंज ४४३
शिरूकेट ०१३
शिरू-नेरि-वेंगयम् १३०
शिलफोडा १०५
शिलाजीत ६१२
शिलारस २१५
शिलावल्का १०५
शिलीन्ध्र मछली ७१९
शिवण २००
शिवदे ३९७
शिवप्पु चित्रमूलम् २३
शिवमल्ली ४९४
शिसव ५२२
शिसु ५२२
शींबोडा ५७८

शीकाय ३११
शीतफल ८२२
शीतरक २२
शीतरज हिन्दी २२
शीतरह २२
शीतरुह २२
शीतलचीनी २५९
शीतल जलपान के अयोग्य रोगी ७५६
शीतल जलपान के योग्य रोगी ७५६
शीतलमिर्च २५९
शीयकाय ३११
शीरागम ३१
शीवण २७७
शीशो ५२२
शीसम ५२२
,, भेद ५२२
शीसव ५२२
शुंठ १३
शुंठ्य १३
शुकाई ४१२
शुक १४
शुकु १३
शुक्त ७८५
शुक्लजीरक ३१
शुक्लार्क ३०३
शुण्ठि १३
शुतुरखार ४११
शुद्धमांस-बनाने की विधि ७३४
शुद्रक ४३३
शुनिशाक ६७४
शुपारी ५६२
शुमियो १९९
शुल्फा ३५
शुस्फा ३५
शुड्ड २७४
शुत्रा ३५
शुशुनी शाक ६७४
शूकचिन ४८
शूकधान्य ६४०
शूकामीर २२३
शेओडा ५४२
शेओयाला ४८७
शेगटा ३४०
शेडेवेली ३९१
शेतवड ३९७
शेतूर ५८१
शेदरडी ३६९
शेदूरी २४७
शेनकोठ्ठे १३९
शेलू चंदनम् १९१
शेन्द्रिकपिला ६६
शेन्द्री ५०७
शेपु ३५
शेफालिका ३३४-३५
शेफालिका भेद नील ३४४
,, शुक्ल ३४४
शेफाली ३४४
शेमम्मरम् ३५८
शेमल ५३७
शेमलानो गुन्द ५३८
शेमलो ५३७
शेर ३११
शेर का दूध ४४६
शेवल ४८६
शेलारस २१५
शेवण २७७
शेवाल ४८७
शेवाले ४८७
शैतरज २२
शैलज २४२
शैलेय मनेद्रव्यसु २४२
शैवाल ४८५-४८७
शोठि १३
शोण २८४
शोनाक २८४
शोनिम्ब ३३
शोम्बु ३६
शोरा १६१, १६७
शोरा नोन १६२
शोरी २४५
शौकतुल अकरब २९०
श्यईर ६४१
श्याजीरो ३२
श्यामलता ४२७
श्यामा ८००
श्यामाधान ६५८
श्यामालता ४२७
श्योनाक भेद ३३२
श्रीखण्ड ७४०
श्रीगन्धमर १८७
श्रीफल २७४
श्रीफलिका ३१०
श्रीमुद्रिगिडा ३७०
श्रीवेष्टक २०८
श्रृंगिक ६२९-३१
श्वेतएरंड २९९
श्वेत कंटकारी २९१, ३७३
श्वेतकमल २६७, ४७९
श्वेतकुटज ३४७
श्वेतकुठेरक ५१२
श्वेतकुमुद ४७९, ४८४
श्वेतकुवलय ४७९
श्वेतखदिर ५२६
श्वेतत्रिवृत ४३५
श्वेतद्यालो २४९, २५०
श्वेतदर्भ ३८२
श्वेत दूर्वा ३८५
श्वेत पुनर्नवा ४२२
श्वेतपुष्प ५११
श्वेतपुष्प कंटकारी २९०
श्वेत भांगरा ४२९
श्वेतमन्दारक ३०३
श्वेतमरिच १८
श्वेतमुशली ६४-३९१
श्वेतमोक्षक ५४४
श्वेतत्वचा ९५
श्वेतबृहती २८८

श्वेतशरपुंखा ४०८
श्वेतशाल ५२०
श्वेतशिरीष ५१९, ५४३
श्वेतशिलाजतु १६७
श्वेतसारिवा ४२६-२७, ७९९
श्वेतसेमुल ५३९
श्वेतस्पन्दा ६४२
श्वेतहुरहुर ४६४
श्वेतार्क ३०३-४, ७९८

ष

षट्कचूरो २४५
षडग्रन्था ३५०
षड्भुजा ५६१
षष्टिक ६३८, ६३९
षोडशमूलिनी ३०७

स

संखाहुली ४५५
संगगाब २३५
संगेसतूया १२५
संचल १६१
,, लवण १६१
संजार कलिया १६५
संतरा ५६६
संत्रा ५६६
संदलअबियज १९०
संदले अब्यज १८७
,, अहमर १९१
,, सफेद १८७
,, सुर्ख १९१
संद्रस ५२१
संबल ५७०
संपंगी ४९३
संपगे ४९३
संभालू बीज २५२
संवर्तिका ४८१
संहालू ३४४
,, नीला ३४४
सुंद्रस ५२१
सउँफ ३६
सकब ५२०
सकमुनिया ८३८
सकोतरे ५९४
सकोटा ५९४
सक्तुक विष ६३०
सखुआ ५२०
सजाडो ८८
सज्जी १६५
सज्जीकार १६५
सज्जीखार १६५-६६, ८००
सज्जीमाटी १६१, १६६
सज्जीमिट्टी १६५
सज्जीशुद्ध १६६
सट्टक ७३८
सण ६६८
सतबिरोजा १९८
सतमूली ३९२
सतलज ७५१
सतवन ५४६
सतावर ३९२
सतावरि ३९२
सतिवन ५४६
सतुआ ४५
सतौना ५४६
सत्तू ७४३
,, सेवन विधि ७४४
सत्फल ३६३
सत्यनाशा ९६
सत्यानाशी ९६
सथरा ३१०
सदा पुष्प ३०३
सदासुहागन ५०७
सदोडी ३६९
सन ८८
सनई ४३०
सनगलु ६४९
सनाडिका ४२३
सनाय ४६७
सनायभेद ४६७
सनायमक्की ४६७
सनोचाडो ८२
सनोवरहिन्दी १९८
सन्कु ६६०
सन्दन ५४८
सन्दुआर ३४४
सन्धानवर्ग ७८३
सपसंग ३६३
सपादमछली (टेंगरा) ७२२
सपिस्तां ५८३
सपिस्तांदबक ५८३
सप्तरंगा ३६०
सप्तला ३०८, ३१०, ३१२
सप्पाकपोवा २८५
सप्पा कुपोवा २८५
सप्रोत्री १०५
सफरचंद ५८९
सफरजलेहिन्दी २७४
सफेद इलायची २२२
सफेदकद्दू ६८०
सफेदखैर ५२६
सफेदखैर भेद ५२६
सफेद चंदन १८७
सफेद चित्रक २२
सफेद जीरा ३१
सफेद डामर ५२१
सफेददूब ३८५, ८००
सफेदनिसोथ ४३५
सफेदपाढल २८०
सफेदपुनर्नवा ४२२
सफेदमरसा ६६६
सफेद मरिच १७
सफेद मुर्गा २६४
सफेद मुशली ३९१
सफेद मुसली ३९०-९१, ५३९
सफेदमुसली (१) ३९१
सफेदमुसली (२) ३९२
सफेद सुरमा ७९९
सफेद सेमर ५३९
सफसाफ ३६३

सवजा ५१२
सव्वसिगे ३६
समंगा १११, ७९९
समंदर फल ३६३
समन्दरझाग ६०
समरपिस्ता ५१६
समलपत्ती ४४४
समाकदाना ५९८
समुदर शोष ४०९
समुन्दरफेन ६०
समुन्दरसोख ८३८
समुन्द्रझाग ६०
समुद्रक ७००
समुद्रनमक १५८
समुद्रनालिगे ६०
समुद्रनिमक १५८
समुद्रपत्तै ४०९
समुद्रपाल ४०९
समुद्रपुनुरुगु ६०
समुद्रपुल्लानि ३६४
समुद्रफल ३६१, ३६३–६४
समुद्रफिण ६०
समुद्रफेण ६०
समुद्रफेन ६०
समुद्रफेला ६०
समुद्रशोक ४०९
समुद्रशोख ४०९
समुद्रशोष ८३८
समुद्रीकाई ८०९
समुद्रीनोन १५८
समुद्रेरफेना ६०
समेर २८५
समेरवो २८५
समै ६५८
सम्मालू ३४४
सम्मुलहिमार ३१५
सम्हालू ३४४
सर २८५, ३८०
सरकी ३७४
सरगवो ३४०
सरगोलु ३८०
सरनोई ३९२
सरपत ३७९–८०, ७९९
सरपत के बीज ६५९
सरफोंका ४०७, ४०८
सरबत ७४१
सरमक ६६४
सरमलो ५३७
सरयू ७५१
सरल १९७–९८
सरल का गोंद २०८
सरलगाछ १९८
सरलडीक २०८
सरलदेवदार १९८
सरलनिर्यास १९९, २०८
सरलनिर्यासगुग्गुलु, २०८
सरशफ ६५४
सरशव ६५४
सरसडो ५१८
सरसों ६५४
सरसों का तेल ७८०
सरसों का नाल ६९२
सरसों का शाक ६७८
सरसों के फूल २४९
सरहटी ४५२, ४५३
सराटे २९२
सराल ३८८
सरिवन २८५, ८००
सरिषा ६५५
सरिसो ६५४
सरीसा ६५४
सरोवर ७५२
सरोवर का जल ७५५
सरोवर की मछली ७२३
सर्ज ५२०–२१
सर्जक ५२०–२१
सर्जभेद ५२४
सर्जरस का तेल ७८२
सर्पगन्धा ८३–८३
सर्पाक्षी ८२, ४५३–५४
सर्पाक्षी (१) ४५३
सर्पाक्षी (२) ४५३
सर्व के अस्वद ७०
सर्वकोही ३४०
सर्वोत्तम दालचीनी २२७
सर्शप ६५५
सर्षक ६५४
सर्सों ६५४
सलई ५२१
सलई का गोंद २०६
सलई गूगल २१२, ५२१-२२
सलई निर्यास २१२
सलईवृक्ष २१२
सलमह ६६४
सलाद ८१७
सलीखा २२९
सलै ५२१
सलैधूप २१२
सल्वसिगे ३५
सल्ल ५२१
सल्लोगड्डु। ३९१
सत्व ५२०
सवन २७७
सविरेला ४२५
सवै ६५८
सहचर ५०२
सहचि ५४०
सहजन ३४०
सहजन के फूल ६७८, ६७९
सहजन भेद-के फूल ६७८, ६७९
सहजना ३४०
सहतूत ५८१
सहदेई ३६८–६९
सहदेवा ३६७–६८
सहदेवी ३६६–६९
सहदैया ३६७, ३६९
सहवांसु ७३४
सहस्रवीर्या ८००
सहिंजणो ३४०
सहिंजन ३४०

सहिजना ३४०
सहेजन की कली ६८९
सहिजना काला ३४०
,, भेद ३४०
,, लाल ३३९–३४०
,, श्वेत ३३९–३४०
सहिजनो ३४०
सहोड ५४२
सहोरा ५४२
सांखवेल, ४५४
सांठ ४२३, ८०१
साँप ७०६
साँप की छत्री ७०३
सांबरमीठ १५८
सांबरमृग ७१२
सांभर निमक १५८
सांभरलोण १५८
सांवरी चा डीक ५३८
साँवा ६५८
साइनॅन्थस् २४६
साखर लिंबू ५९६
साखू ५२०
साग ५४९
सागरगोटा ३५२
सागवन ५४९
सागवान ५४९
सागुवान ५४९
सागोन ५४९
साजजेहिन्दी २२८
साजिखार १६५
साजी १६५
साजीखार १६५
साजीखार १६५
साजीखारं १६५
साजीखारु १६५
साजीमाटी १६५
साटोडी ४२२
साठीचावल ६३८
सातला ३०८, ८०१
सातला (१) ३११
सातला (२) ३११
सातवण ५४६
सातवीण ५४६
सादा कुम्हरा ६८०
सादाजीरा ३१
सादाजीरे ३१
सादानटे ६६६
सादा मरिच १७
सादु जीरं ३१
सादोडी ३६९
साधारण (भूमि) जल ७५१
साधारण जीरा ३१
सानन ५४८
सापसण ८५
साब्रुनी ४२२
साबूदाना ८३९
साभरलुण १५८
सामरलून १५८
सामा ६५७
सामुद्रजल ७४८
सामुद्रनमक १५५
सामुल ६५८
सामो ६५८
सामोघास ६५८
साम्भरनमक १५८
साम्भरनोन १५८
साम्भरमीह १५८
साम्हरनमक १५८
साथिदेत्रि ३६९
सारलोह ६०८
सारस ७०९
सारसजल ७५२
सारिवा ४२६, ७९९
,, कृष्ण, श्वेत ४२६
सारिवाद्वय ४२७
सरिवा भेद ४२६
सारुपपु ५७५
सार्सापरिला ४९
सालंमिश्री ६४
साल ५२०, ५९१
सालई ५२१
सालईचा डीक २१२
सालई वृक्ष ५२१
सालपानी २८८
सालब ८३५
सालबपंजा ६४
सालबमिश्री ८३५
सालबलंब ६४
सालममिश्र ८३५
सालवण २८५
सालवन २८५
सालसा ४२७
सालेडा, ५२१
साल्या ५२१
सावजना नख २३७
सावां ६५८
सासवे ६५४
सासि ६५५
साही ७०६, ७१२
साहोड़ा ५४२
सिंकोना ८३९
सिंगाड़े ५७८
सिंघाड़ा (रा) ५७८
सिंघिया विष ६३१
सिंघी ६३
सिंजी ३९
सिंधालुण १५४
सिंधुउपु १५४
सिंबुल ३७०
सिंसुप ५२२
सिंह ७०६
सिंहरा ३३८
सिंहाडा (रा), ५७८
सिकाकाई ३११
सिखरन ७७१
सिगमकाटी ४७३
सिगिपन २७९
सिज ३०८
सिटकी ४३५
सिटी ४३४

सिपन्दान ६५४
सिता पाटला २७९
सिताब ८४०
सितुही ७१०
सिंदरनवंक ५७२
सिद्धि १४२
सिलुआर ३४४
सिनोह ३४०
सिन्दुरिया ५०७
सिन्दुवार भेद् नील ३४४
,, ,, श्वेत ३४४
सिन्दूर ६११
सिन्धू ७०९
सिपिरस्तां ५८३
सिब ५८९
सिबर्गी ६७१
सिमक ३६७
सिमजंगा ४४१
सिमजंघा ४४२
सिमरिस २५८
सिमासिम ६५२
सिमुल मुसला ५३९
सियार पुछिया २८७
सियाल कांटा ९६
सियालपत्ता ४३६
सियाहजीरा ३२
सिरस ५१८
सिरिस ५१८
सिरूसवुक्कु ८७
सिलफडा १०५
सिलाजित ७४
सिलारस २१५
सिलिम ७
सिलिमकंग ७
सिलिमकुंग ७
सिल्लिका ७
सिवनी २७८
सिवार ४८५, ४८७
सिवार (१) ४८७
सिवार (२) ४८७
सिसयकान्ति ३६०
सिहारु ३३५
सिहोड (ढ़ा) ५४२
सिहोर ५४२
सिहोरा ५४२
सींगी मछली ७२०
सीतलचीनी २५८
सीताफल ६८१, ८३९
सीधु, पक्वरस ७८६
सीधु, शीतरस ७८६
सीधोलूण १५४
सीप ६२८
सीप जाति २३७
सीमुली ५३७
सीर १३१
सीर-ए-पिआज़क् १३४
सीलोन कलंबा १९१
सीलोनी दालचीनी २२७
सीवनी २७७
सीस ५२२
सीसम ५२२, ८००
सीसम-कपिलवर्ण ५२२
सीसा ६०६
सुंट १३
सुंठ १३
सुंड १३
संबुलुत्तीबे हिन्दी २४०
सुकूल वेत ३६३
सुक्करूल उषर ३०५
सुखड १८७
सुखदर्शन ४७६
सुगन्धकूठ ८०
सुगन्धपत्र ८२७
सुगन्धबाला १९९, २००, २२७, ८००
सुगन्धवाला-बाजार की २३८
सुगन्धमरिच २५९
सुगन्धवास्तुक ६६४
सुगन्धा ४२६
सुगन्धास्थूलग्रन्थिः-वचा-महाभरी ४७
सुगन्धीपानड़ी २६६
सुथनी ६९४
सुदण्ड ३६१
सुदर्शन २७०, ४७३, ४७६, ७१०
सुद्दाव ३१२, ८४०
सुधा ३०७
सुनक ४३०
सुनसुनिया साग ६७४
सुनिषण्णक २६४, ६७४
सुन्दी ४८४
सुन्दीबीज ५७९
सुपाडी ५६२, ५८२
सुपारी ५६२, ७९९
सुपारी कच्ची ५६२
सुपारी-दक्षिणी ५६२
सुपारी प्रकार ५६३
सुपारी लाल ५६३
सुपारी साधारण ५६३
सुफेद गदपुरना ४२२
सुफेदी खस १३७
सुमलु ११९
सुमाक ९८
सुमात्रा बेंझोइन २१४
सुमाली २५०
सुम्बुले हिन्दी २४०
सुम्रत् अल् अस्ल ८६
सुम्रात् उल् तुर्फाह ८७
सुरंगी (वृक्ष) २३१
सुरंजानकडवा ८४०
सुरंजान मीठा ८४०
सुरंजाने तल्ख ८४०
सुरंजाने शीरी ८४०
सुरईकई ६८०
सुरण ६९३
सुरतीखार १६६
सुरपर्ण ५११
सुरपर्णिका २३१
सुरपुन्नाग २३१

सुरमा-काला ६१९
सुरमा सफेद ६१९
सुरही ७९
सुरा ७८५, ७८६
सुराल ३८८
सुरुवा ७३६
सुरू ३०८
सुरोखार १६७
सुर्ख ३५४
सुर्वाली २६४
सुलतानचम्पा २३२
सुलेमानी खजूर ५८७
सुवर्चला ८२०
सुवर्चला वंगीय ४६४
सुवर्चिका १६७
सुवर्ण ६०३
सुवर्णकेतकी ४९८
सुवर्णजूही ४९२
सुवा ३५
सुषुणीशाक ६७४
सुहागा १६९
सूंठ १३
सूअर ७०९
सूखी नई मछली ७२२
सूच चेङ्गन ३५०
सूची ८४०
सूत्रनाभि ८२
सूप ७२५
सूम १३२
सूमि ३५८
सूरण ६९३
,, -कृषित ६९३
,, -वन्य ६९३
सूरनकन्द ६९३
सूर्णगड्डु ६९३
सूर्यक्षार १६७
सूर्यपर्णी २९७
सूर्यभक्ता ४६४
सूर्यविकाशी-कमल ४७९
सूर्यावर्ता ४६४
सूस ७१०
सेंगम् ५४१
सेंगुनगाछ ५४९
सेंड ३०८
सेंधानमक १५४
सेंधानोन १५४
सेओहा ६५४
सेकटो ३४०
सेगपुमुन्थरी ३३७
सेङ्ग १४
सेतकट ३७२
सेत काटाक्षडा ४६५
,, सरिश ६५४
सेताजरका ३७२
सेताण्डीर ३७२
सेतापेट्ट ३७२
सेतारेपडी ३७२
सेनेगा ८३५
सेन्दुरिया ५०७
सेन्धानमक ८०१
सेबु ५८९
सेम ६४६, ६८८
सेमई ७२६
सेम कृषित ६४६
,, जंगली ६४६
,, प्रकार ६४६
,, भेद ६८८
सेमर ५३७, ७९९-८०१
,, का गोंद ५३८
सेमल ५३७
,, के फूल ६७९
,, मुसली ५३७
सेरिंजी १०९
सेरी ३२७
सेलो ५२१
सेव के लड्डू ७३९
सेवती गुलाब ४८९
सेवन्ती ४८२
सेवामु २०
सेवार ४८५, ४८७
सेव्य ८००
सेह ७१२
सेहण्डक ७३४
सेहुण्ड ३०६, ३०८
,, तिधारा ३०८
,, -द्विविध ३०७
,, -पीत दुग्ध ३१०
सेहुण्डक्षीर-संग्रहविधि ३०७
सेहुण्ड जातियाँ ३०७
,, मूल ३०७
सैंधव १५४
सैंधवमीठ १५४
सैंधवलवण १५४
सैंजन ३४०
सैरेयक नील पुष्प ५०२
,, पीत ,, ५०२
,, भेद ५०२
,, रक्त ,, ५०२
,, श्वेत ,, ५०२
सोंचर नमक १६१, ७९८
सोंचल ४६४
सोंटि १३
सोंठ १३, ४७, ७९६
सोंठी १३
सोंफ ३६
सोंहजना ३४०
सोअ (अ्) द कूफी २४३, २४४
सोआ ३५
सोइमि ३५८
सोगो १६९
सोटटैकला ५७७
सोवद ५४१
सोदाब ५४१
सोन ३३८
सोनचक मीठ १६१
सोनचाँफा ४९३
सोनपत्ता २८४
सोनपाठा ८००
सोनपात ४६७
सोनबेल ३७३-७४

सोनहाली ६८
सोना ३३८, ६०२
सोनाखिरणी ९६
सोनागाछ २८४
सोनागेरू ६२०
सोनापाठा २८३–८४, ७९९
सोनापाठा-भेद २८४
सोनापाठा फल-कोमल, पक्क २८३
सोनामाखी ६०९
सोनामुखी ४६७
सोनालु ६८
सोनैया ४६९
सोन्दाली ६८
सोपारी ५६२
सोफी १००
सोम ४४५–४७
सोम (१) ४४५
सोम (२) ४४६
सोम-प्रतिनिधि ४४७
सोमराजी १२४, ८११
सोमलता ४४५–४६
सोमवल्क ३५०
सोमवल्ली ४४७
सोमिडमनु ३५८
सोऊपा ३५
सोया ३५
सोरठीमाटी ६२१
सोरहि ७९
सोरा १६७
सोरा कृत्रिम १६७
सोराखार १६४, १६७
सोराबाजारु १६८
सोराशुद्ध १६८
सोरुपेनक ६०
सोवा ३५
सोसन इरसा ९५
सोसनजर्द ४३
सोहंपे सोआ १०५
सोहागा १६९, ६२०
सोहागा कृत्रिम १६९
सोहागा चौकिया १६९
सोहागा शुद्ध १६९
सोहागा संश्लिष्ट १६९
सोहागा स्वाभाविक १६९
सोहारा ५८७
सोहिकिरे ३६
सौंठ १३
सौंफ ३६, ८३१
सौक्ष ३०८
सौते ६८२
सौम्या ४४६–४७
सौरसार १६७
सौराष्ट्रिकविष ६३१
सौराष्ट्रीमृत्तिका, ६२१
सौरी मछली ७१०
सौवर्चल १६१, १६७
सौवर्चल लवण १६०, १६२
सौवीर ५७२, ७८४
सौवीरांजन ६१९
स्कूदूंन १३२
स्किल १३६
स्ट्रोफन्थस् ८४१
स्त्रीकुटज ३४७, ३४९
स्थल कमल ४७९, ४८२, ८००
स्थलपद्म ४८२
स्थलपद्म (२) ४८३
स्थौणेयक २५२, २५४–५६
स्नुक् ३०७
स्नुहीभेद ३१०
स्पुन २५६
स्पृक्का २६४, ७९९, ८०१
स्पृक्का-प्रकार २६५
स्पोट १७
स्फटिका ६२०
स्या जीरा ३२
स्याजीरुं ३२
स्यामबेंझोइन २१४
स्यालकांटा ९६
स्याहगिर्द १७
स्याहजीरा ३२
स्याहदाना ३३
स्याहमूसली ३९०
स्रुवा ४२४
स्रोतोंजन ६१९
स्वर्णक्षीरी ९६, ६२४
स्वर्णजाती २६०, ४९१–९२
स्वर्ण जीवन्ती २९५, २९६
स्वर्णमूला ३६०
स्वर्णयूथिका ४८८
स्वर्णवल्ली ३७४
स्वादुकंदा ३८८
स्वादुकण्टक ७९८
स्वामीमर ३५८

ह

हंजले अहमर ४०५
हंजले सुर्स ४०५
हंतारुमिया ६६१
हंस ७०९
हंसपदी ४४४
हंसराज ४४४
हंसराजा ४४४
हकूम ४०२
हगौड ४३४
हजरतबेर ८४१
हजांखिरजा ३६२
हजारदाना ४५९
हजाराबेला ४९१
हब्बुल बकर २३५
हब्बुलविलादत २५२
हब्बुल यहूद ८४१
हश्शार २५३
हश्मिन ४९
हश्मिका १०२
हड ७
हडजोड ४१८
हडजोडी ४१८
हडजोखा ४१८

हडसंहारी ४१८
,, -वटक ४१८
हतिआन ५३९
हत्कन ७००
हत्ति ३७४
हत्तिमानक ५३९
हत्थाजोडी ८९६
हथिया ५०८
हदक २९०
हदगा ५०८
हन ७
हनुमानवेल ३७३
हन्दकूकी ४२३
हपुषा ५०
हपुषाद्वयम् ५०
हपुषाद्वय ५०
हविरसी ५५५
हबुलबकर ६५०
हबुस् सजीव् ५८५
हब्बउल अरअर ५०
हब्बतुस्सोदा ३३
हब्बुलकुल ३७४
हब्बुलगार ८२१
हब्बुलगुराब ५६८
हब्बुलबलसां ८३१
हब्बुलसमनह ५७६
हब्बुल् उरूस २५९
हब्बुल्कतल ६५१
हब्बुल्कलव १३९
हब्बुल्फहम १३९
हब्बुलिम(मु)ष्क १८३
हब्बुसूदान २६७
हब्बुस्समाना ५७५
हब्बुस्सला ४००
हब्बुस्सलातीन ४०१
हब्बे किल् किल् ९०
हमस ६४९
हयेर ४४९
हर ७
हरकय ८२
हरकाईचन्द्रा ८२
हरकुच ६७३
हरजां ३६२
हरड ७
हरडा ७
हरडी ७
हरडे ७
हरणखुरी ६७२
हरताल ६१८
हरदी ११४, ७९९, ८०१
हरफरौरी ५७४
हरफल ५७४
हरफारेवडी (री) ५७४
हरबरा ६४९
हरभर्याची आंबें १६२
हरमल ८४२
हरर ७
हरर्ल. ३८५
हरलु २९९
हरसिंगार ३३५, ३४४
हराचंपा ४९३
हरिक ६५८
हरिचंदन (दिव्य) १९२
हरिडा करेड़ा ७
हरिण ७०६, ७११
हरिताल ६१८
हरिद्रा, कर्पूर ११६
हरिद्रा, वन ११७
हरिद्रु ४९५
हरिनाशुकचिन ४९
हरियल ७०८, ७१४
हरियाशुकचिन ४९
हरीचाय ३८४
हरीतकी ७
हरीतकीगाछ ७
हरीतकीभेद ३५९
हरीतक्यादिवर्ग ३
हरीदूब ३८५, ८००
हरीसा ७३५
हरे ७
हरेणु २५२
हर्ड ७
हर्त्तकी ७
हर्दी ११४
हर्बात ३३२
हर्रे ७, ७९६
हर्रे ७
हलकषा ४६३
हलज ११४
हलद् ११४
हलदबेल ४९७
हलदर ११४
हलदी ११४
हलदू ४९५
हलपिला गिर्द १७
हलरा ७
हलसु ५५५
हलिम ३९
हलिवाण दमर ३३४
हलुद ११४
हलुमाणिका ५७७
हलेलज अस्फर ७
हलेलह जर्द ७
हलैलाह ७
हलैले जर्द ७
हल्दी ११४
हविज ३४
हवुपा २६०
हशीश १४२
हशीशतुस्सुआल ३२१
हसक २९२–९३
हसके कबीर २९३
हसीसुण्ठी १४
हस्तिकर्ण ७००
हस्तिकर्ण पलाश ७००
हस्तिदन्ती ४०२
हस्तिपत ४७१
हस्तिवारुणी ३५०
हांचुटी ४७४
हॉलीहाक ८१९

हाऊबेर ५०, ८६
हाऊबैर ५०
हाऊबोर ५०
हाकुच १२४
हाकुन ४००
हागल ६८३
हाज ४११
हाडजोडा ४१८
हाडभांगा ४१८
हाडसांकल ४१८
हाथी ७०९
हाथी चिकार २९२
हाथी के बच्चे की विष्ठा ६२४
हावुमेक्के कायि ४०३
हामेक्के ४०३
हारक ६५८
हारशणगार ३३५
हारिद्र विष ६३०
हालाहल ६३३
हालिम ३९
हालिमा ३९
हाले ५४६
हालों ३९
हाशा २८
हिंग ४१
हिंगचा ६७३
हिंगड़ो ४१
हिंगण ५३१
हिंगन ५३१
हिंग बधारणी ४१
हिंगु ४१
हिंगुआ ४१२
हिंगुनिर्यास ३३२
हिंगुपत्री ४५१, ४५२
हिंगुल ६१५
हिंगुलोत्थ पारद ६१५
हिंगुत्रिशेष ५५
हिंगुशिवाटिका ४५१
हिंगे ४१
हिंगोट ५३१
हिंगोन ५३१
हिंजल ३६३
हिंडोल ३६३
हिंदबाना ५६०
हिज्जल ३६१, ३६३–६४
हिड्नोकार्पस ऑइल ८२६
हिन्तयेरुमिया ६६१
हिन्ता ६४२
हिन्ददानह ५६०
हिन्द बानहे तल्ख ४०३
हिपली १५
हिप्पली १५
हिमज ७
हिमलचेरी ५२
हिमाम जनुन ४०६
हिरडा ७
हिरन-कस्तूरी १७८
हिरनमुस्की १७८
हिरनवेल ४२५
हिरवणी ३७५
हिरवा चहा ३८४
हिरवे मूग ६४३
हिलंचशाक ६७३
हिल तीत् ४१
हिलतीस् ४१
हिलिखा ७
हिलेंचाशाक ६७३
हिलसा मछली ७२०
हींग ४१, १८०, ७९८
हीरक ६२६
हीरादोखी ८२०
हीराबोल ६२२
हीरे ६८५
हील २२३
हीलउन्सा २२३
हीलकलाँ २२१
हीलबवा २२३
हुजल ६९७
हुड्डे २७९
हुणिसे ५९८
हुण्डूरू ५०५
हुब्ब ककनज ३६०
हुब्बुल बकर ६४९
हुम् ४४५
हुम्माज तुर्क्कहामेजा ६७२
हुयाकलकास ६९६
हुरहुर ४६४–६५
हुरहुर पीला ४६४, ४६५
हुरहुर बैंगनी ४६४, ४६५
हुरहुर-भेद ४६४
हुरहुर सफेद ४६४, ४६५
हुरहुरिया ४६५
हुरूली ६५१
हुर्फं ६५४
हुलवह ३७
हुली आरसीन ११६
हुलीचकोत ६७२
हुलुजेहिन्दी १२२
हूरिन शूकचिन ४९
हेडुदिगिडा ३६७
हेमतन्तु ८३४
हेमुष्टि ५६८
हेलाबीज ५७९
हेसरु ६४३
हैम जल ७४७, ७५०
हैमवती ९५
हैयङ्गवीन ७७६
होंगर ३३४
होंगे ३५०
होगला ३८१
होक्षेमर ५२४
होम ४४५
होरतकी ७
होरहा ७४५
होश ५०
हीवेर २००
ह्वेल मछली ८०९

Index of Latin and English Names.

A

Abies pindrow Royle 257
Abies webbiana Lindl. 257
Abroma augusta Linn. 500, 813
Abrus precatorius Linn. 354
Abutilon 367
Abutilon hirtum G. Don 370
Abutilon indicum (Linn.) Sw. 370
Acacia arabica Willd. 529
Acacia catechu Willd. 525
Acacia concinna DC. 310, 311
Acacia farnesiana Willd. 527
Acacia ferruginea DC. 526
Acacia latronum Willd. 499
Acacia leucophloea Willd. 527
Acacia suma Kurz 526
Acalypha indica Linn. 835
Achatina fulica 237
Achillea millefolium Linn. 832
Achyranthes aspera Linn. 414
Achyranthes bidentata Blume 416
Achyranthes rubro-fusca 416
Aconite 94, 629, 630
Aconite Leaved Kidney Bean 646
Aconitum balfourii Stapf 630
Aconitum chasmanthum Stapf ex Holmes 631
Aconitum deinorrhizum Stapf 630
Aconitum ferox Wall. 629
Aconitum heterophyllum Wall. 127
Aconitum laciniatum Stapf 630
Aconitum napellus Linn. 630
Aconitum palmatum D. Don. 127
Aconitum spicatum Stapf 630
Acorus calamus Linn. 43
Actinodaphne hookeri Meissn. 829
Actinopteris dichotoma Bedd. 478
Adansonia digitata Linn. 822
Adenanthera pavonina Linn. 192, 193
Adhatoda beddomei C. B. Clarke 320
Adhatoda vasica Nees 320, 321
Adiantum caudatum Linn. 478
Adiantum lunulatum Burm. 444
Adina cordifolia Benth. & Hook f. 495
Adlay 660
Aegle marmelos Corr. 274
Aerva lanata Juss. 105, 106
Aesculus indica Colebr 365
Aganosma calycina A. DC. 261
Aganosma caryophyllata G. Don. 261, 492
Agar-agar 809
Agaricus campestris Linn. 703
Aglaia roxburghiana Miq. 249, 250
Ailanthus excelsa Roxb. 284, 332, 333
Ajova seeds 25
Alangium lamarckii Thwaites 365
Albizzia lebbeck Benth. 518

Albizzia odoratissima Benth. 519
Albizzia procera (Roxb.) Benth. 519, 543
Alectra parasitica A. Rich. Var. Chitrakutensis 345
Aleurites moluccana Willd. 592
Alexandrian Laurel 231
Algae 809
Alhagi camelorum Fisch. 411
Alkanet Root 836
Alkanna tinctoria Tanscher 336
Allium ascalonicum Linn. 134
Allium capa Linn. 135
Allium leptophyllum Wall. 134
Allium macleanii Baker 835
Allium sativum Linn. 132
Almond 588
Alocasia indica (Roxb.) Schott 699
Aloe barbadensis Mill. 419
Aloe ferox Miller 420
Aloe perryi Baker 420
Aloe vera Tourn. ex Linn. 419
Aloes-Barbados 420
Aloes-Cape 420
Aloes-Caracao 420
Aloes-Glassy 420
Aloes-Hepatic 420
Aloes-Socotrine 420
Aloes-Vitreous 420
Aloes-Zangibar 420
Alpinia galanga Willd. 44, 46
Alpinia officinarum Hance 47
Alstonia scholaris R. Br. 549
Alternanthera sessilis (Linn.) R. Br. 452
Althaea officinalis Linn. 819
Althaea rosea Cav. 819
Altingia excelsa Noronha 215
Amaranthus blitum Var. oleracea Duthie 666
Amaranthus caudatus Linn. 667
Amaranthus gangeticus Linn. 666
Amaranthus sp. 667
Amaranthus spinosus Linn. 666
Ambari Hemp 89
Amber 826
Amberboa divaricata Kuntze 831
Ambergris 809
Amomum 221
Amomum aromaticum Roxb. 222
Amomum kepulaga Sprague & Burkill 224
Amomum subulatum Roxb. 221
Amoora rohituka W. & A. 528
Amorphophallus campanulatus Blume. 693
Ananas comosus Merr. 810
Anas moschata 181
Andrographis paniculata Nees 75
Andropogon citratus DC. 384
Andropogon jwarancusa Jones 262
Andropogon muricatus Retz. 239
Anethum foeniculum Linn. 36
Anethum sowa Kurz. 35
Angelica glauca Edgw. 255
Anise 831
Anisomeles malabarica R. Br. 265
Annona squamosa Linn. 839
Anogeissus latifolia Wall. 540
Anthemis nobilis Linn. 832
Anthocephalus cadamba Miq. 496
Antiaris toxicaria Lesch. 822
Antilope dorcas 181
Aphis 99

Apii fructus 27
Apium graveolens Linn. 22
Apple Tree 589
Apricot 813
Aquilaria agallocha Roxb. 194
Arabian Manna Plant 411
Aralia quinquefolia 373
Areca catechu Linn. 563
Argemone mexicana Linn. 96
Argyreia speciosa Sweet 409
Aristolochia bracteata Retz. 86, 97
Aristolochia indica Linn. 83,85
Aristolochia tagala Cham. 86
Artemisia 164
Artemisia absinthium Linn. 810
Artemisia maritima Linn. 823
Artemisia vulgaris Linn. 511
Artocarpus integrifolia Linn. f. 555
Artocarpus lakoocha Roxb. 556
Arundo donax Linn. 378
Asafoetida 41
Asarum europaeum Linn. 200
Asclepias curassavica Linn. 440, 812
Ash Gourd 679
Asparagus adscendens Roxb. 390, 391
Asparagus filicinus Buch & Ham. 392
Asparagus racemosus Willd. 392
Asparagus sarmentosus Linn. 392
Astercantha longifolia Nees 417
Astragalus gummifer Labill. 815
Astragalus strobiliferus Royle 815
Atropa acuminata Royle ex Lindley 840
Atropa belladona Linn. 841
Atropa mandragora 373
Avena byzantina C. Koch. 641
Averrhoa carambola Linn. 597
Avicennia officinalis Linn. 826
Axle-wood 540
Azadirachta indica A. Juss. 329

B

Babreng 52
Bacopa 461
Bacopa monnieri (Linn.) Pennell 461
Bacopa monniera Wetts. 461
Bael fruit 274
Balanites roxburghii Planch 531
Baliospermum montanum Muell-Arg. 399, 400
Balsamodendron mukul Hook. ex Stocks 205
Bamboo 376
Bamboo manna 58
Bambusa arundinacea Willd. 58, 376
Banyan Tree 513
Barbados Aloe 419
Barilla 165
Barleria cristata Linn. 502
Barleria prionitis Linn. 502,503
Barleria strigosa Willd. 502
Barley 641
Barringtonia acutangula (Linn.) Gaertn. 364
Basal 54
Basella rubra Linn. 965
Bassia latifolia Roxb. 579
Bassia longifolia Linn. 580
Bastard Ipecacuanha 440
Bastard Saffron 112

Bauhinia malabarica Roxb. 337
Bauhinia purpurea Linn. 337, 338
Bauhinia racemosa Lam. 337
Bauhinia tomentosa Linn. 337, 338
Bauhinia vahlii W. & A. 436
Bauhinia variegata Linn. 337
Bay-berry 100
Bay Salt 154
Bead Tree 332
Beddanut 9
Beet root 164
Beleric myrobalans 9
Bengal Cardamom 222
Bengal Gram 649
Bengal Quince 274
Benincasa cerifera Savi. 679
Benzoin 214
Benzoinum 214
Berberine 121
Berberis aristata DC. 119
Berberis asiatica Roxb. ex DC. 119
Berberis lycium Royle 120
Berberis species 119
Betel leaf 272
Betel-nut Palm 563
Betula alnoides Buch. 535
Betula utilis D. Don 535
Bezoar 235
Biborate of soda 169
Bimlapatam Jute 89
Biophytum sensitivum (Linn.) DC. 373, 456, 457
Bishop's weed 25
Bitter Gourd 682, 684
Bixa orellana Linn. 507
Black Caraway seed 32
Black Catechu 525
Black Cumin 33
Black Gram 644
Black Hellebore 72
Black oil 90
Black Pepper 17
Black Salt 161
Bladder Dock 672
Blepharis edulis Pers. 813
Blumea balsamifera DC. 174, 475
„ Camphor 173
„ densiflora DC. 174
„ lacera DC. 174, 475
„ malcolmii Hook. f. 174
Boerhaavia diffusa Linn. 42, 423
Boerhaavia repanda Willd. 423
Boerhaavia sp. 421
Bombax malabaricum DC. 537
Bonduc nut 352
Borassus flabellifer Linn. 564
Borax 169
Boric acid 170
Borneo Camphor 173
Bos Indicus 181
Boswellia carterii Birdw. & other sp.—Gum resin 213
Boswellia serrata Roxb. 212, 521
Box myrtle 100
Brassica campestris var. sarson Prain 655
Brassica juncea Linn. 655
Brassica nigra Linn. 656
Bridelia montana Willd. 524
Brinjal 690
Bristly Luffa 469
Brunella vulgaris Linn. 814
Buchanania latifolia Roxb. 576
Bushy Gardenia 77
Butea frondosa Koen. ex. Roxb. 536

C

Caccinia glauca Savi 471
Caesalpinia bonducella Fleming 352
Caesalpinia crista Linn. 352
Caesalpinia sappan Linn. 192, 193
Cajanus indicus Spreng. 648
Cajanus indicus Spreng. var. biocolor 648
Cajanus indicus Spreng. var. flavus 648
Cajuput Tree 817
Calamus tenuis Roxb. 361, 362
Callicarpa macrophylla Vahl 249, 250
Calophyllum inophyllum Linn. 232
Calotropis gigantea (Linn.) R. Br. ex Ait. 303, 304
Calotropis procera (Ait.) R. Br. 303, 304
Calumba 191
Cambi resin 55
Camellia sinensis (Linn.) O. Kuntze 822
Camphor 173
Camphora 173
Camphor—Blumea 173
—Borneo 173
—Cinnamomum 174
—Ocimum 174
—Synthetic 173
Camphor oil of Borneo 173
Canavalia gladiata (Jacq.) DC. 688
Candle nut tree 592
Cane 362
Cannabis 142
Cannabis indica Lam. 142
Cannabis sativa Linn. 142
Canscora decussata Schult. 342, 455
Capparis aphylla Roth. 541
Capra ibex 181
Capsicum annum Linn. 834
Carambola 597
Cardamom Fruit 223
Careya arborea Roxb. 100, 543
Carica papaya Linn. 829
Carilla Fruit 684
Carissa carandas Linn. 575
Caroxylon griffithi 165
Carrot 698
Carthamus tinctorius Linn. 112
Carum carvi Linn. 32
Carum copticum Benth. & Hook. 25
Caryophyllus aromaticus Linn. 219
Cascara sagrada 816
Casearia esculenta Roxb. 360
Casearia tomentosa Roxb. 359
Cassava 839
Cassia absus Linn. 267
Cassia acutifolia Delile 467
Cassia angustifolia Vahl 467
Cassia cinnamon 225
Cassia fistula Linn. 68
Cassia obovata (L.) Collad. 467
Cassia obtusifolia Linn. 126
Cassia occidentalis Linn. 677
Cassia sophera Linn. 677
Cassia tora Linn. 125
Cassie Flower 527
Cassytha filiformis Linn. 447, 448
Castor fibre 181, 186
Caustic alkalies 171
Cedrela toona Roxb. 534
Cedrus deodara (Roxb.) Loud. 196

Ceiba pentandra (Linn.) Gaertn. 539
Celastrus paniculatus Willd. 90
Celery fruit 27
Celosia argentea Linn. 264
Celosia cristata Linn. 477, 478
Centaurea behen Linn. 831
Centella asiatica (Linn.) Urban 462
Centipeda orbicularis Lour. 474
Centratherum anthelminticum Kuntze 811
Cephaelis ipecacuanha (Brot.) A. Rich. 812
Ceratophyllum demersum Linn. 487
Ceylon Leadwort 22
Ceylon Oak 554
Chamomile 832
Chaulmoogra oil 826
Chavica roxburghii 16
Chebulic Myrobalans 7
Cheiranthus cheiri Linn. 827
Chenopodiaceae 165
Chenopodium album Linn. 664
Chenopodium ambrosioides Linn. 664
Chickling Vetch 650
Chick Pea 649
Chicory 817
China root 48
Chinese Beans 645
Chinese Cassia 225
Chireta 73
Chir Pine 198
Chloride of sodium 154
Chlorophytum arundinaceum Baker 390, 391
Chlorophytum tuberosum Baker 391
Chondrodendron tomentosum Ruiz & Pav. 396
Christmas rose 72
Cicca acida (Linn.) Merrill 574
Cicer arietinum Linn. 649
Cichorium endivia Linn. 817
Cichorium intybus Linn. 817
Cimicifuga foetida Linn. 295
Cinchona sp. 839
Cinnamon Bark 226
Cinnamomum camphora Nees & Eberm. 175
Cinnamomum cassia Blume 225
Cinnamomum tamala Nees & Eberm. 228
Cinnamomum zeylanicum Blume 226
Cissampelos pareira Linn. 395
Cissus quadrangularis Linn. 418
Citron 593
Citron oil 593
Citrullus colocynthis Schrad. 403
Citrullus vulgaris Schrad. 560
Citrullus vulgaris var. fistulosus (St.) Duthie & Fuller 690
Citrus aurantium Linn. 567
Citrus decumana Linn. 594
Citrus genus 599
Citrus limettioides Tanaka 596
Citrus limon Linn. 594
Citrus medica Linn. 593
Citrus medica var. acida of Watt. 595
Citrus paradisi Macf. 594
Citrus reticulata Blanco 566
Citrus sinensis (Linn.) Osbeck 596
Civet 185

Civet cat 185
Clausena pentaphylla (Roxb.) DC. 836
Claviceps purpurea Tulasne 810
Clematis gouriana Roxb. 436
Cleome isocandra Linn. 465
Cleome monophylla Linn. 464, 465
Cleome viscosa Linn. 464, 465
Clerodendrum infortunatum Linn. 254
Clerodendrum phlomidis Linn. f. 281, 360
Clerodendron serratum Spreng. 102
Clerodendron siphonanthus (R. Br.) C.B. Clarke 104
Clitoria ternatea Linn. 342
Cloves 219
Clustered Hiptage 497
Cobra's saffron 230
Coca 819
Cocaine plant 819
Coccinia indica W. & A. 687
Cocculus hirsutus (Linn.) Diels 449
Cochin turmeric 117
Cochlospermum religiosum (Linn.) Alston 816
Coconut 559
Cocoons 819
Cocos nucifera Linn. 559
Coffea arabica Linn. 816
Coffee 816
Coix lachryma jobi Linn. 660
Colchicine 840
Colchicum autumnale Linn. 840
Colchicum luteum Baker 840
Coleus aromaticus Benth. 105, 107
Colocasia antiquorum Schott 696
Colocynth 403
Colophony 199, 208
Commiphora myrrha Holmes 622
Commiphora opobalsamum Engl. 831
Common Cress 39
Common Flax 653
Common Indian Aloe 419
Conmon Indian Shink 837
Conessi Bark. 347
Convolvulus arvensis Linn. 425
Convolvulus pluricaulis Choisy 342, 454
Convolvulus scammonia Linn. 838
Coptis teeta Wall. 433, 834
Coral Tree 334
Corchorus capsularis Linn. 668
Corchorus fascicularis Lam. 672
Corchorus olitorius Linn. 669
Cordia dichotoma Forst. f. 583
Cordia myxa Roxb. 583
Cordia rothii Roem. & Schult. 584
Cordia wallichii G. Don. 584
Coriander fruit 34
Coriandrum sativum Linn. 34
Coscinium fenestratum (Gaertn.) Colebr. 122
Costus root 91
Costus speciosus (Koen.) Sm. 94, 701
Cotton plant 374
Country borage 107
Country gooseberry 574
Country mallow 367
Cowitch 357
Cowpeas 645
Crataeva nurvala Buch.-Ham. 542

Creeping cynodon 385
Cressa cretica Linn. 836
Crinum 476
Crinum asiaticum Linn. 473, 476
Crinum defixum Ker Gawl. 476
Crinum latifolium Linn. 476
Crocodilus vulgaris 181
Crocus sativus Linn. 233
Crotalaria verrucosa Linn. 430
Croton oblongifolius Roxb. 399, 402
Croton oil seed 401
Croton polyandrus Roxb. 399
Croton tiglium Linn. 401
Cryptolepis buchanani Roem. & Schult. 427
Cubebs 259
Cucumber 562
Cucumis melo Linn. 561
Cucumis momordica Roxb. 558
Cucumis sativus Linn. 562
Cucumis trigonus Roxb. 405
Cucumis utilissimus Roxb. 682
Cucurbita maxima Duchesne 681
Cucurbita moschata Duchesne ex Poir. 681
Cucurbita pepo Linn. 680
Cumin seed 31
Cuminum cyminum Linn. 31
Curacao Aloe 419
Curculigo orchioides Gaertn. 390
Curcuma amada Roxb. 117
Curcuma angustifolia Roxb. 825
Curcuma aromatica Salisb. 117
Curcuma caesia Roxb. 118
Curcuma longa Linn. 114
Curcuma zedoaria Rosc. 245
Cuscus grass 239
Cuscuta reflexa Roxb. 447
Custard Apple 839
Cuttle Fish Bone 60
Cyclea burmanni Miers 395, 397
Cyclea peltata H. f. & T. 395, 396
Cydonia oblonga Mill. 832
Cymbopogon citratus (DC.) Stapf 384
Cymbopogon jwarankusa Schult. 261, 262, 384
Cymbopogon schoenanthus Linn. 383
Cynanthus 246
Cynips tinctoria Oliv. 834
Cynodon dactylon (Linn.) Pers. 385
Cyperus 264
Cyperus esculentus Linn. 702
Cyperus rotundus Linn. 243
Cyperus scariosus R. Br. 244

D

Daemia extensa R. Br. 813
Daemonorops draco Blume 820
Dalbergia latifolia Roxb. 522
Dalbergia sissoo Roxb. 522
Dandelion Root 828
Date 587
Date Palm 587
Datura innoxia Miller 319
Datura metel Linn. 319
Datura stramonium Linn. 318
Datura tatula Linn. 318
Daucus carota var. sativa DC. 698
Deccan Hemp 89
Delphinium denudatum Wall. 129
Delphinium zalil Aitch. & Hemsl. 431, 432

Dendrobium macraei Lindl. 295, 296
Dendrophthoe falcata (Linn. f.) Etting. 450
Desmodium gangeticum DC. 285
Desmostachya bipinnata Stapf 382
Devil's cotton 813
Dichrostachys cinerea W. & A. 473
Dicotyles torquatus 181
Digitalis lanata Ehrh. 825
Digitalis purpurea Linn. 825
Dillenia indica Linn. 833
Dioscorea bulbifera Linn. 386
Dioscoreaceae 388
Dioscorea Sp. 695
Diospyros embryopteris Pers. 567
Diospyros melanoxylon Roxb. 567
Dipterocarpus alatus Roxb. 520, 821
Dolichos biflorus Linn. 651
Dolichos lablab Linn. 646
Dordar 447
Dorema ammoniacum D. Don. 814
Doronicum hookeri Hook. f. 828
Doronicum pardalianches Linn. 828
Doronicum roylei DC. 828
Double Coconut Palm 828
Dragon's blood 820
Dregia volubilis Benth. ex Hook. f. 295, 435
Dried Catkins 16
Drum Stick Tree 340
Dryobalanops camphora Colebr. 173
Dry Zingiber 13
Dwarf Cherry 263

E

Eagle wood 194
East Indian Arrowroot 825
Echinochloa frumentacea Link. 658
Echinops echinatus Linn. 814
Eclipta alba Hassk. 429
Egg-Plant 690
Eichhornia crassipes Solms 485, 486
Elaeocarpus ganitrus Roxb. 837
Elaeodendron glaucum Pers. 545
Elephant Creeper 409
Elephant Grass 381
Elephantopus scaber Linn. 471, 477
Elettaria cardamomum Maton 223
Embelia ribes Burm. 52
Embelia tsjeriam-cottam A. DC. 54
Emblica officinalis Gaertn. 11
Emblic Myrobalan 11
Emetic Nut 77
Enhydra fluctuans Lour. 673
Enicostemma littorale Blume 75
Ephedra 445
Ephedra gerardiana (Wall.) Stapf 445
Ephedra nebrodensis (Tineo) Stapf 446
Eragrostis cynosuroides Beauv. 382
Ergot 810
Eriodendron anafractuosum DC. 539

Eruca sativa Mill. 654
Ervum lens Linn. 647
Erythraea roxburghii G. Don 75
Erythrina indica Lam. 334, 500, 528
Erythrina stricta Roxb. 246
Erythina suberosa Roxb. 335
Erythroxylum coca Lam. 819
Eucalyptus globulus Labill. 827
Eugenia aromatica Kuntze 219
Eugenia heyneana Wall. 571
Eugenia jambolana Lam. 570
Eugenia jambos Linn 520
Eugenia operculata Roxb. 570
Eulophia campestris Wall. 835
Euonymus 818
Euonymus atropurpureus Jacq. 818
Euonymus tingens Wall. 818
Eupatorium ayapana Vent. 811
Eupatorium triplinerve Vahl 811
Euphorbia antiquorum Linn. 308, 309
Euphorbia dracunculoides Lam. 310, 312
Euphorbia hirta Linn. 458
Euphorbia hypericifolia Linn. 459
Euphorbia microphylla Heyne 459
Euphorbia neriifolia Linn. 308
Euphorbia nivulia Buch. & Ham. 308
Euphorbia royleana Boiss. 308
Euphorbia thymifolia Linn. 459
Euphorbia tirucalli Linn. 308, 310, 311
Euphorbia trigona Haw. 308
Euryale ferox Salisb. 578
Evolvulus alsinoides Linn. 342, 454
Exacum bicolor Roxb. 74
Exacum tetragonum Roxb. 75
Exile Tree 316
Exogonium purga Benth. 823
Extract of Indian Berberis 122
Extractum Berberis 122
Extractum fellis bovini 236

F

Fagonia arabica Linn. 412
Fennel Fruit 36
Fenugreek 38
Feronia elephantum Correa 566
Ferula 452
Ferula alliacea Boiss. 41
Ferula foetida Regel 41
Ferula narthex Boiss. 41
Fetid cassia 125
Fever nut 352
Ficus arnottiana Miq. 515
Ficus bengalensis Linn. 513
Ficus carica Linn. 809
Ficus glomerata Roxb. 516
Ficus heterophylla Linn. f. 432, 433
Ficus hispida Linn. 517
Ficus infectoria Roxb. 518
Ficus religiosa Linn. 514
Ficus retusa Linn. 515
Ficus rumphii Blume 515
Field Pea 649
Field Pumpkin 680
Fig 809
Five leaved chaste tree 344
Flacourtia cataphracta Roxb. 573
Flacourtia ramontchi L' Herit. 577
Flat Bean 646
Fleabane 369

Flueggea leucopyrus Willd. 51
Foeniculum vulgare Mill. 36
Forest Flame 536
Fossil Encrinite 841
Four O'clock Plant 822
Fox Nut 578
Frankincense 212, 213
Fumaria indica Pugsley 324, 325
Fumaria officinalis Linn. 326
Fungi Imperfecti 195
Fusanus acuminatus 188
Fusanus spicatus 188

G

Gaint Taro 699
Gall 87, 88, 99
Gall stone 235
Gamboge 533
Garcinia hanburyi Hook. f. 533
Garcinia indica Chois. 600
Garcinia morella Desr. 533
Garcinia pedunculata Roxb. 599
Garden Endive 817
Gardenia gummifera Linn. 55
Garden Lettuce 817
Garden Nightshade 438
Garden Pea 649
Garden Purslane 671
Garden Rue 840
Garlic 132
Gaub Persimon 567
Gaultheria fragrantissima Wall. 833
Gelidium amansii Kutz. 809
Gentiana dahurica Fisch. 431
Gentiana kurroo Royle 71, 431, 432
Geranium oil 383
Geranium wallichianum D. Don 836
Gigantic Swallow-wort 304
Gingelli 652
Ginger 13
Ginger root 14
Ginseng 373
Gisekia pharnaceoides Linn. 263
Gloriosa superba Linn. 313
Glory Lily 313
Glossocardia linearifolia Cass. 324, 327
Glycyrrhiza glabra Linn. 65, 355
Gmelina arborea Linn. 277
Gold Thread 834
Gorgon Fruit 578
Gossypium arboreum Linn. 375
Gossypium herbaceum Linn. 374
Governor's Plum 577
Gram 649
Grape Fruit 594
Grapes 585
Greater Cardamon 221
Greater Galangal 45
Green Gram 643
Grewia asiatica Linn. 580
Grewia hirsuta Vanb. 367, 372
Grewia populifolia Vahl 367, 372
Grewia tiliaefolia Vahl 540
Gum Ammoniac 814
Gummy Gardenia 55
Gum of silk cotton tree 538
Gum resin of Boswellia serrata Roxb. 212
Gymnema sylvestre R. Br. 443
Gynandropsis pentaphylla DC. 464, 465
Gynocardia odorata R. Br. 826

H

Hedychium spicatum Ham. ex Smith 247
Hedyotis biflora 324
Hedyotis burmanniana 324
Helicteres isora Linn. 246, 437
Helix aspera 237
Helleborus niger Linn. 71, 72
Hemidesmus indicus R. Br. 427
Henbane 29
Herpestis monniera (Linn.) H. B. & K. 461
Hibiscus abelmoschus Linn. 183
Hibiscus cannabinus Linn. 86, 88
Hibiscus mutabilis Linn. 483
Hibiscus rosa-sinensis Linn. 506
Hibiscus sp. 506
Himalayan Cedar 196
Himalayan Silver Birch 535
Himalayan Silver Fer 256
Himalayan Yew 256
Hiptage madablota Gaertn. 497
Hoarhound 830
Hog Gum 816
Hogweed 423
Holarrhena antidysenterica Wall. 76, 347
Hollyhock 819
Holoptelia integrifolia Planch. 353
Holostemma annulare K. Schum. 295
Holostemma rheedianum Spreng. 295, 456
Holy Basil 509
Homonoia riparia Lour. 105, 108
Hordeum vulgare Linn. 641
Horehound 830
Horse-gram 651
Horse purslene 423
Horse Radish Tree 340
Hydnocarpus kurzii (King.) Warb. 826
Hydnocarpus laurifolia (Dennst.) Sleumer. 826
Hydnocarpus oil 826
Hydnocarpus wightiana Blume 826
Hydrocotyle asiatica Linn. 462
Hydrocotyle rotundifolia Roxb. 462
Hygrophila spinosa T. And. 417
Hygroryza aristata Nees 660
Hyoscyamus niger Linn. 29
Hyssop 824
Hyssopus officinalis Linn. 181, 824

I

Ichnocarpus fruitescens R. Br. 427
Illicium verum Hook. f. 832
Impure carbonate of potash 163
Impure carbonate of soda 165
Indian Aconite 631
Indian Atees 127
Indian Bdellium 205
Indian Beech 350
Indian belladona 840
Indian berberry 119
Indian birthwort 85
Indian Colza 654
Indian cotton 374
Indian dill fruit 35
Indian Gamboge Tree 533
Indian Gentian 71
Indian gooseberry 11
Indian Hemp 88, 142

Indian Hogplum 553
Indian Jalap 397
Indian Kino tree 524
Indian laburnum 68
Indian Lilac 329
Indian madder 110
Indian Mallow 370
Indian Melissa oil 384
Indian Millet 657
Indian mustard 655
Indian Nard 240
Indian oat 641
Indian oil of Verbena 384
Indian olibanum 212
Indian Pennywort 462
Indian Podophyllum 821
Indian Privet 344
Indian Rosewood 522
Indian Sarsaparilla 427
Indian Senna 467
Indian Shink 837
Indian Sorrel 671
Indian Spinach 665
Indian Squill 136
Indian Teak Tree 549
Indian Valerian rhizome 199
Indigo 407
Indigofera tinctoria Linn. 407
Inula racemosa Hook. f. 80, 94, 95
Ionidium suffruticosum Ging. 482
Ipecacuanha 812
Ipomoea aquatica Forsk. 669
Ipomoea batatas Lam. 695
Ipomoea biloba Forsk. 409, 410
Ipomoea digitata Linn. 388, 389
Ipomoea hederacea Jacq. 818
Ipomoea muricata Jacq. 819
Ipomoea orizabensis (Pellet.) Ledanois 838
Ipomoea petaloidea Chois. 409, 410
Ipomoea reniformis Chois. 477
Ipomoea sepiaria Koen. 373
Ipomoea turpethum R. Br. 397
Iris florentina Linn. 95
Iris germanica Linn. 45, 95
Iris versicolor Linn. 95
Ivy-gourd 687
Ixora arborea Roxb. 489
Ixora sp. 506

J

Jack Tree 555
Jalap 398
Jalap Radix 823
Jambul Tree 570
Japanese Barnyard Millet 658
Jasminum arborescens Roxb. 489
Jasminum auriculatum Vahl 492, 493
Jasminum grandiflorum Linn. 491
Jasminum heterophyllum 493
Jasminum humile Linn. 492
Jasminum pubescens Willd. 503
Jasminum sambac Ait. 490
Jasminum sambac a variety 497
Jateorhiza palmata Miers 191
Jatropha curcas Linn. 302
Jatropha gossipifolia Linn. 302
Java Galangal 46
Jequirity 354
Jobs Tears 660
Juglans regia Linn. 592
Jujube 572
Juniper berry 50
Juniperus communis Linn. 50
Juniperus macropoda Boiss. 51

Justicia diffusa Willd. 324, 327
Justicia gendarussa Burm. 320, 323, 344
Justicia picta Linn. 320, 322
Justicia procumbens Linn. 324, 327
Jute 88

K

Kaempferia galangal Linn. 247
Kalanchoe pinnata Pers. 105, 107
Kamala 66
Karaya Gum 815
Katira Gum 816
Kelp 165
Knot-grass 253
Kokam Butter Tree 600
Kurchi Bark 347
Kyllingia triceps Rottb. 94

L

Lac 113
Laccifera lacca (Kerr) 113
Lactucarium 818
Lactuca sativa Linn. 817
Lactuca serriola Linn. 817
Lactuca virosa Linn. 818
Lagenaria vulgaris Ser. 681, 682
Lagerstroemia flos-reginae Retz. 547, 548
Lamb's quarters 664
Land snail 237
Laurus nobilis Linn. 821
Lavandula stoechas Linn. 814
Leadwort—Ceylon 22
" —rose coloured 24
" —white 22
Leea hirta Roxb. 442
Leea macrophylla Horn. 700
Lemon 594
Lemon-grass 384
Lens culinaris Medic. 647
Lentil 647
Lepidium iberis Linn. 827
Lepidium sativum Linn. 39
Leptadenia reticulata W. & A. 295
Leptadenia spartium Wt. 425
Lesser Cardamon 223
Lesser Galangal 47
Lettsomia setosa Roxb. 388
Leucas cephalotes Spreng. 463
Ligularia 94
Lime 595
Limnophila gratioloides R. Br. 174
Linseed 653
Lathyrus sativus Linn. 650
Linum usitatissimum Linn. 653
Lippia nodiflora Mich. 470
Liquidamber orientalis Miller 215
Liquid Storax 215
Liquorice Root 65
Litsea glutinosa (Lour.) C. B. Robins 835
Lobelia 378
Lobelia excelsa Lesch. 379
Lobelia inflata Linn. 379
Lobelia nicotianaefolia Heyne 377, 378
Lodh 128
Lodoicea maldivica (Poir.) Pers. 828
Long-leaved Pine 198
Long pepper 16
Loranthus longiflorus Desr. 450
Lovage 25
Lucky nut 316
Luffa acutangula (Linn.) Roxb. var. amara Clarke 685
Luffa acutangula Roxb. 685
Luffa aegyptiaca Mill. ex Hook. f. 685

Luffa echinata Roxb. 469
Luffa graveolens Roxb. 469
Lycopodium clavatum Linn. 838
Lycopodium spores 838

M

Mabuya carinata Schneider 837
Mace 218
Madder root 110
Maerua arenaria Hook. f. & Th. 437
Ma-huang 445
Maiden hair 444
Malabar catmint 265
Malabar kino 524
Malabar nut 321
Malaya tea 124
Malefern 53
Mallotus philippinensis Muell.-Arg. 66
Mallow Leaves 820
Malvae Folia 820
Malva rotundifolia Linn. 464, 820
Malva sylvestris Linn. 820
Mandragora autumnalis Spreng. 373
Mangifera indica Linn. 552
Mango ginger 117
Mango tree 552
Manihot esculenta Crantz. 839
Maranta arundinacea Linn. 825
Margosa 329
Marking-nut tree 139
Marrubium vulgare Linn. 830
Marsdenia hamiltonii Wight 435
Marsdenia tenacissima W. & A. 435
Marsilea minuta Linn. 674
Marsilea quadrifoliata 265
Martynia diandra Glox. 440
Mathiola incana R. Br. 827
Matricaria chamomilla Linn. 832
Melaleuca leucadendron Linn. 817
Melia azadirachta Linn. 329
Melia azedarach Linn. 332
Melilotus parviflora Desf. 39
Melon 561
Mentha piperata Linn. 829
Mentha spicata Linn. 830
Menthol 829
Merremia tridentata Hall. 424
Mesua ferrea Linn. 230
Metroxylon rumphii Mart. 839
Metroxylon sagu Rottb. 839
Mexican poppy 96
Michelia champaca Linn. 493
Mild Himalaya Cherry 202
Milfoil 832
Millingtonia hortensis Linn. f. 332
Mimosa pudica Linn. 457
Mimusops elengi Linn. 494
Mimusops hexandra Roxb. 576
Mirabilis jalapa Linn. 822
Mollugo stricta Linn. 325, 328
Momordica charantia Linn. 684
Momordica dioica Roxb. 466, 691
Monkey Jack 556
Moringa concanensis Nimmo 340
Moringa pterygosperma Gaertn. 340
Morus indica Linn. 581
Morus laevigata Wall. 582
Moschus 178
Moschus moschiferus 178
Mother cloves 221
Mountain Ebony 337
Mozambique Orange 596

Mucuna pruriens Bek. 357
Mudar 304
Mukia scabrella Arn. 263
Mulberry 581
Murraya koenigii Spreng. 332
Musabbar 419
Musa paradisiaca Linn. 557
Musa sapientum Linn. 557
Mush-room 703
Musk 178
Musk aldehyde 181
Musk ambrette 181
Musk artificial 180
Musk azimido 181
Musk cyano 181
Musk ketone 181
Musk mallow 183
Musk synthetic 180
Musk xylene 181
Mustela foina 181
Myrica nagi Thunb. 100
Myristica fragrans Houtt. 216, 218
Myristica malabarica Lam. 100
Myrobalans 7
Myrrh 622
Myrsine africana Linn. 833
Mytragyna parviflora Korth. 495

N

Nardostachys jatamansi DC. 240
Nardus root 240
Neem Tree 329
Negro coffee 676
Nelumbium speciosum Willd. 480
Nepal cardmon 221
Neptunia oleracea Lour. 457
Nerium odorum Soland. 315
Neroli oil 597
Nicotiana tabacum Linn. 825
Nigella sativa Linn. 33
Nigella seed 33
Night Jasmine 335
Nut-grass 243
Nutmeg 216
Nux-vomica tree 568
Nyctanthes arbor-tristis Linn. 335, 344
Nymphaea alba Linn. 484
Nymphaea pubescens Willd. 484
Nymphaea rubra Roxb. 484
Nymphaea stellata Willd. 484

O

Ochrocarpus longifolius Benth. & Hook. f. 230, 231
Ocimum basilicum Linn. 105, 511, 512
Ocimum gratissimum Linn. 509
Ocimum kilimandscharicum Guerke 174
Ocimum sanctum Linn. 509
Ocimum sp. 509
Odina woodier Roxb. 532
Oil of Wintergreen 833
Oldenlandia biflora Linn. 324
Oldenlandia corymbosa Linn. 324, 325
Olea europoea Linn. 824
Oleo-resin of Pine 208
Oleo resina of Pinus longifolia & other sp. 208
Oleum nigrum 90
Olibanum 213
Olive oil 824
One clove garlic 134
Onion 135
Onosma bracteatum Wall. 471, 472, 836

Operculina turpethum Silva Manso 397
Ophiorrhiza mungos Linn. 82, 453
Opium 147
Orange 566
Orchis latifolia Linn. 835
Orchis laxiflora Lam. 835
Orchis mascula Linn. 835
Origanum majorana Linn. 510
Origanum vulgare Linn. 310
Oroxylum indicum Vent. 284
Orris root 95
Orthosiphon grandiflorus Boldingh 511
Oryza sativa Linn. 639
Os Sepiae 60
Osyris tenuifolia 188
Ougeinia dalbergioides Benth. 546, 547
Ovibos moschatus 181
Oxalis corniculata Linn. 671

P

Paddy 639
Paederia foetida Linn. 424, 425
Paeonia emodi Wall. 815
Paeonia officinalis Linn. 815
Palmyra Palm 564
Pandanus odoratissimus Roxb. 498
Panicum miliaceum Linn. 657
Papain 829
Papaveris capsulae 145
Papaver somniferum Linn. 145
Pareira root 396
Paris polyphylla Sm. 45
Parmelia perlata Aeh. 242
Parrot seed 112
Paspalum scrobiculatum Linn. 658
Pavonia odorata Willd. 237
Peach 811
Pear 590
Pearl Barley 641
Pedalium murex Linn. 293
Peganum harmala Linn. 321, 842
Pentapetes phoenicea Linn. 506
Pentatropis microphylla W. & A. 439
Peppermint 829
Pergularia extensa N. E. Br. 813
Peristrophe bicalyculata Nees 323, 441
Persian Lilac 332
Persian Manna Plant 411
Petitgrain oil 597
Peucedanum graveolens Linn 35
Phaseolus aconitifolius Jacq. 647
Phaseolus aureus Roxb. 643
Phaseolus lunatus variety 824
Phaseolus mungo Linn. 644
Phaseolus trilobus Ait. 297
Phoenix dactylifera Linn. 587
Phoenix sylvestris Roxb. 587
Phragmites kirka Trin. 377, 378
Phyllanthus distichus Muell. Skells 574
Phyllanthus emblica Linn. 11
Phyllanthus niruri Linn. 460
Phyllanthus urinaria Linn. 460
Physalis alkekenji Linn. 360
Physalis indica 360
Physalis minima Linn. 360
Physic nut 352
Picrasma quassioides Benn. 103
Picrorhiza 70
Picrorhiza kurroa Royle ex Benth. 70, 71
Pigeon pea 648

Pimpinella anisum Linn. 831
Pineapple 810
Pinus deodar 196
Pinus excelsa Wall. 198
Pinus gerardiana Wall. 823
Pinus khasya Royle 198
Pinus longifolia Roxb. 198,208
Pinus succinifera (Goppert) Cornw. 826
Piper aurantiacum Wall. 251
Piper betle Linn. 272
Piper chaba Hunter 20
Piper cubeba Linn. f. 259
Piper longum Linn. 16, 19
Piper nigrum Linn. 17
Piper officinarum Cas D. C. 20
Piper root 19
Piper sylvaticum Roxb. 16
Pistacia integerrima Stew. ex Brandis 98
Pistacia lentiscus Linn. 837
Pistacia vera Linn. 830
Pistia stratiotes Linn. 485, 486
Pisum sativum Linn. 649
Plantago ovata Forsk 812
Plantain 557
Pluchea lanceolata Oliver & Hiern 79
Plum 572, 812
Plumbago capensis Thumb. 24
Plumbago rosea Linn. 24
Plumbago zeylanica Linn. 22
Podophyllin 821
Podophyllum emodi Wall. 821
Podophyllum hexandrum Royle 821
Podophyllum peltatum Linn. 821
Pogostemon patchouli Hook. f. 266
Poison-nut Tree 568
Polyalthia longifolia Benth. & Hook. f. 500, 501
Polycarpea corymbosa Lam. 324, 326
Polygala chinensis Linn. 835
Polygonum aviculare Linn. 253
Polygonum plebejum R. Br. 453
Polygonum viviparum Linn. 809
Pomegranate 582
Pongamia glabra Vent. 350
Poppy Capsule 145
Poppy seeds 154
Portulaca oleracea Linn. 671
Portulaca quadrifida Linn. 670
Potasii Carbonas 163
Potassii Nitras 167
Potassium carbonate 167, 171
Potassium chloride 167
Potassium hydroxide 164, 171
Potassium nitrate 167
Potassium sulphate 164
Potentilla nepalensis Hook. 836
Pothos officinalis Schott Melet. 21
Premna flavescens Ham. 278
Premna herbacea Roxb. 103
Premna integrifolia Linn. 282
Prickly Amaranth 666
Prickly Chaff Flower 414
Prickly Lettuce 817
Prickly poppy 96
Prosopis spicigera Linn. 546
Prunella vulgaris Linn. 814
Prunus amygdalus Batsch 588
Prunus armeniaca Linn. 813
Prunus cerasus Linn. 263
Prunus domestica Linn. 812
Prunus domestica Linn. var. insititia Bailey 812
Prunus mahaleb Linn. 249, 250
Prunus persica Batsch 811
Prunus puddum Roxb. ex Wall. 202

Psoralea corylifolia Linn. 124
Psoralea seed 124
Pterocarpus marsupium Roxb. 524
Pterocarpus santalinus Linn. f. 191
Pterospermum acerifolium Willd. 500, 504
Pterospermum suberifolium Lam. 500, 504
Ptychotis ajowan DC. 25
Pudding pipe Tree 68
Pueraria tuberosa DC. 388
Pummelo 594
Puneala plum 573
Punica granatum Linn. 582
Pupalia lappacea Moq. 473
Purging Cassia 68
Purified Ox-Gall 236
Purple Lippia 470
Putranjiva roxburghii Wall. 531
Pyrus communis Linn. 590
Pyrus malus Linn 589

Q

Quassia 103
Quercus infectoria Oliv. 834
Quince 832
Quinine 839

R

Radish 697
Randia dumetorum Lam. 77
Randia uliginosa DC. 691
Ranunculus sceleratus Linn. 823
Raphanus sativus Linn. 697
Rauwolfia canescens Linn. 85
Rauwolfia densiflora Benth. 85
Rauwolfia serpentina Benth. ex. Kurz. 83
Red Gourd 681
Red Gram 648
Red Sandal wood 191
Red Sanders wood 191
Red wood tree 358
Resin 199, 208
Rhamnus purshiana DC. 816
Rheum emodi wall. 533, 599, 624
Rheum webbianum Royle 624
Rhododendron anthopogon D. Don. 258
Rhododendron campanulatum D. Don. 258
Rhododendron lepidotum Wall. 258
Rhubarb 624
Rhus 99
Rhus parviflora Roxb. 598
Rhus succedanea Linn. 99
Rice 639
Ricinus cummunis Linn. 299
Rocket Salad 654
Rock-salt 154
Rooseberry spurge 315
Rosa alba Linn. 489
Rosa centifolia Linn. 488
Rosa moschata Herrm. 181,496
Rose 488
Rose coloured Leadwort 24
Rosha Grass 383
Rosmarinus officinalis Linn. 837
Rosmary 837
Rotula aquatica Lour. 105, 108
Rubia cordifolia Linn. 75, 110
Rumex vesicarius Linn. 599, 672
Rungia parviflora Nees 324
Rungia repens Nees 324
Ruta graveolens Linn. 312,840

S
Saccharum munja Roxb. 380
Saccharum officinarum Linn. 792
Saccharum spontaneum Linn. 380
Saccolabium papillosum Lindl. 81
Safflower 112
Saffron 233
Sago 839
Salicorniceae 165
Salix acmophylla Boiss. 361
Salix caprea Linn. 184, 361
Salix tetrasperma Roxb. 361, 393
Sallow 361
Salsolaceae 165
Salt 158
Saltpetre 167
Sal-tree 520
Salvadora oleoides Dcne. 591
Salvadora persica Linn. 591
Salvia lanata Roxb. 94
Salvia plebeia R. Br. 838
Sandalwood 187
Sandalwood Oil
—East African 188
—Macassar 187
—West Australian 188
—West Indian 188
Sand Lizard 837
Sansevieria roxburghiana Schult. 435
Santalum album Linn. 187
Santonica 823
Santonin 823
Sapindus emarginatus Vahl 530
Sapindus mukorossi Gaertn. 529
Sapindus trifoliatns Linn. 530
Saraca indica Linn. 500
Sarcostemma brevistigma W. & A. 446
Sarsaparilla 49
Saussurea hypoleuca Spreng. 94
Saussurea lappa C.B. Clarke 91
Saxifraga ligulata Wall. 105, 451
Scammony Gum-resin 838
Schleichera trijuga Willd. 554
Schrebera swietenioides Roxb. 279, 544
Scilla hohenackeri Fisch et May. 137
Scilla indica Baker 137
Scindapsus officinalis Schott 21
Scripus articulatus Linn. 702
Scripus kysoor Roxb. 701
Screw Pine 498
Sea Coconut Palm 828
Sebestan 583
Secale cereale Linn. 810
Selaginella species 841
Semecarpus anacardium Linn. f. 139
Senecio jacquemontianus Benth. 94
Senna, Alexandrian 467
Senna, Italian 467
Sepia officinalis 60
Serpentine 824
Serpent stone 235
Sesame 652
Sesamum indicum Linn. 652
Sesbania grandiflora Linn. 508
Seseli indicum W. & A. 28
Setaria italica Beauv. 656
Shaddock 594
Shallot 134
Shell lac 113
Shoe Flower 506
Shorea robusta Gaertn. f. 520

Sida 367
Sida alba 371
Sida alnifolia 371
Sida cordifolia Linn. 367
Sida humilis Cav. 367, 378
Sida rhombifolia Linn. 367, 369
Sida rhomboidea 367
Sida spinosa Linn. 367, 371
Sida veronicaefolia Lam. 367, 371
Silk Cotton Tree 537
Silk pod 819
Sisymbrium irio Linn. 820
Small Caltrops 292
Small Fennel 33
Smilax china Linn. 48
Smilax glabra Roxb. 49
Smilax lanceaefolia Roxb. 49
Smilax macrophylla Roxb. 49
Smilax ornata Hook. 49
Smithia geminiflora Roth 373
Smooth-leaved Pongamia 350
Snake Cucumber 682
Snake Gourd 683
Soap-nut Tree of North India 529
Sochal Salt 161
Sodii Biboras 169
Sodii chloridum 154
Sodii muras 158
Sodium bicarbonate 166
Sodium borate 169
Sodium carbonate 167, 171
Sodium hydroxides 171
Sodium nitrate 167
Solanum indicum Linn. 288, 439
Solanum melongena Linn. 690
Solanum nigrum Linn. 86, 438
Solanum torvum Swartz. 288
Solanum tuberosum Linn. 695
Solanum xanthocarpum Schrad. & Wendl. 290
Sorghum vulgare (Linn.) Pers. 661
Soymida febrifuga A. Juss. 358
Spanish Jasmine 491
Spearmint 830
Sphaeranthus africanus Linn. 413
Sphaeranthus amaranthoides Burm. 414
Sphaeranthus indicus Linn. 413
Spikenard 240
Spinach 668
Spinacia oleracea Linn. 668
Spondias dulcis Forst. 553
Spondias mangifera Willd. 553
Sponge Gourd 684
Staff Tree 90
Star Anise of China 832
Star Gooseberry 574
Stephania hernandifolia (Willd.) Walp. 395, 396
Sterculia Gum 815
Sterculia urens Roxburgh 815
Stereospermum chelonoides DC. 280
Stereospermum suaveolens DC. 279
Stone flowers 242
Strebulus asper Lour. 542
Strophanthus kombe Oliv. 841
Strychnos nux-vomica Linn. 568
Strychnos potatorum Linn. 584
Styrax benzoin Dryand 214
Styrax tonkinensis (Pierre) Craib ex Hartwich 214
Sugar Cane 792
Swamp Cabbage 669
Sweet-basil 512
Sweet Bay 821
Sweet Cloves 39
Sweet Flag 43

Sweet Lime 596
Sweet Marjoram 510
Sweet Orange 596
Sweet-scented oleander 315
Swertia affinis Clarke 74
Swertia alata Royle ex D. Don. 75
Swertia angustifolia Buch. Ham. 75
Swertia chinensis Franchet 74
Swertia chirata Buch.-Ham. 73
Swertia corymbosa Wight 74
Swertia decussata Nimmo ex Grah. 74
Swertia paniculata Wall. 74
Swertia perennis Linn 74
Swertia purpurascens wall. 74
Symplocos Bark 128
Symplocos crataegoides Buch.-Ham. 130
Symplocos racemosa Roxb. 128
Synthetic Camphor 173
Syzygium aromaticum (Linn.) Merr. & L. M. Perry. 219
Syzygium cumini Skeels 570

T

Tabernaemontana coronaria R. Br. 200
Tacca aspera Roxb. 386, 387
Tagetes erecta Linn. 822
Tailed Pepper 259
Tamarind Tree 598
Tamarindus indica Linn. 598
Tamrisk 87
Tamarix 87
Tamarix articulata Vahl 86
Tamarix gallica Linn. 51,86,87
Tapioca 839
Taraktogenos kurzii King 826
Taraxacum officinale Weber 828
Taxus baccata Linn. 256
Tea Plant 822
Tecomella undulata Seem 527
Tecona grandis Linn. 549
Tellicherry Bark 347
Tephrosia purpurea Linn. 408
Tephrosia villosa Pers. 408
Teramnus labialis Spreng. 297
Terminalia arjuna W. & A. 523
Terminalia belerica Roxb. 9
Terminalia catappa Linn. 589
Terminalia chebula Retz. 7
Terminalia citrina Roxb. 7, 8
Terminalia tomentosa W. & A. 520, 524
Thactch grass 380
Thalictrum foliolosum DC. 432
Thespesia lampas Dalz. & Gibs. 375
Thespesia populnea Soland ex Correa 515
Thevetia neriifolia Juss. 316
Thunbergia alata Boj. 441
Thymus serpyllum Linn. 28
Tiger's claws 313
Tinnevelly Senna 467
Tinospora 270
Tinospora cordifolia (Willd.) Miers. 270
Tinospora malabarica (Lam.) Miers. 270
Toon 534
Toothache Tree 89
Trachyspermum ammi Linn. 25
Tragacanth 815
Trapa bispinosa Roxb. 578
Travancore Starch 825
Tree of sorrow 335
Trewia undiflora Linn. 278, 691

Triangular sponge 309
Trianthema portulacastrum Linn. 421, 422
Trianthema sp. 421
Tribulus alatus Del. 293
Tribulus terrestris Linn. 292
Trichodesma indicum R. Br. 810
Trichodesma zeylanicum R. Br. 545
Tricholepis glaberrima DC. 831
Trichosanthes anguina Linn. 683
Trichosanthes cordata Roxb. 388
Trichosanthes cucumerina Linn. 439, 687
Trichosanthes dioica Roxb. 686
Trichosanthes palmata Roxb. 405
Trifolium indicum Linn. 39
Trifolium officinale 265
Trigonella foenum graecum Linn. 38
Triticum sativum Lam. 642
True Kapok Tree 539
True Laurel 821
Trumpet flower 280
Trumeric 114
Turpentine oil 199, 208
Turpeth root 397
Tylophora asthmatica W. & A. 81
Typha angustata Bory & Chaub. 381
Typha elephantina Roxb. 381

U

Unaqua Sodium Chloride 161
Uncaria gambir Roxb. 526
Upas Tree 822
Uraria hamosa Wall. 288
Uraria lagopoidesDD. 286,287
Uraria picta Desv. 286, 287
Urginea indica Kunth. 136
Urginea maritima (Linn) Baker 136
Utrasum Bead Tree 837

V

Vanda roxburghii R. Br. 80
Valeriana hardwickii Wall. 200
Valeriana officinalis Linn. 200
Valeriana wallichii DC. 200
Valisneria spiralis Linn. 487
Vateria indica Linn. 521
Vegetable Marrow 680
Vegetable Sulphur 838
Velvet leaf 395
Verbascum thapsus Linn. 379
Vernonia anthemintica Willd. 32, 124
Vernonia cinerea Less. 367, 369
Vetiveria zizanioides (Linn.) Nash 239
Vigna catiang Walp. 645
Viola odorata Linn. 830
Viscum album Linn. 450
Vitex agnus-castus Linn. 252
Vitex leucoxylon Linn. 442
Vitex negundo Linn. 344, 345
Vitex peduncularis Wall. 442
Vitex trifolia Linn. 345, 345
Vitis quadrangularis Wall. 418
Vitis vinifera Linn. 585
Viverra civetta 181
Viverra zibetha Linn. 185

W

Walnut 592
Water caltrops 578
Water chestnut 578, 701
Water lily 484
Watermelon 560

Wedelia calendulacea Less. 4?9
Weeping Nyctanthes 355
Wendlandia exerta DC. 502
Wester-Lettuce 486
West Indian Arrowroot 825
Wheat 642
White Gourd 681
White Leadwort 22
White Silk Cotton Tree 539
Wild Endive 817
Wild Thyme 28
Wild tobacco 378
Wild turmeric 117
Willow 361
Winged caltrops 293
Winged-leaved clitoria 342
Winter cherry 393
Withania ashwagandha Kaul. 394
Withania somnifera Dunal 393
Wood Apple 566
Woodfordia floribunda Salisb. 109
Woodfordia fruticosa Kurz 109
Worm seed 823
Wormwood 164, 810
Wrightia tinctoria R. Br. 76, 347, 349
Wrightia tomentosa Roem. & Schult. 349

X

Xanthium strumarium Linn. 811

Y

Yam 695
Yarrow 832
Yellow Cotton Tree 816
Yellow Lichen 242
Yellow Oleander 316
Yellow Sarson 654
Yellow Thistle 96
Yellow Zedoary 117

Z

Zanthoxylum acanthopodium DC. 56
Zanthoxylum alatum Roxb. 56, 89
Zanthoxylum rhetsa DC. 57
Zedoary 245
Zingiber officinale Roscoe 13, 14
Zingiber zerumbet Rosc. ex Smith. 47
Zizyphus jujuba Lam. 572
Zizyphus nummularia W. & A. 573
Zizyphus oenoplia Mill. 572
Zizyphus sativa Gaertn. 572
Zizyphus vulgaris Lam. 572
Zizyphus xylopyra Willd. 572